संशोधित

महाभारत

द्वितीय भाग

द्रोणपर्व से अन्त तक

संस्कृत-हिन्दी

प्राचीन भारतीय इतिहास के रजतयुग का दर्पण

प्रक्षिप्त अंशों पर तर्कपूर्ण गम्भीर विवेचन

सम्पादक
यशपाल शास्त्री

सूर्य भारती प्रकाशन
नई सड़क, दिल्ली-110006

ISBN 81-87182-76-8

लेखक	:	**यशपाल शास्त्री** एच–६२, फेज–१, अशोक विहार, दिल्ली–११००५२
दूरभाष	:	३०६१३६१२, ३१०६८४२६

प्रकाशक	:	**सूर्य भारती प्रकाशन** २५६६, नई सड़क, दिल्ली–११०००६
दूरभाष	:	२३२६६४१२
टाइप सेटर	:	**शर्मा प्रिंटर्स** ५७, निमड़ी कालोनी, दिल्ली–११००५२
दूरभाष	:	२७४४५६२१
मुद्रक	:	**एस.एन. प्रिंटर्स** नवीन शाहदरा, दिल्ली–११००३२

मूल्य	:	७५०.०० (सम्पूर्ण)		
प्रथम संस्करण	:	**सृष्टि संवत्**	:	१९६०८५३१०४
		कलि संवत्	:	५१०४
		विक्रमी	:	२०६०
		ईसवी	:	२००३

विनम्र निवेदन

यह रचना अत्यन्त परिश्रम से सम्पादित हुई है। इस अध्यवसाय को सार्थक बनाने के लिये कृपया मनोयोग सहित इसका स्वाध्याय कीजिये और परिवार के सदस्यों को लाभान्वित करने के लिये, अधिकाधिक समय तक अपने पास सुरक्षित रखिये। जब अपने पास रखना आपके लिये असम्भव हो जाये तो कृपया इसे रद्दी में नहीं अपितु किसी सार्वजनिक पुस्तकालय को भेंट कर दीजिये।

विषय-सूची

अध्याय	विषय	पृष्ठ संख्या	श्लोक

कर्ण पर्व

शल्य पर्व

सौप्तिक पर्व

स्त्री पर्व

शान्ति पर्व

अध्याय	विषय	पृष्ठ संख्या	श्लोक
२.	अर्जुन का युधिष्ठिर को धन का महत्त्व समझाना	५७६	२२
३.	युधिष्ठिर द्वारा त्याग भावना का प्रतिपादन	५८०	१५
४.	युधिष्ठिर का वानप्रस्थी और सन्यासी के अनुसार जीवन यापन का निश्चय	५८२	२७
५.	भीम का राजा के लिये सन्यास का विरोध और कर्तव्य पालन पर जोर देना	५८४	२०
६.	नकुल द्वारा गृहस्थ धर्म की प्रशंसा और युधिष्ठिर को समझाना	५८५	१२
७.	सहदेव का ममता और आसक्ति से रहित होकर राज्य करने का परामर्श	५८६	१३
८.	द्रौपदी का युधिष्ठिर को राजदण्ड धारण पूर्वक शासन के लिये प्रेरित करना	५८७	२३
९.	अर्जुन के द्वारा राजदण्ड की महत्ता का प्रतिपादन	५८९	३६
१०.	भीम का पिछले दुखों की याद दिलाते हुए मन को वश में रखकर राज्य और यज्ञ के लिये कहना	५९२	२६
११.	युधिष्ठिर द्वारा मुनिवृत्ति और ज्ञानी महात्माओं की प्रशंसा। अर्जुन द्वारा पुनः समझाना	५९४	४६
१२.	युधिष्ठिर द्वारा अपने मत का प्रतिपादन	५९७	१७
१३.	मुनि देवस्थान और अर्जुन द्वारा भी समझाना	५९८	२२
१४.	व्यास जी का युधिष्ठिर को समझाना	६००	४१
१५.	सेनजित के उपदेश को उद्धृत करते हुए व्यास जी का समझाना	६०३	३२
१६.	व्यास जी का युधिष्ठिर को फिर समझाना	६०५	३०
१७.	अश्मा ऋषि और जनक के संवाद द्वारा व्यास जी का समझाना	६०७	४०
१८.	व्यास जी का पुनः समझाना	६१०	५१
१९.	व्यास जी तथा श्री कृष्ण जी के निर्देश पर युधिष्ठिर का नगर में प्रवेश	६१४	३१
२०.	नागरिकों द्वारा युधिष्ठिर का सत्कार और युधिष्ठिर का राज्याभिषेक	६१६	२२
२१.	युधिष्ठिर द्वारा राज्य की व्यवस्था के लिये विभिन्न उत्तरदायित्वों का बँटवारा	६१७	२४
२२.	युधिष्ठिर को श्रीकृष्ण जी द्वारा भीष्म पितामह के समीप जाने का आदेश	६१९	२१
२३.	पाण्डवों का भीष्म के पास कुरुक्षेत्र में पहुँचना, वहाँ श्रीकृष्ण जी का भीष्म जी से युधिष्ठिर को उपदेश देने की प्रार्थना करना	६२०	३६
२४.	युधिष्ठिर के पूछने पर भीष्म द्वारा राजधर्म का वर्णन	६२३	३८
२५.	राजा के धर्मानुकूल तथा नीति पूर्ण व्यवहार की व्याख्या	६२५	४५
२६.	भीष्म द्वारा राज्य रक्षा के साधनों का वर्णन। सन्ध्या के समय युधिष्ठिर आदि का विदा लेकर जाना	६२९	२७
२७.	अगले दिन भीष्म द्वारा वर्ण धर्म का वर्णन	६३१	३३
२८.	भीष्म जी द्वारा आश्रम धर्म का वर्णन	६३३	१६
२९.	वर्णाश्रम धर्म और राज्य धर्म की श्रेष्ठता को बताना	६३५	२८
३०.	राष्ट्र की रक्षा और उन्नति के लिये राजा की आवश्यकता का वर्णन	६३७	५४
३१.	राजा के प्रधान कर्तव्य तथा दण्ड नीति का वर्णन	६४१	७६
३२.	राजा के छत्तीस गुणों तथा प्रजा पालन का निर्देश	६४६	३०
३३.	राजा के लिये सदाचारी और विद्वान् पुरोहित की आवश्यकता को बताना	६४९	६

आश्वमेधिक पर्व

आश्रमवासिक पर्व

मौसल पर्व

महाप्रस्थानिक पर्व

द्रोणपर्व

पहला अध्याय : कर्ण की रणयात्रा।

निहतं पितरं श्रुत्वा धृतराष्ट्रो जनाधिपः।
लेभे न शान्तिं कौरव्यश्चिन्ताशोकपरायणः॥ १॥
तस्य चिन्तयतो दुःखमनिशं पार्थिवस्य तत्।
आजगाम विशुद्धात्मा पुनर्गावल्गणिस्तदा॥ २॥
शिबिरात् संजयं प्राप्तं निशि नागाह्वयं पुरम्।
आम्बिकेयो महाराजा धृतराष्ट्रोऽन्वपृच्छत॥ ३॥
संशोच्य तु महात्मानं भीष्मं भीमपराक्रमम्।
किमकार्षुः परं तात कुरवः कालचोदिताः॥ ४॥

अपने ज्येष्ठ पिता को गिराया हुआ सुनकर कुरुवंशी राजा धृतराष्ट्र शोकमग्न हो गये। उन्हें चिन्ता के कारण शान्ति नहीं मिली। वे राजा सारी रात उस दुखदायी घटना के बारे में सोचते रहते थे। एक दिन विशुद्ध आत्मा वाले गवल्गण पुत्र संजय फिर उनके पास आये। युद्धक्षेत्र के शिविर से रात्रि में हस्तिनापुर आये हुए उस संजय से अम्बिका पुत्र महाराज धृतराष्ट्र ने पूछा कि हे तात! भयंकर पराक्रम वाले महात्मा भीष्म के विषय में शोक करके काल से प्रेरित कौरवों ने उसके पश्चात् क्या किया?

संजय उवाच

अजावय इवागोपा वने श्वापदसंकुले।
भृशमुद्विग्नमनसो हीना देवव्रतेन ते॥ ५॥
पतिते भरतश्रेष्ठे बभूव कुरुवाहिनी।
द्यौरिवापेतनक्षत्रा हीनं खमिव वायुना॥ ६॥
विपन्नसस्येव मही वाक् चैवासंस्कृता तथा।
विधवेव वरारोहा शुष्कतोयेव निम्नगा॥ ७॥
वृकैरिव वने रुद्धा पृषती हतयूथपा।
भारती भरतश्रेष्ठे पतिते जाह्नवीसुते॥ ८॥

तब संजय के कहा कि जैसे भेड़ बकरियाँ हिंसक पशुओं से भरे वन में रक्षक के न होने पर उद्विग्न हो जाती हैं, वैसे ही देवव्रत से रहित होने पर आपके पुत्र और सैनिक मन में अत्यन्त उद्विग्न हो रहे थे। भरतश्रेष्ठ भीष्म के गिराये जाने पर कौरवसेना नक्षत्रों से रहित द्युलोक, वायु से रहित आकाश, नष्ट हुई खेती वाली भूमि और संस्काररहित वाणी के समान हो गयी थी। भरतवंशियों की सेना भरतश्रेष्ठ गंगापुत्र के गिराये जाने पर, विधवा हुई सुन्दरी के समान, सूखे पानी वाली नदी के समान, जिसका साथी यूथपति मार दिया गया हो और जिसे वन में भेड़ियों ने घेर लिया हो उस चित कबरी मृगी के समान हो गयी थी।

विष्वग्वाताहता रुग्णा नौरिवासीन्महार्णवे।
बलिभिः पाण्डवैर्वीरैर्लब्धलक्षैर्भृशार्दिता॥ ९॥
कर्णं हि कुरवोऽस्मार्षुः स हि देवव्रतोपमः।
सर्वशस्त्रभृतां श्रेष्ठं रोचमानमिवातिथिम्॥ १०॥
बन्धुमापद्गतस्येव तमेवोपागमन्मनः।
चुक्रुशुः कर्ण कर्णेति तत्र भारत पार्थिवाः॥ ११॥

लक्ष्यभेद करने में कुशल बलवान् पाण्डववीरों से अत्यन्तपीडित कौरवसेना, चारों तरफ से बहने वाली वायु के आघात से टूटी हुई और महासागर में पड़ी हुई नौका के समान हो गयी थी। तब कौरवों ने कर्ण को याद किया क्योंकि उसे ही वे भीष्म के समान पराक्रमी समझते थे। उनका मन कर्ण की तरफ जाने लगा, जो उनके लिये सारे शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ, प्रिय अतिथि के समान और आपत्तिग्रस्त के बन्धु के समान था। हे भारत! वे राजालोग कर्ण कर्ण की ही पुकार करने लगे।

उपागतं महाबाहुं सर्वानीकपुरः सरम्।
कर्णं दृष्ट्वा महात्मानं युद्धाय समुपस्थितम्॥ १२॥
क्ष्वेडितास्फोटितरवैः सिंहनादरवैरपि।
धनुःशब्दैश्च विविधैः कुरवः समपूजयन्॥ १३॥

तभी दुर्योधनआदि सारेकौरव, सारीसेनाओं के अग्रणी, महाबाहु, मनस्वी कर्ण को युद्ध के लिये उपस्थित देखकर प्रसन्न हो गये। कौरवों ने तब गर्जना कर, ताल ठोककर, सिंहनाद करके और तरह तरह के धनुषों की टंकार करके उसका स्वागत किया।

दूसरा अध्याय : संजय द्वारा द्रोणाचार्य के सेनापति बनाये जाने और वध की सूचना।

रथस्थं पुरुषव्याघ्रं दृष्ट्वा कर्णमवस्थितम्।
हृष्टो दुर्योधनो राजन्निदं वचनमब्रवीत्॥ १॥
सनाथमिव मन्येऽहं भवता पालितं बलम्।
अत्र किं नु समर्थं यद्धितं तत् सम्प्रधार्यताम्॥ २॥

कर्ण उवाच

ब्रूहि नः पुरुषव्याघ्र त्वं हि प्राज्ञतमो नृप।
यथा चार्थपतिः कृत्यं पश्यते न तथेतरः॥ ३॥
ते स्म सर्वे तव वचः श्रोतुकामा नरेश्वर।
नान्याय्यं हि भवान् वाक्यं ब्रूयादिति मतिर्मम॥ ४॥

हे राजन्! पुरुषव्याघ्र कर्ण को रथ पर बैठा हुआ देखकर, दुर्योधन ने यह कहा कि तुम्हारे द्वारा पालन की हुई इस सेना को देख कर मैं इसे सनाथा हुई मानता हूँ। अब यहाँ क्या हितकारी कार्य हो सकता है? उसका निश्चय करो। तब कर्ण ने कहा कि हे पुरुषव्याघ्र! इस विषय में तुम ही हमें बताओ। हे राजन्! तुम ही सबसे अधिक बुद्धिमान् हो। धन का स्वामी कल्याण के विषय में जितना अधिक सोच सकता है, उतना दूसरा व्यक्ति नहीं सोच सकता। हे नरेश्वर! हम तुम्हारी बात को ही सुनना चाहते हैं। मेरा ऐसा विचार है कि तुम किसी भी न्यायरहित बात को नहीं कहोगे।

दुर्योधन उवाच

भीष्मःसेनाप्रणेताऽऽसीद् वयसा विक्रमेण च।
श्रुतेन चोपसम्पन्नः सर्वैर्योधगणैस्तथा॥ ५॥
तेनातियशसा कर्ण घ्नता शत्रुगणान् मम।
सुयुद्धेन दशाहानि पालिताः स्मो महात्मना॥ ६॥
तस्मिन्नसुकरं कर्म कृतवत्यास्थिते दिवम्।
कं तु सेनाप्रणेतारं मन्यसे तदनन्तरम्॥ ७॥
यथा ह्यकर्णधारा नौ रथश्चासारथिर्यथा।
द्रवेद् यथेष्टं तद्वत् स्यादृते सेनापतिं बलम्॥ ८॥

तब दुर्योधन ने कहा कि पहले भीष्म हमारी सेना के नेता थे। वे आयु, विक्रम और विद्या से सम्पन्न थे। उन मनस्वी, अत्यन्त यशस्वी ने हे कर्ण! सारे योद्धाओं के साथ मेरे शत्रुओं को मारते हुए, सुन्दर युद्ध करते हुए, दस दिनों तक हमारा पालन किया। उस अत्यन्त दुष्कर कार्य को करके वे अब स्वर्गलोक के मार्ग पर चल पड़े हैं। अब उनके पश्चात् तुम किसको हमारी सेना का नायक बनने के योग्य समझते हो? जैसे बिना कर्णधार के नाव, बिना सारथी के रथ भटक जाता है, वैसी ही अवस्था बिना सेनापति के सेना की होती है।

अदेशिको यथा सार्थः सर्वः कृच्छ्रं समृच्छति।
अनायका तथा सेना सर्वान् दोषान् समर्छति॥ ९॥
स भवान् वीक्ष्य सर्वेषु मामकेषु महात्मसु।
पश्य सेनापतिं युक्तमनु शान्तनवादिह॥ १०॥
यं हि सेनाप्रणेतारं भवान् वक्ष्यति संयुगे।
तं वयं सहिताः सर्वे करिष्यामो न संशयः॥ ११॥

जैसे मार्गदर्शक न होने पर, यात्रियों का सारा दल संकट में पड़ जाता है, वैसे ही बिना नायक के सेना भी सभीप्रकार के दोषों को प्राप्त हो जाती है। इसलिये आप मेरे सारे मनस्वी साथियों में से देखकर यह बताओ कि शान्तनुपुत्र के पश्चात् यहाँ कौन सेनापति बन सकता है? इस युद्ध में आप जिसे सेनापति के योग्य समझकर बतायेंगे, हमसब मिलकर उसे ही अपना सेनापति बनायेंगे। इसमें कोई संशय नहीं है।

कर्ण उवाच

सर्व एव महात्मान इमे पुरुषसत्तमाः।
सेनापतित्वमर्हन्ति नात्र कार्या विचारणा॥ १२॥
अन्योन्यस्पर्धिनां ह्येषां यद्येकं यं करिष्यसि।
शेषा विमनसो व्यक्तं न योत्स्यन्ति हितास्तव॥ १३॥
अयं च सर्वयोधानामाचार्यः स्थविरो गुरुः।
युक्तः सेनापतिः कर्तुं द्रोणः शस्त्रभृतां वरः॥ १४॥

तब कर्ण ने कहा कि ये सारे ही पुरुषश्रेष्ठ मनस्वी हैं और सेनापति बननेयोग्य हैं, इसमें कोई सोचविचार की बात नहीं है। पर ये एकदूसरे से स्पर्धा करनेवाले हैं। यदि इनमें से एक को सेनापति बना दोगे, तो शेषसारे मन में अप्रसन्न होकर तुम्हारे कल्याण की भावना से युद्ध नहीं करेंगे। इसलिये सारे योद्धाओं के गुरु, आचार्य, वृद्ध और सारे शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ ये द्रोणाचार्य ही सेनापति बनने के योग्य हैं।

को हि तिष्ठति दुर्धर्षे द्रोणे शस्त्रभृतां वरे।
सेनापतिः स्यादन्योऽस्माच्छुक्राङ्गिरसदर्शनात्॥ १५॥
न च सोऽप्यस्ति ते योधः सर्वराजसु भारत।
द्रोणं यः समरे यान्तं नानुयास्यति संयुगे॥ १६॥
एष सेनाप्रणेतृणामेष शस्त्रभृतामपि।
एष बुद्धिमतां चैव श्रेष्ठो राजन् गुरुस्तव॥ १७॥
कर्णस्य वचनं श्रुत्वा राजा दुर्योधनस्तदा।
सेनामध्यगतं द्रोणमिदं वचनमब्रवीत्॥ १८॥

युद्ध में दुर्धर्ष, शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ, शुक्राचार्य और बृहस्पति के समान इन द्रोणाचार्य के रहते हुए और कौन सेनापति बन सकता है? हे भारत! इन सारे राजाओं में कोई भी योद्धा ऐसा नहीं है, जो द्रोणाचार्य के युद्धस्थल में जाते हुए इनके पीछे न चले। हे राजन्! ये सेनापतियों में, शस्त्रधारियों में, बुद्धिमानों में श्रेष्ठ हैं और तुम्हारे गुरु भी हैं। कर्ण की बात सुनकर राजा दुर्योधन ने तब सेना के मध्यभाग में विद्यमान द्रोणाचार्य से यह कहा कि—

वर्णश्रैष्ठ्यात् कुलोत्पत्त्या श्रुतेन वयसा धिया।
वीर्याद् दाक्ष्याददधृष्यत्वादर्थज्ञानान्नयाज्जयात्॥ १९॥
तपसा च कृतज्ञत्वाद् वृद्धः सर्वगुणैरपि।
युक्तो भवत्समो गोप्ता राज्ञामन्यो न विद्यते॥ २०॥
स भवान् पातु नः सर्वान् देवानिव शतक्रतुः।
भवन्नेत्राः पराञ्जेतुमिच्छामो द्विजसत्तम॥ २१॥
अनुयास्यामहे त्वाजौ सौरभेया इवर्षभम्।
उग्रधन्वा महेष्वासो दिव्यं विस्फारयन् धनुः॥ २२॥
अग्रेभवं त्वां तु दृष्ट्वा नार्जुनः प्रहरिष्यति।

हे ब्राह्मणश्रेष्ठ! श्रेष्ठ वर्णवाला होने से, उत्तम कुलवाला होने से, विद्या, आयु, बुद्धि, पराक्रम, चातुर्य, अजेयता, अर्थज्ञान, नीति, विजय, तप, कृतज्ञता और सारेगुणों में बढ़चढ़कर होने से दूसरे राजाओं में आपके समान हमारा संरक्षक और कोई नहीं है। इसलिये आप देवताओं की इन्द्र के समान हमारी पालना करें। हम आपके नेतृत्व में शत्रुओं को पराजित करना चाहते हैं। जैसे बछड़े सांड के पीछे चलते हैं, वैसे ही युद्ध में हम सब आपके पीछे चलेंगे। आपको हमारी सेना का अग्रणी देखकर भयंकर धनुष धारण करने वाले, महाधनुर्धर अर्जुन अपने धनुष को टंकारते हुए भी प्रहार नहीं करेंगे।

ध्रुवं युधिष्ठिरं संख्ये सानुबन्धं सबान्धवम्॥ २३॥
जेष्यामि पुरुषव्याघ्र भवान् सेनापतिर्यदि।

द्रोण उवाच

ये चाप्युक्ता मयि गुणा भवद्भिर्जयकाङ्क्षिभिः॥ २४॥
चिकीर्षुस्तानहं सर्वान् योधयिष्यामि पाण्डवान्।
योधयिष्यामि सैन्यानि नाशयन् सर्वसोमकान्॥ २५॥
न च मां पाण्डवा युद्धे योधयिष्यन्ति हर्षिताः।
स एवमभ्यनुज्ञातश्चक्रे सेनापतिं ततः।
द्रोणं तव सुतो राजन् विधिदृष्टेन कर्मणा॥ २६॥

हे पुरुषव्याघ्र। यदि आप हमारे सेनापति हो जायें तो मैं युधिष्ठिर को उनके परिवार और साथियोंसहित युद्ध में निश्चितरूप से जीत लूँगा। तब द्रोणाचार्य ने कहा कि मेरे अन्दर जो भी गुण विजय के इच्छुक तुमने कहे हैं, उन्हें पूरा करने की इच्छा रखता हुआ मैं पाण्डवों से युद्ध करूँगा। मैं सारे सोमकों का नाश करते हुए पाण्डवसेनाओं के साथ युद्ध करूँगा। पर पाण्डव मेरे साथ प्रसन्न होकर युद्ध नहीं करेंगे। हे राजन्! इसप्रकार स्वीकृति देने पर आपके पुत्र ने द्रोणाचार्य को विधिपूर्वक सेनापति बना दिया।

शैनेयभीमार्जुन- वाहिनीशं
सौभद्रपाञ्चालस- काशिराजम्।
अन्यांश्च वीरान् समरे ममर्द
द्रोणः सुतानां तव भूमिकामः॥ २७॥

इसके पश्चात् जिस सेना के स्वामी सात्यकि, भीम और अर्जुन थे, जिसमें अभिमन्यु, द्रुपद और काशिराज जैसे योद्धा विद्यमान थे, उस सेना को तथा दूसरे वीरों को आपके पुत्रों के ऐश्वर्य की कामना करते हुए द्रोणाचार्य ने युद्ध में खूब रौंदा।

एवं रुक्मरथः शूरो हत्वा शतसहस्रशः।
पाण्डवानां रणे योधान् पार्षतेन निपातितः॥ २८॥

धृतराष्ट्र उवाच

किं कुर्वाणं रणे द्रोणं जघ्नुः पाण्डवसृंजयाः।
तथा निपुणमस्त्रेषु सर्वशस्त्रभृतामपि॥ २९॥
रथभङ्गो बभूवास्य धनुर्वाशीर्यतास्यतः।
प्रमत्तो वाभवद् द्रोणस्ततो मृत्युमुपेयिवान्॥ ३०॥
अस्त्रं चतुर्विधं वीरे यस्मिन्नासीत् प्रतिष्ठितम्।
तमिष्वस्त्रधराचार्यं द्रोणं शंससि मे हतम्॥ ३१॥

इसप्रकार सुनहले रथवाले उन शूरवीर ने युद्ध में पाण्डवों के लाखों योद्धाओं को मारा, पर अन्त में

द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्न के द्वारा वे मार गिराये गये। तब धृतराष्ट्र ने पूछा कि द्रोणाचार्य तो अस्त्रविधा में सारे शस्त्रास्त्रधारियों में निपुण थे? वे उससमय क्या कर रहे थे, जो पाण्डव लोग उन्हें युद्ध में मार सके? क्या उनका रथ टूट गया था? या बाणों का प्रहार करते समय धनुष खण्डित हो गया था? क्या वे असावधान थे? जो वे मृत्यु को प्राप्त हो गये? जिस वीर में चार प्रकार की अस्त्रविधा प्रतिष्ठित थी, उस धनुर्धरों के आचार्य द्रोण को तुम मारा हुआ बता रहे हो?

न नूनं परदुःखेन म्रियते कोऽपि संजय।
यत्र द्रोणमहं श्रुत्वा हतं जीवामि मन्दधीः॥ ३२॥
एतत् पृष्ट्वा सूतपुत्रं हृच्छोकेनार्दितो भृशम्।
जये निराशः पुत्राणां धृतराष्ट्रोऽपतत् क्षितौ॥ ३३॥
तं विसंज्ञं निपतितं सिषिचुः परिचारिकाः।
जलेनात्यर्थशीतेन वीजन्त्यः पुण्यगन्धिना॥ ३४॥
पतितं चैनमालोक्य समन्ताद् भरतस्त्रियः।
परिवव्रुर्महाराजमस्पृशंश्चैव पाणिभिः॥ ३५॥

हे संजय! वास्तव में कोई भी दूसरे के दुख से दुखी होकर नहीं मरता। इसीलिये मन्दबुद्धि मैं द्रोणाचार्य को मारा हुआ सुनकर भी जी रहा हूँ। सूतपुत्र संजय से ऐसा पूछते हुए, हृदय के शोक से अत्यन्तपीड़ित होकर, अपने पुत्रों की विजय के विषय में निराश होकर, धृतराष्ट्र अचेत होकर, भूमि पर गिर पड़े। मूर्च्छित होकर गिरे हुए उन पर दासियों ने अत्यन्त सुगन्धित और ठण्डा जल छिड़का तथा वे उन पर पंखा झलने लगीं। उन्हें गिरा हुआ देखकर भरतकुल की स्त्रियों ने महाराज को चारोंतरफ से घेर लिया और वे उन्हें हाथों से सहलाने लगीं।

उत्थाप्य चैनं शनकै राजानं पृथिवीतलात्।
आसनं प्रापयामासुर्बाष्पकण्ठ्यो वराननाः॥ ३६॥
आसनं प्राप्य राजा तु मूर्छयाभिपरिप्लुतः।
निश्चेष्टोऽतिष्ठत तदा वीज्यमानः समन्ततः॥ ३७॥
स लब्ध्वा शनकैः संज्ञां वेपमानो महीपतिः।
पुनर्गावल्गणिं सूतं पर्यपृच्छद् यथातथम्॥ ३८॥

फिर आँसू बहाती हुई उन सुन्दरी स्त्रियों ने धीरे धीरे राजा को भूमितल से उठाया और उन्हें आसन पर बैठाया। जिन पर सबतरफ से पंखा झला जा रहा था, मूर्च्छा से युक्त वे राजा अपने आसन पर बैठकर भी चेष्टाहीन अवस्था में ही रहे। फिर धीरे धीरे होश में आकर काँपते हुए राजा ने गवल्गणपुत्र संजय से यथावत् समाचार पूछा।

तीसरा अध्याय : द्रोणाचार्य की अर्जुन की अनुपस्थिति में, युधिष्ठिर को पकड़ने की प्रतिज्ञा। अर्जुन का युधिष्ठिर को ढाढस।

संजय उवाच

सेनापतित्वं सम्प्राप्य भारद्वाजो महारथः।
मध्ये सर्वस्य सैन्यस्य पुत्रं ते वाक्यमब्रवीत्॥ १॥
करोमि कामं कं तेऽद्य प्रवृणीष्व यमिच्छसि।
ततो दुर्योधनो राजा कर्णदुःशासनादिभिः॥ २॥
सम्मन्त्र्योवाच दुर्धर्षमाचार्यं जयतां वरम्।
ददासि चेद् वरं मह्यं जीवग्राहं युधिष्ठिरम्॥ ३॥
गृहीत्वा रथिनां श्रेष्ठं मत्समीपमिहानय।

संजय ने कहा कि सेनापतिपद को प्राप्त कर महारथी द्रोणाचार्य ने हे राजन्! आपके पुत्र से सारी सेनाओं के बीच में यह कहा कि मैं अब तुम्हारी कौन सी इच्छा पूरी करूँ? तुम जो चाहते हो, उसे बताओ। तब राजा दुर्योधन ने कर्ण, दुश्शासन आदि से सलाह लेकर, विजय पानेवालों में श्रेष्ठ, दुर्धर्ष आचार्य से यह कहा कि यदि आप मेरी इच्छा पूरी करना चाहते हैं, तो आप रथियों में श्रेष्ठ युधिष्ठिरं को जीवित पकड़कर यहाँ मेरे पास ले आइये।

वधे कुन्तिसुतस्याजौ नाचार्य विजयो मम॥ ४॥
हते युधिष्ठिरे पार्था हन्युः सर्वान् हि नो ध्रुवम्।
सत्यप्रतिज्ञे त्वानीते पुनर्द्यूतेन निर्जिते॥ ५॥
पुनर्यास्यन्त्यरण्याय पाण्डवास्तमनुव्रताः।
सोऽयं मम जयो व्यक्तं दीर्घकालं भविष्यति॥ ६॥
अतो न वधमिच्छामि धर्मराजस्य कर्हिचित्।
तस्य जिह्ममभिप्रायं ज्ञात्वा द्रोणोऽथ तत्त्ववित्॥ ७॥
तं वरं सान्तरं तस्मै ददौ संचिन्त्य बुद्धिमान्।

हे आचार्य! कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर के युद्धक्षेत्र में मारे जाने पर मेरी विजय नहीं होगी, क्योंकि

युधिष्ठिर के मारे जाने पर पाण्डव निश्चितरूप से सबको मार देंगे। पर उस सत्यप्रतिज्ञ युधिष्ठिर को पकड़कर ले आने पर, यदि पुनः उन्हें जूए में जीत लिया जाये, तो उनके प्रति प्रेम रखनेवाले पाण्डव उनके साथ ही फिर वन में चले जायेंगे। इसप्रकार मेरी लम्बे समय के लिये विजय हो जायेगी। इसीलिये मैं धर्मराज का किसीप्रकार भी वध नहीं चाहता। तब उसके कुटिल अभिप्राय को समझकर, उस तत्ववेत्ता बुद्धिमान् द्रोणाचार्य ने सोचविचारकर, एक शर्त रखकर उसे यह वर दिया।

द्रोण उवाच

न चेद् युधिष्ठिरं वीरः पालयत्यर्जुनो युधि॥ ८॥
मन्यस्व पाण्डवश्रेष्ठमानीतं वशमात्मनः।
असंशयं स मे शिष्यो मत्पूर्वश्चास्त्रकर्मणि॥ ९॥
तरुणः सुकृतैर्युक्त एकायनगतश्च ह।
अस्त्राणीन्द्राच्च रुद्राच्च भूयः स समवाप्तवान्॥ १०॥
अमर्षितश्च ते राजंस्ततो नामर्षयाम्यहम्।
स चापक्रम्यतां युद्धाद् येनोपायेन शक्यते॥ ११॥

द्रोणाचार्य ने कहा कि यदि युद्धस्थल में अर्जुन युधिष्ठिर की रक्षा नहीं कर रहे होंगे तो तुम समझलो कि पाण्डवश्रेष्ठ युधिष्ठिर तुम्हारे बस में आगये। इसमें सन्देह नहीं है कि अर्जुन मेरा शिष्य है, उसने पहले अस्त्रविद्या मुझसे ही सीखी है, पर वह तरुण है, अच्छे कार्यों से युक्त है। उसने मरण या विजय किसीएक चीज का वरण किया हुआ है। उसने इन्द्र, रुद्र आदि से बहुत से अस्त्रों की शिक्षा प्राप्त की हुई है। फिर हे राजन्! उसमें तुम्हारे प्रति क्रोध है, इसलिये मैं उससे लड़ने का उत्साह नहीं रखता हूँ। अतः उसे जिस किसीउपाय से सम्भव हो, युद्धस्थल से दूर हटा दो।

अहं गृहीत्वा राजानं सत्यधर्मपरायणम्।
आनयिष्यामि ते राजन् वशमद्य न संशयः॥ १२॥
यदि स्थास्यति संग्रामे मुहूर्तमपि मेऽग्रतः।
अपनीते नरव्याघ्रे कुन्तीपुत्रे धनंजये॥ १३॥
सान्तरं तु प्रतिज्ञाते राज्ञो द्रोणेन निग्रहे।
गृहीतं तममन्यन्त तव पुत्राः सुबालिशाः॥ १४॥
पाण्डवेयेषु सापेक्षं द्रोणं जानाति ते सुतः।
ततः प्रतिज्ञास्थैर्यार्थं स मन्त्रो बहुलीकृतः॥ १५॥

हे राजन्! नरव्याघ्र अर्जुन के दूर चले जाने पर, यदि युधिष्ठिर मेरे सामने एक मुहर्त भी युद्ध में खड़े रह जायेंगे, तो मैं उन सत्यधर्मपरायण राजा को लाकर तुम्हारे बस में कर दूँगा इसमें संशय नहीं है। हे राजन्! इसप्रकार जब शर्त रखकर द्रोणाचार्य ने राजा युधिष्ठिर को पकड़ने की प्रतिज्ञा करली, तब आपके पुत्र अपनी अत्यन्त मूर्खता के कारण उन्हें कैद किया हुआ ही मानने लगे। आपका पुत्र यह मानता है कि द्रोणाचार्य पाण्डवों के प्रति प्रेम रखते हैं, इसलिये उनकी प्रतिज्ञा को स्थिर रखने के लिये उसने द्रोणाचार्य के साथ अपनी मन्त्रणा को सबतरफ प्रकट कर दिया।

तच्च सर्वं यथान्यायं धर्मराजेन भारत।
आप्तैराशु परिज्ञातं भारद्वाजचिकीर्षितम्॥ १६॥
ततः सर्वान् समानाय्य भ्रातृनन्यांश्च सर्वशः।
अब्रवीद् धर्मराजस्तु धनंजयमिदं वचः॥ १७॥
श्रुतं ते पुरुषव्याघ्र द्रोणस्याद्य चिकीर्षितम्।
यथा तन्न भवेत् सत्यं तथा नीतिर्विधीयताम्॥ १८॥
सान्तरं हि प्रतिज्ञातं द्रोणेनामित्रकर्षिणा।
तच्चान्तरं महेष्वास त्वयि तेन समाहितम्॥ १९॥
स त्वमद्य महाबाहो युध्यस्व मदनन्तरम्।
यथा दुर्योधनः कामं नेमं द्रोणादवाप्नुयात्॥ २०॥

हे भारत! येसारी बातें युधिष्ठिर ने अपने गुप्तचरों से जल्दी ही मालूम करलीं कि द्रोणाचार्य क्या करना चाहते हैं? तब उन्होंने अपनेसारे भाइयों तथा दूसरे सम्बन्धियों को बुलाकर अर्जुन से यह कहा कि हे पुरुषव्याघ्र! द्रोणाचार्य क्या करना चाहते हैं? यह तुमने सुना ही होगा। अब तुम ऐसी नीति निर्धारित करो, जिससे उनकी इच्छा पूरी न हो। शत्रुदमन द्रोणाचार्य ने शर्त रखकर ही प्रतिज्ञा की है। हे महाधनुर्धर! उन्होंने यह शर्त तुम्हारे ऊपर ही टिका रखी है। इसलिये हे महाबाहु! तुम मेरे पास रहकर ही युद्ध करो, जिससे दुर्योधन द्रोणाचार्य से अपनी इच्छा पूरी न करा सके।

अर्जुन उवाच

यथा मे न वधः कार्य आचार्यस्य कदाचन।
तथा तव परित्यागो न मे राजंश्चिकीर्षितः॥ २१॥
त्वां निगृह्याहवे राज्यं धार्तराष्ट्रोऽयमिच्छति।
न स तं जीवलोकेऽस्मिन् कामं प्राप्येत् कथंचन॥ २२॥
प्रपतेद् द्यौः सनक्षत्रा पृथिवी शकलीभवेत्।
न त्वां द्रोणो निगृह्णीयाज्जीवमाने मयि ध्रुवम्॥ २३॥

मयि जीवति राजेन्द्र न भयं कर्तुमर्हसि।
द्रोणादस्त्रभृतां श्रेष्ठात् सर्वशस्त्रभृतामपि॥ २४॥

तब अर्जुन ने कहा कि जैसे मुझे कभी आचार्य का वध नहीं करना चाहिये, उसीप्रकार हे राजन्! आपका परित्याग भी मैं बिल्कुल नहीं चाहता। यह धृतराष्ट्र का पुत्र आपको युद्ध में कैदकर राज्य प्राप्त करना चाहता है। अपनी इस कामना को वह इस संसार में किसीप्रकार भी पूरी नहीं कर सकता। चाहे आकाश नक्षत्रों के साथ गिर पड़े, चाहे भूमि के टुकड़े टुकड़े हो जायें, पर मेरे जीवित रहते हुए यह निश्चित है कि द्रोणाचार्य आपको नहीं पकड़ सकते। इसलिये हे राजेन्द्र! मेरे जीवित रहते हुए आपको अस्त्रधारियों और सारे शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ द्रोणाचार्य से भय नहीं करना चाहिये।

चौथा अध्याय : वीरों के द्वन्द्वयुद्ध। द्रोणाचार्य और अभिमन्यु की वीरता।

संजय उवाच

ततो व्यूढान्यनीकानि तव तेषां च भारत।
शनैरुपेयुरन्योन्यं योध्यमानानि संयुगे॥ १॥
ततः प्रववृते युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम्।
पाण्डवानां कुरूणां च द्रोणपाञ्चाल्ययोरपि॥ २॥
ततः स पाण्डवानीके जनयन् सुमहद् भयम्।
व्यचरत् पृतनां द्रोणो दहन् कक्षमिवानलः॥ ३॥
सततं कृष्यतः संख्ये धनुषोऽस्याशुकारिणः।
ज्याघोषः शुश्रुवेऽत्यर्थं विस्फूर्जितमिवाशनेः॥ ४॥

संजय ने कि हे भारत! तब आपकी और पाण्डवों की सेनाएँ व्यूहबद्ध होकर, युद्ध के लिये धीरे धीरे एक दूसरे के समीप आने लगीं। उसके पश्चात् पाण्डवों और कौरवों में तथा द्रोणाचार्य और धृष्टद्युम्न में तुमुल युद्ध होने लगा। द्रोणाचार्य जैसे घासफूस को अग्नि जलाती है, वैसे ही पाण्डवसेना को दग्ध करते हुए, उस सेना में अत्यन्त भय उत्पन्न करते हुए घूमने लगे। शीघ्रता से बाण चलाते हुए द्रोणाचार्य के लगातार खींचे जानेवाले धनुष की प्रत्यंचा की टंकार, विजली की गड़गड़ाहट के समान जोर जोर से सुनाई दे रही थी।

रथिनः सादिनश्चैव नागानश्वान् पदातिनः।
रौद्रा हस्तवता मुक्ताः सम्मृद्नन्ति स्म सायकाः॥ ५॥
नानद्यमानः पर्जन्यः प्रवृद्धः शुचिसंक्षये।
अश्मवर्षमिवावर्षत् परेषामावहद् भयम्॥ ६॥
तस्य विद्युदिवाभ्रेषु चापं हेमपरिष्कृतम्।
भ्रमद्रथाम्बुदे चास्मिन् दृश्यते स्म पुनः पुनः॥ ७॥

हाथ चलाने में कुशल उनके द्वारा छोड़े हुए भयंकर बाण रथियों, घुड़सवारों, घोड़ों, हाथियों और पैदलों को मारकर मिट्टी में मिला रहे थे। वर्षाऋतु के समाप्त होने पर, जैसे बढ़े हुए बादल गर्जना करते हुए ओलों की वर्षा करते हैं, वैसे ही द्रोणाचार्य भी बाणों की वर्षा के द्वारा शत्रुओं के मन में भय उत्पन्न कर रहे थे। बादलों में चमकनेवाली बिजली के समान, उनका स्वर्णभूषित धनुष भी उनके रथरूपी बादल में बार बार चमकता हुआ दिखाई देता था।

तर्जयन्तमनीकानि तानि तानि महारथम्।
सर्वतोऽभ्यद्रवन् द्रोणं युधिष्ठिरपुरोगमाः॥ ८॥
तानभिद्रवतः शूरांस्तावका दृढविक्रमाः।
सर्वतः प्रत्यगृह्णन्त तदभूल्लोमहर्षणम्॥ ९॥

तब सेनाओं को इसप्रकार भयभीत करनेवाले द्रोणाचार्य पर युधिष्ठिर आदि पाण्डव महारथियों ने सबतरफ से आक्रमण कर दिया। उन आक्रमण करते हुए शूरवीरों को आपके दृढ विक्रमवाले शूरवीरों ने रोका और इसप्रकार उनमें परस्पर रोंगटे खड़े कर देनेवाला युद्ध होने लगा।

शतमायस्तु शकुनिः सहदेवं समाद्रवत्।
सनियन्तृध्वजरथं विव्याध निशितैः शरैः॥ १०॥
तस्य माद्रीसुतः केतुं धनुः सूतं हयानपि।
नातिक्रुद्धः शरैश्छित्त्वा षष्ट्या विव्याध सौबलम्॥ ११॥
सौबलस्तु गदां गृह्य प्रचस्कन्द रथोत्तमात्।
स तस्य गदया राजन् रथात् सूतमपातयत्॥ १२॥
ततस्तौ विरथौ राजन् गदाहस्तौ महाबलौ।
चिक्रीडतू रणे शूरौ सशृङ्गाविव पर्वतौ॥ १३॥

तब सैकड़ोंतरह के छलकपट को जाननेवाले शकुनि ने सहदेव पर आक्रमण किया तथा सारथी सहित उसके ध्वज और रथ को तीखे बाणों से बींध दिया। तब माद्री के उस पुत्र ने बिना अधिक क्रोध किये उसके ध्वज, धनुष और घोड़ों को भी बाणों

से बींधकर साठ बाणों की वर्षा के द्वारा सुबल पुत्र को घायल कर दिया। हे राजन्! फिर शकुनि गदा लेकर उत्तम रथ से उतर गया और उस गदा से उसने सहदेव के सारथी को मार दिया। हे राजन्! तब रथ से रहित होकर वेदोनों महाबली, गदा हाथ में लिये, शिखरवाले दो पर्वतों के समान युद्ध स्थल में खेल सा करने लगे।

द्रोणः पाञ्चालराजानं विद्ध्वा दशभिराशुगैः।
बहुभिस्तेन चाभ्यस्तस्तं विव्याध ततोऽधिकैः॥ १४॥
विविंशतिं भीमसेनो विंशत्या निशितैः शरैः।
विद्ध्वा नाकम्पयद् वीरस्तदद्भुतमिवाभवत्॥ १५॥
विविंशतिस्तु सहसा व्यश्वकेतुशरासनम्।
भीमं चक्रे महाराज ततः सैन्यानन्यपूजयन्॥ १६॥
स तन्न ममृषे वीरः शत्रोर्विक्रममाहवे।
ततोऽस्य गदया दान्तान् हयान् सर्वानपातयत्॥ १७॥

उधर द्रोणाचार्य ने पाँचालराज द्रुपद को दस शीघ्रगामी बाणों से बींधा। तब द्रुपद ने भी उन्हें बहुत से बाणों से बींधा। फिर द्रोणाचार्य ने उन्हें और अधिक बाणों से घायल कर दिया। विविंशति को भीमसेन ने बीस बाणों से बींधा, पर वह वीर कम्पित नहीं हुआ। यह एक अद्भुत बात थी। फिर विविंशति ने सहसा भीम के घोड़ों को मारकर उन्हें ध्वजा और धनुष से रहित कर दिया। हे महाराज! उसके इस कार्य की सैनिकों ने बड़ी प्रशंसा की। तब भीमसेन ने भी युद्धस्थल में शत्रु के पराक्रम को सहन न करते हुए गदा से उसके सुशिक्षित घोड़ों को मार गिराया।

हताश्वात् सरथाद् राजन् गृह्य चर्म महाबलः।
अभ्यायाद् भीमसेनं तु मत्तो मत्तमिव द्विपम्॥ १८॥
शल्यस्तु नकुलं वीरः स्वस्रीयं प्रियमात्मनः।
विव्याध प्रहसन् बाणैर्लालयन् कोपयन्निव॥ १९॥
तस्याश्वानातपत्रं च ध्वजं सूतमथो धनुः।
निपात्य नकुलः संख्ये शङ्खं दध्मौ प्रतापवान्॥ २०॥
धृष्टकेतुः कृपेणास्तान् छित्त्वा बहुविधाञ्छरान्।
कृपं विव्याध सप्तत्या लक्ष्म चास्याहरत् त्रिभिः॥ २१॥

हे राजन्! तब मरे घोड़ोंवाले रथ से कूदकर उस महाबली ने तलवार और ढाल लेकर भीमसेन पर ऐसे आक्रमण कर दिया, जैसे एक मस्त हाथी दूसरे मस्त हाथी पर आक्रमण करे। उधर वीर शल्य ने हँसते हुए प्रिय भानजे नकुल को बाणों के द्वारा लाड़ सा करते और कुपित करते हुए बींधा। तब प्रतापी नकुल ने उसके घोड़ों, छत्र, ध्वज, सारथी और धनुष को काटकर गिरा दिया और युद्धस्थल में शंख को बजाया। उधर धृष्टकेतु ने कृपाचार्य के द्वारा छोड़े हुए बहुततरह के बाणों को काटकर, तीन बाणों से उनके ध्वज को काट दिया और सत्तर बाणों की वर्षा के द्वारा उन्हें घायल कर दिया।

तं कृपः शरवर्षेण महता समवारयत्।
विव्याध च रणे विप्रो धृष्टकेतुममर्षणम्॥ २२॥
सात्यकिः कृतवर्माणं नाराचेन स्तनान्तरे।
विद्ध्वा विव्याध सप्तत्या पुनरन्यैः स्मयन्निव॥ २३॥
तं भोजः सप्तसप्तत्या विद्ध्वाऽऽशु निशितैः शरैः।
नाकम्पयत शैनेयं शीघ्रो वायुरिवाचलम्॥ २४॥
सेनापतिः सुशर्माणं भृशं मर्मस्वताडयत्।
स चापि तं तोमरेण जत्रुदेशेऽभ्यताडयत्॥ २५॥

तब कृपाचार्य ने भी महान् बाणवर्षा के द्वारा उसका निवारण किया और उस ब्राह्मण ने अमर्षशील धृष्टकेतु को घायल कर दिया। उधर सात्यकि ने कृतवर्मा की छाती में नाराच का प्रहार कर फिर मुस्कराते हुए सत्तर बाणों की वर्षा के द्वारा उसे घायल कर दिया। फिर कृतवर्षा ने भी तुरन्त सात्यकि पर सतत्तर बाणों की वर्षाकर उसे घायल कर दिया पर वह उसे उसीप्रकार विचलित नहीं कर सका, जैसे वायु पर्वत को नहीं हिला सकती। दूसरीतरफ सेनापति धृष्टद्युम्न ने सुशर्मा के मर्मस्थलों पर अत्यन्त प्रहार किये, तब उसने भी तोमर से धृष्टद्युम्न की हँसली पर प्रहार किया।

वैकर्तनं तु समरे विराटः प्रत्यवारयत्।
सह मत्स्यैर्महावीर्यैस्तदद्भुतमिवाभवत्॥ २६॥
तत् पौरुषमभूत् तत्र सूतपुत्रस्य दारुणम्।
यत् सैन्यं वारयामास शरैः संनतपर्वभिः॥ २७॥
द्रुपदस्तु स्वयं राजा भगदत्तेन संगतः।
तयोर्युद्धं महाराज चित्ररूपमिवाभवत्॥ २८॥
भगदत्तस्तु राजानं द्रुपदं नतपर्वभिः।
सनियन्तृध्वजरथं विव्याध पुरुषर्षभः॥ २९॥
द्रुपदस्तु ततः क्रुद्धो भगदत्तं महारथम्।
आजघानोरसि क्षिप्रं शरेणानतपर्वणा॥ ३०॥

सूर्यपुत्र कर्ण को विराटराज ने अपने पराक्रमी मत्स्यदेशी वीरों के साथ रोका। यह एक अद्भुत

बात थी। फिर सूतपुत्र कर्ण ने भी अपना दारुण पौरुष दिखाया। उसने झुकी गाँठवाले बाणों के द्वारा उस सेना को रोक दिया। हे महाराज! तब द्रुपद ने स्वयं जाकर भगदत्त से युद्ध आरम्भ कर दिया। फिर उन दोनों में विचित्रप्रकार से युद्ध होने लगा। पुरुषश्रेष्ठ भगदत्त ने राजा द्रुपद को झुकी गाँठवाले बाणों से सारथी, ध्वज और रथ सहित बींध दिया। तब द्रुपद ने क्रुद्ध होकर महारथी भगदत्त की छाती में शीघ्रता से झुकी गांठवाले बाण से प्रहार किया।

भूरिश्रवा रणे राजन् याज्ञसेनिं महारथम्।
महता सायकौघेन छादयामास वीर्यवान्॥ ३१॥
शिखण्डी तु ततः क्रुद्धः सौमदत्तिं विशाम्पते।
नवत्या सायकानां तु कम्पयामास भारत॥ ३२॥
राक्षसौ रौद्रकर्माणौ हैडिम्बालम्बुषावुभौ।
चक्रातेऽत्यद्भुतं युद्धं परस्परजयैषिणौ॥ ३३॥
चेकितानोऽनुविन्देन युयुधे चातिभैरवम्।
लक्ष्मणः क्षत्रदेवेन विमर्दमकरोद् भृशम्॥ ३४॥

हे राजन्! पराक्रमी भूरिश्रवा ने युद्ध में महारथी शिखण्डी को महान् बाणवर्षा के द्वारा आच्छादित कर दिया। हे प्रजानाथ! तब शिखण्डी ने क्रुद्ध होकर, सोमदत्तपुत्र पर नब्बे बाणों की वर्षाकर उसे कम्पित कर दिया। उधर हिडिम्बापुत्र घटोत्कच और अलम्बुष, दोनों भयंकर कर्म करनेवाले राक्षस परस्पर विजय की इच्छा से अद्भुत युद्ध करने लगे। चेकितान अनुविन्द के साथ अत्यन्तभयानक युद्ध करने लगा। उसीप्रकार लक्ष्मण क्षत्रदेव के साथ घोर युद्ध कर रहा था।

ततः प्रचलिताश्वेन विधिवत्कल्पितेन च।
रथेनाभ्यपद् राजन् सौभद्रं पौरवो नदन्॥ ३५॥
ततोऽभ्ययात् सत्वरितो युद्धाकाङ्क्षी महाबलः।
तेन चक्रे महद् युद्धमभिमन्युररिंदमः॥ ३६॥
पौरवस्त्वथ सौभद्रं शरव्रातैरवाकिरत्।
तस्यार्जुनिर्ध्वजं छत्रं धनुश्चोर्व्यामपातयत्॥ ३७॥
सौभद्रः पौरवं त्वन्यैर्विद्ध्वा सप्तभिराशुगैः।
पञ्चभिस्तस्य विव्याध हयान् सूतं च सायकैः॥ ३८॥

तब जिसमें अच्छीतरह से सजाये हुए और चंचल घोड़े जुते हुए थे, उस रथ के द्वारा हे राजन्! पौरव ने गर्जना करते हुए सुभद्रापुत्र अभिमन्यु पर आक्रमण किया। तब शत्रु का दमन करनेवाला, युद्ध का आकाँक्षी और महाबली अभिमन्यु भी शीघ्रता से उसके सामने आया और उसके साथ महान् युद्ध करने लगा। पौरव ने सुभद्रापुत्र को बाणवर्षा से भर दिया। तब अर्जुनपुत्र ने उसके ध्वज, छत्र और धनुष को काटकर भूमि पर गिरा दिया। अभिमन्यु ने पौरव को दूसरे सात शीघ्रगामी बाणों से बींधकर, पाँच बाणों से उसके घोड़ों और सारथी को बींध दिया।

ततः प्रहर्षयन् सेनां सिंहवद् विनदन् मुहुः।
समादत्तार्जुनिस्तूर्णं पौरवान्तकरं शरम्॥ ३९॥
तं तु संधितमाज्ञाय सायकं घोरदर्शनम्।
द्वाभ्यां शराभ्यां हार्दिक्यश्चिच्छेद सशरं धनुः॥ ४०॥
तदुत्सृज्य धनुश्छिन्नं सौभद्रः परवीरहा।
उद्ववर्ह सितं खड्गमाददानः शरावरम्॥ ४१॥
स तेनानेकतारेण चर्मणा कृतहस्तवत्।
भ्रान्तासिर्व्यचरन्मार्गान् दर्शयन् वीर्यमात्मनः॥ ४२॥

फिर सेना को हर्षित करते हुए और सिंह के समान गर्जते हुए अभिमन्यु ने शीघ्रता से पौरव का अन्त करनेवाले एक बाण का सन्धान किया। उस भयंकर बाण को सन्धान किया हुआ देखकर, कृतवर्मा ने उसके बाणसहित धनुष को दो बाणों से काट दिया। तब उस कटे धनुष को छोड़कर, शत्रुवीरों को मारनेवाले अभिमन्यु ने जगमगाती हुई तलवार खींच ली और ढाल को हाथ में ले लिया। उसने अपने पराक्रम को दिखाते हुए, एक कुशल व्यक्ति के समान, अनेक तारोंवाली ढाल के साथ तलवार को घुमाते हुए विभिन्न पैंतरों के साथ युद्ध स्थल में विचरण आरम्भ कर दिया।

भ्रामितं पुनरुद्भ्रान्तमाधूतं पुनरुत्थितम्।
चर्मनिस्त्रिंशयो राजन् निर्विशेषमदृश्यत॥ ४३॥
स पौरवरथस्येषामाप्लुत्य सहसा नदन्।
पौरवं रथमास्थाय केशपक्षे परामृशत्॥ ४४॥
तमागलितकेशान्तं ददृशुः सर्वपार्थिवाः।
उक्षाणमिव सिंहेन पात्यमानमचेतसम्॥ ४५॥
तमार्जुनिवशं प्राप्तं कृष्यमाणमनाथवत्।
पौरवं पातितं दृष्ट्वा नामृष्यत जयद्रथः॥ ४६॥
चर्म चादाय खड्गं च नदन् पर्यपतद् रथात्।

हे राजन्! अभिमन्यु के द्वारा तलवार को नीचे घुमाने, ऊपर घुमाने, अगलबगल में चारोंओर घुमाने

और ऊपर उठाने की क्रियाएँ इतनी तेजी से हो रही थीं कि ढाल और तलवार में कोई अन्तर ही नहीं दिखाई देता था। फिर अचानक गर्जते हुए वह पौरव के रथ पर उसके ईषादण्ड पर उछलकर चढ़ गया। उसने पौरव के बाल पकड़ लिये। सब राजाओं ने उससमय देखा कि जैसे सिंह किसी बैल को गिरा दे, वैसे ही पौरव अभिमन्यु के द्वारा गिराये हुए अचेत पड़े हैं और उनके सिर के कुछ बाल भी उखड़ गये हैं। तब उन्हें अर्जुनपुत्र के वश में पड़ा हुआ तथा अनाथ के समान गिराया हुआ, खींचा जाता हुआ देखकर जयद्रथ सहन नहीं कर सका। वह ढाल और तलवार लेकर गर्जता हुआ रथ से कूद पड़ा।

ततः सैन्धवमालोक्य कार्ष्णिरुत्सृज्य पौरवम्॥ ४७॥
उत्पपात रथात् तूर्णं श्येनवन्निपपात च।
वृद्धक्षत्रस्य दायादं पितुरत्यन्तवैरिणम्॥ ४८॥
ससाराभिमुखः शूरः शार्दूल इव कुञ्जरम्।
तौ परस्परमासाद्य खड्गदन्तनखायुधौ॥ ४९॥
हृष्टवत् सम्प्रजह्राते व्याघ्रकेसरिणाविव।
सम्पातेष्वभिघातेषु निपातेष्वसिचर्मणोः॥ ५०॥
न तयोरन्तरं कश्चिद् ददर्श नरसिंहयोः।

जयद्रथ को आते हुए देखकर अभिमन्यु तुरन्त पौरव के रथ से कूद पड़ा और बाज के समान उस पर झपटा। अपने पिता के अत्यन्तबैरी वृद्धक्षत्र के पुत्र उस जयद्रथ की तरफ वह शूरवीर ऐसे ही चला, जैसे एक सिंह हाथी पर आक्रमण करता है। खड्ग, बघनखा और वत्सदन्त हथियारों के साथ एक दूसरे के सामने जाकर वे प्रसन्नता के साथ बाघ और सिंह के समान परस्पर प्रहार करने लगे। ढाल और तलवार के सम्पात, निपात और अभिघात की कला में उन दोनों पुरुषसिंहों में कोई भी अन्तर नहीं दिखाई दे रहा था।

अवक्षेपोऽसिनिर्ह्रादः शस्त्रान्तरनिदर्शनम्॥ ५१॥
बाह्यान्तरनिपातश्च निर्विशेषमदृश्यत।
ततो विक्षिपतः खड्गं सौभद्रस्य यशस्विनः॥ ५२॥
शरावरणपक्षान्ते प्रजहार जयद्रथः।
रुक्मपत्रान्तरे सक्तस्तस्मिंश्चर्मणि भास्वरे॥ ५३॥
सिन्धुराजबलोद्धूतः सोऽभज्यत महानसिः।
भग्नमाज्ञाय निस्त्रिंशमवप्लुत्य पदानि षट्॥ ५४॥
अदृश्यत निमेषेण स्वरथं पुनरास्थितः।

खड्ग का प्रहार, खड्ग संचालन के शब्द, अन्यान्य शस्त्रों के प्रदर्शन तथा बाहर और भीतर की चोट करने में उन दोनों की योग्यता उससमय एक समान दिखाई दे रही थी। तब तलवार चलाते हुए यशस्वी सुभद्रापुत्र की ढाल पर जयद्रथ ने प्रहार किया। उस ढाल पर जगमगाते हुए सोने के पत्र जड़े हुए थे। उससे टकराकर जयद्रथ के द्वारा बल पूर्वक चलायी हुई वह विशाल तलवार टूट गयी। अपनी तलवार को टूटा हुआ जानकर, वह छै कदम पीछे की तरफ उछल कर, एक पल में ही अपने रथ पर बैठा हुआ दिखाई देने लगा।

तं कार्ष्णिं समरान्मुक्तमास्थितं रथमुत्तमम्॥ ५५॥
सहिताः सर्वराजानः परिवव्रुः समन्ततः।
सिन्धुराजं परित्यज्य सौभद्रः परवीरहा॥ ५६॥
तापयामास तत् सैन्यं भुवनं भास्करो यथा।
तस्य सर्वायसीं शक्तिं शल्यः कनकभूषणाम्॥ ५७॥
चिक्षेप समरे घोरां दीप्तामग्निशिखामिव।
तामवप्लुत्य जग्राह विकोशं चाकरोदसिम्॥ ५८॥
तस्य लाघवमाज्ञाय सत्त्वं चामिततेजसः।
सहिताः सर्वराजानः सिंहनादमथानदन्॥ ५९॥

तब अभिमन्यु भी युद्ध से मुक्त होकर अपने उत्तम रथ पर जा बैठा। तभी सारे राजाओं ने इकट्ठे होकर उसे सबतरफ से घेर लिया। तब अभिमन्यु ने जयद्रथ को छोड़कर, जेसे सूर्य संसार को तपाते हैं, वैसे ही उस सेना को सन्तप्त करना आरम्भ कर दिया। तब शल्य ने एक सारी लोहे की बनी हुई, स्वर्णभूषित, भयंकर, अग्निशिखा के समान जगमगाती हुई शक्ति को अभिमन्यु के ऊपर छोड़ा। अभिमन्यु ने उछलकर उस शक्ति को पकड़ लिया और म्यान से तलवार खींच ली। उस अमिततेजस्वी की उस कुशलता को देखकर, तथा उसकी शक्ति को जानकर, सारे राजा एकसाथ सिंहनाद करने लगे।

ततस्तामेव शल्यस्य सौभद्रः परवीरहा।
मुमोच भुजवीर्येण वैदूर्यविकृतां शिताम्॥ ६०॥
सा तस्य रथमासाद्य निर्मुक्तभुजगोपमा।
जघान सूतं शल्यस्य रथाच्चैनमपातयत्॥ ६१॥
ततो विराटद्रुपदौ धृष्टकेतुर्युधिष्ठिरः।
सात्यकिः केकया भीमो धृष्टद्युम्नशिखण्डिनौ॥ ६२॥
यमौ च द्रौपदेयाश्च साधु साध्विति चुक्रुशुः।

तब शत्रुवीरों को नष्ट करनेवाले सुभद्रापुत्र ने वैदूर्यमणि की बनी, तीखी धारवाली शक्ति को अपनी भुजाओं की शक्ति से शल्य के ऊपर ही चला दिया। केंचुली से निकले हुए साँप के समान उस शक्ति ने शल्य के रथ पर जाकर उसके सारथी को मारकर गिरा दिया। तब विराट, द्रुपद, धृष्टकेतु, युधिष्ठिर, सात्यकि, केकयकुमार, भीम, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, नकुल, सहदेव और द्रौपदी के पाँचों पुत्रों ने जोर से चिल्लाकर उसे साधुवाद कहा।

तन्नामृष्यन्त पुत्रास्ते शत्रोर्विजयलक्षणम्॥ ६३॥
अथैनं सहसा सर्वे समन्तान्निशितैः शरैः।
अभ्याकिरन् महाराज जलदा इव पर्वतम्॥ ६४॥

हे महाराज्! तब शत्रु की विजय की सूचना देनेवाले उस सिंहनाद को आपके पुत्र सहन नहीं कर सके। वेसब एकदम इकट्ठे होकर अभिमन्यु पर सबतरफ से पैने बाणों की उसीप्रकार वर्षा करने लगे, जैसे बादल पर्वत पर पानी की वर्षा करते हैं।

पाँचवाँ अध्याय : भीम द्वारा शल्य की पराजय।

सादितं प्रेक्ष्य यन्तारं शल्यः सर्वायसीं गदाम्।
समुत्क्षिप्य नदन् क्रुद्धः प्रचस्कन्द रथोत्तमात्॥ १॥
जवेनाभ्यपतद् भीमः प्रगृह्य महतीं गदाम्।
सौभद्रोऽप्यशनिप्रख्यां प्रगृह्य महतीं गदाम्॥ २॥
एह्येहीत्यब्रवीच्छल्यं यत्नाद् भीमेन वारितः।
तथैव मद्रराजोऽपि भीमं दृष्ट्वा महाबलम्॥ ३॥
ससाराभिमुखस्तूर्णं शार्दूल इव कुञ्जरम्।
न हि मद्राधिपादन्यः सर्वराजसु भारत॥ ४॥
सोढुमुत्सहते वेगं भीमसेनस्य संयुगे।

अपने सारथी को मारा हुआ देखकर शल्य एक सारी लोहे की बनी हुई गदा को उठाकर, क्रोध में भरकर, गर्जते हुए, अपने उत्तम रथ से कूद पड़े। तब सुभद्रापुत्र ने भी एक वज्र ने समान विशाल गदा को लेकर शल्य से आओ आओ ऐसा कहकर ललकारा। तब भीम ने उसे प्रयत्न पूर्वक रोका और वे एक विशाल गदा को लेकर तेजी से शल्य की तरफ दौड़े। तब मद्रराज भी उसी प्रकार महाबली भीम को देखकर, शीघ्रता से उसकी तरफ ऐसे बढ़े जैसे सिंह हाथी पर आक्रमण कर रहा हो। हे भारत! सारे राजाओं में मद्रराज के सिवाय कोई दूसरा युद्ध में भीम के वेग को सहन नहीं कर सकता।

तथा मद्राधिपस्यापि गदावेगं महात्मनः॥ ५॥
सोढुमुत्सहते लोके युधि कोऽन्यो वृकोदरात्।
पट्टैर्जाम्बूनदैर्बद्धा बभूव जनहर्षणी॥ ६॥
प्रजज्वाल तदाऽऽविद्धा भीमेन महती गदा।
तथैव चरतो मार्गान् मण्डलानि च सर्वशः॥ ७॥
महाविद्युत्प्रतीकाशा शल्यस्य शुशुभे गदा।
तौ वृषाविव नर्दन्तौ मण्डलानि विचेरतुः॥ ८॥
आवर्तितगदाशृङ्गावुभौ शल्यवृकोदरौ।

इसीप्रकार मनस्वी मद्रराज के गदा के वेग को भी युद्धस्थल में भीम के अतिरिक्त संसार का दूसरा व्यक्ति सहन नहीं कर सकता। वीरों को हर्षित करने वाली, स्वर्ण के पत्रों से जटित, भीम की विशाल गदा, उनके द्वारा घुमायी जाती हुई अग्नि के समान जगमगा रही थी। इसीप्रकार गदायुद्ध के सारे पैंतरों का प्रदर्शन करते हुए, शल्य की गदा भी महान् विद्युत् के समान चमचमा रही थी। वे दोनों शल्य और भीम उससमय अपने गदारूपी सींगों को घुमाते हुए साँडों के समान गर्जते हुए, विविधप्रकार के मण्डलों में विचरण कर रहे थे।

मण्डलावर्तमार्गेषु गदाविहरणेषु च॥ ९॥
निर्विशेषभूद् युद्धं तयोः पुरुषसिंहयोः।
नखैरिव महाव्याघ्रौ दन्तैरिव महागजौ॥ १०॥
तौ विचेरतुरासाद्य गदाग्राभ्यां परस्परम्।
ततो गदाग्राभिहतौ क्षणेन रुधिरोक्षितौ॥ ११॥
ददृशाते महात्मानौ किंशुकाविव पुष्पितौ।
गदया मद्रराजेन सव्यदक्षिणमाहतः॥ १२॥
नाकम्पत तदा भीमो भिद्यमान इवाचलः।

मण्डलाकार घूमने के तरीकों और गदाओं को घुमाने में दोनों पुरुषसिंहों में उससमय कोई अन्तर नहीं दिखाई दे रहा था। जैसे दो बड़े बाघ नाखूनों से, दो बड़े हाथी दाँतों से एकदूसरे पर आक्रमण करें, उसीप्रकार वेदोनों एकदूसरे पर गदा के अगले हिस्सों से प्रहार करते हुए विचरण

कर रहे थे। गदाओं के अग्रभागों के प्रहार से क्षणभर में ही रक्त से लथपथ होकर वे दोनों मनस्वी फूलेहुए पलाश के वृक्षों के समान दिखाई देने लगे। उससमय मद्रराज की गदा से दायें और बायें चोट खाकर भी भीम कम्पित नहीं हुए और प्रहारों को सहन करते हुए पर्वत के समान अविचल रहे।

तथा भीमगदावेगैस्ताड्यमानो महाबलः॥ १३॥
धैर्यान्मद्राधिपस्तस्थौ वज्रैर्गिरिरिवाहतः।
आपेततुर्महावेगौ समुच्छ्रितगदावुभौ॥ १४॥
पुनरन्तरमार्गस्थौ मण्डलानि विचेरतुः।
तौ परस्परवेगाच्च गदाभ्यां च भृशाहतौ॥ १५॥
युगपत् पेततुर्वीरौ क्षिताविन्द्रध्वजाविव।
ततो विह्वलमानं तं निःश्वसन्तं पुनः पुनः॥ १६॥
शल्यमभ्यपतत् तूर्णं कृतवर्मा महारथः।

इसीप्रकार भीम की गदा से वेगपूर्वक ताड़ित होते हुए भी महाबली मद्रराज धैर्य से स्थिर रहे, जैसे विद्युत् के आघात से पर्वत स्थिर रहता है। वे दोनों महान् वेगवाले, अपनी गदाओं को उठाये हुए एकदूसरे पर टूट पड़े और फिर अन्तर्मार्ग में स्थित होकर मण्डलाकार रीति से विचरण करने लगे। उसके पश्चात् वेदोनों वीर, एकदूसरे पर वेगपूर्वक गदाओं का प्रहार कर, उनके आघात से अत्यन्त घायल होकर, एकसाथ ही इन्द्र की दो ध्वजाओं के समान भूमि पर गिर पड़े। तब बेचैन होकर, बार बार लम्बी साँसें लेते हुए शल्य के पास महारथी कृतवर्मा शीघ्रता से आया।

दृष्ट्वा चैनं महाराज गदयाभिनिपीडितम्॥ १७॥
विचेष्टन्तं तथा नागं मूर्च्छयाभिपरिप्लुतम्।
ततः स्वरथमारोप्य मद्राणामधिपं रणे॥ १८॥
अपोवाह रणात् तूर्णं कृतवर्मा महारथः।
क्षीबवद् विह्वलो वीरो निमेषात् पुनरुत्थितः॥ १९॥
भीमोऽपि सुमहाबाहुर्गदापाणिरदृश्यत।
ततो मद्राधिपं दृष्ट्वा तव पुत्राः पराङ्मुखम्।
सनागपत्त्यश्वरथाः समकम्पन्त मारिष॥ २०॥

हे महाराज! तब उन्हें गदा के आघातों से पीड़ित, मूर्च्छा से युक्त, और सर्प के समान छटपटाते हुए देखकर, उन्हें अपने रथ पर डालकर, महारथी कृतवर्मा मद्रराज को शीघ्रता से युद्धस्थल से बाहर ले गया। तत्पश्चात् वीर भीमसेन भी पागल के समान बेचैन होने के बाद, थोड़ी देर में फिर उठकर खड़े हो गये और अत्यन्त विशाल हाथोंवाले वे फिर हाथ में गदा को लिये दिखाई देने लगे। हे मान्यवर! तब शल्य को युद्ध से विमुख हुआ देखकर, आपके पुत्र अपने हाथीसवारों, घुड़सवारों, रथियों और पैदलों के साथ भय से विचलित हो उठे।

छठा अध्याय : वृषसेनका पराक्रम, द्रोणाचार्य के द्वारा सिंहसेन, व्याघ्रदत्त और युगन्धर का वध। अर्जुन की वीरता।

संजय उवाच

तद् बलं सुमहद् दीर्णं त्वदीयं प्रेक्ष्य वीर्यवान्।
दधारैको रणे राजन् वृषसेनोऽस्त्रमायया॥ १॥
शरा दश दिशो मुक्ता वृषसेनेन संयुगे।
विचेरुस्ते विनिर्भिद्य नरवाजिरथद्विपान्॥ २॥
तस्य दीप्ता महाबाणा विनिश्चेरुः सहस्रशः।
भानोरिव महाराज घर्मकाले मरीचयः॥ ३॥
तेनार्दिता महाराज रथिनः सादिनस्तथा।
निपेतुरुर्व्यां सहसा वातभग्ना इव द्रुमाः॥ ४॥

संजय ने कहा कि आपकी उस विशाल सेना को विदीर्ण किया हुआ देखकर पराक्रमी वृषसेन ने अकेले ही अपनी अस्त्रविद्या की माया से उसे धारण किया अर्थात् भागने से रोका। उससमय वृषसेन के द्वारा छोड़े हुए बाण युद्धस्थल में सबतरफ मनुष्य, हाथी, रथ और घोड़ों को विदीर्ण करते हुए विचरण कर रहे थे। हे महाराज! जैसे ग्रीष्मऋतु में सूर्य की किरणें सबतरफ फैलती हैं, उसीप्रकार उसके जगमागते हुए विशाल बाण हजारों की संख्या में छूटने लगे। हे महाराज! उसके द्वारा पीड़ित होकर रथी और घुड़सवार भूमि पर ऐसे गिर रहे थे, जैसे वायु से पीड़ित वृक्ष अचानक उखड़कर गिर पड़ते हैं।

हयौघांश्च रथौघांश्च गजौघांश्च महारथः।
अपातयद् रणे राजञ्शतशोऽथ सहस्रशः॥ ५॥
दृष्ट्वा तमेकं समरे विचरन्तमभीतवत्।

सहिताः सर्वराजानः परिवव्रुः समन्ततः॥ ६॥
तद् युद्धमभवद् घोरं सुमहल्लोमहर्षणम्।
त्वदीयैः पाण्डुपुत्राणां देवानामिव दानवैः॥ ७॥
भीमकर्णकृपद्रोणद्रौणिपार्षत- सात्यकैः।
बभासे स रणोद्देशः कालसूर्य इवोदितः॥ ८॥

हे राजन्! उस महारथी ने युद्धस्थल में सैंकड़ों और हजारों घोड़ों के समूहों, हाथियों के समूहों और रथों के समूहों को गिरा दिया। तब युद्ध के मैदान में उसे अकेले ही निर्भय होकर विचरते हुए देखकर, सब राजाओं ने इकट्ठे होकर उसे सबतरफ से घेर लिया। फिर आपके पुत्रों के साथ पाण्डुपुत्रों का वह अत्यन्तलोमहर्षक घोर युद्ध होने लगा, जैसे देवताओं का पहले दानवों के साथ हुआ करता था। उससमय भीम, कर्ण, कृपाचार्य, द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, धृष्टद्युम्न और सात्यकि आदि वीरों से वह युद्धस्थल ऐसे प्रतीत होरहा था, जैसे प्रलयकाल में अनेक सूर्य उदय हो गये हैं।

ततो युधिष्ठिरानीकमुद्धतार्णवनिः स्वनम्।
त्वदीयमवधीत् सैन्यं सम्प्रद्रुतमहारथम्॥ ९॥
तत् प्रभग्नं बलं दृष्ट्वा शत्रुभिर्भृशमर्दितम्।
अलं द्रुतेन वः शूरा इति द्रोणोऽभ्यभाषत॥ १०॥
ततः शोणहयः क्रुद्धश्चतुर्दन्त इव द्विपः।
प्रविश्य पाण्डवानीकं युधिष्ठिरमुपाद्रवत्॥ ११॥
तमाविध्यच्छितैर्बाणैः कङ्कपत्रैर्युधिष्ठिरः।
तस्य द्रोणो धनुश्छित्त्वा तं द्रुतं समुपाद्रवत्॥ १२॥

तब उमड़ते सागर के समान शोर करती हुई युधिष्ठिर की सेना ने आपकी सेना का संहार करना आरम्भ कर दिया। जिससे उसके महारथी भी भागने लगे। तब शत्रुओं से अत्यन्त पीड़ित और भागती हुई सेना को देखकर द्रोणाचार्य ने कहा कि अरे! तुमलोग शूरवीर हो, भागो मत। फिर लाल घोड़ों वाले द्रोणाचार्य ने क्रुद्ध होकर चार दाँतोंवाले हाथी के समान पाण्डवों की सेना में घुसकर युधिष्ठिर पर आक्रमण किया। तब युधिष्ठिर ने कंकपत्र से युक्त तीखे बाणों से द्रोणाचार्य को बींधा। फिर द्रोणाचार्य ने उनके धनुष को काटकर वेग से उन पर आक्रमण किया।

चक्ररक्षः कुमारस्तु पञ्चालानां यशस्करः।
दधार द्रोणमायान्तं वेलेव सरितां पतिम्॥ १३॥
द्रोणं निवारितं दृष्ट्वा कुमारेण द्विजर्षभम्।
सिंहनादरवो ह्यासीत् साधु साध्विति भाषितम्॥ १४॥
कुमारस्तु ततो द्रोणं सायकेन महाहवे।
विव्याधोरसि संक्रुद्धः सिंहवच्च नदन् मुहुः॥ १५॥
संवार्य च रणे द्रोणं कुमारस्तु महाबलः।
शरैरनेकसाहस्रैः कृतहस्तो जितश्रमः॥ १६॥

तब युधिष्ठिर के चक्ररक्षक कुमार ने, जो पांचालों के यश को बढ़ानेवाला था, द्रोणाचार्य को ऐसे रोका, जैसे तटभूमि सागर को रोक देती है। द्विजश्रेष्ठ द्रोणाचार्य को कुमार के द्वारा रोका हुआ देखकर पाण्डवसेना में सिंहनाद और साधु साधु की आवाजें होने लगीं। तब कुमार ने बार बार सिंहनाद करते हुए, अत्यन्तक्रुद्ध होकर, उस महान् युद्ध में द्रोणाचार्य की छाती पर बाण से प्रहार किया। श्रम को जीतने वाले, कुशलहस्त, महाबली कुमार ने हजारों बाणों की वर्षाकर द्रोणाचार्य को रोका।

तं शूरमार्यव्रतिनं शस्त्रास्त्रेषु कृतश्रमम्।
चक्ररक्षं परामृद्नात् कुमारं द्विजपुङ्गवः॥ १७॥
स मध्यं प्राप्य सैन्यानां सर्वाःप्रविचरन् दिशः।
तव सैन्यस्य गोप्ताऽऽसीद् भारद्वाजो द्विजर्षभः॥ १८॥
शिखण्डिनं द्वादशभिर्विंशत्या चोत्तमौजसम्।
नकुलं पञ्चभिर्विद्ध्वा सहदेवं च सप्तभिः॥ १९॥
युधिष्ठिरं द्वादशभिर्द्रौपदेयांस्त्रिभिस्त्रिभिः।
सात्यकिं पञ्चभिर्विद्ध्वा मत्स्यं च दशभिः शरैः॥ २०॥

किन्तु उस शूर वीर, श्रेष्ठ व्रत का पालन करने वाले, शस्त्रास्त्रविद्या में परिश्रम किये हुए, चक्र रक्षक कुमार को तब ब्राह्मणश्रेष्ठ द्रोणाचार्य ने पराजित कर दिया। ब्राह्मणश्रेष्ठ द्रोणाचार्य आपकी सेना के संरक्षक थे। वे पाण्डवों की सेना के बीच में घुसकर सबतरफ विचरने लगे। उन्होंने शिखण्डी को बारह, उत्तमौजा को बीस, नकुल को पाँच, सहदेव को सात, युधिष्ठिर को बारह, द्रौपदी के पुत्रों को तीन तीन, सात्यकि को पाँच और विराटराज को दस बाणों से बींध दिया।

व्यक्षोभयद् रणे योधान् यथा मुख्यमभिद्रवन्।
अभ्यवर्तत सम्प्रेप्सुः कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम्॥ २१॥
युगन्धरस्ततो राजन् भारद्वाजं महारथम्।
वारयामास संक्रुद्धं वातोद्धतमिवार्णवम्॥ २२॥
युधिष्ठिरं स विद्ध्वा तु शरैः संनतपर्वभिः।
युगन्धरं तु भल्लेन रथनीडादपातयत्॥ २३॥

ततो विराटद्रुपदौ केकयाः सात्यकिः शिबिः।
व्याघ्रदत्तश्च पाञ्चाल्यः सिंहसेनश्च वीर्यवान्॥ २४॥
एते चान्ये च बहवः परीप्सन्तो युधिष्ठिरम्।
आवव्रुस्तस्य पन्थानं किरन्तः सायकान् बहून्॥ २५॥

उन्होंने युद्ध में प्रमुख योद्धाओं पर आक्रमण कर उन्हें विक्षुब्ध कर दिया और फिर युधिष्ठिर को पकड़ने के लिये उन पर आक्रमण किया। हे राजन्! तब वायु से उद्वेलित सागर के समान क्रुद्ध महारथी द्रोणाचार्य को युगन्धर ने रोका। तब उन्होंने झुकी गाँठोंवाले बाणों से युधिष्ठिर को घायलकर, एक भल्ल से युगन्धर को मारकर रथ से नीचे गिरा दिया। तब विराट, द्रुपद, केकयकुमार, सात्यकि, शिवि, पाँचालदेशीय व्याघ्रदत्त और पराक्रमी सिंहसेन, ये तथा दूसरे पराक्रमी योद्धा युधिष्ठिर को बचाने की इच्छा से बाणों की वर्षा करते हुए उनके मार्ग में आकर खड़े हो गये।

व्याघ्रदत्तस्तु पाञ्चाल्यो द्रोणं विव्याध मार्गणैः।
पञ्चाशता शितै राजंस्तत उच्चुक्रुशुर्जनाः॥ २६॥
त्वरितं सिंहसेनस्तु द्रोणं विद्ध्वा महारथम्।
प्राहसत् सहसा हृष्टस्त्रासयन् वै महारथान्॥ २७॥
ततो विस्फार्य नयने धनुर्ज्यामवमृज्य च।
तलशब्दं महत् कृत्वा द्रोणस्तं समुपाद्रवत्॥ २८॥

हे राजन्! व्याघ्रदत्त ने पचास तीखे बाणों की वर्षा कर द्रोणाचार्य को घायल कर दिया। तब लोगों ने जोर जोर से गर्जनाएँ की। प्रसन्न हुए सिंहसेन ने भी महारथी द्रोण को घायलकर, महारथियों को भयभीत क... हुए, जोर से अट्टहास किया। तब धनुष की डोरी को पोंछकर, हथेली की जोर से आवाज करते हुए, आँखें फाड़कर, द्रोणाचार्य ने उस पर आक्रमण किया।

ततस्तु सिंहसेनस्य शिरः कायात् सकुण्डलम्।
व्याघ्रदत्तस्य चाक्रम्य भल्लाभ्या- माहरद्बली॥ २९॥
तान् प्रमथ्य शरव्रातैः पाण्डवानां महारथान्।
युधिष्ठिर- रथाभ्याशे तस्थौ मृत्युरिवान्तकः॥ ३०॥

फिर आक्रमण करके दो भल्ल नाम के बाणों से सिंहसेन और व्याघ्रदत्त के सिरों को उन बलवान् ने उनके शरीरों से अलग कर दिया। फिर बाणवर्षा के द्वारा पाण्डवपक्ष के महारथियों को मथकर, वे अन्त करदेनेवाली मृत्यु के समान युधिष्ठिर के रथ के समीप खड़े हो गये।

ततोऽभवन्महाशब्दो राजन् यौधिष्ठिरे बले।
हतो राजेति योधानां समीपस्थे यतव्रते॥ ३१॥
अब्रुवन् सैनिकास्तत्र दृष्ट्वा द्रोणस्य विक्रमम्।
अद्य राजा धार्तराष्ट्रः कृतार्थो वै भविष्यति॥ ३२॥
अस्मिन् मुहूर्ते द्रोणस्तु पाण्डवं गृह्य हर्षितः।
आगमिष्यति नो नूनं धार्तराष्ट्रस्य संयुगे॥ ३३॥
एवं संजल्पतां तेषां तावकानां महारथः।
आयाज्जवेन कौन्तेयो रथघोषेण नादयन्॥ ३४॥

हे राजन्! तब व्रतों का नियमपूर्वक पालन करने वाले द्रोणाचार्य के अत्यन्तसमीप आजाने पर, युधिष्ठिर की सेना में सैनिकों का महान् हाहाकार होने लगा कि अब राजा मारे गये। उधर कौरवसेना के सैनिक द्रोणाचार्य के पराक्रम को देखकर कहने लगे कि आज राजा दुर्योधन कृतार्थ हो जायेंगे। इससमय युद्धस्थल में द्रोणाचार्य पाण्डुपुत्र को पकड़कर हर्ष के साथ दुर्योधन के पास ले जायेंगे। इसप्रकार आपके सैनिकों के बातें करते हुए ही महारथी कुन्तीपुत्र अर्जुन अपने रथ की ध्वनि से दिशाओं को गुँजाते हुए, शीघ्रता से वहाँ आ पहुँचे।

ततः किरीटी सहसा द्रोणानीकमुपाद्रवत्।
छादयन्निषुजालेन महता मोहयन्निव॥ ३५॥
शीघ्रमभ्यस्यतो बाणान् संदधानस्य चानिशम्।
नान्तरं ददृशे कश्चित् कौन्तेयस्य यशस्विनः॥ ३६॥
सूर्ये चास्तमनुप्राप्ते तमसा चाभिसंवृते।
ततोऽवहारं चक्रुस्ते द्रोणदुर्योधनादयः॥ ३७॥
तान् विदित्वा पुनस्त्रस्तानयुद्धमनसः परान्।
स्वान्यनीकानि बीभत्सुः शनकैरवहारयत्॥ ३८॥

तब अर्जुन ने तुरन्त अपनी महान् बाणवर्षा के द्वारा सबको मोहित सा करते हुए, द्रोणाचार्य की सेना पर आक्रमण कर दिया। उससमय यशस्वी कुन्ती कुमार द्वारा शीघ्रता से लगातार बाणों को छोड़ते और सन्धान करते हुए, दोनों कार्यो में कोई अन्तर नहीं दिखाई देता था। तभी सूर्य के अस्ताचल को चले

जाने और चारोंतरफ अन्धेरा होजाने के कारण, द्रोणाचार्य और दुर्योधन आदि ने अपनी सेना को वापिस लौटा लिया। तब यह जानकर कि शत्रुओं का मन युद्ध से हट गया है वे बहुत डरे हुए है, अर्जुन ने भी अपनी सेनाओं को धीरे धीरे वापिस कर लिया।

सातवाँ अध्याय : बारहवें दिन का आरम्भ। संशप्तक वीरों की प्रतिज्ञा।

संजय उवाच

परिणाम्य निशां तां तु, भारद्वाजो महारथः।
दुर्योधनमभिप्रेक्ष्य सव्रीडमिदमब्रवीत्॥ १॥
उक्तमेतन्मया पूर्वं न तिष्ठति धनंजये।
शक्यो ग्रहीतुं संग्रामे देवैरपि युधिष्ठिरः॥ २॥
इति तद् वः प्रयततां कृतं पार्थेन संयुगे।
मा विशङ्कीर्वचो मह्यमजेयौ कृष्णपाण्डवौ॥ ३॥
अपनीते तु योगेन केनचिच्छ्वेतवाहने।
तत एष्यति मे राजन् वशमेष युधिष्ठिरः॥ ४॥

संजय ने कहा कि उस रात्रि को बिताकर महारथी द्रोणाचार्य लज्जित होते हुए दुर्योधन की तरफ देखकर बोले कि मैंने पहले ही कह दिया था कि अर्जुन के विद्यमान रहते हुए युधिष्ठिर को युद्ध में देवताओं के द्वारा भी नहीं पकड़ा जा सकता। इसलिये तुमलोगों के प्रयत्न करने पर भी अर्जुन ने युद्धस्थल में मेरी बात सत्य कर दिखाई है। तुम मेरी बात पर शंका मत करो। कृष्ण और अर्जुन मेरे लिये अजेय हैं। किसी युक्ति से श्वेत घोड़ोंवाले अर्जुन को दूर हटाये जाने पर हे राजन्! यह युधिष्ठिर मेरे वश में आ जायेंगे।

कश्चिदाहूय तं संख्ये देशमन्यं प्रकर्षतु।
तमजित्वा न कौन्तेयो निवर्तेत कथंचन॥ ५॥
एतस्मिन्नन्तरे शून्ये धर्मराजमहं नृप।
ग्रहीष्यामि चमूं भित्त्वा धृष्टद्युम्नस्य पश्यतः॥ ६॥
अर्जुनेन विहीनस्तु यदि नोत्सृजते रणम्।
मामुपायान्तमालोक्य गृहीतं विद्धि पाण्डवम्॥ ७॥
अथापयाति संग्रामाद् विजयात् तद् विशिष्यते।

कोई उसे ललकारकर युद्धस्थल के दूसरे हिस्से की तरफ ले जाये। तब कुन्तीपुत्र उसे बिना जीते वापिस नहीं लौटेगा। इसीबीच में, उस खाली समय में मैं सेना को भेदकर हे राजन्! धृष्टद्युम्न के देखते हुए धर्मराज युधिष्ठिर को पकड़ लूंगा। अर्जुन के न होने पर, मुझे आता हुआ देखकर, यदि वह युद्धस्थल को नहीं छोड़ देता है, तो पाण्डुपुत्र को तुम पकड़ा हुआ समझो। और यदि वह युद्ध से भाग जाता है, तो वह हमारे लिये विजय से भी बढ़ कर होगा।

द्रोणस्य तद् वचः श्रुत्वा त्रिगर्ताधिपतिस्तदा॥ ८॥
भ्रातृभिः सहितो राजन्निदं वचनमब्रवीत्।
वयं विनिकृता राजन् सदा गाण्डीवधन्वना॥ ९॥
अनागःस्वपि चागस्तत् कृतमस्मासु तेन वै।
ते वयं स्मरमाणास्तान् विनिकारान् पृथग्विधान्॥ १०॥
क्रोधाग्निना दह्यमाना न शेमहि सदा निशि।
कर्तारः स्म वरं कर्म यच्चिकीर्षाम हृद्गतम्॥ ११॥
वयमेनं हनिष्यामो निकृष्यायोधनाद् बहिः।
अद्यास्त्वनर्जुना भूमिरत्रिगर्ताथ वा पुनः॥ १२॥
सत्यं ते प्रतिजानीमो नैतन्मिथ्या भविष्यति।

हे राजन्! द्रोणाचार्य की यह बात सुनकर तब त्रिगर्तदेश का राजा अपने भाइयों के साथ यह बोला कि हे राजन्! गाण्डीवधनुषधारी ने सदा हमलोगों का अपमान किया है। यद्यपि हम निरपराध थे, पर फिर भी उसने हमारे प्रति अपराध किये हैं। हम अलग अलग तरह के उन अपमानों को याद करते हुए क्रोध की अग्नि से जलते रहते हैं और रात में भी ठीकतरह से सो नहीं पाते हैं। हमने बदले के लिये जो कार्य सोचा हुआ है, उसे इससमय अवश्य करेंगे। हम उसे युद्धस्थल से बाहर खींच कर ले जायेंगे और मार देंगे। आज इस भूमि पर या तो अर्जुन रहेगा, या त्रिगर्तवीर शेष रहेंगे। यह हम आपसे सत्य प्रतिज्ञा करते हैं। यह बात असत्य नहीं होगी।

एवं सत्यरथश्चोक्त्वा सत्यवर्मा च भारत॥ १३॥
सत्यव्रतश्च सत्येषुः सत्यकर्मा तथैव च।
सहिता भ्रातरः पञ्च रथानामयुतेन च॥ १४॥
न्यवर्तन्त महाराज कृत्वा शपथमाहवे।
मालवास्तुण्डिकेराश्च रथानामयुतैस्त्रिभिः॥ १५॥

सुशर्मा च नरव्याघ्रस्त्रिगर्तः प्रस्थलाधिपः।
मावेल्लकैर्ललित्थैश्च सहितो मद्रकैरपि॥ १६॥
रथानामयुतेनैव सोऽगमद् भ्रातृभिः सह।
नानाजनपदेभ्यश्च रथानामयुतं पुनः॥ १७॥
समुत्थितं विशिष्टानां शपथार्थमुपागमत्।

त्रिगर्तराज के ऐसा कहने पर, हे भारत! यही बात उसके सत्यरथ, सत्यवर्मा, सत्यव्रत, सत्येषु और सत्यकर्मा इन पाँचों भाइयों ने भी अपनेसाथ के दस हजार रथियों के साथ दुहरायी। हे महाराज! वे लोग युद्ध के लिये शपथ लेकर लौटे थे। नरव्याघ्र त्रिगर्तराज, प्रस्थलाधिपति सुशर्मा ऐसी प्रतिज्ञाकर के तीस हजार मालव, तुण्डिकेर, मावेल्लक, ललित्थ और मद्रकगण रथियों के साथ तथा दस हजार रथियों से युक्त अपने भाइयों के साथ वहाँ से गया। अनेक देशों से आये हुए दस हजार और विशिष्ट रथी भी शपथ ग्रहण करने के लिये वहाँ से उठकर गये।

शृण्वतां सर्वभूतानामुच्चैर्वाचो बभाषिरे॥ १८॥
सर्वे धनंजयवधे प्रतिज्ञां चापि चक्रिरे।
ये वै लोकाश्चाव्रतिनां ये चैव ब्रह्मघातिनाम्॥ १९॥
मद्यपस्य च ये लोका गुरुदाररतस्य च।
ब्रह्मस्वहारिणश्चैव राजपिण्डापहारिणः॥ २०॥
शरणागतं च त्यजतो याचमानं तथा घ्नतः।
अगारदाहिनां चैव ये च गां निघ्नतामपि॥ २१॥
अपकारिणां च ये लोका ये च ब्रह्मद्विषामपि।
न्यासापहारिणां ये च श्रुतं नाशयतां च ये॥ २२॥
क्लीबेन युध्यमानानां ये च नीचानुसारिणाम्।
नास्तिकानां च ये लोका येऽग्निमातृपितृत्यजाम्॥ २३॥
तानाप्नुयामहे लोकान् ये च पापकृतामपि।
यद्यहत्वा वयं युद्धे निवर्तेम धनंजयम्॥ २४॥
तेन चाभ्यर्दितास्त्रासाद् भवेम हि पराङ्मुखाः।
एवमुक्त्वा तदा राजंस्तेऽभ्यवर्तन्त संयुगे॥ २५॥
आह्वयन्तोऽर्जुनं वीराः पितृजुष्टां दिशं प्रति।

सब लोगों के सुनते हुए उन्होंने जोर से यह बात कही और अर्जुन के वध के लिये प्रतिज्ञा की कि व्रत का पालन न करनेवालों को, ब्राह्मण की हत्या करने वाले को, शराबी को, गुरुस्त्रीगामी को, ब्राह्मण का धन छीननेवाले को, राजा की दी हुई जीविका छीननेवाले को, शरणागत को त्यागने वाले को, याचक को मारनेवाले को, घर में आग लगानेवाले को, गोहत्यारे को, दूसरे का अपकार करनेवाले को, ब्राह्मणद्रोही को, नपुंसक से युद्ध करनेवाले को, नीच पुरुषों का साथ करनेवालों को, नास्तिकों को, अग्नि, माता और पिता की सेवा का त्याग करने वाले को और दूसरे पापियों को जोभी गति प्राप्त होती है, हम उसी गति को प्राप्त हों, यदि हम आज युद्ध में अर्जुन को मारे बिना लौट आयें या उससे पीड़ित होकर भय से युद्ध से भाग आयें। हे राजन्! ऐसा कहकर वे वीर अर्जुन को युद्ध के लिये ललकारते हुए, युद्धस्थल में दक्षिणदिशा की तरफ जाकर खड़े हो गये।

आहूतस्तैर्नरव्याघ्रैः पार्थः परपुरंजयः॥ २६॥
धर्मराजमिदं वाक्यमपदान्तरमब्रवीत्।
आहूतो न निवर्तेयमिति मे व्रतमाहितम्॥ २७॥
एष च भ्रातृभिः सार्धं सुशर्माऽऽह्वयते रणे।
वधाय सगणस्यास्य मामनुज्ञातुमर्हसि॥ २८॥
नैतच्छक्नोमि संसोढुमाह्वानं पुरुषर्षभ।
सत्यं ते प्रतिजानामि हतान् विद्धि परान् युधि॥ २९॥

तब उन नरव्याघ्रों के द्वारा ललकारा जाने पर, शत्रुओं के नगर को जीतनेवाले अर्जुन तुरन्त ही धर्मराज युधिष्ठिर से यह बोले कि किसी के द्वारा ललकारा जाने पर, मैं पीछे नहीं हटता हूँ, यह मेरा व्रत है। हे राजन्! यह सुशर्मा अपने भाइयों के साथ मुझे युद्ध के लिये ललकार रहा है। इसलिये इसके बान्धवों सहित वध के लिये आप मुझे आज्ञा दीजिये। हे पुरुषश्रेष्ठ! मैं इनकी ललकार सहन नहीं कर सकता। मैं आपको यह सत्य प्रतिज्ञा करके कहता हूँ। अब आप इन शत्रुओं को युद्ध में मारा हुआ ही समझिये।

युधिष्ठिर उवाच

श्रुतं ते तत्त्वतस्तात यद् द्रोणस्य चिकीर्षितम्।
यथा तदनृतं तस्य भवेत् तत् त्वं समाचर॥ ३०॥
द्रोणो हि बलवाञ्छूरः कृतास्त्रश्च जितश्रमः।
प्रतिज्ञातं च तेनैतद् ग्रहणं मे महारथ॥ ३१॥

अर्जुन उवाच

अयं वै सत्यजिद् राजन्नद्य त्वां रक्षिता युधि।
ध्रियमाणे च पाञ्चाल्ये नाचार्यः काममाप्स्यति॥ ३२॥
हते तु पुरुषव्याघ्रे रणे सत्यजिति प्रभो।
सर्वैरपि समेतैर्वा न स्थातव्यं कथंचन॥ ३३॥

तब युधिष्ठिर ने कहा कि हे तात! तुमने यह अच्छीतरह से सुन लिया है कि द्रोणाचार्य क्या करना चाहते हैं। उनका संकल्प जैसे असत्य हो जाये, तुम वैसे ही करो। द्रोणाचार्य बलवान्, शूरवीर, शस्त्रविधा के पंडित, और श्रम को जीतनेवाले हैं। हे महारथी! उन्होंने मेरे पकड़ लेने की प्रतिज्ञा की हुई है। तब अर्जुन ने कहा कि हे राजन्! आज युद्ध में सत्यजित् आप की रक्षा करेंगे। इनके जीतेजी आचार्य अपनी इच्छापूर्ति नहीं कर सकेंगे। हे प्रभो! युद्ध में सत्यजित के मारे जाने पर, आप सबलोगों के साथ होने पर भी युद्धस्थल में मत ठहरना।

अनुज्ञातस्ततो राज्ञा परिष्वक्तश्च फाल्गुनः।
प्रेम्णा दृष्टश्च बहुधा ह्याशिषश्चास्य योजिताः॥ ३४॥
विहायैनं ततः पार्थस्त्रिगर्तान् प्रत्ययाद् बली।
क्षुधितः क्षुद्विघातार्थं सिंहो मृगगणानिव॥ ३५॥

तब राजा ने अर्जुन को छाती से लगाकर, बहुत प्रकार से आशीर्वाद देते हुए और प्रेमपूर्वक उनकी तरफ देखते हुए, उन्हें जाने की आज्ञा दे दी। तब बलवान् अर्जुन युधिष्ठिर को छोड़कर त्रिगर्तों की तरफ ऐसे बढ़े जैसे भूखा सिंह अपनी भूख मिटाने के लिये हिरणों की तरफ जा रहा हो।

आठवाँ अध्याय : संशप्तकों के साथ अर्जुनका युद्ध। सुधन्वा का वध।

ते किरीटिनमायान्तं दृष्ट्वा हर्षेण मारिष।
उदक्रोशन् नरव्याघ्राः शब्देन महता तदा॥ १॥
सोऽतीव सम्प्रहृष्टांस्तानुपलभ्य धनंजयः।
किंचिदभ्युत्स्मयन् कृष्णमिदं वचनमब्रवीत्॥ २॥
पश्यैतान् देवकीमातर्मुमूर्षूनद्य संयुगे।
भ्रातृंस्त्रैगर्तकानेवं रोदितव्ये प्रहर्षितान्॥ ३॥
एवमुक्त्वा महाबाहुर्हृषीकेशं ततोऽर्जुनः।
आससाद रणे व्यूढां त्रिगर्तानामनीकिनीम्॥ ४॥

हे मान्यवर! तब नरव्याघ्र संशप्तकलोग अर्जुन को आता हुआ देखकर, उच्च स्वर से हर्षपूर्वक जयनाद करने लगे। उन्हें अत्यन्त प्रसन्न देखकर कुछ मुस्कराते हुए अर्जुन ने श्रीकृष्ण जी से कहा कि देखो देवकीनन्दन! ये लोग आज युद्ध में मरने के इच्छुक हैं। त्रिगर्तदेश के इन सुशर्मा आदि को भाइयों सहित जहाँ रोना चाहिये था, वहाँ ये हर्षित हो रहे हैं। श्रीकृष्ण जी से यह कहकर, महाबाहु अर्जुन ने तब व्यूहबद्ध होकर खड़ी हुई त्रिगर्तों की सेना पर युद्धस्थल में आक्रमण किया।

स देवदत्तमादाय शङ्खं हेमपरिष्कृतम्।
दध्मौ वेगेन महता घोषेणापूरयन् दिशः॥ ५॥
स्वनेन सर्वसैन्यानां कर्णास्तु बधिरीकृताः।
उपलभ्य ततः संज्ञामवस्थाप्य च वाहिनीम्॥ ६॥
युगपत् पाण्डुपुत्राय चिक्षिपुः कङ्कपत्रिणः।
तान्यर्जुनः सहस्राणि दशपञ्चभिराशुगैः॥ ७॥
अनागतान्येव शरैश्चिच्छेदाशु पराक्रमी।
ततोऽर्जुनं शितैर्बाणैदशभिर्दशभिः पुनः॥ ८॥
प्राविध्यन्त ततः पार्थस्तानविध्यत् त्रिभिस्त्रिभिः।

उन्होंने अपने स्वर्णभूषित देवदत्तनाम के शंख को लेकर उसकी ध्वनि से सारी दिशाओं को गुँजाते हुए, उसे बड़ी जोर से बजाया। उस शब्द से सारी सेना के कान बहरे हो गये। फिर सँभलकर और अपनी सेना को सँभालकर, उन शत्रुवीरों ने पाण्डुपुत्र के ऊपर एकसाथ कंकपत्र से युक्त बाणों की वर्षा आरम्भ कर दी। अर्जुन ने उन असंख्य बाणों को अपने दस दस और पाँच पाँच शीघ्रगामी बाणों द्वारा काट गिराया। तब संशप्तक वीरों ने दस दस तीखे बाणों से अर्जुन को पुनः बींधा। अर्जुन ने भी उन्हें तीन तीन बाणों से घायल कर दिया।

एकैकस्तु ततः पार्थं राजन् विव्याध पञ्चभिः॥ ९॥
स च तान् प्रतिविव्याध द्वाभ्यां द्वाभ्यां पराक्रमी।
भूय एव तु संक्रुद्धास्त्वर्जुनं सहकेशवम्॥ १०॥
आपूरयञ्शरैस्तीक्ष्णैस्तडागमिव वृष्टिभिः।
ततः शरसहस्राणि प्रापतन्नर्जुनं प्रति॥ ११॥
भ्रमराणामिव व्राताः फुल्लं द्रुमगणं वने।

फिर उन योद्धाओं ने हे राजन्! अर्जुन को पाँच बाणों से बींधा। तब उस पराक्रमी ने भी बदले में उन्हें दो दो बाणों से बींध दिया। फिर संशप्तकों ने अत्यन्तक्रुद्ध होकर अर्जुन को श्रीकृष्ण जी के साथ तीखे बाणों से ऐसे भर दिया, जैसे बादल वर्षा के द्वारा तालाब को भर देते हैं। वह बाणवर्षा अर्जुन

के ऊपर ऐसे गिरने लगी, जैसे वन में फूलों से भरे वृक्ष के ऊपर भ्रमरों के झुण्ड टूट कर पड़ते हैं।

ततः सुबाहुस्त्रिंशद्भिरद्रिसारमयैः शरैः॥ १२॥
अविध्यदिषुभिर्गाढं किरीटे सव्यसाचिनम्।
हस्तावापं सुबाहोस्तु भल्लेन युधि पाण्डवः॥ १३॥
चिच्छेद तं चैव पुनः शरवर्षैरवाकिरत्।
ततः सुशर्मा दशभिः सुरथस्तु किरीटिनम्॥ १४॥
सुधर्मा सुधनुश्चैव सुबाहुश्च समार्पयत्।
तांस्तु सर्वान् पृथग्बाणैर्वानरप्रवरध्वजः॥ १५॥
प्रत्यविध्यद् ध्वजांश्चैषां भल्लैश्चिच्छेद सायकान्।
सुधन्वनो धनुश्छित्त्वा हयांश्चास्यावधीच्छरैः॥ १६॥
अथास्य सशिरस्त्राणं शिरः कायादपातयत्।

फिर सुबाहु ने लोहे के तीस बाणों की वर्षाकर, अर्जुन के किरीट पर गहरा आघात किया। तब पाण्डुपुत्र अर्जुन ने सुबाहु के हाथ के दस्ताने को भल्ल के द्वारा काट दिया और उसे बाणवर्षा से भर दिया। तब सुशर्मा सुरथ, सुधर्मा, सुधन्वा और सुबाहु ने अर्जुन को दस दस बाणों से घायल कर दिया। तब वानर की ध्वजावाले अर्जुन ने भी उन सबको अलग अलग बाणों से बींधा और भल्लों के द्वारा उनकी ध्वजाओं तथा बाणों को भी काट गिराया। फिर उन्होंने सुधन्वा के धनुष को काटकर उसके घोड़ों को भी मार दिया और शिरस्त्राणसहित उसके सिर को उसके शरीर से अलग कर दिया।

ततो जघान संक्रुद्धो वासविस्तां महाचमूम्॥ १७॥
शरजालैरविच्छिन्नैस्तमः सूर्य इवांशुभिः।
ते वध्यमानाः पार्थेन शरैः संनतपर्वभिः॥ १८॥
अमुह्यंस्तत्र तत्रैव त्रस्ता मृगगणा इव।
ततस्त्रिगर्तराट् क्रुद्धस्तानुवाच महारथान्॥ १९॥
अलं द्रुतेन वः शूरा न भयं कर्तुमर्हथ।
शप्त्वाथ शपथान् घोरान् सर्वसैन्यस्य पश्यतः।
गत्वा दौर्योधनं सैन्यं किं वै वक्ष्यथ मुख्यशः॥ २०॥

फिर इन्द्रपुत्र ने क्रोध में भरकर, उस विशाल सेना का अपने बाणों के जाल से इसप्रकार विनाश करना आरम्भ कर दिया जैसे सूर्य अपनी किरणों से अन्ध कार का नाश करते हैं। अर्जुन के द्वारा झुकी गाँठवाले बाणों के द्वारा मारे जाते हुए वे सैनिक भयभीत मृगों के समान मोहित हो गये। तब त्रिगर्तराज क्रोध में भरकर उन महारथियों से बोला कि हे शूरों! भय मत करो और भागो मत। सारी सेना के सामने भयंकर प्रतिज्ञाएँ करके, फिर दुर्योधन की सेना में जाकर वहाँ तुम श्रेष्ठ महारथी क्या कहोगे?

नावहास्याः कथं लोके कर्मणानेन संयुगे।
भवेम सहिताः सर्वे निवर्तध्वं यथाबलम्॥ २१॥

युद्ध क्षेत्र में इसप्रकार का कार्य करके हमें संसार में हँसी का पात्र नहीं बनना चाहिये। इसलिये तुम लौट आओ। हमसब यथाशक्ति इकठ्ठे होकर ही युद्ध करें।

ततस्ते संन्यवर्तन्त संशप्तकगणाः पुनः।
नारायणाश्च गोपाला मृत्युं कृत्वा निवर्तनम्॥ २२॥
दृष्ट्वा तु संनिवृत्तांस्तान् संशप्तकगणान् पुनः।
वासुदेवं महात्मानमर्जुनः समभाषत॥ २३॥
चोदयाश्वान् हृषीकेश संशप्तकगणान् प्रति।
नैते हास्यन्ति संग्रामं जीवन्त इति मे मतिः॥ २४॥
पश्य मेऽस्त्रबलं घोरं बाह्वोरिष्वसनस्य च।

तब वे संशप्तकलोग तथा नारायणीसेना के ग्वाले भी मृत्यु को ही वापिस लौटने का आधार मानकर युद्ध के लिये लौट आये। संशप्तकों को पुनः लौटाहुआ देखकर मनस्वी श्रीकृष्ण जी से अर्जुन ने कहा कि हे श्रीकृष्ण! आप घोड़ों को संशप्तकों की तरफ ही ले चलिये। मेरा विचार है कि ये जीते जी संग्रामभूमि को नहीं छोड़ेगे। आप मेरी भुजाओं, अस्त्रों और धनुष की शक्ति को देखिये।

ततः कृष्णः स्मितं कृत्वा प्रतिनन्द्य शिवेन तम्॥ २५॥
प्रावेशयत दुर्धर्षो यत्र यत्रैच्छदर्जुनः।
स रथो भ्राजतेऽत्यर्थमुह्यमानो रणे तदा॥ २६॥
उह्यमानमिवाकाशे विमानं पाण्डुरैर्हयैः।
अथ नारायणाः क्रुद्धाः विविधायुधपाणयः॥ २७॥
क्षोदयन्तः शरव्रातैः परिवव्रुर्धनंजयम्।
अदृश्यं च मुहूर्तेन चक्रुस्ते भरतर्षभ॥ २८॥
कृष्णेन सहितं युद्धे कुन्तीपुत्रं धनंजयम्।
क्रुद्धस्तु फाल्गुनः संख्ये द्विगुणीकृतविक्रमः॥ २९॥
गाण्डीवं धनुरामृज्य तूर्णं जग्राह संयुगे।

तब दुर्धर्ष श्रीकृष्ण ने मुस्कराकर, तथा अर्जुन के कल्याण की कामनाकर रथ को उस तरफ ही

बढ़ाया, जिसतरफ अर्जुन चाहता था। श्वेत घोड़ों के द्वारा ले जाया जाता हुआ, वह रथ युद्धस्थल में इसप्रकार प्रतीत हो रहा था जैसे आकाश में कोई विमान उड़ा जारहा हो। तब विभिन्न प्रकार के हथियारों को हाथ में लिये हुए नारायणीसेना के सैनिकों ने बाणवर्षा से आच्छादित करते हुए अर्जुन को चारोंतरफ से घेर लिया। हे भरतश्रेष्ठ! उन्होंने एक मुहूर्त के लिये अपनी बाण वर्षा से श्रीकृष्ण जी के साथ युद्ध में कुन्तीपुत्र अर्जुन को बिल्कुल ढक दिया। तब अर्जुन ने क्रोध में भरकर, दुगना पराक्रम करते हुए, गाण्डीवधनुष को जल्दी से पोंछ कर हाथ में लिया।

बद्ध्वा च भ्रुकुटिं वक्त्रे क्रोधस्य प्रतिलक्षणम्॥ ३०॥
देवदत्तं महाशङ्खं पूरयामास पाण्डवः।
अथास्त्रमरिसंघघ्नं त्वाष्ट्रमभ्यस्यदर्जुनः॥ ३१॥
ततः शरसहस्राणि तैर्विमुक्तानि भस्मसात्।
कृत्वा तदस्त्रं तान् वीराननयद् यमसादनम्॥ ३२॥
अथ प्रहस्य बीभत्सुर्ललित्थान् मालवानपि।
मावेल्लकांस्त्रिगर्तांश्च यौधेयांश्चार्दयच्छरैः॥ ३३॥
हन्यमाना वीरेण क्षत्रियाः कालचोदिताः।
व्यसृजञ्छरजालानि पार्थे नानाविधानि च॥ ३४॥

पाण्डुपुत्र ने अपनी भौंहें टेढ़ीकर क्रोध को सूचित करनेवाले महान् शंख देवदत्त को बजाया तथा शत्रुओं का नाश करनेवाले त्वाष्ट्र नाम के अस्त्र का प्रयोग किया। उस अस्त्र ने उन वीरों के द्वारा छोड़े हुए हजारों बाणों को नष्टकर, बहुत सारे वीरों को मृत्युलोक में पहुँचा दिया। फिर अर्जुन ने हँसकर, ललित्थ, मालव, मावेल्लक त्रिगर्त और यौधेय वीरों को अपने बाणों से पीड़ित किया। उस वीर के द्वारा मारे जाते हुए वे काल से प्रेरित वीर अर्जुन के ऊपर नानाप्रकार के बाणसमूहों की वर्षा करने लगे।

न ध्वजो नार्जुनस्तत्र न रथो न च केशवः।
प्रत्यदृश्यत घोरेण शरवर्षेण संवृतः॥ ३५॥
ततस्ते लब्धलक्षत्वादन्योन्यमभिचुक्रुशुः।
हतौ कृष्णाविति प्रीत्या वासांस्यादुधुवुस्तदा॥ ३६॥
ततः प्रसिष्विदे कृष्णः खिन्नश्चार्जुनमब्रवीत्।
क्वासि पार्थ न पश्ये त्वां कच्चिज्जीवसि शत्रुहन्॥ ३७॥
तस्य तद् भाषितं श्रुत्वा त्वरमाणो धनंजयः।
वायव्यास्त्रेण तैरस्तां शरवृष्टिमपाहरत्॥ ३८॥

उस घोर बाणवर्षा से ढक जाने के कारण उस समय न तो अर्जुन का ध्वज, न रथ, न अर्जुन और न श्रीकृष्ण कोई भी दिखाई नहीं दे रहा था। तब उन संशप्तकों ने समझा कि हमने अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लिया और श्रीकृष्ण तथा अर्जुन मारे गये। फिर वे एकदूसरे की तरफ देखते हुए जोर जोर से जयनाद करने और अपने वस्त्रों को हिलाने लगे। तब श्रीकृष्ण जी को पसीना आने लगा और वे खिन्न होकर अर्जुन से बोले कि हे शत्रुदमन कुन्तीपुत्र! तुम कहाँ हो? मैं तुम्हें नहीं देख रहा हूँ। क्या तुम जीवित हो? उनकी यह बात सुनकर अर्जुन ने शीघ्रता से वायव्यास्त्र के द्वारा उस बाणवर्षा को हटा दिया।

तांस्तथा व्याकुलीकृत्य त्वरमाणो धनंजयः।
जघान निशितैर्बाणैः सहस्राणि शतानि च॥ ३९॥
शिरांसि भल्लैरहरद् बाहूनपि च सायुधान्।
हस्तिहस्तोपमांश्चोरूञ्शरैरुर्व्या- मपातयत्॥ ४०॥
पृष्ठच्छिन्नान विचरणान् बाहुपार्श्वेक्षणाकुलान्।
नानाङ्गावयवैर्हीनांश्चकारारीन् धनंजयः॥ ४१॥
गन्धर्वनगराकारान् विधिवत्कल्पितान् रथान्।
शरैर्विशकलीकुर्वंश्चक्रे व्यश्वरथद्विपान्॥ ४२॥

शत्रुओं को इसप्रकार वायव्यास्त्र से व्याकुल करके अर्जुन ने शीघ्रता करते हुए तीखे बाणों से सैकड़ों और हजारों सैनिकों को मार दिया। उन्होंने भल्लों के द्वारा उनके सिरों को, आयुधवाली बाहों को और हाथी की सूंड के समान जाँघों को बाणों से काटकर भूमिपर गिरा दिया। अर्जुन ने अपने शत्रुओं को अनेक अंगों से विहीन कर दिया। किन्ही की पीठ, किन्ही के पैर, किन्हीं की बाहें, किन्ही की पसली तो किन्हीं की आँखें समाप्तकर उन्हें व्याकुल कर दिया। गन्धर्वनगर के समान सुन्दर रीति से बनाये हुए रथों के टुकड़े कर दिये। उन्होंने अपने शत्रुओं को हाथी, रथ और घोड़ों से वंचित कर दिया।

मुण्डतालवनानीव तत्र तत्र चकाशिरे।
छिन्ना रथध्वजव्राताः केचित्तत्र क्वचित् क्वचित्॥ ४३॥
चामरापीडकवचाः स्रस्तान्त्रनयनास्तथा।
सारोहास्तुरगाः पेतुः पार्थबाणहताः क्षितौ॥ ४४॥
विप्रविद्धासिनखराश्छिन्न- वर्मर्ष्टिशक्तयः।
पत्तयश्छिन्नवर्माणः कृपणाः शेरते हताः॥ ४५॥

तैर्हतैर्हन्यमानैश्च पतद्भिः पतितैरपि।
भ्रमद्भिर्निष्टनद्भिश्च क्रूरमायोधनं बभौ॥ ४६॥

वहाँ कहीं कहीं रथों के ऊपर लहरानेवाले ध्वजों के गिराने से, वे रथ मुण्डित तालवनों के समान प्रतीत हो रहे थे। अर्जुन के बाणों से मारे जाकर चामर, माला और कवचों से युक्त बहुत से घोड़े अपने सवारों के साथ पड़े हुए थे। उनकी आँतें और आँखें बाहर निकल आयीं थीं। पैदल सैनिकों के कवच कट गये थे, तलवार और बघनखे टूट गये थे, उनकी ऋष्टि और शक्तियाँ भी टूट गयीं थी और वे दीनअवस्था में मरकर पड़े हुए थे। कुछ लोग मर चुके थे, कुछ मारे जारहे थे, कुछ गिर चुके थे और कुछ गिराये जारहे थे, कुछ चक्कर काट रहे थे और कुछ प्रहार कर रहे थे। इनसब के कारण वह युद्धक्षेत्र अत्यन्त क्रूरता से युक्त प्रतीत हो रहा था।

नवाँ अध्याय : व्यूह रचना, धृष्टद्युम्न और दुर्मुख का युद्ध।

निष्क्रान्ते च तदा पार्थे संशप्तकवधं प्रति।
व्यूढानीकस्ततो द्रोणः पाण्डवानां महाचमूम्॥ १॥
अभ्ययाद् भरतश्रेष्ठ धर्मराजजिघृक्षया।
व्यूढं दृष्ट्वा सुपर्णं तु भारद्वजकृतं तदा॥ २॥
व्यूहेन मण्डलार्धेन प्रत्यव्यूहद् युधिष्ठिरः।
मुखं त्वासीत् सुपर्णस्य भारद्वाजो महारथः॥ ३॥
शिरो दुर्योधनो राजा सोदर्यैः सानुगैर्वृतः।
चक्षुषी कृतवर्माऽऽसीद् गौतमश्चास्यतां वरः॥ ४॥

तब संशप्तकों के वध के लिये अर्जुन के निकल जाने पर, द्रोणाचार्य ने अपनी सेना का व्यूह बना कर, हे भरतश्रेष्ठ! पाण्डवों की विशाल सेना पर धर्मराज युधिष्ठिर को पकड़ने की इच्छा से आक्रमण की तैयारी की। द्रोणाचार्य के द्वारा बनाये गये सेना के गरुड़व्यूह को देखकर युधिष्ठिर ने अपनी सेना का मण्डलार्ध नाम का व्यूह बनाया। कौरवसेना के गरुड़व्यूह में मुख के स्थान पर महारथी द्रोणाचार्य थे। उसके सिर की जगह पर राजा दुर्योधन सेवकों और छोटे भाइयों से घिरा हुआ खड़ा था। उसके नेत्रों पर बाण चलानेवालों में श्रेष्ठ कृपाचार्य और कृतवर्मा विद्यमान थे।

भूतशर्मा क्षेमशर्मा करकाशश्च वीर्यवान्।
कलिङ्गाः सिंहलाः प्राच्याः शूराभीरा दशेरकाः॥ ५॥
शका यवनकाम्बोजास्तथा हंसपथाश्च ये।
ग्रीवायां शूरसेनाश्च दरदा मद्रकेकयाः॥ ६॥
गजाश्वरथपत्त्योघास्तस्थुः परमदंशिताः।
भूरिश्रवास्तथा शल्यः सोमदत्तश्च वाह्लिकः॥ ७॥
अक्षौहिण्या वृता वीरा दक्षिणं पार्श्वमास्थिताः।
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ काम्बोजश्च सुदक्षिणः॥ ८॥
वामं पार्श्वं समाश्रित्य द्रोणपुत्राग्रतः स्थिताः।

भूतशर्मा, क्षेमशर्मा, पराक्रमी करकाश, कलिंग, सिंहल, पूर्वदिशा के सैनिक, शूरवीर आभीरक, दाशेरक, शक, यवन, काम्बोज, हंसपथ, शूरसेन, दरद, मद्र, केकय देशों के सैनिक, हाथीसवार, घुड़सवार, रथी और पैदलसमूह उत्तम कवचों को धारणकर उसकी गर्दन के स्थान पर खड़े थे। भूरिश्रवा, शल्य, सोमदत्त और बाल्हीक ये वीर अक्षौहिणी सेना के साथ उसके दायें भाग पर स्थित थे। अवन्तीदेश के विन्द और अनुविन्द, काम्बोज राज सुदक्षिण सेना के बायें भाग पर अश्वत्थामा के आगे खड़े हुए थे।

पृष्ठे कलिङ्गाः साम्बष्ठा मागधाः पौण्ड्रमद्रकाः॥ ९॥
गान्धाराः शकुनाः प्राच्याः पर्वतीया वसातयः।
पुच्छे वैकर्तनः कर्णः सपुत्रज्ञातिबान्धवः॥ १०॥
महत्या सेनया तस्थौ नानाजनपदोत्थया।
जयद्रथो भीमरथः सम्पातिऋषभो जयः॥ ११॥
भूमिंजयो वृषक्राथो नैषधश्च महाबलः।
वृता बलेन महता ब्रह्मलोकपुरस्कृताः॥ १२॥
व्यूहस्योरसि ते राजन् स्थिता युद्धविशारदाः।

उस व्यूह के पिछले भाग में कलिंग, अम्बष्ठ, मगध, पौण्ड्र, मद्रक, गान्धार, शकुन, पूर्वदेश, पर्वतीय देश तथा वसातिआदि देशों के वीर थे। उसकी पूँछ के भाग पर कर्ण अपने परिवार, पुत्रों और बन्धुओं के साथ, अनेक देशों की विशाल सेना से युक्त होकर खड़ा हुआ था। जयद्रथ, भीमरथ, सम्पाति, ऋषभ, जय, भूमिंजय, वृषक्राथ तथा महाबली

निषधराज विशाल सेना से घिरे हुए व्यूह के हृदय पर स्थित थे। हे राजन्! ये युद्ध में विशारद थे और उन्होंने परलोकप्राप्ति को ही अपना लक्ष्य बनाया हुआ था।

द्रोणेन विहितो व्यूहः पदात्यश्वरथद्विपैः॥ १३॥
वातोद्धूतार्णवाकारः प्रवृत्त इव लक्ष्यते।
तस्य पक्षप्रपक्षेभ्यो निष्पतन्ति युयुत्सवः॥ १४॥
सविद्युत्स्तनिता मेघाः सर्वदिग्भ्य इवोष्णगे।
तस्य प्राग्ज्योतिषो मध्ये विधिवत् कल्पितं गजम्॥ १५॥
आस्थितः शुशुभे राजन्नंशुमानुदये यथा।
लीलाञ्जनचयप्रख्यो मदान्धो द्विरदो बभौ॥ १६॥
अतिवृष्टो महामेघैर्यथा स्यात् पर्वतो महान्।

इसप्रकार, रथ घोड़ों और हाथियों से युक्त द्रोणाचार्य के द्वारा बनाया हुआ वह व्यूह, वायु से उमड़ते हुए सागर के समान दिखाई देरहा था। उसके पक्ष और प्रपक्ष भागों से युद्ध के इच्छुकवीर निकलते हुए ऐसे प्रतीत होते थे जैसे वर्षाऋतु में विद्युत् से प्रकाशित मेघ सारी दिशाओं से प्रकट होने लगते हैं। हे राजन्! उसके मध्यभाग में प्राग्ज्योतिषपुर का राजा भगदत्त विधिपूर्वक सजाये हुए हाथी पर बैठा हुआ उदय होते हुए सूर्य के समान प्रतीत हो रहा था। उसका मदान्ध काला गजराज, काजल के ढेर के समान तथा अपनी मदवर्षा के कारण महान् मेघों की अत्यधिक वर्षा से गीले हुए विशाल पर्वत के समान दिखाई देरहा था।

ततो युधिष्ठिरः प्रेक्ष्य व्यूहं तमतिमानुषम्॥ १७॥
अजय्यमरिभिः संख्ये पार्षतं वाक्यमब्रवीत्।
ब्राह्मणस्य वशं नाहमियामद्य यथा प्रभो॥ १८॥
पारावतसवर्णाश्व तथा नीतिर्विधीयताम्।

धृष्टद्युम्न उवाच

द्रोणस्य यतमानस्य वशं नैष्यसि सुव्रत॥ १९॥
अहमावारयिष्यामि द्रोणमद्य सहानुगम्।
मयि जीवति कौरव्य नोद्वेगं कर्तुमर्हसि॥ २०॥
न हि शक्तो रणे द्रोणो विजेतुं मां कथंचन।

तब उस व्यूह को, जो शत्रुओं के लिये अजेय था और अमानवीय प्रतीत होता था, देखकर युधिष्ठिर ने द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्न से कहा कि हे कबूतर के समान रंग के घोड़ोंवाले वीर! जिससे मैं उस ब्राह्मण के बस में न आ सकूँ, वैसी नीति निश्चित करो। तब धृष्टद्युम्न ने कहा कि हे अच्छे व्रतों का पालन करनेवाले! आप द्रोणाचार्य के प्रयत्न करने पर भी उसके वश में नहीं आयेंगे। मैं आज द्रोणाचार्य को उनके पीछे चलनेवालों के सहित रोकूँगा। हे कुरुनन्दन! मेरे जीते हुए आप उद्वेग मत कीजिये। द्रोणाचार्य मुझे युद्ध में किसीप्रकार भी नहीं जीत सकते।

एवमुक्त्वा किरन् बाणान् द्रुपदस्य सुतो बली॥ २१॥
पारावतसवर्णाश्वः स्वयं द्रोणमुपाद्रवत्।
अनिष्टदर्शनं दृष्ट्वा धृष्टद्युम्नमवस्थितम्॥ २२॥
क्षणेनैवाभवद् द्रोणो नातिहृष्टमना इव।
तं तु सम्प्रेक्ष्य पुत्रस्ते दुर्मुखः शत्रुकर्षणः॥ २३॥
प्रियं चिकीर्षुर्द्रोणस्य धृष्टद्युम्नमवारयत्।
स सम्प्रहारस्तुमुलः सुघोरः समपद्यत॥ २४॥
पार्षतस्य च शूरस्य दुर्मुखस्य च भारत।

ऐसा कहकर कबूतर के रंग के घोड़ोंवाले द्रुपद के बलवान् पुत्र ने बाणों की वर्षा करते हुए स्वयं द्रोणाचार्य पर आक्रमण किया। जिसका दर्शन उनके लिये अनिष्ट का सूचक था, उस धृष्टद्युम्न को अपने सामने खड़े हुए देखकर द्रोणाचार्य उदास हो गये। तब उन्हें उदास देखकर, उनका प्रिय करने का इच्छुक आपका पुत्र शत्रुदमन दुर्मुख धृष्टद्युम्न को रोकने लगा। हे भारत! तब द्रुपद पुत्र धृष्टद्युम्न और शूरवीर दुर्मुख में वह युद्ध बहुत भयानकरूप में होने लगा।

पार्षतः शरजालेन क्षिप्रं प्रच्छाद्य दुर्मुखम्॥ २५॥
भारद्वाजं शरौघेण महता समवारयत्।
द्रोणमावारितं दृष्ट्वा भृशायस्तस्तवात्मजः॥ २६॥
नानालिङ्गैः शरव्रातैः पार्षतं सममोहयत्।
तयोर्विषक्तयोः संख्ये पाञ्चाल्यकुरुमुख्ययोः॥ २७॥
द्रोणो यौधिष्ठिरं सैन्यं बहुधा व्यधमच्छरैः।
अनिलेन यथाभ्राणि विच्छिन्नानि समन्ततः॥ २८॥
तथा पार्थस्य सैन्यानि विच्छिन्नानि क्वचित् क्वचित्।

द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्न ने शीघ्रता से बाणवर्षा द्वारा दुर्मुख को अच्छादितकर द्रोणाचार्य को भी महान् बाणसमूहों के द्वारा रोक दिया। द्रोणाचार्य को रोका हुआ देखकर आपका पुत्र दुर्मुख अनेकप्रकार के बाणसमूहों के द्वारा बड़ा प्रयत्नकर धृष्टद्युम्न को मोहित करने लगा। इस प्रकार जब वे दोनों पाँचाल पुत्र और कुरुकुल के प्रधान वीर, परस्पर युद्ध में लगे हुए थे, तब द्रोणाचार्य ने युधिष्ठिर की सेना को अनेक स्थानों

से छिन्न भिन्न कर दिया। जैसे वायु के द्वारा बादलों को फाड़ दिया जाता है, वैसे ही युधिष्ठिर की सेनाएँ भी उससमय कहीं कहीं से छिन्नभिन्न हो गयीं।

मुहूर्तमिव तद् युद्धमासीन्मधुरदर्शनम्॥ २९॥
तत उन्मत्तवद् राजन् निर्मर्यादमवर्तत।
चूडामणिषु निष्केषु भूषणेष्वपि वर्ममु॥ ३०॥
तेषामादित्यवर्णाभा रश्मयः प्रचकाशिरे।
तत्प्रकीर्णपताकानां रथवारणवाजिनाम्॥ ३१॥
बलाकाशबलाभ्राभं ददृशे रूपमाहवे।

एक मूहूर्त तक तो वह युद्ध सुन्दर रूप में दिखाई देरहा था, पर उसके पश्चात् हे राजन्! सब पागलों के समान मर्यादारहित होकर लड़ने लगे। उस समय वीरों के मुकुटों, हारों, आभूषणों और कवचों पर पड़ती हुई किरणें, सूर्य के समान जगमगा रही थीं। युद्धस्थल में जिनके ऊपर झंडे लहरा रहे थे, वे रथ, हाथी और घोड़े आकाश में बगुलों की पंक्तियों से चितकबरे बने हुए बादलों जैसे प्रतीत हो रहे थे।

गजस्थाश्च महामात्रा निर्भिन्नहृदया रणे॥ ३२॥
रथिभिः पातिता भल्लैर्विकीर्णाङ्कुशतोमरा।
क्रौञ्चवद् विनदन्तोऽन्ये नाराचाभिहता गजाः॥ ३३॥
परान् स्वांश्चापि मृद्नन्तः परिपेतुर्दिशो दश।
गजाश्वरथयोधानां शरीरौघसमावृता॥ ३४॥
बभूव पृथिवी राजन् मांसशोणितकर्दमा।
प्रमथ्य च विषाणाग्रैः समुत्क्षिप्ताश्च वारणैः॥ ३५॥
सचक्राश्च विचक्राश्च रथैरेव महारथाः।

उस युद्ध में रथियों ने अपने भल्लों से हाथियों पर बैठे हुए महावतों के हृदयों को फाड़कर उन्हें गिरा दिया था। उनके अंकुश और तोमर भी इधर उधर बिखर गये थे। दूसरे कुछ हाथी नाराचों की चोट खाकर क्रौंच पक्षी के समान चिंघाड़ रहे थे और अपनों तथा शत्रुओं को कुचलते हुए, सारी दिशाओं में भाग रहे थे। हे राजन्! मरे हुए हाथी, रथ, घोड़े और योद्धाओं के शरीरों के समूहों से भरी हुई उस भूमि पर माँस और खून की कीचड़ हो रही थी। हाथियों के द्वारा रथियों सहित अपने दाँतों से तोड़े हुए पहियों वाले और बिनापहियोंवाले विशाल रथ दाँतों द्वारा ही उछालकर फैंके जा रहे थे।

रथाश्च रथिभिर्हीना निर्मनुष्याश्च वाजिनः॥ ३६॥
हतारोहाश्च मातङ्गा दिशो जग्मुर्भयातुराः।
हयौघाश्च रथौघाश्च नरौघाश्च निपातिताः॥ ३७॥
संक्षुण्णाः पुनरावृत्य बहुधा रथनेमिभिः।
वर्तमाने तथा युद्धे घोररूपे भयंकरे।
मोहयित्वा परान् द्रोणो युधिष्ठिरमुपाद्रवत्॥ ३८॥

ऐसे रथ हाथी और घोड़े, जिनके सवार मार दिये गये थे, भय से बेचैन होकर, सबतरफ भागते जा रहे थे। घोड़ों के समूह और पैदलों के समूह जो युद्धभूमि में गिरा दिये गये थे, बार बार आतेजाते हुए रथों के पहियों से कुचल कुचल कर टुकड़े टुकड़े हो गये थे। इसप्रकार जब भयंकर रूप से युद्ध हो रहा था, तब शत्रुओं को मोहितकर द्रोणाचार्य ने युधिष्ठिर पर आक्रमण किया।

दसवाँ अध्याय : द्रोणाचार्य के द्वारा वृक, सत्यजित, शतानीक, दृढसेन, क्षेम, वसुदान तथा पाँचाल राजकुमार का वध।

ततो युधिष्ठिरो द्रोणं दृष्ट्वाऽन्तिकमुपागतम्।
महता शरवर्षेण प्रत्यगृह्णादभीतवत्॥ १॥
ततो हलहलाशब्द आसीद् यौधिष्ठिरे बले।
जिघृक्षति महासिंहे गजानामिव यूथपम्॥ २॥
दृष्ट्वा द्रोणं ततः शूरः सत्यजित् सत्यविक्रमः।
युधिष्ठिरमभिप्रेप्सुराचार्यं समुपाद्रवत्॥ ३॥
ततो द्रोणं महेष्वासः सत्यजित् सत्यविक्रमः।
अविध्यन्निशिताग्रेण परमास्त्रं विदर्शयन्॥ ४॥

युधिष्ठिर ने द्रोणाचार्य को अपने समीप आया हुआ देख, महान् बाणवर्षा के द्वारा निर्भय होकर उनका सामना किया। तब जैसे कोई विशाल सिंह किसी हाथियों के यूथपति को पकड़ना चाहे, वैसे ही द्रोणाचार्य को युधिष्ठिर को पकड़ने का प्रयत्न करते देख युधिष्ठिर की सेना में हाहाकार होने लगा। तब यह देखकर सत्य विक्रमी शूरवीर सत्यजित ने युधिष्ठिर को बचाने की इच्छा से द्रोणाचार्य पर

आक्रमण किया। फिर सत्यविक्रमी महाधनुर्धर सत्यजित ने अपनी परम अस्त्रविद्या का प्रदर्शन करते हुए एक तीखे बाण से द्रोणाचार्य को बींध दिया।

तथास्य सारथेः पञ्च शरान् सर्पविषोपमान्।
अमुञ्चदन्तकप्रख्यान् सम्मुमोहास्य सारथिः॥ ५॥
अथास्य सहसाविध्यद्धयान् दशभिराशुगैः।
दशभिर्दशभिः क्रुद्ध उभौ च पार्ष्णिसारथी॥ ६॥
ततः सत्यजितं तीक्ष्णैर्दशभिर्मर्मभेदिभिः।
अविध्यच्छीघ्रमाचार्यश्छित्त्वास्य सशरं धनुः॥ ७॥

फिर उसने सर्पविष और मृत्यु के समान भयंकर पाँच बाणों से द्रोणाचार्य के सारथी पर प्रहार किया, जिससे वह मूर्च्छित हो गया। फिर उसने तुरन्त दस शीघ्रगामी बाणों से उनके घोड़ों को बींधा और क्रोध में भरकर दस दस बाण उनके दोनों पृष्ठ रक्षकों को मारे। तब आचार्यद्रोण ने शीघ्र ही सत्यजित के बाणसहित धनुष को काटकर उसे दस तीखे और मर्मभेदी बाणों से बींध दिया।

स शीघ्रतरमादाय धनुरन्यत् प्रतापवान्।
द्रोणमभ्यहनद् राजंस्त्रिंशता कङ्कपत्रिभिः॥ ८॥
दृष्ट्वा सत्यजिता द्रोणं ग्रस्यमानमिवाहवे।
वृकः शरशतैस्तीक्ष्णैः पाञ्चाल्यो द्रोणमार्दयत्॥ ९॥
संछाद्यमानं समरे द्रोणं दृष्ट्वा महारथम्।
चुक्रुशुः पाण्डवा राजन् वस्त्राणि दुधुवुश्च ह॥ १०॥
वृकस्तु परमक्रुद्धो द्रोणं षष्ट्या स्तनान्तरे।
विव्याध बलवान् राजंस्तदद्भुतमिवाभवत्॥ ११॥

हे राजन्! तब उस प्रतापी ने शीघ्र ही दूसरे धनुष को लेकर द्रोणाचार्य पर कंकपत्रवाले दस बाणों से प्रहार किया। द्रोणाचार्य को युद्ध में सत्यजित का ग्रास बनते देखकर, पाँचालपुत्र वृक ने भी अपने सैकड़ों बाणों से उन्हें पीड़ित किया। हे राजन्! समर भूमि में द्रोणाचार्य को बाणों से आच्छादित होते हुए देखकर पाण्डवसैनिक हर्ष से चिल्लाने और अपने वस्त्रों को हिलाने लगे। हे राजन्! तब बलवान् वृक ने अत्यन्तक्रुद्ध होकर द्रोणाचार्य पर साठ बाणों की वर्षाकर उनकी छाती के बीच में प्रहार किया। यह एक अद्भुत बात थी।

द्रोणस्तु शरवर्षेण च्छाद्यमानो महारथः।
वेगं चक्रे महावेगः क्रोधादुद्वृत्य चक्षुषी॥ १२॥
ततः सत्यजितश्चापं छित्त्वा द्रोणो वृकस्य च।
षड्भिः ससूतं सहयं शरैर्द्रोणोऽवधीद् वृकम्॥ १३॥
अथान्यद् धनुरादाय सत्यजिद् वेगवत्तरम्।
साश्वं ससूतं विशिखैर्द्रोणं विव्याध सध्वजम्॥ १४॥
स तन्न ममृषे द्रोणः पाञ्चाल्येनार्दितो मृधे।
ततस्तस्य विनाशाय सत्वरं व्यसृजच्छरान्॥ १५॥

बाणवर्षा से आच्छादित होते हुए महारथी और महान् वेगवान् द्रोणाचार्य ने तब क्रोध में अपनी आँखें फाड़कर विशेष वेग प्रकट किया। उन्होंने सत्यजित के तथा वृक के धनुष को काटकर छै बाणों से सारथी और घोड़ोंसहित वृक को मार दिया। तब सत्यजित ने दूसरे वेगवान् धनुष को लेकर द्रोणाचार्य को उनके घोड़ों, सारथी, तथा ध्वज के सहित बींध दिया। युद्ध में पाँचालराजकुमार से पीड़ित होना द्रोणाचार्य सहन न कर सके और उन्होंने उसके विनाश के लिये तेजी से बाणों को छोड़ना आरम्भ किया।

हयान् ध्वजं धनुर्मुष्टिमुभौ च पार्ष्णिसारथी।
अवाकिरत् ततो द्रोणः शरवर्षैः सहस्रशः॥ १६॥
तथा संछिद्यमानेषु कार्मुकेषु पुनः पुनः।
पाञ्चाल्यः परमास्त्रज्ञः शोणाश्वं समयोधयत्॥ १७॥
स सत्यजितमालोक्य तथोदीर्णं महाहवे।
अर्धचन्द्रेण चिच्छेद शिरस्तस्य महात्मनः॥ १८॥
पञ्चालाः केकया मत्स्या चेदिकारूपकोसलाः।
युधिष्ठिरमभीप्सन्तो दृष्ट्वा द्रोणमुपाद्रवन्॥ १९॥

द्रोणाचार्य ने तब सत्यजित के घोड़ों, ध्वज, धनुष की मुष्टि और दोनों पृष्ठरक्षकों पर बहुतसारे बाणों की वर्षा की। अपने धनुष के बार बार काटे जाने पर भी अस्त्रविद्या का महान् पंडित वह पाँचाल राजकुमार लाल घोड़ोंवाले द्रोणाचार्य से युद्ध करता ही रहा। तब उस महान् युद्ध में सत्यजित को प्रचण्ड होते हुए देखकर द्रोणाचार्य ने उस मनस्वी का सिर एक अर्धचन्द्राकार बाण से काट दिया। तब पाँचाल, केकय, मत्स्य, चेदि, कारुष और कोसल देशों के योद्धा युधिष्ठिर को बचाने की इच्छा से द्रोणाचार्य पर टूट पड़े।

ततो युधिष्ठिरं प्रेप्सुराचार्यः शत्रुपूगहा।
व्यधमत् तान्यनीकानि तूलराशिमिवानलः॥ २०॥
निर्दहन्तमनीकानि तानि तानि पुनः पुनः।
द्रोणं मत्स्यादवरजः शतानीकोऽभ्यवर्तत॥ २१॥

सूर्यरश्मिप्रतीकाशैः कर्मारपरिमार्जितैः।
षडभिः ससूतं सहयं द्रोणं विद्ध्वानदद् भृशम्॥ २२॥
क्रूराय कर्मणे युक्तश्चिकीर्षुः कर्म दुष्करम्।
अवाकिरच्छरशतैर्भारद्वाजं महारथम्॥ २३॥

शत्रुओं के समूहों को नष्ट करनेवाले और युधिष्ठिर को पकड़ने की इच्छावाले द्रोणाचार्य ने उन योद्धाओं को ऐसे समाप्त कर दिया, जैसे अग्नि रुई के ढेर को जला देती है। तब उन सेनाओं को बार बार नष्ट करते हुए देखकर विराटराज के छोटे भाई शतानीक ने द्रोणाचार्य पर आक्रमण किया। उन्होंने सूर्य की किरणों के समान जगमगाते हुए और कारीगर के द्वारा साफ किये हुए छै बाणों के द्वारा सारथी तथा घोड़ों के सहित द्रोणाचार्य को बींधकर जोर से गर्जना की। इसके पश्चात् दुष्कर कर्म करने की इच्छा से, क्रूर कर्म करने के लिये तत्पर उन्होंने महारथी द्रोणाचार्य पर सैकड़ों बाणों से वर्षा की।

तस्य च नदतो द्रोणः शिरः कायात् सकुण्डलम्।
क्षुरेणापाहरत् तूर्णं ततो मत्स्याः प्रदुद्रुवुः॥ २४॥
मत्स्याञ्जित्वाऽजयच्चेदीन् कारूषान् केकयानपि।
पञ्चालान् सृञ्जयान् पाण्डून् भारद्वाजः पुनः पुनः॥ २५॥
उत्तमं ह्याददानस्य धनुरस्याशुकारिणः।
ज्याघोषो निघ्नतोऽमित्रान् दिक्षु सर्वासु शुश्रुवे॥ २६॥
नागानश्वान् पदातींश्च रथिनो गजसादिनः।
रौद्रा हस्तवता मुक्ताः प्रमथ्नन्ति स्म सायकाः॥ २७॥

तब द्रोणाचार्य ने तुरन्त गर्जना करते हुए उसके कुण्डलसहित सिर को एक क्षुर नाम के बाण से शरीर से अलग कर दिया। यह देख मत्स्य देश के सैनिक वहाँ से भागने लगे। इसप्रकार द्रोणाचार्य ने मत्स्यदेश के सैनिकों को जीतकर चेदि, करूष, केकय, पाँचाल, सृंजय और पाण्डव सैनिकों को भी बार बार परास्त किया। उत्तम धनुष को लेकर, शीघ्रतापूर्वक उसका संचालन करते हुए और शत्रुओं को मारते हुए उनकी प्रत्यंचा की ध्वनि सबतरफ सुनायी देरही थी। हस्तकौशल वाले द्रोणाचार्य के द्वारा छोड़े हुए भयंकर बाण उस समय हाथियों, घोड़ों, पैदलों, रथियों और हाथीसवारों को मथे डालते थे।

नानद्यमानः पर्जन्यो मिश्रवातो हिमात्यये।
अश्मवर्षमिवावर्षत् परेषां भयमादधत्॥ २८॥
तस्य विद्युदिवाभ्रेषु चापं हेमपरिष्कृतम्।
दिक्षु सर्वासु पश्यामो द्रोणस्यामिततेजसः॥ २९॥
तं दहन्तमनीकानि रथोदारं कृतान्तवत्।
सर्वतोऽभ्यद्रवन् द्रोणं कुन्तीपुत्रपुरोगमाः॥ ३०॥
ते द्रोणं सहिताः शूराः सर्वतः प्रत्यवारयन्।
गभस्तिभिरिवादित्यं तपन्तं भुवनं यथा॥ ३१॥
तं तु शूरं महेष्वासं तावकाऽभ्युद्यतायुधाः।
राजानो राजपुत्राश्च समन्तात् पर्यवारयन्॥ ३२॥

जैसे हेमन्तऋतु के अन्त में वायु से मिलकर गर्जना करता हुआ मेघ ओलों की वर्षा करता है, वैसे ही द्रोणाचार्य शत्रुओं को भयभीत करते हुए उनके ऊपर बाणों की वर्षा कर रहे थे। जैसे बादलों में बिजली बार बार चमकती है, वैसे अमिततेजस्वी द्रोणाचार्य के स्वर्णभूषित धनुष को हम सब तरफ चमकता हुआ देखते थे। तब सेनाओं को दग्ध करते हुए उन मृत्यु के समान उदाररथी द्रोणाचार्य पर युधिष्ठिर आदि वीरों ने सबतरफ से आक्रमण किया। उन एकत्रित शूरवीरों ने द्रोणाचार्य को सबतरफ से उसीप्रकार घेर लिया जैसे संसार को तपाते हुए सूर्य अपनी किरणों से घिरे रहते हैं। उन महा धनुर्धर शूरवीर को आपके भी हथियार उठाये राजाओं और राजपुत्रों ने सबतरफ से घेर लिया।

शिखण्डी तु ततो द्रोणं पञ्चभिर्नतपर्वभिः।
क्षत्रवर्मा च विंशत्या वसुदानश्च पञ्चभिः॥ ३३॥
उत्तमौजास्त्रिभिर्बाणैः क्षत्रदेवश्च सप्तभिः।
सात्यकिश्च शतेनाजौ युधामन्युस्तथाष्टभिः॥ ३४॥
युधिष्ठिरो द्वादशभिर्द्रोणं विव्याध सायकैः।
धृष्टद्युम्नश्च दशभिश्चेकितानस्त्रिभिः शरैः॥ ३५॥
ततो द्रोणः सत्यसंधः प्रभिन्न इव कुञ्जरः।
अभ्यतीत्य रथानीकं दृढसेनमपातयत्॥ ३६॥

तब शिखण्डी ने द्रोणाचार्य को झुकी हुई गाँठ वाले पाँच, क्षत्रवर्मा ने बीस, वसुदान ने पाँच, उत्तमौजा ने तीन, क्षत्रदेव ने सात, सात्यकि ने सौ, युधामन्यु ने आठ और युधिष्ठिर ने बारह बाणों की वर्षाकर युद्धक्षेत्र में घायल कर दिया। धृष्टद्युम्न ने उन्हें दस तथा चेकितान ने तीन बाण मारे। तब सत्यसंध द्रोणचार्य ने मद बहानेवाले हाथी की तरह रथियों की सेना को लांघकर दृढसेन को मार गिराया।

ततो राजानमासाद्य प्रहरन्तमभीतवत्।
अविध्यन्नवभिः क्षेमं स हतः प्रापतद् रथात्॥ ३७॥

शिखण्डिनं द्वादशभिर्विंशत्या चोत्तमौजसम्।
वसुदानं च भल्लेन प्रैषयद् यमसादनम्॥ ३८॥
अशीत्या क्षत्रवर्माणं षडविंशत्या सुदक्षिणम्।
क्षत्रदेवं तु भल्लेन रथनीडादपातयत्॥ ३९॥
युधामन्युं चतुःषष्ट्या त्रिंशता चैव सात्यकिम्।
विद्ध्वा रुक्मरथस्तूर्णं युधिष्ठिरमुपाद्रवत्॥ ४०॥

फिर निर्भय के समान प्रहार करते हुए उन्होंने राजा क्षेम पर आक्रमणकर नौ बाणों से उसे मार दिया। वह मर कर रथ से नीचे गिर पड़ा। फिर उन्होंने शिखण्डी को बारह तथा उत्तमौजा को बीस बाण मारकर, वसुदान को एक भल्ल से मृत्युलोक में भेज दिया। पुनः उन्होंने क्षत्रवर्मा पर अस्सी और सुदक्षिण पर छब्बीस बाणों की वर्षाकर क्षत्रदेव को एक भल्ल से रथ की बैठक से नीचे गिरा दिया। उसके पश्चात् युधामन्यु पर चौंसठ और सत्यकि पर तीस बाणों की वर्षा कर वे सुनहले रथवाले द्रोणाचार्य युधिष्ठिर की तरफ दौड़े।

ततो युधिष्ठिरः क्षिप्रं गुरुतो राजसत्तमः।
अपायाज्जवनैरश्वैः पाञ्चाल्यो द्रोणमभ्ययात्॥ ४१॥
तं द्रोणः सधनुष्कं तु साश्वयन्तारमाक्षिणोत्।
तस्मिन् हते राजपुत्रे पञ्चालानां यशस्करे॥ ४२॥
हत द्रोणं हत द्रोणमित्यासीन्निःस्वनो महान्।
तांस्तथा भृशसंरब्धान् पञ्चालान् मत्स्यकेकयान्॥ ४३॥
सृञ्जयान् पाण्डवांश्चैव द्रोणो व्यक्षोभयद् बली।

राजश्रेष्ठ युधिष्ठिर अपने शीघ्रगामी घोड़ों के द्वारा तब तुरन्त गुरु की निकटता से दूर चले गये और पांचाल देश के एक राजकुमार ने द्रोणाचार्य पर आक्रमण किया। द्रोणाचार्य ने उसे धनुष, सारथी और घोड़ोंसहित क्षतविक्षत कर दिया। उस यशस्वी पाँचालराज कुमार के मारे जाने पर, वहाँ द्रोणाचार्य को मार दो यह महान् कोलाहल होने लगा। किन्तु बलवान् द्रोणाचार्य ने अत्यन्तक्रुद्ध पाँचाल, मत्स्य, सृंजय और पाण्डवसैनिकों को क्षुब्ध कर दिया।

सात्यकिं चेकितानं च धृष्टद्युम्नशिखण्डिनौ॥ ४४॥
वार्धक्षेमिं चैत्रसेनिं सेनाबिन्दुं सुवर्चसम्।
एतांश्चान्यांश्च सुबहून् नानाजनपदेश्वरान्॥ ४५॥
सर्वान् द्रोणोऽजयद् युद्धे कुरुभिः परिवारितः।

कौरववीरों से घिरे हुए द्रोणाचार्य ने सात्यकि, चेकितान, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, वृद्धक्षेम के पुत्र, चित्रसेनकुमार, सेनाविन्दु, सुवर्चा तथा और बहुत से विभिन्नदेशों के राजाओं को उससमय युद्ध में जीत लिया।

ग्यारहवाँ अध्याय : दोनों पक्षों में द्वन्द्व युद्ध। शाल्व और मणिमान का वध।

संजय उवाच

ततो दुर्मर्षणो भीममभ्यगच्छत् सुतस्तव।
आराद् दृष्ट्वा किरन् बाणैर्जिघृक्षुस्तस्य जीवितम्॥ १॥
तं बाणैरवतस्तार क्रुद्धो मृत्युरिवाहवे।
तं च भीमोऽतुदद्बाणैस्तदाऽऽसीत् तुमुलं महत्॥ २॥
कृतवर्मा शिनेः पौत्रं द्रोणं प्रेप्सुं विशाम्पते।
पर्यवारयदायान्तं शूरं समरशोभिनम्॥ ३॥
तं शैनेयः शरव्रातैः क्रुद्धः क्रुद्धमवारयत्।
कृतवर्मा च शैनेयं मत्तो मत्तमिव द्विपम्॥ ४॥

संजय ने कहा कि तब आपके पुत्र दुर्मर्षण ने अपने समीप भीम को देखकर, उसके प्राणों को लेने की इच्छा से, उसके ऊपर बाणों की वर्षा करते हुए आक्रमण किया। मृत्यु के समान क्रोध में भरे हुए उसने युद्धस्थल में भीम को बाणों से भर दिया। तब भीम ने भी उसे बाणों से पीड़ित किया। फिर उनमें महान् घोर युद्ध होने लगा। हे प्रजानाथ! द्रोणाचार्य के इच्छुक, युद्ध में शोभा देनेवाले, शूरवीर शिनि के पौत्र सात्यकि को आते हुए देखकर उसे कृतवर्मा ने रोका। तब क्रोध में भरे हुए सात्यकि ने उस क्रुद्ध कृतवर्मा को बाणवर्षा के द्वारा रोका और कृतवर्मा ने भी सात्यकि को उसीप्रकार रोका, जैसे एक मस्त हाथी दूसरे मस्त हाथी को रोकता है।

सैन्धवः क्षत्रवर्माणमायान्तं निशितैः शरैः।
उग्रधन्वा महेष्वासं यत्तो द्रोणादवारयत्॥ ५॥
क्षत्रवर्मा सिन्धुपतेश्छित्त्वा केतनकार्मुके।
नाराचैर्दशभिः क्रुद्धः सर्वमर्मस्वताडयत्॥ ६॥
अथान्यद् धनुरादाय सैन्धवः कृतहस्तवत्।
विव्याध क्षत्रवर्माणं रणे सर्वायसैः शरैः॥ ७॥
युयुत्सुं पाण्डवार्थाय यतमानं महारथम्।
सुबाहुर्भारतं शूरं यत्तो द्रोणादवारयत्॥ ८॥

उग्र धनुषधारी सिन्धुराज जयद्रथ ने आते हुए और द्रोणाचार्य की तरफ जाते हुए, महाधनुर्धर क्षत्रवर्मा को तीखे बाणों से प्रयत्नपूर्वक रोका। तब क्षत्रवर्मा ने जयद्रथ के ध्वज और धनुष को काटकर, क्रुद्ध होकर, दस नाराचों के द्वारा उसके सारे मर्मस्थानों पर प्रहार किया। तब कुशलहस्त के समान दूसरा धनुष लेकर जयद्रथ ने युद्धस्थल में सारे लोहे के बाणों से क्षत्रवर्मा को घायल किया। पाण्डवों के लिये प्रयत्न करते हुए भरतवंशी शूरवीर युयुत्सु को सुबाहु ने प्रयत्नपूर्वक द्रोणाचार्य की तरफ जाने से रोका।

सुबाहोः सधनुर्बाणावस्यतः परिघोपमौ।
युयुत्सुः शितपीताभ्यां क्षुराभ्यामच्छिनद्भुजौ॥ ९॥
राजानं पाण्डवश्रेष्ठं धर्मात्मानं युधिष्ठिरम्।
वेलेव सागरं क्षुब्धं मद्रराद् समवारयत्॥ १०॥
तं धर्मराजो बहुभिर्मर्मभिद्भिरवाकिरत्।
मद्रेशस्तं चतुःषष्ट्या शरैर्विद्ध्वानदद् भृशम्॥ ११॥
तस्य नानदतः केतुमुच्चकर्त च कार्मुकम्।
क्षुराभ्यां पाण्डवो ज्येष्ठस्तत उच्चुक्रुशुर्जनाः॥ १२॥

तब प्रहार करते हुए सुबाहु की परिघ के समान मोटी भुजाओं को युयुत्सु ने तीखे और पानीदार क्षुर नाम के बाणों से काट गिराया। जैसे क्षुब्ध सागर को तट की वेला रोक देती है, वैसे ही पाण्डवश्रेष्ठ धर्मात्मा राजा युधिष्ठिर को मद्रराज शल्य ने रोका। तब धर्मराज ने उन पर बहुतसे मर्मभेदी बाणों की वर्षा की। शल्य ने भी उन पर चौंसठ बाणों की वर्षाकर उन्हें घायल किया और जोर जोर से गर्जना की। उस गर्जना करते हुए शल्य के ध्वज और धनुष को युधिष्ठिर ने क्षुर नाम के बाणों से काट दिया। तब लोग हर्ष से चिल्लाने लगे।

तथैव राजा बाह्लीको, राजानं द्रुपदं शरैः।
आद्रवन्तं सहानीकः सहानीकं न्यवारयत्॥ १३॥
तद् युद्धमभवत् घोरं वृद्धयोः सहसेनयोः।
यथा महायूथपयोर्द्विपयोः सम्प्रभिन्नयोः॥ १४॥
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ विराटं मत्स्यमार्च्छताम्।
तदुत्पिञ्जलकं युद्धमासीद् देवासुरोपमम्॥ १५॥
मत्स्यानां केकयैः सार्धमभीताश्वरथद्विपम्।
सुतसोमं तु विक्रान्तमायान्तं तं शरौघिणम्॥ १६॥
द्रोणायाभिमुखं वीरं विविंशतिरवारयत्।

उसीप्रकार अपनी सेना के साथ राजा बाल्हीक ने सेनासहित आक्रमण करते हुए राजा द्रुपद को बाणों से रोका। तब सेना से युक्त उनदोनों वृद्धों में उसीप्रकार घोर युद्ध होने लगा जैसे मद बहाते हुए दो विशाल गजराजों में युद्ध हो रहा हो। अवन्ती के विन्द और अनुविद ने विराटराज पर आक्रमण किया। उधर मत्स्यदेश के सैनिकों का केकयदेश के सैनिकों के साथ देवासुर संग्राम के समान युद्ध हो रहा था। घोड़े, रथ और हाथी बिना भयभीत हुए परस्पर लड़ रहे थे। बाणवर्षा के साथ आते हुए और द्रोणाचार्य की तरफ जाते हुए पराक्रमीवीर सुतसोम को विविंशति ने रोका।

सुतसोमस्तु संक्रुद्धः स्वपितृव्यमजिह्मगैः॥ १७॥
विविंशतिं शरैर्भित्त्वा नाभ्यवर्तत दंशितः।
अथ भीमरथः शाल्वमाशुगैरायसैः शितैः॥ १८॥
षड्भिः साश्वनियन्तारमनयद् यमसादनम्।
श्रुतकर्माणमायान्तं मयूरसदृशैर्हयैः॥ १९॥
चैत्रसेनिर्महाराज तव पौत्रं न्यवारयत्।
तौ पौत्रौ तव दुर्धर्षौ परस्परवधैषिणौ॥ २०॥
पितृणामर्थसिद्ध्यर्थं चक्रतुर्युद्धमुत्तमम्।

तब सुतसोम ने अत्यन्त क्रोध में भरकर अपने चाचा को सीधे जानेवाले बाणों से बींधा और कवच बाँधे हुए उसके सामने मुकाबले के लिये खड़ा रहा। फिर भीमरथ ने शाल्व को शीघ्रगामी छै लोहे के तीखे बाणों के द्वारा घोड़ों और सारथीसहित परलोक में भेज दिया। हे महाराज! मोर के जैसे रंगवाले घोड़ों के द्वारा आते हुए आपके पौत्र श्रुतकर्मा को चित्रसेन के पुत्र ने रोका। एकदूसरे के वध की इच्छावाले आपके वेदोनों दुर्धर्ष पौत्र अपने पिताओं के कार्य को सिद्ध करने के लिये घोर युद्ध करने लगे।

तिष्ठन्तमग्रे तं दृष्ट्वा प्रतिविन्ध्यं महाहवे॥ २१॥
द्रौणिर्मानं पितुः कुर्वन् मार्गणैः समवारयत्।
तं क्रुद्धं प्रतिविव्याध प्रतिविन्ध्यः शितैः शरैः॥ २२॥
सिंहलाङ्गूललक्ष्माणं पितुरर्थे व्यवस्थितम्।
प्रवपन्निव बीजानि बीजकाले नरर्षभ॥ २३॥
द्रौणायनिर्द्रौपदेयं शरवर्षैरवाकिरत्।

प्रतिविन्ध्य को महान् युद्ध में द्रोणाचार्य के आगे खड़ा हुआ देखकर, पिता के मान को रखते हुए अश्वत्थामा ने उसे बाणों के द्वारा रोका। तब पिता

के लिये खड़े हुए, सिंह की पूँछ की ध्वजावाले, क्रुद्ध अश्वत्थामा को प्रतिविन्ध्य ने तीखे बाणों के द्वारा बींधा। हे नरश्रेष्ठ! तब द्रोणपुत्र ने द्रौपदीपुत्र को बाणवर्षा से ऐसे भर दिया, जैसे बोने के समय किसान खेत में बीजों को डालता है।

विकर्णस्तु महाप्राज्ञो याज्ञसेनिं शिखण्डिनम्॥ २४॥
पर्यवारयदायान्तं युवानं समरे युवा।
ततस्तमिषुजालेन याज्ञसेनिः समावृणोत्॥ २५॥
विधूय तद् बाणजालं बभौ तव सुतो बली।
अङ्गदोऽभिमुखं वीरमुत्तमौजसमाहवे॥ २६॥
द्रोणायाभिमुखं यान्तं शरौघेण न्यवारयत्।
स सम्प्रहारस्तुमुलस्तयोः पुरुषसिंहयोः॥ २७॥
सैनिकानां च सर्वेषां तयोश्च प्रीतिवर्धनः।

महाप्राज्ञ और युवक विकर्ण ने युद्धस्थल में आते हुए युवक द्रुपद के पुत्र शिखण्डी को रोका। तब द्रुपदपुत्र ने उसे बाणवर्षा के द्वारा भर दिया। उस बाणों के जाल को आपका बलवान् पुत्र छिन्नभिन्न करके सुशोभित होने लगा। द्रोणाचार्य की तरफ जाते हुए वीर उत्तमौजा को युद्धक्षेत्र में अंगद ने अपनी बाणवर्षा के द्वारा रोका। तब उनदोनों पुरुषसिंहों में वह युद्ध बहुतघोर रूप में होने लगा। वह युद्ध सारे सैनिकों और उनदोनों की प्रसन्नता को बढ़ा रहा था।

दुर्मुखस्तु महेष्वासो वीरं पुरुजितं बली॥ २८॥
द्रोणायाभिमुखं यान्तं वत्सदन्तैरवारयत्।
स दुर्मुखं भ्रुवोर्मध्ये नाराचेनाभ्यताडयत्॥ २९॥
कर्णस्तु केकयान् भ्रातॄन् पञ्च लोहितकध्वजान्।
द्रोणायाभिमुखं याताञ्शरवर्षैरवारयत्॥ ३०॥
ते चैनं भृशसंतप्ताः शरवर्षैरवाकिरन्।
स च तांश्छादयामास शरजालैः पुनः पुनः॥ ३१॥
नैव कर्णो न ते पञ्च ददृशुर्बाणसंवृताः।
साश्वसूतध्वजरथाः परस्परशराचिताः॥ ३२॥

बलवान् और महाधनुर्धर दुर्मुख ने द्रोणाचार्य की तरफ जाते हुए वीर पुरुजित को वत्सदन्तों के प्रहार से रोक दिया। तब उसने दुर्मुख की भौहों के बीच में नाराच के द्वारा प्रहार किया। कर्ण ने लाल ध्वजा वाले केकय भाइयों को, जो द्रोणाचार्य की तरफ जा रहे थे, बाणवर्षा के द्वारा रोका। तब उन्होंने अत्यन्त सन्तप्त होकर कर्ण को बाणों की वर्षा से आच्छादित कर दिया। कर्ण ने भी अपनी बाणवर्षा के द्वारा उन्हें बार बार पूरित किया। उससमय एकदूसरे की बाणवर्षा से आच्छादित होकर, घोड़ों, सारथी, ध्वज और रथ के सहित न तो वे पाँचों भाई और न कर्ण दिखाई देरहे थे।

वार्धक्षेमिं तु वार्ष्णेयं कृपः शारद्वतः शरैः।
अक्षुद्रः क्षुद्रकैर्द्रोणात् क्रुद्धरूपमवारयत्॥ ३३॥
युध्यन्तौ कृपवार्ष्णेयौ येऽपश्यं शिचत्रयोधिनौ।
ते युद्धासक्तमनसो नान्यां बुबुधिरे क्रियाम्॥ ३४॥
सौमदत्तिस्तु राजानं मणिमन्तमतन्द्रितम्।
पर्यवारयदायान्तं यशो द्रोणस्य वर्धयन्॥ ३५॥
स सौमदत्तेस्त्वरितश्चित्रेष्वसनकेतने।
पुनः पताकां सूतं च छत्रं चापातयद् रथात्॥ ३६॥
अथाप्लुत्य रथात् तूर्णं यूपकेतुरमित्रहा।
साश्वसूतध्वजरथं तं चकर्त वरासिना॥ ३७॥

क्रोध में भरे वृष्णिवंशी वार्धक्षेमि को शरद्वान् के पुत्र श्रेष्ठ कृपाचार्य ने अपने क्षुद्रक नाम के बाणों से द्रोणाचार्य की तरफ जाने से रोका। विचित्र रीति से युद्ध करते हुए कृपाचार्य और उस वृष्णिवंशी वीर के युद्ध को जिसने भी देखा, उसका मन उसी को देखने में लग गया। उसे किसी और कार्य का ध्यान नहीं रहा। सोमदत्त के पुत्र भूरिश्रवा ने निरालस्य राजा मणिमान को, जो द्रोणाचार्य के लिये आरहा था, द्रोणाचार्य के यश को बढ़ाते हुए रोका। तब उसने भूरिश्रवा के विचित्र धनुष, ध्वज, पताका, सारथी और छत्र को काटकर रथ से गिरा दिया। तब यूप की ध्वजावाले और शत्रुदमन भूरिश्रवा ने तुरन्त रथ से कूदकर, एक उत्तम तलवार से घोड़ों, सारथी, ध्वज तथा रथ के साथ मणिमान को भी काट दिया।

रथं च स्वं समास्थाय धनुरादाय चापरम्।
स्वयं यच्छन् हयान् राजन् व्यधमत् पाण्डवीं चमूम्॥ ३८॥
पाण्ड्यमिन्द्रमिवायान्तमसुरान् प्रति दुर्जयम्।
समर्थः सायकौघेन वृषसेनो न्यवारयत्॥ ३९॥
आतुदन् प्ररुजन् भञ्जन् निघ्नन् विद्रावयन् क्षिपन्।
सेनां विभीषयन्नायाद् द्रोणप्रेप्सुर्घटोत्कचः॥ ४०॥
तं तु नानाप्रहरणैर्नानायुद्धविशेषणैः।
राक्षसं राक्षसः क्रुद्धः समाजघ्ने ह्यलम्बुषः॥ ४१॥

हे राजन्! फिर भूरिश्रवा ने अपने रथ पर बैठ कर, दूसरे धनुष को लेकर, तथा स्वयं ही घोड़ों का संचालन करते हुए, पाण्डवों की सेना का

विनाश करना आरम्भ कर दिया। जैसे इन्द्र असुरों पर आक्रमण करते हैं, वैसे ही आक्रमण के लिये आते हुए दुर्जयवीर पाण्ड्यराज को समर्थवीर वृषसेन ने बाणसमूहों के द्वारा रोका। तभी द्रोणाचार्य से युद्ध करने के लिये, कौरवसेना को पीड़ा देता हुआ, तोड़ताफोड़ता हुआ, परेशान करता हुआ, मारता हुआ, विदीर्ण करता हुआ, उठाकर फैंकता हुआ और भयभीत करता हुआ घटोत्कच वहाँ आया। उस राक्षस को विविध युद्धोपयोगी आयुधों के द्वारा, क्रोध में भरे हुए राक्षस अलम्बुष ने गहरी चोट पहुँचायी।

एवं द्वन्द्वशतान्यासन् रथवारणवाजिनाम्।
पदातीनां च भद्रं ते तव तेषां च संकुले॥ ४२॥

हे महाराज! आपका कल्याण हो। इसप्रकार युद्धस्थल में उससमय रथियों, हाथीसवारों, घुड़सवारों और पैदलवीरों में सैकड़ों द्वन्द्वयुद्ध घमासानरूप से चल रहे थे।

बारहवाँ अध्याय : भीम द्वारा भगदत्त के हाथी से युद्ध। अंग, दशार्णराज और रुचिपर्वा का मारा जाना।

संजय उवाच

स्वयमभ्यद्रवद् भीमं नागानीकेन ते सुतः।
स नाग इव नागेन गोवृषेणेव गोवृषः॥ १॥
समाहूतः स्वयं राज्ञा नागानीकमुपाद्रवत्।
स युद्धकुशलः पार्थो बाहुवीर्येण चान्वितः॥ २॥
अभिनत् कुञ्जरानीकमचिरेणैव मारिष।
ते गजा गिरिसंकाशाः क्षरन्तः सर्वतो मदम्॥ ३॥
भीमसेनस्य नाराचैर्विमुखा विमदीकृताः।
विधमेदभ्रजालानि यथा वायुः समुद्धतः॥ ४॥
व्यधमत् तान्यनीकानि तथैव पवनात्मजः।

संजय ने कहा कि तब आपके पुत्र दुर्योधन ने हाथियों की सेना के साथ भीम पर आक्रमण किया। उस राजा के द्वारा ललकारा जाने पर, जैसे हाथी हाथी से और साँड साँड से भिड़ जाता है वैसे ही भीमसेन उस हाथीसेना पर टूटपड़े। हे मान्यवर! वह कुन्तीपुत्र युद्ध में कुशल थे और भुजाओं के पराक्रम से सम्पन्न थे, इसलिये उन्होंने थोड़ी देर में ही उस हाथीसेना को तित्तर बित्तर कर दिया। वे पर्वतों के समान विशालकाय हाथी, जो मस्ती के कारण मद बहा रहे थे, उनकी मस्ती भी भीमसेन के नाराचों से उतर गयी और वे युद्ध से विमुख होकर भागने लगे। जैसे वायु प्रचण्ड होकर बादलों के समूह को छितरा देती है, वैसे ही वायुपुत्र भीम ने उस सेना को तहसनहस कर दिया।

स तेषु विसृजन् बाणान् भीमो नागेष्वशोभत॥ ५॥
भुवनेष्विव सर्वेषु गभस्तीनुदितो रविः।
ते भीमबाणाभिहताः संस्यूता विबभुर्गजाः॥ ६॥
गभस्तिभिरिवार्कस्य व्योम्नि नानाबलाहकाः।
तथा गजानां कदनं कुर्वाणमनिलात्मजम्॥ ७॥
क्रुद्धो दुर्योधनोऽभ्येत्य प्रत्यविध्यच्छितैः शरैः।
ततः क्षणेन क्षितिपं क्षतजप्रतिमेक्षणः॥ ८॥
क्षयं निनीषुर्निशितैर्भीमो विव्याध पत्रिभिः।

उन हाथियों पर अपने बाणों की वर्षा करते हुए, भीम इसप्रकार प्रतीत होरहे थे, जैसे उदय होते हुए सूर्य सारे संसार में अपनी किरणें फैलाते हैं। भीम के बाणों से घायल हुए वे हाथी ऐसे प्रतीत होरहे थे, जैसे आकाश में सूर्य की किरणों से लिपटे हुए बादल हों। वायुपुत्र भीम को इसप्रकार हाथियों का विनाश करते हुए देखकर, क्रुद्ध दुर्योधन ने भीम पर आक्रमण कर उन्हें बाणों से बींध दिया। तब खून के समान लाल आँखोंवाले भीमने उसी क्षण उस राजा को नष्ट करने की इच्छा से उसे तीखे बाणों से बींध दिया।

स शराचितसर्वाङ्गः क्रुद्धो विव्याध पाण्डवम्॥ ९॥
नाराचैरर्करश्म्याभैर्भीमसेनं स्मयन्निव।
तस्य नागं मणिमयं रत्नचित्रध्वजे स्थितम्॥ १०॥
भल्लाभ्यां कार्मुकं चैव क्षिप्रं चिच्छेद पाण्डवः।
दुर्योधनं पीड्यमानं दृष्ट्वा भीमेन मारिष॥ ११॥
चुक्षोभयिषुरभ्यागादङ्गो मातङ्गमास्थितः।
तमापतन्तं नागेन्द्रमम्बुदप्रतिमस्वनम्।
कुम्भान्तरे भीमसेनो नाराचैरार्दयद् भृशम्॥ १२॥

फिर बाणों से जिसके सारे अंगों में घाव हो गये थे, उस दुर्योधन ने मुस्कराते हुए, क्रोध में भरकर,

पाण्डुपुत्र को सूर्य की किरणों के समान जगमगाते हुए नाराचों से बींधा। तब पाण्डुपुत्र ने उसके रत्न जटित ध्वज में बने हुए मणिमय नाग को तथा उसके धनुष को दो भल्लों के द्वारा काट दिया। हे मान्यवर! भीम के द्वारा दुर्योधन को पीड़ित देखकर, भीम को क्षोभ में डालने की इच्छा से अंगराज हाथी पर बैठकर उसके सामने आगये। बादलों के समान गर्जना करनेवाले और अपनीतरफ आते हुए उस गजराज के मस्तक के बीच में भीम ने अपने नाराचों के द्वारा बड़ी चोट पहुँचायी।

तस्य कायं विनिर्भिद्य न्यमज्जद् धरणीतले।
ततः पपात द्विरदो वज्राहत इवाचलः॥ १३॥
तस्यावर्जित- नागस्य म्लेच्छस्याधः पतिष्यतः।
शिरश्चिच्छेद भल्लेन क्षिप्रकारी वृकोदरः॥ १४॥

भीमसेन का नाराच हाथी के शरीर को छेदकर भूमि में धँस गया। तब वह हाथी बिजली के मारे पर्वतशिखर के समान भूमिपर गिर पड़ा। उस गिरते हुए हाथी के साथ ही गिरते हुए म्लेच्छ अंगराज के सिर को शीघ्रता से हाथ चलानेवाले भीम ने भल्ल के द्वारा काट दिया।

तस्मिन् निपतिते वीरे सम्प्राद्रवत् सा चमूः।
सम्भ्रान्ताश्वद्विपरथा पदातानवमृद्नती॥ १५॥
तेष्वनीकेषु भग्नेषु विद्रवत्सु समन्ततः।
प्राग्ज्योतिषस्ततो भीमं कुञ्जरेण समाद्रवत्॥ १६॥
स नागप्रवरो भीमं सहसा समुपाद्रवत्।
चरणाभ्यामथो द्वाभ्यां संहतेन करेण च॥ १७॥
व्यावृत्तनयनः क्रुद्धः प्रमथन्निव पाण्डवम्।
वृकोदररथं साश्वमविशेषमचूर्णयत्॥ १८॥

उस वीर के गिरने पर, शत्रुसेना के हाथी, रथ और घोड़े अपने पैदलसैनिकों को कुचलते हुए भागने लगे। तब सेना का व्यूह भग्न होने और उसके उधरउधर भागने पर प्राग्ज्योतिषपुर के राजा भगदत्त ने अपने हाथी के द्वारा भीमसेन पर आक्रमण किया। उस श्रेष्ठ हाथी ने अपने उठाये हुए अगले दोनों पैरों तथा सिकोड़ी हुई सूँड के साथ भीम के ऊपर अचानक आक्रमण कर दिया। उस क्रुद्ध हाथी की आँखें चारोंतरफ घूम रही थीं और ऐसा लग रहा था। कि वह भीम को कुचल देगा। उसने भीम के रथ को घोड़ोंसहित चूर्ण कर दिया।

पद्भ्यां भीमोऽप्यथो धावंस्तस्य गात्रेष्वलीयत।
जानन्नञ्जलिकावेधं नापाक्रामत पाण्डवः॥ १९॥
गात्राभ्यन्तरगो भूत्वा करेणाताडयन्मुहुः।
लालयामास तं नागं वधाकाङ्क्षिणमव्ययम्॥ २०॥
कुलालचक्रवन्नागस्तदा तूर्णमथाभ्रमत्।
भीमोऽपि निष्क्रम्य ततः सुप्रतीकाग्रतोऽभवत्॥ २१॥
ग्रीवायां वेष्टयित्वैनं स गजो हन्तुमैहत।
करवेष्टं भीमसेनो भ्रमं दत्त्वा व्यमोचयत्॥ २२॥

तब भीम पैदल ही भागकर उस हाथी के अंगों में छिप गये। वे पाण्डुपुत्र क्योंकि अंजलिकावेध नाम की क्रिया जानते थे, इसलिये वहाँ से दूर नहीं भागे। वे उसके अंगों के बीच में स्थित होकर उन्हें मारने के इच्छुक उस अविनाशी से हाथी को हाथों से बार बार थपथपाते हुए दुलारने लगे। तब वह हाथी कुम्हार के चाक की तरह से वहीं खड़े हुए तेजी से घूमने लगा। भीम भी उस सुप्रतीक हाथी के नीचे से निकलकर उसके सामने खड़े हो गये। तब हाथी ने उनकी गर्दन को लपेट कर उन्हें मारना चाहा, पर भीमसेन ने उसे भ्रम में डालकर सूँड की लपेट से अपनेआपको छुड़ा लिया।

पुनर्गात्राणि नागस्य प्रविवेश वृकोदरः।
यावत् प्रतिगजायातं स्वबले प्रत्यवैक्षत॥ २३॥
भीमोऽपि नागगात्रेभ्यो विनिः सृत्यापयाज्जवात्।
ततो युधिष्ठिरो राजा हतं मत्वा वृकोदरम्॥ २४॥
भगदत्तं सपाञ्चाल्यः सर्वतः समवारयत्।
तं रथं रथिनां श्रेष्ठाः परिवार्य परंतपाः॥ २५॥
अवाकिरञ्शरैस्तीक्ष्णैः शतशोऽथ सहस्रशः।
तदद्भुतमपश्याम भगदत्तस्य संयुगे॥ २६॥
तथा वृद्धस्य चरितं कुञ्जरेण विशाम्पते।

तब भीम दुबारा उस हाथी के शरीर में ही छिप कर खड़े हो गये और अपनी सेना के मुकाबले के दूसरे हाथी के आने की प्रतीक्षा करने लगे। फिर थोड़ी देर के पश्चात् वे हाथी के शरीर में से निकल कर, वहाँ से दूर भाग गये। तब राजा युधिष्ठिर ने भीमसेन को मरा हुआ समझकर, पाँचालवीरों के

साथ भगदत्त को सबतरफ से घेर लिया। शत्रुओं को सन्ताप देनेवाले उन श्रेष्ठ रथियों ने उस महारथी को घेरकर, सैकड़ों और हजारों तीखे बाणों की वर्षा द्वारा भर दिया। हे प्रजानाथ! हमने तब उस बूढ़े भगदत्त का अपने हाथी के साथ, युद्धस्थल में अद्भुत पराक्रम देखा।

ततो राजा दशार्णानां प्राग्ज्योतिषमुपाद्रवत्॥ २७॥
तिर्यग्यातेन नागेन समदेनाशुगामिना।
प्राग्ज्योतिषपतेर्नागः संनिवृत्यापसृत्य च॥ २८॥
पार्श्वे दशार्णाधिपतेर्भित्त्वा नागमपातयत्।
तोमरैः सूर्यरश्म्याभैर्भगदत्तोऽथ सप्तभिः॥ २९॥
जघान द्विरदस्थं तं शत्रुं प्रचलितासनम्।
व्यवच्छिद्य तु राजानं भगदत्तं युधिष्ठिरः॥ ३०॥
रथानीकेन महता सर्वतः पर्यवारयत्।

फिर दशार्णराज ने तीव्रगामी, मदोन्मत्त और टेढ़ा चलनेवाले हाथी के द्वारा भगदत्त पर आक्रमण किया। तब प्राग्ज्योतिषपुर के राजा के हाथी ने पीछे हटकर तथा वापिस लौटकर, दशार्णराज के हाथी के बगल में जोर से टक्कर मारकर उसे गिरा दिया। तब भगदत्त ने हाथी पर बैठे हुए अपने उस शत्रु को, जिसका आसन विचलित हो गया था, सूर्य की किरणों के समान जगमगाते हुए सात तोमरों का प्रहार करके मार दिया। तब युधिष्ठिर ने भगदत्त को घायल करके, विशाल रथसेना के द्वारा सबतरफ से घेर लिया।

मण्डलं सर्वतः श्लिष्टं रथिनामुग्रधन्विनाम्॥ ३१॥
किरतां शरवर्षाणि स नागः पर्यवर्तत।
ततः प्राग्ज्योतिषो राजा परिगृह्य महागजम्॥ ३२॥
प्रेषयामास सहसा युयुधानरथं प्रति।
शिनेः पौत्रस्य तु रथं परिगृह्य महाद्विपः॥ ३३॥
अभिचिक्षेप वेगेन युयुधानस्त्वपाक्रमत्।
भगदत्तेन समरे काल्यमानेषु पाण्डुषु॥ ३४॥
प्राग्ज्योतिषमभिक्रुद्धः पुनर्भीमः समभ्ययात्।
तस्याभिद्रवतो वाहान् हस्तमुक्तेन वारिणा॥ ३५॥
सिक्त्वा व्यत्रासयन्नागस्ते पार्थमहरंस्ततः।

उससमय उन उग्रधनुर्धर महारथियों का वह समूह उस हाथी पर सबतरफ से घोर बाणवर्षा कर रहा था और वह हाथी चारोंतरफ चक्कर काट रहा था। तब प्राग्ज्योतिषपुर के राजा ने उस विशाल हाथी को काबू में करके, उसे एकदम युयुधान के रथ की तरफ बढ़ाया। उसने तब शिनि के पौत्र सात्यकि के रथ को पकड़कर उसे जोर से फेंक दिया। सात्यकि उस रथ से कूदकर दूर हट गये। तब समरभूमि में भगदत्त के द्वारा पाण्डवसैनिकों के भगाये जाने पर, भीम ने तैयार होकर पुनः क्रोधसहित उस पर आक्रमण किया। आक्रमण करते हुए भीम के घोड़ों को उस हाथी ने अपनी सूँड से छोड़े हुए पानी से भिगोकर उन्हें डरा दिया और वे भीम को लेकर दूर भाग गये।

ततस्तमभ्ययात् तूर्णं रुचिपर्वाऽऽकृतीसुतः॥ ३६॥
समधन्वञ्छरवर्षेण रथस्थोऽन्तकसंनिभः।
ततः स रुचिपर्वाणं शरेणानतपर्वणा॥ ३७॥
सुपर्वा पर्वतपतिर्निन्ये वैवस्वतक्षयम्।
तस्मिन् निपतिते वीरे सौभद्रो द्रौपदीसुतः॥ ३८॥
चेकितानो धृष्टकेतुर्युयुत्सुश्चार्दयन् द्विपम्।
त एनं शरधाराभिर्धाराभिरिव तोयदाः॥ ३९॥
सिषिचुर्भैरवान् नादान् विनदन्तो जिघांसवः।

फिर रथ में बैठे हुए, आकृति के पुत्र, मृत्यु के समान भयंकर रुचिपर्वा ने बाणवर्षा के द्वारा प्रहार करते हुए शीघ्रता से उस हाथी पर आक्रमण किया। तब जिसके अंगों के जोड़ सुन्दर हैं, उस पर्वतराज भगदत्त ने झुकी गाँठवाले बाण से उसे मृत्युलोक में भेज दिया। उस वीर के गिरने पर सुभद्रापुत्र, द्रौपदीपुत्र, चेकितान, धृष्टकेतु और युयुत्सु उस हाथी को मार डालने की इच्छा से विकटरूप से गर्जना करते हुए, उसे पीड़ित करने लगे। जैसे बादल जल धाराओं से पर्वत को सींचते हैं, उसीप्रकार उन्होंने भी उसे बाणवर्षा से सींचना आरम्भ कर दिया।

ततः पार्ष्ण्यङ्कुशाङ्गुष्ठैः कृतिना चोदितो द्विपः॥ ४०॥
प्रसारितकरः प्रायात् स्तब्धकर्णेक्षणो द्रुतम्।
सोऽधिष्ठाय पदा वाहान् युयुत्सोः सूतमारुजत्॥ ४१॥
युयुत्सुस्तु रथाद् राजन्नपाक्रामत् त्वरान्वितः।
पुत्रस्तु तव सम्भ्रान्तः सौभद्रस्याप्लुतो रथम्॥ ४२॥

तब कर्मकुशल भगदत्त के द्वारा अपने पैरों की एड़ी, अंकुश और अँगूठों से प्रेरित किये गये उस हाथी ने, सूँड को फैलाकर, कानों को खड़ेकर, एकटक देखते हुए शीघ्रता से आक्रमणकर, अपने पैरों से दबाकर युयुत्सु के घोड़ों और सारथी को मार डाला। हे राजन्! आपका पुत्र युयुत्सु तो तब

भयभीत होकर, शीघ्रता से दूर हटकर अभिमन्यु के रथ में बैठ गया।

तमार्जुनिर्द्वादशभिर्युयुत्सुर्दशभिः शरैः।
त्रिभिस्त्रिभिर्द्रौपदेया धृष्टकेतुश्च विव्यधुः॥ ४३॥
सोऽतियत्नार्पितैर्बाणैराचितो द्विरदो बभौ।
संस्यूत इव सूर्यस्य रश्मिभिर्जलदो महान्॥ ४४॥

तब उस हाथी को अभिमन्यु ने बारह, युयुत्सु ने दस, द्रौपदीपुत्रों ने तथा धृष्टकेतु ने तीन तीन बाणों से बींध दिया। अतिप्रयत्नपूर्वक फेंके हुए उन बाणों से बिंधा हुआ वह हाथी ऐसे प्रतीत हो रहा था, जैसे सूर्य की किरणों से भरा हुआ कोई विशाल बादल हो।

तेरहवाँ अध्याय : अर्जुन द्वारा सुशर्मा के भाई का वध, संशप्तकों के अधिकांश भाग का विनाश, भगदत्त से युद्ध।

संजय उवाच

रजो दृष्ट्वा समुद्भूतं श्रुत्वा च गजनिःस्वनम्।
भगदत्ते विकुर्वाणे कौन्तेयः कृष्णमब्रवीत्॥ १॥
यथा प्राग्ज्योतिषो राजा गजेन मधुसूदन।
त्वरमाणो विनिष्क्रान्तो ध्रुवं तस्यैव निःस्वनः॥ २॥
इन्द्रादनवरः संख्ये गजयानविशारदः।
प्रथमो गजयोधानां पृथिव्यामिति मे मतिः॥ ३॥
च चापि द्विरदश्रेष्ठः सदाऽप्रतिगजो युधि।
सर्वशस्त्रातिगः संख्ये कृतकर्मा जितक्लमः॥ ४॥

संजय ने कहा कि भगदत्त के युद्ध करते हुए धूल को उड़ता हुआ देखकर और हाथी के चिंघाड़ने को सुनकर कुन्तीपुत्र अर्जुन ने श्रीकृष्ण जी से कहा कि हे मधुसूदन! प्राग्ज्योतिषपुर का राजा जिसप्रकार शीघ्रता से हाथी पर चढ़कर निकला था, उससे पता लगता है कि निश्चितरूप से यह उसी की आवाज है। हाथी की सवारी में कुशल वह पृथिवी पर गजयोद्धाओं में प्रथम है और युद्ध में इन्द्र से कम नहीं है, यह मेरा विचार है। उसका हाथी भी हाथियों में श्रेष्ठ और युद्ध में अपना सानी नहीं रखता है। सारे शस्त्रों का उल्लंघनकर वह युद्ध में अपना पराक्रम प्रकट कर चुका है। उसने थकावट को जीत लिया है।

सहः शस्त्रनिपातानामग्निस्पर्शस्य चानघ।
स पाण्डवबलं सर्वमद्यैको नाशयिष्यति॥ ५॥
न चावाभ्यामृतेऽन्योऽस्ति शक्तस्तं प्रतिबाधितुम्।
त्वरमाणस्ततो याहि यतः प्राग्ज्योतिषाधिपः॥ ६॥
वचनादथ कृष्णस्तु प्रययौ सव्यसाचिनः।
दीर्यते भगदत्तेन यत्र पाण्डववाहिनी॥ ७॥
तं प्रयान्तं ततः पश्चादाह्वयन्तो महारथाः।
संशप्तकाः समारोहन् सहस्राणि चतुर्दश॥ ८॥

हे निष्पाप! वह सारे शस्त्रों के प्रहार तथा अग्नि के स्पर्श को भी सहन कर सकता है। वह अकेला ही आज पाण्डवों की सारीसेना को नष्ट कर देगा। हम दोनों के सिवाय कोई दूसरा उसे युद्ध में रोक नहीं सकता। इसलिये आप शीघ्रता करके उसीतरफ चलिये, जिधर प्राग्ज्योतिषपुर का राजा है। तब अर्जुन के कहने से श्रीकृष्ण उसीतरफ चल दिये, जिधर, भगदत्त के द्वारा पाण्डवसेना का विनाश किया जारहा था। तब उन्हें वहाँ से जाते देखकर चौदह हजार संशप्तक महारथी, उन्हें ललकारते हुए उन पर चढ़ आये।

दशैव तु सहस्राणि त्रिगर्तानां महारथाः।
चत्वारि च सहस्राणि वासुदेवस्य चानुगाः॥ ९॥
दीर्यमाणां चमूं दृष्ट्वा भगदत्तेन मारिष।
आहूयमानस्य च तैरभवद्धृदयं द्विधा॥ १०॥
किं तु श्रेयस्करं कर्म भवेदद्येति चिन्तयन्।
इह वा विनिवर्तेयं गच्छेयं वा युधिष्ठिरम्॥ ११॥
तस्य बुद्ध्या विचार्यैवमर्जुनस्य कुरूद्वह।
अभवद् भूयसी बुद्धिः संशप्तकवधे स्थिरा॥ १२॥

उनमें दस हजार तो त्रिगर्तों के महारथी थे और चार हजार श्रीकृष्ण जी के सेवकवर्ग अर्थात् उनकी दुर्योधन को दी हुई सेना के थे। हे मान्यवर! तब उधर भगदत्त के द्वारा मारी जाती हुई अपनी सेना को देखकर तथा इधर इनकी ललकार को सुनकर अर्जुन के हृदय में दुविधा उत्पन्न हो गयी। वे सोचने लगे कि मेरे लिये क्या हितकर है? मैं संशप्तकों की तरफ लौट चलूँ?

या युधिष्ठिर के समीप जाऊँ? हे कुरुश्रेष्ठ! तब बुद्धि से विचारकर अर्जुन के मन में यही बुद्धि स्थिर हुई कि संशप्तकों का वध पहले करना चाहिये।

स संनिवृत्तः सहसा कपिप्रवरकेतनः।
एको रथसहस्राणि निहन्तुं वासवी रणे॥ १३॥
सा हि दुर्योधनस्यासीन्मतिः कर्णस्य चोभयोः।
अर्जुनस्य वधोपाये तेन द्वैधमकल्पयत्॥ १४॥
ततः शतसहस्राणि शराणां नतपर्वणाम्।
असृजन्नर्जुने राजन् संशप्तकमहारथाः॥ १५॥
नैव कुन्तीसुतः पार्थो नैव कृष्णो जनार्दनः।
न हया न रथो राजन् दृश्यन्ते स्म शरैश्चिताः॥ १६॥
तदा मोहमनुप्राप्तः सिष्विदे हि जनार्दनः।
ततस्तान प्रायशः पार्थो ब्रह्मास्त्रेण निजघ्निवान्॥ १७॥

तब अकेले ही हजारों रथियों का संहार करने के लिये, वानर के चिह्न से अंकित श्रेष्ठ ध्वजवाले वे इन्द्रपुत्र तुरन्त युद्धस्थल में लौट पड़े। यह दुर्योधन और कर्ण दोनों की बुद्धि थी कि अर्जुन के वध का उपाय करने के लिये उन्होंने युद्ध को दो भागों में बाँट दिया था। हे राजन्! तब संशप्तक महारथियों ने अर्जुन पर झुकी गाँठवाले सैकड़ों और हजारों बाणों की वर्षा की। उससमय उन बाणों से आच्छादित होकर न तो कुन्तीपुत्र अर्जुन, और न जनार्दन श्रीकृष्ण, न उनके घोड़े और न रथ हे राजन्! दिखाई देरहे थे। उससमय श्रीकृष्ण जी के पसीना आ गया और वे मोह में पड़ गये। तब अर्जुन ने ब्रह्मास्त्र का प्रयोगकर, उन सबको अधिकांश में नष्ट कर दिया।

शतशः पाणयश्छिन्नाः सेषुज्यातलकार्मुकाः।
केतवो वाजिनः सूता रथिनश्चापतन् क्षितौ॥ १८॥
विप्रविद्धकुथा नागाश्छिन्नभाण्डाः परासवः।
सारोहास्तु रणे पेतुर्मथिता मार्गणैर्भृशम्॥ १९॥
बालादित्याम्बुजेन्दूनां तुल्यरूपाणि मारिष।
संच्छिन्नान्यर्जुनशरैः शिरांस्युर्व्यां प्रपेदिरे॥ २०॥
संशप्तकांस्ततो हत्वा भूयिष्ठा ये व्यवस्थिताः।
भगदत्ताय याहीति कृष्णं पार्थोऽभ्यनोदयत्॥ २१॥

उससमय बाण, प्रत्यंचा और धनुषसहित सैकड़ों भुजाएँ कट गयीं। पताकाएँ, घोड़े, सारथी और रथीलोग मरकर भूमि पर गिर पड़े। उससमय युद्ध भूमि में बाणों से अत्यन्त मथे हुए बहुतसे हाथी पड़े हुए थे। उनके सवार मर गये थे। उनकी झूलों के टुकड़े हो गये थे और उनके साज भी टूटफूट गये थे। हे मान्यवर! उदय होते हुए सूर्य, कमल और चन्द्रमा के समान योद्धाओं के मस्तक अर्जुन के बाणों से कटकर भूमि पर पड़े हुए थे। इसप्रकार वहाँ विद्यमान संशप्तकों में से अधिकांश को मारकर अर्जुन ने कृष्ण से कहा कि अब भगदत्त के पास चलिये।

यियासतस्ततः कृष्णः पार्थस्याश्वान् मनोजवान्।
सम्प्रैषीद्धेमसंछन्नान् द्रोणानीकाय सत्वरन्॥ २२॥
तं प्रयान्तं कुरुश्रेष्ठं स्वान् भ्रातृन् द्रोणतापितान्।
सुशर्मा भ्रातृभिः सार्धं युद्धार्थी पृष्ठतोऽन्वयात्॥ २३॥
ततः श्वेतहयः कृष्णमब्रवीदजितं जयः।
एष मां भ्रातृभिः सार्धं सुशर्माऽऽह्वयतेऽच्युत॥ २४॥
दीर्यते चोत्तरेणैव तत् सैन्यं मधुसूदन।
द्वैधीभूतं मनो मेऽद्य कृतं संशप्तकैरिदम्॥ २५॥

तब द्रोणाचार्य की सेना के पास जाने के इच्छुक, अर्जुन के मन के समान वेगवान्, सुनहले साज से भूषित घोड़ों को श्रीकृष्ण जी ने शीघ्रता करते हुए हांका। तब द्रोणाचार्य से सन्तप्त, अपने भाइयों के समीप जाते हुए उस कुरुश्रेष्ठ पर युद्ध के लिये अर्थी सुशर्मा ने अपने भाइयों के साथ पीछे से आकर आक्रमण किया। तब श्वेत घोड़ोंवाले अर्जुन ने अपराजित श्रीकृष्ण जी से कहा कि हे अच्युत! यह सुशर्मा अपने भाइयों के साथ मुझे युद्ध के लिये बुला रहा है। हे मधुसूदन! उधर उत्तरदिशा की तरफ मेरी सेना मारी जा रही है। इन संशप्तकों ने मेरे मन को दुविधा में डाल दिया है।

किं नु संशप्तकान् हन्मि स्वान् रक्षाम्यहितार्दितान्।
इति मे त्वं मतं वेत्सि तत्र किं सुकृतं भवेत्॥ २६॥
एवमुक्तस्तु दाशार्हः स्यन्दनं प्रत्यवर्तयत्।
येन त्रिगर्ताधिपतिः पाण्डवं समुपाह्वयत्॥ २७॥
ततोऽर्जुनः सुशर्माणं विदध्वा सप्तभिराशुगैः।
ध्वजं धनुश्चास्य तथा क्षुराभ्यां समकृन्तत॥ २८॥
त्रिगर्ताधिपतेश्चापि भ्रातरं षडभिराशुगैः।
साश्वं ससूतं त्वरितः पार्थः प्रैषीद् यमक्षयम्॥ २९॥

मैं इन संशप्तकों को मारूँ? या शत्रुओं से पीड़ित अपनी सेना की रक्षा करूँ? आप मेरे विचारों को जानते हैं, इसलिये बताइये कि क्या करना मेरे लिये उचित होगा? ऐसा कहे जाने पर श्रीकृष्ण जी ने

रथ को उसीतरफ लौटा दिया, जिसतरफ त्रिगर्तराज पाण्डुपुत्र को ललकार रहा था। तब अर्जुन ने सुशर्मा को सात शीघ्रगामी बाणों से बींधकर, दो क्षुरों से उसके धनुष और ध्वज को काट दिया। फिर कुन्ती पुत्र ने त्रिगर्तराज के भाई को भी छै शीघ्रगामी बाणों से घोड़ों और सारथी सहित मृत्युलोक में भेज दिया।

ततो भुजगसंकाशां सुशर्मा शक्तिमायसीम्।
चिक्षेपार्जुनमादिश्य वासुदेवाय तोमरम्॥ ३०॥
शक्तिं त्रिभिः शरैश्छित्त्वा तोमरं त्रिभिरर्जुनः।
सुशर्माणं शरव्रातैर्मोहयित्वा न्यवर्तयत्॥ ३१॥
सं वासवमिवायान्तं भूरिवर्षं शरौघिणम्।
राजंस्तावकसैन्यानां नोग्रं कश्चिदवारयत्॥ ३२॥
ततो धनंजयो बाणैः सर्वानेव महारथान्।
आयाद् विनिघ्नन् कौरव्यान् दहन् कक्षमिवानलः॥ ३३॥

तब सुशर्मा ने सर्प के समान लोहे की शक्ति को अर्जुन के ऊपर तथा श्रीकृष्ण जी के ऊपर एक तोमर को फेंका। अर्जुन ने शक्ति और तोमर को तीन तीन बाणों से काटकर सुशर्मा को अपनी बाणवर्षा से मोहितकर पीछे लौटा दिया। इसके पश्चात् बाण समूहों की घोर वर्षा करते हुए, इन्द्रके समान उग्रता से आते हुए उन अर्जुन को आपकी सेना में हे राजन्! कोई भी नहीं रोक सका। तब जैसे अग्नि घासफूस को भस्म करती है, वैसे ही सारे कौरव महारथियों को अपने बाणों से क्षतविक्षत करते हुए अर्जुन वहाँ आ पहुँचे।

तस्य वेगमसह्यं तं कुन्तीपुत्रस्य धीमतः।
नाशक्नुवंस्ते संसोढुं स्पर्शमग्नेरिव प्रजाः॥ ३४॥
संवेष्टयन्ननीकानि शरवर्षेण पाण्डवः।
सुपर्णपातवद् राजन्नायात् प्राग्ज्योतिषं प्रति॥ ३५॥
ततो दशसहस्राणि न्यवर्तन्त धनुष्मताम्।
मतिं कृत्वा रणे क्रूरां वीरा जयपराजये॥ ३६॥

जैसे प्रजा अग्नि का स्पर्श सहन नहीं कर सकती, वैसे ही धीमान् अर्जुन के वेग को भी वे सैनिक सहन नहीं कर सके। हे राजन्। पाण्डुपुत्र ने अपनी बाणवर्षा से कौरवसेना को आच्छादित करते हुए, गरुड़ के समान वेग से भगदत्त पर आक्रमण किया। तभी दस हजार धनुर्धरवीर, युद्ध में जय या पराजय के लिये क्रूरतापूर्ण निश्चयकर के लौटकर आ गये।

व्यपेतहृदयत्रासा आववुस्तं महारथाः।
आर्च्छत् पार्थो गुरुं भारं सर्वभारसहो युधि॥ ३७॥
यथा नलवनं क्रुद्धः प्रभिन्नः षष्टिहायनः।
मृद्नीयात् तद्वदायस्तः पार्थोऽमृद्नच्चमूं तव॥ ३८॥
तस्मिन् प्रमथिते सैन्ये भगदत्तो नराधिपः।
तेन नागेन सहसा धनंजयमुपाद्रवत्॥ ३९॥
ततो जीमूतसंकाशान्नागादिन्द्र इव प्रभुः।
अभ्यवर्षच्छरौघेण भगदत्तो धनंजयम्॥ ४०॥

उन महारथियों ने भय को हृदय से त्याग कर अर्जुन को घेर लिया। तब युद्ध में सारे भारों को सहन करनेवाले अर्जुन ने उनसे युद्ध करने का भारी भार भी अपनेऊपर ले लिया। जैसे साठ वर्ष का मद बहाता हुआ हाथी नरकुलों के वन को रौंद देता है, वैसे ही प्रयत्नशील अर्जुन ने क्रुद्ध होकर आपकी उस सेना को मिट्टी में मिला दिया। उस सेना का विनाश करने पर राजा भगदत्त ने अपने उस हाथी के साथ अचानक अर्जुन पर आक्रमण कर दिया। फिर उस इन्द्र के समान शक्तिशाली भगदत्त ने बादलों के समान हाथी से अर्जुन पर बाणों की वर्षा आरम्भ कर दी।

स चापि शरवर्षं तं शरवर्षेण वासविः।
अप्राप्तमेव चिच्छेद भगदत्तस्य वीर्यवान्॥ ४१॥
ततः प्राग्ज्योतिषो राजा शरवर्षं निवार्य तत्।
शरैर्जघ्ने महाबाहुं पार्थं कृष्णं च मारिष॥ ४२॥
ततस्तु शरजालेन महताभ्यवकीर्य तौ।
चोदयामास तं नागं वधायाच्युतपार्थयोः॥ ४३॥
तमापतन्तं द्विरदं दृष्ट्वा क्रुद्धमिवान्तकम्।
चक्रेऽपसव्यं त्वरितः स्यन्दनेन जनार्दनः॥ ४४॥

तब इन्द्रपुत्र पराक्रमी अर्जुन ने भी भगदत्त की उस बाण वर्षा को अपनेपास आने से पहले ही अपनी बाणवर्षा से छिन्नभिन्न कर दिया। हे मान्यवर! फिर प्राग्ज्योतिषपुर के राजा ने भी अर्जुन की बाणवर्षा का निवारणकर, उन महाबाहु कुन्तीपुत्र और श्रीकृष्ण जी को अपने बाणों से घायल कर दिया। उसने महान् बाणवर्षा से उन दोनों को आच्छादितकर, अर्जुन और श्रीकृष्ण दोनों के वध के लिये अपने हाथी को उनकीतरफ बढ़ा दिया। तब क्रुद्ध मृत्यु के समान आक्रमण करते हुए उस हाथी को देखकर, श्रीकृष्ण जी ने तुरन्त अपने रथ के द्वारा उसे दाहिनीतरफ कर दिया।

चौदहवाँ अध्याय : अर्जुन के द्वारा भगदत्त का वध।

तस्य पार्थो धनुश्छित्त्वा परिवारं निहत्य च।
लालयन्निव राजानं भगदत्तमयोधयत्॥ १॥
सोऽर्करश्मिनिभांस्तीक्ष्णांस्तोमरान् वै चतुर्दश।
अप्रेषयत् सव्यसाची द्विधैकैकमथाच्छिनत्॥ २॥
ततो नागस्य तद् वर्म व्यधमत् पाकशासनिः।
शीर्णवर्मा स तु गजः शरैः सुभृशमर्दितः॥ ३॥
बभौ धारानिपातात्तो व्यभ्रः पर्वतराडिव।

उससमय अर्जुन ने राजा भगदत्त के परिवार को मारकर उसके धनुष को काटकर, उसके साथ लाड़ सा लड़ाते हुए युद्ध आरम्भ किया। भगदत्त ने सूर्य की किरणों के समान जगमगाते हुए चौदह तीखे तोमर अर्जुन की तरफ फेंके, पर अर्जुन ने उन सबके दो दो टुकड़े कर दिये। तब इन्द्रपुत्र अर्जुन ने उसके हाथी के कवच को काट दिया। कवच के कट जाने से बाणोंसे अत्यधिक घायल किया हुआ वह हाथी, खून की धाराओं से नहाया हुआ, जलधाराओं से भीगे हुए, बादलों से रहित पर्वतराज की तरह दिखाई देरहा था।

ततः प्राग्ज्योतिषः शक्तिं हेमदण्डामयस्मयीम्॥ ४॥
व्यसृजद् वासुदेवाय द्विधा तामर्जुनोऽच्छिनत्।
ततश्छत्रं ध्वजं चैव छित्त्वा राज्ञोऽर्जुनः शरैः॥ ५॥
विव्याध दशभिस्तूर्णमुत्स्मयन् पर्वतेश्वरम्।
सोऽतिविद्धोऽर्जुनशरैः सुपुङ्खैः कङ्कपत्रिभिः॥ ६॥
भगदत्तस्ततः क्रुद्धः पाण्डवस्य जनाधिपः।
व्यसृजत् तोमरान् मूर्ध्नि श्वेताश्वस्योन्ननाद च॥ ७॥
तैरर्जुनस्य समरे किरीटं परिवर्तितम्।

तब प्राग्ज्योतिषपुर के राजा ने सुनहरे डण्डेवाली लोहे की एक शक्ति को श्रीकृष्ण जी के ऊपर फैंका, जिसे अर्जुन ने काट दिया। फिर अर्जुन ने मुस्कराते हुए उस पर्वतेश्वर राजा के ध्वज और छत्र को काट कर शीघ्रता से उसे दस बाणों से बींध दिया। अर्जुन के अच्छे पंखवाले कंकपत्र के बाणों से अत्यन्त घायल होकर राजा भगदत्त पाण्डुपुत्र के प्रति क्रोध से भर गया। उसने श्वेत घोड़ोंवाले अर्जुन के मस्तक पर तोमरों को फेंका और जोर से गर्जना की। उन तोमरों ने युद्धस्थल में अर्जुन के किरीट को उलट दिया।

परिवृत्तं किरीटं तद् यमयन्नेव पाण्डवः॥ ८॥
सुदृष्टः क्रियतां लोक इति राजानमब्रवीत्।
एवमुक्तस्तु संक्रुद्धः शरवर्षेण पाण्डवम्॥ ९॥
अभ्यवर्षत् सगोविन्दं धनुरादाय भास्वरम्।
तस्य पार्थो धनुश्छित्त्वा तूणीरान् संनिकृत्य च॥ १०॥
त्वरमाणो द्विसप्तत्या सर्वमर्मस्वताडयत्।
ततः पार्थो महाबाहुरसम्भ्रान्तो महामनाः॥ ११॥
कुम्भयोरन्तरे नागं नाराचेन समार्पयत्।

तब उस उलटे हुए किरीट को सीधा करते हुए पाण्डुपुत्र ने राजा से कहा कि तुम अब इस दुनिया को अच्छीतरह से देख लो। ऐसा कहने पर अत्यन्त क्रुद्ध होकर भगदत्त ने जगमगाते हुए धनुष को उठाकर बाणवर्षा के द्वारा श्रीकृष्णसहित पाण्डुपुत्र को ढक दिया। तब कुन्तीपुत्र ने शीघ्रता करते हुए बहत्तर बाणों की वर्षा द्वारा उसके धनुष और तरकसों को काटकर सारे मर्मस्थानों पर भी चोट पहुँचायी। उसके पश्चात् महामना कुन्तीपुत्र ने बिना किसी घबराहट के उस हाथी के मस्तक के बीच में नाराच का प्रहार किया।

स समासाद्य तं नागं बाणो वज्र इवाचलम्॥ १२॥
अभ्यगात् सह पुङ्खेन वल्मीकमिव पन्नगः।
स करी भगदत्तेन प्रेर्यमाणो मुहुर्मुहुः॥ १३॥
न करोति वचस्तस्य दरिद्रस्येव योषिता।
स तु विष्टभ्य गात्राणि दन्ताभ्यामवनिं ययौ॥ १४॥
नदन्नार्तस्वनं प्राणानुत्ससर्ज महाद्विपः।

जैसे विद्युत् पर्वत पर प्रहार करे, वैसे ही वह नाराच उस हाथी के मस्तक पर प्रहारकर, उसमें पंखसहित ऐसे घुस गया, जैसे साँप अपनी बाँबी में घुस जाता है। इस बाण से पीड़ित होकर, भगदत्त के द्वारा बार बार प्रेरणा देने पर भी उस हाथी ने उसके आदेश को उसीप्रकार मानना बन्द कर दिया, जैसे कुलटा स्त्री अपने निर्धन पति का कहना नहीं मानती है। उस विशाल हाथी ने अपने अंगों को स्थिरकर अपने दाँतों को भूमिपर टिका दिया तथा आर्तस्वर से चीत्कार करते हुए अपने प्राणों को छोड़ दिया।

ततो गाण्डीवधन्वानमभ्यभाषत केशवः॥ १५॥
अयं महत्तरः पार्थ पलितेन समावृतः।

वलीसंछन्ननयनः शूरः परमदुर्जयः॥ १६॥
अक्ष्णोरुन्मीलनार्थाय बद्धपट्टो ह्यसौ नृपः।
देववाक्यात् प्रचिच्छेद शरेण भृशमर्जुनः॥ १७॥
छिन्नमात्रेंऽशुके तस्मिन् रुद्धनेत्रो बभूव सः।
तमोमयं जगन्मेने भगदत्तः प्रतापवान्॥ १८॥
ततश्चन्द्रार्धबिम्बेन बाणेन नतपर्वणा।
बिभेद हृदयं राज्ञो भगदत्तस्य पाण्डवः॥ १९॥

तब श्रीकृष्ण जी ने गाण्डीवधनुषधारी अर्जुन से कहा कि हे कुन्तीपुत्र! यह भगदत्त बहुत बूढ़ा है, इसके सारे बाल पकगये हैं। यह बलवान् अत्यन्त दुर्जय और शूरवीर है। आँख के ऊपर झुर्रियाँ होने के कारण इसकी आँखें ढकी रहती हैं। इसलिये आँखों को खुला रखने के लिये, इस राजा ने माथे पर पट्टी बाँध रखी है। तब उन विद्वान् श्रीकृष्ण की बात सुनकर अर्जुन ने बाण के द्वारा उस पट्टी को अत्यन्त छिन्नभिन्न कर दिया। पट्टी के छिन्न हो जाने पर उसकी आँखें बन्द हो गयीं। तब तो उस प्रतापी भगदत्त को सारा जगत अन्धकार से युक्त प्रतीत होने लगा। तभी झुकी गाँठवाले अर्धचन्द्राकार बाण के द्वारा पाण्डुपुत्र ने राजा भगदत्त के हृदय को विदीर्ण कर दिया।

पन्द्रहवाँ अध्याय : अर्जुन के द्वारा वृषक और अचल का वध।

प्रियमिन्द्रस्य सततं सखायममितौजसम्।
हत्वा प्राग्ज्योतिषं पार्थः प्रदक्षिणमवर्तत॥ १॥
ततो गान्धारराजस्य सुतौ परपुरंजयौ।
अर्देतामर्जुनं संख्ये भ्रातरौ वृषकाचलौ॥ २॥
तौ समेत्यार्जुनं वीरौ पुरः पश्चाच्च धन्विनौ।
अविध्येतां महावेगैर्निशितैराशुगैर्भृशम्॥ ३॥
वृषकस्य हयान् सूतं धनुश्छत्रं रथं ध्वजम्।
तिलशो व्यधमत् पार्थः सौबलस्य शितैः शरैः॥ ४॥

इन्द्र के सदा प्रिय, अमिततेजस्वी, प्राग्ज्योतिषपुर के राजा को मार कर, अर्जुन दाहिनी तरफ घूमे। तभी शत्रु के नगर को जीतनेवाले, गान्धारराज के दो पुत्र वृष और अचल नाम के भाई युद्ध में अर्जुन को पीड़ित करने लगे। उन वीर धनुर्धरों ने अर्जुन पर पीछे और सामने से आक्रमण कर महावेगशाली, तीखे, शीघ्रगामी बाणों से अर्जुन को अत्यन्तघायल कर दिया। तब अर्जुन ने अपने तीखे बाणों से सुबलपुत्र वृषक के घोड़ों, सारथी, धनुष, छत्र, रथ और ध्वज को तिलतिलकर काटदिया।

ततः पञ्चशतान् वीरान् गान्धारानुद्यतायुधान्।
प्राहिणोन्मृत्युलोकाय क्रुद्धो बाणैर्धनंजयः॥ ५॥
हताश्वात् तु रथात् तूर्णमवतीर्य महाभुजः।
आरुरोह रथं भ्रातुरन्यच्च धनुराददे॥ ६॥
तावेकरथमारूढौ भ्रातरौ वृषकाचलौ।
लब्धलक्ष्यौ तु गान्धारावहतां पाण्डवं पुनः॥ ७॥
निदाघवार्षिकौ मासौ लोकं घर्मांशुभिर्यथा।
तौ रथस्थौ नरव्याघ्रौ राजानौ वृषकाचलौ॥ ८॥
संश्लिष्टाङ्गौ स्थितौ राजञ्जघानैकेषुणाऽर्जुनः।

फिर क्रोध में भरे हुए अर्जुन ने अपने बाणों से पाँच सौ हथियार उठाये हुए गान्धारवीरों को मृत्युलोक में भेज दिया। तब वह महाबाहु वृषक मरे हुए घोड़ोंवाले रथ से तुरन्त कूदकर अपने भाई के रथ पर जा चढ़ा और उसने दूसरा धनुष ले लिया। जैसे गर्मी के दो मास सूर्य की गर्म किरणों के द्वारा संसार को सन्तप्त करते हैं, उसीप्रकार एकही रथ पर चढ़े हुए वे दोनों भाई वृषक और अचल गान्धारराज कुमार, अपने लक्ष्य की कुशलता से पाण्डुपुत्र को पीड़ित करने लगे। हे राजन्! तब उन नरव्याघ्र राजा वृषक और अचल को, जो रथ में एकदूसरे से सटे हुए खड़े थे, अर्जुन ने एक बाण से ही मार दिया।

दृष्ट्वा विनिहतौ संख्ये मातुलावपलायिनौ॥ ९॥
भृशं मुमुचुरश्रूणि पुत्रास्तव विशाम्पते।
ततोऽर्जुनोऽस्त्रविच्छैघ्र्यं दर्शयन्नात्मनोऽरिषु॥ १०॥
अभ्यवर्षच्छरौघेण कौरवाणामनीकिनीम्।
सा हन्यमाना पार्थेन तव पुत्रस्य वाहिनी॥ ११॥
द्वैधीभूता महाराज गङ्गेवासाद्य पर्वतम्।
द्रोणमेवान्वपद्यन्त केचित् तत्र नरर्षभाः॥ १२॥
केचिद् दुर्योधनं राजन्नर्द्यमानाः किरीटिना।

युद्ध से न भागनेवाले अपने दोनों मामाओं को मारा हुआ देखकर, हे प्रजानाथ! आपके पुत्र अपनी

आँखों से अत्यन्त आँसू बहाने लगे। फिर शत्रुओं को अपनी शीघ्रता दिखाते हुए, अस्त्र विद्या के पण्डित अर्जुन कौरवसेना पर बाणों की वर्षा करने लगे। हे महाराज! जैसे गंगा रास्ते में पर्वत को प्राप्तकर दो भागों में बँट जाये, उसीतरह कुन्तीपुत्र के द्वारा मारी जाती हुई आपके पुत्र की सेना उससमय दो भागों में बँट गयी। हे राजन्! अर्जुन से पीड़ित होते हुए कुछ नरश्रेष्ठ द्रोणाचार्य के पीछे चले गये और कुछ दुर्योधन के पास भाग गये।

नापश्याम ततस्त्वेनं सैन्ये वै रजसावृते॥ १३॥
गाण्डीवस्य च निर्घोषः श्रुतो दक्षिणतो मया।
ततः पुनर्दक्षिणतः संग्रामश्चित्रयोधिनाम्॥ १४॥
सुयुद्धं चार्जुनस्यासीदहं तु द्रोणमन्वियाम्।
नानाविधान्यनीकानि पुत्राणां तव भारत।
अर्जुनो व्यधमत् काले दिवीवाभ्राणि मारुतः॥ १५॥

उस समय धूल से भरी हुई सेना में अर्जुन को हम कहीं देख नहीं पाये। केवल दक्षिण की तरफ मैंने गाण्डीवधनुष की टंकार सुनी। फिर दक्षिण में विचित्ररूप से युद्ध करनेवाले योद्धाओं का अर्जुन के साथ भारी युद्ध होने लगा। मैं तब द्रोणाचार्य के पीछे चला गया। हे भारत! जैसे आकाश में वायु बादलों को छिन्नभिन्न कर देती है, वैसे ही अर्जुन उससमय आपके पुत्रों की विविधप्रकार की सेना का विनाश करने लगे।

सोलहवाँ अध्याय : अश्वत्थामा द्वारा राजा नील का वध।

संजय उवाच

समुद्यतेषु चास्त्रेषु सम्प्राप्ते च युधिष्ठिरे।
अकुर्वन्नार्यकर्माणि भैरवे सत्यभीतवत्॥ १॥
अन्तरं भीमसेनस्य प्रापतन्नमितौजसः।
सात्यकेश्चैव वीरस्य धृष्टद्युम्नस्य वा विभो॥ २॥
द्रोणं द्रोणमिति क्रूराः पञ्चालाः समचोदयन्।
मा द्रोणमिति पुत्रास्ते कुरून् सर्वानचोदयन्॥ ३॥
यं यं प्रमथते द्रोणः पञ्चालानां रथव्रजम्।
तत्र तत्र तु पाञ्चाल्यो धृष्टद्युम्नोऽभ्यवर्तत॥ ४॥

संजय ने कहा कि हे प्रभो। जब वहाँ परस्पर हथियार उठे हुए थे और राजा युधिष्ठिर सामने आ गये थे, तब भयंकर संग्राम छिड़ जाने पर योद्धा लोग निर्भय होकर आर्यजनोचित पुरुषार्थ प्रकट करने लगे। उससमय भीमसेन, सात्यकि और वीर धृष्टद्युम्न की लापरवाही का लाभ उठाकर, अमित तेजस्वी कौरवयोद्धा पाण्डवसेना पर टूटपड़े। क्रूर स्वभाववाले पाँचालवीर द्रोणाचार्य को पकड़ो द्रोणाचार्य को पकड़ो यह कहते हुए एकदूसरे को प्रेरणा देने लगे। उधर आपके पुत्र कौरवसैनिकों को द्रोणाचार्य पकड़े न जायें, द्रोणाचार्य पकड़े न जायें, यह कहते हुए प्रेरित कर रहे थे। द्रोणाचार्य पाँचालों की जिस जिस रथसेना को मथना आरम्भ करते थे, वहीं वहीं धृष्टद्युम्न उनका सामना करने के लिये आ जाता था।

तथा भागविपर्यासैः संग्रामे भैरवे सति।
वीराः समासदन् वीरान् कुर्वन्तो भैरवं रवम्॥ ५॥
अयसामिव सम्पातः शिलानामिव चाभवत्।
दीव्यतां तुमुले युद्धे प्राणैरमिततेजसाम्॥ ६॥
न तु स्मरन्ति संग्राममपि वृद्धास्तथाविधम्।
दृष्टपूर्वं महाराज श्रुतपूर्वमथापि वा॥ ७॥
समासाद्य तु पाण्डूनामनीकानि सहस्रशः।
द्रोणेन चरता संख्ये प्रभग्नानि शितैः शरैः॥ ८॥

इसप्रकार भागविपर्यय द्वारा भीषण संग्राम होने पर, दोनों पक्षों के वीर भयंकर गर्जना करते हुए एक दूसरे पर टूटपड़े। उससमय अमिततेजस्वी वीरों के द्वारा प्राणों की बाजी लगाकर घमासान युद्ध करते हुए इसप्रकार शब्द हो रहे थे, जैसे लोहे से लोहे और पत्थर से पत्थर टकरा रहे हों। हे महाराज! बड़ेबूढ़ेलोग भी उसजैसे भयानक संग्राम का पहले कभी नतो देखने का वर्णन करते हैं और न सुनने का। उससमय द्रोणाचार्य ने युद्धस्थल में विचरण करते हुए आक्रमणकर अपने तीखे बाणों से पाण्डवों की सेनाओं को हजारों भागों में छिन्न भिन्न कर दिया।

तेषु प्रमथ्यमानेषु द्रोणेनाद्भुतकर्मणा।
पर्यवारयदासाद्य द्रोणं सेनापतिः स्वयम्॥ ९॥
तदद्भुतमभूद् युद्धं द्रोणपाञ्चालयोस्तथा।
नैव तस्योपमा काचिदिति मे निश्चिता मतिः॥ १०॥

ततो नीलोऽनलप्रख्यो ददाह कुरुवाहिनीम्।
शरस्फुलिङ्गश्चापार्चिर्दहन् कक्षमिवानलः॥ ११॥
तं दहन्तमनीकानि द्रोणपुत्रः प्रतापवान्।
पूर्वाभिभाषी सुश्लक्ष्णं स्मयमानोऽभ्यभाषत॥ १२॥

अद्भुत कर्म करनेवाले द्रोणाचार्य के द्वारा सेनाओं के मथे जाने पर, सेनापति धृष्टद्युम्न ने स्वयं आकर उन्हें रोका। उससमय द्रोणाचार्य और पांचालवीर में बड़ाअद्भुत युद्ध होने लगा। मेरा विचार है कि उसकी उपमा किसी से नहीं दी जा सकती। तब अग्नि के समान तेजस्वी राजा नील ने कौरवसेना को जलाना आरम्भ कर दिया। जैसे अग्नि घासफूस को जलाती है, वैसे ही वे बाण रूपी चिंगारियों और धनुषरूपी ज्वाला के द्वारा सेना को जला रहे थे। तब उन्हें सेना को नष्ट करता हुआ देखकर प्रतापी द्रोणपुत्र ने जो पहले ही कहनेवाला था, मुस्कराते हुए मधुरता के साथ उससे कहा कि—

नील किं बहुभिर्दग्धैस्तव योधैः शरार्चिषा।
मयैकेन हि युध्यस्व क्रुद्धः प्रहर चाशु माम्॥ १३॥
तं पद्मनिकराकारं पद्मपत्रनिभेक्षणम्।
व्याकोशपद्माभमुखो नीलो विव्याध सायकैः॥ १४॥
तेनापि विद्धः सहसा द्रौणिर्भल्लैः शितैस्त्रिभिः।
धनुर्ध्वजं च छत्रं च द्विषतः स न्यकृन्तत॥ १५॥
स प्लुतः स्यन्दनात्तस्मान्नीलश्चर्मवरासिभृत्।
द्रौणायनेः शिरः कायाद्धर्तुमैच्छत् पतत्रिवत्॥ १६॥

हे नील! बाणों की अग्नि से इन बहुत से योद्धाओं को जलाने से क्या लाभ? तुम क्रुद्ध होकर मुझसे युद्ध करो और शीघ्रता से मुझ पर प्रहार करो। तब विकसित कमल के समान मुखवाले नील ने पद्म समूह के समान आकृति तथा पद्मपत्र के समान नेत्रों वाले अश्वत्थामा को अपने बाणों से बींध दिया। उससे घायल होकर द्रोणपुत्र ने तुरन्त अपने शत्रु के धनुष, ध्वज और छत्र को तीन तीखे भल्लों से काट दिया। तब नील उत्तम तलवार और ढाल लेकर रथ से कूद पड़े और उन्होने पक्षी के समान झपट्टा मारकर अश्वत्थामा के सिर को उसके शरीर से अलग करने की इच्छा की।

तस्योन्नतांसं सुनसं शिरः कायात् सकुण्डलम्।
भल्लेनापाहरद् द्रौणिः स्मयमान इवानघ॥ १७॥
ततः प्रविव्यथे सेना पाण्डवी भृशमाकुला।
आचार्यपुत्रेण हते नीले ज्वलिततेजसि॥ १८॥
अचिन्तयंश्च ते सर्वे पाण्डवानां महारथाः।
कथं नो वासविस्त्रायाच्छत्रुभ्य इति मारिष॥ १९॥
दक्षिणेन तु सेनायाः कुरुते कदनं बली।
संशप्तकावशेषस्य नारायणबलस्य च॥ २०॥

हे निष्पाप! तब द्रोणपुत्र ने मुस्कराते हुए उसके ऊँचे कन्धों, सुन्दर नाक, और कुण्डलोंवाले सिर को उसके शरीर से भल्ल नाम के बाण से अलग कर दिया। प्रज्वलित तेजवाले राजा नील के आचार्यपुत्र के द्वारा मारे जाने पर पाण्डवों की सेना अत्यन्तबेचैन और व्यथित हो गयी। हे मान्यवर! तब पाण्डवों के सारे महारथी यह सोचने लगे कि इन्द्रपुत्र अर्जुन कैसे हमारी शत्रुओं से रक्षा करेंगे? क्योंकि वे बलवान् तो इससमय सेना के दक्षिणी भाग में बचे हुए संशप्तकों और नारायणी सेना का संहार कर रहे हैं।

सत्रहवाँ अध्याय : अर्जुन और कर्ण का युद्ध। कर्ण के तीन भाइयों का वध चन्द्रवर्मा और बृहतक्षत्र का वध। कर्ण और सात्यकि का युद्ध।

प्रतिघातं तु सैन्यस्य नामृष्यत वृकोदरः।
सोऽभ्याहनद् गुरुं षष्ट्या कर्णं च दशभिः शरैः॥ १॥
तस्य द्रोणः शितैर्बाणैस्तीक्ष्णधारैरजिह्मगैः।
जीवितान्तमभिप्रेप्सुर्मर्माण्याशु जघान ह॥ २॥
आनन्तर्यमभिप्रेप्सुः षड्विंशत्या समार्पयत्।
कर्णो द्वादशभिर्बाणैरश्वत्थामा च सप्तभिः॥ ३॥
षडभिर्दुर्योधनो राजा तत एनमथाकिरत्।
भीमसेनोऽपि तान् सर्वान् प्रत्यविध्यन्महाबलः॥ ४॥

तब भीमसेन के द्वारा अपनी सेना का वह विनाश सहन नहीं हुआ। उन्होंने गुरु द्रोणाचार्य पर साठ बाणों की वर्षा की और कर्ण को दस बाण मारे। तब द्रोण ने भीम का वध करने की इच्छा से तीखी

धारवाले, पैने, और सीधे जानेवाले बाणों से शीघ्रता पूर्वक उसके मर्मस्थानों पर आघात किया। लगातार आघात करने की इच्छा से द्रोणाचार्य ने उनके ऊपर छब्बीस, कर्ण के बारह, अश्वत्थामा ने सात और दुर्योधन ने छै बाणों की वर्षा की। महाबली भीम ने भी उत्तर में उनसब को अपने बाणों से घायल किया।

द्रोणं पञ्चाशतेषूणां कर्णं च दशभिः शरैः।
दुर्योधनं द्वादशभिर्द्रौणिमष्टाभिराशुगैः॥ ५॥
आरावं तुमुलं कुर्वन्नभ्यवर्तत तान् रणे।
अजातशत्रुस्तान् योधान् भीमं त्रातेत्यचोदयत्॥ ६॥
ते ययुर्भीमसेनस्य समीपममितौजसः।
युयुधानप्रभृतयो माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ॥ ७॥
ते समेत्य सुसंरब्धाः सहिताः पुरुषर्षभाः।
समापेतुर्महा वीर्याः, द्रोणानीकं विभित्सवः॥ ८॥

उन्होंने द्रोण पर पचास बाणों की वर्षा की, कर्ण को दस, दुर्योधन को बारह और अश्वत्थामा को आठ शीघ्रगामी बाण मारे। भीमसेन भयंकर गर्जना करते हुए युद्धक्षेत्र में उनसबका सामना कर रहे थे। तब अजातशत्रु युधिष्ठिर ने अपने योद्धाओं को आदेश दिया कि तुम भीम की रक्षा करो। फिर वे अमिततेजस्वी वीर भीम के समीप गये। सात्यकि आदि, माद्री के दोनों पाण्डवपुत्र, येसभी पुरुषश्रेष्ठ और महापराक्रमी वीर इकट्ठे होकर और अत्यन्त क्रोध में भरकर, द्रोणाचार्य की सेना को विदीर्ण करने की इच्छा से उस पर टूटपड़े।

तान् प्रत्यगृह्णादव्यग्रो द्रोणोऽपि रथिनां वरः।
महारथानतिबलान् वीरान् समरयोधिनः॥ ९॥
बाह्यं मृत्युभयं कृत्वा तावकान् पाण्डवा ययुः।
सादिनः सादिनोऽभ्यघ्नंस्तथैव रथिनो रथान्॥ १०॥
आसीच्छक्त्यासिसम्पातो युद्धमासीत् परश्वधैः।
प्रकृष्टमसियुद्धं च बभूव कटुकोदयम्॥ ११॥
कुञ्जराणां च सम्पाते युद्धमासीत् सुदारुणम्।
अपतत् कुञ्जरादन्यो हयादन्यस्त्ववाक्शिराः॥ १२॥

तब रथियों में श्रेष्ठ द्रोणाचार्य ने भी बिना घबराहट के, उस समर भूमि में युद्ध करनेवाले, अति महाबली, महारथी वीरों का सामना किया। पर मृत्यु के भय को बाहर ही छोंड़कर पाण्डवों के वीर सैनिक आपके सैनिकों पर चढ़ आये। घुड़सवार घुड़सवारों को तथा रथी रथियों को मारने लगे। उस युद्ध में शक्ति और तलवारों के द्वारा प्रहार किया जारहा था, फरसों से मारकाट हो रही थी। तलवारे खींच कर जो युद्ध हो रहा था, उसका कड़वा परिणाम सामने आरहा था। हाथियों के युद्ध में वह युद्ध अत्यन्तदारुण हो गया था। कोई उलटे सिर से हाथी पर से गिर रहा था तो कोई घोड़े पर से गिर रहा था।

नरो बाणविनिर्भिन्नो रथादन्यश्च मारिष।
तत्रान्यस्य च सम्मर्दे पतितस्य विवर्मणः॥ १३॥
शिरः प्रध्वंसयामास वक्षस्याक्रम्य कुञ्जरः।
कार्ष्णायसतनुत्राणान् नराश्वरथकुञ्जरान्॥ १४॥
पतितान् पोथयाञ्चक्रुर्द्विपाः स्थूलनलानिव।
रथो भग्नो ध्वजश्छिन्नश्छत्रमुर्व्यां निपातितम्॥ १५॥
युगार्धं छिन्नमादाय प्रदुद्राव तथा हयः।
रथिना ताडितो नागो नाराचेनापतत् क्षितौ॥ १६॥

हे मान्यवर! वहाँ लोग बाणों से घायल होकर रथों से गिर रहे थे। दूसरे योद्धा युद्ध में कवच से हीन होकर गिर पड़ते थे, तब हाथी के द्वारा सहसा आक्रमण कर उनकी छाती को कुचल दिया जाता था। काले लोहे के कवचों को धारण किये हुए और गिरे हुए सैनिकों, घोड़ों, रथों और हाथियों को दूसरे विशाल हाथी मोटे नरकुलों के समान कुचल रहे थे। कितने ही रथ टूट गये, ध्वज भग्न हो गये, छत्र छिन्न हो गये और हाथीभूमि पर गिर पड़े। उन टूटे हुए आधे जूओं को लेकर ही घोड़े तेजी से दौड़ रहे थे। कहीं रथी के द्वारा नाराच से मारा हुआ हाथी भूमि पर गिर पड़ा था।

सारोहश्चापतद् वाजी गजेनाभ्याहतो भृशम्।
निर्मर्यादं महद् युद्धमवर्तत सुदारुणम्॥ १७॥
नरस्याश्वस्य नागस्य समसज्जत शोणितम्।
उपाशाम्यद् रजो भौमं भीरून् कश्मलमाविशत्॥ १८॥
चक्रेण चक्रमासाद्य वीरो वीरस्य संयुगे।
अतीतेषुपथे काले जहार गदया शिरः॥ १९॥
आसीत् केशपरामर्शो मुष्टियुद्धं च दारुणम्।
नखैर्दन्तैश्च शूराणामद्वीपे द्वीपमिच्छताम्॥ २०॥

कहीं हाथी के द्वारा वेगपूर्वक टक्कर मारने पर घोड़ा घुड़सवारसहित गिर पड़ा था। इसप्रकार वह अत्यन्तदारुण महान् युद्ध बिना मर्यादा के चल रहा था। भूमि पर बहते हुए मनुष, घोड़े,

हाथी सबके खून परस्पर मिल गये थे। उस बहते हुए खून से उड़ती हुई धूल शान्त हो गयी थी। उस रक्तराशि को देखकर कायर व्यक्तियों को घबराहट हो जाती थी। युद्ध में कोई वीर दूसरे वीर के चक्र का अपने चक्र से निवारण करके, बाण के प्रहार का अवसर न होने के कारण, गदा से ही उसका सिर तोड़ रहा था। बहुतसे योद्धा एकदूसरे के बालों कोही पकड़कर घूंसों द्वारा भयानक युद्ध कर रहे थे। अनेक शूरवीर उस निराश्रय स्थान में आश्रय को ढूंढते हुए बघनखों और वत्सदन्तों से लड़ रहे थे।

ततः सेनापतिः शीघ्रमयं काल इति ब्रुवन्।
नित्याभित्वरितानेव त्वरयामास पाण्डवान्॥ २१॥
कुर्वन्तः शासनं तस्य पाण्डवा बाहुशालिनः।
सरो हंसा इवापेतुर्घ्नन्तो द्रोणरथं प्रति॥ २२॥
गृह्णीताद्रवतान्योन्यं विभीता विनिकृन्तत।
इत्यासीत् तुमुलः शब्दो दुर्धर्षस्य रथं प्रति॥ २३॥
ततो द्रोणः कृपः कर्णो द्रौणी राजा जयद्रथः।
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ शल्यश्चैतान् न्यवारयन्॥ २४॥

तब सेनापति धृष्टद्युम्न ने शीघ्रता करो, यही उपयुक्त समय है, ऐसा कहते हुए, सर्वदा शीघ्रता करनेवाले पाण्डवों को और भी अधिक शीघ्रता करने के लिये प्रेरित किया। उसके आदेश को मानते हुए, लम्बी भुजाओंवाले पाण्डव द्रोणाचार्य के रथ पर उसीप्रकार प्रहार करते हुए टूटपड़े, जैसे किसी तालाब पर चारों तरफ से हंस उड़कर आबैठते हैं। उससमय उन दुर्धर्ष द्रोणाचार्य के रथ के चारों तरफ सब जोर जोर से यही कह रहे थे कि पकड़ लो, आक्रमण करो, निडर होकर काट दो आदि। तब द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, कर्ण, अश्वत्थामा, राजा जयद्रथ, अवन्ती के विन्द और अनुविन्द और शल्य ने उन्हें रोका।

ते त्वार्यधर्मसंब्धा दुर्निवारा दुरासदाः।
शरार्ता न जहुर्द्रोणं पञ्चालाः पाण्डवैः सह॥ २५॥
ततो द्रोणोऽतिसंक्रुद्धो विसृजञ्छतशः शरान्।
चेदिपञ्चालपाण्डूनामकरोत् कदनं महत्॥ २६॥
तस्य ज्यातलनिर्घोषः शुश्रुवे दिक्षु मारिष।
वज्रसंह्रादसंकाशस्त्रासयन् मानवान् बहून्॥ २७॥
एतस्मिन्नन्तरे जिष्णुर्जित्वा संशप्तकान् बहून्।
अभ्ययात् तत्र यत्रासौ द्रोणः पाण्डून् प्रमर्दति॥ २८॥

किन्तु आर्यधर्म में लगे हुए, अत्यन्त क्रोध में भरे हुए, कठिनाई से निवारण किये और कठिनाई से पराजित किये जानेवाले पाण्डवोंसहित पाँचालवीरों ने बाणों से पीड़ित होने पर भी द्रोणाचार्य को छोड़ा नहीं। तब द्रोणाचार्य ने अत्यन्त क्रोध में भरकर, सैकड़ों बाणों को छोड़ते हुए चेदि, पाँचाल और पाण्डव सैनिकों का महान् विनाश किया। हे मान्यवर! उनकी प्रत्यंचा की टंकार बिजली की गड़गड़ाहट के समान, सब तरफ सुनायी देरही थी और बहुसंख्यक मनुष्यों को भयभीत कर रही थी। उसीबीच अर्जुन बहुत से संशप्तकों को जीतकर, वहाँ आ पहुँचे, जहाँ द्रोणाचार्य पाण्डवसेना का विनाश कर रहे थे।

तस्य कीर्तिमतो लक्ष्म सूर्यप्रतिमतेजसः।
दीप्यमानमपश्याम तेजसा वानरध्वजम्॥ २९॥
प्रददाह कुरून् सर्वानर्जुनः शस्त्रतेजसा।
युगान्ते सर्वभूतानि धूमकेतुरिवोत्थितः॥ ३०॥
तेन बाणसहस्रौघैर्गजाश्वरथयोधिनः।
ताड्यमानाः क्षितिं जग्मुर्मुक्तकेशाः शरार्दिताः॥ ३१॥
तेषामुत्पतितान् कांश्चित् पतितांश्च पराङ्मुखान्।
न जघानार्जुनो योधान् योधव्रतमनुस्मरन्॥ ३२॥

सूर्य के समान तेज वाले और कीर्तिवान् अर्जुन के चिह्न उनके वानरध्वज को, जो अपनी चमक से जगमगा रहा था, हमने दूर से देखा। जैसे प्रलयकाल में प्रकट होनेवाली अग्नि सारे प्राणियों को जला देती है, वैसे ही अर्जुन ने अपने अस्त्रों के तेज से सारे कौरवसैनिकों को जलाना आरम्भ कर दिया। उनके हजारों बाणसमूहों से पीड़ित होते हुए, हाथी, रथ और घोड़ों पर युद्ध करनेवाले योद्धालोग अपने बाल खोले हुए भूमि पर गिर पड़े, या जो भागने लगे उन्हें अर्जुन ने योद्धाओं के नियम को याद करते हुए नहीं मारा।

ते विकीर्णरथाश्चित्राः प्रायशश्च पराङ्मुखाः।
कुरवः कर्ण कर्णेति हाहेति च विचुक्रुशुः॥ ३३॥
तमाधिरथिराक्रन्दं विज्ञाय शरणैषिणाम्।
मा भैष्टेति प्रतिश्रुत्य ययावभिमुखोऽर्जुनम्॥ ३४॥
स भारतरथश्रेष्ठ सर्वभारतहर्षणः।
प्रादुश्चक्रे तदाग्नेयमस्त्रमस्त्रविदां वरः॥ ३५॥
तस्य दीप्तशरौघस्य दीप्तचापधरस्य च।
शरौघाञ्छरजालेन विदुधाव धनंजयः॥ ३६॥

वे कौरवसैनिक, जिनके विचित्र रथ टूट गये थे और जो प्रायः युद्ध से विमुख हो गये थे, हा कर्ण, हा कर्ण कहते हुए पुकारने लगे। तब उन शरणार्थी सैनिकों की करुण पुकार सुनकर, अधिरथपुत्र कर्ण मत डरो, मत डरो ऐसा कहता हुआ, अर्जुन का सामना करने के लिये चल दिया। तब उन भरतवंशियों के श्रेष्ठ महारथी, तथा भरतवंशियों की सेना को हर्षित करनेवाले और अस्त्रवेत्ताओं में श्रेष्ठ कर्ण ने आग्नेयास्त्र को प्रकट किया। अर्जुन ने उस जगमगाते हुए धनुष को धारण करनेवाले कर्ण के बाणसमूहों को अपने बाणसमूहों से नष्ट कर दिया।

तथैवाधिरथिस्तस्य बाणाञ्ज्वलिततेजसः।
अस्त्रमस्त्रेण संवार्य प्राणदद् विसृजञ्छरान्॥ ३७॥
धृष्टद्युम्नश्च भीमश्च सात्यकिश्च महारथः।
विव्यधुः कर्णमासाद्य त्रिभिस्त्रिभिरजिह्मगैः॥ ३८॥
अर्जुनास्त्रं तु राधेयः संवार्य शरवृष्टिभिः।
तेषां त्रयाणां चापानि चिच्छेद विशिखैस्त्रिभिः॥ ३९॥
ते निकृत्तायुधाः शूरा निर्विषा भुजगा इव।
रथशक्तीः समुत्क्षिप्य भृशं सिंहा इवानदन्॥ ४०॥

इसीप्रकार अधिरथपुत्र कर्ण ने उस प्रज्वलित तेजवाले अर्जुन के प्रत्येक अस्त्र का तथा बाणों का अपने अस्त्रों से निवारणकर, बाणों को छोड़ते हुए जोर से गर्जना की। तब धृष्टद्युम्न, भीम तथा महारथी सात्यकि ने कर्ण पर आक्रमणकर सीधे जानेवाले तीन तीन बाणों से उसे घायल कर दिया। तब राधा पुत्र ने अर्जुन के अस्त्रों का अपनी बाण वर्षा से निवारणकर उन तीनों के धनुषों को तीन बाणों से काट दिया। अपने हथियारों के कट जाने पर विषहीन साँपों के समान उन तीनों वीरों ने रथशक्तियों को उठाकर सिंहों के समान जोर से गर्जना की।

ता भुजाग्रैर्महावेगा निसृष्टा भुजगोपमाः।
दीप्यमाना महाशक्त्यो जग्मुराधिरथिं प्रति॥ ४१॥
ता निकृत्य शरव्रातैस्त्रिभिस्त्रिभिरजिह्मगैः।
ननाद बलवान् कर्णः पार्थाय विसृजञ्छरान्॥ ४२॥
अर्जुनश्चापि राधेयं विद्ध्वा सप्तभिराशुगैः।
कर्णादवरजं बाणैर्जघान निशितैः शरैः॥ ४३॥
ततः शत्रुंजयं हत्वा पार्थः षड्भिरजिह्मगैः।
जहार सद्यो भल्लेन विपाटस्य शिरो रथात्॥ ४४॥
प्रमुखे सूतपुत्रस्य सोदर्या निहतास्त्रयः।

उनके हाथों से छूटी हुई वे सर्प के समान महान् वेगवाली जगमगाती हुई महाशक्तियाँ कर्ण की तरफ चलीं। उन शक्तियों को अपने सीधे जानेवाले तीन तीन बाणों के समूहों से काटकर वह बलवान् कर्ण अर्जुन के ऊपर बाणों को छोड़ता हुआ गर्जना करने लगा। अर्जुन ने भी राधापुत्र को सात बाणों से बींध कर, कर्ण के छोटे भाई को अपने तीखे बाणों से मार दिया। फिर अर्जुन ने छै सीधे जानेवाले बाणों से शत्रुंजय को मारकर तुरन्त रथ पर बैठे हुए विपाट का सिर भल्ल मारकर काट दिया। इसप्रकार सेना के मुहाने पर उन्होंने कर्ण के तीन सगे भाई मार दिये।

ततो भीमः समुत्पत्य स्वरथात् वैनतेयवत्॥ ४५॥
वरासिना कर्णपक्षान् जघान् दश पञ्च च।
पुनस्तु रथमास्थाय धनुरादाय चापरम्॥ ४६॥
विव्याध दशभिः कर्णं सूतमश्वांश्च पञ्चभिः।
धृष्टद्युम्नोऽप्यसिवरं चर्म चादाय भास्वरम्॥ ४७॥
जघान चन्द्रवर्माणं बृहत्क्षत्रं च नैषधम्।
ततः स्वरथमास्थाय पाञ्चाल्योऽन्यच्च कार्मुकम्॥ ४८॥
आदाय कर्णं विव्याध त्रिसप्तत्या नदन् रणे।

तब भीम ने गरुड़ के समान अपने रथ से उछल कर उत्तम तलवार से कर्ण के पक्ष के पन्द्रह योद्धाओं को मार दिया। फिर अपने रथ पर बैठकर और दूसरे धनुष को लेकर, उन्होंने दस बाणों से कर्ण को तथा उसके सारथी और घोड़ों को पाँच बाणों से घायल कर दिया। धृष्टद्युम्न ने भी चमचमाती हुई उत्तम तलवार और ढाल को लेकर, निषधदेश के बृहत्क्षत्र तथा चन्द्रवर्मा को मार दिया। फिर पांचालराजकुमार ने अपने रथ पर बैठकर और दूसरे धनुष को लेकर, युद्धक्षेत्र में गर्जना करते हुए कर्ण पर तिहत्तर बाणों की वर्षा की।

शैनेयोऽप्यन्यदादाय धनुरिन्दुसमद्युतिः॥ ४९॥
सूतपुत्रं चतुःषष्ट्या विद्ध्वा सिंह इवानदत्।
भल्लाभ्यां साधुमुक्ताभ्यां छित्त्वा कर्णस्य कार्मुकम्॥ ५०॥
पुनः कर्णं त्रिभिर्बाणैर्बाह्वोरुरसि चार्पयत्।
ततो दुर्योधनो द्रोणो राजा चैव जयद्रथः॥ ५१॥
निमज्जमानं राधेयमुज्जह्रुः सात्यकार्णवात्।

फिर चन्द्रमा के समान कान्तिवाले सात्यकि ने दूसरा धनुष लेकर सूतपुत्र कर्ण पर चौंसठ बाणों की वर्षा करते हुए सिंह के समान गर्जना की। इसके

पश्चात् उन्होंने अच्छीतरह से छोड़े हुए दो भल्लों के द्वारा कर्ण के धनुष को काटकर, फिर उसकी बाहों तथा छाती पर तीन बाणों से चोट पहुँचायी। तब दुर्योधन, द्रोणाचार्य तथा जयद्रथ ने सात्यकिरूपी सागर में डूबते हुए कर्ण का उद्धार किया।

धृष्टद्युम्नश्च भीमश्च सौभद्रोऽर्जुन एव च॥ ५२॥
नकुलः सहदेवश्च सात्यकिं जुगुपू रणे।
एवमेष महारौद्रः क्षयार्थं सर्वधन्विनाम्।
तावकानां परेषां च त्यक्त्वा प्राणानभूद् रणः॥ ५३॥

तब धृष्टद्युम्न, भीम, अभिमन्यु, अर्जुन, नकुल और सहदेव ने युद्ध में सात्यकि की रक्षा की। इस प्रकार सारे धनुर्धरों के, आपके और शत्रुपक्ष के दोनों तरफ के विनाश के लिये, प्राणों का मोह छोड़कर, वह बड़ाभयानक युद्ध चल रहा था।

ततो बले भृशलुलिते परस्परं
निरीक्षमाणे रुधिरौघसम्प्लुते।
दिवाकरेऽस्तंगिरिमास्थिते शनै-
रुभे प्रयाते शिबिराय भारत॥ ५४॥

हे भारत! जब दोनों तरफ की सेनाएँ अत्यन्त घायल होकर, खून से लथपथ बनी हुई, एकदूसरे की तरफ देख रही थीं, सूर्य के अस्ताचल की तरफ चले जाने पर, वे धीरे धीरे अपने शिविरों की तरफ चल दीं।

अठारहवाँ अध्याय : द्रोणाचार्य द्वारा चक्रव्यूह का निर्माण।

ततः प्रभातसमये द्रोणं दुर्योधनोऽब्रवीत्।
प्रणयादभिमानाच्च द्विषद्वृद्ध्या च दुर्मनाः॥ १॥
शृण्वतां सर्वयोधानां संरब्धो वाक्यकोविदः।
वरं दत्त्वा मम प्रीतः पश्चाद् विकृतवानसि॥ २॥
आशाभङ्गं न कुर्वन्ति भक्तस्यार्याः कथंचन।
ततोऽप्रीतस्तथोक्तः सन् भारद्वाजोऽब्रवीन्नृपम्॥ ३॥
नार्हसे मां तथा ज्ञातुं घटमानं तव प्रिये।
ससुरासुरगन्धर्वाः सयक्षोरगराक्षसाः॥ ४॥
नालं लोका रणे जेतुं पाल्यमानं किरीटिना।

संजय ने कहा कि तब अगले दिन सबेरा होने पर वाक्यविशारद दुर्योधन अत्यन्त क्रोध में भरकर और शत्रुओं की वृद्धि से दुःखी होकर द्रोणाचार्य के प्रति प्रेम और अभिमान के साथ सारे योद्धाओं के सुनते हुए उनसे बोला कि आपने पहले प्रसन्न होकर मुझे वर दिया और फिर उसे उलट दिया। आर्यलोग अपने भक्तों की आशाओं को किसीप्रकार भी भंग नहीं करते हैं। तब ऐसा कहे जाने पर अप्रसन्न होकर द्रोणाचार्य ने उस राजा से कहा कि तुम्हें मुझे इसप्रकार प्रतिज्ञाभंग करनेवाला नहीं समझना चाहिये। जिसकी अर्जुन रक्षा कर रहे हों, उसे देवता राक्षस, गंधर्व, यक्ष, नाग और राक्षस सहित सारे संसार के लोग भी नहीं जीत सकते।

सत्यं तात ब्रवीम्यद्य नैतज्जात्वन्यथा भवेत्॥ ५॥
अद्यैकं प्रवरं कंचित् पातयिष्ये महारथम्।
तं च व्यूहं विधास्यामि योऽभेद्यस्त्रिदशैरपि॥ ६॥
योगेन केनचिद् राजन्नर्जुनस्त्वपनीयताम्।
न ह्यज्ञातमसाध्यं वा तस्य संख्येऽस्ति किंचन॥ ७॥
तेन ह्युपात्तं सकलं सर्वज्ञानमितस्ततः।
द्रोणेन व्याहृते त्वेवं संशप्तकगणाः पुनः॥ ८॥
आह्वयन्नर्जुनं संख्ये दक्षिणामभितो दिशम्।

हे तात! मैं आज सत्य कहता हूँ, यह असत्य नहीं होगा। मैं आज किसीएक श्रेष्ठ महारथी को युद्ध में गिराऊँगा। मैं ऐसा व्यूह बनाऊँगा, जो देवताओं अर्थात् विद्वानों के द्वारा भी नहीं तोड़ा जा सकता। पर हे राजन्! अर्जुन को किसीप्रकार दूर हटादो। उसके लिये युद्ध में कुछ भी अज्ञात और असाध्य नहीं है। उसने इधरउधर से सारा ज्ञान प्राप्त कर लिया है। द्रोणाचार्य के ऐसा कहने पर संशप्तकगणों ने फिर अर्जुन को दक्षिणदिशा की तरफ जाकर युद्ध के लिये ललकारा।

ततोऽर्जुनस्याथ परैः सार्धं समभवद् रणः॥ ९॥
तादृशो यादृशो नान्यः श्रुतो दृष्टोऽपि वा क्वचित्।
तत्र द्रोणेन विहितो व्यूहो राजन् व्यरोचत॥ १०॥
चरन् मध्यंदिने सूर्यः प्रतपन्निव दुर्दृशः।
चक्रव्यूहो महाराज आचार्येणाभिकल्पितः॥ ११॥
तत्र शक्रोपमाः सर्वे राजानो विनिवेशिताः।
अरास्थानेषु विन्यस्ताः कुमाराः सूर्यवर्चसः॥ १२॥

तब अर्जुन का उन शत्रुओं के साथ ऐसा घोर युद्ध हुआ जैसा दूसरा युद्ध पहले कभी नहीं न देखा गया और न सुना गया। हे राजन्! उधर द्रोणाचार्य

ने इसप्रकार का सेना का व्यूह बनाया जो दोपहर के समय विचरते हुए दुर्दर्शनीय सूर्य के समान शत्रुओं को तपानेवाला था। हे महाराज! आचार्य ने तब चक्रव्यूह का निर्माण किया, जिसमें इन्द्र के समान अपने पक्ष के सारे राजाओं को सम्मिलित कर लिया। उसमें आरों के स्थान पर सूर्य के समान तेजस्वी राजकुमारों को स्थापित गया था।

दुर्योधनस्तु राजेन्द्र सैन्यमध्ये व्यवस्थितः।
कर्णदुःशासनकृपैर्वृतो राजा महारथैः॥ १३॥
प्रमुखे तस्य सैन्यस्य द्रोणोऽवस्थितनायकः।
सिन्धुराजस्तथातिष्ठच्छ्रीमान् मेरुरिवाचलः॥ १४॥
सिन्धुराजस्य पार्श्वस्था अश्वत्थामपुरोगमाः।
सुतास्तव महाराज त्रिंशत्त्रिदशसंनिभाः॥ १५॥
गान्धारराजः कितवः शल्यो भूरिश्रवास्तथा।
पार्श्वतः सिन्धुराजस्य व्यराजन्त महारथाः॥ १६॥
ततः प्रववृते युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम्।
तावकानां परेषां च मृत्युं कृत्वा निवर्तनम्॥ १७॥

हे राजेन्द्र! कर्ण, दुश्शासन और कृपाचार्य इन महारथियों से घिरा हुआ राजा दुर्योधन सेना के बीच में विद्यमान था। उसके अग्रभाग में सेनापति द्रोणाचार्य खड़े हुए थे। वहीं श्रीमान् सिन्धुराज जयद्रथ भी मेरु पर्वत के समान स्थिरभाव से खड़ा हुआ था। उसी के बगल में अश्वत्थामा आदि महारथी विद्यमान थे। हे महाराज! देवताओं के समान आपके तीस पुत्र, जुआरी गन्धारराज, शल्य, भूरिश्रवा ये महारथी जयद्रथ की बगल में विद्यमान थे। इसके पश्चात् मृत्यु को ही अपना प्रमाण मानकर आपके तथा शत्रुओं के योद्धाओं के बीच में रोंगटे खड़े कर देने वाला युद्ध आरम्भ होगया।

उन्नीसवाँ अध्याय : युधिष्ठिर के कहने पर अभिमन्यु की चक्रव्यूह को भेदने की तैयारी।

तदनीकमनाधृष्यं भारद्वाजेन रक्षितम्।
पार्थाः समभ्यवर्तन्त भीमसेनपुरोगमाः॥ १॥
सात्यकिश्चेकितानश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः।
कुन्तिभोजश्च विक्रान्तो द्रुपदश्च महारथः॥ २॥
केकयाश्च महावीर्याः माद्रीपुत्रौ घटोत्कचः।
युधामन्युश्च विक्रान्तः शिखण्डी चापराजितः॥ ३॥
उत्तमौजाश्च दुर्धर्षो विराटश्च महारथः।
द्रौपदेयाश्च संरब्धाः शैशुपालिश्च वीर्यवान्॥ ४॥
एते चान्ये च सगणाः कृतास्त्रा युद्धदुर्मदाः।
समभ्यधावन् सहसा भारद्वाजं युयुत्सवः॥ ५॥

द्रोणाचार्य के द्वारा संरक्षित उस दुर्धर्ष सेना का भीम आदि योद्धाओं ने डटकर मुकाबला किया। सात्यकि, चेकितान, द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्न, पराक्रमी कुन्तीभोज, महारथी द्रुपद, माद्री के दोनों पुत्र, घटोत्कच, पराक्रमी युधामन्यु, अपराजित शिखण्डी, दुर्धर्ष उत्तमौजा, महारथी विराट, क्रोध में भरे हुए द्रौपदीपुत्र, पराक्रमी शिशुपालपुत्र, महापराक्रमी केकय कुमार, ये तथा दूसरे अस्त्रविद्याकुशल, युद्ध में दुर्मद वीर अपने दलबल के साथ वहाँ विद्यमान थे। इन सब युद्ध के इच्छुकों ने द्रोणाचार्य पर तुरन्त आक्रमण कर दिया।

समीपे वर्तमानांस्तान् भारद्वाजोऽतिवीर्यवान्।
असम्भ्रान्तः शरौघेण महता समवारयत्॥ ६॥
महौघः सलिलस्येव गिरिमासाद्य दुर्भिदम्।
द्रोणं ते नाभ्यवर्तन्त वेलामिव जलाशयाः॥ ७॥
पीड्यमानाः शरै राजन् द्रोणचापविनिःसृतैः।
न शेकुः प्रमुखे स्थातुं भारद्वाजस्य पाण्डवाः॥ ८॥
तमायान्तमभिक्रुद्धं द्रोणं दृष्ट्वा युधिष्ठिरः।
बहुधा चिन्तयामास द्रोणस्य प्रतिवारणम्॥ ९॥

तब अतिपराक्रमी द्रोणाचार्य ने बिना घबराहट के अपनी महान् बाणवर्षा से उनसबका निवारण कर दिया। जैसे जल का महान् प्रवाह दुर्भेद्य पर्वत को प्राप्तकर वहीं रुक जाता है, जैसे जल के भण्डार, अपने तट का अतिक्रमण नहीं कर पाते हैं, वैसे ही वे वीर द्रोणाचार्य को पराजितकर आगे न बढ़ सके। हे राजन्! द्रोणाचार्य के धनुष से निकले हुए बाणों से पीड़ित होते हुए पाण्डववीर उनके सामने न ठहर सके। तब क्रोधमें भरे हुए और आगे बढ़ते

हुए द्रोणाचार्य को देखकर युधिष्ठिर ने उन्हें रोकने के लिये अनेकबार विचार किया।

वासुदेवादनवरं फाल्गुनाच्चामितौजसम्।
अब्रवीत् परवीरघ्नमभिमन्युमिदं वचः॥ १०॥
एत्य नो नार्जुनो गर्हेद् यथा तात तथा कुरु।
चक्रव्यूहस्य न वयं विद्मो भेदं कथंचन॥ ११॥
त्वं वार्जुनो वा कृष्णो वा भिन्द्यात् प्रद्युम्न एव वा।
चक्रव्यूहं महाबाहो पञ्चमो नोपपद्यते॥ १२॥
अभिमन्यो वरं तात याचतां दातुमर्हसि।
पितॄणां मातुलानां च सैन्यानां चैव सर्वशः॥ १३॥

तब जो श्रीकृष्ण जी तथा अर्जुन से किसी बात में कम नहीं था, उस अमिततेजस्वी और शत्रुवीरों को मारनेवाले अभिमन्यु से उन्होंने यह कहा कि हे तात! तुम ऐसा करो जिससे अर्जुन वापिस आकर हमलोगों की निन्दा न करें। हम चक्रव्यूह को भेदने की प्रक्रिया को किसीतरह से भी नहीं जानते हैं। हे महाबाहु! तुम, अर्जुन, श्रीकृष्ण और प्रद्युम्न ये चार ही इसे भेद सकते हैं पाँचवाँ कोई और इस कार्य के लिये उपयुक्त नहीं है। हे तात अभिमन्यु! तुम्हारे पिता और मामा के पक्ष के सारे योद्धा और सैनिक तुमसे याचना कर रहे हैं। तुम उन्हें वर देने में समर्थ हो।

धनंजयो हि नस्तात गर्हयेदेत्य संयुगात्।
क्षिप्रमस्त्रं समादाय द्रोणानीकं विशातय॥ १४॥

अभिमन्युरुवाच

द्रोणस्य दृढमत्युग्रमनीकप्रवरं युधि।
पितॄणां जयमाकाङ्क्षन्नवगाहेऽविलम्बितम्॥ १५॥
उपदिष्टो हि मे पित्रा योगोऽनीकविशातने।
नोत्सहे हि विनिर्गन्तुमहं कस्यांचिदापदि॥ १६॥

हे तात! अर्जुन युद्ध से लौटकर हमें कोसेंगे, यदि हम विजयी नहीं होंगे इसलिये तुम जल्दी ही अस्त्रों को धारणकर द्रोण की सेना को नष्ट करो। तब अभिमन्यु ने कहा कि मैं अपने पिताओं की विजय की इच्छा रखते हुए युद्धस्थल में द्रोणाचार्य की अत्यन्त उग्र, दृढ़ और श्रेष्ठ सेना में शीघ्र ही प्रवेश करता हूँ। मुझे पिताजी ने चक्रव्यूह की सेना को नष्ट करने की रीति तो बताई है, पर कोई आपत्ति आने पर मैं उससे बाहर नहीं निकल सकता।

युधिष्ठिर उवाच

भिन्ध्यनीकं युधां श्रेष्ठ द्वारं संजनयस्व नः।
वयं त्वानुगमिष्यामो येन त्वं तात यास्यसि॥ १७॥
धनंजयसमं युद्धे, त्वां वयं तात संयुगे।
प्रणिधायानुयास्यामो, रक्षन्तः सर्वतोमुखाः॥ १८॥

भीम उवाच

अहं ह त्वानुगमिष्यामि धृष्टद्युम्नोऽथ सात्यकिः।
पञ्चालाः केकया मत्स्यास्तथा सर्वे प्रभद्रकाः॥ १९॥
सकृद् भिन्नं त्वया व्यूहं तत्र तत्र पुनः पुनः।
वयं प्रध्वंसयिष्यामो निघ्नमाना वरान् वरान्॥ २०॥

तब युधिष्ठिर ने कहा कि हे योद्धाओं में श्रेष्ठ! तुम व्यूहबद्ध सेना का भेदन करो और हमारे लिये द्वार बना दो। हे तात! तुम जिस मार्ग से जाओगे, हम तुम्हारे पीछे पीछे उसी मार्ग से जायेंगे। हे तात! हम तुम्हें युद्ध में अर्जुन के समान समझते हुए, तुम्हारी सबतरफ से रक्षा करते हुए तुम्हारे पीछे चलेंगे। तब भीम ने कहा कि मैं, धृष्टद्युम्न, सात्यकि, पाँचालवीर, केकय, मत्स्य और सारे प्रभद्रकवीर तुम्हारे पीछे चलेंगे। तुम्हारे द्वारा तोड़े हुए व्यूह को हम उसीस्थान पर, शत्रुओं के मुख्य योद्धाओं को मारते हुए, बार बार आक्रमण करके तोड़ते रहेंगे।

अभिमन्युरुवाच

अहमेतत् प्रवेक्ष्यामि द्रोणानीकं दुरासदम्।
पतङ्ग इव संक्रुद्धो ज्वलितं जातवेदसम्॥ २१॥
तत् कर्माद्य करिष्यामि हितं यद् वंशयोर्द्वयोः।
मातुलस्य च यत् प्रीतिं करिष्यति पितुश्च मे॥ २२॥
शिशुनैकेन संग्रामे काल्यमानानि संघशः।
द्रक्ष्यन्ति सर्वभूतानि द्विषत्सैन्यानि वै मया॥ २३॥

तब अभिमन्यु ने कहा कि जैसे पतंगा प्रज्वलित अग्नि में कूद पड़ता है, वैसे ही मैं अत्यन्त क्रोध में भरकर द्रोणाचार्य की दुर्धर्ष सेना में प्रवेश करूँगा। मैं आज ऐसा पराक्रम करूँगा जो मेरे पिता और माता दोनों वंशों के लिये हितकारी होगा और वह मेरे पिता और माता दोनों को प्रसन्न करेगा। यद्यपि मैं अभी बालक हूँ, पर सारे लोग देखेंगे कि मुझ अकेले ने ही संग्राम में शत्रुसैनिकों के समूहों का संहार कर दिया है।

नाहं पार्थेन जातः स्यां न च जातः सुभद्रया।
यदि मे संयुगे कश्चिज्जीवितो नाद्य मुच्यते॥ २४॥
यदि चैकरथेनाहं समग्रं क्षत्रमण्डलम्।
न करोम्यष्टधा युद्धे न भवाम्यर्जुनात्मजः॥ २५॥

युधिष्ठिर उवाच

एवं ते भाषमाणस्य बलं सौभद्र वर्धताम्।
यत् समुत्सहसे भेत्तुं द्रोणानीकं दुरासदम्॥ २६॥

यदि कोई आज मेरे साथ युद्ध करके जीवित बच जाये, तो समझो कि मैं न तो अर्जुन का पुत्र हूँ, और न सुभद्रा के पेट से पैदा हुआ हूँ। यदि मैं अकेला ही युद्ध में सारे क्षत्रियमण्डल के आठ टुकड़े न कर दूँ, तो समझो कि मैं अर्जुन का पुत्र नहीं हूँ। तब युधिष्ठिर ने कहा कि हे सुभद्रापुत्र! ऐसी बातें कहते हुए तुम्हारा बल बढ़ता रहे। क्योंकि तुम द्रोणाचार्य की दुर्धर्ष सेना को भंग करने का उत्साह रखते हो।

बीसवाँ अध्याय : अभिमन्यु के द्वारा कौरव सेना का संहार।

संजय उवाच

सौभद्रस्तद् वचः श्रुत्वा धर्मराजस्य धीमतः।
अचोदयत यन्तारं द्रोणानीकाय भारत॥ १॥
तेन संचोद्यमानस्तु याहि याहीति सारथिः।
प्रत्युवाच ततो राजन्नभिमन्युमिदं वचः॥ २॥
अतिभारोऽयमायुष्मन्नाहितस्त्वयि पाण्डवैः।
सम्प्रधार्य क्षणं बुद्ध्या ततस्त्वं योद्धुमर्हसि॥ ३॥
आचार्यो हि कृती द्रोणः परमास्त्रे कृतश्रमः।
अत्यन्तसुखसंवृद्धस्त्वं चायुद्धविशारदः॥ ४॥

संजय ने कहा कि हे भारत! तब धीमान् धर्मराज की बात सुनकर सुभद्रापुत्र अभिमन्यु ने अपने सारथि को द्रोणाचार्य की सेना की तरफ चलने का आदेश दिया। उसके द्वारा चलो, चलो, ऐसा कहे जाने पर हे राजन्! तब सारथि ने अभिमन्यु से यह कहा कि हे आयुष्मान्! पाण्डवों ने आपके ऊपर यह बहुत भारी बोझ डाला है। आप थोडी देर बुद्धि से सोचकर फिर युद्ध कीजिये। आचार्य द्रोण कर्मकुशल हैं। अस्त्रविद्या में उन्होंने बड़ा परिश्रम किया है। आप सुख में पले हुए हैं और युद्धविद्या में उतने विशारद नहीं हैं।

अभिमन्युश्च तां वाचं कदर्थीकृत्य सारथेः।
याहीत्येवाब्रवीदेनं द्रोणानीकाय मा चिरम्॥ ५॥
ततः संनोदयामास हयानाशु त्रिहायनान्।
नातिहृष्टमनाः सूतो हेमभाण्डपरिच्छदान्॥ ६॥
ते प्रेषिताः सुमित्रेण द्रोणानीकाय वाजिनः।
द्रोणमभ्यद्रवन् राजन् महावेगपराक्रमम्॥ ७॥
तमुदीक्ष्य तथाऽऽयान्तं सर्वे द्रोणपुरोगमाः।
अभ्यवर्तन्त कौरव्याः पाण्डवाश्च तमन्वयुः॥ ८॥

अभिमन्यु ने तब सारथि की बात की अवहेलना कर उससे कहा कि चलो द्रोणाचार्य की सेना की तरफ चलो। देर मत करो। तब उसने सुनहरे साज से भूषित तीन वर्ष के घोड़ों को शीघ्रता से आगे बढ़ाया। यद्यपि उसका मन प्रसन्न नहीं था। हे राजन्! तब सारथि सुमित्र के द्वारा द्रोणाचार्य की सेना के लिये प्रेरित किये हुए वे घोड़े महान् वेग और पराक्रमवाले द्रोणाचार्य की तरफ दौड़े। उसे इसप्रकार आते हुए देखकर द्रोणआदि सारे कौरव वीर उसके सामने खड़े होगये और पाण्डववीर उसके पीछे चलने लगे।

स कर्णिकारप्रवरोच्छ्रितध्वजः
सुवर्णवर्मार्जुनिरर्जुनाद् वरः।
युयुत्सया द्रोणमुखान् महारथान्
समासदत् सिंह शिशुर्यथा द्विपान्॥ ९॥

अभिमन्यु के रथपर कर्णिकार के चिह्न से चिह्नित श्रेष्ठ और ऊँचा ध्वज लगा हुआ था। सुनहरे कवच को धारण किये हुए वह अर्जुन का पुत्र अर्जुन से भी बढ़कर वीर था। युद्ध करने की इच्छा से उसने द्रोण आदि महारथियों पर इसप्रकार से आक्रमण किया जैसे सिंह का बच्चा हाथियों पर आक्रमण करता है।

ते विंशतिपदे यत्ताः सम्प्रहारं प्रचक्रिरे।
आसीद् गाङ्ग इवावर्तो मुहूर्तमुदधाविव॥ १०॥
शूराणां युध्यमानानां निघ्नतामितरेतरम्।
संग्रामस्तुमुलो राजन् प्रावर्तत सुदारुणः॥ ११॥
प्रवर्तमाने संग्रामे तस्मिन्नतिभयंकरे।
द्रोणस्य मिषतो व्यूहं भित्त्वा प्राविशदार्जुनिः॥ १२॥
तं प्रविष्टं विनिघ्नन्तं शत्रुसंघान् महाबलम्।
हस्त्यश्वरथपत्त्यौघाः परिवव्रुरुदायुधाः॥ १३॥

अभिमन्यु के बीस कदम आगे चलने पर ही शत्रुपक्ष के योद्धा उस पर प्रहार करने लगे। उस

एक मुहूर्त के लिये सेना में ऐसे उथलपुथल होने लगी, जैसे गंगा के सागर में गिरने पर वहाँ होती है। हे राजन्! युद्ध करते हुए और एकदूसरे पर प्रहार करते हुए शूरवीरों का वह अत्यन्तभयानक और दारुण युद्ध चल रहा था। उस भयंकर संग्राम के चलते हुए अभिमन्यु द्रोणाचार्य के देखते हुए ही व्यूह को भेदकर सेना में घुस गया। तब सेना में घुसकर शत्रुओं के समूहों को मारते हुए उस महाबली को हथियार उठाये हुए हाथी, रथ, घोड़ों और पैदलों के समूहों ने घेर लिया।

तेषामापततां वीरः शीघ्रयोधी महाबलः।
क्षिप्रास्त्रो न्यवधीद् राजन् मर्मज्ञो मर्मभेदिभिः॥ १४॥
ते हन्यमाना विवशा नानालिङ्गैः शितैः शरैः।
अभिपेतुः सुबहुशः शलभा इव पावकम्॥ १५॥
ततस्तेषां शरीरैश्च शरीरावयवैश्च सः।
संतस्तार क्षितिं क्षिप्रं कुशैर्वेदिमिवाध्वरे॥ १६॥
कृत्वा कर्म रणेऽसह्यं परैरार्जुनिराहवे।
अभिनच्च पदात्योघांस्त्वदीयानेव सर्वशः॥ १७॥

हे राजन्! उन आक्रमण करते हुए शत्रुओं को वह शीघ्रता से युद्ध करनेवाला, महाबली, जल्दी अस्त्रों को चलानेवाला और मर्मस्थलों को जानने वाला वीर अपने मर्मभेदी बाणों से मारने लगा। उसके अनेकप्रकार के तीखे बाणों से मारे जाते हुए वे लोग विवश होकर बहुतबड़ी संख्या में भूमि पर ऐसे गिरने लगे, जैसे पतंगे आग पर गिर पड़ते हों। उससमय उनके मृत शरीरों और शरीरों के कटे हुए अंगों से उसने भूमि को ऐसे पाट दिया जैसे यज्ञ में वेदी पर कुश बिछाये जाते हैं। इसप्रकार अर्जुनपुत्र अभिमन्यु ने युद्ध में असह्य कर्म करके आपके पैदलसैनिकों का सभीप्रकार से विनाश कर दिया।

एवमेकेन तां सेनां सौभद्रेण शितैः शरैः।
भृशं विप्रहतां दृष्ट्वा स्कन्देनेवासुरीं चमूम्॥ १८॥
त्वदीयास्तव पुत्राश्च वीक्षमाणा दिशो दश।
संशुष्कास्याश्चलन्नेत्राः प्रस्विन्ना रोमहर्षिणः॥ १९॥
पलायनकृतोत्साहा निरुत्साहा द्विषज्जये।
गोत्रनामभिरन्योन्यं क्रन्दन्तो जीवितैषिणः॥ २०॥
हतान् पुत्रान् पितॄन् भ्रातॄन् बन्धून् संबन्धिनस्तथा।
प्रातिष्ठन्त समुत्सृज्य त्वरयन्तो हयद्विपान्॥ २१॥

इसप्रकार उस अकेले सुभद्रापुत्र के द्वारा अपने तीखे बाणों से उस सेना को कार्तिकेय के द्वारा नष्ट की हुई आसुरी सेना के समान अत्यन्तनष्ट किया हुआ देखकर आपके पुत्र और सैनिक दशों दिशाओं की तरफ देखने लगे। उससमय उनके मुख सूख गये थे, नेत्र चंचल होरहे थे। उनके रोंगटे खड़े होगये थे और शरीर में पसीना आगया था। वे उससमय भागने में ही उत्सुक थे। शत्रु पर विजय पाने के लिये उनके मन में कोई उत्साह नहीं रहा था। वे जीवन की इच्छा रखते हुए, अपने सगे सम्बन्धियों के गोत्र और नामों का उच्चारण करते हुए उनके लिये क्रन्दन कर रहे थे। वे अपने मारे गये पुत्रों, पिता समान सम्बन्धियों, भाईबन्धुओं और नातेदारों को भी छोड़कर अपने घोड़ों और हाथियों को तेजी से हाँकते हुए युद्धक्षेत्र से भाग रहे थे।

इक्कीसवाँ अध्याय : अभिमन्यु द्वारा अश्मकपुत्र का वध, शल्य का मूर्च्छित होना, कौरव सेना का पलायन।

तां प्रभग्नां चमूं दृष्ट्वा सौभद्रेणामितौजसा।
दुर्योधनो भृशं क्रुद्धः स्वयं सौभद्रमभ्ययात्॥ १॥
ततो राजानमावृत्तं सौभद्रं प्रति संयुगे।
दृष्ट्वा द्रोणोऽब्रवीद् योधान् परीप्सध्वं नराधिपम्॥ २॥
पुराभिमन्युर्लक्ष्यं नः पश्यतां हन्ति वीर्यवान्।
तमाद्रवत मा भैष्ट क्षिप्रं रक्षत कौरवम्॥ ३॥

उस अमिततेजस्वी सुभद्रापुत्र के द्वारा सेना को भगाया हुआ देखकर अत्यन्तक्रुद्ध होकर दुर्योधन ने स्वयं उस पर आक्रमण किया। तब युद्धस्थल में राजा को अभिमन्यु की तरफ जाता हुआ देखकर द्रोणाचार्य योद्धाओं से बोले कि राजा की रक्षा करो। इससे पहले कि पराक्रमी अभिमन्यु हमारे देखते हुए अपने लक्ष्य को मार गिराये, तुम शीघ्रता से कौरवराज की रक्षा करो। डरो मत।

द्रोणो द्रौणिः कृपः कर्णः कृतवर्मा च सौबलः।
बृहद्बलो मद्रराजो भूरिर्भूरिश्रवाः शलः॥ ४॥
पौरवो वृषसेनश्च विसृजन्तः शिताञ्छरान्।
सौभद्रं शरवर्षेण महता समवाकिरन्॥ ५॥
सम्मोहयित्वा तमथ दुर्योधनममोचयन्।
आस्याद् ग्रासमिवाक्षिप्तं ममृषे नार्जुनात्मजः॥ ६॥
ताञ्छरौघेण महता साश्वसूतान् महारथान्।
विमुखीकृत्य सौभद्रः सिंहनादमथानदत्॥ ७॥

तब द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, कृपाचार्य, कर्ण, कृतवर्मा, शकुनि, बृहद्बल, मद्रराज, भूरि, भूरिश्रवा, शल, पौरव और वृषसेन, ये तीखे बाणों को छोड़ते हुए अभिमन्यु को विशाल बाणवर्षा से भरने लगे। उन्होंने अभिमन्यु को मोह में डालकर उसके मुख में पहुँचे ग्रास दुर्योधन को उससे छुड़ा लिया। अभिमन्यु तब इसे सहन न कर सका। उसने विशाल बाणवर्षा के द्वारा उन महारथियों को घोड़ों और सारथियोंसहित युद्ध से विमुखकर जोर से सिंहनाद किया।

तस्य नादं ततः श्रुत्वा सिंहस्येवामिषैषिणः।
नामृष्यन्त सुसंरब्धाः पुनर्द्रोणमुखा रथाः॥ ८॥
त एनं कोष्ठकीकृत्य रथवंशेन मारिष।
व्यसृजन्निषुजालानि नानालिङ्गानि सङ्घशः॥ ९॥
तान्यन्तरिक्षे चिच्छेद पौत्रस्ते निशितैः शरैः।
तांश्चैव प्रतिविव्याध तदद्भुतमिवाभवत्॥ १०॥
तस्मिंस्तु घोरे संग्रामे वर्तमाने भयंकरे।
दुःसहो नवभिर्बाणैरभिमन्युमविध्यतः॥ ११॥
दुःशासनो द्वादशभिः कृपः शारद्वतस्त्रिभिः।
द्रोणस्तु सप्तदशभिः शरैराशीविषोपमैः॥ १२॥

तब माँस को चाहनेवाले सिंह के समान उसकी गर्जना को सुनकर अत्यन्त क्रोध में भरे हुए द्रोण आदि महारथी सहन न कर सके। हे मान्यवर! वे उसे रथसमूहों के द्वारा घेरकर तरह तरह के बाणसमूहों की उसके ऊपर वर्षा करने लगे। तब आपके उस पौत्र ने उन बाणों को आकाश में ही छिन्नभिन्नकर तीखे बाणों से उन्हें भी घायल कर दिया। यह एक अदभुत बात हुई। उस भयंकर और घोर संग्राम में तब दुःसह ने अभिमन्यु को नौ, दुश्शासन ने बारह, शरद्वान् पुत्र कृपाचार्य ने तीन, द्रोणाचार्य ने सत्रह विषैले सर्प के समान बाणों से बींध दिया।

विविंशतिस्तु सप्तत्या कृतवर्मा च सप्तभिः।
बृहद्बलस्तथाष्टाभिरश्वत्थामा च सप्तभिः॥ १३॥
भूरिश्रवास्त्रिभिर्बाणैर्मद्रेशः षड्भिराशुगैः।
द्वाभ्यां शराभ्यां शकुनिस्त्रिभिर्दुर्योधनो नृपः॥ १४॥
स तु तान् प्रतिविव्याध त्रिभिस्त्रिभिरजिह्मगैः।
नृत्यन्निव महाराज चापहस्तः प्रतापवान्॥ १५॥
गरुडानिलरंहोभिर्यन्तुर्वाक्यकरैर्हयैः।
दान्तैरश्मकदायादस्त्वरमाणो ह्यवारयत्॥ १६॥
विव्याध दशभिर्बाणैस्तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत्।

विविंशति ने सत्तर, कृतवर्मा ने सात, बृहद्बल ने आठ, अश्वत्थामा ने सात, भूरिश्रवा ने तीन, मद्रराज ने छैः शीघ्रगामी, शकुनि ने दो और राजा दुर्योधन ने तीन बाणों से उस पर प्रहार किया। हे महाराज! तब उस प्रतापी और धनुष हाथ में लिये हुए अभिमन्यु ने नृत्य सा करते हुए उन सबको बदले में सीधे जानेवाले तीन तीन बाणों से बींध दिया। तब सारथि के आदेश पर चलनेवाले, गरुड़ और वायु के समान वेगशाली अनुशासित घोड़ों के द्वारा शीघ्रता से वहाँ आकर अश्मक के पुत्र ने अभिमन्यु को रोका और उसे दस बाणों से बींध कर उसे ठहर ठहर ऐसा कहा।

तस्याभिमन्युर्दशभिर्हयान् सूतं ध्वजं शरैः॥ १७॥
बाहू धनुः शिरश्चोर्व्यां स्मयमानोऽभ्यपातयत्।
ततः कर्णः कृपो द्रोणो द्रौणिर्गान्धारराट्शलः॥ १८॥
शल्यो भूरिश्रवाः क्राथः सोमदत्तो विविंशतिः।
वृषसेनः सुषेणश्च कुण्डभेदी प्रतर्दनः॥ १९॥
वृन्दारको ललित्थश्च प्रबाहुर्दीर्घलोचनः।
दुर्योधनश्च संक्रुद्धः शरवर्षैरवाकिरन्॥ २०॥

तब अभिमन्यु ने मुस्कराते हुए दस बाणों से उसके घोड़ों, सारथि, ध्वज, हाथों, धनुष और सिर को काटकर भूमि पर गिरा दिया। तब कर्ण, कृपाचार्य, द्रोण, अश्वत्थामा, गान्धारराज शकुनि, शल, शल्य, भूरिश्रवा, क्राथ, सोमदत्त, विविंशति वृषसेन, सुषेण, कुण्डभेदी, प्रतर्दन, वृन्दारक, ललित्थ, प्रबाहु, दीर्घलोचन और दुर्योधन ने अत्यन्तक्रुद्ध होकर उसे बाणों की वर्षा से भर दिया।

सोऽतिविद्धो महेष्वासैरभिमन्युरजिह्मगैः।
शरमादत्त कर्णाय वर्मकायावभेदिनम्॥ २१॥

तस्य भित्त्वा तनुत्राणं देहं निर्भिद्य चाशुगः।
प्राविशद् धरणीं वेगाद् वल्मीकमिव पन्नगः॥ २२॥
स तेनातिप्रहारेण व्यथितो विह्वलन्निवः।
संचचाल रणे कर्णः क्षितिकम्पे यथाचलः॥ २३॥
तथान्यैर्निशितैर्बाणैः सुषेणं दीर्घलोचनम्।
कुण्डलभेदिं च संक्रुद्धस्त्रिभिस्त्रीनवधीद् बली॥ २४॥

उन महाधनुर्धरों के सीधे जानेवाले बाणों से अत्यन्तघायल होकर अभिमन्यु ने तब कर्ण के लिये एक ऐसे बाण का सन्धान किया जो उसके कवच और काया को भेदनेवाला था। वह शक्तिगामी बाण कर्ण के कवच को काटकर और शरीर को भेदकर वेगपूर्वक भूमि में ऐसे धँस गया जैसे साँप बाम्बी में घुस जाता है। उस भयंकर प्रहार से बेचैन होता हुआ कर्ण युद्धस्थल में ऐसे काँपने लगा, जैसे भूचाल आने पर पहाड़ हिलने लगता है। फिर उस बलवान् और क्रोध में भरे हुए अभिमन्यु ने दूसरे तीखे तीन तीन बाणों से सुषेण, दीर्घलोचन और कुण्डलभेदी को बींध दिया।

कर्णस्तं पञ्चविंशत्या नाराचानां समार्पयत्।
अश्वत्थामा च विंशत्या कृतवर्मा च सप्तभिः॥ २५॥
ततः स विद्धोऽस्त्रविदा मर्मभिद्भिरजिह्मगैः।
शल्यो राजन् रथोपस्थे निषसाद मुमोह च॥ २६॥
तं हि दृष्ट्वा तथा विद्धं सौभद्रेण यशस्विना।
सम्प्राद्रवच्चमूः सर्वा भारद्वाजस्य पश्यतः॥ २७॥

तब कर्ण ने उस पर पच्चीस नाराचों की अश्वत्थामा ने बीस और कृतवर्मा ने सात की वर्षा की। उस अस्त्रविद्या के पंडित अभिमन्यु के द्वारा सीधे जानेवाले बाणों से अपने मर्मस्थानों के बिंधने के कारण हे राजन्! शल्य रथ की बैठक में बैठकर मूर्च्छित हो गये। उस यशस्वी सुभद्राकुमार के द्वारा शल्य को इसप्रकार घायल देखकर द्रोणाचार्य के देखते हुए ही सारी सेना भागने लगी।

बाईसवाँ अध्याय : अभिमन्यु द्वारा शल्य के भाई का वध। द्रोणाचार्य की रथसेना का पलायन।

मद्रेशं सादितं दृष्ट्वा सौभद्रेणाशुगै रणे।
शल्यादवरजः क्रुद्धः किरन् बाणान् समभ्ययात्॥ १॥
स विद्ध्वा दशभिर्बाणैः साश्वयन्तारमार्जुनिम्।
उदक्रोशन्महाशब्दं तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत्॥ २॥
तस्यार्जुनिः शिरोग्रीवं पाणिपादं धनुर्हयान्।
छत्रं ध्वजं नियन्तारं त्रिवेणुं तल्पमेव च॥ ३॥
चक्रं युगं च तूणीरं ह्यनुकर्षं च सायकैः।
पताकां चक्रगोप्तारौ सर्वोपकरणानि च॥ ४॥
लघुहस्तः प्रचिच्छेद ददृशे तं न कश्चन।
स पपात क्षितौ क्षीणः प्रविद्धाभरणाम्बरः॥ ५॥
वायुनेव महाशैल सम्भग्नोऽमिततेजसा।

सुभद्रा के पुत्र द्वारा शीघ्रगामी बाणों से मद्रराज को घायल किया हुआ देखकर शल्य का छोटा भाई क्रोध में भरकर बाणों की वर्षा करता हुआ अभिमन्यु पर चढ़कर आया। उसने दस बाणों से घोड़ों और सारथिसहित अर्जुनपुत्र को बींधकर जोर से जयघोष किया तथा ठहर ठहर यह कहा। तब शीघ्रता से हाथ चलानेवाले अभिमन्यु ने उसके सिर, गर्दन, हाथ पैर, धनुष, घोड़ों, छत्र, ध्वज, सारणि, त्रिवेणु, तल्प, पहिये, धुरा, तरकस, अनुकर्ष, पताका, पृष्ठ रक्षकों, और सारे उपकरणों को अपने बाणों से इतनी शीघ्रता से काट दिया कि कोई उसे देख नहीं सका और वह फटे हुए वस्त्र भूषणों के साथ मरकर ऐसे भूमि पर गिर पड़ा जैसे अत्यन्तप्रचण्ड वायु के द्वारा किसी महान् पर्वत को गिरा दिया गया हो।

शल्यभ्रातर्यथारुग्णे बहुशस्तस्य सैनिकाः॥ ६॥
कुलाधिवासनामानि श्रावयन्तोऽर्जुनात्मजम्।
अभ्यधावन्त संक्रुद्धा विविधायुधपाणयः॥ ७॥
रथैरश्वैर्गजैश्चान्ये पद्भिश्चान्ये बलोत्कटाः।
बाणशब्देन महता रथनेमिस्वनेन च॥ ८॥
हुंकारैः क्ष्वेडितोत्क्रुष्टैः सिंहनादैः सगर्जितैः।
ज्यातलत्रस्वनैरन्ये गर्जन्तोऽर्जुननन्दनम्॥ ९॥
ब्रुवन्तश्च न नो जीवन् मोक्ष्यसे जीवितादिति।

शल्य के भाई के मारे जाने पर उसके बहुत से सैनिक अपने कुल और निवासस्थानों के नाम सुनाते हुए, अत्यन्तक्रुद्ध होकर अनेकप्रकार के आयुध हाथ में लिये अर्जुन के पुत्र की तरफ दौड़े। उनमें से कितने ही वीर रथों, घोड़ों और हाथियों

पर सवार थे, दूसरे अत्यन्तबलशाली योद्धा पैदल ही दौड़ पड़े। बाणों की सनसनाहट, रथों के पहियों की घर्घराहट, हुंकार, कोलाहल, ललकार, सिंहनाद, गर्जन, धनुष की टंकार और हस्तत्राणों की ध्वनि के साथ गर्जते हुए वे योद्धा यह कहते हुए कि अब तू हमारे हाथ से जीवित नहीं छूट सकता, तुझे जीवन से हाथ धोना ही पड़ेगा, अर्जुनपुत्र पर टूट पड़े।

तांस्तथा ब्रुवतो दृष्ट्वा सौभद्रः प्रहसन्निव॥ १०॥
यो योऽस्मै प्राहरत् पूर्वं तं तं विव्याध पत्रिभिः।
संदर्शयिष्यन्नस्त्राणि विचित्राणि लघूनि च॥ ११॥
आर्जुनिः समरे शूरो मृदुपूर्वमयुध्यत।
वासुदेवादुपात्तं यदस्त्रं यच्च धनंजयात्॥ १२॥
अदर्शयत तत् कार्ष्णिः कृष्णाभ्यामविशेषवत्।
दूरमस्य गुरुं भारं साध्वसं च पुनः पुनः॥ १३॥
संदधद् विसृजंश्चेषून् निर्विशेषमदृश्यत।

उनको इसप्रकार बोलते हुए देख सुभद्रापुत्र ने हँसते हुए जिस जिसने उस पर पहले प्रहार किया उसी उसी को अपने बाणों से बींध दिया। अर्जुन के शूरवीर पुत्र ने पहले अपने विचित्र और शीघ्रगामी अस्त्रों का प्रदर्शन करते हुए मृदुभाव से युद्ध किया। उसने श्रीकृष्ण जी और अर्जुन से जो जो अस्त्र प्राप्त किये थे, उनका उन दोनों के समान ही प्रयोग करके दिखाया। उससे भारी भार, और भय उससमय दूर हो गया था। वह बार बार बाणों का सन्धान करता और उन्हें छोड़ता हुआ एकसमान ही दिखाई देता था।

चापमण्डलमेवास्य विस्फुरद् दिक्ष्वदृश्यत॥ १४॥
सुदीप्तस्य शरत्काले सवितुर्मण्डलं यथा।
ज्याशब्दः शुश्रुवे तस्य तलशब्दश्च दारुणः॥ १५॥
महाशनिमुचः काले पयोदस्येव निःस्वनः।
मृदुर्भूत्वा महाराज दारुणः समपद्यत॥ १६॥
वर्षाभ्यतीतो भगवाञ्छरदीव दिवाकरः।

जैसे शरद् ऋतु में अत्यन्तप्रकाशित होनेवाले सूर्य का मण्डल दिखाई देता है, वैसे ही अभिमन्यु का मण्डलाकार धनुष ही सारी दिशाओं से उद्भासित होता हुआ दिखाई देरहा था। विशाल ओलावृष्टि करते हुए बादलों की गर्जना के समान उसकी प्रत्यंचा की दारुण टंकार तथा हथेली का शब्द सुनाई दे रहा था। हे महाराज! जैसे वर्षाकाल में सूर्य मृदु होकर शरद्ऋतु में प्रचण्ड हो जाता है, वैसे ही उसने पहले मृदु भाव से युद्ध किया और फिर वह शत्रुओं के लिये प्रचण्ड होगया।

शरान् विचित्रान् सुबहून् रुक्मपुङ्खाञ्छिलाशितान्॥ १७॥
मुमोच शतशः क्रुद्धो गभस्तीनिव भास्करः।
क्षुरप्रैर्वत्सदन्तैश्च विपाठैश्च महायशाः॥ १८॥
नाराचैरर्धचन्द्राभैर्भल्लै- रञ्जलिकैरपि।
अवाकिरद् रथानीकं भारद्वाजस्य पश्यतः।
ततस्तत्सैन्यमभवद् विमुखं शरपीडितम्॥ १९॥

जैसे सूर्य अपनी किरणों को सबतरफ बिखेर देते हैं, वैसे ही उसने क्रोध में भरकर अपने विचित्र प्रकार के बहुतप्रकार के सुनहरे पंखवाले, शिला पर तेज किये हुए सैकड़ों बाणों की वर्षा की। द्रोणाचार्य के देखते हुए ही उनकी रथसेना पर क्षुरप्र, वत्सदन्त, विपाठ, नाराच, अर्धचन्द्राकार, भल्ल, अञ्जलिक आदि बाणों की वर्षा आरम्भ कर दी। जिससे उन बाणों से पीड़ित होकर वह सेना युद्ध से विमुख होकर भागने लगी।

तेईसवाँ अध्याय : द्रोण द्वारा अभिमन्यु की प्रशंसा। दुश्शासन का अभिमन्यु से युद्ध।

धृतराष्ट्र उवाच

द्वैधीभवति मे चित्तं ह्रिया तुष्ट्या च संजय।
मम पुत्रस्य यत् सैन्यं सौभद्रः समवारयत्॥ १॥
विस्तरेणैव मे शंस सर्वं गावल्गणे पुनः।
विक्रीडितं कुमारस्य स्कन्दस्येवासुरैः सह॥ २॥

संजय उवाच

अभिमन्युः कृतोत्साहः कृतोत्साहानरिंदमान्।
रथस्थो रथिनः सर्वांस्तावकानभ्यवर्षयत्॥ ३॥
द्रोणं कर्णं कृपं शल्यं द्रौणिं भोजं बृहद्बलम्।
दुर्योधनं सौमदत्तिं शकुनिं च महाबलम्॥ ४॥
नानानृपान् नृपसुतान् सैन्यानि विविधानि च।
अलातचक्रवत् सर्वांश्चरन् बाणैः समार्पयत्॥ ५॥

धृतराष्ट्र ने कहा कि हे संजय! मेरे पुत्र की सेना को सुभद्रापुत्र ने जो आगे बढ़ने से रोक दिया, उससे

मेरा हृदय हर्ष और लज्जा के कारण दो भागों में बँट गया है। हे गवल्गण के पुत्र! जैसे कार्तिकेय ने असुरों की सेना के साथ युद्धक्रीड़ा की थी, वैसे ही कुमार अभिमन्यु ने जो क्रीड़ा की उसका तुम विस्तार से वर्णन करो। तब संजय ने कहा कि रथ में बैठा हुआ अभिमन्यु उत्साह से भरा हुआ था, वह उत्साह में भरे हुए, शत्रुदमन उन रथियों के ऊपर बाणों की वर्षा करने लगा। उसने अलातचक्र की तरह सबतरफ घूमते हुए द्रोणाचार्य, कर्ण, कृपाचार्य, शल्य, अश्वत्थामा, कृतवर्मा, बृहद्‌बल, दुर्योधन, भूरिश्रवा, महाबली शकुनि तथा दूसरे राजाओं, राजकुमारों और अनेकप्रकार की सेनाओं पर बाणों से प्रहार किये।

अथाब्रवीन्महाप्राज्ञो भारद्वाजः प्रतापवान्।
हर्षेणोत्फुल्लनयनः कृपमाभाष्य सत्वरम्॥ ६॥
घट्टयन्निव मर्माणि पुत्रस्य तव भारत।
अभिमन्युं रणे दृष्ट्वा तदा रणविशारदम्॥ ७॥
एष गच्छति सौभद्रः पार्थानां प्रथितो युवा।
नन्दयन् सुहृदः सर्वान् राजानं च युधिष्ठिरम्॥ ८॥
नकुलं सहदेवं च भीमसेनं च पाण्डवम्।
बन्धून् सम्बन्धिनश्चान्यान् मध्यस्थान् सुहृदस्तथा॥ ९॥
नास्य युद्धे समं मन्ये कंचिदन्यं धनुर्धरम्।
इच्छन् हन्यादिमां सेनां किमर्थमपि नेच्छति॥ १०॥

तब महाप्राज्ञ, प्रतापी द्रोणाचार्य के नेत्र हर्ष से खिल उठे। हे भारत! उन्होंने तुरंत कृपाचार्य को सम्बोधन करके आपके पुत्रों के मर्मस्थलों पर चोट सी करते हुए, युद्धविशारद अभिमन्यु को युद्ध में कौशल दिखाते हुए देखकर कहा कि यह कुन्तीपुत्रों को प्रसिद्ध नवयुवक, सुभद्रा का पुत्र अपने सारे मित्रों को, राजा युधिष्ठिर को, नकुल, सहदेव और पाण्डुपुत्र भीमसेन को, बन्धुओं को, सम्बन्धियों को और दूसरे मध्यस्थ कुटुम्बियों को हर्षित करता हुआ जारहा है। मैं इसके समान किसी दूसरे धनुर्धर को नहीं मानता। यह चाहे तो सारी सेना को नष्ट कर सकता है। पर पता नहीं यह ऐसा क्यों नहीं चाहता?

द्रोणस्य प्रीतिसंयुक्तं श्रुत्वा वाक्यं तवात्मजः।
आर्जुनिं प्रति संक्रुद्धो द्रोणं दृष्ट्वा स्मयन्निव॥ ११॥
अथ दुर्योधनः कर्णमब्रवीद् बाह्लिकं नृपः।
दुःशासनं मद्रराजं तांस्तथान्यान् महारथान्॥ १२॥

सर्वभूर्धाभिषिक्तानामाचार्यो ब्रह्मवित्तमः।
अर्जुनस्य सुतं मूढं नायं हन्तुमिहेच्छति॥ १३॥
न ह्यस्य समरे युद्धयेदन्तकोऽप्याततायिनः।
किमङ्ग पुनरेवान्यो मर्त्यः सत्यं ब्रवीमि वः॥ १४॥

तब द्रोणाचार्य के उन प्रेमभरे वचनों को सुनकर अभिमन्यु के प्रति अत्यन्त क्रोध में भरकर, मुस्कराते हुए से द्रोणाचार्य की तरफ देखकर, वह राजा दुर्योधन आपका पुत्र कर्ण, बाह्लीक, दुश्शासन मद्रराज और दूसरे दूसरे महारथियों से बोला कि ये सारे मूर्धाभिषिक्त राजाओं के आचार्य, सर्वश्रेष्ठ ब्रह्मविद्या के वेत्ता, अर्जुनके इस मूढ पुत्र को मारना नहीं चाहते। मैं यह सत्य कहता हूँ कि यदि ये मारने के लिये उद्यत हो जायें, तो युद्ध में इनके सामने मृत्यु भी नहीं ठहर सकती, फिर किसीदूसरे पुरुष की तो बात ही क्या है?

अर्जुनस्य सुतं त्वेष शिष्यत्वादभिरक्षति।
शिष्याः पुत्राश्च दयितास्तदपत्यं च धर्मिणाम्॥ १५॥
संरक्ष्यमाणो द्रोणेन मन्यते वीर्यमात्मनः।
आत्मसम्भावितो मूढस्तं प्रमथ्नीत मा चिरम्॥ १६॥
एवमुक्तास्तु ते राज्ञा सात्वतीपुत्रमभ्ययुः।
संरब्धास्ते जिघांसन्तो भारद्वाजस्य पश्यतः॥ १७॥
दुःशासनस्तु तच्छ्रुत्वा दुर्योधनवचस्तदा।
अब्रवीत् कुरुशार्दूल दुर्योधनमिदं वचः॥ १८॥

पर क्योंकि अर्जुन इनके शिष्य हैं, इसलिये ये उनके पुत्र की रक्षा कर रहे हैं। शिष्य और पुत्र तो प्रिय होते ही हैं। धर्मात्मा पुरुषों को उनकी सन्तानें भी प्रिय होती हैं। द्रोणाचार्य से सुरक्षित होकर ही यह मूर्ख अभिमन्यु अपने को पराक्रमी समझ रहा है और अपनी श्लाघा कर रहा है। तुम लोग मिलकर इसे जल्दी ही मथ डालो। ऐसा कहने पर वे राजालोग अत्यन्त क्रोध में भरकर द्रोणाचार्य के देखते हुए, अभिमन्यु को मारने की इच्छा से उसके ऊपर टूट पड़े। हे कौरवसिंह! तब दुर्योधन की बात सुनकर दुश्शासन ने दुर्योधन से यह कहा कि–

अहमेनं हनिष्यामि महाराज ब्रवीमि ते।
मिषतां पाण्डुपुत्राणां पञ्चालानां च पश्यताम्॥ १९॥
श्रुत्वा कृष्णौ मया ग्रस्तं सौभद्रमतिमानिनौ।
गमिष्यतः प्रेतलोकं जीवलोकान्न संशयः॥ २०॥

तौ च श्रुत्वा मृतौ व्यक्तं पाण्डोः क्षेत्रोद्भवाः सुताः।
एकाह्ना ससुहृद्वर्गाः क्लैब्याद्धास्यन्ति जीवितम्॥ २१॥

हे महाराज! मैं आपसे यह कहता हूँ कि मैं इसको पाँचालों और पाण्डुपुत्रों के देखते हुए ही मार दूँगा। इसमें कोई संशय नहीं है कि मेरे द्वारा मारे गये अभिमन्यु के बारे में सुनकर अत्यन्त अभिमानी श्रीकृष्ण और अर्जुन इस लोक को छोड़कर मृत्युलोक को चले जायेंगे। फिर उनदोनों को मरा हुआ सुनकर वे शेष चारों पाण्डुपुत्र एक दिन में ही कायरतावश अपने मित्रोंसहित प्राणों को त्याग देंगे।

एवमुक्त्वानदद् राजन् पुत्रो दुःशासनस्तव।
सौभद्रमभ्ययात् क्रुद्धः शरवर्षैरवाकिरन्॥ २२॥
तमतिक्रुद्धमायान्तं तव पुत्रमरिंदमः।
अभिमन्युः शरैस्तीक्ष्णैः षड्विंशत्या समार्पयत्॥ २३॥

हे राजन्! ऐसा कहकर आपके पुत्र दुश्शासन ने फिर जोर से गर्जना की और क्रोध में भरकर, बाण वर्षा करते हुए सुभद्रापुत्र पर आक्रमण कर दिया। तब अत्यन्त क्रोध में भरकर आते हुए आपके पुत्र पर उस शत्रुदमन अभिमन्यु ने तीखे छब्बीस बाणों से प्रहार किया।

चौबीसवाँ अध्याय : अभिमन्यु द्वारा दुश्शासन और कर्ण की पराजय। कर्ण के भाई का वध, सेना का संहार।

शरविक्षतगात्रं तु प्रत्यमित्रमवस्थितम्।
अभिमन्युः स्मयन् धीमान् दुःशासनमथाब्रवीत्॥ १॥
दिष्ट्या पश्यामि संग्रामे मानिनं शूरमागतम्।
निष्ठुरं त्यक्तधर्माणमाक्रोशनपरायणम्॥ २॥
यत् सभायां त्वया राज्ञो धृतराष्ट्रस्य शृण्वतः।
कोपितः परुषैर्वाक्यैर्धर्मराजो युधिष्ठिरः॥ ३॥
जयोन्मत्तेन भीमश्च बह्वबद्धं प्रभाषितः।
अक्षकूटं समाश्रित्य सौबलस्यात्मनो बलम्॥ ४॥
तत् त्वयेदमनुप्राप्तं तस्य कोपान्महात्मनः।

अभिमन्यु के बाणों से जिसका शरीर घायल हो गया था, उस विपक्ष में खड़े हुए दुश्शासन से धीमान् अभिमन्यु मुस्कराकर बोला कि सौभाग्य की बात है कि मैं तुझजैसे अभिमानी शूर को, जिसने धर्म को छोड़ दिया है, जो निष्ठुर है और दूसरों की निन्दा में लगा रहता है, संग्राम में आया हुआ देख रहा हूँ। तूने जो सभा में राजा धृतराष्ट्र के सुनते हुए ही कठोर वाक्यों से धर्मराज युधिष्ठिर को कुपित किया था, शकुनि की अपनी शक्ति कपट जूए का सहारा लेकर जीत से मस्त होकर भीम से बहुत सी ऊटपटांग बातें कहीं थीं, उन्हीं महात्माओं के क्रोध से तुझे आज यह अवस्था प्राप्त हुई है।

स तस्योग्रमधर्मस्य फलं प्राप्नुहि दुर्मते॥ ५॥
शासितास्म्यद्य ते बाणैः सर्वसैन्यस्य पश्यतः।
अद्याहमनृणस्तस्य कोपस्य भविता रणे॥ ६॥
अमर्षितायाः कृष्णायाः काङ्क्षितस्य च मे पितुः।
अद्य कौरव्य भीमस्य भवितास्म्यनृणो युधि॥ ७॥
न हि मे मोक्ष्यसे जीवन् यदि नोत्सृजसे रणम्।
एवमुक्त्वा महाबाहुर्बाणं दुःशासनान्तकम्॥ ८॥
संदधे परवीरघ्नः कालाग्न्यनिलवर्चसम्।

अरे दुर्मति! तू अपने उस अधर्म का उग्रफल प्राप्त कर। आज मैं सारी सेना के देखते हुए अपने बाणों से तुझे दण्ड दूँगा। आज मैं युद्ध में अपने पितरों के कोप का बदला चुकाकर उऋण हो जाऊँगा। अरे कौरव! आज मैं क्रोध में भरी हुई माता द्रौपदी और अपने पितृतुल्य भीम की इच्छा को पूराकर युद्ध में उनके ऋण से उऋण हो जाऊँगा। यदि तू युद्धभूमि को छोड़कर भाग नहीं जायेगा तो तू जीतेजी मेरे हाथ से छूट नहीं सकता। ऐसा कहकर उस शत्रुवीरों को मारनेवाले, महाबाहु ने मृत्यु, अग्नि और वायु के समान तेजस्वी बाण का संधान किया।

तस्योरस्तूर्णमासाद्य जत्रुदेशे विभिद्य तम्॥ ९॥
जगाम सह पुङ्खेन वल्मीकमिव पन्नगः।
अथैनं पञ्चविंशत्या पुनरेव समार्पयत्॥ १०॥
शरैरग्निसमस्पर्शैराकर्ण- समचोदितैः।
स गाढविद्धो व्यथितो रथोपस्थ उपाविशत्॥ ११॥
दुःशासनो महाराज कश्मलं चाविशन्महत्।
सारथिस्त्वरमाणस्तु दुःशासनमचेतनम्॥ १२॥
रणमध्यादपोवाह सौभद्रशरपीडितम्।

वह बाण तुरन्त उसके वक्षस्थल के पास पहुँचकर, उसके हँसली के स्थान को भेदकर, पंखसहित उसमें ऐसे घुस गया, जैसे साँप बाँबी में घुस जाता है। फिर उसने पच्चीस बाण और उस पर बरसाये। कान तक धनुष को खींचकर छोड़े हुए उन अग्नि के समान स्पर्शवाले बाणों से वह अत्यन्त घायल और व्यथित होकर रथ की बैठक में बैठ गया। हे महाराज! तब दुश्शासन को भारी मूर्च्छा हो गयी। अभिमन्यु के बाणों से पीड़ित उस अचेतन दुश्शासन को उसका सारथि शीघ्रता से युद्धभूमि से बाहर ले गया।

दुर्योधनो महाराज राधेयमिदमब्रवीत्॥ १३॥
पश्य दुःशासनं वीरमभिमन्युवशं गतम्।
प्रतपन्तमिवादित्यं निघ्नन्तं शात्रवान् रणे॥ १४॥
ततः कर्णः शरैस्तीक्ष्णैरभिमन्युं दुरासदम्।
अभ्यवर्षत संक्रुद्धः पुत्रस्य हितकृत् तव॥ १५॥
अभिमन्युस्तु राधेयं त्रिसप्तत्या शिलीमुखैः।
अविध्यत् त्वरितो राजन् द्रोणं प्रेप्सुर्महामनाः॥ १६॥

हे महाराज! तब दुर्योधन ने कर्ण से यह कहा कि देखो दुश्शासन सूर्य के समान तमतमाता हुआ युद्ध में शत्रुओं को मार रहा था पर वह वीर अब अभिमन्यु के बस में हो रहा है। तब कर्ण अत्यन्त क्रोध में भरकर, आपके पुत्र का हित करने के लिये दुर्धर्ष अभिमन्यु के ऊपर तीखे बाणों की वर्षा करने लगा। हे राजन्! तब महामना अभिमन्यु ने जो द्रोणाचार्य के समीप पहुँचने का इच्छुक था, कर्ण पर शीघ्रता से तिहत्तर बाणों की वर्षाकर उसे घायल कर दिया।

ततः कर्णो जयप्रेप्सुर्मानी सर्वधनुष्मताम्।
सौभद्रं शतशोऽविध्यदुत्तमास्त्राणि दर्शयन्॥ १७॥
सोऽस्त्रैरस्त्रविदां श्रेष्ठो रामशिष्यः प्रतापवान्।
स तथा पीड्यमानस्तु राधेयेनास्त्रवृष्टिभिः॥ १८॥
समरेऽमरसंकाशः सौभद्रो न व्यशीर्यत।
धनुर्मण्डलनिर्मुक्तैः शरैराशीविषोपमैः॥ १९॥
सच्छत्रध्वजयन्तारं साश्वमाशु स्मयन्निव।

तब विजय के इच्छुक, सारे धनुर्धरों में सम्मानित, अस्त्रवेत्ताओं में श्रेष्ठ, परशुराम के शिष्य प्रतापी कर्ण ने अपने उत्तम अस्त्रों का प्रदर्शन करते हुए, अभिमन्यु को अपने बाणों से अनेक स्थानों से घायल कर दिया। पर बाणवर्षा के द्वारा कर्ण से पीड़ित होने पर भी देवों के समान अभिमन्यु युद्ध में शिथिल नहीं हुआ। उसने मुस्कराते हुए से अपने मण्डलाकार धनुष से छूटे हुए बाणों से, जो विषैले सर्प के समान तीव्र थे, जल्दी ही कर्ण को छत्र, ध्वज, सारथि और घोड़ोंसहित घायल कर दिया।

कर्णोऽपि चास्य चिक्षेप बाणान् संनतपर्वणः॥ २०॥
असम्भ्रान्तश्च तान् सर्वानगृह्णात् फाल्गुनात्मजः।
ततो मुहूर्तात् कर्णस्य बाणेनैकेन वीर्यवान्॥ २१॥
सध्वजं कार्मुकं वीरश्छित्त्वा भूमावपातयत्।
ततः कृच्छ्रगतं कर्णं दृष्ट्वा कर्णादनन्तरः॥ २२॥
सौभद्रमभ्ययात् तूर्णं दृढमुद्यम्य कार्मुकम्।
सोऽतिगर्जन् धनुष्पाणिर्ज्यां विकर्षन् पुनः पुनः॥ २३॥
तयोर्महात्मनोस्तूर्णं रथान्तरमवापतत्।
सोऽविध्यद् दशभिर्बाणैरभिमन्युं दुरासदम्॥ २४॥
सच्छत्रध्वजयन्तारं साश्वमाशु स्मयन्निव।

कर्ण ने भी उसके ऊपर झुकी हुई गाँठवाले बाण चलाये, पर अर्जुन के पुत्र ने बिना घबराये, उन सबका सामना किया। फिर उस पराक्रमी ने एक एक बाण से कर्ण के ध्वजसहित धनुष को काट भूमि पर गिरा दिया। तब कर्ण को संकट में पड़ा हुआ देखकर कर्ण के छोटे भाई ने शीघ्रता से एक दृढ़ धनुष को उठाकर सुभद्रापुत्र पर आक्रमण किया। धनुष को हाथ में लेकर प्रत्यंचा को बार बार खींचता हुआ और जोर से गर्जना करता हुआ वह उनदोनों मनस्वियों के बीच में आ गया। उसने मुस्कराते हुए दस बाणों से दुर्धर्ष अभिमन्यु को छत्र, ध्वज, और घोड़ों सहित शीघ्रता से बींध दिया।

तस्याभिमन्युरायम्य स्मयन्नेकेन पत्रिणा॥ २५॥
शिरः प्रच्यावयामास तद्रथात् प्रापतद् भुवि।
कर्णिकारमिवाधूतं वातेनापतितं नगात्॥ २६॥
भ्रातरं निहतं दृष्ट्वा राजन् कर्णो व्यथां ययौ।
विमुखीकृत्य कर्णं तु सौभद्रः कङ्कपत्रिभिः॥ २७॥
अन्यानपि महेष्वासांस्तूर्णमेवाभिदुद्रुवे।
कर्णस्तु बहुभिर्बाणैरर्द्यमानोऽभिमन्युना॥ २८॥
अपायाज्जवनैरश्वैस्ततोऽनीकम- भज्यत।

तब अभिमन्यु ने मुस्कराते हुए धनुष को खींचकर एक बाण से उसके सिर को धड़ से अलग कर दिया। वह रथ से ऐसे गिर पड़ा जैसे कनेर का पेड़ वायु के द्वारा पर्वत से गिर पड़े। हे राजन्! भाई को मारा

हुआ देखकर कर्ण बड़ाव्यथित हुआ और युद्ध से विमुख हो गया। कर्ण को युद्ध से विमुखकर सुभद्रापुत्र ने कंकपत्रवाले बाणों से दूसरे महाधनुर्धरों पर भी शीघ्रता से आक्रमण कर दिया। कर्ण तो तब अभिमन्यु के बहुतसे बाणों से पीड़ित होकर शीघ्रगामी घोड़ों द्वारा युद्ध से भाग गया। तब सेना में भगदड़ मच गयी।

स कक्षेऽग्निरिवोत्सृष्टो निर्दहंस्तरसा रिपून्॥ २९॥
मध्ये भारतसैन्यानामार्जुनिः पर्यवर्तत।
रथनागाश्वमनुजानर्दयन् निशितैः शरैः॥ ३०॥
सम्प्रविश्याकरोद् भूमिं कबन्धगणसंकुलाम्।
सायुधाः साङ्गुलित्राणाः सगदाः साङ्गदा रणे॥ ३१॥
दृश्यन्ते बाहवश्छिन्ना हेमाभरणभूषिताः।
शराश्चापानि खड्गाश्च शरीराणि शिरांसि च॥ ३२॥
सकुण्डलानि स्रग्वीणि भूमावासन् सहस्रशः।

फिर सूखे जंगल में लगायी हुई आग के समान शत्रुओं को शीघ्रता से जलाता हुआ अर्जुन का पुत्र कौरवों की सेना में विचरण करने लगा। सेना में प्रवेश करके रथ, हाथी, घोड़ों और पैदलों को अपने तीखे बाणों से पीड़ित करते हुए उसने भूमि को धड़ों से पाट दिया। उस युद्धस्थल में हथियारों, दस्तानों, गदा और बाजूबन्दों के साथ स्वर्णआभूषणों से भूषित कटी हुई बाहें पड़ी हुई दिखाई देती थीं। वहाँ धनुष, बाण, तलवार, शरीर, हारों और कुण्डलों से युक्त मस्तक हजारों की संख्या में भूमि पर पड़े हुए थे।

विचरन्तं दिशः सर्वाः प्रदिशश्चापि भारत॥ ३३॥
तं तदा नानुपश्यामः सैन्ये च रजसाऽऽवृते।
आददानं गजाश्वानां नृणां चायूंषि भारत॥ ३४॥
क्षणेन भूयः पश्यामः सूर्यं मध्यंदिने यथा।
अभिमन्युं महाराज प्रतपन्तं द्विषद्गणान्॥ ३५॥
स वासवसमः संख्ये वासवस्यात्मजात्मजः।
अभिमन्युर्महाराज सैन्यमध्ये व्यरोचत॥ ३६॥

हे भारत! धूल से भरी हुई सेना में हम सारी दिशाओं और उपदिशाओं में घूमते हुए उसे देख नहीं पा रहे थे। हे भारत! हाथी, घोड़ों और मनुष्यों की आयु को हरते हुए उस अभिमन्यु को हमने हे महाराज! क्षणभर में दोपहर के तपते हुए सूर्य के समान शत्रुओं को सन्तप्त करते हुए देखा। हे महाराज! इन्द्रपुत्र अर्जुन का वह पुत्र अभिमन्यु युद्धस्थल में सेना के बीच में इन्द्र के समान जान पड़ रहा था।

पच्चीसवाँ अध्याय : अभिमन्यु के पृष्ठरक्षकों को जयद्रथ द्वारा रोका जाना।

संजय उवाच

युधिष्ठिरो भीमसेनः शिखण्डी सात्यकिर्यमौ।
धृष्टद्युम्नो विराटश्च द्रुपदश्च सकेकयः॥ १॥
धृष्टकेतुश्च संरब्धो मत्स्याश्चाभ्यपतन् रणे।
तेनैव तु पथा यान्तः पितरो मातुलैः सह॥ २॥
अभ्यद्रवन् परीप्सन्तो व्यूढानीकाः प्रहारिणः।
तान् दृष्ट्वा द्रवतः शूरांस्त्वदीया विमुखाऽभवन्॥ ३॥
जामाता तव तेजस्वी संस्तम्भयिषुराद्रवत्।
सैन्धवस्य महाराज पुत्रो राजा जयद्रथः॥ ४॥
स पुत्रगृद्धिनः पार्थान् सहसैन्यानवारयत्।

तब संजय ने कहा कि युधिष्ठिर, भीमसेन, शिखण्डी, सात्यकि, नकुल, सहदेव, धृष्टद्युम्न, विराट, द्रुपद, केकयकुमार, क्रोध में भरा हुआ धृष्टकेतु और मत्स्यदेश के योद्धा येसारे युद्ध में आगे बढ़े। प्रहार करनेवाले अभिमन्यु के चाचा, ताऊ, उसके मामाओं के साथ तथा व्यूहबद्ध सेनासहित अभिमन्यु के द्वारा बनाये हुए उसी मार्ग से जाने के इच्छुक होकर दौड़े। उन शूरवीरों को दौड़कर आते हुए देखकर आपके सैनिक युद्ध से विमुख होने लगे। तब आपका तेजस्वी जमाई उन्हें स्थिर करने के लिये दौड़कर आया। हे महाराज! सिन्धुराज के पुत्र जयद्रथ ने अपने पुत्र अभिमन्यु को बचाने के इच्छुक सेनासहित पाण्डवों को आगे बढ़ने से रोक दिया।

स विस्फार्य महच्चापं किरन्निषुगणान् बहून्॥ ५॥
तत् खण्डं पूरयामास यद् व्यदारयदार्जुनिः।
स सात्यकिं त्रिभिर्बाणैरष्टभिश्च वृकोदरम्॥ ६॥
धृष्टद्युम्नं तथा षष्ट्या विराटं दशभिः शरैः।
द्रुपदं पञ्चभिस्तीक्ष्णैः सप्तभिश्च शिखण्डिनम्॥ ७॥
केकयान् पञ्चविंशत्या द्रौपदेयांस्त्रिभिस्त्रिभिः।
युधिष्ठिरं तु सप्तत्या ततः शेषानपानुदत्॥ ८॥
इषुजालेन महता तदद्भुतमिवाभवत्।

उसने अपने विशाल धनुष को खींचकर बहुत से बाणसमूहों को छोड़ते हुए, व्यूह के उस भाग को योद्धाओं के द्वारा भर दिया जिसे अभिमन्यु ने तोड़ दिया था। उसने सात्यकि को तीन, भीम को आठ, धृष्टद्युम्न को साठ, विराट को दस, द्रुपद को पाँच, शिखण्डी को सात, केकयकुमारों को पच्चीस, द्रौपदी के पुत्रों को तीन तीन, युधिष्ठिर को सत्तर तीखे बाणों की तथा दूसरे सैनिकों को महान् बाण समूह की वर्षाकर पीड़ित कर दिया। यह एक आश्चर्य की बात थी।

अथास्य शितपीतेन भल्लेनादिश्य कार्मुकम्॥ ९॥
चिच्छेद प्रहसन् राजा धर्मपुत्रः प्रतापवान्।
अक्ष्णोर्निमेषमात्रेण सोऽन्यदादाय कार्मुकम्॥ १०॥
विव्याध दशभिः पार्थं तांश्चैवान्यांस्त्रिभिस्त्रिभिः।
तत् तस्य लाघवं ज्ञात्वा भीमो भल्लैस्त्रिभिस्त्रिभिः॥ ११॥
धनुर्ध्वजं च च्छत्रं च क्षितौ क्षिप्रमपातयत्।
सोऽन्यदादाय बलवान् सज्यं कृत्वा च कार्मुकम्॥ १२॥
भीमस्यापातयत् केतुं धनुरश्वांश्च मारिष।

तब प्रतापी राजा युधिष्ठिर ने कहकर उसके धनुष को एक तीखे पानीदार भल्ल से हँसते हुए काट दिया। पर उसने पलभर में दूसरा धनुष लेकर युधिष्ठिर को दस बाणों से और दूसरों को तीन तीन बाणों से बींध दिया। उसकी फुर्ती को देखकर भीम ने तीन तीन भल्लों से शीघ्रतापूर्वक उसके धनुष, ध्वज, और छत्र को काटकर भूमि पर गिरा दिया। तब उस बलवान् ने दूसरा धनुष लेकर उसपर प्रत्यञ्चा चढ़ाकर हे मान्यवर! भीम के ध्वज, धनुष और घोड़ों को भूमि पर गिरा दिया।

स हताश्वादवप्लुत्य च्छिन्नधन्वा रथोत्तमात्॥ १३॥
सात्यकेराप्लुतो यानं गिर्यग्रमिव केसरी।
सौभद्रेण हतैः पूर्वं सोत्तरायोधिभिर्द्विपैः॥ १४॥
पाण्डूनां दर्शितः पन्थाः सैन्धवेन निवारितः।
यतमानास्तु ते वीरा मत्स्यपञ्चालकेकयाः॥ १५॥
पाण्डवाश्चान्वपद्यन्त प्रतिशेकुर्न सैन्धवम्।
यो यो हि यतते भेत्तुं द्रोणानीकं तवाहितः।
तं तमेव वरं प्राप्य सैन्धवः प्रत्यवारयत्॥ १६॥

धनुष के कट जाने पर भीमसेन अपने मरे घोड़ों वाले उत्तम रथ से कूदकर सात्यकि के रथ पर ऐसे चढ़ गये, जैसे सिंह पर्वत के शिखर पर चढ़ा हो। इसप्रकार सुभद्रापुत्र अभिमन्यु ने गजारोहियों सहित गजराजों को मारकर पहले जो मार्ग बनाकर पाण्डुपुत्रों को दिखाया था, उस मार्ग को जयद्रथ ने भर दिया। मत्स्य, पांचाल, और केकयदेश के वीर तथा पाण्डव लोग प्रयत्न करने पर भी, आक्रमण करने पर भी जयद्रथ को वहाँ से नहीं हटा सके। आपका जो जो शत्रु द्रोणाचार्य की सेना के व्यूह को भेदने का प्रयत्न करता, उसी के सामने जयद्रथ जाकर उसे रोक देता था।

छब्बीसवाँ अध्याय : अभिमन्यु द्वारा वसातीय, सत्यश्रवा, रुक्मरथ, आदि का वध और दुर्योधन की पराजय।

प्रविश्याथार्जुनिः सेनां सत्यसंधो दुरासदः।
व्यक्षोभयत तेजस्वी मकरः सागरं यथा॥ १॥
तं तथा शरवर्षेण क्षोभयन्तमरिन्दमम्।
यथा प्रधानाः सौभद्रमभ्ययू रथसत्तमाः॥ २॥
तेषां तस्य च सम्मर्दो दारुणः समपद्यत।
सृजतां शरवर्षाणि प्रसक्तममितौजसाम्॥ ३॥
रथव्रजेन संरुद्धस्तैरमित्रैस्तथाऽर्जुनिः।
वृषसेनस्य यन्तारं हत्वा चिच्छेद कार्मुकम्॥ ४॥

उधर अर्जुन के पुत्र सत्यसंध, दुर्धर्ष और तेजस्वी अभिमन्यु ने आपकी सेना में घुसकर उसे इसप्रकार से विक्षुब्ध किया हुआ था, जैसे कोई विशाल मकर समुद्र में हलचल मचा देता है। उस शत्रुदमन को अपनी बाणवर्षा के द्वारा इस प्रकार आपकी सेना को क्षुब्ध करते हुए देखकर सेना के प्रधान श्रेष्ठ रथियों ने एकसाथ उस सुभद्रापुत्र पर आक्रमण किया। तब एकसाथ सटे हुए बाणों की वर्षा करते हुए उन अमित तेजस्वी महारथियों का अभिमन्यु के साथ बड़ादारुण युद्ध होने लगा। इसप्रकार शत्रु रथियों के समूह के द्वारा घेरा जाने पर भी अर्जुन के पुत्र ने वृषसेन के सारथि को मारकर उसके धनुष को काट दिया।

तं सिंहमिव संक्रुद्धं प्रमथ्नन्तं शरैररीन्।
आरादायान्तमभ्येत्य वसातीयोऽभ्ययाद् द्रुतम्॥ ५॥
सोऽभिमन्युं शरैः षष्ट्या रुक्मपुङ्खैरवाकिरत्।
अब्रवीच्च न मे जीवञ्जीवतो युधि मोक्ष्यसे॥ ६॥
तमयस्मयवर्माणमिषुणा दूरपातिना।
विव्याध हृदि सौभद्रः स पपात व्यसुः क्षितौ॥ ७॥
वसातीयं हतं दृष्ट्वा क्रुद्धाः क्षत्रियपुङ्गवाः।
परिवव्रुस्तदा राजंस्तव पौत्रं जिघांसवः॥ ८॥

सिंह के समान अत्यन्त क्रोध में भरे हुए तथा शत्रुओं को बाणों से मथते हुए अभिमन्यु को आता हुआ देखकर वसातीय ने शीघ्रता से उसके समीप जाकर उस पर आक्रमण किया। उसने अभिमन्यु पर साठ सुनहले पंखवाले बाणों की वर्षा की और कहा कि तू मेरे जीतेजी इस युद्ध से जीवित नहीं निकल सकता। तब लोहे का कवच धारण करने वाले उस पर सुभद्रापुत्र ने दूरतक मारनेवाले बाण के द्वारा प्रहार किया। जिससे हृदयस्थल के बिंध जाने के कारण वह प्राणहीन होकर भूमि पर गिर पड़ा। हे राजन्! वसातीय को मारा हुआ देखकर क्षत्रियश्रेष्ठ योद्धाओं ने क्रुद्ध होकर आपके पौत्र को मारने की इच्छा से चारोंतरफ से घेर लिया।

विस्फारयन्तश्चापानि नानारूपाण्यनेकशः।
तद् युद्धमभवद् रौद्रं सौभद्रस्यारिभिःसह॥ ९॥
तेषां शरान् सेष्वसनाञ्शरीराणि शिरांसि च।
सकुण्डलानि स्रग्वीणि क्रुद्धश्चिच्छेद फाल्गुनिः॥ १०॥
तं तदा नाशकत् कश्चिच्चक्षुर्भ्यामभिवीक्षितुम्।
आददानं शरैर्योधान् मध्ये सूर्यमिव स्थितम्॥ ११॥
आददानस्तु शूराणामायूंष्यभवदार्जुनिः।
अन्तकः सर्वभूतानां प्राणान् काल इवागते॥ १२॥

वे अपने अनेकप्रकार के धनुषों को टंकार रहे थे। उससमय सुभद्रापुत्र का शत्रुओं के साथ भयानक युद्ध होने लगा। तब अर्जुनपुत्र ने क्रुद्ध होकर उनके धनुषबाण, शरीर और कुण्डल तथा हारों से युक्त सिरों को काट दिया। सेना के बीच में सूर्य के समान खड़े हुए और बाणों के द्वारा योद्धाओं के प्राण लेते हुए उस अभिमन्यु की तरफ उससमय कोई आँख उठाकर देखने का भी साहस नहीं कर रहा था। जैसे अन्तिम समय आने पर मृत्यु सबके प्राण हर लेती है वैसे ही अर्जुनपुत्र शूरवीरों के प्राण हरण कर रहा था।

स शक्र इव विक्रान्तः शक्रसूनोः सुतो बली।
अभिमन्युस्तदानीकं लोडयन् समदृश्यत॥ १३॥
सत्यश्रवसमादत्त व्याघ्रो मृगमिवोल्बणः।
सत्यश्रवसि चाक्षिप्ते त्वरमाणा महारथाः॥ १४॥
प्रगृह्य विपुलं शस्त्रमभिमन्युमुपाद्रवन्।
क्षत्रियाणामनीकानि प्रद्रुतान्यभिधावताम्॥ १५॥
जग्रास तिमिरासाद्य क्षुद्रमत्स्यानिवार्णवे।
ये केचन गतास्तस्य समीपमपलायिनः॥ १६॥
न ते प्रतिन्यवर्तन्त समुद्रादिव सिन्धवः।

इन्द्र के पुत्र का वह बलवान् इन्द्र के समान पराक्रमी पुत्र अभिमन्यु उससमय सारे व्यूह का मन्थन कर रहा था। उसने जैसे बाघ हरिण को दबोच लेता है, वैसे ही सत्यश्रवा को भी एक झपाटे में मार दिया। सत्यश्रवा के गिराने पर उन महारथियों ने शीघ्रता करते हुए प्रचुर शस्त्रास्त्र लेकर अभिमन्यु पर आक्रमण किया। अभिमन्यु ने आक्रमण करने वाले उन क्षत्रियों की आगे बढ़ी हुई सेनाओं को ऐसे काल का ग्रास बना दिया, जैसे समुद्र में विशाल तिमि नामक मत्स्य छोटी मछलियों को निगल जाता है। युद्ध से न भागनेवाले जो भी वीर उसके समीप पहुँचे, वे उसीप्रकार वापिस नहीं लौट सके, जैसे नदियाँ समुद्र में गिरकर वापिस नहीं आ सकती हैं।

महाग्राहगृहीतेव वातवेगभयार्दिता॥ १७॥
समकम्पत सा सेना विभ्रष्टा नौरिवार्णवे।
अथ रुक्मरथो नाम मद्रेश्वरसुतो बली॥ १८॥
त्रस्तामाश्वासयन् सेनामत्रस्तो वाक्यमब्रवीत्।
अलं त्रासेन वः शूरा नैष कश्चिन्मयि स्थिते॥ १९॥
अहमेनं ग्रहीष्यासि जीवग्राहं न संशयः।
एवमुक्त्वा तु सौभद्रमभिदुद्राव वीर्यवान्॥ २०॥
सुकल्पितेनोह्यमानः स्यन्दनेन विराजता।

महान ग्राह के द्वारा पकड़ी हुई या वायु के थपेड़ों से मारी हुई, या अपने मार्ग से भटकी हुई छोटी नाव जैसे सागर में डावाँडोल होने लगती है, वैसे ही वह सेना उससमय भय से काँप रही थी। तब मद्रराज के बलवान् पुत्र रुक्मरथ ने निडरता के साथ डरी हुई सेना को आश्वासन देते हुए यह कहा कि हे शूरों! डरो मत। यह मेरे सामने कुछभी नहीं है। मैं इसे जीवित ही पकड़ लूँगा। इसमें शक नहीं है। ऐसा कहकर पराक्रमी रुक्मरथ ने अच्छीतरह से

सजाये हुए सुशोभित रथ पर आरूढ़ होकर अभिमन्यु पर आक्रमण कर दिया।

सोऽभिमन्युं त्रिभिर्बाणैर्विद्ध्वा वक्षस्यथानदत्॥ २१॥
त्रिभिश्च दक्षिणे बाहौ सव्ये च निशितैस्त्रिभिः।
स तस्येष्वसनं छित्त्वा फाल्गुनिः सव्यदक्षिणौ॥ २२॥
भुजौ शिरश्च स्वक्षिभ्रु क्षितौ क्षिप्रमपातयत्।
दृष्ट्वा रुक्मरथं रुग्णं पुत्रं शल्यस्य मानिनम्॥ २३॥
जीवग्राहं जिघृक्षन्तं सौभद्रेण यशस्विना।
संग्रामदुर्मदा राजन् राजपुत्राः प्रहारिणः॥ २४॥
वयस्याः शल्यपुत्रस्य सुवर्णविकृतध्वजाः।
तालमात्राणि चापानि विकर्षन्तो महाबलाः॥ २५॥
आर्जुनिं शरवर्षेण समन्तात् पर्यवारयन्।

उसने अभिमन्यु की छाती पर तीन बाणों का प्रहारकर गर्जना की। उसने तीन तीखे बाणों से उसकी दायीं और तीन से बायीं भुजा पर प्रहार किया। तब अर्जुन के पुत्र ने उसके धनुष को काटकर उसकी दायीं बायीं भुजाओं, तथा सुन्दर आँख और भौहोंवाले सिर को शीघ्रता से काटकर भूमि पर गिरा दिया। जो अभिमन्यु को जीवित पकड़ना चाहता था, शल्य के उस अभिमानी पुत्र को यशस्वी सुभद्रापुत्र के द्वारा मारा हुआ देखकर हे राजन्! शल्यपुत्र के मित्र राजकुमार जो युद्ध में दुर्मद और प्रहार करनेवाले थे, महाबली थे, अपने सुनहरे ध्वजों के साथ, चार हाथ लम्बे धनुषों को खींचते हुए, अपनी बाणवर्षा से अर्जुनपुत्र को सब तरफ से भरने लगे।

सुवर्णपुङ्खैरिषुभिर्नानालिङ्गैः सुतेजनैः॥ २६॥
अदृश्यमार्जुनिं चक्रुर्निमेषात् ते नृपात्मजाः।
ससूताश्वध्वजं तस्य स्यन्दनं तं च मारिष॥ २७॥
आचितं समपश्याम श्वाविधं शललैरिव।
स गाढविद्धः क्रुद्धश्च तोत्रैर्गज इवार्दितः॥ २८॥
गान्धर्वमस्त्रमायच्छद् रथमायां च भारत।
अर्जुनेन तपस्तप्त्वा गन्धर्वेभ्यो यदाहृतम्॥ २९॥
तुम्बुरुप्रमुखेभ्यो वै तेनामोहयताहितान्।

उन राजकुमारों ने क्षणभर में ही अपने तरह तरह के तीखे और सुनहले पंखवाले बाणों की वर्षाकर उसमें अर्जुनकुमार को अदृश्य कर दिया। हे मान्यवर! हमने तब सारथि, घोड़ों, ध्वज, तथा रथसहित अभिमन्यु को इसप्रकार बाणों से भरा हुआ देखा जैसे साही का शरीर काँटों से भरा रहता है। तब बाणों से गहरा बिंध कर अंकुश से पीड़ित हाथी के समान क्रोध में भरकर हे भारत! उसने गन्धर्वास्त्र तथा अपनी रथमाया अर्थात् रथ से युद्ध करने की कुशलता प्रकट की। अर्जुन ने तपस्या कर तुम्बरु आदि गन्धर्वों से जिस अस्त्र को प्राप्त किया था, उस अस्त्र से उसने अपने शत्रुओं को मोहित कर दिया।

एकधा शतधा राजन् दृश्यते स्मसहस्रधा॥ ३०॥
अलातचक्रवत् संख्ये क्षिप्रमस्त्राणि दर्शयन्।
रथचर्यास्त्रमायाभिर्मोहयित्वा परंतपः॥ ३१॥
बिभेद शतधा राजञ्शरीराणि महीक्षिताम्।
प्राणाः प्राणभृतां संख्ये प्रेषितानि शितैःशरैः॥ ३२॥
राजन् प्रापुरमुं लोकं शरीराण्यवनिं ययुः।

हे राजन्! वह उससमय अलातचक्र के समान युद्धस्थल में घूमता हुआ और शीघ्रतासहित अस्त्र संचालन का कौशल दिखाता हुआ एक, सौ और हजारों रूपों में दिखाई देरहा था। उस परन्तप ने अपनी रथविद्या और अस्त्रों की माया से मोहित कर उन राजाओं के हे राजन्! शरीरों के सैकड़ों टुकड़े कर दिये। हे राजन्! तीखे बाणों के द्वारा भेजे हुए उन प्राणियों के प्राण तो परलोक में जा पहुँचे, पर शरीर युद्धस्थल में भूमि पर गिर पड़े।

क्रुद्धाशीविषसंकाशान् सुकुमारान् सुखोचितान्॥ ३३॥
एकेन निहतान् दृष्ट्वा भीतो दुर्योधनोऽभवत्।
रथिनः कुञ्जरानश्वान् पदातींश्चापि मज्जतः॥ ३४॥
दृष्ट्वा दुर्योधनः क्षिप्रहमुपायात् तममर्षितः।
तयोः क्षणमिवापूर्णः संग्रामः समपद्यत।
अथाभवत् ते विमुखः पुत्रः शरशताहतः॥ ३५॥

क्रुद्ध विषैले सर्पों के समान, तथा सुख भोगने योग्य उन सुकुमार राजकुमारों को एक अभिमन्यु के द्वारा ही मारा हुआ देखकर दुर्योधन भयभीत हो गया। तब अपने रथियों, हाथियों, घोड़ों और पैदलों को भी अभिमन्युरूपी सागर में डूबते हुए देखकर उस अमर्षशील दुर्योधन ने शीघ्रता से उस पर आक्रमण किया। तब उनदोनों का क्षणभर के लिये अधूरा सा युद्ध हुआ। तभी आपका वह पुत्र उसके बाणों से घायल होकर युद्ध से विमुख हो गया।

सत्ताईसवाँ अध्याय : अभिमन्यु के द्वारा दुर्योधनपुत्र लक्ष्मण तथा क्राथपुत्र का वध, छः महारथियों का पलायन।

संशुष्कास्याश्चलन्नेत्राः प्रस्विन्नाः लोमहर्षणाः।
पलायनकृतोत्साहा निरुत्साहा द्विषज्जये॥ १॥
हतान् भ्रातृन् पितृन् पुत्रान् सुहृत्सम्बन्धिबान्धवान्।
उत्सृज्योत्सृज्य संजग्मुस्त्वरयन्तो हयद्विपान्॥ २॥
तान् प्रभग्नांस्तथा दृष्ट्वा द्रोणो द्रौणिर्बृहद्बलः।
कृपो दुर्योधनः कर्णः कृतवर्माथ सौबलः॥ ३॥
अभ्यधावन् सुसंक्रुद्धाः सौभद्रमपराजितम्।
ते तु पौत्रेण ते राजन् प्रायशो विमुखीकृताः॥ ४॥

आपके सैनिकों के उससमय मुख सूख गये थे, उनकी आँखे भय से चंचल थीं, शरीर से पसीना आरहा था और रोंगटे खड़े हो रहे थे। वे भागने में ही उत्साह दिखा रहे थे। शत्रु को विजय करने में उन्हें कोई उत्साह नहीं था। वे अपने मारे गये भाइयों, पिताओं, पुत्रों, मित्रों, सम्बन्धियों और बान्धवों को छोड़ छोड़कर अपने घोड़ों और हाथियों को शीघ्रता से हाँकते हुए भाग रहे थे। उन्हें उसप्रकार भागता हुआ देखकर द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, बृहद्बल, कृपाचार्य, दुर्योधन, कर्ण, कृतवर्मा और शकुनि अत्यन्त क्रोध में भरकर अपराजित सुभद्रापुत्र की तरफ दौड़े। पर हे राजन्! आपके उस पौत्र ने उन्हें प्रायः युद्ध से विमुख कर दिया।

एकस्तु सुखसंवृद्धो बाल्याद् दर्पाच्च निर्भयः।
इष्वस्त्रविन्महातेजा लक्ष्मणोऽर्जुनिमभ्ययात्॥ ५॥
तमन्वगेवास्य पिता पुत्रगृद्धी न्यवर्तत।
अनुदुर्योधनं चान्ये न्यवर्तन्त महारथाः॥ ६॥
तं तेऽभिषिषिचुर्बाणैर्मेघा गिरिमिवाम्बुभिः।
स तु तान् प्रममाथैको विष्वग्वातो यथाम्बुदान्॥ ७॥
पौत्रं तव च दुर्धर्षं लक्ष्मणं प्रियदर्शनम्।
पितुः समीपे तिष्ठन्तं शूरमुद्यतकार्मुकम्॥ ८॥
आससाद रणे कार्ष्णिर्मत्तो मत्तमिव द्विपम्।

तब सुख में पला हुआ, जो अपने बचपन और अभिमान के कारण निर्भय था वह धनुर्विद्यावेत्ता, महातेजस्वी लक्ष्मण अकेला अर्जुनपुत्र के सामने आगया। तब पुत्र का लोभी उसका पिता दुर्योधन भी उसके पीछे पीछे लौट आया और दुर्योधन के पीछे दूसरे महारथी भी लौट आये। वे अभिमन्यु पर बाणों की उसीप्रकार वर्षा करने लगे, जैसे बादल पर्वत पर जलधाराएँ बरसाते हैं। पर उस अकेले ने उस बाणवर्षा को ऐसे ध्वस्त कर दिया, जैसे चारोंतरफ से बहनेवाली वायु बादलों को उड़ा देती है। फिर आपके उस प्रियदर्शन पौत्र दुर्धर्ष, शूर तथा धनुष तैयार किये हुए अपने पिता के पास खड़े हुए लक्ष्मण पर अभिमन्यु ने ऐसे आक्रमण किया जैसे एक मस्त हाथी दूसरे मत्त हाथी पर आक्रमण करे।

लक्ष्मणेन तु संगम्य सौभद्रः परवीरहा॥ ९॥
शरैः सुनिशितैस्तीक्ष्णैर्बाह्वोरुरसि चार्पितः।
संक्रुद्धो वै महाराज दण्डाहत इवोरगः॥ १०॥
पौत्रस्तव महाराज तव पौत्रमभाषत।
सुदृष्टः क्रियतां लोको ह्यमुं लोकं गमिष्यसि॥ ११॥
पश्यतां बान्धवानां त्वां नयामि यमसादनम्।
एवमुक्त्वा ततो भल्लं सौभद्रः परवीरहा॥ १२॥
उद्वबर्ह महाबाहुर्निर्मुक्तोरगसंनिभम्।

लक्ष्मण ने युद्ध करते हुए शत्रुवीरों को नष्ट करनेवाले अभिमन्यु की भुजाओं और छाती पर अत्यन्ततीखे बाणों से प्रहार किया। हे महाराज! तब लाठी से पीड़ित साँप के समान अत्यन्त क्रोध में भरकर आपके पौत्र ने आपके पौत्र से कहा कि अब तुम परलोक जानेवाले हो, इस संसार को अच्छीतरह से देख लो। मैं तुम्हारे बान्धवों के देखते हुए तुम्हें मृत्युलोक में भेज रहा हूँ। ऐसा कहकर शत्रुवीरों का संहार करनेवाले महाबाहु सुभद्रापुत्र ने कैंचुली छोड़कर निकले हुए साँप के समान एक भल्ल को तरकस से निकाला।

स तस्य भुजनिर्मुक्तो लक्ष्मणस्य सुदर्शनम्॥ १३॥
सुनसं सुभ्रुकेशान्तं शिरोऽहार्षीत् सकुण्डलम्।
लक्ष्मणं निहतं दृष्ट्वा हाहेत्युच्चुक्रुशुर्जनाः॥ १४॥
ततो दुर्योधनः क्रुद्धः प्रिये पुत्रे निपातिते।
घ्नतैनमिति चुक्रोश क्षत्रियान् क्षत्रियर्षभः॥ १५॥
आचार्यकृपकर्णाश्च पन्थानं गजानीकेन दंशिताः।
कलिङ्गाश्च निषादाश्च क्राथपुत्रश्च वीर्यवान्॥ १६॥

अभिमन्यु के हाथों से छूटे हुए उस बाण ने लक्ष्मण के सुन्दर नाक, सुन्दर भौहों, सुन्दर लटों

वाले सुन्दर मुख को उसके कुण्डलोंसहित काटकर धड़ से अलग कर दिया। लक्ष्मण को मारा हुआ देखकर लोग जोरजोर से चिल्लाते हुए हाहाकार करने लगे। तब अपने प्यारे पुत्र के गिरा दिये जाने पर क्षत्रियश्रेष्ठ दुर्योधन ने चिल्लाकर उन क्षत्रियों से कहा कि इस अभिमन्यु को मार दो। तब कवच बाँधे हुए, कलिंग देश के सैनिकों, निषादों और पराक्रमी क्राथपुत्र ने हाथियों की सेना के साथ उसका रास्ता रोका।

तत् प्रसक्तमिवात्यर्थं युद्धमासीद् विशाम्पते।
ततस्तत् कुञ्जरानीकं व्यधमद् धृष्टमार्जुनिः॥ १७॥
यथा वायुर्नित्यगतिर्जलदाञ्शतशोऽम्बरे।
ततः क्राथः शरव्रातैरार्जुनिं समवाकिरत्॥ १८॥
तान् निवार्यार्जुनिर्बाणैः क्राथपुत्रमथार्दयत्।
शरौघेणाप्रमेयेण त्वरमाणो जिघांसया॥ १९॥
सधनुर्बाणकेयूरो बाहू समुकुटं शिरः।
सच्छत्रध्वजयन्तारं रथं चाश्वान् न्यपातयत्॥ २०॥
कुलशीलश्रुतिबलैः कीर्त्या चास्त्रबलेन च।
युक्ते तस्मिन् हते वीराः प्रायशो विमुखाऽभवन्॥ २१॥

हे महाराज! तब वहाँ अत्यन्तनिकट से घोर युद्ध आरम्भ हो गया। अर्जुन के पुत्र ने उस धृष्ट हाथियों की सेना को ऐसे विदीर्ण कर दिया जैसे सदा गतिशील रहनेवाली वायु आकाश में सैकड़ों बादलों को छितरा देती है। तब क्राथ ने बाणवर्षा के द्वारा अर्जुन के पुत्र को भर दिया। उस बाणवर्षा का निवारणकर अभिमन्यु ने क्राथपुत्र को बाणों से पीड़ित किया। उसने असंख्य बाणसमूहों के द्वारा क्राथपुत्र को मार देने की इच्छा से उसके धनुषबाण और बाजूबन्दसहित हाथों को, मुकुटसहित सिर को, छत्र, ध्वज और सारथिसहित रथ को तथा घोड़ों को शीघ्रता करते हुए मारकर गिरा दिया। कुल, शील, विद्या, शक्ति, कीर्त्ति और अस्त्रों के बल से युक्त उस वीर के मारे जाने पर शूरवीर सैनिक युद्ध से प्रायः विमुख हो गये।

अठ्ठाईसवाँ अध्याय : अभिमन्यु का छः महारथियों के साथ घोर युद्ध। वृन्दारक और बृहद्बल का वध।

तं तु द्रोणः कृपः कर्णो द्रौणिश्च स बृहद्बलः।
कृतवर्मा च हार्दिक्यः षड् रथाः पर्यवारयन्॥ १॥
तांस्तु सर्वान् महेष्वासान् सर्वविद्यासु निष्ठितान्।
व्यष्टम्भयद् रणे बाणैः सौभद्रः परवीरहा॥ २॥
द्रोणं पञ्चाशताविध्यद् विंशत्या च बृहद्बलम्।
अशीत्या कृतवर्माणं कृपं षष्ट्या शिलीमुखैः॥ ३॥
रुक्मपुङ्खैर्महावेगैराकर्ण- समचोदितैः।
अविध्यद् दशभिर्बाणैरश्वत्थामानमार्जुनिः॥ ४॥
स कर्णं कर्णिना कर्णे पीतेन च शितेन च।
फाल्गुनिर्द्विषतां मध्ये विव्याध परमेषुणा॥ ५॥

तब उस अभिमन्यु को द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, कर्ण, कृतवर्मा, और बृहद्बल इन छः महारथियों ने घेर लिया। शत्रुवीरों को नष्ट करनेवाले सुभद्रापुत्र ने सारी विद्याओं में प्रवीण उनसारे महाधनुर्धरों को अपने बाणों से स्तब्ध कर दिया। अर्जुन के पुत्र ने द्रोणाचार्य पर पचास, बृहद्बल पर बीस, कृतवर्मा पर अस्सी और अश्वत्थामा पर दस सुनहले पंखवाले, महावेगशाली, कानतक धनुष को खींचकर छोड़े गए बाणों की वर्षाकर उन्हें घायल कर दिया। उसने शत्रुओं के बीच में कर्ण के कान पर पानीदार, पैने कर्णि नाम के उत्तम बाण की चोट मारकर उसे घायल कर दिया।

पातयित्वा कृपस्याश्वां स्तथोभौ पार्ष्णिसारथी।
अथैनं दशभिर्बाणैः प्रत्यविध्यत् स्तनान्तरे॥ ६॥
ततो वृन्दारकं वीरं कुरूणां कीर्तिवर्धनम्।
पुत्राणां तव वीराणां पश्यतामवधीद् बली॥ ७॥
तं द्रौणिः पञ्चविंशत्या क्षुद्रकाणां समार्पयत्।
वरं वरममित्राणामारुजन्तमभीतवत्॥ ८॥
स तु द्रौणिं त्रिसप्तत्या हेमपुङ्खैरजिह्मगैः।
प्रत्यविध्यन्महातेजा बलवानपकारिणम्॥ ९॥

उसने कृपाचार्य के घोड़ों और दोनों पृष्ठरक्षकों को गिराकर उसकी छाती में दस बाणों से प्रहारकर उसे घायल कर दिया। फिर उस बलवान् ने कौरवों की कीर्ति को बढ़ानेवाले वीर वृन्दारक को आपके सारे वीर पुत्रों के देखते हुए मार दिया। तब शत्रुओं के प्रधान वीरों का निर्भय होकर वध करते हुए उस श्रेष्ठ

अभिमन्यु पर अश्वत्थामा ने पच्चीस क्षुद्रक नाम के बाणों की वर्षा की। तब उस महातेजस्वी बलवान् अभिमन्यु ने अपना अपकार करनेवाले अश्वत्थामा पर सीधे जानेवाले, सुनहरे पंखवाले तिहत्तर बाणों की वर्षाकर बदले में घायल किया।

तस्मिन् द्रोणो बाणशतं पुत्रगृद्धी न्यपातयत्।
अश्वत्थामा तथाष्टौ च परीप्सन् पितरं रणे॥ १०॥
कर्णो द्वाविंशतिं भल्लान् कृतवर्मा च विंशतिम्।
बृहद्बलस्तु पञ्चाशत् कृपः शारद्वतो दश॥ ११॥
तांस्तु प्रत्यवधीत् सर्वान् दशभिर्दशभिः शरैः।
तैरर्द्यमानः सौभद्रः सर्वतो निशितैः शरैः॥ १२॥
तं कोसलानामधिपः कर्णिनाताडयद्धृदि।
स तस्याश्वान् ध्वजं चापं सूतं चापातयत् क्षितौ॥ १३॥

तब पुत्र के लोभी, द्रोणाचार्य ने अभिमन्यु पर सौ बाणों की वर्षा की और अश्वत्थामा ने भी युद्ध में अपने पिता की वर्षा करते हुए उसे आठ बाण मारे। कर्ण ने बाईस, कृतवर्मा ने बीस, बृहद्बल ने पचास, और शरद्वानुपुत्र कृपाचार्य ने दस बाणों की वर्षा की। तब उनके द्वारा सबतरफ से पीड़ित होते हुए सुभद्रापुत्र ने बदले में उन सबको दस दस बाणों से बींधा। कोसलराज ने उसके हृदय पर कर्णि नाम के बाण से प्रहार किया तब अभिमन्यु ने उसके घोड़ों, ध्वज, धनुष और सारथि को भूमि पर गिरा दिया।

अथ कोसलराजस्तु विरथः खड्गचर्मभृत्।
इयेष फाल्गुनेः कायाच्छिरो हर्तुं सकुण्डलम्॥ १४॥
स कोसलानामधिपं राजपुत्रं बृहद्बलम्।
हृदि विव्याध बाणेन स भिन्नहृदयोऽपतत्॥ १५॥
तथा बृहद्बलं हत्वा सौभद्रो व्यचरद् रणे।
व्यष्टम्भयन्महेष्वासो योधांस्तव शराम्बुभिः॥ १६॥

तब कोसलराज ने रथहीन होकर, ढाल और तलवार लेकर, अर्जुन के पुत्र के कुण्डलसहित सिर को धड़ से अलग करना चाहा पर अभिमन्यु ने कोसलाधीश राजकुमार बृहद्बल के हृदय को एक बाण से छेद दिया। हृदय के भिन्न हो जाने पर वह प्राणहीन होकर गिर पड़ा। इसप्रकार बृहद्बल को मारकर सुभद्रा का पुत्र आपके महाधनुर्धर योद्धाओं को जल वर्षा के समान आपनी बाणवर्षा से स्तम्भित करता हुआ युद्धस्थल में विचरण करने लगा।

उनत्तीसवाँ अध्याय : अभिमन्यु द्वारा शत्रुंजय, चन्द्रकेतु, मेघवेग, सुवर्चा, सूर्यभास, अश्वकेतु, भोज, कर्ण के मन्त्री का वध। छः महारथियों द्वारा अभिमन्यु के उपकरणों का नाश।

संजय उवाच

स कर्णं कर्णिना कर्णे पुनर्विव्याध फाल्गुनिः।
शरैः पञ्चाशता चैनमविध्यत् कोपयन् भृशम्॥ १॥
प्रतिविव्याध राधेयस्तावद्भिरथ तं पुनः।
शरैराचितसर्वाङ्गो बह्वशोभत भारत॥ २॥
कर्णं चाप्यकरोत् क्रुद्धो रुधिरोत्पीडवाहिनम्।
कर्णोऽपि विबभौ शूरः शरैश्छिन्नोऽसृगाप्लुतः॥ ३॥
अथ कर्णस्य सचिवान् षट् शूरांश्चित्रयोधिनः।
साश्वसूतध्वजरथान् सौभद्रो निजघान ह॥ ४॥

संजय ने कहा कि अर्जुन के पुत्र ने कर्ण के कान पर फिर कर्णि नाम के बाण से चोट की और उसे अत्यन्तक्रुद्ध करते हुए पचास बाणों की उसके ऊपर वर्षा की। हे भारत! कर्ण ने उस पर बदले में उतने ही बाणों की वर्षा की। हे भारत! उससमय उसके सारे अंग बाणों के घावों से भरे हुए अत्यन्त शोभित हो रहे थे। तब क्रोध में भरकर उसने भी कर्ण को खून की धाराएँ बहानेवाला बना दिया। शूरवीर कर्ण भी बाणों से घायल होकर खून से लथपथ हुआ सुशोभित होरहा था। फिर सुभद्रापुत्र ने कर्ण के शूरवीर और विचित्रप्रकार से युद्ध करनेवाले छः मन्त्रियों का उनके घोड़ों, सारथि, ध्वज और रथोंसहित वध कर दिया।

तथेतरान् महेष्वासान् दशभिर्दशभिः शरैः।
प्रत्यविध्यदसम्भ्रान्तस्तदद्भुत- मिवाभवत्॥ ५॥
मागधस्य तथा पुत्रं हत्वा षड्भिरजिह्मगैः।
साश्वं ससूतं तरुणमश्वकेतुमपातयत्॥ ६॥
मार्तिकावतकं भोजं ततः कुञ्जरकेतनम्।
क्षुरप्रेण समुन्मथ्य ननाद विसृजञ्शरान्॥ ७॥

तस्य दौःशासनिर्विद्ध्वा चतुर्भिश्चतुरो हयान्।
सूतमेकेन विव्याध दशभिश्चार्जुनात्मजम्॥ ८॥

इसके साथ ही उसने दूसरे महाधनुर्धरों को दस दस बाणों से बिना घबराहट के घायल कर दिया। यह एक अद्भुत बात थी। उसने मगधराज के तरुणपुत्र अश्वकेतु को सीधे जानेवाले छः बाणों से घोड़ों और सारथिसहित मारकर नीचे गिरा दिया। उसने हाथी के चिह्न से चिह्नित ध्वज वाले मार्तिकावत के राजा भोज को क्षुरप्र के द्वारा नष्टकर, बाणों की वर्षा करते हुए सिंहनाद किया। तब दुश्शासन पुत्र ने उसके चारों घोड़ों को चार बाणों से बींध कर एक बाण से सारथि को और दस बाणों से अर्जुन के पुत्र को बींध दिया।

ततो दौःशासनिं कार्ष्णिर्विद्ध्वा सप्तभिराशुगैः।
संरम्भाद् रक्तनयनो वाक्यमुच्चै रथाब्रवीत्॥ ९॥
पिता तवाहवं त्यक्त्वा गतः कापुरुषो यथा।
दिष्ट्या त्वमपि जानीषे योद्धुं न त्वद्य मोक्ष्यसे॥ १०॥
एतावदुक्त्वा वचनं कर्मारपरिमार्जितम्।
नाराचं विससर्जास्मै तं द्रौणिस्त्रिभिराच्छिनत्॥ ११॥
तस्यार्जुनिर्ध्वजं छित्त्वा शल्यं त्रिभिरताडयत्।
तं शल्यो नवभिर्बाणैर्गार्ध्रपत्रैरताडयत्॥ १२॥
हृद्यसम्भ्रान्तवद् राजंस्तदद्भुतमिवाभवत्।

तब अभिमन्यु ने शीघ्रगामी सात बाणों से दुश्शासन के पुत्र को बींधकर क्रोध से लाल आँखेंकर उससे जोर से कहा कि तेरा पिता कायरों की तरह युद्धभूमि को छोड़कर भाग गया। यह सौभाग्य की बात है कि तू भी युद्ध करना जानता है, पर आज तू बचेगा नहीं। ऐसा कहकर उसने उसके ऊपर कारीगर द्वारा माँजे गये एक नाराच को छोड़ा पर अश्वत्थामा ने उसे तीन बाणों से काट दिया। तब अर्जुन के पुत्र ने अश्वत्थामा के ध्वज को काटकर शल्य को तीन बाणों से पीड़ित किया। हे राजन्! तब शल्य ने बिना किसी घबराहट के अभिमन्यु को गिद्ध के पंखवाले नौ बाणों से घायल किया। यह एक अद्भुत बात थी।

तस्यार्जुनिर्ध्वजं छित्त्वा हत्वोभौ पार्ष्णिसारथी॥ १३॥
तं विव्याधायसैः षड्भिः सोपाक्रामद् रथान्तरम्।
शत्रुंजयं चन्द्रकेतुं मेघवेगं सुवर्चसम्॥ १४॥
सूर्यभासं च पञ्चैतान् हत्वा विव्याध सौबलम्।
तं सौबलस्त्रिभिर्विद्ध्वा दुर्योधनमथाब्रवीत्॥ १५॥
सर्व एनं विमथ्नीमः पुरैकैकं हिनस्ति नः।
अथाब्रवीत् पुनर्द्रोणं कर्णो वैकर्तनो रणे॥ १६॥

तब अर्जुन के पुत्र ने शल्य के ध्वज को काटकर उसके दोनों पृष्ठरक्षकों को मारकर उसे छः लोहे के बाणों के द्वारा घायल कर दिया। तब शल्य भागकर दूसरे रथ पर चले गये। फिर अभिमन्यु ने शत्रुंजय, चन्द्रकेतु, मेघवेग, सुवर्चा और सूर्यभास इन पाँच वीरों को मारकर शकुनि को घायल कर दिया। शकुनि ने भी उसे तीन बाणों से बींधकर दुर्योधन से कहा कि इससे पहले कि यह एक एक से युद्ध करके हमें मार दे, हमें इकट्ठे होकर इसे मारना चाहिये। फिर सूर्यपुत्र कर्ण ने द्रोणाचार्य से युद्ध में पूछा कि—

पुरा सर्वान् प्रमथ्नाति ब्रूह्यस्य वधमाशु नः।
ततो द्रोणो महेष्वासः सर्वांस्तान् प्रत्यभाषत॥ १७॥
अस्ति वास्यान्तरं किंचित् कुमारस्याथ पश्यत।
अण्वप्यस्यान्तरं ह्यद्य चरतः सर्वतोदिशम्॥ १८॥
शीघ्रतां नरसिंहस्य पाण्डवेयस्य पश्यत।
धनुर्मण्डलमेवास्य रथमार्गेषु दृश्यते॥ १९॥
संदधानस्य विशिखाञ्शीघ्रं चैव विमुञ्चतः।
आरुजन्नपि मे प्राणान् मोहयन्नपि सायकैः॥ २०॥
प्रहर्षयति मां भूयः सौभद्रः परवीरहा।
अति मां नन्दयत्येष सौभद्रो विचरन् रणे॥ २१॥

इससे पहले यह हमें मार डाले अब जल्दी से इसके वध का तरीका बताइये। तब महाधनुर्धर द्रोणाचार्य ने उनसबसे कहा कि तुमलोग देखो कि इस कुमार अभिमन्यु में कोई दोष है? सारी दिशाओं में घूमते हुए इसके थोड़े से भी दोष को तुम देखो। इस पाण्डवपुत्र नरसिंह की शीघ्रता को तो देखो। रथ के मार्गो में इसका धनुष मण्डलाकार ही दिखाई देरहा है। यह बड़ी शीघ्रता से बाणों का संधान कर उन्हें छोड़ रहा है। शत्रुवीरों को नष्ट करनेवाला सुभद्रा का यह पुत्र अपने बाणों से यद्यपि मेरे प्राणों को पीड़ा दे रहा है और मुझे मूर्च्छित किये देरहा है, फिर भी मुझे बार बार हर्षित कर रहा है। युद्धस्थल में विचरण करता हुआ यह सौभद्र मुझे अत्यन्तआनन्दित कर रहा है।

अन्तरं यस्य संरब्धा न पश्यन्ति महारथाः।
अस्यतो लघुहस्तस्य दिशः सर्वा महेषुभिः॥ २२॥
न विशेषं प्रपश्यामि रणे गाण्डीवधन्वनः।
अथ कर्णः पुनर्द्रोणमाहार्जुनिशराहतः॥ २३॥
स्थातव्यमिति तिष्ठामि पीड्यमानोऽभिमन्युना।
तेजस्विनः कुमारस्य शराः परमदारुणाः॥ २४॥
क्षिण्वन्ति हृदयं मेऽद्य घोराः पावकतेजसः।
तमाचार्योऽब्रवीत् कर्णं शनकैः प्रहसन्निव॥ २५॥

युद्धक्षेत्र में महारथीलोग अत्यन्त क्रोध में भरकर भी इसके दोष को नहीं देख पा रहे हैं। शीघ्रता से हाथ चलाते हुए और सारी दिशाओं में महान् बाणों को फैंकते हुए इसमें और अर्जुन में मैं कोई अन्तर नहीं देख रहा हूँ। तब अभिमन्यु के बाणों से घायल होता हुआ कर्ण द्रोणाचार्य से फिर बोला कि अभिमन्यु से पीड़ित होता हुआ मैं इसलिये यहाँ खड़ा हूँ क्योंकि युद्धक्षेत्र में खड़े रहना ही क्षत्रिय का धर्म है, अर्थात् नहीं तो मैं कभी का भाग गया होता। इस तेजस्वी कुमार के परमदारुण बाण अग्नि के समान अत्यन्ततेजस्वी हैं और मेरे हृदय को आज वेधे डाल रहे हैं। तब आचार्य ने हँसते हुए धीरे से कर्ण से कहा कि—

शक्यं त्वस्य धनुश्छेत्तुं ज्यां च बाणैः समाहितैः।
अभीषूंश्च हयांश्चैव तथोभौ पार्ष्णिसारथी॥ २६॥
एतत् कुरु महेष्वास राधेय यदि शक्यते।
अथैनं विमुखीकृत्य पश्चात् प्रहरणं कुरु॥ २७॥
सधनुष्को न शक्योऽयमपि जेतुं सुरासुरैः।

तुम एकाग्रचित होकर इसके धनुष और प्रत्यंचा को बाणों से काट सकते हो। इसके घोड़ों की बागडोरों को, घोड़ों को तथा दोनों पृष्ठरक्षकों को भी नष्ट किया जा सकता है। हे महाधनुर्धर राधापुत्र कर्ण! यदि कर सकते हो तो यही करो। इसप्रकार इसे युद्ध से विमुखकर पीछे से इस पर प्रहार करो। हाथ में धनुष लिये रहने पर तो इसे देवता और राक्षस भी नहीं जीत सकते।

विरथं विधनुष्कं च कुरुष्वैनं यदीच्छसि॥ २८॥
तदाचार्यवचः श्रुत्वा कर्णो वैकर्तनस्त्वरन्।
अस्यतो लघुहस्तस्य पृषत्कैर्धनुराच्छिनत्॥ २९॥
अश्वानस्यावधीद् भोजो गौतमः पार्ष्णिसारथी।
शेषास्तु च्छिन्नधन्वानं शरवर्षैरवाकिरन्॥ ३०॥
त्वरमाणास्त्वराकाले विरथं षण्महारथाः।
शरवर्षैरकरुणा बालमेकमवाकिरन्॥ ३१॥
तस्य द्रोणोऽच्छिनन्मुष्टौ खड्गं मणिमयत्सरुम्।
क्षुरप्रेण महातेजास्त्वरमाणः सपत्नजित्॥ ३२॥
राधेयो निशितैर्बाणैर्व्यधमच्चर्म चोत्तमम्।
आस्थितश्चक्रमुद्यम्य द्रोणं क्रुद्धोऽभ्यधावत॥ ३३॥

यदि तुम चाहते हो तो इसे रथ और धनुष के बिना कर दो। तब आचार्य के वचनों को सुनकर कर्ण ने शीघ्रता करते हुए, शीघ्रता से हाथ चलाकर बाणों को फैंकते हुए अभिमन्यु के धनुष को अपने बाणों से काट दिया। कृतवर्मा ने उसके घोड़ों को मार दिया और कृपाचार्य ने उसके पृष्ठरक्षकों को मार दिया। शेष महारथी धनुष कटे हुए उस पर बाणों की वर्षा करने लगे। इसप्रकार उस शीघ्रता के समय शीघ्रता करते हुए वे छः महारथी निर्दय होकर उस रथ से हीन अकेले बालक पर बाणवर्षा के द्वारा प्रहार करने लगे। उसकी मणिमय मूठवाली तलवार को महातेजस्वी और शत्रुओं को जीतनेवाले द्रोणाचार्य ने शीघ्रता करते हुए क्षुरप्र नाम के बाण से मुठ्ठी के स्थान से काट दिया। राधापुत्र कर्ण ने उसकी उत्तम ढाल को अपने तीखे बाणों से काट दिया। तब अभिमन्यु चक्र को उठाकर खड़ा हो गया और क्रोध से भरकर द्रोणाचार्य की तरफ दौड़ा।

स चक्ररेणूज्ज्वलशोभिताङ्गो
बभावतीवोज्ज्वल- चक्रपाणिः।
रणेऽभिमन्युः क्षणमास रौद्रः
स वासुदेवानुकृतिं प्रकुर्वन्॥ ३४॥

अभिमन्यु उससमय चक्र की प्रभा से, तथा धूल के ढेर से उज्वल तथा शोभित अंगवाला हो रहा था। जगमगाते हुए चक्र को हाथ में लेकर वह अत्यन्तसुशोभित हो रहा था। रणक्षेत्र में चक्र को धारणकर श्रीकृष्ण जी का अनुकरण करता हुआ वह क्षणभर के लिये बड़ाभयंकर प्रतीत हुआ।

तीसवाँ अध्याय : अभिमन्यु के द्वारा कालकेय, वसाति और केकय रथियों का वध। छैः महारथियों द्वारा अभिमन्यु का वध। भागती हुई सेना को युधिष्ठिर का रोकना।

तच्चक्रं भृशमुद्विग्नाः संचिच्छिदुरनेकधा।
महारथस्ततः कार्ष्णिः संजग्राह महागदाम्॥ १॥
विधनुःस्यन्दनासिस्तैर्विचक्रश्चारिभिः कृतः।
अभिमन्युर्गदापाणिरश्वत्थामा-नमार्दयत्॥ २॥
स गदामुद्यतां दृष्ट्वा ज्वलन्तीमशनीमिव।
अपाक्रामद् रथोपस्थाद् विक्रमांस्त्रीन् नरर्षभः॥ ३॥
तस्याश्वान् गदया हत्वा तथोभौ पार्ष्णिसारथी।
शराचिताङ्गः सौभद्रः श्वाविद्वत् समदृश्यत॥ ४॥

उसके अत्यन्तउद्विग्न हुए शत्रुओं ने उसके उस चक्र के भी अनेक टुकड़े कर दिये। तब उस महारथी अभिमन्यु ने एक विशाल गदा को उठाया। उसके उन शत्रुओं के द्वारा उसे धनुष, रथ, तलवार और चक्र से रहित किये जाने पर गदा हाथ में लिये हुए अभिमन्यु ने अश्वत्थामा पर आक्रमण किया। विद्युत् के समान जगमगाती हुई उस गदा को उठा हुआ देखकर वह नरश्रेष्ठ अश्वत्थामा रथ की बैठक से तीन कदम पीछे कूद गया। तब उस गदा से उसके घोड़ों तथा दोनों पृष्ठरक्षकों को मारकर बाणों से भरे शरीरवाला वह सुभद्रापुत्र साही के समान प्रतीत होरहा था।

ततः सुबलदायादं कालिकेयमपोथयत्।
जघान चास्यानुचरान् गान्धारान् सप्तसप्ततिम्॥ ५॥
पुनश्चैव वसातीयाञ्जघान रथिनो दश।
केकयानां रथान् सप्त हत्वा च दश कुञ्जरान्॥ ६॥
दौः शासनिरथं साश्वं गदया समपोथयत्।
ततो दौःशासनिः क्रुद्धो गदामुद्यम्य मारिष॥ ७॥
अभिदुद्राव सौभद्रं तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत्।
तावन्योन्यं गदाग्राभ्यामाहत्य पतितौ क्षितौ॥ ८॥
इन्द्रध्वजाविवोत्सृष्टौ रणमध्ये परंतपौ।

फिर उसने सुबल के पुत्र कालिकेय को मार दिया और उसके पीछे चलनेवाले सत्तर गान्धारों का भी संहार कर दिया। उसने दस वसातीय रथियों को मार गिराया। उसने केकयों के सात रथियों और दस हाथियों को भी मारकर दुश्शासन के पुत्र के रथ को घोड़ोंसहित समाप्त कर दिया। हे मान्यवर! तब दुश्शासन का पुत्र क्रोध में भरकर, गदा को लेकर ठहर, ठहर ऐसा कहता हुआ अभिमन्यु की तरफ दौड़ा। फिर वे दोनों परंतप एक दूसरे की गदा के अगले भागों के प्रहार से चोट खाकर दो इन्द्र ध्वजाओं के समान युद्धक्षेत्र में भूमिपर गिर पड़े।

दौःशासनिरथोत्थाय कुरूणां कीर्तिवर्धनः॥ ९॥
उत्तिष्ठमानं सौभद्रं गदया मूर्ध्न्यताडयत्।
गदावेगेन महता व्यायामेन च मोहितः॥ १०॥
विचेता न्यपतद् भूमौ सौभद्रः परवीरहा।
एवं विनिहतो राजन्नेको बहुभिराहवे॥ ११॥
क्षोभयित्वा चमूं सर्वां नलिनीमिव कुञ्जरः।
अशोभत हतो वीरो व्याधैर्वनगजो यथा॥ १२॥

उसके पश्चात् कौरवों की कीर्ति को बढ़ानेवाले दुश्शासनपुत्र ने पहले उठकर उठते हुए सुभद्रापुत्र के मस्तक पर गदा से प्रहार किया। तब शत्रु के वीरों को नष्ट करनेवाला वह सुभद्रा का पुत्र गदा के प्रहार से तथा महान् थकावट से मूर्च्छित और चेतना रहित होकर भूमि पर गिर पड़ा। इसप्रकार हे राजन्! उस अकेले को बहुतों ने मिलकर युद्ध में मार दिया। जैसे सरोवर को क्षुब्ध करनेवाला जँगली हाथी शिकारियों के द्वारा मार डाला गया हो, वैसे ही सारी सेना को क्षुब्ध करके मारा गया वह वीर वहाँ सुशोभित होरहा था।

तं तथा पतितं शूरं तावकाः पर्यवारयन्।
दावं दग्ध्वा यथा शान्तं पावकं शिशिरात्यये॥ १३॥
विमृद्य नगशृङ्गाणि संनिवृत्तमिवानिलम्।
अस्तंगतमिवादित्यं तप्त्वा भारतवाहिनीम्॥ १४॥
उपप्लुतं यथा सोमं संशुष्कमिव सागरम्।
पूर्णचन्द्राभवदनं काकपक्षवृताक्षिकम्॥ १५॥
तं भूमौ पतितं दृष्ट्वा तावकास्ते महारथाः।
मुदा परमया युक्ताश्चुक्रुशुः सिंहवन्मुहुः॥ १६॥

मृत अवस्था में पड़े हुए उस शूरवीर को आपके सैनिकों ने घेर लिया। जैसे ग्रीष्मऋतु में वन को

जलाकर अग्नि बुझ गयी हो, जैसे वृक्षों को झकोर कर वायु शान्त हो गयी हो, जैसे सूर्य अस्त हो गया हो, जैसे चन्द्रमा को ग्रहण लग गया हो, जैसे सागर सूख गया हो, ऐसे ही भरतकुल की सेना को सन्तप्त करके पूर्ण चन्द्रमा के समान मुखवाले, अलकों के द्वारा ढकी हुई आँखोंवाले उस अभिमन्यु को भूमि पर पड़ा हुआ देखकर आपके वे महारथी अत्यन्त प्रसन्न होकर सिंह के समान बार बार जयनाद करने लगे।

आसीत् परमको हर्षस्तावकानां विशाम्पते।
इतरेषां तु वीराणां नेत्रेभ्यः प्रापतज्जलम्॥ १७॥
अभिमन्यौ हते राजञ्शिशुकेऽप्राप्तयौवने।
सम्प्राद्रवच्चमूः सर्वा धर्मराजस्य पश्यतः॥ १८॥
दीर्यमाणं बलं दृष्ट्वा सौभद्रे विनिपातिते।
अजातशत्रुस्तान् वीरानिदं वचनमब्रवीत्॥ १९॥

हे प्रजानाथ! उससमय आपके पुत्रों को परम हर्ष हो रहा था। पर पाण्डववीरों की आँखों से आँसू बह रहे थे। हे राजन्! जो अभी युवावस्था को प्राप्त नहीं हुआ था, बच्चा ही था, उस अभिमन्यु के मारे जाने पर युधिष्ठिर के देखते हुए ही उनकी सारीसेना भागने लगी। सुभद्रापुत्र के गिराये जाने पर सेना में भगदड़ मची देखकर अजातशत्रु युधिष्ठिर ने वीरों से यह वचन कहा कि–

स्वर्गमेष गतः शूरो यो हतो न पराङ्मुखः।
संस्तम्भयत मा भैष्ट विजेष्यामो रणे रिपून्॥ २०॥
इत्येवं स महातेजा दुःखितेभ्यो महाद्युतिः।
धर्मराजो युधां श्रेष्ठो ब्रुवन् दुःखमपानुदत्॥ २१॥

यह वीर जो मर भले ही गया, पर युद्ध से पीछे नहीं हटा, स्वर्ग में गया है। इसलिये हे वीरों! धैर्य धारण करो। डरो मत! हम युद्ध में शत्रुओं पर विजय प्राप्त करेंगे। योद्धाओं में श्रेष्ठ, महातेजस्वी, महान् कान्तिवाले युधिष्ठिर ने इसप्रकार कहते हुए उन दुःखी सैनिकों को ढाढस बँधाया।

इकत्तीसवाँ अध्याय : युधिष्ठिर का विलाप।

संजय उवाच

वयं तु प्रवरं हत्वा तेषां तैः शरपीडिताः।
निवेशायाभ्युपायामः सायाह्ने रुधिरोक्षिताः॥ १॥
निरीक्षमाणास्तु वयं परे चायोधनं शनैः।
अपयाता महाराज ग्लानिं प्राप्ता विचेतसः॥ २॥

संजय ने कहा कि हे महाराज! उस दिन शत्रुओं के प्रमुख वीर अभिमन्यु का वध करने पर, साँय काल के समय, उसके बाणों से पीड़ित हुए और खून से भरे हुए हमलोग युद्धस्थल को देखते हुए विश्राम के लिये वापिस आगये। शत्रुलोग भी शोकग्रस्त और अचेत से होते हुए धीरे धीरे वहाँ से हट गये।

हते तस्मिन् महावीर्ये सौभद्रे रथयूथपे।
विमुक्तरथसंनाहाः सर्वे निक्षिप्तकार्मुकाः॥ ३॥
उपोपविष्टा राजानं परिवार्य युधिष्ठिरम्।
तदेव युद्धं ध्यायन्तः सौभद्रगतमानसाः॥ ४॥
ततो युधिष्ठिरो राजा विललाप सुदुःखितः।
अभिमन्यौ हते वीरे भ्रातुः पुत्रे महारथे॥ ५॥

उस महापराक्रमी और रथयूथपतियों के स्वामी सुभद्रा के पुत्र के मारे जाने पर सारे महारथी अपने रथ और कवचों को त्यागकर, धनुषों को डालकर राजा युधिष्ठिर को घेरकर बैठ गये। उससमय अभिमन्यु में ही उनका मन लगा हुआ था और वे उस युद्ध का ही चिन्तन कर रहे थे। तब राजा युधिष्ठिर अपने भाई के वीर और महारथी पुत्र अभिमन्यु के मारे जाने पर अत्यन्तदुःखी होकर विलाप करने लगे।

यस्य शूरा महेष्वासाः प्रत्यनीकगता रणे।
प्रभग्ना विनिवर्तन्ते कृतास्त्रा युद्धदुर्मदाः॥ ६॥
कथं द्रक्ष्यामि कौन्तेयं सौभद्रे निहतेऽर्जुनम्।
सुभद्रां वा महाभागां प्रियं पुत्रमपश्यतीम्॥ ७॥
किंस्विद् वयमपेतार्थमश्लिष्टमसमञ्जसम्।
तावुभौ प्रतिवक्ष्यामो हृषीकेशधनंजयौ॥ ८॥
अहमेव सुभद्रायाः केशवार्जुनयोरपि।
प्रियकामो जयाकाङ्क्षी कृतवानिदमप्रियम्॥ ९॥

युद्धभूमि में जिसके सामने जाने पर अस्त्रविद्या में निष्णात, युद्धदुर्मद भी हतोत्साहित होकर लौट जाते थे, उस सुभद्रापुत्र के मारे जाने पर मैं कुन्तीपुत्र अर्जुन और अपने प्रिय पुत्र को न देखनेवाली महाभागा सुभद्रा की तरफ कैसे देखूँगा? उन श्रीकृष्ण और अर्जुन से हम इस अनर्थपूर्ण, असंगत और अनुचित वृत्तान्त को कैसे

कहेंगे? मैंने ही अपना प्रिय करने की इच्छा से, विजय की अभिलाषा से सुभद्रा, श्रीकृष्ण, और अर्जुन के इस अप्रिय कार्य को किया है।

न लुब्धो बुध्यते दोषाँल्लोभान्मोहात् प्रवर्तते।
मधुलिप्सुर्हि नापश्यं प्रपातमहमीदृशम्॥ १०॥
यो हि भोज्ये पुरस्कार्यो यानेषु शयनेषु च।
भूषणेषु च सोऽस्माभिर्बालो युधि पुरस्कृतः॥ ११॥
कथं हि बालस्तरुणो युद्धानामविशारदः।
सदश्व इव सम्बाधे विषमे क्षेममर्हति॥ १२॥
नो चेद्धि वयमप्येनं महीमनु शयीमहि।
बीभत्सोः कोपदीप्तस्य दग्धाः कृपणचक्षुषा॥ १३॥

लोभी आदमी अपने लोभ और मोह के कारण कार्य के दोषों को नहीं देखता और उसमें प्रवृत्त हो जाता है। मधु के समान राज्य को पाने के इच्छुक मैंने यह नहीं देखा कि इसके लिये हमारा इतना अधिक पतन हो जायेगा। हाय जो बालक भोज्यपदार्थों, सवारियों, मुलायम बिस्तरों और आभूषणों में आगे रखने के योग्य था, उसे हमने युद्ध में आगे लगा दिया। वह तरुण अभी बालक ही था, युद्धकला में चतुर नहीं था, फिर वह एक अच्छे घोड़े की तरह भयंकर युद्ध में फँसकर सकुशल कैसे रह सकता था? अब क्योंकि हम भी उसके साथ युद्धभूमि में नहीं सो सके, इसलिये हमें क्रोध से उत्तेजित अर्जुन की शोकाकुल आँखों से अवश्य दग्ध होना पड़ेगा।

अलुब्धो मतिमान् ह्रीमान् क्षमावान् रूपवान् बली।
वपुष्मान् मानकृद् वीरः प्रियः सत्यपराक्रमः॥ १४॥
परेभ्योऽप्यभयार्थिभ्यो यो ददात्यभयं विभुः।
तस्यास्माभिर्न शकितस्त्रातुमप्यात्मजो बली॥ १५॥

जो लोभरहित, मतिमान्, लज्जाशील, क्षमावान्, रूपवान्, बलवान्, सुन्दर शरीरधारी, दूसरों का सम्मान करनेवाला, वीर, प्रिय और सत्यपराक्रमी है, जो अभय के इच्छुक, शत्रुओं को भी अभय देनेवाला शक्तिशाली है, हम उसके बलवान्पुत्र की भी रक्षा नहीं कर सके।

न मे जयः प्रीतिकरो न राज्यं
न चामरत्वं न सुरैः सलोकता।
इमं समीक्ष्याप्रतिवीर्यपौरुषं
निपातितं देववरात्मजात्मजम्॥ १६॥

उस अद्वितीय पौरुष और पराक्रमवाले इन्द्रपुत्र के पुत्र को युद्ध में मारा हुआ देखकर अब मुझे युद्ध में विजय, राज्य की प्राप्ति, अमरत्व की प्राप्ति या देवलोक की प्राप्ति भी आनन्ददायक नहीं होसकती।

बत्तीसवाँ अध्याय : अभिमन्यु के वध को जानकर अर्जुन का विषाद और क्रोध।

संजय उवाच

तस्मिन्नहनि निर्वृत्ते घोरे प्राणभृतां क्षये।
आदित्येऽस्तंगते श्रीमन् संध्याकाल उपस्थिते॥ १॥
ततः संध्यामुपास्यैव वीरौ वीरावसादने।
कथयन्तौ रणे वृत्तं प्रयातौ रथमास्थितौ॥ २॥
ततः स्वशिबिरं प्राप्तौ, हतानन्दं हतत्विषम्।
वासुदेवोऽर्जुनश्चैव, कृत्वा कर्म सुदुष्करम्॥ ३॥
ध्वस्ताकारं समालक्ष्य शिबिरं परवीरहा।
बीभत्सुरब्रवीत् कृष्णमस्वस्थहृदयस्ततः॥ ४॥

संजय ने कहा कि हे श्रीमान्! उस दिन सूर्य के अस्त होजाने, साँयकाल के उपस्थित होजाने तथा प्राणधारियों के भयंकरविनाशकारी कर्म के रुक जाने पर, वीरों के संहारस्थल युद्धस्थल में ही सन्ध्योपासना कर वे दोनों वीर श्रीकृष्ण और अर्जुन रथ में बैठकर युद्ध की बातें करते हुए वहाँ से चल पड़े। अत्यन्त दुष्कर युद्धरूपी कर्म को करके इसप्रकार अपने शिविर के समीप आने पर उन्हें वह शिविर आनन्द और कान्ति से रहित दिखाई दिया। शिविर को उजड़ा हुआ सा देखकर शत्रुवीरों को मारनेवाले अर्जुन बेचैन हृदय से श्रीकृष्ण से बोले कि—

नदन्ति नाद्य तूर्याणि मङ्गल्यानि जनार्दन।
मिश्रा दुन्दुभिनिर्घोषैः शङ्खाश्चाडम्बरैः सह॥ ५॥
वीणा नैवाद्य वाद्यन्ते शम्यातालस्वनैः सह।
मङ्गल्यानि च गीतानि न गायन्ति पठन्ति च॥ ६॥
स्तुतियुक्तानि रम्याणि ममानीकेषु बन्दिनः।
योधाश्चापि हि मां दृष्ट्वा निवर्तन्ते ह्यधोमुखाः॥ ७॥

कर्माणि च यथापूर्वं कृत्वा नाभिवदन्ति माम्।
अपि स्वस्ति भवेदद्य भ्रातृभ्यो मम माधव॥ ८॥

हे जनार्दन! आज शिविर में मांगलिक बाजे नहीं बज रहे हैं। दुन्दुभि की ध्वनि से मिली हुई शंख और तुरही की आवाज भी आज नहीं है। ढाक और करतार की ध्वनि के साथ आज वीणा भी नहीं बज रही है। मेरी सेना के बन्दीलोग न तो मंगलगीतों का गान कर रहे हैं और न स्तुतियुक्त श्लोकों का पाठ कर रहे हैं। योद्धालोग भी मुझे देखकर मुख नीचा किये हुए वापिस लौट रहे हैं। वे पहले के समान कर्म करते हुए मेरा अभिवादन भी नहीं कर रहे हैं। हे माधव! क्या आज मेरे भाई सकुशल होंगे?

न हि शुद्ध्यति मे भावो दृष्ट्वा स्वजनमाकुलम्।
अपि पाञ्चालराजस्य विराटस्य च मानद॥ ९॥
सर्वेषां चैव योधानां सामग्र्यं स्यान्ममाच्युत।
न च मामद्य सौभद्रः प्रहृष्टो भ्रातृभिः सह॥ १०॥
रणादायान्तमुचितं प्रत्युद्याति हसन्निव।
एवं संकथयन्तौ तौ प्रविष्टौ शिबिरं स्वकम्॥ ११॥
ददृशाते भृशास्वस्थान्, पाण्डवान् नष्टचेतसः।
दृष्ट्वा भ्रातृंश्च पुत्रांश्च विमना वानरध्वजः।
अपश्यंश्चैव सौभद्रमिदं वचनमब्रवीत्॥ १२॥

अपने लोगों को बेचैन देखकर मेरी भावनाएँ आशंका से रहित नहीं हो पारही हैं। हे दूसरों को मान देनेवाले अच्युत! क्या पांचालराज की, विराटराज की और मेरे सारे योद्धाओं की कुशलता होगी? आज सुभद्राकुमार भी प्रसन्नता के साथ हँसता हुआ अपने भाईयों के साथ रण से आते हुए मेरी उचित अगवानी करने नहीं आया है। ऐसा कहते हुए वे अपने शिविर में प्रविष्ट हुए। वहाँ उन्होंने पाण्डवों को अत्यन्त अस्वस्थ और अचेत सी अवस्था में देखा। वानर की ध्वजावाले अर्जुन अपने भाईयों और पुत्रों को इस अवस्था में देखकर तथा वहाँ सुभद्रापुत्र अभिमन्यु को न देखकर उदास होकर बोले कि—

मुखवर्णोऽप्रसन्नो वः सर्वेषामेव लक्ष्यते।
न चाभिमन्युं पश्यामि न च मां प्रतिनन्दथ॥ १३॥
मया श्रुतश्च द्रोणेन चक्रव्यूहो विनिर्मितः।
न च वस्तस्य भेत्तास्ति विना सौभद्रमर्भकम्॥ १४॥
न चोपदिष्टस्तस्यासीन्मयानीकाद् विनिर्गमः।
कच्चिन्न बालो युष्माभिः परानीकं प्रवेशितः॥ १५॥
भित्त्वानीकं महेष्वासः परेषां बहुशो युधि।
कच्चिन्न निहतः संख्ये सौभद्रः परवीरहा॥ १६॥

आप सबका मुख का रंग अप्रसन्नता से युक्त दिखाई दे रहा है, मैं अभिमन्यु को भी नहीं देख रहा हूँ और आपलोग मुझसे प्रसन्नतापूर्वक बोल भी नहीं रहे हैं। मैंने सुना है कि द्रोणाचार्य ने चक्रव्यूह का निर्माण किया था, उसको भेदनेवाला सिवाय बालक अभिमन्यु के औरकोई नहीं था। पर मैंने उसे अभी सेना से बाहर निकलने की रीति नहीं बतायी थी। क्या तुमने उस बालक कोतो शत्रु सेना में प्रविष्ट नहीं करा दिया था? वहाँ शत्रुओं की सेना को अनेकबार भेदकर, शत्रुवीरों को नष्ट करनेवाला, सुभद्रा का महाधनुर्धर पुत्र, युद्धस्थल में युद्ध करता हुआ कहीं मारातो नहीं गया?

वार्ष्णेयीदयितं शूरं मया सततलालितम्।
यदि पुत्रं न पश्यामि यास्यामि यमसादनम्॥ १७॥
मृदुकुञ्चितकेशान्तं बालं बालमृगेक्षणम्।
मत्तद्विरदविक्रान्तं शालपोतमिवोद्गतम्॥ १८॥
स्मिताभिभाषिणं शान्तं गुरुवाक्यकरं सदा।
बाल्येऽप्यतुलकर्माणं प्रियवाक्यममत्सरम्॥ १९॥
महोत्साहं महाबाहुं दीर्घराजीवलोचनम्।
भक्तानुकम्पिनं दान्तं न च नीचानुसारिणम्॥ २०॥
कृतज्ञं ज्ञानसम्पन्नं कृतास्त्रमनिवर्तिनम्।
युद्धाभिनन्दिनं नित्यं द्विषतां भयवर्धनम्॥ २१॥
स्वेषां प्रियहिते युक्तं पितृणां जयगृद्धिनम्।
न च पूर्वं प्रहर्तारं संग्रामे नष्टसम्भ्रमम्॥ २२॥
यदि पुत्रं न पश्यामि यास्यामि यमसादनम्।

सुभद्रा के उस प्यारे शूरवीर पुत्र को, जिसे मैंने सदा लाड़प्यार दिया है, यदि नहीं देखूँगा, तो मैं भी मृत्युलोक को चला जाऊँगा। जिस बालक के बालों की लटें मुलायम और घुँघराली थीं, जिसकी आँखें हरिण के बच्चे जैसी थीं, जो मतवाले हाथी के समान पराक्रमी था, जो नये शाल वृक्ष के समान ऊँचा था, जो मुस्कराकर बात करता था, जो शान्त स्वभाव का और गुरुओं की आज्ञा को माननेवाला था, जो बालक होने पर भी अद्वितीय कर्मों को करने वाला था। जो मधुरभाषी और मत्सरता से रहित था, जो बड़ाउत्साही, लम्बी भुजाओंवाला और कमल जैसी बड़ी आँखोंवाला था, जो अपनेभक्तों पर कृपा

करनेवाला; दमनशील, तथा नीचों के संसर्ग से रहित था, जो कृतज्ञ, ज्ञान से युक्त, अस्त्र विद्यानिष्णात और युद्ध में से वापिस लौटनेवाला नहीं था, जो युद्ध का स्वागत करता था और नित्य शत्रुओं के भय को बढ़ाता था, जो अपनों के प्रिय और हितकारी कार्यों में लगा रहता था, जो अपने पितातुल्य व्यक्तियों की विजय को चाहता था, जिसे संग्राम में मोह नहीं होता था और जो शत्रु पर पहले प्रहार नहीं करता था, अपने उस पुत्र को यदि नहीं देखूँगा तो मैं भी मृत्युलोक को चला जाऊँगा।

रथेषु गण्यमानेषु गणितं तं महारथम्॥ २३॥
मयाध्यर्धगुणं संख्ये तरुणं बाहुशालिनम्।
प्रद्युम्नस्य प्रियं नित्यं केशवस्य ममैव च॥ २४॥
यदि पुत्रं न पश्यामि यास्यामि यमसादनम्।
सुनसं सुललाटान्तं स्वक्षिभ्रूदशनच्छदम्॥ २५॥
अपश्यतस्तद्वदनं का शान्तिर्हृदयस्य मे।
तन्त्रीस्वनमुखं रम्यं पुंस्कोकिलसमध्वनिम्॥ २६॥
अशृण्वतः स्वनं तस्य का शान्तिर्हृदयस्य मे।

रथियों की गिनती होने पर जिसे महारथी के रूप में गिना गया था, जिसे युद्ध में मुझसे ड्यौढ़ा माना जाता था, लम्बी भुजाओंवाला जो तरुण प्रद्युम्न का, श्रीकृष्ण का, और मेरा सदा प्यारा था, अपने उस पुत्र को यदि नहीं देखूँगा तो मैं भी मृत्युलोक को चला जाऊँगा। जिसकी नाक, ललाटस्थल, आँखें, भौंहें, होठ सभी सुन्दर थे। उसके ऐसे मुख को न देखकर मेरे हृदय को क्या शान्ति होगी? वीणा की ध्वनि के समान सुखदायी और कोकिल के समान रमणीय उसकी बात को न सुनने पर मेरे हृदय को शान्ति कैसे हो सकती है?

रूपं चाप्रतिमं तस्य त्रिदशैश्चापि दुर्लभम्॥ २७॥
अपश्यतो हि वीरस्य का शान्तिर्हृदयस्य मे।
अभिवादनदक्षं तं पितॄणां वचने रतम्॥ २८॥
नाद्याहं यदि पश्यामि का शान्तिर्हृदयस्य मे।
एवं विलप्य बहुधा भिन्नपोतो वणिग् यथा॥ २९॥
दुःखेन महताऽऽविष्टो युधिष्ठिरमपृच्छत।
कच्चित्स कदनं कृत्वा परेषां कुरुनन्दन॥ ३०॥
स्वर्गतोऽभिमुखः संख्ये युध्यमानो नरर्षभैः।
स नूनं बहुभिर्यत्तैर्युध्यमानो नरर्षभैः॥ ३१॥
असहायः सहायार्थी मामनुध्यातवान् ध्रुवम्।
पीड्यमानः शरैस्तीक्ष्णैः कर्णद्रोणकृपादिभिः॥ ३२॥
नानालिङ्गैः सुधौताग्रैर्मम पुत्रोऽल्पचेतनः।
इह मे स्यात् परित्राणं पितेति स पुनः पुनः॥ ३३॥
इत्येवं विलपन् मन्ये नृशंसैर्भुवि पातितः।

उसका सौन्दर्य अद्वितीय और देवताओं में भी दुर्लभ था। उस वीर को बिना देखे मेरा हृदय कैसे शान्त हो सकता है? अभिवादन करने में कुशल और पितृवर्ग का पालन करने में रत उस अभिमन्यु को बिना देखे मुझे शान्ति कैसे मिल सकती है? इसप्रकार बहुत तरह से विलाप करके, टूटेहुए जहाज के व्यापारी के समान महान् दुःख से भरेहुए अर्जुन ने युधिष्ठिर से पूछा कि हे कुरुनन्दन! क्या वह शत्रुओं का विनाश कर, युद्धस्थल में नरश्रेष्ठों से लड़ता हुआ स्वर्ग को गया है? बहुतसे नरश्रेष्ठों से युद्ध करतेहुए असहायावस्था में सहायता के लिये उसने निश्चय ही मुझे याद किया होगा? कर्ण, द्रोण, कृपाचार्य आदि के नाना प्रकार के अत्यन्त तीखे बाणों से पीड़ित होते हुए जब उसकी चेतना मन्द पड़ने लगी होगी, तब उसने बार बार विलाप करते हुए यह कहा होगा कि यदि यहाँ मेरे पिता जी होते तो मेरी प्राण रक्षा हो जाती। मैं समझता हूँ कि उन निर्दयों ने उसी अवस्था में उसे भूमि पर मारगिराया होगा।

अथवा मत्प्रसूतः स स्वस्त्रीयो माधवस्य च॥ ३४॥
सुभद्रायां च सम्भूतो न चैवं वक्तुमर्हति।
वज्रसारमयं नूनं हृदयं सुदृढं मम॥ ३५॥
अपश्यतो दीर्घबाहुं रक्ताक्षं यन्न दीर्यते।
कथं बाले महेष्वासा नृशंसा मर्मभेदिनः॥ ३६॥
स्वस्त्रीये वासुदेवस्य मम पुत्रेऽक्षिपञ्शरान्।

या वह मेरे द्वारा उत्पन्न किया हुआ था, श्रीकृष्ण जी का भानजा था, और सुभद्रा से उसका जन्म हुआ था, इसलिये ऐसी बातें नहीं कह सकता था। मेरा हृदय वास्तव में बहुत दृढ़ और वज्र से बना हुआ है, जो उस लम्बी बाहों तथा लाल आँखों वाले को बिनादेखे फट नहीं जाता? उन निर्दय महाधनुर्धरों ने उस बालक मेरे पुत्र और श्रीकृष्ण के भानजे पर मर्मभेदी बाणों से प्रहार कैसे किया?

सुभद्रामनुशोचामि या पुत्रमपलायिनम्॥ ३७॥
रणे विनिहतं श्रुत्वा शोकार्ता वै विनङ्क्ष्यति।
सुभद्रा वक्ष्यते किं मामभिमन्युमपश्यती॥ ३८॥

द्रौपदी चैव दुःखार्ते ते च वक्ष्यामि किं न्वहम्।
वज्रसारमयं नूनं हृदयं यन्न यास्यति॥ ३९॥
सहस्रधा वधूं दृष्ट्वा रुदतीं शोककर्शिताम्।

मुझे बार बार सुभद्रा के लिये शोक होरहा है, जो युद्ध में पीछे न हटनेवाले अपने पुत्र को युद्ध में मारागया सुनकर शोक से पीड़ित होकर अपने प्राण त्याग देगी? अभिमन्यु को न देखकर सुभद्रा मुझसे क्या कहेगी? द्रौपदी भी क्या कहेगी? मैं उन दोनों दुःखपीड़िताओं को क्या उत्तर दूँगा? मेरा हृदय वास्तव में वज्र से बना हुआ है, जो शोक से कातर, रोती हुई वधू उत्तरा को देखकर भी हजारों टुकड़े नहीं होजाता।

पुत्रशोकार्दितं पार्थं ध्यायन्तं साश्रुलोचनम्॥ ४०॥
निगृह्य वासुदेवस्तं पुत्राधिभिरभिप्लुतम्।
मैवमित्यब्रवीत् कृष्णस्तीव्रशोकसमन्वितम्॥ ४१॥
सर्वेषामेष वै पन्थाः शूराणामनिवर्तिनाम्।
क्षत्रियाणां विशेषेण येषां युद्धेन जीविका॥ ४२॥
ध्रुवं हि युद्धे मरणं शूराणामनिवर्तिनाम्।
गतः पुण्यकृतां लोकानभिमन्युर्न संशयः॥ ४३॥

अर्जुन इसप्रकार पुत्रलोक से पीड़ित होकर आँसू भरी आँखों से उसी का ध्यान कर रहे थे। तब तीव्र शोक से युक्त और पुत्र विषयक मनोव्यथा में डूबे हुए कुन्तीपुत्र को श्रीकृष्ण जी ने पकड़कर सँभाला और कहा कि ऐसे व्याकुल मत होओ। युद्ध में पीछे न हटनेवाले सारे क्षत्रियों के लिये, विशेषरूप से उनके लिये, जिनकी युद्ध से ही आजीविका चलती है, यही मार्ग है। युद्ध में पीछे न हटनेवाले योद्धाओं का युद्ध में मरना निश्चित है। अभिमन्यु ने पुण्यवालों की गति प्राप्त की है, इसमें कोई संशय नहीं है।

एतच्च सर्ववीराणां काङ्क्षितं भरतर्षभ।
संग्रामेऽभिमुखो मृत्युं प्राप्नुयादिति मानद॥ ४४॥
स च वीरान् रणे हत्वा राजपुत्रान् महाबलान्।
वीरैराकाङ्क्षितं मृत्युं सम्प्राप्तोऽभिमुखं रणे॥ ४५॥
मा शुचः पुरुषव्याघ्र पूर्वैरेष सनातनः।
धर्मकृद्भिः कृतो धर्मः क्षत्रियाणां रणे क्षयः॥ ४६॥
इमे ते भ्रातरः सर्वे दीना भरतसत्तम।
त्वयि शोकसमाविष्टे नृपाश्च सुहृदस्तव॥ ४७॥

हे दूसरों को मान देनेवाले भरतश्रेष्ठ! सारे वीर इसी अवस्था को चाहते हैं कि वे युद्ध में लड़ते हुए मृत्यु को प्राप्त हों। उसने महाबली वीर राजपुत्रों को युद्ध में मारकर युद्धस्थल में युद्ध करते हुए वीरों के द्वारा चाही हुई मृत्यु को प्राप्त किया है। हे पुरुषव्याघ्र! शोक मत करो। प्राचीन धर्म का विधान करनेवालों ने क्षत्रियों का यही धर्म निश्चित किया है कि युद्ध में उनकी मृत्यु हो। हे भरतश्रेष्ठ! ये तुम्हारे सारे भाई, और मित्र राजालोग तुम्हारे शोक से युक्त होने के कारण दीन बने हुए हैं।

एतांश्च वचसा साम्ना समाश्वासय मानद।
विदितं वेदितव्यं ते न शोकं कर्तुमर्हसि॥ ४८॥
एवमाश्वासितः पार्थः कृष्णेनाद्भुतकर्मणा।
ततोऽब्रवीत् तदा भ्रातॄन् सर्वान् पार्थःसगद्गदान्॥ ४९॥
स दीर्घबाहुः पृथ्वंसो दीर्घराजीवलोचनः।
अभिमन्युर्यथावृत्तः श्रोतुमिच्छाम्यहं तथा॥ ५०॥
सनागस्यन्दनहयान् द्रक्ष्यध्वं निहतान् मया।
संग्रामे सानुबन्धांस्तान् मम पुत्रस्य वैरिणः॥ ५१॥

हे दूसरों को सम्मान देनेवाले! तुम इन्हें सान्त्वनापूर्ण वचनों के द्वारा ढाढस दो। तुम्हें जानने योग्य बात का ज्ञान हो चुका है। इसलिये तुम शोक मत करो। इसप्रकार अद्भुत कार्य करनेवाले श्रीकृष्ण के द्वारा समझाये जाने पर अर्जुन ने आँसुओं से गद्गद् कण्ठवाले अपने भाइयों से कहा कि उस दीर्घबाहु, मोटे कंधों और कमल के समान बड़ी आँखों वाले अभिमन्यु ने जिसप्रकार का कर्म किया, मैं उसे सुनना चाहता हूँ। अब आप मेरे पुत्र के बैरियों को हाथी, घोड़ों, रथों और अपने बान्धवोंसहित मेरे द्वारा मारा गया देखेंगे।

कथं च वः कृतास्त्राणां सर्वेषां शस्त्रपाणिनाम्।
सौभद्रो निधनं गच्छेद् वज्रिणापि समागतः॥ ५२॥
यद्येवमहमज्ञास्यमशक्तान् रक्षणे मम।
पुत्रस्य पाण्डुपञ्चालान् मया गुप्तो भवेत् ततः॥ ५३॥
कथं च वो रथस्थानां शरवर्षाणि मुञ्चताम्।
नीतोऽभिमन्युर्निधनं कदर्थीकृत्य वः परैः॥ ५४॥
अहो वः पौरुषं नास्ति न च वोऽस्ति पराक्रमः।
यत्राभिमन्युः समरे पश्यतां वो निपातितः॥ ५५॥

आपलोग अस्त्रविद्यानिष्णात हैं, आपने हथियार अपने हाथ में लिये हुए थे, ऐसी अवस्था में इन्द्र के आजाने पर भी सुभद्रा कुमार कैसे मृत्यु को प्राप्त हो सकता था? यदि मैं ऐसा जानता कि मेरे पुत्र की रक्षा करने में पाण्डव और पांचाललोग

असमर्थ हैं, तो मैं स्वयं उसकी रक्षा करता। जब आपलोग रथों में बैठकर बाणों की वर्षा कर रहे थे, तो शत्रुओं ने आपलोगों की अवहेलनाकर कैसे उसे मृत्युलोक में पहुँचा दिया? अहो! आप लोगों में नतो पौरुष है और न पराक्रम है, जो आपलोगों के देखते देखते अभिमन्यु को युद्धक्षेत्र में गिरादियागया।

आत्मानमेव गर्हेयं यदहं वै सुदुर्बलान्।
युष्मानाज्ञाय निर्यातो भीरूनकृतनिश्चयान्॥ ५६॥
आहोस्विद् भूषणार्थाय वर्म शस्त्रायुधानि वः।
वाचस्तु वक्तुं संसत्सु मम पुत्रमरक्षताम्॥ ५७॥
एवमुक्त्वा ततो वाक्यं तिष्ठंश्चापवरासिमान्।
न स्माशक्यत बीभत्सुः केनचित्प्रसमीक्षितुम्॥ ५८॥

मुझे अपनी ही निन्दा करनी चाहिये, जो मैं अत्यन्त दुर्बल, कायर और दृढ़ निश्चयरहित आप लोगों को आज्ञा देकर अर्थात् सुरक्षा का दायित्व सौंपकर दूसरी जगह चला गया। मेरे पुत्र की रक्षा न करनेवाले आपलोगों के कवच, शस्त्र और आयुध क्या आभूषण के लिये हैं? क्या आपलोगों की बातें केवल सभाओं में बोलने के लिये हैं? ऐसा कहकर फिर अर्जुन अपने धनुष और उत्तम तलवार को लेकर खड़े हो गये। उससमय उनकीतरफ कोई आँख उठाकर भी नहीं देख सका।

तमन्तकमिव क्रुद्धं निःश्वसन्तं मुहुर्मुहुः।
पुत्रशोकाभिसंतप्तमश्रुपूर्णमुखं तदा॥ ५९॥
न भाषितुं शक्नुवन्ति द्रष्टुं वा सुहृदोऽर्जुनम्।
अन्यत्र वासुदेवाद्वा ज्येष्ठाद्वा पाण्डुनन्दनात्॥ ६०॥
ततस्तं पुत्रशोकेन भृशं पीडितमानसम्।
राजीवलोचनं क्रुद्धं राजा वचनमब्रवीत्॥ ६१॥

मृत्यु के समान क्रुद्ध, बार बार लम्बी साँसें लेते हुए, पुत्रशोक से अत्यन्तसन्तप्त, आँसुओं से भरे मुखवाले अर्जुन से बात करने या उसकीतरफ देखने का साहस उससमय सिवाय श्रीकृष्ण या ज्येष्ठ पाण्डुनन्दन युधिष्ठिर के कोई भी बन्धु बान्धव नहीं कर सका। तब पुत्रशोक से अत्यन्त पीडित मनवाले, कमलनयन, क्रोध में भरे हुए अर्जुन से राजा युधिष्ठिर ने यह कहा कि—

तेतीसवाँ अध्याय : अर्जुन की जयद्रथ के वध की प्रतिज्ञा।

त्वयि याते महाबाहो संशप्तकबलं प्रति।
प्रयत्नमकरोत् तीव्रमाचार्यो ग्रहणे मम॥ १॥
व्यूढानीका वयं द्रोणं वारयामः स्म सर्वशः।
प्रतिव्यूह्य रथानीकं यतमानं तथा रणे॥ २॥
स वार्यमाणो रथिभिर्मयि चापि सुरक्षिते।
अस्मानभिजगामाशु पीडयन् निशितैः शरैः॥ ३॥
वयं त्वप्रतिमं वीर्ये सर्वे सौभद्रमात्मजम्।
उक्तवन्तः स्म तं तात भिन्ध्यनीकमिति प्रभो॥ ४॥

हे महाबाहु! संशप्तकों की सेना के साथ युद्ध के लिये तुम्हारे जातेही आचार्य ने मुझे पकड़ने के लिये तीव्र प्रयत्न करना आरम्भ कर दिया। वे रथियों की सेना का व्यूह बनाकर इस कार्य के लिये युद्धस्थल में प्रयत्न कर रहे थे और हम भी अपना व्यूह बनाकर द्रोणाचार्य को रोक देते थे। हमारे रथियों द्वारा जब आचार्य को रोक दिया गया और मैं सुरक्षित रहा, तब तीखे बाणों से हमें पीड़ित करते हुए उन्होंने हमारे ऊपर तेजी से आक्रमण किया। तब हमसबने अद्वितीयपराक्रमी, सुभद्रा के अपने पुत्र अभिमन्यु से कहा कि हे तात! तुम इस कार्य में समर्थ हो, इसलिये तुम सेना के इस व्यूह को तोड़ो।

स तथा नोदितोऽस्माभिः सदश्व इव वीर्यवान्।
असह्यमपि तं भारं वोढुमेवोपचक्रमे॥ ५॥
स तवास्त्रोपदेशेन वीर्येण च समन्वितः।
प्राविशत् तद्बलं बालः सुपर्ण इव सागरम्॥ ६॥
तेऽनुयाता वयं वीरं सात्वतीपुत्रमाहवे।
प्रवेष्टुकामास्तेनैव येन स प्रविशच्चमूम्॥ ७॥
ततः सैन्धवको राजा सर्वान् नः समवारयत्।

हमारे द्वारा इसप्रकार कहने पर, एक पराक्रमी अच्छे घोड़े की तरह उसने उस असह्य भार को भी वहन करने का प्रयत्न किया। तुम्हारी अस्त्रविद्या के उपदेश तथा अपने पराक्रम से युक्त वह बालक उस सेना में ऐसे घुस गया, जैसे गरुड़पक्षी अपनी शक्ति के सहारे समुद्र में दूरतक उड़ान भरते चले जाते हैं। युद्धस्थल में हमसब उस सुभद्रा पुत्र के पीछे उसकी सहायता के लिये चले, हम उसी रास्ते से सेना में घुसना चाहते थे, जिससे उसने प्रवेश

किया था। किन्तु सिन्धुराज जयद्रथ ने हम सबको वहीं रोक दिया।

ततो द्रोणः कृपः कर्णो द्रौणिः कौसल्य एव च॥ ८॥
कृतवर्मा च सौभद्रं षड् रथाः पर्यवारयन्।
परिवार्य तु तैः सर्वैर्युधि बालो महारथैः॥ ९॥
यतमानः परं शक्त्या बहुभिर्विरथीकृतः।
ततो दौःशासनिः क्षिप्रं तथा तैर्विरथीकृतम्॥ १०॥
संशयं परमं प्राप्य दिष्टान्तेनाभ्ययोजयत्।

तब द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, कर्ण, अश्वत्थामा, कौशलराज और कृतवर्मा इन छः महारथियों ने सुभद्रापुत्र को घेर लिया। उन सारे और संख्या में बहुत महारथियों ने युद्धस्थल में, अपनी पूरी शक्ति से प्रयत्न करते हुए उस बालक को घेर कर रथ से हीन कर दिया। तब उनके द्वारा रथहीन किये हुए उसको, दुश्शासन के पुत्र ने भारी प्राणसंकट में पड़कर उसे शीघ्रतापूर्वक मृत्युलोक में भेज दिया।

स तु हत्वा सहस्राणि नराश्वरथदन्तिनाम्॥ ११॥
अष्टौ रथसहस्राणि नव दन्तिशतानि च।
राजपुत्रसहस्रे द्वे वीरांश्चालक्षितान् बहून्॥ १२॥
बृहद्बलं च राजानं स्वर्गेणाजौ प्रयोज्य ह।
ततः परमधर्मात्मा दिष्टान्तमुपजग्मिवान्॥ १३॥

हजारों पैदल, घोड़ों, रथों और हाथियों को उसने मारा। आठ हजार रथी, नौ सौ हाथी सवार, दो हजार राजकुमार, अर्थात् श्रेष्ठ क्षत्रिय और बहुत अलक्षित वीरों का वध करके और युद्धक्षेत्र में बहद्बल राजा को स्वर्ग भेजकर वह अत्यन्तधर्मात्मा अभिमन्यु मृत्यु को प्राप्त हुआ।

ततोऽर्जुनो वचः श्रुत्वा धर्मराजेन भाषितम्।
हा पुत्र इति निःश्वस्य व्यथितो न्यपतद् भुवि॥ १४॥
विषण्णवदनाः सर्वे परिवार्य धनंजयम्।
नेत्रैरनिमिषैर्दीनाः प्रत्यवैक्षन् परस्परम्॥ १५॥
प्रतिलभ्य ततः संज्ञां वासविः क्रोधमूर्च्छितः।
कम्पमानो ज्वरेणेव निःश्वसंश्च मुहुर्मुहुः॥ १६॥
पाणिं पाणौ विनिष्पिष्य श्वसमानोऽश्रुनेत्रवान्।
उन्मत्त इव विप्रेक्षन्निदं वचनब्रवीत्॥ १७॥

तब धर्मराज युधिष्ठिर के कहे हुए वचनों को सुनकर अर्जुन हाय पुत्र ऐसा कहकर लम्बी साँस लेते हुए व्यथित होकर भूमिपर गिर पड़े। तब सारे उदास मुख से अर्जुन को घेरकर दीनता के साथ एकटक निगाहों से एकदूसरे की तरफ देखने लगे। उसके पश्चात् होश में आकर क्रोध से चेतनारहित सा होकर, ज्वरग्रस्त के समान काँपते हुए, बारबार लम्बी साँसें लेते हुए, हाथ से हाथ को मसलते हुए, नेत्रों से आँसू बहाते हुए और पागलों के समान देखते हुए अर्जुन ने यह बात कही कि—

सत्यं वः प्रतिजानामि श्वोऽस्मि हन्ता जयद्रथम्।
न चेद् वधभयाद् भीतो धार्तराष्ट्रान् प्रहास्यति॥ १८॥
न चास्माञ्शरणं गच्छेत् कृष्णं वा पुरुषोत्तमम्।
भवन्तं वा महाराज श्वोऽस्मि हन्ता जयद्रथम्॥ १९॥
धार्तराष्ट्रप्रियकरं मयि विस्मृतसौहृदम्।
पापं बालवधे हेतुं श्वोऽस्मि हन्ता जयद्रथम्॥ २०॥
रक्षमाणाश्च तं संख्ये ये मां योत्स्यन्ति केचन।
अपि द्रोणकृपौ राजन् छादयिष्यामि ताञ्छरैः॥ २१॥

मैं आपलोगों के सामने यह प्रतिज्ञा करता हूँ कि कल मैं जयद्रथ को मार दूँगा। यदि वह वध के भय से डरा हुआ धृतराष्ट्र के पुत्रों का साथ छोड़ नहीं देता है या वह मेरी, पुरुषोत्तम कृष्ण की या आपकी शरण में नहीं आ जाता है, तो हे महाराज! मैं कल जयद्रथ को अवश्य मार दूँगा। जो धृतराष्ट्र के पुत्रों का प्रिय कर रहा है, जो मेरे प्रति सौहार्द को भूल गया है, जो उस बालक के वध में कारण है, उस पापी जयद्रथ को कल मैं अवश्य मार दूँगा। उसकी रक्षा करते हुए, जो कोई भी युद्धक्षेत्र में मुझसे युद्ध करेंगे, हे राजन्! चाहे वे द्रोणाचार्य और कृपाचार्य हों, मैं उन्हें बाणों से आच्छादित कर दूँगा।

यद्येतदेवं संग्रामे न कुर्यां पुरुषर्षभाः।
मास्म पुण्यकृतां लोकान् प्राप्नुयां शूरसम्मतान्॥ २२॥
ये लोका मातृहन्तॄणां ये चापि पितृघातिनाम्।
गुरुदारगतानां ये पिशुनानां च ये सदा॥ २३॥
साधूनसूयतां ये च ये चापि परिवादिनाम्।
ये च निक्षेपहर्तॄणां ये च विश्वासघातिनाम्॥ २४॥
भुक्तपूर्वां स्त्रियं ये च विन्दतामघशंसिनाम्।
ब्रह्मघ्नानां च ये लोका ये च गोघातिनामपि॥ २५॥
तानन्हायाधिगच्छेयं न चेद्धन्यां जयद्रथम्।

हे पुरुषश्रेष्ठो! यदि मैं यह कार्य युद्धक्षेत्र में न करूँ, तो मुझे वीरों को प्राप्त होनेवाली पुण्यगतियाँ प्राप्त न हों। जो लोक माता और पिता की हत्या

करनेवालों को मिलते हैं, गुरुपत्नीगामी, चुगलखोर, साधुओं की निन्दा करनेवाले, दूसरों को कलंक लगानेवाले, धरोहर को हड़पने वाले, विश्वासघाती, दूसरों के उपभोग में आयी स्त्रियों को ग्रहण करनेवाले, पाप की बातें करनेवाले, ब्रह्महत्यारे, गौघाती, इन लोगों को जो गति प्राप्त होती है, मैं भी उन्हीं गतियों को प्राप्त करूँ, जो मैं जयद्रथ को मार न दूँ।

वेदाध्यायिनमत्यर्थं संशितं वा द्विजोत्तमम्॥ २६॥
अवमन्यमानो यान् याति वृद्धान् साधून् गुरूंस्तथा।
स्पृशतो ब्राह्मणं गां च पादेनाग्निं च या भवेत्॥ २७॥
याऽप्सु श्लेष्म पुरीषं च मूत्रं वा मुञ्चतां गतिः।
तां गच्छेयं गतिं कष्टां न चेद्धन्यां जयद्रथम्॥ २८॥

वेद का अध्ययन या अत्यन्त कठोरव्रत का पालन करनेवाले उत्तम ब्राह्मण का, तथा बूढ़ों, साधुओं और गुरुओं का अपमान करनेवाले जिन लोकों को जाते हैं, ब्राह्मण, गाय और अग्नि को पैर से छूनेवाले की जो गति होती है, पानी में थूकने, या मलमूत्र करनेवाले की जो गति होती है, मैं उसी कष्टप्रद गति को प्राप्त करूँ, यदि जयद्रथ को न मारूँ।

उत्कोचिनां मृषोक्तीनां वञ्चकानां च या गतिः।
आत्मापहारिणां या च या च मिथ्याभिशंसिनाम्॥ २९॥
भृत्यैः संदिश्यमानानां पुत्रदाराश्रितैस्तथा।
असंविभज्य क्षुद्राणां या गतिर्मिष्टमश्नताम्॥ ३०॥
तां गच्छेयं गतिं घोरां न चेद्धन्यां जयद्रथम्।

घूसखोर, असत्यवादी और ठगों की जो गति होती है, आत्म का हनन करनेवालों की, दूसरों पर झूठे दोषारोपण करनेवालों की, सेवकों के आधीन रहने वालों की, स्त्री, पुत्र तथा आश्रितलोगों के साथ उचित बँटवारा किये बिना ही अकेले मिठाई खाने वाले क्षुद्र पुरुषों की जो गति होती है, मैं उसी घोर गति को प्राप्त करूँ, यदि मैं जयद्रथ को न मारूँ।

संश्रितं चापि यस्त्यक्त्वा साधुं तद्वचने रतम्॥ ३१॥
न बिभर्ति नृशंसात्मा निन्दते चोपकारिणम्।
मद्यपो भिन्नमर्यादः कृतघ्नो भर्तृनिन्दकः॥ ३२॥
तेषां गतिमियां क्षिप्रं न चेद्धन्यां जयद्रथम्।

जो निर्दय व्यक्ति अपने शरणागत को छोड़कर तथा साधु पुरुष और उसकी आज्ञापालन में लगे हुए व्यक्ति को छोड़कर, उपकारी व्यक्ति की निन्दा करता है, जो शराबी है, मर्यादारहित, कृतघ्न और स्वामी की निन्दा करनेवाला है, मैं शीघ्र ही इन सबकी गति को प्राप्त हो जाऊँ, यदि मैं जयद्रथ को न मारूँ।

अगारदाहिनां चैव गरदानां च ये मताः॥ ३३॥
अग्न्यातिथ्यविहीनाश्च गोपानेषु च विघ्नदाः।
रजस्वलां सेवयन्तः कन्यां शुल्केन दायिनः॥ ३४॥
ब्राह्मणस्य प्रतिश्रुत्य यो वै लोभाद् ददाति न।
तेषां गतिं गमिष्यामि श्वो न हन्यां जयद्रथम्॥ ३५॥

दूसरों के घर में आग लगानेवालों, विष देने वालों, अग्निहोत्र और गोसेवा से रहित, रजस्वला का सेवन करनेवालों, धन लेकर कन्यादान करनेवालों, तथा जो ब्राह्मण से देने की प्रतिज्ञा कर लोभ के कारण उसे नहीं देता है, इन लोगों को जो गति प्राप्त होती है, मैं उन्हीं गतियों को जाऊँगा, यदि कल जयद्रथ को नहीं मारूँगा।

धर्मादपेता ये चान्ये मया नात्रानुकीर्तिताः।
ये चानुकीर्तितास्तेषां गतिं क्षिप्रमवाप्नुयाम्॥ ३६॥
यदि व्युष्टामिमां रात्रिं श्वो न हन्यां जयद्रथम्।
इमां चाप्यपरां भूयः प्रतिज्ञां मे निबोधत॥ ३७॥
यद्यस्मिन्नहते पापे सूर्योऽस्तमुपयास्यति।
इहैव सम्प्रवेष्टाहं ज्वलितं जातवेदसम्॥ ३८॥

जिन पापियों के ये नाम गिनाये गये हैं तथा धर्म से भ्रष्ट और दूसरे भी जो पापी हैं, जिनके नाम यहाँ गिनाये नहीं गये हैं, मैं उन सबकी गतियों को तुरन्त प्राप्त हो जाऊँ, यदि इस रात्रि को बिताने के बाद कल जयद्रथ को मार न डालूँ। इसके अतिरिक्त मेरी दूसरी प्रतिज्ञा को भी आप सुनिये कि यदि इस पापी को न मारने पर सूर्य अस्त हो जाता है, तो मैं यहीं प्रज्वलित अग्नि में प्रवेश कर जाऊँगा।

एवमुक्त्वा विचिक्षेप गाण्डीवं सव्यदक्षिणम्।
तस्य शब्दमतिक्रम्य धनुःशब्दोऽस्पृशद् दिवम्॥ ३९॥
अर्जुनेन प्रतिज्ञाते पाञ्चजन्यं जनार्दनः।
प्रदध्मौ तत्र संक्रुद्धो देवदत्तं च फाल्गुनः॥ ४०॥

ऐसा कहकर अर्जुन ने दायें और बायें हाथ से गांडीवधनुष की टंकार की। उसका शब्द दूसरे शब्दों को दबाकर आकाश में फैल गया। अर्जुन के इसप्रकार प्रतिज्ञा करने पर जनार्दन श्रीकृष्ण ने अपने पाँचजन्य को तथा अत्यन्त क्रोध में भरे हुए अर्जुन ने देवदत्त नाम के शंख को जोर से बजाया।

चौतीसवाँ अध्याय : जयद्रथ को दुर्योधन और द्रोणाचार्य का आश्वासन।

श्रुत्वा तु तं महाशब्दं पाण्डूनां जयगृद्धिनाम्।
चारैः प्रवेदिते तत्र समुत्थाय जयद्रथः॥ १॥
शोकसम्मूढहृदयो दुःखेनाभिपरिप्लुतः।
जगाम समितिं राज्ञां सैन्धवो विमृशन् बहु॥ २॥
अभिमन्योः पितुर्भीतः सव्रीडो वाक्यमब्रवीत्।
स निनीषति दुर्बुद्धिर्मां किलैकं यमक्षयम्॥ ३॥
तत् स्वस्ति वोऽस्तु यास्यामि स्वगृहं जीवितेप्सया।

तब विजय के अभिलाषी पांण्डवों के उस महान् जयघोष को सुनकर और गुप्तचरों के द्वारा भी बताये जाने पर, शोक से जिसका हृदय अत्यन्तस्तब्ध हो गया था, वह जयद्रथ दुःख से अत्यधिक भरकर, बहुत चिन्ता करता हुआ, उठकर राजाओं की सभा में गया और अभिमन्यु के पिता से डरा हुआ लज्जासहित यह वाक्य बोला कि वह दुर्बुद्धि केवल मुझ अकेले को ही परलोक में पहुँचाना चाहता है, इसलिये आपका कल्याण हो। मैं जीवित रहने की इच्छा से अपने घर चला जाऊँगा।

प्रहर्षं पाण्डवेयानां श्रुत्वा मम महद् भयम्॥ ४॥
सीदन्ति मम गात्राणि मुमूर्षोरिव पार्थिवाः।
वधो नूनं प्रतिज्ञातो मम गाण्डीवधन्वना॥ ५॥
तथा हि हृष्टाः क्रोशन्ति शोककाले स्म पाण्डवाः।
तस्मान्मामनुजानीत भद्रं वोऽस्तु नरर्षभाः॥ ६॥
एवं विलपमानं तं भयाद् व्याकुलचेतसम्।
आत्मकार्यगरीयस्त्वाद् राजा दुर्योधनोऽब्रवीत्॥ ७॥

पाण्डवों के हर्षनाद को सुनकर मुझे बड़ा डर लग रहा है। हे राजाओं! मरणासन्न व्यक्ति के समान मेरे शरीर के अंग शिथिल होरहे हैं। निश्चितरूप से गांडीवधारी अर्जुन ने मेरे वध की प्रतिज्ञा की है, इसलिये इस शोक के समय में भी पाण्डव प्रसन्न होकर गर्ज रहे हैं। हे राजाओं! आपका कल्याण हो। इसलिये आपलोग मुझे जाने की आज्ञा दें। इसप्रकार विलाप करते हुए और भय से व्याकुल चित्तवाले उस जयद्रथ से अपने कार्य की गुरुता का ध्यान रखते हुए राजा दुर्योधन बोला कि—

न भेतव्यं नरव्याघ्र को हि त्वां पुरुषर्षभ।
मध्ये क्षत्रियवीराणां तिष्ठन्तं प्रार्थयेद् युधि॥ ८॥
अहं वैकर्तनः कर्णश्चित्रसेनो विविंशतिः।
भूरिश्रवाः शलः शल्यो वृषसेनो दुरासदः॥ ९॥
पुरुमित्रो जयो भोजः काम्बोजश्च सुदक्षिणः।
सत्यव्रतो महाबाहुर्विकर्णो दुर्मुखश्च ह॥ १०॥
दुःशासनः सुबाहुश्च कालिङ्गश्चाप्युदायुधः।
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ द्रोणो द्रौणिश्च सौबलः॥ ११॥
एते चान्ये च बहवो नानाजनपदेश्वराः।
ससैन्यास्त्वाभियास्यन्ति व्येतु ते मानसो ज्वरः॥ १२॥

हे पुरुषश्रेष्ठ! हे नरव्याघ्र! तुम्हें डरना नहीं चाहिये। क्षत्रिय वीरों के बीच में खड़े हुए तुम्हें मारने की युद्ध में कौन इच्छा कर सकता है? मैं, सूर्यपुत्र कर्ण, चित्रसेन, विविंशति, भूरिश्रवा, शल, शल्य, दुर्धर्ष वृषसेन, पुरमित्र, जय, भोज, काम्बोजराज सुदक्षिण, सत्यव्रत, महाबाहु विकण, दुर्मुख, दुश्शासन, सुबाहु, हथियोर उठाये हुए कलिंगराज, अवन्ती के विन्द और अनुविन्द, द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा और शकुनि, ये तथा अनेक देशों के राजालोग सेनासहित तुम्हारे साथ चलेंगे। इसलिये तुम्हारा मानसिक सन्ताप समाप्त होजाना चाहिये।

त्वं चापि रथिनां श्रेष्ठः स्वयं शूरोऽमितद्युते।
स कथं पाण्डवेयेभ्यो भयं पश्यसि सैन्धव॥ १३॥
एवमाश्वासितो राजन् पुत्रेण तव सैन्धवः।
दुर्योधनेन सहितो द्रोणं रात्रावुपागमत्॥ १४॥
न तु ते युधि संत्रासः कार्यः पार्थात् कथञ्चन।
अहं हि रक्षिता तात भयात्त्वां नात्र संशयः॥ १५॥
व्यूहयिष्यामि तं व्यूहं, यं पार्थो न तरिष्यति।
तस्माद् युद्धयस्व मा भैस्त्वं स्वधर्ममनुपालय।
पितृपैतामहं मार्गमनुयाहि महारथ॥ १६॥

हे अमिततेजस्वी! तुम स्वयं भी रथियों में शूरवीर हो। हे सिन्धुराज! फिर क्यों पाण्डवों से डर रहे हो? हे राजन्! इसप्रकार आश्वासन देकर आपका पुत्र दुर्योधन उस सिन्धुराज को रात में ही द्रोणाचार्य के पास लेगया। द्रोणाचार्य ने कहा कि तुम्हें युद्ध में किसीप्रकार का भय नहीं करना चाहिये। इसमें कोई संशय नहीं है कि तुम्हारे भय से तुम्हारी रक्षा करनेवाला मैं हूँ। मैं ऐसा व्यूह बनाऊँगा, जिसे अर्जुन नहीं तोड़ सकेंगे। इसलिये तुम युद्ध करो, डरो मत।

अपने धर्म का पालन करो। हे महारथी! अपने बापदादाओं के मार्ग का अनुकरण करो।

दुर्लभं मानुषैर्मन्दैर्महाभाग्यमवाप्य तु।
भुजवीर्यार्जिताँल्लोकान् दिव्यान् प्राप्स्यस्यनुत्तमान्॥ १७॥
कुरवः पाण्डवाश्चैव वृष्णयोऽन्ये च मानवाः।
अहं च सह पुत्रेण अध्रुवा इति चिन्त्यताम्॥ १८॥
पर्यायेण वयं सर्वे कालेन बलिना हताः।
परलोकं गमिष्यामः स्वैः स्वैः कर्मभिरन्विताः॥ १९॥
तपस्तप्त्वा तु याँल्लोकान् प्राप्नुवन्ति तपस्विनः।
क्षत्रधर्माश्रिता वीराः क्षत्रियाः प्राप्नुवन्ति तान्॥ २०॥
एवमाश्वासितो राजा भारद्वाजेन सैन्धवः।
अपानुदद् भयं पार्थाद् युद्धाय च मनो दधे॥ २१॥

जो मन्दभागी मनुष्यों के लिये दुर्लभ है, उस युद्धस्थल में मृत्युरूप परम सौभाग्य को प्राप्तकर तुम अपनी भुजाओं के पराक्रम से प्राप्त किये श्रेष्ठ और दिव्य लोकों को प्राप्त करोगे। तुम यह विचार करो कि कौरव, पाण्डव, वृष्णीवंशी योद्धा और दूसरे मनुष्य, अपने पुत्रसहित मैं, ये सब सदा रहनेवाले नहीं हैं। बारी बारी से हम सब बलवान् काल के द्वारा मारे जायेंगे और अपने अपने कर्मों के साथ परलोक को चले जायेंगे। तपस्वीलोग तपस्या करके जिन लोकों को प्राप्त करते हैं, वीर क्षत्रिय उन्हीं लोकों को क्षात्रधर्म का पालन करके प्राप्त कर लेते हैं। तब द्रोणाचार्य के द्वारा इसप्रकार आश्वासन दिये जाने पर सिन्धुराज ने अर्जुन से प्राप्त अपने भय को दूर कर दिया, और युद्ध करने के लिये मन में निश्चय किया।

पैंतीसवाँ अध्याय : श्रीकृष्ण का अर्जुन को कौरवों की तैयारी के विषय में बताना, अर्जुन का उत्साह।

प्रतिज्ञाते तु पार्थेन सिन्धुराजवधे तदा।
वासुदेवो महाबाहुर्धनंजयमभाषत॥ १॥
भ्रातॄणां मतमज्ञाय त्वया वाचा प्रतिश्रुतम्।
सैन्धवं चास्मि हन्तेति तत्साहसमिदं कृतम्॥ २॥
असम्मन्त्र्य मया सार्धमतिभारोऽयमुद्यतः।
कथं तु सर्वलोकस्य नावहास्या भवेमहि॥ ३॥
धार्तराष्ट्रस्य शिबिरे मया प्रणिहिताश्चराः।
त इमे शीघ्रमागम्य प्रवृत्तिं वेदयन्ति नः॥ ४॥

अर्जुन के द्वारा सिन्धुराज जयद्रथ के वध की प्रतिज्ञा कर लेने पर महाबाहु श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा कि भाइयों के मत को बिना जाने तुमने जो यह प्रतिज्ञा वाणी द्वारा कर ली कि मैं सिन्धुराज को मारूँगा, यह बहुतबड़ा साहस किया है। तुमने मेरे साथ सलाह न कर अपने ऊपर बड़ाभारी भार उठा लिया है। अब हम लोगों की हँसी के पात्र कैसे नहीं बनेंगे? मैंने दुर्योधन के शिविर में अपने गुप्तचर भेजे थे, उन्होंने जल्दी ही वहाँ से लौटकर वहाँ के समाचार मुझे बताये हैं।

त्वया वै सम्प्रतिज्ञाते सिन्धुराजवधे प्रभो।
सिंहनादः सवादित्रः सुमहानिह तैः श्रुतः॥ ५॥
तेन शब्देन वित्रस्ता धार्तराष्टाः ससैन्धवाः।
नाकस्मात् सिंहनादोऽयमिति मत्वा व्यवस्थिताः॥ ६॥
अभिमन्योर्वधं श्रुत्वा ध्रुवमार्तो धनंजयः।
रात्रौ निर्यास्यति क्रोधादिति मत्वा व्यवस्थिताः॥ ७॥
तैर्यतद्भिरियं सत्या श्रुता सत्यवतस्तव।
प्रतिज्ञा सिन्धुराजस्य वधे राजीवलोचन॥ ८॥

हे शक्तिशाली अर्जुन! सिन्धुराज के वध के लिये तुम्हारे प्रतिज्ञा करने पर वाद्ययन्त्रों के साथ किया गया महान् सिंहनाद उनलोगों ने सुना था। उस शब्द को सुनकर सिन्धुराजसहित धृतराष्ट्र के पुत्र सन्त्रस्त होउठे और यह सोचकर कि यह कोलाहल अकारण नहीं है, वे सावधान होगये। अभिमन्यु के वध को सुनकर अर्जुन निश्चितरूप से पीड़ित होंगे और क्रोध में भरकर रात में ही युद्ध के लिये निकल पड़ेंगे, यह मानकर वे युद्ध के लिये तैयार होने लगे। हे राजीवलोचन! जब वे तैयार होरहे थे, तभी उन्होंने सत्य बोलनेवाले तुम्हारी सिन्धुराज के वध की इस सच्ची प्रतिज्ञा के विषय में सुना।

अथोत्थाय सहामात्यैर्दीनः शिबिरमात्मनः।
आयात् सौवीरसिन्धूनामीश्वरो भृशदुःखितः॥ ९॥

स मन्त्रकाले सम्मन्त्र्य सर्वा नैःश्रेयसीं क्रियाम्।
सुयोधनमिदं वाक्यमब्रवीद् राजसंसदि॥ १०॥
मामसौ पुत्रहन्तेति श्वोऽभियाता धनंजयः।
प्रतिज्ञातो हि सेनाया मध्ये तेन वधो मम॥ ११॥
ते मां रक्षत संग्रामे मा वो मूर्ध्नि धनंजयः।
पदं कृत्वाऽऽप्नुयाल्लक्ष्यं तस्मादत्र विधीयताम्॥ १२॥
अथ रक्षा न मे संख्ये क्रियते कुरुनन्दन।
अनुजानीहि मां राजन् गमिष्यामि गृहान् प्रति॥ १३॥

तब अत्यन्त दुःख से भरकर दीन बना हुआ सिन्धु और सौवीर देशों का वह राजा अपने मंत्रियों के साथ उठकर अपने शिविर में आया। तब मन्त्रणा के उससमय मंत्रियों के साथ अपने कल्याण के सारे कार्यों के बारे में मन्त्रणाकर उसने राजाओं की सभा में आकर दुर्योधन से यह कहा कि अर्जुन मुझे अपने पुत्र का घातक समझकर कल मेरे ऊपर आक्रमण करेगा। उसने सेना के बीच में मेरे वध की प्रतिज्ञा की है। इसलिये आपलोग संग्राम में मेरी रक्षा करें। ऐसा न हो कि अर्जुन आपलोगों के सिर पर पैर रखकर अपने लक्ष्य तक पहुँच जाये। इसलिये इस विषय में प्रबन्ध कीजिये। हे कुरुनन्दन! यदि युद्ध में मेरी रक्षा नहीं हो सकती तो हे राजन्! मुझे आज्ञा दीजिये। मैं अपने घर चला जाऊँगा।

स राज्ञा स्वयमाचार्यो भृशमत्रार्थितोऽर्जुन।
संविधानं च विहितं रथाश्च किल सज्जिताः॥ १४॥
कर्णो भूरिश्रवा द्रौणिर्वृषसेनश्च दुर्जयः।
कृपश्च मद्रराजश्च षडेतेऽस्य पुरोगमाः॥ १५॥
धनुष्यस्त्रे च वीर्ये च प्राणे चैव तथौरसे।
अविषह्यतमा ह्येते निश्चिताः पार्थ षड्रथाः॥ १६॥
एतानजित्वा षड् रथान् नैव प्राप्यो जयद्रथः।
तेषामेकैकशो वीर्यं षण्णां त्वमनुचिन्तय॥ १७॥
सहिता हि नरव्याघ्र न शक्या जेतुमञ्जसा।

हे अर्जुन! राजा दुर्योधन ने स्वयं द्रोणाचार्य से जयद्रथ की रक्षा के लिये बड़ी प्रार्थना की है, इसलिये अब उसकी रक्षा का प्रबन्ध कर लिया गया है और रथ तैयार कर लिये गये हैं। कर्ण, भूरिश्रवा, अश्वत्थामा, दुर्जयवीर वृषसेन, कृपाचार्य, मद्रराज, ये छः महारथी जयद्रथ के आगे रहेंगे। हे पार्थ! ये छः महारथी धनुर्विद्या, पराक्रम और हृदय की प्राणशक्ति में निश्चितरूप से अत्यन्तअसह्य माने गये हैं। इन छः महारथियों को बिना जीते जयद्रथ को प्राप्त नहीं किया जासकता। इन छः में से तुम एक एक के पराक्रम के विषय में विचार करो। हे नरव्याघ्र! जब ये एकसाथ होंगे तो इन्हें सरलता से नहीं जीता जा सकता।

अर्जुन उवाच

षड् रथात् धार्तराष्ट्रस्य मन्यसे यान् बलाधिकान्॥ १८॥
तेषां वीर्यं ममार्धेन न तुल्यमिति मे मतिः।
अस्त्रमस्त्रेण सर्वेषामेतेषां मधुसूदन॥ १९॥
मया द्रक्ष्यसि निर्भिन्नं जयद्रथवधैषिणा।
द्रोणस्य मिषतश्चाहं, सगणस्य विलप्यतः॥ २०॥
मूर्धानं सिन्धुराजस्य पातयिष्यामि भूतले।
यस्तु गोप्ता महेष्वासस्तस्य पापस्य दुर्मतेः॥ २१॥
तमेव प्रथमं द्रोणमभियास्यामि केशव।

तब अर्जुन ने कहा कि आप दुर्योधन के जिन छः महारथियों को अधिकबलशाली मानते हो, मेरा विचार है कि उनकी इकट्ठी शक्ति मेरी आधी शक्ति के भी बराबर नहीं है। हे मधुसूदन! आप देखोगे कि इन सबके अस्त्रों को मैंने अपने अस्त्रों से काट गिराया है। मैं द्रोणाचार्य के देखते हुए ही सैनिकोंसहित विलाप करते हुए जयद्रथ के सिर को काटकर भूमि पर गिरा दूँगा। हे केशव! उस पापी दुर्मति के जो महाधनुर्धर रक्षक हैं, सबसे पहले मैं उन द्रोणाचार्य पर ही आक्रमण करूँगा।

तस्मिन् द्यूतमिदं बद्धं मन्यते स सुयोधनः॥ २२॥
तस्मात् तस्यैव सेनाग्रं भित्त्वा यास्यामि सैन्धवम्।
नरनागाश्वदेहेभ्यो विस्त्रविष्यति शोणितम्॥ २३॥
पतद्भ्यः पतितेभ्यश्च विभिन्नेभ्यः शितैः शरैः।
ब्राह्मेणास्त्रेण चास्त्राणि हन्यमानानि संयुगे॥ २४॥
मया द्रष्टासि सर्वेषां सैन्धवस्याभिरक्षिणाम्।
शरवेगसमुत्कृत्तै राज्ञां केशव मूर्धभिः॥ २५॥
आस्तीर्यमाणां पृथिवीं द्रष्टासि श्वो मया युधि।

दुर्योधन यह मानता है कि द्रोणाचार्य के ऊपर ही युद्धरूपी जूआ अवलम्बित है। इसलिये मैं उन्हीं की सेना के अग्रभाग को भेदकर जयद्रथ के पास जाऊँगा। मेरे तीखे बाणों से विदीर्ण होकर गिरते हुए और गिरे हुए मनुष्यों, हाथियों और घोड़ों के शरीरों से खून की धारा बहेगी। आप देखेंगे कि युद्धस्थल में जयद्रथ के रक्षकों के द्वारा छोड़े हुए सारे अस्त्रों

को मैं ब्रह्मास्त्र से विनष्ट कर दूँगा। हे केशव! कल आप देखेंगे कि मेरे बाणों के वेग से काटे हुए राजाओं के सिरों से युद्धक्षेत्र में भूमि बिछ गयी है।

क्रव्यादांस्तर्पयिष्यामि द्रावयिष्यामि शात्रवान्॥ २६॥
सुहृदो नन्दयिष्यामि प्रमथिष्यामि सैन्धवम्।
बह्वागस्कृत् कुसम्बन्धी पापदेशसमुद्भवः॥ २७॥
मया सैन्धवको राजा हतः स्वान् शोचयिष्यति।
तथा प्रभाते कर्तास्मि यथा कृष्ण सुयोधनः॥ २८॥
नान्यं धनुर्धरं लोके मंस्यते मत्समं युधि।
गाण्डीवं च धनुर्दिव्यं योद्धा चाहं नरर्षभ॥ २९॥
त्वं च यन्ता हृषीकेश किं नु स्यादजितं मया।

मैं मांसभोजी जन्तुओं को तृप्त कर दूँगा, शत्रु सैनिकों को भगा दूँगा, मित्रों को हर्षित कर दूँगा और जयद्रथ को मथ दूँगा। जयद्रथ ने बहुत अपराध किये हैं। वह दुष्टसम्बन्धी है, पाप से भरे देश में उत्पन्न हुआ है। वह राजा मेरे द्वारा मरकर अपने लोगों को शोक में डाल देगा। हे कृष्ण! मैं सवेरे उठने पर ऐसा कर्म करूँगा, जिससे दुर्योधन युद्ध में मेरे समान किसी और को धनुर्धर नहीं मानेगा। हे नरश्रेष्ठ! गाण्डीव जैसा दिव्य धनुष मेरे पास है, मैं योद्धा हूँ, आप मेरे सारथि हैं, फिर मैं किसको नहीं जीत सकता?

तव प्रसादाद् भगवन् किमिवास्ति रणे मम॥ ३०॥
अविषह्यं हृषीकेश किं जानन् मां विगर्हसे।
यथा लक्ष्म स्थिरं चन्द्रे समुद्रे च यथा जलम्॥ ३१॥
एवमेतां प्रतिज्ञां मे सत्यां विद्धि जनार्दन।
मावमंस्था ममास्त्राणि मावमंस्था धनुर्दृढम्॥ ३२॥
मावमंस्था बलं बाह्वोर्मावमंस्था धनंजयम्।
तथाभियामि संग्रामं न जीयेयं जयामि च।
तेन सत्येन संग्रामे हतं विद्धि जयद्रथम्॥ ३३॥

हे हृषीकेश! हे भगवन्! आपकी कृपा से कौन सी ऐसी शक्ति है जो युद्ध में मेरे लिये असह्य है? यह जानते हुए भी आप मेरी निन्दा क्यों कर रहे हैं? जैसे चन्द्रमा में उसका चिह्न स्थायी है, जैसे सागर में जल सदा विद्यमान रहेगा, हे जनार्दन! ऐसे ही आप मेरी प्रतिज्ञा को सत्य समझिये। आप मेरे अस्त्रों का अपमान मत कीजिये। आप मेरे दृढ़ धनुष का अपमान मत कीजिये, आप मेरी भुजाओं के बल का अपमान मत कीजिये, आप अर्जुन का अपमान मत कीजिये। मैं युद्ध में इसप्रकार से पराक्रम करूँगा कि कोई मुझे जीत न सके और मैं ही विजयी होऊँ। इस सत्य के आधार पर आप युद्ध में जयद्रथ को मारा हुआ ही समझें।

छत्तीसवाँ अध्याय : सुभद्रा का विलाप और श्रीकृष्ण का उसे आश्वासन।

तां निशां दुःखशोकार्तौ निःश्वसन्ताविवोरगौ।
निद्रां नैवोपलेभाते वासुदेवधनंजयौ॥ १॥
अथ कृष्णं महाबाहुरब्रवीत् पाकशासनिः।
आश्वासय सुभद्रां त्वं भगिनीं स्नुषया सह॥ २॥
स्नुषां चास्या वयस्याश्च विशोकाः कुरु माधव।
साम्ना सत्येन युक्तेन वचसाऽऽश्वासय प्रभो॥ ३॥
ततोऽर्जुनगृहं गत्वा वासुदेवः सुदुर्मनाः।
भगिनीं पुत्रशोकार्तामाश्वासयत दुःखिताम्॥ ४॥

उस रात्रि को दुःख और शोक से पीड़ित और साँप के समान लम्बी साँसें लेते हुए श्रीकृष्ण और अर्जुन को नींद नहीं आई। तब अर्जुन ने महाबाहु श्रीकृष्ण से कहा कि आप जाकर अपनी बहन सुभद्रा को पुत्रवधु उत्तरा के साथ ढाढस बँधाइये। हे माधव! आप पुत्रवधु और उसकी सखियों को शोकरहित कीजिये। हे प्रभो! आप शान्तिपूर्ण, सत्य और युक्तियुक्त वचनों के द्वारा उन्हें हिम्मत बँधाइये। तब श्रीकृष्णजी अत्यन्तदुःखी होकर अर्जुन के शिविर में गये और पुत्र के शोक से पीड़ित अपनी दुःखी बहन को धीरज बँधाने लगे।

मा शोकं कुरु वार्ष्णेयि कुमारं प्रति सस्नुषा।
सर्वेषां प्राणिनां भीरु निष्ठैषा कालनिर्मिता॥ ५॥
कुले जातस्य धीरस्य क्षत्रियस्य विशेषतः।
सदृशं मरणं ह्येतत् तव पुत्रस्य मा शुचः॥ ६॥
दिष्ट्या महारथो धीरः पितुस्तुल्यपराक्रमः।
क्षात्रेण विधिना प्राप्तो वीराभिलषितां गतिम्॥ ७॥
तपसा ब्रह्मचर्येण श्रुतेन प्रज्ञयापि च।
सन्तो यां गतिमिच्छन्ति तां प्राप्तस्तव पुत्रकः॥ ८॥

श्रीकृष्ण जी ने कहा कि हे वृष्णिकुल में उत्पन्न

सुभद्रा तुम पुत्रवधुसहित कुमार अभिमन्यु के लिये शोक मत करो। हे भीरु! सारे प्राणियों के लिये काल ने यही गति निर्धारित की हुई है। तुम्हारा पुत्र उत्तम कुल में उत्पन्न था, वह धैर्यशाली और विशेषरूप से क्षत्रिय था। तुम्हारे पुत्र की मृत्यु उसके अनुरूप ही हुई है। इसलिये तुम शोक मत करो। यह सौभाग्य की बात है कि तुम्हारा पुत्र धैर्यवान्, महारथी, वीर और अपने पिता के समान पराक्रमी था। वह क्षत्रियों जैसे कार्य करता हुआ उस गति को प्राप्त हुआ है, जिसे वीरलोग चाहते हैं। सन्तलोग तपस्या, ब्रह्मचर्य, विद्या, और बुद्धि के द्वारा जिस गति को प्राप्त करना चाहते हैं उसी गति को तुम्हारा पुत्र प्राप्त हुआ है।

वीरसूर्वीरपत्नी त्वं वीरजा वीरबान्धवा।
मा शुचस्तनयं भद्रे गतः स परमां गतिम्॥ ९॥
प्राप्स्यते चाप्यसौ पापः सैन्धवो बालघातकः।
अस्यावलेपस्य फलं ससुहृद्गणबान्धवः॥ १०॥
व्युष्टायां तु वरारोहे रजन्यां पापकर्मकृत्।
क्षत्रधर्मं पुरस्कृत्य गतः शूरः सतां गतिम्॥ ११॥
यां गतिं प्राप्नुयामेह ये चान्ये शस्त्रजीविनः।
अनुयातश्च पितरं मातृपक्षं च वीर्यवान्॥ १२॥
सहस्रशो रिपून् हत्वा हतः शूरो महारथः।

तुम वीर पुत्र को पैदा करनेवाली हो। वीर की पत्नी हो, वीर पिता की सन्तान हो, वीर भाइयों की बहिन हो। हे भद्रे! तुम पुत्र के लिये शोक मत करो, वह उत्तम गति को प्राप्त हुआ है। हे सुन्दरी! रात बीतने पर पापकर्म को करनेवाला वह पापी जयद्रथ अपने इस पाप का फल मित्रों, बान्धवों और सैनिकोंसहित प्राप्त करेगा। क्षत्रियों के धर्म का पालन करते हुए ही वह शूरवीर सज्जनों की उस गति को प्राप्त हुआ है, जिस गति को हम तथा दूसरे शस्त्रजीवी भी पाना चाहते हैं। वह महारथी, पराक्रमी, शूरवीर अपने पितृपक्ष और मातृपक्ष की मर्यादाओं का पालन करता हुआ हजारों शत्रुओं को मारकर मरा है।

आश्वासय स्नुषां राज्ञि मा शुचः क्षत्रिये भृशम्॥ १३॥
श्वः प्रियं सुमहच्छ्रुत्वा विशोका भव नन्दिनि।
यत् पार्थेन प्रतिज्ञातं तत् तथा न तदन्यथा॥ १४॥
चिकीर्षितं हि ते भर्तुर्न भवेज्जातु निष्फलम्।

हे रानी! तुम पुत्रवधु को धीरज बँधाओ। हे अपने कुल को आनंदित करनेवाली क्षत्रियाणी! अधिक शोक मत करो। कल अत्यन्तमहान् प्रिय समाचार को सुनकर शोकरहित होजाना। अर्जुन ने जो प्रतिज्ञा की है, वह असत्य नहीं हो सकती। तुम्हारे पति का चाहा हुआ कर्म कभी निष्फल नहीं हो सकता।

एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य केशवस्य महात्मनः॥ १५॥
सुभद्रा पुत्रशोकार्ता विललाप सुदुःखिता।
हा पुत्र मम मन्दायाः कथमेत्यासि संयुगे॥ १६॥
निधनं प्राप्तवांस्तात पितुस्तुल्यपराक्रमः।

महात्मा श्रीकृष्ण के इन वचनों को सुनकर सुभद्रा पुत्र के शोक से पीड़ित और अत्यन्तदुःखी होकर विलाप करने लगी। वह कहने लगी कि हाय पुत्र! तुम मुझ मन्दभागिनी के पेट में आकर और पिता के समान पराक्रमी होकर हाय बेटे! युद्ध में मारे कैसे गये?

पाण्डवेषु च नाथेषु वृष्णिवीरेषु वा विभो॥ १७॥
पञ्चालेषु च वीरेषु हतः केनास्यनाथवत्।
अतृप्तदर्शना पुत्र दर्शनस्य तवानघ॥ १८॥
मन्दभाग्या गमिष्यामि व्यक्तमद्य यमक्षयम्।
विशालाक्षं सुकेशान्तं चारुवाक्यं सुगन्धि च॥ १९॥
तव पुत्र कदा भूयो मुखं द्रक्ष्यामि निर्व्रणम्।
धिग् बलं भीमसेनस्य धिक्पार्थस्य धनुष्मताम्॥ २०॥
धिग् वीर्यं वृष्णिवीराणां पञ्चालानां च धिग् बलम्।

हे मेरे शक्तिशाली बेटे! तुम्हारे तो रक्षक पाण्डव, वृष्णिवंश के वीर और पांचालवीर थे, फिर किसने तुम्हें अनाथों के समान मारा? हे अनघ! तुम्हें देखने के लिये मैं तरस रही हूँ। मैं बड़ी मन्दभाग्या हूँ। मैं आज निश्चय ही मृत्युलोक को चली जाऊँगी। हे पुत्र! घावों से रहित, बड़ी आँखोंवाले, जिस पर सुन्दर बाल लहराया करते थे, जिससे मधुर वाक्य और सुन्दर गन्ध निकला करती थी, तुम्हारे उस सुन्दर मुख को अब मैं दुबारा कब देखूँगी? भीमसेन के बल को धिक्कार है, कुन्तीपुत्र के धनुषधारण करने को धिक्कार है, वृष्णिवीरों और पांचालों के पराक्रम और बल को धिक्कार है।

धिक्केकयांस्तथा चेदीन् मत्स्यांश्चैवाथ सृञ्जयान्॥ २१॥
ये त्वां रणगतं वीरं न शेकुरभिरक्षितुम्।
अद्य पश्यामि पृथिवीं शून्यामिव हतत्विषम्॥ २२॥
अभिमन्युमपश्यन्ती शोकव्याकुललोचना।

एह्येहि तृषितो वत्स स्तनौ पूर्णौ पिबाशु मे॥ २३॥
अङ्कमारुह्य मन्दाया ह्यतृप्तायाश्च दर्शने।
हा वीर दृष्टो नष्टश्च धनं स्वप्न इवासि मे॥ २४॥
अहो ह्यनित्यं मानुष्यं जलबुद्बुदचञ्चलम्।

केकय, चेदी, मत्स्य, और सृंजयवीरों को धिक्कार है, जो तुम जैसे वीर की युद्ध में जाने पर रक्षा न कर सके। आज मुझे यह सारी पृथिवी सूनी और शोभाहीन लगती है। आज अभिमन्यु को न देखने के कारण मेरी आँखें शोक से व्याकुल होरही हैं। हे बेटे! तुम्हें प्यास लगी होगी, आओ आओ, मेरे स्तन दूध से भरे हैं, तुम्हारे देखने की प्यासी मुझ मन्दभागिनी की गोद में बैठकर जल्दी से इस दूध को पीलो। हाय वीर! तुम मुझे स्वप्न में मिले धन की तरह दिखायी दिये और फिर नष्ट होगये। अरे यह मनुष्यजीवन पानी के बुलबुले की तरह चंचल और अनित्य है।

इमां ते तरुणीं भार्यां तवाधिभिरभिप्लुताम्॥ २५॥
कथं संधारयिष्यामि विवत्सामिव धेनुकाम्।
अहो ह्यकाले प्रस्थानं कृतवानसि पुत्रक॥ २६॥
विहाय फलकाले मां सुगृद्धां तव दर्शने।
नूनं गतिः कृतान्तस्य प्राज्ञैरपि सुदुर्विदा॥ २७॥
यत्र त्वं केशवे नाथे संग्रामेऽनाथवद्धतः।

तुम्हारी यह तरुणी पत्नी तुम्हारे शोक से ऐसे बेचैन है, जैसे बछड़ा खोजाने पर गाय होती है। इसे मैं कैसे धीरज बँधाऊँगी? जब तुम्हारा पुत्ररूपी फल मिलनेवाला है, तब हे पुत्र! तुम्हें देखने के लिये अत्यन्त तरसती हुई मुझे छोड़कर तुम असमय में ही चले गये। वास्तव में काल की गति विद्वानों के लिये भी अत्यन्तदुर्बोध है, तभी तुम कृष्ण जैसे रक्षक के होते हुए भी संग्राम में अनाथ की तरह से मारे गये।

यज्वनां दानशीलानां ब्राह्मणानां कृतात्मनाम्॥ २८॥
कृतज्ञानां वदान्यानां गुरुशुश्रूषिणामपि।
सहस्रदक्षिणानां च या गतिस्तामवाप्नुहि॥ २९॥
या गतिर्युध्यमानानां शूराणामनिवर्तिनाम्।
हत्वारीन् निहतानां च संग्रामे तां गतिं व्रज॥ ३०॥

हे बेटे! यज्ञ करनेवालों, दानशीलों, जितेन्द्रिय ब्राह्मणों, कृतज्ञों, उदारहृदयों, गुरुसेवापरायणों, हजारों की संख्या में दक्षिणा देनेवालों को जो उत्तम गति प्राप्त होती है, वह तुम्हें भी प्राप्त हो। जो गति संग्राम में पीछे न हटनेवाले, और शत्रुओं को मारकर मरने वाले शूरवीरों को प्राप्त होती है, तुम्हें वही गति मिले।

गोसहस्रप्रदातृणां क्रतुदानां च या गतिः।
नैवेशिकं चाभिमतं ददतां या गतिः शुभा॥ ३१॥
ब्राह्मणेभ्यः शरण्येभ्यो निधिं निदधतां च या।
या चापि न्यस्तदण्डानां तां गतिं व्रज पुत्रक॥ ३२॥
ब्रह्मचर्येण यां यान्ति मुनयः संशितव्रताः।
एकपत्न्यश्च यां यान्ति तां गतिं व्रज पुत्रक॥ ३३॥

हजार गायों का दान देनेवालों, यज्ञ के लिये दान देनेवालों, सब सामग्रियोंसहित निवासस्थान देने वालों, को जो उत्तम गति प्राप्त होती है, हे पुत्र! वही गति तुम्हें भी प्राप्त हो। हे पुत्रक! व्रतों का पालन करनेवाले मुनिलोग ब्रह्मचर्यव्रत के द्वारा जिस उत्तम गति को प्राप्त करते हैं, एक पत्नी रखने वाले जिस गति को प्राप्त करते हैं, तुम्हें वही गति प्राप्त हो।

राज्ञां सुचरितैर्या च गतिर्भवति शाश्वती।
दीनानुकम्पिनां या च सततं संविभागिनाम्॥ ३४॥
पैशुन्याच्च निवृत्तानां तां गतिं व्रज पुत्रक।
व्रतिनां धर्मशीलानां गुरुशुश्रूषिणामपि॥ ३५॥
अमोघातिथिनां या च तां गतिं व्रज पुत्रक।
कृच्छ्रेषु या धारयतामात्मानं व्यसनेषु च॥ ३६॥
गतिः शोकाग्निदग्धानां तां गतिं व्रज पुत्रक।

सदाचार का पालन करने से राजाओं को, दीनों पर कृपा करनेवालों को, सदा बाँटकर खानेवालों को और चुगलखोरी से दूर रहने वालों जो शाश्वतउत्तम गति प्राप्त होती है, हे पुत्र! वही तुम्हें भी प्राप्त हो। हे पुत्र! व्रतों का पालन करनेवाले, धर्मशील, गुरुओं की सेवा करनेवाले, और अतिथिको निराश न करनेवाले मनुष्यों को जो उत्तम गति प्राप्त होती है, वह तुम्हें भी प्राप्त हो। भयानक कष्टों में शोक की अग्नि से जलाये जाते हुए भी जो व्यक्ति अपनेआपको स्थिर रखते हैं, उन्हें जो गति प्राप्त होती है, हे पुत्र! वही गति तुम्हें भी प्राप्त हो।

मातापित्रोश्च शुश्रूषां कल्पयन्तीह ये सदा॥ ३७॥
स्वदारनिरतानां च या गतिस्तामवाप्नुहि।
साम्ना ये सर्वभूतानि पश्यन्ति गतमत्सराः॥ ३८॥
नारुंतुदानां क्षमिणां या गतिस्तामवाप्नुहि।
मधुमांसनिवृत्तानां मदाद् दम्भात् तथानृतात्॥ ३९॥

परोपतापत्यक्तानां तां गतिं व्रज पुत्रक।
ह्रीमन्तः सर्वशास्त्रज्ञा ज्ञानतृप्ता जितेन्द्रियाः॥ ४०॥
यां गतिं साधवो यान्ति तां गतिं व्रज पुत्रक।

हे पुत्र! जो इस संसार में सदा मातापिता की सेवा करते हैं, और अपनी ही पत्नी से अनुराग रखते हैं, उन्हें जो गति प्राप्त होती है, वह गति तुम्हें भी प्राप्त हो। जो ईर्ष्याद्वेष से दूर रहकर सारे प्राणियों को समानभाव से देखते हैं, जो किसी के हृदय को नहीं दुखाते हैं, जो क्षमाशील हैं, उन्हें जो गति मिलती है, वही गति तुम्हें भी मिले। जो मद्यमांस का सेवन नहीं करते, मद, दम्भ और असत्य से अलग रहते हैं दूसरों को दुःख नहीं देते, उन्हें जो उत्तम गति मिलती है, हे पुत्र! तुम्हें भी वही गति प्राप्त हो। हे पुत्र! लज्जाशील, सारे शास्त्रों को जानने वाले, ज्ञान से तृप्त, जितेन्द्रिय, ऐसे साधु पुरुष जिस उत्तम गति को प्राप्त करते हैं, तुम्हें भी वही गति प्राप्त हो।

एवं विलपतीं दीनां सुभद्रां शोककर्शिताम्॥ ४१॥
अन्वपद्यत पाञ्चाली वैराटीसहितां तदा।
ताः प्रकामं रुदित्वा च विलप्य च सुदुःखिताः॥ ४२॥
उन्मत्तवत् तदा राजन् विसंज्ञा न्यपतन् क्षितौ।
सोपचारस्तु कृष्णश्च दुःखितां भृशदुःखितः॥ ४३॥
सिक्त्वाम्भसा समाश्वास्य तत्तदुक्त्वा हितं वचः।
विसंज्ञकल्पां रुदतीं मर्मविद्धां प्रवेपतीम्॥ ४४॥
भगिनीं पुण्डरीकाक्ष इदं वचनमब्रवीत्।

इसप्रकार से उत्तरा के साथ विलाप करती हुई दीन और शोक से दुर्बल सुभद्रा के पास द्रौपदी भी वहाँ आ पहुँची। हे राजन्! तब वे सारी अत्यन्त दुखी होकर, अत्यन्त विलाप करती हुई, रोती हुई पागलों के समान मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़ीं। तब अत्यन्त दुःख से भरे हुए श्रीकृष्ण दुःख से भरी हुई सुभद्रा का उपचार करने लगे। उन्होंने उस पर पानी के छींटे दिये और उचित हितकारी बातें कहकर आश्वासन दिया। जो उससमय अचेत सी होरही थी, जो मर्माहत हो काँप रही थी और रो रही थी, उस अपनी बहिन से तब कमलनयन श्रीकृष्ण ने यह बात कही कि—

सुभद्रे मा शुचः पुत्रं पाञ्चाल्याश्वासयोत्तराम्॥ ४५॥
गतोऽभिमन्युः प्रथितां गतिं क्षत्रियपुङ्गवः।
ये चान्येऽपि कुले सन्ति पुरुषा नो वराननेे॥ ४६॥
सर्वे ते तां गतिं यान्तु ह्यभिमन्योर्यशस्विनः।
कुर्याम तद् वयं कर्म क्रियासु सुहृदश्च नः॥ ४७॥
कृतवान् यादृगद्यैकस्तव पुत्रो महारथः।
एवमाश्वास्य भगिनीं द्रौपदीमपि चोत्तराम्।
पार्थस्यैव महाबाहुः पार्श्वमागादरिंदमः॥ ४८॥

हे सुभद्रा! पुत्र के लिये शोक मत करो। हे द्रुपद कुमारी! तुम उत्तरा को धीरज बँधाओ। क्षत्रियों में श्रेष्ठ अभिमन्यु सर्वश्रेष्ठ गति को प्राप्त हुआ है। हे सुन्दरी! हमारे और दूसरे भी जो पुरुष हैं वे सारे यशस्वी अभिमन्यु की गति को प्राप्त करें। तुम्हारे अकेले महारथी पुत्र ने जैसा कर्म किया है, वैसे ही कर्म हम और हमारे बन्धु भी करें। इस प्रकार अपनी बहिन को, द्रौपदी को और उत्तरा को आश्वासन देकर, शत्रुदमन, महाबाहु श्रीकृष्ण अर्जुन के ही पास चले गये।

सैंतीसवाँ अध्याय : पाण्डववीरों द्वारा अर्जुन की प्रशंसा और श्रीकृष्ण के उत्साहयुक्त वचन।

संजय उवाच

न पाण्डवानां शिबिरे कश्चित् सुष्वाप तां निशाम्।
प्रजागरः सर्वजनं ह्याविवेश विशाम्पते॥ १॥
पुत्रशोकाभितप्तेन प्रतिज्ञातो महात्मना।
सहसासिन्धुराजस्य वधो गाण्डीवधन्वना॥ २॥
तत् कथं नु महाबाहुर्वासविः परवीरहा।
प्रतिज्ञां सफलां कुर्यादिति ते समचिन्तयन्॥ ३॥
कष्टं हीदं व्यवसितं पाण्डवेन महात्मना।
पुत्रशोकाभितप्तेन प्रतिज्ञा महती कृता॥ ४॥

संजय ने कहा कि हे महाराज! उस रात्रि को पाण्डवों के शिविर में कोई भी नहीं सोया। सब के अन्दर जागरण ने घर कर लिया था। वे सब यही चिन्ता कर रहे थे कि पुत्र के शोक से सन्तप्त मनस्वी अर्जुन ने अचानक जयद्रथ के वध की प्रतिज्ञा कर ली है। अब ये शत्रुवीरों को मारनेवाले, महाबाहु, इन्द्रपुत्र, किसप्रकार अपनी प्रतिज्ञा को

सफल करेंगे? इन महात्मा पाण्डव ने यह बड़ा कष्ट भरा निश्चय किया है, इन्होंने पुत्र के शोक से सन्तप्त होकर, बहुत बड़ी प्रतिज्ञा कर ली है।

धृतराष्ट्रस्य पुत्रेण सर्वं तस्मै निवेदितम्।
स हत्वा सैन्धवं संख्ये पुनरेतु धनंजयः॥ ५॥
जित्वा रिपुगणांश्चैव पारयत्वर्जुनो व्रतम्।
श्वोऽहत्वा सिन्धुराजं वै धूमकेतुं प्रवेक्ष्यति॥ ६॥
न ह्यसावनृतं कर्तुमलं पार्थो धनंजयः।
धर्मपुत्रः कथं राजा भविष्यति मृतेऽर्जुने॥ ७॥
तस्मिन् हि विजयः कृत्स्नः पाण्डवेन समाहितः।
यदि नोऽस्ति कृतं किञ्चिद् यदि दत्तं हुतं यदि॥ ८॥
फलेन तस्य सर्वस्य सव्यसाची जयत्वरीन्।

धृतराष्ट्र के पुत्र ने यह सारी बात जयद्रथ को बता दी है। अब अर्जुन किसीतरह से जयद्रथ को युद्ध में मारकर सकुशल वापिस लौट आयें। अर्जुन शत्रुओं को जीतकर अपने व्रत को पूरा करें, नहीं तो यदि वे कल जयद्रथ को न मार सके तो अग्नि में प्रवेश कर लेंगे। कुन्तीपुत्र अर्जुन अपने वचन को असत्य नहीं होने देंगे और यदि ऐसा हो गया तो धर्मपुत्र युधिष्ठिर अर्जुन के मरने पर कैसे राजा होंगे? उन पाण्डुपुत्र ने अर्जुन पर ही विजय का भार रखा हुआ है। हे भगवान्! यदि हमने कुछ भी पुण्यकर्म किये हैं, यदि हमने कुछ भी दानयज्ञ किया है, तो उसके फल से अर्जुन शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर लें।

एवं कथयतां तेषां जयमाशंसतां प्रभो॥ ९॥
कृच्छ्रेण महता राजन् रजनी व्यत्यवर्तत।
तस्यां रजन्यां मध्ये तु प्रतिबुद्धो जनार्दनः॥ १०॥
स्मृत्वा प्रतिज्ञां पार्थस्य दारुकं प्रत्यभाषत।
अर्जुनेन प्रतिज्ञातमार्तेन हतबन्धुना॥ ११॥
जयद्रथं वधिष्यामि श्वोभूत इति दारुक।
तत्तु दुर्योधनः श्रुत्वा मन्त्रिभिर्मन्त्रयिष्यति॥ १२॥
यथा जयद्रथं पार्थो न हन्यादिति संयुगे।

हे राजन्! हे प्रभो! उन लोगों के इसप्रकार विजय की कामना करते हुए वह रात्रि बड़े कष्ट से व्यतीत हुई। उस रात के बीच में ही श्रीकृष्ण जी जाग उठे और अर्जुन की प्रतिज्ञा को यादकर अपने सारथि दारुक से बोले कि– हे दारुक! अपने पुत्र के मारे जाने पर दुःखी अर्जुन ने प्रतिज्ञा कर ली है कि कल जयद्रथ का वध करूँगा। दुर्योधन यह जानकर मन्त्रियों से इसप्रकार विचार करेगा, जिससे अर्जुन जयद्रथ को युद्ध में न मार सके।

अक्षौहिण्यो हि ताः सर्वा रक्षिष्यन्ति जयद्रथम्॥ १३॥
द्रोणश्च सह पुत्रेण सर्वास्त्रविधिपारगः।
सोऽहं श्वस्तत् करिष्यामि यथा कुन्तीसुतोऽर्जुनः॥ १४॥
अप्राप्तेऽस्तं दिनकरे हनिष्यति जयद्रथम्।
न हि दारा न मित्राणि ज्ञातयो न च बान्धवाः॥ १५॥
कश्चिदन्यः प्रियतरः कुन्तीपुत्रान्ममार्जुनात्।
अनर्जुनमिमं लोकं मुहूर्तमपि दारुक॥ १६॥
उदीक्षितुं न शक्तोऽहं भविता न च तत् तथा।
अहं विजित्य तान् सर्वान् सहसा सहयद्विपान्॥ १७॥
अर्जुनार्थे हनिष्यामि सकर्णान् ससुयोधनान्।

वे सारी अक्षौहिणी सेनाएँ, तथा सारे अस्त्रों की विधियों को जाननेवाले द्रोणाचार्य अपने पुत्र के साथ जयद्रथ की रक्षा करेंगे। इसलिये मैं कल वह कार्य करूँगा, जिससे सूर्य छिपने से पहले ही अर्जुन जयद्रथ को मार डालेंगे। मुझे अर्जुन से बढ़कर न तो स्त्री, न मित्र, न परिवार वाले और न बान्धव न कोई दूसरा व्यक्ति अधिक प्रिय है। हे दारुक! बिना अर्जुन के मैं मूहूर्तभर भी इस संसार को नहीं देख सकता इसलिये ऐसा नहीं हो सकता कि अर्जुन के प्राणों को संकट हो। मैं अर्जुन के लिये घोड़ों और हाथियोंसहित तुरन्त उन सबको कर्ण और सुयोधनसहित जीतकर मार दूँगा।

श्वो निरीक्षन्तु मे वीर्यं त्रयो लोका महाहवे॥ १८॥
धनंजयार्थे समरे पराक्रान्तस्य दारुक।
श्वो नरेन्द्रसहस्राणि राजपुत्रशतानि च॥ १९॥
साश्वद्विपरथान्याजौ विद्रविष्यामि दारुक।
श्वस्तां चक्रप्रमथितां द्रक्ष्यसे नृपवाहिनीम्॥ २०॥
मया क्रुद्धेन समरे पाण्डवार्थे निपातिताम्।
ज्ञास्यन्ति लोकाः सर्वे मां सुहृदं सव्यसाचिनः॥ २१॥

कल तीनों लोक इस महान् युद्ध में मेरे पराक्रम को देखें, जिसे मैं हे दारुक! अर्जुन के लिये युद्धक्षेत्र में दिखाऊँगा। हे दारुक! कल मैं हजारों राजाओं और सैकड़ों राजकुमारों को घोड़ों, रथों और हाथियों सहित युद्धक्षेत्र में मार भगाऊँगा। तुम देखोगे कि कल मैंने क्रुद्ध होकर अर्जुन के लिये उस राजा की सेना को युद्धस्थल में चक्र से मथ करके गिरा

दिया है। सारे संसार के लोग कल जान जायेंगे कि मैं अर्जुन का मित्र हूँ।

यस्तं द्वेष्टि स मां द्वेष्टि यस्तं चानु स मामनु।
इति संकल्प्यतां बुद्ध्या शरीरार्द्धं ममार्जुनः॥ २२॥
यथा त्वं मे प्रभातायामस्यां निशि रथोत्तमम्।
कल्पयित्वा यथाशास्त्रमादाय व्रज संयतः॥ २३॥
गदां कौमोदकीं दिव्यां शक्तिं चक्रं धनुः शरान्।
आरोप्य वै रथे सूत सर्वोपकरणानि च॥ २४॥
स्थानं च कल्पयित्वाथ रथोपस्थेध्वजस्य मे।

जो अर्जुन से द्वेष करता है, वह मुझसे द्वेष करता है, जो उसका मित्र है, वह मेरा मित्र है। तुम अपनी बुद्धि से यह संकल्प करलो कि अर्जुन मेरा आधा शरीर है। इसलिये तुम इस रात्रि के बीत जाने और प्रातःकाल के होजाने पर मेरे उत्तम रथ को शास्त्रों के अनुसार अर्थात् युद्धविद्या के शास्त्रों के अनुसार सुसज्जित कर अर्थात् शस्त्रास्त्रों से युक्तकर सावधानी के साथ युद्धक्षेत्र में चलना। कौमोदकी गदा, दिव्यशक्ति, चक्र और धनुषबाण और दूसरेसारे उपकरण रथ में लगाकर हे सूत! रथ के पिछले भाग में ध्वज के स्थान को निश्चित कर लेना।

छत्रं जाम्बूनदैर्जालैरर्कज्वलनसप्रभैः॥ २५॥
विश्वकर्मकृतैर्दिव्यैरश्वानपि विभूषितान्।
बलाहकं मेघपुष्पं शैव्यं सुग्रीवमेव च॥ २६॥
युक्तान् वाजिवरान् यत्तः कवची तिष्ठ दारुक।
पाञ्चजन्यस्य निर्घोषमार्षभेणैव पूरितम्॥ २७॥
श्रुत्वा च भैरवं नादमुपेयास्त्वं जवेन माम्।
एकाह्नाहममर्षं च सर्वदुःखानि चैव ह॥ २८॥
भ्रातुः पैतृष्वसेयस्य व्यपनेष्यामि दारुक।

रथ में छत्र लगाकर, विश्वकर्मा द्वारा निर्मित, सूर्य के समान चमकीले, सुनहरे दिव्यजालों से विभूषित मेरे चारों घोड़ों बलाहक, मेघपुष्प, शैव्य, और सुग्रीव को रथ में जोतकर और स्वयं भी कवच को बाँधकर हे दारुक सावधानी से तैयार रहना। जब तुम पांचजन्य शंख की ऋषभ स्वर में बजायी हुई ध्वनि और भयंकर कोलाहल को सुनो, तब शीघ्रता से मेरे पास पहुँच जाना। हे दारुक! मैं एक दिन में ही अपनी बूआ के पुत्र भाई अर्जुन के सारे दुःख और अमर्ष को दूर कर दूँगा।

सर्वोपायैर्यतिष्यामि यथा बीभत्सुराहवे॥ २९॥
पश्यतां धार्तराष्ट्राणां हनिष्यति जयद्रथम्।
यस्य यस्य च बीभत्सुर्वधे यत्नं करिष्यति॥ ३०॥
आशंसे सारथे तत्र भवितास्य ध्रुवो जयः।

दारुक उवाच

जय एव ध्रुवस्तस्य कुत एव पराजयः॥ ३१॥
यस्य त्वं पुरुषव्याघ्र सारथ्यमुपजग्मिवान्।
एवं चैतत् करिष्यामि यथा मामनुशाससि।
सुप्रभातामिमां रात्रिं जयाय विजयस्य हि॥ ३२॥

मैं सारे उपायों से ऐसा प्रयत्न करूँगा, जिससे अर्जुन युद्धक्षेत्र में धृतराष्ट्र के पुत्रों के देखते हुए जयद्रथ को मार देगा। हे सारथि! अर्जुन जिस जिसके वध के लिये प्रयत्न करेगा, मुझे आशा है कि वहाँ उसकी अवश्य विजय होगी। तब दारुक ने कहा कि हे पुरुषव्याघ्र! जिसके सारथि आप बने हुए हैं, उसकी विजय निश्चित है, उसकी पराजय कैसे हो सकती है? मुझे आप जैसे कहते हैं, मैं वैसे ही रात्रि बीतने और प्रभात होने पर, अर्जुन की विजय के लिये अवश्य करूँगा।

अड़तीसवाँ अध्याय : चौदहवें दिन का आरम्भ। द्रोणाचार्य का जयद्रथ की रक्षा के लिये चक्रशकट व्यूह का निर्माण।

संजय उवाच

तस्यां निशायां व्युष्टायां द्रोणः शस्त्रभृतां वरः।
स्वान्यनीकानि सर्वाणि प्राक्रामद् व्यूहितुं ततः॥ १॥
ततः शङ्खमुपाध्माय त्वरयन् वाजिनः स्वयम्।
इतस्ततस्तान् रचयन् द्रोणश्चरति वेगितः॥ २॥
तेष्वनीकेषु सर्वेषु स्थितेष्वाहवनन्दिषु।
भारद्वाजो महाराज जयद्रथमथाब्रवीत्॥ ३॥

तब संजय ने कहा कि हे राजन्! उस रात्रि के बीत जाने पर शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ द्रोणाचार्य ने अपनी सारी सेनाओं का व्यूह बनाना आरम्भ कर दिया। उस समय शंख को बजाकर अपने घोड़ों को स्वयं ही शीघ्रता से हाँकते हुए वे तेजी से इधर

से उधर आ जा रहे थे। युद्ध में आनन्द का अनुभव करने वाली उन सारी सेनाओं के व्यूहबद्ध हो जाने पर हे महाराज! द्रोणाचार्य ने जयद्रथ से कहा कि—

त्वं चैव सौमदत्तिश्च कर्णश्चैव महारथः।
अश्वत्थामा च शल्यश्च वृषसेनः कृपस्तथा॥ ४॥
शतं चाश्वसहस्राणां रथानामयुतानि षट्।
द्विरदानां प्रभिन्नानां सहस्राणि चतुर्दश॥ ५॥
पदातीनां सहस्राणि दंशितान्येकविंशतिः।
गव्यूतिषु त्रिमात्रासु मामनासाद्य तिष्ठत॥ ६॥
एवमुक्तः समाश्वस्तः सिन्धुराजो जयद्रथः।
सम्प्रायात् सह गान्धारैर्वृतस्तैश्च महारथैः॥ ७॥
वर्मिभिः सादिभिर्यत्तैः प्रासपाणिभिरास्थितैः।

तुम भूरिश्रवा, महारथी कर्ण, अश्वत्थामा, शल्य, वृषसेन, और कृपाचार्य एक लाख घुड़सवारों, साठ हजार रथियों, चौदह हजार मद बहानेवाले गजराजों और इक्कीस हजार कवचधारी पैदलसैनिकों के साथ मुझसे छः कोस की दूरी पर जाकर खड़े रहो। ऐसा कहे जाने पर आश्वासित होकर जयद्रथ उन महारथियों तथा गान्धारदेश के, हाथों में प्रास लिये हुए, कवच धारण किये हुए, सावधान घुड़सवारों से घिरा हुआ वहाँ से चल दिया।

मत्तानां सुविरुढानां हस्त्यारोहैर्विशारदैः॥ ८॥
नागानां भीमरूपाणां वर्मिणां रौद्रकर्मिणाम्।
अध्यर्धेन सहस्रेण पुत्रो दुर्मर्षणस्तव॥ ९॥
अग्रतः सर्वसैन्यानां युध्यमानो व्यवस्थितः।
ततो दुःशासनश्चैव विकर्णश्च तवात्मजौ॥ १०॥
सिन्धुराजार्थसिद्ध्यर्थमग्रानीके व्यवस्थितौ।
दीर्घो द्वादश गव्यूतिः पश्चार्धे पञ्च विस्तृतः॥ ११॥
व्यूहस्तु चक्रशकटो भारद्वाजेन निर्मितः।

जिन पर युद्धविशारद हाथीसवार बैठे हुए थे, ऐसे मतवाले भयंकर रूपवाले, कवचधारी, भयंकर कर्म करनेवाले डेढ़हजार हाथियों के साथ आपका पुत्र दुर्मर्षण सारी सेनाओं के आगे युद्ध के लिये तैयार होकर खड़ा हुआ। उसके पश्चात् दुश्शासन और विकर्ण ये दो आपके पुत्र जयद्रथ के कार्य की सिद्धि के लिये सेना के अग्रभाग में स्थित हुए। द्रोणाचार्य ने वह चक्रशकट नाम का व्यूह चौबीस कोस लम्बा और पीछे से दसकोस चौड़ा बनाया था।

पश्चार्धे तस्य पद्मस्तु गर्भव्यूहः सुदुर्भिदः॥ १२॥
सूची पद्मस्य गर्भस्थो गूढो व्यूहः कृतः पुनः।
एवमेतं महाव्यूहं व्यूह्य द्रोणो व्यवस्थितः॥ १३॥
सूचीमुखे महेष्वासः कृतवर्मा व्यवस्थितः।
अनन्तरं च काम्बोजो जलसंधश्च मारिष॥ १४॥
दुर्योधनश्च कर्णश्च तदनन्तरमेव च।
ततः शतसहस्राणि योधानामनिवर्तिनाम्॥ १५॥
व्यवस्थितानि सर्वाणि शकटे मुखरक्षिणाम्।

उसके पिछलेभाग में एक पद्म नाम का गर्भव्यूह अत्यन्त दुर्भेद्य बनाया था और उस पद्मव्यूह के बीच में एक और सूचीव्यूह नाम का गूढ़ व्यूह बनाया था। इसप्रकार उस महान् व्यूह का निर्माणकर द्रोणाचार्य युद्ध के लिये खड़े थे। सूचीमुख में महान् धनुर्धर कृतवर्मा खड़ा किया गया था। हे मान्यवर! कृतवर्मा के पीछे काम्बोजराज और जलसंध खड़े थे। उनके पश्चात् एक लाख युद्ध में पीठ न दिखानेवाले योद्धा शकटव्यूह के उस प्रमुख भाग की रक्षा के लिये खड़े थे।

तेषां च पृष्ठतो राजा बलेन महता वृतः॥ १६॥
जयद्रथस्ततो राजा सूचीपार्श्वे व्यवस्थितः।
शकटस्य तु राजेन्द्र भारद्वाजो मुखे स्थितः॥ १७॥
अनु तस्याभवद् भोजो जुगोपैनं ततः स्वयम्।
श्वेतवर्माम्बरोष्णीषो व्यूढोरस्को महाभुजः।
धनुर्विस्फारयन् द्रोणस्तस्थौ क्रुद्ध इवान्तकः॥ १८॥

उनके पीछे सूचीव्यूह के बगल में राजा जयद्रथ विशालसेना से घिरा हुआ खड़ा था। हे राजेन्द्र! उस शकट व्यूह के मुहाने पर द्रोणाचार्य थे और उनके पीछे भोज स्वयं उनकी रक्षा करते हुए विद्यमान था। श्वेत कवच, श्वेतवस्त्र और श्वेत पगड़ीधारी विशालछाती और भुजाओंवाले द्रोणाचार्य अपने धनुष को खींचते हुए क्रोध में भरी हुई मृत्यु के समान खड़े हुए थे।

बहुरथमनुजाश्व- पत्तिनागं
प्रतिभयनिः स्वनमद्भुतानुरूपम्।
अहितहृदयभेदनं महद् वै
शकटमवेक्ष्य कृतं ननन्द राजा॥ १९॥

बहुतसे रथ, पैदल, घोड़ों और हाथियोंवाले, भयंकर कोलाहल से युक्त, शत्रु के हृदयों को भेदने वाले, अद्भुत और समय के अनुरूप निर्मित उस महान् शकटव्यूह को देखकर राजा दुर्योधन बहुत प्रसन्न हुए।

उन्तालीसवाँ अध्याय : अर्जुन का रणभूमि में जाकर शंखनाद और दुर्मर्षण की गजसेना का संहार।

संजय उवाच

ताड्यमानासु भेरीषु मृदङ्गेषु नदत्सु च।
अनीकानां च संह्लादे वादित्राणां च निःस्वने॥ १॥
प्रध्मापितेषु शङ्खेषु संनादे लोमहर्षणे।
अभिहारयत्सु शनकैर्भरतेषु युयुत्सुषु॥ २॥
रौद्रे मुहूर्ते सम्प्राप्ते सव्यसाची व्यदृश्यत।
सोऽग्रानीकस्य महत इषुपाते धनंजयः॥ ३॥
व्यवस्थाप्य रथं राजञ्शङ्खं दध्मौ प्रतापवान्।
अथ कृष्णोऽप्यसम्भ्रान्तः पार्थेन सह मारिष॥ ४॥
प्राध्मापयत् पाञ्चजन्यं, शंखं प्रवरमोजसा।

संजय ने कहा कि तब जब नगाड़े पीटे जाने लगे, मृदंग बजने लगे, सैनिक गर्जने लगे, रणवाद्य बजने लगे, शंख फूँके जाने लगे तथा रोंगटे खड़े कर देनेवाला शब्द गूँजने लगा और युद्ध के इच्छुक भरतवंशी वीर धीरे धीरे अपने हथियारों को सँभालने लगे, उस रौद्र मुहूर्त के उपस्थित होने पर बायें हाथ से भी धनुष चलानेवाले अर्जुन युद्धभूमि में दिखाई दिये। हे राजन्! तब उस विशाल शत्रुसेना के सामने जितनी दूर से बाण फैंका जा सके, उतनी दूर पर अपना रथ खड़ा करवाकर प्रतापी अर्जुन ने अपने शंख को बजाया। हे मान्यवर! तब श्रीकृष्ण ने भी बिना घबराहट के अर्जुन के साथ अपने श्रेष्ठ पांचजन्य शंख को जोर से बजाया।

तस्मिंस्तु तुमुले शब्दे भीरूणां भयवर्धने॥ ५॥
अतीव हृष्टो दाशार्हमब्रवीत् पाकशासनिः।
चोदयाश्वान् हृषीकेश यत्र दुर्मर्षणः स्थितः॥ ६॥
एतद् भित्त्वा गजानीकं प्रवेक्ष्याम्यरिवाहिनीम्।
एवमुक्तो महाबाहुः केशवः सव्यसाचिना॥ ७॥
अचोदयद्धयांस्तत्र यत्र दुर्मर्षणः स्थितः।
स सम्प्रहारस्तुमुलः सम्प्रवृत्तः सुदारुणः॥ ८॥
एकस्य च बहूनां च रथनागनरक्षयः।

इसप्रकार कायरों को भयभीत करनेवाले उस तुमुल नाद के होने पर अत्यन्तप्रसन्न होकर अर्जुन ने श्रीकृष्णजी से कहा कि हे हृषीकेश अर्थात् जितेन्द्रिय! घोड़ों को उसतरफ बढ़ाओ, जिधर दुर्मर्षण विद्यमान है। मैं इसकी गजसेना को भेदकर शत्रुकी सेना में प्रवेश करूँगा। बायें हाथ से भी धनुष चलाने वाले अर्जुन के द्वारा यह कहे जाने पर महाबाहु श्रीकृष्ण ने घोड़ों को उसीतरफ हाँका। जहाँ दुर्मर्षण खड़ा हुआ था। तब एक वीर के साथ बहुत से योद्धाओं का वह घमासान युद्ध, जो रथों, हाथियों और मनुष्यों का विनाश करनेवाला था, आरम्भ हुआ।

ततः सायकवर्षेण पर्जन्य इव वृष्टिमान्॥ ९॥
परानवाकिरत् पार्थः पर्वतानिव नीरदः।
ते चापि रथिनः सर्वे त्वरिताः कृतहस्तवत्॥ १०॥
अवाकिरन् बाणजालैस्तत्र कृष्णाधनंजयौ।
ततः क्रुद्धो महाबाहुर्वार्यमाणः परैर्युधि॥ ११॥
शिरांसि रथिनां पार्थः कायेभ्योऽपाहरच्छरैः।
उद्भ्रान्तनयनैर्वक्त्रैः संदष्टौष्ठपुटैः शुभैः॥ १२॥
सकुण्डलशिरस्त्राणैर्वसुधा समकीर्यत।

तब जैसे वर्षा करनेवाले बादल पर्वतों को जलधाराओं से भर देते हैं, वैसे ही अर्जुन ने अपनी बाणवर्षा से शत्रुओं को भर दिया। उन सारे रथियों ने भी सिद्धहस्त पुरुषों के समान शीघ्रता से बाण समूहों से श्रीकृष्ण को और अर्जुन को ढक दिया। तब शत्रुओं द्वारा युद्ध में रोके जाने पर क्रुद्ध होकर महाबाहु कुन्तीपुत्र अपने बाणों से रथियों के सिरों को उनके शरीरों से काट काटकर गिराने लगे। कुण्डल और शिरस्त्राणों से युक्त, घूमती हुई आँखों वाले, दाँतों से चबाये होठोंवाले, सुन्दर मस्तकों से वह युद्धभूमि भर गयी।

तपनीयतनुत्राणाः संसिक्ता रुधिरेण च॥ १३॥
संसक्ता इव दृश्यन्ते मेघसंघाः सविद्युतः।
शिरसां पततां राजञ्शब्दोऽभूद् वसुधातले॥ १४॥
कालेन परिपक्वानां तालानां पततामिव।
हयानामुत्तमाङ्गैश्च हस्तिहस्तैश्च मेदिनी॥ १५॥
बाहुभिश्च शिरोभिश्च वीराणां समकीर्यत।
यो यः स्म समरे पार्थं प्रतिसंचरते नरः॥ १६॥
तस्य तस्यान्तको बाणः शरीरमुपसर्पति।
नृत्यतो रथमार्गेषु धनुर्व्यायच्छतस्तथा॥ १७॥
न कश्चित् तत्र पार्थस्य ददृशेऽन्तरमण्वपि।

उस समय सुनहले कवच धारण किये, खून से भरे हुए, एकदूसरे से सटे हुए मृत शरीर विद्युत्सहित बादलों के समूहों के समान दिखाई देते थे। हे राजन्! कटकर भूमि पर गिरते हुए सिरों का तब इसप्रकार का शब्द होता था, जैसे समय पर पककर गिरते हुए ताड़ के फलों का होता है। घोड़ों के सिरों, हाथियों की सूँडों और वीरों की भुजाओं तथा सिरों से वह सारी भूमि आच्छादित हो गयी। उस समय जो जो मनुष्य युद्धक्षेत्र में अर्जुन के सामने जाने का प्रयत्न करता था, उस उसके शरीर पर उसका अन्त कर देनेवाला बाण आगिरता था। रथ के मार्गों पर नृत्य सा करते हुए और धनुष को खींचते हुए अर्जुन के कार्य में उस समय किसी ने भी कोई दोष नहीं देखा।

यत्तस्य घटमानस्य क्षिप्रं विक्षिपतः शरान्॥ १८॥
लाघवात् पाण्डुपुत्रस्य व्यस्मयन्त परे जनाः।
आवर्तमानमावृत्तं युध्यमानं च पाण्डवः॥ १९॥
प्रमुखे तिष्ठमानं च न किंचिन्न निहन्ति सः।
यथोदयन् वै गगने सूर्यो हन्ति महत् तमः॥ २०॥
तथार्जुनो गजानीकमवधीत् कङ्कपत्रिभिः।

सावधानी से प्रयत्न करते हुए, शीघ्रता से बाणों को छोड़ते हुए, पाण्डुपुत्र की फुर्ती को देखकर उस समय दूसरेलोग आश्चर्य कर रहे थे। जो लौट रहे थे, वे लौटकर आगये थे, जो युद्ध कर रहे थे, जो सामने खड़े थे, उनमें किसी को भी पाण्डुपुत्र बिना मारे नहीं छोड़ते थे। जैसे सूर्य आकाश में उदय होते हुए महान् तम का नाश कर देता है, उसीप्रकार अर्जुन ने भी कंकपत्र वाले बाणों से उस गजसेना को नष्ट कर दिया।

यथा मध्यन्दिने सूर्यो दुष्प्रेक्ष्यः प्राणिभिः सदा॥ २१॥
तथा धनंजयः क्रुद्धो दुष्प्रेक्ष्यो युधि शत्रुभिः।
तत् तथा तव पुत्रस्य सैन्यं युधि परंतप॥ २२॥
प्रभग्नं द्रुतमाविग्नमतीव शरपीडितम्।
मारुतेनेव महता मेघानीकं व्यदीर्यत।
प्रकाल्यमानं तत् सैन्यं, नाशकत् प्रतिवीक्षितुम्॥ २३॥

जैसे दोपहर के सूर्य की तरफ प्राणियों द्वारा देखा जाना कठिन होता है, उसीप्रकार क्रोध में भरे हुए अर्जुन को भी उस समय युद्धस्थल में शत्रु कठिनाई से देख पारहे थे। हे परंतप! इसप्रकार युद्धस्थल में बाणों से अत्यन्त पीड़ित आपके पुत्र की सेना के पाँव उखड़ गये और वह उद्विग्न होकर तेजी से भागने लगी। जैसे वायु के द्वारा विशाल बादल छिन्नभिन्न कर दिये जाते हैं, वैसे ही दुर्मर्षण की सेना का व्यूह टूट गया और वह खदेड़ी जाती हुई, पीछे घूमकर नहीं देख सकी।

चालीसवाँ अध्याय : दुश्शासन का पलायन, गजसेना का विनाश।

ततस्तव सुतो राजन् दृष्ट्वा सैन्यं तथागतम्।
दुःशासनो भृशं क्रुद्धो युद्धायार्जुनमभ्यगात्॥ १॥
नागानीकेन महता ग्रसन्निव महीमिमाम्।
दुःशासनो महाराज सव्यसाचिनमावृणोत्॥ २॥
ह्लादेन गजघण्टानां शङ्खानां निनदेन च।
ज्याक्षेपनिनदैश्चैव विरावेण च दन्तिनाम्॥ ३॥
भूर्दिशश्चान्तरिक्षं च शब्देनासीत् समावृतम्।
स मुहूर्तं प्रतिभयो दारुणः समपद्यत॥ ४॥

हे राजन्! तब सेना की इसप्रकार की दुर्दशा देखकर दुश्शासन अत्यन्तक्रुद्ध होकर युद्ध के लिये अर्जुन के सामने पहुँचा। अपनी विशाल हाथीसेना के द्वारा, मानों सारी भूमि को ग्रस लेगा, इसप्रकार का भयानक प्रदर्शन करते हुए हे महाराज! दुश्शासन ने उस बायें हाथ से धनुष चलानेवाले को घेर लिया। तब हाथियों के घण्टों की झंकारों, शंखों के निनादों, प्रत्यंचाओं की टंकारों और हाथियों की चिंघाड़ों से सारी भूमि, दिशायें और आकाश भर गया। दुश्शासन उस समय एक मुहूर्त के लिये बहुतभयंकर और दारुण हो गया था।

महोर्मिणमिवोद्धूतं श्वसनेन महार्णवम्।
किरीटी तद् गजानीकं प्राविशन्मकरो यथा॥ ५॥
काष्ठातीत इवादित्यः प्रतपन् स युगक्षये।
ददृशे दिक्षु सर्वासु पार्थः परपुरंजयः॥ ६॥
खुरशब्देन चाश्वानां नेमिघोषेण तेन च।
तेन चोत्कृष्टशब्देन ज्यानिनादेन तेन च॥ ७॥
देवदत्तस्य घोषेण गाण्डीवनिनदेन च।

मन्दवेगा नरा नागा बभूवुस्ते विचेतसः॥ ८॥
शरैराशीविषस्पर्शैर्निर्भिन्नाः सव्यसाचिना।

तब जैसे वायु द्वारा उद्वेलित किये हुए, विशाल तरंगोंवाले महासागर में कोई महान् मकर प्रवेश करे वैसे ही अर्जुन ने उस गजसेना में प्रवेश किया। जैसे प्रलयकाल में सूर्य अपनी सीमाओं का उल्लंघन करते हुए तपते हैं, वैसे ही सारी दिशाओं में अपना पराक्रम दिखाते हुए शत्रु के नगरों पर विजय पानेवाले कुन्तीपुत्र उस समय दिखाई देरहे थे। घोड़ों की टापों से रथ के पहियों की घरघसहट से और उससे भी उत्कृष्ट प्रत्यंचा की टंकार से, देवदत्तशंख के घोष से और गाण्डीवधनुष के शब्द से सैनिकों और हाथियों के वेग मंद पड़ गये और वे अचेत से होगये। अर्जुन ने उन्हें अपने विषैले सर्प के समान स्पर्शवाले बाणों से विदीर्ण कर दिया।

ते गजा विशिखैस्तीक्ष्णैर्युधि गाण्डीवचोदितैः॥ ९॥
अनेकशतसाहस्त्रैः सर्वाङ्गेषु समर्पिताः।
आरावं परमं कृत्वा वध्यमानाः किरीटिना॥ १०॥
शरैः समर्पिता नागाः क्रौञ्च वद् व्यनदन् मुहुः।
गजस्कन्धगतानां च पुरुषाणां किरीटिना॥ ११॥
छिद्यन्ते चोत्तमाङ्गानि भल्लैः संनतपर्वभिः।
सकुण्डलानां पततां शिरसां धरणीतले॥ १२॥
पद्मानामिव संघातैः पार्थश्चक्रे निवेदनम्।

युद्ध में गाण्डीवधनुष के छोड़े हुए तीखे और हजारों बाण उन हाथियों के सारे अंगों में घुस गये। अर्जुन के द्वारा मारे जाते हुए, बाणों से बिंधे हुए हाथी, जोर से चिंघाड़ते हुए, कौंचपक्षी के समान बार बार आर्तनाद कर रहे थे। हाथियों की पीठ पर बैठे हुए हाथीसवारों के मस्तक भी अर्जुन के द्वारा झुकी गाँठ वाले भल्लों की सहायता से काटे जारहे थे। भूमि पर पड़े हुए कुण्डलोंसहित मस्तकों से ऐसा प्रतीत होरहा था मानो अर्जुन ने मस्तकरूपी कमलों के समूह से पृथिवी का पूजन किया है।

यन्त्रबद्धा विकवचा व्रणार्ता रुधिरोक्षिताः॥ १३॥
भ्रमत्सु युधि नागेषु मनुष्या विललम्बिरे।
अतिविद्धाश्च नाराचैर्वमन्तो रुधिरं मुखैः॥ १४॥
सारोहा न्यपतन् भूमौ द्रुमवन्त इवाचलाः।
मौर्वीं ध्वजं धनुश्चैव युगमीषां तथैव च॥ १५॥
रथिनां कुट्टयामास भल्लैः संनतपर्वभिः।
न संदधन् न चाकर्षन् न विमुञ्चन् न चोद्वहन्॥ १६॥
मण्डलेनैव धनुषा नृत्यन् पार्थः स्म दृश्यते॥

युद्धस्थल में चक्कर काटते हुए हाथियों पर कवच से रहित, घावों से पीड़ित, खून से लथपथ, लटके हुए मनुष्य ऐसे प्रतीत होरहे थे मानों उन्हें वहाँ किसी यन्त्र से जड़ दिया गया हो। अर्जुन के नाराचों से अत्यन्तघायल हुए हाथी, मुख से खून की उलटी करते हुए अपने सवारों के साथ भूमि पर ऐसे गिर रहे थे, जैसे वृक्षोंवाले पर्वतशिखर टूटकर गिर रहे हों। अर्जुन ने झुकी गाँठवाले भल्लों से रथियों की प्रत्यंचा, ध्वज, धनुष, जूआ और ईषादण्ड के भी टुकड़े टुकड़े कर दिये। उस समय अर्जुन अपने मण्डलाकार धनुष के साथ नृत्य सा करते हुए, न तो बाणों का सन्धान करते हुए, न धनुष को खींचते हुए, न बाणों को छोड़ते हुए दिखायी देरहे थे।

सचापाः साङ्गुलित्राणाः सखड्गाः साङ्गदा रणे॥ १७॥
अदृश्यन्त भुजाश्छिन्ना हेमाभरणभूषिताः।
सूपस्करैरधिष्ठानैरीषादण्डक- बन्धुरैः॥ १८॥
चक्रैर्विमथितैरक्षैर्भग्नैश्च बहुधा युगैः।
चर्मचापधरैश्चैव व्यवकीर्णैस्ततस्ततः॥ १९॥
स्त्रग्भिराभरणैर्वस्त्रैः पतितैश्च महाध्वजैः।
निहतैर्वारणैरश्वैः क्षत्रियैश्च निपातितैः॥ २०॥
अदृश्यत मही तत्र दारुणप्रतिदर्शना॥

उस समय युद्ध में धनुषों, दस्तानों, तलवारों और बाजूबन्दों से युक्त और आभूषणों से विभूषित कटी हुई भुजायें बिखरी पड़ी थीं। सुन्दर उपकरणों, बैठकों, ईषादण्ड, बन्धनरज्जुओं और पहियोंसहित टूटे हुए रथ पड़े हुए थे। उनके धुरे और जूए टुकड़े टुकड़े होगये थे। उन रथों में धनुष और ढालें रखीं हुई थी। बहुत सी मालाएँ, आभूषण, वस्त्र और बड़े बड़े ध्वज गिरे पड़े थे। मारे हुए और गिराये हुए हाथियों, घोड़ों तथा क्षत्रियों से वह भूमि देखने में अत्यन्तदारुण प्रतीत होरही थी।

एवं दुःशासनबलं वध्यमानं किरीटिना॥ २१॥
सम्प्राद्रवन्महाराज व्यथितं सहनायकम्।
ततो दुःशासनस्त्रस्तः सहानीकः शरार्दितः।
द्रोणं त्रातारमाकाङ्क्षञ्शकटव्यूहमभ्यगात्॥ २२॥

हे महाराज! इसप्रकार अर्जुन के द्वारा मारी जाती हुई दुश्शासन की सेना अत्यन्त व्यथित होकर, अपने नायक के साथ भागने लगी। तब सेना के साथ बाणों से पीड़ित दुश्शासन भी भयभीत होकर रक्षा करने वाले द्रोणाचार्य की आकांक्षा करता हुआ शकटव्यूह के भीतर घुस गया।

इकतालीसवाँ अध्याय : अर्जुन का द्रोणाचार्य से युद्ध और वार्तालाप।

दुःशासनबलं हत्वा सव्यसाची महारथः।
सिन्धुराजं परीप्सन् वै द्रोणानीकमुपाद्रवत्॥ १॥
स तु द्रोणं समासाद्य व्यूहस्य प्रमुखे स्थितम्।
कृताञ्जलिरिदं वाक्यं कृष्णस्यानुमतेऽब्रवीत्॥ २॥
शिवेन ध्याहि मां ब्रह्मन् स्वस्ति चैव वदस्व मे।
भवत्प्रसादादिच्छामि प्रवेष्टुं दुर्भिदां चमूम्॥ ३॥
भवान् पितृसमो मह्यं धर्मराजसमोऽपि च।
तथा कृष्णसमश्चैव सत्यमेतद् ब्रवीमि ते॥ ४॥

दुश्शासन की सेना का विनाशकर महारथी अर्जुन ने जयद्रथ को पाने की इच्छा से द्रोणाचार्य पर आक्रमण किया। उन्होंने व्यूह के मुहाने पर खड़े द्रोणाचार्य के समीप पहुँचकर श्रीकृष्णजी की अनुमति से उनसे हाथ जोड़कर यह कहा कि हे ब्रह्मन्! आप मेरे कल्याण की चिन्ता करें और कल्याण के लिये ही आशीर्वाद दें। आपकी कृपा से मैं इस दुर्भेद्य सेना में प्रवेश करना चाहता हूँ। यह मैं सत्य कहता हूँ कि आप मेरे लिये पिता के समान, धर्मराज युधिष्ठिर के समान और श्रीकृष्णजी के समान हैं।

अश्वत्थामा यथा तात रक्षणीयस्त्वयानघ।
तथाहमपि ते रक्ष्यः सदैव द्विजसत्तम॥ ५॥
तव प्रसादादिच्छेयं सिन्धुराजानमाहवे।
निहन्तुं द्विपदां श्रेष्ठ प्रतिज्ञां रक्ष मे प्रभो॥ ६॥
एव मुक्तस्तदाचार्यः प्रत्युवाच स्मयन्निव।
मामजित्वा न बीभत्सो शक्यो जेतुं जयद्रथः॥ ७॥
एतावदुक्त्वा तं द्रोणः शरव्रातैरवाकिरत्।
सरथाश्वध्वजं तीक्ष्णैः प्रहसन् वै ससारथिम्॥ ८॥

हे निष्पाप तात! जैसे आपके लिये अश्वत्थामा रक्षणीय है, वैसे ही हे ब्राह्मणश्रेष्ठ! मैं भी सदा आपके लिये रहा हूँ। मैं युद्धस्थल में आपकी कृपा से सिन्धुराज को मारना चाहता हूँ। हे मनुष्यों में श्रेष्ठ प्रभो! आप मेरी प्रतिज्ञा की रक्षा कीजिये। ऐसा कहे जाने पर तब आचार्य ने मुस्कराते हुए से कहा हे अर्जुन! मुझे बिना जीते जयद्रथ को जीतना सम्भव नहीं है। ऐसा कहकर द्रोणाचार्य ने हँसते हुए उन पर तथा उनके रथ, ध्वज और सारथि पर बाणवर्षा आरम्भ कर दी।

ततोऽर्जुनः शरव्रातान् द्रोणस्यावार्य सायकैः।
विव्याध चरणे द्रोणमनुमान्य विशाम्पते॥ ९॥
क्षत्रधर्मं समास्थाय नवभिः सायकैः पुनः।
तस्येषूनिषुभिश्छित्त्वा द्रोणो विव्याध तावुभौ॥ १०॥
विषाग्निज्वलितप्रख्यैरिषुभिः कृष्णपाण्डवौ।
इयेष पाण्डवस्तस्य बाणैश्छेत्तुं शरासनम्॥ ११॥
विशेषयिष्यन्नाचार्यं सर्वास्त्रविदुषां वरः।
मुमोच षट्शतान् बाणान् गृहीत्वैकमिव द्रुतम्॥ १२॥
पुनः सप्तशतानन्यान् सहस्रं चानिवर्तिनः।
चिक्षेपायुतशश्चान्यांस्तेऽघ्नन् द्रोणस्य तां चमूम्॥ १३॥
तैः सम्यगस्तैर्बलिना कृतिना चित्रयोधिना।
मनुष्यवाजिमातङ्गा विद्धाः पेतुर्गतासवः॥ १४॥

तब अर्जुन ने अपने बाणों से द्रोणाचार्य के बाण समूहों को निवारणकर हे महाराज! फिर क्षत्रियधर्म का आश्रय लेकर द्रोणाचार्य का आदर करते हुए नौ बाणों से उनके चरणों में आघात किया। किन्तु द्रोणाचार्य ने उन बाणों को अपने बाणों से काटकर विष और अग्नि के समान तेजस्वी और देदीप्यमान बाणों से उन दोनों कृष्ण और पाण्डुपुत्र को बींध दिया। तब अर्जुन ने उनके धनुष को काटने की इच्छा की और सारे अस्त्रवेत्ताओं में श्रेष्ठ उन्होंने द्रोणाचार्य से अधिक पराक्रम दिखाने की इच्छा से एक बाण की तरह से छः सौ बाणों को एकसाथ शीघ्रता से लेकर छोड़ दिया। फिर रोके न जा सकनेवाले सात सौ, हजार और दस हजार बाणों को उन्होंने छोड़ा, जिनसे उन्होंने द्रोणाचार्य की सेना का विनाश कर दिया। विचित्र रीति से युद्ध करनेवाले, बलवान् और कर्मठ अर्जुन के द्वारा अच्छीतरह से छोड़े हुए उन बाणों से मनुष्य, घोड़े और हाथी घायल तथा प्राणहीन होकर भूमि पर गिर पड़े।

विसूताश्वध्वजाः पेतुः संछिन्नायुधजीविताः।

रथिनो रथमुख्येभ्यः सहसा शरपीडिताः॥ १५॥
चूर्णिताक्षिप्तदग्धानां वज्रानिलहुताशनैः।
तुल्यरूपा गजाः पेतुर्गिर्यग्राम्बुदवेश्मनाम्॥ १६॥
पेतुरश्वसहस्राणि प्रहतान्यर्जुनेषुभिः।
हंसा हिमवतः पृष्ठे वारिविप्रहता इव॥ १७॥
रथाश्वद्विपपत्योधाः सलिलौघा इवाद्भुताः।
युगान्तादित्यरश्म्याभैः पाण्डवास्त्रशरैर्हताः॥ १८॥

अर्जुन के बाणों से पीड़ित होकर बहुतसे रथी सारथि, घोड़ों और ध्वज से रहित, हथियारों तथा जीवन के छिन्न होजाने पर सहसा रथ की बैठकों से नीचे आगिरे। विद्युत् के आघात से चूरा बने पर्वतशिखरों, हवा से उड़ाये हुए बादलों, तथा अग्नि से जलाये हुए घरों के समान हाथी वहाँ मरकर भूमि पर गिर रहे थे। अर्जुन के बाणों से मारे हुए हजारों घोड़े इसप्रकार गिरे पड़े थे जैसे वर्षाऋतु से आहत हुए बहुत से हंस हिमालय की तलहटी में पड़े हों। प्रलयकाल के सूर्य के समान तेजस्वी पाण्डुपुत्र के बाणों से मारे हुए रथियों, हाथीसवारों, घुड़सवारों, और पैदलसैनिकों के समूह किरणों से सुखाये पानी के समूहों के समान विचित्र जान पड़ रहे थे।

तं पाण्डवादित्यशरांशुजालं
कुरुप्रवीरान् युधि निष्टपन्तम्।
स द्रोणमेघः शरवृष्टिवेगैः
प्राच्छादयन्मेघ इवार्करश्मीन्॥ २१॥

तब जैसे बादल सूर्य की किरणों को ढक लेते हैं, वैसे ही कौरवों के श्रेष्ठ वीरों को सन्तप्त करते हुए पाण्डुपुत्ररूपी सूर्य के उस बाणरूपी किरणों के जाल को द्रोणाचार्यरूपी बादल ने अपनी बाण रूपी वर्षा से ढक दिया।

अथात्यर्थं विसृष्टेन द्विषतामसुभोजिना।
आजघ्ने वक्षसि द्रोणो नाराचेन धनंजयम्॥ २०॥
स विह्वलितसर्वाङ्गः क्षितिकम्पे यथाचलः।
धैर्यमालम्ब्य बीभत्सुर्द्रोणं विव्याध पत्रिभिः॥ २१॥
द्रोणस्तु पञ्चभिर्बाणैर्वासुदेवमताडयत्।
अर्जुनं च त्रिसप्तत्या ध्वजं चास्य त्रिभिः शरैः॥ २२॥
विशेषयिष्यञ्शिष्यं च द्रोणो राजन् पराक्रमी।
अदृश्यमर्जुनं चक्रे निमेषाच्छरवृष्टिभिः॥ २३॥

फिर बहुत जोर लगाकर छोड़े हुए, शत्रुओं के प्राणभोजी नाराच के द्वारा द्रोणाचार्य ने अर्जुन की छाती पर प्रहार किया। उस बाण की चोट से अर्जुन के सारे अंग ऐसे बेचैन होगये जैसे भूकम्प आने पर पर्वत हिल उठा हो, पर धैर्य को धारणकर अर्जुन ने द्रोणाचार्य को पंखयुक्त बाणों से घायल कर दिया। द्रोणाचार्य ने पाँच बाणों से श्रीकृष्ण जी पर प्रहार किया, अर्जुन पर तिहत्तर बाणों की वर्षा की और उनके ध्वज पर तीन बाण मारे। हे राजन्! पराक्रमी द्रोणाचार्य ने अपने शिष्य से अधिक पराक्रम दिखाने की इच्छा से पलक मारते ही अपनी बाण वर्षा से अर्जुन को अदृश्य कर दिया।

प्रसक्तान् पततोऽद्राक्ष्म भारद्वाजस्य सायकान्।
मण्डलीकृतमेवास्य धनुश्चादृश्यताद्भुतम्॥ २४॥
तेऽभ्ययुः समरे राजन् वासुदेवधनंजयौ।
द्रोणसृष्टाः सुबहवः कङ्कपत्रपरिच्छदाः॥ २५॥
तद् दृष्ट्वा तादृशं युद्धं द्रोणपाण्डवयोस्तदा।
वासुदेवो महाबुद्धिः कार्यवत्तामचिन्तयत्॥ २६॥
ततोऽब्रवीद् वासुदेवो धनंजयमिदं वचः।
पार्थ पार्थ महाबाहो न नः कालात्ययो भवेत्॥ २७॥
द्रोणमुत्सृज्य गच्छामः कृत्यमेतन्महत्तरम्।
पार्थश्चाप्यब्रवीत् कृष्णं यथेष्टमिति केशवम्॥ २८॥

हमने देखा कि द्रोणाचार्य के बाण परस्पर सटे हुए गिरते थे और उनका धनुष मण्डलाकार ही अद्‌भुतरूप में दिखाई देता था। हे राजन्! युद्ध में द्रोणाचार्य के द्वारा छोड़े हुए बहुतसे कंकपत्रभूषित बाण अर्जुन और श्रीकृष्ण पर पड़ने लगे। तब द्रोण और अर्जुन के उसप्रकार के युद्ध को देखकर महाबुद्धिमान् श्रीकृष्ण ने अपने कर्तव्य के बारे में विचार किया। फिर श्रीकृष्ण ने अर्जुन से यह कहा कि हे महाबाहु अर्जुन! हमारा समय न व्यतीत होजाये, इसलिये हम द्रोणाचार्य को छोड़कर चलते हैं, यही हमारा अधिक महत्त्वपूर्ण कार्य होगा।

ततः प्रदक्षिणं कृत्वा द्रोणं प्रायान्महाभुजम्।
परिवृत्तश्च बीभत्सुरगच्छद् विसृजञ्शरान्॥ २९॥
ततोऽब्रवीत् स्वयं द्रोणः क्वेदं पाण्डव गम्यते।
ननु नाम रणे शत्रुमजित्वा न निवर्तसे॥ ३०॥

अर्जुन उवाच

गुरुर्भवान् न मे शत्रुः शिष्यः पुत्रसमोऽस्मि ते।
न चास्ति स पुमाँल्लोके यस्त्वां युधि पराजयेत्॥ ३१॥

संजय उवाच

एवं ब्रुवाणो बीभत्सुर्जयद्रथवधोत्सुकः।
त्वरायुक्तो महाबाहुस्त्वत्सैन्यं समुपाद्रवत्॥ ३२॥

अर्जुन ने भी श्रीकृष्ण से कहा कि आप जैसा चाहें, वैसा करें। तब अर्जुन महाबाहु द्रोणाचार्य को दाहिने कर और पलटकर, बाणों की वर्षा करते हुए आगे चल दिये। तब द्रोणाचार्य ने उनसे कहा कि हे अर्जुन! कहाँ जारहे हो? तुम तो युद्धक्षेत्र में शत्रु को बिना जीते वापिस नहीं लौटते थे। तब अर्जुन ने कहा कि आप मेरे गुरु हैं, शत्रु नहीं। मैं आपका पुत्र के समान शिष्य हूँ। संसार में कोई ऐसा व्यक्ति नहीं है जो आपको पराजित कर सके। ऐसा कहते हुए जयद्रथ के वध के लिये उत्सुक महाबाहु अर्जुन ने शीघ्रता से आपकी सेना पर आक्रमण कर दिया।

ततो जयो महाराज कृतवर्मा च सात्वतः।
काम्बोजश्च श्रुतायुश्च धनंजयमवारयन्॥ ३३॥
ततः प्रववृते युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम्।
अन्योन्यं वै प्रार्थयतां योधानामर्जुनस्य च॥ ३४॥
जयद्रथवधप्रेप्सुमायान्तं पुरुषर्षभम्।
न्यवारयन्त सहिताः क्रिया व्याधिमिवोत्थितम्॥ ३५॥

तब जय, सात्वतवंशी कृतवर्मा, काम्बोजनरेश और श्रुतायु ने अर्जुन को रोका। उन योद्धाओं का और अर्जुन का एकदूसरे को ललकारते हुए रोंगटे खड़े कर देने वाला तुमुल युद्ध आरम्भ होगया। जैसे चिकित्सा की क्रिया शरीर में उठती हुई बीमारी को रोक देती है, वैसे ही जयद्रथ के वध के इच्छुक आते हुए उस पुरुष श्रेष्ठ को कौरव वीरों ने इकट्ठे होकर रोक दिया।

बयालीसवाँ अध्याय : द्रोणाचार्य और कृतवर्मा से युद्ध करते हुए अर्जुन का कौरव सेना में घुसना। श्रुतायुध और सुदक्षिण का वध।

संनिरुद्धस्तु तैः पार्थो महाबलपराक्रमः।
द्रुतं समनुयातश्च द्रोणेन रथिनां वरः॥ १॥
किरन्निषुगणांस्तीक्ष्णान् स रश्मीनिव भास्करः।
तापयामास तत् सैन्यं देहं व्याधिगणो यथा॥ २॥
सत्यां चिकीर्षमाणस्तु प्रतिज्ञां सत्यसंगरः।
अभ्यद्रवद् रथश्रेष्ठं शोणाश्वं श्वेतवाहनः॥ ३॥
तं द्रोणः पञ्चविंशत्या मर्मभिद्भिरजिह्मगैः।
अन्तेवासिनमाचार्यो महेष्वासं समार्पयत्॥ ४॥

महाबली और महापराक्रमी रथियों में श्रेष्ठ अर्जुन जब उन कौरववीरों द्वारा रोके गये, तब द्रोणाचार्य ने भी तेजी से उनका पीछा किया। उस समय जैसे सूर्य अपने किरणजाल को फैलाते हैं, वैसे ही अर्जुन ने अपने तीखे बाणों के जाल को फैलाते हुए कौरवसेना को ऐसे सन्तप्त कर दिया जैसे बीमारियाँ शरीर को संतप्त कर देती हैं। फिर अपनी प्रतिज्ञा को सत्य करने के इच्छुक श्वेत घोड़ोंवाले सत्यवादी अर्जुन ने लाल घोड़ोंवाले श्रेष्ठरथी द्रोणाचार्य पर आक्रमण कर दिया। द्रोणाचार्य ने अपने उस महाधनुर्धर शिष्य पर तब सीधे जानेवाले, मर्मभेदी पच्चीस बाणों की वर्षा की।

तं तूर्णमिव बीभत्सुः सर्वशस्त्रभृतां वरः।
अभ्यधावदिषूनस्यन्निषुवेग- विघातकान्॥ ५॥
तस्याशुक्षिप्तान् भल्लान् हि भल्लैः संनतपर्वभिः।
प्रत्यविध्यदमेयात्मा ब्रह्मास्त्रं समुदीरयन्॥ ६॥
तदद्भुतमपश्याम द्रोणस्याचार्यकं युधि।
यतमानो युवा नैनं प्रत्यविध्यद् यदर्जुनः॥ ७॥
क्षरन्निव महामेघो वारिधाराः सहस्रशः।
द्रोणमेघः पार्थशैलं ववर्ष शरवृष्टिभिः॥ ८॥

सारे शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ अर्जुन ने तुरन्त उनके बाणों के वेग को नष्ट करनेवाले अपने बाणों को छोड़ते हुए उन पर आक्रमण किया। तब उन अमित आत्मावाले द्रोण ने उसके शीघ्रता से फैंके हुए भल्लों को अपने झुकी हुई गाँठवाले भल्लों के द्वारा ही काट दिया और ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया। वहाँ हमने द्रोण के अद्‌भुत आचार्यत्व को देखा कि युद्ध में युवा अर्जुन प्रयत्न करके भी उन्हें चोट न पहुँचा सके। हजारों जलधाराओं को बहाते हुए महान् बादल के समान, द्रोणाचार्यरूपी मेघ ने अर्जुनरूपी पर्वत पर बाणों की मानों वर्षा कर दी।

अर्जुनः शरवर्षं तद् ब्रह्मास्त्रेणैव मारिष।
प्रतिजग्राह तेजस्वी बाणैर्बाणान् निशातयन्॥ ९॥

द्रोणस्तु पञ्चविंशत्या श्वेतवाहनमार्दयत्।
वासुदेवं च सप्तत्या बाह्वोरुरसि चाशुगैः॥ १०॥
पार्थस्तु प्रहसन् धीमानाचार्यं सशरौघिणम्।
विसृजन्तं शितान् बाणानवारयत तं युधि॥ ११॥
अथ तौ वध्यमानौ तु द्रोणेन रथसत्तमौ।
आवर्जयेतां दुर्धर्षं युगान्ताग्निमिवोत्थितम्॥ १२॥

हे मान्यवर! तब तेजस्वी अर्जुन ने भी अपने बाणों से उन बाणों को काटते हुए, ब्रह्मास्त्र के द्वारा ही उस बाणवर्षा को रोका। द्रोणाचार्य ने अर्जुन पर पच्चीस बाणों की तथा श्रीकृष्णजी की बाहों और छाती पर शीघ्रगामी सत्तर बाणों की वर्षाकर उन्हें पीड़ित किया। तब धीमान् अर्जुन ने हँसते हुए युद्ध में तीखे बाणों को छोड़ते हुए आचार्य को उनकी बाणवर्षा के साथ ही रोक दिया। तब द्रोणाचार्य के द्वारा प्रहार किये जाते हुए वेदोनों श्रेष्ठरथी, उन प्रलयकाल की अग्नि के समान उठे हुए दुर्धर्ष आचार्य को छोड़कर आगे चल दिये।

वर्जयन् निशितान् बाणान् द्रोणचापविनिःसृतान्।
किरीटमाली कौन्तेयो भोजानीकं व्यशातयत्॥ १३॥
ततो भोजो नरव्याघ्रो दुर्धर्षं कुरुसत्तमम्।
अविध्यत् तूर्णमव्यग्रो दशभिः कङ्कपत्रिभिः॥ १४॥
तमर्जुनः शतेनाजौ राजन् विव्याध पत्रिणाम्।
पुनश्चान्यैस्त्रिभिर्बाणैर्मोहयन्निव सात्वतम्॥ १५॥
भोजस्तु प्रहसन् पार्थं वासुदेवं च माधवम्।
एकैकं पञ्चविंशत्या सायकानां समार्पयत्॥ १६॥

द्रोणाचार्य के धनुष से निकले बाणों का प्रतिकार करते हुए किरीटधारी अर्जुन ने कृतवर्मा की सेना को नष्ट करना आरम्भ कर दिया। तब नरव्याघ्र कृतवर्मा ने उस दुर्धर्षकुरुश्रेष्ठ को बिना व्यग्रता के शीघ्रता से दस कंकपत्रवाले बाणों से बींधा। हे राजन्! तब युद्धक्षेत्र में अर्जुन ने सौ बाणों की वर्षा कर उसे घायल किया और फिर कृतवर्मा को मोहित करते हुए तीन बाण और मारे। तब कृतवर्मा ने हँसते हुए अर्जुन और वसुदेवपुत्र श्रीकृष्ण पर पच्चीस पच्चीस बाणों की वर्षा की।

तस्यार्जुनो धनुश्छित्त्वा विव्याधैनं त्रिसप्तभिः।
शरैरग्निशिखाकारैः क्रुद्धाशीविषसंनिभैः॥ १७॥
अथान्यद् धनुरादाय कृतवर्मा महारथः।
पञ्चभिः सायकैस्तूर्णं विव्याधोरसि भारत॥ १८॥
पुनश्च निशितैर्बाणैः पार्थं विव्याध पञ्चभिः।
तं पार्थो नवभिर्बाणैराजघान स्तनान्तरे॥ १९॥
दृष्ट्वा विषक्तं कौन्तेयं कृतवर्मरथं प्रति।
चिन्तयामास वार्ष्णेयो न नः कालात्ययो भवेत्॥ २०॥

तब अर्जुन ने उसके धनुष को काटकर उसपर इक्कीस बाणों की वर्षाकर उसे घायल कर दिया। उसके वे बाण अग्नि की लपटों के समान तथा क्रुद्ध विषैले सर्प के समान थे। हे भारत! तब महारथी कृतवर्मा ने तुरन्त दूसरा धनुष लेकर पाँच बाणों से अर्जुन की छाती पर प्रहार किया, फिर पाँच और तीखे बाणों से उसे घायल किया। तब अर्जुन ने भी नौ बाणों से उसकी छाती में प्रहार किया। अर्जुन को कृतवर्मा के रथ से उलझा हुआ देखकर कृष्ण सोचने लगे कि यहीं अधिक समय व्यतीत न हो जाय।

ततः कृष्णोऽब्रवीत् पार्थं कृतवर्मणि मा दयाम्।
कुरु सम्बन्धकं हित्वा प्रमथ्यैनं विशातय॥ २१॥
ततः स कृतवर्माणं मोहयित्वार्जुनः शरैः।
अभ्यगाज्जवनैरश्वैः काम्बोजानामनीकिनीम्॥ २२॥

तब श्रीकृष्णजी ने अर्जुन से कहा कि तुम कृतवर्मा पर दया मत करो। सम्बन्धी होने के विचार को त्यागकर इसे मथकर मार दो। तब अर्जुन ने बाणों से कृतवर्मा को मूर्च्छितकर शीघ्रगामी घोड़ों के द्वारा काम्बोजराज की सेना पर आक्रमण किया।

तं दृष्ट्वा तु तथा यान्तं शूरो राजा श्रुतायुधः।
अभ्यद्रवत् सुसंक्रुद्धो विधुन्वानो महद् धनुः॥ २३॥
स पार्थं त्रिभिरानर्छत् सप्तत्या च जनार्दनम्।
क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन पार्थकेतुमताडयत्॥ २४॥
ततोऽर्जुनो नवत्या तु शराणां नतपर्वणाम्।
आजघान भृशं क्रुद्धस्तोत्रैरिव महाद्विपम्॥ २५॥
स तत्र ममृषे राजन् पाण्डवेयस्य विक्रमम्।
अथैनं सप्तसप्तत्या नाराचानां समार्पयत्॥ २६॥

अर्जुन को इसप्रकार सेना के अन्दर जाते हुए देखकर शूरवीर राजा श्रुतायुध, अत्यन्त क्रोध में भरकर, अपने धनुष को हिलाता हुआ अर्जुन की तरफ दौड़ा। उसने अर्जुन को तीन बाण मारे और श्रीकृष्ण जी पर सत्तर बाणों की वर्षा की तथा अत्यन्ततीखे क्षुरप्र से अर्जुन की ध्वजा पर प्रहार किया। झुकी गाँठवाले नब्बे बाणों की वर्षाकर तब अत्यन्त क्रोध में भरे हुए अर्जुन ने उसे ऐसे चोट

पहुँचाई जैसे अंकुशों से गजराज को पीड़ित किया जाता है। हे राजन्! तब उसने अर्जुन के उस पराक्रम को सहन नहीं किया और उसके ऊपर सतत्तर नाराचों की वर्षा की।

तस्यार्जुनो धनुश्छित्त्वा शरावापं निकृत्य च।
आजघानोरसि क्रुद्धः सप्तभिर्नतपर्वभिः॥ २७॥
अथान्यद् धनुरादाय स राजा क्रोधमूर्च्छितः।
वासविं नवभिर्बाणैर्बाह्वोरुरसि चार्पयत्॥ २८॥
ततोऽर्जुनः स्मयन्नेव श्रुतायुधमरिंदमः।
शरैरनेकसाहस्रैः पीडयामास भारत॥ २९॥
अश्वांश्चास्यावधीत् तूर्णं सारथिं च महारथः।
विव्याध चैनं सप्तत्या नाराचानां महाबलः॥ ३०॥

तब अर्जुन ने उसके धनुष को छिन्नकर और तरकस को काटकर क्रोध के साथ उसकी छाती पर सात झुकी हुई गाँठवाले बाणों से प्रहार किया। तब उस राजा ने भी क्रोध से मूर्च्छित होकर, दूसरा धनुष लेकर, इन्द्रकुमार अर्जुन की बाहों और छाती पर नौ बाणों से प्रहार किया। हे भारत! तब शत्रुदमन अर्जुन ने मुस्कराते हुए श्रुतायुध को असंख्य बाणों से पीड़ित किया। उस महारथी ने शीघ्रता के साथ उसके घोड़ों और सारथि को मार दिया और फिर उसे सत्तर नाराचों से बींध डाला।

ततः सर्वाणि सैन्यानि सेनामुख्याश्च सर्वशः।
प्राद्रवन्त हतं दृष्ट्वा श्रुतायुधमरिंदमम्॥ ३१॥
ततः काम्बोजराजस्य पुत्रः शूरः सुदक्षिणः।
अभ्ययाज्जवनैरश्वैः फाल्गुनं शत्रुसूदनम्॥ ३२॥
तस्य पार्थः शरान् सप्त प्रेषयामास भारत।
ते तं शूरं विनिर्भिद्य प्राविशन् धरणीतलम्॥ ३३॥

तब शत्रुओं को दमन करनेवाले श्रुतायुध को मारा हुआ देखकर वे सारी सेनाएँ और सेनापति लोग वहाँ से भागने लगे। तब काम्बोजराज का पुत्र शूरवीर सुदक्षिण शीघ्रगामी घोड़ों के द्वारा शत्रुसूदन अर्जुन पर आक्रमण करने को आया। हे भारत! उसके ऊपर कुन्तीपुत्र ने सात बाण चलाये। वे बाण उस शूरवीर के शरीरों को भेदकर भूमि में धँस गये।

सोऽतिविद्धः शरैस्तीक्ष्णैर्गाण्डीवप्रेषितैर्मृधे।
अर्जुनं प्रतिविव्याध दशभिः कङ्कपत्रिभिः॥ ३४॥
वासुदेवं त्रिभिर्विद्ध्वा पुनः पार्थं च पञ्चभिः।
तस्य पार्थो धनुश्छित्त्वा केतुं चिच्छेद मारिष॥ ३५॥
भल्लाभ्यां भृशतीक्ष्णाभ्यां तं च विव्याध पाण्डवः।
स तु पार्थं त्रिभिर्विद्ध्वा सिंहनादमथानदत्॥ ३६॥

तब गाण्डीवधनुष से छोड़े हुए तीखे बाणों से अत्यन्तघायल होकर उसने युद्धक्षेत्र में अर्जुन को उत्तर में दस कंकपत्रवाले बाणों से घायल किया। उसने श्रीकृष्ण को तीन बाणों से बींधकर अर्जुन को फिर पाँच बाणों से बींधा। हे मान्यवर! तब अर्जुन ने उसके धनुष को काटकर ध्वजा को छिन्न कर दिया। पाण्डुपुत्र ने तब उसे दो भल्लों से बींधा, उसने भी कुन्तीपुत्र को तीन बाणों से बींधकर सिंह गर्जना की।

सर्वपारशवीं चैव शक्तिं शूरः सुदक्षिणः।
सघण्टां प्राहिणोद् घोरां क्रुद्धो गाण्डीवधन्वने॥ ३७॥
सा ज्वलन्ती महोल्केव तमासाद्य महारथम्।
सविस्फुलिङ्गा निर्भिद्य निपपात महीतले॥ ३८॥

फिर शूरवीर सुदक्षिण ने सारी लोहे की बनी हुई घण्टायुक्त शक्ति को क्रुद्ध होकर गाण्डीवधारी अर्जुन पर फैंका। जलती हुई महान् उल्का के समान चिनगारियाँ बिखेरती हुई वह शक्ति उस महारथी के समीप जाकर उसके शरीर को बींधती हुई भूमि पर गिर पड़ी।

शक्त्या त्वभिहतो गाढं मूर्च्छयाभिपरिप्लुतः।
समाश्वास्य महातेजाः सृक्किणी परिलेलिहन्॥ ३९॥
तं चतुर्दशभिः पार्थो नाराचैः कङ्कपत्रिभिः।
साश्वध्वजधनुः सूतं विव्याधाचिन्त्यविक्रमः॥ ४०॥
रथं चान्यैः सुबहुभिश्चक्रे विशकलं शरैः।
सुदक्षिणं तं काम्बोजं मोघसंकल्पविक्रमम्।
बिभेद हृदि बाणेन पृथुधारेण पाण्डवः॥ ४१॥

उस शक्ति से गहरी चोट खाकर अर्जुन मूर्च्छित हो गया। फिर उसके पश्चात् होश में आकर, अपने होठों के किनारों को चाटते हुए उस महातेजस्वी, अचिन्त्यपराक्रमी कुन्तीपुत्र ने चौदह कंकपत्रवाले नाराचों से घोड़ों, ध्वज, धनुष और सारथिसहित उसे घायल कर दिया। फिर दूसरे बहुतसे बाणों से उन्होंने उसके रथ के टुकड़े टुकड़े कर दिये। उसके पश्चात् काम्बोजराज सुदक्षिण के पराक्रम और संकल्प को व्यर्थकर उसके हृदय को पाण्डुपुत्र ने मोटी धारवाले बाण से बेध दिया।

तेतालीसवाँ अध्याय : श्रुतायु, अच्युतायु, नियतायु, दीर्घायु और अम्बष्ठ, का वध।

हते सुदक्षिणे राजन् वीरे चैव श्रुतायुधे।
जवेनाभ्यद्रवन् पार्थं कुपिताः सैनिकास्तव॥ १॥
तेषां षष्टिशतानन्यान् प्रामथ्नात् पाण्डवः शरैः।
ते स्म भीताः पलायन्ते व्याघ्रात् क्षुद्रमृगा इव॥ २॥
तेषु तूत्साद्यमानेषु क्रोधामर्षसमन्वितौ।
श्रुतायुश्चाच्युतायुश्च धनंजयमयुध्यताम्॥ ३॥
बलिनौ स्पर्धिनौ वीरौ कुलजौ बाहुशालिनौ।
तावेनं शरवर्षाणि सव्यदक्षिणमस्यताम्॥ ४॥

हे राजन्! वीर सुदक्षिण और श्रुतायुध के मारे जाने पर आपके सैनिक क्रोध में भरकर तेजी से अर्जुन के ऊपर टूट पड़े। तब अर्जुन ने उनमें से छः हजार सैनिकों और दूसरे योद्धाओं को अपने बाणों से मथ दिया। वेसब तब अर्जुन से डरकर ऐसे भागने लगे जैसे बाघ से छोटे हरिण भागते हैं। तब जब उन सैनिकों का संहार होने लगा तब क्रोध और अमर्ष से युक्त होकर श्रुतायु और अच्युतायु अर्जुन से युद्ध करने लगे। वेदोनों वीर उत्तम कुलों में उत्पन्न हुए थे, वे अर्जुन से स्पर्धा रखनेवाले, बलवान् और अपनी भुजाओं से सुशोभित होनेवाले थे। उनदोनों ने उस पर दायीं और बायीं तरफ से बाण बरसाने आरम्भ कर दिये।

त्वरायुक्तौ महाराज प्रार्थयानौ महद् यशः।
अर्जुनस्य वधप्रेप्सू पुत्रार्थे तव धन्विनौ॥ ५॥
तावर्जुनं सहस्रेण पत्रिणां नतपर्वणाम्।
पूरयामासतुः क्रुद्धौ तटागं जलदौ यथा॥ ६॥
श्रुतायुश्च ततः क्रुद्धस्तोमरेण धनंजयम्।
आजघान रथश्रेष्ठः पीतेन निशितेन च॥ ७॥
सोऽतिविद्धो बलवता शत्रुणा शत्रुकर्शनः।
जगाम परमं मोहं मोहयन् केशवं रणे॥ ८॥

हे महाराज! वेदोनों धनुर्धर महान् यश के इच्छुक और आपके पुत्र के लिये अर्जुन के वध को करने के लिये शीघ्रता से हाथ चला रहे थे। जैसे दो बादल किसी तालाब को भर रहे हों, उसी प्रकार उन्होंने क्रोध में भरकर अर्जुन पर असंख्य बाणों की वर्षा की। श्रेष्ठरथी श्रुतायु ने क्रुद्ध होकर एक पानीदार तीखे तोमर से अर्जुन पर प्रहार किया। तब उस बलवान् शत्रु के द्वारा अत्यन्त घायल होकर वे शत्रुओं को नष्ट करनेवाले अर्जुन युद्धस्थल में श्रीकृष्ण जी को मोहित करते हुए मूर्च्छित होगये।

ततः सर्वस्य सैन्यस्य तावकस्य विशाम्पते।
सिंहनादो महानासीद्धतं मत्वा धनंजयम्॥ ९॥
कृष्णश्च भृशसंतप्तो दृष्ट्वा पार्थं विचेतनम्।
आश्वासयत् सुहृद्याभिर्वाग्भिस्तत्र धनंजयम्॥ १०॥
ततस्तौ रथिनां श्रेष्ठौ लब्धलक्ष्यौ धनंजयम्।
वासुदेवं च वार्ष्णेयं शरवर्षैः समन्ततः॥ ११॥
सचक्रकूबररथं साश्वध्वजपताकिनम्।
अदृश्यं चक्रतुर्युद्धे तदद्भुतमिवाभवत्॥ १२॥

हे प्रजानाथ! तब अर्जुन को मृत समझकर आपके सारे सैनिक जोर से सिंहनाद करने लगे। अर्जुन को मूर्च्छित देखकर श्रीकृष्ण भी अत्यन्तसन्तप्त होगये। वे मधुरवचनों द्वारा अर्जुन को ढाढस बँधाने लगे। तब वेदोनों श्रेष्ठरथी श्रुतायु और अच्युतायु अपने लक्ष्य को प्राप्त होता हुआ देखकर अर्जुन और वसुदेवपुत्र श्रीकृष्ण को सबतरफ से, उनके चक्र, कूबर, रथ, अश्व, ध्वज, पताकासहित, बाणवर्षा द्वारा आच्छादित करने लगे। यह एक अनोखी बात थी।

प्रत्याश्वस्तस्तु बीभत्सुः शनकैरिव भारत।
प्रेतराजपुरं प्राप्य पुनः प्रत्यागतो यथा॥ १३॥
संछन्नं शरजालेन रथं दृष्ट्वा सकेशवम्।
शत्रू चाभिमुखौ दृष्ट्वा दीप्यमानाविवानलौ॥ १४॥
प्रादुश्चक्रे ततः पार्थः शाक्रमस्त्रं महारथः।
प्रतिहत्य शरांस्तूर्णं शरवेगेन पाण्डवः॥ १५॥
प्रतस्थे तत्र तत्रैव योधयन् वै महारथान्।
तौ च फाल्गुनबाणौघैर्विबाहुशिरसौ कृतौ॥ १६॥

हे भारत! तब धीरे धीरे अर्जुन होश में आए, मानों मृत्युलोक से वापिस लौटे हों। तब श्रीकृष्णसहित रथ को बाणों से आच्छादित तथा उनदोनों शत्रुओं को प्रज्वलित अग्नि के समान सामने खड़ा हुआ देखकर उन महारथी ने ऐन्द्रास्त्र का प्रयोग किया। उसके वेग से उस बाणसमूह को तुरन्त नष्ट करके

ज़हाँतहाँ विद्यमान् महारथियों से युद्ध करते हुए उन्होंने आगे प्रस्थान किया। अर्जुन के बाणसमूहों से उनदोनों श्रुतायु और अच्युतायु के हाथ और सिर कट गये।

तयोः पदानुगान् हत्वा पुनः पञ्चाशतं रथान्।
प्रत्यगाद् भारतीं सेनां निघ्नन् पार्थो वरान् वरान्॥ १७॥
श्रुतायुषं च निहतं प्रेक्ष्य चैवाच्युतायुषम्।
नियतायुश्च संक्रुद्धो दीर्घायुश्चैव भारत॥ १८॥
पुत्रौ तयोर्नरश्रेष्ठौ कौन्तेयं प्रतिजग्मतुः।
किरन्तौ विविधान् बाणान् पितृव्यसनकर्शितौ॥ १९॥
तावर्जुनो मुहूर्तेन शरैः संनतपर्वभिः।
प्रैषयत् परमक्रुद्धो यमस्य सदनं प्रति॥ २०॥

फिर उनके पीछे चलनेवाले पचास रथियों को मारकर वे मुख्य मुख्य वीरों को चुन चुनकर मारते हुए कौरवसेना में आगे बढ़े। हे भारत! तब श्रुतायु और अच्युतायु को मारा हुआ देखकर, पिता के वध से दुःखी उनके पुत्रों नरश्रेष्ठ नियतायु और दीर्घायु ने अत्यन्तक्रुद्ध होकर अनेकप्रकार के बाणों की वर्षा करते हुए अर्जुन पर आक्रमण किया। उनको क्रोध में भरे हुए अर्जुन ने झुकी गाँठवाले बाणों से थोड़ी देर में ही मृत्युलोक में भेज दिया।

लोडयन्तमनीकानि द्विपं पद्मसरो यथा।
नाशक्नुवन् वारयितुं पार्थं क्षत्रियपुङ्गवाः॥ २१॥
अङ्गास्तु गजवारेण पाण्डवं पर्यवारयन्।
क्रुद्धाः सहस्रशो राजञ्शिक्षिता हस्तिसादिनः॥ २२॥
दुर्योधनसमादिष्टाः कुञ्जरैः पर्वतोपमैः।
प्राच्याश्च दाक्षिणात्याश्च कलिङ्गप्रमुखा नृपाः॥ २३॥
तेषामापततां शीघ्रं गाण्डीवप्रेषितैः शरैः।
निचकर्त शिरांस्युग्रो बाहूनपि सुभूषणान्॥ २४॥

जैसे हाथी कमलों के तालाब को मथ डालता है, वैसे ही सेनाओं को मथते हुए अर्जुन को क्षत्रियश्रेष्ठ उस समय रोक न सके। हे राजन्! तब अंगदेश के क्रोधित हजारों सुशिक्षित गजारोहियों ने अर्जुन को घेर लिया। दुर्योधन का आदेश पाकर प्राच्य, दाक्षिणात्य और कलिंगदेश के राजाओं ने भी पर्वतों के समान ऊँचे हाथियों के द्वारा अर्जुन को घेर लिया। तब उग्ररूपधारी अर्जुन ने उन आक्रमण करनेवालों के सिरों और भूषित हाथों को भी शीघ्र ही गाण्डीवधनुष से छोड़े गये बाणों से काट दिया।

बाहवोविशिखैश्छिन्नाः शिरांस्युन्मथितानि च।
पतमानान्यदृश्यन्त द्रुमेभ्य इव पक्षिणः॥ २५॥
शरैः सहस्रशो विद्धा द्विपाः प्रसृतशोणिताः।
अदृश्यन्ताद्रयः काले गैरिकाम्बुस्रवा इव॥ २६॥
निहताः शेरते स्मान्ये बीभत्सोर्निशितैः शरैः।
गजपृष्ठगता म्लेच्छा नानाविकृतदर्शनाः॥ २७॥
चुक्रुशुश्च निपेतुश्च बभ्रमुश्चापरे दिशः।
भृशं त्रस्ताश्च बहवः स्वानेव ममृदुर्गजाः॥ २८॥

बाणों से छिन्न हुई बाहें और कटे हुए मस्तक गिरते हुए ऐसे दिखाई देरहे थे, जैसे पेड़ों से पक्षी गिर रहे हों। असंख्य बाणों से बिंधे हुए और रक्त बहाते हुए हाथी ऐसे दिखाई देरहे थे, जैसे वर्षा के समय गेरु से मिले हुए झरनों को बहानेवाले पर्वत हों। अर्जुन के तीखे बाणों से मारे हुए अनेक प्रकार की विकृत आकृतिवाले म्लेच्छ सैनिक हाथी की पीठ पर ही लेट जाते थे। बहुतसे हाथी चिंघाड़ रहे थे, बहुतसे मरकर गिर रहे थे और बहुतसे अत्यन्त डरे हुए, अपने ही सैनिकों को कुचलते हुए सबतरफ चक्कर काट रहे थे।

षट् सहस्रान् हयान् वीरान् पुनर्दशशतान् वरान्।
प्राहिणोन्मृत्युलोकाय क्षत्रियान् क्षत्रियर्षभः॥ २९॥
सवाजिरथमातङ्गान् निघ्नन् व्यचरदर्जुनः।
प्रभिन्न इव मातङ्गो मृद्‌गन् नलवनं यथा॥ ३०॥
भूरिद्रुमलतागुल्मं शुष्केन्धनतृणोलपम्।
निर्दहेदनलोऽरण्यं यथा वायुसमीरितः॥ ३१॥
सेनारण्यं तव तथा कृष्णानिलसमीरितः।
शरार्चिरदहत् क्रुद्धः पाण्डवाग्निर्धनंजयः॥ ३२॥

उस क्षत्रियश्रेष्ठ अर्जुन ने वहाँ छः हजार घुड़सवार वीरों को और एक हजार श्रेष्ठ शूरवीर क्षत्रियों को मृत्युलोक में भेज दिया। जैसे मद बहाने वाला मस्त हाथी नरकुल के जंगल को रौंदता हुआ चलता है, वैसे ही घोड़ों, रथों और हाथियोंसहित अपने शत्रुओं को मारते हुए अर्जुन वहाँ विचरण कर रहे थे। जैसे सूखे ईन्धन, तिनके, घास आदि से युक्त पेड़ों और लतासमूहों से भरे हुए वन को वायु से प्रेरित आग जलाकर भस्म कर देती है, वैसे ही श्रीकृष्णरूपी वायु से प्रेरित, क्रुद्ध पाण्डुपुत्र अर्जुनरूपी अग्नि ने अपनी बाणरूपी ज्वालाओं से आपकी सेनारूपी जंगल को दग्ध कर दिया।

शून्यान् कुर्वन् रथोपस्थान् मानवैः संस्तरन् महीम्।
प्रानृत्यदिव सम्बाधे चापहस्तो धनंजयः॥ ३३॥
वज्रकल्पैः शरैर्भूमिं कुर्वन्नुत्तरशोणिताम्।
प्राविशद् भारतीं सेनां संक्रुद्धो वै धनंजयः॥ ३४॥
तं गतायुस्तदाम्बष्ठो व्रजमानं न्यवारयत्।
तस्यार्जुनः शरैस्तीक्ष्णैः कङ्कपत्रपरिच्छदैः॥ ३५॥
न्यपातयद्धयाञ्शीघ्रं यतमानस्य मारिष।

उस समय धनुर्धारी अर्जुन रथों की बैठकों को सूना करते हुए, भूमि पर लाशों का बिछौना बिछाते हुए रणभूमि में नृत्य सा कर रहे थे। अत्यन्त क्रोध में भरे हुए अर्जुन ने अपने वज्र के समान बाणों से भूमि को रक्त से सराबोर करते हुए भरतवंशियों की सेना में प्रवेश किया। तब जाते हुए उसे, जिसकी आयु समाप्त होगयी थी, उस अम्बष्ठ ने रोका। हे मान्यवर! तब प्रयत्न करते हुए उसके घोड़ों को अर्जुन ने शीघ्र ही तीखे कंकपत्रवाले बाणों से गिरा दिया।

धनुश्चास्यापरैश्छित्त्वा शरैः पार्थो विचक्रमे॥ ३६॥
अम्बष्ठस्तु गदां गृह्य कोपपर्याकुलेक्षणः।
आससाद रणे पार्थं केशवं च महारथम्॥ ३७॥
ततः सम्प्रहरन् वीरो गदामुद्यम्य भारत।
रथमावार्य गदया केशवं समताडयत्॥ ३८॥
तस्यार्जुनः क्षुरप्राभ्यां सगदावुद्यतौ भुजौ।
चिच्छेदेन्द्रध्वजाकारौ शिरश्चान्येन पत्रिणा॥ ३९॥

फिर अर्जुन ने अपना पराक्रम दिखाते हुए दूसरे बाणों से उसके धनुष को काट दिया। तब क्रोधभरी आँखोंवाले अम्बष्ठ ने गदा को उठाकर युद्धक्षेत्र में महारथी अर्जुन और श्रीकृष्ण पर आक्रमण किया। हे भारत! फिर प्रहार के लिये गदा को उठाये उस वीर ने अर्जुन के रथ को रोककर श्रीकृष्ण पर गदा से आघात किया। तब अर्जुन ने दो क्षुरप्र नाम के बाणों से गदा के साथ उठी हुई इन्द्रध्वज जैसी उसकी भुजाओं को काट दिया और दूसरे बाण से उसके सिर को भी अलग कर दिया।

चवालीसवाँ अध्याय : द्रोणाचार्य और धृष्टद्युम्न का द्वन्द्व युद्ध।

संजय उवाच

प्रविष्टयोर्महाराज पार्थवार्ष्णेययो रणे।
दुर्योधने प्रयाते च पृष्ठतः पुरुषर्षभे॥ १॥
जवेनाभ्यद्रवन् द्रोणं महता निःस्वनेन च।
पाण्डवाः सोमकैः सार्धं ततो युद्धमवर्तत॥ २॥
तद् युद्धमभवत् तीव्रं तुमुलं लोमहर्षणम्।
कुरूणां पाण्डवानां च व्यूहस्य पुरतोऽद्भुतम्॥ ३॥
राजन् कदाचिन्नास्माभिर्दृष्टं तादृङ् न च श्रुतम्।
यादृङ् मध्यगते सूर्ये युद्धमासीद् विशाम्पते॥ ४॥

संजय ने कहा कि हे महाराज! अर्जुन और कृष्ण के कौरवसेना में प्रवेश करने तथा पुरुषश्रेष्ठ दुर्योधन के उनके पीछे चले जाने पर, पाण्डववीरों ने सोमकों के साथ महान् गर्जना करते हुए, वेगपूर्वक द्रोणाचार्य पर आक्रमण किया। फिर वहाँ भयानक युद्ध होनेलगा। व्यूह के द्वार पर कौरवों और पाण्डवों में होनेवाला वह तुमुल युद्ध बहुततीव्र और रोंगटे खड़े कर देनेवाला तथा अद्भुत था। हे प्रजानाथ राजन्! तब दोपहर के समय जिसप्रकार का वह युद्ध होरहा था, वैसा हमने न तो पहले देखा था और न सुना था।

धृष्टद्युम्नमुखाः पार्था व्यूढानीकाः प्रहारिणः।
द्रोणस्य सैन्यं ते सर्वे शरवर्षैरवाकिरन्॥ ५॥
वयं द्रोणं पुरस्कृत्य सर्वशस्त्रभृतां वरम्।
पार्षतप्रमुखान् पार्थानभ्यवर्षाम सायकैः॥ ६॥
समेत्य तु महासेने चक्रतुर्वेगमुत्तमम्।
गंगा यमुना च नद्यौ प्रावृषीवोल्बणोदके॥ ७॥
समुद्रमिव घर्मान्ते विशन् घोरो महानिलः।
व्यक्षोभयदनीकानि पाण्डवानां द्विजोत्तमः॥ ८॥

धृष्टद्युम्न आदि पाण्डवपक्ष के प्रहार करनेवाले वीर व्यूह बनाकर, द्रोणाचार्य की सेना पर बाणों की वर्षा करने लगे। उस समय हमलोग सारे शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ द्रोणाचार्य को आगेकर द्रुपदपुत्र आदि पाण्डवपक्ष के योद्धाओं पर बाणों की वर्षा कर रहे थे। दोनों विशाल सेनाएँ एकदूसरे से भिड़कर विजय के लिये पूरा जोर लगा रही थीं। मानों वर्षाऋतु में बाढ़ के जल से भरी हुई गंगा और यमुना एकदूसरी

से मिल रही हों। जैसे ग्रीष्मऋतु के अन्त में भयंकर आँधी समुद्रमें प्रवेशकर वहाँ ज्वार उत्पन्न कर देती है, वैसे ही उस समय ब्राह्मणश्रेष्ठ द्रोणाचार्य ने पाण्डवों की सेना को क्षुब्ध कर दिया।

तेऽपि सर्वप्रयत्नेन द्रोणमेव समाद्रवन्।
बिभित्सन्तो महासेतुं वार्योघाः प्रबला इव॥ ९॥
वारयामास तान् द्रोणो जलौघमचलो यथा।
पाण्डवान् समरे क्रुद्धान् पञ्चालांश्च सकेकयान्॥ १०॥
अथापरे च राजानः परिवृत्य समन्ततः।
महाबला रणे शूराः पञ्चालानन्ववारयन्॥ ११॥
ततो रणे नरव्याघ्रः पार्षतः पाण्डवैः सह।
संजघानासकृद् द्रोणं बिभित्सुररिवाहिनीम्॥ १२॥

उन्होंने भी पूरे प्रयत्न से द्रोणाचार्य पर ही आक्रमण किया हुआ था, मानों पानी का प्रबल प्रवाह किसी विशाल बाँध को तोड़ना चाहता हो। जैसे पानी के प्रवाह को पर्वत रोक देता है, वैसे ही द्रोणाचार्य ने युद्धस्थल में क्रोध से भरे हुए केकयोंसहित पांचालों और पाण्डवों को रोका हुआ था। फिर दूसरे और राजा लोग भी सबतरफ से लौट आये और वे महाबली युद्ध में शूर पांचालों का ही प्रतिरोध करने लगे। फिर उस नरव्याघ्र द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्न ने पाण्डवों के साथ शत्रु सेना के व्यूह को भेदने की इच्छा से द्रोणाचार्य पर बारबार आक्रमण किया।

यथैव शरवर्षाणि द्रोणो वर्षति पार्षते।
तथैव शरवर्षाणि धृष्टद्युम्नोऽप्यवर्षत॥ १३॥
यं यमार्च्छच्छरैर्द्रोणः पाण्डवानां रथव्रजम्।
ततस्ततः शरैर्द्रोणमपाकर्षत पार्षतः॥ १४॥
तथा तु यतमानस्य द्रोणस्य युधि भारत।
धृष्टद्युम्नं समासाद्य त्रिधा सैन्यमभिद्यत॥ १५॥
भोजमेकेऽभ्यवर्तन्त जलसंधं तथापरे।
पाण्डवैर्हन्यमानाश्च द्रोणमेवापरे ययुः॥ १६॥

द्रोणाचार्य उस समय जिसप्रकार के बाणों की धृष्टद्युम्न पर वर्षा करते थे, धृष्टद्युम्न भी द्रोणाचार्य पर उसीप्रकार के बाणों की वर्षा करता था। द्रोणाचार्य अपने बाणों से पाण्डवों की जिस जिस रथसेना को पीड़ित करते, धृष्टद्युम्न वहीं वहीं से अपनी बाणवर्षा द्वारा द्रोण को हटा देते थे। हे भारत! इसप्रकार युद्ध में विजय के लिये प्रयत्नशील द्रोणाचार्य की सेना धृष्टद्युम्न के समीप पहुँचकर तीन भागों में बँट गयी। पाण्डवों से मारे जाते हुए कुछ सैनिक कृतवर्मा के पास और कुछ जलसंध के पास भाग गये और कुछ द्रोणाचार्य के साथ ही रहे।

संघट्टयति सैन्यानि द्रोणस्तु रथिनां वरः।
व्यधमच्चापि तान्यस्य धृष्टद्युम्नो महारथः॥ १७॥
कालः स्म ग्रसते योधान् धृष्टद्युम्नेन मोहितान्।
संग्रामे तुमुले तस्मिन्निति सम्मेनिरे जनाः॥ १८॥
कुनृपस्य यथा राष्ट्रं दुर्भिक्षव्याधितस्करैः।
द्राव्यते तद्वदापन्ना पाण्डवैस्तव वाहिनी॥ १९॥
अर्करश्मिविमिश्रेषु शस्त्रेषु कवचेषु च।
चक्षूंषि प्रत्यहन्यन्त सैन्येन रजसा तथा॥ २०॥

रथियों में श्रेष्ठ द्रोणाचार्य अपनी सेना को बार बार संगठित करते थे तो महारथी धृष्टद्युम्न उसे छिन्नभिन्न कर देते थे। उस तुमुल संग्राम में लोग ऐसा मानने लगे कि इस समय मृत्यु ही धृष्टद्युम्न के द्वारा योद्धाओं को मोहित करके ग्रस रही है। जैसे बुरे राजा का राज्य अकाल, बीमारी और लुटेरों के द्वारा उजाड़ दिया जाता है, वैसे ही पाण्डवों के द्वारा संकट में पड़ी हुई आपकी सेना उस समय खदेड़ी जारही थी। तब कभी सूर्य की किरणें शस्त्रों और कवचों पर पड़ती हुई आँखों को चुँधिया देती थीं तो कभी सेनाओं के द्वारा उड़ायी गयी धूल से आँखें बन्द हो जाती थीं।

त्रिधाभूतेषु सैन्येषु वध्यमानेषु पाण्डवैः।
अमर्षितस्ततो द्रोणः पञ्चालान् व्यधमच्छरैः॥ २१॥
मृद्नतस्तान्यनीकानि निघ्नतश्चापि सायकैः।
बभूव रूपं द्रोणस्य कालाग्नेरिव दीप्यतः॥ २२॥
पाण्डवानां तु सैन्येषु नास्ति कश्चित् स भारत।
दधार यो रणे बाणान् द्रोणचापच्युतान् प्रभो॥ २३॥
तत् पच्यमानमर्केण द्रोणसायकतापितम्।
बभ्राम पार्षतं सैन्यं तत्र तत्रैव भारत॥ २४॥

पाण्डवों के द्वारा मारी जाती हुई कौरवसेना के तीन भागों में बँट जाने पर क्रोध में भरे हुए द्रोणाचार्य ने तब बाणों के द्वारा पाँचालसेना का विनाश करना आरम्भ कर दिया। उस समय उन सेनाओं को रौंदते हुए और बाणों से उनका संहार करते हुए द्रोणाचार्य का रूप प्रलयकाल में प्रज्वलित अग्नि के समान

होगया था। जो युद्ध में द्रोणाचार्य के बाणों का सामना कर सके हे भारत, हे प्रभो! उस समय पाण्डवों की सेना में कोई भी ऐसा नहीं था। हे भारत! उस समय द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्न की सेना सूर्य के द्वारा तपायी जाती हुई और द्रोणाचार्य के बाणों से संतप्त होती हुई जहाँतहाँ चक्कर काटने लगी।

तथैव पार्षतेनापि काल्यमानं बलं तव।
अभवत् सर्वतो दीप्तं शुष्कं वनमिवाग्निना॥ २५॥
बाध्यमानेषु सैन्येषु द्रोणपार्षतसायकैः।
त्यक्त्वा प्राणान् परं शक्त्या युध्यन्ते सर्वतोमुखाः॥ २६॥
भीमसेनं तु कौन्तेयं सोदर्याः पर्यवारयन्।
विविंशतिश्चित्रसेनो विकर्णश्च महारथः॥ २७॥
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ क्षेमधूर्तिश्च वीर्यवान्।
त्रयाणां तव पुत्राणां त्रय एवानुयायिनः॥ २८॥

उसीप्रकार आपकी सेना भी द्रुपदपुत्र के द्वारा पीड़ित होती हुई, आग के द्वारा सबतरफ से जलाये जाते हुए सूखे वन की तरह होरही थी। दोनोंतरफ की सेनाओं के द्रोणाचार्य और धृष्टद्युम्न के द्वारा पीड़ित होने पर भी सबलोग अपने प्राणों का मोह छोड़कर, पूरी शक्ति से युद्ध कर रहे थे। तब भीमसेन को विविंशति, चित्रसेन और महारथी विकर्ण इन तीन सगे भाइयों ने घेर लिया। अवन्तीदेश के विन्द और अनुविन्द तथा पराक्रमी क्षेमधूर्ति ये तीनों आपके तीनों पुत्रों के पीछे चलनेवाले थे।

बाह्लीकराजस्तेजस्वी कुलपुत्रो महारथः।
सहसेनः सहामात्यो द्रौपदेयानवारयत्॥ २९॥
शैब्यो गोवासनो राजा योधैर्दशशतावरैः।
काश्यस्याभिभुवः पुत्रं पराक्रान्तमवारयत्॥ ३०॥
अजातशत्रुं कौन्तेयं ज्वलन्तमिव पावकम्।
मद्राणामीश्वरः शल्यो राजा राजानमावृणोत्॥ ३१॥
दुःशासनस्त्ववस्थाप्य स्वमनीकममर्षणः।
सात्यकिं प्रत्ययौ क्रुद्धः शूरो रथवरं युधि॥ ३२॥

तब उत्तमकुल में उत्पन्न तेजस्वी और महारथी बाह्लीकराज ने अपनी सेना और मन्त्रियों के साथ द्रौपदी के पुत्रों को रोका। शिविदेश के राजा गोवासन ने एक सहस्र योद्धाओं के साथ काशीराज अभिभू के अत्यन्तपराक्रमी पुत्र को रोका। प्रज्वलित अग्नि के समान तेजस्वी राजा युधिष्ठिर को मद्रदेश के राजा शल्य ने रोका। फिर अमर्षशील और शूरवीर दुश्शासन ने अपनी सेना को स्थिरकर और क्रोध में भरकर रथियों में श्रेष्ठ सात्यकि पर आक्रमण किया।

स्वकेनाहमनीकेन संनद्धः कवचावृतः।
चतुःशतैर्महेष्वासैश्चेकितान- मवारयम्॥ ३३॥
शकुनिस्तु सहानीको माद्रीपुत्रमवारयत्।
गान्धारकैः सप्तशतैश्चापशक्त्यसिपाणिभिः॥ ३४॥
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ विराटं मत्स्यमार्च्छताम्।
प्राणांस्त्यक्त्वा महेष्वासौ मित्रार्थेऽभ्युद्यतायुधौ॥ ३५॥
धृष्टद्युम्नं तु पाञ्चाल्यं क्रूरैः सार्धं प्रभद्रकैः।
आवन्त्यः सहसौवीरैः क्रुद्धरूपमवारयत्॥ ३६॥

फिर कवच बाँधकर और तैयार होकर मैंने चार सौ महाधनुर्धरों के साथ चेकितान को रोका। सेना सहित शकुनि ने माद्रीपुत्र नकुल को गान्धारदेश के सात सौ धनुष, शक्ति और तलवारधारी सैनिकों के साथ रोका। मित्र के लिये प्राणों का मोह छोड़कर अवन्तीदेश के महाधनुर्धर विन्द और अनुविन्द ने हथियारों को उठाकर मत्स्यराज विराट को पीड़ित किया। क्रोध में भरे हुए पांचालकुमार धृष्टद्युम्न को अवन्ती के एक दूसरे वीर ने क्रूर स्वभाववाले प्रभद्रकों और सौवीरदेश के सैनिकों के साथ रोका।

घटोत्कचं तथा शूरं राक्षसं क्रूरकर्मिणम्।
अलायुधोऽद्रवत् तूर्णं क्रुद्धमायान्तमाहवे॥ ३७॥
अलम्बुषं राक्षसेन्द्रं कुन्तिभोजो महारथः।
सैन्येन महता युक्तः क्रुद्धरूपमवारयत्॥ ३८॥

क्रोध में भरे हुए और युद्धक्षेत्र में आते हुए क्रूरकर्मा और शूरवीर राक्षस घटोत्कच पर अलायुध ने शीघ्रता से आक्रमण किया। क्रोध से युक्त, कौरव पक्षीय राक्षस राजा अलम्बुष का सामना विशाल सेना से युक्त महारथी कुन्तीभोज ने किया।

पैंतालीसवाँ अध्याय : उभयपक्ष के वीरों के द्वन्द्व युद्ध।

विन्दानुविन्दावावन्त्यौ विराटं दशभिः शरैः।
आजघ्नतुः सुसंक्रुद्धौ तव पुत्रहितैषिणौ॥ १॥
विराटश्च महाराज तावुभौ समरे स्थितौ।
पराक्रान्तौ पराक्रम्य योधयामास सानुगौ॥ २॥
तेषां युद्धं समभवद् दारुणं शोणितोदकम्।
सिंहस्य द्विपमुख्याभ्यां प्रभिन्नाभ्यां यथा वने॥ ३॥

तब आपके पुत्र के हितैषी, अवन्ती के विन्द और अनुविन्द ने अत्यन्त क्रोध में भरकर विराटराज पर दस बाणों से प्रहार किया। हे महाराज! तब विराटराज ने भी सेवकोंसहित युद्धस्थल में खड़े हुए उनदोनों पराक्रमियों के साथ पराक्रमपूर्वक युद्ध किया। जैसे वन में मद बहानेवाले दो हाथियों के साथ सिंह का युद्ध होरहा हो, वैसे ही उनका खून को पानी की तरह से बहानेवाला दारुण युद्ध हुआ।

बाह्लीकं रभसं युद्धे याज्ञसेनिर्महाबलः।
आजघ्ने विशिखैस्तीक्ष्णैर्घोरैर्मर्मास्थिभेदिभिः॥ ४॥
बाह्लीको याज्ञसेनिं तु हेमपुङ्खैः शिलाशितैः।
आजघान भृशं क्रुद्धो नवभिर्नतपर्वभिः॥ ५॥
तद् युद्धमभवद् घोरं शरशक्तिसमाकुलम्।
भीरूणां त्रासजननं शूराणां हर्षवर्धनम्॥ ६॥
शैब्यो गोवासनो युद्धे काश्यपुत्रं महारथम्।
ससैन्यो योधयामास गजः प्रतिगजं यथा॥ ७॥

महाबली द्रुपदपुत्र शिखण्डी ने द्वन्द्वयुद्ध में वेगशाली बाह्लीक को मर्मस्थलों और हड्डियों को भेदनेवाले तीखे और भयानक बाणों से चोट पहुँचायी। तब अत्यन्त क्रोध में भरकर बाह्लीक ने शिखण्डी को शिला पर तेज किये हुए सुनहरे पंख वाले नौ झुकी गाँठवाले बाणों से बींधा। तब उन दोनों में कायरों को भयभीत करनेवाला और शूरवीरों के हर्ष को बढ़ानेवाला घोर युद्ध हुआ, जिसमें बाणों और शक्तियों का प्रयोग किया जारहा था। शिवि देश के गोवासन ने सेना के साथ काशिराज के महारथी पुत्र से युद्धस्थल में उसीप्रकार युद्ध किया, जैसे एक हाथी दूसरे हाथी के साथ करता है।

वार्ष्णेयं सात्यकिं युद्धे पुत्रो दुःशासनस्तव।
आजघ्ने सायकैस्तीक्ष्णैर्नवभिर्नतपर्वभिः॥ ८॥
सोऽतिविद्धो बलवता महेष्वासेन धन्विना।
ईषन्मूर्च्छां जगामाशु सात्यकिः सत्यविक्रमः॥ ९॥
समाश्वस्तस्तु वार्ष्णेयस्तव पुत्रं महारथम्।
विव्याध दशभिस्तूर्णं सायकैः कङ्कपत्रिभिः॥ १०॥
अलम्बुषस्तु संक्रुद्धः कुन्तिभोजशरार्दितः।
कुन्तिभोजं ततो रक्षो विद्ध्वा बहुभिरायसैः॥ ११॥
अनदद् भैरवं नादं वाहिन्याः प्रमुखे तव।

आपके पुत्र दुश्शासन ने युद्ध में झुकी गाँठवाले नौ तीखे बाणों से वृष्णिवंशी सात्यकि पर प्रहार किया। तब सत्यविक्रमी सात्यकि को महाधनुर्धर धनुषधारी बलवान् दुश्शासन से अत्यन्तघायल होने के कारण थोड़ी मूर्च्छा आगयी। फिर होश में आकर सात्यकि ने आपके महारथी पुत्र को तुरन्त दस कंकपत्र वाले बाणों से बींध दिया। कुन्तीभोज के बाणों से पीड़ित होकर और अत्यन्तक्रुद्ध होकर राक्षस अलम्बुष ने कुन्तीभोज को बहुतसे बाणों से बींधकर आपकी सेना के सामने बड़ीजोर से गर्जना की।

शकुनिं रभसं युद्धे कृतवैरं च भारत॥ १२॥
माद्रीपुत्रौ च संरब्धौ शरैश्चार्दयतां भृशम्।
शकुनिः पाण्डुपुत्राभ्यां कृतः स विमुखःशरैः॥ १३॥
विमुखं चैनमालोक्य माद्रीपुत्रौ महारथौ।
ववर्षतुः पुनर्बाणैर्यथा मेघौ महागिरिम्॥ १४॥
स वध्यमानो बहुभिः शरैः संनतपर्वभिः।
सम्प्रायाज्जवनैरश्वैर्द्रोणानीकाय सौबलः॥ १५॥

हे भारत! माद्री के दोनों पुत्रों नकुल और सहदेव ने अत्यन्तक्रुद्ध होकर युद्ध में वेगवान् शकुनि को जिसने उनके साथ बैर किया हुआ था, बाणों से अत्यन्तपीड़ित किया। पाण्डु के उनदोनों पुत्रों ने शकुनि को युद्ध से विमुख कर दिया और फिर उसे विमुख देखकर उनदोनों महारथियों ने उसके ऊपर बाणों की इसप्रकार वर्षा आरम्भ कर दी जैसे दो बादल किसी महान् पर्वत पर जल की धारा बरसा रहे हों। तब झुकी गाँठवाले बहुतसे बाणों से घायल होकर शकुनि शीघ्रगामी घोड़ों के द्वारा द्रोणाचार्य की सेना के पास चला गया।

घटोत्कचस्तथा शूरं राक्षसं तमलायुधम्।
अभ्ययाद् रभसं युद्धे वेगमास्थाय मध्यमम्॥ १६॥
तयोर्युद्धं महाराज चित्ररूपमिवाभवत्।

यादृशं हि पुरा वृत्तं रामरावणयोर्मृधे॥ १७॥
ततो युधिष्ठिरो राजा, मद्रराजानमाहवे।
विद्ध्वा पञ्चाशताबाणैः पुनर्विव्याध सप्तभिः॥ १८॥
विविंशतिश्चित्रसेनो विकर्णश्च तवात्मजः।
अयोधयन् भीमसेनं महत्या सेनया वृताः॥ १९॥

घटोत्कच ने युद्ध में वेगवान्, शूरवीर राक्षस अलायुध का मध्यम वेग का आश्रय लेकर सामना किया। हे महाराज! उनदोनों का युद्ध बड़ा विचित्ररूप वाला हुआ। जैसे कि पहले राम और रावण का युद्ध हुआ था। फिर राजा युधिष्ठिर ने मद्रराज को युद्ध में, पचास बाणों की वर्षाकर फिर सात बाणों से बींध दिया। आपके पुत्र विविंशति, चित्रसेन और विकर्ण महान् सेना के साथ रहते हुए भीमसेन के साथ युद्ध करने लगे।

छियालीसवाँ अध्याय : द्रोणाचार्य धृष्टद्युम्न युद्ध। सात्यकि द्वारा रक्षा।

तथा तस्मिन् प्रवृत्ते तु संग्रामे लोमहर्षणे।
कौरवेयांस्त्रिधाभूतान् पाण्डवाः समुपाद्रवन्॥ १॥
जलसंधं महाबाहुं भीमसेनोऽभ्यवर्तत।
युधिष्ठिरः सहानीकः कृतवर्माणमाहवे॥ २॥
किरंस्तु शरवर्षाणि रोचमान इवांशुमान्।
धृष्टद्युम्नो महाराज द्रोणमभ्यद्रवद् रणे॥ ३॥
ततः प्रववृते युद्धं त्वरतां सर्वधन्विनाम्।
कुरूणां पाण्डवानां च संक्रुद्धानां परस्परम्॥ ४॥

संजय ने कहा कि हे राजन! उस लोमहर्षक युद्ध के उसप्रकार चलते हुए तीन भागों में बँटे हुए कौरववीरों पर पाण्डवों ने आक्रमण कर दिया। महाबाहु जलसंध पर भीमसेन ने आक्रमण किया। युधिष्ठिर ने सेना के साथ युद्धस्थल में कृतवर्मा पर हमला बोला और हे महाराज! रणक्षेत्र में सूर्य के समान सुशोभित होते हुए तथा बाणों की वर्षा करते हुए धृष्टद्युम्न ने द्रोणाचार्य पर आक्रमण किया। फिर अत्यन्त क्रोध में भरे हुए कौरव और पाण्डव सारे धनुर्धरों का परस्पर उतावलेपन से युद्ध होने लगा।

संक्षये तु तथाभूते वर्तमाने महाभये।
द्वन्द्वीभूतेषु सैन्येषु युध्यमानेष्वभीतवत्॥ ५॥
द्रोणः पाञ्चालपुत्रेण बली बलवता सह।
यदक्षिपत् पृषत्कौघांस्तदद्भुतमिवाभवत्॥ ६॥
पुण्डरीकवनानीव विध्वस्तानि समन्ततः।
चक्राते द्रोणपाञ्चाल्यौ नृणां शीर्षाण्यनेकशः॥ ७॥
वर्तमाने तथा युद्धे निर्मर्यादे विशाम्पते।
धृष्टद्युम्नो हयानश्वैर्द्रोणस्य व्यत्यमिश्रयत्॥ ८॥

जब सारी सेनाएँ द्वन्द्वयुद्धों में बँट कर निर्भयता के साथ युद्ध कर रही थीं, सबतरफ महान् भय का वातावरण था और विनाश होरहा था, बलवान् द्रोणाचार्य ने बलवान् पांचालपुत्र के साथ युद्ध करते हुए, जो बाणों की वर्षा की वह अनोखी सी प्रतीत होरही थी। द्रोणाचार्य और पांचाल राजकुमार ने सबतरफ जो बहुत लोगों के सिर काटकर गिराये हुए थे, वे ऐसे प्रतीत होरहे थे, जैसे चारोंतरफ कमल के वनों का विनाश किया गया हो। हे महाराज! उस समय मर्यादा विहीन युद्ध के चलते हुए धृष्टद्युम्न ने अपने रथ के घोड़ों को द्रोणाचार्य के रथ के घोड़ों से मिला दिया।

पारावतसवर्णास्ते रक्तशोणविमिश्रिताः।
हयाः शुशुभिरे राजन् मेघा इव सविद्युतः॥ ९॥
धृष्टद्युम्नस्तु सम्प्रेक्ष्य द्रोणमभ्याशमागतम्।
असिचर्माददे वीरो धनुरुत्सृज्य भारत॥ १०॥
चिकीर्षुर्दुष्करं कर्म पार्षतः परवीरहा।
ईषया समतिक्रम्य द्रोणस्य रथमाविशत्॥ ११॥
यथा श्येनस्य पतनं वनेष्वामिषगृद्धिनः।
तथैवासीदभीसारस्तस्य द्रोणं जिघांसतः॥ १२॥

हे राजन्! धृष्टद्युम्न के कबूतर के रंगवाले घोड़े द्रोणाचार्य के लाल रंगवाले घोड़ों से मिलकर ऐसे प्रतीत होरहे थे, जैसे बिजली से युक्त बादल हों। हे भारत! तब वीर धृष्टद्युम्न ने द्रोणाचार्य को अत्यन्तसमीप देखकर धनुष को छोड़कर ढाल और तलवार हाथ में ले ली। शत्रु के वीरों को नष्ट करनेवाला द्रुपदपुत्र उस समय दुष्कर कर्म करना चाहता था। वह ईषादण्ड के सहारे अपने रथ से द्रोणाचार्य के रथ पर जाचढ़ा। जैसे वनों में माँस

का लोभी बाज झपट्टा मारता है वैसे ही धृष्टद्युम्न ने द्रोणाचार्य को मारने की इच्छा से आक्रमण किया।

ततः शरशतेनास्य शतचन्द्रं समाक्षिपत्।
द्रोणो द्रुपदपुत्रस्य खड्गं च दशभिः शरैः॥ १३॥
हयांश्चैव चतुःषष्ट्या शराणां जघ्निवान् बली।
ध्वजं क्षत्रं च भल्लाभ्यां तथा तौ पार्ष्णिसारथी॥ १४॥
अथास्मै त्वरितो बाणमपरं जीवितान्तकम्।
आकर्णपूर्णं चिक्षेप वज्रं वज्रधरो यथा॥ १५॥
तं चतुर्दशभिस्तीक्ष्णैर्बाणैश्चिच्छेद सात्यकिः।
ग्रस्तमाचार्यमुख्येन धृष्टद्युम्नं व्यमोचयत्॥ १६॥

तब द्रोणाचार्य ने उसकी ढाल को, जिसमें बहुत सारे चाँद बने हुए थे, बहुतसारे बाण मारकर और उसकी तलवार को दस बाण मारकर काट दिया। फिर चौंसठ बाणों की वर्षा कर उन बलवान् ने उसके चारों घोड़ों को मार दिया। उन्होंने उसके पृष्ठरक्षकों को भी मार दिया। फिर उन्होंने धृष्टद्युम्न के लिये शीघ्रता से एक दूसरे जीवन का अन्त करने वाले बाण का संधान किया और धनुष को कान तक खींचकर उसकी तरफ उसे ऐसे फैंका जैसे इन्द्र अपने वज्र का प्रहार करते हैं, तब सात्यकि ने चौदह बाणों की वर्षाकर उस बाण को काट दिया और इसप्रकार आचार्यमुख्य के चंगुल में फँसे हुए धृष्टद्युम्न को बचा लिया।

सिंहेनेव मृगं ग्रस्तं नरसिंहेन मारिष।
द्रोणन मोचयामास पाञ्चाल्यं शिनिपुङ्गवः॥ १७॥
सात्यकिं प्रेक्ष्य गोप्तारं पाञ्चाल्यं च महाहवे।
शराणां त्वरितो द्रोणः षड्विंशत्या समार्पयत्॥ १८॥
ततो द्रोणं शिनेः पौत्रो ग्रसन्तमपि सृंजयान्।
प्रत्यविध्यच्छितैर्बाणैः षडविंशत्या स्तनान्तरे॥ १९॥
ततः सर्वे रथास्तूर्णं पाञ्चाल्या जयगृद्धिनः।
सात्वताभिसृते द्रोणे धृष्टद्युम्नवाक्षिपन्॥ २०॥

हे मान्यवर! जैसे सिंह किसी मृग को दबोच ले, उसीप्रकार नरसिंह द्रोणाचार्य के द्वारा दबोचे हुए धृष्टद्युम्न को सात्यकि ने छुड़ा लिया। तब उस महान् युद्ध में पांचाल राजकुमार के रक्षक सात्यकि को देखकर द्रोणाचार्य ने शीघ्रता के साथ सात्यकि पर छब्बीस बाणों से प्रहार किया। तब सृंजयवीरों को अपना ग्रास बनाते हुए द्रोणाचार्य की छाती पर शिनि के पौत्र सात्यकि ने भी छब्बीस बाणों से प्रहार किया। फिर सात्यकि के द्रोणाचार्य के साथ युद्ध में लग जाने पर, विजय के इच्छुक पांचाल रथी शीघ्रता से धृष्टद्युम्न को वहाँ से दूर ले गये।

सैंतालीसवाँ अध्याय : द्रोणाचार्य और सात्यकि का युद्ध।

सम्प्रद्रुतः क्रोधविषो व्यादितास्यशरासनः।
तीक्ष्णधारेषुदशनः शितनाराचदंष्ट्रवान्॥ १॥
संरम्भामर्षताम्राक्षो महोरग इव श्वसन्।
ततस्तौ द्रोणशैनेयौ युयुधाते परंतपौ॥ २॥
शरैरनेकसाहस्त्रैस्ताडयन्तौ परस्परम्।
तयोर्ज्यातलनिर्घोषः शुश्रुवे युद्धशौण्डयोः॥ ३॥
अजस्त्रं शैलशृङ्गाणां वज्रेणाहन्यतामिव।
निर्मलानामजिह्मानां नाराचानां विशाम्पते॥ ४॥
निर्मुक्ताशीविषाभानां सम्पातोऽभूत् सुदारुणः।

संजय ने कहा कि फिर क्रोध और अमर्ष से लाल आँखें किये और विशाल सर्प के समान लम्बी साँस लेते हुए द्रोणाचार्य ने सात्यकि पर आक्रमण किया। उस समय उनका क्रोध ही सर्प का विष, खींचा हुआ धनुष सर्प का फैलाया हुआ मुख, तीखी धारवाले बाण दाँत और तेज धार वाले नाराच उसकी दाढ़ें थीं। फिर शत्रु को संतप्त करनेवाले वेदोनों द्रोणाचार्य और सात्यकि असंख्य बाणों से एकदूसरे पर प्रहार करते हुए युद्ध करने लगे। युद्ध में विशारद उनदोनों की प्रत्यंचाओं की टंकार लगातार ऐसे सुनायी देरही थी, जैसे पर्वत शिखरों पर विद्युत् से प्रहार किया जारहा हो। हे प्रजानाथ! उस समय कैंचुली छोड़कर निकले हुए सर्पों के समान जगमगाते हुए और सीधे जानेवाले नाराचों का प्रहार बहुतदारुणरूप से होरहा था।

उभयोः पतिते छत्रे तथैव पतितौ ध्वजौ॥ ५॥
उभौ रुधिरसिक्ताङ्गावुभौ च विजयैषिणौ।
स्त्रवद्भिः शोणितं गात्रैः प्रस्नुताविव वारणौ॥ ६॥
अन्योन्यमभ्यविध्येतां जीवितान्तकरैः शरैः।
गर्जितोत्क्रुष्टसंनादाः शङ्खदुन्दुभिनिःस्वनाः॥ ७॥

उपारमन् महाराज व्याजहार न कञ्चन।
तूष्णीम्भूतान्यनीकानि योधा युद्धादुपारमन्॥ ८॥
ददर्श द्वैरथं ताभ्यां जातकौतूहलो जनः।

उन दोनों के ध्वज और छत्र कटकर गिर गये थे। विजय के इच्छुक वेदोनों ही खून से लथपथ होरहे थे। अपने शरीर के अंगों से खून बहाते हुए वेदोनों मद बहाते हुए हाथियों के समान लग रहे थे। वेदोनों ही एकदूसरे को प्राणान्तक बाणों से बींध रहे थे। हे महाराज! उस समय और दूसरे सैनिकों के गर्जन, ललकारना, सिंहनाद तथा शंख और दुंदुभियों की आवाजें बन्द होगयी थीं। कोई भी उस समय कुछ नहीं बोल रहा था। उस समय दूसरे योद्धाओं ने अपने युद्ध रोक दिये, सेनाएँ चुपचाप खड़ी होगयीं। कौतुहल उत्पन्न होने के कारण सारेलोग उनदोनों के द्वैरथ युद्ध को देखने लगे।

रथिनो हस्तियन्तारो हयारोहाः पदातयः॥ ९॥
अवैक्षन्ताचलैर्नेत्रैः परिवार्य नरर्षभौ।
हस्तलाघवमस्त्रेषु दर्शयन्तौ महाबलौ॥ १०॥
अन्योन्यमभिविध्येतां शरैस्तौ द्रोणसात्यकी।
ततो द्रोणस्य दाशार्हः शरांश्चिच्छेद संयुगे॥ ११॥
पत्रिभिः सुदृढैराशु धनुश्चैव महाद्युतेः।
निमेषान्तरमात्रेण भारद्वाजोऽपरं धनुः॥ १२॥
सज्यं चकार तदपि चिच्छेदास्य च सात्यकिः।

रथी, महावत, घुड़सवार, पैदल उनदोनों नरश्रेष्ठों को घेरकर एकटक निगाहों से उन्हें देख रहे थे। वेदोनों महाबली द्रोणाचार्य और सात्यकि अस्त्रसंचालन में अपने हाथों का कौशल दिखाते हुए एकदूसरे को बाणों से बींध रहे थे। फिर युद्धक्षेत्र में सात्यकि ने शीघ्रता से अपने सुदृढ़ बाणों से महातेजस्वी द्रोणाचार्य के बाणों को और धनुष को काट दिया। तब पलक मारते ही द्रोणाचार्य ने दूसरे धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ा ली पर सात्यकि ने उसेभी काट दिया।

ततस्त्वरन् पुनर्द्रोणो धनुर्हस्तो व्यतिष्ठत॥ १३॥
सज्यं सज्यं धनुश्चास्य चिच्छेद निशितैः शरैः।
एवमेकशतं छिन्नं धनुषां दृढधन्विना॥ १४॥
न चान्तरं तयोर्दृष्टं संधाने छेदनेऽपि च।
ततोऽस्य संयुगे द्रोणो दृष्ट्वा कर्मातिमानुषम्॥ १५॥
युयुधानस्य राजेन्द्र मनसैतदचिन्तयत्।

तब द्रोणाचार्य शीघ्रता करते हुए पुनः धनुष हाथ में लेकर खड़े होगये, पर सात्यकि बार बार तैयार किये हुए, उन धनुषों को अपने तीखे बाणों से काट देते थे। इसप्रकार उस दृढ़ धनुषवाले ने द्रोणाचार्य के बहुतसारे धनुष काट दिये। उनदोनों के द्वारा धनुष लेने और उसे काटने में लोगों को समय का व्यवधान बिल्कुल भी नहीं दिखायी दे रहा था। हे राजेन्द्र! तब युद्ध में सात्यकि के उस अमानुषिक कर्म को देखकर द्रोणाचार्य ने मन में यह सोचा कि—

एतदस्त्रबलं रामे कार्तवीर्ये धनंजये॥ १६॥
भीष्मे च पुरुषव्याघ्रे यदिदं सात्वतां वरे।
तं चास्य मनसा द्रोणः पूजयामास विक्रमम्॥ १७॥
ततोऽन्यद् धनुरादाय द्रोणः क्षत्रियमर्दनः।
अस्त्रैरस्त्रविदां श्रेष्ठो योधयामास भारत॥ १८॥
तस्यास्त्राण्यस्त्रमायाभिः प्रतिहत्य स सात्यकिः।
जघान निशितैर्बाणैस्तदद्भुतमिवाभवत्॥ १९॥

यदुवंशियों में श्रेष्ठ सात्यकि में इस समय जो अस्त्रविद्या का बल दिखाई देरहा है, वह केवल परशुराम, कार्तवीर्य, अर्जुन और पुरुषव्याघ्र भीष्म में ही देखा गया है। द्रोणाचार्य ने इसप्रकार मन ही मन उसके पराक्रम की प्रशंसा की। हे भारत! तब अस्त्रवेत्ताओं में श्रेष्ठ और क्षत्रियों का मर्दन करनेवाले द्रोणाचार्य ने दूसरा धनुष लेकर युद्ध करना आरम्भ किया। सात्यकि ने अपने अस्त्रों की माया से उनके अस्त्रों का प्रतिकारकर, उन्हें तीखे बाणों से घायल कर दिया, यह अद्भुत बात थी।

तस्यातिमानुषं कर्म दृष्ट्वान्यैरसमं रणे।
युक्तं योगेन योगज्ञास्तावकाः समपूजयन्॥ २०॥
यदस्त्रमस्यति द्रोणस्तदेवास्यति सात्यकिः।
तमाचार्योऽप्यसम्भ्रान्तोऽयोधयच्छत्रुतापनः॥ २१॥
ततः क्रुद्धो महाराज धनुर्वेदस्य पारगः।
वधाय युयुधानस्य दिव्यमस्त्रमुदैरयत्॥ २२॥
तदाग्नेयं महाघोरं रिपुघ्नमुपलक्ष्य सः।
दिव्यमस्त्रं महेष्वासो वारुणं समुदैरयत्॥ २३॥

सात्यकि के अमानुषिक दूसरों से अतुलनीय और युक्तियुक्त कर्म को युद्धक्षेत्र में देखकर आपके रणकौशल के जानकार सैनिक उनकी बार बार प्रशंसा करने लगे। द्रोणाचार्य जिस अस्त्र का प्रयोग करते थे, सात्यकि भी उसी अस्त्र का प्रयोग करते थे। शत्रुओं

को संतप्त करनेवाले आचार्य भी उसके साथ बिना घबराहट के युद्ध कर रहे थे। हे महाराज! फिर धनुर्विद्या के पंडित द्रोणाचार्य ने क्रोध में भर कर सात्यकि के वध के लिये दिव्यास्त्र को प्रकट किया। तब शत्रुओं को नष्ट करनेवाले उस महाभयंकर आग्नेयास्त्र को देखकर महाधनुर्धर सात्यकि ने भी वारुणास्त्र नाम के दिव्यास्त्र को प्रकट किया।

ततो युधिष्ठिरो राजा भीमसेनश्च पाण्डवः।
नकुलः सहदेवश्च पर्यरक्षन्त सात्यकिम्॥ २४॥
धृष्टद्युम्नमुखैः सार्धं विराटश्च सकेकयः।
मत्स्याः शाल्वेयसेनाश्च द्रोणमाजग्मुरञ्जसा॥ २५॥
दुःशासनं पुरस्कृत्य राजपुत्राः सहस्रशः।
द्रोणमभ्युपपद्यन्त सपत्नैः परिवारितम्॥ २६॥
ततो युद्धमभूद् राजंस्तेषां तव च धन्विनाम्।
रजसा संवृते लोके शरजालसमावृते॥ २७॥

फिर राजा युधिष्ठिर पाण्डव भीमसेन, नकुल, और सहदेव सात्यकि की रक्षा करने लगे। धृष्टद्युम्न आदि के साथ विराटराज, केकयराजकुमार ने मत्स्य देश और शाल्वदेश की सेनाओं के साथ शीघ्रता से द्रोणाचार्य पर आक्रमण कर दिया। उधर से दुश्शासन बहुतसारे राजकुमारों को आगे कर, शत्रुओं से घिरे हुए द्रोणाचार्य के पास आ गये। हे राजन्! फिर उन धनुर्धरों का परस्पर युद्ध होने लगा। उस समय चारोंतरफ धूल उड़ रही थी और लोग धूल के साथ बाणों के समूहों से भी आच्छादित होरहे थे।

अड़तालीसवाँ अध्याय : अर्जुन द्वारा विन्द और अनुविन्द का वध, घोड़ों के लिये जलाशय का निर्माण।

संजय उवाच

तथा तेषु विषक्तेषु सैन्येषु जयगृद्धिषु।
अर्जुनो वासुदेवश्च सैन्धवायैव जग्मतुः॥ १॥
रथमार्गप्रमाणं तु कौन्तेयो निशितैः शरैः।
चकार यत्र पन्थानं ययौ येन जनार्दनः॥ २॥
यत्र यत्र रथो याति पाण्डवस्य महात्मनः।
तत्र तत्रैव दीर्यन्तेः सेनास्तव विशाम्पते॥ ३॥
रथशिक्षां तु दाशार्हो दर्शयामास वीर्यवान्।
उत्तमाधममध्यानि मण्डलानि विदर्शयन्॥ ४॥

संजय ने कहा कि इसप्रकार जब विजयप्राप्ति की लोभी दोनों सेनाएँ आपस में सघर्षरत थीं, अर्जुन और श्रीकृष्ण जयद्रथ के लिये आगे ही बढ़ते चले गये। अर्जुन अपने तीखे बाणों से सेना में रथ के जाने के योग्य मार्ग बना देते थे और श्रीकृष्ण जी उसी मार्ग में अपने रथ को आगे बढ़ा देते थे। हे प्रजानाथ! मनस्वी पाण्डुपुत्र का रथ जिधर जिधर चला जाता था, उधर उधर ही सेना में दरार पड़ जाती थी। पराक्रमी श्रीकृष्ण जी उस समय उत्तम, मध्यम, और अधमप्रकार के मण्डलों में रथ को चलाते हुए अपनी रथसंचालनविषयक शिक्षा का श्रेष्ठ प्रदर्शन कर रहे थे।

नान्यस्य समरे राजन् गतपूर्वस्तथा रथः।
यथा ययावर्जुनस्य मनोऽभिप्रायशीघ्रगः॥ ५॥
ततस्तस्य रथौघस्य मध्यं प्राप्य हयोत्तमाः।
कृच्छ्रेण रथमूहुस्तं क्षुत्पिपासासमन्विताः॥ ६॥
क्षताश्च बहुभिः शस्त्रैर्युद्धशौण्डैरनैकशः।
मण्डलानि विचित्राणि विचेरुस्ते मुहुर्मुहुः॥ ७॥
श्रमेण महता युक्तास्ते हया वातरंहसः।
मन्दवेगगता राजन् संवृत्तास्तत्र संयुगे॥ ८॥

हे राजन्! इससे पहले कभी किसी दूसरे व्यक्ति का रथ संग्राम में इतनी तीव्रता के साथ नहीं चला था, जितना उस समय अर्जुन का, मन की अभिलाषा के अनुरूप चल रहा था। उसके पश्चात् रथियों के समूह के बीच में पहुँचकर वे उत्तम घोड़े भूख और प्यास से पीड़ित होगये, वे तब रथ को बड़ी कठिनाई से खींच रहे थे। बहुतसे युद्धविशारदों ने अपने शस्त्रास्त्रों के प्रहार से उन्हें अनेकबार घायल कर दिया था, उन्हें बार बार अनेकप्रकार की विचित्र मण्डलाकार गतियों में भी विचरण करना पड़ता था। हे राजन्! यद्यपि वे घोड़े वायु के वेग के समान वेगवान् थे, पर युद्धक्षेत्र में अधिक परिश्रम से युक्त होने के कारण थककर मन्दगति से चलने लगे थे।

एतस्मिन्नन्तरे वीरावावन्त्यौ भ्रातरौ नृप।
सहसेनौ समार्च्छेतां पाण्डवं क्लान्तवाहनम्॥ ९॥
तावर्जुनं चतुःषष्ट्या सप्तत्या च जनार्दनम्।
शराणां च शतैरश्वानविध्येतां मुदान्वितौ॥ १०॥
तावर्जुनो महाराज नवभिर्नतपर्वभिः।
आजघान रणे क्रुद्धो मर्मज्ञो मर्मभेदिभिः॥ ११॥
ततस्तौ तु शरौघेण बीभत्सुं सहकेशवम्।
आच्छादयेतां संरब्धौ सिंहनादं च चक्रतुः॥ १२॥

हे राजन्! इसीबीच में अवन्तीदेश के दोनों भाई विन्द और अनुविन्द सेना के साथ थके घोड़ों वाले पाण्डुपुत्र के पास पहुँच गये। उन्होंने प्रसन्नता के साथ अर्जुन के ऊपर चौंसठ, श्रीकृष्ण जी पर सत्तर और घोड़ों पर सौ बाणों की वर्षाकर उन्हें घायल कर दिया। हे महाराज! तब मर्मस्थलों को जाननेवाले अर्जुन ने क्रुद्ध होकर नौ मर्मभेदी बाणों के द्वारा युद्धस्थल में उनके ऊपर प्रहार किया। तब दोनों ने श्रीकृष्ण के साथ अर्जुन को अपनी बाणवर्षा से क्रोध में भरकर आच्छादित कर दिया और सिंहनाद किया।

तयोस्तु धनुषी चित्रे भल्लाभ्यां श्वेतवाहनः।
चिच्छेद समरे तूर्णं ध्वजौ च कनकोज्ज्वलौ॥ १३॥
अथान्ये धनुषी राजन् प्रगृह्य समरे तदा।
पाण्डवं भृशसंक्रुद्धावर्दयामासतुः शरैः॥ १४॥
तयोस्तु भृशसंक्रुद्धः शराभ्यां पाण्डुनन्दनः।
धनुषी चिच्छिदे तूर्णं भूय एव धनंजयः॥ १५॥
तथान्यैर्विशिखैस्तूर्णं रुक्मपुङ्खैः शिलाशितैः।
जघानाश्वांस्तथा सूतौ पार्ष्णी च सपदानुगौ॥ १६॥

फिर श्वेत घोड़ोंवाले अर्जुन ने युद्धस्थल में शीघ्रता के साथ दो भल्लों के द्वारा उनदोनों के विचित्र धनुषों को और स्वर्ण के समान उज्ज्वल ध्वजों को काट दिया। हे राजन्! फिर उन्होंने युद्ध में दूसरे धनुष लेकर, अत्यन्त क्रोध में भरकर पाण्डुपुत्र को बाणों से पीड़ित किया। तब अर्जुन ने अत्यन्तक्रुद्ध होकर दो बाणों से उनदोनों के धनुषों को तुरन्त पुनः काट दिया फिर दूसरे और सुनहले पंखोंवाले, शिला पर तेज किये हुए बाणों से शीघ्रतापूर्वक उनके घोड़ों, सारथियों और पार्श्वरक्षकों तथा पीछे चलनेवाले सेवकों को मार दिया।

ज्येष्ठस्य च शिरः कायात् क्षुरप्रेण न्यकृन्तत।
विन्दं तु निहतं दृष्ट्वा ह्यनुविन्दः प्रतापवान्॥ १७॥
हताश्वं रथमुत्सृज्य गदां गृह्य महाबलः।
अभ्यवर्तत संग्रामे भ्रातुर्वधमनुस्मरन्॥ १८॥
तस्यार्जुनः शरैः षड्भिर्ग्रीवां पादौ भुजौ शिरः।
निचकर्त स संछिन्नः पपाताद्रिचयो यथा॥ १९॥
ततस्तौ निहतौ दृष्ट्वा तयो राजन् पदानुगाः।
अभ्यद्रवन्त संक्रुद्धाः किरन्तः शतशः शरान्॥ २०॥

फिर उन्होंने एक क्षुरप्र बाण से बड़े भाई के सिर को काटकर अलग कर दिया। तब विन्द को मरा हुआ देखकर प्रतापी और महाबली अनुविन्द ने भाई के वध के विषय में सोचते हुए, मरे हुए घोड़ोंवाले रथ को छोड़कर गदा को लेकर संग्राम में सामना किया। तब अर्जुन ने छः बाणों से उसके दोनों हाथ, दोनों पैर, गर्दन और सिर को काट दिया। इस प्रकार छिन्नभिन्न होकर वह पर्वत के ढेर के समान भूमि पर गिर पड़ा। हे राजन्! तब उनदोनों को मारा हुआ देखकर उनके पीछे चलनेवाले सेवकों ने क्रोध में भरकर सैकड़ों बाणों को छोड़ते हुए अर्जुन पर आक्रमण किया।

तानर्जुनः शरैस्तूर्णं निहत्य भरतर्षभः।
व्यरोचत यथा वह्निर्दावं दग्ध्वा हिमात्यये॥ २१॥
शनकैरिव दाशार्हमर्जुनो वाक्यमब्रवीत्।
शरार्दिताश्च ग्लानाश्च हया दूरे च सैन्धवः॥ २२॥
किमिहानन्तरं कार्यं ज्यायिष्ठं तव रोचते।

हे भारतश्रेष्ठ! तब अर्जुन उन्हें बाणों से शीघ्रतापूर्वक मारकर ऐसे सुशोभित हुए, जैसे ग्रीष्मऋतु में दावानल वन को जलाकर होती है। फिर अर्जुन ने धीरे से श्रीकृष्णजी से यह कहा कि इस समय घोड़े बाणों से घायल और थके हुए हैं, जयद्रथ अभी दूर है। इन दोनों कार्यों में से कौन सा कार्य पहले करना आपको अच्छा लगता है?

ब्रूहि कृष्ण यथातत्त्वं त्वं हि प्राज्ञतमः सदा॥ २३॥
भवन्नेत्रा रणे शत्रून् विजेष्यन्तीह पाण्डवाः।
मम त्वनन्तरं कृत्यं यद् वै तत् त्वं निबोध मे॥ २४॥
हयान् विमुच्य हि सुखं विशल्यान् कुरु माधव।
एवमुक्तस्तु पार्थेन केशवः प्रत्युवाच तम्॥ २५॥
ममाप्येतन्मतं पार्थ यदिदं ते प्रभाषितम्।

अर्जुन उवाच

अहमावारयिष्यामि सर्वसैन्यानि केशव॥ २६॥
त्वमप्यत्र यथान्यायं कुरु कार्यमनन्तरम्।

हे कृष्ण! आप बताइये। आप ही सबसे अधिक बुद्धिमान् हैं। आपके नेतृत्व में ही पाण्डव इस युद्ध को जीतेंगे। मेरे अनुसार तो जो इस समय हमारा प्रथम कर्त्तव्य है, उसे सुनलीजिये। हे कृष्ण! आप घोड़ों को खोलकर उनके बाण निकालकर उन्हें सुख दीजिये। अर्जुन के ऐसा कहने पर श्रीकृष्णजी ने उत्तर दिया कि मेरा भी यही विचार है, जो तुमने कहा है। तब अर्जुन ने कहा कि मैं सेना को रोके रहूँगा। आप यहाँ जो उचित कार्य हैं, उन्हें कीजिये।

सोऽवतीर्य रथोपस्थादसम्भ्रान्तो धनंजयः॥ २७॥
गाण्डीवं धनुरादाय तस्थौ गिरिरिवाचलः।
तमभ्यधावन् क्रोशन्तः क्षत्रिया जयकाङ्क्षिणः॥ २८॥
इदं छिद्रमिति ज्ञात्वा धरणीस्थं धनंजयम्।
तमेकं रथवंशेन महता पर्यवारयन्॥ २९॥
विकर्षन्तश्च चापानि विसृजन्तश्च सायकान्।
शस्त्राणि च विचित्राणि क्रुद्धास्तत्र व्यदर्शयन्॥ ३०॥
छादयन्तः शरैः पार्थं मेघा इव दिवाकरम्।

उसके पश्चात् बिना घबराये अर्जुन रथ से उतर पड़े और गाण्डीवधनुष को लेकर पर्वत के समान दृढ़ता से खड़े होगये। तब भूमि पर खड़े हुए अर्जुन को देखकर विजय के इच्छुक क्षत्रियलोग, यह समझते हुए कि यही अवसर है, चिल्लाते हुए उनकी तरफ दौड़े। उन्होंने उन अकेले को विशाल रथसेना के साथ धनुषों को खींचते हुए और बाणों को छोड़ते घेर लिया। उन्होंने क्रोध में भरकर अपने विचित्र विचित्र हथियारों को दिखाते हुए बादलों के द्वारा सूर्य के समान अर्जुन को बाणों से आच्छादित कर दिया।

तत्र पार्थस्य भुजयोर्महद्बलमदृश्यत॥ ३१॥
यत क्रुद्धो बहुलाः सेनाः सर्वतः समवारयत्।
अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य द्विषतां सर्वतो विभुः॥ ३२॥
इषुभिर्बहुभिस्तूर्णं सर्वानेव समावृणोत्।
स पार्थः पार्थिवान् सर्वान् भूमिस्थोऽपि रथस्थितान्॥ ३३॥
एको निवारयामास लोभः सर्वगुणानिव।

तब वहाँ अर्जुन की भुजाओं का महान् बल दिखाई दिया। उन्होंने क्रोध में भरकर उस विशाल सेना को सबतरफ से रोक दिया। शक्तिशाली अर्जुन ने अपने अस्त्रों से शत्रुओं को अस्त्रों का निवारणकर तुरन्त बहुतसारे बाणों से उन्हें आच्छादित कर दिया। अकेले अर्जुन ने भूमि पर खड़े होने पर भी रथ में बैठे हुए उनसारे राजाओं को ऐसे रोक दिया, जैसे लोभ अकेला दूसरे गुणों को रोक देता है।

ततो जनार्दनः संख्ये प्रियं पुरुषसत्तमम्॥ ३४॥
असम्भ्रान्तो महाबाहुरर्जुनं वाक्यमब्रवीत्।
उदपानमिहाश्वानां नालमस्ति रणेऽर्जुन॥ ३५॥
परीप्सन्ते जलं चेमे पेयं न त्ववगाहनम्।
इदमस्तीत्यसम्भ्रान्तो ब्रुवन्नस्त्रेण मेदिनीम्।
अभिहत्यार्जुनश्चक्रे वाजिपानं सरः शुभम्॥ ३६॥

तब महाबाहु श्रीकृष्ण ने युद्धस्थल में अपने प्रिय पुरुषश्रेष्ठ अर्जुन से बिना घबराये कहा कि हे अर्जुन! यहाँ घोड़ों के लिये पीनेयोग्य पानी युद्धस्थल में पर्याप्त नहीं है। इन घोड़ों को पीने के लिये पानी चाहिये। स्नान की इन्हें आवश्यकता नहीं है। तब बिना घबराये और यह कहते हुए कि यह रहा पानी, अर्जुन ने अपने अस्त्रद्वारा भूमि पर आघात कर घोड़ों के पानी पीने के लिये सुन्दर तालाब बना दिया।

उनंचासवाँ अध्याय : श्रीकृष्ण द्वारा अश्वों की परिचर्या। अर्जुन के द्वारा पुनः जयद्रथ की तरफ बढ़ना।

पदातिनं तु कौन्तेयं युध्यमानं महारथाः।
नाशक्नुवन् वारयितुं तदद्भुतमिवाभवत्॥ १॥
आपतत्सु रथौघेषु प्रभूतगजवाजिषु।
नासम्भ्रमत् तदा पार्थस्तदस्य पुरुषानति॥ २॥
व्यसृजन्त शरौघांस्ते पाण्डवं प्रति पार्थिवाः।
न चाव्यथत धर्मात्मा वासविः परवीरहा॥ ३॥
अस्त्रवेगेन महता पार्थो बाहुबलेन च।
सर्वेषां पार्थिवेन्द्राणामग्रसत् तान् शरोत्तमान्॥ ४॥

संजय ने कहा कि हे राजन्! यद्यपि अर्जुन पैदल खड़े हुए युद्ध कर रहे थे, पर महारथीलोग उन्हें रोक न सके, यह एक आश्चर्य की बात थी। रथों के समूहों और बहुतसारे हाथी तथा घोड़ों के आक्रमण करने पर भी, कुन्तीपुत्र घबराये नहीं, यह उनका सारे पुरुषों से बढ़कर पराक्रम था। वे राजा

लोग पाण्डुपुत्र के ऊपर बाणों की वर्षा कर रहे थे। पर शत्रु के वीरों को मारनेवाले, धर्मात्मा इन्द्रकुमार व्यथित नहीं हुए। कुन्तीपुत्र ने अपने बाहुबल और महान् अस्त्रों के वेग से उनसारे राजेन्द्रों के उन उत्तम बाणों को व्यर्थ कर दिया।

किमद्भुततमं लोके भविताप्यथवा ह्यभूत्।
यदश्वान् पार्थगोविन्दौ मोचयामासतू रणे॥ ५॥
उपावर्तयदव्यग्रस्तानश्वान् पुष्करेक्षणः।
मिषतां सर्वसैन्यानां त्वदीयानां विशाम्पते॥ ६॥
तेषां श्रमं च ग्लानिं च वमथुं वेपथुं व्रणान्।
सर्वं व्यपानुदत् कृष्णः कुशलो ह्यश्वकर्मणि॥ ७॥
शल्यानुद्धृत्य पाणिभ्यां परिमृज्य च तान् हयान्।
उपावर्त्य यथान्यायं पाययामास वारि सः॥ ८॥
सतॉंल्लब्धोदकान् स्नातान् जग्धान्नान् विगतक्लमान्।
योजयामास संहृष्टः पुनरेव रथोत्तमे॥ ९॥

संसार में इससे अधिकअद्भुत बात क्या होगी या हुई होगी कि युद्ध के बीच में अर्जुन और श्रीकृष्ण ने अपने घोड़ों को खोल दिया। हे प्रजानाथ! आपकी सारी सेनाओं के देखते हुए कमलनयन श्रीकृष्ण ने बिना घबराहट के घोड़ों को टहलाया। घोड़ों की चिकित्सा करने में कुशल श्रीकृष्णजी ने घोड़ों की थकावट, ग्लानि, वमन, कम्पन और घाव सारे कष्टों को दूर कर दिया। उन्होंने अपने हाथों से उनके बाणों को निकालकर, उनकी मालिशकर, उन्हें यथोचितरूप से टहलाया तथा पानी पिलाया। उन्होंने उन्हें नहलाकर दाना खिलाया और प्रसन्नता के साथ उस उत्तम रथ में फिर जोत दिया।

ततः शीघ्रतरं प्रायात् पाण्डवः सैन्धवं प्रति।
विवर्तमाने तिग्मांशौ हृष्टैः पीतोदकैर्हयैः॥ १०॥
तं प्रयान्तं महाबाहुं सर्वशस्त्रभृतां वरम्।
नाशक्नुवन् वारयितुं योधाः क्रुद्धमिवान्तकम्॥ ११॥
विद्राव्य तु ततः सैन्यं पाण्डवः शत्रुतापनः।
यथा मृगगणान् सिंहः सैन्धवार्थे व्यलोडयत्॥ १२॥

तब पानी पीकर उत्साह में भरे हुए घोड़ों के द्वारा अर्जुन और अधिक शीघ्रता के साथ जयद्रथ की तरफ बढ़ने लगे। उस समय सूर्य भी पश्चिम की तरफ बढ़ते जा रहे थे। जैसे मृत्यु को कोई रोक नहीं सकता, वैसे ही क्रोध में भरे हुए उस महाबाहु, सारे शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ अर्जुन को आगे बढ़ने से कोई नहीं रोक सका। शत्रुओं को सन्तप्त करनेवाले पाण्डुपुत्र, जयद्रथ के लिये सिंह के द्वारा मृगों के समान, उस सेना को खदेड़ खदेड़ कर मथने लगे।

गाहमानस्त्वनीकानि तूर्णमश्वानचोदयत्।
बलाकाभं तु दाशार्हः पाञ्चजन्यं व्यनादयत्॥ १३॥
ततो नृपतयः क्रुद्धाः परिवव्रुर्धनंजयम्।
क्षत्रिया बहवश्चान्ये जयद्रथवधैषिणम्॥ १४॥
दिवाकरेऽथ रजसा सर्वतः संवृते भृशम्।
शरार्ताश्च रणे योधाः शेकुः कृष्णौ न वीक्षितुम्॥ १५॥

श्रीकृष्णजी ने शीघ्रता से घोड़ों को आगे बढ़ाया और सेना में घुसते हुए, बगुले के समान श्वेत अपने पांचजन्य को जोर से बजाया। फिर और बहुत से क्रोध में भरे हुए क्षत्रियों और राजाओं ने जयद्रथ के वध के इच्छुक अर्जुन को चारों तरफ से घेर लिया। उस समय जोर से धूल उड़ रही थी, सूर्य भी उसमें ढक गये थे। बाणों से पीड़ित होते हुए योद्धालोग अर्जुन और श्रीकृष्ण की तरफ आँख उठाकर भी नहीं देख सकते थे।

पचासवाँ अध्याय : द्रोणाचार्य का पाण्डवों से युद्ध। युधिष्ठिर का द्रोणाचार्य के आगे से हटना।

संजय उवाच

अपराह्णे महाराज संग्रामे लोमहर्षणे।
पञ्चालानां कुरूणां च द्रोणद्यूतमवर्तत॥ १॥
पञ्चाला हि जिघांसन्तो द्रोणं संहृष्टचेतसः।
अभ्यमुञ्चन्त गर्जन्तः शरवर्षाणि मारिष॥ २॥
तमभ्ययाद् बृहत्क्षत्रः केकयानां महारथः।
प्रवपन् निशितान् बाणान् महेन्द्राशनिसंनिभान्॥ ३॥
तं तु प्रत्युद्ययौ शीघ्रं क्षेमधूर्तिर्महायशाः।
विमुञ्चद् निशितान् बाणाञ्शतशोऽथ सहस्रशः॥ ४॥

तब संजय ने कहा कि हे महाराज! जब दोपहर के समय लोमहर्षक संग्राम चल रहा था, तब पांचालों और कौरवों में द्रोणाचार्य के लिये युद्धरूपी जूआ

खेला जाने लगा। हे मान्यवर! द्रोणाचार्य को मारने के इच्छुक पांचालवीर उत्साह में भरकर, और गर्जना करते हुए उनके ऊपर बाणों की वर्षा करने लगे। केकयों के महारथी बृहत्क्षत्र ने इन्द्र के वज्र के समान तीखे बाणों की वर्षा करते हुए द्रोणाचार्य पर आक्रमण किया। तब महायशस्वी क्षेमधूर्ति शीघ्रता से सैंकड़ों और हजारों बाणों को छोड़ते हुए उसका सामना करने के लिये आगे आये।

धृष्टकेतुश्च चेदीनामृषभोऽतिबलोदितः।
त्वरितोऽभ्यद्रवद् द्रोणं महेन्द्र इव शम्बरम्॥ ५॥
तमापतन्तं सहसा व्यादितास्यमिवान्तकम्।
वीरधन्वा महेष्वासस्त्वरमाणः समभ्ययात्॥ ६॥
युधिष्ठिरं महाराजं जिगीषु समवस्थितम्।
सहानीकं ततो द्रोणो न्यवारयत वीर्यवान्॥ ७॥
नकुलं कुशलं युद्धे पराक्रान्तं पराक्रमी।
अभ्यगच्छत् समायान्तं विकर्णस्ते सुतःप्रभो॥ ८॥

अत्यन्तबलवान् चेदिदेश के राजा धृष्टकेतु ने शीघ्रता से द्रोणाचार्य पर ऐसे आक्रमण किया जैसे इन्द्र ने शम्बरासुर पर किया था। तब मुँह फाड़े हुए मृत्यु के समान आक्रमण करते हुए धृष्टकेतु के सामने महाधनुर्धर वीरधन्वा शीघ्रता से सहसा आपहुँचे। सेनासहित अवस्थित, विजय के इच्छुक, महाराज युधिष्ठिर को पराक्रमी द्रोणाचार्य ने रोका। हे प्रभो! युद्ध में कुशल, आते हुए पराक्रमी नकुल का आपके पुत्र पराक्रमी विकर्ण ने सामना किया।

सहदेवं तथाऽऽयान्तं दुर्मुखः शत्रुकर्षणः।
शरैरनेकसाहस्रैः समवाकिरदाशुगैः॥ ९॥
सात्यकिं तु नरव्याघ्रं व्याघ्रदत्तस्त्ववारयत्।
शरैः सुनिशितैस्तीक्ष्णैः कम्पयन् वै मुहुर्मुहुः॥ १०॥
द्रौपदेयान् नरव्याघ्रान् मुञ्चतः सायकोत्तमान्।
संरब्धान् रथिनः श्रेष्ठान् सौमदत्तिरवारयत्॥ ११॥
भीमसेनं तदा क्रुद्धं भीमरूपो भयानकः।
प्रत्यवारयदायान्तमार्ष्यशृङ्गिर्महारथः॥ १२॥

इसीप्रकार आते हुए सहदेव पर शत्रुसूदन दुर्मर्षण ने असंख्य शीघ्रगामी बाणों की वर्षा की। नरव्याघ्र सात्यकि को व्याध्रदत्त ने अत्यन्ततेज किये हुए तीखे बाणों के द्वारा शत्रुसेना को बार बार कम्पित करते हुए आगे बढ़ने से रोका। क्रोध में भरे हुए, श्रेष्ठरथी, द्रौपदी के नरव्याघ्र पुत्रों को, जो उत्तम बाणों को छोड़ रहे थे, सोमदत्तकुमार शल ने रोका। क्रोध में भरे आते हुए भीमसेन को भयंकर रूपवाले, भयानक महारथी, क्षृष्यशृंग के पुत्र अलम्बुष ने रोका।

तयोः समभवद् युद्धं नरराक्षसयोर्मृधे।
यादृगेव पुरा वृत्तं रामरावणयोर्नृप॥ १३॥
ततो युधिष्ठिरो द्रोणं नवत्या नतपर्वणाम्।
आजघ्ने भरतश्रेष्ठः सर्वमर्मसु भारत॥ १४॥
तं द्रोणः पञ्चविंशत्या निजघान स्तनान्तरे।
रोषितो भरतश्रेष्ठ कौन्तेयेन यशस्विना॥ १५॥
भूय एव तु विंशत्या सायकानां समाचिनोत्।
साश्वसूतध्वजं द्रोणः पश्यतां सर्वधन्विनाम्॥ १६॥

हे राजन्! जैसे पहले राम और रावण का युद्ध हुआ था, वैसे ही युद्धस्थल में उन मनुष्य और राक्षस में युद्ध होने लगा। हे भारत! फिर भरतश्रेष्ठ युधिष्ठिर ने झुकी गांठवाले नब्बे बाणों की वर्षाकर द्रोणाचार्य के सारे मर्मस्थलों पर प्रहार किया। हे भरतश्रेष्ठ! तब यशस्वी कुन्तीपुत्र के द्वारा क्रोध दिलाये जाने पर द्रोणाचार्य ने उनकी छाती पर पच्चीस बाणों की वर्षाकर प्रहार किया। द्रोणाचार्य ने पुनः सारे धनुर्धरों के देखते हुए घोड़ों, सारथि, ध्वजसहित युधिष्ठिर को बीस बाण मारे।

ताञ्शरान् द्रोणमुक्तांस्तु शरवर्षेण पाण्डवः।
अवारयत धर्मात्मा दर्शयन् पाणिलाघवम्॥ १७॥
ततो द्रोणो भृशं क्रुद्धो धर्मराजस्य संयुगे।
चिच्छेद समरे धन्वी धनुस्तस्य महात्मनः॥ १८॥
अथैनं छिन्नधन्वानं त्वरमाणो महारथः।
शरैरनेकसाहस्रैः पूरयामास सर्वतः॥ १९॥
स कृच्छ्रं परमं प्राप्तो धर्मराजो युधिष्ठिरः।
त्यक्त्वा तत् कार्मुकं छिन्नं भारद्वाजेन संयुगे॥ २०॥
आददेऽन्यद् धनुर्दिव्यं भास्वरं वेगवत्तरम्।

द्रोणाचार्य द्वारा छोड़े हुए बाणों को धर्मात्मा पाण्डुपुत्र ने अपना हस्तकौशल दिखाते हुए बाणवर्षा के द्वारा निवारण कर दिया। तब धनुर्धर द्रोणाचार्य ने अत्यन्तक्रुद्ध होकर युद्धक्षेत्र में महात्मा धर्मराज के धनुप को काट दिया। धनुष काटने पर फिर उस महारथी ने शीघ्रता करते हुए उन्हें असंख्य बाणों के द्वारा सबतरफ से आच्छादित कर दिया। तब युद्धक्षेत्र में अत्यन्त संकट

में पड़े हुए धर्मराज युधिष्ठिर ने द्रोणाचार्य के काटे हुए धनुष को छोड़कर, एक दूसरे अधिक वेगवाले, जगमगाते हुए दिव्य धनुष को लिया।

ततस्तान् सायकांस्तत्र द्रोणनुन्नान् सहस्रशः॥ २१॥
चिच्छेद समरे वीरस्तदद्भुतमिवाभवत्।
छित्वा तु ताञ्श रान् राजन् क्रोधसंरक्तलोचनः॥ २२॥
शक्तिं जग्राह समरे गिरीणामपि दारिणीम्।
समुत्क्षिप्य च तां हृष्टो ननाद बलवद् बली॥ २३॥
तामापतन्तीं सहसा दृष्ट्वा द्रोणो विशाम्पते।
प्रादुश्चक्रे ततो ब्राह्ममस्त्रमस्त्रविदां वरः॥ २४॥

तब वहाँ युद्धस्थल में द्रोणाचार्य के द्वारा छोड़े हुए असंख्य बाणों को उस वीर ने काट दिया। यह एक अद्भुत बात थी। हे राजन्! उन बाणों को काटकर क्रोध से लाल आँखे किये हुए उन्होंने एक शक्ति को हाथ में लिया, जो पर्वतों को भी फाड़ देनेवाली थी। उस शक्ति को द्रोणाचार्य पर फैंक कर उस बलवान् ने प्रसन्न होकर जोर से गर्जना की। हे प्रजानाथ! उस शक्ति को अपनीतरफ सहसा आते हुए देखकर अस्त्रवेत्ताओं में श्रेष्ठ द्रोणाचार्य ने तब ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया।

तदस्त्रं भस्मसात्कृत्वा तां शक्तिं घोरदर्शनाम्।
जगाम स्यन्दनं तूर्णं पाण्डवस्य यशस्विनः॥ २५॥
ततो युधिष्ठिरो राजा द्रोणास्त्रं तत् समुद्यतम्।
अशामयन्महाप्राज्ञो ब्रह्मास्त्रेणैव मारिष॥ २६॥
विद्ध्वा तं च रणे द्रोणं पञ्चभिर्नतपर्वभिः।
क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन चिच्छेदास्य महद् धनुः॥ २७॥
तदपास्य धनुश्छिन्नं द्रोणः क्षत्रियमर्दनः।
गदां चिक्षेप सहसा धर्मपुत्राय मारिष॥ २८॥

ब्रह्मास्त्र ने उस भयानक दिखाई देनेवाली शक्ति को नष्ट कर दिया और फिर वह शीघ्रता से यशस्वी पाण्डुपुत्र के रथ की तरफ चला। तब महाप्राज्ञ राजा युधिष्ठिर ने द्रोणाचार्य के आते हुए ब्रह्मास्त्र को हे मान्यवर! ब्रह्मास्त्र का प्रयोग करके शान्त कर दिया। फिर पाँच झुकी गाँठवाले बाणों से द्रोणाचार्य को घायलकर उन्होंने एक अत्यन्ततीखे क्षुरप्र से उनके विशाल धनुष को काट दिया। हे मान्यवर! तब क्षत्रियों का मर्दन करनेवाले द्रोणाचार्य ने कटे धनुष को छोड़कर धर्मपुत्र युधिष्ठिर की तरफ सहसा एक गदा फैंकी।

तामापतन्तीं सहसा गदां दृष्ट्वा युधिष्ठिरः।
गदामेवाग्रहीत् क्रुद्धश्चिक्षेप च परंतप॥ २९॥
ते गदे सहसा मुक्ते समासाद्य परस्परम्।
संघर्षात् पावकं मुक्त्वा समेयातां महीतले॥ ३०॥
ततो द्रोणो भृशं क्रुद्धो धर्मराजस्य मारिष।
चतुर्भिर्निशितैस्तीक्ष्णैर्हयाञ्जघ्ने शरोत्तमैः॥ ३१॥
चिच्छेदैकेन भल्लेन धनुश्चेन्द्रध्वजोपमम्।
केतुमेकेन चिच्छेद पाण्डवं चार्दयत् त्रिभिः॥ ३२॥

तब परन्तप युधिष्ठिर ने गदा को सहसा आपनीतरफ आते देखकर, क्रोध में भरकर एक गदा को ही उठाकर उसकीतरफ फैंका। वेदोनों गदाएँ तब एकदूसरी से टकराकर चिनगारियाँ छोड़ती हुई भूमि पर गिर पड़ीं। हे मान्यवर! तब द्रोणाचार्य ने अत्यन्त क्रोध में भरकर धर्मराज युधिष्ठिर के घोड़ों को चार सान पर चढ़ाकर तेज किये उत्तम बाणों से मार दिया। फिर एक भल्ल से उनके धनुष को, एक से उनकी इन्द्रध्वजा के समान पताका को काट दिया और तीन बाणों से उन पाण्डुपुत्र को पीड़ित किया।

हताश्वात् तु रथात् तूर्णमवप्लुत्य युधिष्ठिरः।
तस्थावूर्ध्वभुजो राजा व्यायुधो भरतर्षभ॥ ३३॥
मुञ्चंश्चेषुगणांस्तीक्ष्णाल्लँघुहस्तो दृढव्रतः।
अभिदुद्राव राजानं सिंहो मृगमिवोल्बणः॥ ३४॥
ततस्त्वरितमारुह्य सहदेवरथं नृपः।
अपायाज्जवनैरश्वैः कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः॥ ३५॥

हे भरतश्रेष्ठ! तब मारे हुए घोड़ोंवाले रथ से तुरन्त कूदकर राजा युधिष्ठिर बिना हथियारों के ही ऊपर हाथ उठाकर खड़े होगये। फिर जैसे कोई प्रचण्ड सिंह किसी मृग का पीछा करता है, उसी प्रकार जिनके हाथ फुर्ती से चलते थे, वे दृढ़व्रती द्रोणाचार्य तीखे बाणों को छोड़ते हुए उनकी तरफ दौड़े। तब कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिर, शीघ्रता से सहदेव के रथ पर चढ़कर शीघ्रगामी घोड़ों के द्वारा वहाँ से हट गये।

इक्यावनवाँ अध्याय : वीरधन्वा, निरमित्र और व्याघ्रदत्त का वध। दुर्मुख और विकर्ण की पराजय।

बृहत्क्षत्रमथायान्तं कैकेयं दृढविक्रमम्।
क्षेमधूर्तिर्महाराज विव्याधोरसि मार्गणैः॥ १॥
बृहत्क्षत्रस्तु तं राजा नवत्या नतपर्वणाम्।
आजघ्ने त्वरितो राजन् द्रोणानीकबिभित्सया॥ २॥
क्षेमधूर्तिस्तु संक्रुद्धः कैकेयस्य महात्मनः।
धनुश्चिच्छेद भल्लेन पीतेन निशितेन ह॥ ३॥
अथैनं छिन्नधन्वानं शरेणानतपर्वणा।
विव्याध समरे तूर्णं प्रवरं सर्वधन्विनाम्॥ ४॥

हे महाराज! तत्पश्चात् दृढ़ पराक्रमी केकयराज बृहत्क्षत्र को आता हुआ देखकर क्षेमधूर्ति ने उनकी छाती पर बाणों के द्वारा चोट पहुँचायी। हे राजन्! तब द्रोणाचार्य की सेना के व्यूह को तोड़ने की इच्छा से बृहत्क्षत्र ने उस पर झुकी गांठवाले नब्बे बाणों की वर्षाकर उसे घायल कर दिया। तब क्षेमधूर्ति ने अत्यन्तक्रुद्ध होकर तीखे और पानीदार भल्ल से मनस्वी केकयराज के धनुष को काट दिया। फिर धनुष को काटकर एक झुकी गाँठवाले बाण से सारे धनुर्धरों में उत्तम उस बृहत्क्षत्र को युद्धक्षेत्र में शीघ्रता से घायल कर दिया।

अथान्यद् धनुरादाय बृहत्क्षत्रो हसन्निव।
व्यश्वसूतरथं चक्रे क्षेमधूर्तिं महारथम्॥ ५॥
धृष्टकेतुं तथाऽऽयान्तं द्रोणहेतोः पराक्रमी।
वीरधन्वा महेष्वासो वारयामास भारत॥ ६॥
तावुभौ नरशार्दूलौ युयुधाते परस्परम्।
महावने तीव्रमदौ वारणाविव यूथपौ॥ ७॥
गिरिगह्वरमासाद्य शार्दूलाविव रोषितौ।
युयुधाते महावीर्यौ परस्परजिघांसया॥ ८॥

तब बृहत्क्षत्र ने दूसरे धनुष को लेकर हँसते हुए से महारथी क्षेमधूर्ति को बिना घोड़ों, सारथि और रथवाला कर दिया। हे भारत! इसीप्रकार आते हुए धृष्टकेतु को द्रोणाचार्य के लिये पराक्रमी महाधनुर्धर वीरधन्वा ने रोका। तब वेदोनों नरसिंह आपस में उसीप्रकार लड़ने लगे जैसे विशाल वन में मद को वहाते हुए दो गजराज लड़ रहे हों। दोनों महापराक्रमी एकदूसरे को मारने की इच्छा से पर्वत की गुफा में पहुँचे दो सिंहों के समान क्रुद्ध होकर लड़ रहे थे।

तद् युद्धमासीत् तुमुलं प्रेक्षणीयं विशाम्पते।
वीरधन्वा ततः क्रुद्धो धृष्टकेतोः शरासनम्॥ ९॥
द्विधा चिच्छेद भल्लेन प्रहसन्निव भारत।
तदुत्सृज्य धनुश्छिन्नं चेदिराजो महारथः॥ १०॥
शक्तिं जग्राह विपुलां हेमदण्डामयस्मयीम्।
तां तु शक्तिं महावीर्यां दोर्भ्यामायम्य भारत॥ ११॥
चिक्षेप सहसा यत्तो वीरधन्वरथं प्रति।
तया तु वीरघातिन्या शक्त्या त्वभिहतो भृशम्॥ १२॥
निर्भिन्नहृदयस्तूर्णं निपपात रथान्महीम्।

हे प्रजानाथ! उनका वह युद्ध देखनेयोग्य था। हे भारत! तब क्रोध में भरे वीरधन्वा ने हँसते हुए से धृष्टकेतु के धनुष को भल्ल से दो टुकड़ों में काट दिया। तब चेदिराज महारथी ने उस धनुष को छोड़कर एक सोने के डण्डेवाली लोहे की बनी विशाल शक्ति को उठाया। हे भारत! उसने प्रबल शक्ति को दोनों हाथों से उठाकर सावधानी से वीरधन्वा के रथ की तरफ फैंक दिया। तब वीरों को मारनेवाली उस शक्ति से अत्यन्त चोट खाकर, हृदय के फट जाने पर वह तुरन्त रथ से भूमि पर गिर पड़ा।

तस्मिन् विनिहते वीरे त्रैगर्तानां महारथे॥ १३॥
बलं तेऽभज्यत विभो पाण्डवेयैः समन्ततः।
सहदेवे ततः षष्टिं सायकान् दुर्मुखोऽक्षिपत्॥ १४॥
ननाद च महानादं तर्जयन् पाण्डवं रणे।
माद्रेयस्तु ततः क्रुद्धो दुर्मुखं च शितैः शरैः॥ १५॥
भ्राता भ्रातरमायान्तं विव्याध प्रहसन्निव।
तं रणे रभसं दृष्ट्वा सहदेवं महाबलम्॥ १६॥
दुर्मुखो नवभिर्बाणैस्ताडयामास भारत।

त्रिगर्तों के उस महारथी वीर के मरने पर हे विभो! पाण्डवसैनिकों ने आपकी सेना को सब तरफ से विघटित कर दिया। उसके पश्चात् युद्धक्षेत्र में दुर्मुख ने सहदेव पर साठ बाणों की वर्षा की और पाण्डुपुत्र को धमकाते हुए जोर से गर्जना की। तब भाई माद्रीपुत्र ने क्रोध में भरकर हँसते हुए से आते हुए भाई दुर्मुख को तीखे बाणों से बींध दिया। हे भारत! तब महाबली सहदेव को

युद्ध में बढ़ते हुए देखकर दुर्मुख ने उस पर नौ बाणों से प्रहार किया।

दुर्मुखस्य तु भल्लेन छित्त्वा केतुं महाबलः॥ १७॥
जघान चतुरो वाहांश्चतुर्भिर्निशितैः शरैः।
अथापरेण भल्लेन पीतेन निशितेन ह॥ १८॥
चिच्छेद सारथेः कायाच्छिरो ज्वलितकुण्डलम्।
क्षुरप्रेण च तीक्ष्णेन कौरव्यस्य महद् धनुः॥ १९॥
सहदेवो रणे छित्त्वा तं च विव्याध पञ्चभिः।
हताश्वं तु रथं त्यक्त्वा दुर्मुखो विमनास्तदा॥ २०॥
आरुरोह रथं राजन् निरमित्रस्य भारत।

तब महाबली सहदेव ने दुर्मुख के ध्वज को भल्ल से काटकर चार तीखे बाणों से उसके चारों घोड़ों को मार दिया। फिर दूसरे पानीदार तीखे भल्ल से उसने उसके सारथि के जगमगाते हुए कुण्डलवाले सिर को शरीर से अलग कर दिया। फिर तीखे क्षुरप्र से उस कुरुवंशी के विशाल धनुष को काटकर सहदेव ने उसे पाँच बाणों से बींध दिया। हे राजन्! हे भारत! तब मरे घोड़ोंवाले रथ को छोड़कर दुर्मुख उदास मन से निरमित्र के रथ पर चढ़ गया।

सहदेवस्ततः क्रुद्धो निरमित्रं महाहवे॥ २१॥
जघान् पृतनामध्ये भल्लेन परवीरहा।
स पपात रथोपस्थान्निरमित्रो जनेश्वरः॥ २२॥
त्रिगर्तराजस्य सुतो व्यथयंस्तव वाहिनीम्।
तं तु हत्वा महाबाहुः सहदेवो व्यरोचत॥ २३॥
यथा दाशरथी रामः खरं हत्वा महाबलम्।
नकुलस्ते सुतं राजन् विकर्णं पृथुलोचनम्॥ २४॥
मुहूर्ताज्जितवाँल्लोके तदद्भुतमिवाभवत्।

तब शत्रुवीरों को नष्ट करनेवाले सहदेव ने क्रुद्ध होकर उस महान् युद्ध में सेनाओं के बीच में भल्ल के द्वारा निरमित्र को मार दिया। त्रिगर्तराज का पुत्र राजा निरमित्र तब आपकी सेना को दुःखी करता हुआ रथ की बैठक से नीचे गिर पड़ा। उसे मारकर महाबली सहदेव उस समय ऐसे सुशोभित हो रहे थे, जैसे पुराने समय में दशरथ के पुत्र श्रीराम खर को मारकर हुए थे। हे राजन्! नकुल ने भी मोटी आँखों वाले आपके पुत्र विकर्ण को एक मुहुर्त में ही जीत लिया। यह एक आश्चर्य की बात थी।

सात्यकिं व्याघ्रदत्तस्तु शरैः संनतपर्वभिः॥ २५॥
चक्रेऽदृश्यं साश्वसूतं सध्वजं पृतनान्तरे।
तान् निवार्य शराञ्शूरः शैनेयः कृतहस्तवत्॥ २६॥
साश्वसूतध्वजं बाणैर्व्याघ्रदत्तमपातयत्।
कुमारे निहते तस्मिन् मागधस्य सुते प्रभो॥ २७॥
मागधाः सर्वतो यत्ता युयुधानमुपाद्रवन्।

व्याघ्रदत्त ने तब झुकी गाँठवाले बाणों से सात्यकि को घोड़ों, सारथि, और ध्वजासहित आच्छादित और अदृश्य कर दिया। तब वीर शिनि के पौत्र ने उन बाणों का निवारणकर एक कुशलहस्त के समान घोड़ों, सारथि और ध्वजा के सहित व्याघ्रदत्त को मार गिराया। हे प्रभो! तब मगधराज के उस पुत्र के मारे जाने पर मगधदेशीय वीरों ने सावधानीपूर्वक सबतरफ से सात्यकि पर आक्रमण कर दिया।

तांस्तु सर्वान् स बलवान् सात्यकिर्युद्धदुर्मदः॥ २८॥
नातिकृच्छ्राद्धसन्नेव विजिग्ये पुरुषर्षभः।
मागधान् द्रवतो दृष्ट्वा हतशेषान् समन्ततः॥ २९॥
बलं तेऽभज्यत विभो युयुधानशरार्दितम्।
ततो द्रोणो भृशं क्रुद्धः सहसोद्वृत्य चक्षुषी।
सात्यकिं सत्यकर्माणं स्वयमेवाभिदुद्रुवे॥ ३०॥

तब युद्ध में दुर्मद बलवान् पुरुषश्रेष्ठ सात्यकि ने हँसते हुए ही उनसबको आसानी से जीत लिया। हे विभो! मरने से बचे हुए उनसब मागधों को भागते हुए देखकर, सात्यकि के बाणों से पीड़ित आपकी सेना का व्यूह भंग होगया। तब द्रोणाचार्य ने सहसा आँखें घुमाकर देखा और अत्यन्त क्रोध में भरकर सत्यकर्मा सात्यकि पर स्वयं ही आक्रमण किया।

बावनवाँ अध्याय : द्रौपदी पुत्रों के द्वारा सोमदत्त के पुत्र शल का वध। भीम के द्वारा अलम्बुष की पराजय।

द्रौपदेयान् महेष्वासान् सौमदत्तिर्महायशाः।
एकैकं पञ्चभिर्विद्ध्वा पुनर्विव्याध सप्तभिः॥ १॥
ते पीडिता भृशं तेन रौद्रेण सहसा विभो।
प्रमूढा नैव विविदुर्मृधे कृत्यं स्म किंचन॥ २॥
स तान् प्रति महाराज पञ्च चिक्षेप सायकान्।
एकैकं हृदि चाजघ्ने एकैकेन महायशाः॥ ३॥
ततस्ते भ्रातरः पञ्च शरैर्विद्धाः महात्मना।
परिवार्य रणे वीरं विव्यधुः सायकैर्भृशम्॥ ४॥

हे राजन्! महायशस्वी सोमदत्त के पुत्र शल ने द्रौपदी के महाधनुर्धर पुत्रों में से एक एक को पाँच पाँच बाणों से बींध दिया और फिर सात बाणों से घायल कर दिया। हे प्रभो! उस भयंकरवीर के द्वारा अचानक पीड़ित होकर वे मोहित हो गये और यह नहीं समझ सके कि युद्ध में इस समय हमारा क्या कर्त्तव्य है? हे महाराज! फिर उसने उन पर पाँच बाण और फैंके और एक एक बाण से उन पाँचों के हृदयों पर प्रहार किया। तब उस मनस्वी के बाणों से घायल हुए उन पाँचों भाइयों ने युद्धस्थल में उस वीर को घेरकर और अपने बाणों से बहुत अधिक बींधकर मार दिया।

अलम्बुषस्तु समरे भीमसेनं महाबलम्।
योधयामास संक्रुद्धो लक्ष्मणं रावणिर्यथाः॥ ५॥
आर्ष्यशृङ्गिं ततो भीमो नवभिर्निशितैः शरैः।
विव्याध प्रहसन् राजन् राक्षसेन्द्रममर्षणम्॥ ६॥
तद् रक्षः समरे विद्धं कृत्वा नादं भयावहम्।
अभ्यद्रवत् ततो भीमं ये च तस्य पदानुगाः॥ ७॥
स भीमं पञ्चभिर्विद्ध्वा शरैः संनतपर्वभिः।
भैमान् परिजघानाशु रथांस्त्रिशतमाहवे॥ ८॥

अलम्बुष ने युद्धस्थल में अत्यन्तक्रुद्ध होकर महाबली भीमसेन के साथ उसीप्रकार युद्ध किया जैसे पूर्वकाल में रावणपुत्र इन्द्रजित ने लक्ष्मण के साथ किया था। हे राजन्! तब भीमसेन ने हँसते हुए ऋष्यश्रृंग के पुत्र अमर्षशील राक्षसराज अलम्बुष को नौ तीखे बाणों से बींध दिया। तब युद्ध में घायल हुआ वह राक्षस भयंकर गर्जना करता हुआ और उसके पीछे चलनेवाले भी भीम की तरफ दौड़े। उसने झुकी गाँठवाले पाँच बाणों से भीम को बींधकर भीम के साथ चलने वाले तीन सौ रथियों को युद्ध में शीघ्रता से मार दिया।

पुनश्चतुःशतान् हत्वा भीमं विव्याध पत्रिणा।
सोऽतिविद्धस्तथा भीमो राक्षसेन महाबलः॥ ९॥
निपपात रथोपस्थे मूर्च्छयाभिपरिप्लुतः।
प्रतिलभ्य ततः संज्ञां मारुतिः क्रोधमूर्च्छितः॥ १०॥
विकृष्य कार्मुकं घोरं भारसाधनमुत्तमम्।
अलम्बुषं शरैस्तीक्ष्णैरर्दयामास सर्वतः॥ ११॥
स वध्यमानः समरे भीमचापच्युतैः शरैः।
स्मरन् भ्रातृवधं चैव, भीमसेन मभाषत॥ १२॥

फिर उसने और चार सौ योद्धाओं को मारकर भीम को एक बाण से घायल किया। इसप्रकार वह महाबली भीम राक्षस के द्वारा अत्यन्तघायल और मूर्च्छा से युक्त होकर रथ की बैठक में गिर पड़े। फिर उसके बाद होश में आकर उन पवनपुत्र ने क्रोध से अचेतन से होकर अपने भार को सहन करनेवाले उत्तम और भयंकर धनुष को खींचकर तीखे बाणों से अलम्बुष को सबतरफ से बींध दिया। युद्धस्थल में भीम के धनुष से छोड़े गये बाणों से घायल होकर और अपने भाई के वध को याद करते हुए वह राक्षस भीमसेन से बोला कि–

तिष्ठेदानीं रणे पार्थ पश्य मेऽद्य पराक्रमम्।
बको नाम सुदुर्बुद्धे राक्षसप्रवरो बली॥ १३॥
परोक्षं मम तद् वृत्तं यद् भ्राता मे हतस्त्वया।
ततः क्रोधाभिताम्राक्षो निर्दहन्निव पावकः॥ १४॥
संदधे त्वाष्ट्रमस्त्रं स स्वयं त्वष्टेव मारुतिः।
तदस्त्रं प्रेरितं तेन भीमसेनेन संयुगे॥ १५॥
राक्षसस्य महामायां हत्वा राक्षसमार्दयत्।
स वध्यमानो बहुधा भीमसेनेन राक्षसः॥ १६॥
संत्यज्य समरे भीमं द्रोणानीकमुपाद्रवत्।
तस्मिंस्तु निर्जिते राजन् राक्षसेन्द्रे महात्मना।
अनादयन् सिंहनादैः पाण्डवाः सर्वतो दिशम्॥ १७॥

हे कुन्तीपुत्र! तुम युद्ध में ठहरे रहो और आज मेरे पराक्रम को देखो। हे अत्यन्तमूर्ख! तुमने बक नाम के

राक्षसश्रेष्ठ बलवान् मेरे भाई को जो मार दिया था, वह घटना मेरे पीछे से हुई थी। तब जलानेवाली अग्नि के समान क्रोध से लाल आँखेंकर वायुपुत्र ने जैसे स्वयं त्वष्टा ही प्रयोग कर रहे हो, त्वाष्ट्र नाम के अस्त्र का प्रयोग किया। भीमसेन के द्वारा युद्धस्थल में छोड़े गये उस अस्त्र ने राक्षस के उस महान् पराक्रम को नष्ट करउसे अत्यन्तपीड़ित किया। तब भीम के द्वारा अनेक बार मार खाता हुआ वह राक्षस युद्धस्थल में भीम को छोड़कर द्रोणाचार्य की सेना में भाग गया। हे राजन्! तब मनस्वी भीम के द्वारा उस राक्षसराज को जीत लिये जाने पर पाण्डवसैनिकों ने अपने सिंहनादों से सारी दिशाओं को गुँजा दिया।

तिरेपनवाँ अध्याय : घटोत्कच द्वारा अलम्बुष का वध।

अलम्बुषं तथा युद्धे विचरन्तमभीतवत्।
हैडिम्बिः प्रययौ तूर्णं विव्याध निशितैः शरैः॥ १॥
अलम्बुषो भृशं क्रुद्धो घटोत्कचमताडयत्।
तयोर्युद्धं समभवद् रक्षोग्रामणिमुख्ययोः॥ २॥
यादृगेव पुरा वृत्तं रामरावणयोः प्रभो।
घटोत्कचस्तु विंशत्या नाराचानां स्तनान्तरे॥ ३॥
अलम्बुषमथो विद्ध्वा सिंहवद् व्यनदन्मुहुः।
तथैवालम्बुषो राजन् हैडिम्बिं युद्धदुर्मदम्॥ ४॥
विद्ध्वा विद्ध्वा नदद्धृष्टः पूरयन् खं समन्ततः।

हे राजन्! अलम्बुष जब इस प्रकार युद्धस्थल में निर्भय होकर विचरण कर रहा था, तब हिडिम्बापुत्र घटोत्कच तुरन्त उसके पास पहुँचा और उसे तीखे बाणों से बींध दिया। अलम्बुष ने भी अत्यधिकक्रुद्ध हो घटोत्कच पर प्रहार किया। फिर उन दोनों राक्षस प्रमुखों में उसी प्रकार युद्ध होने लगा जैसे हे प्रभो! पूर्वकाल में राम और रावण में हुआ था। घटोत्कच ने अलम्बुष की छाती पर बीस नाराचों की वर्षाकर बार बार सिंह के समान गर्जना की। हे राजन्! उसीप्रकार अलम्बुष ने भी युद्ध में दुर्मद हिडिम्बापुत्र को बार बार बींधकर प्रसन्नता के साथ गर्जते हुए समूचे आकाश को गुँजा दिया।

तथा तौ भृशसंक्रुद्धौ राक्षसेन्द्रौ महाबलौ॥ ५॥
निर्विशेषमयुध्येतां मायाभिरितरेतरम्।
यां यां घटोत्कचो युद्धे मायां दर्शयते नृप॥ ६॥
तां तामलम्बुषो राजन् माययैव निजघ्निवान्।
अलम्बुषं राक्षसेन्द्रं दृष्ट्वाक्रुध्यन्त पाण्डवाः॥ ७॥
त एनं भृशसंविग्नाः सर्वतः प्रवरा रथैः।
अभ्यद्रवन्त संक्रुद्धा भीमसेनादयो नृप॥ ८॥

इसप्रकार अत्यन्त क्रोध में भरे हुए वेदोनों महाबली राक्षसेन्द्र समानरूप से एकदूसरे पर अपनी माया अर्थात् युद्धकौशल का प्रयोग करते हुए लड़ रहे थे। हे राजन्! युद्ध में घटोत्कच अपने जिस जिस युद्धकौशल का प्रयोग करता था, उस उसको अलम्बुष अपने युद्धकौशल से व्यर्थ कर देता था। तब उस राक्षसेन्द्र अलम्बुष को देखकर पाण्डववीर क्रोध में भर गये। अत्यन्त उद्विग्न और क्रुद्ध हुए भीमसेन आदि श्रेष्ठवीर हे राजन्! रथों के द्वारा सबतरफ से अलम्बुष पर टूट पड़े।

त एनं कोष्ठकीकृत्य रथवंशेन मारिष।
सर्वतो व्यकिरन् बाणैरुल्काभिरिव कुञ्जरम्॥ ९॥
स तेषामस्त्रवेगं तं प्रतिहत्यास्त्रमायया।
तस्माद् रथव्रजान्मुक्तो वनदाहादिव द्विपः॥ १०॥
स विस्फार्य धनुर्घोरमिन्द्राशनिसमस्वनम्।
मारुतिं पञ्चविंशत्या भैमसेनिं च पञ्चभिः॥ ११॥
युधिष्ठिरं त्रिभिर्विद्ध्वा सहदेवं च सप्तभिः।
नकुलं च त्रिसप्तत्या द्रौपदेयांश्च मारिष॥ १२॥
पञ्चभिः पञ्चभिर्विद्ध्वा घोरं नादं ननाद ह।

हे मान्यवर! उन्होंने सबतरफ से घेरकर उस पर बाणों से ऐसे ही प्रहार करने आरम्भ कर दिये, जैसे हाथी को घेरकर उसपर मशालों से प्रहार किया जारहा हो। तब अलम्बुष अपने अस्त्र कौशल से उनके अस्त्रों के वेग को व्यर्थकर रथों के घेरे से इसप्रकार बाहर आगया जैसे कोई गजराज दावानल से बाहर निकल आया हो। फिर उसने इन्द्र के वज्र के समान टंकार करनेवाले अपने भयंकर धनुष को खींचकर भीम पर पच्चीस और घटोत्कच पर पाँच बाणों से प्रहार किया। हे मान्यवर! उसने युधिष्ठिर पर तीन, सहदेव पर सात, नकुल पर तिहत्तर और द्रौपदीपुत्रों पर पाँच पाँच बाणों की वर्षाकर भयंकर गर्जना की।

तं भीमसेनो नवभिः सहदेवस्तु पञ्चभिः॥ १३॥
युधिष्ठिरः शतेनैव राक्षसं प्रत्यविध्यत।
नकुलस्तु चतुःषष्ट्या द्रौपदेयास्त्रिभिस्त्रिभिः॥ १४॥
हैडिम्बो राक्षसं विद्ध्वा युद्धे पञ्चाशता शरैः।
पुनर्विव्याध सप्तत्या ननाद च महाबलः॥ १५॥
सोऽतिविद्धो महेष्वासैः सर्वतस्तैर्महारथैः।
प्रतिविव्याध तान् सर्वान् पञ्चभिः पञ्चभिः शरैः॥ १६॥

तब भीमसेन ने उस पर नौ, सहदेव ने पाँच और युधिष्ठिर ने सौ बाणों की वर्षाकर उसे घायल किया। नकुल ने चौंसठ, द्रौपदीपुत्रों ने तीन तीन, हिडिम्बापुत्र ने पचास, तथा फिर सत्तर बाणों की वर्षा करके उसे बींध दिया और उस महाबली ने फिर जोर से गर्जना की। तब उन महाधनुर्धर और महारथियों के द्वारा सबतरफ से अत्यन्तघायल होने पर भी अलम्बुष ने उन्हें प्रत्युत्तर में पाँच पाँच बाणों से बींध दिया।

तं क्रुद्धं राक्षसं युद्धे प्रतिक्रुद्धस्तु राक्षसः।
हैडिम्बो भरतश्रेष्ठ शरैर्विव्याध सप्तभिः॥ १७॥
सोऽतिविद्धो बलवता राक्षसेन्द्रो महाबलः।
व्यसृजत् सायकांस्तूर्णं रुक्मपुङ्खान् शिलाशितान्॥ १८॥
ते शरा नतपर्वाणो विविशू राक्षसं तदा।
रुषिताः पन्नगा यद्वद् गिरिशृङ्गं महाबलाः॥ १९॥
ततस्ते पाण्डवा राजन् समन्तान्निशिताञ्शरान्।
प्रेषयामासुरुद्विग्ना हैडिम्बश्च घटोत्कचः॥ २०॥

तब युद्ध में क्रोध से भरे हुए उस राक्षस को प्रत्युत्तर में हिडिम्बापुत्र ने हे भरतश्रेष्ठ! सात बाणों से बींधा। तब उस बलवान् राक्षस के द्वारा अत्यन्त घायल किये हुए उस महाबली राक्षस ने शिला पर तेज किये हुए सुनहले पंखवाले बाणों की शीघ्रता से वर्षा आरम्भ कर दी। झुकी गाँठवाले वे बाण घटोत्कच के शरीर में उसी प्रकार घुस गये जैसे क्रोध में भरे हुए महाबली सर्प पर्वत के शिखर पर चढ़ जाते हैं। हे राजन्! तब उद्वेग से भरे हुए वे पाण्डव और हिडिम्बापुत्र घटोत्कच उस पर सबतरफ से पैने बाणों की वर्षा करने लगे।

रथाद् रथमभिद्रुत्य क्रुद्धो हैडिम्बिराक्षिपत्।
उद्बबर्ह रथाच्चापि पन्नगं गरुडो यथा॥ २१॥
समुत्क्षिप्य च बाहुभ्यामाविध्य च पुनः पुनः।
निष्पिपेष क्षितौ क्षिप्रं पूर्णकुम्भमिवाश्मनि॥ २२॥
स विस्फारितसर्वाङ्गश्चूर्णितास्थिर्विभीषणः।
घटोत्कचेन वीरेण हतः शालकटङ्कटः॥ २३॥
ततः सुमनसः पार्था हते तस्मिन् निशाचरे।
चुक्रुशुः सिंहनादांश्च वासांस्यादुधुवुश्च ह॥ २४॥
तावकाश्च हतं दृष्ट्वा, राक्षसेन्द्रं महाबलम्।
हाहाकारमकार्षुश्च, सैन्यानि भरतर्षभ॥ २५॥

तब हिडिम्बापुत्र ने अपने रथ से अलम्बुष के रथ पर कूदकर, क्रोध में भरकर उसे पकड़ लिया और जैसे गरुड़पक्षी साँप को उठा लेता है, वैसे उसने उसे रथ से ऊपर उठा लिया। अपनी बाहों से उसे उठाकर और बार बार घुमाकर भूमि पर ऐसे ही पटक मारा जैसे पानी से भरे घड़े को पत्थर पर पटक दिया जाये। उस समय सालकटंकटा के पुत्र अलम्बुष के, जो वीर घटोत्कच के द्वारा मारा गया था, सारे अंग फट गये थे। उसकी सारी हड्डियों का चूरा होगया था और उसका रूप भयंकर हो गया था। उस राक्षस के मारे जाने पर पाण्डववीर प्रसन्न होकर सिंहनाद करने लगे और अपने वस्त्रों को हिलाने लगे। उधर आपके सैनिक और सेनाएँ महाबली राक्षसेन्द्र को मारा गया देखकर हे भरतश्रेष्ठ! हाहाकार करने लगीं।

चौवनवाँ अध्याय : युधिष्ठिर की सात्यकि से अर्जुन के पास जाने को प्रार्थना।

वर्तमाने तथा रौद्रे तस्मिन् वीरवरक्षये।
अशृणोत् सहसा पार्थः पाञ्चजन्यस्य निःस्वनम्॥ १॥
कश्मलाभिहतो राजा चिन्तयामास पाण्डवः।
न नूनं स्वस्ति पार्थाय यथा नदति शङ्खराट्॥ २॥
कौरवाश्च यथा हृष्टा विनदन्ति मुहुर्मुहुः।
एवं स चिन्तयित्वा तु व्याकुलेनान्तरात्मना॥ ३॥
अजातशत्रुः कौन्तेयः सात्वतं प्रत्यभाषत।
बाष्पगद्गदया वाचा मुह्यमानो मुहुर्मुहुः॥ ४॥
कृत्यस्यानन्तरापेक्षी शैनेयं शिनिपुङ्गवम्।

उत्तम वीरों का विनाश करनेवाला वह युद्ध जब इसप्रकार भयंकररूप से चल रहा था, तब कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर ने अचानक पांचजन्य शंख की ध्वनि सुनी।

तब मोह से ग्रस्त होकर पाण्डुपुत्र राजा सोचने लगे कि निश्चय ही अर्जुन के लिये कुशलता नहीं है, क्योंकि जिसप्रकार पांचजन्य शंख बज रहा है और कौरवलोग प्रसन्न होकर बार बार गर्जना कर रहे हैं, उससे यही प्रतीत होता है। वे जयद्रथ के वध का कार्य निर्विघ्न देखना चाहते थे। तब उनकी आत्मा बेचैन होउठी। उनकी आँखों से आँसू बहने लगे। बार बार मोहित से होते हुए गद्‌गद् वाणी में वे अजातशत्रु शिनि के पौत्र शिनिप्रवर सात्यकि से बोले कि–

यः स धर्मः पुरा दृष्टः सद्भिः शैनेय शाश्वतः॥ ५॥
साम्पराये सुहृत्कृत्ये तस्य कालोऽयमागतः।
सर्वेष्वपि च योधेषु चिन्तयञ्शिनिपुङ्गव॥ ६॥
त्वत्तः सुहृत्तमं कञ्चिन्नाभिजानामि सात्यके।
यो हि प्रीतमना नित्यं यश्च नित्यमनुव्रतः॥ ७॥
स कार्ये साम्पराये तु नियोज्य इति मे मतिः।
यथा च केशवो नित्यं पाण्डवानां परायणम्॥ ८॥
तथा त्वमपि वार्ष्णेय कृष्णतुल्यपराक्रमः।

हे शैनेय! आपत्ति के आने पर मित्र के करने योग्य जिस धर्म को सत्पुरुषों ने पूर्वकाल में देखा है, उसी के पालन करने का समय आगया है। हे शिनिश्रेष्ठ सात्यकि! मैं सोचने पर भी सारे योद्धाओं में तुमसे अधिक घनिष्ठमित्र किसी को नहीं देख रहा हूँ। जो सदा प्रसन्नचित्त रहता हो और सदा अपने से प्रेम करता हो उसी को विपत्ति के समय कार्य में लगाना चाहिये ऐसा मेरा विचार है। जैसे श्रीकृष्ण सदा पाण्डवों के आश्रयस्थान रहते हैं, वैसे ही हे वार्ष्णेय तुम भी हो। तुम भी श्रीकृष्ण के समान पराक्रमी हो।

सोऽहं भारं समाधास्ये त्वयि तं वोढुमर्हसि॥ ९॥
अभिप्रायं च मे नित्यं न वृथा कर्तुमर्हसि।
स त्वं भ्रातुर्वयस्यस्य गुरोरपि च संयुगे॥ १०॥
कुरु कृच्छ्रे सहायार्थमर्जुनस्य नरर्षभ।
त्वं हि सत्यव्रतः शूरो मित्राणामभयङ्करः॥ ११॥
लोके विख्यायसे वीर कर्मभिः सत्यवागिति।
यो हि शैनेय मित्रार्थे युध्यमानस्त्यजेत् तनुम्॥ १२॥
पृथिवीं च द्विजातिभ्यो यो दद्यात् स समो भवेत्।

मैं तुम्हारे ऊपर एक उत्तरदायित्व का भार रख रहा हूँ, तुम्हें उसे वहन करना चाहिये। तुम्हें मेरे मनोरथ को सदा सफल करना चाहिये। हे नरश्रेष्ठ! तुम अपने भाई, मित्र और युद्धक्षेत्र में गुरु अर्जुन की विपत्ति में सहायता करो। तुम अपने मित्रों को अभय देनेवाले हो, सत्यव्रती हो और शूर हो। हे वीर! तुम संसार में अपने कर्मों से सत्यवादी के रूप में प्रसिद्ध हो। हे शैनेय! जो व्यक्ति अपने मित्र के लिये अपने शरीर का त्याग कर देता है और जो सारी भूमि को ब्राह्मणों को दान दे देता है, ये दोनों ही एकसमान बताये गये हैं।

एवं त्वामपि धर्मात्मन् प्रयाचेऽहं कृताञ्जलिः॥ १३॥
पृथिवीदानतुल्यं स्यादधिकं वा फलं विभो।
विक्रान्तस्य च वीरस्य युद्धे प्रार्थयतो यशः॥ १४॥
शूर एव सहायः स्यान्नेतरः प्राकृतो जनः।
ईदृशे तु परामर्दे वर्तमानस्य माधव॥ १५॥
त्वदन्यो हि रणे गोप्ता विजयस्य न विद्यते।
श्लाघन्नेव हि कर्माणि शतशस्तव पाण्डवः॥ १६॥
मम संजनयन् हर्षं पुनः पुनरकीर्तयत्।

इसीप्रकार हे धर्मात्मन्! मैं तुमसे भी हाथ जोड़कर याचना कर रहा हूँ। हे विभो! तुम्हें पृथिवी के दान के बराबर या उससे भी अधिक फल प्राप्त होगा। युद्ध में पराक्रम दिखाता हुआ वीर यदि सहायता का इच्छुक हो तो उसकी सहायता वीर व्यक्ति ही कर सकता है, कोई सामान्य व्यक्ति नहीं। हे माधव! इस प्रकार के घोर युद्ध में लगे हुए अर्जुन की युद्धस्थल में रक्षा करनेवाला तुम्हारे सिवाय और कोई नहीं है। अर्जुन ने तुम्हारे सैकड़ों कार्यों की प्रशंसा करते हुए, मेरे हर्ष को बढ़ाते हुए बार बार उनका वर्णन किया था।

लघुहस्तश्चित्रयोधी तथा लघुपराक्रमः॥ १७॥
प्राज्ञः सर्वास्त्रविच्छूरो मुह्यते न च संयुगे।
शिष्यो मम सखा चैव प्रियोऽस्याहं प्रियश्च मे॥ १८॥
युयुधानः सहायो मे प्रमथिष्यति कौरवान्।

उन्होंने कहा था कि सात्यकि जल्दी हाथ चलाने वाला, विचित्रप्रकार से युद्ध करनेवाला और शीघ्रतापूर्वक पराक्रम करनेवाला है। वह बुद्धिमान्, सारे अस्त्रों को जाननेवाला शूरवीर है और युद्ध में मोहित नहीं होता है। वह मेरा शिष्य, मित्र, और प्यारा है और मैं भी उसके लिये प्रिय हूँ। सात्यकि मेरे सहायक होकर युद्ध में कौरवों का विनाश कर देंगे।

अस्मदर्थं च राजेन्द्र संनह्येद् यदि केशवः॥ १९॥
रामो वाप्यनिरुद्धो वा प्रद्युम्नो वा महारथः।
गदोवा सारणो वापि साम्बो वा सह वृष्णिभिः॥ २०॥
सहायार्थं महाराज संग्रामोत्तममूर्धनि।
तथाप्यहं नरव्याघ्रं शैनेयं सत्यविक्रमम्॥ २१॥
साहाय्ये विनियोक्ष्यामि नास्ति मेऽन्यो हि तत्समः।
इति द्वैतवने तात मामुवाच धनंजयः॥ २२॥
परोक्षे त्वद्गुणांस्तथ्यान् कथयन्नार्यसंसदि।

हे राजेन्द्र! यदि हमारे लिये श्रीकृष्ण, बलराम, अनिरुद्ध या महारथी प्रद्युम्न, या गद, या वृष्णिवंशी योद्धाओं के साथ साम्ब युद्ध के श्रेष्ठ मुहाने पर सहायता के लिये कवच बाँधकर तैयार हों तो भी मैं नरव्याघ्र सत्यविक्रमी शिनिपौत्र सात्यकि को सहायता के लिये लगाऊँगा। क्योंकि मेरा उसके समान दूसरा कोई नहीं है। हे तात! अर्जुन ने द्वैतवन में रहते हुए मुझसे श्रेष्ठ पुरुषों की सभा में तुम्हारे वास्तविक गुणों का वर्णन करते हुए ऐसा परोक्ष में मुझसे कहा था।

तस्य त्वमेवं संकल्पं न वृथा कर्तुमर्हसि॥ २३॥
धनंजयस्य वार्ष्णेय मम भीमस्य चोभयोः।
न तत् सौहृदमन्येषु मया शैनेय लक्षितम्॥ २४॥
यथा त्वमस्मान् भजसे वर्तमानानुपप्लवे।
सोऽभिजात्या च भक्त्या च सख्यस्याचार्यकस्य च॥ २५॥
सौहृदस्य च वीर्यस्य कुलीनत्वस्य माधव।
सत्यस्य च महाबाहो अनुकम्पार्थमेव च॥ २६॥
अनुरूपं महेष्वास कर्म त्वं कर्तुमर्हसि।

हे वार्ष्णेय! उस अर्जुन का, मेरा और भीम का तुम्हारे विषय में जो संकल्प है, उसे तुम मिथ्या मत करना। हे शैनेय! इस वर्तमान संकट में तुम जिस प्रकार से हमारी सहायता कर रहे हो, वैसा सौहार्द मैं किसीदूसरे में नहीं देखता हूँ। हे महाबाहु! हे महाधनुर्धर, माधव! इसप्रकार के गुणोंवाले तुम अपनी कुलीनता, हमारे प्रति मित्रता, भक्ति, गुरुभाव, सौहार्द, पराक्रम और सत्य के अनुरूप कार्य करो।

सुमहान् निनदश्चैव श्रूयते विजयं प्रति॥ २७॥
स शैनेय जवेनाशु गन्तुमर्हसि मानद।
भीमसेनो वयं चैव संयत्ताः सहसैनिकाः॥ २८॥
द्रोणमावारयिष्यामो यदि त्वां प्रति यास्यति।
पुरस्तात् सैन्धवानीकं द्रोणानीकं च पृष्ठतः॥ २९॥
बहुत्वाद्धि नरव्याघ्र देवेन्द्रमपि पीडयेत्।
अपर्यन्ते बले मग्नो जह्यादपि च जीवितम्॥ ३०॥
तस्मिंश्च निहते युद्धे कथं जीवेत मादृशः।
सर्वथाहमनुप्राप्तः सुकृच्छ्रं त्वयि जीवति॥ ३१॥

जहाँ अर्जुन हैं, वहाँ से बड़ेजोर का कोलाहल सुनाई देरहा है। इसलिये दूसरों को मान देनेवाले शैनेय! तुम शीघ्रता से उसतरफ जाओ। भीमसेन और हमसब सैनिकों के साथ सावधानी से, द्रोणाचार्य को यदि वे तुम्हारा पीछा करेंगे तो रोकेंगे। अर्जुन के सामने जयद्रथ की सेना है, तो पीछे द्रोणाचार्य की सेना है। हे नरव्याघ्र! ये अपनी अधिकता के कारण इन्द्र को भी पीड़ित कर सकती हैं। इस अथाह सेनासागर में डूबकर अर्जुन प्राणों का भी त्याग कर सकता है। युद्ध में उसके मारे जाने पर मुझजैसा व्यक्ति कैसे जीवित रह सकता है? तुम्हारे होते हुए देखो, मैं अत्यन्तमहान् संकट में पूरीतरह से पड़ गया हूँ।

श्यामो युवा गुडाकेशो दर्शनीयश्च पाण्डवः।
लध्वस्त्रश्चित्रयोधी च प्रविष्टस्तात भारतीम्॥ ३२॥
सूर्योदये महाबाहुर्दिवसश्चातिवर्तते।
तन्न जानामि वार्ष्णेय यदि जीवति वा न वा॥ ३३॥
कुरूणां चापि तत् सैन्यं सागरप्रतिमं महत्।
न हि मे वर्तते बुद्धिरद्य युद्धे कथंचन॥ ३४॥
द्रोणोऽपि रभसो युद्धे मम पीडयते बलम्।
प्रत्यक्षं ते महाबाहो यथासौ चरति द्विजः॥ ३५॥
युगपच्च समेतानां कार्याणां त्वं विचक्षणः।
महार्थं लघुसंयुक्तं कर्तुमर्हसि मानद॥ ३६॥
तस्य मे सर्वकार्येषु कार्यमेतन्मतं महत्।
अर्जुनस्य परित्राणं कर्तव्यमिति संयुगे॥ ३७॥

मेरा मन इस समय युद्ध में नहीं लग रहा है। उधर द्रोणाचार्य भी वेग के साथ मेरी सेना को पीड़ित कर रहे हैं। हे महाबाहु! यह तुम्हारे सामने प्रत्यक्ष है कि द्रोणाचार्य कैसा कार्य कर रहे हैं। एकसाथ उपस्थित हुए कई कार्यों में से कौनसा कार्य पहले करना चाहिये? यह जानने में तुम विलक्षण हो। हे मानद! महान प्रयोजनवाले कार्य को तुम्हें जल्दी करना चाहिये। मेरे विचार से सारे कार्यों में सबसे अधिक महत्त्व का कार्य यही है कि युद्ध में अर्जुन की रक्षा करनी चाहिये।

रणे वृष्णिप्रवीराणां द्वावेवातिरथौ स्मृतौ।
प्रद्युम्नश्च महाबाहुस्त्वं च सात्वत विश्रुतः॥ ३८॥
अस्त्रे नारायणसमः संकर्षणसमो बले।
वीरतायां नरव्याघ्र धनंजयसमो ह्यसि॥ ३९॥
भीष्मद्रोणावतिक्रम्य सर्वयुद्धविशारदम्।
त्वामेव पुरुषव्याघ्रं लोके सन्तः प्रचक्षते॥ ४०॥

युद्धक्षेत्र में वृष्णिवीरों में दोही अतिरथी माने गये हैं। एक महाबाहु प्रद्युम्न और दूसरे सुविख्यात तुम। तुम अस्त्रविद्या में श्रीकृष्ण के, बल में बलराम के और हे नरव्याघ्र! वीरता में अर्जुन के समान हो। सज्जनलोग भीष्म और द्रोणाचार्य के पश्चात् तुम्हें ही लोक में सारे युद्धों में विशारद मानते हैं।

तवार्जुनो गुरुस्तात धर्मात्मा शिनिपुङ्गव।
वासुदेवो गुरुश्चापि तव पार्थस्य धीमतः॥ ४१॥
कारणद्वयमेतद्धि जानंस्त्वामहमब्रुवम्।
मावमंस्था वचो मह्यं गुरुस्तव गुरोर्ह्यहम्॥ ४२॥
वासुदेवमतं चैव मम चैवार्जुनस्य च।
सत्यमेतन्मयोक्तं ते याहि यत्र धनंजयः॥ ४३॥

हे तात्! शिनिश्रेष्ठ! धर्मात्मा अर्जुन तुम्हारा गुरु है। श्रीकृष्ण तुम्हारे और अर्जुन के भी गुरु हैं। इन दोनों कारणों को जानकर मैं तुमसे कह रहा हूँ। मेरी बात की उपेक्षा मत करो। क्योंकि मैं तुम्हारे गुरु का भी गुरु हूँ। यह कार्य श्रीकृष्ण की इच्छानुकूल है, यह मैं तुमसे सत्य कहता हूँ। इसलिये जहाँ अर्जुन है, वहाँ जाओ।

पचपनवाँ अध्याय : सात्यकि और युधिष्ठिर संवाद।

धर्मराजस्य तद् वाक्यं निशम्य शिनिपुङ्गवः।
सात्यकिर्भरतश्रेष्ठ प्रत्युवाच युधिष्ठिरम्॥ १॥
श्रुतं ते गदतो वाक्यं सर्वमेतन्मयाच्युत।
न्याययुक्तं च चित्रं च फाल्गुनार्थे यशस्करम्॥ २॥
एवंविधे तथा काले मादृशं प्रेक्ष्य सम्मतम्।
वक्तुमर्हसि राजेन्द्र यथा पार्थं तथैव माम्॥ ३॥
न मे धनंजयस्यार्थे प्राणा रक्ष्याः कथंचन।
त्वत्प्रयुक्तः पुनरहं किं न कुर्यां महाहवे॥ ४॥

हे भरतश्रेष्ठ! धर्मराज युधिष्ठिर के इन वाक्यों को सुनकर शिनिपुंगव सात्यकि ने उन्हें उत्तर दिया कि हे अच्युत! अर्जुन की भलाई के लिये आपके द्वारा कहे गये ये न्याययुक्त, अद्भुत और कीर्ति को बढ़ानेवाले सारे वाक्य मैंने सुन लिये हैं। इसप्रकार के समय में मुझ जैसे प्रिय व्यक्ति को देखकर हे राजेन्द्र! जैसा आप अर्जुन से कह सकते हैं, वैसाही आपने मुझसे कहा है। मैं अर्जुन के लिये अपने प्राणों की चिन्ता किसीप्रकार भी नहीं कर सकता, फिर आपके द्वारा कहने पर तो मैं इस महान् युद्ध में क्या नहीं कर सकता?

सुयोधनबलं त्वद्य योधयिष्ये समन्ततः।
विजेष्ये च रणे राजन् सत्यमेतद् ब्रवीमि ते॥ ५॥
कुशल्यहं कुशलिनं समासाद्य धनंजयम्।
हते जयद्रथे राजन् पुनरेष्यामि तेऽन्तिकम्॥ ६॥
अवश्यं तु मया सर्वं विज्ञाप्यस्त्वं नराधिप।
वासुदेवस्य यद् वाक्यं फाल्गुनस्य च धीमतः॥ ७॥
दृढं त्वभिपरीतोऽहमर्जुनेन पुनः पुनः।
मध्ये सर्वस्य सैन्यस्य वासुदेवस्य शृण्वतः॥ ८॥

हे राजन्! मैं आज दुर्योधन की सेना से सबतरफ घूमते हुए युद्ध करूँगा और उस पर विजय प्राप्त करूँगा, यह मैं आपसे सत्य कहता हूँ। मैं कुशलता पूर्वक कुशलता से युक्त अर्जुन के पास पहुँचकर, जयद्रथ के मारे जाने पर पुनः आपके समीप आ जाऊँगा। पर हे राजन्! श्रीकृष्णजी और धीमान् अर्जुन ने जो बातें मुझसे कही थीं, वेसारी मुझे आपसे कहनी बहुत आवश्यक है। अर्जुन ने सारी सेना के बीच में श्रीकृष्णजी के सुनते हुए मुझसे बार बार कहकर दृढ़तापूर्वक बाँध लिया है।

अद्य माधव राजानमप्रमत्तोऽनुपालय।
आर्यां युद्धे मतिं कृत्वा यावद्धन्मि जयद्रथम्॥ ९॥
त्वयि चाहं महाबाहो प्रद्युम्ने वा महारथे।
नृपं निक्षिप्य गच्छेयं निरपेक्षो जयद्रथम्॥ १०॥
जानीषे हि रणे द्रोणं रभसं श्रेष्ठसम्मतम्।
प्रतिज्ञा चापि ते नित्यं श्रुता द्रोणस्य माधव॥ ११॥
ग्रहणे धर्मराजस्य भारद्वाजोऽपि गृध्यति।
शक्तश्चापि रणे द्रोणो निग्रहीतुं युधिष्ठिरम्॥ १२॥

उन्होंने मुझसे कहा था कि हे माधव! आज तुम सावधानी से श्रेष्ठ बुद्धि का आश्रय लेकर राजा की रक्षा करो, जबतक मैं जयद्रथ का वध करूँ। हे महाबाहु! मैं या तो तुम्हारे ऊपर, या महारथी प्रद्युम्न के ऊपर राजा को छोड़कर निरपेक्षभाव से जयद्रथ के पास जा सकता हूँ। तुम जानते हो कि श्रेष्ठ पुरुषों द्वारा सम्मानित द्रोणाचार्य कितने वेगवान् हैं। हे माधव! तुमने द्रोणाचार्य की प्रतिज्ञा के विषय में भी सुना हुआ है। द्रोणाचार्य युधिष्ठिर को बन्दी बनाना चाहते हैं। वे उन्हें बन्दी बनाने में समर्थ भी हैं।

एवं त्वयि समाधाय धर्मराजं नरोत्तमम्।
अहमद्य गमिष्यामि सैन्धवस्य वधाय हि॥ १३॥
जयद्रथं च हत्वाहं द्रुतमेष्यामि माधव।
धर्मराजं न चेद् द्रोणो निगृह्णीयाद् रणे बलात्॥ १४॥
निगृहीते नरश्रेष्ठे भारद्वाजेन माधव।
सैन्धवस्य वधो न स्यान्ममाप्रीतिस्तथा भवेत्॥ १५॥
एवंगते नरश्रेष्ठे पाण्डवे सत्यवादिनि।
अस्माकं गमनं व्यक्तं वनं प्रति भवेत् पुनः॥ १६॥

इसप्रकार नरश्रेष्ठ धर्मराज को तुम्हारे ऊपर छोड़कर मैं जयद्रथ के वध के लिये जाऊँगा। हे माधव! मैं जयद्रथ को मारकर शीघ्रता से आऊँगा यदि धर्मराज को द्रोणाचार्य ने युद्ध में बलपूर्वक बन्दी नहीं बना लिया। हे माधव! इन भरतश्रेष्ठ के द्रोणाचार्य के द्वारा पकड़े जाने पर जयद्रथ का वध नहीं हो सकेगा और मुझे भी महान् दुःख होगा। यदि ये सत्यवादी नरश्रेष्ठ पाण्डव बन्दी बना लिये गये तो निश्चय ही हमारा पुनः वन में जाना होजायेगा।

सोऽयं मम जयो व्यक्तं व्यर्थ एव भविष्यति।
यदि द्रोणो रणे क्रुद्धो निगृह्णीयाद् युधिष्ठिरम्॥ १७॥
स त्वमद्य महाबाहो प्रियार्थं मम माधव।
जयार्थं च यशोऽर्थं च रक्ष राजानमाहवे॥ १८॥
स भवान् मयि निक्षेपो निक्षिप्तः सव्यसाचिना।
भारद्वाजाद् भयं नित्यं मन्यमानेन वै प्रभो॥ १९॥
तस्यापि च महाबाहो नित्यं पश्यामि संयुगे।
नान्यं हि प्रतियोद्धारं रौक्मिणेयादृते प्रभो॥ २०॥
मां चापि मन्यते युद्धे भारद्वाजस्य धीमतः।
सोऽहं सम्भावनां चैतामाचार्यवचनं च तत्॥ २१॥
पृष्ठतो नोत्सहे कर्तुं त्वां वा त्यक्तुं महीपते।

यदि द्रोणाचार्य क्रुद्ध होकर युधिष्ठिर को युद्ध में पकड़ लेते हैं तो मेरी यह विजय व्यर्थ होजायेगी। इसलिये हे महाबाहु माधव! तुम आज मेरे प्रिय के लिये, विजय के लिये और यश के लिये राजा की युद्ध में रक्षा करो। हे प्रभो! इसप्रकार द्रोणाचार्य से सदा भय को मानते हुए अर्जुन ने आपको मेरे पास धरोहर के रूप में रखा हुआ है। हे प्रभो! हे महाबाहु! मैं सदा किसी ऐसे योद्धा को, सिवाय रुक्मणिपुत्र प्रद्युम्न के नहीं देखता, जो युद्ध में द्रोणाचार्य के सामने युद्ध कर सके। मुझे भी अर्जुन धीमान् द्रोणाचार्य का सामना करने में समर्थ समझते हैं। इसलिये हे राजन्! मैं अपने आचार्य की अपने विषय में इस सम्भावना को और उनके वचन की उपेक्षा या आपका त्याग नहीं कर सकता हूँ।

यदि कार्ष्णिर्धनुष्पाणिरिह स्यान्मकरध्वजः॥ २२॥
तस्मै त्वां विसृजेयं वै स त्वां रक्षेद् यथार्जुनः।
कुरु त्वमात्मनो गुप्तिं कस्ते गोप्ता गते मयि॥ २३॥
यः प्रतीयाद् रणे द्रोणं यावद् गच्छामि पाण्डवम्।
मा च ते भयमद्यास्तु राजन्नर्जुनसम्भवम्॥ २४॥
न स जातु महाबाहुर्भारमुद्यम्य सीदति।

यदि मछली की ध्वजावाले श्रीकृष्णकुमार धनुष हाथ में लेकर यहाँ विराजमान हों तो मैं उनके ऊपर आपको छोड़ दूँ। वे आपकी उसीप्रकार रक्षा करेंगे जैसे अर्जुन/आप अपनी रक्षा की व्यवस्था कीजिये। मेरे जाने पर आपका रक्षक कौन होगा? जो मेरे अर्जुन के पास जाने और लौटकर आने तक द्रोणाचार्य का सामना करता रहे। हे राजन्! आपको अर्जुन के विषय में भय नहीं होना चाहिये। वह महाबाहु किसी भार को उठाकर अर्थात् किसी उत्तरदायित्व को लेकर शिथिल नहीं होते हैं।

ये च सौवीरका योधास्तथा सैन्धवपौरवाः॥ २५॥
उदीच्या दाक्षिणात्याश्च ये चान्येऽपि महारथाः।
ये च कर्णमुखा राजन् रथोदाराः प्रकीर्तिताः॥ २६॥
एतेऽर्जुनस्य क्रुद्धस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्।
एवं ज्ञात्वा महाराज व्येतु ते भीर्धनंजये॥ २७॥
यत्र वीरौ महेष्वासौ कृष्णौ सत्यपराक्रमौ।
न तत्र कर्मणो व्यापत् कथञ्चिदपि विद्यते॥ २८॥

हे राजन्! जो सौवीर, सिन्धु और पुरुदेश के योद्धा हैं, जो उत्तरदेश, दक्षिणदेश के तथा दूसरे महारथी

हैं और जो हे राजन्! कर्ण आदि श्रेष्ठरथी बताये गये हैं, येसब क्रोध में भरे हुए अर्जुन के सोलहवें भाग के बराबर भी नहीं हैं। यह जानकर हे महाराज! अर्जुन के विषय में आपकी चिन्ता दूर होजानी चाहिये। जहाँ सत्यपराक्रमी, महाधनुर्धर श्रीकृष्ण और अर्जुन जैसे दो वीर हैं, वहाँ उनके कार्य में किसी वीर हैं, वहाँ उनके कार्य में किसी प्रकार का भी व्याघात नहीं पड़ सकता।

मयि चापि सहाये ते गच्छमानेऽर्जुनं प्रति।
द्रोणे चित्रास्त्रतां संख्ये राजंस्त्वमनुचिन्तय॥ २९॥
आचार्यो हि भृशं राजन् निग्रहे तव गृध्यति।
प्रतिज्ञामात्मनो रक्षन् सत्यां कर्तुं च भारत॥ ३०॥
न ह्यहं त्वां महाराज अनिक्षिप्य महाहवे।
क्वचिद् यास्यामि कौरव्य सत्यमेतद् ब्रवीमि ते॥ ३१॥
एतद्विचार्य बहुशो बुद्ध्या बुद्धिमतां वर।
दृष्ट्वा श्रेयः परं बुद्ध्या ततो राजन् प्रशाधि माम्॥ ३२॥

हे राजन्! आप विचार करो कि मेरे आपके सहायक के भी अर्जुन के पास चले जाने पर द्रोणाचार्य युद्ध में किस किस प्रकार के विचित्र अस्त्रों का प्रयोग करेंगे। हे भारत! आचार्य अपनी प्रतिज्ञा की रक्षा करने, उसे सत्य करने के लिये आपको पकड़ने के अत्यधिक लालची हैं। इसलिये हे महाराज! कुरुनन्दन! मैं आपको इस महान् युद्ध में बिना किसी के संरक्षण में छोड़े, कहीं नहीं जाऊँगा। यह मैं आपसे सत्य कहता हूँ। हे बुद्धिमानों में श्रेष्ठ राजन्! आप बहुतप्रकार बुद्धि से सोचकर और यह देखकर कि कौनसा कार्य अधिक कल्याणकारी है, मुझे आदेश दीजिये।

युधिष्ठिर उवाच

एवमेतन्महाबाहो यथा वदसि माधव।
न तु मे शुद्ध्यते भावः श्वेताश्वं प्रति मारिष॥ ३३॥
करिष्ये परमं यत्नमात्मनो रक्षणे ह्यहम्।
गच्छ त्वं समनुज्ञातो यत्र यातो धनंजयः॥ ३४॥
आत्मसंरक्षणं संख्ये गमनं चार्जुनं प्रति।
विचार्यैतत् स्वयं बुद्ध्या गमनं तत्र रोचय॥ ३५॥
स त्वमातिष्ठ यानाय यत्र यातो धनंजयः।
ममापि रक्षणं भीमः करिष्याति महाबलः॥ ३६॥

तब युधिष्ठिर ने कहा कि हे महाबाहु! हे आर्य! जैसा तुम कहते हो वह ठीक है, पर श्वेत घोड़ों वाले अर्जुन के प्रति मेरा मन निश्चिन्त नहीं है। मैं अपनी रक्षा के लिये पूरा प्रयत्न करूँगा। तुम मेरी आज्ञा से वहीं जाओ जहाँ अर्जुन हैं। मुझे युद्ध में अपनी रक्षा करनी चाहिये या तुम्हें अर्जुन के पास भेजना चाहिये, इस बात पर तुम स्वयं अपनी बुद्धि से विचारकर वहाँ जाना ही पसन्द करो। जहाँ अर्जुन गये हैं, वहाँ जाने के लिये तुम तैयार होजाओ। महाबली भीम मेरी भी रक्षा करेंगे।

द्रौपदेयाश्च मां तात रक्षिष्यन्ति न संशयः।
केकया भ्रातरः पञ्च राक्षसश्च घटोत्कचः॥ ३७॥
विराटो द्रुपदश्चैव शिखण्डी च महारथः।
धृष्टकेतुश्च बलवान् कुन्तिभोजश्च मातुलः॥ ३८॥
नकुलः सहदेवश्च पञ्चालाः सृञ्जयास्तथा।
एते समाहितास्तात रक्षिष्यन्ति न संशयः॥ ३९॥

हे तात! इसमें सन्देह नहीं है कि द्रौपदी के पुत्र मेरी रक्षा कर लेंगे, पाँचों केकयकुमार भाई, राक्षस घटोत्कच, विराट, द्रुपद और महारथी शिखण्डी, बलवान् धृष्टकेतु, मामा कुन्तीभोज, नकुल, सहदेव, पांचाल और सृंजयवीर ये सारे सावधान होकर मेरी रक्षा कर लेंगे, इसमें संशय नहीं है।

न द्रोणः सह सैन्येन कृतवर्मा च संयुगे।
समासादयितुं शक्तो न च मां धर्षयिष्यति॥ ४०॥
धृष्टद्युम्नश्च समरे द्रोणं क्रुद्धं परंतपः।
वारयिष्यति विक्रम्य वेलेव मकरालयम्॥ ४१॥
यत्र स्थास्यति संग्रामे पार्षतः परवीरहा।
द्रोणो न सैन्यं बलवत् क्रामेत् तत्र कथंचन।
विश्रब्धं गच्छ शैनेय, मा कार्षीर्मयि सम्भ्रमम्॥ ४२॥

युद्धस्थल में सेना के साथ द्रोणाचार्य और कृतवर्मा मेरे पास नहीं पहुँच सकते। वे मुझे हरा भी नहीं सकेंगे। परंतप धृष्टद्युम्न क्रुद्ध द्रोणाचार्य को युद्ध में पराक्रम करके समुद्र को तटभूमि के समान रोक देंगे। शत्रु के वीरों को नष्ट करनेवाला द्रुपदपुत्र संग्रामभूमि में जहाँ खड़ा होगा, वहाँ मेरी बलवान् सेना पर द्रोणाचार्य किसीप्रकार भी आक्रमण नहीं कर सकते। इसलिये हे शैनेय! तुम निश्चिंत होकर जाओ मेरे विषय में चिन्ता न करो।

छप्पनवाँ अध्याय : सात्यकि द्वारा शत्रुसेना का वर्णन, युद्ध का निश्चय।

धर्मराजस्य तद्वाक्यं, निशम्य शिनि पुंगवः।
धर्मराजमिदं वाक्यमब्रवीत् पुरुषर्षभः॥ १॥
कृतां चेन्मन्यसे रक्षां स्वस्ति तेऽस्तु विशाम्पते।
अनुयास्यामि बीभत्सुं करिष्ये वचनं तव॥ २॥
नहि मे पाण्डवात् कश्चित् त्रिषु लोकेषु विद्यते।
यो मे प्रियतरो राजन् सत्यमेतद् ब्रवीमि ते॥ ३॥
तस्याहं पदवीं यास्ये संदेशात् तव मानद।
त्वत्कृते न च मे किंचिदकर्तव्यं कथंचन॥ ४॥

धर्मराज युधिष्ठिर की ये बातें सुनकर पुरुषश्रेष्ठ सात्यकि ने उनसे यह कहा कि हे प्रजानाथ! आपका कल्याण हो। यदि आप अपनी सुरक्षा की व्यवस्था को किया हुआ मानते हैं तो मैं आपके आदेश का पालन करके अर्जुन के पास जाऊँगा। हे राजन्! तीनोंलोकों में कोई ऐसा व्यक्ति नहीं है, जो मुझे अर्जुन से अधिक प्रिय हो। यह मैं आपसे सत्य कहता हूँ। हे दूसरों को मान देनेवाले! मैं आपके आदेश से अर्जुन के पीछे जाऊँगा। मेरे लिये कोई भी कार्य ऐसा नहीं है, जिसे मैं आपके लिये न कर सकूँ।

यथा हि मे गुरोर्वाक्यं विशिष्टं द्विपदां वर।
तथा तवापि वचनं विशिष्टतरमेव मे॥ ५॥
प्रिये हि तव वर्तेते भ्रातरौ कृष्णपाण्डवौ।
तयोः प्रिये स्थितं चैव विद्धि मां राजपुङ्गव॥ ६॥
तवाज्ञां शिरसा गृह्य पाण्डवार्थमहं प्रभो।
भित्त्वेदं दुर्भिदं सैन्यं प्रयास्ये नरपुङ्गव॥ ७॥

हे मनुष्यों में श्रेष्ठ! जैसे मेरे लिये अपने गुरु अर्जुन का वाक्य विशेषमहत्त्व रखता है, वैसेही आपकी बात भी मेरे लिये है, अपितु उससे भी बढ़कर है। वेदोनों भाई श्रीकृष्ण और अर्जुन आपका प्रिय करने में लगे हुए हैं और हे राजश्रेष्ठ! आप मुझे उनदोनों के प्रियकार्य में लगा हुआ समझिये। हे नरश्रेष्ठ! हे प्रभो! आपकी आज्ञा को सिर पर धारणकर मैं पाण्डुपुत्र के लिये इस दुर्भेद्यसेना को भेदकर जाऊँगा।

यदेतत् कुञ्जरानीकं साहस्रमनुपश्यसि।
कुलमाञ्जनकं नाम यत्रैते वीर्यशालिनः॥ ८॥
आस्थिता बहुभिर्म्लेच्छैर्युद्धशौण्डैः प्रहारिभिः।
नागा मेघनिभा राजन् क्षरन्त इव तोयदाः॥ ९॥
नैते जातु निवर्तेरन् प्रेषिता हस्तिसादिभिः।
अन्यत्र हि वधादेषां नास्ति राजन् पराजयः॥ १०॥

ये जो आप हजारों हाथियों की सेना को देख रहे हैं, ये हाथी आंजनककुल के हैं। इनमें बड़े पराक्रमी हाथी युद्धकुशल और प्रहार करनेवाले म्लेच्छवीरों के साथ खड़े हुए हैं। हे राजन्! बादलों के समान ये हाथी बादलों के समान ही मद की वर्षा करते रहते हैं। महावतों के द्वारा प्रेरित किये जाने पर ये कभी वापिस नहीं लौटते हैं। बिना इनका वध किये इन्हें पराजित नहीं किया जासकता।

अथ यान् रथिनो राजन् सहस्रमनुपश्यसि।
एते रुक्मरथा नाम राजपुत्रा महारथाः॥ ११॥
रथेष्वस्त्रेषु निपुणा नागेषु च विशाम्पते।
धनुर्वेदे गताः पारं मुष्टियुद्धे च कोविदाः॥ १२॥
गदायुद्धविशेषज्ञाः नियुद्धकुशलास्तथा।
खड्गप्रहरणे युक्ताः सम्पाते चासिचर्मणोः॥ १३॥
शूराश्च कृतविद्याश्च स्पर्धन्ते च परस्परम्।
नित्यं हि समरे राजन् विजिगीषन्ति मानवान्॥ १४॥
कर्णेन विहिता राजन् दुःशासनमनुव्रताः।

हे राजन्! आप जिन हजारों रथियों को देख रहे हैं, ये रुक्मरथ नाम के महारथी राजपुत्र हैं। हे प्रजानाथ! ये रथसंचालन, अस्त्रसंचालन और हाथी संचालन में भी निपुण हैं। ये धनुर्विद्या में पारंगत हैं, मुष्टियुद्ध में कुशल हैं, गदायुद्ध के विशेषज्ञ हैं और कुश्तीलड़ने में भी चतुर हैं। खड्ग से प्रहार करने में इनका अभ्यास है और ढाल तलवार लेकर ये विचरण कर सकते हैं। शस्त्रास्त्रविद्या के विद्वान् और शूरवीर ये परस्पर भी स्पर्धा रखते हैं। हे राजन्! ये सदा युद्ध में मनुष्यों को जीतने की इच्छा रखते हैं। इन्हें कर्ण ने दुश्शासन का अनुयायी बना रखा है।

एतांस्तु वासुदेवोऽपि रथोदारान् प्रशंसति॥ १५॥
सततं प्रियकामाश्च कर्णस्यैते वशे स्थिताः।
तस्यैव वचनाद् राजन् निवृत्ताः श्वेतवाहनात्॥ १६॥
ते न क्लान्ता न च श्रान्ता दृढावरणकार्मुकाः।
मदर्थेऽधिष्ठिता नूनं धार्तराष्ट्रस्य शासनात्॥ १७॥
एतान् प्रमथ्य संग्रामे प्रियार्थं तव कौरव।
प्रयास्यामि ततः पश्चात् पदवीं सव्यसाचिनः॥ १८॥

इन उदाररथियों की तो श्रीकृष्ण भी प्रशंसा करते हैं। ये सदा कर्ण का भला चाहते हुए उसके आधीन रहते हैं। उसी के कहने से हे राजन्! ये अर्जुन की तरफ से लौटकर आगये हैं। न ये थके हुए हैं, और न पीड़ित हैं। इनके कवच और धनुष दृढ़ हैं। दुर्योधन की आज्ञा से ये निश्चय ही मुझसे युद्ध करने को खड़े हैं। हे कुरुनन्दन! आपका प्रिय करने के लिये मैं इन्हें मथकर अर्जुन के पास जाऊँगा।

यांस्त्वेतानपरान् राजन् नागान् सप्त शतानिमान्।
प्रेक्षसे वर्मसंछन्नान् किरातैः समधिष्ठितान्॥ १९॥
किरातराजो यान् प्रादाद् द्विरदान् सव्यसाचिनः।
स्वलंकृतांस्तदा प्रेष्यानिच्छञ्जीवितमात्मनः॥ २०॥
आसन्नेते पुरा राजंस्तव कर्मकरा दृढम्।
त्वामेवाद्य युयुत्सन्ते पश्य कालस्य पर्ययम्॥ २१॥
एषामेते महामात्राः किराता युद्धदुर्मदा।
मदर्थमद्य संयत्ता दुर्योधनवशानुगाः॥ २२॥
एतान् हत्वा शरै राजन् किरातान् युद्धदुर्मदान्।
सैन्धवस्य वधे यत्तमनुयास्यामि पाण्डवम्॥ २३॥

हे राजन्! आप जो इनदूसरे सातसौ कवचों से ढके हुए हाथियों को देख रहे है, जिन पर किरात वीर बैठे हुए हैं, ये वे हाथी हैं, जिन्हें किरातराज ने पहले अच्छीतरह से सजाकर, अपने प्राण बचाने के लिये अर्जुन को सेवक के रूप में भेंट किया था। हे राजन्! समय का फेर देखिये। ये हाथी पहले दृढ़ता से आपकी सेवा करनेवाले थे, पर आज ये आपसे युद्ध करना चाहते हैं। युद्ध में दुर्मद इनके ये किरात महावत आज दुर्योधन के आधीन होकर मुझ से युद्ध करने को तैयार खड़े हैं। मैं इन युद्ध में दुर्मद किरातों को मारकर ही सिन्धुराज के वध के लिये प्रयत्न करते हुए अर्जुन के पास जाऊँगा।

ये त्वेते रथिनो राजन् दृश्यन्ते काञ्चनध्वजाः।
एते दुर्वारणा नाम काम्बोजा यदि ते श्रुताः॥ २४॥
शूराश्च कृतविद्याश्च धनुर्वेदे च निष्ठिताः।
संहताश्च भृशं ह्येते अन्योन्यस्य हितैषिणः॥ २५॥
अक्षौहिण्यश्च संरब्धा धार्तराष्ट्रस्य भारत।
यत्ता मदर्थे तिष्ठन्ति कुरुवीराभिरक्षिताः॥ २६॥
अप्रमत्ता महाराज मामेव प्रत्युपस्थिताः।
तानहं प्रमथिष्यामि तृणानीव हुताशनः॥ २७॥
तस्मात् सर्वानुपासंगान् सर्वोपकरणानि च।
रथे कुर्वन्तु मे राजन् यथावद् रथकल्पकाः॥ २८॥

हे राजन्! ये सुनहली ध्वजावाले जो रथी दिखाई देरहे हैं, यदि आपने सुना हो, ये दुर्वारण नाम के काम्बोज सैनिक हैं। ये शूरवीर, विद्वान् तथा धनुर्विद्या विशारद हैं। एकदूसरे का भला चाहनेवाले आपस में बड़े संगठित हैं। हे भारत! दुर्योधन की ये कई अक्षौहिणी सेनाएँ अत्यन्त क्रोध में भरी हुई कौरववीरों से सुरक्षित होकर मुझसे लड़ने के लिये तैयार हैं। हे महाराज! ये बिना प्रमाद के मेरे ऊपर ही आक्रमण करेंगी पर मैं इन सबको ऐसे मथ दूँगा जैसे अग्नि तिनकों को। इसलिये हे राजन्! मेरे सारे उपकरणों और तरकसों को रथ में रथ को सुसज्जित करने वालों के द्वारा रखवा दीजिये।

अस्मिंस्तु किल सम्मर्दे ग्राह्यं विविधमायुधम्।
यथोपदिष्टमाचार्यैः कार्यः पञ्चगुणो रथः॥ २९॥
काम्बोजैर्हि समेष्यामि तीक्ष्णैराशीविषोपमैः।
नानाशस्त्रसमावायै- र्विविधायुधयोधिभिः॥ ३०॥
किरातैश्च समेष्यामि विषकल्पैः प्रहारिभिः।
लालितैः सततं राज्ञा दुर्योधनहितैषिभिः॥ ३१॥

इस संग्राम में जोभी विविधप्रकार के आयुध ग्रहण करनेयोग्य हैं, जिनका आचार्यों ने उपदेश किया है, वेसारे पाँचगुणी मात्रा में रथ पर रख देने चाहिये। मैं आज उन काम्बोजों के साथ जो अनेकप्रकार के शस्त्रसमूहों से युक्त हैं और अनेकप्रकार के आयुधों से लड़नेवाले हैं अपने विषैले सर्पों के समान तीखे बाणों के द्वारा युद्ध करूँगा। मैं उन किरातों से भी युद्ध करूँगा जो विष के समान प्रहार करनेवाले हैं। जो दुर्योधन का हित चाहनेवाले हैं और जिन्हें दुर्योधन ने लाड़ से पाला है।

शकैश्चापि समेष्यामि शक्रतुल्यपराक्रमैः।
अग्निकल्पैर्दुराधर्षैः प्रदीप्तैरिव पावकैः॥ ३२॥
तथान्यैर्विविधैर्योधैः कालकल्पैर्दुरासदैः।
समेष्यामि रणे राजन् बहुभिर्युद्धदुर्मदैः॥ ३३॥
तस्माद् वै वाजिनो मुख्या विश्रान्ताः शुभलक्षणाः।
उपावृत्ताश्च पीताश्च पुनर्युज्यन्तु मे रथे॥ ३४॥

मैं इन्द्र के समान पराक्रमी, अग्नि के समान दुर्धर्ष तथा प्रज्वलित पावक के समान तेजस्वी शकों

से भी युद्ध करूँगा। इसीप्रकार हे राजन्! मैं दूसरे और बहुतसे काल के समान दुर्धर्ष और युद्ध में दुर्मद योद्धाओं के साथ युद्धक्षेत्र में युद्ध करूँगा। इसलिये वे मेरे उत्तम लक्षणवाले प्रमुख घोड़े, जो विश्राम कर चुके हैं, जिन्हें पानी पिला दिया गया है, पुनः मेरे रथ में जोड़ दिये जायें।

सत्तावनवाँ अध्याय : सात्यकि का कौरवसेना की तरफ प्रस्थान और भीम को वापिस भेजना।

तस्य सर्वानुपासंगान् सर्वोपकरणानि च।
रथे चास्थापयद् राजा शस्त्राणि विविधानि च॥ १॥
ततस्तान् सर्वतो युक्तान् सदश्वांश्चतुरो जनाः।
रसवत् पाययामासुः पानं मदसमीरणम्॥ २॥

उसके पश्चात् राजा युधिष्ठिर ने सात्यकि के रथ पर सारे तरकसों, सारे उपकरणों और अनेकप्रकार के हथियारों को रखवा दिया। फिर उन सबप्रकार से शिक्षित, योग्य और उत्तम चारों घोड़ों को मस्त बना देनेवाले रसीले पेय पदार्थ को पिलाया गया।

पीतोपवृत्तान् स्नातांश्च जग्धान्नान् समलंकृतान्।
विनीतशल्यांस्तुरगांश्चतुरो हेममालिनः॥ ३॥
तान् युक्तान् रुक्मवर्णाभान् विनीताञ्शीघ्रगामिनः।
संहृष्टमनसोऽव्यग्रान् विधिवत्कल्पितान् रथे॥ ४॥
महाध्वजेन सिंहेन हेमकेसरमालिना।
हेमदण्डोच्छ्रितच्छत्रे बहुशस्त्रपरिच्छदे॥ ५॥
योजयामास विधिवद्धेमभाण्डविभूषितान्।

जब वे घोड़े उस पेयपदार्थ को पी चुके तो उन्हें टहलाया गया और स्नान कराया गया। फिर दाना खिलाकर सजाया गया। सुनहरी माला पहने हुए उनचारों घोड़ों के शरीर में से बाण पहले ही निकाल दिये गये थे। सुनहरेसाज से विभूषित, सुनहरी आभावाले, योग्य, अनुशासित, शीघ्रगामी, प्रसन्न मन वाले, और विधिपूर्वक सुनहरे आभूषणों से सुसज्जित घोड़ों को सुनहरे केसर की मालावाले सिंह से चिन्हित महान् ध्वजवाले तथा जिसमें सुनहरे डण्डे वाला छत्र तना हुआ था, और नानाप्रकार के उपकरण और हथियार रखे हुए थे, उस रथ में जोड़ दिया गया।

दारुकस्यानुजो भ्राता सूतस्तस्य प्रियः सखा॥ ६॥
न्यवेदयद् रथं युक्तं वासवस्येव मातलिः।
युधिष्ठिरस्य चरणावभिवाद्य कृताञ्जलिः॥ ७॥
तेन मूर्धन्युपाघ्रात आरुरोह महारथम्।
ततस्ते वाजिनो हृष्टाः सुपुष्टाः वातरंहसः॥ ८॥
अजय्या जैत्रमूहुस्तं विकुर्वाणाः स्म सैन्धवाः।
तथैव भीमसेनोऽपि धर्मराजेन पूजितः॥ ९॥
प्रायात् सात्यकिना सार्धमभिवाद्य युधिष्ठिरम्।

जैसे इन्द्र का सारथि मातलि प्रसिद्ध है, वैसे ही श्रीकृष्णजी के सारथि दारुक का छोटा भाई, जो सात्यकि का सारथि और प्रिय सखा था, उसने फिर सात्यकि को सूचना दी कि रथ तैयार होगया है। फिर युधिष्ठिर के चरणों में प्रणामकर, उन्हें हाथ जोड़कर और उनके द्वारा उनका मस्तक सूँघे जाने पर वे उस विशाल रथ पर सवार होगये। फिर वे सिन्धुदेश के हृष्ट–पुष्ट, वायु के समान वेगवान्, अजेय घोड़े उस विजयशील रथ को लेकर चल दिये। धर्मराज से सम्मानित भीमसेन भी तब युधिष्ठिर को प्रणामकर सात्यकि के साथ चले।

तौ दृष्ट्वा प्रविविक्षन्तौ तव सेनामरिंदमौ॥ १०॥
संयत्तास्तावकाः सर्वे तस्थुर्द्रोणपुरोगमाः।
संनद्धमनुगच्छन्तं दृष्ट्वा भीमं स सात्यकिः॥ ११॥
अभिनन्द्याब्रवीद् वीरस्तदा हर्षकरं वचः।
त्वं भीम रक्ष राजानमेतत् कार्यतमं हि ते॥ १२॥
अहं भित्त्वा प्रवेक्ष्यामि कालपक्वमिदं बलम्।
आयत्यां च तदात्वे च श्रेयो राज्ञोऽभिरक्षणम्॥ १३॥
जानीषे मम वीर्यं त्वं तव चाहमरिंदम।
तस्माद् भीम निवर्तस्व मम चेदिच्छसि प्रियम्॥ १४॥

तब उनदोनों शत्रुदमन वीरों को आपकी सेना में प्रवेश करने के इच्छुक देखकर आपके सारे द्रोणाचार्य आदि योद्धा सावधान होगये। तैयार होकर अपने पीछे आते हुए भीम को देखकर वीर सात्यकि ने उनका अभिनन्दनकर यह हर्ष को करनेवाली बात कही कि हे भीम! तुम राजा की रक्षा करो। आपके लिये यह अधिक महत्त्वपूर्ण कार्य है। मैं काल के द्वारा पकाये हुए इस सेना

समूह को भेदकर इसमें प्रवेश करूँगा। इस वर्तमान समय में और भविष्य में भी राजा की रक्षा करना ही श्रेयस्कर है। आप मेरा पराक्रम जानते हैं और मैं आपका जानता हूँ। इसलिये हे भीम! यदि आप मेरा प्रिय करना चाहते हैं, तो लौट जाओ।

तथोक्तः सात्यकिं प्राह व्रज त्वं कार्यसिद्धये।
अहं राज्ञः करिष्यामि रक्षां पुरुषसत्तम॥ १५॥
एवमुक्तः प्रत्युवाच भीमसेनं स माधवः।
गच्छ गच्छ ध्रुवं पार्थ ध्रुवो हि विजयो मम॥ १६॥
एतावदुक्त्वा भीमं तु विसृज्य च महायशाः।
सम्प्रैक्षत् तावकं सैन्यं व्याघ्रो मृगगणानिव॥ १७॥
ततः प्रयातः सहसा तव सैन्यं स सात्यकिः।
दिदृक्षुरर्जुनं राजन् धर्मराजस्य शासनात्॥ १८॥

ऐसा कहे जाने पर भीम ने सात्यकि से कहा कि अच्छा हे पुरुषश्रेष्ठ! तुम कार्य की सिद्धि के लिये जाओ। मैं राजा की रक्षा करूँगा। तब सात्यकि ने भीमसेन को उत्तर दिया कि हे कुन्तीपुत्र! तुम जाओ। मेरी विजय निश्चित है। ऐसा कहकर और भीम को बिदाकर महायशस्वी सात्यकि ने आपकी सेना की तरफ ऐसे देखा, जैसे सिंह मृगों के समूह की तरफ देखता है। हे राजन्! फिर धर्मराज के आदेश से, अर्जुन को देखने की इच्छा से, सात्यकि सहसा आपकी सेना की तरफ बढ़े।

अठ्ठावनवाँ अध्याय : सात्यकि का द्रोणाचार्य और कृतवर्मा से युद्ध, काम्बोजों की सेना के समीप पहुँचना।

ततः शब्दो महानासीद् युयुधानरथं प्रति।
आकीर्यमाणा धावन्ती तव पुत्रस्य वाहिनी॥ १॥
सात्वतेन महाराज शतधाभिव्यशीर्यत।
तस्यां विदीर्यमाणायां शिनेः पौत्रो महारथः॥ २॥
सप्त वीरान् महेष्वासानग्रानीकेष्वपोथयत्।
अथान्यानपि राजेन्द्र नानाजनपदेश्वरान्॥ ३॥
शरैरनलसंकाशैर्निन्ये वीरान् यमक्षयम्।
तं तथाद्भुतकर्माणं शरसम्पातवर्षिणम्॥ ४॥
न केचनाभ्यधावन् वै सात्यकिं तव सैनिकाः।
ते भीता मृद्यमानाश्च प्रमृष्टा दीर्घबाहुना॥ ५॥
आयोधनं जहुर्वीरा दृष्ट्वा तमतिमानिनम्।

हे महाराज! तब सात्यकि के रथ के पास महान् कोलाहल होने लगा। सात्यकि के बाणों से आच्छादित होकर भागती हुई आपके पुत्रों की सेना सैंकड़ों हिस्सों में फट गयी। उस सेना के तित्तर बित्तर होने पर शिनि के पौत्र महारथी सात्यकि ने सात महाधनुर्धर वीरों को सेना के मुहाने पर मार दिया। हे राजेन्द्र! उन्होंने अपने अग्नि के समान बाणों से दूसरे औरभी अनेक देशों के वीर राजाओं को मृत्युलोक में पहुँचा दिया। बाणों की धाराओं को बरसानेवाले, अद्भुत कर्म को करने वाले उन सात्यकि पर तब आपके किसीभी सैनिक ने आक्रमण नहीं किया। उस दीर्घबाहु के द्वारा रौंदे हुए और रौंदे जाते हुए वे वीर इतनेभयभीत होगये कि वे उस अत्यन्तमानी वीर को देखते ही युद्धस्थल को छोड़ देते थे।

नानाविधानि सैन्यानि तव हत्वा तु सात्वतः॥ ६॥
प्रविष्टस्तावकं सैन्यं द्रावयित्वा चमूं भृशम्।
ततस्तेनैव मार्गेण येन यातो धनंजयः॥ ७॥
इयेष सात्यकिर्गन्तुं ततो द्रोणेन वारितः।
भारद्वाजं समासाद्य युयुधानश्च सात्यकिः॥ ८॥
न न्यवर्तत संक्रुद्धो वेलामिव जलाशयः।
निवार्य तु रणे द्रोणो युयुधानं महारथम्॥ ९॥
विव्याध निशितैर्बाणैः पञ्चभिर्मर्मभेदिभिः।

सात्यकि इसप्रकार आपकी अनेकप्रकार की सेनाओं का बहुत विनाशकर और उनको भगाकर उनमें घुस गये। जिस मार्ग से अर्जुन गये थे, उसी मार्ग से सात्यकि भी जाना चाह रहे थे कि द्रोणाचार्य ने उन्हें आकर रोक दिया। द्रोणाचार्य को अपने सामने देखकर अत्यन्त क्रोध में भरे हुए सात्यकि वहाँ रुक तो गये पर पीछे नहीं लौटे, जैसे जल का भण्डार किनारे पर रुक कर भी वापिस नहीं होता। द्रोणाचार्य ने युद्धस्थल में महारथी सात्यकि को रोककर पाँच तीखे मर्मभेदी बाणों से उन्हें बींधा।

सात्यकिस्तु रणे द्रोणं राजन् विव्याध सप्तभिः॥ १०॥
हेमपुङ्खैः शिलाधौतैः कङ्कबर्हिणवाजितैः।
तं षड्भिः सायकैर्द्रोणः साश्वयन्तारमार्दयत्॥ ११॥
स तं न ममृषे द्रोणं युयुधानो महारथः।
सिंहनादं ततः कृत्वा द्रोणं विव्याध सात्यकिः॥ १२॥
दशभिः सायकैश्चान्यैः षड्भिरष्टाभिरेव च।
युयुधानः पुनर्द्रोणं विव्याध दशभिः शरैः॥ १३॥
एकेन सारथिं चास्य चतुर्भिश्चतुरो हयान्।
ध्वजमेकेन बाणेन विव्याध युधि मारिष॥ १४॥

हे राजन्! सात्यकि ने तब युद्ध में द्रोणाचार्य को सात शिला पर साफ किये हुए, कंक और मोर के पंखों से युक्त बाणों से बींधा। तब द्रोणाचार्य ने सात्यकि को सारथि और घोड़ोंसहित छः बाणों से पीड़ित किया, जिसे वे महारथी सहन न कर सके, फिर सात्यकि ने सिंहनाद करके द्रोणाचार्य को दस, छः और आठ बाणों से चोट पहुँचायी। सात्यकि ने द्रोणाचार्य को फिर दस बाणों से बींधा। उन्होंने एक से सारथि को, चार से चारों घोड़ों को और हे मान्यवर! एक बाण से उनके ध्वज को बींध दिया।

तं द्रोणः साश्वयन्तारं सरथध्वजमाशुगैः।
त्वरन् प्राच्छादयद् बाणैः शलभानामिव व्रजैः॥ १५॥
तथैव युयुधानोऽपि द्रोणं बहुभिराशुगैः।
आच्छादयदसम्भ्रान्तस्ततो द्रोण उवाच ह॥ १६॥
तवाचार्यो रणं हित्वा गतः कापुरुषो यथा।
युध्यमानं च मां हित्वा प्रदक्षिणमवर्तत॥ १७॥
त्वं हि मे युध्यतो नाद्य जीवन् यास्यसि माधव।
यदि मां त्वं रणे हित्वा न यास्याचार्यवद् द्रुतम्॥ १८॥

तब द्रोणाचार्य ने शीघ्रता से सात्यकि को घोड़ों, रथ और ध्वजासहित टिड्डीदल के समान शीघ्रगामी बाणों से आच्छादित कर दिया। इसीप्रकार सात्यकि ने भी अपने शीघ्रगामी बहुतसे बाणों से द्रोणाचार्य को ढक दिया। तब द्रोणाचार्य ने कहा कि तुम्हारे गुरु तो कायर पुरुषों की तरह युद्ध को छोड़कर चले गये। तुम भी यदि अपने गुरु की तरह मुझे युद्ध में छोड़कर जल्दी भाग नहीं जाओगे, तो मुझ से युद्ध करते हुए जीवित बचकर नहीं जा सकते।

सात्यकिरुवाच

धनंजयस्य पदवीं धर्मराजस्य शासनात्।
गच्छामि स्वस्ति ते ब्रह्मन् न मे कालात्ययो भवेत्॥ १९॥
आचार्यानुगतो मार्गः शिष्यैरन्वास्यते सदा।
तस्मादेव व्रजाम्याशु यथा मे स गुरुर्गतः॥ २०॥
एतावदुक्त्वा शैनेय आचार्यं परिवर्जयन्।
प्रयातः सहसा राजन् सारथिं चेदमब्रवीत्॥ २१॥
द्रोणः करिष्यते यत्नं सर्वथा मम वारणे।
यत्तो याहि रणे सूत शृणु चेदं वचः परम्॥ २२॥

तब सात्यकि ने कहा कि युधिष्ठिर के आदेश से मैं अर्जुन के मार्ग पर जारहा हूँ। हे ब्रह्मन्! आपका कल्याण हो। मेरा समय व्यतीत न होजाये, इसलिये मैंभी उसीतरह से चला जाता हूँ, जैसे मेरे गुरु गये हैं क्योंकि शिष्य सदा गुरु के मार्ग का ही अनुसरण करते हैं। ऐसा कहकर सात्यकि तुरन्त आचार्य को छोड़कर आगे चल दिये और हे राजन्! सारथि से बोले कि द्रोणाचार्य मुझे रोकने के लिये पूरीतरह से प्रयत्न करेंगे, इसलिये तुम सावधानी से युद्धक्षेत्र में चलो। हे सूत! तुम मेरी दूसरी बात भी सुन लो।

एतदालोक्यते सैन्यमावन्त्यानां महाप्रभम्।
अस्यानन्तरतस्त्वेतद् दाक्षिणात्यं महद् बलम्॥ २३॥
तदनन्तरमेतच्च बाह्लिकानां महद् बलम्।
बाह्लिकाभ्याशतो युक्तं कर्णस्य च महद् बलम्॥ २४॥
अन्योन्येन हि सैन्यानि भिन्नान्येतानि सारथे।
अन्योन्यं समुपाश्रित्य न त्यक्ष्यन्ति रणाजिरम्॥ २५॥
एतदन्तरमासाद्य चोदयाश्वान् प्रहृष्टवत्।
मध्यमं जवमास्थाय वह मामत्र सारथे॥ २६॥
बाह्लिका यत्र दृश्यन्ते नानाप्रहरणोद्यताः।

यह महान् प्रभाववाली अवन्तीदेशीयों की सेना दिखाई देरही है। इसके बाद दाक्षिणात्यों की विशाल सेना है। उसके पश्चात् वह बाह्लीकों की महान् सेना है। हे सारथि! ये सारी सेनाएँ एकदूसरी से भिन्न हैं। एकदूसरी का सहारा लेकर ये डटी हुई हैं और युद्धक्षेत्र का त्याग नहीं करेंगी। तुम प्रसन्नता के साथ इन्हीं के बीच में रहकर अपने घोड़ों को आगे बढ़ाओ। हे सारथि! तुम मध्यमवेग का सहारा लेकर मुझे उधर लेचलो, जहाँ अनेकप्रकार के आयुधों के साथ तैयार हुए बाह्लीकदेश के सैनिक खड़े हुए हैं।

दाक्षिणात्याश्च बहवः सूतपुत्रपुरोगमाः॥ २७॥
हस्त्यश्वरथसम्बाधं यच्चानीकं विलोक्यते।
नानादेशसमुत्थैश्च पदातिभिरधिष्ठितम्॥ २८॥

एतावदुक्त्वा यन्तारं ब्राह्मणं परिवर्जयन्।
स व्यतीयाय यत्रोग्रं कर्णस्य च महद् बलम्॥ २९॥
तं द्रोणोऽनुययौ क्रुद्धो विकिरन् विशिखान् बहून्।
युयुधानं महाभागं गच्छन्तमनिवर्तिनम्॥ ३०॥

जिधर कर्ण को आगे करके बहुत से दक्षिण देशीय सैनिक खड़े हुए हैं, जो सेना अनेक देशों से आये पैदलसैनिकों से युक्त है और जहाँ हाथी, घोड़ों और रथों की भीड़ है, तुम मुझे वहाँ भी ले चलो। ऐसा सारथि से कहकर द्रोणाचार्य को छोड़ते हुए, वे उस स्थान पर जापहुँचे, जहाँ कर्ण की भयंकर और विशाल सेना खड़ी हुई थी। तब युद्ध से पीछे न हटनेवाले महाभाग सात्यकि को आगे जाते हुए देखकर द्रोणाचार्य क्रोध में भरकर बहुत से बाणों को छोड़ते हुए उनके पीछे दौड़े।

कर्णस्य सैन्यं सुमहदभिहत्य शितैः शरैः।
प्राविशद् भारतीं सेनामपर्यन्तां च सात्यकिः॥ ३१॥
प्रविष्टे युयुधाने तु सैनिकेषु द्रुतेषु च।
अमर्षी कृतवर्मा तु सात्यकिं पर्यवारयत्॥ ३२॥
तमापतन्तं विशिखैः षड्भिराहत्य सात्यकिः।
चतुर्भिश्चतुरोऽस्याश्वानाजघानाशु वीर्यवान्॥ ३३॥
ततः पुनः षोडशभिर्नतपर्वभिराशुगैः।
सात्यकिः कृतवर्माणं प्रत्यविध्यत् स्तनान्तरे॥ ३४॥

उधर कर्ण की अत्यन्तविशाल सेना को अपने तीखे बाणों से विदीर्ण करते हुए सात्यकि भरतवंशियों की उस अपार सेना में घुस गये। तब सात्यकि के सेना में घुस जाने और सैनिकों के इधरउधर भागने पर अमर्षशील कृतवर्मा ने सात्यकि को जा घेरा। तब उसे आक्रमण करता देखकर पराक्रमी सात्यकि ने शीघ्रता से उसे छः बाणों की चोट पहुँचाकर चार बाणों से उसके चारों घोड़ों को घायल कर दिया। इसके पश्चात् सात्यकि ने फिर झुकी गाँठवाले सोलह बाणों से कृतवर्मा की छाती पर प्रहार किया।

स ताड्यमानो विशिखैर्बहुभिस्तिग्मतेजनैः।
सात्वतेन महाराज कृतवर्मा न चक्षमे॥ ३५॥
स वत्सदन्तं संधाय जिह्मगानलसंनिभम्।
आकृष्य राजन्नाकर्णाद् विव्याधोरसि सात्यकिम्॥ ३६॥
अथास्य बहुभिर्बाणैरच्छिनत् परमास्त्रवित्।
समार्गणगणं राजन् कृतवर्मा शरासनम्॥ ३७॥
विव्याध च रणे राजन् सात्यकिं सत्यविक्रमम्।
दशभिर्विशिखैस्तीक्ष्णैरभिक्रुद्धः स्तनान्तरे॥ ३८॥

हे महाराज! तब सात्यकि के द्वारा बहुतसे तीखे बाणों से चोट खाता हुआ कृतवर्मा सहन नहीं कर सका। उसने टेढ़ी चाल चलनेवाले अग्नि के समान तेजस्वी वत्सदन्त नाम के बाण का संधानकर और कानतक धनुष को खींचकर सात्यकि की छाती पर प्रहार किया। इसके पश्चात् हे राजन्! अस्त्रविद्या के परमज्ञाता कृतवर्मा ने बहुतसे बाणों से सात्यकि के बाणों और धनुष को काट दिया। हे राजन्! फिर क्रोध में भरे हुए कृतवर्मा ने युद्ध में दस तीखे बाणों से सत्यविक्रमी सात्यकि की छाती पर प्रहार किया।

ततः प्रशीर्णे धनुषि शक्त्या शक्तिमतां वरः।
जघान दक्षिणं बाहुं सात्यकिः कृतवर्मणः॥ ३९॥
ततोऽन्यत् सुदृढं चापं पूर्णमायम्य सात्यकिः।
व्यसृजद् विशिखांस्तूर्णं शतशोऽथ सहस्रशः॥ ४०॥
सरथं कृतवर्माणं समन्तात् पर्यवारयत्।
छादयित्वा रणे राजन् हार्दिक्यं स तु सात्यकिः॥ ४१॥
अथास्य भल्लेन शिरः सारथेः समकृन्तत।
ततस्ते यन्तृरहिताः प्राद्रवंस्तुरगा भृशम्॥ ४२॥

तब धनुष के कट जाने पर शक्तिवालों में श्रेष्ठ सात्यकि ने एक शक्ति के द्वारा कृतवर्मा की दायीं बाँह पर प्रहार किया। फिर सात्यकि ने एक दूसरे सुदृढ़ धनुष को लेकर और उसे पूरीतरह से खींचकर शीघ्रता से सैंकड़ों हजारों बाणों को छोड़ा और रथसहित कृतवर्मा को सबतरफ से आच्छादित कर दिया। हे राजन्! कृतवर्मा को बाणों से आच्छादित कर सात्यकि ने एक भल्ल से उसके सारथि का सिर काट दिया। तब सारथि से रहित उसके घोड़े तेजी से इधरउधर भागने लगे।

अथ भोजस्तु सम्भ्रान्तो निगृह्य तुरगान् स्वयम्।
तस्थौ वीरो धनुष्पाणिस्तत् सैन्यान्यभ्यपूजयन्॥ ४३॥
युयुधानोऽपि राजेन्द्र भोजानीकाद् विनिःसृतः।
प्रययौ त्वरितस्तूर्णं काम्बोजानां महाचमूम्॥ ४४॥
स तत्र बहुभिः शूरैः संनिरुद्धो महारथैः।
न चचाल तदा राजन् सात्यकिः सत्यविक्रमः॥ ४५॥
संधाय च चमूं द्रोणो भोजे भारं निवेश्य च।
अभ्यधावद् रणे यत्तो युयुधानं युयुत्सया॥ ४६॥

तब कृतवर्मा पहलेतो घबरा गया, फिर उसने स्वयंही घोड़ों को काबू में किया और वह वीर पुनः धनुष हाथ में लेकर डट गया। उसके इस कार्य की सैनिकों ने बड़ी प्रशंसा की। हे राजेन्द्र! इसी बीच सात्यकि कृतवर्मा की सेना से बाहर निकल कर शीघ्रता से काम्बोजों की विशाल सेना के समीप जापहुँचे। वहाँ बहुतसे महारथी शूरवीरों ने उन्हें रोक दिया, पर फिरभी हे राजन्! सत्यविक्रमी सात्यकि विचलित नहीं हुए। उधर अपनी सेना को व्यवस्थितकर और उसका भार कृतवर्मा पर सौंपकर द्रोणाचार्य सात्यकि से लड़ने की इच्छा से तैयार होकर उसके पीछे दौड़े।

उनसठवाँ अध्याय : सात्यकि द्वारा त्रिगर्तों की गजसेना का नाश, जलसंध का वध।

दृष्ट्वा तु तव तत् सैन्यं रथाश्वद्विपसंकुलम्।
पदातिजनसम्पूर्णमब्रवीत् सारथिं पुनः॥ १॥
यदेतन्मेघसंकाशं द्रोणानीकस्य सव्यतः।
सुमहत् कुञ्जरानीकं यस्य रुक्मरथो मुखम्॥ २॥
एते हि बहवः सूत दुर्निवाराश्च संयुगे।
दुर्योधनसमादिष्टा मदर्थे त्यक्तजीविताः॥ ३॥
मामेवाभिमुखा वीरा योत्स्यमाना व्यवस्थिताः।
अत्र मां प्रापय क्षिप्रमश्वांश्चोदय सारथे॥ ४॥

फिर आपकी रथों, घोड़ों और हाथियों तथा पैदलों से भरी हुई सेना को देखकर सात्यकि ने अपने सारथि से कहा कि द्रोणाचार्य की सेना की बायींतरफ जो बादलों के समान विशाल हाथियों की सेना है, जिसके आगे रुक्मरथ खड़ा हुआ है, हे सूत! इसमें बहुतसे ऐसे शूरवीर हैं, जिनका युद्ध में निवारण कठिन है, जो दुर्योधन के आदेश से अपने प्राणों का मोह छोड़कर मुझसे युद्ध करने के लिये खड़े हैं। ये वीर मेरी तरफही मुख करके युद्ध के लिये तैयार होकर खड़े हैं। हे सारथि! घोड़ों को जल्दी हाँको और मुझे वहीं पहुँचा दो।

ततः प्रायाच्छनैः सूतः सात्वतस्य मते स्थितः।
रथेनादित्यवर्णेन भास्वरेण पताकिना॥ ५॥
आपतन्तं रणे तं तु शङ्खवर्णैर्हयोत्तमैः।
परिवव्रुस्ततः शूरा गजानीकेन सर्वतः॥ ६॥
किरन्तो विविधांस्तीक्ष्णान् सायकाँल्लघुवेधिनः।
सात्वतो निशितैर्बाणैर्गजानीकमयोधयत्॥ ७॥
पर्वतानिव वर्षेण तपान्ते जलदो महान्।
वज्राशनिसमस्पर्शैर्वध्यमानाः शरैर्गजाः॥ ८॥
प्राद्रवन् रणमुत्सृज्य शिनिवीरसमीरितैः।

तब सात्यकि की सम्मति के अनुसार सारथि सूर्य के समान प्रकाशित पताकावाले रथ को लेकर धीरे धीरे उधरही बढ़ा। तब शंख के समान श्वेत रंग के उत्तम घोड़ों के द्वारा युद्धभूमि में आते हुए उस सात्यकि को अपनी हाथी सेना के द्वारा, शीघ्रता से लक्ष्यवेध करनेवाले उन शूरवीरों ने विविधप्रकार के तीखे बाणों कीं वर्षा करते हुए चारोंतरफ से घेर लिया। तब सात्यकि ने भी अपने तीखे बाणों के द्वारा उस हाथीसेना के साथ उसीप्रकार युद्ध आरम्भ कर दिया जैसे ग्रीष्मऋतु के अन्त में बादल पर्वतों पर जल की धारा बरसा रहे हों। सात्यकि के द्वारा छोड़े हुए वज्र और विद्युत् के समान स्पर्श वाले बाणों से मारे जाते हुए वे हाथी तब युद्धभूमि को छोड़कर भागने लगे।

शीर्णदन्ता विरुधिरा भिन्नमस्तकपिण्डिकाः॥ ९॥
विशीर्णकर्णास्यकरा विनियन्तृपताकिनः।
सम्भिन्नमर्मघण्टाश्च विनिकृत्तमहाध्वजाः॥ १०॥
हतारोहा दिशो राजन् भेजिरे भ्रष्टकम्बलाः।
रुवन्तो विविधान् नादान् जलदोपमनिः स्वनाः॥ ११॥
नाराचैर्वत्सदन्तैश्च भल्लैरञ्जलिकैस्तथा।
क्षुरप्रैरर्धचन्द्रैश्च सात्वतेन विदारिताः॥ १२॥
क्षरन्तोऽसृक् तथा मूत्रं पुरीषं च प्रदुद्रुवुः।

जिनके दाँत टूट गये थे, जो खून बहा रहे थे, जिनके मस्तक और कुम्भस्थल फट गये थे, जिनके कान, मुख और सूँड छिन्न होगये थे, जो महावत और ध्वजों से विहीन होगये थे, जिनके सवार मारे गये थे और जिनकी झूल खिसक गयी थीं हे राजन्! ऐसे हाथी सारी दिशाओं में भागने लगे। वे बादलों की गर्जना के समान अनेकप्रकार से चिंघाड़ रहे थे।

सात्यकि के द्वारा नाराचों, वत्सदन्तों, भल्लों, अंजलिकों, क्षुरप्रों, और अर्धचन्द्राकार बाणों की मार से विदीर्ण किये हुए वे हाथी खून बहाते हुए तथा मलमूत्र छोड़ते हुए भाग रहे थे।

बभ्रमुश्च स्खलुश्चान्ये पेतुर्मम्लुस्तथापरे॥ १३॥
एवं तत् कुञ्जरानीकं युयुधानेन पीडितम्।
शरैरग्न्यर्कसंकाशैः प्रदुद्राव समन्ततः॥ १४॥
तस्मिन् हते गजानीके जलसंधो महाबलः।
यत्तः सम्प्रापयन्नागं रजताश्वरथं प्रति॥ १५॥
तमापतन्तं सहसा मागधस्य गजोत्तमम्।
सात्यकिर्वारयामास वेलेव मकरालयम्॥ १६॥

उनमें से कुछ हाथी चक्कर काट रहे थे। कुछ लड़खड़ा रहे थे, कुछ गिर पड़े थे, कुछ दूसरे पीड़ा के कारण शिथिल होरहे थे। इसप्रकार सात्यकि के सूर्य और अग्नि के समान बाणों से पीड़ित वह हाथीसेना सबतरफ भाग रही थी। उस हाथी सेना के मारे जाने पर महाबली जलसंध युद्ध के लिये तैयार होकर सात्यकि के चाँदी के समान घोड़ों वाले रथ के समीप अपने हाथी को लेआया। मगधवीर के अचानक अपनीतरफ आते हुए उस उत्तम हाथी को तब सात्यकि ने उसीप्रकार रोक दिया, जैसे तटभूमि सागर की लहरों को रोक देती है।

नागं निवारितं दृष्ट्वा शैनेयस्य शरोत्तमैः।
अक्रुद्ध्यत रणे राजन् जलसंधो महाबलः॥ १७॥
ततः क्रुद्धो महाराज मार्गणैर्भारसाधनैः।
अविध्यत शिनेः पौत्रं जलसंधो महोरसि॥ १८॥
ततोऽपरेण भल्लेन पीतेन निशितेन च।
अस्यतो वृष्णिवीरस्य निचकर्त शरासनम्॥ १९॥
सात्यकिं छिन्नधन्वानं प्रहसन्निव भारत।
अविध्यन्मागधो वीरः पञ्चभिर्निशितैः शरैः॥ २०॥

हे राजन्! तब सात्यकि के उत्तम बाणों से अपने उत्तम हाथी को रुका हुआ देखकर महाबली जलसंध युद्धस्थल में क्रुद्ध होगया। हे महाराज! फिर क्रुद्ध होकर उसने भार को सहन करने में समर्थ बाणों के द्वारा शिनि के पौत्र सात्यकि की विशाल छाती पर प्रहार किया। फिर उसने दूसरे पानीदार तीखे भल्ल से बाण फैंकते हुए सात्यकि के धनुष को काट दिया। हे भारत! फिर धनुष कटे हुए उस सात्यकि को मागधवीर ने हँसते हुए से पाँच तीखे बाणों से बींध दिया।

स विद्धो बहुभिर्बाणैर्जलसंधेन वीर्यवान्।
नाकम्पत महाबाहुस्तदद्भुतमिवाभवत्॥ २१॥
अचिन्तयन् वै स शरान्नात्यर्थं सम्भ्रमाद् बली।
धनुरन्यत् समादाय तिष्ठ तिष्ठेत्युवाच ह॥ २२॥
एतावदुक्त्वा शैनेयो जलसंधं महोरसि।
विव्याध षष्ट्या सुभृशं शराणां प्रहसन्निव॥ २३॥
क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन मुष्टिदेशे महद् धनुः।
जलसंधस्य चिच्छेद विव्याध च त्रिभिः शरैः॥ २४॥

जलसंध के द्वारा बहुतसे बाणों से घायल होने परभी वह पराक्रमी महाबाहु विचलित नहीं हुआ, यह एक आश्चर्य की बात थी। उसके बाणों की परवाह न करते हुए और अधिक भ्रम में न पड़ते हुए उस बलवान् ने दूसरे धनुष को लेकर उससे कहा कि ठहर, ठहर। ऐसा कहकर सात्यकि ने हँसते हुए से जलसंध की विशाल छाती पर साठ बाणों के वर्षा करते हुए जोर से प्रहार किया। उसने अत्यन्ततीखे क्षुरप्र से जलसंध के विशाल धनुष को मुट्ठी के स्थान पर से काट दिया और उसे तीन बाणों से बींध भी दिया।

जलसंधस्तु तत् त्यक्त्वा सशरं वै शरासनम्।
तोमरं व्यसृजत् तूर्णं सात्यकिं प्रति मारिष॥ २५॥
स निर्भिद्य भुजं सव्यं माधवस्य महारणे।
अभ्यगाद् धरणीं घोरः श्वसन्निव महोरगः॥ २६॥
निर्भिन्ने तु भुजे सव्ये सात्यकिः सत्यविक्रमः।
त्रिंशद्भिर्विशिखैस्तीक्ष्णैर्जलसंधमताडयत्॥ २७॥
प्रगृह्य तु ततः खड्गं जलसंधो महाबलः।
आर्षभं चर्म च महच्छतचन्द्रकसंकुलम्॥ २८॥
आविध्य च ततः खड्गं सात्वतायोत्ससर्ज ह।

हे मान्यवर! फिर जलसंध ने उस धनुषबाण को छोड़कर सात्यकि के ऊपर एक तोमर फैंका। वह तोमर फुफकारते हुए विशाल सर्प के समान सात्यकि की बाँयीबाँह को घायल करता हुआ भूमि में धँस गया। तब बायींभुजा के घायल होने पर सत्यविक्रमी सात्यकि ने तीखे तीस बाणों की वर्षाकर जलसंध को चोट पहुँचायी। फिर महाबली जलसंध ने तलवार और साँड के चमड़े से बनी सौ चन्द्रिकाओं से चित्रित विशाल ढाल को लेकर और तलवार को घुमाकर, सात्यकि पर फैंका।

शैनेयस्य धनुश्छित्त्वा स खड्गो न्यपतन्महीम्॥ २९॥
अथान्यद् धनुरादाय सर्वकायावदारणम्।
विस्फार्य विव्यधे क्रुद्धो जलसंधं शरेण ह॥ ३०॥
ततः साभरणौ बाहू क्षुराभ्यां माधवोत्तमः।
सात्यकिर्जलसंधस्य चिच्छेद प्रहसन्निव॥ ३१॥
ततः सुदंष्ट्रं सुमहच्चारुकुण्डलमण्डितम्।
क्षुरेणास्य तृतीयेन शिरश्चिच्छेद सात्यकिः॥ ३२॥

वह तलवार सात्यकि के धनुष को तोड़कर भूमि पर गिर पड़ी। तब सबके शरीर को विदीर्ण करने वाले दूसरे धनुष को लेकर और उसे खींचकर क्रोध में भरे हुए सात्यकि ने जलसंध को एक बाण से बींध दिया। फिर हँसते हुए से उस माधवश्रेष्ठ सात्यकि ने दो क्षुर नाम के बाणों से जलसंध की दोनों आभूषणों से युक्त बाहें काट दीं। फिर सात्यकि ने उसके सुन्दर दाँतोंवाले, सुन्दर कुण्डलों से सुशोभित विशाल मस्तक को तीसरे क्षुर से काट गिराया।

एतस्मिन्नन्तरे राजन् द्रोणः शस्त्रभृतां वरः।
अभ्ययाज्जवनैरश्वैर्युयुधानं महारथम्॥ ३३॥
तमुदीर्णं तथा दृष्ट्वा शैनेयं नरपुङ्गवाः।
द्रोणनैव सह क्रुद्धाः सात्यकिं समुपाद्रवन्॥ ३४॥
ततः प्रववृते युद्धं कुरूणां सात्वतस्य च।
द्रोणस्य च रणे राजन् घोरं देवासुरोपमम्॥ ३५॥

हे राजन्! तभी शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ द्रोणाचार्य शीघ्रगामी घोड़ों के द्वारा महारथी सात्यकि का सामना करने को आगये। सात्यकि के वेग को इसप्रकार बढ़ते देखकर नरश्रेष्ठ दूसरे वीर भी क्रोध में भरकर द्रोणाचार्य के साथ उस पर टूट पड़े। फिर हे राजन्! कौरवों और द्रोणाचार्य का सात्यकि के साथ घोरयुद्ध देवासुर संग्राम की तरह होने लगा।

साठवाँ अध्याय : सात्यकि द्वारा दुर्योधन की पराजय।

ते किरन्तः शरव्रातान् सर्वे यत्ताः प्रहारिणः।
त्वरमाणा महाराज युयुधानमयोधयन्॥ १॥
तं द्रोणः सप्तसप्तत्या जघान निशितैः शरैः।
दुर्मर्षणो द्वादशभिर्दुःसहो दशभिः शरैः॥ २॥
विकर्णश्चापि निशितैस्त्रिंशद्भिः कङ्कपत्रिभिः।
विव्याध सव्ये पार्श्वे तु स्तनाभ्यामन्तरे तथा॥ ३॥
दुर्मुखो दशभिर्बाणैस्तथा दुःशासनोऽष्टभिः।
चित्रसेनश्च शैनेयं द्वाभ्यां विव्याध मारिष॥ ४॥

हे महाराज! वे सारे प्रहार करनेवाले योद्धा शीघ्रता के साथ बाणों की वर्षा करते हुए प्रयत्नपूर्वक सात्यकि के साथ युद्ध करने लगे। सात्यकि के ऊपर द्रोणाचार्य ने सतत्तर तीखे बाणों की, दुर्मर्षण ने बारह, दुःसह ने दस बाणों की वर्षाकर उन्हें घायल किया। विकर्ण ने भी तीखे तीस कंकपत्रवाले बाणों की वर्षाकर उनकी बायीं पसली और छाती पर चोट पहुँचायी। हे मान्यवर! फिर दुर्मुख ने दस, दुश्शासन ने आठ और चित्रसेन ने दो बाणों से सात्यकि को चोट पहुँचायी।

दुर्योधनश्च महता शरवर्षेण माधवम्।
अपीडयद् रणे राजञ्शूराश्चान्ये महारथाः॥ ५॥
सर्वतः प्रतिविद्धस्तु तव पुत्रैर्महारथैः।
तान् प्रत्यविध्यद् वार्ष्णेयः पृथक् पृथगजिह्मगैः॥ ६॥
भारद्वाजं त्रिभिर्बाणैर्दुःसहं नवभिः शरैः।
विकर्णं पञ्चविंशत्या चित्रसेनं च सप्तभिः॥ ७॥
दुर्मर्षणं द्वादशभिरष्टाभिश्च विविंशतिम्।
सत्यव्रतं च नवभिर्विजयं दशभिः शरैः॥ ८॥

दुर्योधन ने महान् बाणवर्षा के द्वारा तथा दूसरे और शूरवीर महारथियों ने भी सात्यकि को पीड़ित किया। आपके महारथी पुत्रों द्वारा सब ओर से घायल कर दिये जाने परभी सात्यकि ने भी उन्हें प्रत्युत्तर में अलग अलग सीधे जाने वाले बाणों से बींधा। उन्होंने द्रोणाचार्य को तीन, दुःसह को नौ, विकर्ण को पच्चीस, चित्रसेन को सात दुर्मर्षण को बारह, विविंशति को आठ, सत्यव्रत को नौ और विजय को दस बाणों की वर्षाकर पीड़ित किया।

राजानं सर्वलोकस्य सर्वलोकमहारथम्।
शरैरभ्याहनद् गाढं ततो युद्धमभूत् तयोः॥ ९॥
विमुञ्चन्तौ शरांस्तीक्ष्णान् संदधानौ च सायकान्।
अदृश्यं समरेऽन्योन्यं चक्रतुस्तौ महारथौ॥ १०॥
माधवस्तु रणे राजन् कुरुराजस्य धन्विनः।
धनुश्चिच्छेद समरे क्षुरप्रेण हसन्निव॥ ११॥

अथैनं छिन्नधन्वानं शरैर्बहुभिराचिनोत्।
अथान्यद् धनुरादय हेमपृष्ठं दुरासदम्॥ १२॥
विव्याध सात्यकिं तूर्णं सायकानां शतेन ह।

उन्होंने सबलोगों के राजा और संसार के विख्यात महारथी दुर्योधन को अपने बाणों से गहरी चोट पहुँचायी और फिर उनदोनों में युद्ध होने लगा। उन दोनों महारथियों ने तीखे बाणों का संधान करते और छोड़ते हुए एकदूसरे को अदृश्य कर दिया। हे राजन्! फिर सात्यकि ने हँसते हुए से क्षुरप्र के द्वारा धनुर्धर कुरुराज के धनुष को युद्ध में काट दिया। धनुष काटकर फिर उसने उसे बहुत सारे बाणों से भी भर दिया। तब सुनहरी पीठवाले दुर्धर्ष दुर्योधन ने दूसरे धनुष को लेकर शीघ्रता से सात्यकि को सौ बाणों की वर्षाकर घायल कर दिया।

सोऽतिविद्धो बलवता तव पुत्रेण धन्विना।
अमर्षवशमापन्नस्तव पुत्रमपीडयत्॥ १३॥
पीडितं नृपतिं दृष्ट्वा तव पुत्रा महारथाः।
सात्यकिं शरवर्षेण छादयामासुरोजसा॥ १४॥
स च्छाद्यमानो बहुभिस्तव पुत्रैर्महारथैः।
एकैकं पञ्चभिर्विद्ध्वा पुनर्विव्याध सप्तभिः॥ १५॥
दुर्योधनं च त्वरितो विव्याधाष्टभिराशुगैः।

तब आपके बलवान् धनुर्धर पुत्र के द्वारा अत्यन्त पीड़ित होकर सात्यकि ने भी अमर्ष के वश में होकर आपके पुत्र को पीड़ा दी। राजा को पीड़ित होते देखकर आपके महारथी पुत्रों ने सात्यकि को बलपूर्वक बाणवर्षा से आच्छादित कर दिया। आपके बहुतसारे महारथी पुत्रों से बाणों द्वारा आच्छादित सात्यकि ने तब एक एक को पाँच बाणों से बींधकर फिर सात सात बाणों से बींधा और दुर्योधन को शीघ्रतापूर्वक शीघ्रगामी आठ बाणों से बींध दिया।

प्रहसंश्चास्य चिच्छेद कार्मुकं रिपुभीषणम्॥ १६॥
नागं मणिमयं चैव शरैर्ध्वजमपातयत्।
हत्वा तु चतुरो वाहां श्चतुर्भिर्निशितैः शरैः॥ १७॥
सारथिं पातयामास क्षुरप्रेण महायशाः।
एतस्मिन्नन्तरे चैव कुरुराजं महारथम्॥ १८॥
अवाकिरच्छरैर्हृष्टो बहुभिर्मर्मभेदिभिः।
स वध्यमानः समरे शैनेयस्य शरोत्तमैः॥ १९॥
प्राद्रवत् सहसा राजन् पुत्रो दुर्योधनस्तव।
आप्लुतश्च ततो यानं चित्रसेनस्य धन्विनः॥ २०॥

फिर हँसते हुए उसने दुर्योधन के शत्रु को भयभीत करनेवाले धनुष को, मणिमय नाग से चिह्नित ध्वज को भी बाणों से काट गिराया। चार तीखे बाणों से दुर्योधन के चार घोड़ों को मारकर उस महायशस्वी ने क्षुरप्र से उसके सारथि को भी गिरा दिया। इसके पश्चात् उसने प्रसन्नता के साथ महारथी कुरुराज को बहुतसे मर्मभेदी बाणों से भर दिया। तब सात्यकि के उत्तम बाणों से युद्धक्षेत्र में मार खाते हुए हे राजन्! आपका पुत्र दुर्योधन एकदम वहाँ से भागा और धनुर्धर चित्रसेन के रथ पर चढ़ गया।

इकसठवाँ अध्याय : सात्यकि का द्रोणाचार्य से युद्ध। सात्यकि द्वारा सुदर्शन का वध।

ततो द्रोणः शिनेः पौत्रं चित्रैः सर्वायसैः शरैः।
त्रिभिराशीविषाकारैर्ललाटे समविध्यत॥ १॥
ततोऽस्य बाणानपरानिन्द्राशनिसमस्वनान्।
भारद्वाजोऽन्तरप्रेक्षी प्रेषयामास संयुगे॥ २॥
तान् द्रोणचापनिर्मुक्तान् दाशार्हः पततः शरान्।
द्वाभ्यां द्वाभ्यां सुपुङ्खाभ्यां चिच्छेद परमास्त्रवित्॥ ३॥
तामस्य लघुतां द्रोणः समवेक्ष्य विशाम्पते।
प्रहस्य सहसाविध्यत् त्रिंशता शिनिपुङ्गवम्॥ ४॥

तब द्रोणाचार्य ने सात्यकि के सिर को विषैले सर्पों के समान, सारे लोहे से बने हुए, विचित्रप्रकार के तीन बाणों से बींध दिया। अवसर को देखनेवाले द्रोणाचार्य ने फिर सात्यकि पर औरभी इन्द्र के वज्र के समान बाणों को युद्ध में चलाया। तब अस्त्र विद्या के परमवेत्ता सात्यकि ने द्रोणाचार्य के धनुष से छूटे हुए उन आते हुए बाणों को दो दो अच्छे पंखवाले बाणों से छिन्न कर दिया। हे प्रजानाथ! उसकी फुर्ती को देखकर द्रोणाचार्य ने हँसकर उस शिनिश्रेष्ठ को सहसा ही तीस बाणों की वर्षाकर बींध दिया।

पुनः पञ्चाशतेपूणां शितेन च समार्पयत्।
लघुतां युयुधानस्य लाघवेन विशेषयन्॥ ५॥

सात्यकिस्तु ततो द्रोणं नवभिर्नतपर्वभिः।
आजघान भृशं क्रुद्धो ध्वजं च निशितैः शरैः॥ ६॥
सारथिं च शतेनैव भारद्वाजस्य पश्यतः।
लाघवं युयुधानस्य दृष्ट्वा द्रोणो महारथः॥ ७॥
सप्तत्या सारथिं विद्ध्वा तुरगांश्च त्रिभिस्त्रिभिः।
ध्वजमेकेन चिच्छेद माधवस्य रथे स्थितम्॥ ८॥

उन्होंने फिर सात्यकि की फुर्ती से अधिक फुर्ती दिखाते हुए उसके ऊपर पचास बाणों की वर्षा की। तब सात्यकि ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर नौ झुकी गाँठ वाले बाणों से द्रोणाचार्य पर प्रहार किया और अपने तीखे बाणों से उनके ध्वज को भी चोट पहुँचायी। द्रोणाचार्य के देखते हुए उन्होंने उनके सारथि पर सौ बाणों की वर्षा की। तब सात्यकि की फुर्ती को देखकर महारथी द्रोणाचार्य ने सात्यकि के सारथि पर सत्तर बाणों की वर्षाकर उसके घोड़ों को तीन तीन बाणों से घायल कर दिया और एक बाण से सात्यकि के रथ पर विद्यमान ध्वज को काट दिया।

अथापरेण भल्लेन हेमपुङ्खेन पत्रिणा।
धनुश्चिच्छेद समरे माधवस्य महात्मनः॥ ९॥
सात्यकिस्तु ततः क्रुद्धो धनुस्त्यक्त्वा महारथः।
गदां जग्राह महतीं भारद्वाजाय चाक्षिपत्॥ १०॥
तामापतन्तीं सहसा पट्टबद्धामयस्मयीम्।
न्यवारयच्छरैर्द्रोणो बहुभिर्बहुरूपिभिः॥ ११॥
अथान्यद् धनुरादाय सात्यकिः सत्यविक्रमः।
विव्याध बहुभिर्वीरं भारद्वाजं शिलाशितैः॥ १२॥

इसके पश्चात् उन्होंने एक दूसरे सुनहरे पंखवाले भल्ल से मनस्वी सात्यकि के धनुष को युद्ध में काट दिया। तब महारथी सात्यकि ने क्रुद्ध होकर धनुष को छोड़कर एक बड़ी गदा को उठाया और उसे द्रोणाचार्य पर फैंक दिया। रेशमी वस्त्र से बँधी हुई लोहे की उस आती हुई गदा को द्रोणाचार्य ने बहुतसारे और बहुत प्रकार के बाणों के द्वारा व्यर्थ कर दिया। फिर सत्यविक्रमी सात्यकि ने दूसरे धनुष को उठाकर वीर द्रोणाचार्य को शिला पर तेज किये बहुतसे बाणों से घायल कर दिया।

स विद्ध्वा समरे द्रोणं सिंहनादममुञ्चत।
तं वै न ममृषे द्रोणः सर्वशस्त्रभृतां वरः॥ १३॥
ततः शक्तिं गृहीत्वा तु रुक्मदण्डामयस्मयीम्।
तरसा प्रेषयामास माधवस्य रथं प्रति॥ १४॥
अनासाद्य तु शैनेयं सा शक्तिः कालसंनिभा।
भित्त्वा रथं जगामोग्रा धरणीं दारुणस्वना॥ १५॥
ततो द्रोणं शिनेः पौत्रो राजन् विव्याध पत्रिणा।
दक्षिणं भुजमासाद्य पीडयन् भरतर्षभ॥ १६॥
द्रोणोऽपि समरे राजन् माधवस्य महद् धनुः।
अर्धचन्द्रेण चिच्छेद रथशक्त्या च सारथिम्॥ १७॥

उसने द्रोणाचार्य को युद्ध में घायलकर जोर से सिंहनाद किया, जिसे सब शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ द्रोणाचार्य ने सहन नहीं किया। फिर उन्होंने सुनहरे डण्डेवाली लोहे की शक्ति को लेकर उसे तेजी से सात्यकि के रथ के ऊपर फैंका। मृत्यु के समान उग्र और भयंकर आवाजवाली वह शक्ति सात्यकि के समीप पहुँचकर, उसके रथ को चोट पहुँचाकर भूमि में धँस गयी। हे भरतश्रेष्ठ राजन्! तब शिनि के पौत्र ने एक बाण से द्रोणाचार्य की दायीं बाँह को घायलकर उन्हें पीड़ित किया। हे राजन्! द्रोणाचार्य ने भी तब युद्ध में सात्यकि के विशाल धनुष को अर्धचद्राकार बाण से काट दिया और एक शक्ति से उनके सारथि को चोट पहुँचायी।

मुमोह सारथिस्तस्य रथशक्त्या समाहतः।
स रथोपस्थमासाद्य मुहूर्तं संन्यषीदत॥ १८॥
चकार सात्यकी राजन् सूतकर्मातिमानुषम्।
अयोधयच्च यद् द्रोणं रश्मीञ्जग्राह च स्वयम्॥ १९॥
ततः शरशतेनैव युयुधानो महारथः।
अविध्यद् ब्राह्मणं संख्ये हृष्टरूपो विशाम्पते॥ २०॥
तस्य द्रोणः शरान् पञ्च प्रेषयामास भारत।
ते घोराः कवचं भित्त्वा पपुः शोणितमाहवे॥ २१॥

रथशक्ति की चोट खाकर सारथि मूर्च्छित हो गया और कुछ देरतक रथ की बैठक में बैठा रहा। हे राजन्! तब सात्यकि ने वह अमानवीय कर्म करके दिखाया कि घोड़ों की लगाम भी स्वयं सँभाली और द्रोणाचार्य से युद्ध भी किया। हे प्रजानाथ! उस युद्ध में महारथी सात्यकि ने उत्साह के साथ द्रोणाचार्य पर सौ बाणों की वर्षाकर उन्हें घायल किया। हे भारत! तब द्रोणाचार्य ने उसे पाँच बाण मारे, जो उसके कवच को छेदकर उसका खून पीने लगे।

निर्विद्धस्तु शरैर्घोरै रक्रुद्ध्यत् सात्यकिर्भृशम्।
ततो द्रोणस्य यन्तारं निपात्यैकेषुणा भुवि॥ २२॥

अश्वान् व्यद्रावयद् बाणैर्हतसूतांस्ततस्ततः।
व्यूहस्यैव पुनर्द्वारं गत्वा द्रोणो व्यवस्थितः॥ २३॥
वातायमानैस्तैरश्वैर्नीतो वृष्णिशरार्दितैः।
पाण्डुपाञ्चालसम्भिन्नं व्यूहमालोक्य वीर्यवान्।
शैनेये नाकरोद् यत्नं व्यूहमेवाभ्यरक्षत॥ २४॥

उन भयानक बाणों में बिंधकर सात्यकि अत्यन्त क्रोध में भर गये। उन्होंने एक बाण से उनके सारथि को भूमि पर गिराकर, मरे सारथिवाले घोड़ों को अपने बाणों से पीड़ितकर इधरउधर भगा दिया। तब सात्यकि के बाणों से पीड़ित घोड़ों ने हवा से बातें करते हुए द्रोणाचार्य को व्यूह के द्वार पर पहुँचा दिया। वहाँ पाण्डवों और पाँचालों के द्वारा व्यूह को भंग किया हुआ देखकर वे पराक्रमी, सात्यकि को छोड़कर व्यूह की ही रक्षा करने लगे।

द्रोणं स जित्वा पुरुषप्रवीर-
स्तथैव हार्दिक्यमुखांस्त्वदीयान्।
प्रहस्य सूतं वचनं बभाषे
शिनिप्रवीरः कुरुपुङ्गवाग्य॥ २५॥
निमित्तमात्रं वयमद्य सूत
दग्धारयः केशवफाल्गुनाभ्याम्।
हतान् निहन्मेह नरर्षभेण
वयं सुरेशात्मसमुद्भवेन॥ २६॥
तमेवमुक्त्वा शिनिपुङ्गवस्तदा
महामृधे सोऽग्र्यधनुर्धरोऽरिहा।
किरन् समन्तात् सहसा शरान् बली
समापतच्छ्येन इवामिषं यथा॥ २७॥

हे कुरुश्रेष्ठों में अग्रणी! इसप्रकार द्रोणाचार्य, कृतवर्मा आदि आपके वीरों को जीतकर वह पुरुषश्रेष्ठ सात्यकि हँसकर सारथि से बोले कि हे सूत! ये शत्रु तो पहलेही अर्जुन और श्रीकृष्णजी के द्वारा पराजित किये जाचुके थे। हम तो वास्तव में इन्द्रपुत्र अर्जुन द्वारा मारे गये शत्रुओं को मार रहे हैं। सारथि से ऐसा कहकर धनुर्धरों में अग्रणी, शत्रुदमन, बलवान् सात्यकि उस महायुद्ध में बाणों की वर्षा करते हुए अचानक शत्रुओं पर ऐसे टूट पड़े जैसे बाजपक्षी माँस के ऊपर झपटता है।

अमर्षपूर्णस्त्वति- चित्रयोधी
शरासनी काञ्चनवर्मधारी।
सुदर्शनः सात्यकिमापतन्तं
न्यवारयद् राजवरः प्रसह्य॥ २८॥
शरैः सुतीक्ष्णैः शतशोऽभ्यविध्यत्
सुदर्शनः सात्वतमुख्यमाजौ।
अनागतानेव तु तान् पृषत्कां-
श्चिच्छेद राजञ्शिनिपुङ्गवोऽपि॥ २९॥

तब अमर्ष से युक्त अत्यन्त विचित्रप्रकार से युद्ध करनेवाले, धनुर्धर, सुनहरे कवच को धारण करनेवाले श्रेष्ठराजा सुदर्शन ने आक्रमण करते हुए सात्यकि को बलपूर्वक रोका। हे राजन्! सुदर्शन ने यदुवंशियों के प्रमुख सात्यकि को रणक्षेत्र में सैकड़ों बाणों से मारा पर शिनिश्रेष्ठ ने भी उन को अपने पास पहुँचने से पहले ही काट दिया।

तथैव शक्रप्रतिमोऽपि सात्यकिः
सुदर्शने यान् क्षिपति स्म सायकान्।
द्विधा त्रिधा तानकरोत् सुदर्शनः
शरोत्तमैः स्यन्दनवर्यमास्थितः॥ ३०॥
तान् वीक्ष्य बाणान् निहतांस्तदानीं
सुदर्शनः सात्यकिबाणवेगैः।
क्रोधाद् दिधक्षन्निव तिग्मतेजाः
शरानमुञ्चत् तपनीयचित्रान्॥ ३१॥
पुनः स बाणैस्त्रिभिरग्निकल्पै-
राकर्णपूर्णैर्निशितैः सुपुङ्खैः।
विव्याध देहावरणं विभिद्य
ते सात्यकेराविविशुः शरीरम्॥ ३२॥

उसीप्रकार इन्द्र के समान पराक्रमी सात्यकि भी सुदर्शन के ऊपर जिन जिन बाणों को फैंकते थे, अपने श्रेष्ठरथ पर बैठा हुआ सुदर्शन अपने उत्तम बाणों से उनके दो दो, तीन तीन टुकड़े कर देता था। उसके पश्चात् सात्यकि के बाणों के वेग से अपने बाणों को काटा जाता हुआ देखकर तेजस्वी राजा सुदर्शन ने क्रोध से मानों भस्म करने की इच्छा करते हुए सुनहरे रंग के विचित्र बाणों को उसके ऊपर छोड़ा। फिर उसने अग्नि के समान तीखे, सुन्दर पंखवाले, और कानतक खींचकर छोड़ेहुए तीन बाणों के द्वारा सात्यकि को चोट पहुँचायी। वे बाण सात्यकि के कवच को भेदकर उसके शरीर में घुस गये।

तथैव तस्यावनिपालपुत्रः
संधाय बाणैरपरैर्ज्वलद्भिः।
आजघ्निवांस्तान् रजतप्रकाशां-

श्चतुर्भिरश्वांश्चतुरः प्रसह्य॥ ३३॥
तथा तु तेनाभिहतस्तरस्वी
नप्ता शिनेरिन्द्रसमानवीर्यः।
सुदर्शनस्येषुगणैः सुतीक्ष्णै–
र्हयान् निहत्याशु ननाद नादम्॥ ३४॥

उसीप्रकार राजकुमार सुदर्शन ने दूसरे तेजस्वी चार बाणों का सन्धानकर सात्यकि के चारों चाँदी के समान घोड़ों पर बलपूर्वक प्रहार किया। तब उसके द्वारा घायल होकर, इन्द्र के समान पराक्रमी, वेगवान् सात्यकि ने अत्यन्ततीखे बाणों से सुदर्शन के घोड़ों को तुरन्त मारकर जोर से सिंहनाद किया।

अथास्य सूतस्य शिरो निकृत्य
भल्लेन शक्राशनिसंनिभेन।
सुदर्शनस्यापि शिनिप्रवीरः
क्षुरेण कालानलसंनिभेन॥ ३५॥
सकुण्डलं पूर्णशशिप्रकाशं
भ्राजिष्णु वक्त्रं विचकर्त देहात्।
ततो ययावर्जुन एव येन
निवार्य सैन्यं तव मार्गणौघैः॥ ३६॥

फिर उसके सारथि का सिर इन्द्र के वज्र के समान भल्ल से काटकर सात्यकि ने मृत्यु और अग्नि के समान क्षुर नाम के बाण से सुदर्शन के कुण्डलसहित, पूर्णचन्द्रमा के समान सुन्दर मुख को काटकर शरीर से अलग कर दिया। इसके पश्चात् वह अपने बाणसमूहों से आपकी सेना को हटाते हुए, जिस मार्ग से अर्जुन गया था, उसी मार्ग से चल दिये।

बासठवाँ अध्याय : सात्यकि द्वारा काम्बोजों तथा यवनों की सेना का संहार।

ततः स सात्यकिर्धीमान् महात्मा वृष्णिपुङ्गवः।
सुदर्शनं निहत्याजौ यन्तारं पुनरब्रवीत्॥ १॥
हस्तप्राप्तमहं मन्ये साम्प्रतं सव्यसाचिनम्।
निर्जित्य दुर्धरं द्रोणं सपदानुगमाहवे॥ २॥
हार्दिक्यं योधवर्यं च मन्ये प्राप्तं धनंजयम्।
न हि मे जायते त्रासो दृष्ट्वा सैन्यान्यनेकशः॥ ३॥
वह्नेरिव प्रदीप्तस्य वने शुष्कतृणोलपे।

उसके पश्चात् मनस्वी, धीमान्, वृष्णिश्रेष्ठ सात्यकि ने युद्धक्षेत्र में सुदर्शन को मारकर सारथि से यह कहा कि अपने सेवकों सहित दुर्धर्ष द्रोणाचार्य को युद्ध में जीतकर मैं यह समझता हूँ कि हम अर्जुन के समीप पहुँच गये। कृतवर्मा आदि श्रेष्ठ योधाओं को जीतकर भी मैं यही समझता हूँ कि मैं अर्जुन के समीप पहुँच गया। अब मुझे अनेकप्रकार की दूसरी सेनाओं को देखकर डर नहीं लगता जैसे सूखे तृण और लतावाले वन में प्रज्वलित अग्नि के सामने कोई बाधा नहीं होती।

पश्य पाण्डवमुख्येन यातां भूमिं किरीटिना॥ ४॥
पत्त्यश्वरथनागौघैः पतितैर्विषमीकृताम्।
द्रवते तद् यथा सैन्यं तेन भग्नं महात्मना॥ ५॥
रथैर्विपरिधावद्भिर्गजैरश्वैश्च सारथे।
कौशेयारुणसंकाशमेतदुद्धूयते रजः॥ ६॥
अभ्याशस्थमहं मन्ये श्वेताश्वं कृष्णसारथिम्।
स एष श्रूयते शब्दो गाण्डीवस्यामितौजसः॥ ७॥
शनैर्विश्रम्भयन्नश्वान् याहि यत्रारिवाहिनी।

पाण्डवप्रमुख अर्जुन जिस रास्ते से गये हैं, उसे देखो। गिरे हुए पैदल, हाथी, रथ और घोड़ों के समूहों से यहाँ की भूमि विषम अर्थात् ऊँचीनीची होगयी है। उस मनस्वी के द्वारा खदेड़ी हुई सेना इधरउधर भाग रही है। दौड़ते हुए रथों, हाथियों, और घोड़ों से हे सारथि! रेशम के समान लाल धूल ऊपर को उठ रही है। इसलिये मैं समझता हूँ कि कृष्ण जिनके सारथि हैं, वे अर्जुन समीप ही हैं। उस अमिततेजस्वी गाण्डीवधनुष की टंकार यहाँ सुनाई देरही है। तुम धीरे धीरे घोड़ों को आराम देते हुए उस ओर चलो जहाँ शत्रुओं की सेना खड़ी है।

दंशिताः क्रूरकर्माणः काम्बोजा युद्धदुर्मदाः॥ ८॥
शरबाणासनधरा यवनाश्च प्रहारिणः।
शकाः किराता दरदा बर्बरास्ताम्रलिप्तकाः॥ ९॥
अन्ये च बहवो म्लेच्छा विविधायुधपाणयः।
यत्रैते सतलत्राणाः सुयोधनपुरोगमाः॥ १०॥
मामेवाभिमुखाः सर्वे तिष्ठन्ति समरार्थिनः।

एतान् सरथनागाश्वान् निहत्याजौ सपत्तिनः॥ ११॥
इदं दुर्गं महाघोरं तीर्णमेवोपधारय।

जहाँ क्रूर कर्म करनेवाले, युद्ध में दुर्मद काम्बोज सैनिक कवच बाँधे खड़े हुए हैं। जहाँ धनुषबाण धारण किये, प्रहार करने में कुशल यवनलोग विद्यमान हैं। जहाँ शक, किरात, दरद, बर्बर, ताम्रलिप्तक तथा और बहुत से म्लेच्छसैनिक अनेक प्रकार के हथियारों को हाथ में लिये हुए खड़े हैं। जहाँ दस्ताने बाँधे हुए दुर्योधन आदि योद्धा युद्ध की इच्छा से मेरी तरफही मुख किये खड़े हुए हैं। इन रथ, हाथी, घोड़ों और पैदलोंसहित सेनाओं को युद्धभूमि में मारकर समझ लो कि हमने इस महान् घोरदुर्गम युद्ध को पार कर लिया।

सूत उवाच

न सम्भ्रमो मे वार्ष्णेय विद्यते सत्यविक्रम॥ १२॥
यद्यपि स्यात् तव क्रुद्धो जामदग्न्योऽग्रतः स्थितः।
द्रोणो वा रथिनां श्रेष्ठः कृपो मद्रेश्वरोऽपि वा॥ १३॥
तथापि सम्भ्रमो न स्यात् त्वामाश्रित्य महाभुज।

तब सारथि ने कहा कि हे वृष्णिवंशी सत्यविक्रमी! मुझे भय नहीं है। भलेही आपके आगे क्रोध में भरे हुए परशुराम ही क्यों न खड़े हों। हे महाबाहु! आपके सामने भलेही रथियों में श्रेष्ठ द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, या मद्रराज शल्य क्यों न खड़े हों, पर आपके आश्रय में मुझे भय नहीं होसकता।

त्वया सुबहवो युद्धे निर्जिताः शत्रुसूदन॥ १४॥
दंशिताः क्रूरकर्माणः काम्बोजा युद्धदुर्मदाः।
शरबाणासनधरा यवनाश्च प्रहारिणः॥ १५॥
शकाः किराता दरदा बर्बरास्ताम्रलिप्तकाः।
अन्ये च बहवो म्लेच्छा विविधायुधपाणयः॥ १६॥
न च मे सम्भ्रमः कश्चिद् भूतपूर्वः कथंचन।
किमुतैतत् समासाद्य धीरसंयुगगोष्पदम्॥ १७॥
आयुष्मन् कतरेण त्वां प्रापयामि धनंजयम्।

हे शत्रुसूदन! आपने पहले बहुतसारे कवच धारण किये, क्रूर कर्म करनेवाले युद्ध में दुर्मद काम्बोजों, प्रहार करने में कुशल, धनुषबाण धारण किये यवनों, शक, किरात, दरद, बर्बर, ताम्रलिप्तक तथा और दूसरे हाथों में विविध प्रकार के हथियार लिये हुए म्लेच्छों को युद्ध में जीता है। तब मुझे पहले कभी घबराहट नहीं हुई, फिर इस गाय के खुर के समान तुच्छ युद्धस्थल में क्या डर होसकता है? हे आयुष्मान! अब बताइये कि किस मार्ग से मैं आपको अर्जुन के पास पहुँचाऊँ?

सात्यकिरुवाच

मुण्डानेतान् हनिष्यामि दानवानिव वासवः॥ १८॥
प्रतिज्ञां पारयिष्यामि काम्बोजानेव मां वह।
अद्यैषां कदनं कृत्वा प्रियं यास्यामि पाण्डवम्॥ १९॥
अद्य द्रक्ष्यन्ति मे वीर्यं कौरवाः ससुयोधनाः।
मुण्डानीके हते सूत सर्वसैन्येषु चासकृत्॥ २०॥
अद्य कौरवसैन्यस्य दीर्यमाणस्य संयुगे।
श्रुत्वा विरावं बहुधा संतप्स्यति सुयोधनः॥ २१॥
अद्य पाण्डवमुख्यस्य श्वेताश्वस्य महात्मनः।
आचार्यस्य कृतं मार्गं दर्शयिष्यामि संयुगे॥ २२॥

सात्यकि ने कहा कि जैसे पहले इन्द्र ने दानवों को मारा था, वैसे ही मैं पहले इन सिर मुँडाये हुए काम्बोजों को ही मारूँगा और अपनी प्रतिज्ञा को पूरा करूँगा। इसलिये इन्हीं के पास मुझे ले चलो। आज इनका विनाश करके मैं अपने प्रिय पाण्डुपुत्र के पास जाऊँगा। आज दुर्योधनसहित सारे कौरव मेरे पराक्रम को देखेंगे। आज सारी सेनाओं में मुण्डितलोगों की सेना के अनेक बार मारे जाने पर और युद्धक्षेत्र में दूसरी कौरव सेना को भी विदीर्ण होते हुए देखकर, उनके आर्तनादों को सुनकर दुर्योधन को बड़ा सन्ताप होगा। आज मैं युद्धक्षेत्र में अपने आचार्य मनस्वी पाण्डवप्रमुख अर्जुन के बनाये हुए मार्ग को ही बनाकर दिखाऊँगा।

अद्य मद्बाणनिहतान् योधमुख्यान् सहस्रशः।
दृष्ट्वा दुर्योधनो राजा पश्चात्तापं गमिष्यति॥ २३॥
अद्य मे क्षिप्रहस्तस्य क्षिपतः सायकोत्तमान्।
अलातचक्रप्रतिमं धनुर्द्रक्ष्यन्ति कौरवाः॥ २४॥
अद्य मे क्रुद्धरूपस्य निघ्नतश्च वरान् वरान्।
द्विरर्जुनमिमं लोकं मंस्यतेऽद्य सुयोधनः॥ २५॥
एवमुक्तस्तदा सूतः शिक्षितान् साधुवाहिनः।
शशाङ्कसंनिकाशान् वै वाजिनो व्यनुदद् भृशम्॥ २६॥

आज मेरे बाणों से मारे गये हजारों प्रमुख योद्धाओं को देखकर दुर्योधन पश्चाताप करेगा। आज शीघ्रता से हाथ चलाकर बाण फैंकते हुए मेरे धनुष को कौरवलोग अलातचक्र के समान घूमता हुआ देखेंगे। आज मैं क्रोध में भरकर जब शत्रु के उत्तम उत्तम

योद्धाओं को छाँट छाँटकर मारूँगा तो दुर्योधन यह समझेगा कि संसार में दो अर्जुन उत्पन्न होगये हैं। ऐसा कहे जाने पर सारथि ने शिक्षित और उत्तम प्रकार से रथ को खींचने वाले, चन्द्रमा के समान श्वेत घोड़ों को तेजी से हाँका।

ते पिबन्त इवाकाशं युयुधानं हयोत्तमाः।
प्रापयन् यवनाञ्शीघ्रं मनःपवनरंहसः॥ २७॥
सात्यकिं ते समासाद्य पृतनास्वनिवर्तिनम्।
बहवो लघुहस्ताश्च शरवर्षैरवाकिरन्॥ २८॥
तेषामिषूनथास्त्राणि वेगवान् नतपर्वभिः।
अच्छिनत् सात्यकी राजन् नैनं ते प्राप्नुवञ्शराः॥ २९॥
रुक्मपुङ्खैः सुनिशितैर्गार्ध्रपत्रैरजिह्मगैः।
उच्चकर्त शिरांस्युग्रो यवनानां भुजानपि॥ ३०॥
शैक्यायसानि वर्माणि कांस्यानि च समन्ततः।

तब मन और वायु के समान वेगवाले उन उत्तम घोड़ों ने मानों आकाश को पीते हुए शीघ्रही सात्यकि को यवनों की सेना के समीप पहुँचा दिया। युद्ध से मुँह न मोड़नेवाले सात्यकि को सेनाओं में आया देखकर बहुतसे फुर्ती से हाथ चलानेवाले यवनों ने उनपर बाणों की वर्षा आरम्भ कर दी। हे राजन्! तब वेगवान् सात्यकि ने झुकी गाँठवाले बाणों से उन अस्त्रों और बाणों को काट दिया। वे बाण सात्यकि तक नहीं पहुँच पाये। अत्यन्त तीखे सुनहरे पंखवाले और गिद्ध के पंखों से युक्त सीधे जानेवाले बाणों से उस उग्रवीर ने सबतरफ यवनों के सिरों, हाथों, लाल लोहे तथा काँसे के बने कवचों को भी काट दिया।

ते हन्यमाना वीरेण म्लेच्छाः सात्यकिना रणे॥ ३१॥
शतशोऽभ्यपतंस्तत्र व्यसवो वसुधातले।
काम्बोजानां सहस्रैश्च शकानां च विशाम्पते॥ ३२॥
शबराणां किरातानां बर्बराणां तथैव च।
अगम्यरूपां पृथिवीं मांसशोणितकर्दमाम्॥ ३३॥
कृतवांस्तत्र शैनेयः क्षपयंस्तावकं बलम्।
दस्युनां सशिरस्त्राणैः शिरोभिर्लूनमूर्धजैः॥ ३४॥
दीर्घकूचैर्मही कीर्णा विबर्हैरण्डजैरिव।
रुधिरोक्षितसर्वाङ्गैस्तैस्तदायोधनं बभौ॥ ३५॥
कबन्धैः संवृतं सर्वं ताम्राभ्रैः खमिवावृतम्।

वीर सात्यकि के द्वारा मारे गये वे म्लेच्छ सैकड़ों की संख्या में निष्प्राण होकर युद्धक्षेत्र में भूमि पर गिर पड़े। हे प्रजानाथ! सात्यकि ने वहाँ आपकी सेना का संहार करते हुए हजारों काम्बोजों, शकों, शबरों, किरातों और बर्बरों की लाशों से, खून और माँस की कीचड़ से युक्त भूमि को चलने के लिये अगम्य बना दिया। उन लुटेरों के लम्बी दाढ़ीवाले और मुँडे सिरवाले, शिरस्त्राणोंसहित कटे हुए मस्तकों से भरी हुई वह भूमि पंखहीन पक्षियों से आच्छादितसी प्रतीत होरही थी। जिनके सारे अंग खून से लथपथ हो रहे थे, ऐसे धड़ों से भरा हुआ वह युद्धक्षेत्र लाल बादलों से भरे हुए आकाश के समान प्रतीत होरहा था।

अल्पावशिष्टाः सम्भग्नाः कृच्छ्रप्राणा विचेतसः॥ ३६॥
जिताः संख्ये महाराज युयुधानेन दंशिताः।
पार्ष्णिभिश्च कशाभिश्च ताडयन्तस्तुरङ्गमान्॥ ३७॥
जवमुत्तममास्थाय सर्वतः प्राद्रवन् भयात्।
काम्बोजसैन्यं विद्राव्य दुर्जयं युधि भारत॥ ३८॥
यवनानां च तत् सैन्यं शकानां च महद् बलम्।
ततः स पुरुषव्याघ्रः सात्यकिः सत्यविक्रमः।
प्रविष्टस्तावकाञ्जित्वा सूतं याहीत्यचोदयत्॥ ३९॥

उस समय उनमें से जो थोड़े से लोग बच गये थे, वे अपने समुदाय से भ्रष्ट होकर चेतनारहित होरहे थे। उन्होंने अपने प्राणों को कठिनाई से धारण किया हुआ था। हे महाराज! सात्यकि ने युद्ध में उनसारे कवचधारियों को जीत लिया था। वे बचे हुए भयभीत यवन कोड़ों से और एड़ियों से पसलियों पर अपने घोड़ों को मारते हुए तेजी से इधरउधर भाग रहे थे। हे भारत! दुर्जय काम्बोजों की सेना को, यवनों की सेना को और शकों की विशाल सेना को, युद्ध में जीतकर और भगाकर, उस सत्यविक्रमी, पुरुषव्याघ्र सात्यकि ने आपकी कौरवसेना में प्रवेश किया और सारथि से कहा कि आगे बढ़ो।

तिरेसठवाँ अध्याय : सात्यकि के आगे से दुर्योधन का पलायन।

दुर्योधनश्चित्रसेनो दुःशासनविविंशती।
शकुनिर्दुःसहश्चैव युवा दुर्धर्षणः क्रथः॥ १॥
अन्ये च बहवः शूराः शस्त्रवन्तो दुरासदाः।
पृष्ठतः सात्यकिं यान्तमन्वधावन्नमर्षिणः॥ २॥
अथ शब्दो महानासीत् तव सैन्यस्य मारिष।
मारुतोद्धूतवेगस्य सागरस्येव पर्वणि॥ ३॥
तानभिद्रवतः सर्वान् समीक्ष्य शिनिपुङ्गवः।
शनैर्याहीति यन्तारमब्रवीत् प्रहसन्निव॥ ४॥

तब दुर्योधन, चित्रसेन, दुश्शासन, विविंशति, शकुनि, दुस्सह, युवा दुर्धर्षण, क्रथ और दूसरे शस्त्रधारी दुर्धर्ष शूरवीर, अमर्ष में भरकर आगे बढ़ते हुए सात्यकि के पीछे दौड़े। हे मान्यवर! उस समय सेना में इसप्रकार महान् कोलाहल होने लगा, जैसे पूर्णिमा के दिन वायु के द्वारा वेगपूर्वक ऊपर उठने वाली सागर की लहरों में होता है। उन्हें सबतरफ से आक्रमण करते हुए देखकर सात्यकि ने हँसते हुए से सारथि से कहा कि धीरे चलो।

इदमेतत् समुद्धूतं धार्तराष्ट्रस्य यद् बलम्।
मामेवाभिमुखं तूर्णं गजाश्वरथपत्तिमत्॥ ५॥
एतद् बलार्णवं सूत वारयिष्ये महारणे।
पौर्णमास्यामिवोद्धूतं वेलेव मकरालयम्॥ ६॥
इत्येवं ब्रुवतस्तस्य सात्यकेरमितौजसः।
समीपे सैनिकास्ते तु शीघ्रमीयुर्युयुत्सवः॥ ७॥
जघान त्रिशतानश्वान् कुञ्जरांश्च चतुःशतान्।
लध्वस्त्रश्चित्रयोधी च प्रहसञ्शिनिपुङ्गवः॥ ८॥

दुर्योधन की हाथी, रथ, घोड़ों और पैदलों से भरी हुई यह सेना मेरी तरफही तीव्रता के साथ उमड़ रही है। हे सारथि! इस सेनारूपी समुद्र को महान् युद्ध में मैं उसीप्रकार रोक दूँगा जैसे पूर्णिमा के दिन उमड़ते हुए सागर को तट की भूमि रोक देती है। उस अमिततेजस्वी सात्यकि के ऐसा कहते हुएही युद्ध के इच्छुक वे सैनिक शीघ्रता से उनके समीप आगए। तब शीघ्रता से अस्त्र चलानेवाले और विचित्रप्रकार से युद्ध करनेवाले सात्यकि ने हँसते हुए तीन सौ घोड़ों और चार सौ हाथियों को मार गिराया।

मेघजालनिभं सैन्यं तव पुत्रस्य मारिष।
प्रत्यगृह्णाच्छिनेः पौत्रः शरैराशीविषोपमैः॥ ९॥
प्रच्छाद्यमानः समरे शरजालैः स वीर्यवान्।
असम्भ्रमन् महाराज तावकानवधीद् बहून्॥ १०॥
रथनागाश्वकलिलः पदात्यूर्मिसमाकुलः।
शैनेयवेलामासाद्य स्थितः सैन्यमहार्णवः॥ ११॥
सम्भ्रान्तनरनागाश्वमावर्तत मुहुर्मुहुः।
तत् सैन्यमिषुभिस्तेन वध्यमानं समन्ततः॥ १२॥

हे मान्यवर! आपके पुत्र की बादलों की घटा के समान सेना का सात्यकि ने अपने विषैले सर्पों के समान बाणों से अकेलेही सामना किया। युद्ध में बाणों की वर्षा से आच्छादित होते हुएभी उस पराक्रमी ने हे महाराज! बिना घबराये आपके बहुत से सैनिकों को मार दिया। रथ, हाथी, घोड़ों से भरा हुआ तथा पैदलरूपी लहरों से युक्त आपकी सेना रूपी वह सागर सात्यकिरूपी किनारे पर आकर ठहर गया। बाणों के द्वारा सबतरफ से मारी जाती हुई उस सेना के पैदल, हाथी और घोड़े घबराकर बारबार इधरउधर चक्कर काटने लगे।

अत्यर्जुनं शिनेः पौत्रो युध्यते पुरुषर्षभः।
वीतभीर्लाघवोपेतः कृतित्वं सम्प्रदर्शयन्॥ १३॥
ततो दुर्योधनो राजा सात्वतस्य त्रिभिः शरैः।
विव्याध सूतं निशितैश्चतुर्भिश्चतुरो हयान्॥ १४॥
सात्यकिं च त्रिभिर्विद्ध्वा पुनरष्टभिरेव च।

उस समय पुरुषश्रेष्ठ सात्यकि, भय से रहित और फुर्ती के साथ अर्जुन सेभी अधिक पराक्रम को दिखाते हुए युद्ध कर रहे थे। तब राजा दुर्योधन ने तीन बाणों से सात्यकि के सारथि को, चार तीखे बाणों से चारों घोड़ों को और सात्यकि को तीन बाणों से बींधकर फिर दुबारा आठ बाणों से बींधा।

दुःशासनः षोडशभिर्विव्याध शिनिपुङ्गवम्॥ १५॥
शकुनिः पञ्चविंशत्या चित्रसेनश्च पञ्चभिः।
दुःसहः पञ्चदशभिर्विव्याधोरसि सात्यकिम्॥ १६॥
उत्स्मयन् वृष्णिशार्दूलस्तथा बाणैः समाहतः।
तानविध्यन्महाराज सर्वानेव त्रिभिस्त्रिभिः॥ १७॥
गाढविद्धानरीन् कृत्वा मार्गणैः सोऽतितेजनैः।
शैनेयः श्येनवत् संख्ये व्यचरल्लघुविक्रमः॥ १८॥

फिर दुश्शासन ने सोलह, शकुनि ने पच्चीस, चित्रसेन ने पाँच और दुस्सह ने पन्द्रह बाणों की

वर्षाकर सात्यकि की छाती को घायल किया। तब इसप्रकार बाणों से आहत होते हुए सात्यकि ने मुस्कराते हुए हे महाराज! उन सबको ही तीन तीन बाणों से बींध दिया। अपने अत्यन्ततीखे बाणों से शत्रुओं को गहरा घायलकर शीघ्रतापूर्वक पराक्रम करनेवाले सात्यकि युद्धस्थल में बाजपक्षी के समान विचरण करने लगे।

सौबलस्य धनुश्छित्त्वा हस्तावापं निकृत्य च।
दुर्योधनं त्रिभिर्बाणैरभ्यविध्यत् स्तनान्तरे॥ १९॥
चित्रसेनं शतेनैव दशभिर्दुःसहं तथा।
दुःशासनं तु विंशत्या विव्याध शिनिपुङ्गवः॥ २०॥
अथान्यद् धनुरादाय श्यालस्तव विशाम्पते।
अष्टाभिः सात्यकिं विद्ध्वा पुनर्विव्याध पञ्चभिः॥ २१॥
दुःशासनश्च दशभिर्दुःसहश्च त्रिभिः शरैः।
दुर्मुखश्च द्वादशभी राजन् विव्याध सात्यकिम्॥ २२॥
दुर्योधनस्त्रिसप्तत्या विद्ध्वा भारत माधवम्।
ततोऽस्य निशितैर्बाणैस्त्रिभिर्विव्याध सारथिम्॥ २३॥

उन्होंने शकुनि के धनुष और दस्ताने काटकर दुर्योधन की छाती को तीन बाणों से घायल किया। उन्होंने चित्रसेन पर सौ, दुस्सह पर दस, और दुश्शासन पर बीस बाणों की वर्षाकर उन्हें घायल किया। हे प्रजानाथ! तब आपके साले ने दूसरा धनुष लेकर सात्यकि को पहले आठ बाणों से और फिर पाँच बाणों से बींधा। दुश्शासन ने दस, दुस्सह ने तीन और दुर्मुख ने बारह बाणों की हे राजन्! सात्यकि पर वर्षाकर उसे घायल किया। हे भारत! दुर्योधन ने सात्यकि पर तिहत्तर बाणों की वर्षाकर तीन तीखे बाणों से उसके सारथि को घायल किया।

तान् सर्वान् सहिताञ्शूरान् यतमानान् महारथान्।
पञ्चभिः पञ्चभिर्बाणैः पुनर्विव्याध सात्यकिः॥ २४॥
ततः स रथिनां श्रेष्ठस्तव पुत्रस्य सारथिम्।
आजघानाशु भल्लेन स हतो न्यपतद् भुवि॥ २५॥
पतिते सारथौ तस्मिंस्तव पुत्ररथः प्रभो।
वातायमानैस्तैरश्वैरपानीयत संगरात्॥ २६॥
ततस्तव सुता राजन् सैनिकाश्च विशाम्पते।
राज्ञो रथमभिप्रेक्ष्य विद्रुताः शतशोऽभवन्॥ २७॥
विद्राव्य सर्वसैन्यानि तावकानि सहस्रशः।
प्रययौ सात्यकी राजञ्श्वेताश्वस्य रथं प्रति॥ २८॥

तब सात्यकि ने एकत्र होकर विजय के लिये प्रयत्न करते हुए उन सारे महारथी शूरवीरों को पाँच पाँच बाणों से बींध दिया। फिर उस रथियों में श्रेष्ठ ने आपके पुत्र के सारथि को शीघ्रता से भल्ल से मार दिया। हे प्रभो! सारथि के गिर जाने पर, हवा से बातें करनेवाले घोड़े उसे युद्धक्षेत्र से बाहर ले गये। हे प्रजानाथ! तब आपके पुत्र और सैनिक राजा के रथ की वह अवस्था देखकर सैंकड़ों की संख्या में वहाँ से भाग खड़े हुए। इसप्रकार हे राजन्! अपकी सारीसेना के हज़ारों सैनिकों को भगाकर सात्यकि अर्जुन के रथ की तरफ चल दिये।

चौंसठवाँ अध्याय : सात्यकि द्वारा पाषाण योधी म्लेच्छों का संहार।

ते पुनः संन्यवर्तन्त कृत्वा संशप्तकान् मिथः।
परां युद्धे मतिं क्रूरां तव पुत्रस्य शासनात्॥ १॥
त्रीणि सादिसहस्राणि दुर्योधनपुरोगमाः।
शककाम्बोजबाह्लीका यवनाः पारदास्तथा॥ २॥
कुलिन्दास्तङ्गणाम्बष्ठाः पैशाचाश्च सबर्बराः।
पर्वतीयाश्च राजेन्द्र क्रुद्धाः पाषाणपाणयः॥ ३॥
अभ्यद्रवन्त शैनेयं शलभाः पावकं यथा।
युक्ताश्च पर्वतीयानां रथाः पाषाणयोधिनाम्॥ ४॥
शूराः पञ्चशता राजन् शैनेयं समुपाद्रवन्।

हे राजन्! फिर वे भागे हुए सैनिक, आपके पुत्र के आदेश से युद्ध के लिये ही अत्यन्त क्रूरतापूर्ण निश्चयकर और परस्पर प्रतिज्ञाएँ करके पुनः लौट आये। दुर्योधन को आगेकर वे तीन हजार घुड़सवार और हाथीसवार तथा शक, काम्बोज, बाह्लीक, यवन, पारद, कुलिन्द, तङ्गण, अम्बष्ठ, पैशाच, बर्बर और पर्वतीय लोग थे। हे राजन्! वेसब पत्थरों से युद्ध करने वाले हाथों में पत्थर लिये और क्रोध में भरे हुए थे। जैसे पतंगे आग पर टूटते हैं, वैसेही वे सात्यकि पर टूट पड़े। उनके साथ पत्थरों से युद्ध करनेवाले पर्वतीयों के पाँच सौ रथी भी सुसज्जित होकर सात्यकि पर चढ़ आये।

ततो रथसहस्रेण महारथशतेन च॥ ५॥
द्विरदानां सहस्रेण द्विसाहस्रैश्च वाजिभिः।

शरवर्षाणि मुञ्चन्तो विविधानि महारथाः॥ ६॥
अभ्यद्रवन्त शैनेयमसंख्येयाश्च पत्तयः।
तांश्च संचोदयन् सर्वान् घ्नतैनमिति भारत॥ ७॥
दुःशासनो महाराज सात्यकिं पर्यवारयत्।
तत्राद्भुतमपश्याम शैनेयचरितं महत्॥ ८॥
यदेको बहुभिः सार्धमसम्भ्रान्तमयुध्यत।
अवधीच्च रथानीकं द्विरदानां च तद् बलम्॥ ९॥
सादिनश्चैव तान् सर्वान् दस्यूनपि च सर्वशः।

उसके बाद एक हजार रथी, सौ महारथी, एक हजार हाथी, दो हजार घुड़सवार और बहुत से महारथी तथा असंख्य पैदलसैनिक अनेकप्रकार के बाणों की वर्षा करते हुए सात्यकि पर टूट पड़े। हे भरतवंशी महाराज! उनसबको यह प्रेरणा देते हुए कि इसे मार दो, दुश्शासन ने सात्यकि को चारों तरफ से घेर लिया। वहाँ हमने सात्यकि के अद्‌भुत और महान् चरित्र को देखा कि अकेले होते हुए भी बिना घबराये उसने बहुतों के साथ युद्ध किया। उन्होंने रथियों की सेना का, घुड़सवारों का तथा सब लुटेरों का भी सबतरह से संहार कर दिया।

तत्र चक्रैर्विमथितैर्भग्नैश्च परमायुधैः॥ १०॥
अक्षैश्च बहुधा भग्नैरीषादण्डकबन्धुरैः।
कुञ्जरैर्मथितैश्चापि ध्वजैश्च विनिपातितैः॥ ११॥
वर्मभिश्च तथानीकैर्व्यवकीर्णा वसुंधरा।
गिरिरूपधराश्चापि पतिताः कुञ्जरोत्तमाः॥ १२॥
अञ्जनस्य कुले जाता वामनस्य च भारत।
सुप्रतीककुले जाता महापद्मकुले तथा॥ १३॥
ऐरावतकुले चैव तथान्येषु कुलेषु च।
जाता दन्तिवरा राजञ्शेरते बहवो हताः॥ १४॥

वहाँ टूटे हुए रथ के पहियों, टूटे हुए उत्तम आयुधों, खण्डित रथों के धुरों, ईषादण्डों और बन्धुरों तथा मारे गये हाथियों, गिराये हुए ध्वजों, छिन्न किये हुए कवचों एवं मरे हुए सैनिकों की लाशों से सारी भूमि पट गयी। हे भारत! वहाँ पर्वतों के समान विशाल उत्तम हाथी, जो अंजन और वामन कुल में उत्पन्न हुए थे, भूमि पर मरे पड़े थे। सुप्रतीक, महापद्म और ऐरावत तथा दूसरे उत्तम कुलों में पैदा हुए बहुत से श्रेष्ठ हाथी, हे राजन्! वहाँ मारे जाकर भूमि पर सोरहे थे।

वनायुजान् पर्वतीयान् काम्बोजान् बाह्लिकानपि।
तथा हयवरान् राजन् निजघ्ने तत्र सात्यकिः॥ १५॥
तेषु प्रकाल्यमानेषु दस्यून् दुःशासनोऽब्रवीत्।
निवर्तध्वमधर्मज्ञा युध्यध्वं किं सृतेन वः॥ १६॥
तांश्चातिभग्नान् सम्प्रेक्ष्य पुत्रो दुःशासनस्तव।
पाषाणयोधिनः शूरान् पर्वतीयानचोदयत्॥ १७॥

हे राजन्! सात्यकि ने वहाँ वनायुज, पर्वतीय, काम्बोजदेश के और बाह्लीक देश के श्रेष्ठ घोड़ों को भी मार गिराया। जब उनका संहार होरहा था, तब दुश्शासन ने उन लुटेरों से कहा कि अरे धर्म को न जानने वालों! वापिस लौट आओ। तुम्हारे भाग जाने से क्या होगा? इसलिये युद्ध करो। फिर भी उन्हें जोर से भागते हुए देखकर आपके पुत्र दुश्शासन ने पत्थरों से युद्ध करनेवाले पर्वतीय योद्धाओं को प्रेरणा दी कि—

अश्मयुद्धेषु कुशला नैतज्जानाति सात्यकिः।
अश्मयुद्धमजानन्तं घ्नतैनं युद्धकार्मुकम्॥ १८॥
तथैव कुरवः सर्वे नाश्मयुद्धविशारदाः।
अभिद्रवत माभैष्ट न वः प्राप्स्यति सात्यकिः॥ १९॥
ते पर्वतीया राजानः सर्वे पाषाणयोधिनः।
अभ्यद्रवन्त शैनेयं राजानमिव मन्त्रिणः॥ २०॥
क्षेपणीयैस्तथाप्यन्ये सात्वतस्य वधैषिणः।
चोदितास्तव पुत्रेण सर्वतो रुरुधुर्दिशः॥ २१॥

तुमलोग पत्थरों से युद्ध में कुशल हो, जिसे सात्यकि नहीं जानता है, इसलिये पत्थरयुद्ध को न जानते हुए भी युद्ध के इच्छुक इसको मार दो। इसीप्रकार सारे कौरव लोग भी पत्थर के युद्ध में चतुर नहीं हैं, इसलिये तुमलोग आक्रमण करो। डरो मत। सात्यकि तुम्हें प्राप्त नहीं कर सकता। तब वे पत्थरों से युद्ध करनेवाले पर्वतीय राजालोग सात्यकि की तरफ ऐसे दौड़े, जैसे मन्त्रीलोग राजा के पास जाते हैं। तब सात्यकि के वध की इच्छा रखनेवाले उन लोगों तथा दूसरे लोगों ने भी आपके पुत्र से प्रेरित होकर फैंके जानेवाले आयुधों के साथ सात्यकि की दिशाओं को सबतरफ से रोक दिया।

तेषामापततामेव शिलायुद्धं चिकीर्षताम्।
सात्यकिः प्रतिसंधाय निशितान् प्राहिणोच्छरान्॥ २२॥
तामश्मवृष्टिं तुमुलां पर्वतीयैः समीरिताम्।
चिच्छेदोरगसंकाशैर्नाराचैः शिनिपुङ्गवः॥ २३॥

ततः पञ्चशतं शूराः समुद्यतमहाशिलाः।
निकृत्तबाहवो राजन् निपेतुर्धरणीतले॥ २४॥

पत्थरों से युद्ध करने के इच्छुक उनके आक्रमण करते ही, सात्यकि ने तीखे बाणों का सन्धानकर छोड़ना आरम्भ कर दिया। सात्यकि ने उन पर्वतीयों के द्वारा की हुई घोर पत्थर वर्षा को अपने सर्प के समान नाराचों से छिन्न कर दिया। हे राजन्! फिर पाँच सौ योद्धालोग, जिन्होंने अपने हाथों में पत्थर उठाये हुए थे, सात्यकि के द्वारा अपनी बाहों के काट दिये जाने के कारण भूमि पर गिर पड़े।

ततः पुनर्व्यात्तमुखास्तेऽश्मवृष्टीः समन्ततः।
अयोहस्ताः शूलहस्ता दरदास्तङ्गणाः खसाः॥ २५॥

लम्पाकाश्च कुलिन्दाश्च चिक्षिपुस्तांश्च सात्यकिः।
नाराचैः प्रतिचिच्छेद प्रतिपत्तिविशारदः॥ २६॥

ततः शब्दः समभवत् तव सैन्यस्य मारिष।
माधवेनार्द्यमानस्य सागरस्येव पर्वणि॥ २७॥

फिर मुँह फाड़े हुए तथा हाथ में लोहे के गोले और त्रिशूल लिये हुए, दरद, तंगण, खस, लम्पाक और कुलिन्दों ने सात्यकि पर पुनः पत्थरों की वर्षा आरम्भ कर दी। किन्तु प्रतिकार करने में निपुण सात्यकि ने नाराचों के द्वारा उनसबको छिन्नभिन्न कर दिया। हे मान्यवर! उस समय सात्यकि के द्वारा पीड़ित हुई आपकी सेना में उसीप्रकार कोलाहल होरहा था, जैसे पूर्णिमा के दिन समुद्र में होता है।

पैंसठवां अध्याय : द्रोणाचार्य द्वारा वीरकेतु आदि पाँचालों का वध, धृष्टद्युम्न के साथ युद्ध, द्रोण की मूर्च्छा, धृष्टद्युम्न का पलायन।

द्रोणोऽपि रथिनां श्रेष्ठः पञ्चालान् पाण्डवांस्तथा।
अभ्यद्रवत संक्रुद्धो जवमास्थाय मध्यमम्॥ १॥
द्रावयामास योधान् वै शतशोऽथ सहस्रशः।
पाण्डुपाञ्चालमत्स्यानां प्रचक्रे कदनं महत्॥ २॥
तं जयन्तमनीकानि भारद्वाजं ततस्ततः।
पाञ्चालपुत्रो द्युतिमान् वीरकेतुः समभ्ययात्॥ ३॥
स द्रोणं पञ्चभिर्विद्ध्वा शरैः संनतपर्वभिः।
ध्वजमेकेन विव्याध सारथिं चास्य सप्तभिः॥ ४॥
तत्राद्भुतं महाराज दृष्टवानस्मि संयुगे।
यद् द्रोणो रभसं युद्धे पाञ्चाल्यं नाभ्यवर्तत॥ ५॥

उधर रथियों में श्रेष्ठ द्रोणाचार्य ने भी अत्यन्त क्रुद्ध होकर मध्यमवेग का आश्रय लेकर पांचालों और पांडवों पर आक्रमण किया। उन्होंने पांडवों, पांचालों और मत्स्यदेशीय योद्धाओं का महान् संहार किया और सैकड़ों तथा हजारों योद्धाओं को भगा दिया। तब जगह जगह सेनाओं को परास्त करते हुए द्रोणाचार्य पर तेजस्वी पांचालराजकुमार वीरकेतु ने आक्रमण किया। उसने झुकी गाँठवाले पाँच बाणों से द्रोणाचार्य को बींधकर एक बाण से उनके ध्वज को और सात बाणों से उनके सारथि को बींध दिया। हे महाराज! वहाँ मैंने यह अद्भुत बात देखी कि युद्धक्षेत्र में द्रोणाचार्य उस वेगवान् पांचालपुत्र की तरफ न बढ़ सके।

संनिरुद्धं रणे द्रोणं पञ्चाला वीक्ष्य मारिष।
आववुः सर्वतो राजन् धर्मपुत्रजयैषिणः॥ ६॥
ते शरैरग्निसंकाशैस्तोमरैश्च महाधनैः।
शस्त्रैश्च विविधै राजन् द्रोणमेकमवाकिरन्॥ ७॥
ततः शरं महाघोरं सूर्यपावकसंनिभम्।
संदधे परवीरघ्नो वीरकेतो रथं प्रति॥ ८॥
स भित्त्वा तु शरो राजन् पाञ्चालकुलनन्दनम्।
अभ्यगाद् धरणीं तूर्णं लोहितार्द्रो ज्वलन्निव॥ ९॥

हे मान्यवर! तब द्रोणाचार्य को युद्ध में रोका हुआ देखकर, युधिष्ठिर की विजय को चाहनेवाले पांचालों ने हे राजन्! उन्हें सब तरफ से घेर लिया हे राजन् उन्होंने अग्नि के समान बाणों, बहुमूल्य तोमरों और दूसरेप्रकार के शस्त्रों की अकेले द्रोणाचार्य पर वर्षा कर दी। तब शत्रुवीरों का विनाश करनेवाले आचार्य ने एक बहुतभयानक सूर्य और अग्नि के समान तेजस्वी बाण को वीर केतु के रथ की तरफ चलाया। हे राजन्! वह जलता हुआसा बाण तुरन्त पांचालकुलनन्दन वीरकेतु को भेदकर, खून से सना हुआ भूमि में धँस गया।

ततोऽपतद् रथात् तूर्णं पाञ्चालकुलनन्दनः।
पर्वताग्रादिव महांश्चम्पको वायुपीडितः॥ १०॥
तस्मिन् हते महेष्वासे राजपुत्रे महाबले।
पञ्चालास्त्वरिता द्रोणं समन्तात् पर्यवारयन्॥ ११॥

चित्रकेतुः सुधन्वा च चित्रवर्मा च भारत।
तथा चित्ररथश्चैव भ्रातृव्यसनकर्शिताः॥ १२॥
अभ्यद्रवन्त सहिता भारद्वाजं युयुत्सवः।
मुञ्चन्तः शरवर्षाणि तपान्ते जलदा इव॥ १३॥

तब वह पाँचालकुलनन्दन तुरन्त रथ से ऐसे गिर पड़ा, जैसे वायु से उखाड़ा हुआ कोई महान् चम्पा का वृक्ष पर्वत के शिखर से गिर पड़ा हो। उस महाधनुर्धर, महाबली राजकुमार के मारे जाने पर पाँचालवीरों ने शीघ्रता से द्रोणाचार्य को सब ओर से घेर लिया। हे भारत! चित्रकेतु, सुधन्वा, चित्रवर्मा और चित्ररथ, येसारे भाई की मृत्यु से दुःखी होकर युद्ध की इच्छा से वर्षाऋतु में बादलों के समान बाणों की वर्षा करते हुए उन पर एक साथ टूट पड़े।

स वध्यमानो बहुधा राजपुत्रैर्महारथैः।
क्रोधमाहारयत् तेषामभावाय द्विजर्षभः॥ १४॥
ततः शरमयं जालं द्रोणस्तेषामवासृजत्।
ते हन्यमाना द्रोणस्य शरैराकर्णचोदितैः॥ १५॥
कर्तव्यं नाभ्यजानन् वै कुमारा राजसत्तम।
तान् विमूढान् रणे द्रोणः प्रहसन्निव भारत॥ १६॥
व्यश्वसूतरथांश्चक्रे कुमारान् कुपितो रणे।
अथापरैः सुनिशितैर्भल्लैस्तेषां महायशाः॥ १७॥
पुष्पाणीव विचिन्वन् हि सोत्तमाङ्गान्यपातयत्।

तब उनके द्वारा बार बार घायल किये जाते हुए उन ब्राह्मणश्रेष्ठ ने महारथी राजपुत्रों के विनाश के लिये अपने क्रोध को प्रकट किया। द्रोणाचार्य ने उनके ऊपर बाणों की वर्षा कर दी। कान तक धनुष को खींचकर छोड़े गये द्रोणाचार्य के बाणों से पीड़ित होते हुए वे राजकुमार हे राजश्रेष्ठ! यह न समझ पाये कि हमें अब क्या करना चाहिये? हे भारत! तब युद्ध में उन्हें मोहितकर, क्रोध में भरे हुए द्रोणाचार्य ने मुस्कराते हुए उन कुमारों को बिना घोड़ों, सारथि और रथ के बना दिया। फिर उस महायशस्वी ने दूसरे तीखे भल्ल बाणों से उनके सिर इसप्रकार से काटकर गिरा दिये, जैसे वृक्षों से फूल चुन लिये गये हों।

पञ्चालान् निहतान् दृष्ट्वा देवकल्पान् महारथान्॥ १८॥
धृष्टद्युम्नो भृशोद्विग्नो नेत्राभ्यां पातयञ्जलम्।
अभ्यवर्तत संग्रामे क्रुद्धो द्रोणरथं प्रति॥ १९॥
स च्छाद्यमानो बहुधा पार्षतेन महात्मना।
न विव्यथे ततो द्रोणः स्मयन्नेवान्वयुध्यत॥ २०॥
ततो द्रोणं महाराज पाञ्चाल्यः क्रोधमूर्च्छितः।
आजघानोरसि क्रुद्धो नवत्या नतपर्वणाम्॥ २१॥
स गाढविद्धो बलिना भारद्वाजो महायशाः।
निषसाद रथोपस्थे कश्मलं च जगाम ह॥ २२॥

देवताओं के समान उन महारथी पाँचालों को मारा गया देखकर अपनी आँखों से आँसू बहाते हुए धृष्टद्युम्न ने अत्यन्तउद्विग्न और क्रुद्ध होकर युद्धक्षेत्र में द्रोणाचार्य के रथ की तरफ आक्रमण किया। तब मनस्वी द्रुपदपुत्र के द्वारा चलाये हुए बहुतसारे बाणों से आच्छादित होकर द्रोणाचार्य व्यथित नहीं हुए और मुस्कराते हुए ही युद्ध करते रहे। हे महाराज! तब क्रोध से मूर्च्छित पाँचाल राजकुमार ने झुकी गाँठ वाले नब्बे बाणों की द्रोणाचार्य की छाती पर वर्षा कर उन्हें पीड़ित किया। तब बलवीर धृष्टद्युम्न के द्वारा गहरी चोट खाकर वे महायशस्वी द्रोणाचार्य रथ की बैठक में बैठ गये और मूर्च्छा को प्राप्त होगये।

तं वै तथागतं दृष्ट्वा धृष्टद्युम्नः पराक्रमी।
चापमुत्सृज्य शीघ्रं तु असिं जग्राह वीर्यवान्॥ २३॥
अवप्लुत्य रथाच्चापि त्वरितः स महारथः।
आरुरोह रथं तूर्णं भारद्वाजस्य मारिष॥ २४॥
हर्तुमिच्छञ्शिरः कायात् क्रोधसंरक्तलोचनः।
प्रत्याश्वस्तस्ततो द्रोणो धनुर्गृह्य महारवम्॥ २५॥
आसन्नमागतं दृष्ट्वा धृष्टद्युम्नं जिघांसया।
शरैर्वैतस्तिकै राजन् विव्याधासन्नवेधिभिः॥ २६॥

उन्हें उस अवस्था में देखकर पराक्रमी और तेजस्वी धृष्टद्युम्न ने धनुष को छोड़कर तुरन्त तलवार को उठा लिया। फिर हे मान्यवर! वह महारथी अपने रथ से कूदकर शीघ्रता से तुरन्त द्रोणाचार्य के रथ पर चढ़ गया। क्रोध से लाल आँखें किये उसने तब द्रोणाचार्य के सिर को काटना चाहा, पर तभी द्रोणाचार्य ने होश में आकर अपना महान् टंकारवाला धनुष उठा लिया और मारने की इच्छा से समीप आये हुए धृष्टद्युम्न को देखकर हे राजन्! वैतस्तिक नाम के छोटे बाणों से, जो समीपवर्ती शत्रु को भी बींध सकते थे, उसे बींध दिया।

ते हि वैतस्तिका नाम शरा आसन्नयोधिनः।
द्रोणस्य विहिता राजन् यैर्धृष्टद्युम्नमाक्षिणोत्॥ २७॥

स वध्यमानो बहुभिः सायकैस्तैर्महाबलः।
अवप्लुत्य रथात् तूर्णं भग्नवेगः पराक्रमी॥ २८॥
आरुह्य स्वरथं वीरः प्रगृह्य च महद् धनुः।
विव्याध समरे द्रोणं धृष्टद्युम्नो महारथः॥ २९॥
द्रोणश्चापि महाराज शरैर्विव्याध पार्षतम्।

वे वैतस्तिक नाम के अर्थात् एक बालिश्त के बाण जो निकट युद्ध मेंभी काम आ सकते थे, द्रोणाचार्य के अपने बनाये हुए थे, उनसे उन्होंने हे राजन्! धृष्टद्युम्न को घायल कर दिया। तब उन बहुतसारे बाणों की चोट खाकर, वह महाबली और महापराक्रमी तथा महारथी धृष्टद्युम्न अपने वेग के भग्न हो जाने के कारण तुरन्त उनके रथ से कूदकर अपने रथ पर चढ़ गये। फिर अपने विशाल धनुष को उठाकर उस वीर ने युद्ध में द्रोणाचार्य को बाणों से बींध दिया और हे महाराज! द्रोणाचार्य ने भी द्रुपदपुत्र को बाणों से बींधा।

मण्डलानि विचित्राणि यमकानीतराणि च॥ ३०॥
चरन्तौ युद्धमार्गज्ञौ ततक्षतुरथेषुभिः।
द्रोणस्तु त्वरितो युद्धे धृष्टद्युम्नस्य सारथेः॥ ३१॥
शिरः प्रच्यावयामास फलं पक्वं तरोरिव।
ततस्तु प्रद्रुता वाहा राजंस्तस्य महात्मनः॥ ३२॥
तेषु प्रद्रवमाणेषु पञ्चालान् सृञ्जयांस्तथा।
अयोधयद् रणे द्रोणस्तत्र तत्र पराक्रमी॥ ३३॥
विजित्य पाण्डुपञ्चालान् भारद्वाजः प्रतापवान्।
स्वं व्यूह पुनरास्थाय स्थितोऽभवदरिंदमः॥ ३४॥

तब मण्डल, विचित्रप्रकार के यमक और दूसरे युद्धमार्गों का प्रदर्शन करते हुए वे युद्धमार्गों के ज्ञाता एकदूसरे को बाणों से घायल करने लगे। द्रोणाचार्य ने शीघ्रता करते हुए धृष्टद्युम्न के सारथि का सिर इसप्रकार से काट दिया जैसे वृक्ष पर से पके फल को तोड़ लिया हो। तब हे राजन्! उस मनस्वी के घोड़े वहाँ से भाग गये। उनके भाग जाने पर पराक्रमी द्रोणाचार्य युद्धस्थल में जहाँतहाँ पाँचालों और सृंजयों से युद्ध करने लगे। फिर पाँचालों और पाण्डवों को जीतकर वे प्रतापी शत्रुदमन द्रोणाचार्य पुनः अपने व्यूह में आकर खड़े होगये।

छियासठवाँ अध्याय : सात्यकि से दुश्शासन की पराजय।

ततो दुःशासनो राजञ्शैनेयं समुपाद्रवत्।
किरञ्शतसहस्राणि पर्जन्य इव वृष्टिमान्॥ १॥
चतुर्भिर्वाजिनस्तस्य सारथिं च त्रिभिः शरैः।
सात्यकिं च शतेनाजौ विद्ध्वा नादं मुमोच सः॥ २॥
ततः क्रुद्धो महाराज माधवस्तस्य संयुगे।
रथं सूतं ध्वजं तं च चक्रेऽदृश्यमजिह्मगैः॥ ३॥
दृष्ट्वा दुःशासनं राजा तथा शरशताचितम्।
त्रिगर्तांश्चोदयामास युयुधानरथं प्रति॥ ४॥

हे राजन्! उधर तब वर्षावाले बादलों की तरह से सैंकड़ों और हजारों बाणों की वर्षा करते हुए दुश्शासन ने सात्यकि पर आक्रमण किया। उसने चार बाणों से उसके घोड़ों को, तीन बाणों से सारथि को और सात्यकि को सौ बाणों की वर्षा के द्वारा युद्धक्षेत्र में घायलकर जोरसे सिंहनाद किया। हे महाराज! तब सात्यकि ने क्रुद्ध होकर युद्ध में अपने सीधे जानेवाले बाणों से उसके रथ, सारथि, ध्वज और उसे आच्छादितकर अदृश्य कर दिया। दुश्शासन को बाणों से आच्छादित देखकर राजा दुर्योधन ने त्रिगर्तदेशीय सैनिकों को सात्यकि पर आक्रमण की आज्ञा दी।

तेऽगच्छन् युयुधानस्य समीपं क्रूरकर्मणः।
त्रिगर्तानां त्रिसाहस्रा रथा युद्धविशारदाः॥ ५॥
ते तु तं रथवंशेन महता पर्यवारयन्।
स्थिरां कृत्वा मतिं युद्धे भूत्वा संशप्तका मिथः॥ ६॥
तेषां प्रपततां युद्धे शरवर्षाणि मुञ्चताम्।
योधान् पञ्चशतान् मुख्यानग्रानीके व्यपोथयत्॥ ७॥
तेऽपतन् निहतास्तूर्णं शिनिप्रवरसायकैः।
महामारुतवेगेन भग्ना इव नगाद् द्रुमाः॥ ८॥

तब क्रूर कर्म करनेवाले, युद्धविशारद, त्रिगर्तों के तीन हजार रथी सात्यकि के समीप गये। उन्होंने युद्ध के लिये अपनी बुद्धि को स्थिरकर और परस्पर प्रतिज्ञाएँ करके, विशाल रथसेना के द्वारा सात्यकि को घेर लिया। तब सात्यकि ने बाणों की वर्षा करते हुए और आक्रमण करते हुए उनमें प्रमुख पाँच सौ योद्धाओं को सेना के मुहाने पर मार गिराया। सात्यकि के बाणों से मारे गये वे योद्धा तुरन्त इसप्रकार

धराशाही होगये, जैसे आँधी से उखाड़े गये वृक्ष पर्वतों से नीचे गिरते हैं।

ते वध्यमानाः समरे युयुधानेन तावकाः।
त्रातारं नाध्यगच्छन्त पङ्कमग्ना इव द्विपाः॥ ९॥
हत्वा पञ्चशतान् योधाञ्छरैराशीविषोपमैः।
प्रायात् स शनकैर्वीरो धनंजयरथं प्रति॥ १०॥
तं प्रयान्तं नरश्रेष्ठं पुत्रो दुःशासनस्तव।
विव्याध नवभिस्तूर्णं शरैः संनतपर्वभिः॥ ११॥
स तु तं प्रतिविव्याध पञ्चभिर्निशितैः शरैः।
रुक्मपुङ्खैर्महेष्वासो गार्ध्रपत्रैरजिह्मगैः॥ १२॥

सात्यकि के द्वारा मारे जारहे वे आपके सैनिक, कीचड़ में फँसे हाथियों के समान अपना कोई रक्षक नहीं प्राप्त कर रहे थे। तब अपने विषैले सर्पों के समान बाणों से पाँच सौ वीरों को मारकर वह वीर सात्यकि धीरे धीरे अर्जुन की तरफ चलने लगे। उस नरश्रेष्ठ को जाते हुए देखकर आपके पुत्र दुश्शासन ने उसे तुरन्त नौ झुकी गाँठवाले बाणों से बींध दिया। तब उस महाधनुर्धर ने प्रत्युत्तर में उसे सीधे जानेवाले पाँच तीखे, सुनहरे और गिद्ध के पंखवाले बाणों से बींधा।

सात्यकिं तु महाराज प्रहसन्निव भारत॥ १३॥
दुःशासनस्त्रिभिर्विद्ध्वा पुनर्विव्याध पञ्चभिः।
शैनेयस्तव पुत्रं तु हत्वा पञ्चभिराशुगैः॥ १४॥
धनुश्चास्य रणे छित्त्वा विस्मयन्नर्जुनं ययौ।
ततो दुःशासनः क्रुद्धो वृष्णिवीराय गच्छते॥ १५॥
सर्वपारशवीं शक्तिं विससर्ज जिघांसया।
तां तु शक्तिं तदा घोरां तव पुत्रस्य सात्यकिः॥ १६॥
चिच्छेद शतधा राजन् निशितैः कङ्कपत्रिभिः।

हे महाराज! हे भारत! फिर दुश्शासन ने मुस्कराते हुए सात्यकि को पहले तीन बाणों से बींधकर फिर पाँच बाणों से बींधा। तब सात्यकि ने आपके पुत्र पर पाँच शीघ्रगामी बाणों से प्रहारकर और उसके धनुष को काटकर मुस्कराते हुए अर्जुन की तरफ प्रस्थान किया। तब दुश्शासन ने क्रोध में भरकर जाते हुए वृष्णिवीर पर, उसे मारने की इच्छा से सम्पूर्ण लोहे की बनी हुई शक्ति को फैंका। सात्यकि ने आपके पुत्र की उस भयंकर शक्ति के कंकपत्रवाले बाणों से अनेक टुकड़े कर दिये।

अथान्यद् धनुरादाय पुत्रस्तव जनेश्वर।
सात्यकिं च शरैर्विद्ध्वा सिंहनादं ननर्द ह॥ १७॥
सात्यकिस्तु रणे क्रुद्धो मोहयित्वा सुतं तव।
शरैरग्निशिखाकारैराजघान स्तनान्तरे॥ १८॥
त्रिभिरेव महाभागः शरैः संनतपर्वभिः।
सर्वायसैस्तीक्ष्णवक्त्रैः पुनर्विव्याध चाष्टभिः॥ १९॥
दुःशासनस्तु विंशत्या सात्यकिं प्रत्यविध्यत।

हे जनेश्वर! तब एक दूसरे धनुष को लेकर आपके पुत्र ने सात्यकि को बाणों से बींधकर जोर से सिंहनाद किया। तब सात्यकि ने युद्ध में क्रुद्ध होकर आपके पुत्र को मोह में डालते हुए, झुकी गाँठवाले, तीन अग्नि शिखा के समान बाणों से हे महाभाग! उसकी छाती पर प्रहार किया और फिर सम्पूर्ण लोहे के बने हुए, तीखी धारवाले आठ बाणों से पुनः घायल किया। दुश्शासन ने भी बीस बाणों की वर्षा कर सात्यकि को घायल किया।

ततोऽस्य वाहान् निशितैः शरैर्जघ्ने महारथः॥ २०॥
सारथिं च सुसंक्रुद्धः शरैः संनतपर्वभिः।
धनुरेकेन भल्लेन हस्तावापं च पञ्चभिः॥ २१॥
ध्वजं च रथशक्तिं च भल्लाभ्यां परमास्त्रवित्।
चिच्छेद विशिखैस्तीक्ष्णैस्तथोभौ पार्ष्णिसारथी॥ २२॥
स च्छिन्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः।
त्रिगर्तसेनापतिना स्वरथेनापवाहितः॥ २३॥

तब अत्यन्तक्रुद्ध होकर महारथी सात्यकि ने तीखे बाणों से उसके घोड़ों को मार दिया और झुकी गाँठवाले बाणों से सारथि कोभी समाप्त कर दिया। अस्त्रविद्या के परमविद्वान् सात्यकि ने एक भल्ल से उसके धनुष को, पाँच से हाथों के दस्तानों को, दो भल्लों से ध्वज और रथशक्ति को काट दिया तथा तीखे बाणों से उसके दोनों चक्ररक्षकों को मार दिया। तब धनुष के कट जाने पर, घोड़ों और सारथि के मरने पर, रथहीन हो जाने पर, त्रिगर्त सेनापति के द्वारा उसे अपने रथ पर बैठाकर वहाँ से दूर हटा दिया गया।

तमभिद्रुत्य शैनेयो मुहूर्तमिव भारत।
न जघान महाबाहुर्भीमसेनवचः स्मरन्॥ २४॥
भीमसेनेन तु वधः सुतानां तव भारत।
प्रतिज्ञातः सभामध्ये सर्वेषामेव संयुगे॥ २५॥
ततो दुःशासनं जित्वा सात्यकिः संयुगे प्रभो।
जगाम त्वरितो राजन् येन यातो धनंजयः॥ २६॥

हे भारत! महाबाहु सात्यकि ने थोड़ी देरतक उसका पीछा करके उसे भीमसेन के वचनों को

याद करते हुए मारा नहीं। हे भारत! भीमसेन ने तो सभा के बीच में आपके सारे ही पुत्रों के युद्धक्षेत्र में वध की प्रतिज्ञा की हुई है। हे प्रभो! तब युद्ध में दुश्शासन को जीतकर सात्यकि हे राजन्! शीघ्रता से उसी मार्ग पर चलदिये, जिस पर अर्जुन गये थे।

सड़सठवाँ अध्याय : द्रोणाचार्य के द्वारा बृहत्क्षत्र, धृष्टकेतु, सहदेव, धृष्टद्युम्न कुमार क्षत्रधर्मा का वध और चेकितान की पराजय।

अपराह्णे महाराज संग्रामः सुमहानभूत्।
पर्जन्यसमनिर्घोषः पुनर्द्रोणस्य सोमकैः॥ १॥
शोणाश्वं रथमास्थाय नरवीरः समाहितः।
समरेऽभ्यद्रवत् पाण्डूञ्जवमास्थाय मध्यमम्॥ २॥
तव प्रियहिते युक्तो महेष्वासो महाबलः।
जघान सोमकान् राजन् सृञ्जयान् केकयानपि॥ ३॥
तमभ्ययाद् बृहत्क्षत्रः केकयानां महारथः।
भ्रातृणां नृप पञ्चानां श्रेष्ठः समरकर्कशः॥ ४॥

हे महाराज! उधर अपराह्नकाल में द्रोणाचार्य का सोमकों के साथ पुनः महान् संग्राम छिड़ गया। उस समय वहाँ बादलों के गर्जने के समान सिंहनादों की ध्वनि गूँज रही थी। नरवीर द्रोणाचार्य लाल घोड़ोंवाले रथ पर सवार होकर चित्त को एकाग्रकर मध्यमवेग का आश्रय लेकर युद्धस्थल में पाण्डवसेना पर टूट पड़े। वे महाबली महाधनुर्धर आपका प्रिय करने में लगे हुए, हे राजन् सोमकों, सृंजयों और केकयों को मारने लगे। हे महाराज! तब पाँचों केकयकुमार भाइयों में सबसे बड़े, युद्ध में कठोर, महारथी बृहत्क्षत्र उनका सामना करने के लिये आगे बढ़े।

विमुञ्चन् विशिखांस्तीक्ष्णानाचार्यं भृशमार्दयत्।
महामेघो यथा वर्षं विमुञ्चन् गन्धमादने॥ ५॥
तस्य द्रोणो महाराज स्वर्णपुङ्खाञ्छिलाशितान्।
प्रेषयामास संक्रुद्धः सायकान् दश पञ्च च॥ ६॥
तांस्तु द्रोणविनिर्मुक्तान् क्रुद्धाशीविषसंनिभान्।
एकैकं पञ्चभिर्बाणैर्युधि चिच्छेद हृष्टवत्॥ ७॥
तदस्य लाघवं दृष्ट्वा प्रहस्य द्विजपुङ्गवः।
प्रेषयामास विशिखानष्टौ संनतपर्वणः॥ ८॥

उन्होंने जैसे महान् मेघ गन्धमादन पर्वत पर वर्षा करते हैं, वैसे ही तीखे बाणों की वर्षा करते हुए आचार्य द्रोण को अत्यन्तपीड़ित किया। हे महाराज! तब द्रोणाचार्य ने अत्यन्त क्रोध में भरकर उनके ऊपर शिला पर तेज किये हुए, सुनहरे पंखवाले पन्द्रह बाणों द्वारा प्रहार किया। द्रोणाचार्य के द्वारा छोड़े हुए उन क्रुद्ध विषैले सर्प के समान बाणों को उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक पाँच पाँच बाणों से काट दिया। उनकी उस फुर्ती को देखकर ब्राह्मणश्रेष्ठ द्रोणाचार्य ने हँसकर झुकी गांठवाले आठ बाण उन पर चलाये।

तान् दृष्ट्वापततस्तूर्णं द्रोणचापच्युताञ्शरान्।
अवारयच्छरैरेव तावद्भिर्निशितैर्मृधे॥ ९॥
बृहत्क्षत्रेण तत् कर्म कृतं दृष्ट्वा सुदुष्करम्।
ततो द्रोणो महाराज बृहत्क्षत्रं विशेषयन्॥ १०॥
प्रादुश्चक्रे रणे दिव्यं ब्राह्ममस्त्रं सुदुर्जयम्।
कैकेयोऽस्त्रं समालोक्य मुक्तं द्रोणेन संयुगे॥ ११॥
ब्रह्मास्त्रेणैव राजेन्द्र ब्राह्ममस्त्रमशातयत्।
ततोऽस्त्रे निहते ब्राह्मे बृहत्क्षत्रस्तु भारत॥ १२॥
विव्याध ब्राह्मणं षष्ट्या स्वर्णपुङ्खैः शिलाशितैः।
तं द्रोणो द्विपदां श्रेष्ठो नाराचेन समार्पयत्॥ १३॥
स तस्य कवचं भित्त्वा प्राविशद् धरणीतलम्।

तब बृहत्क्षेत्र ने युद्धक्षेत्र में द्रोणाचार्य के धनुष से छूटे हुए बाणों को शीघ्रता से आते हुए देखकर उतने ही तीखे बाणों से उनका निवारण कर दिया। हे महाराज! बृहत्क्षत्र के द्वारा किये गये उस अत्यन्तदुष्कर कर्म को देखकर द्रोणाचार्य ने बृहत्क्षत्र से अधिक अपनी विशेषता दिखाते हुए अत्यन्त दुर्जय ब्रह्मास्त्र को युद्ध में प्रकट किया। हे राजेन्द्र! तब द्रोणाचार्य के द्वारा छोड़े हुए ब्रह्मास्त्र को देखकर बृहत्क्षत्र ने युद्ध में ब्रह्मास्त्र के द्वारा ही उसे शान्त कर दिया। हे भारत! फिर ब्रह्मास्त्र के शान्त होजाने पर बृहत्क्षत्र ने शिला पर तेज किये हुए, सुनहरे पंखवाले साठ बाणों की वर्षाकर उन ब्राह्मण को घायल किया तब मनुष्यों में श्रेष्ठ द्रोणाचार्य ने उनके ऊपर एक नाराच चलाया, जो बृहत्क्षत्र के कवच को भेदकर भूमि में धँस गया।

सोऽतिविद्धो महाराज कैकेयो द्रोणसायकैः॥ १४॥
क्रोधेन महताऽऽविष्टो व्यावृत्य नयने शुभे।
द्रोणं विव्याध सप्तत्या स्वर्णपुङ्खैः शिलाशितैः॥ १५॥
सारथिं चास्य बाणेन भृशं मर्मस्वताडयत्।
द्रोणस्तु बहुभिर्विद्धो बृहत्क्षत्रेण मारिष॥ १६॥
असृजद् विशिखांस्तीक्ष्णान् कैकेयस्य रथं प्रति।
व्याकुलीकृत्य तं द्रोणो बृहत्क्षत्रं महारथम्॥ १७॥
अश्वांश्चतुर्भिर्न्यवधीच्चतुरोऽस्य पतत्त्रिभिः।
सूतं चैकेन बाणेन रथनीडादपातयत्॥ १८॥
द्वाभ्यां ध्वजं च छत्रं च च्छित्वा भूमावपातयत्।
ततः साधुविसृष्टेन नाराचेन द्विजर्षभः॥ १९॥
हृद्यविध्यद् बृहत्क्षत्रं स च्छिन्नहृदयोऽपतत्।

हे महाराज! तब द्रोणाचार्य के बाणों से अत्यन्त घायल होकर, अत्यन्त क्रोध में भरकर और सुन्दर आँखों को फाड़कर देखते हुए उन्होंने शिला पर तेज किये हुए, सुनहरे पंखवाले सत्तरबाणों की वर्षाकर द्रोणाचार्य को घायल किया और एक बाण से उनके सारथी के मर्मस्थानों पर गहरी चोट पहुँचायी। हे मान्यवर! द्रोणाचार्यने भी बृहत्क्षत्र के बाणों से घायल होकर कैकेयराज के रथ पर तीखे बाणों को छोड़ा। द्रोणाचार्य ने महारथी बृहत्क्षत्र को अपनी बाणवर्षा से व्याकुलकर उनके चारों घोड़ों को मार दिया। उन्होंने एक बाण से उनके सारथी को रथ की बैठक से गिरा दिया और दो बाणों से उनके ध्वज और छत्र को काट दिया। फिर अच्छीतरह से छोड़े हुए नाराच से उस ब्राह्मणश्रेष्ठ ने बृहत्क्षत्र के हृदय को छेद दिया। हृदय के छिन्न हो जाने पर वह मरकर नीचे गिर पड़े।

बृहत्क्षत्रे हते राजन् केकयानां महारथे॥ २०॥
शैशुपालिरभिक्रुद्धो यन्तारमिदमब्रवीत्।
सारथे याहि यत्रैष द्रोणस्तिष्ठति दंशितः॥ २१॥
विनिघ्नन् केकयान् सर्वान् पञ्चालानां च वाहिनीम्।
तस्य तद् वचनं श्रुत्वा सारथी रथिनां वरम्॥ २२॥
द्रोणाय प्रापयामास काम्बोजैर्जवनैर्हयैः।
धृष्टकेतुश्च चेदीनामृषभोऽतिबलोदितः॥ २३॥
वधायाभ्यद्रवद् द्रोणं पतङ्ग इव पावकम्।

हे राजन्! केकयों के महारथी बृहत्क्षत्र के मारे जाने पर शिशुपाल के पुत्र धृष्टकेतु ने अपने सारथी से कहा कि हे सारथी! जिधर यह कवच बाँधे द्रोणाचार्य खड़ा है। सारे केकयों और पँचालों की सेना को मार रहा है, उधर ही चलो। उसके उन वचनों को सुनकर, उस रथियों में श्रेष्ठ को सारथी ने कम्बोजदेश के वेगवान् घोड़ों के द्वारा द्रोणाचार्य के समीप पहुँचा दिया। अत्यन्त बल से सम्पन्न चेदिराज धृष्टकेतु ने द्रोणाचार्य के वध के लिये उन पर ऐसे ही आक्रमण किया जैसे फतिंगा आग पर आक्रमण करे।

सोऽविध्यत तदा द्रोणं षष्ट्या साश्वरथध्वजम्॥ २४॥
पुनश्चान्यैः शरैस्तीक्ष्णैः सुप्तं व्याघ्रं तुदन्निव।
तस्य द्रोणो धनुर्मध्ये क्षुरप्रेण शितेन च॥ २५॥
चकर्त गार्ध्रपत्रेण यतमानस्य शुष्मिणः।
अथान्यद् धनुरादाय शैशुपालिर्महारथः॥ २६॥
विव्याध सायकैर्द्रोणं कङ्कबर्हिणवाजितैः।
तस्य द्रोणो हयान् हत्वा चतुर्भिश्चतुरः शरैः॥ २७॥
सारथेश्च शिरः कायाच्चकर्त प्रहसन्निव।

उसने साठ बाणों की वर्षा करते हुए घोड़ों, रथ, ध्वजसहित द्रोणाचार्य को घायल कर दिया और फिर जैसे सोते हुए शेर को तंग किया जाये दूसरे तीखे बाणों से उन्हें पीड़ित किया। तब द्रोणाचार्य ने गिद्ध के पंखवाले तीखे क्षुरप्र के द्वारा विजय के लिये प्रयत्न करते हुए बलवान् धृष्टकेतु के धनुष को बीच में से काट दिया। तब शिशुपाल के महारथी पुत्र ने दूसरे धनुष को लेकर कंक पक्षी और मोर के पंखों से युक्त बाणों के द्वारा द्रोणाचार्य को बींध दिया। तब द्रोणाचार्य ने मुस्कराते हुए चार बाणों से उसके चारों घोड़ों को मारकर सारथी का सिर भी शरीर से अलग कर दिया।

अथैनं पञ्चविंशत्या सायकानां समार्पयत्॥ २८॥
अवप्लुत्य रथाच्चैद्यो गदामादाय सत्वरः।
भारद्वाजाय चिक्षेप रुषितामिव पन्नगीम्॥ २९॥
तामापतन्तीमालोक्य कालरात्रिमिवोद्यताम्।
अश्मसारमयीं गुर्वीं तपनीयविभूषिताम्॥ ३०॥
शरैरनेकसाहस्रैर्भारद्वा- जोऽच्छिनच्छितैः।
गदां विनिहतां दृष्ट्वा धृष्टकेतुरमर्षणः॥ ३१॥
तोमरं व्यसृजद् वीरः शक्तिं च कनकोज्ज्वलाम्।
तोमरं पञ्चभिर्भित्त्वा शक्तिं चिच्छेद पञ्चभिः॥ ३२॥

फिर उन्होंने धृष्टकेतु को पच्चीस बाण मारे। तब उसने तुरन्त रथ से कूदकर और गदा को

लेकर क्रुद्ध सर्पिणी के समान उसे द्रोणाचार्य के ऊपर फैंका। लोहे से बनी हुई, स्वर्ण भूषित, भारी और उठी हुई कालरात्रि के समान उस गदा को आते देखकर द्रोणाचार्य ने असंख्य तीखे बाणों से उसे काट दिया। तब गदा को व्यर्थ हुआ देखकर अमर्षशील वीर धृष्टकेतु ने तोमर और स्वर्णभूषित शक्ति का प्रहार किया। द्रोणाचार्य ने पाँच पाँच बाणों से तोमर और शक्ति के टुकड़े कर दिये।

ततोऽस्य विशिखं तीक्ष्णं वधाय वधकाङ्क्षिणः।
प्रेषयामास समरे भारद्वाजः प्रतापवान्॥ ३३॥
स तस्य कवचं भित्त्वा हृदयं चामितौजसः।
अभ्यगाद् धरणीं बाणो हंसः पद्मवनं यथा॥ ३४॥
निहते चेदिराजे तु तत् खण्डं पित्र्यमाविशत्।
अमर्षवशमापन्नः पुत्रोऽस्य परमास्त्रवित्॥ ३५॥
तमपि प्रहसन् द्रोणः शरैर्निन्ये यमक्षयम्।
महाव्याघ्रो महारण्ये मृगशावं यथा बली॥ ३६॥

तब प्रतापी द्रोणाचार्य ने उसका वध चाहनेवाले धृष्टकेतु के वध के लिये एक तीखे बाण को युद्ध में चलाया। वह बाण उस अमिततेजस्वी के कवच को भेदकर और हृदय को छेदकर इसप्रकार भूमि में धँस गया, जैसे हंस कमल के वन में प्रवेश करता है। तब चेदिराज के मारे जाने पर पिता के उस स्थान पर अस्त्रों का परमवेत्ता उसका पुत्र अमर्ष में भर कर आकर डट गया। द्रोणाचार्य ने हँसते हुए उसेभी बाणों से उसी प्रकार मृत्युलोक को पहुँचा दिया, जैसे महान् वन में कोई बलवान् विशाल बाघ किसी हरिण के बच्चे को दबोच ले।

तेषु प्रक्षीयमाणेषु पाण्डवेयेषु भारत।
जरासंधसुतो वीरः स्वयं द्रोणमुपाद्रवत्॥ ३७॥
स तु द्रोणं महाबाहुः शरधाराभिराहवे।
अदृश्यमकरोत् तूर्णं जलदो भास्करं यथा॥ ३८॥
तस्य तल्लाघवं दृष्ट्वा द्रोणः क्षत्रियमर्दनः।
व्यसृजत् सायकांस्तूर्णं शतशोऽथ सहस्रशः॥ ३९॥
छादयित्वा रणे द्रोणो रथस्थं रथिनां वरम्।
जारासंधिं जघानाशु मिषतां सर्वधन्विनाम्॥ ४०॥

हे भारत! पाण्डवपक्ष के उन योद्धाओं के विनष्ट होने पर जरासन्ध के वीर पुत्र सहदेव ने स्वयं द्रोणाचार्य पर आक्रमण किया। उस महाबाहु ने तुरन्त उस महान् युद्ध में द्रोणाचार्य को अपनी बाणवर्षा से ऐसे ढक दिया, जैसे बादल सूर्य को ढक देते हैं। तब क्षत्रियों का मर्दन करनेवाले द्रोणाचार्य ने उसकी इस फुर्ती को देखकर शीघ्रता से सैकड़ों हजारों बाणों को छोड़ा। इसप्रकार उन्होंने युद्धस्थल में रथियों में श्रेष्ठ और रथ में बैठे हुए उस जरासन्ध के पुत्र को बाणों से आच्छादितकर, शीघ्र ही सारे धनुर्धरों के देखते हुए मार दिया।

यो यः स्म नीयते तत्र तं द्रोणो ह्यन्तकोपमः।
आदत्त सर्वभूतानि प्राप्ते काले यथान्तकः॥ ४१॥
ततो निष्ठानको घोरः पाण्डवानामजायत।
द्रोणेन वध्यमानेषु सैन्येषु भरतर्षभ॥ ४२॥
प्रताप्यमानाः सूर्येण हन्यमानाश्च सायकैः।
अन्वपद्यन्त पञ्चालास्तदा संत्रस्तचेतसः॥ ४३॥
चेदयश्च महाराज सृञ्जयाः काशिकोसलाः।
अभ्यद्रवन्त संहृष्टा भारद्वाजं युयुत्सया॥ ४४॥

उस समय जो जो वीर द्रोणाचार्य सामने गया, उसी को उन्होंने मृत्युलोक में भेज दिया, जैसे मृत्यु समय आने पर सारे प्राणियों को ग्रस लेती है। हे भरतश्रेष्ठ! तब द्रोणाचार्य के द्वारा मारी जाती हुई पाण्डवों की सेना में भयंकर आर्तनाद होने लगा। उस समय ऊपर से सूर्य तपा रहे थे और नीचे द्रोणाचार्य के बाणों की मार पड़ रही थी। ऐसी अवस्थामें पांचाल सैनिक अत्यन्त भयभीत और व्याकुल होगये। हे महाराज। तब चेदिदेश के, सृंजय, काशी और कोसलदेश के सैनिक युद्ध की इच्छा से उत्साह में भरकर द्रोणाचार्य पर टूट पड़े।

ब्रुवन्तश्च रणेऽन्योन्यं चेदिपञ्चालसृञ्जयाः।
घ्नत द्रोणं घ्नत द्रोणमिति ते द्रोणमभ्ययुः॥ ४५॥
यतन्तः पुरुषव्याघ्राः सर्वशक्त्या महाद्युतिम्।
निनीषवो रणे द्रोणं यमस्य सदनं प्रति॥ ४६॥
यतमानांस्तु तान् वीरान् भारद्वाजः शिलीमुखैः।
यमाय प्रेषयामास चेदिमुख्यान् विशेषतः॥ ४७॥
अर्धचन्द्रेण चिच्छेद क्षत्रधर्मा महाबलः।
क्रोधसंविग्नमनसो द्रोणस्य सशरं धनुः॥ ४८॥

चेदि, पाँचाल और सृंजय सैनिक परस्पर यह कहते हुए कि द्रोणाचार्य को मार दो, द्रोणाचार्य को मार दो, उन पर टूट पड़े। महातेजस्वी द्रोणाचार्य को मृत्युलोक

में पहुँचाने की इच्छावाले वे पुरुषश्रेष्ठ अपनी सारी शक्तियों से यत्न करने लगे। प्रयत्न करते हुए उनवीरों को द्रोणाचार्य ने विशेषकर चेदिदेश के सैनिकों को अपने बाणों से मृत्युलोक में भेज दिया। तब महाबली क्षत्रधर्मा ने अर्धचन्द्राकार बाणसे क्रोधयुक्त द्रोणाचार्य के बाणसहित धनुष को काट दिया।

स संरब्धतरो भूत्वा द्रोणः क्षत्रियमर्दनः।
अन्यत् कार्मुकमादाय भास्वरं वेगवत्तरम्॥ ४९॥
तत्राधाय शरं तीक्ष्णं परानीकविशातनम्।
आकर्णपूर्णमाचार्यो बलवानभ्यवासृजत्॥ ५०॥
स हत्वा क्षत्रधर्माणं जगाम धरणीतलम्।
ततः सैन्यान्यकम्पन्त धृष्टद्युम्नसुते हते॥ ५१॥
अथ द्रोणं समारोहच्चेकितानो महाबलः।
स द्रोणं दशभिर्विद्ध्वा प्रत्यविद्धयत् स्तनान्तरे॥ ५२॥
चतुर्भिः सारथिं चास्य चतुर्भिश्चतुरो हयान्।

तब क्षत्रियों का मर्दन करनेवाले द्रोणाचार्य ने और अधिक क्रुद्ध होकर दूसरे अधिक वेगवान् और जगमगाते हुए धनुष को लेकर, उस पर शत्रुसेना को नष्ट करनेवाले तीखे बाण का सन्धान करके, बलवान् आचार्य ने कान तक धनुष को खींचकर उसे छोड़ा जो क्षत्रधर्मा को मारकर धरती में धँसगया। धृष्टद्युम्न के पुत्र के मारे जाने पर सारी सेनाएँ भय से काँपने लगीं। तब महाबली चेकितान ने द्रोणाचार्य पर आक्रमण किया। उसने दस बाणों से उनके सारथी को और चार बाणों से चारों घोड़ों को बींध दिया।

तमाचार्यस्त्रिभिर्बाणैर्बाह्वोरुरसि चार्पयत्॥ ५३॥
ध्वजं सप्तभिरुन्मथ्य यन्तारमवधीत् त्रिभिः।
तस्य सूते हते तेऽश्वा रथमादाय विद्रुताः॥ ५४॥
समरे शरसंवीता भारद्वाजेन मारिष।
आकर्णपलितः श्यामो वयसाशीतिपञ्चकः॥ ५५॥
रणे पर्यचरद् द्रोणो वृद्धः षोडशवर्षवत्।
अथ द्रोणं महाराज विचरन्तमभीतवत्॥ ५६॥
वज्रहस्तममन्यन्त शत्रवः शत्रुसूदनम्।

तब आचार्य ने तीन बाणों से उसकी बाहों और हृदय पर प्रहार किया। सात बाणों से उसके ध्वज को काटकर सारथी को तीन बाणों से मार दिया। हे मान्यवर! तब सारथी के मारे जाने पर वे घोड़े, जिन्हें द्रोणाचार्य ने बाणों घायल कर दिया था, रथ को लेकर युद्धस्थल से भाग गये। साँवले रंग के वे बूढ़े द्रोणाचार्य, जिनके कानतक के बाल सफेद होगये थे और जिनकी आयु एक सौ तीस वर्ष की थी, उस समय युद्धक्षेत्र में सोलह वर्ष की आयुवाले के समान विचरण कर रहे थे। हे महाराज! निडरता के साथ विचरण करते हुए, शत्रुसूदन द्रोणाचार्य को उस समय शत्रुओं ने वज्रधारी इन्द्र के समान समझा।

ततोऽब्रवीन्महाबाहुर्द्रुपदो बुद्धिमान् नृप।
लुब्धोऽयं क्षत्रियान् हन्ति व्याघ्रः क्षुद्रमृगानिव॥ ५८॥
कृच्छ्रान् दुर्योधनो लोकान् पापः प्राप्स्यति दुर्मतिः।
यस्य लोभाद् विनिहताः समरे क्षत्रियर्षभाः॥ ५९॥
शतशः शेरते भूमौ निकृत्ता गोवृषा इव।
रुधिरेण परीताङ्गाः श्वशृगालादनीकृताः॥ ६०॥
एवमुक्त्वा महाराज द्रुपदोऽक्षौहिणीपतिः।
पुरस्कृत्य रणे पार्थान् द्रोणमभ्यद्रवद् द्रुतम्॥ ६१॥

हे राजन्! तब बुद्धिमान् महाबाहु राजा द्रुपद ने कहा कि जैसे बाघ छोटे मृगों को मारता है, वैसे ही यह लोभी क्षत्रियों को मार रहा है। इस दुर्मति दुर्योधन के लोभ से युद्ध में श्रेष्ठ क्षत्रिय मारे जारहे हैं। परलोक में यह बड़ी दुःखदायी गतियों को प्राप्त करेगा। सैकड़ों योद्धा गाय और बैलों के समान कट कटकर खून से लथपथ हुए शरीरों से भूमि पर सोरहे हैं और कुत्तों तथा गीदड़ों का भोजन बन रहे हैं। हे महाराज! ऐसा कहकर अक्षौहिणी सेना के स्वामी द्रुपद ने कुन्ती के पुत्रों को आगेकर, युद्धक्षेत्र में शीघ्रता से द्रोणाचार्य पर आक्रमण कर दिया।

अड़सठवाँ अध्याय : युधिष्ठिर की चिन्ता और भीम को अर्जुन तथा सात्यकि का पता लगाने के लिये भेजना।

अचिन्तयन्महाबाहुः शैनेयस्य रथं प्रति।
पदवीं प्रेषितश्चैव फाल्गुनस्य मया रणे॥ १॥
शैनेयः सात्यकिः सत्यो मित्राणामभयंकरः।
तदिदं ह्येकमेवासीद् द्विधा जातं ममाद्य वै॥ २॥
सात्यकिश्च हि विज्ञेयः पाण्डवश्च धनंजयः।
सात्यकिं प्रेषयित्वा तु पाण्डवस्य पदानुगम्॥ ३॥
सात्वतस्यापि कं युद्धे प्रेषयिष्ये पदानुगम्।
करिष्यामि प्रयत्नेन भ्रातुरन्वेषणं यदि॥ ४॥
युयुधानमनन्विष्य लोको मां गर्हयिष्यति।

तब महाबाहु युधिष्ठिर सात्यकि के रथ के विषय में सोचने लगे कि सत्यवादी, मित्रों को अभय देने वाले, शिनिपौत्र, सात्यकि को अर्जुन का हाल मालूम करने के लिये भेजा था। पहले मेरी चिन्ता युद्धस्थल में गये हुए एकही व्यक्ति के लिये थी, पर अब दो भागों में बँटकर दो व्यक्तियों के लिये होगयी है। मुझे जहाँ अर्जुन का पता लगाना चाहिये, वहाँ सात्यकि का भी पता लगाना चाहिये। मैने अर्जुन के पीछे सात्यकि को तो भेज दिया, पर अब सात्यकि के पीछे किसको भेजूँ? यदि केवल अपने भाई के लिये ही प्रयत्न करके रह जाऊँगा और सात्यकि की खोज के लिये प्रयत्न नहीं करूँगा तो लोग मेरी निन्दा करेंगे।

भ्रातुरन्वेषणं कृत्वा धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः॥ ५॥
परित्यजति वार्ष्णेयं सात्यकिं सत्यविक्रमम्।
लोकापवादभीरुत्वात् सोऽहं पार्थं वृकोदरम्॥ ६॥
पदवीं प्रेषयिष्यामि माधवस्य महात्मनः।
यथैव च मम प्रीतिरर्जुने शत्रुसूदने॥ ७॥
तथैव वृष्णिधीरेऽपि सात्वते युद्धदुर्मदे।
अतिभारे नियुक्तश्च मया शैनेयनन्दनः॥ ८॥

लोग कहेंगे कि धर्मपुत्र युधिष्ठिर ने भाई की खोज के लिये प्रयत्न करके सत्यविक्रमी सात्यकि के लिये प्रयत्न नहीं किया, उसकी उपेक्षा कर दी। मैं लोगों से आनेवाली बदनामी से डरता हूँ, इसलिये कुन्तीपुत्र भीम को मनस्वी सात्यकि का पता लगाने के लिये भेजता हूँ। मेरा जैसा प्रेम शत्रुसूदन अर्जुन पर है, वैसा ही युद्ध में दुर्मद, वृष्णिवीर सात्यकि पर भी है। मैंने उस शिनिवंश को आनन्द देनेवाले पर बहुतबड़ा उत्तरदायित्व सौंप दिया है।

स तु मित्रोपरोधेन गौरवात्तु महाबलः।
प्रविष्टो भारतीं सेनां मकरः सागरं यथा॥ ९॥
प्राप्तकालं सुबलवन्निश्चितं बहुधा हि मे।
तत्रैव पाण्डवेयस्य भीमसेनस्य धन्विनः॥ १०॥
गमनं रोचते मह्यं यत्र यातौ महारथौ।
न चाप्यसह्यं भीमस्य विद्यते भुवि किंचन॥ ११॥
शक्तो ह्येष रणे यत्तः पृथिव्यां सर्वधन्विनाम्।
स्वबाहुबलमास्थाय प्रतिव्यूहितुमञ्जसा॥ १२॥

उस महाबली सात्यकि ने मित्र के अनुरोध और अपने बड़प्पन के कारण भरतवंश की सेना में अकेले ही इसप्रकार प्रवेश किया है, जैसे कोई मगरमच्छ सागर में घुस जाये। इस समय जो कर्त्तव्य मेरे सामने उपस्थित है, उस पर मैंने अनेकप्रकार से प्रबल विचारकर निश्चित कर लिया है। मुझे पाण्डुपुत्र धनुर्धर भीम का ही वहाँ भेजना उचित लग रहा है, जहाँ वे दोनों महारथी गये हैं। इस भूमि पर भीम के लिये कोईभी कार्य असह्य नहीं है। यह अपने बाहुबल का आश्रय लेकर युद्धभूमि में पृथिवी के सारे धनुर्धरों का प्रयत्नपूर्वक वेग से सामना कर सकने में समर्थ है।

यस्य बाहुबलं सर्वे समाश्रित्य महात्मनः।
वनवासान्निवृत्ताः स्म न च युद्धेषु निर्जिताः॥ १३॥
इतो गते भीमसेने सात्वतं प्रति पाण्डवे।
सनाथौ भवितारौ हि युधि सात्वतफाल्गुनौ॥ १४॥
कामं त्वशोचनीयौ तौ रणे सात्वतफाल्गुनौ।
रक्षितौ वासुदेवेन स्वयं शस्त्रविशारदौ॥ १५॥
अवश्यं तु मया कार्यमात्मनः शोकनाशनम्।
तस्माद् भीमं नियोक्ष्यामि सात्वतस्य पदानुगम्॥ १६॥

इस मनस्वी के बाहुबल का ही सहारा लेकर हमसब वनवास से कुशलतापूर्वक लौट आये और किसी से पराजित नहीं हुए। सात्यकि के पीछे पाण्डुपुत्र भीम के यहाँ से जाने पर युद्ध में अर्जुन और सात्यकि दोनों सनाथ होजायेंगे। वैसे तो युद्धस्थल में सात्यकि और अर्जुन दोनों ही निश्चितरूप से

चिन्ता करने के योग्य नहीं हैं। दोनों ही स्वयं शस्त्रविद्या में विशारद हैं और श्रीकृष्ण उनके रक्षक हैं। पर मुझे अपने शोक को नष्ट करनेवाला कार्य तो करना ही चाहिये, इसलिये भीम को सात्यकि के पीछे जाने के लिये नियुक्त करता हूँ।

ततः प्रतिकृतं मन्ये विधानं सात्यकिं प्रति।
एवं निश्चित्य मनसा धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः॥ १७॥
यन्तारमब्रवीद् राजा भीमं प्रति नयस्व माम्।
धर्मराजवचः श्रुत्वा सारथिर्हयकोविदः॥ १८॥
रथं हेमपरिष्कारं भीमान्तिकमुपानयत्।
भीमसेनमनुप्राप्य प्राप्तकालमचिन्तयत्॥ १९॥
कश्मलं प्राविशद् राजा बहु तत्र समादिशन्।
स कश्मलसमाविष्टो भीममाहूय पार्थिवः॥ २०॥
अब्रवीद् वचनं राजन् कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः।

ऐसा करके मैं सात्यकि के प्रति अपने कर्त्तव्य का पालन किया हुआ समझूँगा। ऐसा मन में निश्चय कर धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर ने अपने सारथि से कहा कि मुझे भीम के पास लेचलो। तब धर्मराज की बात सुनकर घोड़ों के विशेषज्ञ सारथि ने अपने सुनहरे रंग के उस रथ को भीमसेन के समीप पहुँचा दिया। भीम के समीप पहुँचकर युधिष्ठिर अपने कर्त्तव्य के विषय में सोचने लगे और कुछ कुछ कहते हुए मोह को प्राप्त होगये। उस मोहाविष्टअवस्था में ही हे राजन्! कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिर भीम को सम्बोधित करके कहने लगे कि—

यः सदेवान् सगन्धर्वान् दैत्यांश्चैकरथोऽजयत्॥ २१॥
तस्य लक्ष्म न पश्यामि भीमसेनानुजस्य ते।
ततोऽब्रवीद् धर्मराजं भीमसेनस्तथागतम्॥ २२॥
नैवाद्राक्षं न चाश्रौषं तव कश्मलमीदृशम्।
पुरातिदुःखदीर्णानां भवान् गतिरभूद्धि नः॥ २३॥
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ राजेन्द्र शाधि किं करवाणि ते।
न ह्यसाध्यमकार्यं वा विद्यते मम मानद॥ २४॥
आज्ञापय कुरुश्रेष्ठ मा च शोके मनः कृथाः।

हे भीमसेन! जिसने अकेले ही एक रथ से देवताओं और गन्धर्वोंसहित राक्षसों को भी जीत लिया था, तुम्हारे उस छोटे भाई अर्जुन का मैं कोई भी समाचार नहीं सुन रहा हूँ। तब वैसी अवस्था को प्राप्त धर्मराज से भीम ने कहा कि आपकी ऐसी मोहाविष्ट अवस्था मैंने न तो देखी थी न सुनी थी। पहले जब हम दुःख से अत्यन्तविचलित हो जाया करते थे, तब आपही हमें ढाढस बँधाया करते थे। इसलिये हे राजेन्द्र! उठिये, उठिये, आदेश दीजिये। मैं आपके लिये क्या करूँ? हे दूसरों को मान देनेवाले! मेरे लिये न करने योग्य और असम्भव कार्य कोई नहीं है। इसलिये हे कुरुश्रेष्ठ! आप मुझे आज्ञा दीजिये। अपने मन को चिन्तित मत कीजिये।

तमब्रवीदश्रुपूर्णः कृष्णसर्प इव श्वसन्॥ २५॥
भीमसेनमिदं वाक्यं प्रम्लानवदनो नृपः।
यथा शङ्खस्य निर्घोषः पाञ्चजन्यस्य श्रूयते॥ २६॥
पूरितो वासुदेवेन संरब्धेन यशस्विना।
नूनमद्य हतः शेते तव भ्राता धनंजयः॥ २७॥
तस्मिन् विनिहते नूनं युध्यतेऽसौ जनार्दनः।
तस्य वै गमनं विद्मो भीम नावर्तनं पुनः॥ २८॥

तब कृष्णसर्प के समान लम्बी साँसें लेते हुए, उदास मुख से राजा ने आँखों में आँसू भरकर कहा कि यशस्वी श्रीकृष्ण के द्वारा क्रोधसहित जोर से बजाये गये पाँचजन्य शंख की ध्वनि जिसप्रकार से सुनाई देरही है, इससे प्रतीत होता है कि निश्चय ही इस समय तुम्हारे भाई अर्जुन मारे जाकर युद्धक्षेत्र में सोरहे हैं। उसके मारे जाने पर निश्चय ही श्रीकृष्ण आगे बढ़कर युद्ध कर रहे हैं। हे भीम! हमें अर्जुन के जाने के बारे में ही पता है, पर वापिसी के बारे में कुछ खबर नहीं है।

वृद्धोपसेवी धृतिमान् कृतज्ञः सत्यसङ्गरः।
प्रविष्टो महतीं सेनामपर्यन्तां धनंजयः॥ २९॥
प्रविष्टे च चमूं घोरामर्जुने शत्रुनाशने।
प्रेषितः सात्वतो वीरः फाल्गुनस्य पदानुगः॥ ३०॥
तस्याभिगमनं जाने भीम नावर्तनं पुनः।
तदिदं मम भद्रं ते शोकस्थानमरिंदम॥ ३१॥
अर्जुनार्थे महाबाहो सात्वतस्य च कारणात्।
वर्धते हविषेवाग्निरिध्यमानः पुनः पुनः॥ ३२॥
तस्य लक्ष्म न पश्यामि तेन विन्दामि कश्मलम्।

अर्जुन वृद्धों की सेवा करनेवाले, धैर्यवान्, कृतज्ञ और सत्यप्रतिज्ञ हैं। उसने इस विशाल और असीम सेना में प्रवेश किया है। शत्रुनाशन अर्जुन के इस भयंकर सेना में प्रवेश करने पर, उसके पीछे मैंने वीर सात्यकि को भेज दिया है। हे भीम! मुझे उसके भी जाने का ही पता है, वापिसी का नहीं। हे शत्रु

का दमन करनेवाले, महाबाहु! यही मेरे शोक का कारण है। अर्जुन और सात्यकि के कारण, जैसे आहुति डालने से आग अधिक भड़कती है, वैसे ही मेरा शोक बार बार बढ़ रहा है, मैं उनका कोई भी चिह्न नहीं देख रहा हूँ, इसलिये मुझे मोह होरहा है।

तं विद्धि पुरुषव्याघ्रं सात्वतं च महारथम्॥ ३३॥
स तं महारथं पश्चादनुयातस्तवानुजम्।
तमपश्यन्महाबाहुमहं विन्दामि कश्मलम्॥ ३४॥
पार्थे तस्मिन् हते चैव युध्यते नूनमग्रणीः।
सहायो नास्य वै कश्चित् तेन विन्दामि कश्मलम्॥ ३५॥
तस्मिन् कृष्णो हते नूनं युध्यते युद्धकोविदः।

तुम उस महारथी, पुरुषव्याघ्र सात्यकि के बारे में पता करो। वे तुम्हारे छोटे भाई महारथी की खोज में गये हैं। उस महाबाहु को न देखने के कारण ही मैं घबरा रहा हूँ। अर्जुन के मारे जाने पर निश्चय ही सात्यकि भी आगे बढ़कर युद्ध कर रहे हैं। उनका कोई सहायक नहीं हैं। निश्चय ही अर्जुन के मारे जाने पर युद्धकलाकोविद श्रीकृष्ण युद्ध कर रहे हैं।

न हि मे शुध्यते भावस्तयोरेव परंतप॥ ३६॥
स तत्र गच्छ कौन्तेय यत्र यातो धनंजयः।
सात्यकिश्च महावीर्यः कर्तव्यं यदि मन्यसे॥ ३७॥
वचनं मम धर्मज्ञ भ्राता ज्येष्ठो भवामि ते।
न तेऽर्जुनस्तथा ज्ञेयो ज्ञातव्यः सात्यकिर्यथा॥ ३८॥
चिकीर्षुर्मत्प्रियं पार्थ स यातः सव्यसाचिनः।
पदवीं दुर्गमां घोरामगम्यामकृतात्मभिः॥ ३९॥
दृष्ट्वा कुशलिनौ कृष्णौ सात्वतं चैव सात्यकिम्।
संविदं चैव कुर्यास्त्वं सिंहनादेन पाण्डव॥ ४०॥

हे परंतप! उन दोनों के बारे में मेरा मन चिन्ता रहित नहीं होरहा है। इसलिये हे कुन्तीपुत्र! तुम वहीं जाओ, जहाँ अर्जुन है और सात्यकि है। यदि तुम अपना कर्त्तव्य समझते हो, तो हे धर्म को जानने वाले! मैं तुम्हारा बड़ा भाई हूँ, मेरे वचन का पालन करो। तुम्हें अर्जुन के बारे में उतना नहीं मालूम करना है, जितना सात्यकि के बारे में करना है। हे कुन्तीपुत्र! वह मेरा प्रिय करने की इच्छा से, अर्जुन के पीछे उस दुर्गम और भयंकर मार्ग पर गया है जो अजितेन्द्रिय लोगों के लिये अगम्य है। जब तुम श्रीकृष्ण, अर्जुन, और सात्वतवंशी सात्यकि को सकुशल देख लो, तब हे पाण्डुपुत्र! तुम जोर जोर से सिंहनाद करके मुझे सूचित कर देना।

उनहत्तरवाँ अध्याय : भीम का द्रोणाचार्य की सेना में प्रवेश, द्रोणाचार्य के रथ का विध्वंस, धृतराष्ट्र के पुत्रों का वध।

भीमसेन उवाच

आज्ञां तु शिरसा बिभ्रदेष गच्छामि मा शुचः।
समेत्य तान् नरव्याघ्रां स्तव दास्यामि संविदम्॥ १॥
एतावदुक्त्वा प्रययौ परिदाय युधिष्ठिरम्।
धृष्टद्युम्नाय बलवान् सुहृद्भ्यश्च पुनः पुनः॥ २॥
धृष्टद्युम्नं चेदमाह भीमसेनो महाबलः।
विदितं ते महाबाहो यथा द्रोणो महारथः॥ ३॥
ग्रहणे धर्मराजस्य सर्वोपायेन वर्तते।
न च मे गमने कृत्यं तादृक् पार्षत विद्यते॥ ४॥
यादृशं रक्षणे राज्ञः कार्यमात्ययिकं हि नः।
एवमुक्तोऽस्मि पार्थेन प्रतिवक्तुं न चोत्सहे॥ ५॥
प्रयास्ये तत्र यत्रासौ मुमूर्षुः सैन्धवः स्थितः।
धर्मराजस्य वचने स्थातव्यमविशङ्कया॥ ६॥

भीमसेन ने कहा कि आप शोक मत कीजिये, मैं आपकी आज्ञा को सिर पर धारणकर अभी जारहा हूँ और वहाँ पुरुषव्याघ्रों से मिलकर आपको इसकी सूचना दूँगा। तब युधिष्ठिर को धृष्टद्युम्न तथा दूसरे हितैषियों की सुरक्षा में सौंपकर और उनसे उनकी रक्षा के लिये बार बार कहकर वे बलवान् वहाँ से चल दिये। महाबली भीमसेन ने धृष्टद्युम्न से यह कहा कि हे महाबाहु! आपको पता ही है कि महारथी द्रोणाचार्य युधिष्ठिर को सभीप्रकार के उपायों से पकड़ने के लिये किसप्रकार प्रयत्न कर रहे हैं। हे द्रुपदपुत्र! इसलिये मेरे लिये भी वहाँ जाना इतना आवश्यक नहीं है, जितना आवश्यक राजा की रक्षा करना है, पर कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर ने मुझे वहाँ जाने के लिये कहा है। मैं उन्हें नकारात्मक उत्तर नहीं देसकता, इसलिये अब मैं वहाँ जाऊँगा, जहाँ वह मरने का इच्छुक जयद्रथ विद्यमान है। मुझे बिना किसी शंका के धर्मराज के वचन का पालन करना चाहिये।

यास्यामि पदवीं भ्रातुः सात्वतस्य च धीमतः।
सोऽद्य यत्तो रणे पार्थं परिरक्ष युधिष्ठिरम्॥ ७॥
एतद्धि सर्वकार्याणां परमं कृत्यमाहवे।
तमब्रवीन्महाराज धृष्टद्युम्नो वृकोदरम्॥ ८॥
ईप्सितं ते करिष्यामि गच्छ पार्थाविचारयन्।
नाहत्वा समरे द्रोणो धृष्टद्युम्नं कथञ्चन॥ ९॥
निग्रहं धर्मराजस्य प्रकरिष्यति संयुगे।
ततो निक्षिप्य राजानं धृष्टद्युम्ने च पाण्डवम्॥ १०॥
अभिवाद्य गुरुं ज्येष्ठं प्रययौ येन फाल्गुनः।

,मैं भाई अर्जुन और धीमान् सात्यकि के पीछे जारहा हूँ, इसलिये आप यत्नपूर्वक युद्ध में कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर की रक्षा करो। इस समय युद्ध में सारे कार्यों से बढ़कर यही महान् कार्य है। हे महाराज! तब भीमसेन से धृष्टद्युम्न ने कहा कि हे कुन्तीपुत्र! मैं तुम्हारी इच्छा के अनुसार करूँगा, तुम बिना किसी शंका के जाओ। द्रोणाचार्य युद्धस्थल में धृष्टद्युम्न को मारेबिना युधिष्ठिर को किसीप्रकार भी पकड़ नहीं सकते। तब पाण्डुपुत्र राजा को धृष्टद्युम्न की सुरक्षा में सौंपकर और अपने बड़े भाई को प्रणामकर वे उसी मार्ग पर चल दिये, जिस पर अर्जुन गये थे।

परिष्वक्तश्च कौन्तेयो धर्मराजेन भारत॥ ११॥
आघ्रातश्च तथा मूर्ध्नि श्रावितश्चाशिषः शुभाः।
तस्य कार्ष्णायसं वर्म हेमचित्रं महर्द्धिमत्॥ १२॥
विबभौ सर्वतः श्लिष्टं सविद्युदिव तोयदः।
पीतरक्तासितसितैर्वासोभिश्च सुवेष्टितः॥ १३॥
कण्ठत्राणेन च बभौ सेन्द्रायुध इवाम्बुदः।
प्रयाते भीमसेने तु तव सैन्यं युयुत्सया॥ १४॥
पाञ्चजन्यरवो घोरः पुनरासीद् विशाम्पते।

हे भारत! तब धर्मराज ने कुन्तीपुत्र को अपनी छाती से लगाया, उनका सिर सूँघा और उन्हें शुभाशीर्वाद दिये, भीम का काले लोहे का बना वह स्वर्णभूषित, सारे शरीर के अंगों से सटा हुआ, बहुमूल्य कवच, विद्युत् से युक्त बादलों के समान सुशोभित होरहा था। पीले, लाल, काले, सफेद वस्त्रों से विभूषित और कण्ठत्राण पहने हुए वे उस समय इन्द्रधनुष से युक्त बादलों के समान सुशोभित हो रहे थे। युद्ध की इच्छा से आपकी सेना की तरफ प्रयाण करते हुए, उसी समय हे प्रजानाथ! पाँचजन्य शंख की पुनः भयानक ध्वनि सुनाई दी।

तं श्रुत्वा निनदं घोरं त्रैलोक्यत्रासनं महत्॥ १५॥
पुनर्भीमं महाबाहुं धर्मपुत्रोऽभ्यभाषत।
एष वृष्णिप्रवीरेण ध्मातः सलिलजो भृशम्॥ १६॥
पृथिवीं चान्तरिक्षं च विनादयति शङ्खराट्।
नूनं व्यसनमापन्ने सुमहत् सव्यसाचिनि॥ १७॥
कुरुभिर्युध्यते सार्धं सर्वैश्चक्रगदाधरः।
स भीम त्वरया युक्तो याहि यत्र धनंजयः॥ १८॥
मुह्यन्तीव हि मे सर्वा धनंजयदिदृक्षया।
दिशश्च प्रदिशः पार्थ सात्वतस्य च कारणात्॥ १९॥

तीनों लोकों को डरानेवाले उस महाभयंकर शब्द को सुनकर धर्मराज युधिष्ठिर ने पुनः महाबाहु भीम से कहा कि यह श्रीकृष्ण जी के द्वारा जोर से बजाया गया, शंखराज पृथिवी और आकाश को गुँजा रहा है। निश्चय ही अर्जुन के बड़े संकट में पड़ने पर सारे कौरवों से चक्र और गदा को धारण करनेवाले कृष्ण युद्ध कर रहे हैं। इसलिये हे भीम! तुम शीघ्रता से वहीं जाओ, जहाँ अर्जुन है। सात्यकि के कारण भी मुझे दिशाओं और उपदिशाओं में अँधेरा लग रहा है।

आहत्य दुन्दुभिं भीमः शङ्खं प्रध्माप्य चासकृत्।
विनद्य सिंहनादेन ज्यां विकर्षन् पुनः पुनः॥ २०॥
तेन शब्देन वीराणां पातयित्वा मनांस्युत।
दर्शयन् घोरमात्मानममित्रान् सहसाभ्ययात्॥ २१॥

तब भीम ने अनेक बार नगाड़ा पीटकर और शंख को बजाकर तथा सिंहनाद करते हुए, बार बार धनुष को टंकारते हुए, उस शब्द से शत्रुवीरों के दिलों को दहलाकर, तथा अपने भयंकर रूप को प्रकट करते हुए अचानक शत्रुओं पर आक्रमण कर दिया।

अग्रतश्च गजानीकं, शरवर्षैरवाकिरत्।
प्राद्रवन् द्विरदाः सर्वे, नदन्तो भैरवान् रवान्॥ २२॥
पुनश्चातीव वेगेन द्रोणानीकमुपाद्रवत्।
तमवारयदाचार्यो वेलोद्वृत्तमिवार्णवम्॥ २३॥
स मन्यमानस्त्वाचार्यो ममायं फाल्गुनो यथा।
भीमः करिष्यते पूजामित्युवाच वृकोदरम्॥ २४॥
भीमसेन न ते शक्या प्रवेष्टुमरिवाहिनी।
मामनिर्जित्य समरे शत्रुमद्य महाबल॥ २५॥
यदि ते सोऽनुजः कृष्णः प्रविष्टोऽनुमते मम।
अनीकं न तु शक्यं मे प्रवेष्टुमिह वै त्वया॥ २६॥

उन्होंने अपने आगे खड़ी हुई हाथियों की सेना पर बाणों की वर्षा आरम्भ कर दी, जिससे वे हाथी भयानक आर्तनाद करते हुए सारी दिशाओं में भाग लिये। फिर उन्होंने बड़े वेग से द्रोणाचार्य की सेना पर आक्रमण किया, पर आचार्य ने उन्हें ऐसे रोक दिया जैसे तट की भूमि उद्धत हुए समुद्र को रोक देती है। फिर द्रोणाचार्य यह समझते हुए कि यह भी मेरा अर्जुन के समान सम्मान करेगा, भीम से बोले कि हे भीम! महाबली! तुम आज मुझ शत्रु को बिना जीते शत्रु की सेना में प्रवेश नहीं कर सकते। तुम्हारे छोटे भाई अर्जुन मेरी अनुमति से ही इसमें प्रविष्ट हुए हैं। यदि तुम भी चाहो तो उसीतरह से जासकते हो, अन्यथा तुम सेना में घुस नहीं सकते।

अथ भीमस्तु तच्छ्रुत्वा गुरोर्वाक्यमपेतभीः।
क्रुद्धः प्रोवाच वै द्रोणं रक्तताम्रेक्षणस्त्वरन्॥ २७॥
तवार्जुनो नानुमते ब्रह्मबन्धो रणाजिरम्।
प्रविष्टःस हि दुर्धर्षः शक्रस्यापि विशेद् बलम्॥ २८॥
तेन वै परमां पूजां कुर्वता मानितो ह्यसि।
नार्जुनोऽहं घृणी द्रोण भीमसेनोऽस्मि ते रिपुः॥ २९॥
पिता नस्त्वं गुरुर्बन्धुस्तथा पुत्रास्तु ते वयम्।
इति मन्यामहे सर्वे भवन्तं प्रणताः स्थिताः॥ ३०॥
अद्य तद्विपरीतं ते वदतोऽस्मासु दृश्यते।
यदि त्वं शत्रुमात्मानं मन्यसे तत्तथास्त्विह॥ ३१॥
एष ते सदृशं शत्रोः कर्म भीमः करोम्यहम्।

भीम गुरु के उन वचनों को सुनकर क्रोध से लालआँखेंकर निर्भयता से शीघ्रता के साथ बोले कि हे ब्रह्मबन्धु! अर्जुन युद्धस्थल में आपकी अनुमति से प्रविष्ट नहीं हुए। वह दुर्धर्ष तो इन्द्र की सेना में भी घुस सकते हैं। उसने केवल आपकी बड़ी पूजाकर आपका सम्मान किया है। पर हे द्रोणाचार्य! मैं दयालु अर्जुन नहीं हूँ। मैं तो आपका शत्रु भीमसेन हूँ। हम आपको अपना पिता, गुरु, और बन्धु मानते आये हैं। हम आपके पुत्रों के समान हैं, ऐसा मानते हुए हम आपको प्रणाम करते हुए रहे हैं। पर आज आप हमारे लिये उल्टी बात कह रहे हैं। यदि आप अपने को हमारा शत्रु समझते हैं तो ऐसाही सही। मैं भीम भी फिर आपके शत्रु जैसा ही कार्य करता हूँ।

अथोद्भ्राम्य गदां भीमः कालदण्डमिवान्तकः॥ ३२॥
द्रोणाय व्यसृजद् राजन् स रथादवपुप्लुवे।

हे राजन्! तब भीम ने, जैसे सबका अन्त कर देनेवाली मृत्यु नें ही समयरूपी डण्डे से प्रहार किया हो, वैसे ही अपनी गदा को घुमाकर द्रोणाचार्य के ऊपर फैंका। तब द्रोणाचार्य ने रथ से कूदकर अपनी जान बचाई।

तं समेत्य महाराज, तावकाः पर्यवारयन्॥ ३३॥
शोभन्तो रथिनां श्रेष्ठाः, सहसैन्यपदानुगाः।
संयत्ताः समरे वीराः, भीमसेनमुपाद्रवन्॥ ३४॥

हे महाराज! तब आपके पुत्रों ने इकट्ठे होकर भीम को घेर लिया। उन रथियों में श्रेष्ठ, शोभायमान वीरपुत्रों ने अपने सैनिकों और सेवकों के साथ सावधानीपूर्वक युद्धक्षेत्र में भीमसेन पर आक्रमण किया।

तैः समन्तात् वृतः शूरैः, समरेषु महारथः।
तान् समीक्ष्य तु कौन्तेयो, भीमसेनः पराक्रमी॥ ३५॥
अभ्यवर्तत वेगेन, सिंहः क्षुद्रमृगानिव।

युद्धक्षेत्र में उन वीरों से घिरकर, महारथी, पराक्रमी कुन्तीपुत्र भीम उन्हें देखकर, उनकीतरफ ऐसे तेजी से लपके, जैसे सिंह छोटे हरिणों की तरफ लपकता है।

ते वध्यमानाः समरे तव पुत्रा महारथाः॥ ३६॥
भीमं भीमबला युद्धे योधयन्ति जयैषिणः।
ततो दुःशासनः क्रुद्धो रथशक्तिं समाक्षिपत्॥ ३७॥
सर्वपारशवीं तीक्ष्णां जिघांसुः पाण्डुनन्दनम्।
आपतन्तीं महाशक्तिं तव पुत्रप्रणोदिताम्॥ ३८॥
द्विधा चिच्छेद तां भीमस्तदद्भुतमिवाभवत्।

वे महारथी और विजय के इच्छुक आपके भयंकर बलवाले पुत्र युद्धक्षेत्र में भीम के बाणों की मार खाते हुए भी उनके साथ युद्ध करते रहे। तब मारने के इच्छुक दुश्शासन ने क्रोध में भरकर सारी लोहे की बनी हुई एक तीखी रथशक्ति पाण्डुपुत्र भीम के ऊपर फैंकी। आपके पुत्र के द्वारा फैंकी हुई और अपने ऊपर आती हुई उस महाशक्ति के भीम ने दो टुकड़े कर दिये। यह एक अद्भुत बात थी।

ततो वृन्दारकं वीरं कुरूणां कीर्तिवर्धनम्॥ ३९॥
पुत्राणां तव वीराणां युध्यतामवधीत् पुनः।
अभयं रौद्रकर्माणं दुर्विमोचनमेव च॥ ४०॥
त्रिभिस्त्रीनवधीद् भीमः पुनरेव सुतांस्तव।
वध्यमाना महाराज पुत्रास्तव बलीयसा॥ ४१॥

भीमं प्रहरतां श्रेष्ठं समन्तात् पर्यवारयन्।
ते शरैर्भीमकर्माणं ववर्षुः पाण्डवं युधि॥ ४२॥
मेघा इवातपापाये धाराभिर्धरणीधरम्।

उसके पश्चात् भीम ने आपके वीरपुत्रों के साथ युद्ध करते हुए आपके कीर्तिवर्धन वीर वृन्दारक नाम के पुत्र को मार दिया। फिर भीम ने तीन बाणों से आपके तीन पुत्रों अभय, रौद्रकर्मा और दुर्विमोचन का वध कर दिया। हे महाराज! बलवान् भीम के द्वारा मारे जाते हुए भी आपके पुत्रों ने प्रहार करने वालों में श्रेष्ठ भीम को चारोंतरफ से घेर लिया। उन्होंने भयंकर कर्म करनेवाले भीम को युद्ध में बाणवर्षा से उसीप्रकार आच्छादित कर दिया जैसे ग्रीष्मऋतु के अन्त में बादल पानी की धाराओं से पर्वत को आच्छादित कर देते हैं।

स तद् बाणमयं वर्षमश्मवर्षमिवाचलः॥ ४३॥
प्रतीच्छन् पाण्डुदायादो न प्राव्यथत शत्रुहा।
विन्दानुविन्दौ सहितौ सुवर्माणं च ते सुतम्॥ ४४॥
प्रहसन्नेव कौन्तेयः शरैर्निन्ये यमक्षयम्।
ततः सुदर्शनं वीरं पुत्रं ते भरतर्षभ॥ ४५॥
विव्याध समरे तूर्णं स पपात ममार च।
वध्यमाना महाराज भीमसेनेन तावकाः।
त्यक्त्वा भीमं रणाज्जग्मुश्चोदयन्तो हयोत्तमान्॥ ४६॥

पर जैसे पर्वत को पत्थरों की वर्षा से भी कोई पीड़ा नहीं होती, वैसे ही शत्रुदमन भीम उस बाणवर्षा को सहन करते हुए व्यथित नहीं हुए। कुन्तीपुत्र ने हँसते हुए ही आपके पुत्र विन्द, अनुविन्द और सुवर्मा को एकसाथ अपने बाणों से मृत्युलोक में पहुँचा दिया। फिर हे भरतश्रेष्ठ! उसने आपके वीर पुत्र सुदर्शन को युद्ध में शीघ्रता से बाणों से बींध दिया। तब वह रथ से गिरकर मर गया। हे महाराज! इसप्रकार भीमसेन से मारे जाते हुए आपके पुत्र तब भीम को छोड़कर अपने उत्तम घोड़ों को हाँकते हुए युद्धक्षेत्र से दूर चले गये।

सत्तरवाँ अध्याय : भीम का द्रोण के रथ को आठ बार उलटना, श्रीकृष्ण एवं अर्जुन के पास पहुँचना।

तथा तु विप्रकुर्वाणं रथयूथपयूथपम्।
भारद्वाजो महाराज भीमसेनं समभ्ययात्॥ १॥
भीमं तु समरे द्रोणो वारयित्वा शरोर्मिभिः।
अकरोत् सहसा नादं पाण्डूनां भयमादधत्॥ २॥
ततो रथादवप्लुत्य वेगमास्थाय पाण्डवः।
निमील्य नयने राजन् पदातिर्द्रोणमभ्ययात्॥ ३॥
अंसे शिरो भीमसेनः करौ कृत्वोरसि स्थिरौ।
वेगमास्थाय बलवान् मनोऽनिलगरुत्मताम्॥ ४॥
यथा हि गोवृषो वर्षं प्रतिगृह्णाति लीलया।
तथा भीमो नरव्याघ्रः शरवर्षं समग्रहीत्॥ ५॥

रथियों के यूथपतियों के भी यूथपति भीम को हे महाराज! इसप्रकार विनाश करते हुए देखकर द्रोणाचार्य उनका सामना करने के लिये आगे आये। द्रोणाचार्य ने भीम को युद्ध में अपने बाणों की लहरों से सहसा रोककर जोर से सिंह गर्जना की और उसके द्वारा पाण्डवों को भयभीत कर दिया। तब वह पाण्डुपुत्र तेजी से रथ से कूदकर, आँखों को बन्दकर, सिर को कन्धों पर सिकोड़कर, हाथों को छाती पर लगाकर मन, वायु और गरुड़ पक्षी के समान वेग से पैदल ही द्रोणाचार्य की तरफ दौड़े। उस समय जैसे साँड वर्षा की बूँदों को लीलापूर्वक अपने शरीर पर धारण करता है, वैसे ही पुरुषव्याघ्र भीम ने उस बाणवर्षा को अपने शरीर पर धारण किया।

स वध्यमानः समरे रथं द्रोणस्य मारिष।
ईषायां पाणिना गृह्य प्रचिक्षेप महाबलः॥ ६॥
द्रोणस्तु सत्वरो राजन् क्षिप्तो भीमेन संयुगे।
रथमन्यं समारुह्य व्यूहद्वारं ययौ पुनः॥ ७॥
तमायान्तं तथा दृष्ट्वा भग्नोत्साहं गुरुं तदा।
गत्वा वेगात् पुनर्भीमो धुरं गृह्य रथस्य तु॥ ८॥
तमप्यतिरथं भीमश्चिक्षेप भृशरोषितः।
एवमष्टौ रथाः क्षिप्ता भीमसेनेन लीलया॥ ९॥
दृश्यते तावकैर्योधैर्विस्मयोत्फुल्ललोचनैः।

हे मान्यवर! उस युद्ध में द्रोणाचार्य के बाणों से घायल होते हुए भी उस महाबली ने द्रोणाचार्य के रथ को ईषादण्ड से पकड़कर उलट दिया। हे राजन्!

द्रोणाचार्य युद्धस्थल में भीम के द्वारा रथ उलटे जाने पर, दूसरे रथ पर बैठकर व्यूह के द्वार पर आगये। तब जिनका उत्साह भंग होगया था, उन गुरु को आते हुए देखकर, भीम ने पुनः दौड़कर उनके धुरे को पकड़कर, अत्यन्त क्रोध में भरकर अतिरथी द्रोणाचार्य के रथ को उलट दिया। इसप्रकार खेल सा करते हुए भीमसेन ने द्रोणाचार्य के आठ रथ उलट दिये। उस समय आपके योद्धालोग आश्चर्य से आँखें फाड़कर इस दृश्य को देख रहे थे।

ततः स्वरथमास्थाय भीमसेनो महाबलः॥ १०॥
अभ्यद्रवत वेगेन तव पुत्रस्य वाहिनीम्।
स मृद्नन् क्षत्रियानाजौ वातो वृक्षानिवोद्धतः॥ ११॥
आगच्छद् दारयन् सेनां सिन्धुवेगो नगानिव।
भोजानीकं समासाद्य हार्दिक्येनाभिरक्षितम्॥ १२॥
प्रमथ्य तरसा वीरस्तदप्यतिबलोऽभ्ययात्।

फिर महाबली भीमसेन अपने रथ पर बैठकर आपके पुत्र की सेना पर वेगपूर्वक टूट पड़े। जैसे आँधी वृक्षों को उखाड़ फैंकती है, वैसेही युद्धस्थल में क्षत्रियों को गिराते हुए, सागर की लहरों द्वारा फाड़े हुए पर्वत के समान, सेना को विदीर्ण करते हुए वे आगे बढ़ गये। फिर अत्यन्तबलशाली भीम कृतवर्मा के द्वारा सुरक्षित भोजवंशियों की सेना के पास पहुँचकर, उसे वेगपूर्वक मथकर आगे चले गये।

भोजानीकमतिक्रम्य दरदानां च वाहिनीम्॥ १३॥
तथा म्लेच्छगणानन्यान् बहून् युद्धविशारदान्।
सात्यकिं चैव सम्प्रेक्ष्य युध्यमानं महारथम्॥ १४॥
रथेन यत्तः कौन्तेयो वेगेन प्रययौ तदा।
भीमसेनो महाराज द्रष्टुकामो धनंजयम्॥ १५॥
अतीत्य समरे योधांस्तावकान् पाण्डुनन्दनः।
सोऽपश्यदर्जुनं तत्र युध्यमानं महारथम्॥ १६॥
सैन्धवस्य वधार्थं हि पराक्रान्तं पराक्रमी।

भोजवंशियों की सेना को पारकर, दरदों की, म्लेच्छों की सेनाओं को और दूसरे बहुतसे युद्धविशारद योद्धाओं को परास्तकर युद्ध करते हुए महारथी सात्यकि को देखकर, वे कुन्तीपुत्र तेजी से सावधानीपूर्वक अपने रथ से आगे बढ़ गये। हे महाराज! अर्जुन को देखने की इच्छा से, पाण्डुनन्दन भीम युद्ध में आपके योद्धाओं को परास्त करते हुए वहाँ पहुँचे थे। वहाँ उस पराक्रमी ने जयद्रथ के वध के लिये युद्ध करते हुए और पराक्रम दिखाते हुए, महारथी अर्जुन को देखा।

तं दृष्ट्वा पुरुषव्याघ्रश्चुक्रोश महतो रवान्॥ १७॥
प्रावृट्काले महाराज नर्दन्निव बलाहकः।
तं तस्य निनदं घोरं पार्थः शुश्राव नर्दतः॥ १८॥
वासुदेवश्च कौरव्य भीमसेनस्य संयुगे।
तौ श्रुत्वा युगपद् वीरौ निनदं तस्य शुष्मिणः॥ १९॥
पुनः पुनः प्राणदतां दिदृक्षन्तौ वृकोदरम्।
ततः पार्थो महानादं मुञ्चन् वै माधवश्च ह॥ २०॥
अभ्ययातां महाराज नर्दन्तौ गोवृषाविव।

हे महाराज! उन्हें देखकर उस पुरुषव्याघ्र ने जोर जोर से ऊँची आवाज से ऐसे सिंहनाद किया जैसे वर्षाऋतु में बादल गर्जते हैं। हे कुरुनन्दन! युद्धस्थल में गर्जना करते हुए भीमसेन की उस भयंकर गर्जना को अर्जुन और श्रीकृष्ण ने सुना। उस महाबली के गर्जन को सुनकर वेदोनों वीर भी भीम को देखने की इच्छा से एकसाथ बार बार गर्जना करने लगे। हे महाराज! तब अर्जुन और श्रीकृष्ण दो साँडों के समान गर्जते हुए, महान् सिंहनाद करते हुए आगे बढ़ने लगे।

भीमसेनरवं श्रुत्वा फाल्गुनस्य च धन्विनः॥ २१॥
अप्रीयत महाराज धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः।
विशोकश्चाभवद् राजा श्रुत्वा तं निनदं तयोः॥ २२॥
धनंजयस्य समरे जयमाशास्तवान् विभुः।
स्मितं कृत्वा महाबाहुर्धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः॥ २३॥
हृद्गतं मनसा प्राह ध्यात्वा धर्मभृतां वरः।

भीमसेन की और धनुर्धर अर्जुन की गर्जना को सुनकर हे महाराज! धर्मपुत्र युधिष्ठिर प्रसन्न होगये। उनदोनों के सिंहनादों को सुनकर राजा शोकरहित हो गये और वे शक्तिशाली अर्जुन की युद्ध में विजय के लिये शुभकामना करने लगे। धर्मधारियों में श्रेष्ठ महाबाहु धर्मपुत्र युधिष्ठिर, मुस्कराते हुए, मन में सोचते हुए हृदय की भावना को इसप्रकार प्रकट करने लगे कि–

दत्ता भीम त्वया संवित् कृतं गुरुवचस्तथा॥ २४॥
न हि तेषां जयो युद्धे येषां द्वेष्टासि पाण्डव।
दिष्ट्या जीवति संग्रामे सव्यसाची धनंजयः॥ २५॥

पुत्रशोकाभिसंतप्तश्चिकीर्षन् कर्म दुष्करम्।
जयद्रथवधान्वेषी प्रतिज्ञां कृतवान् हि यः॥ २६॥
कच्चित् स सैन्धवं संख्ये हनिष्यति धनंजयः।
कच्चित् तीर्णप्रतिज्ञं हि वासुदेवेन रक्षितम्।
अनस्तमित आदित्ये समेष्याम्यहमर्जुनम्॥ २७॥

हे भीम! तुमने सूचना देदी और बड़े भाई के वचनों का पालन किया। हे पाण्डुपुत्र! जिनके तुम शत्रु हो, उनकी युद्ध में विजय नहीं होसकती। बड़े सौभाग्य की बात है कि अभी युद्ध में अर्जुन जीवित हैं। उसने पुत्र के शोक से अत्यन्तसन्तप्त होकर, दुष्कर कर्म करने की इच्छा से, जयद्रथ के वध की प्रतिज्ञा कर ली क्या अर्जुन युद्ध में जयद्रथ को मार पायेगा? क्या श्रीकृष्ण की सुरक्षा में सूर्य के अस्त होने से पहलेही अपनी प्रतिज्ञा को पूरीकर आये हुए अर्जुन से मैं मिल पाऊँगा।

इकहत्तरवाँ अध्याय : भीम के द्वारा कर्ण की पराजय और दुःशल का वध।

तथा तु नर्दमानं तं भीमसेनं महाबलम्।
तुमुलेनैव शब्देनं कर्णोऽप्यभ्यद्रवद् बली॥ १॥
व्याक्षिपन् सुमहच्चापमतिमात्रममर्षणः।
कर्णः सुयुद्धमाकाङ्क्षन् दर्शयिष्यन् बलं मृधे॥ २॥
रुरोध मार्गं भीमस्य वातस्येव महीरुहः।
भीमोऽपि दृष्ट्वा सावेगं पुरो वैकर्तनं स्थितम्॥ ३॥
चुकोप बलवद्वीरश्चिक्षेपास्य शिलाशितान्।
तान् प्रत्यगृह्णात् कर्णोऽपि प्रतीपं प्रापयच्छरान्॥ ४॥

हे राजन्! इसप्रकार गर्जना करते हुए महाबली भीमसेन पर उच्च स्वर में गर्जते हुए बलवान् कर्ण ने आक्रमण किया। अमर्षशील कर्ण ने अच्छीतरह से युद्ध करने की इच्छा रखते हुए, युद्धस्थल में अपने बल को दिखाते हुए अपने अत्यन्त विशाल धनुष को अत्यधिक खींचते हुए, जैसे वृक्ष वायु के मार्ग को रोकता है, वैसे ही भीमसेन के मार्ग को रोक दिया। बलवान् वीर भीम भी अपने सामने कर्ण को खड़ा देखकर क्रोध में भर गये और वेग सहित शिला पर तेज किये हुए बाणों को उस पर छोड़ने लगे। कर्ण ने उन बाणों को ग्रहण किया और बदले में बहुतसे बाण चलाये।

ततः कर्णस्तु विंशत्या शराणां भीममार्दयत्।
विव्याध चास्य त्वरितः सूतं पञ्चभिराशुगैः॥ ५॥
प्रहस्य भीमसेनोऽपि कर्णं प्रत्याद्रवद् रणे।
सायकानां चतुःषष्ट्या क्षिप्रकारी महायशाः॥ ६॥
तस्य कर्णो महेष्वासः सायकांश्चतुरोऽक्षिपत्।
असम्प्राप्तांश्च तान् भीमः सायकैर्नतपर्वभिः॥ ७॥
चिच्छेद बहुधा राजन् दर्शयन् पाणिलाघवम्।

तब कर्ण ने बीस बाणों की वर्षाकर भीम को पीड़ित किया और उसके सारथि को भी शीघ्रतापूर्वक पाँच शीघ्रगामी बाणों से घायल किया। तब शीघ्रता करने वाले महायशस्वी भीमसेन ने भी हँसकर युद्धस्थल में चौंसठ बाणों की कर्ण पर वर्षाकर उस पर आक्रमण किया। फिर महाधनुर्धर कर्ण ने भीम पर चार बाण चलाये, पर हे राजन्! भीम ने अपना हस्तकौशल दिखाते हुए झुकी गाँठवाले बाणों से अपने समीप आने से पहले ही उनके टुकड़े टुकड़े कर दिये।

तं कर्णश्छादयामास शरव्रातैरनेकशः॥ ८॥
संछाद्यमानः कर्णेन बहुधा पाण्डुनन्दनः।
चिच्छेद चापं कर्णस्य मुष्टिदेशे महारथः॥ ९॥
विव्याध चैनं बहुभिः सायकैर्नतपर्वभिः।
अथान्यद् धनुरादाय सज्यं कृत्वा च सूतजः॥ १०॥
विव्याध समरे भीमं भीमकर्मा महारथः।
तस्य भीमो भृशं क्रुद्धस्त्रीञ्शरान् नतपर्वणः॥ ११॥
निचखानोरसि क्रुद्धः सूतपुत्रस्य वेगतः।
सुस्राव चास्य रुधिरं विद्धस्य परमेषुभिः॥ १२॥
धातुप्रस्यन्दिनः शैलाद् यथा गैरिकधातवः।

कर्ण ने अनेकबार छोड़े हुए बाण समूहों से भीम को आच्छादित कर दिया। तब महारथी पाण्डुपुत्र ने कर्ण की बाणवर्षा से अनेकबार आच्छादित होते हुए, कर्ण के धनुष को मुट्ठी के स्थान से काट दिया और झुकी गाँठवाले अनेक बाणों से उसे घायल कर दिया। तब भयंकर कर्म करने वाले सारथि के पुत्र महारथी कर्ण ने दूसरे धनुष को लेकर, उस पर प्रत्यंचा चढ़ाकर, युद्ध में भीम को बाणों से बींध दिया। तब भीम ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर झुकी गाँठवाले तीन बाणों को लेकर, उन्हें कर्ण की छाती

में वेगपूर्वक धँसा दिया। उन उत्तम बाणों से बिंधकर कर्ण की छाती से खून इस प्रकार बहने लगा जैसे धातु बहानेवाले पर्वत से गेरू की धातु बह रही हो।

किंचिद् विचलितः कर्णः सुप्रहाराभिपीडितः॥ १३॥
आकर्णपूर्णमाकृष्य भीमं विव्याध सायकैः।
चिक्षेप च पुनर्बाणाञ्शतशोऽथ सहस्रशः॥ १४॥
स शरैरर्दितस्तेन कर्णेन दृढधन्विना।
धनुर्ज्यामच्छिनत् तूर्णं भीमस्तस्य क्षुरेण ह॥ १५॥
सारथिं चास्य भल्लेन रथनीडादपातयत्।
वाहांश्च चतुरस्तस्य व्यसूंश्चक्रे महारथः॥ १६॥

उस गहरे प्रहार से पीड़ित कर्ण कुछ विचलित होगया। पर फिर धनुष को कानतक खींचकर उसने भीम को अपने बाणों से घायल कर दिया। कर्ण ने फिर भीम पर सैकड़ों और हजारों बाणों की वर्षा की। तब दृढ़ धनुर्धर कर्ण के बाणों से पीड़ित होते हुए भीम ने शीघ्रता से क्षुर नाम के बाण से कर्ण के धनुष की प्रत्यंचा काट दी। उस महारथी ने भल्ल नाम के बाण से उसके सारथि को भी रथ की बैठक से गिराया और उसके चारों घोड़ों को प्राणहीन कर दिया।

दृष्ट्वा कर्णं च पार्थेन बाधितं बहुभिः शरैः।
दुर्योधनो महाराज दुःशलं प्रत्यभाषत॥ १७॥
कर्णं कृच्छ्रगतं पश्य शीघ्रं यानं प्रयच्छ ह।
एवमुक्तस्ततो राज्ञा दुःशलः समुपाद्रवत्॥ १८॥
दुःशलस्य रथं कर्णश्चारुरोह महारथः।
तौ पार्थः सहसा गत्वा विव्याध दशभिः शरैः।
पुनश्च कर्णं विव्याध दुःशलस्य शिरोऽहरत्॥ १९॥

तब कर्ण को कुन्तीपुत्र के द्वारा बहुतसे बाणों से पीड़ित किया हुआ देखकर, हे महाराज! दुर्योधन ने दुःशल से कहा कि देखो कर्ण मुसीबत में पड़ गया है, उसे शीघ्र ही रथ दो। राजा के द्वारा ऐसा कहे जाने पर दुःशल दौड़कर गया और उसने कर्ण को अपना रथ दिया। महारथी कर्ण तब उसके रथ पर बैठा। तब भीम ने अचानक उनके पास जाकर उन दोनों पर दस बाणों से प्रहार किया। उसने कर्ण को और बाणों से घायल किया और दुःशल के सिर को काट लिया।

बहत्तरवाँ अध्याय : दुर्योधन का द्रोणाचार्य को उपालम्भ देना।

संजय उवाच

तस्मिन् विलुलिते सैन्ये सैन्धवायार्जुने गते।
सात्वते भीमसेने च पुत्रस्ते द्रोणमभ्ययात्॥ १॥
त्वरन्नेकरथेनैव बहुकृत्यं विचिन्तयन्।
उवाच चैनं पुत्रस्ते संरम्भाद् रक्तलोचनः॥ २॥
ससम्भ्रममिदं वाक्यमब्रवीत् कुरुनन्दनः।
अर्जुनो भीमसेनश्च सात्यकिश्चापराजितः॥ ३॥
विजित्य सर्वसैन्यानि सुमहान्ति महारथाः।
सम्प्राप्ताः सिन्धुराजस्य समीपमनिवारिताः॥ ४॥

संजय ने कहा कि तब सेना में उथलपुथल हो जानेपर, अर्जुन के जयद्रथ के लिये आगे बढ़ जाने पर और उनके पीछे सात्यकि तथा भीमसेन के भी सेना में घुस आने पर, आपका पुत्र दुर्योधन अकेला ही शीघ्रतापूर्वक, बहुतसारी बातों के विषय में सोचता हुआ द्रोणाचार्य के समीप पहुँचा और क्रोध से लाल आँखें कर, घबराहट के साथ उनसे यह बोला कि अर्जुन, भीम और किसी से पराजित न होने वाला सात्यकि, ये तीनों महारथी सारी अत्यन्त विशाल सेनाओं को जीतकर, जयद्रथ के समीप पहुँच गये हैं। इन्हें किसी ने नहीं रोका।

व्यायच्छन्ति च तत्रापि सर्व एवापराजिताः।
यदि तावद् रणे पार्थो व्यतिक्रान्तो महारथः॥ ५॥
कथं सात्यकिभीमाभ्यां व्यतिक्रान्तोऽसि मानद।
आश्चर्यभूतं लोकेऽस्मिन् समुद्रस्येव शोषणम्॥ ६॥
निर्जयस्तव विप्राग्र्य सात्वतेनार्जुनेन च।
तथैव भीमसेनेन लोकः संवदते भृशम्॥ ७॥
कथं द्रोणो जितः संख्ये धनुर्वेदस्य पारगः।
इत्यवं ब्रुवते योधा अश्रद्धेयमिदं तव॥ ८॥

वहाँभी येतीनों बिना पराजित हुए सेना पर आक्रमण कर रहे हैं। यदि महारथी अर्जुन युद्ध में आपको हराकर आगे निकल गये, तो हे दूसरों को मान देनेवाले! सात्यकि और भीमसेन आपको हराकर कैसे आगये? हे ब्राह्मणश्रेष्ठ! अर्जुन, भीम और सात्यकि के द्वारा आपको जीत लेना ऐसाही आश्चर्ययुक्त है, जैसे समुद्र को सुखा दिया गया हो। लोगों में इसके बारे में बहुतअधिक चर्चा है। योद्धालोग कह

रहे हैं कि धनुर्वेद के पारंगत द्रोणाचार्य कैसे युद्ध में हरा दिये गये? आपके हारने पर लोग विश्वास नहीं कर रहे हैं।

नाश एव तु मे नूनं मन्दभाग्यस्य संयुगे।
यत्र त्वां पुरुषव्याघ्रं व्यतिक्रान्तास्त्रयो रथाः॥ ९॥
एवं गते तु कृत्येऽस्मिन् ब्रूहि यत् ते विवक्षितम्।
यद् गतं गतमेवेदं शेषं चिन्तय मानद॥ १०॥
यत् कृत्यं सिन्धुराजस्य प्राप्तकालमनन्तरम्।
तत् संविधीयतां क्षिप्रं साधु संचिन्त्य नो द्विज॥ ११॥

जिस युद्ध में इनतीनों महारथियों ने आपजैसे पुरुषव्याघ्र को हरा दिया, उसमें मुझ मन्दभागी का विनाश तो निश्चितही है। हे मानद! अब जो हो गया, वहतो होही गया, पर इस परिस्थिति में जो करना चाहिये, उसके बारे में आपकी क्या राय है? आगे के शेष कार्य के विषय में सोचिये। सिन्धुराज की सुरक्षा के लिये हमें जो करना चाहिये, हे ब्रह्मन्! उसे आप अच्छीतरह विचारकर शीघ्र कराइये।

द्रोण उवाच

चिन्त्यं बहुविधं तात यत् कृत्यं तच्छृणुष्व मे।
त्रयो हि समतिक्रान्ताः पाण्डवानां महारथाः॥ १२॥
यावत् तेषां भयं पश्चात् तावदेषां पुरःसरम्।
तद् गरीयस्तरं मन्ये यत्र कृष्णधनंजयौ॥ १३॥
सा पुरस्ताच्च पश्चाच्च गृहीता भारती चमूः।
तत्र कृत्यमहं मन्ये सैन्धवस्याभिरक्षणम्॥ १४॥
स नो रक्ष्यतमस्तात क्रुद्धाद् भीतो धनंजयात्।
गतौ च सैन्धवं भीमौ युयुधानवृकोदरौ॥ १५॥

तब द्रोणाचार्य ने कहा कि हे तात! सोचने को तो बहुतकुछ है, पर अब जो करना है, उसे सुनिये। पाण्डवों के तीनों महारथी अतिक्रमण करके अन्दर आगये हैं। उनके पीछे जितना भय है, उतनाही उनके आगेभी है। इसमें अधिक महान् भय वहीं है, जहाँ श्रीकृष्ण और अर्जुन हैं। भरतवंशियों की सेना को पीछे से भी और आगे से भी शत्रु ने पकड़ लिया है। इस अवस्था में मैं जयद्रथ की सुरक्षा को ही सबसे अधिक आवश्यक समझता हूँ। हे तात! क्रोध में भरे हुए अर्जुन से भयभीत जयद्रथ की रक्षा सबसे आवश्यक कार्य है। भयंकरयोद्धा भीम और सात्यकि भी जयद्रथ की तरफही गये हैं।

सम्प्राप्तं तदिदं द्यूतं यत् तच्छकुनिबुद्धिजम्।
न सभायां जयो वृत्तो नापि तत्र पराजयः॥ १६॥
इह नो ग्लहमानानामद्य तावज्जयाजयौ।
यान् स्म तान् ग्लहते घोराञ्छकुनिः कुरुसंसदि॥ १७॥
अक्षान् स मन्यमानः प्राक् शरास्ते हि दुरासदाः।
यत्र ते बहवस्तात कौरवेया व्यवस्थिताः॥ १८॥
सेनां दुरोदरं विद्धि शरानक्षान् विशाम्पते।
ग्लहं च सैन्धवं राजंस्तत्र द्यूतस्य निश्चयः॥ १९॥

शकुनि की बुद्धि के अनुसार उस समय जो जूआ खेला गया था, उसी का फल इस समय प्रकट हो रहा है। तब वहाँ सभा में किसी की जय या पराजय नहीं हुई थी, पर आज हम प्राणों की बाजी लगाकर जो युद्धरूपी जूआ खेल रहे हैं, इसमें वास्तविक हार या जीत होगी। उस समय कौरवसभा में जिन भयंकर पासों को हाथ में लेकर शकुनि ने खेल खेला था, वे पासे नहीं थे, दुर्धर्ष बाण थे। हे तात! जहाँ तुम्हारे बहुतसे कौरवयोद्धा खड़े हुए हैं, उस सेना को तुम जुआरी समझो और हे राजन्! बाणों को पासे समझो और जयद्रथ को बाजी समझो, जिसे दाव पर लगाकर आज के युद्ध रूपी जूए का फैसला होगा।

अत्र सर्वे महाराज त्यक्त्वा जीवितमात्मनः।
सैन्धवस्य रणे रक्षां विधिवत् कर्तुमर्हथ॥ २०॥
यत्र ते परमेष्वासा यत्ता रक्षन्ति सैन्धवम्।
तत्र गच्छ स्वयं शीघ्रं तांश्च रक्षस्व रक्षिणः॥ २१॥
इहैव त्वहमासिष्ये प्रेषयिष्यामि चापरान्।
निरोत्स्यामि च पञ्चालान् सहितान् पाण्डुसृञ्जयैः॥ २२॥
ततो दुर्योधनोऽगच्छत् तूर्णमाचार्यशासनात्।
उद्यम्यात्मानमुग्राय कर्मणे सपदानुगः॥ २३॥

हे महाराज! यहाँ आपसारे प्राणों का मोह छोड़कर विधिपूर्वक युद्ध में जयद्रथ की रक्षा करें। जहाँ, येसारे महान् धनुर्धर प्रयत्नपूर्वक जयद्रथ की रक्षा कर रहे हैं। आप स्वयं भी शीघ्रता से वहीं जाओ और जयद्रथ के रक्षकों की रक्षा करो। मैं तो यहीं रहूँगा और यहाँसे दूसरे रक्षकों को भेजता रहूँगा। यहाँ रहकर पाण्डवों, सृंजयों, और पाँचालों को इकट्ठा होकर अन्दर आनेसे रोकता रहूँगा। तब दुर्योधन आचार्य के आदेश से अपने आपको उग्र कार्य के लिये तैयारकर अपने सेवकों के साथ शीघ्र वहाँसे चला गया।

तिहत्तरवाँ अध्याय : भीम के द्वारा कर्ण की पराजय।

राधेयो भीममानर्च्छद् युद्धाय भरतर्षभ।
यथा नागो वने नागं मत्तो मत्तमभिद्रवन्॥ १॥
भीमसेनस्तु राधेयमुत्सृज्य रथिनां वरम्।
इयेष गन्तुं यत्रास्तां वीरौ कृष्णधनंजयौ॥ २॥
तं प्रयान्तमभिद्रुत्य राधेयः कङ्कपत्रिभिः।
अभ्यवर्षन्महाराज मेघो वृष्ट्येव पर्वतम्॥ ३॥
फुल्लता पङ्कजेनेव वक्त्रेण विहसन् बली।
आजुहाव रणे यान्तं भीममाधिरथिस्तदा॥ ४॥

हे भरतश्रेष्ठ! इसके पश्चात् राधापुत्र कर्ण पुनः युद्ध के लिये भीम के सामने इसीप्रकार आया जैसे वन में एक मस्त हाथी दूसरे मस्त हाथी पर आक्रमण करता है। भीम उस समय रथियों में श्रेष्ठ कर्ण को छोड़कर उधर जाना चाहते थे, जिधर वीर अर्जुन और श्रीकृष्ण थे। तब वहाँ से जाते हुए भीम पर हे महाराज! राधापुत्र ने आक्रमणकर उसपर कंकपत्रवाले बाणों की ऐसी वर्षा की, जैसे बादल पर्वत पर जल की वर्षा करते हैं। खिले हुए कमल के समान मुख से हँसते हुए बलवान् अधिरथ पुत्र ने जाते हुए भीम को युद्ध के लिये ललकारा और कहा कि—

भीमाहितैस्तव रणे स्वप्नेऽपि न विभावितम्।
तद् दर्शयसि कस्मान्मे पृष्ठं पार्थदिदृक्षया॥ ५॥
कुन्त्याः पुत्रस्य सदृश्यं नेदं पाण्डवनन्दन।
तेन मामभितः स्थित्वा शरवर्षैरवाकिर॥ ६॥
भीमसेनस्तदाह्वानं कर्णान्नामर्षयद् युधि।
अर्धमण्डलमावृत्य सूतपुत्रमयोधयत्॥ ७॥
अवक्रगामिभिर्बाणैरभ्य- वर्षन्महायशाः।
दंशितं द्वैरथे यत्तं सर्वशस्त्रविशारदम्॥ ८॥

हे भीम! तुम्हारे शत्रुओं ने तो स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि तुम युद्ध में पीठ दिखाओगे। फिर अर्जुन को देखने की इच्छा से मुझे पीठ क्यों दिखा रहे हो? हे पाण्डवनन्दन! कुन्ती के पुत्र के योग्य यह कार्य नहीं है। इसलिये मेरे सामने खड़े होकर मुझ पर बाणवर्षा करो। भीम कर्ण की उस ललकार को सहन न कर सके और उन्होंने अर्धमण्डल की गति से घूमकर सारथि के उस पुत्र से युद्ध आरम्भ कर दिया। सारे शस्त्रों में विशारद कवच बाँधकर द्वैरथ युद्ध के लिये प्रयत्नशील कर्ण पर वे महायशस्वी सीधे जानेवाले बाणों की वर्षा करने लगे।

तस्य तानीषुवर्षाणि मत्तद्विरदगामिनः।
सूतपुत्रोऽस्त्रमायाभिरग्रसत् परमास्त्रवित्॥ ९॥
युध्यमानं तु संरम्भाद् भीमसेनं हसन्निव।
अभ्यपद्यत कौन्तेयं कर्णो राजन् वृकोदरम्॥ १०॥
तन्नामृष्यत कौन्तेयः कर्णस्य स्मितमाहवे।
युध्यमानेषु वीरेषु पश्यत्सु च समन्ततः॥ ११॥
तं भीमसेनः सम्प्राप्तं वत्सदन्तैः स्तनान्तरे।
विव्याध बलवान् क्रुद्धस्तोत्रैरिव महाद्विपम्॥ १२॥

मतवाले हाथी के समान चलनेवाले भीम की उस बाणवर्षा को अस्त्रविद्या के परमविद्वान् सूतपुत्र ने अपनी अस्त्रविद्या से निष्फल कर दिया। हे राजन्! तब कर्ण क्रोधपूर्वक युद्ध करते हुए, वृकोदर उपनाम वाले कुन्तीपुत्र भीम के सामने जाकर मुस्कराने लगा। चारोंतरफ युद्ध करते हुए, वीरों के देखते हुए, युद्धस्थल में कर्ण के उस मुस्कराने को, कुन्तीपुत्र सहन न कर सके। तब जैसे गजराज को अंकुशों से पीड़ित किया जाये, वैसेही क्रोध में भरकर भीमसेन ने सामने आये हुए कर्ण की छाती में वत्सदन्त नाम के बाणों से प्रहार किया।

पुनश्च सूतपुत्रं तु स्वर्णपुङ्खैः शिलाशितैः।
सुमुक्तैश्चित्रवर्माणं निर्बिभेद त्रिसप्तभिः॥ १३॥
कर्णो जाम्बूनदैर्जालैः संछन्नान् वातरंहसः।
हयान् विव्याध भीमस्य पञ्चभिः पञ्चभिः शरैः॥ १४।
ततो बाणमयं जालं भीमसेनरथं प्रति।
कर्णेन विहितं राजन् निमेषार्धाददृश्यत॥ १५॥
सरथः सध्वजस्तत्र ससूतः पाण्डवस्तदा।
प्राच्छाद्यत महाराज कर्णचापच्युतैः शरैः॥ १६॥

फिर विचित्र कवच धारण करने वाले सारथि के पुत्र को उन्होंने शिला पर तेज किये हुए, सुनहरे पंखवाले अच्छीतरह से छोड़े हुए तिहत्तर बाणों की वर्षाकर घायल कर दिया। तब कर्ण ने सुनहरी जाली से ढके हुए, वायु के समान वेगवाले भीम के घोड़ों को पाँच पाँच बाणों से घायल कर दिया। हे राजन्! फिर आधे पल में ही भीम के रथ के ऊपर कर्ण के द्वारा बाणों का जाल सा बिछाया जाता हुआ दिखाई देने लगा। हे महाराज! पाण्डुपुत्र तब अपने

रथ, सारथि, ध्वज के सहित कर्ण के धनुष से छूटे हुए बाणों से आच्छादित हो गये।

तस्य कर्णश्चतुःषष्ट्या व्यधमत् कवचं दृढम्।
क्रुद्धश्चाप्यहनत् पार्थं नाराचैर्मर्मभेदिभिः॥ १७॥
स कर्णचापप्रभवानिषूनाशीविषोपमान्।
बिभ्रद् भीमो महाराज न जगाम व्यथां रणे॥ १८॥
ततो द्वात्रिंशता भल्लैर्निशितैस्तिग्मतेजनैः।
विव्याध समरे कर्णं भीमसेनः प्रतापवान्॥ १९॥
अयत्नेनैव तं कर्णः शरैर्भृशमवाकिरत्।
भीमसेनं महाबाहुं सैन्धवस्य वधैषिणम्॥ २०॥

कर्ण ने चौंसठ बाणों की वर्षाकर भीम के दृढ़ कवच को काट दिया और फिर क्रोध में भरकर उस पर मर्मभेदी नाराचों से प्रहार किये। हे महाराज! भीम ने कर्ण के धनुष से छूटे हुए उन विषैले सर्प के समान बाणों को युद्ध में धारण करते हुए व्यथा को अनुभव नहीं किया। फिर प्रतापी भीम ने अच्छी तरह से तेज किये हुए बत्तीस तीखे भल्लों से युद्ध में कर्ण को घायल किया। तब जयद्रथ के वध के इच्छुक महाबाहु भीम पर कर्ण अनायास ही बाणों की भारी वर्षा करने लगा।

तस्य तानशनिप्रख्यानिषून् समरशोभिनः।
चिच्छेद बहुभिर्भल्लैरसम्प्राप्तान् वृकोदरः॥ २१॥
पुनश्च शरवर्षेण च्छादयामास भारत।
कर्णो वैकर्तनो युद्धे भीमसेनमरिंदमः॥ २२॥
तत्र भारत भीमं तु दृष्टवन्तः स्म सायकैः।
समाचिततनुं संख्ये श्वाविधं शललैरिव॥ २३॥
रुधिरोक्षित सर्वाङ्गो भीमसेनो व्यराजत।
समृद्धकुसुमापीडो वसन्तेऽशोकवृक्षवत्॥ २४॥

युद्ध में शोभा पानेवाले कर्ण के उन वज्र के समान बाणों को भीम ने अपने पास आने से पहलेही बहुतसारे भल्लों से काट दिया। हे भारत! शत्रुदमन, वैकर्तन कर्ण ने युद्ध में भीम को पुनः अपनी बाणवर्षा से आच्छादित कर दिया। हे भारत! वहाँ हमने बाणों से युक्त शरीरवाले भीम को काँटों से युक्त साही के समान देखा। उस समय जिनके सारे अंग खून से लथपथ होरहे थे, वे भीम वसन्तऋतु में खिले हुए फूलों से भरे अशोकवृक्ष के समान दिखाई देरहे थे।

तत्तु भीमो महाबाहोः कर्णस्य चरितं रणे।
नामृष्यत महाबाहुः क्रोधादुद्वृत्तलोचनः॥ २५॥
स कर्णं पञ्चविंशत्या नाराचानां समार्पयत्।
पुनरेव च विव्याध षड्भिरष्टाभिरेव च॥ २६॥
मर्मस्वमरविक्रान्तः सूतपुत्रं तनुत्यजम्।
पुनरन्येन बाणेन भीमसेनः प्रतापवान्॥ २७॥
चिच्छेद कार्मुकं तूर्णं कर्णस्य प्रहसन्निव।

युद्धस्थल में महाबाहु कर्ण के उस आचारण को महाबाहु भीम ने सहन नहीं किया। क्रोध से तब उनकी आँखें घूमने लगीं। उन्होंने कर्ण पर पच्चीस नाराचों की वर्षा की। फिर देवताओं के समान पराक्रमी भीम ने अपने शरीर की परवाह न करनेवाले कर्ण को पुनः छः और आठ बाणों से मर्मस्थानों में घायल किया। प्रतापी भीम ने फिर मुस्कराते हुए शीघ्रतापूर्वक दूसरे बाण से कर्ण के धनुष को काट दिया।

जघान चतुरश्चाश्वान् सूतं च त्वरितः शरैः॥ २८॥
नाराचैरर्करश्म्याभैः कर्णं विव्याध चोरसि।
स वैकल्व्यं महत् प्राप्य छिन्नधन्वा शराहतः।
तथा पुरुषमानी स प्रत्यपायाद् रथान्तरम्॥ २९॥

उन्होंने शीघ्रतापूर्वक बाणों से कर्ण के सारथि और चारों घोड़ों को मार दिया और सूर्य की किरणों के समान चमकीले नाराचों से कर्ण की छाती पर प्रहार किया। अपने पौरुष पर अभिमान करनेवाला कर्ण तब बाणों से घायल होकर, धनुष के कट जाने पर अत्यन्त व्याकुल हो गया और दूसरे रथ को प्राप्त करने के लिये वहाँ से भाग गया।

चौहत्तरवाँ अध्याय : भीमसेन और कर्ण का युद्ध। भीम द्वारा धृतराष्ट्र पुत्र दुर्जय का वध।

रथमन्यं समास्थाय विधिवत् कल्पितं पुनः।
अभ्ययात् पाण्डवं कर्णो वातोद्धूत इवार्णवः॥ १॥
चापशब्दं ततः कृत्वा तलशब्दं च भैरवम्।
अभ्यद्रवत राधेयो भीमसेनरथं प्रति॥ २॥
पुनरेव तयो राजन् घोर आसीत् समागमः।
वैकर्तनस्य शूरस्य भीमस्य च महात्मनः॥ ३॥
क्रोधरक्तेक्षणौ तीव्रौ निःश्वसन्ताविवोरगौ।
शूरावन्योन्यमासाद्य ततक्षतुररिंदमौ॥ ४॥

तब विधिवत् सुसज्जित दूसरे रथपर बैठकर कर्ण वायु के वेग से ऊपर उठते हुए सागर के समान पाण्डुपुत्र भीम पर पुनः आक्रमण करने के लिये आया। धनुष की टंकार तथा हथेली का भयानक शब्द करते हुए राधापुत्र ने भीम के रथ पर आक्रमण कर दिया। हे राजन्! तब शूरवीर कर्ण तथा मनस्वी भीम का पुनः घोर युद्ध होने लगा। क्रोध से लाल आँखें किये और साँपों के समान लम्बी साँसें लेते हुए वे दोनों शत्रु का दमन करनेवाले शूरवीर परस्पर भिड़कर एकदूसरे को घायल करने लगे।

ततो विस्फार्य सुमहद्धेमपृष्ठं दुरासदम्।
चापं भरतशार्दूलस्त्यक्तात्मा कर्णमभ्ययात्॥ ५॥
ततः प्रहस्याधिरथिस्तूर्णमस्य शिलाशितैः।
व्यधमद् भीमसेनस्य शरजालानि पत्रिभिः॥ ६॥
महारथो महाबाहुर्महाबाणैर्महाबलः।
विव्याधाधिरथिर्भीमं नवभिर्निशितैस्तदा॥ ७॥
स तोत्रैरिव मातङ्गो वार्यमाणः पतत्रिभिः।
भीमः कर्णं समासाद्य च्छादयामास सायकैः॥ ८॥

भरतवंश के उस सिंह ने जीवन का मोह छोड़कर, अपने सुनहरी पीठवाले, अत्यन्त विशाल, दुर्धर्ष धनुष को खींचते हुए कर्ण पर आक्रमण किया। तब अधिरथ के पुत्र कर्ण ने हँसते हुए शीघ्रता से शिला पर तेज किये हुए बाणों से भीम की बाणवर्षा को छिन्नभिन्न कर दिया। फिर महाबली, महाबाहु, महारथी कर्ण ने अपने नौ तीखे महान् बाणों से भीम को घायल कर दिया। तब जैसे हाथी को अंकुश से पीड़ित किया जाये, वैसेही बाणों द्वारा रोका जाने पर भीम ने कर्ण के पास जाकर उसे अपने बाणों से आच्छादित कर दिया।

राजन् वैकर्तनो भीमं क्रुद्धः क्रुद्धमरिंदमम्।
पराक्रान्तं पराक्रम्य विव्याध त्रिंशता शरैः॥ ९॥
तस्यास्यतो धनुर्भीमश्चकर्त निशितैस्त्रिभिः।
रथनीडाच्च यन्तारं भल्लेनापातयत् क्षितौ॥ १०॥
स काङ्क्षन् भीमसेनस्य वधं वैकर्तनो भृशम्।
शक्तिं कनकवैदूर्यचित्रदण्डां परामृशत्॥ ११॥
शक्तिं विसृज्य राधेयः पुरंदर इवाशनिम्।
ननाद सुमहानादं बलवान् सूतनन्दनः॥ १२॥

हे राजन्! क्रोध में भरे हुए कर्ण ने क्रोध में भरे हुए शत्रुदमन, पराक्रमी भीम को अपना पराक्रम दिखाते हुए उसे तीस बाणों की वर्षाकर घायल कर दिया। तब भीम ने उसके बाण फैंकते हुए धनुष को तीन तीखे बाणों से काट दिया और एक भल्ल से उसके सारथि को रथ की बैठक से नीचे गिरा दिया। तब भीम के वध की अत्यन्त इच्छा करते हुए कर्ण ने स्वर्ण और वैदूर्य से चित्रित डण्डेवाली शक्ति को उठाया। इन्द्र के वज्र के समान भयानक उस शक्ति को भीम के ऊपर छोड़कर बलवान् सूतपुत्र कर्ण ने जोर से गर्जना की।

तां कर्णभुजनिर्मुक्तामर्कवैश्वानरप्रभाम्।
शक्तिं वियति चिच्छेद भीमः सप्तभिराशुगैः॥ १३॥
छित्त्वा शक्तिं ततो भीमो निर्मुक्तोरगसंनिभाम्।
स्वर्णपुङ्खाञ्शिलाधौतान् सूतपुत्रस्य मारिष॥ १४॥
प्राहिणोत् कृतसंरम्भः शरान् बर्हिणवाससः।
कर्णोऽप्यन्यद् धनुर्गृह्य हेमपृष्ठं दुरासदम्॥ १५॥
विकृष्य तन्महच्चापं व्यसृजत् सायकांस्तदा।
तान् पाण्डुपुत्रश्चिच्छेद नवभिर्नतपर्वभिः॥ १६॥
वसुषेणेन निर्मुक्तान् नव राजन् महाशरान्।

सूर्य और अग्नि के समान चमकवाली, कर्ण के हाथों से छूटी हुई उस शक्ति को भीम ने सात शीघ्रगामी बाणों से आकाश में ही काट दिया। केंचुली से निकली हुई सांपिनी के समान उस शक्ति को काटकर, हे मान्यवर! भीम ने क्रोध में भरकर सुनहरे तथा मोर के पंखोंवाले, शिला पर तेज किये हुए बाणों को सूतपुत्र के ऊपर चलाना आरम्भ किया।

तब कर्ण ने भी दूसरे सुनहरी पीठवाले दुर्धर्ष धनुष को लेकर, उस विशाल धनुष को खींचकर बाणों की वर्षा आरम्भ कर दी। हे राजन्! पाण्डुपुत्र ने वसुषेण अर्थात् कर्ण के द्वारा छोड़े हुए उन नौ महान् बाणों को झुकी गाँठवाले नौ बाणों से काट दिया।

छित्त्वा भीमो महाराज नादं सिंह इवानदत्॥ १७॥
तौ वृषाविव नर्दन्तौ बलिनौ वासितान्तरे।
शार्दूलाविव चान्योन्यमामिषार्थेऽभ्यगर्जताम्॥ १८॥
अन्योन्यं प्रजिहीर्षन्तावन्योन्यस्यान्तरैषिणौ।
अन्योन्यमभिवीक्षन्तौ गोष्ठेष्विव महर्षभौ॥ १९॥
महागजाविवासाद्य विषाणाग्रैः परस्परम्।
शरैः पूर्णायतोत्सृष्टैरन्योन्यमभिजघ्नतुः॥ २०॥

हे महाराज! बाणों को काटकर भीम ने सिंह के समान गर्जना की। वेदोनों गाय के लिये लड़ते हुए दो बलवान् साँड़ों के समान गर्जना कर रहे थे। कभी वे माँस के लिये परस्पर लड़नेवाले दो सिंहों के समान परस्पर दहाड़ते थे। वे गोशाला में लड़नेवाले दो महान् साँड़ों के समान एकदूसरे को मारने के इच्छुक, एक दूसरे के दोषों को देखते हुए, एक दूसरे को घूर रहे थे। जैसे दो महान् हाथी अपने दाँतों के अग्रभाग से एकदूसरे से भिड़ रहे हों, वैसेही धनुषों को कानतक खींचकर छोड़े हुए बाणों से वे एकदूसरे पर प्रहार कर रहे थे।

निर्दहन्तौ महाराज शस्त्रवृष्ट्या परस्परम्।
अन्योन्यमभिवीक्षन्तौ कोपाद् विवृतलोचनौ॥ २१॥
प्रहसन्तौ तथान्योन्यं भर्त्सयन्तौ मुहुर्मुहुः।
शङ्खशब्दं च कुर्वाणौ युयुधाते परस्परम्॥ २२॥
तस्य भीमः पुनश्चापं मुष्टौ चिच्छेद मारिष।

हे महाराज! बाणवर्षा से एकदूसरे को जलाते हुए, क्रोध से आँखें फाड़कर एकदूसरे को देखते हुए, हँसते हुए, एकदूसरे को बार बार धमकाते हुए, शंखनाद करते हुए, वे परस्पर युद्ध कर रहे थे। हे मान्यवर! भीम ने कर्ण के धनुष को मुट्ठी के स्थान पर से फिर काट दिया।

मोहितः शरजालेन कर्तव्यं नाभ्यपद्यत॥ २३॥
तथा कृच्छ्रगतं दृष्ट्वा कर्णं दुर्योधनो नृपः।
वेपमान इव क्रोधाद् व्यादिदेशाथ दुर्जयम्॥ २४॥
गच्छ दुर्जय राधेयं पुरो ग्रसति पाण्डवः।
जहि तूबरकं क्षिप्रं कर्णस्य बलमादधत्॥ २५॥

उस समय बाणवर्षा से मोहित हुआ वह नहीं समझ पाया कि उसे क्या करना चाहिये। कर्ण को इसप्रकार संकट में पड़ा हुआ देखकर राजा दुर्योधन ने क्रोध से काँपते हुए दुर्जय को आदेश दिया कि पाण्डुपुत्र हमारे सामने ही कर्ण को खाये जा रहा है। हे दुर्जय! जल्दी जाओ और कर्ण के बल को बढ़ाते हुए उस बिना दाढ़ीमूँछवाले को मार दो।

एवमुक्तस्तथेत्युक्त्वा तव पुत्रं तवात्मजः।
अभ्यद्रवद् भीमसेनं व्यासक्तं विकिरञ्छरैः॥ २६॥
स भीमं नवभिर्बाणैरश्वानष्टभिरार्पयत्।
षड्भिः सूतं त्रिभिः केतुं पुनस्तं चापि सप्तभिः॥ २७॥
भीमसेनोऽपि संक्रुद्धः साश्वयन्तारमाशुगैः।
दुर्जयं भिन्नमर्माणमनयद् यमसादनम्॥ २८॥
स्वलंकृतं क्षितौ क्षुण्णं चेष्टमानं यथोरगम्।
रुदन्नार्तस्तव सुतं कर्णश्चक्रे प्रदक्षिणम्॥ २९॥

ऐसा कहे जाने पर आपके पुत्र दुर्जय ने आपके पुत्र दुर्योधन से बहुत अच्छा यह कहकर, युद्ध में आसक्त भीमसेन पर बाणों की वर्षा करते हुए आक्रमण किया। उसने भीम पर नौ, उसके घोड़ों पर आठ, सारथि पर छः और ध्वजा पर सात बाणों से प्रहार किया। भीमसेन ने भी तब अत्यन्त क्रोध में भरकर अपने शीघ्रगामी बाणों से घोड़ों और सारथि सहित दुर्जय को उसके मर्मस्थानों को छेदकर, मृत्युलोक में पहुँचा दिया। अच्छीतरह से अलंकारों से भूषित आपका पुत्र दुर्जय उस समय भूमि पर पड़ा हुआ साँप के समान छटपटा रहा था। शोकार्त कर्ण ने तब रोते हुए उसे अपनी दायींतरफ लिटा लिया।

पिचहत्तरवाँ अध्याय : कर्ण का पलायन धृतराष्ट्र पुत्र दुर्मुख का भीम के द्वारा वध।

सर्वथा विरथः कर्णः पुनर्भीमेन निर्जितः।
रथमन्यं समास्थाय पुनर्विव्याध पाण्डवम्॥ १॥
महागजाविवासाद्य विषाणाग्रैः परस्परम्।
शरैः पूर्णायतोत्सृष्टैरन्योन्यमभिजघ्नतुः॥ २॥
अथ कर्णः शरव्रातैर्भीमसेनं समार्पयत्।
ननाद च महानादं पुनर्विव्याध चोरसि॥ ३॥
तं भीमो दशभिर्बाणैः प्रत्यविध्यदजिह्मगैः।
पुनर्विव्याध सप्तत्या शराणां नतपर्वणाम्॥ ४॥

हे राजन्! भीम के द्वारा पूरीतरह से पराजित और रथ से हीन किये गये कर्ण ने दूसरे रथपर बैठकर फिर भीम को बाणों से बींधना आरम्भ कर दिया। जैसे दो विशाल हाथी परस्पर भिड़ते हुए दाँतों के अग्रभाग से एकदूसरे को चोट पहुँचाते हैं, वैसे ही वेदोनों पूरीतरह से खींचे हुए धनुषों के द्वारा छोड़े गये बाणों से एक दूसरे को चोट पहुँचाने लगे। कर्ण ने भीम पर बाणों की वर्षाकर जोर से गर्जना की और उनकी छाती पर बाणों से प्रहार किया। भीम ने उत्तर में सीधे जानेवाले दस बाणों से कर्ण को घायल किया और झुकी गाँठवाले सत्तर बाणों की वर्षाकर उसे बींधा।

कर्णं तु नवभिर्भीमो भित्त्वा राजन् स्तनान्तरे।
ध्वजमेकेन विव्याध सायकेन शितेन ह॥ ५॥
सायकानां ततः पार्थस्त्रिषष्ट्या प्रत्यविध्यत।
तोत्रैरिव महानागं कशाभिरिव वाजिनम्॥ ६॥
सोऽतिविद्धो महाराज पाण्डवेन यशस्विना।
सृक्किणी लेलिहन् वीरः क्रोधरक्तान्तलोचनः॥ ७॥
ततः शरं महाराज सर्वकायावदारणम्।
प्राहिणोद् भीमसेनाय बलायेन्द्र इवाशनिम्॥ ८॥

हे राजन्! भीम ने नौ बाणों से कर्ण की छाती को घायल किया और फिर एक तीखे बाण से उसके ध्वज को काट दिया। जैसे किसी विशाल हाथी को अंकुशों से तथा घोड़े को चाबुकों से मारा जाये, वैसे ही कुन्तीपुत्र ने तिरेसठ बाणों की कर्ण के ऊपर वर्षा की। हे महाराज! तब यशस्वी पाण्डुपुत्र के द्वारा अत्यन्त घायल वह वीर कर्ण क्रोध से लाल आँखें कर अपने होठों के किनारों को चाटने लगा। हे महाराज! तब उसने सबतरह के शरीरों को फाड़ देनेवाले बाण को इसप्रकार भीम की तरफ फैंका, जैसे इन्द्र ने बलासुर पर अपने वज्र को फैंका था।

स निर्भिद्य रणे पार्थं सूतपुत्रधनुश्च्युतः।
अगच्छद् दारयन् भूमिं चित्रपुङ्खः शिलीमुखः॥ ९॥
ततो भीमो महाबाहुः क्रोधसंरक्तलोचनः।
वज्रकल्पां चतुष्किष्कुं गुर्वीं रुक्माङ्गदां गदाम्॥ १०॥
प्राहिणोत् सूतपुत्राय षडस्रामविचारयन्।
तया जघानाधिरथेः सदश्वान् साधुवाहिनः॥ ११॥
गदया भारतः क्रुद्धो वज्रेणेन्द्र इवासुरान्।
ततो भीमो महाबाहुः क्षुराभ्यां भरतर्षभ॥ १२॥
ध्वजमाधिरथेश्छित्त्वा सूतमभ्यहनच्छरैः।

सूतपुत्र के धनुष से छूटा हुआ, विचित्र पंखों वाला वह बाण युद्धस्थल में भीम को घायल करता हुआ भूमि में धँस गया। तब क्रोध से लाल आँखें किये हुए महाबाहु भीम ने वज्र के समान, चार हाथ की, भारी, सोने के बाजूबन्दवाली और छः कोनों वाली गदा को उठाकर उसे बिनाविचारे कर्ण के ऊपर फैंका। उस गदा से क्रोध में भरे हुए भरतवंशी भीम ने कर्ण के उत्तम सवारी का काम देनेवाले अच्छे घोड़ों को उसीप्रकार मार दिया जैसे इन्द्र ने असुरों का वध किया था। हे भरतश्रेष्ठ! फिर महाबाहु भीम ने दो क्षुर नामके बाणों से कर्ण के ध्वज को काटकर सारथि को भी बाणों से मार दिया।

हताश्वसूतमुत्सृज्य स रथं पतितध्वजम्॥ १३॥
विस्फारयन् धनुः कर्णस्तस्थौ भारत दुर्मनाः।
तत्राद्भुतमपश्याम राधेयस्य पराक्रमम्॥ १४॥
विरथो रथिनां श्रेष्ठो वारयामास यद् रिपुम्।
विरथं तं नरश्रेष्ठं दृष्ट्वाऽऽधिरथिमाहवे॥ १५॥
दुर्योधनस्ततो राजन्नभ्यभाषत दुर्मुखम्।
एष दुर्मुख राधेयो भीमेन विरथीकृतः॥ १६॥
तं रथेन नरश्रेष्ठं सम्पादय महारथम्।

हे भारत! फिर मरे घोड़ों और सारथिवाले तथा छिन्न ध्वजावाले रथ को छोड़कर कर्ण दुःखी मन से धनुष की टंकार करता हुआ वहाँ खड़ा होगया।

वहाँ हमने कर्ण के अद्भुत पराक्रम को देखा कि रथहीन होने पर भी उस रथियों में श्रेष्ठ ने शत्रु को रोके रखा। युद्धक्षेत्र में नरश्रेष्ठ अधिरथ के पुत्र कर्ण को रथ से रहित देखकर हे राजन्! तब दुर्योधन ने दुर्मुख से कहा कि हे दुर्मुख! इस राधापुत्र को भीम ने रथ से रहित कर दिया है, इसलिये इस नरश्रेष्ठ महारथी को रथ से युक्त करो।

ततो दुर्योधनवचः श्रुत्वा भारत दुर्मुखः॥ १७॥
त्वरमाणोऽभ्ययात् कर्णं भीमं चावारयच्छरैः।
दुर्मुखं प्रेक्ष्य संग्रामे सूतपुत्रपदानुगम्॥ १८॥
वायुपुत्रः प्रहृष्टोऽभूत् सृक्किणी परिसंलिहन्।
ततः कर्णं महाराज वारयित्वा शिलीमुखैः॥ १९॥
दुर्मुखाय रथं तूर्णं प्रेषयामास पाण्डवः।
तस्मिन् क्षणे महाराज नवभिर्नतपर्वभिः॥ २०॥
सुपुखैर्दुर्मुखं भीमः शरैर्निन्ये यमक्षयम्।

हे भारत! तब दुर्योधन के वचन सुनकर दुर्मुख शीघ्रता से कर्ण के पास गया और उसने भीम को बाणों से भर दिया। तब युद्धस्थल में कर्ण के पीछे चलने वाले दुर्मुख को देखकर, वायुपुत्र भीम अपने होठों को चाटते हुए अत्यन्तप्रसन्न हुए। हे महाराज! तब कर्ण को बाणों से रोक पाण्डुपुत्र शीघ्रता से अपने रथ को दुर्मुख के समीप लेगये। हे महाराज! उस समय भीम ने नौ झुकी गाँठवाले सुन्दर मुखवाले बाणों से उस दुर्मुख को मृत्युलोक में पहुँचा दिया।

शयानं भिन्नमर्माणं दुर्मुखं शोणितोक्षितम्॥ २१॥
दृष्ट्वा कर्णोऽश्रुपूर्णाक्षो मुहूर्तं नाभ्यवर्तत।
तं गतासुमतिक्रम्य कृत्वा कर्णः प्रदक्षिणम्॥ २२॥
दीर्घमुष्णं श्वसन् वीरो न किंचित् प्रत्यपद्यत।
तस्मिंस्तु विवरे राजन् नाराचान् गार्ध्रवाससः॥ २३॥
प्राहिणोत् सूतपुत्राय भीमसेनश्चतुर्दश।
अपिबन् सूतपुत्रस्य शोणितं रक्तभोजनाः॥ २४॥
क्रुद्धा इव मनुष्येन्द्र भुजङ्गाः कालचोदिताः।

जिसके मर्मस्थल कट गये थे, जो खून से लथपथ हो रहा था, उस दुर्मुख को भूमि पर सोते हुए देखकर आँखों में आँसू भरे हुए कर्ण एक मुहूर्ततक शत्रु का सामना नहीं कर सका और उस प्राणहीन को दाहिनी तरफ लिटाकर लम्बी साँस लेता हुआ अपने कर्तव्य के विषय में कुछ भी निश्चित न कर सका। इसीबीच में हे राजन्! भीम ने गिद्ध के पंखवाले चौदह नाराचों को कर्ण के ऊपर चलाया। हे नरेन्द्र! क्रोध में भरे हुए, काल से प्रेरित साँपों के समान, खून पीनेवाले वे बाण कर्ण के खून को पीने लगे।

तं प्रत्यविध्यद् राधेयो जाम्बूनदविभूषितैः॥ २५॥
चतुर्दशभिरत्युग्रैर्नाराचैर विचारयन्।
स निर्भिन्नो रणे भीमो नाराचैर्मर्मभेदिभिः॥ २६॥
सुस्राव रुधिरं भूरि पर्वतः सलिलं यथा।
स भीमस्त्रिभिरायत्तः सूतपुत्रं पतत्रिभिः॥ २७॥
सुपर्णवेगैर्विव्याध सारथिं चास्य सप्तभिः।

तब कर्ण ने स्वर्णभूषित चौदह अत्यन्तउग्र नाराचों से कुछभी विचार न करते हुए भीम को घायल कर दिया। उन मर्मभेदी नाराचों से घायल होकर भीम युद्ध में इसप्रकार खून बहाने लगे जैसे पर्वत पर से झरने बह रहे हों। तब भीम ने प्रयत्नपूर्वक तीन गरुड़ के समान वेगवाले बाणों से कर्ण को और सात बाणों से उसके सारथि को बींध दिया।

स विह्वलो महाराज कर्णो भीमशराहतः॥ २८॥
प्राद्रवज्जवनैरश्वै रणं हित्वा महाभयात्।
भीमसेनस्तु विस्फार्य चापं हेमपरिष्कृतम्।
आहवेऽतिरथोऽतिष्ठज्ज्वलन्निव हुताशनः॥ २९॥

हे महाराज! भीम के बाणों से घायल कर्ण बेचैन और अत्यन्तभयतीत होकर शीघ्र गामी घोड़ों से युद्धस्थल को छोड़कर भाग गया। किन्तु अतिरथि भीम अपने स्वर्णभूषित धनुष को खींचे हुए, प्रज्वलित अग्निके समान युद्धक्षेत्र में खड़े रहे।

छिहत्तरवाँ अध्याय : भीम द्वारा धृतराष्ट्र के पाँच पुत्रों का वध

दृष्ट्वा कर्णं तु पुत्रास्ते भीमसेनपराजितम्।
नामृष्यन्त महेष्वासाः सोदर्याः पञ्च भारत॥ १॥
दुर्मर्षणो दुःसहश्च दुर्मदो दुर्धरो जयः।
पाण्डवं चित्रसंनाहास्तं प्रतीपमुपाद्रवन्॥ २॥
ते समन्तान्महाबाहुं परिवार्य वृकोदरम्।
दिशः शरैः समावृण्वञ्शलभानामिव व्रजैः॥ ३॥
आगच्छतस्तान् सहसा कुमारान् देवरूपिणः।
प्रतिजग्राह समरे भीमसेनो हसन्निव॥ ४॥

हे भारत! कर्ण को भीम के द्वारा पराजित देखकर परस्पर सगे भाई आपके पाँच महाधनुर्धर पुत्र सहन न कर सके। उनके नाम थे, दुर्मर्षण, दुःसह, दुर्मद, दुर्धर, और जय। उन्होंने विचित्र कवचों को धारण कर अपने शत्रु पाण्डुपुत्र पर आक्रमण किया। उन्होंने सबतरफ से महाबाहु भीम को घेर लिया और टिड्डी के दल के समान बाणवर्षा से सारी दिशाओं को भर दिया। तब भीमसेन ने मुस्कराते हुए उन आते हुए देवताओं के समान राजकुमारों के आघातों को सहन किया।

तव दृष्ट्वा तु तनयान् भीमसेनपुरोगतान्।
अभ्यवर्तत राधेयो भीमसेनं महाबलम्॥ ५॥
विसृजन् विशिखांस्तीक्ष्णान् स्वर्णपुङ्खाञ्छिलाशितान्।
तं तु भीमोऽभ्ययात् तूर्णं वार्यमाणः सुतैस्तव॥ ६॥
कुरवस्तु ततः कर्णं परिवार्य समन्ततः।
अवाकिरन् भीमसेनं शरैः संनतपर्वभिः॥ ७॥

तब आपके पुत्रों को भीमसेन के सामने गया हुआ देखकर, कर्ण महाबली भीमसेन का सामना करने के लिये लौट आया। कर्ण उस समय शिला पर तेज किये हुए, सुनहरे पंखवाले तीखे बाणों की वर्षा कर रहा था। तब आपके पुत्रों के द्वारा रोके जाने पर भी उनकी परवाह न कर भीम शीघ्रता से उसके सामने पहुँचे। तब वे कौरव कर्ण को सबतरफ से घेरकर भीम पर झुकी गाँठवाले बाणों की वर्षा करने लगे।

तान् बाणैः पञ्चविंशत्या साश्वान् राजन् नरर्षभान्।
ससूतान् भीमधनुषो भीमो निन्ये यमक्षयम्॥ ८॥
प्रापतन् स्यन्दनेभ्यस्ते सार्धं सूतैर्गतासवः।
चित्रपुष्पधरा भग्ना वातेनेव महाद्रुमाः॥ ९॥
तत्राद्भुतमपश्याम भीमसेनस्य विक्रमम्।
संवार्याधिरथिं बाणैर्यज्जघान तवात्मजान्॥ १०॥

हे राजन्! तब भीम ने भयंकर धनुषवाले उन नरश्रेष्ठ राजकुमारों को पच्चीस बाणों से घोड़ों और सारथियोंसहित मृत्युलोक में पहुँचा दिया। वे अपने सारथियों के साथ प्राणहीन होकर रथों से नीचे ऐसे गिर पड़े जैसे विचित्र फूलों को धारण किये हुए विशाल वृक्षों को आँधी ने उखाड़ दिया हो। वहाँ हमने भीम के अद्भुत पराक्रम को देखा कि बाणों के द्वारा कर्ण को रोकते हुए भी उसने आपके पुत्रों का वध कर दिया।

सतहत्तरवाँ अध्याय : भीम के सामने से कर्ण का पलायन। भीम के द्वारा धृतराष्ट्र के सात पुत्रों का वध।

तवात्मजांस्तु पतितान् दृष्ट्वा कर्णः प्रतापवान्।
क्रोधेन महताऽऽविष्टो निर्विण्णोऽभूत् स जीवितात्॥ १॥
आगस्कृतमिवात्मानं मेने चाधिरथिस्तदा।
यत्प्रत्यक्षं तव सुता भीमेन निहता रणे॥ २॥
भीमसेनस्ततः क्रुद्धः कर्णस्य निशिताञ्शरान्।
निचखान स सम्भ्रान्तः पूर्ववैरमनुस्मरन्॥ ३॥
स भीमं पञ्चभिर्विद्ध्वा राधेयः प्रहसन्निव।
पुनर्विव्याध सप्तत्या स्वर्णपुङ्खैः शिलाशितैः॥ ४॥

हे राजन्! आपके पुत्रों को मारा हुआ देखकर प्रतापी कर्ण अत्यन्त क्रोध में भर गया और अपने जीवन के प्रति विरक्त होगया। उस समय अधिरथ का वह पुत्र अपनेआपको अपराधी सा मान रहा था, जो उसके सामनेही भीम ने आपके पुत्रों को युद्ध में मार दिया। तब भीमसेन ने पहले के बैर को याद करते हुए क्रोध में भरकर कर्ण को तीखे बाणों से बींध दिया। तब कर्ण ने मुस्कराते हुए पाँच बाणों से भीम को बींधकर फिर सत्तर सुनहरे पंखवाले और शिला पर तेज किये हुए बाणों की वर्षाकर उसे घायल कर दिया।

अविचिन्त्याथ तान् बाणान् कर्णेनास्तान् वृकोदरः।
रणे विव्याध राधेयं शतेनानतपर्वणाम्॥ ५॥
पुनश्च विशिखैस्तीक्ष्णैर्विद्ध्वा मर्मसु पञ्चभिः।
धनुश्चिच्छेद भल्लेन सूतपुत्रस्य मारिष॥ ६॥
अथान्यद् धनुरादाय कर्णो भारत दुर्मनाः।
इषुभिश्छादयामास भीमसेनं परंतपः॥ ७॥
तस्य भीमो हयान् हत्वा विनिहत्य च सारथिम्।
प्रजहास महाहासं कृते प्रतिकृते पुनः॥ ८॥
इषुभिः कार्मुकं चास्य चकर्त पुरुषर्षभः।

कर्ण के द्वारा फैंके हुए उन बाणों की परवाह न कर भीम ने युद्ध में झुकी गाँठवाले सौ बाणों की वर्षाकर कर्ण को घायल कर दिया। हे मान्यवर! फिर उसने पाँच तीखे बाणों से उसके मर्मस्थलों में प्रहारकर, भल्ल नाम के बाण से सुतपुत्र का धनुष काट दिया। हे भारत! फिर खिन्न हुए परंतप कर्ण ने दूसरा धनुष लेकर, भीम को बाणों से आच्छादित कर दिया। तब भीम ने उसके घोड़ों और सारथि को मारकर, प्रहार का बदला चुका कर जोर से अटटहास किया। उस पुरुषश्रेष्ठ ने बाणों से उसके धनुष को भी काट दिया।

अवारोहद् रथात् तस्मादथ कर्णो महारथः॥ ९॥
गदां गृहीत्वा समरे भीमाय प्राहिणोद् रुषा।
तामापतन्तीमालक्ष्य भीमसेनो महागदाम्॥ १०॥
शरैरवारयद् राजन् सर्वसैन्यस्य पश्यतः।
ततो बाणसहस्राणि प्रेषयामास पाण्डवः॥ ११॥
सूतपुत्रवधाकाङ्क्षी त्वरमाणः पराक्रमी।
स च्छाद्यमानो बाणौघैर्भीमसेनधनुश्च्युतैः॥ १२॥
पुनरेवाभवत् कर्णो भीमसेनात् पराङ्मुखः।

तब महारथी कर्ण उस रथ से नीचे उतर गया और क्रोध में भरकर उसने युद्धस्थल में गदा को उठाकर उसे भीम की तरफ फैंका। अपने ऊपर आती हुई उस विशाल गदा को देखकर हे राजन्! भीमसेन ने सारी सेना के देखते हुए बाणों से उसका निवारण कर दिया। तब उस पराक्रमी पाण्डुपुत्र ने सूतपुत्र के वध की इच्छा से शीघ्रता करते हुए उसके ऊपर असंख्य बाणों की वर्षा की। भीमसेन के धनुष से छूटे हुए उन बाणों से आच्छादित होकर कर्ण फिर उससे विमुख होकर जाने लगा।

तं पराङ्मुखमालोक्य पदातिं सूतनन्दनम्॥ १३॥
त्वरध्वं सर्वतो यत्ता राजा दुर्योधनोऽब्रवीत्।
ततस्तव सुता राजञ्छ्रुत्वा भ्रातुर्वचो द्रुतम्॥ १४॥
अभ्ययुः पाण्डवं युद्धे विसृजन्तः शिलीमुखान्।
चित्रोपचित्रश्चित्राक्षश्चारुचित्रः शरासनः॥ १५॥
चित्रायुधश्चित्रवर्मा समरे चित्रयोधिनः।
तानापतत एवाशु भीमसेनो महारथः॥ १६॥
एकैकेन शरेणाजौ पातयामास ते सुतान्।

तब उस सूतपुत्र को पैदल ही युद्ध से भागते हुए देखकर राजा दुर्योधन बोला कि अरे सबतरह से सावधान होकर उसतरफ दौड़ो। तब हे राजन्! आपके पुत्र भाई के वचनों को सुनकर तेजी से बाणों की वर्षा करते हुए युद्ध के लिये पाण्डुपुत्र के सामने गये। उनके नाम थे– चित्र, उपचित्र, चित्राक्ष, चारुचित्र, शरासन, चित्रायुध और चित्रवर्मा। ये युद्ध में विचित्र प्रकार से लड़ने वाले थे। तब महारथी भीम ने आक्रमण करते हुए उन आपके पुत्रों को शीघ्र ही एक एक बाण से एक एक को युद्धक्षेत्र में मारकर गिरा दिया।

दृष्ट्वा विनिहतान् पुत्रांस्तव राजन् महारथान्॥ १७॥
अश्रुपूर्णमुखः कर्णः क्षत्तुः सस्मार तद् वचः।
रथं चान्यं समास्थाय विधिवत् कल्पितं पुनः॥ १८॥
अभ्ययात् पाण्डवं युद्धे त्वरमाणः पराक्रमी।
षट्त्रिंशद्भिस्ततो भल्लैर्निशितैस्तिग्मतेजनैः॥ १९॥
व्यधमत् कवचं क्रुद्धः सूतपुत्रस्य पाण्डवः।
सूतपुत्रोऽपि कौन्तेयं शरैः संनतपर्वभिः॥ २०॥
पञ्चाशता महाबाहुर्विव्याध भरतर्षभ।

हे राजन्! तब आपके महारथी पुत्रों को मारा हुआ देखकर कर्ण आँखों में आँसू भरकर विदुर के वचनों को याद करने लगा। फिर उस पराक्रमी ने विधि पूर्वक सजाये हुए दूसरे रथ पर बैठकर युद्धक्षेत्र में शीघ्रतापूर्वक पुनः पाण्डुपुत्र पर आक्रमण किया। तब क्रुद्ध हुए भीम ने अत्यन्त तीखे छत्तीस भल्लों से कर्ण के कवच के टुकड़े टुकड़े कर दिये। हे भरतश्रेष्ठ! तब महाबाहु सूतपूत्र ने भी उस कुन्तीपुत्र के ऊपर झुकी गाँठ पचास बाणों की वर्षा कर घायल कर दिया।

तौ शोणितोक्षितैर्गात्रैः शरैश्छिन्नतनुच्छदौ॥ २१॥
कर्णभीमौ व्यराजेतां निर्मुक्ताविव पन्नगौ।

व्याघ्राविव नरव्याघ्रौ दंष्ट्राभिरितरेतरम्॥ २२॥
शरधारासृजौ वीरौ मेघाविव ववर्षतुः।
वारणाविव चान्योन्यं विषाणाभ्याममरिंदमौ॥ २३॥
निर्भिन्दन्तौ स्वगात्राणि सायकैश्चारु रेजतुः।

वेदोनों, जिनके बाणों से कवच कट गये थे, कर्ण और भीम उस समय केंचुली से मुक्त हुए साँपों के समान प्रतीत होरहे थे। उनके शरीर खून से लथपथ होरहे थे। जैसे दो बाघ दाँतों से एक दूसरे पर चोट करते हैं वैसेही वेदोनों नरव्याघ्र एक दूसरे पर प्रहार कर रहे थे। वे एकदूसरे पर बादलों के समान बाणों की धारा बरसा रहे थे। जैसे दो हाथी एकदूसरे पर दाँतों से आघात करते हैं वैसेही वेदोनों शत्रु का दमन करने वाले बाणों से एकदूसरे के शरीर को बींधते हुए सुशोभित होरहे थे।

स नेमिघोषस्तनितश्चापविद्युच्छराम्बुभिः॥ २४॥
भीमसेनमहामेघः कर्णपर्वतमावृणोत्।
विक्रमं भुजयोर्वीर्यं, धैर्यं च विदितात्मनः।
पुत्रास्तव महाराज, दृष्ट्वा विमनसोऽभवन्॥ २५॥

तब भीमसेनरूपी उस विशाल बादल ने जिसके रथ की घर्घराहट ही मानो गर्जना थी, धनुष ही मानों विद्युत् थी, बाणोंरूपी जल धाराओं से कर्ण रूपी पर्वत को ढक दिया। हे महाराज! तब उस प्रसिद्ध आत्मावाले भीम के पराक्रम, भुजाओं की शक्ति और धैर्य को देखकर आपके पुत्र उदास होगये।

अठहत्तरवाँ अध्याय : भीम का कर्ण से युद्ध, धृतराष्ट्र के सात पुत्रों का वध।

भीमसेनस्य राधेयः श्रुत्वा ज्यातलनिःस्वनम्।
नामृष्यत यथा मत्तो गजः प्रतिगजस्वनम्॥ १॥
स ताम्रनयनः क्रोधाच्छ्वसन्निव महोरगः।
बभौ कर्णः शरानस्यन् रश्मीनिव दिवाकरः॥ २॥
किरणैरिव सूर्यस्य महीध्रो भरतर्षभ।
कर्णचापच्युतैर्बाणैः प्राच्छाद्यत वृकोदरः॥ ३॥
ते कर्णचापप्रभवाः शरा बर्हिणवाससः।
विविशुः सर्वतः पार्थं वासायेवाण्डजा द्रुमम्॥ ४॥

भीमसेन के धनुष की टंकार को कर्ण उसीप्रकार सहन नहीं कर सका जैसे एक मस्त हाथी अपने प्रतिद्वन्द्वी दूसरे मस्त हाथी की चिंघाड़ को नहीं सह पाता है। क्रोध से आँखें लाल किये और विशाल सर्प के समान लम्बी साँसें लेते हुए तथा बाणों की वर्षा करते हुए वह किरणों का प्रसार करते हुए सूर्य के समान लग रहा था। हे भरतश्रेष्ठ! जैसे सूर्य की किरणों से पर्वत ढक जाता है, वैसेही कर्ण के धनुष से छूटे हुए बाणों से भीम आच्छादित हो गये थे। मोर के पंखों से युक्त, कर्ण के धनुष से छूटे हुए वे बाण कुन्तीपुत्र के शरीर में सबतरफ से ऐसे घुसने लगे, जैसे पक्षी बसेरे के लिये वृक्षों में घुसते हैं।

तमन्तकमिवायस्तमापतन्तं वृकोदरः।
त्यक्त्वा प्राणानतिक्रम्य विव्याध निशितैः शरैः॥ ५॥
तस्य वेगमसह्यं स दृष्ट्वा कर्णस्य पाण्डवः।
महतश्च शरौघांस्तान् न्यवारयत वीर्यवान्॥ ६॥
ततो विधम्याधिरथेः शरजालानि पाण्डवः।
विव्याध कर्णं विंशत्या पुनरन्यैः शिलाशितैः॥ ७॥
यथैव हि स कर्णेन पार्थः प्रच्छादितः शरैः।
तथैव स रणे कर्णं छादयामास पाण्डवः॥ ८॥

तब उसे प्रयत्नपूर्वक मृत्यु के समान आक्रमण करता हुआ देखकर भीमसेन अपने प्राणों का मोह छोड़कर पराक्रम करते हुए, उसे तीखे बाणों से बींधने लगे। कर्ण के वेग को असह्य देखकर पराक्रमी पाण्डुपुत्र उसकी महान् बाणवर्षा का निवारण करने लगे। फिर अधिरथपुत्र के बाणों के जाल को नष्ट कर उन्होंने कर्ण पर बीस शिला पर तेज किये हुए बाणों की वर्षाकर उसे घायल कर दिया। जैसे कर्ण ने भीम को बाणों से आच्छादित किया था, वैसे ही भीम ने भी कर्ण को युद्धक्षेत्र में बाणों से आच्छादित कर दिया।

अभ्यभाषत पुत्रस्ते राजन् दुर्योधनस्त्वरन्।
राज्ञः स राजपुत्रांश्च सोदर्यांश्च विशेषतः॥ ९॥
कर्णं गच्छत भद्रं वः परीप्सन्तो वृकोदरात्।
पुरा निघ्नन्ति राधेयं भीमचापच्युताः शराः॥ १०॥
ते यतध्वं महेष्वासाः सूतपुत्रस्य रक्षणे।
दुर्योधनसमादिष्टाः सोदर्याः सप्त भारत॥ ११॥
भीमसेनमभिद्रुत्य संरब्धाः पर्यवारयन्।

ते समासाद्य कौन्तेयमावृण्वञ्शरवृष्टिभिः॥ १२॥
पर्वतं वारिधाराभिः प्रावृषीव बलाहकाः।

हे राजन्! तब आपके पुत्र दुर्योधन ने राजाओं को, राजपुत्रों को और विशेषकर अपने सगे भाइयों से उतावली के साथ यह कहा कि आप सबका कल्याण हो। अब भीम से कर्ण को बचाने की इच्छा से उसके पास जाओ। इससे पहले कि भीम के धनुष से छूटे हुए बाण कर्ण को मार दें, हे महाधनुर्धरों! तुम कर्ण की रक्षा के लिये यत्न करो। हे भारत! तब दुर्योधन की आज्ञा से उसके सात सगे भाइयों ने क्रोध में भरकर भीमसेन पर आक्रमण कर उसे घेर लिया। उन्होंने कुन्तीपुत्र के समीप जाकर अपनी बाणवर्षा से उसे इसप्रकार ढक दिया जैसे वर्षाऋतु में बादल जलधाराओं से पर्वत को ढक देते हैं।

ततो वेगेन कौन्तेयः पीडयित्वा शरासनम्॥ १३॥
मुष्टिना पाण्डवो राजन् दृढेन सुपरिष्कृतम्।
मनुष्यसमतां ज्ञात्वा सप्त संधाय सायकान्॥ १४॥
तेभ्यो व्यसृजदायस्तः सूर्यरश्मिनिभान् प्रभुः।
ते शरैर्भिन्नमर्माणो रथेभ्यः प्रापतन् क्षितौ॥ १५॥
गिरिसानुरुहा भग्ना द्विपेनेव महाद्रुमाः।
शत्रुंजयः शत्रुसहश्चित्रश्चित्रायुधो दृढः॥ १६॥
चित्रसेनो विकर्णश्च सप्तैते विनिपातिताः।

तब शक्तिशाली कुन्तीपुत्र भीम ने अपने अत्यन्त सुन्दरता से बनाये हुए धनुष को मजबूत मुट्ठी से वेगपूर्वक दबाते हुए सूर्य की किरणों के समान सात बाणों का सन्धानकर उन सातों भाइयों को साधारण मनुष्य मानते हुए उनके ऊपर इन बाणों को प्रयत्नपूर्वक छोड़ दिया। उन बाणों से मर्मस्थलों के विदीर्ण होजाने के कारण वे सातों मरकर रथों से भूमि पर इसप्रकार गिर पड़े, जैसे किसी विशाल हाथी ने पर्वत की चोटी से महान् वृक्षों को तोड़कर गिरा दिया हो। इन सात भाइयों के नाम ये हैं।— शत्रुंजय, शत्रुसह, चित्र, (चित्रबाण) चित्रायुध (अग्रायुध) दृढ (दृढवर्मा) चित्रसेन (उग्रसेन) और विकर्ण जिन्हें भीम ने मारा।

पुत्राणां तव सर्वेषां निहतानां वृकोदरः॥ १७॥
शोचत्यतिभृशं दुःखाद् विकर्णं पाण्डवः प्रियम्।
प्रतिज्ञेयं मया वृत्ता निहन्तव्यास्तु संयुगे॥ १८॥
विकर्ण तेनासि हतः प्रतिज्ञा रक्षिता मया।
त्वमागाः समरं वीर क्षात्रधर्ममनुस्मरन्॥ १९॥
ततो विनिहतः संख्ये युद्धधर्मो हि निष्ठुरः।
विशेषतो हि नृपतेस्तथास्माकं हिते रतः॥ २०॥
न्यायतोऽन्यायतो वापि हतः शेते महाद्युतिः।
अगाधबुद्धिर्गाङ्गेयः क्षितौ सुरगुरोः समः।
त्याजितः समरे प्राणांस्तस्माद् युद्धं हि निष्ठुरम्॥ २१॥

इन मारे गये सारे आपके पुत्रों में विकर्ण पाण्डवों को अधिक प्रिय था। भीमसेन उसके दुःख से अत्यन्त शोक करने लगे कि हे विकर्ण! मैंने प्रतिज्ञा की हुई है कि सारे धृतराष्ट्र के पुत्रों को युद्ध में मारूँगा, इसीलिये तुम मारे गये हो। मुझे अपनी प्रतिज्ञा का पालन करना है। हे वीर! तुम अपने क्षत्रियधर्म का पालन करते हुए युद्धभूमि में मेरे सामने आ गये, इसीलिये युद्ध में मारे गये। युद्ध का धर्म वास्तव में बड़ा निष्ठुर है। बृहस्पति के समान अगाध बुद्धि, महातेजस्वी, गंगापुत्र भीष्म जी जो हमारे और विशेषरूप से राजा युधिष्ठिर के हित में लगे रहते थे, न्याय या अन्याय से गिराये हुए युद्धभूमि पर सोरहे हैं और प्राणों को त्यागने की स्थिति में पहुँचे हुए हैं। इसलिये कहना पड़ता है कि युद्ध का कार्य बड़ा निर्दयतापूर्ण है।

उनासीवाँ अध्याय : भीम और कर्ण के युद्ध में पहले भीम की, पीछे कर्ण की विजय। अर्जुन के बाणों से कर्ण और अश्वत्थामा का पलायन।

ततः कर्णो महाराज भीमं विद्ध्वा त्रिभिः शरैः।
मुमोच शरवर्षाणि विचित्राणि बहूनि च॥ १॥
वध्यमानो महाबाहुः सूतपुत्रेण पाण्डवः।
न विव्यथे भीमसेनो भिद्यमान इवाचलः॥ २॥
स कर्णं कर्णिना कर्णे पीतेन निशितेन च।
विव्याध सुभृशं संख्ये तैलधौतेन मारिष॥ ३॥
स कुण्डलं महच्चारु कर्णस्यापातयद् भुवि।
तपनीयं महाराज दीप्तं ज्योतिरिवाम्बरात्॥ ४॥

हे महाराज! कर्ण ने भीम को तीन बाणों से बींधकर फिर उनके ऊपर बहुत से और विचित्र

बाणों की वर्षा की। वह महाबाहु पाण्डुपुत्र भीमसेन, सूतपुत्र के द्वारा बींधे जाते हुए भी पर्वत के समान व्यथित नहीं हुए। उन्होंने फिर पानीदार तीखे कर्णी नाम के तेल से धोये हुए बाण से हे मान्यवर! कर्ण के कान पर जोर से प्रहार किया। हे महाराज! उन्होंने कर्ण के कान के सुन्दर और विशाल जगमगाते हुए स्वर्णकुण्डल को काट कर ऐसे भूमि पर गिरा दिया, जैसे किसी तारे को आकाश से गिरा दिया हो।

अथापरेण भल्लेन सूतपुत्रं स्तनान्तरे।
आजधान भृशं क्रुशं हसन्निव वृकोदरः॥ ५॥
पुनरस्य त्वरन् भीमो नाराचान् दश भारत।
रणे प्रैषीन्महाबाहुर्निर्मुक्ताशीविषोपमान्॥ ६॥
सोऽतिविद्धो भृशं कर्णः पाण्डवेन तरस्विना।
रथकूबरमालम्ब्य न्यमीलथत लोचने॥ ७॥
स मुहूर्तात् पुनः संज्ञां लेभे कर्णः परंतपः।
रुधिरोक्षितसर्वाङ्गः क्रोधमाहारयत् परम्॥ ८॥

फिर दूसरे भल्ल से भीम ने अत्यन्तक्रुद्ध होकर मुस्कराते हुए कर्ण की छाती पर प्रहार किया। हे भारत! फिर शीघ्रता करते हुए महाबाहु भीम ने कैंचुली से निकले हुए विषैले सर्पों के समान दस नाराचों को उसकी तरफ फैंका। इसप्रकार वेगवान् पाण्डुपुत्र के द्वारा अत्यन्तघायल कर दिये जाने पर कर्ण ने रथ के कूबर का सहारा लेकर अपनी आँखें बन्द कर लीं। उसके एक मुहूर्त पश्चात् होश में आने पर खून से लथपथ सारे अंगोंवाले परंतप कर्ण को बड़ा क्रोध हुआ।

ततः क्रुद्धो रणे कर्णः पीडितो दृढधन्वना।
वेगं चक्रे महावेगो भीमसेनरथं प्रति॥ ९॥
तस्मै कर्णः शतं राजन्निषूणां गार्ध्रवाससाम्।
अमर्षी बलवान् क्रुद्धः प्रेषयामास भारत॥ १०॥
ततः प्रासृजदुग्राणि शरवर्षाणि पाण्डवः।
समरे तमनादृत्य तस्य वीर्यमचिन्तयन्॥ ११॥
कर्णस्तो महाराज, पाण्डवं नवभिः शरैः।
आजघानोरसि क्रुद्धः, क्रुद्धरूपं परंतप॥ १२॥

दृढ धनुर्धर भीम से पीड़ित हुए और क्रोध में भरे हुए, महावेगवान् कर्ण ने युद्धक्षेत्र में भीम के रथ के ऊपर वेग से आक्रमण किया। हे भरतवंशी राजन्! अमर्षशील, बलवान् और क्रोध में भरे हुए कर्ण ने गिद्ध के पंखों से युक्त सौ बाणों की भीम के ऊपर वर्षा की। तब उसके पराक्रम की परवाह न करते हुए, उसका अनादर करते हुए पाण्डुपुत्र ने भयंकर बाणों की वर्षा आरम्भ कर दी। हे परंतप महाराज! तब क्रुद्ध कर्ण ने क्रोध से भरे हुए पाण्डुपुत्र की छाती पर नौ बाणों से प्रहार किया।

तावुभौ नरशार्दूलौ शार्दूलाविव दंष्ट्रिणौ।
जीमूताविव चान्योन्यं प्रववर्षतुराहवे॥ १३॥
ततो भीमो महाबाहुः सूतपुत्रस्य भारत।
क्षुरप्रेण धनुश्छित्त्वा ननाद परवीरहा॥ १४॥
तदपास्य धनुश्छिन्नं सूतपुत्रो महारथः।
अन्यत् कार्मुकमादत्त भारघ्नं वेगवत्तरम्॥ १५॥
तदप्यथ निमेषार्धाच्चिच्छेदास्य वृकोदरः।
बहूनि भीमश्चिच्छेद कर्णस्यैवं धनूंषि हि॥ १६॥
निमेषार्धात् ततः कर्णो धनुर्हस्तो व्यतिष्ठत।

वेदोनों नरसिंह दाँतोंवाले दो सिंहों के समान लड़ते हुए, युद्धस्थल में बादलों के समान एकदूसरे पर बाणों की वर्षा कर रहे थे। हे भारत! फिर महाबाहु शत्रुवीरों को मारनेवाले भीम ने क्षुरप्र से सूतपुत्र के धनुष को काटकर जोर से गर्जना की। महारथी सूतपुत्र ने कटे हुए धनुष को छोड़कर दूसरे अधिक वेगवाले और भार को सहन करनेवाले धनुष को लिया किन्तु आधे ही पल में भीम ने उसेभी काट दिया। इसप्रकार भीम ने जल्दी जल्दी कर्ण के बहुतसारे धनुषों को काट दिया। कर्ण भी आधे ही पल में उससमय दूसरे धनुष को तैयारकर हाथ में लेलेता था।

ततः क्रुद्धः शरानस्यन् सूतपुत्रो व्यरोचत॥ १७॥
मध्यंदिनगतोऽर्चिष्माञ्शरदीव दिवाकरः।
कराभ्यामाददानस्य संदधानस्य चाशुगान्॥ १८॥
कर्षतो मुञ्चतो बाणान् नान्तरं ददृशे रणे।
अग्निचक्रोपमं घोरं मण्डलीकृतमायुधम्॥ १९॥
कर्णस्यासीन्महीपाल सव्यदक्षिणमस्यतः।

तब क्रोध में भरकर भीम के ऊपर शीघ्रता से बाणों को चलाता हुआ कर्ण, शरदऋतु में दोपहर के तेजस्वी सूर्य के समान प्रतीत होने लगा। दोनों हाथों से शीघ्रगामी बाणों का सन्धान करते हुए, धनुष को खींचते हुए और बाणों को छोड़ते हुए उस समय उसके कार्यों में कोई अन्तर दिखाई नहीं देता था।

हे राजन्! दायें और बायें दोनों हाथों से बाणों को छोड़ते हुए कर्ण का मण्डलाकार धनुष भयानक अग्निचक्र के समान प्रतीत होरहा था।

गार्ध्रपत्राञ्शिलाधौतान् कार्तस्वरविभूषितान्॥ २०॥
महावेगान् प्रदीप्ताग्रान् मुमोचाधिरथिः शरान्।
ते तु चापबलोद्धूताः शातकुम्भविभूषिताः॥ २१॥
अजस्रमपतन् बाणा भीमसेनरथं प्रति।
पर्वतं वारिधाराभिश्छादयन्निव तोयदः॥ २२॥
कर्णः प्राच्छादयत् क्रुद्धो भीमं सायकवृष्टिभिः।
तत्र भारत भीमस्य बलं वीर्यं पराक्रमम्॥ २३॥
व्यवसायं च पुत्रास्ते ददृशुः सहसैनिकाः।

अधिरथ के पुत्र ने गिद्ध के पंखवाले, शिला पर साफ किये हुए, स्वर्णभूषित, महावेग तथा चमकीली नोकवाले बाणों की वर्षा की। धनुष की शक्ति से निकले हुए, स्वर्णभूषित वे बाण, लगातार भीमसेन के रथ के ऊपर गिर रहे थे। जैसे बादल जलधाराओं से पर्वत को ढक दें, वैसे ही क्रुद्ध कर्ण ने भीम को बाणवर्षा से भर दिया। हे भारत! वहाँ आपके पुत्रों ने सैनिकों के साथ भीम के बल, वीर्य, पराक्रम और उद्योग को देखा।

तां समुद्रमिवोद्धतां शरवृष्टिं समुत्थिताम्॥ २४॥
अचिन्तयित्वा भीमस्तु क्रुद्धः कर्णमुपाद्रवत्।
रुक्मपृष्ठं महच्चापं भीमस्यासीद् विशाम्पते॥ २५॥
आकर्षान्मण्डलीभूतं शक्रचापमिवापरम्।
पुनश्चासृजदुग्राणि शरवर्षाणि पाण्डवः॥ २६॥
अमर्षी बलवान् क्रुद्धो दिधक्षन्निव पावकः।
ततश्चटचटाशब्दो गोधाघातादभूत् तयोः॥ २७॥
तलशब्दश्च सुमहान् सिंहनादश्च भैरवः।
रथनेमिनिनादश्च ज्याशब्दश्चैव दारुणः॥ २८॥

उस समुद्र के समान उमड़ती हुई बाणवर्षा की चिन्ता न कर भीम ने क्रोध में भरकर कर्ण पर आक्रमण कर दिया। हे प्रजानाथ! भीम का सुनहरी पीठवाला विशाल धनुष, लगातार खींचने से एक दूसरे इन्द्रधनुष के समान मण्डलाकार होगया था। फिर अमर्षशील बलवान् पाण्डुपुत्र ने क्रोध में भरकर, जलाने की इच्छावाली अग्नि के समान भयंकर बाणों की वर्षा कर दी। उस समय उनदोनों के गोहचर्म के दस्तानों का चटचट शब्द, हथेली का महान् शब्द और उनदोनों के सिंहनादों का भयंकर शब्द होरहा था। साथ ही रथ के पहियों की घर्घराहट और धनुषों की दारुण टंकार भी होरही थी।

ततो भीमो महाबाहुः संरम्भी दृढविक्रमः।
अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य शरैर्विव्याध सूतजम्॥ २९॥
कर्णोऽपि भीमसेनस्य निवार्येषून् महाबलः।
प्राहिणोन्नव नाराचानाशीविषसमान् रणे॥ ३०॥
तावद्भिरथ तान् भीमो व्योम्नि चिच्छेद पत्रिभिः।
नाराचान् सूतपुत्रस्य तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत्॥ ३१॥
पुनश्चासृजदुग्राणि शरवर्षाणि पाण्डवः।
तस्य तान्याददे कर्णः सर्वाण्यस्त्राण्यभीतवत्॥ ३२॥

तब महाबाहु और दृढ़ पराक्रमवाले भीम ने क्रोध में भरकर अपने अस्त्रों से सूतपुत्र के अस्त्रों का निवारणकर उसे बाणों से बींध दिया। महाबली कर्ण ने भी भीम के बाणों का निवारण कर विषैले सर्प के समान नाराचों को युद्ध में छोड़ा। तब भीम ने भी उतने ही बाणों से सूतपुत्र के नाराचों को आकाश में ही छिन्न कर दिया और उसे 'ठहर,' 'ठहर' कहकर धमकाया। पाण्डुपुत्र ने फिर उस पर भयंकर बाणवर्षा की, पर कर्ण ने उनसारे अस्त्रों का निर्भयता के साथ सामना किया।

युध्यमानस्य भीमस्य सूतपुत्रोऽस्त्रमायया।
तस्येषुधी धनुर्ज्यां च बाणैः संनतपर्वभिः॥ ३३॥
रश्मीन् योक्त्राणि चाश्वानां क्रुद्धः कर्णोऽच्छिनन्मृधे।
तस्याश्वांश्च पुनर्हत्वा सूतं विव्याध पञ्चभिः॥ ३४॥
विहसन्निव भीमस्य क्रुद्धः कालानलद्युतिः।
ध्वजं चिच्छेद राधेयः पताकां च व्यपातयत्॥ ३५॥
स विधन्वा महाबाहुरथ शक्तिं परामृशत्।
तां व्यवासृजदाविध्य क्रुद्धः कर्णरथं प्रति॥ ३६॥

तब क्रोध में भरे हुए कर्ण ने अपने अस्त्रों की माया से युद्ध करते हुए भीम के तरकस, धनुष, प्रत्यंचा, लगाम, घोड़ों को जोतने की रस्सियों को झुकी गाँठ वाले बाणों से काट दिया। फिर उसने उनके घोड़ों को भी मारकर सारथि को पाँच बाणों से घायल कर दिया। मृत्यु और अग्नि के समान तेज वाले क्रुद्ध कर्ण ने मुस्कराते हुए भीम के ध्वज और पताका को काट कर गिरा दिया। तब धनुषरहित होकर महाबाहु भीम ने क्रोध में भरकर रथशक्ति को उठाया और उसे घुमाकर कर्ण के रथ की तरफ फैंका।

तामाधिरथिरायस्तः शक्तिं काञ्चनभूषणाम्।
आपतन्तीं महोल्काभां चिच्छेद दशभिः शरैः॥ ३७॥
स चर्मादत्त कौन्तेयो जातरूपपरिष्कृतम्।
खड्गं चान्यतरप्रेप्सुर्मृत्योरग्रे जयस्य वा॥ ३८॥
तदस्य तरसा क्रुद्धो व्यधमच्चर्म सुप्रभम्।
शरैर्बहुभिरत्युग्रैः प्रहसन्निव भारत॥ ३९॥

महान् उलका के समान अपने ऊपर आती हुई उस स्वर्णभूषित शक्ति को कर्ण ने आयासपूर्वक दस बाणों से काट दिया। तब कुन्तीपुत्र ने युद्ध के मुहाने पर मृत्यु या विजय दोनों में किसीएक की इच्छा रखते हुए स्वर्णभूषित तलवार और ढाल को उठाया। हे भारत! तब क्रोध में भरे हुए मुस्कराते हुए कर्ण ने शीघ्रता से भीम की अत्यन्त चमकीली ढाल को बहुतसे भयंकर बाणों से काट दिया।

चक्राण्यश्वांस्तथा चान्यद् यद् यत् पश्यति भूतले।
तत् तदादाय चिक्षेप क्रुद्धः कर्णाय पाण्डवः॥ ४०॥
तदस्य सर्वं चिच्छेद क्षिप्तं क्षिप्तं शितैः शरैः।
तमेवं व्याकुलं भीमं भूयो भूयः शितैः शरैः॥ ४१॥
मूर्च्छयाभिपरीताङ्गमकरोत् सूतनन्दनः।
धनुषोऽग्रेण तं कर्ण सोऽभिद्रुत्य परामृशत्॥ ४२॥
धनुषा स्पृष्टमात्रेण क्रुद्धः सर्प इव श्वसन्।
आच्छिद्य स धनुस्तस्य कर्णं मूर्धन्यताडयत्॥ ४३॥

भीम ने तब क्रोध में भरकर रथ के पहियों, घोड़ों और जिस जिस पदार्थ को भूमि पर पड़ा हुआ देखा, उसे उठाकर कर्ण के ऊपर फैंका, पर कर्ण ने उन सब फैंके हुए पदार्थों को अपने तीखे बाणों से काट दिया। तब बार बार तीखे बाणों की मार से व्याकुल हुए भीम के अंगों में मूर्च्छा का सा संचार होने लगा। तब कर्ण दौड़कर उनके पास गया और धनुष की नोक से उसने भीम का स्पर्श किया। धनुष से स्पर्श किये जाने पर क्रुद्ध सर्प के समान लम्बी साँस लेते हुए भीम ने वह धनुष कर्ण के हाथ से छीनकर उसके सिर में देमारा।

ताडितो भीमसेनेन क्रोधादारक्तलोचनः।
विहसन्निव राधेयो वाक्यमेतदुवाच ह॥ ४४॥
पुनः पुनस्तूबरक मूढ औदरिकेति च।
अकृतास्त्रक मा योत्सीर्बाल संग्रामकातर॥ ४५॥
यत्र भोज्यं बहुविधं भक्ष्यं पेयं च पाण्डव।
तत्र त्वं दुर्मते योग्यो न युद्धेषु कदाचन॥ ४६॥
सूदं त्वामहमाजाने मात्स्ये प्रेष्यककारकम्।
सूदान् भृत्यजनान् दासांस्त्वं गृहे त्वरयन् भृशम्॥ ४७॥
योग्यस्ताडयितुं क्रोधाद् भोजनार्थं वृकोदर।

भीम की मार खाकर कर्ण की आँखें क्रोध से लाल होगयीं और मुस्कराते हुए वह बोला कि अरे बिना दाढ़ी मूँछ के नपुंसक, मूर्ख, पेटू, तुझे हथियार चलाने नहीं आते। अरे! युद्ध से डरनेवाले बच्चे, फिर कभी दुबारा युद्ध मत करना। अरे पाण्डव! जहाँ बहुत तरह की खाने पीने की वस्तुएँ रखी हों, तू तो हे दुर्मति! वहीं जाने योग्य है। तेरा युद्ध में कोई काम नहीं है। मैं जानता हूँ कि तू विराट नगर में सेवकों से काम कराने वाला रसोइया था। तू तो दासों और सेवकों को जल्दी काम करने के लिये धमकाने और भोजन के लिये क्रोध में भरकर उन्हें मारने पीटने की योग्यता रखता है।

योद्धव्यं मारिषान्यत्र न योद्धव्यं च मादृशैः॥ ४८॥
मादृशैर्युध्यमानानामेतच्चान्यच्च विद्यते।
गच्छ वा यत्र तौ कृष्णौ तौ त्वां रक्षिष्यतो रणे॥ ४९॥
गृहं वा गच्छ कौन्तेय किं ते युद्धेन बालक।
कर्णस्य वचनं श्रुत्वा भीमसेनोऽतिदारुणम्॥ ५०॥
उवाच कर्णं प्रहसन् सर्वेषां शृण्वतां वचः।

अरे मान्यवर! तुझे किसी और से युद्ध करना चाहिये, मुझ जैसों से नहीं। मेरे साथ युद्ध करनेवाले की ऐसीही या इससेभी अधिक बुरी हालत होती है। अरे कुन्तीपुत्र! तू जहाँ कृष्ण और अर्जुन हैं, वहाँ चला जा। वे तेरी रक्षा करेंगे। या हे बच्चे! घर चला जा, तेरा युद्ध से क्या काम? कर्ण के इन अत्यन्तदारुण वचनों को सुनकर भीम ने हँसते हुए सबके सुनते हुए यह कहा कि–

जितस्त्वमसकृद् दुष्ट कत्थसे किं वृथाऽऽत्मना॥ ५१॥
जयाजयौ महेन्द्रस्य लोके दृष्टौ पुरातनैः।
मल्लयुद्धं मया सार्धं कुरु दुष्कुलसम्भव॥ ५२॥
महाबलो महाभोगी कीचको निहतो यथा।
तथा त्वां घातयिष्यामि पश्यत्सु सर्वराजसु॥ ५३॥
भीमस्य मतमाज्ञाय कर्णो बुद्धिमतां वरः।
विरराम रणात् तस्मात् पश्यतां सर्वधन्विनाम्॥ ५४॥

अरे दुष्ट! मैंने तुझे कईबार हराया है। तू क्यों व्यर्थही अपनी डींग मार रहा है? पुराने लोगों ने दुनियाँ में इन्द्र की भी जय और पराजय को देखा

है। अरे नीचकुल में पैदा हुए! तू मेरे साथ मल्लयुद्ध कर। जैसे मैंने महाबली और महाभोगी कीचक को मारा था, वैसेही तुझेभी सारे राजाओं के देखते हुए मार दूँगा। तब बुद्धिमानों में श्रेष्ठ कर्ण यह जानकर कि भीम अब क्या करना चाहते हैं, सारे धनुर्धरों के देखते हुएही युद्ध से अलग हो गया।

एवं तं विरथं कृत्वा कर्णो राजन् व्यकत्थयत्।
प्रमुखे वृष्णिसिंहस्य पार्थस्य च महात्मनः॥ ५५॥
ततो राजञ्शिलाधौताञ्शरांञ्शा खामृगध्वजः।
प्राहिणोत् सूतपुत्राय केशवेन प्रचोदितः॥ ५६॥
ततः पार्थभुजोत्सृष्टः शराः कनकभूषणाः।
गाण्डीवप्रभवाः कर्णं हंसाः क्रौञ्चमिवाविशन्॥ ५७॥
स च्छिन्नधन्वा भीमेन धनंजयशराहतः।
कर्णो भीमादपायासीद् रथेन महता द्रुतम्॥ ५८॥

वृष्णिसिंह श्रीकृष्ण और मनस्वी अर्जुन के सामने रथहीन करके भीम से कर्ण ने जो अपनी डींग मारी। तब हे राजन्! तब श्रीकृष्ण जी की प्रेरणा से वानर की ध्वजावाले अर्जुन ने शिला पर तेज किये हुए बाणों को कर्ण के ऊपर चलाया। अर्जुन की भुजाओं से छोड़े हुए और गाण्डीव धनुष से निकले हुए वे स्वर्णभूषित बाण कर्ण के शरीर में उसीप्रकार घुस गये जैसे हंस पक्षी क्रौंचपर्वत की गुफाओं में घुस जाते हैं। कर्ण के धनुष को तो भीम ने पहलेही तोड़ दिया था, अब अर्जुन के बाणों से घायल होकर वह भीम को छोड़कर अपने विशाल रथ से तुरन्त वहाँ से दूर भाग गया।

ततः कर्णं समुद्दिश्य त्वरमाणो धनंजयः।
नाराचं क्रोधताम्राक्षः प्रैषीन्मृत्युमिवान्तकः॥ ५९॥
स गरुत्मानिवाकाशे प्रार्थयन् भुजगोत्तमम्।
नाराचोऽभ्यपतत् कर्णं तूर्णं गाण्डीवचोदितः॥ ६०॥
तमन्तरिक्षे नाराचं द्रौणिश्चिच्छेद पत्रिणा।
धनंजयभयात् कर्णमुज्जिहीर्षन् महारथः॥ ६१॥

तब क्रोध से लाल आँख किये हुए अर्जुन ने शीघ्रता करते हुए कर्ण को लक्ष्य करके एक नाराच को चलाया जैसे सबका अन्त करनेवाले काल ने मृत्यु को भेजा हो। जैसे गरुड़ पक्षी किसी विशाल सर्प को पकड़ने के लिये आकाश में से झपट्टा मारे, वैसे गाण्डीव से निकला हुआ वह नाराच कर्ण की तरफ झपटा। तब महारथी अश्वत्थामा ने अर्जुन के भय से कर्ण का उद्धार करने की इच्छा से उस नाराच को अपने बाण से आकाश में ही काट दिया।

ततो द्रौणिं चतुःषष्ट्या विव्याध कुपितोऽर्जुनः।
शिलीमुखैर्महाराज मा गास्तिष्ठेति चाब्रवीत्॥ ६२॥
स तु मत्तगजाकीर्णमनीकं रथसंकुलम्।
तूर्णमभ्याविशद् द्रौणिर्धनंजयशरार्दितः॥ ६३॥
धनंजयस्तथा यान्तं पृष्ठतो द्रौणिमभ्यगात्।
नातिदीर्घमिवाध्वानं शरैः संत्रासयन् बलम्॥ ६४॥

तब क्रोध में भरे अर्जुन ने अश्वत्थामा को चौंसठ बाणों की वर्षाकर घायल किया और हे महाराज! उसे भागना मत, खड़े रहो कहते हुए धमकाया। पर अर्जुन के बाणों से पीड़ित अश्वत्थामा जल्दी से मस्त हाथियों और रथों से भरी हुई सेना में घुस गया। तब अर्जुन भागते हुए अश्वत्थामा के पीछे कुछ दूरतक, बाणों से सेना को भयभीत करते हुए गये।

अस्सीवाँ अध्याय : सात्यकि से राजा अलंबुष का वध, दुश्शासन की हार।

तथा तु वैकर्तनपीडितं तं
भीमं प्रयान्तं पुरुषप्रवीरम्।
समीक्ष्य राजन् नरवीरमध्ये
शिनिप्रवीरोऽनुययौ रथेन॥ १॥
तं यान्तमश्वै रजतप्रकाशै-
रायोधने वीरवरं नदन्तम्।
नाशक्नुवन् वारयितुं त्वदीयाः
सर्वे रथा भारत माधवाग्र्यम्॥ २॥

पुरुषश्रेष्ठ भीम जब अर्जुन के पास जाते हुए कर्ण से पीड़ित होने लगे, तब हे राजन्! राजाओं के बीच में उन्हें इस अवस्था में देखकर शिनिश्रेष्ठ सात्यकि उनकी सहायता के लिये उनकी तरफ रथ के द्वारा चले। चाँदी के समान सफेद घोड़ों के द्वारा, गर्जना करते हुए और भीम की तरफ जाते हुए उस माधवश्रेष्ठ, वीर वर सात्यकि को हे भारत! आपके सारे रथी रोक नहीं सके।

अमर्षपूर्णस्त्वनि- वृत्तयोधी
शरासनी काञ्चनवर्मधारी।
अलम्बुषः सात्यकिं माधवाग्र्य-
मवारयद् राजवरोऽभिपत्य॥ ३॥
तयोरभूद् भारत सम्प्रहारो
यथाविधो नैव बभूव कश्चित्।
आविध्यदेनं दशभिः पृषत्कै-
रलम्बुषो राजवरः प्रसह्य॥ ४॥
अनागतानेव तु तान् पृषत्कां-
श्चिच्छेद बाणैः शिनिपुङ्गवोऽपि।

उस समय अमर्ष से भरे हुए, युद्ध में पीठ न दिखानेवाले, धनुर्धर, सुनहले कवच को धारण करने वाले, राजाओं में श्रेष्ठ अलम्बुष ने माधवश्रेष्ठ सात्यकि को उनके सामने आकर रोका। हे भारत! तब उनदोनों में ऐसा घोर युद्ध हुआ, जैसे पहले कभी नहीं हुआ था। राजाओं में श्रेष्ठ अलम्बुष ने बलपूर्वक सात्यकि पर दस बाणों से प्रहार किया। सात्यकि ने भी उन को अपने पास आने से पहले ही काट दिया।

पुनः स बाणैस्त्रिभिरग्निकल्पै-
राकर्णपूर्णैर्निशितैः सपुङ्खैः॥ ५॥
विव्याध देहावरणं विदार्य
ते सात्यकेराविविशुः शरीरम्।
तैः कायमस्याग्न्यनिलप्रभावै-
र्विदार्य बाणैर्निशितैर्ज्वलद्भिः॥ ६॥
आजध्निवांस्तान् रजतप्रकाशा-
नश्वांश्चतुर्भिश्चतुरः प्रसह्य।

उसने फिर तीन अग्नि के समान तीखे और अच्छे पंखवाले बाणों को, कानतक धनुष को खींचकर सात्यकि पर छोड़ा। वे सात्यकि को घायल करते हुए उसके शरीर में घुस गये। सात्यकि को तीखे, वायु और अग्नि के समान जलते हुए बाणों से घायल कर उसने बलपूर्वक चार बाणों से उसके चान्दी के समान सफेद चारों घोड़ों को भी घायल कर दिया।

तथा तु तेनाभिहतस्तरस्वी
नप्ता शिनेश्चक्रधरप्रभावः॥ ७॥
अलम्बुषस्योत्त- मवेगवद्भि-
रश्वांश्चतुर्भिर्निजघान बाणैः।
अथास्य सूतस्य शिरो निकृत्य
भल्लेन कालानलसंनिभेन॥ ८॥
सकुण्डलं पूर्णशशिप्रकाशं
भ्राजिष्णु वक्त्रं निचकर्त देहात्।
निहत्य तं पार्थिवपुत्रपौत्रं
संख्ये यदूनामृषभः प्रमाथी॥ ९॥
ततोऽन्वयादर्जुनमेव वीरः
सैन्यानि राजंस्तव संनिवार्य।

तब इसप्रकार घायल किये हुए, वेगवान, चक्रधारी श्रीकृष्ण के समान प्रभाववाले, शिनि के पौत्र सात्यकि ने उत्तम वेगवाले चार बाणों से अलम्बुष के घोड़ों को मार दिया। फिर काल और अग्नि के समान भल्ल से उसके सारथि के सिर को काटकर उसके कुण्डलसहित पूर्णचन्द्रमा के समान देदीप्यमान मुख को भी उसके शरीर से अलग कर दिया। हे राजन्! इसप्रकार उस राजा के पौत्र और पुत्र को मारकर यदुवंशियों में श्रेष्ठ, शत्रु को मथनेवाले वीर सात्यकि ने आपकी सेनाओं को रोकते हुए, अर्जुन की तरफ ही प्रयाण किया।

अन्वागतं वृष्णिवीरं समीक्ष्य
तथारिमध्ये परिवर्तमानम्॥ १०॥
अथात्मजास्ते सहिताभिपेतु-
रन्ये च योधास्त्वरितास्त्वदीयाः।
कृत्वा मुखं भारत योधमुख्यं
दुःशासनं त्वत्सुतमाजमीढ॥ ११॥
ते सर्वतः सम्परिवार्य संख्ये
शैनेयमाजघ्नुरनीकसाहाः।
स चापि तान् प्रवरः सात्वतानां
न्यवारयद् बाणजालेन वीरः॥ १२॥
निवार्य तांस्तूर्णममित्रघाती
नप्ता शिनेः पत्रिभिरग्निकल्पैः।
दुःशासनस्याभिजघान वाहा-
नुद्यम्य बाणासनमाजमीढ॥ १३॥

तब शत्रु की सेना में विचरण करते हुए और वहाँ आये हुए सात्यकि को देखकर हे अजामीढवंशी भरतनन्दन। आपके पुत्र और दूसरे योद्धालोग, योद्धाओं में प्रधान आपके पुत्र दुश्शासन को अगुआ बनाकर एकसाथ सात्यकि पर टूट पड़े। सेनाओं का सामना करने में समर्थ वेसब युद्धस्थल में सात्यकि को घेरकर उस पर प्रहार करने लगे। तब यदुवंशियों में श्रेष्ठ उस वीर ने भी अपने बाणों के जाल से

उन्हें रोक दिया। शत्रुओं को नष्ट करने वाले शिनि के पौत्र ने अपने धनुष को उठाकर, अग्नि के समान बाणों से उन्हें शीघ्रतापूर्वक रोककर, दुश्शासन के घोड़ों को मार दिया।

अथैनं रथवंशेन सर्वतः संनिवार्य ते।
अवाकिरञ्छरव्रातैः क्रुद्धाः परमधन्विनः॥ १४॥
अजयद् राजपुत्रांस्तान् भ्राजमानान् महारणे।
एकः पञ्चाशतं शत्रून् सात्यकिः सत्यविक्रमः॥ १५॥

तब उन परमधनुर्धर योद्धाओं ने अपने रथसमूहों के द्वारा सात्यकि को सबतरफ से घेरकर क्रोधसहित बाणसमूहों से आच्छादित कर दिया। किन्तु सत्यविक्रमी सात्यकि ने अकेले ही महायुद्ध में शोभित होनेवाले उन पचास राजकुमारों को जीत लिया।

तत्राद्भुतमपश्याम शैनेयचरितं रणे।
प्रतीच्यां दिशि तं दृष्ट्वा प्राच्यां पश्यामि लाघवात्॥ १६॥
उदीचीं दक्षिणां प्राचीं प्रतीचीं विदिशस्तथा।
नृत्यन्निवाचरच्छूरो यथा रथशतं तथा॥ १७॥
तद् दृष्ट्वा चरितं तस्य सिंहविक्रान्तगामिनः।
त्रिगर्ताः संन्यवर्तन्त संतप्ताः स्वजनं प्रति॥ १८॥
तमन्ये शूरसेनानां शूराः संख्ये न्यवारयन्।
नियच्छन्तः शरव्रातैर्मत्तं द्विपमिवाङ्कुशैः॥ १९॥

वहाँ हमने सात्यकि के युद्ध में अद्भुत आचरण को देखा। उन्हें मैं पहले पश्चिमदिशा में देखकर फुर्ती के साथ फिर पूर्वदिशा में देखता था। इसप्रकार सौ रथियों के समान वे शूरवीर उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम तथा उपदिशाओं में भी नाचते हुए से घूम रहे थे। तब सिंह के समान पराक्रमपूर्ण गति से चलने वाले उनके कार्यों को देखकर त्रिगर्तदेश के वीर अपने बन्धुओं के लिये दुखी होते हुए पीछे हट गये। तब दूसरे शूरसेनदेश के शूर सैनिकों ने अपने बाणों की वर्षा करते हुए उन्हें युद्धस्थल में ऐसे रोका जैसे मस्त हाथी को अंकुशों के द्वारा रोका जाता है।

तैर्व्यवाहरदार्यात्मा मुहूर्तादेव सात्यकिः।
ततः कलिङ्गैर्युयुधे सोऽचिन्त्यबलविक्रमः॥ २०॥
तां च सेनामतिक्रम्य कलिङ्गानां दुरत्ययाम्।
अथ पार्थं महाबाहुर्धनंजयमुपासदत्॥ २१॥
तरन्निव जले श्रान्तो यथा स्थलमुपेयिवान्।
तं दृष्ट्वा पुरुषव्याघ्रं युयुधानः समाश्वसत्॥ २२॥

तब श्रेष्ठ आत्मावाले सात्यकि ने मुहूर्तभर में ही उन्हें हरा दिया। फिर अचिन्त्य बल और पराक्रम से युक्त वे कलिंगदेश के वीरों से युद्ध करने लगे। उस दुर्जय कलिंगों की सेना को लाँघकर वे महाबाहु कुन्तीपुत्र अर्जुन के निकट जापहुँचे। जैसे कोई पानी में बहुत देर से तैरते हुए थका हुआ सूखी जमीन को प्राप्त कर ले, उसीतरह से उस पुरुषव्याघ्र अर्जुन को देखकर सात्यकि को बहुत आश्वासन हुआ।

इक्यासीवाँ अध्याय : श्रीकृष्ण से सात्यकि के आने को सुनकर अर्जुन की चिन्ता।

तमायान्तमभिप्रेक्ष्य केशवः पार्थमब्रवीत्।
असावायाति शैनेयस्तव पार्थ पदानुगः॥ १॥
एष शिष्यः सखा चैव तव सत्यपराक्रमः।
सर्वान् योधांस्तृणीकृत्य विजिग्ये पुरुषर्षभः॥ २॥
बहूनेकरथेनाजौ योधयित्वा महारथान्।
आचार्यप्रमुखान् पार्थ प्रयात्येष स सात्यकिः॥ ३॥
स्वबाहुबलमाश्रित्य विदार्य च वरूथिनीम्।
प्रेषितो धर्मराजेन पार्थैषोऽभ्येति सात्यकिः॥ ४॥

तब सात्यकि को देखकर श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा कि हे अर्जुन! यह तुम्हारे चरणों का सेवक सात्यकि आरहा है। यह सत्यपराक्रमी तुम्हारा शिष्य और मित्र है। इस पुरुषश्रेष्ठ ने सारे योद्धाओं को तिनके सा समझते हुए जीता है। हे कुन्तीपुत्र! द्रोणाचार्य आदि बहुतसे महारथियों के साथ युद्धक्षेत्र में एक रथ से ही युद्धकर यह सात्यकि यहाँ आरहा है। धर्मराज के द्वारा भेजा हुआ यह सात्यकि अपने बाहुबल के सहारे कौरवसेना को विदीर्ण करके यहाँ आ रहा है।

कुरुसैन्याद् विमुक्तो वै सिंहो मध्याद् गवामिव।
निहत्य बहुलाः सेनाः पार्थैषोऽभ्येति सात्यकिः॥ ५॥
ततः प्रहृष्टः कौन्तेयः केशवं वाक्यमब्रवीत्।
न मे प्रियं महाबाहो यन्मामभ्येति सात्यकिः॥ ६॥

न हि जानामि वृत्तान्तं धर्मराजस्य केशव।
सात्वतेन विहीनः स यदि जीवति वा न वा॥ ७॥
एतेन हि महाबाहो रक्षितव्यः स पार्थिवः।
तमेष कथमुत्सृज्य मम कृष्ण पदानुगः॥ ८॥

जैसे गायों के बीच में से सिंह निकल जाता है, वैसे कौरवसेना के घेरे से छूटकर और बहुतसी सेनाओं को मारकर सात्यकि यहाँ आ रहा है। तब प्रसन्नतायुक्त अर्जुन ने श्रीकृष्ण जी से कहा कि हे महाबाहु! सात्यकि जो मेरे पास आया है, यह मुझे प्रिय नहीं है। हे केशव! मुझे धर्मराज की कुशलता के विषय में पता नहीं है। सात्यकि से रहित होकर न जाने वे जीवित है या नहीं? हे महाबाहु कृष्ण! इन्हें युधिष्ठिर की रक्षा करनी चाहिये थी, उन्हें छोड़कर ये मेरे पीछे क्यों चले आये?

राजा द्रोणाय चोत्सृष्टः सैन्धवश्चानिपातितः।
प्रत्युद्याति च शैनेयमेष भूरिश्रवा रणे॥ ९॥
सोऽयं गुरुतरो भारः सैन्धवार्थे समाहितः।
ज्ञातव्यश्च हि मे राजा रक्षितव्यश्च सात्यकिः॥ १०॥
जयद्रथश्च हन्तव्यो लम्बते च दिवाकरः।
श्रान्तश्चैष महाबाहुरल्पप्राणश्च साम्प्रतम्॥ ११॥
परिश्रान्ता हयाश्चास्य हययन्ता च माधव।
न च भूरिश्रवाः श्रान्तः ससहायश्च केशव॥ १२॥

राजा युधिष्ठिर को द्रोणाचार्य के लिये छोड़ दिया गया। उधर जयद्रथ का वध अभी हुआ नहीं है। इधर यह भूरिश्रवा युद्धस्थल में सात्यकि की तरफ आरहा है। इसप्रकार जयद्रथ के कारण मेरे ऊपर बहुतभारी कार्य आ गया है। मुझे राजा की कुशलता भी मालूम करनी है और सात्यकि की भी रक्षा करनी है। जयद्रथ का भी वध करना है, जबकि सूर्य अस्त होनेवाला है। यह महाबाहु सात्यकि थककर निर्बल हो रहेहैं। हे केशव! पर भूरिश्रवा थका भी नहीं है और सहायकों के साथ भी है।

अपीदानीं भवेदस्य क्षेममस्मिन् समागमे।
कच्चिन्न सागरं तीर्त्वा सात्यकिः सत्यविक्रमः॥ १३॥
गोष्पदं प्राप्य सीदेत महौजाः शिनिपुङ्गवः।
अपि कौरवमुख्येन कृतास्त्रेण महात्मना॥ १४॥
समेत्य भूरिश्रवसा स्वस्तिमान् सात्यकिर्भवेत्।
व्यतिक्रममिमं मन्ये धर्मराजस्य केशव॥ १५॥
आचार्याद् भयमुत्सृज्य यः प्रैषयत् सात्यकिम्।
ग्रहणं धर्मराजस्य खगः श्येन इवामिषम्।
नित्यमाशंसते द्रोणः कच्चित् स्यात् कुशली नृपः॥ १६॥

क्या इस युद्ध में सात्यकि सकुशल रह सकेंगे? कहीं ऐसा न हो कि शिनिश्रेष्ठ महातेजस्वी, सत्यविक्रमी सात्यकि समुद्र को पार कर गाय के खुर के बराबर जल में डूब जायें। क्या कौरवों के प्रमुख योद्धा, अस्त्रविद्यानिष्णात, मनस्वी भूरिश्रवा के साथ युद्ध करके सात्यकि सकुशल रहेंगे? हे केशव! मैं धर्मराज के इस कार्य के विपरीत समझता हूँ कि उन्होंने द्रोणाचार्य के भय को छोड़कर सात्यकि को यहाँ भेज दिया। जैसे बाज माँस की चाह रखता है, वैसे ही द्रोणाचार्य प्रतिदिन धर्मराज को पकड़ना चाहते हैं। क्या इस समय राजा युधिष्ठिर सकुशल होंगे?

बयासीवाँ अध्याय : भूरिश्रवा सात्यकि युद्ध। भूरिश्रवा की बाँह का अर्जुन द्वारा काटा जाना।

संजय उवाच

तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य सात्वतं युद्धदुर्मदम्।
क्रोधाद् भूरिश्रवा राजन् सहसा समुपाद्रवत्॥ १॥
तमब्रवीन्महाराज कौरव्यः शिनिपुङ्गवम्।
अद्य प्राप्तोऽसि दिष्ट्या मे चक्षुर्विषयमित्युत॥ २॥
चिराभिलषितं काममहं प्राप्स्यामि संयुगे।
न हि मे मोक्ष्यसे जीवन् यदि नोत्सृजसे रणम्॥ ३॥
अद्य त्वां समरे हत्वा नित्यं शूराभिमानिनम्।
नन्दयिष्यामि दाशार्ह कुरुराजं सुयोधनम्॥ ४॥

संजय ने कहा कि हे राजन्! तब युद्ध में दुर्मद सात्वतवंशी सात्यकि को देखकर, भूरिश्रवा ने क्रोध पूर्वक सहसा उस पर आक्रमण कर दिया। हे महाराज! उस कुरुवंशी ने तब उस शिनिश्रेष्ठ से कहा कि सौभाग्य की बात है कि आज तुम यहाँ मेरे सामने आगये हो। अब मैं युद्ध में अपनी बहुत दिनों की चाहीहुई मनोकामना को पूरी करूँगा। यदि तुम मैदान छोड़कर भाग नहीं गये तो मुझ से जीवित नहीं बच सकते। हे यदुवंशी! आज मैं अपने आपको

सदा शूरवीर माननेवाले तुझे युद्धस्थल में मारकर, कुरुराज दुर्योधन को प्रसन्न करूँगा।

अद्य मद्बाणनिर्दग्धं पतितं धरणीतले।
द्रक्ष्यतस्त्वां रणे वीरौ सहितौ केशवार्जुनौ॥ ५॥
अद्य धर्मसुतो राजा श्रुत्वा त्वां निहतं मया।
सव्रीडो भविता सद्यो येनासीह प्रवेशितः॥ ६॥
अद्य युद्धं महाघोरं तव दास्यामि सात्वत।
ततो ज्ञास्यसि तत्त्वेन मद्वीर्यबलपौरुषम्॥ ७॥
अद्य कृष्णश्च पार्थश्च धर्मराजश्च माधव।
हते त्वयि निरुत्साहा रणं त्यक्ष्यन्त्यसंशयम्॥ ८॥

आज मेरे बाणों से दग्ध होकर धरती पर पड़ा हुआ तुम्हें अर्जुन और कृष्ण दोनों एकसाथ देखेंगे। आज धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर, जिसने तुम्हें सेना में प्रवेश कराया है, तुम्हें मेरे हाथ से मरा हुआ सुनकर लज्जा को प्राप्त करेगा। हे यदुवंशी! मैं आज तुम्हें भयानक युद्ध प्रदान करूँगा, जिससे तुम्हें मेरे वास्तविक बल, वीर्य और पौरुष का पता लगेगा। हे माधव! आज तुम्हारे मारे जाने पर कृष्ण, अर्जुन और युधिष्ठिर निश्चय ही हतोत्साहित होकर युद्धभूमि को छोड़ देंगे।

अद्य तेऽपचितिं कृत्वा शितैर्माधव सायकैः।
तत्स्त्रियो नन्दयिष्यामि ये त्वया निहता रणे॥ ९॥
मच्चक्षुर्विषयं प्राप्तो न त्वं माधव मोक्ष्यसे।
सिंहस्य विषयं प्राप्तो यथा क्षुद्रमृगस्तथा॥ १०॥
युयुधानस्तु तं राजन् प्रत्युवाच हसन्निव।
कौरवेय न संत्रासो विद्यते मम संयुगे॥ ११॥
नाहं भीषयितुं शक्यो वाङ्मात्रेण तु केवलम्।
स मां निहन्यात् संग्रामे यो मां कुर्यान्निरायुधम्॥ १२॥

हे माधव! आज तीखे बाणों से तुम्हारी पूजाकर मैं जिन्हें तुमने युद्ध में मार दिया है, उनकी स्त्रियों को भी प्रसन्न करूँगा। हे माधव! जैसे सिंह के सामने जाकर कोई छोटा हरिण बच नहीं सकता वैसे ही तुम आज मेरी आँखों के सामने आकर बच नहीं सकते। हे राजन्! तब सात्यकि ने मुस्कराते हुए उससे कहा कि हे कौरव! मुझे युद्ध में कभी भय नहीं लगता। मुझे केवल बातों से ही नहीं डराया जा सकता। वही मुझे युद्ध में मार सकता है, जो मुझे बिना हथियारों के कर दे।

शारदस्येव मेघस्य गर्जितं निष्फलं हि ते।
श्रुत्वा त्वद्गर्जितं वीर हास्यं हि मम जायते॥ १३॥
चिरकालेप्सितं लोके युद्धमद्यास्तु कौरव।
त्वरते मे मतिस्तात तव युद्धाभिकाङ्क्षिणी॥ १४॥
नाहत्वाहं निवर्तिष्ये त्वामद्य पुरुषाधम।
अन्योन्यं तौ तथा वाग्भिस्तक्षन्तौ नरपुङ्गवौ॥ १५॥
जिघांसू परमक्रुद्धावभिजघ्नतुराहवे।
समेतौ तौ महेष्वासौ शुष्मिणौ स्पर्धिनौ रणे॥ १६॥
द्विरदाविव संक्रुद्धौ वासितार्थे मदोत्कटौ।

तेरी गर्जना शरदऋतु के बादलों के समान व्यर्थ है। हे वीर! तेरी इस गर्जना को सुनकर हँसी आती है। हे कौरव! तुमसे युद्ध की मेरी भी पुरानी इच्छा है। आज वह इस संसार में पूरी होजाये। तुम्हारे साथ युद्ध करने की इच्छुक मेरी बुद्धि मुझे जल्दी के लिये प्रेरित कर रही है। हे पुरुषाधम! आज मैं तुझे बिना मारे पीछे नहीं हटूँगा। इसप्रकार एकदूसरे को वाणी के बाणों से काटते हुए वेदोनों नरश्रेष्ठ, एक दूसरे को मारने के इच्छुक, अत्यन्तक्रुद्ध होकर युद्धस्थल में एकदूसरे पर प्रहार करने लगे। विजय के इच्छुक और स्पर्धायुक्त वेदोनों महाधनुर्धर, हथिनी के लिये लड़नेवाले दो अत्यन्त क्रोध में भरे हुए, मदोत्कट हाथियों के समान परस्पर भिड़ गये।

भूरिश्रवाः सात्यकिश्च ववर्षतुररिंदमौ॥ १७॥
शरवर्षाणि घोराणि मेघाविव परस्परम्।
दशभिः सात्यकिं विद्ध्वा सौमदत्तिरथापरान्॥ १८॥
मुमोच निशितान् बाणान् जिघांसुः शिनिपुङ्गवम्।
तानस्य विशिखां स्तीक्ष्णानन्तरिक्षे विशाम्पते॥ १९॥
अप्राप्तानस्त्रमायाभिरग्रसत् सात्यकिः प्रभो।
तौ पृथक् शस्त्रवर्षाभ्यामवर्षेतां परस्परम्॥ २०॥
उत्तमाभिजनौ वीरौ कुरुवृष्णियशस्करौ।
तौ नखैरिव शार्दूलौ दन्तैरिव महाद्विपौ॥ २१॥
रथशक्तिभिरन्योन्यं विशिखैश्चाप्यकृन्तताम्।

भूरिश्रवा और सात्यकि दोनों ही शत्रु का दमन करनेवाले वीर बादलों के समान एकदूसरे पर घोर बाणों की वर्षा करने लगे। मारने के इच्छुक सोमदत्त पुत्र ने शिनिश्रेष्ठ को दस बाणों से बींधकर और दूसरे तीखे बाणों को उस पर छोड़ा। हे प्रजानाथ प्रभु! उसके उन तीखे बाणों को सात्यकि ने अपने पास आने से पहलेही अस्त्रों की माया से नष्ट कर दिया। कुरु और वृष्णिवंश की कीर्ति को बढ़ानेवाले, उत्तम कुल में जन्म लेनेवाले वेदोनों वीर एकदूसरे पर अलग अलग बाणों की वर्षा कर रहे थे। जैसे दो सिंह नाखूनों से

और दो गजराज दाँतों से एकदूसरे पर प्रहार करें, वैसेही वेदोनों एकदूसरे को रथशक्तियों और बाणों से काट रहे थे।

निर्भिन्दन्तौ हि गात्राणि विक्षरन्तौ च शोणितम्॥ २२॥
व्यष्टम्भयेतामन्योन्यं प्राणद्यूताभिदेविनौ।
अन्योन्यस्य हयान् हत्वा धनुषी विनिकृत्य च॥ २३॥
विरथावसियुद्धाय समेयातां महारणे।
आर्षभे चर्मणी चित्रे प्रगृह्य विपुले शुभे॥ २४॥
विकोशौ चाप्यसी कृत्वा समरे तौ विचेरतुः।

जान की बाजी लगाकर युद्ध का जूआ खेलने वाले वेदोनों एकदूसरे के शरीरांगों को काटते हुए और खून बहाते हुए एकदूसरे को रोकने लगे। उन्होंने एकदूसरे के घोड़े मार दिये और धनुष काट दिये फिर रथहीन होकर वे दोनों तलवारें लेकर उस महान् युद्ध में एकदूसरे के सामने आगये। बैल के चमड़े की विशाल चित्रित और सुन्दर ढालों को लेकर और तलवारों को म्यान से बाहर निकाल कर वेदोनों युद्धक्षेत्र में विचरण करने लगे।

चरन्तौविविधान् मार्गान् मण्डलानि च भागशः॥ २५॥
मुहुराजघ्नतुः क्रुद्धावन्योन्यमरिमर्दनौ।
सखड्गौ चित्रवर्माणौ सनिष्काङ्गदभूषणौ॥ २६॥
उभौ छिद्रैषिणौ वीरावुभौ चित्रं ववल्गतुः।
दर्शयन्तावुभौ शिक्षां लाघवं सौष्ठवं तथा॥ २७॥

निष्क और बाजूबन्द आदि आभूषणों से युक्त, विचित्र कवचों को बाँधे हुए, खड्ग हाथ में लिये, वेदोनों शत्रुदमन क्रुद्ध होकर तलवार के अनेक प्रकार के पृथक् पृथक् दाँवपेचों और पैंतरों को दिखाते हुए एकदूसरे पर बार बार प्रहार कर रहे थे। अपनी युद्धविद्या, फुर्ती, और कौशल को दिखाते हुए, दूसरे के दोषों को ढूँढते हुए, वे दोनों वीर विचित्र प्रकार से उछलकूद कर रहे थे।

मुहूर्तमिव राजेन्द्र समाहत्य परस्परम्।
पश्यतां सर्वसैन्यानां वीरावाश्वसतां पुनः॥ २८॥
असिभ्यां चर्मणी चित्रे शतचन्द्रे नराधिप।
निकृत्य पुरुषव्याघ्रौ बाहुयुद्धं प्रचक्रतुः॥ २९॥
व्यूढोरस्कौ दीर्घभुजौ नियुद्धकुशलावुभौ।
बाहुभिः समसज्जेतामायसैः परिघैरिव॥ ३०॥
तयो राजन् भुजाघातनिग्रहप्रग्रहास्तथा।
शिक्षाबलसमुद्भूताः सर्वयोधप्रहर्षणाः॥ ३१॥
द्वात्रिंशत्करणानि स्युर्यानि युद्धानि भारत।
तान्यदर्शयतां तत्र युध्यमानौ महाबलौ॥ ३२॥

हे राजन्! थोड़ी देरतक एकदूसरे पर प्रहार कर, विश्राम करती हुई सेनाओं के देखते हुए, हे नराधिप! उन दोनों पुरुषव्याघ्र वीरों ने तलवारों से एकदूसरे की सौ चन्द्रमाओंवाली चित्रित ढालों को काट दिया और फिर उन्होंने बाहुयुद्ध आरम्भ कर दिया। उन दोनों की छातियाँ चौड़ी और भुजाएँ लम्बी थीं। दोनों ही मल्लयुद्ध में कुशल थे। वेदोनों लोहे के बने हुए परिघों जैसी अपनी भुजाओं से मल्लयुद्ध करने लगे। हे राजन्! मल्लयुद्ध की उनकी शिक्षा और शक्ति के आधार पर उनके द्वारा प्रयोग किये जारहे भुजाओं के आघात, निग्रह और प्रग्रह आदि दाँव सारे योद्धाओं के हर्ष को बढ़ा रहे थे। हे भारत! मल्ल विद्या की जो बत्तीस कलाएँ हैं उन सबका उन दोनों महाबलियों ने युद्ध करते हुए प्रदर्शन कर दिया।

ततो भूरिश्रवाः क्रुद्धः सात्यकिं युद्धदुर्मदः।
उद्यम्याभ्याहनद् राजन् मत्तो मत्तमिव द्विपम्॥ ३३॥
रथस्थयोर्द्वयोर्युद्धे क्रुद्धयोर्योधमुख्ययोः।
केशवार्जुनयो राजन् समरे प्रेक्षमाणयोः॥ ३४॥
अथ कृष्णो महाबाहुरर्जुनं प्रत्यभाषत।
पश्य वृष्ण्यन्धकव्याघ्रं सौमदत्तिवशं गतम्॥ ३५॥
परिश्रान्तं गतं भूमौ कृत्वा कर्म सुदुष्करम्।
तवान्तेवासिनं वीरं पालयार्जुन सात्यकिम्॥ ३६॥

तब हे राजन्! युद्ध में दुर्मद भूरिश्रवा ने क्रुद्ध होकर और प्रयत्नकर सात्यकि पर ऐसे प्रहार किया जैसे मस्त हाथी दूसरे मस्त हाथी पर प्रहार करे। उन दोनों के युद्ध को रथ में बैठे हुए, क्रोध में भरे हुए, योद्धाओं में प्रमुख कृष्ण और अर्जुन, हे राजन्! युद्धस्थल में देख रहे थे। तब महाबाहु श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा कि हे अर्जुन देखो! वृष्णि और अन्धक वंश का व्याघ्र सात्यकि सोमदत्त के पुत्र के बस में होरहा है। वह अत्यन्त कठिन कार्यकर, और थककर भूमि पर गिर पड़ा है। हे अर्जुन! वह वीर तुम्हारा शिष्य है। इसलिये तुम सात्यकि की रक्षा करो।

न वशं यज्ञशीलस्य गच्छेदेष वरोऽर्जुन।
त्वत्कृते पुरुषव्याघ्र तदाशु क्रियतां विभो॥ ३७॥
हाहाकारो महानासीत् सैन्यानां भरतर्षभ।
तदुद्यम्य महाबाहुः सात्यकिं न्यहनद् भुवि॥ ३८॥

अथ कोशाद् विनिष्कृष्य खड्गं भूरिश्रवा रणे।
मूर्धजेषु निजग्राह पदा चोरस्यताडयत्॥ ३९॥
ततोऽस्य छेत्तुमारब्धः शिरः कायात् सकुण्डलम्।
तावत्क्षणात् सात्वतोऽपि शिरः सम्भ्रमयंस्त्वरन्॥ ४०॥

हे शक्तिशाली पुरुषव्याघ्र! तुम्हारे लिये यह श्रेष्ठ व्यक्ति, इस यज्ञशील भूरिश्रवा के बस में नहीं होना चाहिये। इसलिये इसके लिये जल्दी प्रयत्न करो। हे भरतश्रेष्ठ! तभी महाबाहु भूरिश्रवा ने सात्यकि को उठाकर भूमि पर पटक दिया। उस समय सारी सेना में महान् हाहाकार होरहा था। फिर भूरिश्रवा ने युद्धस्थल में सात्यकि के बाल पकड़ लिये और तलवार म्यान से निकाल ली तथा उसकी छाती में लात मारी। फिर उसने उसके कुण्डलसहित सिर को काटने के लिये प्रयत्न आरम्भ कर दिया। सात्यकि भी अपने सिर को जल्दी से इधरउधर घुमाने लगे।

यथा चक्रं तु कौलालो दण्डविद्धं तु भारत।
सहैव भूरिश्रवसो बाहुना केशधारिणा॥ ४१॥
तं तथा परिकृष्यन्तं दृष्ट्वा सात्वतमाहवे।
वासुदेवस्ततो राजन् भूयोऽर्जुनमभाषत॥ ४२॥
पश्य वृष्ण्यन्धकव्याघ्रं सौमदत्तिवशं गतम्।
एवमुक्तो महाबाहुर्वासुदेवेन पाण्डवः॥ ४३॥
वासुदेवं महाबाहुरर्जुनः प्रत्यभाषत।

हे भारत! जैसे कुम्हार चाक में डंडा डालकर उसे घुमाता है, वैसेही बाल पकड़े हुए भूरिश्रवा के हाथ के साथ साथ सात्यकि भी अपने सिर को घुमाने लगे। तब हे राजन्! सात्यकि को इसप्रकार पकड़कर खींचे जाते हुए देखकर युद्धस्थल में श्रीकृष्णजी ने अर्जुन से पुनः कहा कि देखो! वृष्णि और अन्धक वंश का व्याघ्र सोमदत्त के पुत्र के वश में होगया है। श्रीकृष्ण के द्वारा ऐसा कहे जाने पर पाण्डुपुत्र महाबाहु अर्जुन ने उन्हें उत्तर दिया कि–

सैन्धवे सक्तदृष्टित्वान्नैनं पश्यामि माधवम्॥ ४४॥
एतत् त्वसुकरं कर्म यादवार्थे करोम्यहम्।
इत्युक्त्वा वचनं कुर्वन् वासुदेवस्य पाण्डवः॥ ४५॥
ततः क्षुरप्रं निशितं गाण्डीवे समयोजयत्।
पार्थबाहुविसृष्टः स महोल्केव नभश्च्युता।
सखड्गं यज्ञशीलस्य साङ्गदं बाहुमच्छिनत्॥ ४६॥

मेरी निगाह जयद्रथ पर लगी हुई थी, जिसके कारण मैंने सात्यकि को देखा नहीं। अब मैं सात्यकि के लिये दुष्कर कार्य को करता हूँ। ऐसा कहकर श्रीकृष्ण की बात को मानते हुए पाण्डुपुत्र ने एक तीखे क्षुरप्र का धनुष पर संधान किया। फिर आकाश से गिरती हुई एक विशाल उल्का के समान अर्जुन के हाथों से छूटे हुए उस बाण ने यज्ञशील भूरिश्रवा की बाजूबन्द और खड्ग से युक्त बाँह को काट दिया।

तिरासीवाँ अध्याय : भूरिश्रवा का अर्जुन को उपालम्भ और अनशन पर बैठना। सात्यकि द्वारा उसका वध।

प्रहरिष्यन् हृतो बाहुरदृश्येन किरीटिना।
वेगेन न्यपतद् भूमौ पञ्चास्य इव पन्नगः॥ १॥
स मोघं कृतमात्मानं दृष्ट्वा पार्थेन कौरवः।
उत्सृज्य सात्यकिं क्रोधाद् गर्हयामास पाण्डवम्॥ २॥
नृशंसं बत कौन्तेय कर्मेदं कृतवानसि।
अपश्यतो विषक्तस्य यन्मे बाहुमचिच्छिदः॥ ३॥
किं नु वक्ष्यसि राजानं धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम्।
किं कुर्वाणो मया संख्ये हतो भूरिश्रवा रणे॥ ४॥

न दिखाई देनेवाले अर्जुन के द्वारा काटी गयी, प्रहार के लिये उद्यत, भूरिश्रवा की वह बाँह कटकर पाँच मुखवाले साँप के समान जोर से भूमि पर गिर पड़ी। तब अर्जुन के द्वारा अपने आक्रमण को व्यर्थ किया हुआ देखकर, भूरिश्रवा सात्यकि को छोड़कर, क्रोधपूर्वक पाण्डुपुत्र की निन्दा करते हुए बोला कि हे पाण्डुपुत्र! तुमने यह बड़ा निर्दयतायुक्त कार्य किया है। मैं तुम्हें देख नहीं रहा था और दूसरे के साथ युद्ध में लगा हुआ था, तब तुमने मेरी बाँह काट दी। अब तुम धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर को कैसे बताओगे कि युद्ध में क्या करते हुए भूरिश्रवा को मैंने युद्धक्षेत्र में मारा।

इदमिन्द्रेण ते साक्षादुपदिष्टं महात्मना।
अस्त्रं रुद्रेण वा पार्थ द्रोणेनाथ कृपेण वा॥ ५॥

ननु नामास्त्रधर्मज्ञस्त्वं लोकेऽभ्यधिकः परैः।
सोऽयुध्यमानस्य कथं रणे प्रहृतवानसि॥ ६॥
न प्रमत्ताय भीताय विरथाय प्रयाचते।
व्यसने वर्तमानाय प्रहरन्ति मनस्विनः॥ ७॥
इदं तु नीचाचरितमसत्पुरुषसेवितम्।
कथमाचरितं पार्थ पापकर्म सुदुष्करम्॥ ८॥

इसप्रकार की अस्त्रविद्या तुम्हें साक्षात् महात्मा इन्द्र ने सिखाई, या शिवाचार्य ने सिखाई, या द्रोणाचार्य ने सिखाई या कृपाचार्य ने सिखाई? तुम तो संसार में दूसरों से अधिक अस्त्रधर्म के ज्ञाता हो? फिर तुमने अपने से न लड़नेवाले के ऊपर प्रहार क्यों किया? मनस्वीलोग पागल, डरे हुए, रथहीन, याचना करते हुए और संकट में पड़े हुए मनुष्य पर प्रहार नहीं करते। नीचों के द्वारा किये जानेवाला, असत्पुरुषों के द्वारा अपनाया हुआ, अत्यन्त दुष्कर यह पापकर्म हे कुन्तीपुत्र! तुमने क्यों किया?

इदं तु यदतिक्षुद्रं वार्ष्णेयार्थे कृतं त्वया।
वासुदेवमतं नूनं नैतत् त्वय्युपपद्यते॥ ९॥
को हि नाम प्रमत्ताय परेण सह युध्यते।
ईदृशं व्यसनं दद्याद् यो न कृष्णसखो भवेत्॥ १०॥
व्रात्याः संक्लिष्टकर्माणः प्रकृत्यैव च गर्हिताः।
वृष्ण्यन्धकाः कथं पार्थ प्रमाणं भवता कृताः॥ ११॥
एवमुक्तो रणे पार्थो भूरिश्रवसमब्रवीत्।

तुमने सात्यकि के लिये जो यह अत्यन्तनीच कर्म किया, यह निश्चय ही श्रीकृष्ण के कहने से किया है। तुम्हारा अपना विचार इसके लिये नहीं होगा। जो कृष्ण का मित्र न हो, वह दूसरे के साथ युद्ध करते हुए असावधान व्यक्ति को इसप्रकार के संकट में नहीं डाल सकता। हे कुन्तीपुत्र! वृष्णि और अन्धकवंश के लोग तो संस्कार से भ्रष्ट, हिंसक कार्यों को करनेवाले और स्वभाव से ही निन्दनीय होते हैं। तुमने इन्हें प्रमाण कैसे मान लिया? युद्धस्थल में ऐसा कहे जाने पर अर्जुन ने तब भूरिश्रवा से कहा कि—

व्यक्तं हि जीर्यमाणोऽपि बुद्धिं जरयते नरः॥ १२॥
अनर्थकमिदं सर्वं यत् त्वया व्याहृतं प्रभो।
जानन्नेव हृषीकेशं गर्हसे मां च पाण्डवम्॥ १३॥
संग्रामाणां हि धर्मज्ञः सर्वशास्त्रार्थपारगः।
न चाधर्ममहं कुर्यां जानंश्चैव हि मुह्यसे॥ १४॥
युध्यन्ति क्षत्रियाः शत्रून् स्वैः स्वैः परिवृता नराः।
भ्रातृभिः पितृभिः पुत्रैस्तथा सम्बन्धिबान्धवैः॥ १५॥
वयस्यैरथ मित्रैश्च ते च बाहुं समाश्रिताः।

यह स्पष्ट है कि मनुष्य के बूढ़े होने पर उसकी बुद्धि भी बूढ़ी होजाती है, हे प्रभो! इसलिये तुमने येसारी अनर्थ से युक्त बातें कहीं हैं। तुम जितेन्द्रिय कृष्ण को और मुझ पाण्डुपुत्र को जानते हो, फिर भी हमारी निन्दा करते हो। मैं संग्राम के धर्म को जानता हूँ और सारे शास्त्रों का मैंने अध्ययन किया है। मैं अधर्म का आचरण नहीं कर सकता, यह जानते हुए भी तुम मेरे विषय में क्यों मोहित हो रहे हो? यहाँ जो क्षत्रियलोग अपने शत्रुओं से युद्ध कर रहे हैं, वे अकेले युद्ध नहीं कर रहे हैं। वे अपने भाई, पिता, पुत्रों, सम्बन्धियों, बान्धवों, सखाओं और मित्रों के साथ मिलकर युद्ध कर रहे हैं। वेलोग एकदूसरे के बाहुबल का सहारा लिये हुए हैं।

स कथं सात्यकिं शिष्यं सुखसम्बन्धमेव च॥ १६॥
अस्मदर्थे च युध्यन्तं त्यक्त्वा प्राणान् सुदुस्त्यजान्।
मम बाहुं रणे राजन् दक्षिणं युद्धदुर्मदम्॥ १७॥
निकृष्यमाणं तं दृष्ट्वा कथं शत्रुवशं गतम्।
त्वया विकृष्यमाणं च दृष्टवानस्मि निष्क्रियम्॥ १८॥
न चात्मा रक्षितव्यो वै राजन् रणगतेन हि।
यो यस्य युज्यतेऽर्थेषु स वै रक्ष्यो नराधिप॥ १९॥
रक्षितश्च मया यस्मात् तस्मात् क्रुध्यसि किं मयि।

इसलिये इस सात्यकि को, जो मेरा शिष्य और सुख देनेवाला सम्बन्धी है, जो मेरे लिये अपने अत्यन्त दुत्यज प्राणों का मोह छोड़कर लड़ रहा है। हे राजन्! जो युद्ध में दुर्मद, मेरी दायीं भुजा है, शत्रु के बस में पड़ा हुआ कष्ट पाते हुए देखकर और यह देखकर कि तुम उसे घसीट रहे थे, मैं क्रियाहीन कैसे रह सकता था? हे राजन्! नराधिप! युद्धस्थल में पहुँचे हुए व्यक्ति को केवल अपने प्राणों कीही रक्षा नहीं करनी होती, अपितु जो उसके कार्यों के लिये लगा हुआ है, उसके प्राणों कीभी रक्षा करनी होती है, इसलिये मैंने सात्यकि की रक्षा की। फिर तुम मुझ पर क्रोध क्यों करते हो?

बहुभिः सह संगम्य निर्जित्य च महारथान्॥ २०॥
श्रान्तश्च श्रान्तवाहश्च विमनाः शस्त्रपीडितः।
ईदृशं सात्यकिं संख्ये निर्जित्य च महारथम्॥ २१॥

अधिकत्वं विजानीषे स्ववीर्यवशमागतम्।
यदिच्छसि शिरश्चास्य असिना हन्तुमाहवे॥ २२॥
तथा कृच्छ्रगतं चैव सात्यकिं कः क्षमिष्यति।
एवमुक्तो महाबाहुर्यूपकेतुर्महायशाः॥ २३॥
युयुधानं समुत्सृज्य रणे प्रायमुपाविशत्।

सात्यकि बहुतों के साथ युद्धकर और महारथियों को जीतकर थक गया था, उसके घोड़े भी थक गये थे, वह शस्त्रों से घायल होकर खिन्न चित्तवाला होरहा था। ऐसी अवस्था में गये हुए महारथी सात्यकि को जीतकर तुम यह समझते हुए कि यह मेरे पराक्रम के कारण मेरे वश में हुआ है, अपने को उससे अधिक शक्तिशाली समझने लगे थे और तलवार से युद्ध में उसका सिर काटना चाहते थे। इसप्रकार से सात्यकि को संकट में पड़ा हुआ देखकर उसके पक्ष का कौन वीर सहन करेगा? तब ऐसा कहे जाने पर, यूप की ध्वजावाला महाबाहु, महायशस्वी भूरिश्रवा सात्यकि को छोड़कर युद्धस्थल में आमरण अनशन पर बैठ गया।

ततः स सर्वसेनायां जनः कृष्णधनंजयौ॥ २४॥
गर्हयामास तं चापि शशंस पुरुषर्षभम्।
निन्द्यमानौ तथा कृष्णौ नोचतुः किंचिदप्रियम्॥ २५॥
ततः प्रशस्यमानश्च नाहृष्यद् यूपकेतनः।
असंक्रुद्धमना वाचः स्मारयन्निव भारत॥ २६॥
उवाच पाण्डुतनयः साक्षेपमिव फाल्गुनः।
मम सर्वेऽपि राजानो जानन्त्येव महाव्रतम्॥ २७॥
न शक्यो मामको हन्तुं यो मे स्याद् बाणगोचरे।

तब सारीसेना के लोग श्रीकृष्ण और अर्जुन की निन्दा करने लगे और पुरुषश्रेष्ठ भूरिश्रवा की प्रशंसा करने लगे। उन लोगों से निन्दित होते हुए कृष्ण और अर्जुन ने उनसे कुछभी अप्रिय नहीं कहा और प्रशंसा किये जाते हुए भूरिश्रवा ने भी प्रसन्नता प्रकट नहीं की। हे भारत! तब मन में क्रोध न करते हुए किन्तु पुरानी बातों को याद दिलाते हुए पाण्डुपुत्र अर्जुन ने कौरवों पर आक्षेप करते हुए कहा कि सारे राजालोग मेरे इस महान् व्रत को जानते हैं कि जो व्यक्ति मेरे बाणों की मार के अन्दर होगा वह मेरे किसी आश्रित को नहीं मार सकता।

यूपकेतो निरीक्ष्यैतन्न मामर्हसि गर्हितुम्॥ २८॥
न हि धर्ममविज्ञाय युक्तं गर्हयितुं परम्।
आत्तशस्त्रस्य हि रणे वृष्णिवीरं जिघांसतः॥ २९॥
यदहं बाहुमच्छैत्सं न स धर्मो विगर्हितः।
न्यस्तशस्त्रस्य बालस्य विरथस्य विवर्मणः॥ ३०॥
अभिमन्योर्वधं तात धार्मिकः को नु पूजयेत्।
एतत् पार्थस्य तु वचस्ततः श्रुत्वा महाद्युतिः॥ ३१॥
यूपकेतुर्महाराज तूष्णीमासीदवाङ्मुखः।

हे यूप की ध्वजावाले! यह समझकर तुम्हें मेरी निन्दा नहीं करनी चाहिये। धर्म को बिना जाने दूसरे की बुराई करना ठीक नहीं है। तुम हथियार हाथ में लेकर हथियारहीन वृष्णिवीर को मारना चाहते थे, उस समय मैंने जो तुम्हारी बाँह काट दी, वह अपने आश्रित की रक्षा करनेवाला धर्म निन्दनीय नहीं है। बालक अभिमन्यु के हाथ में शस्त्र नहीं थे, वह रथहीन था, उसका कवच कट गया था, उस अवस्था में उसका जो वध किया गया, हे तात! उसकी कौन धर्म का पालन करनेवाला व्यक्ति प्रशंसा कर सकता है? हे महाराज! कुन्तीपुत्र की इस बात को सुनकर महातेजस्वी, यूप की ध्वजा वाला भूरिश्रवा नीचा मुख करके चुप रह गया।

उत्थितः स तु शैनेयो विमुक्तः सौमदत्तिना॥ ३२॥
खड्गमादाय चिच्छित्सुः शिरस्तस्य महात्मनः।
निहतं पाण्डुपुत्रेण प्रसक्तं भूरिदक्षिणम्॥ ३३॥
इयेष सात्यकिर्हन्तुं शलाग्रजमकल्मषम्।
निकृत्तभुजमासीनं छिन्नहस्तमिव द्विपम्॥ ३४॥
प्रायोपविष्टाय रणे पार्थेन छिन्नबाहवे।
सात्यकिः कौरवेणाय खड्गेनापाहरच्छिरः॥ ३५॥
नाभ्यनन्दन्त सैन्यानि सात्यकिं तेन कर्मणा।
अर्जुनेन हतं पूर्वं यज्जघान कुरूद्वहम्॥ ३६॥

तब सोमदत्त पुत्र के द्वारा छोड़े जाने पर सात्यकि खड़े होगये और उन्होंने तलवार लेकर उस मनस्वी के सिर को काटने की इच्छा की। यज्ञों में अधिक दक्षिणा देनेवाले, शल के बड़े भाई, निष्पाप, जो हाथ के कट जाने के कारण सूँडकटे हाथी के समान होकर बैठे हुए थे, जिनको पाण्डुपुत्र ने मारे हुए के समानही कर दिया था, जो ध्यान में लग गये थे उन्हें सात्यकि ने मारने की इच्छा की। फिर अर्जुन के द्वारा हाथ काटे जाने पर, युद्धक्षेत्र में आमरण अनशन पर बैठे हुए उस कौरव का सात्यकि ने तलवार से सिर काट लिया। अर्जुन के द्वारा पहले

ही मृतप्राय किये हुए उस कुरुश्रेष्ठ को जो मारा, सात्यकि के इस कार्य की सेना के लोगों ने प्रशंसा नहीं की।

सात्यकिरुवाच

न हन्तव्यो न हन्तव्य इति यन्मां प्रभाषत।
धर्मवादैरधर्मिष्ठ धर्मकञ्चुकमास्थिताः॥ ३७॥
यदा बालः सुभद्रायाः सुतः शस्त्रविना कृतः।
युष्माभिर्निहतो युद्धे तदा धर्मः क्व वो गतः॥ ३८॥
मया त्वेतत् प्रतिज्ञातं क्षेपे कस्मिंश्चिदेव हि।
यो मां निष्पिष्य संग्रामे जीवन् हन्यात् पदा रुषा॥ ३९॥
स मे वध्यो भवेच्छत्रुर्यद्यपि स्यान्मुनिव्रतः।
यत् तु पार्थेन मां दृष्ट्वा प्रतिज्ञामभिरक्षता।
सखड्गोऽस्य हृतोबाहुरेतेनैवास्मि वञ्चितः॥ ४०॥

तब सात्यकि ने सबसे कहा कि अरे! धर्म का चोला पहने हुए अधार्मिकों! जो तुम मुझ से धर्म की बाते कहते हुए, न मारो, न मारो यह कह रहे हो, तो जब बिना हथियारों के सुभद्रा के पुत्र बालक अभिमन्यु को तुमसबने मिलकर मार दिया, तब युद्ध में तुम्हारा धर्म कहाँ गया था? मेरी तो यह प्रतिज्ञा है कि जो मेरा तिरस्कार करेगा, जो मुझे युद्ध में गिराकर मेरे जीतेजी क्रोधपूर्वक लात मारेगा, उसे मैं अवश्य मारूँगा। चाहे वह मेरा शत्रु मुनि के वेश मेंही क्योंन बैठा हो। अर्जुन ने जो मुझे संकट में देखकर अपनी प्रतिज्ञा की रक्षा करते हुए, इसके तलवारसहित हाथ को काट दिया, इससे मैं इसे मारने के यश से वंचित होगया।

चौरासीवाँ अध्याय : कर्ण दुर्योधन वार्तालाप। अर्जुन द्वारा कर्ण की पराजय। अर्जुन का सारे योद्धाओं के साथ युद्ध।

भूरिश्रवसि संक्रान्ते परलोकाय भारत।
वासुदेवं महाबाहुरर्जुनः समचूचुदत्॥ १॥
चोदयाश्वान् भृशं कृष्ण यतो राजा जयद्रथः।
प्रतिज्ञां सफलां चापि कर्तुमर्हसि मेऽनघ॥ २॥
अस्तमेति महाबाहो त्वरमाणो दिवाकरः।
एतद्धि पुरुषव्याघ्र महदभ्युद्यतं मया॥ ३॥
कार्यं संरक्ष्यते चैष कुरुसेनामहारथैः।
तथा नाभ्येति सूर्योऽस्तं यथा सत्यं भवेद् वचः॥ ४॥
चोदयाश्वांस्तथा कृष्ण यथा हन्यां जयद्रथम्।

हे भारत! भूरिश्रवा के परलोक गमन के पश्चात् महाबाहु अर्जुन ने वसुदेवपुत्र श्रीकृष्ण को प्रेरित करते हुए कहा कि हे कृष्ण! घोड़ों को जल्दी से उधर हाँको, जिधर राजा जयद्रथ है। हे निष्पाप केशव! आप मेरी प्रतिज्ञा को सफल करें। हे महाबाहु! सूर्य अस्ताचल को तेजी से जा रहे हैं। हे पुरुषव्याघ्र! यह मैंने बड़े दुष्कर कार्य के लिये प्रयत्न आरम्भ किया है। जयद्रथ की रक्षा कौरवसेना के महारथियों द्वारा की जारही है। हे कृष्ण! घोड़ों को ऐसे हाँको, जिससे मैं जयद्रथ को सूर्य के अस्त होने से पहले मार दूँ। मेरी प्रतिज्ञा सत्य होजाये।

ततः कृष्णो महाबाहू रजतप्रतिमान् हयान्॥ ५॥
हयज्ञश्चोदयामास जयद्रथवधं प्रति।
तं प्रयान्तममोघेषुमुत्पतद्भिरिवाशुगैः ॥ ६॥
त्वरमाणा महाराज सेनामुख्याः समाद्रवन्।
ततो दुर्योधनो राजा राधेयं त्वरितोऽब्रवीत्॥ ७॥
अर्जुनं प्रेक्ष्य संयातं जयद्रथवधं प्रति।

तब महाबाहु श्रीकृष्ण ने जयद्रथ के वध के लिये चाँदी के समान सफेद घोड़ों को हाँका। जिनके बाण व्यर्थ नहीं होते, उस अर्जुन को, मानो उड़ रहे हों, ऐसे तीव्रगामी घोड़ों से जाते हुए देखकर हे महाराज! कौरवसेना के प्रमुखवीर शीघ्रता से उनके पीछे दौड़े। तब अर्जुन को जयद्रथ के वध के लिये जाता हुआ देखकर दुर्योधन ने तुरन्त कर्ण से कहा कि—

अयं स वैकर्तन युद्धकालो
विदर्शयस्वात्मबलं महात्मन्।
यथा न वध्येत रणेऽर्जुनेन
जयद्रथः कर्ण तथा कुरुष्व॥ ८॥
अल्पावशेषो दिवसो नृवीर
विघातयस्वाद्य रिपुं शरौघैः।
दिनक्षयं प्राप्य नरप्रवीर
ध्रुवो हि नः कर्ण जयो भविष्यति॥ ९॥

हे सूर्यपुत्र! यही वास्तविक युद्ध का समय है। हे महात्मा! अपनी शक्ति को दिखाओ। हे कर्ण! ऐसा करो, जिससे अर्जुन युद्ध में जयद्रथ को न मार सके। हे नरवीर! दिन अब थोड़ाही शेष है, तुम अपने बाणसमूहों से शत्रु को घायल कर दो। हे मनुष्यों में श्रेष्ठ कर्ण! दिन के समाप्त होने पर तो हमारी निश्चितरूप से विजय होजायेगी।

सैन्धवे रक्ष्यमाणे तु सूर्यस्यास्तमनं प्रति।
मिथ्याप्रतिज्ञः कौन्तेयः प्रवेक्ष्यति हुताशनम्॥ १०॥
अनर्जुनायां च भुवि मुहूर्तमपि मानद।
जीवितुं नोत्सहेरन् वै भ्रातरोऽस्य सहानुगाः॥ ११॥
दैवेनोपहतः पार्थो विपरीतश्च मानद।
कार्याकार्यमजानानः प्रतिज्ञां कृतवान् रणे॥ १२॥
नूनमात्मविनाशाय पाण्डवेन किरीटिना।
प्रतिज्ञेयं कृता कर्ण जयद्रथवधं प्रति॥ १३॥

सूर्य के अस्त होनेतक हमने जयद्रथ की रक्षा कर ली तो प्रतिज्ञा के मिथ्या होजाने के कारण अर्जुन अग्नि में प्रवेश कर जाएगा। हे मानद! बिना अर्जुन के तो उसके भाई और सेवक एक मुहूर्त भी इस भूमि पर जीवित नहीं रह सकते। हे मानद! उस समय भाग्य के मारे अर्जुन की बुद्धि उल्टी होगयी थी, जो उसने बिना यह सोचे कि यह करनेयोग्य है या न करने योग्य है, युद्धक्षेत्र में जयद्रथ को मारने की प्रतिज्ञा कर ली। हे कर्ण! निश्चित रूप से किरीटधारी पाण्डुपुत्र ने जयद्रथ के वध की यह प्रतिज्ञा अपने विनाश के लिये ही की है।

कथं जीवति दुर्धर्षे त्वयि राधेय फाल्गुनः।
अनस्तंगत आदित्ये हन्यात् सैन्धवकं नृपम्॥ १४॥
रक्षितं मद्रराजेन कृपेण च महात्मना।
जयद्रथं रणमुखे कथं हन्याद् धनंजयः॥ १५॥
द्रौणिना रक्ष्यमाणं च मया दुःशासनेन च।
कथं प्राप्स्यति बीभत्सुः सैन्धवं कालचोदितः॥ १६॥
युध्यन्ते बहवः शूरा लम्बते च दिवाकरः।
शङ्के जयद्रथं पार्थो नैव प्राप्स्यति मानद॥ १७॥

हे राधापुत्र! तुम्हारे जैसे दुर्धर्ष के जीतेजी अर्जुन सूर्यास्त से पहले सिन्धुराज को कैसे मार सकता है? जिस जयद्रथ की मद्रराज शल्य, महात्मा कृपाचार्य, द्रोणपुत्र अश्वत्थामा, मैं और दुश्शासन रक्षा कर रहे हैं, उसको काल से प्रेरित अर्जुन भला कैसे प्राप्त कर सकते हैं? हे मानद! बहुतसे शूरवीर अर्जुन से युद्ध कर रहे हैं और सूर्य अस्ताचल की ओर जारहा है, मुझे शंका है कि अर्जुन जयद्रथ को नहीं पासकते।

स त्वं कर्ण मया सार्धं शूरैश्चान्यैर्महारथैः।
द्रौणिना त्वं हि सहितो मद्रेशेन कृपेण च॥ १८॥
युध्यस्व यत्नमास्थाय परं पार्थेन संयुगे।
एवमुक्तस्तु राधेयस्तव पुत्रेण मारिष॥ १९॥
दुर्योधनमिदं वाक्यं प्रत्युवाच कुरूत्तमम्।
दृढलक्ष्येण वीरेण भीमसेनेन धन्विना॥ २०॥
भृशं भिन्नतनुः संख्ये शरजालैरनेकशः।
स्थातव्यमिति तिष्ठामि रणे सम्प्रति मानद॥ २१॥
नाङ्गमिङ्गति किंचिन्मे संतप्तस्य महेषुभिः।
योत्स्यामि तु यथाशक्त्या त्वदर्थं जीवितं मम॥ २२॥

इसलिये हे कर्ण! तुम मेरे द्रोणपुत्र के, मद्रराजशल्य तथा कृपाचार्य के और दूसरे शूरवीर महारथियों के साथ, पूरे प्रयत्नसहित युद्धक्षेत्र में अर्जुन से युद्ध करो। हे मान्यवर! आपके पुत्र के द्वारा यह कहे जाने पर राधापुत्र कर्ण ने कौरव श्रेष्ठ दुर्योधन से कहा कि मजबूत निशाना लगानेवाले वीर धनुर्धर भीमसेन ने अपने बाणों के जाल से मेरे शरीर को अनेकबार युद्ध में अत्यन्त घायल कर दिया है। हे मानद! मुझे यहाँ खड़े रहना चाहिये, यही सोचकर मैं युद्धभूमि में खड़ा हुआ हूँ। महान् बाणों से सन्तप्त मेरा कोईभी अंग इस समय चेष्टा नहीं कर रहा है। फिरभी मैं यथाशक्ति युद्ध करूँगा, क्योंकि मेरा जीवन तो तुम्हारे लिये है।

न हि मे युध्यमानस्य सायकानस्यतः शितान्।
सैन्धवं प्राप्स्यते वीरः सव्यसाची धनंजयः॥ २३॥
अद्य योत्स्येऽर्जुनमहं पौरुषं स्वं व्यपाश्रितः।
त्वदर्थे पुरुषव्याघ्र जयो दैवे प्रतिष्ठितः॥ २४॥
अद्य युद्धं कुरुश्रेष्ठ मम पार्थस्य चोभयोः।
पश्यन्तु सर्वसैन्यानि दारुणं लोमहर्षणम्॥ २५॥
कर्णकौरवयोरेवं रणे सम्भाषमाणयोः।
अर्जुनो निशितैर्बाणैर्जघान तव वाहिनीम्॥ २६॥

मेरे युद्ध करते हुए और तीखे बाणों को छोड़ते हुए, वीर सव्यसाची अर्जुन जयद्रथ को नहीं प्राप्त कर सकेंगे। मैं आज अपने पौरुष का सहारा लेकर अर्जुन से हे पुरुषव्याघ्र! तुम्हारे लिये युद्ध करूँगा।

किन्तु विजयप्राप्ति तो दैव के आधीन है। हे कुरुश्रेष्ठ! आज मेरे और अर्जुन के दारुण और लोमहर्षक युद्ध को सारीसेना के लोग देखेंगे। जब कर्ण और दुर्योधन का युद्धस्थल में यह वार्तालाप चल रहा था, तब अर्जुन ने तीखे बाणों से आपकी सेना का संहार करना आरम्भ कर दिया।

चिच्छेद निशितैर्बाणैः शूराणामनिवर्तिनाम्।
भुजान् परिघसंकाशान् हस्तिहस्तोपमान् रणे॥ २७॥
शिरांसि च महाबाहुश्चिच्छेद निशितैः शरैः।
हस्तिहस्तान् हयग्रीवान् रथाक्षांश्च समन्ततः॥ २८॥
बीभत्सुर्भीमसेनेन सात्वतेन च रक्षितः।
प्रबभौ भरतश्रेष्ठ ज्वलन्निव हुताशनः॥ २९॥
नृत्यन्तं रथमार्गेषु धनुर्ज्यातलनिःस्वनैः।
संग्रामकोविदं पार्थं सर्वे युद्धविशारदाः॥ ३०॥
अभीताः पर्यवर्तन्त व्यादितास्यमिवान्तकम्।

उन्होंने अपने तीखे बाणों से, युद्ध से न लौटने वाले शूरवीरों की परिघ के समान, तथा हाथी की सूँड के समान भुजाओं को काट गिराया। उस महाबाहु ने अपने तीखे बाणों से सबतरफ वीरों के सिरों को, हाथियों की सूँडों को, घोड़ों की गर्दनों को और रथों के जूओं को काट गिराया। हे भरतश्रेष्ठ! उस समय अर्जुन, भीमसेन और सात्यकि के द्वारा सुरक्षित होकर, प्रज्वलित अग्नि के समान प्रतीत होरहे थे। उस समय लोगों ने संग्रामविद्या में चतुर अर्जुन को धनुष की टंकार और हथेली की ध्वनि के साथ रथ के सारे मार्गों पर मानों नृत्य सा करते हुए देखा। वे मुँह फाड़े हुए मृत्यु के समान विचरण कर रहे थे। तब सारे युद्धविशारदों ने निर्भयता के साथ उन्हें घेर लिया।

सैन्धवं पृष्ठतः कृत्वा जिघांसन्तोऽच्युतार्जुनौ॥ ३१॥
सूर्यास्तमनमिच्छन्तो लोहितायति भास्करे।
ते भुजैर्भोगिभोगाभैर्धनूंष्यानम्य सायकान्॥ ३२॥
मुमुचुः सूर्यरश्म्याभाञ्छतशः फाल्गुनं प्रति।
सिंहलाङ्गूलकेतुस्तु दर्शयन् वीर्यमात्मनः॥ ३३॥
शारद्वतीसुतो राजन्नर्जुनं प्रत्यवारयत्।
स विद्ध्वा दशभिः पार्थं वासुदेवं च सप्तभिः॥ ३४॥
अतिष्ठद् रथमार्गेषु सैन्धवं प्रतिपालयन्।

अर्जुन और श्रीकृष्ण को मारने के इच्छुक वे लोग, जयद्रथ को पीछेकर लाल होते हुए सूर्य के अस्त होने की इच्छा करने लगे। उन्होंने अपनी साँप के शरीर के समान भुजाओं से अपने धनुषों को झुकाकर सूर्य की किरणों के समान चमकीले सैकड़ों बाणों को अर्जुन के ऊपर चलाया। हे राजन्! अपनी ध्वजा में सिंह की पूँछ का चिह्नवाले शरद्वान् पुत्र कृपाचार्य ने अपने पराक्रम को दिखाते हुए अर्जुन को रोका। वे अर्जुन को दस और कृष्ण को सात बाणों से बींधकर जयद्रथ की रक्षा करते हुए रथ के मार्गों पर खड़े होगये।

ततः पार्थस्य शूरस्य बाह्वोर्बलमदृश्यत॥ ३५॥
अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य द्रौणेः शारद्वतस्य च।
एकैकं दशभिर्बाणैः सर्वानेव समार्पयत्॥ ३६॥
तं द्रौणिः पञ्चविंशत्या वृषसेनश्च सप्तभिः।
दुर्योधनस्तु विंशत्या कर्णशल्यौ त्रिभिस्त्रिभिः॥ ३७॥
श्लिष्टं च सर्वतश्चक्रू रथमण्डलमाशु ते।
सूर्यास्तमनमिच्छन्तस्त्वरमाणा महारथाः॥ ३८॥
त एनमभिनर्दन्तो विधुन्वाना धनूंषि च।
सिषिचुर्मार्गणैस्तीक्ष्णैर्गिरिं मेघा इवाम्बुभिः॥ ३९॥

उस समय शूरवीर अर्जुन के हाथों का बल दिखाई दिया। उन्होंने अश्वत्थामा और कृपाचार्य के अस्त्रों को छिन्नकर उनसब में एक एक को दस दस बाण मारे। तब उन पर द्रोणपुत्र ने पच्चीस, वृषसेन ने सात, दुर्योधन ने बीस, कर्ण और शल्य ने तीन तीन बाणों की वर्षा की। उन महारथियों ने सूर्यास्त की इच्छा करते हुए शीघ्रता से अपने रथों के घेरे को आपस में रथों को सटाकर और संकुचित कर दिया। वे अर्जुन के सामने गर्जते हुए और अपने धनुषों को हिलाते हुए उन पर तीखे बाणों की इसप्रकार वर्षा करने लगे, जैसे बादल पर्वतों को जलधाराओं से सींचते हैं।

तं कर्णः संयुगे राजन् प्रत्यवारयदाशुगैः।
मिषतो भीमसेनस्य सात्वतस्य च भारत॥ ४०॥
तं पार्थो दशभिर्बाणैः प्रत्यविध्यद् रणाजिरे।
सूतपुत्रं महाबाहुः सर्वसैन्यस्य पश्यतः॥ ४१॥
सात्वतश्च त्रिभिर्बाणैः कर्णं विव्याध मारिष।
भीमसेनस्त्रिभिश्चैव पुनः पार्थश्च सप्तभिः॥ ४२॥
तान् कर्णः प्रतिविव्याध षष्ट्या षष्ट्या महारथः।
तद् युद्धमभवद् राजन् कर्णस्य बहुभिः सह॥ ४३॥
फाल्गुनस्तु महाबाहुः कर्णं वैकर्तनं रणे।
सायकानां शतेनैव सर्वमर्मस्वताडयत्॥ ४४॥

हे भरतवंशी राजन्! तब अर्जुन को कर्ण ने सात्यकि और भीम के देखते हुए अपने शीघ्रगामी बाणों से युद्धक्षेत्र में रोका। तब महाबाहु अर्जुन ने सारी सेनाओं के देखते हुए कर्ण को युद्धस्थल में दस बाणों से बींधा। हे मान्यवर! सात्यकि ने भी उसे तीन बाण तथा भीम ने तीन बाण मारे और अर्जुन ने पुनः उसे सात बाण मारे। तब महारथी कर्ण ने उन तीनों पर साठ साठ बाणों की वर्षा की। हे राजन्! उस समय कर्ण का अनेकों के साथ युद्ध होरहा था। तब महाबाहु अर्जुन ने युद्धक्षेत्र में सूर्यपुत्र कर्ण पर सौ बाणों की वर्षाकर उसके सारे मर्मस्थलों पर प्रहार किया।

रुधिरोक्षितसर्वाङ्गः सूतपुत्रः प्रतापवान्।
शरैः पञ्चाशता वीरः फाल्गुनं प्रत्यविध्यत॥ ४५॥
तस्य तल्लाघवं दृष्ट्वा नामृष्यत रणेऽर्जुनः।
ततः पार्थो धनुश्छित्त्वा विव्याधैनं स्तनान्तरे॥ ४६॥
सायकैर्नवभिर्वीरस्त्वरमाणो धनंजयः।
अथान्यद् धनुरादाय सूतपुत्रः प्रतापवान्॥ ४७॥
सायकैरष्टसाहस्रैश्छादयामास पाण्डवम्।
तां बाणवृष्टिमतुलां कर्णचापसमुत्थिताम्॥ ४८॥
व्यधमत् सायकैः पार्थः शलभानिव मारुतः।

खून से लथपथ शरीरवाले वीर प्रतापी सूतपुत्र ने पचास बाणों की वर्षाकर अर्जुन को घायल किया। तब युद्ध में कर्ण की उस फुर्ती को देखकर अर्जुन ने उसे सहन नहीं किया। वीर अर्जुन ने शीघ्रता करते हुए उसके धनुष को काटते हुए उसकी छाती में नौ बाणों से प्रहार किया। तब प्रतापी सूतपुत्र ने दूसरा धनुष लेकर पाण्डुपुत्र को आठ हजार अर्थात् असंख्य बाणों से आच्छादित कर दिया। तब कर्ण के धनुष से प्रकट हुई, उस बाणवर्षा को अर्जुन ने अपने बाणों से ऐसेही नष्ट कर दिया, जैसे वायु टिड्डीदल को उड़ा देती है।

वधार्थं चास्य समरे सायकं सूर्यवर्चसम्॥ ४९॥
चिक्षेप त्वरया युक्तस्त्वराकाले धनंजयः।
तमापतन्तं वेगेन द्रौणिश्चिच्छेद सायकम्॥ ५०॥
अर्धचन्द्रेण तीक्ष्णेन स च्छिन्नः प्रापतद् भुवि।
कर्णोऽपि द्विषतां हन्ता छादयामास फाल्गुनम्॥ ५१॥
सायकैर्बहुसाहस्रैः कृतप्रतिकृतेप्सया।
इत्येवं तर्जयन्तौ तौ वाक्शल्यैस्तुदतां तदा॥ ५२॥
युध्येतां समरे वीरौ चित्रं लघु च सुष्ठु च।

फिर शीघ्रता के उस समय शीघ्रता करते हुए अर्जुन ने कर्ण के वध के लिये एक सूर्य के समान तेजस्वी बाण को युद्ध में कर्ण के ऊपर फैंका। वेग से आते हुए उस बाण को द्रोणपुत्र ने एक अर्ध चन्द्राकार तीखे बाण से काटकर भूमि पर गिरा दिया। किये हुए का उत्तर देने के इच्छुक शत्रुहन्ता कर्ण ने भी तब अर्जुन को असंख्य बाणों से आच्छादित कर दिया। इसप्रकार समरभूमि में एकदूसरे को धमकाते हुए, वाणी के बाणों से प्रहार करते हुए, वे दोनों वीर विचित्र प्रकार, शीघ्रता और उत्तमता से युद्ध कर रहे थे।

एतस्मिन्नन्तरे राजन् दृष्ट्वा कर्णस्य विक्रमम्॥ ५३॥
आकर्णमुक्तैरिषुभिः कर्णस्य चतुरो हयान्।
अनयत् प्रेतलोकाय चतुर्भिः श्वेतवाहनः॥ ५४॥
सारथिं चास्य भल्लेन रथनीडादपातयत्।
छादयामास स शरैस्तव पुत्रस्य पश्यतः॥ ५५॥
संछाद्यमानः समरे हताश्वो हतसारथिः।
मोहितः शरजालेन कर्तव्यं नाभ्यपद्यत॥ ५६॥

इसीबीच में हे राजन्! कर्ण के पराक्रम को देखकर, अर्जुन ने कानतक धनुष को खींचकर छोड़े हुए चार बाणों से कर्ण के चारों घोड़ों को मार दिया। उसके सारथि को भल्ल मारकर रथ की बैठक से नीचे गिरा दिया। आपके पुत्र के देखते हुए उन्होंने उस मरे घोड़ों और सारथिवाले कर्ण को अपने बाणों से आच्छादित कर दिया। बाणवर्षा से तब कर्ण मोह में पड़ गया और यह न समझ सका कि मैं क्या करूँ?

तं तथा विरथं दृष्ट्वा रथमारोप्य तं तदा।
अश्वत्थामा महाराज भूयोऽर्जुनमयोधयत्॥ ५७॥
मद्रराजश्च कौन्तेयमविध्यत् त्रिंशता शरैः।
शारद्वतस्तु विंशत्या वासुदेवं समार्पयत्॥ ५८॥
धनंजयं द्वादशभिराजघान शिलीमुखैः।
तथैव तान् प्रत्यविध्यत् कुन्तीपुत्रो धनंजयः॥ ५९॥
द्रोणपुत्रं चतुःषष्ट्या मद्रराजं शतेन च।
शारद्वतं च विंशत्या विद्ध्वा पार्थो ननाद ह॥ ६०॥

कर्ण को इसप्रकार से हीन देखकर हे महाराज! अश्वत्थामा ने उसे अपने रथ पर बैठा लिया और वह फिर अर्जुन से युद्ध करने लगा। मद्रराज ने कुन्तीपुत्र पर तीस बाणों की वर्षा कर उन्हें घायल किया। कृपाचार्य ने बीस बाणों की श्रीकृष्णजी पर

वर्षा की और अर्जुन पर बारह बाणों से प्रहार किया। तब अर्जुन ने उन्हें भी वैसेही बाणों से बींधा। उन्होंने द्रोणपुत्र पर चौसठ और मद्रराज पर सौ बाणों की वर्षा की। कृपाचार्य पर बीस बाणों की वर्षाकर अर्जुन ने सिंहनाद किया।

ततस्तु तस्मिंस्तुमुले समुत्थिते
सुदारुणे भारत मोहनीये।
नोऽमुह्यत प्राप्य स राजपुत्रः
किरीटमाली व्यसृजच्छरौघान्॥ ६१॥

हे भारत! उस समय उस अत्यन्तदारुण, मोहित कर देनेवाले तुमुल युद्ध के उपस्थित होने पर भी किरीट को धारण करनेवाले राजकुमार अर्जुन मोहित नहीं हुए और बाणों की वर्षा करतेही रहे।

पिचासीवाँ अध्याय : अर्जुन की वीरता, जयद्रथ का वध।

स रणे व्यचरत् पार्थः प्रेक्षमाणो धनंजयः।
युगपद् दिक्षु सर्वासु सर्वाण्यस्त्राणि दर्शयन्॥ १॥
आददानं महाराज संदधानं च पाण्डवम्।
उत्कर्षन्तं सृजन्तं च न स्म पश्याम लाघवात्॥ २॥
य एनमीयुः समरे त्वद्योधाः शूरमानिनः।
शलभा इव ते दीप्तमग्निं प्राप्य ययुः क्षयम्॥ ३॥
एवं स मृद्नञ्शत्रूणां जीवितानि यशांसि च।
पार्थश्चचार संग्रामे मृत्युर्विग्रहवानिव॥ ४॥

उस समय अर्जुन युद्धभूमि में एकसाथ सारी दिशाओं में देखते हुए और सबप्रकार के अस्त्रों का कौशल दिखाते हुए विचरण कर रहे थे। हे महाराज! उस समय उनकी फुर्ती के कारण यह देख भी नहीं पाते थे कि वे कब बाण लेते हैं, कब उसे धनुष पर संधान करते हैं और कब छोड़ते हैं। अपनेआपको शूरवीर मानने वाले आपके जो योद्धा युद्ध में उनके सामने गये, वे अग्नि के सामने गये हुए पतंगे के समान नष्ट होगये। इसप्रकार से शत्रुओं के जीवनों और कीर्तियों को कुचलते हुए अर्जुन संग्रामस्थल में साक्षात् मृत्यु के समान विचरण कर रहे थे।

प्रदीप्तोग्रशरार्चिष्मान् बभौ तत्र धनंजयः।
सविस्फुलिङ्गाग्रशिखो ज्वलन्निव हुताशनः॥ ५॥
निरीक्षितुं न शेकुस्ते यत्नवन्तोऽपि पार्थिवाः।
मध्यंदिनगतं सूर्यं प्रतपन्तमिवाम्बरे॥ ६॥
महास्त्रसम्प्लवे तस्मिञ्जिष्णुना सम्प्रवर्तिते।
सुदुस्तरे महाघोरे ममज्जुर्योधपुङ्गवाः॥ ७॥
एवं तत् तव राजेन्द्र चतुरङ्गबलं तदा।
व्याकुलीकृत्य कौन्तेयो जयद्रथमुपाद्रवत्॥ ८॥

उग्र बाणरूपी प्रज्वलित शिखाओंवाले अर्जुन वहाँ चिनगारियों और लपटों से युक्त जलती हुई अग्नि के समान लग रहे थे। जैसे दोपहर के समय आकाश में तपते हुए सूर्य की तरफ देखना कठिन होता है, वैसेही राजालोग उस समय यत्न करने परभी अर्जुन की तरफ देख नहीं पाते थे। अर्जुन ने उस युद्धस्थल में समय महान् अस्त्रों की ऐसी बाढ़ लादी थी कि उस महाभयंकर और अत्यन्तदुस्तर बाढ़ में बड़े बड़े श्रेष्ठ योद्धा डूब गये। इसप्रकार हे राजेन्द्र! आपकी चतुरंगिणी सेना को व्याकुलकर अर्जुन जयद्रथ की तरफ बढ़े।

द्रौणिं पञ्चाशताविध्यद् वृषसेनं त्रिभिः शरैः।
कृपायमाणः कौन्तेयः कृपं नवभिरार्दयत्॥ ९॥
एतस्मिन्नेव काले तु द्रुतं गच्छति भास्करे।
अब्रवीत् पाण्डवं राजंस्त्वरमाणो जनार्दनः॥ १०॥
एष मध्ये कृतः षड्भिः पार्थ वीरैर्महारथैः।
जीवितेप्सुर्महाबाहो भीतस्तिष्ठति सैन्धवः॥ ११॥
एतानिर्जित्य रणे षड् रथान् पुरुषर्षभ।
न शक्यः सैन्धवो हन्तुं यतो निर्व्याजमर्जुन॥ १२॥

उन्होंने द्रोणपुत्र पर पचास बाणों की वर्षा की और वृषसेन को तीन तथा कृपाचार्य को कृपापूर्वक नौ बाणों से घायल किया। इसी समय जब सूर्य तेजी से आगे जारहे थे हे राजन्! शीघ्रता करते हुए तब श्रीकृष्ण ने पाण्डुपुत्र से कहा कि हे कुन्तीपुत्र! छः महारथीवीरों ने जयद्रथ को अपने बीच में लिया हुआ है। हे महाबाहु! वह जीने की इच्छा से भयभीत हो दुबका हुआ खड़ा है। हे पुरुषश्रेष्ठ! इन छः महारथियों को युद्ध में बिना जीते जयद्रथ को बिना कपट के मारा नहीं जा सकता।

योगमत्र विधास्यामि सूर्यस्यावरणं प्रति।
हर्षेण जीविताकाङ्क्षी विनाशार्थं तव प्रभो॥ १३॥

न गोप्स्यति दुराचारः स आत्मानं कथंचन।
तत्र छिद्रे प्रहर्तव्यं त्वयास्य कुरुसत्तम॥ १४॥
व्यपेक्षा नैव कर्तव्या गतोऽस्तमिति भास्करः।
एवमस्त्विति बीभत्सुः केशवं प्रत्यभाषत॥ १५॥
ततोऽसृजत् तमः कृष्णः सूर्यस्यावरणं प्रति।

इसलिये मैं सूर्य को ढकने के लिये तरीका करूँगा। तब जीवन की इच्छा रखनेवाला यह दुराचारी जयद्रथ तुम्हारे विनाश के विषय में सोचकर खुशी के मारे अपनेआपको किसीप्रकार भी छिपाकर नहीं रख सकेगा। अर्थात् महारथियों के घेरे से बाहर आजाएगा। हे कुरुश्रेष्ठ! उस अवसर के आने पर तुम्हें अवश्य उसके ऊपर प्रहार करना है। सूर्य छिप गया है, यह सोचकर ढीले मत पड़ जाना। अर्जुन ने तब श्रीकृष्ण से कहा कि ऐसाही होगा। फिर श्रीकृष्णजी ने सूर्य को ढकने के लिये अँधेरे को पैदा कर दिया।

सृष्टे तमसि कृष्णेन गतोऽस्तमिति भास्करः॥ १६॥
त्वदीया जहृषुर्योधाः पार्थनाशान्नराधिप।
ते प्रहृष्टा रणे राजन् नापश्यन् सैनिका रविम्॥ १७॥
वीक्षमाणे ततस्तस्मिन् सिन्धुराजे दिवाकरम्।
पुनरेवाब्रवीत् कृष्णो धनंजयमिदं वचः॥ १८॥
पश्य सिन्धुपतिं वीरं प्रेक्षमाणं दिवाकरम्।
भयं हि विप्रमुच्यैतत् त्वत्तो भरतसत्तम॥ १९॥
अयं कालो महाबाहो वधायास्य दुरात्मनः।
छिन्धि मूर्धानमस्याशु कुरु साफल्यमात्मनः॥ २०॥

श्रीकृष्णजी के द्वारा अँधेरे को उत्पन्न कर देने पर सूर्य छिप गया यह मानकर हे नराधिप! आपके योद्धालोग अर्जुन के विनाश के बारे में सोचकर खुशी मनाने लगे। हे राजन्! खुशी मनाते हुए उन सैनिकों को उस समय आकाश में सूर्य दिखाई नहीं देरहा था। तब जयद्रथ को सूर्य की तरफ देखते हुए देखकर श्रीकृष्ण ने अर्जुन से फिर कहा कि हे भरतश्रेष्ठ! देखो वीर जयद्रथ अब तुम्हारा भय छोड़कर सूर्य की तरफ देख रहा है अर्थात् आकाश में सूर्य वास्तव में छिप गया है, या नहीं, यह निश्चित करने का प्रयत्न कर रहा है। हे महाबाहु! इस दुष्ट के मारने का यही समय है। तुरन्त इसका मस्तक काट दो और अपनी प्रतिज्ञा पूरी करो।

इत्येवं केशवेनोक्तः पाण्डुपुत्रः प्रतापवान्।
उज्जहार शरं घोरं पाण्डवोऽनलसंनिभम्॥ २१॥
समादधन्महाबाहुर्गाण्डीवे क्षिप्रमर्जुनः।
स तु गाण्डीवनिर्मुक्तः शरः श्येन इवाशुगः॥ २२॥
छित्त्वा शिरः सिन्धुपतेरुत्पपात विहायसम्।
ततो विनिहते राजन् सिन्धुराजे किरीटिना॥ २३॥
तमस्तद् वासुदेवेन संहृतं भरतर्षभ।
पश्चाज्ज्ञातं महीपाल तव पुत्रैः सहानुगैः॥ २४॥
वासुदेवप्रयुक्तेयं मायेति नृपसत्तम।

श्रीकृष्ण के द्वारा यह कहने पर प्रतापी पाण्डुपुत्र महाबाहु अर्जुन ने अग्नि के समान भयंकर बाण को निकाला और जल्दी से उसे धनुष पर चढ़ा दिया। गाण्डीव धनुष से छूटे हुए उस बाज के समान तेजी से झपट्टा मारनेवाले बाण ने सिन्धुराज के सिर को काट दिया और (तीव्रता के कारण) आकाश में चला गया। हे राजन्! हे भरतश्रेष्ठ! अर्जुन के द्वारा जयद्रथ को मार देने पर श्रीकृष्ण ने उस अँधेरे को हटा दिया। हे नृपश्रेष्ठ महीपाल! तब पीछे आपके पुत्रों को अपने सेवकोंसहित यह पता लगा कि यह तो श्रीकृष्ण की अँधेरे के रूप में फैलायी हुई माया थी, सूर्य अभी नहीं छिपा था।

ततो जयद्रथे राजन् हते पार्थेन केशवः॥ २५॥
दध्मौ शङ्खं महाबाहुरर्जुनश्च परंतपः।
भीमश्च वृष्णिसिंहश्च, शंखान् दध्मुः पृथक् पृथक्॥ २६॥
श्रुत्वा महान्तं तं शब्दं धर्मराजो युधिष्ठिरः।
सैन्धवं निहतं मेने फाल्गुनेन महात्मना।
ततो वादित्रघोषेण स्वान् योधान् पर्यहर्षयत्॥ २७॥

हे राजन्! तब अर्जुन के द्वारा जयद्रथ के मारे जाने पर परंतप श्रीकृष्ण और महाबाहु अर्जुन ने अपने शंख बजाये। भीम और सात्यकि ने भी अपने अलग अलग शंख बजाये। शंखों के उस महान् शब्द को सुनकर धर्मराज युधिष्ठिर ने समझ लिया कि मनस्वी अर्जुन ने जयद्रथ को मार दिया है। तब उन्होंने बाजे बजवाकर अपने योद्धाओं को हर्षित किया।

छियासीवाँ अध्याय : अर्जुन द्वारा कृपाचार्य की मूर्च्छा, और खेद।

सैन्धवं निहतं दृष्ट्वा रणे पार्थेन भारत।
अमर्षवशमापन्नः कृपः शारद्वतस्ततः॥ १॥
महता शरवर्षेण पाण्डवं समवाकिरत्।
द्रौणिश्चाभ्यद्रवद् राजन् रथमास्थाय फाल्गुनम्॥ २॥
तावेतौ रथिनां श्रेष्ठौ रथाभ्यां रथसत्तमौ।
उभावुभयतस्तीक्ष्णैर्विशिखैर- भ्यवर्षताम्॥ ३॥
सोऽजिघांसुर्गुरुं संख्ये गुरोस्तनयमेव च।
चकाराचार्यकं तत्र कुन्तीपुत्रो धनंजयः॥ ४॥

हे भारत राजन्! जयद्रथ को युद्ध में कुन्तीपुत्र के द्वारा मारा हुआ देखकर शरद्वान् पुत्र कृपाचार्य ने अमर्ष के वश में होकर तब पाण्डुपुत्र पर महान् बाणवर्षा आरम्भ कर दी और द्रोणपुत्र ने भी रथ पर बैठकर अर्जुन पर आक्रमण कर दिया। रथियों में श्रेष्ठ येदोनों महारथी अपने रथों से अर्जुन पर दोतरफ से तीखे बाणों की वर्षा करने लगे। कुन्तीपुत्र अर्जुन अपने गुरु और गुरुपुत्र का वध नहीं करना चाहते थे। इसलिये उन्होंने युद्धक्षेत्र में अपने आचार्य का सम्मान किया।

अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य द्रौणेः शारद्वतस्य च।
मन्दवेगानिषूंस्ताभ्या- मजिघांसुरवासृजत्॥ ५॥
ते चापि भृशमभ्यघ्नन् विशिखाः पार्थचोदिताः।
बहुत्वात् तु परामार्तिं शराणां तावगच्छताम्॥ ६॥
अथ शारद्वतो राजन् कौन्तेयशरपीडितः।
अवासीदद् रथोपस्थे मूर्च्छामभिजगाम ह॥ ७॥
विह्वलं तमभिज्ञाय भर्तारं शरपीडितम्।
हतोऽयमिति च ज्ञात्वा सारथिस्तमपावहत्॥ ८॥

उन्होंने अपने अस्त्रों से द्रोणपुत्र और कृपाचार्य के अस्त्रों का निवारणकर, उन्हें न मारने की इच्छा रखते हुए, उन पर मन्द वेगवाले बाण चलाये। किन्तु अर्जुन के छोड़े हुए उन बाणों ने भी संख्या में अधिक होने के कारण उनदोनों को अधिक चोट पहुँचा दी और वे दोनों अत्यधिक पीड़ा का अनुभव करने लगे। हे राजन्! अर्जुन के बाणों से पीड़ित होकर कृपाचार्य रथ की बैठक में बैठकर मूर्च्छित होगये। तब अपने स्वामी को बाणों से पीड़ित और बेचैन देखकर, यह मारे गये यह समझकर उनका सारथि उन्हें वहाँ से दूर लेगया।

तस्मिन् भग्ने महाराज कृपे शारद्वते युधि।
अश्वत्थामाप्यपायासीत् पाण्डवेयाद् रथान्तरम्॥ ९॥
दृष्ट्वा शारद्वतं पार्थो मूर्च्छितं शरपीडितम्।
रथ एव महेष्वासः सकृपं पर्यदेवयत्॥ १०॥
अश्रुपूर्णमुखो दीनो वचनं चेदमब्रवीत्।
को हि ब्राह्मणमाचार्यमभिद्रुह्येत मादृशः॥ ११॥
ऋषिपुत्रो ममाचार्यो द्रोणस्य परमः सखा।
एष शेते रथोपस्थे कृपो मद्बाणपीडितः॥ १२॥

हे महाराज! तब कृपाचार्य के युद्ध में अचेत होकर वहाँ से हट जाने पर अश्वत्थामा भी अर्जुन के पास से हटकर कहीं और चला गया। तब कृपाचार्य को बाणों से पीड़ित और मूर्च्छित देखकर महाधनुर्धर अर्जुन दया के वश में होकर रथ में बैठे हुएही शोक करने लगे। आँखों में आँसू भरकर दीनता के साथ वे कहने लगे कि मेरे समान ऐसा कौन होगा? जो ब्राह्मण और अपने आचार्य के साथ द्रोह करेगा? ये ऋषि के पुत्र, मेरे आचार्य और द्रोणाचार्य के परम मित्र कृपाचार्य मेरे बाणों से ही पीड़ित होकर रथ में सोरहे हैं।

अकामयानेन मया विशिखैरर्दितो भृशम्।
अवसीदन् रथोपस्थे प्राणान् पीडयतीव मे॥ १३॥
पुत्रशोकाभितप्तेन शरैरभ्यर्दितेन च।
अभ्यस्तो बहुभिर्बाणैर्दशधर्मगतेन वै॥ १४॥
शोचयत्येष नियतं भूयः पुत्रवधाद्धि माम्।
ये च विद्यामुपादाय गुरुभ्यः पुरुषाधमाः॥ १५॥
घ्नन्ति तानेव दुर्वृत्तास्ते वै निरयगामिनः।

न चाहते हुए भी मेरे द्वारा इन्हें बाणों से अधिक पीड़ा पहुँच गयी है। अब ये रथ की बैठक में कष्ट पाते हुए मेरे प्राणों को पीड़ित कर रहे हैं। मैं पुत्र के शोक से दुःखी था, बाणोंसे पीड़ित था और बुरी अवस्था को प्राप्त हुआ था। ऐसी स्थिति में मेरे द्वारा इन्हें बहुत से बाणों से चोट पहुँच गयी है। अब ये मुझे पुत्र के वध की अपेक्षा भी अधिक शोक में डाल रहे हैं। जो नीच पुरुष गुरु से विद्या को प्राप्तकर उन्हीं पर प्रहार करते हैं, ऐसे दुराचारी मनुष्य निश्चय ही अधम गति को प्राप्त करते हैं।

तदिदं नरकायाद्य कृतं कर्म मया ध्रुवम्॥ १६॥
आचार्यं शरवर्षेण रथे सादयता कृपम्।
यत् तत् पूर्वमुपाकुर्वन्नस्त्रं मामब्रवीत् कृपः॥ १७॥
न कथंचन कौरव्य प्रहर्तव्यं गुराविति।
तदिदं वचनं साधोराचार्यस्य महात्मनः॥ १८॥
नानुष्ठितं तमेवाजौ विशिखैरभिवर्षता।
नमस्तस्मै सुपूज्याय गौतमायापलायिने।
धिगस्तु मम वार्ष्णेय यदस्मै प्रहराम्यहम्॥ १९॥

इसलिये आज मैंने निश्चय ही अपने अधमगति को प्राप्त करने का कार्य कर लिया है। मैंने अपने आचार्य कृप को अपनी बाणवर्षा से रथ में सुला दिया है। पहले कृपाचार्य ने मुझे अस्त्रविद्या प्रदान कर यह कहा था कि हे कौरव! गुरु पर कभी प्रहार नहीं करना चाहिये। मैंने उन श्रेष्ठ महात्मा आचार्य के उस वचन का आज उन पर बाणों की वर्षा करके पालन नहीं किया। हे श्रीकृष्ण! उन अत्यन्त पूज्य, युद्ध से न हटनेवाले कृपाचार्य को मेरा प्रणाम है और मुझे अपने ऊपर धिक्कार है, जो मैं उनके ऊपर प्रहार करता हूँ।

सतासीवाँ अध्याय : श्रीकृष्ण की अर्जुन को बधाई, युधिष्ठिर के पास ले जाना।

ततो राजन् हृषीकेशः संग्राममशिरसि स्थितम्।
तीर्णप्रतिज्ञं बीभत्सुं परिष्वज्यैनमब्रवीत्॥ १॥
दिष्ट्या सम्पादिता जिष्णो प्रतिज्ञा महतीत्वया।
धार्तराष्ट्रबलं प्राप्य देवसेनापि भारत॥ २॥
सीदेत समरे जिष्णो नात्र कार्या विचारणा।
नेदृशं शक्नुयात् कश्चिद् रणे कर्तुं पराक्रमम्॥ ३॥
यादृशं कृतवानद्य त्वमेकः शत्रुतापनः।
एवमेव हते कर्णे सानुबन्धे दुरात्मनि॥ ४॥
वर्धयिष्यामि भूयस्त्वां विजितारिं हतद्विषम्।

हे राजन्! तब युद्ध के मुहाने पर खड़े हुए श्रीकृष्ण ने प्रतिज्ञा पूरी किये हुए अर्जुन को हृदय से लगाकर उनसे कहा कि हे अर्जुन! सौभाग्य की बात है कि तुमने अपनी महान् प्रतिज्ञा को पूरा कर लिया। हे भरतवंशी अर्जुन! दुर्योधन की सेना में घुसकर देवताओं की सेना भी संकट में पड़ सकती है, इसमें किसी सन्देह की बात नहीं है। शत्रु को सन्तप्त करने वाले तुमने अकेले आज जिसप्रकार का पराक्रम किया है, ऐसा युद्ध में कोई नहीं कर सकता। इसी प्रकार से जब तुम परिवारसहित दुरात्मा कर्ण को मार दोगे, तब शत्रु को जीत लेने पर और द्वेष करनेवाले को मार देने पर मैं पुनः तुम्हें ऐसी ही बधाई देकर तुम्हारा उत्साह बढ़ाऊँगा।

तमर्जुनः प्रत्युवाच प्रसादात् तव माधव॥ ५॥
प्रतिज्ञेयं मया तीर्णा विबुधैरपि दुस्तरा।
अनाश्चर्यो जयस्तेषां येषां नाथोऽसि केशव॥ ६॥
त्वत्प्रसादान्महीं कृत्स्नां सम्प्राप्स्यति युधिष्ठिरः।
तव प्रभावो वार्ष्णेय तवैव विजयः प्रभो॥ ७॥
वर्धनीयास्तव वयं सदैव मधुसूदन।
एवमुक्तस्ततः कृष्णः शनकैर्वाहयन् हयान्॥ ८॥
दर्शयामास पार्थाय क्रूरमायोधनं महत्।

तब अर्जुन ने उन्हें उत्तर दिया कि हे माधव! आपकी कृपा से ही मैंने देवताओं के लिये भी दुस्तर इस प्रतिज्ञा को पूरा किया है। हे केशव! जिसके आप स्वामी हो, उसकी विजय होना आश्चर्य की बात नहीं है। आपकी ही कृपा से युधिष्ठिर सारी भूमि का राज्य प्राप्त करेंगे। हे प्रभो! यहसब आपका ही प्रभाव है और आपकी ही विजय है। हे मधुसूदन! हम सदाही आपके द्वारा उत्साहित होते रहेंगे। ऐसा कहे जाने पर श्रीकृष्ण धीरे धीरे घोड़ों को हाँकते हुए क्रूरता से भरे हुए विशाल युद्धस्थल को अर्जुन को दिखाने लगे।

प्रार्थयन्तो जयं युद्धे प्रथितं च महद् यशः॥ ९॥
पृथिव्यां शेरते शूराः पार्थिवास्त्वच्छरैर्हताः।
विकीर्णशस्त्राभरणा विपन्नाश्वरथद्विपाः॥ १०॥
संछिन्नभिन्नमर्माणो वैक्लव्यं परमं गताः।
ससत्त्वा गतसत्त्वाश्च प्रभया परया युताः॥ ११॥
सजीवा इव लक्ष्यन्ते गतसत्त्वा नराधिपाः।
पृथिव्यां पृथिवीहेतोः पृथिवीपतयो हताः॥ १२॥
पृथिवीमुपगुह्याङ्गैः सुप्ताः कान्तामिव प्रियाम्।

श्रीकृष्ण जी ने कहा कि हे अर्जुन! देखो महान् और प्रसिद्ध यश की तथा विजय की युद्ध में कामना वाले ये राजालोग तुम्हारे बाणों से मारे जाकर भूमि

पर सोरहे हैं। इनके शस्त्र और आभूषण बिखरे पड़े हैं। इनके घोड़े, रथ और हाथी नष्ट होगये हैं। मर्मस्थलों के भिन्न होजाने से ये अत्यन्त व्याकुलता को प्राप्त होरहे हैं। इनमें से कुछ में अभी जान बाकी है। पर जो राजालोग मर चुके है, वे अत्यन्त कान्ति से युक्त होने के कारण अभी जीवित सेही दिखाई देरहे हैं। पृथिवी के राज्य के लिये मारे गये ये पृथिवीपति, पृथिवी का अपनी प्रेयसी पत्नी के समान संपूर्ण अंगों से आलिंगन करते हुए पृथिवी पर सोरहे हैं।

इमांश्च गिरिकूटाभान् नागानैरावतोपमान्॥ १३॥
क्षरतः शोणितं भूरि शस्त्रच्छेददरीमुखैः।
दरीमुखैरिव गिरीन् गैरिकाम्बुपरिस्त्रवान्॥ १४॥
तांश्च बाणहतान् वीर पश्य निष्टनतः क्षितौ।
हयांश्च पतितान् पश्य स्वर्णभाण्डविभूषितान्॥ १५॥
गन्धर्वनगराकारान् रथांश्च निहतेश्वरान्।
छिन्नध्वजपताकाक्षान् विचक्रान् हतसारथीन्॥ १६॥

पर्वतशिखरों के समान प्रतीत होनेवाले, ये ऐरावत के समान हाथी, तुम्हारे बाणों के घावों के छिद्रों से पर्याप्त मात्रा में खून बहाते हुए ऐसे प्रतीत होरहे हैं, जैसे अपनी कन्दराओं के मुख से गेरू मिले पानी से युक्त झरनों को बहाते हुए पर्वत हों। हे वीर! देखो ये हाथी तुम्हारे बाणों से मारे जाकर भूमि पर लोट रहे हैं। सुनहरे साज से सजे हुए और गिरे हुए घोड़ों को देखो। इन गन्धर्वनगरों के समान विशाल रथों को देखो, जिनके स्वामी मारे गये हैं, ध्वज, पताका, जूए टूट गये हैं, पहिये निकल गये हैं और सारथि मारे गये हैं।

निकृत्तकूबरयुगान् भग्नेषाबन्धुरान् प्रभो।
पश्य पार्थ हयान् भूमौ विमानोपमदर्शनान्॥ १७॥
पत्तींश्च निहतान् वीर शतशोऽथ सहस्रशः।
धनुर्भृतश्चर्मभृतः शयानान् रुधिरोक्षितान्॥ १८॥
महीमालिङ्ग्य सर्वाङ्गैः पांसुध्वस्तशिरोरुहान्।
पश्य योधान् महाबाहो त्वच्छरैर्भिन्नविग्रहान्॥ १९॥
एवं संदर्शयन् कृष्णो रणभूमिं किरीटिने।
स्वैः समेतः समुदितैः पाञ्चजन्यं व्यनादयत्॥ २०॥

हे प्रभो! इनके कूबर और जूए टूट गये हैं। ईषादण्ड खण्डित होगये हैं। हे पार्थ! इन विमान के समान दिखाई देनेवाले घोड़ों को देखो। ये भूमि पर पड़े हुए हैं। हे वीर! इन सैंकड़ों और हजारों की संख्या में मरे हुए पैदलसैनिकों को देखो। ये धनुष और ढाल लिये हुए खून से लथपथ होकर भूमि पर सो रहे हैं। हे महाबाहु! सारे अंगों से पृथिवी का आलिंगन कर पड़े हुए इन योद्धाओं को देखो। तुम्हारे बाणों से इनके अंग कट गये हैं, इनके बाल धूल में सने हुए हैं। इसप्रकार अर्जुन को युद्धभूमि को दिखाते हुए श्रीकृष्ण ने, वहाँ आये हुए प्रसन्नतायुक्त अपने स्वजनों के साथ पाँचजन्यशंख को बजाया।

अठासीवाँ अध्याय : युधिष्ठिर द्वारा श्रीकृष्ण, अर्जुन, भीम और सात्यकि का अभिनन्दन।

ततो राजानमभ्येत्य धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम्।
ववन्दे स प्रहृष्टात्मा हते पार्थेन सैन्धवे॥ १॥
ततो युधिष्ठिरो राजा रथादाप्लुत्य भारत।
पर्यष्वजत् तदा कृष्णावानन्दाश्रुपरिप्लुतः॥ २॥
प्रमृज्य वदनं शुभ्रं पुण्डरीकसमप्रभम्।
अब्रवीद् वासुदेवं च पाण्डवं च धनंजयम्॥ ३॥
प्रियमेतदुपश्रुत्य त्वत्तः पुष्करलोचन।
नान्तं गच्छामि हर्षस्य तितीर्षुरुदधेरिव॥ ४॥
अत्यद्भुतमिदं कृष्ण कृतं पार्थेन धीमता।

तब कुन्तीपुत्र अर्जुन के द्वारा जयद्रथ के मारे जाने पर श्रीकृष्ण ने धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर के पास जाकर प्रसन्नता के साथ उन्हें प्रणाम किया। हे भारत! तब राजा युधिष्ठिर ने रथ से कूदकर, आनन्द के आँसुओं से भरकर कृष्ण और अर्जुन को अपने हृदय से लगा लिया। फिर कमल के समान उनके सुन्दर मुख पर हाथ फेरते हुए वे वासुदेव और अर्जुन से बोले कि हे कमलनयन श्रीकृष्ण! तुमसे यह प्रिय समाचार सुनकर जैसे तैरने का इच्छुक व्यक्ति समुद्र का पार नहीं पासकता वैसेही मैं प्रसन्नता के सागर का पार नहीं पारहा हूँ। हे कृष्ण! धीमान् अर्जुन ने यह बड़ाअद्भुत कार्य किया है।

असम्भाव्यमिदं कर्म देवैरपि जनार्दन॥ ५॥
त्वद्बुद्धिबलवीर्येण कृतवानेष फाल्गुनः।

इत्येवं धर्मराजेन हरिरुक्तो महायशाः॥ ६॥
अनुरूपमिदं वाक्यं प्रत्युवाच जनार्दनः।
भवता तपसोग्रेण धर्मेण परमेण च॥ ७॥
साधुत्वादार्जवाच्चैव हतः पापो जयद्रथः।
अयं च पुरुषव्याघ्र त्वदनुध्यानसंवृतः॥ ८॥
हत्वा योधसहस्त्राणि न्यहन् जिष्णुर्जयद्रथम्।

हे जनार्दन! यह कार्य देवताओं के लिये भी असम्भव था। पर आपके बुद्धिबल और पराक्रम से ही अर्जुन ने इसे कर दिया। तब धर्मराज युधिष्ठिर के द्वारा ऐसा कहने पर महायशस्वी जनार्दन श्रीकृष्ण ने उनकी बात के अनुरूप ही यह उत्तर दिया कि आपकी उग्र तपस्या, परमधर्म, साधु और कोमल स्वभाव के कारण ही पापी जयद्रथ मारा गया है। हे पुरुषव्याघ्र! आपने जो लगातार हमारा शुभ चिन्तन किया है, उसी से सुरक्षित रहकर अर्जुन ने हजारों योद्धाओं को मारकर जयद्रथ को मारा है।

कृतित्वे बाहुवीर्ये च तथैवासम्भ्रमेऽपि च॥ ९॥
शीघ्रतामोघबुद्धित्वे नास्ति पार्थसमः क्वचित्।
तदयं भरतश्रेष्ठ भ्राता तेऽद्य यदर्जुनः॥ १०॥
सैन्यक्षयं रणे कृत्वा सिन्धुराजशिरोऽहरत्।
ततो धर्मसुतो जिष्णुं परिष्वज्य विशाम्पते॥ ११॥
प्रमृज्य वदनं तस्य पर्याश्वासयत प्रभुः।
अतीव सुमहत् कर्म कृतवानसि फाल्गुन॥ १२॥
असह्यं चाविषह्यं च देवैरपि सवासवैः।

कर्मठता, भुजाओं की शक्ति, स्थिरता, शीघ्रता एवं अमोघबुद्धि इन गुणों में कोईभी अर्जुन के समान नहीं है। हे भरतश्रेष्ठ! इसलिये आपके भाई इस अर्जुन ने आज युद्ध मै सेना का विनाश कर जयद्रथ के सिर को काटा है। हे प्रजानाथ! तब धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर ने अर्जुन को हृदय से लगाकर उनके मुख को पोंछकर उन्हें आश्वासन देते हुए कहा कि हे अर्जुन! तुमने बहुतबड़ा कार्य किया है। यह इन्द्रसहित देवताओं के लिये भी असम्भव था।

एवमुक्त्वा गुडाकेशं धर्मराजो महायशाः॥ १३॥
पस्पर्श पुण्यगन्धेन पृष्ठे हस्तेन पार्थिवः।
एवमुक्तौ महात्मानावुभौ केशवपाण्डवौ॥ १४॥
तावब्रूतां तदा कृष्णौ राजानं पृथिवीपतिम्।
तव कोपाग्निना दग्धः पापो राजा जयद्रथः॥ १५॥
उत्तीर्णं चापि सुमहद् धार्तराष्ट्रबलं रणे।
हन्यन्ते निहताश्चैव विनङ्क्ष्यन्ति च भारत॥ १६॥
तव क्रोधहता ह्येते कौरवाः शत्रुसूदन।

ऐसा कहकर महायशस्वी, राजा धर्मराज ने अर्जुन की पीठ पर अपने सुगन्धित हाथ को फेरा। ऐसा कहे जाने पर उनदोनों महात्माओं कृष्ण और अर्जुन ने उन पृथिवीपति राजा से यह कहा कि आपकी क्रोधाग्नि से ही पापी जयद्रथ भस्म हुआ है और युद्ध में दुर्योधन की विशाल सेना भी आपकी कृपा से ही पार कीगयी है। हे शत्रुसूदन! हे भारत! ये कौरव! आपके क्रोध से ही नष्ट होकर मारे गये हैं, मारे जारहे हैं और भविष्य में मारे जाएँगे।

राज्यं प्राणाः श्रियः पुत्राः सौख्यानि विविधानि च॥ १७॥
अचिरात् तस्य नश्यन्ति येषां क्रुद्धोऽसि मानद।
विनष्टान् कौरवान् मन्ये सपुत्रपशुबान्धवान्॥ १८॥
राजधर्मपरे नित्यं त्वयि क्रुद्धे परंतप।

हे दूसरों को मान देनेवाले! आप जिनपर क्रोध करेंगे, उनके राज्य, प्राण, सम्पत्ति, पुत्र और अनेक प्रकार के सुख जल्दी ही नष्ट होजायेंगे। सदा राज्य धर्म में लगे हुए, हे शत्रुओं को सन्तप्त करनेवाले, आपके क्रुद्ध होने पर मैं पुत्रों, पशुओं और बान्धवों के साथ कौरवों को नष्ट हुआ ही समझता हूँ।

ततो भीमो महाबाहुः सात्यकिश्च महारथः॥ १९॥
अभिवाद्य गुरुं ज्येष्ठं मार्गणैः क्षतविक्षतौ।
क्षितावास्तां महेष्वासौ पाञ्चाल्यैः परिवारितौ॥ २०॥
तौ दृष्ट्वा मुदितौ वीरौ प्राञ्जली चाग्रतः स्थितौ।
अभ्यनन्दत कौन्तेयस्तावुभौ भीमसात्यकी॥ २१॥
दिष्ट्या पश्यामि वां शूरौ विमुक्तौ सैन्यसागरात्।
द्रोणग्राहदुराधर्षाद्धार्दिक्यम- करालयात्॥ २२॥

तब महाधनुर्धर और बाणों से घायल, महाबाहु भीम और महारथी सात्यकि, अपने बड़े भाई को अभिवादन कर, पाँचालों से घिरे हुए भूमि पर खड़े होगये। उन दोनों वीरों को प्रसन्नता से हाथ जोड़कर अपने आगे खड़े हुए देखकर कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर ने उनदोनों भीम और सात्यकि का अभिनन्दन किया। उन्होंने कहा कि बड़े सौभाग्य की बात है कि मैं शत्रु के उस सेना सागर से, जो द्रोणाचार्य जैसे ग्राह और कृतवर्मा जैसे मगरमच्छ का वासस्थान होने के कारण दुर्धर्ष है, छूट कर तुम्हें आया हुआ देख रहा हूँ।

दिष्ट्या विनिर्जिताः संख्ये पृथिव्यां सर्वपार्थिवाः।
युवां विजयिनौ चापि दिष्ट्या पश्यामि संयुगे॥ २३॥
दिष्ट्या युवां कुशलिनौ संग्रामात् पुनरागतौ।
पश्यामि रथिनां श्रेष्ठावुभौ युद्धविशारदौ॥ २४॥
मम वाक्यकरौ वीरौ मम गौरवयन्त्रितौ।
समरश्लाघिनौ वीरौ समरेष्वपराजितौ॥ २५॥
इत्युक्त्वा पाण्डवो राजन् युयुधानवृकोदरौ।
सस्वजे पुरुषव्याघ्रौ हर्षाद् बाष्पं मुमोच ह॥ २६॥

यह सौभाग्य की बात है कि सारे राजालोग युद्ध में जीत गये और तुम्हें मैं विजयी के रूप में देख रहा हूँ। यह बड़े सौभाग्य की बात है कि रथियों में श्रेष्ठ और युद्ध में विशारद तुमदोनों को मैं युद्ध से कुशलतापूर्वक लौटकर दुबारा आये हुए देख रहा हूँ। युद्धों में अपराजित रहने वाले, युद्ध की श्लाघा करनेवाले तुमदोनों वीरों ने मेरे बड़प्पन में बँधकर मेरे वचनों का पालन किया है। ऐसा कहकर हे राजन्! उन पाण्डुपुत्र ने उनदोनों पुरुषव्याघ्रों सात्यकि और भीम को हृदय से लगाया और वे हर्ष के आँसू बहाने लगे।

नवासीवाँ अध्याय : दुर्योधन के द्वारा द्रोणाचार्य को उपालम्भ।

संजय उवाच

सैन्धवे निहते राजन् पुत्रस्तव सुयोधनः।
अश्रुपूर्णमुखो दीनो निरुत्साहो द्विषज्जये॥ १॥
दुर्मना निःश्वसन् दुष्टो भग्नदंष्ट्र इवोरगः।
आगस्कृत् सर्वलोकस्य पुत्रस्तेऽऽर्तिं परामगात्॥ २॥
दृष्ट्वा तत्कदनं घोरं स्वबलस्य कृतं महत्।
जिष्णुना भीमसेनेन सात्वतेन च संयुगे॥ ३॥
अमन्यतार्जुनसमो न योद्धा भुवि विद्यते।
न द्रोणो न च राधेयो नाश्वत्थामा कृपो न च॥ ४॥
क्रुद्धस्य समरे स्थातुं पर्याप्ता इति मारिष।

संजय ने कहा कि हे राजन्! सिन्धुराज के मारे जाने पर आपका पुत्र दुर्योधन दीनता के साथ अपने मुख पर आँसू बहाने लगा। शत्रु पर विजय के लिये वह निरुत्साहित होगया। जिसके दाँत तोड़ दिये गये हों, ऐसे दुष्ट साँप के समान लम्बी साँसें लेता हुआ, सारे संसार का अपराधी वह आपका पुत्र दुःखी होकर अत्यन्त पीड़ा को अनुभव करने लगा। युद्ध में अर्जुन, भीम और सात्यकि के द्वारा किये गये अपनी सेना के घोर विनाश को देखकर हे मान्यवर! उसने मान लिया कि अर्जुन के समान योद्धा संसार में नहीं है। क्रोध में भरे हुए अर्जुन के सामने युद्ध में न तो द्रोणाचार्य, न कर्ण, न कृपाचार्य और न अश्वत्थामा कोई नहीं ठहर सकता।

निर्जित्य हि रणे पार्थः सर्वान् मम महारथान्॥ ५॥
अवधीत् सैन्धवं संख्ये न च कश्चिदवारयत्।
यमुपाश्रित्य संग्रामे कृतः शस्त्रसमुद्यमः॥ ६॥
यस्य वीर्यं समाश्रित्य शमं याचन्तमच्युतम्।
तृणवत् तमहं मन्ये स कर्णो निर्जितो युधि॥ ७॥
एवं क्लान्तमना राजन्नुपायाद् द्रोणमीक्षितुम्।
आगस्कृत् सर्वलोकस्य पुत्रस्ते भरतर्षभ॥ ८॥

अर्जुन ने युद्ध में मेरे सारे महारथियों को जीतकर युद्धक्षेत्र में सिन्धुराज को मार दिया। कोईभी उसे नहीं रोक सका। जिसका सहारा लेकर मैंने युद्ध के लिये शस्त्रास्त्रों का संग्रह किया, जिसके पराक्रम का आश्रय लेकर मैंने शान्ति की याचना करते हुए श्रीकृष्ण को तिनके के समान समझा, वह कर्ण भी युद्ध में अर्जुन के द्वारा जीत लिया गया। हे भरतश्रेष्ठ! हे राजन्! इसप्रकार बेचैनी से सोचता हुआ सारे संसार का अपराधी आपका पुत्र द्रोणाचार्य का दर्शन करने के लिये उनके पास गया।

दुर्योधन उवाच

पश्य मूर्धाभिषिक्तानामाचार्य कदनं महत्।
कृत्वा प्रमुखतः शूरं भीष्मं मम पितामहम्॥ ९॥
तं निहत्य प्रलुब्धोऽयं शिखण्डी पूर्णमानसः।
पाञ्चाल्यैः सहितः सर्वैः सेनाग्रमभिवर्तते॥ १०॥
अस्मद्विजयकामानां सुहृदामुपकारिणाम्।
गन्तास्मि कथमानृण्यं गतानां यमसादनम्॥ ११॥
ये मदर्थं परीप्सन्ते वसुधां वसुधाधिपाः।
ते हित्वा वसुधैश्वर्यं वसुधामधिशेरते॥ १२॥

दुर्योधन ने उनसे कहा कि हे आचार्य! जिनके मस्तकों पर अपने राज्यों में राज्याभिषेक हुआ था, उन राजाओं के मेरे प्रमुख शूरवीर पितामह भीष्म से लेकर अबतक हुए महान् विनाश को देखिये। शिकारी के समान भीष्मपितामह को गिराकर यह

शिखण्डी पूरे उत्साह के साथ पाँचाल वीरों के साथ सेना के अग्रभाग पर खड़ा हुआ है। मेरी विजय के अभिलाषी, मेरे मित्र, मेरे उपकारी, जो मृत्युलोक में चले गये हैं, मैं उनके ऋण से उऋण कैसे होऊँगा? जो पृथिवी के स्वामी, मेरे लिये पृथिवी को जीतना चाहते थे, वे अब अपने पृथिवी के ऐश्वर्य को त्यागकर पृथिवी पर सोरहे हैं।

सोऽहं कापुरुषः कृत्वा मित्राणां क्षयमीदृशम्।
अश्वमेधसहस्रेण पावितुं न समुत्सहे॥ १३॥
मम लुब्धस्य पापस्य तथा धर्मापचायिनः।
व्यायामेन जिगीषन्तः प्राप्ता वैवस्वतक्षयम्॥ १४॥
कथं पतितवृत्तस्य पृथिवी सुहृदां द्रुहः।
विवरं नाशकद् दातुं मम पार्थिवसंसदि॥ १५॥
जलसंधं महेष्वासं पश्य सात्यकिना हतम्।
मदर्थमुद्यतं शूरं प्राणांस्त्यक्त्वा महारथम्॥ १६॥

वह मैं कायर पुरुष मित्रों के इतने विनाश को कराकर हजार अश्वमेधों के द्वारा भी पवित्र नहीं होसकता। मुझ धर्म के नाशक लोभी, पापी के लिये युद्ध के द्वारा विजय प्राप्त करने के इच्छुक मेरे मित्र लोग मृत्युलोक में चले गये। राजाओं के इस समूह में मुझ मित्रों से द्रोह करने और पतित आचरणवाले के लिये पृथिवी फट क्यों नहीं जाती, जिससे मैं उसी में समा जाऊँ। देखो! मेरे लिये प्राणों का मोह छोड़कर युद्ध के लिये तैयार हुए महारथी महाधनुर्धर जलसंध को सात्यकि ने मार दिया।

काम्बोजं निहतं दृष्ट्वा तथालम्बुषमेव च।
अन्यान् बहूंश्च सुहृदो जीवितार्थोऽद्य को मम॥ १७॥
सत्यं ते प्रतिजानामि सर्वशस्त्रभृतां वर।
इष्टापूर्तेन च शपे वीर्येण च सुतैरपि॥ १८॥
निहत्य तान् रणे सर्वान् पञ्चालान् पाण्डवैः सह।
शान्तिलब्धास्मि तेषां वा रणे गन्ता सलोकताम्॥ १९॥
सोऽहं तत्र गमिष्यामि यत्र ते पुरुषर्षभाः।
हता मदर्थे संग्रामे युध्यमानाः किरीटिना॥ २०॥

काम्बोजराज को, अलम्बुष को तथा और बहुतसे अपने मित्रों को मारा हुआ देखकर मेरा अब जीवित रहने का क्या प्रयोजन है? हे सारे शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ! मैं आपके सामने अपने अच्छे कर्मों, पराक्रम और पुत्रों की शपथ खाकर यह सच्ची प्रतिज्ञा करता हूँ कि पाँण्डवों के साथ उनसारे पाँचालों को युद्ध में मारकर यातो शान्ति को प्राप्त करूँगा या वहीं चला जाऊँगा, जहाँ मेरे मित्र गये हैं। मेरे लिये युद्धस्थल में अर्जुन से युद्ध करते हुए वे पुरुषश्रेष्ठ जहाँ गये हैं, मैं भी अब वहीं जाऊँगा।

न हीदानीं सहाया मे परीप्सन्त्यनुपस्कृताः।
श्रेयो हि पाण्डून् मन्यन्ते न तथास्मान् महाभुज॥ २१॥
स्वयं हि मृत्युर्विहितः सत्यसंधेन संयुगे।
भवानुपेक्षां कुरुते शिष्यत्वादर्जुनस्य हि॥ २२॥
अतो विनिहताः सर्वे येऽस्मज्जयचिकीर्षवः।
कर्णमेव तु पश्यामि सम्प्रत्यस्मज्जयैषिणम्॥ २३॥

हे महाबाहु! इस समय मेरे सहायक पूरीतरह से तैयार नहीं हैं। वे मेरी विजय की कामना नहीं करते हैं। वे पाण्डवों को जितना उत्तम समझते हैं, उतना हमें नहीं समझते हैं। सत्यसंध भीष्म ने युद्धक्षेत्र में अपनी मृत्यु का विधान स्वयं कर लिया। आप शिष्य होने के कारण अर्जुन की उपेक्षा करते हैं। इसलिये मेरी विजय को चाहने वाले सारे मारे गये। अब तो कर्ण ही मेरी विजय को चाहनेवाला है।

हतो जयद्रथश्चैव सौमदत्तिश्च वीर्यवान्।
अभीषाहाः शूरसेनाः शिबयोऽथ वसातयः॥ २४॥
सोऽहमद्य गमिष्यामि यत्र ते पुरुषर्षभाः।
हता मदर्थे संग्रामे युध्यमानाः किरीटिना॥ २५॥
न हि मे जीवितेनार्थस्तानृते पुरुषर्षभान्।
आचार्यः पाण्डुपुत्राणामनुजानातु नो भवान्॥ २६॥

जयद्रथ, पराक्रमी भूरिश्रवा, अभीषाह, शूरसेन, शिवि और वसातिदेशों के योद्धा मारे गये। येसारे पुरुषश्रेष्ठ मेरे लिये अर्जुन से युद्ध करते हुए, जहाँ गये हैं, आज मैंभी वहीं जाऊँगा। आप पाण्डुपुत्रों के आचार्य हैं। आप मुझे जाने की आज्ञा दीजिये।

द्रोणस्तु तद् वचः श्रुत्वा पुत्रस्य तव दुर्मनाः।
मुहूर्तमिव तद् ध्यात्वा भृशमार्तोऽभ्यभाषत॥ १॥
दुर्योधन किमेवं मां वाक्शरैरपि कृन्तसि।
अजय्यं सततं संख्ये ब्रुवाणं सव्यसाचिनम्॥ २॥
यं पुंसां त्रिषु लोकेषु सर्वशूरममंस्महि।
तस्मिन् निपतिते शूरे किं शेषं पर्युपास्महे॥ ३॥
यान् स्म तान् ग्लहते तात शकुनिः कुरुसंसदि।
अक्षान् न तेऽक्षा निशिता बाणास्ते शत्रुतापनाः॥ ४॥

तब आपके पुत्र के वचनों को सुनकर द्रोणाचार्य दुःखी होकर थोड़ी देरतक मन में सोचते रहे और फिर अत्यन्तपीड़ित होकर बोले कि अरे दुर्योधन! तू क्यों मुझे अपने वाणी के बाणों से काट रहा है। मैंने पहलेही लगातार कहा है कि अर्जुन युद्ध में अजेय है। जिन्हें हमलोग तीनोंलोकों के पुरुषों में अधिक शूरवीर मानते थे, उन्ही भीष्म के युद्धभूमि में गिराये जाने पर हम अब और किसका विश्वास करें? हे तात! उस समय कौरवों की सभा में शकुनि जिन पासों से खेल रहा था, वे पासे नहीं थे, अपितु शत्रु को संतप्त करनेवाले तीखे बाण थे।

त एते घ्नन्ति नस्तात विशिखाः पार्थचोदिताः।
तांस्तदाऽऽख्यायमानस्त्वं विदुरेण न बुद्धवान्॥ ५॥
यास्ता विजयतश्चापि विदुरस्य महात्मनः।
धीरस्य वाचो नाश्रौषीः क्षेमाय वदतः शिवाः॥ ६॥
तदिदं वर्तते घोरमागतं वैशसं महत्।
तस्यावमानाद् वाक्यस्य दुर्योधन कृते तव॥ ७॥
योऽवमन्य वचः पथ्यं सुहृदामाप्तकारिणाम्।
स्वमतं कुरुते मूढः स शोच्यो नचिरादिव॥ ८॥

हे तात! अर्जुन के द्वारा चलाये हुए तीखे बाण बनकर वे पासे अब हमें मार रहे हैं। विदुर जी ने उस समय यह बात कही थी, पर तुमने उसे समझा नहीं। धैर्यवान् महात्मा विदुर ने तुम्हारे कल्याण के लिये मंगलमय बातें कहीं, पर विजय प्राप्त करते हुए तुमने उन्हें सुना नहीं। हे दुर्योधन! उनकी बातों के अनादर से ही तुम्हारे सामने यह भयंकर विनाश का समय प्राप्त हुआ है। जो व्यक्ति अपने हितैषी आप्तपुरुषों के हितकारी वचनों को न मानकर अपनी मनमानी करता है, वह मूर्ख जल्दी ही शोचनीय अवस्था को प्राप्त होजाता है।

यच्च नःप्रेक्षमाणानां कृष्णमानाय्य तत्सभाम्।
अनर्हन्तीं कुले जातां सर्वधर्मानुचारिणीम्॥ ९॥
तस्याधर्मस्य गान्धारे फलं प्राप्तमिदं महत्।
नो चेत् पापं परे लोके त्वमर्च्छेथास्ततोऽधिकम्॥ १०॥
यच्च तान् पाण्डवान् द्यूते विषमेण विजित्य ह।
प्राव्राजयस्तदारण्ये रौरवाजिनवाससः॥ ११॥
पुत्राणामिव चैतेषां धर्ममाचरतां सदा।
द्रुह्येत् को नु नरो लोके मदन्यो ब्राह्मणब्रुवः॥ १२॥

और उस समय जो हमलोगों के देखते हुए उच्च कुल में जन्मी, सारे धर्मों का पालन करनेवाली द्रौपदी को सभा में बुलाकर उसका अपमान किया गया, जिसके योग्य वह नहीं थी। हे गान्धारीपुत्र! उसी पाप का यह महान् फल अब प्राप्त हुआ है। यदि यह फल तुम्हें अब नहीं मिलेगा तो तुम्हें परलोक में जाकर इससे और अधिक दुःखदायी फल भोगना पड़ेगा। तुमने उन पाण्डवों को धोखे से जूए में जीतकर और उन्हें रुरुमृग के चमड़े के वस्त्र पहनाकर जो वन में भेज दिया, यह उस पाप का भी फल है। धर्म का सदा आचरण करनेवाले पाण्डव मेरे पुत्र के समान हैं, पर मेरे सिवाय संसार में कौन दूसरा व्यक्ति है, जो ब्राह्मण होकर भी उनसे द्रोह कर रहा है।

पाण्डवानामयं कोपस्त्वया शकुनिना सह।
आहृतो धृतराष्ट्रस्य सम्मते कुरुसंसदि॥ १३॥
दुःशासनेन संयुक्तः कर्णेन परिवर्धितः।
क्षत्तुर्वाक्यमनादृत्य त्वयाभ्यस्तः पुनः पुनः॥ १४॥
यत्ताः सर्वे पराभूताः पर्यवारयतार्ऽजुनम्।
सिन्धुराजानमाश्रित्य स वो मध्ये कथं हतः॥ १५॥
कथं त्वयि च कर्णे च कृपे शल्ये च जीवति।
अश्वत्थाम्नि च कौरव्य निधनं सैन्धवोऽगमत्॥ १६॥

तुमने धृतराष्ट्र की सम्मति से शकुनि से मिलकर कौरवों की सभा में पाण्डवों के क्रोध को बुला लिया। दुश्शासन से मिलकर कर्ण के द्वारा उस को बढ़ाया गया। तुमने विदुर के वाक्यों का अनादरकर उस क्रोध को बढ़ने का अवसर दिया। तुम सबने सावधान होकर अर्जुन को घेर लिया था। तुमने सिन्धुराज को आश्रय दिया था, फिर वह तुम्हारे,

बीच में कैसे मारा गया? हे कौरव्य! तुम्हारे, कर्ण के, कृपाचार्य के, शल्य के, और अश्वत्थामा के जीतेजी सिन्धुराज मृत्यु को कैसे प्राप्त हो गया?

युध्यन्तः सर्वराजानस्तेजस्तिग्ममुपासते।
सिन्धुराजं परित्रातुं स वो मध्ये कथं हतः॥ १७॥
मय्येव हि विशेषण तथा दुर्योधन त्वयि।
आशंसत परित्राणमर्जुनात् स महीपतिः॥ १८॥
तन्मां किमभितप्यन्तं वाक्शरैरेव कृन्तसि।
अशक्तः सिन्धुराजस्य भूत्वा त्राणाय भारत॥ १९॥
मध्ये महारथानां च यत्राहन्यत सैन्धवः।
हतो भूरिश्रवाश्चैव किं शेषं तत्र मन्यसे॥ २०॥

सिन्धुराज की रक्षा हेतु युद्ध करते हुए राजालोग प्रचण्ड तेज को धारण किये हुए थे, फिर वह तुम्हारे बीच में कैसे मारा गया? हे दुर्योधन! जयद्रथ मेरे ऊपरही और विशेषकर तुम्हारे ऊपर अपनी सुरक्षा की आशा किये हुए था। हे भारत! तुम स्वयं सिन्धुराज की रक्षा में असमर्थ होकर संतप्त होते हुए मुझे अपने वचनरूपी बाणों से क्यों काट रहे हो? जब महारथियों के बीच में जयद्रथ और भूरिश्रवा मारे गये, तब तुम किसको बचा हुआ मान रहे हो?

नाहत्वा सर्वपञ्चालान् कवचस्य विमोक्षणम्।
कर्तास्मि समरे कर्म धार्तराष्ट्र हितं तव॥ २१॥
राजन् ब्रूयाः सुतं मे त्वमश्वत्थामानमाहवे।
न सोमकाः प्रमोक्तव्या जीवितं परिरक्षता॥ २२॥
यच्च पित्रानुशिष्टोऽसि तद् वचः परिपालय।
आनृशंस्ये दमे सत्ये चार्जवे च स्थिरो भव॥ २३॥
धर्मार्थकामकुशलो धर्मार्थावप्यपीडयन्।
धर्मप्रधानकार्याणि कुर्याश्चेति पुनः पुनः॥ २४॥

हे धृतराष्ट्रपुत्र! अब मैं युद्धक्षेत्र में तुम्हारी भलाई का ही कार्य करूँगा। मैं सारे पाँचालों को मारेबिना अपना कवच नहीं उतारूँगा। हे राजन्! मेरे पुत्र अश्वत्थामा से जाकर कह दो कि युद्धक्षेत्र में अपने जीवन की रक्षा करते हुए तुम्हें सोमकों को जीवित नहीं छोड़ना है। तुम्हें जो पिता ने उपदेश दिया है, उसका पालन करो। दया, दम, सत्य और कोमलता में स्थिर रहना। धर्म, अर्थ और काम में कुशल बनो। धर्म और अर्थ की हानि न करते हुए धर्म कार्यों को बार बार करो।

चक्षुर्मनोभ्यां संतोष्या विप्राः पूज्याश्च शक्तितः।
न चैषां विप्रियं कार्यं ते हि वह्निशिखोपमाः॥ २५॥
एष त्वहमनीकानि प्रविशाम्यरिसूदन।
रणाय महते राजंस्त्वया वाक्शरपीडितः॥ २६॥
त्वं च दुर्योधन बलं यदि शक्तोऽसि पालय।
रात्रावपि च योत्स्यन्ते संरब्धाः कुरुसृञ्जयाः॥ २७॥
एवमुक्त्वा ततः प्रायाद् द्रोणः पाण्डवसृञ्जयान्।
मुष्णन् क्षत्रियतेजांसि नक्षत्राणामिवांशुमान्॥ २८॥

अपनी आँखों और मन से ब्राह्मणों को सन्तुष्ट रखना, उनका यथाशक्ति सत्कार करना, उनका बुरा कभी मत करना। क्योंकि ये अग्निशिखा के समान होते हैं। हे शत्रुसूदन राजन्! तुम्हारे वचनरूपी बाणों से पीड़ित होकर मैं महान् युद्ध के लिये शत्रु की सेनाओं में प्रवेश कर रहा हूँ। हे दुर्योधन! यदि तुममें शक्ति है, तो अपनी सेना की रक्षा करो। क्रोध में भरे हुए कौरव और सृंजय अब रात में भी युद्ध करेंगे। जैसे सूर्य नक्षत्रों के तेज का अपहरण कर लेते हैं, वैसे ही क्षत्रियों के तेज का अपहरण करते हुए द्रोणाचार्य यह कहकर पाण्डवों और सृंजयों से युद्ध करने के लिये चल दिये।

इक्यानवेंवाँ अध्याय : दुर्योधन और कर्ण का वार्तालाप।

ततो दुर्योधनो राजा द्रोणेनैवं प्रचोदितः।
अमर्षवशमापन्नो युद्धायैव मनो दधे॥ १॥
अब्रवीच्च तदा कर्णं पुत्रो दुर्योधनस्तव।
पश्य कृष्णसहायेन पाण्डवेन किरीटिना॥ २॥
आचार्यविहितं व्यूहं भित्त्वा देवैः सुदुर्भिदम्।
तव व्यायच्छमानस्य द्रोणस्य च महात्मनः॥ ३॥
मिषतां योधमुख्यानां सैन्धवो विनिपातितः।
पश्य राधेय पृथ्वीशाः पृथिव्यां प्रवरा युधि॥ ४॥
पार्थेनैकेन निहताः सिंहेनेवेतरे मृगाः।

द्रोणाचार्य के द्वारा इसप्रकार प्रेरित किये जाने पर राजा दुर्योधन ने अमर्ष के वश में होकर युद्ध करने के लिये ही मन में निश्चय किया। तब आपके पुत्र ने कर्ण से कहा कि देखो कृष्ण की सहायता से किरीटधारी पाण्डुपुत्र ने आचार्य के द्वारा

बनाये गये देवों के लिये भी दुर्भेद्य व्यूह को तोड़कर तुम्हारे और महात्मा द्रोण के युद्ध में तत्पर रहने पर भी सारे प्रमुख योद्धाओं के देखते हुए ही सिन्धुराज जयद्रथ को गिरा दिया। देखो कर्ण! जैसे सिंह दूसरे छोटे पशुओं को मार डाले वैसेही अर्जुन द्वारा मारे हुए ये युद्ध में श्रेष्ठ पृथिवीपति, पृथिवी पर पड़े हुए हैं।

मम व्यायच्छमानस्य द्रोणस्य च महात्मनः॥ ५॥
अल्पावशेषं सैन्यं मे कृतं शक्रात्मजेन ह।
कथं नियच्छमानस्य द्रोणस्य युधि फाल्गुनः॥ ६॥
भिन्द्यात् सुदुर्भिदं व्यूहं यतमानोऽपि संयुगे।
प्रतिज्ञाया गतः पारं हत्वा सैन्धवमर्जुनः॥ ७॥
दयितः फाल्गुनो नित्यमाचार्यस्य महात्मनः।
ततोऽस्य दत्तवान् द्वारमयुद्धेनैव शत्रुहन्॥ ८॥

मेरे और महात्मा द्रोण के युद्ध में लगे रहने पर भी इन्द्रपुत्र ने मेरी थोड़ीसी सेना को ही जीवित छोड़ा है। द्रोणाचार्य के द्वारा पूरीतरह से यत्न करने पर अर्जुन प्रयत्न करने पर भी अत्यन्त दुर्भेद्य व्यूह को युद्ध में कैसे तोड़ सकते थे? अब तो सिन्धुराज को मारकर अर्जुन ने अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर ली। हे शत्रुसूदन! अर्जुन महात्मा द्रोणाचार्य का सदा से प्रिय रहा है, इसलिये उन्होंने उसे बिना युद्ध किये ही अन्दर जाने का मार्ग देदिया।

अभयं सिन्धुराजाय दत्त्वा द्रोणः परंतपः।
प्रादात् किरीटिने द्वारं पश्य निर्गुणतां मयि॥ ९॥
यद्यदास्यदनुज्ञां वै पूर्वमेव गृहान् प्रति।
प्रस्थातुं सिन्धुराजस्य नाभविष्यज्जनक्षयः॥ १०॥
जयद्रथो जीवितार्थी गच्छमानो गृहान् प्रति।
मयानार्येण संरुद्धो द्रोणात् प्राप्याभयं सखे॥ ११॥
अद्य मे भ्रातरः क्षीणाश्चित्रसेनादयो रणे।
भीमसेनं समासाद्य पश्यतां नो दुरात्मनाम्॥ १२॥

परंतप द्रोणाचार्य ने सिन्धुराज को अभय देकर भी अर्जुन पर कृपाकर उसे अन्दर आने का मार्ग देदिया। देखो मेरे अन्दर कितनी गुणहीनता है? यदि वे पहलेही सिन्धुराज को घर जाने की आज्ञा दे देते तो इतना बड़ा जनसंहार नहीं होता। हे सखे! जयद्रथ जीवित रहने का इच्छुक था और घर जाना चाहता था, पर द्रोणाचार्य से अभय प्राप्तकर मुझ अनार्य ने उसे रोक लिया। आज मेरे चित्रसेन आदि भाई भी हम दुष्टों के देखते हुएही भीमसेन से लड़ते हुए युद्धक्षेत्र में मारे गये।

कर्ण उवाच

आचार्यं मा विगर्हस्व शक्त्यासौ युध्यते द्विजः।
यथाबलं यथोत्साहं त्यक्त्वा जीवितमात्मनः॥ १३॥
यद्येनं समतिक्रम्य प्रविष्टः श्वेतवाहनः।
नात्र सूक्ष्मोऽपि दोषः स्यादाचार्यस्य कथंचन॥ १४॥

तब कर्ण ने कहा कि तुम आचार्य की निन्दा मत करो। ये ब्राह्मण अपने बल और उत्साह के अनुसार अपने प्राणों का मोह छोड़कर पूरी शक्ति से लड़ते हैं। यदि उनका उल्लंघनकर श्वेतवाहन अर्जुन व्यूह में घुस गये तो इसमें आचार्य का किसी प्रकार का छोटासा भी दोष नहीं है।

कृती दक्षो युवा शूरः कृतास्त्रो लघुविक्रमः ।
दिव्यास्त्रयुक्तमास्थाय रथं वानरलक्षणम्॥ १५॥
कृष्णेन च गृहीताश्वमभेद्यकवचावृतः।
गाण्डीवमजरं दिव्यं धनुरादाय वीर्यवान्॥ १६॥
प्रवर्षन् निशितान्! बाणान् बाहुद्रविणदर्पितः।
यदर्जुनोऽभ्ययाद् द्रोणमुपपन्नं हि तस्य तत्॥ १७॥
आचार्यः स्थविरो राजञ्शीघ्रयाने तथाक्षमः।
बाहुव्यायामचेष्टायामशक्तस्तु नराधिप॥ १८॥

अर्जुन कर्मठ, चतुर, युवा, शूरवीर, अस्त्रविद्या निष्णात और फुर्ती से पराक्रम दिखानेवाला है। कठिनाई से भेदन किये जासकनेवाले कवच को बाँधकर, जिसके घोड़ों का संचालन कृष्ण करते हैं, उस वानर की ध्वजावाले दिव्यास्त्रों से युक्त रथ पर बैठकर, नष्ट न किये जासकनेवाले अलौकिक गाण्डीवधनुष को लेकर, भुजाओं के बल के अभिमानी, पराक्रमी अर्जुन ने तीखे बाणों की वर्षा करते हुए जो द्रोणाचार्य का उल्लंघन कर लिया, यह उसके अनुरूप ही कर्म था। हे नराधिप! राजन्! द्रोणाचार्य बूढ़े हैं, जल्दी चलने में असमर्थ हैं और हाथों के परिश्रम से की जानेवाली चेष्टाओं से भी शक्तिहीन हैं।

तेनैवमभ्यतिक्रान्तः श्वेताश्वः कृष्णसारथिः।
तस्य दोषं न पश्यामि द्रोणस्यानेन हेतुना॥ १९॥
अजय्यान् पाण्डवान् मन्ये द्रोणेनास्त्रविदा मृधे।
तथा ह्येनमतिक्रम्य प्रविष्टः श्वेतवाहनः॥ २०॥

इसलिये कृष्णसारथि और श्वेतवाहन अर्जुन ने उनका अतिक्रमण कर लिया, अतः मैं द्रोणाचार्य का कोई दोष नहीं मानता। मैं तो ऐसा मानता हूँ कि अस्त्रवेत्ता द्रोणाचार्य के लिये पाण्डव युद्ध में अजेय हैं। इसलिये उन्हें लाँघकर अर्जुन व्यूह में घुस गये।

दैवादिष्टेऽन्यथाभावो न मन्ये विद्यते क्वचित्।
यतो नो युध्यमानानां परं शक्त्या सुयोधन॥ २१॥
सैन्धवो निहतो युद्धे दैवमत्र परं स्मृतम्।
परं यत्नं कुर्वतां च त्वया सार्धं रणाजिरे॥ २२॥
हत्वास्माकं पौरुषं वै दैवं पश्चात् करोति नः।
सततं चेष्टमानानां निकृत्या विक्रमेण च॥ २३॥

मैं समझता हूँ कि परमात्मा की इच्छा के विपरीत कहीं कुछभी नहीं होता। क्योंकि हे दुर्योधन! हमारे पूरी शक्ति से युद्ध करते हुएभी जो युद्ध में जयद्रथ मारा गया, इसमें परमात्मा की इच्छा ही प्रधान माननी चाहिये। हम युद्धक्षेत्र में आपके साथ पराक्रम से और छलकपट से भी विजय के लिये लगातार चेष्टा करते हैं, पूरा प्रयत्न करते हैं, पर परमात्मा की इच्छा हमारे पुरुषार्थ को नष्टकर हमें पीछे ढकेल देती है।

निकृत्या वञ्चिताः पार्था विषयोगैश्च भारत।
दग्धा जतुगृहे चापि द्यूतेन च पराजिताः॥ २४॥
राजनीतिं व्यपाश्रित्य प्रहिताश्चैव काननम्।
यत्नेन च कृतं तत्तद् दैवेन विनिपातितम्॥ २५॥

हे भारत! पाण्डव कपटपूर्वक छले गये। उन्हें विष दिया गया, लाक्षागृह में जलाकर जूए में हराया गया, राजनीति का सहारा लेकर वन में भी भेजा गया। हमने प्रयत्नपूर्वक जो जो कार्य किये, उन्हें परमात्मा की इच्छा ने नष्ट कर दिया।

युध्यस्व यत्नमास्थाय दैवं कृत्वा निरर्थकम्।
यततस्तव तेषां च दैवं मार्गेण यास्यति॥ २६॥
बहूनि तव सैन्यानि योधाश्च बहवस्तव।
न तथा पाण्डुपुत्राणामेवं युद्धमवर्तत॥ २७॥
तैरल्पैर्बहवो यूयं क्षयं नीताः प्रहारिणः।
शङ्के दैवस्य तत् कर्म पौरुषं येन नाशितम्॥ २८॥

पर फिर भी तुम परमात्मा की इच्छा पर ध्यान न देकर यत्नपूर्वक युद्ध करो। तुम्हारे और पाण्डवों के प्रयत्न करते रहने पर परमात्मा की इच्छा अपने अनुसार कार्य करती रहेगी। जब युद्ध आरम्भ हुआ था, तब तुम्हारे पास सेना अधिक थी और योद्धा लोग भी तुम्हारे पास अधिक थे, उतने पाण्डवों के पास नहीं थे। उन अल्पसंख्यकों ने तुम प्रहार करनेवाले बहुसंख्यकों को कम कर दिया है। मुझे आशंका है कि इसमें परमात्मा की इच्छा का ही कार्य है, जिसने हमारे पौरुष को नष्ट कर दिया।

बानवेंवाँ अध्याय : युधिष्ठिर और दुर्योधन के युद्ध में दुर्योधन की पराजय।

संजय उवाच

तदुदीर्णं गजानीकं बलं तव जनाधिप।
पाण्डुसेनामतिक्रम्य योधयामास सर्वतः॥ १॥
पञ्चालाः कुरवश्चैव योधयन्तः परस्परम्।
यमराष्ट्राय महते परलोकाय दीक्षिताः॥ २॥
शूराः शूरैः समागम्य शरतोमरशक्तिभिः।
विव्यधुः समरेऽन्योन्यं निन्युश्चैव यमक्षयम्॥ ३॥
रथिनां रथिभिः सार्धं रुधिरस्रावदारुणम्।
प्रावर्तत महद् युद्धं निघ्नतामितरेतरम्॥ ४॥

संजय ने कहा कि हे प्रजा के स्वामी! आपकी प्रचण्ड हाथियों की सेना, पाण्डवसेना का अतिक्रमण कर सबतरफ युद्ध करने लगी। पाँचाल और कौरव सैनिक मृत्यु के विशाल देश परलोक में जाने की दीक्षा लेकर परस्पर युद्ध करने लगे। युद्धभूमि में शूरवीरलोग दूसरे शूरवीरों से भिड़कर बाण, तोमर और शक्तियों के द्वारा एकदूसरे को काटते हुए मृत्युलोक में पहुँचाने लगे। एकदूसरे को मारते हुए रथियों का रथियों के साथ, रक्त की धारा बहाने वाला दारुणयुद्ध चलने लगा।

वारणाश्च महाराज समासाद्य परस्परम्।
विषाणैर्दारयामासुः सुसंक्रुद्धा मदोत्कटाः॥ ५॥
हयारोहान् हयारोहाः प्रासशक्तिपरश्वधैः।
बिभिदुस्तुमुले युद्धे प्रार्थयन्तो महद् यशः॥ ६॥
पत्तयश्च महाबाहो शतशः शस्त्रपाणयः।

अन्योन्यमार्दयन् राजन् नित्यं यत्ताः पराक्रमे॥ ७॥
गोत्राणां नामधेयानां कुलानां चैव मारिष।
श्रवणाद्धि विजानीमः पञ्चालान् कुरुभिः सह॥ ८॥

हे महाराज! अत्यन्तक्रुद्ध और मदोत्कट हाथी एकदूसरे पर आक्रमणकर उन्हें दाँतों के प्रहार से विदीर्ण करने लगे। महान् यश की कामना करते हुए घुड़सवार, प्रास, शक्ति और फरसों से दूसरे घुड़सवारों को उस महान् युद्ध में काटने लगे। हे महाबाहु! राजन्! सैकड़ों पैदलसैनिक पराक्रम दिखाने में सदा प्रयत्नशील, हथियार हाथ में लेकर एकदूसरे का मर्दन करने लगे। हे मान्यवर! उस समय कौरवों के साथ लड़ते हुए पाँचालों को हम (अँधेरा होने के कारण) गोत्र, नाम और कुलों का परिचय सुनकर ही पहचान पाते थे।

तेऽन्योन्यं समरे योधाः शरशक्तिपरश्वधैः।
प्रैषयन् परलोकाय विचरन्तो ह्यभीतवत्॥ ९॥
तथा प्रयुध्यमानेषु पाण्डवेयेषु भारत।
दुर्योधनो महाराज व्यवागाहत तद् बलम्॥ १०॥
सैन्धवस्य वधेनैव भृशं दुःखसमन्वितः।
मर्तव्यमिति संचिन्त्य प्राविशच्च द्विषद्बलम्॥ ११॥
रुक्मपुङ्खैः प्रसन्नाग्रैस्तव पुत्रेण धन्विना।
अर्द्यमानाः शरैस्तूर्णं न्यपतन् पाण्डुसैनिकाः॥ १२॥

वे योद्धालोग बाण, शक्ति और फरसों से एक दूसरे को परलोक भेजते हुए निर्भय होकर समरभूमि में विचरण कर रहे थे। हे भरतवंशी महाराज! जब पाण्डवयोद्धा इसप्रकार से युद्ध कर रहे थे तब दुर्योधन ने उनकी सेना में प्रवेश किया। सिन्धुराज की मृत्यु के कारण वह अत्यन्त दुःख से युक्त हो रहा था और मुझे मरना है, यह सोचकर वह शत्रुसेना में प्रविष्ट हुआ था। तब आपके धनुर्धरपुत्र के द्वारा चलाये गये सुनहरे पंखवाले, तथा तीखी धारवाले बाणों से पीड़ित होते हुए पाण्डवसैनिक जल्दीही धराशाही होने लगे।

न तादृशं रणे कर्म कृतवन्तस्तु तावकाः।
यादृशं कृतवान् राजा पुत्रस्तव विशाम्पते॥ १३॥
पुत्रेण तव सा सेना पाण्डवी मथिता रणे।
नलिनी द्विरदेनेव समन्तात् फुल्लपङ्कजा॥ १४॥
क्षीणतोयानिलार्काभ्यां हतत्विडिव पद्मिनी।
बभूव पाण्डवी सेना तव पुत्रस्य तेजसा॥ १५॥
पाण्डुसेनां हतां दृष्ट्वा तव पुत्रेण भारत।
भीमसेनपुरोगास्तु पञ्चालाः समुपाद्रवन्॥ १६॥

हे प्रजानाथ! आपके सैनिकों ने वैसा पराक्रम कभी नहीं दिखाया था, जैसा तब आपके पुत्र ने प्रकट किया। आपके पुत्र ने पाण्डवों की सेना युद्ध में, ऐसे मथ दी, जैसे फूले कमलों से भरी हुई पोखरी को कोई हाथी मथ दे। जैसे वायु और सूर्य की किरणों के द्वारा पानी के सूख जाने पर पद्मिनी की कान्ति नष्ट होजाती है, वैसेही आपके पुत्र के तेज से उस समय पाण्डवों की सेना होगयी। हे भारत! तब पाण्डवों की सेना को आपके पुत्र के द्वारा मारा जाता हुआ देखकर पाँचालों ने भीम को आगेकर उस पर आक्रमण किया।

स भीमसेनं दशभिर्माद्रीपुत्रौ त्रिभिस्त्रिभिः।
विराटद्रुपदौ षड्भिः शतेन च शिखण्डिनम्॥ १७॥
धृष्टद्युम्नं च सप्तत्या धर्मपुत्रं च सप्तभिः।
केकयांश्चैव चेदींश्च बहुभिर्निशितैः शरैः॥ १८॥
सात्वतं पञ्चभिर्विद्ध्वा द्रौपदेयांस्त्रिभिस्त्रिभिः।
घटोत्कचं च समरे विद्ध्वा सिंह इवानदत्॥ १९॥
शतशश्चापरान् योधान् सद्विपांश्च महारणे।
शरैरवचकर्तोग्रैः क्रुद्धोऽन्तक इव प्रजाः॥ २०॥

तब उसने भीमसेन पर दस, नकुल और सहदेव पर तीन तीन, विराट और द्रुपद पर छः, शिखण्डी पर सौ, धृष्टद्युम्न पर सत्तर और युधिष्ठिर पर सात, और केकय और चेदिदेश के वीरों पर बहुतसारे तीखे बाणों की वर्षा की। उसने सात्यकि को पाँच तथा द्रौपदीपुत्रों को तीन, घटोत्कच को तीन बाणों से बींधकर सिंह के समान गर्जना की। क्रुद्ध दुर्योधन ने अपने तीखे बाणों से उस महान् युद्ध में दूसरे सैकड़ों हाथियोंसहित वीरों को भी ऐसे काट दिया, जैसे मृत्यु प्रजाओं का विनाश करती है।

तं तपन्तमिवादित्यं कुरुराजं महाहवे।
नाशकन् वीक्षितुं राजन् पाण्डुपुत्रस्य सैनिकाः॥ २१॥
ततो युधिष्ठिरो राजा कुपितो राजसत्तम।
अभ्यधावत् कुरुपतिं तव पुत्रं जिघांसया॥ २२॥
तावुभौ युधि कौरव्यौ समीयतुररिंदमौ।
स्वार्थहेतोः पराक्रान्तौ दुर्योधनयुधिष्ठिरौ॥ २३॥

हे राजन्! जैसे तपते हुए सूर्य की तरफ देखना कठिन है, वैसेही उस महान् युद्ध में पराक्रम करते

हुए कुरुराज की तरफ पाण्डवसैनिकों के लिये देखना कठिन होगया। हे राजश्रेष्ठ! तब राजा युधिष्ठिर क्रोध में भरकर आपके पुत्र कुरुपति को मारने की इच्छा से उसकी तरफ दौड़े। युद्ध में वेदोनों शत्रुदमन पराक्रमी कुरुवंशी दुर्योधन और युधिष्ठिर अपने अपने स्वार्थ के लिये एकदूसरे से भिड़ गये।

ततो दुर्योधनः क्रुद्धः शरैः संनतपर्वभिः।
विव्याध दशभिस्तूर्णं ध्वजं चिच्छेद चेषुणा॥ २४॥
इन्द्रसेनं त्रिभिश्चैव ललाटे जघ्निवान् नृप।
सारथिं दयितं राज्ञः पाण्डवस्य महात्मनः॥ २५॥
धनुश्च पुनरन्येन चकर्तास्य महारथः।
चतुर्भिश्चतुरश्चैव बाणैर्विव्याध वाजिनः॥ २६॥
ततो युधिष्ठिरः क्रुद्धो निमेषादिव कार्मुकम्।
अन्यदादाय वेगेन कौरवं प्रत्यवारयत्॥ २७॥

तब क्रोधित दुर्योधन ने शीघ्रता से झुकी गाँठवाले दस बाणों से युधिष्ठिर को घायल कर दिया और एक बाण से उनके ध्वज को काट दिया। हे राजन्! उसने मनस्वी पाण्डवराजा के प्रिय सारथि इन्द्रसेन के सिर पर भी तीन बाणोंा से प्रहार किया। उस महारथी ने फिर दूसरे बाण से उनके धनुष को काट दिया और चार बाणों से उनके चारों घोड़ों को बींध दिया। तब क्रुद्ध युधिष्ठिर ने पलभर में ही दूसरे धनुष को लेकर वेगपूर्वक दुर्योधन को रोका।

तस्य तान् निघ्नतः शत्रून् रुक्मपृष्ठं महद् धनुः।
भल्लाभ्यां पाण्डवो ज्येष्ठस्त्रिधा चिच्छेद मारिष॥ २८॥
विव्याध चैनं दशभिः सम्यगस्तैः शितैः शरैः।
ततो युधिष्ठिरो राजा तव पुत्रस्य मारिष॥ २९॥
शरं च सूर्यरश्म्याभमत्युग्रमनिवारणम्।
हा हतोऽसीति राजानमुक्त्वामुञ्चद् युधिष्ठिरः॥ ३०॥
स तेनाकर्णमुक्तेन विद्धो बाणेन कौरवः।
निषसाद रथोपस्थे भृशं सम्मूढचेतनः॥ ३१॥

हे मान्यवर! शत्रुओं को मारने में लगे हुए उस दुर्योधन के सुनहरी पीठवाले विशाल धनुष को ज्येष्ठ पाण्डव युधिष्ठिर ने दो भल्लों से तीन टुकड़ों में काट दिया। फिर ठीकप्रकार से फैंके हुए दस तीखे बाणों से उन्होंने उसे घायल कर दिया। हे मान्यवर! तब राजा युधिष्ठिर ने आपके पुत्र पर सूर्य की किरणों के समान चमकवाला बहुततीखा और निवारण न करनेयोग्य बाण, हाय तुम मारे गये, यह कहकर चलाया। कान तक धनुष को खींचकर छोड़े गये उस बाण से बिंधकर दुर्योधन अत्यन्त मूर्च्छित होकर रथ की बैठक में बैठ गया।

ततः पाञ्चाल्यसेनानां भृशमासीद् रवो महान्।
हतो राजेति राजेन्द्र मुदितानां समन्ततः॥ ३२॥
अथ द्रोणो द्रुतं तत्र प्रत्यदृश्यत संयुगे।
हृष्टो दुर्योधनश्चापि दृढमादाय कार्मुकम्॥ ३३॥
तिष्ठ तिष्ठेति राजानं ब्रुवन् पाण्डवमभ्ययात्।
प्रत्युद्ययुस्तं त्वरिताः पञ्चाला जयगृद्धिनः॥ ३४॥
तान् द्रोणः प्रतिजग्राह परीप्सन् कुरुसत्तमम्।
चण्डवातोद्धुतान् मेघान् निघ्नन् रश्मिमुचो यथा॥ ३५॥

हे राजेन्द्र! तब प्रसन्न हुए पांचाल सैनिकों में चारों तरफ राजा मारा गया ऐसा कहते हुए महान् कोलाहल हुआ। तभी द्रोणाचार्य वहाँ युद्धस्थल में दिखायी दिये। तब दुर्योधन ने भी प्रसन्न होकर और दृढ़ धनुष को लेकर ठहरो, ठहरो। यह कहते हुए पाण्डुपुत्र राजा युधिष्ठिर पर आक्रमण किया। तब विजय के इच्छुक पाँचालवीर भी उसका सामना करने के लिये आगे बढ़े। द्रोणाचार्य ने कुरुश्रेष्ठ दुर्योधन की रक्षा की इच्छा करते हुए तब उन्हें उसीप्रकार नष्ट कर दिया जैसे प्रचण्ड वायु के द्वारा उठाये हुए बादलों को सूर्य किरणों से कर देते हैं।

तिरानवेंवाँ अध्याय : द्रोणाचार्य द्वारा शिवि का तथा भीमसेन द्वारा कलिंग राजकुमार ध्रुव, जयरात तथा धृतराष्ट्र के दो पुत्रों का वध।

रात्रियुद्धे तदा राजंन् वर्तमाने सुदारुणे।
द्रोणमभ्यद्रवन् सर्वे पाण्डवाः सह सोमकैः॥ १॥
ततो द्रोणः केकयांश्च धृष्टद्युम्नस्य चात्मजान्।
सम्प्रैषयत् प्रेतलोकं सर्वानिषुभिराशुगैः॥ २॥
तस्य प्रमुखतो राजन् येऽवर्तन्त महारथाः।
तान् सर्वान् प्रेषयामास पितृलोकं स भारत॥ ३॥

प्रमन्थन्तं तदा वीरान् भारद्वाजं महारथम्।
अभ्यवर्तत संक्रुद्धः शिबी राजा प्रतापवान्॥ ४॥

हे राजन्! तब अत्यन्तभयंकर रात्रियुद्ध के चलने पर सारे पाण्डवों ने सोमकों के साथ द्रोणाचार्य पर आक्रमण किया। द्रोणाचार्य ने केकयों और धृष्टद्युम्न के सारे पुत्रों को शीघ्रगामी बाणों के द्वारा परलोक में भेज दिया। हे भरतवंशी राजन्! उनके सामने जो भी प्रमुख महारथी उस समय गये, सबको उन्होंने मार दिया। तब वीरों का विनाश करते हुए महारथी द्रोणाचार्य पर प्रतापी राजा शिवि ने अत्यन्त क्रोध में भरकर आक्रमण किया।

तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य पाण्डवानां महारथम्।
विव्याध दशभिर्बाणैः सर्वपारशवैः शितैः॥ ५॥
तं शिबिः प्रतिविव्याध त्रिंशता निशितैः शरैः।
सारथिं चास्य भल्लेन स्मयमानो न्यपातयत्॥ ६॥
तस्य द्रोणो हयान् हत्वा सारथिं च महात्मनः।
अथास्य सशिरस्त्राणं शिरः कायादपाहरत्॥ ७॥
ततोऽस्य सारथिं क्षिप्रमन्यं दुर्योधनोऽदिशत्।
स तेन संगृहीताश्वः पुनरभ्यद्रवद् रिपून्॥ ८॥

पाण्डवों के उस महारथी को आक्रमण करते देखकर द्रोणाचार्य ने दस लोहे के बने तीखे बाणों से उस पर प्रहार किया; तब शिवि ने तीस तीखे बाणों की उन पर बदले में वर्षा की और मुस्कराते हुए उनके सारथि को भल्ल के द्वारा गिरा दिया। तब द्रोणाचार्य ने उन मनस्वी के घोड़ों और सारथि को मारकर उनके शिरस्त्राणसहित सिर को उनके शरीर से अलग कर दिया। फिर दुर्योधन ने तुरन्त द्रोणाचार्य के लिये दूसरे सारथी का आदेश दिया। उसके द्वारा घोड़ों को सँभाल लेने पर द्रोणाचार्य ने पुनः शत्रुओं पर आक्रमण किया।

कलिङ्गानामनीकेन कालिङ्गस्य सुतो रणे।
पूर्वं पितृवधात् क्रुद्धो भीमसेनमुपाद्रवत्॥ ९॥
स भीमं पञ्चभिर्विद्ध्वा पुनर्विव्याध सप्तभिः।
विशोकं त्रिभिरानर्च्छद् ध्वजमेकेन पत्रिणा॥ १०॥
कलिङ्गानां तु तं शूरं क्रुद्धं क्रुद्धो वृकोदरः।
रथाद् रथमभिद्रुत्य मुष्टिनाभिजघान ह॥ ११॥

फिर पहले अपने पिता के वध से क्रुद्ध कलिंगराज के पुत्र ने कलिंगदेश की सेना के साथ युद्धस्थल में भीम पर आक्रमण किया। उसने भीम को पाँच बाणों से बींधकर फिर सात बाणों से बींधा। उसने भीम के सारथि विशोक को तीन बाणों से पीड़ित किया और एक बाण से उनकी ध्वजा को काटा। तब क्रोध में भरे कलिंगदेशीय उस शूरवीर को क्रोध में भरे भीम ने अपने रथ से उसके रथपर कूद कर घूँसे से मार दिया।

तं कर्णो भ्रातरश्चास्य नामृष्यन्त परंतप।
ते भीमसेनं नाराचैर्जघ्नुराशीविषोपमैः॥ १२॥
ततः शत्रुरथं त्यक्त्वा भीमो ध्रुवरथं गतः।
ध्रुवं चास्यन्तमनिशं मुष्टिना समपोथयत्॥ १३॥
तं निहत्य महाराज भीमसेनो महाबलः।
जयरातरथं प्राप्य मुहुः सिंह इवानदत्॥ १४॥
जयरातमथाक्षिप्य नदन् सव्येन पाणिना।
तलेन नाशयामास कर्णस्यैवाग्रतः स्थितः॥ १५॥

हे परंतप! कर्ण और उसके भाई भीम के इस पराक्रम को न सह सके। उन्होंने विषैले सर्पों के समान नाराचों से उन पर प्रहार किया। तब भीम शत्रु के उस रथ को छोड़कर ध्रुव के रथ पर जा चढ़े और लगातार बाणों की वर्षा करते हुए ध्रुव को भी घूँसे की मार से मार दिया। हे महाराज! फिर महाबली भीम उसे मारकर जयरात के रथ पर जा पहुँचे और बार बार सिंह के समान गर्जने लगे। गर्जना करते हुए उन्होंने बाएँ हाथ से जयरात को झटका देकर उसे थप्पड़ की चोट से मार दिया और फिर वे कर्ण के सामने जाकर खड़े होगये।

कर्णस्तु पाण्डवे शक्तिं काञ्चनीं समवासृजत्।
यतस्तामेव जग्राह प्रहसन् पाण्डुनन्दनः॥ १६॥
कर्णायैव च दुर्धर्षश्चिक्षेपाजौ वृकोदरः।
तामापतन्तीं चिच्छेद शकुनिस्तैलपायिना॥ १७॥
एतत् कृत्वा महत् कर्म रणेऽद्भुतपराक्रमः।
पुनः स्वरथमास्थाय दुद्राव तव वाहिनीम्॥ १८॥
तमायान्तं जिघांसन्तं भीमं क्रुद्धमिवान्तकम्।
न्यवारयन् महाबाहुं तव पुत्रा विशाम्पते॥ १९॥
महता शरवर्षेण च्छादयन्तो महारथाः।

कर्ण ने उस पाण्डुपुत्र पर एक सुनहरी शक्ति को फैंका। पर पाण्डुनन्दन ने हँसते हुए उस शक्ति को सावधानी से पकड़ लिया। दुर्धर्ष भीम ने युद्ध में उस शक्ति को कर्ण के ही ऊपर फैंक दिया। पर उस आती हुई शक्ति को शकुनि ने तेल पीने

वाले बाण से काट दिया। युद्ध में यह महान् कर्म करके अद्भुत पराक्रमवाले भीम फिर अपने रथ पर आबैठे और आपकी सेना को खदेड़ने लगे। हे प्रजानाथ! उन आते हुए और मृत्यु के समान क्रोध में भरे हुए शत्रुवध के इच्छुक महाबाहु भीम को आपके पुत्रों ने रोका। वे महारथी महान् बाणवर्षा के द्वारा इन्हें आच्छादित कर रहे थे।

दुर्मदस्य ततो भीमः प्रहसन्निव संयुगे॥ २०॥
सारथिं च हयांश्चैव शरैर्निन्ये यमक्षयम्।
ततस्तु दुर्मदश्चैव दुष्कर्णश्च तवात्मजौ॥ २१॥
रथमेकं समारुह्य भीमं बाणैरविध्यताम्।
ततः कर्णस्य मिषतो द्रौणेर्दुर्योधनस्य च॥ २२॥
कृपस्य सोमदत्तस्य बाह्लीकस्य च पाण्डवः।
तत्र सुतौ ते बलिनौ शूरौ दुष्कर्णदुर्मदौ।
मुष्टिनाऽऽहत्य संक्रुद्धो ममर्द च ननर्द च॥ २३॥

तब भीम ने मुस्कराते हुए दुर्मद के सारथि और घोड़ों को बाणों से मृत्युलोक में पहुँचा दिया। तब दुर्मद और दुष्कर्ण आपके इनदोनों पुत्रों ने एक रथ पर बैठकर भीम को बाणों से बींधा। तब कर्ण, अश्वत्थामा, दुर्योधन, कृपाचार्य, सोमदत्त और बाह्लीक के देखते हुए आपके उनदोनों शूरवीर और बलवान् दुष्कर्ण और दुर्मद नाम के पुत्रों को क्रोध में भरे हुए पाण्डव भीम ने घूँसे की मार से मसल डाला और वे जोर जोर से गर्जना करने लगे।

चौरानवेंवाँ अध्याय : सोमदत्त की सात्यकि से हार। घटोत्कच, अश्वत्थामा युद्ध। अश्वत्थामा से घटोत्कच के पुत्र और द्रुपद के पुत्रों का वध।

प्रायोपविष्टे तु हते पुत्रे सात्यकिना तदा।
सोमदत्तो भृशं क्रुद्धः सात्यकिं वाक्यमब्रवीत्॥ १॥
क्षत्रधर्मः पुरा दृष्टो यस्तु देवैर्महात्मभिः।
तं त्वं सात्वत संत्यज्य दस्युधर्मे कथं रतः॥ २॥
पराङ्मुखाय दीनाय न्यस्तशस्त्राय सात्यके।
क्षत्रधर्मरतः प्राज्ञः कथं नु प्रहरेद् रणे॥ ३॥
द्वावेव किल वृष्णीनां तत्र ख्यातौ महारथौ।
प्रद्युम्नश्च महाबाहुस्त्वं चैव युधि सात्वत॥ ४॥

आमरण अनशन पर बैठे हुए अपने पुत्र के सात्यकि द्वारा मारे जाने पर सोमदत्त ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर सात्यकि से कहा कि जिस क्षत्रियधर्म का पहले देवताओं और महात्माओं ने साक्षात्कार किया था, उस धर्म को छोड़कर हे सात्वत! तुम लुटेरों के धर्म में कैसे लग गये? हे सत्यक के पुत्र! क्षत्रियधर्म में लगा हुआ विद्वान् जो युद्ध से अलग होगया हो, जो दीन हो और जिसने शस्त्रों को त्याग दिया हो, उस पर युद्धक्षेत्र में प्रहार कैसे कर सकता है? वृष्णियों में दो ही युद्ध के लिये प्रसिद्ध महारथी हैं, एक महाबाहु प्रद्युम्न और दूसरे तुम (सात्यकि)

कथं प्रायोपविष्टाय पार्थेन छिन्नबाहवे।
नृशंसं पतनीयं च तादृशं कृतवानसि॥ ५॥
कर्मणस्तस्य दुर्वृत्त फलं प्राप्नुहि संयुगे।
अद्यच्छेत्स्यामि ते मूढ शिरो विक्रम्य पत्रिणा॥ ६॥
शपे सात्वत पुत्राभ्यामिष्टेन सुकृतेन च।
अनतीतामिमां रात्रिं यदि त्वां वीरमानिनम्॥ ७॥
अरक्ष्यमाणं पार्थेन जिष्णुना ससुतानुजम्।
न हन्यां नरके घोरे पतेयं वृष्णिपांसन॥ ८॥

जिसकी बाँह अर्जुन ने काट दी थी, जो आमरण अनशन पर बैठा हुआ था, उस भूरिश्रवा पर तुमने निर्दय और पतितों जैसा प्रहार क्यों किया? हे दुराचारी! तुम उस बुरे कर्म का फल आज युद्धस्थल में ही प्राप्त करो। मैं पराक्रम द्वारा हे मूर्ख! तेरे सिर को आज बाण से अलग कर दूँगा। मैं अपने यज्ञ आदि शुभ कर्मों और दोनों पुत्रों की शपथ खाकर कहता हूँ कि अपनेआपको वीर समझनेवाले तुझे इस रात्रि के व्यतीत होने से पहले कुन्तीपुत्र अर्जुन के द्वारा सुरक्षित न होने पर यदि पुत्रों और भाइयोंसहित न मार दूँ तो हे वृष्णिकुल कलंक! परलोक में भयानक असद्गति को प्राप्त होऊँ।

एवमुक्त्वा सुसंक्रुद्धः सोमदत्तो महाबलः।
दध्मो शङ्खं च तारेण सिंहनादं ननाद च॥ ९॥
ततः कमलपत्राक्षः सिंहदंष्ट्रो दुरासदः।
सात्यकिर्भृशसंक्रुद्धः सोमदत्तमथाब्रवीत्॥ १०॥
कौरवेय न मे त्रासः कथंचिदपि विद्यते।
त्वया सार्धमथान्यैश्च युध्यतो हृदि कश्चन॥ ११॥

यदि सर्वेण सैन्येन गुप्तो मां योधयिष्यसि।
तथापि न व्यथा काचित् त्वयि स्यान्मम कौरव॥ १२॥

ऐसा कहकर अत्यन्त क्रोध में भरे हुए महाबली सोमदत्त ने उच्चस्वर से शंख को बजाया और सिंह के समान गर्जना की। तब कमलपत्र के समान आँखों वाले, सिंह के समान दाढ़ोंवाले दुर्धर्ष सात्यकि ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर सोमदत्त से कहा कि हे कौरव! तुम्हारे साथ या दूसरों के साथ युद्ध करते हुए मेरे हृदय में किसी प्रकार का भी कोई भय नहीं है। हे कौरव! यदि तुम सारी सेना से सुरक्षित होकर भी मेरे साथ युद्ध करोगे तो भी मुझे कोई व्यथा नहीं होगी।

युद्धसारेण वाक्येन असतां सम्मतेन च।
नाहं भीषयितुं शक्यः क्षत्रवृत्ते स्थितस्त्वया॥ १३॥
यदि तेऽस्ति युयुत्साद्य मया सह नराधिप।
निर्दयो निशितैर्बाणैः प्रहर प्रहरामि ते॥ १४॥
हतो भूरिश्रवा वीरस्तव पुत्रो महारथः।
शलश्चैव महाराज भ्रातृव्यसनकर्षितः॥ १५॥
त्वां चाप्यद्य वधिष्यामि सहपुत्रं सबान्धवम्।
तिष्ठेदानीं रणे यत्तः कौरवोऽसि महारथः॥ १६॥

मैं क्षत्रियों के आचरण में विद्यमान हूँ। अपने युद्धवाले तथा असत् पुरुषों द्वारा मान्य वाक्यों से तुम मुझे डरा नहीं सकते। हे राजन्! यदि तुम्हारे में मेरे साथ युद्ध करने की इच्छा है तो तुम निर्दय होकर तीखे बाणों से मुझ पर प्रहार करो। मैं भी तुम पर प्रहार करूँगा। भाई के दुःख से दुःखी तुम्हारा वीर पुत्र महारथी भूरिश्रवा मारा गया है और शल भी मारा गया है। तुम कुरुकुल के महारथी हो। तुम युद्ध में सावधान होकर खड़े रहो। तुम्हें भी आज पुत्रों और बान्धवों के साथ मार दूँगा।

यस्मिन् दानं दमः शौचमहिंसा ह्रीर्धृतिः क्षमा।
अनपायानि सर्वाणि नित्यं राज्ञि युधिष्ठिरे॥ १७॥
मृदङ्गकेतोस्तस्य त्वं तेजसा निहतः पुरा।
सकर्णसौबलः संख्ये विनाशमुपयास्यसि॥ १८॥
शपेऽहं कृष्णाचरणैरिष्टापूर्तेन चैव ह।
यदि त्वां ससुतं पापं न हन्यां युधि रोषितः॥ १९॥
अपयास्यसि चेत्युक्त्वा रणं मुक्तो भविष्यसि।
एवमाभाष्य चान्योन्यं क्रोधसंरक्तलोचनौ॥ २०॥
प्रवृत्तौ शरसम्पातं कर्तुं पुरुषसत्तमौ।

जिनमें दान, दम, शौच, अहिंसा, लज्जा, धृति, और क्षमा आदि सारे गुण स्वभाव से ही सदा रहते हैं, उन राजा युधिष्ठिर के, जिनकी ध्वजा में मृदंग का चिह्न है, तेज से तुम पहलेही मर चुके हो। अब तुम कर्ण और शकुनि के साथ युद्ध में विनाश को प्राप्त करोगे। मैं श्रीकृष्ण के चरणों की और अपने शुभ कर्मों की शपथ खाकर कहता हूँ कि यदि मैं क्रोध में भरकर तुम पापी को पुत्रसहित युद्ध में न मार दूँ तो मुझे उत्तम गति न मिले। इतनी बातें कहकर भी तुम यदि भाग जाओगे तो मुझसे छूट जाओगे। इसप्रकार से एकदूसरे से कहकर क्रोध से लाल आँखें किये वे दोनों पुरुषश्रेष्ठ एक दूसरे पर बाणों की वर्षा करने लगे।

दुर्योधनः सोमदत्तं परिवार्य समन्ततः॥ २१॥
शकुनिश्च सुसंक्रुद्धः सर्वशस्त्रभृतां वरः।
पुत्रपौत्रैः परिवृतो भ्रातृभिश्चेन्द्रविक्रमैः॥ २२॥
सोमदत्तं मेहष्वासं, समन्तात् पर्यरक्षताम्।
रक्ष्यमाणश्च बलिभिश्छादयामास सात्यकिम्॥ २३॥
तं छाद्यमानं विशिखैर्दृष्ट्वा संनतपर्वभिः।
धृष्टद्युम्नोऽभ्ययात् क्रुद्धः प्रगृह्य महतीं चमूम्॥ २४॥

तब दुर्योधन और सारे शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ, शकुनि भी इन्द्र के समान विक्रमी भाइयों तथा पुत्र पौत्रों से घिरकर और अत्यन्त क्रोध में भरकर सोमदत्त को सब तरफ से घेरकर उनकी रक्षा करने लगा। इसप्रकार अपने बलवान् सहायकों से सुरक्षित होकर सोमदत्त ने सात्यकि को बाणों से आच्छादित कर दिया। तब झुकी गाँठवाले बाणों से उसे आच्छादित देखकर धृष्टद्युम्न भी क्रुद्ध होकर महासेना के साथ वहाँ आगया।

विव्याध सोमदत्तस्तु सात्वतं नवभिः शरैः।
सात्यकिर्नवभिश्चैनमवधीत् कुरुपुङ्गवम्॥ २५॥
सोऽतिविद्धो बलवता समरे दृढधन्विना।
रथोपस्थं समासाद्य मुमोह गतचेतनः॥ २६॥
तं विमूढं समालक्ष्य सारथिस्त्वरया युतः।
अपोवाह रणाद् वीरं सोमदत्तं महारथम्॥ २७॥
तं विसंज्ञं समालक्ष्य युयुधानशरार्दितम्।
अभ्यद्रवत् ततो द्रोणो यदुवीरजिघांसया॥ २८॥

सोमदत्त ने सात्यकि को नौ बाणों से बींधा, तो सात्यकि ने भी उस कुरुश्रेष्ठ पर नौ बाणों से प्रहार किया। फिर युद्ध में दृढ़ धनुषवाले बलवान् सात्यकि

से अत्यन्तघायल होकर सोमदत्त रथ की बैठक में बैठकर मूर्च्छित होगये। उन्हें मूर्च्छित देखकर उनका सारथि शीघ्रता से महारथी वीर सोमदत्त को रणक्षेत्र से बाहर लेगया। सात्यकि के बाणों से पीड़ित उन्हें मूर्च्छित हुआ देखकर सात्यकि को मारने की इच्छा से द्रोणाचार्य उसकी तरफ दौड़े।

तमायान्तमभिप्रेक्ष्य युधिष्ठिरपुरोगमाः।
परिवव्रुर्महात्मानं परीप्सन्तो यदूत्तमम्॥ २९॥
ततः सायकजालेन पाण्डवानीकमावृणोत्।
भारद्वाजो महातेजा विव्याध च युधिष्ठिरम्॥ ३०॥

उन्हें आता हुआ देखकर युधिष्ठिर आदि वीरों ने उन मनस्वी यदुश्रेष्ठ को बचाने की इच्छा से उन्हें चारों तरफ से घेर लिया। तब महातेजस्वी द्रोणाचार्य ने अपने बाणों के जाल से पाण्डव सेना को भर दिया और युधिष्ठिर को बींध दिया।

सात्यकिं दशभिर्बाणैर्विंशत्या पार्षतं शरैः।
भीमसेनं च नवभिर्नकुलं पञ्चभिस्तथा॥ ३१॥
सहदेवं तथाष्टाभिः शतेन च शिखण्डिनम्।
द्रौपदेयान् महाबाहुः पञ्चभिः पञ्चभिः शरैः॥ ३२॥
विराटं मत्स्यमष्टाभिर्द्रुपदं दशभिः शरैः।
युधामन्युं त्रिभिः षडभिरुत्तमौजसमाहवे॥ ३३॥
अन्यांश्च सैनिकान् विद्ध्वा युधिष्ठिरमुपाद्रवत्।

उन्होंने सात्यकि को दस बाणों से, धृष्टद्युम्न को बीस से, भीमसेन को नौ से नकुल को पाँच से, सहदेव को आठ से, बींधकर शिखण्डी पर सौ बाणों की वर्षा की। उन महाबाहु ने द्रौपदीपुत्रों को पाँच पाँच बाणों से, मत्स्यराज विराट को आठ से, द्रुपद को दस से, युधामन्यु को तीन से, उत्तमौजा को छः बाणों से और दूसरे सैनिकों को भी बींध कर युधिष्ठिर पर आक्रमण किया।

काल्यमानं तु तत् सैन्यं दृष्ट्वा द्रोणेन फाल्गुनः॥ ३४॥
किंचिदागतसंरम्भो गुरुं पार्थोऽभ्ययाद् द्रुतम्।
ततो युद्धमभूद् भूयो भारद्वाजस्य पाण्डवैः॥ ३५॥
द्रोणस्तव सुतै राजन् सर्वतः परिवारितः।
व्यधमत् पाण्डुसैन्यानि तूलराशिमिवानलः॥ ३६॥
यो यो हि प्रमुखे तस्य तस्थौ द्रोणस्य पूरुषः।
तस्य तस्य शिरश्छित्त्वा ययुर्द्रोणशराःक्षितिम्॥ ३७॥
एवं सा पाण्डवी सेना वध्यमाना महात्मना।
प्रदुद्राव पुनर्भीता पश्यतः सव्यसाचिनः॥ ३८॥

तब द्रोणाचार्य द्वारा पाण्डवसेना का संहार होते देखकर, कुछ क्रोध में आकर अर्जुन तेजी से आचार्य की तरफ चल दिये। फिर द्रोणाचार्य का पाण्डवों के साथ पुनः युद्ध आरम्भ हुआ। हे राजन्! आपके पुत्रों से सबतरफ से घिरे हुए द्रोणाचार्य ने पाण्डवों की सेना को ऐसे मथ दिया जैसे अग्नि रुई के ढेर को जला देती है। हे राजन्! उस समय जो जो व्यक्ति द्रोणाचार्य के सामने खड़ा हुआ, द्रोणाचार्य के बाण उसी उसी के सिर को काटकर भूमि पर गिर रहे थे। इसप्रकार उस मनस्वी के द्वारा मारी जाती हुई पाण्डवों की सेना, भयभीत होकर पुनः अर्जुन के देखते हुए ही भागने लगी।

सम्प्रभग्नं बलं दृष्ट्वा द्रोणेन निशि भारत।
गोविन्दमब्रवीज्जिष्णुर्गच्छ द्रोणरथं प्रति॥ ३९॥
ततो रजतगोक्षीरकुन्देन्दुसदृशप्रभान्।
चोदयामास दाशार्हो हयान् द्रोणरथं प्रति॥ ४०॥
भीमसेनोऽपि तं दृष्ट्वा यान्तं द्रोणाय फाल्गुनम्।
स्वसारथिमुवाचेदं द्रोणानीकाय मा वह॥ ४१॥
सोऽपि तस्य वचः श्रुत्वा विशोकोऽवाहयद्धयान्।
पृष्ठतः सत्यसंधस्य जिष्णोर्भरतसत्तम॥ ४२॥

तब रात में अपनी सेना को द्रोणाचार्य द्वारा भगाया हुआ देखकर हे भारत! अर्जुन ने श्रीकृष्ण जी से कहा कि द्रोणाचार्य के रथ के समीप चलो। तब श्रीकृष्ण जी ने चान्दी, गाय के दूध, कुन्द पुष्प और चन्द्रमा के समान कान्तिवाले घोड़ों को द्रोणाचार्य के रथ की तरफ हाँका। भीमसेन ने भी तब अर्जुन को द्रोणाचार्य की तरफ जाते हुए देखकर अपने सारथि से कहा कि मुझे द्रोणाचार्य की तरफ लेचलो। तब विशोक ने भी उनकी बात सुनकर अपने घोड़ों को हे भरतश्रेष्ठ! सत्यसंध अर्जुन के पीछे बढ़ाया।

तौ दृष्ट्वा भ्रातरौ यत्तौ द्रोणानीकमभिद्रुतौ।
पञ्चालाः सृञ्जया मत्स्याश्चेदिकारूषकोसलाः॥ ४३॥
अन्वगच्छन् महाराज केकयाश्च महारथाः।
ततो राजन्नभूद् घोरः संग्रामो लोमहर्षणः॥ ४४॥
बीभत्सुर्दक्षिणं पार्श्वमुत्तरं च वृकोदरः।
महद्भ्यां रथवृन्दाभ्यां बलं जगृहतुस्तव॥ ४५॥
तौ दृष्ट्वा पुरुषव्याघ्रौ भीमसेनधनंजयौ।
धृष्टद्युम्नोऽभ्ययाद् राजन् सात्यकिश्च महाबलः॥ ४६॥

तब उन दोनों भाइयों को सावधान होकर द्रोणाचार्य की सेना पर आक्रमण करते हुए देखकर हे महाराज! पाँचाल, सृंजय, मत्स्य, चेदि, कारूष, कोसल, और केकय देश के महारथी भी उनके पीछे चलने लगे। हे राजन्! फिर बहुत भयंकर रोंगटे खड़े कर देने वाला संग्राम होने लगा। अर्जुन ने दायीं बगल से और भीम ने बायीं बगल से विशाल रथों और सेनाओं के साथ आपकी सेनाओं को घेर लिया। उन पुरुषव्याघ्र भीमसेन और अर्जुन को देखकर हे राजन्! महाबली सात्यकि और धृष्टद्युम्न भी वहाँ आपहुँचे।

सौमदत्तिवधात् क्रुद्धो दृष्ट्वा सात्यकिमाहवे।
द्रौणिरभ्यद्रवद् राजन् वधाय कृतनिश्चयः॥ ४७॥
तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य शैनेयस्य रथं प्रति।
भैमसेनिः सुसंक्रुद्धः प्रत्यमित्रमवारयत्॥ ४८॥
विससर्ज शरान् घोरांस्तेऽश्वत्थामानमाविशन्।
भुजङ्गा इव वेगेन वल्मीकं क्रोधमूर्च्छिताः॥ ४९॥
ते शरा रुधिरात्काङ्गा भित्त्वा शारद्वतीसुतम्।
विविशुर्धरणीं शीघ्रा रुक्मपुङ्खाः शिलाशिताः॥ ५०॥

हे राजन्! तब भूरिश्रवा के वध से क्रुद्ध होकर सात्यकि को युद्धस्थल में देखकर अश्वत्थामा उसके वध का निश्चयकर उसकी तरफ दौड़ा। उसको सात्यकि के रथ की तरफ जाते हुए देखकर भीमसेनपुत्र घटोत्कच ने अत्यन्तक्रुद्ध होकर अपने उस शत्रु को रोका। उसने भयंकर बाणों को छोड़ा, जो अश्वत्थामा के शरीर में घुस गये। जैसे क्रोध से मूर्च्छित होकर साँप अपनी बाँबी में तेजी से घुसते हैं, वैसेही शिला पर तेज किये सुनहरे पंख वाले वे बाण, अश्वत्थामा के शरीर को भेदकर खून से सने शीघ्रता से भूमि में धँस गये।

अश्वत्थामा तु संक्रुद्धो लघुहस्तः प्रतापवान्।
घटोत्कचमभिक्रुद्धं बिभेद दशभिः शरैः॥ ५१॥
घटोत्कचोऽतिविद्धस्तु द्रोणपुत्रेण मर्मसु।
चक्रं शतसहस्रारमगृह्णाद् व्यथितो भृशम्॥ ५२॥
क्षुरान्तं बालसूर्याभं मणिवज्रविभूषितम्।
अश्वत्थाम्नि स चिक्षेप भैमसेनिर्जिघांसया॥ ५३॥
वेगेन महताऽऽगच्छद् विक्षिप्तं द्रौणिना शरैः।
अभाग्यस्येव संकल्पस्तन्मोघमपतद् भुवि॥ ५४॥

तब शीघ्रता से हाथ चलानेवाले प्रतापी अश्वत्थामा ने अत्यन्तक्रुद्ध होकर, क्रोध में भरे घटोत्कच को दस बाणों से बींध दिया। तब अश्वत्थामा के द्वारा मर्मस्थलों में अत्यन्तघायल तथा अत्यन्त व्यथित होकर घटोत्कच ने एक ऐसे चक्र को उठाया, जिसमें सैकड़ों हजारों अरे थे, किनारों पर छुरे लगे हुए थे, जो मणि और वज्र से विभूषित था तथा बाल सूर्य की आभावाला था। घटोत्कच ने मारने की इच्छा से उसे अवत्थामा पर फैंका। तब अत्यन्ततेजी से आते हुए उसे अश्वत्थामा ने बाणों से दूर ढकेल दिया, जिससे भाग्यहीन के संकल्प के समान वह व्यर्थ होकर भूमि पर गिर पड़ा।

घटोत्कचस्ततस्तूर्णं दृष्ट्वा चक्रं निपातितम्।
द्रौणिं प्राच्छादयद् बाणैः स्वर्भानुरिव भास्करम्॥ ५५॥
घटोत्कचसुतः श्रीमान् भिन्नाञ्जनचयोपमः।
रुरोध द्रौणिमायान्तं प्रभञ्जनमिवाद्रिराट्॥ ५६॥
पौत्रेण भीमसेनस्य शरैरञ्जनपर्वणा।
बभौ मेघेन धाराभिर्गिरिर्मेरुरिवावृतः॥ ५७॥
ध्वजमेकेन बाणेन चिच्छेदाञ्जनपर्वणः।

घटोत्कच ने चक्र को गिराया हुआ देखकर तुरन्त अश्वत्थामा को बाणों से ऐसे ढक दिया जैसे राहू सूर्य को ढक लेता है। हे श्रीमान्! फिर घटोत्कच के पुत्र ने जो खान से काटे गये कोयले के समान काला था, आते हुए अश्वत्थामा को उसीप्रकार रोका, जैसे आँधी को हिमालयपर्वत रोक देता है। उस समय भीम के पौत्र अंजनपर्वा के बाणों से आच्छादित होता हुआ अश्वत्थामा ऐसे प्रतीत होता था, जैसे बादलों की जलधारा से ढ़का हुआ मेरु पर्वत। तब अश्वत्थामा ने एक बाण से अंजनपर्वा के ध्वज को काट दिया।

द्वाभ्यां तु रथयन्तारौ त्रिभिश्चास्य त्रिवेणुकम्॥ ५८॥
धनुरेकेन चिच्छेद चतुर्भिश्चतुरो हयान्।
विरथस्योद्यतं हस्ताद्धेमबिन्दुभिराचितम्॥ ५९॥
विशिखेन सुतीक्ष्णेन खड्गमस्य द्विधाकरोत्।
गदा हेमाङ्गदा राजंस्तूर्णं हैडिम्बिसूनुना॥ ६०॥
भ्राम्योत्क्षिप्ता शरैः साऽपि द्रौणिनाभ्याहताऽपतत्।
जघानाञ्जन पर्वाणं, द्रौणिर्भीमात्मजात्मजम्॥ ६१॥

उसने दो बाणों से उसके दोनों सारथियों को, तीन बाणों से त्रिवेणु को, एक से धनुष को और चार बाणों से चारों घोड़ों को मार दिया। रथहीन हुए उसके हाथ से उठे हुए स्वर्णविन्दुओं से जटित खड्ग

के उसने अत्यन्ततीखे बाण से दो टुकड़े कर दिये। हे राजन्! तब हिडिम्बा के पौत्र ने सोने के अंगद वाली गदा को तुरन्त घुमाकर फैंका, पर द्रोणपुत्र के बाणों से टकराकर वह भी भूमि पर गिर पड़ी फिर भीम के पौत्र अंजनपर्वा को द्रोणपुत्र ने मार दिया।

अथ दृष्ट्वा हतं पुत्रमश्वत्थाम्ना महाबलम्।
द्रौणेः सकाशमभ्येत्य रोषात् प्रज्वलिताङ्गदः॥ ६२॥
प्राह वाक्यमसम्भ्रान्तो वीरं शारद्वतीसुतम्।
दहन्तं पाण्डवानीकं वनमग्निमिवोच्छ्रितम्॥ ६३॥
तिष्ठ तिष्ठ न मे जीवन् द्रोणपुत्र गमिष्यसि।

अश्वत्थामोवाच

गच्छ वत्स सहान्यैस्त्वं युध्यस्वामरविक्रम॥ ६४॥
न हि पुत्रेण हैडिम्बे पिता न्याय्यः प्रबाधितुम्।
कामं खलु न रोषो मे हैडिम्बे विद्यते त्वयि॥ ६५॥
किं तु रोषान्वितो जन्तुर्हन्यादात्मानमप्युत।

अपने महाबली पुत्र को अश्वत्थामा से मारा गया देखकर जगमगाते हुए अंगदवाला घटोत्कच क्रोधपूर्वक प्रज्वलित दावानल के समान पाण्डवों की सेना रूपीवन को जलाते हुए वीर अश्वत्थामा के पास जाकर बिना घबराये हुए यह बोला कि हे द्रोणपुत्र! ठहर, ठहर। तू मेरे पास से अब जीवित नहीं जा सकेगा। तब अश्वत्थामा ने कहा कि हे देवताओं के समान पराक्रमी बेटे! जा औरों के साथ युद्ध कर। हे हिडिम्बापुत्र! पुत्र के लिये यह उचित नहीं है कि वह पिता को तंग करे। हे हिडिम्बापुत्र! अभी मेरे मन में तुम्हारे लिये क्रोध नहीं है, किन्तु क्रोध में भरकर तो प्राणी अपना भी विनाश कर लेता है।

श्रुत्वैतत् क्रोधताम्राक्षः पुत्रशोकसमन्वितः॥ ६६॥
अश्वत्थामानमायस्तो भैमसेनिरभाषत।
किमहं कातरो द्रौणे पृथग्जन इवाहवे॥ ६७॥
यन्मां भीषयसे वाग्भिरसदेतद् वचस्तव।
भीमात् खलु समुत्पन्नः कुरूणां विपुले कुले॥ ६८॥
पाण्डवानामहं पुत्रः समरेष्वनिवर्तिनाम्।
रक्षसामधिराजोऽहं दशग्रीवसमो बले॥ ६९॥
तिष्ठ तिष्ठ न मे जीवन् द्रोणपुत्र गमिष्यसि।
युद्धश्रद्धामहं तेऽद्य विनेष्यामि रणाजिरे॥ ७०॥

पुत्रशोक से युक्त भीमसेन के पुत्र ने यह सुनकर क्रोध से लाल आँखें कर रोषपूर्वक अश्वत्थामा से कहा कि अरे द्रोणपुत्र! क्या मैं दूसरे लोगों के समान युद्ध में कायर हूँ? जो तू अपनी बातों से मुझे डरा रहा है। तेरी ये बातें नीचता से युक्त हैं। मैं कौरवों के विशालकुल में भीम के द्वारा जन्मा हुआ हूँ। युद्ध में पीछे न हटनेवाले पाण्डवों का मैं पुत्र हूँ। मैं राक्षसों का राजा हूँ और बल में रावण के समान हूँ। हे द्रोणपुत्र! ठहर, तू मेरे आगे से जीवित नहीं जा सकेगा। मैं तेरे युद्ध करने के उत्साह को युद्धस्थल में पूरा कर दूँगा।

इत्युक्त्वा क्रोधताम्राक्षो राक्षसः सुमहाबलः।
द्रौणिमभ्यद्रवत् क्रुद्धो गजेन्द्रमिव केसरी॥ ७१॥
ततो घटोत्कचो बाणैर्दशभिर्गौतमीसुतम्।
जघानोरसि संक्रुद्धो विषाग्निप्रतिमैर्दृढैः॥ ७२॥
स तैरभ्याहतो गाढं शरैर्भीमसुतेरितैः।
चचाल रथमध्यस्थो वातोद्धत इव द्रुमः॥ ७३॥
भूयश्चाञ्जलिकेनाथ मार्गणेन महाप्रभम्।
द्रौणिहस्तस्थितं चापं चिच्छेदाशु घटोत्कचः॥ ७४॥

ऐसा कहकर क्रोध से लाल आँख किये उस महाबली राक्षस ने रोषपूर्वक द्रोणपुत्र पर ऐसे आक्रमण किया जैसे सिंह हाथी पर आक्रमण करता है। फिर घटोत्कच ने अत्यन्त क्रोध में भरकर विष और अग्नि के समान दृढ़ दस बाणों से अश्वत्थामा की छाती पर प्रहार किया। भीमसेन के पुत्र के द्वारा छोड़े हुए उन बाणों से गहरी चोट खाकर अश्वत्थामा रथ के अन्दर बैठा हुआ ऐसे काँपने लगा जैसे आँधी से हिलाया जाता हुआ वृक्ष। फिर घटोत्कच ने अंजलिक नाम के बाण से द्रोणपुत्र के हाथ में विद्यमान् महान् प्रभावाले धनुष को शीघ्रता से काट दिया।

ततोऽन्यद् द्रौणिरादाय धनुर्भारसहं महत्।
ववर्ष विशिखांस्तीक्ष्णान् वारिधारा इवाम्बुदः॥ ७५॥
स विनद्य महानादं सिंहवद् भीमविक्रमः।
चिक्षेपाविध्य संग्रामे द्रोणपुत्राय राक्षसः॥ ७६॥
अष्टघण्टां महाघोरामशनिं देवनिर्मिताम्।
तामवप्लुत्य जग्राह द्रौणिर्न्यस्य रथे धनुः॥ ७७॥
चिक्षेप चैनां तस्यैव स्यन्दनात् सोऽवपुप्लुवे।

फिर द्रोणपुत्र ने दूसरे भार को सहनेवाले विशाल धनुष को लेकर बादलों के द्वारा जलवर्षा के समान तीखे बाणों की वर्षा आरम्भ कर दी। तब भयानक पराक्रमवाले उस राक्षस ने सिंह के समान जोर से गर्जना कर युद्धस्थल में द्रोणपुत्र के ऊपर विद्वान्

व्यक्ति के द्वारा बनायी हुई बहुतभयंकर आठ घंटियों वाले अशनि अर्थात् वज्र को घुमाकर फैंका। तब द्रोणपुत्र ने रथपर अपने धनुष को रखकर और उछलकर उसे पकड़ लिया और उसे घटोत्कच के ऊपर ही फैंक दिया। घटोत्कच तब रथ से कूद पड़ा।

धृष्टद्युम्नरथं गत्वा भैमसेनिस्ततो नृप॥ ७८॥
धनुर्घोरं समादाय महदिन्द्रायुधोपमम्।
मुमोच निशितान बाणान् पुनर्द्रौणेर्महोरसि॥ ७९॥
धृष्टद्युम्नस्त्वसम्भ्रान्तो मुमोचाशीविषोपमान्।
सुवर्णपुङ्खान् विशिखान् द्रोणपुत्रस्य वक्षसि॥ ८०॥
ततो मुमोच नाराचान् द्रौणिस्तांश्च सहस्त्रशः।
तावप्यग्निशिखप्रख्यैर्जघ्नतुस्तस्य मार्गणान्॥ ८१॥
ततो रथसहस्त्रेण द्विरदानां शतैस्त्रिभिः।
षड्भिर्वाजिसहस्त्रैश्च भीमस्तं देशमागमत्॥ ८२॥

हे राजन्! तब भीमसेन का पुत्र धृष्टद्युम्न के रथ पर जाकर इन्द्रधनुष के समान विशाल और भयंकर धनुष को उठाकर द्रोणपुत्र की विशाल छाती पर फिर तीखे बाणों का प्रहार करने लगा। धृष्टद्युम्न ने भी बिना घबराये हुए सुनहरे पंखवाले विषैले सर्प के समान बाणों से द्रोणपुत्र की छाती पर प्रहार किया। तब अश्वत्थामा ने हजारों की संख्या में नाराचों की वर्षा की, उन दोनों ने भी अग्निशिखा के समान तेजस्वी बाणों से उसके बाणों को काट दिया। फिर हजार रथियों और तीन सौ हाथियों तथा छः हजार घोड़ों के साथ भीमसेन उस स्थान पर आ गये।

पुनरप्यतिसंक्रुद्धः सवृकोदरपार्षतान्।
स नाराचगणैः पार्थान् द्रौणिर्विद्ध्वा महाबलः॥ ८३॥
जघान सुरथं नाम द्रुपदस्य सुतं विभुः।
पुनः शत्रुंजयं नाम द्रुपदस्यात्मजं रणे॥ ८४॥
बलानीकं जयानीकं जयाश्वं चाभिजघ्निवान्।
श्रुताह्वयं च राजानं द्रौणिर्निन्ये यमक्षयम्॥ ८५॥
त्रिभिश्चान्यैः शरैस्तीक्ष्णैः सुपुङ्खैर्हेममालिनम्।
जघान स पृषध्रं च चन्द्रसेनं च मारिष॥ ८६॥
कुन्तिभोजसुतांश्चासौ दशभिर्दश जघ्निवान्।

फिर महाबली द्रोणाचार्य के पुत्र ने अत्यन्त क्रोध में भरकर नाराचों से भीमसेन और धृष्टद्युम्नसहित कुन्तीपुत्रों को घायल कर द्रुपद के सुरथ नाम के पुत्र को मार दिया। फिर उसने युद्धक्षेत्र में द्रुपद के शत्रुंजय, बलानीक, जयानीक और जयाश्व नाम के पुत्रों को भी मार दिया। द्रोणपुत्र ने राजा श्रुताह्वय को मृत्यु लोक में भेज दिया। हे मान्यवर! उसने अच्छे पंख वाले तीन तीखे बाणों से हेममाली, पृषध्र, और चन्द्रसेन को भी मार दिया। उसने दस बाणों से कुन्तीभोज के दस पुत्रों को भी मार दिया।

अश्वत्थामा सुसंक्रुद्धः संधायोग्रमजिह्मगम्॥ ८७॥
मुमोचाकर्णपूर्णेन धनुषा शरमुत्तमम्।
स भित्त्वा हृदयं तस्य राक्षसस्य महाशरः॥ ८८॥
विवेश वसुधां शीघ्रं सुपुङ्खः पृथिवीपते।
तं हतं पतितं ज्ञात्वा धृष्टद्युम्नो महारथः।
द्रौणेः सकाशाद् राजेन्द्र व्यपनिन्ये रथोत्तमम्॥ ८९॥

फिर अश्वत्थामा ने अत्यन्तक्रुद्ध होकर एक सीधे जानेवाले भयंकर बाण को धनुष पर लगाकर और धनुष को कानतक खींचकर उसे छोड़ा। हे पृथिवीपति! अच्छे पंख वाला वह बाण घटोत्कच की छाती को बींधकर तुरन्त भूमि में धँस गया। हे राजेन्द्र! तब महारथी धृष्टद्युम्न, उसे मरकर गिरा हुआ समझकर अपने रथ को अश्वत्थामा के पास से हटाकर ले गया।

पिचानवैवाँ अध्याय : भीम के द्वारा सोमदत्त की मूर्च्छा, बाह्लीक का और धृतराष्ट्र के दस पुत्रों तथा शकुनि के आठ भाइयों का वध।

सोमदत्तः पुनः क्रुद्धो दृष्ट्वा सात्यकिमाहवे।
महता शरवर्षेणच्छादयामास भारत॥ १॥
तं दृष्ट्वा समुपायान्तं रुक्मपुङ्खैः शिलाशितैः।
दशभिः सात्वतस्यार्थे भीमो विव्याध सायकैः॥ २॥
सोमदत्तोऽपि तं वीरं शतेन प्रत्यविध्यत।
सात्वतस्त्वभिसंक्रुद्धः पुत्राधिभिरभिप्लुतम्॥ ३॥
वृद्धं वृद्धगुणैर्युक्तं ययातिमिव नाहुषम्।
विव्याध दशभिस्तीक्ष्णैः शरैर्वज्रनिपातनैः॥ ४॥

हे भारत! सोमदत्त सात्यकि को युद्धस्थल में देखकर पुनः क्रोध में भर गये और उन्होंने उसे महान् बाणवर्षा से आच्छादित कर दिया। तब उन्हें सात्यकि के ऊपर चढ़कर आते हुए देखकर भीम

ने सात्यकि की रक्षा के लिये शिला पर तेज किये सुनहरे पंखवाले दस बाणों से बींध दिया। सोमदत्त ने भी बदले में भीम पर सौ बाणों की वर्षा की। तब सात्यकि ने भी अत्यन्त क्रोध में भरकर, पुत्रशोक से भरे हुए, नहुषपुत्र ययाति के समान बुढ़ापे के गुणों से युक्त बूढ़े सोमदत्त को तीखे वज्र को भी गिरानेवाले दस बाणों से बींध दिया।

शक्त्या चैनं विनिर्भिद्य पुनर्विव्याध सप्तभिः।
ततस्तु सात्यकेरर्थे भीमसेनो नवं दृढम्॥ ५॥
मुमोच परिघं घोरं सोमदत्तस्य मूर्धनि।
सात्वतोऽप्यग्निसंकाशं मुमोच शरमुत्तमम्॥ ६॥
सोमदत्तोरसि क्रुद्धः सुपत्रं निशितं युधि।
युगपत् पेततुर्वीरे घोरौ परिघमार्गणौ॥ ७॥
शरीरे सोमदत्तस्य स पपात महारथः।
व्यामोहिते तु तनये बाह्लीकस्तमुपाद्रवत्॥ ८॥
विसृजञ्छरवर्षाणि कालवर्षीव तोयदः।

उसने उन्हें शक्ति से घायलकर फिर सात बाणों से बींधा। फिर सात्यकि के लिये भीम ने भी नये, दृढ़ और भयंकर परिघ से उनके मस्तक पर प्रहार किया। सात्यकि ने पुनः अच्छे पंखोंवाले, अग्नि के समान तीखे और उत्तम बाण को क्रोध में भरकर सोमदत्त की छाती में मारा। वे भयंकर बाण और परिघ सोमदत्त के शरीर पर एकसाथ गिरे, जिससे वे महारथी मूर्च्छित होकर गिर पड़े। पुत्र के मूर्च्छित होने पर, वर्षाऋतु में वर्षा करनेवाले बादल के समान बाणों की वर्षा करते हुए बाह्लीक ने सात्यकि पर आक्रमण किया।

भीमोऽथ सात्वतस्यार्थे बाह्लीकं नवभिः शरैः॥ ९॥
प्रपीडयन् महात्मानं विव्याध रणमूर्धनि।
प्रातिपेयस्तु संक्रुद्धः शक्तिं भीमस्य वक्षसि॥ १०॥
निचखान महाबाहुः पुरंदर इवाशनिम्।
स तथाभिहतो भीमश्चकम्पे च मुमोह च॥ ११॥
प्राप्य चेतश्च बलवान् गदामस्मै ससर्ज ह।
सा पाण्डवेन प्रहिता बाह्लीकस्य शिरोऽहरत्॥ १२॥

तब भीम ने सात्यकि के लिये महात्मा बाह्लीक को नौ बाणों से पीड़ित करते हुए युद्ध के मुहाने पर घायल कर दिया। तब प्रतीपपुत्र महाबाहु बाह्लीक ने अत्यन्तकुपित होकर भीम की छाती में अपनी शक्ति को ऐसे गड़ा दिया, जैसे इन्द्र ने किसी पर्वत पर वज्र मारा हो। उसके द्वारा पीड़ित होकर भीम काँपने लगे और मूर्च्छित होगये। फिर होश में आकर उस बलवान् ने उनपर गदा का प्रहार किया। पाण्डुपुत्र के द्वारा मारी गयी गदा ने बाह्लीक के सिर को तोड़ दिया।

तस्मिन् विनिहते वीरे बाह्लीके पुरुषर्षभ।
पुत्रास्तेऽभ्यर्दयन् भीमं दश दाशरथेः समाः॥ १३॥
नागदत्तो दृढरथो महाबाहुरयोभुजः।
दृढःसुहस्तो विरजाः प्रमाथ्युग्रोऽनुयाय्यपि॥ १४॥
तान् दृष्ट्वा चुक्रुधे भीमो जगृहे भारसाधनान्।
एकमेकं समुद्दिश्य पातयामास मर्मसु॥ १५॥
ते विद्धा व्यसवः पेतुः स्यन्दनेभ्यो हतौजसः।
चण्डवातप्रभग्नास्तु पर्वताग्रान्महीरुहाः॥ १६॥

हे पुरुषश्रेष्ठ! वीर बाह्लीक के मारे जाने पर आपके दस पुत्रों ने जो दशरथपुत्र राम के समान पराक्रमी थे, भीम को पीड़ित करना आरम्भ कर दिया। उन के नाम थे– नागदत्त, दृढ़रथ, महाबाहु, अयोभुज, दृढ़, सुहस्त, विरजा, प्रमाथी, उग्र, और अनुयायी। उन्हें देखकर भीम क्रोध में भर गये और उन्होंने भार को सहने में समर्थ, एक एक के लिये एक एक बाण को लिया और उन्हें उनके मर्मस्थानों पर चला दिया। उन बाणों की चोट खाकर वे सारे तेजहीन और प्राणहीन होकर रथों से ऐसे गिर पड़े जैसे पर्वत की चोटी से प्रचण्ड आँधी से उखड़कर वृक्ष गिरे हो।

नाराचैर्दशभिर्भीमस्तान् निहत्य तवात्मजान्।
कर्णस्य दयितं पुत्रं वृषसेनमवाकिरत्॥ १७॥
ततो वृकरथो नाम भ्राता कर्णस्य विश्रुतः।
जघान भीमं नाराचैस्तमप्यभ्यद्रवद् बली॥ १८॥
ततः सप्त रथान् वीरः स्यालानां तव भारत।
निहत्य भीमो नाराचैः शतचन्द्रमपोथयत्॥ १९॥

दस नाराचों से आपके उन दस पुत्रों को मारकर भीम ने कर्ण के प्रिय पुत्र वृषसेन पर बाणों की वर्षा आरम्भ की। तब वृकरथ नाम के कर्ण के बलवान् और प्रसिद्ध भाई ने भीम पर आक्रमण कर उन्हें नाराचों से घायल कर दिया। हे भारत! तब आपके सालों में से सात रथियों को वीर भीम ने नाराचों से मारकर शतचन्द्र को भी गिरा दिया।

अमर्षयन्तो निहतं शतचन्द्रं महारथम्।
शकुनेर्भ्रातरो वीरा गवाक्षः शरभो विभुः॥ २०॥
सुभगो भानुदत्तश्च शूराः पञ्च महारथाः।
अभिद्रुत्य शरैस्तीक्ष्णैर्भीमसेनमताडयन्॥ २१॥
स ताड्यमानो नाराचैर्वृष्टिवेगैरिवाचलः।
जघान पञ्चभिर्बाणैः पञ्चैवातिरथान् बली॥ २२॥

तब महारथी शतचन्द्र की मृत्यु को सहन न करते हुए शकुनि के वीर भाई गवाक्ष, शरभ, विभु, सुभग और भानुदत्त ये पाँच शूरवीर महारथी दौड़कर भीम पर तीखे बाणों से प्रहार करने लगे। जैसे वर्षा के वेग से पर्वत को चोट पहुँचायी जाती है, वैसे ही उनके नाराचों से पीड़ित होते हुए भीम ने पाँच बाणों से उन बलवान् पाँचों अतिरथियों को मार दिया।

ततो युधिष्ठिरः क्रुद्धस्तवानीकमशातयत्।
मिषतः कुम्भयोनेस्तु पुत्राणां तव चानघ॥ २३॥
अम्बष्ठान् मालवाञ्छूरांस्त्रिगर्तान् स शिवीनपि।
प्राहिणोन्मृत्युलोकाय क्रुद्धो युद्धे युधिष्ठिरः॥ २४॥
अभीषाहाञ्छूरसेनान् बाह्लीकान् सवसातिकान्।
निकृत्य पृथिवीं राजा चक्रे शोणितकर्दमाम्॥ २५॥
यौधेयान् मालवान् राजन् मद्रकाणां गणान् युधि।
प्राहिणोन्मृत्युलोकाय शूरान् बाणैर्युधिष्ठिरः॥ २६॥

हे निष्पाप! फिर युधिष्ठिर क्रुद्ध होकर आपकी सेना को द्रोणाचार्य और आपके पुत्रों के देखते हुए विनष्ट करने लगे। युद्ध में क्रुद्ध युधिष्ठिर ने अम्बष्ठ, मालव, त्रिगर्त और शिविदेश के वीरों को मृत्युलोक में भेज दिया। अभीषाह, शूरसेन, बाह्लीक और वसाती देश के शूरवीरों को काटकर राजा ने भूमि को रक्त की कीचड़ से युक्त कर दिया। युधिष्ठिर ने हे राजन्! बाणों से युद्धक्षेत्र में यौधेय, मालव और मद्रदेशी शूरवीरों को परलोक में भेज दिया।

सैन्यानि द्रावयन्तं तं द्रोणो दृष्ट्वा युधिष्ठिरम्।
चोदितस्तव पुत्रेण सायकैरभ्यवाकिरत्॥ २७॥
द्रोणस्तु परमक्रुद्धो वायव्यास्त्रेण पार्थिवम्।
विव्याध सोऽपि तद् दिव्यमस्त्रमस्त्रेण जघ्निवान्॥ २८॥
तस्मिन् विनिहते चास्त्रे भारद्वाजो युधिष्ठिरे।
वारुणं याम्यमाग्नेयं त्वाष्ट्रं सावित्रमेव च॥ २९॥
चिक्षेप परमक्रुद्धो जिघांसुः पाण्डुनन्दनम्।
क्षिप्तानि क्षिप्यमाणानि तानि चास्त्राणि धर्मजः॥ ३०॥
जघानास्त्रैर्महाबाहुः कुम्भयोनेरवित्रसन्।
सत्यां चिकीर्षमाणस्तु प्रतिज्ञां कुम्भसम्भवः॥ ३१॥
प्रादुश्चक्रेऽस्त्रमैन्द्रं वै प्राजापत्यं च भारत।
जिघांसुर्धर्मतनयं तव पुत्रहिते रतः॥ ३२॥

युधिष्ठिर को सेनाओं का विनाश करते हुए देखकर आपके पुत्र से प्रेरित द्रोणाचार्य ने उनपर बाणों की वर्षा आरम्भ कर दी। अत्यन्त क्रोध में भरकर द्रोणाचार्य ने राजा पर वायव्यास्त्र से प्रहार किया। तब उन्होंने भी अपने दिव्यास्त्र से उनके दिव्यास्त्र को नष्ट कर दिया। उस अस्त्र के नष्ट होजाने पर द्रोणाचार्य ने अत्यन्त क्रोध में भरकर पाण्डुनन्दन को मारने की इच्छा से उन पर वारुण, याम्य, आग्नेय, त्वाष्ट्र और सावित्र नाम के अस्त्रों को फैंका, पर उन फैंके और फैंके जाते हुए द्रोणाचार्य के अस्त्रों को महाबाहु धर्मपुत्र ने बिना भयभीत हुए अपने दिव्यास्त्रों से काट दिया। तब हे भारत! द्रोणाचार्य ने अपनी प्रतिज्ञा को सत्य करने की इच्छा से, धर्मपुत्र को मारने की चाह रखते हुए, आपके पुत्र के हित में लगे रहकर, उनके ऊपर ऐन्द्र और प्राजापत्य अस्त्रों का प्रयोग किया।

पतिः कुरूणां गजसिंहगामी
विशालवक्षाः पृथुलोहिताक्षः।
प्रादुश्चकारास्त्र- महीनतेजा
माहेन्द्रमन्यत् स जघान तेन॥ ३३॥
विहन्यमानेष्वस्त्रेषु द्रोणः क्रोधसमन्वितः।
युधिष्ठिरवधं प्रेप्सुर्ब्राह्ममस्त्रमुदैरयत्॥ ३४॥
ब्रह्मास्त्रमुद्यतं दृष्ट्वा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः।
ब्रह्मास्त्रेणैव राजेन्द्र तदस्त्रं प्रत्यवारयत्॥ ३५॥

तब कुरुओं के पति, गज और सिंह के समान गतिवाले, चौड़ी छाती तथा मोटी और लाल आँखों वाले, उत्कृष्ट तेजवाले युधिष्ठिर ने माहेन्द्र नाम के अस्त्र को प्रकट किया और उससे उन सारे दिव्यास्त्रों को नष्ट कर दिया। तब उन दिव्यास्त्रों के नष्ट होने पर क्रोध से युक्त होकर द्रोणाचार्य ने युधिष्ठिर के वध की इच्छा से ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया। हे राजेन्द्र! तब ब्रह्मास्त्र को उद्यत देखकर युधिष्ठिर ने ब्रह्मास्त्र से ही उस ब्रह्मास्त्र को शान्त कर दिया।

ततः प्रमुच्य कौन्तेयं द्रोणो द्रुपदवाहिनीम्।
व्यधमत् क्रोधताम्राक्षो वायव्यास्त्रेण भारत॥ ३६॥
ते हन्यमाना द्रोणेन पञ्चालाः प्राद्रवन् भयात्।

पश्यतो भीमसेनस्य पार्थस्य च महात्मनः॥ ३७॥
ततः किरीटी भीमश्च सहसा संन्यवर्तताम्।
महद्भ्यां रथवंशाभ्यां परिगृह्य बलं तदा॥ ३८॥

तब द्रोणाचार्य ने कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर को छोड़कर हे भारत! क्रोध से लाल आँखें किये वायव्यास्त्र के द्वारा द्रुपद की सेना का संहार करना आरम्भ कर दिया। द्रोणाचार्य के द्वारा मारे जाते हुए पाँचाल सैनिक भयभीत हो भीमसेन और मनस्वी अर्जुन के देखते हुए ही भागने लगे। तब अर्जुन और भीम विशाल रथसेना के द्वारा अपनी सेना को रोकते हुए तुरन्त उसी तरफ लौट पड़े।

बीभत्सुर्दक्षिणं पार्श्वमुत्तरं च वृकोदरः।
भारद्वाजं शरौघाभ्यां महद्भ्यामभ्यवर्षताम्॥ ३९॥
केकयाः सृञ्जयाश्चैव पञ्चालाश्च महौजसः।
अन्वगच्छन् महाराज मत्स्याश्च सह सात्वतैः॥ ४०॥
ततः सा भारती सेना वध्यमाना किरीटिना।
तमसा निद्रया चैव पुनरेव व्यदीर्यत॥ ४१॥
द्रोणेन वार्यमाणास्ते स्वयं तव सुतेन च।
नाशक्यन्त महाराज योधा वारयितुं तदा॥ ४२॥

अर्जुन ने दायीं तरफ से और भीम ने बायीं तरफ से द्रोणाचार्य पर महान् बाणसमूहों की वर्षा आरम्भ कर दी। तब केकय, सृंजय, महातेजस्वी पाँचाल, मत्स्य और यादव सैनिकों ने हे महाराज! उन दोनों का अनुकरण किया। तब अर्जुन की मार खाती हुई कौरवों की सेना, जो अँधेरे और निद्रा से पीड़ित होरही थी, पुनः इधरउधर बिखरने लगी। यद्यपि द्रोणाचार्य और आपके पुत्र ने उन्हें रोका, पर हे महाराज! वे योद्धा रुक न सके।

छियानवैवाँ अध्याय : दुर्योधन कर्ण वार्तालाप। कृपाचार्य द्वारा कर्ण को फटकारना। कर्ण द्वारा कृपाचार्य का अपमान।

उदीर्यमाणं तद् दृष्ट्वा पाण्डवानां महद् बलम्।
अविषह्यं च मन्वानः कर्णं दुर्योधनोऽब्रवीत्॥ १॥
अयं स कालः सम्प्राप्तो मित्राणां मित्रवत्सल।
त्रायस्व समरे कर्ण सर्वान् योधान् महारथान्॥ २॥
पञ्चालैर्मत्स्यकैकेयैः पाण्डवैश्च महारथैः।
वृतान् समन्तात् संक्रुद्धैर्निःश्वसद्भिरिवोरगैः॥ ३॥
एते नदन्ति संहृष्टाः पाण्डवा जितकाशिनः।
शक्रोपमाश्च बहवः पञ्चालानां रथव्रजाः॥ ४॥

तब पाण्डवों की विशाल सेना की शक्ति को बढ़ते देखकर उसे अपने लिये असह्य मानकर दुर्योधन ने कर्ण से कहा कि हे मित्रों से प्रेम करनेवाले! यह मित्रों के कर्तव्यपालन का समय उपस्थित हुआ है। हे कर्ण! तुम युद्धक्षेत्र में मेरे इन सारे महारथी योद्धाओं की रक्षा करो, जो अत्यन्त क्रोध में भरे हुए, सर्पों के समान लम्बी साँसें लेते हुए पाँचाल, मत्स्य, केकय और पाण्डवमहारथियों से सब तरफ से घिरे हुए हैं। ये विजय के इच्छुक, इन्द्र के समान पराक्रमी और बहुसंख्यक पाँचालमहारथी प्रसन्नता के साथ गर्जना कर रहे हैं।

कर्ण उवाच

परित्रातुमिह प्राप्तो यदि पार्थं पुरंदरः।
तमप्याशु पराजित्य ततो हन्तास्मि पाण्डवम्॥ ५॥
सत्यं ते प्रतिजानामि समाश्वसिहि भारत।
हन्तास्मि पाडुतनयान् पञ्चालांश्च समागतान्॥ ६॥
सर्वेषामेव पार्थानां फाल्गुनो बलवत्तरः।
तस्यामोघां विमोक्ष्यामि शक्तिं शक्रविनिर्मिताम्॥ ७॥
तस्मिन् हते महेष्वासे भ्रातरस्तस्य मानद।
तव वश्या भविष्यन्ति वनं यास्यन्ति वा पुनः॥ ८॥

तब कर्ण ने कहा कि यदि यहाँ इन्द्र भी अर्जुन को बचाने के लिये आजाये तोभी मैं शीघ्रही अर्जुन को पराजित करके मार दूँगा। हे भारत! मैं तुम्हारी सच्ची प्रतिज्ञा करके कहता हूँ, तुम धीरज रखो। मैं युद्ध में आये हुए पाण्डुपुत्रों और पांचालों को निश्चय ही मारूँगा। सारे पाण्डवों में अर्जुन सबसे बलवान् है, मैं उस पर इन्द्रद्वारा निर्मित अमोघ शक्ति को छोडूँगा। हे दूसरों को मान देने वाले! उस महाधनुर्धर के मारे जाने पर उसके भाई या तो तुम्हारे बस में होजायेंगे या फिर वन में चले जायेंगे।

मयि जीवति कौरव्य विषादं मा कृथाः क्वचित्।
अहं जेष्यामि समरे सहितान् सर्वपाण्डवान्॥ ९॥
पञ्चालान् केकयांश्चैव वृष्णींश्चापि समागतान्।
बाणौघैः शकलीकृत्य तव दास्यामि मेदिनीम्॥ १०॥
एवं ब्रुवाणं कर्णं तु कृपः शारद्वतोऽब्रवीत्।
स्मयन्निव महाबाहुः सूतपुत्रमिदं वचः॥ ११॥
शोभनं शोभनं कर्ण सनाथः कुरुपुङ्गवः।
त्वया नाथेन राधेय वचसा यदि सिध्यति॥ १२॥

हे कौरव! मेरे जीते हुए तुम कभी विषाद को मत करो। मैं युद्ध में इकट्ठे होकर आये सारे पाण्डवों को जीत लूँगा। मैं युद्धभूमि में आये हुए पाँचालों, केकयों और वृष्णिवंशियों को भी बाण समूहों से टुकड़े टुकड़े कर इस भूमि को तुम्हें दे दूँगा। तब ऐसा कहते हुए कर्ण से शरद्वान्‌पुत्र महाबाहु कृपाचार्य ने मुस्कराते हुए कहा कि हे कर्ण! बहुत अच्छा, बहुत अच्छा। यदि बात बनाने से ही कार्य पूरे होजाते हैं, तो तुम जैसे नाथ को पाकर कुरुश्रेष्ठ दुर्योधन वास्तव में सनाथ हैं।

बहुशः कत्थसे कर्ण कौरवस्य समीपतः।
न तु ते विक्रमः कश्चिद् दृश्यते फलमेव वा॥ १३॥
समागमः पाण्डुसुतैर्दृष्टस्ते बहुशो युधि।
सर्वत्र निर्जितश्चासि पाण्डवैः सूतनन्दन॥ १४॥
ह्रियमाणे तदा कर्ण गन्धर्वैर्धृतराष्ट्रजे।
तदायुध्यन्त सैन्यानि त्वमेकोऽग्रेऽपलायिथाः॥ १५॥
विराटनगरे चापि समेताः सर्वकौरवाः।
पार्थेन निर्जिता युद्धे त्वं च कर्ण सहानुजः॥ १६॥

हे कर्ण! तुम दुर्योधन के समीप बहुततरह से अपनी डींग मारते हो। पर न तो कहीं तुम्हारी बहादुरी देखी जाती है और न उसका कोई फल सामने आता है। हे सूतपुत्र! तुम्हारा युद्धस्थल में पाण्डुपुत्रों के साथ अनेक बार सामना देखा गया है, तुम सब जगह उनसे पराजित किये गये हो। जब गन्धर्वों के द्वारा दुर्योधन का अपहरण किया गया था, तब सेना तो युद्ध कर रही थी, पर तुम अकेले भाग गये थे। विराटनगर में भी सारे कौरव एकत्र थे। उन सबको अर्जुन ने युद्ध में जीत लिया और तुम भी अपने भाइयों के साथ पराजित हुए थे।

एकस्याप्यसमर्थस्त्वं फाल्गुनस्य रणाजिरे।
कथमुत्सहसे जेतुं सकृष्णान् सर्वपाण्डवान्॥ १७॥
अब्रुवन् कर्ण युध्यस्व कत्थसे बहु सूतज।
अनुक्त्वा विक्रमेद् यस्तु तद् वै सत्पुरुषव्रतम्॥ १८॥
गर्जित्वा सूतपुत्र त्वं शारदाभ्रमिवाफलम्।
निष्फलो दृश्यसे कर्ण तच्च राजा न बुध्यते॥ १९॥
त्वमनासाद्य तान् बाणान् फाल्गुनस्य विगर्जसि।
पार्थसायकविद्धस्य दुर्लभं गर्जितं तव॥ २०॥

युद्धक्षेत्र में तुम अकेले अर्जुन का भी सामना नहीं कर सकते। फिर कृष्णसहित सारे पाण्डवों को जीत लेने का उत्साह कैसे दिखाते हो? हे सूतपुत्र कर्ण! तुम अपनी बहुत डींग मारते हो। विना बोले युद्ध करो। जो बिना बोले अपने पराक्रम को दिखाये, वही सत्पुरुषों का व्रत है। हे सूतपुत्र कर्ण! तुम शरद ऋतु के निष्फल बादलों की तरह से गर्जते हो और निष्फल ही दिखायी देते हो, पर राजा दुर्योधन की समझ में यह बात नहीं आ रही है। तुम अर्जुन के बाणों को प्राप्त किये बिनाही गर्ज रहे हो। जब तुम अर्जुन के बाणों से बींधे जाओगे, तब तुम्हारी गर्जना दुर्लभ होजायेगी।

बाहुभिः क्षत्रियाः शूरा वाग्भिः शूरा द्विजातयः।
धनुषा फाल्गुनः शूरः कर्णः शूरो मनोरथैः॥ २१॥
तोषितो येन रुद्रोऽपि कः पार्थं प्रतिघातयेत्।
एवं संरुषितस्तेन तदा शारद्वतेन ह॥ २२॥
कर्णः प्रहरतां श्रेष्ठः कृपं वाक्यमथाब्रवीत्।
शूरा गर्जन्ति सततं प्रावृषीव बलाहकाः॥ २३॥
फलं चाशु प्रयच्छन्ति बीजमुप्तमृताविव।
दोषमत्र न पश्यामि शूराणां रणमूर्धनि॥ २४॥
तत्तद् विकत्थमानानां भारं चोद्वहतां मृधे।

क्षत्रियलोग अपनी बाहोंद्वारा अपनी वीरता दिखाते हैं। ब्राह्मण वाणीद्वारा अपनी वीरता दिखाते हैं। अर्जुन धनुष चलाने में शूरवीर है, पर कर्ण तो केवल मनोरथों में ही वीर है। जिस अर्जुन ने युद्ध में शिवाचार्य को भी सन्तुष्ट कर दिया, उसे कौन मार सकता है? कृपाचार्य के द्वारा इसप्रकार रुष्ट किया हुआ प्रहार करनेवालों में श्रेष्ठ कर्ण तब कृपाचार्य से बोला कि शूरवीर सदा वर्षाऋतु के बादलों के समान गर्जते हैं और ऋतु में बोये गये बीज के समान वे फल भी शीघ्र देते हैं। युद्ध में उत्तरदायित्व को सँभालनेवाले शूरवीर यदि युद्ध के मुहाने पर कुछ कुछ अपनी प्रशंसा भी करते

हैं तो मैं उसमें उनका दोष नहीं मानता।

वृथा शूरा न गर्जन्ति शारदा इव तोयदाः॥ २५॥
सामर्थ्यमात्मनो ज्ञात्वा ततो गर्जन्ति पण्डिताः।
सोऽहमद्य रणे यत्तौ सहितौ कृष्णपाण्डवौ॥ २६॥
उत्सहे मनसा जेतुं ततो गर्जामि गौतम।
पश्य त्वं गर्जितस्यास्य फलं मे विप्र सानुगान्॥ २७॥
हत्वापाण्डुसुतानाजौ सहकृष्णान् ससात्वतान्।
दुर्योधनाय दास्यामि पृथिवीं हतकण्टकाम्॥ २८॥

हे कृपाचार्य! शूरवीर शरदऋतु के बादलों के समान व्यर्थही नहीं गर्जते। समझदारलोग अपनी सामर्थ्य को समझकर ही गर्जना करते हैं। मैं आज युद्ध में विजय के लिये प्रयत्न करनेवाले इकट्ठे कृष्ण और अर्जुन को जीतने का मन में उत्साह रखता हूँ, इसलिये गर्जता हूँ। हे ब्राह्मण! तुम मेरे इस गर्जना करने का फल देखना। मैं सेवकों सहित, कृष्ण और यदुवंशियों सहित पाण्डुपुत्रों को युद्धक्षेत्र में मारकर यह निष्कंटक भूमि दुर्योधन को देदूँगा।

कृप उवाच

मनोरथप्रलापा मे न ग्राह्यास्तव सूतज।
सदा क्षिपसि वै कृष्णौ धर्मराजं च पाण्डवम्॥ २९॥
ध्रुवस्तत्र जयः कर्ण यत्र युद्धविशारदौ।
ब्रह्मण्यः सत्यवाग् दान्तो गुरुदैवतपूजकः॥ ३०॥
नित्यं धर्मरतश्चैव कृतास्त्रश्च विशेषतः।
धृतिमांश्च कृतज्ञश्च धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः॥ ३१॥
भ्रातरश्चास्य बलिनः सर्वास्त्रेषु कृतश्रमाः।
गुरुवृत्तिरताः प्राज्ञा धर्मनित्या यशस्विनः॥ ३२॥

तब कृपाचार्य ने कहा कि हे सारथि के पुत्र! तुम्हारे मनोरथों के आधार पर किये गये– ये प्रलाप, मेरे विश्वास करने योग्य नहीं हैं। तुम सदा श्रीकृष्ण और अर्जुन तथा पाण्डुपुत्र धर्मराज युधिष्ठिर पर आक्षेप किया करते हो, पर हे कर्ण! निश्चितरूप से विजय उसीतरफ की होगी, जिधर वेदोनों युद्धविशारद हैं। धर्मपुत्र युधिष्ठिर ब्राह्मणभक्त, सत्यवादी, दमनशील, गुरु और विद्वानों का सम्मान करनेवाले, नित्यधर्म में रत, अस्त्रविद्या में विशेषकुशल, धैर्यवान् और कृतज्ञ हैं। उनके भाई भी बलवान्, सारे शस्त्रों में परिश्रम किये हुए, गुरुसेवा परायण, विद्वान्, धर्म में लगे हुए और यशस्वी हैं।

एते चान्ये च बहवो गुणाः पाण्डुसुतस्य वै।
कामं खलु जगत्सर्वं सदेवासुरमानुषम्॥ ३३॥
निःशेषमस्त्रवीर्येण कुर्वाते भीमफाल्गुनौ।
अप्रमेयबलः शौरिर्येषामर्थे च दंशितः॥ ३४॥
कथं तान् संयुगे कर्ण जेतुमुत्सहसे परान्।
महानपनयस्त्वेष नित्यं हि तव सूतज॥ ३५॥
यस्त्वमुत्सहसे योद्धुं समरे शौरिणा सह।
एवमुक्तस्तु राधेयः प्रहसन् भरतर्षभ॥ ३६॥
अब्रवीच्च तदा कर्णो गुरुं शारद्वतं कृपम्।

इनके अतिरिक्त पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर में औरभी बहुतसे गुण हैं। अर्जुन और भीम यदि चाहें तो निश्चितरूप से देवता, असुर और मनुष्यों सहित सारे संसार को अपने अस्त्रों के प्रताप से विनष्ट कर सकते हैं। जिनके लिये अप्रतिम बल वाले श्रीकृष्ण कवच धारणकर लड़ने के लिये तैयार हैं, उन शत्रुओं को हे कर्ण! तुम युद्ध में जीतने का उत्साह कैसे रखते हो? हे सूतपुत्र! यह तुम्हारा महान् अन्याय है जो तुम युद्धक्षेत्र में श्रीकृष्ण के साथ युद्ध करने का उत्साह दिखाते हो। हे भरतश्रेष्ठ! ऐसा कहे जाने पर राधापुत्र कर्ण जोर से हँसता हुआ शरद्वान्पुत्र कृपाचार्य से बोला कि–

सत्यमुक्तं त्वया ब्रह्मन् पाण्डवान् प्रति यद् वचः॥ ३७॥
एते चान्ये च बहवो गुणाः पाण्डुसुतेषु वै।
तथापि पार्थाञ्जेष्यामि शक्त्या वासवदत्तया॥ ३८॥
मम ह्यमोघा दत्तेयं शक्तिः शक्रेण वै द्विज।
एतया निहनिष्यामि सव्यसाचिनमाहवे॥ ३९॥
हते तु पाण्डवे कृष्णे भ्रातरश्चास्य सोदराः।
अनर्जुना न शक्ष्यन्ति महीं भोक्तुं कथञ्चन॥ ४०॥
तेषु नष्टेषु सर्वेषु पृथिवीयं ससागरा।
अयत्नात् कौरवेन्द्रस्य वशे स्थास्यति गौतम॥ ४१॥

हे ब्राह्मण! तुमने पाण्डवों के विषय में जोकुछ भी कहा है, वह सत्य है। पाण्डुपुत्रों में ये तथा औरभी बहुत से गुण हैं। पर फिर भी हे ब्राह्मण! इन्द्र के द्वारा दीहुई शक्ति से कुन्तीपुत्रों को जीत लूँगा। मुझे इन्द्र ने जो अमोघ शक्ति दीहुई है, उससे मैं युद्ध में अर्जुन को जीत लूँगा। अर्जुन के मारे जाने पर उसके भाई बिना अर्जुन के किसी प्रकार भी पृथिवी का भोग नहीं कर सकते। हे गौतम!

उन सबके नष्ट होजाने पर यह समुद्रपर्यन्त भूमि बिना प्रयत्न केही दुर्योधन के बस में हो जायेगी।

सुनीतैरिह सर्वार्थाः सिध्यन्ते नात्र संशयः।
एतमर्थमहं ज्ञात्वा ततो गर्जामि गौतम॥ ४२॥
त्वं तु विप्रश्च वृद्धश्च अशक्तश्चापि संयुगे।
कृतस्नेहश्च पार्थेषु मोहान्मामवमन्यसे॥ ४३॥
यद्येवं वक्ष्यसे भूयो ममाप्रियमिह द्विज।
ततस्ते खड्गमुद्यम्य जिह्वां छेत्स्यामि दुर्मते॥ ४४॥
यच्चापि पाण्डवान् विप्र स्तोतुमिच्छसि संयुगे।
भीषयन् सर्वसैन्यानि कौरवेयाणि दुर्मते॥ ४५॥
अत्रापि शृणु मे वाक्यं यथावद् ब्रुवतो द्विज।

इसमें कोई संशय नहीं है कि संसार में सारे कार्य अच्छी नीति से किये जाने परही सिद्ध होते हैं। हे गौतम! इसी बात को समझकर मैं गर्जना करता हूँ। तुम एक तो ब्राह्मण हो, फिर बूढ़े हो, युद्ध में भी तुम शक्तिरहित हो। तुम्हारा कुन्तीपुत्रों पर प्रेम है, इसीलिये मोह के वश में होकर तुम मेरा अपमान करते हो। हे दुष्ट ब्राह्मण! यदि तुम दुबारा यहाँ मेरे लिये कड़वी बात का प्रयोग करोगे तो तलवार निकालकर तुम्हारी जीभ काट लूँगा। हे दुष्ट ब्राह्मण! जो तुम युद्धक्षेत्र में कौरवों की सारी सेना को डराते हुए पाण्डवों की स्तुति करना चाहते हो, इस विषय में भी तुम मेरी यथार्थ बात को सुनो।

दुर्योधनश्च द्रोणश्च तथा द्रौणिर्विविंशतिः॥ ४६॥
दुश्शासनो वृषसेनो मद्रराजस्त्वमेव च।
तिष्ठेयुर्दंशिता यत्र सर्वे युद्धविशारदाः॥ ४७॥
जयेदेतान् नरः को नु शक्रतुल्यबलोऽप्यरिः।
शूराश्च हि कृतास्त्राश्च बलिनः स्वर्गलिप्सवः॥ ४८॥
धर्मज्ञा युद्धकुशला हन्युर्युद्धे सुरानपि।
एतं स्थास्यन्ति संग्रामे पाण्डवानां वधार्थिनः॥ ४९॥
जयमाकाङ्क्षमाणा हि कौरवेयस्य दंशिताः।

दुश्शासन, वृषसेन, मद्रराज और तुम, दुर्योधन, द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा तथा विविंशति ये सारे युद्ध विशारद जहाँ युद्ध में कवच बाँधकर खड़े हों, तो इन्हें इन्द्र के समान बलवान् शत्रु भी कैसे जीत सकता है? ये लोग शूरवीर हैं, अस्त्रविद्या के पंडित हैं, बलवान् हैं, स्वर्ग जाने के इच्छुक हैं, युद्ध में कुशल हैं और धर्मज्ञ हैं। ये युद्ध में देवताओं को भी मार सकते हैं। ये लोग कुरुराज की विजय को चाहते हुए और पाण्डवों के वध के इच्छुक होकर, कवच बाँधकर युद्धस्थल में डट जायेंगे।

दैवायत्तमहं मन्ये जयं सुबलिनामपि॥ ५०॥
यत्र भीष्मो महाबाहुः शेते शरशताचितः।
विकर्णश्चित्रसेनश्च बाह्लीकोऽथ जयद्रथः॥ ५१॥
भूरिश्रवा जयश्चैव जलसंधः सुदक्षिणः।
शलश्च रथिनां श्रेष्ठो भगदत्तश्च वीर्यवान्॥ ५२॥
एते चान्ये च राजानो देवैरपि सुदुर्जयाः।
निहताः समरे शूराः पाण्डवैर्बलवत्तराः॥ ५३॥
किमन्यद् दैवसंयोगान्मन्यसे पुरुषाधम।

मैं बलवानों की विजय को भी परमात्मा की इच्छा के आधीन मानता हूँ। इसलिये महाबाहु भीष्म भी आज सैकड़ों बाणों से घायल होकर रणभूमि में सो रहे हैं। विकर्ण, चित्रसेन, बाह्लीक, जयद्रथ, भूरिश्रवा, जय और जलसंध, सुदक्षिण, रथियों में श्रेष्ठ शल, वीर्यवान् भगदत्त, ये तथा दूसरे राजा लोग जो देवताओं के लिये भी अत्यन्त दुर्जय थे, इन सब बहुत बलवान् और शूरवीरों को पाण्डवों ने युद्ध में मार दिया। हे दुष्ट पुरुष! तुम इसे परमात्मा की इच्छा के अतिरिक्त और क्या समझते हो?

यांश्च तान् स्तौषि सततं दुर्योधनरिपून् द्विज॥ ५४॥
तेषामपि हताः शूराः शतशोऽथ सहस्रशः।
क्षीयन्ते सर्वसैन्यानि कुरूणां पाण्डवैः सह॥ ५५॥
प्रभावं नात्र पश्यामि पाण्डवानां कथंचन।
यस्तान् बलवतो नित्यं मन्यसे त्वं द्विजाधम॥ ५६॥
यतिष्येऽहं यथाशक्ति योद्धुं तैः सह संयुगे।
दुर्योधनहितार्थाय 'जयो दैवे प्रतिष्ठितः'॥ ५७॥

हे ब्राह्मण! तुम दुर्योधन के जिन शत्रुओं की लगातार स्तुति करते हो, उनके भी सैकड़ों और हजारों शूरवीर मारे गये हैं। कौरवों की सारी सेनाएँ पाण्डवों की सेनाओं के साथ ही नष्ट होरही हैं, इसमें मैं पाण्डवों का कोई विशेष प्रभाव नहीं देख रहा हूँ। हे दुष्ट ब्राह्मण! तुम जिन्हें सदा बलवान् समझते हो, मैं दुर्योधन के हित के लिये युद्धक्षेत्र में उनके साथ युद्ध करने के लिये यथाशक्ति प्रयत्न करूँगा। पर विजय तो परमात्मा की इच्छा के ही आधीन है।

सत्तानवैवाँ अध्याय : अश्वत्थामा का कर्ण से क्रोध। दुर्योधन का उसे मनाना। कर्ण का पाँडवों और पाँचालों से युद्ध।

तथा परुषितं दृष्ट्वा सूतपुत्रेण मातुलम्।
खड्गमुद्यम्य वेगेन द्रौणिरभ्यपतद् द्रुतम्॥ १॥
यदर्जुनगुणांस्तथ्यान् कीर्तयानं नराधम।
शूरं द्वेषात् सुदुर्बुद्धे त्वं भर्त्सयसि मातुलम्॥ २॥
विकत्थमानः शौर्येण सर्वलोकधनुर्धरम्।
दर्पोत्सेधगृहीतोऽद्य न कञ्चिद् गणयन् मृधे॥ ३॥
क्व ते वीर्यं क्व चास्त्राणि यत्त्वां निर्जित्य संयुगे।
गाण्डीवधन्वा हतवान् प्रेक्षतस्ते जयद्रथम्॥ ४॥

तब अपने मामा के साथ सूतपुत्र का इसप्रकार का कठोर व्यवहार देखकर द्रोणपुत्र तलवार उठाकर तेजी से उसकीतरफ दौड़ा। अश्वत्थामा ने कहा कि अरे अधम पुरुष! अर्जुन के सत्य गुणों का वर्णन करते हुए मेरे शूरवीर मामा को द्वेष के कारण धमका रहा है, जो कि सारे संसार में श्रेष्ठ धनुर्धर है। अरे अत्यन्त दुष्ट बुद्धिवाले! तू अपनी शूरता की डींग मारता हुआ, घमंड से भरा हुआ, आज युद्धस्थल में किसी को भी अपने सामने नहीं समझता है। उस समय तेरा पराक्रम और तेरे अस्त्र कहाँ गये थे? जब तुझे युद्ध में हराकर, तेरे देखते हुए ही गाण्डीव धनुषधारी ने जयद्रथ को मार दिया?

येन साक्षान्महादेवो योधितः समरे पुरा।
तमिच्छसि वृथा जेतुं सूताधम मनोरथैः॥ ५॥
यं हि कृष्णेन सहितं सर्वशस्त्रभृतां वरम्।
जेतुं न शक्ताः सहिताः सेन्द्रा अपि सुरासुराः॥ ६॥
लोकैकवीरमजितमर्जुनं सूत संयुगे।
किं पुनस्त्वं सुदुर्बुद्धे सहैभिर्वसुधाधिपैः॥ ७॥
कर्ण पश्य सुदुर्बुद्धे तिष्ठेदानीं नराधम।
एष तेऽद्य शिरः कायादुद्धरामि सुदुर्मते॥ ८॥

जिसने पहले युद्ध में साक्षात् शिवाचार्य के साथ युद्ध किया, उसी अर्जुन को हे अधम सारथि! तू केवल मनोरथों से ही जीतने की व्यर्थ इच्छा करता है। सारे शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ अर्जुन को, श्रीकृष्ण के साथ होने पर इन्द्रसहित देवता और राक्षस भी युद्ध में नहीं जीत सकते। वह सारे संसार में अद्वितीय और अजेय वीर है। अरे अत्यन्त दुष्टबुद्धि! फिर इन राजाओं के साथ तेरी तो बात ही क्या है? अरे अत्यन्त दुर्बुदि, नराधम कर्ण! तू देख और अभी खड़ा रह महादुष्ट मति! अभी तेरे सिर को तेरे शरीर से अलग कर देता हूँ।

तमुद्यतं तु वेगेन राजा दुर्योधनः स्वयम्।
न्यवारयन्महातेजाः कृपश्च द्विपदां वरः॥ ९॥

कर्ण उवाच

शूरोऽयं समरश्लाघी दुर्मतिश्च द्विजाधमः।
आसादयतु मद्वीर्यं मुञ्चेमं कुरुसत्तम॥ १०॥

अश्वत्थामोवाच

तवैतत् क्षम्यतेऽस्माभिः सूतात्मज सुदुर्मते।
दर्पमुत्सिक्तमेतत् ते फाल्गुनो नाशयिष्यति॥ ११॥

तब इस प्रकार वेगपूर्वक उठे हुए अश्वत्थामा को स्वयं महातेजस्वी राजा दुर्योधन ने और मनुष्यों में श्रेष्ठ कृपाचार्य ने रोका। तब कर्ण ने कहा कि यह दुष्टबुद्धिवाला दुष्ट ब्राह्मण शूरवीर और युद्ध की श्लाघा करनेवाला बनता है। हे कुरुश्रेष्ठ! इसे छोड़ दो। आज यह मेरे पराक्रम का सामना करे। तब अश्वत्थामा ने कहा कि अरे अत्यन्त दुष्ट बुद्धिवाले सारथि के लड़के! तुझे हमने क्षमा किया। तेरे घमण्ड की इस बढ़ोतरी को अर्जुन विनष्ट करेंगे।

दुर्योधन उवाच

अश्वत्थामन् प्रसीदस्व क्षन्तुमर्हसि मानद।
कोपः खलु न कर्तव्यः सूतपुत्रं कथंचन॥ १२॥
त्वयि कर्णे कृपे द्रोणे मद्रराजेऽथ सौबले।
महत् कार्यं समासक्तं प्रसीद द्विजसत्तम॥ १३॥
एते ह्यभिमुखाः सर्वे राधेयेन युयुत्सवः।
आयान्ति पाण्डवा ब्रह्मन्नाह्वयन्तः समन्ततः॥ १४॥
प्रसाद्यमानस्तु ततो राज्ञा द्रौणिर्महामनाः।
प्रससाद महाराज क्रोधवेगसमन्वितः॥ १५॥

तब दुर्योधन ने कहा कि हे दूसरों को मान देने वाले अश्वत्थामा! प्रसन्न होओ और क्षमा करो। तुम्हें कर्ण के ऊपर किसीप्रकार का क्रोध नहीं करना चाहिये। तुम्हारे ऊपर, कर्ण पर, कृपाचार्य पर, द्रोणाचार्य पर, शल्य पर, और शकुनि पर बहुत बड़े कार्य का भार रखा गया है। इसलिये हे श्रेष्ठ ब्राह्मण

प्रसन्न हो जाओ। हे ब्राह्मण! ये देखो कर्ण के साथ युद्ध करने के इच्छुक पाण्डवसैनिक सबतरफ से ललकारते हुए आरहे हैं। हे महाराज! तब राजा के द्वारा मनाने पर क्रोध के वेग से युक्त महामना द्रोणपुत्र प्रसन्न होगये।

ततः कृपोऽप्युवाचेदमाचार्यः सुमहामनाः।
सौम्यस्वभावाद् राजेन्द्र क्षिप्रमागतमार्दवः॥ १६॥
तवैतत् क्षम्यतेऽस्माभिः सूतात्मज सुदुर्मते।
दर्पमुत्सिक्तमेतत् ते फाल्गुनो नाशयिष्यति॥ १७॥
ततस्ते पाण्डवा राजन् पञ्चालाश्च यशस्विनः।
आजग्मुः सहिताः कर्णं तर्जयन्तः समन्ततः॥ १८॥
कर्णोऽपि रथिनां श्रेष्ठश्चापमुद्यम्य वीर्यवान्।
कौरवाग्र्यैः परिवृतः शक्रो देवगणैरिव॥ १९॥
पर्यतिष्ठत तेजस्वी स्वबाहुबलमाश्रितः।

हे राजेन्द्र! तब अत्यन्तमहामना कृपाचार्य भी जो अपने सौम्य स्वभाव के कारण जल्दीही कोमलता को प्राप्त होगये थे, बोले कि अरे अत्यन्तदुष्ट बुद्धिवाले सारथि के लड़के! तेरा यह अपराध हमारे द्वारा क्षमा किया जाता है। तेरे घमण्ड की इस बढ़ोतरी को अर्जुन विनष्ट करेंगे। हे राजन्! फिर वे यशस्वी पाण्डव और पाँचाल सैनिक एकत्र होकर सबतरफ से गर्जना करते हुए कर्ण पर चढ़ आये। रथियों में श्रेष्ठ तब तेजस्वी और पराक्रमी कर्ण भी, देवताओं के द्वारा इन्द्र के समान कौरववीरों से घिरा हुआ, अपने बाहुबल का आश्रय लेकर और धनुष को उठाकर खड़ा होगया।

दृष्ट्वा संहारकल्पं तमुद्भूतं सैन्यसागरम्॥ २०॥
पिप्रीषुस्तव पुत्राणां संग्रामेष्वपराजितः।
सायकौघेन बलवान् क्षिप्रकारी महाबलः॥ २१॥
वारयामास तत् सैन्यं समन्ताद् भरतर्षभ।
ततस्तु शरवर्षेण पार्थिवास्तमवारयन्॥ २२॥
धनूंषि ते विधुन्वानाः शतशोऽथ सहस्रशः।
अयोधयन्त राधेयं शक्रं दैत्यगणा इव॥ २३॥

हे भरतश्रेष्ठ! तब आपके पुत्रों का प्रिय करने के इच्छुक, संग्रामों में अपराजित, बलवान्, शीघ्रकारी और महाशक्तिशाली कर्ण ने प्रलय के समान उमड़ते हुए सैन्यसागर को देखकर, अपने बाण समूहों से उस सेना को सबओर से रोक दिया। तब उन सैकड़ों और हजारों पृथिवीपतियों ने भी अपने धनुषों को हिलाते हुए, बाणवर्षा के द्वारा कर्ण को रोक दिया और वे इन्द्र के साथ दैत्यों की तरह से कर्ण के साथ युद्ध करने लगे।

शरवर्षं तु तत् कर्णः पार्थिवैः समुदीरितम्।
शरवर्षेण महता समन्ताद् व्यकिरत् प्रभो॥ २४॥
तत्राद्भुतमपश्याम सूतपुत्रस्य लाघवम्।
यदेनं सर्वतो यत्ता नाप्नुवन्ति परे युधि॥ २५॥
ततस्ते व्याकुलीभूता राजानः कर्णपीडिताः।
बभ्रमुस्तत्र तत्रैव गावः शीतार्दिता इव॥ २६॥
हयानां वध्यमानानां गजानां रथिनां तथा।
तत्र तत्राभ्यवेक्षाम संघान् कर्णेन ताडितान्॥ २७॥

हे प्रभो! पृथिवीपतियों द्वारा प्रारम्भ कीगयी उस बाणवर्षा को कर्ण ने अपनी महान् बाणवर्षा के द्वारा सबतरफ बखेर दिया। वहाँ हमने कर्ण की अद्भुत फुर्ती को देखा। जिससे सबतरफ से प्रयत्न करके लड़नेवाले शत्रु उसे अपने वश में नहीं कर पा रहे थे। फिर कर्ण के द्वारा व्याकुल किये गये वे पृथिवीपति इसप्रकार चक्कर खाने लगे, जैसे सर्दी से पीड़ित गायें। कर्ण के द्वारा मारे गये घोड़ों, रथियों और हाथियों के समूहों को वहाँ हमने जहाँतहाँ देखा।

शिरोभिः पतितै राजन् बाहुभिश्च समन्ततः।
आस्तीर्णा वसुधा सर्वा शूराणामनिवर्तिनाम्॥ २८॥
हतैश्च हन्यमानैश्च निष्टनद्भिश्च सर्वशः।
बभूवायोधनं रौद्रं वैवस्वतपुरोपमम्॥ २९॥
ततो दुर्योधनो राजा दृष्ट्वा कर्णस्य विक्रमम्।
अश्वत्थामानमासाद्य वाक्यमेतदुवाच ह॥ ३०॥
युध्यतेऽसौ रणे कर्णो दंशितः सर्वपार्थिवैः।
पश्यैतां द्रवतीं सेनां कर्णसायकपीडिताम्॥ ३१॥
कार्तिकेयेन विध्वस्तामासुरीं पृतनामिव।

हे राजन्! युद्ध में पीछे न हटनेवाले शूरवीरों के कटे हुए सिर और हाथ वहाँ भूमि पर सबतरफ बिखरे पड़े थे। वहाँ कुछलोग मारे गये थे, कुछ मारे जारहे थे और कुछ पीड़ा से कराह रहे थे। इन सबके कारण वह युद्धक्षेत्र मृत्यु के भयंकर नगर के समान प्रतीत होरहा था। तब कर्ण के पराक्रम को देखकर राजा दुर्योधन अश्वत्थामा के पास आकर बोला कि कवच बाँधकर कर्ण युद्धक्षेत्र में सारे राजाओं के साथ युद्ध कर रहा है। जैसे कार्तिकेय ने राक्षसों की सेना

को ध्वस्त किया था, वैसेही देखो कर्ण के बाणों से पीड़ित यह सेना भाग रही है।

दृष्ट्वैतां निर्जितां सेनां रणे कर्णेन धीमता॥ ३२॥
अभियात्येष बीभत्सुः सूतपुत्रजिघांसया।
तद् यथा प्रेक्षमाणानां सूतपुत्रं महारथम्॥ ३३॥
न हन्यात् पाण्डवः संख्ये तथा नीतिर्विधीयताम्।
ततो द्रौणिः कृपः शल्यो हार्दिक्यश्च महारथः॥ ३४॥
प्रत्युद्ययुस्तदा पार्थं सूतपुत्रपरीप्सया।
आयान्तं वीक्ष्य कौन्तेयं शक्रं दैत्यचमूमिव॥ ३५॥

धीमान् कर्ण के द्वारा युद्धक्षेत्र में जीती हुई इस सेना को देखकर यह अर्जुन कर्ण को मारने की इच्छा से आरहा है। इसलिये जिससे हमलोगों के देखते हुएही पाण्डुपुत्र महारथी सूतपुत्र को युद्धक्षेत्र में न मार दे, ऐसी नीति से काम लो। तब सूतपुत्र को बचाने की इच्छा से, दैत्यों की सेना की तरफ इन्द्र के समान आते हुए उस कुन्ती पुत्र को देखकर द्रोणपुत्र, कृपाचार्य, शल्य, और महारथी कृतवर्मा अर्जुन की तरफ आगे बढ़े।

अठ्ठानवैवाँ अध्याय : अर्जुन द्वारा कर्ण की पराजय। दुर्योधन का पाँचालों के वध के लिये अश्वत्थामा से अनुरोध।

आयान्तं पाण्डवं दृष्ट्वा गजं प्रतिगजो यथा।
असम्भ्रान्तो रणे कर्णः प्रत्युदीयाद् धनंजयम्॥ १॥
तमापतन्तं वेगेन वैकर्तनमजिह्मगैः।
छादयामास पार्थोऽथ कर्णस्तु विजयं शरैः॥ २॥
स कर्णं शरजालेन च्छादयामास पाण्डवः।
ततः कर्णः सुसंरब्धः शरैस्त्रिभिरविध्यत॥ ३॥
तस्य तल्लाघवं पार्थो नामृष्यत महाबलः।
तस्मै बाणाञ्शिलाधौतान् प्रसन्नाग्रानजिह्मगान्॥ ४॥
प्राहिणोत् सूतपुत्राय त्रिशतं शत्रुतापनः।

तब पाण्डुपुत्र को आते हुए देखकर, जैसे एक हाथी दूसरे हाथी की तरफ चले, वैसेही बिना घबराये हुए कर्ण युद्धस्थल में अर्जुन का सामना करने को आगे बढ़ा। तब वेग से आक्रमण करते हुए सूर्यपुत्र कर्ण को कुन्तीपुत्र ने सीधे जानेवाले बाणों से आच्छादित कर दिया और कर्ण ने भी अर्जुन को बाणों से ढक दिया। तब पाण्डुपुत्र ने फिर कर्ण को अपने बाणों के जाल से ढक दिया। तब कर्ण ने अत्यन्तक्रुद्ध होकर अर्जुन को तीन बाणों से बींध दिया। तब महाबली अर्जुन ने उसकी उस फुर्ती को सहन नहीं किया। उस शत्रुओं को सन्तप्त करनेवाले ने तब शिला पर साफ किये हुए, स्वच्छ नोकवाले, सीधे जानेवाले तीन सौ बाणों की वर्षा सूतपुत्र पर की।

विव्याध चैनं संरब्धो बाणेनैकेन वीर्यवान्॥ ५॥
सव्ये भुजाग्रे बलवान् नाराचेन हसन्निव।
तस्य विद्धस्य बाणेन कराच्चापं पपात ह॥ ६॥
पुनरादाय तच्चापं निमेषार्धान्महाबलः।
छादयामास बाणौघैः फाल्गुनं कृतहस्तवत्॥ ७॥
शरवृष्टिं तु तां मुक्तां सूतपुत्रेण भारत।
व्यधमच्छरवर्षेण स्मयन्निव धनंजयः॥ ८॥
तौ परस्परमासाद्य शरवर्षेण पार्थिव।
छादयेतां महेष्वासौ कृतप्रतिकृतैषिणौ॥ ९॥

फिर उस पराक्रमी और बलवान् अर्जुन ने क्रोध में भरकर मुस्कराते हुए एक नाराचबाण से उसकी बायीं भुजा को बींध दिया। उस बाण से बिंधकर कर्ण के हाथ से धनुष गिर पड़ा, पर उस महाबली ने आधे पल में ही धनुष को उठा लिया और सिद्धहस्त के समान अर्जुन को बाणसमूह से ढक दिया। हे भारत! फिर सूतपुत्रद्वारा की हुई उस बाणवर्षा को अर्जुन ने मुस्कराते हुए अपनी बाणवर्षा से नष्ट कर दिया। इसप्रकार हे राजन्! वेदोनों महाधनुर्धर, एकदूसरे से लड़ते हुए, एकदूसरे पर घातप्रतिघात करने की इच्छा से, एकदूसरे को बाणवर्षा से आच्छादित करने लगे।

ततः पार्थो महेष्वासो दृष्ट्वा कर्णस्य विक्रमम्।
मुष्टिदेशे धनुस्तस्य चिच्छेद त्वरयान्वितः॥ १०॥
अश्वांश्च चतुरो भल्लैरनयद् यमसादनम्।
सारथेश्च शिरः कायादहरच्छत्रुतापनः॥ ११॥
अथैनं छिन्नधन्वानं हताश्वं हतसारथिम्।
विव्याध सायकैः पार्थश्चतुर्भिः पाण्डुनन्दनः॥ १२॥

फिर महाधनुर्धर कुन्तीपुत्र ने कर्ण के पराक्रम को देखकर शीघ्रता से उसके धनुष को मुट्ठी के स्थान से काट दिया। फिर उसके चारों घोड़ों को भी भल्लों से मार दिया। फिर शत्रु को सन्तप्त करने वाले ने उसके सारथि का भी सिर शरीर से अलग कर दिया। जिसका धनुष टूट गया था, घोड़े और सारथि मारे गये थे, उस कर्ण को पाण्डुपुत्र अर्जुन ने चार बाणों से बींध दिया।

हताश्वात् तु रथात् तूर्णमवप्लुत्य नरर्षभः।
आरुरोह रथं तूर्णं कृपस्य शरपीडितः॥ १३॥
राधेयं निर्जितं दृष्ट्वा तावका भरतर्षभ।
धनंजयशरैर्नुन्नाः प्राद्रवन्त दिशो दश॥ १४॥
द्रवतस्तान् समालोक्य राजा दुर्योधनो नृप।
निवर्तयामास तदा वाक्यमेतदुवाच ह॥ १५॥
अलं द्रुतेन वः शूरास्तिष्ठध्वं क्षत्रियर्षभाः।
एष पार्थवधायाहं स्वयं गच्छामि संयुगे॥ १६॥

तब वह बाणों से पीड़ित नरश्रेष्ठ मरे घोड़ोंवाले रथ से तुरन्त कूदकर कृपाचार्य के रथ पर चढ़ गया। हे भरतश्रेष्ठ! तब कर्ण को हारा हुआ देखकर अर्जुन के बाणों से पीड़ित आपके सैनिक सबतरफ भागने लगे। उन्हें भागते हुए देखकर राजा दुर्योधन ने तब उन्हें, वापिस लौटाया और उनसे कहा कि हे क्षत्रियश्रेष्ठ शूरवीरों! भागो मत। यह मैं स्वयं अर्जुन के वध के लिये युद्धक्षेत्र में चलता हूँ।

जेष्याम्यद्य रणे पार्थं सायकैर्नतपर्वभिः।
तिष्ठध्वं समरे शूरा भयं त्यजत फाल्गुनात्॥ १७॥
न हि मद्वीर्यमासाद्य फाल्गुनः प्रसहिष्यति।
यथा वेलां समासाद्य सागरो मकरालयः॥ १८॥
इत्युक्त्वा प्रययौ राजा सैन्येन महता वृतः।
फाल्गुनं प्रति दुर्धर्षः क्रोधात् संरक्तलोचनः॥ १९॥
तं प्रयान्तं महाबाहुं दृष्ट्वा शारद्वतस्तदा।
अश्वत्थामानमासाद्य वाक्यमेतदुवाच ह॥ २०॥

आज मैं अपने झुकी गाँठवाले बाणों से युद्ध में अर्जुन को जीत लूँगा। हे शूरवीरों! तुम युद्ध में डटे रहो और अर्जुन से भय छोड़ दो। मेरे सामने अर्जुन मेरे पराक्रम को सहन नहीं कर सकते। जैसे तटभूमि पर पहुँचकर समुद्र शान्त होजाता है। ऐसा कहकर वह दुर्धर्ष राजा क्रोध से लाल आँखेंकर महान् सेना से घिरकर अर्जुन की तरफ आगे बढ़ा।

तब उसमहाबाहु को उसतरफ जाता हुआ देखकर कृपाचार्य ने अश्वत्थामा के पास जाकर यह कहा कि–

एष राजा महाबाहुरमर्षी क्रोधमूर्च्छितः।
पतङ्गवृत्तिमास्थाय फाल्गुनं योद्धुमिच्छति॥ २१॥
यावन्नः पश्यमानानां प्राणान् पार्थेन संगतः।
न जह्यात् पुरुषव्याघ्रस्तावद् वारय कौरवम्॥ २२॥
यावत् फाल्गुनबाणानां गोचरं नाद्य गच्छति।
कौरवः पार्थिवो वीरस्तावद् वारय संयुगे॥ २३॥
यावत् पार्थशरैर्घोरैर्निर्मुक्तोरगसंनिभैः।
न भस्मीक्रियते राजा तावद् युद्धान्निवार्यताम्॥ २४॥

यह महाबाहु राजा, अमर्ष में भरकर क्रोध से पागल होकर पतंगे की तरह अर्जुन से लड़ने को जारहा है। अर्जुन से भिड़कर हमारे देखते देखते जब तक यह पुरुषश्रेष्ठ अपने प्राणों को न त्याग दे, उससे पहले तुम इस कौरव को रोका। यह कुरुवंशी वीर राजा जबतक अर्जुन के बाणों की मार में न पहुँच जाये, उससे पहले तुम इसे रोक दो। केंचुल से निकले साँपों के समान अर्जुन के भयानक बाण जबतक इसे भस्म न कर दें, उससे पहले तुम इस राजा को युद्ध से अलग कर दो।

अयुक्तमिव पश्यामि तिष्ठत्स्वस्मासु मानद।
स्वयं युद्धाय यद् राजा पार्थं यात्यसहायवान्॥ २५॥
दुर्लभं जीवितं मन्ये कौरव्यस्य किरीटिना।
युध्यमानस्य पार्थेन शार्दूलेनेव हस्तिनः॥ २६॥
मातुलेनैवमुक्तस्तु द्रौणिः शस्त्रभृतां वरः।
दुर्योधनमिदं वाक्यं त्वरितः समभाषत॥ २७॥
मयि जीवति गान्धारे न युद्धं गन्तुमर्हसि।
मामनादृत्य कौरव्य तव नित्यं हितैषिणम्॥ २८॥

हे मान देनेवाले! मैं इसे अनुचित समझता हूँ कि हमारे विद्यमान् रहते हुए राजा बिना किसी सहायक के स्वयं अर्जुन से युद्ध करने के लिये जाये। जैसे सिंह के साथ हाथी युद्ध करे तो उसका बचना कठिन है, वैसेही अर्जुन से लड़ते हुए मैं कुरुवंशी दुर्योधन के जीवन को दुर्लभ मानता हूँ। मामा के ऐसा कहने पर शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ द्रोणपुत्र ने शीघ्रता से दुर्योधन के पास जाकर यह कहा कि मैं सदा तुम्हारा हितैषी हूँ, इसलिये मेरे जीते हुए हे गान्धारीपुत्र! मेरा अनादर कर तुम्हें युद्ध के लिये नहीं जाना चाहिये।

दुर्योधन उवाच

आचार्यः पाण्डुपुत्रान् वै पुत्रवत् परिरक्षति।
त्वमप्युपेक्षां कुरुषे तेषु नित्यं द्विजोत्तम॥ २९॥
मम वा मन्दभाग्यत्वान्मन्दस्ते विक्रमो युधि।
धर्मराजप्रियार्थं वा द्रौपद्या वा न विद्म तत्॥ ३०॥
धिगस्तु मम लुब्धस्य यत्कृते सर्वबान्धवाः।
सुखार्हाः परमं दुःखं प्राप्नुवन्त्यपराजिताः॥ ३१॥
को हि शस्त्रविदां मुख्यो महेश्वरसमो युधि।
शत्रुं न क्षपयेच्छक्तो यो न स्याद् गौतमीसुतः॥ ३२॥

तब दुर्योधन ने कहा कि द्रोणाचार्य तो पाण्डुपुत्रों की पुत्र के समान रक्षा करते हैं। हे द्विजश्रेष्ठ! तुम भी सदा उनकी उपेक्षा करते हो। या मेरे मन्दभागी होने के कारण तुम्हारा युद्ध में पराक्रम धीमा होगया है, या तुम धर्मराज या द्रौपदी के प्रिय के लिये ऐसा करते हो, मुझे पता नहीं। मुझ लोभी को धिक्कार है, जिसके लिये किसी से पराजित न होने वाले मेरे सारे सुख भोगनेयोग्य बान्धव अत्यन्त दुःख को प्राप्त होरहे हैं। कृपीकुमार अश्वत्थामा के सिवाय ऐसा कौन है, जो शस्त्रवेत्ताओं में प्रमुख युद्ध में शिव के समान शक्तिशाली होकर भी शत्रु का विनाश न करे।

अश्वत्थामन् प्रसीदस्व नाशयैतान् ममाहितान्।
तवास्त्रगोचरे शक्ताः स्थातुं देवा न दानवाः॥ ३३॥
पञ्चालान् सोमकांश्चैव जहि द्रौणे सहानुगान्।
वयं शेषान् हनिष्यामस्त्वयैव परिरक्षिताः॥ ३४॥
एते हि सोमका विप्र पञ्चालाश्च यशस्विनः।
मम सैन्येषु संक्रुद्धा विचरन्ति दवाग्निवत्॥ ३५॥
तान् वारय महाबाहो केकयांश्च नरोत्तम।
पुरा कुर्वन्ति निःशेषं रक्ष्यमाणाः किरीटिना॥ ३६॥

हे अश्वत्थामा! तुम प्रसन्न होजाओ और मेरे इन शत्रुओं का विनाश करो। तुम्हारे हथियारों के मार्ग में देवता और दानव भी नहीं ठहर सकते। हे द्रोणपुत्र! तुम सेवकोंसहित इन पाँचालों और सोमकों को मार दो। फिर शेष बचे हुओं को हम तुम्हारे द्वारा ही सुरक्षित रहकर मार देंगे। हे ब्राह्मण! ये यशस्वी सोमक और पाँचाल अत्यन्त क्रोध में भरकर मेरी सेनाओं में दावानल के समान विचरण कर रहे हैं। हे महाबाहु, हे नरश्रेष्ठ! इससे पहले कि ये अर्जुन से सुरक्षित रहकर मेरी सेना को समाप्त कर दें, तुम इन्हें और केकयों को रोको।

अश्वत्थामंस्त्वरायुक्तो याहि शीघ्रमरिंदम।
आदौ वा यदि वा पश्चात् तवेदं कर्म मारिष॥ ३७॥
न त्वां समर्थाः संग्रामे पाण्डवाः सह सोमकैः।
बलाद् योधयितुं वीर सत्यमेतद् ब्रवीमि ते॥ ३८॥
गच्छ गच्छ महाबाहो न नः कालात्ययो भवेत्।
इयं हि द्रवते सेना पार्थसायकपीडिता॥ ३९॥

हे शत्रुओं का दमन करनेवाले अश्वत्थामा! तुम जल्दी से जाओ। हे मान्यवर! चाहे पहले करो या पीछे, यह कार्य तुम्हारा ही है। पाण्डव सोमकों के सहित तुमसे युद्धस्थल में बलपूर्वक युद्ध नहीं कर सकते। हे वीर! यह मैं तुमसे सत्य कहता हूँ। हे महाबाहु! जाओ। जाओ। हमारा समय व्यर्थ नहीं व्यतीत होना चाहिये। अर्जुन के बाणों से पीड़ित होकर देखो यह सेना भागी जारही है।

निन्यानवैवाँ अध्याय : अश्वत्थामा का दुर्योधन को उपालम्भयुक्त आश्वासन और धृष्टद्युम्न को पराजित करना। भीम और अर्जुन की वीरता।

प्रत्युवाच महाबाहुस्तव पुत्रमिदं वचः।
सत्यमेतन्महाबाहो यथा वदसि कौरव॥ १॥
प्रिया हि पाण्डवा नित्यं मम चापि पितुश्च मे।
तथैवावां प्रियौ तेषां न तु युद्धे कुरूद्वह॥ २॥
शक्तितस्तात युध्यामस्त्यक्त्वा प्राणानभीतवत्।
अहं कर्णश्च शल्यश्च कृपो हार्दिक्य एव च॥ ३॥
निमेषात् पाण्डवीं सेनां क्षपयेम नृपोत्तम।
ते चापि कौरवीं सेनां निमेषार्धात् कुरूद्वह॥ ४॥
क्षपयेयुर्महाबाहो न स्याम यदि संयुगे।

राजन्! तब महाबाहु अश्वत्थामा ने तुम्हारे पुत्र को उत्तर में यह कहा कि हे महाबाहु कौरव! यह सत्य है, जैसा तुम कहते हो। मेरे और पिता जी के लिये पाण्डव सदा प्रिय रहे हैं और हमदोनों भी उनके प्रिय हैं। पर हे कुरुश्रेष्ठ! हम युद्ध के समय ऐसा नहीं सोचते। हम प्राणों का मोह छोड़कर पूरी शक्ति के साथ निर्भय होकर युद्ध करते हैं। मैं, कर्ण,

शल्य, कृपाचार्य और कृतवर्मा पलभर में ही हे श्रेष्ठ राजन्! पाण्डव सेना को नष्ट कर सकते हैं। पर हे महाबाहु कुरुश्रेष्ठ! वे पाण्डवलोग भी आधे पल में ही कौरवसेना को नष्ट कर सकते हैं, यदि हमलोग युद्धस्थल में न हों।

युध्यतां पाण्डवाञ्छक्त्या तेषां चास्मान् युयुत्सताम्॥ ५॥
तेजस्तेजः समासाद्य प्रशमं याति भारत।
अशक्या तरसा जेतुं पाण्डवानामनीकिनी॥ ६॥
जीवत्सु पाण्डुपुत्रेषु तद्धि सत्यं ब्रवीमि ते।
आत्मार्थं युध्यमानास्ते समर्थाः पाण्डुनन्दनाः॥ ७॥
किमर्थं तव सैन्यानि न हनिष्यन्ति भारत।
त्वं तु लुब्धतमो राजन् निकृतिज्ञश्च कौरव॥ ८॥
सर्वाभिशङ्की मानी च ततोऽस्मानभिशङ्कसे।

हे भारत! हमारे पूरी शक्ति से पाण्डवों से युद्ध करते हुए और उनके भी हमसे युद्ध करते हुए दोनों का तेज एकदूसरे से टकराकर शान्त होजाता है। यह मैं सत्य कहता हूँ कि पाण्डवपुत्रों के जीवित रहते हुए उनकी सेना को बलपूर्वक नहीं जीता जा सकता। हे भारत! वे शक्तिशाली पाण्डव अपने लिये युद्ध कर रहे हैं। वे कौरवसेना का विनाश क्यों नहीं करेंगे? हे कुरुराज! तुम तो अत्यन्तलोभी और कपटी हो। सबके ऊपर शंका करते हो और घमण्डी हो, इसलिये हमारे ऊपर भी शंका करते हो।

मन्ये त्वं कुत्सितो राजन् पापात्मा पापपूरुषः॥ ९॥
अन्यानपि स नः क्षुद्र शङ्कसे पापभावितः।
अहं तु यत्नमास्थाय त्वदर्थे त्यक्तजीवितः॥ १०॥
एष गच्छामि संग्रामं त्वत्कृते कुरुनन्दन।
योत्स्येऽहं शत्रुभिः सार्धंजेष्यामि च वरान् वरान्॥ ११॥
पञ्चालैः सह योत्स्यामि सोमकैः केकयैस्तथा।
पाण्डवेयैश्च संग्रामे त्वत्प्रियार्थमरिंदम॥ १२॥

हे राजन्! मैं यह मानता हूँ कि तुम निन्दित, पापात्मा और पापपुरुष हो। हे क्षुद्र! तुम्हारी भावनाओं में पाप है, इसलिये तुम हमारे और दूसरों के ऊपर भी शंका करते हो। हे कुरुनन्दन! मैं तो तुम्हारे लिये प्राणों का मोह छोड़कर पूरे प्रयत्न का आश्रय लेकर यह युद्धभूमि में जारहा हूँ। मैं शत्रुओं के साथ युद्ध करूँगा और उनके प्रमुख योद्धाओं पर विजय प्राप्त करूँगा। हे शत्रुदमन! तुम्हारा प्रिय करने के लिये मैं पाँचालों, सोमकों, केकयों और पाण्डवों के साथ भी युद्ध करूँगा।

अद्य मद्बाणनिर्दग्धाः पञ्चालाः सोमकास्तथा।
सिंहेनेवार्दिता गावो विद्रविष्यन्ति सर्वशः॥ १३॥
अद्य धर्मसुतो राजा दृष्ट्वा मम पराक्रमम्।
अश्वत्थाममयं लोकं मंस्यते सह सोमकैः॥ १४॥
आगमिष्यति निर्वेदं धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः।
दृष्ट्वा विनिहतान् संख्ये पञ्चालान् सोमकैः सह॥ १५॥
ये मां युद्धेऽभियोत्स्यन्ति तान् हनिष्यामि भारत।
न हि ते वीर मोक्ष्यन्ते मद्बाह्वन्तरमागताः॥ १६॥

आज मेरे बाणों से दग्ध होकर पाँचाल और सोमकलोग ऐसे भागेंगे जैसे सिंह से पीड़ित होकर गायें भागती हैं। आज धर्मपुत्र युधिष्ठिर सोमकोंसहित मेरा पराक्रम देखकर संसार को अश्वत्थामा से भरा हुआ समझेंगे। युद्धक्षेत्र में पाँचालों को सोमकों के साथ मारा हुआ देखकर धर्मपुत्र युधिष्ठिर को वैराग्य प्राप्त होजायेगा। हे वीर भारत! जो मेरे साथ युद्ध करेंगे, उन्हें मैं मार दूँगा। वे मेरी बाहों के बीच में आकर बच नहीं सकते।

एवमुक्त्वा महाबाहुः पुत्रं दुर्योधनं तव।
अभ्यवर्तत युद्धाय त्रासयन् सर्वधन्विनः॥ १७॥
चिकीर्षुस्तव पुत्राणां प्रियं प्राणभृतां वरः।
ततोऽब्रवीत् सकैकेयान् पञ्चालान् गौतमीसुतः॥ १८॥
प्रहरध्वमितः सर्वे मम गात्रे महारथाः।
स्थिरीभूताश्च युद्ध्यध्वं दर्शयन्तोऽस्त्रलाघवम्॥ १९॥
एवमुक्तास्तु ते सर्वे शस्त्रवृष्टीरपातयन्।
द्रौणिं प्रति महाराज जलं जलधरा इव॥ २०॥

वह प्राणधारियों में श्रेष्ठ महाबाहु, आपके पुत्रों का प्रिय करने का इच्छुक अश्वत्थामा आपके पुत्र दुर्योधन से ऐसा कहकर, सारे धनुधरों को भयभीत करता हुआ, युद्ध के लिये डट गया। फिर उसने केकयोंसहित पाँचालों से कहा कि हे महारथियों! तुमसब मेरे शरीर पर प्रहार करो और अपने अस्त्र कौशल को दिखाते हुए स्थिर होकर मेरे साथ युद्ध करो। हे महाराज! ऐसा कहने पर वे सारे द्रोणपुत्र के ऊपर इसप्रकार बाणों की वर्षा करने लगे, जैसे बादल जल की धारा बरसाते हैं।

तान् निहत्य शरान्द्रौणिर्दश वीरानपोथयत्।
प्रमुखे पाण्डुपुत्राणां धृष्टद्युम्नस्य च प्रभो॥ २१॥

ते हन्यमानाः समरे पञ्चालाः सोमकास्तथा।
परित्यज्य रणे द्रौणिं व्यद्रवन्त दिशो दश॥ २२॥
ततः काञ्चनचित्राणां सजलाम्बुदनादिनाम्।
वृतः शतेन शूराणां रथानामनिवर्तिनाम्॥ २३॥
पुत्रः पाञ्चालराजस्य धृष्टद्युम्नो महारथः।
द्रौणिमित्यब्रवीद् वाक्यं दृष्ट्वा योधान् निपातितान्॥ २४॥

हे प्रभो! उन बाणों को नष्टकर द्रोणपुत्र ने पाण्डुपुत्रों के और धृष्टद्युम्न के सामने ही उनके दस वीरों को मार दिया। फिर उसके द्वारा युद्धस्थल में मारे जाते हुए पाँचाल और सोमकलोग युद्ध में द्रोणपुत्र को छोड़कर सबतरफ भागने लगे। तब स्वर्णचित्रित और पानीवाले बादलों के समान ध्वनि वाले रथों पर बैठे हुए सौ युद्ध से पीछे न हटने वाले शूरवीरों से घिरा हुआ, पाँचालराज का पुत्र महारथी धृष्टद्युम्न, अपने योद्धाओं को मारा हुआ देखकर द्रोणपुत्र से बोला कि—

आचार्यपुत्र दुर्बुद्धे किमन्यैर्निहतैस्तव।
समागच्छ मया सार्धं यदि शूरोऽसि संयुगे॥ २५॥
अहं त्वां निहनिष्यामि तिष्ठेदानीं ममाग्रतः।
ततस्तमाचार्यसुतं धृष्टद्युम्नः प्रतापवान्॥ २६॥
मर्मभिद्भिः शरैस्तीक्ष्णैर्जघान भरतर्षभ।
सोऽतिविद्धो भृशं क्रुद्धः पदाक्रान्त इवोरगः॥ २७॥
मानी द्रौणिरसम्भ्रान्तो बाणपाणिरभाषत।
धृष्टद्युम्न स्थिरो भूत्वा मुहूर्तं प्रतिपालय॥ २८॥
यावत् त्वां निशितैर्बाणैः प्रेषयामि यमक्षयम्।

हे दुर्बुद्धि आचार्यपुत्र! दूसरों को मारने से क्या लाभ? यदि तू शूरवीर है, तो युद्धक्षेत्र में मेरे साथ आ। मेरे सामने खड़ा हो। मैं तुझे मारूँगा। हे भरतश्रेष्ठ! तब उस प्रतापी धृष्टद्युम्न ने मर्मभेदी तीखे बाणों से आचार्यपुत्र को चोट पहुँचाई। फिर अत्यन्त घायल होकर और पैर से कुचले हुए सर्प के समान अत्यन्त क्रोध में भरकर अभिमानी द्रोणपुत्र, बिना घबराये हुए, बाणों को हाथ में लेकर बोला कि— हे धृष्टद्युम्न! तू स्थिर होकर थोड़ी देर खड़ा रह, जब तक मैं अपने तीखे बाणों से तुझे मृत्युलोक में न भेज दूँ।

द्रौणिरेवमथाभाष्य पार्षतं परवीरहा॥ २९॥
छादयामास बाणौघैः समन्ताल्लघुहस्तवत्।
स बाध्यमानः समरे द्रौणिना युद्धदुर्मदः॥ ३०॥
द्रौणिं पाञ्चालतनयो, वाग्भिरातर्जयत् तदा।
यस्ते पार्थेषु विद्वेषो या भक्तिः कौरवेषु च॥ ३१॥
तां दर्शय स्थिरो भूत्वा न मे जीवन् विमोक्ष्यसे।
यो हि ब्राह्मण्यमुत्सृज्य क्षत्रधर्मरतो द्विजः॥ ३२॥
स वध्यः सर्वलोकस्य यथा त्वं पुरुषाधमः।

शत्रु के वीरों को नष्ट करनेवाले द्रोणपुत्र ने ऐसा कहकर सिद्धहस्त के समान द्रुपदपुत्र को सबतरफ से बाणों से भर दिया। तब युद्ध में दुर्मद, पाँचाल राजपुत्र ने युद्धस्थल में द्रोणपुत्र के द्वारा पीड़ित होने पर उसे अपनी वाणी से धमकाया और कहा कि तेरा कुन्तीपुत्रों के साथ जो द्वेष है और कौरवों के साथ प्रेम है, तू उसे स्थिर होकर दिखा। आज तू मुझसे जीवित नहीं छूट सकता। जो अपने ब्राह्मणत्व को छोड़कर क्षत्रियधर्म में लग जाता है, वह ब्राह्मण सारे संसार के द्वारा मारनेयोग्य होता है, जैसे पुरुषों में अधम तू है।

इत्युक्तः परुषं वाक्यं पार्षतेन द्विजोत्तमः॥ ३३॥
क्रोधमाहारयत् तीव्रं तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत्।
निर्दहन्निव चक्षुर्भ्यां पार्षतं सोऽभ्यवैक्षत॥ ३४॥
छादयामास च शरैर्निःश्वसन् पन्नगो यथा।
स च्छाद्यमानः समरे द्रौणिना राजसत्तम॥ ३५॥
सर्वपाञ्चालसेनाभिः संवृतो रथसत्तमः।
नाकम्पत महाबाहुः स्ववीर्यं समुपाश्रितः॥ ३६॥
सायकांश्चैव विविधानश्वत्थाम्नि मुमोच ह।

धृष्टद्युम्न के द्वारा इसप्रकार कठोर वाक्य कहे जाने पर उस श्रेष्ठ ब्राह्मण अश्वत्थामा को बहुत क्रोध आया और उसने कहा कि अरे ठहर जा, ठहर जा। आँखों से मानो भस्म सा करते हुए उसने द्रुपदपुत्र की तरफ देखा और साँप के समान लम्बी साँसें लेते हुए उसे बाणों से ढक दिया। हे राजश्रेष्ठ! तब द्रोणपुत्र के द्वारा युद्धस्थल में बाणों से आच्छादित होकर भी सारी पाँचालसेना से घिरा हुआ, रथियों में श्रेष्ठ महाबाहु धृष्टद्युम्न कम्पित नहीं हुआ और अपने पराक्रम का आश्रय लेकर उसने अनेकप्रकार के बाणों को अश्वत्थामा के ऊपर छोड़ा।

तौ पुनः संन्यवर्तेतां प्राणद्यूतपणे रणे॥ ३७॥
निपीडयन्तौ बाणौघैः परस्परममर्षिणौ।
उत्सृजन्तौ महेष्वासौ शरवृष्टीः समन्ततः॥ ३८॥

तस्मिंस्तु तुमुले युद्धे भीरूणां भयवर्धने।
मुहूर्तमपि तद् युद्धं समरूपं तदाभवत्॥ ३९॥
ततो द्रौणिर्महाराज पार्षतस्य महात्मनः।
ध्वजं धनुस्तथा छत्रमुभौ च पार्ष्णिसारथी॥ ४०॥
सूतमश्वांश्च चतुरो निहत्याभ्यद्रवद् रणे।

वेदोनों एकदूसरे के प्रति अमर्षशील, महाधनुर्धर प्राणों की बाजी लगाकर उस युद्धस्थल में तब सब तरफ से बाणों की वर्षा करते हुए और परस्पर बाणों से पीड़ित करते हुए युद्ध करते रहे। कायरों के भय को बढ़ानेवाले उस भयंकर युद्ध में थोड़ी देरतक तो वह युद्ध समान रूप से चलता रहा। हे महाराज! फिर द्रोणपुत्र ने मनस्वी द्रुपदपुत्र के ध्वज, धनुष, छत्र, दोनों पृष्ठ रक्षकों, सारथि और चारों घोड़ों को मारकर उसके ऊपर जोर से आक्रमण किया।

पञ्चालांश्चैव तान् सर्वान् बाणैः संनतपर्वभिः॥ ४१॥
व्यद्रावयदमेयात्मा शतशोऽथ सहस्रशः।
ततस्तु विव्यथे सेना पाण्डवी भरतर्षभ॥ ४२॥
दृष्ट्वा द्रौणेर्महत् कर्म वासवस्येव संयुगे।
शतेन च शतं हत्वा पञ्चालानां महारथः॥ ४३॥
त्रिभिश्च निशितैर्बाणैर्हत्वा त्रीन् वै महारथान्।
द्रौणिर्द्रुपदपुत्रस्य फाल्गुनस्य च पश्यतः॥ ४४॥
नाशयामास पञ्चालान् भूयिष्ठं ये व्यवस्थिताः।

अमितआत्मावाले अश्वत्थामा ने झुकी हुई गाँठवाले बाणों से उन सैंकड़ों, हजारों पाँचालों को भगा दिया। हे भरतश्रेष्ठ! तब युद्धस्थल में द्रोणपुत्र के इन्द्र के समान महान् कर्म को देखकर पाण्डवों की सेना व्यथित होगयी। महारथी द्रोणपुत्र ने सौ बाणों से सौ पाँचालों को मारकर तीन तीखे बाणों से उसके तीन महारथियों को मारकर अर्जुन और धृष्टद्युम्न के देखते हुएही उन बहुत सारे पाँचालों को भी नष्ट कर दिया, जो वहाँ पर विद्यमान थे।

ततो युधिष्ठिरश्चैव भीमसेनश्च पाण्डवः॥ ४५॥
द्रोणपुत्रं महाराज समन्तात् पर्यवारयन्।
ततो दुर्योधनो राजा भारद्वाजेन संवृतः॥ ४६॥
अभ्ययात् पाण्डवान् संख्ये ततो युद्धमवर्तत।
घोररूपं महाराज भीरूणां भयवर्धनम्॥ ४७॥
अम्बष्ठान् मालवान् वङ्गाञ्छिबींस्त्रैगर्तकानपि।
प्राहिणोन्मृत्युलोकाय गणान् क्रुद्धो वृकोदरः॥ ४८॥
अभीषाहाञ्छूरसेनान् क्षत्रियान् युद्धदुर्मदान्।
निकृत्य पृथिवीं चक्रे भीमः शोणितकर्दमाम्॥ ४९॥

तब पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर और भीमसेन ने हे महाराज द्रोणपुत्र को चारोंतरफ से घेर लिया। तब द्रोणाचार्य के साथ दुर्योधन ने युद्धक्षेत्र में आकर पाण्डवों पर आक्रमण किया। हे महाराज! फिर कायरों के भय को बढ़ानेवाला भयंकर युद्ध होने लगा। क्रोध में भरे हुए भीमसेन ने तब अम्बष्ठ, मालव, बंग, शिवि और त्रिगर्तदेश के सैनिकों को मृत्युलोक में भेज दिया। युद्ध में दुर्मद, अमीषाह, और शूरसेनदेश के क्षत्रियों को काटकर भीम ने भूमि को रक्त की कीचड़वाला कर दिया।

यौधेयानद्रिजान् राजन् मद्रकान्मालवानपि।
प्राहिणोन्मृत्युलोकाय किरीटी निशितैः शरैः॥ ५०॥
प्रगाढमञ्जोगति- भिर्नाराचैरभिताडिताः।
निपेतुर्द्विरदा भूमौ द्विशृङ्गा इव पर्वताः॥ ५१॥
सा पाण्डुपुत्रस्य शरैर्दार्यमाणा महाचमूः।
तमसा संवृते लोके व्यद्रवत् सर्वतोमुखी॥ ५२॥

हे राजन्! इसीप्रकार अर्जुन ने भी अपने तीखे बाणों से यौधेय, पर्वतीय, मद्रक तथा मालव योद्धाओं को मृत्युलोक भेज दिया। तेज गति वाले उनके नाराचों से गहरे बिंधे हुए हाथी दो चोटी वाले पर्वतों के समान अनायास ही गिर पड़ते थे। तब पाण्डुपुत्र अर्जुन के बाणों से नष्ट होती हुई वह विशाल सेना, अंधेरे से भरे हुए संसार में सब तरफ भागने लगी।

सौवाँ अध्याय : सात्यकि द्वारा सोमदत्त वध। द्रोणाचार्य और युधिष्ठिर का युद्ध। श्रीकृष्ण का युधिष्ठिर को द्रोणाचार्य से दूर रहने का आदेश।

संजय उवाच

सोमदत्तं तु सम्प्रेक्ष्य विधुन्वानं महद् धनुः।
सात्यकिः प्राह यन्तारं सोमदत्ताय मां वह॥ १॥
न ह्यहत्वा रणे शत्रुं सोमदत्तं महाबलम्।
निवर्तिष्ये रणात् सूत सत्यमेतद् वचो मम॥ २॥
ततः सम्प्रैषयद् यन्ता सैन्धवांस्तान् मनोजवान्।
तुरङ्गमाञ्छङ्खवर्णान् सर्वशब्दातिगान् रणे॥ ३॥
तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य सात्वतं रभसं रणे।
सोमदत्तो महाबाहुरसम्भ्रान्तो न्यवर्तत॥ ४॥

संजय ने कहा कि राजन्! तब सोमदत्त को विशाल धनुष को हिलाते हुए देखकर, सात्यकि ने सारथि से कहा कि तुम मुझे सोमदत्त के पास ले चलो। हे सूत! आज मैं अपने शत्रु महाबली सोमदत्त को मारे बिना युद्धस्थल से नहीं लौटूँगा। मेरी यह बात सत्य है। तब सारथि ने मन के समान गति वाले, सबप्रकार के शब्दों की गति का अतिक्रमण करनेवाले, सिन्धुदेश के शंख के समान श्वेत घोड़ों को युद्धक्षेत्र में आगे बढ़ाया। तब सात्यकि को तेजी से अपनीतरफ आते हुए देखकर महाबाहु सोमदत्त बिना घबराये, युद्धक्षेत्र में वापिस लौट पड़े।

विमुञ्चञ्छरवर्षाणि पर्जन्य इव वृष्टिमान्।
छादयामास शैनेयं जलदो भास्करं यथा॥ ५॥
असम्भ्रान्तश्च समरे सात्यकिः कुरुपुङ्गवम्।
छादयामास बाणौघैः समन्ताद् भरतर्षभ॥ ६॥
सोमदत्तस्तु तं षष्ट्या विव्याधोरसि माधवम्।
सात्यकिश्चापि तं राजन्नविध्यत् सायकैः शितैः॥ ७॥
रुधिरोक्षितसर्वाङ्गौ कुरुवृष्णियशस्करौ।
परस्परमवेक्षेतां दहन्ताविव लोचनैः॥ ८॥

उन्होंने वर्षावाले बादलों के समान बाणों की वर्षा करते हुए सात्यकि को उसीप्रकार ढक दिया जैसे बादल सूर्य को आच्छादित कर देता है। हे भरतश्रेष्ठ! सात्यकि ने भी बिना घबराये युद्धभूमि में उस कुरुश्रेष्ठ को सबतरफ से बाणों के समूह से ढक दिया। तब सोमदत्त ने साठ बाणों की वर्षाकर सात्यकि की छाती पर प्रहार किया। हे राजन्! सात्यकि ने भी उसे तीखे बाणों से बींधा। उस समय खून से लथपथ सारे अंगोंवाले कुरु और वृष्णिवंश के यश को बढ़ानेवाले, वेदोनों एकदूसरे को आँखों से मानों जलाते हुए देख रहे थे।

रथमण्डलमार्गेषु चरन्तावरिमर्दनौ।
घोररूपौ हि तावास्तां वृष्टिमन्ताविवाम्बुदौ॥ ९॥
ततो युधि महाराज सोमदत्तो महारथः।
अर्धचन्द्रेण चिच्छेद माधवस्य महद् धनुः॥ १०॥
अथैनं पञ्चविंशत्या सायकानां समार्पयत्।
त्वरमाणस्त्वराकाले पुनश्च दशभिः शरैः॥ ११॥
अथान्यद् धनुरादाय सात्यकिर्वेगवत्तरम्।
पञ्चभिः सायकैस्तूर्णं सोमदत्तमविध्यत॥ १२॥

रथ के गोल मार्गो पर चलते हुए वेदोनों शत्रु दमन उस समय वर्षावाले बादलों के समान भयंकर रूप को धारण किये हुए थे। हे महाराज! तब युद्ध में महारथी सोमदत्त ने अर्धचन्द्राकार बाण से सात्यकि के विशाल धनुष को काट दिया। फिर जल्दी के समय जल्दी करते हुए उन्होंने उस पर पच्चीस बाणों की वर्षा की और दस बाणों से प्रहार किया। तब सात्यकि ने दूसरे अधिक वेगवाले धनुष को लेकर शीघ्रता से सोमदत्त को पाँच बाणों से बींधा।

ततोऽपरेण भल्लेन ध्वजं चिच्छेद काञ्चनम्।
बाह्लीकस्य रणे राजन् सात्यकिः प्रहसन्निव॥ १३॥
सोमदत्तस्त्वसम्भ्रान्तो दृष्ट्वा केतुं निपातितम्।
शैनेयं पञ्चविंशत्या सायकानां समाचिनोत्॥ १४॥
सात्वतोऽपि रणे क्रुद्धः सोमदत्तस्य धन्विनः।
धनुश्चिच्छेद भल्लेन क्षुरप्रेण शितेन ह॥ १५॥
अथैनं रुक्मपुङ्खानां शतेन नतपर्वणाम्।
आचिनोद् बहुधा राजन् भग्नदंष्ट्रमिव द्विपम्॥ १६॥

हे राजन्! फिर मुस्कराते हुए सात्यकि ने बाह्लीकपुत्र सोमदत्त के सुनहरे ध्वज को रणभूमि में एक दूसरे भल्ल से काट दिया। तब अपने ध्वज को गिराया हुआ देखकर, बिना घबराये सोमदत्त ने सात्यकि पर पच्चीस बाणों की वर्षा की। तब सात्यकि ने भी युद्ध में क्रुद्ध होकर धनुर्धर सोमदत्त के धनुष को क्षुरप्र नाम के तीखे भल्ल से काट दिया। इसके

पश्चात् हे राजन्! टूटे दाँतवाले हाथी के समान उन पर सुनहरे पंखवाले और झुकी गाँठवाले सौ बाणों की वर्षाकर उन्हें अनेक बार घायल किया।

अथान्यद् धनुरादाय सोमदत्तो महारथः।
सात्यकिं छादयामास शरवृष्ट्या महाबलः॥ १७॥
सोमदत्तं तु संक्रुद्धो रणे विव्याध सात्यकिः।
सात्यकिं शरजालेन सोमदत्तोऽप्यपीडयत्॥ १८॥
दशभिः सात्वतस्यार्थे भीमोऽहन् बाह्लिकात्मजम्।
सोमदत्तोऽप्यसम्भ्रान्तो भीममार्च्छच्छितैः शरैः॥ १९॥
ततस्तु सात्वतस्यार्थे भीमसेनो नवं दृढम्।
मुमोच परिघं घोरं सोमदत्तस्य वक्षसि॥ २०॥

फिर महारथी सोमदत्त ने दूसरे धनुष को लेकर उस महाबली ने सात्यकि को बाणवर्षा से ढक दिया। तब क्रोध से भरे हुए सात्यकि ने युद्ध में सोमदत्त को बाणों से बींधा और सोमदत्त ने भी बाण समूह से सात्यकि को पीड़ित किया। तब भीमसेन ने सात्यकि के लिये बाह्लीकपुत्र को दस बाणों से बींधा। सोमदत्त ने भी बिना घबराये भीम को तीखे बाणों से पीड़ित किया। फिर सात्यकि के लिये भीम ने एक नये और मजबूत भयंकर परिघ को सोमदत्त की छाती को लक्ष्य करके फैंका।

तमापतन्तं वेगेन परिघं घोरदर्शनम्।
द्विधा चिच्छेद समरे प्रहसन्निव कौरवः॥ २१॥
ततस्तु सात्यकी राजन् सोमदत्तस्य संयुगे।
धनुश्चिच्छेद भल्लेन हस्तावापं च पञ्चभिः॥ २२॥
ततश्चतुर्भिश्च शरैस्तूर्णं तांस्तुरगोत्तमान्।
समीपं प्रेषयामास प्रेतराजस्य भारत॥ २३॥
सारथेश्च शिरः कायाद् भल्लेन नतपर्वणा।
जहार नरशार्दूलः प्रहसञ्छिनिपुङ्गवः॥ २४॥

उस भयंकर दिखाई देनेवाले, और तेजी से आते हुए परिघ के कुरुवंशी सोमदत्त ने मुस्कराते हुए युद्धक्षेत्र में दो टुकड़े कर दिये। हे राजन्! तब सात्यकि ने युद्ध में सोमदत्त के धनुष को भल्ल के द्वारा काट दिया और पाँच बाणों से उनके दस्ताने काट दिये। हे भारत! फिर चार बाणों से उनके श्रेष्ठ घोड़ों को शीघ्रता से मृत्युलोक में भेज दिया। फिर नरसिंह शिनिश्रेष्ठ सात्यकि ने हँसते हुए झुकी गाँठ वाले भल्ल से उनके सारथि के सिर को शरीर से अलग कर दिया।

ततः शरं महाघोरं ज्वलन्तमिव पावकम्।
मुमोच सात्वतो राजन् स्वर्णपुङ्खं शिलाशितम्॥ २५॥
स विमुक्तो बलवता शैनेयेन शरोत्तमः।
घोरस्तस्योरसि विभो निपपाताशु भारत॥ २६॥
सोऽतिविद्धो महाराज सात्वतेन महारथः।
सोमदत्तो महाबाहुर्निपपात ममार च॥ २७॥
तं दृष्ट्वा निहतं तत्र सोमदत्तं महारथाः।
महता शरवर्षेण युयुधानमुपाद्रवन्॥ २८॥

फिर सात्यकि ने एक जलती हुई अग्नि के समान अत्यन्तभयंकर बाण को, जिसमें सुनहरे पंख लगे हुए थे और जिसे शिला पर तेज किया गया था, हे राजन्! छोड़ा। बलवान् सात्यकि के द्वारा छोड़ा हुआ वह भयंकर श्रेष्ठ बाण, हे भरतवंशी प्रभो! तुरन्त सोमदत्त की छाती पर गिरा। हे महाराज! तब वह महारथी, महाबाहु सोमदत्त, सात्यकि के चलाये उस बाण से अत्यन्त घायल होकर गिर पड़े और मर गये। सोमदत्त को मरा हुआ देखकर आपके बहुत से महारथियों ने महान् बाणवर्षा करते हुए सात्यकि पर आक्रमण कर दिया।

छाद्यमानं शरैर्दृष्ट्वा युयुधानं युधिष्ठिरः।
पाण्डवाश्च महाराज सह सर्वैः प्रभद्रकैः॥ २९॥
महत्या सेनया सार्धं द्रोणानीकमुपाद्रवन्।
ततो युधिष्ठिरः क्रुद्धस्तावकानां महाबलम्॥ ३०॥
शरैर्विद्रावयामास भारद्वाजस्य पश्यतः।
सैन्यानि द्रावयन्तं तु द्रोणो दृष्ट्वा युधिष्ठिरम्॥ ३१॥
अभिदुद्राव वेगेन क्रोधसंरक्तलोचनः।
ततः सुनिशितैर्बाणैः पार्थं विव्याध सप्तभिः॥ ३२॥
युधिष्ठिरोऽपि संक्रुद्धः प्रतिविव्याध पञ्चभिः।

हे महाराज! तब सात्यकि को बाणों से आच्छादित देखकर युधिष्ठिर और दूसरे पाण्डवों ने सारे प्रभद्रकों के साथ विशाल सेना को लेकर द्रोणाचार्य की सेना पर आक्रमण कर दिया। युधिष्ठिर ने क्रोध में भर कर, आपकी महासेना को द्रोणाचार्य के देखते हुए बाणों के द्वारा भगाना आरम्भ कर दिया। तब द्रोणाचार्य, युधिष्ठिर को अपनी सेना को भगाते हुए देख क्रोध से लाल आँखें कर, तेजी से उनकी तरफ दौड़े। उन्होंने अत्यन्त तेज सात बाणों से कुन्तीपुत्र को बींधा। तब युधिष्ठिर ने भी क्रोध में भरकर उन्हें पाँच बाणों से बींध कर उत्तर दिया।

सोऽतिविद्धो महाबाहुः सृक्किणी परिसंलिहन्॥ ३३॥
युधिष्ठिरस्य चिच्छेद ध्वजं कार्मुकमेव च।
स च्छिन्नधन्वा त्वरितस्त्वराकाले नृपोत्तमः॥ ३४॥
अन्यदादत्त वेगेन कार्मुकं समरे दृढम्।
ततः शरसहस्रेण द्रोणं विव्याध पार्थिवः॥ ३५॥
साश्वसूतध्वजरथं तदद्भुतमिवाभवत्।
ततो मुहूर्तं व्यथितः शरपातप्रपीडितः॥ ३६॥
निषसाद रथोपस्थे द्रोणो भरतसत्तम।

तब अत्यन्त घायल हुए उस महाबाहु ने अपने गलफड़ों को चाटते हुए युधिष्ठिर के ध्वज और धनुष को काट दिया। धनुष के कट जाने पर शीघ्रता के समय शीघ्रता करनेवाले उस श्रेष्ठ राजा ने शीघ्रता से एकदूसरे दृढ़ धनुष को लिया। उस राजा ने असंख्य बाणों की वर्षाकर ध्वज, रथ, सारथि और घोड़ों सहित द्रोणाचार्य को बींध दिया। यह एक अद्भुत सी बात हुई। हे भरतश्रेष्ठ! तब बाणों के आघात से पीड़ित होकर द्रोणाचार्य रथ की बैठक में थोड़ी देर तक बैठे रहे।

प्रतिलभ्य ततः संज्ञां मुहूर्ताद् द्विजसत्तमः॥ ३७॥
क्रोधेन महताऽऽविष्टो वायव्यास्त्रमवासृजत्।
असम्भ्रान्तस्ततः पार्थो धनुराकृष्य वीर्यवान्॥ ३८॥
ततस्तदस्त्रमस्त्रेण स्तम्भयामास भारत।
चिच्छेद च धनुर्दीर्घं ब्राह्मणस्य च पाण्डवः॥ ३९॥
ततोऽन्यद् धनुरादत्त द्रोणः क्षत्रियमर्दनः।
तदप्यस्य शितैर्भल्लैश्चिच्छेद कुरुपुङ्गवः॥ ४०॥

फिर थोड़ी देर में होश में आकर उस ब्राह्मण श्रेष्ठ ने अत्यन्त क्रोध में भरकर वायव्यास्त्र का प्रयोग किया। तब उस पराक्रमी कुन्तीपुत्र ने बिना घबराये हे भारत! धनुष को खींचकर उस दिव्यास्त्र को अपने दिव्यास्त्र से रोक दिया। फिर पाण्डुपुत्र ने उस ब्राह्मण के विशाल धनुष को भी काट दिया। तब क्षत्रियों का मर्दन करनेवाले द्रोणाचार्य ने दूसरा धनुष लिया, पर कुरुश्रेष्ठ ने उनके उस धनुष को भी तीखे भल्लों से छिन्न कर दिया।

ततोऽब्रवीद् वासुदेवः कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम्।
युधिष्ठिर महाबाहो यत्त्वां वक्ष्यामि तच्छृणु॥ ४१॥

उपारमस्व युद्धे त्वं द्रोणाद् भरतसत्तम।
यतते हि सदा द्रोणो ग्रहणे तव संयुगे॥ ४२॥
नानुरूपमहं मन्ये युद्धमस्य त्वया सह।
परिवर्ज्य गुरुं याहि यत्र राजा सुयोधनः॥ ४३॥
राजा राज्ञा हि योद्धव्यो नाराज्ञा युद्धमिष्यते।
तत्र त्वं गच्छ कौन्तेय हस्त्यश्वरथसंवृतः॥ ४४॥

तब वसुदेवपुत्र श्रीकृष्ण ने कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर से कहा कि हे महाबाहु युधिष्ठिर! मैं आपसे जो कहता हूँ, उसे सुनो। हे भरतश्रेष्ठ! तुम द्रोणाचार्य जी से युद्ध मत करो। द्रोणाचार्य युद्ध में सदा तुम्हें पकड़ने का प्रयत्न करते हैं, इसलिये मैं आपका इनके साथ युद्ध होना उचित नहीं समझता। आप इन गुरु को छोड़कर वहाँ जाइये, जहाँ राजा दुर्योधन है। राजा को राजा के साथ ही युद्ध करना चाहिये। उसका उसके साथ युद्ध जो राजा नहीं है, ठीक नहीं है। इसलिये हे कुन्तीपुत्र! तुम हाथी, घोड़ों और रथों से घिरकर वहीं जाओ।

यावन्मात्रेण च मया सहायेन धनंजयः।
भीमश्च रथशार्दूलो युध्यते कौरवैः सह॥ ४५॥
वासुदेववचः श्रुत्वा धर्मराजो युधिष्ठिरः।
मुहूर्तं चिन्तयित्वा तु ततो दारुणमाहवम्॥ ४६॥
प्रायाद् द्रुतममित्रघ्नो यत्र भीमो व्यवस्थितः।
विनिघ्नंस्तावकान् योधान् व्यादितास्य इवान्तकः॥ ४७॥
भीमस्य निघ्नतः शत्रून् पार्ष्णिं जग्राह पाण्डवः।
द्रोणोऽपि पाण्डुपञ्चालान् व्यधमद् रजनीमुखे॥ ४८॥

तब तक मेरे साथ अर्जुन और रथियों में सिंह भीम कौरवों के साथ युद्ध करते हैं। श्रीकृष्ण जी की बात सुनकर धर्मराज युधिष्ठिर ने उस दारुण युद्ध के विषय में थोड़ी देर तक सोचा और फिर तेजी से वहीं चले गये जहाँ शत्रुओं का संहार करने वाले भीम, मुँह फाड़े हुए मृत्यु के समान खड़े हुए आपके योद्धाओं का विनाश कर रहे थे। उन पाण्डुपुत्र ने शत्रुओं को मारते हुए भीम की बगल की रक्षा का कार्य सँभाल लिया। उधर द्रोणाचार्य भी उस रात्रि में पाण्डवों और पाँचालों की सेना का संहार करने लगे।

एकसौ एकवाँ अध्याय : युद्धभूमि में मशालों द्वारा प्रकाश।

वर्तमाने तथा युद्धे घोररूपे भयावहे।
तमसा संवृते लोके रजसा च महीपते॥ १॥
नापश्यन्त रणे योधाः परस्परमवस्थिताः।
अनुमानेन संज्ञाभिर्युद्धं तद् ववृधे महत्॥ २॥
वध्यमानानि सैन्यानि समन्तात् तैर्महारथैः।
तमसा संवृते चैव समन्ताद् विप्रदुद्रुवुः॥ ३॥

हे राजन्! अँधेरे और धूल से भरे हुए उस वातावरण में जब इसप्रकार भयंकर घोर युद्ध चल रहा था, तब योद्धालोग युद्ध करते हुए एकदूसरे को नहीं देख पारहे थे। अनुमान से ही या नाम को कहने के द्वारा ही वह युद्ध वृद्धि को प्राप्त होरहा था। तब उस अँधेरे से भरे हुए युद्धक्षेत्र में महारथियों के द्वारा सबतरफ से मारी जाती हुई सेनाएँ सबतरफ भागने लगीं।

उवाच सर्वांश्च पदातिसङ्घान्
दुर्योधनः पार्थिव सान्त्वपूर्वम्।
उत्सृज्य सर्वे परमायुधानि
गृह्णीत हस्तैर्ज्वलितान् प्रदीपान्।
ते चोदिताः पार्थिवसत्तमेन
ततः प्रहृष्टा जगृहुः प्रदीपान्॥ ४॥

तब राजा दुर्योधन ने सारे पैदलसैनिकों से सान्त्वनापूर्वक कहा कि हे वीरों! तुम अपने उत्तम आयुधों को छोड़कर हाथों में जलती हुई मशालें ले लो। उस श्रेष्ठ राजा के यह कहने पर उन सैनिकों ने प्रसन्नतापूर्वक मशालों को हाथों में ले लिया।

सर्वास्तु सेना व्यतिसेव्यमानाः
पदातिभिः पावकतैलहस्तैः।
प्रकाश्यमाना ददृशुर्निशायां
यथान्तरिक्षे जलदास्तडिद्भिः॥ ५॥
प्रकाशितायां तु ततो ध्वजिन्यां
द्रोणोऽग्निकल्पः प्रतपन् समन्तात्।
रराज राजेन्द्र सुवर्णवर्मा
मध्यं गतः सूर्य इवांशुमाली॥ ६॥
जाम्बूनदेष्वाभरणेषु चैव
निष्केषु शुद्धेषु शरासनेषु।
पीतेषु शस्त्रेषु च पावकस्य
प्रतिप्रभास्तत्र तदा बभूवुः॥ ७॥

उस समय हाथ में मशाल और तेल लिये हुए पैदलसैनिकों के द्वारा प्रकाशित की जारही सेना ऐसी दिखाई देरही थी, जैसे रात्रि के आकाश में विद्युतयुक्त बादल दिखायी देते हैं। हे राजेन्द्र! सेना के प्रकाश से युक्त होजाने पर अग्नि के समान प्रतापी द्रोणाचार्य सुनहरे कवच को धारणकर दोपहर के सूर्य के समान सबतरफ से जगमगाने लगे। उस समय सोने के आभूषणों, शुद्ध निष्कों, चमकीले धनुषों और शस्त्रों पर अग्नि के प्रतिबिम्ब पड़ रहे थे।

गदाश्च शैक्याः परिघाश्च शुभ्रा
रथेषु शक्त्यश्च विवर्तमानाः।
प्रतिप्रभारश्मिभि- राजमीढ
पुनः पुनः संजनयन्ति दीपान्॥ ८॥
महावने दारुमये प्रदीप्ते
यथा प्रभा भास्करस्यापि नश्येत्।
तथा तदाऽऽसीद् ध्वजिनी प्रदीप्ता
महाभया भारत भीमरूपा॥ ९॥

हे अजमीढकुलनन्दन! उस समय रथों में चमकीली गदाएँ, शैक्य, परिघ और शक्तियाँ जो घुमायी जारही थीं, वे अपने अन्दर दिखायी देने वाले प्रतिबिम्बों के कारण बार बार नये नये दीपों को प्रकट कर रही थीं। जैसे सूखी लकड़ी से भरे हुए विशाल वन में आग लग जाने पर वहाँ सूर्य की प्रभा फीकी पड़ जाती है, उसीप्रकार से वहाँ भयानक सेना भी प्रकाशित होरही थी और महान् भय को उत्पन्न कर रही थी।

तत् सम्प्रदीप्तं बलमस्मदीयं
निशम्य पार्थास्त्वरितास्तथैव।
सर्वेषु सैन्येषु पदातिसंघा-
नचोदयंस्तेऽपि चक्रुः प्रदीपान्॥ १०॥

तब प्रकाशित होती हुई हमारी सेना को देखकर पाण्डवों ने भी जल्दी से अपनी सारी सेनाओं में पैदलसैनिकों को आदेश दिया तथा उन्होंने भी मशालें जला लीं।

एकसौ दोवाँ अध्याय : दुर्योधन का द्रोणाचार्य की रक्षा के लिये आदेश।

प्रकाशिते तदा लोके रजसा तमसाऽऽवृते।
समाजग्मुरथो वीराः परस्परवधैषिणः॥ १॥
उल्काशतैः प्रज्वलितै रणभूमिर्व्यराजत।
दह्यमानेव लोकानामभावे च वसुंधरा॥ २॥
व्यदीप्यन्त दिशः सर्वाः प्रदीपैस्तैः समन्ततः।
वर्षाप्रदोषे खद्योतैर्वृता वृक्षा इवाबभुः॥ ३॥
असज्जन्त ततो वीरा वीरेष्वेव पृथक् पृथक्।
नागा नागैः समाजग्मुस्तुरगा हयसादिभिः॥ ४॥

जब अंधेरे और धूल से भरा हुआ युद्धक्षेत्र का वातावरण, प्रकाशयुक्त होगया, तब एकदूसरे के वध के इच्छुक वीरलोग परस्पर भिड़ गये। सैकड़ों मशालों से प्रकाशित होती हुई रणभूमि उस समय ऐसी प्रतीत होरही थी, जैसे प्रलयकाल में भूमि जल रही हो। मशालों से प्रकाशित होती हुई दिशाएँ वर्षाऋतु की रात में जुगनुओं से भरे हुए वृक्षों जैसी प्रतीत होरही थीं। उस समय वीरलोग अपने प्रतिद्वन्द्वी वीरों के साथ अलग अलग लड़ रहे थे। हाथीसवार हाथीसवारों के साथ और घुड़सवार घुड़सवारों के साथ भिड़ रहे थे।

रथा रथवरैरेव समाजग्मुर्मुदा युताः।
तस्मिन् रात्रिमुखे घोरे तव पुत्रस्य शासनात्॥ ५॥
चतुरङ्गस्य सैन्यस्य सम्पातश्च महानभूत्।
ततोऽर्जुनो महाराज कौरवाणामनीकिनीम्॥ ६॥
व्यधमत् त्वरया युक्तः क्षपयन् सर्वपार्थिवान्।
द्रोणस्य मतमाज्ञाय योद्धुकामस्य तां निशाम्॥ ७॥
दुर्योधनो महाराज वश्यान् भ्रातृनुवाच ह।
कर्णं च वृषसेनं च मद्रराजं च कौरव॥ ८॥

इसीप्रकार रथीश्रेष्ठ रथियों के साथ उत्साह से युक्त होकर युद्ध कर रहे थे। उस भयंकर रात्रि में आपके पुत्र के आदेश से वहाँ चतुरंगिणी सेना में भारी मारकाट मची हुई थी। हे महाराज! तब अर्जुन उतावली के साथ सारे राजाओं का संहार करते हुए, कौरवसेना का विनाश करने लगे। तब युद्ध के इच्छुक द्रोणाचार्य का मत जानकर हे कौरव महाराज! दुर्योधन ने उस रात में अपने आधीन भाईयों से, कर्ण से, वृषसेन से और मद्रराज से यह कहा कि–

द्रोणं यत्ताः पराक्रान्ताः सर्वे रक्षन्तु पृष्ठतः।
हार्दिक्यो दक्षिणं चक्रं शल्यश्चैवोत्तरं तथा॥ ९॥
त्रिगर्तानां च ये शूरा हतशिष्टा महारथाः।
तांश्चैव पुरतः सर्वान् पुत्रस्ते समचोदयत्॥ १०॥
आचार्यो हि सुसंयत्तो भृशं यत्ताश्च पाण्डवाः।
तं रक्षत सुसंयत्ता निघ्नन्तं शात्रवान् रणे॥ ११॥
द्रोणं रक्षत पाञ्चालाद् धृष्टद्युम्नान्महारथात्।

आपलोग सावधानी से तथा पराक्रमपूर्वक द्रोणाचार्य के पीछे रहकर उनकी रक्षा करो। कृतवर्मा उनके दाहिने पहिये की तथा शल्य बायें पहिये की रक्षा करेंगे। त्रिगर्तों के शूरवीर अभी शेष बचे हुए थे। उन्हें द्रोणाचार्य के आगे चलने की प्रेरणा देते हुए आपके पुत्र ने कहा कि आचार्य पूरीतरह से सावधान हैं और पाण्डवलोग भी अत्यन्त सावधान हैं। इसलिये युद्ध में शत्रुओं को मारते हुए आचार्य की तुम लोग पूरी तरह से सावधानी के साथ रक्षा करो। तुम द्रोणाचार्य की पाँचालमहारथी धृष्टद्युम्न से रक्षा करो।

पाण्डवीयेषु सैन्येषु न तं पश्याम कञ्चन॥ १२॥
यो योधयेद् रणे द्रोणं धृष्टद्युम्नादृते नृपः।
तस्मात् सर्वात्मना मन्ये भारद्वाजस्य रक्षणम्॥ १३॥
सुगुप्तः पाण्डवान् हन्यात् सृंजयांश्च ससोमकान्।
सृंजयेष्वथ सर्वेषु निहतेषु चमूमुखे॥ १४॥
धृष्टद्युम्नं रणे द्रौणिर्हनिष्यति न संशयः।
तथार्जुनं च राधेयो हनिष्यति महारथः॥ १५॥
भीमसेनमहं चापि युद्धे जेष्यामि दीक्षितः।
शेषांश्च पाण्डवान् योधाः प्रसभं हीनतेजसः॥ १६॥
सोऽयं मम जयो व्यक्तो दीर्घकालं भविष्यति।
तस्माद् रक्षत संग्रामे द्रोणमेव महारथम्॥ १७॥

हम पाण्डवों की सेना में सिवाय धृष्टद्युम्न के किसी दूसरे राजा को ऐसा नहीं देखते जो द्रोणाचार्य से युद्ध कर सके। इसलिये मैं इस समय पूरी शक्ति से द्रोणाचार्य की रक्षा को ही आवश्यक मानता हूँ। अच्छीतरह से सुरक्षित होने पर द्रोणाचार्य पाण्डवसेनाओं तथा सोमकोंसहित सृंजयों का विनाश कर देंगे। युद्ध के मुहाने पर सृंजयों के मारे जाने पर, द्रोणपुत्र निश्चयही धृष्टद्युम्न को युद्ध में मार देगा। फिर

महारथी कर्ण अर्जुन को मार देगा। युद्ध की दीक्षा लेकर फिर मैं युद्धक्षेत्र में भीम को मार दूँगा और फिर तेज से हीन हुए दूसरे पाण्डवयोद्धाओं को भी बलपूर्वक जीत लूँगा। इसप्रकार मुझे प्राप्त हुई विजय लम्बे समयतक रहेगी। इसलिये युद्ध में महारथी द्रोणाचार्य की ही रक्षा करो।

ततः प्रववृते युद्धं रात्रौ भरतसत्तम।
उभयोः सेनयोर्घोरं परस्परजिगीषया॥ १८॥
द्रौणिः पाञ्चालराजं च भारद्वाजश्च सृंजयान्।
छादयांचक्रतुः संख्ये शरैः संनतपर्वभिः॥ १९॥
पाण्डुपाञ्चालसैन्यानां कौरवाणां च भारत।
आसीन्निष्टानको घोरो निघ्नतामितरेतरम्॥ २०॥
नैवास्माभिस्तथा पूर्वैर्दृष्टपूर्वं तथाविधम्।
श्रुतं वा यादृशं युद्धमासीद् रौद्रं भयानकम्॥ २१॥

हे भरतश्रेष्ठ! फिर एकदूसरे को जीतने की इच्छा से दोनों सेनाओं में रात्रि में भयानक युद्ध चलने लगा। तब द्रोणपुत्र ने पाँचालराज द्रुपद को और द्रोणाचार्य ने सृंजयों को झुकी गाँठवाले बाणों से आच्छादित कर दिया। हे भारत! उस समय पाण्डवों और पाँचालों की सेनाओं तथा कौरवों की सेनाओं में एकदूसरे को मारते हुए भयंकर संग्राम चल रहा था। जिसप्रकार का वह भयंकर रौद्र युद्ध था, वैसा हमने और पुराने लोगों ने न पहले कभी देखा था और न सुना था।

एकसौ तीनवाँ अध्याय : कृतवर्मा द्वारा युधिष्ठिर की पराजय।

वर्तमाने तदा रौद्रे रात्रियुद्धे विशाम्पते।
सर्वभूतक्षयकरे धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः॥ १॥
अब्रवीत् पाण्डवांश्चैव पञ्चालांश्चैव सोमकान्।
अभिद्रवत संयात द्रोणमेव जिघांसया॥ २॥
राज्ञस्ते वचनाद् राजन् पञ्चालाः सृञ्जयास्तथा।
द्रोणमेवाभ्यवर्तन्त नदन्तो भैरवान् रवान्॥ ३॥

हे प्रजानाथ! उस समय सब प्राणियों का विनाश करनेवाले भयंकर रात्रियुद्ध के चलते हुए धर्मपुत्र युधिष्ठिर ने पाण्डव, पाँचाल और सोमकवीरों से कहा कि तुमलोग द्रोणाचार्य को ही मारने की इच्छा से उनपर आक्रमण करो। हे राजन्! तब राजा के आदेश से वे पाँचाल और सृंजय वीर भयानकरूप से गर्जना करते हुए द्रोणाचार्य पर ही टूट पड़े।

कृतवर्मा तु हार्दिक्यो युधिष्ठिरमुपाद्रवत्।
शैनेयं शरवर्षाणि विकिरन्तं समन्ततः॥ ४॥
अभ्ययात् कौरवो राजन् भूरिः संग्राममूर्धनि।
सहदेवमथायान्तं द्रोणप्रेप्सुं महारथम्॥ ५॥
कर्णो वैकर्तनो राजन् वारयामास पाण्डवम्।
भीमसेनमथायान्तं व्यादितास्यमिवान्तकम्॥ ६॥
स्वयं दुर्योधनो राजा प्रतीपं मृत्युमाव्रजत्।
नकुलं च युधां श्रेष्ठं सर्वयुद्धविशारदम्॥ ७॥
शकुनिः सौबलो राजन् वारयामास सत्वरः।

तब हृदीकपुत्र कृतवर्मा ने युधिष्ठिर पर आक्रमण किया। हे राजन्! युद्ध के मुहाने पर शिनिपौत्र सात्यकि पर सबतरफ बाणवर्षा करते हुए कुरुवंशी भूरि ने आक्रमण किया। द्रोणाचार्य की इच्छा रख कर आते हुए महारथी पाण्डुपुत्र सहदेव को कर्ण ने रोका। सबका अन्त कर देनेवाली, विपक्षी बनकर आयी हुई, मुँह फाड़े हुए, मृत्यु के समान भीम का सामना स्वयं राजा दुर्योधन ने किया। सब प्रकार के युद्धों में विशारद, योद्धाओं में श्रेष्ठ नकुल को सुबलपुत्र शकुनि ने शीघ्रता से रोका।

शिखण्डिनमथायान्तं रथेन रथिनां वरम्॥ ८॥
कृपः शारद्वतो राजन् वारयामास संयुगे।
प्रतिविन्ध्यमथायान्तं मयूरसदृशैर्हयैः॥ ९॥
दुःशासनो महाराज यत्तो यत्तमवारयत्।
भैमसेनिमथायान्तं मायाशतविशारदम्॥ १०॥
अश्वत्थामा महाराज राक्षसं प्रत्यषेधयत्।
द्रुपदं वृषसेनस्तु ससैन्यं सपदानुगम्॥ ११॥
वारयामास समरे द्रोणप्रेप्सुं महारथम्।
विराटं द्रुतमायान्तं द्रोणस्य निधनं प्रति॥ १२॥
मद्रराजः सुसंक्रुद्धो वारयामास भारत।

रथ से आते हुए रथियों में श्रेष्ठ शिखण्डी को हे राजन्! शरद्वान् पुत्र कृपाचार्य ने युद्धस्थल में रोका। हे महाराज! मोर जैसे रंगवाले घोड़ों से प्रयत्नपूर्वक आते हुए प्रतिविन्ध्य को दुश्शासन ने प्रयत्नपूर्वक

रोका। सैकड़ों तरह के छलकपट में चतुर भीमसेन के पुत्र राक्षस घटोत्कच को आते हुए अश्वत्थामा ने हे महाराज! रोका। द्रोणाचार्य के इच्छुक राजा द्रुपद को उनके सेवकों तथा सेना के साथ वृषसेन ने युद्धस्थल में रोका। हे भारत! द्रोणाचार्य की मृत्यु के लिये तेजी से आते हुए राजा विराट को अत्यन्त क्रोध में भरकर मद्रराज ने रोका।

तथा द्रोणं महेष्वासं निघ्नन्तं शात्रवान् रणे॥ १३॥
धृष्टद्युम्नोऽथ पाञ्चाल्यो हृष्टरूपमवारयत्।
तथान्यान् पाण्डुपुत्राणां समायातान् महारथान्॥ १४॥
तावका रथिनो राजन् वारयामासुरोजसा।
गजारोहा गजैस्तूर्णं संनिपत्य महामृधे॥ १५॥
योधयन्तश्च मृद्नन्तः शतशोऽथ सहस्रशः।
निशीथे तुरगा राजन् द्रावयन्तः परस्परम्॥ १६॥
समदृश्यन्त वेगेन पक्षवन्तो यथाऽद्रयः।

तब महाधनुर्धर द्रोणाचार्य को, जो उत्साह से युद्धस्थल में शत्रुओं को मार रहे थे पाँचालकुमार धृष्टद्युम्न ने रोका। हे राजन्! इसीप्रकार पाण्डवों की तरफ से आते हुए और दूसरे महारथियों को आपके रथियों ने बलपूर्वक रोका। उस महायुद्ध में हाथीसवार शीघ्रता से हाथीसवारों से भिड़कर युद्ध करते हुए सैकड़ों हजारों सैनिकों को कुचलने लगे। हे राजन्! रात्रि में घुड़सवार एकदूसरे पर आक्रमण करते हुए पंखवाले पर्वतों के समान प्रतीत होरहे थे।

सादिनः सादिभिः सार्धं प्रासशक्त्यृष्टिपाणयः॥ १७॥
समागच्छन् महाराज विनदन्तः पृथक् पृथक्।
नरास्तु बहवस्तत्र समाजग्मुः परस्परम्॥ १८॥
गदाभिर्मुसलैश्चैव नानाशस्त्रैश्च संयुगे।
कृतवर्मा तु हार्दिक्यो धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम्॥ १९॥
वारयामास संक्रुद्धो वेलेवोद्वृत्तमर्णवम्।
युधिष्ठिरस्तु हार्दिक्यं विद्ध्वा पञ्चभिराशुगैः॥ २०॥
पुनर्विव्याध विंशत्या तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत्।

हे महाराज! घुड़सवार हाथों में प्रास, शक्ति और ऋष्टि लिये हुए दूसरे घुड़सवारों के साथ अलग अलग गर्जना करते हुए युद्ध कर रहे थे। वहाँ बहुत से पैदलसैनिक गदा, मूसल तथा और दूसरेप्रकार के शस्त्रों से युद्धक्षेत्र में परस्पर युद्ध कर रहे थे। तब जैसे तट की भूमि उद्धत समुद्र को रोक देती है, वैसेही अत्यन्त क्रुद्ध कृतवर्मा ने धर्मपुत्र युधिष्ठिर को रोका। फिर युधिष्ठिर ने कृतवर्मा को शीघ्रगामी पाँच बाणों से बींधकर, पुनः उसपर बीस बाणों की वर्षा की और कहा ठहर, ठहर।

कृतवर्मा तु संक्रुद्धो धर्मपुत्रस्य मारिष॥ २१॥
धनुश्चिच्छेद भल्लेन तं च विव्याध सप्तभिः।
अथान्यद् धनुरादाय धर्मपुत्रो महारथः॥ २२॥
हार्दिक्यं दशभिर्बाणैर्बाह्वोरुरसि चार्पयत्।
माधवस्तु रणे विद्धो धर्मपुत्रेण मारिष॥ २३॥
प्राकम्पत च रोषेण सप्तभिश्चार्दयच्छरैः।
तस्य पार्थो धनुश्छित्त्वा हस्तावापं निकृत्य च॥ २४॥
प्राहिणोन्निशितान् बाणान् पञ्च राजञ्छिलाशितान्।

हे मान्यवर! तब कृतवर्मा ने अत्यन्त क्रोध में भरकर धर्मपुत्र के धनुष को भल्ल से काट दिया और सात बाणों से उन्हें भी बींध दिया। फिर महारथी धर्मपुत्र ने दूसरा धनुष लेकर, कृतवर्मा की दोनों बाहों और छाती पर दस बाणों से प्रहार किया। हे मान्यवर! तब युधिष्ठिर के द्वारा घायल किया हुआ कृतवर्मा युद्धस्थल में क्रोध से काँपने लगा और उसने सात बाणों से युधिष्ठिर को पीड़ित किया। हे राजन्! तब कुन्तीपुत्र ने उसके धनुष को काटकर और हाथ के दस्तानों को काटकर उसके ऊपर पाँच शिला पर तेज किये हुए बाण फैंके।

ते तस्य कवचं भित्त्वा हेमचित्रं महाधनम्॥ २५॥
प्राविशन् धरणीं भित्त्वा वल्मीकमिव पन्नगाः।
अक्ष्णोर्निमेषमात्रेण सोऽन्यदादाय कार्मुकम्॥ २६॥
विव्याध पाण्डवं षष्ठ्या सूतं च नवभिः शरैः।
तस्य शक्तिममेयात्मा पाण्डवो भुजगोपमाम्॥ २७॥
चिक्षेप भरतश्रेष्ठ रथे न्यस्य महद् धनुः।
सा हेमचित्रा महती पाण्डवेन प्रवेरिता॥ २८॥
निर्भिद्य दक्षिणं बाहुं प्राविशद् धरणीतलम्।

वे बाण कृतवर्मा के स्वर्णचित्रित बहुमूल्य कवच को भेदकर भूमि में ऐसे धँस गये, जैसे साँप बाँबी में घुस जाते हैं। फिर कृतवर्मा ने पलभर में दूसरा धनुष लेकर पाण्डुपुत्र पर साठ और सारथि पर नौ बाणों की वर्षा कर उन्हें घायल कर दिया। हे भरतश्रेष्ठ! फिर उस अमेयआत्मावाले पाण्डुपुत्र ने, रथ में अपने विशाल धनुष को रखकर, कृतवर्मा के ऊपर साँपिनी के समान एक शक्ति को चलाया। वह स्वर्णचित्रित, पाण्डुपुत्र के

द्वारा चलाई हुई महान् शक्ति कृतवर्मा की दाहिनी भुजा को भेदकर भूमि में धँस गयी।

एतस्मिन्नेव काले तु गृह्य पार्थः पुनर्धनुः॥ २९॥
हार्दिक्यं छादयामास शरैः संनतपर्वभिः।
ततस्तु समरे शूरो वृष्णीनां प्रवरो रथी॥ ३०॥
व्यश्वसूतरथं चक्रे निमेषार्धाद् युधिष्ठिरम्।
ततस्तु पाण्डवो ज्येष्ठः खड्गं चर्म समाददे॥ ३१॥
तदस्य निशितैर्बाणैर्व्यधमन्माधवो रणे।
तोमरं तु ततो गृह्य स्वर्णदण्डं दुरासदम्॥ ३२॥
प्रैषयत् समरे तूर्णं हार्दिक्यस्य युधिष्ठिरः।

इसी बीच में कुन्तीपुत्र ने पुनः धनुष को हाथ में लेकर कृतवर्मा को झुकी गाँठ वाले बाणों से आच्छादित कर दिया। तब युद्ध में शूरवीर वृष्णि वंशियों के श्रेष्ठ रथी कृतवर्मा ने आधे पल में ही युधिष्ठिर को बिना घोड़ों, सारथि और रथ के कर दिया। तब युधिष्ठिर ने युद्धस्थल में तलवार और ढाल को उठाया, किन्तु कृतवर्मा ने उसे भी युद्ध में तीखे बाणों से काट दिया। फिर युधिष्ठिर ने सुनहरे डण्डे वाले दुर्धर्ष तोमर को उठाया और उसे शीघ्रता से कृतवर्मा के ऊपर फैंक दिया।

तमापतन्तं सहसा धर्मराजभुजच्युतम्॥ ३३॥
द्विधा चिच्छेद हार्दिक्यः कृतहस्तः स्मयन्निव।
ततः शरशतेनाजौ धर्मपुत्रमवाकिरत्॥ ३४॥
कवचं चास्य संक्रुद्धः शरैस्तीक्ष्णैरदारयत्।
स च्छिन्नधन्वा विरथः शीर्णवर्मा शरार्दितः।
अपायासीद् रणात् तूर्णं धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः॥ ३५॥

युधिष्ठिर के हाथों से छूटे हुए और अपनी तरफ आते हुए उस तोमर को कृतवर्मा ने सिद्धहस्त के समान मुस्कराते हुए दो भागों में काट दिया। फिर कृतवर्मा ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर युद्धक्षेत्र में धर्मपुत्र पर सौ बाणों की वर्षा की और उनके कवच को तीखे बाणों से विदीर्ण कर दिया। तब धनुष के छिन्न हो जाने पर, रथ के नष्ट हो जाने पर, कवच के कट जाने पर और बाणों से घायल हो जाने पर धर्मपुत्र युधिष्ठिर तुरन्त युद्धभूमि से दूर चले गये।

एकसौ चारवाँ अध्याय : सात्यकि के द्वारा भूरि का वध। भीम और दुर्योधन के युद्ध में दुर्योधन का भागना।

भूरिस्तु समरे राजञ्शैनेयं रथिनां वरम्।
आपतन्तमपासेधत् प्रयाणादिव कुञ्जरम्॥ १॥
अथैनं सात्यकिः क्रुद्धः पञ्चभिर्निशितैः शरैः।
विव्याध हृदये तस्य प्रास्रवत् तस्य शोणितम्॥ २॥
तथैव कौरवो युद्धे शैनेयं युद्धदुर्मदम्।
दशभिर्निशितैस्तीक्ष्णैरविध्यत भुजान्तरे॥ ३॥
तावन्योन्यं महाराज ततक्षाते शरैर्भृशम्।
क्रोधसंरक्तनयनौ क्रोधाद् विस्फार्य कार्मुके॥ ४॥
मुहूर्तं चैव तद् युद्धं समरूपमिवाभवत्।

हे राजन्! तब भूरि ने आक्रमण करते हुए रथियों में श्रेष्ठ सात्यकि को, आगे बढ़ने से उसीप्रकार रोक दिया जैसे कोई हाथी को उसके निकलने के स्थान से ही रोक दे। तब सात्यकि ने क्रुद्ध होकर पाँच तीखे बाणों से उसकी छाती को घायल कर दिया। जिससे उसके रक्त की धारा बहने लगी। तब उस कौरव ने भी युद्ध में दुर्मद शिनिपौत्र की छाती को दस तीखे बाणों से उसीप्रकार घायल कर दिया। हे महाराज! वेदोनों क्रोध से लाल आँखें किये, क्रोध से ही धनुषों को खींचकर बाणों के द्वारा एकदूसरे को अत्यधिक घायल करने लगे। एक मुहूर्त तक दोनों में समानरूप से युद्ध चलता रहा।

ततः क्रुद्धो महाराज शैनेयः प्रहसन्निव॥ ५॥
धनुश्चिच्छेद समरे कौरव्यस्य महात्मनः।
अथैनं छिन्नधन्वानं नवभिर्निशितैः शरैः॥ ६॥
विव्याध हृदये तूर्णं तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत्।
सोऽतिविद्धो बलवता शत्रुणा शत्रुतापनः॥ ७॥
धनुरन्यत् समादाय सात्वतं प्रत्यविध्यत।
स विद्ध्वा सात्वतं बाणैस्त्रिभिरेव विशाम्पते॥ ८॥
धनुश्चिच्छेद भल्लेन सुतीक्ष्णेन हसन्निव।

हे महाराज! फिर क्रुद्ध सात्यकि ने युद्धभूमि में मुस्कराते हुए, मनस्वी कुरुवंशी भूरि के धनुष को काट दिया। फिर उन्होंने जल्दी से नौ तीखे बाणों

की वर्षाकर उसकी छाती को घायल किया और कहा कि खड़े रहो, खड़े रहो। बलवान् शत्रु के द्वारा अत्यन्तघायल होकर उसने शत्रु को संतप्त करनेवाले दूसरे धनुष को लेकर तब सात्यकि को बदले में घायल किया। उसने हे प्रजानाथ! सात्यकि को तीन बाणों से बींधकर मुस्कराते हुए अत्यन्ततीखे भल्ल से उसके धनुष को काट दिया।

छिन्नधन्वा महाराज सात्यकिः क्रोधमूर्छितः॥ ९॥
प्रजहार महावेगां शक्तिं तस्य महोरसि।
स तु शक्त्या विभिन्नाङ्गो निपपात रथोत्तमात्॥ १०॥
तं तु दृष्ट्वा हतं शूरमश्वत्थामा महारथः।
अभ्यधावत वेगेन शैनेयं प्रति संयुगे॥ ११॥
तिष्ठ तिष्ठेति चाभाष्य शैनेयं स नराधिप।
अभ्यवर्षच्छरौघेण मेरुं वृष्ट्या यथाम्बुदः॥ १२॥

हे महाराज! तब धनुष के कट जाने पर क्रोध से मूर्च्छित हुए सात्यकि ने एक महान् वेगवाली शक्ति से उसके विशाल वक्षस्थल पर प्रहार किया। उस शक्ति से अंगों के छिन्न होजाने के कारण वह भूरि अपने उत्तम रथ से नीचे गिर पड़ा। शूरवीर भूरि को मारा गया देखकर महारथी अश्वत्थामा युद्धस्थल में तेजी से सात्यकि की तरफ दौड़ा। हे राजन्! उसने सात्यकि से ठहर, ठहर ऐसा कहकर जैसे बादल मेरुपर्वत पर जल बरसाये, वैसेही उस पर बाणों की वर्षा आरम्भ कर दी।

तमापतन्तं संरब्धं शैनेयस्य रथं प्रति।
घटोत्कचोऽब्रवीद् राजन् नादं मुक्त्वा महारथः॥ १३॥
युद्धश्रद्धामहं तेऽद्य विनेष्यामि रणाजिरे।
इत्युक्त्वा क्रोधताम्राक्षो राक्षसः परवीरहा॥ १४॥
द्रौणिमभ्यद्रवत् क्रुद्धो गजेन्द्रमिव केसरी।
ततः क्रोधसमाविष्टो भैमसेनिः प्रतापवान्॥ १५॥
शरैरवचकर्तोग्रैर्द्रौणिं वज्राशनिप्रभैः।
क्षुरप्रैरर्धचन्द्रैश्च नाराचैः सशिलीमुखैः॥ १६॥
वराहकर्णैर्नालीकैर्विकर्णैश्चा- भ्यवीवृषत्।

उसे क्रोध में भरकर सात्यकि पर आक्रमण करते हुए देखकर हे राजन्! महारथी घटोत्कच ने जोर से गर्जकर कहा कि मैं आज तेरे युद्ध के उत्साह का निवारण करूँगा। ऐसा कहकर शत्रु के वीरों को नष्ट करनेवाले क्रोध में भरे हुए राक्षस ने, लाल आँखें किये हुए अश्वत्थामा पर ऐसे आक्रमण किया जैसे सिंह हाथी पर आक्रमण करता है। फिर क्रोध में भरे हुए भीमसेन के प्रतापी पुत्र ने वज्र और विद्युत् के समान चमकीले भयंकर बाणों से अश्वत्थामा को घायल कर दिया। उसने उसके ऊपर क्षुरप्र, अर्धचन्द्र, नाराच, शिलीमुख, वराहकर्ण, नालीक और विकर्ण आदि बाणों की वर्षा की।

तां शस्त्रवृष्टिमतुलां वज्राशनिसमस्वनाम्॥ १७॥
पतन्तीमुपरि क्रुद्धो द्रौणिरव्यथितेन्द्रियः।
सुदुःसहां शरैर्घोरैर्दिव्यास्त्रप्रतिमन्त्रितैः॥ १८॥
व्यधमत् सुमहातेजा महाभ्राणीव मारुतः।
ततोऽस्त्रसंघर्षकृतैर्विस्फुलिङ्गैः समन्ततः॥ १९॥
बभौ निशामुखे व्योम खद्योतैरिव संवृतम्।
ततो घटोत्कचो बाणैर्दशभिर्द्रौणिमाहवे॥ २०॥
जघानोरसि संक्रुद्धः कालज्वलनसंनिभैः।

तब महातेजस्वी द्रोणपुत्र ने बिना व्यथित हुए, वज्र और विद्युत् के समान शब्दवाली उस अतुलनीय अपने ऊपर पड़ती हुई अत्यन्तदुस्सह बाणवर्षा को क्रोध में भरकर दिव्यास्त्रों के द्वारा ऐसे नष्ट कर दिया जैसे वायु विशाल बादलों को छिन्नभिन्न कर देती है। अस्त्रों के परस्पर टकराने से सबतरफ जो चिनगारियाँ छूट रही थीं, उनसे रात्रि के समय वह आकाश ऐसा लग रहा था, जैसे जुगनुओं से व्याप्त हो। फिर घटोत्कच ने अत्यन्त क्रोध में भरकर युद्धस्थल में कालाग्नि के समान दस बाणों से द्रोणपुत्र की छाती पर प्रहार किया।

स तैरभ्यायतैर्विद्धो राक्षसेन महाबलः॥ २१॥
चचाल समरे द्रौणिर्वातनुन्न इव द्रुमः।
स मोहमनुसम्प्राप्तो ध्वजयष्टिं समाश्रितः॥ २२॥
ततो हाहाकृतं सैन्यं तव सर्वं जनाधिप।
हतं स्म मेनिरे सर्वे तावकास्तं विशाम्पते॥ २३॥
तं तु दृष्ट्वा तथावस्थमश्वत्थामानमाहवे।
पञ्चालाः सृंजयाश्चैव सिंहनादं प्रचक्रिरे॥ २४॥

राक्षस के द्वारा छोड़े हुए उन विशाल बाणों से घायल होकर वह महाबली द्रोणपुत्र युद्धक्षेत्र में ऐसे काँपने लगा जैसे वायु से हिलाया हुआ वृक्ष और मूर्च्छित होकर रथ की ध्वजयष्टि का सहारा लेकर बैठ गया। हे राजन्! हे प्रजानाथ! तब आपकी सेना में हा हाकार होने लगा। आपके योद्धाओं ने यह समझा कि अश्वत्थामा मारे गये। युद्धक्षेत्र में अश्वत्थामा

की वह अवस्था देखकर पाँचाल और सृंजययोद्धा सिंहनाद करने लगे।

प्रतिलभ्य ततः संज्ञामश्वत्थामा महाबलः।
धनुः प्रपीड्य वामेन करेणामित्रकर्शनः॥ २५॥
मुमोचाकर्णपूर्णेन धनुषा शरमुत्तमम्।
यमदण्डोपमं घोरमुद्दिश्याशु घटोत्कचम्॥ २६॥
स भित्त्वा हृदयं तस्य राक्षसस्य शरोत्तमः।
विवेश वसुधामुग्रः सपुङ्खः पृथिवीपते॥ २७॥
सोऽतिविद्धो महाराज रथोपस्थ उपाविशत्।
राक्षसेन्द्रः सुबलवान् द्रौणिना रणशालिना॥ २८॥
दृष्ट्वा विमूढं हैडिम्बं सारथिस्तु रणाजिरात्।
द्रौणेः सकाशात् सम्भ्रान्तस्त्वपनिन्ये त्वरान्वितः॥ २९॥

तब महाबली शत्रुसूदन अश्वत्थामा ने होश में आकर बायें हाथ से धनुष को कानतक खींचकर मृत्यु के प्रहार के समान भयंकर उत्तम बाण को घटोत्कच पर छोड़ा। हे पृथिवीपति! वह पंखवाला भयंकर उत्तम बाण उस राक्षस की छाती को घायल कर भूमि में धँस गया। हे महाराज! युद्ध में चतुर द्रोणपुत्र के द्वारा अत्यन्तघायल होकर वह अत्यन्त बलवान् राक्षसराज रथके पिछले भाग में बैठ गया। तब हिडिम्बाकुमार को मूर्च्छित देखकर उसका सारथि घबराकर शीघ्रता से उसे युद्धक्षेत्र से और द्रोणपुत्र के पास से लेगया।

भीमसेनं तु युध्यन्तं भारद्वाजरथं प्रति।
स्वयं दुर्योधनो राजा प्रत्यविध्यच्छितैः शरैः॥ ३०॥
तं भीमसेनो दशभिः शरैर्विव्याध मारिष।
दुर्योधनोऽपि विंशत्या शराणां प्रत्यविध्यत॥ ३१॥
तौ सायकैरवच्छिन्नावदृश्येतां रणाजिरे।
मेघजालसमाच्छन्नौ नभसीवेन्दुभास्करौ॥ ३२॥
अथ दुर्योधनो राजा भीमं विव्याध पत्रिभिः।
पञ्चभिर्भरतश्रेष्ठ तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत्॥ ३३॥

द्रोणाचार्य के रथ की तरफ जाने को युद्ध करते हुए भीमसेन को राजा दुर्योधन ने स्वयं तीखे बाणों से बींध दिया। हे मान्यवर! तब उसे भीमसेन ने दस बाणों से बींधा। दुर्योधन ने भी उत्तर में उन्हें बीस बाणों से बींधा। जैसे आकाश में चन्द्रमा और सूर्य बादलों से ढके हुए देखे जाते हैं, वैसेही वेदोनों एकदूसरे के बाणों के समूह से आच्छादित हुए रणभूमि में दिखाई देरहे थे। तब हे भरतश्रेष्ठ! राजा दुर्योधन ने भीम को पाँच बाणों से घायल कर दिया और कहा कि ठहरो, ठहरो।

तस्य भीमो धनुश्छित्त्वा ध्वजं च दशभिः शरैः।
विव्याध कौरवश्रेष्ठं नवत्या नतपर्वणाम्॥ ३४॥
ततो दुर्योधनः क्रुद्धो धनुरन्यन्महत्तरम्।
गृहीत्वा भरतश्रेष्ठो भीमसेनं शितैः शरैः॥ ३५॥
अपीडयद् रणमुखे पश्यतां सर्वधन्विनाम्।
तान् निहत्य शरान् भीमो दुर्योधनधनुश्च्युतान्॥ ३६॥
कौरवं पञ्चविंशत्या क्षुद्रकाणां समार्पयत्।
दुर्योधनस्तु संक्रुद्धो भीमसेनस्य मारिष॥ ३७॥
क्षुरप्रेण धनुश्छित्त्वा दशभिः प्रत्यविध्यत।

तब भीम ने दस बाणों से उसके ध्वज और धनुष को काटकर झुकी गाँठवाले नब्बे बाणों की वर्षाकर उसे घायल कर दिया। तब भरतश्रेष्ठ दुर्योधन ने क्रुद्ध होकर एक दूसरे अधिक विशाल धनुष को लेकर सारे धनुर्धरों के देखते हुए, युद्ध के मुहाने पर भीमसेन को तीखे बाणों से पीड़ित करना आरम्भ कर दिया। दुर्योधन के धनुष से निकले हुए बाणों को काटकर भीमसेन ने तब उस कौरव नरेश पर पच्चीस बाणों से प्रहार किया। हे मान्यवर! तब दुर्योधन ने अत्यन्तक्रुद्ध होकर क्षुरप्र बाण से भीमसेन के धनुष को काटकर उसे दस बाणों से बींध दिया।

अथान्यद् धनुरादाय भीमसेनो महाबलः॥ ३८॥
विव्याध नृपतिं तूर्णं सप्तभिर्निशितैः शरैः।
तदप्यस्य धनुः क्षिप्रं चिच्छेद लघुहस्तवत्॥ ३९॥
द्वितीयं च तृतीयं च चतुर्थं पञ्चमं तथा।
आत्तमात्तं महाराज भीमस्य धनुराच्छिनत्॥ ४०॥
तव पुत्रो महाराज जितकाशी मदोत्कटः।
स तथा भिद्यमानेषु कार्मुकेषु पुनः पुनः॥ ४१॥
शक्तिं चिक्षेप समरे सर्वपारशवीं शुभाम्।
मृत्योरिव स्वसारं हि दीप्तां वह्निशिखामिव॥ ४२॥

तब महाबली भीमसेन ने दूसरे धनुष को लेकर तुरन्त उस राजा को सात तीखे बाणों से बींध दिया। पर दुर्योधन ने उसके उस धनुष को भी एक सिद्ध हस्त के समान शीघ्रता से काट दिया। इसप्रकार हे महाराज! भीम के हाथ में लिये हुए दूसरे, तीसरे, चौथे और पाँचवे धनुष को भी अत्यन्त अभिमानी और विजय के इच्छुक दुर्योधन ने काट दिया। तब धनुषों के इसप्रकार बार बार काटे जाने पर भीमसेन

ने सारी लोहे की बनी हुई एक सुन्दर शक्ति को जो मृत्यु की बहन सी और प्रज्वलित अग्निशिखा के समान थी, युद्ध में उसके ऊपर फैंका।

सीमन्तमिव कुर्वन्तीं नभसोऽग्निसमप्रभाम्।
अप्राप्तामेव तां शक्तिं त्रिधा चिच्छेद कौरवः॥ ४३॥
पश्यतः सर्वलोकस्य भीमस्य च महात्मनः।
ततो भीमो महाराज गदां गुर्वीं महाप्रभाम्॥ ४४॥
चिक्षेपाविध्य वेगेन दुर्योधनरथं प्रति।
पुत्रस्तु तव राजेन्द्र भीमाद् भीतः प्रणश्य च।
आरुरोह रथं चान्यं नन्दकस्य महात्मनः॥ ४५॥

आकाश में सिर के बालों की माँग सी बनाती हुई, अग्नि के समान चमकती हुई उस शक्ति को अपने पास आने से पहले ही कौरवनरेश ने सारे लोगों के और मनस्वी भीम के देखते हुए तीन टुकड़े कर दिये। हे महाराज! फिर भीम ने महान् प्रभावाली विशाल गदा को घुमाकर वेगपूर्वक दुर्योधन के रथ की तरफ फैंका। हे राजेन्द्र! तब आपका पुत्र भीम से डरकर, उस रथ से कूदकर भाग गया और दूसरे मनस्वी नन्दक के रथ पर जाबैठा।

एकसौ पाँचवाँ अध्याय : कर्ण के द्वारा सहदेव की और शल्य के द्वारा विराट की पराजय।

सहदेवमथायान्तं द्रोणप्रेप्सुं विशाम्पते।
कर्णो वैकर्तनो युद्धे वारयामास भारत॥ १॥
सहदेवस्तु राधेयं विद्ध्वा नवभिराशुगैः।
पुनर्विव्याध दशभिर्विशिखैर्नतपर्वभिः॥ २॥
तं कर्णः प्रतिविव्याध शतेन नतपर्वणाम्।
सज्यं चास्य धनुः शीघ्रं चिच्छेद लघुहस्तवत्॥ ३॥
ततोऽन्यद् धनुरादाय माद्रीपुत्रः प्रतापवान्।
कर्णं विव्याध विंशत्या तदद्भुतमिवाभवत्॥ ४॥

हे प्रजानाथ भारत! द्रोणाचार्य के इच्छुक आते हुए सहदेव को सूर्यपुत्र कर्ण ने युद्ध के द्वारा रोका। सहदेव ने राधापुत्र को झुकी गाँठवाले नौ शीघ्रगामी बाणों से बींधकर दस बाणों से फिर घायल किया। कर्ण ने बदले में झुकी गाँठवाले सौ बाणों की उस पर वर्षा की और एक सिद्धहस्त के समान शीघ्रही उसके प्रत्यंचासहित धनुष को काट दिया। तब प्रतापी माद्रीपुत्र ने दूसरे धनुष को लेकर कर्ण को बीस बाणों से बींधा। यह एक अद्भुत बात हुई।

तस्य कर्णो हयान् हत्वा शरैः संनतपर्वभिः।
सारथिं चास्य भल्लेन द्रुतं निन्ये यमक्षयम्॥ ५॥
विरथः सहदेवस्तु खड्गं चर्म समाददे।
तदप्यस्य शरैः कर्णो व्यधमत् प्रहसन्निव॥ ६॥
अथ गुर्वीं महाघोरां हेमचित्रां महागदाम्।
प्रेषयामास संक्रुद्धो वैकर्तनरथं प्रति॥ ७॥
तामापतन्तीं सहसा सहदेवप्रचोदिताम्।
व्यष्टम्भयच्छरैः कर्णो भूमौ चैनामपातयत्॥ ८॥

तब कर्ण ने झुकी गाँठवाले बाणों से उसके घोड़ों को मारकर शीघ्रता से उसके सारथि को भी भल्ल से मृत्युलोक में पहुँचा दिया। रथ से रहित सहदेव ने ढाल और तलवार को उठाया। पर कर्ण ने मुस्कराते हुए उसे भी बाणों से काट दिया। फिर उसने अत्यन्त क्रोध में भरकर एक अत्यन्त भयंकर भारी स्वर्णचित्रित विशाल गदा को कर्ण के रथ की तरफ फैंका। सहदेव द्वारा फैंकी हुई गदा को सहसा अपनीतरफ आते हुए देखकर कर्ण नें बाणों के द्वारा उसे स्तम्भित कर भूमि पर गिरा दिया।

गदां विनिहतां दृष्ट्वा सहदेवस्त्वरान्वितः।
शक्तिं चिक्षेप कर्णाय तामप्यस्याच्छिनच्छरैः॥ ९॥
ससम्भ्रमं ततस्तूर्णमवप्लुत्य रथोत्तमात्।
सहदेवो महाराज दृष्ट्वा कर्णं व्यवस्थितम्॥ १०॥
रथचक्रं प्रगृह्याजौ मुमोचाधिरथिं प्रति।
तदापतद् वै सहसा कालचक्रमिवोद्यतम्॥ ११॥
शरैरनेकसाहस्त्रैराच्छिनत् सूतनन्दनः।
स निरायुधमात्मानं ज्ञात्वा माद्रवतीसुतः॥ १२॥
वार्यमाणस्तु विशिखैः सहदेवो रणं जहौ।

गदा को गिराया हुआ देखकर सहदेव ने शीघ्रतापूर्वक कर्ण के ऊपर एक शक्ति को फैंका, पर कर्ण ने उसे भी बाणों से काट दिया। तब हे महाराज! सहदेव शीघ्र ही वेगपूर्वक अपने उत्तम रथ से कूद पड़े

और सामने कर्ण को विद्यमान देखकर उन्होंने युद्धस्थल में रथ के पहिये को उठाकर कर्ण पर फैंका। उस कालचक्र के समान सहसा अपने ऊपर आते हुए पहिये को सूतपुत्र ने असंख्य बाणों द्वारा काट दिया। तब माद्रीपुत्र सहदेव ने अपने को शस्त्रविहीन देखकर और कर्ण के बाणों से अपनी गति को निरुद्ध समझकर युद्धभूमि को त्याग दिया।

तमभिद्रुत्य राधेयो मुहूर्ताद् भरतर्षभ॥ १३॥
अब्रवीत् प्रहसन् वाक्यं सहदेवं विशाम्पते।
मा युध्यस्व रणेऽधीर विशिष्टै रथिभिः सह॥ १४॥
सदृशैर्युध्य माद्रेय वचो मे मा विशङ्किथाः।
अथैनं धनुषोऽग्रेण तुदन् भूयोऽब्रवीद् वचः॥ १५॥
एषोऽर्जुनो रणे तूर्णं युध्यते कुरुभिः सह।
तत्र गच्छस्व माद्रेय गृहं वा यदि मन्यसे॥ १६॥

हे भरतश्रेष्ठ! प्रजानाथ! तब कर्ण ने एक मुहूर्त तक उसका पीछाकर उससे हँसते हुए कहा कि अरे युद्ध में धीरज न रखनेवाले माद्री पुत्र! विशिष्ट रथियों के साथ युद्ध मत किया कर। अपने बराबर वालों के साथही लड़ा कर। मेरी बात पर शंका मत करना। अपने धनुष की नोक उसे चुभाते हुए उसने उससे फिर यह कहा कि ये अर्जुन कौरवों के साथ युद्धस्थल में शीघ्रता से युद्ध कर रहे हैं। तू उनके पास चला जा, या तेरा मन हो तो घर चला जा।

एवमुक्त्वा तु तं कर्णो रथेन रथिनां वरः।
प्रायात् पाञ्चालपाण्डूनां सैन्यानि प्रदहन्निव॥ १७॥
सहदेवस्ततो राजन् विमनाः शरपीडितः।
कर्णवाक्छरतप्तश्च जीवितान्निरविद्यत॥ १८॥
आरुरोह रथं चापि पाञ्चाल्यस्य महात्मनः।
जनमेजयस्य समरे त्वरायुक्तो महारथः॥ १९॥
विराटं सहसेनं तु द्रोणं वै द्रुतमागतम्।
मद्रराजः शरौघेण च्छादयामास धन्विनम्॥ २०॥

रथियों में श्रेष्ठ कर्ण उनसे यह कहकर पाँचालों और पाँडवों की सेनाओं को मानों जलाता सा हुआ, रथ के द्वारा उनकी तरफ चला गया। हे राजन्! तब बाणों से पीड़ित और उदास सहदेव कर्ण के वाक्यों से सन्तप्त होकर अपने जीवन के प्रति भी विरक्त होगये। वह महारथी शीघ्रता से युद्धस्थल में, मनस्वी पाँचालपुत्र जनमेजय के रथ पर चढ़ गये। उधर विराटराज को सहसा द्रोणाचार्य की तरफ आता हुआ देखकर महाराज ने शीघ्रता से उस धनुर्धर को बाणसमूह से आच्छादित कर दिया।

मद्रराजो महाराज विराटं वाहिनीपतिम्।
आजघ्ने त्वरितस्तूर्णं शतेन नतपर्वणाम्॥ २१॥
प्रतिविव्याध तं राजन् नवभिर्निशितैः शरैः।
पुनश्चैनं त्रिसप्तत्या भूयश्चैव शतेन तु॥ २२॥
ततो मद्राधिपः क्रुद्धः शरेणानतपर्वणा।
आजघानोरसि दृढं विराटं वाहिनीपतिम्॥ २३॥
सोऽतिविद्धो महाराज रथोपस्थ उपाविशत्।
कश्मलं चाविशत् तीव्रं विराटो भरतर्षभ॥ २४॥

हे महाराज! तब मद्रराज ने सेनापति विराट को शीघ्रता करते हुए तुरन्त झुकी गाँठवाले सौ बाणों की वर्षाकर घायल कर दिया। हे राजन्! तब विराट ने भी पहले नौ, फिर तिहत्तर और फिर सौ तीखे बाणों की वर्षा के द्वारा घायल कर मद्रराज से बदला चुकाया। तब मद्रराज ने क्रुद्ध होकर झुकी गाँठवाले एक बाण से सेनापति विराट की छाती पर गहरी चोट पहुँचायी। हे भरतश्रेष्ठ! हे महाराज! उससे वह अत्यन्तघायल होकर और गहरेमूर्च्छित होकर रथ के पिछले भाग में बैठ गये।

सारथिस्तमपोवाह समरे शरविक्षतम्।
ततः सा महती सेना प्राद्रवन्निशि भारत॥ २५॥
वध्यमाना शरशतैः शल्येनाहवशोभिना।
तां दृष्ट्वा विद्रुतां सेनां वासुदेवधनंजयौ।
प्रयातौ तत्र राजेन्द्र यत्र शल्यो व्यवस्थितः॥ २६॥

हे भारत! तब युद्ध में बाणों से घायल हुए विराट राज को उनका सारथि दूर हटाकर लेगया। तत्पश्चात् संग्राम में सुशोभित होनेवाले शल्य के सैकड़ों बाणों से मारी जाती हुई, वह विशाल सेना रात में भागने लगी। हे राजेन्द्र! तब सेना को भागते हुए देखकर श्रीकृष्ण और अर्जुन उसीतरफ चल दिये, जिधर शल्य विद्यमान् थे।

एकसौ छैवाँ अध्याय : वृषसेन के द्वारा द्रुपद की पराजय, दुश्शासन तथा प्रतिविन्ध्य का युद्ध।

द्रुपदं तु सहानीकं द्रोणप्रेप्सुं महारथम्।
वृषसेनोऽभ्ययात् तूर्णं किरञ्शरशतैस्तदा॥ १॥
यज्ञसेनस्तु समरे कर्णपुत्रं महारथम्।
षष्ट्या शराणां विव्याध बाह्वोरुरसि चानघ॥ २॥
वृषसेनस्ततो राजन् द्रुपदं नवभिः शरैः।
विद्ध्वा विव्याध सप्तत्या पुनरन्यैस्त्रिभिस्त्रिभिः॥ ३॥
द्रुपदस्तु ततः क्रुद्धो वृषसेनस्य कार्मुकम्।
द्विधा चिच्छेद भल्लेन पीतेन निशितेन च॥ ४॥

महारथी द्रुपद को सेनासहित द्रोणाचार्य की तरफ जाते हुए देखकर वृषसेन ने सैकड़ों बाणों की वर्षा करते हुए उनपर तुरन्त आक्रमण किया। हे निष्पाप! तब युद्धक्षेत्र में द्रुपद ने कर्ण के महारथी पुत्र को दोनों हाथों और छाती पर साठ बाणों की वर्षा करके घायल कर दिया। हे राजन्! तब वृषसेन ने द्रुपद को नौ बाणों से घायलकर, फिर उनपर सत्तर बाणों की वर्षाकर उन्हें पुनः तीन तीन दूसरे बाणों से बींध दिया। तब क्रुद्ध द्रुपद ने वृषसेन के धनुष के पानीदार तीखे भल्ल से दो टुकड़े कर दिये।

सोऽन्यत् कार्मुकमादाय रुक्मबद्धं नवं दृढम्।
तूणादाकृष्य विमलं भल्लं पीतं शितं दृढम्॥ ५॥
आकर्णपूर्णं मुमुचे त्रासयन् सर्वसोमकान्।
हृदयं तस्य भित्त्वा च जगाम वसुधातलम्॥ ६॥
कश्मलं प्राविशद् राजा वृषसेनशराहतः।
सारथिस्तमपोवाह स्मरन् सारथिचेष्टितम्॥ ७॥
तस्मिन् प्रभग्ने राजेन्द्र पञ्चालानां महारथे।
स विजित्य रणे शूरान् सोमकानां महारथान्॥ ८॥
जगाम त्वरितस्तत्र यत्र राजा युधिष्ठिरः।

तब उसने दूसरे स्वर्णजटित नये और मजबूत धनुष को लेकर, तरकस से एक निर्मल, पानीदार तीखे और दृढ़ भल्ल को निकाल, कान तक धनुष को खींचकर, सारे सोमकों को भयभीत करते हुए उसे द्रुपद पर छोड़ दिया। वह बाण द्रुपद की छाती को घायलकर भूमि पर गिर पड़ा। वृषसेन के बाण से पीड़ित होकर वह राजा मूर्च्छित होगये और उनका सारथि अपने कर्त्तव्य को ध्यान में रखते हुए उन्हें दूर लेगया। हे राजेन्द्र! पाँचालों के उस महारथी के वहाँ से हट जाने पर वृषसेन सोमकों के दूसरे शूरवीर महारथियों को जीतकर युद्धस्थल में तुरन्त वहाँ चला गया जहाँ राजा युधिष्ठिर थे।

प्रतिविन्ध्यमथ क्रुद्धं प्रदहन्तं रणे रिपून्॥ ९॥
दुःशासनस्तव सुतः प्रत्यगच्छन्महारथः।
प्रतिविन्ध्यं तु समरे कुर्वाणं कर्म दुष्करम्॥ १०॥
दुःशासनस्त्रिभिर्बाणैर्ललाटे समविध्यत।
दुःशासनं तु समरे प्रतिविन्ध्यो महारथः॥ ११॥
नवभिः सायकैर्विद्ध्वा पुनर्विव्याध सप्तभिः।
तत्र भारत पुत्रस्ते कृतवान् कर्म दुष्करम्॥ १२॥
प्रतिविन्ध्यहयानुग्रैः पातयामास सायकैः।

उधर युद्धक्षेत्र में शत्रुओं को दग्ध करते हुए, क्रोध में भरे हुए प्रतिविन्ध्य के समीप उसका सामना करने को आपका महारथी पुत्र दुश्शासन जापहुँचा। युद्ध में दुष्कर कर्म करते हुए दुश्शासन ने प्रतिविन्ध्य के मस्तक को तीन बाणों से घायल कर दिया। तब महारथी प्रतिविन्ध्य ने दुश्शासन को युद्धस्थल में नौ बाणों से बींधकर पुनः सात बाणों से बींधा। हे भारत! वहाँ आपके पुत्र ने दुष्कर कर्म किया कि प्रतिविन्ध्य के घोड़ों को उग्र बाणों से मार दिया।

विरथः स तु धर्मात्मा धनुष्पाणिरवस्थितः॥ १३॥
अयोधयत् तव सुतं किरञ्शरशतान् बहून्।
क्षुरप्रेण धनुस्तस्य चिच्छेद तनयस्तव॥ १४॥
अथैनं दशभिर्बाणैश्छिन्नधन्वानमार्दयत्।
तं दृष्ट्वा विरथं तत्र भ्रातरोऽस्य महारथाः॥ १५॥
अन्ववर्तन्त वेगेन महत्या सेनया सह।

तब वह रथहीन धर्मात्मा धनुष हाथ में लेकर भूमि पर खड़ा होगया और सैकड़ों बाणों की वर्षा करता हुआ आपके पुत्र के साथ युद्ध करने लगा। तब आपके पुत्र ने क्षुरप्र से उसके धनुष को काट दिया और उसे दस बाणों से पीड़ित किया। तब उसे रथहीन देखकर उसके और महारथी भाई विशाल सेना के साथ वेग से उसके पास आगये।

आप्लुतः स ततो यानं सुतसोमस्य भास्वरम्॥ १६॥
धनुर्गृह्य महाराज विव्याध तनयं तव।

ततस्तु तावकाः सर्वे परिवार्य सुतं तव॥ १७॥
अभ्यवर्तन्त संग्रामे महत्या सेनया वृताः।
ततः प्रववृते युद्धं तव तेषां च भारत।
निशीथे दारुणे काले यमराष्ट्रविवर्धनम्॥ १८॥

हे महाराज! तब प्रतिविन्ध्य उछलकर सुतसोम के चमकदार रथ पर चढ़ गया और दूसरे धनुष को लेकर आपके पुत्र को बाणों से बींधने लगा। तब आपके सारे योद्धा आपके पुत्र को घेरकर, विशाल सेना के साथ वहाँ युद्ध में लग गये। हे भारत! उस रात के भयंकर समय में आपके पुत्र का और उन द्रौपदीपुत्रों का मृत्युलोक की वृद्धि करनेवाला भयंकर युद्ध होने लगा।

एकसौ सातवाँ अध्याय : नकुल के द्वारा शकुनि की हार। शिखण्डी और कृपाचार्य का युद्ध।

नकुलं रभसं युद्धे निघ्नन्तं वाहिनीं तव।
अभ्ययात् सौबलः क्रुद्धस्तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत्॥ १॥
कृतवैरौ तु तौ वीरावन्योन्यवधकाङ्क्षिणौ।
शरैः पूर्णायतोत्सृष्टैरन्योन्यमभिजघ्नतुः॥ २॥
यथैव नकुलो राजन् शरवर्षाण्यमुञ्चत।
तथैव सौबलश्चापि शिक्षां संदर्शयन् युधि॥ ३॥
रुक्मपुङ्खैरजिह्माग्रैः शरैश्छिन्नतनुच्छदौ।
सुजिह्मं प्रेक्षमाणौ च राजन् विवृतलोचनौ॥ ४॥
क्रोधसंरक्तनयनौ निर्दहन्तौ परस्परम्।

हे राजन्! वेगवान् नकुल को आपकी सेना का संहार करते हुए देखकर, सुबलपुत्र शकुनि क्रोध में भरकर उनके सामने गया और बोला खड़े रहो, खड़े रहो। उन दोनों वीरों में परस्पर बैर था। वे एकदूसरे के वध के इच्छुक थे, इसलिये कानतक धनुष को खींचकर छोड़े गये बाणों से वे एकदूसरे पर प्रहार करने लगे। हे राजन्! उस समय नकुल जिसप्रकार की बाणवर्षा करते थे, शकुनि भी युद्ध में अपनी शिक्षा का प्रदर्शन करते हुए वैसेही बाण छोड़ता था। सुनहरे पंखवाले और सीधी नोकवाले बाणों से उन्होंने एकदूसरे के कवचों को काट दिया था और हे राजन्! क्रोध से लाल आँखोंवाले वेदोनों मानों भस्म कर देंगे इस प्रकार आँखें फाड़कर अत्यन्त कुटिलता के साथ एक दूसरे को देख रहे थे।

श्यालस्तु तव संक्रुद्धो माद्रीपुत्रं हसन्निव॥ ५॥
कर्णिनैकेन विव्याध हृदये निशितेन ह।
नकुलस्तु भृशं विद्धः श्यालेन तव धन्विना॥ ६॥
निषसाद रथोपस्थे कश्मलं चाविशन्महत्।
अत्यन्तवैरिणं दृप्तं दृष्ट्वा शत्रुं तथागतम्॥ ७॥
ननाद शकुनी राजंस्तपान्ते जलदो यथा।
प्रतिलभ्य ततः संज्ञां नकुलः पाण्डुनन्दनः॥ ८॥
अभ्ययात् सौबलं भूयो व्यात्तानन इवान्तकः।

तब अत्यन्त क्रुद्ध आपके साले ने मुस्कराते हुए तीखे कर्णिक नाम के बाण से माद्रीपुत्र की छाती को घायल कर दिया। आपके धनुर्धर साले के द्वारा अत्यन्तघायल होकर वह रथ के पिछले भाग में बैठ गया तथा मूर्च्छा को प्राप्त होगया। अपने अत्यन्तवैरी और अभिमानी शत्रु को इस अवस्था में देखकर हे राजन्! शकुनि इसप्रकार से गर्जने लगा, जैसे ग्रीष्मऋतु के अन्त में बादल गर्जते हैं। तभी पाण्डुपुत्र नकुल ने होश में आकर मुख फाड़े हुए मृत्यु के समान शकुनि पर पुनः आक्रमण किया।

अथास्य सशरं चापं मुष्टिदेशेऽच्छिनत् तदा॥ ९॥
ध्वजं च त्वरितं छित्त्वा रथाद् भूमावपातयत्।
विशिखेन च तीक्ष्णेन पीतेन निशितेन च॥ १०॥
श्येनं सपक्षं व्याधेन पातयामास तं तदा।
सोऽतिविद्धो महाराज रथोपस्थ उपाविशत्॥ ११॥
तं विसंज्ञं निपतितं दृष्ट्वा श्यालं तवानघ।
अपोवाह रथेनाशु सारथिर्ध्वजिनीमुखात्॥ १२॥

फिर उसनें शकुनि के बाणसहित धनुष को मुट्ठी के स्थान से काट दिया और शीघ्रता से उसके ध्वज को भी काटकर भूमि पर गिरा दिया। फिर एक पैने और तीखे पानीदार बाण से शिकारी के द्वारा बींधे गये पंखवाले बाजपक्षी के समान उसे घायल करके गिरा दिया। हे महाराज! वह अत्यन्त घायल होकर रथ की बैठक में गिर गया। हे निष्पाप! तब आपके साले को मूर्च्छित होकर गिरा

हुआ देखकर उसका सारथि उसे जल्दी से युद्ध के मुहाने से दूर लेगया।

ततः संचुक्रुशुः पार्था ये च तेषां पदानुगाः।
निर्जित्य च रणे शत्रुं नकुलः शत्रुतापनः॥ १३॥
अब्रवीत् सारथिं क्रुद्धो द्रोणानीकाय मां वह।
शिखण्डिनं तु समरे द्रोणप्रेप्सुं विशाम्पते॥ १४॥
कृपः शारद्वतो यत्तः प्रत्यगच्छत् सवेगितः।
गौतमं द्रुतमायान्तं द्रोणानीकमरिंदमम्॥ १५॥
विव्याध नवभिर्भल्लैः शिखण्डी प्रहसन्निव।
तमाचार्यो महाराज विद्ध्वा पञ्चभिराशुगैः॥ १६॥
पुनर्विव्याध विंशत्या पुत्राणां प्रियकृत् तव।

तब कुन्तीपुत्र और उनके सेवक जोर जोर से जयनाद करने लगे। शत्रु को सन्तप्त करनेवाले नकुल तब अपने शत्रु को युद्ध में जीतकर और क्रोध में भरकर सारथि से बोले कि मुझे द्रोणाचार्य की सेना की तरफ लेचलो। उधर हे प्रजानाथ! द्रोणाचार्य के इच्छुक शिखण्डी की तरफ युद्धक्षेत्र में शरद्वानपुत्र कृपाचार्य वेग और प्रयत्नपूर्वक आगे बढ़कर गये। तब द्रोणाचार्य की सेना की तरफ तेजी से आते हुए शत्रुदमन कृपाचार्य को शिखण्डी ने मुस्कराते हुए नौ भल्लों से बींध दिया। हे महाराज! तब आपके पुत्रों का प्रिय करनेवाले आचार्य ने उसे शीघ्रगामी पाँच बाणों से बींधकर फिर बीस बाणों की वर्षा कर घायल कर दिया।

शिखण्डी तु महाराज गौतमस्य महद् धनुः॥ १७॥
अर्धचन्द्रेण चिच्छेद सज्यं सविशिखं तदा।
तस्य क्रुद्धः कृपो राजञ्शक्तिं चिक्षेप दारुणाम्॥ १८॥
स्वर्णदण्डामकुण्ठाग्रां कर्मारपरिमार्जिताम्।
तामापतन्तीं चिच्छेद शिखण्डी बहुभिः शरैः॥ १९॥
अथान्यद् धनुरादाय गौतमो रथिनां वरः।
प्राच्छादयच्छितैर्बाणैर्महाराज शिखण्डिनम्॥ २०॥

हे महाराज! तब शिखण्डी ने अर्धचन्द्राकार बाण से कृपाचार्य के विशाल धनुष को प्रत्यंचा और बाण सहित काट दिया। हे राजन्! तब कृपाचार्य ने क्रुद्ध होकर, सुनहरे डण्डे और तीखी नोकवाली कारीगर के द्वारा साफ की हुई भयंकर शक्ति को उसके ऊपर फैंका। शिखण्डी ने अपने ऊपर आती हुई उस शक्ति को अनेक बाणों से काट दिया। हे महाराज! फिर रथियों में श्रेष्ठ कृपाचार्य ने दूसरे धनुष को लेकर शिखण्डी को तीखे बाणों से आच्छादित कर दिया।

स च्छाद्यमानः समरे गौतमेन यशस्विना।
न्यषीदत रथोपस्थे शिखण्डी रथिनां वरः॥ २१॥
सीदन्तं चैनमालोक्य कृपः शारद्वतो युधि।
आजघ्ने बहुभिर्बाणैर्जिघांसन्निव भारत॥ २२॥
विमुखं तु रणे दृष्ट्वा याज्ञसेनिं महारथम्।
पञ्चालाः सोमकाश्चैव परिवव्रुः समन्ततः॥ २३॥
तथैव तव पुत्राश्च परिवव्रुर्द्विजोत्तमम्।
महत्या सेनया सार्धं ततो युद्धमवर्तत॥ २४॥

यशस्वी कृपाचार्य द्वारा युद्ध में बाणों से आच्छादित होकर, रथियों में श्रेष्ठ शिखण्डी शिथिल होकर रथ की बैठक में बैठ गया। हे भारत! युद्ध में उसे शिथिल देखकर शरद्वान्‌पुत्र कृपाचार्य ने मानो मारने की इच्छा से उस पर बहुतसे बाणों द्वारा प्रहार किया। तब महारथी द्रुपदपुत्र को युद्ध से विमुख देखकर उसे पाँचालों और सोमकों ने सबतरफ से घेर लिया। उसीप्रकार आपके पुत्रों ने भी विशाल सेना के साथ उस ब्राह्मणश्रेष्ठ को घेर लिया। फिर दोनों सेनाओं में घोर युद्ध होने लगा।

रथानां च रणे राजन्नन्योन्यमभिधावताम्।
बभूव तुमुलः शब्दो मेघानां गर्जतामिव॥ २५॥
रथिनो रथमारुह्य प्रद्रुता वेगवत्तरम्।
अगृह्णन् बहवो राजञ्शलभान् वायसा इव॥ २६॥
तथा गजान् प्रभिन्नांश्च सम्प्रभिन्ना महागजाः।
तस्मिन्नेव पदे यत्ता निगृह्णन्ति स्म भारत॥ २७॥
सादी सादिनमासाद्य पत्तयश्च पदातिनम्।
समासाद्य रणेऽन्योन्यं संरब्धा नातिचक्रमुः॥ २८॥

हे राजन्! उस समय युद्धक्षेत्र एकदूसरे पर आक्रमण करते हुए रथों का, बादलों की गर्जना के समान भयानक शोर होरहा था। हे राजन्! जैसे कौए टिड्डियों को झपट्टा मारकर पकड़ते हैं, वैसेही रथीलोग रथों पर चढ़कर और तेजीसे दौड़कर बहुतसारे सैनिकों को दबोच लेते थे। उसीप्रकार हे भारत! मद बहानेवाले विशाल हाथी दूसरे मद बहानेवाले हाथियों को, उनसे युद्ध करते हुए, उन्हें प्रयत्नपूर्वक अपने बस में कर लेते थे। घुड़सवार घुड़सवारों से तथा पैदलसैनिक पैदल सैनिकों से अत्यन्त क्रोध में भरकर भिड़ते हुए युद्ध में एकदूसरे का उल्लंघन नहीं कर पाते थे।

धावतां द्रवतां चैव पुनरावर्ततामपि।
बभूव तत्र सैन्यानां शब्दः सुविपुलो निशि॥ २९॥
दीप्यमानाः प्रदीपाश्च रथवारणवाजिषु।
अदृश्यन्त महाराज महोल्का इव खाच्च्युताः॥ ३०॥

उस समय रात्रि में दौड़ते हुए, भागते हुए और फिर वापिस लौटते हुए सैनिकों का अत्यन्तमहान् कोलाहल होरहा था। हे महाराज! रथों, हाथियों और घोड़ों पर प्रज्वलित होती हुई मशालें उस समय ऐसी प्रतीत होरही थीं, जैसे आकाश से गिरी हुई बड़ी बड़ी उल्काएँ हों।

एकसौआठवाँ अध्याय : धृष्टद्युम्न, द्रोणाचार्य और सात्यकि, कर्ण युद्ध।

तस्मिन् सुतुमुले युद्धे वर्तमाने भयावहे।
धृष्टद्युम्नो महाराज द्रोणमेवाभ्यवर्तत॥ १॥
धृष्टद्युम्नमथायान्तं द्रोणस्यान्तचिकीर्षया।
परिवव्रुर्महाराज पञ्चालाः पाण्डवैः सह॥ २॥
तथा परिवृतं दृष्ट्वा द्रोणमाचार्यसत्तमम्।
पुत्रास्ते सर्वतो यत्ता ररक्षुर्द्रोणमाहवे॥ ३॥
बलार्णवौ ततस्तौ तु समेयातां निशामुखे।
वातोद्धूतौ क्षुब्धसत्त्वौ भैरवौ सागराविव॥ ४॥

हे महाराज! जब वह भयानक युद्ध चल रहा था, तब धृष्टद्युम्न ने द्रोणाचार्य पर आक्रमण किया। द्रोणाचार्य का अन्त करने की इच्छा से आते हुए धृष्टद्युम्न को तब पांचालों ने पाण्डवों सहित घेरकर अपने बीच में कर लिया धृष्टद्युम्न को इसप्रकार घिरा हुआ देखकर आपके पुत्रों ने भी युद्धस्थल में सबतरफ से प्रयत्नशील हो और द्रोणाचार्य को घेरकर उनकी रक्षा आरम्भ कर दी। उस रात्रि के समय वेदोनों सेनासमूह इसप्रकार युद्ध कर रहे थे, जैसे वायु से उद्वेलित और क्षुब्ध जन्तुओंवाले दो भयंकर समुद्र परस्पर टकरा रहे हों।

ततो द्रोणं महाराज पाञ्चाल्यः पञ्चभिः शरैः।
विव्याध हृदये तूर्णं सिंहनादं ननाद च॥ ५॥
तं द्रोणः पञ्चविंशत्या विद्ध्वा भारत संयुगे।
चिच्छेदान्येन भल्लेन धनुरस्य महास्वनम्॥ ६॥
ततः क्रुद्धो महाराज धृष्टद्युम्नः प्रतापवान्।
आददेऽन्यद् धनुःश्रेष्ठं द्रोणस्यान्तचिकीर्षया॥ ७॥
विकृष्य च धनुश्चित्रमाकर्णात् परवीरहा।
द्रोणस्यान्तकरं घोरं व्यसृजत् सायकं ततः॥ ८॥

हे महाराज! तब पाँचालपुत्र ने द्रोणाचार्य को शीघ्रता से पाँच बाणों से छाती पर घायल कर दिया और जोर से सिंहनाद किया। हे भारत! तब द्रोणाचार्य ने युद्ध में उस पर पच्चीस बाणों की वर्षाकर उसे बींधा और एक दूसरे भल्ल से उसके महान् टंकार वाले धनुष को छिन्न कर दिया। हे महाराज! तब क्रुद्ध होकर प्रतापी धृष्टद्युम्न ने द्रोणाचार्य का अन्त करने की इच्छा से एक दूसरे श्रेष्ठ धनुष को उठाया। शत्रुवीरों को नष्ट करनेवाले उसने उस विचित्र धनुष को कानतक खींचकर द्रोणाचार्य का अन्त करनेवाले एक भयंकर बाण को छोड़ा।

तं तु सायकमायान्तमाचार्यस्य रथं प्रति।
कर्णो द्वादशधा राजंश्चिच्छेद कृतहस्तवत्॥ ९॥
धृष्टद्युम्नं ततः कर्णो विव्याध दशभिः शरैः।
पञ्चभिर्द्रोणपुत्रस्तु स्वयं द्रोणस्तु सप्तभिः॥ १०॥
शल्यश्च दशभिर्बाणैस्त्रिभिर्दुःशासनस्तथा।
दुर्योधनस्तु विंशत्या शकुनिश्चापि पञ्चभिः॥ ११॥
सर्वानसम्भ्रमाद् राजन् प्रत्यविद्ध्यत् त्रिभिस्त्रिभिः।
द्रोणं द्रौणिं च कर्णं च विव्याध च तवात्मजम्॥ १२॥

उस बाण को आचार्य के रथ की तरफ आते देखकर हे राजन्! कर्ण ने सिद्धहस्त के समान उसके बारह टुकड़े कर दिये। तब धृष्टद्युम्न पर कर्ण ने दस, द्रोणपुत्र ने पाँच, स्वयं द्रोणाचार्य ने सात, शल्य ने दस, दुश्शासन ने तीन, दुर्योधन ने बीस, और शकुनि ने पाँच बाणों की वर्षा की। हे राजन्! धृष्टद्युम्न ने बिना घबराये उन सबको तीन तीन बाणों से बदले में बींधा और द्रोणाचार्य, द्रोणपुत्र, कर्ण तथा आपके पुत्र को भी घायल किया।

ते भिन्ना धन्विना तेन धृष्टद्युम्नं पुनर्मृधे।
विव्यधुः पञ्चभिस्तूर्णमेकैको रथिनां वरः॥ १३॥
तान् स विद्ध्वा पुनर्योधान् वीरः सुनिशितैः शरैः।
राधेयस्याच्छिनद् भल्लैः कार्मुकं चित्रयोधिनः॥ १४॥
न तु तन्ममृषे कर्णो धनुषश्छेदनं तथा।

निकर्तनमिवात्युग्रं लाङ्गूलस्य महाहरिः॥ १५॥
सोऽन्यद् धनुः समादाय क्रोधरक्तेक्षणः श्वसन्।
अभ्यद्रवच्छरौघैस्तं धृष्टद्युम्नं महाबलम्॥ १६॥

धनुर्धर धृष्टद्युम्न के द्वारा घायल होने पर उन्होंने उसे युद्ध में तुरन्त पाँच पाँच बाणों से बींध दिया। तब उस वीर धृष्टद्युम्न ने अत्यन्ततीखे बाणों से उन योद्धाओं को पुनः बींधकर विचित्रप्रकार से युद्ध करनेवाले कर्ण के धनुष को भल्लों से काट दिया। तब जैसे कोई विशाल सिंह अपनी पूँछ को काटने के भयंकर कार्य को सहन नहीं कर सकता वैसेही कर्ण भी धनुष के काटे जाने को सहन नहीं कर सका। तब क्रोध से लाल आँखें कर लम्बी साँस लेता हुआ कर्ण दूसरे धनुष को लेकर बाणों की वर्षा करता हुआ महाबली धृष्टद्युम्न की तरफ दौड़ा।

दृष्ट्वा कर्णं तु संरब्धं ते वीराः षडुथर्षभाः।
पाञ्चाल्यपुत्रं त्वरिताः परिवव्रुर्जिघांसया॥ १७॥
षण्णां योधप्रवीराणां तावकानां पुरस्कृतम्।
मृत्योरास्यमनुप्राप्तं धृष्टद्युम्नममंस्महि॥ १८॥
एतस्मिन्नेव काले तु दाशार्हो विकिरञ्छरान्।
धृष्टद्युम्नं पराक्रान्तं सात्यकिः प्रत्यपद्यत॥ १९॥
तमायान्तं महेष्वासं सात्यकिं युद्धदुर्मदम्।
राधेयो दशभिर्बाणैः प्रत्यविध्यदजिह्मगैः॥ २०॥

कर्ण को क्रोध में भरा हुआ देखकर उन श्रेष्ठ छहों रथियों ने तुरन्त पांचालपुत्रको मारने की इच्छा से घेर लिया। तब आपके छः प्रमुख वीर योद्धाओं के सामने खड़े हुए धृष्टद्युम्न को हमने मृत्यु के मुख में ही गया हुआ समझा। इसी समय सात्यकि बाणों की वर्षा करते हुए पराक्रमी धृष्टद्युम्न के पास आ पहुँचे। युद्ध में दुर्मद, महाधनुर्धर सात्यकि को आते हुए देखकर राधापुत्र ने दस सीधे जानेवाले बाणों से उसे घायल किया।

तं सात्यकिर्महाराज विव्याध दशभिः शरैः।
पश्यतां सर्ववीराणां मा गास्तिष्ठेति चाब्रवीत्॥ २१॥
त्रासयन् रथघोषेण क्षत्रियान् क्षत्रियर्षभः।
राजीवलोचनं कर्णं सात्यकिः प्रत्यविध्यत॥ २२॥
कम्पयन्निव घोषेण धनुषो वसुधां बली।
सूतपुत्रो महाराज सात्यकिं प्रत्ययोधयत्॥ २३॥
विपाठकर्णिनाराचैर्वत्सदन्तैः क्षुरैरपि।
कर्णः शरशतैश्चापि शैनेयं प्रत्यविध्यत॥ २४॥

हे महाराज! तब सात्यकि ने उसे सारे वीरों के देखते हुए दस बाणों से बींधा और कहा कि भागना मत, खड़े रहो। उस क्षत्रियश्रेष्ठ सात्यकि ने अपने रथ की घर्घराहट से क्षत्रियों को भयभीत करते हुए कमलनेत्र कर्ण को अच्छीतरह से बींध दिया। हे महाराज! बलवान् कर्ण भी अपने धनुष की टंकार से भूमि को कँपाता सा हुआ सात्यकि से युद्ध करने लगा। कर्ण ने सात्यकि पर विपाठ, कर्णी, नाराच, वत्सदन्त और क्षुर आदि सैकड़ों बाणों की वर्षा की।

तथैव युद्ध्यमानोऽपि वृष्णीनां प्रवरो युधि।
अभ्यवर्षच्छरैः कर्णं तद् युद्धमभवत् समम्॥ २५॥
तावकाश्च महाराज कर्णपुत्रश्च दंशितः।
सात्यकिं विव्यधुस्तूर्णं समन्तान्निशितैः शरैः॥ २६॥
अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य तेषां कर्णस्य वा विभो।
अविद्धयत् सात्यकिः क्रुद्धो वृषसेनं स्तनान्तरे॥ २७॥
तेन बाणेन निर्विद्धो वृषसेनो विशाम्पते।
न्यपतत् स रथे मूढो धनुरुत्सृज्य वीर्यवान्॥ २८॥

वृष्णियों का श्रेष्ठवीर सात्यकि भी युद्धस्थल में उसीप्रकार युद्ध करता हुआ कर्ण पर बाणवर्षा करने लगा। थोड़ी देरतक युद्ध समानरूप से चलता रहा। हे महाराज! आपके योद्धाओं ने और कवच बाँधे कर्ण के पुत्र ने सात्यकि को शीघ्रता से सबतरफ से तीखे बाणों से बींध दिया। हे प्रभो! तब क्रोध में भरे सात्यकि ने अपने अस्त्रों से उनके अस्त्रों तथा कर्ण के भी अस्त्रों का निवारण कर वृषसेन की छाती को बींधा। हे प्रजानाथ! सात्यकि के बाण से घायल पराक्रमी वृषसेन धनुष को छोड़कर, मूर्च्छित होकर रथ में गिर पड़ा।

ततः कर्णो हतं मत्वा वृषसेनं महारथम्।
पुत्रशोकाभिसंतप्तः सात्यकिं प्रत्यपीडयत्॥ २९॥
पीड्यमानस्तु कर्णेन युयुधानो महारथः।
विव्याध बहुभिः कर्णं त्वरमाणः पुनः पुनः॥ ३०॥
वर्तमाने तु संग्रामे तस्मिन् वीरवरक्षये।
अतीव शुश्रुवे राजन् गाण्डीवस्य महास्वनः॥ ३१॥
श्रुत्वा तु रथनिर्घोषं गाण्डीवस्य च निःस्वनम्।
सूतपुत्रोऽब्रवीद् राजन् दुर्योधनमिदं वचः॥ ३२॥

तब कर्ण महारथी वृषसेन को मारा हुआ समझकर पुत्रशोक से सन्तप्त होकर सात्यकि को पीड़ित करने

लगा। कर्ण से पीड़ित सात्यकि भी उसे शीघ्रता से बारबार बहुतसे बाणों से पीड़ित करने लगे। हे महाराज! श्रेष्ठ वीरों का विनाश करनेवाला वह संग्राम जब चल रहा था, तभी गांडीवधनुष की भयंकर टंकार जोरजोर से सुनाई देने लगी। अर्जुन के रथ की घर्घराहट तथा गांडीवधनुष की टंकार को सुनकर हे राजन्! सूतपुत्र ने दुर्योधन से यह कहा कि—

एष सर्वां चमूं हत्वा मुख्यांश्चैव नरर्षभान्।
पौरवांश्च महेष्वासो विक्षिपन्नुत्तमं धनुः॥ ३३॥
पार्थो विजयते तत्र गाण्डीवनिनदो महान्।
श्रूयते रथघोषश्च वासवस्येव नर्दतः॥ ३४॥
करोति पाण्डवो व्यक्तं कर्मौपयिकमात्मनः।
अयं मध्ये स्थितोऽस्माकं सात्यकिः सात्वतां वरः॥ ३५॥
इह चेल्लभ्यते लक्ष्यं कृत्स्नाञ्जेष्यामहे परान्।
एष पाञ्चालराजस्य पुत्रो द्रोणेन संगतः॥ ३६॥
सर्वतः संवृतो योधैः शूरैश्च रथसत्तमैः।

कुन्तीपुत्र महाधनुर्धर अर्जुन सारी सेना को और प्रमुख श्रेष्ठ कुरुवंशी पुरुषों को मारकर, धनुष की टंकार करते हुए विजय को प्राप्त कर रहे हैं। उनके गाण्डीवधनुष की महान् टंकार और बादलों की गर्जना के समान रथ की घर्घराहट सुनाई देरही है। इससे स्पष्ट है कि वह पाण्डुपुत्र अपने अनुरूप ही पुरुषार्थ कर रहे हैं। यदुवंशियों में श्रेष्ठ सात्यकि इस समय हमारे बीच में विद्यमान है। यदि यह हमारे बाणों का निशाना बन जाता है, तो हम सारे शत्रुओं को जीत लेंगें इसीप्रकार द्रोणाचार्य से युद्ध करता हुआ पाँचालराज का यह पुत्र हमारे श्रेष्ठरथियों, शूरवीरयोद्धाओं से सबतरफ से घिर गया है।

सात्यकिं यदि हन्याम धृष्टद्युम्नं च पार्षतम्॥ ३७॥
असंशयं महाराज ध्रुवो नो विजयो भवेत्।
सौभद्रवदिमौ वीरौ परिवार्य महारथौ॥ ३८॥
प्रयतामो महाराज निहन्तुं वृष्णिपार्षतौ।
सव्यसाची पुरोऽभ्येति द्रोणानीकाय भारत॥ ३९॥
तत्र गच्छन्तु बहवः प्रवरा रथसत्तमाः।
यावत् पार्थो न जानाति सात्यकिं बहुभिर्वृतम्॥ ४०॥
ते त्वरध्वं तथा शूराः शराणां मोक्षणे भृशम्।

हे महाराज! यदि हम सात्यकि और द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्न को मार दें, तो निश्चय ही हमारी विजय निश्चित है। अभिमन्यु की तरह से इन दोनों वृष्णिवंशी और द्रुपदपुत्र महारथियों को घेरकर हे महाराज! हम मारने का प्रयत्न करें। हे भारत! अर्जुन द्रोणाचार्य की सेना के सामने आरहे हैं। जबतक इनको यह पता नहीं लग जाता कि सात्यकि बहुतसे योद्धाओं से घिर गये हैं, उससे पहले बहुतसे श्रेष्ठ महारथी उनका सामना करने को उनके समीप पहुँच जायें। वे शूरवीर उनके ऊपर अत्यन्तशीघ्रता से बाणों की वर्षा आरम्भ कर दें।

यथा त्विह व्रजत्येष परलोकाय माधवः॥ ४१॥
तथा कुरु महाराज सुनीत्या सुप्रयुक्तया।
कर्णस्य मतमास्थाय पुत्रस्ते प्राह सौबलम्॥ ४२॥
वृतः सहस्रैर्दशभिर्गजानामनिवर्तिनाम्।
रथैश्च दशसाहस्रैस्तूर्णं याहि धनंजयम्॥ ४३॥

हे महाराज! इसप्रकार अच्छीतरह प्रयोग कीहुई अच्छी नीति के अनुसार काम करो, जिससे सात्यकि परलोक को चला जाये। तब कर्ण की सलाह को स्वीकारकर आपके पुत्र ने शकुनि से कहा कि पीछे न हटनेवाले दस हजार हाथियों और दस हजार रथों के साथ तुम जल्दी अर्जुन पर आक्रमण हेतु जाओ।

भारद्वाजस्ततो गत्वा धृष्टद्युम्नरथं प्रति।
महद् युद्धं तदाऽऽसीत् तु द्रोणस्य निशि भारत।
धृष्टद्युम्नेन वीरेण पञ्चालैश्च सहाद्भुतम्॥ ४४॥

उसके पश्चात् द्रोणाचार्य ने जाकर धृष्टद्युम्न के रथ पर आक्रमण किया। हे भारत! उस रात्रि में द्रोणाचार्य का वीर धृष्टद्युम्न और पाँचालों के साथ महान् और अद्भुत युद्ध हुआ।

एकसौ नौवाँ अध्याय : सात्यकि का दुर्योधन को और अर्जुन का शकुनि तथा उलूक को हराना।

ततस्ते प्राद्रवन् सर्वे त्वरिता युद्धदुर्मदाः।
अमृष्यमाणाः संरब्धा युयुधानरथं प्रति॥ १॥
तेऽभ्यवर्षञ्छरैस्तीक्ष्णैः सात्यकिं सत्यविक्रमम्।
त्वरमाणा महावीरा माधवस्य वधैषिणः॥ २॥
तान् दृष्ट्वा पततस्तूर्णं शैनेयः परवीरहा।
प्रत्यगृह्णान्महाबाहुः प्रमुञ्चन् विशिखान् बहून्॥ ३॥
तत्र वीरो महेष्वासः सात्यकिर्युद्धदुर्मदः।
निचकर्त शिरांस्युग्रैः शरैः संनतपर्वभिः॥ ४॥
हस्तिहस्तान् हयग्रीवा बाहूनपि च सायुधान्।
क्षुरप्रैः शातयामास तावकानां स माधवः॥ ५॥

हे राजन्! तब युद्ध में दुर्मद, अमर्षशील तथा क्रोध में भरे वे योद्धालोग शीघ्रता से सात्यकि के रथ की तरफ दौड़े। उन महान् वीरों ने सात्यकि के वध की इच्छा से शीघ्रता से सत्यविक्रमी सात्यकि पर तीखे बाणों की वर्षा आरम्भ कर दी। तब शत्रुवीरों को मारनेवाले महाबाहु सात्यकि ने उन्हें आक्रमण करते हुए देखकर बहुतसारे बाणों को छोड़ते हुए तुरन्त उनका स्वागत किया। युद्ध में दुर्मद, महाधनुर्धर, वीर सात्यकि ने झुकी गाँठवाले भयंकर बाणों से उनके सिरों को काट दिया। सात्यकि ने आपकी सेना के हाथियों की सूँड़ों, घोड़ों की गर्दनों और योद्धाओं की हथियारसहित भुजाओं को क्षुरप्रोंद्वारा काट दिया।

दीर्यमाणं बलं दृष्ट्वा युयुधानशराहतम्।
श्रुत्वा च विपुलं नादं निशीथे लोमहर्षणे॥ ६॥
ततो दुर्योधनः क्रुद्धो दृढधन्वा जितक्लमः।
शीघ्रहस्तश्चित्रयोधी युयुधानमुपाद्रवत्॥ ७॥
ततः पूर्णायतोत्सृष्टैः शरैः शोणितभोजनैः।
दुर्योधनं द्वादशभिर्माधवः प्रत्यविध्यत॥ ८॥
दुर्योधनस्तेन तथा पूर्वमेवार्दितः शरैः।
शैनेयं दशभिर्बाणैः प्रत्यविध्यदमर्षितः॥ ९॥

सात्यकि के बाणों द्वारा मारी हुई अपनी सेना को भागता हुआ देखकर और उस लोमहर्षक रात्रि में विपुल कोलाहल को सुनकर दृढ़धनुर्धर श्रमजयी शीघ्रतापूर्वक हाथ चलानेवाले और विचित्रप्रकार से युद्ध करनेवाले दुर्योधन ने क्रोध में भरकर सात्यकि पर आक्रमण किया। तब सात्यकि ने धनुष को पूरा खींचकर छोड़े गये, रक्त पीनेवाले बारह बाणों के द्वारा दुर्योधन को बींध दिया। इसप्रकार सात्यकि के बाणों से पहले ही पीड़ित हुए दुर्योधन ने अमर्ष में भरकर सात्यकि को दस बाणों से घायल किया।

शैनेयस्तु रणे क्रुद्धस्तव पुत्रं महारथम्।
सायकानामशीत्या तु विव्याधोरसि भारत॥ १०॥
ततोऽस्य वाहान् समरे शरैर्निन्ये यमक्षयम्।
सारथिं च रथात् तूर्णं पातयामास पत्रिणा॥ ११॥
हताश्वे तु रथे तिष्ठन् पुत्रस्तव विशाम्पते।
मुमोच निशितान् बाणाञ्शैनेयस्य रथं प्रति॥ १२॥
शरान् पञ्चाशतस्तांस्तु शैनेयः कृतहस्तवत्।
चिच्छेद समरे राजन् प्रेषितांस्तनयेन ते॥ १३॥

हे भारत! तब रण में क्रुद्ध होकर सात्यकि ने आपके महारथी पुत्र पर अस्सी बाणों की वर्षाकर उसकी छाती को घायल कर दिया। फिर उसने उसके घोड़ों को बाणोंद्वारा मृत्युलोक में पहुँचा दिया। हे प्रजानाथ! तब मरे घोड़ोंवाले रथपर ही खड़े होकर आपके पुत्र ने सात्यकि के रथ पर तीखे बाणों को छोड़ा। हे राजन्! तब आपके पुत्र के द्वारा छोड़े गये पचास बाणों को सात्यकि ने एक सिद्धहस्त के समान युद्धभूमि में काट दिया।

अथापरेण भल्लेन मुष्टिदेशे महद् धनुः।
चिच्छेद तरसा युद्धे तव पुत्रस्य माधवः॥ १४॥
दुर्योधने परावृत्ते शैनेयस्तव वाहिनीम्।
द्रावयामास विशिखैर्निशामध्ये विशाम्पते॥ १५॥

फिर सात्यकि ने शीघ्रता से दूसरे भल्ल से आपके पुत्र के विशाल धनुष को मुट्ठी के स्थान से युद्ध में काट दिया। हे प्रजानाथ! तब मध्यरात्रि में दुर्योधन के युद्ध से परांगमुख होजाने पर सात्यकि ने बाणों से आपकी सेना को भगा दिया।

शकुनिश्चार्जुनं राजन् परिवार्य समन्ततः।
रथैरनेकसाहस्रैर्गजैश्चापि सहस्रशः॥ १६॥
तथा हयसहस्रैश्च नानाशस्त्रैरवाकिरत्।
तान्यर्जुनः सहस्राणि रथवारणवाजिनाम्॥ १७॥
प्रत्यवारयदायस्तः प्रकुर्वन् विपुलं क्षयम्।

ततस्तु समरे शूरः शकुनिः सौबलस्तदा॥ १८॥
विव्याध निशितैर्बाणैरर्जुनं प्रहसन्निव।
पुनश्चैव शतेनास्य संरुरोध महारथम्॥ १९॥
तमर्जुनस्तु विंशत्या विव्याध युधि भारत।
अथेतरान् महेष्वासांस्त्रिभि स्त्रिभिरविध्यत॥ २०॥

हे राजन्! उधर शकुनि ने अर्जुन को हजारों रथों, हाथियों, और घोड़ों के द्वारा चारोंतरफ से घेरकर उनपर अनेकप्रकार के हथियारों की वर्षा आरम्भ कर दी। तब कौरवसेना का विपुल विनाश करने से थके हुए होने पर भी अर्जुन ने उन हजारों रथ, घोड़ों और हाथियों को रोक दिया। तब युद्ध में शूरवीर सुबलपुत्र शकुनि ने मुस्कराते हुए अर्जुन को तीखे बाणों से बींध दिया और सौ बाणों की वर्षाकर उनके विशाल रथ को रोक दिया। हे भारत! तब अर्जुन ने युद्धस्थल में शकुनि को बीस बाणों से और दूसरे महाधनुर्धरों को तीन तीन बाणों से घायल किया।

निवार्य तान् बाणगणैर्युधि राजन् धनंजयः।
जघान तावकान् योधान् वज्रपाणिरिवासुरान्॥ २१॥
भुजैश्छिन्नैर्महीपाल हस्तिहस्तोपमैर्मृधे।
समाकीर्णा मही भाति पञ्चास्यैरिव पन्नगैः॥ २२॥
कृत्वा तत् कर्म बीभत्सुरुग्रमुग्रपराक्रमः।
विव्याध शकुनिं भूयः पञ्चभिर्नतपर्वभिः॥ २३॥
अताडयदुलूकं च त्रिभिरेव तथा शरैः।
उलूकस्तु तथा विद्धो वासुदेवमताडयत्॥ २४॥
ननाद च महानादं पूरयन्निव मेदिनीम्।

हे राजन्! अर्जुन ने अपने बाणसमूहों से आपके उन योद्धाओं को रोककर उनका उसीप्रकार संहार कर दिया, जैसे वज्र हाथ में लेकर इन्द्र ने असुरों का किया था। हे राजन्! युद्धक्षेत्र में हाथी की सूँड़ों के समान कटी हुई भुजाओं से भरी हुई वह भूमि ऐसे प्रतीत होती थी, जैसे पाँच मुखवाले साँपों से ढकी हुई हो। उग्र पराक्रमी अर्जुन ने उस उग्र कार्य को करके शकुनि को पाँच झुकी गाँठवाले बाणों से बींध दिया और उलूक को तीन बाणों से पीड़ित किया। उलूक ने इसप्रकार घायल होने पर श्रीकृष्णजी पर प्रहार किया और भूमि को गुँजाते हुए जोर से गर्जना की।

अर्जुनः शकुनेश्चापं सायकैरच्छिनद् रणे॥ २५॥
निन्ये च चतुरो वाहान् यमस्य सदनं प्रति।
ततो रथादवप्लुत्य सौबलो भरतर्षभ॥ २६॥
उलूकस्य रथं तूर्णमारुरोह विशाम्पते।
तावेकरथमारूढौ पितापुत्रौ महारथौ॥ २७॥
पार्थं सिषिचतुर्बाणैर्गिरिं मेघाविवाम्बुभिः।
तौ तु विद्ध्वा महाराज पाण्डवो निशितैःशरैः॥ २८॥
विद्रावयंस्तव चमूं शतशो व्यधमच्छरैः।
विजित्य समरे योधांस्तावकान् भरतर्षभ।
दध्मतुर्मुदितौ शङ्खौ, वासुदेवधनंजयौ॥ २९॥

तब अर्जुन ने शकुनि के धनुष को बाणों से युद्ध में काट दिया और उसके चारों घोड़ों को मृत्युलोक में पहुँचा दिया। हे प्रजानाथ! हे भरतश्रेष्ठ! तब शकुनि तुरन्त रथ से कूदकर उलूक के रथपर चढ़ गया। वेदोनों महारथी पिता और पुत्र एक ही रथ पर बैठे हुए अर्जुन पर बाणों की इसप्रकार वर्षा करने लगे जैसे दो बादल पर्वत को जल से सींचते हैं। हे महाराज! तब पाण्डुपुत्र ने उनदोनों को तीखे बाणों से बींधकर, सेना को भगाते हुए उसे सैकड़ों बाणों से छिन्नभिन्न कर दिया। हे भरतश्रेष्ठ! इसप्रकार युद्ध में आपके योद्धाओं को जीतकर श्रीकृष्ण और अर्जुन युद्धस्थल में शंखों को बजाने लगे।

एकसौ दसवाँ अध्याय : द्रोणाचार्य और कर्ण का घोर युद्ध। पाण्डवसेना का भागना। अर्जुन और भीम का कौरवों पर आक्रमण।

विद्रुतं स्वबलं दृष्ट्वा वध्यमानं महात्मभिः।
क्रोधेन महताऽऽविष्टः पुत्रस्तव विशाम्पते॥ १॥
अभ्येत्य सहसा कर्णं द्रोणं च जयतां वरम्।
अमर्षवशमापन्नो वाक्यज्ञो वाक्यमब्रवीत्॥ २॥
भवद्‌भ्यामिह संग्रामः क्रुद्धाभ्यां सम्प्रवर्तितः।
आहवे निहतं दृष्ट्वा सैन्धवं सव्यसाचिना॥ ३॥
निहन्यमानां पाण्डूनां बलेन मम वाहिनीम्।
भूत्वा तद्विजये शक्तावशक्ताविव पश्यतः॥ ४॥

हे प्रजानाथ! मनस्वी वीरों के द्वारा मारी जाती हुई और भागती हुई अपनी सेना को देखकर आपके

पुत्र को बड़ा क्रोध आया। तब अमर्ष में भरकर वाक्यप्रयोग में चतुर वह तुरन्त विजयशील योद्धाओं में श्रेष्ठ कर्ण और द्रोणाचार्य के समीप गया और उनसे बोला कि युद्धस्थल में अर्जुन के द्वारा जयद्रथ को मरा हुआ देखकर आप दोनों ने ही क्रुद्ध होकर यहाँ रात्रि में संग्राम को चालू रखा था। पर अब पाण्डवों की सेना के द्वारा मेरी सेना मारी जारही है और आपलोग उनको जीतने में समर्थ होकर भी असमर्थो के समान देख रहे हैं।

यद्यहं भवतोस्त्याज्यो न वाच्योऽस्मि तदैव हि।
आवां पाण्डुसुतान् संख्ये जेष्याव इति मानदौ॥ ५॥
तदैवाहं वचः श्रुत्वा भवद्भ्यामनुसम्मतम्।
नाकरिष्यमिदं पार्थैवैरं योधविनाशनम्॥ ६॥
यदि नाहं परित्याज्यो भवद्भ्यां पुरुषर्षभौ।
युध्यतामनुरूपेण विक्रमेण सुविक्रमौ॥ ७॥
वाक्प्रतोदेन तौ वीरौ प्रणुन्नौ तनयेन ते।
प्रावर्तयेतां संग्रामं घट्टिताविव पन्नगौ॥ ८॥

हे दूसरों को मान देनेवालों। यदि आपलोगों ने मुझे छोड़ना ही था तो उस समय मुझसे यह यह नहीं कहना चाहिये था कि हम युद्ध में पाण्डुपुत्रों को जीत लेंगे। तब मैं आपलोगों की सम्मति सुनकर योद्धाओं का विनाश करनेवाले इस बैर को पाण्डवों के साथ नहीं करता। हे अत्यन्त पराक्रमी पुरुषश्रेष्ठों! यदि आपलोगों ने मेरा साथ नहीं छोड़ा है, तो आप अपनेयोग्य पराक्रम के अनुसार युद्ध कीजिये। इसप्रकार आपके पुत्रद्वारा वाक्यरूपी चाबुक से पीड़ित किये हुए उन दोनों ने तब कुचले हुए साँप की भाँति घोर संग्राम को आरम्भ कर दिया।

ततस्तौ रथिनां श्रेष्ठौ सर्वलोकधनुर्धरौ।
शैनेयप्रमुखान् पार्थानभिदुद्रुवतू रणे॥ ९॥
तथैव सहिताः पार्थाः सर्वसैन्येन संवृताः।
अभ्यवर्तन्त तौ वीरौ नर्दमानौ मुहुर्मुहुः॥ १०॥
अथ द्रोणो महेष्वासो दशभिः शिनिपुङ्गवम्।
अविध्यत् त्वरितं क्रुद्धः सर्वशस्त्रभृतां वरः॥ ११॥
कर्णश्च दशभिर्बाणैः पुत्रश्च तव सप्तभिः।
दशभिर्वृषसेनश्च सौबलश्चापि सप्तभिः॥ १२॥
एते कौरव संक्रन्दे शैनेयं पर्यवाकिरन्।

तब सारे संसार में प्रसिद्ध धनुर्धर और रथियों में श्रेष्ठ उनदोनों ने सात्यकि आदि पाण्डववीरों पर युद्धक्षेत्र में आक्रमण किया। उसीप्रकार पाण्डववीरों ने भी सारी सेनाओं के साथ बारबार गर्जते हुए उनदोनों वीरों का सामना किया। फिर सारे शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ धनुर्धर द्रोणाचार्य ने शीघ्रतापूर्वक और क्रोध में भरकर शिनिश्रेष्ठ, सात्यकि को दस बाणों से घायल कर दिया। फिर कर्ण ने दस बाणों से, आपके पुत्र ने सात बाणों से, वृषसेन ने दस बाणों से और शकुनि ने सात बाणों से सात्यकि पर चारोंतरफ से वर्षा आरम्भ कर दी।

दृष्ट्वा च समरे द्रोणं निघ्नन्तं पाण्डवीं चमूम्॥ १३॥
विव्यधुः सोमकास्तूर्णं समन्ताच्छरवृष्टिभिः।
तत्र द्रोणोऽहरत् प्राणान् क्षत्रियाणां विशाम्पते॥ १४॥
रश्मिभिर्भास्करो राजंस्तमांसीव समन्ततः।
द्रोणेन वध्यमानानां पञ्चालानां विशाम्पते॥ १५॥
शुश्रुवे तुमुलः शब्दः क्रोशतामितरेतरम्।

तब द्रोणाचार्य को युद्धक्षेत्र में पाण्डवों की सेना को मारते हुए देखकर सोमकवीर तुरन्त चारोंतरफ से उनपर बाणवर्षा करके उन्हें घायल करने लगे। हे प्रजानाथ राजन्! जैसे सूर्य अपनी किरणों से अँधेरे को नष्ट करते हैं, वैसे ही द्रोणाचार्य उस समय चारों तरफ क्षत्रियों के प्राणों को हरण कर रहे थे। हे प्रजानाथ! द्रोणाचार्य के द्वारा मारे जाते हुए, और एक दूसरे को बुलाते हुए पाँचालसैनिकों का घोर आर्तनाद उस समय सुनायी देरहा था।

सा तथा पाण्डवी सेना पीड्यमाना महात्मना॥ १६॥
निशि सम्प्राद्रवद् राजन्नुत्सृज्योल्काः सहस्रशः।
पश्यतो भीमसेनस्य विजयस्याच्युतस्य च॥ १७॥
यमयोर्धर्मपुत्रस्य पार्षतस्य च पश्यतः।
द्रवमाणं तु तत् सैन्यं द्रोणकर्णौ महारथौ॥ १८॥
जघ्नतुः पृष्ठतो राजन् किरन्तौ सायकान् बहून्।
तां तु विद्रवतीं दृष्ट्वा ऊचतुः केशवार्जुनौ॥ १९॥
मा विद्रवत वित्रस्ता भयं त्यजत पाण्डवाः।
तावावां सर्वसैन्यैश्च व्यूहैः सम्यगुदायुधैः॥ २०॥
द्रोणं च सूतपुत्रं च प्रयताव: प्रबाधितुम्।

हे राजन्! मनस्वी द्रोणाचार्य द्वारा पीड़ित की जाती हुई पाण्डवीसेना तब रात्रि में अपनी हजारों मशालों को फैंकफैंक कर भीम, अर्जुन, श्रीकृष्ण, नकुल, सहदेव, युधिष्ठिर और धृष्टद्युम्न के देखते

हुए ही भागने लगी। हे राजन्! महारथी द्रोणाचार्य और कर्ण भागती हुई उस सेना को पीछे से बहुतसारे बाणों की वर्षा करते हुए मार रहे थे। तब अपनी सेना को भागती हुई देखकर कृष्ण और अर्जुन उसे रोकते हुए कहने लगे कि हे पाण्डव वीरों! डरकर भागो मत। भय को छोड़ दो। हमदोनों उत्तम आयुधों के साथ सारी सेना का व्यूह बनाकर द्रोणाचार्य और कर्ण को रोकने का प्रयत्न करते हैं।

तयोः संवदतोरेवं भीमकर्मा महाबलः॥ २१॥
आयाद् वृकोदरः शीघ्रं पुनरावर्त्य वाहिनीम्।
वृकोदरमथायान्तं दृष्ट्वा तत्र जनार्दनः॥ २२॥
पुनरेवाब्रवीद् राजन् हर्षयन्निव पाण्डवम्।
एष भीमो रणश्लाघी वृतः सोमकपाण्डवैः॥ २३॥
अभ्यवर्तत वेगेन द्रोणकर्णौ महारथौ।
एतेन सहितो युद्धय पञ्चालैश्च महारथैः॥ २४॥
आश्वासनार्थं सैन्यानां सर्वेषां पाण्डुनन्दन।

उनदोनों के इसप्रकार कहते हुएही भयंकर कर्म करनेवाले भीमसेन अपनी सेना को पुनः लौटाकर शीघ्र ही वहाँ आपहुँचे। तब भीम को वहाँ आता हुआ देखकर श्रीकृष्ण हे राजन्! अर्जुन को हर्षित करते हुए बोले कि युद्ध की श्लाघा करने वाले ये भीम, सोमक और पाण्डवसैनिकों के साथ द्रोणाचार्य और कर्ण इन महारथियों का सामना करने के लिये वेगपूर्वक आरहे हैं। हे पाण्डुनन्दन! तुम भीम और पाँचाल महारथियों के सहित सेना के आश्वासन के लिये युद्ध करो।

ततस्तौ पुरुषव्याघ्रावुभौ माधवपाण्डवौ॥ २५॥
द्रोणकर्णौ समासाद्य धिष्ठितौ रणमूर्धनि।
ततस्तत् पुनरावृत्तं युधिष्ठिरबलं महत्॥ २६॥
ततो द्रोणश्च कर्णश्च परान् ममृदतुर्युधि।
स सम्प्रहारस्तुमुलो निशि प्रत्यभवन्महान्।
यथा सागरयो राजंश्चन्द्रोदयविवृद्धयोः॥ २७॥

तब वेदोनों श्रीकृष्ण और अर्जुन पुरुषव्याघ्र, युद्ध के मुहाने पर द्रोणाचार्य और कर्ण के सामने जाकर खड़े होगये। फिर युधिष्ठिर की विशाल सेना भी वापिस लौट आयी और द्रोणाचार्य तथा कर्ण भी युद्ध में अपने शत्रुओं का मर्दन करने लगे। हे राजन्! जैसे चन्द्रोदय के समय उमड़ते हुए दो सागरों का परस्पर टकराव होरहा हो, वैसेही रात्रि के समय वह भयंकर संग्राम अधिकाधिक बढ़ता जा रहा था।

एकसौ ग्यारहवाँ अध्याय : कर्ण द्वारा धृष्टद्युम्न को हराना। श्रीकृष्ण का घटोत्कच को कर्ण से युद्ध करने के लिये भेजना।

ततः कर्णो रणे दृष्ट्वा पार्षतं परवीरहा।
आजघानोरसि शरैर्दशभिर्मर्मभेदिभिः॥ १॥
प्रतिविव्याध तं तूर्णं धृष्टद्युम्नोऽपि मारिष।
दशभिः सायकैर्हृष्टस्तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत्॥ २॥
तावन्योन्यं शरैः संख्ये संछाद्य सुमहारथैः।
पुनः पूर्णायतोत्सृष्टैर्विव्यधाते परस्परम्॥ ३॥
ततः पाञ्चालमुख्यस्य धृष्टद्युम्नस्य संयुगे।
सारथिंचतुरश्चाश्वान् कर्णो विव्याध सायकैः॥ ४॥

फिर शत्रुवीरों को मारनेवाले कर्ण ने युद्धक्षेत्र में द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्न को देखकर उसकी छाती पर दस मर्मभेदी बाणों से प्रहार किया। हे मान्यवर! तब धृष्टद्युम्न ने भी उत्साह में भरकर बदले में उसे तुरन्त दस बाणों से बींधा और कहा कि खड़े रहो, खड़े रहो। तब वेदोनों अत्यन्त उत्तम रथों पर सवार होकर युद्ध में एकदूसरे को धनुष को पूरीतरह खींचकर छोड़े हुए बाणों से आच्छादित करते हुए, बींधने लगे। तब कर्ण ने युद्धक्षेत्र में पाँचालप्रमुख धृष्टद्युम्न के सारथि और चारों घोड़ों को बाणों से बींध दिया।

कार्मुकप्रवरं चापि प्रचिच्छेद शितैः शरैः।
सारथिं चास्य भल्लेन रथनीडादपातयत्॥ ५॥
धृष्टद्युम्नस्तु विरथो हताश्वो हतसारथिः।
गृहीत्वा परिघं घोरं कर्णस्याश्वानपीपिषत्॥ ६॥
विद्धश्च बहुभिस्तेन शरैराशीविषोपमैः।
ततो युधिष्ठिरानीकं पद्भ्यामेवान्वपद्यत॥ ७॥
आरुरोह रथं चापि सहदेवस्य मारिष।
प्रयातुकामः कर्णाय वारितो धर्मसूनुना॥ ८॥

उसने उसके उत्तम धनुष को भी तीखे बाणों से काट दिया और सारथि को भी भल्ल से मारकर

रथ से नीचे गिरा दिया। तब बिना रथ तथा घोड़ों के सारथि के मर जाने पर धृष्टद्युम्न ने एक भयंकर परिघ को उठाकर उससे कर्ण के घोड़ों को पीस डाला। धृष्टद्युम्न उस समय विषैले सर्प के समान बहुत से बाणों से घायल हो गया था। इसलिये वह पैदल ही युधिष्ठिर की सेना में गया। हे मान्यवर! कर्ण के पास पुनः जाने की इच्छा से वह सहदेव के रथपर चढ़ गया, पर युधिष्ठिर ने उसे रोक दिया।

कर्णस्तु सुमहातेजाः सिंहनादविमिश्रितम्।
धनुःशब्दं महच्चक्रे दध्मौ तारेण चाम्बुजम्॥ ९॥
दृष्ट्वा विनिर्जितं युद्धे पार्षतं ते महारथाः।
अमर्षवशमापन्नाः पञ्चालाः सहसोमकाः॥ १०॥
सूतपुत्रवधार्थाय शस्त्राण्यादाय सर्वशः।
प्रययुः कर्णमुद्दिश्य मृत्युं कृत्वा निवर्तनम्॥ ११॥
कर्णस्यापि रथे वाहानन्यान् सूतोऽभ्ययोजयत्।
शङ्खवर्णान् महावेगान् सैन्धवान् साधुवाहिनः॥ १२॥

तब अत्यन्त महातेजस्वी कर्ण ने सिंहनाद के साथ धनुष की जोर से टंकार की और उच्चस्वर से शंख को बजाया। तब द्रुपदपुत्र को युद्ध में जीता हुआ देखकर पाँचाल महारथी, सोमकों के साथ, अमर्ष के बस में होकर, सबतरह के शस्त्रास्त्रों को लेकर, मृत्यु को ही लौटने की अवधि निश्चित कर, कर्ण के वध के लिये कर्ण पर आक्रमण करने को चल दिये। उधर सारथि ने कर्ण के रथ में भी दूसरे शंख के समान सफेद, उत्तम भार वहन करनेवाले सिन्धुदेश के घोड़ों को जोत दिया।

लब्धलक्ष्यस्तु राधेयः पाञ्चालानां महारथान्।
अभ्यपीडयदायस्तः शरैर्मेघ इवाचलम्॥ १३॥
सा पीड्यमाना कर्णेन पञ्चालानां महाचमूः।
सम्प्राद्रवत् सुसंत्रस्ता सिंहेनेवार्दिता मृगी॥ १४॥
पतितास्तुरगेभ्यश्च गजेभ्यश्च महीतले।
रथेभ्यश्च नरास्तूर्णमदृश्यन्त ततस्ततः॥ १५॥
धावमानस्य योधस्य क्षुरप्रैः स महामृधे।
बाहू चिच्छेद वै कर्णः शिरश्चैव संकुण्डलम्॥ १६॥

जिसका निशाना नहीं चूकता , वह कर्ण तब अपने बाणों से प्रयत्नपूर्वक पाँचालमहारथियों को ऐसे पीड़ित करने लगा जैसे बादल पर्वत पर जल की धारा बरसाता है। कर्ण के द्वारा पीड़ित होकर पाँचालों की विशालसेना भयभीत होकर ऐसे भागने लगी, जैसे सिंह से पीड़ित हरिणी भागती है। उस समय जगहजगह घोड़ों, हाथियों और रथों से गिरकर भूमि पर पड़े हुए आदमी दिखाई देरहे थे। उस महान् युद्ध में कर्ण ने भागते हुए योद्धाओं की भी क्षुरप्रों से बाहें और कुण्डलसहित सिर काट दिये थे।

तान्यनीकानि भग्नानि द्रवमाणानि भारत।
अभ्यद्रवद् द्रुतं कर्णः पृष्ठतो विकिरञ्छरान्॥ १७॥
अवेक्षमाणास्त्वन्योन्यं सुसम्मूढा विचेतसः।
नाशन्कुवन्नवस्थातुं काल्यमाना महात्मना॥ १८॥
ततो युधिष्ठिरो राजा स्वसैन्यं प्रेक्ष्य विद्रुतम्।
अपयाने मनः कृत्वा फाल्गुनं वाक्यमब्रवीत्॥ १९॥

हे भारत! उन सेनाओं को तित्तर बित्तर हुआ और भागते हुए देखकर कर्ण तेजी से बाणों की वर्षा करते हुए उनके पीछे दौड़ता था। उस मनस्वी के द्वारा मारे जाते हुए पाँचालसैनिक एकदूसरे को देखते हुए मोहित और अचेत से होते हुए वहाँ ठहर नहीं सके। तब राजा युधिष्ठिर अपनी सेना को भागता हुआ देखकर स्वयं भी युद्धभूमि से हटने का मन बनाकर अर्जुन से बोले कि–

पश्य कर्णं महेष्वासं धनुष्पाणिमवस्थितम्।
निशीथे दारुणे काले तपन्तमिव भास्करम्॥ २०॥
कर्णसायकनुन्नानां क्रोशतामेष निःस्वनः।
अनिशं श्रूयते पार्थ त्वद्बन्धूनामनाथवत्॥ २१॥
यथा विसृजतश्चास्य संदधानस्य चाशुगान्।
पश्यामि नान्तरं पार्थ क्षपयिष्यति नो ध्रुवम्॥ २२॥
यदत्रानन्तरं कार्यं प्राप्तकालं च पश्यसि।
कर्णस्य वधसंयुक्तं तत् कुरुष्व धनंजय॥ २३॥
एवमुक्तो महाराज पार्थः कृष्णमथाब्रवीत्।
भीतः कुन्तीसुतो राजा राधेयस्याद्य विक्रमात्॥ २४॥

हाथ में धनुष लेकर डटे हुए महाधनुर्धर कर्ण को देखो। यह रात्रि के इस भयंकर समय में सूर्य के समान तप रहा है। हे कुन्तीपुत्र! कर्ण के बाणों से पीड़ित होकर चिल्लाते हुए तुम्हारे अनाथों के समान बन्धुओं की यह आवाज़ लगातार सुनाई दे रही है। हे कुन्तीपुत्र! यह अपने तीव्रगामी बाणों को कब धनुष पर रखता है और कब छोड़ता है, इसमें मुझे कोई अन्तर दिखाई नहीं देता। यह निश्चित रूपसे हमारा विनाश कर देगा। हे अर्जुन! अब यहाँ

कर्ण के वध के लिये तुम्हें जो उचित प्रतीत होता है, उसे करो। ऐसा कहे जाने पर हे महाराज! अर्जुन ने श्रीकृष्ण जी से कहा कि आज कर्ण के विक्रम से राजा युधिष्ठिर डर गये हैं।

एवंगते प्राप्तकालं कर्णानीके पुनः पुनः।
भवान् व्यवस्यतु क्षिप्रं द्रवते हि वरूथिनी॥ २५॥
द्रोणसायकनुन्नानां भग्नानां मधुसूदन।
कर्णेन त्रास्यमानानामवस्थानं न विद्यते॥ २६॥
पश्यामि च तथा कर्णं विचरन्तमभीतवत्।
द्रवमाणान् रथोदारान् किरन्तं निशितैः शरैः॥ २७॥
नैनं शक्ष्यामि संसोढुं चरन्तं रणमूर्धनि।
प्रत्यक्षं वृष्णिशार्दूल पादस्पर्शमिवोरगः॥ २८॥
स भवांस्तत्र यात्वाशु यत्र कर्णो महारथः।
अहमेनं हनिष्यामि मां वैष मधुसूदन॥ २९॥

ऐसी परिस्थिति में कर्ण की सेना के साथ हमें क्या करना चाहिये इसका आप शीघ्र निश्चय कीजिये, क्योंकि हमारी सेना बारबार भाग रही है। हे मधुसूदन! द्रोणाचार्य के बाणों से पीड़ित और कर्ण से भयभीत हमारे सैनिकों को ठहरने के लिये कोई सहारा नहीं है। मैं देख रहा हूँ कि कर्ण निर्भय होकर विचर रहा है और भागते हुए श्रेष्ठरथियों पर भी पीछे से बाण बरसा रहा है। जैसे साँप किसी के पैर का स्पर्श सहन नहीं करता उसीतरह हे वृष्णिवंश के सिंह! मैं अपनी आँखों के सामने इसे इसप्रकार युद्ध के मुहाने पर विचरण करते हुए सहन नहीं कर सकता। हे मधुसूदन! आप शीघ्र वहीं चलिये, जहाँ महारथी कर्ण है। या तो मैं उसे मार दूँगा या वह मुझे मार देगा।

श्रीकृष्ण उवाच

पश्यामि कर्णं कौन्तेय देवराजमिवाहवे।
विचरन्तं नरव्याघ्रमतिमानुषविक्रमम्॥ ३०॥
नैतस्यान्योऽस्ति संग्रामे प्रत्युद्याता धनंजय।
ऋते त्वां पुरुषव्याघ्र राक्षसाद् वा घटोत्कचात्॥ ३१॥
न तु तावदहं मन्ये प्राप्तकालं तवानघ।
समागमं महाबाहो सूतपुत्रेण संयुगे॥ ३२॥
दीप्यमाना महोल्केव तिष्ठत्यस्य हि वासवी।
त्वदर्थे हि महाबाहो सूतपुत्रेण संयुगे॥ ३३॥
रक्ष्यते शक्तिरेषा हि रौद्रं रूपं बिभर्ति च।

तब श्रीकृष्ण जी ने कहा कि हे कुन्तीपुत्र! मैं देख रहा हूँ कि नरव्याघ्र कर्ण आज इन्द्र के समान अतिमानुष पराक्रम को प्रकट करता हुआ, युद्धस्थल में विचरण कर रहा है। हे अर्जुन! युद्ध में इसका सामना करने वाला, हे पुरुषव्याघ्र! सिवाय तुम्हारे या घटोत्कच के और कोई नहीं है। पर हे निष्पाप! महाबाहु! तुम्हारा सूतपुत्र के साथ लड़ने का उचित समय मैं अभी नहीं समझता। इसके पास महान् उल्का के समान चमकनेवाली इन्द्र की शक्ति है, जिसे हे महाबाहु! सूतपुत्र ने तुम्हारे लिये ही रखा हुआ है। यह शक्ति भयानक रूपवाली है।

घटोत्कचस्तु राधेयं प्रत्युद्यातु महाबलः॥ ३४॥
स हि भीमेन बलिना जातः सुरपराक्रमः।
तस्मिन्नस्त्राणि दिव्यानि राक्षसान्यासुराणि च॥ ३५॥
सततं चानुरक्तो वो हितैषी च घटोत्कचः।
विजेष्यति रणे कर्णमिति मे नात्र संशयः॥ ३६॥

इसलिये महाबली घटोत्कच को इसके सामने जाना चाहिये। देवताओं के समान पराक्रम वाला यह भीम का पुत्र है। इसके पास राक्षसों और असुरों के सारे दिव्य अस्त्र हैं। यह घटोत्कच आपलोगों से सदा प्रेम करने वाला और हितैषी है। यह कर्ण को युद्ध में जीत लेगा, इसमें कोई शक नहीं है।

एवमुक्तो महाबाहुः पार्थः पुष्करलोचनः।
आजुहावाथ तद् रक्षस्तच्चासीत् प्रादुरग्रतः॥ ३७॥
कवची सशरः खड्गी सधन्वा च विशाम्पते।
अभिवाद्य ततः कृष्णं पाण्डवं च धनंजयम्॥ ३८॥
अब्रवीच्च तदा कृष्णमयमस्म्यनुशाधि माम्।
ततस्तं मेघसंकाशं दीप्तास्यं दीप्तकुण्डलम्॥ ३९॥
अभ्यभाषत हैडिम्बिं दाशार्हः प्रहसन्निव।

ऐसा कहे जाने पर महाबाहु कमलनेत्र अर्जुन ने उस राक्षस को बुलवाया। तब वह आकर उनके सामने उपस्थित होगया। हे प्रजानाथ! उसने कवच बाँध रखा था और धनुषबाण तथा तलवार ली हुई थी। उसने कृष्ण को और पाण्डुपुत्र अर्जुन को प्रणाम किया और श्रीकृष्णजी से कहा कि मैं यह आपकी सेवा में उपस्थित हूँ। आप आज्ञा दीजिये। तब उस चमकते हुए मुख और जगमगाते हुए कुण्डलवाले, बादलों के समान हिडिम्बापुत्र से श्रीकृष्णजी ने मुस्कराते हुए कहा कि—

घटोत्कच विजानीहि यत् त्वां वक्ष्यामि पुत्रक॥ ४०॥
प्राप्तो विक्रमकालोऽयं तव नान्यस्य कस्यचित्।
स भवान् मज्जमानानां बन्धूनां त्वं प्लवो भव॥ ४१॥
विविधानि तवास्त्राणि सन्ति माया च राक्षसी।
पश्य कर्णेन हैडिम्बे पाण्डवानामनीकिनी॥ ४२॥
काल्यमाना यथा गावः पालेन रणमूर्धनि।
एष कर्णो महेष्वासो मतिमान् दृढविक्रमः॥ ४३॥
पाण्डवानामनीकेषु निहन्ति क्षत्रियर्षभान्।

हे घटोत्कच बेटे! मैं तुमसे जो कह रहा हूँ, उसे समझो। यह तुम्हारे ही पराक्रम दिखाने का समय है, और किसी का नहीं। इसलिये तुम डूबते हुए अपने बन्धुओं के लिये आज नाव का काम करो। तुम्हारे पास अनेकप्रकार के अस्त्र हैं और राक्षसों वाली कपटयुद्ध की विद्या भी है। देखो! कर्ण पाण्डवों की सेना को युद्ध के मुहाने पर ऐसे खदेड़ रहा है, जैसे ग्वाला गायों को हाँकता है। यह दृढ़ पराक्रमी, मतिमान् और महाधनुर्धर कर्ण पाण्डवों की सेना में श्रेष्ठ क्षत्रियों को मार रहा है।

किरन्तः शरवर्षाणि महान्ति दृढधन्विनः॥ ४४॥
न शक्नुवन्त्यवस्थातुं पीड्यमानाः शरार्चिषा।
निशीथे सूतपुत्रेण शरवर्षेण पीडिताः॥ ४५॥
एते द्रवन्ति पञ्चालाः सिंहेनेवार्दिता मृगाः।
एतस्यैवं प्रवृद्धस्य सूतपुत्रस्य संयुगे॥ ४६॥
निषेद्धा विद्यते नान्यस्त्वामृते भीमविक्रम।
स त्वं कुरु महाबाहो कर्म युक्तमिहात्मनः॥ ४७॥
मातुलानां पितॄणां च तेजसोऽस्त्रबलस्य च।

दृढ़ धनुषवाले भी महान् बाणवर्षा को करते हुए इसके बाणोंरूपी अग्नि से पीड़ित होकर इसके सामने ठहर नहीं पारहे हैं। रात्रि में सूतपुत्र की बाणवर्षा से पीड़ित होकर ये पाँचालवीर ऐसे भाग रहे हैं, जैसे सिंह से पीड़ित हरिण हों। हे भयंकर विक्रमवाले! इसप्रकार से बढ़ते हुए सूतपुत्र को युद्धभूमि में रोकनेवाला, तुम्हारे अतिरिक्त कोई और नहीं है। इसलिये हे महाबाहु! अपने मामाओं और पिताओं के तेज तथा अस्त्रबल के अनुसार, जो कार्य तुम्हारे अपने लिये उचित है उसे करो।

एतदर्थं हि हैडिम्बे पुत्रानिच्छन्ति मानवाः।
कथं नस्तारयेद् दुःखात् स त्वं तारय बान्धवान्॥ ४८॥
पाण्डवानां प्रभग्नानां कर्णेन निशि सायकैः।
मज्जतां धार्तराष्ट्रेषु भव पारं परंतप॥ ४९॥
जहि कर्णं महेष्वासं निशीथे मायया रणे।
पार्थां द्रोणं वधिष्यन्ति धृष्टद्युम्नपुरोगमाः॥ ५०॥

हे हिडिम्बापुत्र! लोग इसीलिये पुत्र की इच्छा करते हैं कि वह हमें किसीप्रकार दुःख से छुड़ायेगा। अतः तुम अपने बन्धुओं को दुःख से छुड़ाओ। रात में कर्ण के बाणों से पाण्डवसेना भाग रही है। वह दुर्योधन की सेनारूपी समुद्र में डूब रही है। हे परंतप! तुम उसे पार लगानेवाले बन जाओ। तुम महाधनुर्धर कर्ण को इस रात्रि में कपटयुद्ध से मार दो। धृष्टद्युम्न और पाण्डव द्रोणाचार्य को मार देंगे।

केशवस्य वचः श्रुत्वा बीभत्सुरपि राक्षसम्।
अभ्यभाषत कौरव्य घटोत्कचमरिंदमम्॥ ५१॥
घटोत्कच भवांश्चैव दीर्घबाहुश्च सात्यकिः।
मतो मे सर्वसैन्येषु भीमसेनश्च पाण्डवः॥ ५२॥
तद्भवान् यातु कर्णेन द्वैरथं युध्यतां निशि।
सात्यकिः पृष्ठगोपस्ते भविष्यति महारथः॥ ५३॥
जहि कर्णं रणे शूरं सात्वतेन सहायवान्।

हे कुरुनन्दन! तब श्रीकृष्ण की बात सुनकर अर्जुन ने भी शत्रुदमन घटोत्कच राक्षस से कहा कि हे घटोत्कच! मेरे विचार से आप, दीर्घ बाहोंवाले सात्यकि और पाण्डुपुत्र भीम ये तीन ही मेरी सारी सेना में श्रेष्ठ वीर हैं। इसलिये इस रात्रि में तुम जाकर कर्ण से द्वैरथ युद्ध करो। महारथी सात्यकि तुम्हारे पृष्ठरक्षक होंगे। तुम सात्यकि की सहायता से युद्ध में कर्ण को मार दो।

घटोत्कच उवाच

अलमेवास्मि कर्णाय द्रोणायालं च भारत॥ ५४॥
अन्येषां क्षत्रियाणां च कृतास्त्राणां महात्मनाम्।
अद्य दास्यामि संग्रामं सूतपुत्राय तं निशि॥ ५५॥
यं जनाः सम्प्रवक्ष्यन्ति यावद् भूमिर्धरिष्यति।
न चात्र शूरान् मोक्ष्यामि न भीतान्न कृताञ्जलीन्॥ ५६॥
सर्वानेव वधिष्यामि राक्षसं धर्ममास्थितः।
एवमुक्त्वा महाबाहुर्हैडिम्बिर्वरवीरहा।
अभ्ययात् तुमुले कर्णं तव सैन्यं विभीषयन्॥ ५७॥

तब घटोत्कच ने कहा कि हे भारत! मैं द्रोणाचार्य के लिये, तथा कर्ण के लिये पर्याप्त हूँ। मैं अस्त्रविद्या

के निष्णात दूसरे मनस्वी क्षत्रियों का भी सामना कर सकता हूँ। आज मैं रात्रि में सूतपुत्र को ऐसा युद्ध प्रदान करूँगा जिसकी चर्चा लोग तबतक करते रहेंगे, जबतक यह भूमि विद्यमान रहेगी। इस युद्ध में मैं न तो शूरवीरों को छोडूँगा, न डरे हुओं को छोडूँगा, और न हाथ जोड़े हुओं को छोडूँगा। राक्षस धर्म को अपनाता हुआ सबको ही मार दूँगा। ऐसा कहकर वह विशाल भुजाओंवाला, शत्रु के वीरों को मारनेवाला, हिडिम्बापुत्र, उस भयंकर युद्ध में आपकी सेना को भयभीत करता हुआ कर्ण की तरफ गया।

एकसौ बारहवाँ अध्याय : घटोत्कच का कर्ण के साथ युद्ध।

ततः कर्णोऽभ्ययादेनमस्यन्नस्यन्तमन्तिकात्।
मातङ्ग इव मातङ्गं यूथर्षभमिवर्षभः॥ १॥
स संनिपातस्तुमुलस्तयोरासीद् विशाम्पते।
कर्णराक्षसयो राजन्निन्द्रशम्बरयोरिव॥ २॥
तौ प्रगृह्य महावेगे धनुषी भीमनिःस्वने।
प्राच्छादयेतामन्योन्यं तक्षमाणौ महेषुभिः॥ ३॥
ततः पूर्णायतोत्सृष्टैरिषुभिर्नतपर्वभिः।
न्यवारयेतामन्योन्यं कांस्ये निर्भिद्य वर्मणी॥ ४॥

तब कर्ण ने बाणवर्षा करते हुए घटोत्कच पर समीप जाकर उसीप्रकार आक्रमण किया, जैसे एक यूथपति गजराज पर दूसरा यूथपति गजराज आक्रमण करता है। हे प्रजानाथ! राजन्! तब उनदोनों में वह महान् युद्ध उसीप्रकार होने लगा जैसे इन्द्र और शम्बरासुर में हुआ था। उनदोनों ने भयंकर टंकारवाले, महान् वेग से युक्त धनुषों को लेकर बड़े बड़े बाणों से एक दूसरे को घायल करते हुए आच्छादित कर दिया। फिर पूरी तरह से धनुष को खींचकर छोड़े हुए झुकी हुई गाँठवाले बाणों के द्वारा उन्होंने एक दूसरे के काँसे से निर्मित कवचों को काटकर उन्हें रोका।

तौ नखैरिव शार्दूलौ दन्तैरिव महाद्विपौ।
रथशक्तिभिरन्योन्यं विशिखैश्च ततक्षतुः॥ ५॥
संछिन्दन्तौ च गात्राणि संदधानौ च सायकान्।
दहन्तौ च शरोल्काभिर्दुष्प्रेक्ष्यौ च बभूवतुः॥ ६॥
तौ शराग्रविनुन्नाङ्गौ निर्भिन्दन्तौ परस्परम्।
नाकम्पयेतामन्योन्यं यतमानौ महाद्युती॥ ७॥
तत् प्रवृत्तं निशायुद्धं चिरं सममिवाभवत्।
प्राणयोर्दीव्यतो राजन् कर्णराक्षसयोर्मृधे॥ ८॥

जैसे दो सिंह नाखूनों से और दो हाथी दाँतों से एकदूसरे पर प्रहार करते हैं, वैसेही वेदोनों रथ शक्तियों और बाणों के द्वारा एकदूसरे को घायल करने लगे। बाणों का संधान करते हुए बाणरूपी उल्काओं से एकदूसरे को जलाते हुए और एक दूसरे के अंगों को काटते हुए उनदोनों की तरफ उस समय देखना भी कठिन होरहा था। बाणों की नोकों से उनके अंग छलनी होगये थे, फिर भी वेदोनों एक दूसरे को घायल कर रहे थे। वे महातेजस्वी प्रयत्न करने पर भी एक दूसरे को कम्पित नहीं कर सके। हे राजन्! इसप्रकार प्राणों की बाजी लगाकर युद्धस्थल में लड़ते हुए कर्ण और राक्षस का वह रात्रियुद्ध देरतक समानरूप से चलता रहा।

तस्य संदधतस्तीक्ष्णाञ्छरांश्चासक्तमस्यतः।
धनुर्घोषेण वित्रस्ताः स्वे परे च तदाभवन्॥ ९॥
सूतपुत्रस्तु संक्रुद्धो लघुहस्तः प्रतापवान्।
घटोत्कचमतिक्रम्य बिभेद दशभिः शरैः॥ १०॥
घटोत्कचो विनिर्भिन्नः सूतपुत्रेण मर्मसु।
चक्रं दिव्यं सहस्त्रारमगृह्णाद् व्यथितो भृशम्॥ ११॥
क्षुरान्तं बालसूर्याभं मणिरत्नविभूषितम्।
चिक्षेपाधिरथेः क्रुद्धो भैमसेनिर्जिघांसया॥ १२॥
प्रविद्धमतिवेगेन विक्षिप्तं कर्णसायकैः।
अभाग्यस्येव संकल्पस्तन्मोघमपतद् भुवि॥ १३॥

घटोत्कचद्वारा बाणों का सन्धान करते हुए और उन्हें परस्पर सटाकर छोड़ते हुए, उसके धनुष की टंकार से शत्रु तथा अपनेभी थर्रा रहे थे। तब प्रतापी और शीघ्र हाथ चलानेवाले कर्ण ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर घटोत्कच का उल्लंघनकर उसे दस बाणों से बींध दिया। घटोत्कच ने सूतपुत्रद्वारा मर्मस्थानों में चोट खाकर, अत्यन्तव्यथित होकर दिव्य सहस्रार चक्र अपने हाथ में लिया, जिसके किनारे पर छुरे लगे हुए थे। जो मणि और रत्नों से विभूषित था। ऐसे बालसूर्य के समान चक्र को भीमसेनपुत्र ने क्रोध में भरकर अधिरथपुत्र को मारने की इच्छा से उसके ऊपर फैंका। किन्तु बड़ी तेजी से फैंका हुआ वह

चक्र कर्ण के बाणों से रोका जाकर भाग्यहीन के संकल्प के समान व्यर्थ होकर गिर पड़ा।

घटोत्कचस्तु संक्रुद्धो दृष्ट्वा चक्रं निपातितम्।
कर्णं प्राच्छादयद् बाणैः स्वर्भानुरिवभास्करम्॥ १४॥
प्राह वाक्यमसम्भ्रान्तः सूतपुत्रं विशाम्पते।
तिष्ठेदानीं क्व मे जीवन् सूतपुत्र गमिष्यसि॥ १५॥
युद्धश्रद्धामहं तेऽद्य विनेष्यामि रणाजिरे।
इत्युक्त्वा रोषताम्राक्षं रक्षः क्रूरपराक्रमम्॥ १६॥
कर्णमभ्यहनच्चैव गजेन्द्रमिव केसरी।
घटोत्कचस्ततः कर्णं विद्ध्वा पञ्चभिराशुगैः॥ १७॥
ननाद भैरवं नादं भीषयन् सर्वपार्थिवान्।

घटोत्कच ने चक्र को गिराया हुआ देखकर अत्यन्त क्रोध में भरकर कर्ण को बाणों से ऐसेही आच्छादित कर दिया, जैसे राहू सूर्य को आच्छादित कर देता है। हे प्रजानाथ! उसने बिना घबराये सूतपुत्र से कहा कि अरे सारथि के बेटे! खड़ा रह। तू जीवित रहते हुए मुझसे छूटकर कहाँ जायेगा? आज युद्ध के मैदान में मैं तेरे युद्ध के उत्साह को मिटा दूँगा। ऐसा कहकर क्रोध से लाल आँखोंवाले, क्रूरतापूर्वक पराक्रम करनेवाले उस राक्षस ने कर्ण पर इसप्रकार से आघात किये, जैसे सिंह हाथी पर करता है। घटोत्कच ने तब पाँच शीघ्रगामी बाणों से कर्ण को बींधकर सारे राजाओं को डराते हुए भयंकर ध्वनि से गर्जना की।

भूयश्चाञ्जलिकेनाथ सम्मार्गणगणं महत्॥ १८॥
कर्णहस्तस्थितं चापं चिच्छेदाशु घटोत्कचः।
अथान्यद् धनुरादाय दृढं भारसहं महत्॥ १९॥
विचकर्ष बलात् कर्ण इन्द्रायुधमिवोच्छ्रितम्।
तेषु राजसहस्रेषु पाण्डवेयेषु मारिष॥ २०॥
नैनं निरीक्षितुमपि कश्चिच्छक्नोति पार्थिवः।
ऋते घटोत्कचाद् राजन् राक्षसेन्द्रान्महाबलात्।
भीमवीर्यबलोपेतात् क्रुद्धाद् वैवस्वतादिव॥ २१॥

फिर उसने अंजलिक नाम के बाण से, कर्ण के हाथ में विद्यमान विशाल धनुष को बाणोंसहित तुरन्त काट दिया। तब कर्ण ने एक दूसरे भार को सहन कर सकनेवाले दृढ़, विशाल और इन्द्रधनुष के समान ऊँचे धनुष को लेकर उसे बलपूर्वक खींचा। हे मान्यवर! राजन्! तब सिवाय मृत्यु के समान क्रोध में भरे हुए, भयंकर बल और पराक्रम से युक्त, महाबली राक्षसराज घटोत्कच के पाण्डवपक्ष कें असंख्य राजाओं में से कोई भी कर्ण की तरफ आँख उठाकर देख नहीं सकता था।

एकसौ तेरहवाँ अध्याय : अलायुध की भीम से युद्ध की आज्ञा माँगना।

तस्मिंस्तथा वर्तमाने कर्णराक्षसयोर्मृधे।
अलायुधो राक्षसेन्द्रो वीर्यवानभ्यवर्तत॥ १॥
तस्य ज्ञातिर्हि विक्रान्तो ब्राह्मणादो बको हतः।
किर्मीरश्च महातेजा हैडिम्बश्च सखा तदा॥ २॥
स दीर्घकालाध्युषितं पूर्ववैरमनुस्मरन्।
स मत्त इव मातङ्गः संक्रुद्ध इव चोरगः॥ ३॥
दुर्योधनमिदं वाक्यमब्रवीद् युद्धलालसः।

जब इसप्रकार कर्ण और घटोत्कच का युद्ध चल रहा था, तभी पराक्रमी राक्षसराज अलायुध वहाँ आया। उसका जातिभाई ब्राह्मणभक्षी पराक्रमी बक पहले मारा गया था। उसके मित्र महातेजस्वी हिडिम्ब और किर्मीर भी मारे गये थे। इसप्रकार लम्बे समय से विद्यमान पिछले बैर को याद करता हुआ मस्त हाथी के समान, युद्ध की लालसा लिये वह दुर्योधन से बोला कि-

विदितं ते महाराज यथा भीमेन राक्षसाः॥ ४॥
हिडिम्बबककिर्मीरा निहता मम बान्धवाः।
परामर्शश्च कन्याया हिडिम्बायाः कृतः पुरा॥ ५॥
किमन्यद् राक्षसानन्यानस्मांश्च परिभूय ह।
तमहं सगणं राजन् सवाजिरथकुञ्जरम्॥ ६॥
हैडिम्बिं च सहामात्यं हन्तुमभ्यागतः स्वयम्।
तस्यैतद् वचनं श्रुत्वा हृष्टो दुर्योधनस्तदा॥ ७॥
प्रतिगृह्याब्रवीद् 'वाक्यं भ्रातृभिः परिवारितः।

हे महाराज! आपको पताही होगा कि जिस प्रकार भीम ने मेरे बान्धवराक्षसों हिडिम्ब, बक और किर्मीर का वध कर दिया था। उसने पहले

हमारा और दूसरे राक्षसों का अपमान करके हमारी कन्या हिडिम्बा के साथ बलात्कार किया था। इससे बढ़कर दूसरा अपराध और क्या होसकता है? हे राजन्! मैं उसे अपने साथियों, घोड़े, रथ, हाथियोंसहित तथा हिडिम्बापुत्र को उसके मत्रियोंसहित मारने के लिये स्वयं आया हूँ। उसकी यह बात सुनकर भाइयों से घिरा हुआ दुर्योधन बड़ाप्रसन्न हुआ और उसकी बात को स्वीकारकर उससे बोला कि–

त्वां पुरस्कृत्य सगणं वयं योत्स्यामहे परान्॥ ८॥
न हि वैरान्तमनसः स्थास्यन्ति मम सैनिकाः।
एवमस्त्विति राजानमुक्त्वा राक्षसपुङ्गवः।
अभ्ययात् त्वरितो भैमिं सहितः पुरुषादकैः॥ ९॥

तुम्हें अपने साथियोंसहित आगे रखकर हम शत्रुओं से युद्ध करेंगे। किन्तु बैर का अन्त करने वाले मेरे सैनिक चुप नहीं रहेंगे। तब ऐसा ही सही, यह कहकर वह राक्षस नेता अपने दूसरे राक्षसों के साथ शीघ्रता से घटोत्कच के सामने गया।

एकसौ चौदहवाँ अध्याय : भीमसेन और अलायुध का युद्ध।

ततः कर्णं समुत्सृज्य भैमसेनिरपि प्रभो।
प्रत्यमित्रमुपायान्तमर्दयामास मार्गणैः॥ १॥
तयोः समभवद् युद्धं क्रुद्धयो राक्षसेन्द्रयोः।
मत्तयोर्वासिताहेतोर्द्विपयोरिव कानने॥ २॥
रक्षसा विप्रमुक्तस्तु कर्णोऽपि रथिनां वरः।
अभ्यद्रवद् भीमसेनं रथेनादित्यवर्चसा॥ ३॥

हे प्रभो! तब घटोत्कच भी कर्ण को छोड़कर अपने शत्रु को समीप आते हुए देक्षकर उसे बाणों से पीड़ित करने लगा। तब उन दोनों राक्षसराजों का क्रोध में भरकर इस प्रकार युद्ध होने लगा जैसे वन में हथिनी के लिये दो मस्त हाथियों का परस्पर युद्ध होता है। तब राक्षस के द्वारा छोड़े हुए रथियों में श्रेष्ठ कर्ण ने भी अपने सूर्य के समान जगमगाते हुए रथ के द्वारा भीमसेन पर आक्रमण किया।

तमायान्तमनादृत्य दृष्ट्वा ग्रस्तं घटोत्कचम्।
अलायुधेन समरे सिंहेनेव गवां पतिम्॥ ४॥
रथेनादित्यवपुषा भीमः प्रहरतां वरः।
किरञ्छरौघान् प्रययावलायुधरथं प्रति॥ ५॥
तमायान्तमभिप्रेक्ष्य स तदालायुधः प्रभो।
घटोत्कचं समुत्सृज्य भीमसेनं समाह्वयत्॥ ६॥
तं भीमः सहसाभ्येत्य राक्षसान्तकरः प्रभो।
सगणं राक्षसेन्द्रं तं शरवर्षैरवाकिरत्॥ ७॥
तथैवालायुधो राजञ्शिलाधौतैरजिह्मगैः।
अभ्यवर्षत कौन्तेयं पुनः पुनररिंदम॥ ८॥

पर घटोत्कच को युद्ध में अलायुध से सिंह के द्वारा साँड के समान पीड़ित देखकर, प्रहार करने में श्रेष्ठ भीम आते हुए कर्ण की उपेक्षाकर, अपने सूर्य के समान जगमगाते हुए रथ के द्वारा, बाणों की वर्षा करते हुए अलायुध के रथ की तरफ बढ़े। हे प्रभो! तब भीमसेन को आते हुए देखकर अलायुध ने घटोत्कच को छोड़कर उन्हें ललकारा। हे प्रभो! तब राक्षसों का अन्त करनेवाले भीम ने तुरन्त समीप जाकर उस राक्षसेन्द्र को उसके बन्धुओंसहित बाणवर्षा से ढक दिया। हे राजन्! शत्रुदमन अलायुध भी उसीप्रकार सीधे जानेवाले, शिला पर साफ किये हुए बाणों से कुन्तीपुत्र पर बराबर वर्षा करने लगा।

तथा ते राक्षसाः सर्वे भीमसेनमुपाद्रवन्।
नानाप्रहरणा भीमास्त्वत्सुतानां जयैषिणः॥ ९॥
स ताड्यमानो बहुभिर्भीमसेनो महाबलः।
पञ्चभिः पञ्चभिः सर्वांस्तानविध्यच्छितैः शरैः॥ १०॥
तांस्त्रास्यमानान् भीमेन दृष्ट्वा रक्षो महाबलम्।
अभिदुद्राव वेगेन शरैश्चैनमवाकिरत्॥ ११॥
तं भीमसेनः समरे तीक्ष्णाग्रैरक्षिणोच्छरैः।
अलायुधस्तु तानस्तान् भीमेन विशिखान् रणे॥ १२॥
चिच्छेद कांश्चित् समरे त्वरया कांश्चिदग्रहीत्।

आपके पुत्र की विजय के इच्छुक वेसारे राक्षस भी उसीप्रकार अनेकप्रकार के हथियारों से भीम पर आक्रमण करने लगे। उन बहुतों के द्वारा प्रहार किये जाते हुए महाबली भीम ने तब पाँचपाँच तीखे बाणों से उन सबको बींध दिया। तब उन राक्षसों को भीम के द्वारा पीड़ित देखकर महाबली अलायुध ने वेगपूर्वक भीम पर आक्रमण किया और उन्हें बाणों से आच्छादित कर दिया। भीमसेन ने उस राक्षस

को युद्ध में तीखी नोकवाले बाणों से घायल कर दिया। अलायुध ने भीम द्वारा फैंके हुए कुछ बाणों को काट दिया और कुछ को हाथ से पकड़ लिया।

स राक्षसेन्द्रं कौन्तेयः शरवर्षैरवाकिरत्॥ १३॥
तानप्यस्याकरोन्मोघान् राक्षसो निशितैः शरैः।
ते चापि राक्षसाः सर्वे रजन्यां भीमरूपिणः॥ १४॥
शासनाद् राक्षसेन्द्रस्य निजघ्नू रथकुञ्जरान्।
पञ्चालाः सृंजयाश्चैव वाजिनः परमद्विपाः॥ १५॥
न शान्ति लेभिरे तत्र राक्षसैर्भृशपीडिताः।

कुन्तीपुत्र ने उस राक्षसश्रेष्ठ को बाणवर्षा से भर दिया किन्तु राक्षस ने अपने तीखे बाणों से उनको भी व्यर्थ कर दिया। उन भयंकर रूपधारी सारे राक्षसों ने भी अलायुध के आदेश से अनेक रथों और हाथियों को विनष्ट कर दिया। पाँचाल और सृंजयवीर तथा उनके घोड़े और उत्तम हाथी राक्षसों से अत्यन्त पीड़ित होकर उस समय शान्ति को प्राप्त नहीं कर रहे थे।

तं तु दृष्ट्वा महाघोरं वर्तमानं महाहवम्॥ १६॥
अब्रवीत् पुण्डरीकाक्षो धनंजयमिदं वचः।
पश्य भीमं महाबाहुं राक्षसेन्द्रवशं गतम्॥ १७॥
पदमस्यानुगच्छ त्वं मा विचारय पाण्डव।
धृष्टद्युम्नः शिखण्डी च युधामन्यूत्तमौजसौ॥ १८॥
सहितौ द्रौपदेयाश्च कर्णं यान्तु महारथाः।
नकुलः सहदेवश्च युयुधानश्च वीर्यवान्॥ १९॥
इतरान् राक्षसान् घ्नन्तु शासनात् तव पाण्डव।
त्वमपीमां महाबाहो चमूं द्रोणपुरस्कृताम्॥ २०॥
वारयस्व नरव्याघ्र महद्धि भयमागतम्।

तब उस अत्यन्त भयंकर संग्राम को देखकर कमलनेत्र श्रीकृष्ण अर्जुन से बोले कि हे पाण्डुपुत्र! देखो महाबाहु भीम राक्षसेन्द्र के बस में होरहा है। तुम उसके पीछे चलो। कुछ और विचार मत करो। धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, युधामन्यु और उत्तमौजा ये महारथी द्रौपदीपुत्रों के साथ कर्ण पर आक्रमण करें। हे पाण्डव! आपके आदेश से नकुल सहदेव और पराक्रमी सात्यकि दूसरे राक्षसों को मारें। हे नरव्याघ्र! महाबाहु! तुम द्रोणाचार्य के आधीन इस सेना को भी रोको। इस समय बहुत संकट का समय है।

एवमुक्ते तु कृष्णेन यथोद्दिष्टा महारथाः॥ २१॥
जग्मुर्वैकर्तनं कर्णं राक्षसांश्चैव तान् रणे।
अथ पूर्णायतोत्सृष्टैः शरैराशीविषोपमैः॥ २२॥
धनुश्चिच्छेद भीमस्य राक्षसेन्द्रः प्रतापवान्।
हयांश्चास्य शितैर्बाणैः सारथिं च महाबलः॥ २३॥
जघान मिषतः संख्ये भीमसेनस्य राक्षसः।
सोऽवतीर्य रथोपस्थाद्धताश्वो हतसारथिः॥ २४॥
तस्मै गुर्वीं गदां घोरां विनदन्नुत्ससर्ज ह।

श्रीकृष्ण के द्वारा यह कहने पर वे महारथीलोग आदेश के अनुसार सूर्यपुत्र कर्ण और राक्षसों के पास युद्ध के लिये चले गये। फिर पूरीतरह से धनुष को खींचकर छोड़े हुए विषैले सर्प के समान बाणों से प्रतापी राक्षसेन्द्र ने भीम के धनुष को काट दिया। उस महाबली राक्षस ने भीमसेन के देखते हुए युद्ध में उनके घोड़ों और सारथि को तीखे बाणों से मार दिया। घोड़ों और सारथि के मारे जाने पर भीम ने रथ से उतरकर गर्जना करते हुए भयंकर और विशाल गदा को फैंका।

ततस्तां भीमनिर्घोषामापतन्तीं महागदाम्॥ २५॥
गदया राक्षसो घोरो निजघान ननाद च।
गदाविमुक्तौ तौ भूयः समासाद्येतरेतरम्॥ २६॥
मुष्टिभिर्वज्रसंह्रादैरन्यो- न्यमभिजघ्नतुः।
तौ विक्षरन्तौ रुधिरं समासाद्येतरेतरम्।
मत्ताविव महानागौ चकृषाते पुनः पुनः॥ २७॥

तब भयंकर शब्द करनेवाली अपने ऊपर आती हुई गदा को उस भयंकर राक्षस ने गदा मारकर हटा दिया और जोर से गर्जना की। फिर गदाओं से मुक्त होकर उनदोनों ने एकदूसरे को पकड़ लिया और वज्र के समान आवाज वाले घूँसों से एकदूसरे को मारना आरम्भ कर दिया। रक्त बहाते हुए वेदोनों एकदूसरे से गुत्थमगुत्था होते हुए मस्त गजराजों के समान एकदूसरे को बार बार खींच रहे थे।

एकसौ पन्द्रहवाँ अध्याय : घटोत्कचद्वारा अलायुध का वध।

संदृश्य समरे भीमं रक्षसा ग्रस्तमन्तिकात्।
वासुदेवोऽब्रवीद् राजन् घटोत्कचमिदं वचः॥ १॥
पश्य भीमं महाबाहो रक्षसा ग्रस्तमाहवे।
पश्यतां सर्वसैन्यानां तव चैव महाद्युते॥ २॥
जहि क्षिप्रं महाबाहो राक्षसेन्द्रमलायुधम्।
युयुधे राक्षसेन्द्रेण बकभ्रात्रा घटोत्कचः॥ ३॥
तयोः सुतुमुलं युद्धं बभूव निशि रक्षसोः।
अलायुधस्य चैवोग्रं हैडिम्बेश्चापि भारत॥ ४॥

हे राजन्! तब युद्ध में भीम को राक्षस से पीड़ित होता हुआ समीप से देखकर श्रीकृष्ण ने घटोत्कच से यह कहा कि हे महाबाहु! हे महातेजस्वी! देखो। तुम्हारे और सारी सेनाओं के देखते हुए भीमसेन युद्ध में राक्षस के द्वारा पीड़ित होरहे हैं। हे महाबाहु! इसलिये तुम जल्दी से इस राक्षसेन्द्र अलायुध को मारो। तब घटोत्कच उस बक के भाई राक्षसेन्द्र के साथ युद्ध करने लगा। हे भारत! तब उस रात में उनदोनों राक्षसों हिडिम्बापुत्र और अलायुध में अत्यन्त भयंकर युद्ध होने लगा।

अलायुधस्य योधांश्च राक्षसान् भीमदर्शनान्।
वेगेनापततः शूरान् प्रगृहीतशरासनान्॥ ५॥
आत्तायुधः सुसंक्रुद्धो युयुधानो महारथः।
नकुलः सहदेवश्च चिच्छिदुर्निशितैः शरैः॥ ६॥
सर्वांश्च समरे राजन् किरीटी क्षत्रियर्षभान्।
परिचिक्षेप बीभत्सुः सर्वतः प्रकिरञ्छरान्॥ ७॥
कर्णश्च समरे राजन् व्यद्रावयत पार्थिवान्।
धृष्टद्युम्नशिखण्ड्यादीन् पञ्चालानां महारथान्॥ ८॥

तब अलायुध के उन भयंकर रूपधारी, धनुर्धर, शूरवीर और वेग से आक्रमण करनेवाले योद्धा राक्षसों को हथियारों से युक्त, अत्यन्त क्रोध में भरे हुए महारथी युयुधान, नकुल, और सहदेव ने तीखे बाणों से काट दिया। हे राजन्! अर्जुन ने भी युद्धक्षेत्र में कौरवपक्ष के सारे प्रमुख क्षत्रियों को सबतरफ बाणों की वर्षा करते हुए भगा दिया। हे राजन्! कर्ण ने भी युद्ध में धृष्टद्युम्न और शिखण्डी आदि पाँचालों के महारथी राजाओं को युद्धक्षेत्र में भगा दिया।

तान् वध्यमानान् दृष्ट्वाथ भीमो भीमपराक्रमः।
अभ्ययात् त्वरितः कर्णं विशिखान् प्रकिरन् रणे॥ ९॥
ततस्तेऽप्याययुर्हत्वा राक्षसान् यत्र सूतजः।
नकुलः सहदेवश्च सात्यकिश्च महारथः॥ १०॥
ते कर्णं योधयामासुः पञ्चाला द्रोणमेव तु।
अलायुधस्तु संक्रुद्धो घटोत्कचमरिंदमम्॥ ११॥
परिघेणातिकायेन ताडयामास मूर्धनि।
स तु तेन प्रहारेण भैमसेनिर्महाबलः॥ १२॥
ईषन्मूर्छितमात्मानमस्तम्भयत वीर्यवान्।

तब उन सबको पीड़ित होते हुए देखकर भयंकर पराक्रमवाले भीमसेन युद्धस्थल में बाणों की वर्षा करते हुए शीघ्रता से कर्ण की तरफ बढ़े। फिर राक्षसों को मारकर नकुल, सहदेव और महारथी सात्यकि भी वहीं आपहुँचे, जहाँ कर्ण विद्यमान था। वे सब कर्ण से युद्ध करने लगे, पाँचाललोग द्रोणाचार्य से युद्ध करने लगे और अत्यन्त क्रोध में भरा हुआ अलायुध शत्रुदमन घटोत्कच के साथ युद्ध करने लगा। उसने विशाल परिघ के द्वारा घटोत्कच के सिर पर प्रहार किया। महाबली भीमसेनपुत्र उस प्रहार से थोड़ा मूर्च्छित होगया, पर फिर उस पराक्रमी ने अपनेआपको सँभाल लिया।

तौ युद्ध्वा विविधैर्घोरैरायुधैर्विशिखैस्तथा॥ १३॥
प्रगृह्य च शितौ खड्गावन्योन्यमभिपेततुः।
तावन्योन्यमभिद्रुत्य केशेषु सुमहाबलौ॥ १४॥
भुजाभ्यां पर्यगृह्णीतां महाकायौ महाबलौ।
तौ स्विन्नगात्रौ प्रस्वेदं सुस्रवाते जनाधिप॥ १५॥
रुधिरं च महाकायावतिवृष्टाविवाम्बुदौ।
अथाभिपत्य वेगेन समुद्भ्राम्य च राक्षसम्॥ १६॥
बलेनाक्षिप्य हैडिम्बिश्चकर्तास्य शिरो महत्।

फिर वेदोनों अनेकप्रकार के भयंकर हथियारों और बाणों से युद्ध करके तीखी तलवारों को लेकर एकदूसरे पर टूट पड़े। उसके पश्चात् उनदोनों विशाल शरीरवाले अत्यन्त महाबलियों ने एकदूसरे पर आक्रमण कर हाथों से एकदूसरे के बाल पकड़ लिये। हे प्रजानाथ! उस समय उनदोनों के शरीर पसीने से तर हो रहे थे। पसीने के साथ वे विशाल शरीर वाले दोनों अत्यन्त वर्षा करने वाले बादलों के समान शरीर से रक्त भी बहा रहे थे। फिर हिडिम्बापुत्र ने वेग से आक्रमण कर उस राक्षस को

उठाकर घुमाते हुए बलपूर्वक पटक दिया और उसके विशाल मस्तक को काट दिया।

सोऽपहृत्य शिरस्तस्य कुण्डलाभ्यां विभूषितम्॥ १७॥
तदा सुतुमुलं नादं ननाद सुमहाबलः।
हतं दृष्ट्वा महाकायं बकज्ञातिमरिंदमम्॥ १८॥
पञ्चालाः पाण्डवाश्चैव सिंहनादान् विनेदिरे।
अलायुधस्य तु शिरो भैमसेनिर्महाबलः॥ १९॥
दुर्योधनस्य प्रमुखे चिक्षेप गतचेतसः।
अथ दुर्योधनो राजा दृष्ट्वा हतमलायुधम्।
बभूव परमोद्विग्नः सह सैन्येन भारत॥ २०॥

उस अत्यन्त महाबली ने इसप्रकार उसके कुण्डलों से विभूषित सिर को काटकर अत्यन्त जोर से गर्जना की। बक के जाति भाई, शत्रुदमन, विशालकाय अलायुध को मारा हुआ देखकर पाँचाल और पाँडववीरों ने जोर से सिंहनाद किया। महाबली भीमसेनपुत्र ने अलायुध के उस सिर को दुर्योधन के आगे फैंक दिया, जो उस समय अचेत सा होरहा था। हे भारत! राजा दुर्योधन अलायुध को मारा हुआ देखकर अपनी सेना के साथ अत्यन्त दुखी होगया।

एकसौ सोलहवाँ अध्याय : कर्ण के द्वारा घटोत्कच का शक्ति से वध।

अलायुध विषक्तं तु भैमसैनिं महाबलम्।
दृष्ट्वा कर्णो महाबाहु पञ्चालान् समुपाद्रवत्॥ १॥
दशभिर्दशभिर्बाणैर्धृष्टद्युम्न- शिखण्डिनौ।
दृढैः पूर्णायतोत्सृष्टैर्बिभेद नतपर्वभिः॥ २॥
ततः परमनाराचैर्युधामन्यूत्तमौजसौ।
सात्यकिं च रथोदारं कम्पयामास मार्गणैः॥ ३॥

जब कर्ण ने देखा कि महाबली भीमसेनपुत्र अलायुध के साथ युद्ध कर रहा है तो उस महाबाहु ने पाँचालों पर आक्रमण किया। उसने पूरीतरह से धनुष को खींचकर छोड़े हुए दस दस झुकी गाँठवाले दृढ़ बाणों से धृष्टद्युम्न और शिखण्डी को बींध दिया। फिर उसने अच्छे नाराचों और अनेक बाणों के द्वारा युधामन्यु और उत्तमौजा को तथा उदार रथी सात्यकि को कम्पित कर दिया।

तान् प्रेक्ष्य भग्नान् विमुखीकृतांश्च
घटोत्कचो रोषमतीव चक्रे।
आस्थाय तं काञ्चनरत्नचित्रं
रथोत्तमं सिंहवत् संननाद॥ ४॥
वैकर्तनं कर्णमुपेत्य चापि
विव्याध वज्रप्रतिमैः पृषत्कैः।
तौ कर्णिनाराचशिलीमुखैश्च
नालीकदण्डासन- वत्सदन्तैः॥ ५॥
वराहकर्णैः सविपाठशृङ्गैः
क्षुरप्रवर्षैश्च विनेदतुः खम्।

तब उनलोगों को शिथिल और युद्ध से विमुख किया हुआ देखकर घटोत्कच को बड़ा क्रोध आया। उसने सुनहरे, रत्नजटित और विचित्र उत्तम रथ पर बैठकर सिंह के समान गर्जना की और सूर्यपुत्र कर्ण के समीप जाकर उसे वज्र के समान बाणों से बींध दिया। तब वेदोनों एक दूसरे पर कर्णि, नाराच, शिलीमुख, नालीक, दण्ड, असन, वत्सदन्त, वराहकर्ण, विपाठ, शृंग और क्षुरप्र नाम के बाणों की वर्षा करते हुए गर्जनाओं के द्वारा आकाश को गुँजाने लगे।

समाहितावप्रतिम- प्रभावा-
वन्योन्यमाजघ्न- तुरुत्तमास्त्रैः॥ ६॥
तयोर्हि वीरोत्तमयोर्न कश्चिद्
ददर्श तस्मिन् समरे विशेषम्।
अतीव तच्चित्रमतुल्यरूपं
बभूव युद्धं रविभीमसून्वोः॥ ७॥

अप्रतिम प्रभाववाले वेदोनों ही एकाग्रचित्त से उस समय युद्धक्षेत्र में एकदूसरे पर उत्तम अस्त्रों द्वारा प्रहार कर रहे थे। उनदोनों श्रेष्ठवीरों में से कोई भी तब युद्ध में अपनी अधिक विशेषता नहीं दिखा सका। उस समय सूर्यपुत्र और भीमपुत्र दोनों में वह युद्ध अतीव विचित्र और अद्वितीय रूप से होरहा था।

घटोत्कचं यदा कर्णो न विशेषयते नृप।
ततः प्रादुश्चकारोग्रमस्त्रमस्त्रविदां वरः।
तेनास्त्रेणावधीत् तस्य रथं सहयसारथिम्॥ ८॥

हे राजन्! जब कर्ण घटोत्कच पर अपनी कोई विशेषता प्रकट नहीं कर सका तब अस्त्रवेत्ताओं में श्रेष्ठ उसने एक भयंकर अस्त्र का प्रयोग किया। उसके द्वारा उसने घटोत्कच के रथ को सारथि और घोड़ोंसहित नष्ट कर दिया।

तेनोत्सृष्टा चक्रयुक्ता शतघ्नी
समं सर्वांश्चतुरोऽश्वाञ्जघान।
ते जानुभिर्जगतीमन्वपद्यन्
गतासवो निर्दशनाक्षिजिह्वाः॥ ९॥

तब घटोत्कच ने चक्रों से युक्त एक शतघ्नी का प्रयोग किया और उसके द्वारा उसके चारों घोड़ों को एकसाथ मार दिया। वे घोड़े प्राणहीन होकर घुटनों के बल भूमि पर गिर पड़े, उनके दाँत, आँखें और जबान बाहर आगयीं थीं।

ततो हताश्वादवरुह्य याना–
दन्तर्मनाः कुरुषु प्राद्रवत्सु।
ततोऽब्रुवन् कुरवः सर्व एव
शक्त्या रक्षो जहि कर्णाद्य तूर्णं॥ १०॥
नश्यन्त्येते कुरवो धार्तराष्ट्राः
तपन्तमेनं जहि पापं निशीथे।
मा कौरवाः सर्व एवेन्द्रकल्पा
रात्रियुद्धे कर्ण नेशुः सयोधाः॥ ११॥

तब मरे हुए घोड़ोंवाले रथ से कर्ण नीचे उतर गया और मन में कुछ सोचने लगा। तभी कौरव सेनाएँ भी घटोत्कच के भय से भागने लगी थीं। तब सारे कौरवयोद्धा कर्ण से कहने लगे कि हे कर्ण! अपनी शक्ति से आज जल्दीही इस राक्षस को मार दो। ये धृतराष्ट्रपुत्र और कौरवयोद्धा मरते जारहे हैं। तुम रात्रि में तपते हुए इस पापी को मार दो। हे कर्ण! कहीं ऐसा न हो कि इस रात्रियुद्ध में इन्द्र के समान ये सारे कौरव अपने योद्धाओंसमेत मारे जायें।

नोटः – यहाँ प्रक्षेपकारों ने कर्ण और घटोत्कच के युद्ध का वास्तविक सजीव चित्रण मूल में से निकाल दिया है और अपना असम्भव बातों से युक्त अप्राकृतिक और असत्य वर्णन लगा दिया है। जो स्वीकार्य न होने के कारण हमने ग्रहण नहीं किया।

स वध्यमानो रक्षसा वै निशीथे
दृष्ट्वा राजंस्त्रास्यमानं बलं च।
महच्छ्रुत्वा निनदं कौरवाणां
मतिं दध्रे शक्तिमोक्षाय कर्णः॥ १२॥
स वै क्रुद्धः सिंह इवात्यमर्षी
नामर्षयत् प्रतिघातं रणेऽसौ।
शक्तिं श्रेष्ठां वैजयन्तीमसह्यां
समाददे तस्य वधं चिकीर्षन्॥ १३॥
यासौ राजन्निहिता वर्षपूगान्
वधायाजौ सत्कृता फाल्गुनस्य।
मृत्योः स्वसारं ज्वलितामिवोल्कां
वैकर्तनः प्राहिणोद् राक्षसाय॥ १४॥

हे राजन्! तब रात्रि में राक्षसद्वारा आहत होते हुए कर्ण ने सेनाओं को भयभीत देखकर तथा कौरवों के महान् आर्तनाद को सुनकर उस शक्ति को छोड़ने का निश्चय किया। अत्यन्त अमर्षशील कर्ण सिंह के समान क्रोध में भरकर युद्ध में घटोत्कच के द्वारा अपने अस्त्रों के प्रतिघात को सह न सका। तब उसने उसका वध करने की इच्छा से वैजयन्ती नाम की श्रेष्ठ और असह्य शक्ति को निकाला। हे राजन्! जिस को उसने युद्ध में अर्जुन के वध के लिये अनेक वर्षों से सम्मान सहित रखा हुआ था, उस जलती हुई उल्का के समान मृत्यु की बहन शक्ति को कर्ण ने राक्षस के ऊपर छोड़ दिया।

स निर्भिन्नो विविधैरस्त्रपूगै–
र्दिव्यैर्नागैर्मानुषै राक्षसैश्च।
नदन् नादान् विविधान् भैरवांश्च
प्राणानिष्टांस्त्याजितः शक्रशक्त्या॥ १५॥
ततो मिश्राः प्राणदन् सिंहनादै–
र्भेर्यः शङ्खा मुरजाश्चानकाश्च।
दग्धां मायां निहतं राक्षसं च
दृष्ट्वा हृष्टाः प्राणदन् कौरवेयाः॥ १६॥

अनेकप्रकार के देवताओं, नागों, मनुष्यों, और राक्षसों द्वारा प्रयोग में लाये जाने वाले अस्त्रों से जिसका शरीर पहले ही क्षत–विक्षत होरहा था, उस घटोत्कच ने तब इन्द्रशक्ति के प्रहार से अनेकप्रकार की भयंकर गर्जनाएँ करते हुए अपने प्रिय प्राणों को त्याग दिया। तब उस राक्षस की माया अर्थात् पराक्रम को तथा स्वयं राक्षस को मरा हुआ देखकर कौरवसैनिकों ने प्रसन्न होकर सम्मिलितरूप से सिंहनाद करते हुए भेरी, शंख, मुरज, और आनक आदि वाद्ययन्त्रों को एकसाथ बजाया।

एकसौ सत्रहवाँ अध्याय : घटोत्कच की मृत्यु पर युधिष्ठिर को शोक।

हते घटोत्कचे राजन् कर्णेन निशि राक्षसे।
प्रणदत्सु च हृष्टेषु तावकेषु युयुत्सुषु॥ १॥
आपतत्सु च वेगेन वध्यमाने बलेऽपि च।
विगाढायां रजन्यां च राजा दैन्यं परं गतः॥ २॥
अब्रवीच्च महाबाहुर्भीमसेनमिदं वचः।
आवारय महाबाहो धार्तराष्ट्रस्य वाहिनीम्॥ ३॥
हैडिम्बेश्चैव घातेन मोहो मामाविशन्महान्।
एवं भीमं समादिश्य स्वरथे समुपाविशत्॥ ४॥
अश्रुपूर्णमुखो राजा निःश्वसंश्च पुनः पुनः।

हे राजन्! कर्णद्वारा रात्रि में राक्षस घटोत्कच के मारे जाने पर जब आपके योद्धा प्रसन्न होकर जयनाद कर रहे थे और वे वेगपूर्वक आक्रमण करने लगे, तब अपनी सेना के मारे जाते हुए होने पर उस गहरी रात्रि में राजा युधिष्ठिर अत्यन्त दीनता को प्राप्त होगये। उन महाबाहु ने तब भीमसेन से यह कहा कि हे महाबाहु! तुम धृतराष्ट्र की सेना को रोको। हिडिम्बापुत्र के मरने से मुझे अध्यधिक मोह होरहा है। भीमसेन को ऐसा आदेश देकर वे राजा जिनका मुख आँसुओं से भरा हुआ था और जो बारबार सिसक रहे थे, अपने रथ पर जाबैठे।

तं तथा व्यथितं दृष्ट्वा कृष्णो वचनमब्रवीत्॥ ५॥
मा व्यथां कुरु कौन्तेय नैतत् त्वय्युपपद्यते।
वैक्लव्यं भरतश्रेष्ठ यथा प्राकृतपूरुषे॥ ६॥
उत्तिष्ठ राजन् युद्ध्यस्व वह गुर्वीं धुरं विभो।
त्वयि वैक्लव्यमापन्ने संशयो विजये भवेत्॥ ७॥
श्रुत्वा कृष्णस्य वचनं धर्मराजो युधिष्ठिरः।
विमृज्य नेत्रे पाणिभ्यां कृष्णं वचनमब्रवीत्॥ ८॥

उनको इसप्रकार व्यथित देखकर श्रीकृष्ण जी ने कहा कि हे कुन्तीपुत्र! आप दुःखी मत होइये। यह आपके लिये उचित नहीं है। हे भारतश्रेष्ठ! सामान्य व्यक्तियों की तरह आपको व्याकुल नहीं होना चाहिये। हे राजन्! हे प्रभो! उठिये। महान् उत्तरदायित्व को सँभालिये और युद्ध कीजिये। आपके व्याकुल होने से विजयप्राप्ति में संशय होजायेगा। श्रीकृष्णजी की बात सुनकर धर्मराज युधिष्ठिर ने हाथों से अपनी आँखें पोंछकर उनसे कहा कि–

विदिता मे महाबाहो धर्माणां परमा गतिः।
ब्रह्महत्या फलं तस्य यैः कृतं नावबुध्यते॥ ९॥
अस्माकं हि वनस्थानां हैडिम्बेन महात्मना।
बालेनापि सता तेन कृतं साह्यं जनार्दन॥ १०॥
अस्त्रहेतोर्गतं ज्ञात्वा पाण्डवं श्वेतवाहनम्।
असौ कृष्ण महेष्वासः काम्यके मामुपस्थितः॥ ११॥
उषितश्च सहास्माभिर्यावन्नासीद् धनजयः।
गन्धमादनयात्रायां दुर्गेभ्यश्च स्म तारिताः॥ १२॥
पाञ्चाली च परिश्रान्ता पृष्ठेनोढा महात्मना।

हे महाबाहु! मुझे धर्म की परम गति का ज्ञान है। जो व्यक्ति किये हुए उपकार को नहीं समझता, उसे ब्रह्महत्या का पाप लगता है। हे जनार्दन! जब हम वन में थे तब महात्मा हिडिम्बापुत्र ने बालक होते हुए भी हमारी सहायता की थी। श्वेतवाहन अर्जुन को अस्त्रों की प्राप्ति के लिये गया हुआ जानकर हे कृष्ण! यह महाधनुर्धर घटोत्कच मेरे पास काम्यकवन में उपस्थित हो गया और जब तक अर्जुन वापिस लौटकर नहीं आये यह हमारे साथ रहा। गन्धमादन पर्वत की यात्रा में इसने हमें दुर्गम मार्गों से पार कराया। इस महात्मा ने द्रौपदी के थक जाने पर उसे अपनी पीठ पर ढोया।

आरम्भाच्चैव युद्धानां यदेष कृतवान् प्रभो॥ १३॥
मदर्थे दुष्करं कर्म कृतं तेन महाहवे।
स्वभावाद् या च मे प्रीतिः सहदेवे जनार्दन॥ १४॥
सैव मे परमा प्रीती राक्षसेन्द्रे घटोत्कचे।
भक्तश्च मे महाबाहुः प्रियोऽस्याहं प्रियश्च मे॥ १५॥
तेन विन्दामि वार्ष्णेय कश्मलं शोकतापितः।
पश्य सैन्यानि वार्ष्णेय द्राव्यमाणानि कौरवैः॥ १६॥
द्रोणकर्णौ तु संयत्तौ पश्य युद्धे महारथौ।

हे प्रभो! युद्ध में आरम्भ से ही इसने मेरी बड़ी सहायता की है। इसने महान् युद्ध में मेरे लिये दुष्कर कार्य किये हैं। हे जनार्दन! सहदेव पर मेरा जो स्वाभाविक प्रेम है, वही अत्यन्त प्रेम मेरा राक्षसेन्द्र घटोत्कच पर भी है। हे महाबाहु! वह मेरा भक्त रहा है। मैं उसका प्रिय और वह मेरा प्यारा था। इसलिये हे श्रीकृष्ण! उसकी मृत्यु पर मैं शोक से सन्तप्त होकर मोह को प्राप्त होरहा हूँ। हे श्रीकृष्ण! देखो मेरी सेनाएँ

कौरवों के द्वारा भगायी जा रही हैं। कर्ण और द्रोणाचार्य दोनों महारथी युद्ध में प्रयत्नपूर्वक लगे हुए हैं।

निशीथे पाण्डवं सैन्यमेतत् सैन्यप्रमर्दितम्॥ १७॥
गजाभ्यामिव मत्ताभ्यां यथा नलवनं महत्।
अनादृत्य बलं बाह्वोर्भीमसेनस्य माधव॥ १८॥
चित्रास्त्रतां च पार्थस्य विक्रमन्ति स्म कौरवाः।
एष द्रोणश्च कर्णश्च राजा चैव सुयोधनः॥ १९॥
निहत्य राक्षसं युद्धे हृष्टाः नर्दन्ति संयुगे।
कथं वास्मासु जीवत्सु त्वयि चैव जनार्दन॥ २०॥
हैडिम्बिः प्राप्तवान् मृत्युं सूतपुत्रेण सङ्गतः।

रात में उनकी सेना के द्वारा पाण्डवों की सेना उसीप्रकार कुचल दीगयी है, जैसे नरकुल के विशाल वन को दो मस्त हाथियोंद्वारा कुचल दिया जाये। हे श्रीकृष्ण! कौरवलोग भीम की भुजाओं के बल तथा अर्जुन के अस्त्रकौशल की उपेक्षाकर, अपना पराक्रम दिखा रहे हैं। ये द्रोणाचार्य, कर्ण और राजा दुर्योधन, घटोत्कच को युद्ध में मारकर प्रसन्न होकर युद्धक्षेत्र में गर्जना कर रहे हैं। हे जनार्दन! हमारे और आपके जीतेजी कर्ण से युद्ध करता हुआ हिडिम्बापुत्र कैसे मारा गया?

कदर्थीकृत्य नः सर्वान् पश्यतः सव्यसाचिनः॥ २१॥
निहतो राक्षसः कृष्ण भैमसेनिर्महाबलः।
यदाभिमन्युर्निहतो धार्तराष्ट्रैर्दुरात्मभिः॥ २२॥
नासीत् तत्र रणे कृष्ण सव्यसाची महारथः।
निरुद्धाश्च वयं सर्वे सैन्धवेन दुरात्मना॥ २३॥
निमित्तमभवद् द्रोणः सपुत्रस्तत्र कर्मणि।
उपदिष्टो वधोपायः कर्णस्य गुरुणा स्वयम्॥ २४॥
व्यायच्छतश्च खङ्गेन द्विधा खङ्ग चकार ह।

हम सबकी अवहेलनाकर तथा अर्जुन के देखते हुए हे कृष्ण! महाबली भीमसेन का पुत्र राक्षस मारा गया। हे कृष्ण! जब अभिमन्यु को धूर्त्त धृतराष्ट्र के पुत्रों ने मारा था, तब महारथी अर्जुन युद्धक्षेत्र में नहीं था। हम सबको तब दुष्ट जयद्रथ ने रोक दिया था। तब अभिमन्यु के वधकर्म में द्रोणाचार्य अपने पुत्र सहित कारण बने थे। गुरु द्रोणाचार्य ने स्वयं कर्ण को अभिमन्यु के वध का उपाय बताया था। फिर जब वह तलवार से परिश्रमसहित युद्ध कर रहा था, तब द्रोणाचार्य ने ही उसकी तलवार के दो टुकड़े कर दिये थे।

व्यसने वर्तमानस्य कृतवर्मा नृशंसवत्॥ २५॥
अश्वाञ्जघान सहसा तथोभौ पार्ष्णिसारथी।
तथेतरे महेष्वासाः सौभद्रं युध्यपातयन्॥ २६॥
अल्पे च कारणे कृष्ण हतो गाण्डीवधन्वना।
सैन्धवो यादवश्रेष्ठ तच्च नातिप्रियं मम॥ २७॥
यदि शत्रुवधो न्याय्यो भवेत् कर्तुं हि पाण्डवैः।
कर्णद्रोणौ रणे पूर्वं हन्तव्याविति मे मतिः॥ २८॥

जब अभिमन्यु संकट में पड़ गया, तब कृतवर्मा ने निर्दय मनुष्य के समान उसके घोड़ों को मारकर दोनों पृष्ठरक्षकों को मार दिया। इसी तरह से और दूसरे महाधनुर्धरों ने सुभद्रापुत्र को युद्ध में गिरा दिया। पर हे कृष्ण! हे यादवश्रेष्ठ! अर्जुन ने छोटे से कारण से जयद्रथ को मार दिया। यह कार्य मुझे अधिक प्रिय नहीं था। यदि पाण्डवों के लिये अपने शत्रु का वध करना न्याययुक्त है तो युद्ध में सबसे पहले कर्ण और द्रोणाचार्य को ही मारना चाहिये। यही मेरा विचार है।

एतौ हि मूलं दुःखानामस्माकं पुरुषर्षभ।
एतौ रणे समासाद्य समाश्वस्तः सुयोधनः॥ २९॥
यत्र वध्यो भवेद् द्रोणः सूतपुत्रश्च सानुगः।
तत्रावधीन्महाबाहुः सैन्धवं दूरवासिनम्॥ ३०॥
अवश्यं तु मया कार्यः सूतपुत्रस्य निग्रहः।
ततो यास्याम्यहं वीर स्वयं कर्णजिघांसया॥ ३१॥
भीमसेनो महाबाहुर्द्रोणानीकेन सङ्गतः।
एवमुक्त्वा ययौ तूर्णं त्वरमाणो युधिष्ठिरः॥ ३२॥
स विस्फार्य महच्चापं शङ्खं प्रध्माप्य भैरवम्।

हे पुरुषश्रेष्ठ! ये दोही हमारे दुःख के मूल कारण हैं। इनदोनों को युद्धक्षेत्र में प्राप्तकर दुर्योधन को सहारा मिला हुआ है। जहाँ द्रोणाचार्य को और सेवकोंसहित कर्ण को मारना चाहिये था, वहाँ महाबाहु अर्जुन ने दूर रहनेवाले सिन्धुराज को मार दिया। अब अवश्य ही मुझे कर्ण का निग्रह करना चाहिये। इसलिये हे वीर! मैं स्वयं कर्ण को मारने की इच्छा से जाऊँगा। महाबाहु भीमसेन द्रोणाचार्य की सेना के साथ युद्ध कर रहे हैं। ऐसा कहकर युधिष्ठिर अपने विशाल धनुष को टंकारते हुए और शंख को जोर से बजाकर, शीघ्रता करते हुए तुरन्त वहाँ से चल दिये।

ततो रथसहस्रेण गजानां च शतैस्त्रिभिः॥ ३३॥
वाजिभिः पञ्चसाहस्रैः पञ्चालैः सप्रभद्रकैः।

वृतः शिखण्डी त्वरितो राजानं पृष्ठतोऽन्वयात्॥ ३४॥
ततोऽब्रवीन्महाबाहुर्वासुदेवो धनंजयम्।
एष प्रयाति त्वरितः क्रोधाविष्टो युधिष्ठिरः॥ ३५॥
जिघांसुः सूतपुत्रस्य तस्योपेक्षा न युज्यते।
एवमुक्त्वा हृषीकेशः शीघ्रमश्वानचोदयत्।
दूरं प्रयान्तं राजानमन्वगच्छज्जनार्दनः॥ ३६॥

तब एकहजार रथ, तीनसौ हाथी और पाँच हजार घोड़ों तथा पाँचालों और प्रभद्रकसैनिकों से घिरा हुआ शिखण्डी शीघ्रता के साथ राजा के पीछे चला। तब महाबाहु वसुदेवपुत्र श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा कि ये युधिष्ठिर क्रोध में भरकर कर्ण को मारने की इच्छा से शीघ्रता से जारहे हैं। इनकी उपेक्षा उचित नहीं है। ऐसा कहकर श्रीकृष्ण ने शीघ्रता से घोड़ों को हाँका और दूर जाते हुए राजा का अनुकरण किया।

एकसौ अठारहवाँ अध्याय : उभयपक्ष की सेनाओं का थोड़ी देर के लिये सो जाना फिर उठकर युद्ध आरम्भ करना।

घटोत्कचे तु निहते सूतपुत्रेण तां निशाम्।
दुःखामर्षवशं प्राप्तो धर्मराजो युधिष्ठिरः॥ १॥
दृष्ट्वा भीमेन महतीं वार्यमाणां चमूं तव।
धृष्टद्युम्नमुवाचेदं कुम्भयोनिं निवारय॥ २॥
अभिद्रव रणे हृष्टो मा च ते भीः कथंचन।
जनमेजयः शिखण्डी च दौर्मुखिश्च यशोधरः॥ ३॥
अभिद्रवन्तु संहृष्टाः कुम्भयोनिं समन्ततः।
नकुलः सहदेवश्च द्रौपदेयाः प्रभद्रकाः॥ ४॥
द्रुपदश्च विराटश्च पुत्रभ्रातृसमन्वितौ।
सात्यकिः केकयाश्चैव पाण्डवश्च धनंजयः॥ ५॥
अभिद्रवन्तु वेगेन कुम्भयोनिवधेप्सया।

उस रात्रि को सूतपुत्र कर्ण के द्वारा घटोत्कच के मारे जाने पर दुःख और अमर्ष के बस में हुए धर्मराज युधिष्ठिर ने भीमसेन के द्वारा आपकी विशाल सेना को रोका हुआ देखकर धृष्टद्युम्न से यह कहा कि तुम द्रोणाचार्य को रोको। तुम उत्साह में भरकर युद्धक्षेत्र में आक्रमण करो। तुम्हें किसी प्रकार का भय नहीं होना चाहिये। जनमेजय, शिखण्डी और दुर्मुखपुत्र यशोधर ये उत्साह के साथ द्रोणाचार्य पर चारोंतरफ से आक्रमण करेंगे। नकुल, सहदेव, द्रौपदीपुत्र, प्रभद्रक, पुत्रों और भाइयों के साथ द्रुपद और विराट, सात्यकि, केकय और पाण्डुपुत्र अर्जुन येसब द्रोणाचार्य के वध की इच्छा से वेगपूर्वक उनपर आक्रमण कर दें।

तथाऽऽज्ञप्तास्तु ते सर्वे पाण्डवेन महात्मना॥ ६॥
अभ्यद्रवन्त वेगेन कुम्भयोनिवधेप्सया।
आगच्छतस्तान् सहसा सर्वोद्योगेन पाण्डवान्॥ ७॥
प्रतिजग्राह समरे द्रोणः शस्त्रभृतां वरः।
ततो दुर्योधनो राजा सर्वोद्योगेन पाण्डवान्॥ ८॥
अभ्यद्रवत् सुसंक्रुद्ध इच्छन् द्रोणस्य जीवितम्।
ततः प्रववृते युद्धं श्रान्तवाहनसैनिकम्॥ ९॥
पाण्डवानां कुरूणां च गर्जतामितरेतरम्।

मनस्वी पाण्डुपुत्रद्वारा इसप्रकार आदेश देने पर उन सबने वेगपूर्वक द्रोणाचार्य के वध की इच्छा से आक्रमण कर दिया। तब पाण्डवों को पूरे उद्योग के साथ आक्रमण करते हुए देखकर शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ द्रोणाचार्य ने युद्धक्षेत्र में उनका सामना किया। राजा दुर्योधन ने भी द्रोणाचार्य के जीवन की इच्छा करते हुए, अत्यन्त क्रोध में भरकर, पूरे उद्योग के साथ पाण्डवों पर आक्रमण कर दिया। तब एकदूसरे के प्रति गर्जना करते हुए पाण्डवों और कौरवों का युद्ध आरम्भ हो गया। पर उनके वाहन और सैनिक उस समय थक गये थे।

निद्रान्धास्ते महाराज परिश्रान्ताश्च संयुगे॥ १०॥
नाभ्यपद्यन्त समरे काञ्चिच्चेष्टां महारथाः।
त्रियामा रजनी चैषा घोररूपा भयानका॥ ११॥
सहस्रयामप्रतिमा बभूव प्राणहारिणी।
वध्यतां च तथा तेषां क्षतानां च विशेषतः॥ १२॥
अर्धरात्रिः समाजज्ञे निद्रान्धानां विशेषतः।
ते तदापारयन्तश्च ह्रीमन्तश्च विशेषतः॥ १३॥
स्वधर्ममनुपश्यन्तो न जहुः स्वामनीकिनीम्।

हे महाराज! युद्ध में अत्यन्तथके हुए, और नींद से अन्धे होरहे वे महारथी लोग युद्धक्षेत्र में कोई चेष्टा नहीं कर पारहे थे। प्राणों को हरने वाली भयंकर और घोर तीन प्रहरवाली रात्रि उस समय उनके लिये हजार प्रहरोंवाली बन रही थी। मारे जाते हुए और विशेषरूप से घायल होते हुए, नींद से अन्धे होरहे सैनिकों की वह आधी रात बीत गयी थी। युद्ध न कर पाने पर भी विशेषरूप से लज्जाशील और अपने धर्म पर दृष्टि रखनेवाले होने के कारण, वे अपनी सेना को छोड़कर नहीं जारहे थे।

निद्रान्धा नो बुबुधिरे काञ्चिच्चेष्टां नराधिप॥ १४॥
तानन्ये समरे योधाः प्रेषयन्तो यमक्षयम्।
अस्माकं च महाराज परेभ्यो बहवो जनाः॥ १५॥
योद्धव्यमिति तिष्ठन्तो निद्रासंरक्तलोचनाः।
तेषामेतादृशीं चेष्टां विज्ञाय पुरुषर्षभः॥ १६॥
उवाच वाक्यं बीभत्सुरुच्चैः संनादयन् दिशः।

हे राजन्! नींद से अन्धे होने के कारण वे किसी चेष्टा को समझ नहीं पाते थे और दूसरे योद्धालोग युद्ध में उन्हें मृत्युलोक में भेज देते थे। हे महाराज! हमारे पक्ष के भी बहुत लोग, जिनकी आँखें नींद से लाल हो रही थीं, शत्रुओं से हमें युद्ध करना है, यह मानकर ही खड़े हुए थे। उनकी इस प्रकार की चेष्टाओं को जानकर पुरुषश्रेष्ठ अर्जुन ने दिशाओं को गुँजाते हुए ऊँची आवाज में यह कहा कि।

श्रान्ता भवन्तो निद्रान्धाः सर्व एव सवाहनाः॥ १७॥
तमसा च वृते सैन्ये रजसा बहुलेन च।
ते यूयं यदि मन्यध्वमुपारमत सैनिकाः॥ १८॥
निमीलयत चात्रैव रणभूमौ मुहूर्तकम्।
तथा विक्रोशमानस्य फाल्गुनस्य ततस्ततः॥ १९॥
उपारमत पाण्डूनां सेना तव च भारत।

आप सबलोग ही अपने वाहनोंसहित थके हुए और नींद से अन्धे होरहे हैं। सारी सेनाएँ धूल और गहरे अँधेरे से ढकी हुई हैं। हे सैनिकों! इसलिये यदि आपलोग स्वीकार करें तो युद्ध को रोक दो और युद्धभूमि में ही एक मूहूर्त तक सो लो। हे भारत! जब अर्जुन ने इसप्रकार चिल्ला चिल्लाकर जगहजगह यह बात कही तब पाण्डवों की और आपकी सेना ने युद्ध को त्याग दिया।

तत् सम्पूज्य वचोऽक्रूरं सर्वसैन्यानि भारत॥ २०॥
मुहूर्तमस्वपन् राजञ्श्रान्तानि भरतर्षभ।
सा तु सम्प्राप्य विश्रामं ध्वजिनी तव भारत॥ २१॥
सुखमाप्तवती वीरमर्जुनं प्रत्यपूजयत्।
इति ते तं नरव्याघ्रं प्रशंसन्तो महारथाः॥ २२॥
निद्रया समवाक्षिप्तास्तूष्णीमासन् विशाम्पते।

हे भरतश्रेष्ठ, भरतवंशी राजन्! अर्जुन के उन क्रूरतारहित वचनों का सम्मानकर थकी हुई सारी सेनाएँ एक मुहूर्त के लिये सोगयीं। हे भारत! विश्राम के उस अवसर को प्राप्तकर आपकी सेना को भी सुख मिला और वे वीर अर्जुन की प्रशंसा करने लगीं। हे प्रजानाथ! आपके महारथी इसप्रकार उस नरव्याघ्र अर्जुन की प्रशंसा करते हुए नींद के बस में होकर चुपचाप सोगये।

अश्वपृष्ठेषु चाप्यन्ये रथनीडेषु चापरे॥ २३॥
गजस्कन्धगताश्चान्ये शेरते चापरे क्षितौ।
सायुधाः सगदाश्चैव सखड्गाः सपरश्वधाः॥ २४॥
सप्रासकवचाश्चान्ये नराः सुप्ताः पृथक् पृथक्।
गजास्ते पन्नगाभोगैर्हस्तैर्भूरेणुगुण्ठितैः॥ २५॥
निद्रान्धा वसुधां चक्रुर्घ्राणनिःश्वासशीतलाम्।
सुप्ताः शुशुभिरे तत्र निःश्वसन्तो महीतले॥ २६॥
विकीर्णा गिरयो यद्वन्निःश्वसद्भिर्महोरगैः।

कुछ घोड़ों की पीठ पर, कुछ रथों की बैठकों में, कुछ हाथियों के ऊपर और कुछ भूमि पर सो रहे थे। लोग अपनेअपने आयुधों के साथ थे। उनके पास गदा, तलवार, और फरसे थे। कुछ प्रासों और कवचों से युक्त थे। इसप्रकार सबलोग अलग अलग सोरहे थे। नींद से अन्धे हुए हाथी अपनी साँप के शरीर जैसी और धूल में सनी सूँडों से लम्बी साँसों को छोड़ते हुए भूमि को शीतल कर रहे थे। भूमि पर लेटकर लम्बी साँसोंसहित सोते हुए हाथी ऐसे लग रहे थे, जैसे पर्वत गिरे हुए पड़े हों और उनमें रहनेवाले विशाल सर्प लम्बी साँसें छोड़ रहे हों।

हयाः काञ्चनयोक्त्रास्ते केसरालम्बिभिर्युगैः॥ २७॥
सुषुपुस्तत्र राजेन्द्र युक्ता वाहेषु सर्वशः।
एवं हयाश्च नागाश्च योधाश्च भरतर्षभ॥ २८॥
युद्धाद् विरम्य सुषुपुः श्रमेण महतान्विता।

तत् तथा निद्रया मग्नमबोधं प्रास्वपद् भृशम्॥ २९॥
कुशलैः शिल्पिभिर्न्यस्तं पटे चित्रमिवाद्भुतम्।

सुनहरी लगामवाले और गर्दन के बालों पर रथ के जूए को सँभाले, घोड़े हे राजेन्द्र! रथों में जुते जुते ही सबतरफ सोरहे थे। हे भरतश्रेष्ठ! इस प्रकार घोड़े हाथी और योद्धालोग, महान् श्रम से युक्त हुए, युद्ध को त्यागकर सो रहे थे। इस प्रकार नींद से शिथिल और बेसुध हुआ वह सारा सेना समूह गहरी नींद में सोया हुआ ऐसा प्रतीत होरहा था जैसे किसी कुशल कारीगर ने कपड़े पर अद्भुत चित्र बना रखा हो।

ततः प्रववृते युद्धं पुनरेव विशाम्पते॥ ३०॥
लोके लोक विनाशाय परं लोकमभीप्सताम।
त्रिभागमात्रशेषायां रात्र्यां युद्धमवर्तत।
कुरूणां पाण्डवानां च संहृष्टानां विशाम्पते॥ ३१॥

हे प्रजानाथ! तब अर्थात् एक मुहूर्त के पश्चात् संसार में परलोक को चाहनेवालों का संसार को विनष्ट करने के लिये वह युद्ध पुनः आरम्भ हो गया। उस समय रात्रि के पन्द्रह मुहूर्तों में से तीन मुहूर्त ही शेष रहे थे, जब उत्साह में भरे हुए कौरवों और पाण्डवों का युद्ध आरम्भ हुआ।

एकसौ उन्नीसवाँ अध्याय : दुर्योधन-द्रोणाचार्य-वार्तालाप।

ततो दुर्योधनो द्रोणमभिगम्याब्रवीदिदम्।
अमर्षवशमापन्नो जनयन् हर्षतेजसी॥ १॥
न मर्षणीयाः संग्रामे विश्रमन्तः श्रमान्विताः।
सपत्ना ग्लानमनसो लब्धलक्ष्या विशेषतः॥ २॥
यत् तु मर्षितमस्माभिर्भवतः प्रियकाम्यया।
त एते परिविश्रान्ताः पाण्डवा बलवत्तराः॥ ३॥
सर्वथा परिहीनाः स्म तेजसा च बलेन च।
भवता पाल्यमानास्ते विवर्धन्ते पुनः पुनः॥ ४॥

तब अमर्ष में भरे हुए दुर्योधन ने द्रोणाचार्य के समीप जाकर उनमें उत्साह और उत्तेजना भरते हुए कहा कि हे आचार्य! शत्रु यदि थके हुए और ग्लानि से युक्त मनवाले होकर विश्राम कर रहे हों और विशेषरूप से ऐसे शत्रु जिनका निशाना अचूक हो, तो उन्हें युद्धक्षेत्र में क्षमा नहीं करना चाहिये। किन्तु आपका प्रिय करने की इच्छा से ही हमने अब इन्हें क्षमा कर दिया और जिसके कारण ये पाण्डवलोग अच्छीतरह से विश्राम करके और अधिक बलवान् होगये हैं। हम तो तेज और बल से पूरीतरह निर्बल होते जारहे हैं, और ये आपके द्वारा पाले जाने के कारण बार बार बढ़ते जारहे हैं।

दिव्यान्यस्त्राणि सर्वाणि ब्राह्मादीनि च यानि ह।
तानि सर्वाणि तिष्ठन्ति भवत्येव विशेषतः॥ ५॥
न पाण्डवेया न वयं नान्ये लोके धनुर्धराः।
युध्यमानस्य ते तुल्याः सत्यमेतद् ब्रवीमि ते॥ ६॥
ससुरासुरगन्धर्वानिमाँल्लोकान् द्विजोत्तम।
सर्वास्त्रविद् भवान् हन्याद् दिव्यैरस्त्रैर्न संशयः॥ ७॥
स भवान् मर्षयत्येतांस्त्वत्तो भीतान् विशेषतः।
शिष्यत्वं वा पुरस्कृत्य मम वा मन्दभाग्यताम्॥ ८॥

जितने भी ब्रह्मास्त्र आदि दिव्यास्त्र है। वे सभी विशेषरूप से आपके पास ही हैं। न तो पाण्डव, न हम और न संसार के दूसरे धनुर्धर युद्ध करने में आपके समान हैं, यह मैं आपसे सत्य कहता हूँ। हे श्रेष्ठ ब्राह्मण! इसमें कोई संशय नहीं है कि अपने दिव्यास्त्रों से देवता, असुर, गन्धर्वसहित सारे लोकों को, सारे अस्त्रों को जाननेवाले आप नष्ट कर सकते हैं। वही आप इन पाण्डवों को, जो आपसे डरे हुए हैं, विशेषरूप से क्षमा कर रहे हैं। या आप शिष्यत्व के कारण अथवा मेरे मन्दभागी होने के कारण ऐसा कर रहे हैं।

एवमुद्धर्षितो द्रोणः कोपितश्च सुतेन ते।
समन्युरब्रवीद् राजन् दुर्योधनमिदं वचः॥ ९॥
स्थविरः सन् परं शक्त्या घटे दुर्योधनाहवे।
अतः परं मया कार्यं क्षुद्रं विजयगृद्धिना॥ १०॥
अनस्त्रविदयं सर्वो हन्तव्योऽस्त्रविदा जनः।
यद् भवान् मन्यते चापि शुभं वा यदि वाशुभम्॥ ११॥
तद् वै कर्तास्मि कौरव्य वचनात् तव नान्यथा।
निहत्य सर्वपञ्चालान् युद्धे कृत्वा पराक्रमम्॥ १२॥
विमोक्ष्ये कवचं राजन् सत्येनायुधमालभे।

हे राजन्! इसप्रकार दुर्योधनद्वारा उत्तेजित और क्रुद्ध किये द्रोणाचार्य ने तब कुपित होकर दुर्योधन

से कहा कि हे दुर्योधन! मैं बूढ़ा होने पर भी पूरी शक्ति से युद्धक्षेत्र में प्रयत्न कर रहा हूँ। पर क्या अब इससे आगे बढ़कर मुझे विजय की इच्छा से नीच कार्य भी करने पड़ेंगे? मुझ दिव्यास्त्रों को जाननेवाले को क्या दिव्यास्त्रों को न जाननेवाली इससारी सेना को मार देना चाहिये? अब जोकुछ तुम मानते हो, चाहे वह अच्छा है या बुरा, तुम्हारे कहने से हे कौरव! मैं उसे भी करूँगा। उसके विपरीत नहीं करूँगा। हे राजन्! मैं सत्य की और अपने हथियार की शपथ खाकर कहता हूँ कि युद्ध में पराक्रम करते हुए सारे पाँचालों को मारकर ही अपना कवच उतारूँगा।

मन्यसे यच्च कौन्तेयमर्जुनं श्रान्तमाहवे॥ १३॥
तस्य वीर्यं महाबाहो शृणु सत्येन कौरव।
तं न देवा न गन्धर्वा न यक्षा न च राक्षसाः॥ १४॥
उत्सहन्ते रणे जेतुं कुपितं सव्यसाचिनम्।
गन्धर्वा घोषयात्रायां चित्रसेनादयो जिताः॥ १५॥
यूयं तैर्ह्रियमाणाश्च मोक्षिता दृढधन्वना।
प्रत्यक्षं चैव ते सर्वं यथाबलमिदं तव॥ १६॥
क्षपितं पाण्डुपुत्रेण चेष्टतां नो विशाम्पते।

जो तुम यह मानते हो कि कुन्तीपुत्र युद्धक्षेत्र में थके हुए हैं तो हे कौरव! उसके पराक्रम की सत्य बात तुम मुझसे सुनो। क्रोध में भरे हुए अर्जुन को युद्ध में देव, गन्धर्व, यक्ष और राक्षस भी नहीं जीत सकते। उस दृढ़ धनुर्धर ने ही तुम्हारी घोषयात्रा के समय चित्रसेन आदि गन्धर्वों को हराया था तुम्हें वे पकड़कर ले जारहे थे। तब उनकी पकड़ से छुड़ाया था। हे प्रजानाथ! उस पाण्डुपुत्र ने हमारे चेष्टा करते हुए भी तुम्हारी इस सेना का जिसप्रकार संहार किया, वह तुम्हारे सामने ही है।

तं तदाभिप्रशंसन्तमर्जुनं कुपितस्तदा॥ १७॥
द्रोणं तव सुतो राजन् पुनरेवेदमब्रवीत्।
अहं दुःशासनः कर्णः शकुनिर्मातुलश्च मे॥ १८॥
हनिष्यामोऽर्जुनं संख्ये द्विधा कृत्वाद्य भारतीम्।
तिष्ठ स त्वं महाबाहो नित्यं शिष्यः प्रियस्तव॥ १९॥
तस्य तद् वचनं श्रुत्वा भारद्वाजो हसन्निव।
अन्ववर्तत राजानं स्वस्ति तेऽस्त्विति चाब्रवीत्॥ २०॥
को हि गाण्डीवधन्वानं ज्वलन्तमिव तेजसा।
अक्षयं क्षपयेत् कश्चित् क्षत्रियः क्षत्रियर्षभम्॥ २१॥

हे राजन्! तब अर्जुन की इसप्रकार प्रशंसा करने पर कुपित होकर आपके पुत्र ने द्रोणाचार्य से पुनः यह कहा कि हे महाबाहु! आप बैठे रहिये। अर्जुन सदा से आपका प्रिय शिष्य है। अब मैं, दुश्शासन, कर्ण और मामा शकुनि आज कौरवसेना को दो भागों में बाँटकर अर्जुन को युद्ध में मार देंगे। उसकी यह बात सुनकर द्रोणाचार्य ने मुस्कराते हुए उसकी बात का समर्थन किया और कहा कि हे राजन्! तुम्हारा कल्याण हो। पर अपने पराक्रम से प्रज्वलित से होते हुए, क्षयरहित गाण्डीव धनुषधारी क्षत्रिय श्रेष्ठ अर्जुन को कौन क्षत्रिय मार सकता है?

मूढास्त्वेतानि भाषन्ते यानीमान्यात्थ भारत।
युद्धे ह्यर्जुनमासाद्य स्वस्तिमान् को व्रजेद् गृहान्॥ २२॥
त्वं तु सर्वाभिशङ्कित्वान्निष्ठुरः पापनिश्चयः।
श्रेयसस्त्वद्धिते युक्तांस्तत्तद् वक्तुमिहेच्छसि॥ २३॥
गच्छ त्वमपि कौन्तेयमात्मार्थे जहि मा चिरम्।
त्वमप्याशंसये योद्धुं कुलजः क्षत्रियो ह्यसि॥ २४॥
इमान् किं क्षत्रियान् सर्वान् घातयिष्यस्यनागसः।

हे भारत! जो बातें तुमने कहीं हैं, उन्हें मूर्खलोग ही कहते हैं। युद्ध में अर्जुन को प्राप्तकर सकुशल कौन घर वापिस लौट सकता है? तुम तो सब पर शंका करते हो, निष्ठुर हो और पापपूर्ण विचारोंवाले हो। इसीलिये तुम्हारे कल्याण में लगे हुए जो श्रेष्ठ पुरुष हैं, उन्हें भी तुम ऐसी बातें सुनाने की इच्छा करते हो। तुम भी जाओ और अपनी भलाई के लिये अर्जुन को मार दो। देर मत करो। मैं आशा करता हूँ कि तुममें भी युद्ध करने की शक्ति है। तुम भी उत्तम कुल में उत्पन्न क्षत्रिय हो। इन सारे निरपराध क्षत्रियों को क्यों मरवा रहे हो?

त्वमस्य मूलं वैरस्य तस्मादासादयार्जुनम्॥ २५॥
एष ते मातुलः प्राज्ञः क्षत्रधर्ममनुव्रतः।
दुर्द्यूतदेवी गान्धारे प्रयात्वर्जुनमाहवे॥ २६॥
एषोऽक्षकुशलो जिह्मो द्यूतकृत् कितवः शठः।
देविता निकृतिप्रज्ञो युधि जेष्यति पाण्डवान्॥ २७॥
त्वया कथितमत्यर्थं कर्णेन सह हृष्टवत्।
असकृच्छ्रूयवन्मोहाद् धृतराष्ट्रस्य शृण्वतः॥ २८॥
अहं च तात कर्णश्च भ्राता दुःशासनश्च मे।
पाण्डुपुत्रान् हनिष्यामः सहिताः समरे त्रयः॥ २९॥
इति ते कत्थमानस्य श्रुतं संसदि संसदि।

तुम ही इस बैर की जड़ हो, इसलिये तुम अर्जुन से जाकर लड़ो। यह तुम्हारा मामा भी बुद्धिमान् क्षत्रिय धर्म का पालन करनेवाला और कपट से जूआ खेलनेवाला है। हे गान्धारी पुत्र! यह भी युद्धक्षेत्र में अर्जुन के सामने जाये। यह पासे फैंकने में कुशल, कुटिल, कपटद्यूत का संचालक, शठ, जूए का खिलाड़ी, और धोखेबाज है। यह युद्ध में पाण्डवों को जीत लेगा। तुमने उस समय जैसे एकान्त हो, उसी तरह से कर्ण के साथ प्रसन्न होते हुए, धृतराष्ट्र को सुनाते हुए, मोहवश बहुत जोर देते हुए, बारबार यह बात कही थी कि हे तात! मैं, कर्ण और मेरा भाई दुश्शासन ये तीन इकट्ठे युद्धक्षेत्र में पाण्डुपुत्रों को मार देंगे। इसप्रकार से अपनी डींग मारते हुए तुम्हें प्रत्येक सभा में मैंने सुना है।

अनुतिष्ठ प्रतिज्ञां तां सत्यवाग् भव तैः सह॥ ३०॥
एष ते पाण्डवः शत्रुरविशङ्कोऽग्रतः स्थितः।
क्षत्रधर्ममवेक्षस्व श्लाघ्यस्तव वधो जयात्॥ ३१॥
दत्तं भुक्तमधीतं च प्राप्तमैश्वर्यमीप्सितम्।
कृतकृत्योऽनृणश्चासि मा भैर्युध्यस्व पाण्डवम्॥ ३२॥
इत्युक्त्वा समरे द्रोणो न्यवर्तत यतः परे।
द्वैधीकृत्य ततः सेनां युद्धं समभवत् तदा॥ ३३॥

तुम अपनी उस प्रतिज्ञा का पालन करो और इनलोगों के साथ सत्य बात कहनेवाले बनो। ये तुम्हारे शत्रु पाण्डुपुत्र अर्जुन निर्भय होकर सामने खड़े हैं। तुम क्षत्रियधर्म की तरफ देखो। अर्जुन के हाथ से तुम्हारा वध भी प्रशंसीय होगा। तुमने दान देलिये, भोग कर लिया, स्वाध्याय कर लिया और मनचाहा ऐश्वर्य प्राप्त कर लिया। तुम कृतकृत्य और ऋणों से मुक्त होगये हो। इसलिये डरो मत। अर्जुन से युद्ध करो। ऐसा कहकर द्रोणाचार्य युद्धस्थल में उधर लौट गये, जिधर शत्रु थे, तब सेना को दो भागों में बाँटकर युद्ध आरम्भ होगया।

एकसौ बीसवाँ अध्याय : द्रोणाचार्य के द्वारा द्रुपद विराट और द्रुपद के पौत्रों का वध।

ततो द्वैधीकृते सैन्ये द्रोणः सोमकपाण्डवान्।
अभ्यद्रवत् सपाञ्चालान् दुर्योधनपुरोगमः॥ १॥
द्वैधीकृतान् कुरून् दृष्ट्वा माधवोऽर्जुनमब्रवीत्।
सपत्नान् सव्यतः कृत्वा अपसव्यमिमं कुरु॥ २॥
अथ दुर्योधनः कर्णः शकुनिश्चापि सौबलः।
अभ्यवर्षञ्छरव्रातैः कुन्तीपुत्रं धनंजयम्॥ ३॥
तेषामस्त्राणि सर्वेषामुत्तमास्त्रविदां वरः।
कदर्थीकृत्य राजेन्द्र शरवर्षैरवाकिरत्॥ ४॥
अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य लघुहस्तो जितेन्द्रियः।
सर्वानविध्यन्निशितैर्दशभिर्दशभिः शरैः॥ ५॥

हे राजन्! तब सेना को दो भागों में बाँटे जाने पर द्रोणाचार्य ने दुर्योधन के आगे चलते हुए सोमकों, पाण्डवों और पाँचालों पर आक्रमण किया। कौरवसेना को दो भागों में बँटा हुआ देखकर श्रीकृष्णजी ने अर्जुन से कहा कि तुम दूसरे शत्रुओं को बायें करके द्रोणाचार्य को दायें करो। तब दुर्योधन, कर्ण और सुबलपुत्र शकुनि ने कुन्तीपुत्र अर्जुन पर बाणों की वर्षा आरम्भ कर दी। तब उत्तम अस्त्रवेत्ताओं में श्रेष्ठ अर्जुन ने हे राजेन्द्र! उन सबके अस्त्रों को नष्ट करके उन्हें बाणवर्षा से ढक दिया। शीघ्रता से हाथ चलाने वाले जितेन्द्रिय अर्जुन ने अपने अस्त्रों से उनके अस्त्रों का निवारणकर उन सबको तीखे दसदस बाणों से बींध दिया।

ततस्त्वभ्यवसृत्यैव संग्रामादुत्तरां दिशम्।
अतिष्ठदाहवे द्रोणो विधूमोऽग्निरिव ज्वलन्॥ ६॥
तमाजिशीर्षादेकान्तमपक्रान्तं निशम्य तु।
समकम्पन्त सैन्यानि पाण्डवानां विशाम्पते॥ ७॥
पञ्चालास्तु विशेषेण द्रोणसायकपीडिताः।
समसज्जन्त राजेन्द्र समरे भृशवेदनाः॥ ८॥
द्रुपदस्य ततः पौत्रास्त्रय एव विशाम्पते।
चेदयश्च महेष्वासा द्रोणमेवाभ्ययुर्युधि॥ ९॥

फिर धूआँरहित अग्नि के समान प्रज्वलित होते हुए द्रोणाचार्य युद्धस्थल की उत्तरदिशा में जाकर खड़े होगये। हे प्रजानाथ! तब उन्हें युद्ध के मुहाने से हटकर एक किनारे की तरफ आया हुआ देखकर पाण्डवों की सेनाएँ थर थर काँपने लगी। हे राजेन्द्र! द्रोणाचार्य के बाणों से विशेषरूप से पीड़ित होते हुए

भी, अत्यधिक वेदना को सहते हुए भी पाँचाल सैनिक युद्धभूमि में डटे रहे। हे प्रजानाथ! तब द्रुपद के तीन पौत्रों तथा चेदिदेश के महाधनुर्धरों ने युद्धक्षेत्र में द्रोणाचार्य पर ही आक्रमण किया।

तेषां द्रुपदपौत्राणां त्रयाणां निशितैः शरैः।
त्रिभिर्द्रोणोऽहरत् प्राणांस्ते हता न्यपतन् भुवि॥ १०॥
ततो द्रोणोऽजयद् युद्धे चेदिकैकेयसृंजयान्।
मत्स्यांश्चैवाजयत् कृत्स्नान् भारद्वाजो महारथान्॥ ११॥
ततस्तु द्रुपदः क्रोधाच्छरवर्षमवासृजत्।
द्रोणं प्रति महाराज विराटश्चैव संयुगे॥ १२॥
तं निहत्येषुवर्षं तु द्रोणः क्षेत्रयमर्दनः।
तौ शरैश्छादयामास विराटद्रुपदावुभौ॥ १३॥

तब द्रोणाचार्य ने उन तीनों द्रुपद के पौत्रों के प्राणों को तीन तीखे बाणों से हर लिया और वे मरकर भूमि पर गिर पड़े। फिर भरद्वाजपुत्र द्रोणाचार्य ने युद्ध में सारे चेदि, केकय, सृंजय और मत्स्यदेशीय महारथियों को पराजित कर दिया। हे महाराज! फिर द्रुपद ने और विराट ने क्रोधपूर्वक युद्धक्षेत्र में द्रोणाचार्य पर बाणों की वर्षा आरम्भ कर दी। तब क्षत्रियों का मर्दन करनेवाले द्रोणाचार्य ने उस बाणवर्षा को नष्ट कर उनदोनों विराट और द्रुपद को अपने बाणों से आच्छादित कर दिया।

द्रोणेन च्छाद्यमानौ तु क्रुद्धौ संग्राममूर्धनि।
द्रोणं शरैर्विव्यधतुः परमं क्रोधमास्थितौ॥ १४॥
ततो द्रोणो महाराज क्रोधामर्षसमन्वितः।
भल्लाभ्यां भृशतीक्ष्णाभ्यां चिच्छेद धनुषी तयोः॥ १५॥
ततो विराटः कुपितः समरे तोमरान् दश।
दश चिक्षेप च शरान् द्रोणस्य वधकाङ्क्षया॥ १६॥
शक्तिं च द्रुपदो घोरामायसीं स्वर्णभूषिताम्।
चिक्षेप भुजगेन्द्राभां क्रुद्धो द्रोणरथं प्रति॥ १७॥

तब द्रोणाचार्य के बाणों से आच्छादित, वेदोनों युद्ध के मुहाने पर अत्यन्त क्रोध में भरकर द्रोणाचार्य को बाणों से घायल करने लगे। हे महाराज! तब द्रोणाचार्य ने क्रोध और अमर्ष से युक्त होकर दो अत्यन्ततीखे भल्लों से उनदोनों के धनुषों को काट दिया। तब विराट ने कुपित होकर द्रोणाचार्य के वध की इच्छा से युद्ध में दस तोमर और दस बाण उनके ऊपर चलाये। द्रुपद ने भी एक भयंकर लोहे की बनी और स्वर्ण से विभूषित, नागराज के समान प्रतीत होनेवाली शक्ति को क्रोध में भरकर द्रोणाचार्य के रथ की तरफ फैंका।

ततो भल्लैः सुनिशितैश्छित्त्वा तांस्तोमरान् दश।
शक्तिं कनकवैदूर्यां द्रोणश्चिच्छेद सायकैः॥ १८॥
ततो द्रोणः सुपीताभ्यां भल्लाभ्यामरिमर्दनः।
द्रुपदं च विराटं च प्रेषयामास मृत्यवे॥ १९॥
हते विराटे द्रुपदे केकयेषु तथैव च।
तथैव चेदिमत्स्येषु पञ्चालेषु तथैव च॥ २०॥
हतेषु त्रिषु वीरेषु द्रुपदस्य च नप्तृषु।
द्रोणस्य कर्म तद् दृष्ट्वा कोपदुःखसमन्वितः॥ २१॥
आयाद् द्रोणं सहानीकः पाञ्चाल्यः परवीरहा।

तब अत्यन्ततीखे भल्लों से उन दस तोमरों को काटकर द्रोणाचार्य ने अपने बाणों से उस स्वर्ण और वैदूर्य से विभूषित शक्ति के भी टुकड़े कर दिये। फिर शत्रुओं का मर्दन करनेवाले द्रोणाचार्य ने अत्यन्त पानीदार दो भल्लों से द्रुपद और विराट को मृत्युलोक में भेज दिया। तब विराट और द्रुपद के एवं केकय, चेदि, मत्स्य, और पाँचाल योद्धाओं तथा द्रुपद के तीनों वीर पौत्रों के भी मारे जाने पर, द्रोणाचार्य के उस कार्य को देखकर क्रोध और दुःख से युक्त होकर शत्रुवीरों को नष्ट करनेवाले, पाँचालकुमार धृष्टद्युम्न ने सेना के साथ आकर द्रोणाचार्य पर आक्रमण कर दिया।

पञ्चालास्त्वेकतो द्रोणमभ्यघ्नन् पाण्डवैः सह॥ २२॥
दुर्योधनश्च कर्णश्च शकुनिश्चापि सौबलः।
सोदर्याश्च यथामुख्यास्तेऽरक्षन् द्रोणमाहवे॥ २३॥
रक्ष्यमाणं तथा द्रोणं सर्वैस्तैस्तु महारथैः।
यतमानास्तु पञ्चाला न शेकुः प्रतिवीक्षितुम्॥ २४॥
तत्राक्रुध्यद् भीमसेनो धृष्टद्युम्नस्य मारिष।
स एनं वाग्भिरुग्राभिस्ततक्ष पुरुषर्षभः॥ २५॥

तब एकतरफ पाँचालवीर पाण्डववीरों के साथ द्रोणाचार्य पर प्रहार कर रहे थे तथा दूसरीतरफ दुर्योधन, कर्ण और सुबलपुत्र शकुनि तथा दुर्योधन के प्रमुख भाई द्रोणाचार्य की युद्धक्षेत्र में रक्षा कर रहे थे। उन सारे महारथियों के द्वारा रक्षा किये जाते हुए द्रोणाचार्य की तरफ पाँचालवीर प्रयत्न करके भी आँख उठाकर न देख सके। हे मान्यवर! तब पुरुषश्रेष्ठ भीमसेन धृष्टद्युम्न पर क्रोध करने लगे और उसे तीखी वाणी से छेदने लगे।

द्रुपदस्य कुले जातः सर्वास्त्रेष्वस्त्रवित्तमः।
कः क्षत्रियो मन्यमानः प्रेक्षेतारिमवस्थितम्॥ २६॥
पितृपुत्रवधं प्राप्य पुमान् कः परिपालयेत्।
एष वैश्वानर इव समिद्धः स्वेन तेजसा॥ २७॥
शरचापेन्धनो द्रोणः क्षत्रं दहति तेजसा।
पुरा करोति निःशेषां पाण्डवानामनीकिनीम्॥ २८॥
स्थिताः पश्यत मे कर्म द्रोणमेव व्रजाम्यहम्।

वे कहने लगे कि द्रुपद के कुल में जन्मा और सारे अस्त्रों का श्रेष्ठ वेत्ता, अपनेआपको क्षत्रिय माननेवाला, कौन व्यक्ति पिता और पुत्र के वध को भी प्राप्तकर सामने खड़े शत्रु को देखेगा और उसका पालन करेगा? यह द्रोणाचार्य अग्नि के समान अपने पराक्रम से प्रज्वलित होते हुए, धनुषबाण रूपी ईंधनवाले अपने तेज से क्षत्रियों को भस्म कर रहे हैं। इससे पहले कि ये पाण्डवों की सेना को समाप्त कर दें, मैं द्रोणाचार्य पर ही आक्रमण करता हूँ। तुम मेरे पराक्रम को देखो।

इत्युक्त्वा प्राविशत् क्रुद्धो द्रोणानीकं वृकोदरः॥ २९॥
शरैः पूर्णायतोत्सृष्टैर्द्रावयंस्तव वाहिनीम्।
धृष्टद्युम्नोऽपि पाञ्चाल्यः प्रविश्य महतीं चमूम्॥ ३०॥
आससाद रणे द्रोणं तदाऽऽसीत् तुमुलं महत्।
तथा संसक्तयुद्धं तदभवद् भृशदारुणम्।
अथ संध्यागतः सूर्यः क्षणेन समपद्यत॥ ३१॥

ऐसा कहकर क्रोध में भरे हुए भीमसेन ने पूरी तरह से धनुष को खींचकर छोड़े हुए बाणों से आपकी सेना को भगाते हुए द्रोणाचार्य की सेना में प्रवेश किया। पाँचालकुमार धृष्टद्युम्न ने भी उस विशाल सेना में घुसकर द्रोणाचार्य पर युद्धक्षेत्र में आक्रमण किया। तब बड़ा भयंकर युद्ध होने लगा। इस प्रकार जब वह घमासान युद्ध अत्यन्त भयंकर हो गया, तब थोड़ी देर में प्रातः काल की सन्ध्या के समय सूर्य का उदय हो गया।

एकसौ इक्कीसवाँ अध्याय : नकुल का दुर्योधन को हराना।

उदिते तु सहस्रांशौ तप्तकाञ्चनसप्रभे।
प्रकाशितेषु लोकेषु पुनर्युद्धमवर्तत॥ १॥
द्वन्द्वानि तत्र यान्यासन् संसक्तानि पुरोदयात्।
तान्येवाभ्युदिते सूर्ये समसज्जन्त भारत॥ २॥
रथैर्हया हयैर्नागाः पादातैश्चापि कुञ्जराः।
हयैर्हयाः समाजग्मुः पादाताश्च पदातिभिः॥ ३॥
रथा रथैरिभैर्नागास्तथैव भरतर्षभ।
संसक्ताश्च वियुक्ताश्च योधाः संन्यपतन् रणे॥ ४॥

फिर तपाये हुए सोने के समान कान्तिवाले सूर्य के उदय होने पर और संसार में प्रकाश फैल जाने पर युद्ध पुनः आरम्भ कर दिया गया। हे भारत! सूर्योदय से पहले जिनमें द्वन्द्वयुद्ध चल रहे थे, वे सूर्योदय होने पर पुनः द्वन्द्वयुद्धों में लग गये। तब रथों से घोड़े, घोड़ों से हाथी, पैदलों से हाथी सवार, घोड़ों से घोड़े और पैदलों से पैदल भिड़ गये। हे भरतश्रेष्ठ! इसीप्रकार रथों से रथ और हाथियों से हाथी लड़ने लगे। योद्धालोग उस समय कभी परस्पर लड़ते हुए और कभी अलग होते हुए युद्धभूमि में गिर रहे थे।

ते रात्रौ कृतकर्माणः श्रान्ताः सूर्यस्य तेजसा।
क्षुत्पिपासापरीताङ्गा विसंज्ञा बहवोऽभवन्॥ ५॥
शङ्खभेरीमृदङ्गानां कुञ्जराणां च गर्जताम्।
विस्फारितविकृष्टानां कार्मुकाणां च कूजताम्॥ ६॥
शब्दः समभवद् राजन् दिविस्पृग् भरतर्षभ।
द्रवतां च पदातीनां शस्त्राणां पततामपि॥ ७॥
हयानां ह्रेषतां चापि रथानां च निवर्तताम्।
क्रोशतां गर्जतां चैव तदाऽऽसीत् तुमुलं महत्॥ ८॥

वे सब रात्रि में युद्ध करते हुए थक गये थे। अब सूर्य की धूप लगने से उनके शरीरों को भूख और प्यास लगने लगी। इसके कारण बहुतसे सैनिक अपनी सुधबुध खोने लगे। हे भरतश्रेष्ठ, राजन्! उस समय शंख, भेरी और मृदंग की आवाजों, हाथियों की चिंघाड़ों और फैलाये और खींचे जाते हुए धनुषों की टंकारों का शब्द आकाश को स्पर्श कर रहा था। भागते हुए पैदलसैनिकों का, गिरते हुए शस्त्रों का, हिनहिनाते हुए घोड़ों का, लौटते हुए रथों का और चीखते तथा गर्जते हुए शूरवीरों का महाभयंकर शब्द भी गूँज रहा था।

नानायुधनिकृत्तानां चेष्टतामातुरः स्वनः।
भूमावश्रूयत महांस्तदाऽऽसीत् कृपणं महत्॥ ९॥
पततां पात्यमानानां पत्त्यश्वरथदन्तिनाम्।
उद्यतप्रतिपिष्टानां खड्गानां वीरबाहुभिः॥ १०॥
स एव शब्दस्तद्रूपो वाससां निज्यतामिव।
अर्धासिभिस्तथा खड्गैस्तोमरैः सपरश्वधैः॥ ११॥
निकृष्टयुद्धं संसक्तं महदासीत् सुदारुणम्।

अनेकप्रकार के हथियारों से कटकर छटपटाते हुए योद्धाओं का महान् आर्तनाद भूमि पर सुनाई दे रहा था। उस समय गिरते और गिराये जाते हुए पैदल, रथ, घोड़े और हाथियों की बड़ी दयनीय अवस्था होरही थी। वीरों की भुजाओं से उठकर शत्रु के हथियारों से टकराते हुए खड्गों का इस प्रकार शब्द होरहा था, जैसे धोबीघाटों पर कपड़ों के पीटने का होता है। एक धारवाली तथा दुधारी तलवारों से, तोमरों और फरसों से जो अत्यन्त निकट से युद्ध चल रहा था, वह बड़ा निर्दयतायुक्त और दारुण था।

ततो दुर्योधनः कर्णो द्रोणो दुःशासनस्तथा॥ १२॥
पाण्डवैः समसज्जन्त चतुर्भिश्चतुरो रथाः।
दुर्योधनः सह भ्रात्रा यमाभ्यां समसज्जत॥ १३॥
वृकोदरेण राधेयो भारद्वाजेन चार्जुनः।
रथमार्गैर्विचित्रैस्तैर्विचित्ररथ- संकुलम्॥ १४॥
अपश्यन् रथिनो युद्धं विचित्रं चित्रयोधिनाम्।
यतमानाः पराक्रान्ताः परस्परजिगीषवः॥ १५॥
जीमूता इव घर्मान्ते शरवर्षैरवाकिरन्।

तब दुर्योधन, कर्ण, द्रोणाचार्य और दुश्शासन, ये चारों महारथी चार पाण्डवों से युद्ध करने लगे। दुर्योधन अपने भाई के साथ नकुल और सहदेव के साथ युद्ध करने लगा। कर्ण भीमसेन के साथ और द्रोणाचार्य के साथ अर्जुन युद्ध करनेलगे। रथों के विचित्र पैंतरों से विचरण करने वाले और विचित्र प्रकार से युद्ध करनेवाले उन महारथियों के विचित्र रथों से युक्त उस विचित्र युद्ध को तब सारे रथी लोग दर्शकों की तरह से देखने लगे। वे एकदूसरे को जीतने की इच्छावाले, प्रयत्न करते हुए, पराक्रम दिखाते हुए ग्रीष्मऋतु के अन्त में वर्षा करते हुए बादलों के समान बाणों की वर्षा कर रहे थे।

ते रथान् सूर्यसंकाशानास्थिताः पुरुषर्षभाः॥ १६॥
अशोभन्त यथा मेघाः शारदाश्चलविद्युतः।
योधास्ते तु महाराज क्रोधामर्षसमन्विताः॥ १७॥
स्पर्धिनश्च महेष्वासाः कृतयत्ना धनुर्धराः।
अभ्यगच्छंस्तथान्योन्यं मत्ता गजवृषा इव॥ १८॥

वे पुरुषश्रेष्ठ अपने सूर्य के समान तेजस्वी रथों पर बैठे हुए ऐसे लग रहे थे, जैसे चंचल बिजली से युक्त शरदऋतु के बादल हों। हे महाराज! क्रोध और अमर्ष से युक्त होकर, स्पर्धा करनेवाले, विशाल धनुषों को धारण करनेवाले, विजय के लिये प्रयत्न करते हुए वे योद्धालोग मस्त हाथियों के समान एकदूसरे से भिड़ रहे थे।

ततो दुर्योधनस्यासीन्नकुलेन समागमः।
अमर्षितेन क्रुद्धस्य क्रुद्धेनामर्षितस्य च॥ १९॥
अपसव्यं चकाराथ माद्रीपुत्रस्तवात्मजम्।
किरञ्छरशतैर्हृष्टस्तत्र नादो महानभूत्॥ २०॥
अपसव्यं कृतं संख्ये भ्रातृव्येनात्यमर्षिणा।
नामृष्यत तमप्याजौ प्रतिचक्रेऽपसव्यतः॥ २१॥
पुत्रस्तव महाराज राजा दुर्योधनो द्रुतम्।

तब अमर्ष में भरे हुए और क्रुद्ध दुर्योधन का अमर्ष से युक्त और क्रोध में भरे हुए नकुल के साथ युद्ध प्रारम्भ हुआ। माद्रीपुत्र ने उत्साह में भरकर सैकड़ों बाणों की वर्षा करते हुए आपके पुत्र को दाहिने कर दिया। तब वहाँ बड़ा कोलाहल हुआ। अपने अमर्षशील शत्रु के द्वारा अपने को दाहिने किया हुआ देखकर आपका पुत्र राजा दुर्योधन हे महाराज! सहन नहीं कर सका और तेजी से वह भी उसे दाहिने करने की चेष्टा करने लगा।

ततः प्रतिचिकीर्षन्तमपसव्यं तु ते सुतम्॥ २२॥
न्यवारयत तेजस्वी नकुलश्चित्रमार्गवित्।
स सर्वतो निवार्यैनं शरजालेन पीडयन्॥ २३॥
विमुखं नकुलश्चक्रे तत् सैन्याः समपूजयन्।
तिष्ठ तिष्ठेति नकुलो बभाषे तनयं तव॥ २४॥

तब आपके पुत्र को यह देखकर कि यह, मुझे दाहिने करने की चेष्टा कर रहा है, युद्ध के विचित्र मार्गों को जाननेवाले तेजस्वी नकुल ने उसे तुरन्त रोक दिया। नकुल ने दुर्योधन को अपने बाणों के जाल से पीड़ित करते हुए रोककर युद्ध से विमुख कर दिया और उसने आपके पुत्र को, खड़ा रह, खड़ा रह कहकर ललकारा। नकुल के इस पराक्रम की सैनिक लोग सराहना करने लगे।

एकसौ बाईसवाँ अध्याय : दुश्शासन सहदेव, कर्ण भीम और द्रोणाचार्य अर्जुन के युद्ध।

ततो दुःशासनः क्रुद्धः सहदेवमुपाद्रवत्।
रथवेगेन तीव्रेण कम्पयन्निव मेदिनीम्॥ १॥
तस्यापतत एवाशु भल्लेनामित्रकर्शनः।
माद्रीपुत्रः शिरो यन्तुः सशिरस्त्राणमच्छिनत्॥ २॥
नैनं दुःशासनः सूतं नापि कश्चन सैनिकः।
कृत्तोत्तमाङ्गमाशुत्वात् सहदेवेन बुद्धवान्॥ ३॥
यदा त्वसंगृहीतत्वात् प्रयान्त्यश्वा यथासुखम्।
ततो दुःशासनः सूतं बुबुधे गतचेतसम्॥ ४॥

तब दुश्शासन ने क्रुद्ध होकर, रथ के तीव्र वेग से पृथिवी को कँपाते हुए सहदेव पर आक्रमण किया। तब उसके आक्रमण करते ही शत्रुदमन माद्रीपुत्र ने तुरन्त भल्ल के द्वारा उसके सारथि का सिर शिरस्त्राणसहित काट दिया। सहदेव के इस कार्य को उसकी फुर्ती के कारण उस समय न तो दुश्शासन और न कोई सैनिक जान पाया। जब बन्धन न रहने के कारण घोड़े अपनी मर्जी से इधरउधर जाने लगे, तब दुश्शासन को सारथि की मृत्यु का पता लगा।

स हयान् संनिगृह्याजौ स्वयं हयविशारदः।
युयुधे रथिनां श्रेष्ठो लघु चित्रं च सुष्ठु च॥ ५॥
सहदेवस्तु तानश्वांस्तीक्ष्णैर्बाणैरवाकिरत्।
पीड्यमानाः शरैश्चाशु प्राद्रवंस्ते ततस्ततः॥ ६॥
स रश्मिषु विषक्तत्वादुत्ससर्ज शरासनम्।
धनुषा कर्म कुर्वंस्तु रश्मींश्च पुनरुत्सृजत्॥ ७॥
छिद्रेष्वेतेषु तं बाणैर्माद्रीपुत्रोऽभ्यवाकिरत्।
परीप्संस्त्वत्सुतं कर्णस्तदन्तरमवाप तत्॥ ८॥

तब घोड़ों के संचालन में चतुर और रथियों में श्रेष्ठ वह युद्धक्षेत्र में घोड़ों की लगाम भी पकड़े हुए फुर्ती, विचित्रता और उत्तमता से युद्ध करने लगा। तब सहदेव उन घोड़ों पर तीखे बाणों की वर्षा करने लगे। बाणों से पीड़ित होकर वे इधरउधर भागने लगे। दुश्शासन जब घोड़ों की लगाम सँभालता था, तब धनुष को छोड़ देता था और जब धनुष बाण पकड़ता था तो लगाम को छोड़ देता था पर उसी बीच में माद्रीपुत्र उसे बाणों से भर देते थे। तब आपके पुत्र को बचाने के लिये कर्ण उनके बीच में आ गया।

वृकोदरस्ततः कर्णं त्रिभिर्भल्लैः समाहितः।
आकर्णपूर्णैरभ्यघ्नद् बाह्वोरुरसि चानदत्॥ ९॥
स निवृत्तस्ततः कर्णः संघट्टित इवोरगः।
भीममावारयामास विकिरन् निशिताञ्छरान्॥ १०॥
ततोऽभूत् तुमुलं युद्धं भीमराधेययोस्तदा।
तौ वृषाविव नर्दन्तौ विवृत्तनयनावुभौ॥ ११॥
वेगेन महतान्योन्यं संरब्धावभिपेततुः।
अभिसंश्लिष्टयोस्तत्र तयोराहवशौण्डयोः॥ १२॥
विच्छिन्नशरपातत्वाद् गदायुद्धमवर्तत।

तब भीमसेन ने सावधान होकर कान तक धनुष को खींचकर छोड़े हुए तीन भल्लों से कर्ण की दोनों बाहों और छाती पर प्रहार किया और गर्जना की। तब पैर से कुचले हुए साँप के समान कर्ण ने लौटकर भीम को तीखे बाणों को छोड़ते हुए रोका। तब साँड के समान गर्जते हुए और आँखें फाड़कर देखते हुए, भीम और कर्ण में घमासान युद्ध होने लगा। क्रोध में भरे हुए वेदोनों बड़े वेग से एकदूसरे पर टूट पड़े। युद्ध में चतुर उनदोनों के तब परस्पर समीप आ जाने के कारण बाण चलाने का क्रम टूट गया और उनमें गदा युद्ध आरम्भ हो गया।

गदया भीमसेनस्तु कर्णस्य रथकूबरम्॥ १३॥
बिभेद शतधा राजंस्तदद्भुतमिवाभवत्।
ततो भीमस्य राधेयो गदामाविध्य वीर्यवान्॥ १४॥
अवासृजद् रथे तां तु बिभेद गदया गदाम्।
स कर्णं सायकानष्टौ व्यसृजत् क्रोधमूर्च्छितः॥ १५॥
तैस्तस्य निशितैस्तीक्ष्णैर्भीमसेनो महाबलः।
चिच्छेद परवीरघ्नः प्रहसन्निव भारत॥ १६॥
ध्वजं शरासनं चैव शरावापं च भारत।
कर्णोऽप्यन्यद् धनुर्गृह्य हेमपृष्ठं दुरासदम्॥ १७॥
ततः पुनस्तु राधेयो हयानस्य रथेषुभिः।
ऋक्षवर्णाञ्जघानाशु तथोभौ पार्ष्णिसारथी॥ १८॥

हे राजन्! तब भीमसेन ने गदा से कर्ण के रथ के कूबर के अनेक टुकड़े कर दिये। यह आश्चर्य की बात थी। तब पराक्रमी कर्ण ने भी गदा को उठाकर उसके रथ पर फैंका पर भीम ने दूसरी गदा से उस गदा को तोड़ दिया। फिर क्रोध से व्याकुल भीम ने कर्ण के ऊपर आठ बाण छोड़े। शत्रुवीरों को मारनेवाले महाबली भीम ने उन तीखे बाणों से मुस्कराते हुए हे भारत! कर्ण के धनुष, ध्वज और तरकस को काट गिराया। तब राधापुत्र कर्ण ने भी दूसरे सुनहरी पीठवाले दुर्धर्ष धनुष को लेकर बाणों के द्वारा भीम के रीछ के रंगवाले काले घोड़ों को और दोनों पृष्ठरक्षकों को तुरन्त मार दिया।

स विपन्नरथो भीमो नकुलस्याप्लुतो रथम्।
हरिर्यथा गिरेः शृङ्गं समाक्रामदरिंदमः॥ १९॥
तथा द्रोणार्जुनौ चित्रमयुध्येतां महारथौ।
आचार्यशिष्यौ राजेन्द्र कृतप्रहरणौ युधि॥ २०॥
लघुसंधानयोगाभ्यां रथयोश्च रणेन च।
मोहयन्तौ मनुष्याणां चक्षूंषि च मनांसि च॥ २१॥
उपारमन्त ते सर्वे योधा भरतसत्तम।
अदृष्टपूर्वं पश्यन्तस्तद् युद्धं गुरुशिष्ययोः॥ २२॥

तब रथ के नष्ट हो जाने पर शत्रुदमन भीम उछलकर नकुल के रथ पर उसी प्रकार चढ़ गये, जैसे सिंह पर्वत की चोटी पर चढ़ जाता है। हे राजेन्द्र! उधर आचार्य और शिष्य महारथी द्रोणाचार्य और अर्जुन एकदूसरे पर प्रहार करते हुए युद्धस्थल में विचित्रतापूर्वक युद्ध कर रहे थे। वे अपने शीघ्रतापूर्वक बाणों के सन्धान और रथों के योग से युक्त युद्ध के द्वारा देखनेवाले लोगों की आँखों और मनों को मोहित कर रहे थे। हे भरतश्रेष्ठ! गुरु और शिष्य के उस पहले कभी न देखे हुए युद्ध को देखते हुए सारे योद्धा युद्ध करने से रुक गये।

विचित्रान् पृतनामध्ये रथमार्गानुदीर्य तौ।
अन्योन्यमपसव्यं च कर्तुं वीरौ तदेषतुः॥ २३॥
तयोः समभवद् युद्धं द्रोणपाण्डवयोर्महत्।
आमिषार्थे महाराज गगने श्येनयोरिव॥ २४॥
यद् यच्चकार द्रोणस्तु कुन्तीपुत्रजिगीषया।
तत् तत् प्रतिजघानाशु प्रहसंस्तस्य पाण्डवः॥ २५॥
यदा द्रोणो न शक्नोति पाण्डवं स्म विशेषितुम्।
ततः प्रादुश्चकारास्त्रमस्त्रमार्गविशारदः॥ २६॥

सेना के बीच में रथों के विचित्र पैंतरों को प्रकट करते हुए वेदोनों वीर एकदूसरे को दाहिने कर देने का प्रयत्न करने लगे। हे महाराज! उनदोनों द्रोणाचार्य और पाण्डुपुत्र में वह महान् युद्ध इसप्रकार से चल रहा था, जैसे आकाश में मांस के लिये दो बाजपक्षी लड़ रहे हों। द्रोणाचार्य कुन्तीपुत्र को जीतने की इच्छा से जो प्रयत्न करते, उनके उस प्रयत्न को पाण्डुपुत्र हँसते हुए तुरन्त व्यर्थ कर देते थे। जब द्रोणाचार्य पाण्डुपुत्र से आगे न बढ़ सके तब दिव्यास्त्रों के विशारद उन्होंने दिव्यास्त्रों को प्रकट करना आरम्भ किया।

स वध्यमानेष्वस्त्रेषु दिव्येष्वपि यथाविधि।
अर्जुनेनार्जुनं द्रोणो मनसैवाभ्यपूजयत्॥ २७॥
मेने चात्मानमधिकं पृथिव्यामधि भारत।
तेन शिष्येण सर्वेभ्यः शस्त्रविद्भ्यः परंतपः॥ २८॥
द्रोणो मुक्त्वा रणे पार्थं पञ्चालानन्वधावत।
अर्जुनोऽपि रणे द्रोणं त्यक्त्वा प्राद्रावयत् कुरून्॥ २९॥

किन्तु द्रोणाचार्य के द्वारा विधि के अनुसार चलाये गये दिव्यास्त्र भी जब अर्जुन के द्वारा नष्ट किये जाने लगे, तब द्रोणाचार्य ने मन ही मन अर्जुन की प्रशंसा की। हे भारत! शत्रुओं को सन्तप्त करनेवाले द्रोणाचार्य, अपने उस शिष्य के कारण तब अपने को पृथिवी के सारे शस्त्रवेत्ताओं से अधिक श्रेष्ठ मानने लगे। तब द्रोणाचार्य ने युद्ध में कुन्तीपुत्र को छोड़कर पाँचालों पर आक्रमण कर दिया और अर्जुन ने भी युद्ध में द्रोणाचार्य को छोड़कर कौरवसेना को भगाना आरम्भ कर दिया।

एकसौ तेईसवाँ अध्याय : धृष्टद्युम्न का दुश्शासन को हराना और द्रोणाचार्य पर आक्रमण। दुर्योधन सात्यकि तथा कर्ण भीम के युद्ध।

तस्मिंस्तथा वर्तमाने गजाश्वनरसंक्षये।
दुःशासनो महाराज धृष्टद्युम्नमयोधयत्॥ १॥
स तु रुक्मरथासक्तो दुःशासनशरार्दितः।
अमर्षात् तव पुत्रस्य शरैर्वाहानवाकिरत्॥ २॥
क्षणेन स रथस्तस्य सध्वजः सहसारथिः।
नादृश्यत महाराज पार्षतस्य शरैश्चितः॥ ३॥
दुःशासनस्तु राजेन्द्र पाञ्चाल्यस्य महात्मनः।
नाशकत् प्रमुखे स्थातुं शरजालप्रपीडितः॥ ४॥

हे महाराज! जब वह हाथी, घोड़ों और योद्धाओं का विनाश करनेवाला युद्ध चल रहा था, तब दुश्शासन धृष्टद्युम्न के साथ युद्ध करने लगा। तब धृष्टद्युम्न ने जो पहले द्रोणाचार्य से युद्ध करने में लगा हुआ था, दुश्शासन के बाणों से पीड़ित होकर अमर्षवश आपके पुत्र के घोड़ों पर बाणों की वर्षा आरम्भ कर दी। हे महाराज! द्रुपदपुत्र के बाणों से आच्छादित होकर क्षणभर में ही ध्वज और सारथिसहित उसका रथ दिखाई देना बन्द हो गया। हे राजेन्द्र! मनस्वी पाँचालराजकुमार के बाणों से अत्यन्तपीड़ित होकर दुश्शासन उसके सामने ठहर न सका।

स तु दुःशासनं बाणैर्विमुखीकृत्य पार्षतः।
किरञ्छरसहस्राणि द्रोणमेवाभ्ययाद् रणे॥ ५॥
अभ्यपद्यत हार्दिक्यः कृतवर्मा त्वनन्तरम्।
सोदर्याणां त्रयश्चैव त एनं पर्यवारयन्॥ ६॥
तं यमौ पृष्ठतोऽन्वैतां रक्षन्तौ पुरुषर्षभौ।
द्रोणायाभिमुखं यान्तं दीप्यमानमिवानलम्॥ ७॥
सम्प्रहारमकुर्वंस्ते सर्वे च सुमहारथाः।
अमर्षिताः सत्त्ववन्तः कृत्वा मरणमग्रतः॥ ८॥

तब द्रुपदपुत्र ने दुश्शासन को अपने बाणों द्वारा युद्ध से विमुखकर, असंख्य बाणों की वर्षा करते हुए युद्धस्थल में द्रोणाचार्य पर ही आक्रमण किया। तब दुश्शासन के तीन भाई और हृदीकपुत्र कृतवर्मा बीच में आगये और धृष्टद्युम्न को रोकने लगे। तब दोनों पुरुषश्रेष्ठ जुड़वाँ भाई नकुल और सहदेव, प्रज्वलित अग्नि के समान धृष्टद्युम्न को द्रोणाचार्य की तरफ जाते हुए देखकर उसके पीछे चल दिये। उस समय वे सारे धैर्यशाली, अत्यन्त महारथी अमर्ष में भरकर, मृत्यु को ही सामने रखकर शत्रुओं पर प्रहार करने लगे।

धृष्टद्युम्नस्तु तान् दृष्ट्वा तव राजन् रथर्षभान्।
यमाभ्यां वारितान् वीराञ्छीघ्रास्त्रो द्रोणमभ्ययात्॥ ९॥
निवारितास्तु ते वीरास्तयोः पुरुषसिंहयोः।
समसज्जन्त चत्वारो वाताः पर्वतयोरिव॥ १०॥
द्वाभ्यां द्वाभ्यां यमौ सार्धं रथाभ्यां रथपुङ्गवौ।
समासक्तौ ततो द्रोणं धृष्टद्युम्नोऽभ्यवर्तत॥ ११॥
तमायान्तं महाबाहुं प्रत्यगृह्णात् तवात्मजः।
शरैश्चावाकिरद् राजञ्शैनेयं तनयस्तव॥ १२॥

हे राजन्! शीघ्रतापूर्वक अस्त्र चलाने वाले धृष्टद्युम्न ने जब देखा कि अपने वीर रथीश्रेष्ठों को रोक दिया गया है, तो वह द्रोणाचार्य की तरफ चला गया। तब उनदोनों पुरुषसिंहों नकुल और सहदेव के द्वारा रोके गये वे चारोंवीर उनसे ऐसे भिड़ गये जैसे चारों तरफ से आनेवाली हवायें दो पर्वतों से टकरा रही हों। तब धृष्टद्युम्न द्रोणाचार्य के सामने जापहुँचे और वेदोनों श्रेष्ठ रथी दो दो कौरवरथियों के साथ लड़ने लगे। उधर सात्यकि को आता हुआ देखकर हे राजन्! आपके पुत्र दुर्योधन ने उसका सामना किया और उसे बाणों से ढक दिया।

ततः प्रववृते युद्धं कुरुमाधवसिंहयोः।
अन्योन्यं क्रुद्धयोर्घोरं यथा द्विरदसिंहयोः॥ १३॥
ततः पूर्णायतोत्सृष्टैः सात्वतं युद्धदुर्मदम्।
दुर्योधनः प्रत्यविध्यत् कुपितो दशभिः शरैः॥ १४॥
तं सात्यकिः प्रत्यविध्यत् तथैवावाकिरच्छरैः।
पञ्चाशता पुनश्चाजौ त्रिंशता दशभिश्च ह॥ १५॥
सात्यकिं तु रणे राजन् प्रहसंस्तनयस्तव।
आकर्णपूर्णैर्निशितैर्विव्याध त्रिंशता शरैः॥ १६॥

तब कौरवसिंह और यादवसिंह दोनों में इस प्रकार घोर युद्ध होने लगा जैसे क्रोध में भरे हुए हाथी और सिंह में होरहा हो। तब कुपित हुए दुर्योधन ने पूरीतरह से धनुष को खींचकर छोड़े हुए दस बाणों के द्वारा युद्ध में दुर्मद सात्यकि को बींध दिया। तब सात्यकि ने युद्धस्थल में उसके ऊपर पचास, फिर

तीस, बाणों की वर्षा कर उसे बदले में घायल किया। हे राजन्! तब आपके पुत्र ने हँसते हुए युद्ध में सात्यकि को कानतक धनुष को खींचकर छोड़े हुए तीखे तीस बाणों की वर्षा कर घायल किया।

ततोऽस्य सशरं चापं क्षुरप्रेण द्विधाच्छिनत्।
सोऽन्यत् कार्मुकमादाय लघुहस्तस्ततो दृढम्॥ १७॥
सात्यकिर्व्यसृजच्चापि शरश्रेणीं सुतस्य ते।
तामापतन्तीं सहसा शरश्रेणीं जिघांसया॥ १८॥
चिच्छेद बहुधा राजा तत उच्चुक्रुशुर्जनाः।
सात्यकिं च त्रिसप्तत्या पीडयामास वेगितः॥ १९॥
स्वर्णपुङ्खैः शिलाधौतैराकर्णापूर्णनिःसृतैः।
तस्य संदधतश्चेषुं संहितेषुं च कार्मुकम्॥ २०॥
आच्छिनत् सात्यकिस्तूर्णंशरै श्चैवाप्यवीविधत।

फिर उसने सात्यकि के बाणसहित धनुष के क्षुरप्र से दो टुकड़े कर दिये। तब शीघ्रता से हाथ चलानेवाले सात्यकि ने दूसरे मजबूत धनुष को लेकर आपके पुत्र के ऊपर बाणों की वर्षा आरम्भ कर दी। तब अपने वध की इच्छा से अपने ऊपर आती हुई उस बाणवर्षा के राजा दुर्योधन ने सहसा अनेक टुकड़े कर दिये। इससे लोग हर्षध्वनि करने लगे। फिर उसने सुनहरे पंखवाले, शिला पर साफ किये हुए और धनुष को कानतक खींचकर छोड़े हुए तिहत्तर बाणों की सात्यकि पर वर्षाकर उसे पीड़ित किया। तब सात्यकि ने शीघ्रता से दुर्योधन के संधान किये हुए बाण को और धनुष को काट दिया और बाणों से उसे अनेकबार घायल किया।

स गाढविद्धो व्यथितः प्रत्यपायाद् रथान्तरे॥ २१॥
दुर्योधनो महाराज दाशार्हशरपीडितः।
समाश्वस्य तु पुत्रस्ते सात्यकिं पुनरभ्ययात्॥ २२॥
विसृजन्निषुजालानि युयुधानरथं प्रति।
तथैव सात्यकिर्बाणान् दुर्योधनरथं प्रति॥ २३॥
सततं विसृजन् राजंस्तत् संकुलमवर्तत।
तत्राप्यधिकमालक्ष्य माधवं रथसत्तमम्॥ २४॥
क्षिप्रमभ्यपतत् कर्णः परीप्संस्तनयं तव।
न तु तं मर्षयामास भीमसेनो महाबलः॥ २५॥
सोऽभ्ययात्त्वरितः कर्णं विसृजन् सायकान् बहून्।

हे महाराज! तब सात्यकि के बाणों से पीड़ित होकर तथा गहरी चोट खाकर व्यथित हुआ दुर्योधन रथ के अन्दर चला गया और वहाँ थोड़ा आराम कर हे राजन्! उसने बाणों की वर्षा करते हुए पुनः सात्यकि पर आक्रमण कर दिया। तब सात्यकि ने भी उसी प्रकार उसके ऊपर बाणों की वर्षा आरम्भ कर दी। हे राजन्! इस प्रकार दोनों में घोर युद्ध चलने लगा। तब उनमें श्रेष्ठ रथी सात्यकि को अधिक प्रबल होता हुआ देखकर कर्ण आपके पुत्र को बचाने की इच्छा से शीघ्रता से उनके बीच में आ गया। किन्तु महाबली भीमसेन कर्ण के इस कार्य को सहन नहीं कर सके। उन्होंने बहुत से बाणों को छोड़ते हुए शीघ्रता से कर्ण पर आक्रमण कर दिया।

तस्य कर्णः शितान् बाणान् प्रतिहत्य हसन्निव॥ २६॥
धनुः शरांश्च चिच्छेद सूतं चाभ्यहनच्छरैः।
भीमसेनस्तु संक्रुद्धो गदामादाय पाण्डवः॥ २७॥
ध्वजं धनुश्च सूतं च सम्ममर्दाहवे रिपोः।
रथचक्रं च कर्णस्य बभञ्ज स महाबलः॥ २८॥
भग्नचक्रे रथेऽतिष्ठदकम्पः शैलराडिव।
अमृष्यमाणः कर्णस्तु भीमसेनमयुध्यत॥ २९॥
विविधैरिषुजालैश्च नानाशस्त्रैश्च संयुगे।
भीमसेनस्तु संक्रुद्धः सूतपुत्रमयोधयत्॥ ३०॥

कर्ण ने उनके तीखे बाणों को मुस्कराते हुए काटकर उनके धनुष और बाणों को काट दिया तथा बाण से सारथि को भी मार दिया। तब पाण्डव भीमसेन ने अत्यन्त क्रोध में भरकर युद्धक्षेत्र में गदा को उठाकर कर्ण के ध्वज, सारथि और धनुष को नष्ट कर दिया। महाबली भीम ने कर्ण के रथ के एक पहिये को भी तोड़ दिया। कर्ण टूटे पहियेवाले रथपर ही बिना कम्पित हुए पर्वतराज की तरह खड़ा रहा। अमर्ष में भरा हुआ कर्ण अनेक प्रकार की बाणवर्षा तथा अनेकप्रकार के शस्त्रों से युद्धक्षेत्र में भीम के साथ युद्ध करने लगा। भीमसेन भी तब अत्यन्तक्रुद्ध होकर कर्ण से लड़ने लगे।

तस्मिंस्तथा वर्तमाने क्रुद्धो धर्मसुतोऽब्रवीत्।
पञ्चालानां नरव्याघ्रान् मत्स्यांश्च पुरुषर्षभान्॥ ३१॥
ये नः प्राणाः शिरो ये च ये नो योधा महारथाः।
त एते धार्तराष्ट्रेषु विषक्ताः पुरुषर्षभाः॥ ३२॥
किं तिष्ठत यथा मूढाः सर्वे विगतचेतसः।
तत्र गच्छत यत्रैते युध्यन्ते मामका रथाः॥ ३३॥
ते राज्ञा चोदिता वीरा योत्स्यमाना महारथाः।
क्षात्रधर्मं पुरस्कृत्य त्वरिता द्रोणमभ्ययुः॥ ३४॥

जब इसप्रकार से युद्ध चल रहा था, तब धर्मपुत्र क्रोध में भरकर पाँचालदेशीय नरसिंहों और मत्स्यदेशीय पुरुषव्याघ्रों से बोले कि जो महारथी योद्धा हमारे प्राण और हमारे सिर हैं, वे पुरुषश्रेष्ठ ही धृतराष्ट्र के पुत्रों से लड़ रहे हैं। तुम सब अज्ञानियों के समान चेतनारहित से होकर क्यों खड़े हुए हो? जहाँ ये मेरे सारे रथी, क्षात्रधर्म को सामने रखकर निर्भय होकर युद्ध कर रहे हैं, तुम भी वहीं जाओ। तब उन महारथी वीरों ने राजा युधिष्ठिर से प्रेरित होकर, तैयार होकर, क्षत्रियधर्म को सामने रखकर शीघ्रता से द्रोणाचार्य पर आक्रमण कर दिया।

एकसौ चौबीसवाँ अध्याय : द्रोणाचार्य का निर्दयता पूर्वक संहार और अश्वत्थामा की मृत्यु सुनकर निराश होना।

पञ्चालानां ततो द्रोणोऽप्यकरोत् कदनं महत्।
यथा क्रुद्धो रणे शक्रो दानवानां क्षयं पुरा॥ १॥
तेषां तु च्छाद्यमानानां पञ्चालानां समन्ततः।
अभवद् भैरवो नादो वध्यतां शरवृष्टिभिः॥ २॥
वध्यमानेषु संग्रामे पञ्चालेषु महात्मना।
उदीर्यमाणे द्रोणास्त्रे पाण्डवान् भयमाविशत्॥ ३॥
दृष्ट्वाश्वनरयोधानां विपुलं च क्षयं युधि।
पाण्डवेया महाराज नाशशंसुर्जयं तदा॥ ४॥
न चैनं संयुगे कश्चित् समर्थः प्रतिवीक्षितुम्।
न चैनमर्जुनो जातु प्रतियुध्येत धर्मवित्॥ ५॥

द्रोणाचार्य ने तब क्रुद्ध होकर युद्धक्षेत्र में पाँचालों का इसप्रकार महान् विनाश आरम्भ कर दिया, जैसे पूर्वकाल में इन्द्र ने दानवों का किया था। उस समय द्रोणाचार्य की बाणवर्षा से आच्छादित और मारे जाते हुए पाँचालों का सबतरफ भयंकर आर्तनाद होरहा था। द्रोणाचार्य के दिव्यास्त्रों के प्रकट होने, उस मनस्वी के द्वारा युद्ध में पाँचालों का विनाश होने पर पाण्डवों के हृदय में भय होगया। हे महाराज! तब युद्धक्षेत्र में घुड़सवार योद्धाओं का महान् संहार देखकर पाण्डवपक्ष के लोग विजय की आशा छोड़ बैठे। वे सोचने लगे कि इस समय कोईभी योद्धा युद्ध में इनकी तरफ आँख उठाकर भी नहीं देख सकता और धर्मज्ञ अर्जुन इनका सामना नहीं करेंगे।

त्रस्तान् कुन्तीसुतान् दृष्ट्वा द्रोणसायकपीडितान्।
मतिमाञ्श्रेयसे युक्तः केशवोऽर्जुनमब्रवीत्॥ ६॥
न्यस्तशस्त्रस्तु संग्रामे शक्यो हन्तुं भवेन्नृभिः।
आस्थीयतां जये योगो धर्ममुत्सृज्य पाण्डवाः॥ ७॥
यथा वः संयुगे सर्वान् न हन्याद् रुक्मवाहनः।
अश्वत्थाम्नि हते नैष युध्येदिति मतिर्मम॥ ८॥
तं हतं संयुगे कश्चिदस्मै शंसतु मानवः।
एतन्नारोचयद् राजन् कुन्तीपुत्रो धनंजयः॥ ९॥
अन्ये त्वरोचयन् सर्वे कृच्छ्रेण तु युधिष्ठिरः।

तब कुन्तीपुत्रों को द्रोणाचार्य के बाणों से पीड़ित और भयभीत देखकर उनके कल्याण में लगे हुए बुद्धिमान् श्रीकृष्णजी ने अर्जुन से कहा कि हथियारों के रखदेने पर ही इन्हें कोई मनुष्य युद्ध में मार सकता है। इसलिये हे पाण्डवों! तुमलोग धर्म का विचार छोड़कर विजय के लिये उपाय करो, जिससे सुनहरे रथवाले ये द्रोणाचार्य तुम सबको युद्धक्षेत्र में मार न डालें। मेरा विचार है कि अश्वत्थामा के मारे जाने पर ये युद्ध नहीं कर सकेंगे। इसलिये कोई व्यक्ति इनसे यह कहे कि वह युद्धक्षेत्र में मारा गया। हे राजन्! यह युक्ति, कुन्तीपुत्र अर्जुन को अच्छी नहीं लगी किन्तु शेष सबने इसे पसन्द किया। युधिष्ठिर कठिनाई से इसके लिये तैयार हुए।

ततो भीमो महाबाहुरनीके स्वे महागजम्॥ १०॥
जघान गदया राजन्नश्वत्थामानमित्युत।
परप्रमथनं घोरं मालवस्येन्द्रवर्मणः॥ ११॥
भीमसेनस्तु सव्रीडमुपेत्य द्रोणमाहवे।
अश्वत्थामा हत इति शब्दमुच्चैश्चकार ह॥ १२॥
भीमसेनवचः श्रुत्वा द्रोणस्तत् परमाप्रियम्।
मनसा सन्नगात्रोऽभूद् यथा सैकतमम्भसि॥ १३॥

तब महाबाहु भीम ने अपनी सेना के एक विशाल, शत्रुओं को मथनेवाले, भयंकर, मालवराज इन्द्रवर्मा के अश्वत्थामा नाम के हाथी को हे

राजन्! गदा से मार दिया। फिर भीमसेन ने लज्जासहित द्रोणाचार्य के समीप जाकर युद्धस्थल में जोर से चिल्लाकर कहा कि अश्वत्थामा मारा गया। तब जैसे पानी पड़ने से मिट्टी गल जाती है, वैसेही भीम की उस अत्यन्तअप्रिय बात को सुनकर द्रोणाचार्य का मन और शरीर दोनों शिथिल होगये।

शङ्कमानः स तन्मिथ्या वीर्यज्ञः स्वसुतस्य वै।
हतः स इति च श्रुत्वा नैव धैर्यादकम्पत॥ १४॥
तं विंशतिसहस्राणि पञ्चालानां नरर्षभाः।
तथा चरन्तं संग्रामे सर्वतोऽवाकिरञ्छरैः॥ १५॥
शरैस्तैराचितं द्रोणं नापश्याम महारथम्।
भास्करं जलदै रुद्धं वर्षास्विव विशाम्पते॥ १६॥
विधूय तान् बाणगणान् पञ्चालानां महारथः।
प्रादु श्चक्रे ततो द्रोणो ब्राह्ममस्त्रं परंतपः॥ १७॥
वधाय तेषां शूराणां पञ्चालानाममर्षितः।

फिर अपने पुत्र के पराक्रम को जानते हुए और इस बात की सत्यता में सन्देह करते हुए, उसके मरने की बात सुनकर भी उन्होंने धैर्य को पूरी तरह नहीं छोड़ा। तब इस अवस्था में युद्धस्थल में विचरते हुए द्रोणाचार्य पर बीस हजार नरश्रेष्ठ पाँचालवीरों ने बाणवर्षा करते हुए आक्रमण कर दिया। हे महाराज! वर्षाऋतु में बादलोंद्वारा घिरे सूर्य के समान, बाणों से ढके हुए द्रोणाचार्य उस समय हमें दिखाई नहीं देते थे। तब पाँचालों की बाणवर्षा को नष्टकर शत्रुओं को सन्तप्त करनेवाले, अमर्ष से भरे हुए महारथी द्रोणाचार्य ने उन पाँचालवीरों के वध के लिये ब्रह्मास्त्र को प्रकट किया।

शिरांस्यपातयच्चापि पञ्चालानां महामृधे॥ १८॥
तथैव परिघाकारान् बाहून् कनकभूषणान्।
ते वध्यमानाः समरे भारद्वाजेन पार्थिवाः॥ १९॥
मेदिन्यामन्वकीर्यन्त वातनुन्ना इव द्रुमाः।
कुञ्जराणां च पततां हयौघानां च भारत॥ २०॥
अगम्यरूपा पृथिवी मांसशोणितकर्दमा।
हत्वा विंशतिसाहस्रान् पञ्चालानां रथव्रजान्॥ २१॥
अतिष्ठदाहवे द्रोणो विधूमोऽग्निरिव ज्वलन्।

उस महान् युद्ध में द्रोणाचार्य ने पाँचालों के सिरों को और स्वर्णालंकारों से भूषित परिघ के आकारवाली भुजाओं को भी काट गिराया। द्रोणाचार्य से मारे गये वे क्षत्रियलोग युद्धस्थल में भूमि पर वायु के द्वारा उखाड़े गये वृक्षों के समान फैले पड़े थे। हे भारत! गिरे हुए हाथियों और घोड़ों के समूहों से तथा रक्त और माँस की कीचड़ से भूमि पर चलना, फिरना असम्भव होगया था। इसप्रकार बीस हजार पाँचाल रथियों को मारकर द्रोणाचार्य धूआँरहित अग्नि के समान मानो प्रज्वलित होते हुए खड़े थे।

तथैव च पुनः क्रुद्धो भारद्वाजः प्रतापवान्॥ २२॥
वसुदानस्य भल्लेन शिरः कायादपाहरत्।
पुनः पञ्चशतान् मत्स्यान् षट् सहस्रांश्च सृंजयान्॥ २३॥
हस्तिनामयुतं हत्वा जघानाश्वायुतं पुनः।
ततो निष्पाण्डवामुर्वीं करिष्यन्तं युधां पतिम्॥ २४॥
द्रोणं ज्ञात्वा धर्मराजं गोविन्दो व्यथितोऽब्रवीत्।
यद्यर्धदिवसं द्रोणो युध्यते मन्युमास्थितः॥ २५॥
सत्यं ब्रवीमि ते सेना विनाशं समुपैष्यति।
स भवांस्त्रातु नो द्रोणात् सत्याज्ज्यायोऽनृतं वचः॥ २६॥
अनृतं जीवितस्यार्थे वदन्न स्पृश्यतेऽनृतैः।

प्रतापी द्रोणाचार्य ने फिर क्रुद्ध होकर भल्ल के द्वारा वसुदान का सिर उसके शरीर से अलग कर दिया। पुनः उन्होंने पाँचसौ मत्स्यदेशीय योद्धाओं को, छः हजार सृंजयों को, दस हजार हाथियों को और दस हजार घुड़सवारों को मार दिया। तब यह जानकर कि ये भूमि को बिना पाण्डवों की करना चाहते हैं, श्रीकृष्णजी व्यथित होकर धर्मराज युधिष्ठिर से बोले कि क्रोध में भरे द्रोणाचार्य यदि इसप्रकार आधे दिन भी युद्ध करते रहे तो मैं सत्य कहता हूँ कि आपकी सेना का विनाश होजायेगा। इसलिये आप हमें द्रोणाचार्य से बचाओ। इस समय सत्य से असत्य बोलना अधिक श्रेयस्कर है। दूसरों के प्राण बचाने के लिये यदि झूठ बोलना पड़े तो उसका पाप नहीं लगता।

तयोः संवदतोरेवं भीमसेनोऽब्रवीदिदम्॥ २७॥
श्रुत्वैवं तु महाराज वधोपायं महात्मनः।
गाहमानस्य ते सेनां मालवस्येन्द्रवर्मणः॥ २८॥
अश्वत्थामेति विख्यातो गजः शक्रगजोपमः।
निहतो युधि विक्रम्य ततोऽहं द्रोणमब्रुवम्॥ २९॥
अश्वत्थामा हतो ब्रह्मन्निवर्तस्वाहवादिति।
नूनं नाश्रद्दधद्, वाक्यमेष मे पुरुषर्षभः॥ ३०॥

जब वेदोनों इसप्रकार बातें कर रहे थे, तब भीम ने यह कहा कि हे महाराज! मनस्वी द्रोणाचार्य के

वध के इस उपाय को सुनते ही मैंने आपकी सेना में विचरण करते हुए मालवराज इन्द्रवर्मा के अश्वत्थामा नाम के प्रसिद्ध इन्द्र के हाथी के समान विशाल हाथी को युद्ध में पराक्रम करके मार दिया। फिर मैंने द्रोणाचार्य से जाकर कहा कि हे ब्रह्मन्! अश्वत्थामा मारा गया, अब युद्ध से निवृत्त होजाइये। पर निश्चय ही उस पुरुषश्रेष्ठ द्रोणाचार्य ने मेरी बात पर विश्वास नहीं किया है।

स त्वं गोविन्दवाक्यानि मानयस्व जयैषिणः।
द्रोणाय निहतं शंस राजञ्शारद्वतीसुतम्॥ ३१॥
त्वयोक्तो नैव युध्येत जातु राजन् द्विजर्षभः।
सत्यवान् हि त्रिलोकेऽस्मिन् भवान् ख्यातो जनाधिप॥ ३२॥
तस्य तद् वचनं श्रुत्वा कृष्णवाक्यप्रचोदितः।
भावित्वाच्च महाराज वक्तुं समुपचक्रमे॥ ३३॥

इसलिये आप विजय को चाहनेवाले श्रीकृष्ण जी की बात मान लीजिये और हे राजन्! द्रोणाचार्य से कह दीजिये कि अश्वत्थामा मारा गया। हे राजन्! निश्चितरूप से आपके कह देने पर यह ब्राह्मणश्रेष्ठ युद्ध करना छोड़ देगा क्योंकि हे प्रजानाथ! आप सारे संसार में सत्यवादी के रूप में प्रसिद्ध हैं। भीम की यह बात सुनकर और श्रीकृष्ण जी की बात से प्रेरित होकर तथा भविष्य का ध्यानकर हे महाराज! युधिष्ठिर असत्य बात कहने का प्रयत्न करने लगे।

संदिह्यमानो व्यथितः कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम्।
अहतं वा हतं वेति पप्रच्छ सुतमात्मनः॥ ३४॥
स्थिराबुद्धिर्हिद्रोणस्य न पार्थो वक्ष्यतेऽनृतम्।
त्रयाणामपि लोकानामैश्वर्यार्थे कथंचन॥ ३५॥
तस्मात् तं परिपप्रच्छ नान्यं कंचिद् द्विजर्षभः।
तस्मिन् तस्य हि सत्याशा बाल्यात् प्रभृति पाण्डवे॥ ३६॥

द्रोणाचार्य उस समय सन्देह में पड़े हुए थे। इसलिये उन्होंने कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर से अपने पुत्र के बारे कि वह मारा गया या नहीं पूछा। द्रोणाचार्य की इस विषय में निश्चित बुद्धि थी कि युधिष्ठिर तीनों लोकों के ऐश्वर्य के लिये भी असत्य नहीं बोलेंगे। इसलिये उस ब्राह्मणश्रेष्ठ ने किसी और से नहीं, केवल उन्ही से इस विषय में पूछा क्योंकि पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर के बचपन से ही उन्हें उनके सत्य बोलने पर विश्वास था।

तमतथ्यभये मग्नो जये सक्तो युधिष्ठिरः।
अश्वत्थामा हत इति शब्दमुच्चैश्चचार ह॥ ३७॥
अव्यक्तमब्रवीत् राजन् हतः कुंजर इत्युत।
युधिष्ठिरात् तु तद् वाक्यं श्रुत्वा द्रोणो महारथः॥ ३८॥
पुत्रव्यसनसंतप्तो निराशो जीवितेऽभवत्।
विचेताः परमोद्विग्नो धृष्टद्युम्नमवेक्ष्य च।
योद्धुं नाशक्नुवद् राजन् यथापूर्वमरिंदमः॥ ३९॥

तब एकतरफ़ असत्यभाषण के भय में डूबे हुए और दूसरीतरफ विजय की प्राप्ति में लगे हुए युधिष्ठिर ने उनसे अश्वत्थामा मारा गया यह बात तो जोर से कही पर हे राजन्! हाथी का वध हुआ है यह बात धीरे से कही। तब युधिष्ठिर से यह बात सुनकर महारथी द्रोणाचार्य, पुत्र के दुःख से सन्तप्त होकर अपने जीवन के प्रति निराश होगये। वे अत्यन्त उद्विग्न होकर चेतनारहित होने लगे। हे राजन्! वे शत्रुदमन फिर धृष्टद्युम्न को सामने देखकर भी पहले जैसा युद्ध नहीं कर सके।

एकसौ पच्चीसवाँ अध्याय : द्रोणाचार्य और धृष्टद्युम्न का युद्ध।

तं दृष्ट्वा परमोद्विग्नं शोकोपहतचेतसम्।
पाञ्चालराजस्य सुतो धृष्टद्युम्नः समाद्रवत्॥ १॥
ततस्तं शरवर्षेण महता समवाकिरत्।
व्यशातयच्च संक्रुद्धो धृष्टद्युम्नममर्षणम्॥ २॥
शरांश्च शतधा तस्य द्रोणश्चिच्छेद सायकैः।
ध्वजं धनुश्च निशितैः सारथिं चाप्यपातयत्॥ ३॥

तब द्रोणाचार्य को अत्यन्त बेचैन और शोक से भरे हुए हृदयवाला देखकर पाँचालराज के पुत्र धृष्टद्युम्न ने उनके ऊपर आक्रमण कर दिया। तब द्रोणाचार्य ने अत्यन्त क्रोध में भरकर उस अमर्षशील धृष्टद्युम्न को महान् बाणवर्षा से आच्छादित कर घायल कर दिया। उन्होंने अपने तीखे बाणों से धृष्टद्युम्न के ध्वज और धनुषबाण के कई टुकड़े कर दिये और उसके सारथि को भी मारकर गिरा दिया।

स च्छिन्नधन्वा पाञ्चाल्यो निकृत्तध्वजसारथिः।
उत्तमामापदं प्राप्य गदां वीरः परामृशत्॥ ४॥

तामस्य विशिखैस्तीक्ष्णैः क्षिप्यमाणां महारथः।
निजघान शरैर्द्रोणः क्रुद्धः सत्यपराक्रमः॥ ५॥
तां तु दृष्ट्वा नरव्याघ्रो द्रोणेन निहतां शरैः।
विमलं खड्गमादत्त शतचन्द्रं च भानुमत्॥ ६॥
ततः शरसहस्रेण शतचन्द्रमपातयत्।
चर्म खड्गं च सम्बाधे धृष्टद्युम्नस्य स द्विजः॥ ७॥

तब धनुष और ध्वज के कट जाने तथा सारथि के मर जाने पर भारी विपत्ति में पड़े हुए वीर पाँचालराज कुमार ने गदा को उठाया। वह उस गदा को द्रोणाचार्य के ऊपर फैंकना चाहता था, पर सत्यपराक्रमी और महारथी द्रोणाचार्य ने क्रुद्ध होकर अपने तीखे बाणों से उसे नष्ट कर दिया। तब यह देखकर कि द्रोणाचार्य ने बाणों से गदा को नष्ट कर दिया है, उस नरव्याघ्र ने सौ चन्द्र की आकृतियों से युक्त प्रकाशमान ढाल और जगमगाती हुई तलवार को उठाया। तब उस ब्राह्मण ने उस संकट के समय धृष्टद्युम्न की तलवार और ढाल को भी असंख्य बाणों से काट गिराया।

अथास्येषुं समाधत्त दृढं परमसम्मतम्।
अन्तेवासिनमाचार्यो जिघांसुः पुत्रसम्मितम्॥ ८॥
तं शरैर्दशभिस्तीक्ष्णैश्चिच्छेद शिनिपुङ्गवः।
पश्यतस्तव पुत्रस्य कर्णस्य च महात्मनः।
ग्रस्तमाचार्यमुख्येन धृष्टद्युम्नममोचयत्॥ ९॥

फिर पुत्र के समान अपने शिष्य को मार डालने की इच्छा से आचार्य ने अपने धनुष पर एक परम उत्तम और सुदृढ़ बाण का सन्धान किया किन्तु उस बाण को शिनिश्रेष्ठ सात्यकि ने आपके पुत्र और मनस्वी कर्ण के देखते हुए दस तीखे बाणों से काट दिया और आचार्य प्रमुख के चंगुल में फँसे हुए धृष्टद्युम्न को बचा लिया।

एकसौ छब्बीसवाँ अध्याय : द्रोणाचार्य का शस्त्र त्याग, धृष्टद्युम्न द्वारा वध।

वर्तमाने तथा युद्धे घोरे देवासुरोपमे।
अब्रवीत् क्षत्रियांस्तत्र धर्मराजो युधिष्ठिरः॥ १॥
अभिद्रवत संयत्ताः कुम्भयोनिं महारथाः।
एषो हि पार्षतो वीरो भारद्वाजेन संगतः॥ २॥
घटते च यथाशक्ति भारद्वाजस्य नाशने।
युधिष्ठिरसमाज्ञप्ताः सृञ्जयानां महारथाः॥ ३॥
अभ्यद्रवन्त संयत्ता भारद्वाजजिघांसवः।
तान् समापततः सर्वान् भारद्वाजो महारथः॥ ४॥
अभ्यवर्तत वेगेन मर्तव्यमिति निश्चितः।

जब इसप्रकार देवों और असुरों के समान भयंकर संग्राम चल रहा था, तब धर्मराज युधिष्ठिर ने क्षत्रिय वीरों से कहा कि हे महारथियों! तुमलोग सावधान होकर द्रोणाचार्य पर आक्रमण करो। ये द्रुपदपुत्र वीर द्रोणाचार्य से युद्ध कर रहे हैं। ये अपनी शक्ति के अनुसार द्रोणाचार्य के विनाश हेतु प्रयत्न कर रहे हैं। तब युधिष्ठिर की आज्ञा से सृंजयों के महारथी सावधानी के साथ द्रोणाचार्य को मारने की इच्छा से उनपर टूट पड़े। तब उन्हें आक्रमण करते हुए देखकर महारथी द्रोणाचार्य ने मृत्यु का ही निश्चयकर उनका वेगपूर्वक सामना किया।

पाञ्चाल्यं विरथं भीमो हतसर्वायुधं बली॥ ५॥
सुविषण्णं महात्मानं त्वरमाणः समभ्ययात्।
ततः स्वरथमारोप्य पाञ्चाल्यमरिमर्दनः॥ ६॥
अब्रवीदभिसम्प्रेक्ष्य द्रोणमस्यन्तमन्तिकात्।
न त्वदन्य इहाचार्यं योद्धुमुत्सहते पुमान्॥ ७॥
त्वरस्व प्राग् वधायैव त्वयि भारः समाहितः।
स तथोक्तो महाबाहुः सर्वभारसहं धनुः॥ ८॥
अभिपत्याददे क्षिप्रमायुधप्रवरं दृढम्।

पाँचालकुमार धृष्टद्युम्न रथ से हीन होगये थे। उनके सारे आयुध नष्ट होगये थे। वे अत्यन्तउदास थे। तभी बलवान् भीमसेन शीघ्रता से उस मनस्वी के पास आये और उन्हें अपने रथ पर बैठाकर शत्रुदमन भीम ने द्रोणाचार्य को समीप से बाण चलाता हुआ देखकर धृष्टद्युम्न से कहा कि हे धृष्टद्युम्न! तुम्हारे सिवाय कोई दूसरा व्यक्ति यहाँ आचार्य से युद्ध करने की हिम्मत नहीं कर सकता। इसलिये तुम पहले उनके वध के लिये ही जल्दी करो। तुम्हारे ऊपर ही यह दायित्व है। ऐसा कहे जाने पर उस महाबाहु ने उछलकर जल्दी से सारा भार सहन करनेवाले दृढ़ और श्रेष्ठ आयुध धनुष को उठा लिया।

संरब्धश्च शरानस्यन् द्रोणं दुर्वारणं रणे॥ ९॥
विवारयिषुराचार्यं शरवर्षैरवाकिरत्।
तस्य द्रोणो धनुश्छित्त्वा विद्ध्वा चैनं शिलीमुखैः॥ १०॥
मर्माण्यभ्यहनद् भूयः स व्यथां परमामगात्।
ततो भीमो दृढक्रोधो द्रोणस्याश्लिष्य तं रथम्॥ ११॥
शनकैरिव राजेन्द्र द्रोणं वचनमब्रवीत्।

फिर अत्यन्त क्रोध में भरकर युद्ध में कठिनाई से रोके जानेवाले द्रोणाचार्य को रोकने की इच्छा से उसने उन्हें बाणवर्षा से भर दिया। तब द्रोणाचार्य ने उसके धनुष को बाणों से काटकर उसे घायल करते हुए उसके मर्मस्थलों पर प्रहार किया। इससे उसे पुनः बड़ी व्यथा हुई। तब हे राजेन्द्र! अपने क्रोध को दृढ़तापूर्वक बनाये रखनेवाले भीम द्रोणाचार्य के रथ से सटकर धीरे से उनसे बोले कि—

यदि नाम न युध्येरञ्शिक्षिता ब्रह्मबन्धवः॥ १२॥
स्वकर्मभिरसंतुष्टा न स्म क्षत्रं क्षयं व्रजेत्।
अहिंसां सर्वभूतेषु धर्मं ज्यायस्तरं विदुः॥ १३॥
तस्य च ब्राह्मणो मूलं भवांश्च ब्रह्मवित्तमः।
श्वपाकवन्म्लेच्छगणान् हत्वा चान्यान् पृथग्विधान्॥ १४॥
अज्ञानान्मूढवद् ब्रह्मन् पुत्रदारधनेप्सया।

यदि पढ़ेलिखे ब्राह्मणलोग अपने धर्मानुसार कार्य से असन्तुष्ट होकर युद्ध का कार्य न करते तो क्षत्रियों का यह महान् संहार नहीं होता। अहिंसाधर्म को सारे प्राणियों में सबसे महान् कर्म माना गया है। इस धर्म का पालन कराने के मुख्य आधार ब्राह्मण ही हैं और आप ब्राह्मणों में सबसे प्रमुख ब्रह्मवेत्ता हैं। हे ब्रह्मन्! आपने अज्ञानवश मूर्ख चाण्डालों के समान स्त्री, धन और पुत्र की इच्छा से कितने ही म्लेच्छों और दूसरेप्रकार के क्षत्रियों की हत्या कर डाली है।

एकस्यार्थे बहून् हत्वा पुत्रस्याधर्मविद्यया॥ १५॥
स्वकर्मस्थान् विकर्मस्थो न व्यपत्रपसे कथम्।
यस्यार्थे शस्त्रमादाय यमपेक्ष्य च जीवसि॥ १६॥
स चाद्य पतितः शेते पृष्ठे नावेदितस्तव।
धर्मराजस्य तद् वाक्यं नाभिशङ्कितुमर्हसि॥ १७॥
एवमुक्तस्ततो द्रोणो भीमेनोत्सृज्य तद् धनुः।
सर्वाण्यस्त्राणि धर्मात्मा हातुकामोऽभ्यभाषत॥ १८॥

अपने एकपुत्र की जीविका के लिये अपने धर्म का पालन करने वाले बहुतसारे क्षत्रियों की विपरीत कर्म का आश्रय लेकर, अधर्मविद्या के द्वारा हत्या कर आप लज्जित क्यों नहीं होरहे हो? जिसके लिये आपने शस्त्र उठाये हैं और जिसकी आशा में आप जीवित हैं, वह आपका पुत्र तो पीछे मरकर सोरहा है। उसके बारे में आपको पता ही नहीं है। आपको धर्मराज की उस बात पर शंका नहीं करनी चाहिये। तब भीमसेन के द्वारा यह कहने पर धर्मात्मा द्रोणाचार्य ने धनुष को छोड़कर और दूसरे भी सारे अस्त्रों को छोड़ देने की इच्छा से कहा कि—

कर्ण कर्ण महेष्वास कृप दुर्योधनेति च।
संग्रामे क्रियतां यत्नो ब्रवीम्येष पुनः पुनः॥ १९॥
पाण्डवेभ्यः शिवं वोऽस्तु शस्त्रमभ्युत्सृजाम्यहम्।
इति तत्र महाराज प्राक्रोशद् द्रौणिमेव च॥ २०॥
उत्सृज्य च रणे शस्त्रं रथोपस्थे निविश्य च।
अभयं सर्वभूतानां प्रददौ योगमीयिवान्॥ २१॥
तस्य तच्छिद्रमाज्ञाय धृष्टद्युम्नः प्रतापवान्।
सशरं तद् धनुर्घोरं संन्यस्याथ रथे ततः॥ २२॥
खड्गी रथादवप्लुत्य सहसा द्रोणमभ्ययात्।

हे महाधनुर्धर कर्ण, कृपाचार्य और दुर्योधन। अब युद्ध के लिये स्वयं प्रयत्न करो। यह मैं बार बार कहता हूँ। तुम्हारा पाण्डवों से कल्याण हो। मैं अब शस्त्रों का त्याग कर रहा हूँ। हे महाराज! ऐसा कहकर उन्होंने वहाँ अश्वत्थामा का नाम लेकर पुकारा। फिर युद्धस्थल में शस्त्रों का त्यागकर, रथ की बैठक में बैठकर उन्होंने सारे प्राणियों को अभयदान देदिया और समाधियोग में लग गये। तब उन्हें मारने के अवसर को जानकर प्रतापी धृष्टद्युम्न अपने भयंकर धनुषबाण को रथ में ही रख कर और तलवार लेकर, उछलकर तुरन्त द्रोणाचार्य के पास जापहुँचा।

वितुन्नाङ्गं शरव्रातैर्न्यस्तायुधमसृक्क्षरम्॥ २३॥
धिक्कृतः पार्षतस्तं तु सर्वभूतैः परामृशत्।
तस्यमूर्धानमालम्ब्य विचकर्तासिना शिरः॥ २४॥
हर्षेण महता युक्तो भारद्वाजे निपातिते।
सिंहनादरवं चक्रे भ्रामयन् खड्गमाहवे॥ २५॥
आकर्णपलितः श्यामो वयसाशीतिपञ्चकः।
त्वत्कृते व्यचरत् संख्ये स तु षोडशवर्षवत्॥ २६॥

द्रोणाचार्य का सारा शरीर उस समय बाणसमूहों से क्षतविक्षत होकर रक्त की धाराएँ बहा रहा था। उन्होंने हथियारों का त्याग कर दिया था। तब सारे

लोगों के धिक्कारते हुए भी द्रुपदपुत्र ने उनका स्पर्श किया। उसने उनके बालों को पकड़कर तलवार से उनका सिर काट लिया। इसप्रकार द्रोणाचार्य को मार गिराने पर वह अत्यन्त हर्ष से युक्त होकर युद्धस्थल में तलवार को हिलाता हुआ सिंहनाद करने लगा। हे राजन्! उस समय साँवले रंग के द्रोणाचार्य, जिनकी आयु एकसौ तीस वर्ष की थी और कान के बाल भी सफेद होगये थे, बूढ़े होने पर भी सोलह वर्ष की आयु के समान युद्ध में आपके लिये पराक्रम कर रहे थे।

उक्तवांश्च महाबाहुः कुन्तीपुत्रो धनंजयः।
जीवन्तमानयाचार्यं मा वधीर्द्रुपदात्मज॥ २७॥
उत्क्रोशन्नर्जुनश्चैव सानुक्रोशस्तमाव्रजत्।
धृष्टद्युम्नोऽवधीद् द्रोणं रथतल्पे नरर्षभम्॥ २८॥
ते तु दृष्ट्वा शिरो राजन् भारद्वाजस्य तावकाः।
पलायनकृतोत्साहा दुद्रुवुः सर्वतो दिशम्॥ २९॥
हते द्रोणे निरुत्साहान् कुरून् पाण्डवसृञ्जयाः।
अभ्यद्रवन् महावेगास्ततः सैन्यं व्यदीर्यत॥ ३०॥

महाबाहु कुन्तीपुत्र अर्जुन ने बहुत कहा कि हे द्रुपदपुत्र! आचार्य को मारो मत। जीवित ही ले आओ। अर्जुन तो दया के वश में होकर चिल्लाते हुए धृष्टद्युम्न के पास आने लगे, किन्तु उसने रथ की बैठक में नरश्रेष्ठ द्रोणाचार्य का वध कर ही दिया। हे राजन्! तब द्रोणाचार्य के सिर को देखकर आपके सैनिकों ने भागने में ही उत्साह दिखाया और सब तरफ भागने लगे। तब द्रोणाचार्य के मारे जाने से निरुत्साहित हुए कौरव सैनिकों पर पाण्डव और सृंजय सैनिकों ने बड़े वेग से आक्रमण किया और वह सेना तित्तर बित्तर हो गयी।

एकसौ सत्ताईसवाँ अध्याय : अश्वत्थामा को कृपाचार्य द्वारा द्रोणवध की सूचना।

ततो द्रोणे हते राजन् कुरवः शस्त्रपीडिताः।
हतप्रवीरा विध्वस्ता भृशं शोकपरायणाः॥ १॥
विचेतसो हतोत्साहाः कश्मलाभिहतौजसः।
आर्तस्वरेण महता पुत्रं ते पर्यवारयन्॥ २॥
क्षुत्पिपासापरिम्लानास्ते योधास्तव भारत।
आदित्येनेव संतप्ता भृशं विमनसोऽभवन्॥ ३॥

हे राजन्! तब कौरवपक्ष के योद्धा द्रोणाचार्य के मारे जाने पर अपने श्रेष्ठ वीर की मृत्यु से विध्वंस को प्राप्त हुए और शत्रु के शस्त्रों के आघात से पीड़ित होकर अत्यन्त शोक में भर गये। उनका उत्साह समाप्त होगया था, वे चेतनारहित से होरहे थे और मोह के कारण उनका तेज विनष्ट होगया था। वे अत्यन्त दुःखभरे स्वर में विलाप करते हुए आपके पुत्र को घेरकर खड़े होगये। हे भारत! उस समय आपके सैनिक भी भूख और प्यास से परेशान थे। जैसे सूर्य की किरणों ने उन्हें झुलसा दिया हो, उसी प्रकार वे अत्यन्त उदास होगये थे।

भास्करस्येव पतनं समुद्रस्येव शोषणम्।
अमर्षणीयं तद् दृष्ट्वा भारद्वाजस्य पातनम्॥ ४॥
त्रस्तरूपतरा राजन् कौरवाः प्राद्रवन् भयात्।
गजान् रथान् समारुह्य व्युदस्य च हयाञ्जनाः॥ ५॥
प्राद्रवन् सर्वतः संख्ये दृष्ट्वा रुक्मरथं हतम्।
प्रकीर्णकेशा विध्वस्ता न द्वावेकत्र धावतः॥ ६॥
नेदमस्तीति मन्वाना हतोत्साहा हतौजसः।
उत्सृज्य कवचानन्ये प्राद्रवंस्तावका विभो॥ ७॥
अन्योन्यं ते समाक्रोशन् सैनिका भरतर्षभ।
तिष्ठ तिष्ठेति न च ते स्वयं तत्रावतस्थिरे॥ ८॥

जैसे सूर्य पृथिवी पर गिर पड़े या समुद्र सूख जाये उसीप्रकार न सहन करने योग्य द्रोणाचार्य के मारे जाने को देखकर हे राजन्! कौरवपक्ष के सैनिक थर्रा उठे और भय के मारे भागने लगे। सुनहरे रथवाले द्रोणाचार्य के मारे जाने पर कितनेही सैनिक हाथियों और रथों पर चढ़कर और कितनेही अपने घोड़ों को भी छोड़कर युद्धक्षेत्र में सबतरफ भागने लगे। उनके बाल बिखरे हुए थे। उनमें दो सैनिक एकतरफ या एकसाथ नहीं भागते थे। उनके उत्साह और तेज नष्ट हो गये थे। वे यह मान रहे थे कि अब यह सेना नहीं बचेगी। हे विभो! हे भारतश्रेष्ठ! आपके सैनिक अपने कवचों को उतारकर और एकदूसरे को पुकारते हुए भाग रहे थे। वे दूसरों से कह रहे थे कि ठहरो, ठहरो, पर स्वयं नहीं ठहरते थे।

द्रवमाणे तथा सैन्ये त्रस्तरूपे हतौजसि।
प्रतिस्रोत इव ग्राहो द्रोणपुत्रः परानियात्॥ ९॥

तस्यासीत् सुमहद् युद्धं शिखण्डिप्रमुखैर्गणैः।
प्रभद्रकैश्च पाञ्चालैश्चेदिभिश्च सकेकयैः॥ १०॥
द्रवमाणं बलं दृष्ट्वा पलायनकृतक्षणम्।
दुर्योधनं समासाद्य द्रोणपुत्रोऽब्रवीदिदम्॥ ११॥
किमियं द्रवते सेना त्रस्तरूपेव भारत।
द्रवमाणां च राजेन्द्र नावस्थापयसे रणे॥ १२॥

इसप्रकार जब सेना एकतरफ उत्साहहीन होकर और घबराकर भाग रही थी, तब द्रोणपुत्र अश्वत्थामा शत्रुओं पर ऐसे आक्रमण कर रहा था जैसे कोई मगरमच्छ नदी के बहाव के प्रतिकूल जारहा हो। उसका शिखण्डी की आधीनता में प्रभद्रक, पाँचाल, चेदि और केकयों के साथ अत्यन्तमहान् युद्ध हो रहा था। जब उसने अचानक देखा कि सारी सेना भागी जारही है और भागने में ही उत्साह दिखा रही है, तब उसने दुर्योधन के पास जाकर पूछा कि हे भारत! हे राजेन्द्र! यह सेना भयभीत होकर क्यों भाग रही है? भागती हुई सेना को आप रोकने का प्रयत्न क्यों नहीं करते?

त्वं चापि न यथापूर्वं प्रकृतिस्थो नराधिप।
कर्णप्रभृतयश्चेमे नावतिष्ठन्ति पार्थिव॥ १३॥
अन्येष्वपि च युद्धेषु नैव सेनाद्रवत् तदा।
कच्चित् क्षेमं महाबाहो तव सैन्यस्य भारत॥ १४॥
कस्मिन्निदं हते राजन् रथसिंहे बलं तव।
एतामवस्थां सम्प्राप्तं तन्ममाचक्ष्व कौरव॥ १५॥
तत्तु दुर्योधनः श्रुत्वा द्रोणपुत्रस्य भाषितम्।
घोरमप्रियमाख्यातुं नाशक्नोत् पार्थिवर्षभः॥ १६॥

हे नराधिप! आपभी पहले जैसे स्वस्थ नहीं दिखाई देरहे हैं। ये कर्णआदि वीर भी हे राजन्! युद्धभूमि में खड़े नहीं होरहे हैं? क्या कारण है? पहले किसीभी युद्ध में सेना इसतरह कभी नहीं भागी थी। हे भारत! क्या आप, आपकी सेना सकुशल तो है? हे कौरवराज! कौन ऐसा महारथी सिंह है? जिसके मारे जाने पर आपकी सेना इस अवस्था को प्राप्त होरही है। आप मुझे यह बताइये। तब द्रोणपुत्र की बात सुनकर, वह राजश्रेष्ठ दुर्योधन उस घोरअप्रिय बात को उससे स्वयं नहीं कह सका।

भिन्ना नौरिव ते पुत्रो मग्नः शोकमहार्णवे।
बाष्पेणापिहितो दृष्ट्वा द्रोणपुत्रं रथे स्थितम्॥ १७॥
ततः शारद्वतं राजा सव्रीडमिदमब्रवीत्।
शंसात्र भद्रं ते सर्वं यथा सैन्यमिदं द्रुतम्॥ १८॥
अथ शारद्वतो राजन्नार्तिमार्च्छन् पुनः पुनः।
शशंस द्रोणपुत्राय यथा द्रोणो निपातितः॥ १९॥

द्रोणपुत्र को रथ में बैठा हुआ देखकर, जैसे किसी की नाव मँझधार में टूट जाये, वैसेही शोकसागर में डूबे हुए दुर्योधन की आँखें आँसुओं से भर गयीं। तब उस राजा ने संकोचसहित कृपाचार्य से कहा कि आपका कल्याण हो, आप इन्हें यह बता दीजिये कि यह सेना क्यों भागी जारही है? हे राजन्! तब कृपाचार्य ने बार बार पीड़ा का अनुभव करते हुए, जिसप्रकार से द्रोणाचार्य को मार गिराया गया, वह सारा वृत्तान्त अश्वत्थामा को कह सुनाया।

तच्छ्रुत्वा द्रोणपुत्रस्तु निधनं पितुराहवे।
क्रोधमाहारयत् तीव्रं पदाहत इवोरगः॥ २०॥
ततः क्रुद्धो रणे द्रौणिर्भृशं जज्वाल मारिष।
यथेन्धनं महत् प्राप्य प्राज्वलद्धव्यवाहनः॥ २१॥
तलं तलेन निष्पिष्य दन्तैर्दन्तानुपास्पृशत्।
निःश्वसन्नुरगो यद्वल्लोहिताक्षोऽभवत् तदा॥ २२॥

पिता के युद्धक्षेत्र में हुए निधन के उस वृत्तान्त को सुनकर अश्वत्थामा तब पैर से कुचले हुए सर्प के समान अत्यन्त क्रोध में भर गया। हे मान्यवर! जैसे महान् ईन्धन को प्राप्तकर अग्नि भड़क उठती है, उसीप्रकार द्रोणपुत्र युद्धभूमि में तब अत्यन्त क्रोध से जलने लगा। उस समय हाथ को हाथ से मसलते हुए और दाँतों को दाँतों से पीसते हुए, फुफकारते हुए साँप के समान उसकी आँखें लाल होगयीं।

एकसौ अठाईसवाँ अध्याय : अश्वत्थामा का क्रोधपूर्ण वचन।

अश्रुपूर्णे ततो नेत्रे व्यपमृज्य पुनः पुनः।
उवाच कोपान्निःश्वस्य दुर्योधनमिदं वचः॥ १॥
पिता मम यथा क्षुद्रैर्न्यस्तशस्त्रो निपातितः।
धर्मध्वजवता पापं कृतं तद् विदितं मम॥ २॥
न्यायवृत्तो वधो यस्तु संग्रामे युध्यतो भवेत्।
न स दुःखाय भवति तथा दृष्टो हि स द्विजैः॥ ३॥
गतः स वीरलोकाय पिता मम न संशयः।
न शोच्यः पुरुषव्याघ्र यस्तदा निधनं गतः॥ ४॥

तब अश्वत्थामा ने अपने आँसुओं से भरे नेत्रों को बार बार पोंछकर, क्रोध से लम्बी साँसें भरते हुए दुर्योधन से कहा कि हथियारों का त्याग किये हुए मेरे पिता को उन नीचों ने जैसे मारा है और धर्म की ध्वजा लिये हुए युधिष्ठिर ने जो पाप किया है, वह मुझे ज्ञात होगया। बुद्धिमानों ने युद्ध के परिणाम को देखा है, इसलिये न्याय के अनुसार लड़ते हुए युद्धक्षेत्र में जो वध हो जाता है, वह दुःखदायी नहीं होता। वे पुरुषव्याघ्र मेरे पिता क्योंकि उस समय मारे गये इसलिये शोक करने योग्य नहीं हैं। इसमें संशय नहीं है कि उन्होंने वीरगति प्राप्त की है।

यत् तु धर्मप्रवृत्तः सन् केशग्रहणमाप्तवान्।
पश्यतां सर्वसैन्यानां तन्मे मर्माणि कृन्तति॥ ५॥
मयि जीवति यत् तातः केशग्रहमवाप्तवान्।
कथमन्ये करिष्यन्ति पुत्रेभ्यः पुत्रिणः स्पृहाम्॥ ६॥
तदिदं पार्षतेनेह महदाधर्मिकं कृतम्।
अवज्ञाय च मां नूनं नृशंसेन दुरात्मना॥ ७॥
तस्यानुबन्धं द्रष्टासौ धृष्टद्युम्नः सुदारुणम्।

किन्तु धर्म में लगे होने पर भी सारी सेनाओं के देखते हुए उनके जो बाल पकड़े गये, यह बात मेरे मर्मस्थल को छेद रही है। यदि मेरे जीते हुए पिता के बाल पकड़े गये, तो दूसरे पुत्रवाले कैसे अपने पुत्रों से अभिलाषा करेंगे? इसलिये उस निर्दय, दुष्ट द्रुपदपुत्र ने मेरी अवहेलना कर यह महान् अधर्म का जो कार्य किया है, उसका अत्यन्त दुःखदायी परिणाम उस धृष्टद्युम्न को भोगना पड़ेगा।

अकार्यं परमं कृत्वा मिथ्यावादी च पाण्डवः॥ ८॥
योऽसौ छद्मनाऽऽचार्यं शस्त्रं संन्यासयत् तदा।
तस्याद्य धर्मराजस्य भूमिः पास्यति शोणितम्॥ ९॥
शपे सत्येन कौरव्य इष्टापूर्तेन चैव ह।
अहत्वा सर्वपाञ्चालान् जीवेयं न कथंचन॥ १०॥
सर्वोपायैर्यतिष्यामि पञ्चालानामहं वधे।
धृष्टद्युम्नं च समरे हन्ताहं पापकारिणम्॥ ११॥
कर्मणा येन तेनेह मृदुना दारुणेन च।
पञ्चालानां वधं कृत्वा शान्तिं लब्धास्मि कौरव॥ १२॥

उस झूठ बोलनेवाले पाण्डुपुत्र ने जो अत्यन्त नीच कार्य करके आचार्य से छलपूर्वक हथियार रखवा लिये, उस धर्मराज युधिष्ठिर के रक्त को भी आज भूमि पीयेगी। हे कुरुनन्दन! मैं अपने इष्ट अर्थात् यज्ञ आदि तथा आपूर्त अर्थात् परोपकार आदि दूसरे कार्य की तथा सत्यभाषण की शपथ खाकर कहता हूँ कि मैं बिना सारे पाँचालों को मारे किसी तरह से जीवित नहीं रहूँगा। मैं पाँचालों के वध के लिये सारे उपायों का प्रयोग करूँगा। उस पाप करने वाले धृष्टद्युम्न को मैं युद्धस्थल में कठोर या कोमल किसी भी कर्म से अवश्य मारूँगा। हे कुरुवंशी! मैं पाँचालों का वध करके ही शान्ति को प्राप्त करूँगा।

पित्रा तु मम सावस्था प्राप्ता निर्बन्धुना यथा।
मयि शैलप्रतीकाशे पुत्रे शिष्ये च जीवति॥ १३॥
धिङ्ममास्त्राणि दिव्यानि धिग् बाहू धिक् पराक्रमम्।
यं स्म द्रोणः सुतं प्राप्य केशग्रहमवाप्तवान्॥ १४॥
स तथाहं करिष्यामि यथा भरतसत्तम।
परलोकगतस्यापि भविष्याम्यनृणः पितुः॥ १५॥
आर्येण हि न वक्तव्या कदाचित् स्तुतिरात्मनः।
पितुर्वधममृष्यंस्तु वक्ष्याम्यद्येह पौरुषम्॥ १६॥

मुझ पर्वत जैसे पुत्र और शिष्य के होते हुए मेरे पिता ने बन्धुहीनों जैसी वह अवस्था प्राप्त की है। मेरे दिव्यास्त्रों को, मेरी बाहों को और मेरे पराक्रम को धिक्कार है, जो मुझ जैसे पुत्र के होते हुए द्रोणाचार्य को बाल पकड़े जाने का अपमान भोगना पड़ा। हे भरतश्रेष्ठ! अब मैं ऐसा प्रयत्न करूँगा, जिससे परलोक में गये हुए पिता के ऋण से उर्ऋण हो सकूँ। यद्यपि श्रेष्ठ व्यक्ति को अपनी प्रशंसा स्वयं नहीं करनी चाहिये, पर पिता के वध को सहन न कर पाने के कारण मैं अपने पराक्रम को बताता हूँ।

अद्य पश्यन्तु मे वीर्यं पाण्डवाः सजनार्दनाः।
मृद्नतः सर्वसैन्यानि युगान्तमिव कुर्वतः॥ १७॥
मदन्यो नास्ति लोकेऽस्मि न्नर्जुनाद् वास्त्रवित् क्वचित्।
अहं हि ज्वलतां मध्ये मयूखानामिवांशुमान्॥ १८॥
प्रयोक्ता देवसृष्टानामस्त्राणां पृतनागतः।
भृशमिष्वसनादद्य मत्प्रयुक्ता महाहवे॥ १९॥
दर्शयन्तः शरा वीर्यं प्रमथिष्यन्ति पाण्डवान्।
विकिरञ्छरजालानि सर्वतो भैरवस्वनान्॥ २०॥
शत्रून् निपातयिष्यामि महावात इव द्रुमान्।

आज श्रीकृष्णसहित पाण्डव मेरे पराक्रम को देखें। आज मैं सारी सेनाओं को कुचलता हुआ प्रलय सी मचा दूँगा। मेरे या अर्जुन के सिवाय दूसरा कोई अस्त्रवेत्ता नहीं है। आज मैं सेना में घुसकर जलती हुई किरणों के बीच में सूर्य के समान तपता हुआ दिव्यास्त्रों का प्रयोग करूँगा। आज महायुद्ध में मेरे द्वारा धनुष से छोड़े हुए बाण मेरे अत्यन्त पराक्रम को दिखाते हुए पाण्डववीरों को मथ डालेंगे। जैसे आँधी पेड़ों को उखाड़ देती है, वैसे ही मैं भयंकर गर्जना करते हुए शत्रुओं को सबतरफ बाणवर्षा करके मार गिराऊँगा।

न हि जानाति बीभत्सुस्तदस्त्रं न जनार्दनः॥ २१॥
न भीमसेनो न यमौ न च राजा युधिष्ठिरः।
न पार्षतो दुरात्मासौ न शिखण्डी न सात्यकिः॥ २२॥
यदिदं मयि कौरव्य सकल्पं सनिवर्तनम्।
सोऽहं नारायणास्त्रेण महता शत्रुतापनः॥ २३॥
शत्रून् विध्वंसयिष्यामि कदर्थीकृत्य पाण्डवान्।

हे कुरुश्रेष्ठ! जो अपने प्रयोग और उपसंहार सहित मेरे पास है, उसे न तो अर्जुन जानते हैं और न श्रीकृष्ण। भीमसेन, नकुल, सहदेव, राजा युधिष्ठिर, दुष्ट धृष्टद्युम्न, शिखण्डी और सात्यकि कोई भी उसे नहीं जानता। मैं अपने उस महान् नारायणास्त्रद्वारा शत्रुओं को सन्तप्त करता हुआ, पाण्डवों को पीड़ित करके शत्रुओं का विनाश कर दूँगा।

मित्रब्रह्मगुरुद्रोही जाल्मकः सुविगर्हितः॥ २४॥
पाञ्चालापसदश्चाद्य न मे जीवन् विमोक्ष्यते।
तच्छ्रुत्वा द्रोणपुत्रस्य पर्यवर्तत वाहिनी।
ततः सर्वे महाशङ्खान् दध्मुः पुरुषसत्तमाः॥ २५॥

मित्र, ब्राह्मण और गुरु से द्रोह करनेवाला, धोखेबाज, अत्यन्तनिन्दित, पाँचालकुलकलंक धृष्टद्युम्न आज मुझसे जीवित नहीं छूट सकेगा। द्रोणपुत्र की यह बात सुनकर कौरवों की सेना वापिस लौट आयी। फिर सारे पुरुषश्रेष्ठ बड़े बड़े शंखों को बजाने लगे।

एकसौ उनत्तीसवाँ अध्याय : अर्जुन का युधिष्ठिर से अश्वत्थामा के क्रोध तथा अपने शोक का वर्णन।

युधिष्ठिर उवाच

आचार्ये निहते द्रोणे धृष्टद्युम्नेन संयुगे।
नाशंसन्तो जयं युद्धे दीनात्मानो धनंजय॥ १॥
आत्मत्राणे मतिं कृत्वा प्राद्रवन् कुरवो रणात्।
अवस्थां तादृशीं प्राप्य हते द्रोणे द्रुतं बलम्॥ २॥
पुनरावर्तितं केन यदि जानासि शंस मे।

तब युधिष्ठिर ने कहा कि हे अर्जुन! धृष्टद्युम्न के द्वारा युद्धस्थल में द्रोणाचार्य को मार देने पर कौरवसैनिक विजय की आशा न करते हुए, दीनतायुक्त होकर, अपनी प्राणरक्षा का विचार करते हुए युद्धस्थल से भाग रहे थे। द्रोणाचार्य के मारे जाने पर जो लोग इसप्रकार की अवस्था को प्राप्त होगये थे, उन्हें अब किसने वापिस लौटाया है? यदि तुम जानते हो तो मुझे बताओ।

अर्जुन उवाच

यो ह्यनाथ इवाक्रम्य पार्षतेन हतस्तथा॥ ३॥
कर्मणा सुनृशंसेन तस्य नाथो व्यवस्थितः।
गुरुं मे यत्र पाञ्चाल्यः केशपक्षे परामृशत्॥ ४॥
तन्न जातु क्षमेद् द्रौणिर्जानन् पौरुषमात्मनः।
उपचीर्णो गुरुर्मिथ्या भवता राज्यकारणात्॥ ५॥
धर्मज्ञेन सता नाम सोऽधर्मः सुमहान् कृतः।
सर्वधर्मोपपन्नोऽयं स मे शिष्यश्च पाण्डवः॥ ६॥
नायं वदति मिथ्येति प्रत्ययं कृतवांस्त्वयि।

अर्जुन ने कहा कि जिन्हें द्रुपदकुमार ने अत्यन्त निर्दय कर्म के द्वारा, आक्रमण कर, अनाथों की तरह से मार दिया है, उनका यह रक्षक उठ खड़ा हुआ है, पाँचालकुमार ने जो मेरे गुरु के बाल पकड़कर

खींचा है, उसे अपने पौरुष को जाननेवाला अश्वत्थामा कभी क्षमा नहीं कर सकता। आपने राज्य के कारण धर्मज्ञ होते हुए भी झूठ बोलकर गुरु को जो धोखा दिया है, यह अत्यन्तमहान् अधर्म किया है। उन्होंने आप पर यह सोचकर विश्वास किया था कि यह पाण्डुपुत्र मेरा शिष्य है, सारे धर्मों से युक्त है और कभी झूठ नहीं बोलता।

स सत्यकञ्चुकं नाम प्रविष्टेन ततोऽनृतम्॥ ७॥
आचार्य उक्तो भवता हतः कुञ्जर इत्युत।
ततः शस्त्रं समुत्सृज्य निर्ममो गतचेतनः॥ ८॥
आसीत् सुविह्वलो राजन् यथा दृष्टस्त्वया विभुः।
स तु शोकसमाविष्टो विमुखः पुत्रवत्सलः॥ ९॥
शाश्वतं धर्ममुत्सृज्य गुरुः शस्त्रेण घातितः।
न्यस्तशस्त्रमधर्मेण घातयित्वा गुरुं भवान्॥ १०॥
रक्षत्विदानीं सामात्यो यदि शक्तोऽसि पार्षतम्।
ग्रस्तमाचार्यपुत्रेण क्रुद्धेन हतबन्धुना॥ ११॥

किन्तु सत्य का चोला पहने हुए और असत्य का सहारा लिये हुए आपने आचार्य से कह दिया कि अश्वत्थामा मारा गया। यद्यपि उस नाम का हाथी मारा गया था। तब वे शस्त्रों का त्यागकर, प्राणों की ममता से रहित और चेतनारहित से होगये थे। हे राजन्! शक्तिशाली होने पर भी वे कितने व्याकुल होगये थे, यह आपने उस समय देखा था। वे पुत्रप्रेमी गुरु उस समय शस्त्रों का त्यागकर युद्ध से विमुख होगये। तब आपने अपने सनातन धर्म का त्यागकर उन्हें शस्त्र से मरवा दिया। हथियार रखकर निहत्थे हुए गुरु को अधर्मपूर्वक मरवाकर, आप जिसके पिता मारे गये हैं, उस क्रुद्ध आचार्यपुत्र अश्वत्थामा के चंगुल में फँसे हुए द्रुपदपुत्र को, यदि समर्थ हैं तो अपने मंत्रियों के साथ उसे बचाइये।

सर्वे वयं परित्रातुं न शक्ष्यामोऽद्य पार्षतम्।
सौहार्दं सर्वभूतेषु यः करोत्यतिमानुषः॥ १२॥
सोऽद्य केशग्रहं श्रुत्वा पितुर्धक्ष्यति नो रणे।
विक्रोशमाने हि मयि भृशमाचार्यगृद्धिनि॥ १३॥
अपाकीर्य स्वयं धर्मं शिष्येण निहतो गुरुः।
यदा गतं वयो भूयः शिष्टमल्पतरं च नः॥ १४॥
तस्येदानीं विकारोऽयमधर्मोऽयं कृतो महान्।

हमसारे भी इस समय द्रुपद्पुत्र को नहीं बचा सकते। जो मानवेतर व्यक्ति अश्वत्थामा सारे प्राणियों से मैत्रीभाव रखता है, वह आज अपने पिता के बाल पकड़े जाने की बात सुनकर हमें युद्धस्थल में भस्म कर देगा। आचार्य को बचाने का अत्यन्त इच्छुक मैं चिल्लाता ही रह गया, पर धर्म को स्वयं दूर हटाकर शिष्य ने गुरु की हत्या कर ही डाली। हमारी अधिकांश आयु समाप्त होगयी है और थोड़ी सी रह गयी है, उसी के कारण यह मस्तिष्क में विकार आगया है और हम इस महान् अधर्मकार्य को कर बैठे हैं।

अहो बत महत् पापं कृतं कर्म सुदारुणम्॥ १५॥
यद् राज्यसुखलोभेन द्रोणोऽयं साधु घातितः।
पुत्रान् भ्रातॄन् पितॄन् दाराञ्जीवितं चैव वासविः॥ १६॥
त्यजेत् सर्वं मम प्रेम्णा जानात्येवं हि मे गुरुः।
स मया राज्यकामेन हन्यमानो ह्युपेक्षितः॥ १७॥
ब्राह्मणं वृद्धमाचार्यं न्यस्तशस्त्रं महामुनिम्।
घातयित्वाद्य राज्यार्थं मृतं श्रेयो न जीवितम्॥ १८॥

अरे! हमने यह अत्यन्तदारुण महान् पापकर्म कर दिया है, जो राज्य सुख के लोभ में साधु द्रोणाचार्य को मरवा दिया। मेरे वे गुरु प्रेम के वश में होकर यह समझते थे कि अर्जुन मेरे लिये पुत्रों, भाइयों, पिता, पत्नी, और प्राणों का भी त्याग कर सकता है। उसी मैंने राज्य की लालसा से, मारे जाते हुए उनकी उपेक्षा कर दी। वे ब्राह्मण थे, बूढ़े थे, हमारे आचार्य थे, महान् मुनि थे और निहत्थे थे। उनको राज्य के लिये मरवाकर अब हमारे लिये जीवित रहने की अपेक्षा मरना ही अधिक अच्छा है।

एकसौ तीसवाँ अध्याय : भीम और धृष्टद्युम्न के द्वारा द्रोणाचार्य के वध का समर्थन।

अर्जुनस्य वचः श्रुत्वा नोचुस्तत्र महारथाः।
अप्रियं वा प्रियं वापि महाराज धनंजयम्॥ १॥
ततः क्रुद्धो महाबाहुर्भीमसेनोऽभ्यभाषत।
कुत्सयन्निव कौन्तेयमर्जुनं भरतर्षभ॥ २॥
मुनिर्यथारण्यगतो भाषसे धर्मसंहितम्।
न्यस्तदण्डो यथा पार्थ ब्राह्मणः संशितव्रतः॥ ३॥
क्षतत्राता क्षताज्जीवन् क्षन्ता स्त्रीष्वपि साधुषु।
क्षत्रियः क्षितिमाप्नोति क्षिप्रं धर्मं यशः श्रियः॥ ४॥

तब अर्जुन की बात सुनकर हे महाराज! वहाँ विद्यमान सारे महारथी चुप रहे। उन्होंने उससे कुछ भी प्रिय या अप्रिय नहीं कहा। फिर महाबाहु भीमसेन क्रोध में भरकर हे भरतश्रेष्ठ! अर्जुन को फटकारते हुए बोले कि जैसे वन में रहनेवाला मुनि, या जिसने दण्ड का सर्वथा त्याग कर दिया है, ऐसा व्रत का पालन करनेवाला ब्राह्मण धर्म का उपदेश करता है, हे पार्थ! तुम वैसे ही हमें धर्म की बातें कह रहे हो। किन्तु क्षत्रिय वही शीघ्रता से भूमि, धर्म, यश, और ऐश्वर्य को प्राप्त करता है जो क्षत अर्थात् संकट से दूसरों की तथा अपनी रक्षा करता है, शत्रु को क्षति पहुँचाना ही जिसकी जीविका है और जो स्त्रियों और साधुओं पर क्षमाभाव रखता है।

स भवान् क्षत्रियगुणैर्युक्तः सर्वैः कुलोद्वहः।
अविपश्चिद् यथा वाचं व्याहरन् नाद्य शोभसे॥ ५॥
न पूजयेत् त्वां को न्वद्य यत् त्रयोदशवार्षिकम्।
अमर्षं पृष्ठतः कृत्वा धर्ममेवाभिकाङ्क्षसे॥ ६॥
दिष्ट्या तात मनस्तेऽद्य स्वधर्ममनुवर्तते।
आनृशंस्ये च ते दिष्ट्या बुद्धिः सततमच्युत॥ ७॥

वही आप सारे क्षत्रियोचित गुणों से युक्त हो और अपने परिवार के श्रेष्ठ व्यक्ति हो, पर इस समय अविद्वानों जैसी बातें कहते हुए शोभित नहीं होरहे हो। इस बात के लिये तुम्हारी कौन प्रशंसा नहीं करेगा कि तेरह वर्ष तक किये गये अन्याय से उत्पन्न अमर्ष को भी पीछे करके तुम आज धर्म की ही अभिलाषा करते हो। यह सौभाग्य की बात है कि हे तात! आजभी तुम्हारा मन धर्म में ही लगा हुआ है। हे अपने धर्म से च्युत न होनेवाले! सौभाग्य से आजभी तुम्हारी बुद्धि दयालुता में ही रम रही है।

यत् तु धर्मप्रवृत्तस्य हृतं राज्यमधर्मतः।
द्रौपदी च परामृष्टा सभामानीय शत्रुभिः॥ ८॥
वनं प्रव्राजिताश्चास्म वल्कलाजिनवाससः।
अनर्हमाणास्तं भावं त्रयोदश समाः परैः॥ ९॥
एतान्यमर्षस्थानानि मर्षितानि मयानघ।
क्षत्रधर्मप्रसक्तेन सर्वमेतदनुष्ठितम्॥ १०॥
तमधर्ममपाकृष्टं स्मृत्वाद्य सहितस्त्वया।
सानुबन्धान् हनिष्यामि क्षुद्रान् राज्यहरानहम्॥ ११॥
त्वया हि कथितं पूर्वं युद्धायाभ्यागता वयम्।
घटामहे यथाशक्ति त्वं तु नोऽद्य जुगुप्ससे॥ १२॥

किन्तु धर्म में तत्पर रहने पर भी शत्रुओं ने अधर्म से हमारा राज्य छीन लिया। उन्होंने द्रौपदी को सभा में लाकर अपमानित किया। उन्होंने हमें वल्कल और मृगचर्म पहनाकर तेरह वर्षों के लिये वन में भेज दिया। यद्यपि हम इसके योग्य न थे। हे निष्पाप! इन सारे अमर्ष को उत्पन्न करनेवाले व्यवहारों को मैंने क्षत्रियधर्म में लगे हुए होने के कारणही सहन किया। किन्तु अब उनके अधर्मपूर्ण व्यवहारों को याद करके मैं तुम्हारी सहायता से राज्य का अपहरण करनेवाले इन नीचों को सहायकोंसहित मारूँगा। तुमने पहले युद्ध के लिये कहा था और उसी के अनुसार हम यहाँ आकर यथाशक्ति प्रयत्न कर रहे हैं, पर तुम्हीं आज हमारी निन्दा कर रहे हो।

स्वधर्मं नेच्छसे ज्ञातुं मिथ्यावचनमेव ते।
भयार्दितानामस्माकं वाचा मर्माणि कृन्तसि॥ १३॥
वपन् व्रणे क्षारमिव क्षतानां शत्रुकर्शन।
अधर्ममेनं विपुलं धार्मिकः सन् न बुद्ध्यसे॥ १४॥
यत् त्वमात्मानमस्मांश्च प्रशस्यान् न प्रशंससि।
ततः पाञ्चालराजस्य पुत्रः पार्थमथाब्रवीत्॥ १५॥

तुम अपने धर्म के विषय में जानना नहीं चाहते, जो बातें तुम कह रहे हो, वे मिथ्या हैं। हम पहले ही भय से पीड़ित हैं, फिर तुम वाग्बाणों से हमारे मर्मस्थलों को काट रहे हो। यह तो ऐसे ही है जैसे

हे शत्रुदमन! कोई घायल व्यक्ति के घावों पर नमक छिड़क दे। यद्यपि तुम और हम प्रशंसा के पात्र हैं, पर तुम अपनी और हमारी प्रशंसा नहीं कर रहे हो, यह एक बड़ा अधर्म है। तुम धार्मिक होते हुए भी इस बात को समझ नहीं रहे हो। तब पाँचालराज के पुत्र धृष्टद्युम्न ने अर्जुन से कहा कि—

बीभत्सो विप्रकर्माणि विदितानि मनीषिणाम्।
याजनाध्यापने दानं तथा यज्ञप्रतिग्रहौ॥ १६॥
षष्ठमध्ययनं नाम तेषां कस्मिन् प्रतिष्ठितः।
हतो द्रोणो मया ह्येवं किं मां पार्थ विगर्हसे॥ १७॥
अपक्रान्तः स्वधर्माच्च क्षात्रधर्मं व्यपाश्रितः।
अमानुषेण हन्त्यस्मानस्त्रेण क्षुद्रकर्मकृत्॥ १८॥
तथा मायां प्रयुञ्जानमसह्यं ब्राह्मणब्रुवम्।
माययैव विहन्याद् यो न युक्तं पार्थ तत्र किम्॥ १९॥
तस्मिंस्तथा मया शस्ते यदि द्रौणायनी रुषा।
कुरुते भैरवं नादं तत्र किं मम हीयते॥ २०॥

हे अर्जुन! विद्वानों ने ब्राह्मणों के ये छः कर्म बताये हैं— यज्ञ कराना, पढ़ाना, दान लेना तथा दान देना, दूसरों का उपकार करना और दूसरों के उपकार को स्वीकार करना तथा वेद का पढ़ना-पढ़ाना। द्रोणाचार्य इनमें से कौनसा कर्म करते थे? ब्राह्मणधर्म से भ्रष्ट होकर उन्होंने क्षत्रियधर्म का सहारा लिया हुआ था। यदि ऐसी अवस्था में मैंने उन्हें मार दिया तो हे अर्जुन! तुम क्यों मेरी निन्दा करते हो? वह नीच कर्म करनेवाला ब्राह्मण दिव्यास्त्रों से हमारा संहार करता था। हे अर्जुन! जो ब्राह्मण कहलाकर भी दूसरों के लिये माया का प्रयोग करे और असह्य हो जाये, उसे यदि कोई माया से ही मार डाले तो इसमें बुरी बात क्या है? ऐसी अवस्था में द्रोणाचार्य को मेरे मार देने पर यदि द्रोणपुत्र क्रोध से भयानक गर्जना करे तो इसमें मेरा क्या बिगड़ता है?

न चाद्भुतमिदं मन्ये यद् द्रौणिर्युद्धसंज्ञया।
घातयिष्यति कौरव्यान् परित्रातुमशक्नुवन्॥ २१॥
यस्य कार्यमकार्यं वा युध्यतः स्यात् समं रणे।
तं कथं ब्राह्मणं ब्रूयाः क्षत्रियं वा धनंजय॥ २२॥
यो ह्यनस्त्रविदो हन्याद् ब्रह्मास्त्रैः क्रोधमूर्च्छितः।
सर्वोपायैर्न स कथं वध्यः पुरुषसत्तम॥ २३॥
विधर्मिणं धर्मविद्भिः प्रोक्तं तेषां विषोपमम्।
जानन् धर्मार्थतत्त्वज्ञ किं मामर्जुन गर्हसे॥ २४॥

मैं इसे आश्चर्य की बात नहीं मानता कि द्रोणपुत्र स्वयं तो कौरवों की रक्षा कर नहीं सकता, पर इस युद्ध के द्वारा वह कौरवों को मरवा देगा। जिसके लिये युद्ध करते हुए कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य समान है, उसे तुम ब्राह्मण या क्षत्रिय कैसे कह सकते हो? जो क्रोध से मूर्च्छित होकर ब्रह्मास्त्र न जाननेवालों को ब्रह्मास्त्र से मार दे, हे पुरुषश्रेष्ठ! उसे सभीतरह के उपायों से क्यों नहीं मार देना चाहिये? जो अपना धर्म छोड़कर दूसरे के धर्म को ग्रहण कर लेता है, उस विधर्मी को धर्मवेत्ताओं ने विष के समान बताया है। यह जानते हुए भी हे धर्म के तत्त्व को जानने वाले अर्जुन! तुम मेरी क्यों निन्दा करते हो?

नृशंसः स मयाऽऽक्रम्य रथ एव निपातितः।
तन्मामनिन्द्यं बीभत्सो किमर्थं नाभिनन्दसे॥ २५॥
योऽसौ ममैव नान्यस्य बान्धवान् युधि जघ्निवान्।
छित्त्वापि तस्य मूर्धानं नैवास्मि विगतज्वरः॥ २६॥
अथावधश्च शत्रूणामधर्मः श्रूयतेऽर्जुन।
क्षत्रियस्य हि धर्मोऽयं हन्याद्धन्येत वा पुनः॥ २७॥
स शत्रुर्निहतः संख्ये मया धर्मेण पाण्डव।
यथा त्वया हतः शूरो भगदत्तः पितुः सखा॥ २८॥

हे अर्जुन! द्रोणाचार्य निर्दय थे। उन्हें मैंने आक्रमण करके रथ में गिरा दिया, इसलिये निन्दनीय नहीं हूँ। फिर तुम मेरा अभिनन्दन किसलिये नहीं करते हो? जिसने युद्ध में किसी और के नहीं मेरे ही परिवार के लोगों को मारा, उसके सिर को काटकर भी मेरा क्रोध समाप्त नहीं हुआ है। हे अर्जुन यह सुना जाता है कि शत्रुओं का वध न करना भी अधर्म है। क्षत्रिय का तो धर्म ही यही है कि वह या शत्रु को मार दे या शत्रु के हाथ से मारा जाये। हे पाण्डव! मैंने अपने शत्रु को युद्धस्थल में धर्म के अनुसार ही मारा है, जैसे तुमने अपने पिता के मित्र शूरवीर भगदत्त को मारा था।

पितामहं रणे हत्वा मन्यसे धर्ममात्मनः।
मया शत्रौ हते कस्मात् पापे धर्मं न मन्यसे॥ २९॥
कुलक्रमागतं वैरं ममाचार्येण विश्रुतम्।
तथा जानात्ययं लोको न यूयं पाण्डुनन्दनाः॥ ३०॥
नानृती पाण्डवो ज्येष्ठो नाहं वाधार्मिकोर्जुन।
शिष्यद्रोही हतः पापो युध्यस्व विजयस्तव॥ ३१॥

तुमने युद्ध में अपने बाबा को मार दिया। उसे तो तुम धर्म मानते हो, फिर जब मैंने अपने पापी शत्रु को मार दिया तो इसे तुम धर्म क्यों नहीं मानते? यह प्रसिद्ध है कि द्रोणाचार्य के साथ हमारा वंश परम्परा से बैर चला आरहा है। इसे सारा संसार जानता है, पर तुम पाण्डवों को यह पता ही नहीं है। हे अर्जुन! न तो तुम्हारे बड़े भाई असत्यवादी हैं और ना ही मैं अधार्मिक हूँ। द्रोणाचार्य शिष्यद्रोही और पापी थे, इसलिये वे मारे गये। अब तुम युद्ध करो। तुम्हारी विजय होगी।

एकसौ इकत्तीसवाँ अध्याय : सात्यकि और धृष्टद्युम्न का परस्पर झगड़ा। भीम, सहदेव, श्रीकृष्ण और युधिष्ठिर द्वारा निवारण।

श्रुत्वा द्रुपदपुत्रस्य ता वाचः क्रूरकर्मणः।
तूष्णीं बभूवू राजानः सर्व एव विशाम्पते॥ १॥
अर्जुनस्तु कटाक्षेण जिह्मं विप्रेक्ष्य पार्षतम्।
सबाष्पमतिनिःश्वस्य धिगृधिगित्येव चाब्रवीत्॥ २॥
युधिष्ठिरश्च भीमश्च यमौ कृष्णास्तथापरे।
आसन् सुव्रीडिता राजन् सात्यकिस्त्वब्रवीदिदम्॥ ३॥
नेहास्ति पुरुषः कश्चिद् य इमं पापपूरुषम्।
भाषमाणमकल्याणं शीघ्रं हन्यान्नराधमम्॥ ४॥

तब निर्दय कर्म करनेवाले द्रुपदपुत्र की बातें सुनकर हे प्रजानाथ! सारे राजा लोग चुप बैठे रहे। अर्जुन तो टेढ़ी निगाहों से द्रुपदपुत्र की तरफ देखते हुए, आँसू बहाते हुए, लम्बी साँस लेकर इतनाही बोले कि धिक्कार है, धिक्कार है। युधिष्ठिर, भीम, नकुल, सहदेव, श्रीकृष्ण तथा दूसरेलोग हे राजन्! अत्यन्त लज्जा का अनुभव कर रहे थे, किन्तु सात्यकि ने तब यह कहा कि यहाँ कोई ऐसा पुरुष नहीं है, जो अकल्याणकर बातों को करनेवाले इस पापी नराधम को शीघ्र मार दे।

एते त्वां पाण्डवाः सर्वे कुत्सयन्ति विकुत्सया।
एतत् कृत्वा महत् पापं निन्दितः सर्वसाधुभिः॥ ५॥
न लज्जसे कथं वक्तुं समितिं प्राप्य शोभनाम्।
कथं च शतधा जिह्वा न ते मूर्धा च दीर्यते॥ ६॥
गुरुमाक्रोशतः क्षुद्र न चाधर्मेण पात्यसे।
वाच्यस्त्वमसि पार्थैश्च सर्वैश्चान्धकवृष्णिभिः॥ ७॥
यत् कर्म कलुषं कृत्वा श्लाघसे जनसंसदि।
अकार्यं तादृशं कृत्वा पुनरेव गुरुं क्षिपन्॥ ८॥
वध्यस्त्वं न त्वयार्थोऽस्ति मुहूर्तमपि जीवता।

येसारे पाण्डव घृणा प्रकट करते हुए तुम्हारी निन्दा कर रहे हैं। इस महान् पापकर्म को करके तुम सारे साधुओं में निन्दा के योग्य बन गए हो। इस सुन्दरसभा में भी इसप्रकार बोलते हुए तुम्हें लज्जा क्यों नहीं आती? तुम्हारी जबान के सौ टुकड़े क्यों नहीं होजाते? तुम्हारा सिर क्यों नहीं फट जाता? हे नीच! गुरु की निन्दा करते हुए इस अधर्म से तुम्हारा पतन क्यों नहीं होजाता? इस पापकर्म को कर तू जो लोगों के बीच में अपनी बड़ाई कर रहा है, उसके कारण तू पाण्डवों और सारे अन्धक और वृष्णियों के द्वारा निन्दनीय बन गया है। इसप्रकार के अकार्य को करके पुनः गुरु की ही निन्दा करते हुए तुझे जीवित रहने का कोई अधिकार नहीं है। तू मारनेयोग्य है।

कस्त्वेतद् व्यवसेदार्यस्त्वदन्यः पुरुषाधम॥ ९॥
निगृह्य केशेषु वधं गुरोर्धर्मात्मनः सतः।
पञ्चालाश्चलिता धर्मात् क्षुद्रा मित्रगुरुद्रुहः॥ १०॥
त्वां प्राप्य सहसोदर्यं धिक्कृतं सर्वसाधुभिः।
पाञ्चालक सुदुर्वृत्त ममैव गुरुमग्रतः॥ ११॥
गुरोर्गुरुं च भूयोऽपि क्षिपन्नैव हि लज्जसे।
तिष्ठ तिष्ठ सहस्वैकं गदापातमिमं मम॥ १२॥
तव चापि सहिष्येऽहं गदापातानन्नेकशः।

हे पुरुषाधम! तेरे सिवाय और कौन श्रेष्ठ पुरुष ऐसा कार्य कर सकता है, कि धर्मात्मा और सज्जन गुरु के बाल पकड़कर उनका वध करे। सारे साधु पुरुषों के द्वारा धिक्कारे जाते हुए तुम्हें अपने सगे भाईसहित प्राप्तकर पाँचाललोग धर्म से विचलित, नीच, मित्र तथा गुरुद्रोही के रूप में प्रसिद्ध होगये हैं। हे अत्यन्तदुराचारी पाँचाल मेरे ही आगे मेरे गुरु और मेरे गुरु के भी गुरु की बार बार निन्दा करते

हुए तू लज्जित नहीं होरहा है। ठहर जा, ठहर जा। तू मेरी गदा के एक आघात को सहन कर ले। फिर मैं तेरे अनेक गदाप्रहारों को सहन कर लूँगा।

सात्वतेनैवमाक्षिप्तः पार्षतः परुषाक्षरम्॥ १३॥
संरब्धं सात्यकिं प्राह संक्रुद्धः प्रहसन्निव।
श्रूयते श्रूयते चेति क्षम्यते चेति माधव॥ १४॥
सदानार्योऽशुभः साधुं पुरुषं क्षेप्तुमिच्छति।
क्षमा प्रशस्यते लोके न तु पापोऽर्हति क्षमाम्॥ १५॥
क्षमावन्तं हि पापात्मा जितोऽयमिति मन्यते।
स त्वं क्षुद्रसमाचारो नीचात्मा पापनिश्चयः॥ १६॥
आकेशाग्रान्नखाग्राच्च वक्तव्यो वक्तुमिच्छसि।

सात्यकि के द्वारा इसप्रकार आक्षेप किये जाने पर द्रुपदपुत्र ने क्रोध में भरे सात्यकि से अत्यन्त क्रुद्धहोकर मुस्कराते हुए ये कठोर वचन कहे कि हे माधव! मैं तुम्हारी इन बातों को सुन रहा हूँ, और इसके लिये तुम्हें क्षमा भी कर रहा हूँ। जो अनार्य और अशुभलोग होते हैं, वे साधु पुरुषों पर इसीप्रकार के आक्षेप करने की इच्छा रखते हैं। संसार में क्षमा करना प्रशंसनीय है, किन्तु पापी क्षमा करनेयोग्य नहीं होता, क्योंकि पापीलोग क्षमा करनेवाले के लिये यह समझते हैं कि इसे मैंने जीत लिया है। तू स्वयं ही नीच आचरणवाला, नीचात्मा तथा पापपूर्ण विचारोंवाला है। नख से लेकर शिखातक तू पाप में डूबा हुआ होने के कारण निन्दा के योग्य है, फिर भी तू दूसरों की निन्दा करना चाहता है।

यः स भूरिश्रवाश्छिन्नभुजः प्रायगतस्त्वया॥ १७॥
वार्यमाणेन हि हतस्ततः पापतरं नु किम्।
निहत्य त्वां पदा भूमौ स विकर्षति वीर्यवान्॥ १८॥
किं तदा न निहंस्येनं भूत्वा पुरुषसत्तमः।
त्वया पुनरनार्येण पूर्वं पार्थेन निर्जितः॥ १९॥
यदा तदा हतः शूरः सौमदत्तिः प्रतापवान्।

भूरिश्रवा की बाँह कट गयी थी, वह उपवास पर बैठा था, उस अवस्था में मना करने पर भी तूने उसे मार दिया। इससे अधिक पापकर्म और क्या होसकता है? वह पराक्रमी भूरिश्रवा लात मारकर, तुम्हें भूमि पर घसीट रहा था। तुमने श्रेष्ठ पुरुष होकर उस समय क्यों नहीं मारा? तुझ अनार्य ने प्रतापी और शूरवीर भूरिश्रवा को तब मारा, जब उसे अर्जुन ने पहलेही पराजित कर दिया था।

स त्वमेवंविधं कृत्वा कर्म चाण्डालवत् स्वयम्॥ २०॥
वक्तुमर्हसि वक्तव्यः कस्मात् त्वं परुषाण्यथ।
न चैवं मूर्ख धर्मेण केवलेनैव शक्यते॥ २१॥
तेषामपि ह्यधर्मेण चेष्टितं शृणु यादृशम्।
अधर्मेणापकृष्टश्च मद्रराजः परेरितः॥ २२॥
अधर्मेण तथा बालः सौभद्रो विनिपातितः।
इतोऽप्यधर्मेण हतो भीष्मः परपुरंजयः॥ २३॥
भूरिश्रवा ह्यधर्मेण त्वया धर्मविदा हतः।

इसप्रकार तूने स्वयं चाण्डालों जैसे कार्य किये हैं, और तू स्वयं निन्दा का पात्र है, तो दूसरे को कठोर वचन कैसे कह सकता है? हे मूर्ख! केवल धर्म से ही युद्ध नहीं जीता जासकता। उनलोगों ने भी जो अधर्म के कार्य किये उन्हें सुन ले। शत्रुओं ने अधर्म से ही छलकर मद्रराज शल्य को अपने पक्ष में खींच लिया। उन्होंने अधर्म से ही बालक अभिमन्यु को मारा था। इधर से भी शत्रु के नगर को जीतनेवाले भीष्म को अधर्म द्वारा ही गिराया गया। तुझ धर्म को जाननेवाले ने भूरिश्रवा को भी अधर्म से ही मारा था।

एवं परैराचरितं पाण्डवेयैश्च संयुगे॥ २४॥
रक्षमाणैर्जयं वीरैर्धर्मज्ञैरपि सात्वत।
दुर्ज्ञेयः स परो धर्मस्तथाधर्मश्च दुर्विदः॥ २५॥
युध्यस्व कौरवैः सार्धं मा गा पितृनिवेशनम्।
तच्छ्रुत्वा क्रोधताम्राक्षः सात्यकिस्त्वाददे गदाम्॥ २६॥
ततोऽभिपत्य पाञ्चाल्यं संरम्भेणेदमब्रवीत्।
न त्वां वक्ष्यामि परुषं हनिष्ये त्वां वधक्षमम्॥ २७॥

हे सात्वत! इसप्रकार धर्म को जाननेवाले शत्रुओं और पाण्डवों ने भी विजय को प्राप्त करने के लिये समयसमय पर अधर्म के कार्य किये हैं। धर्म के सहीरूप को जानना बहुत कठिन है, इसीप्रकार अधर्म को जानना भी मुश्किल है। इसलिये कौरवों के साथ युद्ध कर, मुझसे युद्ध करके पितृलोक में जाने की तैयारी मत कर। धृष्टद्युम्न की ये बातें सुनकर क्रोध से लाल आँखेंकरके सात्यकि ने गदा को उठा लिया और धृष्टद्युम्न के समीप जाते हुए अत्यन्त क्रोध से यह कहने लगा कि अब मैं तुझसे कठोर बात नहीं कहूँगा। तू मारनेयोग्य है, तुझे मार ही दूँगा।

चोदितो वासुदेवेन भीमसेनो महाबलः।
द्रवमाणं तथा क्रुद्धं सात्यकिं पाण्डवो बली॥ २८॥
प्रस्पन्दमानमादाय जगाम बलिनं बलात्।
स्थित्वा विष्टभ्य चरणौ भीमेन शिनिपुङ्गवः॥ २९॥
निगृहीतः पदे षष्ठे बलेन बलिनां वरः।
उवाच श्लक्ष्णया वाचा सहदेवो विशाम्पते॥ ३०॥

इसप्रकार क्रोध में भरकर आगे बढ़ते तथा झपटते हुए सात्यकि को तब श्रीकृष्ण जी से प्रेरणा प्राप्त कर महाबली भीम ने बलपूर्वक थामकर उसके साथ साथ चलना आरम्भ कर दिया। फिर छठे कदम पर बलवानों में श्रेष्ठ शिनिपुंगव को भीम ने पैरों को जमाकर बलपूर्वक रोक दिया। हे प्रजानाथ! फिर सहदेव मधुर वाणी से सात्यकि से बोले कि–

अस्माकं पुरुषव्याघ्र मित्रमन्यन्न विद्यते।
परमन्धकवृष्णिभ्यः पञ्चालेभ्यश्च मारिष॥ ३१॥
तथैवान्धकवृष्णीनां तथैव च विशेषतः।
कृष्णस्य च तथास्मत्तो मित्रमन्यन्न विद्यते॥ ३२॥
पञ्चालानां च वार्ष्णेय समुद्रान्तांविचिन्वताम्।
नान्यदस्ति परं मित्रं यथा पाण्डववृष्णयः॥ ३३॥
स भवानीदृशं मित्रं मन्यते च यथा भवान्।
भवन्तश्च यथास्माकं भवतां च तथा वयम्॥ ३४॥

हे पुरुषव्याघ्र! हे मान्यवर! अन्धक, वृष्णि और पाँचालों से बढ़कर हमारा और कोई मित्र नहीं है। इसीप्रकार अन्धक और वृष्णिवंशियों का विशेषतः श्रीकृष्णजी का हमलोगों से बढ़कर कोई और मित्र नहीं है। हे वार्ष्णेय! पाँचाललोग भी यदि समुद्र के अन्ततक सारी भूमि पर ढूँढें तो उन्हें अपना पाण्डवों और वृष्णिवंशियों से बढ़कर मित्र कोई नहीं मिलेगा। आप भी हमारे ऐसेही मित्र हैं, जैसा आप स्वयं मानते हैं। आप हमारे जैसे मित्र हैं, वैसेही हम आपके मित्र हैं।

स एवं सर्वधर्मज्ञ मित्रधर्ममनुस्मरन्।
नियच्छ मन्युं पाञ्चाल्यात् प्रशाम्य शिनिपुङ्गव॥ ३५॥
पार्षतस्य क्षम त्वं वै क्षमतां पार्षतश्च ते।
वयं क्षमयितारश्च किमन्यत्र शमाद् भवेत्॥ ३६॥
प्रशाम्यमाने शैनेये सहदेवेन मारिष।
पाञ्चालराजस्य सुतः प्रहसन्निदमब्रवीत्॥ ३७॥

इसप्रकार सारे धर्मों को जाननेवाले शिनिश्रेष्ठ! आप मित्र के धर्म को स्मरण करो और पाँचालकुमार की तरफ से अपने क्रोध को वश में करके शान्त होजाओ। तुम द्रुपदपुत्र के अपराध को क्षमा कर दो और द्रुपदपुत्र आपके अपराध को क्षमा करदे। हमतो क्षमा की प्रार्थना करने वाले हैं ही। शान्ति से बढ़कर और क्या चीज़ हो सकती है। हे मान्यवर! सहदेव के द्वारा इसप्रकार शान्ति स्थापना के लिये प्रयत्न किये जाते हुए, पाँचालराजपुत्र ने हँसते हुए यह कहा कि–

मुञ्चमुञ्च शिनेः पौत्रं भीम युद्धमदान्वितम्।
आसादयतु मामेष धराधरमिवानिलः॥ ३८॥
यावदस्य शितैर्बाणैः संरम्भं विनयाम्यहम्।
युद्धश्रद्धां च कौन्तेय जीवितं चास्य संयुगे॥ ३९॥

हे भीम! इस युद्ध के मद से युक्त शिनि के पौत्र को छोड़ दो। इसे मेरे साथ ऐसे ही टकराने दो, जैसे वायु पर्वत से टकराती है। हे कुन्तीपुत्र! मैं तीखे बाणों से इसके क्रोध को दूर कर देता हूँ। मैं इसके युद्ध के उत्साह और जीवन को भी इस युद्धक्षेत्र में समाप्त करदेता हूँ।

शृण्वन् पाञ्चालवाक्यानि सात्यकिः सर्पवच्छ्वसन्।
भीमबाह्वन्तरे सक्तो विस्फुरत्यनिशं बली॥ ४०॥
तौ वृषाविव नर्दन्तौ बलिनौ बाहुशालिनौ।
त्वरया वासुदेवश्च धर्मराजश्च मारिष॥ ४१॥
यत्नेन महता वीरौ वारयामासतुस्ततः।
निवार्य परमेष्वासौ कोपसंरक्तलोचनौ।
युयुत्सूनपरान् संख्ये प्रतीयुः क्षत्रियर्षभाः॥ ४२॥

धृष्टद्युम्न की बातें सुनकर बलवान् सात्यकि भीम की बाहों में फँसे हुए, सर्प के समान लम्बी साँसें लेते हुए लगातार छूटने का प्रयत्न कर रहे थे। लम्बी भुजाओं वाले वेदोनों वीर उस समय साँडों के समान गर्ज रहे थे। हे मान्यवर! तब श्रीकृष्णजी और धर्मराज युधिष्ठिर ने शीघ्रता से बड़े प्रयत्नपूर्वक उन्हें रोका। क्रोध से लाल आँखें किये हुए उन महाधनुर्धरों को रोककर फिर वे क्षत्रियश्रेष्ठ युद्ध करने की इच्छा से आते हुए शत्रुओं का सामना करने के लिये युद्धक्षेत्र में चल दिये।

एकसौ बत्तीसवाँ अध्याय : अश्वत्थामा के द्वारा नारायणास्त्र का प्रयोग। श्रीकृष्ण जी के द्वारा बताये गये उपाय से उसकी शान्ति।

ततः समागमो राजन् कुरुपाण्डवसेनयोः।
पुनरेवाभवत् तीव्रः पूर्णसागरयोरिव॥ १॥
संरब्धा हि स्थिरीभूता द्रोणपुत्रेण कौरवाः।
उदग्राः पाण्डुपञ्चाला द्रोणस्य निधनेन च॥ २॥
तेषा परमहृष्टानां जयमात्मनि पश्यताम्।
संरब्धानां महावेगः प्रादुरासीद् विशाम्पते॥ ३॥
यथा शिलोच्चये शैलः सागरे सागरो यथा।
प्रतिहन्येत राजेन्द्र तथाऽऽसन् कुरुपाण्डवाः॥ ४॥

हे राजन्! तब भरे हुए दो सागरों के परस्पर टकराने के समान कौरव और पाण्डवसेनाओं में पुनः घोर युद्ध आरम्भ होगया। कौरवसेनाएँ द्रोणपुत्रद्वारा स्थिर किये जाने पर क्रोध में भर गयी थीं और पाण्डव तथा पाँचालसेनाएँ द्रोणाचार्य के मारे जाने से उद्धत होरही थीं। हे प्रजानाथ! अत्यन्त उत्साहित अपनी विजय की आशा करनेवाली और क्रोध में भरी हुई उन सेनाओं का उस समय महान् वेग प्रकट हुआ। जैसे एक पर्वत दूसरे पर्वत से टकराये या एक सागर दूसरे सागर से टकराये वैसीही अवस्था कौरव और पाण्डवसेनाओं की उस समय होरही थी।

प्रादुश्चक्रे ततो द्रौणिरस्त्रं नारायणं तदा।
अभिसंधाय पाण्डूनां पञ्चालानां च वाहिनीम्॥ ५॥
वध्यमानास्तदास्त्रेण तेन नारायणेन वै।
दह्यमानानलेनेव सर्वतोऽभ्यर्दिता रणे॥ ६॥
यथा हि शिशिरापाये दहेत् कक्षं हुताशनः।
तथा तदस्त्रं पाण्डूनां ददाह ध्वजिनीं प्रभो॥ ७॥
आपूर्यमाणेनास्त्रेण सैन्ये क्षीयति च प्रभो।
जगाम परमं त्रासं धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः॥ ८॥

फिर द्रोणपुत्र ने पाँचालों तथा पाण्डवों की सेना को लक्ष्य करके नारायणास्त्र को प्रकट किया। उस नारायणास्त्र से घायल होते हुए सैनिक युद्धभूमि में सबतरफ से ऐसे पीड़ित होने लगे, जैसे आग से झुलस रहे हों। जैसे गर्मी में लगी हुई आग सूखे वन को जला देती है, वैसेही हे प्रभो! वह अस्त्र पाण्डवों की सेना को जलाने लगा। जब उसका प्रभाव सबतरफ बढ़ने लगा और पाण्डव सेना क्षीण होने लगी, तब धर्मपुत्र युधिष्ठिर को बड़ा भय हुआ।

द्रवमाणं तु तत् सैन्यं दृष्ट्वा विगतचेतनम्।
मध्यस्थतां च पार्थस्य धर्मपुत्रोऽब्रवीदिदम्॥ ९॥
धृष्टद्युम्न पलायस्व सह पाञ्चालसेनया।
सात्यके त्वं च गच्छस्व वृष्ण्यन्धकवृतो गृहान्॥ १०॥
वासुदेवोऽपि धर्मात्मा करिष्यत्यात्मनः क्षमम्।
श्रेयो ह्युपदिशत्येष लोकस्य किमुतात्मनः॥ ११॥
संग्रामस्तु न कर्तव्यः सर्वसैन्यान् ब्रवीमि वः।
अहं हि सह सोदर्यैः प्रवेक्ष्ये हव्यवाहनम्॥ १२॥

उन्होंने जब अपनी सेना को चेतनारहित सी होकर भागते हुए और अर्जुन को तटस्थभाव से खड़े हुए देखा, तब यह कहा कि हे धृष्टद्युम्न! तुम अपनी पाँचालसेना के साथ भाग जाओ। हे सात्यकि! तुम भी अपने वृष्णि और अन्धकवीरों को लेकर घर जाओ। धर्मात्मा श्रीकृष्ण भी अपना कल्याण कर लेंगे। ये संसार को कल्याण का मार्ग बताते हैं, तो क्या अपना कल्याण नहीं करेंगे? मैं तुम सभी सैनिकों से कहता हूँ कि युद्ध मत करो। मैं अपने भाइयों के साथ अग्नि में प्रवेश कर जाऊँगा।

भीष्मद्रोणार्णवं तीर्त्वा संग्रामे भीरुदुस्तरे।
विमज्जिष्यामि सलिले सगणो द्रौणिगोष्पदे॥ १३॥
कामः सम्पद्यतामस्य बीभत्सोराशु मां प्रति।
कल्याणवृत्तिराचार्यो मया युधि निपातितः॥ १४॥
येन बालः स सौभद्रो युद्धानामविशारदः।
समर्थैर्बहुभिः क्रूरैर्घातितो नाभिपालितः॥ १५॥
येनाविब्रुवता प्रश्नं तथा कृष्णा सभां गता।
उपेक्षिता सपुत्रेण दासभावं नियच्छती॥ १६॥

कायरों के लिये दुस्तर इस संग्राम में भीष्म और द्रोणाचार्यरूपी सागरों को पारकर अब मैं अपने बान्धवों सहित द्रोणपुत्ररूपी गाय के खुर जितने जल में डूब जाऊँगा। अर्जुन की जो मेरे प्रति शुभकामना है, वह शीघ्र पूरी होजानी चाहिये, क्योंकि मैंने कल्याण करनेवाले आचार्य को युद्ध में मरवा दिया है। जिन्होंने बालक सुभद्रापुत्र को, जो युद्ध में विशारद नहीं था, बहुत से शक्तिशाली क्रूर महारथियों के द्वारा मरवा दिया और उसकी रक्षा नहीं की, अपने पुत्रसहित जिन्होंने सभा में लायी गयी द्रौपदी

के प्रश्न का उत्तर न देकर उसके प्रति उपेक्षा दिखाई। वह बेचारी उस समय हमारे दासभाव के निवारण का प्रयत्न कर रही थी।

रक्षणे च महान् यत्नः सैन्धवस्य कृतो युधि।
अर्जुनस्य विघातार्थं प्रतिज्ञा येन रक्षिता॥ १७॥
व्यूहद्वारि वयं चैव धृता येन जिगीषवः।
वारितं च महत् सैन्यं प्रविशत् तद् यथाबलम्॥ १८॥
येन ब्रह्मास्त्रविदुषा पञ्चालाः सत्यजिन्मुखाः।
कुर्वाणा मज्जये यत्नं समूला विनिपातिताः॥ १९॥
येन प्रव्राज्यमानाश्च राज्याद् वयमधर्मतः।
निवार्यमाणा नु वयं नानुयातास्तदैषिणः॥ २०॥

जिन्होंने युद्ध में अर्जुन के विनाश तथा जयद्रथ की रक्षा के लिये महान् प्रयत्न किया और अपनी प्रतिज्ञा रखी। जिन्होंने विजय की इच्छा से आगे बढ़ते हुए हमलोगों को व्यूह के द्वार पर ही रोक दिया तथा यथाशक्ति प्रवेश करने का प्रयत्न करती हुई हमारी महान् सेना को भी रोक दिया। ब्रह्मास्त्र को जाननेवाले जिन्होंने मेरी विजय के लिये प्रयत्न करते हुए सत्यजित् आदि पाँचालवीरों को समूल नष्ट कर दिया। जब हमें अधर्मपूर्वक राज्य से निर्वासित किया जारहा था, तब जिन्होंने हमें शान्त करने की तो कोशिश की, पर उनके हितैषी हमलोगों का साथ नहीं दिया।

योऽसावत्यन्तमस्मासु कुर्वाणः सौहृदं परम्।
हतस्तदर्थे मरणं गमिष्यामि सबान्धवः॥ २१॥
एवं ब्रुवति कौन्तेये दाशार्हस्त्वरितस्ततः।
निवार्य सैन्यं बाहुभ्यामिदं वचनमब्रवीत्॥ २२॥
शीघ्रं न्यस्यत शस्त्राणि वाहेभ्यश्चावरोहत।
द्विपाश्वस्यन्दनेभ्यश्च क्षितिं सर्वेऽवरोहत॥ २३॥
एवमेतन्न वो हन्यादस्त्रं भूमौ निरायुधान्।
निक्षेप्स्यन्ति च शस्त्राणि वाहनेभ्योऽवरुह्य ये॥ २४॥
तान्नैतदस्त्रं संग्रामे निहनिष्यति मानवान्।

इसप्रकार जो हम पर बहुतही अधिक प्रेम करते थे, वे द्रोणाचार्य मारे गये हैं, इसलिये उनके लिये अब मैं भी अपने बान्धवोंसहित मर जाऊँगा। कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर के ऐसा कहने पर तब श्रीकृष्ण जी ने शीघ्रता से दोनों हाथ उठाकर सेना को रोकते हुए कहा कि आपलोग जल्दी से अपने हथियारों को नीचे डाल दो और सवारियों से नीचे उतर आओ। सारेलोग हाथी, रथ और घोड़ों से उतरकर पृथिवी पर पड़ जायें। इसप्रकार भूमि पर पड़े हुए निहत्थे लोगों को यह अस्त्र नहीं मारेगा। जोलोग सवारियों से उतरकर हथियार डाल देंगे, उनको यह अस्त्र युद्धस्थल में नहीं मारेगा।

तत उत्स्रष्टुकामांस्तानस्त्राण्यालक्ष्य पाण्डवः॥ २५॥
भीमसेनोऽब्रवीद् राजन्निदं संहर्षयन् वचः।
न कथंचन शस्त्राणि मोक्तव्यानीह केनचित्॥ २६॥
अहमावारयिष्यामि द्रोणपुत्रास्त्रमाशुगैः।
यदि नारायणास्त्रस्य प्रतियोद्धा न विद्यते॥ २७॥
अद्यैतत् प्रतियोत्स्यामि पश्यत्सु कुरुपाण्डुषु।

तब उन सबको अस्त्रों का त्याग करने के लिये इच्छुक देखकर हे राजन्! पाण्डुपुत्र भीमसेन उत्साहित करते हुए बोले कि किसी को भी किसीप्रकार भी हथियार नहीं डालने चाहिये। मैं अपने शीघ्रगामी बाणों के द्वारा द्रोणपुत्र के इस अस्त्र का निवारण करूँगा। यदि नारायणास्त्र का सामना करने वाला कोई योद्धा नहीं है, तो कौरवों और पाण्डवों के देखते हुए मैं इसका सामना करूँगा।

एवमुक्त्वा ततो भीमो द्रोणपुत्रमरिंदमम्॥ २८॥
अभ्ययान्मेघघोषेण रथेनादित्यवर्चसा।
स एनमिषुजालेन लघुत्वाच्छीघ्रविक्रमः॥ २९॥
निमेषमात्रेणासाद्य कुन्तीपुत्रोऽभ्यवाकिरत्।
तदस्त्रं द्रोणपुत्रस्य तस्मिन् प्रतिसमस्यति॥ ३०॥
अवर्धत महाराज यथाग्निरनिलोद्धतः।

ऐसा कहकर भीम ने शत्रुदमन अश्वत्थामा पर अपने सूर्य के समान तेजस्वी और मेघ के समान ध्वनिवाले रथ के द्वारा आक्रमण कर दिया। फुर्ती के साथ शीघ्र पराक्रम करने वाले कुन्तीपुत्र भीम ने तब पलभर में ही उसके समीप जाकर उसे अपने बाण समूहों से आच्छादित कर दिया। द्रोणपुत्र के उस अस्त्र पर जब भीम बाणचलाने लगे, तब हे महाराज! जैसे वायु का आश्रय पाकर अग्नि भड़कती है, वैसे ही उस अस्त्र का वेग भी बढ़ने लगा।

विवर्धमानमालक्ष्य तदस्त्रं भीमविक्रमम्॥ ३१॥
पाण्डुसैन्यमृते भीमं सुमहद् भयमाविशत्।
ततः शस्त्राणि ते सर्वे समुत्सृज्य महीतले॥ ३२॥
अवारोहन् रथेभ्यश्च हस्त्यश्वेभ्यश्च सर्वशः।
तेषु निक्षिप्तशस्त्रेषु वाहनेभ्यश्च्युतेषु च॥ ३३॥

तदस्त्रवीर्यं विपुलं भीममूर्धन्यथापतत्।
हाहाकृतानि भूतानि पाण्डवाश्च विशेषतः॥ ३४॥
भीमसेनमपश्यन्त तेजसा संवृतं तथा।

तब उस अस्त्र के बढ़ते वेग को देखकर भयंकर पराक्रम वाले भीम को छोड़कर सारी सेना अत्यन्त भयभीत हो गयी। वे सारे हथियारों को छोड़कर, रथों, घोड़ों, और हाथियों से पूरीतरह से नीचे भूमि पर उतर गये। तब उन सबके शस्त्र त्याग करने और वाहनों को छोड़ देने पर उस अस्त्र का सारा वेग भीम के ऊपर ही पड़ने लगा। नारायणास्त्र के तेज से घिरे हुए भीमसेन को तब न देख पाने के कारण सारे मनुष्यों विशेषरूप से पाण्डवों में हाहाकार होने लगा।

भीमसेनं समाकीर्णं दृष्ट्वास्त्रेण धनंजयः॥ ३५॥
तेजसः प्रतिघातार्थं वारुणेन समावृणोत्।
सूर्यमग्निः प्रविष्टः स्याद् यथा चाग्निं दिवाकरः॥ ३६॥
तथा प्रविष्टं तत् तेजो न प्राज्ञायत पाण्डवः।

तब भीमसेन को नारायणास्त्र से घिरा हुआ देखकर अर्जुन ने उसके तेज का निवारण करने के लिये भीम को वारुणास्त्र से ढक दिया। जैसे सूर्य में अग्नि प्रविष्ट हो जाये और जैसे अग्नि में सूर्य प्रविष्ट हो जाये, उसी प्रकार उस अस्त्र का तेज तब भीम के ऊपर छा गया था और वह पाण्डुपुत्र दिखाई नहीं देते थे।

विकीर्णमस्त्रं तद् दृष्ट्वा तथा भीमरथं प्रति॥ ३७॥
सर्वसैन्यं च पाण्डूनां न्यस्तशस्त्रमचेतनम्।
युधिष्ठिरपुरोगांश्च विमुखांस्तान् महारथान्॥ ३८॥
अर्जुनो वासुदेवश्च भीममाद्रवतां ततः।

उस अस्त्र के प्रभाव को भीमसेन के रथ पर फैला हुआ देखकर और यह देखकर कि पाण्डवों की सारी सेना ने चेतना रहित से होते हुए हथियारों को त्याग दिया है तथा युधिष्ठिर आदि सारे महारथी युद्ध से विमुख हो गये हैं अर्जुन और श्रीकृष्ण तब भीम की तरफ दौड़े।

तमब्रवीद् वासुदेवः किमिदं पाण्डुनन्दन॥ ३९॥
वार्यमाणोऽपि कौन्तेय यद् युद्धान्न निवर्तसे।
यदि युद्धेन जेयाः स्युरिमे कौरवनन्दनाः॥ ४०॥
वयमप्यत्र युध्येम तथा चेमे नरर्षभाः।
रथेभ्यस्त्ववतीर्णाः स्म सर्वं एव हि तावकाः॥ ४१॥
तस्मात् त्वमपि कौन्तेय रथात् तूर्णमपाक्रम।
एवमुक्त्वा तु तं कृष्णो रथाद् भूमिमवर्तयत्॥ ४२॥
निःश्वसन्तं यथा नागं क्रोधसंरक्तलोचनम्।

श्रीकृष्ण जी ने तब भीम से कहा कि हे पाण्डुनन्दन कुन्तीपुत्र! यह क्या कर रहे हो? जो मना करने पर भी युद्ध से अलग नहीं हो रहे हो? यदि ये कौरवनन्दन युद्ध के द्वारा जीते जा सकते तो ये सारे नरश्रेष्ठ और हम सब भी युद्ध करते। तुम्हारे सारे सैनिक रथों से उतर गये हैं, इसलिये हे कुन्तीपुत्र! तुम भी तुरन्त रथ से नीचे उतर आओ। ऐसा कहकर श्रीकृष्ण जी ने क्रोध से लाल आँखें किये और साँप के समान लम्बी साँस लेते हुए भीमसेन को रथ से भूमि पर उतार लिया।

यदापकृष्टः स रथान्न्यासितश्चायुधं भुवि॥ ४३॥
ततो नारायणास्त्रं तत् प्रशान्तं शत्रुतापनम्।
तस्मिन् प्रशान्ते विधिना तेन तेजसि दुःसहे॥ ४४॥
बभूवुर्विमलाः सर्वा दिशः प्रदिश एव च।
प्रववुश्च शिवा वाताः प्रशान्ता मृगपक्षिणः॥ ४५॥
वाहनानि च हृष्टानि प्रशान्तेऽस्त्रे सुदुर्जये।
हतशेषं बलं तत् तु पाण्डवानामतिष्ठत॥ ४६॥
अस्त्रव्युपरमाद्धृष्टं तव पुत्रजिघांसया।

जब वे रथ से उतर गये और उनसे शस्त्रास्त्र भूमि पर रखवा लिये गये तब शत्रु को तपानेवाला वह नारायणास्त्र शान्त होगया। तब इस विधि से उस दुःसह तेज के शान्त होजाने पर सारी दिशाएँ तथा उपदिशाएँ निर्मल होगयीं। सुखदायी वायु चलने लगी, पशुपक्षियों का चिल्लाना बन्द होगया और अत्यन्तदुर्जय अस्त्र के शान्त होने पर वाहन भी प्रसन्नता से भर गये। उस समय पाण्डवों की जो सेना मरने से बच गयी थी, वह अस्त्र की शान्ति से आपके पुत्रों को मारने की इच्छा से पुनः उत्साह से युक्त होगयी।

व्यवस्थिते बले तस्मिन्नस्त्रे प्रतिहते तथा॥ ४७॥
दुर्योधनो महाराज द्रोणपुत्रमथाब्रवीत्।
अश्वत्थामन् पुनः शीघ्रमस्त्रमेतत् प्रयोजय॥ ४८॥
अवस्थिता हि पञ्चालाः पुनरेते जयैषिणः।
अश्वत्थामा तथोक्तस्तु तव पुत्रेण मारिष॥ ४९॥
सुदीनमभिनिःश्वस्य राजानमिदमब्रवीत्।

नारायणास्त्र के प्रतिहत तथा शत्रुसेना के व्यवस्थित हो जाने पर हे महाराज! दुर्योधन ने द्रोणपुत्र से कहा कि हे अश्वत्थामा! इस नारायणास्त्र का पुन प्रयोग

करो, क्योंकि विजय के इच्छुक ये पाँचाल फिर युद्ध के लिये डट गये हैं। हे मान्यवर! आपके पुत्रद्वारा ऐसा कहे जाने पर अश्वत्थामा ने दीनता के साथ लम्बी साँस लेकर राजा से यह कहा कि–

नैतदावर्तते राजन्नस्त्रं द्विर्नोपपद्यते॥ ५०॥
एष चास्त्रप्रतीघातं वासुदेवः प्रयुक्तवान्।
अन्यथा विहितः संख्ये वधः शत्रोर्जनाधिप॥ ५१॥

दुर्योधन उवाच

आचार्यपुत्र यद्येतद् द्विरस्त्रं न प्रयुज्यते।
अन्यैर्गुरुघ्नान् वध्यन्तामस्त्रैरस्त्रविदां वर॥ ५२॥

हे राजन्! यह अस्त्र न तो वापिस लौटता है और न दूसरीबार प्रयोग किया जासकता है। श्रीकृष्ण ने इस अस्त्र को रोकने का प्रयोग कर दिया, नहीं तो हे जनाधिप! युद्धस्थल में सारे शत्रुओं का वध होगया होता। तब दुर्योधन ने कहा कि हे आचार्यपुत्र! यदि इस अस्त्र का दुबारा प्रयोग नहीं होसकता, तो आपतो अस्त्रवेत्ताओं में श्रेष्ठ हो। दूसरे अस्त्रों से इन गुरुघातियों का वध करो।

एकसौ तेतीसवाँ अध्याय : अश्वत्थामा के द्वारा मालवराज सुदर्शन, वृद्धक्षत्र और चेदिराजकुमार का वध।

जानन् पितुः स निधनं सिंहलाङ्गूलकेतनः।
सक्रोधो भयमुत्सृज्य सोऽभिदुद्राव पार्षतम्॥ १॥
अभिद्रुत्य च विंशत्या क्षुद्रकाणां नरर्षभ।
पञ्चभिश्चातिवेगेन विव्याध पुरुषर्षभः॥ २॥
धृष्टद्युम्नस्ततो राजन् ज्वलन्तमिव पावकम्।
द्रोणपुत्रं त्रिषष्ट्या तु राजन् विव्याध पत्रिणाम्॥ ३॥
सारथिं चास्य विंशत्या स्वर्णपुङ्खैः शिलाशितैः।
हयांश्च चतुरोऽविध्यच्चतुर्भिर्निशितैः शरैः॥ ४॥

तब सिंह की पूँछ के चिह्न की ध्वजा वाले अश्वत्थामा ने अपने पिता की मृत्यु का स्मरण करते हुए क्रोधसहित द्रुपदपुत्र पर आक्रमण किया। हे नरश्रेष्ठ! उस पुरुषश्रेष्ठ ने पहले बीस क्षुद्रक नाम के बाणों की वर्षा की और फिर अत्यन्त वेग से पाँच बाणों से धृष्टद्युम्न को घायल किया। हे राजन्! तब धृष्टद्युम्न ने अश्वत्थामा पर जलती हुई अग्नि के समान तिरेसठ बाणों की वर्षा करके उसे घायल किया। फिर उसके सारथि पर शिला पर साफ किये, सुनहरे पंखवाले बीस बाणों की वर्षा करके और घोड़ों को चार तीखे बाणों से घायल कर दिया।

ततो बाणमयं वर्षं द्रोणपुत्रस्य मूर्धनि।
अवासृजदमेयात्मा पाञ्चाल्यो रथिनां वरः॥ ५॥
तं द्रौणिः समरे क्रुद्धं छादयामास पत्रिभिः।
विव्याध चैनं दशभिः पितुर्वधमनुस्मरन्॥ ६॥
द्वाभ्यां च सुविसृष्टाभ्यां क्षुराभ्यां ध्वजकार्मुके।
छित्त्वा पाञ्चालराजस्य द्रौणिरन्यैः समार्दयत्॥ ७॥
व्यश्वसूतरथं चैनं द्रौणिश्चक्रे महाहवे।
तस्य चानुचरान् सर्वान् क्रुद्धः प्राद्रावयच्छरैः॥ ८॥

रथियों में श्रेष्ठ अमितआत्मा, बलवान् धृष्टद्युम्न ने हे राजन्! द्रोणपुत्र के सिर पर बाणों की वर्षा आरम्भ कर दी। तब द्रोणपुत्र ने पिता के वध को याद करते हुए, क्रुद्धहोकर, युद्धस्थल में उसे बाणों से आच्छादित कर दिया और दस बाणों से उसे चोट पहुँचायी। द्रोणपुत्र ने अच्छीतरह से छोड़े हुए दो क्षुर नामके बाणों से पाँचालराज के ध्वज और धनुष को काट दिया और दूसरे बाणों से उसे अच्छीतरह से पीड़ित किया। क्रुद्ध द्रोणपुत्र ने उसे बिना घोड़ों, सारथि और रथवाला बना दिया तथा बाणों से उसके सारे पीछे चलनेवाले सेवकों को भगा दिया।

दृष्ट्वा तु विमुखान् योधान् धृष्टद्युम्नं च पीडितम्।
शैनेयोऽचोदयत् तूर्णं रथं द्रौणिरथं प्रति॥ ९॥
अष्टभिर्निशितैर्बाणैरश्वत्थामान- मार्दयत्।
विंशत्या पुनराहत्य नानारूपैरमर्षणः॥ १०॥
विव्याध च तथा सूतं चतुर्भिश्चतुरो हयान्।
धनुर्ध्वजं च संयत्तश्चिच्छेद कृतहस्तवत्॥ ११॥
स साश्वं व्यधमच्चापि रथं हेमपरिष्कृतम्।
हृदि विव्याध समरे त्रिंशता सायकैर्भृशम्॥ १२॥

तब योद्धाओं को युद्ध से विमुख और धृष्टद्युम्न को पीड़ित देखकर सात्यकि ने तुरन्त अपने रथ को

अश्वत्थामा के रथ की तरफ बढ़ाया। उस अमर्षशील ने आठ तीखे बाणों से अश्वत्थामा को पीड़ित किया और फिर बीस दूसरे अनेक प्रकार के बाणों से घायल कर एक सिद्धहस्त के समान बीस बाणों से सारथि को, चार बाणों से चारों घोड़ों को घायल कर सावधानी के साथ उसके धनुष और ध्वज को भी काट दिया। फिर युद्धक्षेत्र में घोड़ों सहित उसके सुवर्ण भूषित रथ को भी तोड़ दिया और उसकी छाती पर तीस बाणों से गहरी चोट पहुँचायी।

एवं स पीडितो राजन्नश्वत्थामा महाबलः।
शरजालैः परिवृतः कर्तव्यं नान्वपद्यत॥ १३॥
एवं गते गुरोः पुत्रे तव पुत्रो महारथः।
कृपकर्णादिभिः सार्धं शरैः सात्वतमावृणोत्॥ १४॥
दुर्योधनस्तु विंशत्या कृपः शारद्वतस्त्रिभिः।
कृतवर्माथ दशभिः कर्णः पञ्चाशता शरैः॥ १५॥
दुःशासनः शतेनैव वृषसेनश्च सप्तभिः।
सात्यकिं विव्यधुस्तूर्णं समन्तान्निशितैः शरैः॥ १६॥

हे राजन्! इसप्रकार पीड़ित किया बाणों के समूह से घिरा हुआ महाबली अश्वत्थामा उस समय किंकर्त्तव्यविमूढ होगया। तब गुरुपुत्र को इस अवस्था में पहुँचा देखकर आपके महारथी पुत्र ने कृपाचार्य और कर्ण आदि के साथ आकर सात्यकि को बाणों से आच्छादित कर दिया। तब दुर्योधन ने बीस, शरद्वान् पुत्र कृपाचार्य ने तीस, कृतवर्मा ने दस, कर्ण ने पचास, दुश्शासन ने सौ और वृषसेन ने सात बाणों की वर्षा कर सात्यकि को तुरन्त चारोंतरफ से तीखे बाणोंद्वारा घायल कर दिया।

ततः स सात्यकी राजन् सर्वानेव महारथान्।
विरथान् विमुखांश्चैव क्षणेनैवाकरोन्नृप॥ १७॥
अश्वत्थामा तु सम्प्राप्य चेतनां भरतर्षभ।
चिन्तयामास दुःखार्तो निःश्वसंश्च पुनः पुनः॥ १८॥
अथो रथान्तरं द्रौणिः समारुह्य परंतपः।
सात्यकिं वारयामास किरञ्शरशतान् बहून्॥ १९॥
तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य भारद्वाजसुतं रणे।
विरथं विमुखं चैव पुनश्चक्रे महारथः॥ २०॥

हे राजन्! तब सात्यकि ने उन सारे महारथियों को क्षणभर में ही रथों से हीन तथा युद्ध से विमुख कर दिया। हे भरतश्रेष्ठ! तब अश्वत्थामा होश में आकर, दुःख से पीड़ित होकर, बार बार लम्बी साँसें लेता हुआ चिन्ता में डूबा रहा। फिर शत्रुओं को संतप्त करने वाला वह दूसरे रथपर बैठकर आया और सैकड़ों बाणों की वर्षा करते हुए उसने सात्यकि को रोका। उस महारथी ने द्रोणपुत्र को युद्धस्थल में पुनः अपनी तरफ आते हुए देखकर उसे फिर से रथ से हीन और युद्ध से विमुख कर दिया।

ततस्ते पाण्डवा राजन् दृष्ट्वा सात्यकिविक्रमम्।
शङ्खशब्दान् भृशं चक्रुः सिंहनादांश्च नेदिरे॥ २१॥
एवं तं विरथं कृत्वा सात्यकिः सत्यविक्रमः।
जघान वृषसेनस्य त्रिसाहस्रान् महारथान्॥ २२॥
ततो द्रौणिर्महाराज रथमारुह्य वीर्यवान्।
सात्यकिं प्रतिसंक्रुद्धः प्रययौ तद्वधेप्सया॥ २३॥
पुनस्तमागतं दृष्ट्वा शैनेयो निशितैः शरैः।
अदारयत् क्रूरतरैः पुनः पुनररिंदम॥ २४॥

हे राजन्! तब पाण्डववीर सात्यकि के विक्रम को देखकर जोर से शंखों को बजाने और सिंहनादों को करने लगे। सत्यविक्रमी सात्यकि ने इसप्रकार अश्वत्थामा को रथहीन करके वृषसेन के सहायक तीन हजार विशाल रथों को भी नष्ट कर दिया। हे महाराज! पराक्रमी द्रोणपुत्र पुनः रथपर चढ़कर, सात्यकि के लिये अत्यन्त क्रोध में भरा हुआ, उसके वध की इच्छा से आया। उसे फिर आया हुआ देखकर शत्रुदमन सात्यकि ने अधिक क्रूर तीखे बाणों से उसे बार बार विदीर्ण किया।

सोऽतिविद्धो महेष्वासो नानालिङ्गैरमर्षणः।
युयुधानेन वै द्रौणिः प्रहसन् वाक्यमब्रवीत्॥ २५॥
शैनेयाभ्युपपत्तिं ते जानाम्याचार्यघातिनि।
न चैनं त्रास्यसि मया ग्रस्तमात्मानमेव च॥ २६॥
शपेऽऽत्मनाहं शैनेय सत्येन तपसा तथा।
अहत्वा सर्वपाञ्चालान् यदि शान्तिमहं लभे॥ २७॥
यद् बलं पाण्डवेयानां वृष्णीनामपि यद् बलम्।
क्रियतां सर्वमेवेह निहनिष्यामि सोमकान्॥ २८॥

तब सात्यकि के द्वारा अनेकप्रकार के बाणों से अत्यन्तघायल होकर वह अमर्षशील, महाधनुर्धर द्रोणपुत्र हँसते हुए उससे बोला कि हे शिनिपौत्र! मैं जानता हूँ कि तुम्हारा आचार्य की हत्या करनेवाले धृष्टद्युम्न के प्रति अधिक प्रेम है, पर मेरे चंगुल में फँसे हुए उसे और अपने को भी तुम बचा नहीं सकोगे। हे सात्यकि! मैं अपनी, सत्य की तथा

तपस्या की शपथ खाकर कहता हूँ कि बिना सारे पाँचालों को मारे शान्ति को प्राप्त नहीं करूँगा। पाण्डवों और वृष्णियों के पास जितनाभी बल है, वे उसे लगा लें, पर मैं यहाँ सोमकों का संहार कर दूँगा।

एवमुक्त्वार्करश्म्याभं सुतीक्ष्णं तं शरोत्तमम्।
व्यसृज्यत् सात्वते द्रौणिर्वज्रं वृत्रे यथा हरिः॥ २९॥
स तं निर्भिद्य तेनास्तः सायकः सशरावरम्।
विवेश वसुधां भित्त्वा श्वसन् बिलमिवोरगः॥ ३०॥
स भिन्नकवचः शूरस्तोत्रार्दित इव द्विपः।
विमुच्य सशरं चापं भूरिव्रणपरिस्रवः॥ ३१॥
सीदन् रुधिरसिक्तश्च रथोपस्थ उपाविशत्।
सूतेनापहृतस्तूर्णं द्रोणपुत्राद् रथान्तरम्॥ ३२॥

ऐसा कहकर द्रोणपुत्र ने सूर्य की किरणों के समान चमचमाते हुए, अत्यन्ततीखे एक श्रेष्ठ बाण को सात्यकि के ऊपर ऐसे फैंका, जैसे इन्द्र ने वृत्रासुर के ऊपर वज्र को फैंका था। उसके द्वारा छोड़ा हुआ वह बाण सात्यकि को उसके कवच सहित भेदकर भूमि में इसप्रकार धँस गया जैसे फुफकारता हुआ साँप बिल में घुस जाये। तब अंकुश से मारे हुए हाथी के समान सात्यकि, जिसका कवच टूट गया था, घावों से अत्यधिक खून बह रहा था, रुधिर से लथपथ और शिथिलहोकर, धनुषबाण को छोड़कर, रथ की बैठक में बैठ गया। तब सारथि तुरन्त उसे द्रोणपुत्र के पास से दूसरे रथी के समीप लेगया।

अथान्येन सुपुङ्खेन शरेणानतपर्वणा।
आजघान भ्रुवोर्मध्ये धृष्टद्युम्नं परंतपः॥ ३३॥
स पूर्वमतिविद्धश्च भृशं पश्चाच्च पीडितः।
ससादाथ च पाञ्चाल्यो व्यपाश्रयत च ध्वजम्॥ ३४॥
तं नागमिव सिंहेन दृष्ट्वा राजञ्शरार्दितम्।
जवेनाभ्यद्रवञ्छूराः पञ्च पाण्डवतो रथाः॥ ३५॥
किरीटी भीमसेनश्च वृद्धक्षत्रश्च पौरवः।
युवराजश्च चेदीनां मालवश्च सुदर्शनः॥ ३६॥

फिर उस परंतप अश्वत्थामा ने एक दूसरे झुकी गाँठवाले, अच्छे पंखवाले बाणद्वारा धृष्टद्युम्न की भौहों के बीच में प्रहार किया। पाँचालकुमार पहलेही बहुतघायल होचुका था, अब पीछेभी पीड़ित होकर वह, रथ की बैठक में ध्वजदंड का सहारा लेकर बैठ गया। हे राजन्! तब सिंह से सताये हुए हाथी के समान धृष्टद्युम्न को बाणों से पीड़ित देखकर पाण्डवपक्ष के पाँच महारथी शीघ्रता से वहाँ आपहुँचे। वे महारथी थे– अर्जुन, भीमसेन, पौरववृद्धक्षत्र, चेदिदेश का युवराज और मालवराज सुदर्शन।

वीरं द्रौणायनिं वीराः सर्वतः पर्यवारयन्।
पञ्चभिः पञ्चभिर्बाणैरभ्यघ्नन् सर्वतः समम्॥ ३७॥
आशीविषाभैर्विंशत्या पञ्चभिस्तु शितैः शरैः।
चिच्छेद युगपद् द्रौणिः पञ्चविंशतिसायकान्॥ ३८॥
सप्तभिस्तु शितैर्बाणैः पौरवं द्रौणिरार्दयत्।
मालवं त्रिभिरेकेन पार्थं षड्भिर्वृकोदरम्॥ ३९॥
ततस्ते विव्यधुः सर्वे द्रौणिं राजन् महारथाः।
युगपच्च पृथक् चैव रुक्मपुङ्खैः शिलाशितैः॥ ४०॥
युवराजश्च विंशत्या द्रौणिं विव्याध पत्रिभिः।
पार्थश्च पुनरष्टाभिस्तथा सर्वे त्रिभिस्त्रिभिः॥ ४१॥

उनवीरों ने वीर द्रोणपुत्र को सबतरफ से घेर लिया और सबतरफ से उस पर पाँच पाँच बाणों से प्रहार किया। तब द्रोणपुत्र ने विषैले सर्पों के समान पच्चीस तीखे बाणों से एकसाथ उनके पच्चीस बाणों को काट दिया। द्रोणपुत्र ने सात तीखे बाणों से पौरव को पीड़ित किया, तीन से मालवराज को, एक से अर्जुन को, और छः बाणों से भीम को घायल किया। हे राजन्! तब उन महारथियों ने द्रोणपुत्र को एकसाथ और अलग-अलग भी शिला पर साफ किये गये, सुनहरे पंखवाले बाणों से घायल कर दिया। चेदिदेश के युवराज ने बीस, अर्जुन ने आठ और सबने तीन तीन बाणों से द्रोणपुत्र को बींध दिया।

ततोऽर्जुनं षड्भिरथाजघान
द्रौणायनिर्दशभिर्वा- सुदेवम्।
भीमं दशार्धैर्युवराजं चतुर्भि-
र्द्वाभ्यां द्वाभ्यां मालवं पौरवं च॥ ४२॥
सूतं विद्ध्वा भीमसेनस्य षड्भि-
र्द्वाभ्यां विद्ध्वा कार्मुकं च ध्वजं च।
पुनः पार्थं शरवर्षेण विद्ध्वा
द्रौणिर्घोरं सिंहनादं ननाद॥ ४३॥

फिर द्रोणपुत्र ने अर्जुन को छः, श्रीकृष्ण को दस, भीम को पाँच, चेदियुवराज को चार और मालव तथा पौरव महारथी को दोदो बाणों से बींध दिया। भीम के सारथि को छः बाणों तथा उनके धनुष तथा ध्वज को दो बाणों और अर्जुन को बाणवर्षा द्वारा बींधकर द्रोणपुत्र ने जोर से गर्जना की।

आसन्नस्य स्वरथं तीव्रतेजाः
सुदर्शनस्येन्द्रकेतु- प्रकाशौ।
भुजौ शिरश्चेन्द्रसमानवीर्य-
स्त्रिभिः शरैर्युगपत् संचकर्त॥ ४४॥
स पौरवं रथशक्त्या निहत्य
छित्त्वा रथं तिलशश्चास्य बाणैः।
छित्त्वा च बाहू वरचन्दनाक्तौ
भल्लेन कायाच्छिर उच्चकर्त॥ ४५॥
युवानमिन्दी- वरदामवर्णं
चेदिप्रभुं युवराजं प्रसह्य।
बाणैस्त्वरावान् प्रज्वलिताग्निकल्पै-
र्विद्ध्वा प्रादान्मृत्यवे साश्वसूतम्॥ ४६॥

फिर अपने रथ के समीप आये हुए मालवराज सुदर्शन की इन्द्रध्वज के समान प्रकाशित दोनों बाहों और सिर को तीव्र तेजवाले और इन्द्र के समान पराक्रमी अश्वत्थामा ने तीन बाणों से एक साथही काट दिया। उसने पौरववीर को रथशक्ति से घायलकर उसके रथ के बाणों से टुकड़ेटुकड़े कर दिये और चन्दन से चर्चित उसकी दोनों बाहों को काटकर उसके सिर को भल्ल से अलग कर दिया। फिर शीघ्रता करनेवाले अश्वत्थामा ने अपने प्रज्वलित अग्नि के समान बाणों से नीलकमल के समान चेदि के अधिपति युवक युवराज को बलपूर्वक बींधकर घोड़ों और सारथिसहित मृत्युलोक को भेज दिया।

मालवं पौरवं चैव युवराजं च चेदिपम्।
दृष्ट्वा समक्षं निहतं द्रोणपुत्रेण पाण्डवः॥ ४७॥
भीमसेनो महाबाहुः क्रोधमाहारयत् परम्।
ततः शरशतैस्तीक्ष्णैः संक्रुद्धाशीविषोपमैः॥ ४८॥
छादयामास समरे द्रोणपुत्रं परंतपः।
ततो द्रौणिर्महातेजाः शरवर्षं निहत्य तम्॥ ४९॥
विव्याध निशितैर्बाणैर्भीमसेनममर्षणः।
ततो भीमो महाबाहुर्द्रौणेर्युधि महाबलः॥ ५०॥
क्षुरप्रेण धनुश्छित्त्वा द्रौणिं विव्याध पत्रिणा।

द्रोणपुत्रद्वारा अपने मालवनरेश, पौरव और चेदिपति युवराज को मारा गया देखकर महाबाहु भीमसेन को बड़ा क्रोध आया। तब उस परंतप ने युद्धस्थल में अत्यन्तक्रुद्ध विषैले सर्पों के समान तीखे सौ बाणों की वर्षाकर द्रोणपुत्र को आच्छादित कर दिया। महातेजस्वी और अमर्षशील द्रोणपुत्र ने उस बाणवर्षा को नष्टकर भीमसेन को तीखे बाणों से बींध दिया। तत्पश्चात् महाबलवान् और महाबाहु भीमसेन ने युद्ध में द्रोणपुत्र के धनुष को क्षुरप्र से काटकर उसे बाण से घायल कर दिया।

तदपास्य धनुश्छिन्नं द्रोणपुत्रो महामनाः॥ ५१॥
अन्यत् कार्मुकमादाय भीमं विव्याध पत्रिभिः।
ततो भीमो महाबाहुः कार्तस्वरविभूषितान्॥ ५२॥
नाराचान् दश सम्प्रैषीद् यमदण्डनिभाञ्छितान्।
सोऽतिविद्धो भृशं द्रौणिः पाण्डवेन महात्मना॥ ५३॥
ध्वजयष्टिं समासाद्य न्यमीलयत लोचने।
स मुहूर्तात् पुनः संज्ञां लब्ध्वा द्रौणिर्नराधिप॥ ५४॥
क्रोधं परममातस्थौ समरे रुधिरोक्षितः।

तब महामना द्रोणपुत्र ने कटे धनुष को छोड़कर और दूसरे धनुष को लेकर भीम को बाणों से घायल कर दिया। तब महाबाहु भीम ने स्वर्णभूषित मृत्यु के समान दस नाराचों को अश्वत्थामा पर चलाया। तब मनस्वी पाण्डुपुत्र के द्वारा अत्यन्तघायल किये द्रोणपुत्र ने ध्वजदंड का सहारा लेकर अपनी आँखें बन्द कर लीं। एक मुहूर्त में पुनः होश में आकर हे राजन्! खून से लथपथ द्रोणपुत्र ने युद्ध में अत्यन्त क्रोध को प्रकट किया।

दृढं सोऽभिहतस्तेन पाण्डवेन महात्मना॥ ५५॥
वेगं चक्रे महाबाहुर्भीमसेनरथं प्रति।
तत आकर्णपूर्णानां शराणां तिग्मतेजसाम्॥ ५६॥
शतमाशीविषाभानां प्रेषयामास भारत।
भीमोऽपि समरश्लाघी तस्य वीर्यमचिन्तयन्॥ ५७॥
तूर्णं प्रासृजदुग्राणि शरवर्षाणि पाण्डवः।
ततो द्रौणिर्महाराज छित्त्वास्य विशिखैर्धनुः॥ ५८॥
आजघानोरसि क्रुद्धः पाण्डवं निशितैः शरैः।

उसे मनस्वी पाण्डुपुत्र के द्वारा गहरी चोट पहुँचायी गयी थी, इसलिये उस महाबाहु ने भीमसेन के रथपर ही वेगपूर्वक आक्रमण किया। हे भारत! उसने कानतक धनुष को खींचकर छोड़े हुए, विषैले सर्पों के समान अत्यन्ततेजस्वी सौ बाणों की भीमसेन पर वर्षा की। युद्ध की श्लाघा से युक्त पाण्डुपुत्र भीम ने भी उसके पराक्रम की परवाह न कर तुरन्त उसके ऊपर भयंकर बाणों की वर्षा आरम्भ कर दी। हे महाराज! तब क्रोध

में भरे हुए द्रोणपुत्र ने उनके धनुष को बाणों से काटकर पाण्डुपुत्र की छातीपर तीखे बाणों से प्रहार किया।

ततोऽन्यद् धनुरादाय भीमसेनो ह्यमर्षणः॥ ५९॥
विव्याध निशितैर्बाणैर्द्रौणिं पञ्चभिराहवे।
तदा द्रौणिर्महाराज शरान् हेमविभूषितान्॥ ६०॥
तैलधौतान् प्रसन्नाग्रान् प्राहिणोद् वधकाङ्क्षया।
तानन्तरिक्षे विशिखैस्त्रिधैकैकमशातयत्॥ ६१॥
विशेषयन् द्रोणसुतं तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत्।
पुनश्च शरवर्षाणि घोराण्युग्राणि पाण्डवः॥ ६२॥
व्यसृजद् बलवान् क्रुद्धो द्रोणपुत्रवधेप्सया।

तब अमर्षशील भीमसेन ने दूसरा धनुष लेकर युद्धक्षेत्र में पाँच तीखे बाणों से द्रोणपुत्र को बींध दिया। हे महाराज! तब द्रोणपुत्र ने भीम के वध की इच्छा से स्वर्णभूषित, तेल में साफ किये हुए, तीखी नोकवाले बहुतसे बाणों को चलाया। अपनी विशेषता प्रकट करते हुए भीमसेन ने अपने बाणों से, उन बाणों के, आकाश में ही तीनतीन टुकड़े कर दिये और द्रोणपुत्र से कहा कि खड़े रहो, खड़े रहो। फिर द्रोणपुत्र के वध की इच्छा से बलवान् और क्रुद्ध पाण्डुपुत्र ने उसके ऊपर घोरउग्र बाणों की वर्षा प्रारम्भ कर दी।

ततोऽस्त्रमायया तूर्णं शरवृष्टिं निवार्य ताम्॥ ६३॥
धनुश्चिच्छेद भीमस्य द्रोणपुत्रो महास्त्रवित्।
शरैश्चैनं सुबहुभिः क्रुद्धः संख्ये पराभिनत्॥ ६४॥
स छिन्नधन्वा बलवान् रथशक्तिं सुदारुणाम्।
वेगेनाविध्य चिक्षेप द्रोणपुत्ररथं प्रति॥ ६५॥
तामापतन्तीं सहसा महोल्काभां शितैः शरैः।
चिच्छेद समरे द्रौणिर्दर्शयन् पाणिलाघवम्॥ ६६॥
एतस्मिन्नन्तरे भीमो दृढमादाय कार्मुकम्।
द्रौणिं विव्याध विशिखैः स्मयमानो वृकोदरः॥ ६७॥

तब महान् अस्त्रवेत्ता क्रुद्ध द्रोणपुत्र ने अपनी अस्त्रों की विद्या से, उस बाणवर्षा को तुरन्त रोककर भीम के धनुष को काट दिया और उन्हें युद्धस्थल में बहुत से बाणोंसे घायल कर दिया। धनुष कट जाने पर बलवान् भीम ने एक अत्यन्त दारुण रथशक्ति को जोर से घुमाकर द्रोणपुत्र के रथपर फैंका। महान् उल्का के समान उस रथशक्ति को अपने ऊपर आते देखकर द्रोणपुत्र ने अपने रथकौशल को दिखाते हुए युद्ध में तीखे बाणों से तुरन्त काट दिया। इसीबीच में भीम ने एक दृढ़ धनुष को लेकर मुस्कराते हुए द्रोणपुत्र को बाणों से बींध दिया।

ततो द्रौणिर्महाराज भीमसेनस्य सारथिम्।
ललाटे दारयामास शरेणानतपर्वणा॥ ६८॥
सोऽतिविद्धो बलवता द्रोणपुत्रेण सारथिः।
व्यामोहमगमद् राजन् रश्मीनुत्सृज्य वाजिनाम्॥ ६९॥
ततोऽश्वाः प्राद्रवंस्तूर्णं मोहिते रथसारथौ।
भीमसेनस्य राजेन्द्र पश्यतां सर्वधन्विनाम्॥ ७०॥
तं दृष्ट्वा प्रद्रुतैरश्वैरपकृष्टं रणाजिरात्।
दध्मौ प्रमुदितः शङ्खं बृहन्तमपराजितः।
वरूथिनीमभिप्रेक्ष्य ह्यवहारमकारयत्॥ ७१॥

हे महाराज! तब द्रोणपुत्र ने झुकी गाँठवाले बाणों से भीम के सारथि के सिर पर प्रहार किया। हे राजन्! तब बलवान् द्रोणपुत्र के द्वारा अत्यन्तघायल होकर सारथि घोड़ों की लगाम छोड़कर मूर्च्छित होगया। हे राजन्! रथ के सारथि के मूर्च्छित हो जाने पर भीमसेन के घोड़े सारे धनुर्धरों के देखते हुए तुरन्त वहाँ से भाग गये। तब घोड़ों के द्वारा भीम को युद्धक्षेत्र से हटाया हुआ देखकर अपराजित अश्वत्थामा ने प्रसन्न होकर अपने विशाल शंख को बजाया। फिर उसने अपनी सेना की तरफ देखकर उसे वापिस शिविर में लौटने की आज्ञा दे दी।

कर्णपर्व

पहला अध्याय : संजय से कर्ण के वध को सुनकर धृतराष्ट्र का शोक

दीनो ययौ नागपुरं निशि गावल्गणिस्तदा।
जगाम धृतराष्ट्रस्य क्षयं प्रक्षीणबान्धवम्॥ १॥
स तमुद्वीक्ष्य राजानं कश्मलाभिहतौजसम्।
ववन्दे प्राञ्जलिर्भूत्वा मूर्ध्ना पादौ नृपस्य ह॥ २॥
सम्पूज्य च यथान्यायं धृतराष्ट्रं महीपतिम्।
हा कष्टमिति चोक्त्वा स ततो वचनमाददे॥ ३॥
संजयोऽहं क्षितिपते कच्चिदास्ते सुखं भवान्।
सुहृदस्त्वद्धिते युक्तान् भीष्मद्रोणमुखान् परैः॥ ४॥
निहतान् युधि संस्मृत्य कच्चिन्न कुरुषे व्यथाम्।

गवल्गणपुत्र संजय दीनता सहित एकदिन रात के समय हस्तिनापुर में धृतराष्ट्र के समीप पहुँचा। जिनके बन्धुबान्धव प्रायः नष्ट होचुके थे, जिनका मोह के कारण उत्साह नहीं रह गया था, उन राजा के चरणों में उसने हाथों को जोड़कर तथा सिर को झुकाकर प्रणाम किया। राजा धृतराष्ट्र का इसप्रकार सम्मानकर, हाय बड़े कष्ट की बात है ऐसा गुनगुनाते हुए उसने कहा कि हे पृथिवीपति! मैं संजय हूँ। क्या आप सुख में हैं? भीष्म और द्रोण आदि आपके हित में लगे हुए हितैषी, जो शत्रुओं के द्वारा युद्ध में मारे गये, उन्हें याद करके आप व्यथित तो नहीं हैं?

तमेवंवादिनं राजा सूतपुत्रं कृताञ्जलिम्॥ ५॥
सुदीर्घमथ निःश्वस्य दुःखार्त इदमब्रवीत्।
ययोर्लोके पुमानस्त्रे न समोऽस्ति चतुर्विधे॥ ६॥
तौ द्रोणभीष्मौ श्रुत्वा तु हतौ मे व्यथितं मनः।
नारायणास्त्रे च हते द्रोणपुत्रस्य धीमतः॥ ७॥
विप्रद्रुतेष्वनीकेषु किमकुर्वत मामकाः।

तब हाथ जोड़कर ऐसा कहते हुए सूतपुत्र को उन्होंने दुःख से पीड़ित हो और लम्बी साँस लेकर कहा कि चारोंप्रकार की अस्त्रविद्या में जिनके समान संसार में दूसरा व्यक्ति नहीं है, उन भीष्म और द्रोणाचार्य को मारा हुआ सुनकर मेरा हृदय व्यथित हो रहा है। अब बताओ कि द्रोणपुत्रद्वारा छोड़े हुए नारायणास्त्र के विफल होने तथा सेना में भगदड़ मचने पर मेरे पुत्रों ने क्या किया?

एतत् सर्वं यथावृत्तं तथा गावल्गणे मम॥ ८॥
आचक्ष्व पाण्डवेयानां मामकानां च विक्रमम्।

संजय उवाच

सैनापत्यमथावाप्य कर्णो राजन् महारथः॥ ९॥
सिंहनादं विनद्योच्चैः प्रायुध्यत रणोत्कटः।
स सृंजयानां सर्वेषां पञ्चालानां च मारिष॥ १०॥
केकयानां विदेहानां चकार कदनं महत्।
स पीडयित्वा पञ्चालान् पाण्डवांश्च तरस्विनः॥ ११॥
हत्वा सहस्रशो योधानर्जुनेन निपातितः।

हे संजय! ये सारी बातें जैसे हुई, वैसेही पाण्डवों और मेरे पुत्रों के पराक्रम की घटनाएँ, तुम मुझे वर्णन करो। तब संजय ने कहा कि महाराज! तब सेनापति का पद प्राप्तकर, रण में उत्कट महारथी कर्ण जोर से गर्जना करता हुआ युद्ध करने लगा। हे मान्यवर! उसने सृंजयों, पाँचालों, केकयों और विदेहदेशीय वीरों का महान् संहार किया। इसप्रकार वेगवान् पाँचालों और पाण्डव वीरों को पीड़ित करके, हजारों योद्धाओं को मार कर, अन्त में वह अर्जुन के हाथों मारा गया।

विह्वलः पतितो भूमौ धृतराष्ट्रोऽम्बिकासुतः॥ १२॥
शोकस्यान्तमपश्यन् वै, हतं मेने सुयोधनम्।
तस्मिन् निपतिते भूमौ विह्वले राजसत्तमे॥ १३॥
शोकार्णवे महाघोरे निमग्ना भरतस्त्रियः।
रुरुदुर्दुःखशोकार्ता भृशमुद्विग्नचेतसः॥ १४॥
मुह्यमानाः सुबहुशो मुञ्चन्त्यो वारि नेत्रजम्।
समाश्वस्ताः स्त्रियस्तास्तु वेपमाना मुहुर्मुहुः॥ १५॥
कदल्य इव वातेन धूयमानाः समन्ततः।

तब अम्बिकापुत्र धृतराष्ट्र अत्यन्तबेचैन होकर भूमि पर गिर पड़े। उन्होंने समझ लिया कि अब दुर्योधन भी मारा गया। उन्हें उस समय अपने शोक का अन्त नहीं दिखाई देरहा था। उन राजश्रेष्ठ के व्याकुल होकर गिर जाने पर भरतकुल की स्त्रियाँ भी महाघोर शोक सागर में डूब गईं। दुःख और शोक से पीड़ित तथा अत्यन्त व्याकुल हृदयवाली होकर वे फूटफूट कर रोने लगी। वे आँखों से आँसू बहाती हुई बार बार मूर्च्छित होरही थीं। बारबार धीरज बँधाये जाने पर भी, वे सबतरफ से वायु से हिलाये जाते हुए केले के वृक्षों की तरह काँप रही थीं।

राजानं विदुरश्चापि प्रज्ञाचक्षुषमीश्वरम्॥ १६॥
आश्वासयामास तदा सिञ्चंस्तोयेन कौरवम्।
स लब्ध्वा शनकैः संज्ञां निःश्वस्य च पुनः पुनः॥ १७॥
स्वान् पुत्रान् गर्हयामास बहु मेने च पाण्डवान्।
गर्हयंश्चात्मनो बुद्धिं शकुनेः सौबलस्य च॥ १८॥
ध्यात्वा तु सुचिरं कालं वेपमानो मुहुर्मुहुः।

कुरुवंशी, ऐश्वर्यशाली, अन्धे राजा को विदुर ने भी पानी के छींटे डालते हुए होश में लाने का प्रयत्न किया। फिर धीरेधीरे होश में आकर बार बार लम्बी साँसें लेते हुए वे अपने पुत्रों की निन्दा तथा पाण्डवों की प्रशंसा करने लगे। बहुत देरतक चिन्ता करने के पश्चात् वे अपनी तथा सुबलपुत्र शकुनि की निन्दा करते हुए बारबार काँपने लगे।

संस्तभ्य च मनो भूयो राजा धैर्यसमन्वितः॥ १९॥
पुनर्गावल्गणिं सूतं पर्यपृच्छत संजयम्।
यत् त्वया कथितं वाक्यं श्रुतं संजय तन्मया॥ २०॥
कच्चिद् दुर्योधनः सूत न गतो वै यमक्षयम्।
जये निराशः पुत्रो मे सततं जयकामुकः॥ २१॥
ब्रूहि संजय तत्त्वेन पुनरुक्तां कथामिमाम्।
दुष्प्रणीतेन मे तात पुत्रस्यादीर्घजीविनः॥ २२॥
हतं वैकर्तनं श्रुत्वा शोको मर्माणि कृन्तति।

फिर अपने मन को स्थिरकर तथा थोड़ा धैर्य धारणकर, राजा ने गवल्गणपुत्र सूत संजय से पूछा कि हे सूत! तुमने जो बात कही, वह मैंने सुनली। अब यह बताओ कि सदा अपनी जीत की इच्छा करनेवाला मेरा पुत्र अब कहीं विजय के विषय में निराश होकर मृत्युलोक में तो नहीं चला गया? हे संजय! इन घटनाओं को मुझे दुबारा यथार्थरूप में वर्णन करो। हे तात! अपने अल्पजीवी पुत्र के दुष्कर्मों से कर्ण को मारा हुआ सुनकर उत्पन्न हुआ शोक मेरे मर्मस्थलों को काटे डाल रहा है।

दूसरा अध्याय : धृतराष्ट्र का विलाप।

संजयाधिरथिर्वीरः सिंहद्विरदविक्रमः।
वृषभप्रतिमस्कन्धो वृषभाक्षगतिश्चरन्॥ १॥
यस्य ज्यातलशब्देन शरवृष्टिरवेण च।
रथाश्वनरमातङ्गा नावतिष्ठन्ति संयुगे॥ २॥
यमाश्रित्य महाबाहुं विद्विषां जयकाङ्क्षया।
दुर्योधनोऽकरोद् वैरं पाण्डुपुत्रैर्महारथैः॥ ३॥
स कथं रथिनां श्रेष्ठः कर्णः पार्थेन संयुगे।
निहतः पुरुषव्याघ्रः प्रसह्यासह्यविक्रमः॥ ४॥

हे संजय! अधिरथ का पुत्र, वीर कर्ण सिंह और हाथी के समान पराक्रमवाला था। उसके कन्धे साँड के समान थे। साँड के समान ही उसकी आँखें और चाल थी। उसके धनुष की टंकार तथा बणवर्षा के शब्द से डरकर रथ, हाथी घोड़े और पैदल युद्धक्षेत्र में ठहर नहीं पाते थे। उस महाबाहु का सहारा लेकर ही शत्रुओं पर विजय पाने के इच्छुक दुर्योधन ने महारथी पाण्डुपुत्रों के साथ बैर बाँधा था। वह असह्य पराक्रमवाला, रथियों में श्रेष्ठ, पुरुषव्याघ्र कर्ण युद्धस्थल में अर्जुन के द्वारा बलपूर्वक कैसे गिराया गया?

यो नामन्यत वै नित्यमच्युतं च धनंजयम्।
न वृष्णीन् सहितानन्यान् स्वबाहुबलदर्पितः॥ ५॥
शार्ङ्गगाण्डीवधन्वानौ सहितावपराजितौ।
अहं दिव्याद् रथादेकः पातयिष्यामि संयुगे॥ ६॥
इति यः सततं मन्दमवोचल्लोभमोहितम्।
दुर्योधनमवाचीनं राज्यकामुकमातुरम्॥ ७॥

जो अपने बाहुबल के घमंड में होकर कभी श्रीकृष्ण और अर्जुन को भी कुछ नहीं समझता था,

जो एकसाथ आये हुए दूसरे वृष्णिवंशियों की भी परवाह नहीं करता था, जो मन्दबुद्धि, लोभ से मोहित, राज्य के इच्छुक और बेचैन होकर चुप बैठे हुए दुर्योधन से सदा यही कहा करता था कि मैं शार्ङ्ग और गाण्डीवधनुष को धारण करनेवाले, अपराजित श्रीकृष्ण और अर्जुन को एकसाथ अकेलाही युद्ध में उनके दिव्य रथ से गिरा दूँगा।

शरव्रातैः सुनिशितैः सुतीक्ष्णैः कङ्कपत्रिभिः।
करमाहारयामास जित्वा सर्वानरींस्तथा॥ ८॥
दुर्योधनस्य वृद्ध्यर्थं राधेयो रथिनां वरः।
दिव्यास्त्रविन्महातेजाः कर्णो वैकर्तनो वृषः॥ ९॥
सेनागोपश्च स कथं शत्रुभिः परमास्त्रवित्।
घातितः पाण्डवैः शूरैः समरे वीर्यशालिभिः॥ १०॥
योऽजितः पार्थिवैः शूरैः समर्थैर्वीर्यशालिभिः।
तं श्रुत्वा निहतं कर्णं द्वैरथे सव्यसाचिना॥ ११॥
शोकार्णवे निमग्नोऽहं भिन्ना नौरिव सागरे।

रथियों में श्रेष्ठ, दिव्यास्त्रवेत्ता, महातेजस्वी, वृषनाम वाले, सूर्यपुत्र तथा राधापुत्र जिस कर्ण ने अपने अत्यन्ततीखे और पैने कंकपत्रवाले बाणसमूहों से दुर्योधन की वृद्धि के लिये उसके सारे शत्रुओं को जीतकर, उनसे कर को ग्रहण किया था और जो दुर्योधन की सेनाओं का रक्षक था, वह अस्त्रों का परमवेत्ता, पराक्रमी तथा शूरवीर पाण्डवों के द्वारा युद्धस्थल में कैसे गिरा दिया गया? जो समर्थ, पराक्रमी और शूरवीर राजाओं में सदा अपराजित रहा, उस कर्ण को द्वैरथ युद्ध में अर्जुन के द्वारा मारा हुआ सुनकर मैं शोकसागर में ऐसे डूब रहा हूँ, जैसे मेरी नाव बीच समुद्र में टूट गयी हो।

ईदृशैर्यद्यहं दुःखैर्न विनश्यामि संजय॥ १२॥
वज्राद् दृढतरं मन्ये हृदयं मम दुर्भिदम्।
ज्ञातिसम्बन्धिमित्राणामिमं श्रुत्वा पराभवम्॥ १३॥
को मदन्यः पुमाँल्लोके न जह्यात् सूत जीवितम्।
विषमग्निं प्रपातं च पर्वताग्रादहं वृणे॥ १४॥
न हि शक्ष्यामि दुःखानि सोढुं कष्टानि संजय।

हे संजय! यदि इतने दुख से भी मेरी मृत्यु नहीं होरही है, तो मैं समझता हूँ कि मेरा हृदय वज्र से भी अधिक कठोर और दुर्भेद्य है। हे सूत! अपने परिवारवालों, सम्बन्धियों और मित्रों के द्वारा पराजय समाचार को सुनकर, मेरे सिवाय कौन ऐसा व्यक्ति है, जो अपने प्राणों का त्याग नहीं कर देगा? हे संजय! अब मैं विष खा लूँगा, या अग्नि में प्रवेश कर जाऊँगा या पर्वतशिखर से गिर जाऊँगा। मैं अब इन दुखों और कष्टों को सहन नहीं कर सकूँगा।

संजय उवाच

श्रिया कुलेन यशसा तपसा च श्रुतेन च॥ १५॥
त्वामद्य सन्तो मन्यन्ते ययातिमिव नाहुषम्।
श्रुते महर्षिप्रतिमः कृतकृत्योऽसि पार्थिव॥ १६॥
पर्यवस्थापयात्मानं मा विषादे मनः कृथाः।

तब संजय ने कहा कि हे महाराज! साधुलोग आपको ऐश्वर्य, कुल, यश, तप और विद्या में नहुष पुत्र ययाति के समान मानते हैं। आप विद्या में महर्षियों के समान हैं। हे राजन्! आपने सारे कर्त्तव्यों का पालन कर लिया है। अब अपने आपको स्थिर कीजिये और विषाद में मत डुबाइये।

धृतराष्ट्र उवाच

दैवमेव परं मन्ये धिक् पौरुषमनर्थकम्॥ १७॥
यत्र शालप्रतीकाशः कर्णोऽहन्यत संयुगे।
शोकस्यान्तं न पश्यामि पारं जलनिधेरिव॥ १८॥
चिन्ता मे वर्धतेऽतीव मुमूर्षा चापि जायते।
कर्णस्य निधनं श्रुत्वा विजयं फाल्गुनस्य च॥ १९॥
अश्रद्धेयमहं मन्ये वधं कर्णस्य संजय।
धिग्जीवितमिदं चैव सुहृद्धीनश्च संजय॥ २०॥
अद्य चाहं दशामेतां गतः संजय गर्हिताम्।

धृतराष्ट्र ने कहा कि मैं तो परमात्मा की इच्छा को ही बलवान् मानता हूँ। पुरुषार्थ व्यर्थ है, उसे धिक्कार है, जिसका आश्रय लेकर भी शाल वृक्ष के समान शरीरवाला कर्ण युद्ध में मारा गया। मैं समुद्र के पार की तरह अब अपने शोक का अन्त नहीं देख रहा हूँ। मेरी चिन्ता बढ़ रही है और मरने की इच्छा प्रबल होरही है। हे संजय! कर्ण की मृत्यु और अर्जुन की विजय के विषय में सुनकर मुझे कर्ण की मृत्यु पर विश्वास नहीं हो रहा है। हे संजय! आज मैं अपने हितैषियों से रहित होकर इसप्रकार की निन्दनीय अवस्था को प्राप्त हो गया हूँ। मेरे जीवन को धिक्कार है।

कृपणं वर्तयिष्यामि शोच्यः सर्वस्य मन्दधीः॥ २१॥
अहमेव पुरा भूत्वा सर्वलोकस्य सत्कृतः।
परिभूतः कथं सूत परैः शक्ष्यामि जीवितुम्॥ २२॥

दुःखात् सुदुःखव्यसनं प्राप्तवानस्मि संजय।
भीष्मद्रोणवधेनैव कर्णस्य च महात्मनः॥ २३॥
नावशेषं प्रपश्यामि सूतपुत्रे हते युधि।
स हि पारो महानासीत् पुत्राणां मम संजय॥ २४॥

पहले मैं सबलोगों का सम्मानित व्यक्ति था, पर अब मैं मन्दबुद्धि, सबके द्वारा शोक करनेयोग्य होकर बड़े कष्ट से जीवन बिताऊँगा। हे सूत! शत्रुओं से अपमानित होता हुआ अब मैं अपने जीवन को कैसे धारण करूँगा? हे संजय! भीष्म, द्रोण और मनस्वी कर्ण के वध से मैं एक दुख से दूसरे अत्यन्त दुख भरे संकट को प्राप्त होगया हूँ। हे संजय! कर्ण मेरे पुत्रों का महान् अवलम्ब था। उस सूतपुत्र के युद्ध में मारे जाने पर, मैं अपने पक्ष में किसीभी व्यक्ति को जीवित रहनेवाला नहीं समझ रहा हूँ।

पङ्गोरिवाध्वगमनं दरिद्रस्येव कामितम्।
दुर्योधनस्य चाकूतं तृषितस्येव विप्रुषः॥ २५॥
अन्यथा चिन्तितं कार्यमन्यथा तत् तु जायते।
अहो नु बलवद् दैवं कालश्च दुरतिक्रमः॥ २६॥
युधिष्ठिरस्य वचनं मा युध्यस्वेति सर्वदा।
दुर्योधनो नाभ्यगृह्णान्मूढः पथ्यमिवौषधम्॥ २७॥

जैसे पैरविहीन व्यक्ति के द्वारा मार्ग पर चलना, दरिद्र की इच्छायें पूरी होना, जल की बूँदों से प्यासे की प्यास बुझनी कठिन है वैसेही अब दुर्योधन की इच्छा पूरी होनी कठिन है। मनुष्य कार्य के विषय में कुछ और सोचता है, पर हो कुछ और जाता है। वास्तव में परमात्मा की इच्छा ही बलवान् है। समय को कोई नहीं उलट सकता। युधिष्ठिर ने सदा यही कहा कि युद्ध मत करो, पर मूर्ख दुर्योधन ने हितकारी औषधि के समान उसे स्वीकार नहीं किया।

अहं तु निहतामात्यो हतपुत्रश्च संजय।
द्यूततः कृच्छ्रमापन्नो लूनपक्ष इव द्विजः॥ २८॥
क्षीणः सर्वार्थहीनश्च निर्ज्ञातिर्बन्धुवर्जितः।
कां दिशं प्रतिपत्स्यामि दीनः शत्रुवशं गतः॥ २९॥

हे संजय! मैं जूए से ऐसे संकट में पड़ गया हूँ कि मेरे सारे सलाहकार और पुत्र मारे गये। मेरी अवस्था अब परकटे पक्षी की तरह होगयी। मैं शरीर से दुर्बल, सारी सम्पत्ति से रहित, बिना परिवारवालों और बन्धुओं के, शत्रुओं के बस में पड़कर दीनता को प्राप्त हुआ किस दिशा को जाऊँगा।

तीसरा अध्याय : धृतराष्ट्र का कर्णवध का विस्तृत वृत्तान्त पूछना।

इत्येवं धृतराष्ट्रोऽथ विलप्य बहु दुःखितः।
प्रोवाच संजयं भूयः शोकव्याकुलमानसः॥ १॥
कच्चिन्नैकः परित्यक्तः पाण्डवैर्निहतो रणे।
भीष्ममप्रतियुद्ध्यन्तं शिखण्डी सायकोत्तमैः॥ २॥
पातयामास समरे सर्वशस्त्रभृतां वरम्।
तथा द्रौपदिना द्रोणो न्यस्तसर्वायुधो युधि॥ ३॥
निहतः खड्गमुद्यम्य धृष्टद्युम्नेन संजय।
अन्तरेण हतावेतौ छलेन च विशेषतः॥ ४॥

इसप्रकार विलापकर, बहुतदुखी धृतराष्ट्र ने शोक से व्याकुल मनवाला होते हुए संजय से पूछा कि कहीं कर्ण अकेलातो नहीं रह गया था? तब पाण्डवों ने उसे मिलकर मार डाला हो? सारे शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ भीष्म को जब वह युद्ध नहीं कर रहे थे, तब शिखण्डी ने उत्तम बाणों से युद्ध में गिरा दिया। इसीप्रकार द्रोणाचार्य ने जब युद्धस्थल में सारे हथियार रख दिये थे, तब उन्हें द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्न ने तलवार निकालकर मार दिया। इसप्रकार ये दोनों छलपूर्वक आक्रमण करने का अवसर प्राप्त होने पर मारे गये।

कर्णं त्वस्यन्तमस्त्राणि दिव्यानि च बहूनि च।
कथमिन्द्रोपमं वीरं मृत्युर्युद्धे समस्पृशत्॥ ५॥
यस्य सर्पमुखो दिव्यः शरः काञ्चनभूषणः।
अशेत निशितः पत्री समरेष्वरिसूदनः॥ ६॥
भीष्मद्रोणमुखान् वीरान् योऽवमन्ये महारथान्।
जामदग्न्यान्महाघोरं ब्राह्ममस्त्रमशिक्षत॥ ७॥
यश्च द्रोणमुखान् दृष्ट्वा विमुखानर्दिताञ्शरैः।
सौभद्रस्य महाबाहुर्व्यधमत् कार्मुकं शितैः॥ ८॥
विरथं सहसा कृत्वा भीमसेनमथाहसत्।
सहदेवं च निर्जित्य शरैः संनतपर्वभिः॥ ९॥

कृपया विरथं कृत्वा नाहनद् धर्मचिन्तया।
घटोत्कचं राक्षसेन्द्रं शक्रशक्त्या निजघ्निवान्॥ १०॥
संशप्तकानां योधा ये आह्वयन्त सदान्यतः।
एतान् हत्वा हनिष्यामि पश्चाद् वैकर्तनं रणे॥ ११॥
इति व्यपदिशन् पार्थो वर्जयन् सूतजं रणे।
स कथं निहतो वीरः पार्थेन परवीरहा॥ १२॥

किन्तु इन्द्र के समान वीर कर्ण को, जब वह बहुतसारे दिव्यास्त्रों का प्रयोग कर रहा था, मृत्यु ने युद्ध में कैसे स्पर्श कर लिया? जिसके पास साँप के मुखवाला, तीखा, स्वर्णभूषित, में दिव्य, शत्रु को नष्ट करनेवाला, पंखयुक्त बाण युद्धों में रहा करता था, जो भीष्म और द्रोणाचार्य जैसे महारथियों की भी अवहेलना किया करता था, जिसने परशुराम से महाघोर ब्रह्मास्त्र की शिक्षा लीथी, जिसने द्रोणाचार्य आदि को बाणों से पीड़ित और युद्ध से विमुख देखकर तीखे बाणों से अभिमन्यु के धनुष को काट दिया था, जिसने भीमसेन को रथ से रहित कर उसका उपहास किया था। जिसने झुकी गाँठवाले बाणों से सहदेव को रथ से हीनकरके धर्म के कारण उसका वध नहीं किया, जिसने राक्षसराज घटोत्कच को इन्द्र की शक्ति से मारा, संशप्तकों में जो योद्धा मुझे युद्ध के लिये, दूसरी तरफ बुलाया करते हैं, पहले इन्हें मारकर फिर कर्ण को मारूँगा, ऐसा बहाना बनाकर, अर्जुन जिस कर्ण से युद्ध करने से बचते रहते थे, उस शत्रुवीरों को मारनेवाले वीर कर्ण को अर्जुन ने कैसे मारा?

रथभङ्गो न चेत् तस्य धनुर्वा न व्यशीर्यत।
न चेदस्त्राणि निर्णेशुः स कथं निहतः परैः॥ १३॥
को हि शक्तो रणे कर्णं विधुन्वानं महद् धनुः।
विमुञ्चन्तं शरान् घोरान् दिव्यान्यस्त्राणि चाहवे॥ १४॥
जेतुं पुरुषशार्दूलं शार्दूलमिव वेगिनम्।
ध्रुवं तस्य धनुश्छिन्नं रथो वापि महीं गतः॥ १५॥
अस्त्राणि वा प्रणष्टानि यथा शंससि मे हतम्।

यदि उसका रथ नहीं टूट गया था, उसके धनुष के टुकड़े और अस्त्र नष्ट नहीं हुए थे, तो फिर कर्ण शत्रुओं द्वारा कैसे मारा गया? युद्ध में अपने विशाल धनुष को हिलाते हुए, भयंकर बाणों और दिव्यास्त्रों को युद्धस्थल में छोड़ते हुए, सिंह के समान वेगवाले, पुरुषसिंह कर्ण को जीतने में कौन समर्थ हो सकता था? निश्चितरूप से उसका या तो धनुष टूट गया होगा या रथ भूमि में धँस गया होगा या उसके अस्त्र नष्ट होगये होंगे, तभी वह, जैसे तुम बता रहे हो, मारा गया होगा।

न ह्यन्यदपि पश्यामि कारणं तस्य नाशने॥ १६॥
न हन्मि फाल्गुनं यावत् तावत् पादौ न धावये।
इति यस्य महाघोरं व्रतमासीन्महात्मनः॥ १७॥
यस्य भीतो रणे निद्रां धर्मराजो युधिष्ठिरः।
त्रयोदश समा नित्यं नाभजत् पुरुषर्षभः॥ १८॥
उपतिष्ठस्व भर्तारमन्यं वा वरवर्णिनि।
इत्येवं यः पुरा वाचो रूक्षाश्चाश्रावयद् रुषा॥ १९॥
सभायां सूतजः कृष्णां स कथं निहतः परैः।

उसके वध का कोई और कारण मुझे दिखाई नहीं देता। जिस मनस्वी का यह घोर व्रत था कि जबतक मैं अर्जुन को मार नहीं लूँगा, तबतक अपने पैर दूसरों से नहीं धुलाऊँगा, युद्ध में जिससे डरे हुए, धर्मराज पुरुषश्रेष्ठ युधिष्ठिर ने तेरह वर्ष से सुख से नींद नहीं ली, जिस सूतपुत्र ने क्रोध से सभा में द्रौपदी को "हे सुन्दरी! अब तू किसी और को अपना पति बना ले," इसप्रकार की कठोर बातें कहीं थीं, वह शत्रुओंद्वारा कैसे मारा गया?

यदि भीष्मो रणश्लाघी द्रोणो वा युधि दुर्मदः॥ २०॥
न हनिष्यति कौन्तेयान् पक्षपातात् सुयोधन।
सर्वानेव हनिष्यामि व्येतु ते मानसो ज्वरः॥ २१॥
किं करिष्यति गाण्डीवमक्षय्यौ च महेषुधी।
स्निग्धचन्दनदिग्धस्य मच्छरस्याभिधावतः॥ २२॥
स नूनमृषभस्कन्धो ह्यर्जुनेन कथं हतः।
यस्य नासीद् भयं पार्थैः सपुत्रैः सजनार्दनैः॥ २३॥
स्वबाहुबलमाश्रित्य मुहूर्तमपि संजय।

जिसने दुर्योधन से यह कहा था कि हे दुर्योधन! यदि युद्ध की श्लाघावाले भीष्म और युद्ध में दुर्मद द्रोणाचार्य पक्षपात के कारण कुन्तीपुत्रों को नहीं मारेंगे, तो मैं सबको मार दूँगा। तुम अपनी चिन्ता को दूर कर दो। गाण्डीवधनुष और उसके विशाल दो नष्ट न होनेवाले तरकस, मेरे उस बाण का क्या लेंगे? जो चिकने चन्दन में लिपटा हुआ शत्रु की तरफ तेजी से जाता है, ऐसा कहनेवाला, बैल के समान कन्धेवाला वह कर्ण निश्चय ही अर्जुन के द्वारा कैसे मारा गया? हे संजय। अपने बाहुबल

के सहारे उसे श्रीकृष्ण तथा अपने पुत्रोंसहित कुन्तीपुत्रों से एक मूहूर्त के लिये भी भय नहीं हुआ था।

न हि ज्यां संस्पृशानस्य तलत्रे वापि गृह्णतः॥ २४॥
पुमानाधिरथेः स्थातुं कश्चित् प्रमुखतोऽर्हति।
येन मन्दः सहायेन भ्रात्रा दुःशासनेन च॥ २५॥
वासुदेवस्य दुर्बुद्धिः प्रत्याख्यानमरोचत।
हतं वैकर्तनं श्रुत्वा द्वैरथे सव्यसाचिना॥ २६॥
जयतः पाण्डवान् दृष्ट्वा किंस्विद् दुर्योधनोऽब्रवीत्।
अनेयश्चाभिमानी च दुर्बुद्धिरजितेन्द्रियः॥ २७॥
हतोत्साहं बलं दृष्ट्वा किंस्विद् दुर्योधनोऽब्रवीत्।
स्वयं वैरं महत् कृत्वा वार्यमाणः सुहृद्गणैः॥ २८॥
प्रधने हतभूयिष्ठैः किंस्विद् दुर्योधनोऽब्रवीत्।

जब कर्ण ने दस्ताने पहन लिये हों, तथा वह अपने धनुष की प्रत्यंचा का स्पर्श कर रहा हो, तब कोईभी व्यक्ति उसके सामने ठहर नहीं सकता था। अपने भाई दु:शासन तथा जिसकी सहायता पाकर, मेरे मन्दबुद्धि और दुष्टबुद्धि पुत्र ने श्रीकृष्ण के सन्धिप्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया, अब द्वैरथ युद्ध में उस कर्ण को अर्जुन के द्वारा मारा हुआ देख कर और पाण्डवों को विजय प्राप्त करते हुए पाकर, दुर्योधन क्या कह रहा था? किसी की बात न मानने वाले, अभिमानी, दुर्बुद्धि, अजितेन्द्रिय दुर्योधन ने अपनी सेना के नष्ट होते हुए उत्साह को देखकर क्या कहा? जिनमें से अधिकाँश लोग मार दिये गये हैं, उन अपने हितैषियों के द्वारा मना करने पर भी, जिसने पाण्डवों के साथ महान् बैर किया, उस दुर्योधन ने अब विनाश होने पर क्या कहा है?

केऽरक्षन् दक्षिणं चक्रं सूतपुत्रस्य युध्यतः॥ २९॥
वामं चक्रं ररक्षुर्वा के वा वीरस्य पृष्ठतः।
के कर्णं न जहुः शूराः के क्षुद्राः प्राद्रवंस्ततः॥ ३०॥
कथं च वः समेतानां हतः कर्णो महारथः।
द्रोणे हते च यद् वृत्तं कौरवाणां परैः सह॥ ३१॥
संग्रामे नरवीराणां तन्ममाचक्ष्व संजय।
यथा कर्णश्च कौन्तेयैः सह युद्धमयोजयत्।
यथा च द्विषतां हन्ता रणे शान्तस्तदुच्यताम्॥ ३२॥

युद्ध करते हुए सूतपुत्र के दायें पहिये की रक्षा किसने की? किसने बाँयें पहिये की रक्षा की? और कौन उसके पृष्ठ भाग की रक्षा कर रहे थे? किन शूरवीरों ने उस समय कर्ण का साथ नहीं छोड़ा? कौन नीच उस समय वहाँ से भाग गये? जब तुम सब लोग इकट्ठे होकर लड़ रहे थे, तब महारथी कर्ण कैसे मारा गया? हे संजय! द्रोणाचार्य के मारे जाने पर, नरवीर कौरवों ने शत्रुओं से कैसे युद्ध किया? वह मुझे बताओ। कर्ण ने कुन्तीपुत्रों के साथ युद्ध का आयोजन किस प्रकार किया? शत्रुओं को मारने वाला वह युद्ध भूमि में कैसे शान्त हो गया? यह सब वर्णन करो।

चौथा अध्याय : कर्ण को सेनापति बनाया जाना।

संजय उवाच

हते द्रोणे महेष्वासे तस्मिन्नहनि भारत।
कृते च मोघसंकल्पे द्रोणपुत्रे महारथे॥ १॥
कृत्वावहारं सैन्यानां प्रविश्य शिबिरं स्वकम्।
कुरवः सुहितं मन्त्रं मन्त्रयाञ्चक्रिरे मिथः॥ २॥
ततो दुर्योधनो राजा साम्ना परमवल्गुना।
तानाभाष्य महेष्वासान् प्राप्तकालमभाषत॥ ३॥
मतं मतिमतां श्रेष्ठाः सर्वे प्रब्रूत मा चिरम्।
एवं गते तु किं कार्यं किं च कार्यतरं नृपाः॥ ४॥

संजय ने कहा कि हे भारत! उस दिन महाधनुर्धर द्रोणाचार्य के मारे जाने और महारथी द्रोणपुत्र के संकल्प को व्यर्थ किये जाने पर सेनाओं को लौटाकर, अपने शिविर में प्रवेश कर कौरवयोद्धा आपस में अपने हित के लिये विचारविमर्ष करने लगे। तब राजा दुर्योधन ने सान्त्वनापूर्वक तथा अत्यन्तमधुर वाणी में उन महाधनुर्धरों को सम्बोधित करके यह समयोचित बात कही कि हे बुद्धिमानों में श्रेष्ठ राजाओं! आप अब इस अवस्था में हमें क्या करना चाहिये और कौनसा अधिकआवश्यक कर्त्तव्य है, इस बारे में अपने विचार बताइये और जल्दी बताइये, देर मत कीजिये।

एवमुक्ते नरेन्द्रेण नरसिंहा युयुत्सवः।
चक्रुर्नानाविधाश्चेष्टाः सिंहासनगतास्तदा॥ ५॥
तेषां निशाम्येङ्गितानि युद्धे प्राणाञ्जुहूषताम्।
समुद्वीक्ष्य मुखं राज्ञो बालार्कसमवर्चसम्॥ ६॥
आचार्यपुत्रो मेधावी वाक्यज्ञो वाक्यमाददे।
रागो योगस्तथा दाक्ष्यं नयश्चेत्यर्थसाधकाः॥ ७॥
उपायाः पण्डितैः प्रोक्तास्ते तु दैवमुपाश्रिताः।
लोकप्रवीरा येऽस्माकं देवकल्पा महारथाः॥ ८॥
नीतिमन्तस्तथा युक्ता दक्षा रक्ताश्च ते हताः।
न त्वेव कार्यं नैराश्यमस्माभिर्विजयं प्रति॥ ९॥

राजा दुर्योधन के ऐसा कहने पर सिंहासनों पर बैठे हुए, युद्ध के इच्छुक वे पुरुषसिंह तरहतरह की चेष्टाएँ करने लगे। तब युद्ध में अपने प्राणों की आहुति देने के इच्छुक उनकी चेष्टाओं को देखकर तथा राजा दुर्योधन के बाल सूर्य के समान तेजस्वी मुख पर दृष्टिपात कर, वाक्यविशारद, मेघावी आचार्यपुत्र ने बात कही कि पण्डितों ने उद्देश्य को पूरा करने के चार उपाय बताये हैं। जैसे राग (राजा के प्रति सैनिकों का प्रेम) योग (साधन सम्पत्ति) दक्षता (कौशल) तथा नीति। पर ये सभी परमात्मा की इच्छा पर आधारित हैं। इसलिये हमारे विश्वविख्यात, देवताओं के समान पराक्रमी, नीतिमान्, साधनसम्पन्न, दक्ष और अनुरागी जो महारथी थे, वे मारे गये। पर फिरभी हमें अपनी विजय के प्रति निराश नहीं होना चाहिये।

ते वयं प्रवरं नृणां सर्वैर्गुणगणैर्युतम्।
कर्णमेवाभिषेक्ष्यामः सैनापत्येन भारत॥ १०॥
कर्णं सेनापतिं कृत्वा प्रमथिष्यामहे रिपून्।
एतदाचार्यतनयाच्छ्रुत्वा राजंस्तवात्मजः॥ ११॥
हते भीष्मे च द्रोणे च कर्णो जेष्यति पाण्डवान्।
तामाशां हृदये कृत्वा समाश्वस्य च भारत॥ १२॥
प्रीतिसत्कार संयुक्तं तथ्यमात्महितं शुभम्।
स्वं मनः समवस्थाप्य बाहुवीर्यमुपाश्रितः॥ १३॥
दुर्योधनो महाराज राधेयमिदमब्रवीत्।

अब हमें हे भारत! मनुष्यों में चतुर और सारे गुणों से युक्त कर्ण को ही सेनापति बनाना चाहिये। हम कर्ण को सेनापति बनाकर शत्रुओं को मथ डालेंगे। हे राजन्! तब आचार्यपुत्र से यह सुनकर आपका पुत्र दुर्योधन इस आशा को हृदय में धारणकर कि भीष्म और द्रोणाचार्य के मारे जाने पर भी कर्ण पाण्डवों को जीत लेगा, धैर्यान्वित होकर, अपनी भुजाओं के पराक्रम के सहारे से अपने मन को स्थिर करके, हे महाराज! राधापुत्र से प्रेम और सत्कारयुक्त, अपने लिये हितकारी, यथार्थ और मंगलकारी इस बात को बोला कि—

कर्ण जानामि ते वीर्यं सौहृदं परमं मयि॥ १४॥
तथापि त्वां महाबाहो प्रवक्ष्यामि हितं वचः।
श्रुत्वा यथेष्टं च कुरु वीर यत् तव रोचते॥ १५॥
भवान् प्राज्ञतमो नित्यं मम चैव परा गतिः।
भीष्मद्रोणावतिरथौ हतौ सेनापती मम॥ १६॥
सेनापतिर्भवानस्तु ताभ्यां द्रविणत्तरः।
वृद्धौ च तौ महेष्वासौ सापेक्षौ च धनंजये॥ १७॥
मानितौ च मया वीरौ राधेय वचनात् तव।

हे कर्ण! मैं तुम्हारे पराक्रम और मेरे प्रति अत्यन्त प्रेम को जानता हूँ, फिरभी हे महाबाहु! मैं तुमसे अपने हित की बात कहूँगा। तुम उसे सुनकर हे वीर! जैसा तुम्हें अच्छा लगे, अपनी इच्छा के अनुसार करो। तुम बड़ेबुद्धिमान् और सदासे मेरे सबसेबड़े सहारे हो। मेरे दो सेनापति भीष्म और द्रोणाचार्य, जो अतिरथी वीर थे, मारे गये। अब आप मेरे सेनापति बनो। आप उनदोनों से अधिक शक्तिशाली हो। वेदोनों महाधनुर्धर बूढ़े थे और अर्जुन के प्रति पक्षपातसहित थे। हे कर्ण! मैनें तुम्हारे कहने सेही उनका सम्मान किया था।

पितामहत्वं सम्प्रेक्ष्य पाण्डुपुत्रा महारणे॥ १८॥
रक्षितास्तात भीष्मेण दिवसानि दशैव तु।
त्वयोक्ते पुरुषव्याघ्र द्रोणो ह्यासीत् पुरःसरः॥ १९॥
तेनापि रक्षिताः पार्थाः शिष्यत्वादिति मे मतिः।
स चापि निहतो वृद्धो धृष्टद्युम्नेन सत्वरम्॥ २०॥
निहताभ्यां प्रधानाभ्यां ताभ्याममितविक्रम।
त्वत्समं समरे योधं नान्यं पश्यामि चिन्तयन्॥ २१॥

हे तात! भीष्म ने अपने पितामह होने के सम्बन्ध पर ध्यान देकर महान् युद्ध में दस दिनतक पाण्डुपुत्रों की रक्षा की। हे पुरुषव्याघ्र! फिर तुम्हारे कहने पर ही द्रोणाचार्य हमारे नेता बने। मेरा विचार है कि उन्होंनेभी शिष्य होने के कारण कुन्तीपुत्रों की रक्षा की। उन बूढ़े आचार्य को भी शीघ्रही धृष्टद्युम्न ने

मार दिया। उनदोनों के मारे जाने पर हे अमितपराक्रमी कर्ण! मैं विचार करने पर भी युद्ध में तुम्हारे समान किसीदूसरे योद्धा को नहीं देख रहा हूँ।

भवानेव तु नः शक्तो विजयाय न संशयः।
पूर्वं मध्ये च पश्चाच्च तथैव विहितं हितम्॥ २२॥
स भवान् धुर्यवत् संख्ये धुरमुद्वोढुमर्हति।
अभिषेचय सैनान्ये स्वयमात्मानमात्मना॥ २३॥
भवत्यवस्थिते यत्ते पाण्डवा मन्दचेतसः।
द्रविष्यन्ति सहामात्याः पञ्चालाः सृंजयाश्च ह॥ २४॥
यथा ह्यभ्युदितः सूर्यः प्रतपन् स्वेन तेजसा।
व्यपोहति तमस्तीव्रं तथा शत्रून् प्रतापय॥ २५॥

इसमें कोई सन्देह नहीं है कि तुमही हमें विजय प्राप्त करा सकते हो। तुमने पहले, बीच में और बाद में भी हमाराही हित किया है। तुम धुरन्धर पुरुष के समान सेनासंचालन के भार को वहन कर सकते हो, इसलिये सेनापति के पद पर तुम स्वयंही अपना अभिषेक कराओ। तुम्हारे सावधान होकर खड़े होते ही, मन्दबुद्धि पाण्डव अपने मन्त्रियों, पाँचालों और सृंजयों के साथ भाग जायेंगे। जैसे अपने तेज से तपता हुआ सूर्य उदय होकर घोर अन्धकार को भी दूर कर देता है, वैसेही तुमभी अपने शत्रुओं को सन्तप्त करो।

आशा बलवती राजन् पुत्रस्य तव याभवत्।
हते भीष्मे च द्रोणे च कर्णो जेष्यति पाण्डवान्॥ २६॥
तामाशां हृदये कृत्वा कर्णमेवं तदाब्रवीत्।
सूतपुत्र न ते पार्थः स्थित्वाग्रे संयुयुत्सति॥ २७॥

हे राजन्! आपके पुत्र के मन में यह आशा प्रबल होगयी थी कि भीष्म और द्रोणाचार्य के मारे जाने पर भी कर्ण पाण्डवों को जीत लेगा, उसी आशा को हृदय में कर उसने कर्ण से फिर यह कहा कि हे सूतपुत्र! अर्जुन तो तुम्हारे सामने खड़े होकर युद्ध करना ही नहीं चाहते।

कर्ण उवाच

उक्तमेतन्मया पूर्वं गान्धारे तव संनिधौ।
जेष्यामि पाण्डवान् सर्वान् सपुत्रान् सजनार्दनान्॥ २८॥
सेनापतिर्भविष्यामि तवाहं नात्र संशयः।
स्थिरो भव महाराज जितान् विद्धि च पाण्डवान्॥ २९॥

तब कर्ण ने कहा कि हे गान्धारीपुत्र! मैनें तो यह पहलेही कह रखा है कि मैं श्रीकृष्ण तथा अपने पुत्रोंसहित सारे पाण्डवों को युद्ध में जीत लूँगा। इसमें कोई संशय नहीं है कि मैं तुम्हारा सेनापति बनूँगा। हे महाराज! अब तुम स्थिर होजाओ और पाण्डवों को जीता हुआ ही समझो।

ततोऽभिषिषिचुः कर्णं विधिदृष्टेन कर्मणा।
दुर्योधनमुखा राजन् राजानो विजयैषिणः॥ ३०॥
सैनापत्ये तु राधेयमभिषिच्य सुतस्तव।
अमन्यत तदाऽऽत्मानं कृतार्थं कालचोदितः॥ ३१॥
कर्णोऽपि राजन् सम्प्राप्य सैनापत्यमरिंदमः।
योगमाज्ञापयामास सूर्यस्योदयनं प्रति॥ ३२॥

हे राजन्! तब विजय के इच्छुक दुर्योधन आदि राजाओं ने विधिपूर्वक कर्ण का सेनापति के पद पर अभिषेक किया। काल से प्रेरित आपका पुत्र सेनापति के पद पर कर्ण का अभिषेककर अपनेआपको कृतार्थ समझने लगा। हे राजन्! शत्रुदमन कर्ण ने भी सेनापति के पद को प्राप्तकर सूर्य के उदय होते ही सेना को युद्ध के लिये तैयार होने की आज्ञा दी।

पाँचवाँ अध्याय : सोलहवें दिन के युद्ध का आरम्भ। कर्ण की आधीनता में कौरव– सेना के द्वारा व्यूह बद्ध होकर युद्ध।

महत्यपररात्रे च तव सैन्यस्य मारिष।
योगो योगेति सहसा प्रादुरासीन्महास्वनः॥ १॥
कल्प्यतां नागमुख्यानां रथानां च वरूथिनाम्।
संनह्यतां नराणां च वाजिनां च विशाम्पते॥ २॥
क्रोशतां चैव योधानां त्वरितानां परस्परम्।
बभूव तुमुलः शब्दो दिवस्पृक् सुमहांस्ततः॥ ३॥

हे मान्यवर! अत्यन्त प्रातःकाल होने पर आपकी सेना में तैयार होजाओ, तैयार होजाओ का महान् शब्द होने लगा। हे प्रजानाथ! सजाये जाते हुए विशाल गजराजों, आवरणयुक्त रथों, कवच पहनते हुए और पहनाये जाते हुए सैनिकों और घोड़ों, शीघ्रता करते हुए, एकदूसरे को पुकारते हुए योद्धाओं का आकाश को छूनेवाला, बहुतबड़ा कोलाहल तब होरहा था।

ततः श्वेतपताकेन बलाकावर्णवाजिना।
हेमपृष्ठेन धनुषा नागकक्ष्येण केतुना॥ ४॥
तूणीरशतपूर्णेन सगदेन वरूथिना।
शतघ्नीकिंकिणीशक्तिशूल- तोमरधारिणा॥ ५॥
कार्मुकैरुपपन्नेन विमलादित्यवर्चसा।
रथेनाभिपताकेन सूतपुत्रोऽभ्यदृश्यत॥ ६॥
ध्मापयन् वारिजं राजन् हेमजालविभूषितम्।
विधुन्वानो महच्चापं कार्तस्वरविभूषितम्॥ ७॥

तब सफ़ेद पताका, बगुले के समान सफेद घोड़ों, सुनहरी पीठवाले धनुष और हाथी बाँधने के रस्से के चिन्ह से युक्त ध्वज के साथ सूतपुत्र कर्ण दिखाई दिया। आवरण से युक्त उसके रथ में सौ भरे हुए तरकस, गदा, शतघ्नी, छोटी घँटियाँ, शक्ति, तोमर और धनुष रखे हुए थे। पताका से युक्त उसका रथ निर्मल सूर्य के समान तेजस्वी था। हे राजन्! वह अपने स्वर्ण भूषित विशाल धनुष की टंकार कर रहा था और सुनहरी जाली से विभूषित शंख को बजा रहा था।

दृष्ट्वा कर्णं महेष्वासं रथस्थं रथिनां वरम्।
भानुमन्तमिवोद्यन्तं तमो घ्नन्तं दुरासदम्॥ ८॥
न भीष्मव्यसनं केचिन्नापि द्रोणस्य मारिष।
नान्येषां पुरुषव्याघ्र मेनिरे तत्र कौरवाः॥ ९॥
ततस्तु त्वरयन् योधाञ्शङ्खशब्देन मारिष।
कर्णो निष्कर्षयामास कौरवाणां महद् बलम्॥ १०॥
व्यूहं व्यूह्य महेष्वासो मकरं शत्रुतापनः।
प्रत्युद्ययौ तथा कर्णः पाण्डवान् विजिगीषया॥ ११॥

हे मान्यवर! अन्धकार का नाश करते और उदय होते सूर्य के समान दुर्धर्ष, रथियों में श्रेष्ठ, रथ में बैठे हुए महाधनुर्धर कर्ण को देखकर हे पुरुष व्याघ्र! कौरवों ने भीष्म, द्रोणाचार्य और दूसरों के मारे जाने के दुःख को अनुभव नहीं किया। हे मान्यवर! तब शंख की ध्वनि से योद्धाओं को शीघ्रता हेतु प्रेरित करते हुए कर्ण ने कौरवों की विशाल सेना को बाहर निकाला। शत्रु को सन्तप्त करनेवाले महाधनुर्धर कर्ण ने मकरव्यूह से सेना को व्यवस्थित करके, पाण्डवों को जीतने की इच्छा से आगे बढ़ाया।

मकरस्य तु तुण्डे वै कर्णो राजन् व्यवस्थितः।
नेत्राभ्यां शकुनिः शूर उलूकश्च महारथः॥ १२॥
द्रोणपुत्रस्तु शिरसि ग्रीवायां सर्वसोदराः।
मध्ये दुर्योधनो राजा बलेन महता वृतः॥ १३॥
वामपादे तु राजेन्द्र कृतवर्मा व्यवस्थितः।
नारायणबलैर्युक्तो गोपालैर्युद्धदुर्मदैः॥ १४॥
पादे तु दक्षिणे राजन् गौतमः सत्यविक्रमः।
त्रिगर्तैः सुमहेष्वासैर्दाक्षिणात्यैश्च संवृतः॥ १५॥

हे राजन्! मकरव्यूह में मकर के मुखभाग में स्वयं कर्ण खड़ा हुआ, नेत्रों के स्थान पर शूरवीर शकुनि और महारथी उलूक खड़े किये गये। अश्वत्थामा को सिर पर तथा गर्दन के स्थान पर दुर्योधन विशाल सेना के साथ अवस्थित हुआ। हे राजेन्द्र! उसके बायें पैर पर कृतवर्मा नारायणीसेना के युद्धदुर्मद गोपालों के साथ खड़ा हुआ। उसके दायें पैर के स्थान पर सत्यविक्रमी कृपाचार्य महाधनुर्धर त्रिगर्तों और दाक्षिणात्यों के साथ खड़े हुए थे।

अनुपादे तु यो वामस्तत्र शल्यो व्यवस्थितः।
महत्या सेनया सार्धं मद्रदेशसमुत्थया॥ १६॥
दक्षिणे तु महाराज सुषेणः सत्यसंगरः।
वृतो रथसहस्रेण दन्तिनां च त्रिभिः शतैः॥ १७॥
पुच्छे ह्यास्तां महावीर्यौ भ्रातरौ पार्थिवौ तदा।

चित्रश्च चित्रसेनश्च महत्या सेनया वृतौ॥ १८॥
तथा प्रयाते राजेन्द्र कर्णे नरवरोत्तमे।
धनंजयमभिप्रेक्ष्य धर्मराजोऽब्रवीदिदम्॥ १९॥

बायें पैर के पिछले भाग में मद्रदेश की महान् सेना के साथ राजा शल्य विद्यमान थे। हे महाराज! दायें पैर के पिछले भाग में सत्यप्रतिज्ञ सुषेण एक हजार रथों और तीनसौ हाथियों के साथ खड़े हुए थे। उसकी पूँछ पर महापराक्रमी दोनोंभाई, राजा चित्र और चित्रसेन महान् सेना के साथ थे। हे राजेन्द्र! तब मनुष्यों में श्रेष्ठ कर्ण के प्रयाण करने पर धर्मराज युधिष्ठिर ने अर्जुन से कहा कि--

पश्य पार्थ यथा सेना धार्तराष्ट्रीह संयुगे।
कर्णेन विहिता वीर गुप्ता वीरैर्महारथैः॥ २०॥
हतवीरतमा ह्येषा धार्तराष्ट्री महाचमूः।
फल्गुशेषा महाबाहो तृणैस्तुल्या मता मम॥ २१॥
एको ह्यत्र महेष्वासः सूतपुत्रो विराजते।
तं हत्वाद्य महाबाहो विजयस्तव फाल्गुन॥ २२॥
उद्धृतश्च भवेच्छल्यो मम द्वादशवार्षिकः।
एवं ज्ञात्वा महाबाहो व्यूहं व्यूह यथेच्छसि॥ २३॥

हे अर्जुन देखो। दुर्योधन की सेना इस समय युद्ध स्थल में किस स्थिति में है? हे वीर! इसे कर्ण ने किसप्रकार महारथीवीरों से सुरक्षित किया है? दुर्योधन की विशाल सेना के अधिकांश वीर मारे जा चुके हैं। हे महाबाहु! अब यह थोड़ीसी बाकी है, जो मेरे विचार में तिनके के समान है। इसमें केवल एक महाधनुर्धर कर्ण सुशोभित है। हे महाबाहु अर्जुन! उसे तुम आज मार दो तो तुम्हारी विजय हो जायेगी और मेरे हृदय में वर्षों से गड़ा हुआ कांटा निकल जायेगा। हे महाबाहु! ऐसा समझकर तुम जैसा चाहो, वैसा व्यूह बना दो।

भ्रातुरेतद् वचः श्रुत्वा पाण्डवः श्वेतवाहनः।
अर्धचन्द्रेण व्यूहेन प्रत्यव्यूहत तां चमूम्॥ २४॥
वामपार्श्वे तु तस्याथ भीमसेनो व्यवस्थितः।
दक्षिणे च महेष्वासो धृष्टद्युम्नो व्यवस्थितः॥ २५॥
मध्ये व्यूहस्य राजा तु पाण्डवश्च धनंजयः।
नकुलः सहदेवश्च धर्मराजस्य पृष्ठतः॥ २६॥
चक्ररक्षौ तु पाञ्चाल्यौ युधामन्यूत्तमौजसौ।
शेषा नृपतयो वीराः स्थिता व्यूहस्य दंशिताः॥ २७॥
यथाभागं यथोत्साहं यथायत्नं च भारत।

भाई की बात सुनकर सफेद वाहनवाले अर्जुन ने अर्धचन्द्राकारव्यूह में अपनी सेना को स्थापित किया। उसके बायें भाग में भीमसेन को खड़ा किया गया और दायें भाग में महाधनुर्धर धृष्टद्युम्न स्थित हुआ। उसके मध्य भाग में राजायुधिष्ठिर और पाण्डुपुत्र अर्जुन थे। नकुल और सहदेव धर्मराज के पिछले भाग में खड़े किये गये। पाँचाल वीर युधामन्यु और उत्तमौजा अर्जुन की चक्ररक्षा में थे। हे भारत! शेष वीरराजा कवच बाँधकर व्यूह के दूसरे भागों में यथास्थल अपने उत्साह और प्रयत्न के अनुसार खड़े हुए थे।

ततः शङ्खाश्च भेर्यश्च पणवानकदुन्दुभिः॥ २८॥
डिण्डिमाश्चाप्यहन्यन्त झर्झराश्च समन्ततः।
सेनयोरुभयो राजन् प्रावाद्यन्त महास्वनाः॥ २९॥
सिंहनादश्च संजज्ञे शूराणां जयगृद्धिनाम्।
हयह्रेषितशब्दाश्च वारणानां च बृंहताम्॥ ३०॥
रथनेमिस्वनाश्चोग्राः सम्बभूवुर्जनाधिप।
उभे सैन्ये महाराज प्रहृष्टनरसंकुले॥ ३१॥
योद्धुकामे स्थिते राजन् हन्तुमन्योन्यमोजसा।
ततः प्रववृते युद्धं नरवारणवाजिनाम्।
रथानां च महाराज अन्योन्यमभिनिघ्नताम्॥ ३२॥

हे राजन्! फिर दोनों सेनाओं में महान् ध्वनि करने वाले शंख, भेरी, पणव, आनक, दुन्दुभि डिण्डिम और झाँझ सबतरफ बजने लगे और विजय अभिलाषी शूरवीरों ने सिंहनाद आरम्भ कर दिया। हे जनाधिप! घोड़ों की हिनहिनाहट, हाथियों की चिंघाड़ और रथों के पहियों की भयंकर घर्घराहट, ये सब वहाँ गूँजने लगे। हे महाराज! फिर दोनों उत्साहित सैनिकों से भरी हुई सेनाएँ अपने पराक्रम से एकदूसरे को मारने के लिये, युद्ध की इच्छा से आमनेसामने खड़ी होगयीं। इसके पश्चात् हे महाराज! एकदूसरे पर प्रहार करते हुए पैदलसैनिकों, हाथीसवारों, घुड़सवारों और रथियों का महान् युद्ध आरम्भ होगया।

छठा अध्याय : भीम के द्वारा क्षेमधूर्ति का वध।

ततो नररथाश्वेभाः पत्तयश्चोग्रविक्रमाः।
अर्धचन्द्रैस्तथा भल्लैः क्षुरप्रैरसिपट्टिशैः॥ १॥
परश्वधैश्चाप्यकृन्तन्नुत्तमाङ्गानि युध्यताम्।
गदाभिरन्ये गुर्वीभिः परिघैर्मुसलैरपि॥ २॥
पोथिताः शतशः पेतुर्वीरा वीरतरै रणे।
रथा रथैर्विमथिता मत्ता मत्तैर्द्विपा द्विपैः॥ ३॥
सादिनः सादिभिश्चैव तस्मिन् परमसंकुले।
रथैर्नरा रथा नागैरश्वारोहाश्च पत्तिभिः॥ ४॥
अश्वारोहैः पदाताश्च निहता युधि शेरते।

फिर युद्ध आरम्भ होने पर भयंकरपराक्रमी पैदल, घुड़सवार, हाथीसवार और रथियों ने अर्धचन्द्राकार, भल्ल और क्षुरप्र नाम के बाणों से तथा तलवार, पट्टिश एवं फरसों से योद्धाओं के सिरों को काटना आरम्भ कर दिया। दूसरे सैकड़ों वीर भारी गदाओं, परिघों और मूसलों से दूसरे बड़ेवीरों के द्वारा कुचले जाकर युद्धभूमि में गिरने लगे। उस भारीघमासान युद्ध में रथों ने रथों को, मस्त हाथियों ने मस्त हाथियों को और घुड़सवारों ने घुड़सवारों को मथ दिया। रथियोंद्वारा मारे गये पैदल, हाथियोंद्वारा मारे गये रथी, पैदलसैनिकों द्वारा मारे गये घुड़सवार और घुड़सवारोंद्वारा मारे पैदल सैनिक युद्धभूमि में सोरहे थे।

रथाश्वपत्तयो नागै रथाश्वेभाश्च पत्तिभिः॥ ५॥
रथपत्तिद्विपाश्चाश्वै रथैश्चापि नरद्विपाः।
अस्मानभ्याययुः पार्था वृकोदरपुरोगमाः॥ ६॥
धृष्टद्युम्नः शिखण्डी च द्रौपदेयाः प्रभद्रकाः।
सात्यकिश्चेकितानश्च द्राविडैः सैनिकैः सह॥ ७॥
वृता व्यूहेन महता पाण्ड्याश्चोलाः सकेरलाः।

हाथियों ने रथी, घुड़सवारों तथा पैदलसैनिकों को, पैदलसैनिकों ने रथियों, घुड़सवारों और हाथीसवारों को तथा रथियों ने पैदलसैनिकों तथा हाथीसवारों को मार गिराया। तब भीमसेन को आगेकर कुन्तीपुत्रों ने हमारे ऊपर आक्रमण किया। धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, द्रौपदी के पुत्र, प्रभद्रक, सात्यकि, चेकितान, द्रविड सैनिकोंसहित विशाल व्यूह से घिरे हुए पाण्डव, चोल और केरलयोद्धा भी उनके साथ थे।

अथापरे पुनः शूराश्चेदिपञ्चालकेकयाः॥ ८॥
कारूषाः कोसलाः काञ्च्या मागधाश्चापि दुद्रुवुः।
तस्य सैन्यस्य महतो महामात्रवरैर्वृतः॥ ९॥
मध्ये वृकोदरोऽभ्यायात् त्वदीयान् नागधूर्गतः।
तस्यायसं वर्म वरं वररत्नविभूषितम्॥ १०॥
ताराव्याप्तस्य नभसः शारदस्य समत्विषम्।
स तोमरव्यग्रकरश्चारुमौलिः स्वलंकृतः॥ ११॥
शरन्मध्यंदिनार्काभस्तेजसा व्यदहद् रिपून्।

फिर दूसरेवीर चेदि, पाँचाल, केकय, कारूष, कोसल, काञ्चीनिवासी और मागधसैनिक भी हमारे ऊपर चढ़ आये। उस विशाल सेना के बीच में श्रेष्ठ महावतों से घिरकर, हाथी की पीठ पर बैठे हुए भीमसेन आपके सैनिकों की तरफ बढ़ते हुए आ रहे थे। उनका लोहे का उत्तम कवच जो सुन्दर रत्नों से विभूषित था, तारों से भरे हुए शरद्ऋतु के आकाश के समान प्रकाशित होरहा था। सुन्दर मुकुट और आभूषणों से विभूषित तथा व्यग्रता से युक्त हाथ में तोमर लिये हुए और शरद्ऋतु के मध्याह्न काल के सूर्य के समान तेजस्वी भीम अपने तेज से शत्रुओं को दग्ध कर रहे थे।

तं दृष्ट्वा द्विरदं दूरात् क्षेमधूर्तिर्द्विपस्थितः॥ १२॥
आह्वयन्नभिदुद्राव प्रमनाः प्रमनस्तरम्।
तयोः समभवद् युद्धं द्विपयोरुग्ररूपयोः॥ १३॥
यदृच्छया द्रुमवतोर्महापर्वतयोरिव।
संसक्तनागौ तौ वीरौ तोमरैरितरेतरम्॥ १४॥
बलवत् सूर्यरश्म्याभैर्भित्त्वान्योन्यं विनेदतुः।

तब उनके हाथी को दूर से देखकर, हाथी पर बैठे हुए मनस्वी क्षेमधूर्ति ने उन महामनस्वी को ललकारते हुए आक्रमण किया। तब उग्र रूपधारी उनदोनों हाथियों में उसीप्रकार युद्ध होने लगा, जैसे वृक्षों से भरे हुए दो विशाल पर्वत, अपनी इच्छा से परस्पर टकरा रहे हों। जिनके हाथी एक दूसरे से उलझे हुए थे, वेदोनों वीर सूर्य की किरणों के समान जगमगाते हुए तोमरों से बलपूर्वक एक दूसरे को विदीर्ण करते हुए जोर से गर्जने लगे।

व्यपसृत्य तु नागाभ्यां मण्डलानि विचेरतुः॥ १५॥
प्रगृह्य चोभौ धनुषी जघ्नतुर्वै परस्परम्।
क्ष्वेडितास्फोटितरवैर्बाणशब्दैस्तु सर्वतः॥ १६॥
तौ जनं हर्षयन्तौ च सिंहनादं प्रचक्रतुः।

समुद्यतकराभ्यां तौ द्विपाभ्यां कृतिनावुभौ॥ १७॥
वातोद्धूतपताकाभ्यां युयुधाते महाबलौ।

हाथियोंद्वारा फिर वे पीछे हटकर, मण्डलाकार में विचरते हुए, धनुषों को लेकर, एकदूसरे पर बाणों से प्रहार करने लगे। गर्जने, ताल ठोकने और बाणों की आवाज से सबतरफ योद्धाओं को हर्षित करते हुए वे सिंहनाद कर रहे थे। वेदोनों महाबली कर्मठयोद्धा उन हाथियोंद्वारा, जिनपर लगी पताकाएँ वायु से लहरा रही थीं, जिन्होंने सूँडें ऊपर उठायी हुई थीं, युद्ध कर रहे थे।

तावन्योन्यस्य धनुषी छित्त्वान्योन्यं विनेदतुः॥ १८॥
शक्तितोमरवर्षेण प्रावृण्मेघाविवाम्बुभिः।
क्षेमधूर्तिस्तदा भीमं तोमरेण स्तनान्तरे॥ १९॥
निर्बिभेदातिवेगेन षड्भिश्चाप्यपरैर्नदन्।
ततो भास्करवर्णाभमञ्जोगतिमयस्मयम्॥ २०॥
ससर्ज तोमरं भीमः प्रत्यमित्राय यत्नवान्।
ततः कुलूताधिपतिश्चापमानम्य सायकैः॥ २१॥
दशभिस्तोमरं भित्त्वा षष्ट्या विव्याध पाण्डवम्।
अथ कार्मुकमादाय भीमो जलदनिःस्वनम्॥ २२॥
रिपोरभ्यर्दयन्नागमुन्नदन् पाण्डवः शरैः।

उनदोनों ने एकदूसरे के धनुषों को काट दिया और वर्षाऋतु के बादलोंद्वारा बरसाये जाते हुए जल की तरह शक्ति और तोमरों की वर्षा करते हुए वे जोरजोर से गर्जना करने लगे। क्षेमधूर्ति ने तब भीम की छाती में बड़ेजोर से एक तोमर घुसा दिया तथा गर्जते हुए छः दूसरे तोमरों से भी उन्हें पीड़ित किया। तब भीम ने प्रयत्न से सूर्य के समान चमकीले, सीधीगति वाले, लोहे के तोमर को अपने शत्रुपर छोड़ा। तब कुलूतदेश के राजा क्षेमधूर्ति ने धनुष को झुकाकर दसबाणों से उस तोमर को काटकर, साठबाणों की वर्षाकर पाण्डुपुत्र को घायल किया। फिर भीम ने गर्जते हुए बादलों के समान ध्वनि करते हुए धनुष को लेकर बाणों से शत्रु के हाथी को पीड़ित कर दिया।

स शरौघार्दितो नागो भीमसेनेन संयुगे॥ २३॥
गृह्यमाणोऽपि नातिष्ठद् वातोद्धूत इवाम्बुदः।
तमभ्यधावद् द्विरदं भीमो भीमस्य नागराट्॥ २४॥
महावातेरितं मेघं वातोद्धूत इवाम्बुदः।
संनिवार्यात्मनो नागं क्षेमधूर्तिः प्रतापवान्॥ २५॥
विव्याधाभिद्रुतं बाणैर्भीमसेनस्य कुञ्जरम्।
ततः साधुविसृष्टेन क्षुरेणानतपर्वणा॥ २६॥
छित्त्वा शरासनं शत्रोर्नागमामित्रमार्दयत्।

भीमसेन के बाणों से पीड़ित हुआ वह हाथी, युद्धक्षेत्र में हवा के द्वारा उड़ाये गये बादल के समान रोके जाने पर भी रुक न सका। उस भागते हुए हाथी के पीछे भीम का गजराज ऐसे भागा जा रहा था, जैसे आँधी के द्वारा उड़ाये गये एक बादल के पीछे आँधी के द्वारा ही उड़ाया गया दूसरा बादल जारहा हो। तब प्रतापी क्षेमधूर्ति ने अपने हाथी को रोककर, दौड़कर आते हुए भीमसेन के हाथी को बाणों से घायल कर दिया। तब भीमसेन ने झुकी गाँठवाले और अच्छीतरह से छोड़े हुए क्षुरनाम के वाण से शत्रु के धनुष को काटकर, उसके हाथी को पीड़ित किया।

ततः क्रुद्धो रणे भीमं क्षेमधूर्तिः पराभिनत्॥ २७॥
जघान चास्य द्विरदं नाराचैः सर्वमर्मसु।
स पपात महानागो भीमसेनस्य भारत॥ २८॥
पुरा नागस्य पतनादवप्लुत्य स्थितो महीम्।
तस्य भीमोऽपि द्विरदं गदया समपोथयत्॥ २९॥
तस्मात् प्रमथितान्नागात् क्षेमधूर्तिमवप्लुतम्।
उद्यतायुधमायान्तं गदयाहन् वृकोदरः॥ ३०॥
स पपात हतः सासिर्व्यसुस्तमभितो द्विपम्।
वज्रप्रभग्नमचलं सिंहो वज्रहतो यथा॥ ३१॥
तं हतं नृपतिं दृष्ट्वा कुलूतानां यशस्करम्।
प्राद्रवद् व्यथिता सेना त्वदीया भरतर्षभ॥ ३२॥

तब क्षेमधूर्ति ने क्रुद्ध होकर युद्धस्थल में भीम को गहरी चोट पहुँचायी और नाराचोंद्वारा उनके हाथी के मर्मस्थलों पर आघात किये। हे भारत! तब भीम का वह महान् हाथी भूमि पर गिर पड़ा। पर हाथी के गिरने से पहलेही भीम कूदकर भूमि पर खड़े होगये। तब भीम ने क्षेमधूर्ति के हाथी को भी गदा की चोट से गिरा दिया। उस गिरते हुए हाथी से कूदकर, क्षेमधूर्ति जब तलवार उठाकर सामने आने लगा, तब भीम ने उसपर भी गदा से प्रहार किया। गदा के प्रहार से क्षेमधूर्ति निष्प्राण होकर अपने हाथी के सामने ही गिर पड़ा। हे भरतश्रेष्ठ! जैसे विद्युत् के प्रहार से टूटकर गिरे हुए पर्वतशिखर के समीप विद्युत के प्रहार से ही मरा हुआ सिंह पड़ा हो, वैसेही कुलूतों के उस यशस्वी राजा को मारा हुआ देखकर, आपकी सेना व्यथित होकर भागने लगी।

सातवाँ अध्याय : सात्यकि द्वारा केकयकुमार विन्द और अनुविन्द का वध।

ततः कर्णो महेष्वासः पाण्डवानामनीकिनीम्।
जघान समरे शूरः शरैः संनतपर्वभिः॥ १॥
तथैव पाण्डवा राजंस्तव पुत्रस्य वाहिनीम्।
कर्णस्य प्रमुखे क्रुद्धा निजघ्नुस्ते महारथाः॥ २॥
तत्र भारत कर्णेन नाराचैस्ताडिता गजाः।
नेदुः सेदुश्च मम्लुश्च बभ्रमुश्च दिशो दश॥ ३॥
वध्यमाने बले तस्मिन् सूतपुत्रेण मारिष।
नकुलोऽभ्यद्रवत् तूर्णं सूतपुत्रं महारणे॥ ४॥

हे राजन्! फिर महाधनुर्धर, शूरवीर कर्ण ने झुकी गाँठवाले बाणों से युद्धक्षेत्र में पाण्डवों की सेना का विनाश करना आरम्भ कर दिया। उसीप्रकार क्रुद्ध पाण्डवमहारथी भी कर्ण के सामनेही आपके पुत्र की सेना को मारने लगे। हे भारत! वहाँ कर्णद्वारा नाराचों से मारे गये हाथी व्यथित होकर चिंघाड़ रहे थे और मलिन होकर दसों दिशाओं में चक्कर काट रहे थे। हे मान्यवर! सूतपुत्र द्वारा सेना के मारे जाते हुए होने पर उस महान् युद्ध में नकुल ने शीघ्रतापूर्वक सूतपुत्र पर आक्रमण किया।

भीमसेनस्तथा द्रौणिं कुर्वाणं कर्म दुष्करम्।
विन्दानुविन्दौ कैकेयौ सात्यकिः समवारयत्॥ ५॥
श्रुतकर्माणमायान्तं चित्रसेनो महीपतिः।
प्रतिविन्ध्यस्तथा चित्रं चित्रकेतनकार्मुकम्॥ ६॥
दुर्योधनस्तु राजानं धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम्।
संशप्तकगणान् क्रुद्धो ह्यभ्यधावद् धनंजयः॥ ७॥
धृष्टद्युम्नः कृपेणाथ तस्मिन् वीरवरक्षये।
शिखण्डी कृतवर्माणं समासादयदच्युतम्॥ ८॥

तब भीमसेन ने दुष्कर कर्म करते हुए द्रोणपुत्र को तथा सात्यकि ने विन्द और अनुविन्द को रोका। राजा चित्रसेन ने आते हुए श्रुतकर्मा को और प्रतिविंध्य ने विचित्र ध्वजा तथा धनुषवाले चित्र को रोका। दुर्योधन ने धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर पर तथा क्रोध में भरे हुए अर्जुन ने संशप्तकसमूहों पर आक्रमण किया। उन श्रेष्ठवीरों के विनाशकारी युद्ध में धृष्टद्युम्न, कृपाचार्य के साथ तथा पीछे न हटने वाले कृतवर्मा के साथ शिखण्डी भिड़ गया।

श्रुतकीर्तिस्तथा शल्यं माद्रीपुत्रः सुतं तव।
दुःशासनं महाराज सहदेवः प्रतापवान्॥ ९॥
कैकेयौ सात्यकिं युद्धे शरवर्षेण भास्वता।
सात्यकिः केकयौ चापि च्छादयामास भारत॥ १०॥
तावेनं भ्रातरौ वीरौ जघ्नतुर्हृदये भृशम्।
विषाणाभ्यां यथा नागौ प्रतिनागं महावने॥ ११॥
शरसम्भिन्नवर्माणौ तावुभौ भ्रातरौ रणे।
सात्यकिं सत्यकर्माणं राजन् विव्यधतुः शरैः॥ १२॥
वार्यमाणौ ततस्तौ हि शैनेयशरवृष्टिभिः।
शैनेयस्य रथं तूर्णं छादयामासतुः शरैः॥ १३॥

हे महाराज! श्रुतकीर्ति ने शल्य पर और प्रतापी माद्रीपुत्र सहदेव ने आपके पुत्र दुश्शासन पर आक्रमण किया। हे भारत! युद्ध में केकयकुमारों ने सात्यकि को और सात्यकि ने दोनों केकयकुमारों को चमकदार बाणों से आच्छादित कर दिया। जैसे महान् वन में दो हाथी अपने दाँतों से प्रतिद्वन्द्वी हाथी पर चोट करें, वैसेही उनदोनों वीर भाइयों ने सात्यकि की छाती पर गहरी चोट पहुँचायी। हे राजन्! उस युद्ध में दोनों भाइयों के कवच बाणों से छिन्न होगये थे, फिरभी उन्होंने सत्यकर्मा सात्यकि को बाणों से घायल कर दिया। फिर सात्यकि की बाणवर्षा से रोके जाते हुए उनदोनों ने शीघ्रता से सात्यकि के रथ को बाणों से आच्छादित कर दिया।

तयोस्तु धनुषी चित्रे छित्त्वा शौरिर्महायशाः।
अथ तौ सायकैस्तीक्ष्णैर्वारयामास संयुगे॥ १४॥
अथान्ये धनुषी चित्रे प्रगृह्य च महाशरान्।
सात्यकिं छादयन्तौ तौ चेरतुर्लघु सुष्ठु च॥ १५॥
अन्योन्यस्य धनुश्चैव चिच्छितुस्ते महारथाः।
ततः क्रुद्धो महाराज सात्वतो युद्धदुर्मदः॥ १६॥
धनुरन्यत् समादाय सज्यं कृत्वा च संयुगे।
क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन अनुविन्दशिरोऽहरत्॥ १७॥

महायशस्वी सात्यकि ने उनदोनों के विचित्र धनुषों को काटकर तीव्र बाणों से उन्हें युद्धक्षेत्र में आगे बढ़ने से रोक दिया। फिर वेदोनों दूसरे विचित्र धनुषों और विशाल बाणों को लेकर, उनके द्वारा सात्यकि को आच्छादित करते हुए, शीघ्रता और उत्तमता से विचरण करने लगे। फिर तीनों महारथियों ने एकदूसरे के धनुष काट दिये। हे महाराज! तब युद्ध में दुर्मद क्रुद्ध सात्यकि ने दूसरे धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाकर,

युद्धक्षेत्र में अत्यन्ततीखे क्षुरप्र से अनुविन्द का सिर काट लिया।

तं दृष्ट्वा निहतं शूरं भ्राता तस्य महारथः।
सज्यमन्यद् धनुः कृत्वा शैनेयं पर्यवारयत्॥ १८॥
स षष्ट्या सात्यकिं विद्ध्वा स्वर्णपुङ्खैः शिलाशितैः।
ननाद बलवन्नादं तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत्॥ १९॥
सात्यकिः समरे विद्धः कैकेयेन महात्मना।
कैकेयं पञ्चविंशत्या विव्याध प्रहसन्निव॥ २०॥
तावन्योन्यस्य समरे संछिद्य धनुषी शुभे।
हत्वा च सारथी तूर्णं हयांश्च रथिनां वरौ॥ २१॥

तब शूरवीर अनुविन्द को मारा हुआ देखकर उसके महारथी भाई विन्द ने दूसरे धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाकर, सात्यकि को चारोंतरफ से रोका। उसने सुनहरे पंखवाले साठबाणों की सात्यकि पर वर्षाकर उसे बींधा और जोर से गर्जना करते हुए ठहर जा, ठहर जा ऐसा कहा। मनस्वी केकयकुमार से युद्धक्षेत्र में बींधे हुए सात्यकि ने मुस्कराते हुए उसपर पच्चीस बाणों की वर्षाकर उसे घायल किया। फिर युद्ध में एकदूसरे के सुन्दर धनुष काटकर शीघ्रता से उनदोनों उत्तम महारथियों ने एकदूसरे के सारथी और घोड़ों को मार दिया।

विरथावसियुद्धाय समाजग्मतुराहवे।
शतचन्द्रचिते गृह्य चर्मणी सुभुजौ तथा॥ २२॥
मण्डलानि ततस्तौ तु विचरन्तौ महारणे।
अन्योन्यमभितस्तूर्णं समाजग्मतुराहवे॥ २३॥
अन्योन्यस्य वधे चैव चक्रतुर्यत्नमुत्तमम्।
कैकेयस्य द्विधा चर्म ततश्चिच्छेद सात्वतः॥ २४॥
सात्यकेस्तु तथैवासौ चर्म चिच्छेद पार्थिवः।
चचार मण्डलान्येव गतप्रत्यागतानि च॥ २५॥

तब सुन्दर भुजाओंवाले वेदोनों रथहीन होकर सौ चन्द्रमाओं से चित्रित ढालों को लेकर युद्धस्थल में तलवार युद्ध के लिये आमनेसामने आगये। उस महान् युद्ध में मण्डलाकार विचरते हुए उनदोनों ने तब युद्धस्थल में शीघ्रता से एकदूसरे पर आक्रमण किया। वे एकदूसरे के वध के लिये उत्तम प्रयत्न करने लगे। फिर सात्यकि ने केकयकुमार की ढाल के दो टुकड़े कर दिये। उस राजा ने भी सात्यकि की ढाल के उसीप्रकार टुकड़े कर दिये और वह फिर गतप्रत्यागत आदि पैंतरे बदलने लगा।

तं चरन्तं महारङ्गे निस्त्रिंशवरधारिणम्।
अपहस्तेन चिच्छेद शैनेयस्त्वरयान्वितः॥ २६॥
तं निहत्य रणे शूरः शैनेयो रथसत्तमः।
युधामन्युरथं तूर्णमारुरोह परंतपः॥ २७॥
ततोऽन्यं रथमास्थाय विधिवत्कल्पितं पुनः।
केकयानां महत् सैन्यं व्यधमत् सात्यकिः शरैः॥ २८॥

तब उस महान् युद्धस्थल में उत्तम तलवार लेकर विचरते हुए विन्द को सात्यकि ने शीघ्रतापूर्वक तिरछे हाथ से काट दिया। इसप्रकार युद्ध में परंतप, शूरवीर, श्रेष्ठरथी सात्यकि उसे मारकर तुरन्त युधामन्यु के रथपर चढ़ गये। उसके बाद विधिपूर्वक सजाकर लाये हुए दूसरे रथपर बैठकर सात्यकि बाणों से केकयों की विशाल सेना का संहार करने लगा।

आठवाँ अध्याय : द्रौपदीपुत्र श्रुतकर्मा और प्रतिविन्ध्य द्वारा चित्र और चित्रसेन का वध।

श्रुतकर्मा ततो राजंश्चित्रसेनं महीपतिम्।
आजघ्ने समरे क्रुद्धः पञ्चाशद्भिः शिलीमुखैः॥ १॥
अभिसारस्तु तं राजन् नवभिर्नतपर्वभिः।
श्रुतकर्माणमाहत्य सूतं विव्याध पञ्चभिः॥ २॥
श्रुतकर्मा ततः क्रुद्धश्चित्रसेनं चमूमुखे।
नाराचेन सुतीक्ष्णेन मर्मदेशे समार्पयत्॥ ३॥
सोऽतिविद्धो महाराज नाराचेन महात्मना।
मूर्छामभिययौ वीरः कश्मलं चाविवेश ह॥ ४॥

हे राजन्! तब युद्धक्षेत्र में क्रुद्ध श्रुतकर्मा ने राजा चित्रसेन पर पचास बाणों की वर्षाकर उसे चोट पहुँचायी। हे राजन्! तब अभिसार के राजा चित्रसेन ने नौ झुकी गाँठवाले बाणों से श्रुतकर्मा को घायलकर उसके सारथी को पाँच बाणों से बींध दिया। तब सेना के मुहाने पर श्रुतकर्मा ने क्रुद्ध होकर चित्रसेन के मर्मस्थल पर अत्यन्ततीखे नाराच से प्रहार किया। हे महाराज! तब मनस्वी श्रुतकर्मा के नाराच से

अत्यन्त घायल होकर वह वीर मूर्च्छा को प्राप्तकर अचेत होगया।

एतस्मिन्नन्तरे चैनं श्रुतकीर्तिर्महायशाः।
नवत्या जगतीपालं छादयामास पत्रिभिः॥ ५॥
प्रतिलभ्य ततः संज्ञां चित्रसेनो महारथः।
धनुश्चिच्छेद भल्लेन तं च विव्याध सप्तभिः॥ ६॥
सोऽन्यत् कार्मुकमादाय वेगघ्नं रुक्मभूषितम्।
चित्ररूपधरं चक्रे चित्रसेनं शरोर्मिभिः॥ ७॥
श्रुतकर्माणमथ वै नाराचेन स्तनान्तरे।
बिभेद तरसा शूरस्तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत्॥ ८॥
श्रुतकर्मापि समरे नाराचेन समर्पितः।
सुस्राव रुधिरं तत्र गैरिकार्द्र इवाचलः॥ ९॥

इसीबीच में महायशस्वी श्रुतकर्मा ने उस राजा को नब्बे बाणों से आच्छादित कर दिया। तब महारथी चित्रसेन ने होश में आकर भल्ल से उसके धनुष को काट कर उसे सातबाणों से बींध दिया। फिर श्रुतकर्मा ने शत्रु के वेग को नष्ट करनेवाले दूसरे स्वर्णभूषित धनुष को लेकर बाणों की लहरों से चित्रसेन को विचित्र रूपवाला बना दिया। तब उस शूरवीर ने वेगपूर्वक श्रुतकर्मा की छाती को नाराच से घायल कर दिया और उससे कहा कि खड़े रहो, खड़े रहो। युद्ध में नाराच की चोट खाकर श्रुतकर्मा इसप्रकार खून बहाने लगा जैसे गेरू से भीगा पर्वत लाल रंग की जलधारा बहाता है।

श्रुतकर्मा ततो राजञ्शत्रुणा समभिद्रुतः।
शत्रुसंवारणं क्रुद्धो द्विधा चिच्छेद कार्मुकम्॥ १०॥
अथैनं छिन्नधन्वानं नाराचानां शतैस्त्रिभिः।
छादयन् समरे राजन् विव्याध च सुपत्रिभिः॥ ११॥
ततोऽपरेण भल्लेन तीक्ष्णेन निशितेन च।
जहार सशिरस्त्राणं शिरस्तस्य महात्मनः॥ १२॥

हे राजन्! शत्रुद्वारा आक्रान्त क्रुद्ध श्रुतकर्मा ने तब चित्रसेन के शत्रु का निवारण करने वाले धनुष के दो टुकड़े कर दिये। फिर धनुष के टूटने पर उसके ऊपर अच्छे पंखोंवाले तीनसौ नाराचों की वर्षाकर, हे राजन्! उसने उसे घायल कर दिया। फिर एकदूसरे तीखे और पैने भल्ल से उसने मनस्वी चित्रसेन के शिरस्त्राणसहित सिर को काट दिया।

ततः क्रुद्धो महेष्वासस्तत्सैन्यं प्राद्रवच्छरैः।
ते वध्यमानाः समरे तव पौत्रेण धन्विना॥ १३॥
व्यद्रवन्त दिशस्तूर्णं दावदग्धा इव द्विपाः।
प्रतिविन्ध्यस्ततश्चित्रं भित्त्वा पञ्चभिराशुगैः॥ १४॥
सारथिं च त्रिभिर्विद्ध्वा ध्वजमेकेषुणापि च।
तं चित्रो नवभिर्भल्लैर्बाह्वोरुरसि चार्पयत्॥ १५॥
स्वर्णपुङ्खैः प्रसन्नाग्रैः कङ्कबर्हिणवाजितैः।
प्रतिविन्ध्यो धनुश्छित्त्वा तस्य भारत सायकैः॥ १६॥
पञ्चभिर्निशितैर्बाणैरथैनं स हि जघ्निवान्।
ततः शक्तिं महाराज स्वर्णघण्टां दुरासदाम्॥ १७॥
प्राहिणोत् तव पौत्राय घोरामग्निशिखामिव।

फिर उस क्रुद्ध महाधनुर्धर ने चित्रसेन की सेना को बाणों से मारना आरम्भ कर दिया। आपके धनुर्धर पौत्रद्वारा मारे जाते हुए वे सैनिक तब दावानल से झुलसे हाथियों के समान तुरन्त सारी दिशाओं में भागने लगे। उधर प्रतिविन्ध्य ने शीघ्रगामी पाँच बाणों से चित्र को बींधकर तथा तीन बाणों से उसके सारथी को बींधकर एक बाण से उसके ध्वज को भी बींध दिया। तब चित्र ने कंक और मोर के सुनहरे पंखवाले, तीखीनोकदार नौ भल्लों से उसकी बाहों और छाती पर प्रहार किया। हे भारत! तब प्रतिविन्ध्य ने अपने बाणों से उसके धनुष को काटकर उसको पाँच तीखे बाण मारे। हे महाराज! तब चित्रने एक सुनहरी घण्टियोंवाली दुर्धर्ष तथा अग्निशिखा के समान घोर शक्ति को आपके पौत्र की तरफ फैंका।

तामापतन्तीं सहसा महोल्काप्रतिमां तदा॥ १८॥
द्विधा चिच्छेद समरे प्रतिविन्ध्यो हसन्निव।
शक्तिं तां प्रहतां दृष्ट्वा चित्रो गृह्य महागदाम्॥ १९॥
प्रतिविन्ध्याय चिक्षेप रुक्मजालविभूषिताम्।
सा जघान हयांस्तस्य सारथिं च महारणे॥ २०॥
एतस्मिन्नेव काले तु रथादाप्लुत्य भारत।
शक्तिं चिक्षेप चित्राय स्वर्णदण्डामलंकृताम्॥ २१॥

महान् उल्का के समान अपने ऊपर आती हुई उस शक्ति के प्रतिविन्ध्य ने मुस्कराते हुए सहसा युद्धस्थल में दो टुकड़े कर दिये। शक्ति को नष्ट हुआ देखकर चित्र ने सुनहरी जाली से विभूषित विशाल गदा को उठाकर उसे प्रतिविन्ध्य की तरफ फैंका। गदा ने उस महान् युद्ध में प्रतिविन्ध्य के घोड़ों और सारथी को मार दिया। हे भारत! इसीबीच में प्रतिविन्ध्य ने रथ से कूदकर सुनहरे डण्डे से अलंकृत एक शक्ति को चित्र के ऊपर फैंका।

तामापतन्तीं जग्राह चित्रो राजन् महामनाः।
ततस्तामेव चिक्षेप प्रतिविन्ध्याय पार्थिवः॥ २२॥
समासाद्य रणे शूरं प्रतिविन्ध्यं महाप्रभा।
निर्भिद्य दक्षिणं बाहुं निपपात महीतले॥ २३॥
प्रतिविन्ध्यस्ततो राजंस्तोमरं हेमभूषितम्।
प्रेषयामास संक्रुद्धश्चित्रस्य वधकाङ्क्षया॥ २४॥
स पपात तदा राजा तोमरेण समाहतः।
प्रसार्य विपुलौ बाहू पीनौ परिघसंनिभौ॥ २५॥

हे राजन्! महामना राजा चित्र ने उस आती हुई शक्ति को हाथ से पकड़ लिया और उसी को प्रतिविन्ध्य पर फैंक दिया। वह महान् प्रभावाली शक्ति युद्ध में शूरवीर प्रतिविन्ध्य की दायीं बाँह को घायल करती हुई भूमि पर गिर पड़ी। हे राजन्! तब अत्यन्तक्रुद्ध होकर प्रतिविन्ध्य ने चित्र के वध की इच्छा से एक स्वर्णभूषित तोमर का उसपर प्रहार किया। तोमर से मारा हुआ वह राजा अपनी परिघ के समान मोटी और विशाल बाहों को फैलाकर भूमिपर गिर पड़ा।

नवाँ अध्याय : अश्वत्थामा और भीमसेन का युद्ध और मूर्च्छा।

विप्रद्रुते बले तस्मिन् वध्यमाने समन्ततः।
द्रौणिरेकोऽभ्ययात् तूर्णं भीमसेनं महाबलम्॥ १॥
भीमसेनं ततो द्रौणी राजन् विव्याध पत्रिणा।
परया त्वरया युक्तो दर्शयन्नस्त्रलाघवम्॥ २॥
अथैनं पुनराजघ्ने नवत्या निशितैः शरैः।
सर्वमर्माणि सम्प्रेक्ष्य मर्मज्ञो लघुहस्तवत्॥ ३॥
ततः शरसहस्रेण सुप्रयुक्तेन पाण्डवः।
द्रोणपुत्रमवच्छाद्य सिंहनादममुञ्चत॥ ४॥

हे राजन्! जब सबतरफ से मारी जाती हुई वह सेना भागने लगी, तब अश्वत्थामा ने अकेलेही शीघ्रतासे महाबली भीमसेन पर आक्रमण कर दिया। उसने अत्यन्त शीघ्रता से अपने अस्त्र कौशल को दिखाते हुए भीमसेन को एकबाण से बींध दिया। फिर मर्मज्ञ अश्वत्थामा ने एक कुशलहस्त के समान भीम के सारे मर्मस्थलों को लक्ष्यकर तीखे नब्बे बाणों की वर्षाकर उन्हें घायल किया। तब पाण्डुपुत्र ने अच्छीतरह चलाये हुए असंख्य बाणों की वर्षा से द्रोणपुत्र को आच्छादितकर सिंहनाद किया।

शरैः शरांस्ततोद्रौणिः संवार्य युधि पाण्डवम्।
ललाटेऽभ्याहनद् राजन् नाराचेन स्मयन्निव॥ ५॥
ततो द्रौणिं रणे भीमो यतमानं पराक्रमी।
त्रिभिर्विव्याध नाराचैर्ललाटे विस्मयन्निव॥ ६॥
ततः शरशतैर्द्रौणिरर्दयामास पाण्डवम्।
न चैनं कम्पयामास मातरिश्वेव पर्वतम्॥ ७॥
तथैव पाण्डवो युद्धे द्रौणिं शरशतैः शितैः।
नाकम्पयत संहृष्टो वार्योघ इव पर्वतम्॥ ८॥

हे राजन्! तब द्रोणपुत्र ने अपने बाणों से भीम के बाणों का निवारणकर मुस्कराते हुए युद्ध में पाण्डुपुत्र के मस्तक पर एक नाराच से प्रहार किया। तब पराक्रमी भीम ने भी मुस्कराते हुए युद्ध में प्रयत्न करते हुए द्रोणपुत्र के मस्तक को तीन नाराचों से घायल कर दिया। तब अश्वत्थामा ने सौ बाणों की वर्षा से भीम को पीड़ित किया। पर जैसे वायु पर्वत को नहीं हिला सकती, वह उन्हें कम्पित नहीं कर सका। उसीप्रकार उत्साह में भरे पाण्डुपुत्र ने भी युद्ध में सौ तीखे बाणों की वर्षा करने पर भी अश्वत्थामा को वैसेही कम्पित नहीं किया जैसे जल का प्रवाह पर्वत को कम्पित नहीं कर पाता।

आदित्याविव संदीप्तौ लोकक्षयकरावुभौ।
स्वरश्मिभिरिवान्योन्यं तापयन्तौ शरोत्तमैः॥ ९॥
ततः प्रतिकृते यत्नं कुर्वाणौ तौ महारणे।
कृतप्रतिकृते यत्तौ शरसङ्घैरभीतवत्॥ १०॥
व्याघ्राविव च संग्रामे चेरतुस्तौ नरोत्तमौ।
शरदंष्ट्रौ दुराधर्षौ चापवक्त्रौ भयंकरौ॥ ११॥
अभूतां तावदृश्यौ च शरजालैः समन्ततः।
मेघजालैरिव च्छन्नौ गगने चन्द्रभास्करौ॥ १२॥

संसार का विनाश करने को उदित हुए दो तेजस्वी सूर्यों के समान वेदोनों अपने उत्तम बाणरूपी किरणों से एकदूसरे को सन्तप्त कर रहे थे। उस महान् युद्ध में प्रतिकार करने का प्रयत्न करते हुए, वेदोनों निर्भयता से अपने बाणसमूहोंद्वारा परस्पर घातप्रतिघात का प्रयत्न कर रहे थे। वेदोनों नरश्रेष्ठ धनुषरूपी मुखों और बाणरूपी दाढ़ोंवाले दो दुर्धर्ष और भयंकर व्याघ्रों के

समान युद्धभूमि में विचरण कर रहे थे। आकाश में मेघमालाओं से छिपाये हुए सूर्य और चन्द्रमा के समान वेदोनों बाणवर्षा द्वारा सबतरफ से अदृश्य होगये थे।

चकाशेते मुहूर्तेन ततस्तावप्यरिंदमौ।
विमुक्तावभ्रजालेन अङ्गारकबुधाविव॥ १३॥
अथ तत्रैव संग्रामे वर्तमाने सुदारुणे।
अपसव्यं ततश्चक्रे द्रौणिस्तत्र वृकोदरम्॥ १४॥
किरञ्छरशतैरुग्रैर्धाराभिरिव पर्वतम्।
न तु तन्ममृषे भीमः शत्रोर्विजयलक्षणम्॥ १५॥
प्रतिचक्रे ततो राजन् पाण्डवोऽप्यपसव्यतः।
मण्डलानां विभागेषु गतप्रत्यागतेषु च॥ १६॥

फिर थोड़ी देर में ही दोनों शत्रुदमन बादलों के समूह से मुक्त हुए मंगल और बुध ग्रहों के समान बाणसमूहों से युक्त होकर प्रकाशित होने लगे। इसप्रकार अत्यन्तदारुण युद्ध के चलते हुए द्रोणपुत्र ने भीमसेन को अपने दाहिने कर दिया। तब जैसे बादल जलधाराओं की वर्षा पर्वत के ऊपर करता है, वैसेही सैकड़ों बाणों की वर्षा करते हुए शत्रु के उस विजयसूचक कार्य को भीम ने सहन नहीं किया। हे राजन्! तब भीम ने भी गतप्रत्यागत आदि अनेकप्रकार के पैंतरों को अपनाते हुए अश्वत्थामा को अपने दाहिने कर दिया।

बभूव तुमुलं युद्धं तयोः पुरुषसिंहयोः।
चरित्वा विविधान् मार्गान् मण्डलस्थानमेव च॥ १७॥
शरैः पूर्णायतोत्सृष्टैरन्योन्यमभिजघ्नतुः।
अन्योन्यस्य वधे चैव चक्रतुर्यत्नमुत्तमम्॥ १८॥
ईषतुर्विरथं चैव कर्तुमन्योन्यमाहवे।
ततो द्रौणिर्महास्त्राणि प्रादुश्चक्रे महारथः॥ १९॥
तान्यस्त्रैरेव समरे प्रतिजघ्नेऽथ पाण्डवः।

तब विभिन्नप्रकार के पैंतरों को दिखाते हुए और मण्डलाकार घूमते हुए उनदोनों पुरुषसिंहों में घोर युद्ध होने लगा। पूरीतरह धनुष को खींचकर छोड़े हुए बाणों से वे एकदूसरे पर प्रहार करने और एकदूसरे के वध के लिये भारी प्रयत्न करने लगे। उस महान् युद्ध में वेदोनों एकदूसरे को रथहीन कर देना चाह रहे थे। फिर महारथी द्रोणपुत्र ने दिव्यास्त्रों को प्रकट किया, किन्तु पाण्डुपुत्र ने अपने दिव्यास्त्रों से उनको नष्ट कर दिया।

तौ शूरौ समरे राजन् परस्परकृतागसौ॥ २०॥
परस्परमुदीक्षेतां क्रोधादुद्वृत्य चक्षुषी।
क्रोधरक्तेक्षणौ तौ तु क्रोधात् प्रस्फुरिताधरौ॥ २१॥
क्रोधात् संदष्टदशनौ तथैव दशनच्छदौ।
अन्योन्यं छादयन्तौ स्म शरवृष्ट्या महारथौ॥ २२॥
शराम्बुधारौ समरे शस्त्रविद्युत्प्रकाशिनौ।
तावन्योन्यं ध्वजं विद्ध्वा सारथिं च महारणे॥ २३॥
अन्योन्यस्य हयान् विद्ध्वा बिभिदाते परस्परम्।

हे राजन्। एकदूसरे का अपराध करनेवाले वे दोनों शूरवीर क्रोध से आँखें फाड़कर एकदूसरे को घूर रहे थे। उनकी क्रोध से आँखें लाल होरही थीं। क्रोध से ही उनके होठ फड़क रहे थे। वेदोनों दाँतों को पीसते क्रोध से ही होठों को चबा रहे थे। बाणरूपी जल को धारण किये हुए वेदोनों महारथी धनुषरूपी बिजली से प्रकाशित बादलों के समान बाणरूपी जल की वर्षाद्वारा एकदूसरे को अच्छादित कर रहे थे। उन्होंने एकदूसरे के ध्वज को बींधकर उस महान् युद्ध में एकदूसरे के महारथी और घोड़ों को घायलकर एकदूसरे को भी बाणों से बींध दिया था।

ततः क्रुद्धौ महाराज बाणौ गृह्य महाहवे॥ २४॥
उभौ चिक्षिपतुस्तूर्णमन्योन्यस्य वधैषिणौ।
तौ परस्परवेगाच्च शराभ्यां च भृशाहतौ॥ २५॥
निपेततुर्महावीर्यौ रथोपस्थे तयोस्तदा।
ततस्तु सारथिर्ज्ञात्वा द्रोणपुत्रमचेतनम्॥ २६॥
अपोवाह रणाद् राजन् सर्वसैन्यस्य पश्यतः।
तथैव पाण्डवं राजन् विह्वलन्तं मुहुर्मुहुः।
अपोवाह रथेनाजौ सारथिः शत्रुतापनम्॥ २७॥

हे महाराज! तब क्रोधित उनदोनों ने एकदूसरे के वध की इच्छा से उस महान् युद्ध में शीघ्रता से दो बाणों को एकदूसरे पर फैंका। वेदोनों महापराक्रमी एकदूसरे के द्वारा वेगपूर्वक छोड़े गये दोनों बाणों से अत्यन्तघायल होकर अपनेअपने रथ की बैठक में गिर पड़े। द्रोणपुत्र को अचेत जानकर उसका सारथी सारीसेना के देखते हुए हे राजन्! तब उसे युद्धभूमि से बाहर लेगया। इसी प्रकार शत्रुतापन पाण्डुपुत्र को भी बार बार व्याकुल होते हुए देखकर उनका सारथी उन्हें युद्धक्षेत्र से बाहर लेगया।

दसवाँ अध्याय : अर्जुन का संशप्तकों और अश्वत्थामा को हराना।

पार्थः संशप्तकबलं प्रविश्यार्णवसंनिभम्।
व्यक्षोभयदमित्रघ्नो महावात इवार्णवम्॥ १॥
शिरांस्युन्मथ्य वीराणां शितैर्भल्लैर्धनंजयः।
पूर्णचन्द्राभवक्त्राणि स्वक्षिभ्रूदशनानि च॥ २॥
संतस्तार क्षितिं क्षिप्रं विनालैर्नलिनैरिव।
सुवृत्तानायतान् पुष्टांश्चन्दनागुरुभूषितान्॥ ३॥
सायुधान् सतलत्रांश्च पञ्चास्योरगसंनिभान्।
बाहून् क्षुरैरमित्राणां चिच्छेद समरेऽर्जुनः॥ ४॥

उस दिन शत्रुदमन अर्जुन ने समुद्र के समान विशाल संशप्तकों की सेना में प्रवेशकर जैसे आँधी समुद्र को उद्वेलित कर देती है, वैसेही उस सेना को क्षुब्ध कर दिया। अर्जुन ने तब जिनके मुख पूर्ण चन्द्रमा के समान तथा आँखें, भौहें एवं दांत बड़े सुन्दर थे, उन वीरों के सिरों को काटकर भूमि पर ऐसे बिछा दिया, जैसे बिना नाल के कमल हों। अर्जुन ने युद्धक्षेत्र में शत्रुओं की अच्छी गोल, लम्बी, मोटी, चन्दन और अगर से भूषित, दस्तानों और हथियारोंयुक्त पाँच मुखवाले सर्प के समान प्रतीत होनेवाली बाहों को भी क्षुरों से काट दिया।

रथान् द्विपान् हयांश्चैव सारोहानर्जुनो युधि।
शरैरनेकसाहस्रैर्निन्ये राजन् यमक्षयम्॥ ५॥
अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य द्विषतां सर्वतोऽर्जुनः।
इषुभिर्बहुभिस्तूर्णं विद्ध्वा प्राणाञ्जहार सः॥ ६॥
विस्मापयन् प्रेक्षणीयं द्विषतां भयवर्धनम्।
महारथसहस्रस्य समं कर्माकरोज्जयः॥ ७॥
अथ पाण्डवमस्यन्तममित्रघ्नकराञ्छरान्।
सेषुणा पाणिनाऽऽहूय प्रहसन् द्रौणिरब्रवीत्॥ ८॥

हे राजन्! उसने सवारोंसहित रथों, हाथियों और घोड़ों को भी कई हजार बाण मारकर मृत्युलोक में पहुँचा दिया। अर्जुन ने शत्रुओं के सबतरफ से आते हुए अस्त्रों को अपने अस्त्रों से निवारणकर शीघ्रतापूर्वक अपने बाणों से उन्हें बींधकर उनके प्राणों को हर लिया। उसने तब शत्रुओं के भय को बढ़ानेवाला, दर्शकों को आश्चर्यचकित करनेवाला, देखनेयोग्य वह पराक्रम किया जो हजार महारथियों के पराक्रम के समान था। तब शत्रुनाशक बाणों को चलाते हुए तथा हँसते हुए अश्वत्थामा ने बाणरूपी हाथों से अर्जुन को बुलाकर कहा कि—

यदि मां मन्यसे वीर प्राप्तमर्हमिहातिथिम्।
ततः सर्वात्मना त्वद्य युद्धातिथ्यं प्रयच्छ मे॥ ९॥
एवमाचार्यपुत्रेण समाहूतो युयुत्सया।
बहु मेनेऽर्जुनोऽऽत्मानमिति चाह जनार्दनम्॥ १०॥
संशप्तकाश्च मे वध्या द्रौणिराह्वयते च माम्।
यदत्रानन्तरं प्राप्तं शंस मे तद्धि माधव॥ ११॥
आतिथ्यकर्माभ्युत्थाय दीयतां यदि मन्यसे।
तमामन्त्र्यैकमनसं केशवो द्रौणिमब्रवीत्॥ १२॥
अश्वत्थामन् स्थिरो भूत्वा प्रहराशु सहस्व च।

हे वीर! यदि तुम मुझे आदरणीय अतिथि के समान समझते हो तो आज मेरा पूरीतरह से युद्ध रूपी आतिथ्य करो। इसप्रकार आचार्यपुत्रद्वारा आमन्त्रित किये अर्जुन ने तब अपना अहोभाग्य समझते हुए श्रीकृष्णजी से कहा कि संशप्तक मेरे लिये मारनेयोग्य हैं और द्रोणपुत्र भी मुझे बुला रहा है। अतः हे माधव! मुझे क्या कार्य पहले करना चाहिये? यह बताओ। अथवा यदि उचित समझो तो पहले उठकर अश्वत्थामा को ही आतिथ्य ग्रहण करने का अवसर दिया जाये। तब श्रीकृष्णजी ने एकाग्रचित्त द्रोणपुत्र को सम्बोधितकर कहा कि हे अश्वत्थामा। तुम स्थिर होकर जल्दी से प्रहार करो और हमारे प्रहारों को सहन करो।

निर्वेष्टुं भर्तृपिण्डं हि कालोऽयमुपजीविनाम्॥ १३॥
सूक्ष्मो विवादो विप्राणां स्थूलौ क्षात्रौ जयाजयौ।
यामभ्यर्थयसे मोहाद् दिव्यां पार्थस्य सत्क्रियाम्॥ १४॥
तामाप्तुमिच्छन् युध्यस्व स्थिरो भूत्वाद्य पाण्डवम्।
इत्युक्तो वासुदेवेन तथेत्युक्त्वा द्विजोत्तमः॥ १५॥
विव्याध केशवं षष्ट्या नाराचैरर्जुनं त्रिभिः।
तस्यार्जुनः सुसंक्रुद्धस्त्रिभिर्बाणैः शरासनम्॥ १६॥
चिच्छेद चान्यदादत्त द्रौणिर्घोरतरं धनुः।
सज्यं कृत्वा निमेषाच्च विव्याधार्जुनकेशवौ॥ १७॥
ननाद मुदितो द्रौणिर्महामेघौघनिःस्वनम्।

क्योंकि आश्रित रहनेवालों के लिये अपने स्वामी के अन्न को सफल करने का यह अच्छा अवसर है। ब्राह्मणों का विवाद तो सूक्ष्म अर्थात् बुद्धि के

द्वारा साध्य होता है पर क्षत्रियों की जयपराजय का निर्णय स्थूलअस्त्रोंद्वारा होता है। तुम मोह के वश में होकर अर्जुन से जिस दिव्यसत्कार की प्रार्थना कर रहे हो, उसे पाने की इच्छा से तुम स्थिर होकर पाण्डुपुत्र अर्जुन से युद्ध करो। श्रीकृष्ण द्वारा ऐसा कहने पर श्रेष्ठ ब्राह्मण अश्वत्थामा ने बहुत अच्छा यह कहकर श्रीकृष्णजी पर साठ बाणों की वर्षाकर उन्हें घायल कर दिया तथा अर्जुन को तीन बाण मारे। तब अर्जुन ने अत्यन्तक्रुद्ध होकर उसके धनुष को तीन बाणों से काट दिया। तब द्रोणपुत्र ने दूसरे अधिक भयंकर धनुष को उठाकर, उसे पलभर में ही प्रत्यंचासहितकर, अर्जुन तथा श्रीकृष्णजी को बाणों से बींध दिया और प्रसन्न होकर विशाल बादलों के समान गर्जना करने लगा।

तस्य तं निनदं श्रुत्वा पाण्डवोऽच्युतमब्रवीत्॥ १८॥
पश्य माधव दौरात्म्यं गुरुपुत्रस्य मां प्रति।
वधं प्राप्तौ मन्यते नौ प्रावेश्य शरवेश्मनि॥ १९॥
एषोऽस्मि हन्मि संकल्पं शिक्षया च बलेन च।
अश्वत्थाम्नः शरानस्तान् छित्त्वैकैकं त्रिधा त्रिधा।
व्यधमद् भरतश्रेष्ठो नीहारमिव मारुतः॥ २०॥

उसके उस गर्जन को सुनकर अर्जुन ने श्रीकृष्ण जी से कहा कि देखो श्रीकृष्ण। यह गुरुपुत्र मेरे प्रति कैसी दुष्टता कर रहा है। यह हमें अपने बाणों के घेरे में डालकर मारा हुआ समझता है। अब मैं अपनी शिक्षा और शक्ति से इसके संकल्प को नष्ट किये देता हूँ। तब अश्वत्थामा के बाणों के तीनतीन टुकड़े कर उस भरतश्रेष्ठ ने उन्हें ऐसे नष्ट कर दिया जैसे हवा कोहरे को उडा देती है।

स केशवं चार्जुनं चातितेजा
विव्याध मर्मस्वतिरौद्रकर्मा।
बाणैः सुयुक्तैरतितीव्रवेगै-
र्यैराहतो मृत्युरपि व्यथेत॥ २१॥
द्रौणेरिषूनर्जुनः संनिवार्य
व्यायच्छतस्तद्द्विगुणैः सुपुङ्खैः।
तं साश्वसूतध्वजमेकवीर-
मावृत्य संशप्तकसैन्यमार्च्छत्॥ २२॥

तब अत्यन्ततेजस्वी और अत्यन्त रौद्रकर्म करने वाले अश्वत्थामा ने ऐसे अत्यन्ततीव्र वेगवाले बाणों से, जिनसे आहत होकर मृत्यु भी व्यथित हो जाये, तथा जो अच्छी तरह से छोड़े गये थे, श्रीकृष्ण और अर्जुन के मर्मस्थलों को बींध दिया। फिर प्रयत्न पूर्वक चलाये गये द्रोणपुत्र के उनबाणों को उनसे दुगने सुन्दर पंखवाले बाणों से निवारणकर अर्जुन ने घोड़ों, ध्वज, और सारथी सहित उस अकेले वीर को आच्छादित कर दिया और फिर वे संशप्तक सेना की तरफ चल दिये।

धनूंषि बाणानिषुधीर्धनुर्ज्याः
पाणीन् भुजान् पाणिगतं च शस्त्रम्।
छत्राणि केतूंस्तुरगान् रथेषां
वस्त्राणि माल्यान्यथ भूषणानि॥ २३॥
चर्माणि वर्माणि मनोरमाणि
प्रियाणि सर्वाणि शिरांसि चैव।
चिच्छेद पार्थो द्विषतां सुयुक्तै-
र्बाणैः स्थितानामपराङ्मुखानाम्॥ २४॥
सुकल्पिताः स्यन्दनवाजिनागाः
समास्थिताः कृतयत्नैर्नृवीरैः।
पार्थेरितैर्बाणशतै- र्निरस्ता-
स्तैरेव सार्धं नृवरैर्निपेतुः॥ २५॥

युद्ध में पीठ न दिखानेवाले जो शत्रु सामने खड़े हुए थे, कुन्तीकुमार ने उन सबके धनुषबाण, तरकस, प्रत्यंचा, हाथ, बाहें, हाथ में पकड़े हुए शस्त्र, छत्र, ध्वज, घोड़ों, रथ, ईषादण्ड, वस्त्र, माला, आभूषण, ढाल, सुन्दर कवच, सभी प्रिय वस्तुओं और सिरों को उत्तम रीति से छोड़े गये बाणों द्वारा काट दिया। अच्छीतरह सजाये हुए रथ, घोड़े और हाथियों पर प्रयत्नपूर्वक युद्ध करनेवाले नरवीर बैठे हुए थे, पर अर्जुनद्वारा चलाये सैकड़ों बाणों से वे सारे वाहन मरकर उन नरश्रेष्ठों के साथ गिर पड़े।

पद्मार्कपूर्णेन्दुनि- भाननानि
किरीटमाल्याभरणोज्ज्वलानि।
भल्लार्धचन्द्रक्षुर- कर्तितानि
प्रपेतुरुर्व्यां नृशिरांस्यजस्रम्॥ २६॥
अथ द्विपैर्देवपतिद्विपाभै-
र्देवारिदर्पापह- मत्युदग्रम्।
कलिङ्गवङ्गाङ्ग- निषादवीरा
जिघांसवः पाण्डवमभ्यधावन्॥ २७॥
तेषां द्विपानां निचकर्त पार्थो
वर्माणि चर्माणि करान् नियन्तॄन्।

ध्वजान् पताकांश्च ततः प्रपेतु-
र्वज्राहतानीव गिरेः शिरांसि॥ २८॥

उस समय कमल, सूर्य, पूर्ण चन्द्रमा के समान सुन्दर मुखवाले, किरीट, माला और अलंकारों से जगमगाते हुए लोगों के सिर भल्ल, अर्धचन्द्र और क्षुरनाम के बाणों से काटे जाकर लगातार पृथिवी पर गिर रहे थे। फिर इन्द्र के हाथी के समान विशाल हाथियों पर चढ़कर, कलिंग, अंग, बंग और निषाद देशों के वीर देवद्रोहियोंका दर्पदलन करनेवाले, प्रचण्डवीर पाण्डुपुत्र को मारने की इच्छा से उन पर चढ़ आये। कुन्तीकुमार ने उनके हाथियों के कवचों, चमड़ों, सूँड, महावत, ध्वजों और पताकाओं को काट दिया और वे विद्युत् के आघात से गिराये पर्वतशिखरों के समान गिर पड़े।

तेषु प्रभग्नेषु गुरोस्तनूजं
बाणैः किरीटी नवसूर्यवर्णैः।
प्रच्छादयामास महाभ्रजालै-
र्वायुः समुद्यन्तमिवांशुमन्तम्॥ २९॥
ततोऽर्जुनेषूनिषु- भिर्निरस्य
द्रौणिः शितैरर्जुनवासुदेवौ।
प्रच्छादयित्वा दिवि चन्द्रसूर्यौ
ननाद सोऽम्भोद इवातपान्ते॥ ३०॥
तमर्जुनस्तांश्च पुनस्त्वदीया-
नभ्यर्दितस्तैरभिसृत्य शस्त्रैः।
बाणान्धकारं सहसैव कृत्वा
विव्याध सर्वानिषुभिः सुपुङ्खैः॥ ३१॥

उनके नष्ट हो जाने पर, अर्जुन ने गुरु पुत्र अश्वत्थामा को बालसूर्य के समान तेजस्वी बाणों से इसप्रकार आच्छादित कर दिया जैसे वायु ने विशाल बादलसमूहों द्वारा उगते हुए सूर्य को ढक दिया हो। फिर अपने बाणों से अर्जुन के बाणों को हटाकर द्रोणपुत्र ने तीखे बाणों से अर्जुन और श्रीकृष्ण को आच्छादित कर दिया और वर्षाऋतु में गर्जते हुए बादलों के समान गर्जना की। उस बाणवर्षा से पीड़ित अर्जुन ने सहसा आगे बढ़कर अपने अस्त्रों से उस बाणरूपी अन्धकार को नष्टकर अश्वत्थामा तथा आपके सारे सैनिकों को सुन्दर पंखवाले बाणों से बींध दिया।

नाप्याददत् संदधन्नैव मुञ्चन्
बाणान् रथेऽदृश्यत सव्यसाची।
रथांश्च नागांस्तुरगान् पदातीन्
संस्यूतदेहान् ददृशुर्हतांश्च॥ ३२॥
संधाय नाराचवरान् दशाशु
द्रौणिस्त्वरन्नेक- मिवोत्ससर्ज।
तेषां च पञ्चार्जुनमभ्यविध्यन्
पञ्चाच्युतं निर्बिभिदुः सुपुङ्खाः॥ ३३॥
अथार्जुनं प्राह दशार्हनाथः
प्रमाद्यसे किं जहि योधमेतम्।
कुर्याद्धि दोषं समुपेक्षितोऽयं
कष्टो भवेद् व्याधिरिवाक्रियावान्॥ ३४॥

उस समय यह दिखाई ही नहीं देता था कि रथ पर बैठे अर्जुन कब बाण निकालते हैं, कब उसका संधान करते हैं, और कब उसे छोड़ते हैं। केवल यही दिखाई देता था कि बाण रथों, हाथियों, घोड़ों और पैदलों के शरीरों में घुसे हुए हैं और वे मर गये हैं। तब द्रोणपुत्र ने शीघ्रता से दस उत्तम नाराचों को सन्धानकर उन्हें एकसाथ छोड़ दिया। उन अच्छे पँखवालों में पाँच बाणों से अर्जुन को और पाँच ने श्रीकृष्ण को बींध दिया। तब श्रीकृष्णजी ने अर्जुन से कहा कि तुम क्यों प्रमाद कर रहे हो? इस योद्धा को मार दो। इसकी उपेक्षा करने पर यह आगे और अपराध करेगा तथा चिकित्सा न की गयी बीमारी की तरह कष्टदायक होजायेगा।

तथेति चोक्त्वाच्युतमप्रमादी
द्रौणिं प्रयत्नादिषुभिस्ततक्ष।
भुजौ वरौ चन्दनसारदिग्धौ
वक्षः शिरोऽथाप्रतिमौ तथोरू॥ ३५॥
गाण्डीवमुक्तैः कुपितोऽविकर्णै-
र्द्रौणिं शरैः संयति निर्बिभेद।
छित्त्वा तु रश्मींस्तुरगानविध्यत्
ते तं रणाद्दूहुरतीव दूरम्॥ ३६॥

तब ऐसाही होगा, यह श्रीकृष्णजी से कहकर सावधान रहनेवाले अर्जुन ने द्रोणपुत्र को प्रयत्नपूर्वक बाणों से चन्दन से लिपटी दोनों उत्तम भुजाओं, छाती, सिर तथा अनुपम जाँघों पर से घायल कर दिया। क्रोध में भरे हुए अर्जुन ने तब युद्धस्थल में गाण्डीवधनुष से छोड़े हुए भेड़ के कान जैसे बाणों से द्रोणपुत्र को विदीर्ण कर दिया। उन्होंने उसके घोड़ों की लगाम काटकर उन्हें भी घायल कर दिया, जिससे वे अश्वत्थामा को युद्धक्षेत्र से बहुतदूर भगाकर ले गये।

ग्यारहवाँ अध्याय : अर्जुन के द्वारा दण्डधार और दण्ड का वध।

अथोत्तरेण पाण्डूनां सेनायां ध्वनिरुत्थितः।
रथनागाश्वपत्तीनां दण्डधारेण वध्यताम्॥ १॥
निवर्तयित्वा तु रथं केशवोऽर्जुनमब्रवीत्।
वाहयन्नेव तुरगान् गरुडानिलरंहसः॥ २॥
मागधोऽप्यतिविक्रान्तो द्विरदेन प्रमाथिना।
भगदत्तादनवरः शिक्षया च बलेन च॥ ३॥
एनं हत्वा निहन्तासि पुनः संशप्तकानिति।
वाक्यान्ते प्रापयत् पार्थं दण्डधारान्तिकं प्रति॥ ४॥

उसके बाद पाण्डवों की सेना के उत्तरभाग में दण्डधारद्वारा मारे जाते हुए रथियों, हाथीसवारों, घुड़सवारों और पैदलसैनिकों का आर्तनाद गूँजने लगा। तब श्रीकृष्णजी ने अपने रथ को लौटाकर गरुड़ और वायु के समान वेगवाले घोड़ों को हाँकते हुए अर्जुन से कहा यह मगध का निवासी भी बड़ा पराक्रमी है। इसके पास शत्रुओं को मथनेवाला गजराज है। यह अपनी विद्या और बल में भगदत्त से कम नहीं है। तुम पहले इसे मारकर फिर संशप्तकों को मारना। यह कहते हुए उन्होंने अर्जुन को दण्डधार के समीप पहुँचा दिया।

रथानधिष्ठाय सवाजिसारथीन्
नरांश्च पादैर्द्विरदो व्यपोथयत्।
द्विपांश्च पद्भ्यां ममृदे करेण
द्विपोत्तमो हन्ति च कालचक्रवत्॥ ५॥
नरांस्तु कार्ष्णायसवर्मभूषणान्
निपात्य साश्वानपि पत्तिभिः सह।
व्यपोथयद् दन्तिवरेण शुष्मिणा
स शब्दवत् स्थूलनलं यथा तथा॥ ६॥

उसका वह हाथी घोड़ों और सारथीसहित रथों पर पैर रखकर उन्हें कुचल देता था, हाथियों को अपनी सूँड और दोनों पैरों से मसल देता था। इसप्रकार वह उत्तम हाथी कालचक्र के समान शत्रुओं का संहार कर रहा था। उसके महावत कवच धारण किये श्रेष्ठ हाथी के द्वारा, लोहे के कवच तथा आभूषणोंयुक्त घुड़सवारों को घोड़ों तथा पैदलोंसहित गिराकर कुचलवा देते थे। उस समय मोटे नरकुलों के कुचले जाते हुए जो आवाज होती है, वही उनके कुचले जानेपर होती थी।

अथार्जुनो ज्यातलनेमिनिःस्वने
मृदङ्गभेरीबहु- शङ्खनादिते।
रथाश्वमातङ्ग- सहस्रसंकुले
रथोत्तमेनाभ्यपतद् द्विपोत्तमम्॥ ७॥
ततोऽर्जुनं द्वादशभिः शरोत्तमै-
र्जनार्दनं षोडशभिः समार्पयत्।
स दण्डधारस्तुरगांस्त्रिभिस्त्रिभि-
स्ततो ननाद प्रजहास चासकृत्॥ ८॥

तब अर्जुन युद्धक्षेत्र में जहाँ धनुष की प्रत्यंचाओं, हथेलियों तथा रथों के पहियों की ध्वनियाँ होरही थीं, जहाँ मृदंग, भेरी और शंख बजाये जा रहे थे, जो हजारों रथों, घोड़ों और हाथियों से भरा हुआ था, अपने उत्तम रथ के द्वारा उस उत्तम हाथी के समीप जापहुँचे। तब दण्डधार ने अर्जुन पर बारह और श्रीकृष्ण पर सोलह उत्तम बाणों की वर्षा की। उसके घोड़ों को तीन तीन बाण मारे और जोर से गर्जते हुए अनेक बार अट्टहास किया।

ततोऽस्य पार्थः सगुणेषुकार्मुकं
चकर्त भल्लैर्ध्वजमप्यलंकृतम्।
पुनर्नियन्तॄन् सह पादगोप्तृ-
स्ततः स चुक्रोध गिरिव्रजेश्वरः॥ ९॥
ततोऽर्जुनं भिन्नकटेन दन्तिना
घनाघनेनानिलतुल्य- वर्चसा।
अतीव चुक्षोभयिषुर्जनार्दनं
धनंजयं चाभिजघान तोमरैः॥ १०॥
अथास्य बाहू द्विपहस्त संनिभौ
शिरश्च पूर्णेन्दुनिभाननं त्रिभिः।
क्षुरैः प्रचिच्छेद सहैव पाण्डव-
स्ततो द्विपं बाणशतैः समार्पयत्॥ ११॥

तब अर्जुन ने अपने भल्लों से उसके प्रत्यंचा और बाणसहित धनुष को तथा सजे हुए ध्वज को काट दिया। फिर उन्होंने हाथी के महावतों तथा पृष्ठ रक्षकों को भी मार दिया। उससे गिरिव्रज का वह राजा अत्यन्त क्रोध में भर गया। उसने अर्जुन और श्रीकृष्ण पर तोमरों से प्रहार किया और उन्हें अत्यन्त घबराहट में डालने की इच्छा से, गण्डस्थल से मद बहानेवाले, वायु के समान वेगशाली, मस्त हाथी को

उनकी तरफ बढ़ाया। तब अर्जुन ने दण्डधार की हाथी की सूँड के समान मोटी दोनों बाहों और पूर्णचन्द्र के समान मुखवाले सिर को तीन क्षुरनाम के बाणों से एक साथ ही काट दिया। उन्होंने हाथी पर भी सौ बाणों की वर्षा की।

स वेदनार्तोऽम्बुदनिस्वनो नदं-
श्चरन् भ्रमन् प्रस्खलितान्तरोऽद्रवत्।
पपात रुग्णः सनियन्तृकस्तथा
यथा गिरिर्वज्रविदारितस्तथा॥ १२॥
हिमावदातेन सुवर्णमालिना
हिमाद्रिकूटप्रतिमेन दन्तिना।
हते रणे भ्रातरि दण्ड आव्रज-
ज्जिघांसुरिन्द्रावरजं धनंजयम्॥ १३॥

तब वेदना से व्याकुल बादल की गर्जना के समान चिंघाड़ता हुआ वह हाथी, विचरता, घूमता और बीचबीच में लड़खड़ाता हुआ, वहाँ से भागा और अधिक घायल होजाने के कारण अपने महावत के साथ ही ऐसे गिर पड़ा, जैसे विद्युत् के प्रहार से कोई पर्वत का शिखर गिर जाये। तब अपने भाई दण्डधार के युद्ध में मारे जाने पर दण्ड अर्जुन और श्रीकृष्ण को मारने की इच्छा से बर्फ के समान सफेद, सुनहरी मालाधारी और हिमालय के शिखर के समान विशाल हाथी के साथ आपहुँचा।

स तोमरैरर्ककरप्रभैस्त्रिभि-
र्जनार्दनं पञ्चभिरर्जुनं शितैः।
समर्पयित्वा विननाद नर्दयं-
स्ततोऽस्य बाहू निचकर्त पाण्डवः॥ १४॥
क्षुरप्रकृत्तौ सुभृशं सतोमरौ
शुभाङ्गदौ चन्दनरूषितौ भुजौ।
गजात् पतन्तौ युगपद् विरेजतु-
र्यथाद्रिशृङ्गाद् रुचिरौ महोरगौ॥ १५॥
तथार्धचन्द्रेण हतं किरीटिना
पपात दण्डस्य शिरः क्षितिं द्विपात्।
तच्छोणितार्द्रं निपतद् विरेजे
दिवाकरोऽस्तादिव पश्चिमां दिशम्॥ १६॥

उसने सूर्य की किरणों जैसे चमकदार तीन तीखे तोमरों से श्रीकृष्णजी को और पाँच से अर्जुन को घायलकर गर्जना की। तब पाण्डुपुत्र अर्जुन ने उस गर्जते हुए दण्ड की दोनों बाहों को काट दिया। क्षुर से कटी हुई बाहें, जिन्होंने तोमरों को पकड़ा हुआ था, जो बाजूबन्दों से अलंकृत तथा चन्दन से सुशोभित थीं, एकसाथ हाथी से गिरती हुई ऐसे प्रतीत हुईं, जैसे पर्वत के शिखर से दो सुन्दर और विशाल साँप गिर रहे हों। फिर अर्धचन्द्राकार बाण से अर्जुन के द्वारा काटा हुआ दण्ड का सिर भी हाथी से भूमि पर गिर पड़ा। रक्त से सना हुआ और नीचे गिरता हुआ वह सिर ऐसे प्रतीत हुआ, जैसे सूर्य पश्चिमदिशामें अस्त होरहा हो।

अथ द्विपं श्वेतवराभ्रसंनिभं
दिवाकरांशुप्रतिमैः शरोत्तमैः।
बिभेद पार्थः स पपात नादयन्
हिमाद्रिकूटं कुलिशाहतं यथा॥ १७॥
ततोऽपरे तत्प्रतिमा गजोत्तमा
जिगीषवः संयति सव्यसाचिना।
तथा कृतास्ते च यथैव तौ द्विपौ
ततः प्रभग्नं सुमहद्रिपोर्बलम्॥ १८॥

फिर सफेद महान् मेघ के समान उस हाथी को कुन्तीपुत्र ने अपने सूर्य की किरणों के समान उत्तम बाणों से विदीर्ण कर दिया। वहभी विद्युत् से गिराये गये हिमालय के शिखर के समान चिंघाड़ता हुआ भूमि पर गिर पड़ा। तत्पश्चात् उसके समान दूसरे श्रेष्ठ हाथी भी, जो युद्ध में अर्जुन को जीतने की इच्छा से आगे आये, अर्जुन के द्वारा उनदोनों हाथियों की ही अवस्था को प्राप्त होगये, जिससे शत्रु की विशाल सेना में भगदड़ मच गयी।

बारहवाँ अध्याय : अश्वत्थामा द्वारा पाण्ड्य नरेश का वध।

भीष्मद्रोणकृपद्रौणिकर्णार्जुन- जनार्दनान्।
समाप्तविद्यान् धनुषि श्रेष्ठान् यान् मन्यसे रथान्॥ १॥
यो ह्याक्षिपति वीर्येण सर्वानेतान् महारथान्।
न मेने चात्मना तुल्यं कंचिदेव नरेश्वरम्॥ २॥
तुल्यतां द्रोणभीष्माभ्यामात्मनो यो न मृष्यते।
वासुदेवार्जुनाभ्यां च न्यूनतां नैच्छतात्मनि॥ ३॥
स पाण्ड्यो नृपतिश्रेष्ठः सर्वशस्त्रभृतां वरः।
कर्णस्यानीकमहनत् पराभूत इवान्तकः॥ ४॥

हे राजन्! जिन भीष्म, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, द्रोणपुत्र, कर्ण, अर्जुन और श्रीकृष्ण को आप धनुर्विद्या में श्रेष्ठ मानते हैं और यह समझते हैं कि इन्होंने पूरीविद्या को समाप्त कर लिया है, जो महारथी अपने पराक्रम से इनसारे महारथियों पर आक्षेप करता है और उनमें से किसी को भी अपने बराबर नहीं समझता, जो भीष्म और द्रोणाचार्य के साथ अपनी तुलना किये जाने को सहन नहीं करता, जिसने कभी यह चाहा नहीं कि मैं अर्जुन और श्रीकृष्ण से किसी बात में कम हूँ, उस सारे शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ, पाण्ड्यराज ने तब अपमानित मृत्यु के समान क्रोध में भरकर कर्ण की सेना को मारना आरम्भ कर दिया।

तदुदीर्णरथाश्वेभं पत्तिप्रवरसंकुलम्।
कुलालचक्रवद् भ्रान्तं पाण्ड्येनाभ्याहतं बलात्॥ ५॥
व्यश्वसूतध्वजरथान् विप्रविद्धायुधद्विपान्।
सम्यगस्तैः शरैः पाण्ड्यो वायुर्मेघानिवाक्षिपत्॥ ६॥
सशक्तिप्रासतूणीरानश्वारोहान् हयानपि।
पुलिन्दखसबाह्लीकनिषादान्ध्र- ककुन्तलान्॥ ७॥
दाक्षिणात्यांश्च भोजांश्च शूरान् संग्रामकर्कशान्।
विशस्त्रकवचान् बाणैः कृत्वा चैवाकरोद् व्यसून्॥ ८॥

पाण्ड्यनरेश के द्वारा बलपूर्वक मारी जाती हुई रथ, घोड़ों, हाथियों और पैदल सैनिकों से भरी हुई वह सेना तब कुम्हार के चक्र के समान चक्कर काटने लगी। जैसे वायु बादलों को छिन्न भिन्न कर देती है, वैसे ही पाण्ड्यनरेश ने अच्छी तरह से छोड़े हुए अपने बाणों से सारे सैनिकों को, घोड़ों, सारथियों, ध्वजों और रथों से रहित कर दिया, उनके हाथियों और आयुधों को नष्ट कर दिया। उन्होंने शक्ति, प्रास, तरकसों सहित घुड़सवारों को तथा उनके घोड़ों को भी मार दिया। उन्होंने पुलिन्द, खस, बाह्लीक, निषाद, आन्ध्र, कुन्तल, दाक्षिणात्य और भोजप्रदेशीय रण में कर्कश शूरवीरों को अपने बाणों से शस्त्रों तथा कवचों से रहित कर उन्हें निष्प्राण कर दिया।

चतुरङ्गं बलं बाणैर्निघ्नन्तं पाण्ड्यमाहवे।
दृष्ट्वा द्रौणिरसम्भ्रान्तमसम्भ्रान्तस्ततोऽभ्ययात्॥ ९॥
आभाष्य चैनं मधुरमभीतं तमभीतवत्।
प्राह प्रहरतां श्रेष्ठः स्मितपूर्वं समाह्वयन्॥ १०॥
राजन् कमलपत्राक्ष विशिष्टाभिजनश्रुत।
वज्रसंहननप्रख्य प्रख्यातबलपौरुष॥ ११॥
मुष्टिश्लिष्टायतज्यं च व्यायताभ्यां महद् धनुः।
दोर्भ्यां विस्फारयन् भासि महाजलदवद् भृशम्॥ १२॥

तब युद्धक्षेत्र में पाण्ड्यराज को बिना घबराहट के चतुरङ्गिणी सेना को अपने बाणों से मारते हुए देखकर द्रोणपुत्र बिना घबराहट के उनके सामने गया। फिर उस निर्भय नरेश को निर्भयता मधुरता और मुस्कराहट के साथ सम्बोधित करके, तथा उनका आह्वान करते हुए, प्रहार करने वालों श्रेष्ठ अश्वत्थामा ने उससे कहा कि हे कमलपत्र के समान आँखों वाले, तुम्हारा शास्त्रज्ञान और कुल दोनों विशिष्ट हैं, तुम्हारा शरीर वज्र के समान कठोर है, तुम्हारा बल और पौरुष भी प्रसिद्ध है। तुम्हारे धनुष की प्रत्यंचा एक ही समय तुम्हारी मुटठी में सटी हुई तथा गोलाकार फैली हुई दिखाई देती है। तुम दोनों हाथों से धनुष को खींचकर टंकराते हुए, गर्जते हुए महान् बादल के समान प्रतीत होते हो।

शरवर्षैर्महावेगैर- मित्रानभिवर्षतः।
मदन्यं नानुपश्यामि प्रतिवीरं तवाहवे॥ १३॥
एवमुक्तस्तथेत्युक्त्वा प्रहरेति च ताडितः।
कर्णिना द्रोणतनयं विव्याध मलयध्वजः॥ १४॥
मर्मभेदिभिरत्युग्रैर्बाणैर- ग्निशिखोपमैः।
स्मयन्नभ्यहनद् द्रौणिः पाण्ड्यमाचार्यसत्तमः॥ १५॥
ततोऽपरान् सुतीक्ष्णाग्रान् नाराचान् मर्मभेदिनः।
गत्या दशम्या संयुक्तानश्वत्थामाभ्यवासृजत्॥ १६॥

शत्रुओं पर बड़ी तेजी से बाणवर्षा करते हुए तुम्हारे प्रतिद्वन्द्वी के रूप में मैं सिवाय अपने और किसी वीर को नहीं देख रहा हूँ। ऐसा कहे जाने

पर पाण्ड्यनरेश ने कहा कि अच्छी बात है, पहले तुम ही प्रहार करो। तब अश्वत्थामा के द्वारा बाण का प्रहार करने पर चन्दन की ध्वजा वाले पाण्ड्यनरेश ने द्रोणपुत्र को कर्णी नाम के बाण से बींध दिया। तब आचार्यप्रवर द्रोणपुत्र ने मुस्कराते हुए अग्नि शिखा के समान अत्यन्त उग्र और मर्मभेदी बाणों से पाण्ड्यराज को घायल कर दिया। तब अश्वत्थामा ने अत्यन्त तीखी नोक वाले, मर्मभेदी दूसरे नाराचों को, दसवीं गति से युक्त करके छोड़ा।

अथ द्रोणसुतस्येषूंस्ताञ्छित्त्वा निशितैः शरैः।
धनुर्ज्यां विततां पाड्यश्चिच्छेदादित्यतेजसः॥ १७॥
दिव्यं धनुरथाधिज्यं कृत्वा द्रौणिरमित्रहा।
ततः शरसहस्राणि प्रेषयामास वै द्विजः॥ १८॥
प्रयुक्तांस्तान् प्रयत्नेन छित्त्वा द्रौणेरिषूनरिः।
चक्ररक्षौ रणे तस्य प्राणुदन्निशितैः शरैः॥ १९॥

तब पाण्ड्यराज ने सूर्य के समान तेजस्वी द्रोणपुत्र के बाणों को तीखे बाणों से छिन्नकर, उसके धनुषकी फैली हुई प्रत्यंचा को भी काट दिया। शत्रुदमन, ब्राह्मण, द्रोणपुत्र ने भी फिर अपने दिव्यधनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाकर असंख्य बाणों की वर्षा की। द्रोणपुत्र द्वारा चलाये बाणों को प्रयत्नपूर्वक काटकर उसके शत्रु पाण्ड्यनरेश ने अपने तीखे बाणों से उसके दोनों चक्ररक्षकों को भी युद्ध में मार दिया।

अथारेर्लाघवं दृष्ट्वां मण्डलीकृतकार्मुकः।
प्रास्यद् द्रोणसुतो बाणान् वृष्टिं पूषानुजो यथा॥ २०॥
द्रौणिपर्जन्यमुक्तां तां बाणवृष्टिं सुदुःसहाम्।
वायव्यास्त्रेण संक्षिप्य मुदा पाण्ड्यानिलोऽनुदत्॥ २१॥
तस्य नानदतः केतुं चन्दनागुरुरूषितम्।
मलयप्रतिमं द्रौणिश्छित्त्वाश्वांश्चतुरोऽहनत्॥ २२॥
सूतमेकेषुणा हत्वा महाजलदनिःस्वनम्।
धनुश्छित्त्वार्धचन्द्रेण तिलशो व्यधमद् रथम्॥ २३॥

तब शत्रु की फुर्ती को देखकर द्रोणपुत्र ने अपने धनुष को गोलाकार बनाते हुए इसप्रकार बाणों की वर्षा की, जैसे वायु का छोटा भाई बादल जल की वर्षा करता है। द्रोणपुत्ररूपी बादल के द्वारा बरसायी जाती हुई अत्यन्तदुस्सह बाणवर्षा को पाण्ड्यराजरूपी वायु ने तब प्रसन्नतापूर्वक वायव्यास्त्र के द्वारा हरण कर लिया। तब द्रोणपुत्र ने बारबार गर्जते हुए पाण्ड्यराज के मलयाचल से ऊँचे तथा अगुरु एवं चन्दन से लिपटे ध्वज को काटकर उसके चारों घोड़ों को भी मार दिया। उसने एकबाण से उसके सारथी को मारकर, महान् बादल के समान स्वरवाले धनुष को भी अर्धचन्द्राकार बाण से काटकर उसके रथ के टुकड़े कर दिये।

हतेश्वरो दन्तिवरः सुकल्पित-
स्त्वराभिसृष्टः प्रतिशब्दगो बली।
तं वारणं वारणयुद्धकोविदो
द्विपोत्तमं पर्वतसानुसंनिभम्॥ २४॥
समभ्यतिष्ठन्मल यध्वजस्त्वरन्
यथाद्रिशृङ्गं हरिरुन्नदंस्तथा।
स तोमरं भास्कररश्मिवर्चसं
बलास्त्रसर्गोत्तम- यत्नमन्युभिः॥ २५॥
ससर्ज शीघ्रं परिपीडयन् गजं
गुरोः सुतायाद्रिपतीश्वरो नदन्।

तभी जिसका स्वामी मारा गया था, ऐसा एक सुसज्जित, श्रेष्ठ और बलवान् हाथी, शब्द का अनुसरण करता हुआ, शीघ्रता से वहाँ आगया। तब हाथी युद्ध से कुशल, मलयध्वज पाण्ड्यनरेश उस पर्वत शिखर जैसे ऊँचे उत्तम हाथी पर शीघ्रता से वैसेही उछलकर चढ़ गये, जैसे पर्वत की चोटीपर कोई शेर दहाड़ता हुआ चढ़ जाता है। फिर गिरिराज मलय के स्वामी पाण्ड्यराज ने तुरन्त अग्रसर होने के लिये हाथी को पीड़ित करते हुए, बलपूर्वक अस्त्रप्रहार के लिये उत्तम यत्न तथा क्रोध से युक्त होकर सूर्य की किरणों जैसे तेजस्वी एक तोमर को गर्जना करते हुए आचार्यपुत्र पर चला दिया।

ततः प्रजज्वाल परेण मन्युना
पादाहतो नागपतिर्यथा तथा॥ २६॥
द्विपस्य पादाग्रकरान् स पञ्चभि-
र्नृपस्य बाहू च शिरोऽथ च त्रिभिः।
जघान षड्भिः षडनुत्तमत्विषः
स पाण्ड्यराजानुचरान् महारथान्॥ २७॥

तब अश्वत्थामा पैर से कुचले हुए सर्पराज के समान अत्यन्त क्रोध से जल उठा। उसने पाँच बाणों से हाथी के चारों पैर और सूँड को तथा तीन बाणों से पाण्ड्यराज की बाहों और सिर को काट दिया। छै बाणों से उसने राजा के पीछे चलनेवाले उत्तम कान्तिवाले छै महारथियों को मार दिया।

तेरहवाँ अध्याय : दोनों सेनाओं का घोर युद्ध।

ततः पुनः समाजग्मुरभीताः कुरुपाण्डवाः।
भीमसेनमुखाः पार्थाः सूतपुत्रमुखा वयम्॥ १॥
ततः प्रववृते भूयः संग्रामो राजसत्तम।
कर्णस्य पाण्डवानां च यमराष्ट्रविवर्धनः॥ २॥
धनूंषि बाणान् परिघानसिपट्टिशतोमरान्।
मुसलानि भुशुण्डीश्च सशक्त्यृष्टिपरश्वधान्॥ ३॥
गदाः प्रासाञ्छितान् कुन्तान् भिन्दिपालान् महाङ्कुशान्।
प्रगृह्य क्षिप्रमापेतुः परस्परजिघांसया॥ ४॥

इसके पश्चात् भीमसेन की अध्यक्षता में पाण्डववीर और कर्ण की अध्यक्षता में हमारे वीर निर्भय होकर पुनः एकदूसरे से भिड़ गये। हे राजश्रेष्ठ! फिर कर्ण का और पाण्डव वीरों का मृत्युलोक की वृद्धि करनेवाला संग्राम छिड़ गया। दोनोंतरफ के वीर एकदूसरे को मारने की इच्छा से धनुषबाणों, परिघ, तलवार, पट्टिश, तोमरों, गदा, प्रासों, भिन्दीपालों और विशाल अंकुशों को लेकर शीघ्रता से एकदूसरे पर आक्रमण करने लगे।

ज्यातलत्रधनुःशब्दः कुञ्जराणां च बृंहताम्।
पादातानां च पततां नृणां नादो महानभूत्॥ ५॥
तेषां निनदतां चैव शस्त्रवर्षं च मुञ्चताम्।
बहूनाधिरथिर्वीरः प्रममाथेषुभिः परान्॥ ६॥
पञ्च पाञ्चालवीराणां रथान् दश च पञ्च च।
साश्वसूतध्वजान् कर्णः शरैर्निन्ये यमक्षयम्॥ ७॥
योधमुख्या महावीर्याः पाण्डूनां कर्णमाहवे।
शीघ्रास्त्रास्तूर्णमावृत्य परिवव्रुः समन्ततः॥ ८॥

उस समय वहाँ प्रत्यंचा, हस्तत्राण धनुष का शब्द हाथियों की चिंघाड़ और गिरते हुए सैनिकों का महान् शब्द होने लगा। उन जोरसे गर्जते हुए और अस्त्र शस्त्रों की वर्षा करते हुए, वीरों में से बहुतसे शत्रुओं को वीर कर्ण ने अपने बाणों से मथ दिया। कर्ण ने पाँचालवीरों में से पहले पाँच रथियों को घोड़ों और सारथियों तथा ध्वजाओंसहित अपने बाणों से मृत्युलोक में पहुँचा दिया। तब पाण्डवों के महापराक्रमी प्रमुख योद्धाओं ने, जो शीघ्रता से अस्त्र चलानेवाले थे, कर्ण को युद्ध में तुरन्त चारोंतरफ से घेर लिया।

ततः कर्णो द्विषत्सेनां शरवर्षैर्विलोडयन्।
विजगाहाण्डजाकीर्णां पद्मिनीमिव यूथपः॥ ९॥
द्विषन्मध्यमवस्कन्द्य राधेयो धनुरुत्तमम्।
विधुन्वानः शितैर्बाणैः शिरांस्युन्मथ्य पातयत्॥ १०॥
पाण्डुसृञ्जयपञ्चालाञ्शर- गोचरमागतान्।
ममर्द तरसा कर्णः सिंहो मृगगणानिव॥ ११॥
ततः पाञ्चालराजश्च द्रौपदेयाश्च मारिष।
यमौ च युयुधानश्च सहिताः कर्णमभ्ययुः॥ १२॥

तब कर्ण ने अपनी बाणवर्षा से शत्रु सेना को आलोडित करते हुए उसमें ऐसे प्रवेश किया, जैसे कमलों से भरे हुए और पक्षियों से युक्त सरोवर में हाथी प्रवेश करता है। शत्रुओं के बीच में पहुँचकर राधापुत्र अपने धनुष को कँपाता हुआ, तीखे बाणों से शत्रुओं के सिरों को काट कर गिराने लगा। जैसे सिंह मृगसमूहों को मसल डालता है, वैसेही अपने बाणों की मार में आये हुए पाण्डव, सृंजय और पाँचालवीरों को कर्ण ने वेगपूर्वक रौंद डाला। हे मान्यवर! तब पाँचालराज धृष्टद्युम्न, द्रौपदी के पुत्रों, नकुल सहदेव और सात्यकि इन सबने एकसाथ कर्ण पर आक्रमण किया।

तेषु व्यायच्छमानेषु कुरुपाञ्चालपाण्डुषु।
प्रियानसून् रणे त्यक्त्वा योधा जघ्नुः परस्परम्॥ १३॥
सुसंनद्धाः कवचिनः सशिरस्त्राणभूषणाः।
गदाभिर्मुसलैश्चान्ये परिघैश्च महाबलाः॥ १४॥
समभ्यधावन्त भृशं कालदण्डैरिवोद्यतैः।
नर्दन्तश्चाह्वयन्तश्च प्रवल्गन्तश्च मारिष॥ १५॥

कौरवों और पाण्डवों के उस घमासान युद्ध में योद्धालोग अपने प्यारे प्राणों का मोह छोड़कर युद्ध में एकदूसरे पर प्रहार कर रहे थे। हे मान्यवर! अच्छी तरह से कवच बाँधे, शिरस्त्राण से भूषित, वे महाबली योद्धालोग मृत्यु के समान भयंकर गदाओं, मूसलों तथा परिघों के साथ गर्जते ललकारते और उछलते कूदते हुए, एकदूसरे पर आक्रमण करने को दौड़ रहे थे।

पेतुरन्योन्यनिहता व्यसवो रुधिरोक्षिताः।
क्षरन्तः सुरसं रक्तं प्रकृत्ताश्चन्दना इव॥ १६॥
रथै रथा विनिहता हस्तिभिश्चापि हस्तिनः।
नरैर्नरा हताः पेतुरश्वाश्चाश्वैः सहस्रशः॥ १७॥
ध्वजाः शिरांसि च्छत्राणि द्विपहस्ता नृणां भुजाः।
क्षुरैर्भल्लार्धचन्द्रैश्च च्छिन्नाः पेतुर्महीतले॥ १८॥

जैसे कटने पर लालचन्दन के वृक्ष लाल रंग का रस बहाते हैं, वैसेही एकदूसरे के द्वारा मारे हुए, निष्प्राण होकर पड़े हुए योद्धालोग अपने शरीरों से रक्त बहा रहे थे और खून से लथपथ होरहे थे। रथियों से मारे गये रथी, हाथीसवारों से मारे गये हाथीसवार, पैदलसैनिकों से मारे हुए पैदलसैनिक तथा घुड़सवारों से मारे हुए घुड़सवार वहाँ हजारों की संख्या में पड़े हुए थे। वहाँ युद्धभूमि में अर्धचन्द्राकार भल्ल तथा क्षुरनाम के बाणों से कटी हुई ध्वजाएँ, सिर, छत्र, हाथियों की सूँडें और सैनिकों की भुजाएँ भूमि पर बिखरी पड़ी थीं।

नरांश्च नागान् सरथान् हयान् ममृदुराहवे।
अश्वारोहैर्हताः शूराश्छिन्नहस्ताश्च दन्तिनः॥ १९॥
सपताकाध्वजाः पेतुर्विशीर्णा इव पर्वताः।
पत्तिभिश्च समाप्लुत्य द्विरदाः स्यन्दनास्तथा॥ २०॥
हताश्च हन्यमानाश्च पतिताश्चैव सर्वशः।
अश्वारोहाः समासाद्य त्वरिताः पत्तिभिर्हताः॥ २१॥
सादिभिः पत्तिसंघाश्च निहता युधि शेरते।
मृदितानीव पद्मानि प्रम्लाना इव च स्रजः।
हतानां वदनान्यासन् गात्राणि च महाहवे॥ २२॥

घुड़सवारोंद्वारा वहाँ कितनेही शूरवीरों को मार डाला गया और हाथियों की सूँडें काट ली गयीं। सूँड कट जाने पर उन हाथियों ने सैनिकों, हाथियों और घोड़ोंसहित रथों को कुचल दिया और फिर वे स्वयं भी युद्धक्षेत्र में पताकाओं और ध्वजोंसहित, टूटे पर्वतशिखरों के समान गिर पड़े। पैदलसैनिकों के द्वारा भी उछल उछलकर मारे गये हाथी और रथी वहाँ पड़े थे तथा मारे जाते हुए गिर रहे थे। कितने ही घुड़सवार पैदल सैनिकों द्वारा शीघ्रतापूर्वक आक्रमण करने पर मारे गये और कितनेही पैदलसैनिक घुड़सवारोंद्वारा मारे जाकर युद्धस्थल में सोरहे थे। उस महान् युद्ध में मारे गये योद्धाओं के मुख और गात्र ऐसेही शोभारहित होगये थे, जैसे कुचले हुए कमल और मुरझायी हुई माला होती है।

चौदहवाँ अध्याय : पाण्डवों द्वारा बंगराज का वध। पुण्ड्र की पराजय और गजसेना का विनाश।

हस्तिभिस्तु महामात्रास्तव पुत्रेण चोदिताः।
धृष्टद्युम्नं जिघांसन्तः क्रुद्धाः पार्षतमभ्ययुः॥ १॥
प्राच्याश्च दाक्षिणात्याश्च प्रवरा गजयोधिनः।
अङ्गा वङ्गाश्च पुण्ड्राश्च मागधास्ताम्रलिप्तकाः॥ २॥
मेकलाः कोसला मद्रा दशार्णा निषधास्तथा।
गजयुद्धेषु कुशलाः कलिङ्गैः सह भारत॥ ३॥
शरतोमरनाराचैर्वृष्टिमन्त इवाम्बुदाः।
सिषिचुस्ते ततः सर्वे पाञ्चालबलमाहवे॥ ४॥

हे राजन्! तब आपके पुत्र से प्रेरित बहुतसे क्रुद्ध महावत द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्न को मारने की इच्छा से उस पर अपने हाथियों को लेकर टूट पड़े। हे भारत! पूर्व देश के तथा दक्षिण के श्रेष्ठ हाथी योद्धा, अंग, बंग, पुण्ड्र, मगध, ताम्रलिप्त, मेकल, कोसल, मद्र, दशार्ण, तथा निषध देशों के सारे गज युद्धों में कुशल युद्धवीर कलिंगों के साथ मिलकर, बादलों के समान बाण, तोमर, तथा नाराचों की युद्धस्थल में पाँचाल सेना पर वर्षा करने लगे।

तान् सम्मिमर्दिषून् नागान् पार्ष्ण्यङ्गुष्ठाङ्कुशैर्भृशम्।
चोदितान् पार्षतो बाणैर्नाराचैरभ्यवीवृषत्॥ ५॥
एकैकं दशभिः षड्भिरष्टाभिरपि भारत।
द्विरदानभिविव्याध क्षिप्तैर्गिरिनिभाञ्शरैः॥ ६॥
प्रच्छाद्यमानं द्विरदैर्मेघैरिव दिवाकरम्।
प्रययुः पाण्डुपञ्चाला नदन्तो निशितायुधाः॥ ७॥

तब पैरों की एड़ी, अँगूठों और अंकुशों के द्वारा अत्यधिक प्रेरित, उन शत्रुदल को कुचलने के इच्छुक हाथियों पर धृष्टद्युम्न ने नाराचों और बाणों की वर्षा आरम्भ कर दी। हे भारत! उन पर्वत के समान विशाल हाथियों को उसने एक एक को छै, आठ और दस दस बाणों से बींध दिया। तब बादलों द्वारा आच्छादित सूर्य के समान उन हाथियों से धृष्टद्युम्न को घिराहुआ देखकर पाण्डव और पाँचालवीर तीखे हथियार लेकर गर्जते हुए उस ओर बढ़े।

नकुलः सहदेवश्च द्रौपदेयाः प्रभद्रकाः।
सात्यकिश्च शिखण्डी च चेकितानश्च वीर्यवान्॥ ८॥

समन्तात् सिषिचुर्वीरा मेघास्तोयैरिवाचलान्।
ते म्लेच्छैः प्रेषिता नागा नरानश्वान् रथानपि॥ ९॥
हस्तैराक्षिप्य ममृदुः पद्भिश्चाप्यतिमन्यवः।
बिभिदुश्च विषाणाग्रैः समाक्षिप्य च चिक्षिपुः॥ १०॥
विषाणलग्नाश्चाप्यन्ये परिपेतुर्विभीषणाः।

नकुल, सहदेव, द्रौपदी के पुत्र, प्रभद्रकगण, सात्यकि, शिखण्डी और पराक्रमी चेकितान ये सारे वीर उन हाथियों पर सबतरफ से उसीप्रकार बाणों की वर्षा करने लगे, जैसे बादल पर्वतों पर जल की धाराएँ बरसाते हैं। म्लेच्छोंद्वारा आगे बढ़ाये हुए उन अत्यन्त क्रोधी हाथियों ने सैनिकों, रथों और घोड़ों को सूँडों से उठाकर फैंक दिया और पैरों से कुचल दिया। कितनेही योद्धा उनके दाँतों में उलझे हुए, बड़ी भयानक अवस्था में नीचे गिरते थे।

प्रमुखे वर्तमानं तु द्विपं वङ्गस्य सात्यकिः॥ ११॥
नाराचेनोग्रवेगेन भित्त्वा मर्माण्यपातयत्।
तस्यावर्जितकायस्य द्विरदादुत्पतिष्यतः॥ १२॥
नाराचेनाहनद् वक्षः सात्यकिःसोऽपतद् भुवि।
पुण्ड्रस्यापततो नागं चलन्तमिव पर्वतम्॥ १३॥
सहदेवः प्रयत्नास्तैर्नाराचैरहनत् त्रिभिः।

तब सात्यकि ने अपने सामने विद्यमान बंगराज के हाथी को उग्र वेगवाले नाराच से मर्मस्थलों में बींधकर भूमि पर गिरा दिया। अपने शरीर को सिकोड़कर हाथी के ऊपर से कूदने का प्रयत्न करते हुए बंगराज की छाती सात्यकि ने नाराच से फाड़ दी। जिससे, वह भी मरकर गिर पड़ा। पुण्ड्रराज के आक्रमण करते हुए हाथी को जो चलते हुए पर्वत के समान था, सहदेव ने प्रयत्नपूर्वक छोड़े हुए तीन नाराचों से मार दिया।

अञ्जोगतिभिरायम्य प्रयत्नाद् धनुरुत्तमम्॥ १४॥
नाराचैरहनन्नागान् नकुलः कुलनन्दनः।
ततः पाञ्चालशैनेयौ द्रौपदेयाः प्रभद्रकाः॥ १५॥
शिखण्डी च महानागान् सिषिचुः शरवृष्टिभिः।
ते पाण्डुयोधाम्बुधरैः शत्रुद्विरदपर्वताः॥ १६॥
बाणवर्षैर्हताः पेतुर्वज्रवर्षैरिवाचलाः।
एवं हत्वा तव गजांस्ते पाण्डुरथकुञ्जराः।
द्रुतां सेनामवैक्षन्त भिन्नकूलामिवापगाम्॥ १७॥

फिर कुलनन्दन नकुल ने भी अपने उत्तम धनुष को झुकाकर प्रयत्नपूर्वक, शीघ्रगामी नाराचों द्वारा बहुतसे हाथियों का वधकर दिया। उसके बाद धृष्टद्युम्न, सात्यकि, द्रौपदी के पुत्र, प्रभद्रकवीर और शिखण्डी, इनसब ने उन विशाल हाथियों पर बाणों की वर्षा आरम्भ कर दी। जैसे विद्युत् की लगातार अनेकबार चोट से पर्वत शिखर टूट जाते हैं, वैसे ही पाण्डवसैनिकोंरूपी बादलोंद्वारा कीहुई बाणवर्षा से चोट खाकर शत्रु के हाथीरूपी पर्वत भूमि पर गिरने लगे। इसप्रकार आपके हाथियों का संहारकर पाण्डवों के श्रेष्ठ महारथियों ने देखा कि आपकी सेना उस समय किनारा तोड़कर बहनेवाली नदी के समान भाग रही थी।

पन्द्रहवाँ अध्याय : सहदेव का दुश्शासन को हराना।

सहदेवं तथा क्रुद्धं दहन्तं तव वाहिनीम्।
दुःशासनो महाराज भ्राता भ्रातरमभ्ययात्॥ १॥
तौ समेतौ महायुद्धे दृष्ट्वा तत्र महारथाः।
सिंहनादरवांश्चक्रुर्वा- सांस्यादुधुवुश्च ह॥ २॥
ततो भारत क्रुद्धेन तव पुत्रेण धन्विना।
पाण्डुपुत्रस्त्रिभिर्बाणैर्वक्षस्यभिहतो बली॥ ३॥
सहदेवस्ततो राजन् नाराचेन तवात्मजम्।
विद्ध्वा विव्याध सप्तत्या सारथिं च त्रिभिः शरैः॥ ४॥

हे महाराज! तब क्रुद्ध सहदेव को आपकी सेना का वध करते हुए देखकर, उसका भाई दुश्शासन सामना करने के लिये आया। उनदोनों को तब महान् युद्ध में लगा हुआ देखकर वहाँ महारथीलोग सिंहनाद करने और अपने वस्त्रों को हिलाने लगे। हे भारत! तब आपके धनुर्धर पुत्र ने क्रुद्ध होकर बलवान् पाण्डुपुत्र की छाती में तीन बाण मारे। हे राजन्! तब सहदेव ने आपके पुत्र को एक नाराच से बींधकर पुनः उसके ऊपर सत्तर बाणों की वर्षा की और उसके सारथी को भी तीन बाण मारे।

दुःशासनस्ततश्चापं छित्त्वा राजन् महाहवे।
सहदेवं त्रिसप्तत्या बाह्वोरुरसि चार्पयत्॥ ५॥

अथान्यद् धनुरादाय सहदेवः प्रतापवान्।
दुःशासनाय चिक्षेप बाणमन्तकरं ततः॥ ६॥
तमापतन्तं विशिखं यमदण्डोपमत्विषम्।
खड्गेन शितधारेण द्विधा चिच्छेद कौरवः॥ ७॥
ततो बाणांश्चतुःषष्टिं तव पुत्रो महारणे।
सहदेवरथं तूर्णं प्रेषयामास भारत॥ ८॥

हे राजन्! तब दुश्शासन ने उस महान् युद्ध में सहदेव का धनुष काटकर सहदेव की बाहों और छाती पर तिहत्तर बाणों की वर्षा की। तब प्रतापी सहदेव ने दूसरे धनुष को लेकर दुश्शासन पर एक प्राणान्तकारी बाण को छोड़ा। मृत्यु के प्रहार के समान तेजस्वी उस बाण के कौरववीर ने तब तीखी धार वाली तलवार से दो टुकड़े कर दिये। हे भारत! तब आपके पुत्रने उस महान् युद्ध में सहदेव के रथपर शीघ्रता से चौंसठ बाण फैंके।

संनिवार्य महाबाणांस्तव पुत्रेण प्रेषितान्।
अथास्मै सुबहून् बाणान् प्रेषयामास संयुगे॥ ९॥
ततोदुःशासनो राजन् विद्ध्वा पाण्डुसुतं रणे।
सारथिं नवभिर्बाणैर्माद्रेयस्य समार्पयत्॥ १०॥
ततः क्रुद्धो महाराज सहदेवः प्रतापवान्।
समाधत्त शरं घोरं मृत्युकालान्तकोपमम्॥ ११॥

तब आपके पुत्रद्वारा चलाये उन महान् बाणों का निवारणकर सहदेव ने उस पर बहुत से बाणों को चलाया। हे राजन्! दुश्शासन ने इस युद्ध में पाण्डुपुत्र को नौ बाणों से घायलकर उसके सारथी को भी अनेक बाण मारे। हे महाराज! तब प्रतापी सहदेव ने क्रुद्ध होकर सबका अन्त कर देने वाले मृत्यु काल के समान एक भयंकर बाण का अपने धनुष पर संधान किया।

विकृष्य बलवच्चापं तव पुत्राय सोऽसृजत्।
स तं निर्भिद्य वेगेन भित्त्वा च कवचं महत्॥ १२॥
प्राविशद् धरणीं राजन् वल्मीकमिव पन्नगः।
ततः सम्मुमुहे राजंस्तव पुत्रो महारथः॥ १३॥
मूढं चैनं समालोक्य सारथिस्त्वरितो रथम्।
अपोवाह भृशं त्रस्तो वध्यमानः शितैः शरैः॥ १४॥
पराजित्य रणे तं तु कौरव्यं पाण्डुनन्दनः।
दुर्योधनबलं दृष्ट्वा प्रममाथ समन्ततः॥ १५॥

उसने सुदृढ धनुष को खींचकर उस बाण को आपके पुत्र पर छोड़ दिया। वह बाण उसे बींधकर, तथा उसके विशाल कवच को भी छेदकर वेगपूर्वक भूमि में ऐसे धँस गया जैसे सर्प अपनी बाँबी में घुसता है। हे राजन्! तब आपका महारथी पुत्र मूर्च्छित होगया। उसे मूर्च्छित देखकर, तीखे बाणों की मार खाकर अत्यन्त डरा हुआ उसका सारथी तब शीघ्रता से रथ को दूर भगाकर लेगया। उस कौरव वीर को पराजितकर पाण्डुपुत्र ने सामने खड़ी हुई दुर्योधन की सेना का सबतरफ से संहार करना आरम्भ कर दिया।

सोलहवाँ अध्याय : कर्णद्वारा नकुल की हार, पाण्डवसेना का विनाश।

नकुलं रभसं युद्धे द्रावयन्तं वरूथिनीम्।
कर्णो वैकर्तनो राजन् वारयामास वै रुषा॥ १॥
नकुलस्तु ततः कर्णं प्रहसन्निदमब्रवीत्।
पश्य मां त्वं रणे पाप चक्षुर्विषयमागतम्॥ २॥
त्वं हि मूलमनर्थानां वैरस्य कलहस्य च।
त्वद्दोषात् कुरवः क्षीणाः समासाद्य परस्परम्॥ ३॥
त्वामद्य समरे हत्वा कृतकृत्योऽस्मि विज्वरः।

हे राजन्! फिर युद्ध में नकुल द्वारा बलपूर्वक अपनी सेना को भगाते हुए देखकर, सूर्यपुत्र कर्ण ने रोष में भरकर उसे रोका। तब नकुल ने कर्ण से हँसते हुए कहा कि हे पापी! अब मैं तेरी आँखों के सामने आगया हूँ। तू मुझे अच्छी तरह देख ले। तूही इन सारे बैर, कलह और अनर्थों की जड़ है। तेरे दोष से ही कुरुवंशी आपस में लड़कर क्षीण होरहे हैं। मैं तुझे आज युद्धक्षेत्र में मारकर चिन्तारहित होकर कृतकृत्य होजाऊँगा।

एवमुक्तः प्रत्युवाच नकुलं सूतनन्दनः॥ ४॥
सदृशं राजपुत्रस्य धन्विनश्च विशेषतः।
प्रहरस्व च मे वीर पश्यामस्तव पौरुषम्॥ ५॥
कर्म कृत्वा रणे शूर ततः कत्थितुमर्हसि।
अनुक्त्वा समरे तात शूरा युध्यन्ति शक्तितः॥ ६॥
प्रयुध्यस्व मया शक्त्या हनिष्ये दर्पमेव ते।

इत्युक्त्वा प्राहरत् तूर्णं पाण्डुपुत्राय सूतजः॥ ७॥
विव्याध चैनं समरे त्रिसप्तत्या शिलीमुखैः।

ऐसा कहे जाने पर सूतपुत्र ने नकुल को उत्तर दिया कि हे वीर! तुम राजपुत्रों और विशेषरूप से धनुर्धरों के समान आचरण करते हुए मेरे ऊपर प्रहार करो। हम तुम्हारे पौरुष को देखते हैं। हे शूर! पहले युद्ध में कार्य करके फिर उनका बखान करना चाहिये। हे तात! शूरवीर कुछ भी न कहकर पहले युद्धक्षेत्र में युद्ध करते हैं। तुम मेरे साथ पूरी शक्ति से युद्ध करो। मैं तुम्हारे दर्प को समाप्त कर दूँगा। ऐसा कहकर सूतपुत्र ने तुरन्त पाण्डुपुत्र के ऊपर प्रहार किया। उसने उसे युद्ध में तिहत्तर बाणों की वर्षाकर घायल किया।

नकुलस्तु ततो विद्धः सूतपुत्रेण भारत॥ ८॥
अशीत्याशीविषप्रख्यैः सूतपुत्रमविध्यत।
तस्य कर्णो धनुश्छित्त्वा स्वर्णपुङ्खैः शिलाशितैः॥ ९॥
त्रिंशता परमेष्वासः शरैः पाण्डवमार्दयत्।
अथान्यद् धनुरादाय हेमपृष्ठं दुरासदम्॥ १०॥
कर्णं विव्याध सप्तत्या सारथिं च त्रिभिः शरैः।
ततः क्रुद्धो महाराज नकुलः परवीरहा॥ ११॥
क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन कर्णस्य धनुराच्छिनत्।
अथैनं छिन्नधन्वानं सायकानां शतैस्त्रिभिः॥ १२॥
आजघ्ने प्रहसन् वीरः सर्वलोकमहारथम्।

हे भारत! तब सूतपुत्रद्वारा घायल किये गये नकुल ने अस्सी विषधर सर्पों के समान बाणों की उसके ऊपर वर्षाकर उसे घायल कर दिया। तब सुनहरे पंख वाले और शिला पर साफ किये हुए बाणों से नकुल के धनुष को काटकर महाधनुर्धर कर्ण ने तीस बाणों की वर्षाकर नकुल को पीड़ा दी। फिर नकुल ने सुनहरी पीठवाले दूसरे दुर्धर्ष धनुष को लेकर कर्ण को सत्तर बाणों की वर्षा से घायल किया और सारथी को तीन बाण मारे। हे महाराज! तब शत्रु के वीरों को मारनेवाले क्रुद्ध नकुल ने अत्यन्ततीखे क्षुरप्र से कर्ण के धनुष को काट दिया। फिर वीर नकुल ने सारे संसार में प्रसिद्ध महारथी कर्ण पर तीनसौ बाणों की वर्षा कर उसे घायल किया।

अथान्यद् धनुरादाय कर्णो वैकर्तनस्तदा॥ १३॥
नकुलं पञ्चभिर्बाणैर्जत्रुदेशे समार्पयत्।
नकुलस्तु ततः कर्णं विद्ध्वा सप्तभिराशुगैः॥ १४॥
अथास्य धनुषः कोटिं पुनश्चिच्छेद मारिष।
सोऽन्यत् कार्मुकमादाय समरे वेगवत्तरम्॥ १५॥
नकुलस्य ततो बाणैः सर्वतोऽवारयद् दिशः।
संछाद्यमानः सहसा कर्णचापच्युतैः शरैः॥ १६॥
चिच्छेद स शरांस्तूर्णं शरैरेव महारथः।

तब सूर्यपुत्र कर्ण ने दूसरा धनुष लेकर नकुल की हँसली के स्थान पर पाँचबाणों से प्रहार किया। हे मान्यवर! फिर नकुल ने सात शीघ्रगामी बाणों से कर्ण को बींधकर उसके धनुष के किनारे को पुनः काट दिया। तब कर्ण ने और अधिक वेगवाले धनुष को लेकर नकुल को सबतरफ से बाणोंद्वारा अच्छादित कर दिया। कर्ण के धनुष से छूटे बाणोंद्वारा आच्छादित महारथी नकुल ने उन बाणों को शीघ्रतापूर्वक अपने बाणों से काट दिया।

विदर्शयन्तौ दिव्यानि शस्त्राणि रणमूर्धनि॥ १७॥
छादयन्तौ च सहसा परस्परवधैषिणौ।
शरवेश्मप्रविष्टौ तौ ददृशाते न कैश्चन॥ १८॥
सूर्याचन्द्रमसौ राजञ्छाद्यमानौ घनैरिव।
ततः क्रुद्धो रणे कर्णः कृत्वा घोरतरं वपुः॥ १९॥
पाण्डवं छादयामास समन्ताच्छरवृष्टिभिः।
सोऽतिच्छन्नो महाराज सूतपुत्रेण पाण्डवः॥ २०॥
न चकार व्यथां राजन् भास्करो जलदैर्यथा।

उस समय एकदूसरे के वध के इच्छुक वेदोनों रण के मुहाने पर दिव्यास्त्रों का प्रदर्शन करते हुए एकदूसरे को बाणों से आच्छादित कर रहे थे। बाणों से आच्छादित होने पर वे ऐसेही दूसरों को दिखाई नहीं देते थे, जैसे बादलों से घिरे सूर्य और चन्द्रमा दिखाई नहीं पड़ते। फिर कर्ण ने क्रोध में भरकर और अधिक भयंकररूप को दिखाते हुए पाण्डुपुत्र को सबतरफ से बाणवर्षा द्वारा ढक दिया। हे महाराज! हे राजन्! सूर्यपुत्र द्वारा अत्यन्त आच्छादित होकर भी बादलों से आच्छादित सूर्य के समान पाण्डुपुत्र ने कोई व्यथा अनुभव नहीं की।

ततः कर्णो महाराज धनुश्छित्त्वा महात्मनः॥ २१॥
सारथिं पातयामास रथनीडाद्धसन्निव।
ततोऽश्वांश्चतुरश्चास्य चतुर्भिर्निशितैः शरैः॥ २२॥
यमस्य भवनं तूर्णं प्रेषयामास भारत।
अथास्य तं रथं दिव्यं तिलशो व्यधमच्छरैः॥ २३॥
पताकां चक्ररक्षांश्च गदां खड्गं च मारिष।

शतचन्द्रं च तच्चर्म सर्वोपकरणानि च॥ २४॥
हताश्वो विरथश्चैव विवर्मा च विशाम्पते।

फिर हे महाराज! कर्ण ने मुस्कराते हुए मनस्वी नकुल का धनुष काटकर, उनके सारथी को रथ की बैठक से नीचे गिरा दिया। हे भारत! फिर चार तीखे बाणों से तुरन्त उसके चारों घोड़ों को भी मृत्युलोक में भेज दिया। हे मान्यवर! फिर उसने अपने बाणों से उसके दिव्य रथ के टुकड़े टुकड़े कर दिये। उसने उसकी पताका, चक्ररक्षकों, गदा, तलवार तथा अनेक चन्द्रचिन्हों से सुशोभित ढाल आदि सारे उपकरणों को भी नष्ट कर दिया।

अवतीर्य रथात्तूर्णं परिघं गृह्य धिष्ठितः॥ २५॥
तमुद्यतं महाघोरं परिघं तस्य सूतजः।
व्यहनत् सायकै राजन् सुतीक्ष्णैर्भारसाधनैः॥ २६॥
स हन्यमानः समरे कृतास्त्रेण बलीयसा।
प्राद्रवत् सहसा राजन् नकुलो व्याकुलेन्द्रियः॥ २७॥
तमभिद्रुत्य राधेयः प्रहसन् वै पुनः पुनः।
सज्यमस्य धनुः कण्ठे व्यवासृजत भारत॥ २८॥

हे प्रजानाथ! तब घोड़ों के मारे जाने पर रथ और कवच से हीन नकुल तुरन्त रथ से उतरकर, एक परिघ हाथ में लेकर खड़े होगये। हे राजन्! तब उठे हुए महाघोर उनके परिघ को सूतपुत्र ने अत्यन्त तीखे और दुष्कर कार्य को सिद्ध करनेवाले बाणों से काट दिया। तब उस अधिक बलवान् और अस्त्रविद्याकुशल कर्ण द्वारा युद्ध में मारे जाते हुए, व्याकुल इन्द्रियोंवाले नकुल, हे राजन्! सहसा वहाँ से भाग लिये। तब कर्ण ने बार बार हँसते हुए उसके पीछे भागकर, हे भारत! अपने प्रत्यंचा सहित धनुष को उसके गले में डाल दिया।

तमब्रवीत्ततः कर्णो व्यर्थं व्याहृतवानसि।
वदेदानीं पुनर्हृष्टो वध्यमानः पुनः पुनः॥ २९॥
मा योत्सीः कुरुभिः सार्धं बलवद्भिश्च पाण्डव।
सदृशैस्तात युध्यस्व व्रीडां मा कुरु पाण्डव॥ ३०॥
गृहं वा गच्छ माद्रेय यत्र वा कृष्णफाल्गुनौ।
एवमुक्त्वा महाराज व्यसर्जयत तं तदा॥ ३१॥
विसृष्टः पाण्डवो राजन् सूतपुत्रेण धन्विना।
व्रीडन्निव जगामाथ युधिष्ठिररथं प्रति॥ ३२॥
आरुरोह रथं चापि सूतपुत्रप्रतापितः।
निःश्वसन् दुःखसंतप्तः कुम्भस्थ इव पन्नगः॥ ३३॥

तब कर्ण ने उससे कहा कि तुमने व्यर्थही अपनी बड़ाई की थी। अब तुम मेरे बाणों की बार बार मार खाकर फिर प्रसन्न होकर उन बातों को कहो। हे पाण्डव! आगे से बलवान् कौरवों के साथ युद्ध मत करना। जो तुम्हारे समान हों, उन्हीं से युद्ध करना। लज्जा मत करो। हे माद्रीपुत्र! अब तुम यातो अपने घर चले जाओ या वहाँ चले जाओ जहाँ कृष्ण और अर्जुन हैं। हे महाराज! ऐसा कहकर उसने उसे छोड़ दिया। हे राजन्! धनुर्धर सूतपुत्र से छूटकर, नकुल लज्जित से होते हुए युधिष्ठिर के रथ के पास चले गये। वे उस समय सूतपुत्र द्वारा सन्तप्त किये हुए, घड़े में बन्द सर्प के समान लम्बी साँस लेरहे थे। वे तब उस रथपर चढ़ गये।

तं विजित्याथ कर्णोऽपि पञ्चालांस्त्वरितो ययौ।
रथेनातिपताकेन चन्द्रवर्णहयेन च॥ ३४॥
तत्राकरोन्महाराज कदनं सूतनन्दनः।
मध्यं प्राप्ते दिनकरे चक्रवद् विचरन् प्रभुः॥ ३५॥

नकुल को जीतकर कर्ण भी शीघ्रता से चन्द्रमा के समान श्वेत घोड़ों से युक्त, ऊँची पताका वाले रथ के द्वारा पाँचालों की तरफ चला गया। हे राजन्! वहाँ दोपहर होते उस शक्तिशाली ने चक्र के समान विचरते हुए पाण्डवसेना का महान् संहार किया।

तत्र तत्र च सम्भ्रान्ता विचेरुर्मत्तकुञ्जराः।
दावाग्निपरिदग्धाङ्गा यथैव स्युर्महावने॥ ३६॥
भिन्नकुम्भार्द्ररुधिराश्छिन्नहस्ताश्च वारणाः।
छिन्नगात्रावराश्चैव च्छिन्नवालधयोऽपरे॥ ३७॥
छिन्नाभ्राणीव सम्पेतुर्हन्यमाना महात्मना।
अपरे निष्टनन्तश्च व्यदृश्यन्त महाद्विपाः॥ ३८॥
क्षरन्तः शोणितं गात्रैर्नगा इव जलस्रवाः।
प्रासैः खड्गैश्च रहितानृष्टिभिश्चापि भारत॥ ३९॥
हयसादीनपश्याम कञ्चुकोष्णीषधारिणः।
निहतान् वध्यमानांश्च वेपमानांश्च भारत॥ ४०॥
नानाङ्गावयवैर्हीनांस्तत्र तत्रैव भारत।

कर्णद्वारा मारे जाते हुए मस्तहाथी घबराहट में, जहाँतहाँ ऐसे चक्कर लगा रहे थे, जैसे किसी महान् वन में दावानल ने उनके सारे अंगों को जला दिया हो। किन्ही हाथियों के मस्तक फट गये थे और वे रक्त में भीग रहे थे। कितनेही हाथियों की सूँड कट गयी थीं। कितनेही हाथियों के कवच टूट गये

थे और कितनों की पूँछें कट गयीं थीं। वे मनस्वी कर्ण द्वारा मारे जाते हुए, छिन्न हुए बादलों के समान गिर रहे थे। कितनेही महान् गज झरने बहानेवाले पर्वतों के समान अपने शरीरांगों से रक्त की धारा बहाते और आर्तनाद करते हुए दिखाई देरहे थे। हे भारत! वहाँ हमने कवच और पगड़ी धारण किये हुए घुड़सवारों को देखा, जो प्रास, खड्ग और ऋष्टि आदि शस्त्रों से तथा अपने नाना शरीरांगों से रहित होकर मर गये थे और काँपते हुए मारे जारहे थे।

रथान् हेमपरिष्कारान् संयुक्ताञ्जवनैर्हयैः॥ ४१॥
भ्राम्यमाणानपश्याम हतेषु रथिषु द्रुतम्।
भग्नाक्षकूबरान् कांश्चिद् भग्नचक्रांश्च भारत॥ ४२॥
विपताकध्वजांश्चान्याञ्छिन्नेषा- दण्डबन्धुरान्।
विहतान् रथिनस्तत्र धावमानांस्ततस्ततः॥ ४३॥
सूतपुत्रशरैस्तीक्ष्णैर्हन्यमानान् विशाम्पते।
विशस्त्रांश्च तथैवान्यान् सशस्त्रांश्च हतान् बहून्॥ ४४॥

हमने वहाँ देखा कि रथियों के मारे जाने पर, उनके शीघ्रगामी घोड़ों से जुते स्वर्णभूषित रथ तेजी से दौड़ रहे थे। हे भारत! वहाँ कितने ही रथों के धुरे, कूबर और पहिये टूट गये थे, कितनों की पताका और ध्वज खण्डित होगये और कितनों के ईषादण्ड और बन्धुर टूट गये थे। हे प्रजानाथ! वहाँ हमने देखा कि सूतपुत्र के तीखे बाणों से मारे जाते हुए कितनेही रथी इधरउधर भाग रहे थे। बहुत से रथी शस्त्रों से रहित होकर मारे गये थे और बहुतेरे शस्त्रोंसहितही मरे पड़े थे।

शिरांसि बाहूनूरूंश्च च्छिन्नानन्यांस्तथैव च।
कर्णचापच्युतैर्बाणैरपश्याम समन्ततः॥ ४५॥
महान् व्यतिकरो रौद्रो योधाना मन्वपद्यत।
कर्णसायकनुन्नानां युध्यतां च शितैः शरैः॥ ४६॥
ते वध्यमानाः समरे सूतपुत्रेण सृञ्जयाः।
तमेवाभिमुखं यान्ति पतङ्गा इव पावकम्॥ ४७॥
तं दहन्तमनीकानि तत्र तत्र महारथम्।
क्षत्रिया वर्जयामासुर्युगान्ताग्निमिवोल्बणम्॥ ४८॥

वहाँ हमने देखा कि कर्ण के धनुष से छूटे हुए बाणों से कटे हुए हाथ, सिर और जाँघें चारों तरफ बिखरी पड़ी थीं। तीखे बाणों से युद्ध करते हुए और कर्ण के बाणों से मारे जाते हुए योद्धाओं में वहाँ अत्यन्त भयंकर और महान् संग्राम मचा हुआ था। सूतपुत्रद्वारा मारे जाते हुए भी सृंजयवीर उसी की तरफ इसप्रकार बढ़ते चले आरहे थे, जैसे पतंगे अग्नि पर टूटते हैं। वह महारथी कर्ण उस समय प्रलय को करनेवाली प्रचंड अग्नि के समान जहाँ तहाँ सेनाओं को भस्म कर रहा था। उस समय क्षत्रियलोग उसे छोड़कर दूर हट जाते थे।

सत्रहवाँ अध्याय : युयुत्सु और उलूक, शतानीक और श्रुतकर्मा तथा सुतसोम और शकुनि का युद्ध।

युयुत्सुं तव पुत्रस्य द्रावयन्तं बलं महत्।
उलूको न्यपतत्तूर्णं तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत्॥ १॥
शाकुनिं तु ततः षष्ट्या विव्याध भरतर्षभ।
सारथिं त्रिभिरानर्छत्तं च भूयो व्यविध्यत॥ २॥
उलूकस्तं तु विंशत्या विद्ध्वा स्वर्णविभूषितैः।
अथास्य समरे क्रुद्धो ध्वजं चिच्छेद काञ्चनम्॥ ३॥
ध्वजमुन्मथितं दृष्ट्वा युयुत्सुः क्रोधमूर्च्छितः।
उलूकं पञ्चभिर्बाणैराजघान स्तनान्तरे॥ ४॥

हे राजन्! तब युयुत्सु को आपकी विशाल सेना को खदेड़ते हुए देखकर उलूक शीघ्रता से वहाँ आया और युयुत्सु से बोला कि खड़ा रह, खड़ा रह। हे भरतश्रेष्ठ! तब शकुनि के पुत्र को युयुत्सु ने साठ बाणों की वर्षाकर घायल कर दिया और उसके सारथी को भी तीन बाण मारकर उसे पुनः बाणों से बींधा। उलूक ने उसे बीस स्वर्णभूषित अर्थात् सुनहरे बाणों से बींधकर, क्रोधसहित उसके सुनहरे ध्वज को भी युद्धस्थल में काट गिराया। अपने ध्वज को कटा देखकर क्रोध से मूर्च्छित युयुत्सु ने उलूक की छाती पर पाँच बाणों से प्रहार किया।

उलूकस्तस्य समरे तैलधौतेन मारिष।
शिरश्चिच्छेद भल्लेन यन्तुर्भरतसत्तम॥ ५॥

जघान चतुरोऽश्वांश्च तं च विव्याध पञ्चभिः।
सोऽतिविद्धो बलवता प्रत्यपायाद् रथान्तरम्॥ ६॥
तं निर्जित्य रणे राजन्नुलूकस्त्वरितो ययौ।
पञ्चालान् सृञ्जयांश्चैव विनिघ्नन् निशितैः शरैः॥ ७॥

हे मान्यवर भरतश्रेष्ठ! तब उलूक ने युद्धक्षेत्र में उसके सारथी का सिर तेल से धोये भल्ल से उड़ा दिया। उसने उसके चारों घोड़ों को मार दिया और उसेभी पाँच बाणों से घायल कर दिया। तब उस बलवान् वीर के द्वारा अत्यन्त घायल होकर युयुत्सु दूसरे रथ के द्वारा वहाँ से भाग गया। है राजन् उसे युद्ध में जीत कर उलूक तेजीसे पाँचालों और सृंजयों की तरफ चला गया और उन्हें अपने तीखे बाणों से मारने लगा।

शतानीकं महाराज श्रुतकर्मा सुतस्तव।
व्यश्वसूतरथं चक्रे निमेषार्धादसम्भ्रमः॥ ८॥
हताश्वे तु रथे तिष्ठञ्शतानीको महारथः।
गदां चिक्षेप संक्रुद्धस्तव पुत्रस्य मारिष॥ ९॥
सा कृत्वा स्यन्दनं भस्म हयांश्चैव ससारथीन्।
पपात धरणीं तूर्णं दारयन्तीव भारत॥ १०॥
पुत्रस्तु तव सम्भ्रान्तो विवित्सो रथमारुहत्।
शतानीकोऽपि त्वरितः प्रतिविन्ध्यरथं गतः॥ ११॥

हे महाराज! उधर आपके पुत्र श्रुतकर्मा ने बिना घबराये आधे पल में ही शतानीक को बिना घोड़ों, सारथी और रथवाला कर दिया। हे मान्यवर! तब मरे घोड़ोंवाले रथ पर ही खड़े अत्यन्त क्रुद्ध महारथी शतानीकने आपके पुत्र के ऊपर गदा से प्रहार किया। हे भारत! वह गदा सारथीसमेत उसके घोड़ों और रथ को नष्टकर भूमि पर उसे विशीर्ण सी करती हुई गिर पड़ी। तब आपका पुत्र घबराया हुआ विवित्सु के रथ पर चढ गया और शतानीक भी शीघ्रता से प्रतिविन्ध्य के रथ पर जाचढ़ा।

सुतसोमं तु शकुनिर्विद्ध्वा तु निशितैः शरैः।
नाकम्पयत संक्रुद्धो वार्योघ इव पर्वतम्॥ १२॥
सुतसोमस्तु तं दृष्ट्वा पितुरत्यन्तवैरिणम्।
शरैरनेकसाहस्रैश्छादयामास भारत॥ १३॥
ताञ्शराञ्शकुनिस्तूर्णं चिच्छेदान्यैः पतत्रिभिः।
लघ्वस्त्रश्चित्रयोधी च जितकाशी च संयुगे॥ १४॥
निवार्य समरे चापि शरांस्तान् निशितैः शरैः।
आजघान सुसंक्रुद्धः सुतसोमं त्रिभिः शरैः॥ १५॥
तस्याश्वान् केतनं सूतं तिलशो व्यधमच्छरैः।
स्यालस्तव महाराज तत उच्चुक्रुशुर्जनाः॥ १६॥

दूसरीतरफ क्रोध में भरा हुआ शकुनि तीखे बाणों से सुतसोम को घायल करके उसीतरह कम्पित नहीं कर सका, जैसे पानी की धारा पर्वत को नहीं हिला सकती। हे भारत! सुतसोम ने तब उस अपने पिता के अत्यन्तबैरी को देखकर असंख्य बाणोंद्वारा उसे आच्छादित कर दिया। तब शीघ्रतापूर्वक अस्त्र चलानेवाले, विचित्रता से युद्ध करनेवाले और विजय के इच्छुक शकुनि ने युद्धक्षेत्र में उन बाणों को शीघ्रता से तीखे बाणों से निवारणकर, अत्यन्त क्रोध में भरकर सुतसोम को तीन बाण मारे। अपने बाणों से उसके घोड़ों को, ध्वज को, और सारथी को हे महाराज! आपके साले ने टुकड़े टुकड़े कर दिया। तब लोग जोर से कोलाहल करने लगे।

हताश्वो विरथश्चैव छिन्नकेतुश्च मारिष।
धन्वी धनुर्वरं गृह्य रथाद् भूमावतिष्ठत॥ १७॥
व्यसृजत् सायकांश्चैव स्वर्णपुङ्खाञ्शिलाशितान्।
छादयामास समरे तव स्यालस्य तं रथम्॥ १८॥
शलभानामिव व्राताञ्शरव्रातान् महारथः।
रथोपगान् समीक्ष्यैवं विव्यथे नैव सौबलः॥ १९॥
प्रममाथ शरांस्तस्य शरव्रातैर्महायशाः।
तस्य तीक्ष्णैर्महावेगैर्भल्लैः संनतपर्वभिः॥ २०॥
व्यहनत् कार्मुकं राजंस्तूणीरांश्चैव सर्वशः।

हे मान्यवर! घोड़ों के मर जाने, ध्वज के कट जाने और रथ से रहित होजाने पर वह धनुर्धर उत्तम धनुष को लेकर और रथ से उतरकर भूमि पर खड़ा हो गया। उसने सुनहरे पंखवाले, शिला पर तेज किये बाणों को छोड़ते हुए युद्धक्षेत्र में आपके साले के रथ को अच्छादित कर दिया। पर महारथी सुबलपुत्र टिड्डीदलों के समान उन बाणसमूहों को अपने रथ के समीप देखकर भी व्यथित नहीं हुआ। उस महायशस्वी ने अपने बाणसमूहों द्वारा उनको नष्ट कर दिया। हे राजन्! उसने तीखे, महावेगवाले तथा झुकी गाँठ वाले भल्लों से उसके धनुष और तरकसों को भी सबतरफ से नष्ट कर दिया।

स च्छिन्नधन्वा विरथः खड्गमुद्यम्य चानदत्॥ २१॥
वैदूर्योत्पलवर्णाभं दन्तिदन्तमयत्सरुम्।
सौबलस्तु ततस्तस्य शरांश्चिक्षेप वीर्यवान्॥ २२॥

तानापतत एवाशु चिच्छेद परमासिना।
ततः क्रुद्धो महाराज सौबलः परवीरहा॥ २३॥
प्राहिणोत् सुतसोमाय शरानाशीविषोपमान्।
चिच्छेद तांस्तु खड्गेन शिक्षया च बलेन च॥ २४॥
दर्शयँल्लाघवं युद्धे तार्क्ष्यतुल्यपराक्रमः।

तब धनुष के कट जाने और रथ से रहित हो जाने पर सुतसोम ने वैदूर्यमणि तथा नील कमल के समान रंगवाली और हाथीदाँत की मूठ से युक्त तलवार को उठाकर गर्जना की। तब पराक्रमी शकुनि ने उसके ऊपर अनेक बाण फैंके, पर आते हुए उन बाणों को उसने उत्तम तलवार से शीघ्रही काट दिया। हे महाराज! तब शत्रुवीरों को मारनेवाले सुबलपुत्र ने सुतसोम के ऊपर विषैले सर्पों के समान बाणों की वर्षा आरम्भ कर दी। किन्तु गरुड़ के समान पराक्रमी सुतसोम ने अपनी शिक्षा और शक्ति के द्वारा अपने कौशल का प्रदर्शन करते हुए उनसब बाणों को तलवार से काट दिया।

तस्य संचरतो राजन् मण्डलावर्तने तदा॥ २५॥
क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन खड्गं चिच्छेद सुप्रभम्।
छिन्नमाज्ञाय निस्त्रिंशमवप्लुत्य पदानि षट्॥ २६॥
प्राविध्यत ततः शेषं सुतसोमो महारथः।
तच्छित्त्वा सगुणं चापं रणे तस्य महात्मनः॥ २७॥
पपात धरणीं तूर्णं स्वर्णवज्रविभूषितम्।

हे राजन्! वह अपनी अत्यन्तचमकीली तलवार को मण्डलाकार घुमा रहा था। तब शकुनि ने अत्यन्ततीखे क्षुरप्रसे उसे काट दिया। तलवार को कटा जानकर महारथी सुतसोम ने छै कदम उछलकर तलवार के शेषभाग को ही शकुनि पर देमारा। तब मनस्वी शकुनि के प्रत्यंचा सहित धनुष को काटकर वह स्वर्ण और हीरे से विभूषित खड्ग का आधाभाग युद्धक्षेत्र में भूमि पर गिर पड़ा।

सुतसोमस्ततोऽगच्छ्रुतकीर्तेर्महारथम्॥ २८॥
सौबलोऽपि धनुर्गृह्य घोरमन्यत् सुदुर्जयम्।
अभ्ययात् पाण्डवानीकं निघ्नञ्शत्रुगणान् बहून्॥ २९॥
तत्र नादो महानासीत् पाण्डवानां विशाम्पते।
सौबलं समरे दृष्ट्वा विचरन्तमभीतवत्॥ ३०॥
तान्यनीकानि दृप्तानि शस्त्रवन्ति महान्ति च।
द्राव्यमाणान्यदृश्यन्त सौबलेन महात्मना॥ ३१॥

फिर सुतसोत श्रुतकीर्ति के विशाल रथ पर चढ़ गया। उधर सुबलपुत्र भी दूसरे भयंकर और अत्यन्त दुर्जय धनुष को लेकर बहुत से शत्रुओं को मारता हुआ पाण्डव सेना की तरफ चल दिया। हे प्रजानाथ! शकुनि को युद्ध स्थल में निर्भय विचरते हुए देखकर पाण्डव सेना में महान् सिंहनाद होने लगा। हमने वहाँ देखा कि अभिमान में भरे हुए शस्त्रधारी उन महान् सैनिकों को मनस्वी शकुनि ने भगा दिया।

अठारहवाँ अध्याय : कृपाचार्य से धृष्टद्युम्न, कृतवर्मा से शिखण्डी की हार।

विनिःश्वस्य ततः क्रोधात् कृपः शारद्वतो नृप।
पार्षतं चार्दयामास निश्चेष्टं सर्वमर्मसु॥ १॥
स हन्यमानः समरे गौतमेन महात्मना।
कर्तव्यं न स्म जानाति मोहेन महताऽऽवृतः॥ २॥
तमब्रवीत्ततो यन्ता कच्चित् क्षेमं तु पार्षत।
ईदृशं व्यसनं युद्धे न ते दृष्टं मया क्वचित्॥ ३॥
दैवयोगात्तु ते बाणा नापतन् मर्मभेदिनः।
प्रेषिता द्विजमुख्येन मर्माण्युद्दिश्य सर्वतः॥ ४॥

हे राजन्! फिर शरद्वान् पुत्र कृपाचार्य ने क्रोध से लम्बी साँस लेकर बिना चेष्टा के खड़े हुए धृष्टद्युम्न के सारे मर्मस्थलों को पीड़ित किया। मनस्वी कृपाचार्य द्वारा मारे जाते हुए भी युद्धस्थल में धृष्टद्युम्न को कोई कर्त्तव्य नहीं सूझा। वह मोह से भर गया था। तब सारथी ने उससे कहा कि हे द्रुपदपुत्र! क्या आप सकुशल हैं? मैनें कभी आपको ऐसे संकट में पड़े नहीं देखा। उस द्विजश्रेष्ठ ने आपके मर्मस्थानों को सब तरफ से लक्ष्य करके बाण चलाये थे, पर संयोग वश वे अपने लक्ष्य पर नहीं पड़े।

धृष्टद्युम्नस्ततो राजञ्शनकैरब्रवीद् वचः।
मुह्यते मे मनस्तात गात्रस्वेदश्च जायते॥ ५॥
वेपथुश्च शरीरे मे रोमहर्षश्च सारथे।

वर्जयन् ब्राह्मणं युद्धे शनैर्याहि यतोऽर्जुनः॥ ६॥
अर्जुनं भीमसेनं वा समरे प्राप्य सारथे।
क्षेममद्य भवेदेवमेषा मे नैष्ठिकी मतिः॥ ७॥
ततः प्रायान्महाराज सारथिस्त्वरयन् हयान्।
यतो भीमो महेष्वासो युयुधे तव सैनिकैः॥ ८॥

हे राजन्! तब धृष्टद्युम्न ने धीरे से कहा कि हे सारथी! मेरा मन मोहित सा होरहा है, मेरे शरीरांगों में पसीना आरहा है, शरीर में कम्पन है और रोंगटे खड़े होरहे हैं। इस ब्राह्मण का युद्ध में त्याग करते हुए धीरे से वहाँ चलो जहाँ अर्जुन है। युद्धस्थल में अर्जुन या भीम सेन को प्राप्त करके ही आज मेरी कुशलता होगी, यह मेरा दृढ़ विचार है। हे महाराज! तब सारथी शीघ्रता करते हुए घोड़ों को वहीं लेचला, जहाँ भीमसेन आपके सैनिकों के साथ युद्ध कर रहे थे।

प्रद्रुतं च रथं दृष्ट्वा धृष्टद्युम्नस्य मारिष।
किरञ्शतशतान्येव गौतमोऽनुययौ तदा॥ ९॥
शिखण्डिनं तु समरे भीष्ममृत्युं दुरासदम्।
हार्दिक्यो वारयामास स्मयन्निव मुहुर्मुहुः॥ १०॥
शिखण्डी तु समासाद्य हृदिकानां महारथम्।
पञ्चभिर्निशितैर्भल्लैर्जत्रुदेशे समाहनत्॥ ११॥
कृतवर्मा तु संक्रुद्धो भित्त्वा षष्ट्या पतत्रिभिः।
धनुरेकेन चिच्छेद हसन् राजन् महारथः॥ १२॥

हे मान्यवर! धृष्टद्युम्न के रथ को भागता हुआ देखकर कृपाचार्य ने असंख्य बाणों की वर्षा करते हुए उसका पीछा किया। दूसरीतरफ भीष्म की मृत्यु का कारण बने दुर्धर्ष शिखण्डी को कृतवर्मा ने बारबार मुस्कराते हुए रोका। शिखण्डी ने हृदीक वंशियों के उस महारथी को प्राप्त कर पाँच तीखे भल्लों से उसकी हँसली पर आघात किया। तब अत्यन्तक्रुद्ध कृतवर्मा ने उस पर साठ बाणों की वर्षाकर उसे बींधा। हे राजन्! उस महारथी ने हँसते हुए, एक बाण से उसके धनुष को भी काट दिया।

अथान्यद् धनुरादाय द्रुपदस्यात्मजो बली।
तिष्ठ तिष्ठेति संक्रुद्धो हार्दिक्यं प्रत्यभाषत॥ १३॥
ततोऽस्य नवतिं बाणान् रुक्मपुङ्खान् सुतेजनान्।
प्रेषयामास राजेन्द्र तेऽस्याभ्रश्यन्त वर्मणः॥ १४॥
वितथांस्तान् समालक्ष्य पतितांश्च महीतले।
क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन कार्मुकं चिच्छिदे भृशम्॥ १५॥

अथैनं छिन्नधन्वानं भग्नशृङ्गमिवर्षभम्।
अशीत्या मार्गणैः क्रुद्धो बाह्वोरुरसि चार्पयत्॥ १६॥

तब अत्यन्तक्रुद्ध द्रुपद के बलवान् पुत्र ने दूसरा धनुष लेकर कृतवर्मा से कहा कि खड़ा रह, खड़ा रह। फिर उसने अच्छेतीखे सुनहरे पंख वाले नब्बे बाणों को हे राजेन्द्र! उसके ऊपर छोड़ा। पर वे उसके कवच पर फिसलकर गिर गये। उन बाणों को व्यर्थ होकर भूमि पर गिरा देखकर उसने एक अत्यन्ततीखे क्षुरप्र से उसके धनुष को काट दिया। तब जब उसका धनुष कट गया और उसकी अवस्था सींग टूटे हुए बैल की तरह से हो गयी, क्रुद्ध शिखण्डी ने उसकी बाहों और छाती पर अस्सी बाणों की वर्षा की।

कृतवर्मा तु संक्रुद्धो मार्गणैः क्षतविक्षतः।
ववाम रुधिरं गात्रैः कुम्भवक्त्रादिवोदकम्॥ १७॥
अथान्यद् धनुरादाय समार्गणगुणं प्रभुः।
शिखण्डिनं बाणगणैः स्कन्धदेशे व्यताडयत्॥ १८॥
तावन्योन्यं भृशं विद्ध्वा रुधिरेण समुक्षितौ।
पोप्लूयमानौ हि यथा महान्तौ शोणितह्रदे॥ १९॥
अन्योन्यस्य वधे यत्नं कुर्वाणौ तौ महारथौ।
रथाभ्यां चेरतुस्तत्र मण्डलानि सहस्रशः॥ २०॥

कृतवर्मा उसके बाणों से घायल होकर अत्यन्त क्रोध से भर गया। वह अपने अंगों से इस प्रकार रुधिर बहा रहा था, जैसे घड़े के मुख से जल गिर रहा हो। फिर शक्तिशाली कृतवर्मा ने प्रत्यंचा और बाणसहित दूसरा धनुष लेकर शिखण्डी के कन्धे पर बाणसमूहों से प्रहार किया। इसप्रकार वेदोनों महान् वीर एकदूसरे को अपने बाणों से अत्यधिक बींधकर खून से लथपथ हो गये और ऐसे प्रतीत होने लगे, जैसे वे अभी रक्त के तालाब में बार बार डुबकी लगाकर आये हों। एकदूसरे के वध के लिये प्रयत्न करते हुए वेदोनों महारथी वहाँ रथों की असंख्य मंडलाकार गतियों पर विचरण कर रहे थे।

कृतवर्मा महाराज पार्षतं निशितैः शरैः।
रणे विव्याध सप्तत्या स्वर्णपुङ्खैः शिलाशितैः॥ २१॥
ततोऽस्य समरे बाणं भोजः प्रहरतां वरः।
जीवितान्तकरं घोरं व्यसृजत्त्वरयान्वितः॥ २२॥
स तेनाभिहतो राजन् मूर्च्छामाशु समाविशत्।
ध्वजयष्टिं च सहसा शिश्रिये कश्मलावृतः॥ २३॥
अपोवाह रणात्तूर्णं सारथी रथिनां वरम्।

हार्दिक्यशरसंतप्तं निःश्वसन्तं पुनः पुनः॥ २४॥
पराजिते ततः शूरे द्रुपदस्यात्मजे प्रभो।
व्यद्रवत् पाण्डवी सेना वध्यमाना समन्ततः॥ २५॥

हे महाराज! तब युद्ध में शिला पर साफ किये हुए, सुनहरे पंखवाले, सत्तर बाणों की वर्षा करके कृतवर्मा ने द्रुपदपुत्र को घायल कर दिया। फिर शीघ्रता करते हुए प्रहार करनेवालों में श्रेष्ठ कृतवर्मा ने उसके ऊपर एक दूसरे प्राणों का अन्त कर देनेवाले भयंकर बाण को छोड़ा। हे राजन्! उस बाण की चोट खाकर शिखण्डी तुरन्त मूर्च्छित होकर, मोह की अधिकता से ध्वज के डण्डे का सहारा लेकर बैठ गया। तब कृतवर्मा के बाणों से सन्तप्त और बार बार लम्बी साँस लेते हुए रथियों में श्रेष्ठ शिखण्डी को उसका सारथी तुरन्त रणभूमि से दूर ले गया। हे प्रभो! तब द्रुपद के शूरवीर पुत्र के पराजित होने पर सबतरफ से मारी जाती हुई पाण्डवों की सेना भागने लगी।

उन्नीसवाँ अध्याय : अर्जुन के द्वारा संशप्तकों का संहार तथा श्रुतंजय, चन्द्रदेव, और सत्यसेन आदि सुशर्मा के छै भाइयों का वध।

श्वेताश्वोऽथ महाराज व्यधमत्तावकं बलम्।
यथा वायुः समासाद्य तूलराशिं समन्ततः॥ १॥
प्रत्युद्ययुस्त्रिगर्तास्तं शिबयः कौरवैः सह।
शाल्वाः संशप्तकाश्चैव नारायणबलं च तत्॥ २॥
सत्यसेनश्चन्द्रदेवो मित्रदेवः श्रुतंजयः।
सौश्रुतिश्चित्रसेनश्च मित्रवर्मा च भारत॥ ३॥
त्रिगर्तराजः समरे भ्रातृभिः परिवारितः।
पुत्रैश्चैव महेष्वासैर्नानाशस्त्रविशारदैः॥ ४॥

हे महाराज! श्वेत घोड़ोंवाले अर्जुन ने आपकी सेना को इसप्रकार छिन्नभिन्न कर दिया कि जैसे वायु रुई के ढेर के पाकर उसे सबतरफ बिखेर देती है। तब उनका सामना करने के लिये त्रिगर्त, शिवि, कौरवोंसहित शाल्व, संशप्तक और नारायणीसेना के सैनिक आगे बढ़े। हे भारत! सत्यसेन, चन्द्रदेव, मित्रदेव, श्रुंतजय, सौश्रुति, चित्रसेन और मित्रवर्मा अपने इन सात भाइयों और अनेकप्रकार के शस्त्रों के विशारद तथा महाधनुर्धर पुत्रों से घिरा हुआ त्रिगर्तराज युद्धस्थल में उपस्थित हुआ।

ते सृजन्तः शरव्रातान् किरन्तोऽर्जुनमाहवे।
अभ्यवर्तन्त सहसा वार्योघा इव सागरम्॥ ५॥
ते हन्यमानाः समरे नाजहुः पाण्डवं रणे।
हन्यमाना महाराज शलभा इव पावकम्॥ ६॥
सत्यसेनस्त्रिभिर्बाणैर्विव्याध युधि पाण्डवम्।
मित्रदेवस्त्रिषष्ट्या तु चन्द्रदेवस्तु सप्तभिः॥ ७॥
मित्रवर्मा त्रिसप्तत्या सौश्रुतिश्चापि सप्तभिः।
श्रुतंजयस्तु विंशत्या सुशर्मा नवभिः शरैः॥ ८॥

वे बाणसमूहों को छोड़ते हुए और युद्धस्थल में अर्जुन को बाणवर्षा से अच्छादित करते हुए उसके सामने सहसा ऐसे पहुँच गये, जैसे पानी के प्रवाह सागर की तरफ बहकर जाते हैं। जैसे पतंगे जलते रहने परभी आग पर टूटते हैं, वैसेही हे महाराज! वे अर्जुनद्वारा मारे जाते हुए भी उन्हें छोड़कर भागे नहीं। सत्यसेन ने तीन बाणों से पाण्डुपुत्र को बींधा, मित्रदेव ने तिरेसठ बाणों की वर्षा की, चन्द्रदेव ने सात बाणों से प्रहार किया, मित्रवर्मा ने तिहत्तर बाणों की वर्षा की, सौश्रुति ने सात तथा सुशर्मा ने नौ बाणों से प्रहार किया और श्रुतंजय ने बीस बाण अर्जुन पर छोड़े।

स विद्धो बहुभिः संख्ये प्रतिविव्याध तान् नृपान्।
सौश्रुतिं सप्तभिर्विद्ध्वा सत्यसेनं त्रिभिः शरैः॥ ९॥
श्रुतंजयं च विंशत्या चन्द्रदेवं तथाष्टभिः।
मित्रदेवं शतेनैव श्रुतसेनं त्रिभिः शरैः॥ १०॥
नवभिर्मित्रवर्माणं सुशर्माणं तथाष्टभिः।
श्रुतंजयं च राजानं हत्वा तत्र शिलाशितैः॥ ११॥
सौश्रुतेः सशिरस्त्राणं शिरः कायादपाहरत्।
त्वरितश्चन्द्रदेवं च शरैर्निन्ये यमक्षयम्॥ १२॥

तब उन बहुतसारे योद्धाओं से बींधा जा कर अर्जुन ने भी बदले में उन्हें घायल किया। उन्होंने सौश्रुति को सात बाणों से बींधकर सत्यसेन को तीन बाणों से बींधा। श्रुतंजय पर बीस बाण चलाये और श्रुतसेन पर तीन बाणों से प्रहार किया तथा नौ बाणों से मित्रवर्मा को और आठ बाणों से सुशर्मा को घायल किया। उन्होंने शिलापर तेज किये बाणों से राजा श्रुतंजय का वधकर सौश्रुति के शिरस्त्राणसहित सिर

को उसके शरीर से अलग कर दिया और शीघ्रतासे चन्द्रदेव को बाणों से मृत्युलोक में पहुँचा दिया।

तथेतरान् महाराज यतमानान् महारथान्।
पञ्चभिः पञ्चभिर्बाणैरेकैकं प्रत्यवारयत्॥ १३॥
सत्यसेनस्तु संक्रुद्धस्तोमरं व्यसृजन्महत्।
समुद्दिश्य रणे कृष्णं सिंहनादं ननाद च॥ १४॥
स निर्भिद्य भुजं सव्यं माधवस्य महात्मनः।
अयस्मयो हेमदण्डो जगाम धरणीं तदा॥ १५॥
माधवस्य तु विद्धस्य तोमरेण महारणे।
प्रतोदः प्रापतद्धस्ताद् रश्मयश्च विशाम्पते॥ १६॥

इसीप्रकार हे महाराज! यत्न करते हुए दूसरे महारथियों को उन्होंने पाँच पाँच बाण मार कर रोका। तब अत्यन्तक्रुद्ध सत्यसेन ने एक विशाल तोमर श्रीकृष्णजी को निशाना बना कर युद्धस्थल में फैंका और जोरसे सिंहनाद किया। मनस्वी श्रीकृष्णजी की बायीं बाँह को छेदकर वह सुनहरे डण्डेवाला लोहे का तोमर भूमि पर गिर पड़ा। हे प्रजानाथ! उस महान् युद्ध में तब श्रीकृष्णजी के घायल हाथ से चाबुक और लगाम छूट गये।

वासुदेवं विभिन्नाङ्गं दृष्ट्वा पार्थो धनंजयः।
क्रोधमाहारयत्तीव्रं कृष्णं चेदमुवाच ह॥ १७॥
प्रापयाश्वान् महाबाहो सत्यसेनं प्रति प्रभो।
यावदेनं शरैस्तीक्ष्णैर्नयामि यमसादनम्॥ १८॥
प्रतोदं गृह्य सोऽन्यत्तु रश्मीनपि यथा पुरा।
वाहयामास तानश्वान् सत्यसेनरथं प्रति॥ १९॥
सत्यसेनं शरैस्तीक्ष्णैर्वारयित्वा महारथः।
ततः सुनिशितैर्भल्लै राज्ञस्तस्य महच्छिरः॥ २०॥
कुण्डलोपचितं कायाच्चकर्त पृतनान्तरे।

श्रीकृष्णजी को विक्षत देखकर कुन्तीपुत्र अर्जुन को बड़ा क्रोध आया। उन्होंने श्रीकृष्णजी से कहा कि हे प्रभो! हे महाबाहु! आप घोड़ों को सत्यसेन के समीप लेचलो। मैं अभी तीखे बाणों से उसे मृत्युलोक में पहुँचाता हूँ। तब श्रीकृष्ण जी ने दूसरे चाबुक को लेकर तथा लगाम को पहले की तरह पकड़कर, घोड़ों को सत्यसेन के रथ की तरफ हाँका। तब उस महारथी ने तीखे बाणों से सत्यसेन को रोककर, अत्यन्ततीखे भल्लों से उस राजा के विशाल कुण्डलों से युक्त सिर को सेना के बीच में शरीर से काटकर अलग कर दिया।

तन्निकृत्य शितैर्बाणैर्मित्रवर्माणमाक्षिपत्॥ २१॥
वत्सदन्तेन तीक्ष्णेन सारथिं चास्य मारिष।
ततः शरशतैर्भूयः संशप्तकगणान् बली॥ २२॥
पातयामास संक्रुद्धः शतशोऽथ सहस्रशः।
ततो रजतपुङ्खेन राजञ्शीर्षं महात्मनः॥ २३॥
मित्रदेवस्य चिच्छेद क्षुरप्रेण महारथः।

हे मान्यवर! सत्यसेन को मारकर फिर तीखे बाणों से मित्रवर्मा को और एक तीखे वत्सदन्त से उसके सारथी को भी मार गिराया। फिर सैकड़ों और हजारों बाणों से उस बलवान् ने अत्यन्त क्रोध में भरकर सैकड़ों और हजारों संशप्तकगणों को मार गिराया। हे राजन्! उस महारथी ने चाँदी जैसे पंखवाले क्षुरप्र से मनस्वी मित्रदेव के सिर को भी काट दिया।

सुशर्माणं सुसंक्रुद्धो जत्रुदेशे समाहनत्॥ २४॥
ततः संशप्तकाः सर्वे परिवार्य धनंजयम्।
शस्त्रौघैर्ममृदुः क्रुद्धा नादयन्तो दिशो दश॥ २५॥
अभ्यर्दितस्तु तैर्जिष्णुः शक्रतुल्यपराक्रमः।
ऐन्द्रमस्त्रममेयात्मा प्रादुश्चक्रे महारथः॥ २६॥

अर्जुन ने अत्यन्त क्रोध में सुशर्मा की हँसली पर चोट पहुँचायी। तब क्रुद्ध संशप्तकसैनिक अर्जुन को घेरकर बाणसमूहों से उन्हें पीड़ित करने लगे और गर्जनाओं से दसों दिशाओं को गुँजाने लगे। तब इन्द्र के समान पराक्रमी और अमितआत्मा, महारथी अर्जुन ने उनसे पीड़ित होकर ऐन्द्रास्त्र को प्रकट किया।

ध्वजानां छिद्यमानानां कार्मुकाणां च मारिष।
रथानां सपताकानां तूणीराणां युगैः सह॥ २७॥
अक्षाणामथ चक्राणां योक्त्राणां रश्मिभिःसह।
कूबराणां वरूथाणां पृषत्कानां च संयुगे॥ २८॥
अश्वानां पततां चापि प्रासानामृष्टिभिः सह।
गदानां परिघानां च शक्तितोमरपट्टिशैः॥ २९॥
शतघ्नीनां सचक्राणां भुजानां चोरुभिः सह।
कण्ठसूत्राङ्गदानां च केयूराणां च मारिष॥ ३०॥
हाराणामथ निष्काणां तनुत्राणां च भारत।
छत्राणां व्यजनानां च शिरसां मुकुटैः सह॥ ३१॥
अश्रूयत महाञ्शब्दस्तत्र तत्र विशाम्पते।

हे प्रजानाथ, मान्यवर, भारत! तब ऐन्द्रास्त्र के द्वारा नष्ट किये जाते हुए ध्वजों, धनुषों, पताका सहित

रथों, तरकसों, जूओं, धुरों, पहियों, जोतने की रस्सियों, लगामों, कूबरों, रथों के चमड़े के आवरणों, बाणों, घोड़ों, प्रासों, ऋष्टियों, गदाओं, परिघों, शक्तियों, तोमरों, पट्टिशों, चक्रयुक्त शतघ्नियों, बाहों, जाँघों, कण्ठसूत्रों, बाजूबन्दों, केयूरों, हारों, निष्कों, कवचों, छत्रों, व्यजनों और मुकुटों सहित मस्तकों का महान् शब्द युद्धभूमि में सबतरफ सुनाई देने लगा।

सकुण्डलानि स्वक्षीणि पूर्णचन्द्रनिभानि च॥ ३२॥
शिरांस्युर्व्यामदृश्यन्त ताराजालमिवाम्बरे।
सुस्रग्वीणि सुवासांसि चन्दनेनोक्षितानि च॥ ३३॥
शरीराणि व्यदृश्यन्त निहतानां महीतले।
हस्तिभिः पतितैश्चैव तुरङ्गैश्चाभवन्मही॥ ३४॥
अगम्यरूपा समरे विशीर्णैरिव पर्वतैः।

वहाँ कुण्डलों से युक्त, सुन्दर आँखोंवाले, पूर्ण चन्द्रमा के समान सुन्दर सिर भूमिपर पड़े हुए आकाश में बिखरे तारों के समूह के समान प्रतीत होरहे थे। अच्छी मालाओंवाले, अच्छे वस्त्रों वाले, चन्दन से लिपटे मृत राजाओं के शरीर भूमिपर पड़े दिखाई देरहे थे। जैसे पर्वतों के शिखर टूटकर बिखरे पड़े हों, उसीप्रकार मरकर गिरे हुए हाथियों और घोड़ों से युद्धस्थल में वह भूमि चलनेफिरने के लिये अगम्य होरही थी।

नासीच्चक्रपथस्तत्र पाण्डवस्य महात्मनः॥ ३५॥
निघ्नतः शात्रवान् भल्लैर्हस्त्यश्वं चास्यतो महत्।
वध्यमानं तु तत् सैन्यं पाण्डुपुत्रेण धन्विना।
प्रायशो विमुखं सर्वं नावतिष्ठत भारत॥ ३६॥

उस समय अपने शत्रुओं को भल्लोंद्वारा मारते हुए और हाथी घोड़ों के महान् समुदाय को गिराते हुए मनस्वी पाण्डुपुत्र के रथ के पहियों के लिये मार्ग नहीं मिल रहा था। हे भारत! धनुर्धर, पाण्डुपुत्र अर्जुनद्वारा मारी जाती हुई वह सारी सेना प्रायः युद्ध से विमुख होगयी, वहाँ ठहर नहीं सकी।

बीसवाँ अध्याय : युधिष्ठिर से दुर्योधन की हार, घोर युद्ध।

युधिष्ठिरं महाराज विसृजन्तं शरान् बहून्।
स्वयं दुर्योधनो राजा प्रत्यगृह्णादभीतवत्॥ १॥
तमापतन्तं सहसा तव पुत्रं महारथम्।
धर्मराजो द्रुतं विद्ध्वा तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत्॥ २॥
स तु तं प्रतिविव्याध नवभिर्निशितैः शरैः।
सारथिं चास्य भल्लेन भृशं क्रुद्धोऽभ्यताडयत्॥ ३॥
ततो युधिष्ठिरो राजन् स्वर्णपुङ्खाञ्छिलीमुखान्।
दुर्योधनाय चिक्षेप त्रयोदश शिलाशितान्॥ ४॥

हे महाराज! बहुत से बाणों की वर्षा करते हुए युधिष्ठिर का राजा दुर्योधन ने निर्भयता से सामना किया। तब सहसा आक्रमण करते हुए आपके महारथी पुत्र को धर्मराज ने शीघ्रता से घायलकर उससे ठहर जा, ठहर जा ऐसा कहा। अत्यन्तक्रुद्ध दुर्योधन ने उन्हें सौ तीखे बाणों से उत्तर में बींधा और उनके सारथी पर एक भल्ल से प्रहार किया। हे राजन्! तब युधिष्ठिर ने सुनहरे पंखवाले और शिलापर तेज किये तेरह बाणों को दुर्योधन पर चलाया।

चतुर्भिश्चतुरो वाहांस्तस्य हत्वा महारथः।
पञ्चमेन शिरः कायात् सारथेश्च समाक्षिपत्॥ ५॥
षष्ठेन तु ध्वजं राज्ञः सप्तमेन तु कार्मुकम्।
अष्टमेन तथा खड्गं पातयामास भूतले॥ ६॥
पञ्चभिर्नृपतिं चापि धर्मराजोऽर्दयद् भृशम्।
हताश्वात्तु रथात्तस्मादवप्लुत्य सुतस्तव॥ ७॥
उत्तमं व्यसनं प्राप्तो भूमावेवावतिष्ठत।
तं तु कृच्छ्रगतं दृष्ट्वा कर्णद्रौणिकृपादयः॥ ८॥
अभ्यवर्तन्त सहसा परीप्सन्तो नराधिपम्।

उन महारथी ने चार बाणों से उसके चारों घोड़ों को मारकर पाँचवें बाण से सारथी का सिर काट दिया। छठे बाण से उस राजा के ध्वज को, सातवें से धनुष को तथा आठवें से उसकी तलवार को भी काटकर भूमि पर गिरा दिया। फिर पाँच बाणों से धर्मराज ने राजा दुर्योधन को अत्यन्तपीडित किया। तब मरे घोड़ोंवाले रथ से कूदकर अत्यन्त संकट में पड़ा हुआ भी आपका पुत्र भूमि पर ही खड़ा रहा। तब उसे मुसीबत में पड़ा देखकर कर्ण, द्रोणपुत्र और कृपाचार्य आदि वीर बचाने की इच्छा से तुरन्त युधिष्ठिर के सामने आगये।

अथ पाण्डुसुताः सर्वे परिवार्य युधिष्ठिरम्॥ ९॥
अन्वयुः समरे राजंस्ततो युद्धमवर्तत।

यत्राभ्यगच्छन् समरे पञ्चालाः कौरवैः सह॥ १०॥
नरा नरैः समाजग्मुर्वारणा वरवारणैः।
रथाश्च रथिभिः सार्धं हयाश्च हयसादिभिः॥ ११॥
द्वन्द्वान्यासन् महाराज प्रेक्षणीयानि संयुगे।
विविधान्यप्यचिन्त्यानि शस्त्रवन्त्युत्तमानि च॥ १२॥

फिर सारे पाण्डुपुत्र भी युधिष्ठिर को घेरकर हे राजन्! उनका अनुकरण करने लगे। तब युद्धक्षेत्र में भारी युद्ध होने लगा। उस युद्ध में पाँचाल वीर कौरवों के साथ भिड़ गये। पैदल पैदलसैनिकों से, हाथीसवार हाथीसवारों से, रथी रथियों से और घुड़सवार घुड़सवारों के साथ युद्ध करने लगे। हे महाराज! उस युद्ध में अनेकप्रकार के शस्त्रों से युक्त, उत्तम और अचिन्तनीय द्वन्द्वयुद्ध देखनेयोग्य थे।

ते शूराः समरे सर्वे चित्रं लघु च सुष्ठु च।
अयुध्यन्त महावेगाः परस्परवधैषिणः॥ १३॥
अन्योन्यं समरे जघ्नुर्योधव्रतमनुष्ठिताः।
न हि ते समरं चक्रुः पृष्ठतो वै कथञ्चन॥ १४॥
मुहूर्तमेव तद् युद्धमासीन्मधुरदर्शनम्।
तत उन्मत्तवद् राजन् निर्मर्यादमवर्तत॥ १५॥
रथी नागं समासाद्य दारयन् निशितैः शरैः।
प्रेषयामास कालाय शरैः संनतपर्वभिः॥ १६॥

एकदूसरे के वध के इच्छुक, महान वेगवाले, वेसारे शूरवीर, युद्धभूमि में विचित्रता, फुर्ती और उत्तमता से युद्ध कर रहे थे। योद्धाओं के व्रत का पालन करते हुए वे एकदूसरे पर युद्धक्षेत्र में प्रहार कर रहे थे। उन्होंने किसीतरह से भी युद्धमें पीठ नहीं दिखायी। एक मुहूर्ततक तो वह युद्ध देखने में मधुर जान पड़ा। हे राजन्! फिर वह पागलों के समान मर्यादारहित होगया। तब रथी हाथियों का सामना करते हुए, तीखे बाणों से उन्हें विदीर्ण करके, झुकी गाँठवाले बाणों से मृत्युलोक में भेजने लगे।

नागा हयान् समासाद्य विक्षिपन्तो बहून् रणे।
दारयामासुरत्युग्रं तत्र तत्र तदा तदा॥ १७॥
हयारोहाश्च बहवः परिवार्य गजोत्तमान्।
तलशब्दरवांश्चक्रुः सम्पतन्तस्ततस्ततः॥ १८॥
धावमानांस्ततस्तांस्तु द्रवमाणान् महागजान्।
पार्श्वतः पृष्ठतश्चैव निजघ्नुर्हयसादिनः॥ १९॥
विद्राव्य च बहूनश्वान् नागा राजन् मदोत्कटाः।
विषाणैश्चापरे जघ्नुर्ममृदुश्चापरे भृशम्॥ २०॥
अपरे चिक्षिपुर्वेगात् प्रगृह्यातिबलास्तदा।

हाथी बहुतसे घोड़ों को पकड़कर उन्हें युद्धक्षेत्र में फैंकते हुए, जहाँतहाँ अत्यन्त भीषणता से विदीर्ण कर रहे थे। बहुतसे घुड़सवार उत्तम हाथियों को घेरकर इधरउधर दौड़ाते हुए ताली बजाते थे। जब वे विशाल हाथी इधरउधर दौड़ने और भागने लगते थे तो वे घुड़सवार उन पर बगल से तथा पीछे से आक्रमण करते थे। हे राजन्! कितने ही मतवाले हाथी बहुतसे घोड़ों को दौड़ाकर उन्हें दाँतों से दबा देते या वेगपूर्वक पैरों से कुचल डालते थे और दूसरे अत्यन्तबलवान् हाथी उन्हें पकड़कर वेगपूर्वक दूर फैंक देते थे।

पादातैराहता नागा विवरेषु समन्ततः॥ २१॥
चक्रुरार्तस्वरं घोरं दुद्रुवुश्च दिशो दश।
अपरे सहसा गृह्य विषाणैरेव सूदिताः॥ २२॥
सेनान्तरं समासाद्य केचित् तत्र महागजैः।
क्षुण्णगात्रा महाराज विक्षिप्य च पुनः पुनः॥ २३॥
अपरे व्यजनानीव विभ्राम्य निहता मृधे।
प्रतिमानेषु कुम्भेषु दन्तवेष्टेषु चापरे॥ २४॥
निगृहीता भृशं नागाः प्रासतोमरशक्तिभिः।

अवसर मिलने पर पैदलसैनिक भी हाथियों को चारोंतरफ से घेरकर उन पर आक्रमण करते थे और उनसे मारे गये वे हाथी आर्तस्वर में भयानकरूप से चिंघाड़ते हुए दसों दिशाओं में भागने लगते थे। अनेक पैदलसैनिक हाथियोंद्वारा सहसा पकड़े जाकर उनके दाँतों से मारे जारहे थे। अनेक विशाल हाथी सेना में घुसकर कितनेही सैनिकों को पकड़कर उन्हें पटक पटककर उनके शरीरों के अंगों को तोड़ देते थे। कुछ दूसरे पैदलों को वे पकड़कर उन्हें पंखों के समान घुमाकर युद्ध में मार देते थे। कहीं कहीं पैदल सैनिक प्रास, तोमर और शक्ति से हाथियों के दान्तों के बीच के स्थान में, कुम्भस्थल में और होठों के ऊपर प्रहार कर उन्हें अत्यन्त वश में कर लेते थे।

निगृह्य च गजाः केचित् पार्श्वस्थैर्भृशदारुणैः॥ २५॥
रथाश्वसादिभिस्तत्र सम्भिन्ना न्यपतन् भुवि।
सहसा सादिनस्तत्र तोमरेण महामृधे॥ २६॥
भूमावमृद्नन् वेगेन सचर्माणं पदातिनम्।
तथा सावरणान् कांश्चित्तत्र तत्र विशाम्पते॥ २७॥
रथान् नागाः समासाद्य परिगृह्य च मारिष।

व्याक्षिपन् सहसा तत्र घोररूपे भयानके॥ २८॥
नाराचैर्निहताश्चापि गजाः पेतुर्महाबलाः।
पर्वतस्येव शिखरं वज्ररुग्णं महीतले॥ २९॥

कितनेही हाथियों को अत्यन्तभयंकर रथी और घुड़सवार रोककर और उनके बगल में खड़े होकर उन्हें अपने शस्त्रास्त्रों से विदीर्ण कर डालते थे और वे मरकर वहीं भूमिपर गिर जाते थे। उस महान् युद्ध में कितनेही हाथीसवार तोमर ढाल तलवार लिये पैदलसैनिकों पर वेग से आक्रमण करते थे और उन्हें भूमि पर गिराकर रौंद डालते थे। हे प्रजानाथ! इसीप्रकार कितनेही आवरणयुक्त रथों को हाथी उनके समीप जाकर, उन्हें पकड़कर हे मान्यवर! उस महाभयंकर युद्ध में वेगपूर्वक दूर फैंक देते थे। कितनेही महाबलवान् हाथी नाराचों से मारे जाकर विद्युत् प्रहार से गिराये पर्वत शिखरों के समान भूमितल पर पड़े थे।

उद्यम्य च भुजावन्यो निक्षिप्य च महीतले।
पदा चोरः समाक्रम्य स्फुरतोऽपाहर च्छिरः॥ ३०॥
रथैर्भग्नैर्महाराज वारणैश्च निपातितैः।
हयैश्च पतितैस्तत्र नरैश्च विनिपातितैः॥ ३१॥
अगम्यरूपा पृथिवी क्षणेन समपद्यत।
क्षणेनासीन्महीपाल क्षतजौघप्रवर्तिनी॥ ३२॥
पञ्चालानहनत् कर्णस्त्रिगर्तांश्च धनंजयः।
भीमसेनः कुरून् राजन् हस्त्यनीकं च सर्वशः॥ ३३॥
एवमेष क्षयो वृत्तः कुरुपाण्डवसेनयोः।
अपराह्ने गते सूर्ये काङ्क्षतां विपुलं यशः॥ ३४॥

कोई योद्धा अपनी दोनों भुजाओं को ऊपर उठाकर उनके द्वारा शत्रु को भूमि पर गिराकर और पैर से उसकी छाती को दबाकर, उसके छटपटाते हुए ही उसका सिर काट लेता था। हे महाराज! टूटे हुए रथों, गिराये हुए हाथियों, मरकर गिरे हुए घोड़ों और मारकर गिराये हुए पैदलसैनिकों से वह भूमि थोड़ी देर में ही चलनेफिरने के लिये अगम्यसी होगयी थी। हे राजन्! वहाँ थोड़ी देर में ही खून की नदी बहने लगी। कर्ण ने पाँचालों का विनाश किया तो अर्जुन ने त्रिगर्तों को मारा। हे राजन्! भीमसेन ने कौरवों तथा हाथी सेना का विनाश कर दिया। इसप्रकार सूर्य के अपराह्नकाल में जाते जाते कौरव और पाण्डव दोनों की सेनाओं के विपुल यश के इच्छुक वीरों का यह विनाशकार्य चलता रहा।

इक्कीसवाँ अध्याय : युधिष्ठिर के द्वारा दुर्योधन की पुनः पराजय।

संसक्तेषु तु सैन्येषु वध्यमानेषु भागशः।
रथमन्यं समास्थाय पुत्रस्तव विशाम्पते॥ १॥
क्रोधेन महता युक्तः सविषो भुजगो यथा।
दुर्योधनः समालक्ष्य धर्मराजं युधिष्ठिरम्॥ २॥
प्रोवाच सूतं त्वरितो याहि याहीति भारत।
तत्र मां प्रापय क्षिप्रं सारथे यत्र पाण्डवः॥ ३॥
ध्रियमाणातपत्रेण राजा राजति दंशितः।
स सूतश्चोदितो राज्ञा राज्ञः स्यन्दनमुत्तमम्॥ ४॥
युधिष्ठिरस्याभिमुखं प्रेषयामास संयुगे।

हे प्रजानाथ! जब सेनाएँ अलग अलग भागों में बँटकर परस्पर युद्ध में लगी हुई थीं और मारी जारही थीं, तब आपका पुत्र दुर्योधन दूसरे रथ पर बैठकर विषैले सर्प के समान अत्यन्त क्रोध से भर गया। हे भारत! वह धर्मराज युधिष्ठिर को देखकर शीघ्रता से अपने सारथी से बोला कि हे सारथी। चलो चलो। तुम जल्दी से मुझे वहाँ पहुँचा दो, जहाँ वह छत्र धारण किये और कवच बाँधे पाण्डव राजा विद्यमान है। तब राजा के द्वारा प्रेरित किये सारथी ने राजा के उस उत्तम रथ को युद्धक्षेत्र में युधिष्ठिर के सामने पहुँचा दिया।

ततो युधिष्ठिरः क्रुद्धः प्रभिन्न इव कुञ्जरः॥ ५॥
सारथिं चोदयामास याहि यत्र सुयोधनः।
तौ समाजग्मतुर्वीरौ भ्रातरौ रथसत्तमौ॥ ६॥
समेत्य च महावीरौ संरब्धौ युद्धदुर्मदौ।
ववर्षतुर्महेष्वासौ शरैरन्योन्यमाहवे॥ ७॥
ततो दुर्योधनो राजा धर्मशीलस्य मारिष।
शिलाशितेन भल्लेन धनुश्चिच्छेद संयुगे॥ ८॥

तब युधिष्ठिर ने भी मतवाले हाथी के समान क्रोध में भरकर सारथी को प्रेरित किया कि उधर चलो जिधर दुर्योधन है। इसप्रकार वेदोनों श्रेष्ठरथी

वीर भाई एकदूसरे के सामने आगये और आकर अत्यन्त क्रोध में भरकर वेदोनों युद्ध में दुर्मद, महावीर, महाधनुर्धर युद्ध स्थल में एक दूसरे पर बाणों की वर्षा करने लगे। हे मान्यवर! तब दुर्योधन ने शिला पर तेज किये भल्ल से युद्ध में धर्मात्मा राजा युधिष्ठिर के धनुष को काट दिया।

तं नामृष्यत संक्रुद्धो ह्यवमानं युधिष्ठिरः।
अपविध्य धनुश्छिन्नं क्रोधसंरक्तलोचनः॥ ९॥
अन्यत् कार्मुकमादाय धर्मपुत्रश्चमूमुखे।
दुर्योधनस्य चिच्छेद ध्वजं कार्मुकमेव च॥ १०॥
अथान्यद् धनुरादाय प्राविध्यत युधिष्ठिरम्।
तावन्योन्यं सुसंक्रुद्धौ शस्त्रवर्षाण्यमुञ्चताम्॥ ११॥
सिंहाविव सुसंरब्धौ परस्परजिगीषया।
जघ्नतुस्तौ रणेऽन्योन्यं नर्दमानौ वृषाविव॥ १२॥

अत्यन्तक्रोध में भरे धर्मपुत्र युधिष्ठिर उस अपमान को सहन न कर सके। उनकी आँखें क्रोध से लाल होगयीं। तब सेना के मुहाने पर टूटे धनुष को फैंककर और दूसरे धनुष को लेकर उन्होंने दुर्योधन के ध्वज और धनुष को काट दिया। तब दूसरा धनुष लेकर दुर्योधन ने युधिष्ठिर को बाणों से घायल किया। फिर दोनों अत्यन्त क्रोध में भरकर एकदूसरे पर बाणों की वर्षा करने लगे। सिंहों के समान अत्यन्त क्रोध में भरे हुए वे दोनों एकदूसरे को जीतने की इच्छा से युद्धक्षेत्र में सांडों के समान गर्जते हुए एकदूसरे पर प्रहार करने लगे।

अन्योन्यं तौ महाराज पीडयाञ्चक्रतुर्भृशम्।
ततो युधिष्ठिरो राजा पुत्रं तव शरैस्त्रिभिः॥ १३॥
आजघानोरसि क्रुद्धो वज्रवेगैर्दुरासदैः।
प्रतिविव्याध तं तूर्णं तव पुत्रो महीपतिः॥ १४॥
पञ्चभिर्निशितैर्बाणैः स्वर्णपुङ्खैः शिलाशितैः।
ततो दुर्योधनो राजा शक्तिं चिक्षेप भारत॥ १५॥
सर्वपारशवीं तीक्ष्णां महोल्काप्रतिमां तदा।
तामापतन्तीं सहसा धर्मराजः शितैः शरैः॥ १६॥
त्रिभिश्चिच्छेद सहसा तं च विव्याध पञ्चभिः।

हे महाराज! उनदोनों ने एकदूसरे को अत्यन्त पीड़ा दी। फिर युधिष्ठिर ने अत्यन्त क्रोध में भरकर वज्र के समान वेगवाले दुर्घर्ष तीन बाणों से आपके पुत्र की छाती पर प्रहार किया। फिर आपके राजा पुत्र ने भी तुरन्त पाँच सुनहरे पंखवाले, शिलापर तेज किये तीखे बाणों से बदले में उन्हें घायल किया। फिर राजा दुर्योधन ने हे भारत! सारी लोहे की बनी हुई, तीखी और महान् उल्का जैसी शक्ति को फैंका। धर्मराज युधिष्ठिर ने उस अपने ऊपर आती हुई शक्ति को सहसा तीन तीखे बाणों से काट दिया और दुर्योधन को पाँच बाणों से घायल कर दिया।

शक्तिं विनिहतां दृष्ट्वा पुत्रस्तव विशाम्पते॥ १७॥
नवभिर्निशितैर्भल्लैर्निजघान युधिष्ठिरम्।
सोऽतिविद्धो बलवता शत्रुणा शत्रुतापनः॥ १८॥
दुर्योधनं समुद्दिश्य बाणं जग्राह सत्वरः।
समाधत्त च तं बाणं धनुर्मध्ये महाबलः॥ १९॥
चिक्षेप च महाराज ततः क्रुद्धः पराक्रमी।
स तु बाणः समासाद्य तव पुत्रं महारथम्॥ २०॥
व्यामोहयत राजानं धरणीं च ददार ह।

हे प्रजानाथ! शक्तिको नष्ट किया हुआ देखकर आपके पुत्र ने नौ तीखे बाणों से युधिष्ठिर को चोट पहुँचायी। तब उस बलवान् शत्रुद्वारा अत्यन्तघायल होकर शत्रु को सन्तप्त करनेवाले महाबली युधिष्ठिर ने शीघ्रता से दुर्योधन को उद्देश्य कर एक बाण हाथ में लिया और उसको धनुष के बीच में रखा। हे महाराज! फिर क्रोध में भरे हुए उस पराक्रमी ने उसे छोड़ दिया। उस बाण ने आपके महारथी राजापुत्र को घायलकर मूर्च्छित कर दिया और भूमि को भी विदीर्ण कर दिया।

भीमस्तमाह च ततः प्रतिज्ञामनुचिन्तयन्॥ २१॥
नायं वध्यस्तव नृप इत्युक्तः स न्यवर्तत।
ततस्त्वरितमागम्य कृतवर्मा तवात्मजम्॥ २२॥
प्रत्यपद्यत राजानं निमग्नं व्यसनार्णवे।
गदामादाय भीमोऽपि हेमपट्टपरिष्कृताम्।
अभिदुद्राव वेगेन कृतवर्माणमाहवे॥ २३॥

फिर अपनी प्रतिज्ञा के याद करते हुए भीमसेन ने युधिष्ठिर से कहा कि हे राजन्! यह दुर्योधन आपके द्वारा मारे जाने योग्य नहीं है। ऐसा कहने पर युधिष्ठिर युद्ध से हट गये। तब आपके राजा पुत्र को संकट के सागर में डूबता हुआ देखकर कृतवर्मा शीघ्रता से वहाँ आकर उसकी रक्षाके लिये तैयार हो गया। तब भीमसेन भी सुवर्णपत्रजटित गदा को लेकर, वेगपूर्वक, युद्धक्षेत्र में कृतवर्मा पर टूट पड़े।

बाईसवाँ अध्याय : कर्ण, सात्यकि युद्ध। अर्जुनद्वारा कौरवसेना का संहार।

अथ तव नरदेव सैनिका-
स्तव च सुताः सुरसूनुसंनिभाः।
अमितबलपुरः सरा रणे
कुरुवृषभाः शिनिपौत्रमभ्ययुः॥ १॥
तमपि सरथवाजिसारथिं
शिनिवृषभो विविधैः शरैस्त्वरन्।
भुजगविषसमप्रभै रणे
पुरुषवरं समवास्तृणोत् तदा॥ २॥
शिनिवृषभशरैर्नि- पीडितं
तव सुहृदो वसुषेणमभ्ययुः।
त्वरितमतिरथी रथर्षभं
द्विरदरथाश्वपदातिभिः सह॥ ३॥

उसके पश्चात् हे नरदेव! आपके सैनिक तथा देवकुमारों के समान कुरुकुलभूषण पुत्र, अमित सेना के साथ रणक्षेत्र में सात्यकि के ऊपर चढ़ आये। तब शिनिवंश के प्रमुख सात्यकि ने शीघ्रता करते हुए विषधर सर्पों के समान विषैले बाणों से रथ घोड़ों और सारथी सहित पुरुषश्रेष्ठ कर्ण को आच्छादित कर दिया। तब सात्यकि के बाणों से पीड़ित, रथियों में श्रेष्ठ, अतिरथी कर्ण के पास आपके हितैषीवीर हाथी, घोड़ों, रथ और पैदलसैनिकों के साथ आपहुँचे।

तदुदधिनिभमाद्रवद् बलं
त्वरिततरैः समभिद्रुतं परैः।
द्रुपदसुतमुखैस्त- दाभवद्
पुरुषरथाश्वगजक्षयो महान्॥ ४॥
जलदनिनदनिःस्वनं रथं
पवनविधूत- पताककेतनम्।
सितहयमु- पयान्तमन्तिकं
हृतमनसो ददृशुस्तदारयः॥ ५॥

इसके बाद द्रुपदपुत्र आदि शीघ्रता से कार्यवाले शत्रुओं ने आपकी सागर के समान विशाल सेना पर आक्रमण कर दिया और वहाँ फिर मनुष्यों, रथों, घोड़ों और हाथियों का महान् संहार होने लगा। तभी उत्साह शून्यहृदयों से शत्रुओं ने वहाँ बादलों की गर्जना के समान ध्वनिवाले अर्जुन के रथ को, जिसमें वायु के वेग से ऊँची पताका लहरा रही थी, तथा श्वेत घोड़े जुते हुए थे, अपने समीप आते हुए देखा।

रथान् विमानप्रतिमान् मज्जयन् सायुधध्वजान्।
ससारथींस्तदा बाणैरभ्राणीवानिलोऽवधीत्॥ ६॥
गजान् गजप्रयन्तॄंश्च वैजयन्त्यायुधध्वजान्।
सादिनोऽश्वांश्च पत्तींश्च शरैर्निन्ये यमक्षयम्॥ ७॥
तमन्तकमिव क्रुद्धमनिवार्यं महारथम्।
दुर्योधनोऽभ्ययादेको निघ्नन् बाणैरजिह्मगैः॥ ८॥
तस्यार्जुनो धनुः सूतमश्वान् केतुं च सायकैः।
हत्वा सप्तभिरेकेन छत्रं चिच्छेद पत्रिणा॥ ९॥

जैसे वायु बादलों को खण्डित कर देती है, वैसेही अर्जुन ने तब विमान के समान ऊँचे रथों को हथियारों, ध्वजों तथा सारथियों के साथ अपने बाणों के नष्ट कर दिया। उन्होंने बाणों से पताका, आयुध तथा ध्वजों के साथ हाथियों, उनके आरोहियों, घुड़सवारों, घोड़ों और पैदलसैनिकों को मृत्युलोक में पहुँचा दिया। तब उस मृत्यु के समान क्रुद्ध न निवारण किये जासकनेवाले महारथी पर दुर्योधन ने अकेले ही सीधे जानेवाले बाणों से प्रहार करते हुए आक्रमण कर दिया। तब अर्जुन ने सात बाणों से उसके धनुष, सारथी, घोड़ों और ध्वज को काट एक बाण से उसके छत्र को भी काट दिया।

नवमं च समाधाय व्यसृजत् प्राणघातिनम्।
दुर्योधनायेषुवरं तं द्रौणिः सप्तधाच्छिनत्॥ १०॥
ततो द्रौणेर्धनुश्छित्त्वा हत्वा चाश्वरथाञ्शरैः।
कृपस्यापि तदत्युग्रं धनुश्चिच्छेद पाण्डवः॥ ११॥

फिर नवें श्रेष्ठ और प्राणों का अन्तकर देनेवाले बाण का समाधानकर उन्होंने उसे दुर्योधन पर चलाया पर अश्वत्थामा ने उसे सात टुकड़ों में काट दिया। तब पाण्डुपुत्र ने द्रोणपुत्र के धनुष को काट कर बाणों से उसके घोड़ों और रथ को नष्ट करके कृपाचार्य के भी अत्यन्तभयंकर धनुष को काट दिया।

हार्दिक्यस्य धनुश्छित्त्वा
ध्वजं चाश्वांस्तदावधीत्।
दुःशासन- स्येष्वसनं
छित्त्वा राधेयमभ्ययात्॥ १२॥
अथ सात्यकिमुत्सृज्य
त्वरन् कर्णोऽर्जुनं त्रिभिः।

विद्ध्वा विव्याध विंशत्या
कृष्णं पार्थं पुनः पुनः॥ १३॥

फिर अर्जुन ने कृतवर्मा के धनुष को काटकर उसके ध्वज और घोड़ों को नष्ट कर दिया। दुश्शासन के धनुष के टुकड़ेकर उन्होंने कर्ण पर आक्रमण किया। कर्ण ने भी शीघ्रता करते हुए, सात्यकि को छोड़कर, अर्जुन को तीन बाणों से बींधकर श्रीकृष्ण जी पर बीस बाणों की वर्षाकर उन्हें घायल कर दिया। वह दोनों को बारबार चोट पहुँचाने लगा।

अथ सात्यकि रागत्य कर्णं विद्ध्वा शितैः शरैः।
नवत्या नवभिश्चोग्रैः शतेन पुनरार्पयत्॥ १४॥
ततः प्रवीराः पार्थानां सर्वे कर्णमपीडयन्।
युधामन्युः शिखण्डी च द्रौपदेयाः प्रभद्रकाः॥ १५॥
उत्तमौजा युयुत्सुश्च यमौ पार्षत एव च।
चेदिकारूषमत्स्यानां केकयानां च यद् बलम्॥ १६॥
चेकितानश्च बलवान् धर्मराजश्च सुव्रतः।
एते रथाश्वद्विरदैः पत्तिभिश्चोग्रविक्रमैः॥ १७॥
परिवार्य रणे कर्णं नानाशस्त्रैरवाकिरन्।
भाषन्तो वाग्भिरुग्राभिः सर्वे कर्णवधे धृताः॥ १८॥

फिर सात्यकि ने भी आकर कर्ण पर एक सौनिन्यानवे तीखे और भयंकर बाणों की वर्षाकर उसे घायल कर दिया। फिर कुन्तीपुत्रों के सारे प्रमुख वीर कर्ण को पीड़ित करने लगे। युधामन्यु, शिखण्डी, द्रौपदी के पाँचों पुत्र, प्रभद्रकलोग, उत्तमौजा, युयुत्सु, नकुल, सहदेव, चेदि, कारूष और मत्स्यदेश की सेनाएँ, बलवान् चेकितान और सुन्दर व्रतों का पालन करनेवाले धर्मराज, येसारे भयंकर पराक्रम करने वाले रथों, घुड़सवारों, हाथीसवारों तथा पैदल सैनिकों के साथ कर्ण को घेरकर, उसके वध का निश्चय करके, भयंकर वचन कहते हुए, कर्ण पर अनेकप्रकार के शस्त्रास्त्रों की वर्षा करने लगे।

तां शस्त्रवृष्टिं बहुधा कर्णश्छित्त्वा शितैः शरैः।
अपोवाहास्त्रवीर्येण द्रुमं भङ्क्त्वेव मारुतः॥ १९॥
अथ कर्णास्त्रमस्त्रेण प्रतिहत्यार्जुनः स्मयन्।
दिशं खं चैव भूमिं च प्रावृणोच्छरवृष्टिभिः॥ २०॥
त्वदीयानां तदा युद्धे संसक्तानां जयैषिणाम्।
गिरिमस्तं समासाद्य प्रत्यपद्यत भानुमान्॥ २१॥

तब जैसे आँधी वृक्ष को उखाड़ देती है, वैसे ही उस अनेकप्रकार की अस्त्रवर्षा को कर्ण ने अपने तीखे बाणों और अस्त्रों के पराक्रम से नष्ट करके दूर हटा दिया। फिर अर्जुन ने मुस्कराते हुए कर्णद्वारा छोड़े हुए अस्त्रों को अपने अस्त्रों से नष्टकर चारों तरफ के वातावरण को अपनी बाणवर्षा से भर दिया। इसप्रकार जब विजय के अभिलाषी आपकेलोग युद्ध में लगे हुए थे, तभी सूर्य अस्ताचल में जाकर डूब गये।

ते त्रसन्तो महेष्वासा रात्रियुद्धस्य भारत।
अपयानं ततश्चक्रुः सहिताः सर्वयोधिभिः॥ २२॥
कौरवेष्वपयातेषु तदा राजन् दिनक्षये।
जयं सुमनसः प्राप्य पार्थाः स्वशिबिरं ययुः॥ २३॥
वादित्रशब्दैर्विविधैः सिंहनादैः सगर्जितैः।
परानुपहसन्तश्च स्तुवन्तश्चाच्युतार्जुनौ॥ २४॥

हे भारत! तब रात्रियुद्ध से डरते हुए वे महाधनुर्धर, सारे योद्धाओं के साथ शिविरों को चल दिये। हे राजन! दिन समाप्त होजाने, कौरवसेना के हट जाने पर कुन्तीपुत्र भी विजय को प्राप्तकर प्रसन्नता से अपने शिविरों को चले गये। वे उस समय अनेक प्रकार के वाद्ययंत्रों के शब्दों, गर्जनासहित सिंहनादों के साथ शत्रुओं का उपहास करते हुए अर्जुन और श्रीकृष्ण की प्रशंसा कर रहे थे।

तेईसवाँ अध्याय : रात्रि में कर्ण और दुर्योधन का वर्तालाप।

शिबिरस्थाः पुनर्मन्त्रं मन्त्रयन्ति स्म कौरवाः।
भग्नदंष्ट्रा हतविषाः पादाक्रान्ता इवोरगाः॥ १॥
तानब्रवीत् ततः कर्णः क्रुद्धः सर्प इव श्वसन्।
करं करेण निष्पीड्य प्रेक्षमाणस्तवात्मजम्॥ २॥
यत्तो दृढश्च दक्षश्च धृतिमानर्जुनस्तदा।
सम्बोधयति चाप्येनं यथाकालमधोक्षजः॥ ३॥
सहसास्त्रविसर्गेण वयं तेनाद्य वञ्चिताः।
श्वस्त्वहं तस्य संकल्पं सर्वं हन्ता महीपते॥ ४॥

फिर शिविर में जाकर टूटे दाँतवाले, नष्ट विष वाले और पैर से कुचले हुए साँपों के समान कौरवलोग पुनः परस्पर मन्त्रणा करने लगे। तब क्रुद्ध सर्प के समान लम्बी साँसें लेता हुआ और हाथ को हाथ से दबाता तथा आपके पुत्र की तरफ देखता हुआ कर्ण उनसे बोला कि अर्जुन सावधान, दृढ, चतुर, और धैर्यवान् है। श्रीकृष्ण भी उसे समयसमय पर निर्देश करते रहते हैं। आज उसने अचानक अस्त्रों का प्रयोग कर हमें ठग लिया है। हे राजन्! कल मैं उसके सारे संकल्पों को नष्ट कर दूँगा।

एवमुक्तस्तथेत्युक्त्वा सोऽनुजज्ञे नृपोत्तमान्।
तेऽनुज्ञाता नृपाः सर्वे स्वानि वेश्मानि भेजिरे॥ ५॥
प्रभातायां रजन्यां तु कर्णो राजानमभ्ययात्।
समेत्य च महाबाहुर्दुर्योधनमथाब्रवीत्॥ ६॥
अद्य राजन् समेष्यामि पाण्डवेन यशस्विना।
निहनिष्यामि तं वीरं स वा मां निहनिष्यति॥ ७॥
बहुत्वान्मम कार्याणां तथा पार्थस्य भारत।
नाभूत् समागमो राजन् मम चैवार्जुनस्य च॥ ८॥

तब कर्ण के ऐसा कहने पर दुर्योधन ने बहुत अच्छा ऐसा कहकर राजाओं को विश्राम के लिये जाने की आज्ञा दी। आज्ञा पाकर वे सारे राजा लोग अपने अपने शिविरों में चले गये। फिर रात बीतने और सवेरा होने पर, महाबाहु कर्ण राजा दुर्योधन के पास आया और उससे बोला कि हे राजन्! आज मैं मनस्वी पाण्डुपुत्र के साथ युद्ध करूँगा। आज या तो मैं उस वीर को मार दूँगा, या वह मुझे मार देगा। हे राजन्! मेरे और अर्जुन के सामने बहुतसारे कार्यों के आजाने के कारण हे भारत! मेरा और उसका सीधा युद्ध नहीं हो सका।

इदं तु मे यथाप्राज्ञं शृणु वाक्यं विशाम्पते।
अनिहत्य रणे पार्थं नाहमेष्यामि भारत॥ ९॥
हतप्रवीरे सैन्येऽस्मिन् मयि चावस्थिते युधि।
अभियास्यति मां पार्थः शक्रशक्तिविनाकृतम्॥ १०॥
अद्य दुर्योधनाहं त्वां, नन्दयिष्ये सबान्धवम्।
निहत्य समरे वीरमर्जुनं जयतां वरम्॥ ११॥
सपर्वतवनद्वीपा, हतवीरा ससागरा।
पुत्रपौत्र प्रतिष्ठा ते, भविष्यत्यद्य पार्थिव॥ १२॥
नाशक्यं विद्यते मेऽद्य, त्वत्प्रियार्थं विशेषतः।
सम्यग्धर्मानुरक्तस्य, सिद्धिरात्मवतो यथा॥ १३॥
नहि मां समरे सोढुं, संशक्तोऽग्निं तरुर्यथा।
अवश्यं तु मया वाच्यं, येन हीनोऽस्मि फाल्गुनात्॥ १४॥

हे प्रजानाथ! मैं अपनी बुद्धि के अनुसार जो बात कह रहा हूँ उसे सुनो। हे भारत! आज मैं युद्ध में कुन्तीपुत्र का वध किये बिना नहीं लौटूँगा। इस सेना के प्रमुख वीर मारे गये हैं, ऐसी अवस्था में इन्द्र की शक्ति से रहित होकर जब मैं युद्ध में स्थित होऊँगा तब अर्जुन मुझ पर अवश्य आक्रमण करेगा। हे दुर्योधन! आज मैं विजयी पुरुषों में श्रेष्ठ वीर अर्जुन को युद्ध में मारकर तुम्हें अपने बान्धवों सहित प्रसन्न करूँगा। हे राजन्! उसके मारे जाने पर, यह पर्वतों, वनों, द्वीपों और सागरसहित सारी भूमि तुम्हारे पुत्रों और पौत्रों की परम्परा में प्रतिष्ठित होजायेगी। जैसे उचित धर्म में लगे हुए आत्मवान् पुरुष के लिये सिद्धि प्राप्त करना कठिन नहीं है, वैसेही आज, विशेषरूप से तुम्हारा प्रिय करने के लिये मेरे लिये कुछभी असम्भव नहीं है। जैसे वृक्ष अग्नि का आक्रमण नहीं सह सकता, वैसेही अर्जुन युद्ध में मुझे नहीं सह सकता। पर मुझे वह बात भी अवश्यही कह देनी चाहिये, जिसमें मैं अर्जुन से कम हूँ।

ततः श्रेयस्करं यच्च, तन्निबोध जनेश्वर।
आयुधानां च मे वीर्यं, दिव्यानामर्जुनस्य॥ १५॥
कायस्य महतो भेदे, लाघवे दूरपातने।
सौष्ठवे चास्त्रपाते च, सव्यसाची न मत्समः॥ १६॥
प्राणे शौर्येऽथ विज्ञाने, विक्रमे चापि भारत।
निमित्तज्ञान योगे च, सव्यसाची न मत्समः॥ १७॥

तस्य दिव्यं धनुः श्रेष्ठं, गाण्डीवमजितं युधि।
विजयं च महद्दिव्यं, ममापि धनुरुत्तमम्॥ १८॥

हे जनेश्वर! अब यहाँ कल्याणकारी जो बात है, उसे समझो। मेरे पास दिव्यास्त्रों का बल अर्जुन के समान है। विशाल शरीर का भेदन करने, शीघ्रता पूर्वक अस्त्रचलाने, दूरतक अस्त्र फैंकने, उत्तमता तथा दिव्यास्त्रों के प्रयोग में अर्जुन मेरे समान नहीं है। हे भारत! शरीरिकबल, शौर्य, अस्त्रविज्ञान, पराक्रम और शत्रुपर विजय पाने के उपाय ढूँढने में भी अर्जुन मेरे समान नहीं है। यदि उसके पास दिव्य, श्रेष्ठ और अजेय गाण्डीव धनुष है तो मेरे पास भी महान् दिव्य और उत्तम विजय नाम का धनुष है।

येन चाप्यधिको वीरः, पाण्डवस्तन्निबोध मे।
ज्या तस्य धनुषो दिव्या, तथाक्षय्ये महेषुधी॥ १९॥
सारथिस्तस्य गोविन्दो, मम तादृङ् न विद्यते।
अयं तु सदृशः शौरेः शल्यः समितिशोभनः॥ २०॥
सारथ्यं यदि मे कुर्याद् ध्रुवस्ते विजयो भवेत्।
तस्य मे सारथिः शल्यो भवत्वसुकरः परैः॥ २१॥
नाराचान् गार्ध्रपत्रांश्च शकटानि वहन्तु मे।
रथाश्च मुख्या राजेन्द्र युक्ता वाजिभिरुत्तमैः॥ २२॥
आयान्तु पश्चात् सततं मामेव भरतर्षभ।
एवमभ्यधिकः पार्थाद् भविष्यमि गुणैरहम्॥ २३॥
शल्योऽप्यधिकः कृष्णादर्जुनादपि चाप्यहम्।

किन्तु वीर पाण्डुपुत्र जिस बात में मुझसे बढ़कर है, उसे मुझसे सुनो। उसके धनुष की प्रत्यंचा दिव्य है और उसके पास कभी नष्ट न होनेवाले महान् तरकस हैं। उसके सारथी श्रीकृष्ण हैं, मेरा सारथी वैसा नहीं है। यह युद्ध में शोभा पानेवाले शल्य श्रीकृष्ण के बराबरही हैं। यदि ये मेरे सारथीपन को कर लें, तो निश्चितरूप से आपकी विजय होगी। शत्रुओंद्वारा सरलता से न जीते जाने वाले शल्य यदि मेरे सारथी होजायें और बहुत से छकड़े गीध की पँखों से युक्त नाराचों को मेरे पास पहुँचाते रहें। हे राजेन्द्र, हे भरतश्रेष्ठ! उत्तम घोड़ों से जुते रथ मेरे रथ के पीछे चलते रहे तो ऐसा मैं अर्जुन से गुणों में बढ़ जाऊँगा। शल्य श्रीकृष्ण से बढ़ कर हैं तो मैं अर्जुन से बढ़ कर हूँ।

यथाश्वहृदयं वेद दाशार्हः परवीरहा॥ २४॥
तथा शल्यसमो नास्ति हयज्ञाने हि कश्चन।
सोऽयमभ्यधिकःकृष्णाद् भविष्यति रथो मम॥ २५॥
एतत् कृतं महाराज त्वयेच्छामि परंतप।
क्रियतामेष कामो मे मा वः कालोऽत्यगादयम्॥ २६॥
एवं कृते कृतं साह्यं सर्वकामैर्भविष्यति।
ततो द्रक्ष्यसि संग्रामे यत् करिष्यामि भारत॥ २७॥
सर्वथा पाण्डवान् संख्ये विजेष्ये वै समागतान्।

जैसे घोड़ों के रहस्य को शत्रुवीरों को मारनेवाले श्रीकृष्ण जानते हैं, वैसेही घोड़ों के ज्ञान में शल्य के समान भी कोई नहीं है। इसलिये शल्य के सारथी होने पर मेरा रथ अर्जुन के रथ से बढ़ जायेगा। हे परंतप, महाराज! मैं आपकेद्वारा इस बात की व्यवस्था चाहता हूँ। आप मेरी इच्छा को पूरा कीजिये। आपका समय व्यर्थ नहीं जाना चाहिये। ऐसा किये जाने पर मेरी सारी इच्छाओं के अनुसार सहायता हो जायेगी। हे भारत! फिर आप देखेंगे कि मैं युद्ध स्थल में जो कुछ करता हूँ। मेरे सामने जो भी पाण्डव आयेंगे, उन सबको मैं पूरी तरह से जीत लूँगा।

एवमुक्तस्तव सुतः कर्णेनाहवशोभिना॥ २८॥
सम्पूज्य सम्प्रहृष्टात्मा ततो राधेयमब्रवीत्।
एवमेतत् करिष्यामि यथा त्वं कर्ण मन्यसे॥ २९॥
सोपासङ्गा रथाः साश्वाः स्वनुयास्यन्ति संयुगे।
नाराचान् गार्ध्रपत्रांश्च शकटानि वहन्तु ते।
अनुयास्याम कर्ण त्वां वयं सर्वे च पार्थिवाः॥ ३०॥

युद्ध में शोभित होनेवाले कर्ण के यह कहने पर आपके पुत्र ने प्रसन्न होकर और कर्ण का सम्मानकर उससे कहा कि हे कर्ण! जैसा तुम समझते हो, मैं वैसा ही करूँगा। युद्धक्षेत्र में तरकसों से भरे हुए बहुत से घोड़ों से जुते हुए रथ अच्छी तरह से तुम्हारे पीछे चलेंगे। गीध के पंखों से युक्त नाराचों को छकड़े तुम तक पहुँचायेंगे और हमसारे राजा भी तुम्हारे पीछे चलेंगे।

चौबीसवाँ अध्याय : दुर्योधन की शल्य से कर्ण का सारथी बनने की प्रार्थना। शल्यका पहले विरोध पर फिर स्वीकृति।

एवमुक्त्वा महाराज तव पुत्रः प्रतापवान्।
अभिगम्याब्रवीद् राजा मद्रराजमिदं वचः॥ १॥
तत्त्वामप्रतिवीर्याद्य शत्रुपक्षक्षयावह।
मद्रेश्वर प्रयाचेऽहं शिरसा विनयेन च॥ २॥
तस्मात् पार्थविनाशार्थं हितार्थं मम चैव हि।
सारथ्यं रथिनां श्रेष्ठ प्रणयात् कर्तुमर्हसि॥ ३॥

हे महाराज! कर्ण से ऐसा कहकर आपके प्रतापी पुत्र ने मद्रराज के पास जाकर उससे यह कहा कि हे रथियों में श्रेष्ठ, अप्रतिम पराक्रमी, शत्रुपक्ष का क्षय करनेवाले मद्रराज! मैं सिर झुकाकर विनयपूर्वक आपसे यह याचना करता हूँ कि आप अर्जुन के विनाश और मेरी भलाई के लिये प्रेमपूर्वक कर्ण के सारथीपन को स्वीकार कर लीजिये।

त्वयि यन्तरि राधेयो विद्विषो मे विजेष्यते।
अभीषूणां हि कर्णस्य ग्रहीतान्यो न विद्यते॥ ४॥
ऋते हि त्वां महाभाग वासुदेवसमं युधि।
यथा च सर्वथाऽऽपत्सु वार्ष्णेयः पाति पाण्डवम्॥ ५॥
तथा मद्रेश्वराद्य त्वं राधेयं प्रतिपालय।
तदिदं हतभूयिष्ठं बलं मम नराधिप॥ ६॥
पूर्वमप्यल्पकैः पार्थैर्हतं किमुत साम्प्रतम्।
बलवन्तो महात्मानः कौन्तेयाः सत्यविक्रमाः॥ ७॥
बलं शेषं न हन्युर्मे यथा तत् कुरु पार्थिव।

आपके सारथि होने पर कर्ण शत्रुओं को जीत लेगा। कर्ण के लिये युद्धस्थल में महाभाग सिवाय आपके कृष्ण के समान घोड़ों की लगाम पकड़ने वाला औरकोई नहीं है। जैसे श्रीकृष्ण सारी विपत्तियों में पाण्डुपुत्र का पालन करते हैं, वैसेही हे मद्रेश्वर! आज आप कर्ण का पालन कीजिये। हे राजन्! मेरी सेना का अधिकांश भाग मारा जाचुका है। हमसे कम संख्यावाले कुन्तीपुत्रों ने जब पहलेही हमारी सेना को मारा तो अबतो बात ही क्या है? हे राजन्! आप ऐसा कीजिये, जिससे बलवान्, मनस्वी, सत्यविक्रमी कुन्तीपुत्र मेरी शेष सेना को न मार दें।

हतवीरमिदं सैन्यं पाण्डवैः समरे विभो॥ ८॥
कर्णो ह्येको महाबाहुरस्मत्प्रियहिते रतः।
भवांश्च पुरुषव्याघ्र सर्वलोकमहारथः॥ ९॥
शल्य कर्णोऽर्जुनेनाद्य योद्धुमिच्छति संयुगे।
तस्मिञ्जयाशा विपुला मद्रराज नराधिप॥ १०॥
तस्याभीषुग्रहवरो नान्योऽस्ति भुवि कश्चन।
पार्थस्य समरे कृष्णो यथाभीषुग्रहो वरः॥ ११॥
तथा त्वमपि कर्णस्य रथेऽभीषुग्रहो भव।

हे प्रभो! पाण्डवों ने युद्ध में हमारे प्रमुख वीरों को मार दिया है। महाबाहु कर्ण ही अकेला ऐसा है, जो हमारे प्रिय और कल्याण में लगा हुआ है। हे पुरुषव्याघ्र! आपभी सारे संसार में प्रसिद्ध महारथी हैं और हमारी भलाई कर रहे हैं। हे शल्य! आज कर्ण अर्जुन से युद्धस्थल में युद्ध करना चाहता है। हे महाराज राजन्! उसमें विजयप्राप्ति की बहुत आशा है, पर उसके घोड़ों की लगाम सँभालने वाला उत्तम सारथि संसार में आपके समान कोई दूसरा नहीं है। जैसे युद्धस्थल में अर्जुन के घोड़ों की लगाम सँभालने वाले उत्तम व्यक्ति श्रीकृष्ण हैं, वैसेही आपभी कर्ण के रथ पर लगाम पकड़नेवाले बनिये।

तेन युक्तो रणे पार्थो रक्ष्यमाणश्च पार्थिव॥ १२॥
यानि कर्माणि कुरुते प्रत्यक्षाणि तथैव तत्।
पूर्वं न समरे ह्येवमवधीदर्जुनो रिपून्॥ १३॥
इदानीं विक्रमो ह्यस्य कृष्णेन सहितस्य च।
रथिनां प्रवरः कर्णो यन्तॄणां प्रवरो भवान्॥ १४॥
संयोगो युवयोर्लोके नाभून्न च भविष्यति।
यथा सर्वास्ववस्थासु वार्ष्णेयः पाति पाण्डवम्॥ १५॥
तथा भवान् परित्रातु कर्णं वैकर्तनं रणे।
त्वया सारथिना ह्येष अप्रधृष्यो भविष्यति॥ १६॥

हे राजन्! श्रीकृष्ण से युक्त होकर तथा उनकेद्वारा रक्षा किये जाने पर अर्जुन जिसप्रकार पराक्रम कर रहे हैं, वह आपकी आँखों के सामनेही है। पहले अर्जुन युद्ध में शत्रुओं का इसप्रकार संहार नहीं करते थे, जितना कृष्ण से मिलने पर उनका पराक्रम प्रकट होरहा है। कर्ण रथियों में श्रेष्ठ हैं, और आप सारथियों में श्रेष्ठ हैं। आपदोनों का आज संसार में जो मेल हुआ है, वह पहले कभी नहीं हुआ और भविष्य में भी कभी नहीं होगा। आपके सारथि बनने

से कर्ण अजेय हो जायेगा। जैसे सारी अवस्थाओं में श्रीकृष्ण अर्जुन की रक्षा करते हैं, वैसेही आपभी सूर्यपुत्र कर्ण की युद्ध में रक्षा कीजिये।

दुर्योधनवचः श्रुत्वा शल्यः क्रोधसमन्वितः।
त्रिशिखां भ्रुकुटिं कृत्वा धुन्वन् हस्तौ पुनः पुनः॥ १७॥
क्रोधरक्ते महानेत्रे परिवृत्य महाभुजः।
कुलैश्वर्यश्रुतबलैर्दृप्तः शल्योऽब्रवीदिदम्॥ १८॥
अवमन्यसि गान्धारे ध्रुवं च परिशङ्कसे।
यन्मां ब्रवीषि विश्रब्धं सारथ्यं क्रियतामिति॥ १९॥
अस्मत्तोऽभ्यधिकं कर्णं मन्यमानः प्रशंससि।
न चाहं युधि राधेयं गणये तुल्यमात्मनः॥ २०॥

दुर्योधन की बात सुनकर शल्य क्रोध में भर गये। वे टेढ़ी भौहें करके दोनों हाथों को बार बार हिलाने लगे। अपने कुल, ऐश्वर्य, विद्या और बल के अभिमानी महाबाहु शल्य क्रोध से लाल अपनी विशाल आँखों को घुमाकर बोले कि हे गान्धारीपुत्र! तुम निर्भय होकर मुझसे कह रहे हो कि आप सारथि बन जाइये। तुम कर्ण को युद्ध में हमसे अधिक मानकर उसकी प्रशंसा करते हो किन्तु मैं तो उसे युद्ध में अपने बराबर समझता ही नहीं।

न चापि कामान् कौरव्य निधाय हृदये पुमान्
अस्मद्विधः प्रवर्तेत मा मां त्वमभिशङ्किथाः॥ २१॥
युधि चाप्यवमानो मे न कर्तव्यः कथञ्चन।
पश्य पीनौ मम भुजौ वज्रसंहननौ दृढौ॥ २२॥
धनुः पश्य च मे चित्रं शरांश्चाशीविषोपमान्।
रथं पश्य च मे क्लृप्तं सदश्वैर्वातवेगितैः॥ २३॥
गदां च पश्य गान्धारे हेमपट्टविभूषिताम्।
... मामेवंविधं राजन् समर्थमरिनिग्रहे॥ २४॥
कस्माद् युनङ्क्षि सारथ्ये नीचस्याधिरथे रणे।

हे कौरव! हमारे जैसा व्यक्ति कोई कामना लेकर युद्ध में प्रवृत्त नहीं होता। इसलिये तुम हमारे ऊपर शंका मत करो। तुम्हें युद्ध में मेरा किसीप्रकार भी अपमान नहीं करना चाहिये। तुम मेरी इन मोटी, दृढ़, और वज्र के समान गठीली भुजाओं को देखो। तुम मेरे विचित्र धनुष और विषैले सर्पों के समान बाणों को देखो। हे गान्धारीपुत्र! तुम मेरे सुसज्जित रथ को, जो वायु के समान वेगवाले उत्तम घोड़ों से युक्त है, देखो। तुम मेरी सुनहरे पत्रों से सुसज्जित गदा को देखो। फिर हे राजन्! इसप्रकार से शत्रु को वश में करने में समर्थ मुझे युद्ध में किसलिये नीच अधिरथ के पुत्र के सारथिपने में लगा रहे हो?

न मामधुरि राजेन्द्र नियोक्तुं त्वमिहार्हसि॥ २५॥
न हि पापीयसः श्रेयान् भूत्वा प्रेष्यत्वमुत्सहे।
यो ह्यभ्युपगतं प्रीत्या गरीयांसं वशेस्थितम्॥ २६॥
वशे पापीयसो धत्ते तत् पापमधरोत्तरम्।
ब्रह्मक्षत्रस्य विहिताः सूता वै परिचारकाः॥ २७॥
न क्षत्रियो वै सूतानां शृणुयाश्च कथञ्चन।
अहं मूर्धाभिषिक्तो हि राजर्षिकुलजो नृपः॥ २८॥
महारथः समाख्यातः सेव्यः स्तुत्यश्च वन्दिनाम्।
सोऽहमेतादृशो भूत्वा नेहारिबलसूदनः॥ २९॥
सूतपुत्रस्य संग्रामे सारथ्यं कर्तुमुत्सहे।
अवमानमहं प्राप्य न योत्सामि कथञ्चन॥ ३०॥
आपृच्छे त्वाद्य गान्धारे गमिष्यामि गृहाय वै।

हे राजेन्द्र! तुम्हें मुझे यहाँ नीच कार्य में नहीं लगाना चाहिये। मैं श्रेष्ठ होकर पापी का सेवक नहीं बन सकता। जो व्यक्ति प्रेम के कारण अपने पास आये श्रेष्ठ व्यक्ति को पापी व्यक्ति के आधीन कर देता है, उसे उच्च को नीच और नीच को उच्च करने का महान् पाप लगता है। सूतलोग ब्राह्मणों और क्षत्रियों के सेवक होते हैं, पर क्षत्रिय सूत का सेवक हो, यहतो कोई किसीप्रकार सुनही नहीं सकता। मैं राजर्षियों के कुल में उत्पन्न मूर्धाभिषिक्त राजा हूँ, प्रसिद्ध महारथी हूँ, बन्दी लोग मेरी सेवा और स्तुति करते हैं। मैं इसप्रकार शत्रु की सेना का संहार करनेवाला होकर, यहाँ युद्ध में सूतपुत्र के सारथि का कार्य नहीं कर सकता। हे गान्धारीपुत्र! मैं इस अपमान को प्राप्तकर किसीप्रकारभी युद्ध नहीं करूँगा। मैं आजही तुमसे बिदा होना चाहता हूँ, मैं घर चला जाऊँगा।

एवमुक्त्वा महाराज शल्यः समितिशोभनः॥ ३१॥
उत्थाय प्रययौ तूर्णं राजमध्यादमर्षितः।
प्रणयाद् बहुमानाच्च तं निगृह्य सुतस्तव॥ ३२॥
अब्रवीन्मधुरं वाक्यं साम्ना सर्वार्थसाधकम्।
यथा शल्य विजानीषे एवमेतदसंशयम्॥ ३३॥
अभिप्रायस्तु मे कश्चित् तं निबोध जनेश्वर।
न कर्णोऽभ्यधिकस्त्वत्तो न शङ्के त्वां च पार्थिव॥ ३४॥
न हि मद्रेश्वरो राजा कुर्याद् यदनृतं भवेत्।

हे महाराज! ऐसा कहकर युद्ध में सुशोभित होने वाले शल्य क्रोध में भरकर तुरन्त राजाओं के बीच में से उठकर चल दिये। तब आपके पुत्र ने प्रेम और बहुत सम्मान से उन्हें रोका और सारे अर्थों को सिद्ध करनेवाली, सान्त्वनायुक्त मीठी वाणी में उन्हें कहा कि हे शल्य! जैसा आप अपने बारे में जानते हो, सबकुछ वैसाही है, इसमें कोई सन्देह नहीं है, पर हे जनेश्वर! मेरा कुछ और ही अभिप्राय है, तुम उसे समझो। हे राजन्! नतो कर्ण आपसे अधिक है और न मैं आपके ऊपर शंका करता हूँ। नाही मद्रेश्वर कोई ऐसा कार्य कर सकते हैं, जो उनकी प्रतिज्ञा के विपरीत असत्य हो।

ऋतमेव हि पूर्वास्ते वदन्ति पुरुषोत्तमाः॥ ३५॥
तस्मादार्तायनिः प्रोक्तो भवानिति मतिर्मम।
शल्यभूतस्तु शत्रूणां यस्मात्त्वं युधि मानद॥ ३६॥
तस्माच्छल्यो हि ते नाम कथ्यते पृथिवीतले।
न च त्वत्तो हि राधेयो न चाहमपि वीर्यवान्॥ ३७॥
वृणेऽहं त्वां हयाग्र्याणां यन्तारमिह संयुगे।
मन्ये चाभ्यधिकं शल्य गुणैः कर्णं धनंजयात्॥ ३८॥
भवन्तं वासुदेवाच्च लोकोऽयमिति मन्यते।

आपके पूर्वज पुरुषोत्तम सदा सत्य ही बोलते थे और इसीलिये आपको 'आर्तायनि' कहा जाता है, ऐसा मैं समझता हूँ। हे दूसरों को सम्मान देनेवाले! आप युद्ध में शत्रुओं के लिये काँटे के समान होते हैं। इसलिये आपको 'शल्य' नाम से कहा जाता है। आपकी अपेक्षा न तो राधापुत्र अधिक पराक्रमी है और न मैं हूँ। क्योंकि आप घोड़ों का संचालन करनेवालों में अग्रणी हैं इसलिये मैं युद्ध में आपका घोड़ों के संचालन के लिये वरण कर रहा हूँ। हे शल्य! मैं कर्ण को अर्जुन से अधिक गुण्वान् मानता हूँ और सारा संसार आपको श्रीकृष्ण से श्रेष्ठ मानता है।

कर्णो ह्यभ्यधिकः पार्थादस्त्रैरेव नरर्षभ॥ ३९॥
भवानभ्यधिकः कृष्णादश्वज्ञाने बले तथा।
यथाश्वहृदयं वेद वासुदेवो महामनाः॥ ४०॥
द्विगुणं त्वं तथा वेत्सि मद्रराजेश्वरात्मज।

शल्य उवाच

यन्मां ब्रवीषि गान्धारे मध्ये सैन्यस्य कौरव॥ ४१॥
विशिष्टं देवकीपुत्रात् प्रीतिमानस्म्यहं त्वयि।
एष सारथ्यमातिष्ठे राधेयस्य यशस्विनः॥ ४२॥
युध्यतः पाण्डवाग्र्येण यथा त्वं वीर मन्यसे।
समयश्च हि मे वीर कश्चिद् वैकर्तनं प्रति॥ ४३॥
उत्सृजेयं यथाश्रद्धमहं वाचोऽस्य संनिधौ।

हे नरश्रेष्ठ! कर्ण तो अर्जुन से केवल अस्त्रविद्या में अधिक है, किन्तु आप तो श्रीकृष्ण से घोड़ों की विद्या और शक्ति दोनों में अधिक हैं। हे मद्रराजकुमार! महामना श्रीकृष्ण अश्वविद्या के रहस्य को जितना जानते हैं, उससे आप दुगुना जानते हैं। तब शल्य ने कहा कि हे गान्धारीपुत्र कौरव! तुम जो सारी सेना के बीच में मुझे श्रीकृष्ण से बढ़कर बता रहे हो, मैं इससे तुम पर प्रसन्न हूँ। इसलिए हे वीर! जैसे तुम समझते हो, मैं उसीप्रकार पाण्डव श्रेष्ठ अर्जुन के साथ युद्ध करते हुए यशस्वी राधापुत्र के सारथि के कार्य को कर लूँगा, पर हे वीर! कर्ण के साथ मेरी एक शर्त रहेगी, कि मैं उसके साथ रहते हुए उससे चाहे जैसी बातें कह सकता हूँ।

तथेति राजन् पुत्रस्ते सह कर्णेन मारिष॥ ४४॥
अब्रवीन्मद्रराजानं सर्वक्षत्रस्य संनिधौ।
स शल्येनाभ्युपगते हयानां संनियच्छने॥ ४५॥
कर्णो हृष्टमना भूयो दुर्योधनमभाषत।
नातिहृष्टमना ह्येष मद्रराजोऽभिभाषते॥ ४६॥
राजन् मधुरया वाचा पुनरेनं ब्रवीहि वै।
ततो राजा महाप्राज्ञः सर्वास्त्रकुशलो बली॥ ४७॥
दुर्योधनोऽब्रवीच्छल्यं मद्रराजं महीपतिम्।
पूरयन्निव घोषेण मेघगम्भीरया गिरा॥ ४८॥

हे मान्यवर राजन्! तब आपके पुत्र ने कर्ण के साथ सारे राजाओं के सामने ऐसा ही होगा यह कहा। शल्य द्वारा घोड़ों के संचालन का कार्य स्वीकार कर लेने पर कर्ण ने प्रसन्न होकर दुर्योधन से फिर यह कहा कि ये मद्रराज अभी अत्यधिक प्रसन्न होकर बात नहीं कर रहे हैं इसलिये हे राजन्! तुम इन्हें मीठी वाणी से फिर समझाओ। तब महाबुद्धिमान्, सारे अस्त्रों में कुशल, बलवान् राजा दुर्योधन ने मद्रराज राजा शल्य से अपनी बादलों के समान गम्भीर वाणी से वातावरण को गुँजाते हुए कहा कि—

शल्य कर्णोऽर्जुनेनाद्य योद्धव्यमिति मन्यते।
तस्य त्वं पुरुषव्याघ्र नियच्छ तुरगान् युधि॥ ४९॥
कर्णोहत्वेतरान् सर्वान् फाल्गुनं हन्तुमिच्छति।
तस्याभीषुग्रहे राजन् प्रयाचे त्वां पुनः पुनः॥ ५०॥

पार्थस्य सचिवः कृष्णो यथाभीषुग्रहो वरः।
तथा त्वमपि राधेयं सर्वतः परिपालय॥ ५१॥

हे शल्य! आज कर्ण अर्जुन से युद्ध करना चाहता है, इसलिये हे पुरुषव्याघ्र! आप युद्ध में घोड़ों का संचालन कीजिये। कर्ण दूसरे सारे शत्रुओं को मारकर अर्जुन को मारना चाहता है, इसलिये हे राजन्! उसके घोड़ों की लगाम सँभालने के लिये मैं आपसे बारबार याचना करता हूँ। जिसप्रकार अर्जुन के सहायक श्रीकृष्ण घोड़ों की लगाम सँभालने में उत्तम हैं, उसीप्रकार आपभी सबतरह राधापुत्र का पालन करो।

ततः शल्यः परिष्वज्य सुतं ते वाक्यमब्रवीत्।
दुर्योधनममित्रघ्नं प्रीतो मद्राधिपस्तदा॥ ५२॥
एवं चेन्मन्यसे राजन् गान्धारे प्रियदर्शन।
तस्मात् ते यत् प्रियं किंचित् तत् सर्वं करवाण्यहम्॥ ५३॥
यत्रास्मि भरतश्रेष्ठ योग्यः कर्मणि कर्हिचित्।
तत्र सर्वात्मना युक्तो वक्ष्ये कार्यधुरं तव॥ ५४॥
यत्तु कर्णमहं ब्रूयां हितकामः प्रियाप्रिये।
मम तत् क्षमतां सर्वं भवान् कर्णश्च सर्वशः॥ ५५॥

तब मद्राधिपति शल्य ने शत्रुसूदन आपके पुत्र दुर्योधन को प्रसन्न होकर छाती से लगाकर यह कहा कि हे प्रियदर्शन! गान्धारीपुत्र नरेश! यदि तुम ऐसा समझते हो, तो तुम्हारा जोकुछभी प्रिय कार्य है, वह सारा मैं करूँगा। हे भरतश्रेष्ठ! जिसकिसी कार्य में मैं योग्य समझा जाऊँ, वहाँ लगाये जाने पर मैं पूरे हृदय से तुम्हारे उस कार्यभार को वहन करूँगा। पर हित की कामना करते हुए मैं जोकुछभी कर्ण से प्रिय या अप्रिय बात कहूँ, उन मेरी सारी बातों को आप और कर्ण सर्वथा क्षमा करें।

पच्चीसवाँ अध्याय : कर्ण की गर्वोक्ति और शल्य के द्वारा उसका खण्डन।

दुर्योधन उवाच

अयं ते कर्ण सारथ्यं मद्रराजः करिष्यति।
कृष्णादभ्यधिको यन्ता देवेशस्येव मातलिः॥ १॥
यथा हरिहयैर्युक्तं संगृह्णाति स मातलिः।
शल्यस्तथा तवाद्यायं संयन्ता रथवाजिनाम्॥ २॥
योधे त्वयि रथस्थे च मद्रराजे च सारथौ।
रथश्रेष्ठो ध्रुवं संख्ये पार्थानभिभविष्यति॥ ३॥
ततो जैत्रं रथवरं गन्धर्वनगरोपमम्।
विधिवत् कल्पितं भद्रं जयेत्युक्त्वा न्यवेदयत्॥ ४॥

फिर दुर्योधन ने कर्ण से कहा कि हे कर्ण! ये मद्रराज, देवताओं के राजा इन्द्र के सारथि मातलि के समान कृष्ण से भी अधिक कुशलता से घोड़ों को वश में रखनेवाले हैं, ये तुम्हारा सारथिपन करेंगे। जैसे मातलि इन्द्र के घोड़ों से जुते रथ का संचालन करते हैं, वैसेही आज शल्य तुम्हारे रथ के घोड़ों को अपने वश में रखेंगे। रथ में तुम जैसे योद्धा और मद्रराज जैसे सारथि के बैठे होने पर यह श्रेष्ठ रथ निश्चितरूप से युद्ध में कुन्तीपुत्रों को पराजित कर देगा। तब सारथि ने एक विजयशील, श्रेष्ठ, और मंगलमय रथ, जो गन्धर्वनगर के समान विशाल था, विधिवत् सुसज्जितकर, आपकी जय हो ऐसा कहते हुए सूचित किया।

ततः कर्णस्य दुर्धर्षं स्यन्दनप्रवरं महत्।
आरुरोह महातेजाः शल्यः सिंह इवाचलम्॥ ५॥
ततः शल्याश्रितं दृष्ट्वा कर्णः स्वं रथमुत्तमम्।
अध्यतिष्ठद् यथाम्भोदं विद्युत्वन्तं दिवाकरः॥ ६॥
तावेकरथमारूढावादित्याग्नि- समत्विषौ।
अभ्राजेतां यथा मेघं सूर्याग्नी सहितौ दिवि॥ ७॥
स शल्यसंगृहीताश्वे रथे कर्णः स्थितो बभौ।
धनुर्विस्फारयन् घोरं परिवेषीव भास्करः॥ ८॥

तब कर्ण के उस दुर्धर्ष और विशाल श्रेष्ठ रथ पर महातेजस्वी शल्य ऐसे आरूढ़ हुए, जैसे सिंह पर्वत पर चढ़ता है। शल्य को रथ पर चढ़ा देखकर कर्ण भी उस उत्तम रथ पर ऐसे आरूढ़ हुआ जैसे सूर्य विद्युत् से युक्त बादलों पर प्रतिष्ठित हुआ हो। तब सूर्य और अग्नि के समान तेजस्वी वेदोनों एकही रथ पर बैठे हुए इसप्रकार सुशोभित होरहे थे, जैसे आकाश में बादल के ऊपर सूर्य और अग्नि एकसाथ विद्यमान हों। शल्यद्वारा जिसके घोड़ों को वश में किया जा रहा था, उस रथ पर बैठा हुआ और अपने भयंकर धनुष को टंकारता हुआ कर्ण उस सूर्यमण्डल के समान प्रतीत होरहा था, जिसके चारोंतरफ गोल घेरा पड़ा हुआ हो।

तं रथस्थं महाबाहुं युद्धायामिततेजसम्।
दुर्योधनस्तु राधेयमिदं वचनमब्रवीत्॥ ९॥
अकृतं द्रोणभीष्माभ्यां दुष्करं कर्म संयुगे।
कुरुष्वाधिरथे वीर मिषतां सर्वधन्विनाम्॥ १०॥
मनोगतं मम ह्यासीद् भीष्मद्रोणौ महारथौ।
अर्जुनं भीमसेनं च निहन्ताराविति ध्रुवम्॥ ११॥
ताभ्यां यदकृतं वीर वीरकर्म महामृधे।
तत् कर्म कुरु राधेय वज्रपाणिरिवापरः॥ १२॥

तब अमित तेजस्वी महाबाहु राधापुत्र को युद्ध के लिये रथ पर बैठा हुआ देखकर दुर्योधन ने यह बात कही कि हे वीर अधिरथपुत्र! युद्धस्थल में भीष्म और द्रोणाचार्य ने जो कार्य नहीं किया, उसे तुम सारे धनुर्धरों के देखते हुए कर दो। मेरे मन में यह इच्छा थी कि महारथी भीष्म और द्रोणाचार्य अर्जुन और भीम को निश्चितरूप से मार देंगे, पर इस महान् युद्ध में दोनों ने जिस वीरोचित कर्म को नहीं किया, उस कार्य को हे राधापुत्र! तुम दूसरे वज्रधारी इन्द्र के समान पूरा कर दो।

जयश्च तेऽस्तु भद्रं ते प्रयाहि पुरुषर्षभ।
पाण्डुपुत्रस्य सैन्यानि कुरु सर्वाणि भस्मसात्॥ १३॥
ततस्तूर्यसहस्राणि भेरीणामयुतानि च।
वाद्यमानान्यराजन्त मेघशब्दो यथा दिवि॥ १४॥
प्रतिगृह्य तु तद् वाक्यं रथस्थो रथसत्तमः।
अभ्याभाषत राधेयः शल्यं युद्धविशारदम्॥ १५॥
अद्य पश्यतु मे शल्य बाहुवीर्यं धनंजयः।
अस्यतः कङ्कपत्राणां सहस्राणि शतानि च॥ १६॥

हे पुरुषश्रेष्ठ! तुम्हारी विजय हो, तुम्हारा कल्याण हो। तुम युद्ध के लिये प्रस्थान करो और पाण्डुपुत्र की सारी सेनाओं को भस्म कर दो। तब हजारों तूर्य और भेरियाँ बजने लगीं। वे ऐसे प्रतीत होरही थीं जैसे आकाश में बादल गर्ज रहे हों। तब दुर्योधन की बात को स्वीकारकर रथ में बैठा हुआ, रथियों में श्रेष्ठ राधापुत्र, युद्धविशारद शल्य से कहने लगा कि हे शल्य! आज जब मैं कंकपत्र से युक्त सैकड़ों और हजारों बाणों की वर्षा करूँगा, तब अर्जुन मेरी भुजाओं के पराक्रम को देखेंगे।

अद्य क्षेप्स्याम्यहं शल्य शरान् परमतेजनान्।
पाण्डवानां विनाशाय दुर्योधनजयाय च॥ १७॥

शल्य उवाच

सूतपुत्र कथं नु त्वं पाण्डवानमवन्यसे।
सर्वास्त्रज्ञान् महेष्वासान् सर्वानेव महाबलान्॥ १८॥
अनिवर्तिनो महाभागानजय्यान् सत्यविक्रमान्।
यदा श्रोष्यसि निर्घोषं विस्फूर्जितमिवाशनेः॥ १९॥
राधेय गाण्डिवस्याजौ तदा नैवं वदिष्यसि।

हे शल्य! आज मैं पाण्डवों के विनाश और दुर्योधन की विजय के लिये बहुततीखे बाणों को चलाऊँगा। तब शल्य ने कहा कि हे सूतपुत्र! तुम पाण्डवों की अवहेलना कैसे करते हो? वे सारे शस्त्रों के जाननेवाले महाधनुर्धर हैं, सारेही महाबली हैं। वे महाभाग युद्ध में पीछे न हटने वाले, अजेय और सत्यविक्रमी हैं। जब तुम विद्युत् की गड़गड़ाहट के समान गाण्डीवधनुष की टंकार को हे राधापुत्र युद्धस्थल में सुनोगे, तब इसप्रकार नहीं कहोगे।

यदा द्रक्ष्यसि भीमेन कुञ्जरानीकमाहवे॥ २०॥
विशीर्णदन्तं निहतं तदा नैवं वदिष्यसि।
यदा द्रक्ष्यसि संग्रामे धर्मपुत्रं यमौ तथा॥ २१॥
अस्यतः क्षिण्वतश्चारील्लँघुहस्तान् दुरासदान्।
पार्थिवानपि चान्यांस्त्वं तदा नैवं वदिष्यसि॥ २२॥
अनादृत्य तु तद् वाक्यं मद्रराजेन भाषितम्।
याहीत्येवाब्रवीत् कर्णो मद्रराजं तरस्विनम्॥ २३॥

जब तुम युद्धस्थल में भीम द्वारा हाथियों के दाँत तोड़ तोड़कर, नष्ट की हुई हाथीसेना को देखोगे तब तुम ऐसा नहीं कहोगे। जब तुम देखोगे कि युद्धक्षेत्र में दुर्धर्ष धर्मपुत्र युधिष्ठिर तथा नकुल और सहदेव तथा दूसरे राजालोग भी फुर्ती से बाण चलाते हुए शत्रुओं का संहार कर रहे हैं, तब तुम ऐसा नहीं कहोगे। मद्रराज के इन वाक्यों की उपेक्षाकर कर्ण ने वेगशाली शल्य से कहा कि चलिये।

छब्बीसवाँ अध्याय : कर्ण और शल्य की नोंक झोंक।

ततो रथस्थः परवीरहन्ता
भीष्मद्रोणावस्तवीर्यौ समीक्ष्य।
समुज्जलद्भास्कर- पावकाभो
वैकर्तनोऽसौ रथकुञ्जरो नृप॥ १॥
स शल्यमाभाष्य जगाद वाक्यं
पार्थस्य कर्मातिशयं विचिन्त्य।
मानेन दर्पेण विदह्यमानः
क्रोधेन दीप्यन्निव निःश्वसंश्च॥ २॥
नाहं महेन्द्रादपि वज्रपाणेः
क्रुद्धाद् बिभेम्यायुधवान् रथस्थः।
दृष्ट्वा हि भीष्मप्रमुखाञ्शयाना-
नतीव मां ह्यस्थिरता जहाति॥ ३॥

हे राजन्! तब जगमगाते हुए सूर्य और अग्नि के समान तेजस्वी रथियों में श्रेष्ठ, शत्रुवीरों को मारनेवाला, सूर्यपुत्र कर्ण रथ में बैठा हुआ, जिनका पराक्रम अस्त होगया था, उन भीष्म और द्रोणाचार्य के विषय में विचार करते हुए, अर्जुन के अतिशय कर्म को सोचकर, अभिमान और दर्प से जलता हुआ क्रोध से तमतमाता हुआसा शल्य को सम्बोधन करके बोला कि जब मैं हथियार लेकर रथ में बैठा होता हूँ, तब इन्द्र भी यदि क्रोध में भरकर और वज्र हाथ में लेकर आये, तो उससे भी नहीं डरता। भीष्मादि महारथियों को युद्धक्षेत्र में सोया हुआ देखकर भी अस्थिरता मुझ से दूर रहती है।

समीक्ष्य संख्येऽतिबलान् नराधिपान्
ससूतमातङ्गरथान् परैर्हतान्।
कथं न सर्वानहितान् रणेऽवधीद्
महास्त्रविद् ब्राह्मणपुङ्गवो गुरुः॥ ४॥
स संस्मरन् द्रोणमहं महाहवे
ब्रवीमि सत्यं कुरवो निबोधत।
न वा मदन्यः प्रसहेद् रणेऽर्जुनं
समागतं मृत्युमिवोग्ररूपिणम्॥ ५॥
शिक्षाप्रमादश्च बलं धृतिश्च
द्रोणे महास्त्राणि च संनतिश्च।
स चेदगान्मृत्युवशं महात्मा
सर्वानन्यानातुरानद्य मन्ये॥ ६॥

युद्ध में शत्रुओंद्वारा अत्यन्तबलवान् राजाओं को सारथि, हाथी और रथोंसहित मारा हुआ देखकर, इनसारे अहित करनेवालों को, महान् अस्त्रवेत्ता, ब्राह्मणश्रेष्ठ गुरु द्रोणाचार्य ने मार क्यों नहीं दिया? इस महान् युद्ध में द्रोणाचार्य का स्मरण करते हुए हे कौरवों! समझ, लो। मैं सत्य कहता हूँ कि मृत्यु के समान उग्ररूप धारण किये अर्जुन के आने पर युद्ध में मेरे सिवाय कोई और उसे सहन नहीं कर सकता। द्रोणाचार्य में शिक्षा, सावधानी, बल, धैर्य, महान् अस्त्र और विनय, येसारे गुण थे, जब वह मनस्वी भी मृत्यु के वश में होगये तो और दूसरे सारेलोगों को भी मैं मरणासन्न ही समझता हूँ।

नेह ध्रुवं किंचिदपि प्रचिन्तयन्
विद्यां लोके कर्मणो नित्ययोगात्।
सूर्योदये को हि विमुक्तसंशयो
भावं कुर्वीताद्य गुरौ निपातिते॥ ७॥
न नूनमस्त्राणि बलं पराक्रमः
क्रियाः सुनीतं परमायुधानि वा।
अलं मनुष्यस्य सुखाय वर्तितुं
तथा हि युद्धे निहतः परैर्गुरुः॥ ८॥
यत्र राजा पाण्डवः सत्यसंधो
व्यवस्थितो भीमसेनार्जुनौ च।
वासुदेवः सात्यकि सृञ्जयाश्च
यमौ च कस्तान् विषहेन्मदन्यः॥ ९॥

बहुत सोचने पर भी मैं समझता हूँ कि इस संसार में मनुष्य के साथ उसके कर्मों का सम्बन्ध नित्य रहने के कारण, कोई भी प्राणी सदा रहनेवाला नहीं है। आचार्य जैसों के भी मारे जाने पर यह कौन बिना संशय के कह सकता है कि अगले सूर्योदय तक मैं जीवित रहूँगा। वास्तव में मनुष्य के अस्त्र बल और पराक्रम, क्रिया, अच्छी नीति या उत्तम आयुध उसे सुख प्राप्त कराने को पर्याप्त नहीं हैं। इसलिये येसारे गुण होते हुए भी गुरु द्रोणाचार्य को शत्रुओं ने मार दिया। जहाँ राजा युधिष्ठिर सत्य प्रतिज्ञ खड़े हुए हैं, जहाँ भीमसेन, अर्जुन, श्रीकृष्ण, सात्यकि, सृंजयवीर, नकुल तथा सहदेव विद्यमान हैं, उन वीरों के वेग को मेरे सिवाय दूसरा कौन सह सकता है?

तान् वा हनिष्यामि समेत्य संख्ये
यास्यामि वा द्रोणपथा यमाय।
न त्वेवाहं न गमिष्यामि मध्ये
तेषां शूराणामिति मां शल्य विद्धि॥ १०॥
मित्रद्रोहो मर्षणीयो न मेऽयं
त्यक्त्वा प्राणाननुयास्यामि द्रोणम्।
प्राज्ञस्य मूढस्य च जीवितान्ते
नास्ति प्रमोक्षोऽन्तकसत्कृतस्य॥ ११॥
अतो विद्वन्नभियास्यामि पार्थान्
दिष्टं न शक्यं व्यतिवर्तितुं वै।
कल्याणवृत्तः सततं हि राजा
वैचित्रवीर्यस्य सुतो ममासीत्॥ १२॥
तस्यार्थसिद्ध्यर्थमहं त्यजामि
प्रियान् भोगान् दुस्त्यजं जीवितं च।

मैं युद्ध में उनसे लड़कर यातो उन्हें मार दूँगा, या द्रोणाचार्य के मार्ग पर मृत्युलोक को चला जाऊँगा। हे शल्य! तुम ऐसा मत समझना कि मैं उन शूरवीरों के बीच में नहीं जाऊँगा। मेरे लिये मित्र से द्रोह करना असह्य है, इसलिये मैं अपने प्राणों का त्यागकर द्रोणाचार्य का अनुसरण करूँगा। जीवन की समाप्ति पर मृत्यु का सत्कार तो सभी को करना पड़ता है। चाहे वह प्राज्ञ हो या मूर्ख किसीका उससे छुटकारा नहीं है। इसलिये हे विद्वन्! मैं कुन्तीपुत्रों पर अवश्य चढ़ाई करूँगा। परमात्मा की इच्छा को कोई नहीं बदल सकता। धृतराष्ट्र पुत्र राजा दुर्योधन सदा मेरे कल्याण में लगा रहता है इसलिये उसके मनोरथ की पूर्ति के लिये मैं अपने सारे प्रिय भोगों को और जिन्हें छोड़ना कठिन है, उन प्राणों को भी छोड़ दूँगा।

तं चेन्मृत्युः सर्वहरोऽभिरक्षेत्
सदाप्रमत्तः समरे पाण्डुपुत्रम्॥ १३॥
तं वा हनिष्यामि रणे समेत्य
यास्यामि वा भीष्ममुखो यमाय
इति रणरभसस्य कत्थत-
स्तदुत निशम्यवचः स मद्रराट्॥ १४॥
अवहसदवमन्य वीर्यवान्
प्रतिषिषिधे च जगाद चोत्तरम्।
विरम विरम कर्ण कत्थना-
दतिरभसोऽप्यतिवाच- मुक्तवान्॥ १५॥
क्व च हि नरवरो धनंजयः
क्व पुनरहो पुरुषाधमो भवान्।
स्मरसि ननु यदा परैर्हृतः
स च धृतराष्ट्रसुतोऽपि मोक्षितः॥ १६॥
दिनकरसदृशैः शरोत्तमैर्युधा
कुरुषु बहून् विनिहत्य तानरीन्।
प्रथममपि पलायिते त्वयि
प्रियकलहा धृतराष्ट्रसूनवः॥ १७॥
स्मरसि ननु यदा प्रमोचिताः
खचरगणानवजित्य पाण्डवैः।

यदि सबका संहार करनेवाली मृत्यु भी सदा सावधान रहकर युद्धक्षेत्र में अर्जुन की रक्षा करे, तोभी मैं उससे भिड़कर यातो उसे मार दूँगा, या स्वयं भीष्म के समीप मृत्युलोक को चला जाऊँगा। इसप्रकार युद्ध के उत्साह में बढ़ चढ़कर बोलते हुए कर्ण की बातों को सुनकर पराक्रमी मद्रराज ने उसकी अवहेलनाकर उसका उपहास करते हुए कर्ण को रोका और उत्तर दिया कि हे कर्ण! ठहरो, ठहरो। डींग मारना बन्द करो। तुमने अत्यन्त उत्साह में बहुत बड़ी बातें कह दी हैं। कहाँ नरश्रेष्ठ अर्जुन और कहाँ पुरुषों में अधम आप। क्या तुम्हें वह घटना याद है जब कुरुजांगलप्रदेश में शत्रुओं के द्वारा हरण किये हुए दुर्योधन को अर्जुन ने अपने सूर्य के समान उत्तम बाणोंद्वारा उन्हें मारकर मुक्ति दिलाई थी। तब सबसे पहले तुम्हारे भाग जाने पर, पाण्डवों ने गन्धर्वों को जीतकर कलहप्रिय धृतराष्ट्रपुत्रों को छुड़वाया था। तुम्हें वे बातें याद हैं?

समुदितबलवाहनाः पुनः
पुरुषवरेण जिताः स्थ गोग्रहे॥ १८॥
सगुरुगुरुसुताः सभीष्मकाः
किमु न जितः स तदा त्वयार्जुनः।
इदमपरमुपस्थितं पुन-
स्तव निधनाय सुयुद्धमद्य वै॥ १९॥
यदि न रिपुभयात् पलायसे
समरगतोऽद्य हतोऽसि सूतज।

फिर गायों का अपहरण करते समय विशाल बल और वाहनों से युक्त तुम सबको द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा और भीष्मसहित उस पुरुषश्रेष्ठ ने जीत लिया था। तब तुमने अर्जुन को क्यों नहीं जीता? आज यह

उत्तम युद्ध का अवसर पुनः तुम्हारी मृत्यु के लिये उपस्थित होगया है। यदि तुम शत्रु के भय से भाग नहीं जाओगे तो हे सूतपुत्र! युद्ध में पहुँचकर अवश्य मारे जाओगे।

इति बहु परुषं प्रभाषति
प्रमनसि मद्रपतौ रिपुस्तवम्॥ २०॥
भृशमभिरुषितः परंतपः
कुरुपृतनापतिराह मद्रपम्।
भवतु भवतु किं विकत्थसे
ननु मम तस्य हि युद्धमुद्यतम्।
यदि स जयति मामिहाहवे
तत इदमस्तु सुकत्थितं तव॥ २१॥

हे राजन्! जब इसप्रकार महामना मद्रपति शत्रु की प्रशंसा सम्बन्धी बहुत सी कड़वी बातें सुनाने लगे तब परंतप, कौरवों का सेनापति, अत्यन्त क्रोध में भरकर मद्रराज से बोला कि रहने दो, रहने दो। क्या बहुत बढ़चढ़कर बोलते हो? आज मेरा उससे युद्ध होगा ही, यदि वह उसमें मेरे ऊपर विजय प्राप्त कर ले तो आपका यह सब कहना ठीक समझा जायेगा।

एवमस्त्विति मद्रेश उक्त्वा नोत्तरमुक्तवान्।
याहि शल्येति चाप्येनं कर्णः प्राह युयुत्सया॥ २२॥

तब मद्रराज शल्य ने बहुत अच्छा यह कहकर कोई उत्तर नहीं दिया। कर्ण ने भी युद्ध की इच्छा से उनसे कहा कि आगे चलो।

सत्ताईसवाँ अध्याय : शल्य के द्वारा कर्ण के प्रति आक्षेपमयी बातें।

शल्य उवाच

सहितः सर्वयोधैस्त्वं व्यूढानीकैः सुरक्षितः।
धनंजयेन युध्यस्व श्रेयश्चेत् प्राप्तुमिच्छसि॥ १॥
हितार्थं धार्तराष्ट्रस्य ब्रवीमि त्वां न हिंसया।
श्रद्धत्स्वैवं मया प्रोक्तं यदि तेऽस्ति जिजीविषा॥ २॥

कर्ण उवाच

स्वबाहुवीर्यमाश्रित्य प्रार्थयाम्यर्जुनं रणे।
त्वं तु मित्रमुखः शत्रुर्मां भीषयितुमिच्छसि॥ ३॥
न मामस्मादभिप्रायात् कश्चिदद्य निवर्तयेत्।
इति कर्णस्य वाक्यान्ते शल्यः प्राहोत्तरं वचः।
चुकोपयिषुरत्यर्थं कर्णं मद्रेश्वरः पुनः॥ ४॥

तब शल्य ने कहा कि यदि तुम कल्याण को प्राप्त करना चाहते हो तो सारे योद्धाओं सहित तथा व्यूहबद्ध सेना से सुरक्षित रहकर अर्जुन से युद्ध करना। मैं दुर्योधन के हित के लिये तुमसे यह कह रहा हूँ। यदि तुम्हें जीने की इच्छा है, तो मेरी बात पर विश्वास करो। तब कर्ण ने कहा कि मैं अपने बाहुबल का आश्रय लेकर ही युद्ध करना चाहता हूँ। तुम तो मित्र के रूप में मेरे शत्रु हो और मुझे भयभीत करना चाहते हो। आज कोई भी मुझे मेरे संकल्प से वापिस नहीं कर सकता। तब कर्ण की यह बात समाप्त होते ही उसे और अधिक क्रुद्ध करने की इच्छा से शल्य ने कर्ण से कहा कि—

यदा वै त्वां फाल्गुनवेगयुक्ता
ज्याचोदिता हस्तवता विसृष्टाः।
अन्वेतारः कङ्कपत्राः शिताग्रा-
स्तदा तप्स्यस्यर्जुनस्यानुयोगात्॥ ५॥
यदा दिव्यं धनुरादाय पार्थः
प्रतापयन् पृतनां सव्यसाची।
त्वां मर्दयिष्यन्निशितैः पृषत्कै-
स्तदा पश्चात् तप्स्यसे सूतपुत्र॥ ६॥
बालश्चन्द्रं मातुरङ्के शयानो
यथा कश्चित् प्रार्थयतेऽपहर्तुम्।
तद्वन्मोहाद् द्योतमानं रथस्थं
सम्प्रार्थयस्यर्जुनं जेतुमद्य॥ ७॥

हे कर्ण! तुम अर्जुन को ढूँढ रहे हो, पर जब अर्जुन के वेगयुक्त, प्रत्यंचाप्रेरित सुशिक्षित हाथों से छोड़े, तीखी नोकवाले, कंकपत्र से युक्त बाण तुम्हारे शरीर में घुसेंगे, तब तुम इसके लिये पछताओगे। जब कुन्तीपुत्र अर्जुन अपने दिव्य धनुष को लेकर, शत्रुसेना को संतप्त करते हुए तुम्हें तीखे बाणों से रौंदने लगेंगे। हे सूतपुत्र! तब तुम्हें अपने ऊपर पश्चाताप होगा। जैसे कोई माता की गोद में लेटा हुआ बच्चा चन्द्रमा को पकड़ना चाहे, उसीप्रकार तुमभी मोह के कारण रथ में बैठे हुए तेजस्वी अर्जुन को आज जीतना चाहते हो।

त्रिशूलमाश्रित्य सुतीक्ष्णधारं
सर्वाणि गात्राणि विघर्षसि त्वम्।
सुतीक्ष्णधारोपमकर्मणा त्वं
युयुत्ससे योऽर्जुनेनाद्य कर्ण॥ ८॥
क्रुद्धं सिंहं केसरिणं बृहन्तं
बालो मूढः क्षुद्रमृगस्तरस्वी।
समाह्वयेत् तद्वदेतत् तवाद्य
समाह्वानं सूतपुत्रार्जुनस्य॥ ९॥

हे कर्ण! तुम जो अत्यन्ततीखी धार के समान कर्म करनेवाले अर्जुन के साथ आज युद्ध करना चाहते हो, वह मानो अत्यन्ततीखी धारवाले त्रिशूल को लेकर उससे अपने सारे अंगों को रगड़ रहे हो। हे सूतपुत्र! तुम्हारा अर्जुन को युद्ध के लिये ललकारना ऐसाही है जैसे कोई बालक या मूर्ख या वेग से दौड़नेवाला क्षुद्र मृग क्रोध में भरे किसी विशाल केसरी सिंह को ललकारे।

ईषादन्तं महानागं प्रभिन्नकरटामुखम्।
शशको ह्वयसे युद्धे कर्ण पार्थं धनंजयम्॥ १०॥
बिलस्थं कृष्णसर्पं त्वं बाल्यात् काष्ठेन विध्यसि।
महाविषं पूर्णकोपं यत् पार्थं योद्धुमिच्छसि॥ ११॥
सिंहं केसरिणं क्रुद्धमतिक्रम्याभिनर्दसे।
शृगाल इव मूढस्त्वं नृसिंहं कर्ण पाण्डवम्॥ १२॥
सर्वाम्भसां निधिं भीमं मूर्तिमन्तं झषायुतम्।
चन्द्रोदये विवर्धन्तमप्लवः संस्तितीर्षसि॥ १३॥

हे कर्ण! जैसे कोई खरगोश ईषादण्ड के समान दाँतों वाले और अपने माथे से मद को बहानेवाले विशाल हाथी को युद्ध के लिये ललकारे, वैसेही तुम कुन्तीपुत्र अर्जुन को युद्ध के लिये ललकार रहे हो। तुम जो अर्जुन से युद्ध करने की इच्छा करते हो, वास्तव में क्रोध में पूरीतरह से भरे, बिल में बैठे काले साँप को अपने बचपन के कारण छड़ी से बींध रहे हो। हे कर्ण! जैसे कोई गीदड़ क्रोध में भरे केसरी सिंह का अनादर कर गर्जना करे, ऐसेही तुम मूर्खतावश नरसिंह पाण्डुपुत्र का उल्लंघन करके गर्ज रहे हो। तुम चन्द्रोदय के समय सम्पूर्ण जलों के भण्डार, भयंकरता के मूर्तिमान् स्वरूप, जलजन्तुओं से पूर्ण और बढ़ते हुए सागर को बिना नाव के पार करना चाहते हो।

ऋषभं दुन्दुभिग्रीवं तीक्ष्णशृङ्गं प्रहारिणम्।
वत्स आह्वयसे युद्धे कर्ण पार्थं धनंजयम्॥ १४॥
महामेघं महाघोरं दर्दुरः प्रतिनर्दसि।
बाणतोयप्रदं लोके नरपर्जन्यमर्जुनम्॥ १५॥
यथा च स्वगृहस्थः श्वा व्याघ्रं वनगतं भषेत्।
तथा त्वं भषसे कर्ण नरव्याघ्रं धनंजयम्॥ १६॥
शृगालोऽपि वने कर्ण शशैः परिवृतो वसन्।
मन्यते सिंहमात्मानं यावत् सिंहं न पश्यति॥ १७॥

जिसकी आवाज दुन्दुभि की आवाज के समान गम्भीर है, जिसके सींग पैने हैं और जो प्रहार करने में कुशल है, ऐसे साँड के समान कुन्तीपुत्र अर्जुन को हे बेटा कर्ण! तुम ललकार रहे हो। जो अर्जुन मनुष्यों में बाणरूपी जल की वर्षा करनेवाले विशाल, महाभयंकर बादल के समान है, तुम उसे लक्ष्य करके टर्रानेवाले मेंढ़क के समान गर्जना कर रहे हो। जैसे कोई अपने घर में बैठा हुआ कुत्ता वन में विद्यमान व्याघ्र को लक्ष्य करके भौंके, वैसे ही तुम हे कर्ण! नरव्याघ्र अर्जुन के लिये भौंक रहे हो। हे कर्ण! वन में खरगोशों के साथ रहनेवाला गीदड़ भी अपने को तबतक सिंह ही समझता है, जबतक वह सिंह को नहीं देख लेता है।

तथा त्वमपि राधेय सिंहमात्मानमिच्छसि।
अपश्यञ्शत्रुदमनं नरव्याघ्रं धनंजयम्॥ १८॥
व्याघ्रं त्वं मन्यसेऽऽत्मानं यावत् कृष्णौ न पश्यसि।
समास्थितावेकरथे सूर्याचन्द्रमसाविव॥ १९॥
यावद् गाण्डीवघोषं त्वं न शृणोषि महाहवे।
तावदेव त्वया कर्ण शक्यं वक्तुं यथेच्छसि॥ २०॥
रथशब्दधनुःशब्दैर्नादयन्तं दिशो दश।
नर्दन्तमिव शार्दूलं दृष्ट्वा क्रोष्टा भविष्यसि॥ २१॥
नित्यमेव शृगालस्त्वं नित्यं सिंहो धनंजयः।

इसीप्रकार तुमभी हे कर्ण! बिना शत्रुदमन, नरव्याघ्र अर्जुन को देखे अपनेको सिंह ही मानना चाहते हो। पर तुम तभी तक अपनेको सिंह समझोगे, जबतक तुम एकही रथपर बैठे सूर्य और चन्द्रमा के समान तेजस्वी अर्जुन और श्रीकृष्ण को नहीं देखलेते हो। हे कर्ण! जब तक तुम महान् युद्ध में गाण्डीवधनुष की टंकार को नहीं सुनते हो, तभी तक तुम जोचाहे वह बोल सकते हो। पर जब तुम अपने रथ की घर्घराहट और धनुष की टंकार से दशों दिशाओं को गुँजाते हुए और सिंह के समान गर्जते हुए अर्जुन

को देखोगे, तब तुम गीदड़ बन जाओगे। क्योंकि तुम सदा गीदड़ हो और अर्जुन सिंह है।

यथाखुः स्याद् विडालश्च श्वा व्याघ्रश्च बलाबले॥ २२॥
यथा शृगालः सिंहश्च यथा च शशकुञ्जरौ।
तथा त्वमपि पार्थश्च प्रख्यातावात्मकर्मभिः॥ २३॥

जैसे चूहा और उसके मुकाबले पर बिलाव, कुत्ता और उसके मुकाबले पर व्याघ्र, गीदड़ और उसके मुकाबले पर सिंह, खरगोश और उसके मुकाबले पर हाथी अपनी शक्तिहीनता और शक्तिमत्ता के लिये प्रसिद्ध हैं, वैसे ही तुम और अर्जुन भी अपने अपने कर्मों के लिये प्रसिद्ध हैं।

अट्ठाईसवाँ अध्याय : कर्ण के द्वारा अपनी प्रशंसा और शल्य को फटकारते हुए उसे मार देने की धमकी देना।

अधिक्षिप्तस्तु राधेयः शल्येनामिततेजसा।
शल्यमाह सुसंक्रुद्धो वाक्शल्यमवधारयन्॥ १॥
गुणान् गुणवतां शल्य गुणवान् वेत्ति नागुणः।
त्वं तु शल्य गुणैर्हीनः किं ज्ञास्यसि गुणागुणम्॥ २॥
अर्जुनस्य महास्त्राणि क्रोधं वीर्यं धनुः शरान्।
अहं शल्याभिजानामि विक्रमं च महात्मनः॥ ३॥
तथा कृष्णस्य माहात्म्यमृषभस्य महीक्षिताम्।
यथाहं शल्य जानामि न त्वं जानासि तत् तथा॥ ४॥

इसप्रकार अमिततेजस्वी शल्यद्वारा आक्षेप किये जाने पर, अत्यन्त क्रुद्ध होकर तथा यह निश्चय करके कि वचनरूपी बाण छोड़ने के कारणही इसका नाम शल्य है, राधापुत्र शल्य से बोला कि हे शल्य! गुणवानों के गुणों को गुणवान् ही जानता है, गुणहीन नहीं। तुम तो गुणों से हीन हो, फिर गुण या अवगुण को क्या समझोगे? मैं मनस्वी अर्जुन के महान् अस्त्रों, क्रोध, तेज, पराक्रम और धनुषबाण को जानता हूँ। ऐसे ही राजाओं में श्रेष्ठ श्रीकृष्ण की महत्ता को जितना मैं जानता हूँ, उतना तुम नहीं जानते।

एवमेवात्मनो वीर्यमहं वीर्यं च पाण्डवे।
जानन्नेवाह्वये युद्धे शल्य गाण्डीवधारिणम्॥ ५॥
अस्ति चायमिषुः शल्य सुपुङ्खो रक्तभोजनः।
एकतूणीशयः पत्री सुधौतः समलंकृतः॥ ६॥
शेते चन्दनचूर्णेषु पूजितो बहुलाः समाः।
आहेयो विषवानुग्रो नराश्वद्विपसंघहा॥ ७॥
घोररूपो महारौद्रस्तनुत्रास्थिविदारणः।
तमहं जातु नास्येयमन्यस्मिन् फाल्गुनादृते॥ ८॥
कृष्णाद् वा देवकीपुत्रात् सत्यं चापि शृणुष्व मे।

हे शल्य! इसीप्रकार मैं अपने पराक्रम और पाण्डुपुत्र के पराक्रम को जानता हुआ ही उस गाण्डीवधारी को युद्ध के लिये ललकारता हूँ। हे शल्य! यह मेरा सुन्दर पंखवाला बाण, जो अकेला ही तरकस में रखा हुआ है, अच्छीतरह से स्वच्छ और सुसज्जित है। यह मनुष्यों, घोड़ों और हाथियों के समुदाय को नष्ट करनेवाला है, भयंकर सर्प विद्या से युक्त, यह बहुत वर्षों से मेरे द्वारा सम्मान के साथ चन्दन के चूरे में रखा हुआ है। यह अत्यन्त भयंकर घोर बाण कवच और हड्डियों को भी चीर देनेवाला है। तुम यह सत्य बात सुन लो। मैं इस बाण को अर्जुन या देवकीपुत्र श्रीकृष्ण के सिवाय किसीऔर पर नहीं छोड़ूँगा।

तेनाहमिषुणा शल्य वासुदेवधनंजयौ॥ ९॥
योत्स्ये परमसंक्रुद्धस्तत् कर्म सदृशं मम।
सर्वेषां वृष्णिवीराणां कृष्णे लक्ष्मीः प्रतिष्ठिता॥ १०॥
सर्वेषां पाण्डुपुत्राणां जयः पार्थे प्रतिष्ठितः।
उभयं तु समासाद्य को निवर्तितुमर्हति॥ ११॥
तावेतौ पुरुषव्याघ्रौ समेतौ स्यन्दने स्थितौ।
मामेकमभिसंयातौ सुजातं पश्य शल्य मे॥ १२॥
पितृष्वसामातुलजौ भ्रातरावपराजितौ।
मणी सूत्र इव प्रोतौ द्रष्टासि निहतौ मया॥ १३॥

हे शल्य! मैं अत्यन्तही क्रुद्ध होकर इस बाण द्वारा अर्जुन और श्रीकृष्ण से युद्ध करूँगा। यह कार्य मेरे योग्य होगा। सारे वृष्णिवीरों का ऐश्वर्य श्रीकृष्ण पर प्रतिष्ठित है, इसीप्रकार सारे पाण्डुपुत्रों की विजय अर्जुन के ऊपर आधारित है। दोनों को एकसाथ देखकर कौन पीछे को लौट सकता है? येदोनों पुरुषश्रेष्ठ एकही रथ पर बैठे हुए मुझ पर आक्रमण करनेवाले हैं। हे शल्य! तुम मेरे सौभाग्य को देखो।

अब तुम धागे में पिरोयी हुई दो मणियों के समान इनदोनों किसीसे पराजित न होनेवाले ममेरे और फुफेरे भाइयों को मेरे द्वारा मारा हुआ देखोगे।

त्वं तु दुष्प्रकृतिर्मूढो महायुद्धेष्वकोविदः।
भयावदीर्णः संत्रासादबद्धं बहु भाषसे॥ १४॥
संस्तौषि तौ तु केनापि हेतुना त्वं कुदेशज।
तौ हत्वा समरे हन्ता त्वामद्य सहबान्धवम्॥ १५॥
पापदेशज दुर्बुद्धे क्षुद्र क्षत्रियपांसन।
सुहृद् भूत्वा रिपुः किं मां कृष्णाभ्यांभीषयिष्यसि॥ १६॥
तौ वा मामद्य हन्तारौ हनिष्ये वापि तावहम्।
नाहं बिभेमि कृष्णाभ्यां विजानन्नात्मनो बलम्॥ १७॥
वासुदेवसहस्रं वा फाल्गुनानां शतानि वा।
अहमेको हनिष्यामि जोषमास्स्व कुदेशज॥ १८॥

तुमतो बुरे स्वभाव के, मूर्ख और युद्धविद्या को न जाननेवाले हो। भय से तुम्हारा हृदय विदीर्ण होरहा है और डरके मारे तुम बहुतसी अनर्गल बातें बोल रहे हो। अरे बुरे देश में पैदा हुए! तुम किसी उद्देश्य से उनदोनों की प्रशंसा कर रहे हो। मैं आज युद्ध में उनदोनों को मारकर तुम्हेंभी अपने बान्धवों के साथ मार दूँगा। तुमने पापीदेश में जन्म लिया है। तुम नीच, दुर्बुद्धि और क्षत्रियकुलकलंक हो। तुम मेरे शत्रु होकर भी मित्र बने हुए मुझे अर्जुन और कृष्ण से क्यों डरा रहे हो? आज यातो वेदोनों मुझे मार देंगे या मैं उनदोनों को मार दूँगा। मैं अपनी शक्ति को जानता हुआ अर्जुन और कृष्ण से डरता नहीं हूँ। चाहे हजारों श्रीकृष्ण हों या सैकड़ों अर्जुन हों, मैं अकेलाही उन्हें मार दूँगा। अरे बुरे स्थान में जन्मे! चुप रह।

एष मुख्यतमो धर्मः क्षत्रियस्येति नः श्रुतम्।
यदाजौ निहतः शेते सद्भिः समभिपूजितः॥ १९॥
आयुधानां साम्पराये यन्मुच्येयमहं ततः।
ममैष प्रथमः कल्पो निधने स्वर्गमिच्छतः॥ २०॥
सोऽयं प्रियः सखा चास्मि धार्तराष्ट्रस्य धीमतः।
तदर्थे हि मम प्राणा यच्च मे विद्यते वसु॥ २१॥
व्यक्तं त्वमप्युपहितः पाण्डवैः पापदेशज।
यथा चामित्रवत् सर्वं त्वमस्मासु प्रवर्तसे॥ २२॥

हमने सुना है कि क्षत्रियों का प्रमुख धर्म है कि वह सत्पुरुषों से पूजित होता हुआ युद्ध में मारा जाकर शयन करे। इसलिये मृत्यु होने पर उत्तम गति की इच्छा रखनेवाले मेरा यही प्रमुख कर्त्तव्य है कि हथियारों के आदान प्रदान से होनेवाले युद्ध में मैं अपने प्राणों का त्याग करूँ। मैं धीमान् धृतराष्ट्र के पुत्र दुर्योधन का प्यारा मित्र हूँ। मेरा जो कुछ भी ऐश्वर्य है और मेरे प्राण सब उसी के लिये हैं। हे पापमय देश में जन्मे! यह स्पष्ट है कि तुम्हें पाण्डवों ने हमारे पास रखा हुआ है, इसलिये तुम हमारे साथ सारा बर्ताव शत्रुओं जैसा कर रहे हो।

कामं न खलु शक्योऽहं त्वद्विधानां शतैरपि।
संग्रामाद् विमुखः कर्तुं धर्मज्ञ इव नास्तिकैः॥ २३॥
सारङ्ग इव घर्मार्तः कामं विलप शुष्य च।
नाहं भीषयितुं शक्यः क्षत्रवृत्ते व्यवस्थितः॥ २४॥
तनुत्यजां नृसिंहानामाहवेष्वनिवर्तिनाम्।
या गतिर्गुरुणा प्रोक्ता पुरा रामेण तां स्मरे॥ २५॥

जैसे सैकड़ों नास्तिक धर्मज्ञ पुरुष को धर्म से विचलित नहीं कर सकते, वैसे तुमजैसे सैकड़ों लोग भी मुझे युद्ध से विचलित नहीं कर सकते। तुम गर्मी से सताये हरिण की तरह कितना ही विलाप करो या सूख जाओ किन्तु क्षत्रियवृत्ति में स्थित मुझे डरा नहीं सकते। मुझे मेरे गुरु परशुराम ने युद्ध में पीछे न हटनेवाले, अपने प्राणों का त्याग करनेवाले पुरुषसिंहों के लिये जो उत्तम गति बतायी है, मैं उसे सदा याद रखता हूँ।

एवं विद्वञ्जोषमास्स्व त्रासात् किं बहु भाषसे।
मा त्वां हत्वा प्रदास्यामि क्रव्याद्भ्यो मद्रकाधम॥ २६॥
मित्रप्रतीक्षया शल्य धृतराष्ट्रस्य चोभयोः।
अपवादतितिक्षाभिस्त्रिभिरेतैर्हि जीवसि॥ २७॥
पुनश्चेदीदृशं वाक्यं मद्रराज वदिष्यसि।
शिरस्ते पातयिष्यामि गदया वज्रकल्पया॥ २८॥

हे मद्रदेश के अधम मनुष्य! तुम ऐसा समझकर चुप बैठे रहो। डर के कारण क्यों बहुत बोल रहे हो? नहीं तो मैं तुम्हें मारकर माँसभक्षी प्राणियों के लिये डाल दूँगा। हे शल्य! मैं अपने मित्र और धृतराष्ट्र दोनों के कार्यों को देखते हुए, निन्दा के डर से और सहनशीलता के कारण चुप हूँ। इन तीन कारणों से तुम जीवित हो। हे मद्रराज! यदि तुम फिर ऐसी बातें कहोगे तो मैं वज्र के समान अपनी गदा से तुम्हारे सिर को तोड़कर गिरा दूँगा।

उनत्तीसवाँ अध्याय : शल्य द्वारा श्रीकृष्ण और अर्जुन की प्रशंसा।

मारिषाधिरथेः श्रुत्वा वाचो युद्धाभिनन्दिनः।
शल्योऽब्रवीत् पुनः कर्णं निदर्शनमिदं वचः॥ १॥
जातोऽहं यज्वनां वंशे संग्रामेष्वनिवर्तिनाम्।
राज्ञां मूर्धाभिषिक्तानां स्वयं धर्मपरायणः॥ २॥
यथैव मत्तो मद्येन त्वं तथा लक्ष्यसे वृष।
तथाद्य त्वां प्रमाद्यन्तं चिकित्सेयं सुहृत्तया॥ ३॥
नाहमात्मनि किंचिद् वै किल्बिषं कर्ण संस्मरे।
येन मां त्वं महाबाहो हन्तुमिच्छस्यनागसम्॥ ४॥

हे मान्यवर! युद्ध का अभिनन्दन करने वाले कर्ण की बात सुनकर शल्य ने उससे समझानेवाली यह बात कही कि मैं युद्धों में पीठ न दिखानेवाले, यज्ञपरायण और मूर्धाभिषिक्त राजाओं के कुल में पैदा हुआ हूँ तथा स्वयं भी धर्मपरायण हूँ। जैसे कोई मद्यपान करके मतवाला होजाये वैसे ही अरे बैल! तुम दिखाई देते हो। इसप्रकार पागल होने पर मित्र के नाते मुझे तुम्हारी चिकित्सा करनी चाहिये। मैं तो अपने में किसी ऐसी बुराई को नहीं देखता, जिससे हे महाबाहु कर्ण! तुम मुझ निरपराध को मारना चाहते हो।

अवश्यं तु मया वाच्यं बुद्ध्यता त्वद्धिताहितम्।
विशेषतो रथस्थेन राज्ञश्चैव हितैषिणा॥ ५॥
समं च विषमं चैव रथिनश्च बलाबलम्।
श्रमः खेदश्च सततं हयानां रथिना सह॥ ६॥
आयुधस्य परिज्ञानं रुतं च मृगपक्षिणाम्।
भारश्चाप्यतिभारश्च शल्यानां च प्रतिक्रिया॥ ७॥
अस्त्रयोगश्च युद्धं च निमित्तानि तथैव च।
सर्वमेतन्मया ज्ञेयं रथस्यास्य कुटुम्बिना॥ ८॥

तुम्हारे हित और अहित की बात जानते हुए मुझे अवश्य उसे कहना चाहिये, विशेषकर इसलिये, क्योंकि मैं सारथि के रूप में रथपर बैठा हूँ और राजा दुर्योधन का हितैषी हूँ। मैं इस समय इस रथ का कुटुम्बी हूँ। इसलिये मुझे सम और विषम अवस्थाएँ, रथी की प्रबलता, निर्बलता, रथी के साथ ही लगातार घोड़ों के भी परिश्रम और कष्ट, हथियार हैं या नहीं, पशुपक्षियों की बोलियों की पहचान, भार, अतिभार, शल्यचिकित्सा, अस्त्रों का प्रयोग, युद्ध करना तथा विजय पराजय के कारण इन सारी बातों का ज्ञान रखना चाहिये।

द्रोणद्रौणिकृपैर्गुप्तो भीष्मेणान्यैश्च कौरवैः।
विराटनगरे पार्थमेकं किं नावधीस्तदा॥ ९॥
यत्र व्यस्ताः समस्ताश्च निर्जिताः स्थ किरीटिना।
शृगाला इव सिंहेन क्व ते वीर्यमभूत् तदा॥ १०॥
भ्रातरं निहतं दृष्ट्वा समरे सव्यसाचिना।
पश्यतां कुरुवीराणां प्रथमं त्वं पलायितः॥ ११॥
तथा द्वैतवने कर्ण गन्धर्वैः समभिद्रुतः।
कुरून् समग्रानुत्सृज्य प्रथमं त्वं पलायितः॥ १२॥

विराट नगर में तुम्हारी द्रोणाचार्य, द्रोणपुत्र, कृपाचार्य, भीष्म तथा दूसरे कौरवलोग भी रक्षा कर रहे थे। फिर तुमने अकेले सामने आये अर्जुन का वध क्यों नहीं कर दिया? वहाँ किरीटधारी अर्जुन ने अकेले और इकट्ठे भी लड़कर तुम सबको ऐसे जीत लिया था, जैसे सिंह गीदड़ों को मार भगाये। तब तुम्हारा पराक्रम कहाँ गया था? वहाँ युद्ध में अपने भाई को अर्जुनद्वारा मारा हुआ देखकर सारे कौरववीरों के देखते हुए सबसे पहले तुम्हीं भागे थे। उसीप्रकार हे कर्ण! द्वैतवन में भी गन्धर्वों द्वारा आक्रमण करने पर सारे कौरवों को छोड़कर सबसे पहले तुमनेही पीठ दिखाई थी।

हत्वा जित्वा च गन्धर्वांश्चित्रसेनमुखान् रणे।
कर्ण दुर्योधनं पार्थः सभार्यं सममोक्षयत्॥ १३॥
सततं च त्वमश्रौषीर्वचनं द्रोणभीष्मयोः।
अवध्यौ वदतः कृष्णौ संनिधौ च महीक्षिताम्॥ १४॥
कियत् तत् तत् प्रवक्ष्यामि येन येन धनंजयः।
त्वत्तोऽतिरिक्तः सर्वेभ्यो भूतेभ्यो ब्राह्मणो यथा॥ १५॥
यदा त्वं युधि विक्रान्तौ वासुदेवधनंजयौ।
द्रष्टास्येकरथे कर्ण तदा नैवं वदिष्यसि॥ १६॥
यदा शरशतैः पार्थो दर्पं तव वधिष्यति।
तदा त्वमन्तरं द्रष्टा आत्मनश्चार्जुनस्य च॥ १७॥

हे कर्ण! तब युद्ध में चित्रसेन आदि गन्धर्वों को मारकर, जीतकर अर्जुन ने ही दुर्योधन को उसकी पत्नियोंसहित छुड़वाया था। तुमने पहले भीष्म और द्रोणाचार्य के मुख से सारे राजाओं के सामने इन अर्जुन और कृष्ण को सर्वदा अवध्य बताते हुए सुना है। मैं कितनी कितनी बातों को गिनाऊँ? जिनके कारण अर्जुन तुमसे ऐसेही बढ़कर है जैसे ब्राह्मण सारे प्राणियों में

श्रेष्ठ हैं। इसलिये जब तुम युद्ध में पराक्रमी श्रीकृष्ण और अर्जुन को एकही रथपर बैठा हुआ देखोगे, तब हे कर्ण! ऐसा नहीं कहोगे। जब अर्जुन सैकड़ों बाणों से तुम्हारे अभिमान को नष्ट कर देंगे, तब तुम्हें दिखाई देगा कि मुझमें और अर्जुन में क्या अन्तर है?

तीसवाँ अध्याय : कर्ण का शल्य को पुनः फटकारना।

मद्राधिपस्याधि- रथिर्महात्मा
वचो निशम्याप्रियमप्रतीतः।
उवाच शल्यं विदितं ममैतद्
यथाविधावर्जुनवा- सुदेवौ॥ १॥
शौरे रथं वाहयतोऽर्जुनस्य
बलं महास्त्राणि च पाण्डवस्य।
अहं विजानामि यथावदद्य
परोक्षभूतं तव तत् तु शल्य॥ २॥
शल्योग्रधन्वानमहं वरिष्ठं
तरस्विनं भीममसह्यवीर्यम्।
सत्यप्रतिज्ञं युधि पाण्डवेयं
धनंजयं मृत्युमुखं नयिष्ये॥ ३॥

तब मनस्वी अधिरथ का पुत्र मद्रराज के अप्रिय वचनों को सुनकर असंतुष्ट होकर बोला कि हे शल्य! मुझे पता है कि अर्जुन और श्रीकृष्ण कैसे हैं? अर्जुन के रथ का संचालन करते हुए श्रीकृष्ण के बल को तथा पाण्डुपुत्र के महान् अस्त्रों को जैसा मैं जानता हूँ, तुम उससे अपरिचित हो। हे शल्य! मैं आज उग्रधनुष को धारण करनेवाले, सर्वश्रेष्ठ, वेगवान्, भयंकर, असह्य पराक्रमी सत्यप्रतिज्ञ, पाण्डुपुत्र अर्जुन को युद्ध में मृत्यु के मुख में भेज दूँगा।

अपां पतिर्वेगवानप्रमेयो
निमज्जयिष्यन् बहुलाः प्रजाश्च।
महावेगं संकुरुते समुद्रो
वेला चैनं धारयत्यप्रमेयम्॥ ४॥
प्रमुञ्चन्तं बाणसंघानमेयान्
मर्मच्छिदो वीरहणः सुपत्रान्।
कुन्तीपुत्रं यत्र योत्स्यामि युद्धे
ज्यां कर्षतामुत्तममद्य लोके॥ ५॥
एवं बलेनातिबलं महास्त्रं
समुद्रकल्पं सुदुरापमुग्रम्
शरौघिणं पार्थिवान् मज्जयन्तं
वेलेव पार्थमिषुभिः संसहिष्ये॥ ६॥

जलों का स्वामी समुद्र, जो वेगवान् और अपरिमित है बहुतसी प्रजाओं को डुबा देता है, पर जब वह अपने अपरिमित महान् वेग को प्रकट करता है तब किनारे की भूमि उसको भी रोक देती है। आज मैं युद्धस्थल में उन कुन्तीपुत्र के साथ युद्ध करूँगा जो अपरिमित बाणसमूहों की वर्षा करते हैं, जिनके बाण मर्म को छेदनेवाले, वीरों को नष्ट करनेवाले और अच्छे पंखवाले हैं, जो संसार में प्रत्यंचा को खींचनेवालों में उत्तम हैं। इसप्रकार यद्यपि कुन्तीपुत्र अतिबलवान्, महान् अस्त्रोंवाले, समुद्र के समान अत्यन्त दुर्लङ्घ्य, भयंकर, बाणों की वर्षा करनेवाले, राजाओं को डुबा देनेवाले हैं, पर मैं अपने बल से उनको सहन करूँगा और बाणों से तटभूमि के समान रोक दूँगा।

अतीव मानी पाण्डवो युद्धकामो
ह्यमानुषैरेष्यति मे महास्त्रैः।
तस्यास्त्रमस्त्रैः प्रतिहत्य संख्ये
बाणोत्तमैः पातयिष्यामि पार्थम्॥ ७॥
सहस्त्ररश्मिप्रतिमं ज्वलन्तं
दिशश्च सर्वाः प्रतपन्तमुग्रम्।
तमोनुदं मेघ इवातिमात्रं
धनंजयं छादयिष्यामि बाणैः॥ ८॥
आशीविषं दुर्धरमप्रमेयं
सुतीक्ष्णदंष्ट्रं ज्वलनप्रभावम्।
क्रोधप्रदीप्तं त्वहितं महान्तं
कुन्तीपुत्रं शमयिष्यामि भल्लैः॥ ९॥

अत्यन्तमानी और युद्ध के इच्छुक पाण्डुपुत्र अपने मानवेतर महान् अस्त्रों के साथ मेरे सामने आयेंगे। मैं युद्ध में उनके अस्त्रों को अपने अस्त्रों से काटकर अपने उत्तम बाणों से कुन्तीपुत्र को गिरा दूँगा। सारी दिशाओं को तपाते हुए अन्धकारनाशक सूर्य के समान अपने तेज से जलते हुए भयंकर अर्जुन को मैं बादलों के समान अपने बाणों से अत्यन्तआच्छादित कर दूँगा। अत्यन्ततीखी दाढ़ों वाले

विषधर सर्प के समान जो दुर्धर्ष और अप्रमेय है, जो क्रोध से जलते हुए अग्नि के समान प्रभाव वाले हैं तथा जो महान् अहित करनेवाले हैं, उन कुन्तीपुत्र को मैं अपने भल्लों से शान्त कर दूँगा।

प्रमाथिनं बलवन्तं प्रहारिणं
प्रभञ्जनं मातरिश्वानमुग्रम्।
युद्धे सहिष्ये हिमवानिवाचलो
धनंजयं क्रुद्धममृष्यमाणम्॥ १०॥
विशारदं रथमार्गेषु शक्तं
धुर्यं नित्यं समरेषु प्रवीरम्।
लोके वरं सर्वधनुर्धराणां
धनंजयं संयुगे संसहिष्ये॥ ११॥
अद्याहवे यस्य न तुल्यमन्यं
मन्ये मनुष्यं धनुराददानम्।
सर्वामिमां यः पृथिवीं विजिग्ये
तेन प्रयोद्धास्मि समेत्य संख्ये॥ १२॥

जैसे वनों को मथ देने और तोड़फोड़ देनेवाली भयंकर आँधी को हिमालय पर्वत सहन कर लेता है, वैसेही बलवान्, प्रहार करनेवाले, भयंकर, क्रोध में भरे हुए, अमर्षशील अर्जुन को मैं युद्ध में सहन कर लूँगा। रथ के मार्गों अर्थात् पैंतरों पर चलने में कुशल, शक्तिशाली, युद्धों में भार वहन करने वाले, अत्यन्तवीर, संसार के धनुर्धरों में श्रेष्ठ, अर्जुन को मैं युद्ध में सहन करूँगा। युद्ध में धनुष हाथ में लिये किसीदूसरे मनुष्य को मैं जिसके बराबर नहीं मानता, जिसने सारी भूमि को जीता है, आज मैं युद्धभूमि में उसे प्राप्त करके उससे युद्ध करूँगा।

मानी कृतास्त्रः कृतहस्तयोगो
दिव्यास्त्रविच्छ्वेतहयः प्रमाथी।
तस्याहमद्यातिरथस्य काया-
च्छिरो हरिष्यामि शितैः पृषत्कैः॥ १३॥
योत्स्याम्येनं शल्य धनंजयं वै
मृत्युं पुरस्कृत्य रणे जयं वा।
अन्यो हि न ह्येकरथेन मर्त्यो
युध्येत यः पाण्डवमिन्द्रकल्पम्॥ १४॥
तस्याहवे पौरुषं पाण्डवस्य
ब्रूयां हृष्टः समितौ क्षत्रियाणाम्।
किं त्वं मूर्खः प्रसभं मूढचेता
ममावोचः पौरुषं फाल्गुनस्य॥ १५॥

जो अर्जुन मानी, अस्त्रविद्याविशारद, सिद्धहस्त दिव्यास्त्रों का जानकार, श्वेत घोड़ोंवाला और शत्रुओं को मथ देनेवाला है, उस अतिरथी के सिर को मैं आज तीखे बाणों से धड़ से अलग कर दूँगा। हे शल्य! मैं अर्जुन से युद्धस्थल में मृत्यु या विजय इनको सामने रखकर युद्ध करूँगा। संसार में इन्द्र के समान पराक्रमी पाण्डुपुत्र के साथ कोई दूसरा व्यक्ति एक रथ के द्वारा युद्धनहीं कर सकता। मैं इस पाण्डुपुत्र के युद्ध सम्बन्धी पौरुष का क्षत्रियों के समाज में प्रसन्नता के साथ वर्णन कर सकता हूँ। पर तुमतो मूर्ख और मूढ़चित्त वाले हो। तुमने हठपूर्वक अर्जुन के पौरुष का मेरे सामने वर्णन क्यों किया?

अप्रियो यः पुरुषो निष्ठुरो हि
क्षुद्रः क्षेप्ता क्षमिणश्चाक्षमावान्।
हन्यामहं तादृशानां शतानि
क्षमाम्यहं क्षमया कालयोगात्॥ १६॥
अवोचस्त्वं पाण्डवार्थेऽप्रियाणि
प्रधर्षयन् मां मूढवत् पापकर्मन्।
मय्यार्जवे जिह्ममतिर्हतस्त्वं
मित्रद्रोही साप्तपदं हि मैत्रम्॥ १७॥
कालस्त्वयं प्रत्युपयाति दारुणो
दुर्योधनो युद्धमुपागमद् यत्।
अस्यार्थसिद्धिं त्वभिकाङ्क्षमाण-
स्तन्मन्यसे यत्र नैकान्त्यमस्ति॥ १८॥

जो अप्रिय, निष्ठर, क्षुद्रहृदय, तथा स्वयं क्षमाशील नहीं है, पर दूसरे क्षमा करनेवालों की निन्दा करता है, मैं ऐसे सैकड़ों मनुष्यों का वध कर सकता हूँ, पर मैं समय की अवस्था के कारण और क्षमाभाव के कारण क्षमा करता रहता हूँ। हे पापकर्मी! तुमने पाण्डुपुत्र के लिये मूर्खों के समान मेरा अपमान करते हुए मुझे अप्रिय वचन कहे। तुम्हें मेरे प्रति कोमलता का व्यवहार करना चाहिये। पर तुम कुटिलबुद्धिवाले हो। तुम अपने मित्रद्रोह के कारण मारे जाओगे। किसी के साथ सात कदम चलने पर ही मित्रता होजाती है, पर तुम इसका पालन नहीं करते। यह बड़ा भयंकर समय आरहा है। दुर्योधन युद्ध के लिये तैयार होकर आगया है। मैं इसके उद्देश्य की सिद्धि चाहता हूँ, पर तुम्हारा मन उधर लगा हुआ है जहाँ उसके कार्य की सिद्धि की सम्भावना नहीं है।

मित्रं मिन्देर्नन्दतेः प्रीयतेर्वा
संत्रायतेर्मिनुते- र्मोदतेर्वा।
ब्रवीमि ते सर्वमिदं ममास्ति
तच्चापि सर्वं मम वेत्ति राजा॥ १९॥
शत्रुः शदेः शासतेर्वा श्यतेर्वा
शृणातेर्वा श्वसतेः सीदतेर्वा।
उपसर्गाद् बहुधा सूदतेश्च
प्रायेण सर्वं त्वयि तच्च मह्यम्॥ २०॥

मित्र शब्द का निर्माण मिद्, नन्द, प्री, त्रा, मि या मुद् धातुओं से होता है। इनसारी धातुओं का अर्थ मुझमें विद्यमान है, इनसारी बातों को राजा दुर्योधन अच्छीतरह जानते हैं। शत्रु शब्द का निर्माण शद्, शास्, शो, शृ, श्वस् या षद् तथा अनेक उपसर्गों से युक्त सूद धातु से होता है। इन सारी धातुओं का अर्थ तुम्हारे अन्दर मेरे प्रति विद्यमान् है।

नोट— मिद् आदि धातुओं का अर्थ क्रमशः स्नेह, आनन्द, प्रीणन (तृप्त करना), प्राण (रक्षा), सस्नेह दर्शन और आमोद है। शद् आदि धातुओं का अर्थ क्रमशः इस प्रकार है— शातना (काटना या छेदना) शासन करना, तनूकरण (क्षीण कर देना) हिंसा करना, अवसादन (शिथिल करना) और निषूदन (वध)।

दुर्योधनार्थे तव च प्रियार्थं
यशोऽर्थमात्मार्थम- पीश्वरार्थम्।
तस्मादहं पाण्डववासुदेवौ
योत्स्ये यत्नात् कर्म तत् पश्य मेऽद्य॥ २१॥
अस्त्राणि पश्याद्य ममोत्तमानि
ब्राह्माणि दिव्यान्यथ मानुषाणि।
आसादयिष्याम्यह- मुग्रवीर्यं
द्विपो द्विपं मत्तमिवातिमत्तः॥ २२॥

दुर्योधन का हित, तुम्हारा प्रिय, अपने यश, और परमात्मा के लिये मैं अर्जुन और श्रीकृष्ण के साथ यत्नपूर्वक युद्ध करूँगा। आज तुम मेरे कर्म और मेरे उत्तम ब्रह्मास्त्र, दिव्यास्त्रों तथा मानवास्त्रों को देखना। मैं उग्र पराक्रमी अर्जुन के साथ ऐसेही युद्ध करूँगा जैसे अत्यन्तमस्त हाथी दूसरे मस्त हाथी से भिड़ता है।

इत्येतत्ते मया प्रोक्तं क्षिप्तेनापि सुहृत्तया।
जानामित्वां विक्षिपन्तं जोषमास्स्वोत्तरं शृणु॥ २३॥
यदि मां देवताः सर्वा योधयेयुः सवासवाः।
तथापि मे भयं न स्यात् किमु पार्थात् सकेशवात्॥ २४॥
नाहं भीषयितुं शक्यो वाङ्मात्रेण कथंचन।
अन्यं जानीहि यः शक्यस्त्वया भीषयितुं रणे॥ २५॥
नीचस्य बलमेतावत् पारुष्यं यत्त्वमात्थ माम्।
अशक्तो मद्गुणान् वक्तुं वल्गसे बहु दुर्मते॥ २६॥
न हि कर्णः समुद्भूतो भयार्थमिह मद्रक।
विक्रमार्थमहं जातो यशोऽर्थं च तथाऽऽत्मनः॥ २७॥

मैंने येसारी बातें तुम्हें मित्र के नाते से कहीं हैं, यद्यपि तुमने मुझपर आक्षेप किये हैं। मैं जानता हूँ कि तुम फिरभी मेरी निन्दा करोगे, फिर भी मैं कहता हूँ कि तुम चुप बैठे रहो और जो मैं कहूँ, उसे सुनो। यदि इन्द्रसहित सारे देवता मुझसे युद्ध करें, तोभी मुझे भय नहीं होगा, फिर अर्जुन और कृष्ण से मैं कैसे डर सकता हूँ? मुझे केवल बातों से नहीं डराया जासकता। इसलिये तुम किसी दूसरे मनुष्य का पता लगाओ, जिसे युद्ध में डरा सको। तुमने मुझसे जो कटु वचन कहे हैं, नीच व्यक्ति की इतनी ही शक्ति होती है। हे दुर्मति! जब तुम मेरे गुणों को नहीं कह सकते, तो फिर ऊट-पटांग बातें क्यों करते हो? हे मद्रनिवासी शल्य! कर्ण डरने के लिये पैदा नहीं हुआ है। मैं अपना पराक्रम दिखाने और यश फैलाने के लिये उत्पन्न हुआ हूँ।

इकतीसवाँ अध्याय : शल्य का प्रत्युत्तर। दुर्योधन द्वारा दोनों की शान्ति।

शल्य उवाच

रथातिरथसंख्यायां यत् त्वां भीष्मस्तदाब्रवीत्।
तान् विदित्वाऽऽत्मनो दोषान् निर्मन्युर्भव माक्रुधः॥ १॥
परवाच्येषु निपुणः सर्वो भवति सर्वदा।
आत्मवाच्यं न जानीते जानन्नपि च मुह्यति॥ २॥
सर्वत्र सन्ति राजानः स्वं स्वं धर्ममनुव्रताः।
दुर्मनुष्यान् निगृह्णन्ति सन्ति सर्वत्र धार्मिकाः॥ ३॥
न कर्ण देशसामान्यात् सर्वः पापं निषेवते।
यादृशाः स्वस्वभावेन देवा अपि न तादृशाः॥ ४॥

तब शल्य ने कहा कि हे कर्ण! उस दिन रथियों और अतिरथियों की गिनती करते हुए भीष्म जी ने तुमसे जो कुछ कहा था, उसके अनुसार अपने दोषों को समझकर अहंकार से रहित हो जाओ। क्रोध मत करो। दूसरों के दोषों का वर्णन करने में सारे मनुष्य सदा निपुण होते हैं पर वे अपने दोषों को नहीं जानते हैं, यदि वे जानते भी हैं तो अनजान बने रहते हैं। सभी देशों में अपने धर्म का पालन करने वाले राजा लोग भी होते हैं, जो बुरे आचरण वाले लोगों का दमन भी करते हैं। हर जगह धार्मिक लोग भी निवास करते हैं। कर्ण! किसी एक देश में रहने से ही वहाँ के सारे लोग पाप कर्म नहीं करते। उसी देश में ऐसे उत्तम चरित्र वाले व्यक्ति भी होते हैं, कि देवता भी उनकी बराबरी नहीं कर सकते।

ततो दुर्योधनो राजा कर्णशल्याववारयत्।
सखिभावेन राधेयं शल्यं स्वाञ्जल्यकेन च॥ ५॥
कर्णोऽपि नोत्तरं प्राह शल्योऽप्यभिमुखः परान्।
ततः प्रहस्य राधेयः पुनर्याहीत्यचोदयत्॥ ६॥

तब राजा दुर्योधन ने कर्ण और शल्य दोनों को रोक दिया। राधापुत्र को उसने मित्रता के भाव से समझाया और शल्य से हाथ जोड़कर प्रार्थना की। तब कर्ण ने कोई उत्तर नहीं दिया और शल्य ने भी शत्रुओं की तरफ मुख फेर लिया। फिर राधापुत्र ने हँसकर शल्य को पुनः चलने की आज्ञा देते हुए कहा कि चलिये।

बत्तीसवाँ अध्याय : सत्रहवें दिन सेनाओं की व्यूहरचना।

धृतराष्ट्र उवाच

कथं संजय राधेयः प्रत्यव्यूहत पाण्डवान्।
कथं चैव महद् युद्धं प्रावर्तत सुदारुणम्॥ १॥

संजय उवाच

कृपः शारद्वतो राजन् मागधाश्च तरस्विनः।
सात्वतः कृतवर्मा च दक्षिणं पक्षमाश्रिताः॥ २॥
तेषां प्रपक्षे शकुनिरुलूकश्च महारथः।
सादिभिर्विमलप्रासैस्त- वानीकमरक्षताम्॥ ३॥
गान्धारिभिरसम्भ्रान्तैः पर्वतीयैश्च दुर्जयैः।
शलभानामिव व्रातैः पिशाचैरिव दुर्दृशैः॥ ४॥

तब धृतराष्ट्र ने पूछा कि हे संजय! राधापुत्र कर्ण ने पाण्डवों का सामना करने के लिये किस प्रकार का व्यूह बनाया? और वह अत्यन्त दारुण महान् युद्ध कैसे प्रारम्भ हुआ? तब संजय ने कहा कि हे राजन्! शरद्वान् पुत्र कृपाचार्य, वेगवान् मागधवीर और सात्वतवंशी कृतवर्मा ये सेना के दायें पक्ष की तरफ खड़े हुए। उनके प्रपक्ष में महारथी शकुनि और उलूक जगमगाते हुए प्रासों से युक्त घुड़सवारों के साथ खड़े हुए आपकी सेना की रक्षा कर रहे थे। उनके साथ गान्धारदेश के न घबराने वाले और दुर्जय योद्धा थे, जिनके समूह टिड्डीदल के समान थे और जिनकी तरफ देखना भी कठिन था।

चतुस्त्रिंशत्सहस्त्राणि रथानामनिवर्तिनाम्।
संशप्तका युद्धशौण्डा वामं पार्श्वमपालयन्॥ ५॥
समन्वितास्तव सुतैः कृष्णार्जुनजिघांसवः।
तेषां प्रपक्षाः काम्बोजाः शकाश्च यवनैः सह॥ ६॥
निदेशात् सूतपुत्रस्य सरथाः साश्वपत्तयः।
आह्वयन्तोऽर्जुनं तस्थुः केशवं च महाबलम्॥ ७॥
रक्षमाणैः सुसंरब्धैः पुत्रैः शस्त्रभृतां वरः।
वाहिनीं प्रमुखे वीरः सम्प्रकर्षन्नशोभत॥ ८॥
अभ्यवर्तन्महाबाहुः सूर्यवैश्वानरप्रभः।

चौबीस हजार, युद्ध करने में चतुर, पीछे न हटने

वाले संशप्तकरथी सेना के बायें भाग की रक्षा कर रहे थे। आपके पुत्रों के साथ वे अर्जुन और कृष्ण को मार देने की इच्छा रखते थे। उनके प्रपक्ष में काम्बोज, शक और यवनयोद्धा पैदल, तथा रथों और घोड़ों के साथ सूतपुत्र के आदेश से अर्जुन को और महाबली कृष्ण को ललकारते हुए खड़े थे। सेना के प्रमुख भाग में, सूर्य और अग्नि के समान तेजस्वी, महाबाहु, शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ वीर कर्ण, अत्यन्त क्रुद्ध आपके पुत्रों द्वारा रक्षा किया जाता हुआ मानो उन सबको अपने साथ खींचता हुआ सुशोभित हो रहा था।

महाद्विपस्कन्धगतः पिङ्गाक्षः प्रियदर्शनः॥ ९॥
दुःशासनो वृतः सैन्यैः स्थितो व्यूहस्य पृष्ठतः।
तमन्वयान्महाराज स्वयं दुर्योधनो नृपः॥ १०॥
चित्रास्त्रैश्चित्रसंनाहैः सोदर्यैरभिरक्षितः।
रक्ष्यमाणो महावीर्यैः सहितैर्मद्रकेकयैः॥ ११॥
अश्वत्थामा कुरूणां च ये प्रवीरा महारथाः।
नित्यमत्ताश्च मातङ्गाः शूरैर्म्लेच्छैः समन्विताः॥ १२॥
अन्वयुस्तद् रथानीकं क्षरन्त इव तोयदाः।

प्रियदर्शन और पिंगल नेत्रों वाला दुश्शासन, एक विशाल हाथी के कन्धों पर बैठा हुआ और सेनाओं से घिरा हुआ व्यूह के पीछे विद्यमान था। हे महाराज! दुश्शासन के पीछे विचित्र कवच और अस्त्र धारण किये हुए अपने भाइयों से सुरक्षित स्वयं राजा दुर्योधन चल रहा था। मद्र और केकयदेश के महापराक्रमी योद्धा उसकी रक्षा कर रहे थे। अश्वत्थामा, कौरवसेना के प्रमुख वीर, महारथी, म्लेच्छ वीरों से युक्त सदा मस्त रहने वाले हाथी, बादलों के समान मद की वर्षा करते हुए रथसेना के पीछे चल रहे थे।

तेषां पदातिनागानां पादरक्षाः सहस्रशः॥ १३॥
पट्टिशासिधराः शूरा बभूवुरनिवर्तिनः।
बार्हस्पत्यः सुविहितो नायकेन विपश्चितः॥ १४॥
नृत्यतीव महाव्यूहः परेषां भयमादधत्।
तस्य पक्षप्रपक्षेभ्यो निष्पतन्ति युयुत्सवः॥ १५॥
पत्त्यश्वरथमातङ्गाः प्रावृषीव बलाहकाः।
ततः सेनामुखे कर्णं दृष्ट्वा राजा युधिष्ठिरः॥ १६॥
धनंजयममित्रघ्नमेकवीरमुवाच ह।

,युद्ध में पीछे न हटने वाले पट्टिश और तलवार धारण किये हुए शूरवीर उन पैदल और हाथियों के पृष्ठरक्षक थे। विद्वान् सेनापति कर्ण के द्वारा बृहस्पति के सिद्धान्त के अनुसार अच्छी तरह से बनाया हुआ वह महान् व्यूह मानो नृत्य सा कर रहा था और शत्रुओं के हृदय में भय की स्थापना कर रहा था। उसके पक्ष और प्रपक्षों से निकलते हुए युद्ध के इच्छुक पैदल, रथ, घोड़े और हाथी ऐसे लग रहे थे, मानो वर्षाऋतु में बादल प्रकट होते हैं। तब सेना के मुख पर कर्ण को देखकर युधिष्ठिर ने शत्रुसूदन अद्वितीय वीर अर्जुन से कहा कि—

पश्यार्जुन महाव्यूहं कर्णेन विहितं रणे॥ १७॥
युक्तं पक्षैः प्रपक्षैश्च परानीकं प्रकाशते।
तदेतद् वै समालोक्य प्रत्यमित्रं महद् बलम्॥ १८॥
यथा नाभिभवत्यस्मांस्तथा नीतिर्विधीयताम्।
एवमुक्तोऽर्जुनो राज्ञा प्राञ्जलिर्नृपमब्रवीत्॥ १९॥
यथा भवानाह तथा तत् सर्वं न तदन्यथा।
यस्त्वस्य विहितो घातस्तं करिष्यामि भारत॥ २०॥
प्रधानवध एवास्य विनाशस्तं करोम्यहम्।

हे अर्जुन! युद्धक्षेत्र में कर्ण के द्वारा बनाये हुए इस महान् व्यूह को देखो। इस व्यूह के पक्ष और प्रपक्षों से युक्त यह शत्रुओं की सेना सुशोभित हो रही है। अब तुम शत्रुओं की इस विशाल सेना को देखकर, जिसप्रकार से यह हमें पराजित न कर सके ऐसी नीति बनाओ। तब राजा के द्वारा ऐसा कहे जाने पर अर्जुन ने हाथ जोड़कर कहा कि जैसा आपने कहा है, सब कुछ ऐसा ही है, उससे भिन्न नहीं है। हे भारत! इसके विनाश का जो उपाय बताया गया है, मैं अब वही करूँगा। प्रधान का वध ही इसे विनष्ट करने का उपाय है, मैं वही करता हूँ।

युधिष्ठिर उवाच

तस्मात् त्वमेव राधेयं भीमसेनः सुयोधनम्॥ २१॥
वृषसेनं च नकुलः सहदेवोऽपि सौबलम्।
दुःशासनं शतानीको हार्दिक्यं शिनिपुङ्गवः॥ २२॥
धृष्टद्युम्नो द्रोणसुतं स्वयं योत्स्याम्यहं कृपम्।
द्रौपदेया धार्तराष्ट्राञ्शिष्टान् सह शिखण्डिना॥ २३॥
ते ते च तांस्तानहितानस्माकं घ्नन्तु मामकाः।
इत्युक्तो धर्मराजेन तथेत्युक्त्वा धनंजय।
व्यादिदेश स्वसैन्यानि स्वयं चागाच्चमूमुखम्॥ २४॥

तब युधिष्ठिर ने कहा कि हे अर्जुन! तब तुम ही राधापुत्र के साथ, भीमसेन दुर्योधन के साथ, नकुल

वृषसेन के साथ, सहदेव शकुनि के साथ, शतानीक दुश्शासन के साथ और मैं स्वयं कृपाचार्य के साथ युद्ध करूँगा। सात्यकि कृतवर्मा के साथ, धृष्टद्युम्न अश्वत्थामा के साथ युद्ध करेंगे। द्रौपदी के पुत्र शिखण्डी के साथ शेष बचे हुए धृतराष्ट्र के पुत्रों के साथ युद्ध करें। इसी तरह से हमारे दूसरे विभिन्न सैनिक, शत्रु के दूसरे सैनिकों का विनाश करें। धर्मराज के द्वारा ऐसा कहे जाने पर अर्जुन ने बहुत अच्छा, ऐसा ही होगा, यह कहकर अपनी सेनाओं को आदेश दिया और स्वयं भी सेना के मुहाने पर जा पहुँचे।

तेतीसवाँ अध्याय : दोनों सेनाओं का भयंकर युद्ध।

अथ संशप्तकाः पार्थमभ्यधावन् वधैषिणः।
विजये धृतसंकल्पा मृत्युं कृत्वा निवर्तनम्॥ १॥
तन्नराश्वौघबहुलं मत्तनागरथाकुलम्।
पत्तिमच्छूरवीरौघं द्रुतमर्जुनमार्दयत्॥ २॥
रथानश्वान् ध्वजान् नागान् पत्तीन् रणगतानपि।
इषून् धनूंषि खड्गांश्च चक्राणि च परश्वधान्॥ ३॥
सायुधानुद्यतान् बाहून् विविधान्यायुधानि च।
चिच्छेद द्विषतां पार्थः शिरांसि च सहस्रशः॥ ४॥

तब उसके पश्चात् विजय के लिये संकल्प किये हुए, मृत्यु को ही युद्ध से लौटने का आधार बनाकर संशप्तकों ने अर्जुन के वध की इच्छा से उसके ऊपर आक्रमण कर दिया। जिसमें पैदलों और घोड़ों के बहुत समूह थे, जो मस्त हाथियों से भरा हुआ था, उस पैदल सैनिकों से युक्त शूरवीरों के समुदाय ने तुरन्त अर्जुन को पीड़ित करना आरम्भ कर दिया। तब अर्जुन ने युद्धक्षेत्र में आये हुए उन शत्रुओं के रथों, ध्वजों, हाथियों, घोड़ों और पैदलों को तथा उनके धनुषबाणों को, तलवारों, चक्रों, फरसों, हथियारों के साथ उठी हुई बाहों और सिरों को हजारों की संख्या में काट गिराया।

अथ पञ्चालचेदीनां सृंजयानां च मारिष।
त्वदीयैः सह संग्राम आसीत् परमदारुणः॥ ५॥
कृपश्च कृतवर्मा च शकुनिश्चापि सौबलः।
हृष्टसेनाः सुसंरब्धा रथानीकप्रहारिणः॥ ६॥
कोसलैः काश्यमत्स्यैश्च कारूषैः केकयैरपि।
शूरसेनैः शूरवरैर्युयुधुर्युद्धदुर्मदाः॥ ७॥

हे मान्यवर! पाँचालों और सृंजयों का आपकी सेना के साथ वह संग्राम अत्यन्त दारुण था। कृपाचार्य, कृतवर्मा, और सुबलपुत्र शकुनि ये उत्साह से युक्त सेनावाले, अत्यन्त क्रोध में भरे हुए, रथसेना के साथ प्रहार करने वाले और युद्ध में दुर्मद वीर कोसल, काशी, मत्स्य, कारूष, केकय, और शूरसेन देश के शूरवीरों के साथ युद्ध करने लगे।

दुर्योधनोऽथ सहितो भ्रातृभिर्भरतर्षभ।
गुप्तः कुरुप्रवीरैश्च मद्राणां च महारथैः॥ ८॥
पाण्डवैः सह पञ्चालैश्चेदिभिः सात्यकेन च।
युध्यमानं रणे कर्णं कुरुवीरो व्यपालयत्॥ ९॥
कर्णोऽपि निशितैर्बाणैर्विनिहत्य महाचमूम्।
प्रमृद्य च रथश्रेष्ठान् युधिष्ठिरमपीडयत्॥ १०॥
एवं मारिष संग्रामो नरवाजिगजक्षयः।
कुरूणां सृञ्जयानां च देवसुरसमोऽभवत्॥ ११॥

हे भरतश्रेष्ठ! कुरुवीर दुर्योधन अपने भाइयों के साथ, कौरवप्रमुख वीरों तथा मद्रदेशीय महारथियों से सुरक्षित होकर पाण्डव, पाँचाल, चेदिदेशी वीरों तथा सात्यकि के साथ युद्ध करते हुए कर्ण की रक्षा करने लगा। कर्ण भी अपने तीखे बाणों से उस विशाल सेना को हताहत कर तथा श्रेष्ठ रथियों को रौंदकर, युधिष्ठिर को पीड़ा देने लगा। हे मान्यवर! इसप्रकार पैदल, हाथी और घोड़ों का विनाश करने वाला, कौरवों और सृंजयों का वह संग्राम देवासुर संग्राम के समान हो रहा था।

चौंतीसवाँ अध्याय : कर्ण द्वारा संहार, युधिष्ठिर पर आक्रमण। भीम द्वारा कर्णपुत्र भानुसेन का वध, नकुल और सात्यकि से वृषसेन का युद्ध।

धृष्टद्युम्नमुखान् पार्थान् दृष्ट्वा कर्णो व्यवस्थितान्।
समभ्यधावत्त्वरितः पञ्चालाञ्छत्रुकर्षिणः॥ १॥
तं तूर्णमभिधावन्तं पञ्चाला जितकाशिनः।
प्रत्युद्ययुर्महात्मानं हंसा इव महार्णवम्॥ २॥
ततः शङ्खसहस्राणां निःस्वनो हृदयङ्गमः।
प्रादुरासीदुभयतो भेरीशब्दश्च दारुणः॥ ३॥
नानाबाणनिपाताश्च द्विपाश्वरथनिःस्वनः।
सिंहनादश्च वीराणामभवद् दारुणस्तदा॥ ४॥

तब धृष्टद्युम्न आदि पाण्डव वीरों को युद्ध में डटा हुआ देखकर कर्ण ने शीघ्रता से उन शत्रुओं का संहार करनेवाले पाँचालों पर आक्रमण किया। उसे शीघ्रता से आक्रमण करते हुए देखकर, विजय की इच्छावाले पाँचाल उस मनस्वी की तरफ ऐसे बढ़े जैसे हंस महासागर की तरफ बढ़ते हैं। तब दोनों तरफ हृदय को कम्पित कर देने वाली हजारों शंखों की ध्वनि तथा भेरी का दारुण शब्द प्रकट होने लगा। फिर तरहतरह के बाण गिरने लगे, हाथियों की चिंघाड़, घोड़ों की हिनहिनाहट तथा रथों की घर्घराहट की आवाजें और वीरों के सिंहनादों का दारुण स्वर वहाँ गूँजने लगा।

अथ कर्णो भृशं क्रुद्धः शीघ्रमस्त्रमुदीरयन्।
जघान पाण्डवीं सेनामासुरीं मघवानिव॥ ५॥
स पाण्डवबलं कर्णः प्रविश्य विसृजञ्छरान्।
प्रभद्रकाणां प्रवरानहनत् सप्तसप्ततिम्॥ ६॥
ततः सुपुङ्खैर्निशितै रथश्रेष्ठो रथेषुभिः।
अवधीत् पञ्चविंशत्या पञ्चालान् पञ्चविंशतिम्॥ ७॥
सुवर्णपुङ्खैर्नाराचैः परकायविदारणैः।
चेदिकानवधीद् वीरः शतशोऽथ सहस्रशः॥ ८॥

फिर कर्ण अत्यन्त क्रुद्ध होकर, शीघ्रता से अस्त्रों को चलाता हुआ पाण्डव सेना का ऐसे ही संहार करने लगा जैसे इन्द्र ने आसुरी सेना का संहार किया था। कर्ण ने पाण्डव सेना में प्रवेश कर बाणों को छोड़ते हुए प्रभद्रकों के श्रेष्ठ सतत्तर वीरों को मार दिया। फिर उस श्रेष्ठ रथी ने अच्छे पंखवाले तीखे, रथ से चलाये गये पच्चीस बाणों से पच्चीस पाँचालवीरों को मार दिया। शत्रुओं के शरीरों को विदीर्ण करने वाले, सुनहरे पंखवाले नाराचों से उस वीर ने सैकड़ों और हजारों चेदि वीरों को मार दिया।

तं तथा समरे कर्म कुर्वाणमतिमानुषम्।
परिवव्रुर्महाराज पञ्चालानां रथव्रजाः॥ ९॥
ततः संधाय विशिखान् पञ्च भारत दुःसहान्।
पञ्चालानवधीत् पञ्च कर्णो वैकर्तनो वृषः॥ १०॥
भानुदेवं चित्रसेनं सेनाविन्दुं च भारत।
तपनं शूरसेनं च पञ्चालानहनद् रणे॥ ११॥
पञ्चालेषु च शूरेषु वध्यमानेषु सायकैः।
हाहाकारो महानासीत् पञ्चालानां महाहवे॥ १२॥

हे महाराज! इसप्रकार युद्धस्थल में अतिमानवीय कर्म करते हुए उसे पाँचालरथियों ने घेर लिया। हे भारत! तब सूर्यपुत्र कर्ण ने पाँच दुःसह बाणों का संधानकर पाँच पाँचालवीरों भानुदेव, चित्रसेन, सेनाविन्दु, तपन और शूरसेन का वध कर दिया। उस महान् युद्ध में उनके मारे जाने पर पाँचालों की सेना में तब महान् हा हा कार मच गया।

परिवव्रुर्महाराज पञ्चालानां रथा दश।
पुनरेव च तान् कर्णो जघानाशु पतत्रिभिः॥ १३॥
चक्ररक्षौ तु कर्णस्य पुत्रौ मारिष दुर्जयौ।
सुषेणः सत्यसेनश्च त्यक्त्वा प्राणानयुध्यताम्॥ १४॥
पृष्ठगोप्ता तु कर्णस्य ज्येष्ठः पुत्रो महारथः।
वृषसेनः स्वयं कर्णं पृष्ठतः पर्यपालयत्॥ १५॥
धृष्टद्युम्नः सात्यकिश्च द्रौपदेया वृकोदरः।
जनमेजयः शिखण्डी च प्रवीराश्च प्रभद्रकाः॥ १६॥
चेदिकेकयपाञ्चाला यमौ मत्स्याश्च दंशिताः।
समभ्यधावन् राधेयं जिघांसन्तः प्रहारिणम्॥ १७॥

हे महाराज! तब दस पाँचाल रथियों ने कर्ण को घेर लिया। पर कर्ण ने पुनः उन्हें तुरन्त बाणों से मार गिराया। हे मान्यवर! कर्ण के चक्ररक्षक उसके दो दुर्जय पुत्र सुषेण और सत्यसेन थे, जो अपने प्राणों का मोह छोड़कर युद्ध कर रहे थे। उसका पृष्ठरक्षक बना हुआ कर्ण का सबसे बड़ा पुत्र महारथी वृषसेन स्वयं कर्ण के पीछे ठहरकर रक्षा कर रहा था। तब उस प्रहार करनेवाले राधापुत्र कर्ण को मारने की

इच्छा से धृष्टद्युम्न, सात्यकि, द्रौपदी के पुत्र, भीमसेन, जनमेजय, शिखण्डी, प्रमुख प्रभद्रक वीर, चेदि, केकय और पाँचालवीर तथा नकुल, सहदेव और कवचधारी मत्स्यवीरों ने उसके ऊपर आक्रमण कर दिया।

त एनं विविधैः शस्त्रैः शरधाराभिरेव च।
अभ्यवर्षन् विमर्दन्तं प्रावृषीवाम्बुदा गिरिम्॥ १८॥
पितरं तु परीप्सन्तः कर्णपुत्राः प्रहारिणः।
त्वदीयाश्चापरे राजन् वीरा वीरानवारयन्॥ १९॥
सुषेणो भीमसेनस्य च्छित्त्वा भल्लेन कार्मुकम्।
नाराचैः सप्तभिर्विद्ध्वा हृदि भीमं ननाद ह॥ २०॥
अथान्यद् धनुरादाय सुदृढं भीमविक्रमः।
सज्यं वृकोदरः कृत्वा सुषेणस्याच्छिनद् धनुः॥ २१॥

जैसे बादल वर्षाऋतु में पर्वत पर जलधाराओं की वर्षा करते हैं, वैसेही अपनी सेना का मर्दन करनेवाले कर्ण पर वे योद्धा अनेक प्रकार के हथियारों से बाणों की धाराएँ बरसाने लगे। हे राजन्! तब अपने पिता को बचाने की इच्छावाले, प्रहारकुशल कर्ण के पुत्रों और आपके भी दूसरे वीरों ने उनवीरों को रोका। तब सुषेण ने भल्ल से भीमसेन के धनुष को काटकर तथा उसकी छाती पर सात नाराचों से प्रहार कर भयंकर गर्जना की। तब दूसरे अत्यन्तदृढ़ धनुष को लेकर भयंकर पराक्रमवाले भीम ने उस पर प्रत्यंचा चढ़ाकर सुषेण के धनुष को काट दिया।

विव्याध चैनं दशभिः क्रुद्धो नृत्यन्निवेषुभिः।
कर्णं च तूर्णं विव्याध त्रिसप्तत्या शितैः शरैः॥ २२॥
भानुसेनं च दशभिः साश्वसूतायुधध्वजम्।
पश्यतां सुहृदां मध्ये कर्णपुत्रमपातयत्॥ २३॥
क्षुरप्रणुन्नं तत्तस्य शिरश्चन्द्रनिभाननम्।
शुभदर्शनमेवासीन्नल- भ्रष्टमिवाम्बुजम्॥ २४॥
हत्वा कर्णसुतं भीमस्तावकान् पुनरार्दयत्।
कृपहार्दिक्ययोश्छित्त्वा चापौ तावप्यथार्दयत्॥ २५॥

फिर क्रोध में भरकर नृत्य सा करते हुए उसने दस बाणों से उसे बींध दिया और शीघ्रता से कर्ण पर भी तिहत्तर तीखे बाणों की वर्षाकर उसे घायल कर दिया। फिर भीम ने हितैषी मित्रों के बीच में, उनके देखते हुए दस बाणों से घोड़ों, सारथि, आयुधों और ध्वज के सहित कर्ण के पुत्र भानुसेन को मारकर गिरा दिया। क्षुर से कटा हुआ उसका चन्द्रमा के समान मुखवाला सिर नाल से कटे कमल के समान सुन्दर लग रहा था। भीम ने कर्ण के पुत्र को मारकर आपके सैनिकों को पीड़ित करना आरम्भ कर दिया। उसने कृपाचार्य और कृतवर्मा के धनुषों को काटकर उन्हें भी चोट पहुँचायी।

दुःशासनं त्रिभिर्विद्ध्वा शकुनिं षड्भिरायसैः।
उलूकं च पतत्रिं च चकार विरथावुभौ॥ २६॥
सुषेणं च हतोऽसीति ब्रुवन्नादत्त सायकम्।
तमस्य कर्णश्चिच्छेद त्रिभिश्चैनमताडयत्॥ २७॥
अथान्यं परिजग्राह सुपर्वाणं सुतेजनम्।
सुषेणायासृजद् भीमस्तमप्यस्याच्छिनद् वृषः॥ २८॥
पुनः कर्णस्त्रिसप्तत्या भीमसेनमथेषुभिः।
पुत्रं परीप्सन् विव्याध क्रूरं क्रूरैर्जिघांसया॥ २९॥

भीम ने दुःशासन को तीन और शकुनि को छः लोहे के बाणों से बींधकर उलूक और पतत्रि दोनों को रथों से रहित कर दिया। फिर सुषेण पर अब तू मारा गया यह कहते हुए एक भयानक बाण का सन्धान किया पर कर्ण ने उसके बाण को काट दिया और उस पर तीन बाणों की चोट की। तब भीम ने दूसरे अच्छी गाँठवाले और अच्छे तीखे बाण को सुषेण पर छोड़ा, पर कर्ण ने उस को भी काट दिया। फिर पुत्र को बचाने के इच्छुक कर्ण ने क्रूर भीम को मारने की इच्छा से उस पर तिहत्तर बाणों की वर्षाकर उसे घायल कर दिया।

सुषेणस्तु धनुर्गृह्य भारसाधनमुत्तमम्।
नकुलं पञ्चभिर्बाणैर्बाह्वोरुरसि चार्पयत्॥ ३०॥
नकुलस्तं तु विंशत्या विद्ध्वा भारसहैर्दृढैः।
ननाद बलवन्नादं कर्णस्य भयमादधत्॥ ३१॥
तं सुषेणो महाराज विद्ध्वा दशभिराशुगैः।
चिच्छेद च धनुः शीघ्रं क्षुरप्रेण महारथः॥ ३२॥
अथान्यद् धनुरादाय नकुलः क्रोधमूर्छितः।
सुषेणं नवभिर्बाणैर्वारयामास संयुगे॥ ३३॥

फिर सुषेण ने भार को सहन करनेवाले दूसरे उत्तम धनुष को लेकर पाँच बाणों से नकुल की बाहों और छाती पर प्रहार किया। तब नकुल ने भार सहन करनेवाले दृढ़ बीस बाणों से उसे घायल कर जोर से गर्जना की, जिससे कर्ण के मन में भय हो गया। हे महाराज! तब महारथी सुषेण ने शीघ्रगामी दस बाणों से उसे बींधकर शीघ्रता से उसके धनुष

को क्षुरप्र से काट दिया। तब क्रोध से मूर्च्छित होते हुए नकुल ने दूसरे धनुष को लेकर सुषेण को युद्धक्षेत्र में नौ बाणों से रोका।

आजघ्ने सारथिं चास्य सुषेणं च ततस्त्रिभिः।
चिच्छेद चास्य सुदृढं धनुर्भल्लैस्त्रिभिस्त्रिधा॥ ३४॥
अथान्यद् धनुरादाय सुषेणः क्रोधमूर्छितः।
आविध्यन्नकुलं षष्ट्या सहदेवं च सप्तभिः॥ ३५॥
सात्यकिर्वृषसेनस्य सूतं हत्वा त्रिभिः शरैः।
धनुश्चिच्छेद भल्लेन जघानाश्वांश्च सप्तभिः॥ ३६॥
ध्वजमेकेषुणोन्मथ्य त्रिभिस्तं ह्यताडयत्।

फिर तीन बाणों से नकुल ने सुषेण को और उसके सारथि को घायल किया और तीन भल्लों से उसके धनुष के तीन टुकड़े कर दिये। तब क्रोध से मूर्च्छित हुए सुषेण ने दूसरे धनुष को लेकर नकुल के ऊपर साठ तथा सहदेव पर सात बाणों को छोड़कर उन्हें घायल किया। उधर सात्यकि ने तीन बाणों से वृषसेन के सारथि को मारकर एक भल्ल से उसके धनुष को काट दिया। सात बाणों से उसके घोड़ों को मार दिया तथा एक बाण से उसके ध्वज को काटकर तीन बाणों से उसकी छाती में चोट पहुँचायी।

अथावसन्नः स्वरथे मुहूर्तात् पुनरुत्थितः॥ ३७॥
स रणे युयुधानेन विसूताश्वरथध्वजः।
कृतो जिघांसुः शैनेयं खड्गचर्मधृगभ्ययात्॥ ३८॥
तस्य चापततः शीघ्रं वृषसेनस्य सात्यकिः।
वाराहकर्णैर्दशभिर- विध्यदसिचर्मणी॥ ३९॥
दुःशासनस्तु तं दृष्ट्वा विरथं व्यायुधं कृतम्।
आरोप्य स्वरथं तूर्णमपोवाह रणातुरम्॥ ४०॥

तब युद्ध में सात्यकिद्वारा बिना रथ, सारथि, ध्वज, और घोड़ों के होकर वृषसेन दो घड़ीतक अपने रथ पर शिथिल सा बैठा रहा। फिर उठकर वह ढाल और तलवार लेकर सात्यकि को मार डालने की इच्छा से आगे बढ़ा। तब सात्यकि ने उस आगे बढ़ते हुए वृषसेन की ढाल और तलवार को शीघ्रता से वाराहकर्ण नाम के दस बाणों से काट दिया। तब दुश्शासन ने उसे बिना रथ का, बिना हथियारों का तथा युद्ध में बेचैन देखकर अपने रथपर बैठा लिया और शीघ्रता से उसे युद्धक्षेत्र से दूर लेगया।

अथान्यं रथमास्थाय वृषसेनो महारथः।
द्रौपदेयांस्त्रिसप्तत्या युयुधानं च पञ्चभिः॥ ४१॥
भीमसेनं चतुःषष्ट्या सहदेवं च पञ्चभिः।
नकुलं त्रिंशता बाणैः शतानीकं च सप्तभिः॥ ४२॥
शिखण्डिनं च दशभिर्धर्मराजं शतेन च।
एतांश्चान्यांश्च राजेन्द्र प्रवीराञ्जयगृद्धिनः॥ ४३॥
अभ्यर्दयन्महेष्वासः कर्णपुत्रो विशाम्पते।
कर्णस्य युधि दुर्धर्षस्ततः पृष्ठमपालयत्॥ ४४॥

फिर महारथी वृषसेन दूसरे रथपर बैठकर आया और उसने द्रौपदीपुत्रों पर तिहत्तर, सात्यकि पर पाँच, भीमसेन पर चौसठ, सहदेव पर पाँच, नकुल पर तीस, शतानीक पर सात, शिखण्डी पर दस और धर्मराज पर सौ बाणों की वर्षा की। हे प्रजानाथ! राजेन्द्र! इन और दूसरे जय के इच्छुक श्रेष्ठ वीरों पर दुर्धर्ष, महाधनुर्धर कर्णपुत्र बाणवर्षाकर युद्धस्थल में पुनः कर्ण की रक्षा करने लगा।

दुःशासनं च शैनेयो नवैर्नवभिरायसैः।
विसूताश्वरथं कृत्वा ललाटे त्रिभिरार्पयत्॥ ४५॥
स त्वन्यं रथमास्थाय विधिवत् कल्पितं पुनः।
युयुधे पाण्डुभिः सार्धं कर्णस्याप्याययन् बलम्॥ ४६॥
धृष्टद्युम्नस्ततः कर्णमविध्यद् दशभिः शरैः।
द्रौपदेयास्त्रिसप्तत्या युयुधानस्तु सप्तभिः॥ ४७॥
भीमसेनश्चतुः षष्ट्या सहदेवश्च सप्तभिः।
नकुलस्त्रिंशता बाणैः शतानीकस्तु सप्तभिः॥ ४८॥
शिखण्डी दशभिर्वीरो धर्मराजः शतेन तु।

फिर सात्यकि ने लोहे के नौ नये बाणों से दुश्शासन को बिना सारथि, रथ, और घोड़ों का करके तीन बाण उसके सिर में मारे। तब दुश्शासन विधि के अनुसार सजे हुए दूसरे रथपर चढ़कर फिर कर्ण के बल को बढ़ाता हुआ पाण्डुपुत्रों के साथ युद्ध करने लगा। फिर धृष्टद्युम्न ने कर्ण को दस बाणों से बींधा। द्रौपदी पुत्रों ने तिहत्तर, सात्यकि ने सात, भीमसेन ने चौसठ, सहदेव ने सात, नकुल ने तीस, शतानीक ने सात, शिखण्डी ने दस और वीर धर्मराज ने दस बाणों की कर्ण पर वर्षा की।

एते चान्ये च राजेन्द्र प्रवीरा जयगृद्धिनः॥ ४९॥
अभ्यर्दयन् महेष्वासं सूतपुत्रं महामृधे।
तान् सूतपुत्रो विशिखैर्दशभिर्दशभिः शरैः॥ ५०॥
रथेनानुचरन् वीरः प्रत्यविध्यदरिंदमः।

तत्रास्त्रवीर्यं कर्णस्य लाघवं च महात्मनः॥ ५१॥
अपश्याम महाभाग तदद्भुतमिवाभवत्।
न ह्याददानं ददृशुः संदधानं च सायकान्॥ ५२॥
विमुञ्चन्तं च संरम्भादपश्यन्त हतानरीन्।

हे राजेन्द्र! इन्होंने तथा दूसरे विजय के इच्छुक श्रेष्ठ योद्धाओं ने उस महान् युद्ध में महाधनुर्धर सूतपुत्र को पीड़ित किया। तब रथ से विचरनेवाले उस वीर शत्रुदमन सूतपुत्र ने भी उन्हें प्रत्येक को दस दस बाणों से प्रत्युत्तर में घायल किया। हे महाभाग! वहाँ हमने मनस्वी कर्ण के अस्त्रों के पराक्रम और फुर्ती को देखा। वह सब अद्भुत सा प्रतीत होता था। लोग उसे न तो बाणों को लेते हुए और न सन्धान करते देखपाते थे। वह कब क्रोधपूर्वक उन्हें छोड़ देता था, यह भी नहीं देखपाते थे। वे तो केवल शत्रुओं को मरता हुआ ही देख पाते थे।

नृत्यन्निव हि राधेयश्चापहस्तः प्रतापवान्॥ ५३॥
यैर्विद्धः प्रत्यविद्ध्यत् तानेकैकं त्रिगुणैः शरैः।
स रथांस्त्रिशतं हत्वा चेदीनामनिवर्तिनाम्॥ ५४॥
राधेयो निशितैर्बाणैस्ततोऽभ्यार्च्छद् युधिष्ठिरम्।
ततस्ते पाण्डवा राजञ्शिखण्डी च ससात्यकिः॥ ५५॥
राधेयात् परिरक्षन्तो राजानं पर्यवारयन्।
तथैव तावकाः सर्वे कर्णं दुर्वारणं रणे।
यत्ताः शूरा महेष्वासाः पर्यरक्षन्त सर्वशः॥ ५६॥

वह प्रतापी राधापुत्र, धनुष को हाथ में लेकर नृत्य सा कर रहा था। जिसने उसे एकबाण से बींधा, उसे उसने तीन बाणों से बदले में बींध दिया। फिर युद्ध में पीछे न हटनेवाले चेदिदेश के तीन सौ रथियों को तीखे बाणों से मारकर कर्ण ने युधिष्ठिर पर आक्रमण किया। हे राजन्! तब पाण्डवयोद्धा शिखण्डी और सात्यकिसहित, राजा को घेरकर उनकी रक्षा करने लगे। उसीप्रकार रणक्षेत्र में दुर्दमनीय कर्ण की आपके सारे शूरवीर महाधनुर्धर, प्रयत्नपूर्वक सबतरफ से रक्षा करने लगे।

पैंतीसवाँ अध्याय : कर्ण का युधिष्ठिर से युद्ध। युधिष्ठिर की हार।

नानायुधसहस्राणि प्रेरितान्यरिभिर्वृषः।
छित्त्वा बाणशतैरुग्रैस्तानविध्यदसम्भ्रमात्॥ १॥
निचकर्त शिरांस्येषां बाहूनूरूंश्च सूतजः।
ते हता वसुधां पेतुर्भग्नाश्चान्ये विदुद्रुवुः॥ २॥
द्राविडास्तु निषादास्तु पुनः सात्यकिं चोदिताः।
अभ्यद्रवञ्जिघांसन्तः पत्तयः कर्णमाहवे॥ ३॥
ते विबाहुशिरस्त्राणाः प्रहताः कर्णसायकैः।
पेतुः पृथिव्यां युगपच्छिन्नं शालवनं यथा॥ ४॥

हे राजन्! तब कर्ण ने शत्रुओं के चलाये हुए अनेकप्रकार के असंख्य अस्त्रों को बिना घबराहट के सैकड़ों उग्रबाणों से काटकर उन्हें भी घायल कर दिया। कर्ण ने उनके शिरों, बाहों और जांघों को काट दिया। वे मारे जाकर भूमि पर गिर पड़े या घायल होकर भाग गये। फिर सात्यकि द्वारा प्रेरित होकर द्रविड़ और निषाद पैदल सैनिकों ने युद्धस्थल में कर्ण को मारने की इच्छा से पुनः उसके ऊपर आक्रमण किया पर कर्ण के बाणों से मारे हुए वे अपनी बाहों, मस्तक और कवचों से रहित होकर एकसाथ भूमि पर ऐसे गिर पड़े जैसे कोई कटा हुआ शालवृक्षों का वन हो।

स राजगृद्धिभी रुद्धः पाण्डुपाञ्चालकेकयैः।
नाशकत् तानतिक्रान्तुं मृत्युर्ब्रह्मविदो यथा॥ ५॥
ततो युधिष्ठिरः कर्णमदूरस्थं निवारितम्।
अब्रवीत् परवीरघ्नं क्रोधसंरक्तलोचनः॥ ६॥
यद् बलं यच्च ते वीर्यं प्रद्वेषो यस्तु पाण्डुषु।
तत् सर्वं दर्शयस्वाद्य पौरुषं महदास्थितः॥ ७॥
युद्धश्रद्धां च तेऽद्याहं विनेष्यामि महाहवे।
एवमुक्त्वा महाराज कर्णं पाण्डुसुतस्तदा॥ ८॥
सुवर्णपुङ्खैर्दशभिर्विव्याधायस्मयैः शरैः।
तं सूतपुत्रो दशभिः प्रत्यविद्ध्यदरिंदमः॥ ९॥
वत्सदन्तैर्महेष्वासः प्रहसन्निव भारत।

किन्तु राजा की रक्षा करने के इच्छुक, पाण्डव, पाँचाल और केकयवीरों ने पुनः कर्ण को रोक दिया। तब कर्ण उनका उल्लंघनकर उसीप्रकार आगे नहीं बढ़ सका जैसे मृत्यु का भय ब्रह्मवेत्ताओं को पीड़ित नहीं कर पाता। तब अपने समीपही रोके हुए शत्रुवीरों

को मारनेवाले कर्ण से युधिष्ठिर ने क्रोध से लाल आँखें करके कहा कि तुम्हारे अन्दर जितना बल, पराक्रम, तथा पाण्डवों के प्रति विशिष्ट द्वेष है, तुम महान् पौरुष का आश्रय लेकर उस सबको आज दिखाओ। आज महान् युद्ध में मैं तुम्हारे युद्ध के उत्साह को नष्ट कर दूँगा। हे महाराज! यह कहकर तब पाण्डुपुत्र ने सुनहरे पंखवाले, लोहे के दसबाणों से कर्ण को बींध दिया। हे भारत! तब शत्रुदमन महाधनुर्धर सूतपुत्र ने मुस्कराते हुए दस वत्सदन्त बाणों से युधिष्ठिर को घायल कर दिया।

सोऽवज्ञाय तु निर्विद्धः सूतपुत्रेण मारिष॥ १०॥
प्रजज्वाल ततः क्रोधाद्धविषेव हुताशनः।
ततः पूर्णायतोत्कृष्टं यमदण्डनिभं शरम्॥ ११॥
मुमोच त्वरितो राजा सूतपुत्रजिघांसया।
स तु वेगवता मुक्तो बाणो वज्राशनिस्वनः॥ १२॥
विवेश सहसा कर्णं सव्ये पार्श्वे महारथम्।
स तु तेन प्रहारेण पीडितः प्रमुमोह वै॥ १३॥
स्रस्तगात्रो महाबाहुर्धनुरुत्सृज्य स्यन्दने।
गतासुरिव निश्चेताः शल्यस्याभिमुखोऽपतत्॥ १४॥

हे मान्यवर! तब सारथिपुत्र कर्णद्वारा अपमान करके घायल किये जाने पर युधिष्ठिर आहुति डालने पर प्रज्वलित अग्नि के समान क्रोध से जलने लगे। तब राजा ने सूतपुत्र को मारने की इच्छा से मृत्यु के प्रहार के समान भयंकर बाण को शीघ्रता से धनुष को पूरी तरह खींचकर उसके ऊपर छोड़ दिया। बिजली और विद्युत् के समान शब्द करनेवाला वह वेग से छोड़ा हुआ बाण सहसा महारथी कर्ण के बायें भाग में घुस गया। तब उसके प्रहार से पीड़ित होकर वह महाबाहु, रथमें, धनुष को छोड़कर, शिथिल शरीर से मूर्च्छित होगया और मरे हुए के समान अचेत होकर शल्य के सामनेही गिर पड़ा।

प्रतिलभ्य तु राधेयः संज्ञां नातिचिरादिव।
दध्रे राजविनाशाय मनः क्रूरपराक्रमः॥ १५॥
स हेमविकृतं चापं विस्फार्य विजयं महत्।
अवाकिरदमेयात्मा पाण्डवं निशितैः शरैः॥ १६॥
ततः क्षुराभ्यां पाञ्चाल्यौ चक्ररक्षौ महात्मनः।
जघान चन्द्रदेवं च दण्डधारं च संयुगे॥ १७॥
युधिष्ठिरः पुनः कर्णमविद्ध्यत् त्रिंशता शरैः।
सुषेणं सत्यसेनं च त्रिभिस्त्रिभिरताडयत्॥ १८॥
शल्यं नवत्या विव्याध त्रिसप्तत्या च सूतजम्।
तांस्तस्य गोप्तॄन् विव्याध त्रिभिस्त्रिभिरजिह्मगैः॥ १९॥

फिर जल्दीही क्रूरपराक्रमी राधापुत्र ने होश में आकर, राजा के विनाश के लिये मन में विचार किया। उस अमित आत्मा ने तब अपने स्वर्ण भूषित विजय नाम के विशाल धनुष को खींचकर पाण्डुपुत्र को तीखे बाणों से ढक दिया। फिर उस महात्मा के दोनों चक्ररक्षकों, पाँचालवीर चन्द्रदेव और दण्डधार को क्षुर नाम के बाण से युद्धक्षेत्र में मार दिया। तब युधिष्ठिर ने कर्ण पर तीस बाणों की वर्षाकर उसे घायल किया और सुषेण तथा सत्यसेन को तीनतीन बाण मारे। उन्होंने शल्य पर नब्बे और सूतपुत्र पर तिहत्तर बाणों की वर्षा की तथा उसके रक्षकों को तीनतीन सीधे जानेवाले बाण मारे।

ततः प्रहस्याधिरथिर्विधुन्वानः स कार्मुकम्।
भित्त्वा भल्लेन राजानं विद्ध्वा षष्ट्यानदत्तदा॥ २०॥
ततः संधाय नवतिं निमेषान्नतपर्वणाम्।
बिभेद कवचं राज्ञो रणे कर्णः शितैः शरैः॥ २१॥
ततः सर्वायसीं शक्तिं चिक्षेपाधिरथिं प्रति।
तां ज्वलन्तीमिवाकाशे शरैश्चिच्छेद सप्तभिः॥ २२॥
ततो बाह्वोर्ललाटे च हृदि चैव युधिष्ठिरः।
चतुर्भिस्तोमरैः कर्णं ताडयित्वानदन्मुदा॥ २३॥

तब अधिरथपुत्र ने हँसकर अपना धनुष हिलाते हुए एक भल्ल से राजा के धनुष को काटकर साठ बाणों की उनके ऊपर वर्षा कर जोर से गर्जना की। फिर पलक मारते ही उसने नब्बे झुकी गाँठवाले बाणों का सन्धानकर, तीखे बाणों से राजा के कवच को काट दिया। तब युधिष्ठिर ने अधिरथ के पुत्र पर एक सारी लोहे की बनी हुई शक्ति को फैंका, पर उस प्रज्वलित सी होती हुई शक्ति को कर्ण ने आकाश में ही सात बाणों से काट दिया। तब युधिष्ठिर ने कर्ण की बाहों, छाती, और सिर पर चार तोमरों का प्रहारकर प्रसन्नता से गर्जना की।

उद्भिन्नरुधिरः कर्णः क्रुद्धः सर्प इव श्वसन्।
ध्वजं चिच्छेद भल्लेन त्रिभिर्विव्याध पाण्डवम्॥ २४॥
इषुधी चास्य चिच्छेद रथंच तिलशोऽच्छिनत्।
एतस्मिन्नन्तरे शूराः पाण्डवानां महारथाः॥ २५॥

ववृषुः शरवर्षाणि राधेयं प्रति भारत।
सात्यकिः पञ्चविंशत्या शिखण्डी नवभिः शरैः॥ २६॥
अवर्षतां महाराज राधेयं शत्रुकर्शनम्।
शैनेयं तु ततः क्रुद्धः कर्णः पञ्चभिरायसैः॥ २७॥
विव्याध समरे राजंस्त्रिभिश्चान्यैः शिलीमुखैः।

तब शरीर से रक्त बहाते हुए कर्ण ने, क्रोध में भरकर साँप के समान साँस लेते हुए एक भल्ल से पाण्डुपुत्र के ध्वज को काट दिया, तीन से उन्हें घायल कर दिया और बाणों से उनके रथ के टुकड़े टुकड़े कर दिये। इसी बीच में हे भारत! पाण्डवों के शूरवीर महारथी कर्ण के ऊपर बाणों की वर्षा करने लगे। हे महाराज! शत्रुदमन राधापुत्र पर सात्यकि ने पच्चीस बाणों और शिखण्डी ने नौ बाणों की वर्षा की। हे राजन्! फिर कर्ण ने युद्धक्षेत्र में क्रुद्ध होकर सात्यकि को पाँच लोहे के बाणों से तथा फिर तीन दूसरे बाणों से बींध दिया।

दक्षिणं तु भुजं तस्य त्रिभिः कर्णोऽभ्यविध्यत॥ २८॥
सव्यं षोडशभिर्बाणैर्यन्तारं चास्य सप्तभिः।
अथास्य चतुरो वाहांश्च तुर्भिर्निशितैः शरैः॥ २९॥
सूतपुत्रोऽनयत् क्षिप्रं यमस्य सदनं प्रति।
अपरेणाथ भल्लेन धनुश्छित्त्वा महारथः॥ ३०॥
सारथेः सशिरस्त्राणं शिरः कायादपाहरत्।
हताश्वसूते तु रथे स्थितः स शिनिपुङ्गवः॥ ३१॥
शक्तिं चिक्षेप कर्णाय वैदूर्यमणिभूषिताम्।

फिर कर्ण ने उसकी दायींबाँह पर तीन तथा बायींबाँह पर सोलह और सारथि पर सात बाण चलाये। कर्ण ने सात्यकि के चारों घोड़ों को चार तीखे बाणों से शीघ्रही मृत्युलोक में पहुँचा दिया। फिर उस महारथी ने दूसरे भल्ल से सात्यकि के धनुष को काटकर सारथि के मस्तक को शिरस्त्राण सहित काटकर शरीर से अलग कर दिया। तब मरे सारथि और घोड़ोंवाले रथ पर खड़े होकर सात्यकि ने कर्ण पर वैदूर्यमणि से विभूषित शक्ति को चलाया।

तामापतन्तीं सहसा द्विधा चिच्छेद भारत॥ ३२॥
ततस्तान् निशितैर्बाणैः पाण्डवानां महारथान्।
न्यवारयदमेयात्मा शिक्षया च बलेन च॥ ३३॥
अर्दयित्वा शरैस्तांस्तु सिंहः क्षुद्रमृगानिव।
पीडयन् धर्मराजानं शरैः संनतपर्वभिः॥ ३४॥
अभ्यद्रवत राधेयो धर्मपुत्रं शितैः शरैः।

हे भारत! उस आती हुई शक्ति के कर्ण ने सहसा दो टुकड़े कर दिये और अपनी शिक्षा और बल के सहारेतीखे बाणोंद्वारा उस अमित आत्मावाले ने पाण्डवों के सारे महारथियों को रोक दिया। फिर जैसे सिंह छोटे मृगों को पीड़ित करे वैसे ही बाणों से उन्हें पीड़ित करके, झुकी गाँठवाले बाणों से धर्मराज को पीड़ित करते हुए राधापुत्र ने धर्मपुत्र युधिष्ठिर पर तीखे बाणों से आक्रमण कर दिया।

ततोऽपायाद् द्रुतं राजन् व्रीडन्निव नरेश्वरः॥ ३५॥
अथापयातं राजानं मत्वान्वीयुस्तमच्युतम्।
चेदिपाण्डवपाञ्चालाः सात्यकिश्च महारथः॥ ३६॥
द्रौपदेयास्तथा शूरा माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ।
ततो युधिष्ठिरानीकं दृष्ट्वा कर्णः पराङ् मुखम्॥ ३७॥
कुरुभिः सहितो वीरः प्रहृष्टः पृष्ठतोऽन्वगात्।
युधिष्ठिरस्तु कौरव्य रथमारुह्य सत्वरम्॥ ३८॥
श्रुतकीर्तेर्महाराज दृष्टवान् कर्णविक्रमम्।

हे राजन्! तब लज्जित से राजा युधिष्ठिर तुरन्त युद्धक्षेत्र से दूर जाने लगे। उन अच्युत राजा को दूर जाते देखकर चेदि, पाण्डव, पाँचालवीर, और महारथी सात्यकि, द्रौपदी के शूरवीर पुत्र और माद्री के दोनों पाण्डवपुत्र उनके पीछे चल दिये। युधिष्ठिर की सेना को युद्ध से विमुख देखकर उस वीर ने प्रसन्न होकर कौरववीरों के साथ उनका पीछा किया। हे कुरुवशी महाराज! तब युधिष्ठिर ने जल्दी से श्रुतकीर्ति के रथपर चढ़कर कर्ण के पराक्रम को देखा।

काल्यमानं बलं दृष्ट्वा धर्मराजो युधिष्ठिरः॥ ३९॥
स्वान् योधानब्रवीत् क्रुद्धो निघ्नतैतान् किमासत।
ततो राज्ञाभ्यनुज्ञाताः पाण्डवानां महारथाः॥ ४०॥
भीमसेनमुखाः सर्वे पुत्रांस्ते प्रत्युपाद्रवन्।
पुत्राणां ते महासैन्यमासीद् राजन् पराङ् मुखम्॥ ४१॥

तब युधिष्ठिर ने अपनी सेना को भगाये जाते हुए देखकर, क्रोध में भरकर अपने योद्धाओं से कहा कि अरे चुप क्यों हो? मारो इनको। तब राजा की आज्ञा पाकर भीमसेन आदि सारे पाण्डवों के महारथियों ने आपके पुत्रों पर आक्रमण कर दिया। हे राजन्! तब आक्रमण करने वाले वीरों के उस वेग को न सहन करने के योग्य देखकर आपके पुत्रों की वह विशाल सेना युद्ध से विमुख हो गयी।

छत्तीसवाँ अध्याय : भीम कर्ण युद्ध। कर्ण का भागना।

तानभिद्रवतो दृष्ट्वा पाण्डवांस्तावकं बलम्।
दुर्योधनो महाराज वारयामास सर्वशः॥ १॥
योधांश्च स्वबलं चैव समन्ताद् भरतर्षभ।
क्रोशतस्तव पुत्रस्य न स्म राजन् न्यवर्तत॥ २॥
ततः पक्षः प्रपक्षश्च शकुनिश्चापि सौबलः।
तदा सशस्त्राः कुरवो भीममभ्यद्रवन् रणे॥ ३॥
मद्रराजमुवाचेदं याहि भीमरथं प्रति।
एवमुक्तश्च कर्णेन शल्यो मद्राधिपस्तदा॥ ४॥
हंसवर्णान् हयानग्र्यान् प्रैषीद् यत्र वृकोदरः।

हे महाराज! पाण्डवों को आपकी सेना को भगाते हुए देखकर हे भरतश्रेष्ठ! दुर्योधन ने अपनी सेनाओं तथा योद्धाओं को सब तरफ से रोकने का प्रयत्न किया, पर हे राजन्! आपके पुत्र के चिल्लाने पर भी सेना पीछे नहीं लौटी। तब व्यूह के पक्ष और प्रपक्ष में खड़े हुए सुबलपुत्र शकुनि तथा दूसरे सशस्त्र कौरववीर युद्धक्षेत्र में भीमसेन पर टूट पड़े। कर्ण ने मद्रराज से कहा कि रथ को भीम के समीप ले चलो। कर्ण के ऐसा कहने पर मद्रराज शल्य ने हंस के समान श्वेत श्रेष्ठ घोड़ों को उधरही हाँका, जिधर भीम थे।

दृष्ट्वा कर्णं समायान्तं भीमः क्रोधसमन्वितः॥ ५॥
मतिं चक्रे विनाशाय कर्णस्य भरतर्षभ।
सोऽब्रवीत् सात्यकिं वीरं धृष्टद्युम्नं च पार्षतम्॥ ६॥
यूयं रक्षत राजानं धर्मात्मानं युधिष्ठिरम्।
संशयान्महतो मुक्तं कथंचित् प्रेक्षतो मम॥ ७॥
अन्तमद्य गमिष्यामि तस्य दुःखस्य पार्षत।
हन्तास्म्यद्य रणे कर्णं स वा मां निहनिष्यति॥ ८॥
संग्रामेण सुघोरेण सत्यमेतद् ब्रवीमि ते।

हे भरतश्रेष्ठ! तब कर्ण को आता हुआ देखकर क्रोध से युक्त भीम ने उसे नष्ट करने का विचार किया। उन्होंने वीर सात्यकि और द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्न से कहा कि तुम धर्मात्मा राजा युधिष्ठिर की रक्षा करो। वे आज मेरे सामने ही महान् प्राणसंकट से किसीप्रकार मुक्त हुए हैं। हे द्रुपदपुत्र! मैं उस दुःख का बदला लूँगा। आज मैं अत्यन्त भयंकर संग्रामकर युद्धस्थल में यातो कर्ण को मार दूँगा, या वह मुझे मार देगा। यह मैं सत्य कह रहा हूँ।

राजानमद्य भवतां न्यासभूतं ददानि वै॥ ९॥
तस्य संरक्षणे सर्वे यतध्वं विगतज्वराः।
एवमुक्त्वा महाबाहुः प्रायादाधिरथिं प्रति॥ १०॥
सिंहनादेन महता सर्वाः संनादयन् दिशः।
दृष्ट्वा त्वरितमायान्तं भीमं युद्धाभिनन्दिनम्॥ ११॥
सूतपुत्रमथोवाच मद्राणामीश्वरो विभुः।
पश्य कर्ण महाबाहुं संक्रुद्धं पाण्डुनन्दनम्॥ १२॥
दीर्घकालार्जितं क्रोधं मोक्तुकामं त्वयि ध्रुवम्।

मैं राजा को तुम्हारे पास धरोहर के रूप में छोड़ रहा हूँ। तुम सब निश्चिन्त होकर उसकी सुरक्षा के लिये प्रयत्न करना। ऐसा कहकर वह महाबाहु महान् सिंहनाद से सारी दिशाओं को गुँजाते हुए अधिरथपुत्र की तरफ चले। तब युद्ध का अभिनन्दन करनेवाले भीमसेन को शीघ्रता से आते देखकर मद्रदेश के शक्तिशाली राजा शल्य ने सूतपुत्र से कहा कि हे कर्ण! अत्यन्त क्रुद्ध महाबाहु पाण्डुपुत्र को देखो। अपने लम्बे समय से एकत्र किये क्रोध को निश्चय ही ये तुम्हारे ऊपर छोड़ना चाहते हैं।

ईदृशं नास्य रूपं मे दृष्टपूर्वं कदाचन॥ १३॥
अभिमन्यौ हते कर्ण राक्षसे च घटोत्कचे।
अथागतं तु सम्प्रेक्ष्य भीमं युद्धाभिनन्दिनम्॥ १४॥
अब्रवीद् वचनं शल्यं राधेयः प्रहसन्निव।
यदुक्तं वचनं मेऽद्य त्वया मद्रजनेश्वर॥ १५॥
भीमसेनं प्रति विभो तत् सत्यं नात्र संशयः।
एष शूरश्च वीरश्च क्रोधनश्च वृकोदरः॥ १६॥
निरपेक्षः शरीरे च प्राणतश्च बलाधिकः।

इससे पहले हे कर्ण! अभिमन्यु के और राक्षस घटोत्कच के मारे जाने पर भी मैंने इसका ऐसा रूप कभी नहीं देखा था। तब युद्ध का अभिनन्दन करनेवाले भीम को आते देखकर राधापुत्र ने मुस्कराते हुए शल्य से कहा कि हे मद्रदेश के शक्तिशाली राजा! तुमने जो बात भीमसेन के विषय में कही है, वह सत्य है, इसमें कोई संशय नहीं है। यह भीम शूरवीर, क्रोध करनेवाला, शरीर और प्राणों के प्रति मोह न करने वाला तथा अधिक बलशाली है।

अज्ञातवासं वसता विराटनगरे तदा॥ १७॥
द्रौपद्याः प्रियकामेन केवलं बाहुसंश्रयात्।

गूढभावं समाश्रित्य कीचकः सगणो हतः॥ १८॥
चिरकालाभिलषितो मामयं तु मनोरथः।
अर्जुनं समरे हन्यां मां वा हन्याद् धनंजयः॥ १९॥
स मे कदाचिदद्यैव भवेद् भीमसमागमात्।
निहते भीमसेने वा यदि वा विरथीकृते॥ २०॥
अभियास्यति मां पार्थस्तन्मे साधु भविष्यति।
अत्र यन्मन्यसे प्राप्तं तच्छीघ्रं सम्प्रधारय॥ २१॥

इन्होंने तब अज्ञातवास में, द्रौपदी का प्रिय करने की इच्छा से केवल हाथों के सहारे ही, छिपे वेश में कीचक को साथियों सहित मार दिया था। मेरा यह मनोरथ चिरकाल से चाहा हुआ है कि या तो युद्ध में मैं अर्जुन को मार दूँ, या वह मुझे मार दे। शायद भीमसेन से युद्ध करने पर मेरी वह इच्छा आज ही पूरी हो जाये। क्योंकि यदि मैंने भीमसेन को मार दिया या रथ से हीन कर दिया तो अर्जुन अवश्य मेरे ऊपर आक्रमण करेगा और वह मेरे लिये अच्छा होगा। अब यहाँ तुम जो उचित समझते हो, उसका जल्दी निश्चय करो।

एतच्छ्रुत्वा तु वचनं राधेयस्यामितौजसः।
उवाच वचनं शल्यः सूतपुत्रं तथागतम्॥ २२॥
अभियाहि महाबाहो भीमसेनं महाबलम्।
निरस्य भीमसेनं तु ततः प्राप्स्यसि फाल्गुनम्॥ २३॥
यस्ते कामोऽभिलषितश्चिरात् प्रभृति हृद्गतः।
स वै सम्पत्स्यते कर्ण सत्यमेतद् ब्रवीमि ते॥ २४॥

तब अमिततेजस्वी राधापुत्र के वचन सुनकर शल्य ने सूतपुत्र से यह उचित बात कही कि हे महाबाहु! तुम महाबलशाली भीमसेन के साथ युद्ध करो। भीमसेन को पराजित करके तुम अर्जुन को प्राप्त कर लोगे। तुम्हारे हृदय में बहुत दिनों से जो चाही हुई कामना विद्यमान है, वह अवश्य पूरी होगी। हे कर्ण! यह मैं तुमसे सत्य कहता हूँ।

ततो मुहूर्ताद् राजेन्द्र पाण्डवः कर्णमाद्रवत्।
समापतन्तं सम्प्रेक्ष्य कर्णो वैकर्तनो वृषः॥ २५॥
आजघान सुसंक्रुद्धो नाराचेन स्तनान्तरे।
पुनश्चैनममेयात्मा शरवर्षैरवाकिरत्॥ २६॥
स विद्धः सूतपुत्रेण छादयामास पत्रिभिः।
विव्याध निशितैः कर्णं नवभिर्नतपर्वभिः॥ २७॥
तस्य कर्णो धनुर्मध्ये द्विधा चिच्छेद पत्रिभिः।
अथैनं छिन्नधन्वानं प्रत्यविध्यत् स्तनान्तरे॥ २८॥
नाराचेन सुतीक्ष्णेन सर्वावरणभेदिना।

हे राजेन्द्र! तब थोड़ी देर में ही पाण्डुपुत्र ने कर्ण पर आक्रमण कर दिया। उन्हें आक्रमण करते देखकर अत्यत क्रुद्ध साँड के समान सूर्यपुत्र कर्ण ने उनकी छाती में नाराच से प्रहार किया। फिर उस अमितआत्मा ने बाणवर्षा से उनको भर दिया। तब सूतपुत्रद्वारा बींधे हुए भीमसेन ने भी कर्ण को बाणों से आच्छादित कर दिया और नौ तीखे झुकी गाँठवाले बाणों से उसे घायल कर दिया। फिर कर्ण ने बाणों से उनके धनुष के दो टुकड़े कर दिये और सारे आवरणों का भेदन करनेवाले अत्यन्ततीखे नाराच से उनकी छाती में प्रहार किया।

सोऽन्यत् कार्मुकमादाय सूतपुत्रं वृकोदरः॥ २९॥
राजन् मर्मसु मर्मज्ञो विव्याध निशितैः शरैः।
ननाद बलवन्नादं कम्पयन्निव रोदसी॥ ३०॥
तं कर्णः पञ्चविंशत्या नाराचेन समार्पयत्।
मदोत्कटं वने दृप्तमुल्काभिरिव कुञ्जरम्॥ ३१॥
ततः सायकभिन्नाङ्गः पाण्डवः क्रोधमूर्छितः।
संरम्भामर्षताम्राक्षः सूतपुत्रवधेप्सया॥ ३२॥
स कार्मुके महावेगं भारसाधनमुत्तमम्।
गिरीणामपि भेत्तारं सायकं समयोजयत्॥ ३३॥

हे राजन्! तब मर्मस्थलों को जाननेवाले भीमसेन ने दूसरे धनुष को लेकर तीखे बाणों से सूतपुत्र के मर्मस्थलों को बींध दिया और आकाश को कम्पित करते हुए जोरसे गर्जना की। तब जैसे वन में उत्कट मदवाले अभिमानी गजराज पर उल्काओं से प्रहार किया जाये, वैसेही कर्ण ने भीम पर पच्चीस नाराचों के प्रहार किये। फिर कर्ण के बाणों से घायल, क्रोध से मूर्च्छित, लाल आँखों वाले भीमने सूतपुत्र के वध की इच्छा से महावेगशाली भार को सहन करने में उत्तम, पर्वतों को भी फाड़ देने वाले बाण का सन्धान किया।

विकृष्य बलवच्चापमाकर्णादतिमारुतिः।
तं मुमोच महेष्वासः क्रुद्धः कर्णजिघांसया॥ ३४॥
स विसृष्टो बलवता बाणो वज्राशनिस्वनः।
अदारयद् रणे कर्णं वज्रवेगो यथाचलम्॥ ३५॥
स भीमसेनाभिहतः सूतपुत्रः कुरूद्वह।
निषसाद रथोपस्थे विसंज्ञः पृतनापतिः॥ ३६॥

रुधिरेणावसिक्ताङ्गो गतासुवदरिंदमः।
एतस्मिन्नन्तरे दृष्ट्वा मद्रराजो वृकोदरम्॥ ३७॥
जिह्वां छेत्तुं समायान्तं सान्त्वयन्निदमब्रवीत्।

तब हनुमानजी से भी बढ़कर पराक्रम दिखाने वाले क्रुद्ध, महाधनुर्धर भीमसेन ने बलपूर्वक धनुष को कानतक खींचकर कर्ण को मारने की इच्छा से उसे छोड़ दिया। उन बलवान् के द्वारा छोड़े बिजली और विद्युत् के समान ध्वनि वाले बाण ने युद्धक्षेत्र में कर्ण को ऐसे विदीर्ण कर दिया जैसे बिजली ने वेग से पर्वत को फाड़ दिया हो। हे कुरुश्रेष्ठ! तब भीमसेन के द्वारा चोट खाया हुआ वह सेनापति सूतपुत्र चेतनारहित होकर रथ की बैठक में बैठ गया। वह शत्रुदमन उस समय खून से लथपथ और निष्प्राणसा होरहा था। तभी मद्रराज ने भीमसेन को कर्ण की जबान काटने के लिये आते हुए देखकर उसे समझाते हुए कहा कि—

भीमसेन महाबाहो यत् त्वां वक्ष्यामि तच्छृणु॥ ३८॥
वचनं हेतुसम्पन्नं श्रुत्वा चैतत् तथा कुरु।
अर्जुनेन प्रतिज्ञातो वधः कर्णस्य शुष्मिणः॥ ३९॥
तां तथा कुरु भद्रं ते प्रतिज्ञां सव्यसाचिनः।

भीम उवाच

दृढव्रतत्वं पार्थस्य जानामि नृपसत्तम॥ ४०॥
राज्ञस्तु धर्षणं पापः कृतवान् मम संनिधौ।
ततः कोपाभिभूतेन शेषं न गणितं मया॥ ४१॥
पतिते चापि राधेये न मे मन्युः शमं गतः।
जिह्वोद्धरणमेवास्य प्राप्तकालं मतं मम॥ ४२॥

हे महाबाहु भीमसेन! मैं जो कुछ तुमसे कहता हूँ, उसे सुनो और मेरे युक्तियुक्त वचनों को सुनकर उनका पालन करो। अर्जुन ने पराक्रमी कर्ण के वध की प्रतिज्ञा की हुई है। तुम्हारा कल्याण हो। तुम अर्जुन की प्रतिज्ञा को सफल होने दो। तब भीमसेन ने कहा कि हे श्रेष्ठराजन्! मैं अर्जुन के वचनों की दृढ़ता को जानता हूँ, किन्तु इस पापी ने मेरे सामने राजा का अपमान किया है, इसलिये क्रोध से भरकर मैंने किसी और बात की परवाह नहीं की है। इसके गिरने पर भी मेरा क्रोध शान्त नहीं हुआ है, इसलिये मेरे विचार से इसकी जबान खींच लेना ही इस समय उचित है।

अनेन सुनृशंसेन समवेतेषु राजसु।
अस्माकं शृण्वतां कृष्णा यानि वाक्यनि मातुल॥ ४३॥
असह्यानि च नीचेन बहूनि श्रावितानि भोः।
नूनं चैतत् परिज्ञातं दूरस्थस्यापि पार्थिव॥ ४४॥
छेदनं चास्य जिह्वायास्तदेवाकाङ्क्षितं मया।
राज्ञस्तु प्रियकामेन कालोऽयं परिपालितः॥ ४५॥
भवता तु यदुक्तोऽस्मि वाक्यं हेत्वर्थसंहितम्।
तद् गृहीतं महाराज कटुकस्थमिवौषधम्॥ ४६॥

हे मामा! इस अत्यन्तनिर्दय और नीच ने राजाओं की सभा में हमारे सुनते हुए द्रौपदी को न सहन की जानेवाली बहुतसी बातें सुनाई थीं। हे राजन्! आपने दूर बैठे हुए भी निश्चित रूप से जान लिया है कि मैंने इसकी उस जिह्वा को काटने की ही इच्छा की है। मैंने केवल राजा युधिष्ठिर का प्रिय करने के लिये ही अब तक प्रतीक्षा की है, पर हे महाराज! आपने जो युक्तियुक्त बात कही है, उसे मैंने कड़वी औषधि के समान ग्रहण कर लिया है।

ततो मद्राधिपो दृष्ट्वा विसंज्ञं सूतनन्दनम्।
अपोवाह रथेनाजौ कर्णमाहवशोभिनम्॥ ४७॥

फिर मद्रराज ने युद्ध में शोभा देने वाले, सूतपुत्र कर्ण को चेतना रहित देखकर रथ के द्वारा युद्धभूमि से दूर हटा दिया।

सैंतीसवाँ अध्याय : भीमद्वारा धृतराष्ट्र के छः पुत्रों का वध, कर्ण से युद्ध।

विमुखं प्रेक्ष्य राधेयं सूतपुत्रं महाहवे।
पुत्रस्तव महाराज सोदर्यान् समभाषत॥ १॥
शीघ्रं गच्छत भद्रं वो राधेयं परिरक्षत।
भीमसेनभयागाधे मज्जन्तं व्यसनार्णवे॥ २॥
ते तु राज्ञा समादिष्टा भीमसेनं जिघांसवः।
अभ्यवर्तन्त संक्रुद्धाः पतङ्गाः पावकं यथा॥ ३॥

हे महाराज! उस महान् युद्ध में कर्ण को युद्ध से विमुख देखकर आपके पुत्र ने अपने भाइयों से कहा कि आपका कल्याण हो। आपलोग शीघ्र जाओ और राधापुत्र की रक्षा करो। वह भीमसेन से प्राप्त भय के अगाध संकटरूपी सागर में डूब रहा है। राजा का आदेश मिलने पर वेसब अत्यन्त क्रोध में भरकर, भीम को मारने के इच्छुक, उनके सामने इसप्रकार गये जैसे पतंगे आग के सामने जाते हैं।

ते व्यमुञ्चञ्छरव्रातान् नानालिङ्गान् समन्ततः।
स तैरभ्यर्द्यमानस्तु भीमसेनो महाबलः॥ ४॥
तेषामापततां क्षिप्रं सुतानां ते जनाधिप।
रथैः पञ्चाशता सार्धं पञ्चाशदहनद् रथान्॥ ५॥
विवित्सोस्तु ततः क्रुद्धो भल्लेनापाहरच्छिरः।
भीमसेनो महाराज पूर्णचन्द्रोपमं तथा॥ ६॥
तं दृष्ट्वा निहतं शूरं भ्रातरः सर्वतः प्रभो।
अभ्यद्रवन्त समरे भीमं भीमपराक्रमम्॥ ७॥

उन्होंने अनेकप्रकार के बाणसमूहों की भीमसेन पर चारोंतरफ से वर्षा की। हे प्रजानाथ! उनसे पीड़ित होते हुए भीम ने आक्रमण करनेवाले आपके पुत्रों के पचास रथों के द्वारा आए हुए पचास रथियों को तुरन्त मार दिया। हे महाराज! फिर क्रुद्ध भीमसेन ने विवित्सु के पूर्ण चन्द्रमा के समान सुशोभित सिर को एक भल्ल से काट लिया। हे प्रभो! उस शूरवीर को मारा हुआ देखकर उसके भाइयों ने भयंकरपराक्रमी भीमसेन को युद्धस्थल में सबतरफ से घेरकर उस पर आक्रमण कर दिया।

ततोऽपराभ्यां भल्लाभ्यां पुत्रयोस्ते महाहवे।
जहार समरे प्राणान् भीमो भीमपराक्रमः॥ ८॥
तौ धरामन्वपद्येतां वातरुग्णाविव द्रुमौ।
विकटश्च समश्चोभौ देवपुत्रोपमौ नृप॥ ९॥
ततस्तु त्वरितो भीमः क्राथं निन्ये यमक्षयम्।
नाराचेन सुतीक्ष्णेन स हतो न्यपतद् भुवि॥ १०॥
हाहाकारस्ततस्तीव्रः सम्बभूव जनेश्वर।
वध्यमानेषु वीरेषु तव पुत्रेषु धन्विषु॥ ११॥

हे राजन्! फिर दूसरे दो भल्लों से उस महान् युद्ध में भयंकरपराक्रमी भीम ने आपके दो पुत्रों के प्राण हर लिये। देवपुत्रों के समान विकट और सम नाम के वेदोनों आँधी से उखाड़े गए वृक्षों के समान भूमि पर गिर पड़े। फिर शीघ्रता करते हुए भीम ने अत्यन्ततीखे नाराच से क्राथ को भी मृत्युलोक में पहुँचा दिया। वह भी मारा हुआ भूमि पर गिर पड़ा। हे प्रजानाथ! आपके उन वीर और धनुर्धर पुत्रों के मारे जाने पर वहाँ बहुतअधिक हा हाकार होने लगा।

तेषां सुलुलिते सैन्ये पुनर्भीमो महाबलः।
नन्दोपनन्दौ समरे प्रैषयद् यमसादनम्॥ १२॥
ततस्ते प्राद्रवन् भीताः पुत्रास्ते विह्वलीकृताः।
भीमसेनं रणे दृष्ट्वा कालान्तकयमोपमम्॥ १३॥
पुत्रांस्ते निहतान् दृष्ट्वा सूतपुत्रः सुदुर्मनाः।
हंसवर्णान् हयान् भूयः प्रैषयद् यत्र पाण्डवः॥ १४॥
ततो भीमो रणश्लाघी छादयामास पत्रिभिः।
कर्णं रणे महाराज पुत्राणां तव पश्यताम्॥ १५॥

जब सेना में अत्यन्त उथलपुथल होरही थी, तब महाबली भीम ने युद्धस्थल में पुन नन्द और उपनन्द को मृत्युलोक में भेज दिया। तब भीमसेन को युद्ध में सबका अन्त कर देनेवाले काल और मृत्यु के समान भयंकर देखकर आपके डरे हुए और बेचैन पुत्र वहाँ से भाग गये। तब आपके पुत्रों को मारा हुआ देखकर अत्यन्त दुःखी कर्ण ने अपने हंस के समान श्वेत घोड़ों को उधरही हँकवाया, जिधर भीम विद्यमान थे। हे महाराज! तब युद्ध की कामना वाले भीम ने आपके पुत्रों के देखते हुएही युद्धस्थल में बाणों से कर्ण को आच्छादित कर दिया।

ततः कर्णो भृशं क्रुद्धो भीमं नवभिरायसैः।
विव्याध परमास्त्रज्ञो भल्लैः संनतपर्वभिः॥ १६॥
आहतः स महाबाहुर्भीमो भीमपराक्रमः।
आकर्णपूर्णैर्विशिखैः कर्णं विव्याध सप्तभिः॥ १७॥

ततः कर्णो महाराज आशीविष इव श्वसन्।
शरवर्षेण महता छादयामास पाण्डवम्॥ १८॥
भीमोऽपि तं शरव्रातैश्छादयित्वा महारथम्।
पश्यतां कौरवेयाणां विननर्द महाबलः॥ १९॥

तब अस्त्रविद्या के परमज्ञाता कर्ण ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर झुकी गाँठवाले नौ लोहे के भल्लों से भीम को घायल कर दिया। फिर भयंकरपराक्रमी महाबाहु भीम ने घायल होकर कानतक धनुष को खींचकर छोड़े हुए सात बाणों से कर्ण को बींध दिया। हे महाराज! फिर कर्ण ने विषैले सर्प के समान साँस लेते हुए महान् बाणवर्षाद्वारा पाण्डुपुत्र को आच्छादित कर दिया। महाबली भीम ने भी तब बाणसमूहोंद्वारा उस महारथी को आच्छादितकर कौरववीरों के देखते हुए जोर से गर्जना की।

ततः कर्णो भृशं क्रुद्धो दृढमादाय कार्मुकम्।
भीमं विव्याध दशभिः कङ्कपत्रैः शिलाशितैः॥ २०॥
कार्मुकं चास्य चिच्छेद भल्लेन निशितेन च।
ततो भीमो महाबाहुर्हेमपट्टविभूषितम्॥ २१॥
परिघं घोरमादाय मृत्युदण्डमिवापरम्।
कर्णस्य निधनाकाङ्क्षी चिक्षेपातिबलो नदन्॥ २२॥
तमापतन्तं परिघं वज्राशनिसमस्वनम्।
चिच्छेद बहुधा कर्णः शरैराशीविषोपमैः॥ २३॥

तब कर्ण ने अत्यन्तक्रुद्ध होकर और दृढ़ धनुष को लेकर शिला पर तेज किये दस कंकपत्र से युक्त बाणोंद्वारा भीम को बींध दिया और तीखे भल्ल से पाण्डुपुत्र के धनुष को काट दिया। तब महाबाहु अति बलवान् भीम ने सुनहरे पत्रों से विभूषित दूसरे मृत्यु के प्रहार के समान भयंकर परिघ को लेकर कर्ण की मृत्यु की इच्छा से गर्जते हुए उसके ऊपर फैंक दिया। तब बिजली और विद्युत् के समान शब्द वाले और अपने ऊपर आते हुए उस परिघ को कर्ण ने बहुत से विषैले सर्पों के समान बाणों से काट दिया।

ततः कार्मुकमादाय भीमो दृढतरं तदा।
छादयामास विशिखैः कर्णं परबलार्दनम्॥ २४॥
ततो युद्धमभूद् घोरं कर्णपाण्डवयोर्मृधे।
हरीन्द्रयोरिव मुहुः परस्परवधैषिणोः॥ २५॥
ततः कर्णो महाराज भीमसेनं त्रिभिः शरैः।
आकर्णमूलं विव्याध दृढमायम्य कार्मुकम्॥ २६॥
सोऽतिविद्धो महेष्वासः कर्णेन बलिनां वरः।
घोरमादत्त विशिखं कर्णकायावदारणम्॥ २७॥
तस्य भित्त्वा तनुत्राणं भित्त्वा कायं च सायकः।
प्राविशद् धरणीं राजन् वल्मीकमिव पन्नगः॥ २८॥

तब भीम ने और अधिक मजबूत धनुष को लेकर शत्रुसेना को पीड़ित करनेवाले कर्ण को बाणों से आच्छादित कर दिया। तब एकदूसरे के वध की इच्छावाले सिंहों के समान कर्ण और भीमसेन में घोर युद्ध होने लगा। हे महाराज! कर्ण ने अपने दृढ़ धनुष को कानतक खींचकर तीन बाणों से भीम को बींध दिया। तब कर्ण के द्वारा बहुत घायल होकर बलवानों में श्रेष्ठ, महाधनुर्धर भीम ने कर्ण के शरीर को विदीर्ण करने वाले एक भयंकर बाण को लिया। हे राजन्! वह बाण कर्ण के कवच और शरीर को भेदकर भूमि में ऐसे धँस गया, जैसे सर्प अपनी बाँबी में घुस जाता है।

स तेनातिप्रहारेण व्यथितो विह्वलन्निव।
संचचाल रथे कर्णः क्षितिकम्पे यथाचलः॥ २९॥
ततः कर्णो महाराज रोषामर्षसमन्वितः।
पाण्डवं पञ्चविंशत्या नाराचानां समार्पयत्॥ ३०॥
आजघ्ने बहुभिर्बाणैर्ध्वजमेकेषुणाहनत्।
सारथिं चास्य भल्लेन प्रेषयामास मृत्यवे॥ ३१॥
छित्त्वा च कार्मुकं तूर्णं पाण्डवस्याशु पत्रिणा।
विरथं भीमकर्माणं भीमं कर्णश्चकार ह॥ ३२॥

उस बाण के तीव्र प्रहार से व्यथित और बेचैन होकर रथपर बैठा हुआ कर्ण ऐसे काँपने लगा जैसे भूकम्प आने पर पर्वत काँपता है। हे महाराज! तब कर्ण ने क्रोध और अमर्ष से भरकर पाण्डुपुत्र पर पच्चीस नाराचों की वर्षा की तथा और दूसरे बहुत से बाणों से प्रहार किया और एक बाण से उसके ध्वज को काट दिया। उसने भीम के सारथि को भल्ल के प्रहार से मृत्युलोक में भेज दिया। फिर शीघ्र ही बाण से उसके धनुष को काटकर भयंकर कर्म करनेवाले भीम को कर्ण ने रथ से रहित कर दिया।

अड़तीसवाँ अध्याय : दोनों सेनाओं का घोर युद्ध।

ततः प्रववृते युद्धं मध्यं प्राप्ते दिवाकरे।
तादृशं न कदाचिद्धि दृष्टपूर्वं न च श्रुतम्॥ १॥
बलौघस्तु समासाद्य बलौघं सहसा रणे।
उपासर्पत वेगेन वार्योघ इव सागरम्॥ २॥
आसीन्निनादः सुमहान् बाणौघानां परस्परम्।
गर्जतां सागरौघाणां यथा स्यान्निःस्वनो महान्॥ ३॥
क्षत्रियास्ते महाराज परस्परवधैषिणः।
अन्योन्यं समरे जघ्नुः कृतवैराः परस्परम्॥ ४॥

तब सूर्य के आकाश के मध्य में आजाने पर ऐसा घोर युद्ध आरम्भ होगया, जैसा पहले कभी न देखा था और न सुनने में आया था। युद्धस्थल में एक सेना दूसरी सेना से ऐसे उलझ गयी, जैसे जल का प्रवाह वेग से सागर में जाकर गिर रहा हो। जैसे गर्जते हुए सागरों का गम्भीर नाद होता है, वैसे ही परस्पर टकराते हुए बाणों का अत्यन्त महान् शब्द होने लगा। हे महाराज! एक दूसरे से बैर करनेवाले और एकदूसरे के वध के इच्छुक वे क्षत्रिय युद्धक्षेत्र में एकदूसरे को मारने लगे।

रथौघाश्च हयौघाश्च नरौघाश्च समन्ततः।
गजौघाश्च महाराज संसक्ताश्च परस्परम्॥ ५॥
नागान् नागाः समासाद्य व्यधमन्त परस्परम्।
हया हयांश्च समरे रथिनो रथिनस्तथा॥ ६॥
पत्तयः पत्तिसंघांश्च हयसंघांश्च पत्तयः।
पत्तयो रथमातङ्गान् रथा हस्त्यश्वमेव च॥ ७॥
नागाश्च समरे त्र्यङ्गं ममृदुः शीघ्रगा नृप।

हे महाराज! वहाँ सब तरफ रथों के समूह, घोड़ों के समूह, हाथियों के समूह और पैदलों के समूह एकदूसरे से उलझे हुए थे। बड़े बड़े हाथी एकदूसरे से भिड़कर परस्पर संताप देने लगे। हे राजन्! युद्धक्षेत्र में घोड़े घोड़ों को, रथी रथियों को, पैदल पैदलों को, पैदल घुड़सवारों को, पैदल रथों और हाथियों को, रथी हाथियों और घोड़ों को और शीघ्रगामी हाथी शेष तीनों अंगों को रौंदने लगे।

भिन्नानां चोत्तमाङ्गानां बाहूनां चोरुभिः सह॥ ८॥
कुण्डलानां प्रवृद्धानां भूषणानां च भारत।
निष्काणामथ शूराणां शरीराणां च धन्विनाम्॥ ९॥
चर्मणां सपताकानां संघास्तत्रापन् भुवि।
केचिदभ्याहता नागैर्नागा नगनिभोपमाः॥ १०॥
अपरे प्राद्रवन् नागाः शल्यार्ता व्रणपीडिताः।
प्रतिमानैश्च कुम्भैश्च पेतुरुर्व्यां महाहवे॥ ११॥
विनेदुः सिंहवच्चान्ये नदन्तो भैरवान् रवान्।
बभ्रमुर्बहवो राजंश्चुक्रुशुश्चापरे गजाः॥ १२॥

हे भारत! वहाँ भूमि पर कटे हुए सिरों, हाथों, जाँघों, बड़े बड़े कुण्डलों, आभूषणों, निष्कों, धनुर्धर, शूरवीरों के शरीरों और पताकाओं सहित ढालों के ढेर पड़े हुए थे। अनेक हाथी हाथियों से ही मारे जाकर पर्वतों के समान समरभूमि में पड़े हुए थे। बहुत से हाथी बाणों की चोट से व्यथित और घावों से पीड़ित होकर भाग रहे थे। और अनेक अपने दाँतों और मस्तकों को भूमिपर टिकाकर धराशायी हो गये थे। हे राजन्! कई हाथी भयंकर शब्द करते हुए सिंह के समान चिंघाड़ रहे थे। बहुत से चक्कर काट रहे थे और दूसरे हाथी चीख रहे थे।

हयाश्च निहता बाणैर्हेमभाण्डविभूषिताः।
निषेदुश्चैव मम्लुश्च बभ्रमुश्च दिशो दश॥ १३॥
अपरे कृष्यमाणाश्च विचेष्टन्तो महीतले।
भावान् बहुविधांश्चक्रुस्ताडिताः शरतोमरैः॥ १४॥
नरास्तु निहता भूमौ कूजन्तस्तत्र मारिष।
दृष्ट्वा च बान्धवानन्ये पितॄनन्ये पितामहान्॥ १५॥
शूरास्तु समरे राजन् भयं त्यक्त्वा सुदुस्त्यजम्।
योधव्रतसमाख्याताश्चक्रुः कर्माण्यभीतवत्॥ १६॥

सुनहरे साजों से सजे घोड़े बाणों के द्वारा मारे जाकर कुछ बैठ जाते थे, कुछ शिथिल हो जाते थे और कुछ सारी दिशाओं में भागने लगते थे। बहुतसे घोड़े, तोमरों और बाणों के प्रहार से पीड़ित होकर गिर पड़ते और फिर हाथियों के द्वारा खींचे जाने पर छटपटाते हुए बहुततरह के भावों को प्रकट करते थे। हे मान्यवर! वहाँ घायल होकर भूमि पर पड़े हुए मनुष्य अपने बान्धवों को, पिताओं को, पितामहों को देखते हुए कराह रहे थे। हे राजन्! किन्तु शूरवीर उस युद्ध में कठिनाई से छोड़े जा सकने योग्य भय को छोड़कर, योद्धाओं के कर्तव्य का पालन करते हुए निर्भयता से कर्म कर रहे थे।

उन्तालीसवाँ अध्याय : अर्जुन द्वारा संशप्तकों का संहार

वर्तमाने तथा युद्धे क्षत्रियाणां निमज्जने।
गाण्डीवस्य महाघोषः श्रूयते युधि मारिष॥ १॥
संशप्तकानां कदनमकरोद् यत्र पाण्डवः।
कोसलानां तथा राजन् नारायणबलस्य च॥ २॥
संशप्तकास्तु समरे शरवृष्टीः समन्ततः।
अपातयन् पार्थमूर्ध्नि जयगृद्धाः प्रमन्यवः॥ ३॥
ता वृष्टीः सहसा राजंस्तरसा धारयन् प्रभुः।
व्यगाहत रणे पार्थो विनिघ्नन् रथिनां वरान्॥ ४॥

क्षत्रियों का विनाश करने वाला वह युद्ध जब इसप्रकार से चल रहा था, तब हे मान्यवर! दूसरीतरफ गाण्डीवधनुष का महान् स्वर युद्धक्षेत्र में सुनाई देरहा था। वहाँ हे राजन्! पाण्डुपुत्र अर्जुन संशप्तकों, कोसलदेशीय योद्धाओं और नारायणी सेना का विनाश कर रहे थे। विजय के इच्छुक और अत्यन्त अभिमानी संशप्तक युद्ध में अर्जुन के मस्तक पर सबतरफ से बाणों की वर्षा करने लगे। हे राजन्! उन बाणवर्षाओं को शक्तिशाली कुन्तीपुत्र सहसा वेगपूर्वक सहन करते हुए और श्रेष्ठ रथियों को मारते हुए उस युद्धभूमि में विचरने लगे।

विगाह्य तद् रथानीकं कङ्कपत्रैः शिलाशितैः।
आससाद ततः पार्थः सुशर्माणं वरायुधम्॥ ५॥
स तस्य शरवर्षाणि ववर्ष रथिनां वरः।
तथा संशप्तकाश्चैव पार्थं बाणैः समार्पयन्॥ ६॥
सुशर्मा तु ततः पार्थं विद्ध्वा दशभिराशुगैः।
जनार्दनं त्रिभिर्बाणैरहनद् दक्षिणे भुजे॥ ७॥
ते हयान् रथचक्रे च रथेषां चापि मारिष।
निग्रहीतुमुपाक्रामन् क्रोधाविष्टाः समन्ततः॥ ८॥

फिर शिला पर तेज किये कंकपत्रों से युक्त बाणोंद्वारा रथियों की उस सेना को आलोडित कर अर्जुन श्रेष्ठ आयुध लिये हुए सुशर्मा के समीप जापहुँचे। तब रथियों में श्रेष्ठ सुशर्मा उनके ऊपर बाणों की वर्षा करने लगा और दूसरे संशप्तकों ने भी अर्जुन को बाण मारे। सुशर्मा ने फिर दस शीघ्रगामी बाणों से अर्जुन को घायलकर श्रीकृष्णजी की दायींबाँह में तीन बाणों से प्रहार किया। हे मान्यवर! फिर क्रोध में भरे हुए संशप्तक पाण्डुपुत्र के विशाल रथ को चारोंतरफ से घेरकर रथ के पहियों, घोड़ों और ईषादण्ड को पकड़ने के लिये प्रयत्न करने लगे।

ततः क्रुद्धो रणे पार्थः संवृतस्तैर्महारथैः।
निगृहीतं रथं दृष्ट्वा केशवं चाप्यभिद्रुतम्॥ ९॥
रथारूढांस्तु सुबहून् पदातींश्चाप्यपातयत्।
आसन्नांश्च तथा योधान् शरैरासन्नयोधिभिः॥ १०॥
छादयामास समरे केशवं चेदमब्रवीत्।
पश्य कृष्ण महाबाहो संशप्तकगणान् बहून्॥ ११॥
कुर्वाणान् दारुणं कर्म वध्यमानान् सहस्रशः।
ते वध्यमानाः समरे मुमुचुस्तं रथोत्तमम्॥ १२॥
आयुधानि च सर्वाणि विस्रष्टुमुपचक्रमुः।

तब युद्धक्षेत्र में महारथियों से घिरकर, अर्जुन रथ को पकड़ा हुआ देखकर और श्रीकृष्णजी पर भी आक्रमण हुआ जानकर क्रोध में भर गये। उन्होंने रथपर चढ़े हुए बहुतसारे पैदलसैनिकों को नीचे गिरा दिया। उन्होंने समीप आये उन योद्धाओं को समीप से युद्ध किये जानेवाले बाणों से आच्छादित कर दिया और श्रीकृष्णजी से कहा कि हे महाबाहो कृष्ण! दारुण कर्म करनेवाले इन असंख्य संशप्तकों को मारा जाता हुआ देखो। तब युद्ध में अर्जुन के बाणों से मारे जाते हुए संशप्तकों ने उनके उत्तम रथ को छोड़ दिया और सबतरह के हथियारों से उनपर प्रहार करना आरम्भ कर दिया।

तां महास्त्रमयीं वृष्टिं संछिद्य शरवृष्टिभिः॥ १३॥
न्यवधीच्च ततो योधान् वासविः परवीरहा।
सुशर्मा तु ततो राजन् बाणेनानतपर्वणा॥ १४॥
अर्जुनं हृदये विद्ध्वा विव्याधान्यैस्त्रिभिः शरैः।
स गाढविद्धो व्यथितो रथोपस्थ उपाविशत्॥ १५॥
तत उच्चुक्रुशुः सर्वे हतः पार्थ इति स्म ह।
नानावादित्रनिनदाः सिंहनादाश्च जज्ञिरे॥ १६॥

तब शत्रुओं को मारनेवाले इन्द्रपुत्र ने उनकी अस्त्रों की महान् वर्षा को अपनी बाणवर्षा से नष्टकर उन का वध करना आरम्भ कर दिया। हे राजन्! तब सुशर्मा ने झुकी गाँठवाले बाण से अर्जुन की छाती पर प्रहारकर तीन दूसरे बाणों से उन्हें घायल कर दिया। उन बाणों की गहरी चोट खाकर अर्जुन व्यथित होकर रथ की बैठक में बैठ गये। तब सा

चिल्लाने लगे कि अर्जुन मारे गये और फिर तरहतरह के वाद्ययन्त्रों की ध्वनियाँ और सिंहनाद होने लगे।

प्रतिलभ्य ततः संज्ञां श्वेताश्वः कृष्णसारथिः।
ऐन्द्रमस्त्रममेयात्मा प्रादुश्चक्रे त्वरान्वितः॥ १७॥
हयान् रथांश्च समरे शस्त्रैः शतसहस्रशः।
वध्यमाने ततः सैन्ये भयं सुमहदाविशत्॥ १८॥
संशप्तकगणानां च गोपालानां च भारत।
न हि तत्र पुमान् कश्चिद् योऽर्जुनं प्रत्यविध्यत॥ १९॥
पश्यतां तत्र वीराणामहन्यत बलं तव।
हन्यमानमपश्यंश्च निश्चेष्टं स्म पराक्रमे॥ २०॥
अयुतं तत्र योधानां हत्वा पाण्डुसुतो रणे।
व्यभ्राजत महाराज विधूमोऽग्निरिव ज्वलन्॥ २१॥

तब होश में आकर कृष्ण जिनके सारथि थे, ऐसे श्वेत घोड़ोंवाले अमितआत्मा अर्जुन ने शीघ्रता से ऐन्द्रास्त्र को प्रकट किया। हे भारत! उस ऐन्द्रास्त्र के कारण जब मारक उपकरणों द्वारा सैकड़ों, हजारों रथों और घोड़ों का वध होने लगा तब संशप्तकों और गोपालों की उस सेना में अत्यन्तमहान् भय समा गया। उस समय कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं था जो अर्जुन पर प्रहार कर सके। वीरों के देखते हुए ही आपकी सेना मारी जा रही थी। मैंने वहाँ सेना को पराक्रम रहित अवस्था में मारे जाते हुए देखा। हे महाराज! इसप्रकार पाण्डुपुत्र युद्धक्षेत्र में दस हजार योद्धाओं को मारकर निर्धूम अग्नि के समान प्रज्वलित होते हुए से प्रकाशित हो रहे थे।

चालीसवाँ अध्याय : कृपाचार्य से शिखण्डी की हार और सुकेतु का वध। धृष्टद्युम्न से कृतवर्मा की हार।

कृतवर्मा कृपा द्रौणिः सूतपुत्रश्च मारिष।
उलूकः सौबलश्चैव राजा च सह सोदरैः॥ १॥
सीदमानां चमूं दृष्ट्वा पाण्डुपुत्रभयार्दिताम्।
समुज्जह्रुः स्म वेगेन भिन्नां नावमिवार्णवे॥ २॥
ततो युद्धमतीवासीन्मुहूर्तमिव भारत।
भीरूणां त्रासजननं शूराणां हर्षवर्धनम्॥ ३॥
कृपेण शरवर्षाणि प्रतिमुक्तानि संयुगे।
सृञ्जयांश्छादयामासुः शलभानां व्रजा इव॥ ४॥

हे मान्यवर! तब पाण्डुपुत्रों के भय से पीड़ित और शिथिल अपनी सेना को, जिसकी अवस्था सागर में टूटी हुई नाव के समान होरही थी, देखकर कृतवर्मा, कृपाचार्य, द्रोणपुत्र, कर्ण, उलूक, शकुनि और राजा दुर्योधन अपने भाइयों के साथ, वेगपूर्वक आये और उस सेना का उद्धार किया। हे भारत! तब कायरों को भय देनेवाला और वीरों के हर्ष को बढ़ाने वाला वह बड़ा भयंकर युद्ध एक मुहूर्त तक चलता रहा। उस समय युद्धस्थल में कृपाचार्य के द्वारा छोड़ी हुई टिड्डीदल के समान बाणवर्षा ने सृंजयों को आच्छादित कर दिया।

शिखण्डी च ततः क्रुद्धो गौतमं त्वरितो ययौ।
ववर्ष शरवर्षाणि समन्ताद् द्विजपुङ्गवम्॥ ५॥
कृपस्तु शरवर्षं तद् विनिहत्य महास्त्रवित्।
शिखण्डिनं रणे क्रुद्धो विव्याध दशभिः शरैः॥ ६॥
ततः शिखण्डी कुपितः शरैः सप्तभिराहवे।
कृपं विव्याध कुपितं कङ्कपत्रैरजिह्मगैः॥ ७॥
ततः कृपः शरैस्तीक्ष्णैः सोऽतिविद्धो महारथः।
व्यश्वसूतरथं चक्रे शिखण्डिनमथो द्विजः॥ ८॥

तब क्रुद्ध शिखण्डी शीघ्रता से कृपाचार्य के सामने गया और उसने ब्राह्मणश्रेष्ठ के चारों तरफ बाणों की वर्षा कर दी। महान् अस्त्रवेत्ता कृपाचार्य ने क्रोध में भरकर युद्ध में उस बाणवर्षा को नष्टकर शिखण्डी को दस बाणों से बींध दिया। तब कुपित हुए शिखण्डी ने युद्धस्थल में कंकपत्रवाले और सीधे जानेवाले सात बाणों से कृपाचार्य को बींध दिया। तब अत्यन्तघायल हुए उस महारथी ब्राह्मण ने तीखे बाणों से शिखण्डी को बिना घोड़ों, रथ और सारथिवाला कर दिया।

हताश्वात् तु ततो यानादवप्लुत्य महारथः।
खड्गं चर्म तथा गृह्य सत्वरं ब्राह्मणं ययौ॥ ९॥
तमापतन्तं सहसा शरैः संनतपर्वभिः।
छादयामास समरे तदद्भुतमिवाभवत्॥ १०॥
कृपेणच्छादितं दृष्ट्वा नृपोत्तम शिखण्डिनम्।

प्रत्युद्ययौ कृपं तूर्णं धृष्टद्युम्नो महारथः॥ ११॥
धृष्टद्युम्नं ततो यान्तं शारद्वतरथं प्रति।
प्रतिजग्राह वेगेन कृतवर्मा महारथः॥ १२॥

तब उस महारथी ने मृत घोड़ोंवाले रथ से कूदकर, ढाल, और तलवार लेकर शीघ्रता से उस ब्राह्मण पर आक्रमण किया। अपने ऊपर आक्रमण करते हुए शिखण्डी को कृपाचार्य ने झुकी गाँठवाले बाणों से सहसा आच्छादित कर दिया। यह एक अद्‌भुत बात थी। हे राजश्रेष्ठ! तब शिखण्डी को कृपाचार्य के द्वारा बाणों से आच्छादित देखकर, महारथी धृष्टद्युम्न ने तुरन्त कृपाचार्य पर आक्रमण कर दिया। तब कृपाचार्य के रथ की तरफ धृष्टद्युम्न को जाते देखकर महारथी कृतवर्मा ने तुरन्त उसे रोक दिया।

शिखण्डिनस्ततो बाणान् कृपः शारद्वतो युधि।
प्राहिणोत् त्वरया युक्तो दिधक्षुरिव मारिष॥ १३॥
ताञ्छरान् प्रेषितांस्तेन समन्तात् स्वर्णभूषितान्।
चिच्छेद खड्गमाविध्य भ्रामयंश्च पुनः पुनः॥ १४॥
शतचन्द्रं च तच्चर्म गौतमस्तस्य भारत।
व्यधमत् सायकैस्तूर्णं तत उच्चुक्रुशुर्जनाः॥ १५॥
स विचर्मा महाराज खड्गपाणिरुपाद्रवत्।
कृपस्य वशमापन्नो मृत्योरास्यमिवातुरः॥ १६॥

हे मान्यवर! फिर मानों वे शिखण्डी को भस्म कर देना चाहते हों, इसप्रकार शीघ्रता से कृपाचार्य ने उसके ऊपर बाणों को चलाया। शिखण्डी ने उनके चलाये सुनहरे बाणों को अपने खड्ग को बार बार घुमाते हुए काट दिया। हे भारत! तब कृपाचार्य ने उसकी सौ चन्द्रिकाओं से सुशोभित ढाल को तुरन्त अपने बाणों से काट दिया। तब लोग जोर से कोलाहल करने लगे। हे महाराज! तब जैसे रोगी पुरुष मृत्यु के मुख में पड़ जाये उसीप्रकार कृपाचार्य के वश में पड़ा हुआ शिखण्डी ढाल रहित होकर केवल तलवार के साथ ही उनकी तरफ दौड़ा।

शारद्वतशरैर्ग्रस्तं क्लिश्यमानं महाबलः।
चित्रकेतुसुतो राजन् सुकेतुस्त्वरितो ययौ॥ १७॥
विकिरन् ब्राह्मणं युद्धे बहुभिर्निशितैः शरैः।
अभ्यापतदमेयात्मा गौतमस्य रथं प्रति॥ १८॥
दृष्ट्वा च युक्तं तं युद्धे ब्राह्मणं चरितव्रतम्।
अपयातस्ततस्तूर्णं शिखण्डी राजसत्तम॥ १९॥

सुकेतुस्तु ततो राजन् गौतमं नवभिः शरैः।
विद्ध्वा विव्याध सप्तत्या पुनश्चैनं त्रिभिः शरैः॥ २०॥

हे राजन्! तब शिखण्डी को कृपाचार्य के बाणों से पीड़ित और क्लेश पाते हुए देखकर चित्रकेतु का महाबलवान् पुत्र सुकेतु उनके सामने आया। उस अमित आत्मा ने युद्धस्थल में बहुतसे बाण छोड़ते हुए ब्राह्मण कृपाचार्य के रथ के ऊपर आक्रमण कर दिया। हे राजश्रेष्ठ! व्रतों का पालन करने वाले उस ब्राह्मण को उसके साथ युद्ध में लगा हुआ देखकर शिखण्डी तुरन्त वहाँ से दूर हट गया। हे राजन्! तब सुकेतु ने कृपाचार्य को नौ बाणों की वर्षा से बींधकर उनके ऊपर सत्तर बाणों की वर्षा की और फिर तीन बाणों से घायल किया।

अथास्य सशरं चापं पुनश्चिच्छेद मारिष।
सारथिं च शरेणास्य भृशं मर्मस्वताडयत्॥ २१॥
गौतमस्तु ततः क्रुद्धो धनुर्गृह्य नवं दृढम्।
सुकेतुं त्रिंशता बाणैः सर्वमर्मस्वताडयत्॥ २२॥
स विह्वलितसर्वाङ्गः प्रचचाल रथोत्तमे।
भूमिकम्पे यथा वृक्षश्चचाल कम्पितो भृशम्॥ २३॥
चलतस्तस्य कायात् तु शिरो ज्वलितकुण्डलम्।
सोष्णीषं सशिरस्त्राणं क्षुरप्रेण त्वपातयद्॥ २४॥

हे मान्यवर! फिर सुकेतु ने कृपाचार्य के बाण सहित धनुष को काट दिया और उनके सारथि को भी मर्मस्थानों में एक बाण से बहुत चोट पहुँचायी। तब कृपाचार्य ने क्रुद्धहोकर और नये दृढ़ धनुष को लेकर, तीस बाणों से सुकेतु के सारे मर्मस्थलों पर प्रहार किया। तब सुकेतु के सारे अंग बेचैन हो गये। वह अपने उत्तम रथ में बैठा हुआ उसीप्रकार काँपने लगा जैसे भूकम्प के आ जाने पर वृक्ष जोर जोर से हिलने लगता है। तब कृपाचार्य ने एक क्षुरप्र से उसके कम्पित होते हुए शरीर से उसके जगमगाते हुए कुण्डलों से सुशोभित सिर को शिरस्त्राण और पगड़ी सहित काटकर अलग कर दिया।

धृष्टद्युम्नं तु समरे संनिवार्य महारथः।
कृतवर्माब्रवीद्धृष्टस्तिष्ठ तिष्ठेति भारत॥ २५॥
तदभूत् तुमुलं युद्धं वृष्णिपार्षतयो रणे।
आमिषार्थे यथा युद्धं श्येनयोः क्रुद्धयोर्नृप॥ २६॥
धृष्टद्युम्नस्तु समरे हार्दिक्यं नवभिः शरैः।
आजघानोरसि क्रुद्धः पीडयन् हृदिकात्मजम्॥ २७॥

कृतवर्मा तु समरे पार्षतेन दृढाहतः।
पार्षतं सरथं साश्वं छादयामास सायकैः॥ २८॥

हे भारत! उधर धृष्टद्युम्न को युद्ध में रोककर महारथी कृतवर्मा ने हर्षित होकर उससे कहा कि खड़ा रह, खड़ा रह। हे राजन्! तब जैसे माँस के लिये क्रुद्ध दो बाज पक्षियों का युद्ध होरहा हो, वैसेही वृष्णिवीर और द्रुपदपुत्र में भयंकर युद्ध होने लगा। तब क्रुद्ध धृष्टद्युम्न ने युद्धस्थल में हृदीकपुत्र कृतवर्मा को पीड़ित करते हुए उसकी छाती में नौ बाण मारे। द्रुपदपुत्र से गहरी चोट खाकर कृतवर्मा ने उसे घोड़ों और रथसहित बाणों से आच्छादित कर दिया।

विधूय तं बाणगणं शरैः कनकभूषणैः।
व्यरोचत रणे राजन् धृष्टद्युम्नः कृतव्रणः॥ २९॥
ततस्तु पार्षतः क्रुद्धः शस्त्रवृष्टिं सुदारुणाम्।
कृतवर्माणमासाद्य व्यसृजत् पृतनापतिः॥ ३०॥
तामापतन्तीं सहसा शस्त्रवृष्टिं सुदारुणाम्।
शरैरनेकसाहस्त्रैर्हार्दिक्योऽवारयद् युधि॥ ३१॥

हे राजन्! तब अपने सुनहरे बाणों से कृतवर्मा के बाणसमूह को नष्ट कर घायल धृष्टद्युम्न युद्धक्षेत्र में शोभित होने लगा। फिर क्रुद्ध सेनापति द्रुपदपुत्र ने कृतवर्मा के समीप जाकर उसके ऊपर अत्यन्तभयंकर बाणों की वर्षा आरम्भ कर दी। उस अपने ऊपर आती हुई अत्यन्तभयंकर बाणवर्षा को, हृदीकपुत्र कृतवर्मा ने असंख्य बाणों से युद्धक्षेत्र में रोक दिया।

दृष्ट्वा तु वारितां युद्धे शस्त्रवृष्टिं दुरासदाम्।
कृतवर्माणमासाद्य वारयामास पार्षतः॥ ३२॥
सारथिं चास्य तरसा प्राहिणोद् यमसादनम्।
भल्लेन शितधारेण स हतः प्रापतद् रथात्॥ ३३॥
सोऽतिविद्धो बलवता न्यपतन्मूर्च्छया हतः।
श्रुतर्वा रथमारोप्य अपोवाह रणाजिरात्॥ ३४॥

तब अपनी उस दुर्धर्ष बाणवर्षा को रोका हुआ देखकर द्रुपदपुत्र ने असंख्य बाणों से कृतवर्मा पर आक्रमण करके उसे रोका। उन्होंने तीखी धारवाले भल्ल से उसके सारथि को भी शीघ्रतापूर्वक मृत्युलोक में पहुँचा दिया। वह सारथि मरकर रथ से नीचे गिर पड़ा। तत्पश्चात् कृतवर्मा बलवान् धृष्टद्युम्न के द्वारा अत्यन्त घायल होकर, मूर्च्छा से पीड़ित होकर गिर पड़ा। तब दुर्योधन का भाई श्रुतर्वा उसे रथ में डालकर युद्धक्षेत्र से दूर ले गया।

इकतालीसवाँ अध्याय : अश्वत्थामा का घोर युद्ध

दौणिर्युधिष्ठिरं दृष्ट्वा शैनेयेनाभिरक्षितम्।
द्रौपदेयैस्तथा शूरैरभ्यवर्तत हृष्टवत्॥ १॥
किरन्निषुगणान् घोरान् स्वर्णपुङ्खाञ्शिलाशितान्।
दर्शयन् विविधान् मार्गान् शिक्षाश्च लघुहस्तवत्॥ २॥
युधिष्ठिरं च समरे परिवार्य महास्त्रवित्।
सात्यकिर्यतमानस्तु धर्मराजश्च पाण्डवः॥ ३॥
तथेतराणि सैन्यानि न स्म चक्रुः पराक्रमम्।
लाघवं द्रोणपुत्रस्य दृष्ट्वा तत्र महारथाः॥ ४॥

तब युधिष्ठिर को सात्यकि तथा द्रौपदी के शूरवीर पुत्रों द्वारा सुरक्षित देखकर द्रोणपुत्र ने प्रसन्नता से उनपर आक्रमण किया। उस महान् अस्त्रवेत्ता ने भयंकर, शिलापर तेज किये, सुनहले पंखवाले बाणों की वर्षा करते हुए, विभिन्न पैंतरों का तथा अपनी शिक्षा का प्रदर्शन करते हुए युधिष्ठिर को युद्धक्षेत्र में रोक दिया। उस समय प्रयत्न करते हुए सात्यकि, पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर और दूसरे सैनिक तथा महारथी द्रोणपुत्र की फुर्ती को देखकर पराक्रम नहीं कर सके।

वध्यमाने ततः सैन्ये द्रौपदेया महारथा।
सात्यकिर्धर्मराजश्च पञ्चालाश्चापि संगता॥ ५॥
त्यक्त्वा मृत्युभयं घोरं द्रौणायनिमुपाद्रवन्।
सात्यकिः सप्तविंशत्या द्रौणिं विद्ध्वा शिलीमुखैः॥ ६॥
पुनर्विव्याध नाराचैः सप्तभिः स्वर्णभूषितैः।
युधिष्ठिरस्त्रिसप्तत्या प्रतिविन्ध्यश्च सप्तभिः॥ ७॥
श्रुतकर्मा त्रिभिर्बाणैः श्रुतकीर्तिश्च सप्तभिः।
सुतसोमस्तु नवभिः शतानीकश्च सप्तभिः॥ ८॥
अन्ये च बहवः शूरा विव्यधुस्तं समन्ततः।

तब सेना के मारे जाते हुए होने पर, द्रौपदी के महारथी पुत्र, सात्यकि और धर्मराज युधिष्ठिर तथा पाँचाल वीरों ने इकट्ठे होकर, मृत्यु के घोर

भय को भी छोड़कर अश्वत्थामा पर आक्रमण कर दिया। सात्यकि ने सत्ताईस बाणों की वर्षा कर फिर सात सुनहले नाराचों से उसे घायल किया। युधिष्ठिर ने तिहत्तर, प्रतिविन्ध्य ने सात, श्रुतकर्मा ने तीन, श्रुतकीर्ति ने सात, सुतसोम ने नौ, और शतानीक ने सात बाणों की उसपर वर्षा कर, दूसरे और वीरों ने भी उस पर चारों तरफ से वर्षा कर उसे घायल कर दिया।

स तु क्रुद्धस्ततो राजन्नाशीविष इव श्वसन्॥ ९॥
सात्यकिं पञ्चविंशत्या प्रत्यविध्यच्छिलीमुखैः।
श्रुतकीर्तिं च नवभिः सुतसोमं च पञ्चभिः॥ १०॥
अष्टभिः श्रुतकर्माणं प्रतिविन्ध्यं त्रिभिः शरैः।
शतानीकं च नवभिर्धर्मपुत्रं त्रिभिः शरैः॥ ११॥
तथेतरांस्ततः शूरान् द्वाभ्यां द्वाभ्यामताडयत्।
श्रुतकीर्तेस्तथा चापं चिच्छेद निशितैः शरैः॥ १२॥

हे राजन्! तब अश्वत्थामा ने क्रोध में भरकर विषैले सर्प के समान साँस लेते हुए सात्यकि पर पच्चीस बाणों की वर्षा कर उसे घायल कर दिया। उसने श्रुतकीर्ति को नौ, सुतसोम को पाँच, श्रुतकर्मा को आठ, प्रतिविन्ध्य को तीन, शतानीक को नौ, धर्मपुत्र युधिष्ठिर को पाँच तथा और दूसरे शूरवीरों को दो दो बाणों से ताड़ना दी। उसने श्रुतकीर्ति के धनुष को तीखे बाणों से काट दिया।

अथान्यद् धनुरादाय श्रुतकीर्तिर्महारथः।
द्रौणायनिं त्रिभिर्विद्ध्वा विव्याधान्यैः शितैः शरैः॥ १३॥
ततः पुनरमेयात्मा धर्मराजस्य कार्मुकम्।
द्रौणिश्चिच्छेद विहसन् विव्याध च शरैस्त्रिभिः॥ १४॥
ततो धर्मसुतो राजन् प्रगृह्यान्यन्महद् धनुः।
द्रौणिं विव्याध सप्तत्या बाह्वोरुरसि चार्पयत्॥ १५॥
सात्यकिस्तु ततः क्रुद्धो द्रौणेः प्रहरतो रणे।
अर्धचन्द्रेण तीक्ष्णेन धनुश्छित्त्वानदद् भृशम्॥ १६॥

तब महारथी श्रुतकीर्ति ने दूसरा धनुष लेकर द्रोणपुत्र को पहले तीन बाणों से बींधकर फिर दूसरे और तीखे बाणों से घायल किया। तब उस अमित आत्मा द्रोणपुत्र ने हँसते हुए धर्मराज के धनुष को काट दिया और उन्हें तीन बाणों से घायल कर दिया। हे राजन्! फिर धर्मपुत्र युधिष्ठिर ने दूसरे विशाल धनुष को लेकर द्रोणपुत्र को घायल किया और उसकी बाहों तथा छातीपर सत्तर बाणों की वर्षा की। फिर सात्यकि ने क्रोध में भरकर युद्धभूमि में प्रहार करते हुए अश्वत्थामा का धनुष अर्धचन्द्राकार बाण से काट दिया और बड़े जोर से गर्जना की।

छिन्नधन्वा ततो द्रौणिः शक्त्या शक्तिमतां वरः।
सारथिं पातयामास शैनेयस्य रथाद् द्रुतम्॥ १७॥
अथान्यद् धनुरादाय द्रोणपुत्रः प्रतापवान्।
शैनेयं शरवर्षेणच्छादयामास भारत॥ १८॥
तस्याश्वाः प्रद्रुताः संख्ये पतिते रथसारथौ।
युधिष्ठिरपुरोगास्तु द्रौणिं शस्त्रभृतां वरम्॥ १९॥
अभ्यवर्षन्त वेगेन विसृजन्तः शिताञ्छरान्।

धनुष के कट जाने पर शक्तिवालों में श्रेष्ठ अश्वत्थामा ने शक्ति को चलाकर सात्यकि के रथ से उसके सारथि को शीघ्रता से मारकर गिरा दिया। हे भारत! तब प्रतापी द्रोणपुत्र ने दूसरे धनुष को लेकर सात्यकि को बाणवर्षा से आच्छादित कर दिया। तभी सारथि के मरजाने के कारण सात्यकि के घोड़े वहाँ युद्धस्थल से भाग गये। तब युधिष्ठिर आदि वीर शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ द्रोणपुत्र पर तीखे बाण छोड़ते हुए वेग से उनकी वर्षा करने लगे।

आगच्छमानांस्तान् दृष्ट्वा क्रुद्धरूपान् परंतपः॥ २०॥
प्रहसन् प्रतिजग्राह द्रोणपुत्रो महारणे।
ततः शरशतज्वालः सेनाकक्षं महारथः॥ २१॥
द्रौणिर्ददाह समरे कक्षमग्निर्यथा वने।
दृष्ट्वा चैव महाराज द्रोणपुत्रपराक्रमम्॥ २२॥
निहतान् मेनिरे सर्वान् पाण्डून् द्रोणसुतेन वै।
स च्छाद्यमानस्तु तदा द्रोणपुत्रेण मारिष।
पार्थोऽपयातः शीघ्रं वै विहाय महतीं चमूम्॥ २३॥

तब क्रोध में भरे उनवीरों को अपने ऊपर आक्रमण करते देखकर उस महायुद्ध में परंतप, द्रोणपुत्र ने हँसते हुए उनका सामना किया। तब जैसे अग्नि वन में घासफूँस को जला देती है, वैसे ही उस महारथी द्रोणपुत्र ने अपनी सैंकड़ों बाणरूपी ज्वालाओं से सेनारूपी घासफूँस को युद्धक्षेत्र में भस्म कर दिया। हे महाराज! द्रोणपुत्र के पराक्रम को देखकर सब यही मानने लगे कि सारे पाण्डुपुत्र द्रोणपुत्रद्वारा मारे जाएँगे। हे मान्यवर! तब द्रोणपुत्रद्वारा बाणों से आच्छादित होते हुए कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर शीघ्र ही उस विशाल सेना को छोड़कर वहाँ से दूर हट गये।

बयालीसवाँ अध्याय : नकुल सहदेव का दुर्योधन से युद्ध। धृष्टद्युम्न से दुर्योधन की हार। कर्ण और भीम द्वारा शत्रु सेना का संहार।

ततो दुर्योधनः क्रुद्धो नकुलं नवभिः शरैः।
विव्याध भरतश्रेष्ठ चतुरश्चास्य वाजिनः॥ १॥
ततः पुनरमेयात्मा तव पुत्रो जनाधिप।
क्षुरेण सहदेवस्य ध्वजं चिच्छेद काञ्चनम्॥ २॥
नकुलस्तु ततः क्रुद्धस्तव पुत्रं च सप्तभिः।
जघान समरे राजन् सहदेवश्च पञ्चभिः॥ ३॥
तावुभौ भरतश्रेष्ठौ ज्येष्ठौ सर्वधनुष्मताम्।
विव्याधोरसि संक्रुद्धः पञ्चभिः पञ्चभिः शरैः॥ ४॥

हे भरतश्रेष्ठ! फिर क्रुद्ध दुर्योधन ने नकुल को नौ बाणों से बींध दिया और चार बाणों से उसके चारों घोड़ों को घायल कर दिया। हे जनेश्वर! तब अमितआत्मा आपके पुत्र ने एक क्षुर से सहदेव की सुनहरी ध्वजा काटदी। तब क्रुद्ध नकुल ने आपके पुत्र को सात और सहदेव ने पाँच बाण युद्धक्षेत्र में दुर्योधन को मारे। तब दुर्योधन ने अत्यन्त क्रोध में उनदोनों भरतश्रेष्ठों को, जो धनुर्धरों में प्रधान थे पाँच-पाँच बाणों से छाती पर घायल किया।

ततोऽपराभ्यां भल्लाभ्यां धनुषी समकृन्तत।
यमयोः सहसा राजन् विव्याध च त्रिसप्तभिः॥ ५॥
तावन्ये धनुषी श्रेष्ठे शक्रचापनिभे शुभे।
प्रगृह्य रेजतुः शूरौ देवपुत्रसमौ युधि॥ ६॥
ततस्तौ रभसौ युद्धे भ्रातरौ भ्रातरं युधि।
शरैर्ववृषतुर्घोरैर्महामेघौ यथाचलम्॥ ७॥
ततः क्रुद्धो महाराज तव पुत्रो महारथः।
पाण्डुपुत्रौ महेष्वासौ वारयामास पत्रिभिः॥ ८॥

हे राजन्! फिर दूसरे दो भल्लों से उसने सहसा उनदोनों जुड़वाँ भाइयों के धनुषों को काट दिया और उन्हें इक्कीस बाणों की वर्षाकर बींध दिया। तब इन्द्रधनुषों के समान दो दूसरे श्रेष्ठ सुन्दर धनुषों को लेकर वेदोनों शूरवीर युद्धक्षेत्र में देवपुत्रों के समान सुशोभित होने लगे। फिर जैसे दो विशाल बादल पर्वत पर वर्षा कर रहे हों, वैसे ही वेदोनों भाई युद्ध में शीघ्रता से अपने भाई पर भयंकर बाणों की वर्षा करने लगे। हे महाराज! तब आपके महारथी पुत्र ने क्रोध में भरकर उनदोनों महाधनुर्धर पाण्डुपुत्रों को अपने बाणों से रोक दिया।

ततः सेनापति राजन् पाण्डवस्य महारथः।
पार्षतः प्रययौ तत्र यत्र राजा सुयोधनः॥ ९॥
माद्रीपुत्रौ ततः शूरौ व्यतिक्रम्य महारथौ।
धृष्टद्युम्नस्तव सुतं वारयामास सायकैः॥ १०॥
तमविध्यदमेयात्मा तव पुत्रो ह्यमर्षणः।
पाञ्चाल्यं पञ्चविंशत्या प्रहसन् पुरुषर्षभः॥ ११॥
ततः पुनरमेयात्मा तव पुत्रो ह्यमर्षणः।
विद्ध्वा ननाद पाञ्चाल्यं षष्ट्या पञ्चभिरेव च॥ १२॥

हे राजन्! तब पाण्डवों की सेनाओं का सेनापति द्रुपदपुत्र महारथी धृष्टद्युम्न वहाँ आगया, जहाँ राजा दुर्योधन था। धृष्टद्युम्न ने महारथी शूरवीर माद्री पुत्रों का उल्लंघनकर आपके पुत्र को बाणोंद्वारा रोक दिया। तब आपके अमर्षशील अमितआत्मा पुरुषश्रेष्ठ पुत्र ने जोर से हँसते हुए उस पाँचालकुमार को पच्चीस बाणों की वर्षाकर बींध दिया। आपके अमर्षशील, अमितआत्मा पुत्र ने पुनः पाँचालकुमार को पैंसठ बाणों की वर्षाद्वारा घायल कर गर्जना की।

तथास्य सशरं चापं हस्तावापं च मारिष।
क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन राजा चिच्छेद संयुगे॥ १३॥
तदपास्य धनुश्छिन्नं पाञ्चाल्यः शत्रुकर्शनः।
अन्यदादत्त वेगेन धनुर्भारसहं नवम्॥ १४॥
प्रज्वलन्निव वेगेन संरम्भाद् रुधिरेक्षणः।
अशोभत महेष्वासो धृष्टद्युम्नः कृतव्रणः॥ १५॥
स पञ्चदश नाराचाञ्श्वसतः पन्नगानिव।
जिघांसुर्भरतश्रेष्ठं धृष्टद्युम्नो व्यपासृजत्॥ १६॥

हे मान्यवर! फिर उसने धृष्टद्युम्न के बाणसहित धनुष और हाथ के दस्ताने को अत्यन्त तीखे क्षुरप्र से युद्धक्षेत्र में काट गिराया। तब शत्रुदमन पाँचालकुमार ने टूटे धनुष को फैंककर शीघ्रता से भार को सहनेवाले नये धनुष को लेलिया। धृष्टद्युम्न के शरीर में घाव होरहे थे। वह महाधनुर्धर क्रोध से लाल आँखें किये हुए वेगपूर्वक जलती हुई अग्नि के समान सुशोभित होरहा था। फिर धृष्टद्युम्न ने उस भरतश्रेष्ठ को मारने की इच्छा से फुफकारते हुए साँपों के समान पन्द्रह नाराचों को उसके ऊपर छोड़ा।

ते वर्म हेमविकृतं भित्त्वा राज्ञः शिलाशिताः।
विविशुर्वसुधां वेगात् कङ्कबर्हिणवाससः॥ १७॥
सच्छिन्नवर्मा नाराचप्रहारैर्जर्जरीकृतः।
धृष्टद्युम्नस्य भल्लेन क्रुद्धश्चिच्छेद कार्मुकम्॥ १८॥
अथैनं छिन्नधन्वानं त्वरमाणो महीपतिः।
सायकैर्दशभी राजन् भ्रुवोर्मध्ये समार्पयत्॥ १९॥
तदपास्य धनुश्छिन्नं धृष्टद्युम्नो महामनाः।
अन्यदादत्त वेगेन धनुर्भल्लांश्च षोडश॥ २०॥

शिला पर तेज किये हुए कंक और मोर के पंखों से युक्त वे नाराच वेगपूर्वक राजा के स्वर्णभूषित कवच को भेदकर भूमि में धँस गये। तब जिसका कवच टूट गया था और नाराचों के प्रहार से जो क्षत विक्षत था, उस दुर्योधन ने क्रुद्ध होकर भल्ल से धृष्टद्युम्न के धनुष को काट दिया। फिर उस राजा ने शीघ्रता से टूटे धनुषवाले धृष्टद्युम्न की भौहों के बीच में हे राजन्! दस बाणों की वर्षा की। तब महात्मा धृष्टद्युम्न ने उस धनुष को छोड़कर एक दूसरे धनुष और सोलह भल्लों को शीघ्रता से उठाया।

ततो दुर्योधनस्याश्वान् हत्वा सूतं च पञ्चभिः।
धनुश्चिच्छेद भल्लेन जातरूपपरिष्कृतम्॥ २१॥
रथं सोपस्करं छत्रं शक्तिं खड्गं गदां ध्वजम्।
भल्लैश्चिच्छेद दशभिः पुत्रस्य तव पार्षतः॥ २२॥
दुर्योधनं तु विरथं छिन्नवर्मायुधं रणे।
भ्रातरः पर्यरक्षन्त सोदरा भरतर्षभ॥ २३॥
तमारोप्य रथे राजन् दण्डधारो नराधिपम्।
अपाहरदसम्भ्रान्तो धृष्टद्युम्नस्य पश्यतः॥ २४॥

तब पाँच बाणों से दुर्योधन के घोड़ों और सारथि को मारकर उसने एक भल्ल से उसके स्वर्णभूषित धनुष को काट दिया। द्रुपदपुत्र ने दस बाणों से आपके पुत्र के सारे उपकरणोंसहित रथ, छत्र, शक्ति, खड्ग, गदा और ध्वज को काट दिया। फिर जिस दुर्योधन का कवच टूट गया था, जो रथ से रहित होगया था, उसकी हे भरतश्रेष्ठ! उसके भाई युद्धक्षेत्र में रक्षा करने लगे। हे राजन्! फिर उस राजा को रथ पर बैठाकर दण्डधार बिना घबराये, धृष्टद्युम्न के देखते हुए, वहाँ से हटाकर दूर लेगया।

कर्णस्तु सात्यकिं जित्वा राजगृद्धी महाबलः।
द्रोणहन्तारमुग्रेषुं ससाराभिमुखो रणे॥ २५॥
तं पृष्ठतोऽभ्ययात् तूर्णं शैनेयो वितुदञ्छरैः।
वारणं जघनोपान्ते विषाणाभ्यामिव द्विपः॥ २६॥
स भारत महानासीद् योधानां सुमहात्मनाम्।
कर्णपार्षतयोर्मध्ये त्वदीयानां महारणः॥ २७॥
न पाण्डवानां नास्माकं योधः कश्चित् पराङ्मुखः।
प्रत्यदृश्यत् ततः कर्णः पञ्चालांस्त्वरितो ययौ॥ २८॥

तब राजा दुर्योधन को बचाने का इच्छुक महाबली कर्ण, सात्यकि को जीतकर युद्धक्षेत्र में उग्रबाण वाले द्रोणहन्ता धृष्टद्युम्न की तरफ बढ़ा। तब अपने बाणों से कर्ण को पीड़ा देते हुए सात्यकि ने उसका ऐसे ही पीछा किया जैसे एक हाथी अपने दोनों दाँतों से दूसरे हाथी की जाँघों को चोट पहुँचाता हुआ उसका पीछा कर रहा हो। हे भारत! तब कर्ण और द्रुपदपुत्र के बीच में खड़े आपके महामनस्वी योद्धाओं का पाण्डवयोद्धाओं के साथ महान् संग्राम होरहा था। उस समय हमारा और पाण्डवों का कोई योद्धा युद्ध से विमुख दिखाई नहीं दिया। तब कर्ण ने शीघ्रता से पाँचालों पर आक्रमण किया।

तस्मिन् क्षणे नरश्रेष्ठ गजवाजिजनक्षयः।
प्रादुरासीदुभयतो राजन् मध्यगतेऽहनि॥ २९॥
पञ्चालास्तु महाराज त्वरिता विजिगीषवः।
ते सर्वेऽभ्यद्रवन् कर्णं पतत्रिण इव द्रुमम्॥ ३०॥
तांस्तथाधिरथिः क्रुद्धो यतमानान् मनस्विनः।
विचिन्वन्निव बाणौघैः समासादयदग्रगान्॥ ३१॥
व्याघ्रकेतुं सुशर्माणं चित्रं चोग्रायुधं जयम्।
शुक्लं च रोचमानं च सिंहसेनं च दुर्जयम्॥ ३२॥

हे नरश्रेष्ठ, हे राजन्! उस समय मध्याह्न काल के समय दोनोंतरफ के हाथियों, घोड़ों और योद्धाओं का महान् विनाश होरहा था। हे महाराज! विजय की इच्छावाले पाँचालवीर कर्ण की तरफ उसीप्रकार चले जारहे थे, जैसे पक्षी वृक्ष की तरफ उड़े चले जाते हैं। उन प्रयत्न करते हुए मनस्वी और अग्रगामी वीरों को क्रुद्ध अधिरथपुत्र कर्ण अपने बाणसमूहों से मानो चुनचुन कर मारने लगा। उसने व्याघ्रकेतु, सुशर्मा, चित्र, उग्रायुध, जय, शुक्ल, रोचमान और दुर्जयवीर सिंहसेन पर आक्रमण कर दिया।

ते वीरा रथमार्गेण परिवव्रुर्नरोत्तमम्।
सृजन्तं सायकान् क्रुद्धं कर्णमाहवशोभिनम्॥ ३३॥
युध्यमानांस्तु तान् दूरान्मनुजेन्द्र प्रतापवान्।
अष्टाभिरष्टौ राधेयोऽभ्यर्दयन्निशितैः शरैः॥ ३४॥

अथापरान् महाराज सूतपुत्रः प्रतापवान्।
जघान बहुसाहस्रान् योधान् युद्धविशारदान्॥ ३५॥

उनवीरों ने रथों से युद्धक्षेत्र में शोभा देनेवाले, क्रोध में भरे, बाणों को छोड़ते हुए, नरश्रेष्ठ कर्ण को घेर लिया। हे नरेन्द्र! तब प्रतापी राधापुत्र ने दूर से युद्ध कर रहे उन आठों को आठ तीखे बाणों से घायल कर दिया। हे महाराज! प्रतापी सूतपुत्र ने फिर दूसरे हजारों, युद्धविशारद योद्धाओं को मार दिया।

जिष्णुं च जिष्णु कर्माणं देवापिं भद्रमेव च।
दण्डं च राजन् समरे चित्रं चित्रायुधं हरिम्॥ ३६॥
सिंहकेतुं रोचमानं शलभं च महारथम्।
निजघान सुसंक्रुद्धश्चेदीनां च महारथान्॥ ३७॥
तत्र भारत कर्णेन मातङ्गास्ताडिताः शरैः।
सर्वतोऽभ्यद्रवन् भीताः कुर्वन्तो महदाकुलम्॥ ३८॥
निपेतुरुर्व्यां समरे कर्णसायकताडिताः।
कुर्वन्तो विविधान् नादान् वज्रनुन्ना इवाचलाः॥ ३९॥
गजवाजिमनुष्यैश्च निपतद्भिः समन्ततः।
रथैश्चाधिरथेर्मार्गे समास्तीर्यत मेदिनी॥ ४०॥

हे राजन्! युद्धक्षेत्र में अत्यन्त क्रुद्ध उसने जिष्णु, जिष्णुकर्मा, देवापि, भद्र, दण्ड, चित्र, चित्रायुध, हरि, सिंहकेतु, रोचमान, और महाबली शलभ इन चेदिदेश के महारथियों को मार दिया। हे भारत! वहाँ कर्ण द्वारा बाणों से मारे भयभीत हाथी सेना को महान् व्याकुल करते हुए, सबतरफ भाग रहे थे। कर्ण के बाणों से पीड़ित हाथी युद्धक्षेत्र में अनेकप्रकार से चिंघाड़ते हुए, भूमिपर ऐसे गिर रहे थे, जैसे बिजली की चोट से पर्वतशिखर टूटकर गिर जाते हैं। अधिरथपुत्र के रथ के मार्ग में गिरते हुए हाथी, घोड़ों और मनुष्यों तथा रथों से भूमि पट गयी थी।

नैवं भीष्मो न च द्रोणो नान्ये युधि च तावका।
चक्रुः स्म तादृशं कर्म यादृशं वै कृतं रणे॥ ४१॥
सूतपुत्रेण नागेषु हयेषु च रथेषु च।
नरेषु च महाराज कृतं स्म कदनं महत्॥ ४२॥
मृगमध्ये यथा सिंहो दृश्यते निर्भयश्चरन्।
पञ्चालानां तथा मध्ये कर्णोऽचरदभीतवत्॥ ४३॥
यथा मृगगणांस्त्रस्तान् सिंहो द्रावयते दिशः।
पञ्चालानां रथव्रातान् कर्णो व्यद्रावयत् तथा॥ ४४॥
सिंहास्यं च यथा प्राप्य न जीवन्ति मृगाः क्वचित्।
तथा कर्णमनुप्राप्य न जिजीवुर्महारथाः॥ ४५॥

ऐसा पराक्रम भीष्म, द्रोणाचार्य और आपके किसी दूसरे शूरवीर ने युद्धक्षेत्र में नहीं दिखाया था, जैसा कर्ण उस दिन दिखा रहा था। हे महाराज! सूतपुत्र ने हाथियों, घोड़ों, रथियों और पैदलों की सेनाओं में घुसकर बड़ा विनाश किया। जैसे सिंह मृगों के बीच में निर्भय होकर चलता है, वैसेही कर्ण पाँचालों के बीच में निर्भयता से विचरण करता हुआ दिखाई दे रहा था। जैसे डरे हुए हरिणों को सिंह सबतरफ खदेड़ देता है, वैसे ही कर्ण पाँचालरथियों के समूहों को सबतरफ भगा रहा था। जैसे सिंह के मुख में जाकर कोई हरिण जीवित नहीं बचता उसीप्रकार वे महारथी कर्ण के सामने पहुँचकर जीवित नहीं रह पाते थे।

वैश्वानरं यथा प्राप्य प्रतिदह्यन्ति वै जनाः।
कर्णाग्निना रणे तद्वद् दग्धा भारत सृञ्जयाः॥ ४६॥
मम चासीन्मती राजन् दृष्ट्वा कर्णस्य विक्रमम्।
नैकोऽप्याधिरथेर्जीवन् पाञ्चाल्यो मोक्ष्यते युधि॥ ४७॥
पञ्चालान् व्यधमत् संख्ये सूतपुत्रः पुनः पुनः।
पञ्चालानथ निघ्नन्तं कर्णं दृष्ट्वा महारणे॥ ४८॥
अभ्यधावत् सुसंक्रुद्धो धर्मराजो युधिष्ठिरः।

हे भारत! जैसे आग में पड़कर व्यक्ति जल जाता है, उसीप्रकार युद्ध में कर्णरूपी अग्नि को प्राप्तकर तब सृंजयवीर नष्ट होरहे थे। हे राजन्! उस समय कर्ण के पराक्रम को देखकर मैं यही सोच रहा था कि आज अधिरथपुत्र के हाथ से एक भी पाँचालवीर जीवित नहीं छूट सकता। सूतपुत्र उस समय युद्धक्षेत्र में बार बार पाँचालों का ही विनाश कर रहा था। तब कर्ण को उस महान् युद्ध में पाँचालों का विनाश करते हुए देखकर अत्यन्तक्रुद्ध धर्मराज युधिष्ठिर उसकी तरफ दौड़े।

धृष्टद्युम्नश्च राधेयं द्रौपदेयाश्च मारिष॥ ४९॥
परिवव्रुरमित्रघ्नं शतशश्चापरे जनाः।
शिखण्डी सहदेवश्च नकुलश्च शतानीकः॥ ५०॥
जनमेजयः शिनेर्नप्ता बहवश्च प्रभद्रकाः।
एते पुरोगमा भूत्वा धृष्टद्युम्नस्य संयुगे॥ ५१॥
कर्णमस्यन्तमिष्वस्त्रैर्वि- चेरुरमितौजसः।
तांस्तत्राधिरथिः संख्ये चेदिपाञ्चालपाण्डवान्॥ ५२॥

एको बहूनभ्यपतद् गरुत्मान् पन्नगानिव।
तान् समेतान् महेष्वासाञ्शरवर्षौघवर्षिणः॥ ५३॥
एको व्यधमदव्यग्रस्तमांसीव दिवाकरः।

हे मान्यवर! तब शत्रुदमन राधापुत्र को धृष्टद्युम्न, द्रौपदी के पुत्रों तथा सैंकड़ों दूसरे वीरों ने घेर लिया। शिखण्डी, सहदेव, नकुल, शतानीक, जनमेजय, सात्यकि और बहुतसे प्रभद्रक लोग, येसब अमितओजस्वी युद्धक्षेत्र में धृष्टद्युम्न के आगे होकर कर्ण पर बाणों का प्रहार करते हुए विचरने लगे। तब जैसे अकेला होने पर भी गरुड़ बहुतसारे सर्पों पर आक्रमण कर देता है, वैसे ही कर्ण ने युद्ध में बहुसंख्यक चेदि, पाण्डव और पाँचालों पर आक्रमण कर दिया। जैसे अकेला सूर्य अंधकार को नष्ट कर देता है, वैसेही अकेले कर्ण ने बाणसमूहों की वर्षा करनेवाले उन इकट्ठे महाधनुर्धरों को बिना किसी घबराहट के तित्तर बित्तर कर दिया।

भीमसेनस्तु संसक्ते राधेये पाण्डवैः सह॥ ५४॥
सर्वतोऽभ्यहनत् क्रुद्धो यमदण्डनिभैः शरैः।
बाह्लीकान् केकयान् मत्स्यान् वासात्यान् मद्रसैन्धवान्॥ ५५॥
तत्र मर्मसु भीमेन नाराचैस्ताडिता गजाः।
प्रपतन्तो हतारोहाः कम्पयन्ति स्म मेदिनीम्॥ ५६॥
वाजिनश्च हतारोहाः पत्तयश्च गतासवः।
शेरते युधि निर्भिन्ना वमन्तो रुधिरं बहु॥ ५७॥
सहस्रशश्च रथिनः पातिताः पतितायुधाः।
रथिभिः सादिभिः सूतैः पादातैर्वाजिभिर्गजैः।
भीमसेनशरैश्छिन्नैराच्छन्ना वसुधाभवत्॥ ५८॥

जब कर्ण पाण्डवों के साथ लगा हुआ था, तब क्रोधित भीमसेन अपने मृत्यु के प्रहार के समान बाणों से बाह्लीक, केकय, मत्स्य, वसाति, मद्र तथा सिंधुदेशीय सैनिकों का सबतरफ से संहार कर रहे थे। भीमसेन के नाराचोंद्वारा मर्मस्थलों में प्रहार किये हुए हाथी अपने सवारों के साथ मरकर गिरते हुए पृथिवी को कम्पित कर रहे थे। जिनके सवार भी मारे गये थे, ऐसे निष्प्राण घोड़े और पैदलसैनिक, छिन्न मुख से बहुतसा खून गिराते हुए और हजारों रथी भी, जिनके हथियार गिर चुके थे, गिराये हुए युद्धभूमि में शयन कर रहे थे। भीमसेन के बाणों से छिन्न मृत रथियों, घुड़सवारों, सारथियों, पैदलों, घोड़ों और हाथियों से भूमि आच्छादित होगयी थी।

तेतालीसवाँ अध्याय : अर्जुन द्वारा संहार, अश्वत्थामा की पराजय।

वर्तमाने तथा रौद्रे संग्रामेऽद्भुतदर्शने।
निहत्य पृतनामध्ये संशप्तकगणान् बहून्॥ १॥
अर्जुनो जयतां श्रेष्ठो वासुदेवमथाब्रवीत्।
प्रभग्नं बलमेतद्धि योत्स्यमानं जनार्दन॥ २॥
एते द्रवन्ति सगणाः संशप्तकमहारथाः।
अपारयन्तो मद्बाणान् सिंहशब्दं मृगा इव॥ ३॥

जब इसप्रकार अद्भुत दिखाई देनेवाला वह भयंकर संग्राम चल रहा था, तब सेना के बीच में संशप्तकलोगों के बहुतसारे समूहों को मारकर विजय प्राप्त करनेवालों में श्रेष्ठ अर्जुन ने श्रीकृष्णजी से कहा कि हे जनार्दन! मुझसे युद्ध करनेवाली यह सेना प्रायः छिन्नभिन्न हो गयी है, ये संशप्तकों के महारथीलोग अपने समूहों के साथ मेरे बाणों को न सहन कर पाने के कारण ऐसे भाग रहे हैं जैसे सिंह की गर्जना सुनकर मृग भागते हैं।

दीर्यते च महत् सैन्यं सृञ्जयानां महारणे।
हस्तिकक्षो ह्यसौ कृष्ण केतुः कर्णस्य धीमतः॥ ४॥
दृश्यते राजसैन्यस्य मध्ये विचरतो मुदा।
न च कर्णं रणे शक्ता जेतुमन्ये महारथा॥ ५॥
जानीते हि भवान् कर्णं वीर्यवन्तं पराक्रमे।
तत्र याहि यतः कर्णो द्रावयत्येष नो बलम्॥ ६॥
वर्जयित्वा रणे याहि सूतपुत्रं महारथम्।
एतन्मे रोचते कृष्ण यथा वा तव रोचते॥ ७॥
एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य गोविन्दः प्रहसन्निव।
अब्रवीदर्जुनं तूर्णं कौरवाञ्जहि पाण्डव॥ ८॥

उधर सृंजयों की विशाल सेना इस महान् युद्ध में नष्ट होती जा रही है। राजाओं की सेना के बीच में आनन्दपूर्वक विचरते हुए धीमान् कर्ण की वह हाथी के रस्से के चिह्न से चिह्नित पताका लहराती हुई दिखाई दे रही है। दूसरे महारथी युद्ध में कर्ण

को नहीं जीत सकते। आप तो जानते ही हैं कि कर्ण पराक्रम प्रकट करने में कितना शक्तिशाली है? इसलिये यहाँ के युद्ध को छोड़कर महारथी सूतपुत्र की तरफ चलिये। जहाँ वह हमारी सेना को खदेड़ रहा है। हे कृष्ण! मुझे तो यही अच्छा लगता है या जैसा आपको अच्छा लगे वैसा कीजिये। यह सुनकर श्रीकृष्ण मुस्कराते हुए अर्जुन से बोले कि हे पाण्डुपुत्र! तुम शीघ्रता से कौरवसेनासंहार करो।

ततस्तव महासैन्यं गोविन्दप्रेरिता हयाः।
हंसवर्णाः प्रविविशुर्वहन्तः कृष्णपाण्डवौ॥ ९॥
तौ विदार्य महासेनां प्रविष्टौ केशवार्जुनौ।
क्रुद्धौ संरम्भरक्ताक्षौ व्यभ्राजेतां महाद्युती॥ १०॥
किरीटिभुजनिर्मुक्तैः सम्पतद्भिर्महाशरैः।
समाच्छन्नं बभौ सर्वं काद्रवेयैरिव प्रभो॥ ११॥

तब श्रीकृष्ण द्वारा हाँके हुए हंस के समान रंगवाले घोड़े आपकी विशाल सेना में कृष्ण और पाण्डुपुत्र को लिये घुस गये। महान् सेना को विदीर्ण करके उसमें घुसे हुए महातेजस्वी श्रीकृष्ण और अर्जुन उस समय क्रुद्ध और क्रोध के कारण लाल आँखों से सुशोभित होरहे थे। हे प्रभो! उस समय अर्जुन की भुजाओं द्वारा छोड़े और गिरते हुए महान् बाणों से भरा हुआ वह प्रदेश मानो सर्पों से भरा हुआ हो, ऐसा प्रतीत होरहा था।

रुक्मपुङ्खान् प्रसन्नाग्राञ्छरान् संनतपर्वणः।
अवासृजदमेयात्मा दिक्षु सर्वासु पाण्डवः॥ १२॥
प्रचिच्छेदाशु भल्लेन द्विषतामाततायिनाम्।
शस्त्रं पाणिं तथा बाहुं तथापि च शिरांस्युत॥ १३॥
अङ्गाङ्गावयवैश्छिन्नैर्व्यायुधास्तेऽपतन् भुवि।
विष्वग्वाताभिसम्भग्ना बहुशाखा इव द्रुमाः॥ १४॥
हस्त्यश्वरथपत्तीनां व्रातान् निघ्नन्तमर्जुनम्।
सुदक्षिणादवरजः शरवृष्ट्याभ्यवीवृषत्॥ १५॥

वे अमितआत्मा पाण्डुपुत्र उस समय सुनहरे पंख, झुकी गाँठ और तीखी नोकवाले बाणों को सबतरफ छोड़ रहे थे। वे अपने भल्लों से द्वेष करनेवाले आततायियों के शस्त्रों, हाथों, बाहों और सिरों को शीघ्रतापूर्वक काट रहे थे। जैसे सबतरफ से चलनेवाली आँधी केद्वारा बहुत शाखाओंवाले वृक्ष भी टूटकर गिर पड़ते हैं, वैसेही अपने अंग प्रत्यंगों के कट जाने पर आयुधों से विहीन वे शत्रु भूमि पर गिर रहे थे। तब हाथी, घोड़ों, रथों और पैदलों का संहार करते हुए अर्जुन पर काम्बोजराज सुदक्षिण के छोटे भाई ने बाणों की वर्षा करनी आरम्भ कर दी।

तस्यास्यतोऽर्धचन्द्राभ्यां बाहू परिघसंनिभौ।
पूर्णचन्द्राभवक्त्रं च क्षुरेणाभ्यहरच्छिरः॥ १६॥
एकेषुनिहतैरश्वैः काम्बोजैर्यवनैः शकैः।
शोणिताक्तैस्तदा रक्तं सर्वमासीद् विशाम्पते॥ १७॥
रथैर्हताश्वसूतैश्च हतारोहैश्च वाजिभिः।

तब बाणवर्षा करने वाले उस वीर की परिघ के समान दोनों भुजाओं को अर्जुन ने अर्धचन्द्राकार दो बाणों से और पूर्ण चन्द्रमा के समान मुखवाले उसके सिर को क्षुर नाम के बाण से काट दिया। हे महाराज! उस समय एक एक बाण से मारकर गिराये हुए रक्त रंजित, काबुली घोड़ों, यवनों, शकों जिनके सारथि और घोड़े मारे गये थे, उन रथों से और जिनके सवार मारे गये थे, उन घोड़ों से वह सारा युद्धस्थल लाल हो रहा था।

तस्मिन् प्रपक्षे पक्षे च निहते सव्यसाचिना॥ १८॥
अर्जुनं जयतां श्रेष्ठ त्वरितो द्रौणिरभ्ययात्।
विधुन्वानो महच्चापं कार्तस्वरविभूषितम्॥ १९॥
आददानः शरान् घोरान् स्वरश्मीनिव भास्करः।
क्रोधामर्षविवृत्तास्यो लोहिताक्षो बभौ बली॥ २०॥
स दृष्ट्वैव तु दाशार्हं स्यन्दनस्थं विशाम्पते।
पुनः प्रासृजदुग्राणि शरवर्षाणि मारिष॥ २१॥
तैः पतद्भिर्महाराज द्रौणिमुक्तैः समन्ततः।
संछादितौ रथस्थौ तावुभौ कृष्णधनंजयौ॥ २२॥

जब अर्जुन ने कौरव सेना के पक्ष और प्रपक्षों का संहार कर दिया, तब अपने विशाल स्वर्ण भूषित धनुष को हिलाते हुए और जैसे सूर्य अपनी किरणों का विस्तार करता है, वैसे ही भयंकर बाणों की वर्षा करते हुए द्रोणपुत्र ने विजयशीलों में श्रेष्ठ अर्जुन पर शीघ्रता से आक्रमण कर दिया। उस समय क्रोध और अमर्ष से उस बलवान् के नेत्र लाल हो रहे थे और मुँह खुला हुआ था। हे मान्यवर! प्रजानाथ! वह रथपर बैठे हुए श्रीकृष्ण की तरफ देखकर उन पर पुनः भयंकर बाणों की वर्षा करने लगा। हे महाराज! द्रोणपुत्र के द्वारा चलाये हुए और चारों तरफ से गिरते हुए बाणों के द्वारा रथ में बैठे हुए वेदोनों श्रीकृष्ण और अर्जुन आच्छादित हो गये।

न मया तादृशो राजन् दृष्टपूर्वः पराक्रमः।
संग्रामे यादृशो द्रौणेः कृष्णौ संछादयिष्यतः॥ २३॥
द्रौणेस्तु धनुषः शब्दमहितत्रासनं रणे।
अश्रौषं बहुशो राजन् सिंहस्य निनदो यथा॥ २४॥
ज्या चास्य चरतो युद्धे सव्यदक्षिणमस्यतः।
विद्युदम्बुदमध्यस्था भ्राजमानेव साभवत्॥ २५॥
द्रौणिपाण्डवयोरेवं वर्तमाने महारणे।
वर्धमाने च राजेन्द्र द्रोणपुत्रे महाबले॥ २६॥
हीयमाने च कौन्तेये कृष्णे रोषः समाविशत्।
स रोषान्निःश्वसन् राजन् निर्दहन्निव चक्षुषा॥ २७॥
द्रौणिं ह्यपश्यत् संग्रामे फाल्गुनं च मुहुर्मुहुः।

हे राजन्! उस दिन द्रोणपुत्र ने संग्राम में कृष्ण और अर्जुन को बाणों से आच्छादित करते हुए जैसा पराक्रम दिखाया, वैसा मैंने उसका पहले कभी नहीं देखा था। मैंने सिंह की गर्जना के समान, शत्रुओं को भयभीत करनेवाली द्रोणपुत्र के धनुष की टंकार को युद्धक्षेत्र में अनेकबार सुना। जैसे बादलों के बीच में बिजली चमकती है, वैसेही दायें और बायें हाथों से बाणों को छोड़ते और युद्धस्थल में विचरण करते हुए अश्वत्थामा की प्रत्यंचा भी प्रकाशित होरही थी। हे राजेन्द्र! जब इसप्रकार महान् युद्ध चल रहा था, महाबली द्रोणपुत्र बढ़ता जारहा था और कुन्तीपुत्र का पराक्रम मन्द होने लगा। तब श्रीकृष्णजी को बड़ा क्रोध आया। वे क्रोध से लम्बी साँस लेते हुए, जलती हुई आँखों से युद्ध में बार बार द्रोणपुत्र और अर्जुन की तरफ देखने लगे।

ततः क्रुद्धोऽब्रवीत् कृष्णः पार्थं सप्रणयं तदा॥ २८॥
अत्यद्भुतमिदं पार्थ तव पश्यामि संयुगे।
अतिशेते हि यत्र त्वां द्रोणपुत्रोऽद्य भारत॥ २९॥
कच्चिद् वीर्यं यथापूर्वं भुजयोर्वा बलं तव।
कच्चित् ते गाण्डिवं हस्ते रथे तिष्ठति चार्जुन॥ ३०॥
कच्चित् कुशलिनौ बाहू मुष्टिर्वा न व्यशीर्यत।
उदीर्यमाणं हि रणे पश्यामि द्रौणिमाहवे॥ ३१॥

फिर क्रुद्ध श्रीकृष्ण कुन्तीपुत्र से प्रेमपूर्वक बोले कि हे कुन्तीपुत्र! मैं इस युद्ध में बड़ा अद्भुत परिवर्तन देख रहा हूँ। हे भारत! आज द्रोणपुत्र युद्ध में तुमसे आगे बढ़ रहा है। क्या तुम में पहले जैसाही पराक्रम है? तुम्हारी भुजाओं में वही शक्ति है? क्या तुमने हाथ में गाण्डीवधनुष लिया हुआ है? तुम अपने रथपर ही बैठे हुए हो न? क्या तुम्हारी दोनों भुजाएँ सकुशल हैं? तुम्हारी मुट्ठी तो ढीली नहीं होगयी है? मैं देख रहा हूँ कि युद्ध में द्रोणपुत्र आगे बढ़ रहा है।

गुरुपुत्र इति ह्येनं मानयन् भरतर्षभ।
उपेक्षां कुरु मा पार्थ नायं काल उपेक्षितुम्॥ ३२॥
एवमुक्तस्तु कृष्णेन गृह्य भल्लांश्चतुर्दश।
त्वरमाणस्त्वराकाले द्रौणेर्धनुरथाच्छिनत्॥ ३३॥
ध्वजं छत्रं पताकाश्च खड्गं शक्तिं गदां तथा।
जत्रुदेशे च सुभृशं वत्सदन्तैरताडयत्॥ ३४॥
स मूर्च्छां परमां गत्वा ध्वजयष्टिं समाश्रितः।
तं विसंज्ञं महाराज शत्रुणा भृशपीडितम्।
अपोवाह रणात् सूतो रक्षमाणो धनंजयात्॥ ३५॥

हे भरतश्रेष्ठ! मेरे गुरु का पुत्र है, यह मानकर इसकी उपेक्षा मत करो। यह उपेक्षा करने का समय नहीं है। जब श्रीकृष्ण जी ने ऐसा कहा तब अर्जुन ने शीघ्रता के समय शीघ्रता प्रकट करते हुए चौदह भल्लों को लेकर द्रोणपुत्र के धनुष, ध्वज, छत्र, पताका, खड्ग, शक्ति और गदा आदि के टुकड़े कर दिये और उसकी हँसली पर वत्सदन्त बाण से जोर से चोट पहुँचायी। तब अश्वत्थामा गहरी मूर्च्छा को प्राप्तकर ध्वज के डण्डे के सहारे गिर गया। हे महाराज! तब उसे अचेत और शत्रु द्वारा अधिक पीड़ित देखकर उसका सारथी उसकी अर्जुन से रक्षा करता हुआ उसे युद्धभूमि से दूर लेगया।

चवालीसवाँ अध्याय : अर्जुन का युधिष्ठिर के पास चलने का आग्रह।

द्रोणपुत्रं पराजित्य जित्वा चान्यान् महारथान्।
अब्रवीदर्जुनो राजन् वासुदेवमिदं वचः॥ १॥
पश्य कृष्ण महाबाहो द्रवन्तीं पाण्डवीं चमूम्।
कर्णं पश्य च संग्रामे कालयन्तं महारथान्॥ २॥
न च पश्यामि दाशार्ह धर्मराजं युधिष्ठिरम्।
नापि केतुर्युधां श्रेष्ठ धर्मराजस्य दृश्यते॥ ३॥
त्रिभागश्चावशिष्टोऽयं दिवसस्य जनार्दन।
न च मां धार्तराष्ट्रेषु कच्चिद् युध्यति संयुगे॥ ४॥

फिर द्रोणपुत्र तथा दूसरे महारथियों को पराजित कर, हे राजन्! अर्जुन ने श्रीकृष्णजी से कहा कि हे कृष्ण! देखो पाण्डवों की सेना भाग रही है। देखो कर्ण संग्राम में महारथियों को काल के गाल में भेज रहा है। हे कृष्ण! मैं धर्मराज युधिष्ठिर को भी नहीं देख रहा हूँ, क्योंकि हे योद्धाओं में श्रेष्ठ! उनका ध्वज कहीं दिखाई नहीं देरहा है। हे जनार्दन! दिन के तीन भाग बचे हैं। दुर्योधन की सेनाओं में से कोई भी मेरे साथ युद्ध नहीं कर रहा है।

तस्मात् त्वं मत्प्रियं कुर्वन् याहि यत्र युधिष्ठिरः।
दृष्ट्वा कुशलिनं युद्धे धर्मपुत्रं सहानुजम्॥ ५॥
पुनर्योद्धास्मि वार्ष्णेय शत्रुभिः सह संयुगे।
ततः प्रायाद् रथेनाशु बीभत्सोर्वचनाद्धरिः।
यतो युधिष्ठिरो राजा सृञ्जयाश्च महारथाः॥ ६॥

इसलिये आप मेरा प्रिय करने के लिये वहीं चलिये, जहाँ युधिष्ठिर हैं। मैं युद्धक्षेत्र में धर्मपुत्र को भाइयों के साथ सकुशल देखकर फिर हे श्रीकृष्ण! शत्रुओं के साथ युद्ध करूँगा। तब अर्जुन के कहने से श्रीकृष्ण शीघ्रता से उस तरफ चल दिये जिधर राजा युधिष्ठिर और सृंजय महारथी विद्यमान थे।

पैंतालीसवाँ अध्याय : धृष्टद्युम्न और कर्ण का युद्ध। अश्वत्थामा का धृष्टद्युम्न पर आक्रमण, अर्जुन द्वारा उसकी रक्षा।

ततः प्रववृते भीमः संग्रामो लोमहर्षणः।
कर्णस्य पाण्डवानां च यमराष्ट्र विवर्धनः॥ १॥
तस्मिन् प्रवृत्ते संग्रामे तुमुले शोणितोदके।
धृष्टद्युम्नो महाराज सहितः सर्वराजभिः॥ २॥
कर्णमेवाभिदुद्राव पाण्डवाश्च महारथाः।
आगच्छमानांस्तान् संख्ये प्रहृष्टान् विजयैषिणः॥ ३॥
दधारैको रणे कर्णो जलौघानिव पर्वतः।

इसके पश्चात् मृत्यु के लोक की वृद्धि करनेवाला, रोंगटे खड़े कर देनेवाला, कर्ण और पाण्डवों का भयंकर संग्राम आरम्भ हो गया। खून को पानी की तरह बहानेवाले उस तुमुल संग्राम के चलने पर हे महाराज! सारे राजाओं के साथ धृष्टद्युम्न और पाण्डव महारथियों ने कर्ण पर ही आक्रमण किया। तब जैसे पर्वत अपने ऊपर पानी की विभिन्न धाराओं को धारण करता है, वैसे ही उत्साह में भरे हुए, विजय के इच्छुक, आक्रमण के लिये आते हुए उन सबका अकेले कर्ण ने सामना किया।

समासाद्य तु ते कर्णं व्यशीर्यन्त महारथाः॥ ४॥
यथाचलं समासाद्य वार्योघाः सर्वतोदिशम्।
तयोरासीन्महाराज संग्रामो लोमहर्षणः॥ ५॥
धृष्टद्युम्नस्तु राधेयं शरेणानतपर्वणा।
ताडयामास समरे तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत्॥ ६॥
विजयं च धनुः श्रेष्ठं विधुन्वानो महारथः।
पार्षतस्य धनुश्छित्त्वा शरांश्चाशीविषोपमान्॥ ७॥
ताडयामास संक्रुद्धः पार्षतं नवभिः शरैः।

वे महारथी कर्ण के सामने पहुँचकर उसीप्रकार तित्तर बित्तर हो गये, जैसे पानी के प्रवाह किसी पर्वत के समीप पहुँचकर सारी दिशाओं में बिखर जाते हैं। हे महाराज! तब कर्ण और धृष्टद्युम्न में रोंगटे खड़े कर देने वाला संग्राम होने लगा। धृष्टद्युम्न ने युद्ध में राधापुत्र को झुकी गाँठवाले बाण से ताड़ित किया और उससे कहा कि ठहर जा, ठहर जा। तब महारथी कर्ण ने अपने विजय नाम के धनुष को कम्पित करते हुए द्रुपदपुत्र के विषैले सर्प के समान

बाणों को और धनुष को काटकर अत्यन्त क्रोध में भरकर उसपर नौ बाणों से प्रहार किया।

तदपास्य धनुश्छिन्नं धृष्टद्युम्नो महारथः॥ ८॥
अथान्यद् धनुरादाय शरांश्चाशीविषोपमान्।
कर्णं विव्याध सप्तत्या शरैः संनतपर्वभिः॥ ९॥
तथैव राजन् कर्णोऽपि पार्षतं शत्रुतापनम्।
छादयामास समरे शरैराशीविषोपमैः॥ १०॥
द्रोणशत्रुर्महेष्वासो विव्याध निशितैः शरैः।
तस्य कर्णो महाराज शरं कनकभूषणम्॥ ११॥
प्रेषयामास संक्रुद्धो मृत्युदण्डमिवापरम्।

तब महारथी धृष्टद्युम्न ने टूटे धनुष को फैंककर दूसरे धनुष और विषैले सर्पों के समान बाणों को लेकर कर्ण पर झुकी गाँठवाले सत्तर बाणों की वर्षाकर उसे घायल किया। हे राजन्! कर्ण ने भी वैसेही शत्रुतापन द्रुपदपुत्र को विषैले सर्पों के समान बाणों से आच्छादित कर दिया और द्रोणाचार्य के शत्रु महाधनुर्धर धृष्टद्युम्न ने भी कर्ण को तीखे बाणों से बींध दिया। हे महाराज! तब कर्ण ने दूसरे मृत्यु के प्रहार के समान भयंकर, एक सुनहले बाण को अत्यन्त क्रोध में भरकर चलाया।

तमापतन्तं सहसा घोररूपं विशाम्पते॥ १२॥
चिच्छेद शतधा राजञ्शैनेयः कृतहस्तवत्।
दृष्ट्वा विनिहतं बाणं शरैः कर्णो विशाम्पते॥ १३॥
सात्यकिं शरवर्षेण समन्तात् पर्यवारयत्।
विव्याध चैनं समरे नाराचैस्तत्र सप्तभिः॥ १४॥
तं प्रत्यविध्यच्छैनेयः शरैर्हेमपरिष्कृतैः।
ततो युद्धं महाराज चक्षुःश्रोत्रभयानकम्॥ १५॥
आसीद् घोरं च चित्रं च प्रेक्षणीयं समन्ततः।

हे राजन्! हे प्रजानाथ! उस आते हुए भयंकर बाण को सात्यकि ने सिद्धहस्त योद्धा के समान अनेक टुकड़ों में काट दिया। हे प्रजानाथ! उस बाण को बाणों से काटा हुआ देखकर कर्ण ने सात्यकि को बाणवर्षाद्वारा सबतरफ से आच्छादित कर दिया। उसे उसने सात नाराचों के द्वारा भी युद्ध में बींध दिया। तब सात्यकि ने भी बदले में उसे सुनहले बाणों से घायल कर दिया। हे महाराज! तब उनदोनों में देखने और सुनने में भयंकर युद्ध छिड़ गया जो सबतरफ से देखने योग्य, विचित्र और भयंकर था।

सर्वेषां तत्र भूतानां लोमहर्षोऽभ्यजायत॥ १६॥
तद् दृष्ट्वा समरे कर्म कर्णशैनेययोर्नृप।
एतस्मिन्नन्तरे द्रौणिरभ्ययात् सुमहाबलम्॥ १७॥
पार्षतं शत्रुदमनं शत्रुवीर्यासुनाशनम्।
अभ्यभाषत संक्रुद्धो द्रौणिः परपुरंजयः॥ १८॥
तिष्ठ तिष्ठाद्य ब्रह्मघ्न न मे जीवन विमोक्ष्यसे।
इत्युक्त्वा सुभृशं वीरं शीघ्रकृन्निशितैःशरैः॥ १९॥
पार्षतं छादयामास घोररूपैः सुतेजनैः।
यतमानं परं शक्त्या यतमानो महारथः॥ २०॥

हे राजन्! उस समय युद्ध में कर्ण और सात्यकि के कार्यों को देखकर वहाँ सबके रोंगटे खड़े हो गये। इसी समय अत्यन्तमहाबली, शत्रुदमन, शत्रु के पराक्रम और प्राणों को नष्ट करनेवाले द्रुपदपुत्र के पास द्रोणपुत्र आपहुँचा। तब शत्रु के नगरों को विजय करनेवाला अश्वत्थामा अत्यन्त क्रोध में भरकर बोला कि अरे ब्रह्महत्यारे! ठहर जा। तू आज जीतेजी मेरे हाथ से छूट नहीं सकता। ऐसा कह पूरी शक्ति से प्रयत्न करनेवाले अत्यन्तवीर धृष्टद्युम्न को प्रयत्न करते हुए उस महारथी ने शीघ्रता से अत्यन्ततीखे, भयंकर, पैने बाणों से भर दिया।

यथा हि समरे द्रोणः पार्षतं परवीरहा।
तथा द्रौणिं रणे दृष्ट्वा पार्षतः परवीरहा॥ २१॥
नातिहृष्टमना भूत्वा मन्यते मृत्युमात्मनः।
अथाब्रवीन्महाराज द्रोणपुत्रः प्रतापवान्॥ २२॥
धृष्टद्युम्नं समीपस्थं त्वरमाणो विशाम्पते।
पाञ्चालापसदाद्य त्वां प्रेषयिष्यामि मृत्यवे॥ २३॥
पापं हि यत् त्वया कर्म घ्नता द्रोणं पुरा कृतम्।
अद्य त्वां तप्स्यते तद् वै यथा न कुशलं तथा॥ २४॥

हे मान्यवर! जैसे द्रोणाचार्य युद्धस्थल में धृष्टद्युम्न को देखकर मन में खिन्न हो जाते थे, वैसेही द्रोणपुत्र को युद्ध में अपने सामने देखकर शत्रुवीरों को मारने वाला धृष्टद्युम्न उसे अपनी मृत्यु समझता हुआ शिथिल हो जाता था। हे महाराज! हे प्रजानाथ! अपने समीप धृष्टद्युम्न को देखकर प्रतापी अश्वत्थामा शीघ्रता से उससे बोला कि अरे दुष्ट पाँचाल! आज मैं तुझे मृत्यु के समीप भेजूँगा। तूने पहले द्रोणाचार्य को मारकर जो पाप किया है वह तुझे एक अमंगलकारी कर्म के समान सन्तप्त करेगा।

अरक्ष्यमाणः पार्थेन यदि तिष्ठसि संयुगे।
नापक्रामसि वा मूढ सत्यमेतद् ब्रवीमि ते॥ २५॥
एवमुक्तः प्रत्युवाच धृष्टद्युम्नः प्रतापवान्।
प्रतिवाक्यं स एवासिर्मामको दास्यते तव॥ २६॥
येनैव ते पितुर्दत्तं यतमानस्य संयुगे।
यदि तावन्मया द्रोणो निहतो ब्राह्मणब्रुवः॥ २७॥
त्वामिदानीं कथं युद्धे न हनिष्यामि विक्रमात्।

यदि तू अर्जुन की सुरक्षा के बिना युद्धस्थल में खड़ा रहा और युद्धस्थल से भाग नहीं गया तो हे मूढ! मैं सत्य कहता हूँ, कि तुझे मार दूँगा। ऐसा कहे जाने पर प्रतापी धृष्टद्युम्न ने उत्तर दिया कि तेरी इस बात का उत्तर मेरी यह तलवार ही देगी, जिसने युद्धस्थल में विजय के लिये प्रयत्न करते हुए तेरे पिता को दिया था। यदि मैंने नाममात्र के ब्राह्मण द्रोणाचार्य को पहले मार दिया तो तुझे अब पराक्रम करके युद्ध में क्यों नहीं मारूँगा।

एवमुक्त्वा महाराज सेनापतिरमर्षणः॥ २८॥
निशितेनातिबाणेन द्रौणिं विव्याध पार्षतः।
ततो द्रौणिः सुसंक्रुद्धः शरैः संनतपर्वभिः॥ २९॥
आच्छादयद् दिशो राजन् धृष्टद्युम्नस्य संयुगे।
धृष्टद्युम्नस्तु समरे द्रौणेश्चिच्छेद कार्मुकम्॥ ३०॥
तदपास्य धनुर्द्रौणिरन्यदादाय कार्मुकम्।
वेगवान् समरे घोरे शरांश्चाशीविषोपमान्॥ ३१॥
स पार्षतस्य राजेन्द्र धनुः शक्तिं गदां ध्वजम्।
हयान् सूतं रथं चैव निमेषाद् व्यधमच्छरैः॥ ३२॥

ऐसा कहकर हे महाराज! अमर्षशील सेनापति द्रुपदपुत्र ने अत्यन्त तीखे बाण से द्रोणपुत्र को बींध दिया। हे राजन्! तब द्रोणपुत्र ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर झुकी गाँठवाले बाणों की वर्षा से धृष्टद्युम्न की सब तरफ की दिशाओं को आच्छादित कर दिया। तब धृष्टद्युम्न ने युद्ध में द्रोणपुत्र के धनुष को काट दिया। तब हे राजेन्द्र! वेगवान् अश्वत्थामा ने उस टूटे धनुष को फैंककर और दूसरे धनुष को तथा विषैले सर्पों के समान युद्ध में भयंकर बाणों को लेकर एक पल में ही द्रुपदपुत्र के धनुष, शक्ति, गदा, ध्वज, घोड़ों, सारथि और रथ को बाणों से नष्ट भ्रष्ट कर दिया।

स च्छिन्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः।
खड्गमादत्त विपुलं शतचन्द्रं च भानुमत्॥ ३३॥
द्रौणिस्तदपि राजेन्द्र भल्लैः क्षिप्रं महारथः।
चिच्छेद समरे वीरः क्षिप्रहस्तो दृढायुधः॥ ३४॥
रथादनवरूढस्य तदद्भुतमिवाभवत्।

तब जिसका धनुष, रथ, घोड़े और सारथि नष्ट हो गये थे, उस धृष्टद्युम्न ने एक बड़ी तलवार और सौ चद्रिकाओं से युक्त चमकती हुई ढाल हाथ में ली। हे राजेन्द्र! तब महारथी वीर, शीघ्रता से हाथ चलाने वाले, दृढ़ आयुधों वाले द्रोणपुत्र ने शीघ्रता से भल्लों के द्वारा उसे भी उसके रथ से उतरने से पहले ही काट दिया। यह एक अद्‌भुत बात हुई।

एतस्मिन्नेव काले तु माधवोऽर्जुनमब्रवीत्॥ ३५॥
पश्य पार्थ यथा द्रौणिः पार्षतस्य वधं प्रति।
यत्नं करोति विपुलं हन्याच्चैनं न संशयः॥ ३६॥
तं मोचय महाबाहो पार्षतं शत्रुकर्शन।
द्रौणेरास्यमनुप्राप्तं मृत्योरास्यगतं यथा॥ ३७॥
एवमुक्त्वा महाराज वासुदेवः प्रतापवान्।
प्रैषयत् तुरगांस्तत्र यत्र द्रौणिर्व्यवस्थितः॥ ३८॥
दृष्ट्वाऽऽयातौ महावीर्यावुभौ कृष्णधनंजयौ।
धृष्टद्युम्नवधे यत्नं चक्रे राजन् महाबलः॥ ३९॥
शरांश्चिक्षेप वै पार्थो द्रौणिं प्रति महाबल।
ते शरा हेमविकृता गाण्डीवप्रेषिता भृशम्॥ ४०॥
द्रौणिमासाद्य विविशुर्वल्मीकमिव पन्नगाः।

तभी श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा कि देखो अर्जुन! वह द्रोणपुत्र द्रुपदपुत्र को मारने के लिये किसप्रकार से महान् प्रयत्न कर रहा है और इसमें सन्देह नहीं कि वह उसे मार भी देगा। हे शत्रुदमन! महाबाहु! मृत्यु के मुख के समान द्रोणपुत्र के मुख में गये हुए द्रुपदपुत्र को छुड़ाओ। हे महाराज! ऐसा कहकर प्रतापी श्रीकृष्ण ने घोड़ों को उधर भगाया जिधर अश्वत्थामा विद्यमान था। तब हे राजन्! महापराक्रमी अर्जुन और श्रीकृष्ण को आते हुए देखकर वह महाबली अश्वत्थामा धृष्टद्युम्न के वध के लिये शीघ्रता से यत्न करने लगा। तब महाबलवान् कुन्तीपुत्र ने द्रोणपुत्र पर बाणों को चलाया। गाण्डीवधनुष से अत्यन्त वेग से छूटे हुए वे सुनहरे बाण द्रोणपुत्र के समीप पहुँचकर उसके शरीर में उसीप्रकार धँस गये जैसे सर्प बाँबी में प्रवेश करते हैं।

स विद्धस्तैः शरैर्घोरैर्द्रोणपुत्रः प्रतापवान्॥ ४१॥
उत्सृज्य समरे राजन् पाञ्चाल्यममितौजसम्।
प्रगृह्य च धनुः श्रेष्ठं पार्थं विव्याध सायकैः॥ ४२॥
एतस्मिन्नन्तरे वीरः सहदेवो जनाधिप।

अपोवाह रथेनाजौ पार्षतं शत्रुतापनम्॥ ४३॥
अर्जुनोऽपि महाराज द्रौणिं विव्याध पत्रिभिः।
तं द्रोणपुत्रः संक्रुद्धो बाह्वोरुरसि चार्पयत्॥ ४४॥

हे राजन्! प्रतापी द्रोणपुत्र ने उन भयंकर बाणों से बिंधकर, युद्धक्षेत्र में तब अमित तेजस्वी पाँचालकुमार को छोड़कर, अपने श्रेष्ठ धनुष को उठाकर अर्जुन को बाणों से बींध दिया। हे जनाधिप! इसी बीच में वीर सहदेव शत्रुतापन द्रुपदपुत्र को अपने रथ के द्वारा युद्धभूमि से दूर ले गये। हे महाराज! अर्जुन ने भी द्रोणपुत्र को बाणों से घायल कर दिया। तब द्रोणपुत्र ने अत्यन्त क्रोध में भरकर अर्जुन की बाँहों और छाती पर प्रहार किया।

क्रोधितस्तु रणे पार्थो नाराचं कालसम्मितम्।
द्रोणपुत्राय चिक्षेप कालदण्डमिवापरम्॥ ४५॥
ब्राह्मणस्यांसदेशे स निपपात महाद्युतिः।
स विह्वलो महाराज शरवेगेन संयुगे॥ ४६॥
निषसाद रथोपस्थे वैक्लव्यं च परं ययौ।
विह्वलं तं तु वीक्ष्याथ द्रोणपुत्रं च सारथिः।
अपोवाह रथेनाजौ त्वरमाणो रणाजिरात्॥ ४७॥

तब युद्ध में क्रुद्ध हुए कुन्तीपुत्र ने, मृत्युस्वरूप, दूसरे मृत्यु के प्रहार के समान भयंकर नाराच को द्रोणपुत्र के ऊपर फैंका। वह महातेजस्वी नाराच उस ब्राह्मण के कन्धे पर जाकर लगा। हे महाराज! तब उस बाण के वेग से वह युद्ध में व्याकुल होकर और अत्यन्त मूर्च्छित होकर रथ की बैठक में लुढ़क गया। तब उसे बेचैन देखकर अश्वत्थामा का सारथि शीघ्रता करते हुए उसे रथ के द्वारा युद्धक्षेत्र से दूर ले गया।

छियालीसवाँ अध्याय : कर्ण-शिखण्डी, सहदेव-उलूक, सात्यकि-शकुनि, कृपाचार्य-युधामन्यु, कृतवर्मा-उत्तमौजा, भीम-दुर्योधन, धृष्टद्युम्न-दुश्शासन और वृषसेन-नकुल के द्वन्द्वयुद्ध।

तावकं तु बलं दृष्ट्वा भीमसेनात् पराङ्मुखम्।
यत्नेन महता राजन् पर्यवस्थापयद् बली॥ १॥
व्यवस्थाप्य महाबाहुस्तव पुत्रस्य वाहिनीम्।
प्रत्युद्ययौ तदा कर्णः पाण्डवान् युद्धदुर्मदान्॥ २॥
प्रत्युद्ययुस्तु राधेयं पाण्डवानां महारथाः।
धुन्वानाः कार्मुकाण्याजौ विक्षिपन्तश्च सायकान्॥ ३॥
शिखण्डी तु ततः कर्णं विचरन्तमभीतवत्।
भीष्महन्ता महाराज वारयामास पत्रिभिः॥ ४॥

हे राजन्! फिर आपकी सेना को भीमसेनद्वारा खदेड़ा जाता हुआ देखकर, बलवान् कर्ण ने यत्नपूर्वक उस को स्थिर किया। आपके पुत्र की सेना की व्यवस्थाकर वह महाबाहु कर्ण फिर युद्ध में दुर्मद पाण्डवों की तरफ बढ़ा। तब पाण्डवपक्ष के महारथी भी युद्धस्थल में अपने धनुषों को कम्पित करते हुए और बाणों को छोड़ते हुए कर्ण की तरफ बढ़े। हे महाराज! तब भीष्मपितामह को गिराने वाले शिखण्डी ने निर्भयता से विचरण करते हुए कर्ण को बाणोंद्वारा रोका।

प्रतिरुद्धस्ततः कर्णो रोषात् प्रस्फुरिताधरः।
शिखण्डिनं त्रिभिर्बाणैर्भ्रुवोर्मध्येऽभ्यताडयत्॥ ५॥
सोऽतिविद्धो महेष्वासः सूतपुत्रेण संयुगे।
कर्णं विव्याध समरे नवत्या निशितैः शरैः॥ ६॥
तस्य कर्णो हयान् हत्वा सारथिं च त्रिभिः शरैः।
उन्ममाथ ध्वजं चास्य क्षुरप्रेण महारथः॥ ७॥
हताश्वात्तु ततो यानादवप्लुत्य महारथः।
शक्तिं चिक्षेप कर्णाय संक्रुद्धः शत्रुतापनः॥ ८॥

तब रोके जाने पर कर्ण के क्रोध से होठ फड़कने लगे। उसने तीन बाणों से शिखण्डी की भौंहों के बीच में प्रहार किया। तब सूतपुत्रद्वारा युद्धक्षेत्र में अत्यन्तघायल होकर शिखण्डी ने कर्ण के ऊपर नव्वै तीखे बाणों की वर्षाकर उसे घायल किया। महारथी कर्ण ने उसके घोड़ों को और तीन बाणों से सारथि को मारकर एक क्षुरप्र से उसके ध्वज को भी काट दिया। तब उस महारथी शत्रुतापन ने मरे हुए घोड़ोंवाले रथ से कूदकर कर्ण के ऊपर अत्यन्त क्रोध में भरकर एक शक्ति को फैंका।

तां छित्त्वा समरे कर्णस्त्रिभिर्भारत सायकैः।
शिखण्डिनमथाविध्यन्नवभिर्निशितैः शरैः॥ ९॥
कर्णचापच्युतान् बाणान् वर्जयंस्तु नरोत्तमः।
अपयातस्ततस्तूर्णं शिखण्डी भृशविक्षतः॥ १०॥
ततः कर्णो महाराज पाण्डुसैन्यान्यशातयत्।
तूलराशिं समासाद्य यथा वायुर्महाबलः॥ ११॥

हे भारत! कर्ण ने युद्ध में उस शक्ति को तीन बाणों से काटकर शिखण्डी को नौ तीखे बाणों से बींध दिया। तब पुरुषश्रेष्ठ शिखण्डी, अत्यन्त घायल होकर, कर्ण के धनुष से छूटे हुए उन बाणों से बचता हुआ तुरन्त वहाँ से दूर चला गया। हे महाराज! तब महाबली कर्ण रुई के ढेर को वायु के समान पाण्डवों की सेना को तित्तर बित्तर करने लगा।

धृष्टद्युम्नो महाराज तव पुत्रेण पीडितः।
दुःशासनं त्रिभिर्बाणैः प्रत्यविध्यत् स्तनान्तरे॥ १२॥
तस्य दुःशासनो बाहुं सव्यं विव्याध मारिष।
स तेन रुक्मपुङ्खेन भल्लेनानतपर्वणा॥ १३॥
धृष्टद्युम्नस्तु निर्विद्धः शरं घोरममर्षणः।
दुःशासनाय संक्रुद्धः प्रेषयामास भारत॥ १४॥
आपतन्तं महावेगं धृष्टद्युम्नसमीरितम्।
शरैश्चिच्छेद पुत्रस्ते त्रिभिरेव विशाम्पते॥ १५॥
अथान्यैः सप्तदशभिर्भल्लैः कनकभूषणैः।
धृष्टद्युम्नं समासाद्य बाह्वोरुरसि चार्पयत्॥ १६॥

हे महाराज! आपके पुत्र दुश्शासन से पीड़ित धृष्टद्युम्न ने तीन बाणों से उसकी छाती के बीच में प्रहार किया। हे मान्यवर भारत! दुश्शासन ने तब सुनहरे पंखवाले, झुकी गाँठवाले भल्ल से धृष्टद्युम्न की बायीं बाँह को घायल कर दिया। तब घायल, अमर्षशील और अत्यन्त क्रुद्ध धृष्टद्युम्न ने एक भयंकर बाण को दुश्शासन के ऊपर चलाया। हे प्रजानाथ! धृष्टद्युम्न द्वारा चलाये उस महावेगवाले, आते हुए बाण को आपके पुत्र ने तीन बाणों से काट दिया। तत्पश्चात् उसने दूसरे सुनहले सत्रह भल्लों से, धृष्टद्युम्न के समीप जाकर उसकी बाहों और छाती पर प्रहार किया।

ततः स पार्षतः क्रुद्धो धनुश्चिच्छेद मारिष।
क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन तत उच्चुक्रुशुर्जना॥ १७॥
अथान्यद् धनुरादाय पुत्रस्ते प्रहसन्निव।
धृष्टद्युम्नं शरव्रातैः समन्तात् पर्यवारयत्॥ १८॥
ततः सरथनागाश्वाः पञ्चालाः पाण्डुपूर्वज।
सेनापतिं परीप्सन्तो रुरुधुस्तनयं तव॥ १९॥

हे मान्यवर! तब क्रुद्ध द्रुपदपुत्र ने अत्यन्ततीखे क्षुरप्र से उसके धनुष को काट दिया। तब लोग जोर से चिल्लाने लगे। तब आपके पुत्र ने मुस्कराते हुए दूसरा धनुष लेकर धृष्टद्युम्न को बाणवर्षाद्वारा सब तरफ से भर दिया। तब रथों, हाथियों और घोड़ों के साथ पाँचालों ने हे पाण्डु के बड़े भाई! सेनापति की रक्षाहेतु आपके पुत्र को घेर लिया।

नकुलं वृषसेनस्तु भित्त्वा पञ्चभिरायसैः।
पितुः समीपे तिष्ठन् वै त्रिभिरन्यैरविध्यत॥ २०॥
नकुलस्तु ततः शूरो वृषसेनं हसन्निव।
नाराचेन सुतीक्ष्णेन विव्याध हृदये भृशम्॥ २१॥
सोऽतिविद्धो बलवता शत्रुणा शत्रुकर्षण।
शत्रुं विव्याध विंशत्या स च तं पञ्चभिः शरैः॥ २२॥
ततः शरसहस्रेण तावुभौ पुरुषर्षभौ।
अन्योन्यमाच्छादयतामथोऽभज्यत वाहिनी॥ २३॥

उधर पिता के पास खड़े हुए वृषसेन ने नकुल को पाँच बाणों से बींधकर फिर और दूसरे तीन बाणों से घायल कर दिया। तब शूरवीर नकुल ने मुस्कराते हुए अत्यन्ततीखे नाराच से वृषसेन के हृदयप्रदेश को अत्यन्तघायल कर दिया। हे शत्रुसूदन! उस बलवान् शत्रु द्वारा अत्यन्त घायल होकर वृषसेन ने अपने शत्रु को बीस बाणों से घायल कर दिया। फिर नकुल ने भी उसे पाँच बाणों से बींधा। तब वेदोनों पुरुषश्रेष्ठ असंख्य बाणों द्वारा एकदूसरे को आच्छादित करने लगे। तभी कौरवसेना में भगदड़ मच गयी।

उलूकस्तु रणे क्रुद्धः सहदेवेन वारितः।
तस्याश्वांश्चतुरो हत्वा सहदेवः प्रतापवान्॥ २४॥
सारथिं प्रेषयामास यमस्य सदनं प्रति।
उलूकस्तु ततो यानादवप्लुत्य विशाम्पते॥ २५॥
त्रिगर्तानां बलं तूर्णं जगाम पितृनन्दनः।

उधर युद्ध में क्रुद्ध उलूक को सहदेव ने रोक दिया। उस प्रतापी ने उलूक के चारों घोड़ों को मारकर उसके सारथि को मृत्युलोक में भेज दिया। हे प्रजानाथ! तब पिता को आनन्द देने वाला उलूक रथ से कूदकर तुरन्त त्रिगर्तों की सेना में चला गया।

सात्यकिः शकुनिं विद्ध्वा विंशत्या निशितैः शरैः॥ २६॥
ध्वजं चिच्छेद भल्लेन सौबलस्य हसन्निव।

सौबलस्तस्य समरे क्रुद्धो राजन् प्रतापवान्॥ २७॥
विदार्य कवचं भूयो ध्वजं चिच्छेद काञ्चनम्।
तथैनं निशितैर्बाणैः सात्यकिः प्रत्यविध्यत॥ २८॥
सारथिं च महाराज त्रिभिरेव समार्पयत्।
अथास्य वाहांस्त्वरितः शरैर्निन्ये यमक्षयम्॥ २९॥
ततोऽवप्लुत्य सहसा शकुनिर्भरतर्षभ।
आरुरोह रथं तूर्णमुलूकस्य महात्मनः॥ ३०॥
अपोवाहाथ शीघ्रं स शैनेयाद् युद्धशालिनः।
सात्यकिस्तु रणे राजंस्तावकानामनीकिनीम्॥ ३१॥
अभिदुद्राव वेगेन ततोऽनीकमभज्यत।

उधर सात्यकि ने शकुनि को बीस तीखे बाणों से बींधकर मुस्कराते हुए उसके ध्वज को भल्ल से काट दिया। हे राजन्! तब प्रतापी शकुनि ने युद्ध में क्रुद्ध होकर उसके कवच को छेदकर फिर सुनहरे ध्वज को काट दिया। हे महाराज! सात्यकि ने भी उसे उसीप्रकार तीखे बाणों से बदले में बींध दिया और उसके सारथि को तीन बाण मारे। फिर सात्यकि ने उसके घोड़ों को बाणों से मृत्युलोक में पहुँचा दिया। हे भरतश्रेष्ठ! फिर शकुनि तुरन्त रथ से कूदकर मनस्वी उलूक के रथ पर चढ़ गया। तब उलूक अपने रथ को युद्ध में वीर सात्यकि से दूर ले गया। हे राजन्! तब सात्यकि ने आपके पुत्रों की सेना पर जोर से आक्रमण किया, जिससे उस में भगदड़ मच गयी।

भीमसेनं तव सुतो वारयामास संयुगे॥ ३२॥
तं तु भीमो मुहूर्तेन व्यश्वसूतरथध्वजम्।
चक्रे लोकेश्वरं तत्र तेनातुष्यन्त वै जनाः॥ ३३॥
ततोऽपायान्नृपस्तत्र भीमसेनस्य गोचरात्।

उधर आपके पुत्र दुर्योधन ने भीमसेन को युद्धक्षेत्र में रोका। तब भीमसेन ने एक मुहूर्त में ही प्रजा के स्वामी उसे घोड़ों, सारथि, रथ और ध्वजा से रहित कर दिया। इससे लोगों को बड़ी प्रसन्नता हुई। तब वह राजा भीमसेन की आँखों से दूर चला गया।

युधामन्युःकृपं विद्ध्वा धनुरस्याशु चिच्छिदे॥ ३४॥
अथान्यद् धनुरादाय कृपः शस्त्रभृतां वरः।
युधामन्योर्ध्वजं सूतं छत्रं चापातयत् क्षितौ॥ ३५॥
ततोऽपायाद् रथेनैव युधामन्युर्महारथः।

दूसरी तरफ युधामन्यु ने कृपाचार्य को शीघ्रता से घायलकर उसके धनुष को काट दिया। तब शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ कृपाचार्य ने दूसरे धनुष को, लेकर युधामन्यु के ध्वज, सारथि, और छत्र को भूमिपर गिरा दिया। तब महारथी युधामन्यु वहाँ से रथ के द्वारा ही भाग गया।

उत्तमौजाश्च हार्दिक्यं भीमं भीमपराक्रमम्॥ ३६॥
छादयामास सहसा मेघो वृष्ट्येव पर्वतम्।
कृतवर्मा ततो राजन्नुत्तमौजसमाहवे॥ ३७॥
हृदि विव्याध सहसा रथोपस्थ उपाविशत्।
सारथिस्तमपोवाह रथेन रथिनां वरम्॥ ३८॥

उधर भयंकरपराक्रमी हृदीकपुत्र कृतवर्मा को उत्तमौजा ने सहसाही बाणवर्षा से ऐसे आच्छादित कर दिया, जैसे बादल वर्षाद्वारा पर्वत को कर देते हैं। हे राजन्! तब कृतवर्मा ने युद्धक्षेत्र में उत्तमौजा की छाती को सहसा घायल कर दिया, जिससे उत्तमौजा अचेत होकर रथ की बैठक में बैठ गया। तब उस रथियों में श्रेष्ठ को उसका सारथि वहाँ से दूर लेगया।

कुरुसैन्यं ततः सर्वं भीमसेनमुपाद्रवत्।
दुःशासनः सौबलश्च गजानीकेन पाण्डवम्॥ ३९॥
महता परिवार्यैव क्षुद्रकैरभ्यताडयत्।
ततो भीमः शरशतैर्दुर्योधनममर्षणम्॥ ४०॥
विमुखीकृत्य तरसा गजानीकमुपाद्रवत्।
ततः कुञ्जरयूथानि समेतानि सहस्रशः॥ ४१॥
व्यधमत् तरसा भीमो मेघासङ्घानिवानिलः।
सुवर्णजालापिहिता मणिजालैश्च कुञ्जराः॥ ४२॥
रेजुरभ्यधिकं संख्ये विद्युत्वन्त इवाम्बुदाः।

उसके पश्चात् सारी कौरव सेना ने भीमसेन पर आक्रमण कर दिया। दुश्शासन और शकुनि ने विशाल हाथियों की सेना के द्वारा उस पाण्डुपुत्र को घेरकर उसपर बाणों द्वारा प्रहार करना आरम्भ कर दिया। तब भीम ने सैकड़ों बाणों से अमर्षशील दुर्योधन को युद्ध से विमुख कर वेगपूर्वक हाथियों की सेना पर आक्रमण किया। तब जैसे वायु बादलों के समूह को छितरा देती है, वैसे ही भीम ने वहाँ एकत्र हुए अनेक हाथियों के समूहों को वेगपूर्वक तित्तर– बित्तर कर दिया। वे हाथी सुनहरी तथा मणियों की जालियों से ढके हुए, बिजली वाले बादलों के समान सुशोभित हो रहे थे।

ते वध्यमाना भीमेन गजा राजन् विदुद्रुवुः॥ ४३॥
केचिद् विभिन्नहृदयाः कुञ्जरा न्यपतन् भुवि।

ततो भिन्नकटा नागा भिन्नकुम्भकरास्तथा॥ ४४॥
दुद्रुवुः शतशः संख्ये भीमसेनशराहताः।
केचिद् वमन्तो रुधिरं भयार्ताः पर्वतोपमाः॥ ४५॥
व्यद्रवञ्छरविद्धाङ्गा धातुचित्रा इवाचलाः।
महाभुजगसंकाशौ चन्दनागुरुरूषितौ॥ ४६॥
अपश्यं भीमसेनस्य, धनुर्विक्षिपतो भुजौ।
तस्य ज्यातलनिर्घोषं श्रुत्वाशनिसमस्वनम्।
विमुञ्चन्तः शकृन्मूत्रं गजाः प्राद्रुद्रुवुर्भृशम्॥ ४७॥

हे राजन्! भीमसेन के द्वारा मारे जाते हुए वे हाथी वहाँ से भागने लगे। उनमें से कई हाथियों के हृदय फट गये और वे भूमि पर गिर पड़े। भागते हुए हाथियों के गण्डस्थल फूट गये थे, कुम्भस्थल विदीर्ण हो गये थे और सूँड कट गयी थीं। इस प्रकार भीमसेन के बाणों से मारे हुए सैकड़ों हाथी युद्धस्थल में भागे जा रहे थे। पर्वतों के समान कई विशाल हाथी भय से पीड़ित होकर खून की उलटी कर रहे और भाग रहे थे। शरीर के अंगों के बाणों से घायल होने के कारण वे धातुओं से चित्रित पर्वतों के समान प्रतीत हो रहे थे। मुझे वहाँ चन्दन और अगर से लिपटी हुई और धनुष को खींचती हुई भीमसेन की दोनों विशाल बाहें दो विशाल सर्पों के समान लग रही थीं। बिजली की गड़गड़ाहट के समान उसकी प्रत्यंचा की टंकार को सुनकर हाथी मलमूत्र करते हुए जोर से भागे जा रहे थे।

सैंतालीसवाँ अध्याय : युधिष्ठिर पर कौरव सैनिकों का आक्रमण।

दुर्योधनस्तवसुतः सैन्यार्धेनाभिसंवृतः।
पर्यवारयदायान्तं युधिष्ठिरममर्षणम्॥ १॥
क्षुरप्राणां त्रिसप्तत्या ततोऽविध्यत पाण्डवम्।
अक्रुध्यत भृशं तत्र कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः॥ २॥
स भल्लांस्त्रिंशतस्तूर्णं तव पुत्रे न्यवेशयत्।
ततोऽधावन्त कौरव्या जिघृक्षन्तो युधिष्ठिरम्॥ ३॥
दुष्टभावान् पराञ्ज्ञात्वा समवेता महारथाः।
आजग्मुस्तं परीप्सन्तः कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम्॥ ४॥

तब आपके पुत्र दुर्योधन ने आधी सेना के साथ आकर अमर्षशील आते हुए युधिष्ठिर को चारोंतरफ से घेर लिया और पाण्डुपुत्र पर तिहत्तर क्षुरप्रों की वर्षाकर उसे घायल कर दिया। तब कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर ने अत्यन्त क्रोध में भरकर तुरन्त आपके पुत्रपर तीस भल्लों की वर्षा की। तब कौरवसैनिक युधिष्ठिर को पकड़ने की इच्छा से उनकीतरफ दौड़ पड़े। उधर शत्रुओं के दुष्ट भावों को जानकर पाण्डवपक्ष के महारथी भी एकसाथ कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर को बचाने के लिये वहाँ आ पहुँचे।

नकुलः सहदेवश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः।
अक्षौहिण्या परिवृतास्तेऽभ्यधावन् युधिष्ठिरम्॥ ५॥
भीमसेनश्च समरे मृद्नंस्तव महारथान्।
अभ्यधावदभिप्रेप्सू राजानं शत्रुभिर्वृतम्॥ ६॥
तांस्तु सर्वान् महेष्वासान् कर्णो वैकर्तनो नृप।
शरवर्षेण महता प्रत्यवारयदागतान्॥ ७॥
दुर्योधनं च विंशत्या शीघ्रमस्त्रमुदीरयन्।
अविध्यत् तूर्णमभ्येत्य सहदेवः प्रतापवान्॥ ८॥

नकुल, सहदेव, द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्न एक अक्षौहिणी सेना को साथ लेकर युधिष्ठिर के पास दौड़कर आये। उधर भीमसेन भी युद्ध में आपके महारथियों को रौंदते हुए, शत्रुओं से घिरे हुए राजा को बचाने के लिये उनके पास दौड़कर आये। हे राजन्! सूर्यपुत्र कर्ण ने तब उन सारे आते हुए महान् धनुर्धरों को विशाल बाणवर्षा के द्वारा रोक दिया। तभी प्रतापी सहदेव ने जल्दी से आकर शीघ्रतापूर्वक अस्त्रों की वर्षा करते हुए दुर्योधन को बीस बाणों से बींध दिया।

दृष्ट्वा तव सुतं तत्र गाढविद्धं सुतेजनैः।
अभ्यधावद् दृढं क्रुद्धो राधेयो रथिनां वरः॥ ९॥
ततो यौधिष्ठिरं सैन्यं वध्यमानं महात्मना।
सहसा प्राद्रवद् राजन् सूतपुत्रशरार्दितम्॥ १०॥
रक्तचन्दनसंदिग्धौ मणिहेमविभूषितौ।
बाहू व्यत्यक्षिपत् कर्णः परमास्त्रं विदर्शयन्॥ ११॥
ततः सर्वा दिशो राजन् सायकैर्विप्रमोहयन्।
अपीडयद् भृशं कर्णो धर्मराजं युधिष्ठिरम्॥ १२॥

आपके पुत्र को अत्यन्ततीखे बाणों से गहराघायल देखकर, रथियों में श्रेष्ठ राधापुत्र अत्यन्तक्रुद्ध होकर उधर दौड़ा। हे राजन्! तब मनस्वी सूतपुत्र के बाणों से पीड़ित मारी जाती हुई युधिष्ठिर की सेना सहसा भागने लगी। उस समय कर्ण अस्त्रविद्या के परम कौशल को दिखाता हुआ, लाल चन्दन से लिपटी मणि और सुवर्ण से विभूषित दोनों बाहों को बार बार हिला रहा था। हे राजन्! तब कर्ण ने बाणों से भरते हुए धर्मराज युधिष्ठिर को अत्यन्त पीड़ा दी।

ततः क्रुद्धो महाराज धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः।
निशितैरिषुभिः कर्णं पञ्चाशद्भिः समार्पयत्॥ १३॥
कर्णोऽपि भृशसंक्रुद्धो धर्मराजं युधिष्ठिरम्।
नाराचैरर्धचन्द्रैश्च वत्सदन्तैश्च संयुगे॥ १४॥
अमर्षी क्रोधनश्चैव रोषप्रस्फुरिताननः।
सायकैरप्रमेयात्मा युधिष्ठिरमभिद्रवत्॥ १५॥
युधिष्ठिरश्चापि स तं स्वर्णपुङ्खैः शितैः शरैः।
प्रहसन्निव तं कर्णः कङ्कपत्रैः शिलाशितैः॥ १६॥
उरस्यविध्यद् राजानं त्रिभिर्भल्लैश्च पाण्डवम्।

हे महाराज तब क्रुद्ध धर्मपुत्र युधिष्ठिर ने तीखे पचास बाणों से कर्ण पर प्रहार किया। तब अमर्षशील, क्रोधी, अप्रमेय आत्मबल से युक्त कर्ण ने अत्यन्तक्रुद्ध होकर क्रोध से फड़कते हुए मुख के साथ युद्धक्षेत्र में नाराच, अर्धचन्द्र और वत्सदन्त बाणों के द्वारा धर्मराज युधिष्ठिर पर आक्रमण किया। युधिष्ठिर ने भी सुनहने पंखवाले तीखे बाणों से कर्ण को घायल किया। तब कर्ण ने मुस्कराते हुए कंकपत्रों से युक्त, शिला पर तेज किये तीन भल्लों से पाण्डुपुत्र राजा की छाती को घायल कर दिया।

स पीडितो भृशं तेन धर्मराजो युधिष्ठिरः॥ १७॥
उपविश्य रथोपस्थे सूतं याहीत्यचोदयत्।
तस्मिन् सुतुमुले युद्धे वर्तमाने जनक्षये।
दुर्योधनश्च भीमश्च समेयातां महाबलौ॥ १८॥

तब उसके द्वारा अत्यन्तपीड़ित धर्मराज युधिष्ठिर ने रथ की बैठक में बैठकर सारथि से कहा कि यहाँ से चलो। इसप्रकार जब लोगों का विनाश करनेवाला अत्यन्तभयानक युद्ध चल रहा था तब महाबली दुर्योधन और भीमसेन परस्पर युद्ध में लगे हुए थे।

अड़तालीसवाँ अध्याय : कर्ण का नकुल, सहदेव और युधिष्ठिर को हराना युधिष्ठिर का छावनी में विश्राम।

कर्णोऽपि शरजालेन केकयानां महारथान्।
व्यधमत् परमेष्वासानग्रतः पर्यवस्थितान्॥ १॥
तेषां प्रयतमानानां राधेयस्य निवारणे।
रथान् पञ्चशतान् कर्णः प्राहिणोद् यमसादनम्॥ २॥
अविषह्यं ततो दृष्ट्वा राधेयं युधि योधिनः।
भीमसेनमुपागच्छन् कर्णबाणप्रपीडिताः॥ ३॥
रथानीकं विदार्यैव शरजालैरनेकधा।
कर्ण एकरथेनैव युधिष्ठिरमुपाद्रवत्॥ ४॥

तत्पश्चात् कर्ण भी बाणवर्षाद्वारा सामने खड़े हुए केकयों के महाधनुर्धर महारथियों का विनाश करने लगा। राधापुत्र को रोकने के लिये प्रयत्न करते हुए उन केकयों के पाँचसौ रथियों को कर्ण ने मृत्युलोक में पहुँचा दिया। तब कर्ण के बाणों से पीड़ित योद्धा लोग राधापुत्र को युद्ध में असह्य समझकर वहाँ से भीमसेन के पास चले गये। तब अपने बाणसमूहों से रथसेना को अनेक भागों में विदीर्णकर कर्ण ने अकेले रथ के द्वारा युधिष्ठिर पर आक्रमण किया।

सेनानिवेशमार्च्छन्तं मार्गणैः क्षतविक्षतम्।
यमयोर्मध्यगं वीरं शनैर्यान्तं विचेतसम्॥ ५॥
समासाद्य तु राजानं दुर्योधनहितेप्सया।
सूतपुत्रस्त्रि भिस्तीक्ष्णैर्विव्याध परमेषुभिः॥ ६॥
तथैव राजा राधेयं प्रत्यविध्यत् स्तनान्तरे।
शरैस्त्रिभिश्च यन्तारं चतुर्भिश्चतुरो हयान्॥ ७॥
चक्ररक्षौ तु पार्थस्य माद्रीपुत्रौ परंतपौ।
तावप्यधावतां कर्णं राजानं मा वधीरिति॥ ८॥

उस समय वीर युधिष्ठिर बाणों से घायल होकर

अचेत से हो रहे थे। वे नकुल और सहदेव के बीच में धीरे धीरे सेना के विश्राम स्थान की तरफ जा रहे थे। तब दुर्योधन की भलाई करने की इच्छा से कर्ण ने उन राजा के पास पहुँचकर तीन उत्तम और तीखे बाणों से उन्हें पुनः घायल कर दिया। तब राजा युधिष्ठिर ने भी उत्तर में कर्ण की छाती पर बाणों से प्रहार किया और तीन बाणों से सारथि को, चार बाणों से चारों घोड़ों को घायल कर दिया। परंतप नकुल और सहदेव, जो कि राजा के चक्र रक्षक थे, वे भी कर्ण की तरफ यह सोचकर दौड़े कि कहीं यह राजा का वध न करदे।

तौ पृथक् शरवर्षाभ्यां राधेयमभ्यवर्षताम्।
नकुलः सहदेवश्च परमं यत्नमास्थितौ॥ ९॥
तथैव तौ प्रत्यविध्यत् सूतपुत्रः प्रतापवान्।
भल्लाभ्यां शितधाराभ्यां महात्मानावरिंदमौ॥ १०॥
दन्तवर्णांस्तु राधेयो निजघान मनोजवान्।
युधिष्ठिरस्य संग्रामे कालवालान् हयोत्तमान्॥ ११॥
ततोऽपरेण भल्लेन शिरस्त्राणमपातयत्।
कौन्तेयस्य महेष्वासः प्रहसन्निव सूतजः॥ १२॥

वेदोनों अत्यन्त यत्न करते हुए अलगअलग राधापुत्र पर बाणों की वर्षा करने लगे। तब प्रतापी सूतपुत्र ने, भी उनदोनों शत्रुदमन मनस्वियों को तेज धारवाले दो भल्लों से घायल कर दिया। उसने युधिष्ठिर के मन जैसी गतिवाले उन श्वेत उत्तम घोड़ों को जिनकी पूँछ और गर्दन के बाल काले थे, संग्रामभूमि में मार दिया। फिर उस महाधनुर्धर सारथि के बेटे ने दूसरे भल्ल से मुस्कराते हुए कुन्तीपुत्र के शिरस्त्राण को गिरा दिया।

तथैव नकुलस्यापि हयान् हत्वा प्रतापवान्।
ईषां धनुश्च चिच्छेद माद्रीपुत्रस्य धीमतः॥ १३॥
तौ हताश्वौ हतरथौ पाण्डवौ भृशविक्षतौ।
भ्रातरावारुरुहतुः सहदेवरथं तदा॥ १४॥
तौ दृष्ट्वा मातुलस्तत्र विरथौ परवीरहा।
अभ्यभाषत राधेयं मद्रराजोऽनुकम्पया॥ १५॥
योद्धव्यमद्य पार्थेन फाल्गुनेन त्वया सह।
किमर्थं धर्मराजेन युध्यसे भृशरोषितः॥ १६॥

फिर उसी प्रतापी ने माद्रीपुत्र धीमान् नकुल के भी घोड़ों को मारकर उसके ईषादण्ड और धनुष को काट दिया। घोड़ों के मारे जाने और रथ के टूट जाने पर वेदोनों पाण्डव भाई अत्यन्त घायल अवस्था में सहदेव के रथपर जा चढ़े। उनदोनों को तब रथ से रहित देखकर शत्रु के वीरों को मारनेवाला उनका मामा मद्रराज कृपापूर्वक राधापुत्र से बोला कि आज तुम्हें कुन्तीपुत्र अर्जुन के साथ युद्ध करना है, फिर अत्यन्त क्रोध में धर्मराज के साथ क्यों युद्ध कर रहे हो?

क्षीणशस्त्रास्त्रकवचः क्षीणबाणो विबाणधिः।
श्रान्तसारथिवाहश्च च्छन्नोऽस्त्रैररिभिस्तथा॥ १७॥
पार्थमासाद्य राधेय उपहास्यो भविष्यसि।
एवमुक्तोऽपि कर्णस्तु मद्रराजेन संयुगे॥ १८॥
तथैव कर्णः संरब्धो युधिष्ठिरमताडयत्।
ततः शल्यः प्रहस्येदं कर्णं पुनरुवाच ह॥ १९॥
रथस्थमतिसंरब्धं युधिष्ठिरवधे धृतम्।
यदर्थं धार्तराष्ट्रेण सततं मानितो भवान्॥ २०॥
तं पार्थं जहि राधेय किं ते हत्वा युधिष्ठिरम्।

इनके शस्त्रास्त्र और कवच क्षीण होगये हैं, बाण और तरकस भी नष्ट होगये हैं। इनके सारथि और घोड़े भी थके हुए हैं, शत्रुओं ने इन्हें अस्त्रों से आच्छादित कर दिया है, ऐसी अवस्था में इनपर आक्रमण कर तुम अर्जुन के सामने उपहास के पात्र बनोगे। युद्धक्षेत्र में मद्रराजद्वारा ऐसा कहने पर भी क्रुद्ध कर्ण वैसे ही युधिष्ठिर पर आक्रमण करता रहा। तब युधिष्ठिर के वध का निश्चय किये और अत्यन्त क्रोध में रथ पर बैठे कर्ण से शल्य ने हँसकर यह कहा कि दुर्योधन ने जिस अर्जुन को मारने के लिये तुम्हारा सदा सम्मान किया है, हे राधापुत्र! उस अर्जुन को जाकर मारो, युधिष्ठिर को मारने से तुम्हें क्या मिलेगा?

हते ह्यस्मिन् ध्रुवं पार्थः सर्वाञ्जेष्यति नो रथान्॥ २१॥
तस्मिन् हि धार्तराष्ट्रस्य निहते तु ध्रुवो जयः।
ध्वजोऽसौ दृश्यते तस्य रोचमानोंऽशुमानिव॥ २२॥
एनं जहि महाबाहो किं ते हत्वा युधिष्ठिरम्।
शङ्खयोर्ध्मायतोः शब्दः सुमहानेष कृष्णयोः॥ २३॥
श्रूयते चापघोषोऽयं प्रावृषीवाम्बुदस्य ह।
असौ निघ्नन् रथोदारानर्जुनः शरवृष्टिभिः॥ २४॥
सर्वां ग्रसति नः सेनां कर्ण पश्यैनमाहवे।

इनको मारने पर तो अर्जुन निश्चितरूप से हमारे सारे महारथियों को जीत लेंगे किन्तु अर्जुन के मारे

जाने पर दुर्योधन की विजय निश्चित है। यह उसका सूर्य के समान सुशोभित ध्वज दिखाई दे रहा है। हे महाबाहु! तुम उसे मारो। युधिष्ठिर को मारकर तुम्हें क्या मिलेगा? यह कृष्ण और अर्जुन जोर से अपने शंखों को बजा रहे हैं। वर्षाऋतु में बादलों की गर्जना के समान उनके धनुष की टंकार भी सुनाई देरही है। देखो अर्जुन अपनी बाणवर्षा द्वारा हमारे बड़े रथियों को मारते हुए हमारी सेना को युद्धक्षेत्र में मानों खाये जारहे हैं, हे कर्ण! तुम उनकी तरफ देखो।

भीमसेनश्च वै राज्ञा धार्तराष्ट्रेण युध्यते॥ २५॥
यथा न हन्यात्तं भीमः सर्वेषां नोऽद्य पश्यताम्।
तथा राधेय क्रियतां राजा मुच्येत नो यथा॥ २६॥
पश्यैनं भीमसेनेन ग्रस्तमाहवशोभिनम्।
यदि त्वासाद्य मुच्येत विस्मयः सुमहान् भवेत्॥ २७॥
परित्राह्येनमभ्येत्य संशयं परमं गतम्।
किं नु माद्रीसुतौ हत्वा राजानं च युधिष्ठिरम्॥ २८॥

भीमसेन राजा दुर्योधन के साथ युद्ध कर रहे हैं। कहीं ऐसा न हो कि हम सबके देखते हुए भीम उन्हें मार दे। इसलिये हे राधापुत्र! ऐसा करो, जिससे दुर्योधन भीम के चंगुल से छूट जाये। देखो युद्ध में शोभित होने वाले दुर्योधन को भीमसेन ने पकड़ा हुआ है। यदि तुम्हारे जाने से भी यह छूट जाये, तो बड़ा भारी आश्चर्य होगा। जिसका जीवन अत्यन्त संशय में पड़ा हुआ है उस दुर्योधन को तुम जाकर बचाओ। नकुल और सहदेव तथा युधिष्ठिर को मारकर तुम्हें क्या मिलेगा।

इति शल्यवचः श्रुत्वा राधेयः पृथिवीपते।
दृष्ट्वा दुर्योधनं चैव भीमग्रस्तं महाहवे॥ २९॥
राजगृद्धी भृशं चैव शल्यवाक्यप्रचोदितः।
अजातशत्रुमुत्सृज्य माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ॥ ३०॥
तव पुत्रं परित्रातुमभ्यधावत वीर्यवान्।
ताभ्यां स सहितस्तूर्णं व्रीडन्निव नरेश्वरः॥ ३१॥
प्राप्य सेनानिवेशं च मार्गणैः क्षतविक्षतः।
अवतीर्णो रथात्तूर्णमाविशच्छयनं शुभम्॥ ३२॥

हे राजन्! तब शल्य की बात सुनकर दुर्योधन को महान् युद्ध में भीमसेन द्वारा पीड़ित देखकर राजा को अत्यधिक चाहनेवाला पराक्रमी कर्ण शल्य की बातों से प्रेरित होकर अजातशत्रु युधिष्ठिर तथा नकुल सहदेव को छोड़कर, आपके पुत्र को बचाने के लिये उसतरफ दौड़ा। तब वे राजा युधिष्ठिर नकुल सहदेव के साथ, लज्जित से होते हुए, तुरन्त छावनी में पहुँचकर शीघ्रता से रथों से उतर पड़े और अपने सुन्दर बिस्तरों पर लेट गये। उस समय उनका शरीर बाणों से घायल होरहा था।

अपनीतशल्यः सुभृशं हृच्छल्याभिनिपीडितः।
सोऽब्रवीद्भ्रातरौ राजा माद्रीपुत्रौ महारथौ॥ ३३॥
गच्छतां त्वरितौ वीरौ यत्र भीमो व्यवस्थितः।
जीमूत इव नर्दंस्तु युध्यते स वृकोदरः॥ ३४॥
ततोऽन्यं रथमास्थाय नकुलो रथपुङ्गवः।
सहदेवश्च तेजस्वी भ्रातरौ शत्रुकर्षणौ॥ ३५॥
तुरगैरग्र्यरंहोभिर्यात्वा भीमस्य शुष्मिणौ।
अनीकैः सहितौ तत्र भ्रातरौ समवस्थितौ॥ ३६॥

वहाँ उनके बाणों को निकाल दिया गया, पर उनके हृदय में जो अपमान का काँटा गड़ा हुआ था, उससे वे अत्यन्त पीड़ित थे। फिर राजा ने उन दोनों भाइयों माद्री के महारथी पुत्रों से कहा कि हे वीरों! तुम जल्दी से वहाँ जाओ, जहाँ भीम विद्यमान हैं। भीम बादलों के समान गर्जना करते हुए युद्ध कर रहे हैं। तब रथीश्रेष्ठ नकुल और तेजस्वी सहदेव दोनों शत्रुदमन भाई, दूसरे रथ पर बैठकर अत्यन्त तेज घोड़ों के द्वारा बलवान् भीम के पास पहुँचकर, भीम की सेनाओं के साथ अवस्थित होकर युद्ध करने लगे।

उनन्चासवाँ अध्याय : अर्जुन से अश्वत्थामा की हार। कर्ण द्वारा संहार।

द्रौणिस्तु रथवंशेन महता परिवारितः।
अपतत् सहसा राजन् यत्र पार्थो व्यवस्थितः॥ १॥
तमापतन्तं सहसा शूरः शौरिसहायवान्।
दधार सहसा पार्थो वेलेव मकरालयम्॥ २॥
ततः क्रुद्धो महाराज द्रोणपुत्रः प्रतापवान्।
अर्जुनं वासुदेवं च छादयामास सायकैः॥ ३॥
अर्जुनस्तु ततो दिव्यमस्त्रं चक्रे हसन्निव।
तदस्त्रं वारयामास ब्राह्मणो युधि भारत॥ ४॥

हे राजन्! अश्वत्थामा तब विशाल रथसेना के साथ वहाँ पहुँचा, जहाँ अर्जुन विद्यमान थे। तब श्रीकृष्णजी की सहायता से युक्त शूरवीर कुन्तीपुत्र ने उस आक्रमण करते हुए को तुरन्त उसीप्रकार रोक दिया जैसे तटभूमि बढ़ते हुए सागर को रोक देती है। हे महाराज! तब प्रतापी द्रोणपुत्र ने क्रुद्ध होकर श्रीकृष्ण और अर्जुन को बाणों से आच्छादित कर दिया। फिर अर्जुन ने मुस्कराते हुए दिव्यास्त्र का प्रयोग किया, किन्तु हे भारत! उस ब्राह्मण ने युद्ध में उनके उस अस्त्र का निवारण कर दिया।

यद् यद्धि व्याक्षिपद् युद्धे पाण्डवोऽस्त्रजिघांसया।
तत् तदस्त्रं महेष्वासो द्रोणपुत्रो व्यशातयत्॥ ५॥
स दिशः प्रतिशश्चैव च्छादयित्वा ह्यजिह्मगैः।
वासुदेवं त्रिभिर्बाणैरविध्यद् दक्षिणे भुजे॥ ६॥
भूयोऽर्जुनं महाराज द्रौणिरायम्य पत्रिणा।
वक्षोदेशे भृशं पार्थं ताडयामास निर्दयम्॥ ७॥
सोऽतिविद्धो रणे तेन द्रोणपुत्रेण भारत।
गाण्डीवधन्वा प्रसभं शरवर्षैरुदारधीः॥ ८॥
संछाद्य समरे द्रौणिं चिच्छेदास्य च कार्मुकम्।

पाण्डुपुत्र उस समय युद्ध में मारने की इच्छा से जोजो अस्त्र प्रकट करते थे, उसीउसी अस्त्र को महाधनुर्धर अश्वत्थामा नष्ट कर देता था। उसने अर्जुन के चारोंतरफ के स्थान को सीधे जानेवाले बाणों से भरकर श्रीकृष्ण जी की दायीं बाँह को तीन बाणों से बींध दिया। हे महाराज! द्रोणपुत्र ने पुनः अपने धनुष को खींचकर निर्दयता के साथ एक बाण से अर्जुन की छाती पर जोर से प्रहार किया। हे भारत! तब द्रोणपुत्रसे युद्ध में अत्यन्तघायल होकर उदार बुद्धिवाले गाण्डीव धनुषधारी अर्जुन ने तब बलपूर्वक बाणवर्षा से द्रोणपुत्र को आच्छादित कर दिया और उसके धनुष को भी काट दिया।

स छिन्नधन्वा परिघं वज्रस्पर्शसमं युधि॥ ९॥
आदाय चिक्षेप तदा द्रोणपुत्रः किरीटिने।
तमापतन्तं परिघं जाम्बूनदपरिष्कृतम्॥ १०॥
चिच्छेद सहसा राजन् प्रहसन्निव पाण्डवः।
ततः क्रुद्धो महाराज द्रोणपुत्रो महारथः।
ऐन्द्रेण चास्त्रवेगेन बीभत्सुं समवाकिरत्॥ ११॥

द्रोणपुत्र ने धनुष के कटजाने पर युद्धस्थल में एक वज्र के समान स्पर्शवाले परिघ को किरीटधारी अर्जुन पर फैंका। अपने ऊपर आते उस स्वर्णभूषित परिघ को हे राजन्! पाण्डुपुत्र ने मुस्कराते हुए सहसा काट गिराया। हे महाराज! तब क्रुद्ध महारथी द्रोणपुत्र ने ऐन्द्रास्त्र का प्रयोग कर उसके प्रभाव से अर्जुन को आच्छादित कर दिया।

तस्येन्द्रजालावततं समीक्ष्य
पार्थो राजन् गाण्डिवमाददे सः।
ऐन्द्रं जालं प्रत्यहरत् तरस्वी
वरास्त्रमादाय महेन्द्रसृष्टम्॥ १२॥
विदार्य तज्जालमथेन्द्रमुक्तं
पार्थस्ततो द्रौणिरथं क्षणेन।
प्रच्छादयामास ततोऽभ्युपेत्य
द्रौणिस्तदा पार्थशराभिभूतः॥ १३॥
विगाह्य तां पाण्डवबाणवृष्टिं
शरैः परं नाम ततः प्रकाश्य।
शतेन कृष्णं सहसाभ्यविद्धयत्
त्रिभिः शतैरर्जुनं क्षुद्रकाणाम्॥ १४॥

ऐन्द्रास्त्र के बढ़ते हुए प्रभाव को देखकर हे राजन्! वेगवान् कुन्तीपुत्र ने गाण्डीवधनुष को उठाया और उससे अधिक उत्तम महेन्द्रास्त्र का प्रयोग कर उस का उपसंहार कर दिया। इसप्रकार ऐन्द्रास्त्र को व्यर्थकर अर्जुन ने द्रोणपुत्र के समीप जाकर क्षणभर में ही उसे बाणों से आच्छादित कर दिया। उस समय द्रोणपुत्र बाणवर्षा से ढक गया था। फिर अपने नाम को प्रकाशित करते हुए उसने बाणवर्षा को हटाकर तुरन्त अर्जुन पर तीन सौ और श्रीकृष्ण पर सौ बाणों की वर्षाकर उन्हें घायल कर दिया।

स विद्ध्वा मर्मसु द्रौणिं पाण्डवः परवीरहा।
सारथिं चास्य भल्लेन रथनीडादपातयत्॥ १५॥
स संगृह्य स्वयं वाहान् कृष्णौ प्राच्छादयच्छरैः।
तत्राद्धुतमपश्याम द्रौणेराशु पराक्रमम्॥ १६॥
ततः प्रहस्य बीभत्सुर्द्रोणपुत्रस्य संयुगे।
क्षिप्रं रश्मीनथाश्वानां क्षुरप्रैश्चिच्छिदे जयः॥ १७॥
प्राद्रवंस्तुरगास्ते तु शरवेगप्रपीडिताः।

तब शत्रुवीरों को नष्ट करनेवाले पाण्डुपुत्र ने द्रोणपुत्र के मर्मस्थलों को बींधकर उसके सारथि को भल्लद्वारा गिरा दिया। वहाँ हमने द्रोणपुत्र के शीघ्रतायुक्त पराक्रम को देखा कि घोड़ों का स्वयं संचालन करते हुए उसने श्रीकृष्ण और अर्जुन को बाणों से आच्छादित कर दिया। तब विजयी अर्जुन ने हँसकर युद्धक्षेत्र में अश्वत्थामा के घोड़ों की लगामों को शीघ्रता से क्षुरप्रों द्वारा काट दिया। बाणों के वेग से पीड़ित उसके घोड़े वहाँ से भाग गये।

पाण्डवास्तु जयं लब्ध्वा तव सैन्यं समाद्रवन्॥ १८॥
समन्तान्निशितान् बाणान् विमुञ्चन्तोजयैषिणः।
वार्यमाणा महासेना पुत्रैस्तव जनेश्वर॥ १९॥
न चातिष्ठत संग्रामे पीड्यमाना समन्ततः।
तिष्ठ तिष्ठेति च ततः सूतपुत्रस्य जल्पतः॥ २०॥
नावतिष्ठति सा सेना वध्यमाना महात्मभिः।
ततो दुर्योधनः कर्णमब्रवीत् प्रणयादिव॥ २१॥
पश्य कर्ण महासेना पञ्चालैरर्दिता भृशम्।
त्वयि तिष्ठति संत्रासात् पलायनपरायणा॥ २२॥
एतज्ज्ञात्वा महाबाहो कुरु प्राप्तमरिंदम।

तब विजय को प्राप्तकर पाण्डवसैनिकों ने विजय की अभिलाषा से, सब तरफ से तीखे बाणों की वर्षा करते हुए आपकी सेना पर आक्रमण कर दिया। हे जनेश्वर! तब सबतरफ से पीड़ित होती हुई आपकी विशाल सेना, आपके पुत्रोंद्वारा रोकी जाने पर भी युद्धभूमि में ठहर न सकी। सूतपुत्र कर्ण के ठहरो, ठहरो ऐसा चिल्लाने पर भी मनस्वी पाण्डवों द्वारा मार खाती हुई वह सेना ठहर नहीं सकी। तब दुर्योधन ने कर्ण से प्रेमपूर्वक कहा कि हे कर्ण! देखो यह हमारी विशाल सेना पाँचालों से अत्यन्त पीड़ित होरही है। हे शत्रुदमन, महाबाहु! तुम्हारे होते हुए भी यह भय से भागी जा रही है। यह देखकर तुम जो समयोचित कर्त्तव्य है, उसे करो।

सहस्राणि च योधानां त्वामेव पुरुषोत्तम॥ २३॥
क्रोशन्ति समरे वीर द्राव्यमाणानि पाण्डवैः।
एतच्छ्रुत्वापि राधेयो दुर्योधनवचो महान्॥ २४॥
मद्रराजमिदं वाक्यमब्रवीत् प्रहसन्निव।
पश्य मे भुजयोर्वीर्यमस्त्राणां च जनेश्वर॥ २५॥
अद्य हन्मि रणे सर्वान् पञ्चालान् पाण्डुभिः सह।
वाहयाश्वान् नरव्याघ्र भद्रेणैव न संशयः॥ २६॥

हे पुरुषोत्तम वीर! हजारों योद्धा युद्धक्षेत्र में पाण्डवों के द्वारा भगाये जाते हुए तुम्हें ही पुकार रहे हैं। तब महान् राधापुत्र ने दुर्योधन की बात सुनकर, मुस्कराते हुए मद्रराज शल्य से कहा कि हे जनेश्वर! तुम मेरी भुजाओं के तथा अस्त्रों के पराक्रम को देखो। आज मैं युद्ध में पाण्डवों के साथ सारे पाँचालों को मार दूँगा, इसमें संशय नहीं है। आप कुशलता के साथ घोड़ों को आगे बढ़ाइये।

एवमुक्त्वा महाराज सूतपुत्रः प्रतापवान्।
प्रगृह्य विजयं वीरो धनुः श्रेष्ठं पुरातनम्॥ २७॥
सज्यं कृत्वा महाराज संगृह्य च पुनः पुनः।
संनिवार्य च योधान् स सत्येन शपथेन च॥ २८॥
प्रायोजयदमेयात्मा भार्गवास्त्रं महाबलः।
हाहाकारो महानासीत् पञ्चालानां विशाम्पते॥ २९॥
पीडितानां बलवता भार्गवास्त्रेण संयुगे।

ऐसा कहकर हे महाराज! प्रतापी और वीर सूतपुत्र ने अपने पुराने श्रेष्ठ धनुष विजय को उठाकर, उसपर प्रत्यंचा चढ़ाकर, बार बार हाथ में लेकर सत्य की शपथ खाते हुए योद्धाओं को रोका और फिर उस अमितआत्मावाले महाबली ने भार्गवास्त्र का प्रयोग किया। हे प्रजानाथ! तब बलवान् भार्गवास्त्र से पीड़ित पाँचालों का युद्धक्षेत्र में महान् हा हाकार होने लगा।

निपतद्भिर्गजै राजन्नश्वैश्चापि सहस्रशः॥ ३०॥
रथैश्चापि नरव्याघ्र नरैश्चैव समन्ततः।
प्राकम्पत मही राजन् निहतैस्तैः समन्ततः॥ ३१॥
व्याकुलं सर्वमभवत् पाण्डवानां महद् बलम्।
कर्णस्त्वेको युधां श्रेष्ठो विधूम इव पावकः॥ ३२॥
दहञ्शत्रून् नरव्याघ्र शुशुभे स परंतपः।
ते वध्यमानाः कर्णेन पञ्चालाश्चेदिभिः सह॥ ३३॥
तत्र तत्र व्यमुह्यन्त वनदाहे यथा द्विपाः।
ते वध्यमानाः समरे सूतपुत्रेण सृंजयाः॥ ३४॥
अर्जुनं वासुदेवं च क्रोशन्ति च मुहुर्मुहुः।

हे नरश्रेष्ठ, हे राजन्! तब हजारों गिरते और मरते हुए हाथियों, घोड़ों, रथों, और पैदलों के कारण भूमि काँपने लगी और पाण्डवों की सारी विशाल सेना बेचैन होगयी। हे नरव्याघ्र! शत्रुओं को सन्तप्त करनेवाला केवल एक योद्धाओं में श्रेष्ठ कर्ण शत्रुओं को दग्ध करता हुआ निर्धूम अग्नि के समान सुशोभित होरहा था। कर्णद्वारा मारे जाते हुए वे पाँचाल और चेदीदेशीय योद्धा जगहजगह उसी प्रकार मूर्च्छित होरहे थे, जैसे वन में आग लगने पर हाथी मूर्च्छित होकर गिरने लगते हैं। युद्धक्षेत्र में सूतपुत्रद्वारा मारे जाते हुए सृंजय वीर बार बार अर्जुन और श्रीकृष्ण को पुकार रहे थे।

श्रुत्वा तु निनंद तेषां वध्यतां कर्णसायकैः॥ ३५॥
अथाब्रवीद् वासुदेवं कुन्तीपुत्रो धनंजयः।
भार्गवास्त्रं महाघोरं दृष्ट्वा तत्र समीरितम्॥ ३६॥
पश्य कृष्णमहाबाहो भार्गवास्त्रस्य विक्रमम्।
नैतदस्त्रं हि समरे शक्यं हन्तुं कथञ्चन॥ ३७॥
सूतपुत्रं च संरब्धं पश्य कृष्ण महारणे।
अन्तकप्रतिमं वीर्ये कुर्वाणं कर्म दारुणम्॥ ३८॥
अभीक्ष्णं चोदयन्नश्वान् प्रेक्षते मां मुहुर्मुहुः।
न च पश्यामि समरे कर्णं प्रति पलायितुम्॥ ३९॥

कर्ण के बाणों से मारे जाते हुए उनके आर्तनाद को सुनकर और प्रयोग किये हुए भार्गवास्त्र को देखकर कुन्तीपुत्र अर्जुन ने श्रीकृष्णजी से कहा कि हे महाबाहु! कृष्ण! भार्गवास्त्र के प्रताप को देखो। इस अस्त्र को किसीप्रकार भी युद्धक्षेत्र में नहीं रोका जासकता। मृत्यु के समान पराक्रमी क्रुद्ध सूतपुत्र को देखो जो महान् युद्ध में दारुण कर्म को कर रहा है। यह बार बार घोड़ों को हाँकता हुआ मेरी तरफ ही देख रहा है। मैं युद्धक्षेत्र में कर्ण के सामने से पलायन करना उचित नहीं समझता।

एवमुक्तस्तु पार्थेन कृष्णो मतिमतां वरम्।
धनंजयमुवाचेदं प्राप्तकालमरिंदमम्॥ ४०॥
कर्णेन हि दृढं राजा कुन्तीपुत्रः परिक्षितः।
तं दृष्ट्वाऽऽश्वास्य च पुनः कर्णं पार्थ वधिष्यसि॥ ४१॥
एवमुक्त्वा पुनः प्रायाद् द्रष्टुमिच्छन् युधिष्ठिरम्।
श्रमेण ग्राहयिष्यंश्च युद्धे कर्णं विशाम्पते॥ ४२॥

अर्जुन द्वारा ऐसा कहे जाने पर बुद्धिमानों में श्रेष्ठ श्रीकृष्ण ने शत्रुदमन अर्जुन से समयोचित बात कही कि हे कुन्तीपुत्र! कर्ण ने युधिष्ठिर को बुरी तरह से घायल कर दिया है। उन्हें देखकर और आश्वासन देकर फिर तुम कर्ण का वध करना। हे प्रजानाथ! ऐसा कह वह युधिष्ठिर को देखने और कर्ण को और अधिक थकाने की इच्छा से वहाँ से चल दिये।

पचासवाँ अध्याय : श्रीकृष्ण और अर्जुन का युधिष्ठिर के समीप जाना।

स युध्यमानान् पृतनामुखस्थाञ्
शूरःशूरान् हर्षयन् सव्यसाची।
पूर्वप्रहारैर्मथितान् प्रशंसन्
स्थिरांश्चकारात्म- रथाननीके॥ १॥
अपश्यमानस्तु किरीटमाली
युधिष्ठिरं भ्रातरमाजमीढम्।
उवाच भीमं तरसाभ्युपेत्य
राज्ञः प्रवृत्तिं त्विह कुत्र राजा॥ २॥

तब शूरवीर अर्जुन ने सेना के मुहाने पर युद्ध करते हुए शूरवीरों को हर्षित और पहले के प्रहारों से घायल हुए रथियों, सैनिकों की प्रशंसा करते हुए उन्हें अपनी सेना में स्थिर किया। फिर अपने भाई अजमीढकुलनन्दन युधिष्ठिर को न देखकर, शीघ्रता से भीम के समीप जाकर राजा के बारे में पूछा कि वे इस समय कहाँ है?

भीमसेन उवाच

अपयात इतो राजा धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः।
कर्णबाणाभितप्ताङ्गो यदि जीवेत् कथञ्चन॥ ३॥

भीमसेन ने कहा कि कर्ण के बाणों से उनके सारे अंग संतप्त होरहे थे। इसलिये वे चले गये हैं। शायद वे इस समय किसी तरह से जी रहे हों?

अर्जुन उवाच

तस्माद् भवाञ्शीघ्रमितः प्रयातु
राज्ञः प्रवृत्त्यै कुरुसत्तमस्य।

नूनं स विद्धोऽतिभृशं पृषत्कैः
कर्णेन राजा शिबिरं गतोऽसौ॥ ४॥
यः सम्प्रहारैर्निशितैः पृषत्कै-
र्द्रोणेन विद्धोऽतिभृशं तरस्वी।
तस्थौ स तत्रापि जयप्रतीक्षो
द्रोणोऽपियावन्न हतः किला सीत्॥ ५॥
स संशयं गमितः पाण्डवाग्र्यः
संख्येऽद्य कर्णेन महानुभावः।
ज्ञातुं प्रयाह्याशु तमद्य भीम
स्थास्याम्यहं शत्रुगणान् निरुद्ध्य॥ ६॥

तब अर्जुन ने कहा कि तब तो आप शीघ्रही यहाँसे जाइये और कुरुश्रेष्ठ राजा का हाल मालूम कीजिये। निश्चयही कर्ण ने उन्हें बहुत अधिक घायल कर दिया है, इसलिये वे शिविर में हैं। जो महानुभाव पाण्डवों में ज्येष्ठ, वेगवान् वीर युधिष्ठिर द्रोणाचार्य के तीखे बाणों के प्रहारों से अत्यन्तघायल होने पर भी, विजय की आशा में द्रोणाचार्य की मृत्युतक युद्धक्षेत्र में डटे रहे, उन्हें आज कर्ण ने जीवन के संशय में डाल दिया है। इसलिये हे भीम! तुम उनके बारे में मालूम करने के लिये जल्दी जाओ। मैं यहाँ शत्रुओं को रोकता हूँ।

भीमसेन उवाच

त्वमेव जानीहि महानुभाव
राज्ञः प्रवृत्तिं भरतर्षभस्य।
अहं हि यद्यर्जुन याम्यमित्रा
वदन्ति मां भीत इति प्रवीराः॥ ७॥

तब भीम ने कहा कि हे महानुभाव अर्जुन! तुम ही भरतश्रेष्ठ राजा का हाल मालूम करो। यदि मैं जाऊँगा, तो शत्रुओं के वीर मुझे भयभीत कहेंगे।

अर्जुन उवाच

चोदयाश्वान् हृषीकेश विहायैतद् बलार्णवम्।
अजातशत्रुं राजानं द्रष्टुमिच्छामि केशव॥ ८॥

तब अर्जुन ने कहा कि हे जितेन्द्रिय श्रीकृष्ण! आप घोड़ों को उस तरफ हाँकिये। मैं इस सेना समूह को छोड़कर अजातशत्रु राजा के दर्शन करना चाहता हूँ।

ततो हयान् सर्वदाशार्हमुख्यः
प्रचोदयन् भीममुवाच चेदम्।
नैतच्चित्रं तव कर्माद्य भीम
यास्याम्यहं जहि पार्थारिसंघान्॥ ९॥

तब यदुवंशियों के प्रधान श्रीकृष्ण जी ने घोड़ों को हाँकते हुए कहा कि हे कुन्तीपुत्र भीम! आज का पराक्रम तुम्हारे लिये आश्चर्य की बात नहीं है। तुम शत्रुओं का संहार करो। मैं जा रहा हूँ।

ततो ययौ हृषीकेशो यत्र राजा युधिष्ठिरः।
शीघ्राच्छीघ्रतरं राजन् वाजिभिर्गरुडोपमैः॥ १०॥

हे राजन्! तब श्रीकृष्ण गरुड़ के समान शीघ्रगामी घोड़ों के द्वारा जल्दी से जल्दी वहाँ जा पहुँचे जहाँ राजा युधिष्ठिर विश्राम कर रहे थे।

ततस्तु गत्वा पुरुषप्रवीरौ
राजानमासाद्य शयानमेकम्।
रथादुभौ प्रत्यवरुह्य तस्माद्
ववन्दतुर्धर्मराजस्य पादौ॥ ११॥
अथोपयातौ पृथुलोहिताक्षौ
शराचिताङ्गौ रुधिरप्रदिग्धौ।
समीक्ष्य सेनाग्रनरप्रवीरौ
युधिष्ठिरो वाक्यमिदं बभाषे॥ १२॥

फिर वेदोनों पुरुषश्रेष्ठ रथ से उतरकर, अकेले सोये हुए राजा के पास गये। उन्होंने धर्मराज के चरणों में प्रणाम किया। सेना के अग्रभागों में युद्धकरने वालों में प्रमुख, वेदोनों मोटी और लाल आँखों वाले, बाणों से भरे शरीर वाले और खून से लथपथ हुए जब उनके समीप पहुँचे तब उन्हें देखकर युधिष्ठिर ने कहा—

महासत्त्वौ हि तौ दृष्ट्वा सहितौ केशवार्जुनौ।
हतमाधिरथिं मेने संख्ये गाण्डीवधन्वना॥ १३॥
तावभ्यनन्दत् कौन्तेयः साम्ना परमवल्गुना।
स्मितपूर्णममित्रघ्नं पूजयन् भरतर्षभ॥ १४॥

उनदोनों महाशक्तिशाली कृष्ण और अर्जुन को देखकर उन्होंने यह समझा कि अर्जुन ने कर्ण को मार दिया है। हे भरतश्रेष्ठ! इसलिये कुन्तीपुत्र ने अत्यन्तमधुर, सान्त्वनापूर्ण, वाणी से उन शत्रुदमन का मुस्कराहट से सम्मान करते हुए कहा कि—

इक्यावनवाँ अध्याय : युधिष्ठिर की अर्जुन से कर्णवध की जिज्ञासा।

युधिष्ठिर उवाच

स्वागतं देवकीमातः स्वागतं ते धनंजय।
प्रियं मे दर्शनं गाढं युवयोरच्युतार्जुनौ॥ १॥
अक्षताभ्यामरिष्टाभ्यां हतः कर्णो महारथः।
आशीविषसमं युद्धे सर्वशस्त्रविशारदम्॥ २॥
अग्रगं धार्तराष्ट्राणां सर्वेषां शर्म वर्म च।
रक्षितं वृषसेनेन सुषेणेन च धन्विना॥ ३॥
अनुज्ञातं महावीर्यं रामेणास्त्रे सुदुर्जयम्।
अग्र्यं सर्वस्य लोकस्य रथिनं लोकविश्रुतम्॥ ४॥

युधिष्ठिर ने कहा कि हे देवकी के पुत्र! हे अर्जुन! तुम्हारा स्वागत है। तुमदोनों श्रीकृष्ण और अर्जुन का दर्शन आज मुझे बहुतप्यारा लग रहा है, जो तुम्हारे सकुशल रहते हुए और कोई चोट न लगे हुए तुम्हारे द्वारा महारथी कर्ण मारा गया। कर्ण सारे शस्त्रों का विशारद और युद्ध में विषैले सर्प के समान था। वह धृतराष्ट्र के पुत्रों का अगुआ, कल्याणसाधक और कवच था। धनुर्धर वृषसेन और सुषेण उसके पृष्ठरक्षक थे। परशुराम से अस्त्रविद्या प्राप्त कर वह अत्यन्तदुर्जय और महापराक्रमी होगया था। वह संसार में प्रसिद्ध और रथियों में अग्रणी था।

त्रातारं धार्तराष्ट्राणां गन्तारं वाहिनीमुखे।
हन्तारं परसैन्यानाममित्रगणमर्दनम्॥ ५॥
दुर्योधनहिते युक्तमस्मद्दुःखाय चोद्यतम्।
अन्तकं मम मित्राणां हत्वा कर्णं महामृधे॥ ६॥
दिष्ट्या युवामनुप्राप्तौ जित्वासुरमिवामरौ।
घोरं युद्धमदीनेन मया ह्यद्याच्युतार्जुनौ॥ ७॥
कृतं तेनान्तकेनेव प्रजाः सर्वा जिघांसता।

वह धृतराष्ट्र के पुत्रों को बचाने, सेना के आगे चलने, शत्रु सेनाओं को नष्ट करने और शत्रुसमूहों को कुचलने वाला था। वह दुर्योधन के हित में लगा हुआ, हमें दुःख देने के लिये सदा उद्यत रहता था। मेरे मित्रों के लिये मृत्युस्वरूप उस कर्ण को महान् युद्ध में मारकर आये हुए तुम दोनों को सौभाग्य से मैं ऐसे देख रहा हूँ, जैसे किसी असुर को मारकर दो देवता आये हों। हे अच्युत! और अर्जुन! सारी प्रजा को नष्ट करने के इच्छुक उस मृत्युस्वरूप के साथ मैंने बिना दीनता दिखाये घोर युद्ध किया।

तेन केतुश्च मे छिन्नो हतौ च पार्ष्णिसारथी॥ ८॥
हतवाहस्ततश्चास्मि युयुधानस्य पश्यतः।
धृष्टद्युम्नस्य यमयोर्वीरस्य च शिखण्डिनः॥ ९॥
पश्यतां द्रौपदेयानां पञ्चालानां च सर्वशः।
अभिसृत्य च मां युद्धे परुषाण्युक्तवान् बहु॥ १०॥
तत्र तत्र युधां श्रेष्ठ परिभूय न संशयः।
भीमसेनप्रभावात्तु यज्जीवामि धनंजय॥ ११॥
बहुनात्र किमुक्तेन नाहं तत् सोढुमुत्सहे।

उसने मेरी ध्वजा को काट दिया, चक्ररक्षकों और मेरे घोड़ों को भी मार दिया। यह उसने सात्यकि, धृष्टद्युम्न, नकुल, सहदेव, वीर शिखण्डी, द्रौपदी के पुत्रों और पाँचालवीर, इन सबके देखते हुए किया। उसने युद्ध में मेरा पीछा करके, हे योद्धाओं में श्रेष्ठवीर! जहाँतहाँ मेरा अपमान करते हुए मुझे बहुतसे कठोर वचन सुनाये। इसमें संशय नहीं है। हे अर्जुन! मैं इस समय भीमसेन के प्रभाव से ही जीवित हूँ। अधिक कहने से क्या लाभ? मैं उस अपमान को सह नहीं सकता।

त्रयोदशाहं वर्षाणि यस्माद् भीतो धनंजय॥ १२॥
न स्म निद्रां लभे रात्रौ न चाहनि सुखं क्वचित्।
तस्यायमगमत् कालश्चिन्तयानस्य मे चिरम्॥ १३॥
कथं कर्णो मया शक्यो युद्धे क्षपयितुं भवेत्।
जाग्रत्स्वपंश्च कौन्तेय कर्णमेव सदा ह्यहम्॥ १४॥
पश्यामि तत्र तत्रैव कर्णभूतमिदं जगत्।
यत्र यत्र हि गच्छामि कर्णाद् भीतो धनंजय॥ १५॥
तत्र तत्र हि पश्यामि कर्णमेवाग्रतः स्थितम्।
सोऽहं तेनैव वीरेण समरेष्वपलायिना॥ १६॥
सहयः सरथः पार्थ जित्वा जीवन् विसर्जितः।

हे धनंजय! जिससे डरते हुए मैं तेरह वर्ष तक न तो रात में सुख से सो सका और न दिन में शान्ति को प्राप्त कर सका। मेरा यह लम्बा समय यही सोचते हुए व्यतीत हुआ है कि मैं कर्ण को युद्ध में कैसे मार सकता हूँ? जागते और सोते हुए मैं जहाँतहाँ कर्ण को ही देखा करता था। यह सारा संसार मेरे लिये कर्णमय बना हुआ था। हे अर्जुन! कर्ण से डरा हुआ मैं जहाँजहाँ भी जाता था, वहीं मुझे कर्ण आगे खड़ा हुआ दिखाई देता था। युद्ध

में पलायन न करनेवाले उस वीर ने हे कुन्तीपुत्र! मुझे आज रथ और घोड़ोंसहित जीतकर केवल जीवित रहने के लिये छोड़ दिया।

**को नु मे जीवितेनार्थो राज्येनार्थो भवेत् पुनः॥ १७॥
ममैवं विक्षतस्याद्य कर्णेनाहवशोभिना।
न प्राप्तपूर्वं यद् भीष्मात् कृपद्रोणाच्च संयुगे॥ १८॥
तत् प्राप्तमद्य मे युद्धे सूतपुत्रान्महारथात्।
स त्वां पृच्छामि कौन्तेय यथाद्य कुशलं तथा॥ १९॥
तन्ममाचक्ष्व कार्त्स्न्येन यथा कर्णो हतस्त्वया।**

आज जब संग्रामशोभी कर्ण ने मुझे इतना क्षतविक्षत कर दिया तो इस जीवन और राज्य से क्या लाभ है? जिस अपमान को पहले भीष्म, कृपाचार्य और द्रोणाचार्य से नहीं प्राप्त किया, उसी को आज मैंने युद्ध में महारथी कर्ण से प्राप्त कर लिया है। हे कुन्तीपुत्र! मैं तुमसे पूछता हूँ कि तुमने सकुशल रहकर जिस प्रकार से कर्ण का वध किया है, उसका मेरे सामने पूर्णरूप से वर्णन करो।

**महारथः समाख्यातः सर्वयुद्धविशारदः॥ २०॥
धनुर्धराणां प्रवरः सर्वेषामेकपूरुषः।
पूजितो धृतराष्ट्रेण सपुत्रेण महाबलः॥ २१॥
त्वदर्थमेव राधेयः स कथं निहतस्त्वया।
धार्तराष्ट्रो हि योधेषु सर्वेष्वेव सदार्जुन॥ २२॥
तव मृत्युं रणे कर्णं मन्यते पुरुषर्षभ।
स त्वया पुरुषव्याघ्र कथं युद्धे निषूदितः।
तन्ममाचक्ष्व कौन्तेय यथा कर्णो हतस्त्वया॥ २३॥**

सारे युद्धों में विशारद, वह प्रसिद्ध महारथी, धनुर्धरों में अग्रणी और शत्रुवीरों में अकेला ऐसा महाबली था, जिसे धृतराष्ट्र ने अपने पुत्रोंसहित तुम्हारे लिये ही सम्मान करते हुए रखा हुआ था। वह राधापुत्र तुमने कैसे मारा? हे अर्जुन! दुर्योधन सारे वीरों में से केवल कर्ण को ही युद्ध में तुम्हारी मृत्यु मानता था। हे पुरुषव्याघ्र! उस कर्ण को तुमने युद्ध में कैसे मारा? कर्ण को तुमने कैसे मारा? यह तुम मुझे सारा वृतान्त बताओ।

बावनवाँ अध्याय : अर्जुन का कर्णवध के भविष्य में अवश्य होने का कथन।

अर्जुन उवाच

**संशप्तकै र्युध्यमानस्य मेऽद्य,
सेनाग्रयायी कुरुसैन्येषु राजन्।
आशीविषाभान् खगमान् प्रमुञ्चन्,
द्रौणिः पुरस्तात् सह साभ्यतिष्ठत्॥ १॥
दृष्ट्वा रथं मेघरवं ममैव
समस्तसेना च रणेऽभ्यतिष्ठत्।
तेषामहं पञ्च शतानि हत्वा
ततो द्रौणिमगमं पार्थिवाग्र्य॥ २॥
स मां समासाद्य नरेन्द्र यत्तः
समभ्ययात् सिंहमिव द्विपेन्द्रः।
अकार्षीच्च रथिनामुज्जिहीर्षां
महाराज वध्यतां कौरवाणाम्॥ ३॥**

अर्जुन ने कहा कि हे राजन्! आज जब मैं संशप्तकों से युद्ध कर रहा था, तब कौरवसेनाओं में आगे चलनेवाला द्रोणपुत्र सहसा विषैले सर्पों के समान बाणों को छोड़ता हुआ मेरे सामने आ गया। तब मेरे बादलों के समान शब्द करने वाले रथ को देखकर सारी कौरव सेना मेरे आगे युद्ध के लिये खड़ी हो गयी। हे राज शिरोमणि! उसमें से तब पाँच सौ वीरों को मारकर मैंने द्रोणपुत्र पर आक्रमण किया। हे नरेन्द्र! हे महाराज! द्रोणपुत्र ने मेरे सामने आकर मुझ पर उसी प्रकार आक्रमण किया जैसे हाथी सिंह पर आक्रमण करे। उसने मेरे द्वारा मारे जाते हुए रथियों के भी उद्धार की इच्छा की।

**ततो रणे भारत दुष्प्रकम्प्य
आचार्यपुत्रः प्रवरः कुरूणाम्।
मामर्दयामास शितैः पृषत्कै-
र्जनार्दनं चैव विषाग्निकल्पैः॥ ४॥
अष्टागवामष्ट शतानि बाणान्
मया प्रयुद्धस्य वहन्ति तस्य।
तांस्तेन मुक्तानहमस्य बाणै-
र्व्यनाशयं वायुरिवाभ्रजालम्॥ ५॥
ततोऽपरान् बाणसंघानेनका-
नाकर्णपूर्णायतविप्र- मुक्तान्।**

ससर्ज शिक्षास्त्रबलप्रयत्नै-
स्तथा यथा प्रावृषि कालमेघः॥ ६॥

हे भारत! तब रण में दुर्धर्ष, कौरवों में श्रेष्ठ आचार्यपुत्र ने विष और अग्नि के समान तीखे बाणों से मुझे और श्रीकृष्ण को पीड़ित किया। मेरे साथ युद्ध करते हुए उसके लिये आठ बैलों से जुते हुए आठ छकड़े हजारों बाणों को ढो रहे थे। उसके द्वारा चलाये गये सभी बाणों को मैंने अपने बाणों से वायु के द्वारा बादलों के समूह के समान नष्ट कर दिया। फिर उसनें अपनी शिक्षा, अस्त्रबल और प्रयत्न के साथ और दूसरे बहुतसे बाणसमूहों को कानतक धनुष को खींचकर उसी प्रकार छोड़ा जैसे वर्षाऋतु में काले बादल पानी बरसाते हैं।

नैवाददानं न च संदधानं
जानीमहे कतरेणास्यतीति।
वामेन वा यदि वा दक्षिणेन
स द्रोणपुत्रः समरे पर्यवर्तत्॥ ७॥
तस्याततं मण्डलमेव सज्यं
प्रदृश्यते कार्मुकं द्रोणसूनोः।
सोऽविध्यन्मां पञ्चभिर्द्रोणपुत्रः
शितैः शरैः पञ्चभिर्वासुदेवम्॥ ८॥
अहं हि तं त्रिंशता वज्रकल्पैः
समार्दयं निमिषस्यान्तरेण।
क्षणाच्छ्वावित्समरूपो बभूव
समार्दितो मद्विसृष्टैः पृषत्कैः॥ ९॥

उस समय हम यह नहीं जान पाते थे, कि कब वह बाण को लेता है, कब सन्धान करता है, और कब छोड़ता है? कब दायें हाथ से बाण छोड़ता है? और कब बायें हाथ से छोड़ता है? वह द्रोणपुत्र तब युद्धभूमि में सबतरफ चक्कर लगा रहा था। द्रोणपुत्र का धनुष उस समय हमें गोलाकार ही प्रत्यंचासमेत दिखाई देता था। उसने मुझे और श्रीकृष्ण जी को पाँच पाँच तीखे बाणों से बींध दिया। फिर मैंने पलभर में ही उसे वज्र के समान तीस बाणों से पीड़ित किया। मेरे बाणों से उसका शरीर क्षणभर में ही काँटों से भरे साही के समान होगया।

स विक्षरन् रुधिरं सर्वगात्रै
रथानीकं सूतसूनोर्विवेश।
मयाभिभूतान् सैनिकानां प्रबर्हा-
नसौ प्रपश्यन् रुधिरप्रदिग्धान्॥ १०॥
ततोऽभिभूतं युधि वीक्ष्य सैन्यं
वित्रस्तयोधं द्रुतवाजिनागम्।
पञ्चाशता रथमुख्यैः समेत्य
कर्णस्त्वरन् मामुपायात् प्रमाथी॥ ११॥
तान् सूदयित्वाहमपास्य कर्णं
द्रष्टुं भवन्तं त्वरयाभियातः।
सर्वेपञ्चाला ह्युद्विजन्ते स्म कर्णं
दृष्ट्वा गावः केसरिणं यथैव॥ १२॥

तब वह अपने सारे शरीर से खून की धाराएँ बहाता हुआ तथा मेरे द्वारा पीड़ित सैनिकों के नेताओं को भी खून से लथपथ देखकर कर्ण की रथसेना में घुस गया। तब यह देखकर कि युद्ध में सेना पराजित हो गयी है, योद्धालोग भयभीत हैं, हाथी तथा घोड़े भाग रहे हैं, शत्रुओं को मथने वाला कर्ण पचास प्रमुख रथियों को लेकर तुरन्त मेरे सामने आया। उन रथियों को मारकर पर कर्ण को छोड़कर मैं शीघ्रता से आपको देखने को आया हूँ। सारे पाँचालवीर कर्ण को देखकर ऐसे उद्विग्न हो जाते हैं, जैसे सिंह को देखकर गायें डर जाती हैं।

मृत्योरास्यं व्यात्तमिवाभिपद्य
प्रभद्रकाः कर्णमासाद्य राजन्।
रथांस्तु तान् सप्तशतान् निमग्नां-
स्तदा कर्णः प्राहिणोन्मृत्युसद्म॥ १३॥
न चाप्यभूत् क्लान्तमनाः स राजन्
यावन्नास्मान् दृष्टवान् सूतपुत्रः।
श्रुत्वा तु त्वां तेन दृष्टं समेत-
मश्वत्थाम्ना पूर्वतरं क्षतं च॥ १४॥
मन्ये कालमपयानस्य राजन्
क्रूरात् कर्णात् तेऽहमचिन्त्यकर्मन्।
रथप्रवीरेण महानुभाव
द्विषत्सैन्ये वर्तता दुस्तरेण॥ १५॥
समेत्याहं सूतपुत्रेण संख्ये
वृत्रेण वज्रीव नरेन्द्रमुख्य।
योत्स्याम्यहं भारत सूतपुत्र-
मस्मिन् संग्रामे यदि वै दृश्यतेऽद्य॥ १६॥

हे राजन्! प्रभद्रकलोग कर्ण के सामने जाकर मानो मृत्यु के खुले मुख में जागिरे थे। युद्धसागर में डूबे हुए उनमें से सातसौ रथियों को कर्ण ने

मृत्युलोक में भेज दिया। हे राजन्! सूतपुत्र ने जबतक हमलोगों को नहीं देखा था, तबतक उस में थकावट या उद्वेग नहीं था। यह सुनकर कि उसने आपको देखा और आपसे युद्ध किया। उससे पहले अश्वत्थामा ने भी आपको घायल कर दिया था। हे अचिन्त्य कर्म करनेवाले! मैं समझता हूँ कि आपका वह समय क्रूर कर्ण से दूर जाने का ही था। हे महानुभाव! भरतवंशी राजश्रेष्ठ! शत्रुसेना में स्थित, दुर्धर्ष, रथियों में श्रेष्ठ, सूतपुत्र से, यदि आज मुझे दिखाई देजाये तो संग्राममूमि में उसीप्रकार युद्ध करूँगा जैसे इन्द्र ने वृत्रासुर के साथ किया था।

आयाहि पश्याद्य युयुत्समानं
मां सूतपुत्रस्य रणे जयाय।
महोरगस्येव मुखं प्रपन्नाः
प्रभद्रकाः कर्णमभिद्रवन्ति॥ १७॥
कर्णं न चेदद्य निहन्मि राजन्
सबान्धवं युध्यमानं प्रसह्य
प्रतिश्रुत्याकुर्वतो वै गतिर्या
कष्टा याता तामहं राजसिंह॥ १८॥
आमन्त्रये त्वां ब्रूहि जयं रणे मे
पुरा भीमं धार्तराष्ट्रा ग्रसन्ते।
सौतिं हनिष्यामि नरेन्द्रसिंह
सैन्यं तथा शत्रुगणांश्च सर्वान्॥ १९॥

आप आइये और मुझे रणक्षेत्र में सूतपुत्र पर विजयप्राप्ति के लिये युद्ध करते हुए देखिये। इस समय प्रभद्रक लोग कर्ण पर आक्रमण कर रहे हैं और मानों वे अजगर के मुख में पड़ रहे हैं। हे राजन्! यदि आज मैं युद्ध करते हुए कर्ण को बान्धवों सहित हठपूर्वक नहीं मारूँ, तो हे राजसिंह! प्रतिज्ञा करके पालन न करने वाले की जो कष्टपूर्ण गति होती है, वही मेरी भी हो। मैं अब आपसे आज्ञा चाहता हूँ, आप मेरी विजय का आशीर्वाद दीजिये। हे नरेन्द्रसिंह! उधर धृतराष्ट्र के पुत्र भीम को ग्रस लेने की चेष्टा कर रहे हैं, मैं इससे पहले ही सूतपुत्र को, सेना को और सारे शत्रुओं को मार दूँगा।

तिरेपनवाँ अध्याय : युधिष्ठिर के अर्जुन से अपमान युक्त वचन।

श्रुत्वा कर्णं कल्यमुदारवीर्यं
क्रुद्धः पार्थः फाल्गुनस्यामितौजाः।
धनंजयं वाक्यमुवाच चेदं
युधिष्ठिरः कर्णशराभितप्तः॥ १॥
विप्रद्रुता तात चमूस्त्वदीया
तिरस्कृता चाद्य यथा न साधु।
स्नेहस्त्वया पार्थ कृतः पृथाया
गर्भं समाविश्य यथा न साधु॥ २॥
त्यक्त्वा रणे यदपायाः स भीमं
यन्नाशकः सूतपुत्रं निहन्तुम्।

तब अधिकपराक्रमी कर्ण को सकुशल सुनकर कर्ण के बाणों से संतप्त अमिततेजस्वी कुन्तीपुत्र ने अर्जुन से क्रुद्ध होकर कहा कि हे तात! तुम्हारी सेना भाग रही है, किन्तु तुमने आज उसका जैसे तिरस्कार किया है वह अच्छा नहीं है। हे कुन्तीपुत्र! तुमने कुन्ती के गर्भ में रहकर अपने सगे भाई के साथ जैसा प्रेम निभाया है, वह ठीक नहीं है। जब तुम कर्ण को मारने में समर्थ नहीं होसके तो युद्धस्थल में भीम को अकेला छोड़कर आगए।

यद् तद् वाक्यं द्वैतवने त्वयोक्तं
कर्णं हन्तास्म्येकरथेन सत्यम्॥ ३॥
त्यक्त्वा तं वै कथमद्यापयातः
कर्णाद् भीतो भीमसेनं विहाय।
इदं यदि द्वैतवनेऽप्यचक्षः
कर्णं योद्धुं न प्रशक्ष्ये नृपेति॥ ४॥
वयं ततः प्राप्तकालं च सर्वे
कृत्यान्युपैष्याम तथैव पार्थ
मयि प्रतिश्रुत्य वधं हि तस्य
न वै कृतं तच्च तथैव वीर॥ ५॥
आनीय नः शत्रुमध्यं स कस्मात्
समुत्क्षिप्य स्थण्डिले प्रत्यपिंष्ठा।

तुमने द्वैतवन में जो सत्य बात कही थी, कि मैं एक रथ से ही कर्ण को मार दूँगा। अपनी उस बात को तोड़कर, कर्ण से डरे हुए तुम भीम को छोड़कर

क्यों यहाँ युद्धभूमि से आगये? यदि तुमने द्वैतवन में यह कह दिया होता कि हे राजन्! मैं कर्ण से युद्ध नहीं कर सकता तो हे कुन्तीपुत्र! तब हमसब समय के अनुसार जो उचित होता करते। हे वीर! तुमने मुझसे उसके वध की प्रतिज्ञा करके उसका उसीरूप में पालन नहीं किया। तुमने हमें शत्रुओं के बीच में लाकर और पत्थर पर पटककर क्यों पीस डाला?

अप्याशिष्म वयमर्जुन त्वयि
यियासवो बहु कल्याणमिष्टम्॥ ६॥
तन्नः सर्वं विफलं राजपुत्र
फलार्थिनां विफल इवातिपुष्पः।
प्रच्छादितं बडिशमिवामिषेण
संछादितं गरलमिवाशनेन॥ ७॥
अनर्थकं मे दर्शितवानसि त्वं
राज्यार्थिनो राज्यरूपं विनाशम्।

हे अर्जुन! हमने बहुतसी कल्याण की और मनचाही चीज़ों की तुमसे आशा रखी थी। हे राजपुत्र! हमारी वेसारी आशाएँ उसीप्रकार तुमने व्यर्थ कर दीं जैसे फल चाहनेवाले व्यक्ति को अधिक फूलोंवाला पर फल से हीन वृक्ष निराश कर देता है। मुझ राज्यप्राप्ति के इच्छुक को तुमने माँस से ढके वंशी के काँटे के तथा खाद्य से ढके विष के समान राज्य के रूप में अनर्थ करनेवाले विनाश का ही दर्शन कराया है।

त्रयोदशेमा हि समाः सदा वयं
त्वामन्वजीविष्म धनंजयाशया॥ ८॥
काले वर्षं देवमिवोप्तबीजं
तन्नः सर्वान् नरके त्वं न्यमज्जः।
पूर्वं यदुक्तं हि सुयोधनेन
न फाल्गुनः प्रमुखे स्थास्यतीति॥ ९॥
कर्णस्य युद्धे हि महाबलस्य
मौर्ख्यात् तु तन्नावबुद्धं मयाऽऽसीत्।
तेनाद्य तप्स्ये भृशमप्रमेयं
यच्छत्रुवर्गे नरकं प्रविष्टः॥ १०॥
तदैव वाच्योऽस्मि ननु त्वयाहं
न योत्स्येऽहं सूतपुत्रं कथंचित्
ततो नाहं सृञ्जयान् केकयांश्च
समानयेयं सुहृदो रणाय॥ ११॥

हमने ये तेरह वर्ष सदा तुम्हारे ऊपर ही आशा लगाकर व्यतीत किये, जैसे बोया हुआ बीज समय पर होनेवाली वर्षा की प्रतीक्षा में जीवित रहता है। किन्तु तुमने हमसबको भारी संकट में डुबो दिया है। पहले दुर्योधन ने जो यह कहा था कि अर्जुन महाबलशाली कर्ण के सामने युद्ध में नहीं ठहर सकेगा, मैंने अपनी मूर्खता के कारण उसे नहीं समझा। उसी कारण मैं आज शत्रुसमूहरूपी संकट में पड़ा हुआ अत्यधिक और अपरिमित रूप से सन्तप्त होरहा हूँ। मैं सूतपुत्र से किसीप्रकार भी युद्ध नहीं करूँगा यह बात तुम्हें मुझसे तभी कहनी चाहिये थी। फिर मैं सृंजयों, केकयों और अपने मित्रों को युद्ध के लिये नहीं बुलाता।

एवं गते किंच मयाद्य शक्यं
कार्यं कर्तुं विग्रहे सूतजस्य।
तथैव राज्ञश्च सुयोधनस्य
ये वापि मां योद्धुकामाः समेताः॥ १२॥
धिगस्तु मज्जीवितमद्य कृष्ण
सोऽहं वशं सूतपुत्रस्य यातः
मध्ये कुरूणां सुहृदां च मध्ये
ये चाप्यन्ये योद्धुकामाः समेताः॥ १३॥
यदि स्म जीवेत् स भवेन्निहन्ता
महारथानां प्रवरो रथोत्तमः।
तवाभिमन्युस्तनयोऽद्य पार्थ
न चास्मि गन्ता समरे पराभवम्॥ १४॥
अथापि जीवेत् समरे घटोत्कच-
स्तथापि नाहं समरे पराङ्मुखः।

पर अब ऐसी स्थिति में मैं क्या कर सकता हूँ, जब कि युद्ध चल रहा है, सूतपुत्र, राजा दुर्योधन और दूसरेलोग मेरे साथ युद्ध करने की इच्छा से एकत्र हुए हैं। हे कृष्ण! मेरे जीवन को धिक्कार है। मैं कौरवों और अपने मित्रों और दूसरे जो युद्ध की इच्छा से एकत्र हुए हैं उन सबके सामने आज सूतपुत्र के आधीन होगया। यदि महारथियों में श्रेष्ठ उत्तम रथी तुम्हारा पुत्र अभिमन्यु हे कुन्तीपुत्र! आज जीवित होता तो मैं युद्धक्षेत्र में पराजय को प्राप्त नहीं होता। यदि घटोत्कच भी युद्धक्षेत्र में जीवित होता तो मुझे युद्ध से भागना नहीं पड़ता।

मम ह्यभाग्यानि पुरा कृतानि
पापानि नूनं बलवन्ति युद्धे॥ १५॥
तृणं च कृत्वा समरे भवन्तं
ततोऽहमेवं निकृतो दुरात्मना।
वैकर्तनेनैव तथा कृतोऽहं
यथा ह्यशक्तः क्रियते ह्यबान्धवः॥ १६॥
आपद्गतं कश्चन यो विमोक्षेत्
स बान्धवः स्नेहयुक्तः सुहृच्च।
एवं पुराणा मुनयो वदन्ति
धर्मः सदा सद्भिरनुष्ठितश्च॥ १७॥

निश्चय ही मेरे किये बुरे कर्मों के फल मेरे दुर्भाग्य के रूप में अब प्रबल होरहे हैं। इसीलिये दुरात्मा कर्ण ने तुम्हें तिनके के समान समझते हुए युद्धक्षेत्र में मेरा अपमान किया है। उस सूर्यपुत्र ने मेरे साथ वैसा बर्ताव किया है, जैसा बन्धु बान्धवों से रहित, शक्तिरहित व्यक्ति के साथ किया जाता है। जो संकट में पड़े हुए को संकट से छुड़ाता है, उसे ही बान्धव और स्नेह से युक्त मित्र माना जाता है ऐसा पुराने मुनि कहते हैं और यही सत्पुरुषों के द्वारा पालन किया हुआ धर्म है।

त्वष्ट्रा कृतं वाहमकूजनाक्षं
शुभं समास्थाय कपिध्वजं तम्।
खड्गं गृहीत्वा हेमपट्टानुबद्धं
धनुश्चेदं गाण्डिवं तालमात्रम्॥ १८॥
स केशवेनोह्यमानः कथं त्वं
कर्णाद् भीतो व्यपयातोऽसि पार्थ।
धनुश्च तत् केशवाय प्रयच्छ
यन्ता भविष्यस्त्वं रणे केशवस्य॥ १९॥
तदाहनिष्यत् केशवः कर्णमुग्रं
मरुत्पतिर्वृत्र- मिवात्तवज्रः।
अस्मान् नैवं पुत्रदारैर्विहीनान्
सुखाद्भ्रष्टान् राज्यनाशाच्च भूयः।
द्रष्टा लोकः पतितानप्यगाधे
पापैर्जुष्टे नरके पाण्डवेय॥ २०॥

हे कुन्तीपुत्र! तुम्हारा रथ विश्वकर्मा द्वारा बनाया है। उसके धुरे की आवाज नहीं होती है, उस पर वानर के चिह्न से युक्त ध्वजा लगी है। ऐसे अच्छे रथ पर बैठकर, स्वर्णविभूषित खड्ग को लेकर और इस चार हाथ लम्बे गाण्डीव धनुष को उठाकर तथा श्रीकृष्ण को सारथि बनाकर भी तुम कैसे कर्ण से डरकर वहाँ से भाग आये? तुम इस धनुष को श्रीकृष्ण को पकड़ा दो और स्वयं इनके युद्ध में सारथि बन जाओ। तब ये श्रीकृष्ण उस उग्र कर्ण को ऐसे मार देंगे जैसे इन्द्र ने वज्र से वृत्र को मारा था। हे पाण्डुपुत्र! ऐसा होने पर लोग हमें पुत्र और स्त्रियों से रहित, राज्य के नष्ट होने के कारण सुख से भ्रष्ट तथा पापियोंद्वारा भोगी जानेवाली अगाध संकटमयी अवस्था में पड़ा हुआ नहीं देखेंगे।

चौवनवाँ अध्याय : युधिष्ठिर के वध को उद्यत अर्जुन को श्रीकृष्ण का समझाना

युधिष्ठिरेणैवमुक्तः कौन्तेयः श्वेतवाहनः।
असिं जग्राह संक्रुद्धो जिघांसुर्भरतर्षभम्॥ १॥
तस्य कोपं समुद्वीक्ष्य चित्तज्ञः केशवस्तदा।
उवाच किमिदं पार्थ गृहीतः खड्ग इत्युत॥ २॥
न हि पश्यामि योद्धव्यं त्वया किञ्चिद् धनंजय।
ते ग्रस्ता धार्तराष्ट्रा हि भीमसेनेन धीमता॥ ३॥
अपयातोऽसि कौन्तेय राजा द्रष्टव्य इत्यपि।
स राजा भवता दृष्टः कुशली च युधिष्ठिरः॥ ४॥

हे राजन्! युधिष्ठिरद्वारा ऐसा कहे जाने पर श्वेतवाहन कुन्तीपुत्र अर्जुन ने अत्यन्त क्रोध में भरतश्रेष्ठ युधिष्ठिर को मारने की इच्छा से तलवार निकाल ली। तब उसके क्रोध को देखकर हृदय की बात को समझनेवाले श्रीकृष्ण ने कहा कि हे कुन्तीपुत्र! यह क्या है? तुमने तलवार क्यों ली हुई है? हे अर्जुन! मैं यहाँ किसी ऐसे व्यक्ति को नहीं देख रहा हूँ जिससे तुम्हें युद्ध करना चाहिये। वे धृतराष्ट्र के पुत्र धीमान् भीमसेन के साथ उलझे हुए हैं। मुझे राजा को देखना है, यह सोचकर तुम युद्धक्षेत्र से आये थे। तुमने देख लिया है कि राजा युधिष्ठिर सकुशल हैं।

स दृष्ट्वा नृपशार्दूलं शार्दूलसमविक्रमम्।
हर्षकाले च सम्प्राप्ते किमिदं मोहकारितम्॥ ५॥
प्रहर्तुमिच्छसे कस्मात् किं वा ते चित्तविभ्रमः।
कस्माद् भवान् महाखड्गं परिगृह्णाति सत्वरः॥ ६॥
तत् त्वां पृच्छामि कौन्तेय किमिदं ते चिकीर्षितम्।
परामृशसि यत् क्रुद्धः खड्गमद्भुतविक्रम॥ ७॥
एवमुक्तस्तु कृष्णेन प्रेक्षमाणो युधिष्ठिरम्।
अर्जुनः प्राह गोविन्दं क्रुद्धः सर्प इव श्वसन्॥ ८॥

सिंह के समान पराक्रमी राजसिंह को सकुशल देखकर तुम्हें हर्षित होना चाहिये पर तुम मोह के कारण कौनसा कार्य करने जारहे हो? तुम प्रहार क्यों करना चाहते हो? तुम्हारे चित्त में कैसा विभ्रम है? तुमने विशाल तलवार को जल्दी से क्यों ग्रहण किया है? हे कुन्तीपुत्र! मैं तुमसे पूछता हूँ कि तुम क्या करना चाहते हो? हे अद्भुत् पराक्रमी! तुम क्रोध में भरकर तलवार को क्यों सहला रहे हो? कृष्ण के ऐसा कहने पर क्रुद्ध अर्जुन सर्प के समान लम्बी साँस लेता हुआ और युधिष्ठिर की तरफ देखता हुआ श्रीकृष्णजी से बोला कि—

अन्यस्मै देहि गाण्डीवमिति मां योऽभिचोदयेत्।
भिन्द्यामहं तस्य शिर इत्युपांशुव्रतं मम॥ ९॥
तदुक्तं मम चानेन राज्ञामितपराक्रम।
समक्षं तव गोविन्द न तत् क्षन्तुमिहोत्सहे॥ १०॥
तस्मादेनं वधिष्यामि राजानं धर्मभीरुकम्।
प्रतिज्ञां पालयिष्यामि हत्वैनं नरसत्तमम्॥ ११॥
एतदर्थं मया खड्गो गृहीतो यदुनन्दन।
किं वा त्वं मन्यसे प्राप्तमस्मिन् काल उपस्थिते॥ १२॥
तत् तथा प्रकरिष्यामि यथा मां वक्ष्यते भवान्।

यह मेरी मन में की हुई प्रतिज्ञा है कि जो मुझसे यह कहे कि तुम इस गाण्डीव को दूसरे को दे दो तो मैं उसका सिर काट लूँगा। हे अमित पराक्रमी श्रीकृष्ण! राजा ने तुम्हारे सामने यही बात अब मुझसे कही है, इसलिये मैं इन्हें क्षमा नहीं कर सकता। मैं इन धर्मभीरु राजा का वध करूँगा। हे यदुनन्दन! मैं इन नरश्रेष्ठ को मारकर अपनी प्रतिज्ञा का पालन करूँगा। इसलिये मैंने यह तलवार ग्रहण की है। अथवा ऐसी परिस्थिति के उत्पन्न होने पर तुम्हारे विचार से मुझे क्या करना चाहिये? आप जैसा कहोगे मैं वैसा ही करूँगा।

धिग् धिगित्येव गोविन्दः पार्थमुक्त्वाब्रवीत् पुनः॥ १३॥
इदानीं पार्थ जानामि न वृद्धाः सेवितास्त्वया।
काले न पुरुषव्याघ्र संरम्भं यद् भवानगात्॥ १४॥
न हि धर्मविभागज्ञः कुर्यादेवं धनंजय।
यथा त्वं पाण्डवाद्येह धर्मभीरुरपण्डितः॥ १५॥
अकार्याणां क्रियाणां च संयोगं यः करोति वै।
कार्याणामक्रियाणां च स पार्थ पुरुषाधमः॥ १६॥

तब श्रीकृष्ण ने अर्जुन से धिक्कार है, धिक्कार है ऐसा कहा और बोले कि हे कुन्तीपुत्र! मैं समझता हूँ कि तुमने वृद्धों की सेवा नहीं की है। इसीलिये हे पुरुषव्याघ्र! तुम्हें अकाल में ही क्रोध आगया है। हे धनंजय! धर्म के विभागों को जाननेवाला ऐसा कभी नहीं कर सकता, जैसा तुम करने जारहे हो। हे पाण्डुपुत्र तुम वास्तव में भीरु और धर्म की समझ से परे हो। जो व्यक्ति ऐसे कार्यों से जो करनेयोग्य होने पर भी असाध्य हैं, तथा ऐसे कार्यों से भी जो साध्य होने पर भी करने योग्य नहीं हैं, अपना सम्बन्ध जोड़ता है, वह अधमपुरुष है।

अनुसृत्य तु ये धर्मं कथयेयुरुपस्थिताः।
समासविस्तरविदां न तेषां वेत्सि निश्चयम्॥ १७॥
अनिश्चयज्ञो हि नरः कार्याकार्यविनिश्चये।
अवशो मुह्यते पार्थ यथा त्वं मूढ एव तु॥ १८॥
प्राणिनामवधस्तात सर्वज्यायान् मतो मम।
अनृतां वा वदेद् वाचं न तु हिंस्यात् कथंचन॥ १९॥
स कथं भ्रातरं ज्येष्ठं राजानं धर्मकोविदम्।
हन्याद् भवान् नरश्रेष्ठ प्राकृतोऽन्यः पुमानिव॥ २०॥

जो व्यक्ति धर्म का पालन करते हुए, अपनी सेवा में आये हुए शिष्यों को धर्म का उपदेश देते हैं, ऐसे धर्म के संक्षिप्त और विस्तृतरूप को जाननेवालों का इस विषय में जो निश्चय है, तुम उसे नहीं जानते हो। जब व्यक्ति को क्या करना चाहिये और क्या नहीं करना चाहिये? इस विषय में अनिश्चय होता है तो वह हे कुन्तीपुत्र! तुम्हारे समान अवशता और मूढता में पड़कर मोहित हो जाता है। मेरे विचार से प्राणियों की हिंसा न करना सबसे बड़ा धर्म है। किसी की प्राणरक्षा के लिये भलेही झूठ बोल दे, पर प्राणियों की किसीतरह से हिंसा न होने दे। हे नरश्रेष्ठ! तुम्हारे जैसा व्यक्ति दूसरे नीच मनुष्य के समान, अपने धर्मज्ञ बड़े भाई का वध कैसे कर देगा?

अयुध्यमानस्य वधस्तथाशत्रोश्च मानद।
पराङ्मुखस्य द्रवतः शरणं चापि गच्छतः॥ २१॥
कृताञ्जलेः प्रपन्नस्य प्रमत्तस्य तथैव च।
न वधः पूज्यते सद्भिस्तच्च सर्वं गुरौ तव॥ २२॥
त्वया चैवं व्रतं पार्थ बालेनेव कृतं पुरा।
तस्मादधर्मसंयुक्तं मौर्ख्यात् कर्म व्यवस्यसि॥ २३॥
स गुरुं पार्थ कस्मात् त्वं हन्तुकामोऽभिधावसि।
असम्प्रधार्य धर्माणां गतिं सूक्ष्मां दुरत्ययाम्॥ २४॥

हे दूसरों को मान देने वाले! जो युद्ध न कर रहा हो, अपना शत्रु न हो, युद्ध से विमुख होकर भागा जारहा हो, शरण में आया हुआ हो, हाथ जोड़कर आश्रय में आपड़ा हो और असावधान हो, ऐसे व्यक्ति का वध करना भले लोग अच्छा नहीं समझते हैं। येसारी बातें तुम्हारे बड़े भाई में हैं। तुमने बच्चों के समान पहले कोई व्रत लेलिया, इसलिये तुम मूर्खता के कारण अधर्म से युक्त कार्य करने को तैयार होगये हो। तुम धर्मों की सूक्ष्म और दुर्बोध गति को समझे बिनाही हे अर्जुन! अपने बड़े भाई को किसलिये मारने को दौड़ पड़े?

अर्जुन उवाच

तं हन्यां चेत् केशव जीवलोके
स्थाता नाहं कालमप्यल्पमात्रम्।
ध्यात्वा नूनं ह्येनसा चापि मुक्तो
वधं राज्ञो भ्रष्टवीर्यो विचेताः॥ २५॥
यथा प्रतिज्ञा मम लोकबुद्धौ
भवेत् सत्या धर्मभृतां वरिष्ठ।
यथा जीवेत् पाण्डवोऽहं च कृष्ण
तथा बुद्धिं दातुमप्यर्हसि त्वम्॥ २६॥

तब अर्जुन ने कहा कि हे केशव! यदि मैं युधिष्ठिर को मार दूँगा तो इस लोक में थोड़े से भी समय के लिये जीवित नहीं रहूँगा। पाप से छूट जाने पर भी, मैं इनके वध का चिन्तन करके नहीं जी सकता। इसप्रकार मैं इस समय किंकर्त्तव्यविमूढ, पराक्रम से भ्रष्ट तथा चेतनारहितसा होगया हूँ। हे धर्मधारियों में श्रेष्ठ! जिससे लोगों की समझ में मेरी प्रतिज्ञा भी सत्य मानी जाये तथा पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर और मैं दोनों जीवित रहें, ऐसी बुद्धि आप ही बता सकते हैं?

वासुदेव उवाच

राजा श्रान्तो विक्षतो दुःखितश्च
कर्णेन संख्ये निशितैर्बाणसंघैः।
यश्चानिशं सूतपुत्रेण वीर
शरैर्भृशं ताडितोऽयुध्यमानः॥ २७॥
अतस्त्वमेतेन सरोषमुक्तो
दुःखान्वितेनेदम- युक्तरूपम्।
अकोपितो ह्येष यदि स्म संख्ये
कर्णं न हन्यादिति चाब्रवीत् सः॥ २८॥
जानाति तं पाण्डव एष चापि
पापं लोके कर्णमसह्यमन्यैः।
ततस्त्वमुक्तो भृशरोषितेन
राज्ञा समक्षं परुषाणि पार्थ॥ २९॥

तब श्रीकृष्ण जी ने कहा कि राजा थके हुए, घायल, दुःखी हैं। कर्ण ने अपने तीखे बाणों से इन्हें युद्ध में क्षत– विक्षत कर दिया है। हे वीर! ये इसलिये भी बहुत दुःखी हैं कि जब ये युद्ध नहीं कर रहे थे, तब भी सारथि के बेटे ने इन्हें लगातार बाणों से अत्यधिक पीड़ा पहुँचायी है। इसीलिये दुःख से भरे होने के कारण इन्होंने तुम्हें क्रोधपूर्वक ये बातें कही हैं। इन्होंने इसलिये भी यह सब कहा है कि यदि अर्जुन को क्रोध नहीं दिलाया गया तो यह युद्ध में कर्ण को शायद न मार सके। ये पाण्डुपुत्र इस बात को भी जानते हैं, कि उस पापी कर्ण का इस संग्राम में तुम्हारे सिवाय दूसरा व्यक्ति सामना नहीं कर सकता। हे पार्थ! इसीलिये अत्यन्त क्रोध में भरे हुए राजा ने मेरे सामने कठोर वचन सुनाये हैं।

नित्योद्युक्ते सततं चाप्रसह्ये
कर्णे द्यूतं ह्यद्य रणे निबद्धम्।
तस्मिन् हते कुरवो निर्जिताः स्यु-
रेवं बुद्धिः पार्थिवे धर्मपुत्रे॥ ३०॥
ततो वधं नार्हति धर्मपुत्र-
स्त्वया प्रतिज्ञार्जुन पालनीया।
जीवन्नयं येन मृतो भवेद्धि
तन्मे निबोधेह तवानुरूपम्॥ ३१॥
यदा मानं लभते मानवार्ह-
स्तदा स वै जीवति जीवलोके।
यदावमानं लभते महान्तं
तदा जीवन्मृत इत्युच्यते सः॥ ३२॥

जो सदा युद्ध के लिये तैयार रहता है और शत्रुओं के लिये असह्य है उस कर्ण के ऊपरही आज हारजीत का जूआ टिका हुआ है। उसके मारे जाने पर ही कौरवों को पराजित माना जाएगा। यह विचार राजा धर्मपुत्र के अन्दर विद्यमान है। इसलिये ये धर्मपुत्र तुम्हारे द्वारा वध योग्य नहीं हैं, पर तुम्हें अपनी प्रतिज्ञा का भी पालन करना है इसलिये जिस से ये जीते हुए भी मरे हुए के समान हो जायें वह तुम्हारे अनुरूप कर्म मैं बताता हूँ, उसे सुनो। सम्मान के योग्य व्यक्ति संसार में जबतक सम्मान को प्राप्त होता है, तभीतक जीवित समझा जाता है, जब वह महान् अपमान को पाने लगता है, तब वह जीतेजी मरे हुए के समान कहलाता है।

सम्मानितः पार्थिवोऽयं सदैव
त्वयाच भीमेन यथा यमाभ्याम्।
वृद्धैश्च लोके पुरुषैश्च शूरै-
स्तस्यापमानं कलया प्रयुङ्क्ष्व॥ ३३॥

इस राजा को सर्वदा तुम्हारे, भीम, दोनों नकुल और सहदेव तथा दूसरे वृद्ध और शूरवीर लोगों से सम्मान मिलता रहा है। अब तुम इनका थोड़ा सा अपमान कर दो।

त्वमित्यत्रभवन्तं हि ब्रूहि पार्थ युधिष्ठिरम्।
त्वमित्युक्तो हि निहतो गुरुर्भवति भारत॥ ३४॥
एवमाचर कौन्तेय धर्मराजे युधिष्ठिरे।
अधर्मयुक्तं संयोगं कुरुष्वैनं कुरूद्वह॥ ३५॥

हे कुन्तीपुत्र! तुम युधिष्ठिर को सदा आप कहते आये हो। ऐसे बड़े व्यक्ति को यदि तू कह दिया जाये तो हे भारत! वह मरे हुए के समान हो जाएगा। हे कुन्तीपुत्र, कुरुश्रेष्ठ! तुम धर्मराज युधिष्ठिर के लिये इसलिये अधर्मयुक्त वाक्य का प्रयोग कर दो।

वधं ह्ययं पाण्डव धर्मराज-
स्त्वत्तोऽयुक्तं वेत्स्यते चैवमेषः।
ततोऽस्य पादावभिवाद्य पश्चात्
समं ब्रूयाः सान्त्वयित्वा च पार्थम्॥ ३६॥
भ्राता प्राज्ञस्तव कोपं न जातु
कुर्याद् राजा धर्ममवेक्ष्य चापि।
मुक्तोऽनृताद् भ्रातृवधाच्च पार्थ
हृष्टः कर्णं त्वं जहि सूतपुत्रम्॥ ३७॥

हे पाण्डुपुत्र! तुम्हारे द्वारा कहे हुए असम्यता से युक्त वाक्यों को सुनकर ये धर्मराज अपना वध हुआ ही समझेंगे। फिर इनके चरणों में प्रणाम कर, इन्हें सान्त्वना देकर इनसे क्षमा की प्रार्थना कर लेना और इनसे सम्मान के साथ बात करना। तुम्हारे भाई राजा युधिष्ठिर समझदार हैं, वे धर्म को देख कर भी तुम्हारे ऊपर कभी क्रोध नहीं करेंगे। हे कुन्तीपुत्र! तुम इस प्रकार असत्य भाषण और भाई के वध दोनों पापों से बच जाओगे। फिर तुम प्रसन्नता के साथ कर्ण का वध करना।

पचपनवाँ अध्याय : श्रीकृष्ण का अर्जुन को प्रतिज्ञाभंग और भ्रातृवध के दोष से बचाना तथा युधिष्ठिर को समझाकर प्रसन्न करना।

इत्येवमुक्तस्तु जनार्दनेन
पार्थः प्रशस्याथ सुहृद्वचस्तत्।
ततोऽब्रवीदर्जुनो धर्मराज
मनुक्तपूर्वं परुषं प्रसह्य॥ १॥
मा त्वं राजन् व्याहर व्याहरस्व
यस्तिष्ठसे क्रोशमात्रे रणाद् वै।
भीमस्तु मामर्हति गर्हणाय
यो युध्यते सर्वलोकप्रवीरैः॥ २॥

हे राजन्! श्रीकृष्णद्वारा ऐसा कहे जाने पर कुन्तीपुत्र अर्जुन ने मित्र के वचनों की प्रशंसाकर, धर्मराज युधिष्ठिर को हठपूर्वक ऐसे कटुवचन कहना आरम्भ कर दिया, जो उन्होंने पहले कभी नहीं कहे थे। अर्जुन ने युधिष्ठिर से कहा कि हे राजन्! तू मुझसे मत बोल, मत बोल, क्योंकि तू तो स्वयं ही युद्धक्षेत्र से एक कोस दूर बैठा हुआ है। भीम मेरी निन्दा कर सकता है, क्योंकि वह संसारप्रसिद्ध वीरों से युद्ध कर रहा है।

काले हि शत्रून् परिपीड्य संख्ये
हत्वा च शूरान् पृथिवीपतींस्तान्।

रथप्रधानोत्तमनाग- मुख्यान्
सादिप्रवेकानमितांश्च वीरान्॥ ३॥
हत्वा नदंस्तुमुलं सिंहनादम्
काम्बोजानामयुतं पर्वतीयान्।
मृगान् सिंहो विनिहत्येव चाजौ
सुदुष्करं कर्म करोति वीरः॥ ४॥
कर्तुं यथा नार्हसि त्वं कदाचित्
रथादवप्लुत्य गदां परामृशं-
स्तयानिहन्त्यश्वरथद्विपान् रणे।
वरासिना चापि नराश्वकुञ्जरां॥ ५॥
स्तथा रथाङ्गैर्धनुषा दहत्यरीन्
प्रसह्य हन्ता द्विषतामनीकिनीम्।
स भीमसेनोऽर्हति गर्हणां मे
न त्वं नित्यं रक्ष्यसे यः सुहृद्भिः॥ ६॥

हे युधिष्ठिर! जो भीम समय पर युद्ध में शत्रुओं को पीड़ित करके, शूरवीर राजाओं को मारकर, प्रधान प्रधान रथियों को, उत्तम गजराजों को, प्रमुख घुड़सवारों को, असंख्य वीरों को मारकर सिंह के समान गर्जना करते हैं। जैसे सिंह मृगों को मार दे, वैसे ही जिस वीर ने काम्बोज देशीय और पर्वतीय दस हजार योद्धाओं को मारकर अत्यन्त दुष्कर कर्म किया है, जैसा तुम कभी नहीं कर सकते। जो भीम युद्धक्षेत्र में रथ से कूदकर गदा को घुमाते हुए उसके द्वारा घोड़ों, रथों, और हाथियों को नष्ट करते हैं, जो अपनी उत्तम तलवार से भी, और चक्र तथा धनुष से भी मनुष्यों, घोड़ों, हाथियों और शत्रुओं को दग्ध करते हैं, जो हठपूर्वक शत्रुसेना को मारने वाले हैं, वह भीम मेरी निन्दा करने के अधिकारी हैं, तुम नहीं जिसकी रक्षा उसके मित्रों द्वारा होती है।

एको भीमो धार्तराष्ट्रेषु मग्नः
स मामुपालब्धुमरिंदमोऽर्हति।
कलिङ्गवङ्गाङ्ग- निषादमागधान्
सदामदानील- बलाहकोपमान्॥ ७॥
निहन्ति यः शत्रुगजाननेकान्
स मामुपालब्धुमरिंदमोऽर्हति।
स युक्तमास्थाय रथं हि काले
धनुर्विधुन्वञ्शर- पूर्णमुष्टिः॥ ८॥
सृजत्यसौ शरवर्षाणि वीरो
महाहवे मेघ इवाम्बुधाराः।
शतान्यष्टौ वारणानामपश्यं
विशातितैः कुम्भकराग्रहस्तैः॥ ९॥
भीमेनाजौ निहतान्यद्य बाणैः
स मां क्रूरं वक्तुमर्हत्यरिघ्नः।

जो भीम अकेलेही धृतराष्ट्र के पुत्रों की सेना में घुसे हुए हैं, वे शत्रुदमन मुझे उपालम्भ देसकते हैं, जो कलिंग, बंग, अंग, निषाद और मगधदेशों के सदा मद बहानेवाले, काले बादलों के समान अनेकानेक शत्रुगजों को मारते हैं, वे शत्रुदमन मुझे उपालम्भ देसकते हैं। वीर भीमसेन जुते हुए रथ पर बैठकर यथासमय धनुष को कँपाते हुए महायुद्ध में मुट्ठी भर भरकर बाणों को लेते हैं और बाणवर्षा करते हैं, जैसे बादल जल की वर्षा कर रहे हों। वह शत्रुहन्ता भीम ही मुझसे कठोर वचन कहने के अधिकारी हैं। मैंने देखा कि आज युद्धक्षेत्र में भीम ने बाणों से आठ सौ हाथियों को उनके मस्तक सूँड, तथा सूँड के अगले भागों को काटकर मार दिया। भीम ही मुझसे कठोर वचन कहने का अधिकारी है।

बलं तु वाचि द्विजसत्तमानां
क्षात्रं बुधा बाहुबलं वदन्ति॥ १०॥
त्वं वाग्बलो भारत निष्ठुरश्च,
त्वमेव मां वेत्थ यथाबलोऽहम्।
मां मावमंस्था द्रौपदीतल्पसंस्थो
महारथान् प्रतिहन्मि त्वदर्थे॥ ११॥
तेनातिशङ्की भारत निष्ठुरोऽसि
त्वत्तः सुखं नाभिजानामि किंचित्।
प्रोक्तः स्वयं सत्यसंधेन मृत्यु-
स्तव प्रियार्थं नरदेव युद्धे॥ १२॥
वीरः शिखण्डी द्रौपदोऽसौ महात्मा
मयाभिगुप्तेन हतश्च तेन।

बुद्धिमान्‌लोग कहते हैं कि ब्राह्मणों का बल उनकी वाणी में होता है, क्षत्रियों का बल उनकी भुजाओं की शक्ति है, पर हे भारत! तेरे अन्दर तो केवल वाणी का बल है। तू निष्ठुर है। तू जानता है कि मेरे अन्दर कितना बल है? तू द्रौपदी के बिस्तरे पर बैठा मेरा अपमान मत कर। मैं तेरे लिये ही महारथियों को मारता हूँ। इसलिये तू मेरे ऊपर शंका करके निर्दय बन गया है। मैंने तेरे से कभी कोई सुख प्राप्त नहीं किया। हे नरदेव! तेरा प्रिय

करने के लिये ही सत्यवादी भीष्म ने तुझे स्वयं अपनी मृत्यु का उपाय कि द्रुपदपुत्र वीर, मनस्वी शिखण्डी उनकी मृत्यु है, यह बता दिया था। तब मेरी सुरक्षा में ही उसने उन्हें मारा था।

न चाभिनन्दामि तवाधिराज्यं
यतस्त्वमक्षेष्वहिताय सक्तः॥ १३॥
स्वयं कृत्वा पापमनार्यजुष्ट-
मस्माभिर्वा तर्तुमिच्छस्यरींस्त्वम्।
अक्षेषु दोषा बहवो विधर्माः
श्रुतास्त्वया सहदेवोऽब्रवीद् यान्॥ १४॥
तान् नैषि त्वं त्यक्तुमसाधुजुष्टां-
स्तेन स्म सर्वे निरयं प्रपन्नाः।
शेतेऽस्माभिर्निहता शत्रुसेना
छिन्नैर्गात्रैर्भूमितले नदन्ती॥ १५॥
त्वया हि तत् कर्म कृतं नृशंसं
यस्माद् दोषः कौरवाणां वधश्च।

मैं तेरे राज्य का अभिनन्दन नहीं करता, क्योंकि तू अपना ही अहित करने को जूए में लगा हुआ था। उस अनार्यों द्वारा कियेजानेवाले कार्य को स्वयं करके अब तू हमारी सहायता से शत्रुओं से पार पाना चाहता है। जूआ खेलने में बहुतसे पापयुक्त दोष हैं, जिनके बारे में सहदेव ने बताया था और तूने सुना भी था, पर तू असाधुओं से सेवित उन दोषों को नहीं छोड़ सका। जिससे हमसब संकट में पड़ गये। हमारे द्वारा मारी गयी शत्रुओं की सेना अपने कटे हुए अंगों के साथ भूमि पर पड़ी है। तूने ही यह निर्दयतायुक्त कर्म किया है। जिससे पाप भी और कौरववंश का विनाश भी होगा।

हता उदीच्या निहताः प्रतीच्या
नष्टाः प्राच्या दाक्षिणात्या विशस्ताः॥ १६॥
कृतं कर्माप्रतिरूपं महद्भि-
स्तेषां योधैरस्मदीयैश्च युद्धे।
त्वं देविता त्वत्कृते राज्यनाश-
स्त्वत्सम्भवं नो व्यसनं नरेन्द्र॥ १७॥

उत्तरदिशा के वीर मारे गये, पश्चिमदिशा के भी मार दिये गये, पूर्वदिशा के क्षत्रिय नष्ट हो गये और दक्षिणदिशा के भी काट दिये गये। शत्रुओं के और हमारे बहुतसे योद्धाओं ने युद्ध में अतुलनीय कार्य किये हैं। हे राजा! तू जुआरी है। तेरे कारणही राज्य का नाश होगया और तेरे कारणही हम संकट में पड़ गये।

एतच्छ्रुत्वा पाण्डवो धर्मराजो
भ्रातुर्वाक्यं परुषं फाल्गुनस्य।
उत्थाय तस्माच्छयनादुवाच
पार्थं ततो दुःखपरीतचेताः॥ १८॥
कृतं मया पार्थ यथा न साधु
येन प्राप्तं व्यसनं वः सुघोरम्।
तस्माच्छिरश्छिन्धि ममेदमद्य
कुलान्तकस्याधम- पूरुषस्य॥ १९॥
पापस्य पापव्यसनान्वितस्य
विमूढबुद्धेरलसस्य भीरोः।
वृद्धावमन्तुः परुषस्य चैव
किं ते चिरं मे ह्यनुसृत्य रूक्षम्॥ २०॥
गच्छाम्यहं वनमेवाद्य पापः
सुखं भवान् वर्ततां मद्विहीनः।

तब अपने भाई अर्जुन के इन कठोर वचनों को सुनकर धर्मराज पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर दुःखभरे हृदय से बिस्तरे से उठबैठे और अर्जुन से बोले कि हे कुन्तीपुत्र! वास्तव में मैंने अच्छा काम नहीं किया, जिससे तुम्हारे ऊपर घोर संकट आगया। मैं कुल का अन्त करानेवाला पापी पुरुष हूँ। तुम आज मेरे सिर को काट दो। मैं पापी, पापपूर्ण व्यसन में आसक्त, मूढबुद्धि, आलसी और कायर हूँ। मैं वृद्धों की बातों का अनादर करनेवाला और कठोरहृदय हूँ। तुम्हें मेरी रूखी बातों को देरतक मानने की क्या आवश्यकता है? मैं पापी आजही वन में चला जाता हूँ। तुमलोग मुझसे अलग होकर सुख से रहो।

योग्यो राजा भीमसेनो महात्मा
क्लीबस्य वा मम किं राज्यकृत्यम्॥ २१॥
न चापि शक्तः परुषाणि सोढुं
पुनस्तवेमानि रुषान्वितस्य।
भीमोऽस्तु राजा मम जीवितेन
न कार्यमद्यावमतस्य वीर॥ २२॥
इत्येवमुक्त्वा सहसोत्पपात
राजा ततस्तच्छयनं विहाय।
इयेष निर्गन्तु मथो वनाय
तं वासुदेवः प्रणतोऽभ्युवाच॥ २३॥

महात्मा भीमसेन योग्य राजा होंगे। मुझ नपुंसक को राज्य की क्या आवश्यकता है? क्रोध में भरे तुम्हारे कठोर वाक्यों को सहन करने की मुझमें शक्ति नहीं है। हे वीर! अब भीमसेन राजा बनेंगे। इतना अपमानित होने के पश्चात् अब मुझे जीवित रहने की क्या आवश्यकता है? ऐसा कहकर राजा एकदम कूदकर बिस्तरे से नीचे आ गये और वन में जाने का उपक्रम करने लगे। तभी श्रीकृष्णजी ने उनके पैरों को पकड़कर कहा कि--

राजन् विदितमेतद् वै यथा गाण्डीवधन्वनः।
प्रतिज्ञा सत्यसंधस्य गाण्डीवं प्रति विश्रुता॥ २४॥
ब्रूयाद् य एवं गाण्डीवमन्यस्मै देयमित्युत।
वध्योऽस्य स पुमाँल्लोके त्वया चोक्तोऽयमीदृशम्॥ २५॥
ततः सत्यां प्रतिज्ञां तां पार्थेन प्रतिरक्षता।
मच्छन्दादवमानोऽयं कृतस्तव महीपते॥ २६॥
गुरूणामवमानो हि वध इत्यभिधीयते।
तस्मात् त्वं वै महाबाहो मम पार्थस्य चोभयोः॥ २७॥
व्यतिक्रममिमं राजन् सत्यसंरक्षणं प्रति।

हे राजन्! आपको यह तो पता ही है कि गाण्डीव धनुषधारी इन सत्यवादी अर्जुन ने गाण्डीव धनुष के लिये क्या प्रतिज्ञा की हुई है? यह प्रसिद्ध है कि जो इनसे यह कह देगा कि तुम्हें अपना यह गाण्डीव दूसरे को दे देना चाहिये, वह पुरुष इनके द्वारा मारा जाएगा। आपने भी इनसे यही बात कह दी थी। हे राजन्! तब अर्जुन ने उस प्रतिज्ञा को सत्य सिद्ध करने के लिये, मेरी सलाह से आपका यह अपमान किया है, क्योंकि गुरुओं का अपमान ही उनका वध कहलाता है। इसलिये हे महाबाहु! आप मेरे और अर्जुन के हम दोनों के सत्य की रक्षा के लिये किये गये इस अपराध को क्षमा करें।

शरणं त्वां महाराज प्रपन्नौ स्व उभावपि॥ २८॥
क्षन्तुमर्हसि मे राजन् प्रणतस्याभियाचतः।
राधेयस्याद्य पापस्य भूमिः पास्यति शोणितम्॥ २९॥
सत्यं ते प्रतिजानामि हतं विद्ध्यद्य सूतजम्।
यस्येच्छसि वधं तस्य गतमप्यस्य जीवितम्॥ ३०॥
इति कृष्णवचः श्रुत्वा धर्मराजो युधिष्ठिरः।
ससम्भ्रमं हृषीकेशमुत्थाप्य प्रणतं तदा॥ ३१॥

हे महाराज! हम दोनों आपकी शरण में आए हुए हैं। हम आपके चरणों में पड़कर याचना कर रहे हैं। आप हमें क्षमा करें। आज उस पापी राधापुत्र के खून का भूमि पान करेगी। मैं आपसे यह सच्ची प्रतिज्ञा करता हूँ। आप समझ लीजिये कि वह सारथि का बेटा मारा गया। आप जिसका वध चाहते हैं, उसका जीवन अब समाप्त हो गया है। तब श्रीकृष्ण की इन बातों को सुनकर धर्मराज युधिष्ठिर ने तुरन्त हड़बड़ाहट के साथ पैरों में पड़े श्रीकृष्ण जी को उठा लिया और हाथ जोड़कर उनसे कहा कि--

कृताञ्जलिस्ततो वाक्यमुवाचानन्तरं वचः।
एवमेव यथाऽऽत्थ त्वमस्त्येषोऽतिक्रमो मम॥ ३२॥
अनुनीतोऽस्मि गोविन्द तारितश्चास्मि माधव।
मोचिता व्यसनाद् घोराद् वयमद्य त्वयाच्युत॥ ३३॥
भवन्तं नाथमासाद्य ह्यावां व्यसनसागरात्।
घोरादद्य समुत्तीर्णावुभावज्ञानमोहितौ॥ ३४॥
त्वद्बुद्धिप्लवमासाद्य दुःखशोकार्णवाद् वयम्।
समुत्तीर्णाः सहामात्याः सनाथाः स्म त्वयाच्युत॥ ३५॥

जैसा तुमने कहा है, वह ठीक है। मुझसे यह गलती हो गयी है। हे माधव! तुमने मुझे अपने अनुनय से सन्तुष्ट कर दिया और मुझे संकट से तार दिया है। हम दोनों ही अज्ञान से मोहित हो रहे हैं। हे अच्युत! आपने आज हमको बड़ी भारी मुसीबत से बचा दिया है, आज आपका सहारा पाकर हम दोनों भयंकर विपत्ति रूपी सागर से पार हो गये हैं। दुःख और शोक के सागर को आपकी बुद्धि रूपी नाव से हमने अपने मंत्रियों सहित पार कर लिया है। अब हम आपके द्वारा सनाथ हैं।

छप्पनवाँ अध्याय : अर्जुन और युधिष्ठिर का प्रसन्नता पूर्वक मिलना।

इति स्म कृष्णवचनात् प्रत्युच्चार्य युधिष्ठिरम्।
बभूव विमनाः पार्थः किंचित् कृत्वेव पातकम्॥ १॥
ततोऽब्रवीद् वासुदेवः प्रहसन्निव पाण्डवम्।
कथं नाम भवेदेतद् यदि त्वं पार्थ धर्मजम्॥ २॥
असिना तीक्ष्णधारेण हन्या धर्मे व्यवस्थितम्।
त्वमित्युक्त्वाथ राजानमेवं कश्मलमाविशः॥ ३॥
स भवान् धर्मभीरुत्वाद् ध्रुवमैष्यन्महत्तमः।
नरकं घोररूपं च भ्रातुर्ज्येष्ठस्य वै वधात्॥ ४॥

श्रीकृष्ण जी के कहने से युधिष्ठिर को कटुवचनों द्वारा प्रत्युत्तर देकर कुन्तीपुत्र अर्जुन इसप्रकार से उदास हो गये, जैसे उन्होंने कोई बड़ा भारी पाप किया हो। तब श्रीकृष्ण जी ने मुस्कराते हुए पाण्डुपुत्र से कहा कि हे कुन्तीपुत्र! जब तुम राजा को तू ऐसा कहकर ही इतने मोह को प्राप्त हो गये हो तो यदि तुम धर्ममार्ग में विद्यमान धर्मपुत्र युधिष्ठिर को तीखी तलवार की धार से मार देते तो तुम्हारी क्या अवस्था होती? तब तुम धर्मभीरु होने के कारण बड़े भाई के वध से निश्चय ही भयंकर दुःख रूपी नरक में डूब जाते।

स त्वं धर्मभृतां श्रेष्ठं राजानं धर्मसंहितम्।
प्रसादय कुरुश्रेष्ठमेतदत्र मतं मम॥ ५॥
प्रसाद्य भक्त्या राजानं प्रीते चैव युधिष्ठिरे।
प्रयावस्त्वरितौ योद्धुं सूतपुत्ररथं प्रति॥ ६॥
हत्वा तु समरे कर्णं त्वमद्य निशितैः शरैः।
विपुलां प्रीतिमाधत्स्व धर्मपुत्रस्य मानद॥ ७॥

अब यहाँ मेरी सलाह है कि तुम धर्मधारियों में श्रेष्ठ, धर्म परायण, कुरुश्रेष्ठ राजा को प्रसन्न करो। अपने भक्तिभाव से राजा को प्रसन्न करो और युधिष्ठिर के प्रसन्न होने पर हम दोनों शीघ्रता से युद्ध के लिये सूतपुत्र के रथ की तरफ चलते हैं। हे दूसरों को मान देने वाले! युद्धभूमि में कर्ण को तीखे बाणों से मारकर आज तुम धर्मपुत्र युधिष्ठिर की विपुल प्रीति को प्राप्त करो।

ततोऽर्जुनो महाराज लज्जया वै समन्वितः।
धर्मराजस्य चरणौ प्रपद्य शिरसा नतः॥ ८॥
उवाच भरतश्रेष्ठं प्रसीदेति पुनः पुनः।
क्षमस्व राजन् यत् प्रोक्तं धर्मकामेन भीरुणा॥ ९॥

दृष्ट्वा तु पतितं पद्भ्यां धर्मराजो युधिष्ठिर।
धनंजयममित्रघ्नं रुदन्तं भरतर्षभ॥ १०॥
उत्थाय भ्रातरं राजा धर्मराजो धनंजयम्।
समाश्लिष्य च सस्नेहं प्ररुरोद महीपतिः॥ ११॥
रुदित्वा सुचिरं कालं भ्रातरौ सुमहाद्युती।
कृतशौचौ महाराज प्रीतिमन्तौ बभूवतुः॥ १२॥

हे महाराज! तब अर्जुन लज्जा से भरे हुए, धर्मराज के चरणों में सिर झुकाकर गिरपड़े और बार बार उन भरतश्रेष्ठ से कहने लगे कि प्रसन्न होइये, प्रसन्न होइये। हे राजन्! मैंने धर्मपालन की इच्छा से डरकर जो कुछ आपसे कहा है, उसे क्षमा कीजिये। हे भरतश्रेष्ठ! तब धर्मराज युधिष्ठिर ने शत्रुदमन, अर्जुन को अपने पैरों में पड़ा हुआ और रोता हुआ देखकर, अपने उस भाई को उठाकर प्रेमपूर्वक छाती से लगा लिया और राजा भी तब फूट फूटकर रोने लगे। वेदोनों अत्यन्त तेजस्वी भाई देर तक रोते रहे। हे महाराज! जब उनके मन का मैल इसप्रकार धुल गया, तब वे परस्पर प्रेम से भर गये।

तत आश्लिष्य तं प्रेम्णा मूर्ध्नि चाघ्राय पाण्डवः।
प्रीत्या परमया युक्तो विस्मयंश्च पुनः पुनः॥ १३॥
अब्रवीत् तं महेष्वासं धर्मराजो धनंजयम्।
कर्णेन मे महाबाहो सर्वसैन्यस्य पश्यतः॥ १४॥
कवचं च ध्वजं चैव धनुः शक्तिर्हयाः शराः।
शरैः कृत्ता महेष्वास यतमानस्य संयुगे॥ १५॥
सोऽहं ज्ञात्वा रणे तस्य कर्म दृष्ट्वा च फाल्गुन।
व्यवसीदामि दुःखेन न च मे जीवितं प्रियम्॥ १६॥

तब धर्मराज पाण्डुपुत्र ने अत्यन्त प्रेम से युक्त होकर अर्जुन को प्रेमपूर्वक छाती से लगाकर और उनके सिर को सूँघ कर बार बार मुस्कराते हुए कहा कि हे महाबाहु! महाधनुर्धर कर्ण ने सारी सेना के देखते हुए, युद्ध क्षेत्र में प्रयत्न करते हुए मेरे कवच, धनुष, ध्वज, शक्ति, घोड़ों और बाणों को अपने बाणों से काट दिया। हे अर्जुन! युद्धक्षेत्र में उसके इस कार्य को देखकर और जानकर, मैं दुःख से शिथिल हो रहा हूँ। मुझे अपना जीवन प्यारा नहीं लग रहा है।

न चेदद्य हि तं वीरं निहनिष्यसि संयुगे।
प्राणानेव परित्यक्ष्ये जीवितार्थो हि को मम॥ १७॥
एवमुक्तः प्रत्युवाच विजयो भरतर्षभ।
सत्येन ते शपे राजन् प्रसादेन तथैव च॥ १८॥
भीमेन च नरश्रेष्ठ यमाभ्यां च महीपते।
यथाद्य समरे कर्णं हनिष्यामि हतोऽपि वा॥ १९॥
महीतले पतिष्यामि सत्येनायुधमालभे।

इसलिये यदि उस वीर को तुम आज युद्ध में नहीं मार दोगे, तो मैं प्राणों को ही छोड़ दूगा। मुझे जीवित रहने से क्या लाभ है? हे भरतश्रेष्ठ! ऐसा कहने पर अर्जुन ने उत्तर दिया कि हे राजन्! मैं आपसे सत्य की, आपके अनुग्रह की, हे भरतश्रेष्ठ महीपति! भीम की, नकुल और सहदेव की शपथ खाकर तथा सत्यपूर्वक अपने धनुष को छूकर कहता हूँ कि मैं आज युद्ध में कर्ण को मार दूँगा या स्वयं मारा जाकर भूमि पर गिर जाऊँगा।

एवमाभाष्य राजानमब्रवीन्माधवं वचः॥ २०॥
अद्य कर्णं रणे कृष्ण सूदयिष्ये न संशयः।
तव बुद्ध्या हि भद्रं ते वधस्तस्य दुरात्मनः॥ २१॥
एव मुक्तोऽब्रवीत् पार्थं केशवो राजसत्तम।
शक्तोऽसि भरतश्रेष्ठ हन्तुं कर्णं महाबलम्॥ २२॥
एष चापि हि मे कामो नित्यमेव महारथ।
कथं भवान् रणे कर्णं निहन्यादिति सत्तम॥ २३॥
भूयश्चोवाच मतिमान् माधवो धर्मनन्दनम्।
युधिष्ठिरेमं बीभत्सुं त्वं सान्त्वयितुमर्हसि॥ २४॥
अनुज्ञातुं च कर्णस्य वधायाद्य दुरात्मनः।

राजा से यह कहकर अर्जुन ने श्रीकृष्ण से कहा कि हे कृष्ण! आज मैं रणक्षेत्र में कर्ण को मार दूँगा। इसमें कोई संशय नहीं है। आपका कल्याण हो। आपकी बुद्धि से ही उस दुष्ट का वध होगा। हे राजश्रेष्ठ! ऐसा कहे जाने पर श्रीकृष्ण ने कुन्तीपुत्र से कहा कि हे भरतश्रेष्ठ! तुम महाबली कर्ण को मारने में समर्थ हो। हे सत्पुरुषों में श्रेष्ठ, महारथी वीर! मेरी भी सदा यही कामना रहती है कि किसी तरह से तुम युद्ध में कर्ण को मार दो। फिर बुद्धिमान श्रीकृष्ण जी ने धर्मनन्दन युधिष्ठिर से पुनः कहा कि आप इस अर्जुन को सान्त्वना दीजिये और दुरात्मा कर्ण के वध के लिये आज्ञा दीजिये।

श्रुत्वा ह्यहमयं चैव त्वां कर्णशरपीडितम्॥ २५॥
प्रवृत्तिं ज्ञातुमायाताविहावां पाण्डुनन्दन।
दिष्ट्यासि राजन् न हतो दिष्ट्या न ग्रहणं गतः॥ २६॥
परिसान्त्वय बीभत्सुं जयमाशाधि चानघ।

युधिष्ठिर उवाच

धनंजय महाबाहो मानितोऽस्मि दृढं त्वया॥ २७॥
माहात्म्यं विजयं चैव भूयः प्राप्नुहिशाश्वतम्।

मैंने और इसने जब यह सुना कि आप कर्ण के बाणों से पीड़ित हैं, तब हे पाण्डुनन्दन! हमदोनों आपका हाल जानने को आये थे। हे राजन्! यह सौभाग्य की बात है कि आप कर्ण के द्वारा न तो मारे गये और न पकड़े गये। हे निष्पाप! अब आप अर्जुन को सान्त्वना दीजिये और इसे विजय का आशीर्वाद दीजिये। तब युधिष्ठिर ने कहा कि महाबाहु अर्जुन! तुमने मेरा बड़ा सम्मान किया है। तुम पुनः सनातन महिमा और विजय को प्राप्त करो।

अर्जुन उवाच

अद्य तं पापकर्माणं सानुबन्धं रणे शरैः॥ २८॥
नयाम्यन्तं समासाद्य राधेयं बलगर्वितम्।
येन त्वं पीडितो बाणैर्दृढमायम्य कार्मुकम्॥ २९॥
तस्याद्य कर्मणः कर्णः फलमाप्स्यति दारुणम्।
अद्य त्वामनुपश्यामि कर्णं हत्वा महीपते॥ ३०॥
सभाजयितुमाक्रन्दादिति सत्यं ब्रवीमि ते।
नाहत्वा विनिवर्तिष्ये कर्णमद्य रणाजिरात्।
इति सत्येन ते पादौ स्पृशामि जगतीपते॥ ३१॥

तब अर्जुन ने कहा की आज उस पापी, बल के अभिमानी, राधापुत्र को युद्धक्षेत्र में प्राप्त कर बाणों से परिवार सहित मृत्यु के पास भेज दूँगा। जिसने तुम्हें धनुष को दृढ़ता से खींचकर बाणों से पीड़ित किया है, वह कर्ण अपने उस दारुण कर्म का फल आज प्राप्त करेगा। हे महीपति! आज मैं कर्ण को मारकर आपका दर्शन करूँगा और युद्धस्थल से आपका अभिनन्दन करने आऊँगा, यह मैं आपसे सत्य कहता हूँ। हे जगतीपति। आज मैं कर्ण को मारे बिना नहीं लौटूँगा, इस सत्य के द्वारा मैं आपके चरणों को स्पर्श करता हूँ।

सत्तावनवाँ अध्याय : श्रीकृष्ण के द्वारा अर्जुन को उत्साहित करना।

ततः पुनरमेयात्मा केशवोऽर्जुनमब्रवीत्।
कृतसंकल्पमायान्तं वधे कर्णस्य भारत॥ १॥
अद्य सप्तदशाहानि वर्तमानस्य भारत।
विनाशस्यातिघोरस्य नरवारणवाजिनाम्॥ २॥
भूत्वा हि विपुला सेना तावकानां परैः सह।
अन्योन्यं समरं प्राप्य किंचिच्छेषा विशाम्पते॥ ३॥
भूत्वा वै कौरवाः पार्थ प्रभूतगजवाजिनः।
त्वां वै शत्रुं समासाद्य विनष्टा रणमूर्धनि॥ ४॥

उसके पश्चात् फिर अमित आत्मा श्रीकृष्णजी ने हे भारत! कर्ण के वध के लिये संकल्प करके, जाते हुए अर्जुन से कहा कि हे भारत! आज मनुष्यों, हाथियों, और घोड़ों का अत्यन्त घोर विनाश करते हुए सत्रहवाँ दिन चल रहा है। शत्रुओं के समान तुम्हारे पास भी विशाल सेना एकत्र होगयी थी, किन्तु हे प्रजानाथ! एकदूसरे से युद्ध करते हुए यह अब थोड़ीसी ही शेष रह गयी है। हे कुन्तीपुत्र! कौरवलोग यद्यपि अधिक हाथी और घोड़ोंवाले थे, पर तुम जैसे शत्रु को पाकर वे युद्ध के मुहाने पर नष्ट होगये।

एते ते पृथिवीपालाः सृञ्जयाश्च समागताः।
त्वां समासाद्य दुर्धर्षं पाण्डवाश्च व्यवस्थिताः॥ ५॥
पाञ्चालैः पाण्डवैर्मत्स्यैः कारूषैश्चेदिभिः सह।
त्वया गुप्तैरमित्रघ्नैः कृतः शत्रुगणक्षयः॥ ६॥
को हि शक्तो रणे जेतुं कौरवांस्तात संयुगे।
अन्यत्र पाण्डवान् युद्धे त्वया गुप्तान् महारथान्॥ ७॥
भगदत्तं च राजानं कोऽन्यः शक्तस्त्वया विना।
जेतुं पुरुषशार्दूल योऽपि स्याद वासवोपमः॥ ८॥

उन आये हुए राजालोगों, सृंजय तथा पाण्डववीर, पाँचाल, मत्स्य, कारूष और चेदिदेशी शत्रुदमन वीरों ने तुम्हारे द्वारा सुरक्षित रहकर ही शत्रुसमूहों का विनाश किया है। हे तात! कौरवों को युद्धक्षेत्र में सिवाय तुम्हारे द्वारा सुरक्षित पाण्डव महारथियों के कौन युद्ध में हरा सकता है? हे पुरुषसिंह! भगदत्त जैसे राजा को, जो इन्द्र के समान पराक्रमी था, सिवाय तुम्हारे कौन दूसरा जीत सकता था?

तथेमां विपुलां सेनां गुप्तां पार्थ त्वयानघ।
न शेकुः पार्थिवाः सर्वे चक्षुर्भिरपि वीक्षितुम्॥ ९॥
तथैव सततं पार्थ रक्षिताभ्यां त्वया रणे।
धृष्टद्युम्नशिखण्डिभ्यां भीष्मद्रोणौ निपातितौ॥ १०॥
को हि शान्तनवं भीष्मं द्रोणं वैकर्तनं कृपम्।
द्रौणिं च सौमदत्तिं च कृतवर्माणमेव च॥ ११॥
सैन्धवं मद्रराजानं राजानं च सुयोधनम्।
वीरान् कृतास्त्रान् समरे सर्वानेवानिवर्तिनः॥ १२॥
अक्षौहिणीपतीनुग्रान् संहतान् युद्धदुर्मदान्।
त्वामृते पुरुषव्याघ्र जेतुं शक्तः पुमानिह॥ १३॥

हे निष्पाप कुन्तीपुत्र! इसीप्रकार तुम्हारे द्वारा सुरक्षित होने के कारण ही, इस विशाल सेना की तरफ राजालोग आँख उठाकर भी नहीं देख सके हैं। इसीप्रकार हे कुन्तीपुत्र! तुम्हारे द्वारा लगातार सुरक्षित रहकर ही युद्धभूमि में धृष्टद्युम्न और शिखण्डी ने द्रोणाचार्य और भीष्म को गिराया है। हे पुरुषव्याघ्र! शान्तनुपुत्र भीष्म, द्रोणाचार्य, सूर्यपुत्र कर्ण, कृपाचार्य, द्रोणपुत्र, सोमदत्तपुत्र और कृतवर्मा, जयद्रथ तथा मद्रराज शल्य, एवं राजा दुर्योधन, इन सारे वीरों को, जो अस्त्रविद्या के विशारद, युद्ध में पीछे न हटने वाले, अक्षौहिणी सेना के स्वामी, संगठित, उग्र स्वभाव के और युद्ध में दुर्मद हैं, तुम्हारे बिना जीतने में कौन पुरुष यहाँ समर्थ है?

श्रेण्यश्च बहुलाः क्षीणाः प्रदीर्णाश्वरथद्विपाः।
नानाजनपदाश्चोग्राः क्षत्रियाणाममर्षिणाम्॥ १४॥
गोवासदासमीयानां वसातीनां च भारत।
प्राच्यानां वाटधानानां भोजानां चाभिमानिनाम्॥ १५॥
उदीर्णाश्वगजा सेना सर्वक्षत्रस्य भारत।
त्वां समासाद्य निधनं गता भीमं च भारत॥ १६॥

अमर्षशील क्षत्रियों के अनेक देशों से आये बहुतसे भयंकर समूह थे, जो नष्ट होगये, उनके रथ, हाथी और घोड़े भी मारे गये। हे भारत! तुम्हारे और भीम के सामने पहुँचकर गोवास, दासमीय, वसाति, प्राच्य, वाटधान, और भोजदेशनिवासी अभिमानी वीरों की सेनाएँ, जिनमें उद्दण्ड घोड़े और हाथी थे, तथा दूसरे सारे क्षत्रियों की सेनाएँ मृत्युलोक को प्राप्त होगयीं।

उग्राश्च भीमकर्माणस्तुषारा यवनाः खशाः।
दार्वाभिसारा दरदाः शका माठरतङ्गणाः॥ १७॥
आन्ध्रकाश्च पुलिन्दाश्च किराताश्चोग्रविक्रमाः।

म्लेच्छाश्च पर्वतीयाश्च सागरानूपवासिनः॥ १८॥
संरम्भिणो युद्धशौण्डा बलिनो दण्डपाणयः।
एते सुयोधनस्यार्थे संरब्धाः कुरुभिः सह॥ १९॥
न शक्या युधि निर्जेतुं त्वदन्येन परंतप।
धार्तराष्ट्रमुदग्रं हि व्यूढं दृष्ट्वा महद् बलम्॥ २०॥
यदि त्वं न भवेस्त्राता प्रतीयात् को नु मानवः।

उग्रस्वभाव के, भीषणपराक्रमी तथा भयंकर कर्म करनेवाले तुषार, यवन, खश, दार्वाभिसार, दरद, शक, माठर, तंगण, आन्ध्र, पुलिन्द, किरात, म्लेच्छ, पर्वतीय और समुद्रतटवर्ती योद्धा, जो युद्ध में कुशल, क्रोधी, बलवान् और हाथों में डण्डे लिये हुए हैं, येसब क्रोध में भरकर, दुर्योधन के लिये, कौरवसैनिकों के साथ आये हुए हैं। हे शत्रुओं को संतप्त करनेवाले! तुम्हारे सिवाय दूसरा व्यक्ति इन्हें युद्ध में नहीं जीत सकता। यदि तुम रक्षक न होते तो दुर्योधन की भयंकर और व्यूह में खड़ी विशाल सेनापर कौन चढ़ाई कर सकता था?

तत् सागरमिवोद्धूतं रजसा संवृतं बलम्॥ २१॥
विदार्य पाण्डवैः क्रुद्धैस्त्वया गुप्तैर्हतं विभो।
एवं वा को रणे कुर्यात् त्वदन्यः क्षत्रियो युधि।
यादृशं ते कृतं पार्थ, जयद्रथवधं प्रति॥ २२॥
आश्चर्यं सिन्धुराजस्य वधं जानन्ति पार्थिवाः।
अनाश्चर्यं हि तत् त्वत्तस्त्वं हि पार्थ महारथः॥ २३॥
सेयं पार्थ चमूर्घोरा धार्तराष्ट्रस्य संयुगे।
हतसर्वस्ववीरा हि भीष्मद्रोणौ यदा हतौ॥ २४॥

हे शक्तिशाली! तुम्हारे द्वारा सुरक्षित रहकर ही क्रुद्ध पाण्डववीरों ने उस सागर के समान उमड़ती और धूल से आच्छदित सेना को छिन्नभिन्न करके मार दिया। इसीप्रकार हे कुन्तीपुत्र! युद्ध में तुमने जयद्रथ का वध करने में जैसा पराक्रम दिखाया है, वैसा तुम्हारे सिवाय कौन युद्धस्थल में दिखा सकता है? राजालोग यह जानते हैं कि जयद्रथ का वध हो जाना एक आश्चर्य की बात है, पर हे कुन्तीपुत्र! तुम्हारे लिये यह कोई आश्चर्य नहीं है, क्योंकि तुम एक असाधारण महारथी हो। हे कुन्तीपुत्र! युद्धक्षेत्र में विद्यमान दुर्योधन की इस भयंकर सेना के जब भीष्म और द्रोणाचार्य जैसे योद्धा मारे गये, तभी से इसके मानो सारे वीर मारे गये और इसका सर्वस्व नष्ट होगया।

शीर्णप्रवरयोधाद्य हतवाजिरथद्विपा।
हीना सूर्येन्दुनक्षत्रैर्द्यौरिवाभाति भारती॥ २५॥
तेषां हतावशिष्टास्तु सन्ति पञ्च महारथाः।
अश्वत्थामा कृतवर्मा कर्णो मद्राधिपः कृपः॥ २६॥

इस कौरव सेना के प्रमुख योद्धा आज तक मारे जा चुके हैं, घोड़े रथ और हाथी भी नष्ट हो गये हैं। अब यह सेना सूर्य, चन्द्रमा और नक्षत्रों से रहित आकाश के समान जान पड़ती है। बचे हुए कौरवयोद्धाओं में पाँच महारथी शेष हैं जैसे– अश्वत्थामा, कृतवर्मा, कर्ण, मद्रराज और कृपाचार्य।

यदि वा द्विपदां श्रेष्ठं द्रोणं मानयतो गुरुम्।
अश्वत्थाम्नि कृपा तेऽस्ति कृपे वाचार्यगौरवात्॥ २७॥
अत्यन्तापचितान् बन्धून् मानयन् मातृबान्धवान्।
कृतवर्माणमासाद्य न नेष्यसि यमक्षयम्॥ २८॥
भ्रातरं मातुरासाद्य शल्यं मद्रजनाधिपम्।
यदि त्वमरविन्दाक्ष दयावान् न जिघांससि॥ २९॥
इमं पापमतिं क्षुद्रमत्यन्तं पाण्डवान् प्रति।
कर्णमद्य नरश्रेष्ठ जह्याः सुनिशितैः शरैः॥ ३०॥

हे कमल के समान नेत्रवाले अर्जुन! इनमें से यदि मनुष्यों में श्रेष्ठ गुरुद्रोणाचार्य का सम्मान करते हुए तुम्हारे हृदय में द्रोणपुत्र के लिये दया है, अथवा आचार्य होने के गौरव से कृपाचार्य के प्रति कृपाभाव है, यदि माता कुन्ती के अत्यन्तपूज्य बन्धुओं के प्रति आदरभाव रखते हुए तुम कृतवर्मा पर आक्रमण कर उसे मृत्युलोक में नहीं भेजना चाहते, यदि माता माद्री के भाई मद्रदेश के राजा शल्य को भी तुम दयावश मारने की इच्छा नहीं रखते तो पाण्डवों के प्रति सदा पापबुद्धि रखनेवाले इस कर्ण को तो आज अपने अत्यन्ततीखे बाणों से मार ही डालो।

दहने यत् सपुत्राया निशि मातुस्तवानघ।
द्यूतार्थे यच्च युष्मासु प्रावर्तत सुयोधनः॥ ३१॥
तस्य सर्वस्य दुष्टात्मा कर्णो वै मूलमित्युत।
कर्णाद्धि मन्यते त्राणं नित्यमेव सुयोधनः॥ ३२॥
ततो मामपि संरब्धो निग्रहीतुं प्रचक्रमे।
स्थिरा बुद्धिर्नरेन्द्रस्य धार्तराष्ट्रस्य मानद॥ ३३॥
कर्णः पार्थान् रणे सर्वान् विजेष्यति न संशयः।
कर्णमाश्रित्य कौन्तेय धार्तराष्ट्रेण विग्रहः॥ ३४॥
रोचितो भवता सार्धं जानतापि बलं तव।

हे निष्पाप! रात में तुम्हारी माता को पुत्रोंसहित जला देने और तुम्हारे साथ जूआ खेलने में दुर्योधन की जो प्रवृत्ति हुई, इन सारी बातों का यह दुष्टात्मा ही मूल कारण था। दुर्योधन सदा कर्ण से ही अपनी सुरक्षा समझता है। इसीलिये वह मुझे भी क्रोध में भरकर कैद करने की तैयारी करने लगा था। हे दूसरों को मान देने वाले! दुर्योधन की यह निश्चित बुद्धि है कि निस्सन्देह कर्ण युद्ध में सारे कुन्तीपुत्रों को जीत लेगा। हे कुन्तीपुत्र! तुम्हारे बल को जानते हुए भी, दुर्योधन ने कर्ण का सहारा लेकर तुम्हारे साथ युद्ध छेड़ना पसन्द किया है।

कर्णो हि भाषते नित्यमहं पार्थान् समागतान्॥ ३५॥
वासुदेवं च दाशार्हं विजेष्यामि महारथम्।
प्रोत्साहयन् दुरात्मानं धार्तराष्ट्रं सुदुर्मतिम्॥ ३६॥
समितौ गर्जते कर्णस्तमद्य जहि भारत।
यच्च युष्मासु पापं वै धार्तराष्ट्रः प्रयुक्तवान्॥ ३७॥
तत्र सर्वत्र दुष्टात्मा कर्णः पापमतिर्मुखम्।
गाण्डीवप्रहितान् घोरानद्य गात्रैः स्पृशञ्छरान्॥ ३८॥
कर्णः स्मरतु दुष्टात्मा वचनं द्रोणभीष्मयोः।

कर्ण यही कहता है कि मैं युद्ध में आये कुन्तीपुत्रों और दाशार्हवंशी महारथी श्रीकृष्ण को जीत लूँगा। हे भारत! जो कर्ण खोटी बुद्धिवाले दुरात्मा दुर्योधन को उत्साहित करते हुए राजसभा में गर्जता है, उसे तुम आज मार दो। दुर्योधन ने तुम्हारे साथ जो भी पापपूर्ण बर्ताव किये हैं, उन सबमें यह पापबुद्धि दुष्टात्मा कर्ण ही प्रमुख कारण है। आज गाण्डीवधनुष से छूटे भयंकर बाणों को अपने अंगों से स्पर्श करके कर्ण भीष्म और द्रोणाचार्य की बातों को याद करे।

सुवर्णपुङ्खा नाराचाः शत्रुघ्ना वैद्युतप्रभाः॥ ३९॥
त्वयास्तास्तस्य वर्माणि भित्त्वा पास्यन्ति शोणितम्।
उग्रास्त्वद्भुजनिर्मुक्ता मर्म भित्त्वा महाशराः॥ ४०॥
अद्य कर्णं महावेगाः प्रेषयन्तु यमक्षयम्।
अद्य हाहाकृता दीना विषण्णास्त्वच्छरार्दिताः॥ ४१॥
प्रपतन्तं रथात् कर्णं पश्यन्तु वसुधाधिपाः।
अद्य शोणितसम्मग्नं शयानं पतितं भुवि॥ ४२॥
अपविद्धायुधं कर्णं दीनाः पश्यन्तु बान्धवाः।

आज सुनहरे पंखवाले विद्युत् से चमकते, शत्रुओं को मारनेवाले, तुम्हारे द्वारा छोड़े नाराच उसके कवच को छेदकर रक्त का पान करेंगे। तुम्हारी भुजाओं द्वारा छोड़े भयंकर और विशाल महान् वेगवाले बाण कर्ण के मर्मस्थल को भेदकर उसे मृत्युलोक में भेज दें। आज तुम्हारे बाणों से पीड़ित, दीन और विषादयुक्त राजालोग, हा हाकार करते हुए, कर्ण को गिरता हुआ देखें। आज कर्ण खून से लथपथ होकर, भूमि पर सोरहा हो, उसका शरीर बाणों से छिदा हुआ हो और उसके बन्धु दीन बने हुए उसे देखें।

हस्तिकक्षो महानस्य भल्लेनोन्मथितस्त्वया।
प्रकम्पमानः पततु भूमावाधिरथेर्ध्वजः॥ ४३॥
त्वया शरशतैश्छिन्नं रथं हेमविभूषितम्।
हतयोधाश्वमुत्सृज्य भीतः शल्यः पलायताम्॥ ४४॥
त्वं चेत् कर्णसुतं पार्थ सूतपुत्रस्य पश्यतः।
प्रतिज्ञावारणार्थाय निहनिष्यासि सायकैः॥ ४५॥
हतं कर्णस्तु तं दृष्ट्वा प्रियं पुत्रं दुरात्मवान्।
स्मरतां द्रोणभीष्माभ्यां वचः क्षत्तुश्च मानद॥ ४६॥

अधिरथपुत्र का हाथी के रस्से के चिह्न वाला विशाल ध्वज तुम्हारे द्वारा भल्ल से काटा जाकर, काँपता हुआ भूमि पर गिर पड़े। उसका स्वर्ण भूषित रथ तुम्हारे सैकड़ों बाणों से छिन्न भिन्न हो जाये और उस रथ को, जिसके घोड़े और योद्धा मार दिये गये हों, भयभीत शल्य छोड़कर भाग जाये। हे कुन्तीपुत्र! यदि तुम कर्ण के देखते हुए उसके पुत्र को अपनी प्रतिज्ञा की रक्षा के लिये बाणों से मार दोगे तो हे दूसरों को मान देनेवाले वह दुरात्मा कर्ण अपने उस प्रियपुत्र को मरा देखकर भीष्म, द्रोणाचार्य और विदुर के वचनों को याद करेगा।

ततः सुयोधनो दृष्ट्वा हतमाधिरथिं त्वया।
निराशो जीविते त्वद्य राज्ये चैव भवत्वरिः॥ ४७॥
एते द्रवन्ति पञ्चाला वध्यमानाः शितैः शरैः।
कर्णेन भरतश्रेष्ठ पाण्डवानुज्जिहीर्षवः॥ ४८॥
अभ्याहतानां कर्णेन, पञ्चालानामसौ रणे।
श्रूयते निनदो घोरः, त्वद्बन्धूनां परंतप॥ ४९॥
तेषामापततां शूरः पञ्चालानां तरस्विनाम्।
आदत्तासूञ्शरैः कर्णः पतङ्गानामिवानलः॥ ५०॥

वह तुम्हारा शत्रु दुर्योधन तुम्हारे द्वारा मारे गये अधिरथ के पुत्र को देखकर अपने जीवन और राज्य के प्रति भी निराश हो जाये। हे भरतश्रेष्ठ! ये पाँचाल वीर कर्ण के द्वारा तीखे बाणों से मारे जाते हुए भी पाण्डवों का उद्धार करने की इच्छा से उसकी ओर ही भाग रहे हैं। हे परंतप! युद्धक्षेत्र में कर्ण के द्वारा घायल हुए तुम्हारे बन्धु पाँचालों यह घोर आर्तनाद सुनाई दे रहा है। शूरवीर कर्ण अपने ऊपर आक्रमण करने वाले वेगवान् पाँचालों के प्राण बाणों के द्वारा उसी प्रकार ले रहा है, जैसे आग अपने ऊपर गिरते हुए पतंगों के प्राण ले लेती हैं।

तांस्तथाभिमुखान् वीरान् मित्रार्थे त्यक्तजीवितान्।
क्षयं नयति राधेयः पञ्चालाञ्छतशो रणे॥ ५१॥
तद् भारत महेष्वासानगाधे मज्जतोऽप्लवे।
कर्णार्णवे प्लवो भूत्वा पञ्चालांस्त्रातुमर्हसि॥ ५२॥
पाण्डवान् सृञ्जयांश्चैव पञ्चालांश्चैव भारत।
हन्यादुपेक्षितः कर्णो रोगो देहमिवागतः॥ ५३॥

राधापुत्र पाँचालवीरों को, जो मित्रों के लिये प्राणों का मोह छोड़े हुए, उसका सामना कर रहे हैं, सैकड़ों की संख्या में रणभूमि में नष्ट कर रहा है इसलिये हे भारत! तुम कर्ण रूपी अगाध महासागर में बिना नाव के डूबते हुए पांचाल महाधनुर्धरों को नाव बनकर बचाओ। जैसे शरीर में आया हुआ रोग उपेक्षा करने पर शरीर को नष्ट कर देता है, वैसे ही यदि कर्ण की उपेक्षा की गयी तो यह सारे पांचालों, सृंजयों और पाण्डवों का नाश कर देगा।

नान्यं त्वत्तो हि पश्यामि योधं यौधिष्ठिरे बले।
यः समासाद्य राधेयं स्वस्तिमानाव्रजेद् गृहम्॥ ५४॥
तमद्य निशितैर्बाणैर्विनिहत्य नरर्षभ।
यथाप्रतिज्ञं पार्थ त्वं कृत्वा कीर्तिमवाप्नुहि॥ ५५॥
त्वं हि शक्तो रणे जेतुं सकर्णानपि कौरवान्।
नान्यो युधि युधां श्रेष्ठ सत्यमेतद् ब्रवीमि ते॥ ५६॥

मैं युधिष्ठिर की सेना में तुम्हारे सिवाय और किसी ऐसे योद्धा को नहीं देखता, जो कर्ण का सामना कर कुशल पूर्वक घर वापिस लौटकर आ जाये। हे नरश्रेष्ठ! हे कुन्तीपुत्र! तुम अपने तीखे बाणों से आज कर्ण को अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार मारकर कीर्ति को प्राप्त करो। हे योद्धाओं में श्रेष्ठ! युद्ध में कर्ण सहित कौरवों को जीतने में तुम ही समर्थ हो, कोई और दूसरा नहीं है, यह मैं तुमसे सत्य कहता हूँ।

अट्ठावनवाँ अध्याय : अर्जुन के वीरोचित उद्गार।

स केशवस्य बीभत्सुः श्रुत्वा भारत भाषितम्।
दध्रे कर्णविनाशाय केशवं चाभ्यभाषत॥ १॥
पश्यामि द्रवतीं सेनां पञ्चालानां जनार्दन।
पश्यामि कर्णं समरे विचरन्तमभीतवत्॥ २॥
अयं खलु स संग्रामो यत्र कर्णं मया हतम्।
कथयिष्यन्ति भूतानि यावद् भूमिर्धरिष्यति॥ ३॥
अद्य कृष्ण विकर्णा मे कर्णं नेष्यन्ति मृत्यवे।
गाण्डीवमुक्ताः क्षिण्वन्तो मम हस्तप्रचोदिताः॥ ४॥

हे भारत! श्रीकृष्ण की बातें सुनकर अर्जुन ने कर्ण के विनाश के लिये अपने मन में निश्चय कर लिया और श्रीकृष्णजी से कहा कि हे जनार्दन! मैं युद्धक्षेत्र में पाँचालों की सेना को भागता हुआ और कर्ण को निर्भयता के साथ विचरण करता हुआ देख रहा हूँ। यह वही संग्राम स्थल है, जहाँ कर्ण मेरे द्वारा मारा जायेगा और जब तक भूमि विद्यमान रहेगी, लोग उस युद्ध का बखान करते रहेंगे। हे कृष्ण! आज मेरे हाथ से प्रेरित किये गये गाण्डीव से छोड़े हुए विकर्ण नाम के बाण कर्ण को क्षत विक्षत करते हुए मृत्यु लोक में पहुँचा देंगे।

अद्य राजा धृतराष्ट्रः स्वां बुद्धिमवमंस्यते।
दुर्योधनमराज्यार्हं यया राज्येऽभ्यषेचयत्॥ ५॥
अद्य राज्यात् सुखाच्चैव श्रियो राष्ट्रात् तथा पुरात्।
पुत्रेभ्यश्च महाबाहो धृतराष्ट्रो विमोक्ष्यति॥ ६॥
गुणवन्तं हि यो द्वेष्टि निर्गुणं कुरुते प्रभुम्।
स शोचति नृपः कृष्ण क्षिप्रमेवागते क्षये॥ ७॥
यथा च पुरुषः कश्चिच्छित्त्वा चाम्रवणं महत्।
फलं दृष्ट्वा भृशं दुःखी भविष्यति जनार्दन॥ ८॥
सूतपुत्रे हते त्वद्य निराशो भविता प्रभुः।

आज राजा धृतराष्ट्र अपनी उस बुद्धि की निन्दा करेंगे, जिसके आधीन होकर उन्होंने राज्य के अयोग्य दुर्योधन को राज्य पर अभिषिक्त कर दिया था। हे महाबाहु! आज धृतराष्ट्र अपने राज्य, सुख,

श्री, राष्ट्र, नगर, और पुत्रों से भी बिछुड़ जायेंगे। हे कृष्ण! जो राजा गुणवानों से द्वेष करता है और गुणहीनों को शक्तिशाली बना देता है, वह जल्दी ही विनाशकाल उपस्थित होने पर शोक करता है, जैसे कोई पुरुष विशाल आम के वन को काटकर, फिर उसके दुष्परिणाम को देखकर दुखी हो जाता है, वैसे ही आज सूतपुत्र के मारे जाने पर राजा दुर्योधन अत्यन्त निराश और दुखी हो जायेगा।

अद्य दुर्योधनो राज्याज्जीविताच्च निराशकः॥ ९॥
भविष्यति हते कर्णे कृष्ण सत्यं ब्रवीमि ते।
अद्य दृष्ट्वा मया कर्णं शरैर्विशकलीकृतम्॥ १०॥
स्मरतां तव वाक्यानि शमं प्रति जनेश्वरः।
अद्यसौ सौबलः कृष्ण ग्लहाञ्जानातु वै शरान्॥ ११॥
दुरोदरं च गाण्डीवं मण्डलं च रथं प्रति।
अद्य कुन्तीसुतस्याहं दृढं राज्ञः प्रजागरम्॥ १२॥
व्यपनेष्यामि गोविन्द हत्वा कर्णं शितैः शरैः।

हे कृष्ण! मैं आपसे सत्य कहता हूँ कि आज कर्ण के मारे जाने पर दुर्योधन अपने राज्य और जीवन से भी निराश हो जायेगा। आज मेरे बाणों से कर्ण को टुकड़े हुआ देखकर दुर्योधन शान्ति के लिये कही आपकी बातों को याद करेगा। हे कृष्ण! आज सुबलपुत्र शकुनि जान जायेगा कि मेरे बाण ही दाँव हैं, गाण्डीवधनुष ही पासा है और मेरा रथ ही चौपड़ के खाने हैं। हे श्रीकृष्ण! आज मैं तीखे बाणों से कर्ण को मारकर कुन्तीपुत्र राजा की पुरानी नींद न आने की बीमारी को दूर कर दूँगा।

अद्य चाहमनाधृष्यं केशवाप्रतिमं शरम्॥ १३॥
उत्स्रक्ष्यामीह यः कर्णं जीविताद् भ्रंशयिष्यति।
यस्य चैतद् व्रतं मह्यं वधे किल दुरात्मनः॥ १४॥
पादौ न धावये तावद् यावद्धन्यां न फाल्गुनम्।
मृषा कृत्वा व्रतं तस्य पापस्य मधुसूदन॥ १५॥
पातयिष्ये रथात् कायं शरैः संनतपर्वभिः।
योऽसौ रणे नरं नान्यं पृथिव्यामनुमन्यते॥ १६॥
तस्याद्य सूतपुत्रस्य भूमिः पास्यति शोणितम्।

हे श्रीकृष्ण! आज मैं ऐसे अप्रतिम और अजेय बाण को छोड़ूँगा, जो कर्ण को उसके प्राणों से वंचित कर देगा। जिस दुरात्मा का मेरे वध के लिये यह व्रत है कि जबतक मैं अर्जुन को नहीं मार लूँगा तबतक पैरों को दूसरों से नहीं धुलवाऊँगा, हे मधुसूदन! उसके इस व्रत को असत्यकर आज मैं उस पापी के शरीर को झुकी गाँठवाले बाणों से रथ से नीचे गिरा दूँगा। जो भूमि पर किसी दूसरे व्यक्ति को युद्धक्षेत्र में अपने सामने खड़े होनेयोग्य नहीं मानता है, आज भूमि उसी सूतपुत्र के रक्त को पीयेगी।

मया हस्तवता मुक्ता नाराचा वैद्युतत्विषः॥ १७॥
गाण्डीवसृष्टा दास्यन्ति कर्णस्य परमां गतिम्।
अद्य तप्स्यति राधेयः पाञ्चालीं यत्तदाब्रवीत्॥ १८॥
सभामध्ये वचः क्रूरं कुत्सयन् पाण्डवान् प्रति।
ये वै षण्ढतिलास्तत्र भवितारोऽद्य ते तिलाः॥ १९॥
हते वैकर्तने कर्णे सूतपुत्रे दुरात्मनि।

मुझ सिद्धहस्त के द्वारा छोड़े गये विद्युत् की सी चमक वाले नाराच, गाण्डीव धनुष से निकलकर कर्ण को परमगति प्रदान करेंगे। राधापुत्र ने सभा के बीच में द्रौपदी से पाण्डवों की निन्दा करते हुए, उनके प्रति जो क्रूरतापूर्ण वचन कहे थे, आज उनके लिये उसे पश्चाताप होगा। जिन पाण्डवों को तब थोथे तिलों के समान नपुंसक कहा गया था, वे ही पाण्डव दुरात्मा वैकर्तन सूतपुत्र के मारे जाने पर अच्छे तिल और शूरवीर सिद्ध होंगे।

अहं वः पाण्डुपुत्रेभ्यस्त्रास्यामीति यदब्रवीत्॥ २०॥
धृतराष्ट्रसुतान् कर्णः श्लाघमानोऽऽत्मनो गुणान्।
अनृतं तत् करिष्यन्ति मामका निशिताः शराः॥ २१॥
उद्योगः पाण्डुपुत्राणां समाप्तिमुपयास्यति।
हन्ताहं पाण्डवान् सर्वान् सपुत्रानिति योऽब्रवीत्॥ २२॥
तमद्य कर्ण हन्तास्मि मिषतां सर्वधन्विनाम्।
यस्य वीर्यं समाश्रित्य धार्तराष्ट्रो महामनाः॥ २३॥
अवामन्यत दुर्बुद्धिर्नित्यमस्मान् दुरात्मवान्।
हत्वाहं कर्णमाजौ हि तोषयिष्यामि भ्रातरम्॥ २४॥

कर्ण ने अपने गुणों की प्रशंसा करते हुए धृतराष्ट्र के पुत्रों से कहा था कि मैं तुम्हें पाण्डुपुत्रों से बचा दूँगा, मेरे तीखे बाण उसकी बात को असत्य सिद्ध कर देंगे और पाण्डुपुत्रों का युद्धविषयक प्रयत्न अब समाप्त हो जायेगा। जिसने यह कहा था कि मैं सारे पाण्डवों को पुत्रों सहित मार दूँगा उसी कर्ण को मैं आज सारे धनुर्धरों के देखते हुए मार दूँगा। महामना, दुर्बुद्धि, दुरात्मा, दुर्योधन, जिसके पराक्रम का सहारा लेकर सदा हमारा अपमान करता था,

उसी कर्ण को मैं आज युद्धभूमि में मारकर अपने भाई युधिष्ठिर को सन्तुष्ट करूँगा।

तत्राहं वै महासंख्ये संपन्नं युद्धदुर्मदम्।
अद्य कर्णमहं घोरं सूदयिष्यामि सायकैः॥ २५॥
अद्य कर्णे हते कृष्ण धार्तराष्ट्राः सराजकाः।
विद्रवन्तु दिशो भीताः सिंहत्रस्ता मृगा इव॥ २६॥
अद्य दुर्योधनो राजा आत्मानं चानुशोचताम्।
हते कर्णे मया संख्ये सपुत्रे ससुहृज्जने॥ २७॥
अद्य कर्णं हतं दृष्ट्वा धार्तराष्ट्रोऽत्यमर्षणः।
जानातु मां रणे कृष्ण प्रवरं सर्वधन्विनाम्॥ २८॥

आज मैं महायुद्ध में शक्तिसम्पन्न, युद्ध में दुर्मद और भयंकर कर्ण को अपने बाणों से अवश्य मार दूँगा। हे कृष्ण! आज कर्ण के मारे जाने पर राजा सहित धृतराष्ट्र के पुत्र सिंह से डरे हुए मृगों के समान, भयभीत होकर सब तरफ भाग जायेंगे। आज मेरे द्वारा युद्ध में अपने पुत्रों और सुहृदों के सहित कर्ण के मारे जाने पर दुर्योधन अपने लिये शोक करेगा। हे कृष्ण! आज युद्धस्थल में कर्ण को मारा हुआ देखकर अत्यन्त अमर्षी दुर्योधन जान जायेगा कि मैं अर्जुन सारे धनुर्धरों में श्रेष्ठ हूँ।

सपुत्रपौत्रं सामात्यं सभृत्यं च निराशिषम्।
अद्य राज्ये करिष्यामि धृतराष्ट्रं जनेश्वरम्॥ २९॥
अद्य कर्णस्य चक्राङ्गा क्रव्यादाश्च पृथग्विधाः।
शरैश्छिन्नानि गात्राणि विहरिष्यन्ति केशव॥ ३०॥
अद्य राधासुतस्याहं संग्रामे मधुसूदन।
शिरश्छेत्स्यामि कर्णस्य मिषतां सर्वधन्विनाम्॥ ३१॥
अद्य राजा महत् कृच्छ्रं संत्यक्ष्यति युधिष्ठिरः।
संतापं मानसं वीरश्चिरसम्भृतमात्मनः॥ ३२॥

आज मैं राजा धृतराष्ट्र को पुत्रों, पौत्रों, आमात्यों और भृत्योंसहित राज्य के लिये निराश कर दूँगा। हे कृष्ण! आज मेरे बाणों से काटे गये कर्ण के अंगों को चक्रवाक तथा अलग-अलग प्रकार के माँसाहारी पक्षी उठा उठाकर लेजायेंगे। हे मधुसूदन! आज सारे धनुर्धरों के देखते हुए मैं संग्राम में राधापुत्र कर्ण के सिर को काट दूँगा। आज वीर राजा युधिष्ठिर, बहुतदिनों से मन में पाले हुए सन्ताप और महान् कष्ट का त्याग कर देंगे।

अद्याभिमन्योः शत्रूणां सर्वेषां मधुसूदन।
प्रमथिष्यामि गात्राणि शिरांसि च शितैः शरैः॥ ३३॥
अद्य निर्धार्तराष्ट्रां च भ्रात्रे दास्यामि मेदिनीम्।
निरर्जुनां वा पृथिवीं केशवानुचरिष्यसि॥ ३४॥
अद्याहमनृणः कृष्ण भविष्यामि धनुर्भृताम्।
कोपस्य च कुरूणां च शराणां गाण्डिवस्य च॥ ३५॥
अद्य दुःखमहं मोक्ष्ये त्रयोदशसमार्जितम्।
हत्वा कर्णं रणे कृष्ण शम्बरं मघवानिव॥ ३६॥

हे मधुसूदन! आज मैं अभिमन्यु के सारे शत्रुओं के शरीरों और सिरों को अपने तीखे बाणों से मथ दूँगा। हे कृष्ण! आज या तो मैं अपने भाई को धृतराष्ट्र के पुत्रों से रहित भूमि को सौंप दूँगा, या आप बिना अर्जुन के भूमि पर विचरण करेंगे। हे कृष्ण! आज मैं सारे धनुर्धरों के क्रोध के, कौरवों के, और गाण्डीव धनुष के भी बाणों के ऋण से मुक्त हो जाऊँगा। हे कृष्ण! जैसे इन्द्र ने शम्बरासुर का वध किया था, वैसे ही मैं आज कर्ण का रणक्षेत्र में वधकर तेरह वर्षों से एकत्र हुए दुःख का त्याग कर दूँगा।

अद्य कर्णे हते युद्धे सोमकानां महारथाः।
कृतं कार्यं च मन्यन्तां मित्रकार्येप्सवो युधि॥ ३७॥
न जाने च कथं प्रीतिः शैनेयस्याद्य माधव।
भविष्यति हते कर्णे मयि चापि जयाधिके॥ ३८॥
अहं हत्वा रणे कर्णं पुत्रं चास्य महारथम्।
प्रीतिं दास्यामि भीमस्य यमयोः सात्यकस्य च॥ ३९॥
धृष्टद्युम्नशिखण्डिभ्यां पञ्चालानां च माधव।
अद्यानृण्यं गमिष्यामि हत्वा कर्णं महाहवे॥ ४०॥
अद्य पश्यन्तु संग्रामे धनञ्जयममर्षणम्।
युध्यन्तं कौरवान् संख्ये घातयन्तं च सूतजम्॥ ४१॥

आज मित्र के कार्य की सिद्धि चाहनेवाले सोमकवंशी महारथी कर्ण के मारे जाने पर अपने को कृतकृत्य समझ लेंगे। हे माधव! आज कर्ण के मारे जाने पर मेरी प्रतिष्ठा बढ़ जाने से सात्यकि को न जाने कितनी प्रसन्नता होगी? मैं आज युद्ध में कर्ण तथा उसके महारथी पुत्र को मारकर भीम, नकुल, सहदेव और सात्यकि को प्रसन्न करूँगा। हे माधव! आज मैं महान् युद्ध में कर्ण को मारकर धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, और पाँचालों के ऋण को चुका दूँगा। आज सारेलोग देखेंगे कि अमर्षशील अर्जुन संग्राम में किसप्रकार सूतपुत्र को मारता है और कौरववीरों से युद्ध करता है।

इत्येवमुक्त्वार्जुन एकवीरः
क्षिप्रं रिपुघ्नः क्षतजोपमाक्षः।
भीमं मुमुक्षुः समरे प्रयातः
कर्णस्य कायाच्च शिरो जिहीर्षुः॥ ४२॥

ऐसा कहकर अद्वितीय, शत्रुदमन वीर अर्जुन खून के समान लाल आँखें किये, भीम को मुक्त करने और कर्ण का सिर उसके शरीर से अलग करने को तेजी से युद्धस्थल की तरफ चल दिये।

उनसठवाँ अध्याय : भीम का अपने सारथि से वार्तालाप।

अथ त्विदानीं तुमुले विमर्दे
महारणे सारथिमित्युवाच
त्वं सारथे याहि जवेन वाहै-
र्नयाम्येतान् धार्तराष्ट्रान् यमाय॥ १॥
संचोदितो भीमसेनेन चैवं
स सारथिः पुत्रबलं त्वदीयम्।
प्रायात् ततः सत्वरमुग्रवेगो
यतो भीमस्तद् बलं गन्तुमैच्छत्॥ २॥
ततोऽपरे नागरथाश्वपत्तिभिः
प्रत्युद्ययुस्तं कुरवः समन्तात्।
भीमस्य वाहाग्र्यमुदारवेगं
समन्ततो बाणगणैर्निजघ्नुः॥ ३॥
ततः शरानापततो महात्मा
चिच्छेद बाणैस्तपनीयपुङ्खैः।

जब वह भयंकर संग्राम चल रहा था, तब भीम ने अपने सारथि से कहा कि हे सारथि! तुम तेजी से घोड़ों को हाँको। मैं इन धृतराष्ट्र के पुत्रों को मृत्युलोक में भेजूँगा। भीमसेन से इसप्रकार प्रेरित वह सारथि शीघ्रता से उग्रवेग से उसीतरफ चल दिया, जिस सेना के पास भीम जाना चाहते थे। तब दूसरे कौरव योद्धाओं ने हाथी, रथ, घोड़े और पैदलसेना के साथ उन्हें घेर लिया। उन्होंने भीम के शीघ्रगामी श्रेष्ठ रथ पर बाणों की वर्षा आरम्भ कर दी पर उस मनस्वी भीमसेन ने आते हुए उन बाणों को अपने सुनहरे पंखवाले बाणों से काट दिया।

ततो राजन् नागरथाश्वयूनां
भीमाहतानां वरराजमध्ये॥ ४॥
घोरो निनादः प्रबभौ नरेन्द्र
वज्राहतानामिव पर्वतानाम्।
ते वध्यमानाश्च नरेन्द्रमुख्या
निर्भिद्यन्तो भीमशरप्रवेकैः॥ ५॥
भीमं समन्तात् समरेऽभ्यरोहन्
वृक्षं शकुन्ता इव जातपक्षाः।
ततोऽभियाते तव सैन्ये स भीमः।
प्रादुश्चक्रे वेगमनन्तवेगः॥ ६॥
तस्यातिवेगस्य रणेऽतिवेगं
नाशक्नुवन् वारयितुं त्वदीयाः।
व्यात्ताननस्यापततो यथैव
कालस्य काले हरतः प्रजा वै॥ ७॥
ततो बलं भारत भारतानां
प्रदह्यमानं समरे महात्मना।
भीतं दिशोऽकीर्यत भीमनुन्नं
महानिलेनाभ्रगणा यथैव॥ ८॥

हे राजन्! फिर श्रेष्ठ राजाओं में भीम द्वारा मारे गये हाथी, घोड़े, रथ और युवकों का महान् आर्तनाद बिजली से तोड़े जारहे पहाड़ों के शब्द जैसा सुनाई देने लगा। भीम के बाण समूहों से घायल हुए भी वे प्रमुख राजालोग भीम पर ही युद्धक्षेत्र में चारोंतरफ से इसप्रकार आक्रमण करने लगे, जैसे पंख निकलने पर पक्षी सबतरफ से उड़कर वृक्ष की तरफही जाते हैं। तब आपकी सेना के आक्रमण करने पर अनन्त वेगशाली भीम ने अपने वेग को प्रकट किया। भीम के वेग को आपके योद्धा वैसेही नहीं रोक सके, जैसे प्रलय में सारी प्रजा का संहार करनेवाली, मुँह फैलाकर आक्रमण करनेवाली मृत्यु को कोई नहीं रोक सकता। हे भारत! तब मनस्वी भीमसेन से पीड़ित और डरी हुई भरतवंशियों की सेना वैसेही तित्तर बित्तर होगयी, जैसे तेज आँधी से बादलों के समूह छितर जाते हैं।

ततो धीमान् सारथिमब्रवीद् बली
स भीमसेनः पुनरेव हृष्टः।

सूताभिजानीहि स्वकान् परान् वा
रथान् ध्वजांश्चापततः समेतान्॥ ९॥
युद्धयन् ह्यहं नाभि जानामि किंचि-
न्मा सैन्यं स्वं छादयिष्ये पृषत्कैः।
अरीन् विशोकाभिनिरीक्ष्य सर्वतो
मनस्तु चिन्ता प्रदुनोति मे भृशम्॥ १०॥
राजाऽऽतुरो नागमद् यत् किरीटी
बहूनि दुःखान्यभियातोऽस्मि सूत।
एतद् दुःखं सारथे धर्मराजो
यन्मां हित्वा यातवाञ्शत्रुमध्ये॥ ११॥
नैनं जीवं नाद्य जानाम्यजीवं
बीभत्सुं वा तन्ममाद्याति दुःखम्।

फिर वह धीमान् और बलवान् भीमसेन प्रसन्न होकर सारथि से बोले कि हे सूत! ये जो एकत्र होकर बहुतसे रथ और ध्वज हमारीतरफ बढ़ते चले आरहे हैं, उन्हें पहचानो। ये अपने हैं या शत्रु के हैं? क्योंकि युद्ध करते हुए मुझे अपने और पराये का ज्ञान नहीं रहता। कहीं ऐसा न हो कि अपनीही सेना को बाणों से भर दूँ। हे विशोक! सबतरफ शत्रुओं को देखकर मेरे मन को अत्यधिक चिन्ता तप्त कर रही है। राजा युधिष्ठिर पीड़ित हैं, अर्जुन अभीतक उनके पास से लौटे नहीं हैं। हे सूत! इसलिये मुझे बहुत दुःख होरहा है। हे सारथि! मुझे इस बात का दुःख है कि धर्मराज मुझे छोड़कर अकेले शत्रुओं के बीच में चले गये। मुझे पता नहीं कि वे जीवित हैं या नहीं। अर्जुन का भी कोई समाचार नहीं मिला, इसलिये मुझे आज बहुत दुःख है।

सोऽहं द्विषत्सैन्यमुदग्रकल्पं
विनाशयिष्ये परमप्रतीतः॥ १२॥
एतन्निहत्याजिमध्ये समेतं
प्रीतो भविष्यामि सह त्वयाद्य।
सर्वांस्तूणान् सायकानामवेक्ष्य
किं शिष्टं स्यात् सायकानां रथे मे॥ १३॥
का वा जातिः किं प्रमाणं च तेषां
ज्ञात्वा व्यक्तं तत् समाचक्ष्व सूत।

विशोक उवाच

सर्वे विदित्वैवमहं वदामि,
तवार्थ सिद्धिप्रदमद्य वीर॥ १४॥
कैकेयकाम्बोजसु- राष्ट्रबाह्लिका
म्लेच्छाश्च सुह्याः परतङ्गणाश्च।
मद्राश्च वङ्गा मगधाः कुलिन्दा
आपर्तकावर्तकाः पर्वतीयाः॥ १५॥
सर्वे गृहीतप्रवरायुधास्त्वां
संख्ये समावेष्ट्य ततो विनेदुः।

अब मैं शत्रुओं की इस भयंकर सेना को अत्यन्त विश्वास के साथ विनष्ट करूँगा। इस एकत्र हुई सेना को युद्धस्थल में मारकर आज मैं तेरे साथ प्रसन्नता का अनुभव करूँगा। तू मेरे रथ पर रखे सारे तरकसों को देखकर बता कि कितने बाण बचे हुए हैं? किस किस जाति के हैं? और उनकी कितनी संख्या है? तब विशोक ने कहा कि हे वीर! मैं आपके द्वारा पूछी सारी बातों को जानकर उनके विषय में आपके उद्देश्य की पूर्ति के लिये बताता हूँ। ये केकय, काम्बोज, सौराष्ट्र, बाह्लीक, म्लेच्छ, सुह्म, परतंगण, मद्र, बंग, मगध कुलिन्द, आनर्त, आवर्त, और पर्वतीय सारे योद्धा हाथों में श्रेष्ठ आयुधों को लेकर आपको युद्धक्षेत्र में घेरकर गर्ज रहे हैं।

षण्मार्गणानामयुतानि वीर
क्षुराश्च भल्लाश्च तथायुताख्याः॥ १६॥
नाराचानां द्वे सहस्रे च वीर
त्रीण्येव च प्रदराणां स्म पार्थ।
एतद् विद्वन् मुञ्च सहस्रशोऽपि
गदासिबाहुद्रविणं च तेऽस्ति॥ १७॥
प्रासाश्च मुद्गराः शक्तयस्तोमराश्च
मा भैषीस्त्वं सङ्ख्यादायुधानाम्।

भीमसेन उवाच

अद्यैतद् वै विदितं पार्थिवानां
भविष्यति ह्याकुमारं च सूत॥ १८॥
निमग्नो वा समरे भीमसेन
एकः कुरून् वा समरे व्यजैषीत्।
सर्वानिकस्तानहं पातयिष्ये
ते वा सर्वे भीमसेनं तुदन्तु॥ १९॥

हे वीर! अभी अपने पास साठ हजार मार्गण, दस दस हजार क्षुर और भल्ल, दो हजार नाराच, और तीन हजार प्रदर नाम के बाण शेष हैं। हे विद्वान्! आप इन हजारों बाणों का प्रयोग कीजिये। आपके पास बहुतसी गदाएँ, तलवारें और बाहुबल

की सम्पत्ति है। इसीप्रकार बहुतसारे प्रास, मुग्दर, शक्तियाँ और तोमर हैं। आप हथियारों की संख्या के बारे में भय मत कीजिये। तब भीमसेन ने कहा कि हे सूत! आज बच्चों से लेकर बूढ़ों तक सारे राजाओं को यह पता लग जायेगा कि भीमसेन या तो समरसागर में डूब गये या अकेले भीम ने सारे कौरवों को जीत लिया। या तो मैं अकेला सबको गिरा दूँगा, या वे सब भीमसेन को पीड़ित करें।

ईक्षस्वैतां भारतीं दीर्यमाणा-
मेते कस्माद् विद्र वन्ते नरेन्द्राः।
व्यक्तं धीमान् सव्यसाची नराग्र्यः
सैन्यं ह्येतच्छादयत्याशु बाणैः॥ २०॥
पश्य ध्वजांश्च द्रवतो विशोक
नागान् हयान् पत्ति संघांश्च संख्ये।
रथान् विकीर्णाञ्शरशक्तिताडितान्
पश्यस्वैतान् रथिनश्चैव सूत॥ २१॥
आपूर्यते कौरवी चाप्यभीक्ष्णं
सेना ह्यसौ सुभृशं हन्यमाना।
धनंजयस्या- शनितुल्यवेगै-
र्ग्रस्ता शरैः काञ्चनबर्हिबाजैः॥ २२॥

देखो यह कौरवों की सेना में दरार पड़ रही है, ये राजालोग क्यों भाग रहे हैं? इससे स्पष्ट होरहा है कि नरश्रेष्ठ धीमान् अर्जुन इस सेना को अपने बाणों से आच्छादित कर रहे हैं। हे विशोक! युद्धस्थल में भागते हुए रथों की ध्वजाओं, हाथियों, घोड़ों और पैदलसमूहों को देखो। बाणों और शक्तियों से चोट खाये, बिखरे हुए इन रथों और रथियों को भी देखो। अर्जुन के सुनहरे और मोर पंखों से युक्त वज्र के समान वेगवाले बाणों से अत्यधिक मारी हुई यह कौरवसेना बारबार आर्तनाद कर रही है।

एते द्रवन्ति स्म रथाश्वनागाः
पदातिसङ्घनति- मर्दयन्तः।
सम्मुह्यमानाः कौरवाः सर्वएव
द्रवन्ति नागा इव दाहभीताः॥ २३॥
हाहाकृताश्चैव रणे विशोक
मुञ्चन्ति नादान् विपुलान् गजेन्द्राः।

विशोक उवाच

किं भीम नैनं त्वमिहाशृणोषि
विस्फारितं गाण्डिवस्यातिघोरम्॥ २४॥
क्रुद्धेन पार्थेन विकृष्यतोऽद्य
कच्चिन्नेमौ तव कर्णौ विनष्टौ।
सर्वे कामाः पाण्डव ते समृद्धाः
कपिर्ह्यसौ दृश्यते हस्तिसैन्ये॥ २५॥
नीलाद् घनाद् विद्युतमुच्चरन्तीं
तथा पश्य विस्फुरन्तीं धनुर्ज्याम्।

पैदलसमूहों को कुचलते हुए रथ, घोड़े और हाथी भागे जारहे हैं। प्रायः सारेही कौरव मोहित होकर दावानल से डरे हुए हाथियों के समान भाग रहे हैं। हे विशोक! युद्धक्षेत्र में सब तरफ हा हाकार मचा हुआ है। गजराज जोरजोर से चीत्कार कर रहे हैं। तब विशोक ने कहा कि हे भीम! क्या आप खींचे जाते हुए गाण्डीवधनुष की अत्यन्त भयंकर टंकार को नहीं सुन रहे हैं? जिसे क्रोध में भरकर अर्जुन खींच रहे हैं। क्या आपके कान काम नहीं कर रहे हैं? हे पाण्डुपुत्र! आपकी सारी इच्छाएँ पूरी होगयीं। यह हाथियों की सेना के बीच में अर्जुन के रथ का वानर दिखाई देरहा है। इसीप्रकार आप नीले बादलों में चमकती हुई विद्युत् के समान गाण्डीव धनुष की चमकती हुई प्रत्यंचा को देखिये।

विभ्राजते चातिमात्रं किरीटं
विचित्रमेतच्च धनंजयस्य॥ २६॥
दिवाकराभो मणिरेष दिव्यो
विभ्राजते चैव किरीटसंस्थः।
पार्श्वे भीमं पाण्डुराभ्रप्रकाशं
पश्यस्व शङ्खं देवदत्तं सुघोषम्॥ २७॥
अभीषुहस्तस्य जनार्दनस्य
विगाहमानस्य चमूं परेषाम्।
रविप्रभं वज्रनाभं क्षुरान्तं
पार्श्वे स्थितं पश्य जनार्दनस्य॥ २८॥
चक्रं यशोवर्धनं केशवस्य
सदार्चितं यदुभिः पश्य वीर।

अर्जुन का विचित्र किरीट अत्यन्त प्रकाशित होरहा है। किरीट में लगी हुई सूर्य के समान चमकीली दिव्य मणि देदीप्यमान होरही है। हे वीर देखो! अर्जुन की बगल में श्वेत बादल के समान प्रकाशित गम्भीर घोष करनेवाला देवदत्त नाम का भयानक शंख है। घोड़ों की लगाम थामे और शत्रुसेना में घुसे जाते हुए श्रीकृष्णजी की बगल में सूर्य के

समान प्रकाशित, नाभि में वज्रवाले, जिसके किनारों पर छुरे लगे हुए हैं, ऐसे श्रीकृष्ण के यश को बढ़ानेवाले चक्र को देखो। इस चक्र की सदा यादवलोग पूजा अर्थात् बड़ा सम्मान करते हैं।

महाद्विपानां सरलद्रुमोपमाः
करा निकृत्ताः प्रपतन्त्यमी क्षुरैः॥ २९॥
किरीटिना तेन पुनः ससादिनः
शरैर्निकृत्ताः कुलिशैरिवाद्रयः।
तथैव कृष्णस्य च पाञ्चजन्यं
महार्हमेतं द्विजराजवर्णम्॥ ३०॥
ध्रुवं रथाग्र्यः समुपैति पार्थो
विद्रावयन् सैन्यमिदं परेषाम्।
सिताभ्रवर्णै- रसितप्रयुक्तै-
र्हयैर्महार्हैं रथिनां वरिष्ठः॥ ३१॥

अर्जुन के क्षुर नाम के बाणों से कटी हुई गजराजों की देवदारु के वृक्षों के समान कटी हुई सूँड़ें भूमि पर गिर रही हैं। फिर अर्जुन के बाणों से ही मारे ये हाथी अपने सवारों के साथ विद्युत् से गिराये पर्वत शिखरों के समान धराशाही हो रहे हैं। इसीप्रकार श्रीकृष्णजी के बहुमूल्य, चन्द्रमा के समान श्वेत पाँचजन्य शंख को देखो। निश्चय ही रथियों में श्रेष्ठ कुन्तीपुत्र शत्रुओं की सेना को खदेड़ते हुए इधरही आरहे हैं। उनके श्वेत बादलों के समान बहुमूल्य घोड़े साँवले श्रीकृष्ण जी द्वारा संचालित होरहे है।

चतुःशतान् पश्य रथानिमान् हतान्
सवाजिसूतान् समरे किरीटिना।
महेषुभिः सप्तशतानि दन्तिनां
पदातिसादींश्च रथाननेकशः॥ ३२॥
अयं समभ्येति तवान्तिकं बली
निघ्नन् कुरूंश्चित्र इव ग्रहोऽर्जुनः।
समृद्धकामोऽसि हतास्तवाहिता
बलं तवायुश्च चिराय वर्धताम्॥ ३३॥

देखो! युद्धक्षेत्र में अर्जुन ने अपने विशाल बाणों के द्वारा सारथि और घोड़ों सहित चार सौ रथियों को मार दिया है और सात सौ हाथियों, बहुत से पैदलों, घुड़सवारों और अनेक रथों को नष्ट कर दिया है। चमकते हुए सितारे की तरह ये बलवान् अर्जुन कौरवसेना को नष्ट करते हुए आपकी तरफही आरहे हैं। आपकी कामना पूरी हुई। आपके शत्रु मारे गये। आपकी आयु और बल चिरकाल के लिये बढ़ें।

साठवाँ अध्याय : अर्जुन और भीम द्वारा संहार। भीम से शकुनि की हार।

श्रुत्वा तु रथनिर्घोषं सिंहनादं च संयुगे।
अर्जुनः प्राह गोविन्दं शीघ्रं नोदय वाजिनः॥ १॥
अर्जुनस्य वचः श्रुत्वा गोविन्दोऽर्जुनमब्रवीत्।
एष गच्छामि सुक्षिप्रं यत्र भीमो व्यवस्थितः॥ २॥
ततः स पुरुषव्याघ्रस्तव सैन्यमरिंदमः।
प्रविवेश महाबाहुर्मकरः सागरं यथा॥ ३॥
तं हृष्टास्तावका राजन् रथपत्तिसमन्विताः।
गजाश्वसादिबहुलाः पाण्डवं समुपाद्रवन्॥ ४॥

युद्धक्षेत्र में रथों की घर्घराहट और सिंहनादों को सुनकर अर्जुन ने श्रीकृष्णजी से कहा कि हे गोविन्द! आप घोड़ों को शीघ्रता से हाँकिये। अर्जुन की बात सुनकर श्रीकृष्णजी ने कहा कि मैं बहुत जल्दी उस स्थान पर पहुँचता हूँ, जहाँ भीम विद्यमान है। तब शत्रुदमन, पुरुषव्याघ्र, महाबाहु अर्जुन ने आपकी सेना में उसीप्रकार प्रवेश किया, जैसे मगरमच्छ सागर में प्रवेश करता है। हे राजन्! अर्जुन को देखकर तब आपके योद्धा रथियों, पैदलोंसहित जिनमें हाथीसवारों और घुड़सवारों की संख्या भी बहुत थी, उत्साह में भरकर उन पर आक्रमण करने लगे।

तेषामापततां पार्थमारावः सुमहानभूत्।
सागरस्येव क्षुब्धस्य यथा स्यात् सलिलस्वनः॥ ५॥
ते तु तं पुरुव्याघ्रं व्याघ्रा इव महारथाः।
अभ्यद्रवन्त संग्रामे त्यक्त्वा प्राणकृतं भयम्॥ ६॥
तेषामापततां तत्र शरवर्षाणि मुञ्चताम्।
अर्जुनो व्यधमत् सैन्यं महावातो घनानिव॥ ७॥
तेऽर्जुनं सहिता भूत्वा रथवंशैः प्रहारिणः।
अभियाय महेष्वासा विव्यधुर्निशितैः शरैः॥ ८॥

जैसे सागर के विक्षुब्ध होने पर गम्भीर ध्वनि होती है, वैसे ही तब उन योद्धाओं के कुन्तीपुत्र पर आक्रमण करने पर वहाँ महान् कोलाहल होने लगा। बाघ के समान वे महारथी उस पुरुषव्याघ्र के ऊपर अपने प्राणों का भय छोड़कर दौड़े पर बाणों की वर्षा करते हुए उनकी सेनाओं को अर्जुन ने उसी प्रकार नष्ट कर दिया जैसे आँधी बादलों को उड़ा लेजाती है। तब प्रहार करनेवाले वे महाधनुर्धर रथसमूहों के साथ इकट्ठे होकर पुनः अर्जुन पर चढ़ाईकर तीखे बाणों से उन्हें घायल करने लगे।

ततोऽर्जुनः सहस्राणि रथवारणवाजिनाम्।
प्रेषयामास विशिखैर्यमस्य सदनं प्रति॥ ९॥
ते वध्यमानाः समरे पार्थचापच्युतैः शरैः।
तत्र तत्र स्म लीयन्ते भये जाते महारथाः॥ १०॥
तेषां चतुःशतान् वीरान् यतमानान् महारथान्।
अर्जुनो निशितैर्बाणैरनयद् यमसादनम्॥ ११॥
ते वध्यमानाः समरे नानालिङ्गैः शितैः शरैः।
अर्जुनं समभित्यज्य दुद्रुवुर्वै दिशो दश॥ १२॥

तब अर्जुन ने सहस्रों रथ, हाथी और घोड़ों को बाणों से मृत्युलोक में भेजना आरम्भ कर दिया। कुन्तीपुत्र के धनुष से छूटे बाणों से मारे जाते हुए वे महारथी भयभीत होकर इधरउधर छिपने लगे। उनमें से चारसौ वीर महारथियों को, जो प्रयत्नपूर्वक लड़ रहे थे, अर्जुन ने तीखे बाणों से मृत्युलोक में पहुँचा दिया। तब युद्धक्षेत्र में अनेक प्रकार के तीखे बाणों से मारे जाते हुए वेलोग अर्जुन को छोड़कर सबतरफ भागने लगे।

तेषां शब्दो महानासीद् द्रवतां वाहिनीमुखे।
महौघस्येव जलधेर्गिरिमासाद्य दीर्यतः॥ १३॥
तां तु सेनां भृशं विद्ध्वा द्रावयित्वार्जुनः शरैः।
प्रायादभिमुखः पार्थः सूतानीकं हि मारिष॥ १४॥
तस्य शब्दो महानासीत् परानभिमुखस्य वै।
तं तु शब्दमभिश्रुत्य भीमसेनो महाबलः॥ १५॥
बभूव परमप्रीतः पार्थदर्शनलालसः।
श्रुत्वैव पार्थमायान्तं भीमसेनः प्रतापवान्॥ १६॥
त्यक्त्वा प्राणान् महाराज सेनां तव ममर्द ह।

सेना के मुहाने पर भागते हुए उनका कोलाहल ऐसे होरहा था, जैसे सागर की बड़ी जलधारा के पर्वत से टकराकर छितराते हुए होता है। हे मान्यवर! उस सेना को अत्यन्त घायलकर और भगाकर अर्जुन कर्ण की सेना के सामने चले। उस शत्रुओं की तरफ उन्मुख होते हुए उनके रथ की महान् घर्घराहट होरही थी। उस शब्द को सुनकर अर्जुन के दर्शन को इच्छुक महाबली भीमसेन अत्यन्तप्रसन्न हुए। हे महाराज! प्रतापी भीमसेन यह सुनते ही कि अर्जुन आरहे हैं, अपने प्राणों का मोह छोड़कर आपकी सेना का मर्दन करने लगे।

स वायुवीर्यप्रतिमो वायुवेगसमो जवे॥ १७॥
वायुवद् व्यचरद् भीमो वायुपुत्रः प्रतापवान्।
तेनार्द्यमाना राजेन्द्र सेना तव विशाम्पते॥ १८॥
व्यभ्रश्यत महाराज भिन्ना नौरिव सागरे।
तां तु सेनां तदा भीमो दर्शयन् पाणिलाघवम्॥ १९॥
शरैरवचकर्तोग्रैः प्रेषयिष्यन् यमक्षयम्।
तत्र भारत भीमस्य बलं दृष्ट्वातिमानुषम्॥ २०॥
व्यभ्रमन्त रणे योधाः कालस्येव युगक्षये।

प्रतापी वायुपुत्र भीम का वेग वायु के समान ही था। पराक्रम में वे भी वायु की समानता करते थे। वे अब युद्धक्षेत्र में वायु के समान ही विचरण करने लगे। हे प्रजानाथ! हे राजेन्द्र! उनके द्वारा पीड़ित होती हुई आपकी सेना समुद्र में टूटी नाव के समान ही डाँवा डोल होने लगी। भीमसेन तब अपना हस्तकौशल दिखाते हुए, उस सेना को मृत्यु लोक में भेजने के लिये बाणों से छिन्न भिन्न करने लगे। हे भारत! उस समय प्रलयकालीन भीम के अमानुष बल को देखकर योद्धा लोग युद्धक्षेत्र में इधर उधर चक्कर काटने लगे।

तथार्दितान् भीमबलान् भीमसेनेन भारत॥ २१॥
दृष्ट्वा दुर्योधनो राजा इदं वचनमब्रवीत्।
सैनिकांश्च महेष्वासान् योधांश्च भरतर्षभ॥ २२॥
समादिशन् रणे सर्वान् हत भीममिति स्म ह।
तस्मिन् हते हतं मन्ये पाण्डुसैन्यमशेषतः॥ २३॥
प्रतिगृह्य च तामाज्ञां तव पुत्रस्य पार्थिवाः।
भीमं प्रच्छादयामासुः शरवर्षैः समन्ततः॥ २४॥

हे भारत! तब भीमसेन से इसप्रकार पीड़ित अपने भयंकर बलवाले सैनिकों, महाधनुर्धर योद्धाओं को देखकर, हे भरतश्रेष्ठ! राजा दुर्योधन ने सबको आदेश देते हुए, यह वचन कहे कि तुम सब मिलकर भीम को मार दो। इसके मारे जाने पर मैं सारी पाण्डव सेना को मरा हुआ समझता हूँ। तब आपके पुत्र की

आज्ञा को ग्रहणकर राजालोग भीम को घेरकर उन्हें बाण वर्षा से आच्छादित करने लगे।

गजाश्च बहुला राजन् नराश्च जयगृद्धिनः।
रथे स्थिताश्च राजेन्द्र परिवव्रुर्वृकोदरम्॥ २५॥
तस्य ते पार्थिवाः सर्वे शरवृष्टिं समासृजन्।
क्रोधरक्तेक्षणाः शूरा हन्तुकामा वृकोदरम्॥ २६॥
तां विदार्य महासेनां शरैः संनतपर्वभिः।
निश्चक्राम रणाद् भीमो मत्स्यो जालादिवाम्भसि॥ २७॥
एवं दृष्ट्वा कृतं कर्म भीमसेनेन संयुगे।
दुर्योधनो महाराज शकुनिं वाक्यमब्रवीत्॥ २८॥

हे राजन्! हे राजेन्द्र! तब जय के लोभी बहुतसारे हाथीसवारों ने और रथों में विद्यमान वीर पुरुषों ने भीमसेन को घेर लिया। क्रोध से लाल आँखें किये, वे शूरवीर राजालोग भीम को मारने की इच्छा से बाणों की वर्षा करने लगे। तब भीमसेन झुकी गाँठवाले बाणों से उस विशाल सेना को विदीर्णकर उसके घेरे से उसीप्रकार बाहर निकल आये, जैसे पानी में पड़े जाल को छेदकर कोई मत्स्य बाहर निकल आता है। तब भीमसेन द्वारा किये गये इस कार्य को देखकर युद्धक्षेत्र में हे महाराज! दुर्योधन ने शकुनि से कहा कि—

जहि मातुल संग्रामे भीमसेनं महाबलम्।
अस्मिञ्जिते जितं मन्ये पाण्डवेयं महाबलम्॥ २९॥
ततः प्रायान्महाराज सौबलेयः प्रतापवान्।
रणाय महते युक्तो भ्रातृभिः परिवारितः॥ ३०॥
स समासाद्य संग्रामे भीमं भीमपराक्रमम्।
वारयामास तं वीरो वेलेव मकरालयम्॥ ३१॥
संन्यवर्तत तं भीमो वार्यमाणः शितैः शरैः।
शकुनिस्तस्य राजेन्द्र वामपार्श्वे स्तनान्तरे॥ ३२॥
प्रेषयामास नाराचान् रुक्मपुङ्खाञ्शिलाशितान्।

हे मामा! तुम युद्ध में महाबली भीमसेन को मार डालो। इसके जीत लिये जाने पर मैं पाण्डवों की महान् सेना को जीता हुआ समझता हूँ। हे महाराज! तब प्रतापी सुबलपुत्र अपने भाइयों से घिरा हुआ, महान् युद्ध के लिये तैयार होकर आगे बढ़ा। उस वीर ने संग्राम में भयंकर पराक्रमी भीमसेन को ऐसे रोक दिया, जैसे तट की भूमि सागर को रोक देती है। तब उसके तीखे बाणों से रोके हुए भीमसेन उसीकी तरफ लौट पड़े। हे राजेन्द्र! तब शकुनि ने उनकी बायीं बगल और छाती में सुनहरे पंखवाले, शिला पर तेज किये नाराचों से प्रहार किया।

वर्म भित्त्वा तु ते घोराः पाण्डवस्य महात्मनः॥ ३३॥
न्यमज्जन्त महाराज कङ्कबर्हिणवाससः।
सोऽतिविद्धो रणे भीमः शरं रुक्मविभूषितम्॥ ३४॥
प्रेषयामास स रुषा सौबलं प्रति भारत।
तमायान्तं शरं घोरं शकुनिः शत्रुतापनः॥ ३५॥
चिच्छेद सप्तधा राजन् कृतहस्तो महाबलः।
तस्मिन् निपतिते भूमौ भीमः क्रुद्धो विशाम्पते॥ ३६॥
धनुश्चिच्छेद भल्लेन सौबलस्य हसन्निव।

हे महाराज! कंक और मोर के पंखवाले वे भयंकर नाराच, मनस्वी पाण्डुपुत्र के कवच को छेदकर उसके शरीर में घुस गये। हे भारत! तब युद्ध में अत्यन्तघायल भीम ने क्रोध से एक सुनहरे बाण को शकुनि पर फैंका। हे राजन्! उस आते हुए भयंकर बाण के शत्रुतापन, महाबली, सिद्धहस्त, शकुनि ने सात टुकड़े कर दिये। हे प्रजानाथ! बाण के भूमि पर गिरने से क्रुद्ध भीम ने मुस्कराते हुए भल्लद्वारा उसके धनुष को काट दिया।

तदपास्य धनुश्छिन्नं सौबलेयः प्रतापवान्॥ ३७॥
अन्यदादाय वेगेन धनुर्भल्लांश्च षोडश।
तैस्तस्य तु महाराज भल्लैः संनतपर्वभिः॥ ३८॥
द्वाभ्यां स सारथिं ह्यार्च्छद् भीमं सप्तभिरेव च।
ध्वजमेकेन चिच्छेद द्वाभ्यां छत्रं विशाम्पते॥ ३९॥
चतुर्भिश्चतुरो वाहान् विव्याध सुबलात्मजः।
ततः क्रुद्धो महाराज भीमसेनः प्रतापवान्॥ ४०॥
शक्तिं चिक्षेप समरे रुक्मदण्डामयस्मयीम्।

तब प्रतापी सुबलपुत्र ने टूटे धनुष को फैंक कर, शीघ्रता से दूसरे धनुष और सोलह भल्लों को लेकर उन झुकी गाँठवाले भल्लों से हे प्रजानाथ! हे महाराज! दो से भीम के सारथि, सात से भीम को, एक से ध्वज, दो से छत्र और चार से उनके चारों घोड़ों को घायल कर दिया। हे महाराज! तब क्रुद्ध प्रतापी भीमसेन ने युद्ध में एक लोहे की और सोने के डण्डेवाली शक्ति को उसपर फैंका।

सा भीमभुजनिर्मुक्ता नागजिह्वेव चञ्चला॥ ४१॥
निपपात रणे तूर्णं सौबलस्य महात्मनः।
ततस्तामेव संगृह्य शक्तिं कनकभूषणाम्॥ ४२॥

भीमसेनाय चिक्षेप क्रुद्धरूपो विशाम्पते।
सा निर्भिद्य भुजं सव्यं पाण्डवस्य महात्मनः॥ ४३॥
निपपात तदा भूमौ यथा विद्युन्नभश्च्युता।
अन्यद् गृह्य धनुः सज्यं त्वरमाणो महाबलः॥ ४४॥
तस्याश्वांश्चतुरो हत्वा सूतं चैव विशाम्पते।
ध्वजं चिच्छेद भल्लेन त्वरमाणः पराक्रमी॥ ४५॥

भीम की भुजाओं से छोड़ी, सर्प की जिह्वा के समान चंचल वह शक्ति युद्धक्षेत्र में तुरन्त मनस्वी शकुनि के ऊपर गिरी। तब उस स्वर्ण भूषित शक्ति को क्रुद्ध शकुनि ने पकड़कर हे प्रजानाथ! उसे भीमसेन के ऊपर ही फैंक दिया। तब वह शक्ति मनस्वी पाण्डुपुत्र की बायीं बाँह को घायलकर आकाश से गिरी विद्युत् के समान भूमि पर गिर पड़ी। उस महाबली पराक्रमी ने तुरन्त दूसरे तैयार धनुष को लेकर शीघ्रता से हे प्रजानाथ! उसके चारों घोड़ों को और सारथि को मारकर एक भल्ल से उसके ध्वज को भी काट दिया।

हताश्वं रथमुत्सृज्य त्वरमाणो नरोत्तमः।
तस्थौ विस्फारयंश्चापं क्रोधरक्तेक्षणः श्वसन्॥ ४६॥
शरैश्च बहुधा राजन् भीममार्च्छत् समन्ततः।
प्रतिहत्य तु वेगेन भीमसेनः प्रतापवान्॥ ४७॥
धनुश्चिच्छेद संक्रुद्धो विव्याध च शितैः शरैः।
सोऽतिविद्धो बलवता शत्रुणा शत्रुकर्शनः॥ ४८॥
निपपात तदा भूमौ किंचित्प्राणो नराधिपः।
ततस्तं विह्वलं ज्ञात्वा पुत्रस्तव विशाम्पते।
अपोवाह रथेनाजौ भीमसेनस्य पश्यतः॥ ४९॥

तब वह नरश्रेष्ठ मरे घोड़ेवाले रथ को छोड़कर शीघ्रता से, धनुष को टंकारता हुआ, लम्बी साँस लेता हुआ, क्रोध से लाल आँखें किये, भूमि पर खड़ा होगया। हे राजन्! उसने सबतरफ से बाण मारकर अनेकबार भीम को पीड़ित किया। तब प्रतापी भीम सेन ने वेगपूर्वक उसके बाणों को नष्टकर, अत्यन्तक्रोध से तीखे बाणों से उसके धनुष को काट दिया। तब बलवान् शत्रु के द्वारा अत्यन्तघायल होकर वह शत्रुसूदन राजा भूमि पर गिर पड़ा। उस समय उसमें थोड़े ही प्राण बाकी थे। हे प्रजानाथ तब उसे व्याकुल जानकर आपका पुत्र भीमसेन के देखते हुएही रथ के द्वारा युद्धक्षेत्र से दूर लेगया।

इकसठवाँ अध्याय : कर्ण के द्वारा पाण्डवसेना का संहार।

द्राव्यमाणं बलं दृष्ट्वा भीमसेनेन धीमता।
यन्तारमब्रवीत् कर्णः पञ्चालानेव मां वह॥ १॥
मद्रराजस्ततः शल्यः श्वेतानश्वान् महाजवान्।
प्राहिणोच्चेदिपञ्चालान् करूषांश्च महाबलः॥ २॥
प्रविश्य च महत् सैन्यं शल्यः परबलार्दनः।
न्ययच्छत् तुरगान् हृष्टो यत्र यत्रैच्छदग्रणीः॥ ३॥
तं रथं मेघसंकाशं वैयाघ्रपरिवारणम्।
संदृश्य पाण्डुपञ्चालास्त्रस्ता ह्यासन् विशाम्पते॥ ४॥

हे राजन्! तब धीमान् भीमसेनद्वारा कौरवसेना को भगाया जाता देखकर, कर्ण ने सारथि से कहा कि मुझे पाँचालों की तरफही लेचलो। महाबली मद्रराज शल्य ने तब अत्यन्तवेगवान् श्वेत घोड़ों को चेदि, पाँचाल और करूषदेशी सैनिकों की तरफ हाँक दिया। शत्रुसेना को पीड़ित करनेवाले शल्य ने उस विशाल सेना में प्रवेशकर प्रसन्नतापूर्वक उन्हें वहीं वहीं रोक दिया, जहाँ जहाँ, सेनापति की इच्छा हुई। हे प्रजानाथ! व्याघ्रचर्म से आच्छादित बादलों के समान कर्ण के रथ को देखकर पाँडव और पाँचालसैनिक त्रस्त होगये।

ततः शरशतैस्तीक्ष्णैः कर्ण आकर्णनिःसृतैः।
जघान पाण्डवबलं शतशोऽथ सहस्रशः॥ ५॥
नकुलः सहदेवश्च द्रौपदेयाश्च सात्यकिः।
परिवव्रुर्जिघांसन्तो राधेयं शरवृष्टिभिः॥ ६॥
सात्यकिस्तु तदा कर्णं विंशत्या निशितैः शरैः।
अताडयद् रणे शूरो जत्रुदेशे नरोत्तमः॥ ७॥
शिखण्डी पञ्चविंशत्या धृष्टद्युम्नश्च सप्तभिः।
द्रौपदेयाश्चतुः षष्ट्या सहदेवश्च सप्तभिः॥ ८॥
नकुलश्च शतेनाजौ कर्णं विव्याध सायकैः।

फिर कानतक धनुष को खींचकर निकले सैकड़ों तीखे बाणों से कर्ण ने पाण्डवसेना के सैकड़ों और हजारों सैनिकों को मार दिया। तब नकुल सहदेव, द्रौपदीपुत्र, और सात्यकि ने कर्ण को मारने की इच्छा

से बाणवर्षा करते हुए उसे घेर लिया। नरश्रेष्ठ शूरवीर सात्यकि ने तब कर्ण की हँसली के स्थान पर बीस तीखे बाणों की वर्षा कर उसे ताड़ना दी। शिखण्डी ने पच्चीस, धृष्टद्युम्न ने सात, द्रौपदी के पुत्रों ने चौंसठ, सहदेव ने सात और नकुल ने सौ बाणों की वर्षाकर उसे युद्धक्षेत्र में बींध दिया।

अथ प्रहस्याधिरथिर्व्याक्षिपद् धनुरुत्तमम्॥ ९॥
मुमोच निशितान् बाणान् पीडयन् सुमहाबलः।
तान् प्रत्यविध्यद् राधेयः पञ्चभिः पञ्चभिः शरैः॥ १०॥
सात्यकेस्तु धनुश्छित्त्वा ध्वजं च भरतर्षभ।
तं तथा नवभिर्बाणैराजघान स्तनान्तरे॥ ११॥
सहदेवस्य भल्लेन ध्वजं चिच्छेद मारिष।

तब अधिरथपुत्र ने हँसकर अपने उत्तम धनुष की टंकार की, और उस अत्यन्तमहाबली ने शत्रुओं को पीड़ित करते हुए तीखे बाणों को छोड़ना आरम्भ किया। राधापुत्र ने पाँचपाँच बाणों से उनसबको बदले में बींध दिया। हे भरतश्रेष्ठ! उसने सात्यकि के ध्वज और धनुष को काटकर उसकी छाती में नौ बाणों से प्रहार किया। और हे मान्यवर! सहदेव के ध्वज को भल्ल से काट दिया।

सारथिं च त्रिभिर्बाणैराजघान परंतपः॥ १२॥
विरथान् द्रौपदेयांश्च चकार भरतर्षभ।
अक्ष्णोर्निमेषमात्रेण तदद्भुतमिवाभवत्॥ १३॥
विमुखीकृत्य तान् सर्वाञ्शरैः संनतपर्वभिः।
पञ्चालानहनच्छूरांश्चेदीनां च महारथान्॥ १४॥
ते वध्यमानाः समरे चेदिमत्स्या विशाम्पते।
कर्णमेकमभिद्रुत्य शरसङ्घैः समार्पयन्॥ १५॥

फिर उस परंतप ने तीन बाणों से सहदेव के सारथि को मारकर हे भरतश्रेष्ठ! द्रौपदी के पुत्रों को रथ से रहित कर दिया। पलक मारते ही उसने यह अद्‌भुत कार्य किया। हे प्रजानाथ! उसने झुकी गाँठवाले बाणों से उन सारे शूरवीरों को युद्ध से विमुखकर पाँचालों और चेदिदेश के शूरवीर महारथियों को मारना आरम्भ कर दिया। हे प्रजानाथ! युद्ध में मारे जाते चेदि और मत्स्यदेश के सैनिकों ने उस अकेले कर्ण पर आक्रमणकर उस पर बाणवर्षा आरम्भ कर दी।

ताञ्जघान शितैर्बाणैः सूतपुत्रो महारथः।
ते वध्यमानाः समरे चेदिमत्स्या विशाम्पते॥ १६॥
प्राद्रवन्त रणे भीताः सिंहत्रस्ता मृगा इव।
एतदत्यद्भुतं कर्म दृष्टवानस्मि भारत॥ १७॥
यदेकः समरे शूरान् सूतपुत्रः प्रतापवान्।
यतमानान् परं शक्त्या योधयानांश्च धन्विनः॥ १८॥
पाण्डवेयान् महाराज शरैर्वारितवान् रणे।
ततः कर्णो महाराज ददाह रिपुवाहिनीम्॥ १९॥
कक्षमिद्धो यथा वह्निर्निदाघे ज्वलितो महान्।

तब महारथी सूतपुत्र ने उन्हें तीखे बाणों से मारना प्रारम्भ किया। हे प्रजानाथ! युद्ध में कर्ण द्वारा मारे जाते हुए चेदि और मत्स्यदेश के वीर उससे डरकर ऐसे भागने लगे, जैसे सिंह से डरकर हरिण भागते हैं। हे भारत! मैंने यह अद्‌भुत कर्म वहाँ देखा कि अकेले प्रतापी सूतपुत्र ने युद्धक्षेत्र में पूरी शक्ति से प्रयत्न और युद्ध करते हुए पाण्डवपक्ष के धनुर्धरों को हे महाराज! अपने बाणों से रोक दिया। हे महाराज तब कर्ण शत्रुसेना को उसीप्रकार दग्ध करने लगा, जैसे गर्मी के मौसम में अत्यन्तप्रज्वलित आग सूखे घास फूस को जला देती है।

तत्राक्रन्दो महानासीत् पञ्चालानां महारणे॥ २०॥
वध्यतां सायकैस्तीक्ष्णैः कर्णचापवरच्युतैः।
यथौघः पर्वतश्रेष्ठमासाद्याभिप्रदीर्यते॥ १९॥
तथा तत् पाण्डवं सैन्यं कर्णमासाद्य दीर्यते।
शिरांसि च महाराज कर्णां श्चैव सकुण्डलान्॥ २०॥
बाहूंश्च वीरो वीराणां चिच्छेद लघु चेषुभिः।

उस महान् युद्ध में कर्ण के उत्तम धनुष से छूटे तीखे बाणों से मारे जाते हुए पाँचालों का आर्तनाद गूँज रहा था। जैसे पानी का प्रवाह किसी विशाल पर्वत से टकराकर कई धाराओं में बँट जाता है, उसीप्रकार पाण्डवों की सेना कर्ण के सामने पहुँचकर तित्तर बित्तर हो जाती थी। हे महाराज! वीर कर्ण ने वीरों के सिर, कुण्डलों सहित कान और हाथों को अपने बाणों से फुर्ती से काट दिया।

हस्तिदन्तत्सरून् खड्गान् ध्वजाञ्शक्तीर्हयान् गजान्॥ २३॥
रथांश्च विविधान् राजन् पताका व्यजनानि च।
अक्षं च युगयोक्त्राणि चक्राणि विविधानि च॥ २४॥
चिच्छेद बहुधा कर्णो योधव्रतमनुष्ठितः।
तत्र भारत कर्णेन निहतैर्गजवाजिभिः॥ २५॥
अगम्यरूपा पृथिवी मांसशोणितकर्दमा।
विषमं च समं चैव हतैरश्वपदातिभिः॥ २६॥

रथैश्च कुञ्जरैश्चैव न प्राज्ञायत किञ्चन।
ते पाण्डवेयाः समरे राधेयेन पुनः पुनः॥ २७॥
अभज्यन्त महाराज यतमाना महारथाः।

हे राजन्! योद्धाओं के व्रत में विद्यमान कर्ण ने हाथीदाँत की मूठोंवाले खड्गों, ध्वजों, शक्तियों, घोड़ों, हाथियों, अनेकप्रकार के रथों, पताकाओं, पंखों, धुरों, जूओं, जोतों और अनेक प्रकार के पहियों को टुकड़े-टुकड़े कर दिया। हे भारत! कर्ण द्वारा मारे हुए हाथी और घोड़ों के कारण मांस और खून की कीचड़ होगयी और भूमि पर चलना कठिन होगया। मारे गये घोड़ों, पैदलों, रथों, और हाथियों के कारण भूमि के ऊँचे और नीचेपन का भी कुछ पता नहीं लगता था। हे महाराज! उस समय युद्धक्षेत्र में पाण्डवपक्ष के महारथी बार-बार प्रयत्न करते थे, पर राधापुत्र के द्वारा भगा दिये जाते थे।

मृगसङ्घान् यथा क्रुद्धः सिंहो द्रावयते वने॥ २८॥
पञ्चालानां रथश्रेष्ठान् द्रावयञ्शात्रवांस्तथा।
कर्णस्तु समरे योधांस्त्रासयन् सुमहायशाः॥ २९॥
कालयामास तत् सैन्यं यथा पशुगणान् वृकः।
दुर्योधनो हि राजेन्द्र मुदा परमया युतः॥ ३०॥
वादयामास संहृष्टो नानावाद्यानि सर्वशः।

जैसे क्रुद्ध सिंह वन में हरिणों के समूहों को खदेड़ देता है। उसीप्रकार अत्यन्त महायशस्वी कर्ण युद्धक्षेत्र में शत्रुपक्ष के पाँचालों के श्रेष्ठ रथियों को भगाता हुआ और दूसरे योद्धाओं को भयभीत करता हुआ भेड़िया जैसे पशुओं को खदेड़ता है, वैसेही पाण्डवसेना को तित्तरबित्तर करने लगा। हे राजेन्द्र! तब दुर्योधन अत्यन्तहर्षित होकर प्रसन्नता से सबतरफ नानाप्रकार के बाजे बजवाने लगा।

पञ्चालापि महेष्वासा भग्नास्तत्र नरोत्तमाः॥ ३१॥
न्यवर्तन्त यथा शूरं मृत्युं कृत्वा निवर्तनम्।
तान् निवृत्तान् रणे शूरान् राधेयः शत्रुतापनः॥ ३२॥
अनेकशो महाराज बभञ्ज पुरुषर्षभः।
तत्र भारत कर्णेन पञ्चाला विंशती रथाः॥ ३३॥
निहताः सायकैः क्रोधाच्चेदयश्च परः शताः।
कृत्वाशून्यान् रथोपस्थान् वाजिपृष्ठांश्च भारत॥ ३४॥
निर्मनुष्यान् गजस्कन्धान् पादातांश्चैव विद्रुतान्।
आदित्य इव मध्याह्ने दुर्निरीक्ष्यः परंतपः॥ ३५॥

नरश्रेष्ठ पाँचाल महाधनुर्धर वहाँ से भागने पर भी मृत्यु को लौटने की सीमा निश्चित करके उस शूरवीर कर्ण के पास लौट आते थे। हे महाराज! उन युद्ध में लौटे हुए शूरवीरों को शत्रुतापन पुरुषश्रेष्ठ कर्ण बार बार भगा देता था। हे भारत! कर्ण ने क्रोध में भरकर अपने बाणों से बीस पाँचाल रथियों को और सौ से अधिक चेदिदेशीय योद्धाओं को मार दिया। हे भारत! उसने रथों की बैठकों को और घोड़ों की पीठों को सूनाकर हाथियों के कन्धों को मनुष्यों से रहित कर दिया तथा पैदलसैनिकों को भी मार भगाया। शत्रुओं को तपानेवाला कर्ण उस समय मध्याह्नकाल के सूर्य की तरह से तप रहा था। उसकी तरफ देखना भी शत्रुओं के लिये कठिन था।

बासठवाँ अध्याय : अर्जुन का श्रीकृष्ण से कर्ण के सम्मुख जाने को कहना।

अर्जुनस्तु महाराज हत्वा सैन्यं चतुर्विधम्।
वासुदेवमिदं वाक्यमब्रवीत् पुरुषर्षभः॥ १॥
एष केतू रणे कृष्ण सूतपुत्रस्य दृश्यते।
कृपश्च कृतवर्मा च द्रौणिश्चैव महारथः॥ २॥
एते रक्षन्ति राजानं सूतपुत्रेण रक्षिताः।
अवध्यमानास्तेऽस्माभिर्घातयिष्यन्ति सोमकान्॥ ३॥

हे महाराज! तब पुरुषश्रेष्ठ अर्जुन ने कौरवों की चारोंप्रकार की सेना का संहार कर श्रीकृष्णजी से कहा कि हे कृष्ण! यह युद्धक्षेत्र में सूतपुत्र का ध्वज दिखाई देरहा है। कृपाचार्य, कृतवर्मा और द्रोणपुत्र ये सूतपुत्र से सुरक्षित होकर राजा दुर्योधन की रक्षा कर रहे हैं। यदि हमारे द्वारा नहीं मारे गए, तो ये सोमक वीरों को मार देंगे।

तत्र मे बुद्धिरुत्पन्ना वाहयात्र महारथम्।
नाहत्वा समरे कर्णं निवर्तिष्ये कथञ्चन॥ ४॥
राधेयो ह्यन्यथा पार्थान् सृञ्जयांश्च महारथान्।
निःशेषान् समरे कुर्यात् पश्यतां नो जनार्दन॥ ५॥
ततः प्रयाद् रथेनाशु केशवस्तव वाहिनीम्।

कर्णं प्रति महेष्वासं द्वैरथे सव्यसाचिना॥ ६॥
तमायान्तं समीक्ष्यैव श्वेताश्वं कृष्णसारथिम्।

अब मेरे मन में यही विचार होरहा है कि आप वहीं घोड़ों को लेचलिये, जहाँ कर्ण है, क्योंकि मैं युद्ध में कर्ण को बिना मारे किसीप्रकार भी नहीं लौटूँगा। हे जनार्दन! नहीं तो राधापुत्र हमारे देखते हुए ही युद्धक्षेत्र में कुन्तीपुत्रों और सृंजय महारथियों को समाप्त कर देगा। तब श्रीकृष्ण रथ के द्वारा शीघ्रता सव्यसाची अर्जुन के साथ कर्ण का द्वैरथ युद्ध कराने के लिये आपकी सेना में जहाँ कर्ण था, उसतरफ बढ़े। तब कृष्ण जिनके सारथि थे, उन श्वेत घोड़ोंवाले अर्जुन को आते, और उन मनस्वी के ध्वज को देखकर मद्रराज शल्य कर्ण से बोले कि—

मद्रराजोऽब्रवीत् कर्णं केतुं दृष्ट्वा महात्मनः॥ ७॥
अयं स रथ आयाति श्वेताश्वः कृष्णसारथिः।
निघ्नन्नमित्रान् समरे यं कर्ण परिपृच्छसि॥ ८॥
एष तिष्ठति कौन्तेयः संस्पृशन् गाण्डिवं धनुः।
तं हनिष्यसि चेदद्य तन्नः श्रेयो भविष्यति॥ ९॥
एतत् कूजति गाण्डीवं विसृष्टं सव्यसाचिना।
एते हस्तवता मुक्ता घ्नन्त्यमित्राञ्शिताः शराः॥ १०॥
विशालायतताम्राक्षैः पूर्णचन्द्रनिभाननैः।
एषा भूः कीर्यते राज्ञां शिरोभिरपलायिनाम्॥ ११॥

यह वह रथ आरहा है, जिसके सारथि कृष्ण हैं और जिसमें सफेद घोड़े जुते हुए हैं, जिसके लिये हे कर्ण! तुम पूछ रहे थे, वही युद्धक्षेत्र में शत्रुओं का संहार करता हुआ आरहा है। ये कुन्तीपुत्र अर्जुन गाण्डीवधनुष को लिये हुए खड़े हैं। यदि तुम इनको आज मार दोगे तो यह हमारे लिये श्रेयस्कर होगा। यह अर्जुन के द्वारा खींचा जाता हुआ गाण्डीवधनुष टंकार रहा है। ये सिद्धहस्त के द्वारा छोड़े हुए तीखे बाण शत्रुओं को मार रहे हैं। जो राजा युद्ध में कभी पीछे नहीं हटते, उनकी मोटी और बड़ी लाल आँखों वाले, पूर्ण चन्द्रमा के समान मुखों से युक्त कटे हुए सिरों से यह भूमि पटती जारही है।

एते परिघसंकाशाः पुण्यगन्धानुलेपनाः।
उद्धता रणशूराणां पात्यन्ते सायुधाभुजाः॥ १२॥
निरस्तजिह्वानेत्रान्ता वाजिनः सह सादिभिः।
पतिताः पात्यमानाश्च क्षितौ क्षीणा विशेरते॥ १३॥
एते पर्वतशृङ्गाणां तुल्या हैमवता गजाः।
संछिन्नकुम्भाः पार्थेन प्रपतन्त्यद्रयो यथा॥ १४॥
व्याकुलीकृतमत्यर्थं परसैन्यं किरीटिना।
नानामृगसहस्राणां यूथं केसरिणा यथा॥ १५॥

ये युद्धक्षेत्र में शूरवीरों की, सुगन्धित पदार्थों का लेप की हुई, तथा हथियार लेकर उठी हुई, परिघ के समान मोटी भुजाएँ काटकर गिरायी जा रही हैं। अर्जुन के द्वारा क्षतविक्षत हुए ये घोड़े अपने सवारों के साथ भूमि पर गिराये गये हैं और गिराये जारहे हैं। इनकी आँखें और जिह्वाएँ बाहर निकल आयी हैं। ये भूमि पर पड़े सोरहे हैं। हिमालयप्रदेश के ये पर्वतशिखरों के समान ऊँचे हाथी, जिनके कुम्भस्थल अर्जुनद्वारा विदीर्ण कर दिये गये हैं, टूटे पर्वतशिखरों के समान भूमि पर पड़े हैं। जैसे सिंह नाना जातियों के हजारों मृगसमूहों को व्याकुल कर देता है, ऐसे ही अर्जुन ने शत्रुसेना को भी अत्यधिक व्याकुल कर दिया है।

त्वामभिप्रेप्सुरायाति कर्ण निघ्नन् वरान् रथान्।
असह्यमानो राधेय तं याहि प्रति भारत॥ १६॥
एषा विदीर्यते सेना धार्तराष्ट्री समन्ततः।
अर्जुनस्य भयात् तूर्णं निघ्नतः शात्रवान् बहून्॥ १७॥

अच्छे अच्छे रथियों को मारते हुए ये अर्जुन तुम्हारे पास ही आरहे हैं। हे कर्ण! ये शत्रुओं के लिये असह्य हैं। तुम इन भरतवंशी वीर का सामना करने को आगे बढ़ो। शीघ्रता से बहुतसारे शत्रुओं का संहार करते हुए अर्जुन के भय से यह दुर्योधन की सेना सबतरफ तित्तर–बित्तर हो रही है।

विरथं धर्मराजं तु दृष्ट्वा सुदृढविक्षतम्।
शिखण्डिनं सात्यकिं च धृष्टद्युम्नं च पार्षतम्॥ १८॥
द्रौपदेयान् युधामन्युमुत्तमौजसमेव च।
नकुलं सहदेवं च भ्रातरौ द्वौ समीक्ष्य च॥ १९॥
सहसैकरथः पार्थस्त्वामभ्येति परंतपः।
क्रोधरक्तेक्षणः क्रुद्धो जिघांसुः सर्वपार्थिवान्॥ २०॥
त्वरितोऽभिपतत्यस्मांस्त्यक्त्वा सैन्यान्यसंशयम्।
त्वं कर्ण प्रतियाह्येनं नास्त्यन्यो हि धनुर्धरः॥ २१॥
न चास्य रक्षां पश्यामि पार्श्वतो न च पृष्ठतः।
एक एवाभियाति त्वां पश्य साफल्यमात्मनः॥ २२॥

धर्मराज को रथ से रहित किया हुआ अत्यन्त घायल, शिखण्डी, सात्यकि, द्रुपदपुत्र, धृष्टद्युम्न, द्रौपदी के पुत्रों, युधामन्यु, उत्तमौजा, नकुल और सहदेव दोनों भाई इन सबको घायल किया हुआ

देखकर ये परंतप, क्रुद्ध कुन्तीपुत्र, क्रोध से लाल आँखें किये, सारे राजाओं को मारने की इच्छा से, एकमात्र रथ के द्वारा सहसा तुम्हारे सामने ही आरहे हैं। निस्सन्देह अब ये सेनाओं को छोड़कर हमारे ऊपर ही आक्रमण करेंगे। इसलिये हे कर्ण! तुम इनका सामना करने को आगे बढ़ो, क्योंकि कोई दूसरा धनुर्धर इनके सामने नहीं आसकता। मैं इनके पीछे और बगल में किसी रक्षक को नहीं देख रहा हूँ। ये अकेले ही हैं। अपनी सफलता के इस अवसर को भी देखो।

त्वं हि कृष्णौ रणे शक्तः संसाधयितुमाहवे।
तवैव भारो राधेय प्रत्युद्याहि धनंजयम्॥ २३॥
समानो ह्यसि भीष्मेन द्रोणद्रौणिकृपेण च।
सव्यसाचिनमायान्तं निवारय महारणे॥ २४॥
लेलिहानं यथा सर्पं गर्जन्तमृषभं यथा।
वनस्थितं यथा व्याघ्रं जहि कर्ण धनंजयम्॥ २५॥

तुम ही अर्जुन और कृष्ण इनदोनों को युद्धक्षेत्र में परास्त करने की शक्ति रखते हो। हे राधापुत्र! तुम्हारे ऊपर ही इसका भार है, इसलिये अर्जुन को रोकने के लिये आगे बढ़ो। तुम भीष्म, द्रोणाचार्य, द्रोणपुत्र और कृपाचार्य के समान पराक्रमी हो, इसलिये आते हुए सव्यसाची को तुम महान् युद्ध में रोको। ये जीभ लपलपाते हुए सर्प, गर्जते हुए साँड और वनवासी व्याघ्र के समान भयंकर हैं। हे कर्ण! तुम इन अर्जुन को मार दो।

एते द्रवन्ति समरे धार्तराष्ट्रा महारथा।
अर्जुनस्य भयात् तूर्णं निरपेक्षा जनाधिपाः॥ २६॥
द्रवतामथ तेषां तु नान्योऽस्ति युधि मानवः।
भयहा यो भवेद् वीरस्त्वामृते सूतनन्दन॥ २७॥
एते त्वां कुरवः सर्वे द्वीपमासाद्य संयुगे।
धिष्ठिताः पुरुषव्याघ्र त्वत्तः शरणकाङ्क्षिणः॥ २८॥
वैदेहाम्बष्ठकाम्बोजास्तथा नग्नजितस्त्वया।
गान्धाराश्च यया धृत्या जिताः संख्ये सुदुर्जयाः॥ २९॥
तां धृतिं कुरु राधेय ततः प्रत्येहि पाण्डवम्।

ये युद्धक्षेत्र में दुर्योधन के महारथी राजालोग, अर्जुन के भय से बिना किसी की परवाह किये, शीघ्रता से भागे जारहे हैं। हे सूतपुत्र! इन भागते हुओं के भय को दूर करने वाला युद्धक्षेत्र में तुम्हारे सिवाय कोई दूसरा वीर मनुष्य नहीं है। ये सारे कौरव लोग, युद्धक्षेत्र रूपी समुद्र में, हे पुरुषव्याघ्र! तुम्हें ही द्वीप समझकर, तुमसे ही आश्रय पाने के इच्छुक होकर खड़े हुए हैं। तुमने जिस धैर्य के साथ पहले युद्ध में अत्यन्त दुर्जय विदेह, अम्बष्ठ, काम्बोज, नग्नजित्, तथा गान्धार लोगों को जीता था, उसी धैर्य को हे राधापुत्र अपनाओ और पाण्डुपुत्र का सामना करने के लिये आगे बढ़ो।

कर्ण उवाच

प्रकृतिस्थोऽसि मे शल्य इदानीं सम्मतस्तथा॥ ३०॥
प्रतिभासि महाबाहो मा भैषीस्त्वं धनंजयात्।
पश्य बाह्वोर्बलं मेऽद्य शिक्षितस्य च पश्य मे॥ ३१॥
एकोऽद्य निहनिष्यामि पाण्डवानां महाचमूम्।
कृष्णौ च पुरुषव्याघ्र ततः सत्यं ब्रवीमि ते॥ ३२॥
नाहत्वा युधि तौ वीरौ व्यपयास्ये कथंचन।
स्वप्स्ये वा निहतस्ताभ्यामनित्यो हि रणे जयः।
कृतार्थोऽद्य भविष्यामि हत्वा वाप्यथवा हतः॥ ३३॥

तब कर्ण ने कहा कि हे महाबाहु शल्य! अब तुम अपने वास्तविक स्वरूप में विद्यमान हो, तुम्हारे विचार मुझ से मिलते जान पड़ रहे हैं। तुम अर्जुन से डरो मत। तुम आज मेरी भुजाओं की शक्ति और मेरी विद्या को देखो। मैं अकेला ही पाण्डवों की इस विशाल सेना को नष्ट कर डालूँगा। हे पुरुषव्याघ्र! मैं यह तुमसे सत्य कहता हूँ कि मैं अर्जुन और कृष्ण इनदोनों वीरों को मारे बिना किसी प्रकार भी युद्ध में पीछे नहीं हटूँगा। अथवा उनके द्वारा मारा जाकर युद्धभूमि में सो जाऊँगा, क्योंकि विजय निश्चित नहीं होती हैं। इनदोनों को मारकर या उनके द्वारा मारा जाकर मैं पूरी तरह से कृतार्थ हो जाऊँगा।

शल्य उवाच

अजय्यमेनं प्रवदन्ति युद्धे
महारथाः कर्ण रथप्रवीरम्।
एकाकिनं किमु कृष्णाभिगुप्तं
विजेतुमेनं क इहोत्सहेत॥ ३४॥

तब शल्य ने कहा कि हे कर्ण! महारथी लोग इस रथियों में प्रमुख वीर अर्जुन को अकेले भी अजेय कहते हैं। फिर अब तो कृष्ण के द्वारा सुरक्षित हैं, ऐसी अवस्था में इन्हें जीतने का कौन साहस कर सकता है?

कर्ण उवाच

नैतादृशो जातु बभूव लोके
रथोत्तमो यावदुपश्रुतं नः।
तमीदृशं प्रतियोत्स्यामि पार्थं
महाहवे पश्य च पौरुषं मे॥ ३५॥
अस्वेदिनौ राजपुत्रस्य हस्ता-
ववेपमानौ जातकिणौ बृहन्तौ।
दृढायुधः कृतिमान् क्षिप्रहस्तो
न पाण्डवेयेन समोऽस्ति योधः॥ ३६॥
गृह्णात्यनेकानपि कङ्कपत्रा-
नेकं यथा तान् प्रतियोज्य चाशु।
ते क्रोशमात्रे निपतन्त्यमोघाः
कस्तेन योधोऽस्ति समः पृथिव्याम्॥ ३७॥

तब कर्ण ने कहा कि हे शल्य! जहाँतक मैंने सुना है कि संसार में इस जैसा उत्तम रथी पहले कभी नहीं हुआ। ऐसे कुन्तीपुत्र के साथ भी महासमर में मैं युद्ध करूँगा। तुम मेरे पुरुषार्थ को देखो। इस राजपुत्र के विशाल हाथों में धनुष चलाते हुए कभी पसीना नहीं होता, वे काँपते भी नहीं हैं, उनमें प्रत्यंचा के चिह्न बने हुए हैं, उनके आयुध दृढ़ हैं, वे कर्मठ हैं, उनका हाथ शीघ्रता से चलता है। पाण्डुपुत्र अर्जुन के समान कोई दूसरा योद्धा नहीं है। वह बहुत सारे कंकपत्रों से युक्त बाणों को ऐसे उठाते हैं, जैसे वे एक ही बाण हो, उन्हें शीघ्रता से सन्धान करते हैं। उनके वे अमोघ बाण एक कोस दूर जाकर गिरते हैं। इनके समान पृथिवी पर दूसरा योद्धा कौन है?

तमीदृशं वीर्यगुणोपपन्नं
कृष्णद्वितीयं परमं नृपाणाम्।
तमाह्वयन् साहसमुत्तमं वै
जाने स्वयं सर्वलोकस्य शल्य॥ ३८॥
उभौ हि शूरौ बलिनौ दृढायुधौ
महारथौ संहननोपपन्नौ।
एतादृशौ फाल्गुनवासुदेवौ
कोऽन्यः प्रतीयान्मदृते तौ तु शल्य॥ ३९॥
मनोरथो यस्तु ममाद्य तस्य
मद्रेश युद्धं प्रति पाण्डवस्य।
नैतच्चिरादाशु भविष्यतीद
मत्यद्भुतं चित्रमतुल्यरूपम्॥ ४०॥
एतौ च हत्वा युधि पातयिष्ये
मां वापि कृष्णौ निहनिष्यतोऽद्य।

ऐसे पराक्रम और गुणों से युक्त अर्जुन को, जो क्षत्रियों में सर्वश्रेष्ठ हैं, श्रीकृष्ण जी की सहायता से युक्त हैं, युद्ध के लिये ललकारना सारे संसार के लिये बड़े साहस का काम है। हे शल्य! इस बात को मैं स्वयं भी जानता हूँ। येदोनों कृष्ण और अर्जुन शूरवीर, बलवान्, दृढ़ आयुध वाले, महारथी और सुगठित शरीर वाले हैं। हे शल्य! इनके मुकाबले के लिये मेरे सिवाय कौन दूसरा व्यक्ति जा सकता है? हे मद्र के राजा! पाण्डुपुत्र के साथ युद्ध करने का मेरा जो मनोरथ है, यह अब जल्दी ही पूरा होगा। यह युद्ध बड़ा अद्‌भुत, विचित्र, और अनुपम होगा। आज या तो मैं इनदोनों को मारकर गिरा दूँगा, या येदोनों मुझे मार देंगे।

इति ब्रुवञ्शल्यममित्रहन्ता
कर्णो रणे मेघ इवोन्ननाद॥ ४३॥
अभ्येत्य पुत्रेण तवाभिनन्दितः
समेत्य चोवाच कुरुप्रवीरम्।
कृपं च भोजं च महाभुजावुभौ
तथैव गान्धारपतिं सहानुजम्॥ ४४॥
गुरोः सुतं चावरजं तथाऽऽत्मनः
पदातिनोऽथ द्विपसादिनश्च तान्।
निरुध्यताभि- द्रवताच्युतार्जुनौ
श्रमेण संयोजयताशु सर्वशः॥ ४५॥
यथा भवद्भिर्भृशविक्षितावुभौ
सुखेन हन्यामहमद्य भूमिपाः।

शत्रुदमन कर्ण शल्य से ऐसा कहकर युद्धक्षेत्र में बादलों के समान गर्जने लगा। तब आपके पुत्र दुर्योधन ने आकर उसका अभिनन्दन किया। उससे मिलकर कर्ण ने उस कुरुश्रेष्ठ से, महाबाहु कृपाचार्य और कृतवर्मा से, भाइयोंसहित शकुनि से, अवश्त्थामा से और अपने छोटे भाई से, तथा पैदल और हाथीसवारों से यह कहा कि आपलोग अर्जुन और श्रीकृष्ण के ऊपर आक्रमणकर उन्हें रोको। उन्हें शीघ्रही सबतरफ से परिश्रमयुक्त कर थका दो, जिससे आपके द्वारा अत्यन्तघायल हुए उनदोनों को मैं सुख से आज मार सकूँ।

तथेति चोक्त्वा त्वरिताः स्म तेऽर्जुनं
जिघांसवो वीरतराः समभ्ययुः॥ ४४॥
शरैश्च जघ्नुर्युधि तं महारथा
धनंजयं कर्णनिदेशकारिणः।
नदीनदं भूरिजलो महार्णवो
यथा तथा तान् समरेऽर्जुनोऽग्रसत्॥ ४५॥
न संदधानो न तथा शरोत्तमान्
प्रमुञ्चमानो रिपुभिः प्रदृश्यते।
धनंजयास्तैस्तु शरैर्विदारिता
हता निपेतुर्नरवाजिकुञ्जराः॥ ४६॥

तब कर्ण के आदेशानुसार करनेवाले वे अत्यन्तवीर महारथी, अर्जुन को मारने की इच्छा से, बहुत अच्छा यह कहकर शीघ्रता से अर्जुन पर चढ़ आये और उनपर बाणों से प्रहार करने लगे। किन्तु जैसे महान् जल से भरा महासागर नदियों, नदों, सबको अपने अन्दर मिला लेता है वैसे ही अर्जुन ने भी युद्ध में उन सभी की बाणवर्षा को अपनी बाणवर्षा में विलीन कर लिया। शत्रु यह नहीं देख पाते थे कि वह कब बाण लेता है और कब उनका सन्धान कर छोड़ देता है? अर्जुन द्वारा छोड़े बाणों से मारे हुए मनुष्य घोड़े और हाथी गिरते हुए ही दिखाई देते थे।

शरार्चिषं गाण्डिवचारुमण्डलं
युगान्तसूर्य- प्रतिमानतेजसमम्।
न कौरवाः शेकुरुदीक्षितुं जयं
यथा रविं व्याधितचक्षुषो जनाः॥ ४७॥
शरोत्तमान् सम्प्रहितान् महारथै-
श्चिच्छेद पार्थः प्रहसञ्छरौघैः।
भूयश्च तानहनद् बाणसङ्घान्
गाण्डीवधन्वायत- पूर्णमण्डलः॥ ४८॥

अर्जुन का तेज उस समय प्रलय कर देनेवाले सूर्य के समान प्रकाशित होरहा था। उनके बाण ही किरणें थीं। गोल हुआ गाण्डीवधनुष ही सूर्य का मनोहर मण्डल था। जैसे बीमार आँखों वाले सूर्य की तरफ नहीं देख सकते, वैसे ही उस समय कौरव वीर अर्जुन की तरफ देख नहीं पाते थे। अर्जुन ने हँसते हुए, उन महारथियों के द्वारा छोड़े हुए उत्तम बाणों को अपने बाण समूहों से काट दिया और फिर वे पूरे गोल बने हुए गाण्डीवधनुष से छूटे बाणों से उन पर बार बार प्रहार करने लगे।

यथोग्ररश्मिः शुचिशुक्रमध्यगः
सुखं विवस्वान् हरते जलौघान्।
तथार्जुनो बाणगणान् निरस्य
ददाह सेनां तव पार्थिवेन्द्र॥ ४९॥
तमभ्यधावद् विसृजन् कृपः शरां-
स्तथैव भोजस्तव चात्मजः स्वयम्।
महारथो द्रोणसुतश्च सायकै-
रवाकिरंस्तोयधरा यथाचलम्॥ ५०॥
जिघांसुभिस्तान् कुशलः शरोत्तमान्
महाहवे सम्प्रहितान् प्रयत्नतः।
शरैः प्रचिच्छेद स पाण्डवस्त्वरन्
पराभिनद् वक्षसि चेषुभिस्त्रिभिः॥ ५१॥

जैसे ज्येष्ठ और आषाढ़ के बीच में प्रचण्ड किरणोंवाला सूर्य अनायास ही भूमि के जल को सोख लेता है, वैसेही अर्जुन, बाणसमूहों को छोड़ते हुए हे राजेन्द्र! आपकी सेना को दग्ध करने लगे। तब कृपाचार्य बाणों की वर्षा करते हुए उनकी तरफ दौड़े। उसीप्रकार कृतवर्मा, आपका महारथी पुत्र स्वयं और अश्वत्थामा उनपर ऐसे बाण बरसाने लगे, जैसे बादल पर्वत पर जलधारा बरसाते हैं। किन्तु मारने की इच्छा से युक्त उन सबके द्वारा प्रयत्नपूर्वक छोड़े हुए उत्तम बाणों को, कुशल पाण्डुपुत्र ने उस महान् युद्ध में तुरन्त अपने बाणों से काट दिया और उन सबकी छाती में तीन तीन बाण मारे।

अथाग्र्यबाणैर्दश- भिर्धनंजयं
पराभिनद् द्रोणसुतोऽच्युतं त्रिभिः।
तथापि तं प्रस्फुरदात्तकार्मुकं
त्रिभिः शरैर्यन्तृशिरः क्षुरेण॥ ५२॥
हयांश्चतुर्भिश्च पुनस्त्रिभिर्ध्वजं
धनंजयो द्रौणिरथादपातयत्।
स्वमायुधं चोपनिकीर्य भूतले
धनुश्च कृत्वा सगुणं गुणाधिकः॥ ५३॥
समार्दयत्तावजितौ नरोत्तमौ
शरोत्तमैर्द्रौणिर- विध्यदन्तिकात्।

तब द्रोणपुत्र ने दस तीखे बाणों से अर्जुन को, तीन बाणों से श्रीकृष्णजी को घायल कर दिया। तब अर्जुन ने तीन बाणों से उसके हिलते हुए और खींचे हुए धनुष को, एक क्षुर से सारथि को, चारों घोड़ों को चार बाणों से मारकर उसके ध्वज को भी तीन

बाणों से काटकर रथ से गिरा दिया। तब टूटे धनुष को फैंककर और अधिक गुणवान् धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाकर अश्वत्थामा ने किसी से पराजित न होनेवाले श्रीकृष्ण और अर्जुन को, समीप आकर उत्तम बाणों से पीड़ित और घायल करना आरम्भ कर दिया।

कृपश्च भोजश्च तवात्मजश्च ते
शरैरनेकैर्युधि पाण्डवर्षभम्॥ ५४॥
महारथाः संयुगमूर्धनि स्थिता-
स्तमोनुदं वारिधरा इवापतन्।
स पार्थबाणैर्विनिपातितायुधो
ध्वजावमर्दे च कृते महाहवे॥ ५५॥
कृतः कृपो बाणसहस्रयन्त्रितो
यथागाङ्गेयः प्रथमं किरीटिना।
शरैः प्रचिच्छेद तवात्मजस्य
ध्वजं धनुश्च प्रचकर्त नर्दतः॥ ५६॥
जघान चाश्वान् कृतवर्मणः शुभान्
ध्वजं च चिच्छेद ततः प्रतापवान्।

युद्ध के मुहाने पर खड़े हुए कृपाचार्य, कृतवर्मा और आपका पुत्र दुर्योधन ये तीन महारथी, उस पाण्डवश्रेष्ठ पर अनेक बाणों को चलाने लगे जैसे अनेक बादलों ने सूर्य पर आक्रमण किया हो। उस महान् युद्ध में जब अर्जुनद्वारा कृपाचार्य के आयुध व बाण नीचे गिरा दिये गये, ध्वज काट दिया गया, तब अर्जुन ने उन्हें असंख्य बाणों से उसीप्रकार भर दिया जैसे पहले भीष्म पितामह को किया था। प्रतापी अर्जुन ने आपके गर्जने वाले पुत्र के ध्वज और धनुष को काट दिया। उन्होंने कृतवर्मा के सुन्दर घोड़ों को मार दिया और ध्वजा को भी काट दिया।

सवाजिसूतेष्वसनान् सकेतनान्
जघान नागाश्वरथांस्त्वरंश्च सः॥ ५७॥
ततः प्रकीर्णं सुमहद् बलं तव
प्रदारितः सेतुरिवाम्भसा यथा।
ततः प्रयातं त्वरितं धनंजयं
शतक्रतुं वृत्रनिजघ्नुषं यथा॥ ५८॥
समन्वधावन् पुनरुत्थितैर्ध्वजै
रथैः सुयुक्तैरपरे युयुत्सवः।
अथाभिसृत्य प्रतिवार्य तानरीन्
धनंजयस्याभिमुखं महारथाः।
शिखण्डिशैनेययमाः शितैः शरै-
र्विदारयन्तो व्यनदन् सुभैरवम्॥ ५९॥

फिर अर्जुन ने शीघ्रता से घोड़े, सारथि, धनुष और ध्वजाओंसहित रथों, हाथियों और घोड़ों को भी मारना आरम्भ कर दिया। तब जैसे पानी के द्वारा बाँध टूटकर बिखर जाता है, वैसे ही वह अत्यन्तविशाल सेना भी सबतरफ बिखर गयी। फिर वृत्रासुर को मारने की इच्छा से आगे बढ़ने वाले इन्द्र के समान तेजी से आगे जाते हुए अर्जुन पर दूसरे योद्धाओं ने ऊँचे लहराते हुए ध्वजों से युक्त रथों के साथ आक्रमण किया। तब अर्जुन के सामने जाते हुए उन योद्धाओं को सामने जाकर महारथी शिखण्डी, सात्यकि, नकुल और सहदेव ने रोका और पैने बाणों से उन्हें विदीर्ण करते हुए भयंकर गर्जना की।

तिरेसठवाँ अध्याय : अर्जुन का कौरव सेना को मारते हुए आगे बढ़ना।

राजन् कुरूणां प्रवरैर्बलैर्भीममभिद्रुतम्।
मज्जन्तमिव कौन्तेयमुज्जिहीर्षुर्धनंजयः॥ १॥
विसृज्य सूतपुत्रस्य सेनां भारत सायकैः।
प्राहिणोन्मृत्युलोकाय परवीरान् धनंजयः॥ २॥
ततो भल्लैः क्षुरप्रैश्च नाराचैर्विमलैरपि।
गात्राणि प्राच्छिनत् पार्थः शिरांसि च चकर्त ह॥ ३॥
छिन्नगात्रैर्विकवचैर्विशिरस्कैः समन्ततः।
पातितैश्च पतद्भिश्च योधैरासीत् समावृता॥ ४॥

हे राजन्! कौरवसेना के प्रमुख वीरों ने भीम पर आक्रमण किया था और वे उस सेनारूपी समुद्र में डूबते हुए से जान पड़ते थे। हे भारत! तब अर्जुन ने उनका उद्धार करने की इच्छा से कर्ण की सेना को छोड़कर उसतरफ ही आक्रमण किया और शत्रुओं के बहुतसे वीरों को मृत्युलोक में भेज दिया। कुन्तीपुत्र ने तीखे भल्ल, क्षुरप्र और नाराचों से उनके अंग तथा सिरों को काट दिया। वह रणभूमि गिरे हुए और गिराये जा रहे उन वीरों से,

जिनके अंग, कवच और सिर कट गये थे, भरी पड़ी थी।

धनंजयशराभ्यस्तैः स्यन्दनाश्वरथद्विपैः।
संछिन्नभिन्नविध्वस्तैर्व्यङ्गाङ्गावयवैः स्तृता॥ ५॥
ईषाचक्राक्षभग्नैश्च व्यश्वैः साश्वैश्च युध्यताम्।
ससूतैर्हतसूतैश्च रथैस्तीर्णाभवन्मही॥ ६॥

अर्जुन के बाणों की मार से जो छिन्न, भिन्न और विध्वस्त होगये थे, जिनके अंग अंग अलग होगये थे, ऐसे रथ के घोड़ों, रथों, और हाथियों से वह भूमि आच्छादित होगयी थी। वहाँ की भूमि युद्धकरनेवालों के रथों से जिनके ईषादण्ड, पहिये और धुरे टूट गये थे, कुछ के घोड़े और सारथि मर गये थे, और कुछ के जीवित थे, भर गयी थी।

सुवर्णवर्णसंनाहैर्योधैः कनकभूषणैः।
आस्थिताः क्लृप्तवर्माणो भद्रा नित्यमदा द्विपाः॥ ७॥
क्रुद्धाः क्रूरैर्महामात्रैः पार्ष्ण्यङ्गुष्ठप्रचोदिताः।
चतुःशताः शरवरैर्हताः पेतुः किरीटिना॥ ८॥
पर्यस्तानीव शृङ्गाणि ससत्त्वानि महागिरेः।
धनंजयशराभ्यस्तैः स्तीर्णा भूर्वरवारणैः॥ ९॥

सुनहले कवच बाँधे हुए, स्वर्ण आभूषण से भूषित योद्धा जिनपर बैठे हुए थे, क्रूर स्वभाववाले महावतों से जो पैरों की एड़ियों और अंगूठों द्वारा प्रेरित किये जारहे थे, ऐसे कवचधारी उत्तम सदा मद बहानेवाले चार सौ क्रुद्ध हाथी अर्जुन के उत्तम बाणों से आहत होकर ऐसे पड़े हुए थे जैसे विशाल पर्वत के शिखर जीवजन्तुओंसहित गिरे पड़े हों। अर्जुन के बाणों से गिरे उन उत्तम हाथियों से भी भूमि ढक गयी थी।

समन्ताज्जलदप्रख्यान् वारणान् मदवर्षिणः।
अभिपेदेऽर्जुनरथो घनान् भिन्दन्निवांशुमान्॥ १०॥
हतैर्गजमनुष्याश्वैर्भिन्नैश्च बहुधा रथैः।
विशस्त्रयन्त्रकवचैर्युद्ध- शौण्डैर्गतासुभिः॥ ११॥
अपविद्धायुधैर्मार्गः स्तीर्णोऽभूत् फाल्गुनेन वै।
व्यस्फारयद् वै गाण्डीवं सुमहद् भैरवारवम्॥ १२॥
घोरवज्रविनिष्पेषं स्तनयित्नुरिवाम्बरे।
ततः प्रादीर्यत चमूर्धनंजयशराहता॥ १३॥

जैसे सूर्य बादलों को छिन्न-भिन्न कर देता है, वैसेही बादलों के समान मद बहानेवाले और सब तरफ फैले हुए हाथियों को छिन्न-भिन्न करके अर्जुन का रथ वहाँ पहुँचा था। मारेगये हाथी, मनुष्य, घोड़ों, टूटे हुए रथों, शस्त्र, यन्त्र और कवचों से रहित किये गये, युद्धचतुर और प्राणहीन योद्धाओं से और इधर उधर फैंके हुए आयुधों से अर्जुन ने सारे रास्ते को भर दिया था। तत्पश्चात् उन्होंने आकाश में भयंकर विद्युत् के कड़कने की ध्वनि को भी तिरस्कृत करते हुए भयंकर स्वर में अपने विशाल गाण्डीवधनुष की टंकार की। तब अर्जुन के बाणों से मारी हुई वह कौरवसेना सागर में तूफान से टकराये हुए जहाज के समान विदीर्ण होउठी।

महावातसमाविद्धा महानौरिव सागरे।
नानारूपाः प्राणहराः शरा गाण्डीवचोदिताः॥ १४॥
अलातोल्काशनिप्रख्यास्तव सैन्यं विनिर्दहन्।
महागिरौ वेणुवनं निशि प्रज्वलितं यथा॥ १५॥
तथा तव महासैन्यं प्रास्फुरच्छरपीडितम्।
महावने मृगगणा दावाग्नित्रासिता यथा॥ १६॥
कुरवः पर्यवर्तन्त निर्दग्धाः सव्यसाचिना।
उत्सृज्य च महाबाहुं भीमसेनं तथा रणे॥ १७॥
बलं कुरूणामुद्विग्नं सर्वमासीत् पराङ्मुखम्।

गाण्डीवधनुष से छूटे अनेकप्रकार के प्राणों को हरनेवाले बाण, जो अलात, उल्का और विद्युत् के समान चमक रहे थे आपकी सेना को दग्ध करने लगे। जैसे रात्रि में विशाल पर्वत पर बांसों का जंगल जल रहा हो उसीप्रकार बाणों से पीड़ित आपकी सेना इधर-उधर भाग रही थी। जैसे विशाल वन में दावानल से त्रस्त हरिणसमूह इधर-उधर भागते हैं, वैसे ही अर्जुन की बाणरूपी अग्नि में जलते हुए कौरव सैनिक चक्कर काटने लगे। तब कौरवों की वह भारी सेना महाबाहु भीम को छोड़कर युद्ध से विमुख होगयी।

ततः कुरुषु भग्नेषु बीभत्सुरपराजितः॥ १८॥
भीमसेनं समासाद्य मुहूर्तं सोऽभ्यवर्तत।
समागम्य च भीमेन मन्त्रयित्वा च फाल्गुनः॥ १९॥
विशल्यमरुजं चास्मै कथयित्वा युधिष्ठिरम्।
भीमसेनाभ्यनुज्ञातस्ततः प्रायाद् धनंजयः॥ २०॥
नादयन् रथघोषेण पृथिवीं द्यां च भारत।
ततः परिवृतो वीरैर्दशभिर्योधपुङ्गवैः॥ २१॥
दुःशासनादवरजैस्तव पुत्रैर्धनंजयः।

फिर कौरवयोद्धाओं के भागजाने पर, किसी से पराजित न होनेवाले अर्जुन भीमसेन से मिलकर थोड़ी देरतक उनके पास रहे। फिर भीमसेन से मिलकर, उनसे विचारविमर्श कर, युधिष्ठिर की कुशलता के विषय में उनसे कहकर और आज्ञा लेकर हे भारत! अपने रथ की ध्वनि से पृथिवी और आकाश को गुँजाते हुए, अर्जुन वहाँ से चल दिये। तभी आपके दस वीर, श्रेष्ठ योद्धापुत्रों ने जो दुश्शासन से छोटे थे अर्जुन को घेर लिया।

ते तमभ्यर्दयन् बाणैरुल्काभिरिव कुञ्जरम्॥ २२॥
आततेष्वसनाः शूरा नृत्यन्त इव भारत।
अपसव्यांस्तु तांश्चक्रे रथेन मधुसूदनः॥ २३॥
न युक्तान् हि स तान् मेने यमायाशु किरीटिना।
तथान्ये प्राद्रवन् मूढाः पराङ्मुखरथेऽर्जुने॥ २४॥
तेषामापततां केतूनश्वांश्चापानि सायकान्।
नाराचैरर्धचन्द्रैश्च क्षिप्रं पार्थो न्यपातयत्॥ २५॥
अथान्यैर्बहुभिर्भल्लैः शिरांस्येषामपातयत्।
रोषसंरक्तनेत्राणि संदष्टौष्ठानि भूतले।
तानि वक्त्राणि विबभुः कमलानीव भूरिशः॥ २६॥

जैसे मशालों से हाथी को मारा जाये, वैसेही हे भारत! अपने धनुषों को खींचे हुए, नाचते हुए से उन शूरवीरों ने अर्जुन को व्यथित कर दिया। तब श्रीकृष्ण ने यह सोचकर कि अर्जुन के लिये इन्हें मारना ठीक नहीं है, उन्हें अपने रथ के दाहिने कर दिया। तभी रथ के दूसरीतरफ मुड़ने पर दूसरे मूर्ख योद्धाओं ने उनपर आक्रमण कर दिया। तब अर्जुन ने शीघ्र ही उन आक्रमणकारियों के ध्वजों, घोड़ों, धनुषों और बाणों को नाराचों और अर्धचन्द्राकार बाणों से काट गिराया भल्लोंद्वारा उनके सिर काट दिये। उन कटे हुए सिरों की आँखें क्रोध से लाल होरही थीं और होंठ दाँतों दबे हुए थे। भूमि पर पड़े वे कमलों के समान प्रतीत होरहे थे।

चौंसठवाँ अध्याय : अर्जुन और भीम द्वारा संहार कर्ण की वीरता।

तं प्रयान्तं महावेगैरश्वैः कपिवरध्वजम्।
युद्धायाभ्यद्रवन् वीराः कुरूणां नवती रथाः॥ १॥
कृत्वा संशप्तका घोरं शपथं पारलौकिकम्।
परिवव्रुर्नरव्याघ्रा नरव्याघ्रं रणेऽर्जुनम्॥ २॥
त्वरमाणांस्तु तान् सर्वान् ससूते ष्वसनध्वजान्।
जघान नवतिं वीरानर्जुनो निशितैः शरैः॥ ३॥

वानर की ध्वजावाले अर्जुन को महान् वेगशाली घोड़ोंद्वारा बढ़ते हुए देखकर कौरवों के नव्वै रथी युद्ध के लिये आगे आगये। वे संशप्तक लोग थे। परलोक जाने की भयंकर शपथ लेकर उन नरव्याघ्रों ने नरव्याघ्र अर्जुन को युद्धक्षेत्र में घेर लिया। तब शीघ्रता करते हुए उनसारे वीरों को अर्जुन ने तीखे बाणों से सारथि, धनुष और ध्वजासहित मार गिराया।

ततो म्लेच्छाः स्थिता मत्तैस्त्रयोदशशतैर्गजैः।
पार्श्वतो व्यहनन् पार्थं तव पुत्रस्य शासनात्॥ ४॥
ततो गाण्डीवनिर्घोषो महानासीद् विशाम्पते।
स्तनतां कूजतां चैव मनुष्यगजवाजिनाम्॥ ५॥
कुञ्जराश्च हता राजन् दुद्रुवुस्ते समन्ततः।
अश्वाश्च पर्यधावन्त हतारोहा दिशो दश॥ ६॥
अश्वारोहा महाराज धावमाना इतस्ततः।
तत्र तत्रैव दृश्यन्ते निहताः पार्थसायकैः॥ ७॥
तस्मिन् क्षणे पाण्डवस्य बाह्वोर्बलमदृश्यत।
यत् सादिनो वारणांश्च रथांश्चैकोऽजयद् युधि॥ ८॥

तब आपके पुत्र के आदेश से तेरह सौ हाथियों के साथ म्लेच्छसैनिक बगल से आकर अर्जुन पर आक्रमण करने लगे। हे प्रजानाथ! तब अर्जुन के गाण्डीव की महान् टंकार होने लगी और आर्तनाद करते, चिंघाड़ते हुए मनुष्यों, हाथियों और घोड़ों की आवाजें वहाँ गूँजने लगीं। हे राजन्! हाथी घायल होकर सबतरफ भागने लगे और जिनके सवार मार दिये गये थे, ऐसे घोड़े भी सारी दिशाओं में दौड़ने लगे। हे महाराज! वहाँ अर्जुन के बाणों से घायल घुड़सवार भी जहाँतहाँ भागते हुए दिखाई देरहे थे। उस समय पाण्डुपुत्र की भुजाओं का बल देखा गया कि अकेले ही उसने युद्ध में उन रथियों, घुड़सवारों और हाथीसवारों को जीत लिया।

ततस्त्र्यङ्गेण महता बलेन भरतर्षभ।
दृष्ट्वा परिवृतं राजन् भीमसेनः किरीटिनम्॥ ९॥

हतावशेषानुत्सृज्य त्वदीयान्, कतिचिद् रथान्।
जवेनाभ्यद्रवद् राजन् धनंजयरथं प्रति॥ १०॥
हतावशिष्टांस्तुरगानर्जुनेन महाबलान्।
भीमो व्यधमदश्रान्तो गदापाणिर्महाहवे॥ ११॥
कार्ष्णायसतनुत्राणान् नरानश्वांश्च पाण्डवः।
पोथयामास गदया सशब्दं तेऽपतन् हताः॥ १२॥

हे भरतश्रेष्ठ राजन्! तब अर्जुन को तीन अंगोंवाली विशाल सेना से घिरा देखकर, मरने से बचे आपके कुछ रथियों को छोड़कर भीम तेजी से अर्जुन के रथ की तरफ दौड़े। भीम अभी थके नहीं थे। उन्होंने गदा हाथ में ली और अर्जुन के मारने से बचे महाबली घुड़सवारों को महान् युद्ध में गदा से नष्ट कर दिया। उस पाण्डुपुत्र ने काले लोहे का कवच बाँधे मनुष्यों और घोड़ों को गदा से मारा और वे आर्तनाद करते गिर पड़े।

दन्तैर्दशन्तो वसुधां शेरते क्षतजोक्षिताः।
भग्नमूर्धास्थिचरणाः क्रव्यादगणभोजनाः॥ १३॥
स मत्त इव मातङ्गः संक्रुद्धः पाण्डुनन्दनः।
प्रविवेश गजानीकं मकरः सागरं यथा॥ १४॥
विगाह्य च गजानीकं प्रगृह्य महतीं गदाम्।
क्षणेन भीमः संक्रुद्धस्तन्निन्ये यमसादनम्॥ १५॥
हत्वा तु तद् गजानीकं भीमसेनो महाबलः।
पुनः स्वरथमास्थाय पृष्ठतोऽर्जुनमभ्ययात्॥ १६॥

होठ चबाते हुए, खून से लथपथ, मारे हुए सैनिक भूमि पर सो रहे थे। उनके सिर, हड्डियाँ और पैर टूट गये थे, वे मांसभक्षी पशुओं का भोजन बन रहे थे। फिर मस्त हाथी के समान अत्यन्त क्रोध में भरे हुए पाण्डुपुत्र भीम ने हाथियों की सेना में इस प्रकार प्रवेश किया, जैसे मगरमच्छ सागर में प्रवेश करे। अत्यन्त क्रोध में भरे हुए भीम ने विशाल गदा को हाथ में लेकर, उस हाथियों की सेना को आलोडित करते हुए थोड़ी देर में ही उसे मृत्युलोक में पहुँचा दिया। महाबली भीमसेन उस गज सेना का संहार कर फिर अपने रथपर बैठकर अर्जुन के पीछे चलने लगे।

ततः कुरूणामभवदार्तनादो महान् नृप।
नराश्वनागासुहरैर्वध्य- तामर्जुनेषुभिः॥ १७॥
हाहाकृतं भृशं त्रस्तं लीयमानं परस्परम्।
अलातचक्रवत् सैन्यं तदाभ्रमत तावकम्॥ १८॥
तं दृष्ट्वा कुरवस्तत्र विक्रान्तं सव्यसाचिनम्।
निराशाः समपद्यन्त सर्वे कर्णस्य जीविते॥ १९॥
अविषह्यं तु पार्थस्य शरसम्पातमाहवे।
मत्वा न्यवर्तन् कुरवो जिता गाण्डीवधन्वना॥ २०॥

हे राजन्! तब मनुष्यों, घोड़ों और हाथियों के प्राणों को हरनेवाले, अर्जुन के बाणों से मारे जाते हुए कौरवसैनिकों का महान् आर्तनाद होने लगा। आपकी सेना हायहाय करती, अत्यन्तडरी, एकदूसरे के पीछे छिपती, अलातचक्र के समान चक्कर काटने लगी। उस समय सारे कौरव महारथी अर्जुन को इसप्रकार पराक्रम करते देखकर कर्ण के जीवन के विषय में निराश होगये। गाण्डीवधनुर्धारी अर्जुन से परास्त होकर, कौरव योद्धा अर्जुन की बाणवर्षा को असह्य मानकर युद्ध से पीछे हटने लगे।

ते हित्वा समरे कर्णं वध्यमानाश्च सायकैः।
प्रदुद्रुवुर्दिशो भीताश्चुक्रुशुश्चापि सूतजम्॥ २१॥
अभ्यद्रवत तान् पार्थः किरञ्शरशतान् बहून्।
हर्षयन् पाण्डवान् योधान् भीमसेनपुरोगमान्॥ २२॥
पुत्रास्तु ते महाराज जग्मुः कर्णरथं प्रति।
अगाधे मज्जतां तेषां द्वीपः कर्णोऽभवत्तदा॥ २३॥
सम्भग्नं हि बलं दृष्ट्वा बलात् पार्थेन तावकम्।
धनुर्विस्फारयन् कर्णस्तस्थौ शत्रुजिघांसया॥ २४॥

मारे जाते हुए भयभीत होकर कर्ण को छोड़कर वे सारी दिशाओं में भागने लगे, किन्तु फिरभी अपनी रक्षा के लिये, कर्ण को ही पुकारते रहे। कुन्तीपुत्र अर्जुन सैकड़ों बाणों को छोड़ते हुए, भीमसेन आदि पाण्डवयोद्धाओं को हर्षित करते हुए उन्हें खदेड़ने लगे। हे महाराज! तब आपके पुत्र भागकर कर्ण के रथ के पास गये। संकट के अगाध समुद्र में डूबते हुए उनके लिये उस समय कर्ण ही द्वीप के समान था। तब आपकी सेना को अर्जुन द्वारा बलपूर्वक भगाया हुआ देखकर कर्ण धनुष को टंकारता हुआ शत्रुओं के वध की इच्छा से खड़ा होगया।

विस्फार्य सुमहच्चापं ततश्चाधिरथिर्वृषः।
पञ्चालान् पुनराधावत् पश्यतः सव्यसाचिनः॥ २५॥
ततः क्षणेन क्षितिपाः क्षतजप्रतिमेक्षणाः।
कर्णं ववर्षुर्बाणौघैर्यथा मेघा महीधरम्॥ २६॥
ततः शरसहस्राणि कर्णमुक्तानि मारिष।
व्ययोजयन्त पञ्चालान् प्राणैः प्राणभृतां वर॥ २७॥
तत्र शब्दो महानासीत् पञ्चालानां महामते।

वध्यतां सूतपुत्रेण मित्रार्थे मित्रगृद्धिना॥ २८॥

अधिरथ का पुत्र कर्ण अपने विशाल धनुष को खींचकर अर्जुन के देखते हुए पुनः पाँचालयोद्धाओं की तरफ दौड़ पड़ा। तब वे पाँचालनरेश, जिनकी आँखें खून के समान लाल होरही थीं, पर्वत पर जल बरसानेवाले बादलों के समान क्षणभर में कर्ण के ऊपर बाणों की वर्षा करने लगे। हे प्राणधारियों में श्रेष्ठ, मान्यवर! तब कर्णद्वारा छोड़े हुए हजारों बाण पाँचालों को उनके प्राणों से विहीन करने लगे। हे महामति! वहाँ उस समय मित्र का हित चाहनेवाले कर्णद्वारा, मित्र के लिये मारे जाते हुए पाँचालों का महान् आर्तनाद होने लगा।

पैंसठवाँ अध्याय : सात्यकि द्वारा कर्णपुत्र प्रसेन का वध। कर्ण द्वारा कैकेय राजकुमार विशोक और सुतसोम का वध। दुश्शासन और भीम का युद्ध।

सूतं रथादञ्जलिकैर्निपात्य
जघान चाश्वाञ्जनमेजयस्य।
शतानीकं सुतसोमं च भल्लै-
रवाकिरद् धनुषी चाप्यकृन्तत्॥ १॥
धृष्टद्युम्नं निर्बिभेदाथ षड्भि-
र्जघानाश्वांस्तरसा तस्य संख्ये।
हत्वा चाश्वान् सात्यकेः सूतपुत्रः
कैकेयपुत्रं न्यवधीद् विशोकम्॥ २॥
तमभ्यधावन्निहते कुमारे
कैकेयसेनाप- तिरुग्रकर्मा।
शरैर्विधुन्वन् भृशमुग्रवेगैः
कर्णात्मजं चाप्यहनत् प्रसेनम्॥ ३॥

सूतपुत्र ने अंजलिक बाणों से जनमेजय के सारथि को गिराकर उसके घोड़ों को मार दिया। फिर उसने शतानीक और सुतसोम के धनुष काटकर उन्हें बाणों से भर दिया। पुनः उसने शीघ्रतापूर्वक युद्धस्थल में धृष्टद्युम्न को छः बाणों से घायलकर उसके घोड़ों को भी मार दिया और सात्यकि के घोड़ों को मारकर कैकेय राजकुमार विशोक का वध कर दिया। कैकेय राजकुमार के मारे जाने पर कैकेय सेनापति उग्रकर्मा ने अपने धनुष को हिलाते हुए, अत्यन्तउग्र बाणों से कर्ण पर आक्रमण किया और उसके पुत्र प्रसेन को भी घायल कर दिया।

तस्यार्धचन्द्रैस्त्रि- भिरुच्चकर्त
प्रहस्य बाहू च शिरश्च कर्णः।
हताश्वमञ्जोगतिभिः प्रसेनः
शिनिप्रवीरं निशितैः पृषत्कैः॥ ४॥
प्रच्छाद्य नृत्यन्निव कर्णपुत्रः
शैनेयबाणाभिहतः पपात।
पुत्रे हते क्रोधपरीतचेताः
कर्णः शिनीनामृषभं जिघांसुः॥ ५॥
हतोऽसि शैनेय इति ब्रुवन् स
व्यवासृजद् बाणममित्रसाहम्।
तमस्य चिच्छेद शरं शिखण्डी
त्रिभिस्त्रिभिश्च प्रतुतोद कर्णम्॥ ६॥
शिखण्डिनः कार्मुकं च ध्वजं च
छित्त्वा क्षुराभ्यां न्यपतत् सुजातः।

तब कर्ण ने हँसकर तीन अर्धचन्द्राकार बाणों से उसकी दोनों बाहों और सिर को काट दिया। जिसके घोड़े मारे गये थे, उस सात्यकि को प्रसेन ने तीखे और तीव्रगतिवाले बाणों से भर दिया, पर वह कर्णपुत्र स्वयं भी सात्यकि के बाणों से मारा हुआ नाचता हुआ सा गिर पड़ा। पुत्र के मारे जाने पर क्रोध से जिसका हृदय भर गया था, उस कर्ण ने शिनिपुत्र को मारने की इच्छा से एक शत्रुनाशक बाण उसके ऊपर छोड़ा और कहा कि हे सात्यकि! अब तुम मारे गये। किन्तु शिखण्डी ने उसके बाण को तीन बाणों से काट दिया और कर्ण को भी तीन बाणों से पीड़ित कर दिया। तब कर्ण ने दो क्षुरों से शिखण्डी के धनुष और ध्वज को काटकर नीचे गिरा दिया।

शिखण्डिनं षड्भिरविध्यदुग्रो
धार्ष्टद्युम्नेः स शिरश्चोच्चकर्त॥ ७॥
तथाभिनत् सुतसोमं शरेण

सुसंशितेनाधि- रथिर्महात्मा।
अथाक्रन्दे तुमुले वर्तमाने
धार्ष्टद्युम्ने निहते तत्र कृष्णः॥ ८॥
अपाञ्चाल्यं क्रियते याहि पार्थ
कर्णं जहीत्यब्रवीद् राजसिंह।
ततः प्रहस्याशु नरप्रवीरो
रथं रथेनाधिरथेर्जगाम॥ ९॥
भये तेषां त्राणमिच्छन् सुबाहु-
रभ्याहतानां रथयूथपेन।
तं भीमसेनोऽनुययौ रथेन
पृष्ठे रक्षन् पाण्डवमेकवीरः॥ १०॥
तौ राजपुत्रौ त्वरितौ रथाभ्यां
कर्णाय यातावरिभिर्विषक्तौ।

फिर उग्रवीर मनस्वी अधिरथपुत्र ने शिखण्डी को छः बाणों से घायल किया और धृष्टद्युम्न के पुत्र का सिर काट दिया। उसने अत्यन्ततीखे बाण से सुतसोम को भी क्षतविक्षत कर दिया। जब इसप्रकार भयंकर युद्ध चल रहा था और धृष्टद्युम्न का पुत्र मारा गया तब श्रीकृष्ण जी ने अर्जुन से कहा कि हे राजसिंह! कर्ण पाँचालों का संहार कर रहा है। तुम कर्ण को मारो। तब अच्छी भुजाओंवाले, नरश्रेष्ठ अर्जुन हँसकर, भय के समय मारे जाते हुओं की रक्षा चाहते हुए, रथ समूहों के स्वामी, रथ के द्वारा, शीघ्रता से कर्ण की तरफ चले। अकेले वीर भीमसेन तब अपने रथ से उनके पीछे रक्षा करते हुए चले। इसप्रकार वेदोनों राजकुमार शत्रुओं से लड़ते हुए शीघ्रतापूर्वक कर्ण की तरफ बढ़ने लगे।

अत्रान्तरे सुमहत् सूतपुत्र-
श्चक्रे युद्धं सोमकान् सम्प्रमृद्‌गन्॥ ११॥
रथाश्वमातङ्ग- गणाञ्जघान
प्रच्छादयामास शरैर्दिशश्च
तमुत्तमौजा जनमेजयश्च
क्रुद्धौ युधामन्युशिखण्डिनौ च॥ १२॥
कर्णं बिभिदुः सहिताः पृषत्कैः
संनर्दमानाः सह पार्षतेन।
ते पञ्च पाञ्चालरथप्रवीरा
वैकर्तनं कर्णमभिद्रवन्तः॥ १३॥
तस्माद् रथाच्च्यावयितुं न शेकु-
र्धैर्यात् कृतात्मानमिवेन्द्रियार्थाः।

इसीबीच सूतपुत्र ने सोमकों का संहार करते हुए अत्यन्तमहान् युद्ध किया। उसने रथों, घोड़ों और हाथियों के समूहों को मारा और सबतरफ को बाणों से भर दिया। तब द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्न के साथ उत्तमौजा, जनमेजय, युधामन्यु, और शिखण्डी क्रुद्ध होकर एकसाथ गर्जते हुए, कर्ण को बाणों से घायल करने लगे। वे पाँचों पाँचाल श्रेष्ठरथी कर्ण पर आक्रमण करके भी, उसे रथ से उसीप्रकार न गिरा सके, जैसे जितेन्द्रिय व्यक्ति को इन्द्रियों के विषय विचलित नहीं कर सकते।

तेषां धनूंषि ध्वजवाजिसूतां
स्तूर्णं पताकाश्च निकृत्य बाणैः॥ १४॥
तान् पञ्चभिस्त्वभ्यहनत् पृषत्कैः
कर्णस्ततः सिंह इवोन्ननाद
स शक्रचापप्रतिमेन धन्वना
भृशायतेनाधिरथिः शरान् सृजन्॥ १५॥
बभौ रणे दीप्तमरीचिमण्डलो
यथांशुमाली परिवेषवांस्तथा।
शिखण्डिनं द्वादशभिः पराभिन-
च्छितैः शरैः षड्भिरथोत्तमौजसम्॥ १६॥
त्रिभिर्युधामन्युम- विध्यदाशुगै-
स्त्रिभिस्त्रिभिः सोमकपार्षतात्मजौ।

तब कर्ण ने शीघ्रता से उनके धनुष, ध्वज, घोड़ों और सारथियों को बाणों से काटकर, उन्हें भी पाँच बाणों से घायलकर सिंह के समान गर्जना की। उस समय अपने इन्द्रधनुष के समान खींचे हुए गोलाकार धनुष से बाणों की वर्षा करता हुआ अधिरथपुत्र युद्धक्षेत्र में किरणों की परिधि से युक्त सूर्य के समान दीप्त होरहा था। उसने शिखण्डी को बारह, उत्तमौजा को छः, युधामन्यु को तीन और जनमेजय तथा धृष्टद्युम्न को तीन-तीन शीघ्रगामीतीखे बाणों से बींध दिया।

पराजिताः पञ्च महारथास्तु ते
महाहवे सूतसुतेन मारिष॥ १७॥
निरुद्यमास्तस्थुर- मित्रनन्दना
यथेन्द्रियार्थात्मवता पराजिताः।
निमज्जतस्तानथ कर्णसागरे
विपन्ननावो वणिजो यथार्णवे॥ १८॥

उद्दध्रिरे नौभिरिवार्णवाद् रथैः
सुकल्पितैर्द्रौपदिजाः स्वमातुलान्।

हे मान्यवर! वे पाँचों महारथी उस महायुद्ध में सूतपुत्र से पराजित होकर, अपने शत्रुओं को आनन्दित करते हुए, उद्यमरहित होकर वैसेही खड़े रह गये, जैसे जितेन्द्रिय व्यक्तिद्वारा पराजित इन्द्रियों के विषय उसे आकृष्ट नहीं कर पाते हैं। तब जैसे समुद्र में डूबते हुए व्यापारियों को, जिनकी नाव टूट जाती है, दूसरे नाववाले लोग बचा लेते है, उसीप्रकार द्रौपदी के पुत्रों ने अपने सुसज्जित रथों से कर्णरूपी सागर में डूबते हुए मामाओं को बचा लिया।

ततः शिनीनामृषभः शितैः शरै-
र्निकृत्य कर्णप्रहितानिषून् बहून्॥ १९॥
विदार्य कर्णं निशितैरयस्मयै-
स्तवात्मजं ज्येष्ठमविध्यदष्टभिः।
कृपोऽथ भोजश्च तवात्मजस्तथा
स्वयं च कर्णो निशितैरताडयत्॥ २०॥
स तैश्चतुर्भिर्युयुधे यदूत्तमो
समाततेनेष्वसनेन कूजता
भृशायतेना- मितबाणवर्षिणा
बभूव दुर्धर्षतरः स सात्यकिः॥ २१॥
शरन्नभोमध्यगतो यथा रविः
पुनः समास्थाय रथान् सुदंशिताः।
शिनिप्रवीरं जुगुपुः परंतपाः
समेत्य पाञ्चालामहारथा रणे॥ २२॥

तब शिनिश्रेष्ठ सात्यकि ने तीखे बाणों से कर्ण के छोड़े बहुतसे बाणों को काटकर और कर्ण को भी घायलकर, तीखे लोहे के आठ बाणों से आपके बड़े पुत्र दुर्योधन को घायल कर दिया। तब कृपाचार्य, कृतवर्मा, आपका पुत्र दुर्योधन और कर्ण तीखे बाणों से उसपर प्रहार करने लगे। वह यदुश्रेष्ठ उन चारों से युद्ध करता रहा। उस समय शरदऋतु के आकाश में चमकते हुए सूर्य के समान सात्यकि अपने अत्यन्तविशाल, कानतक खींचे, तथा टंकार करते हुए धनुष से अत्यन्त दुर्धर्ष होरहे थे। फिर वे परंतप, पूर्वोक्त पाँचाल महारथी भी, अच्छे कवच बाँधकर और रथों पर बैठकर युद्धक्षेत्र में आगये तथा सात्यकि की रक्षा करने लगे।

ततोऽभवद् युद्धमतीव दारुणं
तवाहितानां तव सैनिकैः सह।
रथाश्वमातङ्गविनाशनं तथा
यथा सुराणामसुरैः पुराभवत्॥ २३॥
रथा द्विपा वाजिपदातयस्तथा
भवन्ति नानाविधशस्त्रवेष्टिताः।
परस्परेणाभिहताश्च चस्खलु-
र्विनेदुरार्ता व्यसवोऽपतंस्तथा॥ २४॥
तथागते भीममभीस्तवात्मजः
ससार राजावरजः किरञ्शरैः।
तमभ्यधावत् त्वरितो वृकोदरो
महारुरुं सिंह इवाभिपेदिवान्॥ २५॥

फिर आपके शत्रुओं का आपके सैनिकों के साथ रथों, घोड़ों, और हाथियों का विनाश करनेवाला अत्यन्तदारुण युद्ध उसीप्रकार होने लगा, जैसे पहले देवताओं का असुरों के साथ हुआ था। उस समय रथ, हाथी, घोड़े और पैदल अनेकप्रकार के शस्त्रास्त्रों से आच्छादित होकर एकदूसरे से टकराते, लड़खड़ाते और प्राणहीन होकर गिर पड़ते थे। जब इसप्रकार युद्ध चल रहा था, तब राजा दुर्योधन का छोटा भाई आपका पुत्र दुश्शासन निर्भयता से बाणवर्षा करता हुआ भीम की तरफ दौड़ा। भीम ने भी शीघ्रता उसपर उसीप्रकार आक्रमण किया जैसे सिंह महारुरु नाम के मृग पर झपटता है। वे उसके पास जापहुँचे।

ततस्तयोर्युद्धमतीव दारुणं
प्रदीव्यतोः प्राणदुरोदरं द्वयोः।
परस्परेणाभि- निविष्टरोषयो-
रुदग्रयोः शम्बरशक्रयोर्यथा॥ २६॥
शरैः शरीरार्तिकरैः सुतेजनै-
र्निजघ्नतुस्तावितरेतरं भृशम्।
सकृत्प्रभिन्नाविव वासितान्तरे
महागजौ मन्मथसक्तचेतसौ॥ २७॥
तवात्मजस्याथ वृकोदरस्त्वरन्
धनुः क्षुराभ्यां ध्वजमेव चाच्छिनत्।
ललाटमप्यस्य बिभेद पत्रिणा
शिरश्च कायात् प्रजहार सारथेः॥ २८॥

फिर प्राणों की बाजी लगाकर जूआ खेलते हुए उनदोनों में अत्यन्तदारुण युद्ध होने लगा। उनमें एकदूसरे के प्रति क्रोध भरा हुआ था। वेदोनों प्रचण्डवीर शम्बरासुर और इन्द्र के समान परस्पर

युद्ध कर रहे थे। वे अत्यन्ततीखे, पीड़ा पहुँचानेवाले बाणों से एकदूसरे को अत्यन्त पीड़ित करने लगे। वे उसीप्रकार युद्ध कर रहे थे जैसे कामभावना से दो विशाल मद बहानेवाले हाथी एक हथिनी के लिये परस्पर लड़ रहे हों। फिर भीम ने शीघ्रता से दो क्षुरों से आपके पुत्र के धनुष और ध्वज को काट दिया। उसने एक बाण से उसके सिर को बींध कर दूसरे से उसके सारथी के सिर को काट दिया।

स राजपुत्रोऽन्यदवाप्य कार्मुकं
वृकोदरं द्वादशभिः पराभिनत्।
स्वयं नियच्छंस्तुरगानजिह्मगैः
शरैश्च भीमं पुनरप्यवीवृषत्॥ २९॥
ततः शरं सूर्यमरीचिसप्रभं
सुवर्णवज्रोत्तम- रत्नभूषितम्।
महेन्द्रवज्रा- शनिपातदुःसहं
मुमोच भीमाङ्गविदारणक्षमम्॥ ३०॥
स तेन निर्विद्धतनुर्वृकोदरो
निपातितः स्रस्ततनुर्गतासुवत्।
प्रसार्य बाहू रथवर्यमाश्रितः
पुनः स संज्ञामुपलभ्य चानदत्॥ ३१॥

तब उस राजपुत्र ने दूसरे धनुष को लेकर भीम को बारह बाणों की वर्षा से बींध दिया और स्वयं ही घोड़ों पर काबू रखते हुए सीधे जानेवाले बाणों की भीम पर वर्षा कर दी। फिर दुश्शासन ने सूर्य की किरणों के समान तेजस्वी, स्वर्ण हीरे आदि उत्तम रत्नों से विभूषित इन्द्र के वज्र और विद्युत् के समान दुःसह, भीमसेन के अंगों को विदीर्ण करने में समर्थ बाण को छोड़ा। उस बाण से भीम का शरीर घायल हो गया और वे प्राणहीन के समान, हाथों को फैलाकर, शिथिल शरीर से अपने श्रेष्ठ रथ में लुढ़क गये। पर थोड़ी देर में ही होश में आकर वे फिर गर्जने लगे।

छियासठवाँ अध्याय : भीम द्वारा दुश्शासन का रक्तपान और वध। युधामन्यु से कर्ण के भाई चित्रसेन का वध।

तत्राकरोद् दुष्करं राजपुत्रो
दुःशासनस्तुमुलं युद्ध्यमानः।
चिच्छेद भीमस्य धनुः शरेण
षष्ट्याशरैः सारथिमप्यविध्यत्॥ १॥
स तत् कृत्वा राजपुत्रस्तरस्वी
विव्याध भीमं नवभिः पृषत्कैः।
ततोऽभिनद् बहुभिः क्षिप्रमेव
वरेषुभिर्भीमसेनं महात्मा॥ २॥
ततः क्रुद्धो भीमसेनस्तरस्वी
शक्तिं चोग्रां प्राहिणोत् ते सुताय।
तामापतन्तीं सहसातिघोरां
दृष्ट्वा सुतस्ते ज्वलितामिवोल्काम्॥ ३॥
आकर्णपूर्णै- रिषुभिर्महात्मा
चिच्छेद पुत्रो दशभिः पृषत्कैः।

राजपुत्र दुश्शासन ने दुष्कर भयंकर युद्ध करते हुए भीम के धनुष को बाण से काट दिया। उसके सारथि को साठ बाणों की वर्षाकर घायल कर दिया। यह कार्य करके उस वेगवान् राजपुत्र ने भीम पर नौ बाणों से प्रहार किया तथा शीघ्रता और भी उत्तम बाणों से उस मनस्वी को बींध दिया। तब वेगशाली भीम ने क्रोध में भरकर एक भयंकर शक्ति को आपके पुत्र पर फैंका। उस अत्यन्तघोर प्रज्वलित उल्का के समान शक्ति को अपने ऊपर आती देखकर आपके मनस्वी पुत्र ने कानतक खींचे धनुष से छोड़े हुए दस बाणों से उसे काट दिया।

अथाशु भीमं च शरेण भूयो
गाढं स विव्याध सुतस्त्वदीयः॥ ४॥
विद्धोऽस्मि वीराशु भृशं त्वयाद्य
सहस्व भूयोऽपि गदाप्रहारम्।
उक्त्वैवमुच्चैः कुपितोऽथ भीमो
जग्राह तां भीमगदां वधाय॥ ५॥
अथैवमुक्तस्तन- यस्तवोग्रां
शक्तिं वेगात् प्राहिणोन्मृत्युरूपाम्।
आविध्य भीमोऽपि गदां सुघोरां
विचिक्षिपे रोषपरीतमूर्तिः॥ ६॥

सा तस्य शक्तिं सहसा विरुज्य
पुत्रं तवाजौ ताडयामास मूर्ध्नि।

फिर आपके पुत्र ने शीघ्रता से भीम को एक बाण से फिर गहरा घायल किया। तब भीम ने जोर से यह कहकर कि हे वीर! तूने आज शीघ्रतापूर्वक मुझे अत्यन्तघायल किया है, अब तूभी मेरी गदा के प्रहार को सहन कर क्रोध से एक भयंकर गदा को उसके वध के लिये उठाया। ऐसा कहे जाने पर आपके पुत्र ने एक भयंकर मृत्युस्वरूप शक्ति को तेजी से भीम के ऊपर फैंका। तब क्रुद्ध भीम ने भी उस अत्यन्त घोर गदा को घुमाकर उसके ऊपर फैंक दिया। उस गदा ने तुरन्त उस शक्ति को नष्टकर आपके पुत्र के सिर पर युद्धक्षेत्र में चोट पहुँचायी।

तया हतः पतितो वेपमानो
दुःशासनो गदया वेगवत्या॥ ७॥
दुःशासनं तत्र समीक्ष्य राजन्
भीमो महाबाहुरचिन्त्यकर्मा।
स्मृत्वाथ केशग्रहणं च देव्या
वस्त्रापहारं च रजस्वलायाः॥ ८॥
अनागसो भर्तृपराङ्मुखाया
दुःखानि दत्तान्यपि विप्रचिन्त्य।
जज्वाल क्रोधादथ भीमसेन
आज्यप्रसिक्तो हि यथा हुताशः॥ ९॥

उस वेगवती गदा की चोट खाकर दुश्शासन काँपता हुआ भूमिपर गिर पड़ा। हे राजन्! तब दुश्शासन को उस अवस्था में देखकर महाबाहु अचिन्त्यकर्मा भीमसेन पिछली बातों को याद करने लगे कि देवी द्रौपदी जो निरपराध थी और रजस्वला थी तथा जिसके पति ने भी जिसकी सहायता से मुख मोड़ा हुआ था, उसके इसने बाल पकड़े और कपड़े उतारने का प्रयत्न किया था। उसके दिये हुए दुःखों को यादकर घृत की आहुति से प्रज्ज्वलित हुई अग्नि के समान वे क्रोध से जलने लगे।

तत्राह कर्णं च सुयोधनं च
कृपं द्रोणिं कृतवर्माणमेव।
निहन्मि दुःशासनमद्य पापं
संरक्ष्यतामद्य समस्तायोधाः॥ १०॥
इत्येवमुक्त्वा सहसाभ्यधाव-
न्निहन्तुकामोऽ- तिबलस्तरस्वी।
तथा तु विक्रम्य रणे वृकोदरो
महागजं केसरिको यथैव॥ ११॥
निगृह्य दुःशासनमेकवीरः
सुयोधनस्याधिरथेः समक्षम्।
रथादवप्लुत्य गतः स भूमौ
यत्नेन तस्मिन् प्रणिधाय चक्षुः॥ १२॥
असिं समुद्यम्य सितं सुधारं
कण्ठे पदाऽऽक्रम्य च वेपमानम्।

तब वे कर्ण, दुर्योधन, कृपाचार्य, द्रोणपुत्र और कृतवर्मा सबको सम्बोधित करके बोले कि मैं आज इस पापी दुश्शासन को मार रहा हूँ, तुम इसकी रक्षा कर सकते हो तो कर लो। ऐसा कहकर वे अत्यन्त बलवाले वेगवान् भीम सहसा, उसे मारने को कूदकर भूमि पर आगये और जैसे सिंह विशाल हाथी पर झपटता है, वैसेही उसकी तरफ दौड़े। उस समय उन्होंने उसी की तरफ यत्नपूर्वक नेत्र जमा रखे थे उस अद्वितीयवीर ने अच्छी धारवाली तीखी तलवार को लेकर, युद्ध में पराक्रम से दुर्योधन तथा कर्ण के सामने ही काँपते हुए दुश्शासन को पकड़ लिया और उसके गले पर लात मारी।

उवाच तद्गौरिति यद् ब्रुवाणो
हृष्टो वदेः कर्णसुयोधनाभ्याम्॥ १३॥
ये राजसूयावभृथे पवित्रा
जाताः कचा याज्ञसेन्या दुरात्मन्।
ते पाणिना कतरेणावकृष्टा-
स्तद् ब्रूहि त्वां पृच्छति भीमसेनः॥ १४॥
श्रुत्वा तु तद् भीमवचः सुघोरं
दुःशासनो भीमसेनं निरीक्ष्य।
संशृण्वतां कौरवसोमकानाम्
जगाद भीमं परिवर्तनेत्रः॥ १५॥

फिर उन्होंने उससे कहा कि अरे दुरात्मा! तुझे याद है जब तूने कर्ण और दुर्योधन के साथ बड़ी खुशी में मुझे बैल कहकर पुकारा था। तूने द्रौपदी के बालों को जो राजसूय यज्ञ के स्नान में पवित्र थे, पकड़ा था। भीमसेन पूछता है कि तूने किस हाथ से उन बालों को खींचा था? भीम के उस अत्यन्तघोर वचन को सुनकर दुश्शासन ने भीमसेन को देखकर, अपनी आँखों को घुमाकर, कौरवों और

सोमकों के सुनते हुए कहा कि–

अनेन याज्ञसेन्या मे भीम केशा विकर्षिताः।
पश्यतां कुरुमुख्यानां युष्माकं च सभासदाम्॥ १६॥

अरे भीम! इस हाथ से मैंने तुम्हारे, सभासदों के और कौरवप्रमुखों के देखते हुए द्रौपदी के बाल खींचे थे।

एवं त्वसौ राजसुतं निशम्य
ब्रुवन्तमाजौ विनिपीड्य वक्षः।
भीमो बलात्तं प्रतिगृह्य दोर्भ्या-
मुच्चैर्ननादाथ समस्तयोधान्॥ १७॥
उवाच यस्यास्ति बलं स रक्ष-
त्वसौ भवेदद्य निरस्तबाहुः।
दुःशासनं जीवितं प्रोत्सृजन्त-
माक्षिप्य योधां स्तरसा महाबलः॥ १८॥
एवं क्रुद्धो भीमसेनः करेण
उत्पाटयामास भुजं महात्मा।
दुःशासनं तेन स वीरमध्ये
जघान वज्राशनिसंनिभेन॥ १९॥

युद्धक्षेत्र में राजपुत्र को ऐसा कहते हुए सुनकर भीम ने उसकी छाती पर चढ़कर, दोनों हाथों से उसे बलपूर्वक पकड़कर, जोर से चिल्लाकर और सिंहनाद कर– सारे योद्धाओं से कहा कि आज दुश्शासन की बाँह उखाड़ी जारही है, जिसमें शक्ति है वह इसकी रक्षा कर ले। यह अपने प्राणों को छोड़ रहा है। इसप्रकार योद्धाओं को ललकारकर क्रुद्ध, महाबली, मनस्वी भीमसेन ने वेगपूर्वक एकही हाथ से दुश्शासन की बाँह उखाड़ ली और वज्र के समान कठोर उस बाँह से वे वीरों के बीच में दुश्शासन को पीटने लगे।

उत्कृत्य वक्षः पतितस्य भूमा-
वथापिबच्छोणितमस्य कोष्णम्।
ततो निपात्यास्य शिरोऽपकृत्य
तेनासिना तव पुत्रस्य राजन्॥ २०॥
सत्यां चिकीर्षुर्मतिमान् प्रतिज्ञां
भीमोऽपिबच्छोणितमस्य कोष्णम्।
आस्वाद्य चास्वाद्य च वीक्षमाणः
क्रुद्धो हि चैनं निजगाद वाक्यम्॥ २१॥
स्तन्यस्य मातुर्मधुसर्पिषोर्वा
माध्वीकपानस्य च सत्कृतस्य।
दिव्यस्य वा तोयरसस्य पानात्
पयोदधिभ्यां मथिताच्च मुख्यात्॥ २२॥
अन्यानि पानानि च यानि लोके
सुधामृतस्वादुरसानि तेभ्यः।
सर्वेभ्य एवाभ्यधिको रसोऽयं
ममाद्य चास्याहितलोहितस्य॥ २३॥

फिर भूमि पर पड़े दुश्शासन की छाती फाड़कर वे उसके गर्म खून को पीने लगे। उठने का प्रयत्न करते हुए उसे पुनः गिराकर तलवार से आपके पुत्र के सिर को काटकर, वह मतिमान् भीम अपनी प्रतिज्ञा को सत्य करने के लिये उसके गर्म खून को पीने लगे। उन्होंने उसका स्वाद ले लेकर और क्रोध से उनकी तरफ देखते हुए कहा कि– मैंने आजतक माता के दूध, मधु, घी, अच्छी तरह तैयार किये गये मधूक पुष्प निर्मित पेय पदार्थ, दिव्य जल का रस, दूध, दही से बिलोये हुए ताजे मक्खन आदि जो भी दूसरे अमृत के समान रसीले पदार्थ चखे हैं, उन सबमें अधिक इस शत्रु के खून का स्वाद है।

अथाह भीमः पुनरुग्रकर्मा
दुःशासनं क्रोधपरीतचेताः।
गतासुमालोक्य विहस्य सुस्वरं
किं वा कुर्यां मृत्युना रक्षितोऽसि॥ २४॥
एवं ब्रुवाणं पुनराद्रवन्त
मास्वाद्य रक्तं तमतिप्रहृष्टम्।
ये भीमसेनं ददृशुस्तदानीं
भयेन तेऽपि व्यथिता निपेतुः॥ २५॥
तस्मिन् कृते भीमसेनेन रूपे
दृष्ट्वा जनाः शोणितं पीयमानम्।
सम्प्राद्रवंश्चित्रसेनेन सार्धं
भीमं रक्षो भाषमाणा भयार्ताः॥ २६॥
युधामन्युः प्रद्रुतं चित्रसेनं
सहानीकस्त्वभ्ययाद् राजपुत्रः।
विव्याध चैनं निशितैः पृषत्कै-
र्व्यपेतभीः सप्तभिराशुमुक्तैः॥ २७॥

फिर उग्रकर्म करनेवाले, क्रोध से भरे हुए, दुश्शासन को निष्प्राण देखकर जोर से हँसते हुए कि अब मैं क्या करूँ? तुझे मृत्यु ने बचा लिया, और

अत्यन्त प्रसन्नता से उसके खून का स्वाद लेकर उछलते हुए भीम को उस समय जिन्होंने देखा, वे भी भय से पीड़ित होकर भूमि पर गिर पड़े। खून पीते हुए भीमसेन के उस भयंकर रूप को देखकर वे लोग भीम को राक्षस बताते हुए भयभीत होकर चित्रसेन के साथ भाग निकले। तब भागते हुए चित्रसेन का राजकुमार युधामन्यु ने अपनी सेना के साथ पीछा किया और निर्भय होकर शीघ्रता से सात तीखे बाणों से उसे बींध दिया।

संक्रान्तभोग इव लेलिह्यानो
महोरगः क्रोधविषं सिसृक्षुः।
निवृत्य पाञ्चालजमभ्यविध्य-
त् त्रिभिः शरैः सारथिमस्य षड्भिः॥ २८॥
ततः सुपुङ्खेन सुयन्त्रितेन
सुसंशिताग्रेण शरेण शूरः।
आकर्णमुक्तेन समाहितेन
युधामन्युस्तस्य शिरो जहार॥ २९॥
तस्मिन् हते भ्रातरि चित्रसेने
क्रुद्धः कर्णः पौरुषं दर्शयानः।
व्यद्रावयत् पाण्डवानामनीकं
प्रत्युद्यातो नकुलेनामितौजाः॥ ३०॥

तब कुचले शरीरवाले, जीभ लपलपाते, क्रोधरूपी विष को छोड़ने के इच्छुक महान् सर्प के समान चित्रसेन ने लौटकर पाँचालराज कुमार को तीन बाणों से और उसके सारथि को छः बाणों से बींध दिया। तब शूरवीर युधामन्यु ने धनुष को कानतक खींचकर छोड़े, अच्छे पंखवाले, अच्छी तरह से संधान किये, तीखी धारवाले, नियन्त्रित बाण से चित्रसेन के सिर को काट लिया। तब अपने भाई चित्रसेन के मारे जाने पर क्रुद्ध कर्ण ने अपने पौरुष को दिखाते हुए पाण्डवों की सेना को भगाना आरम्भ किया। तब अमित ओजस्वी नकुल ने उसका सामना किया।

भीमोऽपि हत्वा तत्रैव दुःशासनममर्षणम्।
पूरयित्वाञ्जलिं भूयो रुधिरस्योग्रनिःस्वनः॥ ३१॥
शृण्वतां लोकवीराणामिदं वचनमब्रवीत्।
एष ते रुधिरं कण्ठात् पिबामि पुरुषाधम॥ ३२॥
ब्रूहीदानीं तु संहृष्टः पुनर्गौरिति गौरिति।
ये तदास्मान् प्रनृत्यन्ति पुनर्गौरिति गौरिति॥ ३३॥
तान् वयं प्रतिनृत्यामः पुनर्गौरिति गौरिति।
इत्युक्त्वा वचनं राजञ्जयं प्राप्य वृकोदरः।
पुनराह महाराज, स्मयंस्तौ केशवार्जुनौ॥ ३४॥

भीम ने अमर्षशील दुश्शासन को मारकर उसने खून से फिर अंजुलि भरकर, ऊँची आवाज में सारे वीरों के सुनते हुए यह कहा कि अरे नीच पुरुष! मैं तेरे गले का खून पी रहा हूँ। प्रसन्न होकर तू फिर इसी गले से हमें बैल कहकर पुकार। जो उस दिन हमें बैल बैल कहकर खुशी से नाचे थे, आज हम उन्हें बैल कहकर नाच रहे हैं। हे महाराज! हे राजन्! ऐसा कहकर और विजय को प्राप्तकर भीम ने मुस्कराते हुए अर्जुन और श्रीकृष्ण से कहा कि—

असृग्दिग्धो विस्रवल्लोहितास्यः
क्रुद्धोऽत्यर्थं भीमसेनस्तरस्वी।
दुःशासने यद् रणे संश्रुतं मे
तद् वै सत्यं कृतमद्येह वीरौ॥ ३५॥

हे वीरों! दुश्शासन के विषय में मैंने जो प्रतिज्ञा की थी, उसे आज युद्धभूमि में पूरा कर दिया है। उस समय अत्यन्तक्रुद्ध, वेगवान् और खून से भरे हुए भीम का मुख रक्त से लाल होरहा था।

सड़सठवाँ अध्याय : भीम द्वारा धृतराष्ट्र के दस पुत्रों का वध। कर्ण का भयभीत होना, शल्य द्वारा सान्त्वना। नकुल और वृषसेन का युद्ध।

दुःशासने तु निहते तव पुत्रा महारथाः।
महाक्रोधविषा वीराः समरेष्वपलायिनः॥ १॥
दश राजन् महावीर्या भीमं प्राच्छादयञ्शरैः।
निषङ्गी कवची पाशी दण्डधारो धनुर्ग्रहः॥ २॥
अलोलुपः शलः सन्धो वातवेगसुवर्चसौ।
एते समेत्य सहिता भ्रातृव्यसनकर्शिताः॥ ३॥
भीमसेनं महाबाहुं मार्गणैः समवारयन्।

हे राजन्! तब भीमद्वारा दुश्शासन के मारे जाने पर आपके दस महारथी महातेजस्वी वीर पुत्रों ने जो अत्यन्त क्रोध में भरे हुए और युद्ध में भागने वाले नहीं थे भीम को बाणों से आच्छादित कर दिया। निषंगी, कवची, पाशी, दण्डधार, धनुर्ग्रह, अलोलुप, शल, सन्ध, वातवेग और सुवर्चा भाई की मृत्यु से दुःखी होकर ये सारे एकत्र होकर महाबाहु भीम को बाणों से रोकने लगे।

स वार्यमाणो विशिखैः समन्तात् तैर्महारथैः॥ ४॥
भीमः क्रोधाग्निरक्ताक्षः क्रुद्धः काल इवाबभौ।
तांस्तु भल्लैर्महावगैर्दशभिर्दश भारतान्॥ ५॥
रुक्माङ्गदान् रुक्मपुङ्खैः पार्थो निन्ये यमक्षयम्।
हतेषु तेषु वीरेषु प्रदुद्राव बलं तव॥ ६॥
पश्यतः सूतपुत्रस्य पाण्डवस्य भयार्दितम्।
ततः कर्णो महाराज प्रविवेश महद्भयम्॥ ७॥
दृष्ट्वा भीमस्य विक्रान्तमन्तकस्य प्रजास्विव।
तस्य त्वाकारभावज्ञः शल्य समितिशोभनः॥ ८॥
उवाच वचनं कर्णं प्राप्तकालमरिंदमम्।

उन महारथियोंद्वारा बाणों से चारोंतरफ से रोके जाते हुए, क्रोधाग्नि से लाल आँखोंवाले, क्रुद्ध भीम मृत्यु के समान प्रतीत होने लगे। तब सोने के बाजूबन्दों से विभूषित उन दसों भरतवंशियों को कुन्तीपुत्र ने सुनहरे पंखवाले, दस महावेगवाले भल्लों से मृत्युलोक में पहुँचा दिया। उन वीरों के मारे जाने पर पाण्डुपुत्र के भय से पीड़ित आपकी सेना सूतपुत्र के देखते हुए ही वहाँ से भागने लगी। तब जैसे सारेलोग मृत्यु से भीत होते हैं वैसे ही हे महाराज! भीम के पराक्रम को देखकर कर्ण में भी महान् भय का संचार होने लगा। तब युद्ध में शोभा देनेवाले और आकृति से मन के भावों को समझनेवाले शल्य ने शत्रुदमन कर्ण से समय के अनुसार यह कहा कि–

मा व्यथां कुरु राधेय नैव त्वय्युपपद्यते॥ ९॥
एते द्रवन्ति राजानो भीमसेनभयार्दिताः।
दुर्योधनश्च सम्मूढो भ्रातृव्यसनकर्शितः॥ १०॥
दुःशासनस्य रुधिरे पीयमाने महात्मना।
व्यापन्नचेतसश्चैव शोकोपहतचेतसः॥ ११॥
दुर्योधनमुपासन्ते परिवार्य समन्ततः।
कृपप्रभृतयश्चैते हतशेषाः सहोदराः॥ १२॥

हे राधापुत्र! तुम व्यथित मत होओ। तुम्हारे लिये यह उचित नहीं है। भीमसेन के भय से पीड़ित ये राजालोग भाग रहे हैं और भाई की मृत्यु से दुःखी दुर्योधन भी किंकर्त्तव्य विमूढ हो गया है। जब मनस्वी भीम दुश्शासन का खून पी रहे थे। तब कृपाचार्य आदि वीर तथा मरने से बचे दुर्योधन के भाई संकटग्रस्त और शोकभरे हृदय से दुर्योधन को चारोंतरफ से घेरकर खड़े होगये थे।

पाण्डवा लब्धलक्ष्याश्च धनंजयपुरोगमाः।
त्वामेवाभिमुखाः शूरा युद्धाय समुपस्थिताः॥ १३॥
स त्वं पुरुषशार्दूल पौरुषेण समास्थितः।
क्षत्रधर्मं पुरस्कृत्य प्रत्युद्याहि धनंजयम्॥ १४॥
भारो हि धार्तराष्ट्रेण त्वयि सर्वः समाहितः।
तमुद्वह महाबाहो यथाशक्ति यथाबलम्॥ १५॥
वृषसेनश्च राधेय संक्रुद्धस्तनयस्तव।
त्वयि मोहं समापन्ने पाण्डवानभिधावति॥ १६॥
एतच्छ्रुत्वा तु वचनं शल्यस्यामिततेजसः।
हृदि चावश्यकं भावं चक्रे युद्धाय सुस्थिरम्॥ १७॥

अर्जुन आदि पाण्डवों ने अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लिया है और अब वे वीर तुम्हारे सामने युद्ध के लिये उपस्थित हो रहे हैं। हे पुरुषसिंह! तुम अब पौरुष में स्थित रहते हुए, और क्षत्रिय धर्म का पालन करते हुए अर्जुन का सामना करो। हे महाबाहु! धृतराष्ट्र पुत्र ने सारा भार तुम्हारे ही ऊपर डाला हुआ है। तुम अपनी शक्ति और बल के अनुसार उस भार को वहन करो। हे राधापुत्र! तुम्हारा पुत्र वृषसेन

आपके मोह को प्राप्त होने के कारण, अत्यन्त क्रोध में भरकर पाण्डवों पर आक्रमण कर रहा है। अमित तेजस्वी शल्य के ये वचन सुनकर कर्ण ने अपने हृदय में युद्ध के लिये आवश्यक भावों को दृढ़ किया।

ततः क्रुद्धो वृषसेनोऽभ्यधाव-
दवस्थितं प्रमुखे पाण्डवं तम्।
गदाहस्तं योधयन्तं त्वदीयान्
तमभ्यधावन्नकुलः प्रवीरो॥ १८॥
रोषादमित्रं प्रतुदन् पृषत्कैः
कर्णस्य पुत्रं समरे प्रहृष्टं।
ततो ध्वजं स्फाटिकचित्रकञ्चुकं
चिच्छेद वीरो नकुलः क्षुरेण॥ १९॥
कर्णात्मजस्येष्वसनं च चित्रं
भल्लेन जाम्बूनदचित्रनद्धम्।

तब क्रुद्ध वृषसेन सामने खड़े, गदा हाथ में लेकर आपके सैनिकों से युद्ध करते हुए पाण्डुपुत्र भीम की तरफ दौड़ा। तब युद्धभूमि में जो उत्साह से शत्रुओं को बाणों से पीड़ित कर रहा था, उस कर्ण के पुत्र की तरफ उत्तम वीर नकुल क्रोध से दौड़े। फिर नकुल ने स्फटिकमणि से युक्त विचित्र चोले से सुसज्जित उसके ध्वज को क्षुर से काट दिया। उसने कर्ण पुत्र के विचित्र और स्वर्ण भूषित धनुष को भी भल्ल से छिन्न कर दिया।

अथान्यदादाय धनुः स शीघ्रं
कर्णात्मजः पाण्डवमभ्यविध्यत्॥ २०॥
दिव्यैरस्त्रैरभ्यवर्षच्च सोऽपि
कर्णस्य पुत्रो नकुलं कृतास्त्रः।
शराभिघाताच्च रुषा च राजन्
स्वया च भासास्त्रसमीरणाच्च॥ २१॥
जज्वाल कर्णस्य सुतोऽतिमात्र-
मिद्धो यथाऽऽज्याहुतिभिर्हुताशः।
कर्णस्य पुत्रो नकुलस्य राजन्
सर्वानश्वान- क्षिणोदुत्तमास्त्रैः॥ २२॥
वनायुजान् वै नकुलस्य शुभ्रा-
नुदग्रगान् हेमजालावनद्धान्।

कर्णपुत्र ने शीघ्र ही दूसरे धनुष को लेकर उससे पाण्डुपुत्र को बींध दिया। अस्त्रविद्या के वेत्ता कर्णपुत्र वृषसेन ने, नकुल पर दिव्यास्त्रों की वर्षा कर दी। तब कर्ण का पुत्र बाणों के प्रहार से, क्रोध से, अपने तेज से और अस्त्रों के प्रयोग से अत्यधिक रूप में ऐसे जलने लगा, जैसे घी की आहुति से अग्नि प्रज्वलित हो जाती है। उसने नकुल के वनायु देशीय सारे अश्वों को, जो श्वेत वर्ण के, तीव्रगामी, और सुनहरी जाली से आच्छादित थे, उत्तम अस्त्रों से मार दिया।

ततो हताश्वादवरुह्य याना-
दादाय चर्मामलरुक्मचन्द्रम्॥ २३॥
आकाशसंकाशमसिं प्रगृह्य
दोधूयमानः खगवच्चचार।
स तेन विद्धोऽतिभृशं तरस्वी
महाहवे वृषसेनेन राजन्॥ २४॥
क्रुद्धेन धावन् समरे जिघांसुः
कर्णात्मजं पाण्डुसुतो नृवीरः।

तब मरे घोड़ों वाले रथ से उतरकर, निर्मल चन्द्रचिह्नों से युक्त ढाल को और आकाश के समान स्वच्छ तलवार को लेकर, उसे घुमाते हुए नकुल पक्षी के समान विचरने लगे। हे राजन्! तब उस क्रोध में भरे वृषसेन से महायुद्ध में अत्यन्तघायल होकर नरवीर पाण्डुपुत्र युद्धक्षेत्र में कर्ण के पुत्र को मारने की इच्छा से उसकी तरफ दौड़े।

वितत्य पक्षौ सहसा पतन्तं
श्येनं यथैवामिषलुब्धमाजौ॥ २५॥
अवाकिरद् वृषसेनस्ततस्तं
शितैः शरैर्नकुलमुदारवीर्यम्।
स तान् मोघांस्तस्य कुर्वञ्शरौघां-
श्चचार मार्गान् नकुलश्चित्ररूपान्॥ २६॥
अथास्य तूर्णं चरतो नरेन्द्र
खड्गेन चित्रं नकुलस्य तस्य।
महेषुभिर्व्यधमत् कर्णपुत्रो
महाहवे चर्म सहस्रतारम्॥ २७॥
तं चायसं निशितं तीक्ष्णधारं
विकोशमुग्रं गुरुभारसाहम्।
द्विषच्छरीरान्तकरं सुघोर-
माधुन्वतः सर्पमिवोग्ररूपम्॥ २८॥
क्षिप्रं शरैः षड्भिरमित्रसाह-
श्चकर्त खड्गं निशितैः सुवेगैः।
पुनश्च दीप्तैर्निशितैः पृषत्कैः
स्तनान्तरे गाढमथाभ्यविद्ध्यत्॥ २९॥

तब जैसे माँस का लोभी बाज अपने पंखों, को फैलाकर अचानक झपट्टा मारता है, उसी प्रकार युद्धक्षेत्र में आक्रमण करते हुए महापराक्रमी नकुल को वृषसेन ने तीखे बाणों से भर दिया। नकुल तब उसके अमोघ बाणों को व्यर्थ करते हुए तलवार के विचित्र पैंतरों का प्रदर्शन करने लगे। तब खड्ग के विचित्र हाथों को अपनाते हुए नकुल की सहस्र तारिकाओं वाली ढाल को कर्णपुत्र ने महान् युद्ध में अपने महान् बाणों से काट दिया। फिर उनकी लोहे की, पैनी, तीखी धारवाली, म्यान से निकली, भारी भार को सहन करनेवाली, शत्रुओं के शरीरों का अन्त करनेवाली, अत्यन्त घोर, सर्प समान उग्ररूपवाली, घुमायी जाती हुई उस तलवार को शत्रुओं का सामना करने में समर्थ वृषसेन ने अपने अत्यन्त वेगवान् तीखे छः बाणों से शीघ्रता से काट दिया और फिर तीखे चमचमाते हुए बाणों से उनकी छाती को गहराघायल कर दिया।

ययौ रथं भीमसेनस्य राजन्
माद्रीसुतः कर्णसुताभितप्तः।
आपुप्लुवे सिंह इवाचलाग्रं
सम्प्रेक्षमाणस्य धनंजयस्य॥ ३०॥
ततः क्रुद्धो वृषसेनो महात्मा
ववर्ष ताविषुजालेन वीरः।
महारथावेकरथे समेतौ
शरैः प्रभिन्दन्निव पाण्डवेयौ॥ ३१॥

तब वह मनस्वी माद्रीपुत्र, हे राजन्! कर्ण के पुत्र से संतप्त होकर भीमसेन के रथ की तरफ गये और सिंह जैसे पर्वतशिखर पर चढ़ जाता है, वैसे ही अर्जुन के देखते हुए उछलकर उसपर चढ़ गये। तब क्रुद्ध मनस्वी वीर वृषसेन एकरथ पर इकट्ठे बैठे हुए उनदोनों पाण्डव महारथियों को बाणों से घायल करता हुआ उनपर बाणों की वर्षा करने लगा।

अथाब्रवीन्मारुतिः फाल्गुनं च
पश्यस्वैनं नकुलं पीड्यमानम्।
अथाब्रवीन्नकुलो वीक्ष्य वीर-
मुपागतं शातय शीघ्रमेतम्॥ ३२॥
इत्येवमुक्तः सहसा किरीटी
भ्रात्रा समक्षं नकुलेन संख्ये।
कपिध्वजं केशवसंगृहीतं
प्रैषीदुदग्रो वृषसेनाय वाहम्॥ ३३॥

फिर वायुपुत्र ने अर्जुन से कहा कि तुम पीड़ा पाते हुए नकुल को देखो। तब नकुल ने भी समीप आये अर्जुन से कहा कि हे वीर! तुम इसे जल्दी मार दो। तब युद्धक्षेत्र में सामने आये भाई नकुल के ऐसा कहने पर, किरीटधारी अर्जुन ने श्रीकृष्ण जी के द्वारा संचालित, वानर की ध्वजा वाले रथ को वृषसेन की तरफ तीव्रगति से हाँक दिया।

अड़सठवाँ अध्याय : कौरवों द्वारा कुलिन्दराज के पुत्रों का वध। अर्जुन द्वारा वृषसेन का वध।

नकुलमथ विदित्वा छिन्नबाणासनासिं
विरथमरिशरार्तं कर्णपुत्रास्त्रभग्नम्।
पवनधुतपताकाह्लादिनो वल्गिताश्वा
वरपुरुषनियुक्तास्ते रथैः शीघ्रमीयुः॥ १॥
द्रुपदसुतवरिष्ठाः पञ्च शैनेयषष्ठा
द्रुपददुहितृपुत्राः पञ्च चामित्रसाहाः।
द्विरदरथनराश्वान् सूदयन्तस्त्वदीयान्
भुजगपतिनिकाशैर्मार्गणैरात्तशस्त्राः॥ २॥

तब यह जानकर कि कर्ण के पुत्र ने नकुल के धनुष और तलवार को काट दिया है, उन्हें रथ से हीन कर दिया है, वे शत्रु के बाणों से पीड़ित हैं और अस्त्रों से पराजित हैं, द्रुपद के पाँच श्रेष्ठ पुत्र, सात्यकि और द्रौपदी के पाँचों शत्रुओं का सामना करने में समर्थ पुत्र, ये श्रेष्ठ पुरुषों से प्रेरित होकर, अपने रथों द्वारा, जिनपर पताकाएँ लहरा रहीं थी और उत्साहित घोड़े उछल रहे थे, हाथों में हथियार लिये, सर्पराजों के समान बाणों से आपके हाथी, रथ और घोड़ों को मारते हुए वहाँ आ पहुँचे।

अथ तव रथमुख्यास्तान् प्रतीयुस्त्वरन्तः
कृपहृदिकसुतौ च द्रौणिदुर्योधनौ च।

शकुनिसुतवृकौ च क्राथदेवावृधौ च
द्विरदजलदघोषैः स्यन्दनैः कार्मुकैश्च॥ ३॥
तव नृप रथिवर्यांस्तान् दशैकं च वीरान्
नृवर शरवराग्रैस्ताडयन्तोऽभ्यरुन्धन्।
नवजलदसवर्णैर्हस्तिभिस्तानुदीयु-
र्गिरिशिखरनिकाशैर्भीमवेगैः कुलिन्दाः॥ ४॥

तब आपके प्रमुख रथी कृपाचार्य, कृतवर्मा, द्रोणपुत्र, दुर्योधन, शकुनिपुत्र उलूक और वृक, क्राथ और देवावृध, ये हाथी और बादलों के समान शब्द वाले रथों द्वारा, धनुषों को लेकर शीघ्रता से उनका सामना करने को आपहुँचे। हे नरश्रेष्ठ राजन्! तब आपके श्रेष्ठ रथियों ने उन ग्यारह बीरों को अपने श्रेष्ठ बाणों से प्रहार करते हुए रोक दिया। फिर कुलिन्ददेश के योद्धा पर्वत शिखरों के समान ऊँचे, भयंकर वेगवाले और नये बादलों के समान रंगवाले हाथियों द्वारा उनके ऊपर चढ़ आये।

कुलिन्दपुत्रो दशभिर्महायसैः
कृपं ससूताश्वमपीडयद् भृशम्।
ततः शरद्वत्सुतसायकैर्हतः
सहैव नागेन पपात भूतले॥ ५॥
कुलिन्दपुत्रावरजस्तु तोमरै-
र्दिवाकरांशु- प्रतिमैरयस्मयैः।
रथं च विक्षोभ्य ननाद नर्दत-
स्ततोऽस्य गान्धारपतिः शिरोऽहरत्॥ ६॥

कुलिन्दराज के पुत्र ने दस लोहे के विशाल बाणों से सारथि और घोड़ों सहित कृपाचार्य को अत्यन्त पीड़ित किया। फिर वह कृपाचार्य के बाणों से मारा जाकर अपने हाथी के साथ ही भूमि पर गिर पड़ा। कुलिन्दराज के पुत्र का छोटा भाई सूर्य की किरणों के समान जगमगाते हुए लोहे के तोमरों से गान्धारराज के रथ को तोड़कर गर्ज रहा था, तब गान्धारराज ने उसके सिर को काट लिया।

अथाभवद् युद्धमतीव दारुणं
पुनः कुरूणां सह पाण्डुसृञ्जयैः।
शरासिशक्त्यृष्टिगदा- परश्वधै-
र्नराश्वनागासुहरं भृशाकुलम्॥ ७॥
रथाश्वमातङ्ग- पदातिभिस्ततः
परस्परं विप्रहतापतन् क्षितौ।
यथा सविद्युत्स्तनिता बलाहकाः
समाहता दिग्भ्य इवोग्रमारुतैः॥ ८॥
ततः शतानीकमतान् महागजां-
स्तथा रथान् पत्तिगणांश्च तान् बहून्।
जघान भोजस्तु हयानथापतन्
क्षणाद् विशस्ताः कृतवर्मणः शरैः॥ ९॥

फिर कौरवयोद्धाओं का पाण्डव और सृंजय योद्धाओं के साथ व्याकुल कर देनेवाला भयंकर युद्ध होने लगा। उसमें बाण, तलवार, शक्ति, ऋष्टि, गदा और फरसों से मनुष्यों घोड़ों, हाथियों के प्राण लिये जाने लगे। रथों, घोड़ों, हाथियों, और पैदल सैनिकों के द्वारा परस्पर मारे जा रहे योद्धा लोग भूमि पर उसीप्रकार गिर रहे थे, जैसे विद्युत् से युक्त घिरे हुए बादल आँधी के प्रहार से सारी दिशाओं में छितरा जाते हैं। तत्पश्चात् शतानीक के द्वारा सम्मानित विशाल हाथियों, अश्वों, रथों और बहुत से पैदल समूहों को कृतवर्मा ने मार दिया। वे कृतवर्मा के बाणों से थोड़ी देर में ही मर गये।

अथापरे द्रौणिहता महाद्विपा
स्त्रयः ससर्वायुधयोधकेतनाः।
निपेतुरुर्व्यां व्यसवो निपातिता-
स्तथा यथा वज्रहता महाचलाः॥ १०॥
कुलिन्द- राजावरजादनन्तरः
स्तनान्तरे पत्रिवरैरताडयत्।
तवात्मजं तस्य तवात्मजः शरैः
शितैः शरीरं व्यहनद् द्विपं च तम्॥ ११॥
कुलिन्दपुत्रप्रहितोऽपरो द्विपः
क्राथस्य सूताश्वरथं व्यपोथयत्।
ततोऽपतत् क्राथशराभिघातितः
सहेश्वरो वज्रहतो यथा गिरिः॥ १२॥

इसके बाद द्रोणपुत्र ने तीन विशाल हाथियों को सारे आयुधों, योद्धाओं और ध्वजाओं सहित मार दिया। मारे गये वे हाथी प्राणहीन होकर विद्युत् के प्रहार से भूमि पर गिराये गये पर्वत शिखरों के समान, पृथिवी पर गिर पड़े। तत्पश्चात् कुलिन्दराज के छोटे भाई से भी छोटे भाई ने उत्तम बाणों से आपके पुत्र की छाती में चोट पहुँचायी। तब आपके पुत्र ने तीखे बाणों से उसके शरीर और हाथी को भी घायल कर दिया। तब कुलिन्दराज के पुत्र के द्वारा बढ़ाये गये दूसरे हाथी ने क्राथ के सारथि, घोड़ों और रथ को कुचल डाला,

पर क्राथ के बाणों से मारा जाकर वह विद्युत् से मारे गये पर्वत शिखर के समान भूमि पर गिर पड़ा।

रथी द्विपस्थेन हतोऽपतच्छरैः
क्राथाधिपः पर्वतजेन दुर्जयः।
सवाजिसूतेष्व- सनध्वजस्तथा
यथा महावातहतो महाद्रुमः॥ १३॥
वृको द्विपस्थं गिरिराजवासिनं
भृशं शरैर्द्वादशभिः पराभिनत्।
ततो वृकं साश्वरथं महाद्विपो
द्रुतं चतुर्भिश्चरणैर्व्यपोथयत्॥ १४॥
स नागराजः सनियन्तृकोऽपतत्
तथा हतो बभ्रुसुतेषुभिर्भृशम्।

फिर दुर्जय क्राथराज अपने रथ, घोड़ों सारथि, धनुष और ध्वजासहित हाथी पर बैठे एक पर्वतीय वीर के बाणों से मारा जाकर उसीप्रकार रथ से नीचे गिर पड़ा, जैसे आँधी से उखाड़ा गया एक विशाल वृक्ष। तब वृक ने हाथी पर बैठे उस पर्वतीय योद्धा को बारह बाणों से अत्यन्त घायलकर दिया। तब उस पर्वतीय वीर के विशाल हाथी ने शीघ्रता से अपने चारों पैरों से वृक को घोड़ों और रथ के सहित कुचल डाला। फिर बभ्रुपुत्र के बाणों की गहरी चोट खाकर वह गजराज भी अपने संचालक के साथ धराशाही हो गया।

विषाणगात्रा- वरयोधपातिना
गजेन हन्तुं शकुनिं कुलिन्दजः॥ १५॥
जगाम वेगेन भृशार्दयंश्च तं
ततोऽस्य गान्धारपतिः शिरोऽहरत्।
ततः शतानीकमविध्यदायसै-
स्त्रिभिः शरैः कर्णसुतोऽर्जुनं त्रिभिः॥ १६॥
त्रिभिश्च भीमं नकुलं च सप्तभि-
र्जनार्दनं द्वादशभिश्च सायकैः।
ततः किरीटी परवीरघाती
समीक्ष्य कृष्णं भृशविक्षतं च॥ १७॥
समभ्यधावद् वृषसेनमाहवे
स सूतजस्य प्रमुखे स्थितस्तदा।

फिर दाँतों तथा शरीर के अंगों से योद्धाओं को गिरानेवाले हाथी से शकुनि को मारने के लिये कुलिन्दराज के दूसरे पुत्र ने उस पर वेग से आक्रमण किया। तब गान्धारराज शकुनि ने उसके सिर को काट लिया। फिर कर्णपुत्र वृषसेन ने शतानीक को, अर्जुन को और भीम को लोहे के तीन तीन बाणों से, नकुल को सात तथा श्रीकृष्ण जी को बारह बाणों से घायल कर दिया। तब शत्रुवीरों को नष्ट करने वाले अर्जुन ने श्रीकृष्ण को अत्यन्त घायल देखकर कर्ण के आगे खड़े हुए वृषसेन पर युद्धक्षेत्र में आक्रमण किया।

तमापतन्तं नरवीरमुग्रं
महाहवे बाणसहस्रधारिणम्॥ १८॥
अभ्यापतत् कर्णसुतो महारथं
ततो द्रुतं चैकशरेण पार्थं।
शितेन विद्ध्वा युधि कर्णपुत्रः
ननाद नादं सुमहानुभावो॥ १९॥

तब उस महान युद्ध में उग्र नरश्रेष्ठ, हजारों बाणों को धारण करनेवाले, अपनीतरफ आते हुए महारथी अर्जुन की तरफ कर्णपुत्र भी दौड़ा। महानुभाव कर्णपुत्र ने एक तीखे बाण से शीघ्रतापूर्वक कुन्तीपुत्र को बींधकर जोर से गर्जना की।

ततः किरीटी रणमूर्ध्नि कोपात्
कृत्वा त्रिशाखां भ्रुकुटिं ललाटे।
आरक्तनेत्रोऽन्त- कशत्रुहन्ता
उवाच कर्णं भृशमुत्स्मयंस्तदा॥ २०॥
दुर्योधनं द्रौणिमुखांश्च सर्वा-
नहं रणे वृषसेनं तमुग्रम्।
सम्पश्यतः कर्ण तवाद्य संख्ये
नयामि लोकं निशितैः पृषत्कैः॥ २१॥

तब युद्ध के मुहाने पर क्रोध से अपनी भृकुटि में तीन बल डालकर, लाल आँखेंकर मृत्यु जैसे शत्रु को भी मार देनेवाले, किरीट धारी अर्जुन ने मुस्कराते हुए कर्ण, दुर्योधन, द्रोणपुत्र आदि सारे वीरों को सुनाते हुए कहा कि हे कर्ण! आज मैं युद्धक्षेत्र में तेरे देखते हुए अत्यन्तउग्र पराक्रमी वृषसेन को तीखे बाणों से मृत्युलोक में भेज दूँगा।

ऊनं च तावद्धि जना वदन्ति
सर्वैर्भवद्भिर्हि सूनुर्हतो मे।
एको रथो मद्विहीनस्तरस्वी
अहं हनिष्ये भवतां समक्षम्॥ २२॥

संरक्ष्यतां रथसंस्थाः सुतोऽय-
महं हनिष्ये वृषसेनमुग्रम्।
पश्चाद् वधिष्ये त्वामपि सम्प्रमूढ-
महं हनिष्येऽर्जुन आजिमध्ये॥ २३॥
तमद्य मूलं कलहस्य संख्ये
दुर्योधनापा- श्रयजातदर्पम्।
त्वामद्य हन्तास्मि रणे प्रसह्य
अस्यैव हन्ता युधि भीमसेनः॥ २४॥
दुर्योधन- स्याधमपूरुषस्य
यस्यानयादेष महान् क्षयोऽभवत्।

तुम सबने मिलकर मेरे पुत्र को मारा था। वह वेगवान् रथी उस समय अकेला था और मेरे बिना था। तुम्हारे उस कार्य को लोग खोटा काम बताते हैं, किन्तु मैं तुम सबके सामने इसे मारूँगा। रथों में बैठे हुए महारथियों! अपने बेटे को बचा लो। मैं अर्जुन पहले उग्रवीर वृषसेन को मारूँगा और फिर युद्धक्षेत्र में अत्यन्त मूढ तुझे भी मार दूँगा। तू भी झगड़े की जड़ है। दुर्योधन का सहारा मिलने से तेरा घमंड बढ़ गया है। मैं तुझे युद्धक्षेत्र में हठपूर्वक मारूँगा। इस अधमपुरुष दुर्योधन को, जिसके अन्याय से यह महान् विनाश हुआ है, युद्ध में भीमसेन मारेंगे।

स एवमुक्त्वा विनिमृज्य चापं
लक्ष्यं हि कृत्वा वृषसेनमाजौ॥ २५॥
ससर्ज बाणान् विशिखान् महात्मा
वधाय राजन् कर्णसुतस्य संख्ये।
विव्याध चैनं दशभिः पृषत्कै-
र्मर्मस्वशङ्कं प्रहसन् किरीटी॥ २६॥
चिच्छेद चास्येष्वसनं भुजौ च
क्षुरैश्चतुर्भिर्निशितैः शिरश्च।
स पार्थबाणाभिहतः पपात
रथाद् विबाहुर्विशिरा धरायाम्॥ २७॥

ऐसा कहकर, अपने धनुष को पोंछकर और वृषसेन का निशाना बाँधकर उस मनस्वी ने युद्धक्षेत्र में हे राजन्! कर्ण के पुत्र के वध के लिये तीखे बाणों को छोड़ा। किरीटधारी अर्जुन ने हँसते हुए निर्भयता से दस बाणों से मर्मस्थलों पर प्रहार किया। उसने चार तीखे क्षुरों से उसके धनुष, दोनों बाहों और सिर को काट दिया। अर्जुन के बाणों से मारा हुआ वह बिना बाहों और बिना सिर के रथ से भूमि पर गिर पड़ा।

ततः समक्षं स्वसुतं विलोक्य
कर्णो हतं श्वेतहयेन संख्ये।
संरम्भमागम्य परं महात्मा
कृष्णार्जुनौ सहसैवाभ्यधावत्॥ २८॥

तब अपने सामने ही युद्ध में अपने पुत्र को अर्जुन के द्वारा मारा हुआ देखकर, उस मनस्वी ने अत्यन्त क्रोध में भरकर तुरन्त श्रीकृष्ण और अर्जुन के ऊपर आक्रमण कर दिया।

उनहत्तरवाँ अध्याय : कर्ण और अर्जुन का भयंकर युद्ध।

यथा गजौ हैमवतौ प्रभिन्नौ
प्रवृद्धदन्ताविव वासितार्थे।
तथा समाजग्मतुरुग्रवीर्यौ
धनंजयश्चाधिरथिश्च वीरौ॥ १॥
महाह्रदौ पक्षिगणैरिवावृतौ।
सुसंनिकृष्टावनिलोद्धतौ यथा
उभौ महेन्द्रस्य समानविक्रमा-
वुभौ महेन्द्रप्रतिमौ महारथौ॥ २॥
भुजाः सवस्त्राङ्गुलयः समुच्छ्रिताः
ससिंहनादैर्हृषि- तैर्दिदृक्षुभिः।
यदर्जुनो मत्त इव द्विपो द्विपं
समभ्ययादाधिरथिं जिघांसया॥ ३॥

तब जैसे हिमालय के दो मद बहानेवाले, लम्बे दाँतोंवाले, हाथी एक हथिनी के लिये लड़ रहे हों, वैसेही प्रचण्ड पराक्रम वाले वीर अर्जुन और कर्ण दोनों परस्पर युद्ध करने लगे। वह युद्ध दूसरों के लिये अत्यन्त दु:सह था। उसमें बाणों से दोनों के अंग, सारथि और घोड़े घायल हो गये थे और कड़वा खून पानी की तरह बह रहा था। वेदोनों इन्द्र के समान पराक्रम वाले, इन्द्र के समान ही महारथी थे।

उस युद्ध में जैसे मस्त हाथी दूसरे हाथी पर उसे मारने की इच्छा से आक्रमण करे, वैसे ही जब अर्जुन कर्ण पर आक्रमण करते थे तब दर्शक अंगुलियों में वस्त्र लेकर भुजाओं को ऊपर उठा लेते थे और हर्षित होकर सिंहनाद करते थे।

उदक्रोशन् सोमकास्तत्र पार्थं
पुरःसराश्चार्जुन भिन्धि कर्णम्।
छिन्ध्यस्य मूर्धानमलं चिरेण
श्रद्धां च राज्याद् धृतराष्ट्रसूनोः॥ ४॥
तथास्माकं बहवस्तत्र योधाः
कर्णं तथा याहि याहीत्यवोचन्।
जह्यर्जुनं कर्ण शरैः सुतीक्ष्णैः
पुनर्वनं यान्तु चिराय पार्थाः॥ ५॥
ततः कर्णः प्रथमं तत्र पार्थं
महेषुभिर्दशभिः प्रत्यविध्यत्।
तं चार्जुनः प्रत्यविद्धयच्छिताग्रैः
कक्षान्तरे दशभिः सम्प्रहस्य॥ ६॥

उस समय सोमकवीर आगे बढ़कर और चिल्लाकर कुन्तीपुत्र से कहते थे कि हे अर्जुन! कर्ण को मार दो। देर मत करो। इसके सिर को और दुर्योधन की राज्यप्राप्ति की आशा को एक साथ नष्ट कर दो। उसीप्रकार हमारे पक्ष के योद्धा भी कहते थे कि कर्ण आगे बढ़ो। आगे बढ़ो। अपने अत्यन्त तीखे बाणों से अर्जुन को मार दो, जिससे कुन्तीपुत्र लम्बे समय के लिये फिर वन में चले जायें। फिर कर्ण ने पहले अर्जुन को दस बाणों से घायल किया, तब अर्जुन ने भी हँसकर तीखी नोक वाले दस बाणों से कर्ण की बगल में चोट पहुँचायी।

परस्परं तौ विशिखैः सुपुङ्खै-
स्ततक्षतुः सूतपुत्रोऽर्जुनश्च।
परस्परं तौ बिभिदुर्विमर्दे
सुभीममभ्यापततुश्च हृष्टौ॥ ७॥
ततोऽर्जुनः प्रासृजदुग्रधन्वा
भुजावुभौ गाण्डिवं चानुमृज्य।
नाराचनालीक- वराहकर्णान्
क्षुरांस्तथा साञ्जलिकार्धचन्द्रान्॥ ८॥
ते सर्वतः समकीर्यन्त राजन्
पार्थेषवः कर्णरथं विशन्तः।
अवाङ्मुखाः पक्षिगणा दिनान्ते
विशन्ति केतार्थमिवाशु वृक्षम्॥ ९॥

उस युद्ध में दोनों सूतपुत्र और अर्जुन सुन्दर पंखवाले बाणों से एक दूसरे को घायल कर रहे थे। वे उत्साह में भरकर परस्पर भयंकर आक्रमण करते हुए क्षति पहुँचा रहे थे। फिर अपनी भुजाओं और गाण्डीवः को पोंछकर भयंकर धनुर्धर अर्जुन ने नाराच, नालीक, वराहकर्ण, क्षुर, अंजलिक और अर्धचन्द्र नाम के बाणों का प्रयोग प्रारम्भ किया। हे राजन्! अर्जुन के बाण सब तरफ से कर्ण के रथ में घुसकर उसीप्रकार से बिखर जाते थे, जैसे सांयकाल के समय पक्षी नीचा मुख किये, बसेरा लेने के लिये शीघ्रता से किसी वृक्ष पर जा बैठते हैं।

यानर्जुनः सभ्रुकुटीकटाक्षं
कर्णाय राजन्नसृजज्जितारिः।
तान् सायकैर्ग्रसते सूतपुत्रः
क्षिप्तान् क्षिप्तान् पाण्डवस्याशु संघान्॥ १०॥
ततोऽस्त्रमाग्नेय- ममित्रसाधनं
मुमोच कर्णाय महेन्द्रसूनुः।
भूम्यन्तरिक्षे च दिशोऽर्कमार्गं
प्रावृत्य देहोऽस्य बभूव दीप्तः॥ ११॥
योधाश्च सर्वे ज्वलिताम्बरा भृशं
प्रदुद्रुवुस्तत्र विदग्धवस्त्राः।
शब्दश्च घोरोऽतिबभूव तत्र
यथा वने वेणुवनस्य दह्यतः॥ १२॥

हे राजन्! शत्रुविजयी अर्जुन भौंहे टेढ़ी करके कटाक्षपूर्वक देखते हुए कर्ण के ऊपर जिन जिन बाणों को छोड़ते थे, उन उन बाणसमूहों को सूतपुत्र अपने बाणों से शीघ्र ही नष्ट कर देता था। तब इन्द्रपुत्र अर्जुन ने शत्रुओं को वश में करनेवाले आग्नेयअस्त्र को कर्ण पर छोड़ा। आग्नेयास्त्र ने प्रदीप्त होते हुए अपने प्रभाव से भूमि, आकाश, दिशाओं और सूर्यमार्ग को भर दिया। सारे योद्धाओं के वहाँ तेजी से वस्त्र जलने लगे। जलते हुए वस्त्रों से वे भागने लगे और जैसे जलते हुए बाँसों के जंगल में आवाज होती है, वैसे ही वहाँ घोर आर्तनाद गूँजने लगा।

तद् वीक्ष्य कर्णो ज्वलनास्त्रमुद्यतं
स वारुणं तत्प्रशमार्थमाहवे।

समुत्सृजन् सूतसुतः प्रतापवान्
स तेन वह्निं शमयाम्बभूव॥ १३॥
बलाहकौघश्च दिशस्तरस्वी
चकार सर्वास्तिमिरेण संवृताः।
ततो धरित्रीधरतुल्यरोधसः
समन्ततो वै परिवार्य वारिणा॥ १४॥
अथापोवाह्याभ्रसंघान् समस्तान्
वायव्यास्त्रेणापततः स कर्णात्।
प्रादुश्चक्रे वज्रमतिप्रभावम्
धनंजयः शत्रुभिरप्रधृष्यः॥ १५॥

प्रतापी कर्ण ने आग्नेयास्त्र को प्रदीप्त देखकर उसे शान्त करने के लिये युद्ध में वारुणास्त्र का प्रयोग किया, जिससे वह अग्नि शान्त होगयी। वेगवान् बादलों से सारी दिशाएँ भरकर अँधेरा छा गया, दिशाओं के किनारे काले पर्वतों के समान दिखाई देने लगे और वहाँ का सारा प्रदेश पानी से भर गया। तब कर्णद्वारा फैलाये हुए उन बादलों को वायव्यास्त्र से छिन्न कर शत्रुओं के लिये अजेय अर्जुन ने अत्यन्तप्रभावशाली वज्रास्त्र का प्रयोग किया।

कर्णस्तदा रोषविवृत्तनेत्रः
दृढज्यमानाम्य समुद्रघोषं।
प्रादुश्चक्रे भार्गवास्त्रं महात्मा
तस्यास्त्रमस्त्रेण निहत्य सोऽथ॥ १६॥
जघान संख्ये रथनागपत्तीन्
महारणे भार्गवास्त्रप्रतापात्।

तब रोष से जिसकी आँखें घूम रहीं थीं, उस मनस्वी कर्ण ने, मजबूत प्रत्यंचावाले अपने धनुष को झुकाकर समुद्र की गर्जना के समान शब्द करनेवाले भार्गवास्त्र को प्रकट किया। उस अस्त्र से उसने पाण्डुपुत्र के वज्रास्त्र को काटकर युद्धस्थल में महासमर में भार्गवास्त्र के प्रताप से अनेक हाथी घोड़ों और पैदलों का भी संहार कर दिया।

तत् तादृशं प्रेक्ष्य महारथस्य
कर्णस्य वीर्यं च परैरसह्यम्॥ १७॥
दृष्ट्वा च कर्णेन धनंजयस्य
तथाऽऽजिमध्ये निहतं तदस्त्रम्।
ततस्त्वमर्षी क्रोधसंदीप्तनेत्रो
वातात्मजः पाणिना पाणिमार्च्छत्॥ १८॥
भीमोऽब्रवीदर्जुनं सत्यसंध-
ममर्षितो निःश्वसज्जातमन्युः।

तब महारथी कर्ण के शत्रुओंद्वारा असह्य इसप्रकार के पराक्रम को तथा यह देखकर कि कर्ण ने युद्धक्षेत्र में अर्जुन के वज्रास्त्र को नष्ट कर दिया है, अमर्षशील, वायुपुत्र, भीम, क्रोध से आँखें लाल करके हाथों से हाथ मलने लगे। हृदय में अमर्ष और क्रोध से भरकर लम्बी साँस लेते हुए, वे सत्यसंध अर्जुन से बोले कि–

त्वया क्षिप्तांश्चाग्रसद् बाणसंघा–
नाश्चर्यमेतत् प्रतिभाति मेऽद्य॥ १९॥
कृष्णापरिक्लेशमनुस्मर त्वं
यथाब्रवीत् षण्ढतिलान् स्म वाचः।
रूक्षाः सुतीक्ष्णाश्च हि पापबुद्धिः
सूतात्मजोऽयं गतभीर्दुरात्मा॥ २०॥
संस्मृत्य सर्वं तदिहाद्य पापं
जह्याशु कर्णं युधि सव्यसाचिन्।
कस्मादुपेक्षां कुरुषे किरीटि–
न्नुपेक्षितुं नायमिहाद्य कालः॥ २१॥
यया धृत्या सर्वभूतान्यजैषी–
र्ग्रासं ददत् खाण्डवे पावकाय।
तया धृत्या सूतपुत्रं जहि त्व–
महं चैनं गदया पोथयिष्ये॥ २२॥
अथाब्रवीद् वासुदेवोऽपि पार्थं
दृष्ट्वा रथेषून् प्रतिहन्यमानान्।

इसने तुम्हारे द्वारा चलाये बाणसमूहों को नष्ट कर दिया, यह मुझे बड़े आश्चर्य की बात लगती है। तुम इसके द्वारा द्रौपदी को दिये गये क्लेशों को याद करो। इसने हमें थोथे तिलों के समान नपुंसक बताया था। इस पापबुद्धि, दुरात्मा, सारथि के बेटे ने निर्भय होकर हमें और भी बहुत सी रूखी और बहुत कड़वी बातें सुनायीं थीं। हे अर्जुन! तुम उन सारी बातों को याद करके इस पापी कर्ण को युद्ध में आज जल्दी मार दो। हे अर्जुन! तुम इसकी उपेक्षा क्यों कर रहे हो? अब इसकी उपेक्षा करने का समय नहीं है। जिस धैर्य से तुमने खाण्डववन को अग्नि को समर्पित करते हुए, सारे प्राणियों को जीता था, उसी धैर्य से तुम इस सूतपुत्र को मार दो। फिर मैं भी इसे अपनी गदा से कुचल दूँगा। तब अर्जुन

के बाणों को कर्ण द्वारा नष्ट होते देखकर श्रीकृष्णजी ने भी अर्जुन से कहा कि–

अमीमृदत् सर्वपातेऽद्य कर्णो
ह्यस्त्रैरस्त्रं किमिदं भो किरीटिन्॥ २३॥
स वीर किं मुह्यसि नावधत्से
नदन्त्येते कुरवः सम्प्रहृष्टाः।
कर्णं पुरस्कृत्य विदुर्हि सर्वे
तवास्त्रमस्त्रैर्वि- निपात्यमानम्॥ २४॥
किरातरूपी भगवान् सुधृत्या
त्वया महात्मा परितोषितोऽभूत्।
तां त्वं पुनर्वीर धृतिं गृहीत्वा
सहानुबन्धं जहि सूतपुत्रम्॥ २५॥
ततो महीं सागरमेखलां त्वं
सपत्तनां ग्रामवतीं समृद्धाम्।
प्रयच्छ राज्ञे निहतारिसंघां
यशश्च पार्थातुलमाप्नुहि त्वम्॥ २६॥

हे अर्जुन! आज कर्ण ने तुम्हारे द्वारा चलाये सारे अस्त्रों को अपने अस्त्रों से काट दिया है, यह क्या बात है? तुम सावधान क्यों नहीं होते? ये कौरव प्रसन्न होकर सिंहनाद कर रहे हैं। कर्ण को आगे करके ये लोग यही समझ रहे हैं कि तुम्हारे अस्त्र उसके अस्त्रों से नष्ट किये जारहे हैं। जिस अच्छे धैर्य से तुमने पहले किरातरूपधारी मनस्वी भगवान् शिवाचार्य को सन्तुष्ट किया था, उसी धैर्य को हे वीर! पुनः धारणकर इस सूतपुत्र को सारथियोंसहित मार दो। फिर समुद्रों से घिरी, इस नगरों और गाँवों से युक्त, समृद्ध और शत्रुओं से रहित भूमि को राजा युधिष्ठिर को देकर हे कुन्तीपुत्र! अतुल यश को प्राप्त करो।

स चोदितो भीमजनार्दनाभ्यां
स्मृत्वा तथाऽऽत्मानमवेक्ष्य सर्वम्।
इहात्मनश्चागमने विदित्वा
प्रयोजनं केशवमित्युवाच॥ २७॥
प्रादुष्करोम्येष महास्त्रमुग्रं
शिवाय लोकस्य वधाय सौतेः।
तदस्य हत्वा विरराज कर्णो
मुक्त्वा शरान् मेघ इवाम्बुधाराः॥ २८॥

तब भीम और श्रीकृष्ण द्वारा प्रेरित होकर, अर्जुन ने अपने स्वरूप का स्मरण कर, सब बातों पर विचार किया और युद्धभूमि में अपने आने के प्रयोजन को समझकर श्रीकृष्णजी से यह कहा कि मैं अब इस सूतपुत्र के वध और लोगों के कल्याण के लिये एक और भयंकर अस्त्र का प्रयोग कर रहा हूँ। किन्तु कर्ण बादलोंद्वारा बरसायी जलधाराओं के समान बाणों की वर्षा से अर्जुन के उस अस्त्र को भी नष्ट करके युद्धक्षेत्र में सुशोभित होने लगा।

ततः स कृष्णं च किरीटिनं च
वृकोदरं चाप्रतिमप्रभावः।
त्रिभिस्त्रिभिर्भीमबलो निहत्य
ननाद घोरं महता स्वरेण॥ २९॥
स कर्णबाणाभिहतः किरीटी
भीमं तथा प्रेक्ष्य जनार्दनं च।
अमृष्यमाणः पुनरेव पार्थः
शरान् दशाष्टौ च समुद्बबर्ह॥ ३०॥

फिर उस अमित प्रभाव वाले, और भयंकर बलशाली कर्ण ने तीन तीन बाणों से अर्जुन, श्रीकृष्ण और भीम पर प्रहार कर ऊँचे स्वर से भयंकर गर्जना की। कर्ण के बाणों से घायल हुए अर्जुन ने भीम और श्रीकृष्ण को भी घायल देखकर, यह सहन न करते हुए पुनः अठारह बाण निकाले।

स केतुमेकेन शरेण विद्ध्वा
शल्यं चतुर्भिस्त्रिभिरेव कर्णम्।
ततः स मुक्तैर्दशभिर्जघान
सभापतिं काञ्चनवर्मनद्धम्॥ ३१॥
पुनश्च कर्णं त्रिभिरष्टभिश्च
द्वाभ्यां चतुर्भिर्दशभिश्च विद्ध्वा।
कर्णं ससूतं सरथं सकेतु-
मदृश्यमञ्जोगतिभिः प्रचक्रे॥ ३२॥

उसने एक बाण से कर्ण की ध्वजा को बींध कर, चार बाणों से शल्य को और तीन बाणों से कर्ण को घायल कर दिया। फिर उन्होंने दस बाणों से सभापति नाम के सुनहरा कवच धारण किये हुए राजकुमार को मार दिया। फिर कर्ण को अर्जुन ने तीन, आठ, दो, चार और दस बाणों से घायल कर, शीघ्रता से उसे सारथि, रथ और ध्वजा सहित बाणों से ढक दिया।

अथोपयातस्त्वरितो दिदृक्षु-
र्मन्त्रौषधीभिर्निरुजो विशल्यः।

कृतः सुहृद्भिर्भिषजां वरिष्ठै-
र्युधिष्ठिरस्तत्र सुवर्णवर्मा॥ ३३॥
स कार्मुकज्यातलसंनिपातः
सुमुक्तबाणस्तुमुलो बभूव।
घ्नतोस्तथान्यो- न्यमिषुप्रवेकै-
र्धनंजयस्याधिरथेश्च तत्र॥ ३४॥
तस्मिन् क्षणे पाण्डवं सूतपुत्रः
समाचिनोत् क्षुद्रकाणां शतेन।
निर्मुक्तसर्प- प्रतिमैरभीक्ष्णं
तैलप्रधौतैः खगपत्रवाजैः॥ ३५॥
षष्ट्या बिभेदाशु च वासुदेव-
मनन्तरं फाल्गुनमष्टभिश्च।

उधर शिविर में हितैषी वैद्यशिरोमणियोंद्वारा घावों से रहित और नीरोग किये जाने पर, युधिष्ठिर, सुनहरा कवच बाँधकर वहाँ युद्ध देखने के लिये शीघ्रता से आगये। उस समय अर्जुन और कर्ण का एकदूसरे पर बाणों को बरसाते हुए तुमुल युद्ध होरहा था। उसमें धनुष, प्रत्यंचा और हथेली के संघर्ष से बाणों को छोड़ा जाकर एकदूसरे को चोट पहुँचायी जारही थी। तब सूतपुत्र ने पाण्डुपुत्र पर सौ क्षुद्रक नामक बाणों की वर्षा की, फिर उसने अत्यधिक तेल से साफ किये, पक्षियों के पंखों से युक्त, और केंचुली छोड़कर निकले साँपों के समान भयंकर साठ बाणों की वर्षा से श्रीकृष्णजी को घायल कर दिया और अर्जुन को आठ बाण मारे।

पूषात्मजो मर्मसु निर्बिभेद
मरुत्सुतं चायुतशः शराग्रैः॥ ३६॥
कृष्णं च पार्थं च तथा ध्वजं च
पार्थानुजान् सोमकान् पातयंश्च।
प्राच्छादयंस्ते विशिखैः पृषत्कै-
र्जीमूतसंघा नभसीव सूर्यम्॥ ३७॥
आगच्छतस्तान् विशिखैरनेकै-
र्व्यष्टम्भयत् सूतपुत्रः कृतास्त्रः।

सूर्यपुत्र कर्ण ने असंख्य बाणों से मर्मस्थलों पर वायुपुत्र भीम को भी तथा कृष्ण को, अर्जुन को और उनकी ध्वजा को बींधा और अर्जुन के छोटे भाइयों एवं सोमकों को मार गिराने का प्रयत्न किया। जैसे बादल सूर्य को ढक देते हैं, वैसे ही सोमकों ने अपने बाणों से कर्ण को ढक दिया। किन्तु अस्त्र विद्यानिष्णात सूतपुत्र ने अपने ऊपर आक्रमण करते हुए सोमकों को अपने बाणों से वहीं रोक दिया।

सुसंरब्धः कर्णशरक्षताङ्गो
ज्यां चानुमृज्याभ्यहनत् तलत्रे॥ ३८॥
कर्णं च शल्यं च कुरूंश्च सर्वान्
बाणैरविध्यत् प्रसभं किरीटी।
शल्यं च पार्थो दशभिः पृषत्कै
र्भृशं तनुत्रे प्रहसन्नविध्यत्॥ ३९॥
ततः कर्णं द्वादशभिः सुमुक्तै-
र्विद्ध्वा पुनः सप्तभिरभ्यविद्ध्यत्।
ततस्त्रिभिस्तं त्रिदशाधिपोपमं
शरैर्बिभेदाधि- रथिर्धनंजयम्॥ ४०॥
शरांश्च पञ्च ज्वलितानिवोरगान्
प्रवेशयामास जिघांसयाच्युतम्।

तब कर्ण के बाणों से जिनके अंग घायल हो गये थे, उन अर्जुन ने अत्यन्त क्रोध में भरकर अपनी प्रत्यंचा को रगड़कर कर्ण के हाथ के दस्तानों पर प्रहार किया। उन्होंने हठपूर्वक कर्ण, शल्य और वहाँ पर विद्यमान कौरवयोद्धाओं को अपने बाणों से घायल कर दिया। कुन्तीपुत्र ने दस बाणों से हँसते हुए शल्य के कवच को अत्यधिक चोट पहुँचायी। फिर अच्छी तरह से छोड़े हुए बारह बाणों से कर्ण को बींध कर उसे सात बाणों से पुनः घायल कर दिया। फिर अधिरथपुत्र कर्ण ने इन्द्र के समान पराक्रमी अर्जुन को तीन बाणों से बींध दिया और मारने की इच्छा से प्रज्वलित सर्पों के समान पाँच बाणों को श्रीकृष्ण जी के शरीर में घुसा दिया।

ततः प्रजज्वाल किरीटमाली
क्रोधेन कक्षं प्रदहन्निवाग्निः॥ ४१॥
तथा विनुन्नाङ्गमवेक्ष्य कृष्णं
सर्वेषुभिः कर्णभुजप्रसृष्टैः।
स कर्णमाकर्णविकृष्टसृष्टैः
शरैः शरीरान्तकरैर्ज्वलद्भिः।
मर्मस्वविध्यत् स चचाल दुःखाद्
दैवादवातिष्ठत धैर्यबुद्धिः॥ ४२॥

तब कर्ण के हाथों से छोड़े बाणों से श्रीकृष्ण जी को घायल हुआ देखकर किरीट धारण करने वाले अर्जुन क्रोध से ऐसे जल उठे जैसे घास फूस

को जलाती हुई अग्नि प्रज्वलित हो जाती है। उन्होंने कानतक धनुष को खींचकर छोड़े शरीर का अन्त करने वाले प्रज्वलित बाणों से कर्ण के मर्मस्थलों पर चोट पहुँचायी। जिससे वह पीड़ा से विचलित होगया, पर दैवयोग से मन में धैर्य धारणकर युद्ध में डटा रहा।

सत्तरवाँ अध्याय : कर्ण और अर्जुन का युद्ध।

तदर्जुनास्त्रं ग्रसति स्म कर्णो
वियद्गतं घोरतरैः शरैस्तत्।
क्रुद्धेन पार्थेन भृशाभिसृष्टं
वधाय कर्णस्य महाविमर्दे॥ १॥
कर्णस्त्वमोघेष्वसनं दृढज्यं
विस्फारयित्वा विसृजञ्छरौघान्।
ततो विमर्दः सुमहान् बभूव
तत्रार्जुनस्याधिरथेश्च राजन्॥ २॥
अन्योन्यमासादयतोः पृषत्कै-
र्विषाणघातैर्द्विपयो- रिवोग्रैः।

उस महायुद्ध में क्रुध अर्जुन कर्ण के वध के लिये जिस जिस भी अस्त्र का वेगपूर्वक प्रयोग करते थे, उनके उस उस अस्त्र को कर्ण और भी अधिक भयंकर बाणों से काट देता था। फिर कर्ण अपने अमोघ और मजबूत प्रत्यंचावाले धनुष को खींचकर बाणों की वर्षा करने लगा। हे राजन्! जैसे दो हाथी अपने भयंकर दाँतों के प्रहार से एकदूसरे को पीड़ित करें वैसे ही अर्जुन और अधिरथपुत्र का वह युद्ध अत्यन्त भयंकर रूप में चल रहा था।

तौ संदधानावनिशं च राजन्
समस्यन्तौ चापि शराननेकान्॥ ३॥
संदर्शयेतां युधि मार्गान् विचित्रान्
धनुर्धरौ तौ विविधैः कृतास्त्रैः।
तयोरेवं युद्ध्यतोराजिमध्ये
सूतात्मजोऽभूदधिकः कदाचित्॥ ४॥
पार्थः कदाचित् त्वधिकः किरीटी
वीर्यास्त्रमाया- बलपौरुषेण।
दृष्ट्वा तयोस्तं युधि सम्प्रहारं
परस्परस्यान्तर- मीक्षमाणयोः॥ ५॥
घोरं तयोर्दुर्विषहं रणेऽन्यै-
र्योधाः सर्वे विस्मयमभ्यगच्छन्।

हे राजन्! उस युद्ध में वेदोनों धनुर्धर, लगातार, अनेकप्रकार के बाणों का संधान करते हुए, उन्हें छोड़ते हुए, अनेकप्रकार के सिद्ध अस्त्रों से धनुर्विद्या के विचित्र विचित्र पैंतरों को दिखा रहे थे। युद्धक्षेत्र में उनदोनों के युद्ध करते हुए, कभी सूतपुत्र आगे बढ़ जाता था और कभी कुन्तीपुत्र किरीटधारी अर्जुन पराक्रम, अस्त्रकौशल, बल और पुरुषार्थ में आगे बढ़ जाते थे। युद्ध में एकदूसरे के दोषों को ढूँढनेवाले उनदोनों द्वारा परस्पर किये जा रहे घोर घात प्रत्याघातों से युक्त उस संग्राम को जो दूसरों के लिये असह्य था, देखकर सबलोग आश्चर्य कर रहे थे।

कर्णोऽथ पार्थं न विशेषयद् यदा
भृशं च पार्थेन शराभितप्तः॥ ६॥
ततस्तु वीरः शरविक्षताङ्गो
दध्रे मनो ह्येकशयस्य तस्य।
ततो रिपुघ्नं समधत्त कर्णः
सुसंचितं सर्पमुखं ज्वलन्तम्॥ ७॥
रौद्रं शरं संनतमुग्रधौतं
पार्थार्थमत्यर्थ- चिराभिगुप्तम्।
सदार्चितं चन्दनचूर्णशायितं
सुवर्णतूणीरशयं महार्चिषम्॥ ८॥
आकर्णपूर्णं च विकृष्य कर्णः
पार्थोन्मुखः संदधे चोत्तमौजाः।

जब कर्ण कुन्तीपुत्र से आगे न बढ़ सका और उनके बाणों से अत्यन्तघायल होगया, तब उसने उस बाण के, जिसे वह अकेलेही सुरक्षितरूप से रखा करता था, प्रयोग करने का विचार किया। तब उत्तम पराक्रमी कर्ण ने शत्रुनाशक, सर्प के समान मुखवाले, अच्छी तरह से रखे, प्रज्वलित, झुकी गाँठवाले अत्यन्तभयंकर, स्वच्छ बाण को निकाला, जिसे उसने अर्जुन के लिये ही बहुतसमय से सुरक्षित रखा हुआ था। उस महातेजस्वी बाण को वह सदा से सम्मानपूर्वक, सुनहले तरकस में चन्दन के चूरे में लपेट कर रखता आया था। उसे धनुष पर रखकर

कर्ण ने धनुष को कानतक खींचकर अर्जुन की तरफ निशाना साधा।

ततोऽब्रवीन्मद्रराजो महात्मा
दृष्ट्वा कर्णं प्रहितेषुं तमुग्रम्॥ ९॥
न कर्ण ग्रीवामिषुरेष लप्स्यते
समीक्ष्य संधत्स्व शरं शिरोघ्नम्।
अथाब्रवीत् क्रोधसंरक्तनेत्रो
मद्राधिपं सूतपुत्रस्तरस्वी॥ १०॥
न संधत्ते द्विः शरं शल्य कर्णो
न मादृशा जिह्मयुद्धा भवन्ति।
इतीदमुक्त्वा विससर्ज तं शरं
प्रयत्नतो वर्षगणाभिपूजितम्॥ ११॥
हतोऽसि वै फाल्गुन इत्यधिक्षिप-
न्नुवाच चोच्चैर्गिरमूर्जितां वृषः।

तब मनस्वी मद्रराज ने कर्ण को उस भयंकर बाण को छोड़ने के लिये उद्यत देखकर कहा कि नहीं कर्ण। यह तुम्हारा बाण गर्दन पर नहीं लगेगा। सिर काटने के लिये इसका सोच समझ कर निशाना लगाओ। तब क्रोध से लाल आँखें कर वेगवान् कर्ण मद्रराज से बोला कि हे शल्य। कर्ण दो बार निशाना नहीं लगाता है। मेरे जैसे व्यक्ति कपटयुद्ध नहीं करते हैं। ऐसा कहकर उसने उस बाण को जिसे अनेक वर्षों से प्रयत्नपूर्वक सम्मानित किया हुआ था, छोड़ दिया और ऊँची आवाज से आक्षेपसहित यह कहा कि हे अर्जुन! अब तू निश्चय ही मारा गया।

क्षितिं गता जानुभिस्तेऽथ वाहा
हेमच्छन्नाश्चन्द्रमरी- चिवर्णाः॥ १२॥
तस्मिंस्तथा वै धरणीं निमग्ने
रथे प्रयत्नान्मधुसूदनस्य।
ततः शरः सोऽभ्यहनत् किरीटं
तस्येन्द्रदत्तं सुदृढं च धीमतः॥ १३॥

तब श्रीकृष्ण जी के प्रयत्नों से अर्जुन के रथ के धरती में धँस जाने अर्थात् गड्ढे में चले जाने पर सोने का साज पहने, चन्द्रमा की किरणों के समान श्वेत रंगवाले घोड़े भी घुटनों के बल जमीन पर बैठ गये। उस बाण ने धीमान् अर्जुन के इन्द्र के द्वारा दिये हुए सुदृढ़ किरीट को तोड़ दिया।

तद्धेमजालावततं सुघोषं
जाज्वल्यमानं निपपात भूमौ।
तदुत्तमेषून्मथितं विषाग्निना
प्रदीप्तमर्चिष्मदथो क्षितौ प्रियम्॥ १४॥
पपात पार्थस्य किरीटमुत्तमं
दिवाकरोऽस्तादिव रक्तमण्डलः
विना किरीटं शुशुभे स पार्थः
श्यामो युवा नील इवोच्चशृङ्गः॥ १५॥
ततः समुद्ग्रथ्य सितेन वाससा
स्वमूर्धजान- व्यथितस्तदार्जुनः।
विभासितः सूर्यमरीचिना दृढं
शिरोगतेनोदयपर्वतो यथा॥ १६॥
समुज्जहाराशु पुनः पतन्तं
रथं भुजाभ्यां पुरुषोत्तमस्ततः।

वह जगमगाता हुआ अर्जुन का मुकुट, जो सोने की जाली से ढका था, जोर की आवाज के साथ भूमि पर गिर पड़ा। अर्जुन का वह प्रिय, उत्तम और तेजस्वी मुकुट, उस श्रेष्ठ बाण से मथित और विषाग्नि से प्रज्वलित होकर उसीप्रकार भूमि पर गिर पड़ा जैसे लाल मण्डलवाला सूर्य अस्ताचल से नीचे को जाता है। तब बिना किरीट के साँवले युवा कुन्ती पुत्र ऐसे प्रतीत होने लगे जैसे नीलगिरि पर्वत का कोई ऊँचा शिखर हो। तब बिना किसी व्यथा के अर्जुन अपने सिर के बालों को सफेद कपड़े से बाँधकर शिखर के ऊपर फैली हुई सूर्य की किरणों से अत्यन्तसुशोभित होनेवाले उदयाचलपर्वत के समान लगने लगे। फिर पुरुषश्रेष्ठ श्रीकृष्ण जी ने तुरन्त ही अपने दोनों हाथों से उस गढ़े में गिरे हुए रथ को बाहर निकाल लिया।

तस्मिन् मुहूर्ते दशभिः पृषत्कैः
शिलाशितैर्बर्हिण- बर्हवाजितैः॥ १७॥
विव्याध कर्णः पुरुषप्रवीरो
धनंजयं तिर्यगवेक्षमाणः।
ततोऽर्जुनो द्वादशभिः सुमुक्तै-
र्वराहकर्णैर्निशितैः समर्प्य॥ १८॥
नाराचमाशी- विषतुल्यवेग-
माकर्णपूर्णा- यतमुत्ससर्ज।
स चित्रवर्मेषुवरो विदार्य
प्राणान्निरस्यन्निव साधुमुक्तः॥ १९॥
कर्णस्य पीत्वा रुधिरं विवेश
वसुन्धरां शोणितदिग्धवाजः।

तब पुरुषश्रेष्ठ कर्ण ने अर्जुन को तिरछी निगाह से देखते हुए उसे दस मोरपंख से युक्त, शिला पर तेज किये हुए, बाणों से घायल कर दिया। तब अर्जुन ने अच्छी तरह से छोड़े हुए बारह वराहकर्ण नाम के तीखे बाणों से कर्ण को घायल कर विषैले सर्प के समान वेगवाले एक नाराच को धनुष को कान तक खींच कर उसके ऊपर छोड़ दिया। अच्छी तरह से छोड़ा हुआ वह श्रेष्ठ बाण, कर्ण के विचित्र कवच को फाड़कर, उसके प्राणों को निकालते हुए के समान उसके खून को पीकर, खून से सने परों के साथ भूमि में धँस गया।

ततो वृषो बाणनिपातकोपितो
महोरगो दण्डविघट्टितो यथा॥ २०॥
तदाशुकारी व्यसृजच्छरोत्तमान्
महाविषः सर्प इवोत्तमं विषम्।
जनार्दनं द्वादशभिः पराभिन-
न्नवैर्नवत्या च शरैस्तथार्जुनम्॥ २१॥
शरेण घोरेण पुनश्च पाण्डवं
विदार्य कर्णो व्यनदज्जहास च।
तमस्य हर्षं ममृषे न पाण्डवो
बिभेद मर्माणि ततोऽस्य मर्मवित्॥ २२॥
ततः शराणां नवतिं तदार्जुनः
ससर्ज कर्णेऽन्तकदण्डसंनिभाम्।

तब बाण के प्रहार से उसी प्रकार क्रोध में भरकर जैसे लाठी से कुचला हुआ सर्प हो, जैसे महाविषैला सर्प अपने उत्तम विष का वमन करे, उसीप्रकार कर्ण ने शीघ्रगामी उत्तम बाणों को छोड़ना आरम्भ कर दिया। उसने बारह बाणों की वर्षा कर अर्जुन को घायल किया और फिर एक भयंकर बाण से उसे पुनः घायल कर कर्ण जोर से हँसा और गर्जा। पाण्डुपुत्र अर्जुन ने उसके उस हर्ष को सहन नहीं किया और मर्मस्थलों के ज्ञाता उसने उसके मर्मस्थलों को बींध दिया। उन्होंने कर्ण पर मृत्यु के प्रभाव के समान नव्वै बाणों की वर्षा की।

मणिप्रवेकोत्तम- वज्रहाटकै-
रलंकृतं चास्य वराङ्गभूषणम्॥ २३॥
प्रविद्धमुर्व्यां निपपात पत्रिभि-
र्धनंजयेनोत्तमकुण्डलेऽपि च।
स तं विवर्माणमथोत्तमेषुभिः
शितैश्चतुर्भिः कुपितः पराभिनत्॥ २४॥
स विव्यथेऽत्यर्थमरिप्रताडितो
यथातुरः पित्तकफानिलज्वरैः।
महाधनुर्मण्डलनिः सृतैः शितैः
क्रियाप्रयत्नप्रहितैर्बलेन च॥ २५॥
ततश्च कर्णं बहुभिः शरोत्तमै-
र्बिभेद मर्मस्वपि चार्जुनस्त्वरन्।
ततः स कर्णः समवाप्य धैर्यं
बाणान् विमुञ्चन् कुपिताहिकल्यान्॥ २६॥
विव्याध पार्थं दशभिः पृषत्कैः
कृष्णं च षड्भिः कुपिताहिकल्पैः॥ २६॥

तब उत्तम मणियों, हीरों और स्वर्ण से अलंकृत कर्ण के मस्तक का मुकुट और उसके दोनों कुण्डल भी अर्जुन के बाणों से छिन्न होकर भूमि पर गिर पड़े। कुपित अर्जुन ने जो पहलेही कवच से रहित होगया था, उस कर्ण को अपने उत्तम और तीखे चार बाणों से पुन क्षतविक्षत कर दिया। तब शत्रुद्वारा अत्यधिक प्रताड़ित हुआ कर्ण त्रिदोष से युक्त ज्वर पीड़ित व्यक्ति के समान अत्यधिक पीड़ा का अनुभव करने लगा। फिर अर्जुन ने शीघ्रता करते हुए क्रिया, प्रयत्न और बल के द्वारा छोड़े और विशाल धनुर्मण्डल से छूटे बहुतसे उत्तम और पैने बाणों से कर्ण के मर्मस्थलों को पुनः चोट पहुँचायी। तब धैर्य धारणकर कर्ण ने क्रुद्ध सर्पों के समान बाणों को छोड़ते हुए दस भुजंगमों के सदृश बाणों से अर्जुन को और छः बाणों से श्रीकृष्ण को घायल कर दिया।

ततः शरैर्भीमतरैरविध्यत् त्रिभिराहवे
हस्ते कृष्णं तथा पार्थमभ्यविध्यच्च सप्तभिः॥ २७॥
ततोऽर्जुनः सप्तदश तिग्मवेगानजिह्मगान्।
इन्द्राशनिसमान् घोरानसृजत् पावकोपमान्॥ २८॥
निर्भिद्य ते भीमवेगा ह्यपतन् पृथिवीतले।
कम्पितात्मा ततः कर्णः शक्त्या चेष्टामदर्शयत्॥ २९॥

फिर और भी अधिकभयानक तीन बाणों से उसने युद्धस्थल में श्रीकृष्ण के हाथ को और सात बाणों से अर्जुन को बींध दिया। फिर अर्जुन ने सत्रह अत्यन्त वेगवान्, सीधेजाने वाले, इन्द्र के वज्र और अग्नि के समान भयंकर, बाणों को छोड़ा। वे बाण कर्ण को घायलकर भूमि पर गिर पड़े। जिससे कर्ण

काँपने लगा, पर फिर भी शक्तिपूर्वक अपनी चेष्टा को दिखाता रहा।

ततः कर्णः शितैर्बाणैर्ज्यां चिच्छेद सुतेजनैः।
द्वितीयां च तृतीयां च चतुर्थीं पञ्चमीं तथा॥ ३०॥
षष्ठीमथास्य चिच्छेद सप्तमीं च तथाष्टमीम्।
नवमीं दशमीं चास्य तथा चैकादशीं वृषः॥ ३१॥
ज्याशतं शतसंधानः स कर्णो नावबुध्यते।
तस्य ज्याछेदनं कर्णो ज्यावधानं च संयुगे॥ ३२॥
नान्वबुध्यत शीघ्रत्वात्तदद्भुतमिवाभवत्।
अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य प्रनिघ्नन् सव्यसाचिनः॥ ३४॥
चक्रे चाप्यधिकं पार्थात् स्ववीर्यमतिदर्शयन्।

फिर कर्ण ने अत्यन्त तेज किये हुए पैने बाणों से अर्जुन के धनुष की प्रत्यंचा काट दी, उसके पश्चात् उसने क्रमशः उनकी, दूसरी, तीसरी, चौथी, पाँचवी और छठी, तथा सातवीं एवं आठवीं डोर भी काट दी। कर्ण ने अर्जुन के धनुष की नवीं, दसवीं और ग्यारहवीं प्रत्यंचा भी काट दी, पर सौ बाणों का संधान करने वाले कर्ण को यह पता नहीं लगा कि अर्जुन के धनुष में सौ डोरियाँ लगी हुई हैं। युद्ध में कर्ण का अर्जुन के धनुष की प्रत्यंचा छेदने के पश्चात् दूसरी डोरी का चढ़ जाना इतनी शीघ्रता से होता था कि कर्ण को भी उसका पता नहीं लगता था। यह एक आश्चर्य की बात थी।

ततः कृष्णोऽर्जुनं दृष्ट्वा कर्णास्त्रेण च पीडितम्॥ ३४॥
अभ्यसेत्यब्रवीत् पार्थमातिष्ठास्त्रं व्रजेति च।
ततोऽग्निसदृशं घोरं शरं सर्पविषोपमम्॥ ३५॥
रौद्रमस्त्रं समाधाय क्षेप्तुकामः किरीटवान्।
ततोऽग्रसन्मही चक्रं राधेयस्य तदा नृप॥ ३६॥

कर्ण ने तब अपने अस्त्रों से अर्जुन के अस्त्रों को रोक कर और उन्हें नष्ट कर अपने अत्यन्त पराक्रम का प्रदर्शन करते हुए अपने को अर्जुन से अधिक प्रकट किया। तब श्रीकृष्ण ने अर्जुन को कर्ण के अस्त्रों से पीड़ित देखकर उनसे कहा कि हे अर्जुन! लगातार अस्त्रों को छोड़ो उत्तम अस्त्रों का प्रयोग करो और आगे बढ़े चलो। तब अर्जुन ने अग्नि और सर्प के समान भयंकर रौद्रास्त्र का संधान कर उसे छोड़ने का विचार किया, कि तभी हे राजन्! कर्ण के रथ का पहिया भूमि में, गढ़े में धँस गया।

ग्रस्तचक्रस्तु राधेयः क्रोधादश्रूण्यवर्तयत्।
अर्जुनं वीक्ष्य संरब्धमिदं वचनमब्रवीत्॥ ३७॥
भो भोः पार्थ महेष्वास मुहूर्तं परिपालय।
यावच्चक्रमिदं ग्रस्तमुद्धरामि महीतलात्॥ ३८॥
सव्यं चक्रं महीग्रस्तं दृष्ट्वा दैवादिदं मम।
पार्थ कापुरुषाचीर्णमभिसंधिं विसर्जय॥ ३९॥
न त्वं कापुरुषाचीर्णं मार्गमास्थातुमर्हसि।
ख्यातस्त्वमसि कौन्तेय विशिष्टो रणकर्मसु॥ ४०॥
विशिष्टतरमेव त्वं कर्तुमर्हसि पाण्डव।

रथ के पहिये के फँस जाने पर राधापुत्र क्रोध के मारे आँसू बहाने लगा। अत्यन्त क्रोध में वह अर्जुन की तरफ देखकर बोला कि हे, हे, महाधनुर्धर कुन्तीपुत्र! थोड़ी देर के लिये प्रतीक्षा करो। तब तक मैं भूमि में से पहिये को निकाल लेता हूँ। दैवयोग से मेरे रथ के बाँये पहिये को फँसा हुआ देखकर हे कुन्तीपुत्र! कायर पुरुषों जैसे कपटपूर्ण बर्ताव को छोड़ दो। तुम्हें कायर पुरुषों के मार्ग पर नहीं चलना चाहिये। हे कुन्तीपुत्र! तुम युद्ध के कर्मशील व्यक्तियों में विशेषरूप से प्रसिद्ध हो। तुम्हें अपने आपको और अच्छा व्यक्ति सिद्ध करना चाहिये।

प्रकीर्णकेशे विमुखे ब्राह्मणेऽथ कृताञ्जलौ॥ ४१॥
शरणागते न्यस्तशस्त्रे याचमाने तथार्जुन।
अबाणे भ्रष्टकवचे भ्रष्टभग्नायुधे तथा॥ ४२॥
न विमुञ्चन्ति शस्त्राणि शूराः साधुव्रते स्थिताः।
त्वं च शूरतमो लोके साधुवृत्तश्च पाण्डव॥ ४३॥
अभिज्ञो युद्धधर्माणां वेदान्तावभृथाप्लुतः।
दिव्यास्त्रविदमेयात्मा कार्तवीर्यसमो युधि॥ ४४॥

हे अर्जुन! जो बालों को खोल कर खड़ा हो, युद्ध से विमुख हो, ब्राह्मण हो, हाथ जोड़कर शरण में आया हो, जिसने हथियार डाल दिये हों, जो प्राणों की भीख मांग रहा हो, जिसके हथियार, कवच और बाण नष्ट हो गये हों, ऐसे व्यक्तिओं पर साधुव्रत में विद्यमान शूरवीर लोग शस्त्रों को नहीं चलाया करते। हे पाण्डुपुत्र तुम तो संसार में सबसे अधिक शूरवीर, और साधुमार्ग पर चलने वाले हो, युद्ध के नियमों को जानते हो, वेदान्त का अध्ययनयज्ञ समाप्त कर उसमें अवभृथ स्नान कर चुके हो। तुम्हें दिव्यास्त्रों का ज्ञान है, तुम अमित आत्मबल से युक्त हो, युद्ध में तुम कार्तवीर्य अर्जुन के समान पराक्रमी हो।

यावच्चक्रमिदं ग्रस्तमुद्धरामि महाभुज।
न मां रथस्थो भूमिष्ठं विकलं हन्तुमर्हसि॥ ४५॥
न वासुदेवात् त्वत्तो वा पाण्डवेय बिभेम्यहम्।
त्वं हि क्षत्रियदायादो महाकुलविवर्धनः।
अतस्त्वां प्रब्रवीम्येष मुहूर्तं क्षम पाण्डव॥ ४६॥

जब तक मैं इस फँसे हुए पहिये को निकालता हूँ, तब तक हे महाबाहु! तुम स्वयं रथ में बैठे हुए मुझ भूमिपर खड़े हुए व्याकुल को मारना मत। मैं तुमसे या श्रीकृष्ण से डरता नहीं हूँ, पर क्योंकि तुम क्षत्रिय के पुत्र हो और एक महान् कुल का गौरव बढ़ाते हो, इसलिये मैं तुमसे यह कह रहा हूँ। हे पाण्डुपुत्र! एक मुहूर्त के लिये मुझे क्षमा करो।

इकहत्तरवाँ अध्याय : कर्ण का वध।

तमब्रवीद् वासुदेवो रथस्थो
राधेय दिष्ट्या स्मरसीह धर्मम्।
प्रायेण नीचा व्यसनेषु मग्ना
निन्दन्ति दैवं कुकृतं न तु स्वम्॥ १॥
यद् द्रौपदीमेकवस्त्रां सभाया-
मानाययेस्त्वं च सुयोधनश्च।
दुःशासनः शकुनिः सौबलश्च
न ते कर्ण प्रत्यभात्तत्र धर्मः॥ २॥

तब रथपर बैठे श्रीकृष्ण ने कर्ण से कहा कि हे राधापुत्र! बड़े सौभाग्य की बात है कि तुम्हें इस समय धर्म की याद आ रही है। नीचलोग मुसीबत में पड़ने पर प्रायः भगवान् की निन्दा करते हैं, अपने बुरे कार्यों की तरफ नहीं देखते। जब एक वस्त्र में विद्यमान् द्रौपदी को तुमने, दुर्योधन ने, दुश्शासन ने और शकुनि ने सभा के अन्दर बुलवाया था, तब तुम्हें धर्म का ध्यान नहीं आया।

यदा सभायां राजानमनक्षज्ञं युधिष्ठिरम्।
अजैषीच्छकुनिर्ज्ञानात् क्व ते धर्मस्तदा गतः॥ ३॥
वनवासे व्यतीते च कर्ण वर्षे त्रयोदशे।
न प्रयच्छसि यद् राज्यं क्व ते धर्मस्तदा गतः॥ ४॥
यद् भीमसेनं सर्पैश्च विषयुक्तैश्च भोजनैः।
आचरत् त्वन्मते राजा क्व ते धर्मस्तदा गतः॥ ५॥
यद् वारणावते पार्थान् सुप्ताञ्जतुगृहे तदा।
आदीपयस्त्वं राधेय क्व ते धर्मस्तदा गतः॥ ६॥

जब जूए का ज्ञान न रखनेवाले युधिष्ठिर को शकुनि ने कपट से जीता था, तब तुम्हारा धर्म कहाँ गया था? हे कर्ण! वनवास और तेरहवें वर्ष के पूरे होने पर भी तुमने पाण्डवों को जो उनका राज्य नहीं दिया, तब तुम्हारा धर्म कहाँ गया था? जब राजा दुर्योधन ने तुम्हारी सलाह से भीम को जहर मिला भोजन खिलवाया और साँपों से डसवाया, तब तुम्हारा धर्म कहाँ गया था? जब तुमने वारणावत नगर में लाक्षागृह में सोते हुए पाण्डवों को जलवाया था, तब तुम्हारा धर्म कहाँ गया था?

यदा रजस्वलां कृष्णां दुशासनवशे स्थिताम्।
सभायां प्राहसः कर्ण क्व ते धर्मस्तदा गतः॥ ७॥
यदनार्यैः पुरा कृष्णां क्लिश्यमानामनागसाम्।
उपप्रेक्षसि राधेय क्व ते धर्मस्तदा गतः॥ ८॥
विनष्टाः पाण्डवाः कृष्णे शाश्वतं नरकं गताः।
पतिमन्यं वृणीष्वेति वदंस्त्वं गजगामिनीम्॥ ९॥
उपप्रेक्षसि राधेय क्व ते धर्मस्तदा गतः।
राज्यलुब्धः पुनः कर्ण समाव्यथसि पाण्डवान्॥ १०॥
यदा शकुनिमाश्रित्य, क्व ते धर्मस्तदागतः।
यदाभिमन्युं बहवो युद्धे जघ्नुर्महारथाः।
परिवार्य रणे बालं क्व ते धर्मस्तदा गतः॥ ११॥

जब सभा में दुश्शासन के वश में पड़ी हुई रजस्वला द्रौपदी का तुमने मजाक उड़ाया था, तब तुम्हारा धर्म कहाँ गया था? हे राधापुत्र! जब पहले नीच लोगों द्वारा क्लेश पाती हुई निरपराध द्रौपदी को तुम उसके समीप जाकर घूर रहे थे, तब तुम्हारा धर्म कहाँ गया था? जब तुमने समीप से गजगामिनी द्रौपदी को घूरते हुए उससे यह कहा था कि हे द्रौपदी! पाण्डव नष्ट होगये और सदा के लिये नरक में चले गये। अब तू किसी और को अपना पति बनाले, तब तुम्हारा धर्म कहाँ गया था? जब तुमने राज्य के लोभ में, शकुनि का सहारा लेकर, पाण्डवों को पुनः जूए के लिये बुलवाकर उन्हें पीड़ित किया, तब तुम्हारा धर्म कहाँ गया था? जब बालक अभिमन्यु को युद्धक्षेत्र में बहुतसे महारथियों ने घेरकर मार दिया, तब तुम्हारा धर्म कहाँ गया था?

यद्येष धर्मस्तत्र न विद्यते हि
किं सर्वथा तालुविशोषणेन।
अद्येह धर्म्याणि विधत्स्व सूत
तथापि जीवन्न विमोक्ष्यसे हि॥ १२॥

यदि इन कार्यों में तुम्हारा धर्म नहीं था, तो अब धर्म की दुहाई देकर तालु सुखाने से क्या लाभ? हे सारथि! तू अब चाहे कितने ही धर्म के कार्य कर ले, पर तेरा जीवित रहते हुए छुटकारा नहीं हो सकता।

एवमुक्तस्तदा कर्णो वासुदेवेन भारत।
लज्जयावनतो भूत्वा नोत्तरं किञ्चिदुक्तवान्॥ १३॥
क्रोधात् प्रस्फुरमाणौष्ठो धनुरुद्यम्य भारत।
योधयामास वै पार्थं महावेगपराक्रमः॥ १४॥
ततोऽब्रवीद् वासुदेवः फाल्गुनं पुरुषर्षभम्।
दिव्यास्त्रेणैव निर्भिद्य पातयस्व महाबल॥ १५॥
अभ्यवर्षत् ततः कर्णो ब्रह्मास्त्रेण धनंजयम्।
ब्रह्मास्त्रेणैव तं पार्थो प्रजहार च पाण्डवः॥ १६॥
तदस्त्रमस्त्रेणावार्य ववर्ष शरवृष्टिभिः।

हे भारत! तब श्रीकृष्णजी के द्वारा ऐसा कहे जाने पर कर्ण ने लज्जा से सिर नीचे कर लिया और कुछ भी उत्तर नहीं दिया। हे भारत! फिर क्रोध के कारण फड़कते हुए होठोंसहित, महान् वेग और पराक्रम के साथ उसने धनुष को उठाकर अर्जुन के साथ युद्ध करना आरम्भ कर दिया। तब श्रीकृष्ण जी ने पुरुषश्रेष्ठ अर्जुन से कहा कि हे महाबली वीर! तुम दिव्यास्त्र के द्वारा ही इसे घायल कर के गिराओ। तब कर्ण ने अर्जुन पर ब्रह्मास्त्र को चलाया। अर्जुन ने ब्रह्मास्त्र से ही उस ब्रह्मास्त्र को निवारण कर उस पर बाणों की वर्षा की और उसे अच्छीतरह घायल कर दिया।

ततोऽन्यदस्त्रं कौन्तेयो दयितं जातवेदसः॥ १७॥
मुमोच कर्णमुद्दिश्य तत् प्रजज्वाल तेजसा।
वारुणेन ततः कर्णः शमयामास पावकम्॥ १८॥
जीमूतैश्च दिशः सर्वाश्चक्रे तिमिरदुर्दिनाः।
पाण्डवेयस्त्वसम्भ्रान्तो वायव्यास्त्रेण वीर्यवान्॥ १९॥
अपोवाह तदाभ्राणि राधेयस्य प्रपश्यतः।
ततः शरं महाघोरं ज्वलन्तमिव पावकम्॥ २०॥
आददे पाण्डुपुत्रस्य सूतपुत्रो जिघांसया।

फिर अर्जुन ने कर्ण के ऊपर एकदूसरे दिव्यास्त्र को जो जातवेदा अग्नि का प्रिय था अर्थात् आग्न्यास्त्र था, छोड़ा। वह आग्न्यास्त्र अपने तेज से प्रज्वलित हो उठा। तब कर्ण ने वारुणास्त्र से उस आग को बुझा दिया। उस समय बादलों से सारी दिशायें ढक गयीं और अंधेरा छा गया। तब पराक्रमी पाण्डुपुत्र ने बिना घबराये वायव्यास्त्र का प्रयोगकर कर्ण के देखते हुए बादलों को दूर कर दिया। तब सूतपुत्र ने पाण्डुपुत्र को मारने की इच्छा से एक अत्यन्तभयंकर, अग्नि के समान प्रज्वलित बाण को उस पर छोड़ा।

स सायकः कर्णभुजप्रमुक्तः
शक्राशनिप्रख्यरुचिः शिताग्रः।
भुजान्तरं प्राप्य धनंजयस्य
विवेश वल्मीकमिवोरगोत्तमः॥ २१॥
स गाढविद्धः समरे महात्मा
विघूर्णमानः श्लथहस्तगाण्डिवः।
चचाल बीभत्सुरमित्रमर्दनः
क्षितेः प्रकम्पे च यथाचलोत्तमः॥ २२॥
तदन्तरं प्राप्य वृषो महारथो
रथाङ्गमुर्वी- गतमुज्जिहीर्षुः।
रथादवप्लुत्य निगृह्य दोर्भ्यां
शशाक दैवान्न महाबलोऽपि॥ २३॥

कर्ण के हाथों से छूटा, तीखी नोक वाला इन्द्र के वज्र के समान चमकीला, वह बाण अर्जुन की छाती में उसीप्रकार धँस गया। जैसे उत्तम सर्प अपनी बाँबी में घुस जाता है। उसके द्वारा गहरे घायल होकर वे मनस्वी, शत्रुमर्दन अर्जुन विचलित हो गये तथा भूचाल आनेपर महान् पर्वत के समान काँपने लगे और गाण्डीव धनुष पर से उनकी पकड़ ढीली पड़ गयी। तब मौका देखकर महारथी कर्ण गढ़े में धँसे रथ के पहिये को निकालने की इच्छा से, रथ से कूदकर दोनों हाथों से पहिये को पकड़कर निकालने का प्रयत्न करने लगा, पर महाबलवान् होने पर भी दुर्भाग्य से सफल न हो सका।

ततः किरीटी प्रतिलभ्य संज्ञां
जग्राह बाणं यमदण्डकल्पम्।
ततोऽब्रवीद् वासुदेवोऽपि पार्थम्
छिन्ध्यस्य मूर्धानमरेः शरेण॥ २४॥

न यावदारोहति वै रथं वृषः।
तेनेषुवर्येण किरीटमाली
जिघांसुरर्केन्दु- समप्रभेण
शरोत्तमेनाञ्जलिकेन राजन्॥ २५॥
पार्थोऽपराह्णे शिर उच्चकर्त
वैकर्तनस्याथ महेन्द्रसूनुः।

तभी अर्जुन ने होश में आकर मृत्यु के प्रहार के समान भयंकर, बाण को हाथ में लिया। तब श्रीकृष्ण जी ने अर्जुन से कहा कि जब तक कर्ण रथपर पुनः न चढ़ जाये, उससे पहले ही तुम इस शत्रु के सिर को बाण से काट दो। तब जो कर्ण को मार देने के इच्छुक थे, जो पहले किरीट धारण किया करते थे, उन इन्द्र के पुत्र अर्जुन ने उस सूर्य के समान तेजस्वी, बाणों में श्रेष्ठ उत्तम अंजलिक बाण से हे राजन्! अपराह्न काल में सूर्यपुत्र के सिर को काट दिया।

ततः शङ्खान् पाण्डवा दध्मुरुच्चै-
र्दृष्ट्वा कर्णं पातितं फाल्गुनेन॥ २६॥
तथैव कृष्णश्च धनंजयश्च
हृष्टौ यमौ दध्मतुर्वारिजातौ।
तं सोमकाः प्रेक्ष्य हतं शयानं
सैन्यैः सार्धं सिंहनादान् प्रचक्रुः॥ २७॥

तब कर्ण को अर्जुन के द्वारा गिराया देखकर पाण्डवों ने जोर से शंख बजाये। श्रीकृष्ण और अर्जुन ने भी प्रसन्न होकर अपने शंखों को बजाया। उसे मारा हुआ और भूमि पर पड़ा हुआ देखकर सोमकयोद्धा सेनाओं के साथ सिंहनाद करने लगे।

बहत्तरवाँ अध्याय : शल्य का दुर्योधन को ढाढस देना।

निपातितस्यन्द- नवाजिनागं
बलं च दृष्ट्वा हतसूतपुत्रम्।
दुर्योधनोऽश्रु- प्रतिपूर्णनेत्रो
दीनो मुहुर्निःश्वसंश्चार्तरूपः॥ १॥
कर्णं तु शूरं पतितं पृथिव्यां
शराचितं शोणितदिग्धगात्रम्।
यदृच्छया सूर्यमिवावनिस्थं
दिदृक्षवः सम्परिवार्य तस्थुः॥ २॥
प्रहृष्टवित्रस्तविषण्ण- विस्मिता-
स्तथा परे शोकहता इवाभवन्।
परे त्वदीयाश्च परस्परेण
यथायथैषां प्रकृतिस्तथाभवन्॥ ३॥

तब यह देखकर कि कौरव सेना के रथ, घोड़े और हाथी नष्ट कर दिये गये, सूतपुत्र कर्ण का वध कर दिया गया, दुर्योधन आँखों में आँसू भरकर, दीनता से बार बार लम्बी साँस लेते हुए बहुत बेचैन होगया। शूरवीर उस कर्ण को, जो खून से लथपथ होरहा था, जिसके शरीर में बाण भरे हुए थे, जो भूमि पर पड़ा हुआ ऐसा प्रतीत होरहा था, मानों सूर्य स्वयं ही अपनी इच्छा से भूमि पर आगिरा हो, देखने के लिये लोग उसे घेरकर खड़े होगये। उनमें से कोई प्रसन्न थे, कोई डरे हुए थे, कोई उदास थे, तो कोई आश्चर्यचकित थे। अनेक दूसरेलोग शोक से मृतप्राय होरहे थे। इसप्रकार शत्रुपक्ष और आपकी तरफ दोनों तरफ के लोगों में से जिसकी जैसी स्थिति थी, वैसेही वे होरहे थे।

प्रविद्धवर्मा- भरणाम्बरायुधं
धनंजयेनाभिहतं महौजसम्।
निशाम्य कर्णं कुरवः प्रदुद्रुवु-
र्हतर्षभा गाव इवाजने वने॥ ४॥
तथैव राजन् सोमकाः सृञ्जयाश्च
शङ्खान् दध्मुः सस्वजुश्चापि सर्वे।
परस्परं क्षत्रिया हृष्टरूपाः
सूतात्मजे वै निहते तदानीम्॥ ५॥
मद्राधिपश्चापि विमूढचेता-
स्तूर्णं रथेनापकृतध्वजेन।
दुर्योधनस्यान्तिकमेत्य राजन्
सबाष्पदुःखाद् वचनं बभाषे॥ ६॥

तब जिसका कवच, आभूषण, वस्त्र, और आयुध नष्ट होगये थे, जो अर्जुन द्वारा मारा हुआ पड़ा था, उस महातेजस्वी कर्ण को देखकर कौरवयोद्धा उसीप्रकार भागने लगे, जैसे वन में साँड के मारे जाने पर गायें इधर, उधर भागती हैं। हे राजन्! उसीप्रकार सोमक और सृंजययोद्धा सूतपुत्र के मारे जाने पर तब प्रसन्न

होकर शंख बजाने तथा एकदूसरे को छाती से लगाने लगे। हे राजन्! तब चित्त में मूढ बने हुए मद्रदेश के राजा शल्य, उस रथ के द्वारा, जिसकी ध्वजा तुरन्त नीचे उतार दी गयी थी, दुर्योधन के समीप आकर दुःख से आँसू बहाते हुए कहने लगे कि—

विशीर्णनागाश्वरथ- प्रवीरं
बलं त्वदीयं यमराष्ट्रकल्पम्।
अन्योन्यमासाद्य हतं महद्भि-
र्नराश्वनागैर्गिरि- कूटकल्पैः॥ ७॥
नैतादृशं भारत युद्धमासीद्
यथा तु कर्णार्जुनयोर्बभूव।
ग्रस्तौ हि कर्णेन समेत्य कृष्ण-
वन्ये च सर्वे तव शत्रवो ये॥ ८॥
दैवं ध्रुवं पार्थवशात् प्रवृत्तं
यत् पाण्डवान् पाति हिनस्ति चास्मान्।
तवार्थसिद्ध्यर्थकरास्तु सर्वे
प्रसह्य वीरा निहता द्विषद्भिः॥ ९॥

हे राजन्! आपकी सेना के हाथी, घोड़े, रथ और योद्धा नष्ट होगये हैं। सर्वत्र मृत्यु का साम्राज्य दिखाई देरहा है। पर्वतशिखरों के समान विशाल हाथी, घोड़े और पैदल एकदूसरे से टकराकर मारे गये हैं। हे भारत! आज कर्ण और अर्जुन में जैसा युद्ध हुआ, वैसा कभी नहीं हुआ था। कर्ण ने आक्रमण करके श्रीकृष्ण और अर्जुन तथा आपके दूसरे सारे शत्रुओं के प्राणों को संकट में डाल दिया था। किन्तु परमात्मा की इच्छा पाण्डवों के पक्ष में कार्य कर रही है। वह पाण्डवों की तो रक्षा करती है और हमारा विनाश करती है। आपके प्रयोजन को सिद्ध करनेवाले सारे वीर हठपूर्वक शत्रुओंद्वारा मारे गये।

अवध्यकल्पा निहता नरेन्द्रा-
स्तवार्थकामा युधि पण्डवेयैः।
तन्मा शुचो भारत दिष्टमेतत्
पर्याश्व स त्वं न सदास्ति सिद्धिः॥ १०॥
एतद् वचो मद्रपतेर्निशम्य
स्वं चाप्यनीतं मनसा निरीक्ष्य।
दुर्योधनो दीनमना विसंज्ञः
पुनः पुनर्न्यश्वसदार्तरूपः॥ ११॥

आपकी भलाई चाहनेवाले राजालोग जो अवध्य के समान थे, युद्ध में पाण्डवों ने मार दिये। इसलिये हे भारत! आप शोक मत करो। यह परमात्मा की इच्छा ही ऐसी है। सारे कार्यों में सर्वदा सिद्धि नहीं मिलती। मद्रपति की बातों को सुनकर और अपने अन्याय पर भी मन ही मन निगाह डालकर दुर्योधन दीनता के साथ अचेत सा हो गया और दुःख में भर कर बार बार लम्बी साँस लेने लगा।

तिहत्तरवाँ अध्याय : पाण्डवों द्वारा शत्रुसेना का संहार।

न संधातुमनीकानि न चैवाशु पराक्रमे।
आसीद् बुद्धिर्हते कर्णे तव यो धस्य कर्हिचित्॥ १॥
वणिजो नावि भिन्नायामगाधे विप्लवे यथा।
अपारे पारमिच्छन्तो हते द्वीपे किरीटिना॥ २॥
सूतपुत्रे हते राजन् वित्रस्ताः शस्त्रविक्षताः।
अनाथा नाथमिच्छन्तो मृगाः सिंहैरिवार्दिताः॥ ३॥
व्यालतस्करसंकीर्णे सार्थहीना यथा वने।
सूतपुत्रे हते राजंस्तव योधास्तथाभवन्॥ ४॥

हे राजन्! कर्ण के मारे जाने पर आपके योद्धाओं का मन न तो सेनाओं का संगठन बनाये रखने में लगा और न पराक्रम करने में लगा। जैसे तूफान से नाव के टूट जाने पर गहरे सागर के पार तक पहुँचने की इच्छा वाले व्यापारियों की अवस्था होती है, वही अवस्था अर्जुन द्वारा द्वीप की तरह बने हुए कर्ण के मारे जाने पर कौरवों की हुई। हे राजन्! जैसे सिंह से पीड़ित हुए, अपने रक्षक को चाहने वाले हरिणों की अवस्था होती है, वही अवस्था सूतपुत्र के मारे जाने पर, शस्त्रों से घायल, डरे हुए और अनाथ अपने लिये रक्षक को चाहनेवाले कौरवसैनिकों की उस समय हो रही थी। हे राजन्! जो अवस्था चोरों, बदमाशों और साँपों से भरे वन में अपने दल से बिछुड़े लोगों की होती है, वही अवस्था सूतपुत्र कर्ण के मारे जाने पर आपके योद्धाओं की होगयी थी।

माद्रीपुत्रौ तु शकुनिं सात्यकिश्च महारथः।
जवेनाभ्यपतन् हृष्टा घ्नन्तो दौर्योधनं बलम्॥ ५॥

तस्याश्वसादीन् सुबहूंस्ते निहत्य शितैःशरैः।
समभ्यधावंस्त्वरितास्तत्र युद्धमभून्महत्॥ ६॥
गान्धारराजं शीघ्रास्त्रमनुसृत्य यशस्विनौ।
नचिरात् प्रत्यदृश्येतां माद्रीपुत्रौ ससात्यकी॥ ७॥
चेकितानः शिखण्डी च द्रौपदेयाश्च मारिष।
हत्वा त्वदीयं सुमहत् सैन्यं शङ्खांस्तथाधमन्॥ ८॥
ते सर्वे तावकान् प्रेक्ष्य द्रवतोऽपि पराङ्मुखान्।
अभ्यवर्तन्त संरब्धान् वृषाञ्जित्वा यथा वृषाः॥ ९॥

दूसरीतरफ माद्री के दोनों पुत्र नकुल और सहदेव, और महारथी सात्यकि ने उत्साह के साथ दुर्योधन की सेना का विनाश करते हुए तेजी से शकुनि पर आक्रमण किया। वेलोग उसके बहुत सारे घुड़सवारों को तीखे बाणों से मारकर शीघ्रता से उसकी तरफ दौड़े। फिर वहाँ घमासान युद्ध होने लगा। जल्दी ही यशस्वी नकुल और सहदेव सात्यकि के साथ शीघ्रता से अस्त्र चलानेवाले शकुनि का पीछा करते हुए दिखाई दिये। हे मान्यवर! चेकितान, शिखण्डी और द्रौपदी के पुत्र आपकी बड़ी सेना को मारकर अपने शंख बजाने लगे। वे सब आपके योद्धाओं को भागता हुआ देखकर उसी प्रकार उनका पीछा करने लगे, जैसे क्रोध में भरे हुए साँडों को जीतकर दूसरे साँड उनके पीछे दौड़कर उन्हें खदेड़ते हैं।

चौहत्तरवाँ अध्याय : शल्य के कहने से दुर्योधन का युद्ध बन्द करना।

दृष्ट्वा तु सैन्यं परिवर्त्यमानं
पुत्रेण ते मद्रपतिस्तदानीम्
संत्रस्तरूपः परिमूढचेता
दुर्योधनं वाक्यमिदं बभाषे॥ १॥
निवर्त दुर्योधन यान्तु सैनिका
व्रजस्व राजञ्शिबिराय मानद।
दिवाकरोऽप्येष विलम्बते प्रभो
इत्येवमुक्त्वा विरराम शल्यो॥ २॥
दुर्योधनं शोकपरीतचेताः
हा कर्ण हा कर्ण इति ब्रुवाण-।
मार्तं विसंज्ञं भृशमश्रुनेत्रम्
तं द्रोणपुत्रप्रमुखा नरेन्द्राः॥ ३॥
सर्वे समाश्वास्य मुहुः प्रयान्ति
वधेन कर्णस्य तु दुःखितास्ते।
द्रुतं प्रयाताः शिबिराणि राजन्
दिवाकरं रक्तमवेक्षमाणाः॥ ४॥

संजय ने कहा तब आपके पुत्र को सेना को लौटाने का प्रयत्न करते देखकर भयभीत और किंकर्त्तव्यविमूढ़ हुए मद्रदेश के स्वामी शल्य दुर्योधन से यह बोले कि हे दूसरों को मान देनेवाले दुर्योधन! लौट आओ। सैनिकों को जाने दो। हे राजन्! हे प्रभो! तुम भी शिविर में चलो। यह सूर्य भी अस्ताचल की तरफ जारहे हैं। ऐसा उस दुर्योधन से कहकर, जिसकी आँखों में अत्यधिक आँसू भरे हुए थे, जो शोक से भरे हृदय के कारण दीन और चेतनारहित सा होरहा था, और हा कर्ण, हा कर्ण पुकार रहा था, राजा शल्य चुप हो गये। उस समय द्रोणपुत्र आदि सारे राजालोग बार बार आकर और उसे आश्वासन देकर जारहे थे। हे राजन्! फिर कर्ण के वध से दुःखी हुए वे सारे कौरवयोद्धा लाल रंग के सूर्य की तरफ देखते हुए, शीघ्रता से शिविरों की तरफ चल दिये।

ततो धनुर्ज्यातलबाणनिःस्वनैः
प्रसह्य कृत्वा च रिपून् हतप्रभान्।
संछादयित्वा तु कुरूञ्शरोत्तमैः
कपिध्वजः पक्षिवरध्वजश्च॥ ५॥
हृष्टौ ततस्तावमितप्रभावौ
मनांस्यरीणाम- वदारयन्तौ।
सुवर्णजालावततौ महास्वनौ
हिमावदातौ परिगृह्य पाणिभिः।
चुचुम्बतुः शङ्खवरौ नृणां वरौ
वराननाभ्यां युगपच्च दध्मतुः॥ ६॥

फिर धनुष की प्रत्यंचा, हथेली, और बाणों के शब्दों से शत्रुओं को हठ पूर्वक तेज हीन करके, अपने उत्तम बाणों की वर्षा से कौरवों को आच्छादित करके, अमित प्रभाववाले नरश्रेष्ठ श्रीकृष्ण और अर्जुन, प्रसन्नता से भरे हुए और शत्रुओं के हृदयों को विदीर्ण करते हुए, अपने हाथों में सुवर्ण की जाली से ढके हुए गम्भीर ध्वनि वाले, बर्फ के समान श्वेत, श्रेष्ठ शंखों को अपने सुन्दर मुखों से एक साथ चूमने और बजाने लगे।

पिचहत्तरवाँ अध्याय : युधिष्ठिर द्वारा अर्जुन और श्रीकृष्ण की प्रशंसा।

तथा निपतिते कर्णे परसैन्ये च विद्रुते।
आश्लिष्य पार्थं दाशार्हो हर्षाद् वचनमब्रवीत्॥ १॥
तमिमं विक्रमं लोके प्रथितं ते यशस्करम्।
निवेदयावः कौन्तेय कुरुराजस्य धीमतः॥ २॥
वधं कर्णस्य संग्रामे दीर्घकालचिकीर्षितम्।
निवेद्य धर्मराजाय त्वमानृण्यं गमिष्यसि॥ ३॥
वर्तमाने महायुद्धे तव कर्णस्य चोभयोः।
द्रष्टुमायोधनं पूर्वमागतो धर्मनन्दनः॥ ४॥
भृशं तु गाढविद्धत्वान्नाशकत् स्थातुमाहवे।
ततः स शिबिरं गत्वा स्थितवान् पुरुषर्षभः॥ ५॥

तब कर्ण के गिराये जाने और शत्रुसेना के भगाये जाने पर श्रीकृष्णजी ने हर्षसहित अर्जुन को छाती से लगाकर यह कहा कि हे कुन्तीपुत्र! तुम्हारे इस यश को बढ़ानेवाले, संसार प्रसिद्ध पराक्रम को चलो धीमान् कुरुराज युधिष्ठिर को बताते हैं। जिसे वे लम्बे समय से चाह रहे थे, उस कर्ण के वध को संग्राम में करके और उसके विषय में उन्हें बताकर तुम उत्रृण होजाओगे। तुम्हारा और कर्ण का जब महान् युद्ध चल रहा था, तब उसे देखने के लिये धर्मपुत्र पहले युद्धक्षेत्र में आए थे, पर गहरी चोट के कारण वे ठहर न सके, इसलिये वे अपने शिविर में जाकर आराम करने लगे।

तथेत्युक्तः केशवस्तु पार्थेन यदुपुङ्गवः।
पर्यावर्तयदव्यग्रो रथं रथवरस्य तम्॥ ६॥
धृष्टद्युम्नं युधामन्युं माद्रीपुत्रौ वृकोदरम्।
युयुधानं च गोविन्द इदं वचनमब्रवीत्॥ ७॥
यावदावेद्यते राज्ञे हतः कर्णोऽर्जुनेन वै।
तावद्भवद्भिर्यत्तैस्तु भवितव्यं नराधिपैः॥ ८॥
स तैः शूरैरनुज्ञातो ययौ राजनिवेशनम्।
पार्थमादाय गोविन्दो ददर्श च युधिष्ठिरम्॥ ९॥

तब कुन्तीपुत्रद्वारा अच्छा ऐसा ही कीजिये, यह कहने पर यदुश्रेष्ठ श्रीकृष्णजी ने श्रेष्ठरथी अर्जुन के रथ को बिना व्यग्रता के, शिविर की तरफ घुमाया। फिर श्रीकृष्ण जी ने धृष्टद्युम्न, युधामन्यु, नकुल, सहदेव, भीम और युयुधान से यह कहा कि जब तक अर्जुन राजा से कर्ण के मारे जाने के लिये निवेदन करें, तब तक आप सब राजालोग सावधानी से रहें। उन शूरवीरोंद्वारा उनकी आज्ञा स्वीकार कर लेने पर श्रीकृष्ण अर्जुन को लेकर राजा के शिविर में गये और उन्होंने वहाँ युधिष्ठिर का दर्शन किया।

शयानं राजशार्दूलं काञ्चने शयनोत्तमे।
अगृह्णीतां च मुदितौ चरणौ पार्थिवस्य तौ॥ १०॥
तयोः प्रहर्षमालक्ष्य हर्षादश्रूण्यवर्तयत्।
राधेयं निहतं मत्वा समुत्तस्थौ युधिष्ठिरः॥ ११॥
उवाच च महाबाहुः पुनः पुनररिंदमः।
वासुदेवार्जुनौ प्रेम्णा तावुभौ परिषस्वजे॥ १२॥
तत् तस्मै तद् यथावृत्तं वासुदेवः सहार्जुनः।
कथयामास कर्णस्य निधनं यदुपुङ्गवः॥ १३॥

राजसिंह युधिष्ठिर उस समय सुनहले उत्तम पलंग पर सो रहे थे। उनदोनों ने तब प्रसन्नता पूर्वक उनके पैरों को पकड़ लिया। उस समय उनके हर्ष को देखकर युधिष्ठिर यह समझ गये कि कर्ण का वध हो गया है। वे शय्या से उठ खड़े हुए और उनकी आँखों से हर्ष के आँसू बहने लगे। वे महाबाहु शत्रुदमन उन दोनों से प्रेम पूर्वक बोलने और उन्हें बार बार छाती से लगाने लगे। तब यदुश्रेष्ठ श्रीकृष्ण ने अर्जुन के साथ उन्हें कर्ण के मारे जाने का सारा वृत्तान्त यथावत् रूप से कह सुनाया।

ईषदुत्स्मयमानस्तु कृष्णो राजानमब्रवीत्।
युधिष्ठिरं हतामित्रं कृताञ्जलिरथाच्युतः॥ १४॥
दिष्ट्या गाण्डीवधन्वा च पाण्डवश्च वृकोदरः।
त्वं चापि कुशली राजन् माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ॥ १५॥
मुक्ता वीरक्षयादस्मात् संग्रामाल्लोमहर्षणात्।
क्षिप्रमुत्तरकालानि कुरु कार्याणि पाण्डव॥ १६॥
हतो वैकर्तनो राजन् सूतपुत्रो महारथः।
दिष्ट्या जयसि राजेन्द्र दिष्ट्या वर्धसि भारत॥ १७॥

फिर अच्युत श्रीकृष्णजी ने किंचित् मुस्कराते हुए, जिनका शत्रु मारा जाचुका था, उन युधिष्ठिर से हाथ जोड़कर कहा कि हे राजन्! यह सौभाग्य की बात है कि गाण्डीव धनुर्धारी अर्जुन, पाण्डुपुत्र भीमसेन, माद्री के दोनों पुत्र और आप सकुशल हैं। अब आप वीरों का विनाश करनेवाले इस रोंगटे खड़े कर देने वाले संग्राम से मुक्त होगये हैं। अब इससे आगे जो कार्य करने हैं, उन्हें आप जल्दी

पूरा कीजिये। हे राजन्! हे राजेन्द्र! हे भारत! बड़े सौभाग्य की बात है कि सूर्यपुत्र महारथी कर्ण मारा गया और आपकी विजय तथा वृद्धि हुई।

यस्तु द्यूतजितां कृष्णां प्राहसत् पुरुषाधमः।
तस्याद्य सूतपुत्रस्य भूमिः पिबति शोणितम्॥ १८॥
शेतेऽसौ शरपूर्णाङ्गः शत्रुस्ते कुरुपुङ्गव।
तं पश्य पुरुषव्याघ्र विभिन्नं बहुभिः शरैः॥ १९॥
हतामित्रामिमामुर्वीमनुशाधि महाभुज।
यत्तो भूत्वा सहास्माभिर्भुङक्ष्वभोगांश्च पुष्कलान्॥ २०॥

जिस नीच पुरुष ने जूए में जीती हुई द्रौपदी का उपहास किया था। उस सूतपुत्र के खून को आज भूमि पीरही है। हे कुरुश्रेष्ठ! आपका वह शत्रु, बाणों से भरे शरीर के साथ भूमि पर सोरहा है। हे पुरुषव्याघ्र! बहुत सारे बाणों से क्षत-विक्षत हुए उसे आप चलकर देखिए। हे महाबाहु! आप अब शत्रुरहित इस भूमि पर, शासन कीजिए और सावधानी के साथ हमारेसहित प्रचुर भोगों का भोग कीजिये।

इति श्रुत्वा वचस्तस्य केशवस्य महात्मनः।
धर्मपुत्रः प्रहृष्टात्मा दाशार्हं वाक्यमब्रवीत्॥ २१॥
नैतच्चित्रं महाबाहो त्वयि देवकिनन्दन।
त्वया सारथिना पार्थो यत्नवानहनच्च तम्॥ २२॥
न तच्चित्रं महाबाहो युष्मद्बुद्धिप्रसादजम्।
प्रगृह्य च कुरुश्रेष्ठ साङ्गदं दक्षिणं भुजम्॥ २३॥
उवाच धर्मभृत् पार्थ उभौ तौ केशवार्जुनौ।
तव कृष्ण प्रसादेन पाण्डवोऽयं धनंजयः॥ २४॥
जिगायाभिमुखःशत्रून् न चासीद् विमुखः क्वचित्।

तब मनस्वी श्रीकृष्ण जी के इन वचनों को सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए धर्मपुत्र ने उनसे यह कहा कि हे देवकीनन्दन महाबाहु! आपके सारथि रहते हुए अर्जुन ने यत्नपूर्वक उस कर्ण को मारा है, इसमे कोई आश्चर्य की बात नहीं है। यह सब आपकी बुद्दि की कृपा का ही फल है। इसके पश्चात् युधिष्ठिर ने श्रीकृष्णजी का दायाँ हाथ बाजूबन्द से पकड़कर अर्जुन और श्रीकृष्ण दोनों से कहा कि हे कृष्ण! आपकी कृपा से ही इन पाण्डुपुत्र अर्जुन ने शत्रुओं का सामना करके उन्हें जीता है और कभी युद्ध से मुख नहीं मोड़ा।

जयश्चैव ध्रुवोऽस्माकं न त्वस्माकं पराजयः॥ २५॥
यदा त्वं युधि पार्थस्य सारथ्यमुपजग्मिवान्।
इत्युक्त्वा धर्मराजस्तु रथं हेमविभूषितम्॥ २६॥
श्वेतवर्णैर्हयैर्युक्तं कालवालैर्मनोजवैः।
आस्थाय पुरुषव्याघ्रः स्वबलेनाभिसंवृतः॥ २७॥
प्रययौ स महाबाहुर्द्रष्टुमायोधनं तदा।
आभाषमाणस्तौ वीरावुभौ माधवफाल्गुनौ॥ २८॥
स ददर्श रणे कर्णं शयानं पुरुषर्षभम्।

जब आपने युद्ध में अर्जुन का सारथि होना स्वीकार किया था, तभी हमें निश्चय होगया था कि हमारी विजय निश्चित है, हमारी पराजय नहीं होगी। ऐसा कहकर महाबाहु धर्मराज पुरुषश्रेष्ठ, श्वेतरंग के, काले बालोंवाले, मन के समान शीघ्रगामी घोड़ों से युक्त सुनहले रथ पर, अपने रक्षकों से घिरे, युद्धक्षेत्र को देखने के लिये गये। उन दोनों वीरों कृष्ण और अर्जुन से वार्तालाप करते हुए उन्होंने युद्धक्षेत्र में सोते हुए पुरुषश्रेष्ठ कर्ण को देखा।

यथा कदम्बकुसुमं केसरैः सर्वतो वृतम्॥ २९॥
चितं शरशतैः कर्णं धर्मराजो ददर्श सः।
गन्धतैलावसिक्ताभिः काञ्चनीभिः सहस्त्रशः॥ ३०॥
दीपिकाभिः कृतोद्योतं पश्यते वै वृषं तदा।
संछिन्नभिन्नकवचं बाणैश्च विदलीकृतम्॥ ३१॥
सपुत्रं निहतं दृष्ट्वा कर्णं राजा युधिष्ठिरः।
संजातप्रत्ययोऽतीव वीक्ष्य चैवं पुनः पुनः॥ ३२॥
प्रशशंस नरव्याघ्रावुभौ माधवपाण्डवौ।

जैसे कदम्ब का फूल सबतरफ से केसर से भरा हुआ होता है, उसीप्रकार बहुतसारे बाणों से भरे हुए कर्ण को धर्मराज ने देखा। तब सुगन्धित तेल से भरे असंख्य सुनहले दीपक वहाँ जलाये गये थे, जिनके प्रकाश में युधिष्ठिर कर्ण को देख रहे थे। जिसका कवच छिन्न होगया था, बाणों से जिसका शरीर क्षत विक्षत हो रहा था, ऐसे कर्ण को अपने पुत्र के साथ मरा हुआ गहराई से देखकर युधिष्ठिर को विश्वास होगया और उन्होंने दोनों नरव्याघ्रों श्रीकृष्ण और अर्जुन की बहुत बड़ाई की।

अद्य राजास्मि गोविन्द पृथिव्यां भ्रातृभिः सह॥ ३३॥
त्वया नाथेन वीरेण विदुषा परिपालितः।
हतं श्रुत्वा नरव्याघ्रं राधेयमतिमानिनम्॥ ३४॥
निराशोऽद्य दुरात्मासौ धार्तराष्ट्रो भविष्यति।
जीविते चैव राज्ये च हते राधात्मजे रणे॥ ३५॥
त्वत्प्रसादाद् वयं चैव कृतार्थाः पुरुषर्षभ।

त्रयोदश समास्तीर्णा जागरेण सुदुःखिताः॥ ३६॥
स्वप्स्यामोऽद्य सुखं रात्रौ त्वत्प्रसादान्महाभुज।

वे कहने लगे कि हे गोविन्द! तुम जैसे वीर, विद्वान् और संरक्षक के संरक्षण में आज मैं अपने भाइयोंसहित इस भूमण्डल का राजा होगया। अत्यन्तअभिमानी, नरव्याघ्र, राधापुत्र को मारा हुआ सुनकर आज वह दुरात्मा दुर्योधन जीवन और राज्य दोनों से निराश होजायेगा। हे पुरुषश्रेष्ठ! आपकी कृपा से युद्धक्षेत्र में कर्ण के मारे जाने पर हम कृतार्थ होगये हैं। हमने तेरह वर्ष बड़े दुःख से जागते हुए बिताये हैं, पर हे महाबाहु! आज आपकी कृपा से हम रात्रि में सुख से सोयेंगे।

एवं स बहुशो राजा प्रशशंस जनार्दनम्॥ ३७॥
अर्जुनं च कुरुश्रेष्ठं धर्मराजो युधिष्ठिरः।
दृष्ट्वा च निहतं कर्णं सपुत्रं पार्थसायकैः॥ ३८॥
पुनर्जातमिवात्मानं मेने च स महीपतिः।
समेत्य च महाराज कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम्॥ ३९॥
हर्षयन्ति स्म राजानं हर्षयुक्ता महारथाः।
नकुलः सहदेवश्च पाण्डवश्च वृकोदरः॥ ४०॥
सात्यकिश्च महाराज वृष्णीनां प्रवरो रथः।
धृष्टद्युम्नः शिखण्डी च पाण्डुपाञ्चालसृञ्जयाः।
पूजयन्ति स्म कौन्तेयं निहते सूतनन्दने॥ ४१॥

इसप्रकार उन धर्मराज राजा युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण और कुरुश्रेष्ठ अर्जुन की बहुत बार प्रशंसा की। अर्जुन के बाणों से अपने पुत्र सहित कर्ण को मरा हुआ देखकर, राजा ने मानो अपना नया जन्म सा हुआ माना। हे महाराज! उस समय पाण्डव पक्ष के सारे महारथी हर्षित होकर और कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर से मिलकर उनके हर्ष को बढ़ा रहे थे। सूतपुत्र के मारे जाने पर, नकुल, सहदेव, पाण्डुपुत्र भीम, हे महाराज! वृष्णियों में श्रेष्ठ रथी सात्यकि, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी और पाण्डव, पांचाल तथा सृंजय योद्धा लोग कुन्तीपुत्र अर्जुन की प्रशंसा कर रहे थे।

शल्य-पर्व

पहला अध्याय : शल्य और दुर्योधन के वध की सूचना से धृतराष्ट्र की मूर्च्छा।

ततः पूर्वाह्नसमये शिबिरादेत्य संजयः।
प्रविवेश पुरीं दीनो दुःखशोकसमन्वितः॥ १॥
स प्रविश्य पुरीं सूतो भुजावुच्छ्रित्य दुःखितः।
वेपमानस्ततो राज्ञः प्रविवेश निकेतनम्॥ २॥
ददर्श नृपतिश्रेष्ठं प्रज्ञाचक्षुषमीश्वरम्।
तथा चासीनमनघं समन्तात् परिवारितम्॥ ३॥
तमेव चार्थं ध्यायन्तं कर्णस्य निधनं प्रति।
रुदन्नेवाब्रवीत् वाक्यं वाक्य संदिग्धया गिरा॥ ४॥
संजयोऽहं नरव्याघ्र नमस्ते भरतर्षभ।

तब पूर्वाह्न के समय दुःख और शोक से भरे संजय ने शिविर से आकर हस्तिनापुर में प्रवेश किया। पुरी में प्रवेश कर, दुःख से भरा हुआ वह सूत, काँपता हुआ, दोनों हाथ ऊपर उठाये, राजा के भवन में प्रविष्ट हुआ। उसने वहाँ अपने निष्पाप, स्वामी, प्रज्ञाचक्षु, नृपश्रेष्ठ का दर्शन किया, जो अपने परिवार वालों से घिरे हुए बैठे थे और कर्ण के मारे जाने के परिणाम की चिन्तन कर रहे थे। तब रोते हुए ही लड़खड़ाती ध्वनि से उसने कहा कि हे भरतश्रेष्ठ नरव्याघ्र! मैं संजय हूँ। आपको नमस्कार है।

मद्राधिपो हतः शल्यः शकुनिः सौबलस्तथा॥ ५॥
उलूकः पुरुषव्याघ्र कैतव्यो दृढविक्रमः।
संशप्तका हताः सर्वे काम्बोजाश्च शकैः सह॥ ६॥
म्लेच्छाश्च पर्वतीयाश्च यवना विनिपातिताः।
प्राच्या हता महाराज दाक्षिणात्याश्च सर्वशः॥ ७॥
उदीच्याश्च हताः सर्वे प्रतीच्याश्च नरोत्तमाः।
राजानो राजपुत्राश्च सर्वे ते निहता नृप॥ ८॥
दुर्योधनो हतो राजा यथोक्तं पाण्डवेन ह।
भग्नसक्थो महाराज शेते पांसुषु रूषितः॥ ९॥

हे पुरुषव्याघ्र! महाराज शल्य मारे गये। सुबल पुत्र शकुनि और उस जुआरी का दृढ़ पराक्रमी पुत्र उलूक ये भी मारे गये। सारे संशप्तक, काम्बोज, शक, म्लेच्छ, पर्वतीय और यवनसैनिक भी मार गिराये गये। हे महाराज! पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण सब तरफ के श्रेष्ठपुरुष मारे गये। हे राजन्! सारे राजा और राजकुमार मारे गये। दुर्योधन भी मारे गये। जैसा पाण्डुपुत्र भीम ने कहा था, हे महाराज! वे अपनी टूटी हुई जाँघों के साथ, धूल में लिपटे हुए, भूमि पर पड़े हैं।

धृष्टद्युम्नो महाराज शिखण्डी चापराजितः।
उत्तमौजा युधामन्युस्तथा राजन् प्रभद्रकाः॥ १०॥
पञ्चालाश्च नरव्याघ्र चेदयश्च निषूदिताः।
तव पुत्रा हताः सर्वे द्रौपदेयाश्च भारत॥ ११॥
किञ्चिच्छेषं च शिबिरं तावकानां कृतं प्रभो।
पाण्डवानां कुरूणां च समासाद्य परस्परम्॥ १२॥
ते चैव भ्रातरः पञ्च वासुदेवोऽथ सात्यकिः।
कृपश्च कृतवर्मा च द्रौणिश्च जयतां वरः॥ १३॥
अक्षौहिणीनां सर्वासां समेतानां जनेश्वर।
एते शेषा महाराज सर्वेऽन्ये निधनं गताः॥ १४॥

हे नरव्याघ्र नरेश! हे महाराज! धृष्टद्युम्न, अपराजित शिखण्डी, उत्तमौजा, युधामन्यु, प्रभद्रकगण, पाँचाल और चेदिदेशी योद्धा भी मारे गये। हे भारत! आपके और द्रौपदी के सारे पुत्र मारे गये। हे प्रभो! पाण्डवों और कौरवों में संघर्ष होकर, पाण्डवों और आपके पुत्रों के शिविर में किंचित् मात्र ही शेष रहा है। उधर वे पाँचों भाई, श्रीकृष्ण और सात्यकि और इधर कृपाचार्य, कृतवर्मा तथा विजयी वीरों में श्रेष्ठ अश्वत्थामा बाकी बचे हैं। हे जनेश्वर! एकत्र हुई अक्षौहिणी सेनाओं में से ये ही रथी शेष हैं, शेष मारे गये हैं।

एतच्छ्रुत्वा वचः क्रूरं धृतराष्ट्रो जनेश्वरः।
निपपात स राजेन्द्रो गतसत्त्वो महीतले॥ १५॥
तस्मिन् निपतिते भूमौ विदुरोऽपि महायशाः।
गान्धारी च निपपात सर्वाश्च कुरुयोषितः॥ १६॥
पतिताः सहसा भूमौ श्रुत्वा क्रूरं वचस्तदा।
निःसंज्ञं पतितं भूमौ तदासीद् राजमण्डलम्॥ १७॥
कृच्छ्रेण तु ततो राजा धृतराष्ट्रो महीपतिः।
शनैरलभत प्राणान् पुत्रव्यसनकर्शितः॥ १८॥

इन क्रूर वचनों को सुनकर, राजेन्द्र, प्रजा के स्वामी धृतराष्ट्र प्राणहीन से होकर भूमि पर गिर पड़े। उनके भूमि पर गिरने पर, महायशस्वी विदुर भी, गान्धारी और सभी कुरुकुल की स्त्रियाँ भी उन क्रूर वचनों को सुनकर एक दम भूमि पर गिर पड़ीं। उस समय राजपरिवार के सारे लोग अचेत होकर भूमि पर गिरे हुए थे। उसके पश्चात् पृथ्वीपति, राजा धृष्टराष्ट्र में बड़ी कठिनाई से धीरे धीरे प्राणों का संचार हुआ। वे उस समय पुत्र शोक से अत्यन्त पीड़ित हो रहे थे।

लब्ध्वा तु स नृपः संज्ञां वेपमानः सुदुःखितः।
उदीक्ष्य च दिशः सर्वाः क्षत्तारं वाक्यमब्रवीत्॥ १९॥
विद्वन् क्षत्तर्महाप्राज्ञ त्वं गतिर्भरतर्षभ।
ममानाथस्य सुभृशं पुत्रैर्हीनस्य सर्वशः॥ २०॥
एवमुक्त्वा ततो भूयो विसंज्ञो निपपात ह।
तं तथा पतितं दृष्ट्वा बान्धवा येऽस्य केचन॥ २१॥
शीतैस्ते सिषिचुस्तोयैर्विव्यजुर्व्यजनैरपि।

तब अत्यन्त दुःख से भरे और काँपते हुए, राजा होश में आकर, सब तरफ देखने की चेष्टा करते हुए विदुर जी से बोले कि हे विद्वान्, महाप्राज्ञ, भरतश्रेष्ठ, विदुर! अब मुझ पुत्रों से रहित, अत्यन्त अनाथ के तुम्ही सहारे हो। ऐसा कहकर वे फिर बेहोश होकर गिर पड़े। उन्हें इस प्रकार गिरा हुआ देख कर, उस समय जो कोई भी उनके बान्धव वहाँ विद्यमान थे, वे उनके शरीर पर ठंडे पानी के छींटे देने लगे और उनके ऊपर पंखा डुलाने लगे।

स तु दीर्घेण कालेन प्रत्याश्वस्तो नराधिपः॥ २२॥
तूष्णीं दध्यौ महीपालः पुत्रव्यसनकर्शितः।
संजयोऽप्यरुदत् तत्र दृष्ट्वा राजानमातुरम्॥ २३॥
तथा सर्वाः स्त्रियश्चैव गान्धारी च यशस्विनी।
ततो दीर्घेण कालेन विदुरं वाक्यमब्रवीत्॥ २४॥
धृतराष्ट्रो नरश्रेष्ठः मुह्यमानो मुहुर्मुहुः।
गच्छन्तु योषितः सर्वा गान्धारी च यशस्विनी॥ २५॥
तथेमे सुहृदः सर्वे भ्राम्यते मे मनो भृशम्।
प्राञ्जलिर्निःश्वसन्तं च तं नरेन्द्रं मुहुर्मुहुः।
समाश्वासयत क्षत्ता वचसा मधुरेण च॥ २६॥

फिर लम्बे समय के पश्चात् राजा को जब फिर होश आया तो पुत्र के दुःख से वे पृथिवीपति चुपचाप बैठे हुए चिन्ता करने लगे। राजा को आतुर देख कर संजय भी रोने लगे और उसी प्रकार वहाँ सारी स्त्रियाँ तथा यशस्विनी गान्धारी भी रोने लगी। फिर लम्बे समय के पश्चात् बारबार मोहित होते हुए नरश्रेष्ठ धृतष्टराष्ट्र ने विदुर से कहा कि ये सारी स्त्रियाँ और यशस्विनी गान्धारी देवी तथा ये सारे बन्धुबान्धव अब चले जायें, क्योंकि मेरा मन अत्यधिक भ्रान्त हो रहा है। उसके पश्चात् बारबार लम्बी साँसें लेते हुए उस राजा को विदुरने हाथ जोड़ कर, मधुर वाणी से आश्वासन दिया।

दूसरा अध्याय : धृतराष्ट्र का विलाप और विस्तृत वर्णन के लिये कहना।

विसृष्टास्वथ नारीषु धृतराष्ट्रोऽम्बिकासुतः।
सधूममिव निःश्वस्य वचनं चेदमब्रवीत्॥ १॥
अहो बत महद्दुःखं यदहं पाण्डवान् रणे।
क्षेमिणश्चाव्ययांश्चैव त्वत्तः सूत शृणोमि वै॥ २॥
वज्रसारमयं नूनं हृदयं सुदृढं मम।
यच्छ्रुत्वा निहतान् पुत्रान् दीर्यते न सहस्रधा॥ ३॥
चिन्तयित्वा वयस्तेषां बालक्रीडां च संजय।
हतान् पुत्रानशेषेण दीर्यते मे भृशं मनः॥ ४॥

स्त्रियों के चले जाने पर अम्बिकापुत्र धृतराष्ट्र ने गर्म गर्म साँस लेते हुए यह कहा कि हे सूत! यह मेरे लिये महान् दुःख की बात है कि मैं तुमसे पाण्डवों को युद्ध में सकुशल और विनाश रहित सुन रहा हूँ। मेरा हृदय वास्तव में लोहे का बना हुआ है, जो अपने पुत्रों को मरा हुआ सुन कर भी उसके असंख्य टुकड़े नहीं हो जाते। हे संजय! उनकी बाल क्रीड़ाओं और उनकी आयु का चिन्तन करते हुए,

जब उन सबके मारे जाने की बात सोचता हूँ तो मेरा हृदय विदीर्ण होने लगता है।

अनेत्रत्वाद् यदेतेषां न मे रूपनिदर्शनम्।
पुत्रस्नेहकृता प्रीतिर्नित्यमेतेषु धारिता॥ ५॥
बालभावमतिक्रम्य यौवनस्थांश्च तानहम्।
मध्यप्राप्तांस्तथा श्रुत्वा हृष्ट आसं तदानघ॥ ६॥
तानद्य निहताञ्श्रुत्वा हतैश्वर्यान् हतौजसः।
न लभेयं क्वचिच्छान्ति पुत्राधिभिरभिप्लुतः॥ ७॥
एह्येहि पुत्र राजेन्द्र ममानाथस्य साम्प्रतम्।
त्वया हीनो महाबाहो कां नु यास्याम्यहं गतिम्॥ ८॥

यद्यपि आँखों के न होने के कारण मैंने उनका रूप कभी नहीं देखा, पर फिर भी पुत्रस्नेह का प्रेम मैंने उनके प्रति सदा अपने हृदय में रखा है। हे निष्पाप! जब मैं सुनता था कि मेरे पुत्र बाल्यावस्था को पार कर यौवनावस्था में आ रहे हैं और अब और अधिक बड़े हो कर मध्यम अवस्था को पहुँच गये हैं, तब मैं बड़ा प्रसन्न हुआ करता था। पर अब उन्हीं को जब अपने तेज और ऐश्वर्य से रहित हो कर मारा हुआ सुनता हूँ तो पुत्रों के शोक से भरे हुए मुझे किसी प्रकार भी शान्ति नहीं मिल पा रही है। हे राजाधिराज, मेरे बेटे! तुम मुझ अनाथ के पास आओ। हे महाबाहु! अब मैं तुमसे रहित हो कर किस अवस्थो को पहुँच जाऊँगा?

कथं त्वं पृथिवीपालांस्त्यक्त्वा तात समागतान्।
शेषे विनिहतो भूमौ प्राकृतः कुनृपो यथा॥ ९॥
गतिर्भूत्वा महाराज ज्ञातीनां सुहृदां तथा।
अन्धं वृद्धं च मां वीर विहाय क्व नु यास्यसि॥ १०॥
सा कृपा सा च ते प्रीतिः क्व सा राजन् सुमानिता।
कथं विनिहतः पार्थैः संयुगेष्वपराजितः॥ ११॥
को नु मामुत्थितं वीर तात तातेति वक्ष्यति।
महाराजेति सततं लोकनाथेति चासकृत्॥ १२॥

हे तात! तुम यहाँ आये राजाओं को छोड़कर, किसी नीच और दुष्ट राजा के समान मारे जाकर कैसे भूमि पर सो रहे हो? हे वीर महाराज! तुम अपने परिवारवालों और बन्धुओं के सहारे थे। अब तुम मुझ अन्धे और बूढ़े को छोड़ कर कहाँ जा रहे हो? तुम्हारा वह कृपा करने का स्वभाव, वह प्रेमभाव, वह दूसरों को सम्मान देने की भावना कहाँ चली गयी? तुम तो किसी से पराजित नहीं होने वाले थे फिर कुन्तीपुत्रों से युद्ध में कैसे मारे गये? हे वीर! अब मेरे उठने पर मुझे हे तात, हे महाराज हे लोकनाथ, इस प्रकार बारबार कह कर कौन पुकारेगा?

परिष्वज्य च मां कण्ठे स्नेहेन क्लिन्नलोचनः।
अनुशाधीति कौरव्य तत् साधु वद मे वचः॥ १३॥
ननु नामाहमश्रौषं वचनं तव पुत्रक।
भूयसी मम पृथ्वीयं यथा पार्थस्य नो तथा॥ १४॥

हे कुरुनन्दन! जैसे तुम पहले स्नेह से आँखों में आँसू भरकर और मुझे गले से लगाकर कहते थे कि पिताजी! मुझे कर्त्तव्य का उपदेश दीजिये, उन्हीं सुन्दर बातों को अब दुबारा मुझसे कहो। हे पुत्र! मैं तुम्हारे मुख से यह बात सुनता था कि मेरे आधीन बहुत अधिक पृथ्वी है, इतनी युधिष्ठिर के अधिकार में कभी नहीं रही।

भगदत्तः कृपः शल्य आवन्त्योऽथ जयद्रथः।
भूरिश्रवाः सोमदत्तो महाराजश्च बाह्लिकः॥ १५॥
अश्वत्थामा च भोजश्च मागधश्च महाबलः।
बृहद्बलश्च क्राथश्च शकुनिश्चापि सौबलः॥ १६॥
म्लेच्छाश्च शतसाहस्राः शकाश्च यवनैः सह।
सुदक्षिणश्च काम्बोजस्त्रिगर्ताधिपतिस्तथा॥ १७॥
भीष्मः पितामहश्चैव भारद्वाजोऽथ गौतमः।
श्रुतायुश्चायुतायुश्च शतायुश्चापि वीर्यवान्॥ १८॥
जलसन्धोऽथार्ष्यशृङ्गी राक्षसश्चाप्यलायुधः।
अलम्बुषो महाबाहुः सुबाहुश्च महारथः॥ १९॥
एते चान्ये च बहवो राजानो राजसत्तम।
मदर्थमुद्यताः सर्वे प्राणांस्त्यक्त्वा धनानि च॥ २०॥

हे नृपश्रेष्ठ! भगदत्त, कृपाचार्य, शल्य, अवन्ती के राजकुमार, जयद्रथ, भूरिश्रवा, सोमदत्त, महाराज बाह्लीक, अश्वत्थामा, कृतवर्मा, महाबली मगध नरेश, बृहद्बल, क्राथ, सुबल पुत्र शकुनि, लाखों म्लेच्छ, यवन और शक, काम्बोजराज सुदक्षिण, त्रिगर्तराज सुशर्मा, पितामहभीष्म, भरद्वाजनन्दन द्रोणाचार्य, श्रुतायु, अयुतायु और पराक्रमी शतायु, जलसन्ध, ऋष्यश्रृंगपुत्र राक्षस अलायुध, महाबाहु अलम्बुष, महारथी सुबाहु ये और बहुत से श्रेष्ठ राजा लोग अपने प्राणों और धनों का त्याग कर मेरे लिये युद्ध के लिये तैयार हैं। यह बात तुमने मुझसे कही थी।

तेषां मध्ये स्थितो युद्धे भ्रातृभिः परिवारितः।
योधयिष्याम्यहं पार्थान् पञ्चालांश्चैव सर्वशः॥ २१॥
चेदींश्च नृपशार्दूल द्रौपदेयांश्च संयुगे।
सात्यकिं कुन्तिभोजं च राक्षसं च घटोत्कचम्॥ २२॥
एकोऽप्येषां महाराज समर्थः संनिवारणे।
समरे पाण्डवेयानां संक्रुद्धो ह्यभिधावताम्॥ २३॥
किं पुनः सहिता वीराः कृतवैराश्च पाण्डवैः।
कर्ण एको मया सार्धं निहनिष्यति पाण्डवान्॥ २४॥
ततो नृपतयो वीराः स्थास्यन्ति मम शासने।

तुमने मुझसे कहा था कि इन सब के बीच मैं अपने भाइयों से घिरा हुआ रहकर पाण्डवों और पाँचालों से युद्ध करूँगा। मेरे इन वीरों में से एक एक भी युद्ध में अत्यन्त क्रुद्ध होकर आक्रमण करते हुए पाण्डवों का निवारण कर सकता है। हे महाराज! फिर अब तो पाण्डवों से बैर करने वाले ये सारे एक साथ मिले हुए हैं। अकेला कर्ण ही मेरे साथ रहकर सारे पाण्डवों को मार देगा। फिर ये सारे वीर राजा मेरी आज्ञा के आधीन हो जायेंगे।

यश्च तेषां प्रणेता वै वासुदेवो महाबलः॥ २५॥
न स संनह्यते राजन्निति मामब्रवीद् वचः।
तस्याथ वदतः सूत बहुशो मम संनिधौ॥ २६॥
शक्तितो ह्यनुपश्यामि निहतान् पाण्डवान् रणे।
नान्यदत्र परं मन्ये वनवासादृते प्रभो॥ २७॥
सोऽहं वनं गमिष्यामि निर्बन्धुर्ज्ञातिसंक्षये।
न हि मेऽन्यद् भवेच्छ्रेयो वनाभ्युपगमादृते॥ २८॥
इमामवस्थां प्राप्तस्य लूनपक्षस्य संजय।

दुर्योधन ने मुझसे कहा था कि पाण्डवों के जो नेता, महाबली श्रीकृष्ण हैं, वे शस्त्र धारण नहीं करेंगे। हे सूत! उसने इसप्रकार की बहुत सी बातें मुझसे कही, तब मैं यह समझने लगा था कि हमारी शक्ति से पाण्डव लोग युद्ध में मारे जायेंगे। हे सामर्थ्यशाली संजय! अब तो मेरे लिये वन में जाने के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं है। इसलिये अब परिवारवालों के विनाश के बाद मैं बिना अपने बन्धुबान्धवों के वन में जाऊँगा। हे संजय! अब परकटे पक्षी की अवस्था को प्राप्तकर, वन में निवास करने के अतिरिक्त और कोई दूसरा कल्याणकारी मार्ग मेरे लिये नहीं है।

दुर्योधनो हतो यत्र शल्यश्च निहतो युधि॥ २९॥
दुःशासनो विविंशश्च विकर्णश्च महाबलः।
कथं हि भीमसेनस्य श्रोष्येऽहं शब्दमुत्तमम्॥ ३०॥
एकेन समरे येन हतं पुत्रशतं मम।
असकृद्वदतस्तस्य दुर्योधनवधेन च॥ ३१॥
दुःखशोकाभिसंतप्तो न श्रोष्ये परुषा गिरः।

जब युद्ध में दुर्योधन मारा गया, शल्य मारा गया, दुश्शासन, विविंशति और विकर्ण ये सारे महाबली मारे गये, तब जिस भीम ने अकेले मेरे सौ पुत्रों को युद्ध में मार दिया, उसकी ऊँचे स्वर में कही गयी बातों को मैं कैसे सुनूँगा? दुर्योधन के वध के कारण दुख और शोक से सन्तप्त हुआ मैं, बार बार बोलने वाले भीमसेन की कड़वी बातें नहीं सुनूँगा।

एवं वृद्धश्च संतप्तः पार्थिवो हतबान्धवः॥ ३२॥
मुहुर्मुहुर्मुह्यमानः पुत्राधिभिरभिप्लुतः।
विलप्य सुचिरं कालं धृतराष्ट्रोऽम्बिकासुतः॥ ३३॥
दीर्घमुष्णं स निःश्वस्य चिन्तयित्वा पराभवम्।
पुनर्गावल्गणिं सूतं पर्यपृच्छद् यथातथम्॥ ३४॥

इसप्रकार वे बूढ़े अम्बिकापुत्र राजा धृतराष्ट्र, जिनके बन्धु मार दिये गये थे, जो पुत्रशोक की वेदना से भरे हुए, अत्यन्त सन्तप्त और बार बार मोहित होरहे थे, बहुत देर तक विलाप करके, लम्बी और गर्म साँसें लेते हुए, और अपनी पराजय के बारे में सोचते हुए फिर गवल्गणपुत्र संजय से युद्ध का यथावत् समाचार पूछने लगे।

तीसरा अध्याय : कृपाचार्य का दुर्योधन को सन्धि के लिये समझाना।

संजय उवाच

पतितान् रथनीडांश्च रथांश्चापि महात्मनाम्।
रणे च निहतान् नागान् दृष्ट्वा पत्तींश्च मारिष॥ १॥
भृशोद्विग्नेषु सैन्येषु दृष्ट्वा पार्थस्य विक्रमम्।
ध्यायमानेषु सैन्येषु दुःखं प्राप्तेषु भारत॥ २॥
कृपाविष्टः कृपो राजन् वयः शीलसमन्वितः।
अब्रवीत् तत्र तेजस्वी सोऽभिसृत्य जनाधिपम्॥ ३॥
दुर्योधनं मन्युवशाद् वाक्यं वाक्यविशारदः।

संजय ने कहा हे मान्यवर! तब मनस्वी वीरों के रथों की बैठकों, हाथियों और पैदलसैनिकों को युद्धक्षेत्र में मारा हुआ देखकर, अर्जुन के पराक्रम को देखकर, सेनाओं के अत्यन्तउद्विग्न होजाने पर उन्हें दुखी और चिन्तित होते देखकर, हे भरतवंशी राजन्! बड़ी आयु और अच्छे स्वभाव से युक्त, तेजस्वी और वाक्यविशारद कृपाचार्य कृपा से युक्त होकर दया के कारण राजा दुर्योधन के पास जाकर उससे बोले कि--

दुर्योधन निबोधेदं यत् त्वां वक्ष्यामि कौरव॥ ४॥
श्रुत्वा कुरु महाराज यदि ते रोचतेऽनघ।
हते भीष्मे च द्रोणे च कर्णे चैव महारथे॥ ५॥
जयद्रथे च निहते तव भ्रातृषु चानघ।
लक्ष्मणे तव पुत्रे च किं शेषं पर्युपास्महे॥ ६॥
येषु भारं समासाद्य राज्ये मतिमकुर्महि।
ते संत्यज्य तनूर्याताः शूरा ब्रह्मविदां गतिम्॥ ७॥
वयं त्विह विना भूता गुणवद्भिर्महारथैः।
कृपणं वर्तयिष्यामः पातयित्वा नृपान् बहून्॥ ८॥

हे दुर्योधन! हे कुरुवंशी महाराज! मैं जो तुमसे कहता हूँ, उसे सुनकर समझो और फिर जो तुम्हें अच्छा लगे वह करो। भीष्म, द्रोण और कर्ण इन महारथियों के मारे जाने पर, हे निष्पाप! जयद्रथ के, तुम्हारे भाइयों के और तुम्हारे पुत्र लक्ष्मण के मारे जाने पर अब कौन बच गया है, जिसका हम आश्रय लें? जिन शूरवीरों पर युद्ध का भार रखकर हम राज्य पाने की आशा कर रहे थे, वे सब वीर तो अपने शरीरों को छोड़कर ब्रह्मवेत्ताओं की गति को प्राप्त होगये। हम इन गुणवान् महारथियों से रहित होगये हैं। बहुतसारे राजाओं को मरवाकर, हम शोचनीय स्थिति में आगये हैं।

सर्वैरथ च जीवद्भिर्बीभत्सुरपराजितः।
कृष्णनेत्रो महाबाहुर्देवैरपि दुरासदः॥ ९॥
सिंहनादाच्च भीमस्य पाञ्च जन्यस्वनेन च।
गाण्डीवस्य च निर्घोषात् सम्मुह्यन्ते मनांसि नः॥ १०॥
जाम्बूनदविचित्रं च धूयमानं महद् धनुः।
दृश्यते दिक्षु सर्वासु विद्युदभ्रघनेष्विव॥ ११॥
तावकं तद् बलं राजन्नर्जुनोऽस्त्रविशारदः।
गहनं शिशिरापाये ददाहाग्निरिवोल्बणः॥ १२॥

इन सारे वीरों के जीवित रहते हुए भी अर्जुन किसी से पराजित नहीं हुए। जिनके कृष्ण नेता हैं, वे महाबाहु देवताओं के लिये भी दुर्जय हैं। भीम का सिंहनाद, पाँचजन्य शंख की ध्वनि और गाण्डीव धनुष की टंकार सुनकर हमारे दिल दहल उठते हैं। स्वर्ण से विभूषित और हिलता हुआ अर्जुन का विशाल धनुष सब तरफ ऐसा प्रतीत होता है, जैसे बादलों के अन्दर बिजली चमक रही हो। हे राजन्! जैसे ग्रीष्मऋतु में भयंकर आग महान् वन को जला देती है, वैसे ही अस्त्रविद्या में कुशल अर्जुन ने आपकी सेना को समाप्त कर दिया है।

गाहमानमनीकानि महेन्द्रसदृशप्रभम्।
धनंजयमपश्याम चतुर्दंष्ट्रमिव द्विपम्॥ १३॥
विक्षोभयन्तं सेनां ते त्रासयन्तं च पार्थिवान्।
धनंजयमपश्याम नलिनीमिव कुञ्जरम्॥ १४॥
त्रासयन्तं तथा योधान् धनुर्घोषेण पाण्डवम्।
भूय एनमपश्याम सिंहं मृगगणानिव॥ १५॥
सर्वलोकमहेष्वासौ वृषभौ सर्वधन्विनाम्।
आमुक्तकवचौ कृष्णौ लोकमध्ये विचेरतुः॥ १६॥

इन्द्र जैसे पराक्रमी, चार दाँतों वाले हाथी के समान अर्जुन को हमने आपकी सेना को विलोडित करते देखा है। जैसे हाथी कमलों के तालाब में घुसकर उसे मथ डालता है, वैसे ही हमने अर्जुन को आपकी सेना को मथते और राजाओं को भयभीत करते देखा है। जैसे सिंह मृगों के झुण्डों को भयभीत करता है, वैसे ही हमने अर्जुन को अपने धनुष की टंकार से आपके योद्धाओं को डराते हुए देखा है। सारे संसार में प्रसिद्ध महाधनुर्धर, सारे धनुर्धरों में श्रेष्ठ, श्रीकृष्ण और अर्जुन सारे अंगों में कवच बाँधकर योद्धाओं के बीच में विचरण करते हैं।

वायुनेव विधूतानि तव सैन्यानि सर्वतः।
शरदम्भोदजालानि व्यशीर्यन्त समन्ततः॥ १७॥
तां नावमिव पर्यस्तां वातधूतां महार्णवे।
तव सेनां महाराज सव्यसाची व्यकम्पयत्॥ १८॥
क्व नु ते सूतपुत्रोऽभूत् क्व नु द्रोणः सहानुगः।
अहं क्व च क्व चात्मा ते हार्दिक्यश्च तथा क्व नु॥ १९॥
दुःशासनश्च ते भ्राता भ्रातृभिः सहितः क्व नु।
बाणगोचरसम्प्राप्तं प्रेक्ष्य चैव जयद्रथम्॥ २०॥

जैसे वायु शरद्ऋतु के बादलों को छिन्न कर देती है, उसी प्रकार से अर्जुन ने आपकी सेना को सबतरफ से विदीर्ण कर दिया है। जैसे तूफान की मारी हुई नाव समुद्र में झोंके लेती है, वैसे ही हे महाराज! अर्जुन ने आपकी सेना को कम्पित किया हुआ है। उस दिन जब अर्जुन ने जयद्रथ को अपने बाणों का निशाना बनाया था, तब सूर्यपुत्र कर्ण कहाँ था? अपने आदमियों के साथ द्रोणाचार्य कहाँ थे? मैं कहाँ था? तुम कहाँ थे? कृतवर्मा और अपने भाइयों के साथ दुश्शासन ये सारे कहाँ थे?

सम्बन्धिनस्ते भ्रातृंश्च सहायान् मातुलांस्तथा।
सर्वान् विक्रम्य मिषतो लोकमाक्रम्य मूर्धनि॥ २१॥
जयद्रथो हतो राजन् किं नु शेषमुपास्महे।
को हीह स पुमानस्ति यो विजेष्यति पाण्डवम्॥ २२॥
तस्य चास्त्राणि दिव्यानि विविधानि महात्मनः।
गाण्डीवस्य च निर्घोषो धैर्याणि हरते हि नः॥ २३॥
नष्टचन्द्रा यथा रात्रिः सेनेयं हतनायका।
नागभग्नद्रुमा शुष्का नदीवाकुलतां गता॥ २४॥

आपके सारे सम्बन्धियों, भाइयों, सहायकों और मामाओं को अपने पराक्रम से हराकर और सब लोगों के सिर पर पैर रखकर अर्जुन ने उस दिन जयद्रथ को मार दिया। अब कौन शेष बचा है? जिसका हम आश्रय लें? यहाँ कौन पुरुष ऐसा है, जो अर्जुन को जीत सकता है? उस मनस्वी के तरहतरह के दिव्यास्त्र और गाण्डीव धनुष की टंकार हमारे हृदय को विचलित कर देती है। बिना चन्द्रमा के जैसे रात्रि होती है, वैसे ही हमारी सेना बिना नायक के होरही है। हाथी ने जिसके किनारे के वृक्षों को तोड़ दिया हो, ऐसी सूखी नदी के समान यह सेना व्याकुल होरही है।

ध्वजिन्यां हतनेत्रायां यथेष्टं श्वेतवाहनः।
चरिष्यति महाबाहुः कक्षेष्वग्निरिव ज्वलन्॥ २५॥
उवाच वाक्यं यद् भीमः सभामध्ये विशाम्पते।
कृतं तत् सफलं तेन भूयश्चैव करिष्यति॥ २६॥
आत्मनोऽर्थे त्वया लोको यत्नतः सर्व आहृतः।
स ते संशयितस्तात आत्मा वै भरतर्षभ॥ २७॥
रक्ष दुर्योधनात्मानमात्मा सर्वस्य भाजनम्।
भिन्ने हि भाजने तात दिशो गच्छति तद्गतम्॥ २८॥

अब क्योंकि हमारी सेना का नेता नष्ट होगया है, इसलिये सफेद घोड़ोंवाला, महाबाहु, अर्जुन सेना में उसीप्रकार विचरण करेगा, जैसे सूखे घासफूस में अग्नि उसे जलाती हुई विचरण करती है। हे प्रजानाथ! भीम ने प्रजा के बीच में जो बातें कही थीं, उन्हें उसने पूरी कर दिया है। शेष बची हुई को वह अवश्य ही पूरी करेगा। हे भरतश्रेष्ठ! आपने अपनी रक्षा के लिये सारे लोगों को प्रयत्नपूर्वक बुलाया था, पर अब आपका जीवन संशय में पड़ गया है। हे दुर्योधन! आप अपनी रक्षा कीजिये। क्योंकि शरीर ही सारे सुखों का आधार है। जैसे बर्तन के टूट जाने पर उसमें रखा हुआ पदार्थ सबतरफ फैल जाता है, वैसे ही शरीर के नष्ट हो जाने पर भी सारे सुखों का अन्त होजाता है।

हीयमानेन वै सन्धिः पर्येष्टव्यः समेन वा।
विग्रहो वर्धमानेन मतिरेषा बृहस्पतेः॥ २९॥
ते वयं पाण्डुपुत्रेभ्यो हीना स्म बलशक्तितः।
तदत्र पाण्डवैः सार्धं सन्धिं मन्ये क्षमं प्रभो॥ ३०॥
न जानीते हि यः श्रेयः श्रेयसश्चावमन्यते।
स क्षिप्रं भ्रश्यते राज्यान्न च श्रेयोऽनुविन्दते॥ ३१॥
प्रणिपत्य हि राजानं राज्यं यदि लभेमहि।
श्रेयः स्यान्न तु मौढ्येन राजन् गन्तुः पराभवम्॥ ३२॥

बृहस्पति का यह मत है कि कमजोर बलवाले या बराबर बलवाले को सन्धि कर लेनी चाहिये। जब अपना बल अधिक हो, तभी युद्ध करना चाहिये। अब हम सेना और शक्ति दोनों में पाण्डवों से हीन हो गये हैं, इसलिये हे प्रभो! अब मैं पाण्डवों के साथ सन्धि कर लेना उचित समझता हूँ। जो राजा स्वयं अपने कल्याण की बात नहीं जानता और कल्याणकारी पुरुषों का अपमान करता है, वह जल्दीही राज्य से भ्रष्ट होजाता है और कल्याण को

भी प्राप्त नहीं करता। यदि हम राजा युधिष्ठिर को प्रणामकर अपने राज्य को प्राप्त करलें, तो यह हमारे लिये कल्याणकारी होगा। हे राजन्! मूर्खता से पराजय को प्राप्त होनेवाले का कल्याण नहीं होता है।

वैचित्रवीर्यवचनात् कृपाशीलो युधिष्ठिरः।
विनियुञ्जीत राज्ये त्वां गोविन्दवचनेन च॥ ३३॥
यद् ब्रूयाद्धि हृषीकेशो राजानमपराजितम्।
अर्जुनं भीमसेनं च सर्वे कुर्युरसंशयम्॥ ३४॥
नातिक्रमिष्यते कृष्णो वचनं कौरवस्य तु।
धृतराष्ट्रस्य मन्येऽहं नापि कृष्णस्य पाण्डवः॥ ३५॥
एतत् क्षेममहं मन्ये न च पार्थैश्च विग्रहम्।
न त्वां ब्रवीमि कार्पण्यान्न प्राणपरिरक्षणात्।
पथ्यं राजन् ब्रवीमि त्वां तत्परासुः स्मरिष्यसि॥ ३६॥

धृतराष्ट्र के कहने से और श्रीकृष्ण के कहने से कृपाशील युधिष्ठिर आपको राज्य पर प्रतिष्ठित कर सकते हैं। किसी से पराजित न होनेवाले राजा युधिष्ठिर, अर्जुन और भीम से जोकुछ भी श्रीकृष्ण कहेंगे, उसे वे सारे निःसंदेह पूरा करेंगे। मैं समझता हूँ कि श्रीकृष्ण कुरुराज धृतराष्ट्र की बात नहीं टालेंगे। मैं इस सन्धिकार्य को तुम्हारे लिये कल्याणकारी समझता हूँ, कुन्तीपुत्रों के साथ युद्ध करने को कल्याणकारी नहीं समझता। मैं ये बातें तुम्हें कायरता या प्राणरक्षा के लिये नहीं कह रहा हूँ। मैं तो हे राजन्! तुम्हारे कल्याण के लिये कह रहा हूँ। तुम मरणासन्न अवस्था में मेरी बातों को याद करोगे।

चौथा अध्याय : दुर्योधन का कृपाचार्य की बात न मानकर युद्ध के लिये ही निश्चय करना।

एवमुक्तस्ततो राजा गौतमेन तपस्विना।
निःश्वस्य दीर्घमुष्णं च तूष्णीमासीद् विशाम्पते॥ १॥
ततो मूहूर्तं स ध्यात्वा, इत्युवाच परंतपः।
यत् किञ्चित् सुहृदा वाच्यं तत् सर्वं श्रावितो ह्यहम्॥ २॥
कृतं च भवता सर्वं प्राणान् संत्यज्य युध्यता।
गाहमानमनीकानि युध्यमानं महारथैः॥ ३॥
पाण्डवैरतितेजोभिर्लोक- स्त्वामनुदृष्टवान्।
सुहृदा यदिदं वाक्यं भवता श्रावितो ह्यहम्॥ ४॥
हेतुकारणसंयुक्तं हितं वचनमुत्तमम्।
उच्यमानं महाबाहो न मे विप्राग्र्य रोचते॥ ५॥

हे प्रजानाथ! तपस्वी कृपाचार्य द्वारा यह कहे जाने पर राजा दुर्योधन लम्बी और, गर्म साँसें लेता हुआ चुप होगया। फिर एक मुहूर्त तक विचार करने पर, उस शत्रुओं को सन्तप्त करने वाले ने यह कहा कि जोकुछ एक हितैषी को कहना चाहिये, वहसब आपने मुझसे कहा है और अपने प्राणों का मोह छोड़कर युद्ध करते हुए आपने मेरे लिये सबकुछ किया भी है। लोगों ने आपको देखा है कि आपने शत्रुसेनाओं को विलोडित करते हुए अत्यन्ततेजस्वी पाण्डव महारथियों के साथ युद्ध किये हैं। आपने मेरे हितैषी होने के कारण, युक्ति और कारणों से युक्त, कल्याणकारी और उत्तम बातें जो मुझसे कही हैं, हे ब्राह्मणश्रेष्ठ, महाबाहु! वे कही हुई बातें मुझे ठीक नहीं लग रही हैं।

राज्याद् विनिकृतोऽस्माभिः कथं सोऽस्मासु विश्वसेत्।
अक्षद्यूते च नृपतिर्जितोऽस्माभिर्महाधनः॥ ६॥
तथा दौत्येन सम्प्राप्तः कृष्णः पार्थहिते रतः।
प्रलब्धश्च हृषीकेशस्तच्च कर्माविचारितम्॥ ७॥
स च मे वचनं ब्रह्मन् कथमेवाभिमन्यते।
विललाप च यत् कृष्णा सभामध्ये समेयुषी॥ ८॥
न तन्मर्षयते कृष्णो न राज्यहरणं तथा।
एकप्राणावुभौ कृष्णावन्योन्यमभिसंश्रितौ॥ ९॥
पुरा यच्छ्रुतमेवासीदद्य पश्यामि तत् प्रभो।

हमने उन्हें धोखा देकर राज्य से अलग कर दिया। वे बहुत धनी थे, पर जूए में हमने उन्हें जीतकर निर्धन कर दिया। अब वे हमारे ऊपर विश्वास क्यों करेंगे? उसीप्रकार पाण्डवों की भलाई में लगे हुए श्रीकृष्ण, जब दूत बन कर आये, तब मैंने उनके साथ धोखा किया। वह मेरा कार्य अविचारयुक्त था। हे ब्रह्मन्! अब वे कृष्ण मेरी बात क्यों मानेंगे? सभा के बीच में हठ पूर्वक लायी हुई द्रौपदी ने जो विलाप किया और पाण्डवों का जो

राज्य छीन लिया गया उन बातों को श्रीकृष्ण कभी सहन नहीं कर सकते। एकदूसरे पर आश्रित रहने वाले श्रीकृष्ण और अर्जुन एक प्राण और दो शरीर हैं, यह बात जो मैंने पहले सुनी थी, उसे मैं अब प्रत्यक्ष देख रहा हूँ।

स्वस्त्रीयं निहतं श्रुत्वा दुःखं स्वपिति केशवः॥ १०॥
कृतागसो वयं तस्य स मदर्थं कथं क्षमेत्।
अभिमन्योर्विनाशेन न शर्म लभतेऽर्जुनः॥ ११॥
स कथं मद्धिते यत्नं प्रकरिष्यति याचितः।
मध्यमः पाण्डवस्तीक्ष्णो भीमसेनो महाबलः॥ १२॥
प्रतिज्ञातं च तेनोग्रं भज्येतापि न संनमेत्।
उभौ तौ बद्धनिस्त्रिंशावुभौ चाबद्धकङ्कटौ॥ १३॥
कृतवैरावुभौ वीरौ यमावपि यमोपमौ।

अपने भान्जे अभिमन्यु की हत्या के बारे में सुनकर श्रीकृष्ण सुख की नींद नहीं सोते हैं। अभिमन्यु की मृत्यु से अर्जुन को भी शान्ति नहीं है। फिर प्रार्थना करने पर, वह मेरे हित के लिये प्रयत्न क्यों करेगा? मध्यम पाण्डव महाबली भीमसेन तीखे स्वभाव का है। उसने बड़ी भयंकर प्रतिज्ञायें कर रखी हैं। वह टूट सकता है पर झुक नहीं सकता। दोनों वीर जुड़वाँ भाई नकुल सहदेव भी मृत्यु के समान भयंकर हैं। वे मुझसे वैर किये हुए, कवच धारण किये और तलवार लिये हुए रहते हैं।

धृष्टद्युम्नः शिखण्डी च कृतवैरौ मया सह॥ १४॥
तौ कथं मद्धिते यत्नं कुर्यातां द्विजसत्तम।
न निवारयितुं शक्याः संग्रामात्ते परंतपाः॥ १५॥
यदा च द्रौपदी क्लिष्टा मद्विनाशाय दुःखिता।
स्थण्डिले नित्यदा शेते यावद् वैरस्य यातनम्॥ १६॥

हे ब्राह्मणश्रेष्ठ! धृष्टद्युम्न और शिखण्डी ने भी मेरे साथ बैर किया हुआ है, फिर वे क्यों मेरी भलाई के लिये यत्न करेंगे? जब द्रौपदी को क्लेश दिया गया, तब से वह मेरे विनाश के लिये, दुखी होती हुई रोज मिट्टी की वेदी पर सोती है। जब तक बैर का बदला नहीं ले लिया जायेगा, वह ऐसे ही सोयेगी, यह उसका व्रत है। ऐसी स्थिति में शत्रुओं को सन्तप्त करने वाले उन्हें युद्ध से निवारित नहीं किया जा सकता।

कथं च राजा भुक्त्वेमां पृथिवीं सागराम्बराम्।
पाण्डवानां प्रसादेन भोक्ष्ये राज्यमहं कथम्॥ १७॥
उपर्युपरि राज्ञां वै ज्वलित्वा भास्करो यथा।
युधिष्ठिरं कथं पश्चादनुयास्यामि दासवत्॥ १८॥
कथं भुक्त्वा स्वयं भोगान् दत्त्वा दायांश्च पुष्कलान्।
कृपणं वर्तयिष्यामि कृपणैः सह जीविकाम्॥ १९॥
नाभ्यसूयामि ते वाक्यमुक्तं स्निग्धं हितं त्वया।
न तु सन्धिमहं मन्ये प्राप्तकालं कथञ्चन॥ २०॥

सागर से घिरी हुई भूमि का राजा के रूप में उपभोग कर फिर मैं पाण्डवों की कृपा पर आश्रित राज्य को कैसे भोग सकूँगा? पहले मैं सूर्य के समान राजाओं के भी ऊपर प्रकाशित रहता था, अब मैं दासों के समान युधिष्ठिर के पीछे कैसे चलूँगा? पहले स्वयं भोगों का भोग कर और प्रचुर दान दे कर, अब दीन पुरुषों के साथ दीनों की तरह से रहता हुआ कैसे अपना जीवन निर्वाह करूँगा? आपने प्रेम पूर्वक मेरे हित के लिये जो बात कही है, मैं उसकी निंदा नहीं करता, पर मैं इस समय सन्धि के किसी भी अवसर को बचा हुआ नहीं मानता।

सुनीतमनुपश्यामि सुयुद्धेन परंतप।
नायं क्लीबयितुं कालः संयोद्धुं काल एव नः॥ २१॥
इष्टं मे बहुभिर्यज्ञैर्दत्ता विप्रेषु दक्षिणाः।
प्राप्ताः कामाः श्रुता वेदाः शत्रूणां मूर्ध्नि च स्थितम्॥ २२॥
भृत्या मे सुभृतास्तात दीनश्चाभ्युद्धृतो जनः।
नोत्सहेऽद्य द्विजश्रेष्ठ पाण्डवान् वक्तुमीदृशम्॥ २३॥
जितानि परराष्ट्राणि स्वराष्ट्रमनुपालितम्।
भुक्ताश्च विविधा भोगास्त्रिवर्गः सेवितो मया॥ २४॥
पितॄणां गतमानृण्यं क्षत्रधर्मस्य चोभयोः।

हे परंतप! मैं अच्छी तरह से युद्ध में ही अच्छी नीति को समझता हूँ। यह समय कायरता दिखाने का नहीं है। यह हमारे युद्ध करने का ही समय है। मैंने बहुत यज्ञ कर लिये, ब्राह्मणों को बहुत दक्षिणाएँ दे लीं, अपनी कामनाएँ पूरी कर लीं, वेदों का श्रवण कर लिया, शत्रु के सिर पर पैर रख लिया, सेवकों का अच्छी तरह से भरण पोषण कर लिया और दीनों के उद्धार का कार्य भी कर लिया। हे द्विजश्रेष्ठ! इसलिये अब मैं पाण्डवों से इस प्रकार सन्धि के लिये याचना नहीं कर सकता। मैंने दूसरों के राष्ट्र जीते, अपने राष्ट्र का पालन किया, अनेक प्रकार के भोग भोगे, धर्म, अर्थ और काम का सेवन

कर लिया। पितरों और क्षत्रिय धर्म दोनों से मैं उऋण हो गया हूँ।

न ध्रुवं सुखमस्तीति कुतो राष्ट्रं कुतो यशः॥ २५॥
इह कीर्तिर्विधातव्या सा च युद्धेन नान्यथा।
गृहे यत् क्षत्रियस्यापि निधनं तद् विगर्हितम्॥ २६॥
अधर्मः सुमहानेष यच्छय्यामरणं गृहे।
अरण्ये यो विमुच्येत संग्रामे वा तनुं नरः॥ २७॥
क्रतूनाहृत्य महतो महिमानं स गच्छति।
कृपणं विलपन्नार्तो जरयाभिपरिप्लुतः॥ २८॥
म्रियते रुदतां मध्ये ज्ञातीनां न स पूरुषः।

संसार में सुख सदा नहीं रहता। फिर राज्य और यश भी सदा कैसे रह सकते हैं? अब यहाँ युद्धक्षेत्र से जो कीर्ति मिल सकती हैं, वह किसी और कार्य से नहीं। क्षत्रिय का घर में मरना निन्दनीय माना गया है। क्षत्रिय के लिये बिस्तरे पर पड़े रहना महान् अधर्म है। वन में रहते हुए, यज्ञों को करते हुए, जो महान् महिमा प्राप्त होती है, वही महिमा उस मनुष्य को प्राप्त होती है जो युद्ध में लड़ते हुए अपने शरीर को छोड़ता है। जो बुढ़ापे से भरा हुआ, दीनता के साथ आर्त होकर विलाप करता हुआ, रोते हुए परिवार वालों के बीच में मरता है, वह पुरुष कहलाने के योग्य नहीं है।

त्यक्त्वा तु विविधान् भोगान् प्राप्तानां परमां गतिम्॥ २९॥
अपीदानीं सुयुद्धेन गच्छेयं यत्सलोकताम्।
घटमाना मदर्थेऽस्मिन् हताः शूरा जनाधिपाः॥ ३०॥
शेरते लोहिताक्ताङ्गाः संग्रामे शरविक्षताः।
ये मदर्थे हताः शूरास्तेषां कृतमनुस्मरन्॥ ३१॥
ऋणं तत् प्रतियुञ्जानो न राज्ये मन आदधे।
घातयित्वा वयस्यांश्च भ्रातॄनथ पितामहान्॥ ३२॥
जीवितं यदि रक्षेयं लोको मां गर्हयेद् ध्रुवम्।

अनेक प्रकार के भोगों का त्याग कर, त्याग वृत्ति से जीवन बिताते हुए लोगों ने जिस उत्तम गति को प्राप्त किया है, मैं युद्ध द्वारा उन्हीं लोगों की उसी उत्तम गति को प्राप्त करूँगा। मेरे लिये प्रयत्न करते हुए, कितने ही शूरवीर राजा लोग इस संग्राम में, बाणों से क्षत विक्षत होकर खून से लथपथ हुए सो रहे हैं। हे शूरवीर! जो मेरे लिये मारे गये, उनके उपकार को याद करते हुए और उनके ऋण को उतारने के लिये प्रयत्न करते हुए मैं अब राज्य में मन नहीं लगा सकता। अपने मित्रों, भाइयों, पितामहों को मरवा कर यदि मैं अपने प्राणों की रक्षा करूँ, तो निश्चितरूप से संसार मेरी निन्दा करेगा।

कीदृशं च भवेद् राज्यं मम हीनस्य बन्धुभिः॥ ३३॥
सखिभिश्च विशेषेण प्रणिपत्य च पाण्डवम्।
सोऽहमेतादृशं कृत्वा जगतोऽस्य पराभवम्॥ ३४॥
सुयुद्धेन ततः स्वर्गं प्राप्स्यामि न तदन्यथा।
एवं दुर्योधनेनोक्तं सर्वे सम्पूज्य तद्वचः॥ ३५॥
साधु साध्विति राजानं क्षत्रियाः सम्बभाषिरे।
पराजयमशोचन्तः कृतचित्ताश्च विक्रमे॥ ३६॥
सर्वे सुनिश्चिता योद्धुमुदग्रमनसोऽभवन्।

अपने बन्धुओं और मित्रों से रहित होकर, विशेषरूप से युधिष्ठिर के पैरों में पड़कर मुझे जो राज्य मिलेगा वह मेरे लिये कैसा होगा? इसलिये अब मैं संसार का इसप्रकार विनाश कराकर उत्तम युद्ध के द्वारा उत्तम गति को प्राप्त करूँगा। और दूसरा उपाय मेरी सद्गति का नहीं है । दुर्योधनद्वारा यह कहने पर सबने उसका सम्मान किया और सारे क्षत्रियों ने बहुत अच्छा, बहुत अच्छा यह कहा। फिर अपनी पराजय का शोक छोड़कर सबने पराक्रम में ही मन लगाया। सब युद्ध के लिये पक्का निश्चयकर हृदय में उत्साह से भर गये।

ततो वाहान् समाश्वस्य सर्वे युद्धाभिनन्दिनः॥ ३७॥
ऊने द्वियोजने गत्वा प्रत्यतिष्ठन्त कौरवाः।
आकाशे विद्रुमे पुण्ये प्रस्थे हिमवतः शुभे॥ ३८॥
अरुणां सरस्वतीं प्राप्य पपुः सस्नुश्च ते जलम्।
तव पुत्रकृतोत्साहाः पर्यवर्तन्त ते ततः॥ ३९॥
पर्यवस्थाप्य चात्मानमन्योन्येन पुनस्तदा।
सर्वे राजन् न्यवर्तन्त क्षत्रियाः कालचोदिताः॥ ४०॥

फिर युद्ध का अभिनन्दन करनेवाले उन सारे कौरवयोद्धाओं ने दो योजन अर्थात् आठ कोस से कुछ कम दूरी पर जाकर अपना डेरा डाला और अपने वाहनों को आराम दिया। वहाँ वृक्षरहित आकाश के नीचे, हिमालय के समीप, सुन्दर और पवित्र स्थान पर, हलके लाल रंग के जलवाली सरस्वतीनदी के किनारे जाकर उन्होंने स्नान और जलपान किया। आपके पुत्र के द्वारा उत्साहित करने पर, वे काल से प्रेरित क्षत्रिय राजा एक दूसरे के द्वारा मन को स्थिर कर पुनः युद्ध भूमि की तरफ लौट आये।

पाँचवाँ अध्याय : शल्य से सेनापति बनने की प्रार्थना, शल्य की स्वीकृति।

तेऽब्रुवन् सहितास्तत्र राजानं शल्यसंनिधौ।
कृतयत्ना रणे राजन् सम्पूज्य विधिवत्तदा॥ १॥
कृत्वा सेनाप्रणेतारं परांस्त्वं योद्धुमर्हसि।
येनाभिगुप्ताः संग्रामे जयेमासुहृदो वयम्॥ २॥
ततो दुर्योधनः स्थित्वा रथे रथवरोत्तमम्।
सर्वयुद्धविभावज्ञमन्तकप्रतिमं युधि॥ ३॥
तमभ्येत्यात्मजस्तुभ्यमश्वत्थामानमब्रवीत्।

हे राजन्! तब युद्ध में विजय के लिये प्रयत्न करनेवाले सारे योद्धाओं ने एकत्र होकर, राजा दुर्योधन का विधिवत् सम्मान करके, शल्य की उपस्थिति में ही उससे कहा कि हे राजन्! आप किसीको सेनापति बनाकर शत्रुओं से युद्ध कीजिये, जिसकी सुरक्षा में हम अपने शत्रुओं पर विजय प्राप्त करें। तब आपका पुत्र दुर्योधन रथ में बैठकर रथियों में श्रेष्ठ, सबतरह के युद्धों के तरीकों को जाननेवाले और युद्ध में मृत्यु के समान भयंकर अश्वत्थामा के समीप गया और आपके हित के लिये उससे यह बोला कि–

यं पुरस्कृत्य सहिता युधि जेष्याम पाण्डवान्॥ ४॥
गुरुपुत्रोऽद्य सर्वेषामस्माकं परमा गतिः।
भवांस्तस्मान्नियोगात्ते कोऽस्तु सेनापतिर्मम॥ ५॥

द्रौणिरुवाच

अयं कुलेन रूपेण तेजसा यशसा श्रिया।
सर्वैर्गुणैः समुदितः शल्यो नोऽस्तु चमूपतिः॥ ६॥
भागिनेयान् निजांस्त्यक्त्वा कृतज्ञोऽस्मानुपागतः।

हे गुरुपुत्र! आप आज हम सबके अत्यन्त सहारे हैं। आपकी सलाह से किसे अपना सेनापति बनाया जाये? जिसे आगे करके हम युद्ध में पाण्डवों को जीत लें। तब द्रोणपुत्र ने कहा कि ये, कुल, रूप, तेज, यश, ऐश्वर्य तथा सारे गुणों से युक्त शल्य हमारे सेनापति हो जायें। ये ऐसे कृतज्ञ हैं कि अपने सगे भानजों को भी छोड़कर हमारे पक्ष में आगये हैं।

ततो दुर्योधनो भूमौ स्थित्वा रथवरे स्थितम्॥ ७॥
उवाच प्राञ्जलिर्भूत्वा द्रोणभीष्मसमं रणे।
अयं स कालः सम्प्राप्तो मित्राणां मित्रवत्सल॥ ८॥
यत्र मित्रममित्रं वा परीक्षन्ते बुधा जनाः।
स भवानस्तु नः शूरः प्रणेता वाहिनीमुखे॥ ९॥
रणं याते च भवति पाण्डवा मन्दचेतसः।
भविष्यन्ति सहामात्याः पञ्चालाश्च निरुद्यमाः॥ १०॥

तब भूमिपर खड़े होकर दुर्योधन ने रथ पर बैठे हुए, युद्ध में द्रोणाचार्य और भीष्म के समान पराक्रमी राजा शल्य से हाथ जोड़कर कहा कि हे मित्रों से प्रेम करनेवाले! अब यह वह समय आ गया है जब बुद्धिमान् लोग मित्र, अमित्र की पहचान करते हैं। आप सेना के मुहाने पर हमारे शूरवीर सेनापति बनिये। आपके युद्धक्षेत्र में जाते ही, मूर्ख पाण्डव और पांचाल अपने मन्त्रियों सहित उद्योग शून्य हो जायेंगे।

दुर्योधनवचः श्रुत्वा शल्यो मद्राधिपस्तदा।
उवाच वाक्यं वाक्यज्ञो राजानं राजसंनिधौ॥ ११॥
यत्तु मां मन्यसे राजन् कुरुराज करोमि तत्।
त्वत्प्रियार्थं हि मे सर्वं प्राणा राज्यं धनानि च॥ १२॥

दुर्योधन की बात को सुनकर वाक्य के अभिप्राय को जानने वाले, मद्रदेश के राजा शल्य, राजाओं के समीप राजा दुर्योधन से बोले कि हे कुरुराज, राजन्! तुम मुझसे जो कुछ कराना चाहते हो, उसे मैं पूरा करूँगा, क्योंकि मेरे प्राण, धन और राज्य सब तुम्हारा प्रिय करने के लिये ही हैं।

छठा अध्याय : शल्य के वीरोचित उद्‌गार, श्रीकृष्ण का युधिष्ठिर को शल्य के वध के लिये कहना।

एवमुक्तस्ततो राजा मद्राधिपतिमञ्जसा।
अभ्यषिञ्चत सेनाया मध्ये भरतसत्तम॥ १॥
विधिना शास्त्रदृष्टेन क्लिष्टरूपो विशाम्पते।
अभिषिक्ते ततस्तस्मिन् सिंहनादो महानभूत्॥ २॥
तव सैन्येऽभ्यवाद्यन्त वादित्राणि च भारत।
हृष्टाश्चासंस्तथा योधा मद्रकाश्च महारथाः॥ ३॥
तुष्टुवुश्चैव राजानं शल्यमाहवशोभिनम्।
एवं सम्पूज्यमानस्तु मद्राणामधिपो बली॥ ४॥
हर्षं प्राप तदा वीरो दुरापमकृतात्मभिः।

हे भरतश्रेष्ठ! प्रजानाथ! शल्य के ऐसा कहने पर क्लेश से युक्त राजादुर्योधन ने तुरन्त मद्रदेश के राजा शल्य का शास्त्रों की विधि के अनुसार, सेना के बीच में सेनापति के पदपर अभिषेक कर दिया। हे भारत! उनका सेनापति पद पर अभिषेक हो जाने पर आपकी सेना में जोर से सिंहनाद होने लगे और बाजे बजाये जाने लगे। तब मद्रदेश के महारथी योद्धा प्रसन्न होकर युद्ध में शोभा पानेवाले, शल्यराज की स्तुति करने लगे। इस प्रकार प्रशंसा किये जाने पर बलवान् और वीर मद्र देश के स्वामी को वह प्रसन्नता प्राप्त हुई, जो अपवित्र मनवालों के लिये दुर्लभ है।

शल्य उवाच

अद्य चाहं रणे सर्वान् पञ्चालान् सह पाण्डवैः॥ ५॥
निहनिष्यामि वा राजन् स्वर्गं यास्यामि वा हतः।
अद्य पश्यन्तु मां लोका विचरन्तमभीतवत्॥ ६॥
अद्य पाण्डुसुताः सर्वे वासुदेवः ससात्यकिः।
पञ्चालाश्चेदयश्चैव द्रौपदेयाश्च सर्वशः॥ ७॥
धृष्टद्युम्नः शिखण्डी च सर्वे चापि प्रभद्रकाः।
विक्रमं मम पश्यन्तु धनुषश्च महद् बलम्॥ ८॥

राजा शल्य ने कहा कि हे राजन्! आज मैं युद्धक्षेत्र में या तो सारे पाँचालों को पाण्डवों के साथ मार दूँगा या स्वयं मारा जाकर उत्तम गति को प्राप्त करूँगा। आज सारे लोग मुझे युद्धक्षेत्र में निर्भयता से विचरता हुआ देखेंगे। आज पाण्डु के सारे पुत्र, सात्यकि के साथ श्रीकृष्ण, पाँचाल तथा चेदि देश के योद्धा, द्रौपदी के पुत्र, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी और सारे प्रभद्रक लोग मेरे पराक्रम और मेरे धनुष के महान् बल को देखेंगे।

यादृशं मे बलं बाह्वोः सम्पदस्त्रेषु या च मे।
अद्य मे विक्रमं दृष्ट्वा पाण्डवानां महारथाः॥ ९॥
प्रतीकारपरा भूत्वा चेष्टन्तां विविधाः क्रियाः।
अद्य सैन्यानि पाण्डूनां द्रावयिष्ये समन्ततः॥ १०॥
द्रोणभीष्मावति विभो सूतपुत्रं च संयुगे।
विचरिष्ये रणे युध्यन् प्रियार्थं तव कौरव॥ ११॥
अभिषिक्ते तथा शल्ये तव सैन्येषु मानद।
न कर्णव्यसनं किंचिन्मेनिरे तत्र भारत॥ १२॥

जैसा मेरी भुजाओं में बल है, और अस्त्रविद्याका मुझे ज्ञान है, पाण्डव महारथी उसके अनुसार मेरे पराक्रम को देखकर, उसके प्रतिकार के लिये, विविध क्रियाओं के द्वारा चेष्टा करेंगे। आज मैं पाण्डवों की सेनाओं को सबतरफ से भगा दूँगा। हे कुरुश्रेष्ठ, विभो! आज मैं भीष्म, द्रोण और सूतपुत्र कर्ण से भी बढ़कर तुम्हारा प्रिय करने के लिये युद्ध करता हुआ, रणक्षेत्र में विचरण करूँगा। हे दूसरों को मान देने वाले भारत! इसप्रकार शल्य को सेनापतिपद पर अभिषिक्त किये जाने पर आपकी सेना में कर्ण के मारे जाने का कुछ भी शोक नहीं रहा।

सैन्यस्य तव तं शब्दं श्रुत्वा राजा युधिष्ठिरः।
वार्ष्णेयमब्रवीद् वाक्यं सर्वक्षत्रस्य पश्यतः॥ १३॥
मद्रराजः कृतः शल्यो धार्तराष्ट्रेण माधव।
सेनापतिर्महेष्वासः सर्वसैन्येषु पूजितः॥ १४॥
एतज्ज्ञात्वा यथाभूतं कुरु माधव यत्क्षमम्।
भवान् नेता च गोप्ता च विधत्स्व यदनन्तरम्॥ १५॥
तमब्रवीन्महाराज वासुदेवो जनाधिपम्।
आर्तायनिमहं जाने यथातत्त्वेन भारत॥ १६॥

तब आपकी सेना के उस हर्षनाद को सुनकर राजा युधिष्ठिर ने सारे क्षत्रियों के सामने ही श्रीकृष्ण जी से कहा कि हे कृष्ण! दुर्योधन ने महाधनुर्धर, मद्रराज शल्य को सारी सेना का सम्मानित सेनापति बनाया है। इस बात को आप यथार्थ रीति से जान कर, जो कुछ किया जा सकता है, उसे कराइये।

क्योंकि आप ही हमारे नेता और संरक्षक हैं, इसलिये अब इसके पश्चात् जो कुछ किया जाना है, उसका सम्पादन कीजिये। हे महाराज! तब राजा से श्रीकृष्ण जी ने कहा कि हे भारत! मैं ऋतायनपुत्र शल्य को वास्तविक रूप से जानता हूँ।

वीर्यवांश्च महातेजा महात्मा च विशेषतः।
कृती च चित्रयोधी च संयुक्तो लाघवेन च॥ १७॥
मद्रराजो महाराज सिंहद्विरदविक्रमः।
विचरिष्यत्यभीः काले कालः क्रुद्धः प्रजास्विव॥ १८॥
तस्याद्य न प्रपश्यामि प्रतियोद्धारमाहवे।
त्वामृते पुरुषव्याघ्र शार्दूलसमविक्रमम्॥ १९॥
अहन्यहनि युध्यन्तं क्षोभयन्तं बलं तव।
तस्माज्जहि रणे शल्यं मघवानिव शम्बरम्॥ २०॥

वे पराक्रमी, महातेजस्वी, विशेषरूप से मनस्वी, कर्मठ, विचित्र प्रकार से युद्ध करनेवाले, और अस्त्र चलाने में फुर्ती से युक्त हैं। हे महाराज! मद्रराज सिंह और हाथी के समान पराक्रमी हैं। प्रलयकाल में जैसे मृत्यु प्रजाओं में विचरण करती है, वैसे ही वे निर्भयता से युद्धक्षेत्र में विचरेंगे। हे पुरुष व्याघ्र! सिंह के समान महापराक्रमी आप को छोड़कर मैं किसी दूसरे योद्धा को युद्ध में उनका सामना करने वाला नहीं देखता। इसलिये आप प्रतिदिन युद्ध करते और आपकी सेना को क्षुब्ध करते हुए शल्य को वैसे ही मार दीजिये, जैसे इन्द्र ने शम्बरासुर को मारा था।

अजेयश्चाप्यसौ वीरो धार्तराष्ट्रेण सत्कृतः।
तवैव हि जयो नूनं हते मद्रेश्वरे युधि॥ २१॥
तस्मिन् हते हतं सर्वं धार्तराष्ट्रबलं महत्।
एतच्छ्रुत्वा महाराज वचनं मम साम्प्रतम्॥ २२॥
प्रत्युद्याहि रणे पार्थ मद्रराजं महारथम्।
न चैवात्र दया कार्या मातुलोऽयं ममेति वै॥ २३॥
क्षत्रधर्मं पुरस्कृत्य जहि मद्रजनेश्वरम्।
द्रोणभीष्मार्णवं तीर्त्वा कर्णपातालसम्भवम्॥ २४॥
मा निमज्जस्व सगणः शल्यमासाद्य गोष्पदम्।

वीर शल्य अजेय है और दुर्योधन ने उसका सत्कार किया है। अपकी विजय निश्चय ही युद्धक्षेत्र में मद्रराज के मारे जाने पर होगी। उसके मारे जाने पर दुर्योधन की सारी विशाल सेना मारी जायेगी। हे कुन्तीपुत्र, महाराज! मेरी इस बात को सुनकर आप युद्ध में महाबली मद्रराज पर चढ़ाई कीजिये। आप यहाँ यह सोचकर कि ये मेरे मामा हैं, उन पर दया न करें, क्षत्रियधर्म को सामने रखकर ही मद्रराज का वध करें। आप भीष्म, द्रोण और कर्ण जैसे महासागरों को पार कर अब शल्य जैसे गाय के खुर में न डूब जायें।

एतावदुक्त्वा वचनं केशवः परवीरहा॥ २५॥
जगाम शिबिरं सायं पूज्यमानोऽथ पाण्डवैः।
केशवे तु तदा याते धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः॥ २६॥
विसृज्य सर्वान् भ्रातॄंश्च पञ्चालानथ सोमकान्।
सुष्वाप रजनीं तां तु विशल्य इव कुञ्जरः॥ २७॥
ते च सर्वे महेष्वासाः पञ्चालाः पाण्डवास्तथा।
कर्णस्य निधने हृष्टाः सुषुपुस्तां निशां तदा॥ २८॥

शत्रुवीरों को मारनेवाले श्रीकृष्ण यह कहकर पाण्डवों द्वारा सम्मानित होते हुए सायंकाल अपने शिविर में चले गये। श्रीकृष्ण के चले जाने पर धर्मपुत्र युधिष्ठिर ने सारे भाइयों, पांचालों और सोमकों को भी विदा कर दिया और रात्रि में अंकुश रहित हाथी के समान सुख से सोये। वे सारे महाधनुर्धर, पांचाल और पाण्डव भी कर्ण की मृत्यु से हर्षित हुए उस रात सुख से सोये।

सातवाँ अध्याय : अठारहवें दिन के युद्ध का आरम्भ।

व्यतीतायां रजन्यां तु राजा दुर्योधनस्तदा।
अब्रवीत् तावकान् सर्वान् संनह्यन्तां महारथाः॥ १॥
राज्ञश्चमतमाज्ञाय, समनह्यत सा चमूः।
वादित्राणां च निनदः प्रादुरासीद् विशाम्पते॥ २॥
आयोधनार्थं योधानां बलानां चाप्युदीर्यताम्।
ततो बलानि सर्वाणि हतशिष्टानि भारत॥ ३॥
प्रस्थितानि व्यदृश्यन्त मृत्युं कृत्वा निवर्तनम्।
शल्यं सेनापतिं कृत्वा मद्रराजं महारथाः॥ ४॥
प्रविभज्य बलं सर्वमनीकेषु व्यवस्थिताः।

तत्पश्चात् जब रात्रि व्यतीत होगयी, तब राजा दुर्योधन ने आपके सारे महारथियों से कहा कि युद्ध के लिये तैयार हो जाओ। तब राजा की आज्ञा पाकर सेना युद्ध के लिये तैयार होने लगी। हे प्रजानाथ! तब वहाँ रणवाद्य बजाये जाने लगे और युद्ध के लिये तैयार होती हुई सेनाओं और योद्धाओं का कोलाहल होने लगा। हे भारत! तब मरने से बची हुई सारी सेनाएँ मृत्यु को ही युद्ध से लौटने का निमित्त बनाकर प्रयाण करती हुई दिखाई देने लगीं। मद्रराज शल्य को सेनापति बनाकर और सारी सेना को अनेक भागों में बाँटकर वे सारे महारथी उन दलों के साथ खड़े हुए।

ततः सर्वे समागम्य पुत्रेण तव सैनिकाः॥ ५॥
कृपश्च कृतवर्मा च द्रौणिः शल्योऽथ सौबलः।
अन्ये च पार्थिवाः शेषाः समयं चक्रुरादृताः॥ ६॥
न न एकेन योद्धव्यं कथञ्चिदपि पाण्डवैः।
अन्योन्यं परिरक्षद्भिर्योद्धव्यं सहितैश्च ह॥ ७॥

तब सारे सैनिकों, कृपाचार्य, कृतवर्मा, द्रोणपुत्र, शल्य, शकुनि और शेष राजाओं ने आपके पुत्र के साथ आदरपूर्वक यह नियम बनाया कि किसी एक योद्धा को पाण्डवों के साथ किसी प्रकार भी युद्ध नहीं करना चाहिये। सबको एक दूसरे की रक्षा करते हुए, मिलकर युद्ध करना चाहिये।

तान् समाश्वास्य योधांस्तु मद्रराजः प्रतापवान्।
व्यूह्य व्यूहं महाराज सर्वतोभद्रमृद्धिमत्॥ ८॥
प्रत्युद्ययौ रणे पार्थान् मद्रराजः प्रतापवान्।
विधुन्वन् कार्मुकं चित्रं भारघ्नं वेगवत्तरम्॥ ९॥
रथप्रवरमास्थाय सैन्धवाश्वं महारथः।
प्रयाणे मद्रराजोऽभून्मुखं व्यूहस्य दंशितः॥ १०॥
मद्रकैः सहितो वीरैः कर्णपुत्रैश्च दुर्जयैः।
सव्येऽभूत् कृतवर्मा च त्रिगर्तैः परिवारितः॥ ११॥
गौतमो दक्षिणे पार्श्वे शकैश्च यवनैः सह।
अश्वत्थामा पृष्ठतोऽभूत् काम्बोजैः परिवारितः॥ १२॥

तब उन योद्धाओं को आश्वासन देकर प्रतापी मद्रराज ने हे महाराज! समृद्धिशाली सर्वतोभद्र नाम का व्यूह बनाया। फिर उन प्रतापी, महारथी, मद्रराज ने अपने भार को सहन करनेवाले, वेगवान् और विचित्र धनुष को टंकराते हुए, सिन्धी घोड़ों से जुते श्रेष्ठ रथ पर बैठकर युद्धक्षेत्र में पाण्डवों पर आक्रमण किया। उस समय प्रस्थान के समय कवच बाँधे मद्रराज व्यूह के मुख स्थान पर थे। उनके साथ मद्र देश के वीर और कर्ण के दुर्जय पुत्र थे। व्यूह के बायीं तरफ कृतवर्मा त्रिगर्तों से घिरा हुआ खड़ा था, और दायें भाग में शकों तथा यवनों के साथ कृपाचार्य थे। अश्वत्थामा काम्बोज सैनिकों से घिरा हुआ व्यूह के पीछे के भाग में था।

दुर्योधनोऽभवन्मध्ये रक्षितः कुरुपुङ्गवैः।
हयानीकेन महता सौबलश्चापि संवृतः॥ १३॥
प्रययौ सर्वसैन्येन कैतव्यश्च महारथः।

श्रेष्ठ कौरव योद्धाओं से घिरा हुआ दुर्योधन सेना के मध्य भाग में था। विशाल घुड़सवार सेना से घिरा हुआ सुबलपुत्र शकुनि भी साथ में था। उसका महारथी पुत्र उलूक भी सारी सेना के साथ युद्ध के लिये आगे बढ़ रहा था।

पाण्डवाश्च महेष्वासा व्यूह्य सैन्यमरिंदमाः॥ १४॥
त्रिधा भूता महाराज तव सैन्यमुपाद्रवन्।
धृष्टद्युम्नः शिखण्डी च सात्यकिश्च महारथः॥ १५॥
शल्यस्य वाहिनीं हन्तुमभिदुद्रुवुराहवे।
ततो युधिष्ठिरो राजा स्वेनानीकेन संवृतः॥ १६॥
शल्यमेवाभिदुद्राव जिघांसुर्भरतर्षभः।

हे महाराज! महाधनुर्धर, शत्रुदमन पाण्डव भी अपनी सेना का व्यूह बनाकर, उसे तीन भागों में बाँटकर, आपकी सेना पर चढ़ आये। धृष्टद्युम्न, शिखण्डी और महारथी सात्यकि ने अपने अपने भागों का नेतृत्व करते हुए, युद्ध में शल्य की सेना

का वध करने की इच्छा से उसपर आक्रमण कर दिया। तब भरतश्रेष्ठ राजा युधिष्ठिर ने, अपनी सेना द्वारा घिरे हुए होकर, शल्य को मारने की इच्छा से उसके ऊपर ही आक्रमण किया।

हार्दिक्यं च महेष्वासमर्जुनः शत्रुसैन्यहा॥ १७॥
संशप्तकगणांश्चैव वेगितोऽभिविदुद्रुवे।
गौतमं भीमसेनो वै सोमकाश्च महारथाः॥ १८॥
अभ्यद्रवन्त राजेन्द्र जिघांसन्तः परान् युधि।
माद्रीपुत्रौ तु शकुनिमुलूकं च महारथम्।
ससैन्यौ सहसैन्यौ तावुपतस्थतुराहवे॥ १९॥

शत्रु की सेनाओं को नष्ट करने वाले अर्जुन ने महाधनुर्धर कृतवर्मा और संशप्तक गणों पर वेग पूर्वक आक्रमण कर दिया। भीमसेन तथा सोमक महारथियों ने शत्रुओं को मारने की इच्छा रखते हुए, युद्धक्षेत्र में कृपाचार्य पर आक्रमण कर दिया। हे राजेन्द्र! माद्री के दोनों पुत्र नकुल और सहदेव सेना के साथ, सेना सहित खड़े हुए महारथी उलूक और शकुनि का सामना करने के लिये उपस्थित थे।

आठवाँ अध्याय : सेनाओं का घमासान युद्ध। कौरवसेना का पलायन।

ततः प्रववृते युद्धं कुरूणां भयवर्धनम्।
सृंजयैः सह राजेन्द्र घोरं देवासुरोपमम्॥ १॥
नरा रथा गजौघाश्च सादिनश्च सहस्रशः।
वाजिनश्च पराक्रान्ताः समाजग्मुः परस्परम्॥ २॥
गजानां भीमरूपाणां द्रवतां निःस्वनो महान्।
अश्रूयत यथा काले जलदानां नभस्तले॥ ३॥
नागैरभ्याहताः केचित् सरथा रथिनोऽपतन्।
व्यद्रवन्त रणे वीरा द्राव्यमाणा मदोत्कटैः॥ ४॥

हे राजेन्द्र! तब कौरवसेनाओं का सृंजयों के साथ भयंकर युद्ध देवासुर संग्राम के समान आरम्भ होगया। पैदल, रथी, हाथीसवारों के समूह और हजारों घुड़सवार पराक्रम दिखाते हुए परस्पर भिड़गये। भयंकर रूपवाले, भागते हुए हाथियों का महान् कोलाहल, वर्षाऋतु में आकाश में गर्जते हुए बादलों जैसा सुनाई देरहा था। मतवाले हाथियों द्वारा मारे हुए कई रथी अपने रथों के साथ गिरे पड़े थे और अनेक वीर हाथियों से भगाये जाते हुए युद्धक्षेत्र में भाग रहे थे।

हयौघान् पादरक्षांश्च रथिनस्तत्र शिक्षिताः।
शरैः सम्प्रेषयामासुः परलोकाय भारत॥ ५॥
सादिनः शिक्षिता राजन् परिवार्य महारथान्।
विचरन्तो रणेऽभ्यघ्नन् प्रासशक्त्यृष्टिभिस्तथा॥ ६॥
धन्विनः पुरुषाः केचित् परिवार्य महारथान्।
एकं बहव आसाद्य प्रयपुर्यमसादनम्॥ ७॥
नागान् रथवरांश्चान्ये परिवार्य महारथाः।
सान्तरायोधिनं जघ्नुर्द्रवमाणं महारथम्॥ ८॥

हे भारत! वहाँ युद्धक्षेत्र में शिक्षाप्राप्त रथियों ने घुड़सवारों के समूहों और उनके पृष्ठरक्षकों को भी अपने बाणों से परलोक में भेज दिया था। हे राजन्! वहाँ विचरण करते शिक्षाप्राप्त घुड़सवारों ने महारथियों को घेरकर प्रास, शक्ति और ऋष्टियों से मार दिया। कई धनुर्धर पैदल महारथियों को घेर लेते थे और एक एक पर बहुतसे योद्धा आक्रमण कर उसे मृत्युलोक में भेज देते थे। कई महारथी हाथियों और दूसरे श्रेष्ठरथियों को घेर लेते थे और भागते हुए या किसी और से युद्ध करते हुए महारथी को मार गिराते थे।

तथा च रथिनं क्रुद्धं विकिरन्तं शरान् बहून्।
नागा जघ्नुर्महाराज परिवार्य समन्ततः॥ ९॥
नागो नागमभिद्रुत्य रथी च रथिनं रणे।
शक्तितोमरनाराचैर्निजघ्ने तत्र भारत॥ १०॥
पादातानवमृद्नन्तो रथवारणवाजिनः।
रणमध्ये व्यदृश्यन्त कुर्वन्तो महदाकुलम्॥ ११॥
शिरसां च महाराज पततां धरणीतले।
च्युतानामिव तालेभ्यस्तालानां श्रूयते स्वनः॥ १२॥

हे महाराज! इसीप्रकार हाथीसवार क्रुद्ध और बहुत सारे बाणों को छोड़ते हुए रथी को घेरकर मार देते थे। हे भारत! वहाँ युद्ध में हाथीसवार ने हाथी सवार पर और रथी ने रथी पर आक्रमण करके उसे शक्ति, तोमर और नाराचों से मार दिया। वहाँ उस युद्धक्षेत्र में रथ, हाथी और घोड़े पैदलसैनिकों को कुचलते हुए और सब को अत्यन्त व्याकुल करते हुए दिखाई देरहे थे। हे महाराज! वहाँ कटकर

भूमि पर गिरते हुए सिरों का शब्द ऐसे सुनाई पड़ रहा था, जैसे ताड़ के वृक्षों से गिरते हुए फलों की आवाज हो।

तत्र योधा महाराज विचरन्तो ह्यभीतवत्।
दृश्यन्ते रुधिरक्ताङ्गाः पुष्पिता इव किंशुकाः॥ १३॥
मातङ्गाश्चाप्यदृश्यन्त शरतोमरपीडिताः।
पतन्तस्तत्र तत्रैव छिन्नाभ्रसदृशा रणे॥ १४॥
गजानीकं महाराज वध्यमानं महात्मभिः।
व्यदीर्यत दिशः सर्वा वातनुन्ना घना इव॥ १५॥
व्याक्रोशन् बान्धवानन्ये तत्र तत्र परंतप।
क्रोशद्भिर्दयितैरन्ये भयार्ता न निवर्तिरे॥ १६॥

हे महाराज! वहाँ खून से लथपथ होकर, निर्भयता से विचरण करते हुए योद्धा लोग, फूले हुए पलाश के वृक्षों के समान प्रतीत होरहे थे। बाणों और तोमरों की मार से पीड़ित होकर गिरते हुए हाथी, बादलों के टुकड़ों के समान दिखाई देरहे थे। हे महाराज! मनस्वी वीरों के बाणों से मारी जाती हुई हाथियों की सेना सारी दिशाओं में इसप्रकार से विदीर्ण होरही थी, जैसे वायु से छितराये हुए बादल हों। वहाँ भय से पीड़ित कितने ही सैनिक अपने बन्धुबान्धवों को पुकार! रहे थे। हे परंतप! कितने ही योद्धा प्रिय जनों के पुकारने पर भी पीछे नहीं लौटते थे।

ततो न्यवर्तत बलं तावकं भरतर्षभ।
शरैः प्रणुन्नं बहुधा पाण्डवैर्जितकाशिभिः॥ १७॥
वध्यमाना चमूः सा तु पुत्राणां प्रेक्षतां तव।
भेजे दिशो महाराज प्रणुन्ना शरवृष्टिभिः॥ १८॥
हाहाकारो महाञ्जज्ञे योधानां तव भारत।
प्राद्रवन्नेव सम्भग्नाः पाण्डवैस्तव सैनिकाः॥ १९॥
त्यक्त्वा युद्धे प्रियान् पुत्रान् भ्रातृनथ पितामहान्।
मातुलान् भागिनेयांश्च वयस्यानपि भारत॥ २०॥

हे भरतश्रेष्ठ! तब विजय के इच्छुक पाण्डवों के बाणों से अनेक बार पीड़ित होकर आपकी सेना युद्ध से मुँह मोड़ने लगी। हे महाराज! बाणों की वर्षा से पीड़ित होकर मारी जाती हुई वह सेना आपके पुत्रों के देखते हुए ही, सब तरफ भागने लगी। हे भारत! आपके योद्धाओं में उस समय महान् हा हा कार होने लगा। पाण्डवों के द्वारा घायल होते हुए आपके सैनिक भागते ही दिखाई दे रहे थे। हे भारत! वे युद्ध में अपने प्रिय पुत्रों, भाइयों, पितामहों, मामाओं, भानजों और मित्रों को भी छोड़े जा रहे थे।

नवाँ अध्याय : नकुल द्वारा कर्ण के पुत्रों चित्रसेन, सत्यसेन, सुषेण का वध।

तत् प्रभग्नं बलं दृष्ट्वा मद्रराजः प्रतापवान्।
उवाच सारथिं तूर्णं चोदयाश्वान् महाजवान्॥ १॥
एष तिष्ठति वै राजा पाण्डुपुत्रो युधिष्ठिरः।
छत्रेण ध्रियमाणेन पाण्डुरेण विराजता॥ २॥
अत्र मां प्रापय क्षिप्रं पश्य मे सारथे बलम्।
न समर्थो हि मे पार्थः स्थातुमद्य पुरो युधि॥ ३॥
एवमुक्तस्ततः प्रायान्मद्रराजस्य सारथिः।
यत्र राजा सत्यसंधो धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः॥ ४॥

हे राजन्! तब सेना को भागते हुए देखकर प्रतापी मद्रराज ने अपने सारथी से कहा कि महान् वेगवाले घोड़ों को तुरन्त आगे बढ़ाओ। ये सामने सफेद छत्र धारण कर सुशोभित होते हुए पाण्डुपुत्र राजा युधि ष्ठिर विद्यमान हैं। हे सारथी! तुम मुझे जल्दी से वहाँ पहुँचाओ और फिर मेरे बल को देखो। आज ये कुन्तीपुत्र युद्ध में मेरे सामने नहीं ठहर सकते। ऐसा कहने पर मद्रराज का सारथी वहीं जा पहुँचा जहाँ सत्यवादी, धर्मपुत्र युधिष्ठिर थे।

प्रापतत् तच्च सहसा पाण्डवानां महद् बलम्।
दधारैको रणे शल्यो वेलोद्वृत्तमिवार्णवम्॥ ५॥
मद्रराजं तु समरे दृष्ट्वा युद्धाय धिष्ठितम्।
कुरवः संन्यवर्तन्त मृत्युं कृत्वा निवर्तनम्॥ ६॥
तेषु राजन् निवृत्तेषु व्यूढानीकेषु भागशः।
प्रावर्तत महारौद्रः संग्रामः शोणितोदकः॥ ७॥

तब पाण्डवों की विशाल सेना भी वहाँ आपहुँची। किन्तु शल्य ने अकेले ही युद्धक्षेत्र में उसे ऐसे रोक दिया, जैसे उमड़ते हुए सागर को किनारा रोक देता है। तब मद्रराज को युद्धक्षेत्र में युद्ध के लिये डटा हुआ देखकर, कौरव सैनिक मृत्यु को ही लौटने की सीमा निर्धारित कर वापिस लौट आये। हे राजन्! तब अलग-अलग भागों में व्यूहबद्ध सैनिकों के लौट

आने पर, खून को पानी की तरह बहानेवाला महाभयंकर संग्राम आरम्भ होगया।

समार्च्छच्चित्रसेनं तु नकुलो युद्धदुर्मदः।
तौ परस्परमासाद्य चित्रकार्मुकधारिणौ॥ ८॥
मेघाविव यथोद्वृत्तौ दक्षिणोत्तरवर्षिणौ।
शरतोयैः सिषिचतुस्तौ परस्परमाहवे॥ ९॥
नान्तरं तत्र पश्यामि पाण्डवस्येतरस्य च।
उभौ कृतास्त्रौ बलिनौ रथचर्याविशारदौ॥ १०॥
परस्परवधे यत्तौ छिद्रान्वेषणतत्परौ।
चित्रसेनस्तु भल्लेन पीतेन निशितेन च॥ ११॥
नकुलस्य महाराज मुष्टिदेशेऽच्छिनद् धनुः।
अथैनं छिन्नधन्वानं रुक्मपुङ्खैः शिलाशितैः॥ १२॥
त्रिभिः शरैरसम्भ्रान्तो ललाटे वै समार्पयत्।

तब युद्ध में दुर्मद नकुल ने चित्रसेन पर आक्रमण किया। विचित्र धनुषों को धारण करने वाले वे दोनों एक दूसरे से भिड़कर, दक्षिण और उत्तर से उमड़कर आये दो बादलों के समान बाणरूपी जल धाराओं से युद्धक्षेत्र में एकदूसरे को सींचने लगे। मैंने उस समय पाण्डुपुत्र और दूसरे योद्धा में कोई अन्तर नहीं देखा। दोनों ही अस्त्रविद्या में निष्णात, बलवान् और रथ युद्ध में कुशल थे। वे एकदूसरे के वध के लिये प्रयत्न पूर्वक अवसर की तलाश में तत्पर थे। हे महाराज! तब चित्रसेन ने पानीदार तीखे भल्ल से नकुल के धनुष को मुट्ठी के स्थान से काट दिया। फिर उससे बिना घबराये, उसका धनुष काटकर सुनहरे पंख वाले, शिला पर तेज किये हुए तीन बाणों से उसके सिर पर प्रहार किया।

हयांश्चास्य शरैस्तीक्ष्णैः प्रेषयामास मृत्यवे॥ १३॥
तथा ध्वजं सारथिं च त्रिभिस्त्रिभिरपातयत्।
स च्छिन्नधन्वा विरथः खड्गमादाय चर्म च॥ १४॥
रथादवातरद् वीरः शैलाग्रादिव केसरी।
पद्भ्यामापततस्तस्य शरवृष्टिं समासृजत्॥ १५॥
नकुलोऽप्यग्रसत् तां वै चर्मणा लघुविक्रमः।
चित्रसेनरथं प्राप्य चित्रयोधी जितश्रमः॥ १६॥
आरुरोह महाबाहुः सर्वसैन्यस्य पश्यतः।

उसने तीखे बाणों से उसके घोड़ों को भी मार दिया और तीन तीन बाणों से उसके ध्वज और सारथि को काटकर गिरा दिया। तब धनुष के कट जाने और रथ से रहित होजाने पर तलवार और ढाल को लेकर वह वीर रथ से ऐसे उतरा जैसे पर्वत के शिखर से सिंह उतर रहा हो। तब पैदल ही आक्रमण करते हुए नकुल पर चित्रसेन ने बाणों की वर्षा की, पर शीघ्रता से पराक्रम करनेवाले नकुल ने अपनी ढाल से बाणों को रोक दिया। तब सारी सेना के देखते हुए, वे महाबाहु, परिश्रम को जीतनेवाले, विचित्रता से युद्ध करने वाले नकुल चित्रसेन के रथ पर चढ़ गये।

सकुण्डलं समुकुटं सुनसं स्वायतेक्षणम्॥ १७॥
चित्रसेनशिरः कायादपाहरत पाण्डवः।
चित्रसेनं विशस्तं तु दृष्ट्वा तत्र महारथाः॥ १८॥
साधुवादस्वनांश्चक्रुः सिंहनादांश्च पुष्कलान्।
विशस्तं भ्रातरं दृष्ट्वा कर्णपुत्रौ महारथौ॥ १९॥
सुषेणः सत्यसेनश्च मुञ्चन्तौ विविधाञ्शरान्।
ततोऽभ्यधावतां तूर्णं पाण्डवं रथिनां वरम्॥ २०॥

फिर पाण्डुपुत्र ने चित्रसेन के कुण्डल और मुकुटसहित, सुन्दर नाक और विशाल आँखोंवाले सिर को उसके शरीर से अलग दिया। चित्रसेन को मरा हुआ देखकर पाण्डव महारथी नकुल को साधुवाद देने और प्रचुर मात्रा में सिंहनादों को करने लगे। तब अपने भाई को मारा हुआ देखकर, कर्ण के दो महारथी पुत्रों सुषेण और सत्यसेन ने अनेकप्रकार के बाणों को छोड़ते हुए, शीघ्रता से रथियों में श्रेष्ठ पाण्डुपुत्र नकुल पर आक्रमण कर दिया।

जिघांसन्तौ यथा नागं व्याघ्रौ राजन् महावने।
तावभ्यधावतां तीक्ष्णौ द्वावप्येनं महारथम्॥ २१॥
शरौघान् सम्यगस्यन्तौ जीमूतौ सलिलं यथा।
स शरैः सर्वतो विद्धः प्रहृष्ट इव पाण्डवः॥ २२॥
अन्यत् कार्मुकमादाय रथमारुह्य वेगवान्।
अतिष्ठत रणे वीरः क्रुद्धरूप इवान्तकः॥ २३॥

हे राजन्! जैसे विशाल वन में हाथी को मारने के इच्छुक दो बाघ उस पर आक्रमण करें, उसी प्रकार तीखे स्वभाववाले उनदोनों भाइयों ने, जैसे बादल पानी बरसाते हैं, वैसे ही अच्छी तरह से बाणों की वर्षा करते हुए, उस महारथी नकुल पर आक्रमण कर दिया। तब सबतरफ बाणों से बिंधे हुए, उत्साही वीर और वेगवान् वे पाण्डुपुत्र दूसरे धनुष को लेकर और दूसरे रथ पर चढ़कर क्रुद्ध मृत्यु के समान युद्धक्षेत्र में स्थित होगये।

तस्य तौ भ्रातरौ राजञ्शरैः संनतपर्वभिः।
रथं विशकलीकर्तुं समारब्धौ विशाम्पते॥ २४॥
ततः प्रहस्य नकुलश्चतुर्भिश्चतुरो रणे।
जघान निशितैर्बाणैः सत्यसेनस्य वाजिनः॥ २५॥
ततः संधाय नाराचं रुक्मपुङ्खं शिलाशितम्।
धनुश्चिच्छेद राजेन्द्र सत्यसेनस्य पाण्डवः॥ २६॥
अथान्यं रथमास्थाय धनुरादाय चापरम्।
सत्यसेनः सुषेणश्च पाण्डवं पर्यधावताम्॥ २७॥
अविध्यत् तावसम्भ्रान्तो माद्रीपुत्रः प्रतापवान्।
द्वाभ्यां द्वाभ्यां महाराज शराभ्यां रणमूर्धनि॥ २८॥

हे प्रजानाथ राजन्! उन दोनों भाइयों ने झुकी गाँठवाले बाणों से उसके रथ को तोड़ना आरम्भ कर दिया। तब नकुल ने हँसकर, युद्धभूमि में चार तीखे बाणों से सत्यसेन के चारों घोड़ों को मार दिया। उस पाण्डपुत्र ने दूसरे सुनहरे पंखवाले, शिलापर तेज किये नाराच का सन्धानकर, हे राजन्! सत्यसेन के धनुष को काट दिया। तब दूसरे रथ पर चढ़कर और दूसरे धनुष को लेकर सत्यसेन और सुषेण ने पाण्डुपुत्र पर आक्रमण किया। तब प्रतापी माद्रीपुत्र ने बिना घबराये दोनों को हे महाराज! युद्ध के मुहाने पर दो दो बाणों से घायल कर दिया।

सुषेणस्तु ततः क्रुद्धः पाण्डवस्य महद् धनुः।
चिच्छेद प्रहसन् युद्धे क्षुरप्रेण महारथः॥ २९॥
अथान्यद् धनुरादाय नकुलः क्रोधमूर्च्छितः।
सुषेणं पञ्चभिर्विद्ध्वा ध्वजमेकेन चिच्छिदे॥ ३०॥
सत्यसेनस्य च धनुर्हस्तावापं च मारिष।
चिच्छेद तरसा युद्धे तत उच्चुक्रुशुर्जनाः॥ ३१॥
अथान्यद् धनुरादाय वेगघ्नं भारसाधनम्।
शरैः संछादयामास समन्तात् पाण्डुनन्दनम्॥ ३२॥
संनिवार्य तु तान् बाणान् नकुलः परवीरहा।
सत्यसेनं सुषेणं च द्वाभ्यां द्वाभ्यामविध्यत॥ ३३॥

फिर महारथी सुषेण ने हँसकर और क्रोध में भरकर क्षुरप्र से पाण्डुपुत्र के विशाल धनुष को काट दिया। तब क्रोध से मूर्च्छित हुए नकुल ने दूसरे धनुष को लेकर सुषेण को पाँच बाणों से घायल कर, एक बाण से उसकी ध्वजा को काट दिया। हे मान्यवर! फिर शीघ्रता के साथ उन्होंने युद्ध में सत्यसेन के धनुष और हाथ के दस्तानों को भी काट दिया। तब लोग जोर जोर से चिल्लाने लगे। तब वेग को नष्ट करने वाले और भार को सहन करने वाले दूसरे धनुष को लेकर सत्यसेन ने पाण्डुपुत्र को सब तरफ से बाणों से आच्छादित कर दिया। तब शत्रुवीरों को नष्ट करने वाले नकुल ने उस बाण वर्षा का निवारण कर सत्यसेन और सुषेण को दो दो बाणों से बींध दिया।

तावेनं प्रत्यविध्येतां पृथक् पृथगजिह्मगैः।
सारथिं चास्य राजेन्द्र शितैर्विव्यधतुः शरैः॥ ३४॥
सत्यसेनो रथेषां तु नकुलस्य धनुस्तथा।
पृथक्छराभ्यां चिच्छेद कृतहस्तः प्रतापवान्॥ ३५॥
स रथेऽतिरथस्तिष्ठन् रथशक्तिं परामृशत्।
समुद्यम्य च चिक्षेप, सत्यसेनस्य संयुगे॥ ३६॥
सा तस्य हृदयं संख्ये बिभेद च तथा नृप।
भ्रातरं निहतं दृष्ट्वा सुषेणः क्रोधमूर्छितः॥ ३७॥
अभ्यवर्षच्छरैस्तूर्णं पादातं पाण्डुनन्दनम्।

हे राजेन्द्र! फिर उन दोनों ने भी उन्हें सीधे जाने वाले तीखे बाणों से अलग अलग बींध दिया और उनके सारथी को भी घायल कर दिया। सिद्धहस्त और प्रतापी सत्यसेन ने अलग अलग दो बाणों से नकुल के धनुष और रथ की ईषा को काट दिया। तब उस अतिरथी नकुल ने रथ पर खड़े हुए एक रथशक्ति को उठाया और उसे युद्ध क्षेत्र में सत्यसेन के ऊपर फेंका। हे राजन्! उस रथशक्ति ने सत्यसेन के हृदय को बींध दिया। तब अपने भाई को मारा हुआ देखकर, सुषेण क्रोध से मूर्च्छित होकर ईषादण्ड कट जाने के कारण भूमि पर खड़े हुए पाण्डुपुत्र के ऊपर तेजीसे बाणों की बौछार करने लगा।

चतुर्भिश्चतुरो वाहान् ध्वजं छित्त्वा च पञ्चभिः॥ ३८॥
त्रिभिर्वै सारथिं हत्वा कर्णपुत्रो ननाद ह।
नकुलं विरथं दृष्ट्वा द्रौपदेयो महारथम्॥ ३९॥
सुतसोमोऽभिदुद्राव परीप्सन् पितरं रणे।
ततोऽधिरुह्य नकुलः सुतसोमस्य तं रथम्॥ ४०॥
शुशुभे भरतश्रेष्ठो गिरिस्थ इव केसरी।
अन्यत् कार्मुकमादाय सुषेणं समयोधयत्॥ ४१॥
तावुभौ शरवर्षाभ्यां समासाद्य परस्परम्।
परस्परवधे यत्नं चक्रतुः सुमहारथौ॥ ४२॥

उसने चार बाणों से उनके चारों घोड़ों और पाँचवें से ध्वज को काटकर तीन बाणों से सारथी को मार दिया और फिर कर्णपुत्र ने जोर से गर्जना की। तब महारथी नकुल को रथ से रहित देखकर द्रौपदी

पुत्र सुतसोम युद्ध में अपने चाचा की रक्षा के लिये दौड़कर आया। तब भरतश्रेष्ठ नकुल सुतसोम के रथ पर बैठकर ऐसे सुशोभित होने लगे जैसे पर्वत पर विद्यमान सिंह। उन्होंने दूसरा धनुष लेकर सुषेण के साथ युद्ध आरम्भ कर दिया। वेदोनों अत्यन्तमहारथी तब एकदूसरे से युद्ध करते हुए बाण वर्षा के द्वारा एकदूसरे के वध का प्रयत्न करने लगे।

सुषेणस्तु ततः क्रुद्धः पाण्डवं विशिखैस्त्रिभिः।
सुतसोमं तु विंशत्या बाह्वोरुरसि चार्पयत्॥ ४३॥
ततः क्रुद्धो महाराज नकुलः परवीरहा।
शरैस्तस्य दिशः सर्वाश्छादयामास वीर्यवान्॥ ४४॥
ततो गृहीत्वा तीक्ष्णाग्रमर्धचन्द्रं सुतेजनम्।
सुवेगवन्तं चिक्षेप कर्णपुत्राय संयुगे॥ ४५॥
तस्य तेन शिरः कायाज्जहार नृपसत्तम।
पश्यतां सर्वसेन्यानां तदद्भुतमिवाभवत्॥ ४६॥

तब क्रुद्ध सुषेण ने पाण्डुपुत्र को तीन बाणों से और सुतसोम की छाती और बाहों पर बीस बाणों की वर्षाकर उन्हें घायल कर दिया। हे महाराज! तब शत्रु के वीरों को मारनेवाले प्रतापी, क्रुद्ध नकुल ने बाणों से सुषेण के सबतरफ को ढक दिया। उन्होंने युद्धक्षेत्र में तीखी नोकवाले बहुततेज और वेगवाले अर्धचन्द्राकार बाण को कर्णपुत्र पर फैंका। हे राजेन्द्र! उस बाण से उन्होंने सारी सेना के देखते हुए सुषेण का सिर उसके शरीर से अलग कर दिया। यह एक अद्भुत बात हुई।

कर्णपुत्रवधं दृष्ट्वा नकुलस्य च विक्रमम्।
प्रदुद्राव भयात् सेना तावकी भरतर्षभ॥ ४७॥
तां तु सेनां महाराज मद्रराजः प्रतापवान्।
अपालयद् रणे शूरः सेना पतिररिंदमः॥ ४८॥
विभीस्तस्थौ महाराज व्यवस्थाप्य च वाहिनीम्।
सिंहनादं भृशं कृत्वा धनुःशब्दं च दारुणम्॥ ४९॥
तावकाः समरे राजन् रक्षिता दृढधन्वना।
प्रत्युद्ययुरारातींस्तु समन्ताद् विगतव्यथाः॥ ५०॥

कर्णपुत्रों के वध और नकुल के पराक्रम को देखकर हे महाराज! भरतश्रेष्ठ! आपकी सेना भागने लगी। तब शत्रुसूदन, प्रतापी सेनापति, शूरवीर, मद्रराज ने युद्धक्षेत्र में आपकी सेना को संरक्षण दिया। हे महाराज! वे सेना की स्थापना करके निर्भयता से धनुष की भयानक टंकार और जोर से सिंहनाद करते हुए डटे हुए थे। हे राजन्! तब उस दृढ़ धनुषवाले राजाशल्य से सुरक्षित होकर आपके सैनिक व्यथारहित होकर युद्धक्षेत्र में शत्रुओं की तरफ बढ़ने लगे।

मद्रराजं महेष्वासं परिवार्य समन्ततः।
स्थिता राजन् महासेना योद्धुकामा समन्ततः॥ ५१॥
सात्यकिर्भीमसेनश्च माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ।
युधिष्ठिरं पुरस्कृत्य ह्रीनिषेवमरिंदमम्॥ ५२॥
ततः प्रववृते युद्धं भीरूणां भयवर्धनम्।
तावकानां परेषां च मृत्युं कृत्वा निवर्तनम्॥ ५३॥

हे राजन्! आपकी विशाल सेना तब युद्ध की इच्छुक होकर, मद्रराज को घेरकर खड़ी होगयी। उधर सात्यकि, भीमसेन, माद्री के दोनों पुत्र नकुल और सहदेव, शत्रुदमन और लज्जाशील युधिष्ठिर को आगेकर चढ़ आये। फिर आपके और शत्रुपक्ष के योद्धाओं में, मृत्यु को ही वापिस लौटने की सीमा मानकर, कायरों के भय को बढ़ानेवाला भयंकर युद्ध आरम्भ होगया।

ततः कपिध्वजो राजन् हत्वा संशप्तकान् रणे।
अभ्यद्रवत तां सेनां कौरवीं पाण्डुनन्दनः॥ ५४॥
तथैव पाण्डवाः सर्वे धृष्टद्युम्नपुरोगमाः।
अभ्यधावन्त तां सेनां विसृजन्तः शिताञ्शरान्॥ ५५॥
आपूर्यमाणा निशितैः शरैः पाण्डवचोदितैः।
हतप्रवीरा विध्वस्ता वार्यमाणा समन्ततः॥ ५६॥
तथैव पाण्डवं सैन्यं शरै राजन् समन्ततः।
रणेऽहन्यत पुत्रैस्ते शतशोऽथ सहस्रशः॥ ५७॥

हे राजन्! तब वानर की ध्वजावाले अर्जुन ने भी संशप्तकों का संहारकर कौरवों की सेना पर आक्रमण किया। उसीप्रकार धृष्टद्युम्न आदि सारे पाण्डवयोद्धा भी तीखे बाणों की वर्षा करते हुए उस सेना पर चढ़ आये। पाण्डवयोद्धाओं के तीखे बाणों से भरी हुई वह कौरवसेना, जिसके प्रमुख वीर मारे गये थे और सबतरफ से जिसकी गति अवरुद्ध होगयी थी, नष्ट होने लगी। उसीप्रकार हे राजन्! पाण्डवसेना के भी सैकड़ों और हजारों योद्धा आपके पुत्रों के बाणों द्वारा सबतरफ से युद्ध में मारे जाने लगे।

दसवाँ अध्याय : शल्य की वीरता।

बलिभिः पाण्डवैर्दृप्तैर्लब्धलक्षैः प्रहारिभिः।
कौरव्यसीदत् पृतना मृगीवाग्निसमाकुला॥ १॥
तां दृष्ट्वा सीदतीं सेनां पङ्के गामिव दुर्बलाम्।
उज्जिहीर्षुस्तदा शल्यः प्रायात् पाण्डुसुतान् प्रति॥ २॥
मद्रराजः सुसंक्रुद्धो गृहीत्वा धनुरुत्तमम्।
अभ्यद्रवत संग्रामे पाण्डवानाततायिनः॥ ३॥
पाण्डवा अपि भूपाल समरे जितकाशिनः।
मद्रराजं समासाद्य बिभिदुर्निशितैः शरैः॥ ४॥

बलवान्, अभिमानयुक्त, प्रहार करनेवाले तथा जिन्होंने अपने उद्देश्य को कुछ मात्रा में प्राप्त कर लिया था, उन पाण्डवों द्वारा पीड़ित हुई कौरवसेना दावानलसे घिरी हरिणी के समान व्याकुल हो रही थी। तब कीचड़ में फँसी हुई दुर्बल गाय के समान उस सेना को दुखी देखकर, उसके उद्धार की इच्छा से शल्य पाण्डुपुत्रों की तरफ बढ़े। अत्यन्त क्रुद्ध मद्रराज ने उत्तम धनुष को उठाकर युद्धक्षेत्र में अपने वध के इच्छुक पाण्डवों पर आक्रमण किया। हे राजन्! युद्धक्षेत्र में विजय के इच्छुक पाण्डवों ने भी मद्रराज के सामने आकर उन्हें तीखे बाणों से बींधना आरम्भ कर दिया।

ततः शरशतैस्तीक्ष्णैर्मद्रराजो महारथः।
अर्दयामास तां सेनां धर्मराजस्य पश्यतः॥ ५॥
ततस्तद् युद्धमत्युग्रमभवत् सहचारिणाम्।
तथा सर्वाण्यनीकानि संनिपत्य जनाधिप॥ ६॥
अभ्ययुः कौरवा राजन् पाण्डवानामनीकिनीम्।
ततः प्रभद्रका राजन् सोमकाश्च सहस्रशः॥ ७॥
पतिताः पात्यमानाश्च दृश्यन्ते शल्यसायकैः।
भ्रमराणामिव व्राताः शलभानामिव व्रजाः॥ ८॥
ह्रादिन्य इव मेघेभ्यः शल्यस्य न्यपतञ्शराः।

तब महारथी मद्रराज ने सैकड़ों तीखे बाणों से धर्मराज युधिष्ठिर के देखते हुए उनकी सेना को पीड़ित कर दिया। हे नरेश्वर! इकट्ठे होकर लड़ने वाले, दोनों पक्षों के योद्धाओं का वह युद्ध अत्यन्त उग्र होगया। हे राजन्! अपनी सारी सेनाओं को एकत्रकर तब कौरवयोद्धाओं ने पाण्डवों की सेना पर आक्रमण कर दिया। हजारों की संख्या में प्रभद्रक और सोमक वीर तब शल्य के बाणों से गिरे हुए और गिराये जाते हुए दिखाई देने लगे। जैसे भ्रमरों के समूह हों, या जैसे टिड्डीदल हों, या जैसे बादलों से बिजली गिर रही हो, उसीप्रकार शल्य के बाण तब गिर रहे थे।

द्विरदास्तुरगाश्चार्ताः पत्तयो रथिनस्तथा॥ ९॥
शल्यस्य बाणैरपतन् बभ्रमुर्व्यनदंस्तथा।
विनर्दमानो मद्रेशो मेघह्लादो महाबलः॥ १०॥
सा वध्यमाना शल्येन पाण्डवानामनीकिनी।
अजातशत्रुं कौन्तेयमभ्यधावद् युधिष्ठिरम्॥ ११॥
तां सम्मर्द्य ततः संख्ये लघुहस्तः शितैः शरैः।
बाणवर्षेण महता युधिष्ठिरमताडयत्॥ १२॥

शल्य के बाणों से पीड़ित हाथी, घोड़े, पैदल और रथी चक्कर काटते हुए गिर रहे थे और आर्तनाद कर रहे थे। महाबली मद्रेश बादलों की गर्जना के समान सिंहनाद कर रहे थे। शल्य द्वारा मारी जाती पाण्डवों की वह सेना तब भागकर अजातशत्रु कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर के पास चली गयी। फिर शीघ्रता से हाथ चलानेवाले शल्य ने युद्धक्षेत्र में अपने तीखे बाणों से उस सेना का मर्दनकर, विशाल बाणवर्षा द्वारा युधिष्ठिर को भी पीड़ित किया।

तमापतन्तं पत्त्यश्वैः क्रुद्धो राजा युधिष्ठिरः।
अवारयच्छरैस्तीक्ष्णैर्महा- द्विपमिवाङ्कुशैः॥ १३॥
तस्य शल्यः शरं घोरं मुमोचाशीविषोपमम्।
स निर्भिद्य महात्मानं वेगेनाभ्यपतच्च गाम्॥ १४॥
ततो वृकोदरः क्रुद्धः शल्यं विव्याध सप्तभिः।
पञ्चभिः सहदेवस्तु नकुलो दशभिः शरैः॥ १५॥
द्रौपदेयाश्च शत्रुघ्नं शूरमार्तायनिं शरैः।

तब क्रुद्ध राजा युधिष्ठिर ने पैदलों और घुड़सवारों के साथ आक्रमण करते हुए शल्य को तीखे बाणों की वर्षा से उसीप्रकार भर दिया, जैसे विशाल हाथी को अंकुशों की मार से रोक दिया जाये। तब शल्य ने एक भयंकर विषैले सर्प के समान बाण को युधिष्ठिर के ऊपर छोड़ा। वह बाण तेजी से उस मनस्वी को बींधकर भूमि पर गिर पड़ा। तब क्रुद्ध भीम ने सात बाणों से शल्य को बींध दिया। सहदेव ने पाँच और नकुल ने उन्हें दस बाणों से घायल

किया। द्रौपदी के पुत्रों ने भी शत्रुदमन, शूरवीर, ऋतायनपुत्र शल्य को अनेक बाणों से पीड़ित किया।

अभ्यवर्षन् महाराज मेघा इव महीधरम्॥ १६॥
ततो दृष्ट्वा वार्यमाणं शल्यं पार्थैः समन्ततः।
कृतवर्मा कृपश्चैव संक्रुद्धावभ्यधावताम्॥ १७॥
उलूकश्च महावीर्यः शकुनिश्चापि सौबलः।
समागम्याथ शनकैरश्वत्थामा महाबलः॥ १८॥
तव पुत्राश्च कार्त्स्न्येन जुगुपुः शल्यमाहवे।
भीमसेनं त्रिभिर्विद्ध्वा कृतवर्मा शिलीमुखैः॥ १९॥
बाणवर्षेण महता क्रुद्धरूपमवारयत्।
धृष्टद्युम्नं कृपः क्रुद्धो बाणवर्षैरपीडयत्॥ २०॥
द्रौपदेयांश्च शकुनिर्यमौ च द्रौणिरभ्ययात्।

हे महाराज! जैसे बादल पर्वत पर वर्षा करते हैं, उसीप्रकार से वेलोग शल्य पर बाणों की वर्षा कर रहे थे। तब शल्य को कुन्तीपुत्रोंद्वारा सबतरफ से अवरुद्ध देखकर कृतवर्मा और कृपाचार्य अत्यन्त क्रोध में भरकर उस तरफ दौड़े। साथ ही महापराक्रमी उलूक और सुबलपुत्र शकुनि, महाबली अश्वत्थामा और आपके सारे पुत्र भी धीरे धीरे वहाँ आकर युद्धक्षेत्र में शल्य की रक्षा करने लगे। कृतवर्मा ने क्रोध में भरे हुए भीमसेन को तीन बाणों से बींधकर भारी बाणवर्षा द्वारा रोक दिया। क्रुद्ध कृपाचार्य ने धृष्टद्युम्न को बाणवर्षा से पीड़ा दी, द्रौपदी के पुत्रों पर शकुनि ने और नकुल तथा सहदेव पर द्रोणपुत्र ने आक्रमण किया।

दुर्योधनो युधां श्रेष्ठः आहवे केशवार्जुनौ॥ २१॥
समभ्ययादुग्रतेजाः शरैश्चाप्यहनद् बली।
एवं द्वन्द्वशतान्यासंस्त्वदीयानां परैः सह॥ २२॥
घोररूपाणि चित्राणि तत्र तत्र विशाम्पते।
प्रमुखे सहदेवस्य जघानाश्वान् स मद्रराट्॥ २३॥
ततः शल्यस्य तनयं सहदेवोऽसिनावधीत्।
गौतमः पुनराचार्यो धृष्टद्युम्नमयोधयत्॥ २४॥
असम्भ्रान्तमसम्भ्रान्तो यत्नवान् यत्नवत्तरम्।
द्रौपदेयांस्तथा वीरानेकैकं दशभिः शरैः॥ २५॥
अविद्ध्यदाचार्यसुतो नातिक्रुद्धो हसन्निव।

योद्धाओं में श्रेष्ठ, बलवान्, उग्र तेजस्वी, दुर्योधन ने युद्धक्षेत्र में श्रीकृष्ण और अर्जुन पर आक्रमण किया और बाणों से उन्हें चोट पहुँचायी। हे प्रजानाथ! इसप्रकार आपके योद्धाओं के शत्रुओं के साथ अनेक प्रकार के भयंकर और विचित्र द्वन्द्वयुद्ध जहाँतहाँ होरहे थे। मद्रराज ने सामने विद्यमान सहदेव के घोड़ों को मार दिया। फिर सहदेव ने शल्य के पुत्र को तलवार से मार दिया। कृपाचार्य धृष्टद्युम्न के साथ युद्ध कर रहे थे। वेदोनों ही घबराहट से रहित और एकदूसरे से बढ़कर प्रयत्नशील थे। आचार्यपुत्र अश्वत्थामा ने अधिक क्रोध न करते हुए और मुस्कराते हुए द्रौपदी के वीरपुत्रों में से प्रत्येक को दस बाणों से बींध दिया।

ऋक्ष वर्णाञ्जघानाश्वान्, भोजो भीमस्य संयुगे॥ २६॥
सोऽवतीर्य रथात्तूर्णं हताश्वः पाण्डुनन्दनः।
पोथयामास तुरगान् रथं च कृतवर्मणः॥ २७॥
कृतवर्मा त्ववप्लुत्य रथात् तस्मादपाक्रमत्।
शल्योऽपि राजन् संक्रुद्धो निघ्नन् सोमकपाण्डवान्॥ २८॥
पुनरेव शितैर्बाणैर्युधिष्ठिरमपीडयत्।

कृतवर्मा ने युद्धक्षेत्र में भीमसेन के रीछ के रंगवाले घोड़ों को मार दिया। तब मरे घोड़ोंवाले रथ से तुरन्त कूदकर पाण्डुपुत्र भीम ने कृतवर्मा के रथ और घोड़ों को चूरचूर कर दिया। कृतवर्मा तब रथ से कूदकर वहाँ से भाग गया। हे राजन्! शल्य ने भी सोमक और पाण्डव सैनिकों को मारते हुए, अत्यन्त क्रुद्ध होकर, तीखे बाणों से युधिष्ठिर को पीड़ित किया।

तस्य भीमो रणे क्रुद्धः संदश्य दशनच्छदम्॥ २९॥
विनाशायाभिसंधाय गदामादाय वीर्यवान्।
गजवाजिमनुष्याणां देहान्तकरणीमपि॥ ३०॥
हेमपट्टपरिक्षिप्तामुल्कां प्रज्वलितामिव।
शैक्यां व्यालीमिवात्युग्रां वज्रकल्पामयोमयीम्॥ ३१॥
समुद्यम्य महाबाहुः शल्यमभ्यपतद् रणे।
गदया युद्धकुशलस्तया दारुणनादया॥ ३२॥
पोथयामास शल्यस्य चतुरोऽश्वान् महाजवान्।

तब प्रतापी, महाबाहु, क्रुद्ध भीम अपने होठों को दबाकर, उसके विनाश के लिये विचारकर, हाथी, घोड़ों और मनुष्यों के शरीरों का अन्त करनेवाली, सोने के पत्रों से जड़ी हुई, प्रज्वलित उल्का और छींके पर बैठी हुई सर्पिणी के समान अत्यन्त भयंकर, वज्र के समान, लोहे से बनी गदा को उठाकर युद्धक्षेत्र में शल्य के ऊपर टूट पड़े। भयंकर शब्द करने वाली उस गदा से

युद्धकुशल भीम ने शल्य के महावेगशाली चारों घोड़ों को मार दिया।

ततः शल्यो रणे क्रुद्धः पीने वक्षसि तोमरम्॥ ३३॥
निचखान नदन् वीरो वर्म भित्त्वा च सोऽभ्ययात्।
वृकोदरस्त्वसम्भ्रान्तस्तमेवोद्धृत्य तोमरम्।
यन्तारं मद्रराजस्य निर्बिभेद ततो हृदि॥ ३४॥

तब वीर शल्य ने युद्धक्षेत्र में क्रुद्ध होकर भीम की विशाल छाती पर तोमर का प्रहार किया। वह तोमर भीम के कवच को छेदकर छाती में घुस गया। तब भीम ने बिना घबराये, उस तोमर को निकालकर, उसी से मद्रराज के सारथी की छाती को छेद दिया।

ग्यारहवाँ अध्याय : शल्य का भीम तथा युधिष्ठिर से युद्ध। दुर्योधन से चेकितान तथा युधिष्ठिर से चन्द्रसेन और द्रुमसेन का वध।

पतितं प्रेक्ष्य यन्तारं शल्यः सर्वायसीं गदाम्।
आदाय तरसा राजंस्तस्थौ गिरिरिवाचलः॥ १॥
प्रेक्षन्तः सर्वतस्तौ हि योधा योधमहाद्विपौ।
तावकाश्चापरे चैव साधु साध्वित्यपूजयन्॥ २॥
न हि मद्राधिपादन्यो रामाद् वा यदुनन्दनात्।
सोढुमुत्सहते वेगं भीमसेनस्य संयुगे॥ ३॥
तथा मद्राधिपस्यापि गदावेगं महात्मनः।
सोढुमुत्सहते नान्यो योधो युधि वृकोदरात्॥ ४॥
तौ वृषाविव नर्दन्तौ मण्डलानि विचेरतुः।
आवर्तितौ गदाहस्तौ मद्रराजवृकोदरौ॥ ५॥

हे राजन्! अपने सारथी को गिराया हुआ देखकर शल्य भी सारी लोहे की बनी हुई गदा को लेकर तुरन्त भीम के मुकाबले के लिये पर्वत के समान अविचल भाव से खड़े होगये। तब आपके और शत्रुपक्ष के दोनों योद्धा विशाल हाथियों के समान उनदोनों को देखकर सबतरफ से साधु साधु कहने लगे। मद्रराज और यदुश्रेष्ठ बलराम के अतिरिक्त कोई ऐसा योद्धा नहीं है, जो युद्धक्षेत्र में भीम की गदा के वेग को सहन कर सके। इसीप्रकार मनस्वी मद्रराज की गदा के वेग को भी युद्ध में भीमसेन के अतिरिक्त कोई दूसरा सहन नहीं कर सकता। तब वेदोनों गदा हाथ में लिये मद्रराज और भीमसेन साँडों के समान गर्जते हुए चक्कर लगाने और पैंतरों में विचरने लगे।

मण्डलावर्तमार्गेषु गदाविहरणेषु च।
निर्विशेषमभूद् युद्धं तयोः पुरुषसिंहयोः॥ ६॥
तप्तहेममयैः शुभ्रैर्बभूव भयवर्धिनी।
अग्निजालैरिवाबद्धा पट्टैः शल्यस्य सा गदा॥ ७॥

तथैव चरतो मार्गान् मण्डलेषु महात्मनः।
विद्युदभ्रप्रतीकाशा भीमस्य शुशुभे गदा॥ ८॥
ताडिता मद्रराजेन भीमस्य गदया गदा।
दह्यमानेव खे राजन् सासृजत् पावकार्चिषः॥ ९॥

मण्डलाकार गति से घूमने में, भाँति–भाँति के पैंतरे दिखाने में और गदा का प्रहार करने में उनदोनों पुरुषसिंहों में कोई एकदूसरे बढ़कर नहीं था। शल्य की गदा तपे हुए सोने के समान उज्वल पत्रों से जड़ी हुई, भयको बढ़ानेवाली और अग्नि की ज्वालाओं से लिपटी हुई सी जान पड़ती थी। उसी प्रकार से गोलाकार गति से भिन्न–भिन्न पैंतरों में चलते हुए मनस्वी भीम की गदा मेघों से चमकने वाली विद्युत् के समान प्रतीत होती थी। हे राजन्! जब मद्रराज ने भीम की गदा पर अपनी गदा से चोट की, तब आकाश में जलती हुई सी वह आग की चिनगारियों को छोड़ने लगी।

तथा भीमेन शल्यस्य ताडिता गदया गदा।
अङ्गारवर्षं मुमुचे तदद्भुतमिवाभवत्॥ १०॥
दन्तैरिव महानागौ शृङ्गैरिव महर्षभौ।
तोत्रैरिव तदान्योन्यं गदाग्राभ्यां निजघ्नतुः॥ ११॥
तौ गदाभिहतैर्गात्रैः क्षणेन रुधिरोक्षितौ।
प्रेक्षणीयतरावास्तां पुष्पिताविव किंशुकौ॥ १२॥
गदया मद्रराजस्य सव्यदक्षिणमाहतः।
भीमसेनो महाबाहुर्न चचालाचलो तथा॥ १३॥

वैसे ही जब भीम ने भी अपनी गदा से शल्य की गदा पर प्रहार किया, तो वह अंगारों की वर्षा करने लगी। यह एक अद्भुत दृश्य था। जैसे दो विशाल हाथी दाँतों से एकदूसरे पर चोट करें, या

दो विशाल साँड सींगों से एकदूसरे पर प्रहार करें, वैसे ही अंकुशों के समान गदाओं के अगले भागों से वे एकदूसरे पर आघात करने लगे। गदापीड़ित अंगों के कारण वे थोड़ी देर में ही खून से लथपथ होगये और फूलोंवाले पलाश के वृक्षों के समान दिखाई देने लगे। मद्रराज की गदा से दायें और बायें चोट खाकर भी भीमसेन पर्वत की तरह अविचल भाव से खड़े हुए थे।

तथा भीमगदावेगैस्ताड्यमानो मुहुर्मुहुः।
शल्यो न विव्यथे राजन् दन्तिनेव महागिरिः॥ १४॥
निवृत्य तु महावीर्यौ समुच्छ्रितमहागदौ।
पुनरन्तरमार्गस्थौ मण्डलानि विचेरतुः॥ १५॥
क्रियाविशेषकृतिनौ रणभूमितलेऽचलौ।
तौ परस्परसंरम्भाद् गदाभ्यां सुभृशाहतौ॥ १६॥
युगपत् पेततुर्वीरावुभाविन्द्रध्वजाविव।
उभयोः सेनयोर्वीरास्तदा हाहाकृतोऽभवन्॥ १७॥

हे राजन्! भीम की गदा के वेग से बार–बार चोट खाकर शल्य को भी उसीप्रकार व्यथा नहीं हुई जैसे दान्तार हाथी के आघात से पर्वत पीड़ित नहीं होता है। अपनी विशाल गदाओं को उठाये वेदोनों महापराक्रमी भीम और शल्य कभी पीछे लौटते, कभी मध्यमार्ग में स्थित होते और कभी मण्डलाकार गति में घूमने लगते थे। युद्ध की विशिष्ट क्रियाओं में कुशल वेदोनों युद्धक्षेत्र में अविचलभाव से डटे हुए थे। एकदूसरे पर क्रोधपूर्वक चोट करते हुए वे अत्यन्तघायल हो गये थे। अन्त में वेदोनों वीर दो इन्द्र की ध्वजाओं के समान एकसाथ ही भूमि पर गिर पड़े। उनके गिरने पर दोनोंतरफ की सेनाओं में हाहाकार होने लगा।

भृशं मर्माण्यभिहतावुभावास्तां सुविह्वलौ।
ततः स्वरथमारोप्य मद्राणामृषभं रणे॥ १८॥
अपोवाह कृपः शल्यं तूर्णमायोधनादथ।
क्षीणवद् विह्वलत्वात् तु निमेषात् पुनरुत्थितः॥ १९॥
भीमसेनो गदापाणिः समाह्वयत मद्रपम्।
भुजावुच्छ्रित्य शस्त्रं च शब्देन महता ततः॥ २०॥
अभ्यद्रवन् महाराज दुर्योधनपुरोगमाः।
तदनीकमभिप्रेक्ष्य ततस्ते पाण्डुनन्दनाः॥ २१॥
प्रययुः सिंहनादेन दुर्योधनपुरोगमान्।

दोनों के मर्मस्थलों में अत्यधिक चोट लगी हुई थी और दोनों ही उस समय अत्यन्त व्याकुल हो रहे थे। तब कृपाचार्य मद्रदेश के राजा शल्य को अपने रथ बिठाकर तुरन्त वहाँ से दूर ले गये। उधर भीमसेन थोड़ी देर में ही होश में आकर उठ खड़े हुए और व्याकुलता के कारण मतवाले पुरुष के समान गदा को उठाकर मद्रराज को युद्ध के लिये ललकारने लगे। तब दुर्योधन आदि कौरव वीर अपनी दोनों भुजाओं और शस्त्रों को उठाकर, महान् सिंहनाद करते हुए, हे महाराज! शत्रुओं पर टूट पड़े। आक्रमण करती हुई उस सेना को देखकर पाण्डुपुत्र भी सिंहनाद करते हुए दुर्योधन आदि की तरफ बढ़ चले।

तेषामापततां तूर्णं पुत्रस्ते भरतर्षभ॥ २२॥
प्रासेन चेकितानं वै विव्याध हृदये भृशम्।
चेकितानं हतं दृष्ट्वा पाण्डवेया महारथाः॥ २३॥
असक्तमभ्यवर्षन्त शरवर्षाणि भागशः।

हे भरतश्रेष्ठ! तब आपके पुत्र ने तुरन्त आक्रमण करते हुए वीरों में से चेकितान के हृदय पर जोर से प्रास से चोट पहुँचायी। चेकितान को मारा गया देखकर पाण्डव महारथी अलग–अलग लगातार बाणों की वर्षा करने लगे।

भारद्वाजस्य हन्तारं भूरिवीर्यपराक्रमम्॥ २४॥
दुर्योधनो महाराज धृष्टद्युम्नमयोधयत्।
त्रिसाहस्रास्तथा राजंस्तव पुत्रेण चोदिताः॥ २५॥
अयोधयन्त विजयं द्रोणपुत्रपुरस्कृताः।
विजये धृतसंकल्पाः समरे त्यक्तजीविताः॥ २६॥
प्राविशंस्तावका राजन् हंसा इव महत् सरः।
तस्मिन् प्रवृत्ते संग्रामे राजन् वीरवरक्षये॥ २७॥
अनिलेनेरितं घोरमुत्तस्थौ पार्थिवं रजः।
तद्रजः पुरुषव्याघ्र शोणितेन प्रशामितम्॥ २८॥
दिशश्च विमला जातास्तस्मिंस्तमसि नाशिते।

अत्यन्त बलपराक्रम से युक्त द्रोणाचार्य को मारनेवाले धृष्टद्युम्न से हे महाराज! दुर्योधन युद्ध करने लगा। हे राजन्! आपके पुत्र से प्रेरित होकर तीन हजार योद्धा द्रोणपुत्र को आगेकर अर्जुन से युद्ध करने लगे। हे राजन्! तब आपके सैनिक युद्ध में विजय के लिये संकल्पकर और अपने प्राणों का मोह छोड़कर, शत्रुसेना में ऐसे घुस गये, जैसे हंस

महान् सरोवर में प्रवेश करते हैं। हे राजन्! तब श्रेष्ठ वीरों का विनाश करने वाले उस संग्राम के चलते हुए वायु द्वारा उड़ायी हुई धूल ऊपर को उठने लगी। पर हे पुरुषव्याघ्र! संग्राम में इतना रक्त बह रहा था कि वह धूल उस रक्त के द्वारा शान्त होगयी और धूलजनित अन्धकार के नष्ट होने पर दिशाएँ निर्मल होगयीं।

तथा प्रवृत्ते संग्रामे घोररूपे भयानके॥ २९॥
तावकानां परेषां च नासीत् कश्चित् पराङ्मुखः।
नानारूपाणि शस्त्राणि विसृजन्तो महारथाः॥ ३०॥
अन्योन्यमभिगर्जन्तः प्रहरन्तः परस्परम्।
हत विध्यत गृह्णीत प्रहरध्वं निकृन्तत॥ ३१॥
इति स्म वाचः श्रूयन्ते तव तेषां च वै बले।

इसप्रकार जब भय देनेवाला भयंकर संग्राम चल रहा था, तब आपके और शत्रुओं के योद्धाओं में से कोई भी युद्ध से विमुख नहीं हुआ। महारथी लोग अनेकप्रकार के हथियारों से एकदूसरे पर प्रहार करते हुए, गर्जनाएँ कर रहे थे। मार दो, घायल कर दो, पकड़लो, प्रहार करो, काट दो इसप्रकार के शब्द उससमय आपकी और शत्रुओं की सेनाओं में सुनायी देरहे थे।

ततः शल्यो महाराज धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम्॥ ३२॥
विव्याध निशितैर्बाणैर्हन्तुकामो महारथम्।
तस्य पार्थो महाराज नाराचान् वै चतुर्दश॥ ३३॥
मर्माण्युद्दिश्य मर्मज्ञो निचखान हसन्निव।
आवार्य पाण्डवं बाणैर्हन्तुकामो महाबलः॥ ३४॥
विव्याध समरे क्रुद्धो बहुभिः कङ्कपत्रिभिः।
अथ भूयो महाराज शरेणानतपर्वणा॥ ३५॥
युधिष्ठिरं समाजघ्ने सर्वसैन्यस्य पश्यतः।

हे महाराज! फिर शल्य ने मारने की इच्छा से धर्मपुत्र युधिष्ठिर को तीखे बाणों से घायल कर दिया। हे महाराज! तब मर्मस्थलों के ज्ञाता कुन्तीपुत्र ने मुस्कराते हुए उनके मर्मस्थलों को लक्ष्य बनाकर चौदह नाराचों को चलाया और उनके अंगों में धँसा दिया। तब महाबली क्रुद्ध शल्य ने मारने की इच्छा से, पाण्डुपुत्र को युद्धस्थल में बहुत से कंकपुत्र से युक्त बाणों द्वारा रोककर बींध दिया। हे महाराज! फिर सारी सेना के देखते हुए उन्होंने युधिष्ठिर को पुनः झुकी गाँठवाले बाण से चोट पहुँचायी।

धर्मराजोऽपि संक्रुद्धो मद्रराजं महायशाः॥ ३६॥
विव्याध निशितैर्बाणैः कङ्कबर्हिणवाजितैः।
चन्द्रसेनं च सप्तत्या सूतं च नवभिः शरैः॥ ३७॥
द्रुमसेनं चतुःषष्ट्या निजघान महारथः।
चक्ररक्षे हते शल्यः पाण्डवेन महात्मना॥ ३८॥
निजघान ततो राजंश्चेदीन् वै पञ्चविंशतिम्।

महायशस्वी धर्मराज ने भी अत्यन्त क्रोध में फिर कंकपक्षी और मोर के पंखों से युक्त तीखे बाणों से मद्रराज को घायल कर दिया। उसके बाद महारथी युधिष्ठिर ने सत्तर बाणों की वर्षाकर चन्द्रसेन, चौंसठ बाणों की वर्षाकर द्रुमसेन और नौ बाणों से शल्य के सारथी को मार दिया। मनस्वी पाण्डुपुत्र द्वारा अपने चक्ररक्षकों तथा सारथी के मारे जाने पर हे राजन्! शल्य ने पच्चीस चेदियोद्धाओं को मार दिया।

सात्यकिं पञ्चविंशत्या भीमसेनं च पञ्चभिः॥ ३९॥
माद्रीपुत्रौ शतेनाजौ विव्याध निशितैः शरैः।
एवं विचरतस्तस्य संग्रामे राजसत्तम॥ ४०॥
सम्प्रैषयच्छितान् पार्थः शरानाशीविषोपमान्।
ध्वजाग्रं चास्य समरे कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः॥ ४१॥
प्रमुखे वर्तमानस्य भल्लेनापाहरद् रथात्।
ध्वजं निपतितं दृष्ट्वा पाण्डवं च व्यवस्थितम्॥ ४२॥
संक्रुद्धो मद्रराजोऽभूच्छरवर्षं मुमोच ह।

फिर शल्य ने सात्यकि को पच्चीस बाणों की वर्षाकर, भीम को पाँच बाणों से और नकुल तथा सहदेव पर सौ बाणों की वर्षाकर युद्ध में तीखे बाणों से घायल कर दिया। हे राजश्रेष्ठ! इसप्रकार संग्राम में विचरण करते हुए शल्य को लक्ष्य करके कुन्तीपुत्र ने तीखे और विषैले सर्पों के समान भयंकर बाणों को चलाया। कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर ने युद्धक्षेत्र में सामने खड़े हुए शल्य के ध्वजाग्र को भल्ल से काटकर रथ से नीचे गिरा दिया। तब अपने ध्वज को गिरा हुआ और पाण्डुपुत्र को सामने देखकर मद्रराज अत्यन्त क्रोध में भर गये और बाणों की वर्षा करने लगे।

शल्यः सायकवर्षेण पर्जन्य इव वृष्टिमान्॥ ४३॥
अभ्यवर्षदमेयात्मा क्षत्रियान् क्षत्रियर्षभः।
सात्यकिं भीमसेनं च माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ॥ ४४॥
एकैकं पञ्चभिर्विद्ध्वा युधिष्ठिरमपीडयत्।

ततो बाणमयं जालं विततं पाण्डवोरसि।
अपश्याम महाराज मेघजालमिवोद्गतम्॥ ४५॥

जैसे बादल पानी की वर्षा करते हैं, उसीप्रकार क्षत्रियश्रेष्ठ और अमितआत्मा शल्य क्षत्रियों के ऊपर उस समय बाणों की वर्षा कर रहे थे। उन्होंने सात्यकि, भीमसेन, नकुल, सहदेव सबको पाँच पाँच बाणों से बींधकर युधिष्ठिर को भी पीड़ित किया। हे महाराज! हमने उस समय पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर की छाती पर बाणों का ऐसा जाल फैला हुआ देखा, जैसे आकाश में बादल घिर रहे हों।

बारहवाँ अध्याय : शल्य की वीरता।

पीडिते धर्मराजे तु मद्रराजेन मारिष।
सात्यकिर्भीमसेनश्च माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ॥ १॥
परिवार्य रथैः शल्यं पीडयामासुराहवे।
भीमसेनो रणे शल्यं शल्यभूतं पराक्रमे॥ २॥
एकेन विदध्वा बाणेन पुनर्विव्याध सप्तभिः।
सात्यकिश्च शतेनैनं धर्मपुत्रपरीप्सया॥ ३॥
मद्रेश्वरमवाकीर्य सिंहनादमथानदत्।
नकुलः पञ्चभिश्चैनं सहदेवश्च पञ्चभिः॥ ४॥
विद्ध्वा तं तु पुनस्तूर्णं ततो विव्याध सप्तभिः।

हे मान्यवर! तब मद्रराज के द्वारा युधिष्ठिर को पीड़ित देखकर सात्यकि, भीमसेन, नकुल और सहदेव रथों से शल्य को युद्धक्षेत्र में घेरकर पीड़ा देने लगे। भीमसेन ने शल्य को, जिसका पराक्रम काँटे के समान था, एक बाण से पहले बींधकर फिर सात बाणों से बींधा। सात्यकि ने धर्मपुत्र की रक्षा की इच्छा से मद्रराज पर सौ बाणों की वर्षाकर जोर से सिंहनाद किया। नकुल ने उन्हें पाँच बाणों से बींधा, सहदेव ने भी पाँच बाणों से बींधकर फिर तुरन्त सात बाणों से उन्हें बींधा।

स तु शूरो रणे यत्तः पीडितस्तैर्महारथैः॥ ५॥
विकृष्य कार्मुकं घोरं वेगघ्नं भारसाधनम्।
सात्यकिं पञ्चविंशत्या शल्यो विव्याध मारिष॥ ६॥
भीमसेनं तु सप्तत्या नकुलं सप्तभिस्तथा।
ततः सविशिखं चापं सहदेवस्य धन्विनः॥ ७॥
छित्त्वा भल्लेन समरे विव्याधैनं त्रिसप्तभिः।
सहदेवस्तु समरे मातुलं भूरिवर्चसम्॥ ८॥
सज्यमन्यद् धनुः कृत्वा पञ्चभिः समताडयत्।
शरैराशीविषाकारैर्ज्वल- ज्ज्वलनसंनिभैः॥ ९॥

हे मान्यवर! शल्य ने युद्धक्षेत्र में महारथियों से पीड़ित होते हुए भी, विजय के लिये प्रयत्न करते हुए भयंकर, वेग को नष्ट करनेवाले और भार को सहन करनेवाले धनुष को खींचकर सात्यकि पर पच्चीस, भीम पर सत्तर, और नकुल पर सात बाणों की वर्षाकर उन्हें घायल किया। फिर उन्होंने धनुर्धर सहदेव के बाणसहित धनुष को भल्ल से काटकर युद्धभूमि में उनके ऊपर इक्कीस बाणों की वर्षाकर घायल किया। तब सहदेव ने दूसरे धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाकर अपने युद्ध में अत्यन्त तेजस्वी मामा को, विषैले सर्प और प्रज्वलित अग्नि के समान पाँच बाणों से ताड़ना दी।

सारथिं चास्य समरे शरेणानतपर्वणा।
विव्याध भृशसंक्रुद्धस्तं वै भूयस्त्रिभिः शरैः॥ १०॥
भीमसेनस्तु सप्तत्या सात्यकिर्नवभिः शरैः।
धर्मराजस्तथा षष्ट्या गात्रे शल्यं समार्पयत्॥ ११॥
ततः शल्यो महाराज निर्विद्धस्तैर्महारथैः।
सुस्राव रुधिरं गात्रैर्गैरिकं पर्वतो यथा॥ १२॥
तांश्च सर्वान् महेष्वासान् पञ्चभिः पञ्चभिः शरैः।
विव्याध तरसा राजंस्तदद्भुतमिवाभवत्॥ १३॥

उसने युद्ध में शल्य के सारथी को झुकी गाँठवाले बाण से बींधा और फिर अत्यन्त क्रुद्ध होकर उसे पुनः तीन बाणों से बींध दिया। भीमसेन ने फिर सत्तर बाणों की, सात्यकि ने नौ बाणों की और धर्मराज ने साठ बाणों की शल्य के अंगों पर वर्षा की। हे महाराज! तब उन महारथियों से अत्यन्त घायल होकर शल्य अपने अंगों से उसीप्रकार रक्त की धाराएँ बहाने लगे जैसे पर्वत से गेरूमिश्रित जल का झरना बह रहा हो। हे राजन्! तब उन्होंने शीघ्रता से उन सारे महाधनुर्धरों को पाँच-पाँच बाणों से बींध दिया। यह एक आश्चर्यजनक बात थी।

ततोऽपरेण भल्लेन धर्मपुत्रस्य मारिष।
धनुश्चिच्छेद समरे सज्यं स सुमहारथः॥ १४॥

अथान्यद् धनुरादाय धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः।
साश्वसूतध्वजरथं शल्यं प्राच्छादयच्छरैः॥ १५॥
स च्छाद्यमानः समरे धर्मपुत्रस्य सायकैः।
युधिष्ठिरमथाविध्यद् दशभिर्निशितैः शरैः॥ १६॥
सात्यकिस्तु ततः क्रुद्धो धर्मपुत्रे शरार्दिते।
मद्राणामधिपं शूरं शरैर्विव्याध पञ्चभिः॥ १७॥

हे मान्यवर! फिर एक दूसरे भल्ल से उन श्रेष्ठ महारथी ने धर्मपुत्र के प्रत्यंचासहित धनुष को काट दिया। तब धर्मपुत्र युधिष्ठिर ने दूसरे धनुष को लेकर घोड़ों सारथी, ध्वज और रथ सहित शल्य को बाणों से आच्छादित कर दिया। तब युधिष्ठिर के बाणों से आच्छादित शल्य ने युधिष्ठिर को दस तीखे बाणों से बींध दिया। धर्मपुत्र के बाणों से पीड़ित होने पर, क्रुद्ध सात्यकि ने मद्रदेश के राजा को पाँच बाणों से बींधा।

स सात्यकेः प्रचिच्छेद क्षुरप्रेण महद् धनुः।
भीमसेनमुखांस्तांश्च त्रिभिस्त्रिभिरताडयत्॥ १८॥
तस्य क्रुद्धो महाराज सात्यकिः सत्यविक्रमः।
तोमरं प्रेषयामास स्वर्णदण्डं महाधनम्॥ १९॥
भीमसेनोऽथ नाराचं ज्वलन्तमिव पन्नगम्।
नकुलः समरे शक्तिं सहदेवो गदां शुभाम्॥ २०॥
धर्मराजः शतघ्नीं च जिघांसुः शल्यमाहवे।
तानापतत एवाशु पञ्चानां वै भुजच्युतान्॥ २१॥
वारयामास समरे शस्त्रसङ्घैः स मद्रराट्।

तब शल्य ने सात्यकि के विशाल धनुष को क्षुरप्र से काट दिया और भीमसेन आदि को भी तीन तीन बाणों से चोट पहुँचायी। हे महाराज! तब सात्यकि ने शल्य पर सोने के डण्डेवाले बहुमूल्य तोमर को फैंका। भीमसेन ने प्रज्वलित सर्प के समान नाराच चलाया। नकुल ने एक शक्ति को तथा सहदेव ने एक सुन्दर गदा को उनके ऊपर फैंका और धर्मराज ने शल्य को मारने की इच्छा से एक शतघ्नी को युद्धक्षेत्र में उसके ऊपर फैंका। उन पाँचों महारथियों की भुजाओं से छूटे और अपने ऊपर आते हुए अस्त्रों को मद्रराज ने अपने शस्त्र समूहों से शीघ्रही युद्ध में निवारण कर दिया।

सात्यकिप्रहितं शल्यो भल्लैश्चिच्छेद तोमरम्॥ २२॥
प्रहितं भीमसेनेन शरं कनकभूषणम्।
द्विधा चिच्छेद समरे कृतहस्तः प्रतापवान्॥ २३॥
नकुलप्रेषितां शक्तिं हेमदण्डां भयावहाम्।
गदां च सहदेवेन शरौघैः समवारयत्॥ २४॥
शराभ्यां च शतघ्नीं तां राज्ञश्चिच्छेद भारत।
पश्यतां पाण्डुपुत्राणां सिंहनादं ननाद च॥ २५॥

प्रतापी और सिद्धहस्त शल्य ने सात्यकि के फैंके तोमर को भल्लों से काट दिया और भीमसेन के स्वर्णभूषित बाण के युद्धक्षेत्र में दो टुकड़े कर दिये। उन्होंने नकुल द्वारा फैंकी भयंकर, सुनहरे डण्डे वाली शक्ति को और सहदेव की गदा को बाणों से व्यर्थ कर दिया। हे भारत! उन्होंने पाण्डुपुत्रों के देखते हुए राजा युधिष्ठिर की शतघ्नी को दो बाणों से काट दिया और जोर से सिंहनाद किया।

नामृष्यत्तत्र शैनेयः शत्रोर्विजयमाहवे।
अथान्यद् धनुरादाय सात्यकिः क्रोधमूर्च्छितः॥ २६॥
द्वाभ्यां मद्रेश्वरं विद्ध्वा सारथिं च त्रिभिः शरैः।
ततः शल्यो रणे राजन् सर्वांस्तान् दशभिः शरैः॥ २७॥
विव्याध भृशसंक्रुद्धस्तोत्रैरिव महाद्विपान्।
ततो दुर्योधनो राजा दृष्ट्वा शल्यस्य विक्रमम्॥ २८॥
निहतान् पाण्डवान् मेने पञ्चालानथ सृञ्जयान्।
ततो राजन् महाबाहुर्भीमसेनः प्रतापवान्॥ २९॥
संत्यज्य मनसा प्राणान् मद्राधिपमयोधयत्।

शिनिपौत्र सात्यकि युद्धक्षेत्र में शत्रु की इस विजय को सहन नहीं कर सका और क्रोध से मूर्च्छित होकर उसने दूसरे धनुष को लेकर दो बाणों से मद्रराज को और उनके सारथी को तीन बाणों से बींध दिया। हे राजन्! तब शल्य ने अत्यन्त क्रोध में भरकर उन सबको दस बाणों से उसीप्रकार घायल कर दिया, जैसे विशाल हाथियों को अंकुश मारकर चोट पहुँचायी गयी हो। तब राजा दुर्योधन शल्य के पराक्रम को देखकर पाण्डवों, पांचालों और सृंजयों को मारा हुआ समझने लगा। हे राजन्! तब महाबाहु प्रतापी भीमसेन मन से प्राणों का मोह छोड़कर मद्रराज के साथ युद्ध करने लगे।

नकुलः सहदेवश्च सात्यकिश्च महारथः॥ ३०॥
परिवार्य तदा शल्यं समन्ताद् व्यकिरञ्शरैः।
तस्य धर्मसुतो राजन् क्षुरप्रेण महाहवे॥ ३१॥
चक्ररक्षं जघानाशु मद्रराजस्य पार्थिवः।
नानाशस्त्रौघबहुलां शस्त्रवृष्टिं समुद्यताम्॥ ३२॥
व्यधमत् समरे राजा महाभ्राणीव मारुतः।

नकुल, सहदेव और सात्यकि इन महारथियों ने शल्य को चारोंतरफ से घेरकर उन पर बाणों की वर्षा आरम्भ कर दी। हे राजन्! उस महान् युद्ध में धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर ने क्षुरप्रद्वारा शीघ्रता से मद्रराज के चक्ररक्षक को मार दिया। तब जैसे वायु विशाल बादलों को उड़ा देती है, वैसे राजा शल्य ने अनेकप्रकार के अस्त्रशस्त्रों से युक्त उस शस्त्रवर्षा को छिन्न-भिन्न कर दिया।

स तु तान् सर्वतो यत्ताञ्शरैः संछाद्य मारिष॥ ३३॥
धर्मराजमवच्छाद्य सिंहवद् व्यनदन्मुहुः।
ते च्छन्नाः समरे तेन पाण्डवानां महारथाः॥ ३४॥
नाशक्नुवंस्तदा युद्धे प्रत्युद्यातुं महारथम्।
धर्मराजपुरोगास्तु भीमसेनमुखा रथाः।
न जहुः समरे शूरं शल्यमाहवशोभिनम्॥ ३५॥

हे मान्यवर! उन्होंने सबतरफ से प्रयत्न करते हुए सबको अपने बाणों से आच्छादित करके और धर्मराज युधिष्ठिर को भी ढककर बार बार सिंह के समान गर्जना की। पाण्डवों के महारथी युद्धक्षेत्र में शल्यद्वारा बाणवर्षा से आच्छादित होकर उस महारथी को लाँघकर आगे नहीं बढ़ सके। पर फिर भी धर्मराज को आगे रखकर लड़नेवाले भीमसेन आदि रथी युद्ध में शोभा देनेवाले शल्य को छोड़कर पीछे नहीं हटे।

तेरहवाँ अध्याय : अर्जुन, अश्वत्थामा युद्ध, पांचालवीर सुरथ का वध।

अर्जुनो द्रौणिना विद्धो युद्धे बहुभिरायसैः।
तस्य चानुचरैः शूरैस्त्रिगर्तानां महारथैः॥ १॥
द्रौणिं विव्याध समरे त्रिभिरेव शिलीमुखैः।
तथेतरान् महेष्वासान् द्वाभ्यां द्वाभ्यां धनंजयः॥ २॥
भूयश्चैव महाराज शरवर्षैरवाकिरत्।
शरकण्टकितास्ते तु तावका भरतर्षभ॥ ३॥
न जहुः पार्थमासाद्य ताड्यमानाः शितैः शरैः।
अर्जुनं रथवंशेन द्रोणपुत्रपुरोगमाः॥ ४॥
अयोधयन्त समरे परिवार्य महारथाः।

हे राजन्! युद्ध में द्रोणपुत्र और उसके अनुचर त्रिगर्तों के महारथी शूरवीरों के द्वारा अर्जुन को बहुतसे लोहे के बाणों से घायल कर दिया गया। तब अर्जुन ने द्रोणपुत्र को तीन बाणों से और दूसरे धनुर्धरों को दो दो बाणों से घायल कर दिया। हे महाराज, भरतश्रेष्ठ! उन्होंने आपके महारथियों को पुनः अपनी बाणवर्षा से आच्छादित कर दिया। पर काँटों के समान तीखे बाणों से पीड़ित हुए भी वे अर्जुन को छोड़कर भागे नहीं। वे कौरवमहारथी युद्धक्षेत्र में द्रोणपुत्र को आगेकर, रथसमूहों द्वारा अर्जुन को घेरकर उनसे युद्ध करने लगे।

तथा कृष्णौ महेष्वासौ वृषभौ सर्वधन्विनाम्॥ ५॥
शरैर्वीक्ष्य विनुन्नाङ्गौ प्रहृष्टा युद्धदुर्मदाः।
नैतादृशं दृष्टपूर्वं राजन् नैव च नः श्रुतम्॥ ६॥
यादृशं तत्र पार्थस्य तावकाः सम्प्रचक्रिरे।
ततोऽर्जुनो महाराज शरैः संनतपर्वभिः॥ ७॥
अवाकिरत्तां पृतनां मेघो वृष्ट्येव पर्वतम्।
कोपोद्धतशरज्वालो धनुःशब्दानिलो महान्॥ ८॥
सैन्येन्धनं ददाहाशु तावकं पार्थपावकः।

वे युद्ध में दुर्मद योद्धालोग, सारे धनुर्धरों में श्रेष्ठ, महाधनुर्धर, अर्जुन और श्रीकृष्ण के अंगों को बाणों से भरा हुआ देखकर बड़े प्रसन्न हुए। हे राजन्! आपके योद्धाओं ने अर्जुन की उस समय जैसी अवस्था की हुई थी, वह पहले हमने न तो देखी थी और न ही सुनी थी। हे महाराज! तब अर्जुन ने झुकी गाँठवाले बाणों से उससेना को ऐसे ढक दिया, जैसे बादल वर्षा के समय पर्वत को ढक देते हैं। फिर अर्जुनरूपी महान् अग्नि ने क्रोध से उद्दीप्त अपनी बाणरूपी ज्वालाओं को फैलाकर, धनुष की टंकाररूपी वायु की सहायता से आपकी सेनारूपी ईन्धन को शीघ्रता से जलाना आरम्भ कर दिया।

चक्राणां पततां चापि युगानां च धरातले॥ ९॥
तूणीराणां पताकानां ध्वजानां च रथैः सह।
ईषाणामनुकर्षाणां त्रिवेणूनां च भारत॥ १०॥
अक्षाणामथ योक्त्राणां प्रतोदानां च सर्वशः।
शिरसां पततां चापि कुण्डलोष्णीषधारिणाम्॥ ११॥
भुजानां च महाभाग स्कन्धानां च समन्ततः।
छत्राणां व्यजनैः सार्धं मुकुटानां च राशयः॥ १२॥
समदृश्यन्त पार्थस्य रथमार्गेषु भारत।
ततः क्रुद्धस्य पार्थस्य रथमार्गे विशाम्पते॥ १३॥
अगम्यरूपा पृथिवी मांसशोणितकर्दमा।

हे भारत! हे महाभाग! तब कुन्तीपुत्र के रथ के मार्गों में गिरते हुए रथ के पहियों, जूओं, तरकसों, पताकाओं, ध्वजों, रथों, हरसों, अनुकर्षों, त्रिवेणु नामक काष्ठों, धुरों, रस्सियों, चाबुकों, कुण्डल और पगड़ी धारण करनेवाले सिरों, भुजाओं, कन्धों, छत्रों, व्यजनों और मुकुटों के ढेर दिखायी देने लगे। हे प्रजानाथ! क्रुद्ध अर्जुन के रथ के मार्ग में माँस और खून की कीचड़ भर जाने के कारण, भूमि पर चलनाफिरना असम्भव होगया था।

हत्वा तु समरे पार्थः सहस्रे द्वे परंतपः॥ १४॥
रथानां सवरूथानां विधूमोऽग्निरिव ज्वलन्।
द्रौणिस्तु समरे दृष्ट्वा पाण्डवस्य पराक्रमम्॥ १५॥
रथेनातिपताकेन पाण्डवं प्रत्यवारयत्।
तावुभौ पुरुषव्याघ्रौ तावुभौ धन्विनां वरौ॥ १६॥
समीयतुस्तदान्योन्यं परस्परवधैषिणौ।
तयोरासीन्महाराज बाणवर्षं सुदारुणम्॥ १७॥
जीमूतयोर्यथा वृष्टिस्तपान्ते भरतर्षभ।

शत्रुओं को सन्तप्त करनेवाले कुन्तीपुत्र युद्धक्षेत्र में दो हजार आवरणयुक्त रथों का संहारकर उस समय धूमरहित अग्नि के समान प्रज्वलित होरहे थे। तब पाण्डुपुत्र के पराक्रम को देखकर द्रोणपुत्र ने ऊँची पताका वाले रथ से आकर युद्धक्षेत्र में उन्हें रोका। वेदोनों ही पुरुषव्याघ्र, और धनुर्धरों में श्रेष्ठ, तब एकदूसरे के वध की इच्छा से, एक दूसरे के साथ भिड़ गये। हे महाराज! हे भरतश्रेष्ठ! जैसे ग्रीष्मऋतु के अन्त में दो बादल जलकी धाराएँ बरसा रहे हों, वैसे ही वेदोनों अत्यन्त भयंकर बाणों की वर्षा उस समय कर रहे थे।

अन्योन्यस्पर्धिनौ तौ तु शरैः संनतपर्वभिः॥ १८॥
ततक्षतुस्तदान्योन्यं शृङ्गाभ्यां वृषभाविव।
तयोर्युद्धं महाराज चिरं सममिवाभवत्॥ १९॥
शस्त्राणां सङ्गमश्चैव घोरस्तत्राभवत् पुनः।
ततोऽर्जुनं द्वादशभी रुक्मपुङ्खैः सुतेजनैः॥ २०॥
वासुदेवं च दशभिर्द्रौणिर्विव्याध भारत।
ततः प्रहर्षाद् बीभत्सुर्व्याक्षिपद् गाण्डिवं धनुः॥ २१॥
मानयित्वा मुहूर्तं तु गुरुपुत्रं महाहवे।

एकदूसरे से स्पर्धा करते हुए वेदोनों झुकी गाँठवाले बाणों से एकदूसरे को उसीतरह घायल कर रहे थे, जैसे लड़ते हुए दो साँड एकदूसरे को सींगों से करते हैं। हे महाराज! उनदोनों का वह युद्ध पहले तो देर तक समानरूप में चलता रहा, फिर वहाँ अस्त्रशस्त्रों का भयंकर संघर्ष आरम्भ होगया। हे भारत! द्रोणपुत्र ने बारह अत्यन्ततेज सुनहरे पंखवाले बाणों से अर्जुन को और दस बाणों से श्रीकृष्णजी को घायल कर दिया। तब अर्जुन ने थोड़ी देरतक उस महान् युद्ध में गुरुपुत्र का आदर कर फिर उत्साह के साथ अपने गाण्डीवधनुष को खींचना आरम्भ कर दिया।

व्यश्वसूतरथं चक्रे सव्यसाची परंतपः॥ २२॥
मृदुपूर्वं ततश्चैनं पुनः पुनरताडयत्।
हताश्वे तु रथे तिष्ठन् द्रोणपुत्रस्त्वयस्मयम्॥ २३॥
मुसलं पाण्डपुत्राय चिक्षेप परिघोपमम्।
तमापतन्तं सहसा हेमपट्टविभूषितम्॥ २४॥
चिच्छेद सप्तधा वीरः पार्थः शत्रुनिबर्हणः।
स च्छिन्नं मुसलं दृष्ट्वा द्रौणिः परमकोपनः॥ २५॥
आददे परिघं घोरं नगेन्द्रशिखरोपमम्।
चिक्षेप चैव पार्थाय द्रौणिर्युद्धविशारदः॥ २६॥
अर्जुनस्त्वरितो जघ्ने पञ्चभिः सायकोत्तमैः।

शत्रुओं को संतप्त करनेवाले अर्जुन ने पहले द्रोणपुत्र को बिना घोड़ों, सारथी और रथवाला कर दिया और फिर मुलायम हाथों से बार-बार उसे घायल करने लगे। तब मरे घोड़ोंवाले रथपर ही खड़े होकर द्रोणपुत्र ने परिघ के समान लोहे के मूसल को पाण्डुपुत्र पर फैंका। स्वर्णपत्र भूषित उस मूसल को अपने ऊपर आते देखकर शत्रुदमन वीर अर्जुन ने उसके सात टुकड़े कर दिये। तब उस कटे हुए मूसल को देखकर युद्धविशारद द्रोणपुत्र ने अत्यन्त क्रोध में भरकर पर्वत के शिखर के समान एक परिघ को हाथ में लिया और उसे अर्जुन पर फैंका, पर अर्जुन ने तुरन्त पाँच उत्तम बाणों से उसे काट दिया।

ततोऽपरैस्त्रिभिर्भल्लैर्द्रौणिं विव्याध पाण्डवः॥ २७॥
सोऽतिविद्धो बलवता पार्थेन सुमहात्मना।
नाकम्पत तदा द्रौणिः पौरुषे स्वे व्यवस्थितः॥ २८॥
ततस्तु सुरथोऽप्याजौ पञ्चालानां महारथः।
रथेन मेघघोषेण द्रौणिमेवाभ्यधावत॥ २९॥
विकर्षन् वै धनुः श्रेष्ठं सर्वभारसहं दृढम्।
ज्वलनाशीविषनिभैः शरैश्चैनमवाकिरत्॥ ३०॥

फिर पाण्डुपुत्र ने दूसरे तीन भल्लों से द्रोणपुत्र को घायल किया। अत्यन्तमनस्वी और बलवान कुन्तीपुत्र से अत्यन्तघायल होने पर भी द्रोणपुत्र अपने पौरुष का आश्रय लेकर विचलित नहीं हुआ। तब पाँचालों के महारथी सुरथ ने भी युद्धक्षेत्र में अपने बादलों के समान शब्द करनेवाले रथ द्वारा द्रोणपुत्र पर ही आक्रमण किया। उसने सारे भार को सहन करनेवाले दृढ और श्रेष्ठ धनुष को खींचते हुए अग्नि और विषैले सर्पों के समान भयंकर बाणों से उसे ढक दिया।

सुरथं तं ततः क्रुद्धमापतन्तं महारथम्।
चुकोप समरे द्रौणिर्दण्डाहत इवोरगः॥ ३१॥
त्रिशिखां भ्रकुटीं कृत्वा सृक्किणी परिसंलिहन्।
मुमोच तीक्ष्णं नाराचं, धनुर्ज्यामवमृज्य च॥ ३२॥
स तस्य हृदयं भित्त्वा प्रविवेशातिवेगितः।
ततः स पतितो भूमौ नाराचेन समाहतः॥ ३३॥

तब क्रुद्ध महारथी सुरथ को युद्धक्षेत्र में आक्रमण करते हुए देखकर द्रोणपुत्र डण्डे से कुचले हुए सर्प के समान क्रोध से भर गया। अपनी भौंहों को तीन स्थानों से टेढ़ाकर और अपने होठों के किनारों को चाटते हुए, अपनी धनुष की प्रत्यंचा को पोंछकर उसने एक तीखे नाराच को उस पर चलाया। वह नाराच तेजी से उसके हृदय को छेदकर उसमें घुस गया। तब नाराच से मारा हुआ सुरथ भूमि पर गिर पड़ा।

चौदहवाँ अध्याय : दुर्योधन का धृष्टद्युम्न से, शल्य का नकुल तथा सात्यकि से युद्ध।

दुर्योधनो महाराज धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः।
चक्रतुः सुमहद् युद्धं शरशक्तिसमाकुलम्॥ १॥
तयोरासन् महाराज शरधाराः सहस्रशः।
अम्बुदानां यथा काले जलधाराः समन्ततः॥ २॥
राजा च पार्षतं विद्ध्वा शरैः पञ्चभिराशुगैः।
द्रोणहन्तारमुग्रेषुं पुनर्विव्याध सप्तभिः॥ ३॥
धृष्टद्युम्नस्तु समरे बलवान् दृढविक्रमः।
सप्तत्या विशिखानां वै दुर्योधनमपीडयत्॥ ४॥

हे महाराज! दुर्योधन और द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्न बाणों और शक्ति के प्रहार से परस्पर घोर युद्ध कर रहे थे। हे महाराज! जैसे वर्षाऋतु में बादलोंद्वारा जलधाराओं की वर्षा होती है, उसीप्रकार वे दोनों एकदूसरे पर बाणों की वर्षा कर रहे थे। राजा दुर्योधन ने तब द्रुपदपुत्र, द्रोणाचार्य को मारने वाले तथा भयंकर बाणोंवाले धृष्टद्युम्न को पाँच शीघ्रगामी बाणों से बींध दिया। तब बलवान् और दृढ़ पराक्रमी धृष्टद्युम्न ने युद्धस्थल में सत्तर बाणों की वर्षाकर दुर्योधन को पीड़ित किया।

पीडितं वीक्ष्य राजानं सोदर्या भरतर्षभ।
महत्या सेनया सार्धं परिवव्रुः स्म पार्षतम्॥ ५॥
स तैः परिवृतः शूरः सर्वतोऽतिरथैर्भृशम्।
व्यचरत् समरे राजन् दर्शयन्नस्त्रलाघवम्॥ ६॥
शिखण्डी कृतवर्माणं गौतमं च महारथम्।
प्रभद्रकैः समायुक्तो योधयामास धन्विनौ॥ ७॥
तत्रापि सुमहद् युद्धं घोररूपं विशाम्पते।
प्राणान् संत्यजतां युद्धे प्राणद्यूताभिदेवने॥ ८॥

हे भरतश्रेष्ठ! राजा को पीड़ित देखकर उसके सगे भाइयों ने विशाल सेना के साथ द्रुपदपुत्र को घेर लिया। हे राजन्! तब इन अतिरथियों से अत्यधिक घिरा हुआ होने पर भी वह शूरवीर अपने अस्त्रकौशल को दिखाता हुआ रणक्षेत्र में विचरण करता रहा। उधर शिखण्डी ने प्रभद्रकवीरों के साथ कृतवर्मा और महारथी कृपाचार्य इन दोनों धनुर्धरों के साथ युद्ध आरम्भ कर दिया। हे प्रजानाथ! वहाँ भी जीवन का मोह छोड़कर और प्राणों की बाजी लगाकर, महान् युद्धरूपी जूआ खेला जा रहा था।

शल्यः सायकवर्षाणि विमुञ्चन् सर्वतोदिशम्।
पाण्डवान् पीडयामास ससात्यकिवृकोदरान्॥ ९॥
ततस्तु नकुलः शूरो धर्मराजे प्रपीडिते।
अभिदुद्राव वेगेन मातुलं मातृनन्दनः॥ १०॥
संछाद्य समरे शल्यं नकुलः परवीरहा।

विव्याध चैनं दशभिः स्मयमानः स्तनान्तरे॥ ११॥
सर्वपारशवैर्बाणैः कर्मारपरिमार्जितैः।
स्वर्णपुङ्खैः शिलाधौतैर्धनुर्यन्त्रप्रचोदितैः॥ १२॥

उधर शल्य सबतरफ बाणों की वर्षा करते हुए, सात्यकि और भीमसहित पाण्डवों को पीड़ित कर रहे थे। फिर धर्मराज युधिष्ठिर को शल्य के द्वारा पीड़ित देखकर, माता को आनन्द देनेवाले शूरवीर नकुल वेगपूर्वक अपने मामा की तरफ दौड़े। शत्रुवीरों को मारने वाले नकुल ने युद्धक्षेत्र में शल्य को बाणों से आच्छादित कर, मुस्कराते हुए उनकी छाती पर दस बाणों की वर्षा कर उन्हें घायल कर दिया। वे बाण सारे लोहे के बने थे, कारीगर के द्वारा शिला पर तेज किये गये थे, उनमें सुनहरे पंख लगे हुए थे और वे धनुषरूपी यन्त्र से छोड़े गये थे।

शल्यस्तु पीडितस्तेन स्वस्त्रीयेण महात्मना।
नकुलं पीडयामास पत्रिभिर्नतपर्वभिः॥ १३॥
ततो युधिष्ठिरो राजा भीमसेनोऽथ सात्यकिः।
सहदेवश्च माद्रेयो मद्रराजमुपाद्रवन्॥ १४॥
युधिष्ठिरं त्रिभिर्विद्ध्वा भीमसेनं च पञ्चभिः।
सात्यकिं च शतेनाजौ सहदेवं त्रिभिः शरैः॥ १५॥
ततस्तु सशरं चापं नकुलस्य महात्मनः।
मद्रेश्वरः क्षुरप्रेण तदा मारिष चिच्छिदे॥ १६॥

मनस्वी भानजे से पीड़ित होकर शल्य ने नकुल को झुकी गाँठवाले बाणों से पीड़ा दी। तब राजा युधिष्ठिर, भीमसेन, सात्यकि और माद्रीपुत्र सहदेव ने शल्य पर आक्रमण किया। हे मान्यवर! तब मद्रराज शल्य ने युधिष्ठिर को तीन बाणों से बींधकर भीमसेन को पाँच बाणों से बींधा, सहदेव को तीन बाणों से बींधकर सात्यकि पर युद्धक्षेत्र में सौ बाणों की वर्षा की। उन्होंने मनस्वी नकुल के बाणसहित धनुष को क्षुरप्र से काट दिया।

अथान्यद् धनुरादाय माद्रीपुत्रो महारथः।
मद्रराजरथं तूर्णं पूरयामास पत्रिभिः॥ १७॥
युधिष्ठिरस्तु मद्रेशं सहदेवश्च मारिष।
दशभिर्दशभिर्बाणैरुरस्ये- नमविध्यताम्॥ १८॥
भीमसेनस्तु तं षष्ट्या सात्यकिर्दशभिः शरैः।
मद्रराजमभिद्रुत्य जघ्नतुः कङ्कपत्रिभिः॥ १९॥
मद्रराजस्ततः क्रुद्धः सात्यकिं नवभिः शरैः।
विव्याध भूयः सप्तत्या शराणां नतपर्वणाम्॥ २०॥

तब महारथी माद्रीपुत्र नकुल ने दूसरा धनुष लेकर, तुरन्त मद्रराज को बाणों से भर दिया। हे मान्यवर! युधिष्ठिर और सहदेव ने दस दस बाणों की शल्य की छाती पर वर्षाकर उन्हें घायल कर दिया। भीमसेन ने मद्रराज पर साठ और सात्यकि ने दस कंकपत्रवाले बाणों की वर्षा से उन्हें चोट पहुँचायी। तब क्रुद्ध मद्रराज ने झुकी गाँठवाले नौ बाणों की सात्यकि पर वर्षाकर, सत्तर बाणों की पुनः वर्षा की।

अथास्य सशरं चापं मुष्टौ चिच्छेद मारिष।
हयांश्च चतुरः संख्ये प्रेषयामास मृत्यवे॥ २१॥
विरथं सात्यकिं कृत्वा मद्रराजो महारथः।
विशिखानां शतेनैनमाजघान समन्ततः॥ २२॥
माद्रीपुत्रौ च संरब्धौ भीमसेनं च पाण्डवम्।
युधिष्ठिरं च कौरव्य विव्याध दशभिः शरैः॥ २३॥
तत्राद्भुतमपश्याम मद्रराजस्य पौरुषम्।
यदेनं सहिताः पार्था नाभ्यवर्तन्त संयुगे॥ २४॥

हे मान्यवर! फिर शल्य ने सात्यकि के बाण सहित धनुष को मुट्ठी के स्थान से काट दिया और उसके चारों घोड़ों को मृत्युलोक में भेज दिया। महारथी मद्रराज ने सात्यकि को रथ से रहितकर, उस पर सबतरफ सौ बाणों की वर्षा की। इसके साथ ही उन्होंने क्रुद्ध माद्री के दोनों पुत्रों, पाण्डुपुत्र भीमसेन और युधिष्ठिर को हे कुरुनन्दन! दस बाणों से घायल कर दिया। वहाँ हमने मद्रराज के अद्भुत पौरुष को देखा कि कुन्तीपुत्र इकट्ठे मिलकर भी उन्हें युद्ध में पराजित नहीं कर सके।

अथान्यं रथमास्थाय सात्यकिः सत्यविक्रमः।
पीडितान् पाण्डवान् दृष्ट्वा मद्रराजवशंगतान्॥ २५॥
अभिदुद्राव वेगेन मद्राणामधिपं बलात्।
आपतन्तं रथं तस्य शल्यः समितिशोभनः॥ २६॥
प्रत्युद्ययौ रथेनैव मत्तो मत्तमिव द्विपम्।

तब सत्यविक्रमी सात्यकि दूसरे रथपर बैठकर, पाण्डवों को मद्रराज के वश में पड़ा हुआ और उनसे पीड़ित देखकर, बलपूर्वक तेजी से उनकी तरफ़ दौड़े। तब संग्राम में शोभित होनेवाले शल्य उनके

रथ को आक्रमण के लिये आते हुए देखकर स्वयं रथ द्वारा सात्यकि की तरफ ऐसे बढ़े, जैसे एक मस्त हाथी दूसरे मस्त हाथी की तरफ बढ़ता है।

सात्यकिः प्रेक्ष्य समरे मद्रराजमवस्थितम्॥ २७॥
विव्याध दशभिर्बाणैस्तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत्।
मद्रराजस्तु सुभृशं विद्धस्तेन महात्मना॥ २८॥
सात्यकिं प्रतिविव्याध चित्रपुङ्खैः शितैः शरैः।
ततः पार्था महेष्वासाः सात्वताभिसृतं नृपम्॥ २९॥
अभ्यवर्तन् रथैस्तूर्णं मातुलं वधकाङ्क्षया।
तत्राद्भुतं परं चक्रे शल्यः शत्रुनिबर्हणः।
यदेकः समरे शूरो योधयामास वै बहून्॥ ३०॥

सात्यकि ने युद्धक्षेत्र में मद्रराज को डटा हुआ देखकर उन्हें दस बाणों से बींध दिया और कहा कि खड़े रहो, खड़े रहो। तब मद्रराज ने उस मनस्वी द्वारा अत्यन्तघायल होकर बदले में सात्यकि को विचित्र पंखवाले तीखे बाणों से बींधा। तब महाधनुर्धर कुन्तीपुत्रों ने सात्यकि से युद्ध में उलझे हुए अपने मामा पर उनके वध की इच्छा से रथों द्वारा तुरन्त आक्रमण किया। वहाँ शत्रुदमन शल्य ने यह बड़ा अद्भुत कार्य किया कि अकेले होते हुए भी वे शूरवीर बहुतों के साथ युद्ध करते रहे।

पन्द्रहवाँ अध्याय : भीम से दुर्योधन और युधिष्ठिर से शल्य की हार।

ततो धनंजयः क्रुद्धः कृपं सह पदानुगैः।
अवाकिरच्छरौघेण कृतवर्माणमेव च॥ १॥
शकुनिं सहदेवस्तु सहसैन्यमवाकिरत्।
द्रौपदेया नरेन्द्रांश्च भूयिष्ठान् समवारयन्॥ २॥
द्रोणपुत्रं च पाञ्चाल्यः शिखण्डी समवारयत्।
भीमसेनस्तु राजानं गदापाणिरवारयत्॥ ३॥
शल्यं तु सह सैन्येन कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः।

फिर अर्जुन ने क्रोध में भरकर कृपाचार्य को उनके पीछे चलनेवालोंसहित और कृतवर्मा को अपने बाणसमूहों से आच्छादित कर दिया। सेनासहित शकुनि को सहदेव ने बाणों से ढक दिया। द्रौपदीपुत्रों ने दूसरे बहुतसे राजाओं को रोका हुआ था। द्रोणपुत्र अश्वत्थामा को पांचालपुत्र शिखण्डी ने रोका। गदा को हाथ में धारण करनेवाले भीमसेन ने दुर्योधन को रोका और सेनासहित युधिष्ठिर ने शल्य को रोका।

तत्र पश्याम्यहं कर्म शल्यस्यातिमहद्रणे॥ ४॥
यदेकः सर्वसैन्यानि पाण्डवानामयोधयत्।
तस्य तल्लाघवं दृष्ट्वा तथैव च कृतास्त्रताम्॥ ५॥
अपूजयन्ननीकानि परेषां तावकानि च।
पीड्यमानास्तु शल्येन पाण्डवा भृशविक्षताः॥ ६॥
प्राद्रवन्त रणं हित्वा क्रोशमाने युधिष्ठिरे।
वध्यमानेष्वनीकेषु मद्रराजेन पाण्डवः॥ ७॥
अमर्षवशमापन्नो धर्मराजो युधिष्ठिरः।

वहाँ युद्धस्थल में मैंने शल्य के अत्यन्तमहान् कर्म को देखा कि वे अकेले ही पाण्डवों की सारी सेनाओं से युद्ध कर रहे थे। उनके इस अस्त्र कौशल और फुर्ती को देखकर आपकी और शत्रु पक्ष की सेनाओं ने भी उनकी प्रशंसा की। तब शल्य द्वारा पीड़ित और अत्यन्तघायल हुए पाण्डव सैनिक युधिष्ठिर के पुकारने पर भी युद्ध को छोड़कर भागने लगे। तब मद्रराज द्वारा सेनाओं का संहार होने पर पाण्डुपुत्र धर्मराज युधिष्ठिर अमर्ष के वश में होगये।

समाहूयाब्रवीत् सर्वान् भ्रातॄन् कृष्णं च माधवम्॥ ८॥
भीष्मो द्रोणश्च कर्णश्च ये चान्ये पृथिवीक्षितः।
कौरवार्थे पराक्रान्ताः संग्रामे निधनं गताः॥ ९॥
यथाभागं यथोत्साहं भवन्तः कृतपौरुषाः।
भागोऽवशिष्ट एकोऽयं मम शल्यो महारथः॥ १०॥
सोऽहमद्य युधा जेतुमाशंसे मद्रकाधिपम्।
तत्र यन्मानसं मह्यं तत् सर्वं निगदामि वः॥ ११॥

उन्होंने सारे भाइयों को तथा श्रीकृष्णजी को बुलाकर कहा कि भीष्म, द्रोणाचार्य, कर्ण तथा दूसरे और जो राजालोग कौरवों के लिये पराक्रम कर रहे थे, वेसब मृत्यु को प्राप्त होगये। आपसबने अपने हिस्से के अनुसार पौरुष को प्रकट किया तथा उत्साह को दिखाया। एक मेरे हिस्से के ये महारथी शल्य बचे हुए हैं, इसलिये मैं आज इन

मद्रराज को युद्ध में जीतने की आशा करता हूँ। इस विषय में मेरे मन में जो बात है, मैं उसे आपलोगों से कहता हूँ।

चक्ररक्षाविमौ वीरौ मम माद्रवतीसुतौ।
साध्विमौ मातुलं युद्धे क्षत्रधर्मपुरस्कृतौ॥ १२॥
मदर्थे प्रतियुद्ध्येतां मानार्हौ सत्यसङ्गरौ।
मां वा शल्यो रणे हन्ता तं वाहं भद्रमस्तु वः॥ १३॥
इति सत्यामिमां वाणीं लोकवीरा निबोधत।
योत्स्येऽहं मातुलेनाद्य क्षात्रधर्मेण पार्थिवाः॥ १४॥
स्वमंशमभिसंधाय विजयायेतराय च।

मेरे चक्ररक्षक येदो वीर माद्री के पुत्र नकुल और सहदेव होंगे। येदोनों युद्ध में क्षत्रियधर्म को आगे रखकर मेरे लिये अपने मामा से युद्ध करेंगे। येदोनों मान को पानेयोग्य और दृढप्रतिज्ञ हैं। आप सबका कल्याण हो। आज या तो शल्य मुझे युद्ध में मारेंगे, या मैं उनका वध कर दूँगा। हे विश्वविख्यात वीरों, राजाओं! यह समझ लो कि मैं आज अपने हिस्से के कार्य को पूरा करने के लिये, क्षत्रियधर्म के अनुसार, विजय या मृत्यु की प्राप्ति के लिये अपने मामा से युद्ध करूँगा।

तस्य मेऽप्यधिकं शस्त्रं सर्वोपकरणानि च॥ १५॥
संसज्जन्तु रथे क्षिप्रं शास्त्रवद् रथयोजकाः।
शैनेयो दक्षिणं चक्रं धृष्टद्युम्नस्तथोत्तरम्॥ १६॥
पृष्ठगोपो भवत्वद्य मम पार्थो धनंजयः।
पुरःसरो ममाद्यास्तु भीमः शस्त्रभृतां वरः॥ १७॥
एवमभ्यधिकः शल्याद् भविष्यामि महामृधे।
एवमुक्तास्तथा चक्रुस्तदा राज्ञः प्रियैषिणः॥ १८॥
ततः प्रहर्षः सैन्यानां पुनरासीत् तदा मृधे।
पञ्चालानां सोमकानां मत्स्यानां च विशेषतः॥ १९॥

इसलिये रथ को सज्जित करनेवाले लोग मेरे रथ में विधि के अनुसार सारे उपकरणों को अधिकता और शीघ्रता से सजा दें। इसके अतिरिक्त सात्यकि मेरे दाहिने पहिये की और धृष्टद्युम्न बायें पहिये की रक्षा करेंगे। कुन्तीपुत्र अर्जुन आज मेरे पृष्ठरक्षक होंगे और शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ भीम मेरे आगे चलेंगे। ऐसा करने पर मैं इस महान् युद्ध में शल्य से अधिक शक्तिशाली हो जाऊँगा। ऐसा कहे जाने पर राजा का प्रिय चाहनेवाले उनसबने वैसाही किया। तब युद्धक्षेत्र में उन सेनाओं में विशेषकर पांचालों, सोमकों और मत्स्यदेशीय सैनिकों में पुनःमहान् हर्ष का संचार होगया।

प्रतिज्ञां तां तदा राजा कृत्वा मद्रेशमभ्ययात्।
ततः शङ्खांश्च भेरीश्च शतशश्चैव पुष्कलान्॥ २०॥
अवादयन्त पञ्चालाः सिंहनादांश्च नेदिरे।
तान् प्रत्यगृह्णात् पुत्रस्ते मद्रराजश्च वीर्यवान्॥ २१॥
शल्यस्तु समरश्लाघी धर्मराजमरिंदमम्।
ववर्ष शरवर्षेण शम्बरं मघवा इव॥ २२॥
तथैव कुरुराजोऽपि प्रगृह्य रुचिरं धनुः।
द्रोणोपदेशान् विविधान् दर्शयानो महामनाः॥ २३॥
ववर्ष शरवर्षाणि चित्रं लघु च सुष्ठु च।

तब उस प्रतिज्ञा को लेकर राजा ने मद्रराज पर आक्रमण किया। उस समय पांचाल सैनिक बहुत से शंखों और भेरियों को बजाने लगे और सिंहनादों को करने लगे। तब आपके पुत्र ने और मद्रराज ने उन सबको आगे बढ़ते हुए रोका। युद्ध की श्लाघा करने वाले शल्य ने शत्रुदमन धर्मराज पर बाणों की इसप्रकार वर्षा आरम्भ कर दी जैसे शम्बरासुर पर इन्द्र ने की थी। उसी प्रकार महामना कुरुराज युधिष्ठिर ने भी सुन्दर धनुष को लेकर द्रोणाचार्य से प्राप्त विविध शिक्षाओं का प्रदर्शन करते हुए, फुर्ती के साथ विचित्र और उत्तम बाणों की वर्षा की।

न चास्य विवरं कश्चिद् ददर्श चरतो रणे॥ २४॥
तावुभौ विविधैर्बाणैस्ततक्षाते परस्परम्।
शार्दूलावामिषप्रेप्सू पराक्रान्ताविवाहवे॥ २५॥
भीमस्तु तव पुत्रेण युद्धशौण्डेन संगतः।
पाञ्चाल्यः सात्यकिश्चैव माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ॥ २६॥
शकुनिप्रमुखान् वीरान् प्रत्यगृह्णन् समन्ततः।

युद्धक्षेत्र में विचरते हुए युधिष्ठिर की उस समय कोई भी त्रुटि किसी ने नहीं देखी। वेदोनों विविधप्रकार के बाणों से एकदूसरे को इसप्रकार घायल कर रहे थे जैसे माँस के लोभी दो सिंह परस्पर युद्ध करते हुए पराक्रम कर रहे हों। भीम तो आपके युद्ध कुशल पुत्र के साथ संघर्ष करने लगे। पांचालपुत्र धृष्टद्युम्न, सात्यकि और नकुल तथा सहदेव शकुनि आदि वीरों का सब तरफ से सामना करने लगे।

दुर्योधनस्तु भीमस्य शरेणानतपर्वणा॥ २७॥
चिच्छेदादिश्य संग्रामे ध्वजं हेमपरिष्कृतम्।
पुनश्चास्य धनुश्चित्रं गजराजकरोपमम्॥ २८॥

क्षुरेण शितधारेण प्रचकर्त नराधिपः।
स च्छिन्नधन्वा तेजस्वी रथशक्त्या सुतं तव॥ २९॥
बिभेदोरसि विक्रम्य स रथोपस्थ आविशत्।
तस्मिन् मोहमनुप्राप्ते पुनरेव वृकोदरः॥ ३०॥
यन्तुरेव शिरः कायात् क्षुरप्रेणाहरत् तदा।
हतसूता हयास्तस्य रथमादाय भारत॥ ३१॥
व्यद्रवन्त दिशो राजन् हाहाकारस्तदाभवत्।
तमभ्यधावत् त्राणार्थं द्रोणपुत्रो महारथः॥ ३२॥
कृपश्च कृतवर्मा च पुत्रं तेऽपि परीप्सवः।

दुर्योधन ने युद्ध में झुकी गाँठवाले बाण से भीमसेन की स्वर्णभूषित ध्वजा को घोषणा करके काट दिया। फिर उस राजाने उनके हाथी की सूँड के समान धनुष को तीखी धारवाले क्षुरप्र से काट दिया। तब धनुष कट जाने पर उस तेजस्वी ने पराक्रम करके रथशक्ति से आपके पुत्र की छाती पर प्रहार किया जिससे आपका पुत्र रथ की बैठक में गिर पड़ा। उसके मूर्च्छित होजाने पर फिर भीमसेन ने उसके सारथी के सिर को क्षुरप्र से शरीर से अलग कर दिया। हे भारत! सारथी के मर जाने पर उसके घोड़े रथ को लेकर सब तरफ भागने लगे। हे राजन्! तब सेना में हाहाकार मच गया, महारथी द्रोणपुत्र उसकी रक्षा के लिये दौड़ा और कृपाचार्य तथा कृतवर्मा भी आपके पुत्र को बचाने के लिये वहाँ आये।

तस्मिन् विलुलिते सैन्ये त्रस्तास्तस्य पदानुगाः॥ ३३॥
गाण्डीवधन्वा विस्फार्य धनुस्तानहनच्छरैः।
तत्राश्चर्यमपश्याम कुन्तीपुत्रे युधिष्ठिरे॥ ३४॥
पुरा भूत्वा मृदुर्दान्तो यत् तदा दारुणोऽभवत्।
विवृताक्षश्च कौन्तेयो वेपमानश्च मन्युना॥ ३५॥
चिच्छेद योधान् निशितैः शरैः शतसहस्रशः।
साश्वसूतध्वजरथान् रथिनः पातयन् बहून्॥ ३६॥
अक्रीडदेको बलवान् पवनस्तोयदानिव।

इसप्रकार जब सेना में हलचल मच गयी तो दुर्योधन के पीछे चलने वाले सैनिक भयभीत हो गये। तब अर्जुन ने धनुष को खींचकर उन्हें बाणों से मार दिया। हमने कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर में एक आश्चर्य देखा कि वे पहले कोमल और दमनशील थे, पर उस समय वे कठोर हृदय के बन गये थे। कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर ने उस समय क्रोध से आँखें फाड़कर काँपते हुए तीखे बाणों से सैकड़ों और हजारों योद्धाओं को मार दिया। जैसे वायु बादलों के साथ खेल करती है, उसी प्रकार बलवान् युधिष्ठिर ने अकेले ही खेल सा करते हुए घोड़ों, सारथी और रथों के सहित बहुत से रथियों को मार गिराया।

शून्यमायोधनं कृत्वा शरवर्षैः समन्ततः॥ ३७॥
अभ्यद्रवत मद्रेशं तिष्ठ शल्येति चाब्रवीत्।
ततस्तौ भृशसंक्रुद्धौ प्रध्माय सलिलोद्भवौ॥ ३८॥
समाहूय तदान्योन्यं भर्त्सयन्तौ समीयतुः।
शल्यस्तु शरवर्षेण पीडयामास पाण्डवम्॥ ३९॥
मद्रराजं तु कौन्तेयः शरवर्षैरवाकिरत्।
अदृश्येतां तदा राजन् कङ्कपत्रिभिराचितौ॥ ४०॥
उद्भिन्नरुधिरौ शूरौ मद्रराजयुधिष्ठिरौ।

अपनी बाणवर्षा से तब युद्धक्षेत्र को चारों तरफ से सूनाकर के फिर उन्होंने मद्रराज पर आक्रमण किया और कहा कि हे शल्य! खड़े रहो, खड़े रहो। फिर वेदोनों अत्यन्त क्रोध में भरकर, अपने अपने शंखों को बजाकर, एकदूसरे को ललकारते और फटकारते हुए लड़ने लगे। शल्य ने तब अपनी बाणवर्षा से पाण्डुपुत्र को पीड़ित किया और कुन्तीपुत्र ने भी मद्रराज को अपनी बाणवर्षा से भर दिया। हे राजन्! तब मद्रराज और युधिष्ठिर, वेदोनों वीर कंकपक्षी के पंखवाले बाणों से घायल होकर शरीर से रक्त बहाते हुए दिखाई देने लगे।

दीप्यमानौ महात्मानौ प्राणद्यूतेन दुर्मदौ॥ ४१॥
दृष्ट्वा सर्वाणि सैन्यानि नाध्यवस्यंस्तयोर्जयम्।
ततः शरशतं शल्यो मुमोचाथ युधिष्ठिरे॥ ४२॥
धनुश्चास्य शिताग्रेण बाणेन निरकृन्तत।
सोऽन्यत् कार्मुकमादाय शल्यं शरशतैस्त्रिभिः॥ ४३॥
अविध्यत् कार्मुकं चास्य क्षुरेण निरकृन्तत।
अथास्य निजघानाश्वांश्चतुरो नतपर्वभिः॥ ४४॥
द्वाभ्यामतिशिताग्राभ्यामुभौ तत् पार्ष्णिसारथी।
ततोऽस्य दीप्यमानेन पीतेन निशितेन च॥ ४५॥
प्रमुखे वर्तमानस्य भल्लेनापाहरद् ध्वजम्।

युद्ध में दुर्मद और प्राणों का जूआ खेलते हुए उन दीप्तिमान् मनीषियों को देखकर, सारी सेनाएँ दोनों में से किसी की विजय का निश्चय नहीं कर सकीं। फिर शल्य ने युधिष्ठिर पर सौ बाणों की वर्षा की और तीखे बाण से उनके धनुष को काट

दिया। तब युधिष्ठिर ने दूसरे धनुष को लेकर शल्य पर तीन सौ बाणों की वर्षा की और क्षुर से उनके धनुष को काट दिया। फिर उन्होंने झुकी गाँठवाले बाणों से उनके चारों घोड़ों को मारकर दो अत्यन्ततीखे बाणों से उनके दोनों चक्ररक्षकों को मार दिया। उन्होंने चमचमाते हुए, पानीदार तीखे भल्ल से सामने विद्यमान् शल्य के ध्वज को भी काट दिया।

ततो मद्राधिपं द्रौणिरभ्यधावत् तथा कृतम्॥ ४६॥
आरोप्य चैनं स्वरथे त्वरमाणः प्रदुद्रुवे।
मुहूर्तमिव तौ गत्वा नर्दमाने युधिष्ठिरे।
स्मित्वा ततो मद्रपतिरन्यं स्यन्दनमास्थितः॥ ४७॥

तब शल्य की वैसी अवस्था देखकर द्रोणपुत्र वहाँ दौड़कर आया और उन्हें अपने रथपर बैठाकर, शीघ्रता से भाग गया। तब गर्जते हुए युधिष्ठिर के द्वारा थोड़ी दूर तक पीछा करने पर, मद्रपति मुस्कराते हुए दूसरे रथ पर विद्यमान हो गये।

सोलहवाँ अध्याय : युधिष्ठिर के द्वारा शल्य और उसके भाई का वध।

ततः स शरवर्षेण पर्जन्य इव वृष्टिमान्।
अभ्यवर्षदमेयात्मा क्षत्रियान् क्षत्रियर्षभः॥ १॥
सात्यकिं दशभिर्विद्ध्वा भीमसेनं त्रिभिः शरैः।
सहदेवं त्रिभिर्विध्वा युधिष्ठिरमपीडयत्॥ २॥
तांस्तानन्यान् महेष्वासान् साश्वान् सरथकूबरान्।
अर्दयामास विशिखैरुल्काभिरिव कुञ्जरान्॥ ३॥
कुञ्जरान् कुञ्जरारोहानश्वानश्वप्रयायिनः।
रथांश्च रथिनः सार्धं जघान रथिनां वरः॥ ४॥
बाहूंश्चिच्छेद तरसा सायुधान् केतनानि च।
चकार च महीं योधैस्तीर्णां वेदीं कुशैरिव॥ ५॥

फिर वे अमेयआत्मा, क्षत्रिय श्रेष्ठ, शल्य वर्षा करनेवाले बादल के समान, क्षत्रियों पर बाणों की वर्षा करने लगे। उन्होंने सात्यकि को दस बाणों से, भीमसेन तथा सहदेव को तीन-तीन बाणों से बींधकर, युधिष्ठिर को भी पीड़ित किया। जैसे हाथी को जलते हुए काष्ठों से पीड़ा देते हैं, वैसे ही वे घोड़ों, रथों, और कूबरसहित दूसरे महाधनुर्धरों को भी अपने बाणों से पीड़ा देने लगे। रथियों में श्रेष्ठ शल्य ने हाथियों, हाथीसवारों, घोड़ों, घुड़सवारों, तथा रथों और रथियों को एक साथ ही मार दिया। उन्होंने वेगपूर्वक आयुधोंसहित बाँहों को और ध्वजाओं को काटकर भूमि को मृत योद्धाओं से ऐसे भर दिया, जैसे वेदी पर कुश बिछाये हुए हों।

तं भीमसेनश्च शिनेश्च नप्ता
माद्र्याश्च पुत्रौ पुरुषप्रवीरौ।
समागतं भीमबलेन राज्ञा
पर्याप्तमन्योन्य- मथाह्वयन्त॥ ६॥
ततस्तु शूराः समरे नरेन्द्र
नरेश्वरं प्राप्य युधां वरिष्ठम्।
आवार्य चैनं समरे नृवीरा
जघ्नुः शरैः पत्रिभिरुग्रवेगैः॥ ७॥
संरक्षितो भीमसेनेन राजा
माद्रीसुताभ्यामथ माधवेन।
मद्राधिपं पत्रिभिरुग्रवेगैः
स्तनान्तरे धर्मसुतो निजघ्ने॥ ८॥
ततो रणे तावकानां रथौघाः
समीक्ष्य मद्राधिपतिं शरार्तम्।
पर्यावव्रुः प्रवरास्ते सुसज्जा
दुर्योधनस्यानुमते पुरस्तात्॥ ९॥

तब भीमसेन, सात्यकि और पुरुषश्रेष्ठ माद्री के दोनों पुत्र नकुल और सहदेव भयंकर बलशाली राजा युधिष्ठिर के साथ युद्ध कर रहे सामर्थ्यशाली वीर शल्य को परस्पर युद्ध के लिये ललकारने लगे। फिर हे नरेन्द्र! वे शूर नरवीर, योद्धाओं में श्रेष्ठ, नरेश्वर, शल्य को युद्धभूमि में प्राप्तकर और उन्हें रोककर भयंकर वेगवाले बाणों से घायल करने लगे। भीमसेन, नकुल, सहदेव और सात्यकिद्वारा सुरक्षित धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर ने उग्र तेजवाले बाणों से मद्रराज की छाती में प्रहार किया। युद्धक्षेत्र में मद्रराज को बाणों से पीड़ित देखकर आपके श्रेष्ठ रथियों ने दुर्योधन की आज्ञा से सुसज्जित होकर उन्हें घेर लिया और स्वयं युधिष्ठिर के आगे खड़े हो गये।

ततो द्रुतं मद्रजनाधिपो रणे
युधिष्ठिरं सप्तभिरभ्यविद्ध्यत्।

तं चापि पार्थो नवभिः पृषत्कै-
र्विव्याध राजंस्तुमुले महात्मा॥ १०॥
आकर्णपूर्णायत- सम्प्रयुक्तैः
शरैस्तदा संयति तैलधौतैः।
अन्योन्यमाच्छादयतां महारथौ
मद्राधिपश्चापि युधिष्ठिरश्च॥ ११॥
ततस्तु तूर्णं समरे महारथौ
परस्परस्यान्तर- मीक्षमाणौ।
शरैर्भृशं विव्यधतुर्नृपोत्तमौ
महाबलौ शत्रुभिरप्रधृष्यौ॥ १२॥
तौ चेरतुर्व्याघ्रशिशुप्रकाशौ
महावनेष्वामिष- गृद्धिनाविव।
विषाणिनौ नागवराविवोभौ
ततक्षतुः संयति जातदर्पौ॥ १३॥

हे राजन्! फिर उस तुमुल युद्ध में मद्रराज ने युधिष्ठिर को सात बाणों से बींध दिया। तब मनस्वी कुन्तीपुत्र ने भी उन्हें नौ बाणों से घायल किया। मद्रराज और युधिष्ठिर दोनों ही महारथी युद्ध में तब धनुष को कानतक खींचकर छोड़े हुए, तेल से धोये बाणों से एकदूसरे को आच्छादित करने लगे। फिर शत्रुओं के लिये अजेय, महाबलवान्, राजाओं में श्रेष्ठ दोनों ही महारथी, एकदूसरे के दोषों को देखते हुए, युद्ध में बाणोंद्वारा शीघ्रता से एकदूसरे को अत्यधिक घायल करने लगे। वेदोनों महान् वन में माँस के लोभी बाघ के दो बच्चों के समान या दाँतोंवाले विशाल हाथियों के समान, दर्प में भरे हुए युद्ध में एक दूसरे पर आघात कर रहे थे।

ततस्तु मद्राधिपतिर्महात्मा
युधिष्ठिरं भीमबलं प्रसह्य।
विव्याध वीरं हृदयेऽतिवेगं
शरेण सूर्याग्निसमप्रभेण॥ १४॥
ततोऽतिविद्धोऽथ युधिष्ठिरोऽपि
सुसम्प्रयुक्तेन शरेण राजन्।
जघान मद्राधिपतिं महात्मा
ततो मुहूर्तादिव पार्थिवेन्द्रो॥ १५॥
लब्ध्वा संज्ञां क्रोधसंरक्तनेत्रः।
शतेन पार्थं त्वरितो जघान
त्वरंस्ततो धर्मसुतो महात्मा
शल्यस्य कोपान्नवभिः पृषत्कैः॥ १६॥
भित्त्वा ह्युरस्तपनीयं च वर्म
जघान षड्भिस्त्वपरैः पृषत्कैः।

फिर मनस्वी मद्रराज ने भयंकर बलवाले वीर युधिष्ठिर की छाती में बलपूर्वक एक सूर्य और अग्नि के समान बाण से चोट पहुँचायी। तब अत्यन्त घायल हुए मनस्वी युधिष्ठिर ने भी हे राजन्! अच्छी तरह से छोड़े हुए बाण से मद्रराज पर प्रहार किया। उस बाण से मूर्च्छित हुए राजेन्द्र ने थोड़ी देर में ही होश में आकर और क्रोध से लाल आँखें कर कुन्तीपुत्र पर शीघ्रता से सौ बाणों की वर्षा की। तब धर्मपुत्र, मनस्वी युधिष्ठिर ने भी शीघ्रता करते हुए क्रोधपूर्वक नौ बाणों से शल्य की छाती और सुनहले कवच को भेदकर दूसरे छै बाणों से उन पर प्रहार किया।

ततस्तु मद्राधिपतिः प्रकृष्टं
धनुर्विकृष्य व्यसृजत् पृषत्कान्॥ १७॥
द्वाभ्यां शराभ्यां च तथैव राज्ञ-
श्चिच्छेद चापं कुरुपुङ्गवस्य।
नवं ततोऽन्यत् समरे प्रगृह्य
राजा धनुर्घोरतरं महात्मा॥ १८॥
शल्यं तु विव्याध शरैः समन्ताद्
ततस्तु शल्यो नवभिः पृषत्कै-
र्भीमस्य राज्ञश्च युधिष्ठिरस्य।
निकृत्य रौक्मे पटुवर्मणी तयो॥ १९॥
र्विदारयामास भुजौ महात्मा।
ततोऽपरेण ज्वलनार्कतेजसा
क्षुरेण राज्ञो धनुरुन्ममाथ।
कृपश्च तस्यैव जघान सूतं॥ २०॥

तब मद्रराज ने अपने उत्तम धनुष को खींचकर अनेक बाण छोड़े और दो बाणों से कुरुश्रेष्ठ राजा के धनुष को काट दिया। फिर मनस्वी राजा ने और अधिक भयंकर नये धनुष को लेकर शल्य को बाणों से सबतरफ से घायल कर दिया। फिर मनस्वी शल्य ने नौ बाणों से भीम और राजा युधिष्ठिर के सुनहले उत्तम कवचों को काटकर उनकी बाँहों को घायल कर दिया। फिर उन्होंने दूसरे अग्नि और सूर्य के समान तेजस्वी क्षुर से राजा के धनुष को काट दिया और कृपाचार्य ने उनके सारथी को मार दिया।

मद्राधिपश्चापि युधिष्ठिरस्य
शरैश्चतुर्भिर्निजघान वाहान्।

वाहांश्च हत्वा व्यकरोन्महात्मा
योधक्षयं धर्मसुतस्य राज्ञः॥ २१॥
तथा कृते राजनि भीमसेनो
मद्राधिपस्याथ ततो महात्मा।
छित्त्वा धनुर्वेगवता शरेण
द्वाभ्यामविध्यत् सुभृशं नरेन्द्रम्॥ २२॥
तथापरेणास्य जहार यन्तुः
कायाच्छिरः संहननीयमध्यात्।
जघान चाश्वांश्चतुरः सुशीघ्रं
तथा भृशं कुपितो भीमसेनः॥ २३॥

मद्रराज ने भी चार बाणों से धर्मपुत्र राजा के घोड़ों को मार दिया और उस मनस्वी ने उनके योद्धाओं का भी विनाश आरम्भ कर दिया। तब राजा की ऐसी अवस्था कर देने पर मनस्वी भीमसेन ने एक वेगवान् बाण से मद्रराज के धनुष को काटकर दो बाणों से उन्हें भी अत्यधिक घायल कर दिया। फिर अत्यन्त क्रुद्ध भीमसेन ने तुरन्त एक दूसरे बाण से उनके सारथी का सिर धड़ से अलग कर दिया और चारों घोड़ों को मार दिया।

तमग्रणीः सर्वधनुर्धराणा-
मेकं चरन्तं समरेऽतिवेगम्।
भीमः शतेन व्यकिरच्छराणां
माद्रीपुत्रः सहदेवस्तथैव॥ २४॥
तैः सायकैर्मोहितं वीक्ष्य शल्यं
भीमः शरैरस्य चकर्त वर्म।
स भीमसेनेन निकृत्तवर्मा
मद्राधिपश्चर्म सहस्रतारम्॥ २५॥
प्रगृह्य खड्गं च रथान्महात्मा
प्रस्कन्द्य कुन्तीसुतमभ्यधावत्।
छित्त्वा रथेषां नकुलस्य सोऽथ
युधिष्ठिरं भीमबलोऽभ्यधावत्॥ २६॥
अथास्य चर्माप्रतिमं न्यकृन्तद्
भीमो महात्मा नवभिः पृषत्कैः।
खड्गं च भल्लैर्निचकर्त मुष्टौ
नदन् प्रहृष्टस्तव सैन्यमध्ये॥ २७॥

फिर युद्धक्षेत्र में अत्यन्तवेग से अकेले विचरते हुए उन शल्य पर सारे धनुर्धरों के अग्रगण्य भीम और माद्रीपुत्र सहदेव ने सैकड़ों बाणों की वर्षा की। उन बाणों से शल्य को मोहित हुआ देखकर भीम ने उनके कवच को भी काट दिया। कवच कट जाने पर मनस्वी और भयंकर बलवाले मद्रराज सहस्र तारों वाली ढाल और तलवार को लेकर और रथ से कूदकर कुन्तीपुत्र की तरफ दौड़े। उन्होंने नकुल के रथ के ईषादण्ड को काटकर, युधिष्ठिर पर आक्रमण किया। तब मनस्वी भीमसेन ने नौ बाणों से उनकी अद्वितीय ढाल को काट दिया और भल्लों से तलवार भी मुट्ठी के स्थान से काट दी। फिर उन्होंने प्रसन्नता से सेना के बीच में गर्जना की।

स मद्रराजः सहसा विकीर्णो
भीमाग्रगैः पाण्डवयोधमुख्यैः।
युधिष्ठिरस्याभिमुखं जवेन
सिंहो यथा मृगहेतोः प्रयातः॥ २८॥
स धर्मराजो निहताश्वसूतो
जग्राह शक्तिं कनकप्रकाशाम्।
नेत्रे च दीप्ते सहसा विवृत्य
मद्राधिपं क्रुद्धमना निरैक्षत्॥ २९॥
ततस्तु शक्तिं रुचिरोग्रदण्डां
मणिप्रवेकोज्ज्वलितां प्रदीप्ताम्।
चिक्षेप वेगात् सुभृशं महात्मा
मद्राधिपाय प्रवरः कुरूणाम्॥ ३०॥

भीम जिनके अगुआ थे, उन पाण्डवयोद्धाओं द्वारा घायल किये हुए मद्रराज तब युधिष्ठिर की तरफ ऐसे झपटे, जैसे सिंह ने मृग के ऊपर आक्रमण किया हो। तब उन धर्मराज ने जिनके घोड़े और सारथी मारे गये थे, सोने के समान चमकती हुई शक्ति को उठाया और क्रोध से लाल आँखों को फाड़कर मद्रराज शल्य की तरफ देखा। फिर उस मनस्वी कुरुश्रेष्ठ ने उस सुन्दर और भयंकर डण्डेवाली, मणियों के समूह से जगमगाती हुई, प्रदीप्त शक्ति को अत्यन्त वेग से मद्रराज के ऊपर फेंक दिया।

तां सर्वशक्त्या प्रहितां सुशक्तिं
युधिष्ठिरेणा- प्रतिवार्यवीर्याम्।
प्रतिग्रहायाभिननर्द शल्यः
सम्यग्घुतामग्निरि- वाज्यधाराम्॥ ३१॥
सा तस्य मर्माणि विदार्य शुभ्र-
मुरो विशालं च तथैव भित्त्वा।
विवेश गां तोयमिवाप्रसक्ता
यशो विशालं नृपतेर्दहन्ती॥ ३२॥

युधिष्ठिरद्वारा पूरी शक्ति से फेंकी हुई, उस उत्तम शक्ति को, जिसके प्रभाव को रोका नहीं जा सकता था, ग्रहण करने के लिये शल्य उसी प्रकार गर्जे जैसे अच्छीतरह से हवन कीगयी घी की धारा ग्रहण करने को अग्नि प्रज्वलित हो उठे। उनके मर्मस्थलों को विदीर्णकर और उनकी उज्वल और विशाल छाती को भेदकर वह कहीं न रुकनेवाली शक्ति राजा के विशाल यश को दग्ध करती हुई भूमि में पानी की तरह धँस गयी।

धर्म्ये धर्मात्मना युद्धे निहतो धर्मसूनुना।
सम्यग्घुत इव स्विष्टः प्रशान्तोऽग्निरिवाध्वरे॥ ३३॥
शक्त्या विभिन्नहृदयं विप्रविद्धायुधध्वजम्।
संशान्तमपि मद्रेशं लक्ष्मीर्नैव विमुञ्चति॥ ३४॥
ततः शल्ये निपतिते मद्रराजानुजो युवा।
भ्रातुस्तुल्यो गुणैः सर्वै रथी पाण्डवमभ्ययात्॥ ३५॥

धर्मयुक्त उस युद्ध में धर्मात्मा धर्मपुत्र द्वारा मारे हुए राजा शल्य तब यज्ञ में अच्छीतरह से आहुति को प्राप्त हुई स्विष्टकृत अग्नि के समान शान्त होगये। शक्तिने उनके हृदय को फाड़ दिया था, उनके आयुध और ध्वज बिखरे पड़े थे, वे सदा के लिये शान्त होगये थे, पर फिर भी उन्हें कान्ति ने अभी नहीं छोड़ा था। तब शल्य के गिर जाने पर उनका छोटा भाई जो अभी जवान ही था और गुणों में अपने भाई के समान ही रथी था, पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर पर चढ़ कर आ गया।

विव्याध च नरश्रेष्ठो नाराचैर्बहुभिस्त्वरन्।
हतस्यापचितिं भ्रातुश्चिकीर्षुर्युद्धदुर्मदः॥ ३६॥
तं विव्याधाशुगैः षड्भिर्धर्मराजस्त्वरन्निव।
कार्मुकं चास्य चिच्छेद क्षुराभ्यां ध्वजमेव च॥ ३७॥
ततोऽस्य दीप्यमानेन सुदृढेन शितेन च।
प्रमुखे वर्तमानस्य भल्लेनापाहरच्छिरः॥ ३८॥
विचित्रकवचे तस्मिन् हते मद्रनृपानुजे।
हाहाकारं प्रकुर्वाणाः कुरवोऽभिप्रदुद्रुवुः॥ ३९॥

युद्ध में दुर्मद उस नरश्रेष्ठ ने अपने मृत भाई का बदला लेने की इच्छा से, शीघ्रता करते हुए बहुत से नाराचों से उन्हें घायल किया। तब धर्मराज ने शीघ्रता करते हुए शीघ्रगामी छै बाणों से उसे बींध दिया और दो क्षुरों से उसके धनुष और ध्वजा को काट दिया। उन्होंने एक अत्यन्त दृढ़, जगमगाते हुए तीखे भल्ल से सामने खड़े हुए उसके सिर को काट दिया। विचित्र कवच से सुशोभित उस मद्रराज के छोटे भाई के मारे जाने पर हा हा कार करते हुए कौरव सैनिक वहाँ से भाग चले।

तांस्तथा भज्यमानांस्तु कौरवान् भरतर्षभ।
शिनेर्नप्ता किरन् बाणैरभ्यवर्तत सात्यकिः॥ ४०॥
तमायान्तं महेष्वासं दुष्प्रसह्यं दुरासदम्।
हार्दिक्यस्त्वरितो राजन् प्रत्यगृह्णादभीतवत्॥ ४१॥
तौ समेतौ महात्मानौ वार्ष्णेयौ वरवाजिनौ।
हार्दिक्यः सात्यकिश्चैव सिंहाविव बलोत्कटौ॥ ४२॥
इषुभिर्विमलाभासैश्छादयन्तौ परस्परम्।
अर्चिर्भिरिव सूर्यस्य दिवाकरसमप्रभौ॥ ४३॥
सात्यकिं दशभिर्विद्ध्वा हयांश्चास्य त्रिभिः शरैः।
चापमेकेन चिच्छेद हार्दिक्यो नतपर्वणा॥ ४४॥

हे भरत श्रेष्ठ! तब उन कौरवों को उस प्रकार भागते हुए देख कर सात्यकिने बाणों की वर्षा करते हुए उनका पीछा किया। हे राजन्! तब उस दुर्जय और दुर्धर्ष महाधनुर्धर को आता हुआ देखकर कृतवर्मा ने निर्भयता के साथ उसका सामना किया। तब उत्तम घोड़ों वाले वे दोनों मनस्वी यदुश्रेष्ठ सात्यकि और कृतवर्मा उत्कट बलवाले सिंहों के समान एक दूसरे से भिड़ गये। सूर्य की किरणों के समान निर्मल चमक वाले बाणों से वे दोनों सूर्य के समान तेजस्वी एक दूसरे को आच्छादित करने लगे। तब कृतवर्मा ने सात्यकि को दस बाणों से तथा उसके घोड़ों को तीन बाणों से बींधकर, एक झुकी गाँठ वाले बाण से उसके धनुष को काट दिया।

तन्निकृत्तं धनुः श्रेष्ठमपास्य शिनिपुङ्गवः।
अन्यदादत्त वेगेन वेगवत्तरमायुधम्॥ ४५॥
तदादाय धनुः श्रेष्ठं वरिष्ठः सर्वधन्विनाम्।
हार्दिक्यं दशभिर्बाणैः प्रत्यविध्यत् स्तनान्तरे॥ ४६॥
ततो रथं युगेषां च च्छित्त्वा भल्लैः सुसंयतैः।
अश्वांस्तस्यावधीत् तूर्णमुभौ च पार्ष्णिसारथी॥ ४७॥
ततस्तं विरथं दृष्ट्वा कृपः शारद्वतः प्रभो।
अपोवाह ततः क्षिप्रं रथमारोप्य वीर्यवान्॥ ४८॥

तब शिनिश्रेष्ठ ने उस कटे हुए धनुष को फेंक कर दूसरे अधिक वेग वाले धनुष को तेजी से ले लिया। सारे धनुर्धरों में श्रेष्ठ सात्यकि ने उस श्रेष्ठ धनुष को लेकर कृतवर्मा की छाती में दस बाणों

से प्रहार किया। फिर अच्छी तरह से साधे हुए भल्लों से उसके रथ, जूए, और ईषादण्ड को काट कर शीघ्र ही उसके घोड़ों और दोनों चक्ररक्षकों को भी मार दिया। हे प्रभो। तब उसे रथ से रहित देख कर पराक्रमी शरद्वान् पुत्र कृपाचार्य उसे जल्दी से अपने रथ पर बैठा कर वहाँ से दूर ले गये।

मद्रराजे हते राजन् विरथे कृतवर्मणि।
दुर्योधनबलं सर्वं पुनरासीत् पराङ्मुखम्॥ ४९॥
तत् परे नान्वबुध्यन्त सैन्येन रजसा वृते।
बलं तु हतभूयिष्ठं तत् तदाऽऽसीत् पराङ्मुखम्॥ ५०॥
ततो मुहूर्तात् तेऽपश्यन् रजो भीमं समुत्थितम्।
विविधैः शोणितस्रावैः प्रशान्तं पुरुषर्षभ॥ ५१॥
ततो दुर्योधनो दृष्ट्वा भग्नं स्वबलमन्तिकात्।
जवेनापततः पार्थानेकः सर्वानवारयत्॥ ५२॥

हे राजन्! तब मद्रराज के मारे जाने और कृतवर्मा के रथ से रहित होजाने पर दुर्योधन की सारी सेना पुनः युद्ध से विमुख होकर भागने लगी। पर क्योंकि वहाँ सबतरफ धूल छारही थी, इसलिये शत्रुओं को इस बात का पता न लगा कि अधिकाँश योद्धाओं के मारे जाने के कारण वह सेना युद्ध से विमुख होगयी है। हे पुरुषश्रेष्ठ! फिर थोड़ी देर में उन्होंने देखा कि जो भयानक धूल छा रही थी, अनेक प्रकार के रक्त के प्रवाहों से शान्त होगयी थी। तब दुर्योधन ने यह देखकर कि मेरी सेना मेरे पास से भाग गयी है, तेजी से आक्रमण करनेवाले सारे पाण्डुपुत्रों को अकेले ही रोका।

पाण्डवान् सरथान् दृष्ट्वा धृष्टद्युम्नं च पार्षतम्।
आनर्तं च दुराधर्षं शितैर्बाणैरवारयत्॥ ५३॥
तं परे नाभ्यवर्तन्त मर्त्या मृत्युमिवागतम्।
अथान्यं रथमास्थाय हार्दिक्योऽपि न्यवर्तत॥ ५४॥
ततो युधिष्ठिरो राजा त्वरमाणो महारथः।
चतुर्भिर्निजघानाश्वान् पत्रिभिः कृतवर्मणः॥ ५५॥
विव्याध गौतमं चापि षड्भिर्भल्लैः सुतेजनैः।
अश्वत्थामा ततो राज्ञा हताश्वं विरथीकृतम्।
तमपोवाह हार्दिक्यं स्वरथेन युधिष्ठिरात्॥ ५६॥

उसने रथसहित पाण्डवों को, द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्न को और दुर्धर्ष आनर्त नरेश को देखकर तीखे बाणों से उन्हें रोका। जैसे मरणशील मनुष्य आयी हुई मृत्यु को नहीं रोक सकते वैसे ही शत्रुलोग दुर्योधन का उल्लंघन कर आगे नहीं बढ़ सके। तभी कृतवर्मा भी दूसरे रथ पर बैठकर लौट आया। तब महारथी राजा युधिष्ठिर ने शीघ्रता करते हुए चार बाणों से कृतवर्मा के घोड़ों को मार दिया और कृपाचार्य को अत्यन्त तीखे छै भल्लों से घायल कर दिया। तब राजा युधिष्ठिर द्वारा मरे घोड़ोंवाले और रथ से रहित किये गये कृतवर्मा को अश्वत्थामा अपने रथ से दूर लेगया।

सत्रहवाँ अध्याय : शल्य के साथियों का वध, कौरवसेना का भागना।

शल्येऽथ निहते राजन् मद्रराजपदानुगाः।
रथाः सप्तशता वीरा निर्ययुर्महतो बलात्॥ १॥
दुर्योधनस्तु द्विरदमारुह्याचलसंनिभम्।
न गन्तव्यं न गन्तव्यमिति मद्रानवारयत्॥ २॥
दुर्योधनेन ते वीरा वार्यमाणाः पुनः पुनः।
युधिष्ठिरं जिघांसन्तः पाण्डूनां प्राविशन् बलम्॥ ३॥
ते तु शूरा महाराज कृतचित्ताश्च योधने।
धनुःशब्दं महत् कृत्वा सहायुध्यन्त पाण्डवैः॥ ४॥

हे राजन्। शल्य के मारे जाने पर मद्रराज के पीछे चलनेवाले सात सौ वीर रथी उस विशाल सेना से बाहर निकल आये। तब दुर्योधन पर्वत के समान ऊँचे हाथी पर चढ़कर, उन मद्रदेशीय वीरों को वहाँ मत जाओ, वहाँ मत जाओ कहकर रोकने लगा। किन्तु दुर्योधन द्वारा बार बार रोके जाने पर भी वे वीर युधिष्ठिर को मारने की इच्छा से पाण्डवों की सेना में घुस गये। हे महाराज जिन्होंने युद्ध में ही मन लगा रखा था, ऐसे वे शूरवीर धनुषों की महान् टंकार करते हुए पाण्डवों से युद्ध करने लगे।

श्रुत्वा च निहतं शल्यं धर्मपुत्रं च पीडितम्।
मद्रराजप्रिये युक्तैर्मद्रकाणां महारथैः॥ ५॥
आजगाम ततः पार्थो गाण्डीवं विक्षिपन् धनुः।
पूरयन् रथघोषेण दिशः सर्वा महारथः॥ ६॥
ततोऽर्जुनश्च भीमश्च माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ।
सात्यकिश्च नरव्याघ्रो द्रौपदेयाश्च सर्वशः॥ ७॥
धृष्टद्युम्नः शिखण्डी च पञ्चालाः सह सोमकैः।
युधिष्ठिरं परीप्सन्तः समन्तात् पर्यवारयन्॥ ८॥

तब शल्य को मारा हुआ सुनकर, मद्रराज का प्रिय करने में लगे हुए मद्रदेशीय महारथियों द्वारा धर्मपुत्र युधिष्ठिर को पीड़ित किया जारहा है, यह सुनकर महारथी कुन्तीपुत्र अपने गाण्डीवधनुष को टंकराते हुए और रथ की घर्घराहट से सारी दिशाओं को गुँजाते हुए वहाँ आपहुँचे। फिर अर्जुन, भीम, नकुल, नरव्याघ्र सात्यकि, सारे द्रौपदी के पुत्र, धृष्टद्युम्न और शिखण्डी ने पांचालों, तथा सोमकों के साथ, युधिष्ठिर को बचाने की इच्छा से सबतरफ से घेर लिया।

पुरोवातेन गङ्गेव क्षोभ्यमाणा महानदी।
अक्षोभ्यत तदा राजन् पाण्डूनां ध्वजिनी ततः॥ ९॥
प्रस्कन्द्य सेनां महतीं महात्मानो महारथाः।
बहवश्चुक्रुशुस्तत्र क्व स राजा युधिष्ठिरः॥ १०॥
भ्रातरो वास्य ते शूरा दृश्यन्ते नेह केन च।
धृष्टद्युम्नोऽथ शैनेयो द्रौपदेयाश्च सर्वशः॥ ११॥
पञ्चालाश्च महावीर्याः शिखण्डी च महारथः।
एवं तान् वादिनः शूरान् द्रौपदेया महारथाः॥ १२॥
अभ्यघ्नन् युयुधानश्च मद्रराजपदानुगान्।

जैसे पूर्वदिशा से आनेवाली वायु गंगा महानदी को क्षुब्ध कर देती है वैसे ही हे राजन्! उन मद्रवीरों द्वारा पाण्डवों की सेना उस समय क्षुब्ध कर दी गयी। वे बहुत से मनस्वी महारथी, उस विशाल सेना में उथलपुथल मचाकर यह चिल्लाने लगे कि राजा युधिष्ठिर कहाँ है? उसके शूरवीर भाई यहाँ दिखाई क्यों नहीं देते? धृष्टद्युम्न, सात्यकि, सारे द्रौपदी के पुत्र, महापराक्रमी पांचाल और महारथी शिखण्डी कहाँ हैं? इस प्रकार बोलते हुए उन मद्रराज के सेवक शूरवीरों को द्रौपदी के महारथी पुत्रों और सात्यकि ने मारना आरम्भ कर दिया।

ततो गान्धारराजस्य पुत्रः शकुनिरब्रवीत्॥ १३॥
दुर्योधनं महाराज वचनं वचनक्षमः।
किं नः सम्प्रेक्षमाणानां मद्राणां हन्यते बलम्॥ १४॥
न युक्तमेतत् समरे त्वयि तिष्ठति भारत।
सहितैश्चापि योद्धव्यमित्येष समयः कृतः॥ १५॥
अथ कस्मात् परानेवं घ्नतो मर्षयसे नृप।

दुर्योधन उवाच

वार्यमाण मया पूर्वं नैते चक्रुर्वचो मम॥ १६॥
एते विनिहताः सर्वे प्रस्कन्नाः पाण्डुवाहिनीम्।

तब बोलने में समर्थ, गान्धारराज के पुत्र शकुनि ने, हे महाराज! दुर्योधन से कहा हे भारत! हमारे देखते हुए यह मद्रदेश की सेना क्यों मारी जा रही है? आपके युद्धक्षेत्र में रहते हुए ऐसा होना ठीक नहीं है। हमने यह फैसला कर रखा है कि हमें इकट्ठे होकर लड़ना चाहिये, इसलिये हे राजन्। शत्रुओं को अपनी सेना का संहार करता हुए देखकर क्यों सहन कर रहे हैं? तब दुर्योधन ने कहा कि मैंने पहले इन्हें मना किया था, पर उन्होंने मेरी बात नहीं मानी और पाण्डवसेना में घुस गये। इसी लिये ये सारे मारे गये हैं।

शकुनिरुवाच

न भर्तुः शासनं वीरा रणे कुर्वन्त्यमर्षिताः॥ १७॥
अलं क्रोद्धुमथैतेषां नायं काल उपेक्षितुम्।
यामः सर्वे च सम्भूय सवाजिरथकुञ्जराः॥ १८॥
परित्रातुं महेष्वासान् मद्रराजपदानुगान्।
अन्योन्यं परिरक्षामो यत्नेन महता नृप॥ १९॥
एवमुक्तस्तदा राजा बलेन महता वृतः।
प्रययौ सिंहनादेन कम्पयन्निव मेदिनीम्॥ २०॥

तब शकुनि ने कहा कि अत्यन्त अमर्ष में भरे हुए वीर लोग युद्ध में अपने स्वामी के आदेश को नहीं मानते हैं। अब क्रोध नहीं करना चाहिये। यह समय इनकी उपेक्षा का नहीं है। हम सब इकट्ठे हो कर घोड़ों, रथ और हाथियों के साथ मद्रराज के सेवक महाधनुर्धरों को बचाने के लिये चलते हैं। हम महान् प्रयत्न करके एकदूसरे की रक्षा करेंगे। शकुनि के ऐसा कहने पर विशालसेना से युक्त राजा दुर्योधन सिंहनाद से भूमि को कँपाता सा हुआ आगे बढ़ा।

हत विद्ध्यत गृह्णीत प्रहरध्वं निकृन्तत।
इत्यासीत् तुमुलः शब्दस्तव सैन्यस्य भारत॥ २१॥
ते मुहूर्ताद् रणे वीरा हस्ताहस्ति विशाम्पते।
निहताः प्रत्यदृश्यन्त मद्रराजपदानुगाः॥ २२॥

हे भारत! उस समय आपकी सेना में मार दो, घायल कर दो, पकड़ लो, प्रहार करो, काट दो, इसप्रकार के महान् शब्द होरहे थे। हे महाराज! मद्रराज के सेवक वे वीर थोड़ी देर में ही हाथों हाथ, युद्धक्षेत्र में मारे गये दिखाई देने लगे।

निहतेषु च शूरेषु मद्रराजानुगेषु वै।
अस्मानापततश्चापि दृष्ट्वा पार्था महारथाः॥ २३॥
अभ्यवर्तन्त वेगेन जयगृद्धाः प्रहारिणः।
बाणशब्दरवान् कृत्वा विमिश्राञ्शङ्खनिःस्वनैः॥ २४॥
ततो हतमभिप्रेक्ष्य मद्रराजबलं महत्।
दुर्योधनबलं सर्वं पुनरासीत् पराङ्मुखम्॥ २५॥

मद्रराज के शूरवीरों के मारे जाने पर भी हम लोगों को आक्रमण करते हुए देखकर, विजय के अभिलाषी, प्रहार करने वाले, महारथी, कुन्तीपुत्र शंखों की ध्वनियों के साथ, बाणों की सनसनाहट का शब्द फैलाते हुए, सामना करने वेगपूर्वक आगे आये। तब मद्रराज की विशाल सेना मारी गयी यह देखकर दुर्योधन की सारी सेना पुनः युद्ध से विमुख होगयी।

अठारहवाँ अध्याय : भीम द्वारा पैदल सैनिकों का संहार।

वणिजो नावि भिन्नायां यथागाधेऽप्लवेऽर्णवे।
अपारे पारमिच्छन्तो हते शूरे महात्मना॥ १॥
मद्रराजे महाराज वित्रस्ताः शरविक्षताः।
अनाथा नाथमिच्छन्तो मृगाः सिंहार्दिता इव॥ २॥
वृषा यथा भग्नशृङ्गाः शीर्णदन्ता यथा गजाः।
मध्याह्ने प्रत्यपायाम निर्जिताजातशत्रुणा॥ ३॥
न संधातुमनीकानि न च राजन् पराक्रमे।
आसीद् बुद्धिर्हते शल्ये भूयो योधस्य कस्यचित्॥ ४॥

हे महाराज! जैसे अपार और अगाध सागर में तूफान के कारण नाव टूट जाने पर, पार पहुँचने के इच्छुक व्यापारी व्याकुल हो उठते हैं, उसी प्रकार मनस्वी युधिष्ठिरद्वारा शूरवीर मद्रराज के मारे जाने पर, बाणों से घायल आपके सैनिक बड़ी घबराहट में पड़ गये। अपने को अनाथ समझते हुए, किसी स्वामी की इच्छा करते हुए उनकी अवस्था तब सिंह से पीड़ित मृगों, टूटे सींगवाले साँड और टूटे दाँतवाले हाथी के समान होगयी थी। हे राजन्! दोपहर के समय हम अजातशत्रु युधिष्ठिर से पराजित होकर भाग चले थे। उससमय शल्य के मारे जाने पर किसी योद्धा की न तो पुनः पराक्रम करने में और न सेनाओं को एकत्र करने में कोई रुचि थी।

भीष्मे द्रोणे च निहते सूतपुत्रे च भारत।
यद् दुःखं तव योधानां भयं चासीद् विशाम्पते॥ ५॥
तद् भयं स च नः शोको भूय एवाभ्यवर्तत।
धनंजयो रथानीकमभ्यवर्तत वीर्यवान्॥ ६॥
माद्रीपुत्रौ च शकुनिं सात्यकिश्च महारथः।
तान् प्रेक्ष्य द्रवतः सर्वान् भीमसेनभयार्दितान्॥ ७॥
दुर्योधनस्तदा सूतमब्रवीद् विजयाय च।
मामतिक्रमते पार्थो धनुष्पाणिमवस्थितम्॥ ८॥
जघने सर्वसैन्यानां ममाश्वान् प्रतिपादय।

हे भारत! भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य और सूतपुत्र कर्ण के मारे जाने पर आपके योद्धाओं को जो दुख और भय हुआ था हे प्रजानाथ! वही भय और शोक अब हमारे सामने पुनः उपस्थित हो गया। तब पराक्रमी अर्जुन ने आपकी रथसेना पर आक्रमण किया और नकुल, सहदेव तथा महारथी सात्यकि ने शकुनि पर चढ़ाई की। फिर अपने सारे योद्धाओं को भीमसेन के भय से भागते हुए देखकर दुर्योधन ने विजय की इच्छा से अपने सारथी से कहा कि यहाँ धनुष हाथ में लेकर खड़े हुए कुन्तीपुत्र अर्जुन मेरा अतिक्रमण करने की चेष्टा कर रहे हैं, इसलिये तुम मेरे घोड़ों को सारी सेना के पिछले भाग में पहुँचा दो।

पश्य सैन्यं महत् सूत पाण्डवैः समभिद्रुतम्॥ ९॥
सैन्यरेणुं समुद्धूतं पश्यस्वैनं समन्ततः।
सिंहनादांश्च बहुशः शृणु घोरान् भयावहान्॥ १०॥
तस्माद् याहि शनैः सूत जघनं परिपालय।
मयि स्थिते च समरे निरुद्धेषु च पाण्डुषु॥ ११॥
पुनरावर्तते तूर्णं मामकं बलमोजसा।
तच्छ्रुत्वा तव पुत्रस्य शूरार्यसदृशं वचः॥ १२॥
सारथिर्हेमसंछन्नाञ्शनैर- श्वानचोदयत्।

हे सूत! पाण्डवों द्वारा खदेड़ी जाती हुई मेरी विशाल सेना को देखो। चारोंतरफ सेना द्वारा उड़ायी हुई धूल को भी देखो। इन भयको बढ़ाने वाले भयंकर सिंहनादों को भी सुनो। इसलिये तुम धीरे धीरे चलो और सेना के पिछले भाग की रक्षा करो। मेरे युद्धक्षेत्र में खड़े रहने पर और पाण्डवों का बढ़ाव रुक जाने पर मेरी सेना शीघ्र ही अपनी शक्ति

के साथ लौट आयेगी। तब आपके पुत्र के श्रेष्ठ, वीरोचित वचनों को सुनकर सारथी ने सुनहरे साज से सुशोभित घोड़ों को धीरे धीरे आगे बढ़ाया।

गजाश्वरथिभिर्हीनास्त्यक्तात्मानः पदातयः॥ १३॥
नानादेशसमुद्भूता नानानगरवासिनः।
अवस्थितास्तदा योधाः प्रार्थयन्तो महद् यशः॥ १४॥
तेषामापततां तत्र संहृष्टानां परस्परम्।
सम्मर्दः सुमहाञ्जज्ञे घोररूपो भयानकः॥ १५॥
भीमसेनस्तदा राजन् धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः।
बलेन चतुरङ्गेण नानादेश्यानवारयत्॥ १६॥

तब हाथी, घोड़ों और रथों से रहित आपके पैदलसैनिक जो अनेक देशों में जन्मे और अनेक नगरों से आये हुए योद्धा थे जीवन का मोह छोड़कर अपने यश की अभिलाषा करते हुए युद्ध के लिये खड़े हुए थे। फिर दोनों तरफ के सैनिकों का, जो उत्साह में भरकर परस्पर आक्रमण कर रहे थे, अत्यन्तमहान् संग्राम बहुतघोर और भयंकर रूप में हुआ। हे राजन्! तब भीमसेन और द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्न चतुरंगिणी सेना के साथ उन अनेक देशीय सैनिकों को रोकने लगे।

भीममेवाभ्यवर्तन्त रणेऽन्ये तु पदातयः।
प्रक्ष्वेड्यास्फोट्य संहृष्टा वीरलोकं यियासवः॥ १७॥
परिवार्य रणे भीमं निजघ्नुस्ते समन्ततः।
ते तु क्रुद्धा महाराज पाण्डवस्य महारथम्॥ १८॥
निग्रहीतुं प्रवृत्ता हि योधांश्चान्यानवारयन्।
अक्रुध्यत रणे भीमस्तैस्तदा पर्यवस्थितैः॥ १९॥
सोऽवतीर्य रथात् तूर्णं पदातिः समवस्थितः।
जातरूपप्रतिच्छन्नां प्रगृह्य महतीं गदाम्॥ २०॥
विप्रहीणरथाश्वांस्तानवधीत् पुरुषर्षभः।

उन पैदल सैनिकों में से दूसरे बहुत से सैनिक ताल ठोकते और सिंहनाद करते हुए वीरलोक में जाने की इच्छा से उत्साहपूर्वक भीमसेन के ही सामने जा पहुँचे। वे भीमसेन को घेर कर उन पर युद्धभूमि में प्रहार करने लगे। हे महाराज! फिर वे योद्धा क्रोध में भर कर भीमसेन को पकड़ने का प्रयत्न करने लगे और दूसरे योद्धाओं को भी आगे बढ़ने से रोकने लगे। तब युद्धक्षेत्र में उनके इस प्रकार से विद्यमान होने पर भीमसेन को बड़ा क्रोध आया और वे तुरन्त रथ से उतर कर पैदल ही खड़े हो गये। सुनहले पत्रों से जड़ी हुई अपनी विशाल गदा को उठाकर उन पुरुषश्रेष्ठ ने रथों और घोड़ों रहित उन पैदलों को मार दिया।

हत्वा तत् पुरुषानीकं भीमः सत्यपराक्रमः॥ २१॥
धृष्टद्युम्नं पुरस्कृत्य नचिरात् प्रत्यदृश्यत।
पादाता निहता भूमौ शिश्यिरे रुधिरोक्षिताः॥ २२॥
सम्भग्ना इव वातेन कर्णिकाराः सुपुष्पिताः।
युधिष्ठिरपुरोगाश्च सहसैन्या महारथाः॥ २३॥
अभ्यधावन् महात्मानं पुत्रं दुर्योधनं तव।
तदद्भुतमपश्याम तव पुत्रस्य पौरुषम्॥ २४॥
यदेकं सहिताः पार्था न शेकुरतिवर्तितुम्।

सत्यपराक्रमी भीम उस पैदलसेना को थोड़ी ही देर में मारकर धृष्टद्युम्न को आगे किये हुए दिखाई दिये। खून से लथपथ हुए पैदलसैनिक भूमि पर उससमय इसप्रकार सोरहे थे, जैसे वायु से उखाड़े हुए अत्यन्त फूलों वाले कनेर के वृक्ष पड़े हुए हों। फिर युधिष्ठिर आदि महारथी सेना के साथ आपके मनस्वी पुत्र दुर्योधन की तरफ दौड़े। तब हमने आपके पुत्र के अद्भुत पराक्रम को देखा कि उस अकेले को अतिक्रम करके एकत्र हुए कुन्तीपुत्र आगे न बढ़ सके।

नातिदूरापयातं तु कृतबुद्धिं पलायने॥ २५॥
दुर्योधनः स्वकं सैन्यमब्रवीद् भृशविक्षतम्।
न तं देशं प्रपश्यामि पृथिव्यां पर्वतेषु च॥ २६॥
यत्र यातान्न वा हन्युः पाण्डवाः किं सृतेन वः।
विप्रयातांस्तु वो भिन्नान् पाण्डवाः कृतविप्रियाः॥ २७॥
अनुसृत्य हनिष्यन्ति श्रेयान्नः समरे वधः।
श्रुत्वा तद् वचनं तस्य पूजयित्वा च पार्थिवाः॥ २८॥
पुनरेवाभ्यवर्तन्त पाण्डवानाततायिनः।

तब यह देखकर कि पलायन की बुद्धि बनाये और अत्यन्तघायल मेरे सैनिक अधिक दूर नहीं गये हैं, दुर्योधन ने उन्हें पुकारकर कहा कि अरे तुम्हारे भागने से क्या लाभ है? मैं पृथिवी पर और पर्वतों पर किसी ऐसे स्थान को सुरक्षित नहीं समझता, जहाँ जाने पर पाण्डव तुम्हें मार न सकें। तुमने पाण्डवों का अपराध किया है, अलग-अलग होकर भागते हुए तुम्हें पाण्डव पीछा करके मार देंगे, इसलिये हमारे लिये एकत्र होकर युद्ध में लड़ते हुए मरना

ही कल्याणकारी है। दुर्योधन की यह बात सुनकर और उनका सम्मान करके वे राजालोग मारने के लिये उद्यत पाण्डवों का सामना करने के लिये फिर लौट आये।

तानापतत एवाशु व्यूढानीकाः प्रहारिणः॥ २९॥
प्रत्युद्ययुस्तदा पार्था जयगृद्धाः प्रमन्यवः।
धनंजयो रथेनाजावभ्यवर्तत वीर्यवान्॥ ३०॥
विश्रुतं त्रिषु लोकेषु व्याक्षिपन् गाण्डिवं धनुः।
माद्रीपुत्रौ च शकुनिं सात्यकिश्च महाबलः।
जवेनाभ्यपतन् हृष्टा यत्ता वै तावकं बलम्॥ ३१॥

तब उनके आक्रमण करते ही, विजय के अभिलाषी, अत्यन्त क्रुद्ध, प्रहार करनेवाले, कुन्तीपुत्र व्यूहबद्ध होकर सामना करने को आगे बढ़ आये। पराक्रमी अर्जुन अपने तीनों लोकों में प्रसिद्ध गाण्डीवधनुष को टंकराते हुए रथ के द्वारा युद्धक्षेत्र में आगये। माद्रीपुत्रों नकुल और सहदेव ने तथा महाबली सात्यकि ने शकुनि पर और तेजी से, उत्साह के साथ, प्रयत्नपूर्वक आपकी सेना पर आक्रमण कर दिया।

उन्नीसवाँ अध्याय : सात्यकि के द्वारा राजा शाल्व का वध।

संनिवृत्ते जनौघे तु शाल्वो म्लेच्छगणाधिपः।
अभ्यवर्तत संक्रुद्धः पाण्डवानां महद् बलम्॥ १॥
आस्थाय सुमहानागं प्रभिन्नं पर्वतोपमम्।
दृप्तमैरावतप्रख्यम- मित्रगणमर्दनम्॥ २॥

हे राजन्! जब वह सेना वापिस लौट आयी, तब म्लेच्छसैनिकों का स्वामी शाल्व, एकपर्वत के समान ऊँचे, मद बहाते हुए, अत्यन्तविशाल, मस्त, हाथीपर, जो शत्रुओं के मर्दन के लिये प्रसिद्ध और ऐरावत के समान था, बैठकर और अत्यन्त क्रोध में भरकर पाण्डवों की सेना के सामने आया।

तमास्थितो राजवरो बभूव
यथोदयस्थः सविता क्षपान्ते।
स तेन नागप्रवरेण राज-
न्नभ्युद्ययौ पाण्डुसुतान् समेतान्॥ ३॥
शितैः पृषत्कैर्विददार वेगै-
र्महेन्द्रवज्रप्रतिमैः सुघोरैः।
ततः शरान् वै सृजतो महारणे
योधांश्च राजन् नयतो यमालयम्॥ ४॥
नास्यान्तरं ददृशुः स्वे परे वा
ते पाण्डवाः सोमकाः सृञ्जयाश्च
तमेकनागं ददृशुः समन्तात्।
सहस्रशो वै विचरन्तमेकं॥ ५॥
संद्राव्यमाणं तु बलं परेषां
परीतकल्पं विबभौ समन्ततः।
नैवावतस्थे समरे भृशं भयाद्
विमृद्यमानं तु परस्परं तदा॥ ६॥

हे राजन्! हाथी पर बैठा हुआ वह श्रेष्ठ राजा ऐसे सुशोभित होरहा था जैसे प्रातःकाल उदयाचल पर सूर्य। उस श्रेष्ठ हाथी द्वारा उसने एकत्र हुए पाण्डुपुत्रों पर आक्रमण कर दिया और इन्द्रके वज्र के समान अत्यन्तघोर वेगवान् तीखे बाणों से उन्हें विदीर्ण करने लगा। हे राजन्! महान् युद्धक्षेत्र में बाणों की वर्षा करते हुए और योद्धाओं को मृत्यु के घर भेजते हुए उसके किसी भी दोष को तब अपनों और शत्रुओं ने नहीं देखा। पाण्डवों, सोमकों और सृंजयवीरों ने अपने सामने विचरण करते हुए उस अकेले हाथी को भी ऐसे समझा जैसे असंख्य हाथी विचरण कर रहे हों। उस हाथी द्वारा खदेड़ी जाती हुई शत्रुसेना अपने आपको सबतरफ से घिरा हुआ सा अनुभव कर रही थी। अत्यन्तभयभीत होकर वह युद्ध में ठहर न सकी और उसके सैनिक धक्का-मुक्की से आपस में ही कुचले जाने लगे।

ततः प्रभग्ना सहसा महाचमूः
सा पाण्डवी तेन नराधिपेन।
दृष्ट्वा च तां वेगवतीं प्रभग्नां
सर्वे त्वदीया युधि योधमुख्याः॥ ७॥
अपूजयंस्ते तु नराधिपं तं
दध्मुश्च शङ्खाञ्शशिसंनिकाशान्।
श्रुत्वा निनादं त्वथ कौरवाणां
हर्षाद् विमुक्तं सह शङ्खशब्दैः॥ ८॥
सेनापतिः पाण्डवसृञ्जयानां
पाञ्चालपुत्रो ममृषे न कोपात्।

उस राजा के द्वारा तब पाण्डवों की विशाल सेना में भगदड़ मचा दी गयी। उस वेगवान् सेना को भागते हुए देखकर आपके सारे प्रमुख योद्धा युद्धक्षेत्र में उस राजा की प्रशंसा करने लगे और अपने चन्द्रमा के समान श्वेत शंखों को बजाने लगे। तब कौरवों के हर्ष के साथ शंखों के शब्दों से युक्त जयनादों को सुनकर उन्हें पाण्डव और सृंजयों का सेनापति, पांचाल राजपुत्र, धृष्टद्युम्न क्रोधपूर्वक सहन न कर सका।

ततस्तु तं वै द्विरदं महात्मा
प्रत्युद्ययौ त्वरमाणो जयाय॥ ९॥
तमापतन्तं सहसा तु दृष्ट्वा
पाञ्चालपुत्रं युधि राजसिंहः।
तं वै द्विपं प्रेषयामास तूर्णं
वधाय राजन् द्रुपदात्मजस्य॥ १०॥
स तं द्विपेन्द्रं सहसा पतन्त-
मविध्यदग्निप्रतिमैः पृषत्कैः।
कर्मारधौतैर्नि- शितैर्ज्वलद्भि-
र्नाराचमुख्यै- स्त्रिभिरुग्रवेगैः॥ ११॥
ततोऽपरान् पञ्चशतान् महात्मा
नाराचमुख्यान् विससर्ज कुम्भे।
स तैस्तु विद्धः परमद्विपो रणे
तदा परावृत्य भृशं प्रदुद्रुवे॥ १२॥

तब उस मनस्वी ने शीघ्रता से उस हाथी पर विजय पाने के लिये चढ़ाई की। हे राजन्! तब अचानक आक्रमण करते हुए पांचालपुत्र को देखकर उस राज सिंहने द्रुपदपुत्र के वध के लिये तुरन्त हाथी को उसकी तरफ बढ़ाया। धृष्टद्युम्न ने अचानक अपने ऊपर आक्रमण करते हुए उस गजराज को अग्नि के समान, कारीगर द्वारा स्वच्छ किये हुए, तीखे जगमगाते हुए तीन उत्तम नाराचों से बींध दिया। फिर उस मनस्वी ने दूसरे पाँच सौ उत्तम नाराचों की उसके मस्तक पर वर्षा की। वह महान् हाथी उनसे घायल होकर, तब युद्ध से विमुख होकर तेजी से भागने लगा।

तं नागराजं सहसा प्रणुन्नं
विद्राव्यमाणं विनिवर्त्य शाल्वः।
तोत्राङ्कुशैः प्रेषयामास तूर्णं
पाञ्चालराजस्य रथं प्रदिश्य॥ १३॥

दृष्ट्वाऽऽपतन्तं सहसा तु नागं
धृष्टद्युम्नः स्वरथाच्छीघ्रमेव।
गदां प्रगृह्योग्रजवेन वीरो
भूमिं प्रपन्नो भयविह्वलाङ्गः॥ १४॥
स तं रथं हेमविभूषिताङ्गं
साश्वं ससूतं सहसा विमृद्य।
उत्क्षिप्य हस्तेन नदन् महाद्विपो
विपोथयामास वसुन्धरातले॥ १५॥

तब पीड़ित होकर अचानक भागते हुए हाथी को शाल्वराज ने अंकुशों से मारकर वापिस लौटाया और पांचालराज के रथ की तरफ दौड़ा दिया। उस हाथी को अचानक अपनी तरफ आते हुए देखकर, वीर धृष्टद्युम्न भय से बेचैन होकर, गदा लेकर तुरन्त अपने रथ से कूदकर भूमि पर आ गया। उस विशाल हाथी ने तब उस स्वर्णभूषित रथ को सारथी और घोड़ों सहित सहसा कुचल कर गर्जना करते हुए सूँड से उठाकर पृथिवी पर पटक दिया।

पाञ्चालराजस्य सुतं च दृष्ट्वा
तदार्दितं नागवरेण तेन।
तमभ्यधावत् सहसा जवेन
भीमः शिखण्डी च शिनेश्च नप्ता॥ १६॥
शरैश्च वेगं सहसा निगृह्य
तस्याभितो व्यापततो गजस्य।
स संगृहीतो रथिभिर्गजो वै
चचाल तैर्वार्यमाणश्च संख्ये॥ १७॥
पाञ्चालपुत्रस्त्वरितस्तु शूरो
गदां प्रगृह्याचलशृङ्गकल्पाम्।
ससम्भ्रमं भारत शत्रुघाती
जवेन वीरोऽनुससार नागम्॥ १८॥

तब पांचालराज के पुत्र धृष्टद्युम्न को उस श्रेष्ठ हाथी से पीड़ित देखकर भीम, शिखण्डी और सात्यकि तुरन्त उसकी तरफ दौड़े। उन्होंने अपने बाणों से आक्रमण करनेवाले हाथी के वेग को अवरुद्ध कर दिया। उन रथियों द्वारा रोका हुआ वह हाथी निगृहीत सा होकर विचलित होगया। हे भारत! तब शत्रुघाती शूरवीर पांचाल राजपुत्र धृष्टद्युम्न ने पर्वत शिखर के समान विशाल गदा को उठाकर तेजी से हाथी का पीछा किया।

ततस्तु नागं धरणीधराभं
मदं स्त्रवन्तं जलदप्रकाशम्।
गदां समाविद्ध्य भृशं जघान
पाञ्चालराजस्य सुतस्तरस्वी॥ १९॥
स भिन्नकुम्भः सहसा विनद्य
मुखात् प्रभूतं क्षतजं विमुञ्चन्।
पपात नागो धरणीधराभः
क्षितिप्रकम्पाच्चलितो यथाद्रिः॥ २०॥
निपात्यमाने तु तदा गजेन्द्रे
हाहाकृते तव पुत्रस्य सैन्ये।
स शाल्वराजस्य शिनिप्रवीरो
जहार भल्लेन शिरः शितेन॥ २१॥

फिर पर्वत के समान विशाल, बादल के समान मद की वर्षा करनेवाले हाथी पर पांचालपुत्र, वेगवान्, धृष्टद्युम्न ने गदा को घुमाकर जोर से प्रहार किया। उस प्रहार से उसका मस्तक फट गया और वह पर्वत के समान विशाल हाथी, तुरन्त चिंघाड़ता हुआ, मुख से बहुत सारा खून बहाता हुआ इस प्रकार गिर पड़ा जैसे भूचाल के आने पर कोई पर्वत ढह जाये। हाथी के गिराये जाने पर, जब आपके पुत्र की सेना में हा हा कार होने लगा, तभी सात्यकि ने तीखे भल्ल से शाल्वराज का सिर काट दिया।

बीसवाँ अध्याय : सात्यकि से कृतवर्मा की पराजय।

तस्मिंस्तु निहते शूरे शाल्वे समितिशोभने।
तवाभज्यद् बलं वेगाद् वातेनेव महाद्रुमः॥ १॥
तत् प्रभग्नं बलं दृष्ट्वा कृतवर्मा महारथः।
दधार समरे शूरः शत्रुसैन्यं महाबलः॥ २॥
सनिवृत्तास्तु ते शूरा दृष्ट्वा सात्वतमाहवे।
शैलोपमं स्थिरं राजन् कीर्यमाणं शरैर्युधि॥ ३॥
ततः प्रववृते युद्धं कुरूणां पाण्डवैः सह।
निवृत्तानां महाराज मृत्युं कृत्वा निवर्तनम्॥ ४॥

हे राजन्! युद्ध में शोभा देने वाले शाल्वराज के मारे जाने पर, आपकी सेना तेजी से ऐसे भागी जैसे आँधी से विशाल वृक्ष को उखाड़ दिया गया हो। तब सेना को भागता हुआ देखकर, महाबली, शूरवीर, महारथी, कृतवर्मा ने युद्धक्षेत्र में शत्रुकी सेना को आगे बढ़ने से रोक दिया। हे राजन्! सात्वतवंशी उस वीर को युद्ध क्षेत्र में बाणों की वर्षा से अच्छादित होने पर भी पर्वत के समान स्थिर देखकर, वे भागे हुए शूरवीर भी वापिस लौट आये। हे महाराज! तब लौटकर आये हुए योद्धाओं का पाण्डवों के साथ, मृत्यु को ही आधार मानकर भयंकर युद्ध होने लगा।

तत्राश्चर्यमभूद् युद्धं सात्वतस्य परैः सह।
यदेको वारयामास पाण्डुसेनां दुरासदाम्॥ ५॥
तेषामन्योन्यसुहृदां कृते कर्मणि दुष्करे।
सिंहनादः प्रहृष्टानां दिविस्पृक् सुमहानभूत्॥ ६॥
शिनेर्नप्ता महाबाहुरन्वपद्यत सात्यकिः।
तमायान्तं महाबाहुं प्रवपन्तं शिताञ्शरान्॥ ७॥
जवेनाभ्यपतद् धीमान् हार्दिक्यः शिनिपुङ्गवम्।
सात्वतौ च महावीर्यौ धन्विनौ रथिनां वरौ॥ ८॥
अन्योन्यमभ्यधावेतां शस्त्रप्रवरधारिणौ।

कृतवर्मा का शत्रुओं के साथ चल रहा वह युद्ध आश्चर्ययुक्त प्रतीत होता था, क्योंकि उसने अकेले ही दुर्घर्ष पाण्डवों की सेना को रोक दिया था। तब कृतवर्माद्वारा वह दुष्कर कार्य किये जाने पर, एकदूसरे का भला चाहनेवाले कौरव सैनिकों का, हर्ष से भरा, आकाश को स्पर्श करनेवाला, अत्यन्तजोर से सिंहनाद होने लगा। तब शिनि के पौत्र महाबाहु सात्यकि वहाँ आये। तीखे बाणों की वर्षा करते हुए, उन शिनिश्रेष्ठ, महाबाहु को आते हुए देखकर धीमान् कृतवर्मा ने जोर से उनके ऊपर आक्रमण किया। फिर दोनों महापराक्रमी, रथियों में श्रेष्ठ, धनुर्धर और उत्तम शस्त्रास्त्रों को धारण करने वाले यदुवंशी एकदूसरे पर आघात करने लगे।

पाण्डवाः सहपञ्चाला योधाश्चान्ये नृपोत्तमाः॥ ९॥
प्रेक्षकाः समपद्यन्त तयोर्घोरे समागमे।
नाराचैर्वत्सदन्तैश्च वृष्ण्यन्धकमहारथौ॥ १०॥
अभिजघ्नतुरन्योन्यं प्रहृष्टाविव कुञ्जरौ।
चरन्तौ विविधान् मार्गान् हार्दिक्यशिनिपुङ्गवौ॥ ११॥
मुहुरन्तर्दधाते तौ बाणवृष्ट्या परस्परम्।
तमेकं सत्यकर्माणमासाद्य हृदिकात्मजः॥ १२॥
अविध्यन्निशितैर्बाणैश्चतुर्भिश्चतुरो हयान्।

उन दोनों के उस घोर युद्ध में पांचालोंसहित पाण्डव और दूसरे योद्धा दर्शक बनकर तमाशा देखने लगे। वेदोनों वृष्णि और अन्धकवंश के महारथी, उत्साहयुक्त दो हाथियों के समान, नाराचों और वत्सदन्त बाणों से एकदूसरे पर प्रहार करने लगे। कृतवर्मा और सात्यकि अनेक प्रकार के पैंतरों को अपनाते हुए एकदूसरे को बार बार बाणवर्षा से आच्छादित कर देते थे। फिर उस अद्वितीय वीर, सत्यपराक्रमी सात्यकि के समीप जाकर कृतवर्मा ने चार तीखे बाणों से उसके चारों घोड़ों को घायल कर दिया।

स दीर्घबाहुः संक्रुद्धस्तोत्रार्दित इव द्विपः॥ १३॥
अष्टभिः कृतवर्माणमविद्ध्यत् परमेषुभिः।
ततः पूर्णायतोत्सृष्टैः कृतवर्मा शिलाशितैः॥ १४॥
सात्यकिं त्रिभिराहत्य धनुरेकेन चिच्छिदे।
निकृत्तं तद् धनुः श्रेष्ठमपास्य शिनिपुङ्गवः॥ १५॥
अन्यदादत्त वेगेन शैनेयः सशरं धनुः।

तब अंकुश से चोट खाये हाथी के समान, अत्यन्त क्रुद्ध सात्यकि ने आठ उत्तम बाणों से कृतवर्मा को बींध दिया। फिर पूरी तरह से धनुष को खींचकर छोड़े, तीन शिला पर तेज किये हुए बाणों से कृतवर्मा ने सात्यकि को बींधकर एक बाण से उसके धनुष को काट दिया। तब शिनिश्रेष्ठ ने कटे हुए उस धनुष को छोड़कर दूसरे श्रेष्ठ बाणसहित धनुष को शीघ्रता से हाथ में लिया।

तदादाय धनुः श्रेष्ठं वरिष्ठः सर्वधन्विनाम्॥ १६॥
आरोप्य च धनुः शीघ्रं महावीर्यो महाबलः।
अमृष्यमाणो धनुषश्छेदनं कृतवर्मणा॥ १७॥
कुपितोऽतिरथः शीघ्रं कृतवर्माणमभ्ययात्।
ततः सुनिशितैर्बाणैर्दशभिः शिनिपुङ्गवः॥ १८॥
जघान सूतं चाश्वांश्च ध्वजं च कृतवर्मणः।
ततो राजन् महेष्वासः कृतवर्मा महारथः॥ १९॥
हताश्वसूतं सम्प्रेक्ष्य रथं हेमपरिष्कृतम्।
रोषेण महताऽऽविष्टः शूलमुद्यम्य मारिष॥ २०॥
चिक्षेप भुजवेगेन जिघांसुः शिनिपुङ्गवम्।

सारे धनुर्धरों में वरिष्ठ, महाबली और महापराक्रमी सात्यकि ने उस श्रेष्ठ धनुष को लेकर और शीघ्रता से उस पर प्रत्यंचा चढ़ाकर, कृतवर्माद्वारा अपने धनुष के काटे जाने को सहन न करते हुए, क्रुद्ध उस अतिरथी ने शीघ्रता से कृतवर्मा पर आक्रमण किया। उस शिनिश्रेष्ठ ने अत्यन्त तीखे दस बाणों से कृतवर्मा के सारथी और घोड़ों को मार दिया तथा ध्वज को काट दिया। हे राजन्! तब महाधनुर्धर, महारथी कृतवर्मा ने अपने सुनहरे रथ को मरे घोड़ों और सारथीवाला देखकर अत्यन्त क्रोध में भरकर हे मान्यवर! एक शूल को उठाकर, शिनिश्रेष्ठ को मारने की इच्छा से, उसे भुजाओं के वेग से सात्यकि पर फैंका।

तच्छूलं सात्वतो ह्याजौ निर्भिद्य निशितैः शरैः॥ २१॥
ततोऽपरेण भल्लेन हृद्येनं समताडयत्।
स युद्धे युयुधानेन हताश्वो हतसारथिः॥ २२॥
कृतवर्मा कृतस्तेन धरणीमन्वपद्यत।
अभ्यधावत् कृपो राजञ्जिघांसुः शिनिपुङ्गवम्॥ २३॥
तमारोप्य रथोपस्थे मिषतां सर्वधन्विनाम्।
अपोवाह महाबाहुं तूर्णमायोधनादपि॥ २४॥

उसके उस शूल को युद्धक्षेत्र में तीखे बाणों से काटकर, सात्यकि ने एक दूसरे भल्ल से उसकी छाती पर प्रहार किया। तब सात्यकि से युद्ध में अपने घोड़ों और सारथी के मारे जाने पर कृतवर्मा भूमि पर खड़ा होगया। तब हे राजन्! कृपाचार्य सात्यकि को मारने की इच्छा से वहाँ दौड़कर आये और महाबाहु कृतवर्मा को सारे धनुर्धरों के देखते हुए अपने, रथ में बैठा कर शीघ्रता से युद्धक्षेत्र से दूर ले गये।

शैनेयेऽधिष्ठिते राजन् विरथे कृतवर्मणि।
दुर्योधनबलं सर्वं पुनरासीत् पराङ्मुखम्॥ २५॥
दुर्योधनस्तु सम्प्रेक्ष्य भग्नं स्वबलमन्तिकात्।
जवेनाभ्यपतत् तूर्णं सर्वांश्चैको न्यवारयत्॥ २६॥
पाण्डूंश्च सर्वान् संक्रुद्धो धृष्टद्युम्नं च पार्षतम्।
शिखण्डिनं द्रौपदेयान् पञ्चालानां च ये गणाः॥ २७॥
केकयान् सोमकांश्चैव सृञ्जयांश्चैव मारिष।
असम्भ्रमं दुराधर्षः शितैर्बाणैरवाकिरत्।
अतिष्ठदाहवे यत्तः पुत्रस्तव महाबलः॥ २८॥

हे राजन्! जब सात्यकि युद्ध के लिये डटे रहे और कृतवर्मा रथ से रहित होकर चला गया, तब दुर्योधन की सारी सेना पुनः युद्ध से विमुख होगयी। दुर्योधन ने अपनी सेना को अपने समीप से भागते हुए देखा, तो वह तुरन्त तेजी से शत्रुओं पर टूट

पड़ा और अकेला ही शत्रुओं को रोकने लगा। हे मान्यवर! आपका दुर्घर्ष, महाबली, पुत्र प्रयत्न पूर्वक युद्धक्षेत्र में डटा रहा और अत्यन्त क्रुद्ध उसने सारे पाण्डवों, द्रुपदपुत्र, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, द्रौपदी के पुत्रों तथा पांचालों के समूहों, केकयों, सोमकों और सृंजयों को बिना घबराहट के तीखे बाणों से भर दिया।

इक्कीसवाँ अध्याय : दुर्योधन का पराक्रम। घोर संग्राम।

यं यं हि समरे योधं प्रपश्यामि विशाम्पते।
स स बाणैश्चितोऽभूद् वै पुत्रेण तव भारत॥ १॥
बाणभूतामपश्याम पृथिवीं पृथिवीपते।
दुर्योधनेन प्रकृतां क्षिप्रहस्तेन धन्विना॥ २॥
तेषु योधसहस्रेषु तावकेषु परेषु च।
एको दुर्योधनो ह्यासीत् पुमानिति मतिर्मम॥ ३॥
तत्राद्भुतमपश्याम तव पुत्रस्य विक्रमम्।
यदेकं सहिताः पार्था नाभ्यवर्तन्त भारत॥ ४॥

हे प्रजानाथ! उस समय मैने युद्धक्षेत्र में जिस भी योद्धा को देखा, हे भारत! वही मुझे आपके पुत्र के बाणों व्याप्त हुआ दिखाई दिया। हे पृथिवीपति! तब शीघ्रता से हाथ चलानेवाले धनुर्धर दुर्योधन द्वारा मैंने सारी भूमि को बाणों से आच्छादित किया हुआ देखा। मेरे विचार से उस समय आपके और शत्रुओं के हजारों योद्धाओं में एक दुर्योधन ही वीरपुरुष प्रतीत होरहा था। हे भारत! वहाँ हमने आपके पुत्र का अद्भुत पराक्रम देखा कि उस अकेले का, सारे कुन्तीपुत्र मिलकर भी सामना नहीं कर सके।

युधिष्ठिरं शतेनाजौ विव्याध भरतर्षभ।
भीमसेनं च सप्तत्या सहदेवं च पञ्चभिः॥ ५॥
नकुलं च चतुःषष्ट्या धृष्टद्युम्नं च पञ्चभिः।
सप्तभिर्द्रौपदेयांश्च त्रिभिर्विव्याध सात्यकिम्॥ ६॥
धनुश्चिच्छेद भल्लेन सहदेवस्य मारिष।
तदपास्य धनुश्छिन्नं माद्रीपुत्रः प्रतापवान्॥ ७॥
अभ्यद्रवत राजानं प्रगृह्यान्यन्महद् धनुः।
ततो दुर्योधनं संख्ये विव्याध दशभिः शरैः॥ ८॥

हे भरतश्रेष्ठ! उसने युद्धश्रेष्ठ में युधिष्ठिर पर सौ, भीमसेन पर सत्तर, सहदेव पर पाँच, नकुल पर चौंसठ, धृष्टद्युम्न पर पाँच, द्रौपदीपुत्रों पर सात और सात्यकि पर तीन बाणों की वर्षाकर उन्हें घायल किया। हे मान्यवर! उसने एक भल्ल से सहदेव के धनुष को काट दिया। तब प्रतापी माद्रीपुत्र ने टूटे हुए धनुष को छोड़कर और दूसरे विशाल धनुष को लेकर राजा दुर्योधन पर आक्रमण किया और युद्ध में उसे दस बाणों की वर्षा के द्वारा बींध दिया।

नकुलस्तु ततो वीरो राजानं नवभिः शरैः।
घोररूपैर्महेष्वासो विव्याध च ननाद च॥ ९॥
सात्यकिश्चैव राजानं शरेणानतपर्वणा।
द्रौपदेयास्त्रिसप्तत्या धर्मराजश्च पञ्चभिः॥ १०॥
अशीत्या भीमसेनश्च शरै राजानमार्पयन्।
समन्तात् कीर्यमाणस्तु बाणसंघैर्महात्मभिः॥ ११॥
न चचाल महाराज सर्वसैन्यस्य पश्यतः।
भीमसेनं रणे क्रुद्धो द्रोणपुत्रो न्यवारयत्॥ १२॥

तब महाधनुर्धर वीर नकुल ने राजा को नौ भयंकर बाणों से बींधा और गर्जना की। सात्यकि ने राजा पर झुकी गाँठवाले एक बाण से प्रहार किया। द्रौपदीपुत्रों ने उस पर तिहत्तर, धर्मराज युधिष्ठिर ने पाँच और भीमसेन ने अस्सी बाणों की वर्षा की। हे महाराज! इन मनस्वियों द्वारा सबतरफ से बाणसमूहों द्वारा भर दिये जाने पर भी वह सारी सेना के देखते हुए विचलित नहीं हुआ। भीमसेन को क्रुद्ध द्रोणपुत्र ने युद्ध में रोका।

तावुभौ क्रूरकर्माणावुभौ भारत दुःसहौ।
घोररूपमयुध्येतां कृतप्रतिकृतैषिणौ॥ १३॥
त्रासयन्तौ दिशः सर्वा ज्याक्षेपकठिनत्वचौ।
शकुनिस्तु रणे वीरो युधिष्ठिरमपीडयत्॥ १४॥
तस्याश्वांश्चतुरो हत्वा सुबलस्य सुतो विभो।
नादं चकार बलवत् सर्वसैन्यानि कोपयन्॥ १५॥
एतस्मिन्नन्तरे वीरं राजानमपराजितम्।
अपोवाह रथेनाजौ सहदेवः प्रतापवान्॥ १६॥

हे भारत! वेदोनों ही क्रूरकर्मा और दुधर्ष थे। प्रहार करने और प्रहार का उत्तर देने के इच्छुक वेदोनों भयंकर रूप से परस्पर युद्ध करने लगे। प्रत्यंचा को खींचने से उनदोनों के हाथों की त्वचा कठोर होगयी

थी। युद्ध करते हुए वे उस समय सारी दिशाओं को आतंकित कर रहे थे। उधर वीर शकुनि युद्ध में युधिष्ठिर को पीड़ा देने लगा। हे प्रभो। सुबलपुत्र ने उसके चारों घोड़ों को मारकर, सारी सेनाओं का क्रोध बढ़ाते हुए जोर से सिंहनाद किया। इसी बीच प्रतापी सहदेव किसी से पराजित न होनेवाले वीर राजा को रथद्वारा वहाँ से दूर ले गया।

अथान्यं रथमास्थाय धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः।
शकुनिं नवभिर्विद्ध्वा पुनर्विव्याध पञ्चभिः॥ १७॥
ननाद च महानादं प्रवरः सर्वधन्विनाम्।
उलूकस्तु महेष्वासं नकुलं युद्धदुर्मदम्॥ १८॥
अभ्यद्रवदमेयात्मा शरवर्षैः समन्ततः।
तथैव नकुलः शूरः सौबलस्य सुतं रणे॥ १९॥
शरवर्षेण महता समन्तात् पर्यवारयत्।
तौ तत्र समरे वीरौ कुलपुत्रौ महारथौ॥ २०॥
योधयन्तावपश्येतां कृतप्रतिकृतैषिणौ।
तथैव कृतवर्माणं शैनेयः शत्रुतापनः॥ २१॥

फिर धर्मपुत्र युधिष्ठिर ने दूसरे रथ पर बैठकर शकुनि को पहले नौ बाणों से बींधकर, फिर पाँच बाणों से बींधा और सारे धनुर्धरों में श्रेष्ठ उन्होंने तत्पश्चात् जोर से सिंहनाद किया। उधर अमित आत्मा उलूक ने युद्ध में दुर्मद, महाधनुर्धर, नकुल पर सबतरफ बाण बरसाते हुए आक्रमण किया। शूरवीर नकुल ने भी शकुनि के पुत्र को युद्धक्षेत्र में उसीप्रकार महान् बाणवर्षाद्वारा सब तरफ से आच्छादित कर दिया। वेदोनों ही उत्तम कुलों में उत्पन्न हुए वीर महारथी, प्रहार करने और प्रहार का उत्तर देने के इच्छुक होकर, युद्धक्षेत्र में युद्ध करते हुए दिखाई देरहे थे। उसीप्रकार शत्रुओं को सन्तप्त करनेवाले सात्यकि कृतवर्मा के साथ युद्ध कर रहे थे।

दुर्योधनो धनुश्छित्त्वा धृष्टद्युम्नस्य संयुगे।
अथैनं छिन्नधन्वानं विव्याध निशितैः शरैः॥ २२॥
धृष्टद्युम्नोऽपि समरे प्रगृह्य परमायुधम्।
राजानं योधयामास पश्यतां सर्वधन्विनाम्॥ २३॥
तयोर्युद्धं महच्चासीत् संग्रामे भरतर्षभ।
प्रभिन्नयोर्यथा सक्तं मत्तयोर्वरहस्तिनोः॥ २४॥
गौतमस्तु रणे क्रुद्धो द्रौपदेयान् महाबलान्।
विव्याध बहुभिः शूरः शरैः संनतपर्वभिः॥ २५॥
तस्य तैरभवद् युद्धमिन्द्रियैरिव देहिनः।
घोररूपमसंवार्यं निर्मर्यादमवर्तत॥ २६॥

उधर दुर्योधन ने धृष्टद्युम्न के धनुष को युद्ध में काटकर उसे पैने बाणों से बींध दिया। धृष्टद्युम्न ने भी तब दूसरे उत्तम धनुष को लेकर सारे धनुर्धरों के देखते हुए उस राजा से युद्ध किया। जैसे दो मस्त हाथी आपस में युद्ध करते हैं, वैसे हे भरतश्रेष्ठ! युद्धक्षेत्र में उनदोनों का महान् युद्ध दिखाई देरहा था। उधर शूरवीर कृपाचार्य ने युद्ध क्षेत्र में क्रुद्ध होकर महाबली द्रौपदी के पुत्रों को झुकी गाँठ वाले बहुत से बाणों से बींध दिया। उनका उन पाँचों वीरों के साथ, न निवारण किया जानेवाला, घोर और मर्यादारहित युद्ध ऐसे होने लगा, जैसे देहधारी आत्मा का पाँचों इन्द्रियों के साथ युद्ध होरहा हो।

ते च सम्पीडयामासुरिन्द्रियाणीव बालिशम्।
स च तान् प्रति संरब्धः प्रत्ययोधयदाहवे॥ २७॥
एवं चित्रमभूद् युद्धं तस्य तैः सह भारत।
उत्थायोत्थाय हि यथा देहिनामिन्द्रियैर्विभो॥ २८॥
नराश्चैव नरैः सार्धं दन्तिनो दन्तिभिस्तथा।
हया हयैः समासक्ता रथिनो रथिभिः सह।
संकुलं चाभवद् भूयो घोररूपं विशाम्पते॥ २९॥

जैसे इन्द्रियाँ मूढ़ मनुष्य को पीड़ा देती हैं, वैसे ही द्रौपदीपुत्रों ने कृपाचार्य को पीड़ा दी। कृपाचार्य भी उनसे अत्यन्त क्रोध में युद्धक्षेत्र में युद्ध कर रहे थे। हे भारत! कृपाचार्य का द्रौपदी के पुत्रों के साथ वह युद्ध वैसे ही विभिन्न रूप में होरहा था, जैसे बार बार उठ उठ कर विषयों में प्रवृत्त होनेवाली इन्द्रियों का देहधारी आत्मा के साथ युद्ध होता रहता है। हे प्रजानाथ! उस समय पैदल पैदलों के, हाथी हाथियों के, घुड़सवार घुड़सवारों के और रथी रथियों के साथ युद्ध कर रहे थे। वह युद्ध अत्यन्तघोर और घमासान होरहा था।

बाईसवाँ अध्याय : शकुनि का कूट युद्ध और पराजय।

वर्तमाने तदा युद्धे घोररूपे भयानके।
अभज्यत बलं तत्र तव पुत्रस्य पाण्डवैः॥ १॥
तांस्तु यत्नेन महता संनिवार्य महारथान्।
पुत्रस्ते योधयामास पाण्डवानामनीकिनीम्॥ २॥
निवृत्ताः सहसा योधास्तव पुत्रजयैषिणः।
संनिवृत्तेषु तेष्वेवं युद्धमासीत् सुदारुणम्॥ ३॥

हे राजन्! जब भयंकर घोर युद्ध होरहा था, तब पाण्डवों द्वारा आपके पुत्र की सेना के पाँव उखाड़ दिये गये। उन भागते हुए महारथियों को बड़े प्रयत्न से वापिसकर आपका पुत्र पाण्डवों की सेना से युद्ध करने लगा। आपके पुत्र की विजय को चाहनेवाले योद्धालोग लौट आये और उनके लौट आने पर दोनों सेनाओं में अत्यन्तदारुण युद्ध होने लगा।

ततो युधिष्ठिरो राजा क्रोधेन महता युतः।
त्रिभिः शारद्वतं विद्ध्वा रुक्मपुङ्खैः शिलाशितैः॥ ४॥
चतुर्भिर्निजघानाश्वान् नाराचैः कृतवर्मणः।
अश्वत्थामा तु हार्दिक्यमपोवाह यशस्विनम्॥ ५॥
अथशारद्वतोऽष्टाभिः प्रत्यविद्ध्यद् युधिष्ठिरम्।
ततो दुर्योधनो राजा रथान् सप्तशतान् रणे॥ ६॥
प्रैषयद् यत्र राजासौ धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः।
ते रथा रथिभिर्युक्ता मनोमारुतरंहसः॥ ७॥
अभ्यद्रवन्त संग्रामे कौन्तेयस्य रथं प्रति।

तब राजा युधिष्ठिर ने महान् कोप से युक्त होकर तीन सुनहरे पंखवाले, शिला पर तेज किये बाणों से कृपाचार्य को बींधकर, चार नाराचों से कृतवर्मा के चारों घोड़ों को मार दिया। तब अश्वत्थामा यशस्वी कृतवर्मा को वहाँ से दूर लेगया और कृपाचार्य ने आठ बाणों से युधिष्ठिर को बींधकर बदला चुकाया। फिर दुर्योधन ने सात सौ रथियों को वहाँ युद्धक्षेत्र में भेजा, जहाँ धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर विद्यमान थे। मन और वायु के समान वेगवाले वे रथियों से युक्त रथ, युद्धक्षेत्र में कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर के रथ की तरफ दौड़े।

ते समन्तान्महाराज परिवार्य युधिष्ठिरम्॥ ८॥
अदृश्यं सायकैश्चक्रुर्मेघा इव दिवाकरम्।
ते दृष्ट्वा धर्मराजानं कौरवेयैस्तथा कृतम्॥ ९॥
नामृष्यन्त सुसंरब्धाः शिखण्डिप्रमुखा रथाः।
रथैरश्ववरैर्युक्तैः किङ्किणीजालसंवृतैः॥ १०॥
आजग्मुरथ रक्षन्तः कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम्।
ततः प्रववृते रौद्रः संग्रामः शोणितोदकः॥ ११॥
पाण्डवानां कुरूणां च यमराष्ट्रविवर्धनः।
रथान् सप्तशतान् हत्वा कुरूणामाततायिनाम्॥ १२॥
पाण्डवाः सह पञ्चालैः पुनरेवाभ्यवारयन्।

हे महाराज! उन्होंने चारोंतरफ से घेरकर युधिष्ठिर को बाणों की वर्षा से ऐसे आच्छादित कर दिया जैसे बादल सूर्य को ढक देते हैं। तब कौरव सैनिकों के द्वारा धर्मराज की वैसी अवस्था की हुई देखकर अत्यन्त क्रुद्ध शिखण्डी आदि रथी, उसे सहन नहीं कर सके। वे छोटी छोटी घंटियों की जाली से ढके श्रेष्ठ घोड़ों के रथों द्वारा कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर की रक्षा के लिये वहाँ आगये। फिर कौरवों और पाण्डवों का खून पानी की तरह से बहानेवाला, मृत्यु के देश की वृद्धि करनेवाला, भयंकर संग्राम चालू होगया। पाण्डवयोद्धाओं ने पांचालों के साथ आततायी कौरवों के उन सात सौ रथियों को मारकर, दूसरे योद्धाओं को आगे बढ़ने से रोका।

तत्र युद्धं महच्चासीत् तव पुत्रस्य पाण्डवैः॥ १३॥
न च तत् तादृशं दृष्टं नैव चापि परिश्रुतम्।
ततो गान्धारराजस्य पुत्रः शकुनिरब्रवीत्॥ १४॥
युद्ध्यध्वमग्रतो यावत् पृष्ठतो हन्मि पाण्डवान्।
ततो नः सम्प्रयातानां मद्रयोधास्तरस्विनः॥ १५॥
हृष्टाः किलकिलाशब्दमकुर्वन्तापरे तथा।
अस्मांस्तु पुनरासाद्य लब्धलक्ष्या दुरासदाः॥ १६॥
शरासनानि धुन्वन्तः शरवर्षैरवाकिरन्।

उस समय वहाँ आपके पुत्र का पाण्डवों के साथ बड़ा भयंकर युद्ध हुआ। वैसा युद्ध न तो पहले कभी देखा था और न सुना था। तब गान्धारराज का पुत्र शकुनि बोला कि तुम लोग आगे पाण्डवों के साथ युद्ध करो, मैं तब तक पीछे से पाण्डव सेना का संहार करता हूँ। तब इस योजना के अनुसार जब हम चले, तो वेगवान् मद्रदेश के योद्धा और दूसरे सैनिक हर्षित होकर किलकारियाँ मारने लगे। तभी दुर्धर्ष पाण्डव हमारे पास आ गये और हमें अपने

उद्देश्य की प्राप्ति के रूप में पा कर धनुषों को हिलाते हुए हमारे ऊपर बाणों की वर्षा करने लगे।

ततो हतं परैस्तत्र मद्रराजबलं तदा॥ १७॥
दुर्योधनबलं दृष्ट्वा पुनरासीत् पराङ्मुखम्।
गान्धारराजस्तु पुनर्वाक्यमाह ततो बली॥ १८॥
निवर्तध्वमधर्मज्ञा युध्यध्वं किं सृतेन वः।
अनीकं दशसाहस्रमश्वानां भरतर्षभ॥ १९॥
आसीद् गान्धारराजस्य विशालप्रासयोधिनाम्।
बलेन तेन विक्रम्य वर्तमाने जनक्षये॥ २०॥
पृष्ठतः पाण्डवानीकमभ्यघ्नन्निशितैः शरैः।

तब शत्रुओं ने मद्रराज की सेना का संहार कर दिया। दुर्योधन की सेना यह देखकर पुनः युद्ध से विमुख होने लगी। तब बलवान् शकुनि ने उनसे कहा कि अरे धर्म को न जाननेवालों! तुम्हारे भागने से क्या होगा? लौट आओ और युद्ध करो। हे भरतश्रेष्ठ! उस समय गान्धारराज के पास दस हजार घुड़सवारों की सेना थी, जो विशाल प्रासों से युद्ध करते थे। जनसंहारकारी युद्ध में वह उस सेना को लेकर पाण्डवों की सेना के पीछे की तरफ गया और वेसब पराक्रम करके तीखे बाणों से उस को मारने लगे।

तदभ्रमिव वातेन क्षिप्यमाणं समन्ततः॥ २१॥
अभज्यत महाराज पाण्डूनां सुमहद् बलम्।
ततो युधिष्ठिरः प्रेक्ष्य भग्नं स्वबलमन्तिकात्॥ २२॥
अभ्यनादयदव्यग्रः सहदेवं महाबलम्।
असौ सुबलपुत्रो नो जघनं पीड्य दंशितः॥ २३॥
सैन्यानि सूदयत्येष पश्य पाण्डव दुर्मतिम्।
गच्छ त्वं द्रौपदेयैश्च शकुनिं सौबलं जहि॥ २४॥
रथानीकमहं धक्ष्ये पाञ्चालसहितोऽनघ।

हे महाराज! तब पाण्डवों की विशाल सेना का व्यूह शकुनि के आक्रमण से ऐसे छिन्न होगया, जैसे वायु द्वारा बादल छितरा जाते हैं। तब युधिष्ठिर ने अपने समीप की सेना में भगदड़ मची हुई देखकर, बिना व्यग्रता से महाबली सहदेव को पुकारा। उन्होंने कहा कि हे पाण्डुपुत्र! यह कवचधारी दुर्मति सुबलपुत्र हमारी सेना के पिछले भाग को पीड़ित कर रहा है। उसे जाकर देखो। हे निष्पाप! तुम द्रौपदी के पुत्रों के साथ जाकर सुबलपुत्र शकुनि को मारो। मैं पांचालसेना के साथ यहाँ रथियों की सेना को नष्ट करूँगा।

गच्छन्तु कुञ्जराः सर्वे वाजिनश्च सह त्वया॥ २५॥
पादाताश्च त्रिसाहस्राः शकुनिं तैर्वृतो जहि।
ततो गजाः सप्तशताश्चापपाणिभिरास्थिताः॥ २६॥
पञ्च चाश्वसहस्राणि सहदेवश्च वीर्यवान्।
पादाताश्च त्रिसाहस्रा द्रौपदेयाश्च सर्वशः॥ २७॥
रणे ह्यभ्यद्रवंस्ते तु शकुनिं युद्धदुर्मदम्।
ते तत्र सादिनः शूराः सौबलस्य महद् बलम्॥ २८॥
रणमध्ये व्यतिष्ठन्त शरवर्षैरवाकिरन्।
रुधिरोक्षितसर्वाङ्गा विप्रविद्धैर्नियन्तृभिः॥ २९॥
हयाः परिपतन्ति स्म शतशोऽथ सहस्रशः।

सारे हाथी, और घुड़सवार, और तीन हजार पैदल भी तुम्हारे साथ जायेंगे। तुम उनके साथ शकुनि को मारो। तब धनुर्धर सवारों से युक्त सात सौ हाथी, पाँच हजार घोड़े, तीन हजार पैदल, पराक्रमी सहदेव तथा द्रौपदीपुत्र, उन्होंने युद्ध में दुर्मद शकुनि पर आक्रमण किया। युद्धक्षेत्र में स्थिर होकर उन शूरवीर सवारों ने शकुनि की विशाल सेना को बाणों से भर दिया। उस समय सैकड़ों और हजारों खून से लथपथ अंगोंवाले घोड़े अपने घायल सवारों के साथ भूमि पर गिर रहे थे।

अन्योन्यं परिपिष्टाश्च समासाद्य परस्परम्॥ ३०॥
आविक्षताः स्म दृश्यन्ते वमन्तो रुधिरं मुखैः।
मल्ला इव समासाद्य निजघ्नुरितरेतरम्॥ ३१॥
अश्वैश्च व्यपकृष्यन्त बहवोऽत्र गतासवः।
भूमौ निपतिताश्चान्ये बहवो विजयैषिणः॥ ३२॥
तत्र तत्र व्यदृश्यन्त पुरुषाः शूरमानिनः।
दूरं न शक्यं तत्रासीद् गन्तुमश्वेन केनचित्॥ ३३॥
साश्वारोहैर्हतैरश्वैरावृते वसुधातले।

वहाँ बहुतसे सैनिक एकदूसरे से टकराकर परस्पर के द्वारा पिस जाते थे। बहुतसे घायल होकर मुख से खून की उल्टी कर रहे थे। कुछ सैनिक पहलवानों की तरह आपस में लड़ते हुए एक दूसरे पर चोट कर रहे थे। अनेक प्राणहीन सैनिक अपने घोडोंद्वारा खींचे जारहे थे। बहुत से विजय के इच्छुक अपने को शूरवीर मानने वाले पुरुष भूमि पर पड़े हुए थे। भूमितल के सवारों के साथ घोड़ों की लाशों से भर जाने के कारण, किसी के लिये भी घोड़े के द्वारा दूरतक जाना कठिन होगया था।

रुधिरोक्षितसन्नाहैरात्त- शस्त्रैरुदायुधैः॥ ३४॥
नानाप्रहरणैर्घोरैः परस्परवधैषिभिः।
सुसंनिकृष्टैः संग्रामे हतभूयिष्ठसैनिकैः॥ ३५॥
स मुहूर्तं ततो युद्ध्वा सौबलोऽथ विशाम्पते।
षट्साहस्रैर्हयैः शिष्टैरपायाच्छकुनिस्ततः॥ ३६॥

जिनके कवच खून से भर गये थे, जिन्होंने हथियारों को ऊपर को उठाया हुआ था, जो अनेकप्रकार के भयंकर आयुधों से एक दूसरे के वध की इच्छा रखते थे और निकट जा कर युद्ध करते थे, उनमें से बहुतसे योद्धा काट दिये गये थे। हे प्रजानाथ! शकुनि तब वहाँ एक मुहूर्त तक युद्ध कर शेष छै हजार घुड़सवारों के साथ वहाँ से भाग गया।

ततस्तु द्रौपदेयाश्च ते च मत्ता महाद्विपाः।
प्रययुर्यत्र पाञ्चाल्यो धृष्टद्युम्नो महारथः॥ ३७॥
सहदेवोऽपि कौरव्य रजोमेघे समुत्थिते।
एकाकी प्रययौ तत्र यत्र राजा युधिष्ठिरः॥ ३८॥
ततस्तेषु प्रयातेषु शकुनिः सौबलः पुनः।
पार्श्वतोऽभ्यहनत् क्रुद्धो धृष्टद्युम्नस्य वाहिनीम्॥ ३९॥
तत् पुनस्तुमुलं युद्धं प्राणांस्त्यक्त्वाभ्यवर्तत।
तावकानां परेषां च परस्परवधैषिणाम्॥ ४०॥

तब द्रौपदी के पुत्र और वे मस्त विशाल हाथी, वहाँ चले गये, जहाँ पांचालकुमार महारथी धृष्टद्युम्न युद्ध कर रहा था। सहदेव भी अकेले राजा युधिष्ठिर के पास चले गये उस समय वहाँ धूलका बादल उठ रहा था। उनके चले जाने पर शकुनि ने पुनः क्रोध में भरकर बगल से आकर धृष्टद्युम्न की सेना पर आक्रमण किया। तब आपके और शत्रुओं के योद्धाओं का जो एकदूसरे का वध चाहते थे, प्राणों का मोह छोड़कर भयंकर युद्ध होने लगा।

असिभिश्छिद्यमानानां शिरसां लोकसंक्षये।
प्रादुरासीन्महाञ्शब्दस्तालानां पततामिव॥ ४१॥
विमुक्तानां शरीराणां छिन्नानां पततां भुवि।
सायुधानां च बाहूनामूरूणां च विशाम्पते॥ ४२॥
आसीत् कटकटाशब्दः सुमहाँल्लोमहर्षणः।
निघ्नन्तो निशितैः शस्त्रैर्भ्रातॄन् पुत्रान् सखीनपि॥ ४३॥
योधाः परिपतन्ति स्म यथामिषकृते खगाः।

लोगों का विनाश करनेवाले उस संग्राम में, तलवारों से काटे जाते हुए, सिरों का गिरते हुए ऐसे शब्द होरहा था, जैसे ताल वृक्ष पर से उसके फल टूटकर गिर रहे हों। हे प्रजानाथ! वहाँ छिन्न हुए, कवचों से रहित होकर भूमि पर गिरते हुए शरीरों, हथियारसहित कटी हुई बाँहों और जाँघों का, अत्यधिक रोंगटे खड़े कर देनेवाला कट कट शब्द होरहा था। तीखे हथियारों से अपने भाइयों, पुत्रों और मित्रों को भी मारते हुए योद्धा लोग एकदूसरे पर ऐसे झपट रहे थे, जैसे माँस के लोभी पक्षी एकदूसरे पर टूटे पड़ते हैं।

अन्योन्यं प्रतिसंरब्धाः समासाद्य परस्परम्॥ ४४॥
अहं पूर्वमहं पूर्वमिति न्यघ्नन् सहस्रशः।
संघातेनासनभ्रष्टैर- श्वारोहैर्गतासुभिः॥ ४५॥
हयाः परिपतन्ति स्म शतशोऽथ सहस्रशः।
असिभिः पट्टिशैः शूलैस्तक्ष्यमाणाः पुनः पुनः॥ ४६॥
तावकाः पाण्डवेयाश्च न न्यवर्तन्त भारत।
प्रहरन्तो यथाशक्ति यावत् प्राणस्य धारणम्॥ ४७॥
योधाः परिपतन्ति स्म वमन्तो रुधिरं व्रणैः।

एकदूसरे के प्रति अत्यन्तक्रुद्ध एकदूसरे पर आक्रमण करते हुए, उन्होंने पहले मैं, पहले मैं ऐसा कहते हुए असंख्य सैनिकों को मार दिया। शत्रुओं के प्रहार से प्राणहीन और अपने आसन से भ्रष्ट हुए सवारों के साथ सैकड़ों और हजारों घोड़े वहाँ धराशायी होरहे थे। हे भारत! तलवारों, पट्टिशों और शूलों से बार बार घायल होते हुए आपके और पाण्डवों के भी योद्धालोग युद्ध से पीछे नहीं हटते थे। जब तक शरीर में प्राण रहते, तब तक यथाशक्ति प्रहार करते हुए, अन्त में अपने घावों से खून बहाते हुए, योद्धालोग भूमि पर गिर पड़ते थे।

मन्दीभूते ततः शब्दे पाण्डवानां महद् बलम्॥ ४८॥
अल्पावशिष्टैस्तुरगैरभ्यवर्तत सौबलः।
ततोऽभ्यधावंस्त्वरिताः पाण्डवा जयगृद्धिनः॥ ४९॥
पदातयश्च नागाश्च सादिनश्चोद्यतायुधाः।
कोष्ठकीकृत्य चाप्येनं परिक्षिप्य च सर्वशः॥ ५०॥
शस्त्रैर्नानाविधैर्जघ्नुर्युद्धपारं तितीर्षवः।

जब युद्ध का कोलाहल कुछ कम हुआ, तब थोड़े से बचे अपने घुड़सवारों के साथ, शकुनि पुनः पाण्डवों की विशाल सेना पर टूट पड़ा। तब विजय के इच्छुक पाण्डवों ने भी तुरन्त उस पर आक्रमण कर दिया। पैदल, हाथीसवार और घुड़सवार अपने हथियारों को उठाये हुए शकुनि को घेरकर, उस पर आक्रमण करते हुए, अनेकप्रकार के

हथियारों से उसे घायल करने लगे। वे युद्ध के पार जाना चाहते थे।

त्वदीयास्तांस्तु सम्प्रेक्ष्य सर्वतः समभिद्रुतान्॥ ५१॥
रथाश्वपत्तिद्विरदाः पाण्डवानभिदुद्रुवुः।
केचित् पदातयः पद्भिर्मुष्टिभिश्च परस्परम्॥ ५२॥
निजघ्नुः समरे शूराः क्षीणशस्त्रास्ततोऽपतन्।
एवमासीदमर्यादं युद्धं भरतसत्तम।
प्रासासिबाणकलिले वर्तमाने सुदारुणे॥ ५३॥

तब पाण्डव सैनिकों को सबतरफ से आक्रमण करते हुए देखकर, आपके भी रथ, घोड़े, हाथी और पैदल पाण्डवसेना पर टूट पड़े। कुछ पैदलसैनिक पैदलसैनिकों भिड़ गये और शस्त्रों के टूट जाने पर मुट्ठियों से ही एकदूसरे को मारने लगे तथा इसीतरह लड़ते हुए भूमि पर गिर पड़े। हे भरतश्रेष्ठ! इसप्रकार प्रास, तलवार और बाणों से भरे उस अत्यन्तदारुण युद्धक्षेत्र में मर्यादारहित युद्ध चल रहा था।

तेईसवाँ अध्याय : अर्जुन द्वारा दुर्योधन की निन्दा, रथसेना का संहार।

तस्मिञ्शब्दे मृदौ जाते पाण्डवैर्निहते बले।
अश्वैः सप्तशतैः शिष्टैरुपावर्तत सौबलः॥ १॥
स यात्वा वाहिनीं तूर्णमब्रवीत् त्वरयन् युधि।
युद्ध्यध्वमिति संहृष्टाः पुनः पुनररिंदमाः॥ २॥
अपृच्छत् क्षत्रियांस्तत्र क्व नु राजा महाबलः।
शकुनेस्तद् वचः श्रुत्वा तमूचुर्भरतर्षभ॥ ३॥
असौ तिष्ठति कौरव्यो रणमध्ये महाबलः।
यत्र ते सतनुत्राणा रथास्तिष्ठन्ति दंशिताः॥ ४॥

जब पाण्डवों द्वारा अधिकाँश कौरवसेना का संहार कर दिया गया और युद्ध का कोलाहल कुछ कम होगया, तब शकुनि बचे हुए सौ घुड़सवारों के साथ वापिस लौट आया। वह कौरवसेना में पहुँचकर तुरन्त युद्ध के लिये प्रेरणा देता हुआ बोला कि हे शत्रुओं का दमन करने वालों! तुम उत्साह के साथ युद्ध करो। फिर उसने बार बार उनसे पूछा कि हे क्षत्रियों! वह महाबली राजा दुर्योधन कहाँ है? हे भरतश्रेष्ठ! शकुनि की उस बात को सुनकर उन्होंने कहा कि वह महाबली कुरुराज युद्धक्षेत्र के बीच में हैं जहाँ वे कवचों और आवरणों से सुसज्जित रथ खड़े हुए हैं।

एवमुक्तस्तु तैर्योधैः शकुनिः सौबलस्तदा।
प्रययौ तत्र यत्रासौ पुत्रस्तव नराधिप॥ ५॥
सर्वतः संवृतो वीरैः समरे चित्रयोधिभिः।
ततो दुर्योधनं दृष्ट्वा रथानीके व्यवस्थितम्॥ ६॥
स रथांस्तावकान् सर्वान् हर्षयञ्शकुनिस्ततः।
दुर्योधनमिदं वाक्यं हृष्टरूपो विशाम्पते॥ ७॥
कृतकार्यमिवात्मानं मन्यमानोऽब्रवीन्नृपम्।

योद्धाओं द्वारा ऐसा कहे जाने पर, हे नराधिप! सुबलपुत्र शकुनि वहाँ गया, जहाँ वह आपका पुत्र सबतरफ से युद्धक्षेत्र में विभिन्नप्रकार से युद्ध करनेवाले योद्धाओं से घिरा हुआ खड़ा था। हे प्रजानाथ! तब रथसेना में दुर्योधन को विद्यमान देखकर, शकुनि अपने आपको कृतकार्यसा मानता हुआ, आपके सारे रथियों को हर्षित करता हुआ, राजा दुर्योधन से उत्साह सहित बोला कि—

जहि राजन् रथानीकमश्वाः सर्वे जिता मया॥ ८॥
नात्यक्त्वा जीवितं संख्ये शक्यो जेतुं युधिष्ठिरः।
हते तस्मिन् रथानीके पाण्डवेनाभिपालिते॥ ९॥
गजानेतान् हनिष्यामः पदातींश्चेतरांस्तथा।
श्रुत्वा तु वचनं तस्य तावका जयगृद्धिनः॥ १०॥
सर्वे विवृततूणीराः प्रगृहीतशरासनाः।
शरासनानि धुन्वानाः सिंहनादान् प्रणेदिरे॥ ११॥
ततो ज्यातलनिर्घोषः पुनरासीद् विशाम्पते।
प्रादुरासीच्छराणां च सुमुक्तानां सुदारुणः॥ १२॥

हे राजन्! आप रथियों की सेना को मार दो। मैने सारे घुड़सवारों को जीत लिया है। युधिष्ठिर को प्राणों का त्याग किये बिना नहीं जीता जा सकता। पाण्डुपुत्र से सुरक्षित इस रथसेना के मारे जाने पर, हम इन हाथी सवारों, पैदलों और दूसरों को भी मार लेंगे। उसकी इस बात को सुनकर आपके विजय को चाहनेवाले सैनिक धनुषों को लेकर और तरकसों के मुखों को खोलकर, धनुषों को हिलाते हुए सिंहनाद करने लगे। हे प्रजानाथ पुनः धनुषों की टंकारों की ध्वनि, और अच्छीतरह से छोड़े हुए तीरों की अत्यन्तदारुण सनसनाहट होने लगी।

तान् समीपगतान् दृष्ट्वा जवेनोद्यतकार्मुकान्।
उवाच देवकीपुत्रं कुन्तीपुत्रो धनंजयः॥ १३॥
चोदयाश्वानसम्भ्रान्तः प्रविशैतद् बलार्णवम्।
अन्तमद्य गमिष्यामि शत्रूणां निशितैः शरैः॥ १४॥
अष्टादश दिनान्यद्य युद्धस्यास्य जनार्दन।
वर्तमानस्य महतः समासाद्य परस्परम्॥ १५॥
समुद्रकल्पं च बलं धार्तराष्ट्रस्य माधव।
अस्मानासाद्य संजातं गोष्पदोपममच्युत॥ १६॥

तब उन लोगों को धनुषों को उठाकर तेजी से समीप आते हुए देखकर कुन्तीपुत्र अर्जुन ने देवकी पुत्र श्रीकृष्णजी से कहा कि आप स्वस्थ चित्त से इस सेनारूपी सागर में प्रवेश कीजिये। आज मैं तीखे बाणों से इन शत्रुओं का अन्त करूँगा। हे जनार्दन! आज इस युद्ध को करते हुए अठारहवाँ दिन चल रहा है। हम तब से आपस में महान् युद्ध कर रहे हैं। हे अच्युत, माधव! दुर्योधन की समुद्र के समान विशाल सेना हमसे टकराती हुई अब गाय के खुर के समान रह गयी है।

हते भीष्मे तु संदध्याच्छिवं स्यादिह माधव।
न च तत् कृतवान् मूढो धार्तराष्ट्रः सुबालिशः॥ १७॥
मूढांस्तु सर्वथा मन्ये धार्तराष्ट्रान् सुबालिशान्।
पतिते शान्तनोः पुत्रे येऽकार्षुः संयुगं पुनः॥ १८॥
अनन्तरं च निहते द्रोणे ब्रह्मविदां वरे।
राधेये च विकर्णे च नैवाशाम्यत वैशसम्॥ १९॥

हे माधव! यदि भीष्म पितामह के गिराये जाने पर, अत्यन्तअज्ञानी, मूर्ख, दुर्योधन सन्धि कर लेता, तो सबकी भलाई होती, पर उसने ऐसा नहीं किया। मैं धृतराष्ट्र के सारे पुत्रों को पूरीतरह से मूर्ख और अत्यन्तअज्ञानी समझता हूँ, जो शान्तनुपुत्र के गिरने पर भी उन्होंने पुनः युद्ध को चलाये रखा। फिर वेदवेत्ताओं में श्रेष्ठ द्रोणाचार्य के, राधापुत्र और विकर्ण के मारे जाने पर भी, मारकाट बन्द नहीं हुई।

भगदत्ते हते शूरे काम्बोजे च सुदारुणे।
दुःशासने च निहते नैवाशाम्यत वैशसम्॥ २०॥
को नु राजकुले जातः कौरवेयो विशेषतः।
निरर्थकं महद् वैरं कुर्यादन्यः सुयोधनात्॥ २१॥
गुणतोऽभ्यधिकाञ्ज्ञात्वा बलतः शौर्यतोऽपि वा।
अमूढः को नु युद्ध्येत जानन् प्राज्ञो हिताहितम्॥ २४॥
यन्न तस्य मनो ह्यासीत् त्वयोक्तस्य हितं वचः।
प्रशमे पाण्डवैः सार्धं सोऽन्यस्य शृणुयात् कथम्॥ २५॥

शूरवीर भगदत्त के, अत्यन्तदारुण काम्बोजराज के और दुश्शासन के मारे जाने पर भी मारकाट बन्द नहीं हुई। राजाओं के विशेषकर कौरवों के कुल में जन्म लेकर, दुर्योधन के अतिरिक्त कौन ऐसा व्यक्ति होगा, जो व्यर्थ ही अपने बन्धुओं से वैर करेगा? कौन ऐसा मूर्खताशून्य, बुद्धिमान् व्यक्ति होगा, जो दूसरों को गुणों में, बल में और पराक्रम में अपने से अधिक जानने पर भी, अपने भलेबुरे को समझते हुए भी उनसे युद्ध करेगा? आपके द्वारा कही हुई हितकारी बातों को सुनकर भी, जो उस दुर्योधन का मन पाण्डवों के साथ शान्ति स्थापना के लिये नहीं हुआ, वह किसी और की बात कैसे सुन सकता है?

येन शान्तनवो वीरो द्रोणो विदुर एव च॥ २५॥
प्रत्याख्याताः शमस्यार्थे किं नु तस्याद्य भेषजम्।
मौर्ख्याद् येन पिता वृद्धः प्रत्याख्यातो जनार्दन॥ २६॥
तथा माता हितं वाक्यं भाषमाणा हितैषिणी।
प्रत्याख्याता ह्यसत्कृत्य स कस्मै रोचयेद् वचः॥ २७॥
कुलान्तकरणो व्यक्तं जात एष जनार्दन।
तथास्य दृश्यते चेष्टा नीतिश्चैव विशाम्पते॥ २८॥

जिसने वीर शान्तनुपुत्र भीष्म, द्रोणाचार्य और विदुर की शान्तिस्थापना के लिये कही बातों को मानने से मना कर दिया, उसका अब क्या उपचार है? हे जनार्दन! जिसने मूर्खता के कारण बूढ़े पिता की बात की अवहेलना कर दी, कल्याण की बातें कहनेवाली माता की हितकारी बातों का अपमानकर मानने से मना कर दिया, उसे किस की बात अच्छी लगेगी? हे जनार्दन, हे प्रजानाथ! यह स्पष्ट है कि दुर्योधन अपने कुल का अन्त करने के लिये पैदा हुआ है। इसकी नीति और चेष्टाएँ ऐसीही दिखाई देरही हैं।

नैष दास्यति नो राज्यमिति मे मतिरच्युत।
उक्तोऽहं बहुशस्तात विदुरेण महात्मना॥ २९॥
न जीवन् दास्यते भागं धार्तराष्ट्रस्तु मानद।
यावत् प्राणा धरिष्यन्ति धार्तराष्ट्रस्य दुर्मतेः॥ ३०॥
तावद् युष्मास्वपापेषु प्रचरिष्यति पापकम्।
न च युक्तोऽन्यथा जेतुमृते युद्धेन माधव॥ ३१॥

इत्यब्रवीत् सदा मां हि विदुरः सत्यदर्शनः।
तत् सर्वमद्य जानामि व्यवसायं दुरात्मनः॥ ३२॥
यदुक्तं वचनं तेन विदुरेण महात्मना।

हे अच्युत! मेरा विचार है कि यह अब भी हमें हमारा राज्य नहीं देगा। हे तात्! महात्मा विदुर ने यह बात मुझसे अनेकबार कही है। हे दूसरों को मान देनेवाले! दुर्योधन जीतेजी हमारा भाग हमें नहीं देगा। धृतराष्ट्रपुत्र के शरीर में जब तक प्राण रहेंगे, तबतक वह आप जैसे निष्पाप बन्धुओं के प्रति भी पापपूर्ण आचरण ही करता रहेगा। हे माधव! मुझसे सत्य बात को देखनेवाले विदुरजी ने सदा यही कहा है कि उसे बिना युद्ध के किसी दूसरे उपाय से जीता ही नहीं जा सकता। महात्मा विदुर ने मुझसे इस दुरात्मा के बारे में जो भी कहा है, उन सबको आज मैं इसके व्यवसायों से जान रहा हूँ।

सोऽद्य सर्वान् रणे योधान् निहनिष्यामि माधव॥ ३३॥
क्षत्रियेषु हतेष्वाशु शून्ये च शिबिरे कृते।
वधाय चात्मनोऽस्माभिः संयुगं रोचयिष्यति॥ ३४॥
तदन्तं हि भवेद् वैरमनुमानेन माधव।
एवं पश्यामि वार्ष्णेय चिन्तयन् प्रज्ञया स्वया॥ ३५॥
विदुरस्य च वाक्येन चेष्टया च दुरात्मनः।
तस्माद् याहि चमूं वीर यावद्धन्मि शितैः शरैः॥ ३६॥
दुर्योधनं महाबाहो वाहिनीं चास्य संयुगे।

हे माधव! इसलिये मैं आज युद्धस्थल में सारे योद्धाओं को मार दूँगा। जब जल्दीही क्षत्रिय मारे जायेंगे, शिविर सूना होजायेगा, फिर भी यह अपने वध के लिये हमसे लड़ना पसन्द करेगा। हे माधव! मेरे अनुमान से इसका वध होने पर ही वैर का अन्त होगा। हे वार्ष्णेय अपनी बुद्धि से विचारकर, विदुरजी के वाक्यों से, और इस दुरात्मा की चेष्टाओं से मैं ऐसाही होता हुआ देख रहा हूँ। इसलिये हे महाबाहु वीर! आप कौरवसेना की तरफ चलिये, जिससे मैं तीखे बाणों से दुर्योधन और उसकी सेना को युद्धस्थल में मारूँ।

क्षेममद्य करिष्यामि धर्मराजस्य माधव॥ ३७॥
हत्वैतद् दुर्बलं सैन्यं धार्तराष्ट्रस्य पश्यतः।
अभीषुहस्तो दाशार्हस्तथोक्तः सव्यसाचिना॥ ३८॥
तद् बलौघममित्राणामभीतः प्राविशद् बलात्।
ततः प्रायाद् रथेनाजौ सव्यसाची परंतपः॥ ३९॥
किरञ्शरशतांस्तीक्ष्णान् वारिधारा घनो यथा।
प्रादुरासीन्महाञ्शब्दः शराणां नतपर्वणाम्॥ ४०॥

हे माधव! आज दुर्योधन के देखते हुए, इस दुर्बल सेना को मारकर धर्मराज का कल्याण करूँगा। तब अर्जुनद्वारा यह कहे जाने पर, लगाम हाथ में पकड़े श्रीकृष्णजी ने निर्भयता के साथ, बलपूर्वक शत्रुसेना में प्रवेश किया। तब शत्रुओं को सन्तप्त करनेवाले अर्जुन सैंकड़ों तीखे बाणों की ऐसी वर्षा करते हुए, जैसे बादल जल की धारा बरसाते हैं, रथ के द्वारा आगे बढ़े। तब झुकी गाँठवाले बाणों का महान् शब्द होने लगा।

इन्द्राशनिसमस्पर्शा गाण्डीवप्रेषिताः शराः।
नरान् नागान् समाहत्य हयांश्चापि विशाम्पते॥ ४१॥
अपतन्त रणे बाणाः पतङ्गा इव घोषिणः।
ते दह्यमानाः पार्थेन पावकेनेव कुञ्जराः॥ ४२॥
पार्थं न प्रजहुर्घोरा वध्यमानाः शितैः शरैः।
शरचापधरः पार्थः प्रज्वलन्निव भास्करः।
ददाह समरे योधान् कक्षमग्निरिव ज्वलन्॥ ४३॥

गाण्डीवधनुष से छोड़े हुए, वज्र के समान स्पर्शवाले बाण हे प्रजानाथ! मनुष्यों, हाथियों और घोड़ों को मारकर शब्द करते हुए युद्धस्थल में टिड्डीदल के समान गिर रहे थे। किन्तु वे भयंकर कौरवयोद्धा कुन्तीपुत्रद्वारा तीखे बाणों से मारे जाते हुए भी, दावानल से जलते हुए हाथियों के समान अर्जुन को छोड़कर हटते नहीं थे। जैसे प्रज्वलित हुई अग्नि घासफूस को जला देती है, वैसे ही धनुषबाणधारी अर्जुन, सूर्य के समान प्रज्वलित होते हुए, योद्धाओं को समरभूमि में दग्ध कर रहे थे।

तस्येषवः प्राणहराः सुमुक्ता
नासज्जन् वै वर्मसु रुक्मपुङ्खाः।
न च द्वितीयं प्रमुमोच बाणं
नरे हये वा परमद्विपे वा॥ ४४॥

प्राणों को हरनेवाले, अच्छी तरह से छोड़े हुए,, सुनहरे पंखों वाले अर्जुन के बाण कवचों पर अटकते नहीं थे। अर्जुन मनुष्य, घोड़े, और विशालकाय हाथी पर भी दूसरे बाण को नहीं छोड़ते थे, अर्थात् एक बाण से ही उसे समाप्त कर देते थे।

चौबीसवाँ अध्याय : भीम और अर्जुन द्वारा कौरव सेना का संहार। अश्वत्थामा आदि द्वारा दुर्योधन की खोज। सात्यकि का संजय को पकड़ना।

पश्यतां यतमानानां शूराणामनिवर्तिनाम्।
संकल्पमकरोन्मोघं गाण्डीवेन धनंजयः॥ १॥
तत् सैन्यं भरतश्रेष्ठ वध्यमानं किरीटिना।
सम्प्रदुद्राव संग्रामात् तव पुत्रस्य पश्यतः॥ २॥
पितॄन् भ्रातॄन् परित्यज्य वयस्यानपि चापरे।
हतधुर्या रथाः केचिद्धतसूतास्तथा परे॥ ३॥
भग्नाक्षयुगचक्रेषाः केचिदासन् विशाम्पते।
अन्येषां सायकाः क्षीणास्तथान्ये बाणपीडिताः॥ ४॥

कौरवपक्ष के शूरवीरयोद्धा युद्ध से न लौटने का संकल्प लेकर डटे हुए थे, पर उनके देखते हुए ही अर्जुन ने अपने गाण्डीव धनुष से उनके संकल्प को व्यर्थ कर दिया। हे भरतश्रेष्ठ! अर्जुन के द्वारा मारी जाती हुई, वह सेना आपके पुत्र के देखते ही युद्धक्षेत्र से भाग चली। उनमें से कितनों ही के रथों के घोड़े मारे गये, तो कितनों के सारथी मारे गये। अपने पिता, भाईयों और मित्रों को भी छोड़कर वे भागे जारहे थे। हे प्रजानाथ! किन्ही के रथों के जूए, धुरे, पहिये और ईषादण्ड टूट गये थे, किन्ही के बाण समाप्त होगये थे और कोई अर्जुन के बाणों से पीड़ित होरहे थे।

निःश्वसन्ति स्म दृश्यन्ते पार्थबाणहता नराः।
तानन्ये रथमारोप्य ह्याश्वास्य च मुहूर्तकम्॥ ५॥
विश्रान्ताश्च वितृष्णाश्च पुनर्युद्धाय जग्मिरे।
तानपास्य गताः केचित् पुनरेव युयुत्सवः॥ ६॥
कुर्वन्तस्तव पुत्रस्य शासनं युद्धदुर्मदाः।
पानीयमपरे पीत्वा पर्याश्वास्य च वाहनम्॥ ७॥
वर्माणि च समारोप्य केचिद् भरतसत्तम।
समाश्वास्यापरे भ्रातॄन् निक्षिप्य शिबिरेऽपि च॥ ८॥
पुत्रानन्ये पितॄनन्ये पुनर्युद्धमरोचयन्।

अर्जुन के बाणों से घायल कितने ही लोग लम्बी साँसें लेते हुए दिखाई देरहे थे। उन्हें दूसरेलोग रथ पर बैठाकर और थोड़ी देर तक उन्हें धीरज बँधाकर, तथा स्वयं भी आराम करके, एवं प्यास बुझाकर पुनः लड़ने को चले जाते थे। कुछ दूसरे युद्धदुर्मद लोग पुनः लड़ने के इच्छुक होने के कारण, उन घायलों को वैसे ही छोड़कर, आपके पुत्र के आदेश का पालन करने के लिये युद्धार्थ चले जाते थे। हे भरतश्रेष्ठ! कुछ पानी पीकर घोड़ों को आराम कराकर, कवच को बाँधकर युद्ध में चले जाते थे। दूसरे कईलोग अपने भाइयों, पुत्रों और पितातुल्य मनुष्यों को ढाढस बँधाकर और उन्हें शिविर में लिटाकर फिर लड़ने को चले जाते थे।

सज्जयित्वा रथान् केचिद् यथामुख्यं विशाम्पते॥ ९॥
आप्लुत्य पाण्डवानीकं पुनर्युद्धमरोचयन्।
पाञ्चाल्यस्तु ततः क्रुद्धः सैन्येन महताऽऽवृतः॥ १०॥
अभ्यद्रवत् सुसंक्रुद्धस्तावकान् हन्तुमुद्यतः।
ततस्त्वापततस्तस्य तव पुत्रो जनाधिप॥ ११॥
बाणसंघाननेकान् वै प्रेषयामास भारत।
धृष्टद्युम्नस्ततो राजंस्तव पुत्रेण धन्विना॥ १२॥
नाराचैरर्धनाराचैर्बहुभिः क्षिप्रकारिभिः।
वत्सदन्तैश्च बाणैश्च कर्मारपरिमार्जितैः॥ १३॥
अश्वांश्च चतुरो हत्वा बाह्वोरुरसि चार्पितः।

हे प्रजानाथ! कुछ लोग अपने रथों को सजाकर और पुनः पाण्डव सेना पर आक्रमण कर अपनी इच्छा के अनुसार किसी उत्तम व्यक्ति के साथ युद्ध करते थे। फिर पांचाल राज कुमार धृष्टद्युम्न ने क्रुद्ध होकर, महान् सेना के साथ, आपके सैनिकों को मारने के लिये तैयार होकर आक्रमण किया। हे भारत! हे जनाधिप! आक्रमण करते हुए उस पर आपके पुत्र ने अनेक बाण छोड़े। हे राजन्! तब आपके धनुर्धर पुत्र ने बहुत से शीघ्रगामी और कारीगर के द्वारा साफ किये, नाराच, अर्धनाराच और वत्सदन्त बाणों से धृष्टद्युम्न के चारों अश्वों को मार कर उसकी बाँहों और छाती पर प्रहार किया।

सोऽतिविद्धो महेष्वासस्तोत्रार्दित इव द्विपः॥ १४॥
तस्याश्वांश्चतुरो बाणैः प्रेषयामास मृत्यवे।
सारथेश्चास्य भल्लेन शिरः कायादपाहरत्॥ १५॥
ततो दुर्योधनो राजा पृष्ठमारुह्य वाजिनः।
अपाक्रामद्धतरथो नातिदूरमरिंदमः॥ १६॥
दृष्ट्वा तु हतविक्रान्तं स्वमनीकं महाबलः।

तव पुत्रो महाराज प्रययौ यत्र सौबलः॥ १७॥
ततो रथेषु भग्नेषु त्रिसाहस्रा महाद्विपाः।
पाण्डवान् रथिनः सर्वान् समन्तात् पर्यवारयन्॥ १८॥

तब अत्यन्त घायल होकर उस महाधनुर्धर ने अंकुश से मारे हाथी के समान क्रुद्ध होकर, दुर्योधन के चारों घोड़ों को बाणों से मृत्यु लोक में भेज दिया तथा उसके सारथी का सिर भी भल्ल द्वारा शरीर से अलग कर दिया। तब शत्रुदमन दुर्योधन रथ के नष्ट हो जाने के कारण एक घोड़े के ऊपर चढ़ कर वहाँ से थोड़ी दूर हट गया। फिर वह महाबली अपनी सेना के पराक्रम को नष्ट हुआ देखकर वहाँ चला गया जहाँ हे महाराज! सुबलपुत्र शकुनि विद्यमान था। फिर रथसेना के नष्ट हो जाने पर, विशालकाय तीन हजार हाथी सवारों की सेना ने पाण्डवों के रथियों को सबतरफ से घेर लिया।

ते वृताः समरे पञ्च गजानीकेन भारत।
अशोभन्त महाराज ग्रहा व्याप्ता घनैरिव॥ १९॥
ततोऽर्जुनो महाराज लब्धलक्ष्यो महाभुजः।
विनिर्ययौ रथेनैव श्वेताश्वः कृष्णसारथिः॥ २०॥
तैः समन्तात् परिवृतः कुञ्जरैः पर्वतोपमैः।
नाराचैर्विमलैस्तीक्ष्णैर्गजानीक- मयोधयत्॥ २१॥
तत्रैकबाणनिहतानपश्याम महागजान्।
पतितान् पात्यमानांश्च निर्भिन्नान् सव्यसाचिना॥ २२॥
भीमसेनस्तु तान् दृष्ट्वा नागान् मत्तगजोपमः।
करेणादाय महतीं गदामभ्यपतद् बली॥ २३॥

हे भारत! तब हाथीसेना के द्वारा घिरे हुए पाँचों पाण्डव ऐसे लग रहे थे, जैसे पाँच ग्रह बादलों से घिरे हुए हों। तब कृष्ण जिनके सारथी थे, वे श्वेत घोड़ोंवाले महाबाहु अर्जुन अपने बाणों के लक्ष्य को प्राप्तकर आगे बढ़े। पर्वतों के समान विशालकाय हाथियों से घिरे हुए, निर्मल और तीखे नाराचों द्वारा वे हाथीसेना से युद्ध करने लगे। वहाँ मैंने अर्जुन द्वारा एक बाण मारकर ही विशाल हाथियों को विदीर्ण करके गिराते और उन्हें गिरते हुए देखा। मतवाले हाथी के समान बलवान् भीमसेन तो उन हाथियों को देखकर हाथ से विशाल गदा को उठाकर उनके ऊपर टूट पड़े।

आविग्नं च बलं सर्वं गदाहस्ते वृकोदरे।
गदया भीमसेनेन भिन्नकुम्भान् रजस्वलान्॥ २४॥
धावमानानपश्याम कुञ्जरान् पर्वतोपमान्।
युधिष्ठिरोऽपि संक्रुद्धो माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ॥ २५॥
गार्ध्रपत्रैः शितैर्बाणैर्निन्युर्वै यमसादनम्।
दृष्ट्वा च पाण्डवान् सर्वान् कुञ्जरैः परिवारितान्॥ २६॥
धृष्टद्युम्नो महाराज सहसा समुपाद्रवत्।

भीमसेन के गदा हाथ में लेते ही हाथीसेना बेचैन होगयी। हमने वहाँ, भीमसेन ने गदा से जिनके मस्तक को तोड़ दिया था, ऐसे धूल में भरे, पर्वत के समान विशालकाय हाथियों को भागते हुए देखा। अत्यन्तक्रुद्ध युधिष्ठिर भी और माद्री के दोनों पाण्डुपुत्र नकुल और सहदेव भी गिद्ध के पंखवाले बाणों से उन हाथियों को मृत्युलोक में भेजने लगे। हे महाराज! फिर धृष्टद्युम्न ने भी पाण्डवों को हाथीसेना से घिरा हुआ देखकर तुरन्त उस पर आक्रमण कर दिया।

अदृष्ट्वा तु रथानीके दुर्योधनमरिंदमम्॥ २७॥
अश्वत्थामा कृपश्चैव कृतवर्मा च सात्वतः।
अपृच्छन् क्षत्रियांस्तत्र क्व नु दुर्योधनो गतः॥ २८॥
आहुः केचिद्धते सूते प्रयातो यत्र सौबलः।
हित्वा पाञ्चालराजस्य तदनीकं दुरुत्सहम्॥ २९॥
श्रुत्वा तु वचनं तेषामश्वत्थामा महाबलः।
भित्त्वा पाञ्चालराजस्य तदनीकं दुरुत्सहम्॥ ३०॥
कृपश्च कृतवर्मा च प्रययौ यत्र सौबलः।
रथानीकं परित्यज्य शूराः सुदृढधन्विनः॥ ३१॥

उधर रथसेना में शत्रुदमन दुर्योधन को न देखकर अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा ने क्षत्रियों से पूछा कि राजा दुर्योधन कहाँ गये? तब किसी ने उनसे कहा कि सारथी के मारे जाने पर वे पाँचालों की दुस्सह सेना को छोड़कर वहाँ गये हैं, जहाँ सुबलपुत्र शकुनि है। उनकी बात सुनकर शूरवीर और दृढ़ धनुर्धर महाबलवान् अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा, पांचालों की उस दुस्सह सेना को भेद कर और रथसेना को छोड़कर वहाँ गये, जहाँ शकुनि था।

ततस्तेषु प्रयातेषु धृष्टद्युम्नपुरस्कृताः।
आययुः पाण्डवा राजन् विनिघ्नन्तः स्म तावकम्॥ ३२॥
दृष्ट्वा तु तानापततः सम्प्रहृष्टान् महारथान्।
पराक्रान्तास्ततो वीरा निराशा जीविते तदा॥ ३३॥
विवर्णमुखभूयिष्ठमभवत् तावकं बलम्।

परिक्षीणायुधान् दृष्ट्वा तानहं परिवारितान्॥ ३४॥
राजन् बलेन द्व्यङ्गेन त्यक्त्वा जीवितमात्मनः।
आत्मना पञ्चमोऽयुद्ध्यं पाञ्चालस्य बलेन ह॥ ३५॥

तब उनके अन्यत्र चले जाने पर हे राजन्! धृष्टद्युम्न आदि के साथ पाण्डव आपकी सेना को मारते हुए वहाँ आपहुँचे। हर्ष में भरे उन महारथियों को आक्रमण करते हुए देखकर आपके पराक्रमीवीर जीवन से निराश हो गये। आपकी सेना में उससमय अधिकाँश के मुख कान्तिहीन हो गये थे। उनके आयुध समाप्तप्राय थे और वे घिर गये थे। हे राजन्! तब दो अंगों हाथी और घोड़ों वाली सेना के साथ मैं अपने जीवन का मोह छोड़कर चार और महारथियों के साथ पांचालसेना से युद्ध करने लगा।

जितास्तेन वयं सर्वे व्यपयाम रणात् ततः।
अथापश्यं सात्यकिं तमुपायान्तं महारथम्॥ ३६॥
रथैश्चतुःशतैर्वीरो मामभ्यद्रवदाहवे।
तत्र युद्धमभूद् घोरं मुहूर्तमतिदारुणम्॥ ३७॥
सात्यकिस्तु महाबाहुर्मम हत्वा परिच्छदम्।
जीवग्राहमगृह्णान्मां मूर्छितं पतितं भुवि॥ ३८॥
ततो मुहूर्तादिव तद् गजानीकमवध्यत।
गदया भीमसेनेन नाराचैरर्जुनेन च॥ ३९॥

उन्होंने हम सब को हरा दिया और हम वहाँ से भाग निकले। तब मैने महारथी सात्यकि को अपने पास आते हुए देखा। उस वीर ने चार सौ रथियों के साथ युद्धक्षेत्र में मुझ पर आक्रमण कर दिया। वहाँ एक मुहूर्त तक अत्यन्त दारुण युद्ध हुआ। महाबाहु सात्यकि ने मेरी युद्धसामग्री नष्ट कर दी और मैं जब मूर्च्छित होकर गिर पड़ा, तब उन्होंने मुझे जीवित ही पकड़ लिया। फिर थोड़ी देर में ही भीमसेन ने गदा से और अर्जुन ने नाराचों से उस हाथीसेना का विनाश कर दिया।

पच्चीसवाँ अध्याय : भीमसेन द्वारा धृतराष्ट्र के ग्यारह पुत्रों का वध।

गजानीके हते तस्मिन् पाण्डुपुत्रेण भारत।
चरन्तं च तथा दृष्ट्वा भीमसेनमरिंदमम्॥ १॥
समेत्य समरे राजन् हतशेषाः सुतास्तव।
अदृश्यमाने कौरव्ये पुत्रे दुर्योधने तव॥ २॥
सोदर्याः सहिता भूत्वा भीमसेनमुपाद्रवन्।
दुर्मर्षणः श्रुतान्तश्च जैत्रो भूरिबलो रविः॥ ३॥
जयत्सेनः सुजातश्च तथा दुर्विषहोऽरिहा।
दुर्विमोचननामा च दुष्प्रधर्षस्तथैव च॥ ४॥
श्रुतर्वा च महाबाहुः सर्वे युद्धविशारदाः।
इत्येते सहिता भूत्वा तव पुत्राः समन्ततः॥ ५॥
भीमसेनमभिद्रुत्य रुरुधुः सर्वतोदिशम्।

फिर हाथीसेना के पाण्डुपुत्र द्वारा मारे जाने पर और शत्रुदमन भीमसेन को वहाँ विचरण करते हुए देखकर, आपके मरने से बचे हुए पुत्र, आपके पुत्र कुरुराज दुर्योधन के दिखाई न देने पर, एकत्र होकर भीमसेन पर टूट पड़े। उन पुत्रों के नाम थे दुर्मर्षण, श्रुतान्त, जैत्र, भूरिबल, रवि, जयत्सेन, सुजात, शत्रुनाशक दुर्विषह, दुर्विमोचन, दुष्प्रधर्ष और महाबाहु श्रुतर्वा। ये सारे आपके पुत्र एकत्र होकर और भीमसेन को घेरकर खड़े हो गये।

ततो भीमो महाराज स्वरथं पुनरास्थितः॥ ६॥
मुमोच निशितान् बाणान् पुत्राणां तव मर्मसु।
ते कीर्यमाणा भीमेन पुत्रास्तव महारणे॥ ७॥
भीमसेनमपाकर्षन् प्रवणादिव कुञ्जरम्।
ततः क्रुद्धो रणे भीमः शिरो दुर्मर्षणस्य ह॥ ८॥
क्षुरप्रेण प्रमथ्याशु पातयामास भूतले।
ततोऽपरेण भल्लेन सर्वावरणभेदिना॥ ९॥
श्रुतान्तमवधीद् भीमस्तव पुत्रं महारथः।

हे महाराज! तब भीमसेन ने पुनः अपने रथ पर चढ़कर आपके पुत्रों के मर्मस्थानों पर तीखे बाणों से प्रहार किये। भीमसेनद्वारा बाणों का प्रहार किये जाते हुए आपके वे पुत्र महान् युद्ध में भीम को खींचकर दूर उसीतरह लेगये, जैसे शिकारी ढालू भूमि पर खड़े हुए हाथी को खींचकर ऊपर के स्थान पर लेआते हैं। तब भीम ने युद्ध में कुद्ध होकर एक क्षुरप्र से दुर्मर्षण के सिर को तुरन्त काटकर भूमि पर गिरा दिया। फिर महारथी भीम ने दूसरे सारे आवरणों को भेदने वाले भल्ल से आपके पुत्र श्रुतान्त को मार दिया।

जयत्सेनं ततो विद्ध्वा नाराचेन हसन्निव॥ १०॥
पातयामास कौरव्यं रथोपस्थादरिंदमः।
श्रुतर्वा तु ततो भीमं क्रुद्धो विव्याध मारिष॥ ११॥
शतेन गृध्रवाजानां शराणां नतपर्वणाम्।
ततः क्रुद्धो रणे भीमो जैत्रं भूरिबलं रविम्॥ १२॥
त्रीनेतांस्त्रिभिरानर्च्छद् विषाग्निप्रतिमैः शरैः।
ते हता न्यपतन् भूमौ स्यन्दनेभ्यो महारथाः॥ १३॥

फिर उस शत्रुदमन वीर ने मुस्कराते हुए नाराच से कुरुवंशी जयत्सेन को बींधकर रथ की बैठक से नीचे गिरा दिया। हे मान्यवर! तब क्रुद्ध श्रुतर्वा ने भीम पर गिद्ध के पंखोंवाले सौ झुकी गाँठवाले बाणों की वर्षाकर उसे घायल कर दिया। तब क्रुद्ध भीम ने युद्धक्षेत्र में जैत्र, भूरिबल, और रवि पर विष और अग्नि के समान भयंकर बाणों से प्रहार किया। ये महारथी तब मरकर रथ से गिर पड़े।

ततोऽपरेण भल्लेन तीक्ष्णेन च परंतपः।
दुर्विमोचनमाहत्य प्रेषयामास मृत्यवे॥ १४॥
दुष्प्रधर्षं ततश्चैव सुजातं च सुतं तव।
एकैकं न्यहनत् संख्ये द्वाभ्यां द्वाभ्यां चमूमुखे॥ १५॥
ततः पतन्तं समरे अभिवीक्ष्य सुतं तव।
भल्लेन पातयामास भीमो दुर्विषहं रणे॥ १६॥

फिर उन परंतप ने दूसरे तीखे भल्ल से दुर्विमोचन पर प्रहारकर उसे मृत्युलोक में भेज दिया। फिर भीम ने सेना के मुहाने पर आपके पुत्र दुष्प्रधर्ष और सुजात को दो बाणों से मार गिराया। फिर आक्रमण करते हुए, युद्धक्षेत्र में आपके पुत्र दुर्विषह को देखकर भीमसेन ने उसे भी युद्ध में भल्ल से मारकर गिरा दिया।

दृष्ट्वा तु निहतान् भ्रातॄन् बहूनेकेन संयुगे।
अमर्षवशमापन्नः श्रुतर्वा भीममभ्ययात्॥ १७॥
विक्षिपन् सुमहच्चापं कार्तस्वरविभूषितम्।
विसृजन् सायकांश्चैव विषाग्निप्रतिमान् बहून्॥ १८॥
स तु राजन् धनुश्छित्त्वा पाण्डवस्य महामृधे।
अथैनं छिन्नधन्वानं विंशत्या समवाकिरत्॥ १९॥
ततोऽन्यद् धनुरादाय भीमसेनो महाबलः।
अवाकिरत् तव सुतं तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत्॥ २०॥

तब युद्धक्षेत्र में अपने बहुतसे भाइयों को अकेले भीमद्वारा मारा हुआ देखकर, क्रोध के बस में होकर श्रुतर्वा ने भीम पर आक्रमण किया। उसने अपने स्वर्णभूषित विशाल धनुष को खींचते हुए और विष तथा अग्नि के समान बहुतसे भयंकर बाणों को छोड़ते हुए हे राजन्! उस महान् युद्ध में पाण्डुपुत्र के धनुष को काटकर उसके ऊपर बीस बाणों की वर्षा की। तब महाबली भीमसेन ने दूसरे धनुष को लेकर आपके पुत्र पर बाणों की वर्षा आरम्भ कर दी और उससे कहा कि ठहर जा, ठहर जा।

ततः श्रुतर्वा संक्रुद्धो, धनुरादाय सायकैः।
भीमसेनं रणे राजन्, बाह्वोरुरसि चार्पयत्॥ २१॥
सोऽतिविद्धो महाराज, तव पुत्रेण धन्विना।
भीमः संचुक्षुभे क्रुद्धः, पर्वणीव महोदधिः॥ २२॥
ततो भीमो रुषाविष्टः पुत्रस्य तव मारिष।
सारथिं चतुरश्चाश्वाञ्शरैर्निन्ये यमक्षयम्॥ २३॥
विरथं तं समालक्ष्य विशिखैर्लोमवाहिभिः।
अवाकिरदमेयात्मा दर्शयन् पाणिलाघवम्॥ २४॥
श्रुतर्वा विरथो राजन्नाददे खड्गचर्मणी।
अथास्याददतः खड्गं शतचन्द्रं च भानुमत्।
क्षुरप्रेण शिरः कायात् पातयामास पाण्डवः॥ २५॥

हे राजन्! तब अत्यन्त क्रुद्ध श्रुतर्वा ने धनुष को उठाकर बाणों से युद्ध में भीमसेन की बाँहों और छाती पर प्रहार किया। हे महाराज! तब आपके धनुर्धर पुत्रद्वारा अत्यन्त घायल भीमसेन क्रोध में भरकर उसीप्रकार अत्यन्तक्षुब्ध होगये, जैसे समुद्र में पूर्णिमा की रात्रि को विक्षोभ होजाता है। हे मान्यवर! तब क्रुद्ध भीम ने आपके पुत्र के सारथी और चारों घोड़ों को बाणों से मृत्युलोक में पहुँचा दिया। तब उसे रथ से रहित देखकर अमित आत्मावाले भीमसेन अपने हस्तकौशल को दिखाते हुए, उस पर परों से युक्त बाणों की वर्षा करने लगे। हे राजन्! तब रथ से रहित श्रुतर्वा ने तलवार और ढाल पकड़ी। जब वह सौ चन्द्रिकाओं से चित्रित अपनी ढाल और तलवार को ले ही रहा था, तभी पाण्डुपुत्र ने क्षुरप्र से उसके सिर को काट दिया।

छब्बीसवाँ अध्याय : अर्जुन द्वारा सत्यकर्मा, सत्येषु तथा पैंतालीस पुत्रों सहित सुशर्मा का वध। भीम द्वारा धृतराष्ट्र पुत्र सुदर्शन का वध।

दुर्योधनो महाराज सुदर्शश्चापि ते सुतः।
हतशेषौ तदा संख्ये वाजिमध्ये व्यवस्थितौ॥ १॥
ततो दुर्योधनं दृष्ट्वा वाजिमध्ये व्यवस्थितम्।
उवाच देवकीपुत्रः कुन्तीपुत्रं धनंजयम्॥ २॥
शत्रवो हतभूयिष्ठा ज्ञातयः परिपालिताः।
गृहीत्वा संजयं चासौ निवृत्तः शिनिपुङ्गवः॥ ३॥
परिश्रान्तश्च नकुलः सहदेवश्च भारत।
योधयित्वा रणे पापान् धार्तराष्ट्रान् सहानुगान्॥ ४॥

हे महाराज! आपका पुत्र दुर्योधन और सुदर्शन ये दो ही उस समय मरने से बचे, घुड़सवारों के बीच में खड़े हुए थे। तब दुर्योधन को घुड़सवारों के बीच में खड़ा हुआ देखकर देवकीपुत्र श्रीकृष्ण ने कुन्तीपुत्र अर्जुन से कहा कि शत्रुलोग अधिकांश संख्या में मारे गये और अपने कुटुम्बी लोगों की रक्षा हुई है। सात्यकि संजय को पकड़कर ला रहे हैं। हे भारत! धृतराष्ट्र के पापी पुत्रों और उनके साथियों से युद्ध करके युद्धक्षेत्र में नकुल और सहदेव थक गये हैं।

दुर्योधनमभित्यज्य त्रय एते व्यवस्थिताः।
कृपश्च कृतवर्मा च द्रौणिश्चैव महारथः॥ ५॥
असौ तिष्ठति पाञ्चाल्यः श्रिया परमया युतः।
दुर्योधनबलं हत्वा सह सर्वैः प्रभद्रकैः॥ ६॥
असौ दुर्योधनः पार्थ वाजिमध्ये व्यवस्थितः।
एनं हत्वा शितैर्बाणैः कृतकृत्यो भविष्यसि॥ ७॥

कृपाचार्य, कृतवर्मा और महारथी अश्वत्थामा ये तीनों दुर्योधन को छोड़कर कहीं और अवस्थित हैं। ये पांचालकुमार धृष्टद्युम्न प्रभद्रकों के साथ दुर्योधन की सेना को मारकर अत्यन्त शोभा के साथ विद्यमान हैं। हे कुन्तीपुत्र! यह दुर्योधन घुड़सवारों के बीच में स्थित है। तुम इसे तीखे बाणों से मारकर कृतकृत्य हो जाओगे।

निहतं स्वबलं दृष्ट्वा पीडितं चापि पाण्डवैः।
ध्रुवमेष्यति संग्रामे वधायैवात्मनो नृपः॥ ८॥
एवमुक्तः फाल्गुनस्तु कृष्णं वचनमब्रवीत्।
धृतराष्ट्रसुताः सर्वे हता भीमेन माधव॥ ९॥
यावेतावास्थितौ कृष्ण तावद्य न भविष्यतः।
हतो भीष्मो हतो द्रोणः कर्णो वैकर्तनो हतः॥ १०॥
मद्रराजो हतः शल्यो हतः कृष्ण जयद्रथः।

पाण्डवोंद्वारा अपनी सेना को पीड़ित और मारा हुआ देखकर राजा दुर्योधन अब निश्चित रूप से अपने विनाश के लिये ही युद्धस्थल में आयेगा। तब ऐसा कहे जाने पर अर्जुन ने श्रीकृष्ण जी से कहा कि हे माधव! धृतराष्ट्र के सारे पुत्र भीम के द्वारा मारे गये हैं। ये दो जो अब खड़े हुए हैं, इनका भी आज अन्त होजायेगा। भीष्म, द्रोणाचार्य, सूर्यपुत्र कर्ण, मद्रराज शल्य और जयद्रथ सारे मारे गये हैं।

हयाः पञ्चशताः शिष्टाः शकुनेः सौबलस्य च॥ ११॥
रथानां तु शते शिष्टे द्वे एव तु जनार्दन।
दन्तिनां च शतं साग्रं त्रिसाहस्त्राः पदातयः॥ १२॥
अश्वत्थामा कृपश्चैव त्रिगर्ताधिपतिस्तथा।
उलूकः शकुनिश्चैव कृतवर्मा च सात्वतः॥ १३॥
एतद् बलमभूच्छेषं धार्तराष्ट्रस्य माधव।
मोक्षो न नूनं कालात् तु विद्यते भुवि कस्यचित्॥ १४॥
तथा विनिहते सैन्ये पश्य दुर्योधनं स्थितम्।
अद्याह्ना हि महाराजो हतामित्रो भविष्यति॥ १५॥

हे जनार्दन! सुबलपुत्र शकुनि के पास पाँच सौ घुड़सवार बचे हुए हैं। उसके पास सौ रथ, सौ से कुछ अधिक हाथी और तीन हजार पैदल बचे हुए हैं। हे माधव! दुर्योधन की सेना में अब अश्वत्थामा, कृपाचार्य, त्रिगर्तराज सुशर्मा, उलूक, शकुनि और यदुवंशी कृतवर्मा ये वीर योद्धा ही बचे हैं। संसार में किसी का भी मृत्यु से छुटकारा नहीं है। इसलिये देखो। अपनी सेना के मारे जाने पर भी दुर्योधन युद्ध के लिये खड़ा है। आज के दिन ही महाराज युधिष्ठिर शत्रुओं से रहित होजायेंगे।

न हि मे मोक्ष्यते कश्चित् परेषामिह चिन्तये।
ये त्वद्य समरं कृष्ण न हास्यन्ति मदोत्कटाः॥ १६॥
तान् वै सर्वान् हनिष्यामि यद्यपि स्युर्न मानुषाः।
अद्य युद्धे सुसंक्रुद्धो दीर्घं राज्ञः प्रजागरम्॥ १७॥
अपनेष्यामि गान्धारं घातयित्वा शितैः शरैः।

निकृत्या वै दुराचारो यानि रत्नानि सौबलः॥ १८॥
सभायामहरद् द्यूते पुनस्तान्याहराम्यहम्।
अद्य ता अपि रोत्स्यन्ति सर्वा नागपुरे स्त्रियः॥ १९॥
श्रुत्वा पतींश्च पुत्रांश्च पाण्डवैर्निहतान् युधि।

मैं सोचता हूँ कि आज शत्रुओं में से कोई भी मेरे हाथ से छूटकर नहीं जायेगा। यदि ये मदोन्मत्त वीर, हे कृष्ण! समरभूमि को छोड़कर भाग नहीं जायेंगे तो मैं उन सबको मार दूँगा चाहे वे मानवेतर ही क्यों न हों। आज गान्धारराजपुत्र शकुनि को तीखे बाणों से युद्ध में अत्यन्तक्रुद्ध होकर मरवा दूँगा और राजा युधिष्ठिर की बहुत दिनों से नींद न आनेवाली बीमारी ठीक कर दूँगा। उस दुराचारी सुबलपुत्र ने सभा में जूए के छल से जिन रत्नों का हमसे हरण किया था, उन सबको पुनः वापिस लेलूँगा। आज हस्तिनापुर में स्त्रियाँ भी अपने पतियों और पुत्रों को युद्ध में पाण्डवों द्वारा मारा हुआ सुनकर रोयेंगी।

समाप्तमद्य वै कर्म सर्वं कृष्ण भविष्यति॥ २०॥
अद्य दुर्योधनो दीप्तां श्रियं प्राणांश्च मोक्ष्यति।
मम ह्येतदशक्तं वै वाजिवृन्दमरिंदम॥ २१॥
सोढुं ज्यातलनिर्घोषं याहि यावन्निहन्म्यहम्।
एवमुक्तस्तु दाशार्हः पाण्डवेन यशस्विना॥ २२॥
अचोदयद्धयान् राजन् दुर्योधनबलं प्रति।

हे कृष्ण! आज सारा कार्य समाप्त होजायेगा। आज दुर्योधन अपने जगमगाते हुए ऐश्वर्य और प्राणों को त्याग देगा। हे शत्रुदमन! यह घुड़सवारों की सेना मेरी प्रत्यंचा और हथेली की ध्वनि को सहन नहीं कर सकेगी। इसलिये आप आगे बढ़िये। मैं अभी इनको मारता हूँ। हे राजन्! यशस्वी पाण्डुपुत्र द्वारा ऐसा कहे जाने पर श्रीकृष्णजी ने घोड़ों को दुर्योध न की सेना की तरफ हाँक दिया।

तदनीकमभिप्रेक्ष्य त्रयः सज्जा महारथाः॥ २३।
भीमसेनोऽर्जुनश्चैव सहदेवश्च मारिष।
प्रययुः सिंहनादेन दुर्योधनजिघांसया॥ २४॥
तान् प्रेक्ष्य सहितान् सर्वाञ्जवेनोद्यतकार्मुकान्।
सौबलोऽभ्यद्रवद् युद्धे पाण्डवानाततायिनः॥ २५॥
सुदर्शनस्तव सुतो भीमसेनं समभ्ययात्।
सुशर्मा शकुनिश्चैव युयुधाते किरीटिना॥ २६॥

हे मान्यवर! उस सेना को देखकर तीन महारथी भीमसेन, अर्जुन, और सहदेव सुसज्जित होकर, सिंहनाद करते हुए, दुयोधन को मारने की इच्छा से आगे बढ़े। धनुषों को तैयार किये हुए, उन सबको इकट्ठे होकर तेजी से आक्रमण करते हुए देखकर शकुनि युद्धक्षेत्र में मारने के लिये उद्यत उन पाण्डवों की तरफ दौड़ा। आपका पुत्र सुदर्शन भीमसेन का सामना करने लगा और सुशर्मा तथा शकुनि अर्जुन के साथ युद्ध करने लगे।

पार्थोऽपि युधि विक्रम्य कुन्तीपुत्रो धनंजयः।
शूराणामश्वपृष्ठेभ्यः शिरांसि निचकर्त ह॥ २७॥
तदनीकं तदा पार्थो व्यधमद् बहुभिः शरैः।
पातयित्वा हयान् सर्वांस्त्रिगर्तानां रथान् ययौ॥ २८॥
ततस्ते सहिता भूत्वा त्रिगर्तानां महारथाः।
अर्जुनं वासुदेवं च शरवर्षैरवाकिरन्॥ २९॥

कुन्तीपुत्र अर्जुन भी पराक्रम करते हुए घुड़सवार शूरवीरों के सिरों को काटने लगे। अर्जुन ने उस घुड़सवारों की सेना को अपने बाणों से सारे घोड़ों को गिराकर नष्टभ्रष्ट कर दिया। फिर उन्होंने त्रिगर्तों की रथसेना पर आक्रमण कर दिया। तब वे त्रिगर्तों के महारथी इकट्ठे होकर अर्जुन और श्रीकृष्णजी पर बाणों की वर्षा करने लगे।

सत्यकर्माणमाक्षिप्य क्षुरप्रेण महायशाः।
ततोऽस्य स्यन्दनस्येषां चिच्छिदे पाण्डुनन्दनः॥ ३०॥
शिलाशितेन च विभो क्षुरप्रेण महायशाः।
शिरश्चिच्छेद सहसा तप्तकुण्डलभूषणम्॥ ३१॥
सत्येषुमथ चादत्त योधानां मिषतां ततः।
यथा सिंहो वने राजन् मृगं परिबुभुक्षितः॥ ३२॥
तं निहत्य ततः पार्थः सुशर्माणं त्रिभिः शरैः।
विद्ध्वा तानहनत् सर्वान् रथान् रुक्मविभूषितान्॥ ३३॥

यशस्वी पाण्डुपुत्र अर्जुन ने क्षुरप्र से सत्यकर्मा पर प्रहार करके उसके रथ के ईषादण्ड को काट दिया। हे प्रभो! उन महायशस्वी ने फिर शिला पर तेज किये क्षुरप्र से तुरन्त उसके तपे हुए स्वर्ण के कुण्डलों से विभूषित सिर को काट दिया। हे राजन्! जैसे वन में भूखा शेर किसी मृग को दबोच लेता है, वैसे ही तत्पश्चात् उन्होंने योद्धाओं के देखते हुए सत्येषु के भी प्राण हर लिये। उसको मारकर अर्जुन ने सुशर्मा को तीन बाणों से बींधकर, उन सारे सुनहरे रथों को नष्ट कर दिया।

ततः प्रायात् त्वरन् पार्थो दीर्घकालं सुसंवृतम्।
मुञ्चन् क्रोधविषं तीक्ष्णं प्रस्थलाधिपतिं प्रति॥ ३४॥
तमर्जुनः पृषत्कानां शतेन भरतर्षभ।
पूरयित्वा ततो वाहान् प्राहरत् तस्य धन्विनः॥ ३५॥
ततः शरं समादाय यमदण्डोपमं तदा।
सुशर्माणं समुद्दिश्य चिक्षेपाशु हसन्निव॥ ३६॥
स शरः प्रेषितस्तेन क्रोधदीप्तेन धन्विना।
सुशर्माणं समासाद्य बिभेद हृदयं रणे॥ ३७॥

अर्जुन अपने बहुतसमय से एकत्र किये क्रोधरूपी तीखे विष को छोड़ते हुए, शीघ्रता से प्रस्थलाधिपति सुशर्मा की तरफ बढ़े। हे भरतश्रेष्ठ! अर्जुन ने उसके ऊपर सौ बाणों की वर्षा कर उस धनुर्धर के घोड़ों पर प्रहार किया। फिर उन्होंने मुस्कराते हुए, मृत्यु के प्रहार के समान भयंकर बाण को लेकर, उसे सुशर्मा पर सन्धान कर शीघ्रता से छोड़ दिया। क्रोध से तमतमाते हुए धनुर्धर अर्जुनद्वारा छोड़े हुए उस बाण ने सुशर्मा पर प्रहारकर युद्धक्षेत्र में उसके हृदय को वेध दिया।

सुशर्माणं रणे हत्वा पुत्रानस्य महारथान्।
सप्त चाष्टौ च त्रिंशच्च सायकैरनयत् क्षयम्॥ ३८॥
ततोऽस्य निशितैर्बाणैः सर्वान् हत्वा पदानुगान्।
अभ्यगाद् भारतीं सेनां हतशेषां महारथः॥ ३९॥
भीमस्तु समरे क्रुद्धः पुत्रं तव जनाधिप।
सुदर्शनमदृश्यं तं शरैश्चक्रे हसन्निव॥ ४०॥
क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन शिरः कायादपाहरत्।

सुशर्मा को युद्ध में मारकर अर्जुन ने उसके महारथी पैतालीस पुत्रों को भी बाणों से विनष्ट कर दिया। फिर तीखे बाणों से सुशर्मा के पीछे चलनेवाले सारे सैनिकों का संहारकर, उस महारथी ने कौरवों की मरने से बची सेना पर भी आक्रमण कर दिया। हे प्रजा के स्वामी! भीम ने समरभूमि में क्रुद्ध होकर आपके पुत्र सुदर्शन को मुस्कराते हुए अपने बाणों से आच्छादित कर दिया। फिर उन्होंने अत्यन्ततीखे क्षुरप्र से उसके सिर को उसके शरीर से अलग कर दिया।

तस्मिंस्तु निहते वीरे ततस्तस्य पदानुगाः॥ ४१॥
परिवव्रू रणे भीमं किरन्तो विविधाञ्शरान्।
ततस्तु निशितैर्बाणैस्तवानीकं वृकोदरः॥ ४२॥
इन्द्राशनिसमस्पर्शैः समन्तात् पर्यवाकिरत्।
तेषु तूत्साद्यमानेषु सेनाध्यक्षा महारथाः।
भीमसेनं समासाद्य ततोऽयुद्ध्यन्त भारत॥ ४३॥

उस वीर के मारे जाने पर उसके पीछे चलने वाले सैनिकों ने अनेकप्रकार के बाणों को छोड़ते हुए भीमसेन को घेर लिया। तब भीम ने आपकी उस सेना को इन्द्र के वज्र के समान स्पर्शवाले तीखे बाणों से सबतरफ से भर दिया। हे भारत! जब उन सैनिकों का संहार होने लगा, तब उनके महारथी सेनाध्यक्षों ने भीमसेन के समीप आकर उनसे युद्ध करना आरम्भ कर दिया।

सत्ताईसवाँ अध्याय : सहदेव द्वारा उलूक और शकुनि का वध।

तस्मिन् प्रवृत्ते संग्रामे गजवाजिनरक्षये।
शकुनिः सौबलो राजन् सहदेवं समभ्ययात्॥ १॥
ततोऽस्यापततस्तूर्णं सहदेवः प्रतापवान्।
शरौघान् प्रेषयामास पतङ्गानिव शीघ्रगान्॥ २॥
उलूकश्च रणे भीमं विव्याध दशभिः शरैः।
शकुनिश्च महाराज भीमं विद्ध्वा त्रिभिः शरैः॥ ३॥
सायकानां नवत्या वै सहदेवमवाकिरत्।

हे राजन्! हाथी, घोड़ों और मनुष्यों का विनाश करनेवाले उस संग्राम के आरम्भ होने पर सुबलपुत्र शकुनि ने सहदेव पर आक्रमण किया। तब उसके आक्रमण करने पर प्रतापी सहदेव ने तुरन्त उस पर पक्षियों के समान शीघ्रगामी बाणों की वर्षा आरम्भ कर दी। उधर उलूक ने युद्धक्षेत्र में भीम को दस बाणों से बींध दिया। हे महाराज! शकुनि ने भी भीम को तीन बाणों से बींधकर सहदेव पर नब्बे बाणों की वर्षा की।

एतस्मिन्नन्तरे शूरः सौबलेयः प्रतापवान्॥ ४॥
प्रासेन सहदेवस्य शिरसि प्राहरद् भृशम्।
स विह्वलो महाराज रथोपस्थ उपाविशत्॥ ५॥
सहदेवं तथा दृष्ट्वा भीमसेनः प्रतापवान्।
सर्वसैन्यानि संक्रुद्धो वारयामास भारत॥ ६॥
निर्बिभेद च नाराचैः शतशोऽथ सहस्रशः।

विनिर्भिद्याकरोच्चैव सिंहनादमरिंदमः॥ ७॥
तेन शब्देन वित्रस्ताः सर्वे सहयवारणाः।
प्राद्रवन् सहसा भीताः शकुनेश्च पदानुगाः॥ ८॥

इसी बीच शूरवीर और प्रतापी सुबलपुत्र शकुनि ने प्रास के द्वारा सहदेव के सिर में जोर से प्रहार किया। हे महाराज! तब वह बेचैन होकर रथ की बैठक में बैठ गया। सहदेव की वैसी अवस्था देखकर प्रतापी भीमसेन ने हे भारत! अत्यन्त क्रुद्ध होकर सारी सेना को आगे बढ़ने से रोक दिया। उन्होंने सैकड़ों और हजारों नाराचों की वर्षाकर उन्हें विदीर्ण कर दिया। उन्होंने उस सेना को छिन्न भिन्न करके जोर से सिंहनाद किया, जिससे शकुनि के पीछे चलने वाले सैनिक भयभीत होकर हाथी और घोड़ों के साथ तुरन्त वहाँ से भागने लगे।

प्रभग्नानथ तान् दृष्ट्वा राजा दुर्योधनोऽब्रवीत्।
निवर्तध्वमधर्मज्ञा युध्यध्वं किं सृतेन वः॥ ९॥
एवमुक्तास्तु ते राज्ञा सौबलस्य पदानुगाः।
पाण्डवानभ्यवर्तन्त मृत्युं कृत्वा निवर्तनम्॥ १०॥
द्रवद्भिस्तत्र राजेन्द्र कृतः शब्दोऽतिदारुणः।
क्षुब्धसागरसंकाशाः क्षुभिताः सर्वतोऽभवन्॥ ११॥
तांस्तथा पुरतो दृष्ट्वा सौबलस्य पदानुगान्।
प्रत्युद्ययुर्महाराज पाण्डवा विजयोद्यताः॥ १२॥

उन्हें भागता हुआ देखकर राजा दुर्योधन ने उनसे कहा कि अरे धर्म को न जानने वालों! लौट आओ। तुम्हारे भागने से तुम्हें क्या लाभ होगा? इसलिये युद्ध करो। तब राजा के द्वारा ऐसा कहने पर शकुनि के पीछे चलनेवाले वे सैनिक मृत्यु को ही लौटने की सीमा मानकर पाण्डवों पर टूट पड़े। हे राजेन्द्र! तब आक्रमण करते हुए उन लोगों ने भयंकर कोलाहल किया। विक्षुब्ध हुए सागर के समान वे क्रोध में भरकर वहाँ सबतरफ छा गए। हे महाराज! तब उन शकुनि के सेवकों को इसप्रकार अपने सामने देखकर विजय के लिये उद्यत पाण्डव भी आगे बढ़े।

प्रत्याश्वस्य च दुर्धर्षः सहदेवो विशाम्पते।
शकुनिं दशभिर्विद्ध्वा हयांश्चास्य त्रिभिः शरैः॥ १३॥
धनुश्चिच्छेद च शरैः सौबलस्य हसन्निव।
अथान्यद् धनुरादाय शकुनिर्युद्धदुर्मदः॥ १४॥
विव्याध नकुलं षष्ट्या भीमसेनं च सप्तभिः।
उलूकोऽपि महाराज भीमं विव्याध सप्तभिः॥ १५॥
सहदेवं च सप्तत्या परीप्सन् पितरं रणे।

हे प्रजानाथ तभी स्वस्थ होकर दुर्घर्ष वीर सहदेव ने मुस्कराते हुए दस बाणों से शकुनि को और तीन बाणों से उसके घोड़ों को बींधकर, बाणों द्वारा उसके धनुष को काट दिया। तब युद्ध में दुर्मद शकुनि ने दूसरे धनुष को लेकर नकुल पर साठ और भीम सेन पर सात बाणों की वर्षाकर उन्हें घायल कर दिया। हे महाराज! उलूक ने भी युद्ध में अपने पिता की रक्षा करते हुए भीम पर सात और सहदेव पर सत्तर बाणों की वर्षा करते हुए उन्हें घायल कर दिया।

तं भीमसेनः समरे विव्याध नवभिः शरैः॥ १६॥
शकुनिं च चतुःषष्ट्या पार्श्वस्थांश्च त्रिभिस्त्रिभिः।
ततोऽस्यापततः शूरः सहदेवः प्रतापवान्॥ १७॥
उलूकस्य महाराज भल्लेनापाहरच्छिरः।
पुत्रं तु निहतं दृष्ट्वा शकुनिस्तत्र भारत॥ १८॥
साश्रुकण्ठो विनिःश्वस्य क्षत्तुर्वाक्यमनुस्मरन्।
सहदेवं समासाद्य त्रिभिर्विव्याध सायकैः॥ १९॥
तानपास्य शरान् मुक्ताञ्शरसंघैः प्रतापवान्।
सहदेवो महाराज धनुश्चिच्छेद संयुगे॥ २०॥

तब समर भूमि में भीमसेन ने उलूक को नौ बाणों से और शकुनि पर चौंसठ बाणों की वर्षा करके और उनके चक्ररक्षकों को तीन तीन बाणों से घायल कर दिया। हे महाराज! फिर अपने ऊपर आक्रमण करते हुए उलूक का सिर प्रतापी सहदेव ने भल्ल के द्वारा काट दिया। हे भारत! तब पुत्र को मरा हुआ देखकर शकुनि का गला आँसुओं से भर गया और लम्बी साँसें लेते हुए वह विदुर जी के वाक्यों को याद करने लगा। फिर उसने सहदेव के पास जाकर उन पर तीन बाणों से प्रहार किया। तब उन प्रतापी सहदेव ने उसके छोड़े हुए उन बाणों का अपने बाणसमूहों से निवारण कर, हे महाराज! युद्धक्षेत्र में उसके धनुष को काट दिया।

छिन्ने धनुषि राजेन्द्र शकुनिः सौबलस्तदा।
प्रगृह्य विपुलं खड्गं सहदेवाय प्राहिणोत्॥ २१॥
तमापतन्तं सहसा घोररूपं विशाम्पते।
द्विधा चिच्छेद समरे सौबलस्य हसन्निव॥ २२॥
असिं दृष्ट्वा तथा छिन्नं प्रगृह्य महतीं गदाम्।
प्राहिणोत् सहदेवाय सा मोघा न्यपतद् भुवि॥ २३॥

ततः शक्तिं महाघोरां कालरात्रिमिवोद्यताम्।
प्रेषयामास संक्रुद्धः पाण्डवं प्रति सौबलः॥ २४॥
तामापतन्तीं सहसा शरैः कनकभूषणैः।
त्रिधा चिच्छेद समरे सहदेवो हसन्निव॥ २५॥

हे राजन्! धनुष के छिन्न होजाने पर सुबलपुत्र शकुनि ने एक विशाल खड्ग को सहदेव पर फैंका। हे प्रजानाथ! अपने ऊपर आते हुए भयंकर खड्ग के सहदेव ने मुस्कराते हुए दो टुकड़े कर दिये। तब उस तलवार को काटा हुआ देखकर शकुनि ने एक विशाल गदा को सहदेव पर फैंका। पर वह भी व्यर्थ होकर भूमि पर गिर पड़ी। तब सुबलपुत्र ने अत्यन्त क्रोध में भरकर एक अत्यन्तभयंकर, कालरात्रि के समान उठी हुई शक्ति को पाण्डुपुत्र के ऊपर फैंका, उस अपने ऊपर आती हुई शक्ति को भी सहदेव ने मुस्कराते हुए, तुरन्त स्वर्णभूषित बाणों से युद्धक्षेत्र में तीन टुकड़ों में काट दिया।

शक्तिं विनिहतां दृष्ट्वा सौबलं च भयार्दितम्।
दुद्रुवुस्तावकाः सर्वे भये जाते ससौबलाः॥ २६॥
तान् वै विमनसो दृष्ट्वा माद्रीपुत्रः प्रतापवान्।
शरैरनेकसाहस्रैर्वारयामास संयुगे॥ २७॥
स्वमंशमवशिष्टं तं संस्मृत्य शकुनिं नृप।
रथेन काञ्चनाङ्गेन सहदेवः समभ्ययात्॥ २८॥
अधिज्यं बलवत् कृत्वा व्याक्षिपन् सुमहद् धनुः।
स सौबलमभिद्रुत्य गार्ध्रपत्रैः शिलाशितैः॥ २९॥
भृशमभ्यहनत् क्रुद्धस्तोत्रैरिव महाद्विपम्।

शक्ति को काटा हुआ और शकुनि को भी भय से पीड़ित देखकर आपके सारे सैनिक शकुनि के साथ वहाँ से भाग खड़े हुए। तब उन्हें युद्ध से विमुख देखकर प्रतापी माद्रीपुत्र ने असंख्य बाणों की वर्षाकर उन्हें युद्धस्थल में रोक दिया। हे राजन्! तब शकुनि को अपने हिस्से का समझकर सहदेव ने सुनहले रथ से उसका पीछा किया। उसने क्रोध में भरकर अत्यन्त विशाल और दृढ़ धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाकर और उसे खींचकर, सुबलपुत्र पर आक्रमण करते हुए, गिद्ध के पंखवाले, शिला पर तेज किये बाणों से उस पर इस प्रकार जोर से प्रहार किये जैसे किसी विशाल हाथी को अंकुशों से मारा जाये।

उवाच चैनं मेधावी विगृह्य स्मारयन्निव॥ ३०॥
क्षत्रधर्मे स्थिरो भूत्वा युध्यस्व पुरुषो भव।
यत् तदा हृष्यसे मूढ ग्लहन्नक्षैः सभातले॥ ३१॥
फलमद्य प्रपश्यस्व कर्मणस्तस्य दुर्मते।
निहतास्ते दुरात्मानो येऽस्मानवहसन् पुरा॥ ३२॥
दुर्योधनः कुलाङ्गारः शिष्टस्त्वं चास्य मातुलः।
अद्य ते निहनिष्यामि क्षुरेणोन्मथितं शिरः॥ ३३॥
वृक्षात् फलमिवाविद्धं लगुडेन प्रमाथिना।
एवमुक्त्वा महाराज सहदेवो महाबलः॥ ३४॥
संक्रुद्धो रणशार्दूलो वेगेनाभिजगाम तम्।

बुद्धिमान् सहदेव ने उससे युद्ध करते हुए उसे याद दिलाते हुए कहा कि हे दुर्मति! क्षत्रिय धर्म में स्थित होकर युद्ध कर और पुरुष बन। अरे मूर्ख! उससमय सभा में जो तू पांसों से खेलता हुआ बड़ा खुश होरहा था, अपने उस कर्म के फल को आज देख ले। पहले जिन पुरुषों ने हमारी हँसी उड़ायी थी, वे सारे मारे गये। केवल कुलघाती दुर्योधन और उसका मामा तू ये दो ही बचे हैं। आज मैं क्षुर से तेरे सिर को उसीप्रकार काटूँगा, जैसे वृक्ष को डंडा मारकर उसका फल तोड़ा जाता है। हे महाराज! ऐसा कहकर अत्यन्तक्रुद्ध महाबली और रणशार्दूल सहदेव ने वेगपूर्वक उस पर आक्रमण किया।

अभिगम्य सुदुर्धर्षः सहदेवो युधां पतिः॥ ३५॥
विकृष्य बलवच्चापं क्रोधेन प्रज्वलन्निव।
शकुनिं दशभिर्विद्ध्वा चतुर्भिश्चास्य वाजिनः॥ ३६॥
छत्रं ध्वजं धनुश्चास्य च्छित्त्वा सिंह इवानदत्।
छिन्नध्वजधनुश्छत्रः सहदेवेन सौबलः॥ ३७॥
कृतो विद्धश्च बहुभिः सर्वमर्मसु सायकैः।
ततो भूयो महाराज सहदेवः प्रतापवान्।
शकुनेः प्रेषयामास शरवृष्टिं दुरासदाम्॥ ३८॥

योद्धाओं में श्रेष्ठ, अत्यन्तदुर्धर्ष, तथा क्रोध से जलते हुए सहदेव ने उसके सामने जाकर और अपने दृढ़ धनुष को खींचकर, शकुनि को दस बाणों से बींधकर, चार बाणों से उसके घोड़ों को भी बींध दिया। फिर उसके छत्र, ध्वज और धनुष, को काटकर सहदेव ने शकुनि के सारे मर्म स्थलों को बहुतसे बाणों से बींध दिया। प्रतापी सहदेव ने हे महाराज! शकुनि पर पुनः दुर्धर्ष बाणों की वर्षा को करना आरम्भ कर दिया।

ततस्तु क्रुद्धः सुबलस्य पुत्रो
माद्रीसुतं सहदेवं विमर्दे।
प्रासेन जाम्बूनदभूषणेन

जिघांसुरेकोऽभिपपात शीघ्रम्॥ ३९॥
माद्रीसुतस्तस्य समुद्यतं तं
प्रासं सुवृत्तौ च भुजौ रणाग्रे।
भल्लैस्त्रिभिर्युगपत् संचकर्त
ननाद चोच्चैस्तरसाऽऽजिमध्ये॥ ४०॥
तस्याशुकारी सुसमाहितेन
सुवर्णपुङ्खेन दृढायसेन।
भल्लेन सर्वावरणातिगेन
शिरः शरीरात् प्रममाथ भूयः॥ ४१॥

तब क्रुद्ध सुबलपुत्र ने युद्ध में, माद्रीपुत्र सहदेव को मारने की इच्छा से अकेले ही उस पर स्वर्णभूषित प्रास द्वारा शीघ्रता से आक्रमण किया। माद्रीपुत्र ने तब युद्ध के मुहाने पर उसके उस उठे हुए प्रास को और उसकी अच्छी गोल दोनों भुजाओं को तीन भल्लों से एकसाथ काट दिया और तुरन्त युद्धस्थल में जोर से गर्जना की। फिर शीघ्रता करने वाले सहदेव ने अच्छी तरह से छोड़े हुए,सुनहरे पंखवाले, दृढ़ लोहे के बने, सारे आवरणों को भेदने वाले भल्ल से उसके सिर को शरीर से अलग कर दिया।

अट्ठाईसवाँ अध्याय : सारी कौरव सेना का संहार। संजय का कैद से छूटना। दुर्योधन का भागकर सरोवर में छिपना।

ततः क्रुद्धा महाराज सौबलस्य पदानुगाः।
त्यक्त्वा जीवितमाक्रन्दे पाण्डवान् पर्यवारयन्॥ १॥
तानर्जुनः प्रत्यगृह्णात् सहदेवजये धृतः।
शक्त्यृष्टिप्रासहस्तानां सहदेवं जिघांसताम्॥ २॥
संकल्पमकरोन्मोघं गाण्डीवेन धनंजयः।
संगृहीतायुधान् बाहून् योधानामभिधावताम्॥ ३॥
भल्लैश्चिच्छेद बीभत्सुः शिरांस्यपि हयानपि।

हे महाराज! तब शकुनि के पीछे चलनेवाले सैनिकों ने समरभूमि में क्रुद्ध होकर, अपने प्राणों का मोह छोड़कर पाण्डवों को घेर लिया। उन्हें सहदेव की विजय को सुरक्षित करने के लिये अर्जुन ने रोक दिया। अर्जुन ने अपने गाण्डीव धनुष से शक्ति, ऋष्टि और प्रास हाथ में लिये, सहदेव को मारने के इच्छुक उनसबके संकल्प को व्यर्थ कर दिया। अर्जुन ने भल्लों से हथियारों को हाथ में लेकर आक्रमण करते हुए उन योद्धाओं की बाँहों, शिरों और घोड़ों को भी काट गिराया।

तेषु राजसहस्त्रेषु तावकेषु महात्मसु॥ ४॥
एको दुर्योधनो राजन्नदृश्यत भृशं क्षतः।
रथानां द्वे सहस्त्रे तु सप्त नागशतानि च॥ ५॥
पञ्च चाश्वसहस्त्राणि पत्तीनां च शतं शताः।
एतच्छेषमभूद् राजन् पाण्डवानां महद् बलम्॥ ६॥
नापश्यत् समरे कंचित् सहायं रथिनां वरः।
नर्दमानान् परान् दृष्ट्वा स्वबलस्य च संक्षयम्॥ ७॥
तथा दृष्ट्वा महाराज एकः स पृथिवीपतिः।
हतं स्वहयमुत्सृज्य प्राङ्मुखः प्राद्रवद् भयात्॥ ८॥

आपके मनस्वी हजारों राजाओं में से केवल एक दुर्योधन ही उस समय बचा हुआ दिखाई दे रहा था। वह भी बहुत घायल हो गया था। उस समय हे राजन्! पाण्डवों के पास दो हजार रथ, सात सौ हाथी, पाँच हजार घोड़े और दस हजार पैदल बचे हुए थे। हे महाराज! जब रथियों में श्रेष्ठ दुर्योधन ने युद्धक्षेत्र में किसी को भी अपना सहायक नहीं देखा, अपनी सारी सेना को नष्ट हुआ और शत्रुओं को गर्जते हुए देखा, तब वह अकेला राजा, अपने मरे हुए घोड़े को छोड़कर भय से पूर्वदिशा की तरफ भाग चला।

एकादशचमूभर्ता पुत्रो दुर्योधनस्तव।
गदामादाय तेजस्वी पदातिः प्रस्थितो ह्रदम्॥ ९॥
धृष्टद्युम्नस्तु मां दृष्ट्वा हसन् सात्यकिमब्रवीत्।
किमनेन गृहीतेन नानेनार्थोऽस्ति जीवता॥ १०॥
धृष्टद्युम्नवचः श्रुत्वा शिनेर्नप्ता महारथः।
उद्यम्य निशितं खड्गं हन्तुं मामुद्यतस्तदा॥ ११॥
तमागम्य महाप्राज्ञः कृष्णद्वैपायनोऽब्रवीत्।
मुच्यतां संजयो जीवन्न हन्तव्यः कथंचन॥ १२॥

आपका तेजस्वी पुत्र दुर्योधन जो पहले ग्यारह अक्षौहिणी सेना का पालन करनेवाला था, अब गदा को लेकर पैदल ही तालाब की तरफ भागा जारहा

था। उससमय धृष्टद्युम्न मुझे देखकर सात्यकि से बोला कि इसको बाँधकर रखने से क्या होगा? इसको जीवित रखने से कोई लाभ नहीं है। तब धृष्टद्युम्न की बात सुनकर सात्यकि तीखी तलवार निकालकर मुझे मारने के लिये तैयार हो गया। तभी महाविद्वान् कृष्ण द्वैपायन मुनि ने आकर उससे कहा कि संजय को जीवित छोड़ दो। इसे किसीप्रकार भी मत मारना।

द्वैपायनवचः श्रुत्वा शिनेर्नप्ता कृताञ्जलिः।
ततो मामब्रवीन्मुक्त्वा स्वस्ति संजय साधय॥ १३॥
अनुज्ञातस्त्वहं तेन न्यस्तवर्मा निरायुधः।
प्रातिष्ठं येन नगरं सायाह्ने रुधिरोक्षितः॥ १४॥
क्रोशमात्रमपक्रान्तं गदापाणिमवस्थितम्।
एकं दुर्योधनं राजन्नपश्यं भृशविक्षतम्॥ १५॥
स तु मामश्रुपूर्णाक्षो नाशक्नोदभिवीक्षितुम्।
उपप्रैक्षत मां दृष्ट्वा तथा दीनमवस्थितम्॥ १६॥
तं चाहमपि शोचन्तं दृष्ट्वैकाकिनमाहवे।
मुहूर्तं नाशकं वक्तुमतिदुःखपरिप्लुतः॥ १७॥

तब हाथ जोड़े हुए सात्यकि ने द्वैपायन जी की बात सुनकर मुझे छोड़ दिया और मुझसे कहा कि हे संजय! तुम्हारा कल्याण हो। अब अपने मन की इच्छा पूरी करो। तब उसके आज्ञा देने पर मैंने कवच को उतार दिया, हथियार रख दिये और सायंकाल के समय नगर की तरफ चल दिया। उस समय मेरा शरीर खून से भरा हुआ था। हे राजन्! एक कोस आने पर मैंने हाथ में गदा लेकर खड़े हुए, अत्यन्तघायल दुर्योधन को अकेले देखा। उस समय आँखों में आँसू भरे हुए वह मेरी तरफ अच्छी तरह से नहीं देख सका। दीन अवस्था में खड़े हुए मेरी अवस्था पर वह चुपचाप दृष्टिपात करता रहा। मैं भी युद्धक्षेत्र में अकेले दुर्योधन को शोक करते हुए देखकर, अत्यन्त दुःख से भरकर कुछ देर तक कुछ भी नहीं बोल सका।

ततोऽस्मै तदहं सर्वमुक्तवान् ग्रहणं तदा।
द्वैपायनप्रसादाच्च जीवतो मोक्षमाहवे॥ १८॥
स मुहूर्तमिव ध्यात्वा प्रतिलभ्य च चेतनाम्।
भ्रातॄंश्च सर्वसैन्यानि पर्यपृच्छत मां ततः॥ १९॥
तस्मै तदहमाचक्षे सर्वं प्रत्यक्षदर्शिवान्।
भ्रातॄंश्च निहतान् सर्वान् सैन्यं च विनिपातितम्॥ २०॥
स दीर्घमिव निःश्वस्य प्रत्यवेक्ष्य पुनः पुनः।
असौ मां पाणिना स्पृष्ट्वा पुत्रस्ते पर्यभाषत॥ २१॥

तब मैंने उससे अपने पकड़े जाने और व्यास जी की कृपा से जीवित छूटने का सारा समाचार कहा। तब उसने थोड़ी देर तक सोच विचार कर और फिर सँभल कर मुझसे अपने भाईयों और सारी सेनाओं के बारे में पूछा। मैंने तब जो कुछ भी आँखों से देखा था, वह सब उसे कह सुनाया। मैंने उसे बताया कि उसके सारे भाई मारे गये और सारी सेना भी मार दी गयी। तब आपके पुत्र ने लम्बी साँस लेकर और मेरी तरफ बार बार देखकर, मुझे हाथ से स्पर्श कर कहा।

त्वदन्यो नेह संग्रामे कश्चिज्जीवति संजय।
द्वितीयं नेह पश्यामि ससहायाश्च पाण्डवाः॥ २२॥
ब्रूयाः संजय राजानं प्रज्ञाचक्षुषमीश्वरम्।
दुर्योधनस्तव सुतः प्रविष्टो ह्रदमित्युत॥ २३॥
सुहृद्भिस्तादृशैर्हीनः पुत्रैर्भ्रातृभिरेव च।
पाण्डवैश्च हृते राज्ये को नु जीवेत मादृशः॥ २४॥
आचक्षीथाः सर्वमिदं मां च मुक्तं महाहवात्।
अस्मिंस्तोयह्रदे गुप्तं जीवन्तं भृशविक्षतम्॥ २५॥

हे संजय! शायद अब तुम्हारे सिवाय कोई दूसरा मेरा आत्मीय जीवित नहीं है। मैं किसी दूसरे को अपना सहायक नहीं देख रहा हूँ और पाण्डव अपने सहायकों के साथ विद्यमान हैं। हे संजय! अंधे स्वामी राजा से कहना कि आपका पुत्र दुर्योधन यहाँ तालाब में प्रवेश कर गया है। वह अपने पराक्रमी पुत्रों, भाइयों और मित्रों से रहित हो गया है। पाण्डवों के द्वारा राज्य का हरण कर लिये जाने पर मेरे जैसा व्यक्ति कैसे जीवित रह सकता है? हे संजय! तुम उनसे सब कुछ कह देना कि मैं इस महान् युद्ध में जीवित बचकर, अत्यन्त घायल होकर इस तालाब में छिपा हुआ हूँ।

तस्मिन् ह्रदं प्रविष्टे तु त्रीन् रथान् श्रान्तवाहनान्।
अपश्यं सहितानेकस्तं देशं समुपेयुषः॥ २६॥
कृपं शारद्वतं वीरं द्रौणिं च रथिनां परम्।
भोजं च कृतवर्माणं सहिताञ्शरविक्षतान्॥ २७॥
ते सर्वे मामभिप्रेक्ष्य तूर्णमश्वाननोदयन्।
उपायाय तु मामूचुर्दिष्ट्या जीवसि संजय॥ २८॥
अपृच्छंश्चैव मां सर्वे पुत्रं तव जनाधिपम्।
कच्चिद् दुर्योधनो राजा स नो जीवति संजय॥ २९॥

दुर्योधन के सरोवर में घुस जाने पर मैंने तीन रथियों को देखा, जिनके घोड़े थक गये थे। वे तीनों एकसाथ ही उस स्थान पर आकर पहुँचे थे। उनके नाम थे, कृपाचार्य, वीर, रथियों में श्रेष्ठ अश्वत्थामा तथा भोजवंशी कृतवर्मा। ये तीनों एक साथ थे और बाणों से घायल हो रहे थे। वे सब मुझे देखकर तुरन्त अपने घोड़ों को बढ़ाकर मेरे समीप आये और मुझसे बोले कि हे संजय! सौभाग्य से तुम जीवित हो। उन्होंने मुझसे आपके राजापुत्र के बारे में पूछा कि क्या हमारा राजा दुर्योधन हे संजय। अभी जीवित है?

आख्यातवानहं तेभ्यस्तदा कुशलिनं नृपम्।
तच्चैव सर्वमाचक्षं यन्मां दुर्योधनोऽब्रवीत्॥ ३०॥

अश्वत्थामा तु तद् राजन् निशम्य वचनं मम।
तं ह्रदं विपुलं प्रेक्ष्य करुणं पर्यदेवयत्॥ ३१॥
अहो धिक् स न जानाति जीवतोऽस्मान् नराधिपः।
पर्याप्ता हि वयं तेन सह योधयितुं परान्॥ ३२॥

मैंने उनसे राजा के सकुशल होने का हाल बताया और वे सारी बातें भी बतायीं, जो मुझसे दुर्योधन ने कहीं थी। हे राजन्! अश्वत्थामा ने तब मेरी बात सुनकर, उस विशाल तालाब को देखकर, करुणा के साथ विलाप करते हुए कहा कि अरे धिक्कार है। वे राजा दुर्योधन नहीं जानते कि हम जीवित हैं। हम उनके साथ रहकर शत्रुओं से युद्ध करने के लिये पर्याप्त हैं।

उनत्तीसवाँ अध्याय : अश्वत्थामा आदि की सरोवर पर दुर्योधन से बातचीत। पाण्डवों का वहाँ आना।

मार्गमाणास्तु संक्रुद्धास्तव पुत्रं जयैषिणः।
यत्नतोऽन्वेषमाणास्ते नैवापश्यञ्जनाधिपम्॥ १॥
यदा तु पाण्डवाः सर्वे सुपरिश्रान्तवाहनाः।
ततः स्वशिबिरं प्राप्य व्यतिष्ठन्त ससैनिकाः॥ २॥
ततः कृपश्च द्रौणिश्च कृतवर्मा च सात्वतः।
अभ्यभाषन्त दुर्धर्षं राजानं सुप्तमम्भसि॥ ३॥
राजन्नुत्तिष्ठ युद्ध्यस्व सहास्माभिर्युधिष्ठिरम्।
जित्वा वा पृथिवीं भुङ्क्ष्व हतो वा स्वर्गमाप्नुहि॥ ४॥

तब विजय के इच्छुक, अत्यन्तक्रुद्ध पाण्डव आपके पुत्र का यत्नपूर्वक पता लगाने लगे, पर उस राजा को उन्होंने कहीं नहीं देखा। फिर जब उनके वाहन अत्यन्त थक गये तो सारे पाण्डव सैनिकोंसहित अपने शिविर में आकर बैठ गये। उधर कृपाचार्य अश्वत्थामा और कृतवर्मा उस दुर्धर्ष राजा से जो पानी के अन्दर सोरहा था, बोले, हे राजन्! उठो और हमारे साथ युधिष्ठिर से युद्ध करो। या तो विजय प्राप्त कर पृथिवी का भोग करो या मारे जाकर उत्तम गति को प्राप्त करो।

तेषामपि बलं सर्वं हतं दुर्योधन त्वया।
प्रतिविद्धाश्च भूयिष्ठं ये शिष्टास्तत्र सैनिकाः॥ ५॥
न ते वेगं विषहितुं शक्तास्तव विशाम्पते।
अस्माभिरपि गुप्तस्य तस्मादुत्तिष्ठ भारत॥ ६॥

दुर्योधन उवाच

दिष्ट्या पश्यामि वो मुक्तानीदृशात् पुरुषक्षयात्।
पाण्डुकौरव– सम्मर्दाज्जीवमानान् नरर्षभान्॥ ७॥
विजेष्यामो वयं सर्वे विश्रान्ता विगतक्लमाः।
भवन्तश्च परिश्रान्ता वयं च भृशविक्षताः॥ ८॥
उदीर्णं च बलं तेषां तेन युद्धं न रोचये।

हे दुर्योधन तुमने भी उनकी सारी सेना का संहार किया है। उनके जो सैनिक बचे हुए हैं, वे बहुत घायल हैं। हे प्रजानाथ! वे हमारे द्वारा सुरक्षित आपके वेग को सहन नहीं कर सकेंगे। हे भारत! इसलिये युद्ध के लिये उठो। तब दुर्योधन ने कहा कि बड़े सौभाग्य की बात है कि मैं तुम जैसे नरश्रेष्ठों को कौरवों और पाण्डवों के पुरुषों का नाश करने वाले महासंग्राम में से बचा हुआ देख रहा हूँ। विश्राम करने और थकावट को दूर करने पर हम अवश्य ही विजय को प्राप्त करेंगे। इससमय आपलोग भी थके हुए हैं और मैं भी अत्यन्त घायल होरहा हूँ और उनका बल बढ़ रहा है, इसलिये मुझे युद्ध करना अच्छा नहीं लगता।

न त्वेतदद्भुतं वीरा यद् वो महदिदं मनः॥ ९॥
अस्मासु च परा भक्तिर्न तु कालः पराक्रमे।
विश्रम्यैकां निशामद्य भवद्भिः सहितो रणे॥ १०॥

प्रतियोत्स्याम्यहं शत्रूञ्श्वो न मेऽस्त्यत्र संशयः।
एवमुक्तोऽब्रवीद् द्रौणी राजानं युद्धदुर्मदम्॥ ११॥
उत्तिष्ठ राजन् भद्रं ते विजेष्यामो वयं परान्।
मा स्म यज्ञकृतां प्रीतिमाप्नुयां सज्जनोचिताम्॥ १२॥
यदीमां रजनीं व्युष्टां न हि हन्मि परान् रणे।
नाहत्वा सर्वपञ्चालान् विमोक्ष्ये कवचं विभो॥ १३॥
इति सत्यं ब्रवीम्येतत्तन्मे शृणु जनाधिप।

हे वीरों! यह आप लोगों के लिये अद्‌भुत बात नहीं है जो आपका मन इतना विशाल है और मेरे प्रति परम भक्ति है, फिर भी यह समय पराक्रम करने का नहीं है। आज एक रात आराम करके मैं कल आप लोगों के साथ शत्रुओं से युद्ध करूँगा, इसमें कोई संशय की बात नहीं है। दुर्योधन के ऐसा कहने पर द्रोणपुत्र ने युद्ध में दुर्मद राजा से कहा कि हे राजन्! उठो। आपका कल्याण हो। हम शत्रुओं पर अवश्य विजय प्राप्त करेंगे। यदि मैं रात बीतते ही प्रातः काल शत्रुओं को युद्ध में न मार डालूँ तो मुझे यज्ञ करने वाले सज्जनों को जो हर्ष प्राप्त होता है, वह प्राप्त न हो। हे प्रभो! हे राजन्! मैं सारे पांचालों को बिना मारे अपना कवच नहीं उतारूँगा। आप मेरी यह बात सुनिये। यह मैं सत्य कहता हूँ।

तेषु सम्भाषमाणेषु व्याधास्तं देशमाययुः॥ १४॥
मांसभारपरिश्रान्ताः पानीयार्थं यदृच्छया।
ते तत्र धिष्ठितास्तेषां सर्वं तद् वचनं रहः॥ १५॥
दुर्योधनवचश्चैव शुश्रुवुः संगता मिथः।
तेषां श्रुत्वा च संवादं राज्ञश्च सलिले सतः॥ १६॥
व्याधाभ्यजानन् राजेन्द्र सलिलस्थं सुयोधनम्।

जब वे बातें कर रहे थे, तब माँस के बोझे से थके हुए, शिकारीलोग अपनी इच्छा से ही पानी पीने को वहाँ आगये। एकान्त में परस्पर पास पास खड़े हुए उन्होंने उनकी वे सारी बातें और दुर्योधन की बात भी सुनी। हे राजेन्द्र! उनके जल में विद्यमान राजा के साथ वार्तालाप को सुनकर व्याधों ने समझ लिया कि पानी के अन्दर दुर्योधन है।

ते पूर्वं पाण्डुपुत्रेण पृष्टा ह्यासन् सुतं तव॥ १७॥
यदृच्छोपगतास्तत्र राजानं परिमार्गता।
ततस्ते पाण्डुपुत्रस्य स्मृत्वा तद् भाषितं तदा॥ १८॥
अन्योन्यमब्रुवन् राजन् मृगव्याधाः शनैरिव।
दुर्योधनं ख्यापयामो धनं दास्यति पाण्डवः॥ १९॥
सुव्यक्तमिह नः ख्यातो ह्रदे दुर्योधनो नृपः।
तस्माद् गच्छामहे सर्वे यत्र राजा युधिष्ठिरः॥ २०॥
आख्यातुं सलिले सुप्तं दुर्योधनममर्षणम्।

पहले जब अपनी इच्छा से ही वे वहाँ घूम रहे थे, तब दुर्योधन की खोज करते हुए युधिष्ठिर ने अपने समीप आये हुए उनसे, आपके पुत्र का पता पूछा था। हे राजन्! तब युधिष्ठिर की बातों को यादकर वे शिकारी धीरेधीरे आपस में कहने लगे कि हमें यह स्पष्ट पता लग गया है कि राजा दुर्योधन यहाँ तालाब में है। यदि हम दुर्योधन के बारे में बता दें तो पाण्डव हमें धन देंगे। इसलिये अमर्षशील दुर्योधन का पता बताने के लिये हम राजा युधिष्ठिर के पास चलते हैं।

तस्माद् देशादपक्रम्य त्वरिता लुब्धका विभो॥ २१॥
आजग्मुः शिबिरं हृष्टा दृष्ट्वा दुर्योधनं नृपम्।
वार्यमाणाः प्रविष्टाश्च भीमसेनस्य पश्यतः॥ २२॥

हे विभो! दुर्योधन राजा को देखकर प्रसन्नता से भरे हुए वे शिकारी तब वहाँ से चलकर शीघ्रता के साथ पाँडवों के शिविर में आ गये और रक्षकों द्वारा रोके जाने पर भी भीमसेन के देखते हुए, अन्दर घुसकर उनके पास पहुँच गये।

ते तु पाण्डवमासाद्य भीमसेनं महाबलम्।
तस्मै तत् सर्वमाचख्युर्यद् वृत्तं यच्च वै श्रुतम्॥ २३॥
ततो वृकोदरो राजन् दत्त्वा तेषां धनं बहु।
धर्मराजाय तत् सर्वमाचचक्षे परंतपः॥ २४॥
असौ दुर्योधनो राजन् विज्ञातो मम लुब्धकैः।
संस्तभ्य सलिलं शेते यस्यार्थे परितप्यसे॥ २५॥
तद् वचो भीमसेनस्य प्रियं श्रुत्वा विशाम्पते।
अजातशत्रुः कौन्तेयो हृष्टोऽभूत् सह सोदरैः॥ २६॥
क्षिप्रमेव ततोऽगच्छत् पुरस्कृत्य जनार्दनम्।

उन्होंने पाण्डुपुत्र के पास पहुँचकर तालाब के किनारे जो कुछ हुआ था और जो कुछ उन्होंने सुना था, सब उन्हें कह सुनाया। हे राजन्! तब परंतप भीमसेन ने उन्हें बहुतसा धन देकर येसारी बातें धर्मराज युधिष्ठिर को जाकर बतायीं और कहा कि राजन्! मेरे शिकारियों ने पता लगाया है कि वह दुर्योधन, जिसके लिये आप चिन्तित होरहे हैं, पानी को बाँधकर सरोवर में सोरहा है। हे प्रजानाथ!

भीमसेन के उस प्रिय वचन को सुनकर अजातशत्रु कुन्तीपुत्र भाइयों के साथ बड़े प्रसन्न हुए। वे शीघ्र ही श्रीकृष्ण जी को आगेकर वहाँ से चल दिये।

दुर्योधनं परीप्सन्तस्तत्र तत्र युधिष्ठिरम्॥ २७॥
अन्वयुस्त्वरितास्ते वै राजानं श्रान्तवाहनाः।
अर्जुनो भीमसेनश्च माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ॥ २८॥
धृष्टद्युम्नश्च पाञ्चाल्यः शिखण्डी चापराजितः।
उत्तमौजा युधामन्युः सात्यकिश्च महारथः॥ २९॥
पञ्चालानां च ये शिष्टा द्रौपदेयाश्च भारत।
हयाश्च सर्वे नागाश्च शतशश्च पदातयः॥ ३०॥
ततः प्राप्तो महाराज धर्मराजः प्रतापवान्।
द्वैपायनं ह्रदं घोरं यत्र दुर्योधनोऽभवत्॥ ३१॥

तब दुर्योधन को पाने की इच्छा से वे सब राजा लोग भी यद्यपि उनके वाहन थके हुए थे, युधिष्ठिर के पीछे शीघ्रता से चल दिये। अर्जुन, भीमसेन, नकुल और सहदेव, पांचालकुमार धृष्टद्युम्न और अपराजित शिखण्डी, उत्तमौजा, युधामन्यु, महारथी सात्यकि, हे भारत! पांचालों में से जो कोई भी बचे हुए थे, वे सारे, और द्रौपदी के पुत्र, सारे घोड़े और हाथी और सैकड़ों पैदल उनके पीछे चल दिये। हे महाराज! फिर वे प्रतापी धर्मराज उस द्वैपायन नाम के भयंकर तालाब पर जा पहुँचे, जहाँ दुर्योधन था।

महता शङ्खनादेन रथनेमिस्वनेन च।
ऊर्ध्वं धुन्वन् महारेणुं कम्पयंश्चापि मेदिनीम्॥ ३२॥
यौधिष्ठिरस्य सैन्यस्य श्रुत्वा शब्दं महारथाः।
कृतवर्मा कृपो द्रौणी राजानमिद मब्रुवन्॥ ३३॥
इमे ह्यायान्ति संहृष्टाः पाण्डवा जितकाशिनः।
अपयास्यामहे तावदनुजानातु नो भवान्॥ ३४॥

महान शंखनाद और रथों की घर्घराहट से विशाल धूल को ऊपर उठाते हुए और भूमि को कम्पित करते हुए, युधिष्ठिर की सेना के शब्द को सुनकर वे महारथी कृतवर्मा, द्रोणपुत्र और कृपाचार्य राजा से बोले कि ये विजय के इच्छुक पाण्डव प्रसन्नता के साथ यहाँ आ रहे हैं, इसलिये हम यहाँ से चले जाते हैं, आप इसके लिये हमें आज्ञा दीजिये।

ते त्वनुज्ञाप्य राजानं भृशं शोकपरायणाः।
जग्मुर्दूरे महाराज कृपप्रभृतयो रथाः॥ ३५॥
ते गत्वा दूरमध्वानं न्यग्रोधं प्रेक्ष्य मारिष।
न्यविशन्त भृशं श्रान्ताश्चिन्तयन्तो नृपं प्रति॥ ३६॥
कथं नु युद्धं भविता कथं राजा भविष्यति।
कथं नु पाण्डवा राजन् प्रतिपत्स्यन्ति कौरवम्॥ ३७॥
इत्येवं चिन्तयानास्तु रथेभ्योऽश्वान् विमुच्य ते।
तत्रासांचक्रिरे राजन् कृपप्रभृतयो रथाः॥ ३८॥

इसप्रकार राजा की आज्ञा लेकर, अत्यन्त शोक में भरकर हे महाराज! वे कृपाचार्य आदि रथी वहाँ से दूर चले गये। हे मान्यवर! दूरतक रास्ते पर चलकर वे एक बरगद के वृक्ष को देखकर, अत्यन्त थके हुए, उसी के नीचे बैठ गये। रथों से घोड़ों को खोलकर वे कृपाचार्य आदि रथी, कैसे अब युद्ध होगा? राजा की क्या अवस्था होगी? इसप्रकार की चिन्ता करते हुए, वहाँ आराम करने लगे।

तीसवाँ अध्याय : युधिष्ठिर और दुर्योधन संवाद।

ततस्तेष्वपयातेषु रथेषु त्रिषु पाण्डवाः।
ते ह्रदं प्रत्यपद्यन्त यत्र दुर्योधनोऽभवत्॥ १॥
मायावी मायया वध्यः सत्यमेतद् युधिष्ठिर।
इत्युक्तो वासुदेवेन पाण्डवः संशितव्रतः॥ २॥
जलस्थं तं महाराज तव पुत्रं महाबलम्।
अभ्यभाषत कौन्तेयः प्रहसन्निव भारत॥ ३॥
सुयोधन किमर्थोऽयमारम्भोऽप्सु कृतस्त्वया।
सर्वक्षत्रं घातयित्वा स्वकुलं च विशाम्पते॥ ४॥
जलाशयं प्रविष्टोऽद्य वाञ्छञ्जीवितमात्मनः।
उत्तिष्ठ राजन् युध्यस्व सहास्माभिः सुयोधन॥ ५॥
स ते दर्पो नरश्रेष्ठ स च मानः क्व ते गतः।
उत्तिष्ठ राजन् युध्यस्व क्षत्रियोऽसि कुलोद्भवः॥ ६॥
कौरवेयो विशेषेण कुलं जन्म च संस्मर।

तब उन तीनों रथियों के वहाँ से हट जाने पर पाण्डव उस तालाब पर पहुँचे, जहाँ दुर्योधन था। हे युधिष्ठिर! यह सत्य है कि कपटी को कपट से मारना चाहिये। श्रीकृष्ण जी के ऐसा कहने पर हे भारत, हे महाराज! कठोर व्रत का पालन करने वाले कुन्तीपुत्र ने, जल में बैठे आपके महाबली पुत्र से मुस्कराकर कहा कि हे दुर्योधन, प्रजानाथ! सारे क्षत्रियों को, अपने कुल

को मरवाकर यह पानी में अनुष्ठान किसलिये आरम्भ किया है? हे राजन् दुर्योधन! आज जीवन की इच्छा करते हुए तुम जलाशय में घुसे बैठे हो। उठो। हमारे साथ युद्ध करो? हे नरश्रेष्ठ, राजन्! तुम्हारा वह दर्प और अभिमान कहाँ चला गया? हे राजन्! उठो। युद्ध करो। तुम क्षत्रिय हो और अच्छे कुल में जन्मे हो और विशेषरूप से कुरुकुल में तुमने जन्म लिया है। अपने कुल और जन्म का विचार करो।

स कथं कौरवे वंशे प्रशंसञ्जन्म चात्मनः॥ ७॥
युद्धाद् भीतस्ततस्तोयं प्रविश्य प्रतितिष्ठसि।
अयुद्धमव्यवस्थानं नैष धर्मः सनातनः॥ ८॥
अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यं रणे राजन् पलायनम्।
कथं पारमगत्वा हि युद्धे त्वं वै जिजीविषुः॥ ९॥
इमान् निपतितान् दृष्ट्वा पुत्रान् भ्रातॄन् पितॄंस्तथा।
सम्बन्धिनो वयस्यांश्च मातुलान् बान्धवांस्तथा॥ १०॥
घातयित्वा कथं तात ह्रदे तिष्ठसि साम्प्रतम्।

तुम तो अपने जन्म और कुरुवंश की प्रशंसा करते थे। फिर क्यों युद्ध से डरकर पानी में बैठे हो? युद्ध न करना और युद्ध में स्थिर न रहना सनातन धर्म नहीं है। युद्ध से भागना नीच पुरुषों का निम्न गति को प्राप्त कराने वाला मार्ग है। अपने सम्बन्धियों, मित्रों, मामाओं और बान्धवों को मरवाकर बिना युद्ध के पार तक पहुँचे हे तात! अब तुम तालाब में क्यों बैठे हुए हो? अपने मृत पुत्रों, पिताओं और भाइयों की लाशों को देखते हुए भी तुम्हें जीने की इच्छा कैसे होगई?

शूरमानी न शूरस्त्वं मृषा वदसि भारत॥ ११॥
शूरोऽहमिति दुर्बुद्धे सर्वलोकस्य शृण्वतः।
न हि शूराः पलायन्ते शत्रून् दृष्ट्वा कथञ्चन॥ १२॥
ब्रूहि वा त्वं यया वृत्त्या शूर त्यजसि संगरम्।
स त्वमुत्तिष्ठ युध्यस्व विनीय भयमात्मनः॥ १३॥
घातयित्वा सर्वसैन्यं भ्रातॄंश्चैव सुयोधन।
नेदानीं जीविते बुद्धिः कार्या धर्मचिकीर्षया॥ १४॥
क्षत्रधर्ममुपाश्रित्य त्वद्विधेन सुयोधन।

हे भारत! तुम शूरवीर नहीं हो। झूठे ही अपने को शूरवीर मानते और सब लोगों को सुनाकर अपने आपको शूरवीर बखानते थे। शूरवीर शत्रु को देखकर कभी भागते नहीं हैं। बताओ तुमने किस वृत्ति का आश्रय लेकर युद्ध का त्याग किया है? हे दुर्योधन! तुम अपने भय को दूर करके उठो और युद्ध करो। अपनी सारी सेना और भाइयों का विनाश कराकर, क्षत्रियधर्म का सहारा लिये तुम जैसे व्यक्ति को अब धर्म कार्य करने की इच्छा से जीवित रहने का विचार नहीं करना चाहिये।

तत् पापं सुमहत् कृत्वा प्रतियुद्ध्यस्व भारत॥ १५॥
कथं हि त्वद्विधो मोहाद् रोचयेत पलायनम्।
क्व ते तत् पौरुषं यातं क्व च मानः सुयोधन॥ १६॥
क्व च विक्रान्तता याता क्व च विस्फूर्जितं महत्।
क्व ते कृतास्त्रता याता किञ्च शेषे जलाशये॥ १७॥
स त्वमुत्तिष्ठ युध्यस्व क्षत्रधर्मेण भारत।

उस अत्यन्त महान् पाप को करके हे भारत! अब तुम युद्ध के द्वारा शत्रु का सामना करो। तुम जैसा व्यक्ति मोह में पड़कर भागने को कैसे अच्छा समझ सकता है। हे दुर्योधन! तुम्हारा वह अभिमान्, पौरुष, वह पराक्रम, वह गर्जनतर्जन और अस्त्रकौशल कहाँ गया? हे भारत! इसलिये उठो और क्षत्रियधर्म के अनुसार युद्ध करो।

अस्मांस्तु वा पराजित्य प्रशाधि पृथिवीमिमाम्॥ १८॥
अथवा निहतोऽस्माभिर्भूमौ स्वप्स्यसि भारत।
एवमुक्तो महाराज धर्मपुत्रेण धीमता॥ १९॥
सलिलस्थस्तव सुत इदं वचनमब्रवीत्।
नैतच्चित्रं महाराज यद्भीः प्राणिनमाविशेत्॥ २०॥
न च प्राणभयाद् भीतो व्यपयातोऽस्मि भारत।
अरथश्चानिषङ्गी च निहतः पार्ष्णिसारथिः॥ २१॥
एकश्चाप्यगणः संख्ये प्रत्याश्वासमरोचयम्।

हे भारत! या तो तुम हमें पराजित करके इस पृथिवी पर राज्य करो या हमारे द्वारा मारे जाकर युद्धभूमि में शयन करो। हे महाराज! धीमान् धर्मपुत्र के द्वारा ऐसा कहने पर, पानी में बैठे हुए आपके पुत्र ने कहा कि हे महाराज! यह आश्चर्य की बात नहीं है यदि किसी प्राणी में भय का समावेश हो जाये, पर मैं हे भारत! प्राणों के भय के कारण भागकर यहाँ नहीं आया हूँ। मैं रथ और तरकस से रहित हो गया। मेरे चक्र रक्षक मारे गये। युद्धक्षेत्र में मैं बिना सेना के अकेला रह गया। ऐसी अवस्था में मुझे कुछ देर आराम करने की इच्छा हुई।

न प्राणहेतोर्न भयान्न विषादाद् विशाम्पते॥ २२॥
इदमम्भः प्रविष्टोऽस्मि श्रमात् त्विदमनुष्ठितम्।
त्वं चाश्वसिहि कौन्तेय ये चाप्यनुगतास्तव॥ २३॥
अहमुत्थाय वः सर्वान् प्रतियोत्स्यामि संयुगे।

युधिष्ठिर उवाच

आश्वस्ता एव सर्वे स्म चिरं त्वां मृगयामहे॥ २४॥
तदिदानीं समुत्तिष्ठ युध्यस्वेह सुयोधन।
हत्वा वा समरे पार्थान् स्फीतं राज्यमवाप्नुहि॥ २५॥
निहतो वा रणेऽस्माभिर्वीरलोकमवाप्स्यसि।

हे प्रजानाथ! मैं प्राणों को बचाने के लिये, या भय के या विषाद के कारण यहाँ पानी में नहीं बैठा हूँ। यह कार्य तो थकावट के कारण किया है। हे कुन्तीपुत्र! तुम और तुम्हारे साथी भी थोड़ी देर आराम कर लें। फिर मैं उठकर तुम सबके साथ युद्ध करूँगा। तब युधिष्ठिर ने कहा कि हम सबने आराम कर लिया है। हम बहुत देर से तुम्हें ढूँढ रहे हैं इसलिये हे दुर्योधन! अब उठो और युद्ध करो। या तो युद्धमें कुन्तीपुत्रों को मारकर विशाल साम्राज्य को प्राप्त करो या हमारेद्वारा युद्ध में मारे जाकर वीरलोक में जाओ।

दुर्योधन उवाच

यदर्थं राज्यमिच्छामि कुरूणां कुरुनन्दन॥ २६॥
त इमे निहताः सर्वे भ्रातरो मे जनेश्वर।
क्षीणरत्नां च पृथिवीं हतक्षत्रियपुङ्गवाम्॥ २७॥
न ह्युत्सहाम्यहं भोक्तुं विधवामिव योषितम्।
अद्यापि त्वहमाशंसे त्वां विजेतुं युधिष्ठिर॥ २८॥
भङ्क्त्वा पाञ्चालपाण्डूनामुत्साहं भरतर्षभ।
न त्विदानीमहं मन्ये कार्यं युद्धेन कर्हिचित्॥ २९॥
द्रोणे कर्णे च संशान्ते निहते च पितामहे।

तब दुर्योधन ने कहा कि हे राजन्! हे कुरुनन्दन! मैं जिनके लिये राज्य को चाहता था, वे मेरे सारे भाई मारे गये। अब मुझे विधवा नारी के समान, इस भूमि का जिसके रत्न नष्ट होगये हैं और श्रेष्ठ क्षत्रिय मारे गये हैं, भोग करने की इच्छा नहीं है। हे भरतश्रेष्ठ युधिष्ठिर! आज भी मैं पांचालों और पाण्डवों के उत्साह को नष्ट करके तुम्हें जीत लेने का उत्साह रखता हूँ। अब द्रोणाचार्य और कर्ण के मारे जाने और पितामह भीष्म के शान्त होजाने पर, मैं समझता हूँ कि मुझे युद्ध की कोई आवश्यकता नहीं रही है।

अस्त्विदानीमियं राजन् केवला पृथिवी तव॥ ३०॥
असहायो हि को राजा राज्यमिच्छेत् प्रशासितुम्।
अहं वनं गमिष्यामि ह्यजिनैः प्रतिवासितः॥ ३१॥
रतिर्हि नास्ति मे राज्ये हतपक्षस्य भारत।
हतबान्धवभूयिष्ठा हताश्वा हतकुञ्जरा॥ ३२॥
एषा ते पृथिवी राजन् भुङ्क्ष्वैनां विगतज्वरः।
गच्छ त्वं भुङ्क्ष्व राजेन्द्र पृथिवीं निहतेश्वराम्॥ ३३॥
हतयोधां नष्टरत्नां क्षीणवृत्तिर्यथासुखम्।

हे राजन्! अब यह सूनी पृथिवी तुम्हारी ही रहे। सहायकों से रहित होकर कौन राजा राज्य करना चाहेगा? हे भारत! अपने पक्ष के लोगों के मारे जाने पर मुझे राज्य की कोई चाह नहीं है, मैं तो मृगचर्म धारणकर वन में चला जाऊँगा। इस भूमि का जिसपर मेरे अधिकांश बन्धुबान्धव, घोड़े और हाथी मारे गये हैं, तुम ही हे राजन्! निश्चिन्त होकर भोग करो। जिसका स्वामी नष्ट होगया, जिसके योद्धालोग मारे गये, जिसकी धन, दौलत नष्ट होगयी, उस भूमि का, हे राजेन्द्र! जाओ तुम ही सुख से भोग करो, क्योंकि तुम्हारी आजीविका क्षीण होगयी थी।

दुर्योधनं तव सुतं सलिलस्थं महायशाः॥ ३४॥
श्रुत्वा तु करुणं वाक्यमभाषत युधिष्ठिरः।
आर्तप्रलापान्मा तात सलिलस्थः प्रभाषिथाः॥ ३५॥
नैतन्मनसि मे राजन् वाशितं शकुनेरिव।
यदि वापि समर्थः स्यास्त्वं दानाय सुयोधन॥ ३६॥
नाहमिच्छेयमवनिं त्वया दत्तां प्रशासितुम्।
अधर्मेण न गृह्णीयां त्वया दत्तां महीमिमाम्॥ ३७॥
न हि धर्मः स्मृतो राजन् क्षत्रियस्य प्रतिग्रहः।
त्वां तु युद्धे विनिर्जित्य भोक्तास्मि वसुधामिमाम्॥ ३८॥

आपके जल में बैठे हुए पुत्र दुर्योधन की ये करुणाभरी बातें सुनकर महायशस्वी युधिष्ठिर ने कहा कि हे तात! तुम पानी में बैठे हुए पागलों की तरह प्रलाप मत करो। तुम्हारी ये बातें मेरे मन में चिड़ियों की चीं चीं के समान कोई अर्थ नहीं रखतीं। हे दुर्योधन! यदि तुम दान देने में समर्थ होते तो भी मैं तुम्हारी दान दीहुई भूमि पर राज्य करने की इच्छा नहीं रखता। हे राजन्! मैं तुम्हारे द्वारा दी हुई भूमि को अधर्मपूर्वक नहीं लेसकता। क्षत्रिय के लिये दान लेना धर्म नहीं है। मैं तो तुम्हें युद्ध में जीतकर ही इस भूमि का भोग करूँगा।

अनीश्वरश्च पृथिवीं कथं त्वं दातुमिच्छसि।
त्वयेयं पृथिवी राजन् किन्न दत्ता तदैव हि॥ ३९॥
धर्मतो याचमानानां प्रशमार्थं कुलस्य नः।
वार्ष्णेयं प्रथमं राजन् प्रत्याख्याय महाबलम्॥ ४०॥
किमिदानीं ददासि त्वं को हि ते चित्तविभ्रमः।
अभियुक्तस्तु को राजा दातुमिच्छेद्धि मेदिनीम्॥ ४१॥
न त्वमद्य महीं दातुमीशः कौरवनन्दन।
आच्छेत्तुं वा बलाद् राजन् स कथं दातुमिच्छसि॥ ४२॥

हे राजन्! जिस भूमि के तुम स्वामी ही नहीं हो, उसे तुम देने की इच्छा कैसे करते हो? जब हम कुल की शान्ति के लिये धर्म के अनुसार ही तुमसे भूमि को माँग रहे थे, तब तुमने यह भूमि क्यों नहीं दी? हे राजन्! पहले महाबली श्रीकृष्ण को देने से मना करके अब तुम कैसे देरहे हो? तुम्हारे मन में यह कैसा भ्रम है? जो राजा शत्रुओं से आक्रान्त होरहा हो, वह कौन किसी को भूमि दान करने की इच्छा करेगा? आज जब तुम न तो किसी को भूमि दान कर सकते हो और न किसी से भूमि छीन सकते हो, ऐसी स्थिति में हे राजन्! तुम कैसे भूमि देना चाहते हो?

मां तु निर्जित्य संग्रामे पालयेमां वसुन्धराम्।
सूच्यग्रेणापि यद् भूमेरपि भिद्येत भारत॥ ४३॥
तन्मात्रमपि तन्मह्यं न ददाति पुरा भवान्।
स कथं पृथिवीमेतां प्रददासि विशाम्पते॥ ४४॥
त्वं तु केवलमौर्ख्येण विमूढो नावबुद्ध्यसे।
पृथिवीं दातुकामोऽपि जीवितेन विमोक्ष्यसे॥ ४५॥
अस्मान् वा त्वं पराजित्य प्रशाधि पृथिवीमिमाम्।
अथवा निहतोऽस्माभिर्व्रज लोकाननुत्तमान्॥ ४६॥
आवयोर्जीवतो राजन् मयि च त्वयि च ध्रुवम्।
संशयः सर्वभूतानां विजये नौ भविष्यति॥ ४७॥

पहले तो तुम सुई की नोक से जितना भाग छिद सके, उतनी भूमि भी मुझे देने के लिये तैयार नहीं थे, हे प्रजानाथ! पर अब क्यों सारी भूमि मुझे देरहे हो? अबतो हे भारत! तुम मुझे युद्ध में जीतकर ही इस भूमि का पालन करो। तुम तो केवल मूर्खता के कारण ही पागल बने हुए हो? तुम्हें यह समझ नहीं है कि भूमि को देने का इच्छुक होने पर भी तुम्हें अब अपने जीवन से हाथ धोना पड़ेगा। या तो तुम हमें जीतकर इस भूमि पर राज्य करो या हमारे द्वारा मारे जाकर उत्तम गति को प्राप्त करो। हे राजन्! मेरे और तुम्हारे दोनों के जीवित रहने पर तो लोगों को विजय के विषय में संशय रहेगा।

जीवितं तव दुष्प्रज्ञ मयि सम्प्रति वर्तते।
जीवयेयमहं कामं न तु त्वं जीवितुं क्षमः॥ ४८॥
दहने हि कृतो यत्नस्त्वयास्मासु विशेषतः।
आशीविषैर्विषैश्चापि जले चापि प्रवेशनैः॥ ४९॥
त्वया विनिकृतां राजन् राज्यस्य हरणेन च।
अप्रियाणां च वचनैर्द्रौपद्याः कर्षणेन च॥ ५०॥
एतस्मात् कारणात् पाप जीवितं ते न विद्यते।
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ युध्यस्व युद्धे श्रेयो भविष्यति॥ ५१॥
एवं तु विविधा वाचो जययुक्ताः पुनः पुनः।
कीर्तयन्ति स्म ते वीरास्तत्र तत्र जनाधिप॥ ५२॥

अरे खोटी बुद्धिवाले! तेरा जीवित रहना, इस समय मेरे आधीन है। मैं अपनी इच्छा से तुम्हें जीवित रख सकता हूँ, पर तुम अपनी इच्छा से जीवित नहीं रह सकते। तुमने हमें जलाने के लिये विशेष रूप से यत्न किया था। तुमने भीम को विषधर सर्पों से डसवाया और विष खिलाकर उन्हें पानी में डुबाया। तुमने धोखे से हमारे राज्य का हरण कर लिया, तुमने द्रौपदी को कटुवचन सुनाये और उसके बाल खींचे। अरे पापी! इन सारे कारणों से अब तेरा जीवन शेष नहीं है। खड़ा हो, खड़ा हो। युद्धकर। युद्ध से ही तेरा कल्याण होगा। हे राजन्! वे विजय से युक्त पाण्डव, इसप्रकार अनेक तरह की बातें उससे बार बार कहने लगे।

इकत्तीसवाँ अध्याय : दुर्योधन का बाहर आना, गदा युद्ध की तैयारी।

तर्ज्यमानस्तदा राजन्नुदकस्थस्तवात्मजः।
युधिष्ठिरेण राजेन्द्र भ्रातृभिः सहितेन ह॥ १॥
श्रुत्वा स कटुका वाचो विषमस्थो नराधिपः।
मनश्चकार युद्धाय राजानं चाभ्यभाषत॥ २॥
यूयं ससुहृदः पार्थाः सर्वे सरथवाहनाः।
अहमेकः परिद्यूनो विरथो हतवाहनः॥ ३॥
आत्तशस्त्रै रथोपेतैर्बहुभिः परिवारितः।
कथमेकः पदातिः सन्नशस्त्रो योद्धुमुत्सहे॥ ४॥
विशेषतो विकवचः श्रान्तश्चापत्समाश्रितः।

हे राजन्! पानी में बैठे तुम्हारे पुत्र को जब युधिष्ठिर ने अपने भाइयों के साथ इसप्रकार फटकारा, तब हे राजेन्द्र! उनकी कड़वी बातों को सुनकर वह राजा विषम परिस्थिति में पड़ गया। उसने अपने को युद्ध के लिये तैयार किया और युधिष्ठिर से कहा कि तुम सारे पाण्डव अपने मित्रों के साथ हो। सबके पास रथ और वाहन हैं, जबकि मैं अकेला, थका हुआ, रथ और वाहन से रहित हूँ। तुम हथियार लिये और रथों पर बैठे हुए, बहुतों से घिरा हुआ मैं अकेला, पैदल और बिना शस्त्रों के कैसे युद्ध कर सकता हूँ? विशेषरूप से जब मैं कवचरहित, थका और संकट में पड़ा हुआ हूँ।

न मे त्वत्तो भयं राजन् न च पार्थाद् वृकोदरात्॥ ५॥
फाल्गुनाद् वासुदेवाद् वा पञ्चालेभ्योऽथवा पुनः।
यमाभ्यां युयुधानाद् वा ये चान्ये तव सैनिकाः॥ ६॥
एकः सर्वानहं क्रुद्धो वारयिष्ये युधि स्थितः।
धर्ममूला सतां कीर्तिर्मनुष्याणां जनाधिप॥ ७॥
धर्मं चैवेह कीर्तिं च पालयन् प्रब्रवीम्यहम्।
अहमुत्थाय सर्वान् वै प्रतियोत्स्यामि संयुगे॥ ८॥
अनुगम्यागतान् सर्वानृतून् संवत्सरो यथा।

हे राजन्! मुझे तुमसे भय नहीं है, न मैं अर्जुन, भीम, श्रीकृष्ण, पांचालों, नकुल, सहदेव, सात्यकि तथा जितने भी तुम्हारे दूसरे सैनिक हैं, उनसे डरता हूँ। मैं युद्धक्षेत्र में खड़ा होकर, क्रोध में भरा हुआ, अकेला ही सबको रोक दूँगा। पर हे राजन्! सज्जनों की कीर्ति का आधार धर्म ही होता है। इसलिये मैं धर्म और कीर्ति का पालन करता हुआ ही यह बात कह रहा हूँ। मैं पानी से निकलकर युद्ध में बारी बारी से तुम सबका उसी प्रकार मुकाबला करूँगा, जैसे वर्ष बारी बारी से आती हुई सारी ऋतुओं को ग्रहण करता है।

अद्य वः सरथान् साश्वानशस्त्रो विरथोऽपि सन्॥ ९॥
नक्षत्राणीव सर्वाणि सविता रात्रिसंक्षये।
तेजसा नाशयिष्यामि स्थिरीभवत पाण्डवाः॥ १०॥
बाह्लीकद्रोणभीष्माणां कर्णस्य च महात्मनः।
जयद्रथस्य शूरस्य भगदत्तस्य चोभयोः॥ ११॥
मद्रराजस्य शल्यस्य भूरिश्रवस एव च।
पुत्राणां भरतश्रेष्ठ शकुनेः सौबलस्य च॥ १२॥
मित्राणां सुहृदां चैव बान्धवानां तथैव च।
आनृण्यमद्य गच्छामि हत्वा त्वां भ्रातृभिः सह॥ १३॥

आज मैं शस्त्रों और रथ से रहित होकर भी, तुम घोड़ों और रथों पर चढ़े हुओं को अपने तेज से वैसे ही नष्ट कर दूँगा, जैसे रात्रि का अन्त होने पर सूर्य सारे नक्षत्रों के तेज को नष्ट कर देता है। हे पाण्डवों! तुम युद्ध में स्थिर होकर खड़े रहना। आज मैं तुम्हें भाइयोंसहित मारकर बाह्लीक, द्रोणाचार्य, भीष्म, मनस्वी कर्ण, शूरवीर जयद्रथ, भगदत्त, मद्रराज शल्य, भूरिश्रवा, शकुनि के पुत्रों, शकुनि, मित्रों, सुहृदों और बान्धवों के ऋण से मुक्त होजाऊँगा।

युधिष्ठिर उवाच

दिष्ट्या त्वमपि जानीषे क्षत्रधर्मं सुयोधन।
दिष्ट्या ते वर्तते बुद्धिर्युद्धायैव महाभुज॥ १४॥
दिष्ट्या शूरोऽसि कौरव्य दिष्ट्या जानासि संगरम्।
यस्त्वमेकोहि नः सर्वान् संगरे योद्धुमिच्छसि॥ १५॥
एक एकेन संगम्य यत् ते सम्मतमायुधम्।
तत् त्वमादाय युध्यस्व प्रेक्षकास्ते वयं स्थिताः॥ १६॥

दुर्योधन उवाच

एकश्चेद् योद्धुमाक्रन्दे शूरोऽद्य मम दीयताम्।
आयुधानामियं चापि वृता त्वत्सम्मता गदा॥ १७॥

तब युधिष्ठिर ने कहा कि हे दुर्योधन! बड़े सौभाग्य की बात है कि तुम भी अब क्षत्रिय धर्म को जानने लगे हो। हे महाबाहु! बड़े सौभाग्य की बात है कि तुम्हारा विचार युद्ध करने का ही है। हे कुरुनन्दन! बड़े सौभाग्य की बात है कि तुम शूरवीर हो और युद्ध करना जानते हो। जो तुम हम

सबके साथ एक एक करके युद्ध करना चाहते हो, तो तुम अपने मन चाहे हथियार को लेकर युद्ध करो। हम लोग दर्शक बने रहेंगे। तब दुर्योधन ने कहा कि यदि यह ठीक है तो एक शूरवीर मुझसे लड़ने को दो और इस गदा को मैंने अपने हथियार के रूप में तुम्हारी सम्मति के अनुसार वरण किया है।

हन्तैकं भवतामेकः शक्यं मां योऽभिमन्यते।
पदातिर्गदया संख्ये स युध्यतु मया सह॥ १८॥
अस्त्राणामपि पर्यायं कर्तुमिच्छन्ति मानवाः।
युद्धानामपि पर्यायो भवत्वनुमते तव॥ १९॥
गदया त्वां महाबाहो विजेष्यामि सहानुजम्।
पञ्चालान् सृंजयांश्चैव ये चान्ये तव सैनिकाः॥ २०॥

मैं हर्ष के साथ कहता हूँ कि तुमसे से कोई एक वीर, जो अकेले मुझे जीतने का अभिमान रखता हो, युद्धभूमि में पैदल मेरे साथ गदा युद्ध करे। मनुष्य अस्त्रों का बारी बारी से प्रयोग करते हैं, अब तुम्हारी अनुमति से युद्ध भी बारी बारी से एक एक के साथ हो। हे महाबाहु! मैं गदा के द्वारा अपने भाइयों सहित तुम्हें जीत लूँगा। पांचालों, सृंजयों और जितने भी तुम्हारे सैनिक हैं, सबको जीत लूँगा।

संक्षोभ्य सलिलं वेगाद् स्कन्धे कृत्वाऽऽयसींगदाम्।
उदतिष्ठत पुत्रस्ते प्रतपन् रश्मिवानिव॥ २१॥
तमुत्तीर्णं तु सम्प्रेक्ष्य समहृष्यन्त सर्वशः।
पञ्चालाःपाण्डवेयाश्च तेऽन्योन्यस्य तलान् ददुः॥ २२॥
अवहासं तु तं मत्वा पुत्रो दुर्योधनस्तव।
उद्वृत्य नयने क्रुद्धो दिधक्षुरिव पाण्डवान्॥ २३॥
त्रिशिखां भ्रुकुटीं कृत्वा संदष्टदशनच्छदः।
प्रत्युवाच ततस्तान् वै पाण्डवान् सहकेशवान्॥ २४॥

तब लोहे की गदा को कन्धे पर रखकर, और वेगपूर्वक पानी को चीरकर आपका पुत्र प्रतापी सूर्य के समान ऊपर को आगया। उसे ऊपर आया हुआ देखकर सारे पाण्डव और पांचाल अत्यन्त प्रसन्नता से भर परस्पर हाथ मिलाने लगे। उनके हाथ मिलाने को अपना उपहास समझकर आपका पुत्र दुर्योधन क्रोधपूर्वक अपनी आँखे घुमाकर ऐसे देखने लगा, जैसे वह सारे पाण्डवों को भस्म कर देना चाहता हो। भौहों को तीन स्थानों से टेढ़ी करके और होठों को दाँतों से दबाकर उसने श्रीकृष्णसहित पाण्डवों से कहा कि--

अस्यावहासस्य फलं प्रतिभोक्ष्यथ पाण्डवाः।
गमिष्यथ हताः सद्यः सपञ्चाला यमक्षयम्॥ २५॥
एकैकेन च मां यूयमासीदत युधिष्ठिर।
न ह्येको बहुभिर्न्याय्यो वीरो योधयितुं युधि॥ २६॥

युधिष्ठिर उवाच

मा भूदियं तव प्रज्ञा कथमेवं सुयोधन।
यदाभिमन्युं बहवो जघ्नुर्युधि महारथाः॥ २७॥
क्षत्रधर्मं भृशं क्रूरं निरपेक्षं सुनिर्घृणम्।
अन्यथा तु कथं हन्युरभिमन्युं तथा गतम्॥ २८॥
सर्वे भवन्तो धर्मज्ञाः सर्वे शूरास्तनुत्यजः।

हे पाण्डवों! तुम्हें इस उपहास का फल अभी मिल जायेगा। तुमसब पांचालोंसहित मेरे हाथ से मारे जाकर मृत्युलोक में पहुँच जाओगे। हे युधिष्ठिर! अब तुम एकएक मेरे साथ युद्ध के लिये आते जाओ। एक वीर के साथ युद्धक्षेत्र में बहुतसारे वीरों का युद्ध करना न्याययुक्त नहीं है। तब युधिष्ठिर ने कहा कि हे दुर्योधन! जब युद्धक्षेत्र में अकेले अभिमन्यु को बहुतसे महारथियों ने मिलकर मारा था, तब तुम्हारी यह बुद्धि क्यों नहीं हुई थी? वास्तव में क्षत्रियधर्म बड़ा क्रूर है। यह किसी की अपेक्षा नहीं करता। यह अत्यन्त दयाहीन है, नहीं तो तुम सब असहाय अवस्था में अभिमन्यु को क्यों मारते? तुम सारे धर्म को जाननेवाले, शूरवीर और प्राणों को त्यागने के लिये उद्यत थे।

यद्येकस्तु न हन्तव्यो बहुभिर्धर्म एव तु॥ २९॥
तदाभिमन्युं बहवो निजघ्नुस्त्वन्मते कथम्।
सर्वो विमृशते जन्तुः कृच्छ्रस्थो धर्मदर्शनम्॥ ३०॥
पदस्थः पिहितं द्वारं परलोकस्य पश्यति।
आमुञ्च कवचं वीर मूर्धजान् यमयस्व च॥ ३१॥
यच्चान्यदपि ते नास्ति तदप्यादत्स्व भारत।

यदि धर्म के अनुसार बहुतसे लोगों को एक का वध नहीं करना चाहिये, तो तुम्हारी सम्मति से बहुतों ने मिलकर अभिमन्यु को क्यों मारा था? वास्तव में सारे प्राणी मुसीबत में पड़ने पर ही धर्म की दुहाई देते हैं। जब वे ऊँचे पदपर होते हैं, तब उन्हें परलोक का द्वार बन्द दिखाई देता है। हे वीर अब तुम कवच पहन लो और बालों को बाँध लो। हे भारत! और जो चीज तुम्हारे पास न हो, उसे भी ले लो।

ततस्तव सुतो राजन् वर्म जग्राह काञ्चनम्॥ ३२॥
विचित्रं च शिरस्त्राणं जाम्बूनदपरिष्कृतम्।
संनद्धः सगदो राजन् सज्जः संग्राममूर्धनि॥ ३३॥
अब्रवीत् पाण्डवान् सर्वान् पुत्रो दुर्योधनस्तव।
भ्रातृणां भवतामेको युध्यतां गदया मया॥ ३४॥
योत्स्येऽहं संगरं प्राप्य विजेष्ये च रणाजिरे।
अहमद्य गमिष्यामि वैरस्यान्तं सुदुर्गमम्॥ ३५॥
गदया पुरुषव्याघ्र हेमपट्टनिबद्धया।

हे राजन्! तब आपके पुत्र ने सुनहले कवच और विचित्र स्वर्णभूषित शिरस्त्राण को धारण किया। हे राजन्! फिर संग्राम के मुहाने पर सुसज्जित और तैयार होकर आपका पुत्र दुर्योधन सारे पाण्डवों से बोला कि तुम सारे भाइयों में से कोई एक आकर मेरे साथ युद्ध करे। मैं युद्धक्षेत्र में युद्ध करूँगा और विजय को प्राप्त करूँगा। हे पुरुषव्याघ्र! मैं इस स्वर्ण पत्र से जड़ी हुई गदा से आज बैर के उस पार तक पहुँच जाऊँगा, जो अत्यन्त दुर्गम है।

गदायुद्धे न मे कश्चित् सदृशोऽस्तीति चिन्तये॥ ३६॥
गदया वो हनिष्यामि सर्वानेव समागतान्।
न मे समर्थाः सर्वे वै योद्धुं न्यायेन केचन॥ ३७॥
न युक्तमात्मना वक्तुमेवं गर्वोद्धतं वचः।
अथवा सफलं ह्येतत् करिष्ये भवतां पुरः॥ ३८॥
अस्मिन् मुहूर्ते सत्यं वा मिथ्या वैतद् भविष्यति।
गृह्णातु च गदां यो वै योत्स्यतेऽद्य मया सह॥ ३९॥

मैं इस बात को समझता हूँ कि गदायुद्ध में मेरे समान कोई नहीं है। मैं गदा से तुम सब युद्ध के लिये आये हुओं को मार दूँगा। तुम को मेरे साथ न्यायपूर्वक युद्ध करने में समर्थ नहीं हो। अपने विषय में ऐसी अभिमान की बातें कहना ठीक नहीं है पर मैं अपनी बात को तुम्हारे सामने करके दिखाऊँगा। मेरी बात सत्य या असत्य है, यह थोड़ी देर में ही स्पष्ट हो जायेगा। अब तुममें से जो मेरे साथ युद्ध करेगा, वह गदा को उठाये।

बत्तीसवाँ अध्याय : श्रीकृष्ण की युधिष्ठिर को फटकार।

एवं दुर्योधने राजन् गर्जमाने मुहुर्मुहुः।
युधिष्ठिरस्य संक्रुद्धो वासुदेवोऽब्रवीदिदम्॥ १॥
किमिदं साहसं राजंस्त्वया व्याहृतमी दृशम्।
न समर्थानहं मन्ये गदाहस्तस्य संयुगे॥ २॥
एतेन हि कृता योग्या वर्षाणीह त्रयोदश।
आयसे पुरुषे राजन् भीमसेनजिघांसया॥ ३॥
कथं नाम भवेत् कार्यमस्माभिर्भरतर्षभ।
साहसं कृतवांस्त्वं तु ह्यनुक्रोशान्नृपोत्तम॥ ४॥
नान्यमस्यानुपश्यामि प्रतियोद्धारमाहवे।
ऋते वृकोदरात् पार्थात् स च नातिकृतश्रमः॥ ५॥

हे राजन्! इसप्रकार जब दुर्योधन बार बार गर्जना करने लगा, तब अत्यन्त क्रुद्ध श्रीकृष्ण युधिष्ठिर से बोले कि हे राजन्! आपने ऐसी दुस्साहसपूर्ण बात किसलिये कह दी? मैं नहीं समझता कि आपलोग गदायुद्ध में दुर्योधन को हरा सकते हैं। हे राजन्! इसने भीमसेन को मारने की इच्छा से तेरह वर्ष तक उनकी लोहे की मूर्ति के साथ गदायुद्ध का अभ्यास किया है। हे भरतश्रेष्ठ हे राजश्रेष्ठ! अब हमारा कार्य कैसे पूरा होगा? आपने दया के वश में बहुत बड़ा साहस कर दिया है। मैं गदायुद्ध में दुर्योधन का सामना करनेवाला सिवाय भीमसेन के किसी को भी नहीं समझता। भीम ने भी गदायुद्ध के अभ्यास में अधिक परिश्रम नहीं किया है।

तदिदं द्यूतमारब्धं पुनरेव यथा पुरा।
विषमं शकुनेश्चैव तव चैव विशाम्पते॥ ६॥
बली भीमः समर्थश्च कृती राजा सुयोधनः।
बलवान् वा कृती वेति कृती राजन् विशिष्यते॥ ७॥
सोऽयं राजंस्त्वया शत्रुः समे पथि निवेशितः।
न्यस्तश्चात्मा सुविषमे कृच्छ्रमापादिता वयम्॥ ८॥
को नु सर्वान् विनिर्जित्य शत्रूनेकेन वैरिणा।
कृच्छ्रप्राप्तेन च तथा हारयेद् राज्यमागतम्॥ ९॥
पणित्वा चैकपाणेन रोचयेदेवमाहवम्।

आपने पहले की तरह फिर जूए का खेल आरम्भ कर दिया। हे प्रजानाथ! यह जूआ शकुनि के जूए से अधिक भयंकर है। यह ठीक है कि भीमसेन बलवान् और समर्थ हैं, पर राजा दुर्योधन ने अभ्यास अधिक किया हुआ है। हे राजन्! यदि बलवान् और अभ्यासी का मुकाबला हो तो, अभ्यासी का पलड़ा

अधिक भारी होता है। हे राजन्! आपने शत्रु को अपने समान बना दिया है। इसप्रकार आपने अपने को तो भयानक संकट में फँसाया ही है, हम सबको भी मुसीबत में डाल दिया है। कौन ऐसा व्यक्ति होगा? जो सारे शत्रुओं को जीतने पर जब केवल एक शत्रु मुसीबत में फँसा हुआ रह जाये, तब उसके साथ इसप्रकार एक व्यक्ति की शर्त रखकर युद्ध करना पसन्द करे और प्राप्त हुए राज्य को हार जाये।

नूनं न राज्यभागेषा पाण्डोः कुन्त्याश्च संततिः॥ १०॥
अत्यन्तवनवासाय सृष्टा भैक्ष्याय वा पुनः।

भीमसेन उवाच

मधुसूदन मा कार्षीर्विषादं यदुनन्दन॥ ११॥
अद्य पारं गमिष्यामि वैरस्य भृशदुर्गमम्।
अहं सुयोधनं संख्ये हनिष्यामि न संशयः॥ १२॥
विजयो वै ध्रुवः कृष्ण धर्मराजस्य दृश्यते।
अध्यर्धेन गुणेनेयं गदा गुरुतरी मम॥ १३॥
न तथा धार्तराष्ट्रस्य मा कार्षीर्माधव व्यथाम्।
अहमेनं हि गदया संयुगे योद्धुमुत्सहे॥ १४॥

वास्तव में पाण्डु और कुन्ती की यह सन्तान राज्य को भोगने की अधिकारी नहीं है। भगवान् ने इन्हें इसीलिये बनाया है कि ये सदा वन में रहें और भीख माँगें। तब भीमसेन ने कहा कि हे यदुनन्दन! मधुसूदन! आप विषाद मत कीजिये। आज मैं इस अत्यन्तदुर्गम बैर के पार पहुँच जाऊँगा। मैं निश्चितरूप से दुर्योधन को युद्ध में मार दूँगा। मुझे धर्मराज की निश्चय ही विजय दिखाई देरही है। मेरी गदा दुर्योधन की गदा से ड्योढी भारी है। ऐसी दुर्योधन की नहीं है, इसलिये हे माधव! आप व्यथित मत होइये। मैं युद्धक्षेत्र में इसके साथ गदा से युद्ध करने का उत्साह रखता हूँ।

तथा सम्भाषमाणं तु वासुदेवो वृकोदरम्।
हृष्टः सम्पूजयामास वचनं चेदमब्रवीत्॥ १५॥
त्वामाश्रित्य महाबाहो धर्मराजो युधिष्ठिरः।
निहतारिः स्वकां दीप्तां श्रियं प्राप्तो न संशयः॥ १६॥
त्वया विनिहताः सर्वे धृतराष्ट्रसुता रणे।
राजानो राजपुत्राश्च नागाश्च विनिपातिताः॥ १७॥
कलिङ्गा मागधाः प्राच्या गान्धाराः कुरवस्तथा।
त्वामासाद्य महायुद्धे निहताः पाण्डुनन्दन॥ १८॥

तब ऐसा कहते हुए भीमसेन का, श्रीकृष्ण जी ने प्रसन्न होकर सम्मान किया और यह कहा कि हे महाबाहु! हे पाण्डुनन्दन! इसमें संशय नहीं है कि तुम्हारा आश्रय लेकर ही धर्मराज युधिष्ठिर ने अपने शत्रुओं को मारा है और अपनी उज्ज्वल राज्यलक्ष्मी को प्राप्त किया है। तुमने ही युद्धक्षेत्र में सारे धृतराष्ट्र के पुत्रों मारा है। तुमने ही राजाओं, राजपुत्रों, और हाथियों को गिराया है। कालिंग, मागध, प्राच्य, गान्धार और कौरव ये सारे योद्धा इस महान् युद्ध में तुमसे लड़कर मारे गये हैं।

त्वां च प्राप्य रणे पापो धार्तराष्ट्रो विनङ्क्ष्यति।
त्वमस्य सक्थिनी भङ्क्त्वा प्रतिज्ञां पालयिष्यसि॥ १९॥
यत्नेन तु सदा पार्थ योद्धव्यो धृतराष्ट्रजः।
कृती च बलवांश्चैव युद्धशौण्डश्च नित्यदा॥ २०॥
ततस्तु सात्यकी राजन् पूजयामास पाण्डवम्।
पञ्चालाः पाण्डवेयाश्च धर्मराजपुरोगमाः॥ २१॥
तद् वचो भीमसेनस्य सर्व एवाभ्यपूजयन्।
ततो भीमबलो भीमो युधिष्ठिरमथाब्रवीत्॥ २२॥
सृंजयैः सह तिष्ठन्तं तपन्तमिव भास्करम्।

तुम्हें युद्धक्षेत्र में प्राप्तकर यह पापी धृतराष्ट्र का पुत्र नष्ट होजायेगा। तुम इसकी जाँघें तोड़कर अपनी प्रतिज्ञा का पालन करोगे। हे कुन्तीपुत्र! तुम दुर्योधन से प्रयत्नपूर्वक युद्ध करना क्योंकि यह सदा अभ्यासी, बलवान् और युद्ध में चतुर रहा है। हे राजन्! फिर सात्यकि ने भीम की प्रशंसा की। पांचालों और धर्मराज आदि पाण्डवों ने भी भीमसेन की इस बात का आदर किया। फिर सृंजयों के साथ विद्यमान, तपते हुए सूर्य के समान तेजस्वी युधिष्ठिर से महाबली भीम ने यह कहा कि—

अहमेतेन संगम्य संयुगे योद्धुमुत्सहे॥ २३॥
न हि शक्तो रणे जेतुं मामेष पुरुषाधमः।
शल्यमद्योद्धरिष्यामि तव पाण्डव हृच्छयम्॥ २४॥
निहत्य गदया पापमद्य राजन् सुखी भव।
अद्य कीर्तिमयीं मालां प्रतिमोक्ष्ये तवानघ॥ २५॥
प्राणाञ्श्रियं च राज्यं च मोक्ष्यतेऽद्य सुयोधनः।
राजा च धृतराष्ट्रोऽद्य श्रुत्वा पुत्रं मया हतम्॥ २६॥
स्मरिष्यत्यशुभं कर्म यत् तच्छकुनिबुद्धिजम्।

मैं इसके साथ युद्धभूमि में लड़ने का उत्साह रखता हूँ। यह नीच पुरुष मुझे युद्ध में नहीं जीत सकता। हे पाण्डुपुत्र राजन्! आज मैं गदा से इस पापी को मारकर आपके दिल में गड़े हुए काँटे को उखाड़ दूँगा। आप सुखी होजाइये। हे निष्पाप! आज मैं आपको कीर्तिमयी माला को पहनाऊँगा। आज दुर्योधन अपने प्राणों, ऐश्वर्य, और राज्य से छूट जायेगा। आज राजा धृतराष्ट्र भी अपने पुत्र को मेरे द्वारा मारा हुआ सुनकर अपने उन बुरे कार्यों को याद करेंगे, जो उन्होंने शकुनि की सलाह से किये थे।

इत्युक्त्वा भरतश्रेष्ठो गदामुद्यम्य वीर्यवान्॥ २७॥
उदतिष्ठत युद्धाय शक्रो वृत्रमिवाह्वयन्।
तदाह्वानममृष्यन् वै तव पुत्रोऽतिवीर्यवान्॥ २८॥
प्रत्युपस्थित एवाशु मत्तो मत्तमिव द्विपम्।
न सम्भ्रमो न च भयं न च ग्लानिर्न च व्यथा॥ २९॥
आसीद् दुर्योधनस्यापि स्थितः सिंह इवाहवे।
भीमसेनस्तदा राजन् दुर्योधनमथाब्रवीत्॥ ३०॥

ऐसा कहकर पराक्रमी भरतश्रेष्ठ भीम गदा को उठाकर वृत्र को मारने के लिये इन्द्र के समान उठकर युद्ध के लिये खड़े हो गये और उन्होंने दुर्योधन का आह्वान किया। उनकी उस ललकार को न सहन करता हुआ आपका अत्यन्त पराक्रमी पुत्र भी तुरन्त सामना करने के लिये उसीप्रकार उपस्थित हो गया, जैसे एक मतवाला हाथी दूसरे मतवाले हाथी से भिड़ने के लिये तैयार हो। युद्धक्षेत्र में सिंह के समान खड़े हुए दुर्योधन के मन में न तो घबराहट, न भय, न ग्लानि, और न दुःख था। हे राजन्! तब भीम ने दुर्योधन से यह कहा कि—

राज्ञापि धृतराष्ट्रेण त्वया चास्मासु यत् कृतम्।
स्मर तद् दुष्कृतं कर्म यद् भूतं वारणावते॥ ३१॥
द्रौपदी च परिक्लिष्टा सभामध्ये रजस्वला।
द्यूते यद् विजितो राजा शकुनेर्बुद्धिनिश्चयात्॥ ३२॥
यानि चान्यानि दुष्टात्मन् पापानि कृतवानसि।
अनागःसु च पार्थेषु तस्य पश्य महत् फलम्॥ ३३॥
त्वत्कृते निहतः शेते शरतल्पे महायशाः।
गाङ्गेयो भरतश्रेष्ठः सर्वेषां नः' पितामहः॥ ३४॥
हतो द्रोणश्च कर्णश्च हतः शल्यः प्रतापवान्।
भ्रातरस्ते हताः शूराः पुत्राश्च सहसैनिकाः॥ ३५॥
राजानश्च हताः शूराः समरेष्वनिवर्तिनः।

राजा धृतराष्ट्र और तूने हमारे साथ जो बुरे कार्य किये हैं, और वारणावत नगर में जो कुछ हुआ, उन सबको याद कर ले। तूने रजस्वला द्रौपदी को सभा में अत्यन्त क्लेश पहुँचाया। शकुनि की सलाह से राजा युधिष्ठिर को जूए में कपट से जीता और निर्दोष कुन्तीपुत्रों पर हे दुष्ट! तुमने जो दूसरे पापकर्म किये, उन सबके महान् फल को अब देख लेना। तेरे कारण हमारे यशस्वी पितामह भरतश्रेष्ठ गंगापुत्र भीष्म बाणों की शय्या पर गिराये हुए सोरहे हैं। तेरे कारण ही द्रोणाचार्य, कर्ण, और प्रतापी शल्य, तेरे सारे शूरवीर राजालोग, भाई और पुत्र, जो युद्ध में पीछे नहीं हटने वाले थे, सेनासहित मारे गये हैं।

अवशिष्टस्त्वमेवैकः कुलघ्नोऽधमपूरुषः॥ ३६॥
त्वामप्यद्य हनिष्यामि गदया नात्र संशयः।
अद्य तेऽहं रणे दर्पं सर्वं नाशयिता नृप॥ ३७॥
राज्याशां विपुलां राजन् पाण्डवेषु च दुष्कृतम्।

दुर्योधन उवाच

किं कत्थितेन बहुना युद्ध्यस्वाद्य मया सह॥ ३८॥
अद्य तेऽहं विनेष्यामि युद्धश्रद्धां वृकोदर।
किं न पश्यसि मां पाप गदायुद्धे व्यवस्थितम्॥ ३९॥
हिमवच्छिखराकारां प्रगृह्य महतीं गदाम्।

कुलनाशक, अधर्मपुरुष एक तू ही बचा हुआ है। इसमें संशय नहीं है कि आज तुझे भी गदा से मार दूँगा। हे राजा! आज तेरे दर्प, राज्य की आशा और पाण्डवों पर किये अत्याचारों का अन्त कर दूँगा। तब दुर्योधन ने कहा कि ज्यादा डींग मारने से क्या लाभ? आज तू मेरे साथ युद्ध कर। अरे भीम! आज मैं तेरे युद्ध के उत्साह को मिटा दूँगा। हे पापी! क्या तू हिमालय के शिखर के समान विशाल गदा को लेकर गदायुद्ध के लिये खड़े हुए मुझे देख नहीं रहा है।

गदिनं कोऽद्य मां पाप हन्तुमुत्सहते रिपुः॥ ४०॥
मा वृथा गर्ज कौन्तेय शारदाभ्रमिवाजलम्।
दर्शयस्व बलं युद्धे यावत् तत् तेऽद्य विद्यते॥ ४१॥

हे पापी! गदा हाथ में लेकर खड़े हुए मुझे आज कौन शत्रु मारने की हिम्मत कर सकता है? शरदऋतु के जलरहित बादलों की तरह हे कुन्तीपुत्र! व्यर्थ ही गर्जना मत कर। तेरे पास जितनी शक्ति है, उसे युद्ध में दिखा।

तेतीसवाँ अध्याय : बलराम जी का आना।

उपविष्टेषु सर्वेषु पाण्डवेषु महात्मसु।
ततस्ता लध्वजो रामः अजागाम हलायुधः॥ १॥
तं दृष्ट्वा परमप्रीताः पाण्डवाः सहकेशवाः।
उपगम्योपसंगृह्य विधिवत् प्रत्यपूजयन्॥ २॥
अब्रवीच्च तदा रामो दृष्ट्वा कृष्णं सपाण्डवम्।
दुर्योधनं च कौरव्यं गदापाणिमवस्थितम्॥ ३॥
चत्वारिंशदहान्यद्य द्वे च मे निःसृतस्य वै।
पुष्येण सम्प्रयातोऽस्मि श्रवणे पुनरागताः॥ ४॥
शिष्ययोर्वै गदायुद्धं द्रष्टुकामोऽस्मि माधव।

जब मनस्वी पाण्डव युद्ध को देखने के लिये बैठ गये, तभी तालवृक्ष की ध्वजा और हल को धारण करने वाले बलराम जी वहाँ आपहुँचे। उन्हें देखकर श्रीकृष्ण सहित पाण्डव बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने उनके समीप जाकर, उनका चरणस्पर्श करके विधिवत् सत्कार किया। तब बलराम जी ने पाण्डवों सहित श्रीकृष्णजी तथा गदा हाथ में लिये कुरुश्रेष्ठ दुर्योधन की तरफ देखकर कहा कि मुझे आज घर से निकले हुए बयालीस दिन हो गये हैं। पुष्य नक्षत्र में निकला था और श्रवण नक्षत्र में आया हूँ। हे माधव! मैं अपने दोनों शिष्यों के गदायुद्ध को देखना चाहता हूँ।

ततस्तदा गदाहस्तौ दुर्योधनवृकोदरौ॥ ५॥
युद्धभूमिं गतौ वीरावुभावेव रराजतुः।
भीमसेनोऽथ बलवान् पुत्रस्तव जनाधिप॥ ६॥
तथैव चोद्यतगदौ पूजयामासतुर्बलम्।

तब दोनों वीर दुर्योधन और भीम जो गदा हाथ में लिये सुशोभित होरहे थे, युद्धभूमि में उतरे। हे राजन्! उस समय बलवान् भीमसेन और आपके पुत्र ने अपनी गदा उठाकर बलराम जी के प्रति सम्मान प्रकट किया।

तेषां मध्ये महाबाहुः श्रीमान् केशवपूर्वजः॥ ७॥
न्यविशत् परमप्रीतः पूज्यमानो महारथैः।
स बभौ राजमध्यस्थो नीलवासाः सितप्रभः।
दिवीव नक्षत्रगणैः परिकीर्णो निशाकरः॥ ८॥

तत्पश्चात् श्रीकृष्णजी के बड़े भाई, महाबाहु श्रीमान् बलराम उन महारथियों द्वारा सम्मानित हुए, अत्यन्त प्रसन्नता से उनके बीच में बैठ गये। नीले वस्त्र पहने गौर वर्ण के बलराम जी उनके बीच में ऐसे सुशोभित होरहे थे, जैसे आकाश में नक्षत्रों से घिरा हुआ चन्द्रमा हो।

चौंतीसवाँ अध्याय : भीमसेन और दुर्योधन में गदा युद्ध।

ततस्तयोः संनिपातस्तुमुलो लोमहर्षणः।
आसीदन्तकरो राजन् वैरस्य तव पुत्रयोः॥ १॥
समापेततुरन्योन्यं शृङ्गिणौ वृषभाविव।
महानिर्घातघोषश्च प्रहाराणामजायत॥ २॥
तौ परस्परमासाद्य यत्तावन्योन्यरक्षणे।
मार्जाराविव भक्षार्थे ततक्षाते मुहुर्मुहुः॥ ३॥
अचरद् भीमसेनस्तु मार्गान् बहुविधांस्तथा।
मण्डलानि विचित्राणि गतप्रत्यागतानि च॥ ४॥

हे राजन्! तब उनदोनों आपके वीरपुत्रों में रोंगटे खड़े कर देनेवाला, भयंकर, बैर को समाप्त कर देनेवाला युद्ध होने लगा। तब दोनों सींगवाले साँडों के समान एकदूसरे पर टूट पड़े। उनके प्रहारों की ध्वनि बिजली की कड़कड़ाहट के समान बड़ी भयंकर होरही थी। एकदूसरे से लड़ते हुए, एकदूसरे से अपनी रक्षा के प्रयत्न में लगे वे दोनों, खाद्यपदार्थ के लिये लड़ते हुए दो बिलावों के समान बारबार एकदूसरे को घायल कर रहे थे। भीमसेन तब बहुतप्रकार के पैंतरों, विचित्रप्रकार के मण्डलों, शत्रु के सामने जाना, सामना करते हुए ही पीछे हट जाना आदि का प्रदर्शन करने लगे।

अस्त्रयन्त्राणि चित्राणि स्थानानि विविधानि च।
परिमोक्षं प्रहाराणां वर्जनं परिधावनम्॥ ५॥
अभिद्रवणमाक्षेपमवस्थानं सविग्रहम्।
परिवर्तनसंवर्तम– वप्लुतमुपप्लुतम्॥ ६॥

उपन्यस्तमपन्यस्तं गदायुद्धविशारदौ।
एवं तौ विचरन्तौ तु परस्परमविध्यताम्॥ ७॥
वञ्चयानौ पुनश्चैव चेरतुः कुरुसत्तमौ।
विक्रीडन्तौ सुबलिनौ मण्डलानि विचेरतुः॥ ८॥

वेदोनों विचित्रप्रकार के दाँवपेचों, अनेक प्रकार के स्थानों, शत्रु के प्रहारों से बचना, शत्रु के प्रहारों को व्यर्थ कर देना, चारोंतरफ दौड़ लगाना आदि का प्रदर्शन करने लगे। कभी वे एकदूसरे पर आक्रमण करते, कभी उसे गिराने की चेष्टा करते, कभी स्थिरता से खड़े होते, कभी युद्ध करते, कभी चक्कर काटते, कभी शत्रु के बढ़ाव को रोक देते, कभी उसके प्रहार को विफल करने के लिये झुक जाते, कभी ऊपर को उछलते, कभी समीप जाकर प्रहार करते तो कभी पीछे की तरफ लौटकर प्रहार करते। इसप्रकार वेदोनों गदायुक्त विशारद एक दूसरे को चोट पहुँचा रहे थे। वेदोनों अत्यन्त बलवान् कुरुश्रेष्ठ, युद्ध के खेलों का प्रदर्शन करते हुए, एक दूसरे को धोखा देते हुए, पैंतरों को बदल रहे थे।

तौ दर्शयन्तौ समरे युद्धक्रीडां समन्ततः।
गदाभ्यां सहसान्योन्यमाजघ्नतुररिंदमौ॥ ९॥
परस्परं समासाद्य दंष्ट्राभ्यां द्विरदौ यथा।
अशोभेतां महाराज शोणितेन परिप्लुतौ॥ १०॥
एवं तदभवद् युद्धं घोररूपं परंतप।
परिवृत्तेऽहनि क्रूरं वृत्रवासवयोरिव॥ ११॥
तथा तु चरतस्तस्य भीमस्य रणमूर्धनि।
दुर्योधनो महाराज पार्श्वदेशेऽभ्यताडयत्॥ १२॥

युद्धक्षेत्र में सब तरफ युद्ध के खेलों को दिखाते हुए उन दोनों शत्रुओं ने सहसा गदाओं के द्वारा एक दूसरे पर आक्रमण किया। हे महाराज! जैसे दो हाथी अपने दाँतों से एकदूसरे पर आक्रमण कर लहुलुहान हो जाते हैं, वैसे ही वेदोनों भी खून से लथपथ होकर शोभा पाने लगे। हे परंतप! दिन की समाप्ति के समय इन्द्र और वृत्रासुर के समान उनदोनों में क्रूरता से भरा हुआ भयंकर युद्ध होने लगा। युद्ध के मुहाने पर इसप्रकार विचरण करते हुए भीमसेन के बगल के स्थान पर हे महाराज! दुर्योधन ने प्रहार किया।

आहतस्तु ततो भीमः पुत्रेण तव भारत।
आविद्धयत गदां गुर्वीं प्रहारं तमचिन्तयन्॥ १३॥
आविध्यन्तं गदां दृष्ट्वा भीमसेनं तवात्मजः।
समुद्यम्य गदां घोरां प्रत्यविध्यत् परंतपः॥ १४॥
गदामारुतवेगेन तव पुत्रस्य भारत।
शब्द आसीत् सुतुमुलस्तेजश्च समजायत॥ १५॥
स चरन् विविधान् मार्गान् मण्डलानि च भागशः।
समशोभत तेजस्वी भूयो भीमात् सुयोधनः॥ १६॥
आधूतां भीमसेनेन गदां दृष्ट्वा सुयोधनः।
अद्रिसारमयीं गुर्वीमाविध्यन् बह्वशोभत॥ १७॥

हे भारत! आपके पुत्रद्वारा चोट खाकर, उस प्रहार को कुछ भी न समझते हुए, वे अपनी भारी गदा को घुमाने लगे। तब भीमसेन को अपनी गदा को घुमाते हुए देखकर आपके पुत्र ने अपनी भयंकर गदा को उठाकर उसकी गदा पर दे मारा। हे भारत! तब वायु के वेग के समान आपके पुत्र की गदा के टकराने से, बड़े जोर का शब्द हुआ और चिनगारियाँ छूटने लगीं। अनेकप्रकार के पैंतरों और मण्डलों में क्रमक्रम से विचरण करते हुए तेजस्वी दुर्योधन तब भीम से अधिक सुशोभित हुए। भीमसेन को अपनी गदा को घुमाते हुए देखकर दुर्योधन भी अपनी लोहे की भारी गदा को घुमाते हुए, अत्यधिक शोभा पाने लगा।

तौ दर्शयन्तौ समरे युद्धक्रीडां समन्ततः।
गदाभ्यां सहसान्योन्यमाजघ्नतुररिंदमौ॥ १७॥
दृष्ट्वा व्यवस्थितं भीमं तव पुत्रो महाबलः।
चरंश्चित्रतरान् मार्गान् कौन्तेयमभिदुद्रुवे॥ १८॥
तस्य भीमो महावेगां जाम्बूनदपरिष्कृताम्।
अतिक्रुद्धस्य क्रुद्धस्तु ताडयामास तां गदाम्॥ १९॥
सविस्फुलिङ्गो निर्ह्रादस्तयोस्तत्राभिघातजः।
प्रादुरासीन्महाराज सृष्टयोर्वज्रयोरिव॥ २०॥

फिर उनदोनों शत्रुदमनों ने युद्धक्षेत्र में सबतरफ युद्ध की क्रीडाओं का प्रदर्शन करते हुए अचानक एकदूसरे पर गदाओं से आक्रमण किया। उस समय कुन्तीपुत्र भीमसेन को खड़ा देखकर, आपके महाबली पुत्र ने और अधिक विचित्र मार्गों से विचरण करते हुए उन पर आक्रमण किया। तब क्रुद्ध भीम ने अपनी स्वर्णभूषित, महान् वेगवाली गदा से अत्यन्त क्रुद्ध दुर्योधन की गदा पर प्रहार किया। हे महाराज! तब उनदोनों के टकराने से चिनगारियोंसहित इतने जोर का शब्द हुआ मानों दो बिजलियाँ परस्पर टकरा गयी हों।

स सव्यं मण्डलं राजा उद्भ्राम्य कृतनिश्चयः।
आजघ्ने मूर्ध्नि कौन्तेयं गदया भीमवेगया॥ २१॥
तया त्वभिहतो भीमः पुत्रेण तव पाण्डवः।
नाकम्पत महाराज तदद्भुतमिवाभवत्॥ २२॥
ततो गुरुतरां दीप्तां गदां हेमपरिष्कृताम्।
दुर्योधनाय व्यसृजद् भीमो भीमपराक्रमः॥ २३॥
तं प्रहारमसम्भ्रान्तो लाघवेन महाबलः।
मोघं दुर्योधनश्चक्रे तत्राभूद् विस्मयो महान्॥ २४॥

फिर राजा दुर्योधन ने निश्चय करके, बाँयें मण्डल से चक्कर लगाते हुए, कुन्तीपुत्र के सिर पर गदा का भयंकर वेग से प्रहार किया। हे महाराज! आपके पुत्र द्वारा गदा से प्रहार किये जाने पर भी, पाण्डुपुत्र कम्पित नहीं हुआ। यह एक आश्चर्यजनक बात हुई। तब भयंकर पराक्रमवाले भीम ने उससे अधिक भारी और तेजस्विनी, स्वर्णभूषित अपनी गदा को दुर्योधन के ऊपर छोड़ा। महाबली दुर्योधन ने भीम के उस प्रहार को बिना घबराये, फुर्ती से व्यर्थ कर दिया, जिससे सब लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ।

आस्थाय कौशिकान् मार्गानुत्पतन् स पुनः पुनः।
गदानिपातं प्रज्ञाय भीमसेनं च वञ्चितम्॥ २५॥
वञ्चयित्वा तदा भीमं गदया कुरुसत्तमः।
ताडयामास संक्रुद्धो वक्षोदेशे महाबलः॥ २६॥
गदया निहतो भीमो मुह्यमानो महारणे।
नाभ्यमन्यत कर्तव्यं पुत्रेणाभ्याहतस्तव॥ २७॥
तस्मिंस्तथा वर्तमाने राजन् सोमकपाण्डवाः।
भृशोपहतसंकल्पा न हृष्टमनसोऽभवन्॥ २८॥
स तु तेन प्रहारेण मातङ्ग इव रोषितः।
हस्तिवद्धस्ति संकाशमभिदुद्राव ते सुतम्॥ २९॥

तब यह जानकर कि भीमसेन का वार खाली गया है और उसकी गदा भूमि पर गिर पड़ी है, कुरुश्रेष्ठ, महाबली और अत्यन्त क्रुद्ध दुर्योधन ने, कौशिक नाम के मार्गों का आश्रय लेकर, बार बार उछलते हुए, भीमसेन को धोखा देकर, गदा से उसकी छाती में प्रहार किया। आपके पुत्र की गदा से चोट खाये हुए, भीम उस महायुद्ध में मूर्च्छित होगये और अपने कर्तव्य को न समझ पाये। भीमसेन के उस अवस्था में होने पर सोमक और पाण्डव उदास होगये और उनकी विजय की आशा अत्यधिक नष्ट होगयी। भीमसेन उस प्रहार से हाथी समान क्रोध में भर गये और जैसे एक हाथी दूसरे हाथी पर आक्रमण करे वैसे ही वे आपके पुत्र की तरफ दौड़े।

ततस्तु तरसा भीमो गदया तनयं तव।
अभिदुद्राव वेगेन सिंहो वनगजं यथा॥ ३०॥
उपसृत्य तु राजानं गदामोक्षविशारदः।
आविध्यत गदां राजन् समुद्दिश्य सुतं तव॥ ३१॥
अताडयद् भीमसेनः पार्श्वे दुर्योधनं तदा।
स विह्वलः प्रहारेण जानुभ्यामगमन्महीम्॥ ३२॥
तस्मिन् कुरुकुलश्रेष्ठे जानुभ्यामवनीं गते।
उदतिष्ठत् ततो नादः सृंजयानां जगत्पते॥ ३३॥

जैसे सिंह जंगली हाथी पर झपटता है, वैसे ही भीम ने आपके पुत्र पर शीघ्रता और वेग के साथ आक्रमण किया। गदा को छोड़ने में चतुर भीमसेन ने हे राजन्! राजा दुर्योधन के समीप पहुँचकर, उसे उद्देश्यकर, उसकी बगल में गदा को घुमाते हुए प्रहार किया। उसके प्रहार से बेचैन होकर दुर्योधन ने अपने घुटने भूमि पर टिका दिये। हे जगत्पति! तब दुर्योधन के घुटनों के सहारे भूमि पर बैठने पर सृंजयों ने जोर से सिंहनाद किया।

तेषां तु निनदं श्रुत्वा सृंजयानां नरर्षभः।
अमर्षाद् भरतश्रेष्ठ पुत्रस्ते समकुप्यत॥ ३४॥
उत्थाय तु महाबाहुर्महानाग इव श्वसन्।
दिधक्षन्निव नेत्राभ्यां भीमसेनमवैक्षत॥ ३५॥
ततः स भरतश्रेष्ठो गदापाणिरभिद्रवन्।
प्रमथिष्यन्निव शिरो भीमसेनस्य संयुगे॥ ३६॥
स महात्मा महात्मानं भीमं भीमपराक्रमः।
अताडयच्छङ्खदेशे न चचालाचलोपमः॥ ३७॥
स भूयः शुशुभे पार्थस्ताडितो गदया रणे।
उद्भिन्नरुधिरो राजन् प्रभिन्न इव कुञ्जरः॥ ३८॥

हे भरतश्रेष्ठ! सृंजयों के सिंहनाद को सुनकर आपका नरश्रेष्ठ पुत्र अमर्ष से क्रोध में भर गया। वह महाबाहु तब उठकर विशाल सर्प के समान फुंकार भरते हुए खड़ा होगया। उसने मानो आँखों से भस्म करना चाहते हुए, भीम को देखा। वह भरतश्रेष्ठ फिर गदा हाथ में लेकर युद्ध में भीम के सिर को कुचल डालने के लिये उसकी तरफ दौड़ा। उस भयंकर पराक्रमी मनस्वी ने फिर मनस्वी भीम के सिर पर प्रहार किया किन्तु पर्वत के समान दृढ़

भीमसेन उससे विचलित नहीं हुए। युद्धक्षेत्र में गदा की चोट खाकर उनके सिर से रक्त बहने लगा। हे राजन्! वे कुन्तीपुत्र तब मस्तक से मद बहानेवाले हाथी के समान सुशोभित होने लगे।

ततो गदां वीरहणीमयोमयीं
प्रगृह्य वज्राशनितुल्यनिःस्वनाम्।
अताडयच्छत्रुम- मित्रकर्षणो
बलेन विक्रम्य धनंजयाग्रजः॥ ३९॥
स भीमसेनाभिहतस्तवात्मजः
पपात संकम्पितदेहबन्धनः।
सुपुष्पितो मारुतवेगताडितो
वने यथा शाल इवावघूर्णितः॥ ४०॥
ततः प्रणेदुर्जहृषुश्च पाण्डवाः
समीक्ष्य पुत्रं पतितं क्षितौ तव।
ततः सुतस्ते प्रतिलभ्य चेतनां
समुत्पपात द्विरदो यथा ह्रदात्॥ ४१॥

फिर शत्रुदमन अर्जुन के बड़े भाई भीम ने वीरों का विनाश करनेवाली, लोहे की, विद्युत् की अग्नि के समान शब्द वाली गदा को लेकर, उससे बलपूर्वक पराक्रम कर अपने शत्रु पर प्रहार किया। भीमसेन के प्रहार से घायल होकर आपका पुत्र, जिसके शरीर की नसें ढीली पड़ गयीं थीं, वन में वायु के वेग से प्रताड़ित, झोंके खानेवाले, अच्छे फूलों वाले शाल वृक्ष के समान काँपते हुए भूमि पर गिर पड़ा। तब आपके पुत्र को भूमि पर पड़ा हुआ देखकर पाण्डव हर्षित होकर सिंहनाद करने लगे। तभी आपका पुत्र होश में आकर, जैसे हाथी सरोवर में से बाहर निकले, वैसेही उठकर खड़ा होगया।

स पार्थिवो नित्यममर्षितस्तदा
महारथः शिक्षितवत् परिभ्रमन्।
अताडयत् पाण्डवमग्रतः स्थितं
स विह्वलाङ्गो जगतीमुपास्पृशत्॥ ४२॥
स सिंहनादं विननाद कौरवो
निपात्य भूमौ युधि भीममोजसा।
बिभेद चैवाशनितुल्यमोजसा
गदानिपातेन शरीररक्षणम्॥ ४३॥

तब सदा अमर्ष में रहनेवाले उस राजा ने एक शिक्षित महारथी के समान विचरण करते हुए, सामने खड़े हुए पाण्डवपुत्र पर गदा का प्रहार किया, जिससे भीम ने बेचैन होकर भूमि को थाम लिया। तब वह कुरुवंशी, अपने तेज से युद्ध में भीम को भूमि पर गिराकर जोर से सिंहनाद करने लगा। उसने अपने गदाप्रहार से उसके वज्र के समान कवच को तोड़ दिया।

ततः परानाविशदुत्तमं भयं
समीक्ष्य भूमौ पतितं नरोत्तमम्।
अहीयमानं च बलेन कौरवं
निशाम्य भेदं सुदृढस्य वर्मणः॥ ४४॥
ततो मुहूर्तादुपलभ्य चेतनां
प्रमृज्य वक्त्रं रुधिराक्तमात्मनः।
धृतिं समालम्ब्य विवृत्य लोचने
बलेन संस्तभ्य वृकोदरः स्थितः॥ ४५॥

तब यह देखकर कि वह नरश्रेष्ठ भीम भूमि पर गिर गये, कुरुराज का बल कम नहीं हो रहा है, भीम का सुदृढ़ कवच टूट गया है, शत्रुओं के मन में भारी भय समा गया। फिर थोड़ी देर में होश में आकर, अपने खून से भरे मुख को पोंछकर, धैर्य धारणकर, और आँखें खोलकर भीमसेन बलपूर्वक अपने को संभालकर पुनः युद्ध के लिये खड़े हो गये।

पैंतीसवाँ अध्याय : श्रीकृष्ण और अर्जुन का परामर्श। अर्जुन के संकेत से भीम का दुर्योधन की जाँघों को तोड़ना।

समुदीर्णं ततो दृष्ट्वा संग्रामं कुरुमुख्ययोः।
अथाब्रवीदर्जुनस्तु वासुदेवं यशस्विनम्॥ १॥
अनयोर्वीरयोर्युद्धे को ज्यायान् भवतो मतः।
कस्य वा को गुणो भूयानेतद् वद जनार्दन॥ २॥

वासुदेव उवाच

उपदेशोऽनयोस्तुल्यो भीमस्तु बलवत्तरः।
कृती यत्नपरस्त्वेष धार्तराष्ट्रो वृकोदरात्॥ ३॥
भीमसेनस्तु धर्मेण युद्ध्यमानो न जेष्यति।
अन्यायेन तु युध्यन् वै हन्यादेव सुयोधनम्॥ ४॥

तब दोनों कुरुकुल के वीरों के युद्ध को बढ़ता हुआ देखकर अर्जुन ने यशस्वी श्रीकृष्ण से पूछा कि इन दोनों वीरों में आपके विचार में कौन श्रेष्ठ है? या किसमें गुण अधिक हैं? हे श्रीकृष्ण! यह आप मुझे बताइये। तब श्रीकृष्णजी ने कहा कि गदायुद्ध की शिक्षा तो इन्हें समान मिली हुई है, पर भीमसेन बल में अधिक है, इस धृतराष्ट्र पुत्र ने विद्या में अभ्यास और प्रयत्न अधिक किया हुआ है। भीमसेन धर्म के अनुसार युद्ध करते रहे तो वे दुर्योधन को कभी नहीं जीत सकते पर यदि वे अन्याय से युद्ध करें तो दुर्योधन को मार देंगे।

प्रतिज्ञातं च भीमेन द्यूतकाले धनंजय।
ऊरू भेत्स्यामि ते संख्ये गदयेति सुयोधनम्॥ ५॥
सोऽयं प्रतिज्ञां तां चापि पालयत्वरिकर्षणः।
मायाविनं तु राजानं माययैव निकृन्ततु॥ ६॥
यद्येष बलमास्थाय न्यायेन प्रहरिष्यति।
विषमस्थस्ततो राजा भविष्यति युधिष्ठिरः॥ ७॥
पुनरेव तु वक्ष्यामि पाण्डवेय निबोध मे।
धर्मराजापराधेन भयं नः पुनरागतम्॥ ८॥

हे अर्जुन! भीमसेन ने जूए के खेल के समय प्रतिज्ञा की थी और दुर्योधन से कहा था कि मैं युद्ध में गदा से तेरी दोनों जाँघें तोड़ दूँगा। इसलिये शत्रु दमन भीमसेन को उस प्रतिज्ञा का पालन करना चाहिये और कपटी दुर्योधन को कपट से ही मार देना चाहिये। यदि ये बल का ही सहारा लेकर न्यायपूर्वक प्रहार करते रहेंगे तो राजा युधिष्ठिर फिर विषम परिस्थिति में पड़ जायेंगे। हे पाण्डुपुत्र! मैं फिर यह कह रहा हूँ कि धर्मराज युधिष्ठिर के अपराध से अब हमारे ऊपर फिर भय आगया है।

कृत्वा हि सुमहत् कर्म हत्वा भीष्ममुखान् कुरून्।
जयः प्राप्तो यशः प्राग्र्यं वैरं च प्रतियातितम्॥ ९॥
तदेवं विजयः प्राप्तः पुनः संशयितः कृतः।
सुयोधनः कृती वीर एकायनगतस्तथा॥ १०॥
अपि चोशनसा गीतः श्रूयतेऽयं पुरातनः।
श्लोकस्तत्त्वार्थसहितस्तन्मे निगदतः शृणु॥ ११॥
पुनरावर्तमानानां भग्नानां जीवितैषिणाम्।
भेतव्यमरिशेषाणामेकायनगता हिते॥ १२॥
साहसोत्पतितानां च निराशानां च जीविते।
न शक्यमग्रतः स्थातुं शक्रेणापि धनंजय॥ १३॥

अत्यन्त महान् कार्य करके, भीष्म आदि कौरवों को मारकर, हमने विजय और श्रेष्ठ यश की प्राप्ति की थी, बैर का बदला चुकाया था पर उस प्राप्त की हुई विजय को इन्होंने फिर संशय में डाल दिया है। दुर्योधन युद्ध का अभ्यासी है, वीर है और एक निश्चय पर डटा हुआ है। इस विषय में शुक्राचार्य का एक प्राचीन श्लोक सुना जाता है, जो नीति के तत्त्व से भरा हुआ है, उसे तुम मुझसे सुनो। उन्होंने कहा है कि जीवन की इच्छा से युद्धक्षेत्र से भागे हुए शत्रु यदि पुनः लौटकर आयें तो उन मरने से बचे हुए शत्रुओं से डरते रहना चाहिये, क्योंकि वे अपने कल्याण के लिये एक दृढ़ निश्चय पर पहुँचे हुए होते हैं। हे अर्जुन! जो व्यक्ति जीवन की आशा छोड़कर साहस के साथ युद्ध में कूद पड़े, उसके सामने इन्द्र भी नहीं ठहर सकता।

सुयोधनमिमं भग्नं हतसैन्यं ह्रदं गतम्।
पराजितं वनप्रेप्सुं निराशं राज्यलम्भने॥ १४॥
को न्वेष संयुगे प्राज्ञः पुनर्द्वन्द्वे समाह्वयेत्।
अपि नो निर्जितं राज्यं न हरेत सुयोधनः॥ १५॥
यस्त्रयोदशवर्षाणि गदया कृतनिश्रमः।
चरत्यूर्ध्वं च तिर्यक् च भीमसेनजिघांसया॥ १६॥
एनं चेन्न महाबाहुरन्यायेन हनिष्यति।
एष वः कौरवो राजा धार्तराष्ट्रो भविष्यति॥ १७॥

यह दुर्योधन सेना के मारे जाने पर तालाब में छिप गया था, यह पराजित हो गया था और वन में जाने को तैयार था, इसे राज्यप्राप्ति की कोई आशा नहीं थी। कौन बुद्धिमान् ऐसे शत्रु को युद्धक्षेत्र में द्वन्द्वयुद्ध के लिये आमन्त्रित करेगा? कहीं हमारे जीते हुए राज्य को दुर्योधन फिर न हड़प ले। इसने तेरह वर्ष तक गदायुद्ध का अभ्यास किया है। देखो यह भीमसेन को मारने की इच्छा से दाँयें, बाँयें और ऊपर को विचर रहा है। यदि यह महाबाहु भीम इसे अन्याय से नहीं मारेंगे तो यह कौरव धृतराष्ट्र का पुत्र ही तुम्हारा राजा होगा।

धनंजयस्तु श्रुत्वैतत् केशवस्य महात्मनः।
प्रेक्षतो भीमसेनस्य सव्यमूरुमताडयत्॥ १८॥
गृह्य संज्ञां ततो भीमो गदया व्यचरद् रणे।
मण्डलानि विचित्राणि यमकानीतराणि च॥ १९॥
दक्षिणं मण्डलं सव्यं गोमूत्रकमथापि च।
व्यचरत् पाण्डवो राजन्नरिं सम्मोहयन्निव॥ २०॥
तथैव तव पुत्रोऽपि गदामार्गविशारदः।
व्यचरल्लघु चित्रं च भीमसेनजिघांसया॥ २१॥

मनस्वी केशव की बात सुनकर अर्जुन ने भीमसेन के देखते हुए बाँयी जाँघ को ठोका। इससे संकेत पाकर भीमसेन युद्धक्षेत्र में विचित्र मण्डलों और दूसरे दूसरे यमकों का प्रयोग करते हुए विचरने लगे। हे राजन्! शत्रु को मोहित करते हुए वे दक्षिण, वाम और गोमूत्रक मण्डल में भी विचरने लगे। वैसे ही गदायुद्धविशारद आपका पुत्र भी भीमसेन को मारने की इच्छा से फुर्ती से विचित्र पैंतरों का प्रयोग करता हुआ विचरने लगा।

समं प्रहरतोस्तत्र शूरयोर्बलिनोर्मृधे।
क्षुब्धयोर्वायुना राजन् द्वयोरिव समुद्रयोः॥ २२॥
तयोः प्रहरतोस्तुल्यं मत्तकुञ्जरयोरिव।
गदानिर्घातसंह्लादः प्रहाराणामजायत॥ २३॥
तस्मिंस्तदा सम्प्रहारे दारुणे संकुले भृशम्।
तयोः समभवद् युद्धं घोररूपमसंवृतम्॥ २४॥
गदानिपातै राजेन्द्र तक्षतोर्वै परस्परम्।
समरे प्रद्रुतौ तौ तु वृषभाक्षौ तरस्विनौ॥ २५॥
अन्योन्यं जघ्नतुर्वीरौ पङ्कस्थौ महिषाविव।

हे राजन्! वेदोनों बलवान् शूरवीर, युद्ध में समानरूप से एकदूसरे पर प्रहार कर रहे थे। उनकी गदाओं के टकराने से ऐसी ध्वनि होरही थी जैसे वायु से क्षुब्ध किये हुए दो सागर परस्पर टकरा रहे हों या दो मस्त हाथी एकदूसरे पर प्रहार कर रहे हों या बिजली कड़क रही हो। तब उस अत्यन्तदारुण युद्ध में लड़ते हुए उनदोनों का खुले तौर पर भयंकर संघर्ष होरहा था। हे राजेन्द्र! वे गदाओं के प्रहार से एक दूसरे को घायल कर रहे थे। बैल के समान आँखों वाले वेदोनों वेगवान् वीर कीचड़ में खड़े दो भैंसों के समान समरभूमि में एकदूसरे पर आक्रमण करते हुए प्रहार कर रहे थे।

जर्जरीकृतसर्वाङ्गौ रुधिरेणाभिसम्प्लुतौ॥ २६॥
ददृशाते हिमवति पुष्पिताविव किंशुकौ।
दुर्योधनस्तु पार्थेन विवरे सम्प्रदर्शिते॥ २७॥
ईषदुन्मिषमाणस्तु सहसा प्रससार ह।
तमभ्याशगतं प्राज्ञो रणे प्रेक्ष्य वृकोदरः॥ २८॥
अवाक्षिपद् गदां तस्मिन् वेगेन महता बली।
आक्षिपन्तं तु तं दृष्ट्वा पुत्रस्तव विशाम्पते॥ २९॥
अवासर्पत्ततः स्थानात् सा मोघा न्यपतद् भुवि।

वेदोनों खून से लथपथ होगये थे, उनके सारे अंग जर्जर कर दिये गये थे, वे हिमालय पर्वत पर विद्यमान् दो फूलों से भरे पलाश के वृक्षों के समान दिखाई देरहे थे। जब अर्जुन ने भीमसेन को संकेत किया, तब दुर्योधन उसकी तरफ कनखियों से देखकर सहसा भीमसेन की तरफ बढ़ा। तब उसे अपने समीप आया हुआ देखकर बलवान् भीम ने बड़े वेग से उस पर गदा चलायी। हे प्रजानाथ! उसे गदा चलाते हुए देखकर, आपका पुत्र उस स्थान से हट गया, जिससे वह गदा व्यर्थ होकर पृथिवी पर गिर पड़ी।

मोक्षयित्वा प्रहारं तं सुतस्तव सुसम्भ्रमात्॥ ३०॥
भीमसेनं च गदया प्राहरत् कुरुसत्तम।
तस्य विस्यन्दमानेन रुधिरेणामितौजसः॥ ३१॥
प्रहारगुरुपाताच्च मूर्छेव समजायत।
ततो मुहूर्तमाश्वस्य दुर्योधनमुपस्थितम्॥ ३२॥
वेगेनाभ्यपतद् राजन् भीमसेनः प्रतापवान्।
तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य संरब्धममितौजसम्॥ ३३॥
मोघमस्य प्रहारं तं चिकीर्षुर्भरतर्षभ।

हे कुरुश्रेष्ठ! उस प्रहार को व्यर्थकर आपके पुत्र ने बड़े जोर से भीमसेन पर गदा से प्रहार किया।

उसकी चोट से अमितओजस्वी भीम के खून की धारा बहने लगी और गहरी चोट से उन्हें मूर्च्छा सी आगयी। फिर थोड़ी देर में सँभलकर हे राजन्! प्रतापी भीमसेन ने सामने खड़े हुए दुर्योधन पर जोर से आक्रमण किया। हे भरतश्रेष्ठ! तब उस अमित ओजस्वी और अत्यन्त क्रोध में भरे हुए भीम को अपने ऊपर आक्रमण करते हुए देखकर दुर्योधन ने उसके प्रहार को व्यर्थ करने की इच्छा की।

अवस्थाने मतिं कृत्वा पुत्रस्तव महामनाः॥ ३४॥
इयेषोत्पतितुं राजञ्छलयिष्यन् वृकोदरम्।
अबुद्ध्यद् भीमसेनस्तु राज्ञस्तस्य चिकीर्षितम्॥ ३५॥
अथास्य समभिद्रुत्य समुत्क्रुश्य च सिंहवत्।
सृत्या वञ्चयतो राजन् पुनरेवोत्पतिष्यतः॥ ३६॥
ऊरुभ्यां प्राहिणोद् राजन् गदां वेगेन पाण्डवः।
सा वज्रनिष्पेषसमा प्रहिता भीमकर्मणा॥ ३७॥
ऊरू दुर्योधनस्याथ बभञ्ज प्रियदर्शनौ।
स पपात नरव्याघ्रो वसुधामनुनादयन्।
भग्नोरुर्भीमसेनेन पुत्रस्तव महीपते॥ ३८॥

हे राजन्! तब महामना दुर्योधन ने पहले वहाँ खड़े रहने का विचार करके फिर भीम को धोखा देने के लिये उछलना चाहा पर भीमसेन ने उस राजा की इच्छा को समझ लिया। उन्होंने आक्रमण करके और सिंह के समान गर्जना करके, पैंतरे से धोखा देने और फिर उछलने का प्रयत्न करते हुए दुर्योधन की जाँघों पर वेगपूर्वक गदा का प्रहार किया। भयंकर कर्म करनेवाले भीमसेन के द्वारा चलायी हुई उस वज्रपात के समान गिरी गदा ने दुर्योधन की सुन्दर दिखाई देनेवाली दोनों जाँघें तोड़ दीं। हे पृथिवीनाथ! भीमसेनद्वारा जाँघें तोड़ देने पर वह नरव्याघ्र आपका पुत्र भूमि को शब्दायमान करता हुआ गिर पड़ा।

छत्तीसवाँ अध्याय : दुर्योधन- तिरस्कार, युधिष्ठिर का भीम को रोकना।

ततो दुर्योधनं हत्वा भीमसेनः प्रतापवान्।
पातितं कौरवेन्द्रं तमुपगम्येदमब्रवीत्॥ १॥
गौर्गौरिति पुरा मन्द द्रौपदीमेकवाससम्।
यत् सभायां हसन्नस्मांस्तदा वदसि दुर्मते॥ २॥
तस्यावहासस्य फलमद्य त्वं समवाप्नुहि।
एवमुक्त्वा स वामेन पदा मौलिमुपास्पृशत्॥ ३॥
शिरश्च राजसिंहस्य पादेन समलोडयत्।
तथैव क्रोधसंरक्तो भीमः परबलार्दनः॥ ४॥
पुनरेवाब्रवीद् वाक्यं यत् तच्छृणु नराधिप।

कौरवेन्द्र दुर्योधन को गिराकर प्रतापी भीमसेन उसके समीप जाकर उससे बोले कि अरे मूर्ख! जो तूने हमें बैल बैल, कहकर और एकवस्त्रवाली द्रौपदी को सभा में लाकर हमारा उपहास किया था, उस हँसी उड़ाने का फल आज तू प्राप्त कर। ऐसा कहकर उन्होंने उस राजसिंह के मुकुट को बायें पैर से स्पर्श किया और उसके सिर पर ठोकर मारी। हे राजन्! इस प्रकार करके शत्रुसेना का विनाश करनेवाले भीम ने क्रोध से आँखें लाल कर पुनः जो वाक्य कहे, उन्हें भी सुनिये।

येऽस्मान् पुरोपनृत्यन्त मूढा गौरिति गौरिति॥ ५॥
तान् वयं प्रतिनृत्यामः पुनर्गौरिति गौरिति।
नास्माकं निकृतिर्वह्निर्नाक्षद्यूतं न वञ्चना।
स्वबाहुबलमाश्रित्य प्रबाधामो वयं रिपून्॥ ६॥

जिन मूर्खों ने पहले हमें बैल बैल कहकर नृत्य किया था, उन्हीं को अब हम भी बैल बैल कहकर नृत्य कर रहे हैं, न हम छल कपट करते हैं, न घर में आग लगाते हैं, न जूआ खेलते हैं और न ठगते हैं। हम अपने बाहुबल का सहारा लेकर शत्रुओं को सन्ताप देते हैं।

सोऽवाप्य वैरस्य परस्य पारं
वृकोदरः प्राह शनैः प्रहस्य।
युधिष्ठिरं केशवसृंजयांश्च
धनंजयं माद्रवतीसुतौ च॥ ७॥
रजस्वलां द्रौपदीमानयन् ये
ये चाप्यकुर्वन्त सदस्यवस्त्राम्।
तान् पश्यध्वं पाण्डवैर्धार्तराष्ट्रान्
रणे हतांस्तपसा याज्ञसेन्याः॥ ८॥

ये नः पुरा षण्ढतिलानवोचन्
क्रूरा राज्ञो धृतराष्ट्रस्य पुत्राः।
ते नो हताः सगणाः सानुबन्धाः
कामं स्वर्गं नरकं वा पतामः॥ ९॥
पुनश्च राज्ञः पतितस्य भूमौ
स तां गदां स्कन्धगतां प्रगृह्य।
वामेन पादेन शिरः प्रमृद्य
दुर्योधनं नैकृतिकं न्यवोचत्॥ १०॥

इसप्रकार बैर के परले पार पहुँचकर, भीमसेन धीरे से हँसते हुए युधिष्ठिर, श्रीकृष्ण, सृंजयों, अर्जुन, और सहदेव से बोले कि रजस्वला द्रौपदी को सभा में लाकर, जिन्होंने उसके वस्त्र उतारने की चेष्टा की थी, उन धृतराष्ट्र के पुत्रों को देखो द्रौपदी के तप से पाण्डवों ने युद्धक्षेत्र में मार दिया है। राजा धृतराष्ट्र के जिन क्रूर पुत्रों ने पहले हमें थोथा तिल कहा था, वे अपने साथियों और बान्धवों के साथ मारे गए। अब भले ही हमें उत्तम गति प्राप्त हो या अधम गति। ऐसा कहकर भीमसेन ने फिर राजा दुर्योधन के कन्धे पर लगी हुई उसकी गदा ले ली और बायें पैर से पुन उसके सिर को कुचलते हुए, उसे कपटी कहा।

तव पुत्रं तथा हत्वा कत्थमानं वृकोदरम्।
नृत्यमानं च बहुशो धर्मराजोऽब्रवीदिदम्॥ ११॥
गतोऽसि वैरस्यानृण्यं प्रतिज्ञा पूरिता त्वया।
शुभेनाथाशुभेनैव कर्मणा विरमाधुना॥ १२॥
माशिरोऽस्य पदा मार्दीर्मा धर्मस्तेऽतिगो भवेत्।
राजा ज्ञातिर्हतश्चायं नैतन्न्याय्यं तवानघ॥ १३॥
एकादशचमूनाथं कुरूणामधिपं तथा।
मा स्प्राक्षीर्भीम पादेन राजानं ज्ञातिमेव च॥ १४॥

आपके पुत्र को मारकर, इसप्रकार डींग मारते और बार बार नाचते हुए भीमसेन से तब धर्मराज युधिष्ठिर ने कहा कि– अब तुम बैर से उऋण हुए, तुमने अपनी प्रतिज्ञा शुभ या अशुभ कर्म के द्वारा पूरी कर ली, अब रुक जाओ। तुम इसके सिर का पैर से मर्दन मत करो। धर्म का उल्लंघन मत करो। हे निष्पाप! राजा दुर्योधन हमारा भाई है, यह मारा गया है। अब इसके साथ ऐसा बर्ताव उचित नहीं है। यह ग्यारह अक्षौहिणी सेना का स्वामी और कौरवों का राजा था। अपने इस बान्धव राजा को हे भीम! पैर से मत ठकुराओ।

हतबन्धुर्हतामात्यो भ्रष्टसैन्यो हतो मृधे।
सर्वाकारेण शोच्योऽयं नावहास्योऽयमीश्वरः॥ १५॥
धार्मिक भीमसेनोऽसावित्याहुस्त्वां पुरा जनाः।
स कस्माद् भीमसेन त्वं राजानमधितिष्ठसि॥ १६॥

युद्ध में इसके बन्धु और मन्त्री मारे गये। इसकी सेना नष्ट होगयी और यह स्वयं भी मारा गया। यह राजा अब सबप्रकार से शोक करने योग्य है, उपहास करने योग्य नहीं है। पहले तुम्हारे बारे में लोग कहते थे कि भीमसेन धर्मात्मा है। हे भीम! फिर तुम राजा दुर्योधन के साथ ऐसा बर्ताव क्यों कर रहे हो?

सैंतीसवाँ अध्याय : क्रुद्ध बलराम को श्रीकृष्ण का समझाना। असन्तुष्ट बलराम का वहाँ से प्रस्थान।

शिरस्यभिहतं दृष्ट्वा भीमसेनेन ते सुतम्।
रामः प्रहरतां श्रेष्ठश्चुक्रोध बलवद्बली॥ १॥
ततो मध्ये नरेन्द्राणामूर्ध्वबाहुर्हलायुधः।
कुर्वन्नार्तस्वरं घोरं धिग् धिग् भीमेत्युवाच ह॥ २॥
अहो धिग् यदधो नाभेः प्रहृतं धर्मविग्रहे।
नैतद् दृष्टं गदायुद्धे कृतवान् यद् वृकोदरः॥ ३॥
अधो नाभ्या न हन्तव्यमिति शास्त्रस्य निश्चयः।
अयं त्वशास्त्रविन्मूढः स्वच्छन्दात् सम्प्रवर्तते॥ ४॥

आपके पुत्र के सिर पर भीमसेन के द्वारा पैर का प्रहार किये जाने पर, प्रहार करने वालों में श्रेष्ठ और अत्यधिक बलवान् बलराम को बड़ा क्रोध आया। तब हलायुध ने राजाओं के बीच में अपने हाथों को ऊपर उठाकर, भयंकर आर्तस्वर करते हुए कहा कि भीमसेन! तुम्हें धिक्कार है। यह बड़े धिक्कार की बात है जो इस धर्मयुद्ध में नाभि से नीचे प्रहार किया गया। भीम ने जो आचरण किया है वह गदायुद्ध में कभी नहीं देखा गया। यह शास्त्र

का नियम है कि गदायुद्ध में नाभि से नीचे प्रहार नहीं करना चाहिये पर शास्त्रज्ञान से शून्य इस मूर्ख ने अपनी इच्छानुसार आचरण किया है।

तस्य तत् तद् ब्रुवाणस्य रोषः समभवन्महान्।
ततो राजानमालोक्य रोषसंरक्तलोचनः॥ ५॥
बलदेवो महाराज ततो वचनमब्रवीत्।
न चैष पतितः कृष्ण केवलं मत्समोऽसमः॥ ६॥
आश्रितस्य तु दौर्बल्यादाश्रयः परिभर्त्स्यते।
ततो लाङ्गलमुद्यम्य भीममभ्यद्रवद् बली॥ ७॥
तस्योर्ध्वबाहोः सदृशं रूपमासीन्महात्मनः।
बहुधातुविचित्रस्य श्वेतस्येव महागिरेः॥ ८॥

भीम के विषय में ऐसी बातें कहते हुए उनका क्रोध बहुत बढ़ गया। हे महाराज! क्रोध से लाल आँखें करके और राजा दुर्योधन की तरफ देखकर तब बलदेव जी ने यह कहा कि हे कृष्ण! दुर्योधन गदा युद्ध में मेरे समान और अद्वितीय था। यहाँ केवल दुर्योधन को ही नहीं गिराया गया है, बल्कि शरणागत की दुर्बलता के कारण, शरण देने वाले का भी अपमान किया गया है। फिर वे बलवान् अपने हल को उठाकर भीम की तरफ दौड़े। अपने हाथों को ऊपर उठाये हुए उन मनस्वी का रूप उस समय ऐसा लग रहा था, मानो अनेक धातुओं के रंग से रंगबिरंगा कोई श्वेत वर्ण का विशाल पर्वत हो।

तमुत्पतन्तं जग्राह केशवो विनयान्वितः।
बाहुभ्यां पीनवृत्ताभ्यां प्रयत्नाद् बलवद्बली॥ ९॥
उवाच चैनं संरब्धं शमयन्निव केशवः।
आत्मवृद्धिर्मित्रवृद्धि- र्मित्रमित्रोदयस्तथा॥ १०॥
विपरीतं द्विषत्स्वेतत् षड्विधा वृद्धिरात्मनः।
आत्मन्यपि च मित्रे च विपरीतं यदा भवेत्॥ ११॥
तदा विद्यान्मनोग्लानिमाशु शान्तिकरो भवेत्।
अस्माकं सहजं मित्रं पाण्डवाः शुद्धपौरुषाः॥ १२॥
स्वकाः पितृष्वसुः पुत्रास्ते परैर्निकृता भृशम्।

तब उन आक्रमण करते हुए को, विनययुक्त और अत्यन्तबलवान् श्रीकृष्णजी ने मोटी और गोल बाँहों के द्वारा प्रयत्नपूर्वक पकड़ लिया और अत्यन्त क्रोध में भरे उन्हें शान्त करते हुए श्रीकृष्णजी ने कहा कि हे भाई! अपनी उन्नति छः प्रकार से होती है– अपनी वृद्धि से, मित्र की वृद्धि से, और मित्र के मित्र की वृद्धि से, और शत्रु के पक्ष में इससे उलटी अवस्था में अर्थात् शत्रु की हानि से, शत्रु के मित्र की हानि से और शत्रु के मित्र के मित्र की हानि से। अपनी और अपने मित्र की यदि इससे विपरीत अवस्था हो तो दुःखी होना चाहिये और उसकी जल्दी शान्ति करनी चाहिये। पाण्डव हमारे स्वाभाविक मित्र हैं, वे शुद्ध पुरुषार्थी हैं, हमारी भूआ के पुत्र हैं और शत्रुओं ने उनके साथ बहुत छल कपट किया था।

प्रतिज्ञापालनं धर्मः क्षत्रियस्येह वेद्म्यहम्॥ १३॥
सुयोधनस्य गदया भङ्क्तास्म्यूरू महाहवे।
इति पूर्वं प्रतिज्ञातं भीमेन हि सभातले॥ १४॥
अतो दोषं न पश्यामि मा क्रुद्ध्यस्व प्रलम्बहन्।
यौनः स्वैः सुखहार्दैश्च सम्बन्धः सह पाण्डवैः॥ १५॥
तेषां वृद्ध्या हि वृद्धिर्नो मा क्रुधः पुरुषर्षभ।
वासुदेववचः श्रुत्वा सीरभृत् प्राह धर्मवित्॥ १६॥
धर्मः सुचरितः सद्भिः स च द्वाभ्यां नियच्छति।

मैं जानता हूँ कि क्षत्रिय का धर्म प्रतिज्ञा पालन करना है। भीमसेन ने सभा में पहले प्रतिज्ञा की हुई थी कि मैं दुर्योधन की जाँघों को गदा से महान् युद्ध में तोड़ूँगा। इसलिये मैं भीमसेन का कोई दोष नहीं समझता। हे प्रलम्ब को मारने वाले! आप क्रोध मत कीजिये। पाण्डवों से हमारा यौन सम्बन्ध तो है ही, परस्पर सुख देनेवाले सौहार्द से भी हम बँधे हुए हैं। इन पाण्डवों की वृद्धि से हमारी भी वृद्धि है। इसलिये हे पुरुषश्रेष्ठ! आप क्रोध मत कीजिये। तब श्रीकृष्ण जी की बात सुनकर धर्म जो जाननेवाले हलधर जी ने कहा कि धर्म का पालन सज्जनलोगों ने अच्छीतरह से किया है। वह अर्थ और काम दोनों से संकुचित कर दिया जाता है।

अर्थश्चात्यर्थलुब्धस्य कामश्चातिप्रसङ्गिणः॥ १७॥
धर्मार्थौ धर्मकामौ च कामार्थौ चाप्यपीडयन्।
धर्मार्थकामान् योऽभ्येति सोऽत्यन्तं सुखमश्नुते॥ १८॥
तदिदं व्याकुलं सर्वं कृतं धर्मस्य पीडनात्।
भीमसेनेन गोविन्द कामं त्वं तु यथाऽऽत्थ माम्॥ १९॥

अत्यन्तलोभी का अर्थ और अत्यन्त आसक्ति वाले की कामनाएँ, येदोनों धर्म को हानि पहुँचाते हैं। जो व्यक्ति कामनाओं से धर्म और अर्थ को, अर्थ से धर्म और कामनाओं को और धर्म से कामनाओं

और अर्थ को भी पीड़ित न करता हुआ धर्म अर्थ और काम इन तीनों का यथोचित सेवन करता है, वह अत्यन्त सुख को प्राप्त करता है। भीमसेन ने धर्म को पीड़ित करके इन सबको विकृत कर दिया है। हे गोविन्द! तुमने जैसा कहा है, वह तुम्हारी मनमानी कल्पना है।

श्रीकृष्ण उवाच

अरोषणो हि धर्मात्मा सततं धर्मवत्सलः।
भवान् प्रख्यायते लोके तस्मात् संशाम्य मा क्रुधः॥ २०॥
प्राप्तं कलियुगं विद्धि प्रतिज्ञां पाण्डवस्य च।
आनृण्यं यातु वैरस्य प्रतिज्ञायाश्च पाण्डवः॥ २१॥

तब श्रीकृष्ण जी ने कहा कि हे भाई! आप संसार में क्रोध न करनेवाले, सदा धर्म से प्रेम करनेवाले और धर्मात्मा पुरुष के रूप में प्रसिद्ध हैं। आप शान्त होजाइये और क्रोध मत कीजिये। आप इस बात को समझिये कि जिस प्रकार द्वापर युग समाप्त होकर कलियुग आरम्भ होने वाला है, उसीप्रकार समाज में भी धर्म प्रधान लोगों का प्रभुत्व समाप्त होकर कलियुगी अर्थात् अधर्म प्रधान लोगों को प्रभुत्व प्राप्त होगया था, जिसके कारण ही धर्मप्रधान पाण्डवों के साथ इतना अधर्माचरण होता रहा और उन अधर्मियों की सहायता के लिये भी इतने अधिक राजा लोग इतनी विशाल सेना के साथ एकत्र हो गये। उनलोगों के प्रभुत्व को समाप्त करने के लिये ही इतना बड़ा युद्ध लड़ा गया और कपटी लोगों को उनकी भाषा में ही उत्तर दिया गया। फिर आप इस बात को भी समझिये कि पाण्डुपुत्र भीम ने गदा से दुर्योधन की जाँघें तोड़ने की प्रतिज्ञा की थी, उस प्रतिज्ञा को बिना नियम का उल्लंघन किये पूरा नहीं किया जा सकता था। अब भीमसेन बैर और प्रतिज्ञा की पूर्ति दोनों से मुक्त हो गये हैं।

युद्ध्यन्तं समरे वीरं कुरुवृष्णियशस्करम्।
अनेन कर्णः संदिष्टः पृष्ठतो धनुराच्छिनत्॥ २२॥
ततः संछिन्नधन्वानं विरथं पौरुषे स्थितम्।
व्यायुधीकृत्य हतवान् सौभद्रमपलायिनम्॥ २३॥
जन्मप्रभृतिलुब्धश्च पापश्चैव दुरात्मवान्।
निहतो भीमसेनेन दुर्बुद्धिः कुलपांसनः॥ २४॥
प्रतिज्ञां भीमसेनस्य त्रयोदशसमार्जिताम्।
किमर्थं नाभिजानाति युद्ध्यमानोऽपि विश्रुताम्॥ २५॥
ऊर्ध्वमुत्क्रम्य वेगेन जिघांसन्तं वृकोदरः।
बभञ्ज गदया चोरू न स्थाने न च मण्डले॥ २६॥

कौरवों और वृष्णियों के यश को बढ़ानेवाला वीर अभिमन्यु जब युद्ध कर रहा था, तब इसी ने कर्ण को कहा था, जिससे उसने पीछे से आकर उसके धनुष को काट दिया। तब धनुष के कट जाने पर और रथ से रहित होजाने पर भी जो अपने पौरुष को प्रकट कर रहा था, उस समर में पीठ न दिखानेवाले अभिमन्यु को इसी ने निहत्था करके मरवाया था। भीमसेन से मारा गया यह जन्म से ही लोभी, पापी, दुरात्मा, दुर्बुद्धि और कुल को कलंकित करने वाला रहा है। भीमसेन की प्रतिज्ञा तेरहवर्ष से चल रही थी और सब इसके बारे में जानते थे, फिर युद्ध करते हुए दुर्योधन ने उसे याद क्यों नहीं रखा? वह जोर से ऊपर को उछलकर भीम को मारना चाहता था, तभी भीम ने उसकी जाँघ गदा से तोड़ दी। उस समय यह न तो किसी स्थान में था और न किसी मण्डल में।

नैव प्रीतमना रामो वचनं प्राह संमदि।
हत्वाधर्मेण राजानं धर्मात्मानं सुयोधनम्॥ २७॥
जिह्मयोधीति लोकेऽस्मिन् ख्यातिं यास्यति पाण्डवः।
दुर्योधनोऽपि धर्मात्मा गतिं यास्यति शाश्वतीम्॥ २८॥
ऋजुयोधी हतो राजा धार्तराष्ट्रो नराधिपः।
इत्युक्त्वा रथमास्थाय रौहिणेयः प्रतापवान्।
श्वेताभ्रशिखराकारः प्रययौ द्वारकां प्रति॥ २९॥

श्रीकृष्णजी की बात सुनकर बलराम जी का मन प्रसन्न नहीं हुआ। उन्होंने तब सबके बीच में कहा कि धर्मात्मा राजा दुर्योधन को अधर्म से मारकर यह पाण्डुपुत्र भीम संसार में कपट से युद्ध करनेवाले के रूप में बदनाम होगा। धृतराष्ट्रपुत्र धर्मात्मा राजा दुर्योधन सरलतापूर्वक युद्ध कर रहा था, उस अवस्था में वह मारा गया इसलिये उसे उत्तम गति प्राप्त होगी। ऐसा कहकर श्वेत बादलों के अग्रभाग के समान कान्ति से युक्त प्रतापी रोहिणीपुत्र अपने रथपर बैठकर द्वारिका की तरफ चल दिये।

अड़तीसवाँ अध्याय : पाण्डवों का कौरवों के शिविर में पहुँचना।

ततस्ते प्रययुः सर्वे निवासाय महीक्षितः।
शङ्खान् प्रध्मापयन्तो वै हृष्टाः परिघबाहवः॥ १॥
पाण्डवान् गच्छतश्चापि शिबिरं नो विशाम्पते।
महेष्वासोऽन्वगात् पश्चाद् युयुत्सुः सात्यकिस्तथा॥ २॥
धृष्टद्युम्नः शिखण्डी च द्रौपदेयाश्च सर्वशः।
सर्वे चान्ये महेष्वासाः प्रययुः शिबिराण्युत॥ ३॥
ततस्ते प्राविशन् पार्था हतत्विट्कं हतेश्वरम्।
दुर्योधनस्य शिबिरं रङ्गवद्विसृते जने॥ ४॥
गतोत्सवं पुरमिव हृतनागमिव ह्रदम्।
स्त्रीवर्षवरभूयिष्ठं वृद्धामात्यैरधिष्ठितम्॥ ५॥

उसके पश्चात् वे सारे परिघ के समान मोटी बाहोंवाले राजालोग, प्रसन्नता से अपने शंखों को बजाते हुए, विश्राम के लिये वहाँ से चल दिये। हे प्रजानाथ! हमारे शिविरों की तरफ जाते हुए महाधनुर्धर पाण्डवों के पीछे फिर युयुत्सु, सात्यकि, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, सारे द्रौपदी के पुत्र और दूसरे सारे महाधनुर्धर भी गये। उन्होंने पहले दुर्योधन के शिविर में प्रवेश किया, जिसकी चमकदमक समाप्त होगयी थी और जिसका स्वामी मारा गया था। जैसे दर्शकों के चले जाने पर रंगमंच सूना होजाता है, जैसे उत्सवों से रहित नगर की अवस्था होती है या जैसे नागरहित सरोवर होता है, वैसे ही वह शिविर उस समय लग रहा था, जिसमें अब केवल, दासियाँ, नपुंसक दास और बूढ़े मन्त्री ही बचे थे।

ईषदुत्स्मयमानस्तु भगवान् केशवोऽरिहा।
परिष्वज्य च राजानं युधिष्ठिरमभाषत॥ ६॥
दिष्ट्या जयसि कौन्तेय दिष्ट्या ते शत्रवो जिताः।
दिष्ट्या गाण्डीवधन्वा च भीमसेनश्च पाण्डवः॥ ७॥
त्वं चापि कुशली राजन् माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ।
मुक्ता वीरक्षयादस्मात् संग्रामान्निहतद्विषः॥ ८॥
एवमुक्तस्तु कृष्णेन धर्मराजो युधिष्ठिरः।
हृष्टरोमा महाराज प्रत्युवाच जनार्दनम्॥ ९॥

फिर शत्रुदमन, भगवान् श्रीकृष्ण ने कुछ मुस्कराते हुए राजा युधिष्ठिर को छाती से लगाकर कहा कि हे कुन्तीपुत्र! बड़े सौभाग्य की बात है कि तुम्हारी विजय हुई है, आपके शत्रु पराजित हुए हैं। यह भी सौभाग्य की बात है कि गांडीवधनुर्धारी अर्जुन, पाण्डुपुत्र भीमसेन और हे राजन्! आप भी तथा नकुल, सहदेव सारे सकुशल हैं, शत्रुओं के विनष्ट होजाने पर आपलोग इस वीरों का विनाश करनेवाले संग्राम से मुक्त होगये हैं। हे महाराज! श्रीकृष्णजी के ऐसा कहने पर धर्मराज युधिष्ठिर को हर्ष से रोमांच होआया और उन्होंने श्रीकृष्ण जी को उत्तर दिया कि–

भवतस्तु प्रसादेन संशप्तकगणा जिताः।
महारणगतः पार्थो यच्च नासीत् पराङ्मुखः॥ १०॥
तथैव च महाबाहो पर्यायैर्बहुभिर्मया।
कर्मणामनुसंतानं तेजसश्च गतीः शुभाः॥ ११॥
उपप्लव्ये महर्षिर्मे कृष्णद्वैपायनोऽब्रवीत्।
यतो धर्मस्ततः कृष्णो यतः कृष्णस्ततो जयः॥ १२॥

हे महाराज! यह आपकी ही कृपा है कि संशप्तकों पर विजय प्राप्त कीगयी और महान् युद्ध में भाग लेकर अर्जुन कभी युद्ध से विमुख नहीं हुए। हे महाबाहु! इसीप्रकार आपके द्वारा अनेकों बार हमारे कार्यों की सिद्धि हुई है और अपने तेज के शुभ परिणाम प्राप्त हुए हैं। उपप्लव्यनगर में महर्षि कृष्ण द्वैपायन ने कहा था कि जहाँ धर्म है वहीं श्रीकृष्ण हैं और जहाँ श्रीकृष्ण हैं वहीं विजय है।

इत्येवमुक्ते ते वीराः शिबिरं तव भारत।
प्रविश्य प्रत्यपद्यन्त कोशरत्नर्धिसंचयान्॥ १३॥
रजतं जातरूपं च मणीनथ च मौक्तिकान्।
भूषणान्यथ मुख्यानि कम्बलान्यजिनानि च॥ १४॥
दासीदासमसंख्येयं राज्योपकरणानि च।
ते तु वीराः समाश्वस्य वाहनान्यवमुच्य च॥ १५॥
अतिष्ठन्त मुहुः सर्वे पाण्डवाः सात्यकिस्तथा।

हे भारत! युधिष्ठिर के ऐसा कहने पर उन वीरों ने आपके शिविर में प्रवेश करके खजाना, रत्नों और दूसरी ऐश्वर्य की वस्तुओं पर अधिकार कर लिया। चाँदी, सोना, मणियाँ, मोती, सुन्दर आभूषण, कम्बल, मृगचर्म, असंख्य दास दासियाँ और राज्य के उपकरण उन्हें मिले। तत्पश्चात् तसल्ली के साथ अपने वाहनों को खोलकर वे सारे वीर पाण्डव और

सात्यकि वहीं बैठ गये और विश्राम करने लगे।

अथाब्रवीन्महाराज वासुदेवो महायशाः॥ १६॥
अस्माभिर्मङ्गलार्थाय वस्तव्यं शिबिराद् बहिः।
तथेत्युक्त्वा हि ते सर्वे पाण्डवाः सात्यकिस्तथा॥ १७॥
वासुदेवेन सहिता मङ्गलार्थे बहिर्ययुः।
ते समासाद्य सरितं पुण्यामोघवतीं नृप।
न्यवसन्नथ तां रात्रिं पाण्डवा हतशत्रवः॥ १८॥

हे महाराज! फिर महायशस्वी श्रीकृष्ण ने कहा कि हमें अपने मंगल के लिये आज शिविर से बाहर ही रहना चाहिये। तब अच्छा ऐसा ही होगा यह कहकर सारे पाण्डव और सात्यकि अपने कल्याण के लिये श्रीकृष्ण जी के साथ शिविर से बाहर चले गये। हे राजन्! जिनके शत्रु मारे गये थे, वे पाण्डव तब पवित्र ओघवती नदी के किनारे जाकर उस रात्रि में निवास करने के लिये टिक गये।

उन्तालीसवाँ अध्याय : दुर्योधन के प्रति अश्वत्थामा का विषाद, दुर्योधन द्वारा उसका सेनापति बनाया जाना।

वार्तिकाणां सकाशात् तु श्रुत्वा दुर्योधनं हतम्।
हतशिष्टास्ततो राजन् कौरवाणां महारथाः॥ १॥
विनिर्भिन्नाः शितैर्बाणैर्गदातोमरशक्तिभिः।
अश्वत्थामा कृपश्चैव कृतवर्मा च सात्वतः॥ २॥
त्वरिता जवनैरश्वैरायोधनमुपागमन्।
प्रभग्नं वायुवेगेन महाशालं यथा वने॥ ३॥
भूमौ विचेष्टमानं तं रुधिरेण समुक्षितम्।
महागजमिवारण्ये व्याधेन विनिपातितम्॥ ४॥
विवर्तमानं बहुशो रुधिरौघपरिप्लुतम्।

संदेशवाहकों के मुख से दुर्योधन को मारा हुआ सुनकर हे राजन्! मरने से बचे हुए कौरवों के महारथी अश्वत्थामा, कृतवर्मा और कृपाचार्य जो कि स्वयं भी तीखे बाण, गदा, तोमर और शक्ति आदि से अत्यन्तघायल होरहे थे, शीघ्रगामी घोड़ों द्वारा शीघ्रता से दुर्योधन के पास आपहुँचे। दुर्योधन उससमय खून से लथपथ होकर भूमि पर पड़ा हुआ छटपटा रहा था, जैसे वन में वायु से उखाड़ा कोई विशाल शाल का वृक्ष पड़ा हो, या व्याघ्र द्वारा गिराया कोई विशाल हाथी हो। खून के समूह से भरा हुआ वह बार बार करवटें बदल रहा था।

महावातसमुत्थेन संशुष्कमिव सागरम्॥ ५॥
पूर्णचन्द्रमिव व्योम्नि तुषारावृतमण्डलम्।
रेणुध्वस्तं दीर्घभुजं मातङ्गमिव विक्रमे॥ ६॥
भ्रुकुटीकृतवक्त्रान्तं क्रोधादुद्वृत्तचक्षुषम्।
सामर्षं तं नरव्याघ्रं व्याघ्रं निपतितं यथा॥ ७॥
ते तं दृष्ट्वा महेष्वासं भूतले पतितं नृपम्।
मोहमभ्यागमन् सर्वे कृपप्रभृतयो रथाः॥ ८॥
अवतीर्य रथेभ्यश्च प्राद्रवन् राजसंनिधौ।
दुर्योधनं च सम्प्रेक्ष्य सर्वे भूमावुपाविशन्॥ ९॥
ततो द्रौणिर्महाराज बाष्पपूर्णेक्षणः श्वसन्।

वह ऐसा लग रहा था जैसे विशाल आँधी के द्वारा सुखाया हुआ सागर हो, आकाश में कोहरे से ढका हुआ पूर्ण चन्द्रमा हो। हाथी के समान पराक्रम वाला और लम्बी बाँहोंवाला वह तब धूल में लिपटा हुआ पड़ा था। उसके मुख पर भौंहें तनी और आँखें क्रोध से चढ़ी हुई थीं। वह नरव्याघ्र क्रोध में भरे और गिरे हुए व्याघ्र के समान दिखाई दे रहा था। कृपाचार्य आदि सारे रथी उस महाधनुर्धर राजा को भूमि पर पड़ा हुआ देखकर मोह में भर गये और रथों से उतरकर राजा के समीप दौड़े आये। दुर्योधन को देखकर वे उसके पास ही भूमि पर बैठ गये। हे महाराज! तब द्रोणपुत्र आँखों में आँसू भरकर और लम्बी साँसें लेते हुए, सारे संसार के राजाधिराज, भरतश्रेष्ठ से यह बोला कि–

उवाच भरतश्रेष्ठं सर्वलोकेश्वरेश्वरम्॥ १०॥
न नूनं विद्यते सत्यं मानुषे किंचिदेव हि।
यत्र त्वं पुरुषव्याघ्र शेषे पांसुषु रूषितः॥ ११॥
भूत्वा हि नृपतिः पूर्वं समाज्ञाप्य च मेदिनीम्।
कथमेकोऽद्य राजेन्द्र तिष्ठसे निर्जने वने॥ १२॥
दुःखं नूनं कृतान्तस्य गतिं ज्ञातुं कथंचन।
लोकानां च भवान् यत्र शेषे पांसुषु रूषितः॥ १३॥
एष मूर्धाभिषिक्तानामग्रे गत्वा परंतपः।

सतृणं ग्रसते पांसुं पश्य कालस्य पर्ययम्॥ १४॥
क्व ते तदमलं छत्रं व्यजनं क्व च पार्थिव।
सा च ते महती सेना क्व गता पार्थिवोत्तम॥ १५॥
दुर्विज्ञेया गतिर्नूनं कार्याणां कारणान्तरे।
यद् वै लोकगुरुर्भूत्वा भवानेतां दशां गतः॥ १६॥

वास्तव में इस मानवलोक में कुछ भी सत्य नहीं है, सभी नष्ट हो जानेवाले हैं, जहाँ हे पुरुषव्याघ्र! तुम जैसा व्यक्ति धूल में लिपटा हुआ पड़ा है। हे राजेन्द्र! पहले राजा होकर, सारी भूमि पर राज्य करके आज अकेले इस निर्जन वन में कैसे पड़े हुए हो? बड़े दुःख की बात है कि वास्तव में मृत्यु की और संसार की गति का पता किसी को नहीं चल पाता, जिसके आधीन होकर आप धूल में सने हुए पड़े हैं। समय के उलटफेर को देखो कि ये राजाओं के आगे चलनेवाले, शत्रुओं को सन्तप्त करनेवाले महाराज इससमय तिनकोंसहित धूल फाँक रहे हैं। हे राजन्! आपका वह निर्मल छत्र और व्यजन कहाँ गया? हे राजश्रेष्ठ! आपकी वह विशाल सेना कहाँ गयी? किस कारण से कौनसा कार्य होगा, यह जान लेना वास्तव में बहुत कठिन है, क्योंकि संसार के आदरणीय होकर भी आप ऐसी अवस्था में पहुँच गये हैं।

अध्रुवा सर्वमर्त्येषु श्रीरुपालक्ष्यते भृशम्।
भवतो व्यसनं दृष्ट्वा शक्रविस्पर्धिनो भृशम्॥ १७॥
तस्य तद् वचनं श्रुत्वा दुःखितस्य विशेषतः।
उवाच राजन् पुत्रस्ते प्राप्तकालमिदं वचः॥ १८॥
ईदृशो लोकधर्मोऽयं धात्रा निर्दिष्ट उच्यते।
विनाशः सर्वभूतानां कालपर्यायमागतः॥ १९॥
सोऽयं मां समनुप्राप्तः प्रत्यक्षं भवतां हि यः।
पृथिवीं पालयित्वाहमेतां निष्ठामुपागतः॥ २०॥

हे इन्द्र की समानता करनेवाले! आपके ऊपर भी इस महान् संकट को आया देखकर यह स्पष्ट होगया है कि लक्ष्मी प्राणियों के पास स्थिर नहीं होती। तब विशेष रूप से दुःखी अश्वत्थामा के उन वचनों को सुनकर हे राजन्! आपके पुत्र राजा दुर्योधन ने समय के अनुसार यह कहा कि हे मित्रों! भगवान् के द्वारा बनाया संसार का नियम ऐसाही है कि बारी-बारी से सारे प्राणियों के विनाश का समय आजाता है। वही समय आप लोगों के सामने मेरा आगया है। पहले मैं पृथिवी का पालन करता था, पर अब मेरी यह अवस्था है।

दिष्ट्या नाहं परावृत्तो युद्धे कस्यांचिदापदि।
दिष्ट्याहं निहतः पापैश्छलेनैव विशेषतः॥ २१॥
उत्साहश्च कृतो नित्यं मया दिष्ट्या युयुत्सता।
दिष्ट्या चास्मिन् हतो युद्धे निहतज्ञातिबान्धवः॥ २२॥
दिष्ट्या च वोऽहं पश्यामि मुक्तानस्माज्जनक्षयात्।
स्वस्तियुक्तांश्च कल्यांश्च तन्मे प्रियमनुत्तमम्॥ २३॥
एतावदुक्त्वा वचनं बाष्पव्याकुललोचनः।
तूष्णीं बभूव राजेन्द्र रुजासौ विह्वलो भृशम्॥ २४॥

यह सौभाग्य की बात है कि किसी भी संकट में मैं युद्ध से पीछे नहीं हटा। यह भी अच्छी बात है कि पापियों ने मुझे विशेष कपट से ही मारा है। मैंने युद्ध की इच्छा रखते हुए सौभाग्य से सदा युद्ध के लिये उत्साह दिखाया है। यही प्रसन्नता का विषय है कि सारे भाई बन्धुओं के मारे जाने पर अब मैं स्वयं भी प्राणों का त्याग कर रहा हूँ। सौभाग्य से मैं आपलोगों को इस जनसंहार से मुक्त हुआ देख रहा हूँ। आपलोग सकुशल और स्वस्थ हैं, यह मेरे लिये प्रिय और उत्तम बात है। इतना कहते हुए हे राजेन्द्र! उसकी आँखें आँसुओं से भर गयीं। वह पीड़ा से अत्यधिक व्याकुल होकर चुप होगया।

तथा दृष्ट्वा तु राजानं बाष्पशोकसमन्वितम्।
द्रौणिः क्रोधेन जज्वाल यथा वह्निर्जगत्क्षये॥ २५॥
स च क्रोधसमाविष्टः पाणौ पाणिं निपीड्य च।
बाष्पविह्वलया वाचा राजानमिदमब्रवीत्॥ २६॥
पिता मे निहतः क्षुद्रैः सुनृशंसेन कर्मणा।
न तथा तेन तप्यामि यथा राजंस्त्वयाद्य वै॥ २७॥
शृणु चेदं वचो मह्यं सत्येन वदतः प्रभो।
इष्टापूर्तेन दानेन धर्मेण सुकृतेन च॥ २८॥
सर्वोपायैर्हि नेष्यामि प्रेतराजनिवेशनम्।
अनुज्ञां तु महाराज भवान् मे दातुमर्हति॥ २९॥

राजा को इसप्रकार आँसुओं और दुःख से भरा हुआ देखकर जैसे प्रलय के समय अग्नि प्रज्वलित होती है वैसे ही अवश्थामा क्रोध से जलने लगा। क्रोध में भरकर, हाथ पर हाथ को दबाकर आँसुओं से गदगद वाणी से उसने राजा से कहा कि इन दुष्टों ने मेरे पिता को अत्यन्तक्रूर कर्मद्वारा मार दिया, पर उसके कारण मैं इतना दुःखी नहीं हूँ जितना

हे राजन्! आज आपके कारण दु:खी हूँ। हे प्रभो! मैं अपने सत्य, इष्ट, आपूर्त, दान, धर्म और पुण्य कर्मों की सौगन्ध खाकर कहता हूँ कि इन शत्रुओं को सभीप्रकार के उपायों से मृत्युलोक को पहुँचाऊँगा। आप मुझे हे महाराज! इसके लिये आज्ञा दीजिये।

इति श्रुत्वा तु वचनं द्रोणपुत्रस्य कौरवः।
मनसः प्रीतिजननं कृपं वचनमब्रवीत्॥ ३०॥
आचार्य शीघ्रं कलशं जलपूर्णं समानय।
स तद् वचनमाज्ञाय राज्ञो ब्राह्मणसत्तमः॥ ३१॥
कलशं पूर्णमादाय राज्ञोऽन्तिकमुपागमत।
तमब्रवीन्महाराज पुत्रस्तव विशाम्पते॥ ३२॥
ममाज्ञया द्विजश्रेष्ठ द्रोणपुत्रोऽभिषिच्यताम्।
सैनापत्येन भद्रं ते मम चेदिच्छसि प्रियम्॥ ३३॥
राज्ञस्तु वचनं श्रुत्वा कृपः शारद्वतस्तथा।
द्रौणिं राज्ञो नियोगेन सैनापत्येऽभ्यषेचयत्॥ ३४॥

द्रोणपुत्र के ये मन को प्रसन्नता पहुँचानेवाले वचन सुनकर उस कौरव ने कृपाचार्य से कहा कि हे आचार्य! शीघ्र ही जल से भरा कलश लाइये। तब राजा के उस वचन को शिरोधार्य करके वह ब्राह्मणश्रेष्ठ भरे हुए कलश को राजा दुर्योधन के समीप लाये। हे प्रजानाथ! तब आपके पुत्र ने उनसे कहा कि हे ब्राह्मणश्रेष्ठ! आप मेरी आज्ञा से, यदि आप मेरा प्रिय करना चाहते हैं तो द्रोणपुत्र का सेनापति पद पर अभिषेक कर दीजिये। आपका कल्याण हो। तब राजा की बात सुनकर कृपाचार्य ने राजा की आज्ञा से द्रोणपुत्र का सेनापति के पद पर अभिषेक कर दिया।

सौप्तिक पर्व

पहला अध्याय : रात में अश्वत्थामा द्वारा अपनी योजना पर विचार।

ततस्ते सहिता वीराः प्रयाता दक्षिणामुखाः।
उपास्तमनवेलायां शिबिराभ्याशमागताः॥ १॥
विमुच्य वाहांस्त्वरिता भीता समभवंस्तदा।
गहनं देशमासाद्य प्रच्छन्ना न्यविशन्त ते॥ २॥
दीर्घमुष्णं च निःश्वस्य पाण्डवानेव चिन्तयन्।
श्रुत्वा च निनदं घोरं पाण्डवानां जयैषिणाम्॥ ३॥
अनुसारभयाद् भीताः प्राङ्मुखाः प्राद्रवन् पुनः।
ते मुहूर्तात् ततो गत्वा श्रान्तवाहाः पिपासिताः॥ ४॥
नामृष्यन्त महेष्वासाः क्रोधामर्षवशं गताः।

हे राजन्! फिर वे तीनों वीर वहाँ से दक्षिणदिशा की तरफ चले और सूर्यास्त के समय शिविर के समीप आगये। वहाँ वे उनका पता न लग जाये, इस भय से पीड़ित होने के कारण एक दुर्गम स्थान पर जल्दी से छिपकर ठहर गये और वहाँ उन्होंने अपने घोड़ों को खोल दिया। वे तब लम्बी और गर्म साँसें ले रहे थे और पाण्डवों के बारे में ही सोच रहे थे। तभी विजय के इच्छुक पाण्डवों की भयंकर गर्जनाओं को सुनकर, कहीं पाण्डव हमारा पीछा न करने लगें, इस बात से चिन्तित होकर वे पुनः वहाँ से पूर्व दिशा की तरफ भाग चले। फिर वहाँ से एक मुहूर्त तक चलने पर, वे महाधनुर्धर प्यास और घोड़ों की थकावट, तथा स्वयं क्रोध और अमर्ष के वशीभूत होने के कारण, आगे न बढ़ सके।

ते मुहूर्तं तु विश्रम्य लब्धतोयैर्हयोत्तमैः॥ ५॥
सूर्यास्तमनवेलायां समासेदुर्महद् वनम्।
प्रविश्य तद् वनं घोरं वीक्षमाणाः समन्ततः॥ ६॥
शाखासहस्रसंछन्नं न्यग्रोधं ददृशुस्ततः।
तेऽवतीर्य रथेभ्यश्च विप्रमुच्य च वाजिनः॥ ७॥
उपस्पृश्य यथान्यायं संध्यामन्वासत प्रभो।

वहाँ थोड़ी देर ठहरकर उन्होंने घोड़ों को पानी पिलाया और वहाँ से चलकर सूर्यास्त होने पर एक विशाल वन में जा पहुँचे। वहाँ उस घोर वन में प्रवेश कर, चारों तरफ देखते हुए, हजारों शाखाओं से युक्त एक बरगद के वृक्ष को उन्होंने देखा। हे प्रभो! वहाँ उन्होंने रथों से उतरकर, घोड़ों को खोलकर, यथोचित रूप से स्नानादि कर सन्ध्योपासना की।

सर्वस्य जगतो धात्री शर्वरी समपद्यत॥ ८॥
ग्रहनक्षत्रताराभिः सम्पूर्णाभिरलंकृतम्।
नभोंऽशुकमिवाभाति प्रेक्षणीयं समन्ततः॥ ९॥
इच्छया ते प्रवल्गन्ति ये सत्त्वा रात्रिचारिणः।
दिवाचराश्च ये सत्त्वास्ते निद्रावशमागताः॥ १०॥
रात्रिंचराणां सत्त्वानां निर्घोषोऽभूत् सुदारुणः।
क्रव्यादाश्च प्रमुदिता घोरा प्राप्ता च शर्वरी॥ ११॥

उसके पश्चात् सबको आराम देने वाली रात्रि हो जाने के कारण, सब तरफ ग्रह, नक्षत्र और तारों से भरा हुआ आकाश जरी की साड़ी के समान दर्शनीय दिखाई देने लगा। भयानक रात्रि के आरम्भ होने पर, तब दिनचर प्राणी निद्रा के आधीन हो गये और निशाचर प्राणी अपनी इच्छानुसार घूमने लगे। माँसाहारी प्राणी प्रसन्न हो गये और निशाचर प्राणियों की अत्यन्त भयानक ध्वनियाँ वहाँ सुनाई देने लगी।

तत्रोपविष्टाः शोचन्तो न्यग्रोधस्य समीपतः।
तमेवार्थमतिक्रान्तं कुरुपाण्डवयोः क्षयम्॥ १२॥
निद्रया च परीताङ्गा निषेदुर्धरणीतले।
श्रमेण सुदृढं युक्ता विक्षता विविधैः शरैः॥ १३॥
ततो निद्रावशं प्राप्तौ कृपभोजौ महारथौ।
तौ तु सुप्तौ महाराज श्रमशोकसमन्वितौ॥ १४॥
महार्हशयनोपेतौ भूमावेव ह्यनाथवत्।
क्रोधामर्षवशं प्राप्तो द्रोणपुत्रस्तु भारत॥ १५॥
न वै स्म स जगामाथ निद्रां सर्प इव श्वसन्।

वहाँ बैठे हुए कौरव और पाण्डवों के विनाश की घटनाओं पर शोक करते हुए, निद्रा से सारे अंगों

के शिथिल हो जाने से वे वहीं भूमि पर लेट गये। वे तब थकावट से चूर-चूर हो रहे थे और तरह-तरह के बाणों से घायल थे। फिर महारथी कृपाचार्य और कृतवर्मा नींद के बस में हो गये। हे महाराज! वे बहुमूल्य बिछौनों पर सोने के योग्य थे, पर उस समय थकावट और शोक से युक्त होकर भूमि पर ही अनाथों के समान सोरहे थे। उन्हें उस अवस्था में देखकर हे भारत! द्रोणपुत्र क्रोध और अमर्ष के वश में होकर, सर्प के समान लम्बी साँसे लेता हुआ, नींद के बस में न होसका।

वीक्षमाणो वनोद्देशं नानासत्त्वैर्निषेवितम्॥ १६॥
अपश्यत महाबाहुर्न्यग्रोधं वायसैर्युतम्।
तत्र काकसहस्राणि तां निशां पर्यणामयन्॥ १७॥
सुखं स्वपन्ति कौरव्य पृथक् पृथगुपाश्रयाः।
सुप्तेषु तेषु काकेषु विश्रब्धेषु समन्ततः॥ १८॥
सोऽपश्यत् सहसा यान्तमुलूकं घोरदर्शनम्।
संनिपत्य तु शाखायां न्यग्रोधस्य विहङ्गमः॥ १९॥
सुप्ताञ्जघान सुबहून् वायसान् वायसान्तकः।

तब जागते हुए और तरह-तरह प्राणियों से भरे हुए वन में चारोंतरफ देखते हुए, उस महाबाहु ने कौवों से भरे उस बरगद पर दृष्टिपात किया। हे कुरुनन्दन! उस वृक्ष पर हजारों कौवे रात को व्यतीत कर रहे थे। अपने अलग-अलग घोंसलों का आश्रय लेकर वे सुख से सोरहे थे। उन कौवों के सब तरफ से निश्चिन्त होकर सोये हुए होने पर, उसने अचानक एक भयानक उल्लू को वहाँ आते हुए देखा। बरगद के पेड़ की शाखा पर आक्रमण करके, कौवों के लिये मृत्युस्वरूप उस पक्षी ने बहुत सारे सोये हुए कौवों को मार डाला।

केषांचिदच्छिनत् पक्षाञ्शिरांसि च चकर्त ह॥ २०॥
चरणांश्चैव केषांचिद् बभञ्ज चरणायुधः।
क्षणेनाहन् स बलवान् येऽस्य दृष्टिपथे स्थिताः॥ २१॥
तेषां शरीरावयवैः शरीरैश्च विशाम्पते।
न्यग्रोधमण्डलं सर्वं संछन्नं सर्वतोऽभवत्॥ २२॥
तद् दृष्ट्वा सोपधं कर्म कौशिकेन कृतं निशि।
तद्भावकृतसंकल्पो द्रोणिरेकोऽन्वचिन्तयत्॥ २३॥

उसने किन्हीं के सिरों को काट दिया, किन्हीं के पंख नोच डाले और पैरों के प्रहार से किन्हीं के पैर तोड़ दिये। उस बलवान् उल्लू ने क्षणभर में जो कौए उसे दिखाई दिये, सबको मार दिया। हे प्रजानाथ! कौवों के शरीरों और शरीरांगों से वह बरगद के वृक्ष का प्रदेश सबतरफ भर गया। उल्लू के द्वारा रात्रि में कपटपूर्वक किये गये उस कार्य को देखकर, स्वयं भी वैसा ही करने का संकल्प करके अश्वत्थामा अकेला विचार करने लगा कि—

उपदेशः कृतोऽनेन पक्षिणा मम संयुगे।
शत्रूणां क्षपणे युक्तः प्राप्तः कालश्च मे मतः॥ २४॥
नाद्य शक्या मया हन्तुं पाण्डवा जितकाशिनः।
बलवन्तः कृतोत्साहाः प्राप्तलक्ष्याः प्रहारिणः॥ २५॥
छद्मना च भवेत् सिद्धिः शत्रूणां च क्षयो महान्।
तत्र संशयितादर्थाद् योऽर्थो निःसंशयो भवेत्॥ २६॥
तं जना बहु मन्यन्ते ये च शास्त्रविशारदाः।
यच्चाप्यत्र भवेद् वाच्यं गर्हितं लोकनिन्दितम्॥ २७॥
कर्तव्यं तन्मनुष्येण क्षत्रधर्मेण वर्तता।

इस पक्षी ने मुझे युद्ध के विषय में शिक्षा दे दी है। मेरे विचार से शत्रुओं को विनष्ट करने का मुझे भी उचित अवसर प्राप्त हुआ है। विजय के इच्छुक, बलवान्, उत्साहित और प्रहार करनेवाले पाण्डवों को जिन्हें अपने लक्ष्य की प्राप्ति हो गयी है, मैं अपनी शक्ति से नहीं मार सकता। पर यदि मैं कपट से काम लूँ तो मुझे सफलता मिल जायेगी। जो शास्त्रों के पंडित हैं, वे भी जिस कार्य की सफलता में सन्देह हो, उसकी अपेक्षा जिसमें सन्देह बिल्कुल न हो, उस कार्य को अधिक आदर देते हैं। जो कार्य संसार में निन्दित माना जाता है, जिसकी लोग बुराई करते हैं, वह कार्य भी क्षत्रियधर्म का पालन करनेवाले के लिये करणीय माना गया है।

निन्दितानि च सर्वाणि कुत्सितानि पदे पदे॥ २८॥
सोपधानि कृतान्येव पाण्डवैरकृतात्मभिः।
अस्मिन्नर्थे पुरा गीता श्रूयन्ते धर्मचिन्तकैः॥ २९॥
श्लोका न्यायमवेक्षद्भिस्तत्त्वार्थास्तत्त्वदर्शिभिः।
परिश्रान्ते विदीर्णे वा भुञ्जाने वापि शत्रुभिः॥ ३०॥
प्रस्थाने वा प्रवेशे वा प्रहर्तव्यं रिपोर्बलम्।
निद्रार्तमर्धरात्रे च तथा नष्टप्रणायकम्॥ ३१॥
भिन्नयोधं बलं यच्च द्विधा युक्तं च यद् भवेत्।

अपवित्र आत्मा वाले पाण्डवों ने भी तो कदम कदम पर ऐसे बुरे कार्य किये हैं, जो सारे निन्दा के योग्य और कपटपूर्ण थे। इस विषय में तत्व को

जाननेवाले और न्याय को देखनेवाले तथा धर्म का विचार करनेवाले लोगों ने पहले तात्विक अर्थ को बताने वाले कुछ श्लोक कहे हैं। उन्होंने कहा है कि शत्रु की सेना यदि थकी हुई हो, छिन्न भिन्न होरही हो, भोजन कर रही हो, कहीं जारही हो, या कहीं प्रवेश कर रही हो तो उस पर अवश्य प्रहार करना चाहिये। जो नींद से पीड़ित हो और आधी रात हो, जिसका नेता नष्ट होगया हो, जिसमें फूट पड़ गयी हो और जो सेना दुविधा में पड़ी हुई हो, उस पर अवश्य प्रहार करना चाहिये।

इत्येवं निश्चयं चक्रे सुप्तानां निशि मारणे॥ ३२॥
पाण्डूनां सह पञ्चालैर्द्रोणपुत्रः प्रतापवान्।
स क्रूरां मतिमास्थाय विनिश्चित्य मुहुर्मुहुः॥ ३३॥
सुप्तौ प्राबोधयत् तौ तु मातुलं भोजमेव च।
स मुहूर्तमिव ध्यात्वा बाष्पविह्वलमब्रवीत्॥ ३४॥
भवतोस्तु यदि प्रज्ञा न मोहादपनीयते।
व्यापन्नेऽस्मिन् महत्यर्थे यन्नः श्रेयस्तदुच्यताम्॥ ३५॥

इसप्रकार प्रतापी द्रोणपुत्र ने रात में सोये हुए पांडवों को पांचालों के साथ मारने का निश्चय कर लिया। उस क्रूरबुद्धि का आश्रय लेकर और बार बार उसके लिये निश्चय करके उसने तब सोये हुए अपने मामा और कृतवर्मा को जगाया। उनके जागने पर थोड़ी देर सोचकर, आँसुओं से भरी आवाज में उनसे कहा कि यदि आप लोगों की बुद्धि मोह के कारण नष्ट न हो गयी हो तो इस संकट के समय अपने महान् उद्देश्य को पूरा करने के लिये, जो कल्याणकारी मार्ग है, उसे बताइये।

दूसरा अध्याय : कृपाचार्य का सत्पुरुषों से सलाह लेने का परामर्श।

कृप उवाच

शक्नोति जीवितुं दक्षो नालसः सुखमेधते।
दृश्यन्ते जीवलोकेऽस्मिन् दक्षाः प्रायो हितैषिणः॥ १॥
यदि दक्षः समारम्भात् कर्मणो नाश्नुते फलम्।
नास्य वाच्यं भवेत् किंचिल्लब्धव्यं वाधिगच्छति॥ २॥
सम्यगीहा पुनरियं यो वृद्धानुपसेवते।
आपृच्छति च यच्छ्रेयः करोति च हितं वचः॥ ३॥
उत्थायोत्थाय हि सदा प्रष्टव्या वृद्धसम्मताः।
ते स्म योगे परं मूलं तन्मूला सिद्धिरुच्यते॥ ४॥

तब कृपाचार्य ने कहा कि इस संसार में पुरुषार्थी और चतुर व्यक्ति ही जीवित रह सकता है, आलसी आदमी सुख को प्राप्त नहीं कर सकता क्योंकि प्रायः देखा जाता है कि चतुर और पुरुषार्थी व्यक्ति अपने हित का कार्य पूरा कर लेते हैं। यदि चतुर और पुरुषार्थी व्यक्ति कार्य को आरम्भ करके भी उसका फल प्राप्त नहीं कर पाता, तो भी उसकी निन्दा नहीं की जाती अथवा वह अन्त में अपने उद्देश्य को प्राप्त कर ही लेता है। किन्तु पुरुषार्थ युक्त प्रयत्न उसी के उचित माने जाते हैं, जो वृद्ध मनुष्यों की सेवा करता है, उनसे अपने कल्याण की बात पूछता है और जो वे हितकारी बात कहते हैं, उनका पालन करता है। प्रतिदिन प्रातः उठकर व्यक्ति को सम्मानित वृद्धों से अपने हित की बात पूछनी चाहिये, क्योंकि वे ही अप्राप्त की प्राप्ति कराने वाले उपाय के मुख्य साधन हैं। उनके द्वारा बताया हुआ उपाय ही सिद्धि का मूल कारण कहा जाता है।

वृद्धानां वचनं श्रुत्वा योऽभ्युत्थानं प्रयोजयेत्।
उत्थानस्य फलं सम्यक् तदा स लभतेऽचिरात्॥ ५॥
रागात् क्रोधाद् भयाल्लोभाद् योऽर्थानीहति मानवः।
अनीशश्चावमानी च स शीघ्रं भ्रश्यते श्रियः॥ ६॥
सोऽयं दुर्योधनेनार्थो लुब्धेनादीर्घदर्शिना।
असमर्थ्य समारब्धो मूढत्वादविचिन्तितः॥ ७॥
हितबुद्धीननादृत्य सम्मन्त्र्यासाधुभिः सह।
वार्यमाणोऽकरोद् वैरं पाण्डवैर्गुणवत्तरैः॥ ८॥

बूढ़ों की बातें सुनकर जो उनके अनुसार कार्य करता है, वह अपने कार्य के उत्तम फल को जल्दी प्राप्त कर लेता है, जो व्यक्ति राग, क्रोध, भय अथवा लोभ के वश में होकर अपने कार्य को सिद्ध करने की चेष्टा करता है, अपने मन को वश में न रखनेवाला और दूसरों की अवहेलना करनेवाला वह व्यक्ति जल्दी ही अपने ऐश्वर्य से भ्रष्ट होजाता है। लोभी और अदूरदर्शी दुर्योधन ने मूर्खता से न तो किसी का समर्थन प्राप्त किया और न स्वयं ही सोचविचार किया। उसने अपने हितैषी लोगों का अनादर कर दुष्ट लोगों से सलाह ली और सबके मना करने पर भी गुणवान् पाण्डवों से बैर बाँधा।

पूर्वमप्यति दुःशीलो न धैर्यं कर्तुमर्हति।
तपत्यर्थे विपन्ने हि मित्राणां न कृतं वचः॥ ९॥
अनुवर्तामहे यत्तु तं वयं पापपूरुषम्।
अस्मानप्यनयस्तस्मात् प्राप्तोऽयं दारुणो महान्॥ १०॥
अनेन तु ममाद्यापि व्यसनेनोपतापिता।
बुद्धिश्चिन्तयते किंचित् स्वं श्रेयो नावबुद्ध्यते॥ ११॥

वह पहले भी अत्यन्त दुष्ट स्वभाव का था। वह धैर्य रखना तो जानता ही नहीं था। उसने मित्रों की बात नहीं मानी और अब संकट आने पर दुःखी हो रहा है। हम क्योंकि उस पापी का अनुकरण कर रहे हैं, इसलिये हमें भी यह महान् दुःख प्राप्त हुआ है। इस संकट से सन्तप्त होने के कारण आज मेरी बुद्धि भी सोचने विचारने पर अपने कल्याण की बात कुछ भी नहीं समझ पा रही है।

मुह्यता तु मनुष्येण प्रष्टव्याः सुहृदो जनाः।
तत्रास्य बुद्धिर्विनयस्तत्र श्रेयश्च पश्यति॥ १२॥

ततोऽस्य मूलं कार्याणां बुद्ध्या निश्चित्य वै बुधाः।
तेऽत्र पृष्टा यथा ब्रूयुस्तत् कर्तव्यं तथा भवेत्॥ १३॥
ते वयं धृतराष्ट्रं च गान्धारीं च समेत्य ह।
उपपृच्छामहे गत्वा विदुरं च महामतिम्॥ १४॥
ते पृष्टास्तु वदेयुर्यच्छ्रेयो नः समनन्तरम्।
तदस्माभिः पुनः कार्यमिति मे नैष्ठिकी मतिः॥ १५॥

जब व्यक्ति की बुद्धि मोहित हो जाये तो उसे अपने हितैषी व्यक्तियों से सलाह लेनी चाहिये। वहीं उसे बुद्धि और विनय की प्राप्ति होती है और वहीं पर वह अपने कल्याण को देखता है। पूछे जाने पर वे बुद्धिमान् लोग अपनी बुद्धि से, उसके कार्यों के मूल कारणों पर विचार करके, जैसी सलाह दें, वैसा ही उसे करना चाहिये। इसलिये हमें चाहिये कि हम धृतराष्ट्र, गान्धारी और महाबुद्धिमान् विदुर के पास जाकर उनसे पूछें। हमारे पूछने पर वे लोग हमारे लिये जो श्रेयस्कर कार्य बतायें, वही हमें करना चाहिये, यही मेरी बुद्धि का निश्चय है।

तीसरा अध्याय : अश्वत्थामा का अपना निश्चय बताना।

कृपस्य वचनं श्रुत्वा धर्मार्थसहितं शुभम्।
अश्वत्थामा महाराज दुःखशोकसमन्वितः॥ १॥
दह्यमानस्तु शोकेन प्रदीप्तेनाग्निना यथा।
क्रूरं मनस्ततः कृत्वा तावुभौ प्रत्यभाषत॥ २॥
पुरुषे पुरुषे बुद्धिर्या या भवति शोभना।
तुष्यन्ति च पृथक् सर्वे प्रज्ञया ते स्वया स्वया॥ ३॥
सर्वो हि मन्यते लोक आत्मानं बुद्धिमत्तरम्।
सर्वस्यात्मा बहुमतः सर्वात्मानं प्रशंसति॥ ४॥
सर्वस्य हि स्वका प्रज्ञा साधुवादे प्रतिष्ठिता।
परबुद्धिं च निन्दन्ति स्वां प्रशंसन्ति चासकृत्॥ ५॥

हे महाराज! तब कृपाचार्य के धैर्य और अर्थ युक्त मंगलमय वचनों को सुनकर अश्वत्थामा दुःख और शोक में डूब गया। जलती हुई आग के समान शोक से जलता हुआ, अपने मन को कठोर बनाकर वह उनदोनों से बोला कि प्रत्येक मनुष्य में जो बुद्धि विद्यमान होती है, उसे वही अच्छी लगती है, सभी लोग अपनी बुद्धि से ही अलग अलग तरह से सन्तुष्ट रहते हैं। सब अपने को ही बुद्धिमान् समझते हैं, सबको अपनी ही बुद्धि महत्त्वपूर्ण लगती है और सब अपनी ही बड़ाई करते हैं। सबको अपनी बुद्धि ही धन्यवाद के योग्य प्रतीत होती है। लोग दूसरों की बुद्धि की बुराई और अपनी बुद्धि की बार बार प्रशंसा करते हैं।

विचित्रत्वात् तु चित्तानां मनुष्याणां विशेषतः।
चित्तवैक्लव्यमासाद्य सा सा बुद्धिः प्रजायते॥ ६॥
यथा हि वैद्यः कुशलो ज्ञात्वा व्याधिं यथाविधि।
भैषज्यं कुरुते योगात् प्रशमार्थमिति प्रभो॥ ७॥
एवं कार्यस्य योगार्थे बुद्धिं कुर्वन्ति मानवाः।
प्रज्ञया हि स्वया युक्तास्तां च निन्दन्ति मानवाः॥ ८॥
अन्यया यौवने मर्त्यो बुद्ध्या भवति मोहितः।
मध्येऽन्यया जरायां तु सोऽन्यां रोचयते मतिम्॥ ९॥

सब प्राणियों में मनुष्य की बुद्धि तो विशेषरूप से अलग-अलग तरह की होती है। जब चित्त में व्याकुलता होती है, तब तो और भी भिन्न-भिन्न बुद्धियाँ होजाती हैं। हे प्रभो! जैसे कुशल वैद्य बीमारी को ठीकप्रकार से जानकर उसकी शान्ति के लिये

उपायपूर्वक औषधि प्रदान करते हैं, वैसे ही कार्यों की सिद्धि के लिये मनुष्य अपने ज्ञान से तरह तरह की बुद्धि करते हैं, पर दूसरे लोग उनकी निन्दा करते हैं। मनुष्य जवानी में किसी और प्रकार की बुद्धि से मोहित होता है, मध्यमअवस्था में किसीदूसरी बुद्धि से प्रभावित होता है और बुढ़ापे में उसे कोई और बुद्धि अच्छी लगती है।

उपजाता व्यसनजा येयमद्य मतिर्मम।
युवयोस्तां प्रवक्ष्यामि मम शोकविनाशिनीम्॥ १०॥
सोऽस्मि जातः कुले श्रेष्ठे ब्राह्मणानां सुपूजिते।
मन्दभाग्यतयास्म्येतं क्षत्रधर्ममनुष्ठितः॥ ११॥
क्षत्रधर्मं विदित्वाहं यदि ब्राह्मण्यमाश्रितः।
प्रकुर्यां सुमहत् कर्म न मे तत् साधुसम्मतम्॥ १२॥
धारयंश्च धनुर्दिव्यं दिव्यान्यस्त्राणि चाहवे।
पितरं निहतं दृष्ट्वा किं नु वक्ष्यामि संसदि॥ १३॥

इस संकट में आज मेरे मन में शोक को नष्ट करनेवाली जो बुद्धि उत्पन्न हुई है, उसे मैं आपदोनों से कहता हूँ। यद्यपि मैं ब्राह्मणों के अत्यन्तसम्मानित कुल में जन्मा हुआ हूँ, पर दुर्भाग्य से क्षत्रियधर्म में लगा हुआ हूँ। अब क्षत्रियधर्म में लगकर यदि मैं, ब्राह्मणधर्म में प्रवृत्त होकर बड़े बड़े कार्य करने लगूँ, तो सत्पुरुष व्यक्ति मेरे कार्य का सम्मान नहीं करेंगे। इसलिये क्षत्रियधर्म में रहते हुए, दिव्यधनुष और दिव्यअस्त्रों को धारण करते हुए, युद्ध में अपने पिता को मारा हुआ देखकर, मैं वीरों की सभा में क्या उत्तर दूँगा?

सोऽहमद्य यथाकामं क्षत्रधर्ममुपास्य तम्।
गन्तास्मि पदवीं राज्ञः पितुश्चापि महात्मनः॥ १४॥
अद्य स्वप्स्यन्ति पञ्चाला विश्वस्ता जितकाशिनः।
विमुक्तयुग्यकवचा हर्षेण च समन्विताः॥ १५॥
जयं मत्वाऽऽत्मनश्चैव श्रान्ता व्यायामकर्शिताः।
तेषां निशि प्रसुप्तानां सुस्थानां शिबिरे स्वके॥ १६॥
अवस्कन्दं करिष्यामि शिबिरस्याद्य दुष्करम्।

इसलिये मैं आज अपनी इच्छानुसार उसी क्षत्रिय धर्म का आश्रय लेता हुआ, अपने मनस्वी पिता और राजा दुर्योधन के पथ का अनुसरण करूँगा। आज विजय के इच्छुक पांचाल लोग, विश्वास के साथ अपने कवचों को उतार कर, घोड़ों को जूओं से मुक्त कर, हर्ष से भरे हुए, अपनी विजय को मानकर, थकावट से युक्त और परिश्रम से चूर हुए सोयेंगे। हमारे शिविरों में आराम के साथ सोये हुए उन लोगों का और उस शिविर का आज मैं ऐसा विनाश करूँगा, जो दूसरों के लिये कठिन है।

अद्य तान् सहितान् सर्वान् धृष्टद्युम्नपुरोगमान्॥ १७॥
सूदयिष्यामि विक्रम्य कक्षं दीप्त इवानलः।
निहत्य चैव पञ्चालान् शान्तिं लब्धास्मि सत्तम॥ १८॥
अद्याहं सर्वपञ्चालान् निहत्य च निकृत्य च।
अर्दयिष्यामि संहृष्टो रणे पाण्डुसुतांस्तथा॥ १९॥
दुर्योधनस्य कर्णस्य भीष्मसैन्धवयोरपि।
गमयिष्यामि पञ्चालान् पदवीमद्य दुर्गमाम्॥ २०॥
अद्य पाञ्चालराजस्य धृष्टद्युम्नस्य वै निशि।
नचिरात् प्रमथिष्यामि पशोरिव शिरो बलात्॥ २१॥

जैसे प्रज्वलित अग्नि सूखे घासफूस को जला देती है, वैसे ही मैं उन इकट्ठे सोये हुए धृष्टद्युम्न आदि सबको पराक्रम करके विनष्ट कर दूँगा। हे साधु शिरोमणि! पांचालों को मारकर ही मुझे शान्ति मिलेगी। आज मैं सारे पांचालों को मारकर और काटकर हर्ष के साथ युद्ध में पाण्डवों को भी मसल डालूँगा। पांचालों को दुर्योधन, कर्ण भीष्म, और जयद्रथ के दुर्गम पथ पर भेज दूँगा। आज मैं रात में पांचालराज धृष्टद्युम्न के सिर को जल्दी ही बलपूर्वक पशु की तरह मरोड़ दूँगा।

चौथा अध्याय : कृपाचार्य द्वारा विरोध, पर अश्वत्थामा का रात्रि आक्रमण पर ही दृढ़ रहना।

कृप उवाच

अनुयास्यामहे त्वां तु प्रभाते सहिता वुभौ।
अद्यरात्रौ विश्रमस्व विमुक्त कवच ध्वजः॥ १॥
अहं त्वामनुयास्यामि कृतवर्मा च सात्वतः।
परानभिमुखं यान्तं रथावास्थाय दंशितौ॥ २॥
आवाभ्यां सहितः शत्रूञ्श्वो निहन्ता समागमे।
विक्रम्य रथिनां श्रेष्ठ पञ्चालान् सपदानुगान्॥ ३॥
शक्तस्त्वमसि विक्रम्य विश्रमस्व निशामिमाम्।
चिरं ते जाग्रतस्तात स्वप तावन्निशामिमाम्॥ ४॥

तब कृपाचार्य ने कहा कि हे तात! कल प्रातः काल हमदोनों तुम्हारे साथ चलेंगे, आज रात्रि में तुम कवच उतारकर आराम करो। जब तुम शत्रुओं के सामने जाओगे, तब मैं और यदुवंशी कृतवर्मा भी कवच धारणकर और रथों पर बैठकर तुम्हारे पीछे चलेंगे। हे रथियों में श्रेष्ठ! तुम कल युद्ध में हम दोनों के साथ पराक्रम करके सेवकोंसहित पांचालों को मार देना। हे तात! तुम पराक्रमकर शत्रुओं का विनाश करने में समर्थ हो। अब तुम्हें जागते हुए बहुत देर होगयी है, तुम रात में विश्राम कर लो।

विश्रान्तश्च विनिद्रश्च स्वस्थचित्तश्च मानद।
समेत्य समरे शत्रून् वधिष्यसि न संशयः॥ ५॥
ते वयं निशि विश्रान्ता विनिद्रा विगतज्वराः।
प्रभातायां रजन्यां वै निहनिष्याम शात्रवान्॥ ६॥
तव ह्यस्त्राणि दिव्यानि मम चैव न संशयः।
सात्वतोऽपि महेष्वासो नित्यं युद्धेषु कोविदः॥ ७॥
ते वयं सहितास्तात सर्वाञ्शत्रून् समागतान्।
प्रसह्य समरे हत्वा प्रीतिं प्राप्स्याम पुष्कलाम्॥ ८॥

विश्राम कर लेने और निद्रारहित होजाने पर तुम्हारा चित्त स्वस्थ हो जायेगा। हे दूसरों को सम्मान देनेवाले! इसमें संशय नहीं है कि तुम युद्धभूमि में शत्रुओं से युद्धकर उनका विनाश कर दोगे। इसलिये हम रात्रि में विश्रामकर निद्रा और चिन्ता से रहित होकर प्रातःकाल शत्रुओं का संहार करेंगे। इसमें संशय नहीं है कि तुम्हारे और मेरे दोनों के पास दिव्यास्त्र हैं और यदुवंशी, महाधनुर्धर कृतवर्मा भी सदा युद्धों में कुशल रहे हैं। हम सब एकत्र रूप में युद्धक्षेत्र में आये हुए सारे शत्रुओं को बलपूर्वक मारकर अत्यधिक कीर्ति को प्राप्त करेंगे।

स गत्वा शिबिरं तेषां नाम विश्राव्य चाहवे।
ततः कर्तासि शत्रूणां युध्यतां कदनं महत्॥ ९॥
न चाहं समरे तात कृतवर्मा न चैव हि।
अनिर्जित्य रणे पाण्डून् न च यास्यामि कर्हिचित्॥ १०॥
हत्वा च समरे क्रुद्धान् पञ्चालान् पाण्डुभिः सह।
निवर्तिष्यामहे सर्वे हता वा स्वर्गगा वयम्॥ ११॥
सर्वोपायैः सहायास्ते प्रभाते वयमाहवे।
सत्यमेतन्महाबाहो प्रब्रवीमि तवानघ॥ १२॥
एवमुक्तस्ततो द्रौणिर्मातुलेन हितं वचः।
अब्रवीन्मातुलं राजन् क्रोधसंरक्तलोचनः॥ १३॥

तुमसब उनके शिविर में जाकर और अपना नाम सुनाकर युद्धक्षेत्र में युद्ध करते हुए शत्रुओं का महान् संहार करना। हे तात! मैं और कृतवर्मा युद्ध में पाण्डवों को बिना जीते समरभूमि से कहीं नहीं जायेंगे। हम युद्ध में क्रुद्ध पांचालों को पाण्डवों के साथ मारकर वापिस लौटेंगे या मारे जाकर उत्तम गति को प्राप्त होंगे। हे निष्पाप, महाबाहु! हम प्रातः काल सारे उपायों से तुम्हारे सहायक होंगे, यह मैं तुमसे सत्य कहता हूँ। मामा के इसप्रकार हितकारी वचन कहने पर हे राजन्! द्रोणपुत्र तब क्रोध से लाल आँखें कर मामा से बोला कि–

आतुरस्य कुतो निद्रा नरस्यामर्षितस्य च।
अर्थांश्चिन्तयतश्चापि कामयानस्य वा पुनः॥ १४॥
तदिदं समनुप्राप्तं पश्य मेऽद्य चतुष्टयम्।
यस्य भागश्चतुर्थो मे स्वप्नमह्नाय नाशयेत्॥ १५॥
किं नाम दुःखं लोकेऽस्मिन् पितुर्वधमनुस्मरन्।
हृदयं निर्दहन्मेऽद्य रात्र्यहानि न शाम्यति॥ १६॥
यथा च निहतः पापैः पिता मम विशेषतः।
प्रत्यक्षमपि ते सर्वं तन्मे मर्माणि कृन्तति॥ १७॥
कथं हि मादृशो लोके मुहूर्तमपि जीवति।

जो व्याकुल हो, क्रोध में भरा हुआ हो, जिसे अपने कार्यों को पूरा करने की चिन्ता हो, या जो कामनाओं में आसक्त हो, उन्हें निद्रा कैसे आसकती है? आप देखिये। ये चारों बातें मुझे प्राप्त होरही

हैं। इन चारों में से क्रोध ने ही मेरी नींद को नष्ट कर दिया है। पिता के वध की घटना को याद करते हुए, कौनसा दुःख मुझे प्राप्त नहीं होरहा है? यह दुःख की आग दिनरात मेरे हृदय को याद जलाती रहती है, शान्त नहीं होती। विशेषरूप से इन पापियों ने मेरे पिता को जिसप्रकार मारा, वह सब आपके सामने है, यह बात मेरे मर्मस्थल को काटती रहती है। मेरे जैसा संसार में एक मुहूर्त भी कैसे जीवित रह सकता है?

द्रोणो हतेति यद् वाचः पञ्चालानां शृणोम्यहम्॥ १८॥
धृष्टद्युम्नमहत्वा तु नाहं जीवितुमुत्सहे।
स मे पितुर्वधाद् वध्यः पञ्चाला ये च संगताः॥ १९॥
विलापो भग्नसक्थस्य यस्तु राज्ञो मया श्रुतः।
स पुनर्हृदयं कस्य क्रूरस्यापि न निर्दहेत्॥ २०॥

जब मैं पांचालों के मुख से यह बात सुनता हूँ कि हमने द्रोणाचार्य को मार दिया। तब धृष्टद्युम्न को बिना मारे मुझे जीवित रहने की कोई इच्छा नहीं है। धृष्टद्युम्न मेरे पिता का वध करने के कारण मेरा वध्य है और उसका साथ देनेवाले पांचाल भी मेरे वध्य हैं। टूटी जाँघवाले राजा दुर्योधन का जो विलाप मैंने सुना है, वह किस क्रूर व्यक्ति के भी हृदय को शोक से नहीं जला देगा?

कस्य ह्यकरुणस्यापि नेत्राभ्यामश्रु नाव्रजेत्।
नृपतेर्भग्नसक्थस्य श्रुत्वा तादृग् वचः पुनः॥ २१॥
यश्चायं मित्रपक्षो मे मयि जीवति निर्जितः।
शोकं मे वर्धयत्येष वारिवेग इवार्णवम्॥ २२॥
एकाग्रमनसो मेऽद्य कुतो निद्रा कुतः सुखम्।
न चापि शक्तः संयन्तुं कोपमेतं समुत्थितम्॥ २३॥
तं न पश्यामि लोकेऽस्मिन् यो मां कोपान्निवर्तयेत्।

टूटी जाँघवाले राजा दुर्योधन ने जो बातें कही हैं, उन्हें सुनकर किस निर्दय व्यक्ति की भी आँखों से आँसू नहीं बहने लगेंगे? मेरे जीतेजी जो मेरा मित्रपक्ष पराजित होगया, यह बात मेरे शोक को वैसे ही बढ़ा रही है, जैसे पानी का वेग सागर को बढ़ा देता है। मेरा मन जब एकही तरफ लगा हुआ है, तो मुझे कैसे नींद आसकती है? और कैसे सुख मिल सकता है? मैं अपने इस बढ़े हुए क्रोध को अपने वश में नहीं कर सकता और संसार में किसी भी ऐसे व्यक्ति को मैं नहीं देखता जो मुझे इस क्रोध से दूर हटा दे।

तथैव निश्चिता बुद्धिरेषा साधु मता मम॥ २४॥
वार्तिकैः कथ्यमानस्तु मित्राणां मे पराभवः।
पाण्डवानां च विजयो हृदयं दहतीव मे॥ २५॥
अहं तु कदनं कृत्वा शत्रूणामद्य सौप्तिके।
ततो विश्रमिता चैव स्वप्ता च विगतज्वरः॥ २६॥

इसप्रकार जो बुद्धि मैंने निश्चित की है, वही मुझे अच्छी लग रही है। संदेशवाहकों के द्वारा यह सुनकर कि मेरे मित्र हारे और पाण्डव विजयी हुए, मेरा हृदय जलने लगता है। इसलिये मैं तो आज सोते हुए शत्रुओं का विनाश करके ही विश्राम करूँगा और तभी चिन्तारहित होकर सोऊँगा।

पाँचवाँ अध्याय : तीनों का शिविर की तरफ प्रस्थान।

कृप उवाच

शुश्रूषुरपि दुर्मेधाः पुरुषोऽनियतेन्द्रियः।
नालं वेदयितुं कृत्स्नौ धर्मार्थाविति मे मतिः॥ १॥
तथैव तावन्मेधावी विनयं यो न शिक्षते।
न च किंचन जानाति सोऽपि धर्मार्थनिश्चयम्॥ २॥
चिरं ह्यपि जडः शूरः पण्डितं पर्युपास्य हि।
न स धर्मान् विजानाति दर्वी सूपरसानिव॥ ३॥
शुश्रूषुस्त्वेव मेधावी पुरुषो नियतेन्द्रियः।
जानीयादागमान् सर्वान् ग्राह्यं च न विरोधयेत्॥ ४॥

तब कृपाचार्य ने कहा कि जिस व्यक्ति की बुद्धि में बुरी भावनाएँ भरी हुई हैं, जिसने अपनी इन्द्रियों को वश में नहीं रखा हुआ है, वह सुनने का इच्छुक होने पर भी धर्म और अर्थ की बातों को पूरी तरह से नहीं समझ सकता, ऐसा मेरा विचार है। इसीप्रकार जो व्यक्ति मेधावी होने पर भी, विनय की शिक्षा नहीं लेता है, वह भी धर्म और अर्थ के निश्चय को थोड़ा सा भी नहीं जान सकता। जो शूरवीर पण्डितों की सेवा में देर से रह रहा है, पर फिर

भी यदि उसकी बुद्धि में जड़ता है तो वह भी धर्म की बातों को उसीप्रकार नहीं समझ पाता जैसे कलछी दाल में डूबी हुई रहने पर भी दाल के स्वाद को नहीं जानती। पर जिस मेधावी पुरुष ने अपनी इन्द्रियों को वश में किया हुआ है, वह यदि विद्वानों की सेवा में रहे और उनसे सुनने की इच्छा रखे तो वह सारे शास्त्रों को समझ लेता है और ग्रहण करने योग्य बातों का विरोध नहीं करता।

अनेयस्त्ववमानी यो दुरात्मा पापपूरुषः।
दिष्टमुत्सृज्य कल्याणं करोति बहुपापकम्॥ ५॥
यथा ह्युच्चावचैर्वाक्यैः क्षिप्तचित्तो नियम्यते।
तथैव सुहृदा शक्यो न शक्यस्त्ववसीदति॥ ६॥
तथैव सुहृदं प्राज्ञं कुर्वाणं कर्म पापकम्।
प्राज्ञाः सम्प्रतिषेधन्ति यथाशक्ति पुनः पुनः॥ ७॥
स कल्याणे मनः कृत्वा नियम्यात्मानमात्मना।
कुरु मे वचनं तात येन पश्चान्न तप्यसे॥ ८॥

जिसे सन्मार्ग पर नहीं लाया जासकता, जिसकी आत्मा दूषित है, ऐसा पाप करनेवाला पुरुष, बताये हुए, कल्याण के मार्ग को छोड़कर बहुतसारे पाप करने लगता है। विक्षिप्त हृदयवाले व्यक्ति को उसके हितैषी ऊँचीनीची बातें कहकर अपने वश में करने का प्रयत्न करते हैं। जो उनके प्रयत्न से वश में होजाता है, वह सुखी होजाता है और जो नहीं होता है वह दुःख उठाता है। इसीप्रकार विद्वान् पुरुष पापकार्य को करने वाले अपने बुद्धिमान मित्र को भी यथाशक्ति बार बार मना करते हैं। इसलिये हे तात! तुम अपने आप ही अपने मन को वश में करके, कल्याण कार्य में अपने मन को लगाकर, मेरी बात मानो, जिससे तुम्हें बाद में पछताना न पड़े।

न वधः पूज्यते लोके सुप्तानामिह धर्मतः।
तथैवापास्तशस्त्राणां विमुक्तरथवाजिनाम्॥ ९॥
ये च ब्रूयुस्तवास्मीति ये च स्युः शरणागताः।
विमुक्तमूर्धजा ये च ये चापि हतवाहनाः॥ १०॥
अद्य स्वप्स्यन्ति पञ्चाला विमुक्तकवचा विभो।
विश्वस्ता रजनीं सर्वे प्रेता इव विचेतसः॥ ११॥
यस्तेषां तदवस्थानां द्रुह्येत पुरुषोऽनृजुः।
व्यक्तं स नरके मज्जेदगाधे विपुलेऽप्लवे॥ १२॥

धर्म के अनुसार सोते हुए लोगों को मारना संसार में सम्मान के योग्य नहीं है। इसीप्रकार जिन्होंने अपने शस्त्रों को रख दिया है, जिन्होंने रथ और घोड़ों को छोड़ दिया है, जो शरण में आकर यह कहे कि मैं तेरा हूँ, जिनके बाल खुले हुए हों और जिनके वाहन नष्ट हो गये हों, उनका वध करना भी अच्छा नहीं माना जाता। हे प्रभो! आज पांचाल लोग रात में अपने कवचों को खोलकर विश्वास के साथ सारे मुर्दों के समान सो रहे होंगे। ऐसी अवस्था में जो निर्दय व्यक्ति उनके साथ द्वेष करेगा वह स्पष्ट ही गहरे और विशाल नौका रहित सागर के समान, अधमगति रूपी सागर में डूब जायेगा।

सर्वास्त्रविदुषां लोके श्रेष्ठस्त्वमसि विश्रुतः।
न च ते जातु लोकेऽस्मिन् सुसूक्ष्ममपि किल्बिषम्॥ १३॥
त्वं पुनः सूर्यसंकाशः श्वोभूत उदिते रवौ।
प्रकाशे सर्वभूतानां विजेता युधि शात्रवान्॥ १४॥

अश्वत्थामोवाच

एवमेव यथाऽऽत्थ त्वं मातुलेह न संशयः।
तैस्तु पूर्वमयं सेतुः शतधा विदलीकृतः॥ १५॥
प्रत्यक्षं भूमिपालानां भवतां चापि संनिधौ।
न्यस्तशस्त्रो मम पिता धृष्टद्युम्नेन पातितः॥ १६॥

तुम सारे अस्त्रवेत्ताओं में श्रेष्ठ हो, तुम्हारी प्रसिद्धि विख्यात है। इस संसार में अब तक तुम्हारे अन्दर छोटा सा भी पापकर्म किसी को दिखाई नहीं दिया है। तुम सूर्य के समान प्रतापी हो। कल प्रातः सूर्य के उदय होने पर तुम सारे प्राणियों के सामने शत्रुओं पर विजय प्राप्त करना। तब अश्वत्थामा ने कहा कि हे मामा! आपने जो कहा है, वह ठीक है, इसमें संशय नहीं है, पर उनलोगों ने भी तो पहले सैकड़ों बार धर्म की मर्यादा के टुकड़े किये हैं। धृष्टद्युम्न ने सारे राजाओं और आप लोगों के भी सामने मेरे पिता को मार गिराया, जिन्होंने हथियार रख दिये थे।

कर्णश्च पतिते चक्रे रथस्य रथिनां वरः।
उत्तमे व्यसने मग्नो हतो गाण्डीवधन्वना॥ १७॥
तथा शान्तनवो भीष्मो न्यस्तशस्त्रो निरायुधः।
शिखण्डिनं पुरस्कृत्य हतो गाण्डीवधन्वना॥ १८॥
भूरिश्रवा महेष्वासस्तथा प्रायगतो रणे।
क्रोशतां भूमिपालानां युयुधानेन पातितः॥ १९॥
दुर्योधनश्च भीमेन समेत्य गदया रणे।
पश्यतां भूमिपालानामधर्मेण निपातितः॥ २०॥

रथियों में श्रेष्ठ कर्ण को भी पहिया धँस जाने और उसके भारी संकट में फँस जाने पर अर्जुन ने मारा था। उसीप्रकार शान्तनुपुत्र भीष्म ने भी शस्त्र रख दिये थे, वे हथियाररहित थे, तब शिखण्डी को आगे करके, उन्हें अर्जुन ने मार दिया। महाधनुर्धर भूरिश्रवा युद्धक्षेत्र में आमरण अनशन पर बैठे थे, तब राजाओं के चिल्लाकर रोकते रहने पर भी उन्हें सात्यकि ने मार दिया। दुर्योधन को भी भीमसेन ने युद्धक्षेत्र में गदा से लड़ते हुए, राजाओं के देखते हुए ही अधर्मपूर्वक गिरा दिया।

एवं चाधार्मिकाः पापाः पञ्चाला भिन्नसेतवः।
तानेवं भिन्नमर्यादान् किं भवान् न निगर्हति॥ २१॥
पितृहन्तॄनहं हत्वा पञ्चालान् निशि सौप्तिके।
कामं कीटः पतङ्गो वा जन्म प्राप्य भवामि वै॥ २२॥
त्वरे चाहमनेनाद्य यदिदं मे चिकीर्षितम्।
तस्य मे त्वरमाणस्य कुतो निद्रा कुतः सुखम्॥ २३॥
न स जातः पुमाँल्लोके कश्चिन्न स भविष्यति।
यो मे व्यावर्तयेदेतां वधे तेषां कृतां मतिम्॥ २४॥
एवमुक्त्वा महाराज द्रोणपुत्रः प्रतापवान्।
एकान्ते योजयित्वाश्वान् प्रायादभिमुखः परान्॥ २५॥

इसीप्रकार अधार्मिक और पापी पांचालों ने भी धर्म की मर्यादा तोड़ी है, आप धर्म की मर्यादा तोड़नेवाले उनकी निन्दा क्यों नहीं करते। पिता को मारनेवाले पांचालों को मैं रात में सोते हुए मारकर भले ही कीड़ा या पतंगा बनूँ मुझे सब स्वीकार है। जो कुछ मैं करना चाहता हूँ उसी को जल्दी से पूरा करने के लिये उतावला हूँ। इस उतावली में मुझे न तो नींद और न सुख है। ऐसा कोई पुरुष संसार में नहीं है, न होगा ही, जो उनके वध के लिये की हुई मेरी इस बुद्धि को पलट दे। हे महाराज! ऐसा कहकर प्रतापी द्रोणपुत्र, एकान्त में घोड़ों को रथ में जोतकर, शत्रुओं की तरफ चल दिया।

तमब्रूतां महात्मानौ भोजशारद्वतावुभौ।
एकसार्थप्रयातौ स्वस्त्वया सह नरर्षभ॥ २६॥
समदुःखसुखौ चापि नावां शङ्कितुमर्हसि।
अश्वत्थामा तु संक्रुद्धः पितुर्वधमनुस्मरन्॥ २७॥
ताभ्यां तथ्यं तथाऽऽचख्यौ यदस्यात्मचिकीर्षितम्।
हत्वा शतसहस्राणि योधानां निशितैः शरैः॥ २८॥
न्यस्तशस्त्रो मम पिता धृष्टद्युम्नेन पातितः।
तं तथैव हनिष्यामि न्यस्तधर्माणमद्य वै॥ २९॥
पुत्रं पाञ्चालराजस्य पापं पापेन कर्मणा।

तब मनस्वी कृपाचार्य और कृतवर्मा दोनों ने कहा कि हे नरश्रेष्ठ! हमदोनों भी एकसाथ तुम्हारे साथ चल रहे हैं। तुम्हारे दुःख और सुख में हमारा समान भाग है, तुम्हें हम पर शंका नहीं करनी चाहिये। तब पिता के वध को याद करते और अत्यन्तक्रोध में भरे हुए अश्वत्थामा ने, जो वह अपनी इच्छा के अनुसार करना चाहता था, वह उन्हें सत्यता के साथ कह सुनाया। उसने कहा कि मेरे पिता लाखों योद्धाओं को तीखेबाणों से मारकर, जब हथियार नीचे डाल चुके थे, तब उन्हें धृष्टद्युम्न ने मारा। इसलिये उस धर्म का त्याग करने वाले, पापी पांचाल राजकुमार को भी मैं पापकर्म द्वारा ही मारूँगा।

क्षिप्रं संनद्धकवचौ सखड्गावात्तकार्मुकौ॥ ३०॥
मामास्थाय प्रतीक्षेतां रथवर्यौ परंतपौ।
इत्युक्त्वा रथमास्थाय प्रायादभिमुखः परान्॥ ३१॥
तमन्वगात् कृपो राजन् कृतवर्मा च सात्वतः।
ययुश्च शिविरं तेषां सम्प्रसुप्तजनं विभो।
द्वारदेशं तु सम्प्राप्य द्रौणिस्तस्थौ महारथः॥ ३२॥

जल्दी से कवच बाँधकर तलवार और धनुषबाण लेकर आपदोनों शत्रुओं को संतप्त करने वाले श्रेष्ठ रथी रथ पर बैठकर मेरी प्रतीक्षा कीजिये। ऐसा कहकर और रथपर बैठकर वह शत्रुओं की तरफ चल दिया। हे राजन्! कृपाचार्य और यदुवंशी कृतवर्मा भी तब उसके पीछे चल दिये। हे प्रभो! तब वे उस शिविर पर पहुँचे, जिसके सारे लोग सोये हुए थे। वहाँ महारथी द्रोणपुत्र दरवाजे पर खड़ा होगया।

छठा अध्याय : अश्वत्थामा द्वारा शिविर में सोये हुए वीरों का संहार।

तस्मिन् प्रयाते शिविरं द्रोणपुत्रे महात्मनि।
कृपश्च कृतवर्मा च शिविरद्वार्यतिष्ठताम्॥ १॥
अश्वत्थामा तु तौ दृष्ट्वा यत्नवन्तौ महारथौ।
प्रहृष्टः शनकै राजन्निदं वचनमब्रवीत्॥ २॥
अहं प्रवेक्ष्ये शिविरं चरिष्यामि च कालवत्।
यथा न कश्चिदपि वा जीवन् मुच्येत मानवः॥ ३॥
तथा भवद्भ्यां कार्यं स्यादिति मे निश्चिता मतिः।
इत्युक्त्वा प्राविशद् द्रौणिः विहाय भयमात्मनः॥ ४॥

जब मनस्वी द्रोणपुत्र शिविर में जाने लगा तो कृपाचार्य और कृतवर्मा भी द्वार पर आपहुँचे। तब अश्वत्थामा ने उनदोनों महारथियों को भी यत्नवान् देखकर, हे राजन्! प्रसन्न होकर उनसे धीरे से कहा कि मैं शिविर प्रवेश करके वहाँ मृत्यु के समान विचरण करूँगा। आपदोनों ऐसा प्रयत्न करें, जिससे कोई भी मनुष्य जीवित न भाग सके, यह मेरा निश्चित विचार है। ऐसा कहकर द्रोणपुत्र जीवन के भय को छोड़कर, शिविर में घुस गया।

स प्रविश्य महाबाहुरुद्देशज्ञश्च तस्य ह।
धृष्टद्युम्नस्य निलयं शनकैरभ्युपागमत्॥ ५॥
अथ प्रविश्य तद् वेश्म धृष्टद्युम्नस्य भारत।
पाञ्चाल्यं शयने द्रौणिरपश्यत् सुप्तमन्तिकात्॥ ६॥
क्षौमावदाते महति स्पर्ध्यास्तरणसंवृते।
माल्यप्रवरसंयुक्ते धूपैश्चूर्णैश्च वासिते॥ ७॥
तं शयानं महात्मानं विश्रब्धमकुतोभयम्।
प्राबोधयत पादेन शयनस्थं महीपते॥ ८॥

उस शिविर के प्रत्येकस्थान को जाननेवाला वह महाबाहु उसमें प्रविष्ट होकर धीरे-धीरे धृष्टद्युम्न के खेमे में जापहुँचा। हे भारत! उसने पांचाल राजकुमार को वहाँ समीप ही, बहुमूल्य बिछौनों से युक्त तथा रेशमी चादर से ढकी हुई एक विशाल शय्या पर सोते हुए देखा। वह शय्या श्रेष्ठ मालाओं और धूप तथा चन्दन के चूरे से सुसज्जित थी। उस मनस्वी को, जो निश्चिन्तभाव से निर्भय होकर सोरहा था, हे राजन्! उसने तब पैर से ठोकर मारकर जगाया।

सम्बुध्य चरणस्पर्शादुत्थाय रणदुर्मदः।
अभ्यजानादमेयात्मा द्रोणपुत्रं महारथम्॥ ९॥
तमाक्राम्य पदा राजन् कण्ठे चोरसि चोभयोः।
नदन्तं विस्फुरन्तं च पशुमारममारयत्॥ १०॥

पैरों के स्पर्श से अमितआत्मा, युद्ध में दुर्मद धृष्टद्युम्न जाग गया। उसने महारथी द्रोणपुत्र को पहचान लिया। हे राजन्! फिर उसने उसकी छाती और गले को पैर से दबाकर, कराहते और छटपटाते हुए उसे पशुओं की तरह मारना आरम्भ कर दिया।

तुदन्नखैस्तु स द्रौणिं नातिव्यक्तमुदाहरत्।
आचार्यपुत्र शस्त्रेण जहि मां मा चिरं कृथाः॥ ११॥
तस्याव्यक्तां तु तां वाचं संश्रुत्य द्रौणिरब्रवीत्।
आचार्यघातिनां लोका न सन्ति कुलपांसन॥ १२॥
तस्माच्छस्त्रेण निधनं न त्वमर्हसि दुर्मते।
एवं ब्रुवाणस्तं वीरं सिंहो मत्तमिव द्विपम्॥ १३॥
मर्मस्वभ्यवधीत् क्रुद्धः पादाष्ठीलैः सुदारुणैः।

तब द्रोणपुत्र को नाखूनों से बकोटते हुए, अस्पष्टस्वर में उसने कहा कि हे आचार्यपुत्र! मुझे शस्त्र से मार दो, देर मत करो। तब उसकी अस्पष्ट आवाज को सुनकर द्रोणपुत्र ने कहा कि हे कुलकलंक! आचार्य की हत्या करनेवाले के लिये उत्तम गति नहीं है। इसलिये अरे दुष्ट! तू शस्त्र से मारने योग्य नहीं है। उस वीर से ऐसा कहते हुए मस्त हाथी को सिंह के समान क्रोध में भरे हुए अश्वत्थामा ने उसके मर्मस्थलों पर पैर की भयंकर एड़ियों से प्रहार किये।

धृष्टद्युम्नं च हत्वा स तांश्चैवास्य पदानुगान्॥ १४॥
अपश्यच्छयने सुप्तमुत्तमौजसमन्तिके।
तमप्याक्राम्य पादेन कण्ठे चोरसि तेजसा॥ १५॥
तथैव मारयामास विनर्दन्तमरिंदमम्।
युधामन्युश्च सम्प्राप्तो मत्वा तं रक्षसा हतम्॥ १६॥
गदामुद्यम्य वेगेन हृदि द्रौणिमताडयत्।
तमभिद्रुत्य जग्राह क्षितौ चैनमपातयत्॥ १७॥
विस्फुरन्तं च पशुवत् तथैवैनममारयत्।

इसप्रकार धृष्टद्युम्न और उसके सेवकों का भी वध करके उसने समीप के खेमे में सोये उत्तमौजा को देखा। उस शत्रुदमन को भी उसने पैर से बलपूर्वक छाती और गले को दबाकर वैसे ही कराहते हुए को मार दिया। तब उत्तमौजा को राक्षसद्वारा मारा हुआ समझकर युधामन्यु भी वहाँ आगया। उसने गदा को उठाकर अश्वत्थामा की

छाती पर जोर से प्रहार किया। तब अश्वत्थामा ने झपटकर उसे भी पकड़कर भूमि पर गिरा दिया और वैसे ही छटपटाते हुए को पशुओं की तरह मार दिया।

ततो विस्त्रिंशमादाय जघानान्यान् पृथक् पृथक्॥ १८॥
भागशो विचरन् मार्गानसियुद्धविशारदः।
तस्य लोहितरक्तस्य दीप्तखड्गस्य युध्यतः॥ १९॥
अमानुष इवाकारो बभौ परमभीषणः।
स घोररूपो व्यचरत् कालवच्छिविरे ततः॥ २०॥
अपश्यद् द्रौपदीपुत्रानवशिष्टांश्च सोमकान्।
तेन शब्देन वित्रस्ता धनुर्हस्ता महारथाः॥ २१॥
धृष्टद्युम्नं हतं श्रुत्वा द्रौपदेया विशाम्पते।

फिर तलवार के युद्ध में विशारद उसने तलवार लेकर शिविर के अलग-अलग भागों में अलग अलग मार्गों से विचरते हुए दूसरे योद्धाओं का बारी बारी से वध किया। खून से सनी लाल और चमकती हुई तलवार से युद्ध करते हुए, तब वह अत्यन्तभीषण और मानवेतर प्राणी के समान दिखाई देरहा था। वह भयंकर मृत्यु जैसा शिविर में विचरण करने लगा। उसने वहाँ बचे हुए द्रौपदीपुत्रों और सोमकों को देखा। हे प्रजानाथ! धृष्टद्युम्न को मारा हुआ सुनकर और उस कोलाहल से भयभीत वे महारथी द्रौपदीपुत्र धनुष हाथ में लेकर आगे बढ़े।

अवाकिरञ्शरव्रातै- र्भारद्वाजमभीतवत्॥ २२॥
ततस्तेन निनादेन सम्प्रबुद्धाः प्रभद्रकाः।
शिलीमुखैः शिखण्डी च द्रोणपुत्रं समार्दयन्॥ २३॥
द्रौपदेयानभिद्रुत्य खड्गेन व्यधमद् बली।
कुक्षिदेशेऽवधीद् राजन् प्रतिविन्ध्यं महाहवे॥ २४॥
प्रासेन विद्ध्वा द्रौणिं तु सुतसोमः प्रतापवान्।
पुनश्चासिं समुद्यम्य द्रोणपुत्रमुपाद्रवत्॥ २५॥

उन्होंने निर्भय होकर द्रोणपुत्र पर बाणों की वर्षा आरम्भ की। उस कोलाहल से प्रभद्रकलोग और शिखण्डी भी जाग गये। उन्होंने भी बाणों से द्रोणपुत्र को पीड़ित करना आरम्भ कर दिया। तब उस बलवान् ने आक्रमण करके द्रौपदीपुत्रों को तलवार से छिन्न-भिन्न कर दिया। उस महायुद्ध में हे राजन्! उसने प्रतिविन्ध के पेट में तलवार भौंक दी। सुतसोम ने पहले द्रोणपुत्र को प्रास से घायल किया और फिर तलवार उठाकर उस पर आक्रमण किया।

सुतसोमस्य सासिं तं बाहुं छित्त्वा नरर्षभ।
पुनरप्याहनत् पार्श्वे स भिन्नहृदयोऽपतत्॥ २६॥
अताडयच्छतानीकं मुक्तचक्रं द्विजस्तु सः।
स विह्वलो ययौ भूमिं ततोऽस्यापाहरच्छिरः॥ २७॥
श्रुतकर्मा तु परिघं गृहीत्वा समताडयत्।
अभिद्रुत्य ययौ द्रौणिं सव्ये सफलके भृशम्॥ २८॥
स तु तं श्रुतकर्माणमास्ये जघ्ने वरासिना।
स हतो न्यपतद् भूमौ विमूढो विकृताननः॥ २९॥

हे नरश्रेष्ठ! अश्वत्थामा ने सुतसोम की तलवार सहित बाँह काटकर उसकी पसली पर आघात किया। तब छाती फट जाने के कारण वह गिर पड़ा। फिर उस ब्राह्मण ने शतानीक पर, जिसने उस पर चक्र से प्रहार किया था, आक्रमण किया, जिससे वह व्याकुल होकर गिर पड़ा और तभी अश्वत्थामा ने उसका सिर काट लिया। श्रुतकर्मा ने परिघ को उठाकर अश्वत्थामा की तरफ दौड़कर उसके ढाल वाले बायें हाथ में गहरी चोट पहुँचायी। तब उसने तेज तलवार ने श्रुतकर्मा के मुख पर चोट पहुँचायी, जिससे उसका मुख कटकर बिगड़ गया और वह चेतनारहित होकर गिर पड़ा।

तेन शब्देन वीरस्तु श्रुतकीर्तिर्महारथः।
अश्वत्थामानमासाद्य शरवर्षैरवाकिरत्॥ ३०॥
तस्यापि शरवर्षाणि चर्मणा प्रतिवार्य सः।
सकुण्डलं शिरः कायाद् भ्राजमानमुपाहरत्॥ ३१॥
ततो भीष्मनिहन्ता तं सह सर्वैः प्रभद्रकैः।
अहनत् सर्वतो वीरं नानाप्रहरणैर्बली॥ ३२॥
शिलीमुखेन चान्येन भ्रुवोर्मध्ये समार्पयत्।
स तु क्रोधसमाविष्टो द्रोणपुत्रो महाबलः॥ ३३॥
शिखण्डिनं समासाद्य द्विधा चिच्छेद सोऽसिना।

उस शब्द से वीर महारथी श्रुतकीर्ति अश्वत्थामा के पास आकर उसपर बाणों की वर्षा करने लगा। उसकी बाणवर्षा को भी अपनी ढाल पर रोककर अश्वत्थामा ने उसके कुण्डलोंसहित जगमगाते हुए मस्तक को उसके शरीर से अलग कर दिया। फिर भीष्म को मारनेवाला बलवान् शिखण्डी सारे प्रभद्रकों के साथ उस वीर पर अनेक आयुधोंद्वारा सब तरफ से आक्रमण करने लगा। उसने एक बाण से अश्वत्थामा की दोनों भौहों के बीच में प्रहार किया।

तब क्रुद्ध महाबली द्रोणपुत्र ने उसके पास जाकर तलवार से उसके दो टुकड़े कर दिये।

द्रुपदस्य च पुत्राणां पौत्राणां सुहृदामपि॥ ३४॥
चकार कदनं घोरं दृष्ट्वा दृष्ट्वा महाबलः।
अन्यानन्यांश्च पुरुषानभिसृत्याभिसृत्य च॥ ३५॥
न्यकृन्तदसिना द्रौणिरसिमार्गविशारदः।
तथा च शिबिरं तेषां द्रौणिराहवदुर्मदः॥ ३६॥
व्यक्षोभयत राजेन्द्र महाह्रदमिव द्विपः।
त्यक्त्वा द्वाराणि च द्वाःस्थास्तथा गुल्मानि गौल्मिकाः॥ ३७॥
प्राद्रवन्त यथाशक्ति कांदिशीका विचेतसः।

इसप्रकार उस महाबली ने द्रुपद के पुत्रों, पौत्रों तथा मित्रों का भी ढूँढ ढूँढकर महान् विनाश किया। तलवार के पैंतरों में कुशल द्रोणपुत्र ने दूसरे-दूसरे व्यक्तियों के समीप जाकर उन्हें तलवार से काट दिया। हे राजेन्द्र! युद्ध में दुर्मद द्रोणपुत्र ने उनके शिविर को ऐसे मथ दिया जैसे हाथी किसी विशाल तालाब को मथ डाले। तब द्वारपाल दरवाजों को, रक्षक तम्बुओं को छोड़कर यथाशक्ति भागने लगे। चेतनारहित से होकर वे नहीं समझ पारहे थे, कि उन्हें किसतरफ जाना है?

तान् बुद्ध्वा रणमत्तोऽसौ द्रोणपुत्रोव्यपोथयत्॥ ३८॥
तत्रापरे वध्यमाना मुहुर्मुहुरचेतसः।
शिबिरान् निष्पतन्ति स्म क्षत्रिया भयपीडिताः॥ ३९॥
तांस्तु निष्पतितांस्त्रस्तान् शिबिराज्जीवितैषिणः।
कृतवर्मा कृपश्चैव द्वारदेशे निजघ्नतुः॥ ४०॥

मतवाला बना हुआ द्रोणपुत्र उन्हें पहचान पहचान कर गिरा रहा था। उसके द्वारा मारे हुए, चेतनारहित से हुए, भय से पीड़ित दूसरे क्षत्रिय बार बार शिविर से निकलकर भागते थे। जीवन की इच्छा से भागते हुए उन क्षत्रियों को कृपाचार्य और कृतवर्मा दोनों तब द्वार पर मार देते थे।

कांश्चिदापततो वीरानपरांचैव धावतः।
व्ययोजयत खड्गेन प्राणैर्द्विजवरोत्तमः॥ ४१॥
स्तनतां च मनुष्याणामपरेषां च कूजताम्।
ततो मुहूर्तात् प्राशाम्यत् स शब्दस्तुमुलो महान्॥ ४२॥

तब कुछ वीर तो आक्रमण कर रहे थे और कुछ भाग रहे थे। ब्राह्मण शिरोमणि अश्वत्थामा ने उनदोनों ही को तलवार से प्राणविहीन कर दिया। फिर कराहते और विलाप करते हुए लोगों का वह भयंकर कोलाहल एक मुहूर्त में ही शान्त हो गया।

यथाप्रतिज्ञं तत् कर्म कृत्वा द्रौणायनिः प्रभो।
दुर्गमां पदवीं गच्छन् पितुरासीद् गतज्वरः॥ ४३॥
यथैव संसुप्तजने शिबिरे प्राविशन्निशि।
तथैव हत्वा निःशब्दे निश्चक्राम नरर्षभः॥ ४४॥
निष्क्रम्य शिबिरात् तस्मात् ताभ्यां संगम्य वीर्यवान्।
आचख्यौ कर्म तत् सर्वं हृष्टः संहर्षयन् विभो॥ ४५॥

हे प्रभो! इसप्रकार द्रोणपुत्र अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार कार्य कर, पिता के दुर्गम पथपर चलता हुआ, चिन्ता और शोक से रहित हो गया। जिसप्रकार उसने सोये हुए लोगों के शान्त शिविर में प्रवेश किया था, वैसे ही संहार करके मरे हुए लोगों के शब्द रहित शिविर से वह नरश्रेष्ठ बाहर निकला। हे प्रभो! उस प्रतापी ने बाहर निकलकर और उन दोनों से मिलकर, प्रसन्नता के साथ उन के हर्ष को बढ़ाते हुए अपने सारे कार्य का वर्णन उनसे किया।

सातवाँ अध्याय : तीनों का दुर्योधन से मिलना। दुर्योधन का प्राण त्याग।

ते हत्वा सर्वपञ्चालान् द्रौपदेयांश्च सर्वशः।
आगच्छन् सहितास्तत्र यत्र दुर्योधनो हतः॥ १॥
गत्वा चैनमपश्यन्त किञ्चित्प्राणं जनाधिपम्।
तं भग्नसक्थं राजेन्द्र कृच्छ्रप्राणमचेतसम्॥ २॥
वमन्तं रुधिरं वक्त्रादपश्यन् वसुधातले।
वृतं समन्ताद् बहुभिः श्वापदैर्घोरदर्शनैः॥ ३॥
शालावृकगणैश्चैव भक्षयिष्यद्भिरन्तिकात्।
निवारयन्तं कृच्छ्रात्ताञ्श्वापदांश्च चिखादिषून्॥ ४॥
विचेष्टमानं मह्यां च सुभृशं गाढवेदनम्।

हे महाराज! फिर वे तीनों सारे पाँचालों और सारे द्रौपदीपुत्रों को मारने के पश्चात् इकट्ठे वहाँ आये, जहाँ दुर्योधन को मारा गया था। वहाँ जाकर उन्होंने देखा कि राजा में थोड़े से प्राण हैं। हे राजेन्द्र! टूटी जाँघोंवाला वह राजा जिसमें कुछ जान बची हुई थी, बेहोश पड़ा हुआ था। वह मुख से खून की उल्टियाँ कर रहा था। उसे चारोंतरफ से भयंकर दिखाई देनेवाले बहुतसे हिंसक जन्तुओं ने समीप से घेरा हुआ था, जो उसे खाना चाहते थे और वह कठिनाई से उन्हें निवारण कर रहा था। अत्यन्तगहरी वेदना से वह भूमि पर पड़ा छटपटा रहा था।

ते तं शयानं सम्प्रेक्ष्य राजानमतथोचितम्॥ ५॥
अविषह्येन दुःखेन ततस्ते रुरुदुस्त्रयः।
ततस्तु रुधिरं हस्तैर्मुखान्निर्मृज्य तस्य हि॥ ६॥
रणे राज्ञः शयानस्य कृपणं पर्यदेवयन्।

उस राजा को अत्यन्तअनुचित अवस्था में भूमि पर पड़ा हुआ देखकर वे तीनों असह्य दुःख से पीड़ित होकर रोने लगे। युद्धभूमि में पड़े राजा के मुख से बहते हुए रक्त को हाथों से पौंछकर वे दीन वाणी में विलाप करने लगे।

योऽयं मूर्धाभिषिक्तानामग्रे यातः परंतपः॥ ७॥
स हतो ग्रसते पांसून् पश्य कालस्य पर्ययम्।
येनाजौ निहता भूमावशेरत पुरा द्विपः॥ ८॥
स भूमौ निहतः शेते कुरुराजः परैरयम्।
भयान्नमन्ति राजानो यस्य स्म शतसंघशः॥ ९॥
स वीरशयने शेते क्रव्याद्भिः परिवारितः।
उपासत द्विजाः पूर्वमर्थहेतोर्यमीश्वरम्॥ १०॥
उपासते च तं ह्यद्य क्रव्यादा मांसहेतवः।

जो शत्रुओं को सन्तप्त करनेवाले ये महाराज, मूर्धाभिषिक्त राजाओं के आगे चला करते थे, वे ही अब मारे हुए धूल फाँक रहे हैं। समय के उलट फेर को देखो। जिनके द्वारा मारे हुए शत्रु युद्धभूमि में सोरहे हैं, वही ये कुरुराज अब शत्रुओं से मारे जाकर भूमि पर सोरहे हैं। पहले जिसके आगे सैकड़ों राजा भय के कारण सिर झुकाते थे, वही राजा अब हिंसक जन्तुओं से घिरा हुआ, वीरशय्या पर सो रहा है। जिनके पास पहले धनप्राप्ति के लिये ब्राह्मण लोग बैठे रहते थे, उन्हीं के समीप अब मांस के लिये हिंसक जन्तु बैठे हैं।

तं शयानं कुरुश्रेष्ठं ततो भरतसत्तम॥ ११॥
अश्वत्थामा समालोक्य करुणं पर्यदेवयत्।
यां गतिं क्षत्रियस्याहुः प्रशस्तां परमर्षयः॥ १२॥
हतस्याभिमुखस्याजौ प्राप्तस्त्वमसि तां गतिम्।
दुर्योधन न शोचामि त्वामहं पुरुषर्षभ॥ १३॥
हतपुत्रौ तु शोचामि गान्धारीं पितरं च ते।
भिक्षुकौ विचरिष्येते शोचन्तौ पृथिवीमिमाम्॥ १४॥

हे भरतश्रेष्ठ! उस कुरुश्रेष्ठ को वीरशय्या पर सोता हुआ देखकर अश्वत्थामा करुणा से भरा हुआ विलाप करता हुआ बोला कि श्रेष्ठ ऋषियों ने क्षत्रियों के लिये जिस गति को बताया है, अब युद्ध के मुहाने पर मारे जाकर तुम उसी गति को प्राप्त हो रहे हो। हे पुरुषश्रेष्ठ दुर्योधन! मैं तुम्हारे लिये शोक नहीं करता, मैं गान्धारी और आपके पिता के लिये शोक करता हूँ, जिनके सारे पुत्र मारे गये। वे तो अब शोक करते हुए, इस भूमि पर भीख माँगते हुए विचरण करेंगे।

धन्यस्त्वमसि गान्धारे यस्त्वमायोधने हतः।
प्रायशोऽभिमुखः शत्रून् धर्मेण पुरुषर्षभ॥ १५॥
हतपुत्रा हि गान्धारी निहतज्ञातिबान्धवा।
प्रज्ञाचक्षुश्च दुर्धर्षः कां गतिं प्रतिपत्स्यते॥ १६॥
धिगस्तु कृतवर्माणं मां कृपं च महारथम्।
ये वयं न गताः स्वर्गं त्वां पुरस्कृत्य पार्थिवम्॥ १७॥

हे पुरुषश्रेठ, गान्धारीपुत्र! आप धन्य हैं। क्योंकि आप युद्ध में शत्रुओं का सामना धर्म के अनुसार करते हुए मारे गये हैं। बेचारी गान्धारी और प्रज्ञाचक्षु

दुर्धर्ष धृतराष्ट्र, जिसके सारे पुत्र, परिवार के लोग और बान्धव मारे गये हैं अब किस अवस्था को प्राप्त करेंगे? कृतवर्मा को, मुझे और महारथी कृपाचार्य को धिक्कार है, जो आप को आगे करके परलोक में नहीं गए हैं।

किं नाम तद् भवेत् कर्म येन त्वां न व्रजाम वै।
दुःखं नूनं कुरुश्रेष्ठ चरिष्याम महीमिमाम्॥ १८॥
गत्वैव तु महाराज समेत्य च महारथान्।
यथाज्येष्ठं यथाश्रेष्ठं पूजयेर्वचनान्मम॥ १९॥
आचार्यं पूजयित्वा च केतुं सर्वधनुष्मताम्।
हतं मयाद्य शंसेथा धृष्टद्युम्नं नराधिप॥ २०॥
परिष्वजेथा राजानं बाह्लिकं सुमहारथम्।
सैन्धवं सोमदत्तं च भूरिश्रवसमेव च॥ २१॥

वह कौन सा कार्य है जिससे विवश होकर हम आपके साथ नहीं चल रहे हैं? हे कुरुश्रेष्ठ! अब हम बड़े कष्ट से इस पृथिवी पर जीवन बितायेंगे। हे महाराज! आप परलोक में जाकर उन सब महारथियों से मिलकर मेरी तरफ से उनका छोटे बड़े के क्रम से मिलकर आदर सत्कार करें। सारे धनुर्धारियों में श्रेष्ठ आचार्य की पूजा करके हे राजन्! उनसे कह दें कि मैंने आज धृष्टद्युम्न को मार दिया है। आप मेरी तरफ से अत्यन्त महारथी राजा बाह्लीक, सिन्धुराज जयद्रथ, सोमदत्त और भूरिश्रवा को भी छाती से लगायें।

तथा पूर्वगतानन्यान् स्वर्गे पार्थिवसत्तमान्।
अस्मद्वाक्यात् परिष्वज्य सम्पृच्छेस्त्वमनामयम्॥ २२॥
द्रौपदेया हताः सर्वे धृष्टद्युम्नस्य चात्मजाः।
पञ्चाला निहताः सर्वे मत्स्यशेषं च भारत॥ २३॥

इसी प्रकार पहले परलोक में गये दूसरे श्रेष्ठ राजाओं को भी आप मेरी तरफ से छाती से लगाकर उनकी कुशलता को पूछें। हे भारत! द्रौपदी के सारे पुत्र और धृष्टद्युम्न के सारे पुत्र मारे गये। सारे पांचाल और मत्स्य देश के शेष वीर भी मारे गये।

दुर्योधनस्तु तां वाचं निशम्य मनसः प्रियाम्।
प्रतिलभ्य पुनश्चेत इदं वचनमब्रवीत्॥ २४॥
न मेऽकरोत् तद् गाङ्गेयो न कर्णो न च ते पिता।
यत्त्वया कृपभोजाभ्यां सहितेनाद्य मे कृतम्॥ २५॥
स च सेनापतिः क्षुद्रो हतः सार्धं शिखण्डिना।
तेन मन्ये मघवता सममात्मानमद्य वै॥ २६॥

तब मन को प्रिय लगनेवाली उस बात को सुनकर दुर्योधन को होश आगया और वह बोला कि जो कार्य तुमने कृपाचार्य और कृतवर्मा के साथ करके दिखाया है, उसे न तो गंगापुत्र भीष्म कर पाये, न कर्ण और न तुम्हारे पिता कर सके। तुमने जो नीच सेनापति धृष्टद्युम्न को, शिखण्डी के साथ मार दिया उससे मैं, आज अपने को इन्द्र के समान समझता हूँ।

स्वस्ति प्राप्नुत भद्रं वः स्वर्गे नः संगमः पुनः।
इत्येवमुक्त्वा तूष्णीं स कुरुराजो महामनाः।
प्राणानुपासृजद् वीरः सुहृदां दुःखमुत्सृजन्॥ २७॥

तुम्हारा कल्याण हो, तुम्हें सुख प्राप्त हो। हमारा परलोक में पुनः मिलन होगा, ऐसा कहकर वह महामनस्वी कुरुराज चुप हो गया और फिर उस वीर ने अपने मित्रों के लिये दुःख को छोड़ते हुए प्राणों का त्याग कर दिया।

आठवाँ अध्याय : मृत सम्बन्धियों को देखकर युधिष्ठिर आदि का शोक।

तस्यां रात्र्यां व्यतीतायां धृष्टद्युम्नस्य सारथिः।
शशंस धर्मराजाय सौप्तिके कदनं कृतम्॥ १॥
द्रौपदेया हता राजन् द्रुपदस्यात्मजैः सह।
प्रमत्ता निशि विश्वस्ताः स्वपन्तः शिबिरे स्वके॥ २॥
कृतवर्मणा नृशंसेन गौतमेन कृपेण च।
अश्वत्थाम्ना च पापेन हतं वः शिबिरं निशि॥ ३॥

उस रात्रि के व्यतीत होने पर धृष्टद्युम्न के सारथि ने धर्मराज युधिष्ठिर के पास जाकर रात को सोते हुए जो संहार किया गया उसके बारे में कहा। उसने कहा कि हे राजन्! द्रौपदी के सारे पुत्र द्रुपद के पुत्रों के साथ, रात में अपने शिविर में निश्चिन्त और असावधान होकर सोते हुए मारे गये। निर्दय कृतवर्मा, गौतमपुत्र कृपाचार्य और पापी अश्वत्थामा ने रात्रि में आपके शिविर का विनाश कर दिया।

तच्छ्रुत्वा वाक्यमशिवं कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः।
पपात मह्यां दुर्धर्षः पुत्रशोकसमन्वितः॥ ४॥

पतन्तं तमतिक्रम्य परिजग्राह सात्यकिः।
भीमसेनोऽर्जुनश्चैव माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ॥ ५॥
लब्धचेतास्तु कौन्तेयः शोकविह्वलया गिरा।
जित्वा शत्रूञ्जितः पश्चात् पर्यदेवयदार्तवत्॥ ६॥

तब उस अमंगलमय वाक्य को सुनकर दुर्धर्ष कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर पुत्रों के शोक से भरकर भूमि पर गिर पड़े। गिरते हुए उन्हें तब सात्यकि तथा भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव ने आगे बढ़कर पकड़ लिया। फिर होश में आने पर कुन्तीपुत्र शोक से व्याकुल वाणी के द्वारा आर्त व्यक्ति के समान विलाप करने लगे कि हाय मैं पहले शत्रुओं को जीतकर पुनः उन्हीं के द्वारा पराजित हो गया।

अनर्थो ह्यर्थसंकाशस्तथानर्थोऽर्थदर्शनः।
जयोऽयमजयाकारो जयस्तस्मात् पराजयः॥ ७॥
यञ्जित्वा तप्यते पश्चादापन्न इव दुर्मतिः।
कथं मन्येत विजयं ततो जिततरः परैः॥ ८॥
येषामर्थाय पापं स्याद विजयस्य सुहृद्वधैः।
निर्जितैरप्रमत्तैर्हि विजिता जितकाशिनः॥ ९॥

कभी कभी अनर्थ भी अर्थ सा हो जाता है और अर्थ के रूप में दिखाई देने वाली वस्तु भी अनर्थ के रूप में परिवर्तित हो जाती है। इसीतरह से हमारी विजय पराजय का रूप धारण करके आयी थी, इसीलिये अब जय भी पराजय बन गयी है। जिस दुर्बुद्धि को विजय के पश्चात् भी संकट में पड़े हुए व्यक्ति के समान दुःखी होना पड़ता है, वह अपने को विजयी कैसे मान सकता है? वह तो शत्रुओं से पराजित हो गया है। जिन्हें विजय के लिये सुहृदों के वध का पाप करना पड़ता है, वे एक बार विजय से प्रसन्न भलेही होजायें, पर अन्त में सावधान रहनेवाले शत्रुओं से उन्हें पराजित होना पड़ता है।

न हि प्रमादात् परमस्ति कश्चिद्
वधो नराणामिह जीवलोके।
प्रमत्तमर्था हि नरं समन्तात्
त्यजन्त्यनर्थाश्च समाविशन्ति॥ १०॥
इन्द्रोपमान् पार्थिवपुत्रपौत्रान्
पश्याविशेषेण हतान् प्रमादात्।
तीर्त्वा समुद्रं वणिजः समृद्धा
मग्नाः कुनद्यामिव हेलमानाः॥ ११॥
अमर्षितैर्ये निहताः शयाना
निःसंशयं ते त्रिदिवं प्रपन्नाः।
कृष्णां तु शोचामि कथं नु साध्वी
शोकार्णवे साद्य विनङ्क्ष्यतीति॥ १२॥

संसार में प्रमाद से बढ़कर लोगों की मृत्यु का कारण कोई नहीं है। प्रमत्त व्यक्ति को कल्याण की बातें त्याग देती हैं और अकल्याण की बातें उसके समीप आजाती हैं। इसीलिये देखो इन्द्र के समान राजा को भी पुत्रों और पौत्रों के प्रमाद के कारण सामान्य व्यक्तियों के समान मार दिया गया। यह ऐसे ही हो गया, जैसे समृद्धिशाली व्यापारी सागर को पार करके प्रमाद के कारण अवहेलना करके एक छोटी सी नदी में डूब जाये। जिन लोगों को अमर्षशील शत्रुओं ने सोते हुए मार दिया, वे उत्तम गति को प्राप्त हो गये, पर मैं तो उस सती द्रौपदी के लिये शोक करता हूँ कि वह कैसे करेगी? वह तो शोक सागर में डूब कर नष्ट हो जायेगी।

भ्रातृंश्च पुत्रांश्च हतान् निशम्य
पाञ्चालराजं पितरं च वृद्धम्।
ध्रुवं विसंज्ञा पतिता पृथिव्यां
सा शोष्यते शोककृशाङ्गयष्टिः॥ १३॥
तच्छोकजं दुःखमपारयन्ती
कथंभविष्यत्युचिता सुखानाम्।
पुत्रक्षयभ्रातृवध- प्रणुन्ना
प्रदह्यमानेन हुताशनेन॥ १४॥
इत्येवमार्तः परिदेवयन् स
राजा कुरूणां नकुलं बभाषे।
गच्छानयैनामिह मन्दभाग्यां
समातृपक्षामिति राजपुत्रीम्॥ १५॥

अपने भाइयों, पुत्रों और बूढ़े पिता पाँचालराज को मारा हुआ सुनकर शोक से पहले ही सूखे अंगों वाली वह और सूख जायेगी और निश्चितरूप से चेतनारहित होकर भूमि पर गिर पड़ेगी। वह सदा सुखों को भोगने के योग्य ही रही है, पर अब जलती हुई अग्नि के समान भाइयों और पुत्रों के वध के शोक से पीड़ित होती हुई, उस शोकजनित दुःख का पार न पाती हुई, किस अवस्था को प्राप्त हो जायेगी? इसप्रकार आर्त होकर विलाप करते हुए कुरुवंश के उस राजा ने नकुल को कहा कि। उस

मन्दभाग्या राजपुत्री को मातृपक्ष की स्त्रियों के साथ लेआओ।

प्रस्थाप्य माद्रीसुतमाजमीढः
शोकार्दितस्तैः सहितः सुहृद्भिः।
रोरूयमाणः प्रययौ सुताना-
मायोधनं भूतगणानुकीर्णम्॥ १६॥
स तत् प्रविश्याशिवमुग्ररूपं
ददर्श पुत्रान् सुहृदः सखींश्च।
भूमौ शयानान् रुधिरार्द्रगात्रान्
विभिन्नदेहान् प्रहृतोत्तमाङ्गान्॥ १७॥
स तांस्तु दृष्ट्वा भृशमार्तरूपो
युधिष्ठिरो धर्मभृतां वरिष्ठः।
उच्चैः प्रचुक्रोश च कौरवाग्र्यः
पपात चोर्व्यां सगणो विसंज्ञः॥ १८॥

आजमीढवंशी, शोकपीड़ित युधिष्ठिर माद्रीपुत्र नकुल को भेजकर, अपने साथियों के साथ बार बार रोते हुए, पुत्रों के उस युद्धस्थल में गये जो तब भूतों अर्थात् मृतव्यक्तियों की लाशों से भरा हुआ था। उस भयंकर अमंगलमय स्थान पर उन्होंने अपने पुत्रों, बन्धुओं और मित्रों को देखा, जो खून से भरे शरीरों के साथ भूमि पर पड़े हुए थे। उनके शरीर छिन्न भिन्न होरहे थे और मस्तक कटे हुए थे। धर्मधारियों में श्रेष्ठ, कौरवों के अग्रणी युधिष्ठिर उन्हें देखकर अत्यन्त दुःख में भरकर, जोर से चिल्लाकर रोने लगे और साथियोंसहित अचेत होकर भूमि पर गिर पड़े।

नवाँ अध्याय : द्रौपदी का विलाप, द्रोणपुत्र के वध का आग्रह। भीम का अश्वत्थामा के लिये प्रस्थान।

तमश्रुपरिपूर्णाक्षं वेपमानमचेतसम्।
सुहृदो भृशसंविग्नाः सान्त्वयाञ्चक्रिरे तदा॥ १॥
ततस्तस्मिन् क्षणे कल्पो रथेनादित्यवर्चसा।
नकुलः कृष्णया सार्धमुपायात् परमार्तया॥ २॥
उपप्लव्यं गता सा तु श्रुत्वा सुमहदप्रियम्।
तदा विनाशं सर्वेषां पुत्राणां व्यथिताभवत्॥ ३॥
कम्पमानेव कदली वातेनाभिसमीरिता।
कृष्णा राजानमासाद्य शोकार्ता न्यपतद् भुवि॥ ४॥

आँखों में आँसू भरे, काँपते, चेतनारहित से हुए राजा युधिष्ठिर को तब अत्यन्त दुःख से व्याकुल उनके बन्धुबान्धवों ने सान्त्वना दी। तभी सुयोग्य नकुल, अत्यन्तआर्त द्रौपदी के साथ सूर्य के समान प्रकाशित रथ के द्वारा वहाँ आगये। द्रौपदी उस समय उपप्लव्य नगर में गयी हुई थी। वह अपने सारे पुत्रों के विनाश की महान् अप्रिय बात को सुनकर अत्यन्तव्यथित होरही थी। वायु के द्वारा हिलाये हुए केले के वृक्ष के समान काँपती हुई वह राजा के पास आकर शोक से व्याकुल होकर भूमि पर गिर पड़ी।

बभूव वदनं तस्याः सहसा शोककर्षितम्।
फुल्लपद्मपलाशाक्ष्यास्तमोग्रस्त इवांशुमान्॥ ५॥
ततस्तां पतितां दृष्ट्वा संरम्भी सत्यविक्रमः।
बाहुभ्यां परिजग्राह समुत्पत्य वृकोदरः॥ ६॥
सा समाश्वासिता तेन भीमसेनेन भामिनी।
रुदती पाण्डवं कृष्णा सा हि भारतमब्रवीत्॥ ७॥
दिष्ट्या राजन्नवाप्येमामखिलां भोक्ष्यसे महीम्।
आत्मजान् क्षत्रधर्मेण सम्प्रदाय यमाय वै॥ ८॥

खिले हुए कमल और पलाश के फूलों के समान आँखों वाली उसका शोक से पीड़ित मुख अचानक ग्रहण के समय अन्धकार से ग्रस्त सूर्य के समान प्रभाहीन हो गया था। तब उसे गिरी हुई देखकर क्रोध में भरे हुए, सत्यविक्रमी भीम ने उछलकर उसे बाँहों से सहारा दिया और उस भामिनी को उसने धीरज बँधाया। तब रोती हुई द्रौपदी, भरतवंशी पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर से बोली कि हे राजन्! बड़े सौभाग्य की बात है कि आप क्षात्रधर्म के अनुसार अपने पुत्रों को मृत्यु की भेंट चढ़ाकर इस सारी भूमि को प्राप्तकर इसका भोग करेंगे।

दिष्ट्या त्वं कुशली पार्थ मत्तमातङ्गगामिनीम्।
अवाप्य पृथिवीं कृत्स्नां सौभद्रं न स्मरिष्यसि॥ ९॥
प्रसुप्तानां वधं श्रुत्वा द्रौणिना पापकर्मणा।
शोकस्तपति मां पार्थ हुताशन इवाश्रयम्॥ १०॥
तस्य पापकृतो द्रौणेर्न चेदद्य त्वया रणे।
ह्रियते सानुबन्धस्य युधि विक्रम्य जीवितम्॥ ११॥
इहैव प्रायमासिष्ये तन्निबोधत पाण्डवाः।
न चेत् फलमवाप्नोति द्रौणिः पापस्य कर्मणः॥ १२॥
एवमुक्त्वा ततः कृष्णा पाण्डवं प्रत्युपाविशत्।
युधिष्ठिरं याज्ञसेनी धर्मराजं यशस्विनी॥ १३॥

हे कुन्तीपुत्र! बड़े सौभाग्य की बात है कि आपने कुशलतापूर्वक इस सारी भूमि को, जिस पर लोगों के जीवन की परिस्थितियाँ मस्त हथिनी के समान अपनी ही मस्तानी चाल से चलती रहती हैं, प्राप्त कर लिया है। अब आपको सुभद्राकुमार अभिमन्यु की याद भी नहीं आयेगी। हे कुन्तीपुत्र! पापी द्रोण पुत्र के द्वारा सोये हुओं का वध सुनकर मुझे शोक इसप्रकार सन्तप्त कर रहा है, जैसे अग्नि अपने आश्रय की लकड़ी को जला देती है। यदि आप युद्ध में पराक्रम करके उस पापकर्म करनेवाले द्रोणपुत्र के प्राणों को उसके साथियोंसहित आज नहीं हर लेते हैं और वह अपने पाप का फल नहीं प्राप्त कर लेता है, तो मैं यहीं आमरण अनशन पर बैठ जाऊँगी, यह बात आप सारे पाण्डव सुनलें। पाण्डुपुत्र धर्मराज युधिष्ठिर से ऐसा कहकर वह यशस्विनी द्रुपदकुमारी उनके सामने ही अनशन पर बैठ गयी।

तस्या बहुविधं दुःखान्निशम्य परिदेवितम्।
नामर्षयत कौन्तेयो भीमसेनो महाबलः॥ १४॥
स काञ्चनविचित्राङ्गमारुरोह महारथम्।
आदाय रुचिरं चित्रं समार्गणगुणं धनुः॥ १५॥
नकुलं सारथिं कृत्वा द्रोणपुत्रवधे धृतः।
विस्फार्य सशरं चापं तूर्णमश्वानचोदयत्॥ १६॥

तब दुःख के साथ अनेकप्रकार से किये गये उसके उस विलाप को सुनकर उसे वह महाबली, कुन्तीपुत्र भीमसेन सहन नहीं कर सके। तब बाण और प्रत्यंचासहित विचित्र और सुन्दर धनुष को लेकर स्वर्ण भूषित विचित्र अंगों वाले विशाल रथपर बैठकर, नकुल को सारथि बनाकर, द्रोणपुत्र के वध का निश्चय करके, बाण सहित धनुष को फैलाकर उन्होंने तुरन्त घोड़ों को हँकवाया।

दसवाँ अध्याय : सभी का भीम के पीछे जाना। अश्वत्थामा द्वारा ब्रह्मशिर अस्त्र की तैयारी।

तस्मिन् प्रयाते दुर्धर्षे यदूनामृषभस्ततः।
अब्रवीत् पुण्डरीकाक्षः कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम्॥ १॥
एष पाण्डव ते भ्राता एक एवाभिधावति।
भीमः प्रियस्ते सर्वेभ्यो भ्रातृभ्यो भरतर्षभ॥ २॥
तं कृच्छ्रगतमद्य त्वं कस्मान्नाभ्युपपद्यसे।
यत् तदाचष्ट पुत्राय द्रोणः परपुरञ्जयः॥ ३॥
अस्त्रं ब्रह्मशिरो नाम दहेत पृथिवीमपि।

उस दुर्धर्ष भीम के प्रस्थान करने पर यदुवंशियों में श्रेष्ठ, कमलनयन श्रीकृष्ण जी ने तब कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर से कहा कि आपके भाई ये पाण्डुपुत्र अकेले ही आक्रमण करते जा रहे हैं। हे भरतश्रेष्ठ! भीम तो आपको सारे भाइयों में अधिक प्रिय हैं। उसे संकट में जाते हुए देखकर भी आप क्यों नहीं उसकी सहायता के लिये चलते? शत्रु के नगर को नष्ट करनेवाले द्रोणाचार्य ने अपने पुत्र को जिस ब्रह्मशिर अस्त्र की शिक्षा दी हुई है, वह सारी पृथिवी को भी जला सकता है।

तन्महात्मा महाभागः केतुः सर्वधनुष्मताम्॥ ४॥
प्रत्यपादयदाचार्यः प्रीयमाणो धनंजयम्।
तं पुत्रोऽप्येक एवैनमन्वयाच दमर्षणः॥ ५॥
ततः प्रोवाच पुत्राय नातिहृष्टमना इव।
विदितं चापलं ह्यासीदात्मजस्य दुरात्मनः॥ ६॥

सारे धनुर्धरों में श्रेष्ठ, महात्मा, महाभाग आचार्य द्रोण ने पहले प्रसन्न होकर अर्जुन को उस अस्त्र की शिक्षा दी थी। तब अमर्षशील उनके पुत्र ने भी उसे उनसे माँगा। तब आचार्य ने अपने पुत्र अश्वत्थामा को उसकी शिक्षा तो दे दी, पर उनका मन तब अधिक प्रसन्न नहीं था। उन्हें अपने दुरात्मा पुत्र की चपलता का पता था।

एवमुक्त्वा युधां श्रेष्ठः सर्वयादवनन्दनः।
सर्वायुधवरोपेतमारुरोह रथोत्तमम्॥ ७॥
अर्जुनः सत्यकर्मा च कुरुराजो युधिष्ठिरः।
तावुपारोप्य दाशार्हः स्यन्दनं लोकपूजितम्॥ ८॥
प्रतोदेन जवोपेतान् परमाश्वानचोदयत्।

ऐसा कहकर सारे यादवों को आनन्दित करने वाले, योद्धाओं में श्रेष्ठ श्रीकृष्ण जी सारे श्रेष्ठ आयुधों से युक्त उत्तम रथ पर सवार हुए। सत्यकर्मा अर्जुन और कुरुराज युधिष्ठिर भी उस रथ पर बैठे। उस लोक पूजित रथ पर उनदोनों को चढ़ाकर श्रीकृष्णजी ने वेगवान् उत्तम घोड़ों को चाबुक से हाँका।

ते समार्च्छन्नरव्याघ्राः समनुद्रुत्य वेगिताः॥ ९॥
क्रोधदीप्तं तु कौन्तेयं द्विषदर्थे समुद्यतम्।
नाशक्नुवन् वारयितुं समेत्यापि महारथाः॥ १०॥
स तेषां प्रेक्षतामेव श्रीमतां दृढधन्विनाम्।
ययौ भागीरथीतीरं हरिभिर्भृशवेगितैः॥ ११॥
यत्र स्म श्रूयते द्रौणिः पुत्रहन्ता महात्मनाम्।

तेजी से पीछा करके वे नरश्रेष्ठ, क्रोध से प्रज्वलित, शत्रु के संहार के लिये उद्यत, कुन्तीपुत्र भीम के समीप पहुँच गये, पर वे महारथी उनके पास पहुँचकर भी उन्हें रोक नहीं सके। वह भीम उन तेजस्वी दृढ़ धनुर्धरों के देखते हुए ही अत्यन्त वेगवान् घोड़ों के द्वारा भागीरथी नदी के किनारे पर पहुँच गये, जहाँ महात्मा पाण्डवों के पुत्रों का हत्यारा वह द्रोणपुत्र सुना गया था।

स ददर्श महात्मानमुदकान्ते यशस्विनम्॥ १२॥
कृष्णद्वैपायनं व्यासमासीनमृषिभिः सह।
तं चैव क्रूरकर्माणं घृताक्तं कुशचीरिणम्॥ १३॥
रजसा ध्वस्तमासीनं ददर्श द्रौणिमन्तिके।
तमभ्यधावत् कौन्तेयः प्रगृह्य सशरं धनुः॥ १४॥
भीमसेनो महाबाहुस्तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत्।

उन्होंने वहाँ जाकर भागीरथी के जल के किनारे यशस्वी महात्मा कृष्णद्वैपायन व्यास को ऋषियों के साथ बैठे हुए देखा। समीप ही उन्होंने उस क्रूरकर्मा द्रोणपुत्र को भी देखा, जो शरीर में घी लगाकर कुश का चीरवस्त्र पहिने और धूल में लिपटा हुआ बैठा था। तब बाण सहित धनुष को लेकर महाबाहु भीम उसकी तरफ दौड़े और उससे बोले कि ठहर जा ठहर जा।

स दृष्ट्वा भीमधन्वानं प्रगृहीतशरासनम्॥ १५॥
भ्रातरौ पृष्ठतश्चास्य जनार्दनरथे स्थितौ।
व्यथितात्माभवद् द्रौणिः प्राप्तं चेदममन्यत॥ १६॥
स तद् दिव्यमदीनात्मा परमास्त्रमचिन्तयत्।
स तामापदमासाद्य दिव्यमस्त्रमुदैरयत्।
अमृष्यमाणस्ताञ्छूरान् दिव्यायुधवरान् स्थितान्॥ १७॥

तब भयंकर धनुर्धर भीम को धनुषबाण लेकर आते हुए देखकर और उसके पीछे श्रीकृष्ण के रथपर बैठे हुए दो भाइयों को भी देखकर, द्रोणपुत्र मन में व्यथित हो गया। उस समय उसने यही उचित समझा और दृढ़ हृदय से उस दिव्य और उत्तम अस्त्र के प्रयोग के विषय में निश्चय किया। दिव्यास्त्रों को लिये हुए उन शूरवीरों का वहाँ आना, सहन न करते हुए, उस संकट को प्राप्त करके उसने उस दिव्यास्त्र को छोड़ने की तैयारी प्रारम्भ करदी।

ग्यारहवाँ अध्याय : अर्जुन द्वारा भी ब्रह्मशिर अस्त्र् की तैयारी। व्यास और नारदजी का उन दोनों को रोकना। अश्वत्थामा की सशर्त प्राण रक्षा।

इङ्गितेनैव दाशार्हस्तमभिप्रायमादितः।
द्रौणेर्बुद्ध्वा महाबाहुरर्जुनं प्रत्यभाषत॥ १॥
अर्जुनार्जुन यद्दिव्यमस्त्रं ते हृदि वर्तते।
द्रोणोपदिष्टं तस्यायं कालः सम्प्रति पाण्डव॥ २॥
भ्रातॄणामात्मनश्चैव परित्राणाय भारत।
विसृजैतत त्वमप्याजावस्त्रमस्त्रनिवारणम्॥ ३॥
केशवेनैवमुक्तोऽथ पाण्डवः परवीरहा।
अवातरद् रथात् तूर्णं प्रगृह्य सशरं धनुः॥ ४॥

तब महाबाहु श्रीकृष्ण जी ने संकेतों से ही द्रोणपुत्र के उस अस्त्र को छोड़ने के विचार को आरम्भ में ही समझकर अर्जुन से कहा कि हे अर्जुन, हे अर्जुन! तुम्हारे हृदय में द्रोणाचार्य की दी हुई ब्रह्मशिर दिव्यास्त्र के प्रयोग की जो शिक्षा है, उसे प्रयोग में करने का समय आगया है। हे भारत!

अपनी और अपने भाइयों की रक्षा के लिये तुम भी युद्धक्षेत्र में इस ब्रह्मशिर अस्त्र को छोड़ो, क्योंकि ब्रह्मशिर अस्त्र का निवारण ब्रह्मशिर अस्त्र के द्वारा ही हो सकता है। तब शत्रुवीरों को नष्ट करने वाले पाण्डुपुत्र अर्जुन, श्रीकृष्णजी के यह कहने पर तुरन्त धनुष बाण लेकर रथ से उतर आये।

महर्षी सहितौ तत्र दर्शयामासतुस्तदा।
नारदः सर्वभूतात्मा भरतानां पितामहः॥ ५॥
तदन्तरमथाधृष्यावुपगम्य यशस्विनौ।
आस्तामृषिवरौ तत्र ज्वलिताविव पावकौ॥ ६॥

तभी सारे प्राणियों की आत्मा अर्थात् सबको ही अपने समान समझने वाले नारद जी और भरतवंशियों के पितामह व्यास जी, दोनों महर्षि एक साथ उठकर वहाँ आ गये। वे दोनों दुर्धर्ष और यशस्वी श्रेष्ठ ऋषि उन दोनों के बीच में प्रज्वलित दो अग्नियों के समान आकर खड़े हो गये।

ऋषी ऊचतुः

नानाशस्त्रविदः पूर्वे येऽप्यतीता महारथाः।
नैतदस्त्रं मनुष्येषु तैः प्रयुक्तं कथंचन॥ ७॥
किमिदं साहसं वीरौ कृतवन्तौ महात्ययम्।
गाण्डीवधन्वा संचिन्त्य प्राप्तकालं महारथः॥ ८॥
संजहार शरं दिव्यं त्वरमाणो धनंजयः।

व्यास उवाच

पाण्डवास्त्वं च राष्ट्रं च सदा संरक्ष्यमेव हि॥ ९॥
तस्मात् संहर दिव्यं त्वमस्त्रमेतन्महाभुज।
अरोषस्तव चैवास्तु पार्थाः सन्तु निरामयाः॥ १०॥
न ह्यधर्मेण राजर्षिः पाण्डवो जेतुमिच्छति।
मणिं चैव प्रयच्छाद्य यस्ते शिरसि तिष्ठति॥ ११॥
एतदादाय ते प्राणान् प्रतिदास्यन्ति पाण्डवाः।

तब उन ऋषियों ने कहा कि पहले भूतकाल में भी अनेकप्रकार के शस्त्रों को जाननेवाले महारथी हुए हैं, किन्तु उन्होंने इस अस्त्र का कभी मनुष्यों पर प्रयोग नहीं किया। हे वीरों! फिर तुमने यह महाविनाशकारी दुस्साहस क्यों किया? तब गाण्डीवधारी महारथी अर्जुन ने समयोचित कर्त्तव्य का विचार कर, जल्दी से अपने अस्त्र को वापिस ले लिया। तब व्यास जी ने अश्वत्थामा से कहा कि तुम्हें अपनी, पाण्डवों की और देश की सदा रक्षा करनी चाहिये, इसलिये हे महाबाहु, तुम अपने इस दिव्यास्त्र को वापिस करो। तुम्हारा क्रोध शान्त होना चाहिये और पाण्डवों को स्वस्थ रहना चाहिये। राजर्षि युधिष्ठिर किसी को भी अधर्मपूर्वक जीतना नहीं चाहते हैं। तुम्हारे सिर पर यह जो मणि है, इसे आज दे दो। इसे लेकर पाण्डव तुम्हें प्राण दान देंगे।

द्रौणिरुवाच

पाण्डवैर्यानि रत्नानि यच्चान्यत् कौरवैर्धनम्॥ १२॥
अवाप्तमिह तेभ्योऽयं मणिर्मम विशिष्यते।
एवं वीर्यो मणिरयं न मे त्याज्यः कथंचन॥ १३॥
यत्तु मे भगवानाह तन्मे कार्यमनन्तरम्।
सहैव भवता ब्रह्मन् स्थास्यामि पुरुषेष्विह॥ १४॥
प्रदायाथ मणिं द्रौणिः पाण्डवानां महात्मनाम्।
जगाम विमनास्तेषां सर्वेषां पश्यतां वनम्॥ १५॥
ततस्ते पुरुषव्याघ्राः सदश्वैरनिलोपमैः।
अभ्ययुः सहदाशार्हाः शिबिरं पुनरेव हि॥ १६॥
ददृशुर्द्रौपदीं कृष्णामार्तामार्ततराः स्वयम्।

तब द्रोणपुत्र ने कहा कि यहाँ पाण्डवों ने जितने रत्न प्राप्त किये हैं और कौरवों ने जितना धन पाया है, यह मणि उन सबसे अधिक मूल्यवान् है। इस तरह की तेजस्वी मणि का मैं किसी प्रकार भी त्याग नहीं कर सकता, पर आपने मुझे जो आज्ञा दी है, उसे भी मुझे पालन करना है। हे ब्रह्मन्! अब मैं पुरुषों में आपके पास ही रहूँगा। फिर द्रोणपुत्र उस मणि को मनस्वी पाण्डवों को देकर, सबके देखते हुए उदास मन से वन में चला गया। उसके पश्चात् वे पुरुषश्रेष्ठ पाण्डव, श्रीकृष्णजी के साथ, वायु के समान वेगवान् उत्तम घोड़ों के द्वारा पुनः अपने शिविर में आगये। वहाँ उन्होंने, जो स्वयं उससे भी अधिक शोक से व्याकुल हो रहे थे, शोक से व्याकुल द्रौपदी को देखा।

तामुपेत्य निरानन्दां दुःखशोकसमन्विताम्॥ १७॥
परिवार्य व्यतिष्ठन्त पाण्डवाः सहकेशवाः।
ततो राज्ञाभ्यनुज्ञातो भीमसेनो महाबलः॥ १८॥
प्रददौ तं मणिं दिव्यं वचनं चेदमब्रवीत्।
अयं भद्रे तव मणिः पुत्रहन्तुर्जितः स ते॥ १९॥
उत्तिष्ठ शोकमुत्सृज्य क्षात्रधर्ममनुस्मर।

दुःख और शोक से युक्त, आनन्द से रहित द्रौपदी के पास जाकर, पाण्डव श्रीकृष्णजी के साथ, उसे घेरकर बैठ गये। फिर राजा की आज्ञा पाकर

महाबली भीमसेन ने उस दिव्य मणि को उसे दिया और यह कहा कि हे भद्रे! यह तुम्हारे पुत्रों के हत्यारे की मणि है, उसे हमने जीत लिया है, अब तुम क्षत्रियधर्म को स्मरण करते हुए शोक का त्याग करो और उठो।

हतो दुर्योधनः पापो राज्यस्य परिपन्थिकः॥ २०॥
दुःशासनस्य रुधिरं पीतं विस्फुरतो मया।
वैरस्य गतमानृण्यं न स्म वाच्या विवक्षताम्॥ २१॥
जित्वा मुक्तो द्रोणपुत्रो ब्राह्मण्याद् गौरवेण च।
यशोऽस्य पतितं देवि शरीरं त्ववशेषितम्॥ २२॥
वियोजितश्च मणिना भ्रंशितश्चायुधं भुवि।

पापी दुर्योधन को मार दिया गया, जो हमारे राज्य का लुटेरा था। मैंने छटपटाते हुए दुश्शासन का खून पी लिया। हमने बैर का बदला चुका लिया। अब बोलने वाले हमारे विषय में कुछ नहीं कह सकते। द्रोणपुत्र को जीतकर उसे ब्राह्मण और गुरुपुत्र होने के कारण छोड़ दिया गया है। हे देवी! अब उसका केवल शरीर ही शेष है, उसका यश समाप्त हो गया है, उससे उसकी मणि छीन ली गयी है और उससे हथियार भूमि पर गिरवा दिये गये हैं।

द्रौपद्युवाच

केवलानृण्यमाप्तास्मि गुरुपुत्रो गुरुर्मम॥ २३॥
शिरस्येतं मणिं राजा प्रतिबध्नातु भारत।
तं गृहीत्वा ततो राजा शिरस्येवाकरोत् तदा॥ २४॥
गुरोरुच्छिष्टमित्येव द्रौपद्या वचनादपि।
ततो दिव्यं मणिवरं शिरसा धारयन् प्रभुः॥ २५॥
शुशुभे स तदा राजा सचन्द्र इव पर्वतः।
उत्तस्थौ पुत्रशोकार्ता ततः कृष्णा मनस्विनी॥ २६॥

तब द्रौपदी ने कहा कि गुरु का पुत्र तो मेरे लिये भी गुरु के समान है, मैं तो पुत्रों के वध का बदला लेना चाहती थी सो मिलगया। हे भारत! अब इस मणि को राजा अपने सिर पर धारण करें। तब राजा युधिष्ठिर ने उसे लेकर द्रौपदी के कहने से और उसे गुरु का प्रसाद समझ कर अपने सिर पर धारण कर लिया। मणि को सिर पर धारणकर राजा ऐसे सुशोभित हुए, जैसे उदय होते हुए चन्द्रमा के साथ कोई पर्वत हो। फिर पुत्रों के शोक से आर्त द्रौपदी भी अनशन छोड़कर उठ गयी।

स्त्रीपर्व

पहला अध्याय : धृतराष्ट्र का विलाप, संजय द्वारा सान्त्वना।

हते पुत्रशते दीनं छिन्नशाखमिव द्रुमम्।
पुत्रशोकाभिसंतप्तं धृतराष्ट्रं महीपतिम्॥ १॥
ध्यानमूकत्वमापन्नं संजयो वाक्यमब्रवीत्।
किं शोचसि महाराज नास्ति शोके सहायता॥ २॥
अक्षौहिण्यो हताश्चाष्टौ दश चैव विशाम्पते।
निर्जनेयं वसुमती शून्या सम्प्रति केवला॥ ३॥
नानादिग्भ्यः समागम्य नानादेश्या नराधिपाः।
सहैव तव पुत्रेण सर्वे वै निधनं गताः॥ ४॥

तब सौ पुत्रों के मारे जाने से कटी शाखाओं वाले वृक्ष के समान दीन बने हुए, पुत्रों के शोक में सब तरफ से संतप्त होते हुए, मौन होकर मन में ही चिन्ता करते हुए, राजा धृतराष्ट्र से संजय ने कहा कि हे महाराज! आप शोक क्यों कर रहे हैं? आपके शोक में आपकी कोई सहायता नहीं कर सकता। हे प्रजानाथ! इस युद्ध में अट्ठारह अक्षौहिणी सेनाएँ मारी गयीं हैं। इस समय यह भूमि लोगों से सूनी और निर्जन हो रही है। अनेक देशों से अनेक देशों के राजालोग आकर आपके पुत्रों के साथ मृत्यु को प्राप्त हो गये हैं।

पितृणां पुत्रपौत्राणां ज्ञातीनां सुहृदां तथा।
गुरूणां चानुपूर्व्येण प्रेतकार्याणि कारय॥ ५॥
तच्छ्रुत्वा करुणं वाक्यं पुत्रपौत्रवधार्दितः।
पपात भुवि दुर्धर्षो वाताहत इव द्रुमः॥ ६॥

धृतराष्ट्रउवाच

हतपुत्रो हतामात्यो हतसर्वसुहृज्जनः।
दुःखं नूनं भविष्यामि विचरन् पृथिवीमिमाम्॥ ७॥
किं नु बन्धुविहीनस्य जीवितेन ममाद्य वै।
लूनपक्षस्य इव मे जराजीर्णस्य पक्षिणः॥ ८॥

अब तो आप अपने पिताओं पुत्रों, पौत्रों, बान्धवों और हितैषियों के क्रमशः अन्त्येष्टि संस्कारों को कराइये। संजय की उस दुखभरी बात को सुनकर पुत्रों और पौत्रों के वध से पीड़ित वे दुर्धर्ष धृतराष्ट्र आँधी से उखाड़े हुए वृक्ष के समान भूमि पर गिर पड़े। धृतराष्ट्र कहने लगे कि मेरे पुत्र, मन्त्री और सारे मित्रलोग मारे गये। अब निश्चय ही मैं इस भूमि पर विचरण करता हुआ दुःख को भोगता रहूँगा। कटे हुए पर वाले पक्षी के समान, बन्धुओं से रहित होकर अब मुझ बुढ़ापे से जर्जर हुए व्यक्ति को जीने से क्या लाभ है?

हतराज्यो हतबन्धुर्हतचक्षुश्च वै तथा।
न भ्राजिष्ये महाप्राज्ञ क्षीणरश्मिरिवांशुमान्॥ ९॥
सभामध्ये तु कृष्णेन यच्छ्रेयोऽभिहितं मम।
अलं वैरेण ते राजन् पुत्रः संगृह्यतामिति॥ १०॥
तच्च वाक्यमकृत्वाहं भृशं तप्यामि दुर्मतिः।
न हि श्रोतास्मि भीष्मस्य धर्मयुक्तं प्रभाषितम्॥ ११॥
दुर्योधनस्य च तथा वृषभस्येव नर्दतः।
दुःशासनवधं श्रुत्वा कर्णस्य च विपर्ययम्॥ १२॥
द्रोणसूर्योपरागं च हृदयं मे विदीर्यते।

मेरा राज्य हरण कर लिया गया, मेरे बन्धु मारे गये, मेरी आँखें भी नष्ट हैं। हे महाप्राज्ञ! अब मैं बिना किरणों वाले सूर्य के समान संसार में प्रकाशित नहीं होऊँगा। श्रीकृष्ण ने सभा में कल्याणकारी बातें मुझे कहीं थीं। उन्होंने कहा था कि राजन्! इस बैरभाव को समाप्त कराओ और अपने पुत्र को अपने बस में करो। मुझ दुर्मति ने उस समय उनकी बात को नहीं माना और अब मैं अत्यधिक सन्तप्त हो रहा हूँ। अब मैं भीष्म की धर्म से युक्त बातें नहीं सुन सकूँगा, मैं अब साँड के समान गर्जते हुए दुर्योधन के वचन भी नहीं सुन सकूँगा। दुश्शासन के वध को सुनकर, कर्ण के विनाश को सुनकर और द्रोणाचार्यरूपी सूर्य को ग्रहण लगा हुआ जानकर मेरा हृदय फटा जा रहा है।

न स्मराम्यात्मनः किंचित् पुरा संजय दुष्कृतम्॥ १३॥
यस्येदं फलमद्येह मया मूढेन भुज्यते।
नूनं व्यपकृतं किंचिन्मया पूर्वेषु जन्मसु॥ १४॥
येन मां दुःखभागेषु धाता कर्मसु युक्तवान्।
परिणामश्च वयसः सर्वबन्धुक्षयश्च मे॥ १५॥
कोऽन्योऽस्ति दुःखिततरो मत्तोऽन्योहि पुमान् भुवि।

हे संजय! मुझे याद नहीं आता कि पहले मैंने कोई बुरा काम किया हो, जिसका फल आज मैं मूर्ख भोग रहा हूँ। निश्चय ही मैंने पिछले जन्मों में ऐसे भयानक पाप किये थे जिनके कारण भगवान् ने मुझे अब इन दुःखभरे कार्यों से जोड़ दिया है। मेरा बुढ़ापा आगया, मेरे सारे बन्धु मारे गये। मुझसे अधिक दुःखी कौन व्यक्ति इस संसार में होगा?

तस्य लालप्यमानस्य बहुशोकं वितन्वतः॥ १६॥
शोकापहं नरेन्द्रस्य संजयो वाक्यमब्रवीत्।
शोकं राजन् व्यपनुद श्रुतास्ते वेदनिश्चयाः॥ १७॥
शास्त्रागमाश्च विविधा वृद्धेभ्यो नृपसत्तम।
सृंजये पुत्रशोकार्ते यदूचुर्मुनयः पुरा॥ १८॥
यथा यौवनजं दर्पमास्थिते तं सुते नृप।
न त्वया सुहृदां वाक्यं ब्रुवतामवधारितम्॥ १९॥
स्वार्थश्च न कृतः कश्चिल्लुब्धेन फलगृद्धिना।
असिनैवैकधारेण स्वबुद्ध्या तु विचेष्टितम्॥ २०॥
प्रायशोऽवृत्तसम्पन्नाः सततं पर्युपासिताः।

इसप्रकार विलाप करते हुए और बहुत शोक को प्रकट करते हुए राजा से संजय ने तब शोक को दूर करने के लिये यह बात कही कि हे राजश्रेष्ठ, हे राजन्! शोक को दूर करो। आपने वेदों के सिद्धान्तों को, शास्त्रों को और आगमों को वृद्धों के मुख से सुना है। आपने सुना है कि पुराने समय में राजा सृंजय के पुत्र के शोक से व्याकुल होने पर मुनियों ने उन्हें क्या कहा था? हे राजन्! आपके पुत्र के जवानी के अभिमान में भरकर मनमाना बर्ताव आरम्भ करने पर आपने अपने हितैषियों के कथन पर ध्यान नहीं दिया। वह लोभी था और सारे राज्य को स्वयं ही भोगना चाहता था। उसने किसी दूसरे को अपने स्वार्थ का साझीदार नहीं बनाया और एक धारवाली तलवार के समान, अपनी ही बुद्धि से काम लिया। उसने जो प्रायः अनाचारी पुरुष थे उन्हीं का लगातार साथ किया।

कुरुवृद्धस्य भीष्मस्य गान्धार्या विदुरस्य च॥ २१॥
द्रोणस्य च महाराज कृपस्य च शरद्वतः।
कृष्णस्य च महाबाहो, व्यासस्यामिततेजसः॥ २२॥
न कृतं तेन वचनं तव पुत्रेण भारत।
अल्पबुद्धिरहंकारी नित्यं युद्धमिति ब्रुवन्॥ २३॥
क्रूरो दुर्मर्षणो नित्यमसंतुष्टश्च वीर्यवान्।
श्रुतवानसि मे धावी सत्यवांश्चैव नित्यदा॥ २४॥
न मुह्यन्तीदृशाः सन्तो बुद्धिमन्तो भवादृशाः।

हे महाराज! कुरुओं के वृद्ध भीष्म पितामह, गान्धारी, विदुर, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, महाबाहु श्रीकृष्ण, अमित तेजस्वी व्यास जी इनमें से हे भारत! आपके पुत्र ने किसी की भी बात नहीं मानी। वह अल्प बुद्धिवाला, अहंकारी, सदा युद्ध की ही बातें करने वाला, क्रूर, अमर्षशील, सदा असन्तोष में रहने वाला और पराक्रमी था। हे महाराज! आप तो विद्वान्, मेधावी, और सदा सत्य में लगे रहने वाले हैं। आप जैसे बुद्धिमान् और साधु व्यक्ति कभी इसप्रकार से मोहित नहीं होते हैं।

न धर्मः सत्कृतः कश्चित् तव पुत्रेण मारिष॥ २५॥
क्षपिताः क्षत्रियाः सर्वे शत्रूणां वर्धितं यशः।
मध्यस्थो हि त्वमप्यासीर्न क्षमं किञ्चिदुक्तवान्॥ २६॥
आदावेव मनुष्येण वर्तितव्यं यथाक्षमम्।
यथा नातीतमर्थं वै पश्चात्तापेन युज्यते॥ २७॥
पुत्रगृद्ध्या त्वया राजन् प्रियं तस्य चिकीर्षितम्।
पश्चात्तापमिमं प्राप्तो न त्वं शोचितुमर्हसि॥ २८॥

हे मान्यवर! आपके पुत्र ने किसी भी धर्म का सम्मान नहीं किया। उसने सारे क्षत्रियों का वध कराया और शत्रुओं के यश को बढ़ाया। आप भी मध्यस्थ बनकर बैठे रहे। आपने उसे उचित बात नहीं कही। मनुष्य को आरम्भ में ही यथोचित व्यवहार करना चाहिये, जिससे उसे बीती हुई बात के लिये पश्चात्ताप न करना पड़े। हे राजन्! पुत्र के प्रति आसक्ति के कारण आपने उसकी ही प्यारी बातों को पूरा करना चाहा। अब आपको पश्चात्ताप करना पड़ रहा है। आप शोक मत कीजिये।

मधु यः केवलं दृष्ट्वा प्रपातं नानुपश्यति।
स भ्रष्टो मधुलोभेन शोचत्येवं यथा भवान्॥ २९॥
अर्थान्न शोचन् प्राप्नोति न शोचन् विन्दते फलम्।

न शोचञ्छ्रियमाप्नोति न शोचन् विन्दते परम्॥ ३०॥
स्वयमुत्पादयित्वाग्निं वस्त्रेण परिवेष्टयन्।
दह्यमानो मनस्तापं भजते न स पण्डितः।
जहीहि मन्युं बुद्ध्या वै धारयात्मानमात्मना॥ ३१॥

जो ऊँचे वृक्ष पर लगे हुए मधु को ही केवल देखता है, वहाँ से गिरने के खतरे को नहीं देखता, वह मधु के लालच में वहाँ से गिरकर उसीतरह शोक करता है, जैसे आप अब कर रहे हैं। शोक करनेवाला अपने अभीष्ट पदार्थों को नहीं प्राप्त करता, नाही उसे किसी फल की प्राप्ति होती है, शोक करनेवाले को ऐश्वर्य की प्राप्ति भी नहीं होती, उसे परमात्मा भी नहीं मिलता। जो व्यक्ति स्वयं आग जलाकर उसे कपड़े में लपेट लेता है, वह जलने पर मन में दुःख को अनुभव करता है, उसे बुद्धिमान् नहीं कहा जाता। इसलिये बुद्धिपूर्वक अपने आपको सँभालते हुए, शोक का त्याग कीजिये।

दूसरा अध्याय : विदुर जी का धृतराष्ट्र को समझाना।

विदुर उवाच

उत्तिष्ठ राजन् किं शेषे धारयात्मानमात्मना।
एषा वै सर्वसत्त्वानां लोकेश्वर परा गतिः॥ १॥
सर्वे क्षयान्ता निचयाः पतनान्ताःसमुच्छ्रयाः।
संयोगा विप्रयोगान्ता मरणान्तं च जीवितम्॥ २॥
अयुध्यमानो म्रियते युध्यमानश्च जीवति।
कालं प्राप्य महाराज न कश्चिदतिवर्तते॥ ३॥
अभावादीनि भूतानि भावमध्यानि भारत।
अभावनिधनान्येव तत्र का परिदेवना॥ ४॥

तब विदुर जी ने धृतराष्ट्र से कहा हे राजन्! उठो। क्यों भूमि पर पड़े हुए हो? अपने आपको सँभालो। हे लोकेश्वर! सारे संसार के प्राणियों की यही अन्तिम गति है। सारे संग्रहों का अन्त विनाश में है। सारी उन्नतियाँ अन्त में पतन को प्राप्त होती हैं। सारे मिलन विरह में समाप्त होते हैं। जो भी जीवित हैं सबका मृत्यु के द्वारा अन्त होगा। हे महाराज! काल अपनी इच्छा से प्राणियों का अन्त करता है, युद्ध करने या न करने से नहीं करता है। जो युद्ध करता है वह जीवित रह जाता है और जो युद्ध नहीं करता है वह मर जाता है। जो भी प्राणी यहाँ इस समय विद्यमान हैं, वे पहले यहाँ नहीं थे, बीच में अब यहाँ दिखाई दे रहे हैं। हे भारत! फिर अन्त में मृत्यु के द्वारा उनका अभाव हो जायेगा। इसलिये इस विषय में दुःख करने की क्या आवश्यकता है?

न शोचन् मृतमन्वेति न शोचन् म्रियते नरः।
एवं सांसिद्धिके लोके किमर्थमनुशोचसि॥ ५॥
यथा वायुस्तृणाग्राणि संवर्तयति सर्वशः।
तथा कालवशं यान्ति भूतानि भरतर्षभ॥ ६॥
एकसार्थप्रयातानां सर्वेषां तत्र गामिनाम्।
यस्य कालः प्रयात्यग्रे तत्र का परिदेवना॥ ७॥
न चाप्येतान् हतान् युद्धे राजञ्शोचितुमर्हसि।
प्रमाणं यदि शास्त्राणि गतास्ते परमां गतिम्॥ ८॥

न तो शोक करने वाला व्यक्ति मरने वाले के साथ जाता है और न मरता है। इसलिये जब संसार की ऐसी ही स्थिति है तो आप क्यों शोक कर रहे हैं? जैसे वायु तिनकों को उड़ाकर इधर से उधर फैंकती रहती है वैसे ही हे भरतश्रेष्ठ! सारे प्राणी काल के वश में होकर आते जाते रहते हैं। जो एक साथ इस संसार में आये हैं, वे सारे ही एक दिन पुनः वहीं जायेंगे। जिसका काल पहले आजाता है, वह पहले चला जाता है, फिर इसमें दुःख क्यों किया जाये। हे राजन्! युद्ध में मारे हुए इन वीरों के लिये आपको शोक नहीं करना चाहिये। यदि आप शास्त्रों को प्रमाण मानते हैं, तो उनके अनुसार उन्होंने उत्तम गति को प्राप्त किया है।

सर्वे स्वाध्यायवन्तो हि सर्वे च चरितव्रताः।
सर्वे चाभिमुखाः क्षीणास्तत्र का परिदेवना॥ ९॥
अदर्शनादापतिताः पुनश्चादर्शनं गताः।
नैते तव न तेषां त्वं तत्र का परिदेवना॥ १०॥
हतोऽपि लभते स्वर्गं हत्वा च लभते यशः।
उभयं नो बहुगुणं नास्ति निष्फलता रणे॥ ११॥
शरीराग्निषु शूराणां जुहुवुस्ते शराहुतीः।
हूयमानाञ्शरांश्चैव सेहुस्तेजस्विनो मिथः॥ १२॥

उन सारे वीरों ने स्वाध्याय किया हुआ था, सबने ही व्रतों का पालन किया था, सारे शत्रु का सामना

करते हुए मारे गये। फिर उनके लिये शोक किस लिये किया जाये? वे सारे अदृश्य जगत से आये थे और फिर अदृश्य जगत में ही चले गये। वे न तो आपके थे और न आप उनके हैं। फिर इस विषय में शोक किस लिये? जो मारा गया है उसे उत्तम गति प्राप्त हुई है, जिसने मारा है, उसे यश प्राप्त हुआ है, दोनों ही अवस्थाएँ बहुत लाभ देने वाली हैं। युद्ध में निष्फलता तो है ही नहीं। उन्होंने शूरवीरों के शरीररूपी अग्नियों में बाणों की आहुति दी है और उन शूरवीरों ने एकदूसरे की शरीराग्नियों में होम किये जानेवाले बाणों को सहन किया है।

एवं राजंस्तवाचक्षे स्वर्ग्यं पन्थानमुत्तमम्।
न युद्धादधिकं किंचित् क्षत्रियस्येह विद्यते॥ १३॥
क्षत्रियास्ते महात्मानः शूराः समितिशोभनाः।
आशिषः परमाः प्राप्ता न शोच्याः सर्व एव हि॥ १४॥
आत्मानमात्मनाऽऽश्वास्य मा शुचः पुरुषर्षभ।
नाद्य शोकाभिभूतस्त्वं कायमुत्स्रष्टुमर्हसि॥ १५॥
मातापितृसहस्राणि पुत्रदारशतानि च।
संसारेष्वनुभूतानि कस्य ते कस्य वा वयम्॥ १६॥

इसलिये हे राजन्! मैं आपसे कहता हूँ कि क्षत्रियों के लिये युद्ध से अधिक उत्तम गति देनेवाला मार्ग और कोई नहीं है। उन्होंने मंगल कामनाओं के अनुसार परमउत्तम लोकों को प्राप्त किया है, इसलिये उन सबके लिये शोक नहीं करना चाहिये। हे पुरुषश्रेष्ठ! तुम स्वयं अपनेआप को धीरज बँधाकर शोक को दूर करो। शोक में भरकर आपको अपने शरीर का त्याग नहीं चाहिये। हम लोगों ने बार बार जन्म लेकर हजारों माता पिताओं, सैकड़ों पुत्रों और स्त्रियों का सुख संसार में अनुभव किया है पर आज वे किसके हैं? और हम किसके हैं?

शोकस्थानसहस्राणि भयस्थानशतानि च।
दिवसे दिवसे मूढमाविशन्ति न पण्डितम्॥ १७॥
न कालस्य प्रियः कश्चिन्न द्वेष्यः कुरुसत्तम।
न मध्यस्थः क्वचित्कालः सर्वं कालः प्रकर्षति॥ १८॥
कालः पचति भूतानि कालः संहरते प्रजाः।
कालः सुप्तेषु जागर्ति कालो हि दुरतिक्रमः॥ १९॥
अनित्यं यौवनं रूपं जीवितं द्रव्यसंचयः।
आरोग्यं प्रियसंवासो गृध्येदेषु न पण्डितः॥ २०॥

इस संसार में जीवन बिताते हुए हजारों शोक के कारण और सैकड़ों भय के कारण मूर्ख व्यक्ति को ही परेशान करते हैं, समझदार व्यक्ति को नहीं करते। हे कुरुश्रेष्ठ! मृत्यु के लिये न तो कोई प्रिय है और न शत्रु है। मृत्यु उदासीन अर्थात् तटस्थ भी नहीं है। मृत्यु सबको अपने पास खींच लेती है। मृत्यु सारे प्राणियों को पकाती रहती है। सबके सो जाने पर मृत्यु जागती रहती है। मृत्यु का उल्लंधन कोई नहीं कर सकता। यौवन, रूप, जीवन, धन का संग्रह, आरोग्य और प्रिय व्यक्तियों के साथ निवास, ये सारी बातें अनित्य हैं, इसलिये विद्वान् व्यक्ति को इनमें आसक्त नहीं होना चाहिये।

न जानपदिकं दुःखमेकः शोचितुमर्हसि।
अप्यभावेन युज्येत तच्चास्य न निवर्तते॥ २१॥
अशोचन् प्रतिकुर्वीत यदि पश्येत् पराक्रमम्।
भैषज्यमेतद् दुःखस्य यदेतन्नानुचिन्तयेत्॥ २२॥
चिन्त्यमानं हि न व्येति भूयश्चापि प्रवर्धते।
अनिष्टसम्प्रयोगाच्च विप्रयोगात् प्रियस्य च॥ २३॥
मानुषा मानसैर्दुःखैर्दह्यन्ते चाल्पबुद्धयः।

जो दुःख सारे देश पर आकर पड़ा है, उसमें आपको अकेले ही शोक नहीं करना चाहिये। शोक करते करते यदि कोई मर जाये, तो भी उसका वह शोक दूर नहीं होता है। यदि अपने में पराक्रम हो तो शोक न करते हुए शोक के कारण को दूर करने का प्रयत्न करना चाहिये। दुःख को दूर करने की दवाई यही है कि दुख का चिन्तन न किया जाये। दुःख का चिन्तन करने से दुःख दूर नहीं होता अपितु बढ़ जाता है। मन्दबुद्धिलोग प्रिय पदार्थों का संयोग होने पर मानसिक दुःखों से जलने लगते हैं।

नार्थो न धर्मो न सुखं यदेतदनुशोचसि॥ २४॥
न च नापैति कार्यार्थात्त्रिवर्गाच्चैव हीयते।
प्रज्ञया मानसं दुःखं हन्याच्छारीरमौषधैः॥ २५॥
एतद् विज्ञानसामर्थ्यं न बालैः समतामियात्।

यह जो आप शोक कर रहे हैं, इससे न तो अर्थ की प्राप्ति है, न धर्म की प्राप्ति है, और न ही यह सुख का साधक है। इससे व्यक्ति अपने कर्त्तव्यपथ से भ्रष्ट हो जाता है और धर्म, अर्थ तथा काम तीनों वर्गों से भी रहित हो जाता है। मनुष्य को चाहिये कि शरीर के दुःख को ओषधि के द्वारा दूर करे और मानसिक दुःख को अपनी बुद्धि से

दूर करे। यही विज्ञान की शक्ति है। बच्चों के समान अविवेक पूर्ण व्यवहार नहीं करना चाहये।

शयानं चानुशेते हि तिष्ठन्तं चानुतिष्ठति॥ २६॥
अनुधावति धावन्तं कर्म पूर्वकृतं नरम्।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः॥ २७॥
आत्मैव ह्यात्मनः साक्षी कृतस्यापकृतस्य च।
शुभेन कर्मणा सौख्यं दुःखं पापेन कर्मणा॥ २८॥
कृतं भवति सर्वत्र नाकृतं विद्यते क्वचित्।
न हि ज्ञानविरुद्धेषु बह्वपायेषु कर्मसु॥ २९॥
मूलघातिषु सज्जन्ते बुद्धिमन्तो भवद्विधाः।

पहले किये कार्यों का फल सदा मनुष्य के साथ लगा रहता है। जब वह सोता है तो वह भी उसके साथ सोता है। जब वह बैठता है, तो वह भी बैठ जाता है और जब वह दौड़ता है, तो वह भी उसके पीछे दौड़ता है। मनुष्य स्वयं ही अपना मित्र और स्वयं ही अपना शत्रु है, वह अपने द्वारा किये गये भलेबुरे कर्मों का स्वयं ही साक्षी है। अच्छे कार्यों से सुख है और पापकर्मों से दुःख मिलता है। सब जगह किये हुए कर्मों का ही फल मिलता है, न किये कर्मों का फल नहीं मिलता। आप जैसे बुद्धिमान् व्यक्ति ऐसे ज्ञानविरुद्ध विनाशकारी बहुतसे कार्यों में, जो शरीर को भी नष्ट करते हैं, आसक्त नहीं होते हैं।

यतो यतो मनो दुःखात् सुखाद् वा विप्रमुच्यते॥ ३०॥
ततस्ततो नियम्यैतच्छान्ति विन्देत वै बुधः।
अशाश्वतमिदं सर्वं चिन्त्यमानं नरर्षभ॥ ३२॥
कदलीसंनिभो लोकः सारो ह्यस्य न विद्यते।

बुद्धिमान् व्यक्ति को चाहिये कि जिन जिन साधनों से मन दुःख या सुख से मुक्त हो जाता है, उन्हीं उन्हीं में मन को वश में करके लगाये। तभी वह शान्ति को प्राप्त करता है। हे नरश्रेष्ठ! यदि विचार किया जाये तो यह सारा जगत अनित्य है। केले के वृक्ष के समान सारहीन है। इसमें कुछ भी सार नहीं है।

यदा प्राज्ञाश्च मूढाश्च धनवन्तोऽथ निर्धनाः॥ ३२॥
सर्वे पितृवनं प्राप्य स्वपन्ति विगतज्वराः।
निर्मांसैरस्थिभूयिष्ठैर्गात्रैः स्नायुनिबन्धनैः॥ ३३॥
किं विशेषं प्रपश्यन्ति तत्र तेषां परे जनाः।
येन प्रत्यवगच्छेयुः कुलरूपविशेषणम्॥ ३४॥
कस्मादन्योन्यमिच्छन्ति विप्रलब्धधियो नराः।
गृहाणीव हि मर्त्यानामाहुर्देहानि पण्डिताः॥ ३५॥
कालेन विनियुज्यन्ते सत्त्वमेकं तु शाश्वतम्।

जब अन्त में सारे विद्वान्, मूर्ख, धनवान् और निर्धन उसी श्मशान भूमि में निश्चिन्त होकर सो जाते हैं, तब उनके माँसरहित नाड़ियों से बँधे अस्थि पंजर शरीरों को देखकर उनके अपने तथा दूसरे व्यक्ति उनमें क्या विशेष बात देखते हैं? जो उनके कुल और रूप की विशेषता को बताती है? फिर वे क्यों एकदूसरे को चाहते हैं? इसलिये क्योंकि उन सबकी बुद्धि ठगी गयी है। पण्डितलोग शरीरों को मरणधर्मा प्राणियों के घर के समान बताते हैं, क्योंकि समय आने पर सारे नष्ट होजाते हैं। केवल उनके अन्दर रहनेवाली आत्मा ही सदा रहती है।

यथा जीर्णमजीर्णं वा वस्त्रं त्यक्त्वा तु पूरुषः॥ ३६॥
अन्यद् रोचयते वस्त्रमेवं देहाः शरीरिणाम्।
यथा च मृन्मयं भाण्डं चक्रारूढं विपद्यते॥ ३७॥
किंचित् प्रक्रियमाणं वा कृतमात्रमथापि वा।
छिन्नं वाप्यवरोप्यन्तमवतीर्णमथापि वा॥ ३८॥
आर्द्रं वाप्यथवा शुष्कं पच्यमानमथापि वा।
उत्तार्यमाणमापाकादुद्धृतं चापि भारत॥ ३९॥
अथवा परिभुज्यन्तमेवं देहाः शरीरिणाम्।

जैसे फटे हुए या न फटे हुए वस्त्र को छोड़कर दूसरे वस्त्रों को पहनना मनुष्य पसन्द करता है, वैसे ही शरीर धारण करने वालों के द्वारा शरीर धारण किये जाते हैं। जैसे मिट्टी के कुछ बर्तन बनाये जाते समय, चाक पर चढ़ाये जाते समय ही नष्ट होजाते हैं, कुछ थोड़ा बनने पर नष्ट होजाते हैं, कुछ पूरा बनने पर, कुछ सूत से काट देने पर, कुछ चाक से उतारने के समय, कुल गीली या सूखी अवस्था में, कुछ पकाये जाते समय, कुछ आवाँ से उतारते समय, कुछ पाकस्थान से उठाकर लेजाते समय और कुछ उपयोग में लाते समय फूट जाते हैं, यही अवस्था शरीरधारियों की भी होती है।

गर्भस्थो वा प्रसूतो वाप्यथ वा दिवसान्तरः॥ ४०॥
अर्धमासगतो वापि मासमात्रगतोऽपि वा।
संवत्सरगतो वापि द्विसंवत्सर एव वा॥ ४१॥
यौवनस्थोऽथ मध्यस्थो वृद्धो वापि विपद्यते।

प्राक्कर्मभिस्तु भूतानि भवन्ति न भवन्ति च॥ ४२॥
एवं सांसिद्धिके लोके किमर्थमनुतप्यसे।

कोई गर्भ में रहते हुए, कोई जन्म लेने के उपरान्त, कोई कुछ दिनों का होने पर, कोई आधे मास का होने पर, कोई एक मास का होने पर, कोई एक वर्ष का होने पर, कोई दो वर्ष का होने पर, और कोई युवा होने पर, कोई प्रौढ़ होने पर, और कोई वृद्ध होने पर मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। प्राणी पूर्वजन्म के कर्मों के अनुसार इस जन्म में रहते हैं और नहीं रहते हैं। जब संसार का यह नियम है तो तुम किसलिये शोक करते हो?

यथा तु सलिलं राजन् क्रीडार्थमनुसंतरत्॥ ४३॥
उन्मज्जेच्च निमज्जेच्च किंचित् सत्त्वं नराधिप।
एवं संसारगहने उन्मज्जननिमज्जने॥ ४४॥
कर्मभोगेन बध्यन्ते क्लिश्यन्ते चाल्पबुद्धयः।
ये तु प्राज्ञाः स्थिताः सत्त्वे संसारेऽस्मिन् हितैषिणः।
समागमज्ञा भूतानां ते यान्ति परमां गतिम्॥ ४५॥

हे राजन्! हे नराधिप! जैसे कोई प्राणी क्रीड़ा के लिये जल में तैरता हुआ, कभी जल के ऊपर आता है और कभी जल के अन्दर चला जाता है, वैसे ही इस संसाररूपी अगाध सागर में प्राणी डूबते और उतराते अर्थात् जन्म लेते और मरते रहते हैं। मन्दबुद्धि व्यक्ति ही कर्मभोग से बँधते और कष्ट पाते हैं। जो बुद्धिमान् व्यक्ति संसार में सत्व गुणों से युक्त होकर रहते हैं, सबका हित चाहते हैं और प्राणियों के समागम को कर्म के अनुसार जानते हैं, वे उत्तम गति को प्राप्त होते हैं।

तीसरा अध्याय : विदुर जी का धृतराष्ट्र को समझाना।

धृतराष्ट्र उवाच

कथं संसारगहनं विज्ञेयं वदतां वर।
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं तत्त्वमाख्याहि पृच्छतः॥ १॥

विदुरउवाच

अत्र ते वर्तयिष्यामि नमस्कृत्वा स्वयंभुवे।
यथा संसारगहनं वदन्ति परमर्षयः॥ २॥
कश्चिन्महति कान्तारे वर्तमानो द्विजः किल।
महद् दुर्गमनुप्राप्तो वनं क्रव्यादसंकुलम्॥ ३॥
तदस्य दृष्ट्वा हृदयमुद्वेगमगमत् परम्।
अभ्युच्छ्यश्च रोम्णां वै विक्रियाश्च परंतप॥ ४॥

तब धृतराष्ट्र ने विदुर जी से पूछा कि हे वक्ताओं में श्रेष्ठ! इस गहन संसार का स्वरूप कैसा है? यह मैं सुनना चाहता हूँ। तुम इसके तत्व अर्थात् यथार्थ को मेरे पूछने के अनुसार बताओ। तब विदुर जी ने कहा कि हे राजन्! मैं परमात्मा को नमस्कार करके गहन संसार के स्वरूप का उसी प्रकार से वर्णन करता हूँ, जिसप्रकार से बड़े बड़े ऋषि करते हैं। फिर उन्होंने कहा कि— किसी महान् वन में एक ब्राह्मण जा रहा था। चलते हुए वह वन के उस भयंकर दुर्गम स्थान में जा पहुँचा, जो अनेक हिंसक पशुओं से भरा हुआ था। उस स्थान को देखकर उसके हृदय में बड़ी घबराहट हुई। हे परंतप! उसके शरीर के रोंगटे खड़े हो गये और मन में भी तरह तरह के विकार उत्पन्न होने लगे।

स तद् वनं व्यनुसरन् सम्प्रधावन्नितस्ततः।
वीक्षमाणो दिशः सर्वाः शरणं क्व भवेदिति॥ ५॥
स तेषां छिद्रमन्विच्छन् प्रद्रुतो भयपीडितः।
न च निर्याति वै दूरं न वा तैर्विप्रमोच्यते॥ ६॥
अथापश्यद् वनं घोरं समन्ताद् वागुरावृतम्।
बाहुभ्यां सम्परिक्षिप्तं स्त्रिया परमघोरया॥ ७॥
पञ्चशीर्षधरैर्नागैः शैलैरिव समुन्नतैः।
नभःस्पृशैर्महावृक्षैः परिक्षिप्तं महावनम्॥ ८॥

मुझे इस भय से छुड़ाने का कोई सहारा मिल जाये, इस इच्छा से वह वन में विचरता हुआ, इधर उधर दौड़ता रहा और सारी दिशाओं में देखता रहा। वह उन हिंसक पशुओं से बचाव को चाहता हुआ, भय से पीड़ित होकर दौड़ने लगा, पर न तो वह उस स्थान से दूर जा सका और न उन हिंसक पशुओं ने उसका पीछा छोड़ा। फिर उसने देखा कि वह भयानक वन सब तरफ से एक जाल से घिरा हुआ है और एक बड़ी भयानक स्त्री ने उसे अपनी दोनों बाँहों से बाँधा हुआ है। वह विशाल वन पर्वतों के समान ऊँचे और पाँच सिर वाले साँपों से, और आकाश को छूने वाले विशाल वृक्षों से भरा हुआ है।

वनमध्ये च तत्राभूदुदपानः समावृतः।
वल्लीभिस्तृणछन्ना- भिर्दृढाभिरभिसंवृतः॥ ९॥
पपात स द्विजस्तत्र निगूढे सलिलाशये।
विलग्नश्चाभवत् तस्मिन् लतासंतानसंकुले॥ १०॥
पनसस्य यथा जातं वृन्तबद्धं महाफलम्।
स तथा लम्बते तत्र ह्यूर्ध्वपादो ह्यधःशिराः॥ ११॥

उस वन में एक कूआँ था, जो घासों से आच्छादित, दृढ़ लताओं के द्वारा सब तरफ से ढका हुआ था, वह ब्राह्मण उस छिपे हुए गहरे कूएँ में गिर पड़ा, पर उस लताओं के फैलाव में अटक कर ऊपर ही लटका रह गया, नीचे तक नहीं गिरा। जैसे कटहल का विशाल फल अपनी डाली से बँधा हुआ लटकता रहता है, वैसे ही वह ब्राह्मण पैर ऊपर और सिर नीचे की अवस्था में कूएँ में लटका हुआ था।

अथ तत्रापि चान्योऽस्य भूयो जात उपद्रवः।
कूपमध्ये महानागमपश्यत महाबलम्॥ १२॥
कूपवीनाहवेलायामपश्यत महागजम्।
षड्वक्त्रं कृष्णशुक्लं च द्विषट्कपदचारिणम्॥ १३॥
क्रमेण परिसर्पन्तं वल्लीवृक्षसमावृतम्।
तस्य चापि प्रशाखासु वृक्षशाखावलम्बिनः॥ १४॥
नानारूपा मधुकरा घोररूपा भयावहाः।
आसते मधु संवृत्य पूर्वमेव निकेतजाः॥ १५॥

वहाँ भी उसके साथ एक दूसरा उपद्रव प्रस्तुत हो गया। उसने कूएँ के अन्दर एक महाबली विशाल साँप को देखा और यह देखा कि कूएँ के ऊपरी किनारे पर एक विशाल हाथी खड़ा हुआ है, उस हाथी के छः मुख हैं, वह काले और सफेद रंग का है तथा बारह पैरों से चलता है। लताओं और वृक्ष की शाखाओं से घिरे हुए उस कूएँ में वह ब्राह्मण धीरे धीरे नीचे की तरफ बढ़ता जा रहा था। जिस वृक्ष की शाखा का सहारा लेकर वह लटका हुआ था, उसी वृक्ष की दूसरी छोटी डालों पर पहले से ही बहुत सारी भयंकर मधुमक्खियों के अनेकरूप वाले छत्ते लटक रहे थे। जिनमें मधु को घेरकर वे मक्खियाँ बैठी हुईं थीं।

तेषां मधूनां बहुधा धारा प्रस्रवते तदा।
आलम्बमानः स पुमान् धारां पिबति सर्वदा॥ १६॥
न चास्य तृष्णा विरता पिबमानस्य संकटे।
अभीप्सति तदा नित्यमतृप्तः स पुनः पुनः॥ १७॥
न चास्य जीविते राजन् निर्वेदः समजायत।
तत्रैव च मनुष्यस्य जीविताशा प्रतिष्ठिता॥ १८॥

उन मधु के छत्तों से मधु की धारा गिर रही थी। लटकता हुआ वह व्यक्ति उस शहद की धार को ही हर समय पीने लगा। संकट में पड़े हुए होने पर भी उसे वह शहद अच्छा लगने लगा। वह सदा उस शहद को ही बार बार पीने में लगा रहता था, पर उसकी तृप्ति नहीं होती थी और वह उसे ही पीते रहना चाहता था। हे राजन्! उस परिस्थिति में भी उस ब्राह्मण को अपने जीवन के प्रति वैराग्य नहीं हुआ। शहद को पीते रहने के लिये ही उसमें जीवित रहने की आशा विद्यमान थी।

कृष्णाः श्वेताश्च तं वृक्षं कुट्टयन्ति च मूषिकाः।
व्यालैश्च वनदुर्गान्ते स्त्रिया च परमोग्रया॥ १९॥
कूपाधस्ताच्च नागेन वीनाहे कुञ्जरेण च।
वृक्षप्रपाताच्च भयं मूषिकेभ्यश्च पञ्चमम्॥ २०॥
मधुलोभान्मधुकरैः षष्ठमाहुर्महद् भयम्।
एवं स वसते तत्र क्षिप्तः संसारसागरे॥ २१॥
न चैव जीविताशायां निर्वेदमुपगच्छति।

जिस वृक्ष के सहारे वह लटका हुआ था उसे काले और सफेद रंग के चूहे लगातार काट रहे थे। उस व्यक्ति को पहले तो वन के दुर्गम स्थानों में विद्यमान साँपों से भय था, दूसरा भय उस भयानक स्त्री से था, तीसरा भय कूएँ में विद्यमान साँप से था, चौथा भय कूएँ के किनारे पर खड़े हुए हाथी से था, पाँचवाँ भय चूहों के काट देने से वृक्ष के गिर जाने का था और छठा भय शहद की मक्खियों से प्राप्त होसकता था। उस ब्राह्मण के समान ही, मनुष्य भी संसारसागर में फैंका हुआ यहाँ रहता है और अनेकप्रकार के संकटों के होने पर भी जीवन की आशा रखता है, उसे जीवन से वैराग्य नहीं होता।

उपमानमिदं राजन् मोक्षविद्भिरुदाहृतम्॥ २२॥
सुकृतं विन्दते येन परलोकेषु मानवः।
उच्यते यत् तु कान्तारं महासंसार एव सः॥ २३॥
वनं दुर्गं हि यच्चैतत् संसारगहनं हि तत्।
ये च ते कथिता व्याला व्याधयस्ते प्रकीर्तिताः॥ २४॥
या सा नारी बृहत्काया अध्यतिष्ठत तत्र वै।
तामाहुस्तु जरां प्राज्ञा रूपवर्णविनाशिनीम्॥ २५॥

हे राजन्! यह कथा मोक्ष के विद्वानों के द्वारा उदाहरण के लिये बतायी गयी है, जिससे मनुष्य इस पर आचरणकर परलोक में उत्तम गति को प्राप्त करे। इस कथा में जिसे विशाल वन कहा गया है, वह विशाल संसार है, वन की दुर्गमता ही संसार का गहन स्वरूप है। जिन्हें साँप बताया गया है, वे तरह तरह की बीमारियाँ है, जो विशालकाय स्त्री खड़ी हुई थी, वह रूप और रंग को नष्ट करने वाली वृद्धावस्था है।

यस्तत्र कूपो नृपते स तु देहः शरीरिणाम्।
यस्तत्र वसतेऽधस्तान्महाहिः काल एव सः।। २६।।
अन्तकः सर्वभूतानां देहिनां सर्वहार्यसौ।
कूपमध्ये च या जाता वल्ली यत्र स मानवः।। २७।।
प्रताने लम्बते लग्नो जीविताशा शरीरिणाम्।
स यस्तु कूपवीनाहे तं वृक्षं परिसर्पति।। २८।।
षड्वक्त्रः कुञ्जरो राजन् स तु संवत्सरः स्मृतः।

हे राजन्! जो इस कथा में कूआँ है, वह शरीर धारियों का शरीर है, जो विशाल साँप कूएँ के नीचे रहता है, वह काल अर्थात् मृत्यु है वह सारे प्राणियों का अन्त करनेवाला और उनका सबकुछ हर लेनेवाला है। कूएँ के मध्य भाग में जो लता है, जिसे पकड़कर वह मनुष्य लटक रहा है, वह लोगों के जीवन की आशा है। हे राजन्! कूएँ के मुख बन्ध पर वृक्ष की तरफ आनेवाला जो हाथी है जिसके छः मुख हैं, वह वर्ष है।

मुखानि ऋतवो मासाः पादा द्वादश कीर्तिताः।। २९।।
ये तु वृक्षं निकृन्तन्ति मूषिकाः सततोत्थिताः।
रात्र्यहानि तु तान्याहुर्भूतानां परिचिन्तकाः।। ३०।।
ये ते मधुकरास्तत्र कामास्ते परिकीर्तिताः।
यास्तु ता बहुशो धाराः स्रवन्ति मधुनिस्रवम्।। ३१।।
तांस्तु कामरसान् विद्याद् यत्र मज्जन्ति मानवाः।
एवं संसारचक्रस्य परिवृत्तिं विदुर्बुधाः।
येन संसारचक्रस्य पाशांश्छिन्दन्ति वै बुधाः।। ३२।।

छः ऋतुएँ ही हाथी के छः मुख और बारह मास ही बारह पैर हैं, जो लगातार सफेद और काले रंग के चूहे वृक्ष को काट रहे हैं, वे ही विद्वानों ने दिन और रात के रूप में बताये हैं। जो मधुमक्खियाँ हैं, वे तरह तरह की कामनाएँ हैं। जो मधु की बहुतसी धाराएँ गिर रही हैं, उन्हें काम रस जानना चाहिये, जिसमें मनुष्य डूब जाते हैं। बुद्धिमानों ने संसारचक्र की गति को इसप्रकार समझा है। इसलिये वे वैराग्य द्वारा इसके बन्धनों को काट देते हैं।

चौथा अध्याय : विदुर जी का धृतराष्ट्र को समझाना।

विदुर उवाच

शृणु भूयः प्रवक्ष्यामि मार्गस्यैतस्य विस्तरम्।
यच्छ्रुत्वा विप्रमुच्यन्ते संसारेभ्यो विचक्षणाः।। १।।
यथा तु पुरुषो राजन् दीर्घमध्वानमास्थितः।
क्वचित् क्वचिच्छ्रमाच्छ्रान्तः कुरुते वासमेव वा।। २।।
एवं संसारपर्याये गर्भवासेषु भारत।
कुर्वन्ति दुर्बुधा वासं मुच्यन्ते तत्र पण्डिताः।। ३।।
तस्मादध्वानमेवैतमाहुः शास्त्रविदो जनाः।
यत्तु संसारगहनं वनमाहुर्मनीषिणः।। ४।।

विदुर जी ने कहा कि आप सुनिये। मैं पुनः इस मार्ग का विस्तार से वर्णन करता हूँ, जिसे सुनकर विद्वान् लोग संसार से छूट जाते हैं। हे राजन्! जैसे लम्बे मार्ग पर यात्रा करनेवाला व्यक्ति श्रम से परेशान होकर कहींकहीं ठहरकर आराम करता है, उसीप्रकार संसारयात्रा में चलते हुए अज्ञानीलोग गर्भवासरूपी विश्राम को किया करते हैं, पर पण्डितलोग उससे छूट जाते हैं। शास्त्र को जाननेवाले लोगों ने गर्भवास को मार्ग का स्थान बताया है और गहन संसार को गहन वन कहा है।

सोऽयं लोकसमावर्तो मर्त्यानां भरतर्षभ।
चराणां स्थावराणां च न गृध्येत् तत्र पण्डितः।। ५।।
शारीरा मानसाश्चैव मर्त्यानां ये तु व्याधयः।
प्रत्यक्षाश्च परोक्षाश्च ते व्यालाः कथिता बुधैः।। ६।।
क्लिश्यमानाश्च वैर्नित्यं वार्यमाणाश्च भारत।
स्वकर्मभिर्महाव्यालै- र्नोद्विजन्त्यल्पबुद्धयः।। ७।।
अथापि तैर्विमुच्येत व्याधिभिः पुरुषो नृप।
आवृणोत्येव तं पश्चाज्जरा रूपविनाशिनी।। ८।।
शब्दरूपरसस्पर्शैर्गन्धैश्च विविधैरपि।

मज्जमांसमहापङ्के निरालम्बे समन्ततः॥ ९॥
संवत्सराश्च मासाश्च पक्षाहोरात्रसंधयः।
क्रमेणास्योपयुञ्जन्ति रूपमायुस्तथैव च॥ १०॥
एते कालस्य निधयो नैताञ्जानन्ति दुर्बुधाः।

हे भरतश्रेष्ठ! मरणशील स्थावर और जंगम प्राणियों का यह आवागमनरूपी संसारचक्र है। विद्वान् लोग इसमें आसक्त नहीं होते हैं। मनुष्यों की जो शारीरिक, मानसिक प्रत्यक्ष और परोक्ष व्याधियाँ हैं, वही विद्वानों ने हिंसक प्राणी और साँप के रूप में बताये हैं। हे भारत! अपने कर्मरूपी महान् हिंसक प्राणियों से रोके जाने और क्लेश दिये जाने पर भी, मूर्ख व्यक्ति संसार से उद्विग्न और विरक्त नहीं होते। हे राजन्! यदि मनुष्य शब्द, रूप, रस, स्पर्श और गन्धयुक्त इन बीमारियों से छूट भी जाये, तो भी सब तरफ मज्जा, माँस आदि की महान् कीचड़ से भरे हुए कूएँ में अधर लटकते हुए उसे रूप का विनाश करनेवाली वृद्धावस्था घेर ही लेती है। वर्ष, मास, पक्ष, रात, दिन और सन्ध्याएँ ये सब बारी बारी से रूप और आयु का शोषण करती रहती हैं क्योंकि ये काल के प्रतिनिधि हैं। दुर्बुद्धि मनुष्य इस बात को नहीं समझते।

रथः शरीरं भूतानां सत्त्वमाहुस्तु सारथिम्॥ ११॥
इन्द्रियाणि हयानाहुः कर्मबुद्धिस्तु रश्मयः।
तेषां हयानां यो वेगं धावतामनुधावति॥ १२॥
स तु संसारचक्रेऽस्मिंश्चक्रवत् परिवर्तते।
यस्तान् संयमते बुद्ध्या संयतो न निवर्तते॥ १३॥
ये तु संसारचक्रेऽस्मिंश्चक्रवत् परिवर्तिते।
भ्रममाणा न मुह्यन्ति संसारे न भ्रमन्ति ते॥ १४॥

प्राणियों के शरीर को रथ बताया गया है। सत्वगुण से युक्त जो बुद्धि है, वह सारथि है, इन्द्रियाँ घोड़े हैं और मन लगाम है। जो व्यक्ति स्वेच्छापूर्वक दौड़ते हुए उन घोड़ों के वेग के पीछे ही दौड़ते रहते हैं, वे इस संसारचक्र में चक्र के समान घूमते रहते हैं पर जो व्यक्ति संयमशील होकर बुद्धि से उन इन्द्रियरूपी घोड़ों को अपने वश में रखते हैं, वे पुनः इस संसार में नहीं लौटते। चक्र के समान घूमते हुए इस संसार में, जो घूमते हुए भी मोहित नहीं होते, उन्हें संसार में भटकना नहीं पड़ता।

संसारे भ्रमतां राजन् दुःखमेतद्धि जायते।
तस्मादस्य निवृत्त्यर्थं यत्नमेवाचरेद् बुधः॥ १५॥
उपेक्षा नात्र कर्तव्या शतशाखः प्रवर्धते।
यतेन्द्रियो नरो राजन् क्रोधलोभनिराकृतः॥ १६॥
संतुष्टः सत्यवादी यः स शान्तिमधिगच्छति।
याम्यमाहू रथं ह्येनं मुह्यन्ते येन दुर्बुधाः॥ १७॥
स चैतत् प्राप्नुयाद् राजन् यत् त्वं प्राप्तो नराधिप।

हे राजन्! संसार में भटकनेवालों को तो यह दुःख प्राप्त होता ही है, इसलिये बुद्धिमान् व्यक्ति को इसकी निवृत्ति के लिये प्रयत्न करना चाहिये। इसकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये। नहीं तो यह सैकड़ों शाखाओं के रूप में फैल जाता है। हे राजन्! जो व्यक्ति जितेन्द्रिय होता है, क्रोध और लोभ से शून्य, सन्तुष्ट और सत्यवादी होता है, वह शान्ति को प्राप्त होता है। हे राजन्! हे नराधिप! इस संसार को परलोक की प्राप्ति कराने वाला रथ कहा गया है, जिसमें बैठकर मूर्खलोग मोहित हो जाते हैं। जो दुःख आपको प्राप्त हुआ है, उसीप्रकार का दुःख अज्ञानी लोगों को प्राप्त होता है।

अनुतर्षुलमेवैतद् दुःखं भवति मारिष॥ १८॥
राज्यनाशं सुहृन्नाशं सुतनाशं च भारत।
साधुः परमदुःखानां दुःखभैषज्यमाचरेत्॥ १९॥
ज्ञानौषधमवाप्येह दूरपारं महौषधम्।
छिन्द्याद् दुःखमहाव्याधिं नरः संयतमानसः॥ २०॥
न विक्रमो न चाप्यर्थो न मित्रं न सुहृज्जनः।
तथोन्मोचयते दुःखाद् यथाऽऽत्मा स्थिरसंयमः॥ २१॥
तस्मान्मैत्रं समास्थाय शीलमापद्य भारत।
दमस्त्यागोऽप्रमादश्च ते त्रयो ब्रह्मणो हयाः॥ २२॥
शीलरश्मिसमायुक्तः स्थितो यो मानसे रथे।
त्यक्त्वा मृत्युभयं राजन् ब्रह्मलोकं स गच्छति॥ २३॥

हे भारत! हे मान्यवर! जो सन्तुष्ट नहीं हैं, उसी को राज्यनाश, मित्रनाश और पुत्रनाश आदि दुःख प्राप्त होते हैं। साधु व्यक्ति को चाहिये कि वह परम दुर्लभ ज्ञानरूपी ओषधि को प्राप्त करे और अपने मन को वश में करके बड़े बड़े दुःखों की चिकित्सा करे। ज्ञानरूपी ओषधि से वह दुःख रूपी महान् व्याधि का नाश कर दे। दुःख से न तो पराक्रम, न धन, न मित्र और न हितैषी व्यक्ति उतना छुड़ा सकते हैं जितना संयम द्वारा स्थिर किया हुआ अपना मन मुक्ति दिला सकता है। इसलिये मैत्रीभाव

को रखते हुए शील को प्राप्त करना चाहिये। दम, त्याग और अप्रमाद ये तीनों ब्रह्म अर्थात् परमात्मा के मार्ग पर ले जानेवाले घोड़े हैं। जो व्यक्ति शीलरूपी लगाम को पकड़कर मनरूपी रथ पर जिसमें ये तीनों घोड़े जुते हुए हैं, सवार होता है, वह हे राजन्! मृत्यु के भय को छोड़कर परमात्मा के लोक में चला जाता है।

न ह्यात्मनः प्रियतरं किंचिद् भूतेषु निश्चितम्।
अनिष्टं सर्वभूतानां मरणं नाम भारत॥ २४॥
तस्मात् सर्वेषु भूतेषु दया कार्या विपश्चिता।
नानामोहसमायुक्ता बुद्धिजालेन संवृताः॥ २५॥
असूक्ष्मदृष्टयो मन्दा भ्राम्यन्ते तत्र तत्र ह।
सुसूक्ष्मदृष्टयो राजन् व्रजन्ति ब्रह्म शाश्वतम्॥ २६॥

संसार में निश्चितरूप से प्राणियों को अपनी आत्मा से प्यारी कोई वस्तु नहीं है, इसलिये हे भारत! मरना सबको बुरा लगता है। इसलिये बुद्धिमान् व्यक्ति को सारे प्राणियों पर दया करनी चाहिये। जो मोटी बुद्धिवाले मूर्ख व्यक्ति अनेक प्रकार के मोह में फँसे हुए हैं, जिन्हें बुद्धि के जाल ने बाँध रखा है, वे अलग अलग योनियों में भटकते रहते हैं, किन्तु जो अत्यन्त सूक्ष्म बुद्धि वाले होते हैं, वे हे राजन्! शाश्वत् ब्रह्मलोक को प्राप्त हो जाते हैं।

पाँचवाँ अध्याय : धृतराष्ट्र का कुरुक्षेत्र को प्रस्थान। पाण्डवों से भेंट।

विदुरस्य तु तद् वाक्यं श्रुत्वा तु पुरुषर्षभः।
युज्यतां यानमित्युक्त्वा पुनर्वचनमब्रवीत्॥ १॥
शीघ्रमानय गान्धारीं सर्वाश्च भरतस्त्रियः।
वधूं कुन्तीमुपादाय याश्चान्यास्तत्र योषितः॥ २॥
गान्धारी पुत्रशोकार्ता भर्तुर्वचननोदिता।
सह कुन्त्या यतो राजा सह स्त्रीभिरुपाद्रवत्॥ ३॥
ताः समासाद्य राजानं भृशं शोकसमन्विताः।
आमन्त्र्यान्योन्यमीयुः स्म भृशमुच्चुक्रुशुस्ततः॥ ४॥

तब विदुर जी की बातों को सुनकर पुरुष श्रेष्ठ धृतराष्ट्र ने रथों को तैयार करो यह आज्ञा देकर, कहा कि गान्धारी को बुलाओ, सारी भरतकुल की स्त्रियों को, वधु कुन्ती तथा और जो भी वहाँ स्त्रियाँ हैं, सबको साथ लेकर आओ। तब पुत्रों के शोक से पीड़ित गान्धारी पति के वचनों से प्रेरित होकर कुन्ती तथा अन्य स्त्रियों के साथ जहाँ राजा थे, वहाँ उपस्थित होगयी। शोक से अत्यन्त भरी, वे स्त्रियाँ, राजा के समीप एकदूसरे को पुकार पुकारकर तथा गले लग लगकर जोर जोर से रोने लगीं।

ततः प्रणादः संजज्ञे सर्वेषु कुरुवेश्मसु।
प्रकीर्य केशान् सुशुभान् भूषणान्यवमुच्य च॥ ५॥
एकवस्त्रधरा नार्यः परिपेतुरनाथवत्।
श्वेतपर्वतरूपेभ्यो गृहेभ्यस्तास्त्वपाक्रमन्॥ ६॥
गुहाभ्य इव शैलानां पृषत्यो हतयूथपाः।
तान्युदीर्णानि नारीणां तदा वृन्दान्यनेकशः॥ ७॥
प्रगृह्य बाहून् क्रोशन्त्यः पुत्रान् भ्रातॄन् पितॄनपि।

तब कौरवों के घरों में भारी आर्तनाद होने लगा। सुन्दर बालों को बिखेरकर, आभूषणों को त्यागकर, एक वस्त्र में ही स्त्रियाँ वहाँ अनाथों के समान एकत्र होरहीं थीं। श्वेत रंग के पर्वतों जैसे महलों में से निकलती हुई वे स्त्रियाँ ऐसे दिखाई दे रहीं थीं, जैसे यूथपति के मारे जाने पर पर्वतों की गुफाओं से हिरणियाँ निकल रहीं हों। अनेक झुण्डों में एकत्र हुई वे स्त्रियाँ, एकदूसरी की बाहों को पकड़कर, अपने पुत्रों, भाइयों और पिताओं को पुकार रही थीं।

व्रीडां जग्मुः पुरा याः स्म सखीनामपि योषितः॥ ८॥
ता एकवस्त्रा निर्लज्जाः श्वश्रूणां पुरतोऽभवन्।
ताभिः परिवृतो राजा रुदतीभिः सहस्रशः॥ ९॥
निर्ययौ नगराद् दीनस्तूर्णमायोधनं प्रति।
शिल्पिनो वणिजो वैश्याः सर्वकर्मोपजीविनः॥ १०॥
ते पार्थिवं पुरस्कृत्य निर्ययुर्नगराद् बहिः।
तासां विक्रोशमानानामार्तानां कुरुसंक्षये॥ ११॥
प्रादुरासीन्महाञ्शब्दो व्यथयन् भुवनान्युत।

जो स्त्रियाँ अपनी सखियों के सामने आने में भी शरमाती थीं, अब निर्लज्ज होकर एक वस्त्र में ही अपनी सासों के सामने आकर उपस्थित होगयीं। तब उन असंख्य रोती हुई स्त्रियों से घिरे हुए, दीनता से युक्त, राजा धृतराष्ट्र युद्धक्षेत्र की तरफ जाने को

तुरन्त नगर से निकल पड़े। कारीगर, व्यापारी, वैश्य, और सब तरह के कार्यों से अपनी जीविका चलाने वाले लोग भी राजा को आगे करके नगर से बाहर निकले। कौरवों का विनाश हो जाने पर, व्याकुल होकर रोती चिल्लाती हुई उन स्त्रियों का महान् करुण स्वर सारे संसार को दुःखी कर रहा था।

हतेषु सर्वसैन्येषु धर्मराजो युधिष्ठिरः॥ १२॥
शुश्रुवे पितरं वृद्धं पुत्रशोक परिप्लुतम्।
सोऽभ्ययात् पुत्रशोकार्तः भ्रातृभिः सहितस्तदा॥ १३॥
अन्वीयमानो वीरेण दाशार्हेण महात्मना।
युयुधानेन च तथा तथैव च युयुत्सुना॥ १४॥
तमन्वगात् सुदुःखार्ता द्रौपदी शोककर्शिता।
सह पाञ्चालयोषिद्भिर्यास्तत्रासन् समागताः॥ १५॥

उधर सारी सेनाओं के मारे जाने पर, धर्मराज युधिष्ठिर ने अपने बूढ़े और पुत्रों के शोक से भरे हुए ताऊ के बारे में जब सुना कि वे युद्धक्षेत्र की तरफ आ रहे हैं, तो पुत्रों के शोक से भरे हुए वे भी अपने भाइयों के साथ उनसे मिलने के लिये उनकी तरफ चले। उनके पीछे मनस्वी वीर श्रीकृष्ण सात्यकि और युयुत्सु थे। अत्यन्त दुःख से व्याकुल, शोक से दुबली हुई द्रौपदी ने भी वहाँ आयी हुई पाँचाल स्त्रियों के साथ उनका अनुकरण किया।

स गंगामनुवृन्दानि क्रोशन्तीनां ददर्श ह।
ताभिः परिवृतो राजा क्रोशन्तीभिः सहस्रशः॥ १६॥
ऊर्ध्वबाहुभिरार्ताभी रुदतीभिः प्रियाप्रियैः।
क्व नु धर्मज्ञता राज्ञः क्व नु साद्यानृशंसता॥ १७॥
यच्चावधीत् पितॄन् भ्रातॄन् गुरुपुत्रान् सखीनपि।
घातयित्वा कथं द्रोणं भीष्मं चापि पितामहम्॥ १८॥
मनस्तेऽभून्महाबाहो हत्वा चापि जयद्रथम्।
किं नु राज्येन ते कार्यं पितॄन् भ्रातॄनपश्यतः॥ १९॥
अभिमन्युं च दुर्धर्षं द्रौपदेयांश्च भारत।

तब गंगा के किनारे उन्होंने विलाप करती हुई स्त्रियों के समूहों को देखा। वहाँ पाण्डवों के प्रिय और अप्रिय लोगों के लिये हाथों को उठाकर और व्याकुल होकर रोती हुई उन असंख्य स्त्रियों ने राजा युधिष्ठिर को चारों तरफ से घेर लिया। वे कह रही थीं कि आज राजा की वह धर्मज्ञता और दयालुता कहाँ चली गयी? जो इन्होंने अपने पिताओं, भाइयों, गुरुपुत्रों और मित्रों को भी मार दिया। हे महाबाहु! द्रोणाचार्य, पितामह भीष्म, और जयद्रथ को भी मारकर तुम्हारे मन को कैसा लगा? हे भरतवंशी राजन्! अपने पिताओं, भाइयों, दुर्धर्ष अभिमन्यु और द्रौपदी के पुत्रों को न देखने पर अब आपका राज्य से क्या प्रयोजन रह गया?

अतीत्य ता महाबाहुः क्रोशन्तीः कुररीरिव॥ २०॥
ववन्दे पितरं ज्येष्ठं धर्मराजो युधिष्ठिरः।
ततोऽभिवाद्य पितरं धर्मेणामित्रकर्षणाः॥ २१॥
न्यवेदयन्त नामानि पाण्डवास्तेऽपि सर्वशः।
तमात्मजान्तकरणं पिता पुत्रवधार्दितः।
अप्रीयमाणः शोकार्तः पाण्डवं परिषस्वजे॥ २२॥

तब महाबाहु धर्मराज युधिष्ठिर ने कुररी पक्षी के समान क्रन्दन करती हुई उन स्त्रियों के घेरे को लाँघकर अपने ताऊ धृतराष्ट्र को प्रणाम किया। फिर शत्रुओं को नष्ट करनेवाले उन सारे पाण्डवों ने भी धर्मानुसार अपने ताऊ धृतराष्ट्र को प्रणाम करके उन्हें अपने नाम बोलकर अपना परिचय दिया। तब पुत्रों के वध से पीड़ित और दुखी पिता ने भी अपने पुत्रों का अन्त करनेवाले युधिष्ठिर को अप्रसन्न होते हुए भी अपने गले से लगाया।

ततः स भीमं च धनंजयं च
माद्र्याश्च पुत्रौ पुरुषप्रवीरौ।
पस्पर्श गात्रैः प्ररुदन् सुगात्रा–
नाश्वास्य कल्याणमुवाच चैतान्॥ २३॥

उसके पश्चात् रोते हुए धृतराष्ट्र ने अच्छे अंगवाले भीमसेन, अर्जुन और माद्री के दोनों पुरुषश्रेष्ठ पुत्रों को अपने अंगों से लगाया और आश्वासन देते हुए कहा कि तुम्हारा कल्याण हो।

धृतराष्ट्राभ्यनुज्ञातास्ततस्ते कुरुपाण्डवाः।
अभ्ययुर्भ्रातरः सर्वे, गान्धारीं सह केशवाः॥ २४॥
तया ते समनुज्ञाता मातरं वीरमातरम्।
अभ्यगच्छन्त सहिताः पृथां पृथुलवक्षसः॥ २५॥
चिरस्य दृष्ट्वा पुत्रान् सा पुत्राधिभिरभिप्लुता।
बाष्पमाहारयद् देवी वस्त्रेणावृत्य वै मुखम्॥ २६॥
ततो बाष्पं समुत्सृज्य सह पुत्रैस्तदा पृथा।
अपश्यदेताञ्शस्त्रौघैर्बहुधा क्षतविक्षतान्॥ २७॥
सा तानेकैकशः पुत्रान् संस्पृशन्ती पुनः पुनः।

अन्वशोचत दुःखार्ता द्रौपदीं च हतात्मजाम्॥ २८॥
रुदतीमथ पाञ्चालीं ददर्श पतितां भुवि।

धृतराष्ट्र की आज्ञा लेकर वे कुरुवंशी पाण्डव सारे भाई श्रीकृष्णजी के साथ गान्धारी के समीप गये। पुनः गान्धारी की आज्ञा लेकर वे सारे चौड़ी छातीवाले पाण्डव मिलकर वीरजननी माता कुन्ती के पास गये। तब बहुत समय के पश्चात् पुत्रों को देखकर, उनके कष्टों को याद कर, करुणा में डूबी हुई वह देवी वस्त्र से मुख को ढककर आँसू बहाने लगी। पुत्रों के साथ आँसू बहाकर कुन्ती उनके शस्त्रसमूहों से घायल शरीरों को बार बार देखने लगी। बारी बारी से बार बार अपने पुत्रों के शरीरों पर हाथ फेरती हुई कुन्ती तब दुःख से व्याकुल होकर जिसके सारे पुत्र मारे गये थे, उस द्रौपदी के लिये शोक करने लगी। तभी उसने देखा कि द्रौपदी भूमि पर पड़ी हुई विलाप कर रही है।

द्रौपद्युवाच

आर्ये पौत्राः क्व ते सर्वे सौभद्रसहिता गताः॥ २९॥
न त्वां तेऽद्याभिगच्छन्ति चिरं दृष्ट्वा तपस्विनीम्।
किं नु राज्येन वै कार्यं विहीनायाः सुतैर्मम॥ ३०॥
तां समाश्वासयामास पृथा पृथुललोचना।
उत्थाप्य याज्ञसेनीं तु रुदतीं शोककर्शिताम्॥ ३१॥
अभ्यगच्छत गान्धारीमार्तामार्ततरा स्वयम्।

द्रौपदी ने कहा कि हे आर्ये! आपके अभिमन्यु सहित सारे पौत्र कहाँ गये? आप तपस्विनी से इतने समय के पश्चात् मिलने पर भी वे आपको देखने के लिये क्यों नहीं आरहे हैं? अब पुत्रों से रहित होकर मुझे राज्य से क्या लाभ है? तब विशाल आँखों वाली कुन्ती ने शोक से दुबली हुई रोती हुई द्रौपदी को उठाकर उसे धीरज बँधाया। फिर कुन्ती जो स्वयं भी अत्यधिक व्याकुल होरही थी, पुत्र शोक से आर्त गान्धारी के पास आई।

तामुवाचाथ गान्धारी सह वध्वा यशस्विनीम्॥ ३२॥
मैवं पुत्रीति शोकार्ता पश्य मामपि दुःखिताम्।
मन्ये लोकविनाशोऽयं कालपर्यायनोदितः॥ ३३॥
अवश्यभावी सम्प्राप्तः स्वभावाल्लोमहर्षणः।
इदं तत् समनुप्राप्तं विदुरस्य वचो महत्॥ ३४॥
असिद्धानुनये कृष्णे यदुवाच महामतिः।

तब बहु द्रौपदी के साथ यशस्विनी कुन्ती से गान्धारी ने कहा कि हे बेटी! इसतरह शोक से व्याकुल मत बनो। तुम मुझ दुःखिया को भी देखो। मैं मानती हूँ कि लोगों का यह विनाश समय के उलट फेर से हुआ है। स्वभाव से ही रोंगटे खड़े करने वाला यह विनाश अवश्य होना था, इसलिये हुआ है। श्रीकृष्ण की सन्धि के लिये विनय के असफल होने पर, विदुर जी ने जो महान् वचन कहे थे, उन्हीं के अनुसार यहसब सामने आया है।

तस्मिन्नपरिहार्येऽर्थे व्यतीते च विशेषतः॥ ३५॥
मा शुचो न हि शोच्यास्ते संग्रामे निधनं गताः।
यथैवाहं तथैव त्वं को नावाश्वासयिष्यति।
ममैव ह्यपराधेन कुलमग्र्यं विनाशितम्॥ ३६॥

यह विनाश तो होना ही था और जबकि अब यह होकर व्यतीत होगया है, तब तुम शोक मत करो। जो संग्राम में मृत्यु को प्राप्त होगये, वे शोक करने के योग्य नहीं हैं। जैसी तुम हो वैसी ही मैं हूँ, हमदोनों को कौन धीरज बँधायेगा? मेरे ही अपराध से इस श्रेष्ठ कुल का विनाश हुआ है।

छठा अध्याय : गान्धारी का मृत योद्धाओं और रोती हुई उनकी पत्नियों को श्रीकृष्ण जी को दिखाना और विलाप।

ततो व्यासाभ्यनुज्ञातो धृतराष्ट्रो महीपतिः।
पाण्डुपुत्राश्च ते सर्वे युधिष्ठिर पुरोगमाः॥ १॥
वासुदेवं पुरस्कृत्य हतबन्धुं च पार्थिवम्।
कुरुस्त्रियः समासाद्य जग्मुरायोधनं प्रति॥ २॥
समासाद्य कुरुक्षेत्रं ताः स्त्रियो निहतेश्वराः।
अपश्यन्त हतांस्तत्र पुत्रान् भ्रातृन् पितृन् पतीन्॥ ३॥
अदृष्टपूर्वं पश्यन्त्यो दुःखार्ता भरतस्त्रियः।
शरीरेष्वस्खलन्नन्याः पतन्त्यश्चापरा भुवि॥ ४॥

व्यास जी की आज्ञा से तब राजा धृतराष्ट्र, युधिष्ठिर और सारे पाण्डव, श्रीकृष्ण और जिनके बन्धु बान्धव मारे गये थे, उन राजा को आगे करके तथा कुरुकुल की स्त्रियों को साथ लेकर युद्धक्षेत्र की तरफ चले। कुरुक्षेत्र में पहुँचकर, जिनके स्वामी मारे गये थे, उन स्त्रियों ने अपने मारे गये पुत्रों, भाइयों, पिताओं, और पतियों को देखा। जिसे पहले उन्होंने कभी नहीं देखा था उस युद्धभूमि को देखती हुईं, दुःख से आर्त वे भरतकुल की स्त्रियाँ कुछ लाशों पर और कुछ भूमि पर गिरने लगीं।

श्रान्तानां चाप्यनाथानां नासीत् काचन चेतना।
पाञ्चालकुरुयोषाणां कृपणं तदभून्महत्॥ ५॥
दुःखोपहतचित्ताभिः समन्तादनुनादितम्।
दृष्ट्वाऽऽयोधनमत्युग्रं धर्मज्ञा सुबलात्मजा॥ ६॥
ततः सा पुण्डरीकाक्षमामन्त्र्य पुरुषोत्तमम्।
कुरूणां वैशसं दृष्ट्वा इदं वचनमब्रवीत्॥ ७॥
पश्यैताः पुण्डरीकाक्ष स्नुषा मे निहतेश्वराः।
प्रकीर्णकेशाः क्रोशन्तीः कुररीरिव माधव॥ ८॥

पांचाल और कुरुकुल की थकी हुई अनाथ स्त्रियों को उससमय कुछ भी होश नहीं था। वह दयनीय अवस्था में पहुँच गयीं थीं। दुःख से पीड़ित हृदयवाली उन स्त्रियों के करुणक्रन्दन से सबतरफ गूँजते हुए उस अत्यन्तभयंकर युद्धक्षेत्र को देखकर, धर्म को जानने वाली सुबल की पुत्री गान्धारी, पुरुषोत्तम कमलनयन श्रीकृष्णजी को सम्बोधन करके, कौरवों के उस विनाश को देखती हुई कहने लगी कि हे कमलनयन, माधव! देखो, ये मेरी पुत्रवधुएँ अपने पतियों के मारे जाने पर, बालों को बिखेरकर, कुररी के समान विलाप कर रही हैं।

अमूस्त्वभिसमागम्य स्मरन्त्यो भर्तृजान् गुणान्।
पृथगेवाभ्यधावन्त्यः पुत्रान् भ्रातृन् पितृन् पतीन्॥ ९॥
जयद्रथस्य कर्णस्य तथैव द्रोणभीष्मयोः।
अभिमन्योर्विनाशं च कश्चिन्तयितुमर्हति॥ १०॥
अमर्षवशमापन्नान् दुर्योधनवशे स्थितान्।
पश्येमान् पुरुषव्याघ्रान् संशान्तान् पावकानिव॥ ११॥
शयाना ये पुरा सर्वे मृदूनि शयनानि च।
विपन्नास्तेऽद्य वसुधां विवृतामधिशेरते॥ १२॥

वे यहाँ अपने पतियों के गुणों को याद करती हुई पुत्रों, भाइयों, पिताओं और पतियों की लाशों की तरफ अलग-अलग दौड़कर जारही हैं। कौन सोच सकता था कि युद्ध में जयद्रथ, कर्ण, भीष्म, द्रोणाचार्य, और अभिमन्यु जैसे वीरों का विनाश होजायेगा? दुर्योधन के आधीन रहकर, अमर्ष के वश में होकर, देखो ये पुरुषव्याघ्र बुझी हुई आग के समान शान्त हो गये हैं। जो पहले मुलायम बिस्तर पर सोया करते थे, वे आज नंगी भूमि पर सोरहे हैं।

वन्दिभिः सततं काले स्तुवद्भिरभिनन्दिताः।
शिवानामशिवा घोराः शृण्वन्ति विविधा गिरः॥ १३॥
ये पुरा शेरते वीराः शयनेषु यशस्विनः।
चन्दनागुरुदिग्धाङ्गास्तेऽद्य पांसुषु शेरते॥ १४॥
सर्वेष्वपररात्रेषु याननन्दन्त वन्दिनः।
स्तुतिभिश्च परार्ध्याभिरुपचारैश्च शिक्षिताः॥ १५॥
तानिमाः परिदेवन्ति दुःखार्ताः परमाङ्गनाः।
कृपणं वृष्णिशार्दूल दुःखशोकार्दिता भृशम्॥ १६॥

जो पहले सदा अपनी स्तुति करनेवाले बन्दी जनों की स्तुतियों से प्रसन्न हुआ करते थे, वे ही आज यहाँ गीदड़ियों की अकल्याणमयी तरह तरह की भयंकर ध्वनियों को सुन रहे हैं। जो यशस्वी वीर पहले अपने अंगों पर चन्दन और अगर का लेप कराकर सुखदायिनी शय्याओं पर सोया करते थे, वही आज धूल में लोट रहे हैं। हे वृष्णिसिंह! जिन्हें प्रतिदिन रात्रि के अन्तिम प्रहर में सुशिक्षित बन्दीलोग अपनी उत्तम स्थितियों और उपचारों के द्वारा आनन्दित

किया करते थे, उन्हीं के पास अब दुःख और शोक से अत्यन्तपीड़ित, दीन और दुःख से अत्यन्तव्याकुल उनकी स्त्रियाँ करुण विलाप कर रही हैं।

रुदिताद् विरता ह्येता ध्यायन्त्यः सपरिच्छदाः।
कुरुस्त्रियोऽभिगच्छन्ति तेन तेनैव दुःखिताः॥ १७॥
एतान्यादित्यवर्णानि तपनीयनिभानि च।
रोषरोदनताम्राणि वक्त्राणि कुरुयोषिताम्॥ १८॥
श्यामानां वरवर्णानां गौरीणामेकवाससाम्।
दुर्योधनवरस्त्रीणां पश्य वृन्दानि केशव॥ १९॥
आसामपरिपूर्णार्थं निशम्य परिदेवितम्।
इतरेतरसंक्रन्दान्न विजानन्ति योषितः॥ २०॥

ये कुरुकुल की स्त्रियाँ, रोना बन्दकर, दुःख में भरी हुई, अपने व्यक्तियों का ध्यान करती हुई, अपने परिजनों के साथ उनकी खोज में उन उन व्यक्तियों से मिल रही हैं। कौरव वंश की इन सूर्य और स्वर्ण के समान कान्तिमान् स्त्रियों के मुख इस समय क्रोध और रोने के कारण ताम्रवर्ण के हो गये हैं। हे केशव! श्याम और गौरवर्ण वाली, सुन्दर कान्ति से युक्त, एक वस्त्र धारण करने वाली दुर्योधन की इन सुन्दरी स्त्रियों की टोलियों को देखो। एक दूसरी की रोने की ध्वनि से मिल जाने के कारण, इनके रुदन का अर्थ समझ में नहीं आ रहा है। उसे सुनकर दूसरी स्त्रियाँ भी कुछ नहीं समझ पा रही हैं।

एता दीर्घमिवोच्छ्वस्य विक्रुश्य च विलप्य च।
विस्पन्दमाना दुःखेन वीरा जहति जीवितम्॥ २१॥
बह्व्यो दृष्ट्वा शरीराणि क्रोशन्ति विलपन्ति च।
पाणिभिश्चापरा घ्नन्ति शिरांसि मृदुपाणयः॥ २२॥
विशिरस्कानथो कायान् दृष्ट्वा ह्येताननिन्दितान्।
मुह्यन्त्यनुगता नार्यो विदेहानि शिरांसि च॥ २३॥
न दुःखेषूचिताः पूर्वं दुःखं गाहन्त्यनिन्दिताः।
भ्रातृभिः पतिभिः पुत्रैरुपाकीर्णा वसुंधरा॥ २४॥

ये वीर स्त्रियाँ, लम्बी साँसें लेकर, अपने व्यक्तियों को पुकार पुकारकर और विलाप करके, दुःख से छटपटाती हुई, अपने प्राणों का त्याग करना चाहती हैं। बहुत सी स्त्रियाँ अपने व्यक्तियों की लाशों को देखकर चिल्ला चिल्लाकर विलाप कर रही हैं और दूसरी कोमल हाथों वाली अपने हाथों से सिरों को पीट रही हैं। अपने स्वामियों के पीछे चलने वाली ये स्त्रियाँ उनके सुन्दर सिर रहित धड़ों को और बिना धड़ों के मस्तकों को देखकर शोक के कारण मूर्च्छित हो रही हैं। ये सुन्दरी स्त्रियाँ पहले कभी ऐसे दुःख में नहीं पड़ी थीं किन्तु आज ये शोक के सागर में डूब रही हैं। यह सारी भूमि आज इनके भाइयों, पतियों, और पुत्रों की लाशों से ढकी हुई है।

यूथानीव किशोरीणां सुकेशीनां जनार्दन।
स्नुषाणां धृतराष्ट्रस्य पश्य वृन्दान्यनेकशः॥ २५॥
इतो दुःखतरं किं नु केशव प्रतिभाति मे।
यदिमाः कुर्वते सर्वा रवमुच्चावचं स्त्रियः॥ २६॥
नूनमाचरितं पापं मया पूर्वेषु जन्मसु।
या पश्यामि हतान् पुत्रान् पौत्रान् भ्रातृंश्च माधव॥ २७॥
एवमार्ता विलपती समाभाष्य जनार्दनम्।
गान्धारी पुत्रशोकार्ता ददर्श निहतं सुतम्॥ २८॥

हे जनार्दन! राजा धृतराष्ट्र की इन सुन्दर केशवाली पुत्रवधुओं की अनेक टोलियों को देखो। ये बछेड़ियों के झुण्डों के समान प्रतीत होरही हैं। हे केशव! मेरे लिये इससे बढ़कर और अधिक दुःख क्या होगा, कि सारी मेरी बहुएँ यहाँ अनेकप्रकार से आर्तनाद कर रही हैं। निश्चय ही पिछले जन्मों में मैंने बहुत बड़े पाप किये हैं जो हे माधव! अपने पुत्रों, पौत्रों और भाइयों को मारा हुआ देख रही हूँ। श्रीकृष्ण जी से यह कहकर, विलाप करती हुई आर्त गान्धारी ने अपने मारे गये पुत्र दुर्योधन को देखा।

सातवाँ अध्याय : दुर्योधन और उसके पास रोती हुई पुत्रवधु को देखकर गान्धारी का विलाप।

दुर्योधनं हतं दृष्ट्वा गान्धारी शोककर्शिता।
सहसा न्यपतद् भूमौ छिन्नेव कदली वने॥ १॥
हा हा पुत्रेति शोकार्ता विललापाकुलेन्द्रिया।
वारिणा नेत्रजेनोरः सिंचन्ती शोकतापिता॥ २॥
समीपस्थं हृषीकेशमिदं वचनमब्रवीत्।

मृत दुर्योधन को देखकर शोक से पीड़ित गान्धारी, वन में कटकर गिरे केले के वृक्ष की तरह सहसा भूमि पर गिर पड़ी। उसकी सारी इन्द्रियाँ शोक से व्याकुल हो रही थीं और वह हाय पुत्र, कहती हुई, शोक से पीड़ित हुई विलाप कर रही थी। शोक से सन्तप्त हुई वह अपने आँसुओं से वक्षस्थल को सींचने लगी। फिर वह पास खड़े हुए श्रीकृष्ण जी से यह बोली कि—

अमर्षणं युधां श्रेष्ठं कृतास्त्रं युद्धदुर्मदम्॥ ३॥
शयानं वीरशयने पश्य माधव मे सुतम्।
योऽयं मूर्धाभिषिक्तानामग्रे याति परंतपः॥ ४॥
सोऽयं पांसुषु शेतेऽद्य पश्य कालस्य पर्ययम्।
एष शेते महाबाहुर्बलवान् सत्यविक्रमः॥ ५॥
सिंहेनेव द्विपः संख्ये भीमसेनेन पातितः।
पश्य दुर्योधनं कृष्ण शयानं रुधिरोक्षितम्॥ ६॥

हे माधव! अमर्षशील, योद्धाओं में श्रेष्ठ, अस्त्र विद्या में निष्णात और युद्ध में दुर्मद मेरे पुत्र को देखो। जो शत्रुओं को सन्तप्त करनेवाला पहले मूर्धाभिषिक्त राजाओं के आगे चला करता था, वही आज धूल में लोट रहा है। समय के इस उलट फेर को देखो। जैसे सिंह के द्वारा हाथी को मार गिराया जाये, उसीप्रकार युद्धक्षेत्र में भीमसेन के द्वारा गिराया हुआ यह महाबाहु बलवान् और सत्यविक्रमी दुर्योधन सो रहा है। हे कृष्ण! देखो यह खून में लथपथ हुआ सो रहा है।

अक्षौहिणीर्महाबाहुर्दश चैकां च केशव।
आनयद् यः पुरा संख्ये सोऽनयान्निधनं गतः॥ ७॥
एष दुर्योधनः शेते महेष्वासो महाबलः।
शार्दूल इव सिंहेन भीमसेनेन पातितः॥ ८॥
विदुरं ह्यवमत्यैष पितरं चैव मन्दभाक्।
बालो वृद्धावमानेन मन्दो मृत्युवशं गतः॥ ९॥
निःसपत्ना मही यस्य त्रयोदश समाः स्थिता।
स शेते निहतो भूमौ पुत्रो मे पृथिवीपतिः॥ १०॥

हे केशव! जिस महाबाहु ने पहले ग्यारह अक्षौहिणी सेना एकत्र कर ली थी, वह अपनी अनीति के कारण युद्धक्षेत्र में मृत्यु को प्राप्त हो गया है। एक सिंह के द्वारा गिराये हुए दूसरे सिंह के समान भीमसेन के द्वारा गिराया हुआ यह महाबलवान् महाधनुर्धर दुर्योधन सो रहा है। यह मन्दभागी बालक विदुर की और अपने पिता की अवमानना करके, वृद्धों की अवमानना के पाप से ही मृत्यु के बस में हो गया। तेरह वर्ष तक बिना शत्रुओं के यह भूमि जिसके अधिकार में रही, वह पृथिवीपति मेरा पुत्र दुर्योधन आज मारा जाकर भूमि पर सो रहा है।

अपश्यं कृष्ण पृथिवीं धार्तराष्ट्रानुशासिताम्।
पूर्णां हस्तिगवाश्वैश्च वार्ष्णेय न तु तच्चिरम्॥ ११॥
इदं कष्टतरं पश्य पुत्रस्यापि वधान्मम।
यदिमाः पर्युपासन्ते हताञ्शूरान् रणे स्त्रियः॥ १२॥
प्रकीर्णकेशां सुश्रोणीं दुर्योधनशुभाङ्कगाम्।
रुक्मवेदीनिभां पश्य कृष्ण लक्ष्मणमातरम्॥ १३॥
कथं तु शतधा नेदं हृदयं मम दीर्यते।
पश्यन्त्या निहतं पुत्रं पुत्रेण सहितं रणे॥ १४॥

हे कृष्ण! हे वार्ष्णेय! मैंने दुर्योधन से अनुशासित इस पृथिवी को हाथी, घोड़ों और गायों से भरी पूरी देखा था, पर वह राज्य चिरस्थायी न रह सका। अपने पुत्र के वध से भी अधिक दुःखदायी बात मेरे लिये यह है कि युद्धक्षेत्र में ये स्त्रियाँ अपने मारे हुए पतियों के पास बैठी रो रहीं हैं। इनकी दुर्दशा को देखो। स्वर्ण की वेदी के समान तेजस्वी, सुन्दरकटि प्रदेशवाली, दुर्योधन की गोद में केश खोले रोती हुई लक्ष्मण की माता को हे कृष्ण! देखो। युद्धभूमि में अपने पुत्र के साथ मारे गये पुत्र को देखकर हाय मेरे हृदय के सौ टुकड़े क्यों नहीं हो जाते?

पुत्रं रुधिरसंसिक्तमुपजिघ्रत्यनिन्दिता।
दुर्योधनं तु वामोरूः पाणिना परिमार्जती॥ १५॥
किं नु शोचति भर्तारं पुत्रं चैषा मनस्विनी।

तथा ह्यवस्थिता भाति पुत्रं चाप्यभिवीक्ष्य सा॥ १६॥
स्वशिरः पञ्चशाखाभ्यामभिहत्यायतेक्षणा।
पतत्युरसि वीरस्य कुरुराजस्य माधव॥ १७॥
दृष्ट्वा मे पार्थिवसुताम् एतां लक्ष्मणमातरम्।
राजपुत्रीं महाबाहो मनो न ह्युपशाम्यति॥ १८॥

मेरी सुन्दर जाँघोंवाली सुन्दर पुत्रवधु कभी अपने पुत्र लक्ष्मण के खून से सने मुख को सूँघती है तो कभी दुर्योधन के शरीर को अपने हाथ से पौंछती है। पता नहीं यह मनस्विनी पुत्रवधु अपने पति के विषय में शोक कर रही है या पुत्र के लिये शोक कर रही है। कुछ ऐसी ही स्थिति इसकी प्रतीत होती है। हे कृष्ण! देखो। अपने पुत्र की तरफ देखकर और दोनों हाथों से अपने सिर को पीटकर, यह विशाल नेत्रोंवाली, वीर कुरुराज की छाती पर गिर पड़ी है। हे महाबाहु! इस राजा की बेटी, राजकुमारी, लक्ष्मण की माता को देखकर मेरा मन किसी तरह भी शान्त नहीं होता है।

आठवाँ अध्याय : दुःशासन आदि पुत्रों को देखकर गान्धारी का विलाप।

गान्धार्युवाच

पश्य माधव पुत्रान्मे शतसंख्याञ्जितक्लमान्।
गदया भीमसेनेन भूयिष्ठं निहतान् रणे॥ १॥
इदं दुःखतरं मेऽद्य यदिमा मुक्तमूर्धजाः।
हतपुत्रा रणे बालाः परिधावन्ति मे स्नुषाः॥ २॥
प्रासादतलचा- रिण्यश्चरणैर्भूषणान्वितैः।
आपन्ना यत् स्पृशन्तीमां रुधिरार्द्रां वसुन्धराम्॥ ३॥
एषान्या त्वनवद्याङ्गी करसम्मितमध्यमा।
घोरमायोधनं दृष्ट्वा निपतत्यतिदुःखिता॥ ४॥

फिर गान्धारी ने कहा कि हे कृष्ण! मेरे उन सौ पुत्रों को देखो। जिन्होंने श्रम को जीत लिया था और जिन्हें भीमसेन ने युद्ध में प्रायः अपनी गदा से मार दिया है। यह मेरे लिये बड़े दुःख की बात है कि मेरी बालिका पुत्रवधुएँ, जिनके पुत्र भी मारे गये हैं, बालों को खोले, युद्धभूमि में अपने स्वजनों की खोज में, सबतरफ दौड़ रही हैं। जो महलों के फर्श पर अपने आभूषणों से भूषित पैरों से विचरण करती थीं, वे ही अब संकट में पड़ी हुई इस खून से भीगी भूमि का स्पर्श कर रही हैं। यह पतली कमर और निर्मल अंगोंवाली वधु भयंकर युद्धभूमि को देखकर अत्यन्तदुःखी होकर गिर पड़ी है।

भ्रातॄंश्चान्याः पितॄंश्चान्याः पुत्रांश्च निहतान् भुवि।
दृष्ट्वा परिपतन्त्येताः प्रगृह्य सुमहाभुजान्॥ ५॥
मध्यमानां तु नारीणां वृद्धानां चापराजित।
आक्रन्दं हतबन्धूनां दारुणे वैशसे शृणु॥ ६॥
अन्यां चापहृतं कायाच्चारुकुण्डलमुन्नसम्।
स्वस्य बन्धोः शिरः कृष्ण गृहीत्वा पश्य तिष्ठतीम्॥ ७॥
पूर्वजातिकृतं पापं मन्ये नाल्पमिवानघ।
एताभिर्निरवद्याभिर्मया चैवाल्पमेधया॥ ८॥
यदिदं धर्मराजेन पातितं नो जनार्दन।
न हि नाशोऽस्ति वार्ष्णेय कर्मणोः शुभपापयोः॥ ९॥

कई स्त्रियाँ मारे गये अपने अत्यन्त महाबाहु भाइयों को, कोई पिताओं को, कई पुत्रों को देखकर उन्हें पकड़ लेती हैं और भूमि पर गिर पड़ती हैं। हे अपराजित! इन प्रौढ़ा और बूढ़ी स्त्रियों के भी करुण क्रन्दन को सुनो जिनके बन्धु इस भयानक संहार में मारे गये हैं। हे कृष्ण! देखो यह दूसरी स्त्री सुन्दर कुण्डलों से सुशोभित, ऊँची नाक वाले अपने बन्धु के कटे सिर को लिये हुए खड़ी है। हे निष्पाप! मैं समझती हूँ कि इन अनिंद्य सुन्दरियों और मुझ मन्दबुद्धि ने भी पूर्व जन्म में बहुत अधिक पाप किये थे, जिनके कारण हे जनार्दन! धर्म के अनुसार शासन करनेवाले परमात्मा ने हमें इस संकट में डाल दिया है। हे वार्ष्णेय! अच्छे और बुरे कर्मों का उनके फल को भोगे बिना नाश नहीं होता।

प्रत्यग्रवयसः पश्य दर्शनीयकुचाननाः।
कुलेषु जाता ह्रीमत्यः कृष्णपक्ष्माक्षिमूर्धजाः॥ १०॥
हंसगद्गदभाषिण्यो दुःखशोकप्रमोहिताः।
सारस्य इव वाशन्त्यः पतिताः पश्य माधव॥ ११॥
फुल्लपद्मप्रकाशानि पुण्डरीकाक्ष योषिताम्।
अनवद्यानि वक्त्राणि तापयत्येष रश्मिवान्॥ १२॥
ईर्षूणां मम पुत्राणां वासुदेवावरोधनम्।
मत्तमातङ्गदर्पाणां पश्यन्त्यद्य पृथग्जनाः॥ १३॥

हे माधव! देखो, इन महिलाओं की आयु अभी नयी है, इनके वक्षस्थल और मुख दर्शनीय हैं, इनकी भौंहें और बाल काले हैं, ये हंस के समान ध्वनि में बोलती हैं। किन्तु आज दु:ख और शोक में अचेत होकर सारसियों के समान बिलखती हुई पड़ी हैं। इन्हें देखो हे कमल नयन! इन स्त्रियाँ के खिले कमलों के समान निर्मल मुखों को सूर्य इस समय सन्तप्त कर रहा है। हे कृष्ण! मस्त हाथी के समान अभिमान में भरे हुए मेरे ईर्ष्यालु पुत्रों की रानियों को आज सामान्य लोग देख रहे हैं।

एष दु:शासनः शेते शूरेणामित्रघातिना।
पीतशोणितसर्वाङ्गो युधि भीमेन पातितः॥ १४॥
गदया भीमसेनेन पश्य माधव मे सुतम्।
द्यूतक्लेशाननुस्मृत्य द्रौपदीनोदितेन च॥ १५॥
उक्ता ह्यनेन पाञ्चाली सभायां द्यूतनिर्जिता।
ततोऽहमब्रवं कृष्ण तदा दुर्योधनं नृपम्॥ १६॥
मृत्युपाशपरिक्षिप्तं शकुनिं पुत्र वर्जय।
निबोधैनं सुदुर्बुद्धिं मातुलं कलहप्रियम्॥ १७॥
क्षिप्रमेनं परित्यज्य पुत्र शाम्यस्व पाण्डवैः।
न बुद्ध्यसे त्वं दुर्बुद्धे भीमसेनममर्षणम्॥ १८॥
वाङ्नाराचैस्तुदंस्तीक्ष्णैरुल्काभिरिव कुञ्जरम्।

शूरवीर शत्रुदमन भीमसेन ने जिसके शरीर के अंगों का खून पी लिया है, वह दुश्शासन यहाँ युद्धभूमि में सो रहा है। हे माधव! देखो, जूए के समय पाये हुए क्लेशों को यादकर, द्रौपदी से प्रेरित भीमसेन ने गदा से मेरे पुत्र को मार दिया है। जूए में जीती हुई द्रौपदी को इसने सभा में गलत बातें कहीं थीं। तब मैंने राजा दुर्योधन से कहा था कि पुत्र! शकुनि मृत्यु के फंदे में पड़ा हुआ है, तू इसका साथ छोड़ दे, तू अपने इस अत्यन्तदुर्बुद्धि और कलह को चाहनेवाले मामा को समझ। हे पुत्र! तू तुरन्त इसे छोड़कर पाण्डवों के साथ संधि कर ले। अरे दुर्बुद्धि! तू अमर्षशील भीमसेन को नहीं समझता, इसलिये तुम लोग जलती लकड़ियों से हाथी को मारने के समान, अपने तीखे वाणी रूपी बाणों से भीम सेन को पीड़ा दे रहे हो।

तानेवं रहसि क्रुद्धो वाक्शल्यानवधारयन्॥ १९॥
उत्ससर्ज विषं तेषु सर्पो गोवृषभेष्विव।
अत्यर्थमकरोद् रौद्रं भीमसेनोऽत्यमर्षणः॥ २०॥
दु:शासनस्य यत् क्रुद्धोऽपिबच्छोणितमाहवे।

इस प्रकार एकान्त में मैंने उन सबको डाँटा था। उन्हीं वाग्बाणों को याद करके क्रोधी भीम ने, जैसे साँप, गाय और बैलों को काटकर उनमें अपने विष को फैला देता है, वैसे ही अपने क्रोधरूपी विष को मेरे पुत्रों पर छोड़ा है। अत्यन्त अमर्षशील भीम ने जो क्रोध में भरकर युद्ध में दुश्शासन का खून पिया, यह बड़ा भयानक कर्म किया है।

युवा वृन्दारकः शूरो विकर्णः पुरुषर्षभ॥ २१॥
सुखोषितः सुखार्हश्च शेते पांसुषु माधव।
कर्णिनालीकनाराचै- र्भिन्नमर्माणमाहवे॥ २२॥
अद्यापि न जहात्येनं लक्ष्मीर्भरतसत्तमम्।
एष संग्रामशूरेण प्रतिज्ञां पालयिष्यता॥ २३॥
दुर्मुखोऽभिमुखः शेते हतोऽरिगणहा रणे।
शूरस्य हि रणे कृष्ण पश्याननमथेदृशम्॥ २४॥
स कथं निहतोऽमित्रैः पांसून् ग्रसति मे सुतः।

हे पुरुषश्रेष्ठ कृष्ण! विकर्ण युवक, अत्यधिक सुन्दर, शूरवीर, सुख में पला हुआ और सुख भोगने योग्य था पर अब वह धूल में लोट रहा है। युद्ध में कर्णी, नालीक, और नाराचों ने इसके मर्मस्थल विदीर्ण कर दिये हैं, पर फिर भी इस भरतश्रेष्ठ को कान्ति ने छोड़ा नहीं है। संग्राम में शूर, प्रतिज्ञा को पालनेवाले भीमसेन के द्वारा मारा जाकर यह शत्रुसमूहों का संहार करनेवाला दुर्मुख युद्धभूमि में सामने सोरहा है। हे कृष्ण! तुम मेरे इस शूरवीर पुत्र के तेजस्वी मुख को देखो। यह शत्रुओं द्वारा मारा जाकर किस प्रकार धूल फाँक रहा है।

यस्याहवमुखे सौम्य स्थाता नैवोपपद्यते॥ २५॥
स कथं दुर्मुखोऽमित्रैर्हतो विबुधलोकजित्।
चित्रसेनं हतं भूमौ शयानं मधुसूदन॥ २६॥
धार्तराष्ट्रमिमं पश्य प्रतिमानं धनुष्मताम्।
प्रविश्य समरे शूरः पाण्डवानामनीकिनीम्॥ २७॥
स वीरशयने शेते परः सत्पुरुषोचिते।
स्मितोपपन्नं सुनसं सुभ्रु ताराधिपोपमम्॥ २८॥
अतीव शुभ्रं वदनं कृष्ण पश्य विविंशतेः।
एनं हि पर्युपासन्ते बहुधा वरयोषितः॥ २९॥

हे सौम्य! जिसके सामने युद्ध के मुहाने पर कोई ठहर नहीं पाता था, उस देवलोक विजयी दुर्मुख को

शत्रुओं ने किस प्रकार मार दिया? हे मधुसूदन। तुम मारे हुए और भूमि पर सोते हुए चित्रसेन को देखो। धृतराष्ट्र का यह पुत्र धनुर्धरों का आदर्श था। जो श्रेष्ठ शूरवीर विविंशति, संग्राम में पाण्डवों की सेना में घुसकर लोहा लेता था, वही आज सत्पुरुषोचित वीरशय्या पर शयन कर रहा है। इसके मुख पर अब भी मुस्काराहट है, इसकी नाक सुन्दर और भौंहें मनोहर हैं। हे कृष्ण देखो! चन्द्रमा के समान इसका मुख अत्यन्त सुन्दर है। इसकी सेवा में बहुत सी सुन्दर स्त्रियाँ रहती थीं।

हन्तारं परसैन्यानां शूरं समितिशोभनम्।
निबर्हणममित्राणां दुःसहं विषहेत कः॥ ३०॥
दुःसहस्यैतदाभांति शरीरं संवृतं शरैः।
गिरिरात्मगतैः फुल्लैः कर्णिकारैरिवाचितः॥ ३१॥
शातकौम्या स्त्रजा भाति कवचेन च भास्वता।
अग्निनेव गिरिः श्वेतो गतासुरपि दुःसहः॥ ३२॥

शत्रु की सेना को नष्ट करनेवाले, युद्ध में शोभित होनेवाले, शूरवीर, शत्रुदमन दुःसह को कौन सहन कर सकता था? उसी दुस्सह का शरीर इस समय बाणों से भरा हुआ दिखाई देरहा है, जैसे फूलों से युक्त कनेर के वृक्षों से व्याप्त कोई पर्वत हो। यद्यपि दुस्सह के प्राण चले गये हैं, पर फिर भी वह अपनी सोने की माला और चमकदार कवच से अग्नि से युक्त श्वेत पर्वत के समान प्रतीत हो रहा है।

नवाँ अध्याय : गान्धारी द्वारा उत्तरा आदि के विलाप का वर्णन।

गान्धार्युवाच

अध्यर्धगुणमाहुर्यं बले शौर्ये च केशव।
पित्रा त्वया च दाशार्ह दृप्तं सिंहमिवोत्कटम्॥ १॥
यो बिभेद चमूमेको मम पुत्रस्य दुर्भिदाम्।
स भूत्वा मृत्युरन्येषां स्वयं मृत्युवशं गतः॥ २॥
तस्योपलक्षये कृष्ण कार्ष्णेरमिततेजसः।
अभिमन्योर्हतस्यापि प्रभा नैवोपशाम्यति॥ ३॥
एषा विराटदुहिता स्नुषा गाण्डीवधन्वनः।
आर्ता बालं पतिं वीरं दृष्ट्वा शोचत्यनिन्दिता॥ ४॥
तमेषा हि समागम्य भार्या भर्तारमन्तिके।
विराटदुहिता कृष्ण पाणिना परिमार्जति॥ ५॥

गान्धारी ने कहा कि हे दाशार्हनन्दन केशव! जो सिंह के समान प्रचण्ड और अभिमानी था, जिसे बल और शौर्य में अपने पिता और तुमसे भी डेढ़ गुणा अधिक बताया जाता था, जिसने मेरे पुत्र के दुर्भेद्य सेनाव्यूह को अकेले ही तोड़ दिया था, वह अभिमन्यु देखो दूसरों की मृत्यु बनकर स्वयं भी मृत्यु के आधीन होगया। हे कृष्ण! मैं देख रही हूँ कि उस अमिततेजस्वी, अर्जुनपुत्र अभिमन्यु के मर जाने पर भी उसके मुख पर से तेज अभी शान्त नहीं हुआ है। यह विराट की पुत्री गाण्डीव धारी अर्जुन की पुत्रवधु अनिन्दिता उत्तरा दुःख से आर्त हुई अपने बालक वीरपति को देखकर शोक कर रही है। हे कृष्ण! यह विराट की पुत्री, अभिमन्यु उसके शरीर को अपने हाथ से पौंछ रही है।

तस्य वक्त्रमुपाघ्राय सौभद्रस्य मनस्विनी।
विबुद्धकमलाकारं कम्बुवृत्तशिरोधरम्॥ ६॥
काम्यरूपवती चैषा परिष्वजति भामिनी।
तस्य क्षतजसंदिग्धं जातरूपपरिष्कृतम्॥ ७॥
विमुच्य कवचं कृष्ण शरीरमभिवीक्षते।
अवेक्षमाणा तं बाला कृष्ण त्वामभिभाषते॥ ८॥
अयं ते पुण्डरीकाक्ष सदृशाक्षो निपातितः।
बले वीर्ये च सदृशस्तेजसा चैव तेऽनघ॥ ९॥
रूपेण च तथात्यर्थं शेते भुवि निपातितः।

सुभद्रापुत्र के शंख के समान गोल ग्रीवावाले और खिले हुए कमल के समान सुन्दर मुख को, यह कमनीय रूपवाली, मनस्विनी, मानिनी, उत्तरा सूँघकर अपने गले से लगा रही है। हे कृष्ण! वह अभिमन्यु के स्वर्णभूषित और खून से रंगे हुए कवच को खोलकर उसके शरीर को देख रही है। यह बाला उसे देखती हुई, हे कृष्ण! तुमसे पुकारकर कह रही है कि हे कमलनयन! आपके इस भानजे के नेत्र भी आपके ही समान थे। इन्हें युद्ध में मार गिराया गया है। हे निष्पाप! ये बल, तेज, रूप और पराक्रम में तो आपके ही समान थे। ये अब मारे जाकर भूमि पर सोरहे हैं।

अत्यन्तं सुकुमारस्य राङ्कवाजिनशायिनः॥ १०॥
कच्चिदद्य शरीरं ते भूमौ न परितप्यते।
मातङ्गभुजवर्ष्माणौ ज्याक्षेपकठिनत्वचौ॥ ११॥
काञ्चनाङ्गदिनौ शेते निक्षिप्य विपुलौ भुजौ।
व्यायम्य बहुधा नूनं सुखसुप्तः श्रमादिव॥ १२॥
एवं विलपतीमार्तां न हि मामभिभाषसे।
न स्मराम्यपराधं ते किं मां न प्रतिभाषसे॥ १३॥
ननु मां त्वं पुरा दूरादभिवीक्ष्याभिभाषसे।

फिर वह अपने पति से कहती है कि आप तो अत्यन्तमुलायम रंकुमृग के बिछौने पर सोया करते थे। आज भूमि पर सोने से क्या आपके शरीर को कष्ट नहीं होरहा है? आप अपनी दोनों लम्बी भुजाओं को, जो हाथी की सूँड के समान हैं, जिन पर धनुष की प्रत्यंचा खींचने से घट्टे पड़े हुए हैं और जिनमें सोने के बाजूबन्द पहने हुए हैं, फैलाकर सोरहे हैं। निश्चय ही आप बहुत परिश्रमकर और थककर सुख की नींद में सोरहे हैं इसीलिये आर्त होकर विलाप करती हुई मुझसे आप नहीं बोल रहे हैं। मुझे तो अपना कोई अपराध याद नहीं आरहा है, जो मैंने किया हो। फिर आप मुझसे आज क्यों नहीं बोल रहे हैं? पहले तो आप दूर से मुझे देख कर भी बोलते थे।

आर्यामार्य सुभद्रां त्वमिमांश्च त्रिदशोपमान्॥ १४॥
पितृन् मां चैव दुःखार्तां विहाय क्व गमिष्यसि।
तस्य शोणितदिग्धान् वै केशानुद्यम्य पाणिना॥ १५॥
उत्सङ्गे वक्त्रमाधाय जीवन्तमिव पृच्छति।
स्वस्रीयं वासुदेवस्य पुत्रं गाण्डीवधन्वनः॥ १६॥
कथं त्वां रणमध्यस्थं जघ्नुरेते महारथाः।
धिगस्तु क्रूरकर्तॄंस्तान् कृपकर्णजयद्रथान्॥ १७॥
द्रोणद्रौणायनी चोभौ यैरहं विधवा कृता।

हे आर्य! आप माता सुभद्रा को, देवताओं के समान ताऊ, पिता, चाचाओं को तथा मुझ दुःख से आतुरा को छोड़कर कहाँ जायेंगे? हे कृष्ण! देखो वह उसके मस्तक को अपनी गोद में रखकर, खून से सने उसके बालों को हाथों से सुलझा कर, मानो वह जी रहा हो, उसीतरह उससे पूछ रही है कि आप तो श्रीकृष्ण जी के भानजे और गाण्डीव धनुर्धर के पुत्र थे, फिर उन महारथियों ने युद्धक्षेत्र के बीच में आपको कैसे मार दिया? उन क्रूर कर्म करनेवालों कृपाचार्य, कर्ण, जयद्रथ, द्रोणाचार्य और अश्वत्थामा को धिक्कार है, जिन्होंने मुझे विधवा बना दिया।

रथर्षभाणां सर्वेषां कथमासीत् तदा मनः॥ १८॥
बालं त्वां परिवार्यैकं मम दुःखाय जघ्नुषाम्।
कथं नु पाण्डवानां च पञ्चालानां तु पश्यताम्॥ १९॥
त्वं वीर निधनं प्राप्तो नाथवान् सन्ननाथवत्।
दृष्ट्वा बहुभिराक्रन्दे निहतं त्वां पिता तव॥ २०॥
वीरः पुरुषशार्दूलः कथं जीवति पाण्डवः।
न राज्यलाभो विपुलः शत्रूणां च पराभवः॥ २१॥
प्रीतिं धास्यति पार्थानां त्वामृते पुष्करेक्षण।

आप बालक थे और अकेले युद्ध कर रहे थे, फिर भी जिन श्रेष्ठ महारथियों ने आपको घेर कर, मुझे दुःख देने के लिये मार दिया, उस समय उनके मन की क्या अवस्था होगी? हे वीर! पाण्डवों और पांचालों के देखते हुए आप सनाथ होते हुए भी, अनाथों के समान कैसे मृत्यु को प्राप्त होगये? युद्धक्षेत्र में आपको बहुतों के द्वारा मारा हुआ देखकर आपके वीर, पुरुषसिंह, पाण्डुपुत्र पिता किसप्रकार जी रहे है? हे कमलनयन! पाण्डवों के शत्रुओं की पराजय हो गयी, उन्हें विशाल राज्य मिल गया, पर यह सब उन्हें आपके बिना आनन्ददायक नहीं होगा।

तव शस्त्रजिताँल्लोकान् धर्मेण च दमेन च॥ २२॥
क्षिप्रमन्वागमिष्यामि तत्र मां प्रतिपालय।
दुर्मरं पुनरप्राप्ते काले भवति केनचित्॥ २३॥
यदहं त्वां रणे दृष्ट्वा हतं जीवामि दुर्भगा।
एतावानिह संवासो विहितस्ते मया सह॥ २४॥
षण्मासान् सप्तमे मासि त्वं वीर निधनं गतः।
इत्युक्तवचनामेतामपकर्षन्ति दुःखिताम्॥ २५॥
उत्तरां मोघसंकल्पां मत्स्यराजकुलस्त्रियः।

हे नाथ! आपने अपने शस्त्रों के बल से जिन पुण्यलोकों को जीता है, मैं भी वहीं अपने धर्म और इन्द्रियदमन का पालन करती हुई आपके पीछे आऊँगी। आप वहाँ मेरी राह देखना। वास्तव में जब तक समय न आजाये, उससे पहले किसी का मर जाना बहुत कठिन है। तभी तो मैं दुर्भागिनी आपको युद्ध में मारा हुआ देखकर जीरही हूँ। आप केवल छः मास ही मेरे साथ रहे हैं। सातवें मास में हे वीर! आप वीरगति को प्राप्त होगये। ऐसे वचन

कहती हुई उस अत्यन्त दुःखिता उत्तरा को, जिसकी सारी मनोकामनाएँ व्यर्थ हो गयीं हैं मत्स्यराज के कुल की स्त्रियाँ खींचकर दूर ले जा रही हैं।

उत्तरामपकृष्यैनामार्तामार्ततराः स्वयम्॥ २६॥
विराटं निहतं दृष्ट्वा क्रोशन्ति विलपन्ति च।
आसामातपतप्तानामायासेन च योषिताम्॥ २७॥
श्रमेण च विवर्णानां वक्त्राणां विप्लुतं वपुः।
उत्तरं चाभिमन्युं च काम्बोजं च सुदक्षिणम्॥ २८॥
शिशूनेतान् हतान् पश्य लक्ष्मणं च सुदर्शनम्।
आयोधनशिरोमध्ये शयानं पश्य माधव॥ २९॥

उस दुःखी उत्तरा को खींचकर, वे स्त्रियाँ स्वयं भी विराट को मारा हुआ देखकर और अधिक आर्त होकर चीखने तथा विलाप करने लगी हैं। इन युवतियों के मुख धूप से तप गये हैं और आयास तथा परिश्रम से उनके रंग फीके पड़ गये हैं। हे माधव! उत्तर, अभिमन्यु, काम्बोजवासी सुदक्षिण, ये अभी बच्चे थे। इन मारे हुए बालकों को देखो और सुन्दर दिखाई देनेवाले युद्धक्षेत्र के मुहाने पर सोये हुए लक्ष्मण को भी देखो।

दसवाँ अध्याय : गान्धारी का कर्ण, अवन्ती नरेश और जयद्रथ को देखकर उनके लिये विलाप।

पश्य वैकर्तनं कर्णं निहत्यातिरथान् बहून्।
शोणितौघपरीताङ्गं शयानं पतितं भुवि॥ १॥
अमर्षी दीर्घरोषश्च महेष्वासो महाबलः।
रणे विनिहतः शेते शूरो गाण्डीवधन्वना॥ २॥
यं स्म पाण्डवसंत्रासान्मम पुत्रा महारथाः।
प्रायुध्यन्त पुरस्कृत्य मातङ्गा इव यूथपम्॥ ३॥
शार्दूलमिव सिंहेन समरे सव्यसाचिना।
मातङ्गमिव मत्तेन मातङ्गेन निपातितम्॥ ४॥

फिर गान्धारी ने कहा कि सूर्यपुत्र कर्ण को देखो, जो बहुत से अतिरथियों को मारकर अब खून से लथपथ शरीर के साथ भूमि पर पड़ा हुआ सो रहा है। यह महाबली, महाधनुर्धर सदा अमर्ष से भरा हुआ लम्बे समय तक क्रोध से युक्त रहता था। यह शूरवीर भी युद्ध में गाण्डीव धनुषधारी अर्जुन द्वारा मारा जाकर सो रहा है। पाण्डुपुत्र अर्जुन के भय से जिसे आगे करके मेरे महारथी पुत्र उसी प्रकार युद्ध करते थे, जैसे हाथी अपने यूथपति को आगे रखकर लड़ें। उसी कर्ण को अर्जुन ने युद्धक्षेत्र में उसी तरह मार गिराया, जैसे एक सिंह दूसरे सिंह को, या एक हाथी दूसरे हाथी को मार गिराये।

समेताः पुरुषव्याघ्र निहतं शूरमाहवे।
प्रकीर्णमूर्धजाः पत्न्यो रुदत्यः पर्युपासते॥ ५॥
उद्विग्नः सततं यस्माद् धर्मराजो युधिष्ठिरः।
त्रयोदश समा निद्रां चिन्तयन् नाध्यगच्छत॥ ६॥
अनाधृष्यः परैर्युद्धे शत्रुभिर्मघवानिव।
युगान्ताग्निरिवार्चिष्मान् हिमवानिव निश्चलः॥ ७॥
स भूत्वा शरणं वीरो धार्तराष्ट्रस्य माधव।
भूमौ विनिहतः शेते वातभग्न इव द्रुमः॥ ८॥
पश्य कर्णस्य पत्नीं त्वं वृषसेनस्य मातरम्।
लालप्यमानां करुणं रुदतीं पतितां भुवि॥ ९॥

हे पुरुषव्याघ्र! युद्ध में मारे गये इस शूरवीर को, इसकी पत्नियाँ बाल बिखेरकर रोती हुई, चारों तरफ घेरकर बैठी हुई हैं। जिससे धर्मराज युधिष्ठिर सदा बेचैन रहते थे, जिसका ध्यान करते हुए उन्हें तेरह वर्षों तक अच्छीतरह से नींद नहीं आयी, जो युद्ध में इन्द्र के समान शत्रुओं के लिये अजेय था, जो प्रलयकाल की अग्नि के समान तेजस्वी और हिमालय के समान स्थिर था, हे माधव! वही वीर दुर्योधन का शरणस्थान बनकर अब आँधी से उखाड़े हुए वृक्ष के समान मारा जाकर भूमि पर सो रहा है, देखो कर्ण की पत्नी वृषसेन की माता रोती हुई भूमि पर गिरकर करुणाजनक विलाप कर रही है।

हाहा धिगेषा पतिता विसंज्ञा
समीक्ष्य जाम्बूनदबद्धकक्षम्।
कर्णं महाबाहुमदीनसत्त्वं
सुषेणमाता रुदती भृशार्ता॥ १०॥
सा वर्तमाना पतिता पृथिव्या-
मुत्थाय दीना पुनरेव चैषा।

कर्णस्य वक्त्रं परिजिघ्रमाणा
रोरूयते पुत्रवधाभितप्ता॥ ११॥

हाय मुझे धिक्कार है। यह सुषेण की माता, स्वर्णकवचधारी, उदार हृदय, महाबाहु कर्ण को इस अवस्था में देखकर, अत्यन्तआर्त होकर रोती हुई, चेतनारहित होकर गिर पड़ी है। पुत्र के वध से सन्तप्त वह कर्ण की पत्नी, कर्ण के मुख को सूँघती हुई, पृथिवी पर गिर पड़ी और उठकर पुनः गिर पड़ी और अब वह फूट फूटकर रोरही है।

तं पश्य कदनं कृत्वा शूराणां मधुसूदन।
शयानं वीरशयने रुधिरेण समुक्षितम्॥ १२॥
आवन्त्यमभितो नार्यो रुदत्यः पर्युपासते।
प्रातिपेयं महेष्वासं हतं भल्लेन बाह्लिकम्॥ १३॥
प्रसुप्तमिव शार्दूलं पश्य कृष्ण मनस्विनम्।
अतीव मुखवर्णोऽस्य निहतस्यापि शोभते॥ १४॥
सोमस्येवाभिपूर्णस्य पौर्णमास्यां समुद्यतः।
पुत्रशोकाभितप्तेन प्रतिज्ञां चाभिरक्षता॥ १५॥
पाकशासनिना संख्ये वार्धक्षत्रिर्निपातितः।
एकादश चमूर्भित्त्वा रक्ष्यमाणं महात्मना॥ १६॥
सत्यं चिकीर्षता पश्य हतमेनं जयद्रथम्।

हे मधुसूदन! उस अवन्तीनरेश को देखो। वह वीरों का विनाश करके, खून से लथपथ हुआ अब वीरशय्या पर सोरहा है। उसकी स्त्रियाँ उसके चारोंतरफ बैठी हुई रोरही हैं। हे कृष्ण! प्रतीप के पुत्र मनस्वी बाह्लीक को देखो। ये भल्ल से मारे जाकर सोये हुए सिंह के समान लग रहे हैं। मर जाने पर भी इनकी मुख कान्ति, पूर्णमासी को उगते हुए पूर्ण चन्द्रमा के समान प्रकाशित हो रही है। हे कृष्ण! पुत्र के शोक से संतप्त मनस्वी अर्जुन ने अपनी प्रतिज्ञा की रक्षा करते हुए, उसे सत्य करने की इच्छा से युद्धक्षेत्र में रक्षा किये जाते हुए वृद्धक्षत्र के पुत्र जयद्रथ को ग्यारह अक्षौहिणी सेनाओं को भेद कर मार दिया। इस दिवंगत हुए को देखो।

तमेताः पर्युपासन्ते रक्ष्यमाणं महाभुजम्॥ १७॥
सिन्धुसौवीरभर्तारं काम्बोजयवनस्त्रियः।
सैषा मम सुता बाला विलपन्ती च दुःखिता॥ १८॥
आत्मना हन्ति चात्मानमाक्रोशन्ती च पाण्डवान्।
किं नु दुःखतरं कृष्ण परं मम भविष्यति॥ १९॥
यत् सुता विधवा बाला स्नुषाश्च निहतेश्वराः।
हा हा धिग् दुःशलां पश्य वीतशोकभयामिव॥ २०॥
शिरो भर्तुरनासाद्य धावमानामितस्ततः।
वारयामास यः सर्वान् पाण्डवान् पुत्रगृद्धिनः।
स हत्वा विपुलाः सेनाः स्वयं मृत्युवशं गतः॥ २१॥

सिन्धु और सौवीरदेश के स्वामी इस महाबाहु जयद्रथ को काम्बोज और यवनदेश की स्त्रियाँ घेरकर बैठी हुई हैं और इसकी रक्षा कर रही हैं। देखो वहीं मेरी पुत्री बालिका दुःशला दुःखी होकर विलाप करती हुई अपने हाथों से अपनी छाती पीट रही है और पाण्डवों को कोस रही है। हे कृष्ण! मेरे लिये इससे अधिक और क्या दुख की अवस्था हो सकती है कि यह मेरी बालिका पुत्री विधवा हो गयी और पुत्रवधुओं के पति मारे गये। हाय, हाय, धिक्कार है। दुःशला को देखो। वह अपने पति के सिर को न प्राप्त कर सकने के कारण शोक और भय से रहित होकर, उसे ढूँढने के लिये इधर उधर भाग रही है। जिस वीर ने अपने पुत्र को बचाने की इच्छा वाले सारे पाण्डवों को रोक दिया था, वह बहुत सारी सेनाओं को मार कर स्वयं मृत्यु के वश में हो गया।

ग्यारहवाँ अध्याय : शल्य, भगदत्त, और द्रोण के लिये विलाप।

गान्धार्युवाच

एष शल्यो हतः शेते साक्षान्नकुलमातुलः।
धर्मज्ञेन हतस्तात धर्मराजेन संयुगे॥ १॥
यस्त्वया स्पर्धते नित्यं सर्वत्र पुरुषर्षभ।
स एष निहतः शेते मद्रराजो महाबलः॥ २॥
येन संगृह्णता तात रथमाधिरथेर्युधि।
जयार्थं पाण्डुपुत्राणां तथा तेजोवधः कृतः॥ ३॥
अहो धिक्पश्य शल्यस्य पूर्णचन्द्रसुदर्शनम्।
मुखं पद्मपलाशाक्षं काकैरादष्टमव्रणम्॥ ४॥

फिर गान्धारी ने कहा कि तात। यह नकुल के सगे मामा शल्य मारे हुए सो रहे हैं। इन्हें धर्मज्ञ धर्मराज युधिष्ठिर ने युद्ध में मारा है। हे पुरुषश्रेष्ठ! मद्रराज, महाबली शल्य सदा और सब जगह आपके साथ स्पर्धा किया करते थे, पर अब मारे हुए यहाँ सो रहे हैं। ये वही हैं जिन्होंने युद्ध में कर्ण के रथ का संचालन करते हुए, पाण्डुपुत्रों की विजय के लिये उसके उत्साह को नष्ट किया था। अरे धिक्कार है। देखो शल्य के पूर्ण चन्द्रमा के समान और कमलदल के समान नेत्रों वाले घाव रहित सुन्दर मुख को कौओं ने कुछ कुछ काट दिया है।

युधिष्ठिरेण निहतं शल्यं समितिशोभनम्।
रुदत्यः पर्युपासन्ते मद्रराजं कुलाङ्गनाः॥ ५॥
एताः सुसूक्ष्मवसना मद्रराजं नरर्षभम्।
क्रोशन्त्योऽथ समासाद्य क्षत्रियाः क्षत्रियर्षभम्॥ ६॥
शल्यं निपतितं नार्यः परिवार्याभितः स्थिताः।
वासिता गृष्टयः पङ्के परिमग्नमिव द्विपम्॥ ७॥
शल्यं शरणदं शूरं पश्येमं वृष्णिनन्दन।
शयानं वीरशयने शरैर्विशकलीकृतम्॥ ८॥

युधिष्ठिर के द्वारा मारे गये, युद्धक्षेत्र में शोभित होने वाले मद्रराज शल्य को रोती हुई उनकी कुलांगनाएँ चारों तरफ से घेर कर बैठी हुई हैं। अत्यन्त बारीक वस्त्रों को पहने हुए ये क्षत्राणियाँ, क्षत्रिय शिरोमणि और नरश्रेष्ठ मद्रराज के पास आकर करुण क्रन्दन कर रही हैं। मारे गए शल्य के चारों तरफ उनकी स्त्रियाँ उसी प्रकार बैठी हुई हैं, जैसे कीचड़ में फँसे हुए गजराज के चारों तरफ जवान हथिनियाँ खड़ी हुई हों। हे वृष्णिनन्दन कृष्ण! देखो, दूसरों को शरण देने वाले ये शल्य अब बाणों से छिन्नभिन्न होकर वीरशय्या पर सो रहे हैं।

एष शैलालयो राजा भगदत्तः प्रतापवान्।
गजाङ्कुशधरः श्रीमाञ्शेते भुवि निपातितः॥ ९॥
योधयित्वा महाबाहुरेष पार्थं धनंजयम्।
संशयं गमयित्वा च कुन्तीपुत्रेण पातितः॥ १०॥

ये पर्वतीय, प्रतापी राजा श्रीमान् भगदत्त, हाथ में हाथी के अंकुश को लिये हुए भूमि पर पड़े हुए हैं। इन महाबाहु ने कुन्तीपुत्र अर्जुन के साथ युद्ध करते हुए उन्हें संशय में डाल दिया था फिर उनके हाथ से ही मारे गये।

अर्जुनस्य विनेतारमाचार्यं सात्यकेस्तथा।
तं पश्य पतितं द्रोणं कुरूणां गुरुमुत्तमम्॥ ११॥
यस्य प्रसादाद् बीभत्सुः पाण्डवः कर्म दुष्करम्।
चकार स हतः शेते नैनमस्त्राण्यपालयन्॥ १२॥
यं पुरोधाय कुरव आह्वयन्ति स्म पाण्डवान्।
सोऽयं शस्त्रभृतांश्रेष्ठो द्रोणः शस्त्रैः परिक्षतः॥ १३॥
यस्य निर्दहतः सेनां गतिरग्नेरिवाभवत्।
स भूमौ निहतः शेते शान्तार्चिरिव पावकः॥ १४॥

जो अर्जुन के शिक्षक, सात्यकि के आचार्य और कौरवों के श्रेष्ठ गुरु थे, वे द्रोणाचार्य भी यहाँ मरकर पड़े हुए हैं। उन्हें देखो। जिनकी कृपा से ही पाण्डुपुत्र अर्जुन ने दुष्कर कर्म किये, वे ही मारे जाकर यहाँ सोरहे हैं, उनकी अस्त्रों ने रक्षा नहीं की। जिनको आगे रखकर कौरव पाण्डवों को ललकारते थे, वे शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ द्रोणाचार्य शस्त्रों के द्वारा क्षत-विक्षत हो गये हैं। शत्रु सेना का विनाश करते हुए, जिनकी गति अग्नि केसमान होती थी, वे द्रोणाचार्य अब बुझी लपटों वाली अग्नि के समान मारे हुए भूमि पर सो रहे हैं।

द्रोणं द्रुपदपुत्रेण निहतं मधुसूदन।
कृपी कृपणमन्वास्ते दुःखोपहतचेतना॥ १५॥
तां पश्य रुदतीमार्तां मुक्तकेशीमधोमुखीम्।
उपास्ते वै मृधे द्रोणं जटिला ब्रह्मचारिणी॥ १६॥
प्रेतकृत्यं च यतते कृपी कृपणमातुरा।
हतस्य समरे भर्तुः सुकुमारी यशस्विनी॥ १७॥

हे मधुसूदन! द्रुपदपुत्र के द्वारा मारे गये द्रोणाचार्य के समीप उनकी पत्नी कृपी, दुःख से जिसकी चेतना मारी गयी है, बड़ी दीनता से युक्त होकर बैठी हुई है। बाल खोले हुए, नीचा मुख किये हुए, आर्त होकर रोती हुई उसे देखो। जटाधारिणी ब्रह्मचारिणी वह कृपी युद्ध स्थल में द्रोणाचार्य के समीप ही बैठी है। अब वह सुकुमारी, यशस्विनी, दीनता से युक्त, आतुर कृपी युद्ध में मारे गये अपने पति के अन्त्येष्टि कर्म को करने का यत्न कर रही है।

कुर्वन्ति च चितामेते जटिला ब्रह्मचारिणः।
धनुर्भिः शक्तिभिश्चैव रथनीडैश्च माधव॥ १८॥
शरैश्च विविधैरन्यैर्धक्ष्यते भूरितेजसम्।
इति द्रोणं समाधाय शंसन्ति च रुदन्ति च।
सामभिस्त्रिभिरन्तस्थैरनुशंसन्ति चापरे॥ १९॥

ये जटाधारी ब्रह्मचारी हे माधव! धनुषों, शक्तियों, रथ की बैठकों, बाणों और दूसरी अन्य वस्तुओं से चिता का निर्माण कर रहे हैं। फिर अत्यन्ततेजस्वी द्रोणाचार्य को उस पर लिटाकर वेदमन्त्र पढ़ते हुए रोरहे हैं। कुछ दूसरे व्यक्ति अन्त समय में तीन प्रकार से गाये जाने वाले सामवेद के मन्त्रों का गान कर रहे हैं।

बारहवाँ अध्याय : अन्य वीरों के लिये गान्धारी का विलाप।

गान्धार्युवाच

पुत्रशोकाभिसंतप्तः सोमदत्तो जनार्दन।
युयुधानं महेष्वासं गर्हयन्निव दृश्यते॥ १॥
असौ हि भूरिश्रवसो माता शोकपरिप्लुता।
आश्वासयति भर्तारं सोमदत्तमनिन्दिता॥ २॥
दिष्ट्या नैनं महाराज दारुण भरतक्षयम्।
कुरुसंक्रन्दनं घोरं युगान्तमनुपश्यसि॥ ३॥
दिष्ट्या स्नुषाणामाक्रन्दे घोरं विलपितं बहु।
न शृणोषि महाराज सारसीनामिवार्णवे॥ ४॥
एकवस्त्रार्धसंवीताः प्रकीर्णासितमूर्धजाः।
स्नुषास्ते परिधावन्ति हतापत्या हतेश्वराः॥ ५॥

हे जनार्दन! उधर मृत सोमदत्त मानो पुत्र के शोक से संतप्त होकर, महाधनुर्धर सात्यकि की निन्दा करते हुए दिखाई देरहे हैं। देखो, यह भूरिश्रवा की अनिन्दिता शोक में भरी माता अपने पति सोमदत्त को आश्वासन देरही है। वह कह रही है कि हे महाराज! यह सौभाग्य की बात है कि आपको भरतवंशियों का भयंकर विनाश, प्रलय के समान कुरुकुल का घोर संहार देखने को नहीं मिला है। हे महाराज! यह सौभाग्य की बात है कि आप समुद्रतट पर चीत्कार करनेवाली सारसियों के समान युद्धक्षेत्र में अपनी पुत्रवधुओं का भयंकर विलाप नहीं सुन रहे हैं। ये आपकी पुत्रवधुएँ एकवस्त्र में या आधे वस्त्र में ही अपने शरीर को ढककर, काले बालों को फैलाकर युद्धभूमि में इधर से उधर दौड़ रही हैं। उनके पुत्र और पति मारे जा चुके हैं।

अमूस्तु भूरिश्रवसो भार्याः सात्यकिना हतम्।
परिवार्यानुशोचन्ति भर्तारमसितेक्षणाः॥ ६॥
एता विलप्य करुणं भर्तृशोकेन कर्शिताः।
पतन्त्यभिमुखा भूमौ कृपणं बत केशव॥ ७॥
गान्धारराजः शकुनिर्बलवान् सत्यविक्रमः।
निहतः सहदेवेन भागिनेयेन मातुलः॥ ८॥
यः पुरा हेमदण्डाभ्यां व्यजनाभ्यां स्म वीज्यते।
स एष पक्षिभिः पक्षैः शयान उपवीज्यते॥ ९॥
मायया निकृतिप्रज्ञो जितवान् यो युधिष्ठिरम्।
सभायां विपुलं राज्यं स पुनर्जीवितं जितः॥ १०॥
कैतवं मम पुत्राणां विनाशायोपशिक्षितम्।

ये भूरिश्रवा की काली आँखोंवाली पत्नियाँ सात्यकिद्वारा मारे गये अपने पति को घेरकर बैठी हुई शोक कर रही हैं। पति के शोक से दुबली हुई, हे केशव! ये स्त्रियाँ करुणायुक्त विलापकर, दीन बनी हुई भूमि पर पछाड़ खाकर गिर रही हैं। ये गान्धारराज सत्यविक्रमी बलवान् शकुनि सहदेव से मारे गये हैं। भानजे ने मामा के प्राण लिये हैं। जो पहले सुनहरे डंडों से युक्त दो पंखों से हवा करवाया करता था, उसी शकुनि पर अब पक्षी अपने पंखों से हवा कर रहे हैं। जो छल विद्या का पण्डित था, जिसने सभा में युधिष्ठिर और उसके राज्य को कपट

से जीता वही शकुनि अब अपने जीवन को भी हार गया है। इसने मेरे पुत्रों के विनाश के लिये ही द्यूतविद्या सीखी थी।

एतेनैतन्महद् वैरं प्रसक्तं पाण्डवैः सह॥ ११॥
वधाय मम पुत्राणामात्मनः सगणस्य च।
काम्बोजं पश्य दुर्धर्षं काम्बोजास्तरणोचितम्॥ १२॥
शयानमृषभस्कन्धं हतं पांसुषु माधव।
यस्य क्षतजसंदिग्धौ बाहू चन्दनभूषितौ॥ १३॥
अवेक्ष्य करुणं भार्या विलपत्यतिदुःखिता।
हतबन्धुरनाथा च वेपन्ती मधुरस्वरा॥ १४॥
आतपे क्लाम्यमानानां विविधानामिव स्रजाम्।
क्लान्तानामपि नारीणां श्रीर्जहाति न वै तनूः॥ १५॥

इसने ही पाण्डवों के साथ महान् वैर की नींव, मेरे पुत्रों और सम्बन्धियोंसहित अपने वध के लिये डाली थी। हे माधव! बैल के समान कन्धों वाले, दुर्धर्ष, काबुल के बने मुलायम बिस्तरों पर सोनेयोग्य, मारे गये इस काम्बोजराज सुदक्षिण को देखो, जो धूल में लोट रहा है। इसकी चन्दन से लिपटी, खून से भरी दोनों बाँहों को देखकर इसकी पत्नी अत्यन्तदुःखी होकर करुणायुक्त विलाप कर रही है। अपने जीवनसाथी के मारे जाने पर, अनाथ बनी हुई, और काँपती हुई यह मधुर स्वर में रोरही है। धूप से मुरझाती हुई नाना प्रकार की फूलमालाओं के समान ये नारियाँ भी धूप से तप गयी हैं पर फिर भी कान्ति इनके शरीरों को छोड़ नहीं रही है।

शयानमभितः शूरं कालिङ्गं मधुसूदन।
पश्य दीप्ताङ्गदयुगप्रतिनद्धमहाभुजम्॥ १६॥
मागधानामधिपतिं जयत्सेनं जनार्दन।
आवार्य सर्वतः पत्न्यः प्ररुदत्यः सुविह्वलाः॥ १७॥
प्रकीर्णवस्त्राभरणां रुदत्यः शोककर्शिताः।
स्वास्तीर्णशयनोपेता मागध्यः शेरते भुवि॥ १८॥

हे मधुसूदन! सामने शूरवीर कलिंगराज को सोते हुए देखो। इसकी विशाल दोनों भुजाओं में चमकते हुए बाजूबन्द बँधे हुए हैं। हे जनार्दन! मगधराज जयत्सेन को अत्यन्त व्याकुल और फूट-फूट कर रोती हुई उसकी पत्नियाँ सबतरफ से घेरकर बैठी हुई हैं। शोक की मारी इन मगध की रानियों के वस्त्र और आभूषण अस्तव्यस्त होरहे हैं। उत्तम बिछौनों पर सोनेवाली ये अब रोती हुई भूमि पर लोट रही हैं।

कोसलानामधिपतिं राजपुत्रं बृहद्बलम्।
भर्तारं परिवार्यैताः पृथक् प्ररुदिताः स्त्रियः॥ १९॥
अस्य गात्रगतान् बाणान् कार्ष्णिबाहुबलार्पितान्।
उद्धरन्त्यसुखाविष्टा मूर्छमानाः पुनः पुनः॥ २०॥
आसां सर्वानवद्यानामातपेन परिश्रमात्।
प्रम्लाननलिनाभानि भान्ति वक्त्राणि माधव॥ २१॥
द्रोणेन निहताः शूराः शेरते रुचिराङ्गदाः।
धृष्टद्युम्नसुताः सर्वे शिशवो हेममालिनः॥ २२॥

इधर अपने पति कोशलदेश के राजा, राजपुत्र बृहद्बल को घेरकर ये उसकी स्त्रियाँ अलग-अलग फूट-फूट-कर रोरही हैं। अभिमन्यु के बाहुबल के द्वारा इसके शरीर में घुसे हुए बाणों को ये रानियाँ अत्यन्त दुःखी होकर निकाल रही हैं और बार बार मूर्च्छित हो जाती हैं। हे माधव! इनसारी अनिन्दिताओं के मुख परिश्रम से मुरझाये कमलों के समान प्रतीत होरहे हैं। उधर सुन्दर बाजूबन्द पहने, स्वर्णमालाओं को धारण किये, द्रोणाचार्य द्वारा मारे, धृष्टद्युम्न के सारे बालक शूरवीर पुत्र सोरहे हैं।

तथैव निहताः शूराः शेरते रुचिराङ्गदाः।
द्रोणेनाभिमुखाः सर्वे भ्रातरः पञ्च केकयाः॥ २३॥
द्रोणेन द्रुपदं संख्ये पश्य माधव पातितम्।
महाद्विपमिवारण्ये सिंहेन महता हतम्॥ २४॥

इसीप्रकार द्रोणाचार्य से युद्ध में उनके द्वारा मारे, सुन्दर बाजूबन्द पहने हुए, सारे पाँचों शूरवीर केकयकुमार भाई, युद्धभूमि में सोरहे हैं। हे माधव! युद्धक्षेत्र में द्रोणाचार्य द्वारा मारे गये द्रुपद को देखो। ये उसीप्रकार प्रतीत होरहे हैं, जैसे वन में महान् सिंह द्वारा मारा गया कोई विशाल हाथी हो।

द्रोणास्त्रमभिहत्यैष विमर्दे मधुसूदन।
महेष्वासो हतः शेते नद्या हत इव द्रुमः॥ २५॥
एष चेदिपतिः शूरो धृष्टकेतुर्महारथः।
शेते विनिहतः संख्ये हत्वा शत्रून् सहस्रशः॥ २६॥
दाशार्हीपुत्रजं वीरं शयानं सत्यविक्रमम्।
आरोप्याङ्के रुदन्त्येताश्चेदिराजवराङ्गनाः॥ २७॥
अस्य पुत्रं हृषीकेश सुवक्त्रं चारुकुण्डलम्।
द्रौणिना समरे पश्य निकृत्तं बहुधा शरैः॥ २८॥

पितरं नूनमाजिस्थं युद्ध्यमानं परैः सह।
नाजहात् पितरं वीरमद्यापि मधुसूदन॥ २९॥

हे मधुसूदन! युद्ध में द्रोणाचार्य के अस्त्रों का विनाश करके, यह महान् धनुर्धर फिर उनके द्वारा मारा हुआ, उसीप्रकार सोरहा है, जैसे नदी के वेग से उखाड़ा हुआ कोई वृक्ष हो। यह शूरवीर महारथी, चेदिराज धृष्टकेतु, युद्ध में हजारों शत्रुओं को मारकर फिर स्वयं मारा जाकर सोरहा है। दाशार्ह कुल की कन्या श्रुतश्रवा के पुत्र शिशुपाल का यह सत्य पराक्रम वाला वीरपुत्र युद्धभूमि में सोरहा है। चेदिराज की ये सुन्दर पत्नियाँ इसे अपनी गोद में लेकर रो रहीं हैं। हे हृषिकेश! देखो इसके सुन्दर मुखवाले और सुन्दर कुण्डलोंवाले पुत्र के द्रोणाचार्य के पुत्र ने युद्ध में बाणों से अनेक टुकड़े कर दिये हैं। हे मधुसूदन! इसने युद्धक्षेत्र में विद्यमान् शत्रुओं से लड़ते हुए अपने वीर पिता का साथ निश्चय ही आज मरने पर भी नहीं छोड़ा है।

विन्दानुविन्दावावन्त्यौ पतितौ पश्य माधव।
हिमान्ते पुष्पितौ शालौ मरुता गलिताविव॥ ३०॥
काञ्चनाङ्गदवर्माणौ बाणखड्गधनुर्धरौ।
ऋषभप्रतिरूपाक्षौ शयानौ विमलस्रजौ॥ ३१॥
ये हन्युः शस्त्रवेगेन देवानपि नरर्षभाः।
त इमे निहताः संख्ये पश्य कालस्य पर्ययम्॥ ३२॥

हे माधव! मरकर पड़े हुए अवन्तीदेश के विन्द और अनुविन्द को देखो। ये ऐसे प्रतीत होरहे हैं, जैसे ग्रीष्मऋतु में आँधी से उखाड़े हुए दो फूलों से भरे शाल के वृक्ष हों। इन्होंने सोने के बाजूबन्द और कवच धारण किये हुए हैं, बाण, खड्ग और धनुष लिये हुए हैं। इनकी साँड के समान आँखें हैं, चमकीले हार पहने ये युद्धक्षेत्र में सो रहे हैं।

तदैव निहताः कृष्ण मम पुत्रास्तरस्विनः।
यदैवाकृतकामस्त्वमुपप्लव्यं गतः पुनः॥ ३३॥
शान्तनोश्चैव पुत्रेण प्राज्ञेन विदुरेण च।
तदैवोक्तास्मि मा स्नेहं कुरुष्वात्मसुतेष्विति॥ ३४॥
तयोर्हि दर्शनं नैतन्मिथ्या भवितुमर्हति।
अचिरेणैव मे पुत्रा भस्मीभूता जनार्दन॥ ३५॥
इत्युक्त्वा न्यपतद् भूमौ गान्धारी शोकमूर्छिता।
दुःखोपहतविज्ञाना पुत्रशोकपरिप्लुता॥ ३६॥

हे कृष्ण! मेरे वेगशाली पुत्र तो तभी मारे गये थे, जब तुम अपूर्ण मनोरथ होकर वापिस उपप्लव्य नगर को लौट गये थे। शान्तनुपुत्र भीष्म और ज्ञानवान् विदुर ने मुझसे तभी कह दिया था कि अब तुम अपने पुत्रों पर स्नेह मत करो। उनदोनों की ज्ञान दृष्टि असत्य नहीं होसकती थी, इसीलिये हे जनार्दन! थोड़े दिन में ही मेरे पुत्र युद्ध की आग में जलकर भस्म हो गये। ऐसा कहकर पुत्रों के शोक से भरी हुई गान्धारी, जिसकी दुःख के कारण विवेकशक्ति नष्ट होगयी थी, शोक के कारण मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़ी।

तेरहवाँ अध्याय : मृत व्यक्तियों के अन्त्येष्टिकर्मों का कराया जाना।

धृतराष्ट्रस्तु राजर्षिर्निगृह्याबुद्धिजं तमः।
पर्यपृच्छत धर्मज्ञो धर्मराजं युधिष्ठिरम्॥ १॥
अनाथानां जनानां च सनाथानां च भारत।
कच्चित् तेषां शरीराणि धक्ष्यसे विधिपूर्वकम्॥ २॥
एवमुक्तो महाराजः कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः।
आदिदेश सुधर्माणं धौम्यं सूतं च संजयम्॥ ३॥
विदुरं च महाबुद्धिं युयुत्सुं चैव कौरवम्।
इन्द्रसेनमुखांश्चैव भृत्यान् सूतांश्च सर्वशः॥ ४॥
भवन्तः कारयन्त्वेषां प्रेतकार्याण्यशेषतः।
यथा चानाथवत् किंचिच्छरीरं न विनश्यति॥ ५॥

तब धर्मज्ञ और राजर्षि धृतराष्ट्र ने अज्ञान से उत्पन्न शोक को वश में कर धर्मराज युधिष्ठिर से पूछा कि हे भारत! यहाँ जो सनाथ और अनाथ योद्धा मरे हुए पड़े हैं, क्या उनके विधिपूर्वक अन्त्येष्टि कर्म कराओगे? ऐसा कहे जाने पर कुन्तीपुत्र महाराज युधिष्ठिर ने सुधर्मा, धौम्य, सारथिसंजय, महाबुद्धिमान् विदुर, कौरव युयुत्सु, इन्द्रसेन आदि सेवकों और सारे सूतों को आज्ञा दी कि आपलोग इनसबके अन्त्येष्टि कर्म करवा दीजिये, जिससे कोई भी लाश अनाथ के समान नष्ट न होपाये।

शासनाद् धर्मराजस्य क्षत्ता सूतश्च संजयः।
सुधर्मा धौम्यसहित इन्द्रसेनादयस्तथा॥ ६॥
चन्दनागुरुकाष्ठानि तथा कालीयकान्युत।
घृतं तैलं च गन्धांश्च क्षौमाणि वसनानि च॥ ७॥
समाहृत्य महार्हाणि दारूणां चैव संचयान्।
रथांश्च मृदितांस्तत्र नानाप्रहरणानि च॥ ८॥
चिताः कृत्वा प्रयत्नेन यथामुख्यान् नराधिपान्।
दाहयामासुरव्यग्राः शास्त्रदृष्टेन कर्मणा॥ ९॥

धर्मराज के आदेश से विदुर, सारथिसंजय ने, धौम्यसहित सुधर्मा, और इन्द्रसेन आदि ने चन्दन, अगर की लकड़ियाँ, कालीयक, घी, तेल, सुगन्धित पदार्थ और बहुमूल्य रेशमी वस्त्र मँगाये, लकड़ियों का ढेर एकत्र किया, टूटे हुए रथों और तरह तरह के शस्त्रास्त्रों को भी इकट्ठा किया और चिताएँ बनाकर प्रमुखता सहित राजाओं के शान्तभाव से शास्त्रों के अनुसार दाह कर्म कराये।

साम्नामृचां च नादेन स्त्रीणां च रुदितस्वनैः।
कश्मलं सर्वभूतानां निशायां समपद्यत॥ १०॥
ते विधूमाः प्रदीप्ताश्च दीप्यमानाश्च पावकाः।
नभसीवान्वदृश्यन्त ग्रहास्तन्वभ्रसंवृताः॥ ११॥
ये चाप्यनाथास्तत्रासन् नानादेशसमागताः।
तांश्च सर्वान् समानाय्य राशीन् कृत्वा सहस्रशः॥ १२॥
चित्वा दारुभिरव्यग्रैः प्रभूतैः स्नेहपाचितैः।
दाहयामास तान् सर्वान् विदुरो राजशासनात्॥ १३॥

उस समय वहाँ रात्रि में सामवेद के तथा वेदमन्त्रों के घोष से और स्त्रियों के रोने की ध्वनियों से सारे लोगों के लिये वहाँ बड़ा शोकमय वातावरण प्रस्तुत होगया। तब धूएँ से रहित प्रज्वलित और जलायी जाती हुई चिताओं की अग्नियाँ ऐसे प्रतीत होरहीं थीं, जैसे आकाश में सूक्ष्म बादलों से ढके हुए ग्रह हों। इसके पश्चात् वहाँ अनेक देशों से आये जो अनाथलोग मारे गये थे, उन सबकी लाशों को एकत्र करवाकर और उनके हजारों ढेर बनवाकर, फिर बहुत सारी घी और तेल में डुबोई हुई लकड़ियों से स्थिर चित्तवाले लोगों के द्वारा चिताओं को बनवाकर विदुर जी ने राजा की आज्ञा के अनुसार उन सबको जलवा दिया।

कारयित्वा क्रियास्तेषां कुरुराजो युधिष्ठिरः।
धृतराष्ट्रं पुरस्कृत्य गङ्गामभिमुखोऽगमत्॥ १४॥

इसप्रकार उन सबके अन्त्येष्टि कर्म कराकर, कुरुराज युधिष्ठिर धृतराष्ट्र को आगे करके गंगा की तरफ चले गये।

शान्तिपर्व

पहला अध्याय : युधिष्ठिर के हृदय में वैराग्य। नारदादि ऋषियों का आना।

तत्र ते सुमहात्मानो न्यवसन् पाण्डुनन्दनाः।
शौचं निवर्तयिष्यन्तो मासमात्रं बहिः पुरात्॥ १॥
द्वैपायनो नारदश्च देवलश्च महानृषिः।
देवस्थानश्च कण्वश्च तेषां शिष्याश्च सत्तमाः॥ २॥
अन्ये च वेदविद्वांसः कृतप्रज्ञा द्विजातयः।
गृहस्थाः स्नातकाः सन्तो ददृशुः कुरुसत्तमम्॥ ३॥
प्रतिगृह्य ततः पूजां तत्कालसदृशीं तदा।
पर्युपासन् यथान्यायं परिवार्य युधिष्ठिरम्॥ ४॥
पुण्ये भागीरथीतीरे शोकव्याकुलचेतसम्।
आश्वासयन्तो राजानं विप्राः शतसहस्रशः॥ ५॥

फिर वे अत्यन्तमनस्वी पाण्डुपुत्र आत्मशुद्धि के लिये, एक मास तक नगर से बाहर अर्थात् गंगातट पर टिके रहे। वहाँ द्वैपायन व्यास, नारद, महर्षि देवल, देवस्थान और कण्व तथा उनके शिष्य तथा दूसरे वेदों के विद्वान्, बुद्धिमान् ब्राह्मण, गृहस्थ, स्नातक, सन्त उन कुरुश्रेष्ठ युधिष्ठिर से मिलने के लिये आये। सैकड़ों और हजारों की संख्या में वे लोग उस समय के यथोचित सम्मान को प्राप्त कर के, भागीरथी के सुन्दर किनारे पर, शोक से व्याकुल हृदयवाले युधिष्ठिर को घेरकर, उन्हें आश्वासन देते हुए बैठे रहे।

युधिष्ठिरस्तु धर्मात्मा शोकव्याकुलचेतनः।
आविष्टो दुःखशोकाभ्यां निःश्वसंश्च पुनः पुनः॥ ६॥
दृष्ट्वार्जुनमुवाचेदं वचनं शोककर्शितः।
यद्भैक्ष्यमाचरिष्याम वृष्ण्यन्धकपुरे वयम्॥ ७॥
ज्ञातीन् निष्पुरुषान् कृत्वा नेमां प्राप्स्याम दुर्गतिम्।
अमित्रा नः समृद्धार्था वृत्तार्थाः कुरवः किल॥ ८॥
आत्मानमात्मना हत्वा किं धर्मफलमाप्नुमः।

तब धर्मात्मा युधिष्ठिर, जो दुख और शोक से भरे हुए थे, शोक से जिनका चित्त व्याकुल हो रहा था, बार बार लम्बी साँसे लेते हुए, अर्जुन को देखकर, शोक से पीड़ित हुए यह बोले कि यदि हम वृष्णि और अन्धकवंशियों की नगरी द्वारिका में जाकर भीख मांगते हुए अपना निर्वाह कर लेते, तो आज अपने परिवार वालों को निर्वंश बनाकर इस दुर्गति को प्राप्त नहीं होते। अब हमारे शत्रुओं का मनोरथ सफल हो गया। कौरवों का तो प्रयोजन ही समाप्त हो गया, क्योंकि वे मर गये हैं। स्वयं ही अपने लोगों को मारकर हम कौन से धर्म का फल प्राप्त करेंगे?

धिगस्तु क्षात्रमाचारं धिगस्तु बलपौरुषम्॥ ९॥
धिगस्त्वमर्षं ये नेमामापदं गमिता वयम्।
साधु क्षमा दमः शौचं वैराग्यं चाप्यमत्सरः॥ १०॥
अहिंसा सत्यवचनं नित्यानि वनचारिणाम्।
वयं तु लोभान्मोहाच्च दम्भं मानं च संश्रिताः॥ ११॥
इमामवस्थां सम्प्राप्ता राज्यलाभबुभुत्सया।
त्रैलोक्यस्यापि राज्येन नास्मान् कश्चित् प्रहर्षयेत्॥ १२॥
बान्धवान् निहतान् दृष्ट्वा पृथिव्यां विजयैषिणः।

क्षत्रियों के आचार, बल और पौरुष को धिक्कार है, उनके अमर्ष को धिक्कार है, जिनके कारण हम इस प्रकार की आपत्ति में पड़ गये हैं। क्षमा, दमन, शौच, वैराग्य, ईर्ष्या का अभाव, अहिंसा और सत्य ये वन में विचरण करने वालों के नित्य धर्म ही श्रेष्ठ हैं। हम तो राज्य लाभ के सुख को भोग करने की इच्छा से, लोभ और मोह के कारण, दम्भ और अभिमान का आश्रय लेकर इस अवस्था को प्राप्त हो गये हैं। अपने बन्धु–बान्धवों को मारा हुआ देखकर, अब इस पृथिवी पर विजय के अभिलाषी हमें तीनों लोकों का राज्य देकर भी कोई प्रसन्न नहीं कर सकता।

ते वयं पृथिवीहेतोरवध्यान् पृथिवीश्वरान्॥ १३॥
सम्परित्यज्य जीवामो हीनार्था हतबान्धवाः।
आमिषे गृध्यमानानामशुभं वै शुनामिव॥ १४॥
आमिषं चैव नो हीष्टमामिषस्य विवर्जनम्।
न पृथिव्या सकलया न सुवर्णस्य राशिभिः॥ १५॥
न गवाश्वेन सर्वेण ते त्याज्या य इमे हताः।

हमने इस भूमि के लिये न मारने योग्य राजाओं का त्याग किया और अब अपने बान्धवों को मारकर अर्थभ्रष्ट के समान जीवित रह गये हैं। जैसे माँस के लोभी कुत्ते को अपवित्र माना जाता है उसी प्रकार राज्य के प्रति आसक्त हमें अनिष्ट की प्राप्ति हुई है। माँस के समान इस राज्य की प्राप्ति हमारा अभीष्ट नहीं होना चाहिये। इसका त्याग ही हमारे लिये उचित है। जो ये लोग मारे गये हैं, इनका त्याग तो हमें सारी पृथिवी, सारे सुवर्णों के ढेर और सारे गायघोड़ों को पाकर भी नहीं करना चाहिये था।

बहुकल्याणसंयुक्तानिच्छन्ति पितरः सुतान्॥ १६॥
तपसा ब्रह्मचर्येण सत्येन च तितिक्षया।
उपवासैस्तथेज्या- भिर्व्रतकौतुकमङ्गलैः॥ १७॥
लभन्त मातरो गर्भान् मासान् दश च बिभ्रति।
यदि स्वस्ति प्रजायन्ते जाता जीवन्ति वा यदि॥ १८॥
सम्भाविता जातबलास्ते दद्युर्यदि नः सुखम्।
तासामयं समुद्योगो निर्वृत्तः केवलोऽफलः॥ १९॥
यदासां निहताः पुत्रा युवानो मृष्टकुण्डलाः।

पिता लोग तप, ब्रह्मचर्य, सत्य और सहनशीलता आदि साधनों से कल्याण से युक्त बहुत से पुत्रों को चाहते हैं। माताएँ भी उपवासों, यज्ञों, व्रतों और कौतुक मंगल वाले कार्यों से गर्भों को धारण करतीं हैं। इन सबकी यही इच्छा होती है कि कुशल पूर्वक बच्चों का जन्म हो और वे जीवित रहें और फिर वे यदि बलवान् होकर सम्भावित गुणों से युक्त हों तो हमें सुख देंगे। पर उनका यह सारा परिश्रम निष्फल हो गया, क्योंकि हमने उनके सोने के कुण्डल धारण करनेवाले पुत्रों को मार दिया।

संयुक्ताः काममन्युभ्यां क्रोधहर्षासमञ्जसाः॥ २०॥
न ते जयफलं किंचिद् भोक्तारो जातु कर्हिचित्।
अवध्यानां वधं कृत्वा लोके प्राप्ताः स्म वाच्यताम्॥ २१॥
हताः शूराः कृतं पापं विषयः स्वो विनाशितः।
हत्वा नो विगतो मन्युः शोको मां रुन्धयत्ययम्॥ २२॥

जो व्यक्ति काम और अभिमान से युक्त होकर, क्रोध और हर्ष के कारण अपने संतुलन को खो देते हैं, वे कभी भी, किसी प्रकार के विजय फल को नहीं भोग सकते। हम अवध्य लोगों का वध करके अब लोगों में निन्दा के पात्र बन गये हैं। हमने शूरवीरों को मारा, पाप किया और अपने देश का विनाश किया। मारकर हमारा क्रोध तो दूर हो गया, पर यह शोक मुझे घेरे रहता है।

वनमामन्त्र्य वः सर्वान् गमिष्यामि परंतप।
न हि कृत्स्नतमो धर्मः शक्यः प्राप्तुमिति श्रुतिः॥ २३॥
परिग्रहवता तन्मे प्रत्यक्षमरिसूदन।
मया निसृष्टं पापं हि परिग्रहमभीप्सता॥ २४॥
जन्मक्षयनिमित्तं च प्राप्तुं शक्यमिति श्रुतिः।
स परिग्रहमुत्सृज्य कृत्स्नं राज्यं सुखानि च॥ २५॥
गमिष्यामि विनिर्मुक्तो विशोको निर्ममः क्वचित्।
प्रशाधि त्वमिमामुर्वीं क्षेमां निहतकण्टकाम्॥ २६॥
न ममार्थोऽस्ति राज्येन भोगैर्वा कुरुनन्दन।
एतावदुक्त्वा वचनं कुरुराजो युधिष्ठिरः।
उपारमत् ततः पार्थः कनीयानभ्यभाषत॥ २७॥

हे शुत्रओं को सन्तप्त करने वाले अर्जुन! मैं आप सबसे सलाह करके अब वन में चला जाऊँगा। हे शत्रुसूदन! श्रुति कहती है कि परिग्रह अर्थात् साँसारिक पदार्थों के संग्रह में फँसे हुए व्यक्ति को सम्पूर्ण धर्म की प्राप्ति नहीं हो सकती। यह मुझे प्रत्यक्ष अनुभव हो रहा है। मैंने परिग्रह को चाहते हुए जन्म और मृत्यु के कारण पाप को ही बटोरा है। श्रुति कहती है कि परिग्रह से तो केवल पाप ही मिल सकता है। इसलिये मैं परिग्रह को छोड़कर, सारे राज्य और सुखों को त्याग कर के, बन्धनमुक्त और शोकरहित और ममता से ऊपर उठकर कहीं वन में चला आऊँगा। तुमलोग इस शत्रुओं से रहित, कुशलक्षेम से युक्त पृथिवी पर राज्य करो। हे कुरुनन्दन! अब मेरा राज्य से और भोगों से कोई मतलब नहीं है। इतनी बातें कहकर कुरुराज युधिष्ठिर चुप हो गये। तब छोटे कुन्तीपुत्र ने कहा कि-

दूसरा अध्याय : अर्जुन का युधिष्ठिर को धन का महत्व समझाना।

अहो दुःखमहो कृच्छ्रमहो वैक्लव्यमुत्तमम्।
यत् कृत्वा मानुषं कर्म त्यजेथाः श्रियमुत्तमाम्॥ १॥
शत्रून् हत्वा महीं लब्ध्वा स्वधर्मेणोपपादिताम्।
एवंविधं कथं सर्वं त्यजेथा बुद्धिलाघवात्॥ २॥
क्लीबस्य हि कुतो राज्यं दीर्घसूत्रस्य वा पुनः।
किमर्थं च महीपालानवधीः क्रोधमूर्छितः॥ ३॥

अर्जुन ने कहा कि अरे यह तो आपको बड़ा दुख और कष्ट हो रहा है। आप तो बहुत ही अधिक व्याकुलता का अनुभव कर रहे हैं, जो अमानवीय पराक्रम को करके प्राप्त हुए इस उत्तम ऐश्वर्य का त्याग कर रहे हैं। आपको यह भूमि अपने धर्म के अनुसार शत्रुओं को मारकर प्राप्त हुई है। इस प्रकार प्राप्त हुई इस सारी भूमि को आप अपनी अल्प बुद्धि के कारण क्यों छोड़ रहे हैं? कायर और आलसियों को राज्य कैसे प्राप्त हो सकता है? यदि आपको यही करना था, तो क्रोध से मूर्च्छित होकर आपने राजाओं का वध क्यों किया?

यो ह्याजिजीविषेद् भैक्ष्यं कर्मणा नैव कस्यचित्।
समारम्भान् बुभूषेत हतस्वस्तिर किंचनः॥ ४॥
सर्वलोकेषु विख्यातो न पुत्रपशुसंहितः।
कापालीं नृप पापिष्ठां वृत्तिमासाद्य जीवतः॥ ५॥
संत्यज्य राज्यमृद्धं ते लोकोऽयं किं वदिष्यति।
सर्वारम्भान् समुत्सृज्य हतस्वस्तिरकिंचनः॥ ६॥
कस्मादाशंस से भैक्ष्यं कर्तुं प्राकृतवत् प्रभो।

उसी मनुष्य को भीख माँगकर जीवन बिताने की इच्छा करनी चाहिये जो असमर्थता के कारण अपने पराक्रम से किसी के धन या राज्य को लेने की इच्छा नहीं कर सकता, जो पुत्रों और पशु आदि से युक्त नहीं है, जिसकी संसार में कोई प्रसिद्धि नहीं है, जो निरा दरिद्र है और जिसके कल्याण का साधन नष्ट हो गया है। हे राजन्! जब आप इस समृद्धिशाली राज्य को छोड़कर खप्पर हाथ में लेकर, भीख माँगने की अत्यन्त निम्नकोटि की वृत्ति का सहारा लेकर जीवन निर्वाह करेंगे, तो लोग आपको क्या कहेंगे? हे प्रभो! आप सारे उद्योगों को छोड़कर, कल्याण के साधनों से हीन होकर, दरिद्र बनकर, सामान्य मनुष्यों के समान भीख माँगने की इच्छा क्यों कर रहे हैं?

अस्मिन् राजकुले जातो जित्वा कृत्स्नां वसुंधराम्॥ ७॥
धर्मार्थावखिलौ हित्वा वनं मौढ्यात् प्रतिष्ठसे।
अश्वस्तनमृषीणां हि विद्यते वेद तद् भवान्॥ ८॥
यं त्विमं धर्ममित्याहुर्धनादेष प्रवर्तते।
धर्मं संहरते तस्य धनं हरति यस्य सः॥ ९॥
ह्रियमाणे धने राजन् वयं कस्य क्षमेमहि।

आप इस राजकुल में जन्म लेकर, सारे भूमण्डल पर विजय प्राप्तकर, अपने मोह के कारण ही सारे धर्म और अर्थ को छोड़कर, वन में जाने को तैयार होरहे हैं। आप यह जानते हैं कि यह ऋषियों का ही धर्म है कि कल के लिये संग्रह न करके प्रतिदिन माँगकर खायें। जो राजाओं का धर्म है, वह तो धन से ही संचालित होता है। जो जिसके धन का अपहरण करता है, वह उसके धर्म का भी अपहरण करता है इसलिये हे राजन्! यदि कोई हमारे धन का अपहरण कर ले, तो हम उसे कैसे क्षमा कर सकते हैं?

अभिशस्तं प्रपश्यन्ति दरिद्रं पार्श्वतः स्थितम्॥ १०॥
दरिद्रं पातकं लोके न तच्छंसितुमर्हति।
पतितः शोच्यते राजन् निर्धनश्चापि शोच्यते॥ ११॥
विशेषं नाधिगच्छामि पतितस्याधनस्य च।
अर्थेभ्यो हि विवृद्धेभ्यः सम्भृतेभ्यस्ततस्ततः॥ १२॥
क्रियाः सर्वाः प्रवर्तन्ते पर्वतेभ्य इवापगाः।
प्राणयात्रापि लोकस्य विना ह्यर्थं न सिद्ध्यति॥ १३॥
अर्थेन हि विहीनस्य पुरुषस्याल्पमेधसः।
विच्छिद्यन्ते क्रियाः सर्वा ग्रीष्मे कुसरितो यथा॥ १४॥

यदि पास में दरिद्र व्यक्ति खड़ा हो तो लोग उसे ऐसे देखते हैं, जैसे वह पापी है। दरिद्रता संसार में पाप है, इसलिये आप मेरे सामने दरिद्रता की प्रशंसा न करें। हे राजन्! जैसे पापी के लिये, वैसे ही निर्धन के लिये भी शोक किया जाता है। इसलिये मुझे पापी और निर्धन में कोई अन्तर नहीं जान पड़ता। जैसे पर्वतों से नदियाँ निकलकर बहती हैं, वैसे बढ़े हुए धन से सारे कार्य सम्पन्न किये जाते हैं। लोगों के जीवन का निर्वाह भी बिना धन के नहीं हो सकता। जैसे ग्रीष्मऋतु में छोटी नदियाँ सूख जाती हैं, वैसे धन से हीन, अल्पबुद्धि मनुष्य के भी सारे कार्य रुक जाते हैं।

यस्यार्थास्तस्य मित्राणि यस्यार्थास्तस्य बान्धवाः।
यस्यार्थाः स पुमाँल्लोके यस्यार्थाः स च पण्डितः॥ १५॥
अधनेनार्थकामेन नार्थः शक्यो विधित्सितुम्।
अर्थैरर्था निबध्यन्ते गजैरिव महागजाः॥ १६॥
धर्मः कामश्च स्वर्गश्च हर्षः क्रोधः श्रुतं दमः।
अर्थादेतानि सर्वाणि प्रवर्तन्ते नराधिप॥ १७॥
धनात् कुलं प्रभवति धनाद् धर्मः प्रवर्धते।
नाधनस्यास्त्ययं लोको न परः पुरुषोत्तम॥ १८॥

जिसके पास धन होता है, उसके पास ही मित्र होते हैं, जिसके पास धन होता है, बन्धुबान्धव भी उसी का साथ देते हैं, जिसके पास धन होता है, वही संसार में पुरुष और पंडित माना जाता है। निर्धन व्यक्ति यदि धन को प्राप्त करना चाहे, तो उसके लिये उसे प्राप्त करना असम्भव हो जाता है। पर धनी का धन बढ़ता रहता है। जैसे वन में एक विशाल हाथी के पीछे दूसरे हाथी चलने लगते हैं, वैसे ही धन से धन बँधा चला आता है। हे राजन्! धर्म का पालन, कामनाओं की पूर्ति, परलोक में उत्तम गति की प्राप्ति, हर्ष की वृद्धि, क्रोध की सफलता, शास्त्रों को सुनना और शत्रुओं का दमन ये सारे कार्य धन के द्वारा ही होते हैं। हे पुरुषोत्तम! धन से ही कुल की प्रतिष्ठा बढ़ती है, धन से ही धर्म की वृद्धि होती है। निर्धन व्यक्ति के लिये न तो यह लोक सुख देने वाला होता है और न परलोक।

नाधनो धर्मकृत्यानि यथावदनुतिष्ठति।
धनाद्धि धर्मः स्रवति शैलादभि नदी यथा॥ १९॥
यः कृशार्थः कृशगवः कृशभृत्यः कृशातिथिः।
स वै राजन् कृशो नाम न शरीरकृशः कृशः॥ २०॥
आसीदियं दिलीपस्य नृगस्य नहुषस्य च।
अम्बरीषस्य मान्धातुः पृथिवी सः त्वयि स्थिता॥ २१॥
शश्वतोऽयं भूतिपथो नास्यान्तमनुशुश्रुमः।
महान दाशरथः पन्था मा राजन् कुपथं गमः॥ २२॥

निर्धन व्यक्ति धर्म के कार्यों को ठीक प्रकार नहीं कर सकता। जैसे पर्वत से नदियाँ निकलकर बहती हैं, वैसे ही धन से धर्मकार्यों के झरने प्रवाहित होते हैं। हे राजन्! जिसके पास धन कम है, जिसके पास गायें कम हैं, जिसके पास सेवक कम हैं, जिसके यहाँ अतिथियों का आना भी कम होता है, वही व्यक्ति वास्तव में दुर्बल होता है। केवल शरीर से दुर्बल व्यक्ति ही दुर्बल नहीं होता। यह पृथिवी जिसप्रकार पहले राजा दिलीप, राजा नृग, राजा नहुष, राजा अम्बरीष और राजा मान्धाता के पास थी, उसीप्रकार से अब यह आपके पास स्थित हुई है। क्षत्रियों के लिये यह सदा से चला आनेवाला कल्याणमार्ग रहा है। हमने कभी इसके अन्त के विषय में नहीं सुना। इसी मार्ग पर महाराजा दशरथ चले थे। इसलिये हे राजन्! आप इस मार्ग को छोड़कर किसी बुरे मार्ग का आश्रय न लें।

तीसरा अध्याय : युधिष्ठिर के द्वारा त्याग भावना का प्रतिपादन।

युधिष्ठिर उवाच

यदेतन्म न्यसे पार्थ न ज्यायोऽस्ति धनादिति।
न स्वर्गो न सुखं नार्थो निर्धनस्येति तन्मृषा॥ १॥
स्वाध्याययज्ञ संसिद्धा दृश्यन्ते बहवो जनाः।
तपो रताश्च मुनयो येषां लोकाः सनातनाः॥ २॥
ऋषीणां समयं शश्वद् ये रक्षन्ति धनंजय।
आश्रिताः सर्वधर्मज्ञाः देवास्तान् ब्राह्मणान् विदुः॥ ३॥
स्वाध्यायनिष्ठान् हि ऋषीन् ज्ञाननिष्ठांस्तथापरान्।
बुद्ध्येथाः सततं चापि धर्म निष्ठान् धनंजय॥ ४॥

तब युधिष्ठिर ने कहा कि हे कुन्तीपुत्र! तुम जो समझते हो कि धन से बढ़कर कोई चीज नहीं है और निर्धन व्यक्ति को परलोक में उत्तम गति, सुख और धन प्राप्त नहीं हो सकते, वह असत्य है। स्वाध्याययज्ञ में लगे हुए बहुतसे लोग सिद्धि को प्राप्त हुए देखे जाते हैं। बहुत से तपस्या में लगे हुए मुनि उत्तमगति को प्राप्त करते हैं। हे अर्जुन! जो लोग सदा ऋषियों की परम्परा का पालन करते हैं, सारे धर्मों को जाननेवाले विद्वान् लोग उन्हीं को ब्राह्मण मानते हैं। हे अर्जुन! तुम इस बात को समझो कि ऋषियों में कुछलोग स्वाध्याय में लगे हुए ज्ञानोपार्जन करते रहते हैं और दूसरे लगातर धर्मपालन में मग्न रहते हैं।

संतोषो वै स्वर्गतमः सन्तोषः परमं सुखम्।
तुष्टेर्न किंचित् परमं सा सम्यक् प्रतितिष्ठति॥ ५॥
विनीत क्रोधहर्षस्य सततं सिद्धिरुत्तमा।
यदा न भावं कुरुते सर्वभूतेषु पातकम्॥ ६॥
कर्मणा मनमा वाचा ब्रह्म सम्पद्यते तदा।
विनीत मानमोहश्च बहुसंगविवर्जितः॥ ७॥
तदात्म ज्योतिषः साधोः निर्वाणमुपप द्यते।
इदं तु शृणु मे पार्थ ब्रुवतः संयतेन्द्रियः॥ ८॥
धर्ममन्ये वृत्तमन्ये धनमीहन्ति चापरे।

सन्तोष से बढ़कर कुछ भी नहीं है। जिसके हृदय में सन्तोष अच्छीतरह विद्यमान है, जिसने क्रोध और हर्ष को जीत लिया है, उसे सर्वदा उत्तम सिद्धि प्राप्त होती है। जब व्यक्ति मन, वाणी तथा कर्म से सारे प्राणियों के प्रति पाप भावना को छोड़ देता है, तब परब्रह्म को प्राप्त होजाता है। जो अभिमान और मोह को वश में कर लेता है, सबप्रकार की आसक्तियों से रहित हो जाता है और जिसकी आत्मा में ज्ञान की ज्योति प्रकाशित होजाती है, उसे तब मोक्ष की प्राप्ति होजाती है। हे अर्जुन! मैं जो बात कह रहा हूँ, उसे अपनी इन्द्रियों को वश में रखकर सुनो। कुछलोग धर्म को, कुछ सदाचार को और दूसरे धन को चाहते हैं।

धनहेतोर्य ईहेत तस्यानीहा गरीयसी॥ ९॥
भूयान् दोषो हि वित्तस्य यश्च धर्मस्तदाश्रयः।
प्रत्यक्षमनुपश्यामि त्वमपि द्रष्टुमर्हसि॥ १०॥
वर्जनं वर्जनीयानाम् ईहमानेन दुष्करम्।
ये वित्तमभिपद्यन्ते सम्यक्त्वं तेषु दुर्लभम्॥ ११॥
द्रुह्यतः प्रैति तत् प्राहुः प्रतिकूलम् यथा तथम्।

जो व्यक्ति धन के लिये यत्न करता है, उसके लिये निश्चेष्ट होकर बैठ जाना ही ठीक है, क्योंकि धन और उसके आश्रय में किये जानेवाले धर्म में भी बहुतसे दोष होते हैं। मैं प्रत्यक्ष देख रहा हूँ और तुम भी देख सकते हो कि जो धनोपार्जन के कार्य में लगे हुए हैं, उनके लिये वर्जित कर्मों को छोड़ना कठिन होजाता है। जिनको धन की प्राप्ति होती है, उनमें साधुता का मिलना दुर्लभ है। ऐसा कहते हैं कि दूसरों से द्रोह करके ही धन प्राप्त होता है और फिर वह प्राप्त हुआ धन प्रकारान्तर से उलटे कार्य ही कराता है।

यस्तु सम्भिन्न वृत्तः स्यात् वीतशोकभयो नरः॥ १२॥
अल्पेन तृषितो द्रुह्यन् भ्रूणहत्यां न बुध्यते।
दुष्यन्त्या ददतो भृत्या नित्यं दस्युभयादिव॥ १३॥
दुर्लभं च धनं प्राप्य भृशं दत्वानु तप्यते।
अधनः कस्य किं वाच्यो विमुक्तः सर्वशः सुखी॥ १४॥
देवस्व मुपगृह्यैव धनेन न सुखी भवेत्।
अनर्हते यत् ददाति न ददाति यदर्हते।
अर्हानर्हापरिज्ञानात् दानधर्मोऽपि दुष्करः॥ १५॥

शोक और भय से रहित होने पर भी जो सदाचार से भ्रष्ट है उसे यदि थोड़ी सी भी तृष्णा है, तो वह दूसरों से द्रोह करते हुए भ्रूणहत्या जैसे पाप का भी ध्यान नहीं करता। सेवक अधिक वेतन पाकर भी स्वामी पर दोषारोषण करते हैं, तो दुर्लभ धन को प्राप्तकर धनी सेवकों को अधिक धन देकर सदा ऐसे सन्तप्त होता है, जैसे चोर डाकुओं के भय से। पर निर्धन व्यक्ति को कौन क्या कह सकता है? वह तो सबतरफ से सुखी होता है। देवताओं की सम्पत्ति को प्राप्त करके भी धन से कोई सुखी नहीं होसकता। धन से दान दिया जाता है, वहाँ भी लोग अयोग्य व्यक्ति को दान दे देते हैं और योग्य व्यक्ति को नहीं देते। योग्य और अयोग्य का ज्ञान न होने से, दानधर्म का सम्पादन भी बहुत कठिन है।

चौथा अध्याय : युधिष्ठिर की वानप्रस्थ, सन्यासधर्म की इच्छा।

युधिष्ठिर उवाच

मुहूर्तं तावदेकाग्रो मनः श्रोत्रेऽन्तरात्मनि।
धारयन्नपि तच्छ्रुत्वा रोचेत वचनं मम॥ १॥
साधुगम्यमहं मार्गं न जातु त्वत्कृते पुनः।
गच्छेयं तद् गमिष्यामि हित्वा ग्राम्यसुखान्युत॥ २॥
क्षेम्यश्चैकाकिना गम्यः पन्थाः कोऽस्तीति पृच्छ माम्।
अथवा नेच्छसि प्रष्टुमपृच्छन्नपि मे शृणु॥ ३॥

युधिष्ठिर ने कहा कि हे अर्जुन! यदि तुम थोड़ी देर के लिये भी एकाग्र होकर अर्थात् मन और कानों को अन्तरात्मा में स्थापितकर मेरी बात सुनोगे तो तुम्हें वह अच्छी लगेगी। मैं तुम्हारे आग्रह से राज्य को कभी स्वीकार नहीं कर सकता। इसलिये ग्राम्यसुखों का त्याग करके मैं साधु पुरुषों के योग्य मार्ग पर ही चलूँगा। तुम मुझ से यह पूछो कि अकेले व्यक्ति के लिये चलनेयोग्य कौनसा कल्याणकारी मार्ग है? अथवा यदि तुम मुझसे यह पूछना नहीं चाहते तो बिना पूछे ही मुझसे सुनो।

हित्वा ग्राम्यसुखाचारं तप्यमानो महत् तपः।
अरण्ये फलमूलाशी चरिष्यामि मृगैः सह॥ ४॥
जुह्वानोऽग्निं यथाकालमुभौ कालावुपस्पृशन्।
कृशः परिमिताहारश्चर्मचीरजटाधरः॥ ५॥
शीतवातातपसहः क्षुत्पिपासाश्रमक्षमः।
तपसा विधिदृष्टेन शरीरमुपशोषयन्॥ ६॥

मैं गँवार व्यक्तियों द्वारा पसन्द किये जाने वाले सुखों का परित्याग करके, कठोर तपस्या को करते हुए, फल और मूल खाता हुआ, वन में मृगों के साथ विचरण करूँगा। मैं दोनों समय स्नान करके, यथासमय अग्निहोत्र करता हुआ अल्पाहार से अपने शरीर को दुर्बल कर दूँगा और मृगचर्म तथा वल्कलवस्त्र पहन कर सिरपर जटायें धारण करूँगा। मैं सर्दी गर्मी और वायु को सहन करते हुए, भूखप्यास और परिश्रम को सहन करने का अभ्यास करूँगा और विधि के अनुसार तपस्या करते हुए शरीर को सुखाता रहूँगा।

वानप्रस्थजनस्यापि दर्शनं कुलवासिनाम्।
नाप्रियाण्याचरिष्यामि किंपुनर्ग्रामवासिनाम्॥ ७॥
एकान्तशीली विमृशन् पक्वापक्वेन वर्तयन्।
एवामारण्यशास्त्राणामुग्रमुग्रतरं विधिम्॥ ८॥
सेवमानः प्रतीक्षिष्ये देहस्यास्य समापनम्।

वहाँ मुझे वानप्रस्थी लोगों तथा ऋषियों के आश्रमों में रहने वाले दूसरे व्यक्तियों के दर्शन होंगे। मैं उनमें से किसी का भी अप्रिय नहीं करूँगा। फिर ग्राम वासियों की तो बात ही क्या है? मैं एकान्त में रहता हुआ मनन करता रहूँगा और कच्चा पक्का जो कुछ भी मिलेगा, उसी से निर्वाह कर लूँगा। इसप्रकार मैं वनवासियों के लिये बताये गये कठोर से कठोर नियमों का पालन करता हुआ इस शरीर की आयु के समाप्त होने की प्रतीक्षा करता रहूँगा।

अथवैकोऽहमेकाहमेकैकस्मिन् वनस्पतौ॥ ९॥
चरन् भैक्ष्यं मुनिर्मुण्डः क्षपयिष्ये कलेवरम्।
पांसुभिः समभिच्छन्नः शून्यागारप्रतिश्रयः॥ १०॥
वृक्षमूलनिकेतो वा त्यक्तसर्वप्रियाप्रियः।
न शोचन्न प्रहृष्यंश्च तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः॥ ११॥
निराशीर्निर्ममो भूत्वा निर्द्वन्द्वो निष्परिग्रहः।
आत्मारामः प्रसन्नात्मा जडान्धबधिराकृतिः॥ १२॥
अकुर्वाणः परैः काञ्चित् संविदं जातु कैरपि।

अथवा मैं अपना सिर मुँडाकर मननशील मुनि बनकर एक दिन एक वृक्ष से प्राप्त होनेवाली भिक्षा से ही निर्वाह करता हुआ अपने शरीर को सुखाता रहूँगा। मेरे शरीर पर धूल पड़ी होगी और सूने मकानों में मेरा निवास होगा अथवा किसी भी वृक्ष के नीचे उसकी जड़ में ही पड़ा रहूँगा। मैं सभी प्राणियों के प्रिय और अप्रिय करने के विचारों को छोड़ दूँगा। न किसी के लिये शोक करूँगा और न किसी के लिये हर्ष। अपनी निन्दा और स्तुति दोनों में समान भाव से रहूँगा। आशा और ममता को छोड़कर निर्द्वन्द्व हो जाऊँगा तथा किसी वस्तु का संग्रह नहीं करूँगा। मैं आत्मा के चिन्तन में ही सुख का अनुभव करते हुए मन को प्रसन्न रखूँगा। गूँगे, अन्धे और बहरे के समान रहता हुआ, दूसरों से किसी भी प्रकार की कोई बात नहीं करूँगा।

जङ्गमाजङ्गमान् सर्वानविहिंसंश्चतुर्विधान्॥ १३॥
प्रजाः सर्वाः स्वधर्मस्थाः समः प्राणभृतः प्रति।
न चाप्यवहसन् कञ्चिन्नकुर्वन् भ्रुकुटीः क्वचित्॥ १४॥

प्रसन्नवदनो नित्यं सर्वेन्द्रियसुसंयतः।
अपृच्छन् कस्यचिन्मार्गं प्रव्रजन्नेव केनचित्॥ १५॥
न देशं न दिशं काञ्चिद् गन्तुमिच्छन् विशेषतः।
द्वन्द्वानि च विरुद्धानि तानि सर्वाण्यचिन्तयन्॥ १६॥

मैं सारे चारों प्रकार के चर और अचर प्राणियों की हिंसा न करते हुए अपने अपने धर्म में स्थित हुई सारी प्रजाओं और प्राणधारियों के प्रति समान भावना रखूँगा। न तो मैं किसी का उपहास करूँगा और न किसी के प्रति भौंहें टेढ़ी करूँगा। मुख पर सदा प्रसन्नता का भाव रखते हुए अपनी सारी इन्द्रियों को अच्छी तरह से वश में रखूँगा। मैं किसी विशेष स्थान और किसी विशेष दिशा में जाने की इच्छा भी नहीं रखूँगा। मैं परस्पर विरोधी द्वन्द्वों की चिन्ता भी छोड़ दूँगा।

अल्पं वास्वादु वा भोज्यं पूर्वालाभेन जातुचित्।
अन्येष्वपि चरँल्लाभमलाभे सप्त पूरयन्॥ १७॥
अलाभे सति वा लाभे समदर्शी महातपाः।
न जिजीविषुवत् किंचिन्न मुमूर्षुवदाचरन्॥ १८॥
वास्यैकं तक्षतो बाहुं चन्दनेनैकमुक्षतः।
नाकल्याणं न कल्याणं चिन्तयन्नुभयोस्तयोः॥ १९॥
याः काश्चिज्जीवता शक्याः कर्तुमभ्युदयक्रियाः।
सर्वास्ताः समभित्यज्य निमेषादिव्यवस्थितः॥ २०॥

भिक्षा चाहे थोड़ी मिले या स्वादहीन मिले, फिर भी मैं उसे ग्रहण करूँगा। एक घर से नहीं मिली तो दूसरे घरों में जाऊँगा न मिलने की दशा में क्रमशः सात घरों में जाऊँगा, आठवें में नहीं। प्राप्ति और अप्राप्ति दोनों अवस्थाओं में मेरी दृष्टि समान होगी। न तो मैं जीवन के इच्छुक लोगों जैसा। आचरण करूँगा और न मरने के इच्छुक लोगों जैसा मैं सदा महान् तपस्या मैं लीन रहूँगा। यदि कोई मेरी एक बाँह को बसूले से काट रहा हो और दूसरा दूसरी बाँह को चन्दनमिश्रित जल से सींच रहा हो, तो भी मैं दोनों के प्रति समान भाव रखूँगा। किसी के कल्याण या अकल्याण की भावना नहीं रखूँगा। जीवित व्यक्ति के द्वारा जो भी अभ्युदय को करने वाले कर्म किये जाते हैं, उन सब का त्याग करके केवल पलकों को खोलने और बन्द करने आदि अत्यन्त आवश्यक कार्यों को ही करूँगा।

विमुक्तः सर्वसंगेभ्यो व्यतीतः सर्ववागुराः।
न वशे कस्यचित्तिष्ठन् सधर्मा मातरिश्वनः॥ २१॥
वीतरागश्चरन्नेवं तुष्टिं प्राप्स्यामि शाश्वतीम्।
तृष्णया हि महत् पापमज्ञानादस्मि कारितः॥ २२॥
कुशलाकुशलान्येके कृत्वा कर्माणि मानवाः।
कार्यकारणसंश्लिष्टं स्वजनं नाम बिभ्रति॥ २३॥
आयुषोऽन्ते प्रहायेदं क्षीणप्राणं कलेवरम्।
प्रतिगृह्णाति तत् पापं कर्तुः कर्मफलं हि तत्॥ २४॥

मैं सारी आसक्तियों से मुक्त रहकर सारे बन्धनों को लाँघ जाऊँगा। किसी के भी आधीन न रहकर वायु के समान विचरण करूँगा। इसप्रकार से वीतराग होकर विचरण करने से मैं शाश्वत सन्तोष को प्राप्त करूँगा। अज्ञान के कारण इस तृष्णा ने मुझसे बड़े बड़े पाप कराये हैं। कुछ मनुष्य शुभ और अशुभ कर्म करके कार्यकारण से अपने साथ जुड़े हुए स्वजनों का भरण–पोषण करते हैं। फिर आयु के अन्त में यह आत्मा इस मृत शरीर को त्याग कर, किये हुए उन पापों को ग्रहण करता है, क्योंकि कार्य का फल तो कर्ता को ही मिलता है।

एवं संसारचक्रेऽस्मिन् व्याविद्धे रथचक्रवत्।
समेति भूतग्रामोऽयं भूतग्रामेण कार्यवान्॥ २५॥
जन्ममृत्युजराव्या– धिवेदनाभिरभिद्रुतम्।
अपारमिव चास्वस्थं संसारं त्यजतः सुखम्॥ २६॥
तस्मात् प्रज्ञामृतमिदं चिरान्मां प्रत्युपस्थितम्।
तत् प्राप्य प्रार्थये स्थानमव्ययं शाश्वतं ध्रुवम्॥ २७॥

इस प्रकार रथ के पहियों के समान यह संसार चक्र घूम रहा है। इसमें जीवों का समुदाय कर्मवश दूसरे जीवसमुदायों से मिलता रहता है। इस संसार में जन्म, मृत्यु, बुढ़ापा, बीमारी और वेदनाओं का आक्रमण होता ही रहता है। यह कभी भी स्वस्थ नहीं रहता। इस अपार सा प्रतीत होनेवाले संसार को जो त्याग देता है, वही सुख को प्राप्त होता है। आज लम्बे समय के पश्चात् मुझे यह विवेकरूपी अमृत प्राप्त हुआ है। इसे पाकर मैं अक्षय, अविकारी और सनातन पद को प्राप्त करना चाहता हूँ।

पाँचवाँ अध्याय : भीम का सन्यास-विरोध, कर्त्तव्यपालन का आग्रह।

भीम उवाच

श्रोत्रियस्येव ते राजन् मन्दकस्याविपश्चितः।
अनुवाकहता बुद्धिर्नैषा तत्त्वार्थदर्शिनी॥ १॥
आलस्ये कृतचित्तस्य राजधर्मानसूयतः।
विनाशे धार्तराष्ट्राणां किं फलं भरतर्षभ॥ २॥
क्षमानुकम्पा कारुण्यमानृशंस्यं न विद्यते।
क्षात्रमाचरतो मार्गमपि बन्धोस्त्वदन्तरे॥ ३॥

तब भीमसेन ने कहा कि हे राजन्! जो मन्दबुद्धि श्रोत्रिय अर्थज्ञान से रहित होता है और केवल मन्त्रों के पाठ में ही लगा रहता है, उसकी बुद्धि जैसे मारी जाती है, वैसे ही आपकी यह बुद्धि भी तात्विक अर्थ को नहीं देख रही है। यदि राजधर्म की निन्दा करते हुए, आलस्यपूर्वक जीवन बिताने में ही आपकी रुचि थी तो हे भरतश्रेष्ठ! फिर धृतराष्ट्र के पुत्रों का विनाश करने से क्या फल मिला? जो व्यक्ति क्षत्रियधर्म का पालन करता है, उसके हृदय में अपने भाई के प्रति भी क्षमा, दया, करुणा और कोमलता का भाव नहीं रहता, फिर आपके हृदय में यह सब क्यों हैं?

यदीमां भवतो बुद्धिं विद्याम वयमीदृशीम्।
शस्त्रं नैव ग्रहीष्यामो न वधिष्याम कंचन॥ ४॥
भैक्ष्यमेवाचरिष्याम शरीरस्याविमोक्षणात्।
न चेदं दारुणं युद्धमभविष्यन्महीक्षिताम्॥ ५॥
प्राणस्यान्नमिदं सर्वमिति वै कवयो विदुः।
स्थावरं जङ्गमं नैव सर्वं प्राणस्य भोजनम्॥ ६॥
आददानस्य चेद् राज्यं ये केचित् परिपन्थिनः।
हन्तव्यास्त इति प्राज्ञाः क्षत्रधर्मविदो विदुः॥ ७॥

यदि हम आपकी इस बुद्धि को पहले से ही जान लेते तो हथियारों को नहीं उठाते और किसी का भी वध नहीं करते। हम भी शरीर के छूटने तक भिक्षाचरण ही करते रहते। फिर यह राजाओं का भयंकर युद्ध होता ही नहीं। विद्वान् पुरुषों ने कहा है कि संसार में जो कुछ भी है वह सब प्राण का अन्न है। सारे स्थावर और जङ्गम पदार्थ प्राण के ही भोजन हैं। क्षत्रियधर्म के ज्ञाता विद्वान् लोग यह समझते हैं कि राज्य को ग्रहण करते समय मार्ग में जो भी शत्रु आये, उन सबको मार देना चाहिये।

यथा हि पुरुषः खात्वा कूपमप्राप्य चोदकम्।
पङ्कदिग्धो निवर्तेत कर्मेदं नस्तथोपमम्॥ ८॥
यथाऽऽरुह्य महावृक्षमपहृत्य ततो मधु।
अप्राश्य निधनं गच्छेत् कर्मेदं नस्तथोपमम्॥ ९॥
यथा महान्तमध्वानमाशया पुरुषः पतन्।
स निराशो निवर्तेत कर्मैतन्नस्तथोपमम्॥ १०॥
यथा शत्रून् घातयित्वा पुरुषः कुरुनन्दन।
आत्मानं घातयेत् पश्चात् कर्मेदं नस्तथोपमम्॥ ११॥

हमारी अवस्था अब वैसी ही है जैसे कोई परिश्रम करके कूँआ खोदे, पर वहाँ पानी न मिलने पर कीचड़ से लिपटा हुआ वापिस लौट आये। जैसे कोई विशाल वृक्ष पर चढ़कर वहाँ से मधु को उतार कर लाये, पर उसे खाने से पहले ही मृत्यु को प्राप्त हो जाये। हमारे प्रयत्न उसीप्रकार निष्फल हो रहे हैं, जैसे कोई बड़ी आशा के साथ लम्बा रास्ता तय करे, पर फिर वहाँ से निराश होकर लौट आये। जैसे कोई शत्रुओं को मारकर फिर अपनी भी हत्या कर डाले, हे कुरुनन्दन! हमारे कार्य भी अब वैसे ही सिद्ध हो रहे हैं।

वयमेवात्र गर्ह्या हि यद् वयं मन्दचेतसम्।
त्वां राजन्ननुगच्छामो ज्येष्ठोऽयमिति भारत॥ १२॥
वयं हि बाहुबलिनः कृतविद्या मनस्विनः।
क्लीबस्य वाक्ये तिष्ठामो यथैवाशक्तयस्तथा॥ १३॥
अगतीकगतीनस्मान् नष्टार्थानर्थसिद्धये।
कथं वै नानुपश्येयुर्जनाः पश्यत यादृशम्॥ १४॥

हे भरतवंशी राजन्! यहाँ हमलोग ही निन्दा के पात्र हैं, जो आप जैसे मन्दबुद्धि व्यक्ति को अपना बड़ा भाई मानकर आपके पीछे चलते हैं। हमलोग बाहुबल से युक्त, विद्यावान् और मनस्वी हैं, फिर भी असमर्थ व्यक्ति के समान एक कायर भाई की आज्ञा में रहते हैं। हमलोग पहले शरणहीन व्यक्तियों को शरण देनेवाले थे, पर अब हमारी ही धन सम्पत्ति नष्ट होगयी है। ऐसी अवस्था में हमारा आश्रय लेने वाले लोग हमारी दुर्बलता पर दृष्टि क्यों नहीं डालेंगे? मेरा कथन कैसा है? इस पर आप सब लोग विचार कीजिये।

आपत्काले हि संन्यासः कर्तव्य इति शिष्यते।
जरयाभिपरीतेन शत्रुभिर्व्यंसितेन वा॥ १५॥

तस्मादिह कृतप्रज्ञास्त्यागं न परिचक्षते।
धर्मव्यतिक्रमं चैव मन्यन्ते सूक्ष्मदर्शिनः॥ १६॥
कथं तस्मात् समुत्पन्नास्तन्निष्ठास्तदुपाश्रयाः।
तदेव निन्दां भाषेयुर्धाता तत्र न गर्ह्यते॥ १७॥

ऐसा कहा जाता है कि संकट का समय आने पर, बुढ़ापे से जर्जर होजाने पर या शत्रुओं द्वारा धन सम्पत्ति से वंचित होजाने पर, सन्यास ग्रहण करना चाहिये। पर जब हमारे ऊपर ये सारी बातें अभी लागू नहीं हैं तो ऐसी अवस्था में विद्वान् लोग त्यागभावना की प्रशंसा नहीं करते। सूक्ष्मदर्शी लोग तो ऐसे समय में क्षत्रिय के लिये सन्यास लेना धर्म का उल्लंघन मानते हैं। जिनका जन्म ही क्षत्रिय धर्म का पालन करने के लिये हुआ है, जो क्षत्रिय धर्म में ही तत्पर रहते हैं और क्षत्रियधर्म का पालन करके ही जीवननिर्वाह करते है, वे क्षत्रिय उसी क्षत्रियधर्म की निन्दा कैसे कर सकते हैं? इसके लिये उन विधान करनेवालों की निन्दा क्यों न की जाये जिन्होंने क्षत्रियों के लिये युद्धधर्म का विधान किया है।

शक्यं तु मौनमास्थाय बिभ्रताऽऽत्मानमात्मना।
धर्मच्छद्म समास्थाय च्यवितुं न तु जीवितुम्॥ १८॥
शक्यं पुनररण्येषु सुखमेकेन जीवितुम्।
अबिभ्रता पुत्रपौत्रान् देवर्षीनतिथीन् पितॄन्॥ १९॥

धर्म का बहाना लेकर मौनी बाबा बनकर अपने द्वारा केवल अपना ही पेट पालते रहने से कर्त्तव्य से भ्रष्ट हो जाना ही सम्भव है, जीवन को सार्थक बनाना सम्भव नहीं है। ऐसा मनुष्य ही अकेला रहकर वन में सुख से जीवन बिता सकता है, जो पुत्रों और पौत्रों का पालन करने में असमर्थ हो, देवताओं, ऋषियों अतिथियों और बड़े बूढ़ों को तृप्त करने की शक्ति न रखता हो आप जैसे शक्तिशाली पुरुषों का यह काम नहीं है।

अवेक्षस्व यथा स्वैः स्वैः कर्मभिर्व्यापृतं जगत्।
तस्मात् कर्मैव कर्तव्यं नास्ति सिद्धिरकर्मणः॥ २०॥

आप यह देखिये कि सारा संसार किसप्रकार अपने अपने कर्त्तव्य का पालन करने में लगा हुआ है। इसलिये कर्म करना ही कर्त्तव्य है। कर्म हीन व्यक्ति को सफलता नहीं मिलती है।

छठा अध्याय : नकुल द्वारा गृहस्थ धर्म की प्रशंसा।

नकुल उवाच

वेदवादापविद्धांस्तु तान् विद्धि भृशनास्तिकान्।
न हि वेदोक्तमुत्सृज्य विप्रः सर्वेषु कर्मसु॥ १॥
देवयानेन नाकस्य पृष्ठमाप्नोति भारत।
अत्याश्रमानयं सर्वानित्याहुर्वेदनिश्चयाः॥ २॥
ब्राह्मणाः श्रुतिसम्पन्नास्तान् निबोध नराधिप।
वित्तानि धर्मलब्धानि क्रतुमुख्येष्ववासृजन्॥ ३॥
कृतात्मा स महाराज स वै त्यागी स्मृतो नरः।
अनवेक्ष्य सुखादानं तथैवोर्ध्वं प्रतिष्ठितः॥ ४॥
आत्मत्यागी महाराज स त्यागी तामसो मतः।

तब नकुल ने कहा कि हे भारत! जो लोग वेद के मत के विपरीत चलते हैं, उन्हें आप बहुत बड़ा नास्तिक समझिये। वेदों की आज्ञा का उल्लंघन करने वाला ब्राह्मण सब प्रकार के कर्म करके भी स्वर्ग की पीठ पर पैर नहीं रख सकता अर्थात् उत्तम गति को प्राप्त नहीं हो सकता। हे नराधिप! गृहस्थाश्रम सारे आश्रमों से ऊँचा है, ऐसा वेद के सिद्धान्तों को जानने वाले, वेदों के विद्वान् ब्राह्मण कहते हैं। आप उनकी बात को समझिये। हे महाराज! जो व्यक्ति धर्म से प्राप्त हुए धन को श्रेष्ठ यज्ञों में उपयोग करता है और अपने मन को वश में रखता है, उसी को त्यागी माना जाता है। हे महाराज! जिसने गृहस्थाश्रम के सुख भोगों को नहीं देखा और सीधे ऊपर के वानप्रस्थादि आश्रमों में रहकर देह का त्याग किया, उसे तामस त्यागी माना गया है।

आश्रमांस्तुलया सर्वान् धृतानाहुर्मनीषिणः॥ ५॥
एकतश्च त्रयो राजन् गृहस्थाश्रम एकतः।
समीक्ष्य तुलया पार्थ कामं स्वर्गं च भारत॥ ६॥
अयं पन्था महर्षीणामियं लोकविदां गतिः।
इति यः कुरुते भावं स त्यागी भरतर्षभ॥ ७॥
न यः परित्यज्य गृहान् वनमेति विमूढवत्।
यदा कामान् समीक्षेत धर्मवैतंसिको नरः॥ ८॥

अथैनं मृत्युपाशेन कण्ठे बध्नाति मृत्युराट्।

हे राजन्! विद्वान् लोग कहते हैं कि एकबार सारे आश्रमों को उन्होंने बुद्धि की तराजू पर तोला तो एक तरफ अकेला गृहस्थाश्रम और दूसरी तरफ शेष सारे आश्रम पाये गये। हे भारत! इसप्रकार बुद्धि की तराजू पर तोलने से गृहस्थाश्रम ही श्रेष्ठ सिद्ध हुआ, क्योंकि वहाँ भोग और उत्तम गति दोनों ही हैं। तब यही निश्चय किया गया कि गृहस्थाश्रम ही महर्षियों का मार्ग है, यही लोक वेत्ताओं की गति है। हे भरतश्रेष्ठ! जो व्यक्ति ऐसा भाव रखता है, वही त्यागी है, किन्तु जो मूर्खों के समान घर को छोड़कर वन में चला जाता है, वह त्यागी नहीं है। धर्मज्ञ मनुष्य यदि वन में रहकर भी कामभोगों का स्मरण करता है, तो मृत्यु के स्वामी परमात्मा उसके गले में मृत्यु का फन्दा डाल देते हैं।

पितृदेवातिथिकृते समारम्भोऽत्र शस्यते॥ ९॥
अत्रैव हि महाराज त्रिवर्गः केवलं फलम्।
एतस्मिन् वर्तमानस्य विधावप्रतिषेधिते॥ १०॥
त्यागिनः प्रसृतस्येह नोच्छित्तिर्विद्यते क्वचित्।

हे महाराज! गृहस्थाश्रम में ही बड़े बूढ़ों, देवताओं और अतिथियों के लिये किये जाने वाले कार्यों की प्रशंसा की जाती है। इसी आश्रम में ही धर्म, अर्थ और काम तीनो सिद्ध होते हैं। इस आश्रम में रहते हुए त्याग भावना से वेद विहित कार्यों को करने वाले का कभी विनाश नहीं होता अर्थात् वह पारलौकिक उन्नति से कभी वंचित नहीं रहता।

अन्तर्बहिश्च यत् किंचिन्मनोव्यासङ्गकारकम्॥ ११॥
परित्यज्य भवेत् त्यागी न हित्वा प्रतितिष्ठति।
एतस्मिन् वर्तमानस्य विधावप्रतिषेधिते।
ब्राह्मणस्य महाराज नोच्छित्तिर्विद्यते क्वचित्॥ १२॥

जो भी बातें मन के अन्दर और बाहर मन को फँसाने वाली हैं, उनको त्याग करके ही मनुष्य त्यागी बनता है, केवल घर का त्याग करने से त्यागी नहीं होता। हे महाराज! इस गृहस्थाश्रम में ही रहकर वेद विहित कार्यों में लगे हुए ब्राह्मण का कभी उच्छेद अर्थात् पतन नहीं होता।

सातवाँ अध्याय : सहदेव की ममता, आसक्ति से दूर रहने की सलाह।

सहदेव उवाच

न बाह्यं द्रव्यमुत्सृज्य सिद्धिर्भवति भारत।
शारीरं द्रव्यमुत्सृज्य सिद्धिर्भवति वा न वा॥ १॥
बाह्यद्रव्यविमुक्तस्य शारीरेष्वनुगृध्यतः।
यो धर्मो यत् सुखं वा स्याद् द्विषतां तत् तथास्तु नः॥ २॥
शारीरं द्रव्यमुत्सृज्य पृथिवीमनुशासतः।
यो धर्मो यत् सुखं वा स्यात् सुहृदां तत् तथास्तु नः॥ ३॥

तब सहदेव ने कहा कि हे भारत! बाहरी द्रव्यों का त्याग करके सिद्धि प्राप्त नहीं होती। शरीर सम्बन्धी द्रव्यों का त्याग करके भी सिद्धि प्राप्त होती है या नहीं इसमें सन्देह है। बाहरी द्रव्यों से मुक्त होकर शरीर सम्बन्धी सुखभोगों में आसक्त रहने वाले को जो धर्म या सुख मिलता हो, वह तो हमारे शत्रुओं को ही प्राप्त हो। किन्तु शरीर सम्बन्धी द्रव्यों की ममता त्याग कर पृथिवी पर राज्य करते हुए राजा को जो सुख और धर्म की प्राप्ति होती है, वह हमारे हितैषी मित्रों को मिले।

द्व्यक्षरस्तु भवेन्मृत्युस्त्र्यक्षरं ब्रह्म शाश्वतम्।
ममेति च भवेन्मृत्युर्न ममेति च शाश्वतम्॥ ४॥
ब्रह्ममृत्यू ततो राजन्नात्मन्येव समाश्रितौ।
अदृश्यमानौ भूतानि योधयेतामसंशयम्॥ ५॥
अविनाशोऽस्य सत्त्वस्य नियतो यदि भारत।
हत्वा शरीरं भूतानां न हिंसा प्रतिपत्स्यते॥ ६॥
अथापि च सहोत्पत्तिः सत्त्वस्य प्रलयस्तथा।
नष्टे शरीरे नष्टः स्याद् वृथा च स्यात् क्रियापथः॥ ७॥

दो अक्षरोंवाला मम शब्द मृत्यु को लानेवाला है और तीन अक्षरों का न मम शब्द सनातन ब्रह्म को प्राप्त करानेवाला है। हे राजन्! येदोनों मृत्यु और ब्रह्म को प्राप्त करानेवाली बातें हमारे अपने अन्तःकरण में ही विद्यमान हैं। ये प्राणियों को अदृश्यभाव से परस्पर लड़ाती रहती हैं, इसमें संशय नहीं है। हे भारत! यदि जीवात्मा का अविनाशी होना निश्चित है, तब तो शरीरों का वध करके भी हिंसा नहीं समझनी चाहिये और यदि शरीर के साथ ही आत्मा

की भी उत्पत्ति और विनाश माना जाये, तब तो शरीर के नष्ट होने पर आत्मा भी नष्ट हो जायेगी और सारे वेदोक्त विधान व्यर्थ सिद्ध होंगे।

तस्मादेकान्तमुत्सृज्य पूर्वैः पूर्वतरैश्च यः।
पन्था निषेवितः सद्भिः स निषेव्यो विजानता॥ ८॥
स्वायम्भुवेन मनुना तथान्यैश्चक्रवर्तिभिः।
यद्ययं ह्यधमः पन्थाः कस्मात् तैस्तैर्निषेवितः॥ ९॥
लब्ध्वापि पृथिवीं कृत्स्नां सहस्थावरजङ्गमाम्।
न भुङ्क्ते यो नृपः सम्यङ् निष्फलं तस्य जीवितम्॥ १०॥
अथवा वसतो राजन् वने वन्येन जीवतः।
द्रव्येषु यस्य ममता मृत्योरास्ये स वर्तते॥ ११॥

इसलिये विद्वान् पुरुष को एकान्त में रहने का विचार छोड़कर, हमारे पूर्ववर्ती और अत्यन्तपूर्ववर्ती श्रेष्ठ व्यक्तियों ने जिस मार्ग का अवलम्बन किया था, उसी का आश्रय लेना चाहिये। यदि आपकी दृष्टि में गृहस्थधर्म का पालन और राज्यशासन अधर्म का मार्ग है। तो स्वायम्भुव मनु तथा दूसरे चक्रवर्ती राजाओं ने इसका सेवन क्यों किया? स्थावर जंगम सहित सारी भूमि को प्राप्त करके भी जो राजा उसका उचित प्रकार उपभोग नहीं करता है, उसका जीवन निष्फल है। हे राजन्! अथवा वन में रहकर वन्यपदार्थों से ही जीवन व्यतीत करते हुए भी यदि व्यक्ति की ममता द्रव्यों में है तो वह मृत्यु के मुख में ही विद्यमान् है, ऐसा समझना चाहिये।

भवान् पिता भवान् माता भवान् भ्राता भवान् गुरुः।
दुःखप्रलापानार्तस्य तन्मे त्वं क्षन्तुमर्हसि॥ १२॥
तथ्यं वा यदि वातथ्यं यन्मयैतत् प्रभाषितम्।
तद् विद्धि पृथिवीपाल भक्त्या भरतसत्तम॥ १३॥

आप ही मेरे पिता और आप ही मेरे माता और गुरु हैं। दुःख से व्यथित होकर मैंने जो आप से यह प्रलाप किया है, इसके लिये आप मुझे क्षमा करें। हे भरतश्रेष्ठ! मैंने जो कुछ भी सत्य या असत्य बातें कहीं हैं, हे पृथिवीपाल! आप समझ लें कि ये मैंने आपके प्रति भक्ति होने के कारण ही कहीं हैं।

आठवाँ अध्याय : द्रौपदी की युधिष्ठिर को राजदण्ड धारण और शासन की प्रेरणा।

द्रौपद्युवाच

इमे ते भ्रातरः पार्थ शुष्यन्ते स्तोकका इव।
वावाश्यमानास्तिष्ठन्ति न चैनानभिनन्दसे॥ १॥
नन्दयैतान् महाराज मत्तानिव महाद्विपान्।
उपपन्नेन वाक्येन सततं दुःखभागिनः॥ २॥

तब द्रौपदी ने कहा कि हे कुन्तीकुमार! ये तुम्हारे भाई तुम्हारे विचारों को सुनकर सूख गये हैं और पपीहे के समान आपसे राज्य करने की रट लगा रहे हैं, फिर भी आप इनका अभिनन्दन नहीं कर रहे हैं। हे महाराज! मस्त विशाल हाथियों के समान आपके ये भाई आपके लिये सदा दुख ही उठाते आये हैं। आप उचित वाक्यों द्वारा इन्हें आनन्दित कीजिये।

कथं द्वैतवने राजन् पूर्वमुक्त्वा तथा वचः।
भ्रातृनेतान् स्म सहिताञ्शीतवातातपार्दितान्॥ ३॥
वयं दुर्योधनं हत्वा मृधे भोक्ष्याम मेदिनीम्।
सम्पूर्णां सर्वकामानामाहवे विजयैषिणः॥ ४॥
विरथांश्च रथान् कृत्वा निहत्य च महागजान्।
संस्तीर्य च रथैर्भूमिं ससादिभिररिंदमाः॥ ५॥
वनवासकृतं दुःखं भविष्यति सुखाय वः।
इत्येतानेवमुक्त्वा त्वं स्वयं धर्मभृतां वर॥ ६॥
कथमद्य पुनर्वीर विनिहंसि मनांसि नः।

हे राजन! जब द्वैतवन में आपके ये भाई आपके साथ सर्दी, गर्मी और आँधी, पानी का कष्ट भोग रहे थे, तब आपने इनसे कहा था कि हम दुर्योधन को रणक्षेत्र में मारकर इस सारे भोगों से युक्त पृथिवी का भोग करेंगे। हे शत्रुओं का दमन करने वालों! विजय के इच्छुक हमलोग रथियों को रथों से रहित करके, विशाल हाथियों को मारकर, युद्धभूमि को रथों से और घुड़सवारों से पाट देंगे। फिर आप लोगों का यह वनवास का दुख सुखरूप में परिवर्तित होजायेगा। हे धर्मधारियों में श्रेष्ठ वीर! पहले स्वयं

इस प्रकार की बातें कहकर फिर आज क्यों हमारे दिलों को तोड़ रहे हो?

मित्रता सर्वभूतेषु दानमध्ययनं तपः॥ ७॥
ब्राह्मणस्यैव धर्मः स्यान्न राज्ञो राजसत्तम।
असतां प्रतिषेधश्च सतां च परिपालनम्॥ ८॥
एष राज्ञां परो धर्मः समरे चापलायनम्।
यस्मिन् क्षमा च क्रोधश्च दानादाने भयाभये॥ ९॥
निग्रहानुग्रहौ चोभौ स वै धर्मविदुच्यते।
न श्रुतेन न दानेन न सान्त्वेन न चेज्यया॥ १०॥
त्वयेयं पृथिवी लब्धा न संकोचेन चाप्युत।

हे राजश्रेष्ठ! सारे प्राणियों के प्रति मित्रता का भाव, दान लेना और देना, अध्ययन तथा तपस्या ये ब्राह्मण के ही धर्म हैं, राजा के नहीं। राजाओं का धर्म तो यही है कि वह दुष्टों को दण्ड दे और सज्जनों का पालन करे तथा युद्ध में कभी पीठ न दिखाये। जिस राजा में समय के अनुसार क्षमा और क्रोध दोनों प्रकट होते हैं, जो दान भी देता है और कर भी लेता है, जो शत्रुओं को भयभीत करता और शरणागतों को अभय देता है, जो दुष्टों का निग्रह और दीनों पर अनुग्रह करता है, वही धर्मज्ञ कहलाता है। आपको यह भूमि शास्त्रों को सुनने से, या दान देने से, या समझाने बुझाने से, यज्ञ करने से और भीख माँगने से प्राप्त नहीं हुई है।

यत् तद् बलममित्राणां तथा वीर्यसमुद्यतम्॥ ११॥
हस्त्यश्वरथसम्पन्नं त्रिभिरङ्गैरनुत्तमम्।
रक्षितं द्रोणकर्णाभ्यामश्वत्थाम्ना कृपेण च॥ १२॥
तत् त्वया निहतं वीर तस्माद् भुङ्क्ष्व वसुन्धराम्।
एतान्यप्रतिमेयानि कृत्वा कर्माणि भारत॥ १३॥
न प्रीयसे महाराज पूज्यमानो द्विजातिभिः।
स त्वं भ्रातृनिमान् दृष्ट्वा प्रतिनन्दस्व भारत॥ १४॥
ऋषभानिव सम्मत्तान् गजेन्द्रानूर्जितानिव।

शत्रुओं की वह सेना, जो बड़े पराक्रम से युक्त थी, जो हाथी, रथ और घोड़े तीनों अंगों से सम्पन्न थी, जिसकी रक्षा द्रोणाचार्य, कर्ण, अश्वत्थामा और कृपाचार्य जैसे वीर कर रहे थे, हे वीर! उस सेना का आपने वध किया है, तब यह पृथिवी आपके अधिकार में आयी है। इसलिये अब इसका भोग कीजिये। हे भरतनन्दन, महाराज! इसप्रकार के अनुपम पराक्रम युक्त कर्मों को करके और द्विजातियों द्वारा पूज्यमान होने पर भी आप प्रसन्न नहीं हो रहे हैं। हे भारत! आप मतवाले साँडों और बलशाली गजराजों के समान अपने इन भाइयों को देखकर इनका अभिनन्दन कीजिये।

अनृतं नाब्रवीच्छ्वश्रूः सर्वज्ञा सर्वदर्शिनी। १५॥
युधिष्ठिरस्त्वां पाञ्चालि सुखे धास्यत्यनुत्तमे।
हत्वा राजसहस्राणि बहून्याशुपराक्रमः॥ १६॥
तद् व्यर्थं सम्प्रपश्यामि मोहात् तव जनाधिप।
येषामुन्मत्तको ज्येष्ठः सर्वे तेऽप्यनुसारिणः॥ १७॥
तवोन्मादान्महाराज सोन्मादाः सर्वपाण्डवाः।
यदि हि स्युरनुन्मत्ता भ्रातरस्ते नराधिप॥ १८॥
बद्ध्वा त्वां नास्तिकैः सार्धं प्रशासेयुर्वसुन्धराम्।

मेरी सास ने झूठ नहीं कहा था। वह सर्वज्ञ और सबकुछ देखनेवाली है। उसने कहा था कि हे सुन्दर पाँचाली! युधिष्ठिर शीघ्रता से पराक्रम करनेवाले हैं। ये हजारों राजाओं को मारकर तुम्हें सुख में स्थापित करेंगे। पर हे जनाधिप! आपके मोह के कारण मुझे अपनी सास की वह बात भी व्यर्थ होती दिखाई देरही है। जिनका बड़ा भाई उन्मत्त हो जाता है, वे सभी उसी का अनुकरण करने लगते हैं। इसीलिये हे महाराज! आपके उन्माद से सारे पाण्डव भी उन्मत्त होगये हैं। क्योंकि हे नराधिप! यदि ये उन्मत्त नहीं हुए होते तो नास्तिकों के समान आपको भी बाँधकर स्वयं इस पृथिवी का शासन करते।

साहं सर्वाधमा लोके स्त्रीणां भरतसत्तम॥ १९॥
तथा विनिकृता पुत्रैर्याहमिच्छामि जीवितुम्।
एतेषां यतमानानां न मेऽद्य वचनं मृषा॥ २०॥
त्वं तु सर्वां महीं त्यक्त्वा कुरुषे स्वयमापदम्।
यथाऽऽस्तां सम्मतौ राज्ञां पृथिव्यां राजसत्तम॥ २१॥
मान्धाता चाम्बरीषश्च तथा राजन् विराजसे।
प्रशाधि पृथिवीं देवीं प्रजा धर्मेण पालयन्॥ २२॥
सपर्वतवनद्वीपां मा राजन् विमना भव।
यजस्व विविधैर्यज्ञैर्युध्यस्वारीन् प्रयच्छ च।
धनानि भोगान् वासांसि द्विजातिभ्यो नृपोत्तम॥ २३॥

हे भरतश्रेष्ठ! मैं ही संसार की सारी स्त्रियों में अधम हूँ, जो इसप्रकार पुत्रों से रहित होजाने पर भी जीवित रहना चाहती हूँ। ये सारे आपको समझाने का यत्न कर रहे हैं, पर फिरभी आप

समझ नहीं रहे हैं। मेरी बात असत्य नहीं है कि आप सारी भूमि को छोड़कर स्वयं अपने लिये विपत्ति खड़ी कर रहे हैं। हे राजन्! जैसे मान्धाता और अम्बरीश पृथिवी के राजाओं में सम्मानित थे, उसीप्रकार आप भी सुशोभित हो रहे हैं। हे राजन्! आप उदास मत होइये। प्रजा का धर्मपूर्वक पालन करते हुए, इससारी पर्वतों, वनों और द्वीपों सहित पृथिवी देवी का शासन कीजिये। हे नृपश्रेष्ठ! आप अनेक प्रकार के यज्ञों का अनुष्ठान कीजिये, शत्रुओं के साथ युद्ध कीजिये और द्विजातियों को धन भोग सामग्री और वस्त्रों का दान कीजिये।

नवाँ अध्याय : अर्जुन के द्वारा राजदण्ड की महत्ता का प्रतिपादन।

याज्ञसेन्या वचः श्रुत्वा पुनरेवार्जुनोऽब्रवीत्।
अनुमान्य महाबाहुं ज्येष्ठं भ्रातरमच्युतम्॥ १॥
दण्डः शास्ति प्रजाः सर्वा दण्ड एवाभिरक्षति।
दण्डः सुप्तेषु जागर्ति दण्डं धर्मं विदुर्बुधाः॥ २॥
दण्डः संरक्षते धर्मं तथैवार्थं जनाधिप।
कामं संरक्षते दण्डस्त्रिवर्गो दण्ड उच्यते॥ ३॥
दण्डेन रक्ष्यते धान्यं धनं दण्डेन रक्ष्यते।
एवं विद्वानुपाधत्स्व भावं पश्यस्व लौकिकम्॥ ४॥

द्रौपदी की बात सुनकर, अपनी मर्यादा से कभी च्युत न होने वाले, बड़े भाई महाबाहु युधिष्ठिर का सम्मान करते हुए अर्जुन ने पुनः यह कहा कि हे राजन्! दण्ड सारी प्रजाओं पर शासन करता है। दण्ड ही उनकी सब तरफ से रक्षा करता है। सबके सो जाने पर भी दण्ड जागता रहता है, इसलिये विद्वान् लोगों ने दण्ड को राजधर्म माना है। हे जनाधिप! दण्ड धर्म और अर्थ की रक्षा करता है। दण्ड ही काम का भी रक्षक है, अतः दण्ड को त्रिवर्गरूप माना जाता है। दण्ड से ही धान्य की रक्षा होती है, उसी से धन की भी रक्षा की जाती है, ऐसा जानकर और संसार के व्यवहार पर दृष्टि डालकर आप भी दण्ड को धारण कीजिये।

राजदण्डभयादेके पापाः पापं न कुर्वते।
यमदण्डभयादेके परलोकभयादपि॥ ५॥
परस्परभयादेके पापाः पापं न कुर्वते।
एवं सांसिद्धिके लोके सर्वं दण्डे प्रतिष्ठितम्॥ ६॥
दण्डस्यैव भयादेके न खादन्ति परस्परम्।
अन्धे तमसि मज्जेयुर्यदि दण्डो न पालयेत्॥ ७॥
यस्माददान्तान् दमयत्यशिष्टान् दण्डयत्यपि।
दमनाद् दण्डनाच्चैव तस्माद् दण्डं विदुर्बुधाः॥ ८॥

अनेक पापी राजदण्ड के भय से, अनेक मृत्यु के भय से पाप नहीं करते। कितने ही परलोक के भय से और कितने ही एकदूसरे के भय से पाप नहीं करते। संसार की ऐसी ही स्वाभाविक स्थिति है कि सब कुछ दण्ड में स्थित है। दण्ड के भय से ही लोग एकदूसरे को खा नहीं जाते। यदि दण्ड रक्षा न करे तो सब लोग घने अन्धकार में डूब जायें। क्योंकि दण्ड उद्दण्ड लोगों का दमन करता है और अशिष्ट लोगों को दण्डित करता है। इसलिये दमन और दण्डित करने के कारण ही विद्वान् लोग इसे दण्ड कहते हैं।

असम्मोहाय मर्त्यानामर्थसंरक्षणाय च।
मर्यादा स्थापिता लोके दण्डसंज्ञा विशाम्पते॥ ९॥
यत्र श्यामो लोहिताक्षो दण्डश्चरति सूद्यतः।
प्रजास्तत्र न मुह्यन्ते नेता चेत् साधु पश्यति॥ १०॥
ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थश्च भिक्षुकः।
दण्डस्यैव भयादेते मनुष्या वर्त्मनि स्थिताः॥ ११॥
नाभीतोः यजते राजन् नाभीतो दातुमिच्छति।
नाभीतः पुरुषः कश्चित् समये स्थातुमिच्छति॥ १२॥

हे प्रजा के स्वामी! लोगों को मोह से बचाने के लिये, उनके धन की रक्षा के लिये संसार में जो मर्यादा स्थापित की गयी है, उसी का नाम दण्ड है। दण्डनीय व्यक्ति पर जोर की मार पड़ने पर उसकी आँखों के आगे अँधेरा छा जाता है, इसलिये दण्ड को श्याम रंग का कहा गया है। क्योंकि दण्ड देनेवाले की आँखें क्रोध से लाल रहतीं हैं, इसलिये दण्ड को लोहिताक्ष कहते हैं। जहाँ इस प्रकार का दण्ड अच्छीतरह से उद्यत होकर विचरण करता है और राज्य का शासक प्रजा के अपराधों पर अच्छी तरह से निगाह रखता है, वहाँ प्रजा प्रमाद नहीं

करती। ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थी और सन्यासी ये सभी दण्ड के भय से ही अपने अपने मार्ग पर चल रहे हैं। हे राजन्! बिना भय के कोई यज्ञ नहीं करता, बिना भय के कोई दान नहीं करना चाहता और यदि दण्ड का भय न हो तो कोई भी मर्यादा और प्रतिज्ञा के पालन पर भी स्थिर नहीं रहना चाहता।

न हि पश्यामि जीवन्तं लोके कञ्चिदहिंसया।
सत्त्वैः सत्त्वा हि जीवन्ति दुर्बलैर्बलवत्तराः॥ १३॥
नकुलो मूषिकानत्ति बिडालो नकुलं तथा।
बिडालमत्ति श्वा राजञ्श्वानं व्यालमृगस्तथा॥ १४॥
विनीतक्रोधहर्षा हि मन्दा वनमुपाश्रिताः।
विना वधं न कुर्वन्ति तापसाः प्राणयापनम्॥ १५॥
उदके बहवः प्राणाः पृथिव्यां च फलेषु च।
न च कचिन्न तान् हन्ति किमन्यत् प्राणयापनात्॥ १६॥

मैं संसार में किसी भी ऐसे पुरुष को नहीं देखता पूरीतरह जो अहिंसा द्वारा जीवन धारण करता हो। क्योंकि बलवान् प्राणी दुर्बल प्राणियों से अपना जीवन चलाते हैं। नेवला चूहे को खा जाता है, बिल्ली नेवले को खाजाती है। बिल्ली को कुत्ता और कुत्ते को चीता चबा जाता है। वे मन्दबुद्धि लोग, जिनमें क्रोध और हर्ष नहीं रहे हैं, वन में चले जाते हैं, पर ऐसे तपस्वी भी बिना हिंसा किये जीवन निर्वाह नहीं कर पाते क्योंकि पानी में बहुतसे जीव होते हैं। पृथ्वी पर और फलों में भी बहुतसे कीड़े होते हैं। कोई भी मनुष्य ऐसा नहीं है, जो इन्हें न मारता हो। यह सब जीवन निर्वाह के अतिरिक्त और क्या है?

सूक्ष्मयोनीनि भूतानि तर्कगम्यानि कानिचित्।
पक्ष्मणोऽपि निपातेन येषां स्यात् स्कन्धपर्ययः॥ १७॥
ग्रामान् निष्क्रम्य मुनयो विगतक्रोधमत्सराः।
वने कुटुम्बधर्माणो दृश्यन्ते परिमोहिताः॥ १८॥
दण्डनीत्यां प्रणीतायां सर्वे सिद्ध्यन्त्युपक्रमाः।
कौन्तेय सर्वभूतानां तत्र मे नास्ति संशयः॥ १९॥
दण्डश्चेन्न भवेल्लोके विनश्येयुरिमाः प्रजाः।
जले मत्स्यानिवाभक्ष्यन् दुर्बलान् बलवत्तराः॥ २०॥

कितने ही ऐसे सूक्ष्मशरीर वाले प्राणी होते हैं, जिन्हें केवल अनुमान से ही जाना जाता है, जिनके कन्धे मनुष्यों के पलक झपकने से ही टूट जाते हैं। कितने ही मुनि क्रोध और ईर्ष्या से रहित होकर गाँव से निकल कर वन में चले जाते हैं, पर वहाँ भी मोह में पड़कर गृहस्थधर्म में अनुरक्त दिखाई देते हैं। हे कुन्तीपुत्र! दण्डनीति का ठीक-ठीक प्रयोग होने पर सारे प्राणियों के कार्य सिद्ध होते हैं, इसमें मुझे कोई संशय नहीं है। यदि संसार में दण्ड न रहे, तो यह सारी प्रजा नष्ट हो जाये। जैसे जल में बड़ी मछली छोटी मछली को खा जाती है, उसीप्रकार बलवान् लोग दुर्बलों को खा जायें।

अन्धं तम इवेदं स्यान्न प्राज्ञायत किंचन।
दण्डश्चेन्न भवेल्लोके विभजन् साध्वसाधुनी॥ २१॥
येऽपि सम्भिन्नमर्यादा नास्तिका वेदनिन्दकाः।
तेऽपि भोगाय कल्पन्ते दण्डेनाशु निपीडिताः॥ २२॥
सर्वो दण्डजितो लोको दुर्लभो हि शुचिर्जनः।
दण्डस्य हि भयाद् भीतो भोगायैव प्रवर्तते॥ २३॥
चातुर्वर्ण्यप्रमोदाय सुनीतिनयनाय च।
दण्डो विधात्रा विहितो धर्मार्थौ भुवि रक्षितुम्॥ २४॥

भले और बुरे की पहचान करानेवाला दण्ड यदि संसार में न हो तो यहाँ सबतरफ गहरे अँधेरे जैसा होजाये और किसीको कुछभी न सूझे। जो मर्यादा का उल्लंघन करनेवाले, वेद के निन्दक नास्तिक मनुष्य हैं, वे भी दण्ड से पीड़ित होकर शीघ्र ही मर्यादापालन के लिये तैयार हो जाते हैं। सारा संसार दण्ड के भय से ही सही मार्ग पर चलता है। स्वभावतः शुद्ध मनुष्य मिलना कठिन है। दण्ड के भय से ही मनुष्य मर्यादा पालन में प्रवृत्त होता है। चारों वर्ण आनन्द से रहें, सब में अच्छी नीति का व्यवहार हो, पृथिवी पर धर्म और अर्थ की रक्षा रहे, इसीलिये विधान करनेवालों ने दण्ड का विधान किया है।

न ब्रह्मचार्यधीयीत कल्याणी गौर्न दुह्यते।
न कन्योद्वहनं गच्छेद् यदि दण्डो न पालयेत्॥ २५॥
विष्वग्लोपः प्रवर्तेत भिद्येरन् सर्वसेतवः।
ममत्वं न प्रजानीयुर्यदि दण्डो न पालयेत्॥ २६॥
चरेयुर्नाश्रमे धर्मं यथोक्तं विधिमाश्रिताः।
न विद्यां प्राप्नुयात् कश्चिद् यदि दण्डो न पालयेत्॥ २७॥

यदि दण्ड मर्यादा की रक्षा न करे तो सीधी गाय भी दूध न दुहाये और कन्याएँ विवाह न करायें। यदि दण्ड न हो तो सबतरफ धर्मकर्म का लोप

होजाये, सारी मर्यादाएँ टूट जायें और लोग यह भी न जान सकें कि कौन सी वस्तु मेरी है और कौन सी नहीं। यदि दण्ड मर्यादा का पालन न कराये तो लोग आश्रमों में रहकर विधिपूर्वक अपने धर्मों का पालन न करें और नाहीं कोई विद्या का अध्ययन करे।

न चोष्ट्रा न बलीवर्दा नाश्वाश्वतरगर्दभाः।
युक्ता वहेयुर्यानानि यदि दण्डो न पालयेत्॥ २८॥
न प्रेष्या वचनं कुर्युर्न बाला जातु कर्हिचित्।
न तिष्ठेद् युवती धर्मे यदि दण्डो न पालयेत्॥ २९॥
दण्डे स्थिताः प्रजाः सर्वा भयं दण्डे विदुर्बुधाः।
दण्डे स्वर्गो मनुष्याणां लोकोऽयं सुप्रतिष्ठितः॥ ३०॥
न तत्र कूटं पापं वा वञ्चना वापि दृश्यते।
यत्र दण्डः सुविहितश्चरत्यरिविनाशनः॥ ३१॥

यदि दण्ड मर्यादा का पालन न कराये तो ऊँट बैल, खच्चर और गधे सवारियों में जोते जाने पर भी उन्हें खींचकर न ले जायें। यदि दण्ड मर्यादा का पालन न कराये तो सेवक स्वामी की बात न मानें, बच्चे भी मातापिता की आज्ञा का पालन न करें और युवती स्त्रियाँ अपने सतीधर्म में न रहें। दण्ड के सहारे ही सारी प्रजा टिकी हुई है। विद्वान् लोग मानते हैं कि दण्ड से ही भय होता है। मनुष्यों का इस संसार में सुख तथा परलोक में उत्तम गति दोनों दण्ड पर ही आश्रित हैं। शत्रुओं का विनाश करनेवाला दण्ड जहाँ अच्छीतरह से संचालित होकर विचरण करता है, वहाँ छल, ठगी और पाप दिखाई नहीं देते।

यदीदं धर्मतो राज्यं विहितं यद्यधर्मतः।
कार्यस्तत्र न शोको वै भुङ्क्ष्व भोगान् यजस्व च॥ ३२॥
सुखेन धर्मं श्रीमन्तश्चरन्ति शुचिवाससः।
संवर्षन्तः फलैर्दानैर्भुञ्जानाश्चान्नमुत्तमम्॥ ३३॥
अर्थे सर्वे समारम्भाः समायत्ता न संशयः।
स च दण्डे समायत्तः पश्य दण्डस्य गौरवम्॥ ३४॥
लोकयात्रार्थमेवेह धर्मप्रवचनं कृतम्।
अहिंसासाधुहिंसेति श्रेयान् धर्मपरिग्रहः॥ ३५॥

यह राज्य आपको धर्म से प्राप्त हुआ है या अधर्म से इसके लिये आपको शोक नहीं करना चाहिये। आप इसे भोगिये और यज्ञ कीजिये। स्वच्छ वस्त्र धारण करनेवाले यजमानलोग सुखपूर्वक धर्म का आचरण करते हैं। वे उत्तम भोजन करते हुए फलों और दानों की वर्षा करते हैं। सारे कार्य धन के आश्रित हैं, इसमें कोई संशय नहीं है, पर धन भी दण्ड के आधीन है, इसलिये दण्ड की महिमा को देखिये। संसार में जीवनयात्रा के निर्वाह के लिये ही धर्म का उपदेश दिया जाता है। हिंसा बिल्कुल न की जाये, या दुष्टों की हिंसा की जाये यह प्रश्न उपस्थित होने पर, जिससे धर्म की रक्षा हो वही कार्य श्रेष्ठ मानना चाहिये।

नात्यन्तं गुणवत् किंचिन्न चाप्यत्यन्तनिर्गुणम्।
उभयं सर्वकार्येषु दृश्यते साध्वसाधु वा॥ ३६॥
यज देहि प्रजां रक्ष धर्मं समनुपालय।
अमित्राञ्जहि कौन्तेय मित्राणि परिपालय॥ ३७॥
मा च ते निघ्नतः शत्रून् मन्युर्भवतु पार्थिव।
न तत्र किल्बिषं किंचित् कर्तुर्भवति भारत॥ ३८॥
आततायी हि यो हन्यादाततायिनमागतम्।
न तेन भ्रूणहा स स्यान्मन्युस्तं मन्युमार्छति॥ ३९॥

संसार में कोई भी वस्तु ऐसी नहीं है, जिसमें सर्वथा गुण ही गुण हों और कोई वस्तु ऐसी भी नहीं है, जिसमें कोई भी गुण न हो। अच्छाई बुराई सभी में दिखाई देती है। आप यज्ञ कीजिये, दान दीजिये, प्रजा की रक्षा कीजिये और धर्म का पालन कीजिये। हे कुन्तीपुत्र! आप शत्रुओं का वध और मित्रों का पालन कीजिये। हे राजन्! शत्रुओं का वध करते हुए आपके मन में दीनता नहीं आनी चाहिये। हे भारत! शत्रु का वध करने वाले कर्ता को कोई पाप नहीं लगता। जो आते हुए आतयायी को स्वयं आततायी बनकर मार देता है, उसे भ्रूण–हत्या का पाप नहीं लगता। क्योंकि मारने के लिये आते हुए उस व्यक्ति का क्रोध ही उसका वध करने वाले के मन में भी क्रोध उत्पन्न कर देता है।

दसवाँ अध्याय : भीमसेन का पिछले दुखों की याद दिलाते हुए, युधिष्ठिर को मन को वश में रखकर राज्यशासन के लिये प्रेरित करना।

अर्जुनस्य वचः श्रुत्वा भीमसेनोऽत्यमर्षणः।
धैर्यमास्थाय तेजस्वी ज्येष्ठं भ्रातरमब्रवीत्॥ १॥
राजन् विदितधर्मोऽसि न तेऽस्त्यविदितं क्वचित्।
उपशिक्षाम ते वृत्तं सदैव न च शक्नुमः॥ २॥
न वक्ष्यामि न वक्ष्यामीत्येवं मे मनसि स्थितम्।
अतिदुःखात्तु वक्ष्यामि तन्निबोध जनाधिप॥ ३॥
भवतः सम्प्रमोहेन सर्वं संशयितं कृतम्।
विक्लवत्वं च नः प्राप्तमबलत्वं तथैव च॥ ४॥

अर्जुन की बात सुनकर अत्यन्त अमर्षशील और तेजस्वी भीमसेन धैर्य को धारणकर बड़े भाई से बोले कि हे राजन्! आप सारे धर्मों को जानते हैं, आपसे कुछ भी अज्ञात नहीं है। हम सदा आपसे ही सदाचार की शिक्षा पाते रहे हैं। अतः आपको शिक्षा नहीं दे सकते। मैं अपने मन में बार–बार निश्चय करता हूँ कि मैं अब कुछ नहीं बोलूँगा, पर फिर भी अत्यन्त दुख होने के कारण बोलना ही पड़ता है। हे जनाधिप! आप मेरी बात तो समझिये। आपके मोह से अब सब कुछ संशय में पड़ गया है। हमारे मनों में दुर्बलता और व्याकुलता आगयी है।

कथं हि राजा लोकस्य सर्वशास्त्रविशारदः।
मोहमापद्यसे दैन्याद् यथा कापुरुषस्तथा॥ ५॥
अगतिश्च गतिश्चैव लोकस्य विदिता तव।
आयत्यां च तदात्वे च न तेऽस्त्यविदितं प्रभो॥ ६॥
एवं गते महाराज राज्यं प्रति जनाधिप।
हेतुमत्र प्रवक्ष्यामि तमिहैकमनाः शृणु॥ ७॥
द्विविधो जायते व्याधिः शारीरो मानसस्तथा।
परस्परं तयोर्जन्म निर्द्वन्द्वं नोपलभ्यते॥ ८॥

आप सारे संसार के राजा हैं, सारे शास्त्रों के विद्वान् हैं, फिर क्यों कायर पुरुषों के समान दीनता वश मोह में पड़े हुए हैं? आपको संसार की गति और अगति दोनों का ज्ञान है। हे प्रभो! आपसे न तो वर्तमान छिपा हुआ है और न भविष्य। ऐसी अवस्था में हे महाराज! आपको राज्य का क्यों पालन करना चाहिये, उसका कारण मैं आपको बता रहा हूँ। आप एकाग्रचित्त होकर सुनें। दो प्रकार की व्याधियाँ होती हैं, एक शारीरिक और दूसरी मानसिक। एक दूसरे के आधार पर दोनों का जन्म होता है। एक के बिना दूसरी का होना संभव नहीं है।

शारीराज्जायते व्याधिर्मानसो नात्र संशयः।
मानसाज्जायते वापि शारीर इति निश्चयः॥ ९॥
शारीरं मानसं दुःखं योऽतीतमनुशोचति।
दुःखेन लभते दुःखं द्वावनर्थौ च विन्दति॥ १०॥
शीतोष्णे चैव वायुश्च त्रयः शारीरजा गुणाः।
तेषां गुणानां साम्यं यत्तदाहुः स्वस्थलक्षणम्॥ ११॥
तेषामन्यतमोद्रेके विधानमुपदिश्यते।
उष्णेन बाध्यते शीतं शीतेनोष्णं प्रबाध्यते॥ १२॥

इसमें कोई सन्देह नहीं है कि शरीर की बीमारी से मानसिक बीमारियाँ जन्म लेती हैं और यह भी निश्चित है कि मानसिक बीमारियों से शरीर की बीमारियाँ पैदा हो जाती हैं। जो व्यक्ति बीते हुए शारीरिक और मानसिक दुख के लिये शोक करता है, वह एक दुख से दूसरे दुख को प्राप्त होता है। उसे दो दो अनर्थ भोगने पड़ते हैं। सर्दी, गर्मी और वायु अर्थात् वात, पित्त और कफ ये तीन शरीर के गुण हैं। इन तीनों गुणों की साम्यावस्था ही स्वास्थ्य का लक्षण कहा गया है। इनमें से यदि किसी एक की वृद्धि हो जाये तो उसकी चिकित्सा बतायी जाती है। उष्ण पदार्थ से सर्दी और शीत पदार्थ से गर्मी का निवारण किया जाता है।

सत्त्वं रजस्तम इति मानसाः स्युस्त्रयो गुणाः।
तेषां गुणानां साम्यं यत्तदाहुः स्वस्थलक्षणम्॥ १३॥
तेषामन्यतमोत्सेके विधानमुपदिश्यते।
हर्षेण बाध्यते शोको हर्षः शोकेन बाध्यते॥ १४॥
कश्चित् सुखे वर्तमानो दुःखस्य स्मर्तुमिच्छति।
कश्चिद् दुःखे वर्तमानः सुखस्य स्मर्तुमिच्छति॥ १५॥
स त्वं न दुःखी दुःखस्य न सुखी च सुखस्य वा।
न दुःखी सुखजातस्य न सुखी दुःखजस्य वा॥ १६॥

इसी प्रकार सत्व, रज और तम ये तीन मानसिक गुण हैं। इस तीनों गुणों की साम्यावस्था ही मानसिक स्वास्थ्य का लक्षण कहा गया है। इनमें से किसी

एक की वृद्धि होने पर उसका उपचार बताया जाता है। हर्ष (सत्व) के द्वारा शोक (रजो गुण) का निवारण किया जाता है और शोक के द्वारा हर्ष का। कोई सुख में रहकर दुःख की बातें याद करना चाहता है और कोई दुःख में रहते हुए सुख का स्मरण करना चाहता है, आप न दुःखी होकर दुःख की, न सुखी होकर सुख की, न दुख की अवस्था में सुख की और न सुख की अवस्था में दुख की बातें याद करना चाहते हैं।

दृष्ट्वा सभागतां कृष्णामेकवस्त्रां रजस्वलाम्।
मिषतां पाण्डुपुत्राणां न तस्य स्मर्तुमर्हसि॥ १७॥
प्रव्राजनं न नगरादजिनैश्च विवासनम्।
महारण्यनिवासश्च न तस्य स्मर्तुमर्हसि॥ १८॥
पुनरज्ञातचर्यायां कीचकेन पदा वधम्।
द्रौपद्या राजपुत्र्याश्च कथं विस्मृतवानसि॥ १९॥
बलिनो हि वयं राजन् देवैरपि सुदुर्जयाः।
कथं भृत्यत्वमापन्ना विराटनगरे स्मर॥ २०॥

एक वस्त्र पहने, रजस्वला अवस्था में द्रौपदी को जो पाण्डवों के देखते हुए सभा में लाया गया था, उसे आपने अपनी आँखों से देखा था। क्या उस घटना का आपको स्मरण नहीं है? आपको नगर से बाहर निकाला गया मृगछाला पहनाकर वनवास दे दिया गया, महान् वनों में आपको रहना पड़ा। क्या आप उन बातों को याद नहीं करते? फिर अज्ञातवास के समय कीचक ने जो द्रौपदी को लात मारी थी, आपने उस घटना को कैसे भुला दिया? हे राजन्! हम बलवान् हैं, देवताओं के लिये भी हमें जीतना अत्यन्त कठिन है, फिर भी विराटनगर में हमें किस प्रकार दास बनकर रहना पड़ा था? उसे याद कीजिये।

यच्च ते द्रोणभीष्माभ्यां युद्धमासीदरिंदम।
मनसैकेन योद्धव्यं तत्ते युद्धमुपस्थितम्॥ २१॥
यत्र नास्ति शरैः कार्यं न मित्रैर्न च बन्धुभिः।
आत्मनैकेन योद्धव्यं तत्ते युद्धमुपस्थितम्॥ २२॥
तस्मिन्ननिर्जिते युद्धे प्राणान् यदि विमोक्ष्यसे।
अन्यं देहं समास्थाय ततस्तैरपि योत्स्यसे॥ २३॥

हे शत्रुओं को दमन करने वाले! जिस प्रकार का युद्ध आपका भीष्म पितामह और द्रोणाचार्य के साथ हुआ था, वैसा ही दूसरा युद्ध आपके सामने उपस्थित है। इसमें आपको अपने मन के साथ अकेले ही युद्ध करना है। इस युद्ध में न तो बाणों का कुछ काम है और न मित्रों और बन्धुओं की कुछ सहायता की आवश्यकता है। यह तो आपको अकेले ही अपने आप से लड़ना है। यह युद्ध आपके सामने उपस्थित है। इस युद्ध को बिना जीते यदि आप अपने प्राणों को छोड़ देंगे, तो दूसरा शरीर धारण कर फिर उन्हीं शत्रुओं से आपको लड़ना पड़ेगा।

तस्मादद्यैव गन्तव्यं युद्ध्यस्व भरतर्षभ।
परमव्यक्तरूपस्य व्यक्तं त्यक्त्वा स्वकर्मभिः॥ २४॥
तस्मिन्ननिर्जिते युद्धे कामवस्थां गमिष्यसि।
एतज्जित्वा महाराज कृतकृत्यो भविष्यसि॥ २५॥
एतां बुद्धिं विनिश्चित्य भूतानामागतिं गतिम्।
पितृपैतामहे वृत्ते शाधि राज्यं यथोचितम्।
वयं ते किंकराः पार्थ वासुदेवश्च वीर्यवान्॥ २६॥

हे भरतश्रेष्ठ! इसलिये प्रत्यक्ष दिखाई देनेवाले शत्रु को छोड़कर इस अत्यन्त अव्यक्तरूप शत्रु मन के साथ युद्ध करने के लिये आपको अभी चल देना चाहिये। आप विचार आदि बौद्धिक क्रियाओं के द्वारा इसके साथ अवश्य ही युद्ध करें। यदि आपने अपने मन को नहीं जीता, तो पता नहीं आप किस अवस्था को प्राप्त हो जायेंगे? हे महाराज! यदि आपने मन को जीत लिया तो कृतकृत्य हो जायेंगे। प्राणियों के आवागमन को देखते हुए, इस विचार को बुद्धि में स्थिर करके आप अपने पिता और दादाओं के आचार में स्थित होकर उचित प्रकार से राज्य का शासन कीजिये। हे कुन्तीपुत्र! हम सारे भाई और महापराक्रमी श्रीकृष्ण आपके सेवक हैं।

ग्यारहवाँ अध्याय : युधिष्ठिर के द्वारा मुनि वृत्ति और ज्ञानी महात्माओं की प्रशंसा तथा अर्जुन के द्वारा पुनः उसे समझाना।

युधिष्ठिर उवाच

य इमामखिलां भूमिं शिष्यादेको महीपतिः।
तस्याप्युदरमेकं वै किमिदं त्वं प्रशंससि॥ १॥
नाह्ना पूरयितुं शक्यां न मासैर्भरतर्षभ।
अपूर्यां पूरयन्निच्छामायुषापि न शक्नुयात्॥ २॥

तब युधिष्ठिर ने कहा कि जो सम्राट अकेला सारी भूमि पर शासन करता है, उसके पास भी एक ही पेट होता है, इसलिये तुम राज्य की प्रशंसा क्यों करते हो? हे भरतश्रेष्ठ! इच्छा की पूर्ति एक दिन में या कई मासों में भी नहीं की जा सकती। अपितु सारी आयु प्रयत्न करने पर भी इस अपूरणीय इच्छा की पूर्ति असम्भव है।

मानुषान् कामभोगांस्त्वमैश्वर्यं च प्रशंससि।
अभोगिनोऽबलाश्चैव यान्ति स्थानमनुत्तमम्॥ ३॥
विषयान् प्रतिसंगृह्य संन्यासं कुरुते यतिः।
न च तुष्यन्ति राजानः पश्य बुद्ध्यन्तरं यथा॥ ४॥
यस्त्विमां वसुधां कृत्स्नां प्रशासेदखिलां नृपः।
तुल्याश्मकाञ्चनो यश्च स कृतार्थो न पार्थिवः॥ ५॥

तुम मनुष्यों में काम, भोग और ऐश्वर्य की बड़ी प्रशंसा करते हो, पर जो भोगरहित हैं और तपस्या से निर्बल होगये हैं, वेही उत्तम पद को प्राप्त होते हैं। संन्यासी विषयों का त्याग करके ही सन्यास को ग्रहण करता है, किन्तु राजालोग कभी सन्तुष्टि को प्राप्त नहीं होते। देखो, इनदोनों के विचारों में कितना अन्तर है। जो राजा इस सारी भूमि पर शासन करता है तथा जो त्यागी व्यक्ति पत्थर और सोने को समानरूप से देखता है, इनदोनों में त्यागी मुनि ही कृतार्थ है, राजा नहीं।

पन्थानौ पितृयानश्च देवयानश्च विश्रुतौ।
ईजानाः पितृयानेन देवयानेन मोक्षिणः॥ ६॥
तपसा ब्रह्मचर्येण स्वाध्यायेन महर्षयः।
विमुच्य देहांस्ते यान्ति मृत्योरविषयं गताः॥ ७॥

परलोक के दो प्रसिद्ध मार्ग हैं देवयान और पितृयान। यज्ञों को करनेवाले पितृयान से जाते हैं और मोक्ष के अधिकारी देवयान से। महर्षि लोग तपस्या, ब्रह्मचर्य और स्वाध्याय से शरीर त्याग के पश्चात् ऐसे लोक में पहुँच जाते हैं, जहाँ मृत्यु का प्रवेश नहीं है।

आमिषं बन्धनं लोके कर्मेहोक्तं तथामिषम्।
ताभ्यां विमुक्तः पापाभ्यां पदमाप्नोति तत् परम्॥ ८॥
अपि गाथां पुरा गीतां जनकेन वदन्त्युत।
निर्द्वन्द्वेन विमुक्तेन मोक्षं समनुपश्यता॥ ९॥
अनन्तं बत मे वित्तं यस्य मे नास्ति किञ्चन।
मिथिलायां प्रदीप्तायां न मे दह्यति किञ्चन॥ १०॥
प्रज्ञाप्रासादमारुह्य अशोचञ्शोचतो जनान्।
जगतीस्थानिवाद्रिस्थो मन्दबुद्धीनवेक्षते॥ ११॥
दृश्यं पश्यति यःपश्यन् स चक्षुष्मान् स बुद्धिमान्।
अज्ञातानां च विज्ञानात् सम्बोधाद् बुद्धिरुच्यते॥ १२॥

संसार में बन्धन को तथा सकाम कर्म को आमिष कहा जाता है। इनदोनों आमिषरूप पापों से जो मुक्त हो जाता है, वही परमपद को प्राप्त होता है। लोग पूर्वकाल में जनक की कही हुई एक गाथा का वर्णन किया करते हैं। राजा जनक निर्द्वन्द्व और जीवन्मुक्त थे। उन्होंने मोक्ष का साक्षात्कार कर लिया था। वे कहते थे कि मेरे पास अनन्त धन है, पर उसमें से मेरा कुछ भी नहीं है। यदि सारी मिथिला में आग लग जाये तो मेरा कुछ भी नहीं जलेगा। जैसे पर्वत की चोटी पर चढ़ा हुआ व्यक्ति भूमि पर खड़े हुए व्यक्तियों को केवल देखता है, उनकी परिस्थितियों से प्रभावित नहीं होता, वैसे ही बुद्धि की अट्टालिका पर चढ़ा हुआ व्यक्ति शोक करने वाले मन्दबुद्धि लोगों को देखता है, पर स्वयं शोक नहीं करता। जो निरपेक्षभाव से इस दृश्यप्रपंच को देखता है, वही आँखोंवाला है और वही बुद्धिमान् है। बुद्धि अन्तःकरण की उस वृत्ति को कहते हैं, जो अज्ञात तत्त्वों का ज्ञान और सम्यक् बोध कराती है।

तूष्णीम्भूतं तु राजानं पुनरेवार्जुनोऽब्रवीत्।
संतप्तः शोकदुःखाभ्यां राजवाक्छल्यपीडितः॥ १३॥
कथयन्ति पुरावृत्तमितिहासमिमं जनाः।
विदेहराज्ञः संवादं भार्यया सह भारत॥ १४॥

उत्सृज्य राज्यं भिक्षार्थं कृतबुद्धिं नरेश्वरम्।
विदेहराजमहिषी दुःखिता यदभाषत॥ १५॥

राजा युधिष्ठिर के ऐसा कहकर चुप हो जाने पर, उनके वाग्बाणों से पीड़ित, दुख तथा शोक से सन्तप्त अर्जुन फिर उनसे बोले कि हे भारत! लोग विदेह राजाजनक के अपनी पत्नी के साथ संवादवाले इस प्राचीन इतिहास को सुनाया करते हैं। एक बार राजा जनक भी राज्य को छोड़कर भिक्षा के लिये अपनी बुद्धि बनाने लगे। तब विदेह राजा की दुख से भरी महारानी ने उनसे जो कुछ कहा, वह मैं आप को सुनाता हूँ।

धनान्यपत्यं दाराश्च रत्नानि विविधानि च।
पन्थानं पावकं हित्वा जनको मौढ्यमास्थितः॥ १६॥
तं ददर्श प्रिया भार्या भैक्ष्यवृत्तिमकिंचनम्।
धानामुष्टिमुपासीनं निरीहं गतमत्सरम्॥ १७॥
तमुवाच समागत्य भर्तारमकुतोभयम्।
क्रुद्धा मनस्विनी भार्या विविक्ते हेतुमद् वचः॥ १८॥
कथमुत्सृज्य राज्यं स्वं धनधान्यसमन्वितम्।
कापालीं वृत्तिमास्थाय धानामुष्टिर्न ते वरः॥ १९॥

एक बार राजा जनक पर भी मूढ़ता छा गयी। वे धन, सन्तान, स्त्री, रत्न, सनातन मार्ग और अग्नि होत्र का भी त्याग करके अकिंचन हो गये। उन्होंने भिक्षावृत्ति अपना ली और मुट्ठी पर भुना हुआ जौ खाकर ही रहने लगे। उन्होंने सब प्रकार की इच्छाओं और ईर्ष्याभाव को छोड़ दिया। तब ऐसी निर्भय स्थिति में पहुँचे हुए राजा को देखकर उनकी प्यारी मनस्विनी रानी ने कुपित होकर उनसे एकान्त में यह युक्तियुक्त बात कही कि हे राजन्! आपने धनधान्य से युक्त राज्य को छोड़कर और खप्पर लेकर भिखारियों का धन्धा क्यों अपना लिया? यह मुट्ठी भर जौ आपको शोभा नहीं दे रहा है।

प्रतिज्ञा तेऽन्यथा राजन् विचेष्टा चान्यथा तव।
यद् राज्यं महदुत्सृज्य स्वल्पे तुष्यसि पार्थिव॥ २०॥
नैतेनातिथयो राजन् देवर्षिपितरस्तथा।
अद्य शक्यास्त्वया भर्तुं मोघस्तेऽयं परिश्रमः॥ २१॥
देवतातिथिभिश्चैव पितृभिश्चैव पार्थिव।
सर्वैरेतैः परित्यक्तः परिव्रजसि निष्क्रियः॥ २२॥
यस्त्वं त्रैविद्यवृद्धानां ब्राह्मणानां सहस्रशः।
भर्ता भूत्वा च लोकस्य सोऽद्य तैर्भृतिमिच्छसि॥ २३॥

हे राजन्! आपकी प्रतिज्ञा तो कुछ और थी, पर चेष्टाएँ कुछ और दिखाई दे रही हैं। हे भूपाल! आपने विशाल राज्य को छोड़कर थोड़ी सी वस्तु में सन्तोष कर लिया है। हे राजन्! आप इस मुट्ठीभर जौ अतिथियों, देवताओं, ऋषियों और वृद्धों का भरण पोषण नहीं कर सकते। इसलिये आपका यह परिश्रम व्यर्थ है। आप देवताओं, अतिथियों और वृद्धों से परित्यक्त होकर और अकर्मण्य बनकर घर को छोड़ रहे हैं। आप जो पहले वेदों के ज्ञान में बढ़े चढ़े हजारों ब्राह्मणों और प्रजा का भरण पोषण करनेवाले थे, अब आप उन्हीं से अपना भरणपोषण चाहते हैं।

श्रियं हित्वा प्रदीप्तां त्वं श्ववत् सम्प्रतिवीक्ष्यसे।
अपुत्रा जननी तेऽद्य कौसल्या चापतिस्त्वया॥ २४॥
अमी च धर्मकामास्त्वां क्षत्रियाः पर्युपासते।
त्वदाशामभिकाङ्क्षन्तः कृपणाः फलहेतुकाः॥ २५॥
तांश्च त्वं विफलान् कुर्वन् कं नु लोकं गमिष्यसि।
राजन् संशयिते मोक्षे परतन्त्रेषु देहिषु॥ २६॥
नैव तेऽस्ति परो लोको नापरः पापकर्मणः।
धर्म्यान् दारान् परित्यज्य यस्त्वमिच्छसि जीवितुम्॥ २७॥

इस जगमगाती हुई राज्यलक्ष्मी को छोड़कर आज आप दर-दर भटकनेवाले कुत्ते के समान दिखाई देते हो। आपके जीतेजी आज आपकी माता पुत्रहीन और मैं आपकी पत्नी कौशल्या पतिहीन हो गयी हूँ। ये जो धर्म की इच्छा रखनेवाले क्षत्रिय आपकी सेवा करते हैं, आपसे बड़ी-बड़ी आशायें रखते हैं। इन बेचारों को अपनी सेवा का फल चाहिये। हे राजन्! मोक्ष की प्राप्ति तो सन्देहयुक्त है, क्योंकि प्राणी परिस्थितियों के आधीन है। ऐसी अवस्था में आप अपने सेवकों को विफल मनोरथ करके पता नहीं किस लोक में जायेंगे? आप अपनी धर्मपूर्वक ग्रहण की हुई पत्नी का त्याग करके, जो अकेले जीवन बिताना चाहते हैं, इससे आप पाप को करनेवाले होगये हैं। इसलिये आपके लिये न यह लोक सुखदायी लोगा और न परलोक।

निपानं सर्वभूतानां भूत्वा त्वं पावनं महत्।
आढ्यो वनस्पतिर्भूत्वा सोऽन्यांस्त्वं पर्युपाससे॥ २८॥
खादन्ति हस्तिनं न्यासैः क्रव्यादा बहवोऽप्युत।
बहवः कृमयश्चैव किं पुनस्त्वामनर्थकम्॥ २९॥
य इमां कुण्डिकां भिन्द्यात् त्रिविष्टब्धं च यो हरेत्।
वासश्चापि हरेत् तस्मिन् कथं ते मानसं भवेत्॥ ३०॥

आप सारे प्राणियों के लिये एक पवित्र और विशाल प्याऊ के समान थे। सभी आपके पास अपनी प्यास बुझाने के लिये आते थे। किन्तु अब आपस्वयं दूसरों का मुख देखेंगे। यदि हाथी भी सारी चेष्टाएँ छोड़कर पड़ जाये, तो उसे भी बहुत से माँस भक्षी जन्तु और कीड़े मकौड़े खा जाते हैं, फिर सारे पुरुषार्थों से शून्य आप जैसे मनुष्यों की तो बात ही क्या है? यदि कोई आपकी यह कुण्डी फोड़ दे या त्रिदण्ड उठाकर ले जाये और कपड़े भी चुरा कर ले जाये, तो उस समय आपके मन की कैसी अवस्था होगी?

यस्त्वयं सर्वमुत्सृज्य धानामृष्टेरनुग्रहः।
यदानेन समं सर्वं किमिदं ह्यवसीयसे॥ ३१॥
धानामुष्टेरिहार्थश्चेत् प्रतिज्ञा ते विनश्यति।
का वाहं तव को मे त्वं कश्च ते मय्यनुग्रहः॥ ३२॥
प्रशाधि पृथिवीं राजन् यदि तेऽनुग्रहो भवेत्।
प्रासादं शयनं यानं वासांस्याभरणानि च॥ ३३॥
श्रिया विहीनैरधनैस्त्यक्तमित्रैरकिंचनैः।
सौखिकैः सम्भृतानर्थान् यः संत्यजति किं नु तत्॥ ३४॥

यदि सब कुछ त्याग देने पर भी मुट्ठी भर जौ के लिये दूसरों की कृपा आपको चाहनी पड़े, तो राज्य आदि चीजें भी तो इसी के समान हैं। फिर राज्य के त्याग में क्या विशेषता रही? यदि मुट्ठी भर जौ की आवश्यकता बनी रही। तो सब कुछ त्याग देने की आपने जो प्रतिज्ञा की है, वह नष्ट हो गयी। फिर सब कुछ त्याग देने पर मैं आपकी कौन हूँ और आप मेरे कौन हैं? तथा आपका मुझ पर अनुग्रह भी क्या है? हे राजन्! यदि आपका मुझ पर अनुग्रह हो तो इस भूमि पर राज्य कीजिये। राजमहल, सवारी शय्या, वस्त्र और आभूषणों का भी उपयोग कीजिये। श्रीहीन, निर्धन, मित्रों द्वारा त्यागे हुए, अकिंचन और सुख की अभिलाषा रखने वाले लोगों की भाँति जो समृद्धि से युक्त राज्यलक्ष्मी का त्याग करता है, उससे उसे क्या लाभ है?

योऽत्यन्तं प्रतिगृह्णीयाद् यश्च दद्यात् सदैव हि।
तयोस्त्वमन्तरं विद्धि श्रेयांस्ताभ्यां क उच्यते॥ ३५॥
सतां वै ददतोऽन्नं च लोकेऽस्मिन् प्रकृतिर्ध्रुवा।
न चेद् राजा भवेद् दाता कुतः स्युर्मोक्षकाङ्क्षिणः॥ ३६॥
अन्नाद् गृहस्था लोकेऽस्मिन् भिक्षवस्तत एव च।
अन्नात् प्राणः प्रभवति अन्नदः प्राणदो भवेत्॥ ३७॥
गृहस्थेभ्योऽपि निर्मुक्ता गृहस्थानेव संश्रिताः।
प्रभवं च प्रतिष्ठां च दान्ता विन्दन्त आसते॥ ३८॥

जो बराबर दूसरों से दान लेता है और जो बराबर दूसरों को दान देता है, उन दोनों में क्या अन्तर है? उन दोनों में किसको श्रेष्ठ कहा जाता है? इस बात को अ.प समझिये! इस संसार में दान देने वाले का अन्न ही साधु व्यक्तियों की जीविका का निश्चित आधार है। यदि दान देने वाला राजा न हो तो मोक्ष की इच्छा करने वाले साधु और सन्यासी कैसे जीवित रहें? इस संसार में अन्न से गृहस्थों का और गृहस्थों से भिक्षुओं का निर्वाह होता है। अन्न से ही प्राण शक्ति प्रकट होती है, इसलिये अन्नदाता ही प्राणदाता होता है। जो जितेन्द्रिय सन्यासी होते हैं, वे गृहस्थाश्रम का त्याग करके भी गृहस्थों के सहारे ही जीवन धारण करते हैं। वहीं से वे प्रकट होते हैं और वहीं उन्हें प्रतिष्ठा प्राप्त होती है।

त्यागान्न भिक्षुकं विद्यान्न मौढ्यान्न च याचनात्।
ऋजुस्तु योऽर्थं त्यजति नसुखं विद्धि भिक्षुकम्॥ ३९॥
असक्तः सक्तवद् गच्छन् निःसङ्गो मुक्तबन्धनः।
समः शत्रौ च मित्रे च स वै मुक्तो महीपते॥ ४०॥

केवल त्याग करने से, मूढ़ बनने से और याचना करने से किसी को भिक्षु नहीं समझना चाहिये। जो सरल भावना को अपनाये, स्वार्थ का त्याग करे और सुख की इच्छा न करे, उसे भिक्षुक समझना चाहिये। हे पृथिवीनाथ! जो आसक्तिरहित हो कर आसक्त की भांति रहता है, जो संगरहित और बन्धनों से मुक्त है, जो शत्रु और मित्र पर समान भाव रखता है, वही मुक्त है।

त्रयीं च नाम वार्तां च त्यक्त्वा पुत्रान् व्रजन्ति ये।
त्रिविष्टब्धं च वासश्च प्रतिगृह्णन्त्यबुद्धयः॥ ४१॥
अनिष्कषाये काषायमीहार्थमिति विद्धि तम।
धर्मध्वजानां मुण्डानां वृत्त्यर्थमिति मे मतिः॥ ४२॥
काषायैरजिनैश्चीरैर्नग्नान् मुण्डान् जटाधरान्।
बिभ्रत् साधून् महाराज जय लोकान् जितेन्द्रियः॥ ४३॥

बहुत से मूर्खलोग वेदों का अध्ययन, उनमें बताये गये कर्मों को छोड़कर और अपने पुत्रों का त्याग कर चल देते हैं और त्रिदण्ड और भगवावस्त्र धारण कर लेते हैं। किन्तु यदि हृदय का काषायपन अर्थात मैल दूर नहीं हुआ तो काषाय वस्त्र को धारण करना,

इच्छाओं की पूर्ति का साधन ही समझना चाहिये। मेरे विचार से तो काषाय वस्त्र धारण करना, धर्म का ढोंग करने वाले, और सिर मुँडाये हुए लोगों की जीविका चलाने का एक साधन है। हे महाराज! आप तो जितेन्द्रिय होकर, नंगे रहनेवाले, मूँड मुँडानेवाले, जटा धारण करनेवाले साधुओं का गेरुए वस्त्र, मृगचर्म और वल्कल वस्त्रों के द्वारा भरणपोषण करते हुए पुण्य लोकों पर विजय प्राप्त कीजिये।

अर्जुन उवाच

तत्त्वज्ञो जनको राजा लोकेऽस्मिन्निति गीयते।
सोऽप्यासीन्मोहसम्पन्नो मा मोहवशमन्वगाः॥ ४४॥
एवं धर्ममनुक्रान्ताः सदा दानतपः पराः।
आनृशंस्यगुणोपेताः कामक्रोधविवर्जिताः॥ ४५॥
प्रजानां पालने युक्ता दानमुत्तममास्थिताः।
इष्टाँल्लोकानवाप्स्यामो गुरुवृद्धोपचायिनः॥ ४६॥

अर्जुन ने कहा कि राजा जनक को संसार में तत्वज्ञ कहा जाता है, वह भी मोह के बस में हो गया, फिर रानी के समझाने पर उसने मोह को छोड़ा। इसलिये आप भी मोह के वश में मत होइये। यदि हम धर्म का पालन करते हुए, सदा दान और तपस्या में तत्पर रहेंगे, दया आदि गुणों को अपनायेंगे, कामक्रोध आदि दोषों का त्याग कर देंगे, प्रजा के पालन में लगे रहेंगे, उत्तम रीति से दान करते रहेंगे और गुरुजनों तथा वृद्धजनों की सेवा करते रहेंगे, तो अपने अभीष्ट लोकों अर्थात् उत्तम पारलौकिक गतियों को प्राप्त कर लेंगे।

बारहवाँ अध्याय : युधिष्ठिर द्वारा अपने मत का प्रतिपादन।

युधिष्ठिर उवाच

त्वं तु केवलमस्त्रज्ञो वीरव्रतसमन्वितः।
शास्त्रार्थं तत्त्वतो गन्तुं न समर्थः कथंचन॥ १॥
शास्त्रार्थसूक्ष्मदर्शी यो धर्मनिश्चयकोविदः।
तेनाप्येवं न वाच्योऽहं यदि धर्मं प्रपश्यसि॥ २॥

तब युधिष्ठिर ने कहा कि तुम तो केवल वीरव्रत के पालक अस्त्रविद्या के पण्डित हो, शास्त्रों के वास्तविक अर्थ को समझने में किसी प्रकार भी समर्थ नहीं हो। यदि तुम धर्म पर दृष्टि रखते हो, तो इस बात को समझो कि शास्त्रों के अर्थ की सूक्ष्मता को जाननेवाले और धर्मनिश्चय करने में चतुरलोग भी मुझे इसप्रकार उपदेश नहीं देसकते।

भ्रातृसौहृदमास्थाय यदुक्तं वचनं त्वया।
न्याय्यं युक्तं च कौन्तेय प्रीतोऽहं तेन तेऽर्जुन॥ ३॥
युद्धधर्मेषु सर्वेषु क्रियाणां नैपुणेषु च।
न त्वया सदृशः कश्चित् त्रिषु लोकेषु विद्यते॥ ४॥
धर्मं सूक्ष्मतरं वाच्यं तत्र दुष्प्रतरं त्वया।
धनंजय न मे बुद्धिमभिशङ्कितुमर्हसि॥ ५॥
युद्धशास्त्रविदेव त्वं न वृद्धाः सेवितास्त्वया।
संक्षिप्तविस्तर विदां न तेषां वेत्सि निश्चयम्॥ ६॥

हे कुन्तीपुत्र अर्जुन! भाई के प्रति प्रेम के कारण तुमने मुझे जो बातें कहीं है, वे न्यायसंगत और उचित हैं। मैं उनमे तुम पर प्रसन्न हूँ। सारे युद्ध के धर्मों और युद्ध की क्रियाओं की कुशलता में तीनों लोकों में तुम्हारी बराबरी करनेवाला कोई नहीं है। किन्तु हे धनंजय। धर्मका स्वरूप बहुत सूक्ष्म है, उसे समझना तुम्हारे लिये कठिन है। पर तुम्हें इस विषय में मेरी बुद्धि के बारे में शंका नहीं करनी चाहिये। तुम युद्धशास्त्र के ही विद्वान् हो। तुमने कभी वृद्धों की सेवा नहीं की है, अतः धर्म के संक्षेप और विस्तार के ज्ञाता विद्वानों का निश्चय तुम्हें पता नहीं है।

तपस्त्यागोऽविधिरिति निश्चयस्त्वेष धीमताम्।
परं परं ज्याय एषां येषां नैश्रेयसी मतिः॥ ७॥
यस्त्वेतन्मन्यसे पार्थ न ज्यायोऽस्ति धनादिति।
तत्र ते वर्तयिष्यामि यथा नैतत् प्रधानतः॥ ८॥
तपःस्वाध्यायशीला हि दृश्यन्ते धार्मिका जनाः।
ऋषयस्तपसा युक्ता येषां लोकाः सनातनाः॥ ९॥
अजातशत्रवो धीरास्तथान्ये वनवासिनः।
अरण्ये बहवश्चैव स्वाध्यायेन दिवं गताः॥ १०॥

जिन की बुद्धि परमकल्याण में लगी हुई है, उन बुद्धिमानों का निश्चय यह है कि तप, त्याग और विधिविधानों से ऊपर ब्रह्मज्ञान, इनमें से पूर्व पूर्व की अपेक्षा उत्तरोत्तर अधिक श्रेष्ठ है। हे कुन्तीपुत्र!

तुम जो यह मानते हो कि धन से बढ़कर कोई वस्तु नहीं है, इस विषय में मैं तुम्हें समझाऊँगा कि धन प्रधान नहीं हैं। संसार में अनेक लोग तप और स्वाध्याय में लगे हुए हैं, वे धर्म का पालन करते हैं। ऋषिलोग भी तपस्वी होते हैं। इन सबको सनातन लोकों अर्थात् उत्तम गति की प्राप्ति होती है। कितने ही ऐसे धीर मनुष्य हैं जो अजातशत्रु हैं, दूसरे बहुत से वन में रहकर स्वाध्याय करने वाले वनवासी हैं, वे भी स्वर्ग अर्थात् उत्तमगति को प्राप्त होते हैं।

उत्तरेण तु पन्थानमार्या विषयनिग्रहात्।
अबुद्धिजं तमस्त्यक्त्वा लोकांस्त्यागवतां गताः॥ ११॥
दक्षिणेन तु पन्थानं यं भास्वन्तं प्रचक्षते।
एते क्रियावतां लोका ये श्मशानानि भेजिरे॥ १२॥
अनुस्मृत्य तु शास्त्राणि कवयः समवस्थिताः।
अपीह स्यादपीह स्यात् सारासारदिदृक्षया॥ १३॥
वेदवादानतिक्रम्य शास्त्राण्यारण्यकानि च।
विपाट्य कदलीस्तम्भं सारं ददृशिरे न ते॥ १४॥

अनेक आर्यलोग इन्द्रियों को उनके विषयों से रोककर और अविवेकजनित अज्ञान का त्यागकर, उत्तरमार्ग अर्थात् देवयान के द्वारा त्यागी पुरुषों की गति को प्राप्त होगये। किन्तु दक्षिणमार्ग अर्थात् पितृयान में जिन्हें प्रकाशपूर्ण बताया गया है, वे लोक सकामकर्म करनेवाले उन गृहस्थों के लिये हैं, जो श्मशानभूमि का सेवन करते हैं, अर्थात् जन्म मरण के चक्कर में पड़े रहते हैं। कहते हैं कि किसी समय विद्वानों ने शास्त्रों का बार बार स्मरण करते हुए इकट्ठे होकर यह विचार आरम्भ किया कि गृहस्थजीवन को अपनाने में कुछ सार है या इस का त्याग करने में सार है? उन्होंने सारे वेदों के सिद्धान्तों, शास्त्रों और आरण्यकों को पढ़ लिया, पर जैसे केले के वृक्ष के खम्बे को फाड़ने पर उसमें से कुछ भी ठोस पदार्थ नहीं मिलता, वैसे ही उन्हें इस संसार में भी कोई सार वस्तु नहीं दिखाई दी।

कल्याणगोचरं कृत्वा मनस्तृष्णां निगृह्य च।
कर्मसंततिमुत्सृज्य स्यान्निरालम्बनः सुखी॥ १५॥
अस्मिन्नेवं सूक्ष्मगम्ये मार्गे सद्भिर्निषेविते।
कथमर्थमनर्थाढ्यमर्जुन त्वं प्रशंससि॥ १६॥
तपसा महदाप्नोति बुद्ध्या वै विन्दते महत्।
त्यागेन सुखमाप्नोति सदा कौन्तेय तत्त्ववित्॥ १७॥

इस लिये मनुष्य को चाहिये कि वह अपनी तृष्णा को रोककर, मन को कल्याणमार्ग पर लगाकर, कर्मों की परम्परा को छोड़कर, धन आदि के अवलम्ब से रहित होकर सुखी होजाये। हे अर्जुन! साधु पुरुषोंद्वारा सेवन किये गये, तथा सूक्ष्म बुद्धि से जानने योग्य, इस उत्तरमार्ग के होते हुए तुम अनर्थों से भरे इस अर्थ अर्थात् धन की प्रशंसा क्यों करते हो? हे कुन्तीपुत्र! तत्ववेत्ता पुरुष, तपस्या और ज्ञानयोग से महान् पद को प्राप्त कर लेता है और स्वार्थत्याग के द्वारा नित्यसुख का अनुभव करता रहता है।

तेरहवाँ अध्याय : मुनि देवस्थान और अर्जुन द्वारा भी समझाना।

अस्मिन् वाक्यान्तरे वक्ता देवस्थानो महातपाः।
अभिनीततरं वाक्यमित्युवाच युधिष्ठिरम्॥ १॥
अजातशत्रो धर्मेण कृत्स्ना ते वसुधा जिता।
तां जित्वा च वृथा राजन् न परित्यक्तुमर्हसि॥ २॥
चतुष्पदी हि निःश्रेणी ब्रह्मण्येव प्रतिष्ठिता।
तां क्रमेण महाबाहो यथावज्जय पार्थिव॥ ३॥

युधिष्ठिर की बात समाप्त होने पर, प्रवचन कुशल महातपस्वी देवस्थान ने युक्तियुक्त वाणी में युधिष्ठिर से कहा कि हे अजातशत्रु राजन्! तुमने धर्म के अनुसार यह सारी भूमि जीती है। जीतकर, अब व्यर्थ ही इसका त्याग करना उचित नहीं है। हे राजन्! चार आश्रम ब्रह्म को प्राप्त कराने की चार सीढ़ियाँ वेदविहित हैं। हे महाबाहु! तुम इन पर बारी बारी से विधिपूर्वक विजय प्राप्त करो।

एवं कौन्तेय भूतानि तं तं धर्मं तथा तथा।
तदाऽऽत्मना प्रपश्यन्ति तस्माद् बुद्ध्यस्व भारत॥ ४॥
अद्रोहेणैव भूतानां यो धर्मः स सतां मतः।
अद्रोहः सत्यवचनं संविभागो दया दमः॥ ५॥
प्रजनं स्वेषु दारेषु मार्दवं ह्रीरचापलम्।
एवं धर्मं प्रधानेष्टं मनुः स्वायम्भुवोऽब्रवीत्॥ ६॥

हे कुन्तीपुत्र! जब सारे प्राणी अपने-अपने धर्म का ठीक-ठीक प्रकार से पालन करते हैं, तब वे अपनी आत्मा से परमात्मा का साक्षात्कार कर लेते हैं। इसलिये हे भारत! तुम भी अपने कर्त्तव्य को समझो। बिना किसी प्राणी से द्रोह किये, जिस का पालन होता है, वही साधु व्यक्तियों के अनुसार उत्तमधर्म है। किसी से द्रोह न करना, सत्य बोलना, प्राणियों को उनका यथायोग्य भाग देना, दया करना, मन और इन्द्रियों को वश में रखना, अपनी ही पत्नी से सन्तान उत्पन्न करना, कोमलता, लज्जा, और अचंचलता आदिगुणों को धारण करना, यह श्रेष्ठ और अभीष्ट धर्म है, ऐसा स्वायंभुव मनु ने कहा है।

तस्मादेतत् प्रयत्नेन कौन्तेय प्रतिपालय।
यो हि राज्ये स्थितः शश्वद् वशी तुल्यप्रियाप्रियः॥ ७॥
क्षत्रियो यज्ञशिष्टाशी राजा शास्त्रार्थतत्त्ववित्।
असाधुनिग्रहरतः साधूनां प्रग्रहे रतः॥ ८॥
धर्मवर्त्मनि संस्थाप्य प्रजा वर्तेत धर्मतः।
पुत्रसंक्रामितश्रीश्च वने वन्येन वर्तयन्॥ ९॥
विधिना श्रावणेनैव कुर्यात् कर्माण्यतन्द्रितः।
य एवं वर्तते राजन् स राजा धर्मनिश्चितः॥ १०॥

हे कुन्तीपुत्र! इसलिये तुम प्रयत्नपूर्वक इस धर्म का पालन करो। जो क्षत्रिय राज्यसिंहासन पर बैठ कर भी सदा अपने मन को वश में रखता है, प्रिय और अप्रिय को समान दृष्टि से देखता है, यज्ञ से बचे हुए अन्न का भोजन करता है, शास्त्रों के वास्तविक अर्थ को जानता है, दुष्टों के दमन और सज्जनों के पालन में लगा रहता है, प्रजा को धर्म मार्ग में स्थापित करके, स्वयं धर्म के अनुसार व्यवहार करता है, वृद्धावस्था में पुत्र को राज्यलक्ष्मी सौंपकर, स्वयं वन में जाकर वन्य पदार्थों से निर्वाह करता है, वहाँ भी शास्त्रों को सुनता हुआ, उनमें विहित कर्मों का बिना आलस्य के पालन करता है। हे राजन्! इस प्रकार से जो राजा जीवन व्यतीत करता है, वह निश्चित रूप से धर्म का पालन करता है।

तस्यायं च परश्चैव लोकः स्यात् सफलोदयः।
निर्वाणं हि सुदुष्प्राप्यं बहुविघ्नं च मे मतम्॥ ११॥
एवं धर्ममनुक्रान्ताः सत्यदानतपःपराः।
आनृशंस्यगुणैर्युक्ताः कामक्रोधविवर्जिताः॥ १२॥
प्रजानां पालने युक्ता धर्ममुत्तममास्थिता।
गोब्राह्मणार्थे युध्यन्त प्राप्ता गतिमनुत्तमाम्॥ १३॥

उसका यह लोक और परलोक दोनों सफल हो जाते हैं। मेरा विचार है कि सन्यास के द्वारा निर्वाण प्राप्त करना बहुत कठिन है और उसमें बहुत विघ्न आते हैं। इस प्रकार धर्म का पालन करने वाले, सत्य, दान और तपस्या में लगे हुए, उत्तमधर्म सेवी और गाय तथा ब्राह्मणों की रक्षा के लिये युद्ध करने वाले राजाओं ने श्रेष्ठ गति प्राप्त की है।

अस्मिन्नेवान्तरे वाक्यं पुनरेवार्जुनोऽब्रवीत्।
निर्विण्णमनसं ज्येष्ठमिदं भ्रातरमच्युतम्॥ १४॥
क्षत्रधर्मेण धर्मज्ञ प्राप्य राज्यं सुदुर्लभम्।
जित्वा चारीन नरश्रेष्ठ तप्यते किं भृशं भवान्॥ १५॥
क्षत्रियाणां महाराज संग्रामे निधनं मतम्।
विशिष्टं बहुभिर्यज्ञैः क्षत्रधर्ममनुस्मर॥ १६॥
ब्राह्मणानां तपस्त्यागः प्रेत्य धर्मविधिः स्मृतः।
क्षत्रियाणां च निधनं संग्रामे विहितं प्रभो॥ १७॥

इसी बीच में अर्थात् देवस्थान की बात समाप्त होते ही अर्जुन ने अपने धर्म से च्युत न होने वाले और उदास मन वाले अपने बड़े भाई से पुनः यह कहा कि हे धर्मज्ञ! क्षत्रिय धर्म के अनुसार इस अत्यन्त दुर्लभ राज्य को पाकर और अपने शत्रुओं को जीत कर, हे नरश्रेष्ठ! आप इतने अधिक दुखी क्यों हो रहे है? हे महाराज! क्षत्रियों का तो संग्राम में मर जाना बहुत सारे यज्ञों से भी बढ़ कर माना गया है। आप क्षत्रिय धर्म का तो स्मरण कीजिये। हे प्रभो! ब्राह्मणों के लिये तपस्या और त्याग धर्म माने गये है, जो परलोक में उन्हें उत्तम गति देने वाले हैं, किन्तु क्षत्रियों के लिये संग्राम में मृत्यु ही उन्हें पारलौकिक फल को प्राप्त कराने वाली है।

क्षात्रधर्मो महारौद्रः शस्त्रनित्य इति स्मृतः।
वधश्च भरतश्रेष्ठ काले शस्त्रेण संयुगे॥ १८॥
स भवान् सर्वधर्मज्ञो धर्मात्मा भरतर्षभ।
राजा मनीषी निपुणो लोके दृष्टपरावरः॥ १९॥

क्षत्रियधर्म बड़ाभयंकर है। उसमें सदा शस्त्रों से ही काम पड़ता है। हे भरतश्रेष्ठ! आप तो सारे धर्मों के ज्ञाता और धर्मात्मा हैं। आप राजा, मननशील कर्मकुशल, संसार में आगेपीछे की सारी बातों पर दृष्टि रखनेवाले हैं।

त्यक्त्वा संतापजं शोकं दंशितो भव कर्मणि।
क्षत्रियस्य विशेषेण हृदयं वज्रसंनिभम्॥ २०॥
जित्वारीन् क्षत्रधर्मेण प्राप्य राज्यमकण्टकम्।
विजितात्मा मनुष्येन्द्र यज्ञदानपरो भव॥ २१॥
मा त्वमेवं गते किंचिच्छोचेथाः क्षत्रियर्षभ।
गतास्ते क्षत्रधर्मेण शस्त्रपूताः परां गतिम्॥ २२॥

आप इस सन्ताप्त से उत्पन्न हुए शोक को छोड़कर कार्यों के लिये तैयार हो जाइये। क्षत्रिय का हृदय तो विशेष रूप से वज्र के समान कठोर होता है। हे नरेन्द्र! आपने क्षत्रियधर्म के अनुसार शत्रुओं को जीतकर यह निष्कण्टक राज्य प्राप्त किया है। अब आप अपने मन को वश में करके यज्ञ और दान में लग जाइये। हे क्षत्रियश्रेष्ठ! आप इस अवस्था में कुछभी शोक मत कीजिये, क्योंकि जो युद्ध में मारे गये हैं, वे सभी क्षत्रियधर्म के अनुसार शस्त्रों से पवित्र होकर उत्तम गति को प्राप्त हुए हैं।

चौदहवाँ अध्याय : व्यास जी का युधिष्ठिर को समझाना।

एवमुक्तस्तु कौन्तेयो गुडाकेशेन पाण्डवः।
नोवाच किंचित् कौरव्यस्ततो द्वैपायनोऽब्रवीत्॥ १॥
बीभत्सोर्वचनं सौम्य सत्यमेतद् युधिष्ठिर।
शास्त्रदृष्टः परो धर्म स्थितो गार्हस्थ्यमाश्रितः॥ २॥
स्वधर्मं चर धर्मज्ञ यथाशास्त्रं यथाविधि।
न हि गार्हस्थ्यमुत्सृज्य तवारण्यं विधीयते॥ ३॥
गृहस्थं हि सदा देवाः पितरोऽतिथयस्तथा।
भृत्याश्चैवोपजीवन्ति तान् भरस्व महीपते॥ ४॥

निद्राविजयी अर्जुन के ऐसा कहने पर भी जब कुन्तीपुत्र, कुरुवंशी, पाण्डव युधिष्ठिर कुछभी न बोले तब द्वैपायन व्यास जी ने कहा कि हे सौम्य युधिष्ठिर! अर्जुन की बात ठीक है। शास्त्रोक्त परम धर्म गृहस्थाश्रम का आश्रय लेकर टिका हुआ है। हे धर्मज्ञ! तुम शास्त्रों की विधि के अनुसार अपने धर्म का ही पालन करो। तुम्हारे लिये इस समय गृहस्थधर्म को छोड़कर वन में जाने का विधान नहीं है। हे महीपति! देवता, अतिथि तथा वृद्ध लोग, सेवक, गृहस्थ का ही आश्रय लेकर जीवननिर्वाह करते हैं। इसलिये तुम उनका भरणपोषण करो।

वयांसि पशवश्चैव भूतानि च जनाधिप।
गृहस्थैरेव धार्यन्ते तस्माच्छ्रेष्ठो गृहाश्रमी॥ ५॥
सोऽयं चतुर्णामेतेषामाश्रमाणां दुराचरः।
तं चराद्य विधिं पार्थ दुश्चरं दुर्बलेन्द्रियैः॥ ६॥
वेदज्ञानं च ते कृत्स्नं तपश्चाचरितं महत्।
पितृपैतामहं राज्यं धुर्यवद् वोढुमर्हसि॥ ७॥
तपो यज्ञस्तथा विद्या भैक्ष्यमिन्द्रियसंयमः।
ध्यानमेकान्तशीलत्वं तुष्टिर्ज्ञानं च शक्तितः॥ ८॥
ब्राह्मणानां महाराज चेष्टा संसिद्धिकारिका।

हे जनाधिप! पशुपक्षी तथा दूसरे प्राणी गृहस्थों द्वारा ही पाले जाते हैं, अतः गृहस्थ ही सबसे श्रेष्ठ है। चारों आश्रमों में हे युधिष्ठिर! गृहस्थाश्रम ही ऐसा है, जिसका ठीक पालन बड़ा कठिन है। हे कुन्तीपुत्र! तुम उसी गृहस्थाश्रम का, जो दुर्बल इन्द्रिय वाले से पालन करना कठिन है, अब विधिपूर्वक पालन करो। तुम्हें वेदों का भी पूरा ज्ञान है, तुमने तपस्या भी बहुत की है, इसलिये तुम पिता और पितामहों के राज्य को धुरन्धर के समान वहन कर सकते हो। हे महाराज! तप, यज्ञ, विद्या, भिक्षाचरण, इन्द्रियसंयम, ध्यान, एकान्तवास का स्वभाव, सन्तोष और यथाशक्ति शास्त्रों का ज्ञान ये गुण और चेष्टाएँ ब्राह्मणों को सिद्धि प्रदान करानेवाली हैं।

क्षत्रियाणां तु वक्ष्यामि तवापि विदितं पुनः॥ ९॥
यज्ञो विद्या समुत्थानमसंतोषः श्रियं प्रति।
दण्डधारणमुग्रत्वं प्रजानां परिपालनम्॥ १०॥
वेदज्ञानं तथा कृत्स्नं तपः सुचरितं तथा।
द्रविणोपार्जनं भूरि पात्रे च प्रतिपादनम्॥ ११॥
एतानि राज्ञां कर्माणि सुकृतानि विशाम्पते।
इमं लोकममुं चैव साधयन्तीति नः श्रुतम्॥ १२॥

हे प्रजानाथ! मैं क्षत्रियों के धर्म तुम्हें बताता हूँ, यद्यपि तुम्हें भी पता हैं। यज्ञ करना, विद्याभ्यास, शत्रुओं पर विजय, राज्यलक्ष्मी के प्रति असन्तोष, दण्ड को धारण करना, उग्रता, प्रजा का पालन करना, वेदों का सम्पूर्ण ज्ञान, तपस्या, अच्छा चरित्र, अत्यधिक धन को एकत्र करना और उसे सत्पात्रों

को दान करना, ये राजाओं के कर्म हैं। हमने सुना है कि अच्छी तरह से किये जाने पर ये राजा के इस लोक और परलोक दोनों को सिद्ध कर देते हैं।

एषां ज्यायस्तु कौन्तेय दण्डधारणमुच्यते।
बलं हि क्षत्रिये नित्यं बले दण्डः समाहितः॥ १३॥
भूमिरेतौ निगिरति सर्पो बिलशयानिव।
राजानं चाविरोद्धारं ब्राह्मणं चाप्रवासिनम्॥ १४॥
प्रशाधि पृथिवीं पार्थ ययातिरिव नाहुषः।
अरण्ये दुःखवसतिरनुभूता तपस्विभिः॥ १५॥
दुःखस्यान्ते नरव्याघ्र सुखान्यनुभवन्तु वै।
धर्ममर्थं च कामं च भ्रातृभिः सह भारत॥ १६॥
अनुभूय ततः पश्चात् प्रस्थातासि विशाम्पते।
अर्थिनां च पितृणां च देवतानां च भारत॥ १७॥
आनृण्यं गच्छ कौन्तेय तत् सर्वं च करिष्यसि।

हे कुन्तीपुत्र! इनमें भी सब से श्रेष्ठ दण्डधारण को कहा जाता है, क्योंकि क्षत्रिय में बलका सदा होना आवश्यक है और बल में ही दण्ड प्रतिष्ठित होता है। जैसे साँप बिल में रहनेवालों को खा जाता है, वैसे ही विरोध न करने वाले राजा और परदेस में न जानेवाले ब्राह्मण को भी भूमि निगल जाती है। हे कुन्तीपुत्र! तुम नहुष के पुत्र ययाति के समान पृथिवी पर शासन करो। तुम्हारे इन तपस्वी भाइयों ने वन में कष्टसहित जीवन बिताया था। हे नरव्याघ्र! अब ये दुख के पश्चात् सुख का अनुभव करें। हे भारत! तुम भाइयों के साथ धर्म, अर्थ और काम का भोग करो। हे प्रजानाथ! उसके पश्चात् तुम वन में चले जाना। हे कुन्तीपुत्र भारत! पहले तुम याचकों, बड़े बूढ़ों और देवताओं का ऋण चुकाओ फिर वह सब करना।

सर्वमेधाश्वमेधाभ्यां यजस्व कुरुनन्दन॥ १८॥
ततः पश्चान्महाराज गमिष्यसि परां गतिम्।
विज्ञस्ते पुरुषव्याघ्र वचनं कुरुसत्तम॥ १९॥
शृणुष्वैवं यथा कुर्वन् न धर्माच्च्यवसे नृप।
आददानस्य विजयं विग्रहं च युधिष्ठिर॥ २०॥
समानधर्मकुशलाः स्थापयन्ति नरेश्वर।

हे कुरुनन्दन, महाराज! पहले सर्वमेध और अश्वमेध जैसे यज्ञों का अनुष्ठान करो। फिर तुम परम गति को प्राप्त करोगे। हे कुरुश्रेष्ठ, पुरुषव्याघ्र, राजन! मैं तुम्हारी बात समझता हूँ। तुम मेरी बात सुनो। उसके अनुसार कार्य करने पर तुम धर्म से च्युत नहीं होगे। हे राजा युधिष्ठिर! विषम भाव से रहित, धर्म में कुशल पुरुष, विजय पाने की इच्छावाले राजा के लिये ही संग्राम की स्थापना करते हैं।

प्रत्यक्षमनुमानं च उपमानं तथाऽऽगमः॥ २१॥
अर्थापत्तिस्तथैतिह्यं संशयो निर्णयस्तथा।
आकारो हीङ्गितश्चैव गतिश्चेष्टा च भारत॥ २२॥
प्रतिज्ञा चैव हेतुश्च दृष्टान्तोपनयौ तथा।
उक्तं निगमनं तेषां प्रमेयं च प्रयोजनम्॥ २३॥
एतानि साधनान्याहुर्बहुवर्गप्रसिद्धये।
प्रत्यक्षमनुमानं च सर्वेषां योनिरिष्यते॥ २४॥
प्रमाणज्ञो हि शक्नोति दण्डनीतौ विचक्षणः।
अप्रमाणवतां नीतो दण्डो हन्यान्महीपतिम्॥ २५॥

हे भारत! प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, आगम, अर्थापत्ति, ऐतिह्य, संशय, निर्णय, आकृति, संकेत, गति, चेष्टा, प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय और निगमन इन सब का प्रयोजन प्रमेय की सिद्धि होता है। बहुत से वर्गों की सिद्धि के लिये इन को साधन बताया गया है। इनमें से प्रत्यक्ष और अनुमान ये दो सभी के लिये निर्णय के आधार माने गये हैं। प्रत्यक्षादि प्रमाणों को जाननेवाला दण्डनीति में कुशल हो सकता है। जो प्रमाणों को नहीं जानता, उसके द्वारा प्रयुक्त दण्ड राजा का विनाश कर सकता है।

देशकालप्रतीक्षी यो दस्यून् मर्षयते नृपः।
शास्त्रजां बुद्धिमास्थाय युज्यते नैनसा हि सः॥ २६॥
आदाय बलिषड्भागं यो राष्ट्रं नाभिरक्षति।
प्रतिगृह्णाति तत् पापं चतुर्थांशेन भूमिपः॥ २७॥
निबोध च यथाऽऽतिष्ठन् धर्मान्न च्यवते नृपः।
निग्रहाद् धर्मशास्त्राणामनुरुद्ध्यन्नपेतभीः॥ २८॥
कामक्रोधावनादृत्य पितेव समदर्शनः।
शास्त्रजां बुद्धिमास्थाय युज्यते नैनसा हि सः॥ २९॥

देश काल की प्रतीक्षा करनेवाला जो राजा शास्त्रीय बुद्धि का आश्रय लेकर लुटेरों के अपराध को सहन करता है, अर्थात् उन्हें दण्ड देने में जल्दी नहीं करता, समय की प्रतीक्षा करता है, वह पाप से लिप्त नहीं होता। जो प्रजा से छठा भाग लेकर भी राष्ट्र की रक्षा नहीं करता, वह राजा मानो प्रजा

के पाप के चौथाई भाग को ग्रहण कर लेता है। तुम मेरी उस बात को समझो, जिसके अनुसार आचरण करने से राजा धर्म से विचलित नहीं होता। धर्मशास्त्रों की आज्ञा का उल्लंघन करने से राजा का पतन हो जाता है और धर्म शास्त्र का अनुसरण करने से वह निर्भय हो जाता है। जो काम और क्रोध की अवहेलना करके पिता के समान दृष्टि रखता है और शास्त्रीय बुद्धि का आश्रय लेता है, वह कभी पाप से लिप्त नहीं होता।

दैवेनाभ्याहतो राजा कर्मकाले महाद्युते।
न साधयति यत् कर्म न तत्राहुरतिक्रमम्॥ ३०॥
तरसा बुद्धिपूर्वं वा निग्राह्या एव शत्रवः।
पापैः सह न संदध्याद् राज्यं पण्यं न कारयेत्॥ ३१॥
शूराश्चार्याश्च सत्कार्या विद्वांसश्च युधिष्ठिर।
गोमिनो धनिनश्चैव परिपाल्या विशेषतः॥ ३२॥

हे महातेजस्वी! कभी परमात्मा की इच्छा विपरीत होने पर कार्य करते हुए यदि राजा का कार्य सिद्ध नहीं हो पाता है, तो उसमें उसका कोई दोष या अपराध नहीं बताया जाता। राजा को अपने बल और बुद्धि से शत्रुओं को वश में करना ही चाहिये और अपने राज्य को बाजार का सौदा नहीं बनाना चाहिये। हे युधिष्ठिर! शूरवीरों, सज्जनों और विद्वानों का सत्कार अवश्य करना चाहिये। गायों को रखने वालों और धनवानों की विशेष रूप से रक्षा करनी चाहिये।

व्यवहारेषु धर्मेषु योक्तव्याश्च बहुश्रुताः।
प्रमाणज्ञा महीपाल न्यायशास्त्रावलम्बिनः॥ ३३॥
वेदार्थतत्त्वविद् राजंस्तर्कशास्त्रबहुश्रुताः।
मन्त्रे च व्यवहारे च नियोक्तव्या विजानता॥ ३४॥
तर्कशास्त्रकृता बुद्धिर्धर्मशास्त्रकृता च या।
दण्डनीतिकृता चैव त्रैलोक्यमपि साधयेत्॥ ३५॥

बहुत विद्वानों को ही धर्म तथा शासन कार्यों में लगाना चाहिये। हे राजन्! जो प्रमाणों को जानने वाले, न्याय शास्त्र का आश्रय लेने वाले, वेदार्थ के रहस्य को समझनेवाले और तर्कशास्त्र के बहुश्रुत विद्वान् हों, उन्हीं को बुद्धिमान् व्यक्ति के द्वारा मन्त्रणा और शासनकार्यों में लगाया जाना चाहिये। तर्क शास्त्र, धर्म शास्त्र और दण्ड नीति से प्रभावित बुद्धि तीनों लोकों की भी सिद्धि कर सकती है।

नियोज्या वेदतत्त्वज्ञा यज्ञकर्मसु पार्थिव।
वेदज्ञा ये च शास्त्रज्ञास्ते च राजन् सुबुद्धयः॥ ३६॥
आन्वीक्षिकीत्रयीवार्तादण्डनीतिषु पारगाः।
ते तु सर्वत्र योक्तव्यास्ते च बुद्धेः परं गताः॥ ३७॥
गुणयुक्तेऽपि नैकस्मिन् विश्वसेत विचक्षणः।
अरक्षिता दुर्विनीतो मानी स्तब्धोऽभ्यसूयकः॥ ३८॥
एनसा युज्यते राजा दुर्दान्त इति चोच्यते।

हे राजन, हे भूपाल! उन्हीं लोगों को यज्ञकार्य में नियुक्त करना चाहिये, जो वेद के तत्व को जानने वाले, वेदज्ञ, शास्त्रज्ञ और उत्तम बुद्धि से युक्त हों। जो वेदान्त, वेद, वार्ता और दण्डनीति के पारंगत विद्वान् हों, उन्हें सभी कार्यों में नियुक्त करना चाहिये, क्योंकि वे परम बुद्धिमान् होते हैं। किन्तु एक व्यक्ति पर चाहे वह कितना भी गुणवान् हो, विद्वान् व्यक्ति को, कभी पूरीतरह से विश्वास नहीं करना चाहिये। जो राजा प्रजा की रक्षा नहीं करता, जो उद्दण्ड, अभिमानी, जड़बुद्धि और दूसरों के दोष देखने वाला होता है, वह पापी है। उसे लोग दुर्दान्त कहते हैं।

येऽरक्ष्यमाणा हीयन्ते दैवेनाभ्याहता नृप॥ ३९॥
तस्करैश्चापि हीयन्ते सर्वं तद् राजकिल्बिषम्।
सुमन्त्रिते सुनीते च सर्वतश्चोपपादिते॥ ४०॥
पौरुषे कर्मणि कृते नास्त्यधर्मो युधिष्ठिर।
विच्छिद्यन्ते समारब्धाः सिद्ध्यन्ते चापि दैवतः।
कृते पुरुषकारे तु नैनः स्पृशति पार्थिवम्॥ ४१॥

हे राजन्! जिनकी राजा के द्वारा रक्षा नहीं की जाती, तथा जो अनावृष्टि आदि दैवी आपदाओं और चोरों के उपद्रव आदि से नष्ट हो जाते हैं, उनके विनाश का सारा पाप राजा को लगता है। हे युधिष्ठिर! यदि अच्छी तरह से मन्त्रणा की गयी हो, सुन्दर नीति से कार्य किया गया हो और सब तरफ से पुरुषार्थ पूर्वक प्रयत्न किये गये हों, तब भी यदि प्रजा को कोई कष्ट हो जाये तो राजा को पाप नहीं लगता। अनेक बार आरम्भ किये हुए कार्य परमात्मा के प्रतिकूल होने से नष्ट हो जाते हैं और उसके अनुकूल होने पर सिद्ध भी हो जाते हैं। पर अपनी तरफ से उपयुक्त पुरुषार्थ कर लेने पर राजा को पाप का स्पर्श नहीं होता है।

पन्द्रहवाँ अध्याय : सेनजित् के उपदेश द्वारा व्यास जी का समझाना।

द्वैपायनवचः श्रुत्वा कुपिते च धनंजये।
व्यासमामन्त्र्य कौन्तेयः प्रत्युवाच युधिष्ठिरः॥ १॥
न पार्थिवमिदं राज्यं न भोगाश्च पृथग्विधाः।
प्रीणयन्ति मनो मेऽद्य शोको मां रुन्धयत्ययम्॥ २॥
श्रुत्वा वीरविहीनानामपुत्राणां च योषिताम्।
परिदेवयमानानां शान्ति नोपलभे मुने॥ ३॥
इत्युक्तः प्रत्युवाचेदं व्यासो योगविदां वरः।
युधिष्ठिरं महाप्राज्ञो धर्मज्ञो वेदपारगः॥ ४॥

तब व्यास जी की बात सुनकर और अर्जुन के कुपित होजाने पर युधिष्ठिर ने व्यास जी को आमन्त्रित करके उत्तर दिया कि हे मुने! ये तरह-तरह के भोग और पृथिवी का राज्य आज मेरे मन को प्रसन्न नहीं कर रहे हैं। शोक ने मुझे चारोंतरफ से घेरा हुआ है। अपने पतियों और पुत्रों से बिछुड़ी हुई स्त्रियों का विलाप सुनकर मुझे शान्ति नहीं मिल रही है। ऐसा कहे जाने पर योगवेत्ताओं में श्रेष्ठ, महाप्राज्ञ, धर्मज्ञ और वेद के विद्वान् व्यास जी ने युधिष्ठिर को उत्तर दिया कि--

न कर्मणा लभ्यते चिन्तया वा
नाप्यस्ति दाता पुरुषस्य कश्चित्।
पर्याययोगाद् विहितं विधात्रा
कालेन सर्वं लभते मनुष्यः॥ ५॥
न बुद्धिशास्त्राध्ययनेन शक्यं
प्राप्तुं विशेषं मनुजैरकाले।
मूर्खोऽपि चाप्नोतिकदाचिदर्थान्
कालो हि कार्यं प्रति निर्विशेषः॥ ६॥
नाभूतिकालेषु फलं ददन्ति
शिल्पानि मन्त्राश्च तथौषधानि।
तान्येव कालेन समाहितानि
सिद्ध्यन्ति वर्धन्ति च भूतिकाले॥ ७॥

नष्ट हुई वस्तु न तो किसी काम को करने से और नाहीं चिन्ता करने से मिल सकती है। कोई भी देनेवाला व्यक्ति ऐसा नहीं है, जो नष्ट पदार्थ को लाकर दे दे। परमात्मा के विधान के अनुसार मनुष्य समय आने पर बारी-बारी से सारे पदार्थों को प्राप्त करता है। अपनी बुद्धि के प्रयोग और शास्त्रों के अध्ययन से भी मनुष्य बिना समय के किसी विशेष पदार्थ को नहीं पा सकता। समय आने पर मूर्ख व्यक्ति भी अभीष्ट पदार्थों को पा लेता है। इसलिये समय ही कार्य की सिद्धि में कारण होता है। अवनति के समय मन्त्रणाएँ, शिल्प कलाएँ और ओषध भी फल नहीं देते पर जब वे ही उन्नति के समय प्रयोग किये जाते हैं, तब समय की प्रेरणा से सफल और वृद्धि में सहायक बन जाते हैं।

कालेन शीघ्राः प्रवहन्ति वाताः
कालेन वृष्टिर्जलदानुपैति।
कालेन पद्मोत्पलवज्जलं च
कालेन पुष्यन्ति वनेषु वृक्षाः॥ ८॥
कालेन कृष्णाश्च सिताश्च रात्र्यः
कालेन चन्द्रः परिपूर्णबिम्बः।
नाकालतः पुष्पफलं द्रुमाणां
नाकालवेगाः सरितो वहन्ति॥ ९॥

समय से वायु शीघ्रता से बहती है और बादल जल बरसाते हैं। समय पर जल में कमल और उत्पल पैदा और वन में वृक्ष पुष्ट होते हैं। समय पर ही रातें उजली, अँधेरी होतीं और चन्द्रमा का मण्डल पूरा होता है। बिना समय के न तो पेड़ों पर फूल खिलते और न नदियाँ वेग से बहती हैं।

नाकालमत्ताः खगपन्नगाश्च
मृगद्विपा शैलमृगाश्च लोके।
नाकालतः स्त्रीषु भवन्ति गर्भा
नायान्त्यकाले शिशिरोष्णवर्षाः॥ १०॥
नाकालतो म्रियते जायते वा
नाकालतो व्याहरते च बालः।
नाकालतो यौवनमभ्युपैति
नाकालतो रोहति बीजमुप्तम्॥ ११॥
नाकालतो भानुरुपैत्ति योगं
नाकालतोऽस्तङ्गि- रिमभ्युपैति।
नाकालतो वर्धते हीयते च
चन्द्रः समुद्रोऽपि महोर्मिमाली॥ १२॥

संसार में बिना समय के पक्षी, सर्प, मृग, हाथी और मृग भी मतवाले नहीं होते। बालक बिना समय के न तो जन्म लेता, न मरता और न बोलता है।

बिना समय के जवानी नहीं आती। बोया हुआ बीज भी बिना समय के नहीं उगता। सूर्य भी बिना समय के न तो उदय होता और न अस्ताचल को जाता है। चन्द्रमा भी बिना समय घटता बढ़ता नहीं है। समुद्र में भी ऊँची तरंगे समय पर ही उठती हैं।

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्।
गीतं राज्ञा सेनजिता दुःखार्तेन युधिष्ठिर॥ १३॥
सर्वानेवैष पर्यायो मर्त्यान् स्पृशति दुःसहः।
कालेन परिपक्वा हि म्रियन्ते सर्वपार्थिवाः॥ १४॥
घ्नन्ति चान्यान् नरा राजंस्तानप्यन्ये तथा नराः।
संज्ञैषा लौकिकी राजन् न हिनस्ति न हन्यते॥ १५॥

हे युधिष्ठिर! यहाँ भी लोग एक प्राचीन इतिहास का उदाहरण दिया करते हैं। राजा सेनजित् ने शोक से व्याकुल होकर जो उद्‌गार प्रकट किये थे, उन्हें मैं सुना रहा हूँ। उसने कहा था कि यह दुःसह कालचक्र सभी पर अपना प्रभाव डालता है। सारे राजालोग एकदिन काल से पककर मृत्यु के आधीन होजाते हैं। हे राजन्! लोग दूसरे लोगों को मारते हैं पर उन्हें भी दूसरेलोग मार देते हैं। हे राजन्! यह मरना, मारना सांसारिक नाम है। वास्तव में न तो कोई किसी को मारता है और न मारा जाता है।

नष्टे धने वा दारे वा पुत्रे पितरि वा मृते।
अहो दुःखमितिध्यायन् दुःखस्यापचितिं चरेत्॥ १६॥
स किं शोचसि मूढः सञ्शोच्यान् किमनुशोचसि।
पश्य दुःखेषु दुःखानि भयेषु च भयान्यपि॥ १७॥
आत्मापि चायं न मम सर्वापि पृथिवी मम।
यथा मम तथान्येषामिति पश्यन् न मुह्यति॥ १८॥
शोकस्थानसहस्राणि हर्षस्थानशतानि च।
दिवसे दिवसे मूढमाविशन्ति न पण्डितम्॥ १९॥

धन के नष्ट हो जाने पर, पत्नी, पुत्र या पिता की मृत्यु हो जाने पर लोग हाय मुझ पर बड़ा दुख आ पड़ा, ऐसी चिन्ता करते हुए अपने दुख को निवारण करने की चेष्टा करते हैं। तुम मूर्ख बनकर क्यों शोक कर रहे हो? उन मरे हुए शोचनीय व्यक्तियों को बारबार याद ही क्यों करते हो? देखो, शोक करने से दुख में दुख और भय में भय की वृद्धि होगी। यह शरीर भी मेरा नहीं है, यह सारी पृथिवी भी मेरी नहीं है। जैसे यह मेरी है, वैसे ही यह दूसरों की भी है, जो ऐसी दृष्टि रखता है, वह कभी मोहित नहीं होता। शोक के सहस्रों कारण हैं, उसी प्रकार हर्ष के भी सैकड़ों कारण हैं, पर वे सब प्रतिदिन मूर्ख मनुष्य पर ही अपना प्रभाव डालते हैं, विद्वान् पुरुष पर नहीं।

एवमेतानि कालेन प्रियद्वेष्याणि भागशः।
जीवेषु परिवर्तन्ते दुःखानि च सुखानि च॥ २०॥
सुखस्यानन्तरं दुःखं दुःखस्यानन्तरं सुखम्।
न नित्यं लभते दुःखं न नित्यं लभते सुखम्॥ २१॥
तस्मादेतद् द्वयं जह्याद्य इच्छेच्छाश्वतं सुखम्।
सुखान्तप्रभवं दुःखं दुःखान्तप्रभवं सुखम्॥ २२॥
यन्निमित्तो भवेच्छोकस्तापो वा भृशदारुणः।
आयासो वापि यन्मूलस्तदेकाङ्गमपि त्यजेत्॥ २३॥

इस प्रकार ये प्रिय और अप्रिय भाव सुख और दुःख के रूप मे परिवर्तित होकर अलग अलग प्राणियों पर अपना प्रभाव डालते रहते हैं। सुख के पश्चात् दुःख आता है और दुःख के पश्चात् सुख। न तो कोई सदा दुःख ही पाता रहता है और नाहीं किसी को सदा सुख ही मिलता रहता है। इसलिये जो सदा सुख ही चाहता है, उसे दुःख और सुख दोनों का त्याग कर देना चाहिये। क्योंकि सुख के अन्त में दुःख अवश्य होगा, तथा दुःख के पश्चात् सुख अवश्य आयेगा। जिस के कारण शोक या अत्यन्तदारुण सन्ताप हो अथवा जो आयास का भी मूल कारण हो, वह चाहे अपने शरीर का एक अंग भी हो, उसका त्याग कर देना चाहिये।

सुखं वा यदि वा दुःखं प्रियं वा यदि वाप्रियम्।
प्राप्तं प्राप्तमुपासीत हृदयेनापराजितः॥ २४॥
ये च मूढतमा लोके ये च बुद्धेः परं गताः।
त एव सुखमेधन्ते मध्यमः क्लिश्यते जनः॥ २५॥
इत्यब्रवीन्महाप्राज्ञो युधिष्ठिर स सेनजित्।
परावरज्ञो लोकस्य धर्मवित् सुखदुःखवित्॥ २६॥

अपने को सुख, दुःख, प्रिय, अप्रिय जो भी प्राप्त हो उसे स्वीकार करना चाहिये। हृदय में उसके सामने पराजित न हो अर्थात् हिम्मत न हारे। संसार में जो अत्यन्तमूर्ख हैं, या जो बुद्धि से परे पहुँचे हुए हैं अर्थात् अत्यन्त विद्वान् हैं, वे ही सुखी होते हैं, बीच वाले लोग कष्ट उठाते हैं। हे युधिष्ठिर! महाप्राज्ञ, संसार के भूत, भविष्य तथा सुख, दुख को जानने वाले सेनजित ने ऐसा ही कहा था।

सुखं च दुःखं च भवाभवौ च
लाभालाभौ मरणं जीवितं च।
पर्यायतः सर्वमवाप्नुवन्ति
तस्माद् धीरो नैव हृष्येन्न शोचेत्॥ २७॥

सुख, दुख, उत्पत्ति, विनाश, लाभ, हानि और जीवन, मरण, ये बारी-बारी से सब को प्राप्त होते हैं। इसलिये धीरमनुष्य को इनके लिये हर्ष या शोक नहीं करना चाहिये।

दीक्षां राज्ञः संयुगे युद्धमाहु-
र्योगं राज्ये दण्डनीत्यां च सम्यक्।
वित्तत्यागो दक्षिणानां च यज्ञे
सम्यग् दानं पावनीनीति विद्यात्॥ २८॥
रक्षन् राज्यं बुद्धिपूर्वं नयेन
संत्यक्तात्मा यज्ञशीलो महात्मा।
सर्वांल्लोकान् धर्मदृष्ट्या चरंश्चा-
प्यूर्ध्वं देहान्मोदते देवलोके॥ २९॥

राजा के लिये युद्धक्षेत्र में युद्ध करना ही यज्ञ की दीक्षा है। राज्य में उचित प्रकार दण्डनीति का प्रयोग ही योग साधन है, यज्ञ में दक्षिणा के रूप में धन का त्याग और उचित रीति से दान करना ही उसके लिये त्याग है। ये तीनों कार्य राजा को पवित्र करने वाले जानने चाहियें। जो राजा अहंकार छोड़कर, बुद्धि और नीति के साथ राज्य की रक्षा करता है, स्वभाव से ही यज्ञों से प्रेम करता है, धर्म रक्षा के उद्देश्य से सारे लोकों में विचरण करता रहता है, वह महात्मा नरेश देहत्याग के पश्चात् परलोक में आनन्द को प्राप्त करता है।

जित्वा संग्रामान् पालयित्वा च राष्ट्रं
सोमं पीत्वा वर्धयित्वा प्रजाश्च।
युक्त्या दण्डं धारयित्वा प्रजानां
युद्धे क्षीणो मोदते देवलोके॥ ३०॥
सम्यग् वेदान् प्राप्य शास्त्राण्य धीत्य
सम्यग् राज्यं पालयित्वा च राजा।
चातुर्वर्ण्यं स्थापयित्वा स्वधर्मे
पूतात्मा वै मोदते देवलोके॥ ३१॥
यस्य वृत्तं नमस्यन्ति स्वर्गस्थस्यापि मानवाः।
पौरजानपदामात्याः स राजा राजसत्तमः॥ ३२॥

युद्धों को जीतकर, देश का पालन करके, यज्ञों में सोम रस का पानकर, प्रजा की उन्नति करके, उसके लिये दण्ड को युक्ति पूर्वक धारण करके, जो राजा युद्ध में मृत्यु को प्राप्त होता है, वह परलोक में आनन्द को प्राप्त करता है। वेदों का सम्यक् रीति से ज्ञान प्राप्त करके, शास्त्रों का अध्ययन करके, प्रजा का ठीक-ठीक पालन करके, चारों वर्णों की अपने अपने धर्म में स्थापना करके, जिसने अपने मन को पवित्र कर लिया है, वह राजा परलोक में सुखी होता है। नगर और जनपद के मनुष्य और मन्त्री, जिसके मर जाने पर भी उसे सिर झुकाते हैं, वह राजा सारे राजाओं में श्रेष्ठ है।

सोलहवाँ अध्याय : व्यास जी युधिष्ठिर को पुनः समझाना।

युधिष्ठिर उवाच

अभिमन्यौ हते बाले द्रौपद्यास्तनयेषु च।
धृष्टद्युम्ने विराटे च द्रुपदे च महीपतौ॥ १॥
वृषसेने च धर्मज्ञे धृष्टकेतौ तु पार्थिवे।
तथान्येषु नरेन्द्रेषु नानादेश्येषु संयुगे॥ २॥
न च मुञ्चति मां शोको ज्ञातिघातिनमातुरम्।
राज्यकामुकमत्युग्रं स्ववंशोच्छेदकारिणम्॥ ३॥

तब युधिष्ठिर ने कहा कि हे मुनिश्रेष्ठ। युद्ध में बालक अभिमन्यु, द्रौपदी के पाँचों पुत्र, धृष्टद्युम्न, राजा विराट, राजा द्रुपद, धर्मज्ञ वृषसेन, राजा धृष्टकेतु और नाना देशों के दूसरे राजा मारे गये हैं। मैं जातिभाइयों का घातक, राज्य का लोभी, अत्यन्तक्रूर और अपने वंश का विनाशक हूँ। यही सोचकर, अत्यन्त बेचैन मुझको शोक छोड़ नहीं रहा है।

यस्याङ्के क्रीडमानेन मया वै परिवर्तितम्।
स मया राज्यलुब्धेन गाङ्गेयो युधि पातितः॥ ४॥
यदा ह्येनं विघूर्णन्तमपश्यं पार्थसायकैः।
कम्पमानं यथा वज्रैः प्रेक्ष्यमाणं शिखण्डिना॥ ५॥
जीर्णसिंहमिव प्रांशुं नरसिंहं पितामहम्।
कीर्यमाणं शरैर्दृष्ट्वा भृशं मे व्यथितं मनः॥ ६॥

जिनकी गोद में खेलता हुआ मैं लोट-पोट हो जाया करता था, उन्हीं गंगापुत्र भीष्म को मुझ राज्य लोभी ने युद्ध में करवा दिया। जब मैंने देखा कि बूढ़े सिंह जैसे उन्नत शरीरवाले, पुरुष सिंह मेरे पितामह अर्जुन के वज्र के समान बाणों से कम्पित होरहे हैं, शिखण्डी उनको देख रहा है, उनका शरीर बाणों से भर गया है, तब मेरे मन में बड़ी व्यथा हुई।

यः स बाणधनुष्पाणिर्योधयामास भार्गवम्।
बहून्यहानि कौरव्यः कुरुक्षेत्रे महामृधे॥ ७॥
समेतं पार्थिवं क्षत्रं वाराणस्यां पितामहः।
कन्यार्थमाह्वयद् वीरो रथेनैकेन संयुगे॥ ८॥
येन चोग्रायुधो राजा चक्रवर्ती दुरासदः।
दग्धश्चास्त्रप्रतापेन स मया युधि घातितः॥ ९॥
स्वयं मृत्युं रक्षमाणः पाञ्चाल्यं यः शिखण्डिनम्।
न बाणैः पातयामास सोऽर्जुनेन निपातितः॥ १०॥

जिस कुरुकुल शिरोमणि ने धनुषबाण हाथ में लेकर, कुरुक्षेत्र में महायुद्ध ठानकर परशुराम जी के साथ बहुत दिनों तक युद्ध किया था, जिस वीर पितामह ने काशी में कन्याओं के लिये एकत्र हुए क्षत्रिय राजाओं को अकेले एक रथ के द्वारा ही युद्ध के लिये ललकारा था, जिन्होंने चक्रवर्ती दुर्जय राजा उग्रायुध को अपने अस्त्रों के प्रताप से दग्ध कर दिया था, उन्हीं को मैंने युद्ध में मरवा दिया। अपनी मृत्यु बनकर आये हुए पांचालकुमार शिखण्डी की जिन्होंने स्वयं रक्षा की, उसे बाणों से धराशायी नहीं किया, उन्हीं पितामह को अर्जुन ने मार गिराया।

यदैनं पतितं भूमावपश्यं रुधिरोक्षितम्।
तदैवाविशदत्युग्रो ज्वरो मां मुनिसत्तम॥ ११॥
येन संवर्धिता बाला येन स्म परिरक्षिताः।
स मया राज्यलुब्धेन पापेन गुरुघातिना॥ १२॥
अल्पकालस्य राज्यस्य कृते मूढेन घातितः।

जब मैंने खून से लथपथ पितामह को भूमिपर पड़ा हुआ देखा, हे मुनिश्रेष्ठ! तभी मुझमें अत्यन्त भयंकर शोकज्वर का आवेश होगया। जिन्होंने हमें पालपोसकर बड़ा किया, सबप्रकार से हमारी रक्षा की, उन्हीं को थोड़े समय के राज्य के लिये मुझ राज्य लोभी, पापी, गुरुघाती और मूर्ख ने मरवा दिया।

आचार्यश्च महेष्वासः सर्वपार्थिवपूजितः॥ १३॥
अभिगम्य रणे मिथ्या पापेनोक्तः सुतं प्रति।
तन्मे दहति गात्राणि यन्मां गुरुरभाषत॥ १४॥
सत्यमाख्याहि राजंस्त्वं यदि जीवति मे सुतः।
सत्यमामर्षयन् विप्रो मयि तत् परिपृष्टवान्॥ १५॥
कुञ्जरं चान्तरं कृत्वा मिथ्योपचरितं मया।
सुभृशं राज्यलुब्धेन पापेन गुरुघातिना॥ १६॥
सत्यकञ्चुकमुन्मुच्य मया स गुरुराहवे।
अश्वत्थामा हत इति निरुक्तः कुञ्जरे हते॥ १७॥

महाधनुर्धर सारे राजाओं के पूज्य द्रोणाचार्य के पास जाकर मुझ पापी ने उनके पुत्र के विषय में झूठ बोला। गुरु ने मुझ से पूछा था कि हे राजन्! सत्य बताओ। क्या मेरा पुत्र जीवित है? उन ब्राह्मण ने मुझसे यह बात सत्य का निर्णय करने के लिये ही पूछी थी। उनकी वह बात अब मेरे शरीर को जला रही है। राज्य के अत्यन्त लोभ में, हाथी को बीच में रख कर, मुझ पापी गुरुहत्यारे ने उनसे झूठ बोल दिया। अश्वत्थामा नाम के हाथी के मारे जाने पर भी, मैंने युद्धक्षेत्र में सत्य का चोला उतारकर गुरु से कह दिया कि अश्वत्थामा मारा गया।

अभिमन्युं च यद् बालं जातं सिंहमिवाद्रिषु।
प्रावेशयमहं लुब्धो वाहिनीं द्रोणपालिताम्॥ १८॥
तदाप्रभृति बीभत्सुं न शक्नोमि निरीक्षितुम्।
कृष्णं च पुण्डरीकाक्षं किल्बिषी भ्रूणहा यथा॥ १९॥
द्रौपदीं चापि दुःखार्तां पञ्चपुत्रैर्विनाकृताम्।
शोचामि पृथिवीं हीनां पञ्चभिः पर्वतैरिव॥ २०॥

मुझ राज्य के लोभी ने पर्वतों पर उत्पन्न हुए सिंह के समान बालक अभिमन्यु को द्रोणाचार्य के द्वारा सुरक्षित सेना में झौंक दिया। भ्रूणहत्या कराने वाले पापी के समान मैं तभी से अर्जुन और कमल नयन श्रीकृष्ण की तरफ आँख उठाकर नहीं देख पाता। जैसे पृथिवी पाँच पर्वतों से हीन हो जाये, वैसे ही अपने पाँच पुत्रों से हीन हुई, दुख से व्याकुल द्रौपदी के लिये भी मुझे लगातार शोक रहता है।

सोऽहमागस्करः पापः पृथिवीनाशकारकः।
आसीन एवमेवेदं शोषयिष्ये कलेवरम्॥ २१॥
प्रायोपविष्टं जानीध्वमथ मां गुरुघातिनम्।
जातिष्वन्यास्वपि यथा न भवेयं कुलान्तकृत्॥ २२॥
न भोक्ष्ये न च पानीयमुपभोक्ष्ये कथञ्चन।
शोषयिष्ये प्रियान् प्राणानिहस्थोऽहं तपोधनाः॥ २३॥

यथेष्टं गम्यतां काममनुजाने प्रसाद्य वः।
सर्वे मामनुजानीत त्यक्ष्यामीदं कलेवरम्॥ २४॥

इसलिये पृथिवी का विनाश करनेवाला मैं पापी अब ऐसे ही बैठा हुआ अपने शरीर को सुखा दूँगा। आपलोग मुझ गुरुघाती को आमरण उपवास पर बैठा हुआ समझें, जिससे मैं दूसरे जन्म में भी अपने कुल का विनाश करनेवाला न बनूँ। हे तपोधनो! अब मैं कुछ भी नहीं खाऊँगा, पानी भी नहीं पीऊँगा तथा यहीं बैठा हुआ अपने प्यारे प्राणों को सुखा दूँगा। मैं आपलोगों को प्रसन्न करके, अपनी इच्छा अनुसार जाने की अनुमति देता हूँ। आप सब मुझे आज्ञा दें, जिससे मैं अपने इस शरीर को छोड़ दूँ।

तमेवंवादिनं पार्थं बन्धुशोकेन विह्वलम्।
मैवमित्यब्रवीद् व्यासो निगृह्य मुनिसत्तमः॥ २५॥
अतिवेलं महाराज न शोकं कर्तुमर्हसि।
संयोगा विप्रयोगान्ता जातानां प्राणिनां ध्रुवम्॥ २६॥
बुद्बुदा इव तोयेषु भवन्ति न भवन्ति च।
सर्वे क्षयान्ता निचयाः पतनान्ताः समुच्छ्रयाः॥ २७॥
संयोगा विप्रयोगान्ता मरणान्तं हि जीवितम्।

बन्धुबान्धवों के शोक से बेचैन, कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर के ऐसा कहने पर मुनिश्रेष्ठ व्यास जी ने उन्हें रोककर कहा कि ऐसा मत करो। हे महाराज! अत्यधिक शोक मत करो। जैसे पानी में बुलबुले उठते और मिट जाते हैं, वैसे जन्मे हुए प्राणियों के मिलन निश्चय ही वियोगान्त हैं। सारे संग्रहों का अन्त विनाश है, सारी उन्नतियों का अन्त पतन है, संयोगों का अन्त वियोग है और जीवन का अन्त मरण है।

सुखं दुःखान्तमालस्यं दाक्ष्यं दुःखं सुखोदयम्॥ २८॥
नालं सुखाय सुहृदो नालं दुःखाय शत्रवः।
न च प्रज्ञालमर्थेभ्यो न सुखेभ्योऽप्यलं धनम्॥ २९॥
यथा सृष्टोऽसि कौन्तेय धात्रा कर्मसु तत् कुरु।
अत एव हि सिद्धिस्ते नेशस्त्वं कर्मणां नृप॥ ३०॥

सुखरूप प्रतीत होनेवाले आलस्य का परिणाम दुख में होता है और दुखरूप प्रतीत होनेवाली कार्यकुशलता का अन्त सुख में होता है। न तो मित्र सुख दे सकते हैं और न शत्रु दुख देने में समर्थ हैं। न तो प्रजा धन दे सकती है और न ही धन सुख दे सकता है अर्थात् सुख और दुख सब परमात्मा की इच्छा से कर्मों के फल के अनुसार मिलते हैं। सांसारिक पदार्थ तो केवल सुख और दुख के निमित्त ही होते हैं। हे कुन्तीपुत्र! परमात्मा ने तुम्हें जैसे कर्मों को करने के लिये रचा है, तुम वैसे ही कर्म करो, उसी से तुम्हें सिद्धि मिलेगी। हे राजन्! तुम कर्म फलों के स्वामी या नियन्ता नहीं हो।

सत्रहवाँ अध्याय : अश्मा ऋषि और जनक के संवाद द्वारा व्यास जी का युधिष्ठिर को समझाना।

ज्ञातिशोकाभितप्तस्य प्राणानभ्युत्सिसृक्षतः।
ज्येष्ठस्य पाण्डुपुत्रस्य व्यासः शोकमपानुदत्॥ १॥
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्।
अश्मगीतं नरव्याघ्र तन्निबोध युधिष्ठिर॥ २॥
अश्मानं ब्राह्मणं प्राज्ञं वैदेहो जनको नृपः।
संशयं परिपप्रच्छ दुःखशोकसमन्वितः॥ ३॥
आगमे यदि वापाये ज्ञातीनां द्रविणस्य च।
नरेण प्रतिपत्तव्यं कल्याणं कथमिच्छता॥ ४॥

अपने जातिभाइयों के शोक से सन्तप्त तथा अपने प्राणों को त्याग देने के लिये उद्यत युधिष्ठिर के शोक को फिर व्यास जी ने दूर किया। व्यास जी बोले कि हे युधिष्ठिर! इस विषय में जानकार लोग अश्मा ब्राह्मण के प्राचीन इतिहास का उदाहरण दिया करते हैं। उसे सुनो। एक समय की बात है कि अत्यन्त दुख और शोक में पड़े हुए विदेहराज जनक ने अश्मा नाम के विद्वान् ब्राह्मण से अपने मन का सन्देह इस प्रकार से पूछा कि हे ब्रह्मन्! कुटुम्बीजनों या धन की उत्पत्ति तथा विनाश होजाने पर कल्याण चाहनेवाले व्यक्ति को क्या करना चाहिये?

अश्मोवाच

उत्पन्नमिममात्मानं नरस्यानन्तरं ततः।
तानि तान्यनुवर्तन्ते दुःखानि च सुखानि च॥ ५॥

तेषामन्यतरापत्तौ यद् यदेवोपपद्यते।
तदस्य चेतनामाशु हरत्यभ्रमिवानिलः॥ ६॥
अभिजातोऽस्मि सिद्धोऽस्मि नास्मि केवलमानुषः।
इत्येभिर्हेतुभिस्तस्य त्रिभिश्चित्तं प्रसिच्यते॥ ७॥
मानसानां पुनर्योनिर्दुःखानां चित्तविभ्रमः।
अनिष्टोपनिपातो वा तृतीयं नोपपद्यते॥ ८॥

अश्मा जी ने कहा कि हे राजन्! जब मनुष्य का शरीर जन्म लेता है, तभी सुख और दुख इसके साथ लग जाते हैं। उनमें जबजब जिसका अवसर होता है वे एकएक करके मनुष्य के पास आते रहते हैं। जो सुख या दुख मनुष्य के पास उपस्थित होता है, वह उसकी बुद्धि को वैसे ही हर लेता है जैसे हवा बादलों को उड़ाकर लेजाती है। मैं ऊँचे कुल का हूँ, मैं सिद्ध हूँ, मैं सामान्य मनुष्य नहीं हूँ, अहंकार की ये तीन धाराएँ मनुष्य के चित्त को सींचने लगती हैं। मनुष्य को मानसिक दुख की प्राप्ति के दो कारण हैं, चित्त का भ्रम और अनिष्ट की प्राप्ति। तीसरा कारण कोई नहीं है।

जरामृत्यू हि भूतानां खादितारौ वृकाविव।
बलिनां दुर्बलानां च ह्रस्वानां महतामपि॥ ९॥
न कश्चिज्जात्वतिक्रामेज्जरामृत्यू हि मानवः।
अपि सागरपर्यन्तां विजित्येमां वसुन्धराम्॥ १०॥
सुखं वा यदि वा दुःखं भूतानां पर्युपस्थितम्।
प्राप्तव्यमवशैः सर्वं परिहारो न विद्यते॥ ११॥
पूर्वे वयसि मध्ये वाप्युत्तरे वा नराधिप।
अवर्जनीयास्तेऽर्था वै कांक्षिता ये ततोऽन्यथा॥ १२॥

बुढ़ापा और मृत्यु दो प्राणियों को खानेवाले भेड़ियों के समान हैं। ये चाहे कोई बलवान् हो, या दुर्बल, चाहे छोटा हो या बड़ा, सारे प्राणियों को खा जाते हैं। कोई भी मनुष्य चाहे उसने सागरपर्यन्त भूमि को जीत लिया हो, बुढ़ापे और मृत्यु पर विजय नहीं पा सकता। प्राणियों के पास जो भी सुख या दुख आता है, उसे उनको सहन करना ही पड़ता है। उन्हें टालने का कोई उपाय उसके पास नहीं है। हे राजन्! जीवन की पूर्वावस्था, मध्यमावस्था या उत्तरावस्था में मनुष्य को कभी न कभी क्लेश अवश्य मिलते हैं, जिन्हें सदा वह उनके विपरीत रूप में चाहता आया है।

अप्रियैः सह संयोगो विप्रयोगश्च सुप्रियैः।
अर्थानर्थौ सुखं दुःखं विधानमनुवर्तते॥ १३॥
प्रादुर्भावश्च भूतानां देहत्यागस्तथैव च।
प्राप्तिर्व्यायामयोगश्च सर्वमेतत् प्रतिष्ठितम्॥ १४॥
गन्धवर्णरसस्पर्शा निवर्तन्ते स्वभावतः।
तथैव सुखदुःखानि विधानमनुवर्तते॥ १५॥

अप्रिय पदार्थों से संयोग और प्रिय पदार्थों से वियोग, अर्थ और अनर्थ तथा सुख और दुख की प्राप्ति, ये सब परमात्मा की इच्छा के अनुसार होते हैं। प्राणियों की उत्पत्ति, उनका देहत्याग, लाभ और हानि ये सब परमात्मा की इच्छा पर निर्भर हैं। जैसे शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध स्वभावतः आते और जाते रहते हैं, वैसे ही मनुष्य दुख और सुख को भी परमात्मा की इच्छा अनुसार पाता रहता है।

वैद्याश्चाप्यातुराः सन्ति बलवन्तश्च दुर्बलाः।
श्रीमन्तश्चापरे षण्ढा विचित्रः कालपर्ययः॥ १६॥
कुले जन्म तथा वीर्यमारोग्यं रूपमेव च।
सौभाग्यमुपभोगश्च भवितव्येन लभ्यते॥ १७॥
सन्ति पुत्राः सुबहवो दरिद्राणामनिच्छताम्।
नास्ति पुत्रः समृद्धानां विचित्रं विधिचेष्टितम्॥ १८॥
दृश्यते हि युवैवेह विनश्यन् वसुमान् नरः।
दरिद्रश्च परिक्लिष्टः शतवर्षो जरान्वितः॥ १९॥

कभी-कभी वैद्य भी रोगी, बलवान् भी दुर्बल और श्रीमान् भी असमर्थ होजाते हैं। यह समय का उलटफेर बड़ा विचित्र है। उत्तम कुल में जन्म, बल, पराक्रम, रूप, सौभाग्य और उपभोग सामग्री, ये सब परमात्मा के विधान के अनुसार ही प्राप्त होते हैं। दरिद्रलोग सन्तान की इच्छा नहीं रखते, पर फिर भी उनके बहुतसे पुत्र हो जाते हैं, पर धनवानों में से किसी को एक पुत्र भी नहीं होता। परमात्मा की व्यवस्था बड़ी विचित्र है। इस संसार में धनवान् व्यक्ति जवानी में ही मृत्यु को प्राप्त होता दिखाई देता है, पर दुख में पड़ा हुआ दरिद्र व्यक्ति सौ वर्ष तक जीवित रहकर, बुढ़ापे से युक्त होकर मरता हुआ देखा जाता है।

प्रायेण श्रीमतां लोके भोक्तुं शक्तिर्न विद्यते।
काष्ठान्यपि हि जीर्यन्ते दरिद्राणां च सर्वशः॥ २०॥
वायुमाकाशमग्निं च चन्द्रादित्यावहः क्षपे।
ज्योतींषि सरितः शैलान् कः करोति बिभर्ति च॥ २१॥
शीतमुष्णं तथा वर्षं कालेन परिवर्तते।
एवमेव मनुष्याणां सुखदुःखे नरर्षभ॥ २२॥

नौषधानि न मन्त्राश्च न होमा न पुनर्जपाः।
त्रायन्ते मृत्युनोपेतं जरया चापि मानवम्॥ २३॥

धनवान् व्यक्तियों की अधिक भोजन करने की शक्ति ही प्रायः नहीं रहती, पर गरीबों के पेट में काठ भी पच जाते हैं। संसार में वायु, आकाश, अग्नि, चन्द्रमा, सूर्य, दिन, रात्रि, नक्षत्र, नदियाँ और पर्वतों को सिवाय परमात्मा के कौन बनाता और पालन करता है? हे नरश्रेष्ठ! सर्दी गर्मी और वर्षा का चक्र काल से ही चलता है, उसी प्रकार मनुष्यों को सुख दुख भी समय से ही प्राप्त होता हैं। वृद्धावस्था और मृत्यु के वश में पड़े हुए मनुष्य को औषध, मन्त्रणा, हवन और जप आदि कोई भी साधन नहीं बचा सकता।

यथा काष्ठं च काष्ठं च समेयातां महोदधौ।
समेत्य च व्यपेयातां तद्वद् भूतसमागमः॥ २४॥
मातापितृसहस्राणि पुत्रदारशतानि च।
संसारेष्वनुभूतानि कस्य ते कस्य वा वयम्॥ २५॥
नैवास्य कश्चिद् भविता नायं भवति कस्यचित्।
पथि सङ्गतमेवेदं दारबन्धुसुहृज्जनैः॥ २६॥
क्वासे क्कच गमिष्यामि को न्वहं किमिहास्थितः।
कस्मात् किमनुशोचेयमित्येवं स्थापयेन्मनः॥ २७॥

जैसे महासागर में एक लकड़ी का टुकड़ा एक तरफ बहता हुआ आकर दूसरी तरफ से बहकर आते हुए दूसरे लकड़ी के टुकड़े से थोड़ी देर के लिये मिल जाता है और फिर वे दोनों अलग होकर अज्ञात दिशा की तरफ बह जाते हैं, वैसे ही इस संसार में प्राणियों का मिलन और बिछोह होता रहता है। हमने संसार में अनेक बार जन्म लेकर हजारों माता पिताओं और सैकड़ों पत्नी और पुत्रों के सुख का अनुभव किया है, पर अब वे किसके हैं? या हम उनमें से किसके हैं? इस जीवात्मा का न तो कोई सम्बन्धी भविष्य में होगा और न यह किसी का सम्बन्धी है। जैसे मार्ग में चलनेवाले को थोड़ी देर के लिये दूसरे यात्रियों का साथ मिल जाता है, वैसे ही संसार में पत्नी, बन्धुओं और मित्रों के साथ हमारा मिलन होता है। इसलिये विवेकी व्यक्ति को अपने मन में विचार करना चाहिये कि मैं कहाँ हूँ? कहाँ जाऊँगा? कौन हूँ? यहाँ किसलिये आया हूँ? और किसलिये किसका शोक करूँ?

संनिमज्जेज्जगदिदं गम्भीरे कालसागरे।
जरामृत्युमहाग्राहे न कश्चिदवबुध्यते॥ २८॥
आयुर्वेदमधीयानाः केवलं सपरिग्रहाः।
दृश्यन्ते बहवो वैद्या व्याधिभिः समभिप्लुताः॥ २९॥
ते पिबन्तः कषायांश्च सर्पींषि विविधानि च।
न मृत्युमतिवर्तन्ते वेलामिव महोदधिः॥ ३०॥
रसायनविदश्चैव सुप्रयुक्तरसायनाः।
दृश्यन्ते जरया भग्ना नगा नागैरिवोत्तमैः॥ ३१॥

कालरूपी गहरे सागर में यह सारा संसार डूब रहा है। इसमें बुढ़ापा और मृत्युरूपी दो ग्राह पड़े हुए हैं, पर कोई इस बात को नहीं समझ रहा है। केवल आयुर्वेद का अध्ययन करनेवाले बहुतसे वैद्य भी परिवारसहित रोगी देखे जाते हैं। वे कड़वे कड़वे काढ़े और तरह-तरह के घृत पीते रहते हैं पर जैसे समुद्र अपनी तट-रेखा से आगे नहीं बढ़ता, वैसे ही वे भी मृत्यु का उल्लंघन नहीं कर पाते। रसायनों को जाननेवाले वैद्य भी, अपने लिये तरह तरह की रसायनों का अच्छीतरह से प्रयोग करके भी, वृद्धावस्था से वैसे ही जर्जर दिखाई देते हैं, जैसे उत्तम हाथियों के आघात से टूटे हुए वृक्ष हों।

तथैव तपसोपेताः स्वाध्यायाभ्यसने रताः।
दातारो यज्ञशीलाश्च न तरन्ति जरान्तकौ॥ ३२॥
न ह्यहानि निवर्तन्ते न मासा न पुनः समाः।
जातानां सर्वभूतानां न पक्षा न पुनः क्षपाः॥ ३३॥
सोऽयं विपुलमध्वानं कालेन ध्रुवमध्रुवः।
नरोऽवशः समभ्येति सर्वभूतनिषेवितम्॥ ३४॥
नायमत्यन्तसंवासो लभ्यते जातु केनचित्।
अपि स्वेन शरीरेण किमुतान्येन केनचित्॥ ३५॥

उसीप्रकार तपस्यायुक्त, स्वाध्याय और अभ्यास में लगे हुए, दानी, और यज्ञशील व्यक्ति भी बुढ़ापे और मृत्यु को मार नहीं पाते हैं। संसार में जन्म लेने वाले प्राणियों के लिये दिन, रात, पक्ष, मास और वर्ष एक बार ही आते हैं। एक बार आकर वे ही दिन रात आदि वापिस नहीं लौटते। सभी प्राणियोंद्वारा सेवित, मृत्यु के इस विशाल मार्ग पर अनित्य मानव को भी काल से विवश होकर निश्चित रूप से आना पड़ता है। किसी भी व्यक्ति को किसी भी व्यक्ति के साथ एक ही स्थान पर सर्वदा रहने का अवसर नहीं मिलता। जब अपने

शरीर के साथ भी बहुत दिनों तक सम्बन्ध नहीं रहता, तब दूसरों के साथ कैसे रह सकता है?

क्व नु तेऽद्य पिता राजन् क्व नु तेऽद्य पितामहाः।
न त्वं पश्यसि तानद्य न त्वां पश्यन्ति तेऽनघ॥ ३६॥

हे राजन्! आज तुम्हारे पिता और पितामह कहाँ हैं? हे निष्पाप! न तो तुम उन्हें और न वे तुम्हें देख रहे हैं।

स यज्ञशीलः प्रजने निविष्टः
प्राग् ब्रह्मचारी प्रविविक्तचक्षुः।
आराधयेत् स्वर्गमिमं च लोकं
परं च मुक्त्वा हृदयव्यलीकम्॥ ३७॥
समं हि धर्मं चरतो नृपस्य
द्रव्याणि चाभ्याहरतो यथावत्।
प्रवृत्तधर्मस्य यशोऽभिवर्धते
सर्वेषु लोकेषु चराचरेषु॥ ३८॥

मनुष्य को चाहिये कि वह पहले ब्रह्मचर्य का पालन करे, फिर सन्तानोत्पत्ति के लिये विवाह करे। अपने स्वभाव को यज्ञ के अनुरूप बनाये, नेत्र आदि इन्द्रियों को पवित्र रखे, हृदय के अत्यधिक शोकसन्ताप को छोड़कर, परलोक में उत्तम गति और इस लोक में अच्छी स्थिति के लिये प्रयत्न करे। जो राजा रागद्वेषादि से दूर रहकर, समानभाव से राजधर्म का पालन करता है, प्रजा से उचितरीति से कर ग्रहण करता है और धर्मपरायण होता है, उसका यश सारे चराचर लोकों में फैल जाता है।

इत्येवमाज्ञाय विदेहराजो
वाक्यं समग्रं परिपूर्णहेतुः।
अश्मानमामन्त्र्य विशुद्धबुद्धि-
र्ययौ गृहं स्वं प्रति शान्तशोकः॥ ३९॥
तथा त्वमप्यच्युत मुञ्च शोक-
मुत्तिष्ठ शक्रोपम हर्षमेहि।
क्षात्रेण धर्मेण मही जिता ते
तां भुङ्क्ष्व कुन्तीसुत मावमंस्थाः॥ ४०॥

निर्मल बुद्धिवाले राजा जनक का शोक अश्मा के इस युक्तिपूर्ण सम्पूर्ण उपदेश को सुनकर शान्त होगया और वे उनकी आज्ञा लेकर अपने घर को लौट आये। हे अच्युत! हे इन्द्र के समान पराक्रमी कुन्तीकुमार युधिष्ठिर! इसी प्रकार तुम भी अपने शोक को त्यागकर उठो और हर्ष को प्राप्त करो। तुमने इस भूमि को क्षत्रियधर्म का पालन करते हुए जीता है, इसलिये इसका भोग करो। इसकी अवहेलना मत करो।

अठारहवाँ अध्याय : व्यास जी का पुनः युधिष्ठिर को समझाना।

तूष्णींभूतं तु राजानं शोचमानं युधिष्ठिरम्।
तपस्वी धर्मतत्त्वज्ञः कृष्णद्वैपाय नोऽब्रवीत्॥ १॥
प्रजानां पालनं धर्मो राज्ञां राजीवलोचन।
धर्मः प्रमाणं लोकस्य नित्यं धर्मानुवर्तिनः॥ २॥
अनुतिष्ठस्व तद् राजन् पितृपैतामहं पदम्।
ब्राह्मणेषु तपो धर्मः स नित्यो वेदनिश्चितः॥ ३॥
तत् प्रमाणं ब्राह्मणानां शाश्वतं भरतर्षभ।
तस्य धर्मस्य कृत्स्नस्य क्षत्रियः परिरक्षिता॥ ४॥

जब तपस्वी, धर्म के तत्त्व को जाननेवाले व्यास जी ने युधिष्ठिर को चुपचाप बैठकर शोक करते हुए देखा, तो उन्होंने उनसे कहा कि हे कमलनयन! राजाओं का धर्म प्रजा का पालन करना ही है। धर्म का अनुसरण करनेवाले लोगों के लिये सदा धर्म ही प्रमाण होता है। हे राजन्! तुम अपने पिता और पितामह के राज्य को ग्रहण करके उसका धर्म के अनुसार पालन करो। तपस्या तो ब्राह्मणों का नित्य धर्म है, यही वेद का निश्चय है। हे भरतश्रेष्ठ! यह सनातन तप ब्राह्मणों के लिये प्रमाणभूत है। क्षत्रिय तो उस सम्पूर्ण धर्म की रक्षा करता है।

यः स्वयं प्रतिहन्ति स्म शासनं विषये रतः।
स बाहुभ्यां विनिग्राह्यो लोकयात्राविघातकः॥ ५॥
प्रमाणमप्रमाणं यः कुर्यान्मोहवशं गतः।
भृत्यो वा यदि वा पुत्रस्तपस्वी वाथ कश्चन॥ ६॥
पापान् सर्वैरुपायैस्तान् नियच्छेच्छातयीत वा।
अतोऽन्यथा वर्तमानो राजा प्राप्नोति किल्बिषम्॥ ७॥
धर्मं विनश्यमानं हि यो न रक्षेत् स धर्महा।

जो विषयों में लगकर स्वयं शास्त्रधर्म का उल्लंघन करता है और लोकमर्यादा का नाश करता है, क्षत्रिय को चाहिये कि भुजाओं की शक्ति से उस का दमन कर डाले। जो मोह के वश में होकर, शास्त्रों के प्रमाण को अप्रमाण अर्थात् अमान्य कर दे, वह चाहे अपना सेवक हो या पुत्र, तपस्वी हो या कोई और, ऐसे पापियों का सारे उपायों से दमन, या विनाश करदे। जो राजा इसके विपरीत करता है, वह पाप का भागी होता है। जो राजा नष्ट होते हुए धर्म की रक्षा नहीं कर सकता, वह धर्म का नाश करनेवाला है।

ते त्वया धर्महन्तारो निहताः सपदानुगाः॥ ८॥
स्वधर्मे वर्तमानस्त्वं किं नु शोचसि पाण्डव।
राजा हि हन्याद् दद्याच्च प्रजा रक्षेच्च धर्मतः॥ ९॥

तुमने अपने सेवकों सहित जिनका विनाश किया है, वेसब धर्म को नष्ट करनेवाले थे। तुम तो अपने धर्म में विद्यमान हो। हे पाण्डव! फिर शोक क्यों कर रहे हो? राजा का तो यह कर्त्तव्य है कि वह धर्मद्रोहियों को मारे, सुपात्रों को दान दे और प्रजा की धर्म के अनुसार रक्षा करे।

युधिष्ठिर उवाच

न तेऽभिशंके वचनं यद् ब्रवीषि तपोधन।
अपरोक्षो हि ते धर्मः सर्वधर्मविदां वर॥ १०॥
मया त्ववध्या बहवो घातिता राज्यकारणात्।
तानि कर्माणि मे ब्रह्मन् दहन्ति च पचन्ति च॥ ११॥

युधिष्ठिर ने कहा कि हे तपोधन, धर्म वेत्ताओं में श्रेष्ठ! आपको धर्म के स्वरूप का प्रत्यक्ष ज्ञान है। आप जोकुछ कह रहे हैं, उसमें मुझे कुछ भी सन्देह नहीं है पर हे ब्रह्मन्! मैंने राज्य के लिये अनेक वध न करने योग्य व्यक्तियों का भी वध करा दिया। मेरे वे ही कर्म मुझे जला और पका रहे हैं।

व्यास उवाच

ईश्वरो वा भवेत् कर्ता पुरुषो वापि भारत।
हठो वा वर्तते लोके कर्मजं वा फलं स्मृतम्॥ १२॥
ईश्वरेण नियुक्तो हि साध्वसाधु च भारत।
कुरुते पुरुषः कर्म फलमीश्वरगामि तत्॥ १३॥
यथा हि पुरुषश्छिंद्याद् वृक्षं परशुना वने।
छेत्तुरेव भवेत् पापं परशोर्न कथञ्चन॥ १४॥

तब व्यास जी ने कहा कि हे भारत! जो लोग मारे गये हैं, उनके वध का उत्तरदायित्व किन पर है? इसके चार उत्तर हो सकते हैं। १. सबका प्रेरक ईश्वर वध को करानेवाला है। २. वध करनेवाला पुरुष कर्त्ता है। ३. मारे जानेवाले पुरुष का हठ वध का कारण है। ४. उसके कर्मों के फल के इस रूप में प्राप्त होने के कारण कर्मफल कर्त्ता है। हे भारत! यदि प्रेरणा देनेवाले ईश्वर को कर्त्ता माना जाये, तो कहना चाहिये कि ईश्वर की प्रेरणा से मनुष्य जो भी शुभ या अशुभ कर्म करता है, उसका फल भी ईश्वर को ही मिलना चाहिये। जैसे यदि कोई मनुष्य कुल्हाड़ी से वन में किसी वृक्ष को काटे, तो उसका पाप कुल्हाड़ी चलानेवाले व्यक्ति को ही लगता है, कुल्हाड़ी को नहीं लगता।

अथापि पुरुषः कर्ता कर्मणोः शुभपापयोः।
न परो विद्यते तस्मादेवमेतच्छुभं कृतम्॥ १५॥
यदि वा मन्यसे राजन् हतमेकं प्रतिष्ठितम्।
एवमप्यशुभं कर्म न भूतं न भविष्यति॥ १६॥
अथाभिपत्तिर्लोकस्य कर्तव्या पुण्यपापयोः।
अभिपन्नमिदं लोके राज्ञामुद्यतदण्डनम्॥ १७॥

यदि कहा जाये कि शुभ और अशुभ कर्मों को करनेवाला तो उनका कर्ता पुरुष ही है, कोई दूसरा नहीं तो तुमने यह अच्छा काम किया है, क्योंकि तुम्हारे द्वारा पापियों और उनके समर्थकों का वध हुआ है। हे राजन्! यदि तुम यह मानते हो कि युद्ध करनेवाले व्यक्तियों में से एक का मरना तो निश्चित है, अर्थात् वह अपने हठ के कारण मारा गया, तब तो स्वभाववादी के अनुसार भूत या भविष्य में किसी अशुभ कर्म से न तो तुम्हारा सम्पर्क था और न होगा। यदि यह कहो कि लोगों को अपने शुभाशुभ कर्मफल प्राप्त होते रहते हैं, उनकी संगति लगानी चाहिये, क्योंकि बिना कारण के कार्य हो ही नहीं सकता। अतः कर्मफल ही कर्ता है। उस कर्मफल के धर्मरूप या अधर्मरूप होने में शास्त्र का निर्णय प्रमाण है। शास्त्रों के अनुसार उद्दण्ड मनुष्यों को दण्ड देना राजाओं का कर्त्तव्य है।

तथापि लोके कर्माणि समावर्तन्ति भारत।
शुभाशुभफलं चैते प्राप्नुवन्तीति मे मतिः॥ १८॥
एवमप्यशुभं कर्म कर्मणस्तत्फलात्मकम्।

त्यज त्वं राजशार्दूल मैवं शोके मनः कृथाः॥ १९॥
स्वधर्मे वर्तमानस्य सापवादेऽपि भारत।
एवमात्मपरित्यागस्तव राजन् न शोभनः॥ २०॥

हे भारत! हे नृपश्रेष्ठ! यदि यह कहो कि फिर भी लोक में लोग शुभ और अशुभ कर्मों को करते और उनके फलों को पाते रहते हैं ऐसा मेरा मत है। तो उसका उत्तर यह है कि जिस कर्म का फल अशुभ होता है, उस कर्म का ही तुम त्याग कर दो और अपने मन को शोक में मत डुबाओ। हे भरतवंशी राजन्! अपना धर्म दोषयुक्त भी हो तो भी उसमें स्थित रहनेवाले तुम जैसे धर्मात्मा राजा के लिये शरीर का परित्याग शोभा की बात नहीं है।

युधिष्ठिर उवाच

हताः पुत्राश्च पौत्राश्च भ्रातरः पितरस्तथा।
श्वशुरा गुरवश्चैव मातुलाश्च पितामहाः॥ २१॥
क्षत्रियाश्च महात्मानः सम्बन्धिसुहृदस्तथा।
वयस्या भागिनेयाश्च ज्ञातयश्च पितामह॥ २२॥
बहवश्च मनुष्येन्द्रा नानादेशसमागताः।
घातिता राज्यलुब्धेन मयैकेन पितामह॥ २३॥
दह्याम्यनिशमद्यापि चिन्तयानः पुनः पुनः।
हीनां पार्थिवसिंहैस्तैः श्रीमद्भिः पृथिवीमिमाम्॥ २४॥
दृष्ट्वा ज्ञातिवधं घोरं हतांश्च शतशः परान्।
कोटिशश्च नरानन्यान् परितप्ये पितामह॥ २५॥

तब युधिष्ठिर ने कहा कि हे पितामह! मुझ अकेले ने ही राज्य के लोभ में पड़कर पुत्र, पौत्र, भाई, चाचा, ताऊ, ससुर, गुरु, मामा, भानजे, सगेसम्बन्धी, सुहृद, मित्र तथा भाईबन्धु आदि अनेक देशों से आये हुए बहुत सारे क्षत्रिय राजाओं को मरवा दिया है। इस बात को बार-बार सोचता हुआ मैं आज भी रात दिन जलता रहता हूँ। उन श्रीसम्पन्न राजसिंहों से हीन इस पृथिवी, जाति भाइयों के भयंकर वध, सैकड़ों दूसरे लोगों के विनाश और असंख्य व्यक्तियों के संहार को देखकर मैं सन्तप्त होरहा हूँ।

का नु तासां वरस्त्रीणामवस्थाद्य भविष्यति।
विहीनानां तु तनयैः पतिभिर्भ्रातृभिस्तथा॥ २६॥
अस्मानन्तकरान् घोरान् पाण्ड्वान् वृष्णिसंहतान्।
आक्रोशन्त्यः कृशा दीनाः प्रपतिष्यन्ति भूतले॥ २७॥
अपश्यन्त्यः पितॄन् भ्रातॄन् पतीन् पुत्रांश्च योषितः।
त्यक्त्वा प्राणान् स्त्रियः सर्वा गमिष्यन्ति यमक्षयम्॥ २८॥
वत्सलत्वाद् द्विजश्रेष्ठ तत्र मे नास्ति संशयः।
व्यक्तं सौक्ष्म्याच्च धर्मस्य प्राप्स्यामः स्त्रीवधं वयम्॥ २९॥
शरीराणि विमोक्ष्यामस्तपसोग्रेण सत्तम।
आश्रमाणां विशेषं त्वमथाचक्ष्व पितामह॥ ३०॥

उन सुन्दर स्त्रियों की क्या अवस्था होगी? जो अपने पुत्रों, पतियों और भाइयों से बिछुड़ गयी हैं। घोर विनाशकारी हम पाण्डवों और वृष्णिवंशियों को कोसती हुई वे दीनदुर्बल महिलाएँ भूमि पर पछाड़ खा खाकर गिरेंगी। वे स्त्रियाँ अपने पिताओं, भाइयों, पतियों और पुत्रों को न देखकर अपने प्राणों का त्यागकर मृत्युलोक में चली जायेंगी। हे श्रेष्ठ ब्राह्मण!वे अपने सम्बन्धियों के प्रति प्रेम के कारण अवश्य ही ऐसा करेंगी। मुझे कोई संशय नहीं है कि धर्म की गति सूक्ष्म होने के कारण हमें नारीहत्या के पाप का भागी होना पड़ेगा। हे सन्तों में श्रेष्ठ पितामह! इसलिये हम घोर तपस्या करके अपने प्राणों को त्याग देंगे। आप इसके लिये कोई विशेष आश्रम होतो बताइये।

युधिष्ठिरस्य तद् वाक्यं श्रुत्वा द्वैपायनस्तदा।
निरीक्ष्य निपुणं बुद्ध्या ऋषिःप्रोवाच पाण्डवम्॥ ३१॥
मा विषादं कृथा राजन् क्षत्रधर्ममनुस्मरन्।
स्वधर्मेण हता ह्येते क्षत्रियाः क्षत्रियर्षभ॥ ३२॥
काङ्क्षमाणाःश्रियं कृत्स्नां पृथिव्यां च महद् यशः।
कृतान्तविधिसंयुक्ताः कालेन निधनं गताः॥ ३३॥
न त्वं हन्ता न भीमोऽयं नार्जुनो न यमावपि।
कालः पर्यायधर्मेण प्राणानादत्त देहिनाम्॥ ३४॥

युधिष्ठिर की उस बात को सुनकर ऋषि व्यास जी ने बुद्धि से अच्छी तरह से विचारकर पाण्डुपुत्र से यह कहा कि हे राजन्! तुम अपने क्षत्रियधर्म का स्मरण करो और विषाद मत करो। हे क्षत्रियश्रेष्ठ! वे सारे क्षत्रिय अपने धर्म के अनुसार मारे गये हैं। वे सारी पृथिवी की राज्यलक्ष्मी और महान् यश को प्राप्त करना चाहते थे, पर परमात्मा के विधान से प्रेरित होकर समय आने के कारण मृत्यु को प्राप्त होगये। तुम या इस भीमसेन या अर्जुन या नकुल सहदेव ने उन्हें नहीं मारा, समय ने ही बारी बारी से देहधारियों के प्राणों को लिया हैं।

न तस्य मातापितरौ नानुग्राह्यो हि कश्चन।
कर्मसाक्षी प्रजानां यस्तेन कालेन संहृताः॥ ३५॥

हेतुमात्रमिदं तस्य विहितं भरतर्षभ।
यद्धन्ति भूतैर्भूतानि तदस्मै रूपमैश्वरम्॥ ३६॥
कर्मसूत्रात्मकं विद्धि साक्षिणं शुभपापयोः।
सुखदुःखगुणोदर्कं कालं कालफलप्रदम्॥ ३७॥
तेषामपि महाबाहो कर्माणि परिचिन्तय।
विनाशहेतुकानि त्वं यैस्ते कालवशं गताः॥ ३८॥

समय न तो मातापिता है, न उसका किसी पर अनुग्रह है। वह तो प्रजाओं के कर्मों को देखता रहता है, उसी ने तुम्हारे शत्रुओं का संहार किया है। हे भरतश्रेष्ठ! यह युद्ध तो समय के लिये एक निमित्त था। वह प्राणियों के द्वारा जो प्राणियों का वध कराता है, वही उसका ईश्वरीय स्वरूप है। तुम इस बात को समझो कि काल जीवों के पाप और पुण्यकर्मों को देखता रहता है। वह कर्म की डोर का सहारा लेकर, भविष्य में होने वाले सुख और दुख को उत्पन्न करता है। वही समय के अनुसार कर्मों का फल देता है। हे महाबाहु! तुम युद्ध में मारे गये क्षत्रियों के उन कर्मों के विषय में सोचो, जो उनके विनाश के कारण थे, जिनके हेतु से उन्हें काल के वश में होना पड़ा।

एकं हत्वा यदि कुले शिष्टानां स्यादनामयम्।
कुलं हत्वा च राष्ट्रं च न तद् वृत्तोपघातकम्॥ ३९॥
अधर्मरूपो धर्मो हि कश्चिदस्ति नराधिप।
धर्मश्चाधर्मरूपोऽस्ति तच्च ज्ञेयं विपश्चिता॥ ४०॥
तस्मात् संस्तम्भयात्मानं श्रुतवानसि पाण्डव।
देवैः पूर्वगतं मार्गमनुयातोऽसि भारत॥ ४१॥
भ्रातॄनाश्वासयैतांस्त्वं सुहृदश्च परंतप।
यो हि पापसमारम्भे कार्ये तद्भावभावितः॥ ४२॥
कुर्वन्नपि तथैव स्यात् कृत्वा च निरपत्रपः।
तस्मिंस्तत् कलुषं सर्वं समाप्तमिति शब्दितम्॥ ४३॥

यदि एक व्यक्ति को मार देने से, परिवार के शेष व्यक्तियों का कष्ट दूर होजाये और एक परिवार को मार देने से, देश में सुख और शान्ति आजाये, तो ऐसा करना सदाचार और धर्म का नाशक नहीं है। हे राजन्! कभी धर्म भी अधर्मरूप होजाता है और कभी अधर्मरूप दिखाई देनेवाला कर्म ही धर्मरूप बन जाता है, इसलिये विद्वान् व्यक्ति को धर्म और अधर्म के रहस्य को अच्छीतरह समझ लेना चाहिये। हे पाण्डुपुत्र! हे भारत! तुम इसलिये अपनेआपको सँभालो। तुमने बहुत उपदेश सुने हैं। तुमने तो विद्वान् व्यक्तियों के मार्ग का ही अनुकरण किया है। हे शत्रुओं को सन्तप्त करने वाले! तुम अपने भाइयों और मित्रों को आश्वासन दो। जो व्यक्ति पाप की भावना रखकर पापकर्म में प्रवृत्त होता है, उसे करते हुए भी वही भावना रखता है और करने के पश्चात् भी अपने किये पर लज्जित नहीं होता, उसमें वह सारा पाप पूर्णरूप से प्रतिष्ठित होजाता है, ऐसा शास्त्रों का कथन है।

त्वं तु शुक्लाभिजातीयः परदोषेण कारितः।
अनिच्छमानः कर्मेदं कृत्वा च परितप्यसे॥ ४४॥
सेयं त्वामनुसम्प्राप्ता विक्रमेण वसुन्धरा।
निर्जिताश्च महीपाला विक्रमेण त्वयानघ॥ ४५॥
तेषां पुराणि राष्ट्राणि गत्वा राजन् सुहृद्वृतः।
भ्रातॄन् पुत्रांश्च पौत्रांश्च स्वे स्वे राज्येऽभिषेचय॥ ४६॥
बालानपि च गर्भस्थान् सान्त्वेन समुदाचरन्।
रञ्जयन् प्रकृतीः सर्वाः परिपाहि वसुन्धराम्॥ ४७॥
कुमारो नास्ति येषां च कन्यास्तत्राभिषेचय।
कामाशयो हि स्त्रीवर्गः शोकमेवं प्रहास्यसि॥ ४८॥

तुम तो जन्म से ही शुद्ध स्वभाव के थे। तुम युद्ध बिल्कुल नहीं चाहते थे, शत्रुओं के दोष के कारण तुम्हें युद्ध करना पड़ा और युद्धकर्म को करके लगातार पश्चात्ताप भी कर रहे हो। हे अनघ! तुमने अपने पराक्रम से इस पृथिवी को प्राप्त किया है, अपने पराक्रम से ही राजाओं पर विजय पायी है। हे राजन्! तुम अपने मित्रों के साथ उन राजाओं के नगरों और देशों को जाकर, उनके भाइयों, पुत्रों और पौत्रों को अपने अपने राज्य पर स्थापित करो। जिनके उत्तराधिकारी अभी बालक या गर्भस्थ हों, उनकी प्रजा को समझा बुझाकर सान्त्वना से शान्त करो। जिन राजाओं के कोई पुत्र न हो, उनकी लड़की का ही अभिषेक कर दो। ऐसा करने से उनकी स्त्रियों की मनोकामना पूरी होगी और वे शोक का त्याग कर देंगी।

एवमाश्वासनं कृत्वा सर्वराष्ट्रेषु भारत।
यजस्व वाजिमेधेन यथेन्द्रो विजयी पुरा॥ ४९॥
अशोच्यास्ते महात्मानः क्षत्रियाः क्षत्रियर्षभ।
स्वकर्मभिर्गता नाशं कृतान्तबलमोहिताः॥ ५०॥
अवाप्तः क्षत्रधर्मस्ते राज्यं प्राप्तमकण्टकम्।
रक्षस्व धर्मं कौन्तेय श्रेयान् यः प्रेत्य भारत॥ ५१॥

हे भारत! इसप्रकार सारे देशों में धीरज बँधाकर, उसीप्रकार से अश्वमेधयज्ञ का अनुष्ठान करो, जैसे पहले विजयी इन्द्र ने किया था। हे क्षत्रियश्रेष्ठ! जो महामनस्वी क्षत्रिय युद्ध में मारे गये, वे शोक करने के योग्य नहीं हैं, क्योंकि वे काल की शक्ति से मोहित होकर अपने ही कर्मों से नष्ट हुए हैं। हे भारत! हे कुन्तीपुत्र! तुमने क्षत्रियधर्म का पालन किया है, तुम्हें निष्कण्टक राज्य मिला है। अब तुम उस धर्म की रक्षा करो जो मृत्यु के पश्चात् सब का कल्याण करता है।

उन्नीसवाँ अध्याय : युधिष्ठिर का नगर प्रवेश।

युधिष्ठिर उवाच

श्रोतुमिच्छामि भगवन् विस्तरेण महामुने।
धर्मचर्या च राज्यं च नित्यमेव विरुध्यते॥ १॥
एवं मुह्यति मे चेतश्चिन्तयानस्य नित्यशः।

तब युधिष्ठिर ने कहा कि हे भगवन्! हे महामुनि, एक तरफ धर्म का आचरण और दूसरी तरफ राज्य का पालन, येदोनों बातें एकदूसरे के विरुद्ध हैं, यह सोचकर मेरे चित्त पर सदा मोह छाया रहता है। मैं इसके विषय में विस्तार पूर्वक जानना चाहता हूँ।

व्यास उवाच

श्रोतुमिच्छसि चेद् धर्मं निखिलेन नराधिप॥ २॥
प्रैहि भीष्मं महाबाहो वृद्धं कुरुपितामहम्।
छेत्ता धर्मरहस्येषु संशयान् मनसि स्थितान्॥ ३॥
यस्य ब्रह्मर्षयः पुण्या नित्यमासन् सभासदः।
यस्य नाविदितं किंचिज्ज्ञानयज्ञेषु विद्यते॥ ४॥
स ते वक्ष्यति धर्मज्ञः सूक्ष्मधर्मार्थतत्त्ववित्।
तमभ्येहि पुरा प्राणान् स विमुञ्चति धर्मवित्॥ ५॥

तब व्यास जी ने कहा कि हे राजन्! यदि तुम धर्म की पूरी विवेचना सुनना चाहते हो, तो हे महाबाहु! कौरवों के पितामह बूढ़े भीष्म के पास जाओ। वे धर्म के रहस्यों के विषय में तुम्हारे मन में बैठे हुए सारे संशयों को नष्ट कर देंगे। पुण्यात्मा ब्रह्मर्षि सदा उनके सभासद रहे हैं। ज्ञानयज्ञ में कोई ऐसी बात नहीं है, जो उन्हें विदित न हो। सूक्ष्म धर्म और अर्थ के तत्त्व को जाननेवाले वे धर्मवेत्ता तुम्हें धर्म का उपदेश देंगे। उनके अपने प्राणों को छोड़ने से पहले ही तुम उनके पास चलो।

एवमुक्तस्तु कौन्तेयो दीर्घप्रज्ञो महामतिः।
उवाच वदतां श्रेष्ठं व्यासं सत्यवतीसुतम्॥ ६॥
वैशसं सुमहत् कृत्वा ज्ञातीनां रोमहर्षणम्।
आगस्कृत् सर्वलोकस्य पृथिवीनाशकारकः॥ ७॥
घातयित्वा तमेवाजौ छलेनाजिह्मयोधिनम्।
उपसम्प्रष्टुमर्हामि तमहं केन हेतुना॥ ८॥
ततस्तं नृपतिश्रेष्ठं चातुर्वर्ण्यहितेप्सया।
पुनराह महाबाहुर्यदुश्रेष्ठो महामतिः॥ ९॥

ऐसा कहे जाने पर महाबुद्धिमान्, दूरदर्शी कुन्तीपुत्र ने वक्ताओं में श्रेष्ठ सत्यवतीपुत्र व्यास जी से कहा कि अपने जातिभाइयों का रोंगटे खड़े कर देने वाला महाविनाश करके, पृथिवी का विनाश करनेवाला, सारे लोगों का अपराधी, सीधी तरह से युद्ध करने वाले उनको ही कपटयुद्ध से मरवाकर, अब उन्हीं से मैं किस प्रकार कुछ पूछ सकता हूँ? तब महाबाहु, महामति, यदुश्रेष्ठ श्रीकृष्णजी ने चारों वर्णों के हित की इच्छा से उन नृपति शिरोमणि युधिष्ठिर से कहा कि—

नेदानीमतिनिर्बन्धं शोके त्वं कर्तुमर्हसि।
यदाह भगवान् व्यासस्तत् कुरुष्व नृपोत्तम॥ १०॥
ब्राह्मणास्त्वां महाबाहो भ्रातरश्च महौजसः।
पर्जन्यमिव घर्मान्ते नाथमाना उपासते॥ ११॥
हतशिष्टाश्च राजानः कृत्स्नं चैव समागतम्।
चातुर्वर्ण्यं महाराज राष्ट्रं ते कुरुजाङ्गलम्॥ १२॥
प्रियार्थमपि चैतेषां ब्राह्मणानां महात्मनाम्।
नियोगादस्य च गुरोर्व्यासस्यामिततेजसः॥ १३॥
सुहृदामस्मदादीनां द्रौपद्याश्च परंतप।
कुरु प्रियममित्रघ्न लोकस्य च हितं कुरु॥ १४॥

हे नृपश्रेष्ठ! अब आप अत्यधिक शोक को ही पकड़े न रहें। भगवान् व्यास जी ने जो कहा है, वही आप करिये। हे महाबाहु! ये ब्राह्मणलोग तथा महातेजस्वी आपके भाई, ग्रीष्मऋतु के अन्त में बादलों के समान आपसे प्रार्थना करते हुए बैठे हैं।

मरने से बचे हुए राजा लोग तथा चारों वर्णों की प्रजाओं से युक्त, यह सारा कुरुजांगल देश आपकी सेवा में आया हुआ है। हे शत्रुओं को मारने और सन्तप्त करने वाले। इन महात्मा ब्राह्मणों का प्रिय करने के लिये आपको इनकी बात मान लेनी चाहिये। आप अमित तेजस्वी गुरु व्यास जी के आदेश से हम सुहृदों तथा द्रौपदी का प्रिय कीजिये और जगत की भलाई में लग जाइये।

एवमुक्तः स कृष्णेन राजा राजीवलोचनः।
हितार्थं सर्वलोकस्य समुत्तस्थौ महामनाः॥ १५॥
प्रविविक्षुः स धर्मज्ञः कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः।
अर्चयामास देवांश्च ब्राह्मणांश्च सहस्रशः॥ १६॥
आरुरोह रथं शुभ्रं कम्बलाजिनसंवृतम्।
युक्तं षोडशभिर्गोभिः पाण्डुरैः शुभलक्षणैः॥ १७॥
मन्त्रैरभ्यर्चितः पुण्यैः स्तूयमानश्च वन्दिभिः।

श्री कृष्ण जी के द्वारा ऐसा कहे जाने पर, वह कमलनयन महामना राजा युधिष्ठिर सारे लोगों के हित के लिये उठ खड़े हुए। नगर में प्रवेश करने के इच्छुक, धर्मज्ञ, कुन्तीपुत्र, युधिष्ठिर ने हजारों ब्राह्मणों और विद्वानों की पूजा की, फिर वे जगमगाते हुए, कम्बल और मृगचर्म से ढके हुए रथ पर, जिस में अच्छे लक्षण वाले सफेद सोलह बैल जुते हुए थे, बन्दी जनों के द्वारा पवित्र मन्त्रों के पाठ और अपनी स्तुति किये जाते हुए, आरूढ हुए।

जग्राह रश्मीन् कौन्तेयो भीमो भीमपराक्रमः॥ १८॥
अर्जुनः पाण्डुरं छत्रं धारयामास भानुमत्।
ध्रियमाणं च तच्छत्रं पाण्डुरं रथमूर्धनि॥ १९॥
शुशुभे तारकाकीर्णं सितमभ्रमिवाम्बरे।
चामरव्यजने त्वस्य वीरौ जगृहतुस्तदा॥ २०॥
चन्द्ररश्मिप्रभे शुभ्रे माद्रीपुत्रावलंकृते।

तब भयंकर पराक्रमवाले भीमसेन ने बैलों की रास सँभाली। अर्जुन ने उनके ऊपर श्वेत तेजस्वी छत्र धारण कराया। रथ के ऊपर तना हुआ वह श्वेत छत्र आकाश में तारिकाओं से व्याप्त श्वेत बादल जैसा सुशोभित होरहा था। माद्री के दोनों वीर पुत्रों नकुल और सहदेव ने चन्द्रमा की किरणों के समान श्वेत और अलंकृत चँवर और व्यजन हाथों में लिये।

रथं हेममयं शुभ्रं शैव्यसुग्रीवयोजितम्॥ २१॥
सह सात्यकिना कृष्णः समास्थायान्वयात् कुरून्।
नरयानेन तु ज्येष्ठः पिता पार्थस्य भारतः॥ २२॥
अग्रतो धर्मराजस्य गान्धारीसहितो ययौ।
कुरुस्त्रियश्च ताः सर्वाः कुन्तीकृष्णा तथैव च॥ २३॥
यानैरुच्चावचैर्जग्मुर्विदुरेण पुरस्कृताः।
ततो रथाश्च बहुला नागाश्वसमलंकृताः॥ २४॥
पादाताश्च हयाश्चैव पृष्ठतः समनुव्रजन्।

तब सुनहरे, जगमगाते हुए, शैव्य और सुग्रीव नाम के घोड़ों से युक्त रथ पर श्रीकृष्णजी सात्यकि के साथ बैठकर कौरवों के पीछे चले। कुन्तीपुत्र धर्मराज युधिष्ठिर के ज्येष्ठ पिता अर्थात् ताऊ, भरतवंशी धृतराष्ट्र गान्धारी के साथ पालकी में बैठे उनके आगे जारहे थे। इनके पीछे कुन्ती और द्रौपदी आदि कुरुकुल की स्त्रियाँ यथायोग्य भिन्न-भिन्न सवारियों पर चढ़कर चल रही थीं। उनके पीछे विदुर जी उनकी देखभाल कर रहे थे। उनके पीछे बहुत सारे हाथी और घोड़ों से अलंकृत रथी, पैदल और घुड़सवार सैनिक चल रहे थे।

ततो वैतालिकैः सूतैर्मागधैश्च सुभाषितैः॥ २५॥
स्तूयमानो ययौ राजा नगरं नागसाह्वयम्।
तत् प्रयाणं महाबाहोर्बभूवाप्रतिमं भुवि॥ २६॥
आकुलाकुलमुत्क्रुष्टं हृष्टपुष्टजनाकुलम्।
अभियाने तु पार्थस्य नरैर्नगरवासिभिः॥ २७॥
नगरं राजमार्गाश्च यथावत्समलङ्कृताः।

फिर वैतालिकों, सूतों और मागधों के द्वारा सुन्दर वाणी में स्तुति किये जाते हुए राजा युधिष्ठिर ने हस्तिनापुर नगर में प्रवेश किया। महाबाहु युधिष्ठिर की वह सामूहिकयात्रा संसार में अनुपम थी। उसमें हृष्टपुष्ट मनुष्य भरे हुए थे और भीड़ पर भीड़ बढ़ती जारही थी। कुन्तीपुत्र की उस यात्रा के समय नगर निवासी मनुष्यों ने सारे नगर और वहाँ के राजमार्गों को अच्छीतरह सजा दिया था।

पाण्डुरेण च माल्येन पताकाभिश्च मेदिनी॥ २८॥
संस्कृतो राजमार्गोऽभूद्धूपनैश्च प्रधूपितः।
अथ चूर्णैश्च गन्धानां नानापुष्पप्रियङ्गुभिः॥ २९॥
माल्यदामभिरासक्तै राजवेश्माभिसंवृतम्।
कुम्भाश्च नगरद्वारि वारिपूर्णा नवा दृढाः॥ ३०॥
सिताः सुमनसो गौराः स्थापितास्तत्र तत्र ह।

तथा स्वलंकृतद्वारं नगरं पाण्डुनन्दनः।
स्तूयमानः शुभैर्वाक्यैः प्रविवेश सुहृद्वृतः॥ ३१॥

नगर की भूमि सफेद मालाओं और पताकाओं से सुशोभित हो रही थी। राजमार्ग को झाड़ पौंछकर, छिड़काव करके धूप की सुगन्ध से सुशोभित कर दिया गया था। राजमहल के आसपास चारों तरफ सुगन्धित चूर्ण बिखेरे गये थे। तरह तरह के फूलों, बेलों और पुष्पहारों की वन्दनवारों से उसे अच्छी तरह सुसज्जित किया गया था। नगर के द्वार पर जल से भरे नये और दृढ़ कलश रखे गये थे। जगह-जगह सफेद फूलों के गुच्छे रख दिये गये थे। इस प्रकार सजे हुए द्वार वाले नगर में अपने मित्रों से घिरे हुए पाण्डुपुत्र ने, सुन्दर वाक्यों द्वारा स्तुति किये जाते हुए प्रवेश किया।

बीसवाँ अध्याय : नागरिकों द्वारा युधिष्ठिर का स्वागत, राज्याभिषेक।

प्रवेशने तु पार्थानां जनानां पुरवासिनाम्।
दिदृक्षूणां सहस्राणि समाजग्मुः सहस्रशः॥ १॥
स राजमार्गः शशुभे, समलंकृतचत्वरः।
तमतीत्य यथायुक्तं राजमार्गं युधिष्ठिरः॥ २॥
अलंकृतं शोभमानमुपायाद् राजवेश्म ह।
आशीर्वादान् द्विजैरुक्तान् प्रतिगृह्य समन्ततः॥ ३॥
प्रविश्य भवनं राजा देवराजगृहोपमम्।
श्रद्धाविजयसंयुक्तं रथात् पश्चादवातरत्॥ ४॥

कुन्तीपुत्रों के हस्तिनापुर में प्रवेश करते समय देखने के इच्छुक पुरवासियों के झुण्ड हजारों की संख्या में एकत्र होगये। जिसके चौराहे अच्छी तरह सजाये हुए थे, वह राजमार्ग उस भीड़ से बड़ा सुशोभित होरहा था। उस सुशोभित, सजाये राजमार्ग को यथोचितरीति से पारकर युधिष्ठिर राजभवन के समीप आपहुँचे। वहाँ सब तरफ से ब्राह्मणोंद्वारा दिये गये आशीर्वादों को ग्रहणकर, श्रद्धा और विजय से युक्त, इन्द्र के भवन के समान उस राजभवन में प्रवेशकर राजा रथ से उतर पड़े।

स संवृतस्तदा विप्रैराशीर्वादविवक्षुभिः।
शुशुभे विमलश्चन्द्रस्तारागणवृतो यथा॥ ५॥
तांस्तु वै पूजयामास कौन्तेयो विधिवद् द्विजान्।
धौम्यं गुरुं पुरस्कृत्य ज्येष्ठं पितरमेव च॥ ६॥

उस समय जैसे तारों से घिरे हुए चन्द्रमा की शोभा होती है, वैसे ही आशीर्वादों को देने के इच्छुक ब्राह्मणों से घिरे राजा युधिष्ठिर की भी शोभा होरही थी। फिर कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर ने अपने ज्येष्ठ पिता धृतराष्ट्र और गुरु धौम्य को आगेकर ब्राह्मणों का विधिवद् पूजन किया।

ततः कुन्तीसुतो राजा गतमन्युर्गतज्वरः।
काञ्चने प्राङ्मुखो हृष्टो न्यषीदत् परमासने॥ ७॥
तमेवाभिमुखो पीठे प्रदीप्ते काञ्चने शुभे।
सात्यकिर्वासुदेवश्च निषीदतुररिंदमौ॥ ८॥
मध्ये कृत्वा तु राजानं भीमसेनार्जुनावुभौ।
निषीदतुर्महात्मानौ श्लक्ष्णयोर्मणिपीठयोः॥ ९॥
दान्ते सिंहासने शुभ्रे जाम्बूनदविभूषिते।
पृथापि सहदेवेन सहास्ते नकुलेन च॥ १०॥

तब खेद और चिन्ता से दूर होकर कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिर प्रसन्नता के साथ पूर्वाभिमुख होकर एक सुनहरे, सुन्दर सिंहासन पर विराजमान हुए। तब शत्रुओं का दमन करने वाले श्रीकृष्ण और सात्यकि उन्हीं की तरफ मुख करके एक सुनहरे, सुन्दर और जगमगाते हुए आसन पर बैठे। भीम और अर्जुन दोनों मनस्वी राजा युधिष्ठिर को बीच में करके मणियों से युक्त मनोहर आसनों पर विराजमान हुए। फिर हाथीदाँत के स्वर्णभूषित शुभ सिंहासन पर कुन्ती नकुल और सहदेव के साथ बैठी।

सुधर्मा विदुरो धौम्यो धृतराष्ट्रश्च कौरवः।
निषेदुर्ज्वलनाकारेष्वासनेषु पृथक् पृथक्॥ ११॥
युयुत्सुः संजयश्चैव गान्धारी च यशस्विनी।
धृतराष्ट्रो यतो राजा ततः सर्वे समाविशन्॥ १२॥
ततः प्रकृतयः सर्वाः पुरस्कृत्य पुरोहितम्।
ददृशुर्धर्मराजानमादाय बहुमङ्गलम्॥ १३॥

इसी प्रकार सुधर्मा, विदुर, धौम्य और कुरुराज धृतराष्ट्र अग्नि के समान तेजस्वी सिंहासनों पर पृथक् पृथक् विराजमान हुए। युयुत्सु, संजय और यशस्विनी गांधारी, ये जिधर राजा धृतराष्ट्र थे, उधर ही बैठे।

फिर मन्त्री, सेनापति आदि सारे व्यवस्था करनेवालों ने पुरोहित को आगेकर बहुत सारी माँगलिक सामग्रियों के साथ धर्मराज युधिष्ठिर का दर्शन किया।

पृथिवीं च सुवर्णं च रत्नानि विविधानि च।
आभिषेचनिकं भाण्डं सर्वसम्भारसम्भृतम्॥ १४॥
काञ्चनोदुम्बरास्तत्र राजताः पृथिवीमयाः।
पूर्णकुम्भाः सुमनसो लाजा बर्हींषि गोरसम्॥ १५॥
शमीपिप्पलपालाशसमिधो मधुसर्पिषी।
स्रुव औदुम्बरः शङ्खस्तथा हेमविभूषितः॥ १६॥

वे लोग मिट्टी, स्वर्ण, तरह तरह के रत्न, राज्याभिषेक की सामग्री, सब प्रकार के आवश्यक सामान, सोने चाँदी, ताँबे और मिट्टी के बने हुए जलपूर्ण कलश, फूल, लाजा, कुशा, गोरस, शमी, पीपल और पलाश की समिधाएँ, मधु, घृत, गूलर की लकड़ी का स्रुवा और स्वर्णजटित शंख, इन सारी वस्तुओं को एकत्र करके लाये थे।

दाशार्हेणाभ्यनुज्ञातस्तत्र धौम्यः पुरोहितः।
व्याघ्रचर्मोत्तरे शुक्ले सर्वतोभद्र आसने॥ १७॥
दृढपादप्रतिष्ठाने हुताशनसमत्विषि।
उपवेश्य महात्मानं कृष्णां च द्रुपदात्मजाम्॥ १८॥
जुहाव पावकं धीमान् विधिमन्त्रपुरस्कृतम्।

फिर श्रीकृष्ण जी की आज्ञा से पुरोहित धौम्य ने सर्वतोभद्र नाम की चौकी पर व्याघ्रचर्म और सफेद वस्त्र बिछा कर उसके ऊपर महात्मा युधिष्ठिर और द्रौपदी को बिठाया। उस चौकी के पाये बहुत मजबूत थे और स्वर्णजटित होने के कारण वह अग्नि के समान चमक रही थी। उसके पश्चात् बुद्धिमान् पुरोहित ने विधिपूर्वक मन्त्रों के द्वारा अग्नि की स्थापना कर उसमें हवन किया।

तत उत्थाय दाशार्हः शङ्खमादाय पूजितम्॥ १९॥
अभ्यषिञ्चत् पतिं पृथ्व्याः कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम्।
धृतराष्ट्रश्च राजर्षिः सर्वाः प्रकृतयस्तथा॥ २०॥
ततोऽनुवादयामासुः पणवानकदुन्दुभीन्।
धर्मराजोऽपि तत् सर्वं प्रतिजग्राह धर्मतः॥ २१॥
पूजयामास तांश्चापि विधिवद् भूरिदक्षिणः।
वेदाध्ययनसम्पन्नान् धृतिशीलसमन्वितान्॥ २२॥

फिर श्रीकृष्णजी ने उठकर अपने श्रेष्ठ शंख को लेकर उसके जल से पृथिवी के स्वामी कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर का अभिषेक किया। फिर राजर्षि धृतराष्ट्र, सारे मन्त्रियों और प्रजा के लोगों ने अभिषेक का कार्य किया। उसके पश्चात् बाजा बजाने वाले लोग पणव, आनक और दुन्दुभि की ध्वनि करने लगे। धर्मराज युधिष्ठिर ने भी धर्मानुसार वह सारा स्वागत सत्कार स्वीकार किया। उसके पश्चात् बहुत दक्षिणा वाले युधिष्ठिर ने उन लोगों का भी जो वेदा ध्ययन से सम्पन्न थे और धैर्य एवं शील से युक्त थे, विधिवद् सम्मान किया।

इक्कीसवाँ अध्याय : युधिष्ठिर द्वारा विभिन्न उत्तरदायित्वों का बँटवारा।

अनुज्ञाप्याथ तान् राजा यथेष्टं गम्यतामिति।
पौरजानपदान् सर्वान् विसृज्य कुरुनन्दनः॥ १॥
यौवराज्येन कौन्तेयं भीमसेनमयोजयत्।
मन्त्रे च निश्चये चैव षाड्गुण्यस्य च चिन्तने॥ २॥
विदुरं बुद्धिसम्पन्नं प्रीतिमान् स समादिशत्।
कृताकृतपरिज्ञाने तथाऽऽयव्ययचिन्तने॥ ३॥
संजयं योजयामास वृद्धं सर्वगुणैर्युतम्।

फिर राजा युधिष्ठिर ने नगर और देश की जनता के प्रतिनिधियों को आपलोग अब अपनी इच्छानुसार जाइये ऐसा कहकर विसर्जित किया। तत्पश्चात् उस कुरुनन्दन ने कुन्तीपुत्र भीमसेन को यौवराज्य के पद पर प्रतिष्ठित किया। उन्होंने प्रसन्नता के साथ मन्त्रणा, कर्त्तव्यनिश्चय, तथा छः नीतिसम्बन्धी गुणों के चिन्तन में बुद्धिमान् विदुर जी को नियुक्त किया। फिर उन्होंने सर्वगुणसम्पन्न वृद्ध संजय को कौन सा कार्य हुआ, कौनसा नहीं हुआ तथा आयव्यय के विचार कार्य पर नियुक्त किया।

बलस्य परिमाणे च भक्तवेतनयोस्तथा॥ ४॥
नकुलं व्यादिशद् राजा कर्मणां चान्ववेक्षणे।
परचक्रोपरोधे च दुष्टानां चावमर्दने॥ ५॥
युधिष्ठिरो महाराजः फाल्गुनं व्यादिदेश ह।
द्विजानां देवकार्येषु कार्येष्वन्येषु चैव ह॥ ६॥

धौम्यं पुरोधसां श्रेष्ठं नित्यमेव समादिशत्।
सहदेवं समीपस्थं नित्यमेव समादिशत्॥ ७॥
यान् यानमन्यद् योग्यांश्च येषु येष्विह कर्मसु।
तांस्तांस्तेष्वेव युयुजे प्रीयमाणो महीपतिः॥ ८॥

सेना की गणना करना, उसे भोजन और वेतन देना, उसके काम की देख भाल करना इन कार्यों पर राजा ने नकुल को लगाया। महाराज युधिष्ठिर ने शत्रुओं के देश पर चढ़ाई और दुष्टों का दमन इन कार्यों के लिये अर्जुन को आदेश दिया। शिक्षित लोगों तथा अच्छे आचरणवाले विद्वानों के लिये किये जानेवाले कार्यों पर सदा ध्यान रखने के लिये उन्होंने पुरोहितों में श्रेष्ठ धौम्य जी को आदेश दिया। युधिष्ठिर ने सहदेव को सदा अपने समीप रहने का आदेश दिया। प्रसन्न हुए पृथिवीपति ने फिर दूसरे जिन योग्य व्यक्तियों को जिन कार्यों के लिये उपयुक्त समझा, उन्हें उन कार्यों पर नियुक्त किया।

विदुरं संजयं चैव युयुत्सुं च महामतिम्।
अब्रवीत् परवीरघ्नो धर्मात्मा धर्मवत्सलः॥ ९॥
उत्थायोत्थाय तत् कार्यमस्य राज्ञः पितुर्मम।
सर्वं भवद्भिः कर्तव्यमप्रमत्तैर्यथायथम्॥ १०॥
पौरजानपदानां च यानि कार्याणि सर्वशः।
राजानं समनुज्ञाप्य तानि कर्माणि भागशः॥ ११॥

शत्रुओं का संहार करनेवाले, धर्मात्मा और धर्म से प्रेम करनेवाले युधिष्ठिर ने फिर विदुर, संजय और महाबुद्धिमान् युयुत्सु से कहा कि आपलोगों को प्रतिदिन उठकर मेरे ताऊ इन राजा धृतराष्ट्र का जो भी आवश्यक कार्य हो, उसे यथोचित रूप में सावधानी के साथ पूरा करना चाहिये। नगर और देश के निवासियों के भी जो कार्य हों, उन्हें इन्हीं महाराज की आज्ञा लेकर पूरा करना चाहिये।

ततो युधिष्ठिरो राजा भीमं भीमपराक्रमम्।
सान्त्वयन्नब्रवीच्छ्रीमानर्जुनं यमजौ तथा॥ १२॥
शत्रुभिर्विविधैः शस्त्रैः क्षतदेहा महारणे।
श्रान्ता भवन्तः सुभृशं तापिताः शोकमन्युभिः॥ १३॥
अरण्ये दुःखवसतीर्मत्कृते भरतर्षभाः।
भवद्भिरनुभूता हि यथा कुपुरुषैस्तथा॥ १४॥
यथासुखं यथाजोषं जयोऽयमनुभूयताम्।
विश्रान्ताल्लुँब्धविज्ञानाऽश्वः समेतास्मि वः पुनः॥ १५॥

इसके पश्चात् श्रीमान् राजा युधिष्ठिर ने भयंकर पराक्रमी भीमसेन, अर्जुन, नकुल तथा सहदेव को सान्त्वना देते हुए कहा कि महायुद्ध में शत्रुओं ने विविधप्रकार के शस्त्रास्त्रों से तुम्हें बहुत चोटें पहुँचायीं हैं, आपलोग बहुत थक गये हैं तथा शोक एवं क्रोध ने भी आपको सन्तप्त कर दिया है। हे भरतश्रेष्ठों! आप लोगों ने मेरे लिये वन में दुख पूर्ण निवास किया है, वहाँ बुरे मनुष्यों के समान कष्ट उठाये हैं। अब सुखपूर्वक, जी भरकर विजय के इस आनन्द का अनुभव करो और विश्राम करके स्वस्थचित्त होजाओ। कल मैं फिर तुमसे मिलूँगा।

ततो दुर्योधनगृहं प्रासादैरुपशोभितम्।
बहुरत्नसमाकीर्णं दासीदाससमाकुलम्॥ १६॥
धृतराष्ट्राभ्यनुज्ञातं भ्रात्रा दत्तं वृकोदरः।
प्रतिपेदे महाबाहुर्मन्दिरं मघवानिव॥ १७॥
यथा दुर्योधनगृहं तथा दुःशासनस्य तु।
प्रासादमालासंयुक्तं हेमतोरणभूषितम्॥ १८॥
दासीदाससुसम्पूर्णं प्रभूतधनधान्यवत्।
प्रतिपेदे महाबाहुरर्जुनो राजशासनात्॥ १९॥

फिर धृतराष्ट्र की आज्ञा से भाई युधिष्ठिर द्वारा दिये गये दुर्योधन के महल को, जो अट्टालिकाओं से सुशोभित, अनेकप्रकार के रत्नों तथा दासदासियों से परिपूर्ण था, महाबाहु भीमसेन ने प्राप्त किया और उसमें उसीप्रकार प्रवेश किया जैसे इन्द्र अपने महल में करते हैं जैसा दुर्योधन का महल था, वैसा ही दुश्शासन का महल प्रासादमालाओं से युक्त, सुनहरे वन्दनवारों से सुशोभित, दासी और दासों से भरा हुआ तथा प्रचुर धनधान्यवाला था। उसे राजा की आज्ञा से महाबाहु अर्जुन ने प्राप्त किया।

दुर्मर्षणस्य भवनं दुःशासनगृहाद् वरम्।
कुबेरभवनप्रख्यं मणिहेमविभूषितम्॥ २०॥
नकुलाय वरार्हाय कर्शिताय महावने।
ददौ प्रीतो महाराजः धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः॥ २१॥
दुर्मुखस्य च वेश्माग्र्यं श्रीमत् कनकभूषणम्।
प्रददौ सहदेवाय संततं प्रियकारिणे॥ २२॥
मुमुदे तच्च लब्ध्वासौ कैलासं धनदो यथा।

दुर्मर्षण का भवन तो दुश्शासन के भवन से भी सुन्दर था। वह कुबेर के महल के समान मणियों तथा सोने से सजाया हुआ था। उसे महाराज धर्म पुत्र युधिष्ठिर ने अत्यन्तप्रसन्न होकर, महान् वन में कष्ट उठाकर दुर्बल हुए, वर पाने के अधिकारी नकुल को भेंट किया। भवनों में श्रेष्ठ दुर्मुख का भवन श्रीमान् और स्वर्णभूषित था। उसे युधिष्ठिर ने सदा प्रिय करनेवाले सहदेव को प्रदान किया। सहदेव उसे प्राप्त करके उसीप्रकार प्रसन्न हुए, जैसे कुबेर कैलाश को पाकर हुए थे।

सह सात्यकिना शौरिरर्जुनस्य निवेशनम्॥ २३॥
विवेश पुरुषव्याघ्रो व्याघ्रो गिरिगुहामिव।
तत्र भक्ष्यान्नपानैस्ते मुदिताः सुसुखोषिताः।
सुखप्रबुद्धा राजानमुपतस्थुर्युधिष्ठिरम्॥ २४॥

फिर पुरुषव्याघ्र श्रीकृष्ण जी ने सात्यकि के साथ अर्जुन के घर में उसीप्रकार प्रवेश किया, जैसे व्याघ्र पर्वत की कन्दरा में प्रवेश करता है। वहाँ वे सब खान पान से सन्तुष्ट हो बड़े सुख के साथ रातभर सोये। फिर सबेरे उठकर राजा युधिष्ठिर की सेवा में उपस्थित हो गये।

बाईसवाँ अध्याय : श्रीकृष्ण का युधिष्ठिर को भीष्म के पास जाने का आदेश।

वासुदेवं महात्मानमभ्यगच्छत् कृताञ्जलिः।
उवाच मधुरं राजा स्मितपूर्वमिदं तदा॥ १॥
सुखेन ते निशा कच्चिद् व्युष्टा बुद्धिमतां वर।
कच्चिज्ज्ञानानि सर्वाणि प्रसन्नानि तवाच्युत॥ २॥
वयं राज्यमनुप्राप्ताः पृथिवी च वशे स्थिता।
तव प्रसादाद् भगवंस्त्रिलोकगतिविक्रम॥ ३॥
जयं प्राप्ता यशश्चाग्र्यं न च धर्मच्युता वयम्।
तं तथा भाषमाणं तु धर्मराजमरिंदमम्॥ ४॥
नोवाच भगवान् किंचिद् ध्यानमेवान्वपद्यत।

उसके पश्चात् राजा युधिष्ठिर हाथ जोड़कर महात्मा श्रीकृष्ण जी के पास गये और मुस्कराते हुए उनसे मधुर ध्वनि में बोले कि हे बुद्धिमानों में श्रेष्ठ अच्युत! क्या आपकी रात्रि सुख से बीती? क्या आपकी सारी ज्ञानेन्द्रियाँ प्रसन्न हैं? हे भगवन्! आपका पराक्रम तीनों लोकों में फैला हुआ है। आपकी कृपा से ही हमने अपने राज्य को प्राप्त किया है और यह पृथिवी हमारे आधीन हुई है। हमने धर्म का उल्लंघन न करते हुए श्रेष्ठ यश और विजय को प्राप्त किया है। शत्रुओं को नष्ट करने वाले युधिष्ठिर जब इस प्रकार कह रहे थे, तब श्रीकृष्ण जी ने उन्हें कुछ भी उत्तर नहीं दिया और अपने ध्यान में ही बैठे रहे।

युधिष्ठिर उवाच
किमिदं परमाश्चर्यं ध्यायस्यमितविक्रम॥ ५॥
ध्यानस्यास्य यथा तत्त्वं ब्रूहि धर्मभृतां वर।
वासुदेव उवाच
शरतल्पगतो भीष्मः शाम्यन्निव हुताशनः॥ ६॥
दिव्यास्त्राणि महातेजा यो धारयति बुद्धिमान्।
साङ्गांश्च चतुरो वेदांस्तमस्मि मनसा गतः॥ ७॥
रामस्य दयितं शिष्यं जामदग्न्यस्य पाण्डव।
आधारं सर्वविद्यानां तमस्मि मनसा गतः॥ ८॥

तब युधिष्ठिर ने पूछा कि हे अमितपराक्रमी! आप किसका ध्यान कर रहे हैं? यह बड़े आश्चर्य की बात है। हे धर्मधारियों में श्रेष्ठ! आप इस ध्यान के वास्तविक रहस्य को बताइये। तब श्रीकृष्ण जी ने कहा कि बाणों की शय्या पर लेटे हुए भीष्म पितामह शान्त होती हुई अग्नि के समान हो रहे हैं। जो बुद्धिमान् और महातेजस्वी दिव्यास्त्रों और अंगों सहित चारों वेदों को धारण करते हैं, उन्हीं के चिन्तन में मेरा मन लगा हुआ है। हे पाण्डु कुमार! जो जमदग्नि के पुत्र परशुराम के अर्थात् उनकी शिष्य परम्परा में विद्यमान् वर्तमान परशुराम के प्रिय शिष्य हैं और सारी विद्याओं के आधार स्वरूप हैं, उन्हीं भीष्म जी को मैं मन में स्मरण कर रहा था।

तस्मिन् हि पुरुषव्याघ्रे कर्मभिः स्वैर्दिवं गते।
भविष्यति मही पार्थ नष्टचन्द्रेव शर्वरी॥ ९॥
तद् युधिष्ठिर गाङ्गेयं भीष्मं भीमपराक्रमम्।
अभिगम्योपसंगृह्य पृच्छ यत् ते मनोगतम्॥ १०॥
चातुर्विद्यं चातुर्होत्रं चातुराश्रम्यमेव च।
राजधर्मांश्च निखिलान् पृच्छैनं पृथिवीपते॥ ११॥
तस्मिन्नस्तमिते भीष्मे कौरवाणां धुरंधरे।
ज्ञानान्यस्तं गमिष्यन्ति तस्मात् त्वां चोदयाम्यहम्॥ १२॥

हे कुन्तीपुत्र! वे पुरुषव्याघ्र जब अपने कार्मों के अनुसार स्वर्ग को चले जायेंगे। तब यह भूमि उनके बिना ऐसे हो जायेगी, जैसे बिना चन्द्रमा के रात्रि हो। इसलिये हे युधिष्ठिर! आप भयंकर पराक्रमी भीष्म जी के पास जाकर, उनके चरणों में प्रणाम करके, जो आपके मन में सन्देह हो, उसे पूछिये। हे पृथिवीपति! आप चारों प्रकार की विद्याओं, चारों प्रकार के यज्ञों, चारों आश्रमों के धर्मों और सारे राजधर्मों को उनसे पूछिये। कौरवों के धुरन्धर भीष्म रूपी सूर्य के अस्त हो जाने पर, सब प्रकार के ज्ञानों का प्रकाश भी अस्त हो जायेगा। इसीलिये मैं आपसे वहाँ चलने के लिये कहता हूँ।

तच्छ्रुत्वा वासुदेवस्य तथ्यं वचनमुत्तमम्।
साश्रुकण्ठः स धर्मज्ञो जनार्दनमुवाच ह॥ १३॥
यद् भवानाह भीष्मस्य प्रभावं प्रति माधव।
तथा तन्नात्र संदेहो विद्यते मम माधव॥ १४॥
यदि त्वनुग्रहवती बुद्धिस्ते मयि माधव।
त्वामग्रतः पुरस्कृत्य भीष्मं यास्यामहे वयम्॥ १५॥

श्रीकृष्ण जी के यथार्थ उत्तम वचनों को सुनकर धर्मज्ञ युधिष्ठिर का गला भर आया। उन्होंने श्रीकृष्ण जी से कहा कि हे माधव! आपने भीष्म पितामह के प्रभाव के बारे में जो कहा है, वह वैसा ही है। उसमें कोई सन्देह नहीं है। हे माधव! यदि आपका विचार मुझ पर अनुग्रह करने का है तो आपको आगे करके ही हम वहाँ जायेंगे।

श्रुत्वैवं धर्मराजस्य वचनं मधुसूदनः।
पार्श्वस्थं सात्यकिं प्राह रथो मे युज्यतामिति॥ २०॥
सात्यकिस्त्वाशु निष्क्रम्य केशवस्य समीपतः।
दारुकं प्राह कृष्णस्य युज्यतां रथ इत्युत॥ २१॥

धर्मराज की इस बात को सुनकर श्रीकृष्ण जी ने अपने समीप बैठे हुए सात्यकि से कहा कि मेरे रथ को तैयार कराओ। तब सात्यकि ने श्रीकृष्ण जी के पास से जल्दी बाहर आकर उनके सारथी दारुक से कहा कि श्रीकृष्ण जी के रथ को तैयार करो।

तेईसवाँ अध्याय : कुरुक्षेत्र में श्रीकृष्ण जी की भीष्म जी से युधिष्ठिर को उपदेश की प्रार्थना।

ततः स च हृषीकेशः स च राजा युधिष्ठिरः।
कृपादयश्च ते सर्वे चत्वारः पाण्डवाश्च ते॥ १॥
रथैस्तैर्नगरप्रख्यैः पताकाध्वजशोभितैः।
ययुराशु कुरुक्षेत्रं वाजिभिः शीघ्रगामिभिः॥ २॥
ततस्ते ददृशुर्भीष्मं शरप्रस्तरशायिनम्।
स्वरश्मिजालसंवीतं सायंसूर्यसमप्रभम्॥ ३॥
उपास्यामानं मुनिभिर्देवैरिव शतक्रतुम्।
देशे परमधर्मिष्ठे नदीमोघवतीमनु॥ ४॥

तब वे श्रीकृष्ण, राजा युधिष्ठिर, कृपाचार्य आदि और चारों पाण्डव नगरों के समान विशाल, ध्वज पताकाओं से सुशोभित, शीघ्रगामी घोड़ों से जुते हुए, रथों के द्वारा शीघ्रता से कुरुक्षेत्र की तरफ बढ़े। वहाँ उन्होंने बाणों के बिस्तर पर सोते हुए भीष्म पितामह को देखा, जो अपनी किरणों से घिरे हुए सायंकाल के सूर्य के समान प्रकाशित हो रहे थे। जैसे देवता लोग इन्द्र को घेरकर बैठते हैं, वैसे ही मुनि लोग ओघवती नदी के किनारे, उस परम धर्म से युक्त स्थान पर उनके पास बैठे हुए थे।

दूरादेव तमालोक्य कृष्णो राजा च धर्मजः।
चत्वारः पाण्डवाश्चैव ते च शारद्वतादयः॥ ५॥
अवस्कन्द्याथ वाहेभ्यः संयम्य प्रचलं मनः।
एकीकृत्येन्द्रियग्राम- मुपतस्थुर्महामुनीन्॥ ६॥
अभिवाद्य तु गोविन्दः सात्यकिस्ते च पार्थिवाः।
व्यासादीनृषिमुख्यांश्च गाङ्गेयमुपतस्थिरे॥ ७॥
ततो वृद्धं तथा दृष्ट्वा गाङ्गेयं यदुकौरवाः।
परिवार्य ततः सर्वे निषेदुः पुरुषर्षभाः॥ ८॥

दूर से ही उनको देखकर, श्रीकृष्ण, धर्मज्ञ राजा, चारों पाण्डव, कृपाचार्य आदि रथों से उतरकर, अपने चंचल मनों को, अपनी इन्द्रियों को एकाग्र कर उन महामुनियों की सेवा में उपस्थित हुए। फिर श्रीकृष्ण, सात्यकि और वे राजालोग व्यास आदि प्रमुख ऋषियों को प्रणाम कर गंगापुत्र भीष्मजी के पास गये। वे यदुवंशी और कौरव पुरुषश्रेष्ठ, बूढ़े गंगापुत्र के दर्शनकर उन्हें घेरकर बैठ गये।

ततो निशाम्य गाङ्गेयं शाम्यमानमिवानलम्।
किंचिद् दीनमना भीष्ममिति होवाच केशवः॥ ९॥
कच्चिज्ज्ञानानि सर्वाणि प्रसन्नानि यथा पुरा।
कच्चिन्न व्याकुल चैव बुद्धिस्ते वदतां वर॥ १०॥
शराभिघातदुःखात् ते कच्चिद् गात्रं न दूयते।
मानसादपि दुःखाद्धि शारीरं बलवत्तरम्॥ ११॥
सुसूक्ष्मोऽपि तु देहे वै शल्यो जनयते रुजम्।
किं पुनः शरसंघातैश्चितस्य तव पार्थिव॥ १२॥

फिर श्रीकृष्ण जी ने शान्त होती हुई अग्नि के समान गंगापुत्र भीष्म को सुनाकर, कुछ दीनता के साथ कहना आरम्भ किया कि हे वक्ताओं में श्रेष्ठ भीष्मजी! क्या आपकी सारी ज्ञानेन्द्रियाँ पहले की भाँति प्रसन्न हैं? आपकी बुद्धि व्याकुल तो नहीं है। बाणों की चोटों के दुख से आपके शरीर में विशेष पीड़ा तो नहीं हो रही है? मानसिक दुख की अपेक्षा शरीर का दुख अधिक प्रबल होता है। शरीर में गड़ा हुआ अत्यन्तबारीक काँटा भी बड़ी पीड़ा देता है, फिर हे राजन्! आपका शरीर तो बाणों के समूह से भरा हुआ है, आपकी पीड़ा का क्या कहना है?

संहारश्चैव भूतानां धर्मस्य च फलोदयः।
विदितस्ते महाप्राज्ञ त्वं हि धर्ममयो निधिः॥ १३॥
त्वां हि राज्ये स्थितं स्फीते समग्राङ्गमरोगिणम्।
स्त्रीसहस्त्रैः परिवृतं पश्यामीवोर्ध्वरेतसम्॥ १४॥
ऋते शान्तनवाद् भीष्मात् त्रिषु लोकेषु पार्थिव।
सत्यधर्मान्महावीर्याच्छूराद् धर्मैकतत्परात्॥ १५॥
मृत्युमावार्य तपसा शरसंस्तरशायिनः।
निसर्गप्रभवं किंचिन्न च तातानुशुश्रुम॥ १६॥

हे महाप्राज्ञ! प्राणियों के संहार, धर्म के फल और उसके उदय इन सारी बातों के विषय में आप जानते हैं, क्योंकि आप धर्म के भण्डार हैं। आप एक समृद्धिशाली राज्य के अधिकारी थे, आपके सारे अंग ठीक थे, आप हजारों स्त्रियों के बीच में रहते थे, फिर भी मैं आपको अखण्ड ब्रह्मचर्य से युक्त ही देखता हूँ। हे राजन्! मैने शान्तनुपुत्र भीष्म के सिवाय किसी दूसरे मनुष्य के विषय में ऐसा नहीं सुना है, जिसने अपने सत्यधर्म, महापराक्रम, शूरवीरता, एक मात्र धर्म में तत्परता और तपस्या के द्वारा बाणों के बिस्तरे पर शयन करते हुए, शरीर के लिये स्वाभाविक मृत्यु को रोक दिया हो।

सत्ये तपसि दाने च यज्ञाधिकरणे तथा।
धनुर्वेदे च वेदे च नीत्यां चैवानुरक्षणे॥ १७॥
अनृशंसं शुचिं दान्तं सर्वभूतहिते रतम्।
महारथं त्वत्सदृशं न कंचिदनुशुश्रुम॥ १८॥
त्वं हि देवान् सगन्धर्वानसुरान् यक्षराक्षसान्।
शक्तस्त्वेकरथेनैव विजेतुं नात्र संशयः॥ १९॥
मनुष्येषु मनुष्येन्द्र न दृष्टो न च मे श्रुतः।
भवतो वा गुणैर्युक्तः पृथिव्यां पुरुषः क्वचित्॥ २०॥

सत्य, तपस्या, दान, यज्ञ का अनुष्ठान, धनुर्वेद, वेद, नीतिशास्त्र का ज्ञान, प्रजारक्षण, कोमलतापूर्ण बर्ताव, पवित्रता, दमनशीलता और सारे प्राणियों के हित में लगे रहना इन गुणों में मैंने आपके समान किसी दूसरे महारथी को नहीं सुना है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि आप देवताओं, गन्धर्वों, असुरों, यक्षों और राक्षसों सबको एक रथ के द्वारा ही जीतने में समर्थ थे। हे मनुष्येन्द्र! मानवों में आपके समान गुणवान् व्यक्ति मैने इस पृथिवी पर न तो कोई देखा है और न सुना है।

तदस्य तप्यमानस्य ज्ञातीनां संक्षयेन वै।
ज्येष्ठस्य पाण्डुपुत्रस्य शोकं भीष्म व्यपानुद॥ २१॥
ये हि धर्माः समाख्याताश्चातुर्वर्ण्यस्य भारत।
चातुराश्रम्यसंयुक्ताः सर्वे ते विदितास्तव॥ २२॥
चातुर्विद्ये च ये प्रोक्ताश्चातुर्होत्रे च भारत।
चातुर्वर्ण्यस्य यश्चोक्तो धर्मो न स्म विरुध्यते॥ २३॥
सेव्यमानः सवैयाख्यो गाङ्गेय विदितस्तव।

अतः भीष्मजी! आपसे निवेदन है कि पाण्डु के सबसे बड़े पुत्र युधिष्ठिर आपने कुटुम्बी जनों के विनाश से बड़े सन्तप्त हैं। आप इनके शोक को दूर कीजिये। शास्त्रों में चारों वर्णों और चारों आश्रमों के लिये जो धर्म बताये गये हैं, चारों विद्याओं में जिन धर्मों का प्रतिपादन किया गया है और चारों होताओं

के जो कर्त्तव्य बताये गये हैं। वे सब आपको पता हैं। हे गंगापुत्र! चारों वर्णों के लिये जो अविरोधी धर्म बताया गया है, जिसका सारे लोग सेवन करते हैं, वह व्याख्या सहित आपको विदित है।

देशजातिकुलानां च जानीषे धर्मलक्षणम्॥ २४॥
वेदोक्तो यश्च शिष्टोक्तः सदैव विदितस्तव।
इतिहासपुराणार्थाः कात्स्न्र्येन विदितास्तव॥ २५॥
धर्मशास्त्रं च सकलं नित्यं मनसि ते स्थितम्।
ये च केचन लोकेऽस्मिन्नर्थाः संशयकारकाः।
तेषां छेत्ता नास्ति लोके त्वदन्यः पुरुषर्षभ॥ २६॥

आप देश, जाति और कुल के धर्मों के लक्षण जानते हैं। वेदों में प्रतिपादित, तथा शिष्ट लोगों के द्वारा कहे गये धर्म को भी आप सदा से जानते हैं। इतिहास और पुराणों के भी अर्थ आपको पूर्ण रूप से ज्ञात हैं। सारे धर्मशास्त्र आपके मन में सदा स्थित रहते हैं। हे पुरुषश्रेष्ठ! इस संसार में जो भी संदेहग्रस्त विषय हैं, उनका समाधान करनेवाला आपके सिवाय कोई दूसरा नहीं है।

स पाण्डवेयस्य मनःसमुस्थितं
नरेन्द्र शोकं व्यपकर्ष मेधया।
भवद्विधा ह्युत्तमबुद्धिविस्तरा
विमुह्यमानस्य नरस्य शान्तये॥ २७॥

हे नरेन्द्र! पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर के मन में जो शोक उमड़ रहा है, उसे आप अपनी बुद्धि से दूर कीजिये। आप जैसे बुद्धि के उत्तम विस्तारवाले व्यक्ति ही मोहग्रस्त मनुष्य को शान्ति प्रदान कर सकते हैं।

भीष्मउवाच

ब्राह्मणानां यथा धर्मो दानमध्ययनं तपः।
क्षत्रियाणां तथा कृष्ण समरे देहपातनम्॥ २८।
पितॄन् पितामहान् भ्रातॄन् गुरून् सम्बन्धिबान्धवान्।
मिथ्याप्रवृत्तान् यः संख्ये निहन्याद् धर्म एव सः॥ २९॥
समयत्यागिनो लुब्धान् गुरूनपि च केशवः।
निहन्ति समरे पापान् क्षत्रियो यः स धर्मवित्॥ ३०॥
यो लोभान्न समीक्षेत धर्मसेतुं सनातनम्।
निहन्ति यस्तं समरे क्षत्रियो वै स धर्मवित्॥ ३१॥

तब भीष्म जी ने कहा कि जैसे ब्राह्मणों का धर्म दान, अध्ययन और तप हैं, वैसे ही क्षत्रियों का धर्म हे कृष्ण! युद्ध में शत्रुओं के शरीर को मार गिराना है। जो असत्यमार्ग पर चलनेवाले पिता, पितामह, भाई, गुरु, सम्बन्धियों और बान्धवों को भी युद्ध में मार देता है, उसका वह कार्य धर्म ही है। हे कृष्ण! जो क्षत्रिय मर्यादा का उलंघन करनेवाले, लोभी और पापाचारी गुरुओं को भी युद्ध में मार देता है, वह धर्म का ज्ञाता है। जो लाभ के कारण, सनातनधर्म की मर्यादा पर विचार नहीं करता, उसे जो क्षत्रिय युद्ध में मार देता है, वह धर्म का ज्ञाता है।

लोहितोदां केशतृणां गजशैलां ध्वजद्रुमाम्।
महीं करोति युद्धेषु क्षत्रियो यः स धर्मवित्॥ ३२॥
आहूतेन रणे नित्यं योद्धव्यं क्षत्रबन्धुना।
धर्म्यं स्वर्ग्यं च लोक्यं च युद्धं हि मनुरब्रवीत्॥ ३३॥

जो क्षत्रिय युद्धों में भूमि को रक्त की नदी, बाल रूपी घास, हाथीरूपी पर्वतों और ध्वजोंरूपी वृक्षों से युक्त कर देता है, वह धर्म को जाननेवाला है। क्षत्रियबन्धु को युद्ध में शत्रु के ललकारने पर सदा युद्ध करना चाहिये। मनु ने कहा है कि युद्ध क्षत्रिय के लिये धर्म का पोषक, स्वर्ग को प्राप्त करानेवाला और लोक में यश फैलाने वाला है।

एवमुक्तस्तु भीष्मेण धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः।
विनीतवदुपागम्य तस्थौ संदर्शनेऽग्रतः॥ ३४॥
अथास्य पादौ जग्राह भीष्मश्चापि ननन्द तम्।
मूर्ध्नि चैनमुपाघ्राय निषीदेत्यब्रवीत् तदा॥ ३५॥
तमुवाचाथ गाङ्गेयो वृषभः सर्वधन्विनाम्।
मां पृच्छ तात विश्रब्धं मा भैस्त्वं कुरुसत्तम॥ ३६॥

भीष्मजी के ऐसा कहने पर धर्मपुत्र युधिष्ठिर, उनकी दृष्टि के समीप जाकर विनीत व्यक्ति के समान खड़े होगये। फिर उन्होंने उनके पैरों को पकड़ लिया। भीष्मजी ने भी उनका सम्मान किया। उनका सिर सूंघकर कहा कि बेटा बैठ जाओ। तब सारे धनुर्धरों में श्रेष्ठ, गंगापुत्र भीष्म ने उनसे कहा कि हे तात! मैं इस समय स्वस्थ हूँ। हे कुरुश्रेष्ठ! तुम निश्चिंत होकर मुझसे पूछो और भय मत करो।

चौबीसवाँ अध्याय : भीष्म द्वारा राजधर्म का वर्णन।

युधिष्ठिर उवाच

यथा हि रश्मयोऽश्वस्य द्विरदस्याङ्कुशो यथा।
नरेन्द्रधर्मो लोकस्य तथा प्रग्रहणं स्मृतम्॥ १॥
तत्र चेत् सम्प्रमुह्येत धर्मे राजर्षिसेविते।
लोकस्य संस्था न भवेत् सर्वं च व्याकुलीभवेत्॥ २॥
उदयन् हि यथा सूर्यो नाशयत्यशुभं तमः।
राजधर्मास्तथालोक्यां निक्षिपन्त्यशुभां गतिम्॥ ३॥
तदग्रे राजधर्मान् हि मदर्थे त्वं पितामह।
प्रब्रूहि भरतश्रेष्ठ त्वं हि धर्मभृतां वरः॥ ४॥
आगमश्च परस्त्वत्तः सर्वेषां नः परंतप।
भवन्तं हि परं बुद्धौ वासुदेवोऽभिमन्यते॥ ५॥

तब युधिष्ठिर ने कहा कि जैसे लगाम घोड़े को बस में रखती है और अंकुश हाथी को काबू में करता है, उसी प्रकार राजधर्म भी संसार को मर्यादा में रखने के लिये आवश्यक कहा गया है। राजर्षियों के द्वारा सेवित उस राजधर्म के पालन में यदि राजा प्रमाद कर बैठे तो संसार में व्यवस्था न रहे और लोग दुखी हो जायें। जैसे सूर्य उदय होकर अमंगलमय अन्धकार को नष्ट कर देता है, वैसे ही राजधर्म लोगों के अशुभ आचरणों का निवारण कर देता है। इसलिये हे भरतश्रेष्ठ, पितामह! आप सबसे पहले मुझे राजधर्मों का ही वर्णन कीजिये। आप सारे धर्मधारियों में श्रेष्ठ हैं। हे परंतप! हम सबको शास्त्रों का उत्तम ज्ञान आपसे ही हो सकता है। श्रीकृष्ण भी आपको ही बुद्धि में सर्वश्रेष्ठ मानते हैं।

भीष्म उवाच

शृणु कार्त्स्न्येन मत्तस्त्वं राजधर्मान् युधिष्ठिर।
निरुच्यमानान् नियतो यच्चान्यदपि वाञ्छसि॥ ६॥
उत्थानेन सदा पुत्र प्रयतेथा युधिष्ठिर।
न ह्युत्थानमृते दैवं राज्ञामर्थं प्रसादयेत्॥ ७॥
विपन्ने च समारम्भे संतापं मा स्म वै कृथाः।
घटस्वैव सदाऽऽत्मानं राज्ञामेष परो नयः॥ ८॥

तब भीष्म जी ने कहा कि हे युधिष्ठिर! तुम मुझसे एकाग्र होकर सम्पूर्ण राजधर्मों का वर्णन तथा और भी जो कुछ सुनना चाहते हो, उसे सुनो! हे पुत्र युधिष्ठिर! उन्नति के लिये सदा प्रयत्न करते रहो। बिना पुरुषार्थयुक्त उन्नति के केवल भाग्य ही राजाओं के प्रयोजन को सिद्ध नहीं करता। यदि आरम्भ किये हुए कार्य में रुकावट पड़ जाये तो सन्ताप मत करो! तुम सदा अपने आपको पुरुषार्थ में लगाये रखो। राजाओं की यह परम नीति है।

न हि सत्यादृते किंचिद् राज्ञां वै सिद्धिकारकम्।
सत्ये हि राजा निरतः प्रेत्य चेह च नन्दति॥ ९॥
ऋषीणामपि राजेन्द्र सत्यमेव परं धनम्।
तथा राज्ञां परं सत्यान्नान्यद् विश्वासकारणम्॥ १०॥
गुणवाञ्शीलवान् दान्तो मृदुर्धर्म्यो जितेन्द्रियः।
सुदर्शः स्थूललक्ष्यश्च न भ्रश्येत सदा श्रियः॥ ११॥
आर्जवं सर्वकार्येषु श्रयेथाः कुरुनन्दन।
पुनर्नयविचारेण त्रयीसंवरणेन च॥ १२॥

राजाओं के लिये सत्य के अतिरिक्त कोई और वस्तु सिद्धि करानेवाली नहीं है। सत्य का पालन करनेवाला राजा इस लोक में और परलोक में भी सुख को पाता है। हे राजेन्द्र! ऋषियों का भी सत्य ही परमधन है। प्रजा में विश्वास जमाने के लिये राजाओं के पास सत्य से बढ़कर दूसरा साधन नहीं है। जो राजा गुणवान्, अच्छे आचरणवाला, दमनशील, कोमल, धर्म का पालन करनेवाला, जितेन्द्रिय, सुन्दर दिखाई देनेवाला और बड़े लक्ष्यवाला होता है, वह कभी लक्ष्मी से विचलित नहीं होता। हे कुरुनन्दन! सारे कार्यों में कोमलता का ही आश्रय लो पर नीतिशास्त्र पर विचार करने से यह बात सिद्ध होती है कि अपने छिद्र, अपनी मंत्रणा और अपने कार्यकौशल इन तीन बातों को गुप्त रखने में कोमलता का व्यवहार ठीक नहीं है।

मृदुर्हि राजा सततं लङ्घ्यो भवति सर्वशः।
तीक्ष्णाच्चोद्विजते लोकस्तस्मादुभयमाश्रय॥ १३॥
दुर्गेषु च महाराज षट्सु ये शास्त्रनिश्चिताः।
सर्वदुर्गेषु मन्यन्ते नरदुर्गं सुदुस्तरम्॥ १४॥
तस्मान्नित्यं दया कार्या चातुर्वर्ण्ये विपश्चिता।
धर्मात्मा सत्यवाक् चैव राजा रञ्जयति प्रजाः॥ १५॥
न च क्षान्तेन ते नित्यं भाव्यं पुत्र समन्ततः।
अधर्मो हि मृदू राजा क्षमावानिव कुञ्जरः॥ १६॥

जो राजा सदा कोमलता का ही बर्ताव करता है, उसकी आज्ञा का लोग उल्लंघन करने लगते हैं। पर जो सदा कठोरता का व्यवहार करता है, उससे लोग परेशान हो जाते हैं, इसलिये तुम आवश्यकता के अनुसार दोनों कोमलता और कठोरता का बर्ताव करो। हे महाराज! शास्त्रों में छः प्रकार के दुर्ग बताये गये हैं। उनमें मानव दुर्ग को ही अत्यन्त दुर्लंघ्य माना गया है। इसलिये बुद्धिमान् राजा को चारों वर्णों पर दयापूर्ण व्यवहार करना चाहिये। धर्मात्मा और सत्यवादी राजा ही प्रजा को प्रसन्न रख सकता है। हे पुत्र! तुम्हें सदा क्षमाशील ही नहीं होना चाहिये, क्योंकि क्षमाशील हाथी के समान कोमल स्वभाव वाला राजा दूसरों को भयभीत न कर सकने के कारण अधर्म का प्रचार करनेवाला बन जाता है।

बार्हस्पत्ये च शास्त्रे च श्लोको निगदितः पुरा।
अस्मिन्नर्थे महाराज तन्मे निगदतः शृणु॥ १७॥
क्षममाणं नृपं नित्यं नीचः परिभवेज्जनः।
हस्तियन्ता गजस्यैव शिर एवारुरुक्षति॥ १८॥
तस्मान्नैव मृदुर्नित्यं तीक्ष्णो नैव भवेन्नृपः।
वासन्तार्क इव श्रीमान् न शीतो न च घर्मदः॥ १९॥
प्रत्यक्षेणानुमानेन तथौपम्यागमैरपि।
परीक्ष्यास्ते महाराज स्वे परे चैव नित्यशः॥ २०॥

हे महाराज! बृहस्पतिशास्त्र का एक प्राचीन श्लोक इसी विषय में पढ़ा जाता है, उसे मैं बताता हूँ। सुनो! क्षमाशील राजा का नीचलोग उसीप्रकार तिरस्कार करते रहते हैं, जैसे हाथी का महावत सदा उसके सिर पर ही चढ़े रहना चाहता है। इसलिये राजा को न तो सदा कोमल रहना चाहिये और न सदा कठोर। जैसे वसन्तऋतु का तेजस्वी सूर्य न तो कड़ी धूप करता है और न अधिक ठंडक पहुँचाता है। हे महाराज! प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और आगम, इन चारों प्रमाणों के द्वारा सदा अपने और पराये की पहचान करते रहना चाहिये।

व्यसनानि च सर्वाणि त्यजेथा भूरिदक्षिण।
न चैव न प्रयुञ्जीत सङ्गं तु परिवर्जयेत्॥ २१॥
लोकस्य व्यसनी नित्यं परिभूतो भवत्युत।
भवितव्यं सदा राज्ञा गर्भिणीसहधर्मिणा॥ २२॥
यथा हि गर्भिणी हित्वा स्वं प्रियं मनसोऽनुगम्।
गर्भस्य हितमाधत्ते तथा राज्ञाप्यसंशयम्॥ २३॥
वर्तितव्यं कुरुश्रेष्ठ सदा धर्मानुवर्तिना।
स्वं प्रियं तु परित्यज्य यद् यल्लो कहितं भवेत्॥ २४॥

हे प्रचुर दक्षिणा देने वाले! तुम्हें सभीप्रकार के व्यसन त्याग देने चाहियें पर उपयोगी होने पर भी कभी किसी का प्रयोग न किया जाये, यह बात नहीं है। व्यसनों के प्रति आसक्ति का परित्याग कर देना चाहिये। व्यसनों में आसक्त राजा लोगों के अनादर का पात्र होता है। राजा को प्रजा के साथ गर्भिणी स्त्री का सा बर्ताव करना चाहिये। जैसे गर्भिणी स्त्री अपने प्रिय भोजन आदि का त्यागकर गर्भ के बच्चे के हित का ध्यान रखती है उसी प्रकार धर्म का पालन करनेवाले राजा को भी प्रजा के साथ व्यवहार करना चाहिये। हे कुरुश्रेष्ठ! उसे प्रिय लगनेवाले विषयों को त्याग कर, लोगों के हितवाला कार्य करना चाहिये।

न संत्याज्यं च ते धैर्यं कदाचिदपि पाण्डव।
धीरस्य स्पष्टदण्डस्य न भयं विद्यते क्वचित्॥ २५॥
परिहासश्च भृत्यैस्ते नात्यर्थं वदतां वर।
कर्तव्यो राजशार्दूल दोषमत्र हि मे शृणु॥ २६॥
अवमन्यन्ति भर्तारं संघर्षादुपजीविनः।
स्वे स्थाने न च तिष्ठन्ति लङ्घयन्ति च तद्वचः॥ २७॥
प्रेष्यमाणा विकल्पन्ते गुह्यं चाप्यनुयुञ्जते।
अयाच्यं चैव याचन्ते भोज्यान्याहारयन्ति च॥ २८॥

हे पाण्डुपुत्र! तुम्हें कभी भी धैर्य का त्याग नहीं करना चाहिये। जो राजा सदा धैर्य रखता है और अपराधियों को दण्ड देने में संकोच नहीं करता, उसे कभी भय नहीं होता। हे वक्ताओं में श्रेष्ठ, राजसिंह! तुम्हें कभी भी सेवकों के साथ अधिक हँसी मजाक नहीं करना चाहिये। इसके दोषों को तुम मुझसे सुनो। राजा के सेवक जब मुँहलगे होजाते हैं, तो वे अपने स्वामी का अपमान कर बैठते हैं, वे मर्यादा में नहीं रहते और उसकी आज्ञा का उल्लंघन करने लगते हैं। किसी कार्य के लिये उन्हें भेजा जाये, तो वे उसकी सफलता में सन्देह उत्पन्न कर देते हैं। वे राजा की छिपी हुई त्रुटियों को सब के सामने प्रकट कर देते हैं। न माँगनेयोग्य पदार्थों को भी माँगने लग जाते हैं तथा राजा के लिये रखे हुए खाद्य पदार्थों में से स्वयं भी खा लेते हैं।

क्रुश्यन्ति परिदीप्यन्ति भूमिपायाधितिष्ठते।
उत्कोचैर्वञ्चनाभिश्च कार्याण्यनुविहान्ति च॥ २९॥

जर्जरं चास्य विषयं कुर्वन्ति प्रतिरूपकैः।
स्त्रीरक्षिभिश्च सज्जन्ते तुल्यवेषा भवन्ति च॥ ३०॥
वान्तं निष्ठीवनं चैव कुर्वते चास्य संनिधौ।
निर्लज्जा राजशार्दूल व्याहरन्ति च तद्वचः॥ ३१॥
हयं वा दन्तिनं वापि रथं वा नृपसत्तम।
अभिरोहन्त्यनादृत्यं हर्षुले पार्थिवे मृदौ॥ ३२॥

वे राजा को कोसते हैं, उसके प्रति क्रोध से तमतमाने लगते हैं और घूस लेकर तथा धोखा देकर राजा के कार्यों में विघ्न डालते हैं। वे जाली आज्ञा पत्र जारीकर राज्य को जर्जर कर देते हैं। वे स्त्रियों के रक्षकों से मिल जाते हैं या उनके समान वेशभूषा धारणकर घूमते फिरते हैं। राजा के समीप ही मुँह फाड़कर जम्हाई लेते और थूकते हैं। हे राजसिंह! वे मुँहलगे नौकर लज्जा को छोड़कर मनमानी बातें बोलते हैं। हे नृपश्रेष्ठ! परिहास में कोमल राजा को प्राप्तकर वे उसके हाथी, घोड़े अथवा रथ को अपनी सवारी के काम में लाते हैं।

इदं ते दुष्करं राजन्निदं ते दुष्टचेष्टितम्।
इत्येव सुहृदो वाचं वदन्ते परिषद्गताः॥ ३३॥
क्रुद्धे चास्मिन् हसन्त्येव न च हृष्यन्ति पूजिताः।
संघर्षशीलाश्च तदा भवन्त्यन्योन्यकारणात्॥ ३४॥
लीलया चैव कुर्वन्ति सावज्ञास्तस्य शासनम्।
अलंकारे च भोज्ये च तथा स्नानानुलेपने॥ ३५॥
हेलनानि नरव्याघ्र स्वस्थास्तस्योपशृण्वतः।

वे लोग दरबार में बैठकर मित्रों के समान तरह तरह की बातें करने लगते हैं कि हे राजन्! यह कार्य आपके लिये करना कठिन है, आपका यह बर्ताव बहुत बुरा है आदि। इस बात से राजा यदि क्रोध प्रकट करे , तो वे उस पर हँस देते हैं। उसके द्वारा सम्मानित होने पर भी वे प्रसन्न नहीं होते। वे सेवक परस्पर स्वार्थसाधन के लिये विवाद करने लगते हैं। वे राजा के आदेशों की अवहेलनाकर खिलवाड़ करते हुए उनका पालन करते हैं। हे पुरुषसिंह! वे राजा के समीप ही उसके सुनते रहने पर, निर्भय होकर उसके आभूषण पहनने, खाने, नहाने और चन्दन लगाने आदि का मजाक उड़ाया करते हैं।

निन्दन्ते स्वानधीकारान् संत्यजन्ते च भारत॥ ३६॥
न वृत्त्या परितुष्यन्ति राजदेयं हरन्ति च।
क्रीडितुं तेन चेच्छन्ति ससूत्रेणेव पक्षिणा॥ ३७॥
अस्मत्प्रणेयो राजेति लोकांश्चैव वदन्त्युत।
एते चैवापरे चैव दोषाः प्रादुर्भवन्त्युत।
नृपतौ मार्दवोपेते हर्षुले च युधिष्ठिर॥ ३८॥

वे अपने को मिले कार्यों की निन्दा करते हैं और उन्हें छोड़ भी देते हैं। उन्हें जो वेतन आदि दिया जाता है, उससे वे सन्तुष्ट नहीं होते और राजकीय धन को चुराते रहते हैं। जैसे धागे में बँधी हुई चिड़िया से लोग खेलते हैं, वैसे ही वे राजा के साथ भी खेलना चाहते हैं और लोगों से कहते हैं कि राजा तो हमारा गुलाम है। हे युधिष्ठिर! राजा के परिहासशील, कोमल स्वभाव का होने पर ये तथा दूसरे दोष भी प्रकट होने लगते हैं।

पच्चीसवाँ अध्याय : राजा के धर्म तथा नीतिपूर्ण व्यवहार की व्याख्या।

नित्योद्युक्तेन वै राजा भवितव्यं युधिष्ठिर।
प्रशस्यते न राजा ' हि नारीवोद्यमवर्जितः॥ १॥
भगवानुशना चाह श्लोकमत्र विशाम्पते।
तदिहैकमना राजन् गदतस्तं निबोध मे॥ २॥
द्वाविमौ ग्रसते भूमिः सर्पो बिलशयानिव।
राजानं चाविरोद्धारं ब्राह्मणं चाप्रवासिनम्॥ ३॥
तदेतन्नरशार्दूल हृदि त्वं कर्तुमर्हसि।
संधेयानभिसंधत्व विरोध्यांश्च विरोधय॥ ४॥

हे युधिष्ठिर! राजा को सदा उद्यमशील होना चाहिये। जो राजा स्त्रियों के समान उद्योग को छोड़कर बैठा रहता है, उसकी प्रशंसा नहीं होती। हे प्रजानाथ! इस विषय में शुक्राचार्य जी ने श्लोक कहा है, तुम उसे एकाग्रचित्त होकर सुनो। उन्होंने कहा है कि जैसे साँप बिल में रहने वाले चूहे आदि को खा जाता है, उसी प्रकार भूमि भी युद्ध न करनेवाले राजा को और विदेशयात्रा न करनेवाले ब्राह्मण को निगल जाती है। इसलिये हे नरसिंह! तुम्हें हृदय में यह निश्चय कर लेना चाहिये कि जो सन्धि करनेयोग्य हों, उनसे सन्धिकरो, पर जो विरोध के पात्र हैं, उनका डटकर विरोध करो।

सप्ताङ्गस्य च राज्यस्य विपरीतं य आचरेत्।
गुरुर्वा यदि वा मित्रं प्रतिहन्तव्य एव सः॥ ५॥
मरुत्तेन हि राज्ञा वै गीतः श्लोकः पुरातनः।
राजाधिकारे राजेन्द्र बृहस्पतिमते पुरा॥ ६॥
गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याकार्यमजानतः।
उत्पथप्रतिपन्नस्य दण्डो भवति शाश्वतः॥ ७॥
बाहोः पुत्रेण राज्ञा च सगरेण च धीमता।
असमञ्जाः सुतो ज्येष्ठस्त्यक्तः पौरहितैषिणा॥ ८॥
असमंजाः सरय्वां स पौराणां बालकान् नृप।
न्यमज्जयदतः पित्रा निर्भर्त्स्य स विवासितः॥ ९॥

राज्य के सात अंग होते हैं। जो उन अंगों से युक्त राज्य के विपरीत आचरण करे, वह चाहे गुरु हो या मित्र, मार डालनेयोग्य ही है। पहले मरुत्त राजा ने एक श्लोक कहा था, वह बृहस्पति के मत के अनुसार राजा के अधिकार के विषय में बताता है। उस में कहा गया है कि गुरु भी यदि अभिमान में भरकर, कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य का ज्ञान न रखे और कुमार्ग पर चलने लगे, तो उसे भी दण्ड देने का सनातन विधान है। बाहु के पुत्र श्रीमान् राजा सगर ने अपने पुरवासियों के हित के लिये अपने सबसे बड़े पुत्र असमंजा को त्याग दिया था। हे राजन्! असमंजा पुरवासियों के बच्चों को सरयु नदी में डुबो दिया करता था, इसलिये राजा ने उसे डाँटकर घर से निकाल दिया।

ऋषिणोद्दालकेनापि श्वेतकेतुर्महातपाः।
मिथ्या विप्रानुपचरन् संत्यक्तो दयितः सुतः॥ १०॥
लोकरञ्जनमेवात्र राज्ञां धर्मः सनातनः।
सत्यस्य रक्षणं चैव व्यवहारस्य चार्जवम्॥ ११॥
न हिंस्यात् परवित्तानि देयं काले च दापयेत्।
विक्रान्तः सत्यवाक् क्षान्तो नृपो न चलते पथः॥ १२॥

उद्दालक ऋषि ने भी अपने प्रिय महातपस्वी पुत्र श्वेतकेतु को इसलिये त्याग दिया कि वह ब्राह्मणों से मिथ्या, कपटपूर्ण व्यवहार करता था। प्रजा का रंजन करना ही राजा का सनातन धर्म है। उसे चाहिये कि वह व्यवहार में कोमलता रखे और सत्य की रक्षा करे। दूसरे के धन का नाश न करे। जो दूसरे को दिलाना है, उसे समय पर दिलाये। जो राजा पराक्रमी, सत्यवादी और क्षमाशील होता है, वह अपने पथ से भ्रष्ट नहीं होता।

आत्मवांश्च जितक्रोधः शास्त्रार्थकृतनिश्चयः।
धर्मे चार्थे च कामे च मोक्षे च सततं रतः॥ १३॥
त्रय्यां संवृतमन्त्रश्च राजा भवितुमर्हति।
वृजिनं च नरेन्द्राणां नान्यच्चारक्षणात् परम्॥ १४॥
चातुर्वर्ण्यस्य धर्मांश्च रक्षितव्या महीक्षिता।
धर्मसंकररक्षा च राज्ञां धर्मः सनातनः॥ १५॥
न विश्वसेच्च नृपतिर्न चात्यर्थं च विश्वसेत्।
षाड्गुण्यगुणदोषांश्च नित्यं बुद्ध्यावलोकयेत्॥ १६॥

जिसने अपनेआपको वश में कर लिया है, क्रोध को जीत लिया है और शास्त्रों के अर्थ का निश्चयात्मक ज्ञान प्राप्त कर लिया है, जो धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति में सदा लगा रहता है, जिसे वेदों का ज्ञान है और जिसकी मन्त्रणा गुप्त रहती है, वही व्यक्ति राजा होने के योग्य है। प्रजा की रक्षा न करने से बढ़कर राजा के लिये दूसरा पाप नहीं है। राजा को चारों वर्णों के धर्मों की रक्षा करनी चाहिये। प्रजा को धर्म संकरता से बचाना राजा का सनातन धर्म है। राजा को चाहिये कि वह किसी पर विश्वास न करे। विश्वसनीय व्यक्ति का भी अत्यन्त विश्वास न करे। राजनीति के जो छैः गुण होते हैं, उन की अपनी बुद्धि से विवेचना करता रहे।

द्विट्छिद्रदर्शी नृपतिर्नित्यमेव प्रशस्यते।
त्रिवर्गं विदितार्थश्च युक्तचारोपधिश्च यः॥ १७॥
कोशस्योपार्जनरतिर्य- मवैश्रवणोपमः ।
वेत्ता च दशवर्गस्य स्थानवृद्धिक्षयात्मनः॥ १८॥
अभृतानां भवेद् भर्ता भृतानामन्ववेक्षकः।
नृपतिः सुमुखश्च स्यात् स्मितपूर्वाभिभाषितः॥ १९॥
उपासिता च वृद्धानां जिततन्द्रिरलोलुपः।
सतां वृत्ते स्थितमतिः संतोष्यश्चारुदर्शनः॥ २०॥

शत्रुओं के छिद्रों को देखनेवाले राजा की सदा प्रशंसा की जाती है। जिसे धर्म, अर्थ और काम के रहस्य का ज्ञान है, जिसने शत्रुओं पर अपने गुप्तचर लगाये हुए हैं, वह भी प्रशंसा के योग्य है। राजा की अपने खजाने को भरापूरा रखने में रुचि होनी चाहिये। धन में उसे कुबेर के समान और न्याय करने में यमराज के समान होना चाहिये। उसे स्थान, वृद्धि और क्षय के हेतु दस वर्गों का सदा ज्ञान रखना चाहिये। जिनका भरणपोषण नहीं होरहा हो, राजा उनका भरणपोषण स्वयं करे और जिनका भरणपोषण

होरहा है, उन सबकी देखभाल रखे। राजा को चाहिये कि वह प्रसन्नमुख रहे और मुस्कराकर बात करे। राजा को वृद्ध पुरुषों की सेवा करनी चाहिये। आलस्य को जीते और लालच का त्याग करे, सत्पुरुषों के आचरण में मन लगाये, सन्तुष्ट होनेयोग्य स्वभाव बनाये रखे तथा सुन्दर लगनेवाले वस्त्र पहने।

न चाददीत वित्तानि सतां हस्तात् कदाचन।
असद्भ्यश्च समादद्यात् सद्भ्यस्तु प्रतिपादयेत्॥ २१॥
स्वयं प्रहर्ता दाता च वश्यात्मा रम्यसाधनः।
काले दाता च भोक्ता च शुद्धाचारस्तथैव च॥ २२॥
शूरान् भक्तानसंहार्यान् कुले जातानरोगिणः।
शिष्टाञ्शिष्टाभिसम्बन्धान्मानिनोऽनवमानिनः॥ २३॥
विद्याविदो लोकविदः परलोकान्ववेक्षकान्।
धर्मे च निरतान् साधूनचलानचलानिव॥ २४॥
सहायान् सततं कुर्याद् राजा भूतिपुरस्कृतः।
तैश्च तुल्यो भवेद् भोगैश्छत्रमात्राज्ञयाधिकः॥ २५॥

कभी भी सत्पुरुषों से धन को न छीने। असाधु व्यक्तियों से दण्ड के रूप में धन लेना चाहिये, साधु पुरुषों को तो धन देना चाहिये। शत्रुओं पर स्वयं प्रहार करे, दानशील बने, मन को बस में रखे, सुन्दर साधनों से युक्त रहे। समय पर धन का दान और भोग करे और अपने आचरण को शुद्ध बनाये रखे। जो शूरवीर अपने भक्त हों, जिन्हें शत्रु फोड़ न सकें, जो कुलीन और स्वस्थ, तथा शिष्ट एवं शिष्ट व्यक्तियों से सम्बन्ध रखनेवाले हों, जो अपने सम्मान की रक्षा करते हुए दूसरों का अपमान न करें, जो विद्वान्, लोकव्यवहार को जाननेवाले, शत्रुओं की गतिविधियों पर निगाह रखनेवाले, धर्म में लगे हुए, साधुस्वभाव, पर्वत के समान अटल हों, ऐसे लोगों को राजा सदा अपना सहायक बनाये और उन्हें ऐश्वर्य से पुरस्कृत करता रहे। उन्हें अपने समान सुख भोग की सुविधा दे, केवल आज्ञा देने और छात्र धारण करने में ही उनकी अपेक्षा अधिक रहे।

प्रत्यक्षा च परोक्षा च वृत्तिश्चास्य भवेत् समा।
एवं कुर्वन् नरेन्द्रोऽपि न खेदमिह विन्दति॥ २६॥
सर्वाभिशङ्की नृपतिर्यश्च सर्वहरो भवेत्।
स क्षिप्रमनृजुर्लुब्धः स्वजनेनैव वध्यते॥ २७॥
शुचिस्तु पृथिवीपालो लोकचित्तग्रहे रतः।
न पतत्यरिभिर्ग्रस्तः पतितश्चावतिष्ठते॥ २८॥
अक्रोधनो ह्यव्यसनी मृदुदण्डो जितेन्द्रियः।
राजा भवति भूतानां विश्वासो हिमवानिव॥ २९॥

उनके साथ राजा का प्रत्यक्ष और परोक्ष भी एक जैसा व्यवहार होना चाहिये। ऐसा राजा कभी खेद को प्राप्त नहीं करता। जो राजा सब पर शंका करता है और सब के सर्वस्व को हर लेता है, वह कठोर और लोभी एक दिन अपने ही लोगों से मारा जाता है। जो राजा पवित्र भावना रखते हुए, प्रजा के हृदयों को अपनाने का यत्न करता रहता है, वह शत्रुओं का आक्रमण होने पर, उनसे पराजित नहीं होता, यदि पराजित होजाता हैं, तो सहायकों की सहायता से पुनः उठ जाता है। जिसमें न तो क्रोध और न कोई व्यसन है, जिसका दण्ड भी कोमल है, जो जितेन्द्रिय है, वह राजा हिमालय के समान प्राणियों का विश्वास पात्र होजाता है।

प्राज्ञस्त्यागगुणोपेतः पररन्ध्रेषु तत्परः।
सुदर्शः सर्ववर्णाना नयापनयवित् तथा॥ ३०॥
क्षिप्रकारी जितक्रोधः सुप्रसादो महामनाः।
अरोषप्रकृतिर्युक्तः क्रियावानविकत्थनः॥ ३१॥
आरब्धान्येव कार्याणि सुपर्यवसितानि च।
यस्य राज्ञः प्रदृश्यन्ति स राजा राजसत्तमः॥ ३२॥
पुत्रा इव पितुर्गेहे विषये यस्य मानवाः।
निर्भया विचरिष्यन्ति स राजा राजसत्तमः॥ ३३॥

जो बुद्धिमान्, त्यागी, गुणों से युक्त, शत्रुओं के दोष देखने में तत्पर, सुन्दर दिखाई देनेवाला, सारे वर्णों के न्याय और अन्याय को समझने वाला, शीघ्र कार्य करने वाला, क्रोध को वश में रखने वाला, अच्छी कृपा करनेवाला, महामनस्वी, कोमल स्वभाव से युक्त, कर्मठ, आत्मप्रशंसा से रहित है, और जिस राजा के आरम्भ किये हुए कार्य सुन्दररूप से समाप्त होते दिखाई देते हैं, वह राजा राजाओं में श्रेष्ठ है। जिसके देश में मनुष्य ऐसे रहते हैं, जैसे पुत्र पिता के घर में निर्भीक होकर रह रहे हों, वह राजा राजाओं में श्रेष्ठ है।

अगूढविभवा यस्य पौरा राष्ट्रनिवासिनः।
नयापनयवेत्तारः स राजा राजसत्तमः॥ ३४॥
स्वकर्मनिरता यस्य जना विषयवासिनः।
असंघातरता दान्ताः पाल्यमाना यथाविधि॥ ३५॥
वश्या नेया विधेयाश्च न च संघर्षशीलिनः।

विषये दानरुचयो नरा यस्य स पार्थिवः॥ ३६॥
न यस्य कूटं कपटं न माया न च मत्सरः।
विषये भूमिपालस्य तस्य धर्मः सनातनः॥ ३७॥

जिस राजा के नगर तथा देशवासी चोरों का भय न होने से धन को छिपाकर नहीं रखते और न्याय तथा अन्याय को समझते हैं, वह राजा सारे राजाओं में श्रेष्ठ है। जिस राजा के राज्य में निवास करनेवाले अपने कार्यों में लगे रहते हैं, वे एकदूसरे की हिंसा नहीं करते और दमनशील होते हैं, विधिपूर्वक उनका पालन किया जाता है, जहाँ प्रजाजन वश में किये जाने योग्य, शिक्षा देनेयोग्य और आज्ञापालन कराने योग्य हों, झगड़ालू न हों और दान देने में रुचि रखते हों, वह राजा राजाओं में श्रेष्ठ है। जिस राजा के राज्य में कूटनीति, कपट, छल और ईर्ष्या का अभाव होता है, उसी के द्वारा सनातन धर्म का पालन किया जाता है।

यः सत्करोति ज्ञानानि ज्ञेये परहिते रतः।
सतां वर्त्मानुगस्त्यागी स राजा राज्यमर्हति॥ ३८॥
यस्य चाराश्च मन्त्राश्च नित्यं चैव कृताकृताः।
न ज्ञायन्ते हि रिपुभिः स राजा राज्यमर्हति॥ ३९॥
श्लोकश्चायं पुरा गीतो भार्गवेण महात्मना।
आख्याते राजचरिते नृपतिं प्रति भारत॥ ४०॥
राजानं प्रथमं विन्देत् ततो भार्यां ततो धनम्।
राजन्यसति लोकस्य कुतो भार्या कुतो धनम्॥ ४१॥

जो राजा ज्ञानियों का सत्कार करता है, ज्ञान ग्रहण करने और दूसरों की भलाई में लगा रहता है, जो सज्जनों के मार्ग पर चलता और त्यागी है, वही राजा राज्य करने के योग्य है। जिसके गुप्तचर, गुप्तमन्त्रणा, किये हुए और न किये हुए दोनों तरह के कार्य, शत्रुओं के द्वारा कभी जाने न जासकें, वह राजा राज्य करने के योग्य होता है। हे भारत! पहले कभी महात्मा भार्गव ने किसी राजा के प्रति राजोचित कर्त्तव्यों का वर्णन करते हुए इस श्लोक का गान किया था। वह श्लोक इस प्रकार है कि मनुष्य को चाहिये कि पहले अच्छे राजा को प्राप्त करे, उसके पश्चात् पत्नी से विवाह करे और फिर धनसंग्रह करे। यदि लोकरक्षक राजा नहीं होगा तो पत्नी कैसे सुरक्षित रहेगी और धन की रक्षा कैसे होगी?

तद्राज्ये राज्यकामानां नान्यो धर्मः सनातनः।
ऋते रक्षां तु विस्पष्टां रक्षा लोकस्य धारिणी॥ ४२॥
प्राचेतसेन मनुना श्लोकौ चेमावुदाहृतौ।
राजधर्मेषु राजेन्द्र ताविहैकमनाः शृणु॥ ४३॥
षडेतान् पुरुषो जह्याद् भिन्नां नावमिवार्णवे।
अप्रवक्तारमाचार्य- मनधीयानमृत्विजम्॥ ४४॥
अरक्षितारं राजानं भार्यां चाप्रियवादिनीम्।
ग्रामकामं च गोपालं वनकामं च नापितम्॥ ४५॥

राज्य की इच्छा रखनेवाले राजाओं के राज्य में स्पष्टरूप से प्रजा की रक्षा के बिना और कोई सनातन धर्म नहीं है। प्रजा की रक्षा ही जगत को धारण करनेवाली है। हे राजेन्द्र! प्राचेतस मनु ने राजधर्म के विषय में इन दो श्लोकों को कहा है। तुम उन दोनों को एकाग्रचित्त हो कर सुनो। वे श्लोक ये है कि जैसे टूटी हुई नाव को समुद्र में ही छोड़ दिया जाता है, वैसे ही मनुष्य को इन छः प्रकार के मनुष्यों का त्याग कर देना चाहिये। वे छः मनुष्य ये हैं उपदेश न देने वाला आचार्य, अध्ययन न करने वाला ऋत्विज, रक्षा न करने वाला राजा, कटु वचन बोलने वाली पत्नी, ग्राम में ही रहने को पसन्द करने वाले ग्वाले और वन में रहने की इच्छा वाला नाई। इन छः मनुष्यों को छोड़ देना चाहिये।

छब्बीसवाँ अध्याय : भीष्म के द्वारा राज्य की रक्षा के उपायों का वर्णन। सायंकाल युधिष्ठिर आदि का विदा लेकर जाना

एतत् ते राजधर्माणां नवनीतं युधिष्ठिर।
बृहस्पतिर्हि भगवान् न्याय्यं धर्मं प्रशंसति॥ १॥
विशालाक्षश्च भगवान् काव्यश्चैव महातपाः।
सहस्राक्षो महेन्द्रश्च तथा प्राचेतसो मनुः॥ २॥
भरद्वाजश्च भगवांस्तथा गौरशिरा मुनिः।
राजशास्त्रप्रणेतारो ब्रह्मण्या ब्रह्मवादिनः॥ ३॥
रक्षामेव प्रशंसन्ति धर्मं धर्मभृतां वर।
राज्ञां राजीवताम्राक्ष साधनं चात्र मे शृणु॥ ४॥

हे युधिष्ठिर! यह तुम्हें मैने जो कुछ कहा है, वह राजधर्मरूपी दूध का मक्खन है। भगवान् बृहस्पति ने भी न्याययुक्त धर्म की प्रशंसा की है। भगवान् विशालाक्ष, महातपस्वी शुक्राचार्य, असंख्यज्ञान की आँखोंवाले इन्द्र, प्राचेतसमनु, भगवान् भरद्वाज और मुनि गौरशिरा ये सारे ब्राह्मण भक्त, ब्रह्मवादी तथा राजधर्म के शास्त्रों के निर्माता हैं। हे धर्मधारियों में श्रेष्ठ! इस सबने प्रजा की रक्षा की ही प्रशंसा की है। हे कमलनयन। अब राजाओं के जो रक्षा साधन हैं, उन्हें सुनो—

चारश्च प्रणिधिश्चैव काले दानममत्सरात्।
युक्त्यादानं न चादानमयोगेन युधिष्ठिर॥ ५॥
सतां संग्रहणं शौर्यं दाक्ष्यं सत्यं प्रजाहितम्।
अनार्जवैरार्जवैश्च शत्रुपक्षस्य भेदनम्॥ ६॥
केतनानां च जीर्णानामवेक्षा चैव सीदताम्।
द्विविधस्य च दण्डस्य प्रयोगः कालचोदितः॥ ७॥
साधूनामपरित्यागः कुलीनानां च धारणम्।
निचयश्च निचेयानां सेवा बुद्धिमतामपि॥ ८॥
बलानां हर्षणं नित्यं प्रजानामन्ववेक्षणम्।
कार्येष्वखेदः कोशस्य तथैव च विवर्धनम्॥ ९॥
पुरगुप्तिरविश्वासः पौरसंघातभेदनम्।
अरिमध्यस्थमित्राणां यथावच्चान्ववेक्षणम्॥ १०॥
उपजापश्च भृत्यानामात्मनः पुरदर्शनम्।
अविश्वासः स्वयं चैव परस्याश्वासनं तथा॥ ११॥
नीतिधर्मानुसरणं नित्यमुत्थानमेव च।
रिपूणामनवज्ञानं नित्यं चानार्यवर्जनम्॥ १२॥

हे युधिष्ठिर! गुप्तचर रखना, दूसरे राज्यों में अपने राजदूत नियुक्त करना, बिना ईर्ष्या के सेवकों को समय पर वेतन, युक्ति से कर लेना, अन्याय से प्रजा के धन को न छीनना, सज्जन व्यक्तियों का संग्रह, शूरवीरता, चतुराई, सत्यवादिता, प्रजा की भलाई, सरल या कुटिल उपायों से शत्रु में फूट डालना, पुरानों घरों की मरम्मत, दीनदुखियों की देखभाल, समय के अनुसार शारीरिक और आर्थिक दण्ड देना, साधुओं का त्याग न करना, कुलीनों को अपने पास रखना, संग्रहयोग्य वस्तुओं का संग्रह, बुद्धिमानों की सेवा, सेना को प्रसन्न रखना, प्रजा की देखभाल, कार्य करने में खेद का अनुभव न करना, कोष को बढ़ाना, नगर की रक्षा का पूरा प्रबन्ध, इस विषय में दूसरों पर विश्वास न करना, शत्रु, मित्र और मध्यस्थों पर यथोचित दृष्टि रखना, नगर वासियों में अपना विरोध हो तो उनमें फूट पड़वा देना, दूसरों के द्वारा अपने सेवकों में भी गुट बन्दी न होने देना, स्वयं ही नगर की देखभाल, स्वयं किसी पर पूरा विश्वास न करना, दूसरों को आश्वासन, नीति धर्म का पालन, सदा ही उद्योगशील बने रहना, शत्रुओं की तरफ से सावधान रहना और दुष्ट मनुष्यों को सदा के लिये त्याग देना, ये सभी राज्य की रक्षा के साधन हैं।

उत्थानं हि नरेन्द्राणां बृहस्पतिरभाषत।
राजधर्मस्य तन्मूलं श्लोकांश्चात्र निबोध मे॥ १३॥
उत्थानवीरः पुरुषो वाग्वीरानधितिष्ठति।
उत्थानवीरान् वाग्वीरा रमयन्त उपासते॥ १४॥
उत्थानहीनो राजा हि बुद्धिमानपि नित्यशः।
प्रधर्षणीयः शत्रूणां भुजङ्ग इव निर्विषः॥ १५॥
न च शत्रुरवज्ञेयो दुर्बलोऽपि बलीयसा।
अल्पोऽपि हि दहत्यग्निर्विषमल्पं हिनस्ति च॥ १६॥

राजाओं के लिये उद्योग ही राजधर्म का मूल है। उद्योग के महत्व के विषय में बृहस्पति जी के श्लोकों को सुनो। उन्होंने कहा है कि जो व्यक्ति उद्योग करने में वीर होता है, वह केवल वाणी में वीर जो व्यक्ति होते हैं, उन पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लेता है। वाणी के वीर जो विद्वान् होते

हैं, वे उद्योगवीर का मनोरंजन करते हुए उसकी उपासना करते हैं। जो उद्योग से हीन राजा होता है, वह बुद्धिमान् होने पर भी, विषहीन सर्प के समान सदा शत्रुओं से परास्त होता रहता है। बलवान् व्यक्ति को कभी दुर्बल शत्रु की भी अवहेलना नहीं करनी चाहिये, क्योंकि थोड़ी सी आग भी जला देती है और थोड़ा सा विष भी मार देता है।

एकाङ्गेनापि सम्भूतः शत्रुर्दुर्गमुपाश्रितः।
सर्वं तापयते देशमपि राज्ञः समृद्धिनः॥ १७॥
राज्ञो रहस्यं यद् वाक्यं जयार्थं लोकसंग्रहः।
हृदि यच्चास्य जिह्मं स्यात् कारणेन च यद् भवेत्॥ १८॥
यच्चास्य कार्यं वृजिनमार्जवेनैव धारयेम्।
दम्भनार्थं च लोकस्य धर्मिष्ठामाचरेत् क्रियाम्॥ १९॥
राज्यं हि सुमहत् तन्त्रं धार्यते नाकृतात्मभिः।
न शक्यं मृदुना वोढुमायासस्थानमुत्तमम्॥ २०॥

चतुरंगिणी सेना के एक अंग से युक्त होने पर भी शत्रु दुर्ग का आश्रय लेकर, समृद्धिशाली राजा के सारे देश को भी सन्तप्त कर देता है। राजा को जो रहस्य की बात हो, विजय के लिये वह लोगों का जो संग्रह कर रहा है, विजय के लिये हृदय में जो कुटिल कार्य छिपा हुआ है, अथवा उसे न करने योग्य असत्कार्य भी करना हो, उसे सरलभाव से छिपाये रखना चाहिये। लोगों में अपनी प्रतिष्ठा बनाये रखने के लिये, राजा को सदा धार्मिक कार्यों का अनुष्ठान करते रहना चाहिये। जिसने अपने मन को बस में नहीं किया हुआ, वह राज्य को जो कि एक महान् तन्त्र है, धारण नहीं कर सकता। कोमल व्यक्ति भी राज्य के तन्त्र का भार नहीं उठा सकता। उसके लिये राज्य एक बड़ा जंजाल बन जाता है।

यद्यप्यस्य विपत्तिः स्याद् रक्षमाणस्य वैप्रजाः।
सोऽप्यस्य विपुलो धर्म एवंवृत्ता हि भूमिपाः॥ २१॥
एष ते राजधर्माणां लेशः समनुवर्णितः।
भूयस्ते यत्र संदेहस्तद् ब्रूहि कुरुसत्तम॥ २२॥
ततो व्यासश्च भगवान् देवस्थानोऽश्म एव च।
वासुदेवः कृपश्चैव सात्यकिः संजयस्तथा॥ २३॥
साधु साध्विति संहृष्टाः पुष्प्यमाणैरिवाननैः।
अस्तुवंश्च नरव्याघ्रं भीष्मं धर्मभृतां वरम्॥ २४॥

यदि प्रजा की रक्षा करते हुए राजा की मृत्यु भी हो जाये तो वह भी उसके लिये महान् धर्म है। राजाओं के व्यवहार ऐसे ही होने चाहियें। हे कुरुश्रेष्ठ! यह तुम्हें राजधर्म का थोड़ा सा मैंने वर्णन किया है। अब तुम्हें पुनः जिस बात में सन्देह हो पूछो। तब भगवान् वेदव्यास, देवस्थान, अश्म, श्रीकृष्ण, कृपाचार्य, सात्यकि और संजय बहुत प्रसन्न होकर, खिले हुए मुखों से साधु साधु कहते हुए, धर्मधारियों में श्रेष्ठ, नरव्याघ्र भीष्मजी की प्रशंसा करने लगे।

ततो दीनमना भीष्ममुवाच कुरुसत्तमः।
नेत्राभ्यामश्रुपूर्णाभ्यां पादौ तस्य शनैः स्पृशन्॥ २५॥
श्व इदानीं स्वसन्देहं प्रक्ष्यामि त्वां पितामह।
उपैति सविता ह्यस्तं रसमापीय पार्थिवम्॥ २६॥

तब कुरुश्रेष्ठ युधिष्ठिर ने दीनभाव के साथ, आँसूभरी आँखोंसहित धीरेधीरे भीष्म जी के चरणों का स्पर्श किया और कहा कि हे पितामह! सूर्य पृथिवी के रस को पीकर अब अस्त होने जा रहे हैं। अब मैं कल आपसे अपने सन्देहों को पूछूँगा।

दृषद्वतीं चाप्यवगाह्य सुव्रताः
कृतोदकार्थाः कृतजप्यमङ्गलाः।
उपास्य संध्यां विधिवत् परंतपा-
स्ततः पुरं ते विविशुर्गजाह्वयम्॥ २७॥

फिर दृषद्वती नदी में स्नान करके, मंगलकारी आदि और विधिपूर्वक सन्ध्या करके उन परन्तप वीरों ने हस्तिनापुर में प्रवेश किया।

सत्ताईसवाँ अध्याय : अगले दिन भीष्म जी के द्वारा वर्ण धर्म का वर्णन।

ततः कल्यं समुत्थाय कृतपूर्वाह्णिकक्रियाः।
ययुस्ते नगराकारै रथैः पाण्डवयादवाः॥ १॥
प्रतिपद्य कुरुक्षेत्रं, गाङ्गेयं रथिनां वरम्।
व्यासादीनभिवाद्यर्षीन् सर्वैस्तैश्चाभिनन्दिताः॥ २॥
निषेदुरभितो भीष्मं परिवार्य समन्ततः।
ततः पुनः स गाङ्गेयमभिवाद्य पितामहम्॥ ३॥
प्राञ्जलिर्नियतो भूत्वा पर्यपृच्छद् युधिष्ठिरः।
के धर्माः सर्ववर्णानां चातुर्वर्ण्यस्य के पृथक्॥ ४॥
चातुर्वर्ण्याश्रमाणां च राजधर्माश्च के मताः।

अगले दिन प्रातःकाल उठकर और नित्यकर्म करके, पाण्डव और यादवलोग नगर के आकारवाले विशाल रथों द्वारा कुरुक्षेत्र की तरफ चल दिये। कुरुक्षेत्र में पहुँच कर रथियों में श्रेष्ठ गंगापुत्र भीष्म और व्यासादि ऋषियों को प्रणामकर और उनसे अभिनन्दित होकर वे भीष्म जी को चारोंतरफ से घेरकर बैठ गये। फिर अपने मन को वश में कर और भीष्म पितामह को पुनः प्रणाम करके और हाथ जोड़कर युधिष्ठिर ने पूछा कि सारे वर्णों के कौन से समान और पृथक् धर्म हैं? चारों आश्रमों के कौन-कौन से धर्म हैं? और राजा के पालन करने योग्य कौन से धर्म माने गये हैं?

भीष्म उवाच

अक्रोधः सत्यवचनं संविभागः क्षमा तथा॥ ५॥
प्रजनः स्वेषु दारेषु शौचमद्रोह एव च।
आर्जवं भृत्यभरणं नवैते सार्ववर्णिकाः॥ ६॥
ब्राह्मणस्य तु यो धर्मस्तं ते वक्ष्यामि केवलम्।
दममेव महाराज धर्ममाहुः पुरातनम्॥ ७॥
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव तत्र कर्म समाप्यते।

तब भीष्म जी ने कहा कि किसी पर क्रोध न करना, सत्य बोलना, धन का ठीक प्रकार से बँटवारा करना, अपनी ही स्त्री से सन्तान उत्पन्न करना, पवित्र रहना, किसी से द्रोह न करना, कोमल रहना और सेवकों का पालनपोषण ये नौ धर्म सारे वर्णों के लिये उपयोगी हैं। अब मैं केवल ब्राह्मणों के धर्म को बता रहा हूँ। हे महाराज! इन्द्रिय दमन को ही ब्राह्मणों का पुराना धर्म बताया गया है। इसके अतिरिक्त उन्हें स्वाध्याय का अभ्यास करना चाहिये। इसी में उनके कर्मों की समाप्ति हो जाती है।

तं चेद् द्विजमुपागच्छेद् वर्तमानं स्वकर्मणि॥ ८॥
अकुर्वाणं विकर्माणि शान्तं प्रज्ञानतर्पितम्।
कुर्वीतापत्यसंतानमथो दद्याद् यजेत च॥ ९॥
संविभज्य च भोक्तव्यं धनं सद्भिरितीर्यते।
परिनिष्ठितकार्यस्तु स्वाध्यायेनैव ब्राह्मणः॥ १०॥
कुर्यादन्यन्न वा कुर्यान्मैत्रो ब्राह्मण उच्यते।

अपने वर्णोचित कर्म में विद्यमान, शान्तचित्त, तथा ज्ञानविज्ञान से तृप्त ब्राह्मण को यदि बिना बुरा कार्य किये धन की प्राप्ति हो जाये, तो उस धन से उसे विवाह करके सन्तान उत्पन्न करनी चाहिये या उस धन को दान और यज्ञ में लगा देना चाहिये। सत्पुरुषों का यही कहना है कि धन को बाँट कर खाना चाहिये। ब्राह्मण स्वाध्याय से ही अपने कार्यों से कृतकृत्य हो जाता है। चाहे फिर वह दूसरा कर्म करे या न करे। सब जीवों के प्रति मित्रता का भाव रखने से ही ब्राह्मण को मैत्र कहते हैं।

क्षत्रियस्यापि यो धर्मस्तं ते वक्ष्यामि भारत॥ ११॥
दद्याद् राजन् न याचेत यजेत न च याजयेत्।
नाध्यापयेदधीयीत प्रजाश्च परिपालयेत्॥ १२॥
नित्योद्युक्तो दस्युवधे रणे कुर्यात् पराक्रमम्।
ये तु क्रतुभिरीजानाः श्रुतवन्तश्च भूमिपाः॥ १३॥
य एवाहवजेतारस्त एषां लोकजित्तमाः।
अविक्षतेन देहेन समराद् यो निवर्तते॥ १४॥
क्षत्रियो नास्य तत् कर्म प्रशंसन्ति पुराविदः।

हे भारत! अब मैं क्षत्रियों के जो धर्म हैं, उन्हें बता रहा हूँ। हे राजन्! क्षत्रिय को दान तो करना चाहिये, पर किसी से याचना नहीं करनी चाहिये। यज्ञ करना चाहिये, पर दूसरों का यज्ञ नहीं कराना चाहिये। अध्ययन करना चाहिये, पर दूसरों को पढ़ाना नहीं चाहिये। प्रजाओं का पालन करना चाहिये। लुटेरों और डाकुओं के वध को सदा तैयार रहे तथा युद्ध क्षेत्र में पराक्रम को प्रकट करे। जो राजा लोग बड़े बड़े यज्ञों को करने वाले हैं और वेदों के ज्ञान से युक्त हैं तथा युद्ध में विजय प्राप्त करने वाले हैं, वे लोकों पर विजय प्राप्त करने वालों में उत्तम हैं। जो क्षत्रिय शरीर पर चोट खाये बिना ही युद्धभूमि

से लौट आता है, उसके इस कार्य की पुराने धर्मों को जाननेवाले प्रशंसा नहीं करते हैं।

एवं हि क्षत्रबन्धूनां मार्गमाहुः प्रधानतः॥ १५॥
नास्य कृत्यतमं किंचिदन्यद् दस्युनिबर्हणात्।
दानमध्ययनं यज्ञो राज्ञां क्षेमो विधीयते॥ १६॥
तस्माद् राज्ञा विशेषेण योद्धव्यं धर्ममीप्सता।
स्वेषु धर्मेष्ववस्थाप्य प्रजाः सर्वा महीपतिः॥ १७॥
धर्मेण सर्वकृत्यानि शमनिष्ठानि कारयेत्।

इस प्रकार युद्ध को ही क्षत्रियों का प्रधान कर्म कहा गया है। उनके लिये लुटेरों के विनाश के सिवाय कोई दूसरा श्रेष्ठ कर्म नहीं है। यद्यपि, दान, अध्ययन और यज्ञ से भी राजा का कल्याण होता है, पर युद्ध उनके लिये सबसे बढ़कर है। इसलिये धर्म को चाहने वाले राजा को युद्ध के लिये सदा उद्यत रहना चाहिये। राजा को चाहिये कि सारी प्रजा की अपने अपने धर्म में स्थापना करके, सारे शान्तिमय कार्य धर्म के अनुसार ही कराये।

वैश्यस्यापि हि यो धर्मस्तं ते वक्ष्यामि शाश्वतम्॥ १८॥
दानमध्ययनं यज्ञः शौचेन धनसंचयः।
पितृवत् पालयेद् वैश्यो युक्तः सर्वान् पशूनिह॥ १९॥
विकर्म तद् भवेदन्यत् कर्म यत् स समाचरेत्।
तस्य वृत्तिं प्रवक्ष्यामि यच्च तस्योपजीवनम्॥ २०॥
षण्णामेकां पिबेद् धेनुं शताच्च मिथुनं हरेत्।
लब्धाच्च सप्तमं भागं तथा शृङ्गे कलां खुरे॥ २१॥

वैश्यों के भी जो शाश्वत धर्म हैं, मैं उन्हें तुमसे कहता हूँ। दान, अध्ययन, यज्ञ, पवित्रता के साथ धन एकत्र करना ये वैश्य के धर्म हैं। वैश्य को चाहिये कि वह उद्योगशील रहकर, सब प्रकार के पशुओं की पिता के समान पालना करे। इन कार्यों के सिवाय यदि वह कुछ और करेगा तो उसके धर्म के विपरीत होगा। मैं वैश्य की उस वृत्ति का वर्णन करता हूँ, जिससे उसका जीविकोपार्जन हो। वैश्य यदि दूसरे की छः दुधारू गायों का एक वर्ष तक पालन करे तो उसमें से एक गाय का दूध वह स्वयं पीये। यदि सौ गायों का पालन करे तो एक गाय और एक बैल मालिक से वेतन के रूप में ले ले। उन पशुओं का दूध और सींग बेचने से धन प्राप्त हो तो उसमें से सातवाँ भाग वह अपने वेतन के रूप में रखले। पर खुर बेचने से जो धन मिले, उसमें से सोलहवाँ भाग ही ग्रहण करना चाहिये।

सस्यानां सर्वबीजानामेषा सांवत्सरी भृतिः।
न च वैश्यस्य कामः स्यान्न रक्षेयं पशूनिति॥ २२॥
वैश्ये चेच्छति नान्येन रक्षितव्याः कथंचन।
शूद्रस्यापि हि यो धर्मस्तं ते वक्ष्यामि भारत॥ २३॥
तेषां शुश्रूषणाच्चैव महत् सुखमवाप्नुयात्।
शूद्र एतान् परिचरेत् त्रीन् वर्णाननुपूर्वशः॥ २४॥
राज्ञा वा समनुज्ञातः कामं कुर्वीत धार्मिकः।
तस्य वृत्तिं प्रवक्ष्यामि यच्च तस्योपजीवनम्॥ २५॥

दूसरे के अनाज की फसलों और सब प्रकार के बीजों की रक्षा करने पर वैश्यों को उपज का सातवाँ भाग वर्ष में एक बार लेना चाहिये। वैश्य के मन में यह विचार नहीं आना चाहिये कि मैं पशुओं का पालन नहीं करूँगा। जब तक वैश्य पशुपालन का कार्य करना चाहे तब तक मालिक को किसी दूसरे से यह कार्य किसी प्रकार भी नहीं कराना चाहिये। हे भारत! अब मैं तुम्हें शूद्रों के धर्म के विषय में बताता हूँ। शूद्र को इन तीनों वर्णों की क्रमशः सेवा करनी चाहिये। उनकी सेवा से ही वह महान् सुख का भागी हो सकता है। धर्मात्मा शूद्र राजा की आज्ञा लेकर, अपनी इच्छा के अनुसार कोई धार्मिक कार्य कर सकता है। अब मैं उसकी जीविका के साधनों का वर्णन करता हूँ।

अवश्यं भरणीयो हि वर्णानां शूद्र उच्यते।
छत्रं वेष्टनमौशीरमुपानद् व्यजनानि च॥ २६॥
यातयामानि देयानि शूद्राय परिचारिणे।
अधार्याणि विशीर्णानि वसनानि द्विजातिभिः॥ २७॥
शूद्रायैव प्रदेयानि तस्य धर्मधनं हि तत्।
यं च कश्चिद् द्विजातीनां शूद्रः शुश्रूषुराव्रजेत्॥ २८॥
कल्प्यां तेन तु ते प्राहुर्वृत्तिं धर्मविदो जनाः।
शूद्रेण तु न हातव्यो भर्ता कस्यांचिदापदि॥ २९॥
अतिरेकेण भर्तव्यो भर्ता द्रव्यपरिक्षये।

तीनों वर्णों को शूद्र का भरणपोषण अवश्य करना चाहिये, क्योंकि वह भरणपोषण करने योग्य कहा गया है। अपनी सेवा करने वाले शूद्र को उन्हें उपयोग में लाये हुए छत्र, पगड़ी, अनुलेपन, जूते और पंखे आदि देने चाहियें। द्विजातियों को उनके न पहनने योग्य फटे पुराने कपड़े शूद्र को

ही देने चाहिये। वह उनका धर्म के अनुसार धन है। धर्मवेत्ता पुरुषों का कहना है कि जिस द्विजाति की जो शूद्र सेवा करने के लिये आये, उसी को उसकी जीविका की व्यवस्था करनी चाहिये। शूद्र को अपने स्वामी का त्याग किसी आपत्ति में भी नहीं करना चाहिये। यदि स्वामी के धन का नाश हो जाये, तो अपने पास बचे हुए फालतू धन से शूद्र को अपने स्वामी का भरण पोषण करना चाहिये।

उत्तरस्त्रयाणां वर्णानां यज्ञस्तस्य च भारत॥ ३०॥
स्वाहाकारवषट्कारौ मन्त्रः शूद्रे न विद्यते।
तस्माच्छूद्रः पाकयज्ञैर्यजेताव्रतवान् स्वयम्॥ ३१॥
पूर्णपात्रमयीमाहुः पाकयज्ञस्य दक्षिणाम्।
शूद्रः पैजवनो नाम सहस्राणां शतं ददौ॥ ३२॥
ऐन्द्राग्नेन विधानेन दक्षिणामिति नः श्रुतम्।
यतो हि सर्ववर्णानां यज्ञस्तस्यैव भारत॥ ३३॥

हे भारत! यज्ञ का करना तीनों वर्णों तथा शूद्र के लिये भी बताया गया है। शूद्र के यज्ञ में स्वाहाकार, वषट्कार और वैदिक मन्त्रों का प्रयोग नहीं होता। अतः शूद्र स्वयं वैदिक व्रतों की दीक्षा न लेकर, पाक यज्ञों के द्वारा यज्ञ करे। पाकयज्ञों की दक्षिणा पूर्ण पाकमयी बतायी गयी है। हमने सुना है कि पैजवन नाम के शूद्र ने ऐन्द्राग्नयज्ञ की विधि से, मन्त्रहीन यज्ञ का अनुष्ठान करके, उसकी दक्षिण के रूप में एक लाख पूर्ण पात्र दान किये थे। हे भारत! सारे वर्णों के यज्ञों में सेवा करने के कारण शूद्र का भी भाग है।

अठ्ठाईसवाँ अध्याय : भीष्म के द्वारा आश्रमधर्म का वर्णन।

आश्रमाणां महाबाहो शृणु सत्यपराक्रम।
चतुर्णामपि नामानि कर्माणि च युधिष्ठिर॥ १॥
वानप्रस्थं भैक्ष्यचर्यं गार्हस्थ्यं च महाश्रमम्।
ब्रह्मचर्याश्रमं प्राहुश्चतुर्थं ब्राह्मणैर्वृतम्॥ २॥
जटाधारणसंस्कारं द्विजातित्वमवाप्य च।
आधानादीनि कर्माणि प्राप्य वेदमधीत्य च॥ ३॥
सदारो वाप्यदारो वा आत्मवान् संयतेन्द्रियः।
वानप्रस्थाश्रमं गच्छेत् कृतकृत्यो गृहाश्रमात्॥ ४॥

भीष्म जी ने कहा कि हे महाबाहु! हे सत्य पराक्रमी युधिष्ठिर! अब चारों आश्रमों के नाम और कर्म सुनो। ब्रह्मचर्य, महान् गृहस्थाश्रम, वानप्रस्थ और सन्यास ये चार आश्रम हैं। चौथे सन्यास आश्रम का अवलम्बन केवल ब्राह्मणों ने किया है अर्थात् जिसकी ब्राह्मणवृत्ति हो, उसे ही सन्यास धारण करना चाहिये। ब्रह्मचर्य आश्रम में चूड़ा कर्म संस्कार और उपनयन के पश्चात् द्विजत्व को प्राप्त हो, वेदाध्ययन पूर्ण करके, गृहस्थाश्रम में अग्निहोत्र आदि कर्म पूरे करके, मन और इन्द्रियों को वश में रखते हुए मनुष्य को पत्नी के साथ या बिना पत्नी के वानप्रस्थ आश्रम में गृहस्थाश्रम से कृतकृत्य होकर प्रवेश करना चाहिये।

चरितब्रह्मचर्यस्य ब्राह्मणस्य विशाम्पते।
भैक्षचर्यास्वधीकारः प्रशस्त इह मोक्षिणः॥ ५॥
यत्रास्तमितशायी, स्यान्निराशीरनिकेतनः।
यथोप लब्ध जीवी स्यान्मुनिर्दान्तो जितेन्द्रियः।
निराशीः स्यात् सर्वसमो निर्भोगो निर्विकारवान्॥ ६॥

हे प्रजानाथ! जिसने ब्रह्मचर्य का पालन किया है, उस ब्रह्मचारी ब्राह्मण के मन में यदि मोक्ष की इच्छा जाग उठे, तो उस मोक्ष के अभिलाषी को ब्रह्मचर्य आश्रम से ही सन्यास आश्रम ग्रहण करने का अधिकार प्राप्त हो जाता है। सन्यासी को चाहिये कि वह मन और इन्द्रियों को वश में रखते हुए, मुनि वृत्ति से रहे। वह किसी वस्तु की कामना न करे और कहीं अपने लिये रहने का स्थान न बनाये। निरन्तर घूमता रहे, जहाँ सूर्य छिप जाये, वहीं ठहर जाये और जो कुछ मिल जाये उसी पर निर्वाह करे। आशा और तृष्णा का त्याग करके सबके प्रति समान भाव रखे, भोगों से दूर रहे और हृदय में किसी प्रकार का विकार न आने दे।

अधीत्य वेदान् कृतसर्वकृत्यः
संतानमुत्पाद्य सुखानि भुक्त्वा।

समाहितः प्रचरेद् दुश्चरं यो
गार्हस्थ्यधर्मं मुनिधर्मजुष्टम्॥ ७॥
स्वदारतुष्टस्त्वृतु- कालगामी
नियोगसेवी न शठो न जिह्मः।
मिताशनो देवरतः कृतज्ञः
सत्यो मृदुश्चानृशंसः क्षमावान्॥ ८॥

जो वेदों का अध्ययन पूरा कर, वेदोक्त कर्मों का अनुष्ठान करने के पश्चात्, गृहस्थाश्रम में सन्तान को उत्पन्नकर, सुखों का भोगकर, एकाग्रचित्त हो, मुनिजनोचित धर्म से युक्त दुष्कर गृहस्थाश्रम का पालन करता है, वह उत्तम है। गृहस्थ को अपनी ही स्त्री से सन्तुष्ट होना चाहिये। ऋतुकाल में ही स्त्री का सेवन और शास्त्रों की आज्ञा का पालन करे। उसे शठता और कुटिलता से दूर रहना चाहिये, कम भोजन करते हुए, सदाचारी विद्वानों और परमात्मा की आराधना में लगा रहे। मन में कृतज्ञता का भाव, सत्यवादिता, कोमलता, दयालुता और क्षमा भाव रखे।

अथात्र नारायणगीतमाहु-
र्महर्षयस्तात महानुभावाः।
महार्थमत्यन्त- तपःप्रयुक्तं
तदुच्यमानं हि मया निबोध॥ ९॥
सत्यार्जवं चातिथिपूजनं च
धर्मस्तथार्थश्च रतिः स्वदारैः।
निषेवितव्यानि सुखानि लोके
ह्यस्मिन् परे चैव मतं ममैतत्॥ १०॥

हे तात! इस विषय में महानुभाव महर्षिगण नारायण गीत का उल्लेख किया करते हैं, जो महान् अर्थ से युक्त है और अत्यन्त तपस्या से प्रेरित होकर कहा गया है। उसे मैं तुम से कहता हूँ। तुम उसे समझो। सत्यवादिता, कोमलता, अतिथिकी पूजा, धर्म और अर्थ, अपनी पत्नी के साथ अनुराग और सुख का भोग, इस गुणों को धारण कर गृहस्थ व्यक्ति इस लोक और परलोक में भी सुख को प्राप्त होता है, यह मेरा मत है।

भरणं पुत्रदाराणां वेदानां धारणं तथा।
वसतामाश्रमं श्रेष्ठं वदन्ति परमर्षयः॥ ११॥
एवं हि यो ब्राह्मणो यज्ञशीलो
गार्हस्थ्यमध्यावसते यथावत्।
गृहस्थवृत्तिं प्रविशोध्य सम्यक्
स्वर्गे विशुद्धं फलमाप्नुते सः॥ १२॥

श्रेष्ठ आश्रम गृहाश्रम में निवास करनेवाले के लिये ऋषि लोग बताते हैं कि वह स्त्री और पुत्रों का भरण और वेदों का स्वाध्याय करे। इसप्रकार जो ब्राह्मण यज्ञशील होकर गृहस्थाश्रम का यथावत् पालन करता है, वह गृहस्थवृत्ति का ठीक प्रकार से शोधन कर परलोक में उत्तम गति को प्राप्त होता है।

स्मरन्नेको जपन्नेकः सर्वानेको युधिष्ठिर।
एकस्मिन्नेव चाचार्ये शुश्रूषुर्मलपङ्कवान्॥ १३॥
ब्रह्मचारी व्रती नित्यं नित्यं दीक्षापरो वशी।
परिचार्य तथा वेदं कृत्यं कुर्वन् वसेत् सदा॥ १४॥
शुश्रूषां सततं कुर्वन् गुरोः सम्प्रणमेत च।
षट्कर्मसु निवृत्तश्च न प्रवृत्तश्च सर्वशः॥ १५॥
न चरत्यधिकारेण सेवेत द्विषतो न च।
एषोऽऽश्रमपदस्तात ब्रह्मचारिण इष्यते॥ १६॥

हे युधिष्ठिर! ब्रह्मचारी को चाहिये कि अकेला ही वेद मन्त्रों का स्मरण और जप करता हुआ सारे कार्यों को करे। शरीर में यदि मैल और कीचड़ भी लगी हो तो भी एक आचार्य की सेवा में ही लगा रहे। ब्रह्मचारी को मन और इन्द्रियों को वश में रखते हुए, व्रतों का पालन करते हुए, सदा दीक्षा के पालन में तत्पर रहना चाहिये। उसे वेदों का स्वाध्याय करते हुए और सदा अपने कर्त्तव्यकर्मों का पालन करते हुए रहना चाहिये। गुरु की सेवा करता हुआ, वह उन्हें प्रणाम करे और षट् कर्मों से दूर रहते हुए असत् कर्मों में कभी प्रवृत्त न हो। ब्रह्मचारी को अपने अधिकार का प्रदर्शन करते हुए व्यवहार नहीं करना चाहिये। वह द्वेष रखने वालों के साथ न रहे। हे तात! ब्रह्मचारी के लिये यही आश्रमधर्म अभीष्ट है।

उनत्तीसवाँ अध्याय : वर्णाश्रम धर्म का वर्णन और राज्य धर्म की श्रेष्ठता।

युधिष्ठिर उवाच

शिवान् सुखान् महोदर्कानहिंस्त्राँल्लो कसम्मतान्।
ब्रूहि धर्मान् सुखोपायान् मद्विधानां सुखावहान्॥ १॥

भीष्म उवाच

ब्राह्मणस्य तु चत्वारस्त्वाश्रमा विहिताः प्रभो।
वर्णास्तान् नानुवर्तन्ते त्रयो भारतसत्तम॥ २॥

युधिष्ठिर ने कहा कि हे पितामह! आप उन धर्मों का वर्णन कीजिये, जो सब के लिये कल्याण कारी, सुखदायी, महान् उन्नति को करनेवाले, हिंसा रहित, लोकसम्मत, सुख के साधक तथा मुझ जैसे के लिये सुखपूर्वक आचरण में लाये जा सकने योग्य हों। तब भीष्म जी ने कहा कि हे भरतवंशियों में श्रेष्ठ प्रभो! ब्राह्मण के लिये तो चारों आश्रमों का विधान है, पर दूसरे तीन वर्णों के लोग सारे आश्रमों का अनुकरण नहीं करते हैं।

उक्तानि कर्माणि बहूनि राजन्
स्वर्ग्याणि राजन्यपरायणानि।
नेमानि दृष्टान्तविधौ स्मृतानि
क्षात्रे हि सर्वं विहितं यथावत्॥ ३॥
क्षात्राणि वैश्यानि च सेवमानः
शौद्राणि कर्माणि च ब्राह्मणः सन्।
अस्मिँल्लोके निन्दितो मन्दचेताः
परे च लोके निरयं प्रयाति॥ ४॥

हे राजन्! क्षत्रिय के लिये शास्त्रों में बहुत से उत्तम गति को प्राप्त कराने वाले कर्म कहे गये हैं, पर ये कर्म ब्राह्मण के लिये आदर्श नहीं हो सकते। क्षत्रिय के लिये सभी प्रकार के कर्मों का यथोचित विधान है। जो व्यक्ति ब्राह्मण होकर क्षत्रियों के, वैश्यों के और शूद्रों के कर्मों को करता है, वह मन्दबुद्धि इस लोक में निन्दा को प्राप्त होता है और परलोक में उसे अधम गति मिलती है।

या संज्ञा विहिता लोके दासे शुनि वृके पशौ।
विकर्मणि स्थिते विप्रे सैव संज्ञा च पाण्डव॥ ५॥
षट्कर्मसम्प्रवृत्तस्य आश्रमेषु चतुर्ष्वपि।
सर्वधर्मोपपन्नस्य संवृतस्य कृतात्मनः॥ ६॥
ब्राह्मणस्य विशुद्धस्य तपस्यभिरतस्य च।
निराशिषो वदान्यस्य लोका ह्यक्षरसम्मिताः॥ ७॥

हे पाण्डुपुत्र! संसार में दास, कुत्ते, भेड़िये और पशुओं के लिये जिन शब्दों का व्यवहार किया जाता है, अपने वर्णधर्म के विपरीत कार्यों में लगे हुए ब्राह्मण के लिये भी उन्हीं शब्दों का व्यवहार करना चाहिये। जो ब्राह्मण षट् कर्मों को करता हुआ, चारों आश्रमों में स्थित होकर, उनके सारे धर्मों का पालन करता है, वह धर्म के कवच से युक्त, मन को वश में किये हुए, विशुद्ध भावना वाला, तपस्या में लगा हुआ, आशा और तृष्णा से रहित और उदारता से युक्त अविनाशी लोकों को प्राप्त करता है।

ज्याकर्षणं शत्रुनिबर्हणं च
कृषिर्वणिज्या पशुपालनं च।
शुश्रूषणं चापि तथार्थहेतो-
रकार्यमेतत् परमं द्विजस्य॥ ८॥
सेव्यं तु ब्रह्म षट्कर्म गृहस्थेन मनीषिणा।
कृतकृत्यस्य चारण्ये वासो विप्रस्य शस्यते।
कौटिल्यं कौलटेयं च, कुसीदं च विवर्जयेत्॥ ९॥

धनुष की डोरी खींचना, शत्रुओं का विनाश, खेती, व्यापार, पशुपालन और धन के लिये दूसरों की सेवा ये ब्राह्मण के लिये अत्यन्त निषिद्ध कर्म हैं। मनीषी ब्राह्मण यदि गृहस्थी हो तो उसके लिये षट् कर्मों का करना ही उचित है। गृहस्थधर्म से कृतकृत्य हो जाने पर उसके लिये वानप्रथी होकर वन में वास करना उत्तम माना गया है। गृहस्थ ब्राह्मण को कुटिलता, कुलटा स्त्रियों के साथ व्यभिचार और सूदखोरी छोड़ देनी चाहिये।

शूद्रो राजन् भवति ब्रह्मबन्धु-
र्दुश्चारित्रो यश्च धर्मादपेतः।
वृषलीपतिः पिशुनो नर्तनश्च
राजप्रेष्यो यश्च भवेद् विकर्मा॥ १०॥
जपन् वेदानजपंश्चापि राजन्
समः शूद्रैर्दासवच्चापि भोज्यः।
एते सर्वे शूद्रसमा भवन्ति
राजन्नेतान् वर्जयेद् देवकृत्ये॥ ११॥

हे राजन्! जो ब्राह्मण दुश्चरित्र, धर्म से हीन, शूद्रा से सम्बन्ध रखने वाला, चुगलखोर, नाचने वाला, राजसेवक, तथा दूसरे विपरीत कार्यों को करने वाला

होता है, वह ब्राह्मणत्व से गिरकर शूद्र हो जाता है। हे राजन्! इन दुर्गुणों से युक्त ब्राह्मण यदि वेदों का स्वाध्याय करता हो, या न करता हो, शूद्रों के समान है। उसे दास के समान भोजन करना चाहिये। ये सारे ब्राह्मण शूद्रों के ही समान हैं। देवकर्मों में इनका परित्याग करना चाहिये।

निर्मर्यादे चाशुचौ क्रूरवृत्तौ
हिंसात्मके त्यक्तधर्मस्ववृत्ते।
हव्यं कव्यं यानि चान्यानि राजन्
देयान्यदेयानि भवन्ति चास्मै॥ १२॥
तस्माद् धर्मो विहितो ब्राह्मणस्य
दमः शौचमार्जवं चापि राजन्।
यःस्याद् दान्तः सोमपश्चार्यशीलः
सानुक्रोशः सर्वसहो निराशीः।
ऋजुर्मृदुरनृशंसः क्षमावान्
स वै विप्रो नेतरः पापकर्मा॥ १३॥

हे राजन्! जो ब्राह्मण मर्यादा रहित, अपवित्र, क्रूर वृत्तिवाला, हिंसापरायण, अपने धर्म और आचरण का त्याग करनेवाला है, उसे हव्य, कव्य तथा दूसरे दान देने न देने के ही समान हैं। इसलिये हे राजन्! ब्राह्मण के लिये इन्द्रियदमन, पवित्रता और कोमलस्वभाव का ही विधान है। जो ब्राह्मण मन और इन्द्रियों को वश में रखने वाला, यज्ञ में सोमरस पान करने वाला, सदाचारी, दयालु, सब कुछ सहन करने वाला, निष्काम, सरल, मृदु, क्रूरता रहित और क्षमावान् हो, उसे ही ब्राह्मण समझना चाहिये। उससे भिन्न पापाचारी को ब्राह्मण नहीं समझना चाहिये।

शुश्रूषाकृतकार्यस्य कृतसंतानकर्मणः।
अभ्यनुज्ञातराजस्य शूद्रस्य जगतीपते॥ १४॥
अल्पान्तरगतस्यापि दशधर्मगतस्य वा।
आश्रमा विहिताः सर्वे वर्जयित्वा निराशिषम्॥ १५॥
कृतकृत्यो वयोऽतीतो प्राज्ञः कृतपरिश्रमः।
वैश्यो गच्छेदनुज्ञातो नृपेणाश्रमसंश्रयम्॥ १६॥

हे पृथिवीनाथ! जो शूद्र तीनों वर्णों की सेवा करके कृतकार्य होगया है, जिसने सन्तानोत्पत्ति करली है, ज़िसके आचरण में दूसरे तीनों वर्णो के आचरण से थोड़ा अन्तर रह गया है, जो मनु प्रोक्त दस धर्मों के पालन में तत्पर है और जिसे राजा की अनुमति मिल गयी है, उसके लिये सन्यासाश्रम को छोड़कर सारे आश्रम विहित हैं। ऐसे ही जो वर्ण धर्म का परिश्रमपूर्वक पालनकर कृतकृत्य हो गया है, जिसकी अवस्था अधिक* है, वह बुद्धिमान् वैश्य राजा की अनुमति से वानप्रस्थ आश्रम को ग्रहण कर सकता है।

वेदानधीत्य धर्मेण राजशास्त्राणि चानघ।
संतानादीनि कर्माणि कृत्वा सोमं निषेव्य च॥ १७॥
पालयित्वा प्रजाः सर्वा धर्मेण वदतां वर।
राजसूयाश्वमेधादीन् मखानन्यांस्तथैव च॥ १८॥
आनयित्वा यथापाठं विप्रेभ्यो दत्तदक्षिणः।
संग्रामे विजयं प्राप्य तथाल्पं यदि वा बहु॥ १९॥
स्थापयित्वा प्रजापालं पुत्रं राज्ये च पाण्डव।
अन्यगोत्रं प्रशस्तं वा क्षत्रियं क्षत्रियर्षभ॥ २०॥
अर्चयित्वा पितृन् सम्यक् पितृयज्ञैर्यथाविधि।
देवान् यज्ञैर्ऋषीन् वेदैरर्चयित्वा तु यत्नतः॥ २१॥
अन्तकाले च सम्प्राप्ते य इच्छेदाश्रमान्तरम्।
सोऽनुपूर्व्याश्रमान् राजन् गत्वा सिद्धिमवाप्नुयात्॥ २२॥

हे निष्पाप नरेश! राजा को चाहिये कि धर्म पूर्वक वेदों और राजधर्म शास्त्रों का अध्ययन करे, सन्तान आदि उत्पन्न करे और यज्ञों में सोमरस पान करे। हे वक्ताओं में श्रेष्ठ! वह सारी प्रजा का धर्मपूर्वक पालनकर राजसूय, अश्वमेध तथा दूसरे यज्ञों का अनुष्ठान करे। उन यज्ञों में शास्त्रों के अनुसार सारी सामग्री का संग्रह कर, ब्राह्मणों को दक्षिणा दे, संग्राम में छोटी या बड़ी विजय को प्राप्त करे, फिर प्रजापालन में तथा राज्यगद्दी पर पुत्र को स्थापित करे, यदि पुत्र न हो तो दूसरे गोत्र के किसी श्रेष्ठ क्षत्रिय को राजसिंहासन पर बैठा दे। पितृयज्ञों से बड़े बूढ़ों की अच्छी तरह सेवा करे, यत्नपूर्वक यज्ञों द्वारा जड़ देवताओं का सम्मान तथा परमात्मा की पूजा करे। वेदाध्ययन से ऋषियों की पूजा करे। फिर अन्त समय आने पर, जो वानप्रस्थाश्रम में जाने की इच्छा रखता है, वह क्रम से इन सारे आश्रमों का पालन कर उत्तम सिद्धि को प्राप्त करता है।

राजर्षित्वेन राजेन्द्र भैक्ष्यचर्यां न सेवया।
अपेतगृहधर्मोऽपि चरेज्जीवितकाम्यया॥ २३॥

हे राजेन्द्र! क्षत्रिय को गृहस्थ धर्म का त्याग कर देने पर भी ऋषि भाव से जीवन बिताते हुए, जीवन रक्षा के लिये ही भिक्षाचरण करना चाहिये, सेवा कराने के लिये नहीं।

यथा राजन् हस्तिपदे पदानि
संलीयन्ते सर्वसत्त्वोद्भवानि।
एवं धर्मान् राजधर्मेषु सर्वान्
सर्वावस्थान् सम्प्रलीनान् निबोध॥ २४॥
अल्पाश्रयानल्पफलान् वदन्ति
धर्मानन्यान् धर्मविदो मनुष्याः।
महाश्रयं बहुकल्याणरूपं
क्षात्रं धर्मं नेतरं प्राहुरार्याः ॥ २५॥
सर्वे धर्मा राजधर्मप्रधानाः
सर्वे वर्णाः पाल्यमाना भवन्ति।
सर्वस्त्यागो राजधर्मेषु राजं-
स्त्यागं धर्मं चाहुरग्र्यं पुराणम्॥ २६॥

हे राजन्! जैसे हाथी के पैर के चिन्ह में सारे प्राणियों के पैरों के चिह्न आ जाते हैं, उसी प्रकार सारी अवस्थाओं वाले सारे धर्मों को राजधर्म में ही अन्तर्हित समझो। धर्म के ज्ञाता आर्य पुरुषों का कथन है कि दूसरे धर्म अल्प आश्रय और अल्प फल देने वाले हैं, किन्तु क्षात्रधर्म का आश्रय ही महान् है और उसका फल भी बहुत कल्याण रूप है। इसके समान दूसरा कोई धर्म नहीं है। सारे धर्मों में राजधर्म ही प्रधान है, क्योंकि उसके द्वारा सारे धर्मों का पालन होता है। हे राजन्! राजधर्मों में सभी प्रकार के त्याग का समावेश है और त्याग को सर्व श्रेष्ठ तथा प्राचीन धर्म बताया गया है।

मज्जेत् त्रयी दण्डनीतौ हतायां
सर्वे धर्माः प्रक्षयेयुर्विबुद्धाः।
सर्वे धर्माश्चाश्रमाणां हताः स्युः
क्षात्रे त्यक्ते राजधर्मे पुराणे॥ २७॥
सर्वे त्यागा राजधर्मेषु दृष्टाः
सर्वा दीक्षा राजधर्मेषु चोक्ताः।
सर्वा विद्या राजधर्मेषु युक्ताः
सर्वे लोका रामधर्मे प्रविष्टाः॥ २८॥

यदि दण्ड नीति नष्ट हो जाये, तो वेद भी डूब जायें। समाज में प्रचलित सारे धर्म नष्ट हो जायें। पुरातन राजधर्म, जिसे क्षात्र धर्म भी कहते हैं, यदि लुप्त हो जाये, तो आश्रमों के सारे धर्मों का लोप हो जायेगा। राजधर्म में सारे त्यागों का दर्शन हो जाता है। राजधर्म में सारी दीक्षाओं का प्रतिपादन हो जाता है। राजधर्म में सारी विद्याओं का समावेश है और सारे लोकधर्म राजधर्म में ही अन्तर्हित हैं।

तीसवाँ अध्याय : राष्ट्र की रक्षा और उन्नति राजा के द्वारा।

युधिष्ठिर उवाच

चातुराश्रम्यमुक्तं ते चातुर्वर्ण्यं तथैव च।
राष्ट्रस्य यत् कृत्यतमं ततो ब्रूहि पितामह॥ १॥

भीष्म उवाच

राष्ट्रस्यैतत् कृत्यतमं राज्ञ एवाभिषेचनम्।
अनिन्द्रमबलं राष्ट्रं दस्यवोऽभिभवन्त्युत॥ २॥
अराजकेषु राष्ट्रेषु धर्मो न व्यवतिष्ठते।
परस्परं च खादन्ति सर्वथा धिगराजकम्॥ ३॥

फिर युधिष्ठिर ने कहा कि हे पितामह! आपने चारों वर्णों और चारों आश्रमों के धर्म बताये। अब आप यह बताइये कि राष्ट में रहने वाले प्रत्येक नागरिक का प्रमुख कर्त्तव्य क्या है? तब भीष्मजी ने उत्तर दिया कि राष्ट्र में रहने वाले प्रत्येक नागरिक का प्रमुख कर्त्तव्य यह है कि वे किसी योग्य राजा का अभिषेक करें, क्योंकि बिना स्वामी के निर्बल राष्ट्र को डाकू और लुटेरे सताते हैं। राजा से रहित देशों में धर्म की स्थापना नहीं होती। वहाँ के निवासी एक दूसरे को खाने लगते हैं। इसलिये राजा से रहित देश को सर्वथा धिक्कार है।

नाराजकेषु राष्ट्रेषु वस्तव्यमिति रोचये।
अथ चेदाभिवर्तेत राज्यार्थी बलवत्तरः॥ ४॥
अराजकाणि राष्ट्राणि हतवीर्याणि वा पुनः।
प्रत्युद्गम्याभिपूज्यः स्यादेतदत्र सुमन्त्रितम्॥ ५॥
न हि पापात् परतरमस्ति किञ्चिदराजकात्।

मेरा विचार तो यह है कि राजा से रहित राष्ट्र में रहना ही नहीं चाहिये। यदि कोई प्रबल राजा उस राजा रहित दुर्बल राष्ट्र पर राज्य के लोभ से आक्रमण करे, तो वहाँ के निवासियों के लिये यही अच्छी सलाह हो सकती है कि वे आगे बढ़कर उस राजा का स्वागत करें, क्योंकि अराजकता एक बड़ा पाप है। उससे बढ़कर और कोई पाप नहीं है।

तस्माद् राजैव कर्तव्यः सततं भूतिमिच्छता॥ ६॥
न धनार्थो न दारार्थस्तेषां येषामराजकम्।
प्रीयते हि हरन् पापः परवित्तमराजके॥ ७॥
यदास्य उद्धरन्त्यन्ये तदा राजानमिच्छति।
पापा ह्यपि तदा क्षेमं न लभन्ते कदाचन॥ ८॥
एकस्य हि द्वौ हरतो द्वयोश्च बहवोऽपरे।

इसलिये सदा ऐश्वर्य चाहनेवालों को राजा अवश्य बनाना चाहिये। जहाँ राजा नहीं होता, वहाँ धन और स्त्रियों पर उन्हीं का अधिकार रहे यह सम्भव नहीं है। बिना राजा के राज्य में दूसरों का धन छीननेवाले पापीलोग बड़े प्रसन्न होते हैं, पर जब उनका ध न भी दूसरेलोग छीन लेते हैं, तब उन्हें राजा की आवश्यकता होती है। राजारहित देश में पापीलोग भी सुखी नहीं होते। क्योंकि एक के धन को दो व्यक्ति मिल कर छीन लेते हैं तो उनके धन को और बहुतसे छीनकर लेजाते हैं।

अदासः क्रियते दासो ह्रियन्ते च बलात् स्त्रियः॥ ९॥
एतस्मात् कारणाद् देवाः प्रजापालान् प्रचक्रिरे।
राजा चेन्न भवेल्लोके पृथिव्यां दण्डधारकः॥ १०॥
जले मत्स्यानिवाभक्ष्यन् दुर्बलं बलवत्तराः।
राज्ञः परैः परिभवः सर्वेषामसुखावहः॥ ११॥
तस्माच्छत्रं च पत्रं च वासांस्याभरणानि च।
भोजनान्यथ पानानि राज्ञे दद्युर्गृहाणि च॥ १२॥
आसनानि च शय्याश्च सर्वोपकरणानि च।

राजारहित देश में जो दास नहीं है, उसे दास बना दिया जाता है, उसकी स्त्रियों का बलपूर्वक हरण कर लिया जाता है। इसी से विद्वानों ने प्रजापालक राजा का विधान किया है। यदि संसार में दण्ड धारण करनेवाला राजा न हो, तो जैसे पानी में बड़ी मछली छोटी मछली को खाजाती है, वैसे ही बलवान् व्यक्ति भी दुर्बल व्यक्यिों को खा जायें। यदि राजाकी शत्रुओं से हार होजाये, तो यह सभी के लिये दुखदायी होता है। इसलिये प्रजा को चाहिये कि वह राजा को छत्र, वाहन, वस्त्र आभूषण, भोजन, पेयपदार्थ, घर, आसन और शय्या आदि सभी प्रकार की सामग्री भेंट करें।

गोप्ता तस्माद् दुराधर्षः स्मितपूर्वाभिभाषिता॥ १३॥
आभाषितश्च मधुरं प्रत्याभाषेत मानवान्।
कृतज्ञो दृढभक्तिः स्यात् संविभागी जितेन्द्रियः॥ १४॥
ईक्षितः प्रतिवीक्षेत मृदुवल्गु च सुष्ठु च।

प्रजा की इसप्रकार की सहायता प्राप्तकर राजा दुर्धर्ष और प्रजा की रक्षा करने में समर्थ होजाता है। राजा को चाहिये कि वह प्रजा के लोगों से मुस्कराकर बात करे। यदि वे उससे कुछ पूछें तो वह मधुर वाणी में उन्हें उत्तर दे। राजा को उपकार करने वालों के प्रति कृतज्ञ और अपने भक्तों के प्रति सुदृढ़ स्नेहवाला होना चाहिये। वह उपयोग में आनेवाली वस्तुओं का यथायोग्य विभाजनकर उन्हें अपने काम में ले। इन्द्रियों को वश में रखे। अपनी तरफ देखे जाने पर वह भी उनकी तरफ देखे और वह स्वभाव से मृदु, मधुर और सरल हो।

राजा वसुमना नाम कौसल्यो धीमतां वरः॥ १५॥
महर्षिं किल पप्रच्छ कृतप्रज्ञं बृहस्पतिम्।
केन भूतानि वर्धन्ते क्षयं गच्छन्ति केन वा॥ १६॥
कमर्चन्तो महाप्राज्ञ सुखमव्ययमाप्नुयुः।
एवं पृष्टो महाप्राज्ञः कौसल्येनामितौजसा॥ १७॥
राजसत्कारमव्यग्रं शशंसास्मै बृहस्पतिः।

कहते हैं कि कभी धीमानों में श्रेष्ठ कोसल देश के राजा वसुमना ने बुद्धिमान् बृहस्पति जी से कुछ प्रश्न किये। वसुमना ने पूछा कि किन कार्यों को करने से प्राणियों की उन्नति होती है? और किन कार्यों को करने से वे विनाश को प्राप्त होते हैं? हे महाप्राज्ञ! किसकी पूजा करके वे अक्षय सुख को प्राप्त कर सकते हैं। अमिततेजस्वी कोसलनरेश द्वारा यह पूछे जाने पर, महाप्राज्ञ बृहस्पति ने उन्हें बिना किसी व्यग्रता के प्रजा के लिये राजा के सत्कार की आवश्यकता बतायी।

राजमूलो महाप्राज्ञ धर्मो लोकस्य लक्ष्यते॥ १८॥
प्रजा राजभयादेव न खादन्ति परस्परम्।
राजा ह्येवाखिलं लोकं समुदीर्णं समुत्सुकम्॥ १९॥
प्रसादयति धर्मेण प्रसाद्य च विराजते।

उन्होंने कहा कि हे महाप्राज्ञ! संसार में जो धर्म का व्यवहार देखा जाता है, उसका मूल कारण राजा ही है। राजा के भय से ही प्रजा के लोग एक दूसरे को खाते नहीं हैं। राजा ही संसार में सारे लोगों को जो उन्नति के लिये उत्सुक रहते हैं, धर्मानुसार शासन द्वारा प्रसन्न रखता है और फिर स्वयं भी प्रसन्नतापूर्वक अपने तेज से प्रकाशित होता है।

यथा ह्यनुदये राजन् भूतानि शशिसूर्ययोः॥ २०॥
अन्धे तमसि मज्जेयुरपश्यन्तः परस्परम्।
यथा ह्यनुदके मत्स्या निराक्रन्दे विहङ्गमाः॥ २१॥
विहरेयुर्यथाकामं विहिंसन्तः पुनः पुनः।
विमथ्यातिक्रमेरंश्च विषह्यापि परस्परम्॥ २२॥
अभावमचिरेणैव गच्छेयुर्नात्र संशयः।
एवमेव विना राज्ञा विनश्येयुरिमाः प्रजाः॥ २३॥
अन्धे तमसि मज्जेयुरगोपाः पशवो यथा।

हे राजन्! जैसे सूर्य और चन्द्रमा के उदय न होने पर, संसार गहरे अन्धकार में डूब जाता है और लोग एकदूसरे को देख नहीं पाते, जैसे थोड़े जलवाले तालाब में मछलियाँ, रक्षकरहित बगीचे में पक्षी एकदूसरे पर बार बार चोट करते हुए अपनी इच्छानुसार विचरण करते हैं। वे कभी अपने प्रहार से दूसरों को कुचलते और मथते हुए आगे जाते हैं और कभी दूसरे की चोट खाकर व्याकुल होते हैं। वे इसप्रकार आपसमें लड़ते हुए निस्सन्देह थोड़े ही दिनों में नष्ट हो जाते हैं, वैसे ही बिना राजा के प्रजा के लोग भी एक दूसरे से लड़ भिड़कर नष्ट हो जायें और बिना चरवाहे के पशुओं के समान दुख के घोर अन्धकार में डूब जायें।

हरेयुर्बलवन्तोऽपि दुर्बलानां परिग्रहान्॥ २४॥
हन्युर्व्यायच्छमानांश्च यदि राजा न पालयेत्।
ममेदमिति लोकेऽस्मिन् न भवेत् सम्परिग्रहः॥ २५॥
न दारा न च पुत्रः स्यान्न धनं न परिग्रहः।
विष्वग्लोपः प्रवर्तेत यदि राजा न पालयेत्॥ २६॥
यानं वस्त्रमलङ्कारान् रत्नानि विविधानि च।
हरेयुः सहसा पापा यदि राजा न पालयेत्॥ २७॥
पतेद् बहुविधं शस्त्रं बहुधा धर्मचारिषु।
अधर्मः प्रगृहीतः स्याद् यदि राजा न पालयेन्॥ २८॥

यदि राजा प्रजा का पालन न करे तो बलवान् व्यक्ति दुर्बल व्यक्तियों की बहूबेटियों को उनसे छीन लें और अपने घर की रक्षा करनेवालों को मार दें। यदि राजा रक्षा न करे तो कोई भी व्यक्ति यह न कह सके कि यह पत्नी, पुत्र, धन और सामान मेरा है। सब की इन सम्पत्तियों का लोप होजाये। यदि राजा रक्षा न करे तो लुटेरे लोगों की सवारियाँ, वस्त्र, गहने, तरह तरह के रत्नों को तुरन्त लूट ले जायें। यदि राजा रक्षा न करे, तो धार्मिक लोगों पर तरह तरह के हथियारों की मार पड़े और उन्हें विवश होकर अधर्म का मार्ग अपनाना पड़ जाये।

मातरं पितरं वृद्धमाचार्यमतिथिं गुरुम्।
क्लिश्नीयुरपि हिंस्युर्वा यदि राजा न पालयेत्॥ २९॥
वधबन्धपरिक्लेशो नित्यमर्थवतां भवेत्।
ममत्वं च न विन्देयुर्यदि राजा न पालयेत्॥ ३०॥
अन्ताश्चाकालएवस्युर्लोकोऽयं दस्युसाद् भवेत्।
पतेयुर्नरकं घोरं यदि राजा न पालयेत्॥ ३१॥
न योनिदोषो वर्तेत न कृषिर्न वणिक्पथः।
मज्जेद् धर्मस्त्रयी न स्याद् यदि राजा न पालयेत्॥ ३२॥

यदि राजा रक्षा न करे तो पापी मनुष्य माता, पिता, बूढ़ों, आचार्य, अतिथि और गुरु को कष्ट पहुँचायें या मार दें। यदि राजा पालन न करे तो धनवान् को सदा वध या बन्धन का कष्ट उठाना पड़े और किसी भी वस्तु को वे अपना न कह सकें। यदि राजा पालन न करे तो असमय में ही लोगों की मृत्यु होने लगे और संसार डाकुओं के आधीन हो जाये। लोग अत्यन्त कष्टों में पड़ जायें। यदि राजा पालन न करे तो व्यभिचार से किसी को भी घृणा न हो, खेती और व्यापार नष्ट हो जायें। धर्म डूबजाये और वेदों का कहीं पता न चले।

न यज्ञाः सम्प्रवर्तेयुर्विधिवत् स्वाप्तदक्षिणाः।
न विवाहाः समाजो वा यदि राजा न पालयेत्॥ ३३॥
त्रस्तमुद्विग्नहृदयं हाहाभूतमचेतनम्।
क्षणेन विनशेत् सर्वं यदि राजा न पालयेत्॥ ३४॥
ब्राह्मणाश्चतुरो वेदान् नाधीयीरंस्तपस्विनः।
विद्यास्नाता व्रतस्नाता यदि राजा न पालयेत्॥ ३५॥
हस्ताद्धस्तं परिमुषेद् भिद्येरन् सर्वसेतवः।
भयार्तं विद्रवेत् सर्वं यदि राजा न पालयेत्॥ ३६॥

यदि राजा पालन न करे तो विधिवत् बहुत दक्षिणा वाले यज्ञों का अनुष्ठान बन्द होजाये। न तो किसी का विवाह हो और दूसरे सामाजिक कार्य भी रुक जायें। यदि राजा पालन न करे तो सारे संसार के लोग डरे हुए तथा बेचैन हृदयवाले हो जायें, सब जगह हा हाकार होने लगे और लोग अचेत होकर थोड़ी देर में ही नष्ट होजायें। यदि राजा पालन न करे तो विद्या पढ़कर स्नातक हुए, ब्रह्मचर्य का पालन करनेवाले, तपस्वी और ब्राह्मणलोग चारों वेदों

का अध्ययन छोड़ दें। यदि राजा पालन न करे तो चोर और लुटेरे हाथ में रखी हुई वस्तु को भी छीनकर ले जायें और सारी मर्यादायें टूट जायें, सबलोग भय से पीड़ित होकर भागते हुए दिखाई दें।

अनयाः सम्प्रवर्तेरन् भवेद् वै वर्णसंकरः।
दुर्भिक्षमाविशेद् राष्ट्रं यदि राजा न पालयेत्॥ ३७॥
विवृत्य हि यथाकामं गृहद्वाराणि शेरते।
मनुष्या रक्षिता राज्ञा समन्तादकुतोभयाः॥ ३८॥
स्त्रियश्चापुरुषा मार्गं सर्वालङ्कारभूषिताः।
निर्भयाः प्रतिपद्यन्ते यदि रक्षति भूमिपः॥ ३९॥
धर्ममेव प्रपद्यन्ते न हिंसन्ति परस्परम्।
अनुगृह्णन्ति चान्योन्यं यदा रक्षति भूमिपः॥ ४०॥
यजन्ते च महायज्ञैस्त्रयो वर्णाः पृथग्विधैः।
युक्ताश्चाधीयते विद्यां यदा रक्षति भूमिपः॥ ४१॥

राजा पालन न करे तो सब तरफ अन्याय फैल जाये। सन्तानें वर्णसंकर उत्पन्न होने लगें और राष्ट्र में अकाल पड़ जाये। जहाँ राजा रक्षा करता है, वहाँ लोग इच्छानुसार घर के दरवाजों को बिना बन्द किये ही सोते हैं, वे सब तरफ से निर्भय रहते हैं। यदि राजा रक्षा करता है तो स्त्रियाँ अलंकारों से युक्त होने पर भी बिना किसी दूसरे पुरुष को साथ लिये निर्भयता से मार्ग पर आती जाती हैं। जब राजा रक्षा करता है, तो लोग धर्म का ही पालन करते हैं, परस्पर हिंसा नहीं करते और एक-दूसरे पर अनुग्रह करते हैं। जहाँ राजा रक्षा करता है, वहाँ तीनों वर्णों के लोग बड़े-बड़े यज्ञों का अनुष्ठान करते हैं और मनोयोग पूर्वक विद्याध्ययन में लगे रहते हैं।

यदा राजा धुरं श्रेष्ठामादाय वहति प्रजाः।
महता बलयोगेन तदा लोकः प्रसीदति॥ ४२॥
यस्याभावेन भूतानामभावः स्यात् समन्ततः।
भावे च भावो नित्यं स्यात् कस्तं न प्रतिपूजयेत्॥ ४३॥
तस्य यो वहते भारं सर्वलोकभयावहम्।
तिष्ठन् प्रियहिते राज्ञ उभौ लोकाविमौ जयेत्॥ ४४॥
यदा ह्यासीदतः पापान् दहत्युग्रेण तेजसा।
मिथ्योपचरितो राजा तदा भवति पावकः॥ ४५॥

जब राजा विशाल सेना द्वारा प्रजा की रक्षा के महान् भार को धारण और प्रजा का ठीक प्रकार से पालन करता है, तब प्रजा के लोग प्रसन्नतापूर्वक अपने दिन व्यतीत करते हैं। जिसके न रहने से सारे प्राणी नष्ट होने लगते हैं और जिसके रहने पर सबका अस्तित्व बना रहता है, उस राजा का कौन सत्कार न करेगा? सारे लोगों को अभय करनेवाले राजा का जो लोग बोझा उठाते हैं, और उसके प्रिय तथा भलाई में लगे रहते हैं, वे लोक और परलोक दोनों पर विजय पा लेते हैं। जब मिथ्या लोगों के द्वारा राजा के साथ मिथ्या व्यवहार किया जाता है, तब राजा अग्नि के समान हो जाता है और अपने उग्र तेज से उस पापी को भस्म कर देता है।

यदा पश्यति चारेण सर्वभूतानि भूमिपः।
क्षेमं च कृत्वा व्रजति तदा भवति भास्करः॥ ४६॥
अशुचींश्च यदा क्रुद्धः क्षिणोति शतशो नरान्।
सपुत्रपौत्रान् सामात्यांस्तदा भवति सोऽन्तकः॥ ४७॥
नास्यापवादे स्थातव्यं दक्षेणाक्लिष्टकर्मणा।
धर्म्यमाकाङ्क्षता लोकमीश्वरस्यानसूयता॥ ४८॥
न हि राज्ञः प्रतीपानि कुर्वन् सुखमवाप्नुयात्।
पुत्रो भ्राता वयस्यो वा यद्यप्यात्मसमो भवेत्॥ ४९॥

जब राजा गुप्तचरों द्वारा सबके कार्यों पर दृष्टि रखते हुए, उनका कल्याण करते हुए चलता है तब वह सूर्य के समान होता है। जब राजा क्रोध में भरकर अशुद्ध आचरण करनेवाले सैकड़ों लोगों को पुत्र, पौत्रों तथा सलाहकारों सहित मार देता है, तब वह मृत्यु के समान होता है। इसलिये जो व्यक्ति चतुर हो, बिना कठिनाई के अपना जीवन बिताना चाहता हो और धर्म के अनुसार प्राप्त होनेवाले परलोक की इच्छा रखता हो, तो उसे देश के शासक राजा की निन्दा में नहीं पड़ना चाहिये। क्योंकि राजा के विरुद्ध होकर कोई भी, चाहे वह राजा का पुत्र, भाई, या उसकी आत्मा के समान प्रिय ही क्यों न हो, सुख से नहीं रह सकता।

कुर्यात् कृष्णगतिः शेषंज्वलितोऽनिलसारथिः।
न तु राजाभिपन्नस्य शेषं क्वचन विद्यते॥ ५०॥
तस्य सर्वाणि रक्ष्याणि दूरतः परिवर्जयेत्।
मृत्योरिव जुगुप्सेत राजस्वहरणान्नरः॥ ५१॥
तस्माद् बुभूषुर्नियतो जितात्मा नियतेन्द्रियः।
मेधावी स्मृतिमान् दक्षः संश्रयते महीपतिम्॥ ५२॥
कृतज्ञं प्राज्ञमक्षुद्रं दृढभक्तिं जितेन्द्रियम्।
धर्मनित्यं स्थितं नीत्यं मन्त्रिणं पूजयेन्नृपः॥ ५३॥

वायु की सहायता से प्रज्वलित हुई आग, जब फैलती है, तब हो सकता है कि वहाँ कोई पदार्थ जलने से रह जाये, पर राजा जिस पर आक्रमण करता है, वहाँ उसकी कोई भी वस्तु शेष नहीं रह पाती। इसलिये मनुष्य को चाहिये कि वह राजा के द्वारा सुरक्षित वस्तुओं का दूर से ही त्याग कर दे। जैसे मृत्यु से बचने की चेष्टा की जाती है, वैसे ही राजधन के अपहरण से घृणा करते हुए, उससे अपने आपको बचाने का यत्न करना चाहिये। क्योंकि राजा की सहायता से ही व्यक्ति उन्नति कर सकता है, इसलिये उन्नति चाहने वाले, मेधावी, स्मरण शक्ति से सम्पन्न और कार्यदक्ष व्यक्ति को चाहिये कि वह नियमपूर्वक मन और इन्द्रियों को वश में रखते हुए राजा के आश्रय को ग्रहण करे। राजा को भी चाहिये कि वह कृतज्ञ, बुद्धिमान्, महामना, दृढभक्तिवाले, जितेन्द्रिय, नित्य धर्म परायण और नीतिज्ञ मन्त्री का सम्मान करे।

राजा प्रजानां प्रथमं शरीरं
प्रजाश्च राज्ञोऽप्रतिमं शरीरम्।
राज्ञा विहीना न भवन्ति देशा
देशैर्विहीना न नृपा भवन्ति॥ ५४॥

राजा प्रजाओं का प्रधान शरीर है और प्रजा भी राजा का अनुपम शरीर है। राजा के बिना देश और वहाँ के निवासी नहीं रह सकते और देशवासियों के बिना राजा भी नहीं रह सकता।

इकत्तीसवाँ अध्याय : राजा के मुख्य कार्यों तथा दण्ड नीति का वर्णन।

युधिष्ठिर उवाच

पार्थिवेन विशेषेण किं कार्यमवशिष्यते।
कथं रक्ष्यो जनपदः कथं जेयाश्च शत्रवः॥ १॥
कथं चारं प्रयुञ्जीत वर्णान् विश्वासयेत् कथम्।
कथं भृत्यान् कथं दारान् कथं पुत्रांश्च भारत॥ २॥

भीष्म उवाच

आत्मा जेयः सदा राज्ञा ततो जेयाश्च शत्रवः।
अजितात्मा नरपतिर्विजयेत कथं रिपून्॥ ३॥
एतावानात्मविजयः पञ्चवर्गविनिग्रहः।
जितेन्द्रियो नरपतिर्बाधितुं शक्नुयादरीन्॥ ४॥

युधिष्ठिर ने पूछा कि हे पितामह! राजाद्वारा विशेषरूप से करनेयोग्य कौनसा कार्य शेष है? उसे देश की रक्षा कैसे करनी चाहिये? राजा गुप्तचरों की नियुक्ति कैसे करे? वह किस प्रकार सारे वर्णों में अपने प्रति विश्वास उत्पन्न करे? इसीप्रकार सेवकों, स्त्रियों और पुत्रों के भी मन में कैसे विश्वास उत्पन्न करे? तब भीष्म ने कहा कि राजा को सबसे पहले अपने मन को वश में करना चाहिये। जिस राजा ने अपने-आपको वश में नहीं किया, वह शत्रुओं को कैसे जीतेगा? पाँचों इन्द्रियों को वश में रखना ही मन को वश में रखना है। जितेन्द्रिय राजा ही शत्रुओं को वश में कर सकता है।

न्यसेत गुल्मान् दुर्गेषु सन्धौ च कुरुनन्दन।
नगरोपवने चैव पुरोद्यानेषु चैव ह॥ ५॥
संस्थानेषु च सर्वेषु पुरेषु नगरेषु च।
मध्ये च नरशार्दूल तथा राजनिवेशने॥ ६॥
प्रणिधींश्च ततः कुर्याज्जडान्धबधिराकृतीन्।
पुंसः परीक्षितान् प्राज्ञान् क्षुत्पिपासाश्रमक्षमान्॥ ७॥
अमात्येषु च सर्वेषु मित्रेषु विविधेषु च।
पुत्रेषु च महाराज प्रणिदध्यात् समाहितः॥ ८॥

हे कुरुनन्दन! राजा को सेना के समूहों को किलों में, राज्य की सीमा पर, नगर के बगीचों में और गाँवों के बागों में रखना चाहिये। सभी प्रकार के पड़ावों पर, बड़े गाँवों और नगरों में और हे नरसिंह! राज महल के आस-पास भी वह सेना को रखे। उसे उन लोगों को गुप्तचर बनाना चाहिये, जो अच्छी तरह से परीक्षित हों, जो बुद्धिमान् भूख तथा प्यास और परिश्रम को सहने वाले हों। जो गूँगे, अन्धे और बहरे की आकृति बना सकते हों। हे राजन्! राजा को एकाग्रचित्त होकर सब मन्त्रियों, तरह तरह के मित्रों और पुत्रों पर भी गुप्तचर नियुक्त करने चाहियें।

पुरे जनपदे चैव तथा सामन्तराजसु।
यथा न विद्युरन्योन्यं प्रणिधेयास्तथा हि ते॥ ९॥
चारांश्च विद्यात् प्रहितान् परेण भरतर्षभ।

आपणेषु विहारेषु समाजेषु च भिक्षुषु॥ १०॥
आरामेषु तथोद्याने पण्डितानां समागमे।
देशेषु चत्वरे चैव सभास्वावसथेषु च॥ ११॥
एवं विचिनुयाद् राजा परचारं विचक्षणः।
चारे हि विदिते पूर्वं हितं भवति पाण्डव॥ १२॥

नगर में, जनपद में तथा जहाँ सामन्त लोग रहते हों, वहाँ भी इस प्रकार से गुप्तचर लगाने चाहियें, जिससे वे एकदूसरे को जान न सकें। हे भरतश्रेष्ठ! राजा को शत्रुओं के भेजे गुप्तचरों का भी बाजारों, लोगों के घूमने फिरने के स्थानों, सामाजिक उत्सवों, भिखारियों, बगीचों, उद्यानों, विद्वानों की सभा, विभिन्न प्रान्तों, चौराहों, सभाओं और धर्मशालाओं में पता लगाते रहना चाहिये। हे पाण्डुपुत्र! इस प्रकार से बुद्धिमान् राजा को शत्रु के गुप्तचरों की टोह लेते रहना चाहिये। यदि शत्रु के गुप्तचर का पहले ही पता लग जाये, तो उससे राजा का हित होता है।

यदा तु हीनं नृपतिर्विद्यादात्मानमात्मना।
अमात्यैः सह सम्मन्त्र्य कुर्यात् संधिं बलीयसा॥ १३॥
अज्ञायमाने हीनत्वे संधि कुर्यात् परेण वै।
लिप्सुर्वा कंचिदेवार्थं त्वरमाणो विचक्षणः॥ १४॥
गुणवन्तो महोत्साहा धर्मज्ञाः साधवश्च ये।
संदधीत नृपस्तैश्च राष्ट्रं धर्मेण पालयन्॥ १५॥
उच्छिद्यमानमात्मानं ज्ञात्वा राजा महामतिः।
पूर्वापकारिणो हन्याल्लोकद्विष्टांश्च सर्वशः॥ १६॥

जब राजा अपने-आपको कमजोर समझे, तो उसे मन्त्रियों से सलाहकर बलवान् राजा के साथ सन्धि कर लेनी चाहिये। अपनी दुर्बलता का शत्रु को पता न देते हुए, सन्धि करनी चाहिये। यदि सन्धि से कोई विशेष प्रयोजन सिद्ध करने की इच्छा हो, तब तो बुद्धिमान् राजा को सन्धि में विलम्ब नहीं करना चाहिये। अपने देश की धर्मपूर्वक रक्षा करनेवाले राजा को गुणवान्, बड़े उत्साही, धर्मज्ञ और साधु पुरुषों को अपना सहयोगी बनाकर, उनकी सहायता से बलवान् राजा के साथ सन्धि कर लेनी चाहिये। यदि बुद्धिमान् राजा को यह पता लग जाये कि कोई हमारा उच्छेद कर रहा है तो उसे उस पहले के अपकारी और जनता के साथ द्वेष रखनेवाले को पूरी तरह नष्ट कर देना चाहिये।

यो नोपकर्तुं शक्नोति नापकर्तुं महीपतिः।
न शक्यरूपश्चोद्धर्तुमुपेक्ष्यस्तादृशो भवेत्॥ १७॥
यात्रायां यदि विज्ञातमनाक्रन्दमनन्तरम्।
व्यासक्तं च प्रमत्तं च दुर्बलं च विचक्षणः॥ १८॥
यात्रामाज्ञापयेद् वीरः कल्यः पुष्टबलः सुखी।
पूर्वं कृत्वा विधानं च यात्रायां नगरे तथा॥ १९॥
न च वश्यो भवेदस्य नृपो यश्चातिवीर्यवान्।
हीनश्च बलवीर्याभ्यां कर्षयंस्तत्परो वसेत्॥ २०॥

जो राजा न तो उपकार कर सकता है और न अपकार और उसका सर्वथा उच्छेद करना भी सम्भव नहीं है, उस राजा की उपेक्षा कर देनी चाहिये। यदि शत्रुपर चढ़ाई करने की इच्छा हो तो उसे यह पता लगा लेना चाहिये, कि शत्रु मित्रहीन, सहायकों से रहित, दूसरे के साथ युद्ध में लगा हुआ, प्रमाद में पड़ा हुआ और दुर्बल है क्या? और क्या अपनी सेना प्रबल, युद्ध निपुण और सुख के साधनों से सम्पन्न है? तब वीर राजा को चाहिये कि वह अपनी सेना को प्रयाण के लिये आज्ञा दे। पहले अपनी राजधानी की रक्षा का प्रबन्ध करके, फिर शत्रु पर आक्रमण करना चहिये। राजा को चाहिये कि अपने से अधिक शक्तिशाली दूसरे राजा के होते हुए भी उसकी आधीनता स्वीकार न करे। बल और पराक्रम में हीन होने पर भी वह गुप्तरूप से शत्रु को कमजोर करने का प्रयत्न करता रहे।

राष्ट्रं च पीडयेत् तस्य शस्त्राग्निविषमूर्छनैः।
अमात्यवल्लभानां च विवादांस्तस्य कारयेत्॥ २१॥
वर्जनीयं सदा युद्धं राज्यकामेन धीमता।
उपायैस्त्रिभिरादानमर्थस्याह बृहस्पतिः॥ २२॥
सान्त्वेन तु प्रदानेन भेदेन च नराधिप।
यदर्थं शक्नुयात् प्राप्तुं तेन तुष्येत पण्डितः॥ २३॥
आददीत बलिं चापि प्रजाभ्यः कुरुनन्दन।
स षड्भागमपि प्राज्ञस्तासामेवाभिगुप्तये॥ २४॥
दशधर्मगतेभ्यो यद् वसु बह्वल्पमेव च।
तदाददीत सहसा पौराणां रक्षणाय वै॥ २५॥

राजा को चाहिये कि वह शस्त्रों के प्रहार से, आग लगाकर और विष देकर शत्रु के देश में रहने वाले लोगों को पीड़ित करे। वह उसके मन्त्रियों और प्रिय व्यक्तियों में परस्पर कलह करा दे। राज्य की इच्छा रखने वाले धीमान् राजा को सदा युद्ध टालने

का प्रयत्न करना चाहिये। बृहस्पति ने कहा है कि राजा के लिये तीन उपायों से ही अर्थात् साम, दाम और भेद के द्वारा ही धन की आय बतायी गयी है। हे नराधिप! इन तीन उपायों से धन मिल जाये तो राजा को उसी में सन्तुष्ट रहना चाहिये। हे कुरुनन्दन! राजा को प्रजा से उसकी आय का छठा भाग भी कर के रूप में लेना चाहिये। वह छठा भाग भी प्रजा की रक्षा के लिये ही होता है। दस प्रकार के अपराधियों से जो थोड़ा या बहुत धन दण्ड के रूप में प्राप्त हो, उसे भी नगरवासियों की रक्षा के लिये तुरन्त ग्रहण कर लेना चाहिये।

यथा पुत्रास्तथा पौत्रा द्रष्टव्यास्ते न संशयः।
भक्तिश्चैषां न कर्तव्या व्यवहारे प्रदर्शिते॥ २६॥
श्रोतुं चैव न्यसेद् राजा प्राज्ञान् सर्वार्थदर्शिनः।
व्यवहारेषु सततं तत्र राज्यं प्रतिष्ठितम्॥ २७॥
आकरे लवणे शुल्के तरे नागबले तथा।
न्यसेदमात्यान् नृपतिः स्वाप्तान् वा पुरुषान् हितान्॥ २८॥

इसमें सन्देह नहीं कि राजा को अपनी प्रजा को पुत्र और पौत्रों के समान स्नेहदृष्टि से देखना चाहिये, किन्तु न्याय करने के समय उसे स्नेहवश पक्षपात नहीं करना चाहिये। न्याय करते समय राजा को वादी और प्रतिवादी की बातों को सुनने के लिये सर्वार्थदर्शी, विद्वानों को बैठाना चाहिये। विशुद्ध न्याय पर ही राज्य प्रतिष्ठित होता है। खान, नमक, नाव के घाट, हाथियों के यूथ, इन स्थानों पर शुल्क के रूप में होनेवाली आय के निरीक्षण के लिये राजा को मन्त्रियों या अपना हित चाहनेवाले सज्जन व्यक्तियों को लगाना चाहिये।

सम्यग्दण्डधरो नित्यं राजा धर्ममवाप्नुयात्।
नृपस्य सततं दण्डः सम्यग् धर्मः प्रशस्यते॥ २९॥
वेदवेदाङ्गवित् प्राज्ञः सुतपस्वी नृपो भवेत्।
दानशीलश्च सततं यज्ञशीलश्च भारत॥ ३०॥
एते गुणाः समस्ताः स्युर्नृपस्य सततं स्थिराः।
व्यवहारलोपे नृपतेः कुतः स्वर्गः कुतो यशः॥ ३१॥
यदा तु पीडितो राजा भवेद् राज्ञा बलीयसा।
तदाभिसंश्रयेद् दुर्गं बुद्धिमान् पृथिवीपतिः॥ ३२॥
विधावाक्रम्य मित्राणि विधानमुपकल्पयेत्।
सामभेदान् विरोधार्थं विधानमुपकल्पयेत्॥ ३३॥

दण्ड को ठीक प्रकार से धारण करने वाला राजा सर्व धर्म का भागी होता है। लगातार दण्ड को धारण किये रहना, राजा का उत्तम धर्म मान कर उसकी प्रशंसा की जाती है। हे भारत! राजा को वेद और वेदांगों का जानकार, बुद्धिमान्, अच्छा तपस्वी, सदा दानशील और यज्ञशील होना चाहिये। ये सारे गुण राजा में सदा स्थिर रहने चाहियें। जिस राजा का न्यायोचित व्यवहार लुप्त हो जाता है, उसे कैसे सुख और कैसे यश प्राप्त हो सकता है? जब राजा दूसरे बलवान् राजा से पीड़ित होने लगे तो बुद्धिमान् राजा को चाहिये कि वह किले का आश्रय ले। उस समय कर्त्तव्य का निश्चय करने के लिये, मित्रों से सलाह करके करणीय कार्य का निश्चय करे। फिर साम, भेद या युद्ध में से क्या करना है? इस पर विचार करके उपयुक्त कार्य करे।

घोषान् न्यसेत मार्गेषु ग्रामानुत्थापयेदपि।
प्रवेशयेच्च तान् सर्वान् शाखानगरकेष्वापि॥ ३४॥
ये गुप्ताश्चैव दुर्गाश्च देशास्तेषु प्रवेशयेत्।
धनिनो बलमुख्यांश्च सान्त्वयित्वा पुनः पुनः॥ ३५॥
शस्याभिहारं कुर्याच्च स्वयमेव नराधिपः।
असम्भवे प्रवेशस्य दहेद् दावाग्निना भृशम्॥ ३६॥
क्षेत्रस्थेषु च सस्येषु शत्रोरुपजपेन्नरान्।
विनाशयेद् वा तत् सर्वं बलेनाथ स्वकेन वा॥ ३७॥

वह पशुशालाओं को सड़कों पर स्थापित कर दे, छोटे गाँवों को उठा कर शाखा गाँवों में मिला दे। धनवानों और सेना के जो प्रधान अधिकारी हों, उन्हें बार बार सान्त्वना देकर जो छिपे हुए किले और स्थान हों, उनमें ठहरा दे। राजा को चाहिये कि वह खेतों में तैयार हुई अनाज की फसल को स्वयं कटवा कर रखवा ले। यदि रखना असम्भव हो तो उसे आग लगाकर जला दे। शत्रु के खेतों में जो फसल हो, उसे नष्ट करने को उन्हीं के लोगों में फूट डलवा दे या अपनी सेना द्वारा नष्ट करा दे।

नदीमार्गेषु च तथा संक्रमानवसादयेत्।
जलं विस्रावयेत् सर्वमविस्राव्यं च दूषयेत्॥ ३८॥
तदात्वेनायतीभिश्च निवसेद् भूम्यनन्तरम्।
प्रतीघातं परस्याजौ मित्रकार्येऽप्युपस्थिते॥ ३९॥
दुर्गाणां चाभितो राजा मूलच्छेदं प्रकारयेत्।
प्रवृद्धानां च वृक्षाणां शाखां प्रच्छेदयेत् तथा॥ ४०॥

नदियों के रास्तों में जो पुल हो, उन्हें तुड़वा देना चाहिये। तालाबों के जल को उधर उधर फैला देना चाहिये। यदि वह बहाया न जा सके तो उसे दूषित कर देना चाहिये। वर्तमान समय में और भविष्य में भी, चाहे मित्र का भी कार्य उपस्थित हो, उसे छोड़ कर शत्रु के उस शत्रु का सहारा लेना चाहिये, जो राज्य की भूमि के निकट रहता हो और शत्रु पर सदा आक्रमण करने के लिये उद्यत हो। राजा को छोटे दुर्गों का मूलोच्छेद करा देना चाहिये और बढ़े हुए वृक्षों की डालियों को कटवा देना चाहिये।

प्रगण्डीः कारयेत् सम्यगाकाशजननीस्तदा।
आपूरयेच्च परिखां स्थाणुनक्रझषाकुलाम्॥ ४१॥
संकटद्वारकाणि स्युरुच्छ्वासार्थं पुरस्य च।
तेषां च द्वारवद् गुप्तिः कार्या सर्वात्मना भवेत्॥ ४२॥
द्वारेषु च गुरूण्येव यन्त्राणि स्थापयेत् सदा।
आरोपयेच्छतघ्नीश्च स्वाधीनानि च कारयेत्॥ ४३॥
काष्ठानि चाभिहार्याणि तथा कूपांश्च खानयेत्।
संशोधयेत् तथा कूपान् कृतपूर्वान् पयोऽर्थिभिः॥ ४४॥

राजा नगर के परकोटे पर स्थान स्थान पर सैनिकों के बैठने के लिये उचित स्थान बनवाये। ऐसे स्थानों को प्रगण्डी कहते हैं। इन प्रगण्डियों के समीपवाली दीवार पर बाहर की वस्तुओं को देखने के लिये छोटे-छोटे छिद्र बनवाये। इन छिद्रों को आकाशजननी कहते हैं। परकोटे के बाहर की खाई में जल भरवा दे और उस जल में त्रिशूलयुक्त खम्बे गड़वा दे तथा मगरमच्छ और बड़े बड़े मत्स्य भी डलवा दे। नगर में हवा आने जाने के लिये परकोटे में छोटे छोटे दरवाजे बनवाये और बड़े दरवाजों के समान उनकी भी सबतरह से रक्षा करे। सारे दरवाजों पर भारी भारी यन्त्र और तोपें सदा लगाये और उन्हें अपने अधिकार में रखे। किले में बहुत सी लकड़ियाँ जलाने को इकट्ठी करे और कूओं को खुदवाये। पानी के इच्छुक लोगों ने जो पहले कूएँ बनवा रखे हों, उन्हें साफ करवा ले।

तृणच्छन्नानि वेश्मानि पङ्केनाथ प्रलेपयेत्।
निर्हरेच्च तृणं मासि चैत्रे वह्निभयात् तथा॥ ४५॥
नक्तमेव च भक्तानि पाचयेत नराधिपः।
न दिवा ज्वालयेदग्निं वर्जयित्वाऽग्निहोत्रिकम्॥ ४६॥
कर्मारारिष्टशालासु ज्वलेदग्निः सुरक्षितः।
गृहाणि च प्रवेश्यान्तर्विधेयः स्याद्धुताशनः॥ ४७॥
महादण्डश्च तस्य स्याद् यस्याग्निर्वै दिवाभवेत्।
प्रघोषयेदथैवं च रक्षणार्थं पुरस्य च॥ ४८॥

घासफूस से छाये हुए घरों को गीली मिट्टी से लिपवा दे। चैत्र का महीना आते ही आग लगने के भय से किले में से घास आदि को हटवा दे। राजा को यह आज्ञा देनी चाहिये कि युद्ध के समय रात में ही खाना बनाया जाये। अग्निहोत्र को छोड़ कर दिन में अग्नि न जलाई जाये। लोहार की भट्टियों तथा सूतिकाघरों में अत्यन्त सुरक्षितरूप से अग्नि जलानी चाहिये। आग को घर में ढककर रखना चाहिये। नगर की रक्षा के लिये यह घोषणा करा देनी चाहिये कि जिसके घर में दिन में आग जलेगी, उसे बड़ा भारी दण्ड देना पड़ेगा।

भिक्षुकांश्चाक्रिकांश्चैव क्लीबोन्मत्तान् कुशीलवान्।
बाह्यान् कुर्यान्नरश्रेष्ठ दोषाय स्युर्हि तेऽन्यथा॥ ४९॥
विशालान् राजमार्गांश्च कारयीत नराधिपः।
प्रपाश्च विपणांश्चैव यथोद्देशं समाविशेत्॥ ५०॥
भाण्डागारायुधागारान् योधागारांश्च सर्वशः।
अश्वागारान् गजागारान् बलाधिकरणानि च॥ ५१॥
परिखाश्चैव कौरव्य प्रतोलीर्निष्कुटानि च।
न जात्वन्यः प्रपश्येत गुह्यमेतद् युधिष्ठिर॥ ५२॥

हे नरश्रेष्ठ! युद्ध के समय राजा को चाहिये कि भिखारियों, गाड़ीवानों, हीजड़ों, पागलों और नाटक करने वालों को नगर से बाहर निकाल दे। नहीं तो वे भारी विपत्ति का कारण बन सकते हैं। राजा को बड़े बड़े राजमार्ग बनवाने चाहियें। उन मार्गों पर आवश्यकतानुसार जलक्षेत्र और बाजारों की व्यवस्था करनी चाहिये। हे कुरुनन्दन युधिष्ठिर। अन्न के भण्डार, शस्त्रागार, योद्धाओं के निवासस्थान, अश्वशालाएँ, हाथीशालाएँ, सैनिकशिविर, खाई, गलियाँ और राजमहल के उद्यान, इन स्थानों को गुप्त रीति से बनवाना चाहिये। ताकि दूसरा उन्हें न देख सके।

अर्थसंनिचयं कुर्याद् राजा परबलार्दितः।
तैलं वसा मधु घृतमौषधानि च सर्वशः॥ ५३॥
अङ्गारकुशमुञ्जानां पलाशशरवर्णिनाम्।
यवसेन्धनदिग्धानां कारयीत च संचयान्॥ ५४॥
आयुधानां च सर्वेषां शक्त्यृष्टिप्रासवर्मणाम्।

संचयानेवमादीनां कारयीत नराधिपः॥ ५५॥
औषधानि च सर्वाणि मूलानि च फलानि च।
चतुर्विधांश्च वैद्यान् वै संगृह्णीयाद् विशेषतः॥ ५६॥

यदि राजा शत्रु सेना से पीड़ित हो तो उसे धन तथा आवश्यक वस्तुओं का संग्रह कराना चाहिये। उसे तेल, चर्बी, मधु, घी, सब प्रकार के ओषध, अंगारे, कुश, मूंज, ढाक, बाण, लेखक घास और विष में डुबाये हुए बाणों को एकत्र करके रखना चाहिये। ऐसे ही उसे शक्ति, ऋष्टि, प्रास, कवच तथा दूसरी आवश्यक वस्तुओं का संग्रह कराना चाहिये। सबप्रकार के ओषध, मूल, फल और चार प्रकार के वैद्यों का विशेष रूप से प्रबन्ध करना चाहिये।

यतः शङ्का भवेच्चापि भृत्यतोऽथापि मन्त्रितः।
पौरेभ्यो नृपतेर्वापि स्वाधीनान् कारयीत तान्॥ ५७॥
कृते कर्मणि राजेन्द्र पूजयेद् धनसंचयैः।
दानेन च यथार्हेण सान्त्वेन विविधेन च॥ ५८॥
राज्ञा सप्तैव रक्ष्याणि तानि चैव निबोध मे।
आत्मामात्याश्च कोशाश्च दण्डो मित्राणि चैव हि॥ ५९॥
तथा जनपदाश्चैव पुरं च कुरुनन्दन।
एतत् सप्तात्मकं राज्यं परिपाल्यं प्रयत्नतः॥ ६०॥

यदि राजा को किसी से जैसे अपने नौकर से, मन्त्री से, पुरवासियों से, या पड़ौस के राजा से कोई सन्देह हो जाये, तो उसे चाहिये कि समयोचित उपायों के द्वारा उन्हें अपने वश में कर ले। हे राजेन्द्र! अपना कार्य पूरा हो जाने पर उसे अपने सहायकों को धन, यथायोग्य दान तथा तरह-तरह की सान्त्वना के द्वारा अवश्य सम्मानित करना चाहिये। राजा को सात चीजों की अवश्य रक्षा करनी चाहिये। उन सात के नाम तुम मुझसे सुनो। वे सात हैं राजा का अपना शरीर, मन्त्री, कोश, दण्ड अर्थात् सेना, मित्र, राष्ट्र और नगर। हे कुरुनन्दन! राजा को इन सात का प्रयत्नपूर्वक पालन करना चाहिये।

षाड्गुण्यं च त्रिवर्गं च त्रिवर्गपरमं तथा।
यो वेत्ति पुरुषव्याघ्र स भुङ्क्ते पृथिवीमिमाम्॥ ६१॥
षाड्गुण्यमिति यत् प्रोक्तं तन्निबोध युधिष्ठिर।
संधानासनमित्येव यात्रासंधानमेव च॥ ६२॥
विगृह्यासनमित्येव यात्रां सम्परिगृह्य च।
द्वैधीभावस्तथान्येषां संश्रयोऽथ परस्य च॥ ६३॥
त्रिवर्गश्चापि यः प्रोक्तस्तमिहैकमनाः शृणु।
क्षयः स्थानं च वृद्धिश्च त्रिवर्गः परमस्तथा॥ ६४॥
धर्मश्चार्थश्च कामश्च सेवितव्योऽथ कालतः।
धर्मेण च महीपालश्चिरं पालयते महीम्॥ ६५॥

हे पुरुष व्याघ्र! जो राजा छः गुणों, तीन वर्गों और तीन परम वर्ग को जानता है, वह पृथिवी का भोग करता है। हे युधिष्ठिर! जो छः गुण कहे गये हैं, उनके विषय में सुनो। वे ये हैं। शत्रु से सन्धि कर शान्ति से बैठ जाना, शत्रु पर चढ़ाई करना, शत्रु से युद्ध करना, शत्रु को डराने के लिये आक्रमण का अभिनयमात्र करके बैठ जाना, शत्रु में भेद डलवा देना और दुर्जय राजा का आश्रय लेना। जो त्रिवर्ग कहे गये हैं, उन्हें भी तुम एकाग्र मन से सुनो। वे हैं क्षय, स्थान और वृद्धि। धर्म, अर्थ और काम ये परम त्रिवर्ग हैं। इनका राजा को यथा समय सेवन करना चाहिये। धर्म के अनुसार प्रजा का पालनकर, राजा लम्बे समय तक राज्य कर सकता है।

अस्मिन्नर्थे च श्लोकौ द्वौ गीतावङ्गिरसा स्वयम्।
यादवीपुत्र भद्रं ते तावपि श्रोतुमर्हसि॥ ६६॥
कृत्वा सर्वाणि कार्याणि सम्यक् सम्पाल्य मेदिनीम्।
पालयित्वा तथा पौरान् परत्र सुखमेधते॥ ६७॥
किं तस्य तपसा राज्ञः किं च तस्याध्वरैरपि।
सुपालितप्रजो यः स्यात् सर्वधर्मविदेव सः॥ ६८॥

युधिष्ठिर उवाच

दण्डनीतिश्च राजा च समस्तौ तावुभावपि।
कस्य किं कुर्वतः सिद्ध्येत् तन्मे ब्रूहि पितामह॥ ६९॥

हे कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर! तुम्हारा कल्याण हो। इस विषय में स्वयं बृहस्पति ने दो श्लोक कहे हैं। तुम उन्हें सुनो! उन्होंने कहा है कि सारे कर्त्तव्यों को पूराकर, पृथिवी का अच्छी तरह से पालनकर और नगर तथा राष्ट्र की प्रजा का संरक्षण कर राजा परलोक में भी सुख प्राप्त करता है। जिस राजा ने प्रजा का अच्छी तरह पालन किया है, उसे तपस्या से क्या लेना है? उसे यज्ञों का भी अनुष्ठान करने की क्या आवश्यकता है? वह तो स्वयं सारे धर्मों का ज्ञाता है। तब युधिष्ठिर ने पूछा कि हे पितामह! दण्ड नीति और राजा दोनों मिलकर ही कार्य करते हैं। इनमें से किसके क्या करने से कार्यसिद्धि होती है? यह बताइये।

भीष्म उवाच

महाभाग्यं दण्डनीत्याः सिद्धैः शब्दैः सहेतुकैः।
शृणु मे शंसतो राजन् यथावदिह भारत॥ ७०॥
दण्डनीतिः स्वधर्मेभ्यश्चातुर्वर्ण्यं नियच्छति।
प्रयुक्ता स्वामिना सम्यगधर्मेभ्यो नियच्छति॥ ७१॥
चातुर्वर्ण्ये स्वकर्मस्थे मर्यादानामसंकरे।
दण्डनीतिकृते क्षेमे प्रजानामकुतोभये॥ ७२॥
स्वाम्ये प्रयत्नं कुर्वन्ति त्रयो वर्णा यथाविधि।
तस्मादेव मनुष्याणां सुखं विद्धि समाहितम्॥ ७३॥

तब भीष्म जी ने कहा कि हे भरतवंशी राजन्! दण्डनीति से राजा और प्रजा के जिस सौभाग्य का उदय होता है, तुम उसका मुझसे यथावत् वर्णन लोकप्रसिद्ध और युक्तियुक्त शब्दों में सुनो। यदि स्वामी के द्वारा दण्डनीति का उचित रीति से प्रयोग किया जाये, तो वह चारों वर्णों के लोगों को अपने अपने धर्म में लगाती है और उन्हें अधर्म से परे रखती है। जब चारों वर्ण अपने अपने कार्य में लगे हुए होते हैं, तब मर्यादा का उल्लंघन नहीं किया जाता। दण्डनीति के द्वारा प्रजा निर्भय हो कर रहती है, उसका कल्याण होता है, तब सारे लोग यथा विधि अपनी अपनी उन्नति के लिये प्रयत्न करते हैं। इसलिये दण्डनीति में ही मनुष्यों का सुख विद्यमान हैं, तुम यह समझो।

दण्डनीतिं पुरस्कृत्य विजानन् क्षत्रियः सदा।
अनवाप्तं च लिप्सेत लब्धं च परिपालयेत्॥ ७४॥
लोकस्य सीमन्तकरी मर्यादा लोकभाविनी।
सम्यङ्नीता दण्डनीतिर्यथा माता यथा पिता॥ ७५॥
यस्यां भवन्ति भूतानि तद् विद्धि मनुजर्षभ।
एष एव परो धर्मो यद् राजा दण्डनीतिमान्॥ ७६॥

इसलिये क्षत्रिय को यह बात जान लेनी चाहिये कि वह दण्डनीति का सहारा लेकर ही अप्राप्त वस्तु को प्राप्त करने की इच्छा करे और प्राप्त वस्तु की रक्षा करे। यदि दण्डनीति का ठीक ठीक प्रयोग किया जाये, तो वह बच्चे की रक्षा करने वाले माता पिता के समान लोक की सुन्दर व्यवस्था करने वाली और धर्म मर्यादा की रक्षा करने वाली होती है। हे नर श्रेष्ठ! जिस दण्डनीति के आधार पर सारे प्राणी टिके हुए हैं, तुम उसे समझो। राजा के लिये यही परम धर्म है कि वह समुचित दण्डनीति से युक्त हो।

बत्तीसवाँ अध्याय : राजा के छत्तीस गुण तथा प्रजापालन।

युधिष्ठिर उवाच

केन वृत्तेन वृत्तज्ञ वर्तमानो महीपतिः।
सुखेनार्थान् सुखोदर्कानिह च प्रेत्य चाप्नुयात्॥ १॥

भीष्म उवाच

अयं गुणानां षट्त्रिंशत्षट् त्रिंशद्गुणसंयुतः।
यान् गुणांस्तु गुणोपेतः कुर्वन् गुणमवाप्नुयात्॥ २॥
चरेद् धर्मानकटुको मुञ्चेत् स्नेहं न चास्तिकः।
अनृशंसश्चरेदर्थं चरेत् काममनुद्धतः॥ ३॥
प्रियं ब्रूयादकृपणः शूरः स्यादविकत्थनः।
दाता नापात्रवर्षी स्यात् प्रगल्भः स्यादनिष्ठुरः॥ ४॥

तब युधिष्ठिर ने पूछा कि हे पितामह! किस प्रकार का आचरण करने से राजा इस लोक और परलोक में भी सुख देने वाले पदार्थों को सुगमतापूर्वक प्राप्त कर सकता है। तब भीष्म जी ने उत्तर दिया कि ये छत्तीस गुण हैं। इन छत्तीस गुणों से युक्त होकर राजा उत्कर्ष को प्राप्त हो सकता है। इसलिये उसे इन गुणों से युक्त होने की चेष्टा करनी चाहिये। वे गुण ये हैं।–१– धर्म का आचारण करे पर उसमें कटुता न आने दे। २– आस्तिक रहते हुए दूसरों के साथ स्नेह का व्यवहार न छोड़े। ३–बिना क्रूरता के अर्थ का संचय करे। ४– मर्यादा का बिना उल्लंघन किये विषयों को भोगे। ५– दीनता न लाते हुए प्रिय भाषण करे। ६– शूरवीर हो पर अपनी डींग न मारे। ७– दान करे पर अपात्र को नहीं। ८– साहसी हो पर निष्ठुर न हो।

संदधीत न चानार्यैर्विगृह्णीयान्न बन्धुभिः।
नाभक्तं चारयेच्चारं कुर्यात् कार्यमपीडया॥ ५॥
अर्थं ब्रूयान्न चासत्सु गुणान् ब्रूयान्न चात्मनः।
आदद्यान्न च साधुभ्यो नासत्पुरुषमाश्रयेत्॥ ६॥
नापरीक्ष्य नयेद् दण्डं न च मन्त्रं प्रकाशयेत्।
विसृजेन्न च लुब्धेभ्यो विश्वसेन्नापकारिषु॥ ७॥

अनीर्षुर्गुप्तदारः स्याच्चोक्षः स्यादघृणी नृपः।
स्त्रियः सेवेत नात्यर्थं मृष्टं भुञ्जीत नाहितम्॥ ८॥

८– दुष्टों से मेल न करे १०– अपने बन्धुओं के साथ लड़ाई झगड़ा न करे। ११– ऐसे गुप्तचरों से काम न ले जो राजा के भक्त न हों। १२– दूसरे को पीड़ा न देते हुए उससे अपना काम निकाले। १३– अनार्य व्यक्यिों के सामने अपने अभीष्ट कार्य को न कहे। १४– अपने गुणों का स्वयं ही वर्णन न करे। १५– साधुपुरुषों से उनका धन न छीने। १६– नीच व्यक्तियों का आश्रय न ले। १७–अपराध की अच्छी तरह से जाँच किये बिना दण्ड न दें। १८– गुप्त मन्त्रणा को प्रकट न करे। १९– लोभियों को धन न दे। २०-- अपकार करने वालों पर विश्वास न करे। २१– ईर्ष्या रहित होकर अपनी पत्नी की रक्षा करे। २२– मन में शुद्ध विचार रखे और किसी से घृणा न करे। २३–स्त्रियों का अधिक सेवन न करे। २४– शुद्ध और स्वादिष्ट भोजन करे, अहितकर भोजन को न करे।

अस्तब्धः पूजयेन्मान्यान् गुरून् सेवेदमायया।
अर्चेद् देवानदम्भेन श्रियमिच्छेदकुत्सिताम्॥ ९॥
सेवेत प्रणयं हित्वा दक्षः स्यान्न त्वकालवित्।
सान्त्वयेन्न च मोक्षाय अनुगृह्णन्न चाक्षिपेत्॥ १०॥
प्रहरेन्न त्वविज्ञाय हत्वा शत्रून् न शोचयेत्।
क्रोधं कुर्यान्न चाकस्मान्मृदुः स्यान्नापकारिषु॥ ११॥
इति सर्वान् गुणानेतान् यथोक्तान् योऽनुवर्तते।
अनुभूयेह भद्राणि प्रेत्य स्वर्गे महीयते॥ १२॥

२५– बिना उद्दण्डता के विनय के साथ मान्य व्यक्तियों का सम्मान करे। २६– गुरुजनों की सेवा निष्कपट भाव से करे। २७– दम्भहीन होकर सदाचारी विद्वानों की सेवा करे। २८– निन्दा से रहित ऐश्वर्य को पाने की इच्छा करे। २९– हठ छोड़कर प्रीति का पालन करे। ३०– कार्य कुशल हो पर अवसर को भी पहचानने वाला हो। ३१– केवल छुटकारा पाने के लिये किसी को झूठी सान्त्वना न दे। ३२– किसी पर कृपा करते समय उस पर आक्षेप न करे। ३३– बिना जाने किसी पर प्रहार न करे। ३४– शत्रु को मारकर शोक न करे। ३५– अकस्मात् ही किसी पर क्रोध न करे। ३६– कोमल हो, पर अपकार करने वालों पर नहीं। जो राजा यथार्थ रूप से बताये गये इन गुणों का पालन करता है, वह इस संसार में भी कल्याण को प्राप्त करता है और परलोक में भी प्रतिष्ठा पाता है।

युधिष्ठिर उवाच

कथं राजा प्रजा रक्षन्नाधिबन्धेन युज्यते।
धर्मेण नापराध्नोति तन्मे ब्रूहि पितामह॥ १३॥

भीष्म उवाच

आर्जवेन च सम्पन्नो धृत्या बुद्ध्या च भारत।
यथार्थं प्रतिगृह्णीयात् कामक्रोधौ च वर्जयेत्॥ १४॥
कामक्रोधौ पुरस्कृत्य योऽर्थं राजानुतिष्ठति।
न स धर्मं न चाप्यर्थं प्रतिगृह्णाति बालिशः॥ १५॥
मा स्म लुब्धांश्च मूर्खांश्च कामार्थे च प्रयूयुजः।
अलुब्धान् बुद्धिसम्पन्नान् सर्वकर्मसु योजयेत्॥ १६॥

फिर युधिष्ठिर ने पूछा कि हे पितामह! आप मुझे बताइये कि कैसे राजा प्रजा की रक्षा करते हुए चिन्ता से युक्त और धर्म के विषय में अपराधी नहीं होता। तब भीष्म जी ने कहा कि हे भारत! राजा को चाहिये कि वह सरल भाव से युक्त हो, धैर्य और बुद्धि से सत्य को ग्रहण करे और काम तथा क्रोध का त्याग कर दे। जो राजा काम और क्रोध का आश्रय लेकर धन को एकत्र करना चाहता है, वह मूर्ख न तो धर्म को प्राप्त करता है और न धन उसे मिल पाता है। तुम लोभी और मूर्खों को काम और अर्थ की प्राप्ति में मत लगाओ। जो लोभ से रहित और बुद्धि से युक्त हो, उन्हें ही सारे कार्यों में नियुक्त करना चाहिये।

मूर्खो ह्यधिकृतोऽर्थेषु कार्याणामविशारदः।
प्रजाः क्लिश्नात्ययोगेन कामक्रोधसमन्वितः॥ १७॥
बलिषष्ठेन शुल्केन दण्डेनाथापराधिनाम्।
शास्त्रानीतेन लिप्सेथा वेतनेन धनागमम्॥ १८॥
दापयित्वा करं धर्म्यं राष्ट्रं नीत्या यथाविधि।
तथैतं कल्पयेद् राजा योगक्षेममतन्द्रितः॥ १९॥
गोपायितारं दातारं धर्मनित्यमतन्द्रितम्।
अकामद्वेषसंयुक्तमनुरज्यन्ति मानवाः॥ २०॥

जो मूर्ख है, कार्य साधन में कुशल नहीं है, काम और क्रोध से युक्त है, ऐसे व्यक्ति को यदि धन संग्रह में लगा दिया जाये, तो वह अनुचित तरीकों से प्रजा को पीड़ित करता है। प्रजा की आय का छठा भाग कर के रूप में लेकर, विभिन्न प्रकार

के शुल्क या टैक्स लेकर, अपराधियों पर जुर्माना करके, शास्त्र के अनुसार व्यापारियों की रक्षा करके, उनके द्वारा दिये गये वेतन के द्वारा राजा को धन संग्रह की इच्छा रखनी चाहिये। राजा को प्रजा से धर्मानुसार कर लेकर राजनीति के अनुसार देश का पालन करते हुए, बिना आलस्य के प्रजा के कल्याण के लिये प्रयत्न करना चाहिये। जो राजा प्रजा का रक्षक, दान देने वाला, नित्य धर्म का पालन करने वाला, आलस्य रहित और राग द्वेष से शून्य होता है, प्रजा के लोग उस राजा से प्रेम करते हैं।

मा स्माधर्मेण लोभेन लिप्सेथास्त्वं धनागमम्।
धर्मार्थावध्रुवौ तस्य यो न शास्त्रपरो भवेत्॥ २१॥
अपशास्त्रपरो राजा धर्मार्थान्नाधिगच्छति।
अस्थाने चास्य तद् वित्तं सर्वमेव विनश्यति॥ २२॥
अर्थमूलोऽपि हिंसां च कुरुते स्वयमात्मनः।
करैरशास्त्रदृष्टैर्हि मोहात् सम्पीडयन् प्रजाः॥ २३॥
ऊधश्छिन्द्यात् तु यो धेन्वाः क्षीरार्थी न लभेत् पयः।
एवं राष्ट्रमयोगेन पीडितं न विवर्धते॥ २४॥

तुम लोभ और अधर्म के द्वारा धन पाने की कभी इच्छा न करना। जो शास्त्रों के अनुसार नहीं चलते हैं, उनके धर्म और अर्थ दोनों ही अस्थिर और अनिश्चित हो जाते हैं। शास्त्रों के विरुद्ध चलने वाले राजा को धर्म और अर्थ प्राप्त नहीं होता। यदि वह धन को प्राप्त कर भी लेता है, तो उसका वह धन अनुचित कार्यों में नष्ट हो जाता है। जो राजा धन का लोभी होता है, वह मोह के कारण प्रजा से शास्त्र के विरुद्ध अधिक कर लेकर उसे कष्ट देता है और स्वयं भी अपना विनाश कर लेता है। जैसे कोई दूध को प्राप्त करने का इच्छुक गाय के थन को ही काट ले, तो उसे दूध नहीं मिल सकता, उसी प्रकार जो राज्य में रहने वाली प्रजा का अनुचित उपाय से शोषण करता है, तो वह उन्नति नहीं कर सकता।

यो हि दोग्ध्रीमुपास्ते च स नित्यं विन्दते पयः।
एवं राष्ट्रमुपायेन भुञ्जानो लभते फलम्॥ २५॥
अथ राष्ट्रमुपायेन भुज्यमानं सुरक्षितम्।
जनयत्यतुलां नित्यं कोशवृद्धिं युधिष्ठिर॥ २६॥
दोग्ध्री धान्यं हिरण्यं च मही राज्ञा सुरक्षिता।
नित्यं स्वेभ्यः परेभ्यश्च तृप्ता माता यथा पयः॥ २७॥
मालाकारोपमो राजन् भव माऽऽङ्गारिकोपमः।
तथायुक्तश्चिरं राज्यं भोक्तुं शक्ष्यसि पालयन्॥ २८॥

जो दूध देने वाली गाय की सेवा करता है, उसे रोज दूध मिलता है, ऐसे ही जो राजा राष्ट्र की उचित रीति से रक्षा करता है, उसे उसका लाभ मिलता है। हे युधिष्ठिर! यदि राजा राष्ट्र की उचित उपाय से रक्षा करता हुआ, उसका उपभोग करता है, तो राष्ट्र की प्रजा उसके कोश की अनुपम वृद्धि करती है। जैसे माता स्वयं तृप्त रहने पर ही बालक को दूध पिलाती है, वैसे ही राजा से सुरक्षित पृथिवी दुधारू गाय के समान राजा के स्वजनों तथा दूसरे लोगों को अन्न और स्वर्ण देती है। हे युधिष्ठिर! तुम माली जैसा बनो। कोयला बनाने वाले जैसा मत बनो। इससे तुम देर तक प्रजा का पालन करते हुए राज्य का उपभोग कर सकोगे।

स्विष्टिः स्वधीतिः सुतपा लोकाञ्जयति यावतः।
क्षणेन तानवाप्नोति प्रजा धर्मेण पालयन्॥ २९॥
एवं धर्मं प्रयत्नेन कौन्तेय परिपालय।
ततः पुण्यफलं लब्ध्वा नाधिबन्धेन योक्ष्यसे॥ ३०॥

उत्तम यज्ञ का अनुष्ठानकर गृहस्थ धर्म, उत्तम स्वाध्याय से ब्रह्मचर्य तथा अच्छी तपस्या द्वारा वानप्रस्थ धर्म का पालन करने वाला, परलोक में जिस गति को प्राप्त करता है, उसी उत्तम गति को धर्म पूर्वक प्रजा का पालन करने वाला राजा थोड़ी देर में ही पा जाता है। हे कुन्तीपुत्र! इसलिये तुम प्रयत्नपूर्वक धर्म का पालन करो। इससे तुम उत्तम फल को प्राप्त करोगे और चिन्ता में नहीं पड़ोगे।

तेतीसवाँ अध्याय : राजा के लिये विद्वान् और सदाचारी पुरोहित।

य एव तु सतो रक्षेदसतश्च निवर्तयेत्।
स एव राज्ञः कर्तव्यो राजन् राजपुरोहितः॥ १॥
ब्राह्मणो हि कुले जातः कृतप्रज्ञो विनीतवान्।
श्रेयो नयति राजानं ब्रुवंश्चित्रां सरस्वतीम्॥ २॥
राजा चरति यद् धर्मं ब्राह्मणेन निदर्शितम्।
एवमेव प्रजाः सर्वा राजानमभिसंश्रिताः॥ ३॥
सम्यग्वृत्ताः स्वधर्मस्था न कुतश्चिद् भयान्विताः।

जो राजा के सत्कर्मों की रक्षा करे और असत्कर्मों से हटाये, ऐसे विद्वान् ब्राह्मण को हे राजन्! राजा को अपना पुरोहित बनाना चाहिये। जिस ब्राह्मण ने अच्छे कुल में जन्म लिया है, जो बुद्धिमान् और विनयशील हो, वह अपनी विचित्र वाणी से राजा को कल्याण की तरफ ले जाता है। ब्राह्मण जिस धर्म का निर्देश करता है, राजा उसी का पालन करता है। पुरोहितद्वारा निर्दिष्ट धर्म का पालन करनेवाले राजा के राज्य में रहने वाली प्रजा सदाचारपरायण, अपने धर्म में स्थित और सबतरफ से निर्भय होजाती है।

धर्मात्मा मन्त्रविद् येषां राज्ञां राजन् पुरोहितः॥ ४॥
राजा चैवंगुणो येषां कुशलं तेषु सर्वशः।
उभौ प्रजा वर्धयतो देवान् सर्वान् सुतान् पितॄन्॥ ५॥
भवेयातां स्थितौ धर्मे श्रद्धेयौ सुतपस्विनौ।
परस्परस्य सुहृदौ विहितौ समचेतसौ।
ब्रह्मक्षत्रस्य सम्मानात् प्रजा सुखमवाप्नुयात्॥ ६॥

हे राजन्! जिन राजाओं का पुरोहित धर्मात्मा और मन्त्रणा में कुशल होता है, जिस प्रजा का राजपुरोहित और राजा दोनों इन गुणों से युक्त होते हैं, उस प्रजा का सबप्रकार से भला होता है। जहाँ राजा और पुरोहित दोनों में परस्पर सौहार्द होता है, दोनों समान हृदयवाले होते हैं, दोनों ही धर्मनिष्ठ, श्रेष्ठ और तपस्वी हों, वहाँ वेदोनों मिलकर प्रजा की वृद्धि करते हैं। वे सदाचारी विद्वानों, पुत्रों और वृद्धों को उन्नतिशील बनाते हैं। ऐसे ब्राह्मण और राजा का सम्मान कर प्रजा सुख को प्राप्त करती है।

चौंतीसवाँ अध्याय : प्रजापालन का महत्व और राजा के कर्त्तव्य।

युधिष्ठिर उवाच

यया वृत्त्या महीपालो विवर्धयति मानवान्।
पुण्यांश्च लोकान् जयति तन्मे ब्रूहि पितामह॥ १॥

भीष्म उवाच

दानशीलो भवेद् राजा यज्ञशीलश्च भारत।
उपवासतपःशीलः प्रजानां पालने रतः॥ २॥
सर्वाश्चैव प्रजा नित्यं राजा धर्मेण पालयन्।
उत्थानेन प्रदानेन पूजयेच्चापि धार्मिकान्॥ ३॥
राज्ञा हि पूजितो धर्मस्ततः सर्वत्र पूज्यते।
यद् यदाचरते राजा तत् प्रजानां स्म रोचते॥ ४॥

युधिष्ठिर ने पूछा कि हे पितामह! राजा अपने जिस आचरण से प्रजा की वृद्धि करता है और स्वयं भी उत्तम गति को प्राप्त करता है, उसे आप मुझे बताइये। तब भीष्म पितामह ने कहा कि हे भारत! राजा को दानशील, यज्ञशील, उपवास और तपस्या में तत्पर और प्रजा के पालन में लगा हुआ होना चाहिये। सारी प्रजा का नित्यधर्म के अनुसार पालन करनेवाले राजा को धार्मिक मनुष्य के आने पर, उसका खड़े होकर, उत्तम वस्तुएँ देकर स्वागत करना चाहिये। राजा के द्वारा जिसधर्म का सम्मान किया जाता है, उसी धर्म का सब जगह आदर होने लगता है। क्योंकि राजा जिस कार्य को करता है, प्रजा को भी वह कार्य अच्छा लगता है।

नित्यमुद्यतदण्डश्च भवेन्मृत्युरिवारिषु।
निहन्यात् सर्वतो दस्यून् न कामात् कस्यचित् क्षमेत्॥ ५॥
पर्जन्यमिव भूतानि महाद्रुममिव द्विजाः।
नरास्तमुपजीवन्ति नृपं सर्वार्थसाधकम्॥ ६॥
न हि कामात्मना राज्ञा सततं कामबुद्धिना।
नृशंसेनातिलुब्धेन शक्यं पालयितुं प्रजाः॥ ७॥

राजा शत्रुओं को दण्ड देने के लिये सदा मृत्यु के समान तैयार रहे। वह डाकू और लुटेरों को सबतरफ से पकड़कर मार डाले, स्वार्थ से किसी

के भी अपराध को क्षमा न करे। जैसे सारे प्राणी बादलों के और पक्षी वृक्षों के सहारे जीवननिर्वाह करते हैं, वैसे ही सारे मनुष्य, सारे मनोरथों को पूरा करनेवाले राजा का आश्रय लेकर जीवनयापन करते हैं। जो राजा कामी है, जिसकी बुद्धि में सदा कामभावना ही भरी रहती है, जो निर्दय और बहुत लोभी है, वह प्रजा का पालन नहीं कर सकता।

युधिष्ठिर उवाच

नाहं राज्यसुखान्वेषी राज्यमिच्छाम्यपि क्षणम्।
धर्मार्थं रोचये राज्यं धर्मश्चात्र न विद्यते॥ ८॥
तदलं मम राज्येन यत्र धर्मो न विद्यते।
वनमेव गमिष्यामि तस्माद् धर्मचिकीर्षया॥ ९॥
तत्र मेध्येष्वरण्येषु न्यस्तदण्डो जितेन्द्रियः।
धर्ममाराधयिष्यामि मुनिर्मूलफलाशनः॥ १०॥

तब युधिष्ठिर ने कहा कि हे पितामह! मैं राज्य सुख के हेतु क्षणभर भी राज्य करने की इच्छा नहीं रखता। मैं तो धर्मपालन के लिये राज्य करना चाहता हूँ, पर मुझे लगता है कि राज्यपालन में धर्म नहीं है। जिस राज्य में धर्म नहीं है, उस राज्य को लेकर मैं क्या करूँगा? इसलिये मैं तो धर्मपालन के लिये वन में ही चला जाऊँगा। वहाँ पवित्र वनप्रदेशों में दण्ड का त्यागकर, जितेन्द्रिय होकर, मुनियों के समान फल मूल खाता हुआ धर्म का आचरण करूँगा।

भीष्म उवाच

वेदाहं तव या बुद्धिरानृशंस्यगुणैव सा।
न च शुद्धानृशंस्येन शक्यं राज्यमुपासितुम्॥ ११॥
अपि तु त्वां मृदुप्रज्ञमत्यार्यमतिधार्मिकम्।
क्लीबं धर्मघृणायुक्तं न लोको बहु मन्यते॥ १२॥
वृत्तं तु स्वमपेक्षस्व पितृपैतामहोचितम्।
नैव राज्ञां तथा वृत्तं यथा त्वं स्थातुमिच्छसि॥ १३॥
न हि वैक्लव्यसंसृष्टमानृशंस्यमिहास्थितः।
प्रजापालनसम्भूतमाप्ता धर्मफलं ह्यसि॥ १४॥

तब भीष्म जी ने कहा कि मैं जानता हूँ कि तुम्हारी बुद्धि में दया और कोमलता का गुण है, किन्तु केवल दया और कोमलता से ही राज्य नहीं किया जासकता। यद्यपि तुम कोमल बुद्धिवाले हो और बड़े सज्जन तथा बड़े धार्मिक हो। धर्म के प्रति तुम्हारा बड़ा आग्रह है, पर यह सब होने पर भी संसार के लोग तुम्हें कायर समझकर अधिक आदर नहीं देंगे। तुम्हारे पिता और बाबा ने जिस आचरण को अपनाया था, तुम भी उसी आचरण को अपनाने की इच्छा रखो। तुम जिस तरह से रहना चाहते हो, वह राजाओं का आचरण नहीं है। व्याकुलताजनित कोमलता को अपनाकर तुम प्रजा पालन से होनेवाले धर्म के फल को नहीं प्राप्त कर सकते।

न ह्येतामाशिषं पाण्डुर्न च कुन्ती त्वयाचत।
तथैतत् प्रज्ञया तात यथाऽऽचरसि मेधया॥ १५॥
शौर्यं बलं च सत्यं च पिता तव सदाब्रवीत्।
माहात्म्यं च महौदार्यं भवतः कुन्त्ययाचत॥ १६॥
दानमध्ययनं यज्ञं प्रजानां परिपालनम्।
धर्ममेतदधर्मं वा जन्मनैवाभ्यजायथाः॥ १७॥
काले धुरि च युक्तानां वहतां भारमाहितम्।
सीदतामपि कौन्तेय न कीर्तिरवसीदति॥ १८॥

हे तात! तुम अपनी बुद्धि और विचार से जैसा आचरण करना चाहते हो, वैसी आशा तुम्हारे बारे में न तो पाण्डु ने और न कुन्ती ने की थी। तुम्हारे पिता पाण्डु तुम्हारे लिये कहा करते थे कि मेरे पुत्र में शूरता, बल और सत्य की वृद्धि हो। तुम्हारी माता कुन्ती भी यही इच्छा किया करती थी कि तुम्हारी महत्ता और उदारता बढ़े। दान, अध्ययन, यज्ञ और प्रजाओं का पालन, ये कर्म चाहे धर्म हों या अधर्म, तुम्हारा जन्म इन्ही कार्यों को करने के लिये हुआ है, हे कुन्तीपुत्र! भार वहन करने के लिये लगाये गये पुरुषों पर उचित समय पर जो राज्यआदि का भार रख दिया जाता है, उसे वहन करते समय यद्यपि कष्ट उठाना पड़ता है, पर फिर भी उनकी कीर्ति चिरस्थायी होती है।

समन्ततो विनियतो वहत्यस्खलितो हि यः।
निर्दोषः कर्मवचनात् सिद्धिः कर्मण एव सा॥ १९॥
यदा कुलीनो धर्मज्ञः प्राप्नोत्यैश्वर्यमुत्तमम्।
योगक्षेमस्तदा राज्ञः कुशलायैव कल्प्यते॥ २०॥
दानेनान्यं बलेनान्यमन्यं सूनृतया गिरा।
सर्वतः प्रतिगृह्णीयाद् राज्यं प्राप्येह धार्मिकः॥ २१॥
यं हि वैद्याः कुले जाता ह्यवृत्तिभयपीडिताः।
प्राप्य तृप्ताः प्रतिष्ठन्ति धर्मः कोऽभ्यधिकस्ततः॥ २२॥

जो व्यक्ति सबतरफ से मन और इन्द्रियों को वश में कर, अपने ऊपर रखे हुए भार को बिना लड़खड़ाये वहन करता है, उसे कोई दोष नहीं प्राप्त

होता। क्योंकि शास्त्रों में कर्म करने का विधान किया गया है। अतः राजा को कर्म करने से ही सिद्धि प्राप्त होजाती है। जब कुलीन और धर्मज्ञ पुरुषों को राजा के पास से उत्तम ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है, तभी राजा का योग और क्षेम सिद्ध होता है। गुणवानों का सम्मान राजा के कुशलमंगल का साधक है। धर्मात्मा राजा को चाहिये कि वह राज्यप्राप्ति के पश्चात् किसी को दान से, किसी को बल से और किसी को मधुर वाणी से सबको अपने वश में करले। उत्तम कुल में उत्पन्न हुए ऐसे विद्वान् लोग, जो जीवन निर्वाह का कोई उपाय न होने के कारण भय से पीड़ित रहते हैं, जिस राजा का आश्रय पाकर तृप्त होजाते हैं, उस राजा के लिये उससे अधिक धर्म की बात और क्या होगी?

यस्मिन् भयार्दितः सम्यक् क्षेमं विन्दत्यपि क्षणम्।
स स्वर्गजित्तमोऽस्माकं सत्यमेतद् ब्रवीमि ते॥ २३॥
त्वमेव प्रीतिमांस्तस्मात् कुरूणां कुरुसत्तम।
भव राजा जय स्वर्गं सतो रक्षासतो जहि॥ २४॥
अनु त्वां तात जीवन्तु सुहृदः साधुभिः सह।
पर्जन्यमिव भूतानि स्वादुद्रुममिव द्विजाः॥ २५॥
धृष्टं शूरं प्रहर्तारमनृशंसं जितेन्द्रियम्।
वत्सलं संविभक्तारमुपजीवन्ति तं नराः॥ २६॥

भयभीत मनुष्य, जिसके पास जाकर थोड़ी देर के लिये भी शान्ति को प्राप्त कर लेता है, वह हमलोगों में उत्तम पारलौकिक गति को पाने का सबसे बड़ा अधिकारी है, यह मैं तुमसे सत्य कहता हूँ। हे कुरुश्रेष्ठ! इसलिये तुम ही प्रसन्नतापूर्वक कुरुदेश की प्रजा के राजा बनो। सत्पुरुषों की रक्षा और असत्पुरुषों का संहारकर, अपने कर्त्तव्यपालन से परलोक में उत्तम गति को प्राप्त करो। जैसे बादलों के सहारे प्राणी जीते हैं और स्वादिष्ट फल वाले वृक्ष के सहारे पक्षी जीवन धारण करते हैं, वैसे ही सुहृदगण, साधुपुरुषों के साथ तुम्हारे आश्रय में रहकर अपनी जीविका चलायें। जो राजा निर्भय, शूरवीर, शत्रु पर प्रहार करने में कुशल, कूरता से रहित, जितेन्द्रिय, प्रजावत्सल और दानी होता है, उसी का आश्रय लेकर लोग अपने जीवन का निर्वाह करते हैं।

पैंतीसवाँ अध्याय : कर्त्तव्यहीन ब्राह्मण और राजा से बर्ताव।

युधिष्ठिर उवाच

स्वकर्मण्यपरे युक्तास्तथैवान्ये विकर्मणि।
तेषां विशेषमाचक्ष्व ब्राह्मणानां पितामह॥ १॥

भीष्म उवाच

ऋग्यजुः सामसम्पन्नाः स्वेषु कर्मस्ववस्थिताः।
एते देवसमा राजन् ब्राह्मणानां भवन्त्युत॥ २॥
जन्मकर्मविहीना ये कदर्या ब्रह्मबन्धवः।
एते शूद्रसमा राजन् ब्राह्मणानां भवन्त्युत॥ ३॥
अश्रोत्रियाः सर्व एव सर्वे चानाहिताग्नयः।
तान् सर्वान् धार्मिको राजा बलिं विष्टिं च कारयेत्॥ ४॥
ऋत्विक् पुरोहितो मन्त्री दूतो वार्तानुकर्षकः।
एते क्षत्रसमा राजन् ब्राह्मणानां भवन्त्युत॥ ५॥
अश्वारोहा गजारोहा रथिनोऽथ पदातयः।
एते वैश्यसमा राजन् ब्राह्मणानां भवन्त्युत॥ ६॥

युधिष्ठिर ने पूछा कि हे पितामह! कुछ ब्राह्मण अपने कर्त्तव्यपालन में लगे रहते हैं, तो दूसरे ब्राह्मण अपने वर्ण के विपरीत कार्य में लग जाते हैं। इन दोनों में क्या अन्तर है? यह मुझे बताइये। तब भीष्म ने कहा कि जो ब्राह्मण वेदों का अध्ययन करके अपने वर्णधर्म में हुए है, वे ब्राह्मण ब्राह्मणों में देवता के समान माने गये हैं, किन्तु जो दुष्ट ब्राह्मण अपने जातीय कर्म से हीन होकर, कुत्सित कर्मों में लगकर अपने ब्राह्मणत्व से भ्रष्ट हो चुके हैं, वे शूद्रों के समान होते हैं। जो ब्राह्मण वेदों के ज्ञान से रहित हैं, तथा अग्निहोत्र नहीं करते, धार्मिक राजा को चाहिये कि वह उन सब से कर ले और बेगार कराये। हे राजन्! जो ब्राह्मण ऋत्विज्, पुरोहित, मन्त्री, दूत या सन्देशवाहक हों, वे क्षत्रिय के समान माने जाते हैं। हे राजन्! जो ब्राह्मण घुड़सवार, हाथी सवार, रथी और पैदल सिपाही का काम करने वाले होते हैं, उन्हें वैश्य के समान समझा जाता है।

विकर्मस्थाश्च नोपेक्ष्या विप्रा राज्ञा कथंचन।
नियम्याः संविभज्याश्च धर्मानुग्रहकारणात्॥ ७॥
यस्य स्म विषये राजन् स्तेनो भवति वै द्विजः।
राज्ञ एवापराधं तं मन्यन्ते तद्विदो जनाः॥ ८॥
अवृत्त्या यो भवेत् स्तेनो वेदवित् स्नातकस्तथा।
राजन् स राज्ञा भर्तव्य इति वेदविदो विदुः॥ ९॥
स चेन्नो परिवर्तेत कृतवृत्तिः परंतप।
ततो निर्वासनीयः स्यात् तस्माद् देशात् सबान्धवः॥ १०॥

राजा को कर्मभ्रष्ट ब्राह्मण की किसी भी प्रकार उपेक्षा नहीं करनी चाहिये। धर्म पर अनुग्रह करने के लिये उन्हें श्रेष्ठ ब्राह्मणों की श्रेणी से अलग कर देना और दण्ड देना चाहिये। हे राजन्! जिसके राज्य में ब्राह्मण चोरी करता है, उस स्थिति में जानकार लोग राजा का ही अपराध बताते हैं। हे राजन्! यदि कोई वेदवेत्ता या स्नातक ब्राह्मण जीविका न होने के कारण चोरी करने लग जाता है, तो राजा को उसके भरण-पोषण की व्यवस्था करनी चाहिये। यह वेद के विद्वानों का मत है। हे परंतप! यदि आजीविका का प्रबन्ध कर देने पर भी, उस ब्राह्मण के चरित्र में कोई परिवर्तन न आये, वह चोरी ही करता रहे, तो उसे बन्धु और बान्धवोंसहित राज्य से निकाल देना चाहिये।

युधिष्ठिर उवाच

अभ्युत्थिते दस्युबले क्षत्रार्थे वर्णसंकरे।
सम्प्रमूढेषु वर्णेषु यद्यन्योऽभिभवेद् बली॥ ११॥
ब्राह्मणो यदि वा वैश्यः शूद्रो वा राजसत्तम।
दस्युभ्योऽथ प्रजा रक्षेद् दण्डं धर्मेण धारयन्॥ १२॥
कार्यं कुर्यान्न वा कुर्यात् संवार्यो वा भवेन्न वा।
तस्माच्छस्त्रं ग्रहीतव्यमन्यत्र क्षत्रबन्धुतः॥ १३॥

तब युधिष्ठिर ने पूछा कि हे नृपश्रेष्ठ पितामह! यदि राज्य में डाकू लोग उन्नति कर रहे हों, समाज में वर्ण संकरता फैल रही हो और क्षत्रिय के प्रजा पालन रूपी कार्य के लिये सारे वर्णों के लोग कोई उपाय न ढूँढ़ पाते हों, उस अवस्था में यदि कोई बलवान् ब्राह्मण, वैश्य या शूद्र धर्म की रक्षा के लिये दण्ड धारण कर लुटेरों के हाथ से प्रजा को बचा ले, तो वह राज्यशासन का कार्य कर सकता है या नहीं? या उसे इस कार्य से रोक देना चाहिये? मेरे विचार से ऐसे अवसर पर क्षत्रिय से भिन्न दूसरे लोगों को भी शस्त्र उठाना चाहिये।

भीष्म उवाच

अपारे यो भवेत् पारमप्लवे यः प्लवो भवेत्।
शूद्रो वा यदि वाप्यन्यः सर्वथा मानमर्हति॥ १४॥
यमाश्रित्य नरा राजन् वर्तयेयुर्यथासुखम्।
अनाथास्तप्यमानाश्च दस्युभिः परिपीडिताः॥ १५॥
तमेव पूजयेयुस्ते प्रीत्या स्वमिव बान्धवम्।
अभीरभीक्ष्णं कौरव्य कर्ता सन्मानमर्हति॥ १६॥
किं तैर्येऽनडुहो नोह्याः किं धेन्वा वाप्यदुग्धया।
वन्ध्यया भार्यया कोऽर्थः कोऽर्थो राज्ञाप्यरक्षता॥ १७॥

तब भीष्म जी ने कहा कि जो अपार संकट से पार लगा दे, नौका के अभाव में डूबते हुओं को जो नाव बनकर सहारा दे, वह शूद्र हो या कोई और पूरी तरह से सम्मान के योग्य है। हे राजन्! अनाथ, सन्तप्त और डाकुओं से पीड़ित मनुष्य, जिसका आश्रय लेकर सुख को प्राप्त करें, उसी की उन्हें अपने बन्धु और बान्धव के समान पूजा करनी चाहिये। हे कुरुनन्दन! जो निर्भय होकर, बार-बार दूसरों के संकट का निवारण कर सके, वही राजोचित सम्मान को पाने के योग्य है। ऐसे बैलों से क्या लाभ? जो बोझ न ढो सकें। जो दूध न दे, ऐसी गाय किस काम की है? जो बाँझ हो, ऐसी स्त्री से क्या प्रयोजन है? इसीप्रकार जो रक्षा न कर सके ऐसे राजा से क्या लाभ?

यथा दारुमयो हस्ती यथा चर्ममयो मृगः।
यथा ह्यनर्थः षण्ढो वा पार्थ क्षेत्रं यथोषरम्॥ १८॥
एवं विप्रोऽनधीयानो राजा यश्च न रक्षिता।
मेघो न वर्षते यश्च सर्वथा ते निरर्थकाः॥ १९॥
नित्यं यस्तु सतो रक्षेदसतश्च निवर्तयेत्।
स एव राजा कर्तव्यस्तेन सर्वमिदं धृतम्॥ २०॥

हे कुन्तीनन्दन! जैसे लकड़ी का हाथी, चमड़े का हिरण, हिजड़ा मनुष्य, ऊसर खेत, और वर्षा न करनेवाला बादल ये सब व्यर्थ हैं, वैसे ही अनपढ़ ब्राह्मण और रक्षा न करनेवाला राजा भी सर्वथा निरर्थक है, इसलिये जो सदा सज्जनों की रक्षा करे और दुष्टों का निवारण करे, उसी को राजा बनाना चाहिये। उसी के द्वारा संसार सुरक्षित होता है।

छत्तीसवाँ अध्याय : मित्र अमित्र और मन्त्री के लक्षण, कुटुम्बी जनों से व्यवहार।

युधिष्ठिर उवाच

यदप्यल्पतरं कर्म तदप्येकेन दुष्करम्।
पुरुषेणासहायेन किमु राज्ञा पितामह॥ १॥
किंशीलः किंसमाचारो राज्ञोऽथ सचिवो भवेत्।
कीदृशे विश्वसेद् राजा कीदृशे न च विश्वसेत्॥ २॥

भीष्म उवाच

चतुर्विधानि मित्राणि राज्ञां राजन् भवन्त्युत।
सहार्थो भजमानश्च सहजः कृत्रिमस्तथा॥ ३॥

युधिष्ठिर ने पूछा कि हे पितामह! जो छोटे से छोटा काम भी अकेले मनुष्य से पूरा किया जाना कठिन होता है, फिर राजा दूसरों की सहायता के बिना महान् राज्य का संचालन कैसे कर सकता है? राजा का सहायक उसका मन्त्री किस आचरण और स्वभाववाला होना चाहिये? कैसे मनुष्य पर राजा को विश्वास करना चाहिये? और किस पर नहीं करना चाहिये? तब भीष्म ने कहा कि हे राजन्! चार प्रकार के राजाओं के मित्र होते हैं। पहला सहार्थ, दूसरा भजमान, तीसरा सहज चौथा कृत्रिम।

धर्मात्मा पञ्चमश्चापि मित्रं नैकस्य न द्वयोः।
यतो धर्मस्ततो वा स्याद् धर्मस्थो वा ततो भवेत्॥ ४॥
यस्तस्यार्थो न रोचेत न तं तस्य प्रकाशयेत्।
धर्माधर्मेण राजानश्चरन्ति विजिगीषवः॥ ५॥
चतुर्णां मध्यमौ श्रेष्ठौ नित्यं शङ्क्यौ तथापरौ।
सर्वे नित्यं शङ्कितव्याः प्रत्यक्षं कार्यमात्मनः॥ ६॥
न हि राज्ञा प्रमादो वै कर्तव्यो मित्ररक्षणे।
प्रमादिनं हि राजानं लोकाः परिभवन्त्युत॥ ७॥

इसके अतिरिक्त धर्मात्मा व्यक्ति भी राजा का पाँचवाँ मित्र होता है। वह जिस तरफ धर्म होता है, उस तरफ ही होता है अथवा जो धर्मात्मा राजा होता है, उसका ही वह आश्रय लेता है। ऐसे धर्मात्मा व्यक्ति को जो कार्य अच्छा न लगे, राजा को चाहिये कि वह उसे उसके सामने प्रकट न करे। क्योंकि विजय को चाहने वाले राजा कभी धर्म के मार्ग को अपनाते हैं, तो कभी अधर्म के। ऊपर कहे गये चारों प्रकार के मित्रों में से बीच के दो अर्थात् भजमान और सहज ये ही श्रेष्ठ मित्र समझे जाते हैं, शेष दो से सदा सशंक रहना चाहिये। वैसे तो अपने कार्य को ही अपनी निगाह में रखकर सारे मित्रों से सतर्क रहना चाहिये। राजा को मित्र को बनाने में असावधानी नहीं करनी चाहिये। असावधान राजा का सभी लोग तिरस्कार करते हैं।

असाधुः साधुतामेति साधुर्भवति दारुणः।
अरिश्च मित्रं भवति मित्रं चापि प्रदुष्यति॥ ८॥
अनित्यचित्तः पुरुषस्तस्मिन् को जातु विश्वसेत्।
तस्मात्प्रधानं यत् कार्यं प्रत्यक्षं तत् समाचरेत्॥ ९॥
एकान्तेन हि विश्वासः कृत्स्नो धर्मार्थनाशकः।
अविश्वासश्च सर्वत्र मृत्युना च विशिष्यते॥ १०॥
अकालमृत्युर्विश्वासो विश्वसन् हि विपद्यते।
यस्मिन् करोति विश्वासमिच्छतस्तस्य जीवति॥ ११॥

संसार में कई बार बुरा मनुष्य भला बन जाता है और भला मनुष्य बुरा बन जाता है। शत्रु भी मित्र बन जाता है और मित्र भी दूषित हृदयवाला हो जाता है। क्योंकि व्यक्ति का हृदय सदा एकसा नहीं रहता, इसलिये उस पर कौन सदा के लिये विश्वास कर लेगा? अतः जो अपना प्रमुख कार्य है, उसी को आँखों के सामने रखते हुए कार्य करना चाहिये। किसी पर किया हुआ अत्यन्त विश्वास भी धर्म और अर्थ का विनाश कर देता है, किन्तु प्रत्येक स्थान पर अविश्वास करना भी मृत्यु से बढ़कर होता है। किसी पर किया हुआ पूरा विश्वास भी असमय में मृत्यु को उपस्थित कर देता है। अधिक विश्वास करनेवाला व्यक्ति भारी विपत्ति में पड़ जाता है। जिस पर वह अधिक विश्वास करता है, उसकी इच्छा पर ही उसका जीवन निर्भर होता है।

तस्माद् विश्वसितव्यं च शङ्कितव्यं च केषुचित्।
एषा नीतिगतिस्तात लक्ष्या चैव सनातनी॥ १२॥
यं मन्येत ममाभावादिममर्थागमं स्पृशेत्।
नित्यं तस्माच्छङ्कितव्यममित्रं तद् विदुर्बुधाः॥ १३॥
यस्तु वृद्ध्या न तृप्येत क्षये दीनतरो भवेत्।
एतदुत्तममित्रस्य निमित्तमिति चक्षते॥ १४॥
यन्मन्येत ममाभावादस्याभावो भवेदिति।
तस्मिन् कुर्वीत विश्वासं यथा पितरि वै तथा॥ १५॥

इसलिये राजा को कुछ लोगों पर विश्वास तो करना चाहिये, पर उनकी तरफ से शंकित भी रहना चाहिये। हे तात! यही सनातन नीति है और इसी को अपनी दृष्टि में रखना चाहिये। जिसके बारे में यह समझे कि मेरे न होने पर यह मेरे धन को अपने अधिकार में कर सकता है, उससे सदा शंका करनी चाहिये। विद्वानों ने ऐसे व्यक्ति को शत्रु ही माना है। जो व्यक्ति राजा की उन्नति से कभी तृप्त न हो और उसकी अवनति होने पर बहुत दुख का अनुभव करे, यह उत्तम मित्र की पहचान बतायी गयी है। जिस व्यक्ति को वह यह समझे कि मेरे न रहने पर यह भी जीवित नहीं रहेगा, उसके ऊपर अपने पिता के समान विश्वास करना चाहिये।

तं शक्त्या वर्धमानश्च सर्वतः परिबृंहयेत्।
नित्यं क्षताद् वारयति यो धर्मेष्वपि कर्मसु॥ १६॥
क्षताद् भीतं विजानीयादुत्तमं मित्रलक्षणम्।
ये तस्य क्षतमिच्छन्ति ते तस्य रिपवः स्मृताः॥ १७॥
व्यसनान्नित्यभीतो यः समृद्ध्या यो न दुष्यति।
यत् स्यादेवंविधं मित्रं तदात्मसममुच्यते॥ १८॥
रूपवर्णस्वरोपेतस्तिति- क्षुरनसूयकः।
कुलीनः शीलसम्पन्नः स ते स्यात् प्रत्यनन्तरः॥ १९॥

जब अपनी वृद्धि हो, तब ऐसे मनुष्य को भी उसे यथाशक्ति सब तरह से समृद्धिशाली बनाना चाहिये। जो धर्म के कार्य में भी राजा को हानि से बचाने का प्रयत्न करता है और उसकी हानि होने पर स्वयं भयभीत हो उठता है, उसके स्वभाव को उत्तम मित्र का लक्षण समझना चाहिये। इसके विपरीत जो राजा की हानि को चाहते हैं, उन्हें उसका शत्रु मानना चाहिये। जो मित्र पर संकट आने की सम्भावना से सदा भयभीत रहता है और उसकी समृद्धि को देखकर उससे द्वेष नहीं करता, ऐसे मित्र को अपनी आत्मा के समान बताया गया है। जिसका रूपरंग सुन्दर और स्वर मीठा हो, जो क्षमाशील हो और निन्दा करनेवाला न हो, अच्छे कुल में उत्पन्न हुआ और शीलवान् हो, वह तुम्हारा प्रधान सचिव होना चाहिये।

मेधावी स्मृतिमान् दक्षः प्रकृत्या चानृशंस्यवान्।
यो मानितोऽमानितो वा न च दुष्येत् कदाचन॥ २०॥
ऋत्विग्वा यदि वाऽऽचार्यः सखा वात्यन्तसंस्तुतः।
गृहे वसेदमात्यस्ते स स्यात् परमपूजितः॥ २१॥
स ते विद्यात् परं मन्त्रं प्रकृतिं चार्थधर्मयोः।
विश्वासस्ते भवेत् तत्र यथा पितरि वै तथा॥ २२॥
नैव द्वौ न त्रयः कार्या न मृष्येरन् परस्परम्।
एकार्थे ह्येव भूतानां भेदो भवति सर्वदा॥ २३॥

जो मेधावी, अच्छी समृतिवाला, चतुर और स्वभाव से ही दयालु हो, जिसके हृदय में कभी मान या अपमान होने पर भी दुर्भाव नहीं होता, ऐसा मनुष्य यदि ऋत्विज, आचार्य या अत्यन्त प्रशंसित मित्र हो, वह मन्त्री बनकर तुम्हारे घर में रहे और तुम्हें उसका अत्यधिक आदर करना चाहिये। वह तुम्हारी गुप्त मन्त्रणा, धर्म और अर्थ की प्रकृति को भी जानने का अधिकारी है। उस पर तुम्हें अपने पिता के समान विश्वास करना चाहिये। किसी कार्य पर दो या तीन व्यक्तियों को नहीं लगाना चाहिये। वे आपस में एक दूसरे को सहन नहीं कर पाते हैं। एक कार्य पर लगे हुए अनेक व्यक्तियों में मतभेद हो जाया करते हैं।

कीर्तिप्रधानो यस्तु स्याद् यश्च स्यात् समये स्थितः।
समर्थान् यश्च न द्वेष्टि नानर्थान् कुरुते च यः॥ २४॥
यो न कामाद् भयाल्लोभात् क्रोधाद् वा धर्ममुत्सृजेत्।
दक्षः पर्याप्तवचनः स ते स्यात् प्रत्यनन्तरः॥ २५॥
कुलीनः शीलसम्पन्नस्तितिक्षुरविकत्थनः।
शूरश्चार्यश्च विद्वांश्च प्रतिपत्तिविशारदः॥ २६॥
एते ह्यमात्याः कर्तव्याः सर्वकर्मस्ववस्थिताः।
पूजिताः संविभक्ताश्च सुसहायाः स्वनुष्ठिताः॥ २७॥

जो प्रतिष्ठा को प्रमुखता देता हो और मर्यादा का पालन करे, जो सामर्थ्यशाली पुरुषों से द्वेष न करे, जो अनर्थ नहीं करता, जो कामना, भय, या लोभ, या क्रोध से धर्म का उलंघन नहीं करता, जो कार्यकुशल और समय के अनुसार उचित प्रकार की बातें कर सकने वाला हो, वही तुम्हारा प्रधानमन्त्री होना चाहिये। जो उत्तम कुल में जन्मा, शील से सम्पन्न, सहनशील हो, अपनी डींग न मारे, शूरवीर हो, सज्जन हो, विद्वान् और कर्त्तव्य तथा अकर्त्तव्य को समझनेवाला हो, ऐसे व्यक्ति को तुम्हें अपना मन्त्री बनाना चाहिये। उन्हें सारे कार्यों को लगाना चाहिये, उनका सम्मान करना चाहिये और सुख सुविधाओं से युक्त करना चाहिये। इस उत्तम रीति से व्यवहार किये जाने पर वे तुम्हारे अच्छे सहायक होंगे।

कृत्स्नमेते विनिक्षिप्ताः प्रतिरूपेषु कर्मसु।
युक्ता महत्सु कार्येषु श्रेयांस्युत्थापयन्त्युत॥ २८॥
एते कर्माणि कुर्वन्ति स्पर्धमाना मिथः सदा।
अनुतिष्ठन्ति चैवार्थमाचक्षाणाः परस्परम्॥ २९॥
ज्ञातिभ्यश्चैव बुद्ध्येथा मृत्योरिव भयं सदा।
उपराजेव राजर्द्धिं ज्ञातिर्न सहते सदा॥ ३०॥
ऋजोर्मृदोर्वदान्यस्य ह्रीमतः सत्यवादिनः।
नान्यो ज्ञातेर्महाबाहो विनाशमभिनन्दति॥ ३१॥

अपनी योग्यता के अनुसार कार्यों में यदि इन्हें पूरा अधिकार देकर लगा दिया जाये, तो ये बड़े-बड़े कार्यों के साधन में लगकर राजा के कल्याण की वृद्धि कर सकते हैं। ये परस्पर होड़ लगाकर कार्य करते हैं और एकदूसरे से सलाह लेते हुए अर्थ की सिद्धि के विषय में विचार करते रहते हैं। हे युधिष्ठिर! तुम अपने परिवार वालों से वैसे ही भय मानना जैसे मृत्यु से मानते हैं। जैसे पड़ौसी राजा पड़ौसी राजा की वृद्धि नहीं सहन करता वैसे ही कुटुम्बी भी दूसरे कुटुम्बी की वृद्धि को सहन नहीं करते। हे महाबाहु! जो कोमल, मृदु, उदार, लज्जाशील और सत्यवादी है, ऐसे राजा के विनाश का समर्थन सिवाय कुटुम्बी के दूसरा नहीं कर सकता।

अज्ञातिनोऽपि न सुखा नावज्ञेयास्ततः परम्।
अज्ञातिमन्तं पुरुषं परे चाभिभवन्त्युत॥ ३२॥
निकृतस्य नरैरन्यैर्ज्ञातिरेव परायणम्।
नान्यैर्निकारं सहते ज्ञातिर्ज्ञातेः कथञ्चन॥ ३३॥
सम्मानयेत् पूजयेच्च वाचा नित्यं च कर्मणा।
कुर्याच्च प्रियमेतेभ्यो नाप्रियं किञ्चिदाचरेत्॥ ३४॥
विश्वस्तवदविश्वस्तस्तेषु वर्तेत सर्वदा।
न हि दोषो गुणो वेति निरूप्यस्तेषु दृश्यते॥ ३५॥

जिसके कुटुम्बी नहीं होते, वह भी सुखी नहीं रहता, इसलिये कुटुम्बी लोगों की अवहेलना भी नहीं करनी चाहिये। भाई बन्धुओं से रहित व्यक्ति को दूसरेलोग दबाते रहते हैं। जब दूसरेलोग उसे दबाते है, कुटुम्ब के लोग ही उसे सहारा देते हैं। जाति भाई दूसरे लोगों द्वारा अपने जाति भाई का अपमान सहन नहीं करते हैं। इसलिये राजा का कर्त्तव्य है कि वह अपने जाति भाइयों का सदा वाणी और कर्म से सम्मान करता रहे। उनका सदा प्रिय ही करता रहे, कभी अप्रिय न करे। उन पर विश्वास न रखतें हुए भी उनसे विश्वस्त जैसा व्यवहार करे। उनमें दोष या गुणों का निर्णय करने की आवश्यकता नहीं है।

अस्यैवं वर्तमानस्य पुरुषस्याप्रमादिनः।
अमित्राः संप्रसीदन्ति तथा मित्रीभवन्त्यपि॥ ३६॥
य एवं वर्तते नित्यं ज्ञातिसम्बन्धिमण्डले।
मित्रेष्वमित्रे मध्यस्थे चिरं यशसि तिष्ठति॥ ३७॥

इसप्रकार से जो व्यक्ति सावधान रहकर ऐसा बर्ताव करता है, उसके शत्रु भी प्रसन्न हो जाते हैं और उसके साथ मित्रता का व्यवहार करने लगते हैं। जो अपने कुटुम्बियों, मित्रों, अमित्रों, और मध्यस्थों के साथ इसी नीति से व्यवहार करता है, वह लम्बे समय तक यशस्वी बना रहता है।

सैंतीसवाँ अध्याय : कृष्ण-नारद संवाद, पारिवारिक कलह पर।

युधिष्ठिर उवाच

एवमग्राह्यके तस्मिञ्ज्ञातिसम्बन्धिमण्डले।
मित्रेष्वमित्रेष्वपि च कथं भावो विभाव्यते॥ १॥

भीष्म उवाच

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्।
संवादं वासुदेवस्य सुरर्षेर्नारदस्य च॥ २॥

युधिष्ठिर ने पूछा कि हे पितामह! यदि जाति बन्धुओं के अलग-अलग समुदायों को परस्पर स्पर्द्धा के कारण वश में करना असम्भव हो जाये, उनमें से एक समुदाय मित्र और दूसरा समुदाय अमित्र बनने लगे, तब उन्हें किस प्रकार वश में किया जाये? यह सुनकर भीष्म जी ने कहा कि लोग इस विषय में श्रीकृष्ण और नारद जी के संवाद रूपी पुराने इतिहास का उदाहरण दिया करते हैं।

वासुदेव उवाच

दास्यमैश्वर्यवादेन ज्ञातीनां न करोम्यहम्।
अर्धं भोक्तास्मि भोगानां वाग्दुरुक्तानि च क्षमे॥ ३॥

श्रीकृष्ण जी ने एकबार नारद जी से कहा कि मैं अपने बड़प्पन को दिखाकर अपने जाति-भाइयों

को अपना दास नहीं बनाना चाहता। मुझे जो भोग प्राप्त होते हैं, उनमें से आधे भाग का ही भोग करता हूँ। आधा उनके लिये छोड़ देता हूँ और उनकी कड़वी बातें सुनकर भी उन्हें क्षमा कर देता हूँ।

अरणीमग्निकामो वा मथ्नाति हृदयं मम।
वाचा दुरुक्तं देवर्षे तन्मे दहति नित्यदा॥ ४॥
बलं संकर्षणे नित्यं सौकुमार्ये पुनर्गदे।
रूपेण मत्तः प्रद्युम्नः सोऽसहायोऽस्मि नारद॥ ५॥
अन्ये हि सुमहाभागा बलवन्तो दुरुत्सहाः।
नित्योत्थानेन सम्पन्ना नारदान्धकवृष्णयः॥ ६॥
यस्य न स्युर्न वै स स्याद् यस्य स्युः कृत्स्नमेव तत्।
द्वाभ्यां निवारितो नित्यं वृणोम्येकतरं न च॥ ७॥

हे देवर्षि! अग्नि को जलाने का इच्छुक जैसे अरणि को मथता है, वैसे ही इन कुटुम्बियों के कटुवचन मेरे हृदय को मथते और जलाते रहते हैं। बलराम जी अपने बल में मस्त रहते हैं। छोटा भाई गद सुकुमारता के कारण कठिन कार्यों से बचा रहता है और प्रद्युम्न अपने सौन्दर्य के अभिमान में ही मतवाला बना रहता है। इसलिये हे नारद जी! इन सहायकों के होते हुए भी मैं असहाय हूँ। यहाँ अन्धकवंशी, वृष्णिवंशी तथा दूसरे भी महान् सौभाग्यशाली, बलवान् और दुस्सह पराक्रमी हैं जो सदा उद्योगशील रहते हैं। ये वीर जिसके पक्ष में न हों, उसका जीवित रहना असम्भव है और जिसके पक्ष में होजायें, उसका समुदाय ही विजयी होजाये। किन्तु आहुक और अक्रूर इनदोनों ने आपस में बैर रखकर मुझे ऐसे अवरुद्ध कर दिया है कि मैं इन दोनों में से किसी का पक्ष नहीं ले सकता।

स्यातां यस्याहुकाक्रूरौ किं नु दुःखतरं ततः।
यस्य चापि न तौ स्यातां किं नु दुःखतरं ततः॥ ८॥
सोऽहं कितवमातेव द्वयोरपि महामते।
एकस्य जयमाशंसे द्वितीयस्यापराजयम्॥ ९॥
ममैवं क्लिश्यमानस्य नारदोभयतः सदा।
वक्तुमर्हसि यच्छ्रेयो ज्ञातीनामात्मनस्तथा॥ १०॥

जिसके आपस में लड़नेवाले आहुक और अक्रूर दोनों ही अपने आदमी हों, उसके लिये इससे बढ़कर दुख की बात और क्या होगी? तथा जिसके ये दोनों अपने आदमी न हों, उसके लिये इससे बढ़कर और दुख की बात क्या होगी? हे महामति! इसलिये जैसे दो जुआरियों की एकही माता एक की विजय चाहती है, तो दूसरे की पराजय भी नहीं चाहती, वैसे मैं भी इन दोनों में एक की विजय चाहता हूँ तो दूसरे की पराजय भी नहीं चाहता। हे नारद जी! इस प्रकार दोनों तरफ से दुख उठाते हुए मेरा और इन जातिभाइयों का जैसे भला हो, वह बताने की कृपा करें।

नारद उवाच

आपदो द्विविधाः कृष्ण बाह्याश्चाभ्यन्तराश्च ह।
प्रादुर्भवन्ति वार्ष्णेय स्वकृता यदि वान्यतः॥ ११॥
सेयमाभ्यन्तरा तुभ्यमापत् कृच्छ्रा स्वकर्मजा।
अक्रूरभोजप्रभवा सर्वे ह्येते त्वदन्वयाः॥ १२॥
अर्थहेतोर्हि कामाद् वा वाचा बीभत्सयापि वा।
आत्मना प्राप्तमैश्वर्यमन्यत्र प्रतिपादितम्॥ १३॥
कृतमूलमिदानीं तज्ज्ञातिवृन्दं सहायवन्।
न शक्यं पुनरादातुं वान्तमन्नमिव त्वया॥ १४॥

नारद जी ने उत्तर दिया कि कृष्ण! आपत्तियाँ दो प्रकार की होती हैं, बाहरी और आन्तरिक। ये दोनों भी स्वकृत और परकृत के भेद से दो-दो प्रकार की होती हैं। तुम्हारे ऊपर जो मुसीबत है, वह आन्तरिक और अपने कर्मों से उत्पन्न हुई है अक्रूर और भोज तुम्हारे अपने वंश के ही हैं। जिनके कारण यह मुसीबत है। आपने जिस ऐश्वर्य को प्राप्त किया था, उसे किसी प्रयोजन या स्वेच्छा या कटु वचनों के भय से दूसरे को दे दिया। हे सहायशाली श्रीकृष्ण! इस समय उग्रसेन को दिया वह राज्य दृढ़मूल होचुका है, उग्रसेन के जाति के लोग भी उसके सहायक हैं, इसलिये उगले हुए अन्न के समान उस राज्य को आप वापिस नहीं ले सकते।

बभ्रूग्रसेनयो राज्यं नाप्तुं शक्यं कथंचन।
ज्ञातिभेदभयात् कृष्ण त्वया चापि विशेषतः॥ १५॥
तच्च सिध्येत् प्रयत्नेन कृत्वा कर्म सुदुष्करम्।
महाक्षयं व्ययो वा स्याद् विनाशो वा पुनर्भवेत्॥ १६॥
अनायसेन शस्त्रेण मृदुना हृदयच्छिदा।
जिह्वामुद्धर सर्वेषां परिमृज्यानुमृज्य च॥ १७॥

हे श्रीकृष्ण! अक्रूर और उग्रसेन के अधिकार में गये उस राज्य को जाति में फूट पड़ने के भयसे आप जैसे शक्तिशाली भी किसी तरह से भी वापिस नहीं ले सकते। बहुत दुष्कर कार्य और बड़े प्रयत्न

करके यदि यह सिद्ध भी हो जाये, तो इसमें बहुत सारे धन और मनुष्यों का विनाश होगा। इसलिये हे श्रीकृष्ण! आप ऐसे कोमल शस्त्र से जो लोहे का बना न होने पर भी हृदय को छेदनेवाला है, परिमार्जन और अनुमार्जन करके, उन सब की जिह्वाओं को उखाड़ लें, अर्थात् उन्हें मूक बना दें।

वासुदेव उवाच

अनायसं मुने शस्त्रं मृदु विद्यामहं कथम्।
येनैषामुद्धरे जिह्वां परिमृज्यानुमृज्य च॥ १८॥

नारद उवाच

शक्त्यान्नदानं सततं तितिक्षार्जवमार्दवम्।
यथार्हप्रतिपूजा च शस्त्रमेतदनायसम्॥ १९॥
ज्ञातीनां वक्तुकामानां कटुकानि लघूनि च।
गिरा त्वं हृदयं वाचं शमयस्व मनांसि च॥ २०॥
नामहापुरुषः कश्चिन्नानात्मा नासहायवान्।
महतीं धुरमाधत्ते तामुद्यम्योरसा वह॥ २१॥

तब श्रीकृष्ण जी ने पूछा कि हे मुनि! मैं उस बिना लोहे के बने कोमल शस्त्र को कैसे जानूँ? जिसके द्वारा परिमार्जन और अनुमार्जन करके मैं इनकी जिह्वाओं को उखाड़ लूँ। नारद जी ने उत्तर दिया कि यथाशक्ति सदा अन्नदान करना, सहन शीलता, सरलता, कोमलता तथा यथायोग्य आदरसत्कार करना, यही बिना लोहे का बना हुआ शस्त्र है। जब आपके जातिभाई कड़वी और ओछी बातें कहना चाहें तभी आप अपनी मधुरवाणी से उनके हृदय, वाणी और मन को शान्त कर दें। जो महापुरुष नहीं है, जिसने अपने मन को वश में नहीं किया है तथा जो सहायकों से युक्त नहीं है, वह महान् भार को नहीं उठा सकता। इसलिये आप ही इस महान् भार को हृदय से वहन करें।

सर्व एव गुरुं भारमनड्वान् वहते समे।
दुर्गे प्रतीतः सुगवो भारं वहति दुर्वहम्॥ २२॥
भेदाद् विनाशः संघानां संघमुख्योऽसि केशव।
यथा त्वां प्राप्य नोत्सीदेदयं संघस्तथा कुरु॥ २३॥
नान्यत्र बुद्धिक्षान्तिभ्यां नान्यत्रेन्द्रियनिग्रहात्।
नान्यत्र धनसंत्यागाद् गणः प्राज्ञेऽवतिष्ठते॥ २४॥

समतल भूमि पर तो भारी बोझे को सारे बैल खींच लेते हैं, पर दुर्गम भूमि पर कठिनाई से खींचे जानेवाले बोझ को उत्तम बैल ही खींचते हैं। हे केशव! आप यादवसंघ के मुखिया हैं। इसमें फूट पड़ने पर यादववंश का विनाश होजायेगा। इसलिये आप ऐसा करें कि आपको पाकर इस यादव गणतन्त्र राज्य का विनाश न हो। बुद्धि, क्षमा, इन्द्रियनिग्रह और धनवैभव के त्याग के बिना गण या संघ किसी बुद्धिमान् की आज्ञा में नहीं रहता।

धन्यं यशस्यमायुष्यं स्वपक्षोद्भावनं सदा।
ज्ञातीनामविनाशः स्याद् यथा कृष्ण तथा कुरु॥ २५॥
आयत्यां च तदात्वे च न तेऽस्त्यविदितं प्रभो।
षाड्गुण्यस्य विधानेन यात्रायानविधौ तथा॥ २६॥
यादवाः कुकुरा भोजाः सर्वे चान्धकवृष्णयः।
त्वय्यासक्ता महाबाहो लोका लोकेश्वराश्च ये।
उपासते हि त्वद्बुद्धिमृषयश्चापि माधव॥ २७॥

हे श्रीकृष्ण! अपने पक्ष की उन्नति इस प्रकार करनी चाहिये जो धन, यश और आयु की वृद्धि करने वाली हो और कुटुम्बी जनों में से किसी का विनाश न हो। यह सब जैसे हो, वैसे ही करो। हे प्रभो! छः गुणों के यथा समय प्रयोग से, तथा शत्रु पर चढ़ाई करने के लिये यात्रा करने पर, वर्तमान और भविष्य में क्या परिणाम होगा, यह आपसे छिपा हुआ नहीं है। हे महाबाहु माधव! यादव, कुकुर, भोज, अन्धक और वृष्णि ये सारे तुमसे प्रेम करते हैं। दूसरे लोग और राजा भी आपके प्रति अनुरागी हैं, ऋषि लोग भी आपकी बुद्धि का सहारा लेते हैं।

अड़तीसवाँ अध्याय : सभासदों के लक्षण और गुप्त–मन्त्रणा का प्रकार।

युधिष्ठिर उवाच

सभासदः सहायाश्च सुहृदश्च विशाम्पते।
परिच्छदास्तथामात्याः कीदृशाः स्युः पितामह॥ १॥

भीष्म उवाच

ह्रीनिषेवास्तथा दान्ताः सत्यार्जवसमन्विताः।
शक्ताः कथयितुं सम्यक् ते तव स्युः सभासदः॥ २॥
अमात्यांश्चातिशूरांश्च ब्राह्मणांश्च परिश्रुतान्।
सुसंतुष्टांश्च कौन्तेय महोत्साहांश्च कर्मसु॥ ३॥
एतान् सहायाँल्लिप्सेथाः सर्वास्वापत्सु भारत।

युधिष्ठिर ने पूछा कि हे पितामह, हे प्रजापालक! राजा के सभासद, सहायक, मित्र, परिच्छद अर्थात् सेनापति आदि मन्त्री कैसे होने चाहियें। तब भीष्म जी ने उत्तर दिया कि जो लज्जाशील, जितेन्द्रिय सत्य और कोमलता से युक्त और किसी विषय पर ठीकप्रकार से प्रवचन कर सकते हों, उन्हें तुम्हारा सभासद होना चाहिये। हे भरतनन्द, कुन्तीपुत्र! मन्त्रियों, अत्यन्त शूरवीरों, विद्वान् ब्राह्मणों, अच्छी तरह से सन्तुष्ट रहने वालों और कार्यों में महान् उत्साह रखने वालों को, तुम सारी आपत्तियों के समय अपना सहायक बनाने की इच्छा रखना।

कुलीनः पूजितो नित्यं न हि शक्तिं निगूहति॥ ४॥
प्रसन्नमप्रसन्नं वा पीडितं हतमेव वा।
आवर्तयति भूयिष्ठं तदेव ह्यनुपालितम्॥ ५॥
कुलीना देशजाः प्राज्ञा रूपवन्तो बहुश्रुताः।
प्रगल्भाश्चानुरक्ताश्च ते तव स्युः परिच्छदाः॥ ६॥
दौष्कुलेयाश्च लुब्धाश्च नृशंसा निरपत्रपाः।
ते त्वां तात निषेवेयुर्यावदार्द्रकपाणयः॥ ७॥

जो उत्तम कुल में जन्मा हो, जिसका सदा सम्मान किया जाये, जो अपनी शक्तियों को छिपाता नहीं, राजा चाहे प्रसन्न हो या अप्रसन्न, पीड़ित हो या हताहत, जो सभी अवस्थाओं में बार-बार उसका अनुकरण करता है, वही तुम्हारा सुहृद् होनेयोग्य है। जो उत्तम कुल में उत्पन्न, अपने ही देश में जन्मे, बुद्धिमान्, रूपवान्, बहुज्ञ, निर्भय और अनुरक्त हों, वे ही तुम्हारे सेनापति आदि होने चाहियें। हे तात! जो निन्दित कुल में जन्मे, लोभी, निर्दय और लज्जारहित हों, ऐसे व्यक्ति तुम्हारी तभी तक सेवा करेंगे, जबतक उनके हाथ गीले रहेंगे।

अर्थमानार्घ्यसत्कारैर्भोगैरुच्चावचैः प्रियान्।
यानर्थभाजो मन्येथास्ते ते स्युः सुखभागिनः॥ ८॥
अभिन्नवृत्ता विद्वांसः सद्वृत्ताश्चरितव्रताः।
न त्वां नित्यार्थिनो जह्युरक्षुद्राः सत्यवादिनः॥ ९॥
अनार्या ये न जानन्ति समयं मन्दचेतसः।
तेभ्यः परिजुगुप्सेथा ये चापि समयच्युताः॥ १०॥
नैकमिच्छेद् गणं हित्वा स्याच्चेदन्यतरग्रहः।
यस्त्वेको बहुभिः श्रेयान् कामं तेन गणं त्यजेत्॥ ११॥

जिन्हें तुम अपना प्रिय मानते हो, उन्हें धन, मान, अर्घ्य, सत्कार, तथा भिन्न-भिन्न प्रकार के भोगों से सन्तुष्ट करो। वे तुम्हारे धन तथा सुख के भागी हों। जिनका सदाचार नष्ट नहीं हुआ है, जो विद्वान् अच्छे चरित्रवाले और उत्तम व्रतों का पालन करनेवाले हैं, जिन्हें तुमसे अभीष्ट वस्तु के लिये नित्य प्रार्थना करने की आवश्यकता पड़ती है, जो श्रेष्ठ और सत्यवादी हैं, वे कभी तुम्हारा साथ नहीं छोड़ सकते। जो अनार्य और मन्दबुद्धि हैं, जिन्हें की हुई प्रतिज्ञा का ध्यान नहीं रहता और कई बार प्रतिज्ञाओं को तोड़ चुके हैं, उनसे तुम्हें अपने-आपको बचाकर रखना चाहिये। यदि एक तरफ एक व्यक्ति हो और दूसरी तरफ समूह हो और दोनों में से एक को चुनना हो तो, समूह को छोड़कर एक को ग्रहण करने की इच्छा नहीं करनी चाहिये, किन्तु यदि एक गुणों में बहुतों से श्रेष्ठ हो, तो उस एक के लिये समूह का त्याग कर देना चाहिये।

श्रेयसो लक्षणं चैतद् विक्रमो यस्य दृश्यते।
कीर्तिप्रधानो यश्च स्यात् समये यश्च तिष्ठति॥ १२॥
समर्थान् पूजयेद् यश्च नास्पर्धैः स्पर्धते च यः।
न च कामाद् भयात् क्रोधाल्लोभाद् वा धर्ममुत्सृजेत्॥ १३॥
अमानी सत्यवान् क्षान्तो जितात्मा मानसंयुतः।
स ते मन्त्रसहायः स्यात् सर्वावस्थापरीक्षितः॥ १४॥
कुलीनः कुलसम्पन्नस्तितिक्षुर्दक्ष आत्मवान्।
शूरः कृतज्ञः सत्यश्च श्रेयसः पार्थ लक्षणम्॥ १५॥

श्रेष्ठ व्यक्ति का लक्षण यह है कि जिसका पराक्रम दिखाई देता हो, जिसके जीवन में कीर्ति

की प्रधानता हो, जो की हुई प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहता है, जो सामर्थ्यशाली पुरुषों का सम्मान करता हो, जो स्पर्धा के अयोग्य पुरुषों से स्पर्धा न करता हो, जो कामना, भय, क्रोध या लोभ से भी धर्म का उल्लंघन न करे, अभिमान से रहित, सत्यवाणी, क्षमा से युक्त, जितात्मा और सम्मानित हो, जिसकी सारी अवस्थाओं में परीक्षा करली गयी हो, ऐसा व्यक्ति ही गुप्त मन्त्रणा में तुम्हारा सहायक होना चाहिये। हे कुन्तीपुत्र! कुलीनता, अच्छे कुल का सम्पर्क, सहनशीलता, कार्यकौशल, मनस्विता, शूरता, कृतज्ञता और सत्यवादिता ये श्रेष्ठ पुरुष के लक्षण हैं।

तस्यैवं वर्तमानस्य पुरुषस्य विजानतः।
अमित्राः सम्प्रसीदन्ति तथा मित्रीभवन्त्यपि॥ १६॥
अत ऊर्ध्वममात्यानां परीक्षेत गुणागुणम्।
संयतात्मा कृतप्रज्ञो भूतिकामश्च भूमिपः॥ १७॥
सम्बन्धिपुरुषैराप्तैरभिजातैः स्वदेशजैः।
अहार्यैरव्यभीचारैः सर्वशः सुपरीक्षितैः॥ १८॥
यौनाः श्रौतास्तथा मौलास्तथैवाप्यनहंकृताः।
कर्तव्या भूतिकामेन पुरुषेण बुभूषता॥ १९॥

ऐसे बुद्धिमान् व्यक्ति के शत्रु भी उससे प्रसन्न होजाते और मैत्री कर लेते हैं। मन को वश में रखनेवाला, बुद्धिमान् और ऐश्वर्य को चाहने वाला राजा फिर अमात्यों के गुण और अवगुणों की परीक्षा करे। जिनके साथ कोई सम्बन्ध हो, जो सज्जन, अच्छे कुल में उत्पन्न, अपने ही देश में जन्मे, घूस न खाने वाले, व्यभिचार से रहित हों, जिनकी सब प्रकार से परीक्षा ले ली गयी हो, जो उत्तम जातिवाले, वेदमार्गी, अनेक पीढ़ियों से राजकीय सेवा करनेवाले और अहंकार रहित हों, ऐसे व्यक्तियों को ऐश्वर्य कामी राजा अपना मन्त्री बनाये।

येषां वैनयिकी बुद्धिः प्रकृतिश्चैव शोभना।
तेजो धैर्यं क्षमा शौचमनुरागः स्थितिर्धृतिः॥ २०॥
परीक्ष्य च गुणान् नित्यं प्रौढभावान् धुरंधरान्।
पञ्चोपधाव्यतीतांश्च कुर्याद् राजार्थकारिणः॥ २१॥
पर्याप्तवचनान् वीरान् प्रतिपत्तिविशारदान्।
कुलीनान् सत्त्वसम्पन्नानिङ्गितज्ञाननिष्ठुरान्॥ २२॥
देशकालविधानज्ञान् भर्तृकार्यहितैषिणः।
नित्यमर्थेषु सर्वेषु राजन् कुर्वीत मन्त्रिणः॥ २३॥

जिनकी बुद्धि विनय से युक्त हो, स्वभाव सुन्दर हो, जिनमें तेज, धैर्य, क्षमा, शुद्धता, प्रेम, स्थिरता और धृति हो, उनके गुणों की परीक्षा करके यदि वे कार्य को सँभालने में प्रौढ़ और धुरंधर सिद्ध हों और बुराइयों से रहित हों, तो राजा उनमें से पाँच व्यक्तियों को अपना मन्त्री बनाये। हे राजन्! जो बोलने में कुशल, वीर, प्रत्येक बात को ठीक तरह से समझने में कुशल, उत्तम कुलवाले, सत्वयुक्त, संकेत को समझनेवाले, निष्ठुरता से रहित, देश और काल के विधान को जानने वाले, स्वामी के कार्य और हित को चाहने वाले हों, ऐसे मनुष्यों को राजा सदा अपने सारे कार्यों के लिये मन्त्री बनाये।

हीनतेजोऽभिसंसृष्टो नैव जातु व्यवस्यति।
अवश्यं जनयत्येव सर्वकर्मसु संशयम्॥ २४॥
एवमल्पश्रुतो मन्त्री कल्याणाभिजनोऽप्युत।
धर्मार्थकामसंयुक्तो नालं मन्त्रं परीक्षितुम्॥ २५॥
तथैवानभिजातोऽपि काममस्तु बहुश्रुतः।
अनायक इवाचक्षुर्मुह्यत्यणुषु कर्मसु॥ २६॥
यो वाप्यस्थिरसंकल्पो बुद्धिमानागतागमः।
उपायज्ञोऽपि नालं स कर्म प्रापयितुं चिरम्॥ २७॥
केवलात् पुनरादानात् कर्मणो नोपपद्यते।
परामर्शो विशेषाणामश्रुतस्येह दुर्मतेः॥ २८॥

तेज से हीन मन्त्री के साथ रहने वाला राजा कभी कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य का निर्णय नहीं कर सकता। ऐसा मन्त्री सारे कार्यों में अवश्य ही संशय उत्पन्न कर देता है। इसीप्रकार जो मन्त्री उत्तम कुल में उत्पन्न होने पर भी कम पढ़ा हुआ है, वह धर्म, अर्थ और काम से संयुक्त होने पर भी गुप्त मन्त्रणा की परीक्षा नहीं कर सकता। उसीप्रकार जो उत्तम कुल में उत्पन्न नहीं है, वह भले ही बहुत पढ़ा हुआ हो, पर नायक रहित सैनिक तथा नेत्रहीन मनुष्य के समान वह छोटे-छोटे कार्यों में भी मोहित हो जाता है। जिसका संकल्प स्थिर नहीं है, वह बुद्धिमान्, शास्त्रज्ञ, और उपायों का जानकार होने पर भी कार्य को देर तक पूरा नहीं कर पाता। जो दुर्मति है और शास्त्रों के ज्ञान से रहित है, वह केवल मन्त्री का कार्य हाथ में लेने से सफल नहीं हो सकता। विशेष कार्यों में उसका दिया हुआ परामर्श युक्ति संगत नहीं होता।

मन्त्रिण्यननुरक्ते तु विश्वासो नोपपद्यते।
तस्मादननुरक्ताय नैव मन्त्रं प्रकाशयेत्॥ २९॥
व्यथयेद्धि स राजानं मन्त्रिभिः सहितोऽनृजुः।
मारुतोपहितच्छिद्रैः प्रविश्याग्निरिव द्रुमम्॥ ३०॥
संक्रुद्धश्चैकदा स्वामी स्थानाच्चैवापकर्षति।
वाचा क्षिपति संरब्धः पुनः पश्चात् प्रसीदति॥ ३१॥
तानि तान्यनुरक्तेन शक्यानि हि तितिक्षितुम्।
यस्तु संसहते तानि भर्तुः प्रियचिकीर्षया॥ ३२॥
समानसुखदुःखं तु पृच्छेदर्थेषु मानवम्।

जो मन्त्री राजा के प्रति प्रेम भाव न रखता हो, उसके प्रति विश्वास करना ठीक नहीं है। इसलिये अनुरागरहित मन्त्री के सामने अपने गुप्त विचार प्रकट नहीं करने चाहिये। वह कपटी मन्त्री राजा को दूसरे मन्त्रियों के साथ मिलकर वैसे ही व्यथित कर सकता है, जैसे अग्नि वृक्ष के वायु से भरे छिद्रों में घुसकर सारे वृक्ष को भस्म कर देती है। राजा एक बार मन्त्री के प्रति क्रुद्ध होकर उसे अपने कार्यभार से हटा देता है और वाणी से भी उस पर आक्षेप कर देता है, पर फिर वह प्रसन्न होजाता है। राजा के इन व्यवहारों को वही मन्त्री सह सकता है, जो उसके प्रति प्रेम रखता हो। जो स्वामी का प्रिय करने की इच्छा से उसके सारे व्यवहारों को सह लेता है और उसके सुख दुख को अपना सुख दुख मानता है, उसी मन्त्री से राजा को अपने कार्यों में सलाह लेनी चाहिये।

अनृजुस्त्वनुरक्तोऽपि सम्पन्नश्चेतरैर्गुणैः॥ ३३॥
राज्ञः प्रज्ञानयुक्तोऽपि न मन्त्रं श्रोतुमर्हति।
योऽमित्रैः सह सम्बद्धो न पौरान् बहु मन्यते॥ ३४॥
असुहृत् तादृशो ज्ञेयो न मन्त्रं श्रोतुमर्हति।
अविद्वानशुचिः स्तब्धः शत्रुसेवी विकत्थनः॥ ३५॥
असुहृत् क्रोधनो लुब्धो न मन्त्रं श्रोतुमर्हति।
आगन्तुश्चानुरक्तोऽपि काममस्तु बहुश्रुतः॥ ३६॥
सत्कृतः संविभक्तो वा न मन्त्रं श्रोतुमर्हति।

यदि मन्त्री कोमल स्वभाव का न हो, पर राजा में अनुरक्त और दूसरे गुणों से भी युक्त, तथा बुद्धिमान् हो तब भी वह राजा की गुप्त मन्त्रणा को सुनने का अधिकारी नहीं है। जिसका राजा के शत्रुओं से सम्बन्ध हो, जो राज्य के नागरिकों का सम्मान न करता हो, ऐसे मन्त्री को मित्र नहीं बनाना चाहिये और वह गुप्त मन्त्रणा को सुनने का अधिकारी नहीं है। जो अविद्वान्, अपवित्र, जड़, शत्रु से मित्रता रखने वाला, डींग मारने वाला, क्रोधी और लोभी है तथा अपना मित्र नहीं है, वह भी गुप्त मन्त्रणा को सुनने का अधिकारी नहीं है। जो थोड़े दिन पहले ही नया आया है, वह राजा में अनुरक्त, बहुत विद्वान्, सम्मानित और लोगों से अनेक प्रकार की भेंट प्राप्त किये हुए हो तो भी गुप्त मन्त्रणा को सुनने का अधिकारी नहीं है।

विधर्मतो विप्रकृतः पिता यस्याभवत् पुरा॥ ३७॥
सत्कृतः स्थापितः सोऽपि न मन्त्रं श्रोतुमर्हति।
यः स्वल्पेनापि कार्येण सुहृदाक्षारितो भवेत्॥ ३८॥
पुनरन्यैर्गुणैर्युक्तो न मन्त्रं श्रोतुमर्हति।
कृतप्रज्ञश्च मेधावी बुधो जानपदः शुचिः॥ ३९॥
सर्वकर्मसु यः शुद्धः स मन्त्रं श्रोतुमर्हति।
ज्ञानविज्ञानसम्पन्नः प्रकृतिज्ञः परात्मनोः॥ ४०॥
सुहृदात्मसमो राज्ञः स मन्त्रं श्रोतुमर्हति।

जिसका पिता पहले अधर्माचरण के कारण अपमान के साथ निकाला हुआ हो और उसका पुत्र सत्कार से अपने पिता के पद पर स्थापित कर दिया गया हो, तो वह पुत्र भी गुप्त मन्त्रणा को सुनने का अधिकारी नहीं है। जो थोड़े से भी अनुचित कार्य के कारण दण्ड देकर निर्धन बना दिया गया हो, वह सुहृद् और दूसरे गुणों से युक्त होने पर भी गुप्त मन्त्रणा को सुनने का अधिकारी नहीं है। जिसने बड़ा ज्ञान प्राप्त किया हुआ हो, जो मेधावी और बुद्धिमान् हो, जो अपने ही देश में जन्मा तथा शुद्ध आचरणवाला हो और दूसरे कार्यों में निर्दोष सिद्ध हुआ हो, वह ही गुप्त मन्त्रणा को सुनने का अधिकारी है। जो ज्ञान विज्ञान से सम्पन्न, अपने और शत्रुपक्ष के लोगों की प्रवृत्ति को समझने वाला और राजा का आत्मा के समान अभिन्न मित्र हो, वह गुप्त मन्त्रणा को सुनने का अधिकारी है।

सत्यवाक् शीलसम्पन्नो गम्भीरः सत्रपो मृदुः॥ ४१॥
पितृपैतामहो यः स्यात् स मन्त्रं श्रोतुमर्हति।
संतुष्टः सम्मतः सत्यः शौटीरो द्वेष्यपापकः॥ ४२॥
मन्त्रवित् कालविच्छूरः स मन्त्रं श्रोतुमर्हति।
सर्वलोकमिमं शक्तः सान्त्वेन कुरुते वशे॥ ४३॥
तस्मै मन्त्रः प्रयोक्तव्यो दण्डमाधित्सता नृप।

पौरजानपदा यस्मिन् विश्वासं धर्मतो गताः॥ ४४॥
योद्धा नयविपश्चिच्च स मन्त्रं श्रोतुमर्हति।

जो सत्यवादी, शील से युक्त, गम्भीर, लज्जाशील और कोमल है तथा बापदादों के समय से ही राजा की सेवा करता चला आया है, वह राजा की गुप्त मन्त्रणा को सुनने का अधिकारी है। जो सन्तोषी, सम्मान प्राप्त, सत्यवादी, शूरवीर और पाप से द्वेष करनेवाला, मन्त्रणा को जाननेवाला और समय को समझनेवाला है, वह गुप्त मन्त्रणा को सुनने का अधिकारी है। हे राजन्! दण्ड को धारण करने के इच्छुक राजा को अपनी गुप्त मन्त्रणा उसी को बतानी चाहिये, जो शक्तिशाली हो और समझा बुझाकर सारे जगत को अपने वश में कर सकता हो। जिस पर नगर और देश के व्यक्ति धर्म के अनुसार विश्वास करते हैं, जो योद्धा और नीति शास्त्र का विद्वान् हो, वही गुप्त मन्त्रणा को सुनने का अधिकारी है।

तस्मात् सर्वैर्गुणैरेतैरुपपन्नाः सुपूजिताः॥ ४५॥
मन्त्रिणः प्रकृतिज्ञाः स्युस्त्र्यवरा महदीप्सवः।
स्वासु प्रकृतिषुच्छिद्रं लक्षयेरन् परस्य च॥ ४६॥
मन्त्रिणां मन्त्रमूलं हि राज्ञो राष्ट्रं विवर्धते।
नास्य च्छिद्रं परः पश्येच्छिद्रेषु परमन्वियात्॥ ४७॥
गूहेत् कूर्म इवाङ्गानि रक्षेद् विवरमात्मनः।

जो उपर्युक्त सारे गुणों से युक्त और सबके द्वारा सम्मानित, लोगों की प्रकृति को परखने वाले तथा महान् पद की इच्छा रखनेवाले हों, उन्हें ही मन्त्रीपद पर नियुक्त करना चाहिये। मन्त्रियों की संख्या कम से कम तीन होनी चाहिये। मन्त्रियों को अपने लोगों तथा शत्रुओं की प्रकृति में जो दुर्बलता हो, उस पर दृष्टि रखनी चाहिये। मन्त्रियों की मन्त्रणा के आधार पर ही राष्ट्र की उन्नति होती है। राजा ऐसा प्रयत्न करे कि उसकी दुर्बलताओं को शत्रु न जान सके, पर वह शत्रु की दुर्बलताओं को जान ले। जैसे कछुआ अपने अंगों को छिपाये रखता है, वैसे ही वह भी अपनी दुर्बलताओं को छिपाये रखे।

मन्त्रगूढा हि राज्यस्य मन्त्रिणो ये मनीषिणः॥ ४८॥
मन्त्रसंहननो राजा मन्त्राङ्गानीतरे जनाः।
राज्यं प्रणिधिमूलं हि मन्त्रसारं प्रचक्षते॥ ४९॥
संविनीय मदक्रोधौ मानमीर्ष्यां च निर्वृताः।
नित्यं पञ्चोपधातीतैर्मन्त्रयेत् सह मन्त्रिभिः॥ ५०॥

बुद्धिमान् मन्त्री राज्य की गुप्त मन्त्रणा को छिपाये रखते हैं, क्योंकि मन्त्रणा ही राजा का कवच है और दूसरे मन्त्री आदि मन्त्रणा के अंग हैं। विद्वान् पुरुष कहते हैं कि गुप्तचर ही राज्य की जड़ हैं और मन्त्रणा राज्य का सार है। जो मद और क्रोध को जीतकर मान और ईर्ष्या से रहित होगये हैं और पाँच प्रकार के छलों से ऊपर उठे हुए हैं, ऐसे मन्त्रियों के साथ ही राजा को सदा गुप्त मन्त्रणा करनी चाहिये।

धर्मार्थकामज्ञमुपेत्य पृच्छेद्
युक्तो गुरुं ब्राह्मणमुत्तरार्थम्।
निष्ठा कृता तेन यदा सहः स्यात्
तं मन्त्रमार्गे प्रणयेदसक्तः॥ ५१॥
एवं सदा मन्त्रयितव्यमाहु-
र्ये मन्त्रतत्त्वार्थविनिश्चयज्ञाः।
तस्मात् तमेवं प्रणयेत् सदैव
मन्त्रं प्रजासंग्रहणे समर्थम्॥ ५२॥

राजा को चाहिये कि जो धर्म, अर्थ और काम का ज्ञाता ब्राह्मण गुरु हो, उसके समीप जाकर, सावधानी पूर्वक उसका उत्तर जानने के लिये उसकी राय पूछे। जब वह कोई निर्णय दे और वह निर्णय सबको एक मत से स्वीकार हो जाये, तब राजा को विश्वासपूर्वक उस विचार को कार्य रूप में परिणत करना चाहिये। मन्त्रतत्व के अर्थ का निश्चयात्मक ज्ञान रखनेवाले विद्वान् कहते हैं कि राजा को इसी प्रकार मन्त्रणा करनी चाहिये और जो विचार प्रजा को अपने अनुकूल बनाने में समर्थ जान पड़े उसी को वह कार्यरूप में परिणत करे।

न वामनाः कुब्जकृशा न खञ्जा
नान्धो जडः स्त्री च नपुसकं च।
न चात्र तिर्यक् च पुरो न पश्चा-
न्नोर्ध्वं न चाधः प्रचरेत् कथंचित्॥ ५३॥
आरुह्य वा वेश्म तथैव शून्यं
स्थलं प्रकाशं कुशकाशहीनम्।
वागङ्गदोषान् परिहृत्य सर्वान्
सम्मन्त्रयेत् कार्यमहीनकालम्॥ ५४॥

जहाँ गुप्त विचार किया जाना हो, वहाँ उसके आगे पीछे, अगल बगल और ऊपर नीचे किसी तरह से भी बौने, कुबड़े, दुबले, लँगड़े, अन्धे, गूँगे, स्त्री

और हिजड़े व्यक्ति न आने पायें। महल की छत पर चढ़कर, या सूने और समतल मैदान में, जहाँ कुश, कास और घास पात बढ़े हुए न हों, वाणी और अंगों के सारे दोषों का त्याग करके, उपयुक्त समय में, भावी कार्य के विषय में गुप्त मन्त्रणा करनी चाहिये।

उन्तालीसवाँ अध्याय : दूत, द्वारपाल, मन्त्री और सेनापति के गुण, दण्ड का औचित्य, मन्त्रिमण्डल का निर्माण तथा व्यावहारिक नीति।

युधिष्ठिर उवाच

कीदृशैर्व्यवहारैस्तु कैश्च व्यवहरेन्नृपः।
एतत्पृष्टो महाप्राज्ञ यथावद् वक्तुमर्हसि॥ १॥
ये चैव पूर्वं कथिता गुणास्ते पुरुषं प्रति।
नैकस्मिन् पुरुषे ह्येते विद्यन्त इति मे मतिः॥ २॥

भीष्म उवाच

एवमेतन्महाप्राज्ञ यथा वदसि बुद्धिमन्।
दुर्लभः पुरुषः कश्चिदेभिर्युक्तो गुणैः शुभैः॥ ३॥
किंतु संक्षेपतः शीलं प्रयत्नेनेह दुर्लभम्।
वक्ष्यामि तु यथामात्यान् यादृशांश्च करिष्यसि॥ ४॥

तब युधिष्ठिर ने पूछा कि हे महामति पितामह! राजा को किस प्रकार के लोगों से कैसा व्यवहार करना चाहिये? आप मेरे प्रश्न का यथावत् उत्तर दें। मैं तो समझता हूँ कि आपने पहले व्यक्ति में जिन जिन गुणों का वर्णन किया है, वे सारे एक पुरुष में तो मिल नहीं सकते। तब भीष्म जी ने कहा कि हे महाप्राज्ञ, बुद्धिमान्! तुम जैसा कहते हो वह ठीक है। इन सारे अच्छे गुणों से युक्त किसी एक व्यक्ति का मिलना दुर्लभ है। किन्तु तुम जैसे मन्त्रियों का गठन करोगे, उनके दुर्लभ शील स्वभावों को मैं प्रयत्नपूर्वक संक्षेप में बताता हूँ।

चतुरो ब्राह्मणान् वैद्यान् प्रगल्भान् स्नातकाञ्शुचीन्।
क्षत्रियांश्च तथा चाष्टौ बलिनः शस्त्रपाणिनः॥ ५॥
वैश्यान् वित्तेन सम्पन्नानेकविंशतिसंख्यया।
त्रींश्च शूद्रान् विनीतांश्च शुचीन् कर्मणि पूर्वके॥ ६॥
अष्टाभिश्च गुणैर्युक्तं सूतं पौराणिकं तथा।
पञ्चाशद्वर्षवयसं प्रगल्भमनसूयकम्॥ ७॥
श्रुतिस्मृतिसमायुक्तं विनीतं समदर्शिनम्।
कार्ये विवदमानानां शक्तमर्थेष्वलोलुपम्॥ ८॥
वर्जितं चैव व्यसनैः सुघोरैः सप्तभिर्भृशम्।
अष्टानां मन्त्रिणां मध्ये मन्त्रं राजोपधारयेत्॥ ९॥

राजा को चाहिये कि वह चार वेद के विद्वान्, निर्भय, स्नातक, पवित्र भावना वाले ब्राह्मणों तथा आठ ऐसे क्षत्रियों जो बलवान् और शस्त्रधारी हों, इक्कीस वैश्यों, जो धन धान्य से सम्पन्न हों, तीन शूद्रों, जो पवित्र आचार विचार वाले और विनयशील हों तथा एक सूत जाति के मनुष्य को जो आठ गुणों से युक्त, पुराण विद्या को जानने वाला, पचासवर्ष के लगभग आयु वाला, निर्भय, दोषदृष्टि से रहित, श्रुतियों और स्मृतियों के ज्ञान से सम्पन्न, विनीत, समदर्शी, वादी और प्रतिवादी के मामलों का निपटारा करने में समर्थ, लोभरहित, तथा सात अत्यन्त भयानक दुर्व्यसनों से दूर रहने वाला हो मिलाकर एक मन्त्रिमण्डल बनाये ऐसे आठ मन्त्रियों के बीच राजा गुप्त मन्त्रणा किया करे।

ततः सम्प्रेषयेद् राष्ट्रे राष्ट्रियाय च दर्शयेत्।
अनेन व्यवहारेण द्रष्टव्यास्ते प्रजाः सदा॥ १०॥
न चापि गूढं द्रव्यं ते ग्राह्यं कार्योपघातकम्।
कार्ये खलु विपन्ने त्वां सोऽधर्मस्तांश्च पीडयेत्॥ ११॥
विद्रवेच्चैव राष्ट्रं ते श्येनात् पक्षिगणा इव।
परिस्रवेच्च सततं नौर्विशीर्णेव सागरे॥ १२॥
प्रजाः पालयतोऽसम्यगधर्मेणेह भूपतेः।
हार्दं भयं सम्भवति स्वर्गश्चास्य विरुद्ध्यते॥ १३॥

इन लोगों की राय से जो बात निश्चित हो, राजा को उस बात प्रचार सारे राष्ट्र में करा देना चाहिये और प्रजा के सारे लोगों को वह बात बता देनी चाहिये। इस प्रकार के व्यवहार से उसे सदा प्रजा की देख रेख करनी चाहिये। तुम्हें किसी का भी दिया हुआ धन नहीं ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि वह तुम्हारे कर्त्तव्य को नष्ट करने वाला होगा। कर्त्तव्य का नाश होने पर वह अधर्म तुम्हें तथा मन्त्रियों को पीड़ित करेगा। तब जैसे

बाज पक्षी से दूसरे पक्षी भागते हैं, वैसे ही प्रजा भी तुम्हें अन्यायी मान कर तुम्हारे राज्य से वैसे दूर भागेगी, जैसे टूटी हुई नाव समुद्र में कहाँ की कहाँ बह जाती है। अनुचित रीति से अधर्म पूर्वक प्रजा का पालन करने वाले राजा के हृदय में इस संसार में भय बना रहता है और उसका परलोक भी बिगड़ जाता है।

अथ योऽधर्मतः पाति राजामात्योऽथ वाऽऽत्मजः।
धर्मासने संनियुक्तो धर्ममूले नरर्षभ॥ १४॥
कार्येष्वधिकृताः सम्यगकुर्वन्तो नृपानुगाः।
आत्मानं पुरतः कृत्वा यान्त्यधः सहपार्थिवाः॥ १५॥
बलात्कृतानां बलिभिः कृपणं बहु जल्पताम्।
नाथो वै भूमिपो नित्यमनाथानां नृणां भवेत्॥ १६॥

हे नरश्रेष्ठ! जिसका मुख्य आधार ही धर्म है, उस धर्मासन पर बैठकर जो राजा, उसका पुत्र या उसका मन्त्री और विभिन्न कार्यों में लगाये हुए कर्मचारी जब अपने आपको ही सामने रखकर प्रजा का अधर्मपूर्वक पालन करते हैं, तब राजा और उसका अनुकरण करने वाले सारे लोग अधम गति को प्राप्त होते हैं। बलवालों के अत्याचारों के शिकार और बहुत प्रकार से दीनता के साथ विलाप करते हुए अनाथ व्यक्तियों का स्वामी सदा राजा ही होता है। वही उनकी रक्षा करता है।

ततः साक्षिबलं साधु द्वैधवादकृतं भवेत्।
असाक्षिकमनाथं वा परीक्ष्यं तद् विशेषतः॥ १७॥
अपराधानुरूपं च दण्डं पापेषु धारयेत्।
वियोजयेद् धनैर्ऋद्धानधनानथ बन्धनैः॥ १८॥
विनयेच्चापि दुर्वृत्तान् प्रहारैरपि पार्थिवः।
सान्त्वेनोपप्रदानेन शिष्टांच परिपालयेत्॥ १९॥
राज्ञो वधं चिकीर्षेद् यस्तस्य चित्रो वधो भवेत्।
आदीपकस्य स्तेनस्य वर्णसंकरिकस्य च॥ २०॥

जब किसी अभियोग में दोनों पक्षों की तरफ से भिन्न-भिन्न बातें कहीं जायें, तब जिसके पक्ष में गवाही भी हो, उसका पक्ष अच्छा माना जाता है। किन्तु किसी मामले में साक्षी न हो और उसकी पैरवी करने वाला भी न हो, तब राजा को स्वयं उसकी विशेष रूप से छानबीन करनी चाहिये। राजा को पापियों को उनके अपराध के अनुरूप ही दण्ड देना चाहिये। वह धनियों को उनसी सम्पत्ति से वंचित कर दे और गरीबों को बन्दी बनाकर कारागार में डाल दे, दुराचारी को मार पीट कर भी मार्ग पर लाने का प्रयत्न करे और सभ्य तथा सज्जन व्यक्तियों की सान्त्वना तथा दान के द्वारा पालना करे। जो राजा के वध का प्रयत्न करे, दूसरों के घर में आग लगाये, चोरी करे या व्यभिचार के द्वारा वर्ण संकरता फैलाये, उसका वध राजा को विभिन्न प्रकारों से करना चाहिये।

सम्यक् प्रणयतो दण्डं भूमिपस्य विशाम्पते।
युक्तस्य वा नास्त्यधर्मो धर्म एव हि शाश्वतः॥ २१॥
कामकारेण दण्डं तु यः कुर्यादविचक्षणः।
स इहाकीर्तिसंयुक्तो मृतो नरकमृच्छति॥ २२॥
न परस्य प्रवादेन परेषां दण्डमर्पयेत्।
आगमानुगमं कृत्वा बध्नीयान्मोक्षयीत वा॥ २३॥
न तु हन्यान्नृपो जातु दूतं कस्याञ्चिदापदि।
कुलीनः शीलसम्पन्नो वाग्मी दक्षः प्रियंवदः॥ २४॥
यथोक्तवादी स्मृतिमान् दूतः स्यात् सप्तभिर्गुणैः।
एतैरेव गुणैर्युक्तः प्रतिहारोऽस्य रक्षिता॥ २५॥
शिरोरक्षश्च भवति गुणैरेतैः समन्वितः।

हे प्रजानाथ! जो अपराधी के प्रति दण्ड का उचित रीति से संचालन करता है और अपने कर्त्तव्य पालन में लगा हुआ है, उसको अपराधियों के वध या बन्धन का पाप नहीं लगता, बल्कि उसे सनातन धर्म की प्राप्ति होती है। किन्तु जो बिना कौशल के अपनी इच्छानुसार ही दण्ड देता है, उसकी संसार में अकीर्ति होती है और मरने पर भी अधम गति को प्राप्त होता है। राजा एक के अपराध पर दूसरे को दण्ड न दे। शास्त्रों के आधार पर विचार करके, जिसका अपराध सिद्ध हो जाये उसे कारागार में डाले और जिसका अपराध सिद्ध न हो उसे मुक्त कर दे। राजा किसी आपत्ति में भी दूत की हत्या न करे। राजा का दूत अच्छे कुल में जन्मा हुआ, शील से सम्पन्न, वाचाल, चतुर, प्रिय वचन बोलने वाला, सन्देश को जैसे का तैसा कह देने वाला और स्मरण शक्ति से युक्त होना चाहिये। ये उसके सात गुण हैं। राजा के द्वारपाल में यही गुण होने चाहियें। उसका अंग रक्षक भी इन्हीं गुणों से युक्त हो।

धर्मशास्त्रार्थतत्त्वज्ञः सांधिविग्रहिको भवेत्॥ २६॥
मतिमान् धृतिमान् ह्रीमान् रहस्यविनिगूहिता।
कुलीनः सत्त्वसम्पन्नः शुक्लोऽमात्यः प्रशस्यते॥ २७॥
एतैरेव गुणैर्युक्तस्तथा सेनापतिर्भवेत्।
व्यूहयन्त्रायुधानां च तत्त्वज्ञो विक्रमान्वितः॥ २८॥
वर्षशीतोष्णवातानां सहिष्णुः पररन्ध्रवित्।
विश्वासयेत् परांश्चैव विश्वसेच्च न कस्यचित्॥ २९॥
पुत्रेष्वपि हि राजेन्द्र विश्वासो न प्रशस्यते।
अविश्वासो नरेन्द्राणां गुह्यं परममुच्यते॥ ३०॥

राजा का जो मन्त्री धर्मशास्त्रों का तत्वज्ञ, सन्धि विग्रह के अवसरों को जाननेवाला, मतिमान्, धृतिमान्, लज्जावान्, रहस्य को छुपाने वाला, कुलीन, साहसी और शुद्ध हृदयवाला हो, वह प्रशंसनीय होता है। राजा का सेनापति भी इन्हीं गुणों से युक्त होना चाहिये। इसके अतिरिक्त सेनापति को व्यूहरचना, यन्त्रों के प्रयोग, शस्त्रास्त्रों के संचालन के तत्त्व को जानने वाला, पराक्रमी, सर्दी, गर्मी आँधी और वर्षा के कष्ट को सहन करने वाला और शत्रु की दुर्बलताओं को समझने वाला होना चाहिये। राजा को चाहिये कि वह दूसरों के हृदय में अपने प्रति विश्वास स्थापित करे, पर स्वयं किसी का भी विश्वास न करे। हे राजेन्द्र! पुत्र पर भी विश्वास करना अच्छा नहीं माना गया है। किसी पर विश्वास न करना राजाओं का परमगोपनीय गुण है।

चालीसवाँ अध्याय : नगर, दुर्ग, प्रजा पालन तथा तपस्वियों का आदर।

युधिष्ठिर उवाच

कथंविधं पुरं राजा स्वयमावस्तुमर्हति।
कृतं वा कारयित्वा वा तन्मे ब्रूहि पितामह॥ १॥

भीष्म उवाच

षड्विधं दुर्गमास्थाय पुराण्यथ निवेशयेत्।
सर्वसम्पत्प्रधानं यद् बाहुल्यं चापि सम्भवेत्॥ २॥
धन्वदुर्गं महीदुर्गं गिरिदुर्गं तथैव च।
मनुष्यदुर्गं अब्दुर्गं वनदुर्गं च तानि षट्॥ ३॥

युधिष्ठिर ने पूछा कि हे पितामह! राजा को स्वयं किस प्रकार के नगर में निवास करना चाहिये? उसे पहले से बने हुए नगर में रहना चाहिये या अपने लिये नयी राजधानी बनाये! यह आप मुझे बताइये। तब भीष्म ने कहा कि जहाँ सब प्रकार की सम्पत्ति हो और जो स्थान बहुत विस्तृत हो वहाँ छः प्रकार के दुर्गों का आश्रय लेकर राजा को अपना नगर बनाना चाहिये। वे दुर्ग ये हैं:– १. धन्वदुर्ग, २. मही दुर्ग, ३. गिरि दुर्ग, ४. मनुष्य दुर्ग, ४. अब्दुर्ग और ६. वन दुर्ग।

यत्पुरं दुर्गसम्पन्नं धान्यायुधसमन्वितम्।
दृढप्राकारपरिखं हस्त्यश्वरथसंकुलम्॥ ४॥
विद्वांसः शिल्पिनो यत्र निचयाश्च सुसंचिताः।
धार्मिकश्च जनो यत्र दाक्ष्यमुत्तममास्थितः॥ ५॥
ऊर्जस्विनरनागाश्वं चत्वरापणशोभितम्।
प्रसिद्धव्यवहारं च प्रशान्तमकुतोभयम्॥ ६॥
सुप्रभं सानुनादं च सुप्रशस्तनिवेशनम्।
शूराढ्यजनसम्पन्नं ब्रह्मघोषानुनादितम्॥ ७॥
समाजोत्सवसम्पन्नं सदा पूजितदैवतम्।
वश्यामात्यबलो राजा तत्पुरं स्वयमाविशेत्॥ ८॥

जिस नगर में उपर्युक्त दुर्गों में से कोई न कोई दुर्ग हो, जो अन्न और शस्त्रास्त्रों से युक्त हो, जिसका परकोटा और खाई मजबूत हो, जो हाथी, रथ और घोड़ों से भरा हुआ हो, जहाँ विद्वान् और शिल्पी लोग हों, जहाँ आवश्यक वस्तुओं के भण्डार हों, जहाँ धार्मिक और कार्य कुशल व्यक्तियों का निवास हो, जहाँ बलवान् मनुष्य, हाथी और घोड़े हों, जो चौराहों और बाजारों से सुशोभित हो, जहाँ की न्यायव्यवस्था सुन्दर हो, जहाँ सब तरफ शान्ति और निर्भयता हो, जहाँ के घर विशाल, सुन्दर और मनुष्यों की हलचल से युक्त हों, उन घरों में शूरवीर और धनवान् लोग रहते हों और वेदमन्त्रों की ध्वनि गूँज रही हो, जहाँ सामाजिक उत्सव और सदाचारी विद्वानों की सेवा होती रहती हो, ऐसे नगर में राजा को अपने वश में रहनेवाले मन्त्रियों तथा सेना के साथ रहना चाहिये।

तत्र कोशं बलं मित्रं व्यवहारं च वर्धयेत्।
पुरे जनपदे चैव सर्वदोषान् निवर्तयेत्॥ ९॥

भाण्डागारायुधागारं प्रयत्नेनाभिवर्धयेत्।
निचयान् वर्धयेत् सर्वांस्तथा यन्त्रायुधालयान्॥ १०॥
काष्ठलोहतुषाङ्गारदारु- शृङ्गास्थिवैणवान्।
मज्जा स्नेहवसा क्षौद्रमौषधग्राममेव च॥ ११॥
शणं सर्जरसं धान्यमायुधानि शरांस्तथा।
चर्म स्नायुं तथा वेत्रं मुञ्जबल्वजबन्धनान्॥ १२॥

राजा को चाहिये कि वह उस नगर में खजाने, सेना, मित्रों और व्यवहार को बढ़ाये। वह उस नगर तथा बाहर के गाँवों में से सारे दोषों को दूर करे। वह अन्न के भण्डारों, शस्त्रास्त्रों के संग्रहालयों और दूसरे प्रकार की वस्तुओं के भण्डारों को भी प्रयत्नपूर्वक बढ़ाये और सारे अस्त्र शस्त्रों के कारखानों की भी उन्नति करे। नगर में काठ, लोहा, धान की भूसी, कोयला, बाँस, लकड़ी, सींग, हड्डी, मज्जा, तेल, घी, चरबी, शहद, ओषधियाँ, सन, राल, धान्य, अस्त्र, शस्त्र, बाण, चमड़ा, ताँत, बेंत और मूँज एवं बल्वज की रस्सी आदि सामग्रियों को इकट्ठा करके रखे।

आशयाश्चोदपानाश्च प्रभूतसलिलाकराः।
निरोद्धव्याः सदा राज्ञा क्षीरिणश्च महीरुहाः॥ १३॥
सत्कृताश्च प्रयत्नेन आचार्यर्त्विक्पुरोहिताः।
महेष्वासाः स्थपतयः सांवत्सरचिकित्सकाः॥ १४॥
प्राज्ञा मेधाविनो दान्ता दक्षाः शूरा बहुश्रुताः।
कुलीनाः सत्त्वसम्पन्ना युक्ताः सर्वेषु कर्मसु॥ १५॥
पूजयेद् धार्मिकान् राजा निगृह्णीयादधार्मिकान्।
नियुञ्ज्याच्च प्रयत्नेन सर्ववर्णान् स्वकर्मसु॥ १६॥

आशय अर्थात् छोटे तालाब उद्पान अर्थात् कूए और बावड़ी आदि और प्रचुर जल राशि से भरे बड़े तालाब तथा दूध वाले वृक्ष, इन सब की राजा को सदा रक्षा करनी चाहिये। आचार्य, ऋत्विक, पुरोहित, महाधनुर्धर, घर बनानेवाले और ज्योतिर्विद्या के ज्ञाता तथा वैद्यों का राजा को प्रयत्न पूर्वक सत्कार करना चाहिये। प्राज्ञ, मेधावी, जितेन्द्रिय, दक्ष, शूरवीर, बहुज्ञ, कुलीन और साहसयुक्त पुरुषों को यथायोग्य सारे कार्यों में लगाना चाहिये। राजा को धार्मिक व्यक्तियों का सम्मान और अधार्मिक व्यक्तियों का बन्धन करना चाहिये। उसे सारे वर्णों के लोगों को प्रयत्न पूर्वक अपने कार्यों में लगाना चाहिये।

बाह्यमाभ्यन्तरं चैव पौरजानपदं तथा।
चारैः सुविदितं कृत्वा ततः कर्म प्रयोजयेत्॥ १७॥
चरान्मन्त्रं च कोशं च दण्डं चैव विशेषतः।
अनुतिष्ठेत् स्वयं राजा सर्वं ह्यत्र प्रतिष्ठितम्॥ १८॥
उदासीनारिमित्राणां सर्वमेव चिकीर्षितम्।
पुरे जनपदे चैव ज्ञातव्यं चारचक्षुषा॥ १९॥
ततस्तेषां विधातव्यं सर्वमेवाप्रमादतः।
भक्तान् पूजयता नित्यं द्विषतश्च निगृह्णता॥ २०॥

राजा को गुप्तचरों द्वारा नगर और देश के बाहरी और आन्तरिक समाचारों को अच्छी तरह से जानकर उनके अनुसार कार्य करना चाहिये। गुप्तचरों से मिलने, गुप्त सलाह करने, खजाने की जाँच पड़ताल करने और विशेष रूप से अपराधियों को दण्ड देने का कार्य, राजा स्वयं करे, क्योंकि सारा राज्य इन्हीं बातों पर आश्रित है। राजा को गुप्तचररूपी आँखों से सदा यह जानते रहना चाहिये, कि नगर और देश में मेरे मित्र, शत्रु, और मध्यस्थ क्या करना चाहते हैं? पुनः उनके प्रतिकार के लिये, सारे कार्य बिना आलस्य के करने चाहियें और शत्रुओं को बन्धन में डालना चाहिये।

यष्टव्यं क्रतुभिर्नित्यं दातव्यं चाप्यपीडया।
प्रजानां रक्षणं कार्यं न कार्यं धर्मबाधकम्॥ २१॥
कृपणानाथवृद्धानां विधवानां च योषिताम्।
योगक्षेमं च वृत्तिं च नित्यमेव प्रकल्पयेत्॥ २२॥
आश्रमेषु यथाकालं चैलभाजनभोजनम्।
सदैवोपहरेद् राजा सत्कृत्याभ्यर्च्य मान्य च॥ २३॥
सर्वार्थत्यागिनं राजा कुले जातं बहुश्रुतम्।
पूजयेत् तादृशं दृष्ट्वा शयनासनभोजनैः॥ २४॥
ते कस्याञ्चिदवस्थायां शरणं शरणार्थिने।
राज्ञे दद्युर्यथाकामं तापसाः संशितव्रताः॥ २५॥

राजा को प्रतिदिन यज्ञ करना चाहिये, तथा दूसरों को पीड़ा न देते हुए दान देना चाहिये। प्रजाओं की रक्षा करनी चाहिये और धर्म में बाधा पहुँचाने वाला कोई भी कार्य नहीं करना चाहिये। उसे दीन, अनाथ, बूढ़े और विधवा स्त्रियों की कुशलता तथा जीविका का सदा प्रबन्ध करना चाहिये। उसे यथासमय आश्रमों में वस्त्र, बर्तन, और भोजन, सदा उनका सत्कार, पूजन और सम्मान करते हुए भेंट करने चाहियें। जिसने सारी

धनसम्पत्ति का त्याग कर दिया है, जो उत्तम कुल में उत्पन्न और बहुत विद्वान् है, ऐसे तपस्वी को देखकर राजा को उसका सम्मान शय्या, आसन और भोजन से करना चाहिये। वे उत्तमव्रती तपस्वी, शरणार्थी राजा को अपनी इच्छानुसार किसी भी अवस्था में शरण दे सकते हैं।

इकतालीसवाँ अध्याय : राष्ट्र की रक्षा और वृद्धि किस तरह?

युधिष्ठिर उवाच

राष्ट्रगुप्तिं च मे राजन् राष्ट्रस्यैव तु संग्रहम्।
सम्यग्जिज्ञासमानाय प्रब्रूहि भरतर्षभ॥ १॥

भीष्म उवाच

राष्ट्रगुप्तिं च ते सम्यग् राष्ट्रस्यैव तु संग्रहम्।
हन्त सर्वं प्रवक्ष्यामि तत्त्वमेकमनाः शृणु॥ २॥
ग्रामस्याधिपतिः कार्यो दशग्राम्यास्तथा परः।
द्विगुणायाः शतस्यैवं सहस्रस्य च कारयेत्॥ ३॥

तब युधिष्ठिर ने पूछा कि हे भरतश्रेष्ठ राजन्! मैं यह अच्छीतरह जानना चाहता हूँ कि राष्ट्र की रक्षा और उन्नति किसप्रकार होती है? तब भीष्म जी ने कहा कि मैं तुम्हें राष्ट्र की रक्षा और उन्नति के विषय में सबकुछ बता रहा हूँ। तुम एकाग्रचित्त होकर सुनो। राजा को एक, दस, बीस, सौ और हजार गाँवों के अलग–अलग अधिपति बनाने चाहियें।

ग्रामीयान् ग्रामदोषांश्च ग्रामिकः प्रतिभावयेत्।
तान् ब्रूयाद् दशपायासौ स तु विंशतिपाय वै॥ ४॥
सोऽपि विंशत्यधिपतिर्वृत्तं जानपदे जने।
ग्रामाणां शतपालाय सर्वमेव निवेदयेत्॥ ५॥

गाँव के स्वामी का यह कर्त्तव्य है कि वह गाँव के मामलों और गाँव में होने वाले अपराधों का पता लगाये और उनका पूरा विवरण दस गाँवों के अधिपति के पास भेजे। दस गाँवों का अधिपति उस विवरण को बीस गाँवों के अधिपति के पास, बीस गाँवों का अधिपति अपने आधीन सारे लोगों का समाचार सौ गाँवों वाले अधिकारी के पास सूचित करे। इसीप्रकार सौ गाँवों का अधिपति प्रजा का समाचार हजार गाँवों के अधिपति के पास और हजार गाँवों का अधिपति राजा के पास सूचित करे।

यानि ग्राम्याणि भोज्यानि ग्रामिकस्तान्युपाश्रियात्।
दशपस्तेन भर्तव्यस्तेनापि द्विगुणाधिपः॥ ६॥
ग्रामं ग्रामशताध्यक्षो भोक्तुमर्हति सत्कृतः।
महान्तं भरतश्रेष्ठ सुस्फीतं जनसंकुलम्॥ ७॥
तत्र ह्यनेकपायत्तं राज्ञो भवति भारत।
शाखानगरमर्हस्तु सहस्रपतिरुत्तमः॥ ८॥
धान्यहैरण्यभोगेन भोक्तुं राष्ट्रियसङ्गतः।

ग्राम में जो भी उपज या आय हो, गाँव का अधिकारी उसी पर अपना निर्वाह करे। उसे दस गाँवों के अधिपति का भी भरण पोषण उसी में से करना चाहिये। इसीप्रकार दस गाँवों के अधिपति को बीस गाँवों के अधिपति का भरण पोषण करना चाहिये। जो सत्कार प्राप्त व्यक्ति सौ गाँवों का अध्यक्ष हो वह एक गाँव की आय को अपने भोग में लासकता है। हे भरतश्रेष्ठ! वह गाँव बड़ा, धन–धान्य से सम्पन्न और लोगों से भरपूर हो। हे भारत! उसका प्रबन्ध राजा के आधीन अनेक अधिपतियों के अधिकार में रहना चाहिये। सहस्र गाँव का अधिपति एक शाखा नगर अर्थात् कस्बे की आय पाने का अधिकारी है। उस कस्बे में जो अन्न और स्वर्ण की आय हो, उसे वह अपने भोग में ला सकता है। उसे राष्ट्र के लोगों के साथ मिलकर रहना चाहिये।

तेषां संग्रामकृत्यं स्याद् ग्रामकृत्यं च तेषु यत्॥ ९॥
धर्मज्ञः सचिवः कश्चित् तत् तत्पश्येदतन्द्रितः।
तेषां वृत्तिं परिणयेत् कश्चिद् राष्ट्रेषु तच्चरः॥ १०॥
जिघांसवः पापकामाः परस्वादायिनः शठाः।
रक्षाभ्यधिकृता नाम तेभ्यो रक्षेदिमाः प्रजाः॥ ११॥

उन अधिपतियों के अधिकार में जो युद्ध सम्बन्धी और गाँवों के प्रबन्ध सम्बन्धी कार्य सौंपे जायें, उनकी देख–रेख कोई धर्मज्ञ और आलस्यरहित मन्त्री किया करे। उस निरीक्षक का कोई गुप्तचर घूमता रहे और उन अधिपतियों के कार्य तथा मनोभावों को जानकर उसके पास सारा समाचार पहुँचाता रहे। जो रक्षा के कार्य में लगे हुए अधिकारी

हैं, वे प्रायः हिंसक, पापकर्म के इच्छुक, दूसरों का धन छीनने वाले और दुष्ट बन जाते हैं। वह निरीक्षक ऐसे लोगों से प्रजा की रक्षा करे।

विक्रयं क्रयमध्वानं भक्तं च सपरिच्छदम्।
योगक्षेमं च सम्प्रेक्ष्य वणिजां कारयेत् करान्॥ १२॥
उत्पत्तिं दानवृत्तिं च शिल्पं सम्प्रेक्ष्य चासकृत्।
शिल्पं प्रति करानेवं शिल्पिनः प्रति कारयेत्॥ १३॥
उच्चावचकरा दाप्या महाराज्ञा युधिष्ठिर।
यथा यथा न सीदेरंस्तथा कुर्यान्महीपतिः॥ १४॥
फलं कर्म च सम्प्रेक्ष्य ततः सर्वं प्रकल्पयेत्।
फलं कर्म च निर्हेतु न कश्चित् सम्प्रवर्तते॥ १५॥
यथा राजा च कर्ता च स्यातां कर्मणि भागिनौ।
संवेक्ष्य तु तथा राज्ञा प्रणेयाः सततं कराः॥ १६॥

राजा को सामान की खरीद, बिक्री, उसमें काम करनेवाले सेवकों के वेतन, बचत, माल को मँगाने का खर्च और योगक्षेम को ध्यान में रखकर ही व्यापारियों पर कर लगाना चाहिये। इसी तरह से माल की तैयारी, उसकी खपत तथा शिल्प की उत्तम, मध्यम आदि श्रेणियों का बार–बार निरीक्षण करके शिल्प और शिल्पकारों पर कर लगाना चाहिये। हे युधिष्ठिर! महाराजा को चाहिये कि वह लोगों की सामर्थ्य को देखकर भारी और हलका कर लगाये। राजा को ऐसा प्रयत्न करना चाहिये, जिससे प्रजा संकट में न पड़ जाये। उनके कार्य और लाभ को देखकर ही सब कार्य करना चाहिये। यदि प्रजा के कर्म और फल दोनों ही निष्प्रयोजन हो जायें, तो कोई भी कार्य में प्रवृत्त नहीं होगा। इसलिये जिस प्रकार राजा और काम करने वाले दोनों को कार्य में लाभ प्राप्त हो, यह देखकर ही राजा को सदा करों को लगाना चाहिये।

नोच्छिन्द्यादात्मनो मूलं परेषां चापि तृष्णया।
ईहाद्वाराणि संरुध्य राजा सम्प्रीतदर्शनः॥ १७॥
प्रद्विषन्ति परिख्यातं राजानमतिखादिनम्।
प्रद्विष्टस्य कुतः श्रेयो नाप्रियो लभते फलम्॥ १८॥
वत्सौपम्येन दोग्धव्यं राष्ट्रमक्षीणबुद्धिना।

राजा को चाहिये कि वह अधिक तृष्णा के कारण अपने और प्रजा के जीवन के मूल आधार खेती बारी आदि का उच्छेद न कर दे। अपने लोभ के द्वारों को बन्दकर राजा को प्रजा के लिये प्रियदर्शन होना चाहिये। यदि राजा इस रूप में प्रसिद्ध हो जाये कि वह अधिक शोषण करनेवाला है, तो प्रजा उससे द्वेष करने लगती है। जिससे सब लोग द्वेष करने लगें, उसका कल्याण कैसे हो सकता है? जो प्रजा का प्यारा नहीं होता उसे लाभ नहीं मिलता। जिसकी बुद्धि क्षीण नहीं हुई है, उस राजा को चाहिये कि वह राष्ट्र का दोहन उसीप्रकार धीरे–धीरे करे, जैसे बछड़ा गाय के दूध को धीरे–धीरे ग्रहण करता है।

भृतो वत्सो जातबलः पीडां सहति भारत॥ १९॥
न कर्म कुरुते वत्सो भृशं दुग्धो युधिष्ठिर।
राष्ट्रमप्यतिदुग्धं हि न कर्म कुरुते महत्॥ २०॥
यो राष्ट्रमनुगृह्णाति परिरक्षन् स्वयं नृपः।
संजातमुपजीवन् स लभते सुमहत् फलम्॥ २१॥
आपदर्थं च निर्यातं धनं त्विह विवर्धयेत्।
राष्ट्रं च कोशभूतं स्यात् कोशो वेश्मगतस्तथा॥ २२॥

हे भारत युधिष्ठिर! जिस गाय का दूध अधिक नहीं दुहा जाता और उसके बछड़े का अच्छी तरह से भरणपोषण किया जाता है, वह बछड़ा बलवान् होकर भार ढोने के अधिक कष्ट को सहन कर लेता है। पर जिसका दूध अधिक दुहा जाता है और उसके बछड़े का ठीक प्रकार भरणपोषण नहीं होता, वह बछड़ा कमजोर रह जाता है और वैसा कार्य नहीं कर पाता। इसीप्रकार राष्ट्र का भी अधिक दोहन करने से वह निर्धन होजाता है और कोई महान् कार्य नहीं कर पाता। जो स्वयं राष्ट्र की रक्षा में तत्पर रहकर उस पर अनुग्रह करता है और उसकी प्राप्त हुई उचित आय से अपनी जीविका चलाता है, वह महान् फल का भागी होता है। राजा को चाहिये कि वह लोगों के पास एकत्र हुए धन को आपत्ति के समय काम आने के लिये बढ़ाये, जिससे सारा राष्ट्र एक खजाने की तरह होजाये। वह राष्ट्र को घरों में रखे हुए खजाने जैसा समझे।

पौरजानपदान् सर्वान् संश्रितोपाश्रितांस्तथा।
यथाशक्त्यनुकम्पेत सर्वान् स्वल्पधनानपि॥ २३॥
बाह्यं जनं भेदयित्वा भोक्तव्यो मध्यमः सुखम्।
एवं नास्य प्रकुप्यन्ति जनाः सुखितदुःखिताः॥ २४॥
प्रागेव तु धनादानमनुभाष्य ततः पुनः।
संनिपत्य स्वविषये भयं राष्ट्रे प्रदर्शयेत्॥ २५॥

नगर या देश के जो भी निवासी राजा के पास शरण के लिये चाहे स्वयं आये हों, या किसी

मध्यस्थ के माध्यम से आये हों, वह ऐसे धनहीन सारे लोगों पर अपनी शक्ति के अनुसार कृपा करे। जँगली लुटेरों को बाह्यजन कहते हैं। उनमें भेद डालकर वह मध्यम वर्ग के ग्रामीण लोगों का सुखपूर्वक उपभोग करे। उनसे राष्ट्र के हित के लिये धन ले। ऐसा करने से सुखी और दुखी दोनों प्रकार के मनुष्य उस पर क्रोध नहीं करते। राजा को चाहिये कि वह पहले धन लेने की आवश्यकता राष्ट्रवासियों को बताये और फिर अपने राज्य में सर्वत्र दौरा करे और राष्ट्र पर आने वाले भय की तरफ सबका ध्यान आकर्षित करे।

इयमापत्समुत्पन्ना परचक्रभयं महत्।
अपि चान्ताय कल्पन्ते वेणोरिव फलागमाः॥ २६॥
अरयो मे समुत्थाय बहुभिर्दस्युभिः सह।
इदमात्मवधायैव राष्ट्रमिच्छन्ति बाधितुम्॥ २७॥
अस्यामापदि घोरायां सम्प्राप्ते दारुणे भये।
परित्राणाय भवतः प्रार्थयिष्ये धनानि वः॥ २८॥
प्रतिदास्ये च भवतां सर्वं चाहं भयक्षये।
नारयः प्रतिदास्यन्ति यद्धरेयुर्बलादितः॥ २९॥
कलत्रमादितः कृत्वा सर्वं वो विनशेदिति।
अपि चेत् पुत्रदारार्थमर्थसंचय इष्यते॥ ३०॥

वह लोगों को बताये कि यह देशपर बहुत बड़ी आपत्ति आ गयी है। शत्रु के आक्रमण का महान् भय उपस्थित हो गया है। जैसे बाँस में फल लगना बाँस के विनाश का कारण होता है, वैसे ही मेरे शत्रु बहुत से लुटेरों के साथ उठकर अपने विनाश के लिये ही इस देशपर आक्रमण करना चाहते हैं। इस भयंकर आपत्ति के आने पर और दारुण भय के प्राप्त होने पर मैं आपकी रक्षा के लिये आपसे धन के लिये प्रार्थना कर रहा हूँ। भय के समाप्त हो जाने पर मैं आपका धन आपको लौटा दूँगा, किन्तु यदि शत्रुओं ने बलपूर्वक आपसे धन छीन लिया तो वे इसे नहीं लौटायेंगे। उनके आने पर सबसे पहले आपकी स्त्रियों पर संकट आयेगा, फिर आपका सारा धन नष्ट हो जायेगा। धन अपने पुत्र और पत्नी के लिये ही एकत्र किया जाता है।

नन्दामि वः प्रभावेण पुत्राणामिव चोदये।
यथाशक्त्युपगृह्णामि राष्ट्रस्यापीडया च वः॥ ३१॥
आपत्स्वेव च वोढव्यं भवद्भिः पुङ्गवैरिव।
न च प्रियतरं कार्यं धनं कस्याञ्चिदापदि॥ ३२॥
इति वाचा मधुरया श्लक्ष्णया सोपचारया।
स्वरश्मीनभ्यवसृजेद् योगमाधाय कालवित्॥ ३३॥

जैसे पुत्रों की बढ़ोतरी पर पिता को प्रसन्नता होती है, वैसे ही मैं भी आप लोगों की समृद्धि देखकर प्रसन्न होता हूँ। मैं आप लोगों की शक्ति के अनुसार ही आप से धन ग्रहण कर रहा हूँ, जिससे राष्ट्र को कष्ट न हो। जैसे साँड दुर्गम स्थानों में भी बोझ को ढोकर पहुँचाते हैं, वैसे ही आप लोगों को भी देशपर आयी हुई इस मुसीबत में कुछ भार अपने उपर लेना चाहिये। आपत्ति के समय धन को अधिक प्रिय मानकर छिपाये रखना उचित नहीं होता। इसप्रकार समय की गतिविधि को पहचानने वाले राजा को चाहिये कि वह इसीप्रकार स्नेहयुक्त, अनुनयपूर्ण, मधुर वचनों के द्वारा समझा–बुझाकर उपयुक्त उपाय का आश्रय लेकर, धनसंग्रह के लिये अपने पैदल सैनिकों और सेवकों को प्रजा के घरों में भेजे।

प्राकारं भृत्यभरणं व्ययं संग्रामतो भयम्।
योगक्षेमं च सम्प्रेक्ष्य गोमिनः कारयेत् करम्॥ ३४॥
उपेक्षिता हि नश्येयुर्गोमिनोऽरण्यवासिनः।
तस्मात् तेषु विशेषेण मृदुपूर्वं समाचरेत्॥ ३५॥
सान्त्वनं रक्षणं दानमवस्था चाप्यभीक्ष्णशः।
गोमिनां पार्थ कर्तव्यः संविभागः प्रियाणि च॥ ३६॥

नगर की रक्षा के लिये चारदिवारी बनवानी है, सेवकों और सैनिकों का भरणपोषण करना है, दूसरे आवश्यक व्यय करने हैं, संग्राम के भय को टालना है, सब के कल्याण की चिन्ता करनी है, इन सारी बातों को समझाकर राजा को धनवान् लोगों से कर लेना चाहिये। जो राजा धनियों के हानिलाभ की परवाह न कर उन पर आवश्यकता से अधिक कर लगाता है, तो वे उसका राज्य छोड़कर भाग जाते हैं और वन में रहने लगते हैं, इसलिये उनके प्रति विशेष कोमलता का व्यवहार करना चाहिये। राजा को चाहिये कि हे कुन्तीपुत्र! वह धनी लोगों को सान्त्वना देता रहे, उनकी रक्षा करे, उनकी धन से सहायता करे, उनकी स्थिति को सुदृढ़ करने के लिये बार–बार प्रयत्न करे, उन्हें आवश्यक वस्तुएँ अर्पित करता रहे और उनके प्रिय कार्य करता रहे।

अजस्रमुपयोक्तव्यं फलं गोमिषु भारत।
प्रभावयन्ति राष्ट्रं च व्यवहारं कृषिं तथा॥ ३७॥
तस्माद् गोमिषु यत्नेन प्रीतिं कुर्यात् विचक्षणः।
दयावानप्रमत्तश्च करान् सम्प्रणयन् मृदून्॥ ३८॥
सर्वत्र क्षेमचरणं सुलभं नाम गोमिषु।
न ह्यतः सदृशं किंचिद् वरमस्ति युधिष्ठिर॥ ३९॥

हे भारत! व्यापारियों को उनके परिश्रम का उपयुक्त फल लगातार देते रहना चाहिये। क्योंकि वे राष्ट्र की, व्यापार की और खेती की उन्नति को प्रभावित करते हैं। इसलिये चतुर राजा को धनवानों के साथ यत्नपूर्वक प्रेमभाव बनाये रखना चाहिये। वह सावधानीपूर्वक उनके साथ दयालुता का बर्ताव करे और हलके कर लगाये। हे युधिष्ठिर! व्यापारियों और धनवानों के लिये राजा ऐसा प्रबन्ध करे कि वे सब जगह देश में कुशलता पूर्वक विचरण कर सकें। राजा के लिये इससे अधिक श्रेष्ठ और कोई बात नहीं है।

बयालीसवाँ अध्याय : कराधान और कोश संग्रह का प्रकार।

युधिष्ठिर उवाच

यदा राजा समर्थोऽपि कोशार्थी स्यान्महामते।
कथं प्रवर्तेत तदा तन्मे ब्रूहि पितामह॥ १॥

भीष्म उवाच

यथादेशं यथाकालं यथाबुद्धि यथाबलम्।
अनुशिष्यात् प्रजा राजा धर्मार्थी तद्धिते रतः॥ २॥
यथा तासां च मन्येत श्रेय आत्मन एव च।
तथा कर्माणि सर्वाणि राजा राष्ट्रेषु वर्तयेत्॥ ३॥
मधुदोहं दुहेद् राष्ट्रं भ्रमरा इव पादपम्।
वत्सापेक्षी दुहेच्चैव स्तनांश्च न विकुट्टयेत्॥ ४॥

युधिष्ठिर ने पूछा कि हे महाबुद्धिमान्, पितामह! जब राजा समर्थ अवस्था में हो अर्थात् उसपर कोई संकट न आया हो, उस समय यदि वह अपने कोश को बढ़ाना चाहे तो उसे क्या करना चाहिये? यह आप मुझे बताइये। तब भीष्म ने उत्तर दिया कि धर्मार्थी राजा को चाहिये, कि प्रजा की भलाई में लगा हुआ, समय, बुद्धि और शक्ति के अनुसार प्रजा को अनुशासन में रखे। जिस प्रकार वह प्रजा की और अपनी भी भलाई समझे, उसी प्रकार के कार्यों को राजा अपने राष्ट्र में प्रचारित करे। जैसे भौंरा धीरे-धीरे फूल और वृक्ष का रस चूसता है, जैसे बछड़े को कष्ट न देकर गाय का दूध दुहा जाता है, उसके स्तनों को काट नहीं लिया जाता, वैसे ही राजा को कोमलता के साथ राष्ट्ररूपी गौ का दोहन करना चाहिये। उसे कुचलना नहीं चाहिये।

जलौकावत् पिबेद् राष्ट्रं मृदुनैव नराधिपः।
व्याघ्रीव च हरेत् पुत्रान् संदशेन्न च पीडयेत्॥ ५॥
यथा शल्यकवानाखुः पदं धूनयते सदा।
अतीक्ष्णेनाभ्युपायेन तथा राष्ट्रं समापिबेत्॥ ६॥
अल्पेनाल्पेन देयेन वर्धमानं प्रदापयेत्।
ततो भूयस्ततो भूयः क्रमवृद्धिं समाचरेत्॥ ७॥

जैसे जोंक धीरे धीरे शरीर का खून चूसती है, वैसे राजा भी कोमलता के साथ अपनी प्रजा से कर की वसूली करे। जैसे बाघिन अपने छोटे बच्चों को बड़ी कोमलता के साथ दाँतों से पकड़ कर इधर उधर ले जाती है, उन्हें उसके दाँत चुभते नहीं हैं, वैसे राजा भी कोमल उपायों से राष्ट्र का दोहन करे। जैसे तेज दाँतों वाला चूहा सोये हुए मनुष्य के पैर को धीरे धीरे ऐसे काटता है, कि वह पैर को केवल हिलाता ही है, उसे पीड़ा का ज्ञान नहीं होता, वैसे ही राजा को भी मुलायम उपायों से प्रजा से कर लेना चाहिये। उसे पहले थोड़ी मात्रा में कर लेकर फिर धीरे धीरे उसे बढ़ाना चाहिये और उस बढ़े हुए कर को प्राप्त करना चाहिये। उसके पश्चात् समय के अनुसार उसमें धीरे धीरे क्रमशः वृद्धि करनी चाहिये जिससे किसी को विशेष भार न जान पड़े।

दमयन्निव दम्यानि शश्वद् भारं विवर्धयेत्।
मृदुपूर्वं प्रयत्नेन पाशानभ्यवहारयेत्॥ ८॥
सकृत्पाशावकीर्णास्ते न भविष्यन्ति दुर्दमाः।
उचितेनैव भोक्तव्यास्ते भविष्यन्ति यत्नतः॥ ९॥
तस्मात् सर्वसमारम्भो दुर्लभः पुरुषं प्रति।
यथामुख्यान् सान्त्वयित्वा भोक्तव्य इतरो जनः॥ १०॥
न चास्थाने न चाकाले करांस्तेभ्यो निपातयेत्।
आनुपूर्व्येण सान्त्वेन यथाकालं यथाविधि॥ ११॥

दण्ड्यास्ते च महाराज धनादानप्रयोजकाः।
प्रयोगं कारयेयुस्तान् यथाबलिकरांस्तथा॥ १२॥

जैसे नये बछड़े को बोझा ढोने का अभ्यस्त बनाने के लिये पहले उसे नाथा जाता है, फिर धीरे-धीरे उस पर प्रयत्नपूर्वक थोड़ा थोड़ा बोझ लादा जाता है, इस प्रकार अभ्यास करते हुए उसे अधिक भार वहन करने का अभ्यासी बनाया जाता है। यदि उस पर एक दम अधिक भार लाद दिया जाये तो वह तुरन्त काबू से बाहर दुर्दमनीय हो जायेगा, वैसे ही राजा को पहले मधुर वचनों से सान्त्वना देकर प्रधान लोगों को अपने वश में करना चाहिये, फिर दूसरे सामान्य लोगों का उपयोग करना चाहिये। राजा को परिस्थिति और समय के प्रतिकूल प्रजा पर कर का बोझा नहीं डालना चाहिये। उसे सान्त्वना देकर, समय के अनुसार उचित रीति से, उससे क्रमशः कर ग्रहण करना चाहिये। हे महाराज! जो राजकर्मचारी उचित से अधिक कर वसूल करते या कराते हैं, वे तुम्हारे द्वारा दण्डनीय होने चाहियें। दूसरे अधिकारी आकर उन्हें ठीक ठीक भेंट या कर लेने का अभ्यास करायें।

तेतालीसवाँ अध्याय : राजा के कर्त्तव्य।

वनस्पतीन् भक्ष्यफलान् न च्छिन्द्युर्विषये तव।
ब्राह्मणानां मूलफलं धर्म्यमाहुर्मनीषिणः॥ १॥
विप्रश्चेत् त्यागमातिष्ठेदात्मार्थे वृत्तिकर्शितः।
परिकल्प्यास्य वृत्तिः स्यात् सदारस्य नराधिप॥ २॥
स चेन्नोपनिवर्तेत वाच्यो ब्राह्मणसंसदि।
कस्मिन्निदानीं मर्यादामयं लोकः करिष्यति॥ ३॥
असंशयं निवर्तेत न चेद् वक्ष्यत्यतः परम्।
पूर्वं परोक्षं कर्तव्यमेतत् कौन्तेय शाश्वतम्॥ ४॥

तुम्हारे राज्य में खानेयोग्य फलवाले वृक्षों को कोई काटने न पाये। वैसे भी मनीषी लोग धर्म के अनुसार मूल और फल को ब्राह्मणों का धन बताते हैं। हे राजन्! यदि किसी राजा के राज्य में जीविका का प्रबन्ध न होने से कोई ब्राह्मण दुर्बल होजाये और राज्य को छोड़कर जाने लगे, तो राजा का कर्त्तव्य है कि परिवारसहित उस ब्राह्मण की आजीविका का प्रबन्ध करे। यदि फिर भी वह ब्राह्मण वापिस न लौटे तो राजा को उससे यह कहना चाहिये कि यदि मेरा पहले का कोई अपराध है तो उसे भूल जायें। हे कुन्तीपुत्र! राजा का ब्राह्मण से यह विनय करना उसका सनातन कर्त्तव्य है।

आहुरेतज्जना नित्यं न चैतच्छ्रद्दधाम्यहम्।
निमन्त्र्यश्च भवेद् भोगैरवृत्त्या च तदाचरेत्॥ ५॥
शत्रून् जय प्रजा रक्ष यजस्व क्रतुभिर्नृप।
युध्यस्व समरे वीरो भूत्वा कौरवनन्दन॥ ६॥
संरक्ष्यान् पालयेद् राजा स राजा राजसत्तमः।
ये केचित् तान् न रक्षन्ति तैरर्थो नास्ति कश्चन॥ ७॥
सदैव राज्ञा योद्धव्यं सर्वलोकाद् युधिष्ठिर।
तस्माद्धेतोर्हि युञ्जीत मनुष्यानेव मानवः॥ ८॥

कुछ लोग यह कहते हैं, कि राजा को सदा ब्राह्मण को आमन्त्रित करके उसे भोगसामग्री अर्पित करनी चाहिये और यदि वह जीविकारहित हो तो उसे जीविका भी देनी चाहिये, पर मैं इस बात को स्वीकार नहीं करता, क्योंकि सच्चे ब्राह्मण में भोग सामग्री की इच्छा होनी ही नहीं चाहिये। हे कौरव नन्दन राजन्! तुम शत्रुओं को जीतो, प्रजा की रक्षा करो, यज्ञों का यजन करो और वीर बनकर युद्धक्षेत्र में युद्ध करो। जो राजा रक्षा करने योग्य व्यक्तियों की रक्षा करता है, वह श्रेष्ठ राजा है। जो राजा उनकी रक्षा नहीं करते, उनसे कोई लाभ नहीं है। हे युधिष्ठिर! राजा को सारे लोगों की भलाई के लिये सदा युद्ध करना या युद्ध के लिये तैयार रहना चाहिये। शत्रु के लिये ही उस मानव शिरोमणि को गुप्तचर मनुष्यों को लगाये रखना चाहिये।

आन्तरेभ्यः परान् रक्षन् परेभ्यः पुनरान्तरान्।
परान् परेभ्यः स्वान् स्वेभ्यः सर्वान् पालय नित्यदा॥ ९॥
आत्मानं सर्वतो रक्षन् राजन् रक्षस्व मेदिनीम्।
आत्ममूलमिदं सर्वमाहुर्वै विदुषो जनाः॥ १०॥
किं छिद्रं को नु सङ्गो मे किं वास्त्यविनिपातितम्।
कुतो मामाश्रयेद् दोष इति नित्यं विचिन्तयेत्॥ ११॥
अतीतदिवसे वृत्तं प्रशंसन्ति न वा पुनः।
गुप्तैश्चारैरनुमतैः पृथिवीमनुसारयेत्॥ १२॥

हे युधिष्ठिर जो अपने अन्तरंग मित्र हैं, उनसे बाहरी अर्थात् प्रजा के सामान्य लोगों की रक्षा करो तथा प्रजा के लोगों से अपने आत्मीय लोगों को बचाओ। इसी प्रकार बाहरी लोगों से बाहरी लोगों को बचाओ और अपने आत्मीय लोगों से अपने आत्मीय लोगों को बचाओ। इसप्रकार सब का पालन करो। हे राजन्! सदा अपनी रक्षा करते हुए पृथिवी की रक्षा करो। विद्वान् पुरुषों ने यह कहा है कि सब कर्मों का मूल अपना सुरक्षित शरीर ही है। मेरे अन्दर कौनसी दुर्बलता है? किसतरह की आसक्ति है? या कौन-सी बुराई ऐसी है जो अभी तक दूर नहीं हुई है और दोष ने मेरा आश्रय वहाँ से लिया हुआ है? इन बातों पर राजा को नित्य विचार करते रहना चाहिये। पिछले दिन तक मेरा जैसा बर्ताव रहा है, उसकी लोग प्रशंसा करते हैं या नहीं। इस बात का पता लगाने के लिये उसे अपने विश्वासपात्र गुप्तचरों को पृथिवी पर घुमाते रहना चाहिये।

जानीयुर्यदि ते वृत्तं प्रशंसन्ति न वा पुनः।
कच्चिद् रोचेज्जनपदे कच्चिद् राष्ट्रे च मे यशः॥ १३॥
धर्मज्ञानां धृतिमतां संग्रामेष्वपलायिनाम्।
राष्ट्रे तु येऽनुजीवन्ति ये तु राज्ञोऽनुजीविनः॥ १४॥
अमात्यानां च सर्वेषां मध्यस्थानां च सर्वशः।
ये च त्वाभिप्रशंसेयुर्निन्देयुरथवा पुनः॥ १५॥
सर्वान् सुपरिणीतांस्तान् कारयेथा युधिष्ठिर।
एकान्तेन हि सर्वेषां न शक्यं तात रोचितुम्।
मित्रामित्रमथो मध्यं सर्वभूतेषु भारत॥ १६॥

राजा को यह भी पता लगाना चाहिये कि यदि लोगों को मेरे इस वर्तमान व्यवहार का पता लग जाये तो वे इसकी प्रशंसा करेंगे या नहीं? क्या राष्ट्र में और गाँवों में लोगों को मेरा यश अच्छा लगता है? हे युधिष्ठिर! जो धर्मध्वज हैं, धैर्यवान् हैं, संग्राम से कभी न भागने वाले वीर हैं, जो राष्ट्र में रहकर जीविका चलाते हैं, या राजा के अश्रित रहकर जीते हैं, सारे आमात्य या सारे मध्यस्थ, वे सारे तुम्हारी प्रशंसा करें या निन्दा, तुम्हें सबका सत्कार करना ही चाहिये। हे तात! कोई कार्य सभी को सर्वथा अच्छा लगे यह सम्भव नहीं है। हे भारत! सभी प्राणियों में शत्रु, मित्र और मध्यस्थ होते हैं।

चवालीसवाँ अध्याय : उतथ्यमाँधातासंवाद। धर्मपालन आवश्यक।

यानङ्गिराः क्षत्रधर्मानुतथ्यो ब्रह्मवित्तमः।
मान्धात्रे यौवनाश्वाय प्रीतिमानभ्यभाषत॥ १॥
तत् ते सर्वं प्रवक्ष्यामि, निखिलेन युधिष्ठिर।
उतथ्य उवाच
धर्माय राजा भवति न कामकरणाय तु॥ २॥
मान्धातरिति जानीहि राजा लोकस्य रक्षिता।
राजा चरति चेद् धर्मं देवत्वायैव कल्पते॥ ३॥
स चेदधर्मं चरति नरकायैव गच्छति।
धर्मे तिष्ठन्ति भूतानि धर्मो राजनि तिष्ठति॥ ४॥
तं राजा साधु यः शास्ति स राजा पृथिवीपतिः।

हे युधिष्ठिर! अङ्गिरा के पुत्र, ब्रह्म-वेत्ताओं में श्रेष्ठ उतथ्य ने प्रसन्न होकर युवनाश्व के पुत्र मान्धाता को जिन क्षत्रिय धर्मों का उपदेश किया था, उन्हें मैं सम्पूर्ण रूप में तुम्हें कहता हूँ। उतथ्य ने कहा था कि हे मान्धाता! तुम यह जानो कि राजा धर्म का पालन करने के लिये होता है, अपनी कामनाओं की पूर्ति के लिये नहीं होता। वह सारे संसार का रक्षक है। राजा यदि धर्म का पालन करता है, तो वह लोगों के लिये देवता बन जाता है, पर यदि वह अधर्म का पालन करता है, तो वह परलोक में अधमगति को प्राप्त करता है। सारे प्राणी धर्म के आधार पर स्थित हैं। धर्म राजा के ऊपर प्रतिष्ठित है। उस धर्म का जो राजा अच्छी तरह से पालन करता है, वह देर तक शासन करता है।

स्वधर्मे वर्तमानानामर्थसिद्धिः प्रदृश्यते॥ ५॥
तदेव मङ्गलं लोकः सर्वः समनुवर्तते।
उच्छिद्यते धर्मवृत्तमधर्मो वर्तते महान्॥ ६॥
भयमाहुर्दिवारात्रं यदा पापो न वार्यते।
ममेदमिति नैवैतत् साधूनां तात धर्मतः॥ ७॥
न वै व्यवस्था भवति यदा पापो न वार्यते।

नैव भार्या न पशवो न क्षेत्रं न निवेशनम्॥ ८॥
संदृश्येत मनुष्याणां यदा पापबलं भवेत्।

अपने धर्म का पालन करने वाले राजाओं को ही धन की सिद्धि प्राप्त होती है। सारी प्रजा उसी राजा के द्वारा पालन किये जा रहे मंगलमय धर्म का अनुकरण करती है। जब पाप को रोका नहीं जाता, तब संसार में धर्म के व्यवहार का लोप हो जाता है और अधर्म की महान् वृद्धि हो जाती है। तब प्रजा को दिनरात भय बना रहता है। हे तात! जब पाप को रोका नहीं जाता तो साधु पुरुषों के लिये धर्म के अनुसार यह कहना कठिन हो जाता है कि यह वस्तु मेरी है। उस समय समाज में कोई व्यवस्था टिकने नहीं पाती। जब पाप की शक्ति बढ़ती है तब मनुष्यों को न तो अपनी स्त्री, न पशु, न खेत, और न मकान किसी का भी कुछ ठिकाना नहीं दिखाई देता।

न वेदानधिगच्छन्ति व्रतवन्तो द्विजातयः॥ ९॥
न यज्ञांस्तन्वते विप्रा यदा पापो न वार्यते।
वृद्धानामिव सत्त्वानां मनो भवति विह्वलम्॥ १०॥
मनुष्याणां महाराज यदा पापो न वार्यते।
उभौ लोकावभिप्रेक्ष्य राजानमृषयः स्वयम्॥ ११॥
असृजन् सुमहद् भूतमयं धर्मो भविष्यति।
यस्मिन् धर्मो विराजेत तं राजानं प्रचक्षते॥ १२॥
यस्मिन् विलीयते धर्मस्तं देवा वृषलं विदुः।

जब राजा के द्वारा पाप का निवारण नहीं किया जाता तब ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने वाले द्विज वेदों के अध्ययन को छोड़ देते हैं और ब्राह्मण यज्ञों का अनुष्ठान नहीं करते। जब राजा के द्वारा पाप का निवारण नहीं किया जाता, तब हे महाराज! मनुष्यों का मन बूढ़े प्राणियों के समान घबराहट में पड़ा रहता है। इसीलिये लोक और परलोक को दृष्टि में रखकर ऋषियों ने राजा नाम के अत्यन्त महान् प्राणी की सृष्टि की और उसके विषय में यह सोचा कि यह साक्षात् धर्मरूप होगा। इसीलिये जिस राजा में धर्म सुशोभित होता है, वही वास्तविक राजा है। जिसमें धर्म अर्थात् वृष का लोप हो रहा हो, उसे तो विद्वान् लोग वृषल मानते हैं।

वृषो हि भगवान् धर्मो यस्तस्य कुरुते ह्यलम्॥ १३॥
वृषलं तं विदुर्देवास्तस्माद्धर्मं विवर्धयेत्।
धर्मे वर्धति वर्धन्ति सर्वभूतानि सर्वदा॥ १४॥
तस्मिन् ह्रसति हीयन्ते तस्माद् धर्मं न लोपयेत्।
तस्माद्धि राजशार्दूल धर्मः श्रेष्ठतरः स्मृतः॥ १५॥
स राजा यः प्रजाः शास्ति साधुकृत् पुरुषर्षभ।
दर्पो नाम श्रियः पुत्रो जज्ञेऽधर्मादिति श्रुतिः॥ १६॥
राजा भवति तं जित्वा दासस्तेन पराजितः।

वृष ही भगवान् धर्म का नाम है। इस धर्म के लिये जो अलम् अर्थात् बस यह कह देता है, उसे विद्वान् लोग वृषल कहते हैं। इसलिये राजा को सदा धर्म की वृद्धि ही करनी चाहिये। धर्म की वृद्धि होने पर सदा सारे प्राणियों की वृद्धि होती है और उसका ह्रास होने पर सबकी अवनति होती है। इसलिये राजा को कभी भी धर्म का ह्रास नहीं होने देना चाहिये। इसीलिये हे राजसिंह! धर्म को सबसे श्रेष्ठ माना गया है। हे पुरुषश्रेष्ठ! वास्तव में राजा वही है जो सद्धर्म के अनुसार प्रजा पर शासन करता है। हे राजन्! दर्प सम्पत्ति का पुत्र है, जो अधर्म के अंश से जन्म लेता है, यह श्रुति कहती है। जो इस दर्प को जीत लेता है, वही राजा है और जो उससे पराजित हो जाता है, वह दास है।

स यथा दर्पसहितमधर्मं नानुसेवते॥ १७॥
तथा वर्तस्व मान्धातश्चिरं चेत् स्थातुमिच्छसि।
कुलेषु पापरक्षांसि जायन्ते वर्णसंकरात्॥ १८॥
अपुमांसोऽङ्गहीनाश्च स्थूलजिह्वा विचेतसः।
एते चान्ये च जायन्ते यदा राजा प्रमाद्यति॥ १९॥
तस्माद् राज्ञा विशेषेण वर्तितव्यं प्रजाहिते।
ममेदमिति नैकस्य मनुष्येष्ववतिष्ठति।
त्यक्त्वा धर्मं यदा राजा प्रमादमनुतिष्ठति॥ २०॥

हे मान्धाता! यदि तुम देर तक राजसिंहासन पर बैठे रहना चाहते तो तो ऐसा करो, जिससे तुम्हारे द्वारा दर्प सहित अधर्म का सेवन न किया जाये। जब राजा धर्म की तरफ से प्रमाद करता है, तब वर्ण संकरता के कारण उत्तम कुलों में पापी और राक्षस जन्म लेते हैं। नपुंसक, अंगहीन, गूँगे और बुद्धिहीन बालकों की उत्पत्ति होती है। ये तथा और भी बहुत सी कुत्सित संतानें जन्म लेती हैं, जब राजा प्रमाद करता है। इसलिये राजा को विशेषरूप से प्रजा हित में लगे रहना चाहिये। जब राजा धर्म का त्याग करके प्रमाद करता है, तब एक आदमी भी यह नहीं कह सकता कि यह वस्तु मेरी है।

पैंतालीसवाँ अध्याय : धर्माचरण का महत्त्व और राजधर्म।

उतथ्य उवाच

कालवर्षी च पर्जन्यो धर्मचारी च पार्थिवः।
सम्पद् यदेषा भवति सा बिभर्ति सुखं प्रजाः॥ १॥
यो न जानाति हर्तुं वा वस्त्राणां रजको मलम्।
रक्तानां वा शोधयितुं यथा नास्ति तथैव सः॥ २॥
एवमेतद् द्विजेन्द्राणां क्षत्रियाणां विशां तथा।
शूद्रश्चतुर्थो वर्णानां नानाकर्मस्ववस्थितः॥ ३॥
तेषां यः क्षत्रियो वेद वस्त्राणामिव शोधनम्।
शीलदोषान् विनिर्हर्तुं स पिता स प्रजापतिः॥ ४॥

उतथ्य जी ने कहा कि हे राजन्! जब बादल वर्षा करते हैं और राजा धर्म का आचरण करता है, तो इनदोनों से जो समृद्धि होती है, उससे राज्य की प्रजा का सुख से भरणपोषण होता है। जो धोबी वस्त्रों के मैल को दूर करना नहीं जानता या रंगे हुए कपड़ों को धोकर उन्हें उज्वल बनाने की कला उसे नहीं आती, तो उसका होना या न होना बराबर है। इसीप्रकार ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र अपने नाना प्रकार के कर्मों में नहीं लगते हैं, तो उनका होना या न होना व्यर्थ ही है। उन चारों वर्णों में जो क्षत्रिय धोबी के समान प्रजा के चरित्रदोष रूपी मैल को दूर करना जानता है, वही प्रजा का पिता और पति है।

चातुर्वर्ण्यं तथा वेदाश्चातुराश्रम्यमेव च।
सर्वं प्रमुह्यते ह्येतद् यदा राजा प्रमाद्यति॥ ५॥
राजैव कर्ता भूतानां राजैव च विनाशकः।
धर्मात्मा यः स कर्ता स्यादधर्मात्मा विनाशकः॥ ६॥
राज्ञो भार्याश्च पुत्राश्च बान्धवाः सुहृदस्तथा।
समेत्य सर्वे शोचन्ति यदा राजा प्रमाद्यति॥ ७॥
दुर्बलार्थं बलं सृष्टं धात्रा मान्धातरुच्यते।
अबलं तु महद्भूतं यस्मिन् सर्वं प्रतिष्ठितम्॥ ८॥

जब राजा प्रमाद करता है, तब चारों वर्ण, चारों आश्रम और चारों वेद मोह में पड़ जाते हैं। अर्थात् लोग वेदों के गलत अर्थ करने लगते हैं। राजा ही सारे प्राणियों का जीवनदाता और राजा ही उनका विनाश करने वाला है। धर्मात्मा राजा उनको जीवन प्रदान करता है, तो अधर्मात्मा उनका विनाश करता है। जब राजा प्रमाद करता है तो उसकी स्त्री, पुत्र, बान्धव और सुहृद सब मिलकर शोक करते हैं। हे मान्धाता! कहते हैं कि विधान करने वालों ने दुर्बल लोगों की रक्षा के लिये बलवान् राजा की सृष्टि की है। निर्बल प्राणियों का जो महान् समुदाय है, वह सारा राजा के बलपर ही टिका हुआ है।

यच्च भूतं सम्भजते ये च भूतास्तदन्वयाः।
अधर्मस्थे हि नृपतौ सर्वे शोचन्ति पार्थिव॥ ९॥
दुर्बलांस्तात बुध्येथा नित्यमेवाविमानितान्।
मा त्वां दुर्बलचक्षूंषि प्रदहेयुः सबान्धवम्॥ १०॥
विमानितो हतः क्रुष्टस्त्रातारं चेन्न विन्दति।
अमानुषकृतस्तत्र दण्डो हन्ति नराधिपम्॥ ११॥
यानि मिथ्याभिशस्तानां पतन्त्यश्रूणि रोदताम्।
तानि पुत्रान् पशून् घ्नन्ति तेषां मिथ्याभिशंसनात्॥ १२॥

हे राजन्! राजा अन्न आदि देकर जिन का पोषण करता है, जो प्राणी राजा से सम्बन्ध रखते हैं, वे सब राजा के अधर्माचरण करने पर शोक में पड़ जाते हैं। हे तात! तुम सदा यह समझते रहना कि दुर्बल प्राणी अपमान करनेयोग्य नहीं है। अन्यथा कहीं ऐसा न हो कि दुर्बल प्राणियों की आँखें तुम्हें बन्धुबान्धवों सहित नष्ट कर दें। जहाँ अपमानित किया हुआ, हताहत और गालीगलौज से तिरस्कृत किया हुआ दुर्बल प्राणी राजा को अपने रक्षक के रूप में नहीं पाता है, वहाँ परमात्मा का दण्ड राजा को मार डालता है। झूठा अपराध घोषित होने पर, रोते हुए दुर्बल प्राणी के आँसू जब गिरते हैं, तो वे मिथ्या कलंक लगानेवाले उन अपराधियों के पुत्रों और पशुओं का नाश कर देते हैं।

युक्ता यदा जानपदा भिक्षन्ते ब्राह्मणा इव।
अभीक्ष्णं भिक्षुरूपेण राजानं घ्नन्ति तादृशाः॥ १३॥
राज्ञो यदा जनपदे बहवो राजपूरुषाः।
अनयेनोपवर्तन्ते तद् राज्ञः किल्बिषं महत्॥ १४॥
यदा युक्त्या नयेदर्थान् कामादर्थवशेन वा।
कृपणं याचमानानां तद् राज्ञो वैशसं महत्॥ १५॥

जब राज्य में जनपद के लोग एकत्र होकर ब्राह्मणों के समान भीख माँगना आरम्भ कर देते हैं, अर्थात् इतनी बेरोजगारी आजाती है, तब ऐसे लोग एक दिन राजा का विनाश कर देते हैं। जब राजा

के बहुतसे कर्मचारी जनपद के लोगों के साथ अन्यायपूर्वक व्यवहार करने लगते हैं, तो वह महान् पाप राजा को लगता है। जब राजा के कर्मचारी दीनता से याचना करती हुई प्रजा की याचना को ठुकराकर स्वेच्छा या धन के लोभ से युक्ति करके उनके धन का अपहरण कर लेते हैं, तब वह कार्य राजा के महान् विनाश का कारण बन जाता है।

यच्चापि सुकृतं कर्म वाचं चैव सुभाषिताम्।
समीक्ष्य पूजयन् राजा धर्मं प्राप्नोत्यनुत्तमम्॥ १६॥
संविभज्य यदा भुङ्क्ते नामात्यानवमन्यते।
निहन्ति बलिनं दृप्तं स राज्ञो धर्म उच्यते॥ १७॥
त्रायते हि यदा सर्वं वाचा कायेन कर्मणा।
पुत्रस्यापि न मृष्येच्च स राज्ञो धर्म उच्यते॥ १८॥
संविभज्य यदा भुङ्क्ते नृपतिर्दुर्बलान् नरान्।
तदा भवन्ति बलिनः स राज्ञो धर्म उच्यते॥ १९॥
यदा रक्षति राष्ट्राणि यदा दस्यूनपोहति।
यदा जयति संग्रामे स राज्ञो धर्म उच्यते॥ २०॥

जो राजा अपने कर्मचारियों तथा प्रजा के पुण्य कर्म और उनकी सुन्दर वाणियों को सुनकर उनका सम्मान करता है, वह उत्तम धर्म को प्राप्त होता है। जो राजा सबको बाँटकर, फिर स्वयं उपभोग करता है और अपने मंत्रियों का अपमान नहीं करता और अभिमानी बलवान् शत्रु को मार देता है, तो उसका यह कार्य राजधर्म ही कहलाता है। जब राजा वाणी और शारीरिक कर्म द्वारा सबकी रक्षा करता है और पुत्र के अपराध को भी क्षमा नहीं करता तब उसका यह कार्य राजधर्म कहलाता है। जब राजा दुर्बल व्यक्तियों को बाँटकर भोजन करता है, तब वे दुर्बल व्यक्ति भी बलवान् हो जाते हैं और राजा का यह कर्म उसका धर्म माना जाता है। जब राजा सारे राष्ट्र की रक्षा करता है, लुटेरों को मार भगाता है और युद्ध में विजय प्राप्त करता है, तब उसका यह कार्य राजधर्म कहलाता है।

पापमाचरतो यत्र कर्मणा व्याहृतेन वा।
प्रियस्यापि न मृष्येत स राज्ञो धर्म उच्यते॥ २१॥
यदा शारणिकान् राजा पुत्रवत् परिरक्षति।
भिनत्ति च न मर्यादां स राज्ञो धर्म उच्यते॥ २२॥
यदाऽऽप्तदक्षिणैर्यज्ञैर्यजते श्रद्धयान्वितः।
कामद्वेषावनादृत्य स राज्ञो धर्म उच्यते॥ २३॥
कृपणानाथवृद्धानां यदाश्रु परिमार्जति।
हर्षं संजनयन् नृणां स राज्ञो धर्म उच्यते॥ २४॥

जहाँ कोई व्यक्ति अपने कर्म या वाणी के द्वारा भी पाप का आचरण करता है, वह चाहे राजा का प्यारा ही क्यों न हो, पर राजा उसे सहन न करे और उसे दण्ड दे। राजा का वह कार्य राजधर्म ही माना जाता है। जब राजा व्यापारियों की पुत्र के समान रक्षा करता है और धर्म की मर्यादा को भंग नहीं करता है, तब राजा का वह कार्य राजधर्म माना जाता है। जब राजा राग और द्वेष का अनादर करके और श्रद्धा से युक्त होकर प्रचुरदक्षिणा वाले यज्ञों का यजन करता है, तो उसका यह कार्य राजधर्म कहलाता है। जब राजा दीनों अनाथों और बूढ़ों के आँसुओं को पोंछता और लोगों में हर्ष को उत्पन्न करता है, तो उसका वह कार्य राजधर्म माना जाता है।

विवर्धयति मित्राणि तथारींश्चापि कर्षति।
सम्पूजयति साधूंश्च स राज्ञो धर्म उच्यते॥ २५॥
सत्यं पालयति प्रीत्या नित्यं भूमिं प्रयच्छति।
पूजयेदतिथीन् भृत्यान् स राज्ञो धर्म उच्यते॥ २६॥
निग्रहानुग्रहौ चोभौ यत्र स्यातां प्रतिष्ठितौ।
अस्मिन् लोके परे चैव राजा स प्राप्नुते फलम्॥ २७॥
यमो राजा धार्मिकाणां मान्धातः परमेश्वरः।
संयच्छन् भवति प्राणानसंयच्छंस्तु पातुकः॥ २८॥

जो राजा मित्रों की वृद्धि, शत्रुओं का विनाश तथा सज्जनों का सम्मान करता है, उसका यह कार्य राजधर्म कहलाता है। जो राजा नित्य सत्य का पालन, प्रेमपूर्वक भूमि का दान, अतिथियों और भरणपोषण के योग्य व्यक्यिों का सत्कार करता है, तो उसका यह कार्य राजधर्म माना गया है। जिस राजा के अन्दर निग्रह और अनुग्रह दोनों प्रतिष्ठित होते हैं, वह इस लोक में तथा परलोक में भी मंनचाही गति को प्राप्त करता है। हे मान्धाता! राजा दुष्टों को दण्ड देने के कारण उनके लिये यमराज और धार्मिकों पर अनुग्रह करने के कारण उनके लिये परमेश्वर के समान होता है। जब वह अपनी इन्द्रियों को संयम में रखता है, तो शासन करने में समर्थ होता है और उन्हें वश में नहीं रखता तो उसका पतन हो जाता है।

ऋत्विक्पुरोहिताचार्यान् सत्कृत्यानवमन्य च।
यदा सम्यक् प्रगृह्णाति स राज्ञो धर्म उच्यते॥ २९॥

अप्रमादेन शिक्षेथाः क्षमां बुद्धिं धृतिं मतिम्।
भूतानां चैव जिज्ञासा साध्वसाधु च सर्वदा॥ ३०॥
संग्रहः सर्वभूतानां दानं च मधुरं वचः।
पौरजानपदाश्चैव गोप्तव्यास्ते यथासुखम्॥ ३१॥
न जात्वदक्षो नृपतिः प्रजाः शक्नोति रक्षितुम्।
भारो हि सुमहांस्तात राज्यं नाम सुदुष्करम्॥ ३२॥

जब राजा यज्ञ कराने वाले, पुरोहित और आचार्य की अवमानना न कर, उनको उचित व्यवहार के साथ अपनाता है, तब उसका वह कार्य राजधर्म कहलाता है। हे राजन्! तुम बिना प्रमाद के क्षमा, विवेक, धैर्य और बुद्धि की शिक्षा को ग्रहण करो और सदा सारे प्राणियों की साधुता और असाधुता के बारे में जानने की इच्छा किया करो। तुम सारे प्राणियों को अपने अनुकूल बनाना, दान देना और मधुर वाणी बोलना सीखो। तुम्हें पुरवासियों और जनपद के निवासियों की इसप्रकार रक्षा करनी चाहिये, कि वे सुखपूर्वक रह सकें। अकुशल राजा कभी प्रजा की रक्षा नहीं कर सकता। हे तात! राज्य का संचालन अत्यन्तदुष्कर बोझेवाला कार्य है।

तद्दण्डविन्नृपः प्राज्ञः शूरः शक्नोति रक्षितुम्।
न हि शक्यमदण्डेन क्लीबेनाबुद्धिनापि वा॥ ३३॥
अभिरूपैः कुले जातैर्दक्षैर्भक्तैर्बहुश्रुतैः।
सर्वा बुद्धीः परीक्षेथास्तापसाश्रमिणामपि॥ ३४॥
अतस्त्वं सर्वभूतानां धर्मं वेत्स्यसि वै परम्।
स्वदेशे परदेशे वा न ते धर्मो विनङ्क्ष्यति॥ ३५॥

इसीलिये जो राजा बुद्धिमान्, शूरवीर और दण्ड संचालन को जाननेवाला हो, वही राज्य की रक्षा कर सकता है। जो राजा दण्ड नहीं दे सकता, नपुंसक और बुद्धि से रहित है, वह राज्य की रक्षा नहीं कर सकता। तुम्हें रूपवान्, उत्तम कुल में उत्पन्न हुए, कार्यकुशल राजभक्त और बहुज्ञ मन्त्रियों के साथ रहकर तापसों और आश्रम वासियों के भी सारे विचारों की परीक्षा करते रहना चाहिये। ऐसा करने से तुम्हें प्राणियों के परम धर्मों का ज्ञान हो जायेगा। फिर स्वदेश में और देश में भी कहीं तुम्हारा धर्म नष्ट नहीं होगा।

तस्मादर्थाच्च कामाच्च धर्म एवोत्तरो भवेत्।
अस्मिँल्लोके परे चैव धर्मात्मा सुखमेधते॥ ३६॥
त्यजन्ति दारान् पुत्रांश्च मनुष्याः परिपूजिताः।
संग्रहश्चैव भूतानां दानं च मधुरा च वाक्॥ ३७॥
अप्रमादश्च शौचं च राज्ञो भूतिकरं महत्।
एतेभ्यश्चैव मान्धातः सततं मा प्रमादिथाः॥ ३८॥
अप्रमत्तो भवेद् राजा छिद्रदर्शी परात्मनोः।
नास्यच्छिद्रं परः पश्येच्छिद्रेषु परमन्वियात्॥ ३९॥

इस तरह से विचार करने पर अर्थ और काम से धर्म ही श्रेष्ठ सिद्ध होता है। धर्मात्मा इहलोक और परलोक दोनों जगह सुख पाता है। जब मनुष्य का अत्यधिक सम्मान किया जाता है, तो वह उस सम्मानदाता के हित के लिये अपने स्त्री और पुत्रों का भी त्याग कर देता है। हे मान्धाता! प्राणियों को अपने पक्ष में करना, दान देना, मधुर वाणी का प्रयोग करना, प्रमादरहित होना और पवित्र रहना ये गुण राजा के लिये महान् ऐश्वर्य को लानेवाले हैं। इसलिये इन्हें लगातार अपनाने में प्रमाद न करना। राजा को प्रमादरहित होना चाहिये। उसे अपने तथा शत्रु के दोष देखने चाहियें। उसे यह प्रयत्न करना चाहिये कि शत्रु मेरा दोष न जान पाये, पर वह यदि शत्रु के दोष को जान जाये तो उस पर चढ़ाई करदे।

छियालीसवाँ अध्याय : वामदेव वसुमनासंवाद। धर्मयुक्त आचार।

युधिष्ठिर उवाच

कथं धर्मे स्थातुमिच्छन् राजा वर्तेत धार्मिकः।
पृच्छामि त्वां कुरुश्रेष्ठ तन्मे ब्रूहि पितामह॥ १॥

भीष्म उवाच

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्।
गीतं दृष्टार्थतत्त्वेन वामदेवेन धीमता॥ २॥
राजा वसुमना नाम ज्ञानवान् धृतिमाञ्शुचिः।
महर्षिं परिपप्रच्छ वामदेवं तपस्विनम्॥ ३॥
धर्मार्थसहितैर्वाक्यैर्भगवन्ननुशाधि माम्।
येन वृत्तेन वै तिष्ठन् न हीयेयं स्वधर्मतः॥ ४॥

तब युधिष्ठिर ने पूछा कि हे कुरुश्रेष्ठ पितामह! मैं आपसे यह पूछता हूँ कि राजा यदि धर्म का आचरण करना चाहे तो उसे किसप्रकार आचरण करना चाहिये? आप मुझे यह बताइये। भीष्म जी ने उत्तर दिया कि इस विषय में लोग एक प्राचीन इतिहास का उदाहरण दिया करते हैं, जिसमें तत्वज्ञानी धीमान् वामदेव ने उपदेश दिया है। धैर्यवान, ज्ञानवान् और पवित्र हृदय वाले राजा वसुमना ने एक बार तपस्वी महर्षि वामदेव से पूछा कि हे भगवान्! आप अपने धर्म और अर्थ से युक्त वाक्यों द्वारा मुझे उपदेश दीजिये कि कैसा आचरण करते हुए मैं अपने धर्म से च्युत न हो सकूँ?

तमब्रवीद् वामदेवस्तेजस्वी तपतां वरः।
हेमवर्णं सुखासीनं ययातिमिव नाहुषम्॥ ५॥
धर्ममेवानुवर्तस्व न धर्माद् विद्यते परम्।
धर्मे स्थिता हि राजानो जयन्ति पृथिवीमिमाम्॥ ६॥
अर्थसिद्धेः परं धर्मं मन्यते यो महीपतिः।
वृद्ध्यां च कुरुते बुद्धिं स धर्मेण विराजते॥ ७॥
अधर्मदर्शी यो राजा बलादेव प्रवर्तते।
क्षिप्रमेवापयातोऽस्मादुभौ प्रथममध्यमौ॥ ८॥

तब तपस्वियों श्रेष्ठ, तपस्वी वामदेव जी ने उस सुवर्ण सी कान्ति वाले, नहुष पुत्र ययाति के समान सुख से बैठे हुए राजा वसुमना से कहा कि हे राजन्! तुम धर्म का ही पालन करो। धर्म से बढ़कर कुछ नहीं है। धर्म का पालन करने वाले राजा ही इस पृथिवा पर विजय प्राप्त करते हैं। जो राजा धर्म पालन को अर्थ की सिद्धि से भी बढ़कर समझता है और उसी की वृद्धि के लिये अपनी बुद्धि को लगाये रखता है, वह उस धर्म के द्वारा सुशोभित होता है। जो राजा अपनी दृष्टि अधर्म की तरफ रखता है और बलपूर्वक उसमें प्रवृत्त होता है, उसे धर्म और अर्थ जल्दी ही छोड़कर चले जाते हैं।

असत्पापिष्ठसचिवो वध्यो लोकस्य धर्महा।
सहैव परिवारेण क्षिप्रमेवावसीदति॥ ९॥
अर्थानामननुष्ठाता कामचारी विकत्थनः।
अपि सर्वां महीं लब्ध्वा क्षिप्रमेव विनश्यति॥ १०॥
अथाददानः कल्याणमनसूयुर्जितेन्द्रियः।
वर्धते मतिमान् राजा स्रोतोभिरिव सागरः॥ ११॥
न पूर्णोऽस्मीति मन्येत धर्मतः कामतोऽर्थतः।
बुद्धितो मित्रतश्चापि सततं वसुधाधिपः॥ १२॥

जो राजा अपने असज्जन और पापी मन्त्रियों के साथ धर्म की हत्या करने लगता है, वह लोगों के लिये वध करनेयोग्य बन जाता है और शीघ्र ही परिवार के साथ नष्ट हो जाता है। जो राजा धर्म की वृद्धि के लिये चेष्टा नहीं करता, अपनी इच्छा के अनुसार ही आचरण करता और अपनी डींग मारता है, वह सारी पृथिवी का राज्य प्राप्त करके भी नष्ट हो जाता है। पर जो कल्याण कारी गुणों को ग्रहण करनेवाला, अनिन्दक, जितेन्द्रिय और बुद्धिमान् होता है, वह वैसे ही वृद्धि करता है, जैसे नदियों के प्रवाह से समुद्र। राजा को चाहिये कि वह धर्म, अर्थ, काम, बुद्धि और मित्रों से सम्पन्न होने पर भी यह समझता रहे कि मैं इन गुणों में पूरा नहीं हूँ और इन्हें लगातार बढ़ाने की चेष्टा करे।

एतेष्वेव हि सर्वेषु लोकयात्रा प्रतिष्ठिता।
एतानि शृण्वँल्लभते यशः कीर्तिं श्रियं प्रजाः॥ १३॥
एवं यो धर्मसंरम्भी धर्मार्थपरिचिन्तकः।
अर्थान् समीक्ष्य भजते स ध्रुवं महदश्नुते॥ १४॥
अदाता ह्यनतिस्नेहो दण्डेनावर्तयन् प्रजाः।
साहसप्रकृती राजा क्षिप्रमेव विनश्यति॥ १५॥
अथ पापकृतं बुद्ध्यां न च पश्यत्यबुद्धिमान्।
अकीर्त्याभिसमायुक्तो भूयो नरकमश्नुते॥ १६॥

इन्हीं सारे गुणों के आधार पर राजा की जीवन यात्रा आधारित होती है। इस गुणों को प्राप्त करने

और इनके विषय में सुनते रहने पर राजा को यश, कीर्ति, ऐश्वर्य और प्रजा की प्राप्ति होती है। इस प्रकार जो धर्म के प्रति आग्रह रखने वाला, धर्म और अर्थ की चिन्ता करने वाला और विचार करके अर्थों का सेवन करने वाला होता है, वह निश्चित रूप से महान् फल का भागी होता है, किन्तु जो दुःसाहसी राजा दान नहीं देता, दूसरों से स्नेह नहीं करता और दण्ड के द्वारा सताता है, वह जल्दी ही विनष्ट हो जाता है। जो पापी और बुद्धि से रहित राजा पाप करके भी अपनी बुद्धि से अपने आपको पापी नहीं समझता, वह अपकीर्ति से युक्त होकर परलोक में अधम गति को प्राप्त होता है।

अथ मानयितुर्दातुः श्लक्ष्णस्य वशवर्तिनः।
व्यसनं स्वमिवोत्पन्नं विजिघांसन्ति मानवाः॥ १७॥
यस्य नास्ति गुरुर्धर्मे न चान्यानपि पृच्छति।
सुखतन्त्रोऽर्थलाभेषु न चिरं सुखमश्नुते॥ १८॥
गुरुप्रधानो धर्मेषु स्वयमर्थानवेक्षिता।
धर्मप्रधानो लाभेषु स चिरं सुखमश्नुते॥ १९॥
यत्राधर्मं प्रणयते दुर्बले बलवत्तरः।
तां वृत्तिमुपजीवन्ति ये भवन्ति तदन्वयाः॥ २०॥

जो राजा दूसरों का सम्मान करता है, दान देता है, स्नेहयुक्त और दूसरों के वशवर्ती होकर रहता है, उसके ऊपर संकट आने पर लोग उस संकट को अपना ही संकट मानकर उसे दूर करने का प्रयत्न करते हैं। जिसको धर्म के विषय में शिक्षा देने के लिये कोई गुरु नहीं है, और जो दूसरों से भी नहीं पूछता है और धन की प्राप्ति होने पर सुख भोग में लग जाता है, वह देर तक उस सुख को नहीं भोग पाता है। किन्तु जो धर्मपालन में गुरु के आदेश को मानकर उसके अनुसार चलता है और अर्थों का स्वयं निरीक्षण करता है, जो सब प्रकार के लाभों में धर्म के लाभ को ही प्रधान समझता है, वह देर तक सुख को प्राप्त करता रहता है। जहाँ बलवान् राजा दुर्बलों के प्रति अधर्म का आचरण करने लगता है, वहाँ उसके आश्रित उसके सेवक भी अधर्माचरण को ही अपनी जीविका का साधन बना लेते हैं।

राजानमनुवर्तन्ते तं पापाभिप्रवर्तकम्।
अविनीतमनुष्यं तत् क्षिप्रं राष्ट्रं विनश्यति॥ २१॥
योऽत्यन्ताचरितां वृत्तिं क्षत्रियो नानुवर्तते।
जितानामजितानां च क्षत्रधर्मादपैति सः॥ २२॥
द्विषन्तं कृतकल्याणं गृहीत्वा नृपतिं रणे।
यो न मानयते द्वेषात् क्षत्रधर्मादपैति सः॥ २३॥
अप्रियं यस्य कुर्वीत भूयस्तस्य प्रियं चरेत्।
नचिरेण प्रियः स स्याद् योऽप्रियः प्रियमाचरेत्॥ २४॥

वे पाप का संचालन करने वाले राजा का ही अनुकरण करते हैं। इस प्रकार उद्दण्ड मनुष्यों से भरा हुआ वह राष्ट्र जल्दी नष्ट हो जाता है। जो क्षत्रिय राज्य में रहने वाले विजित या अविजित लोगों को उनकी अत्यन्त आचरण में लाई हुई परम्परागतवृत्ति का पालन नहीं करने देता, वह क्षत्रिय धर्म से गिर जाता है। जिसने पहले अपना उपकार किया हो, वह अब किसी कारण से द्वेष करने लगा हो, उस राजा को युद्ध में बन्दी बनाकर, जो द्वेष के कारण उसका सम्मान नहीं करता, वह क्षत्रिय धर्म से गिर जाता है। राजा को चाहिये कि जिसका कभी अप्रिय किया हो, उसका पुनः प्रिय भी करे। इससे वह अप्रिय व्यक्ति भी अपना प्रिय करने लगता है और थोड़े समय में प्रिय बन जाता है।

मृषावादं परिहरेत् कुर्यात् प्रियमयाचितः।
न कामान्न च संरम्भान्न द्वेषाद् धर्ममुत्सृजेत्॥ २५॥
नापत्रपेत प्रश्नेषु नाविभाव्यां गिरं सृजेत्।
न त्वरेत न चासूयेत् तथा संगृह्यते परः॥ २६॥
प्रिये नातिभृशं हृष्येदप्रिये न च संज्वरेत्।
न तप्येदर्थकृच्छ्रेषु प्रजाहितमनुस्मरन्॥ २७॥
यः प्रियं कुरुते नित्यं गुणतो वसुधाधिपः।
तस्य कर्माणि सिद्ध्यन्ति न च संत्यज्यते श्रिया॥ २८॥

राजा को चाहिये कि वह असत्य भाषण छोड़ दे, बिना प्रार्थना किये ही दूसरों का प्रिय करे और काम, क्रोध तथा द्वेष के कारण धर्म का त्याग न करे। प्रश्न पूछा जाने पर उत्तर देने में संकोच न करे, बिना विचारे कोई बात सुख से न निकाले, किसी कार्य में जल्दी न करे, किसी की निन्दा न करे। ऐसा करने से शत्रु भी अपने वश में हो जाता है। यदि अपना प्रिय हो तो बहुत अधिक प्रसन्न न हो, यदि अप्रिय हो जाये तो चिन्ता न करे, आर्थिक संकट हो तो प्रजा के हित को स्मरण करते हुए सन्तप्त न हो। जो राजा अपने गुणों से सदा

सबका प्रिय करता है, उसके सारे कार्य सिद्ध होते हैं और ऐश्वर्य उसका कभी साथ नहीं छोड़ता।

निवृत्तं प्रतिकूलेषु वर्तमानमनुप्रिये।
भक्तं भजेत नृपतिः सदैव सुसमाहितः॥ २९॥
अप्रकीर्णेन्द्रियग्राममत्यन्तानुगतं शुचिम्।
शक्तं चैवानुरक्तं च युञ्ज्यान्महति कर्मणि॥ ३०॥
एवमेतैर्गुणैर्युक्तो योऽनुरज्यति भूमिपम्।
भर्तुरर्थेष्वप्रमत्तं नियुञ्ज्यादर्थकर्मणि॥ ३१॥

राजा को अपने उस सेवक के सुख का सदा सावधान होकर ध्यान रखना चाहिये, जो विरोधी कार्यों से अलग और राजा का प्रिय करने में लगा हुआ हो। राजा जो बड़े बड़े कार्य हैं, उन पर जितेन्द्रिय, अपने से अत्यन्त प्रेम करनेवाले, पवित्र हृदय, शक्तिशाली और अनुराग रखनेवाले व्यक्तियों को लगाये। इसीप्रकार जिसमें ऊपर वाले सारे गुण हों, जो राजा को प्रसन्न रखता हो, जो स्वामी के कार्य की सिद्धि में सदा सावधान रहे, उसे धन की व्यवस्था के कार्य में लगाये।

मूढमैन्द्रियकं लुब्धमनार्यचरितं शठम्।
अनतीतोपधं हिंस्रं दुर्बुद्धिमबहुश्रुतम्॥ ३२॥
त्यक्तोदात्तं मद्यरतं द्यूतस्त्रीमृगयापरम्।
कार्ये महति युञ्जानो हीयते नृपतिः श्रिया॥ ३३॥
रक्षितात्मा च यो राजा रक्ष्यान् यश्चानुरक्षति।
प्रजाश्च तस्य वर्धन्ते ध्रुवं च महदश्नुते॥ ३४॥
ये केचिद् भूमिपतयः सर्वांस्तानन्ववेक्षयेत्।
सुहृद्भिरनभिख्यातैस्तेन राजातिरिच्यते॥ ३५॥
अपकृत्य बलस्थस्य दूरस्थोऽस्मीति नाश्वसेत्।
श्येनाभिपतनैरेते निपतन्ति प्रमाद्यतः॥ ३६॥

जो राजा मूर्ख, अजितेन्द्रिय, लोभी, अनार्य चरित्र वाले, दुष्ट, कपटी, हिंसक, दुर्बुद्धि, कम पढ़े लिखे, उच्चभावना से रहित, शराबी, जुआरी, स्त्रियों में और मृगया में आसक्त पुरुष को राज्य के बड़े कार्यों में लगाता है, वह अपने ऐश्वर्य से हीन हो जाता है। जो राजा स्वयं ही अपनी रक्षा करते हुए, अपने रक्षणीय लोगों की रक्षा करता है, उसकी प्रजा की वृद्धि होती है और वह निश्चित रूप से महान् फल का भागी होता है। राजा को चाहिये कि वह अपने पड़ौसी जो भी राजा हों उनकी गतिविधियों पर अपने अप्रसिद्ध सुहृदों के द्वारा निगाह रखे। इससे राजा दूसरों से श्रेष्ठ हो जाता है। राजा को चाहिये कि अपने से बलवान् शत्रु का अपकार करके, यह सोचकर निश्चिंत न रहे कि उसका राज्य मुझसे बहुत दूर है। ऐसे दूरस्थशत्रु थोड़ी सी भी असावधानी होने पर बाज के समान झपट्टा मारते हैं।

दृढमूलस्त्वदुष्टात्मा विदित्वा बलमात्मनः।
अबलानभियुञ्जीत न तु ये बलवत्तराः॥ ३७॥
विक्रमेण महीं लब्ध्वा प्रजा धर्मेण पालयेत्।
आहवे निधनं कुर्याद् राजा धर्मपरायणः॥ ३८॥
मरणान्तमिदं सर्वं नेह किञ्चिदनामयम्।
तस्माद् धर्मे स्थितो राजा प्रजा धर्मेण पालयेत्॥ ३९॥
रक्षाधिकरणं युद्धं तथा धर्मानुशासनम्।
मन्त्रचिन्ता सुखं काले पञ्चभिर्वर्धते मही॥ ४०॥

राजा को चाहिये कि अपनी राजधानी को सुरक्षित करके, दुष्टात्माओं को अपने से दूर करके और अपनी शक्ति को जानकर, जो अपने से कमजोर शत्रु हैं, उन पर ही आक्रमण करे, अपने से अधिक बलवान् पर आक्रमण न करे। धर्मपरायण राजा पराक्रम से भूमि को प्राप्त करे, प्रजा का धर्म से पालन करे तथा युद्ध में शत्रुओं का संहार कर डाले। हे राजन्! इस संसार में सारे पदार्थ मरणधर्मा हैं, कोई भी बिना किसी बीमारी के पूरीतरह स्वस्थ नहीं है, इसलिये राजा को चाहिये कि वह धर्म में स्थित हुआ प्रजा का धर्म से पालन करे। रक्षा के साधन, युद्ध, धर्म के अनुसार राज्य का शासन, मन्त्रणा-चिन्तन, यथासमय सबको सुख देना, इन पाँच बातों से भूमि की वृद्धि होती है।

एतानि यस्य गुप्तानि स राजा राजसत्तमः।
सततं वर्तमानोऽत्र राजा धत्ते महीमिमाम्॥ ४१॥
नैतान्येकेन शक्यानि सातत्येनानुवीक्षितुम्।
तेषु सर्वं प्रतिष्ठाप्य राजा भुङ्क्ते चिरं महीम्॥ ४२॥
दातारं संविभक्तारं मार्दवोपगतं शुचिम्।
असंत्यक्तमनुष्यं च तं जनाः कुर्वते नृपम्॥ ४३॥
यस्तु निःश्रेयसं श्रुत्वा ज्ञानं तत् प्रतिपद्यते।
आत्मनो मतमुत्सृज्य तं लोकोऽनुविधीयते॥ ४४॥

ये बातें जिसकी सुरक्षित रहती हैं, वह राजाओं में श्रेष्ठ होता है। लगातार इन बातों का पालन करते हुए राजा भूमि की रक्षा कर सकता है। इन सारी बातों की देखभाल एक ही व्यक्ति नहीं कर सकता,

इसलिये इनका भार अलग अलग सुयोग्य अधिकारियों को सौंपकर राजा लम्बे समय तक भूमि का भोग कर सकता है। जो दानशील, सबको बाँट कर आवश्यक वस्तुओं का वितरण करने वाला, कोमल स्वभाव, पवित्र विचारों वाला, मनुष्यों का त्याग न करने वाला व्यक्ति होता है, उसी को लोग राजा बनाते हैं। जो कल्याणकारी उपदेश सुनकर उसके ज्ञान को ग्रहण कर लेता है और अपने मत को छोड़ देता है, लोग उसका अनुकरण करते हैं।

योऽर्थकामस्य वचनं प्रातिकूल्यान्न मृष्यते।
शृणोति प्रतिकूलानि सर्वदा विमना इव॥ ४५॥
अग्राम्यचरितां वृत्तिं यो न सेवेत नित्यदा।
जितानामजितानां च क्षत्रधर्मादपैति सः॥ ४६॥
मुख्यानमात्यान् यो हित्वा निहीनान् कुरुते प्रियान्।
स वै व्यसनमासाद्य गाधमार्तो न विन्दति॥ ४७॥
यः कल्याणगुणाञ्ज्ञातीन् प्रद्वेषान्नो बुभूषति।
अदृढात्मा दृढक्रोधः स मृत्योर्वसतेऽन्तिके॥ ४८॥

जो अपने अर्थ को चाहनेवाले की बात को भी इसलिये सहन नहीं करता क्योंकि वह उसके मन के प्रतिकूल है, अपनी अर्थसिद्धि के विरोधी वचनों को सुनता है, सदा अनमना सा रहता है, जो व्यक्ति शिष्ट व्यक्तियों द्वारा आचरण में लायी गयी वृत्ति का सदा सेवन नहीं करता, पराजित लोगों को उनके परम्परागत आचार का पालन नहीं करने देता, वह क्षत्रिय धर्म से गिर जाता है। जो प्रधान मन्त्रियों का त्यागकर निम्नश्रेणी के मनुष्यों को अपना प्रिय बनाता है, वह गहरे संकट के सागर में पड़कर पीड़ित हुआ कहीं भी आश्रय प्राप्त नहीं करता। जो द्वेष से कल्याण कारी गुणोंवाले अपने कुटुम्बियों का सम्मान नहीं करता, जिसकी आत्मा दृढ़ नहीं है, जो क्रोध को धारण किये रहता है, वह मृत्यु के समीप निवास करता है।

अथ यो गुणसम्पन्नान् हृदयस्याप्रियानपि।
प्रियेण कुरुते वश्यांश्चिरं यशसि तिष्ठति॥ ४९॥
नाकाले प्रणयेदर्थान्नाप्रिये जातु संज्वरेत्।
प्रिये नातिभृशं तुष्येद् युज्येतारोग्यकर्मणि॥ ५०॥
के वानुरक्ता राजानः के भयात् समुपाश्रिताः।
मध्यस्थदोषाः के चैषामिति नित्यं विचिन्तयेत्॥ ५१॥
न जातु बलवान् भूत्वा दुर्बले विश्वसेत् क्वचित्।
भारुण्डसदृशा ह्येते निपतन्ति प्रमाद्यतः॥ ५२॥

जो राजा उन लोगों को जो गुणों से सम्पन्न हों, वे चाहे अपने को प्रिय न लगते हों, फिर भी उन्हें प्रीतियुक्त व्यवहारद्वारा अपने वश में कर लेता है, वह दीर्घकाल तक यशस्वी बना रहता है। राजा को चाहिये कि वह अनुचित समय में धन संग्रह की चेष्टा न करे, अपना अप्रिय हो जाने पर कभी चिन्ता न करे और प्रिय हो जाने पर अत्यधिक हर्षित न हो और अपने शरीर को स्वस्थ बनाये रखने के कार्य में लगा रहे। उसे इस बात का ध्यान रखना चाहिये। कि कौन व्यक्ति राजा में अनुरक्त है? और कौन केवल भय से मेरा आश्रय लिये हुए है? इनमें से मध्यस्थ कौन है? और कौन मेरे शत्रु हैं? राजा को बलवान् होने पर भी अपने दुर्बल शत्रु पर कभी विश्वास नहीं करना चाहिये, क्योंकि असावधान होने पर ये बाज के समान झपट्टा मारते हैं।

अपि सर्वगुणैर्युक्तं भर्तारं प्रियवादिनम्।
अभिद्रुह्यति पापात्मा न तस्माद् विश्वसेज्जनात्॥ ५३॥
अयुद्धेनैव विजयं वर्धयेद् वसुधाधिपः।
जघन्यमाहुर्विजयं युद्धेन च नराधिप॥ ५४॥
न चाप्यलब्धं लिप्सेत मूले नातिदृढे सति।
न हि दुर्बलमूलस्य राज्ञो लाभो विधीयते॥ ५५॥
यस्य स्फीतो जनपदः सम्पन्नः प्रियराजकः।
संतुष्टपुष्टसचिवो दृढमूलः स पार्थिवः॥ ५६॥

पापात्मा व्यक्ति, वे उनका स्वामी सर्वगुणसम्पन्न और प्रियवादी हो, फिर भी उससे द्वेष करते हैं। इसलिये ऐसे व्यक्ति पर कभी विश्वास नहीं करना चाहिये। राजा को चाहिये कि युद्ध के अतिरिक्त किसी और उपाय से अपनी विजय वृद्धि के लिये प्रयत्न करे। हे राजन्! जो युद्ध से विजय प्राप्त होती है, उसे निम्न कोटि का बताया गया है। जिस राजा की जड़ मजबूत न हो, उसे अप्राप्त वस्तु को प्राप्त करने की इच्छा नहीं करनी चाहिये। जिसकी जड़ ही दृढ़ न हो, उस राजा को लाभ की प्राप्ति नहीं होती। जिस राजा का देश समृद्धिशाली, धनधान्य से सम्पन्न और प्रिय चाहने वाले लोगों से भरा हुआ हो तथा जिसके मन्त्री हृष्टपुष्ट तथा सन्तुष्ट हों, उसी राजा की जड़ मजबूत समझनी चाहिये।

यस्य योधाः सुसंतुष्टाः सान्त्विताः सूपधास्थिताः।
अल्पेनापि स दण्डेन महीं जयति पार्थिवः॥ ५७॥
पौरजानपदा यस्य भूतेषु च दयालवः।
सधना धान्यवन्तश्च दृढमूलः स पार्थिवः॥ ५८॥
प्रतापकालमधिकं यदा मन्येत चात्मनः।
तदा लिप्सेत मेधावी परभूमिधनान्युत॥ ५९॥
भोगेषूदयमानस्य भूतेषु च दयावतः।
वर्धते त्वरमाणस्य विषयो रक्षितात्मनः॥ ६०॥

जिसके सैनिक अच्छी तरह से सन्तुष्ट, राजा से सान्त्वनाप्राप्त और शत्रुओं को धोखा देने में चतुर हों, वह राजा थोड़ी सेना से भी पृथिवी को जीत लेता है। जिसके नगर और जनपद में रहने वाले लोग प्राणियों के प्रति दयालु तथा धनधान्य से सम्पन्न हों, उस राजा की जड़ मजबूत समझी जाती है। राजा जब वह अपने पराक्रम को प्रकट करने का उचित समय समझे, तभी दूसरे के राज्य और धन को लेने की चेष्टा करे। जिस राजा के ऐश्वर्य भोग प्रतिदिन बढ़ रहे हों, प्राणियों के प्रति दयावान हो, कार्य करने में फुर्तीला हो और अपनी रक्षा का ध्यान रखता हो, उसके राज्य की बढ़ोतरी होती है।

तक्षेदात्मानमेवं स, वनं परशुना यथा।
यः सम्यग् वर्तमानेषु, स्वेषु मिथा प्रवर्तते॥ ६१॥
नैव द्विषन्तो हीयन्ते राज्ञो नित्यमनिघ्नतः।
क्रोधं निहन्तुं यो वेद तस्य द्वेष्टा न विद्यते॥ ६२॥
यदार्यजनविद्विष्टं कर्म तन्नाचरेद् बुधः।
यत् कल्याणमभिध्यायेत् तत्रात्मानं नियोजयेत्॥ ६३॥
नैनमन्येऽवजानन्ति नात्मना परितप्यते।
कृत्यशेषेण यो राजा सुखान्यनुबुभूषति॥ ६४॥

जो राजा अच्छा बर्ताव करनेवालों से भी मिथ्या व्यवहार करता है, वह अपने व्यवहार से अपना उच्छेद उसीप्रकार कर लेता है, जैसे कुल्हाड़ी से जंगल को काट दिया जाता है। जो राजा द्वेष करनेवाले को कभी दण्ड नहीं देता, उससे द्वेष करनेवालों की कमी नहीं रहती। किन्तु जो क्रोध को मारने की कला को जानता है, उसका कोई द्वेषी नहीं होता। जिस कार्य को श्रेष्ठ व्यक्ति बुरा मानते हैं, बुद्धिमान् राजा को चाहिये कि वह उस कार्य को नहीं करे। जिसकार्य को वह सबके लिये कल्याणकारी समझे, उसी के करने में अपना मन लगाये। जो राजा अपना कर्त्तव्य पूरा करने में ही सुख का अनुभव करता है, उसका न तो दूसरे लोग अनादर करते हैं और न वह स्वयं ही सन्तप्त होता है।

सैंतालीसवाँ अध्याय : शूरवीर क्षत्रियों के कर्त्तव्य।

युधिष्ठिर उवाच

क्षत्रधर्माद्धि पापीयान्न धर्मोऽस्ति नराधिप।
अपयानेन युद्धेन राजा हन्ति महाजनम्॥ १॥
अथ स्म कर्मणा केन लोकान् जयति पार्थिवः।
विद्वन् जिज्ञासमानाय प्रब्रूहि भरतर्षभ॥ २॥

भीष्म उवाच

निग्रहेण च पापानां साधूनां संग्रहेण च।
यज्ञैर्दानैश्च राजानो भवन्ति शुचयोऽमलाः॥ ३॥
उपरुन्धन्ति राजानो भूतानि विजयार्थिनः।
त एव विजयं प्राप्य वर्धयन्ति पुनः प्रजाः॥ ४॥

युधिष्ठिर ने कहा कि हे नराधिप! क्षत्रियधर्म से बढ़कर पापपूर्ण और कोई दूसरा धर्म नहीं है। क्योंकि राजा जब किसी दूसरे देश पर चढ़ाई कर युद्ध करता है तो बहुत से लोगों को मार देता है। हे विद्वान् भरतश्रेष्ठ! मैं जानना चाहता हूँ, आप मुझे यह बताइये कि क्या कार्य करने से राजा पुण्यलोकों को प्राप्त कर सकता है? तब भीष्म जी ने कहा कि पापियों के क्रियाकलापों को रोकने और साधु व्यक्तियों को अपनाने से, यज्ञ करने से और दान देने से राजा पवित्र बुद्धि वाले और निर्मल हो जाते हैं। राजा विजय की इच्छा से प्राणियों को क्लेश पहुँचाते हैं, पर फिर वे ही विजय प्राप्त कर प्रजा का पोषण भी करते हैं।

यथैव क्षेत्रनिर्याता निर्यातं क्षेत्रमेव च।
हिनस्ति धान्यं कक्षं च न च धान्यं विनश्यति॥ ५॥
एवं शस्त्राणि मुञ्चन्तो घ्नन्ति वध्याननेकधा।

तस्यैषां निष्कृतिः कृत्स्ना भूतानां भावनं पुनः॥ ६॥
यो भूतानि धनाक्रान्त्या वधात् क्लेशाच्च रक्षति।
दस्युभ्यः प्राणदानात् स धनदः सुखदो विराट्॥ ७॥
यानि दुःखानि सहते क्षत्रियो युधि तापितः।
तेन तेन तपो भूय इति धर्मविदो विदुः॥ ८॥

जैसे खेत की निराई करनेवाला, निराई करते हुए घास के साथ धान के भी कुछ पौधों को उखाड़ देता है, पर उससे धान की खेती नष्ट नहीं होती, वैसे ही शस्त्रों का प्रयोग करते हुए सैनिक जब वध करनेयोग्य सैनिकों का अनेक प्रकार से वध करते हैं, तो उस कार्य का प्रायश्चित यही है कि युद्ध के पश्चात् उस देश की सारी प्रजा को सुख पहुँचा कर उसकी उन्नति की जाये। जो राजा प्रजा को धन के, प्राणों के नाश और दुखों से, लुटेरों से बचाता है, वह धन और सुख को देने वाला राजा प्रजा के लिये परमेश्वर माना गया है। युद्ध करते हुए हथियारों के आघातों को सहता और सन्तप्त होता हुआ क्षत्रिय जिन जिन दुखों को प्राप्त करता है, उन दुखों से उसके तप की उत्तरोत्तर वृद्धि होती है, ऐसी धर्म के विद्वानों की मान्यता है।

पृष्ठतो भीरवः संख्ये वर्तन्तेऽधर्मपूरुषाः।
शूराच्छरणमिच्छन्तः पर्जन्यादिव जीवनम्॥ ९॥
पुरुषाणां समानानां दृश्यते महदन्तरम्।
संग्रामेऽनीकवेलाया- मुत्क्रुष्टेऽभिपतन्त्युत॥ १०॥

शत्रुओं से युद्ध होने पर अधर्मयुक्त कायर लोग शूरवीरों की शूरताद्वारा अपनी रक्षा को चाहते हुए, जैसे बादलों से जीवन की आशा रखते हैं, उनके पीछे खड़े रहते हैं। देखने में तो सारे पुरुष एक जैसे दिखाई देते हैं, पर उनमें परस्पर महान् अन्तर होता है। संग्राम के समय जब सेनाएँ आपस में भिड़ती हैं, तब उत्कृष्ट कोटि के वीर मनुष्य तो शत्रुओं पर टूट पड़ते हैं, पर निकृष्ट कायर व्यक्तियों को अपने प्राण बचाने की चिन्ता होने लगती है।

अधर्मः क्षत्रियस्यैष यच्छय्यामरणं भवेत्।
विसृजञ्श्लेष्ममूत्राणि कृपणं परिदेवयन्॥ ११॥
अविक्षतेन देहेन प्रलयं योऽधिगच्छति।
क्षत्रियो नास्य तत् कर्म प्रशंसन्ति पुराविदः॥ १२॥
न गृहे मरणं तात क्षत्रियाणां प्रशस्यते।
शौटीराणामशौटीर्यमधर्मं कृपणं च तत्॥ १३॥
इदं दुःखं महत् कष्टं पापीय इति निष्टनन्।
प्रतिध्वस्तमुखः पूतिरमात्याननुशोचयन्॥ १४॥
अरोगाणां स्पृहयते मुहुर्मृत्युमपीच्छति।
वीरो दृप्तोऽभिमानी च नेदृशं मृत्युमर्हति॥ १५॥

क्षत्रिय के लिये यह अधर्म है कि वह खाट पर पड़ा कफ और मल मूत्र छोड़ता हुआ, दीनता से विलाप करता हुआ, बिना घायल हुए शरीर से मृत्यु को प्राप्त हो। प्राचीन धर्म को जानने वाले विद्वान् उसकी मृत्यु की प्रशंसा नहीं करते। हे तात्! वीर क्षत्रियों की घर में मृत्यु होना उनके लिये प्रशंसा की बात नहीं है। वीरों के लिये यह कायरता, दीनता और अधर्म है। यह बड़ा दुख है, बड़ी पीड़ा हो रही है, यह मेरे पुराने पापों का फल है, ऐसे आर्तनाद करना, मुख का विकृत हो जाना, दुर्गन्धित शरीर से मन्त्रियों के लिये शोक करना, स्वस्थ व्यक्तियों जैसी अवस्था प्राप्त करने की इच्छा करना, बार-बार मृत्यु की इच्छा करना, इस प्रकार की मृत्यु किसी स्वाभिमानी वीर के योग्य नहीं है।

रणेषु कदनं कृत्वा ज्ञातिभिः परिवारितः।
तीक्ष्णैः शस्त्रैरभिक्लिष्टः क्षत्रियो मृत्युमर्हति॥ १६॥
शूरो हि काममन्युभ्यामाविष्टो युध्यते भृशम्।
हन्यमानानि गात्राणि परैर्नैवावबुध्यते॥ १७॥
सर्वोपायै रणमुखमातिष्ठंस्त्यक्तजीवितः।
प्राप्नोतीन्द्रस्य सालोक्यं शूरः पृष्ठमदर्शयन्॥ १८॥
सर्वे स्वर्गतिमिच्छन्ति सुयुद्धेनातिमन्यवः।
क्षोभयेयुरनीकानि सागरं मकरा यथा॥ १९॥

वीर क्षत्रिय को चाहिये कि वह युद्ध क्षेत्र में अपने जाति भाइयों से घिरा हुआ, शत्रुओं का विनाश करता हुआ, तीखे शस्त्रों से पीड़ित होता हुआ मृत्यु को प्राप्त हो। जब शूरवीर विजय की कामना और शत्रु के प्रति क्रोध से युक्त होकर वेग पूर्वक युद्ध करता है, तब शत्रुओं द्वारा अंगों पर चोट पहुँचाये जाने पर भी उसे उनकी सुधबुध नहीं रहती। जो शूरवीर जीवन की आशा छोड़कर युद्ध के मुहाने पर खड़ा हुआ, सब तरह के उपायों से शत्रुओं से जूझता है, वह शत्रु को पीठ न दिखाने वाला वीर इन्द्र की समानता को प्राप्त कर लेता है। वीर क्षत्रिय उत्तम युद्ध से परलोक में उत्तमगति को प्राप्त करना चाहते हैं। इसलिये जैसे मकर समुद्र में हलचल मचा

देते हैं, वैसे ही भी अत्यन्त क्रोध से शत्रुसेना में घुस कर उसे क्षुब्ध कर देते हैं।

हर्षयेयुर्विषण्णांश्च व्यवस्थाप्य परस्परम्।
जितां च भूमिं रक्षेत भग्नान् नात्यनुसारयेत्॥ २०॥
पुनरावर्तमानानां निराशानां च जीविते।
वेगः सुदुःसहो राजंस्तस्मान्नात्यनुसारयेत्॥ २१॥

यदि युद्धक्षेत्र में अपने सैनिक शिथिल हो रहे हों, तो राजा को चाहिये कि व्यूह बनाकर उन्हें एक दूसरे के साथ स्थापित करे और उनके उत्साह को बढ़ाये। उस समय अपनी जीती हुई भूमि की ही रक्षा करे और शत्रुओं के जो सैनिक पराजित होकर भाग रहे हों, उनका बहुत दूर तक पीछा न करे। हे राजन्! जीवन से निराश हो जाने पर जब वे सैनिक वापिस लौट कर आक्रमण करते हैं, तब उनका वेग अत्यन्त दुःसह होता है। इसलिये भागते हुओं का अधिक पीछा नहीं करना चाहिये।

समानपृष्ठोदर- पाणिपादाः
पराभवं भीरवो वै व्रजन्ति।
अतो भयार्ताः प्रणिपत्य भूयः
कृत्वाञ्जलीनुपतिष्ठन्ति शूरान्॥ २२॥

यद्यपि शूरवीर और कायरों की पीठ, पेट, हाथ और पैर एक जैसे ही होते हैं, पर फिर भी कायर लोग पराजय को प्राप्त होते हैं। इसीलिये भय से पीड़ित कायर लोग हाथ जोड़कर, प्रणाम करते हुए शूरवीरों की शरण में आते हैं।

शूरबाहुषु लोकोऽयं लम्बते पुत्रवत् सदा।
तस्मात् सर्वास्ववस्थासु शूरः सम्मानमर्हति॥ २३॥
न हि शौर्यात् परं किंचित् त्रिषु लोकेषु विद्यते।
शूरः सर्वं पालयति सर्वं शूरे प्रतिष्ठितम्॥ २४॥

जैसे पुत्र पिता के सहारे रहता है, वैसे यह सारा संसार शूर वीरों की भुजाओं के सहारे ही टिका हुआ है। इसलिये शूरवीर व्यक्ति सारी अवस्थाओं में सम्मान के योग्य है। तीनों लोकों में शूरवीरता से बढ़ कर कोई वस्तु नहीं है। शूरवीर सब का पालन करता है और सारा जगत शूरवीर के सहारे ही टिका हुआ है।

अड़तालीसवाँ अध्याय : सैन्य संचालन की रीति नीति का वर्णन।

युधिष्ठिर उवाच

यथा जयार्थिनः सेनां नयन्ति भरतर्षभ।
ईषद्–धर्मं प्रपीड्यापि तन्मे ब्रूहि पितामह॥ १॥

भीष्म उवाच

उभे प्रज्ञे वेदितव्ये ऋज्वी वक्रा च भारत।
जानन् वक्रां न सेवेत प्रतिबाधेत चागताम्॥ २॥
अमित्रा एव राजानं भेदेनोपचरन्त्युत।
तां राजा निकृतिं जानन् यथामित्रान् प्रबाधते॥ ३॥

युधिष्ठिर ने पूछा कि हे भरतश्रेष्ठ पितामह! विजय को चाहने वाले राजा लोग जिस प्रकार से थोड़ा सा धर्म का उल्लंघन करके भी अपनी सेना को आगे ले जा सकते हैं, उस रीति को आप मुझे बताइये। तब भीष्म जी ने कहा कि हे भारत! दो प्रकार की बुद्धियाँ जाननी चाहियें। एक सरल और दूसरी कुटिल। राजा को चाहिये कि जान बूझ कर कुटिल बुद्धि का सेवन न करे। यदि वैसी बुद्धि आ भी जाये, तो उसे हटाने का प्रयत्न करे! जो राजा के मित्र नहीं होते हैं, वे अन्दर से राजा के व्यक्तियों में फूट डालते हुए ऊपर से राजा की सेना में लगे रहते हैं। राजा को उनकी इस दुष्टता को समझना चाहिये और ऐसे लोगों को शत्रुओं के समान ही मिटाने का प्रयत्न करना चाहिये।

गजानां पार्थ वर्माणि गोवृषाजगराणि च।
शल्यकण्टकलोहानि तनुत्रचमराणि च॥ ४॥
सितपीतानि शस्त्राणि संनाहाः पीतलोहिताः।
नानारञ्जनरक्ताः स्युः पताकाः केतवश्च ह॥ ५॥
ऋष्टयस्तोमराः खड्गा निशिताश्च परश्वधाः।
फलकान्यथ चर्माणि प्रतिकल्प्यान्यनेकशः॥ ६॥

हे कुन्तीपुत्र! राजा को हाथियों के लिये गाय, बैल या अजगर, के चमड़े के कवच बनवाने चाहिये। इसके अतिरिक्त उसे लोहे की कीलें, लोहे, के कवच, चँवर, चमकीले और पानीदार शस्त्र, पीले और लाल रंग के कवच, अनेक रंगों की ध्वजा पताकाएँ, ऋष्टि, तोमर, खड्ग, तीखे फरसे, फलक

और ढाल इन्हें भारी संख्या में तैयार कराकर अपने पास रखना चाहियें।

अभिनीतानि शस्त्राणि योधाश्च कृतनिश्चयाः।
चैत्र्यां वा मार्गशीर्ष्यां वा सेनायोगः प्रशस्यते॥ ७॥
पक्वसस्या हि पृथिवी भवत्यम्बुमती तदा।
नैवातिशीतो नात्युष्णः कालो भवति भारत॥ ८॥
तस्मात् तदा योजयेत परेषां व्यसनेऽथवा।
एते हि योगाः सेनायाः प्रशस्ताः परबाधने॥ ९॥
जलवांस्तृणवान् मार्गः समो गम्यः प्रशस्यते।
चारैः सुविदिताभ्यासः कुशलैर्वनगोचरैः॥ १०॥

यदि शस्त्र तैयार हों और योद्धाओं ने भी युद्ध के लिये निश्चय कर लिया हो, तो चैत्र और मार्गशीर्ष मास सेना के प्रस्थान के लिये उत्तम समझे गये हैं। उस समय खेती पकजाती है, भूमि पर जल की प्रचुरता होती है, उस समय हे भारत! न तो अधिक सर्दी होती है और न अधिक गर्मी। इसलिये उस समय चढ़ाई करनी चाहिये या जब शत्रुराजा संकट में हो तभी आक्रमण कर देना चाहिये। शत्रुओं को सेना के द्वारा बाधा पहुँचाने के लिये ये ही उत्तम समय माने गये हैं। युद्ध के लिये यात्रा करते समय मार्ग समतल और सुगम हो, वहाँ पानी और घास की प्रचुरता हो तो अच्छा समझा जाता है। वनों में विचरण करने वाले कुशल गुप्तचरों को मार्गों के विषय में विशेष जानकारी रहती है।

न ह्यरण्येन शक्येत गन्तुं मृगगणैरिव।
तस्मात् सेनासु तानेव योजयन्ति जयार्थिनः॥ ११॥
अग्रतः पुरुषानीकं शक्तं चापि कुलोद्भवम्।
आवासस्तोयवान् दुर्गः पर्याकाशः प्रशस्यते॥ १२॥
परेषामुपसर्पाणां प्रतिषेधस्तथा भवेत्।
आकाशात् तु वनाभ्याशं मन्यन्ते गुणवत्तरम्॥ १३॥
बहुभिर्गुणजातैश्च ये युद्धकुशला जनाः।
उपन्यासो भवेत् तत्र बलानां नातिदूरतः॥ १४॥

मनुष्य जँगली पशुओं के समान वन में सरलता से नहीं चल सकते, इसलिये विजय के इच्छुक राजा लोग गुप्तचरों को ही वन में सेना को रास्ता दिखाने के लिये नियुक्त करते हैं। सेना के आगे शक्ति शाली और कुलीन पैदल सैनिकों को रखना चाहिये। सेना के रहने के लिये चारों तरफ पानी की खाई वाला किला होना चाहिये, जिसके चारों तरफ खुला आकाश हो। वहाँ आक्रमण करने वाले शत्रु को रोकने के लिये सुविधा हो। युद्ध में कुशल व्यक्ति, बहुत सारे गुणों के कारण खुले आकाश की जगह वन के समीप सेना की छावनी डालना अधिक गुणवान् समझते हैं। सेना का पड़ाव वन से अधिक दूर नहीं होना चाहिये।

उपन्यासावतरणं पदातीनां च गूहनम्।
अथ शत्रुप्रतीघातमापदर्थं परायणम्॥ १५॥
अकर्दमामनुदकाम- मर्यादामलोष्टकाम्।
अश्वभूमिं प्रशंसन्ति ये युद्धकुशला जनाः॥ १६॥
अपङ्का गर्तरहिता रथभूमिः प्रशस्यते।
नीचद्रुमा महाकक्षा सोदका हस्तियोधिनाम्॥ १७॥
बहुदुर्गा महाकक्षा वेणुवेत्रसमाकुला।
पदातीनां क्षमा भूमिः पर्वतोपवनानि च॥ १८॥

वहाँ व्यूह का निर्माण करने को रथ और वाहनों से उतरना और पैदल सैनिकों को छिपाना भी सम्भव है। वहाँ रहकर शत्रु के आक्रमण का उत्तर दिया जा सकता है और आपत्ति के समय छिपा भी जा सकता है। जिस भूमि में कीचड़, पानी, बाँध और ढेले न हों, उसी भूमि की युद्ध कुशल व्यक्ति प्रशंसा करते हैं। रथ सेना के लिये वह भूमि उत्तम मानी गयी है, जहाँ कीचड़ और गड्ढे न हों, जहाँ नीचे वृक्ष, बहुत से घास फूस और जलाशय हों वह भूमि हाथी सवार योद्धाओं के लिये अच्छी मानी गयी है। जो भूमि अत्यन्त दुर्गम अधिक घास फूस वाली, बाँसों और बेंतों से भरी और पर्वत तथा उपवनों से युक्त हो वह पैदल सेना के योग्य होती है।

पदातिबहुला सेना दृढा भवति भारत।
रथाश्वबहुला सेना सुदिनेषु प्रशस्यते॥ १९॥
पदातिनागबहुला प्रावृट्काले प्रशस्यते।
गुणानेतान् प्रसंख्याय देशकालौ प्रयोजयेत्॥ २०॥
प्रसुप्तांस्तृषिताञ्श्रान्तान् प्रकीर्णान् नाभिघातयेत्।
मोक्षे प्रयाणे चलने पानभोजनकालयोः॥ २१॥
अतिक्षिप्तान् व्यतिक्षिप्तान् निहतान् प्रतनूकृतान्।
पारम्पर्यागते द्वारे ये केचिदनुवर्तिनः॥ २२॥
परिचर्यावतो द्वारे ये च केचन वर्गिणः।

हे भारत! जिस सेना में पैदल सैनिकों की संख्या होती है, वह दृढ़ होती है। जिस सेना में रथों और घोड़ों की संख्या अधिक हो, वह अच्छे दिनों में

अर्थात् जब वर्षा न होती हो, तब अच्छी मानी जाती है। वर्षा ऋतु में वही सेना अच्छी समझी जाती है, जिसमें पैदल सैनिकों और हाथी सवारों की संख्या अधिक होती है। अतः राजा को चाहिये कि वह इन गुणों को ध्यान में रखते हुए, देश और काल को देखते हुए सेना का संचालन करे। जो लोग सोये हुए, प्यासे, थके, या इधर उधर भाग रहे हों, उन पर आघात नहीं करना चाहिये। शस्त्र और कवच उतार देने पर, युद्धस्थल से लौटते समय, खाने और पीने के अवसर पर इधर उधर घूमते हुए, जो बहुत घबराये हुए हों या पागल हो गये हों, घायल हो गये हों, बहुत कमजोर हों, जो परम्परा से प्राप्त राजद्वार पर तथा राजा के सहायक मन्त्री आदि के द्वार पर सेवा करने वाले हों, जो किसी यूथ के अधिपति हों, इन पर भी आक्रमण नहीं करना चाहिये।

अनीकं ये विभिन्दन्ति भिन्नं संस्थापयन्ति च॥ २३॥
समानाशनपानास्ते कार्याः द्विगुणवेतनाः।
दशाधिपतयः कार्याः शताधिपतयस्तथा॥ २४॥
ततः सहस्राधिपतिं कुर्याच्छूरमतन्द्रितम्।

जो लोग शत्रु की सेना को छिन्न भिन्न कर डालते हैं और अपनी छिन्नभिन्न हुई सेना को संगठित कर दृढतापूर्वक स्थापित कर लेते हैं ऐसे लोगों को राजा अपने समान ही भोजन और पेय के साथ दुगना वेतन देकर सम्मानित करे। राजा सेना में कुछ लोगों को दस दस सैनिकों का नायक और कुछ लोगों को सौ सैनिकों का नायक बनाये। उससे ऊपर जो शूरवीर सावधानी से युक्त हो, उसे एक हजार सैनिकों का अधिपति बनाये।

यथामुख्यान् संनिपात्य वक्तव्याः संशपामहे॥ २५॥
विजयार्थं हि संग्रामे न त्यक्ष्यामः परस्परम्।
इहैव ते निवर्तन्तां ये च केचन भीरवः॥ २६॥
ये घातयेयुः प्रवरं कुर्वाणास्तुमुलं प्रति।
न संनिपाते प्रदरं वधं वा कुर्युरीदृशाः॥ २७॥
आत्मानं च स्वपक्षं च पालयन् हन्ति संयुगे।
अर्थनाशो वधोऽकीर्तिरयशश्च पलायने॥ २८॥
अमनोज्ञासुखा वाचः पुरुषस्य पलायने।

उसके पश्चात् वह प्रधान सेनापतियों को एकत्र करके उनसे यह कहे कि हम सब यह प्रतिज्ञा करते हैं कि इस संग्राम में विजय प्राप्त करने के लिये एक दूसरे का साथ नहीं छोड़ेंगे। जो लोग डरपोक हों, वे यहीं से लौट जायें। जो भयानक युद्ध करते हुए शत्रु के वीरों का वध कर सकें, वे यहाँ ठहरें, क्योंकि ऐसे कायर व्यक्ति आक्रमण के समय न तो शत्रु का वध का कर सकते हैं और न उन्हें तित्तर बित्तर करके भगा सकते हैं। युद्ध से पलायन करने में जहाँ अपने प्रयोजन और धन का नाश होता है, वहाँ भागते हुए, शत्रु के हाथ से अपना वध भी हो सकता है। भागने वाले की निन्दा होती है और सब तरफ उसका अपयश फैल जाता है। इसके साथ ही भागने वाले कों लोगों के मुख से तरह तरह की मन को अप्रिय लगने वाली कड़वी बातें भी सुननी पड़ती हैं।

मनुष्यापसदा ह्येते ये भवन्ति पराङ्मुखाः॥ २९॥
राशिवर्धनमात्रास्ते नैव ते प्रेत्य नो इह।
यस्य स्म संग्रामगता यशो वै घ्नन्ति शत्रवः॥ ३०॥
तदसह्यतरं दुःखमहं मन्ये वधादपि।
जयं जानीत धर्मस्य मूलं सर्वसुखस्य च॥ ३१॥
या भीरूणां परा ग्लानिः शूरस्तामधिगच्छति।
ते वयं स्वर्गमिच्छन्तः संग्रामे त्यक्तजीविताः॥ ३२॥
जयन्तो वध्यमाना वा प्राप्नुयाम च सद्गतिम्।

जो लोग युद्ध से भागते हैं, वे मनुष्यों में अधम कोटि के मनुष्य हैं। वे केवल योद्धाओं की संख्या बढ़ाते हैं। उन्हें न तो यहाँ सुख मिलता है और न परलोक में। संग्राम से भागते हुए व्यक्ति के यश को उसके शत्रु लोग नष्ट कर देते हैं। उसके यश नाश को मैं उसके वध से भी अधिक असह्य समझता हूँ। हे वीरों! यह समझ लो कि विजय प्राप्ति धर्म और सारे सुखों का मूल है। कायरों को जिससे अत्यधिक ग्लानि होती है, वीर पुरुष उसी प्रहार और मृत्यु को सहर्ष स्वीकार करता है। इसलिये हमलोग स्वर्ग प्राप्ति की इच्छा रखते हुए, युद्धक्षेत्र में प्राणों का मोह छोड़कर लड़ेंगे। या तो हम जीतेंगे या मारे जाकर उत्तम गति को प्राप्त करेंगे।

एवं संशप्तशपथाः समभित्यक्तजीविताः॥ ३३॥
अमित्रवाहिनीं वीराः प्रतिगाहन्त्यभीरवः।
ये पुरस्तादभिमताः सत्त्ववन्तो मनस्विनः॥ ३४॥
ते पूर्वमभिवर्तेरंश्चैतानेवेतरे जनाः।

अपि चोद्धर्षणं कार्यं भीरूणामपि यत्नतः॥ ३५॥
स्कन्धदर्शनमात्रात्तु तिष्ठेयुर्वा समीपतः।
संहतान् योधयेदल्पान् कामं विस्तारयेद् बहून्॥ ३६॥
सूचीमुखमनीकं स्यादल्पानां बहुभिः सह।

इस प्रकार से शपथ लेकर जो अपने जीवन का मोह छोड़ देते हैं, वे वीर निर्भय होकर शत्रु की सेना में घुस जाते हैं। सेना में जो लोग पहले से ही अपनी वीरता के लिये सम्मानित, धैर्यवान् और मनस्वी लोग हों, वे आगे आगे रहें और उनके पीछे दूसरे लोग चलें। जो कायर हों, उनका भी प्रयत्न पूर्वक उत्साह बढ़ाना चाहिये। या वे सेना की अधिक संख्या को दिखाने के लिये आस पास ही खड़े रहें। यदि सैनिक थोड़े से हों तो उन्हें इकट्ठा होकर लड़ना चाहिये। यदि सैनिक अधिक हों तो उन्हें फैलाकर युद्ध करना चाहिये। यदि थोड़े सैनिकों का बहुतों के साथ युद्ध हो तो सूचीमुख नाम का युद्ध लाभ दायक होता है।

सम्प्रयुक्ते निकृष्टे वा सत्यं वा यदि वानृतम्॥ ३७॥
प्रगृह्य बाहून् क्रोशेत भग्ना भग्नाः परे इति।
आगतं मे मित्रबलं प्रहरध्वमभीतवत्॥ ३८॥
सत्त्ववन्तोऽभिधावेयुः कुर्वन्तो भैरवान् रवान्।
क्ष्वेडाः किलकिलाशब्दाः क्रकचा गोविषाणिकाः।
भेरीमृदङ्गपणवान् नादयेयुः पुरश्चरान्॥ ३९॥

अपनी सेना उत्कृष्ट अवस्था में हो या निकृष्ट अवस्था में, बात सत्य हो या असत्य, हाथ ऊपर उठाकर चिल्लाते हुए कहना चाहिये कि देखो शत्रु भाग रहे हैं। हमारे मित्रों की सेना सहायता के लिये आ रही है, निर्भय होकर आक्रमण करो। ऐसा सुनकर धैर्यवान् शक्तिशाली वीर भयंकर सिंहनाद करते हुए शत्रुओं पर टूट पड़ें। जो लोग सेना के आगे चलें, उन्हें गर्जना करते, किलकारियाँ भरते हुए, क्रकच, नरसिंह, मेरी, मृदंग और ढोल आदि बजाने चाहियें।

उनंचासवाँ अध्याय : युद्धनीति और विभिन्न देशों के योद्धा।

युधिष्ठिर उवाच

किंशीलाः किंसमाचाराः कथंरूपाश्च भारत।
किंसन्नाहाः कथंशस्त्रा जनाः स्युः संगरे क्षमाः॥ १॥

भीष्म उवाच

यथाऽऽचरितमेवात्र शस्त्रं पत्रं विधीयते।
आचाराद् वीरपुरुषस्तथा कर्मसु वर्तते॥ २॥
गान्धाराः सिन्धुसौवीरा नखरप्रासयोधिनः।
अभीरवः सुबलिनस्तद्बलं सर्वपारगम्॥ ३॥
सर्वशस्त्रेषु कुशलाः सत्त्ववन्तो ह्युशीनराः।
प्राच्या मातङ्गयुद्धेषु कुशलाः कूटयोधिनः॥ ४॥

युधिष्ठिर ने पूछा कि हे भारत! युद्धस्थल में किस तरह के स्वभाव, आचरण, और रूप वाले योद्धा ठीक समझे जाते हैं? उनके कवच और अस्त्र शस्त्र कैसे होने चाहियें? तब भीष्म जी ने कहा कि योद्धाओं के शस्त्र और वाहन तो उनके अपने देश और आचार के अनुरूप ही होने चाहियें। वीर पुरुष अपने परम्परागत आचार के अनुसार ही सारे कार्यों को करता है। गान्धार, सिन्धु और सौवीर देश के योद्धा बघनखे और प्रास से युद्ध करने वाले होते हैं। वे बड़े बलवान् और निर्भय होते है। उनकी सेना सब को लाँघ जाने वाली होती है। उशीनर देश के योद्धा सब प्रकार के शस्त्रों में कुशल और धैर्यवान् होते हैं। पूर्व देश के योद्धा हाथी पर युद्ध करने में कुशल और कपट युद्ध के करने वाले होते हैं।

तथा यवनकाम्बोजा मथुरामभितश्च ये।
एते नियुद्धकुशला दाक्षिणात्यासिपाणयः॥ ५॥
सर्वत्र शूरा जायन्ते महासत्त्वा महाबलाः।
प्राय एव समुद्दिष्टा लक्षणानि तु मे शृणु॥ ६॥
सिंहशार्दूलवाङ्नेत्राः सिंहशार्दूलगामिनः।
पारावतकुलिङ्गाक्षाः सर्वे शूराः प्रमाथिनः॥ ७॥
मृगस्वरा द्वीपिनेत्रा ऋषभाक्षास्तरस्विनः।
प्रमादिनश्च मन्दाश्च क्रोधनाः किङ्किणीस्वनाः॥ ८॥

इसीप्रकार यवन, काम्बोज और मथुरा के आसपास रहने वाले योद्धा कुश्ती युद्ध में चतुर होते हैं। दक्षिण देश के वीर हाथों में तलवार लिये रहते हैं। सभी देशों में महान् बलवाले और महान् धैर्य वाले शूरवीर होते हैं, जिनका अधिकतर उल्लेख किया जा चुका है। अब तुम मुझसे उनके लक्षण सुनो। जो सिंह

और बाघ के समान नेत्र वाले होते हैं, जिनकी चाल सिंह और बाघ के समान होती है, या जिनकी आँखें कबूतर और गोरैया के समान होतीं हैं, वे सारे शूरवीर और शत्रु सेना को मथ देने वाले होते हैं। जिनकी आवाज मृगों के समान, नेत्र बाघ या बैल के समान होते हैं, वे वीर वेगवान, असावधान और मन्दबुद्धि होते हैं। जिनकी ध्वनि किंकणी के समान होती है, वे क्रोध करनेवाले होते हैं।

मेघस्वनाः क्रोधमुखाः केचित् करभसंनिभाः।
जिह्मनासाग्रजिह्वाश्च दूरगा दूरपातिनः॥ ९॥
बिडालकुब्जतनव- स्तनुकेशास्तनुत्वचः।
शीघ्राश्चपलवृत्ताश्च ते भवन्ति दुरासदाः॥ १०॥
गोधानिमीलिताः केचिन्मृदुप्रकृतयस्तथा।
तुरङ्गगतिनिर्घोषास्ते नराः पारयिष्णवः॥ ११॥
सुसंहताः सुतनवो व्यूढोरस्काः सुसंस्थिताः।
प्रवादितेषु कुप्यन्ति हृष्यन्ति कलहेषु च॥ १२॥

जिनकी ध्वनि बादलों के समान, मुख क्रोध युक्त, शरीर ऊँट की तरह और नाक तथा जीभ टेढ़ी होती है, वे दूरतक दौड़ने वाले और दूरवर्ती लक्ष्य को भी मार गिराने वाले होते हैं। जिनका शरीर बिड़ाल की तरह कुबड़ा, सिर के बाल और शरीर की खाल पतली होती हैं, वे शीघ्रता पूर्वक शस्त्र चलाने वाले, चंचल और दुर्जय होते हैं। जो गोह के समान आँखें बन्द किये रहते हैं, जिनका स्वभाव कोमल होता है, जिनके चलने पर घोड़े की टाप जैसी ध्वनि होती है, वे शूरवीर युद्ध के पार पहुँचने वाले होते हैं। जो अच्छे और गठीले शरीर वाले होते हैं, जिनकी छाती चौड़ी और अंगप्रत्यंग सुडौल होते हैं, वे युद्ध के बाजे बजते ही क्रोध से युक्त हो जाते हैं, उन्हें युद्ध में आनन्द आता है।

गम्भीराक्षा निःसृताक्षाः पिङ्गाक्षा भ्रुकुटीमुखाः।
नकुलाक्षास्तथा चैव सर्वे शूरास्तनुत्यजः॥ १३॥
जिह्माक्षाः प्रललाटाश्च निर्मांसहनवोऽपि च।
वज्रबाह्वंगुलीचक्राः कृशा धमनिसंतताः॥ १४॥
प्रविशन्ति च वेगेन साम्पराये ह्युपस्थिते।
वारणा इव सम्मत्तास्ते भवन्ति दुरासदाः॥ १५॥

जिनकी आँखें गहरी और निकली हुई सी होती हैं, उन आँखों का रंग पिंगल, या नेवले के समान भूरा होता है, जिनके मुखपर भौंहें तनी हुई होती हैं, वे शूरवीर युद्ध में शरीर का त्याग करने वाले होते हैं। जिनकी आँखें टेढी, ठोडी माँस हीन होती है, जिनकी बाँहों पर वज्र और अंगुलियों पर चक्र का चिह्न होता है, जो शरीर से पतले और जिनके शरीर की नस नाड़ियाँ उभरी हुई होती हैं, वे युद्ध आरम्भ होते ही वेग से शत्रु सेना में घुस जाते हैं और मस्त हाथियों के समान दुर्जय होते हैं।

दीप्तस्फुटितकेशान्ताः स्थूलपार्श्वहनूमुखाः।
उन्नतांसाः पृथुग्रीवा विकटाः स्थूलपिण्डिकाः॥ १६॥
उग्रस्वरा मन्युमन्तो युद्धेष्वारावसारिणः।
अधर्मज्ञावलिप्ताश्च घोरा रौद्रप्रदर्शनाः॥ १७॥
त्यक्तात्मानः सर्व एते अन्त्यजा ह्यनिवर्तिनः।
पुरस्कार्याः सदा सैन्ये हन्यन्ते घ्नन्ति चापि ये॥ १८॥
अधार्मिका भिन्नवृत्ताः सान्त्वेनैषां पराभवः।
एवमेव प्रकुप्यन्ति राज्ञोऽप्येते ह्यभीक्ष्णशः॥ १९॥

जिनके बालों के अग्रभाग चमकीले और छितराये हुए, बगल, ठोडी और मुख मोटे, कँधे ऊँचे, गर्दन मोटी, पिंडलियाँ मोटी और जो देखने में विकट दिखाई देते हैं, जिनकी आवाज कठोर और जो क्रोधी होते हैं, वे युद्ध में गर्जते हुए विचरते हैं। उन्हें धर्म का ज्ञान नहीं होता। वे घमंड में भरे हुए, भयंकर आकृति के और भयंकर प्रदर्शन करने वाले होते हैं। ये सारे अन्त्यज अर्थात भील कोल आदि होते हैं। युद्ध में प्राणों का मोह छोड़कर लड़ते हैं और पीछे नहीं हटते। इन्हें सेना में पुरस्कृत करना चाहिये। ये शत्रुओं की मार सहते और उन्हें मारते भी हैं। ये अधार्मिक होते हैं और धर्म की मर्यादा भंग कर देते हैं। ये बार बार राजा पर भी क्रोध कर बैठते हैं। इन्हें मधुर वाणी से समझा कर ही वश में रखना चाहिये।

सम्भृत्य महतीं सेनां चतुरङ्गां युधिष्ठिर।
साम्नैव वर्तयेः पूर्वं प्रयतेथास्ततो युधि॥ २०॥
जघन्य एष विजयो यद् युद्धं नाम भारत।
यादृच्छिको युधि जयो दैवो वेति विचारणम्॥ २१॥
अपामिव महावेगस्त्रस्ता इव महामृगाः।
दुर्निवार्यतमा चैव प्रभग्ना महती चमूः॥ २२॥
भग्ना इत्येव भज्यन्ते विद्वांसोऽपि न कारणम्।
उदारसारा महती रुरुसंघोपमा चमूः॥ २३॥

ये युधिष्ठिर! तुम्हें विशाल चतुरंगिणी सेना एकत्र कर लेने पर भी, पहले साम नीति के द्वारा ही शत्रु

से सन्धि करने का प्रयास करना चाहिये, इसके पश्चात् युद्ध का आश्रय लेना चाहिये। हे भारत! युद्ध करके जो विजय प्राप्त होती है, उसे निकृष्ट कोटि का माना गया है। युद्ध में विजय अपनी इच्छा से मिलती है या परमात्मा की इच्छा से यह बात विचारणीय होती है अर्थात् इसका पहले से कोई निश्चय नहीं होता है। जब विशाल सेना में भगदड़ मच जाती है, तब पानी के बड़े वेग के समान या डरे हुए मृगों के विशाल झुण्ड के समान उन्हें रोकना अत्यन्त कठिन हो जाता है। विशाल सेना मृगों के झुण्ड के समान होती है। चाहे उसमें बलवान् वीर क्यों न हों, तब भी यह न जानते हुए कि दूसरे लोग क्यों भाग रहे हैं, उन्हें भागता हुआ देखकर ही सब लोग उनके साथ भागने लगते हैं।

परस्परज्ञाः संहृष्टास्त्यक्तप्राणाः सुनिश्चिताः।
अपि पञ्चाशतं शूरा निघ्नन्ति परवाहिनीम्॥ २४॥
अपि वा पञ्च षट् सप्त संहताः कृतनिश्चयाः।
कुलीनाः पूजिताः सम्यग् विजयन्तीह शात्रवान्॥ २५॥
संनिपातो न मन्तव्यः शक्ये सति कथंचन।
सान्त्वभेदप्रदानानां युद्धमुत्तरमुच्यते॥ २६॥

एक दूसरे को जाननेवाले, हर्ष और उत्साह से युक्त, प्राणों का मोह जिन्होंने छोड़ दिया है और जो मरने मारने का निश्चय किये हुए हैं, ऐसे पचास शूरवीर भी शत्रुसेना का विनाश कर सकते हैं। अच्छे कुल में उत्पन्न, राजा से सम्मानित, दृढ़निश्चय कर युद्धभूमि में एकसाथ डटे हुए पाँच, छै या सात वीर भी हों तो भी वे शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर सकते हैं। यदि किसी प्रकार सन्धि हो सकती हो तो युद्ध को स्वीकार नहीं करना चाहिये। पहले समझाकर, फिर शत्रु में फूट डलवाकर, पुनः धन देकर उसे वश में करने की कोशिश करनी चाहिये। सबसे अन्त में ही युद्धका आश्रय लेना चाहिये।

संदर्शनैव सेनाया भयं भीरून् प्रबाधते।
वज्रादिव प्रज्वलितादियं क्व नु पतिष्यति॥ २७॥
अभिप्रयातां समितिं ज्ञात्वा ये प्रतियान्त्यथ।
तेषां स्यन्दन्ति गात्राणि योधानां विजयस्य च॥ २८॥
आन्तराणां च भेदार्थं चरानभ्यवचारयेत्।
यश्च तस्मात् परो राजा तेन सन्धिः प्रशस्यते॥ २९॥
न हि तस्यान्यथा पीडा शक्या कर्तुं तथाविधा।
यथा सार्धममित्रेण सर्वतः प्रतिबाधनम्॥ ३०॥

सेना को देखते ही डरपोक लोगों को ऐसा भय सताने लगता है, मानों उनके ऊपर जलती हुई उल्का गिरने वाली हो। वे सोचने लगते हैं कि यह सेना न जाने किसके ऊपर पड़ेगी? किन्तु जो वीर होते हैं, वे युद्ध को उपस्थित देखकर सामना करने के लिये उसकी तरफ दौड़ पड़ते हैं। विजय के उत्साह में उन योद्धाओं के शरीर से पसीना टपकने लगता है। राजा को चाहिये कि वह शत्रु के मित्रों में फूट डालने के लिये अपने गुप्तचरों को भेजे। जो शत्रु से भी बलवान् राजा हो, उसके साथ सन्धि कर लेना अच्छा है। नहीं तो उसे उतना परेशान नहीं किया जा सकता, जितना उसके शत्रु के साथ सन्धि करके किया जा सकता है। शत्रु को सब तरफ से संकट में डालना चाहिये।

क्षमा वै साधुमायाति न ह्यसाधून्क्षमा सदा।
क्षमायाश्चाक्षमायाश्च पार्थ विद्धि प्रयोजनम्॥ ३१॥
विजित्य क्षममाणस्य यशो राज्ञो विवर्धते।
महापराधे ह्यप्यस्मिन् विश्वसन्त्यपि शत्रवः॥ ३२॥
मन्यते कर्षयित्वा तु क्षमा साध्वीति शम्बरः।
असंतप्तं तु यद् दारु प्रत्येति प्रकृतिं पुनः॥ ३३॥
नैतत् प्रशंसन्त्याचार्या न च साधुनिदर्शनम्।
अक्रोधेनाविनाशेन नियन्तव्याः स्वपुत्रवत्॥ ३४॥
द्वेष्यो भवति भूतानामुग्रो राजा युधिष्ठिर।
मृदुमप्यवमन्यन्ते तस्मादुभयमाचरेत्॥ ३५॥

हे कुन्तीपुत्र! क्षमा की भावना सज्जन व्यक्तियों में ही होती है, असज्जनों में नहीं। तुम क्षमा करने और क्षमा न करने के प्रयोजन को सुनो। शत्रु को जीत लेने पर उसे क्षमा करनेवाले राजा का यश बढ़ता है। महान् अपराध करने पर भी शत्रु उस पर विश्वास करते हैं। शम्बरासुर का विचार है कि पहले शत्रु को पीड़ा द्वारा दुर्बल कर फिर उसे क्षमा कर देना ठीक है क्योंकि यदि टेढ़ी लकड़ी को बिना गर्म किये सीधा किया जाये तो वह फिर टेढ़ी हो जाती है। किन्तु आचार्य लोग इस बात की प्रशंसा नहीं करते, क्योंकि यह साधु पुरुषों का उदाहरण नहीं है। उनके विचार से राजा बिना क्रोध किये, बिना उसका विनाश किये, अपने पुत्र के समान शत्रु को वश में करे। हे युधिष्ठिर! राजा क्रोधी स्वभाव का हो तो लोग द्वेष करने लगते हैं, पर यदि वह कोमल स्वभाव का हो तो उसकी अवहेलना करने

लगते हैं। इसलिये राजा को कठोरता और कोमलता दोनों का आश्रय लेना चाहिये।

प्रहरिष्यन् प्रियं ब्रूयात् प्रहरन्नपि भारत।
प्रहृत्य च कृपायीत शोचन्निव रुदन्निव॥ ३६॥
न मे प्रियं यन्निहताः संग्रामे मामकैर्नरैः।
न च कुर्वन्ति मे वाक्यमुच्यमानाः पुनः पुनः॥ ३७॥
अहो जीवितमाकाङ्क्षेन्नेदृशो वधमर्हति।
सुदुर्लभाः सुपुरुषाः संग्रामेष्वपलायिनः॥ ३८॥
कृतं ममाप्रियं तेन येनायं निहतो मृधे।
इति वाचा वदन् हन्तॄन् पूजयेत रहोगतः॥ ३९॥

राजा को शत्रु पर प्रहार करने से पहले भी प्रिय वचन कहने चाहियें और प्रहार करने के बाद उसे शोक प्रकट करते हुए, रोते हुए, उसके प्रति दया दिखानी चाहिये। उसे शत्रु से कहना चाहिये कि मेरे सैनिकों ने आपके इतने वीरों को जो युद्ध में मार दिया यह मेरा प्रिय कार्य नहीं है पर मैं क्या करूँ? मेरे बार बार कहने पर भी ये मेरी बात नहीं मानते हैं। अरे जो अपने प्राणों की रक्षा चाहता है, उसका वध करना उचित नहीं है। संग्राम में पीठ न दिखाने वाले सत्पुरुष इस संसार में मिलने कठिन हैं, इसलिये युद्ध में जिसने इस वीर को मारा है, उसने मेरा बुरा कार्य किया है। इस प्रकार वाणी से शत्रु के प्रति खेद प्रकट करते हुए वह एकान्त में अपने उन सैनिकों का सम्मान करे, जिन्होंने उनका वध किया हो।

हन्तॄणामाहतानां च यत् कुर्युरपराधिनः।
क्रोशेद् बाहुं प्रगृह्यापि चिकीर्षन् जनसंग्रहम्॥ ४०॥
एवं सर्वास्ववस्थासु सान्त्वपूर्वं समाचरेत्।
प्रियो भवति भूतानां धर्मज्ञो वीतभीर्नृपः॥ ४१॥
विश्वासं चात्र गच्छन्ति सर्वभूतानि भारत।
विश्वस्तः शक्यते भोक्तुं यथाकाममुपस्थितः॥ ४२॥

शत्रुओं को मारने वाले और हताहत हुए अपने वीरों के लिये ऐसे शोक प्रकट करना चाहिये, जैसे उससे कोई अपराध हो गया हो। लोगों को अपने पक्ष में करने के लिये राजा को चाहिये कि जिसकी हानि हुई हो, उसकी बाँह पकड़ कर, वह सहानुभूति प्रकट करते हुए जोर जोर से रोये और विलाप करे। इस प्रकार जो धर्मज्ञ राजा सारी अवस्थाओं में सान्त्वना का प्रयोग करता है, वह लोगों का प्रिय बन कर निर्भय हो जाता है। हे भारत! उसके ऊपर सारे प्राणी विश्वास करते हैं। जनता का विश्वासपात्र होने पर वह उनके साथ रहता हुआ कामना के अनुसार भोगों को भोग सकता है।

पचासवाँ अध्याय : इन्द्र, बृहस्पति संवाद, शत्रुविजय, दुष्टों की पहचान।

युधिष्ठिर उवाच

कथं मृदौ कथं तीक्ष्णे महापक्षे च पार्थिव।
आदौ वर्तेत नृपतिस्तन्मे ब्रूहि पितामह॥ १॥

भीष्म उवाच

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्।
बृहस्पतेश्च संवादमिन्द्रस्य च युधिष्ठिर॥ २॥
बृहस्पतिं देवपतिरभिवाद्य कृताञ्जलिः।
उपसंगम्य पप्रच्छ वासवः परवीरहा॥ ३॥
अहितेषु कथं ब्रह्मन् प्रवर्तेयमतन्द्रितः।
असमुच्छिद्य चैवैतान् नियच्छेयमुपायतः॥ ४॥

युधिष्ठिर ने पूछा कि हे पितामह राजन्! यदि शत्रु का पक्ष महान् और प्रबल हो और वह कोमल स्वभाव का हो, तो उसके साथ कैसा व्यवहार करना चाहिये? यदि वह उग्र स्वभाव का हो तो उसके साथ कैसा बर्ताव करना चाहिये? यह आप मुझे बताइये। तब भीष्म जी ने कहा कि हे युधिष्ठिर! इस विषय में भी लोग इन्द्र और बृहस्पति संवाद नाम से एक पुराने इतिहास का उदाहरण दिया करते हैं। देवताओं के राजा, शत्रु वीरों को नष्ट करने वाले इन्द्र ने बृहस्पति के समीप जाकर, उन्हें प्रणाम कर और हाथ जोड़कर पूछा कि हे ब्रह्मन्! मैं शत्रुओं के साथ बिना आलस्य के कैसा व्यवहार करूँ कि उनका समुच्छेद किये बिना ही उपाय द्वारा उन्हें अपने वश में कर लूँ।

सेनयोर्व्यतिषङ्गेण जयः साधारणो भवेत्।
किं कुर्वाणं न मां जह्याज्ज्वलिता श्रीः प्रतापिनी॥ ५॥
ततो धर्मार्थकामानां कुशलः प्रतिभानवान्।
राजधर्मविधानज्ञः प्रत्युवाच पुरंदरम्॥ ६॥
न जातु कलहेनेच्छेन्नियन्तुमपकारिणः।

बालैरासेवितं ह्येतद् यदमर्षो यदक्षमा॥ ७॥
न शत्रुर्विवृतः कार्यो वधमस्याभिकाङ्क्षता।
क्रोधं भयं च हर्षं च नियम्य स्वयमात्मनि॥ ८॥

जब दो सेनाओं का मुकाबला होता है, तब विजय तो एक सामान्य वस्तु हो जाती है अर्थात् यह निश्चित नहीं रहता कि वह किस को प्राप्त होगी? ऐसी अवस्था में मुझे क्या करना चाहिये, जिस से शत्रुओं को सन्तप्त करने वाली यह उज्वल राज्यलक्ष्मी मुझे नहीं छोड़े। तब धर्म, अर्थ और काम के ज्ञान में कुशल प्रतिभावाले और राजधर्म के विधान को जाननेवाले बृहस्पति ने इन्द्र को उत्तर दिया कि हे राजन्! राजा को कभी युद्ध या कलह द्वारा अपना अपकार करने वाले शत्रु को वश में करने का प्रयत्न नहीं करना चाहिये। क्षमा को छोड़ना या असहनशीलता, ये बच्चों और मूर्खों द्वारा अपनाये हुए मार्ग हैं। शत्रु के वध को चाहनेवाले राजा को चाहिये कि वह क्रोध, भय और हर्ष को अपने मन में ही रोक ले और शत्रु को सावधान न करे।

अमित्रमुपसेवेत विश्वस्तवदविश्वसन्।
प्रियमेव वदेन्नित्यं नाप्रियं किंचिदाचरेत्॥ ९॥
विरमेच्छुष्कवैरेभ्यः कण्ठायासांश्च वर्जयेत्।
यथा वैतंसिको युक्तो द्विजानां सदृशस्वनः॥ १०॥
तान् द्विजान् कुरुते वश्यांस्तथा युक्तो महीपतिः।
वशं चोपनयेच्छत्रून् निहन्याच्च पुरंदर॥ ११॥
न नित्यं परिभूयारीन् सुखं स्वपिति वासव।
जागर्त्येव हि दुष्टात्मा संकरेऽग्निरिवोत्थितः॥ १२॥

शत्रु पर अविश्वास रखते हुए भी वह विश्वस्त मित्र के समान उसकी सेवा करे। उससे सदा प्रिय ही बोले, कभी उसके साथ अप्रिय व्यवहार न करे। हे पुरन्दर! वह सूखे वैर को त्याग कर गले को कष्ट देने वाले वादविवाद को छोड़ दे। जैसे शिकारी पक्षियों को फँसाने के लिये उन जैसी ही बोली बोलता है और उन्हें अपने बस में कर लेता है, वैसे ही राजा को शत्रु को वश में करने के लिये धीरे धीरे प्रसन्न करते रहना चाहिये और मौका पाते ही वश में करके मार देना चाहिये। हे इन्द्र! जो राजा सदा शत्रुओं का तिरस्कार ही करता रहता है, वह सुख से नहीं सो पाता। वह दुष्टात्मा वैसे ही जागता रहता है, जैसे घास फूस में लगी हुई आग जलती रहती है।

न संनिपातः कर्तव्यः सामान्ये विजये सति।
विश्वास्यैवोपसन्नार्थो वशे कृत्वा रिपुः प्रभो॥ १३॥
सम्प्रधार्य सहामात्यैर्मन्त्रविद्भिर्महात्मभिः।
उपेक्ष्यमाणोऽवज्ञातो हृदयेनापराजितः॥ १४॥
अथास्य प्रहरेत् काले किंचिद्विचलिते पदे।
दण्डं च दूषयेदस्य पुरुषैराप्तकारिभिः॥ १५॥
आदिमध्यावसानज्ञः प्रच्छन्नं च विधारयेत्।
बलानि दूषयेदस्य जानन्नेव प्रमाणतः॥ १६॥

जब युद्ध में निश्चय न हो कि विजय किसको मिलेगी, तो स्वयं ही पहले युद्ध नहीं छेड़ना चाहिये। हे प्रभो! उसके लिये पहले शत्रु को अपने विश्वास में लेकर, वश में करके और अवसर देखकर उसके मनसूबे नष्ट करने चाहियें। शत्रु द्वारा उपेक्षा या अवहेलना किये जाने पर भी हृदय में हार नहीं माननी चाहिये। उसे अपने मन्त्रियों और मन्त्रणा के जानकारों के साथ अपना कर्त्तव्य निश्चित कर उचित समय की राह देखनी चाहिये। समय आने पर, जब शत्रु की स्थिति कुछ विचलित हो, तभी उस पर प्रहार करना चाहिये। उसे अपने आप्त पुरुषों को भेजकर उसकी सेना में फूट डलवा देनी चाहिये। उसे शत्रु की आदि, मध्य और अन्तिम अवस्था को जानकर, फिर गुप्त रूप से विचार कर, शत्रुसेना की संख्या को समझकर, उसमें फूट डलवा देनी चाहिये।

भेदेनोपप्रदानेन संसृजेदौषधैस्तथा।
न त्वेवं खलु संसर्गं रोचयेदरिभिः सह॥ १७॥
दीर्घकालमपीक्षेत निहन्यादेव शात्रवान्।
कालाकाङ्क्षी हि क्षपयेद् यथा विश्रम्भमाप्नुयुः॥ १८॥
न सद्योऽरीन् विहन्याच्च द्रष्टव्यो विजयो ध्रुवः।
न शल्यं वा घटयति न वाचा कुरुते व्रणम्॥ १९॥
प्राप्ते च प्रहरेत् काले न च संवर्तते पुनः।
हन्तुकामस्य देवेन्द्र पुरुषस्य रिपून् प्रति॥ २०॥

राजा शत्रु की सेना में घूस देकर भेद पैदा करने का प्रयत्न या उनके ऊपर विभिन्न ओषधियों का प्रयोग करे और कभी शत्रु के साथ प्रकट में सम्बन्ध स्थापित न करे। चाहे राजा को लम्बे समय तक प्रतीक्षा करनी पड़े, उसे वह प्रतीक्षा करनी चाहिये, जिससे शत्रु को उस पर पूरा विश्वास हो जाये। फिर समय आने पर वह उसे मार ही दे। शत्रु पर एक

दम आक्रमण नहीं करना चाहिये। पहले अपनी निश्चित विजय के बारे में सोचना चाहिये। उस समय उस पर न तो विष का प्रयोग करे और न कठोर वाणी से चोट पहुँचाये। हे देवेन्द्र! जो राजा अपने शत्रु को मारना चाहता है, उसे समय आने पर उसके ऊपर अवश्य प्रहार करना चाहिये, क्योंकि उचित समय बारबार नहीं आता।

ओजश्च जनयेदेव संगृह्णन् साधुसम्मतम्।
अकाले साधयेन्मित्रं न च प्राप्ते प्रपीडयेत्॥ २१॥
विहाय कामं क्रोधं च तथाहंकारमेव च।
युक्तो विवरमन्विच्छेदहितानां पुनः पुनः॥ २२॥
मार्दवं दण्ड आलस्यं प्रमादश्च सुरोत्तम।
मायाः सुविहिताः शक्र सादयन्त्यविचक्षणम्॥ २३॥
निहत्यैतानि चत्वारि मायां प्रति विधाय च।
ततः शक्नोति शत्रूणां प्रहर्तुमविचारयन्॥ २४॥

श्रेष्ठ व्यक्तियों की सम्मति लेकर राजा अपनी शक्ति को बढ़ाता ही रहे। उचित समय के प्राप्त न होने पर, मित्रों की संख्या बढ़ाता रहे और शत्रु को पीड़ित न करे। पर समय आने पर उसके ऊपर अवश्य प्रहार करे। वह काम क्रोध और अहंकार को छोड़कर ध्यान पूर्वक बार बार शत्रु के छिद्रों को देखता रहे। हे श्रेष्ठ सुरेन्द्र! कोमलता, दण्ड, आलस्य, असावधानी तथा शत्रुद्वारा अच्छे प्रकार से प्रयोग किया हुआ छल कपट, ये जो राजा चतुर नहीं होता, उसे बड़े कष्ट में डाल देते हैं। राजा पहले इन चारों को नष्ट करे और माया का भी प्रतिकार करे। फिर वह शत्रु पर बिना विचारे प्रहार कर सकता है।

यदैवैकेन शक्येत गुह्यं कर्तुं तदाचरेत्।
यच्छन्ति सचिवा गुह्यं मिथो विश्रावयन्त्यपि॥ २५॥
अशक्यमिति कृत्वा वा ततोऽन्यैः संविदं चरेत्।
भेदं च प्रथमं युञ्ज्यात् तूष्णीं दण्डं तथैव च॥ २६॥
काले प्रयोजयेद् राजा तस्मिंस्तस्मिंस्तदा तदा।
प्रणिपातं च गच्छेत काले शत्रोर्बलीयसः॥ २७॥
युक्तोऽस्य वधमन्विच्छेदप्रमत्तः प्रमाद्यतः।
प्रणिपातेन दानेन वाचा मधुरया ब्रुवन्॥ २८॥
अमित्रमपि सेवेत न च जातु विशङ्कयेत्।

राजा जिस गोपनीय कार्य को स्वयं कर सकता हो, उसे वह अवश्य कर डाले, क्योंकि मन्त्री लोग कभी कभी गुप्त बातों को प्रकट कर देते हैं या उन्हें आपस में एक दूसरे को बता देते हैं। जिस कार्य को अकेले करना असंम्भव हो, उसी के लिये दूसरों के साथ विचार करना चाहिये। राजा पहले अपने शत्रुओं के लिये भेद नीति का प्रयोग करे, फिर अलग अलग शत्रु के लिये अलग अलग समय में चुपचाप दण्ड का प्रयोग करे। यदि शत्रु बलवान् हो और समय भी उसी के अनुकूल हो, तो उसे तुरन्त उसके सामने नतमस्तक हो जाना चाहिये। फिर सावधानी से उसे जब शत्रु असावधान हो जाये तब उसके वध के उपाय को ढूँढना चाहिये। राजा को प्रणाम करके, दान देकर और मधुर वाणी से शत्रु की सेवा करनी चाहिये, जिससे उसके मन में थोड़ी सी भी शंका न हो।

स्थानानि शङ्कितानां च नित्यमेव विवर्जयेत्॥ २९॥
न च तेष्वाश्वसेद् राजा जाग्रतीह निराकृताः।
न ह्यतो दुष्करं कर्म किंचिदस्ति सुरोत्तम॥ ३०॥
यथा विविधवृत्तानामैश्वर्यममराधिप।
तथा विविधवृत्तानामपि सम्भव उच्यते॥ ३१॥
यतते योगमास्थाय मित्रामित्रं विचारयेत्।
यथा वप्रे वेगवति सर्वतः सम्प्लुतोदके॥ ३२॥
नित्यं विवरणाद् बाधस्तथा राज्यं प्रमाद्यतः।
न बहूनभियुञ्जीत यौगपद्येन शात्रवान्॥ ३३॥
साम्ना दानेन भेदेन दण्डेन च पुरंदर।

यदि शत्रु के मन में थोड़ी सी भी शंका हो जाये, तो उन स्थानों को जहाँ उसका आना जाना हो, सदा के लिये छोड़ दे। राजा कभी उन पर विश्वास न करे क्योंकि अपमानित शत्रु सदा सावधान रहते हैं। हे श्रेष्ठ देव। हे देवेश्वर! तरह तरह के आचरण वाले लोगों के ऐश्वर्य पर शासन करने से कठिन कोई और दूसरा कार्य नहीं है। भिन्न आचरण वाले व्यक्तियों के ऐश्वर्य पर शासन करना तभी सम्भव हो सकता है, जब राजा बड़े मनोयोग से इसके लिये प्रयत्न करे और शत्रु तथा मित्र के विषय में विचार करता रहे। जब जल का प्रवाह वेगवान् हो, सब तरफ पानी फैल रहा हो, तब नदी तट के टूट जाने का खतरा रहता है। उसी प्रकार राजा यदि प्रमाद कर जाये तो उसके नष्ट होने का संकट विद्यमान् हो जाता है।

एकैकमेषां निष्पिष्य शिष्टेषु निपुणं चरेत्॥ ३४॥
न तु शक्तोऽपि मेधावी सर्वानेवारभेन्नृपः।
यदा स्यान्महती सेना हयनागरथाकुला॥ ३५॥
पदातियन्त्रबहुला अनुरक्ता षडङ्गिनी।
यदा बहुविधां वृद्धिं मन्येत प्रतिलोमतः।
तदा विवृत्य प्रहरेद् दस्यूनामविचारयन्॥ ३६॥

एक साथ ही बहुत सारे शत्रुओं पर आक्रमण नहीं कर देना चाहिये। हे इन्द्र! साम, दाम, भेद और दण्ड इनके द्वारा एक एक को बारी बारी से नष्ट करके शेष को कुशलता से समाप्त कर दे। शक्तिशाली होने पर भी बुद्धिमान् राजा को सारे शत्रुओं के साथ एक साथ युद्ध आरम्भ नहीं करना चाहिये। जब राजा के पास विशाल सेना हो, जिसमें हाथी, घोड़े और रथ भरे हुए हों, वह पैदल सैनिकों और यन्त्रों से भरपूर हो, छः अंग वाली हो और राजा से प्रेम करती हो, जब शत्रु के मुकाबले अपनी अनेक प्रकार से अधिक वृद्धि को देखे, उस समय राजा को बिना विचारे प्रकट रूप से डाकुओं और लुटेरों पर प्रहार कर देना चाहिये।

मायाविभेदानु- पसर्जनानि
तथैव पापं न यशःप्रयोगात्।
आप्तैर्मनुष्यै- रुपचारयेत
पुरेषु राष्ट्रेषु च सम्प्रयुक्तान्॥ ३७॥
प्रदाय गूढानि वसूनि राजन्
प्रच्छिद्य भोगानवधाय च स्वान्।
दुष्टान् स्वदोषैरिति कीर्तयित्वा
पुरेषु राष्ट्रेषु च योजयन्ति॥ ३८॥

'राजा अपने विश्वस्त गुप्तचरों के द्वारा शत्रु के राज्य और नगर में तरह तरह के छल और भेदों की सृष्टि कर दे। किन्तु अपने यश की रक्षा के लिये प्रकट रूप से वहाँ किसी तरह का पाप कर्म, हत्या आदि न होने दे। हे राजन्! राजा लोग अपने गुप्त लोगों को गुप्त रूप से धन आदि देकर और ऊपर से उन्हें सुख सुविधाओं से वंचित करके, उनके विषय में यह प्रचार करके कि इन दुष्टों को मैंने इनके दोष के कारण निकाल दिया है, उन्हें शत्रु के नगर तथा राज्य में गुप्तभेद लेने के लिये नियुक्त कर देते हैं।

इन्द्र उवाच

कानि लिङ्गानि दुष्टस्य भवन्ति द्विजसत्तम।
कथं दुष्टं विजानीयामेतत् पृष्टो वदस्व मे॥ ३९॥

बृहस्पतिरुवाच

परोक्षमगुणानाह सद्गुणानभ्यसूयते।
परैर्वा कीर्त्यमानेषु तूष्णीमास्ते पराङ्मुखः॥ ४०॥
तूष्णीम्भावेऽपि विज्ञेयं न चेद् भवति कारणम्।
निःश्वासं चोष्ठसंदंशं शिरसश्च प्रकम्पनम्॥ ४१॥
करोत्यभीक्ष्णं संसृष्टमसंसृष्टश्च भाषते।
अदृष्टितो न कुरुते दृष्टो नैवाभिभाषते॥ ४२॥
पृथगेत्य समश्नाति नेदमद्य यथाविधि।
आसने शयने याने भावा लक्ष्या विशेषतः॥ ४३॥

तब इन्द्र ने पूछा कि हे ब्राह्मण श्रेष्ठ! दुष्ट मनुष्यों की क्या पहचान है? मैं दुष्टों को कैसे जानूँ? आप इस विषय का मुझे उत्तर दीजिये। तब बृहस्पति ने कहा कि जो व्यक्ति पीछे से किसी व्यक्ति की बुराई करता है, उसके अच्छे गुणों में भी दोष निकालता है, दूसरों के द्वारा उसके गुणों का वर्णन किये जाने पर चुप होकर और पीठ घुमा कर बैठ जाता है, वह दुष्ट व्यक़्ति होता है। उसके चुप हो कर बैठे रहने पर भी, जब वह बिना किसी कारण के लम्बी साँस छोड़ता है, ओठों को काटता है और सिर को हिलाता है, तब उसे दुष्ट व्यक्ति समझना चाहिये। जो बार बार आकर सम्बन्ध स्थापित करता है, पर दूर जाने पर उसमें दोष बताता है, किसी कार्य को करने की प्रतिज्ञा करके आँख से ओझल होने पर उस कार्य को करता नहीं है, आँखों के सामने होने पर भी कोई बात नहीं करता, उसे दुष्ट व्यक्ति समझना चाहिये। जो कहीं से आकर साथ नहीं, अलग बैठकर खाता है और कहता है कि आज का भोजन पहले जैसा नहीं है, वह दुष्ट है। इसी प्रकार दुष्ट व्यक्ति के बैठने, सोने और चलने आदि में भी विशेष दुष्टतापूर्ण भाव प्रकट होते हैं।

इक्यावनवाँ अध्याय : गणतन्त्र राज्य का वर्णन।

युधिष्ठिर उवाच

यथा गणाः प्रवर्धन्ते न भिद्यन्ते च भारत।
अरींश्च विजिगीषन्ते सुहृदः प्राप्नुवन्ति च॥ १॥
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं निखिलेन परंतप।
यथा च ते न भिद्येरंस्तच्च मे वद पार्थिव॥ २॥

भीष्म उवाच

गणानां च कुलानां च राज्ञां भरतसत्तम।
वैरसंदीपनावेतौ लोभामर्षौ नराधिप॥ ३॥
लोभमेको हि वृणुते ततोऽमर्षमनन्तरम्।
तौ क्षयव्ययसंयुक्तावन्योन्यं च विनाशिनौ॥ ४॥

तब युधिष्ठिर ने कहा कि हे भारत! जिस प्रकार गणतन्त्र राज्य उन्नति करते हैं, उनमें फूट नहीं पड़ती, वे शत्रुओं पर विजय प्राप्त करते हैं और उन्हें मित्रों की भी प्राप्ति होती है, हे परंतप! यह मैं पूरी तरह से सुनना चाहता हूँ। हे राजन्! जिस प्रकार उनमें फूट नहीं पड़े, यह आप मुझे बताइये। तब भीष्म जी ने कहा कि हे भरतश्रेष्ठ, राजन्! गणों, कुलों और राजाओं में बैर को प्रज्वलित करने वाले ये दो ही दोष हैं।— पहला लोभ और दूसरा क्रोध। एक व्यक्ति लोभ अर्थात् दूसरे का धन लेने की इच्छा का वरण कर लेता है तो दूसरे के हृदय में क्रोध भड़क उठता है। तत्पश्चात् वेदोनों पक्ष धन और जन की हानि को उठाकर एक दूसरे का विनाश करने वाले बन जाते हैं।

चारमन्त्रबलादानैः सामदानविभेदनैः।
क्षयव्ययभयोपायैः प्रकर्षन्तीतरेतरम्॥ ५॥
तत्रादानेन भिद्यन्ते गणाः संघातवृत्तयः।
भिन्ना विमनसः सर्वे गच्छन्त्यरिवशं भयात्॥ ६॥
भेदे गणा विनेशुर्हि भिन्नास्तु सुजयाः परैः।
तस्मात् संघातयोगेन प्रयतेरन् गणाः सदा॥ ७॥
अर्थाश्चैवाधिगम्यन्ते संघातबलपौरुषैः।
बाह्याश्च मैत्रीं कुर्वन्ति तेषु संघातवृत्तिषु॥ ८॥

वेदोनों एकदूसरे के विरुद्ध गुप्तचर, गुप्त मंत्रणा और सेना एकत्र करने में लग जाते हैं। साम, दाम और भेद के द्वारा वे एकदूसरे के धन और जन का विनाश करते हुए एकदूसरे को निर्बल बना देते हैं। संघबद्ध हो कर निर्वाह करने वाले सैनिकों को भी यदि समय पर वेतन न मिले, तो उनमें भी फूट पड़ जाती है। फूट पड़ जाने पर एकदूसरे के प्रति विपरीत भाव रखते हुए वे सारे भय के कारण शत्रुओं के आधीन हो जाते हैं। परस्पर भेद हो जाने पर गणराज्य नष्ट हो जाते हैं और शत्रुओं द्वारा सरलता से जीत लिये जाते हैं। इसलिये गणतन्त्र के लोगों को चाहिये कि वे सदा संघबद्ध होकर ही विजय के लिये प्रयत्न करते रहें। गणतन्त्र में रहने वाले व्यक्ति सामूहिक बल और पौरुष द्वारा सरलता से अभीष्ट पदार्थों की प्राप्ति कर लेते हैं। संघवृत्ति के उन लोगों से बाहरी व्यक्ति भी मैत्री करने लग जाते हैं।

ज्ञानवृद्धाः प्रशंसन्ति शुश्रूषन्तः परस्परम्।
विनिवृत्ताभिसंधानाः सुखमेधन्ति सर्वशः॥ ९॥
धर्मिष्ठान् व्यवहारांश्च स्थापयन्तश्च शास्त्रतः।
यथावत् प्रतिपश्यन्तो विवर्धन्ते गणोत्तमाः॥ १०॥
पुत्रान् भ्रातॄन् निगृह्णन्तो विनयन्तश्च तान् सदा।
विनीतांश्च प्रगृह्णन्तो विवर्धन्ते गणोत्तमाः॥ ११॥
प्राज्ञाञ्शूरान् महोत्साहान् कर्मसु स्थिरपौरुषान्।
मानयन्तः सदा युक्ता विवर्धन्ते गणा नृप॥ १२॥

ज्ञानवृद्ध व्यक्ति सदा संघराज्य की प्रशंसा करते हैं। उनके अनुसार संघबद्ध लोगों में एकदूसरे को ठगने की दुर्भावना नहीं होती। वे एक दूसरे की सेवा करते हुए सुखपूर्वक उन्नति करते हैं। गणराज्य के नागरिक शास्त्रों के अनुसार धर्मयुक्त व्यवहारों की स्थापना करते हैं। एकदूसरे के साथ उचित व्यवहार करते हुए वे उन्नति की दिशा में बढ़ते जाते हैं। वे पुत्रों और भाइयों को भी यदि वे बुरे मार्ग पर चलें तो उनको दण्ड देते हैं, उन्हें उत्तम शिक्षा प्रदान करते हैं और उनके शिक्षित हो जाने पर उन्हें आदर से ग्रहण करते और इसप्रकार उन्नति को प्राप्त होते हैं। हे राजन्! गण के निवासी लोग विद्वानों, शूरवीरों, महाउत्साही व्यक्तियों तथा अपने कार्यों में स्थिर पौरुष का परिचय देने वालों का सदा सम्मान करते हुए उन्नति करते हैं।

द्रव्यवन्तश्च शूराश्च शस्त्रज्ञाः शास्त्रपारगाः।
कृच्छ्रास्वापत्सु सम्मूढान् गणाः संतारयन्ति ते॥ १३॥
क्रोधो भेदो भयं दण्डः कर्षणं निग्रहो वधः।
नयत्यरिवशं सद्यो गणान् भरतसत्तम॥ १४॥
तस्मान्मानयितव्यास्ते गणमुख्याः प्रधानतः।
लोकयात्रा समायत्ता भूयसी तेषु पार्थिव॥ १५॥
मन्त्रगुप्तिः प्रधानेषु चारश्चामित्रकर्षण।
न गणाः कृत्स्नशो मन्त्रं श्रोतुमर्हन्ति भारत॥ १६॥

गणराज्य के नागरिक धनवान्, शूरवीर, शस्त्र का संचालन जानने वाले और शास्त्रों के विद्वान् होते हैं। कठिन आपत्तियों में मूढ़ बने हुए व्यक्तियों का उद्धार करते हैं। हे भरत श्रेष्ठ। किन्तु क्रोध, भेद, भय, दण्ड, दूसरों को दुर्बल बनाने, उन्हें बन्धन में डालने या मार देने की प्रवृत्ति उनमें पैदा हो जाये, तो ये प्रवृत्तियाँ उन्हें तत्काल शत्रु के वश में कर देती हैं। हे राजन्! इसलिये गणराज्य के जो प्रधान अधिकारी हों, तुम्हें उनका सम्मान करना चाहिये। उन्हीं पर गणराज्य की अधिकांश जीवनयात्रा आधारित है। हे भारत! मन्त्रणा की सुरक्षा के लिये, उसका प्रधान व्यक्तियों के ही पास होना आवश्यक है। सभी लोग उसे सुनने के अधिकारी नहीं हैं। हे शत्रुसूदन! यही बात गुप्तचरों की नियुक्ति के विषय में भी है।

गणमुख्यैस्तु सम्भूय कार्यं गणहितं मिथः।
पृथग्गणस्य भिन्नस्य विततस्य ततोऽन्यथा॥ १७॥
अर्थाः प्रत्यवसीदन्ति तथानर्था भवन्ति च।
तेषामन्योन्यभिन्नानां स्वशक्तिमनुतिष्ठताम्॥ १८॥
निग्रहः पण्डितैः कार्यः क्षिप्रमेव प्रधानतः।
कुलेषु कलहा जाताः कुलवृद्धैरुपेक्षिताः॥ १९॥
गोत्रस्य नाशं कुर्वन्ति गणभेदस्य कारकम्।
आभ्यन्तरं भयं रक्ष्यमसारं बाह्यतो भयम्॥ २०॥
आभ्यन्तरं भयं राजन् सद्यो मूलानि कृन्तति।

गण के प्रधान व्यक्ति गण की भलाई के कार्यों को परस्पर मिलकर करें, नहीं तो उनमें एकदूसरे से पृथक् अलग अलग गणों का विस्तार हो जाता है। फिर उनके कार्य बिगड़ जाते हैं और अनर्थ होने लगते हैं। गणराज्य के विद्वान् और प्रधान अधिकारियों को तब चाहिये, कि वे तुरन्त ही एक दूसरे से अलग हुए और अपनी शक्ति का प्रदर्शन करने वाले नेताओं का दमन करें। कुलों में यदि कलह हो जाये और मुखिया लोग उसकी अवहेलना कर दें, तो वह कलह गणों में फूट डालकर कुलों का विनाश कर देती है। इसलिये गणराज्य में आन्तरिक भय से राज्य की रक्षा करनी चाहिये, बाहरी भय उनके लिये व्यर्थ है। हे राजन्! आन्तरिक भय गणराज्य की जड़ को तुरन्त मार देता है।

अकस्मात् क्रोधमोहाभ्यां लोभाद् वापि स्वभावजात्॥ २१॥
अन्योन्यं नाभिभाषन्ते तत्पराभवलक्षणम्।
जात्या च सदृशाः सर्वे कुलेन सदृशास्तथा॥ २२॥
न चोद्योगेन बुद्ध्या वा रूपद्रव्येण वा पुनः।
भेदाश्चैव प्रदानाच्च भिद्यन्ते रिपुभिर्गणाः।
तस्मात् संघातमेवाहुर्गणानां शरणं महत्॥ २३॥

जब अकस्मात् हुए क्रोध और मोह या स्वाभाविक लोभ के कारण संघ के लोग परस्पर वार्तालाप बन्द कर देते हैं, तो वह उनकी पराजय का लक्षण होता है। जाति तथा कुल में सब समान हो सकते हैं। पर उद्योग, बुद्धि, तथा रूपसम्पदा में सारे समान नहीं हो सकते। शत्रु लोग इसी आधार पर उनमें भेद उत्पन्न कराकर या धन देकर, उन्हें एकदूसरे के विरुद्ध कर देते हैं। इसलिये इकट्ठे मिलकर रहना ही संघ राज्य के नागरिकों का महान् आश्रय है।

बावनवाँ अध्याय : माता पिता और गुरु की सेवा का महत्व।

युधिष्ठिर उवाच

महानयं धर्मपथो बहुशाखश्च भारत।
किंस्विदेवेह धर्माणामनुष्ठेय तमं मतम्॥ १॥

भीष्म उवाच

मातापित्रोर्गुरूणां च पूजा बहुमता मम।
इह युक्तो नरो लोकान् यशश्च महदश्नुते॥ २॥
यच्च तेऽभ्यनुजानीयुः कर्म तात सुपूजिताः।
धर्म्यं धर्मविरुद्धं वा तत् कर्तव्यं युधिष्ठिर॥ ३॥
न च तैरभ्यनुज्ञातो धर्ममन्यं समाचरेत्।
यं च तेऽभ्यनुजानीयुः स धर्म इति निश्चयः॥ ४॥

युधिष्ठिर ने पूछा कि हे भारत! धर्म का मार्ग बहुत बड़ा है, इसकी बहुत सी शाखाएँ हैं। इन सारे धर्मों में कौन सा धर्म ऐसा है, जिसे आप सबसे अधिक आचरण में लाने के योग्य समझते हैं? भीष्म जी ने तब उत्तर दिया कि मेरे विचार से माता पिता और गुरु की सेवा सबसे अधिक श्रेष्ठ धर्म है। इसमें लगा हुआ मनुष्य महान् यश और उत्तम गतियों को प्राप्त करता है। हे तात युधिष्ठिर! अच्छी तरह से सत्कार को प्राप्त ये मातापिता और गुरु जिस कार्य के लिये आज्ञा दें, वह धर्म के अनुकूल हो, या न हो, उसे अवश्य करना चाहिये। उनकी आज्ञा के पालन में लगे हुए व्यक्ति के लिये किसी दूसरे धर्मकार्य को करने की आवश्यकता नहीं है। जिस कार्य के लिये वे आज्ञा दें, वही धर्म है ऐसा धर्मात्माओं का निश्चय है।

नैतानतिशयेज्जातु नात्यश्नीयान्न दूषयेत्।
नित्यं परिचरेच्चैव तद् वै सुकृतमुत्तमम्॥ ५॥
कीर्तिं पुण्यं यशो लोकान् प्राप्स्यसे राजसत्तम।
सर्वे तस्यादृता लोका यस्यैते त्रय आदृताः॥ ६॥
अनादृतास्तु यस्यैते सर्वास्तस्याफलाः क्रियाः।
न चायं न परो लोकस्तस्य चैव परंतप॥ ७॥
अमानिता नित्यमेव यस्यैते गुरुवस्त्रयः।
न चास्मिन्नपरे लोके यशस्तस्य प्रकाशते॥ ८॥
न चान्यदपि कल्याणं परत्र समुदाहृतम्।

इन तीनों की आज्ञा का कभी उल्लंघन न करे। इन्हें भोजन कराने से पहले स्वयं भोजन न करे, इन पर कोई दोषारोपण भी न करे। सदा इनकी सेवा में लगा रहे, यही सबसे उत्तम पुण्य है। हे श्रेष्ठ राजन्! तुम इनकी सेवा से कीर्ति, पवित्र यश और परलोक में उत्तम गति को प्राप्त करोगे। जिसने इन तीनों का आदर किया है, उसके द्वारा तीनों लोकों का आदर हो गया समझो। जिसने इन तीनों का अपमान किया है, उसके सारे कार्य निष्फल हैं। उसके लिये न तो यह लोक सुखदायी है और न परलोक। ऐसे व्यक्ति का यश इस लोक और परलोक दोनों जगह नहीं होता। परलोक में मिलने वाली और भी जो कल्याणकारी बातें वर्णन की गयी हैं, वे भी उसे नहीं मिल पातीं।

गुरुर्गरीयान् पितृतो मातृतश्चेति मे मतिः॥ ९॥
शरीरमेव सृजतः पिता माता च भारत।
आचार्यशिष्टा या जातिः सा दिव्या साजरामरा॥ १०॥

मेरा विचार तो यह है कि गुरु का महत्व पिता और माता से भी अधिक है, क्योंकि माता पिता तो केवल शरीर को ही जन्म देते हैं, किन्तु आचार्य के उपदेश को प्राप्त कर जो दूसरा जन्म प्राप्त होता है, वह तो दिव्य और अजर अमर है।

यश्चावृणोत्यवितथेन कर्मणा
ऋतं ब्रुवन्ननृतं सम्प्रयच्छन्।
तं वै मन्येत पितरं मातरं च
तस्मै न द्रुह्येत् कृतमस्य जानन्॥ ११॥
विद्यां श्रुत्वा ये गुरुं नाद्रियन्ते
प्रत्यासन्ना मनसा कर्मणा वा।
तेषां पापं भ्रूणहत्याविशिष्टं
नान्यस्तेभ्यः पापकृदस्ति लोके॥ १२॥

जो फलदायक कर्मों के द्वारा शिष्य को कवच के समान ढक लेता है, सत्य के पालन का उपदेश देता है और असत्य से बचाता है, उसी गुरु को अपनी माता और पिता समझना चाहिये। उसके उपकार को जानते हुए, उससे कभी द्रोह नहीं करना चाहिये। जो गुरु से विद्या को प्राप्त कर उसका आदर नहीं करते हैं, उसके समीप रहते हुए मन और कर्म से उसकी सेवा नहीं करते हैं, उन्हें भ्रूणहत्या से भी बढ़ कर पाप लगता है। उनसे अधिक पापी संसार में और कोई नहीं है।

तस्मात् पूजयितव्याश्च संविभज्याश्च यत्नतः।
गुरवोऽर्चयितव्याश्च पुराणं धर्ममिच्छता॥ १३॥
केनचिन्न च वृत्तेन ह्यवज्ञेयो गुरुर्भवेत्।
न च माता न च पिता मन्यते यादृशो गुरुः।
न तेऽवमानमर्हन्ति न तेषां दूषयेत् कृतम्॥ १४॥

इसलिये जो पुरातन धर्म को प्राप्त करना चाहते हैं, उन्हें गुरु की पूजा और अर्चना करनी चाहिये और प्रयत्न पूर्वक उन्हें आवश्यक पदार्थ भेंट करने चाहियें। किसी भी आचरण के कारण गुरु अपमान के योग्य नहीं है और माता पिता भी इसी प्रकार अनादर के योग्य नहीं हैं। जैसे गुरु आदरणीय है, वैसे ही माता पिता भी आदरणीय हैं। ये तीनों कभी भी अपमान के योग्य नहीं हैं, इनके कार्य की कभी निन्दा नहीं करनी चाहिये।

तिरेपनवाँ अध्याय : सत्यासत्य विवेचन, धर्म के लक्षण, दुख निवृत्ति।

युधिष्ठिर उवाच

किंस्वित् सत्यं किमनृतं किंस्विद् धर्म्यं सनातनम्।
कस्मिन् काले वदेत् सत्यं कस्मिन् कालेऽनृतं वदेत्॥ १॥

भीष्म उवाच

सत्यस्य वचनं साधु न सत्याद् विद्यते परम्।
यत्तु लोकेषु दुर्ज्ञानं तत् प्रवक्ष्यामि भारत॥ २॥
भवेत् सत्यं न वक्तव्यं वक्तव्यमनृतं भवेत्।
यत्रानृतं भवेत् सत्यं सत्यं वाप्यनृतं भवेत्॥ ३॥
तादृशो बध्यते बालो यत्र सत्यमनिष्ठितम्।
सत्यानृते विनिश्चित्य ततो भवति धर्मवित्॥ ४॥

फिर युधिष्ठिर ने पूछा कि क्या सत्य है और क्या झूठ है? कौन सा कार्य सनातन धर्म के अनुकूल है? किस समय सत्य बोलना चाहिये और किस समय झूठ बोल देना चाहिये? तब भीष्म जी ने उत्तर दिया कि हे भारत! सत्य बोलना अच्छा है। सत्य से बढ़ कर और कोई अच्छी बात नहीं है, किन्तु संसार में जिसे जानना अत्यन्त कठिन है, वही मैं तुम्हें बता रहा हूँ। जहाँ झूठ ही सत्य के समान लाभदायक बन जाये अर्थात् किसी को संकट से बचाये, या सत्य ही झूठ बन जाये अर्थात् किसी के प्राणों को संकट में डाल दे, वहाँ सत्य नहीं बोलना चाहिये, झूठ बोलना ही ठीक है। जिसमें सत्य स्थिर न हो अर्थात् सत्य और असत्य का निश्चय न हो, ऐसा मूर्ख व्यक्ति मारा जाता है। इसलिये सत्य और असत्य का निर्णय करके, उसका पालन करने वाला ही धर्मज्ञ माना जाता है।

प्रभवार्थाय भूतानां धर्मप्रवचनं कृतम्।
यः स्यात् प्रभवसंयुक्तः स धर्म इति निश्चयः॥ ५॥
धारणाद् धर्ममित्याहुर्धर्मेण विधृताः प्रजाः।
यः स्याद् धारणसंयुक्तः स धर्म इति निश्चयः॥ ६॥
अहिंसार्थाय भूतानां धर्मप्रवचनं कृतम्।
यः स्यादहिंसासम्पृक्तः स धर्म इति निश्चयः॥ ७॥
येऽन्यायेन जिहीर्षन्तो धनमिच्छन्ति कस्यचित्।
तेभ्यस्तु न तदाख्येयं स धर्म इति निश्चयः॥ ८॥

धर्म का उपदेश प्राणियों की भलाई के लिये किया जाता है। धर्म की पहचान यही है कि उससे प्राणियों का कल्याण हो, यह विद्वानों का निश्चय है। धर्म का नाम धर्म इसलिये है क्योंकि वह कल्याण के द्वारा प्रजा को, समाज को धारण करता परस्पर जोड़ता है, इसलिये जिस कार्य में समाज को धारण करने का गुण हो, वह धर्म है, यह विद्वानों का निश्चय है। जो अन्याय पूर्वक किसी के धन के अपहरण की इच्छा से उसका पता चाहते हैं, उन लुटेरों को उसका पता न बताये, यही धर्म है, ऐसा विद्वानों का निश्चय है।

अकूजनेन चेन्मोक्षो नावकूजेत् कथंचन।
अवश्यं कूजितव्ये वा शङ्केरन् वाप्यकूजनात्॥ ९॥
श्रेयस्तत्रानृतं वक्तुं सत्यादिति विचारितम्।
यः पापैः सह सम्बन्धान्मुच्यते शपथादपि॥ १०॥
न तेभ्योऽपि धनं देयं शक्ये सति कथंचन।
पापेभ्यो हि धनं दत्तं दातारमपि पीडयेत्॥ ११॥
प्राणात्यये विवाहे च वक्तव्यमनृतं भवेत्।
अर्थस्य रक्षणार्थाय परेषां धर्मकारणात्॥ १२॥

यदि कुछ न बोलने से छुटकारा मिल जाये तो किसी तरह से कुछ बोले ही नहीं। पर जहाँ बोलना अवश्य पड़े, न बोलने से शंका की जाये, वहाँ सत्य की जगह असत्य बोलना अधिक कल्याणकारी है

ऐसा विद्वानों ने विचार पूर्वक निश्चय किया है। यदि पापियों के सामने शपथ खा खाने से छुटकारा मिल जाये तो वैसा ही करे जहाँ तक सम्भव हो पापियों के हाथ में धन को न जाने दे, क्योंकि पापियों को दिया धन, देने वाले को भी पीड़ित करता है। प्रजा संकट के समय, विवाह के अवसर पर, धन की रक्षा और अपने तथा दूसरों के धर्म की रक्षा के लिये असत्य बोल देना चाहिये।

यः कश्चिद् धर्मसमयात् प्रच्युतो धर्मसाधनः।
दण्डेनैव स हन्तव्यस्तं पन्थानं समाश्रितः॥ १३॥
च्युतः सदैव धर्मेभ्योऽमानवं धर्ममास्थितः।
शठः स्वधर्ममुत्सृज्य तमिच्छेदुपजीवितुम्॥ १४॥
सर्वोपायैर्निहन्तव्यः पापो निकृतिजीवनः।
धनमित्येव पापानां सर्वेषामिह निश्चयः॥ १५॥
अविषह्या ह्यसम्भोज्या निकृत्या पतनं गताः।
निर्यज्ञास्तपसा हीना मा स्म तैः सह सङ्गमः॥ १६॥

यदि कोई धर्मपालक अधर्म मार्ग को ग्रहण कर ले, तो उसे अवश्य ही दण्ड देकर मार देना चाहिये। जो दुष्ट व्यक्ति धर्म से भ्रष्ट होकर सदा अमानव धर्म पर चलता है और अपने धर्म का परित्याग कर उस से ही अपनी जीविका चलाना चाहता है, तो उस कपट से जीवन निर्वाह करने वाले को सारे उपायों से मार देना चाहिये। सारे पापियों का उद्देश्य दूसरों के धन को लूटना ही होता है। ऐसे पापी जो छल कपट के गढ्डे में गिर चुके हैं, दूसरों के लिये असह्य हो जाते हैं, उनके साथ भोजन नहीं करना चाहिये। वे यज्ञ और तपस्या से भी रहित होते हैं, इसलिये इनका संग भी नहीं करना चाहिये।

न कश्चिदस्ति पापानां धर्म इत्येष निश्चयः।
तथागतं च यो हन्यान्नासौ पापेन लिप्यते॥ १७॥
स्वकर्मणा हतं हन्ति हत एव स हन्यते।
तेषु यः समयं कश्चित् कुर्वीत हतबुद्धिषु॥ १८॥
यथा काकाश्च गृध्राश्च तथैवोपधिजीविनः।
ऊर्ध्वं देहविमोक्षात् ते भवन्त्येतासु योनिषु॥ १९॥

यह निश्चित है कि पापियों का कोई धर्म नहीं होता। इसलिये ऐसे मनुष्यों को जो मार देता है, उसे कोई पाप नहीं लगता। पापी मनुष्य अपने ही कर्म से मारा हुआ होता है, इसलिये उसे जो मारता है, वह मरे हुए को ही मारता है। इन हत बुद्धि पापियों को मारने का कार्य कोई भी व्यक्ति कर सकता है। कपट से जीविका चलाने वाले ऐसे ही होते हैं जैसे कौए और गीध। इसलिये मरने पर वे इन्हीं योनियों में जन्म लेते हैं।

यस्मिन् यथा वर्तते यो मनुष्य-
स्तस्मिंस्तथा वर्तितव्यं स धर्मः।
मायाचारो मायया बाधितव्यः
साध्वाचारः साधुना प्रत्युपेयः॥ २०॥

जो मनुष्य जैसा व्यवहार करता है, उसके साथ वैसा ही व्यवहार करना धर्म है। इसलिये मायावी व्यक्ति को माया से ही वश में करना चाहिये और सज्जन व्यक्ति को सज्जनता के साथ अपनाना चाहिये।

युधिष्ठिर उवाच

क्लिश्यमानेषु भूतेषु तैस्तैर्भावैस्ततस्ततः।
दुर्गाण्यतितरेद् येन तन्मे ब्रूहि पितामह॥ २१॥

भीष्म उवाच

आश्रमेषु यथोक्तेषु यथोक्तं ये द्विजातयः।
वर्तन्ते संयतात्मानो दुर्गाण्यतितरन्ति ते॥ २२॥
ये दम्भान्नाचरन्ति स्म येषां वृत्तिश्च संयता।
विषयांश्च निगृह्णन्ति दुर्गाण्यतितरन्ति ते॥ २३॥
प्रत्याहुर्नोच्यमाना ये न हिंसन्ति च हिंसिताः।
प्रयच्छन्ति न याचन्ते दुर्गाण्यतितरन्ति ते॥ २४॥

तब युधिष्ठिर ने पूछा कि संसार में लोग तरह तरह की भावनाओं द्वारा तरह तरह के कष्ट उठा रहे हैं। हे पितामह! आप मुझे यह बताइये कि किन उपायों से इन दुखों से छुटकारा पाया जा सकता है। भीष्म जी ने उत्तर दिया कि जो शिक्षित लोग अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य, अपने मन को वश में करके चारों आश्रमों में बताये हुए धर्मों का उचित रूप से पालन करते हैं, वे इन दुखों से पार हो जाते हैं। जो दम्भ के अनुसार आचरण नहीं करते, अपनी जीविका को नियमानुसार चलाते हैं तथा विषयों की इच्छा को वश में रखते हैं, वे दुखों से पार हो जाते हैं। जो दूसरों द्वारा मृदु वचन सुनाने और निन्दा करने पर भी उन्हें उत्तर नहीं देते, दूसरे के द्वारा पीड़ित होने पर भी उसे पीड़ित नहीं करते, स्वयं देते हैं, पर दूसरों से माँगते नहीं हैं, वे भी दुखों से पार हो जाते हैं।

वासयन्त्यतिथीन् नित्यं नित्यं ये चानसूयकाः।
नित्यं स्वाध्यायशीलाश्च दुर्गाण्यतितरन्ति ते॥ २५॥

मातापित्रोश्च ये वृत्तिं वर्तन्ते धर्मकोविदाः।
ये वा पापं न कुर्वन्ति कर्मणा मनसा गिरा॥ २६॥
निक्षिप्तदण्डा भूतेषु दुर्गाण्यतितरन्ति ते।
ये न लोभान्नयन्त्यर्थान् राजानो रजसान्विताः॥ २७॥
विषयान् परिरक्षन्ति दुर्गाण्यतितरन्ति ते।

जो सदा घर पर आये अतिथि को ठहराते हैं, कभी किसी की निन्दा नहीं करते, सदा स्वाध्याय में लगे रहते हैं, ऐसे मनुष्य दुखों से पार हो जाते हैं। जो सदा माता और पिता की सेवा में लगे रहते हैं, जो धर्म के अच्छे जानकार हैं, जो मन वाणी और कर्म से पापों को नहीं करते, जिन्होंने प्राणियों के ऊपर दण्ड का प्रयोग करना छोड़ दिया है, वे भी दुखों से पार हो जाते हैं। जो राजा लोग रजो गुण से युक्त होकर और लोभ में पड़कर प्रजा के धन का अपहरण नहीं करते और अपने राज्य की रक्षा करते हैं, वे दुखों से पार उतर जाते हैं।

स्वेषु दारेषु वर्तन्ते न्यायवृत्तिमृतावृतौ॥ २८॥
अग्निहोत्रपराः सन्तो दुर्गाण्यतितरन्ति ते।
आहवेषु च ये शूरास्त्यक्त्वा मरणजं भयम्॥ २९॥
धर्मेण जयमिच्छन्ति दुर्गाण्यतितरन्ति ते।
ये वदन्तीह सत्यानि प्राणत्यागेऽप्युपस्थिते॥ ३०॥
प्रमाणभूता भूतानां दुर्गाण्यतितरन्ति ते।
कर्माण्यकुहकार्थानि येषां वाचश्च सूनृताः॥ ३१॥
येषामर्थाश्च सम्बद्धा दुर्गाण्यतितरन्ति ते।

जो गृहस्थ प्रतिदिन अग्निहोत्र करते और अपनी ही पत्नी के साथ ऋतु काल में धर्मानुकूल समागम करते हैं, वे भी दुखों से पार हो जाते हैं। जो शूरवीर मृत्यु के भय को छोड़कर युद्धक्षेत्र में धर्म के अनुसार विजय को पाना चाहते हैं, वे भी दुखों से छूट जाते हैं। जो व्यक्ति प्राणों पर संकट आने पर भी सत्यवादन ही करते हैं, जो प्राणियों के विश्वास पात्र होते हैं, वे भी दुखों से पार हो जाते हैं। जिनके शुभकर्म दिखावटी नहीं होते, जिनकी वाणी मधुर होती है, जिनका धन अच्छे कार्यों के लिये बँधा हुआ होता है, वे लोग भी दुखों से पार उतर जाते हैं।

ये तपश्च तपस्यन्ति कौमारब्रह्मचारिणः॥ ३२॥
विद्यावेदव्रतस्नाता दुर्गाण्यतितरन्ति ते।
ये च संशान्तरजसः संशान्ततमसश्च ये॥ ३३॥
सत्त्वे स्थिता महात्मानो दुर्गाण्यतितरन्ति ते।
येषां न कश्चित् त्रसति न त्रसन्ति हि कस्यचित्॥ ३४॥
येषामात्मसमो लोको दुर्गाण्यतितरन्ति ते।
परश्रिया न तप्यन्ति ये सन्तः पुरुषर्षभाः॥ ३५॥
ग्राम्यादर्थान्निवृत्ताश्च दुर्गाण्यतितरन्ति ते।

जो कुमारावस्था से ही ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए तपस्या को करते हैं, जो विद्या और वेदों के अध्ययन के व्रत को पूरा कर स्नातक हो जाते हैं, वे भी दुखों से पार उतर जाते हैं। जिन महात्माओं ने अपने हृदय में से रजो गुण और तमोगुण को शान्त कर दिया है और सत्वगुण में स्थित हो गये हैं, वे भी दुर्गम कष्टों को पार कर जाते हैं। जिनसे न तो कोई भयभीत होता है और न वे किसी को भयभीत करते हैं, जो सारे संसार को अपने जैसा समझते हैं, वे भी दुखों को पार उतर जाते हैं। जो दूसरों की सम्पत्ति देखकर दुखी नहीं होते, जो ग्राम्य विषय भोगों से परे हो गये हैं, वे पुरुषों में श्रेष्ठ सज्जन पुरुष दुखों से पार हो जाते हैं।

ये न मानित्वमिच्छन्ति मानयन्ति च ये परान्॥ ३६॥
मान्यमानान् नमस्यन्ति दुर्गाण्यतितरन्ति ते।
ये क्रोधं संनियच्छन्ति क्रुद्धान् संशमयन्ति च॥ ३७॥
न च कुप्यन्ति भूतानां दुर्गाण्यतितरन्ति ते।
यात्रार्थं भोजनं येषां संतानार्थं च मैथुनम्॥ ३८॥
वाक् सत्यवचनार्थाय दुर्गाण्यतितरन्ति ते
ईश्वरं सर्वभूतानां जगतः प्रभवाप्ययम्।
भक्ता नारायणं देवं दुर्गाण्यतितरन्ति ते॥ ३९॥

जो दूसरों से सम्मान नहीं चाहते, पर स्वयं दूसरों को सम्मान देते हैं, और सम्माननीय व्यक्तियों को नमस्कार करते हैं, वे संकटों से पार हो जाते हैं। जो अपने क्रोध को अपने वश में रखते हैं और क्रोधी व्यक्तियों को शान्त करते हैं, जो किसी भी प्राणी पर क्रोध नहीं करते, वे भी दुखों से पार हो जाते हैं। जो भोजन को स्वाद के लिये नहीं, अपितु जीवन यात्रा के लिये खाते हैं, जो विषय वासना की तृप्ति के लिये नहीं अपितु सन्तान की इच्छा से मैथुन करते हैं, जो केवल सत्य बोलने के लिये ही बोलते हैं, वे भी दुखों से पार उतर जाते हैं। परमात्मा सारे प्राणियों के स्वामी और जगत की उत्पत्ति के कारण हैं, यह मानते हुए जो भगवान् की भक्ति करते हैं, वे भी दुखों से पार उतर जाते हैं।

चौवनवाँ अध्याय : निन्दा सहने के लाभ।

युधिष्ठिर उवाच

विद्वान् मूर्खप्रगल्भेन मृदुतीक्ष्णेन भारत।
आक्रुश्यमानः सदसि कथं कुर्यादरिंदम॥ १॥

भीष्म उवाच

श्रूयतां पृथिवीपाल यथैषोऽर्थोऽनुगीयते।
सदा सुचेताः सहते नरस्येहाल्पमेधसः॥ २॥
टिट्टिभं तमुपेक्षेत वाशमानमिवातुरम्।
लोकविद्वेषमापन्नो निष्फलं प्रतिपद्यते॥ ३॥

युधिष्ठिर ने पूछा कि हे शत्रुओं को दमन करने वाले भारत! यदि विद्वान् का भरी सभा में किसी ढीठ, मूर्ख व्यक्ति द्वारा मधुर या तीखे वचनों से अपमान किया जाये, तो उसे क्या करना चाहिये? तब भीष्म जी ने कहा कि हे पृथिवी पाल! सुनो। इस विषय में जो बात कही जाती है, मैं उसे बताता हूँ। अच्छे हृदय वाला सज्जन व्यक्ति सदा इस संसार में कम बुद्धि वाले मनुष्य के कठोर वचनों को सहन करता है। सज्जन व्यक्ति को चाहिये कि वह कटु वचन बोलते हुए उस व्यक्ति की उसी प्रकार से उपेक्षा कर दे, जैसे बोलती हुई टिटहरी या टाँय टाँय करते हुए बीमार व्यक्ति की की जाती है। इससे वह लोगों का द्वेष पात्र हो जायेगा और उसके कार्य निष्फल होने लगेंगे।

इति संश्लाघते नित्यं तेन पापेन कर्मणा।
इदमुक्तो मया कश्चित् सम्मतो जनसंसदि॥ ४॥
स तत्र व्रीडितः शुष्को मृतकल्पोऽवतिष्ठते।
श्लाघन्नश्लाघनीयेन कर्मणा निरपत्रपः॥ ५॥
उपेक्षितव्यो यत्नेन तादृशः पुरुषाधमः।
यद् यद् ब्रूयादल्पमतिस्तत्तदस्य सहेद्बुधः॥ ६॥
प्राकृतो हि प्रशंसन् वा निन्दन् वा किं करिष्यति।
वने काक इवाबुद्धिर्वाशमानो निरर्थकम्॥ ७॥
यस्यावाच्यं न लोकेऽस्ति नाकार्यं चापि किंचन।
वाचं तेन न संदध्याच्छुचिः संश्लिष्टकर्मणा॥ ८॥

वह दुष्ट मनुष्य सज्जन व्यक्ति का अपमान कर, अपने उस पापकर्म के लिये दूसरों के आगे इस प्रकार अपनी प्रशंसा करता है कि देखो। मैंने लोगों की सभा में अमुक सम्मानित व्यक्ति से ऐसा कहा। तब वह शर्म के मारे गड़ गया, उसका मुख सूख गया, वह अधमरा सा होकर बैठा रहा। इस प्रकार निन्दनीय कर्म के लिये अपनी प्रशंसा करता हुआ, वह जरा भी लज्जित नहीं होता। ऐसे अधम व्यक्ति की यत्नपूर्वक उपेक्षा करनी चाहिये। वह मूर्ख व्यक्ति जो कुछ भी कहे, बुद्धिमान् व्यक्ति को उसे सहन कर लेना चाहिये। जैसे वन में कौआ व्यर्थ ही काँव काँव किया करता है, वैसे ही वह मूर्ख व्यक्ति निरर्थक बोलता रहता है। वह निम्न कोटिका व्यक्ति चाहे किसी की निन्दा करे या प्रशंसा, किसी का क्या कुछ कर सकता है? जिसके लिये इस संसार में कुछ भी कह देना और कुछ भी कर बैठना असम्भव नहीं है, ऐसे व्यक्ति से उस व्यक्ति को, जो अपने अच्छे कार्यों के कारण पवित्र हृदय माना जाता है, बात भी नहीं करनी चाहिये।

प्रत्यक्षं गुणवादी यः परोक्षे चापि निन्दकः।
स मानवः श्ववल्लोके नष्टलोकपरावरः॥ ९॥
तस्मात् प्राज्ञो नरः सद्यस्तादृशं पापचेतसम्।
वर्जयेत् साधुभिर्वर्ज्यं सारमेयामिषं यथा॥ १०॥
परिवादं ब्रुवाणो हि दुरात्मा वै महाजने।
प्रकाशयति दोषांस्तु सर्पः फणमिवोच्छ्रितम्॥ ११॥
तं स्वकर्माणि कुर्वाणं प्रतिकर्तुं य इच्छति।
भस्मकूट इवाबुद्धिः खरो रजसि सज्जति॥ १२॥

जो सामने तो बड़ाई और पीछे से निन्दा करता है, वह व्यक्ति संसार में कुत्ते के समान है। उसका यह लोक और परलोक दोनों नष्ट हो जाते हैं। इसलिये बुद्धिमान् व्यक्ति इस प्रकार के पापी हृदय व्यक्ति को तत्काल उसीप्रकार त्याग दे, जैसे साधु व्यक्तियों के लिये कुत्ते का माँस त्याज्य है। जिस प्रकार से साँप अपने फन को उठाकर दिखाता है, उसी प्रकार से जन समुदाय में निन्दा करता हुआ दुष्ट व्यक्ति लोगों के सामने अपनी ही बुराइयों को प्रकट करता है। उस परनिन्दारूप कार्य को करनेवाले से जो मूर्ख व्यक्ति बदला लेना चाहता है, वह राख में लेटनेवाले गदहे के समान अपने आपको बुराई से ही लपेटता है।

मनुष्यशालावृ- कमप्रशान्तं
जनापवादे सततं निविष्टम्।

मातङ्गमुन्मत्त- मिवोन्नदन्तं
त्यजेत तं श्वानमिवातिरौद्रम्॥ १३॥
अधीरजुष्टे पथि वर्तमानं
दमादपेतं विनयाच्च पापम्।
अरिव्रतं नित्यमभूतिकामं
धिगस्तु तं पापमतिं मनुष्यम्॥ १४॥

जो मनुष्य सदा लोगों की निन्दा में लगा रहता है, वह मनुष्य के शरीररूपी घर में रहनेवाला भेड़िया है। वह सदा अशान्त रहता है और मतवाले हाथी के समान चीत्कार करता रहता है या भयंकर कुत्ते के समान काटने को दौड़ता है। ऐसे व्यक्ति को सदा के लिये त्याग देना चाहिये। वह मूर्खों के रास्ते पर चलनेवाला है। वह इन्द्रियदमन और विनय से दूर है। उस पापी ने शत्रुता का व्रत ले रखा है और वह सदा दूसरों की अवनति चाहता है। ऐसे पापबुद्धिवाले मनुष्य को धिक्कार है।

प्रत्युच्यमानस्त्वभिभूय एभि–
र्निशाम्य मा भूस्त्वमथार्तरूपः।
उच्चस्य नीचेन हि सम्प्रयोगं
विगर्हयन्ति स्थिरबुद्धयो ये॥ १५॥
क्रुद्धो दशार्धेन हि ताडयेद् वा
स पांसुभिर्वा विकिरेत् तुषैर्वा।
विवृत्य दन्तांश्च विभीषयेद् वा
सिद्धं हि मूढे कुपिते नृशंसे॥ १६॥

यदि दुष्ट मनुष्य किसी की निन्दा करने लगे और उसे सुनकर सज्जन व्यक्ति उसे उत्तर देना चाहे तो उसे रोककर यह कहना चाहिये कि तुम दुखी मत होओ। स्थिर बुद्धि वाले लोग नीच आदमी के साथ ऊँचे आदमी की बराबरी को निन्दा के योग्य समझते हैं। क्योंकि नीच आदमी कुछ भी कर सकता है, वह क्रोध में भरकर थप्पड़ भी मार सकता है, वह मुख पर धूल या भूसी भी फेंक सकता है, वह दाँत बाहर निकाल कर डरा भी सकता है। उस क्रोध में भरे हुए मूर्ख और निर्दय व्यक्ति द्वारा सभी तरह के कार्य किये जा सकते हैं।

पचपनवाँ अध्याय : सेवकों के गुण, राजा द्वारा उनका उचित प्रयोग।

युधिष्ठिर उवाच

अभिषिक्तो हि यो राजा राष्ट्रस्थो मित्रसंवृतः।
ससुहृत्समुपेतो वा स कथं रञ्जयेत् प्रजाः॥ १॥
कीदृशाः संनिकर्षस्था भृत्याः सर्वगुणान्विताः।
कीदृशैः किं कुलीनैर्वा सह यात्रा विधीयते॥ २॥
न ह्येको भृत्यरहितो राजा भवति रक्षिता।
राज्यं चेदं जनः सर्वस्तत्कुलीनोऽभिकाङ्क्षति॥ ३॥

भीष्म उवाच

न च प्रशास्तुं राज्यं हि शक्यमेकेन भारत।
असहायवता तात नैवार्थाः केचिदप्युत॥ ४॥
लब्धुं लब्ध्वा ह्यपि सदा रक्षितुं भरतर्षभ।
यस्य भृत्यजनः सर्वो ज्ञानविज्ञानकोविदः॥ ५॥
हितैषी कुलजः स्निग्धः स राज्यफलमश्नुते।

युधिष्ठिर ने पूछा कि हे पितामह! जो राजा अपने देश के राज्य सिंहासन पर विद्यमान होकर अपने हितैषियों से सम्पन्न और मित्रों से भी घिरा हुआ है, वह अपनी प्रजा को कैसे प्रसन्न रखे? कैसे सर्व गुणों से सम्पन्न सेवक राजा के पास रहें और कैसे कुलीन सैनिकों के साथ राजा को युद्ध की यात्रा करनी चाहिये? भृत्यों से रहित अकेला राजा सुरक्षित नहीं रह सकता, क्योंकि उत्तम कुलों में उत्पन्न सभी राज्य की अभिलाषा करते हैं। तब भीष्म ने कहा कि हे भारत! अकेला व्यक्ति कोई भी राज्य पर शासन नहीं कर सकता। राज्य ही नहीं, बिना सहायकों के तो किसी भी वस्तु की प्राप्ति नहीं की जा सकती। यदि प्राप्ति हो भी जाये, तो हे भरत श्रेष्ठ! उसकी रक्षा करना कठिन हो जाता है। जिसके सारे सेवक ज्ञान और विज्ञान के जानकार, राजा के हितैषी, उत्तम कुल में उत्पन्न हुए और राजा के स्नेही होते हैं, वही विजय के फल को प्राप्त करता है।

मन्त्रिणो यस्य कुलजा असंहार्याः सहोषिताः॥ ६॥
नृपतेर्मतिदाः सन्तः सम्बन्धज्ञानकोविदाः।
अनागतविधातारः कालज्ञानविशारदाः॥ ७॥

अतिक्रान्तमशोचन्तः स राज्यफलमश्नुते।
समदुःखसुखा यस्य सहायाः प्रियकारिणः॥ ८॥
अर्थचिन्तापराः सत्याः स राज्यफलमश्नुते।
यस्य नार्तो जनपदः संनिकर्षगतः सदा॥ ९॥
अक्षुद्रः सत्पथालम्बी स राजा राज्यभाग्भवेत्।

जिस राजा के मन्त्री कुलीन, धन के लोभ में न पड़ने वाले, राजा के साथ ही रहने वाले, राजा को अच्छी सलाह देने वाले, सज्जन, पारस्परिक सम्बन्धों और बीती बातों पर शोक न करने वाले होते हैं, वह राजा ही राज्य के फल का भोग करता है। जिस राजा के सहायक सदा उसका प्रिय करने वाले, उसके सुख दुःख को अपना सुख दुख मानने वाले, उसके धन की वृद्धि के लिये चिन्ता करने वाले और सत्यवादी होते हैं, वही राजा राज्य के फल को प्राप्त करता है। जो राजा सदा अपने जनपद निवासियों के समीप रहता है, उससे जनता के लोग दुखी नहीं रहते। जो राजा छोटे विचारों वाला नहीं होता और सत्यमार्ग पर चलने वाला होता है, वही राजा राज्य के फल को भोगने वाला होता है।

कोशाख्यपटलं यस्य कोशवृद्धिकरैर्नरैः॥ १०॥
आप्तैस्तुष्टैश्च सततं चीयते स नृपोत्तमः।
कोष्ठागारमसंहार्यैराप्तैः संचयतत्परैः॥ ११॥
पात्रभूतैरलुब्धैश्च पाल्यमानं गुणी भवेत्।
व्यवहारश्च नगरे यस्य कर्मफलोदयः॥ १२॥
दृश्यते शंखलिखितः स धर्मफलभाङ् नृपः।
संगृहीतमनुष्यश्च यो राजा राजधर्मवित्॥ १३॥
षड्वर्गं प्रतिगृह्णाति स धर्मफलमश्नुते।

जिसके सेवक विश्वास पात्र, सन्तुष्ट, कोश की वृद्धि करने वाले होते हैं, कोशाध्यक्षों के द्वारा सदा कोश की वृद्धि होती रहती है, वही राजा श्रेष्ठ है। यदि राजा का खजाना, प्रलोभन से रहित, विश्वासपात्र, संग्रही, सुपात्र और तोड़े न जा सकने वाले कोशाध्यक्षों के द्वारा संरक्षित हो, तो वह राजा उन्नति करता है। जिसके नगर में कर्म के अनुसार फल प्राप्ति का निर्देश करने वाले, शंखमुनि के द्वारा लिखित ग्रन्थ के अनुसार न्यायव्यवहार होता है, वह राजा धर्म के फल का भागी होता है। जो राजा राजधर्म को जानता है, अपने यहाँ मनुष्यों का संग्रह करके रखता है और छः गुणों का उपयोग करता है, वह राजा भी धर्म के फल को प्राप्त करता है।

नापरीक्ष्य महीपालः सचिवं कर्तुमर्हति॥ १४॥
अकुलीननराकीर्णो न राजा सुखमेधते।
कुलजः प्राकृतो राज्ञा स्वकुलीनतया सदा॥ १५॥
न पापे कुरुते बुद्धिं भिद्यमानोऽप्यनागसि।
अकुलीनस्तु पुरुषः प्राकृतः साधुसंश्रयात्॥ १६॥
दुर्लभैश्वर्यतां प्राप्तो निन्दितः शत्रुतां व्रजेत्।

राजा बिना परीक्षा किये किसी को मन्त्री न बनाये। निम्न कुल के लोगों से घिरा हुआ राजा सुख को प्राप्त नहीं करता। उत्तम कुल में उत्पन्न हुआ व्यक्ति यदि कभी राजा द्वारा बिना अपराध तिरस्कृत भी हो जाये और दूसरे लोग उसे राजा के विरुद्ध करने का प्रयत्न करें, तो भी वह अपनी कुलीनता के कारण अपनी बुद्धि को पाप के मार्ग पर नहीं लगाता। किन्तु जो नीचे कुल का व्यक्ति होता है, वह साधु स्वभाव के राजा के आश्रय में रहता हुआ और उससे दुर्लभ ऐश्वर्यों का भोग करता हुआ भी यदि एक बार भी राजा से निन्दा को प्राप्त हो जाये तो उसका शत्रु बन जाता है।

कुलीनं शिक्षितं प्राज्ञं ज्ञानविज्ञानपारगम्॥ १७॥
सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञं सहिष्णुं देशजं तथा।
कृतज्ञं बलवन्तं च क्षान्तं दान्तं जितेन्द्रियम्॥ १८॥
अलुब्धं लब्धसंतुष्टं स्वामिमित्रबुभूषकम्।
सचिवं देशकालज्ञं सत्त्वसंग्रहणे रतम्॥ १९॥
सततं युक्तमनसं हितैषिणमतन्द्रितम्।
युक्तचारं स्वविषये संधिविग्रहकोविदम्॥ २०॥
राज्ञस्त्रिवर्गवेत्तारं पौरजानपदप्रियम्।
खातकव्यूहतत्त्वज्ञं बलहर्षणकोविदम्॥ २१॥
इङ्गिताकारतत्त्वज्ञं यात्राज्ञानविशारदम्।
हस्तिशिक्षासु तत्त्वज्ञमहंकारविवर्जितम्॥ २२॥
प्रगल्भं दक्षिणं दान्तं बलिनं युक्तकारिणम्।
चौक्षं चौक्षजनाकीर्णं सुमुखं सुखदर्शनम्॥ २३॥
नायकं नीतिकुशलं गुणचेष्टासमन्वितम्।
अस्तब्धं प्रश्रितं श्लक्ष्णं मृदुवादिनमेव च॥ २४॥
धीरं शूरं महर्द्धिं च देशकालोपपादकम्।

राजा को उसी व्यक्ति को मन्त्री बनाना चाहिये, जो उत्तम कुल में जन्मा, अच्छी शिक्षा प्राप्त, विद्वान्,

ज्ञान विज्ञान में कुशल, सारे शास्त्रों के तत्वों को जानने वाला, सहन शील, अपने देश में जन्मा, किये उपकार को मानने वाला, बलवान्, क्षमाशील, दमनशील, जितेन्द्रिय, लोभ से रहित, प्राप्त हुए पदार्थ से ही सन्तुष्ट, स्वामी और मित्र की उन्नति चाहने वाला, देशकाल को जानने वाला, वस्तुओं के संग्रह में लगा हुआ, सदा अपने मन को वश में रखने वाला, स्वामी का हितैषी, आलस्य से रहित, अपने राज्य में गुप्तचरों को लगाये रखने वाला, सन्धि और विग्रह में चतुर, राजा के तीनों वर्गों और धर्म, अर्थ और काम की उन्नति के उपाय जानने वाला, पुर और जनपद के निवासियों का प्यारा, खाई और सुरंग खुदवाने तथा व्यूह निर्माण की कला में कुशल, सेना का उत्साह बढ़ाने में चतुर, संकेतों और आकृति के आकार से ही मन की बात जानने में चतुर, शत्रु पर चढ़ाई करने के समय को पहचानने में प्रवीण, हाथियों की शिक्षा के रहस्य को जानने वाला, अहंकार से रहित, निर्भय, उदार, संयमी, बलवान् उचित कार्य करने वाला, शुद्ध हृदय और शुद्ध हृदय वाले लोगों से युक्त, प्रसन्न मुख, प्रिय दर्शन, नेतृत्वगुण वाला, नीति कुशल, श्रेष्ठ गुण और उत्तम चेष्टाओं से युक्त, उद्दण्डता रहित, विनयशील, स्नेही, मधुरभाषी, धैर्यवान्, शूरवीर, महान् ऐश्वर्य से युक्त और देश काल के अनुसार कार्य करने वाला हो।

सचिवं यः प्रकुरुते न चैनमवमन्यते॥ २५॥
तस्य विस्तीर्यते राज्यं ज्योत्स्ना ग्रहपतेरिव।
एतैरेव गुणैर्युक्तो राजा शास्त्रविशारदः॥ २६॥
एष्टव्यो धर्मपरमः प्रजापालनतत्परः।
धीरो मर्षी शुचिस्तीक्ष्णः काले पुरुषकारवित्॥ २७॥
शुश्रूषुः श्रुतवाञ्श्रोता ऊहापोहविशारदः।
मेधावी धारणायुक्तो यथान्यायोपपादकः॥ २८॥
दान्तः सदा प्रियाभाषी क्षमावांश्च विपर्यये।

जो ऐसे गुणवान् व्यक्ति को अपना मन्त्री बनाता है और उसका कभी अपमान नहीं करता है, उसका राज्य चन्द्रमा की चान्दनी के समान चारों तरफ फैल जाता है। राजा को भी इन्हीं गुणों से युक्त होना चाहिये। इनके अतिरिक्त उसे शास्त्रों का ज्ञान, धर्म परायण और प्रजा पालन में तत्पर होना चाहिये, राजा को धैर्यवान्, सहनशील, पवित्र हृदय, उचित समय पर तीक्ष्ण स्वभाव वाला, पौरुष को पहचानने वाला, दूसरों की बात सुनने का इच्छुक, शिक्षित, सेवा परायण और तर्क वितर्क में कुशल होना चाहिये। उसे मेधावी, धारण शक्ति से युक्त, यथोचित कार्य करने वाला, जितेन्द्रिय, सर्वदा मृदुभाषी और शत्रुओं को भी क्षमा करने वाला, होना चाहिये।

दानाच्छेदे स्वयंकारी श्रद्धालुः सुखदर्शनः॥ २९॥
आर्तहस्तप्रदो नित्यमाप्तामात्यो नये रतः।
नाहंवादी न निर्द्वन्द्वो न यत्किंचनकारकः॥ ३०॥
कृतेकर्मण्यमात्यानां कर्ता भृत्यजनप्रियः।
संगृहीतजनोऽस्तब्धः प्रसन्नवदनः सदा॥ ३१॥
सदा भृत्यजनापेक्षी न क्रोधी सुमहामनाः।
युक्तदण्डो न निर्दण्डो धर्मकार्यानुशासनः॥ ३२॥
चारनेत्रः प्रजावेक्षी धर्मार्थकुशलः सदा।

राजा को दान की परम्पर को न तोड़ते हुए, स्वयं दानी, श्रद्धालु, दर्शनमात्र से ही सुख देने वाला, दुखियों को सहारा देने वाला, विश्वसनीय मन्त्रियों से सर्वदा युक्त और नीतिपरायण होना चाहिये। वह अहंकारी न हो, द्वन्द्वों से प्रभावित न हो, जो मन में आ जाये, वही न करने लगे, मन्त्रियों के कार्य का समर्थन करने वाला और सेवकों का प्रिय होना चाहिये। वह लोगों का अपने पास संग्रह करे, जड़ता से रहित हो, सदा प्रसन्न मुख रहे, सदा अपने सेवकों का ध्यान रखे, क्रोधी न हो और विशाल हृदय वाला हो। दण्ड का प्रयोग न्याय के अनुसार करे, कभी दण्ड का त्याग न करे, धर्म के कार्य का उपदेश दे, गुप्तचर रूपी नेत्रों से राज्य की देखभाल रखे, प्रजा के हित का ध्यान रखे और धर्म तथा अर्थ के कार्य में कुशलता से लगा रहे।

राजा गुणशताकीर्ण एष्टव्यस्तादृशो भवेत्॥ ३३॥
योधाश्चैव मनुष्येन्द्र सर्वे गुणगणैर्वृताः।
अन्वेष्टव्याः सुपुरुषाः सहाया राज्यधारणे॥ ३४॥
न विमानयितव्यास्ते राज्ञा वृद्धिमभीप्सता।
योधाः समरशौटीराः कृतज्ञाः शस्त्रकोविदाः॥ ३५॥
धर्मशास्त्रसमायुक्ताः पदातिजनसंवृताः।
अभया गजपृष्ठस्था रथचर्याविशारदाः॥ ३६॥
इष्वस्त्रकुशला यस्य तस्येयं नृपतेर्मही।

जो राजा इस तरह के सैकड़ों गुणों से भरा हुआ होता है, वही प्रजा के लिये वाञ्छनीय होता है। हे राजन्! राज्य के सारे योद्धा भी इसी प्रकार गुणों से

युक्त होने चाहियें। राजा को ऐसे उत्तम पुरुषों की जो राज्य को धारण करने में सहायक हों, खोज करते रहना चाहिये। उन्नति को चाहने वाले राजा को कभी भी उनका अपमान नहीं करना चाहिये। जिस राजा के योद्धालोग युद्ध में चतुर, शस्त्र संचालन में कुशल, कृतज्ञ स्वभाव, धर्म शास्त्रों के अनुसार चलने वाले, पैदल सैनिकों से घिरे हुए, भय से रहित होकर हाथी की पीठ पर बैठने वाले, रथ पर बैठ कर युद्ध करने में कुशल और धनुर्विद्या में विशारद हों, उस राजा के अधिकार में यह सारी भूमि हो जाती है।

स्वजातिगुणसम्पन्नाः स्वेषु कर्मसु संस्थिताः॥ ३७॥
प्रकर्तव्या ह्यमात्यास्तु नास्थाने प्रक्रिया क्षमा।
अनुरूपाणि कर्माणि भृत्येभ्यो यः प्रयच्छति॥ ३८॥
स भृत्यगुणसम्पन्नो राजा फलमुपाश्नुते।
यः प्रमाणमतिक्रम्य प्रतिलोमं नराधिपः॥ ३९॥
भृत्यान् स्थापयतेऽबुद्धिर्न स रञ्जयते प्रजाः।
न बालिशा न च क्षुद्रा नाप्राज्ञा नाजितेन्द्रियाः॥ ४०॥
नाकुलीना नराः सर्वे स्थाप्या गुणगणैषिणा।

राजा को अपने आमात्यों को जो अपनी जाति के गुणों सम्पन्न हों और करने योग्य कार्य में लगे रहते हों, उनके योग्य कार्य में ही लगाना चाहिये, जो कार्य उनकी योग्यता से बाहर हो, उसमें उनको नहीं लगाना चाहिये। जो राजा अपने सेवकों को उनकी योग्यता के अनुसार ही कर्म सौंपता है, वह भृत्यों के गुणों से लाभ उठाता हुआ उत्तम फल को प्राप्त होता है। जो बुद्धिहीन राजा मर्यादा का उल्लंघन करके, अपने भृत्यों को उनकी योग्यता और सामर्थ्य के प्रतिकूल कार्यों में लगाता है, वह अपनी प्रजा को प्रसन्न नहीं कर सकता। उत्तम गुणों की इच्छा वाले राजा को चाहिये कि वह मूर्ख, नीच, बुद्धिहीन, अजितेन्द्रिय और निम्न कुल में जन्मे व्यक्तियों को कार्यों में न लगाये।

साधवः कुलजाः शूरा ज्ञानवन्तोऽनसूयकाः॥ ४१॥
अक्षुद्राः शुचयो दक्षाःस्युर्नराः पारिपार्श्वकाः।
न्यग्भूतास्तत्पराः शान्ताश्चौक्षाः प्रकृतिजैः शुभाः॥ ४२॥
स्वस्थानानपक्रुष्टा ये ते स्यू राज्ञां बहिश्चराः।
एवमेतन्मनुष्येन्द्र शूरैः प्राज्ञैर्बहुश्रुतैः॥ ४३॥
कुलीनैः सह शक्येत कृत्स्ना जेतुं वसुन्धरा।

जो व्यक्ति साधुस्वभाव, उत्तम कुल में उत्पन्न, शूरवीर, ज्ञानवान्, निन्दा न करने वाले, छोटे पन से रहित, पवित्र हृदय और कार्य दक्ष, हों, उन्हीं को राजा अपना पार्श्ववर्ती सेवक बनाये। जो विनीत, कार्य परायण, शान्त स्वभाव, चतुर, स्वाभाविक उत्तम गुणों से युक्त और अपने पद पर निन्दा से रहित हों, वे ही राजा के बाहरी सेवक होने के योग्य हैं। हे मनुष्येन्द्र! इस प्रकार शूरवीर, प्राज्ञ, विद्वान् और कुलीन पुरुषों के साथ रहकर ही सारी भूमि पर विजय प्राप्त की जा सकती है।

नाविद्यो नानृजुः पार्श्वे नाप्राज्ञो नामहाधनः॥ ४४॥
संग्राह्यो वसुधापालैर्भृत्यो भृत्यवतां वर।
बाणवद्विसृता यान्ति स्वामिकार्यपरा नराः॥ ४५॥
ये भृत्याः पार्थिवहितास्तेषां सान्त्वं प्रयोजयेत्।
वाजिनां च प्रयोगेषु वैशारद्यमिहेष्यते॥ ४६॥

हे भृत्यवालों में श्रेष्ठ! राजाओं को चाहिये कि वे अपने पास विद्या से रहित, सरलता हीन, मूर्ख और दरिद्र सेवकों का संग्रह न करे। जो लोग स्वामी के कार्य की पूर्ति के लिये तत्पर होकर, धनुष से छूटे बाण के समान तेजी से आगे बढ़ते हैं, जो सेवक राजा का हित करने में लगे रहते हैं, उन्हें राजा मधुर वचनों के द्वारा सान्त्वना देकर प्रोत्साहित करता रहे। तुम्हारे सारे सेवक सदा उद्योगशील और युद्धकला में कुशल हों। उन्हें घोड़ों की सवारी और उनसे काम लेने में भी विशारद होना चाहिये।

छप्पनवाँ अध्याय : राजधर्म का सार रूप में वर्णन।

युधिष्ठिर उवाच

तदेव विस्तरेणोक्तं पूर्वदृष्टं सतां मतम्।
प्रणेयं राजधर्माणां प्रब्रूहि भरतर्षभ॥ १॥

भीष्म उवाच

रक्षणं सर्वभूतानामिति क्षात्रं परं मतम्।
तद् यथा रक्षणं कुर्यात् तथा शृणु महीपते॥ २॥
यथा बर्हाणि चित्राणि बिभर्ति भुजगाशनः।
तथा बहुविधं राजा रूपं कुर्वीत धर्मवित्॥ ३॥
तैक्ष्ण्यं जिह्मत्वमादाल्भ्यं सत्यमार्जवमेव च।
मध्यस्थः सत्त्वमातिष्ठंस्तथा वै सुखमृच्छति॥ ४॥

युधिष्ठिर ने कहा कि हे भरतश्रेष्ठ! आपने सज्जनों द्वारा माने और पूर्वपुरुषों द्वारा आचरित जिस राजधर्म का विस्तार से वर्णन किया है, अब उसी का संक्षेप में वर्णन कीजिये। तब भीष्म जी ने कहा कि क्षत्रियों के लिये सबसे परम धर्म यही है कि वह प्रजाओं की रक्षा करे। हे राजन्! पर वह रक्षा कैसे की जाये यह तुम सुनो। जैसे साँपों को खाने वाला मोर विचित्र प्रकार के पंखों को धारण करता है, वैसे ही धर्मज्ञ राजा को प्रजा की रक्षा के लिये समय समय पर अनेक प्रकार के रूप प्रकट करने चाहियें। राजा को चाहिये कि वह मध्यस्थ के रूप में रहते हुए तीक्ष्णता, कुटिलता, अभयदान, सत्य, सरलता और श्रेष्ठभाव के रूपों को धारण करे। ऐसा करने से ही वह सुख को प्राप्त होता है।

यस्मिन्नर्थे हितं यत् स्यात् तद्वर्णं रूपमादिशेत्।
बहुरूपस्य राज्ञो हि सूक्ष्मोऽप्यर्थो न सीदति॥ ५॥
नित्यं रक्षितमन्त्रः स्याद् यथा मूकः शरच्छिखी।
श्लक्ष्णाक्षरतनुः श्रीमान् भवेच्छास्त्रविशारदः॥ ६॥
आपद्द्वारेषु युक्तः स्याज्जलप्रस्रवणेष्विव।
अर्थकामः शिखां राजा कुर्याद्धर्मध्वजोपमाम्॥ ७॥
नित्यमुद्यतदण्डः स्यादाचरेदप्रमादतः।
लोके चायव्ययौ दृष्ट्वा बृहद्वृक्षमिवास्रवेत्॥ ८॥

जिस कार्य में जो हितकारी हो, वह उसी तरह के रूप को धारण करले। अनेक प्रकार के रूप धारण करने वाले राजा का छोटा सा कार्य भी नहीं बिगड़ता। जैसे शरद ऋतु में मोर बोलता नहीं, वैसे राजा को मौन रह कर अपनी मन्त्रणा को सुरक्षित रखना चाहिये। उसे मधुर भाषी और सौम्यस्वरूप होना चाहिये। वह ऐश्वर्य से युक्त और शास्त्रों के ज्ञान से सम्पन्न होना चाहिये। जैसे बाढ़ के पानी को रोकने के लिये बाँध बना दिया जाता है, वैसे ही जिन द्वारों से आपत्ति के आने की सम्भावना हो, उन्हें बन्द करने के लिये राजा को सावधान रहना चाहिये। जैसे धर्म का ढोंगी अपने सिर पर जटा धारण किये रहता है, वैसे ही राजा को अपना कार्य पूरा करने के लिये, उच्च लक्षणों को धारण करना चाहिये। अपराधियों को दण्ड देने के लिये राजा सदा उद्यत रहे, अपने कार्यों को बिना प्रमाद के सावधानी से करे। लोगों के आय और व्यय को देखकर ताड़ के वृक्ष से रस निकालने के समान उनसे धन का संग्रह करे।

मृजावान् स्यात् स्वयूथ्येषु भौमानि चरणैः क्षिपेत्।
जातपक्षः परिस्पन्देत् प्रेक्षेद् वैकल्यमात्मनः॥ ९॥
दोषान् विवृणुयाच्छत्रोः परपक्षान् विधूनयेत्।
काननेष्विव पुष्पाणि बहिरर्थान् समाचरन्॥ १०॥
उच्छ्रितान् नाशयेत् स्फीतान् नरेन्द्रानचलोपमान्।
श्रयेच्छायामविज्ञातां गुप्तं रणमुपाश्रयेत्॥ ११॥
न जह्याच्च तनुत्राणं रक्षेदात्मानमात्मना।
चारभूमिष्वभिगतान् पाशांश्च परिवर्जयेत्॥ १२॥

राजा अपने पक्ष के लोगों के प्रति विशुद्ध व्यवहार करे, शत्रु की फसलों को पैरों से कुचलवा दे, जब अपना पक्ष प्रबल हो, तभी आक्रमण करे और अपनी दुर्बलता पर भी निगाह रखे। वह शत्रु के दोषों का प्रचार करे और उसके पक्ष के लोगों को अपने पक्ष में आने के लिये विचलित कर दे। जैसे लोग वन में से फूल चुनते हैं, वैसे ही वह बाहर से धन एकत्र करे। जो अपने समृद्धिशाली शत्रु पर्वत के समान सिर ऊँचा किये विद्यमान हों, उन्हें नष्ट कर दे। बिना उनकी जानकारी में आये उनकी छाया का आश्रय ले अर्थात् उनके सरदारों से मिल कर उनमें फूट डाल दे। वह गुप्त रूप से मौका देखकर, उनके साथ युद्ध छेड़ दे। राजा को चाहिये कि वह अपने कवच को कभी न उतारे, अपने शरीर की रक्षा स्वयं करे, घूमने फिरने के स्थानों पर शत्रुओं ने जो जाल बिछाये हों, उनका निवारण करे।

प्रणयेद् वापि तां भूमिं प्रणश्येद् गहने पुनः।
हन्यात्क्रुद्धानतिविषांस्तान् जिह्मगतयोऽहितान्॥ १३॥
नाशयेद् बलबर्हाणि संनिवासान् निवासयेत्।
सर्वतश्चाददेत् प्रज्ञां पतङ्गं गहनेष्विव॥ १४॥
आत्मसंयमनं बुद्ध्या परबुद्ध्यावधारणम्।
बुद्ध्या चात्मगुणप्राप्तिरेतच्छास्त्रनिदर्शनम्॥ १५॥
परं विश्वासयेत् साम्ना स्वशक्तिं चोपलक्षयेत्।
आत्मनः परिमर्शेन बुद्धिं बुद्ध्या विचारयेत्॥ १६॥

अथवा उचित समझे तो जहाँ शत्रु का जाल बिछा हो, वहाँ भी अपने को ले जाये और संकट की सम्भावना होने पर घने वन में छिप जाये, जो कुटिल चाल चलने वाले हों, उन क्रोध में भरे शत्रुओं को अत्यन्त विषैले सर्पों के समान समझ कर मार डाले। राजा शत्रु की सेना के पंख काट दे और अच्छे व्यक्तियों को अपने पास बसाये तथा ज्ञान की प्राप्ति सब लोगों से करे। जैसे टिड्डी दल सारे वन को नष्ट कर देता है, वैसे ही सहसा आक्रमण कर शत्रु के सर्वस्व को नष्ट कर दे। अपने मन पर काबू अपनी ही बुद्धि से किया जा सकता है, उसी प्रकार दूसरों की बुद्धि से कर्त्तव्य का निर्धारण होता है तथा शास्त्रीय बुद्धि से आत्मगुण की प्राप्ति होती है, यह शास्त्रों का मत है। राजा को चाहिये कि सान्त्वना द्वारा दूसरों को अपने विश्वास में ले और अपनी शक्ति का भी प्रदर्शन करे। वह अपने विचार और बुद्धि से कर्त्तव्य का निश्चय करे।

सान्त्वयोगमतिः प्राज्ञः कार्याकार्यप्रयोजकः।
निगूढबुद्धेर्धीरस्य वक्तव्ये वा कृतं तथा॥ १७॥
स निकृष्टां कथां प्राज्ञो यदि बुद्ध्याबृहस्पतिः।
स्वभावमेष्यते तप्तं कृष्णायसमिवोदके॥ १८॥
मृदुशीलं तथा प्राज्ञं शूरं चार्थविधानवित्।
स्वकर्मणि नियुञ्जीत ये चान्ये च बलाधिकाः॥ १९॥
अथ दृष्ट्वा नियुक्तानि स्वानुरूपेषु कर्मसु।
सर्वांस्ताननुवर्तेत स्वरांस्तन्त्रीरिवायता॥ २०॥

राजा में सान्त्वना द्वारा समझा बुझाकर कार्य निकालने की बुद्धि होनी चाहिये, उसे बुद्धिमान् तथा दूसरों को कर्त्तव्य, अकर्त्तव्य की प्रेरणा देने वाला होना चाहिये। जिस राजा की बुद्धि गहरी है और जो धैर्यवान् है, उसे कार्य करने के बारे में उपदेश देने की क्या आवश्यकता है? बुद्धि में बृहस्पति के समान चतुर राजा भी यदि कोई निम्न कोटि की बात कह बैठे, तो जैसे गर्म लोहा पानी में डालने पर ठंडा हो जाता है, वैसे ही वह पुनः अपने शान्त स्वभाव को धारण कर ले। कार्य पूर्ति के विधान को जानने वाले राजा को चाहिये कि वह अपने कार्य में कोमल स्वभाव वाले, विद्वान्, शूरवीर और अधिक बलवान् व्यक्तियों को लगाये। जैसे वीणा में से तरह तरह के स्वर निकलते हैं वैसे ही राजा को अपने अपने कार्यों में लगे हुए लोगों को देखकर उन्हें उनके अनुरूप कार्यों में ही लगाना चाहिये।

धर्माणामविरोधेन सर्वेषां प्रियमाचरेत्।
ममायमिति राजा यः स पर्वत इवाचलः॥ २१॥
व्यवसायं समाधाय सूर्यो रश्मीनिवायतान्।
धर्ममेवाभिरक्षेत कृत्वा तुल्ये प्रियाप्रिये॥ २२॥
कुलप्रकृतिदेशानां धर्मज्ञान् मृदुभाषिणः।
मध्ये वयसि निर्दोषान् हिते युक्तानविक्लवान्॥ २३॥
अलुब्धाञ्शिक्षितान् दान्तान् धर्मेषु परिनिष्ठितान्।
स्थापयेत् सर्वकार्येषु राजा धर्मार्थरक्षिणः॥ २४॥

राजा धर्म में रुकावट न लाते हुए, सबका प्रिय करे। जो राजा प्रजा के लोगों को यह समझ कर कि ये मेरे ही हैं, उनके साथ व्यवहार करता है, वह पर्वत के समान अचल रहता है। जैसे सूर्य अपनी किरणों को फैलाकर सबकी रक्षा करते हैं, वैसे ही राजा दृढ़ उद्योग का आश्रय लेकर अपने प्रिय और अप्रिय दोनों प्रकार के लोगों को समान समझकर धर्म की ही रक्षा करे। जो लोग कुल स्वभाव और देश के धर्म को जानते हों, मधुर भाषी हों, जो युवावस्था में दोष रहित रहे हों, जो राजा की भलाई में लगे हुए और घबराहट से रहित हों, जो लोभ से रहित, शिक्षित, जितेन्द्रिय, धर्म का पालन करने वाले, और धर्म तथा अर्थ की रक्षा करनेवाले हों, उन्हीं को राजा को सारे कार्यों में लगाना चाहिये।

एतेन च प्रकारेण कृत्यानामागतिं गतिम्।
युक्तः समनुतिष्ठेत तुष्टश्चारैरुपस्कृतः॥ २५॥
अमोघक्रोधहर्षस्य स्वयं कृत्यान्ववेक्षितुः।
आत्मप्रत्ययकोशस्य वसुदैव वसुन्धरा॥ २६॥
व्यक्तश्चानुग्रहो यस्य यथार्थश्चापि निग्रहः।
गुप्तात्मा गुप्तराष्ट्रश्च स राजा राजधर्मवित्॥ २७॥
नित्यं राष्ट्रमवेक्षेत तथा बुद्ध्या स्वयं चरेत्।

इस प्रकार राजा सावधानीपूर्वक सभी कार्यों का आरम्भ और समाप्ति करे। वह मन में सन्तोष रखे और गुप्तचरों की सहायता से राज्य के समाचार जानता रहे। जिसका हर्ष और क्रोध कभी निष्फल नहीं होता, जो अपने कार्य को करके स्वयं उसका निरीक्षण करता है, आत्मविश्वास ही जिसकी सम्पत्ति है, उस राजा के लिये यह वसुन्धरा ही धन देने वाली हो जाती है। जिसका अनुग्रह सब पर प्रकट है, और जिसका दण्ड देना भी यथार्थ कारण से होता है, जो अपनी और अपने राज्य की रक्षा करता है, वह राजा राजधर्म को जानता है। राजा को चाहिये कि वह सदा अपने राष्ट्र की जनता पर निगाह रखे और अपनी बुद्धि से सोच विचार कर कार्य करे।

कालं प्राप्तमुपादद्यान्नार्थं राजा प्रसूचयेत्॥ २८॥
अहन्यहनि संदुह्यान्महीं गामिव बुद्धिमान्।
यथा क्रमेण पुष्पेभ्यश्चिनोति मधु षट्पदः॥ २९॥
तथा द्रव्यमुपादाय राजा कुर्वीत संचयम्।
यद्धि गुप्तावशिष्टं स्यात् तद्वित्तं धर्मकामयोः॥ ३०॥
संचयान्न विसर्गी स्याद् राजा शास्त्रविदात्मवान्।
नार्थमल्पं परिभवेन्नावमन्येत शात्रवान्।
बुद्ध्या तु बुद्ध्येदात्मानं न चाबुद्धिषु विश्वसेत्॥ ३१॥

बुद्धिमान् राजा समय आने पर प्रजा से धन एकत्र करे। वह अपनी धनसंग्रह की नीति किसी को सूचित न करे। जैसे गाय की रक्षा करते हुए उससे दूध दुहा जाता है, वैसे ही भूमि का पालन करते हुए उससे धन का दोहन करे। जैसे मधुमक्खी क्रम क्रम से फूलों से रस ग्रहण करके मधु तैयार करती है, वैसे ही राजा को लोगों से थोड़ा धन लेकर उसे एकत्र करना चाहिये। जो धन राज्य की रक्षा करने से बच रहे, उसी को धर्म और काम में लगाना चाहिये। आत्मसंयसी और शास्त्रज्ञ राजा को चाहिये कि वह कोषागार से धन लेकर व्यय न करे। थोड़ी धन प्राप्ति का भी तिरस्कार न करे, शत्रु के शक्ति हीन होने पर भी उसकी अवहेलना न करे, अपनी बुद्धि से अपनी स्थिति को समझे और बुद्धि हीन लोगों पर विश्वास न करे।

धृतिर्दाक्ष्यं संयमो बुद्धिरात्मा
धैर्यं शौर्यं देशकालाप्रमादः।
अल्पस्य वा बहुनो वा विवृद्धौ
धनस्यैतान्यष्ट समिन्धनानि॥ ३२॥

अग्निः स्तोको वर्धतेऽप्याज्यसिक्तो
बीजं चैकं रोहसहस्रमेति।
आयव्ययौ विपुलौ संनिशाम्य
तस्मादल्पं नावमन्येत वित्तम्॥ ३३॥

धारण शक्ति, चतुराई, संयम, बुद्धि, अपना शरीर, धैर्य, वीरता और देश काल की स्थिति से प्रमाद न करना, ये गुण थोड़े से धन को भी बहुत अधिक करने के लिये ईंधन के समान हैं। थोड़ी सी अग्नि भी घी से सींचे जाने पर विशाल रूप हो जाती है, एक बीज बोया जाकर हजारों की संख्या में हो जाता है, उसी प्रकार महान् आय और व्यय का विचार कर थोड़े से धन का भी तिरस्कार न करे।

बालोऽप्यबालः स्थविरो रिपुर्यः
सदा प्रमत्तं पुरुषं निहन्यात्।
कालेनान्यस्तस्य मूलं हरेत
कालज्ञाता पार्थिवानां वरिष्ठः॥ ३४॥
हरेत् कीर्तिं धर्ममस्योपरुन्ध्या–
दर्थे दीर्घं वीर्यमस्योपहन्यात्।
रिपुर्द्वेष्टा दुर्बलो वा बली वा
तस्माच्छत्रोर्नैव हीयेद् यतात्मा॥ ३५॥

चाहे शत्रु बच्चा, जवान और बूढ़ा ही क्यों न हो, वह सावधान न रहने वाले मनुष्य का नाश कर सकता है। दूसरा कोई और शत्रु उचित अवसर प्राप्त कर राजा की जड़ उखाड़ सकता है, इसलिये राजाओं में वही श्रेष्ठ है, जो समय को पहचानता हो। द्वेष करने वाला शत्रु चाहे निर्बल हो या बलवान्, उसकी कीर्ति को हर लेता है, उसके धर्मकार्य में रुकावट खड़ी कर देता है और अर्थोपार्जन में उसकी बढ़ी हुई शक्ति को नष्ट कर देता है। इसलिये अपने मन को वश में रखने वाले राजा को शत्रु की तरफ से लापरवाह नहीं होना चाहिये।

क्षयं वृद्धिं पालनं संचयं वा
बुद्ध्वाप्युभौ संहतौ सर्वकामौ।
ततश्चान्यन्मतिमान् संदधीत
तस्माद् राजा बुद्धिमत्तां श्रयेत॥ ३६॥
बुद्धिर्दीप्ता बलवन्तं हिनस्ति
बलं बुद्ध्या पाल्यते वर्धमानम्।
शत्रुर्बुद्ध्या सीदते वर्धमानो
बुद्धेः पश्चात् कर्म यत्तत् प्रशस्तम्॥ ३७॥

अपनी हानि लाभ, रक्षा और संग्रह को समझकर तथा उससे सम्बन्धित ऐश्वर्य और कामनाओं को भी जान कर, उसके पश्चात् मतिमान् राजा को शत्रुओं के साथ सन्धि करनी चाहिये और उसके लिये बुद्धिमानों का सहारा लेना चाहिये। बढ़ी हुई बुद्धि बलवान् को भी हरा देती है। बुद्धि के द्वारा पाला हुआ बल वृद्धि को प्राप्त होता है। बुद्धि के द्वारा बढ़ता हुआ शत्रु भी कष्ट उठाने लगता है। बुद्धि के अनुसार जो काम किया जाता है, वह उत्तम होता है।

सर्वान् कामान् कामयानो हि धीरः
सत्त्वेनाल्पेनाप्नुते हीनदोषः।
यश्चात्मानं प्रार्थयतेऽर्थ्यमानैः
श्रेयः पात्रं पूरयते च नाल्पम्॥ ३८॥
तस्माद् राजा प्रगृहीतः प्रजासु
मूलं लक्ष्म्याः सर्वशो ह्याददीत।
दीर्घं कालं ह्यपि सम्पीड्यमानो
विद्युत्सम्पातमपि वा नोर्जितः स्यात्॥ ३९॥

दोषों से रहित और धैर्यवान् राजा यदि कोई कामना करे, तो वह थोड़े प्रयत्न से ही अपनी सारी कामनाओं को प्राप्त कर लेता है, किन्तु जो राजा देने वालों से अपने लिये कुछ माँगता है, वह लोभी अपने श्रेय का थोड़ा सा भी पात्र नहीं भर सकता। इसलिये राजा को चाहिये कि सारी प्रजा पर अनुग्रह करते हुए उनसे लक्ष्मी के मुख्य आधार कर को ग्रहण करे। वह लम्बे समय तक प्रजा को पीड़ित करता हुआ, बिजली के गिरने के समान उन्हें सता कर अपना प्रभाव न दिखाये।

विद्या तपो वा विपुलं धनं वा
सर्वं ह्येतद् व्यवसायेन शक्यम्।
बुद्ध्यायत्तं तन्निवसेद् देहवत्सु
तस्माद् विद्याद् व्यवसायं प्रभूतम्॥ ४०॥
धनं भोगं पुत्रदारं समृद्धिं
सर्वं लुब्धः प्रार्थयते परेषाम्।
लुब्धे दोषाः सम्भवन्तीह सर्वे
तस्माद् राजा न प्रगृह्णीत लुब्धम्॥ ४१॥

विद्या, तप, विपुल धन, ये सारे उद्योग के द्वारा ही प्राप्त हो सकते हैं। यह उद्योग सारे प्राणियों में बुद्धि के आधीन हो कर रहता है। इसलिये उद्योग को ही जीवन में प्रमुख समझना चाहिये। लोभी व्यक्ति दूसरों की सम्पत्ति, भोग सामग्री, स्त्री पुत्र और समृद्धि सबकुछ लेना चाहता है। लोभी व्यक्ति में सारे दोष होते हैं। इसलिये राजा को लोभी व्यक्ति को अपने यहाँ नहीं रखना चाहिये।

सत्तावनवाँ अध्याय : शील का महत्व।

युधिष्ठिर उवाच

इमे जना नरश्रेष्ठ प्रशंसन्ति सदा भुवि।
धर्मस्य शीलमेवादौ ततो मे संशयो महान्॥ १॥
कथं तत् प्राप्यते शीलं श्रोतुमिच्छामि भारत।
किं लक्षणं च तत् प्रोक्तं ब्रूहि मे वदतां वर॥ २॥

भीष्म उवाच

शीलेन हि त्रयो लोकाः शक्या जेतुं न संशयः।
न हि किंचिदसाध्यं वै लोके शीलवतां भवेत्॥ ३॥
अद्रोहः सर्वभूतेषु कर्मणा मनसा गिरा।
अनुग्रहश्च दानं च शीलमेतत् प्रशस्यते॥ ४॥

तब युधिष्ठिर ने यह पूछा कि हे नरश्रेष्ठ! संसार के ये सारे व्यक्ति सर्व प्रथम धर्म के अनुसार शील स्वभाव की ही प्रशंसा करते हैं। इस विषय में मुझे बड़ा सन्देह है। हे वक्ताओं में श्रेष्ठ भारत! इस शील स्वभाव की प्राप्ति कैसे होती है? इसके लक्षण क्या बताये गये हैं? यह मैं सुनना चाहता हूँ। आप मुझे इसके विषय में बताइये। तब भीष्म जी ने उत्तर दिया कि इसमें सन्देह नहीं है कि शील स्वभाव से तीनों लोक जीते जा सकते हैं। शीलवानों के लिये संसार में कुछ भी असाध्य नहीं है। सारे प्राणियों में किसी से भी मन, वाणी और कर्म से द्रोह न करना, सबके प्रति दयाभाव रखना और दान देना यह सब शील कहलाता है। इसकी सब लोग प्रशंसा करते हैं।

यदन्येषां हितं न स्यादात्मनः कर्म पौरुषम्।
अपत्रपेत वा येन न तत् कुर्यात् कथंचन॥ ५॥
तत्तु कर्म तथा कुर्याद् येन श्लाघ्येत संसदि।
शीलं समासेनैतत् ते कथितं कुरुसत्तम॥ ६॥

यद्यप्यशीला नृपते प्राप्नुवन्ति श्रियं क्वचित्।
न भुञ्जते चिरं तात समूलाश्च न सन्ति ते॥ ७॥

अपना जो भी कर्म या पुरुषार्थ दूसरों के लिये हितकारी न हो, जिसे करने में संकोच होता हो, उस कार्य को किसी प्रकार भी नहीं करना चाहिये। जिस कार्य को जिस प्रकार करने से सज्जनों की सभा में प्रशंसा की जाये, उसे उसी प्रकार से करना चाहिये। हे कुरुश्रेष्ठ! यह तुम्हें संक्षेप में शील का स्वरूप बताया है। हे राजन्! यद्यपि जो शीलवान् नहीं होते, वे भी कभी कभी ऐश्वर्य को प्राप्त कर लेते हैं, पर हे तात! वे उसका भोग देर तक नहीं कर पाते और जड़ सहित नष्ट हो जाते हैं।

अठ्ठावनवाँ अध्याय : आपत्ति के समय राजधर्म।

युधिष्ठिर उवाच

मित्रैः प्रहीयमाणस्य बह्वमित्रस्य का गतिः।
राज्ञः संक्षीणकोशस्य बलहीनस्य भारत॥ १॥

भीष्म उवाच

राज्ञः कोशक्षयादेव जायते बलसंक्षयः।
कोशं च जनयेद् राजा निर्जलेभ्यो यथा जलम्॥ २॥
कालं प्राप्यानुगृह्णीयादेष धर्मः सनातनः।
उपायधर्मं प्राप्येमं पूर्वैराचरितं जनैः॥ ३॥
अन्यो धर्मः समर्थानामापत्स्वन्यश्च भारत।
प्राक्कोशात् प्राप्यते धर्मो वृत्तिर्धर्माद् गरीयसी॥ ४॥

फिर युधिष्ठिर ने पूछा कि जब राजा के शत्रु अधिक हो जायें, मित्र उसका त्याग करने लगें, उसकी सेना क्षीण हो जाये तथा खजाना भी खत्म हो जाये तो हे भारत! उसे क्या करना चाहिये? भीष्म जी ने उत्तर दिया कि खजाने के नष्ट होने से राजा की शक्ति का नाश होता है, इसलिये जैसे जलरहित स्थान को भी खोदकर वहाँ से जल निकाला जाता है। वैसे ही राजा को संकटकाल में किसी न किसी प्रकार से प्रजा से धन एकत्र करना चाहिये। फिर अच्छा समय आने पर राजा को प्रजा पर अनुग्रह करना चाहिये, यही सनातन धर्म है। पूर्ववर्ती राजाओं ने आपत्ति के समय इसी उपाय का आचरण किया है। हे भारत! जो सामर्थ्यशाली पुरुष होते हैं, उनका धर्म दूसरा होता है, पर जो संकट में पड़े हुए होते हैं, उनका धर्म दूसरा होता है। पहले धन को एकत्र कर लेने पर ही राजा धर्म का पालन कर सकता है, इसलिये जीविका निर्वाह करने का साधन प्राप्त करना धर्म पालन करने से बढ़ कर है।

धर्मं प्राप्य न्यायवृत्तिं न बलीयान् न विन्दति।
यस्माद् बलस्योपपत्तिरेकान्तेन न विद्यते॥ ५॥
तस्मादापत्स्वधर्मोऽपि श्रूयते धर्मलक्षणः।
अनन्तरं क्षत्रियस्य तत्र किं विचिकित्स्यते॥ ६॥
यथास्य धर्मो न ग्लायेन्नेयाच्छत्रुवशं यथा।
तत् कर्तव्यमिहेत्याहुर्नात्मानमवसादयेत्॥ ७॥
सर्वात्मनैव धर्मस्य न परस्य न चात्मनः।
सर्वोपायैरुज्जिहीर्षेदात्मानमिति निश्चयः॥ ८॥

दुर्बल व्यक्ति धर्म का पालन करने पर भी न्यायोचित आजीविका को नहीं प्राप्त कर सकता। धर्मका आचरण करने से बल की प्राप्ति अवश्य हो जायेगी, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। इसलिये आपत्तिकाल में अधर्म का आश्रय भी धर्म का आश्रय कहा गया है। आपत्ति दूर हो जाने पर क्षत्रिय को क्या करना चाहिये? यह विचारणीय प्रश्न है। इस विषय में लोगों ने कहा है कि उसे ऐसा कर्म करना चाहिये, जिससे न तो उसका धर्म नष्ट हो पर साथ ही वह शत्रुओं के आधीन भी न हो। किसी प्रकार भी वह अपने आपको संकट में न डाले। संकटकाल में उसे न तो अपने धर्म को देखना चाहिये और न दूसरे के धर्म को अपितु सब तरह से अपना बचाव करना चाहिये। यही सबका निश्चय है।

क्षत्रियो वृत्तिसंरोधे कस्य नादातुमर्हति।
अन्यत्र तापसस्वाच्च ब्राह्मणस्वाच्च भारत॥ ९॥
यथा वै ब्राह्मणः सीदन्नयाज्यमपि याजयेत्।
अभोज्यान्नानि चाश्नीयात् तथेदं नात्र संशयः॥ १०॥
पीडितस्य किमद्वारमुत्पथो विधृतस्य च।
अद्वारतः प्रद्रवति यदा भवति पीडितः॥ ११॥
स्वधर्मानन्तरा वृत्तिर्जात्यानुपजीवतः।
जहतः प्रथमं कल्पमनुकल्पेन जीवनम्॥ १२॥

आजीविका के नष्ट होने पर हे भारत! क्षत्रिय, ब्राह्मण और तपस्वी के धन को छोड़कर किसका

धन नहीं ले सकता है? जैसे ब्राह्मण आजीविका के अभाव में अनधिकारी से भी यज्ञ करा सकता है और न खानेयोग्य अन्न को भी खा सकता है, वैसे ही क्षत्रिय को भी उपर्युक्त कर्म कर लेने चाहियें, इसमें संशय नहीं है। आपत्ति में पड़े मनुष्य लिये कौन सा द्वार नहीं है? जैसे कैदी चाहे जिस तरीके से भाग निकलता है, वैसे ही आपत्तिग्रस्त व्यक्ति बिना रास्ते के भी आपत्ति से निकलने का प्रयत्न कर सकता है। जब व्यक्ति अपनी जाति के धर्म का आचरणकर जीवननिर्वाह न कर सके तो उसके लिये धर्म से विपरीत वृत्ति को भी स्वीकार्य बताया गया है। अपने निश्चित धर्म का त्याग करनेवाले के लिये, अपने से नीचे वर्णवालों की वृत्ति को आपत्तिकाल में स्वीकार करने का विधान है।

आपद्गतेन धर्माणामन्यायेनोपजीवनम्।
अपि ह्येतद् ब्राह्मणेषु दृष्टं वृत्तिपरिक्षये॥ १३॥
क्षत्रिये संशयः कस्मादित्येवं निश्चितं सदा।
आददीत विशिष्टेभ्यो नावसीदेत् कथंचन॥ १४॥
हन्तारं रक्षितारं च प्रजानां क्षत्रियं विदुः।
तस्मात् संरक्षता कार्यमादानं क्षत्रबन्धुना॥ १५॥
अन्यत्र राजन् हिंसाया वृत्तिर्नेहास्ति कस्यचित्।
अप्यरण्यसमुत्थस्य एकस्य चरतो मुनेः॥ १६॥

जो व्यक्ति संकट में पड़ा हुआ हो, वह अपने वर्णधर्म के विपरीत आचरण द्वारा अपना निर्वाह कर सकता है। ब्राह्मणों में भी आजीविका नष्ट होने पर ऐसा व्यवहार देखा गया है, फिर क्षत्रियों के लिये सन्देह कैसे किया जा सकता है? उनके लिये भी निश्चित है। उसे संकट के समय विशिष्ट लोगों अर्थात् धनवानों से धन लेना चाहिये और किसी प्रकार का कष्ट नहीं भोगना चाहिये। विद्वान् लोग क्षत्रिय को प्रजा का संरक्षक, तथा साथ ही विनाशक भी मानते हैं। हे राजन्! संसार में किसी भी प्राणी की आजीविका हिंसा से शून्य नहीं है। वन में अकेले विचरण करते हुए, वहाँ रहने वाले मुनि की भी आजीविका सर्वथा हिंसा से रहित नहीं है।

परस्परं हि संरक्षा राज्ञा राष्ट्रेण चापदि।
नित्यमेव हि कर्तव्या एष धर्मः सनातनः॥ १७॥
राजा राष्ट्रं यथाऽऽपत्सु द्रव्यौघैरपि रक्षति।
राष्ट्रेण राजा व्यसने रक्षितव्यस्तथा भवेत॥ १८॥
कोशं दण्डं बलं मित्रं यदन्यदपि संचितम्।
न कुर्वीतान्तरं राष्ट्रे राजा परिगतः क्षुधा॥ १९॥
बीजं भक्तेन सम्पाद्यमिति धर्मविदो विदुः।
अत्रैतच्छम्बरस्याहुर्महामायस्य दर्शनम्॥ २०॥

संकट के समय राजा और राष्ट्र दोनों को एक दूसरे की सदा रक्षा करनी चाहिये। यही सनातन धर्म है। जैसे आपत्ति के समय राजा बहुत धन व्यय करके भी राष्ट्र की रक्षा करता है, वैसे ही राष्ट्र को भी संकट के समय राजा की रक्षा करनी चाहिये। राजा को भूखसे पीड़ित होने पर भी खजाना, राजदण्ड, सेना, मित्र तथा दूसरे एकत्रित किये हुए साधनों को अपने से दूर नहीं करना चाहिये। धर्म को जानने वालों का कहना है कि अपने खाने के अन्न में से भी बीज को बचाकर रखना चाहिये। इस विषय में महामायावी शम्बारासुर का विचार भी ऐसा ही है।

राज्ञः कोशबलं मूलं कोशमूलं पुनर्बलम्।
तन्मूलं सर्वधर्माणां धर्ममूलाः पुनः प्रजाः॥ २१॥
नान्यानपीडयित्वेह कोशः शक्यः कुतो बलम्।
तदर्थं पीडयित्वा च दोषं प्राप्तुं न सोऽर्हति॥ २२॥
अर्थार्थमन्यद् भवति विपरीतमथापरम्।
अनर्थार्थमथाप्यन्यत् तत् सर्वं ह्यर्थकारणम्॥ २३॥
एवं बुद्ध्या सम्प्रपश्येन्मेधावी कार्यनिश्चयम्।

राजा का मुख्य आधार है खजाना और सेना। उनमें भी खजाना सेना की भी जड़ है। सेना सारे धर्मों की रक्षा का मुख्य आधार है और धर्म प्रजा के जीवन का आधार है। बिना दूसरों को पीड़ा दिये, धन एकत्र नहीं किया जासकता और धन के बिना सेना कैसे एकत्र की जासकती है? इसलिये संकट के समय प्रजा को पीड़ित करके भी धनसंग्रह करनेवाला राजा दोष का भागी नहीं हो सकता। संकट के समय प्रजा को पीड़ित करने से क्योंकि धन की प्राप्ति होती है, इसलिये यह कार्य उचित तथा उसे पीड़ा न देना अनर्थकारी और अनुचित माना गया है। इसी प्रकार शान्ति के समय जो दूसरे अनर्थकारी कार्य हैं, वे युद्ध का संकट उपस्थित होने पर अर्थकारी सिद्ध होते हैं। इसलिये बुद्धिमान् व्यक्ति को बुद्धि से सोच कर अपने कर्त्तव्य का निश्चय करना चाहिये।

युधिष्ठिर उवाच

आभ्यान्तरे प्रकुपिते, बाह्ये चोपनिपीडिते॥ २४॥
क्षीणे कोशे, श्रुते मन्त्री किं कार्यमवशिष्यते।

भीष्म उवाच

बाह्यश्चेद् विजिगीषुः स्याद् धर्मार्थकुशलः शुचिः॥ २५॥
जवेन संधिं कुर्वीत पूर्वभुक्तान् विमोचयेत्।
योऽधर्मविजिगीषुः स्याद् बलवान् पापनिश्चयः॥ २६॥
आत्मनः संनिरोधेन संधिं तेनापि रोचयेत्।
अपास्य राजधानीं वा तरेद् द्रव्येण चापदम्॥ २७॥
तद्भावयुक्तो द्रव्याणि जीवन् पुनरुपार्जयेत्।

तब युधिष्ठिर ने पूछा कि यदि राजा के अपने अन्दर के साथी मन्त्री आदि उसे पीड़ित कर रहे हों और बाहर से भी शत्रु का आक्रमण हो रहा हो, उसका खजाना नष्ट हो जाये और गुप्त मन्त्रणा सब के कानों में पड़ जाये, तब उसे क्या करना चाहिये? भीष्म जी ने उत्तर दिया कि विजय की इच्छा से बाहर से आक्रमण करनेवाला राजा यदि धर्म और अर्थ में कुशल हो, उसके विचार पवित्र हों, तो वह उसके साथ शीघ्र सन्धि कर ले और अपने जो प्रदेश उसके अधिकार में चले गये हों, उन्हें मधुर वचनों द्वारा छुड़ाने की चेष्टा करे। यदि विजय को चाहने वाला शत्रु अधर्म से युक्त, बलवान् और पाप पूर्ण विचार रखता हो तो अपना सबकुछ खोकर भी उसके साथ सन्धि करलेने की इच्छा रखनी चाहिये। अथवा अपनी राजधानी या धन उसे देकर उस संकट से पार हो जाये। क्योंकि यदि वह जीवित रहा तो राजोचित गुणों से युक्त होने से पुनः धन प्राप्त कर सकता है।

यास्तु कोशबलत्यागाच्छक्यास्तरितुमापदः॥ २८॥
कस्तत्राधिकमात्मानं संत्यजेदर्थधर्मवित्।
अवरोधान् जुगुप्सेत का सपत्नधने दया॥ २९॥
न त्वेवात्मा प्रदातव्यः शक्ये सति कथंचन।

यदि खजाने और सेना को त्यागकर संकट से पार हुआ जा सके, तो अर्थ और धर्म का ज्ञाता कौन मनुष्य सबसे अधिक मूल्यवान् अपने शरीर का त्याग करेगा? शत्रु का आक्रमण होने पर सबसे पहले अपने अन्तःपुर की रक्षा करनी चाहिये। यदि वहाँ शत्रुका अधिकार होने लगे तो वहाँ से अपना मोह उसे शत्रु का धन समझकर हटा लेना चाहिये। शत्रु के धन पर दया किसलिये? पर जहाँ तक हो अपने शरीर को बचाना चाहिये। उसे शत्रु के हाथ में नहीं पड़ने देना चाहिये।

क्षिप्रं वा संधिकामः स्यात् क्षिप्रं वा तीक्ष्णविक्रमः॥ ३०॥
तदापनयनं क्षिप्रमेतावत् साम्परायिकम्।
अनुरक्तेन चेष्टेन हृष्टेन जगतीपतिः॥ ३१॥
अल्पेनापि हि सैन्येन महीं जयति भूमिपः।
सर्वलोकागमं कृत्वा मृदुत्वं गन्तुमेव च॥ ३२॥
विश्वासाद् विनयं कुर्याद् विश्वसेच्चाप्युपायतः।
अपचिक्रमिषुः क्षिप्रं साम्ना वा परिसान्त्वयन्।
विलङ्घयित्वा मन्त्रेण ततः स्वयमुपक्रमेत्॥ ३३॥

हे राजन्! उस अवस्था में राजा को जल्दी से या तो सन्धि का विचार कर लेना चाहिये या भयंकर पराक्रमकर शत्रु को भगाने का प्रयत्न करना चाहिये, चाहे फिर उसकी युद्ध में मृत्यु ही क्यों न हो जाये। यदि सेना राजा के प्रति प्रेमभाव रखती है, उसके लिये चेष्टा करने वाली, उससे सन्तुष्ट हो तो ऐसी थोड़ी सेना के द्वारा भी राजा भूमि को जीत सकता है। अथवा दुर्बल राजा विपक्ष के राजा में कोमलता लाने के लिये, उसके सभी लोगों को सन्तुष्ट कर, उनके मन में विश्वास जमा कर, उनसे युद्ध बन्द करने के लिये प्रार्थना करे और स्वयं भी उपायपूर्वक उनके ऊपर विश्वास रखे। अथवा वह मधुर वचनों से विरोधी राजा के मन्त्री आदि को प्रसन्नकर दुर्ग से भागने का प्रयत्न करे और वहाँ कुछ समय व्यतीत कर, श्रेष्ठ लोगों से मन्त्रणा कर अपने खोये हुए राज्य को प्राप्त करने का पुनः प्रयत्न करे।

उनसठवाँ अध्याय : राजा के लिये कोश संग्रह और बल की आवश्यकता।

स्वराष्ट्रात् परराष्ट्राच्च कोशं संजनयेन्नृपः।
कोशाद्धि धर्मः कौन्तेय राज्यमूलं च वर्धते॥ १॥
तस्मात् संजनयेत् कोशं सत्कृत्य परिपालयेत्।
परिपाल्यानुतनुयादेष धर्मः सनातनः॥ २॥
न कोशः शुद्धशौचेन न नृशंसेन जातुचित्।
मध्यमं पदमास्थाय कोशसंग्रहणं चरेत्॥ ३॥
अबलस्य कुतः कोशो ह्यकोशस्य कुतो बलम्।
अबलस्य कुतो राज्यमराज्ञः श्रीर्भवेत् कुतः॥ ४॥

हे कुन्ती पुत्र! राजा अपने राज्य और शत्रुओं के भी राज्य से धन लेकर खजाने को भरे, क्योंकि धन के बढ़ने से ही राज्य की जड़ मजबूत होती है और धर्म का पालन किया जा सकता है। इसलिये राजा धन को एकत्र करे, एकत्र करके आदरपूर्वक उसकी रक्षा करे तथा रक्षा करके उसे निरन्तर बढ़ाता रहे यही सनातन धर्म है। जो बिल्कुल पवित्र भावना रखता है वह कोश को एकत्र नहीं कर सकता। उसीप्रकार जो बिल्कुल क्रूर है, वह भी ठीक प्रकार इसमें सफल नहीं हो सकता। इसलिये कोश को एकत्र करने के लिये राजा को मध्यम मार्ग अपनाना चाहिये। यदि राजा शक्तिहीन हो तो उसके पास धन कैसे रह सकता है? जिसके पास धन नहीं वह सेना कैसे रख सकता है? बिना सेना के कमजोर राजा राज्य का पालन कैसे कर सकता है? और राज्यहीन के पास ऐश्वर्य कैसे हो सकता है?

तस्मात् कोशं बलं मित्रमथ राजा विवर्धयेत्।
हीनकोशं हि राजानमवजानन्ति मानवाः॥ ५॥
न चास्याल्पेन तुष्यन्ति कार्यमप्युत्सहन्ति च।
श्रियो हि कारणाद् राजा सत्क्रियां लभते पराम्॥ ६॥

इसलिये राजा को चाहिये कि वह अपने खजाने, सेना और मित्रों की संख्या बढ़ाये। जिस राजा का खजाना खाली होता है, उसका उसकी प्रजा अपमान करने लगती है। लोग उससे थोड़ा प्राप्त करके सन्तुष्ट नहीं होते और उसका कार्य करने में भी उत्साह नहीं दिखाते। धन के कारण से ही राजा अत्यन्त सत्कार को प्राप्त होता है।

अत्र धर्मानुवचनं कीर्तयन्ति पुराविदः।
प्रत्यक्षावेव धर्मार्थौ क्षत्रियस्य विजानतः॥ ७॥
धर्माधर्मफले जातु ददर्शेह न कश्चन।
बुभूषेद् बलमेवैतत् सर्वे बलवतो वशे॥ ८॥
यो ह्यनाढ्यः स पतितस्तदुच्छिष्टं यदल्पकम्।
बह्वपथ्यं बलवति न किंचित् क्रियते भयात्॥ ९॥
उभौ सत्याधिकारस्थौ त्रायेते महतो भयात्।

हे राजन्! प्राचीन समय की बातों को जानने वाले विद्वान् जो धर्म का प्रवचन करते हैं, वे यही कहते हैं कि विद्वान् क्षत्रिय के लिये दो ही प्रत्यक्ष कर्म हैं एक धर्म और दूसरा अर्थ। इनमें भी धर्म और अधर्म का फल कोई यहाँ प्रत्यक्ष नहीं देखता। इसलिये राजा को चाहिये कि वह सेना को जिसका आधार अर्थ है, बढ़ाने का प्रयत्न करे क्योंकि संसार में सब सेना वाले के ही वश में होते हैं। इसके विपरीत जो धन से रहित होता है वह पतित माना जाता है। यदि धन थोड़ा हो तो उसे दूसरों की जूठन समझा जाता है। बलवान् राजा में बुराइयाँ होने पर भी लोग भय से उसका विरोध नहीं करते। यदि बल और धर्म दोनों सत्य के ऊपर आधारित हों तो वे महान् भय से रक्षा करते हैं।

अतिधर्माद् बलं मन्ये बलाद् धर्मः प्रवर्तते॥ १०॥
बले प्रतिष्ठितो धर्मो धरण्यामिव जङ्गमम्।
धूमो वायोरिव वशे बलं धर्मोऽनुवर्तते॥ ११॥
अनीश्वरो बले धर्मो द्रुमे वल्लीव संश्रिता।
वशे बलवतां धर्मः सुखं भोगवतामिव॥ १२॥
नास्त्यसाध्यं बलवतां सर्वं बलवतां शुचि।

मैं तो धर्म से भी शक्ति को अधिक समझता हूँ। क्योंकि शक्ति से ही धर्म की प्रवृत्ति होती है। जैसे सारे चलनेवाले प्राणी भूमि का सहारा लेते हैं, वैसे ही धर्म भी शक्ति के सहारे प्रतिष्ठित होता है। जैसे धूआँ वायु के अनुसार चलता है वैसे ही धर्म भी शक्ति के अनुसार होता है। जैसे बेल वृक्ष का सहारा लेती है, वैसे कमजोर धर्म भी शक्ति का सहारा लेता है। जैसे भोगसामग्री से सम्पन्न के आधीन सुख होता है, वैसे ही धर्म बलवानों के वश में रहता है। शक्तिवालों के लिये कुछ भी असाध्य नहीं है। शक्तिवालों की सारी वस्तुएँ निर्दोष मानी जाती है।

दुराचारः क्षीणबलः परित्राणं न गच्छति॥ १३॥
अथ तस्मादुद्विजते सर्वो लोको वृकादिव।
अपध्वस्तो ह्यवमतो दुःखं जीवति जीवितम्॥ १४॥
जीवितं यदपक्रुष्टं यथैव मरणं तथा।
यदेवमाहुः पापेन चारित्रेण विवर्जितः।
सुभृशं तप्यते तेन वाक्शल्येन परिक्षतः॥ १५॥

शक्तिहीन को दुराचारी समझा जाता है। उसे संकट से बचाने वाला कोई नहीं मिलता। कमजोर व्यक्ति से लोग वैसे ही परेशान हो जाते हैं, जैसे भेड़िये से। बेचारा कमजोर व्यक्ति सम्पत्ति से वंचित, अपमानित होता है और जीवन को दुख से बिताता है। निन्दा से युक्त उसका जीवन मृत्यु के समान ही होता है। लोग उसे सुनाकर यह कहते हैं कि अरे! इसे तो अपने पापयुक्त आचरण के कारण बन्धु बान्धवों ने त्याग दिया है। उनके इन वचनबाणों से घायल होकर वह अत्यन्त सन्तप्त होता रहता है।

साठवाँ अध्याय : शत्रुओं से घिरे हुए होने पर राजा के कर्त्तव्य।

युधिष्ठिर उवाच

यथा राजा न मुह्येत शत्रुभिः परिवारितः।
धर्मार्थकुशलो राजा धर्मशास्त्रविशारदः॥ १॥
पृच्छामि त्वां कुरुश्रेष्ठ तन्मे व्याख्यातुमर्हसि।

भीष्म उवाच

त्वद्युक्तोऽयमनुप्रश्नो युधिष्ठिर सुखोदयः॥ २॥
शृणु मे पुत्र कार्त्स्न्येन गुह्यमापत्सु भारत।
अमित्रो मित्रतां याति मित्रं चापि प्रदुष्यति॥ ३॥
सामर्थ्ययोगात् कार्याणामनित्या वै सदा गतिः।
तस्माद् विश्वसितव्यं च विग्रहं च समाचरेत्॥ ४॥
देशं कालं च विज्ञाय कार्याकार्यविनिश्चये।

युधिष्ठिर ने पूछा कि हे कुरुश्रेष्ठ! धर्म और अर्थ में कुशल, धर्म शास्त्र विशारद राजा यदि शत्रुओं से घिर जाये, तो जिस से वह मोहित न हो, मैं उस बुद्धि के विषय में आपसे पूछना चाहता हूँ। आप मुझे यह समझाइये। तब भीष्म ने कहा कि हे भरतवंशी बेटे युधिष्ठिर। तुम्हारा यह प्रश्न सुख को उदय करने वाला है। विपत्ति के समय अपनाये जाने वाले इस गुप्त रहस्य को तुम मुझसे सम्पूर्ण रूप से सुनो। वास्तव में अलग-अलग कार्यों का अलग-अलग समय में अलग-अलग प्रभाव होता है, जिससे मित्र शत्रु और शत्रु मित्र बन जाते हैं। शत्रु और मित्र की स्थिति सदा एक जैसी नहीं रहती इसलिये देशकाल को देखकर, कार्य और अकार्य का निश्चयकर उपयुक्त व्यक्ति पर विश्वास और उपयुक्त व्यक्ति से विग्रह करना चाहिये।

संधातव्यं बुधैर्नित्यं व्यवस्य च हितार्थिभिः॥ ५॥
अमित्रैरपि संधेयं प्राणा रक्ष्या हि भारत।
यो ह्यमित्रैर्नरो नित्यं न संदध्यादपण्डितः॥ ६॥
न सोऽर्थं प्राप्नुयात् किंचित् फलान्यपि च भारत।
न हि बुद्ध्यान्वितः प्राज्ञो नीतिशास्त्रविशारदः॥ ७॥
निमज्जत्यापदं प्राप्य महतीं दारुणामपि।
बलिना संनिकृष्टस्य शत्रोरपि परिग्रहः॥ ८॥
कार्य इत्याहुराचार्या विषमे जीवितार्थिना।

हे भारत! अपने कर्त्तव्य का निश्चयकर अपना हित चाहनेवाले बुद्धिमानों के साथ सदा सन्धि कर लेनी चाहिये। अवश्यकता होने पर शत्रुओं से भी सन्धि कर लेनी चाहिये, क्योंकि प्राणों की रक्षा हर हालत में करनी चाहिये। जो मूर्ख व्यक्ति इस बात पर दृढ़ रहता है कि शत्रु से सन्धि नहीं करनी है, हे भारत! वह न तो किसी उद्देश्य को सिद्ध कर सकता है और न किसी फल को प्राप्त कर सकता है। बुद्धि से युक्त, नीति शास्त्र विशारद, प्राज्ञ व्यक्ति महान् और दारुण विपत्ति को प्राप्तकर भी उसमें डूब नहीं जाता, अपितु उससे निकलने का प्रयत्न करता है। आचार्यों का यह कथन है कि जीवन की रक्षा चाहनेवाले बलवान् व्यक्ति को भी संकट के आ जाने पर, अपने निकटवर्ती शत्रु से मेल कर लेना चाहिये।

वेदितव्यानि मित्राणि विज्ञेयाश्चापि शत्रवः॥ ९॥
एतत् सुसूक्ष्मं लोकेऽस्मिन् दृश्यते प्राज्ञसम्मतम्।
शत्रुरूपा हि सुहृदो मित्ररूपाश्च शत्रवः॥ १०॥
संधितास्ते न बुद्ध्यन्ते कामक्रोधवशं गताः।
नास्ति जातु रिपुर्नाम मित्रं नाम न विद्यते॥ ११॥
सामर्थ्ययोगाज्जायन्ते मित्राणि रिपवस्तथा।

यो यस्मिन् जीवति स्वार्थं पश्येत् पीडां न जीवति॥ १२॥
स तस्य मित्रं तावत् स्याद् यावन्न स्याद् विपर्ययः।

इस संसार में यह बहुत सूक्ष्म और विद्वानों द्वारा समर्थित बात है कि मनुष्य को अपने शत्रु और मित्रों को अच्छी तरह समझ लेना चाहिये। समय आने पर शत्रु भी मित्र बन जाते हैं और मित्र शत्रु हो जाते हैं। सन्धि होने के पश्चात् वे काम और क्रोध के वश में हो जाते हैं। उनके विषय में यह पता नहीं लगता कि वास्तव में वे हमारे शत्रु हैं या मित्र? न तो कोई सदा किसी का शत्रु रहता है और न कोई मित्र! जिस प्रकार की परिस्थितियाँ होती हैं, उनके अनुसार ये मित्र और शत्रु दोनों बदल जाते हैं। जो जिसके बारे में यह देखता है कि इसके जीवित रहने में मेरी भलाई है और मर जाने से मेरी हानि है, वह तब तक उसका मित्र बना रहता है, जब तक इस स्थिति में परिवर्तन नहीं होता।

नास्ति मैत्री स्थिरा नाम न च ध्रुवमसौहृदम्॥ १३॥
अर्थयुक्त्यानुजायन्ते मित्राणि रिपवस्तथा।
मित्रं च शत्रुतामेति कस्मिंश्चित् कालपर्यये॥ १४॥
शत्रुश्च मित्रतामेति स्वार्थो हि बलवत्तरः।
न विश्वसेदविश्वस्ते विश्वस्ते नातिविश्वसेत्॥ १५॥
विश्वासाद् भयमुत्पन्नमपि मूलानि कृन्तति।
अर्थयुक्त्या हि जायन्ते पिता माता सुतस्तथा॥ १६॥
मातुला भागिनेयाश्च तथा सम्बन्धिबान्धवाः।

मित्रता और शत्रुता सर्वदा एक जैसी नहीं रहती। अपने स्वार्थ के अनुसार लोग परस्पर मित्र और शत्रु होते रहते हैं। स्वार्थ के ही आधार पर मित्र शत्रु हो जाता है और शत्रु मित्र बन जाता है। मनुष्य को चाहिये कि जो विश्वासपात्र न हो उस पर कभी विश्वास न करे और जो विश्वासपात्र हो, उस पर भी अधिक विश्वास न करे। अधिक विश्वास से भय उत्पन्न होकर मनुष्य की जड़ को भी काट देता है। माता, पिता, पुत्र, मामा, भानजा तथा दूसरे सम्बन्धी और बान्धव भी अपने स्वार्थ से ही स्नेह करते हैं।

पुत्रं हि मातापितरौ त्यजतः पतितं प्रियम्॥ १७॥
लोको रक्षति चात्मानं पश्य स्वार्थस्य सारताम्।
अर्थार्थी जीवलोकोऽयं न कश्चित् कस्यचित् प्रियः॥ १८॥
सख्यं सोदर्ययोर्भ्रात्रोर्दम्पत्योर्वा परस्परम्।
कस्यचिन्नाभिजानामि प्रीतिं निष्कारणामिह॥ १९॥
उत्पन्ना कारणे प्रीतिरासीन्नौ कारणान्तरे।
प्रध्वस्ते कारणस्थाने सा प्रीतिर्विनिवर्तते॥ २०॥

अपना प्यारा पुत्र भी पतित हो जाये तो माता पिता उसे त्याग देते हैं। संसार में सब अपनी ही रक्षा करते हैं। देखो स्वार्थ कितना प्रबल है? इस प्राणिलोक में सब स्वार्थ की ही पूर्ति के इच्छुक हैं, किसी के लिये कोई प्यारा नहीं है। चाहे दो सगे भाई हों, चाहे पति और पत्नी हों, उनमें परस्पर प्रेम स्वार्थ के कारण ही होता है। मैं तो यहाँ किसी का भी प्रेम स्वार्थ से रहित नहीं समझता। जो प्रेम किसी कारण से उत्पन्न होता है, वह तब तक बना रहता है, जब वह कारण रहता है। कारण के हट जाने पर वह प्रेम अपने अपने आप हट जाता है।

आत्मरक्षणतन्त्राणां सुपरीक्षितकारिणाम्।
आपदो नोपपद्यन्ते पुरुषाणां स्वदोषजाः॥ २१॥
शत्रून् सम्यग् विजानन्ति दुर्बला ये बलीयसः।
न तेषां चाल्यते बुद्धिः शास्त्रार्थकृतनिश्चया॥ २२॥
अस्मिन्नर्थे च गाथे द्वे निबोधोशनसा कृते।
शत्रुसाधारणे कृत्ये कृत्वा संधिं बलीयसा॥ २३॥
समाहितश्चरेद् युक्त्या कृतार्थश्च न विश्वसेत्।
न विश्वसेदविश्वस्ते विश्वस्ते नातिविश्वसेत्॥ २४॥
नित्यं विश्वासयेदन्यान् परेषां तु न विश्वसेत्।

जो व्यक्ति अपनी रक्षा में लगे रहते हैं और भली भाँति परीक्षाकर कार्य करते हैं, उन्हें अपने दोषों से उत्पन्न आपत्तियाँ नहीं प्राप्त होतीं। जो दुर्बल व्यक्ति अपने बलवान् शत्रु को अच्छी तरह जानते हैं उनकी शास्त्र के अर्थज्ञान से निश्चित की हुई बुद्धि कभी विचलित नहीं होती। इस विषय में शुक्राचार्य जी ने दो बातें कहीं हैं। तुम उन्हें समझो। पहली बात तो यह है कि जब अपने और शत्रु दोनों पर एकजैसी विपत्ति आयी हो, तो कमजोर व्यक्ति अपने बलवान् शत्रु से सन्धि कर ले तथा बड़ी सावधानी और युक्ति से अपना काम निकाले। कार्य पूरा होने पर फिर उसका विश्वास न करे। दूसरी बात यह है कि जो विश्वासपात्र न हो उस पर विश्वास नहीं करना चाहिये। जो विश्वासपात्र हो उस पर भी अधिक विश्वास नहीं करना चाहिये। अपने प्रति दूसरों में विश्वास को उत्पन्न करना चाहिये, पर स्वयं दूसरों

पर विश्वास नहीं करना चाहिये।

संक्षेपो नीतिशास्त्राणामविश्वासः परो मतः॥ २५॥
नृषु तस्मादविश्वासः पुष्कलं हितमात्मनः।
वध्यन्ते न ह्यविश्वस्ताः शत्रुभिर्दुर्बला अपि॥ २६॥
विश्वस्तास्तेषु वध्यन्ते बलवन्तोऽपि दुर्बलैः।
तस्मादभीतवद् भीतो विश्वस्तवदविश्वसन्॥ २७॥
न ह्यप्रमत्तश्चलति चलितो वा विनश्यति।
एतज्ज्ञात्वा महाराज शास्त्रार्थमभिगम्य च॥ २८॥
अभियुक्तोऽप्रमत्तश्च प्राग्भयाद् भीतवच्चरेत्।

नीति शास्त्र का सार यह है कि किसी पर विश्वास न करना ही उत्तम है, इसलिये दूसरों पर विश्वास न करने में ही अपनी अत्यधिक भलाई है। जो विश्वास न करके सदा सावधान रहते हैं, वे दुर्बल होने पर भी शत्रुओं से मारे नहीं जाते। पर जो विश्वास करके रहते हैं, वे बलवान् होने पर भी निर्बल शत्रुओं द्वारा मारे जाते हैं। इसलिये मनुष्य को भयभीत होने पर भी निर्भय के समान और विश्वास न होने पर भी विश्वास होने के समान व्यवहार करना चाहिये। जो प्रमाद से रहित होकर चलता है, वह विचलित नहीं होता, पर जो प्रमाद के साथ चलता है वह नष्ट हो जाता है। हे महाराज! ऐसा समझ कर, नीतिशास्त्र के रहस्य को जानकर, उद्यमशील और सावधान रहते हुए, भय के आने से पहले ही भयभीत के समान आचरण करना चाहिये।

भीतवत् संनिधिः कार्यः प्रतिसंधिस्तथैव च॥ २९॥
भयादुत्पद्यते बुद्धिरप्रमत्ताभियोगजा।
न भयं विद्यते राजन् भीतस्यानागते भये॥ ३०॥
अभीतस्य च विश्रम्भात् सुमहज्जायते भयम्।
अभीश्चरति यो नित्यं मन्त्रोऽदेयः कथंचन॥ ३१॥
अविज्ञानाद्धि विज्ञातो गच्छेदास्पददर्शिषु।
उपलभ्य मतिं चाग्र्यामरिमित्रान्तरं तथा।
संधिविग्रहकालौ च मोक्षोपायस्तथैव च॥ ३२॥

बलवान् शत्रु के समीप भयभीत के समान रहना चाहिये। उसके साथ सन्धि भी करलेनी चाहिये। सावधान व्यक्ति आदि उद्यमशील हो तो भय से बचानेवाली बुद्धि स्वयं उत्पन्न होजाती है। हे राजन्! जो भयके आने से पहले ही उसे डरा हुआ रहता है, उसे भय नहीं आता। किन्तु जो निर्भय होकर दूसरों पर विश्वास कर लेता है, उसे अत्यन्त महान् भय का सामना करना पड़ जाता है। जो सदा निर्भय होकर विचरण करता है, उसे कोई सलाह नहीं देनी चाहिये, क्योंकि वह अपने को बुद्धिमान् समझता है। भय को न जाननेवाले से उसे जाननेवाला ठीक होता है, क्योंकि वह उससे बचने का उपाय जानने के लिये परिणाम को जाननेवाले विद्वानों के पास जाता है। मनुष्य को श्रेष्ठ बुद्धि का आश्रय लेकर, मित्र और मित्र के भेद, सन्धि विग्रह के अवसर और विपत्ति से दूर होने के उपाय का ज्ञान करना चाहिये।

इकसठवाँ अध्याय : भारद्वाज तथा सौवीर देश के राजा के संवाद के द्वारा कूटनीति का उपदेश।

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्।
भारद्वाजस्य संवादं राज्ञः शत्रुंजयस्य च॥ १॥
राजा शत्रुंजयो नाम सौवीरेषु महारथः।
भारद्वाजमुपागम्य पप्रच्छार्थविनिश्चयम्॥ २॥
अलब्धस्य कथं लिप्सा लब्धं केन विवर्धते।
वर्धितं पाल्यते केन पालितं प्रणयेत् कथम्॥ ३॥
तस्मै विनिश्चितार्थाय परिपृष्टोऽर्थनिश्चयम्।
उवाच ब्राह्मणो वाक्यमिदं हेतुमदुत्तमम्॥ ४॥

इस विषय में लोग भरद्वाज और राजा शत्रुंजय के वार्तालाप के रूप में एक पुराने इतिहास का उदाहरण दिया करते हैं। सौवीर देश में शत्रुंजय नाम का एक महारथी राजा था। उसने अपने कर्त्तव्य का निश्चय करने के लिये भारद्वाज के समीप जाकर उनसे प्रश्न किया कि अप्राप्त वस्तु को कैसे प्राप्त किया जाये? प्राप्त होने पर उसकी वृद्धि कैसे की जाये? और रक्षा किये हुए उस धन का सदुपयोग कैसे किया जाये? राजा शत्रुंजय को शास्त्रों के अर्थ

का पूरा निश्चय था। उन्होंने जब कर्त्तव्य निश्चय के लिये ये प्रश्न पूछे तब ब्राह्मण भारद्वाज ने यह युक्तियुक्त उत्तम वचन कहा कि—

नित्यमुद्यतदण्डः स्यान्नित्यं विवृतपौरुषः।
अच्छिद्रश्छिद्रदर्शी च परेषां विवरानुगः॥ ५॥
नित्यमुद्यतदण्डस्य भृशमुद्विजते नरः।
तस्मात् सर्वाणि भूतानि दण्डेनैव प्रसाधयेत्॥ ६॥
एवं दण्डं प्रशंसन्ति पण्डितास्तत्त्वदर्शिनः।
तस्माच्चतुष्टये तस्मिन् प्रधानो दण्ड उच्यते॥ ७॥
छिन्नमूले त्वधिष्ठाने सर्वेषां जीवनं हतम्।
कथं हि शाखास्तिष्ठेयुश्छिन्नमूले वनस्पतौ॥ ८॥

राजा को अपने दण्ड का प्रयोग करने के लिये सदा तैयार रहना चाहिये। उसे अपने पुरुषार्थ को प्रकट करना चाहिये। उसे स्वयं अपने में कोई दोष नहीं छोड़ना चाहिये और शत्रु के दोषों पर निगाह रखनी चाहिये। शत्रु के दोष का पता लगने पर उस पर आक्रमण कर देना चाहिये। जो राजा सदा दण्ड देने के लिये तैयार रहता है, उससे लोग बहुत डरते हैं। साम दाम आदि चारों साधनों में दण्ड को ही प्रधान बताया गया है। यदि शत्रु की जड़ काट दी जाये तो उसका सहारा लेने वाले दूसरे लोग भी नष्ट हो जाते हैं। वृक्ष की यदि जड़ कट जाये तो उसकी शाखायें कैसे बची रह सकती हैं।

मूलमेवादितश्छिन्द्यात् परपक्षस्य पण्डितः।
ततः सहायान् पक्षं च मूलमेवानुसाधयेत्॥ ९॥
सुमन्त्रितं सुविक्रान्तं सुयुद्धं सुपलायितम्।
आपदास्पदकाले तु कुर्वीत न विचारयेत्॥ १०॥
वाङ्मात्रेण विनीतः स्याद्धृदयेन यथा क्षुरः।
श्लक्ष्णपूर्वाभिभाषी च कामक्रोधौ विवर्जयेत्॥ ११॥
सपत्नसहिते कार्ये कृत्वा सन्धिं न विश्वसेत्।
अपक्रामेत् ततः शीघ्रं कृतकार्यो विचक्षणः॥ १२॥

विद्वान् व्यक्ति शत्रुपक्ष की जड़ को ही आरम्भ में काटे। फिर उसके सहायकों और पक्ष लेने वालों को भी जड़ के समान ही नष्ट कर दे। जब संकट का समय आ जाये तो राजा उत्तम रीति से मन्त्रणा करे, उत्तम पराक्रम को प्रदर्शित करते हुए उत्तम रीति से युद्ध करे और समय आने पर उत्तम रीति से पलायन भी करे। इसमें कोई सोच विचार नहीं करना चाहिये। राजा केवल वाणी से ही नम्रता को प्रकट करे पर हृदय में छुरे के समान पैना हो। पहले मुस्कराकर मधुर वचन बोले और काम और क्रोध दोनों का त्याग कर दे। शत्रु के साथ मिलकर काम करने पर उससे सन्धि करके भी उस पर विश्वास न करे। बुद्धिमान् व्यक्ति अपना कार्य पूरा कर लेने पर तुरन्त उससे दूर हट जाये।

शत्रुं च मित्ररूपेण सान्त्वेनैवाभिसान्त्वयेत्।
नित्यशश्चोद्विजेत् तस्माद् गृहात् सर्पयुतादिव॥ १३॥
यस्य बुद्धिः परिभवेत् तमतीतेन सान्त्वयेत्।
अनागतेन दुष्प्रज्ञं प्रत्युत्पन्नेन पण्डितम्॥ १४॥
अञ्जलिं शपथं सान्त्वं प्रणम्य शिरसा वदेत्।
अश्रुप्रमार्जनं चैव कर्तव्यं भूतिमिच्छता॥ १५॥
वहेदमित्रं स्कन्धेन यावत्कालस्य पर्ययः।
प्राप्तकालं तु विज्ञाय भिन्द्याद् घटमिवाश्मनि॥ १६॥

पहले शत्रु को मीठे वचनों से सान्त्वना देता रहे। किन्तु साँप वाले घर में रहने वाले मनुष्य के समान शत्रु से भी सदा शंकित रहे। जिसकी बुद्धि शोक से विह्वल होजाये, उसे भूतकाल की पुरानी बातें कहकर सान्त्वना देनी चाहिये। जिसकी बुद्धि उत्तम नहीं है, उसे भविष्य की आशा दिलाकर और जो पण्डित है, उसे तात्कालिक उपायों से शान्त करना चाहिये। ऐश्वर्य को चाहनेवाले राजा को चाहिये कि वह समय देखकर शत्रु के सामने हाथ जोड़े, शपथ खाये, सिर झुकाकर प्रणाम करे, सान्त्वना दे और उसके आँसू भी पोंछे। यदि समय उलटा हो तो शत्रु को कन्धे पर बैठाकर भी ले जाये। पर जब समय अपने अनुकूल हो तो जैसे घड़े को पत्थर पर पटक दिया जाता है, वैसे ही शत्रु को भी नीचे गिरा कर नष्ट कर दे।

मुहूर्तमपि राजेन्द्र तिन्दुकालातवज्ज्वलेत्।
न तुषाग्निरिवानर्चिर्धूमायेत चिरं नरः॥ १७॥
नानार्थिकोऽर्थसम्बन्धं कृतघ्नेन समाचरेत्।
अर्थी तु शक्यते भोक्तुं कृतकार्योऽवमन्यते॥ १८॥
तस्मात् सर्वाणि कार्याणि सावशेषाणि कारयेत्।
उत्थायोत्थाय गच्छेत नित्ययुक्तो रिपोर्गृहान्॥ १९॥
कुशलं चास्य पृच्छेत यद्यप्यकुशलं भवेत्।

हे राजेन्द्र! यदि आवश्यकता हो तो थोड़ी देर के लिये ही तिन्दुक की लकड़ी के समान घोर पराक्रम प्रकट करे। देर तक भूसे में लगी आग

के समान धूंआ न उठाये अर्थात् मन्द पराक्रम का परिचय न दे। जिस के पास अनेक प्रयोजन हों उसे कृतघ्न के साथ आर्थिक सम्बन्ध नहीं रखने चाहियें। उसे किसी का भी कार्य बिल्कुल पूरा नहीं करना चाहिये। क्योंकि कार्य पूरा कराने के इच्छुक व्यक्ति से तो कार्य कराया जा सकता है, पर जिसका कार्य पूरा हो गया हो, उससे कार्य नहीं कराया जा सकता। वह अपनी अवहेलना करने लगता है। इसलिये दूसरों के कार्य जो अपने द्वारा पूरे होने हों, अधूरे ही रखने चाहियें। मनुष्य प्रतिदिन उठ उठ कर सावधानी से शत्रु के घर में जाये और उसकी कुशलता को पूछे, भले ही उसका अमंगल ही क्यों न हो।

नालसाः प्राप्नुवन्त्यर्थान् न क्लीबा नाभिमानिनः॥ २०॥
न च लोकरवाद् भीता न वै शश्वत् प्रतीक्षिणः।
नात्मच्छिद्रं रिपुर्विद्याद् विद्याच्छिद्रं परस्य तु॥ २१॥
गूहेत् कूर्म इवाङ्गानि रक्षेद् विवरमात्मनः।
बकवच्चिन्तयेदर्थान् सिंहवच्च पराक्रमेत्॥ २२॥
वृकवच्चावलुम्पेत शरवच्च विनिष्पतेत्।
पानमक्षास्तथा नार्यो मृगया गीतवादितम्॥ २३॥
एतानि युक्त्या सेवेत प्रसंगो ह्यत्र दोषवान्।
कुर्यात् तृणमयं चापं शयीत मृगशायिकाम्॥ २४॥
अन्धः स्यादन्धवेलायां बाधिर्यमपि संश्रयेत्।

आलसी, कायर, अभिमानी, लोकचर्चा से डरनेवाले और सदा समय की ही प्रतीक्षा करनेवाले अपने उद्देश्य को पूरा नहीं कर सकते। राजा को चाहिये कि उसके अपने दोषों को तो शत्रु जान न पावे और स्वयं वह शत्रु के दोषों को जान ले। जैसे कछुआ अपने अंगों को समेट कर रखता है, वैसे ही वह अपने दोषों को छिपाये रखे। राजा को बगुले के समान एकाग्रचित्त होकर अपने उद्देश्य का चिन्तन और सिंह के समान पराक्रम करना चाहिये। उसे भेड़िये के समान शत्रु पर अचानक आक्रमण कर लूट लेना चाहिये। राजा को मद्यपान, जूआ, स्त्रीसंग, शिकार, और गाना बजाना ये कार्य युक्ति के साथ करने चाहियें, क्योंकि इन कार्यों में आसक्ति दोषवाली होती है। राजा को बाँस का धनुष बनवाना और हिरन के समान चौकन्ना होकर सोना चाहिये। जब अन्धे बनने का समय हो तब वह अन्धे के समान और जब बहरे होने का समय हो, तब बहरे की तरह से रहे।

देशकालौ समासाद्य विक्रमेत विचक्षणः॥ २५॥
देशकालव्यतीतो हि विक्रमो निष्फलो भवेत्।
कालाकालौ सम्प्रधार्य बलाबलमथात्मनः॥ २६॥
परस्य च बलं ज्ञात्वा तत्रात्मानं नियोजयेत्।
दण्डेनोपनतं शत्रुं यो राजा न नियच्छति॥ २७॥
स मृत्युमुपगृह्णाति गर्भमश्वतरी यथा।
सुपुष्पितः स्यादफलः फलवान् स्याद् दुरारुहः॥ २८॥
आमः स्यात् पक्वसंकाशो न च शीर्येत कस्यचित्।

बुद्धिमान राजा को चाहिये कि देश और काल को देखकर ही अपने पराक्रम को प्रकट करे। देश और काल के व्यतीत हो जाने पर पराक्रम करना निष्फल होता है। राजा को यह समझ कर कि अपने लिये समय अच्छा है या खराब है, अपना पक्ष प्रबल है या निर्बल है और शत्रु की शक्ति कैसी है, यह सब समझ कर अपने आपको युद्ध या सन्धि के कार्य में लगाना चाहिये। यदि शत्रु दण्डद्वारा नतमस्तक हो रहा हो तो उसे अवश्य ही नष्ट कर देना चाहिये। जो राजा ऐसा नहीं करता है, वह अपनी मृत्यु को वैसे ही आमन्त्रित करता है, जैसे खच्चरी मृत्यु के लिये ही गर्भ धारण करती है। राजा को ऐसे रहना चाहिये जैसे अच्छे फूलों वाला पर फल से रहित वृक्ष, या फलवान् वृक्ष, पर उसका फल बहुत ऊँचाई पर हो, उसका फल हो तो कच्चा, पर दिखाई ऐसा दे जैसे पकाहुआ है और कभी जीर्ण शीर्ण न हो।

आशां कालवतीं कुर्यात् तां च विघ्नेन योजयेत्॥ २९॥
विघ्नं निमित्ततो ब्रूयान्निमित्तं चापि हेतुतः।
भीतवत् संविधातव्यं यावद् भयमनागतम्॥ ३०॥
आगतं तु भयं दृष्ट्वा प्रहर्तव्यमभीतवत्।
न संशयमनारुह्य नरो भद्राणि पश्यति॥ ३१॥
संशयं पुनरारुह्य यदि जीवति पश्यति।
अनागतं विजानीयाद् यच्छेद् भयमुपस्थितम्॥ ३२॥
पुनर्वृद्धिभयात् किंचिदनिवृत्तं निशामयेत्।

राजा शत्रु के कार्य को पूरा करने की आशा में विघ्न डालकर उसमें समय लगा दे। वह उस विघ्न का कुछ कारण बता दे और उस कारण को युक्ति के द्वारा सिद्ध कर दे। राजा को जब तक अपने ऊपर भय न आये तब तक डरे हुए की भांति उसे

टालने का प्रयत्न करना चाहिये। पर जब भय सामने आ ही जाये, तो निर्भयता से उस पर प्रहार करना चाहिये। मनुष्य प्राणों को संशय में बिना डाले कल्याण की प्राप्ति नहीं कर सकता। किन्तु प्राणों के संशय में पड़ जाने पर यदि वह जीवित रह जाता है, तो कल्याण को प्राप्त होता है। जो संकट आने वाला हो, उसे पहले ही जान लेना चाहिये। जब संकट सामने प्रस्तुत होजाये, तब उसे वश में करने का प्रयत्न करना चाहिये। संकट के दब जाने पर भी यह समझते हुए कि अभी पूरी तरह से नहीं दबा है, उससे सावधान रहना चाहिये।

प्रत्युपस्थितकालस्य सुखस्य परिवर्जनम्॥ ३३॥
अनागतसुखाशा च नैव बुद्धिमतां नयः।
योऽरिणा सह संधाय सुखं स्वपिति विश्वसन्॥ ३४॥
स वृक्षाग्रे प्रसुप्तो वा पतितः प्रतिबुद्ध्यते।
कर्मणा येन तेनैव मृदुना दारुणेन च॥ ३५॥
उद्धरेद् दीनमात्मानं समर्थो धर्ममाचरेत्।
ये सपत्नाः सपत्नानां सर्वांस्तानुपसेवयेत्॥ ३६॥
आत्मनश्चापि बोद्धव्याश्चारा विनिहताः परैः।

जिस सुख के प्राप्त होने का समय आ गया हो, उसे त्यागकर भविष्य में आनेवाले सुख की आशा करना बुद्धिमानों की नीति नहीं है। जो राजा शत्रु से सन्धि करके निर्भय होकर सुख से सोता है, वह मानों वृक्ष की टहनी पर सो रहा होता है। ऐसा मनुष्य गिरने पर ही जागता है। जो व्यक्ति जिस किसी भी कार्य से, चाहे वह कोमल हो या दारुण हो हीन दशा से अपना उद्धार करता है, वह उसके पश्चात् शक्तिशाली होकर धर्म का आचरण करता है। जो शत्रुओं के भी शत्रु हों, उन सब का सेवन करना चाहिये। शत्रुओं द्वारा अपने ऊपर जो गुप्तचर लगाये हुए हों, उन्हें भी पहचानने का प्रयत्न करना चाहिये।

चारस्त्वविदितः कार्य आत्मनोऽथ परस्य च॥ ३७॥
पाखण्डांस्तापसादींश्च परराष्ट्रे प्रवेशयेत्।
उद्यानेषु विहारेषु प्रपास्वावसथेषु च॥ ३८॥
पानागारे प्रवेशेषु तीर्थेषु च सभासु च।
धर्माभिचारिणः पापाश्चौरा लोकस्य कण्टकाः॥ ३९॥
समागच्छन्ति तान् बुध्द्वा नियच्छेच्छमयीत च।
विश्वासयित्वा तु परं तत्त्वभूतेन हेतुना॥ ४०॥
अथास्य प्रहरेत् काले किंचिद् विचलिते पदे।

राजा को अपने राज्य में तथा शत्रु के भी ऊपर गुप्तचर लगाने चाहियें। गुप्तचरों को वह पाखण्डी साधुओं और तपस्वियों के वेष में शत्रु के राज्य में प्रवेश करा दे। वे गुप्तचर उद्यानों, विहार करने के स्थानों और सभाभवनों में विचरण करें। कपट पूर्ण धर्म का आचरण करने वाले, पापात्मा, चोर और संसार के लिये कण्टकरूप मनुष्य वहाँ आते रहते हैं। उनके बारे में जानकर राजा उन्हें कैद, या किसी और उपाय से शान्त करे। राजा किसी यथार्थ कारण से शत्रु के हृदय में अपने प्रति विश्वास उत्पन्न कर दे। जब उसका पैर लड़खड़ाता हुआ देखे, उस पर उचित समय में प्रहार कर दे।

अवधानेन मौनेन काषायेण जटाजिनैः॥ ४१॥
विश्वासयित्वा द्वेष्टारमवलुम्पेद् यथा वृकः।
पुत्रो वा यदि वा भ्राता पिता वा यदि वा सुहृत्॥ ४२॥
अर्थस्य विघ्नं कुर्वाणा हन्तव्या भूतिमिच्छता।
गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याकार्यमजानतः॥ ४३॥
उत्पथं प्रतिपन्नस्य दण्डो भवति शासनम्।
अभ्युत्थानाभिवादाभ्यां सम्प्रदानेन केनचित्॥ ४४॥
प्रतिपुष्पफलाघाती तीक्ष्णतुण्ड इव द्विजः।

शत्रु के हित के लिये अपना मनोयोग दिखाकर, मौन धारणकरके, जटा और मृगचर्म धारणकर शत्रु के हृदय में अपने प्रति विश्वास उत्पन्न करना चाहिये। जब उसके हृदय में विश्वास हो जाये, तब उसपर भेड़िये की तरह आक्रमण कर दे। भाई, पुत्र, पिता और मित्र, इनमें से कोई भी यदि अपने उद्‌देश्य में विघ्न डालनेवाले हों तो ऐश्वर्य को चाहनेवाले राजा को उन्हें अवश्य मार देना चाहिये। यदि गुरु भी अपने कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य को न जानते हुए, अभिमान में भर कर, बुरे मार्ग पर चल रहा हो तो राजा को उसे भी दण्ड देना चाहिये। राजा शत्रु के आने पर उसका उठकर स्वागत करे, प्रणाम करे और कोई उपहार दे। फिर उसे अपने विश्वास में लेकर, उसके ऊपर वैसे ही प्रहार करे, जैसे तीखी चोंचवाला पक्षी वृक्ष के प्रत्येक फल और फूल पर प्रहार करता है।

नाच्छित्त्वा परमर्माणि नाकृत्वा कर्म दारुणम्॥ ४५॥
नाहत्वा मत्स्यघातीव प्राप्नोति महतीं श्रियम्।
अमित्रं नैव मुञ्चेत वदन्तं करुणान्यपि॥ ४६॥

दुःखं तत्र न कर्तव्यं हन्यात् पूर्वापकारिणम्।
संग्रहानुग्रहे यत्नः सदा कार्योऽनसूयता॥ ४७॥
निग्रहश्चापि यत्नेन कर्तव्यो भूतिमिच्छता।
निमन्त्रयीत सान्त्वेन सम्मानेन तितिक्षया॥ ४८॥
लोकाराधनमित्येतत् कर्तव्यं भूतिमिच्छता।

मछलीमार की तरह दूसरे के मर्म को भेदे बिना, भयंकर कर्म किये बिना और दूसरों को मारे बिना राजा महान् सम्पत्ति को नहीं प्राप्त कर सकता। अपना शत्रु यदि दीनतापूर्वक करुण वचन बोल रहा हो, तोभी उसे बिना मारे नहीं छोड़ना चाहिये। जिसने पहले अपना अपकार किया है, उसे अवश्य मार दे, उसमें दुख अनुभव न करे। ऐश्वर्य चाहनेवाले राजा को बिना दूसरों के दोषों का कथन करते हुए मित्रों का संग्रह और प्रजापर अनुग्रह सदा करते रहना चाहिये। उसे यत्न पूर्वक शत्रुओं का दमन भी करना चाहिये। ऐश्वर्य को प्राप्त करने की इच्छा वाले राजा को चाहिये कि सहनशील होकर लोगों को अपने से मिलने के लिये सम्मान के साथ निमन्त्रण दे। यह प्रजा को प्रसन्न करने का साधन है। राजा को इसे अवश्य करना चाहिये।

त्रिवर्गे त्रिविधा पीडानुबन्धास्त्रय एव च॥ ४९॥
अनुबन्धाः शुभा ज्ञेयाः पीडाश्च परिवर्जयेत्।
ऋणशेषमग्निशेषं शत्रुशेषं तथैव च॥ ५०॥
पुनः पुनः प्रवर्धन्ते तस्माच्छेषं न धारयेत्।
वर्धमानमृणं तिष्ठेत् परिभूताश्च शत्रवः॥ ५१॥
जनयन्ति भयं तीव्रं व्याधयश्चाप्युपेक्षिताः।
नासम्यक्कृतकारी स्यादप्रमत्तः सदा भवेत्॥ ५२॥
कण्टकोऽपि हि दुश्छिन्नो विकारं कुरुते चिरम्।

धर्म, अर्थ और काम इन तीनों वर्गों के पालन में तीन प्रकार की रुकावटों और तीन प्रकार के फलों की प्राप्ति होती है। राजा तीनों प्रकार की रुकावटों से अपने आपको बचाते हुए तीनों प्रकार के उत्तम फलों को प्राप्त करे। ऋण अग्नि और शत्रु इनमें से कुछ भी शेष रह जाये तो वह पुनः बढ़ जाता है, इसलिये इनमें से किसी को भी शेष नहीं रहने देना चाहिये। यदि बढ़ता हुआ ऋण शेष रह जाये, हारे हुए शत्रु शेष रह जायें और उपेक्षा की हुई बीमारी शेष रह जाये, तो ये तीव्र भय उत्पन्न कर देते हैं। राजा सदा सावधान रहे और किसी भी कार्य को पूरी तरह से किये बिना न छोड़े। काँटा भी यदि पूरी तरह से न निकाला जाये और उसका कुछ भाग शरीर में रह जाये, तो वह देर तक परेशान करता है।

वधेन च मनुष्याणां मार्गाणां दूषणेन च॥ ५३॥
अगाराणां विनाशैश्च परराष्ट्रं विनाशयेत्।
गृध्रदृष्टिर्बकालीनः श्वचेष्टः सिंहविक्रमः॥ ५४॥
अनुद्विग्नः काकशङ्की भुजङ्गचरितं चरेत्।
शूरमञ्जलिपातेन भीरुं भेदेन भेदयेत्॥ ५५॥
लुब्धमर्थप्रदानेन समं तुल्येन विग्रहः।

राजा शत्रु के राष्ट्र का विध्वंस करे। इसके लिये उसे मनुष्यों का वध, सड़कों की तोड़फोड़, और घरों का विनाश भी करना चाहिये। राजा को अपने शत्रुओं के प्रति गीध जैसी दृष्टि, बगुले जैसा ध्यान, कुत्ते जैसा चौकन्नापन और सिंह जैसे पराक्रम को अपनाना चाहिये। वह मन में उद्विग्न न हो, पर कौए की तरह शत्रु के प्रति संशक रहे और दूसरे के बिल में प्रवेश करने वाले साँप के समान शत्रु का छिद्र देखकर उस पर आक्रमण करे। वह अपने से अधिक शूरवीर शत्रु को हाथ जोड़कर वश में करे। यदि वह डरपोक हो तो उसे भेद नीति से फोड़ ले, लोभी हो तो उसे धन देकर वश में करे और अपने बराबर हो तो उससे युद्ध करे।

श्रेणीमुख्योपजापेषु वल्लभानुनयेषु च॥ ५६॥
अमात्यान् परिरक्षेत भेदसंघातयोरपि।
काले मृदुर्यो भवति काले भवति दारुणः॥ ५७॥
प्रसाधयति कृत्यानि शत्रुं चाप्यधितिष्ठति।
पण्डितेन विरुद्धः सन् दूरस्थोऽस्मीति नाश्वसेत्।
दीर्घौ बुद्धिमतो बाहू याभ्यां हिंसति हिंसितः॥ ५८॥

जब शत्रुकी तरफ से वर्गों के मुखियाओं में भेद डाला जा रहा हो, मित्रों को अनुनय विनय से अपनी तरफ खींचा जा रहा हो, सब तरफ भेद और दलबन्दी के जाल बिछाये जा रहे हों, तब राजा को अपने मन्त्रियों की पूरीतरह से रक्षा करनी चाहिये। जो राजा समय पर कोमल और समय पर कठोर बन जाता है, वह अपने सारे कार्य सिद्ध कर लेता है और शत्रुओं पर भी उसका अधिकार हो जाता है। मनुष्य को चाहिये कि विद्वान् व्यक्ति से द्वेषकर वह यह सोचकर निश्चिंत न रहे कि

मैं उससे बहुत दूर रहता हूँ, क्योंकि बुद्धिमान् व्यक्ति की बाहें बहुत लम्बी होती हैं, चोट खाने पर, जिनके द्वारा वह दूर से भी शत्रु का विनाश कर सकता है।

न तत् तरेद् यस्य न पारमुत्तरे-
न्न तद्धरेद् यत् पुनराहरेत् परः।
न तत् खनेद् यस्य न मूलमुद्धरे-
न्न तं हन्याद् यस्य शिरो न पातयेत्॥ ५९॥
इतीदमुक्तं वृजिनाभिसंहितं
न चैतदेवं पुरुषः समाचरेत्।
परप्रयुक्ते न कथं विभावये-
दतो मयोक्तं भवतो हितार्थिना॥ ६०॥

जिस नदी को पार न कर सके, उस नदी में तैरना नहीं चाहिये। उस धन का अपहरण नहीं करना चाहिये, जिसे शत्रु छीन सके, उसको खोदना नहीं चाहिये, जिसकी जड़ को न उखाड़ सके, उस पर प्रहार नहीं करना चाहिये, जिसका सिर न काट सके। यह जो मैने शत्रु के प्रति पापयुक्त व्यवहार करने का उपदेश दिया है, इसे समर्थ पुरुष को सामान्य अवस्था में कभी आचरण में नहीं लाना चाहिये, किन्तु यदि शत्रु ऐसे ही बर्ताव से अपने ऊपर संकट उपस्थित कर दे, तो वह उसके प्रतिकार के लिये उन्हीं उपायों को क्यों न काम में लाये? इसलिये मैंने आपके कल्याण की इच्छा से यह सब बताया है।

बासठवाँ अध्याय : लोभ की बुराई।

युधिष्ठिर उवाच

पापस्य यदधिष्ठानं यतः पापं प्रवर्तते।
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं तत्त्वेन भरतर्षभ॥ १॥

भीष्म उवाच

पापस्य यदधिष्ठानं तच्छृणुष्व नराधिप।
एको लोभो महाग्राहो लोभात् पापं प्रवर्तते॥ २॥
अतः पापमधर्मश्च तथा दुःखमनुत्तमम्।
निकृत्या मूलमेतद्धि येन पापकृतो जनाः॥ ३॥
लोभात् क्रोधः प्रभवति लोभात् कामः प्रवर्तते।
लोभान्मोहश्च माया च मानः स्तम्भः परासुता॥ ४॥

फिर युधिष्ठिर ने पूछा कि हे भरतश्रेष्ठ! पाप का अधिष्ठान क्या है? वह किस से प्रवृत्त होता है? मैं इस विषय में आपसे यथार्थ रूप से सुनना चाहता हूँ। तब भीष्म जी ने कहा कि हे राजन्! पाप का जो अधिष्ठान है, तुम उसके विषय में सुनो। एक मात्र लोभ नाम महाग्राह ही पाप का अधिष्ठान है। उसी से पाप की तरफ प्रवृत्ति होती है। लोभ से पाप, अधर्म और महान् दुख की उत्पत्ति होती है। छलकपट का मुख्य आधार भी यही है। इसी के कारण लोग पापचारी हो जाते हैं। लोभ से ही काम, क्रोध मोह, माया, अभिमान, उद्दण्डता और पराधीनता आदि दोष प्रकट होते हैं।

अक्षमा ह्रीपरित्यागः श्रीनाशो धर्मसंक्षयः।
अभिध्याप्रख्यता चैव सर्वं लोभात् प्रवर्तते॥ ५॥
अत्यागश्चातितर्षश्च विकर्मसु च याः क्रियाः।
कुलविद्यामदश्चैव रूपैश्वर्यमदस्तथा॥ ६॥
सर्वभूतेष्वभिद्रोहः सर्वभूतेष्वसत्कृतिः।
सर्वभूतेष्वविश्वासः सर्वभूतेष्वनार्जवम्॥ ७॥

क्षमा हीनता, लज्जा हीनता, सम्पत्तिनाश, धर्म का क्षय, चिन्ता और अयश ये सब लोभ से ही जन्म लेते हैं। लोभ से ही कृपणता, अत्यन्त तृष्णा, अनुचित कार्यों में प्रवृत्ति, कुल, विद्या, रूप और ऐवर्श्य का अभिमान, सारे प्राणियों के प्रति द्रोह, सारे प्राणियों का असत्कार, सारे प्राणियों के प्रति अविश्वास और सारे प्राणियों के प्रति कुटिलता का व्यवहार ये सारी बुराइयाँ लोभ से ही होती हैं।

हरणं परवित्तानां परदाराभिमर्शनम्।
वाग्वेगो मनसो वेगो निन्दावेगस्तथैव च॥ ८॥
ईर्ष्यावेगश्च बलवान् मिथ्यावेगश्च दुर्जयः।
रसवेगश्च दुर्वार्यः श्रोत्रवेगश्च दुःसहः॥ ९॥
कुत्सा विकत्था मात्सर्यं पापं दुष्करकारिता।
साहसानां च सर्वेषामकार्याणां क्रियास्तथा॥ १०॥

दूसरों के धन का हरण, परायी स्त्रियों से बलात्कार, वाणी का वेग, मन का वेग, निन्दा करने की विशेष प्रवृत्ति, ईर्ष्या का वेग, मिथ्या समझने का दुर्जय वेग, दुर्निवार्य रसनेन्द्रिय का वेग, दुःसह श्रोत्रवेग, घृणा, अपनी डींग मारना, मत्सरता, पाप कर्म,

दुष्कर कर्मों में प्रवृत्त होना, न करने योग्य कार्य करना इन सब का कारण लोभ ही है।

जातौ बाल्ये च कौमारे यौवने चापि मानवाः।
न संत्यजन्त्यात्मकर्म यो न जीर्यति जीर्यतः॥ ११॥
यो न पूरयितुं शक्यो लोभः प्राप्त्या कुरूद्वह।
नित्यं गम्भीरतोयाभिरापगाभिरिवोदधिः॥ १२॥
स लोभः सह मोहेन विजेतव्यो जितात्मना।
दम्भो द्रोहश्च निन्दा च पैशुन्यं मत्सरस्तथा॥ १३॥
भवन्त्येतानि कौरव्य लुब्धानामकृतात्मनाम्।

हे कुरुश्रेष्ठ! लोभ ऐसी बुरी अच्छा है कि जन्म से लेकर बचपन, कुमारावस्था, युवावस्था, तथा बुढ़ापे में भी, जब मनुष्य स्वयं जीर्ण शीर्ण होने लगता है, इसे छोड़ नहीं पाता और इसके कारण बुरे कर्मों में लगा रहता है। शरीर में जीर्णता आने पर भी लोभ में जीर्णता नहीं आती। जैसे कितनी ही नदियाँ क्यों न उसमें गिरें, पर सागर कभी नहीं भरता, इसीप्रकार लोभ द्वारा चाहे कितने पदार्थ क्यों न मिल जायें, पर लोभ की शान्ति नहीं होती। जितेन्द्रिय पुरुषों के लिये यह आवश्यक है कि वह मोह से युक्त लोभ को अवश्य जीते। हे कुरुनन्दन! जो लोभी, अजितेन्द्रिय व्यक्ति होते हैं, उनमें दम्भ, द्रोह, निन्दा करना, चुगली और ईर्ष्या ये बुराइयाँ होती हैं।

सुमहान्त्यपि शास्त्राणि धारयन्ति बहुश्रुताः॥ १४॥
छेत्तारः संशयानां च क्लिश्यन्तीहाल्पबुद्धयः।
द्वेषक्रोधप्रसक्ताश्च शिष्टाचारबहिष्कृताः॥ १५॥
अन्तःक्रूरा वाङ्मधुराः कूपाश्छन्नास्तृणैरिव।
धर्मवैतंसिकाः क्षुद्रा मुष्णन्ति ध्वजिनो जगत्॥ १६॥
कुर्वते च बहून् मार्गांस्तान् हेतुबलमाश्रिताः।
सतां मार्गान् विलुम्पन्ति लोभाज्ञानेषु निष्ठिताः॥ १७॥

बड़े बड़े विद्वान् जिन्होंने बड़े बड़े शास्त्रों का अध्ययन किया होता है, जो दूसरों की शंकाओं का निवारण करते हैं, इस संसार में उनकी भी बुद्धि लोभ में फँसकर मारी जाती है और वे क्लेश उठाते हैं। वे द्वेष और क्रोध में फँसकर शिष्टाचार को छोड़ देते हैं। बाहर से मीठा बोलते हुए भी वे अन्दर से क्रूर अर्थात् घास फूंस से ढके हुए कूएँ के समान हो जाते हैं। वे धर्म की ध्वजा उठाये तुच्छ मनुष्यों की तरह, धर्म के नाम पर संसार को धोखा देते और लूटते हैं। युक्तियों के बल का आश्रय ले कर, वे बहुत से असत्य मार्गों को खड़ा कर देते हैं। लोभ और अज्ञान में पड़े हुए वे सत्पुरुषों द्वारा चलाये हुए मार्गों को नष्ट करने लगते हैं।

धर्मस्य ह्रियमाणस्य लोभग्रस्तैर्दुरात्मभिः।
या या विक्रियते संस्था ततः सापि प्रपद्यते॥ १८॥
दर्पः क्रोधो मदः स्वप्नो हर्षः शोकोऽतिमानिता।
एत एव हि कौरव्य दृश्यन्ते लब्धबुद्धिषु।
एतानशिष्टान् बुध्यस्व नित्यं लोभसमन्वितान्॥ १९॥

लोभ से ग्रस्त दुरात्माओं से धर्म में जो बिगाड़ खड़ा कर दिया जाता है, वह उसी रूप में जनता में प्रचलित होजाता है। हे कुरुनन्दन! दर्प, क्रोध, अभिमान, दुःस्वप्न, हर्ष, शोक और मद ये दुर्गुण उन्हीं में होते हैं, जिनकी बुद्धि लोभ में फँसी हुई होती है। जो व्यक्ति सदा लोभ में डूबे रहते हैं, उन्हें तुम्हें अशिष्ट समझना चाहिये।

तिरेसठवाँ अध्याय : दम का महत्व।

युधिष्ठिर उवाच

धर्मस्य महतो राजन् बहुशाखस्य तत्त्वतः।
यन्मूलं परमं तात तत् सर्वं ब्रूह्यशेषतः॥ १॥

भीष्म उवाच

हन्त ते कथयिष्यामि येन श्रेयो ह्यवाप्स्यसि।
पीत्वामृतमिव प्राज्ञो ज्ञानतृप्तो भविष्यसि॥ २॥
धर्मस्य विधयो नैके ये वै प्रोक्ता महर्षिभिः।
स्वं स्वं विज्ञानमाश्रित्य दमस्तेषां परायणम्॥ ३॥
दमं निःश्रेयसं प्राहुर्वृद्धा निश्चितदर्शिनः।
ब्राह्मणस्य विशेषेण दमो धर्मः सनातनः॥ ४॥

युधिष्ठिर ने पूछा कि हे राजन्! धर्म की बहुत सारी शाखायें हैं। उनका परममूल क्या है? हे तात्! आप मुझे पूर्ण और वास्तविकरूप से बताइये। तब भीष्म जी ने उत्तर दिया कि हे युधिष्ठिर! मैं हर्षसहित तुम्हें वह बताता हूँ, जिसमें तुम कल्याण को प्राप्त करोगे। जैसे अमृत

को पी लिया हो, वैसे ही तुम ज्ञान से तृप्त हो कर ज्ञानी बन जाओगे। महर्षियों ने धर्म की एक नहीं, बहुत सारी रीतियाँ अपने अपने ज्ञान के अनुसार बतायी हैं, पर उन सबका आधार दम अर्थात् मन और इन्द्रियों का संयम ही है। धर्म के सिद्धान्तों को जाननेवाले वृद्ध पुरुष दम को ही परम कल्याण का साधन मानते हैं। ब्राह्मण का तो दम ही विशेष सनातन धर्म है।

दमात् तस्य क्रियासिद्धिर्यथावदुपलभ्यते।
दमो दानं तथा यज्ञानधीतं चातिवर्तते॥ ५॥
दमस्तेजो वर्धयति पवित्रं च दमः परम्।
विपाप्मा तेजसा युक्तः पुरुषो विन्दते महत्॥ ६॥
दमेन सदृशं धर्मं नान्यं लोकेषु शुश्रुम।
दमो हि परमो लोके प्रशस्तः सर्वधर्मिणाम्॥ ७॥
प्रेत्य चात्र मनुष्येन्द्र परमं विन्दते सुखम्।
दमेन हि समायुक्तो महान्तं धर्ममश्नुते॥ ८॥

दम से ही उसे शुभ कर्मों की यथावत् सिद्धि प्राप्त होती है। दम उसके लिये दान, यज्ञ तथा स्वाध्याय से भी बढ़ कर है। दम से ही तेज की वृद्धि होती है। दम अत्यधिक पवित्र साधन है। दम से ही पापरहित तेजस्वी पुरुष परम पद को प्राप्त होता है। हमने संसार में दम से अधिक उत्तम धर्म किसी और में नहीं सुना है। सारे धर्मवालों ने दम को ही परम उत्कृष्ट बताया है। हे राजन्! दम से युक्त व्यक्ति धर्म के महान् फल को प्राप्त करता है। वह इस लोक तथा परलोक में भी अत्यन्त सुख को प्राप्त करता है।

सुखं दान्तः प्रस्वपिति सुखं च प्रतिबुध्यते।
सुखं पर्येति लोकांश्च मनश्चास्य प्रसीदति॥ ९॥
अदान्तः पुरुषः क्लेशमभीक्ष्णं प्रतिपद्यते।
अनर्थांश्च बहूनन्यान् प्रसृजत्यात्मदोषजान्॥ १०॥
आश्रमेषु चतुर्ष्वाहुर्दममेवोत्तमं व्रतम्।
तस्य लिङ्गानि वक्ष्यामि येषां समुदयो दमः॥ ११॥

दमन शील व्यक्ति सुख से सोता, सुख से जागता और सुख पूर्वक संसार में विचरण करता है। उसका मन सदा प्रसन्न रहता है। किन्तु जिस व्यक्ति ने मन और इन्द्रियों को वश में नहीं किया, वह सदा कष्ट उठाता है और अपने दोषों से दूसरे दोषों की सृष्टि कर लेता है। चारों आश्रमों में दम को ही उत्तम व्रत कहा गया है। अब मैं उन लक्षणों को बताता हूँ, जिनका उदय होना दम अर्थात् मन और इन्द्रियों को वश में करने का सूचक है।

क्षमा धृतिरहिंसा च समता सत्यमार्जवम्।
इन्द्रियाभिजयो दाक्ष्यं मार्दवं ह्रीरचापलम्॥ १२॥
अकार्पण्यमसंरम्भः संतोषः प्रियवादिता।
अविहिंसानसूया चाप्येषां समुदयो दमः॥ १३॥
गुरुपूजा च कौरव्य दया भूतेष्वपैशुनम्।
जनवादं मृषावादं स्तुतिनिन्दाविसर्जनम्॥ १४॥
कामं क्रोधं च लोभं च दर्पं स्तम्भं विकत्थनम्।
रोषमीर्ष्यावमानं च नैव दान्तो निषेवते॥ १५॥

क्षमा, धीरता, अहिंसा, समता, सत्यवादिता, सरलता, इन्द्रियविजय, दक्षता, कोमलता, लज्जा, स्थिरता, उदारता, क्रोध हीनता, सन्तोष, प्रियवचन और किसी भी प्राणी को कष्ट न देना, इन गुणों का उदय हो जाना ही दम कहलाता है। हे कुरुनन्दन! मन और इन्द्रियों को वश में करने वाला गुरु की पूजा, सब के प्रति दयाभावना, किसी की चुगली न करना, इन गुणों से युक्त होता है। वह लोगों द्वारा की हुई बुराई, असत्य भाषण, निन्दा और स्तुति का त्याग, काम, क्रोध, लोभ, दर्प, जड़ता, डींग मारना, रोष, ईर्ष्या, तथा दूसरों का अपमान करना, इन दुर्गुणों का कभी सेवन नहीं करता।

अनिन्दितो ह्यकामात्मा नाल्पेष्वर्थ्यनसूयकः।
समुद्रकल्पः स नरो न कथंचन पूर्यते॥ १६॥
अहं त्वयि मयि त्वं मयि ते तेषु चाप्यहम्।
पूर्वसम्बन्धिसंयोगं नैतद् दान्तो निषेवते॥ १७॥
सर्वाग्राम्यास्तथाऽऽरण्या याश्च लोके प्रवृत्तयः।
निन्दां चैव प्रशंसां च यो नाश्रयति मुच्यते॥ १८॥
मैत्रोऽथ शीलसम्पन्नः प्रसन्नात्माऽऽत्मविच्च यः।
मुक्तस्य विविधैः सङ्गैस्तस्य प्रेत्य फलं महत्॥ १९॥

जितेन्द्रिय व्यक्ति की कभी निन्दा नहीं होती वह कामनाओं से रहित होता है और छोटी सी वस्तु के लिये भी किसी से याचना नहीं करता। वह दूसरों के दोष नहीं देखता। वह सागर के समान गम्भीर होता है। जैसे नदियों द्वारा निरन्तर पानी डाले जाने पर भी समुद्र भरता नहीं है, वैसे

ही जितेन्द्रिय पुरुष का मन भी धर्म का पालन करते हुए कभी तृप्त नहीं होता। मैं तुम पर स्नेह करता हूँ और तुम मेरे प्रति करते हो। वे मुझसे अनुराग रखते हैं, और मैं उनमें, इस प्रकार के पूर्व. सम्बन्धों का जितेन्द्रिय व्यक्ति कभी चिन्तन नहीं करता। संसार में जो भी ग्रामीणों तथा जँगली लोगों की प्रवृत्तियाँ तथा दूसरों की निन्दा या प्रशंसा करना आदि बातें हैं, उनको जितेन्द्रिय व्यक्ति सेवन नहीं करता और मोक्ष को प्राप्त हो जाता है। जो सबके प्रति मैत्री का भाव रखता है, शीलस्वभाव से युक्त है, जो सदा प्रसन्न रहता है और आत्मा के स्वरूप को पहचानता है, तथा नाना प्रकार की आसक्तियों से मुक्त है, ऐसा जितेन्द्रिय व्यक्ति मृत्यु के पश्चात् मोक्ष रूपी महान् फल को प्राप्त करता है।

अभयं यस्य भूतेभ्यो भूतानामभयं यतः।
तस्य देहाद् विमुक्तस्य भयं नास्ति कुतश्चन॥ २०॥
एकमेव दमे दोषो, द्वितीयो नोपपद्यते।
यदेनं क्षमया युक्तम्, अशक्तं मन्यजनः॥ २१॥
एकोऽस्य सुमहाप्राज्ञ दोषः स्यात् सुमहान् गुणः।
क्षमया विपुला लोकाः सुलभा हि सहिष्णुता॥ २२॥
दान्तस्य किमरण्येन तथादान्तस्य भारत।
यत्रैव निवसेद् दान्तस्तदरण्यं स चाश्रमः॥ २३॥

जो जितेन्द्रिय व्यक्ति सारे प्राणियों के प्रति भय से रहित है और जिससे दूसरे प्राणियों को भय नहीं होता, वह देह के अभिमान से रहित कहीं से भी भय को प्राप्त नहीं होता। जितेन्द्रिय व्यक्ति में केवल एक ही दोष है, वह यह कि क्षमाशील होने के कारण लोग उसे असमर्थ समझने लगते हैं पर यह एक दोष भी उसके लिये महान् गुण बन जाता है। क्योंकि क्षमा से उसे दूसरे पुण्य लोकों की प्राप्ति होती है और क्षमा से उसमें सहिष्णुता का समावेश भी सरलता से हो जाता है। हे भारत! जिसने अपने मन और इन्द्रियों को वश में कर लिया, उसे वन में जाने की क्या आवश्यकता है? और जो जितेन्द्रिय नहीं है, उसे वन में जाने से भी क्या लाभ है? संयमी व्यक्ति जहाँ भी रहे, वहीं उसके लिये वन और वहीं आश्रम है।

चौंसठवाँ अध्याय : सत्य की महिमा, लक्षण और स्वरूप।

युधिष्ठिर उवाच

सत्यं धर्मं प्रशंसन्ति विप्रर्षिपितृदेवताः।
सत्यमिच्छाम्यहं श्रोतुं तन्मे ब्रूहि पितामह॥ १॥

भीष्म उवाच

सत्यं सत्सु सदा धर्मः सत्यं धर्मः सनातनः।
सत्यमेव नमस्येत सत्यं हि परमा गतिः॥ २॥
सत्यं धर्मस्तपो योगः सत्यं ब्रह्म सनातनम्।
सत्यं यज्ञः परः प्रोक्तः सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम्॥ ३॥
आचारानिह सत्यस्य यथावदनुपूर्वशः।
लक्षणं च प्रवक्ष्यामि सत्यस्येह यथाक्रमम्॥ ४॥

युधिष्ठिर ने पूछा कि हे पितामह! ब्राह्मण, ऋषि, वृद्ध औद देवता अर्थात् सदाचारी विद्वान् लोग सत्य धर्म की ही प्रशंसा करते हैं, इसलिये मैं सत्य के बारे में जानना चाहता हूँ। आप मुझे उसके विषय में बताइये। तब भीष्मजी ने उत्तर दिया कि महापुरुषों में सदा सत्यरूप धर्म का पालन होता है। सत्य सनातन धर्म है, इसलिये सत्य को ही नमस्कार करना चाहिये। सारे मनुष्यों की सत्य ही परम गति है। सत्य ही धर्म, तप और योग है। सत्य ही सनातन ब्रह्म है। सत्य को ही सबसे बढ़कर यज्ञ कहा गया है और सब कुछ सत्य पर ही टिका हुआ है। अब मैं क्रमसहित सत्य के लक्षणों और आचारों को तुम्हें यथावत् रूप में बताता हूँ।

प्राप्यते च यथा सत्यं तच्च श्रोतुमिहार्हसि।
सत्यं त्रयोदशविधं सर्वलोकेषु भारत॥ ५॥
सत्यं च समता चैव दमश्चैव न संशयः।
अमात्सर्यं क्षमा चैव ह्रीस्तितिक्षानसूयता॥ ६॥
त्यागो ध्यानमथार्यत्वं धृतिश्च सततं स्थिरा।
अहिंसा चैव राजेन्द्र सत्याकारास्त्रयोदश॥ ७॥
सत्यं नामाव्ययं नित्यमविकारि तथैव च।
सर्वधर्माविरुद्धेन योगेनैतदवाप्यते॥ ८॥

हे भारत! तुम यह भी सुनो कि सत्य की प्राप्ति किस प्रकार होती है? सारे संसार में सत्य के तेरह प्रकार कहे गये हैं। हे राजेन्द्र! सत्य, समता,

इन्द्रियदमन, मत्सरता का अभाव, क्षमा, लज्जा, सहनशीलता, दूसरों के दोष न देखना, त्याग, परमात्मा का ध्यान, श्रेष्ठ आचरण, नित्य स्थिर रहने वाली धृति और अहिंसा ये तेरह सत्य के स्वरूप हैं, इसमें सन्देह नहीं है। नित्य एकरस, अविनाशी और अविकारी होना ही सत्य का स्वरूप है। सारे धर्मों के अनुकूल कर्त्तव्यपालनरूप योग से इस सत्य की प्राप्ति होती है।

आत्मनीष्टे तथानिष्टे रिपौ च समता तथा।
इच्छाद्वेषक्षयं प्राप्य कामक्रोधक्षयं तथा॥ ९॥
दमो नान्यस्पृहा नित्यं गाम्भीर्यं धैर्यमेव च।
अभयं रोगशमनं ज्ञानेनैतदवाप्यते॥ १०॥
अमात्सर्यं बुधाः प्राहुर्दाने धर्मे च संयमः।
अवस्थितेन नित्यं च सत्येनामत्सरी भवेत्॥ ११॥
अक्षमायाः क्षमायाश्च प्रियाणीहाप्रियाणि च।
क्षमते सम्मतः साधुः साध्वाप्नोति च सत्यवाक्॥ १२॥

अपने प्रिय मित्र तथा अप्रिय शत्रु में भी समान भाव रखना समता है। इच्छा, द्वेष, काम और क्रोध को मिटा देना ही समताप्राप्ति का उपाय है। दूसरों की वस्तु को लेने की इच्छा न करना, सदा गम्भीरता और धैर्य रखना, भय को त्याग देना और मन के रोगों की शान्ति यह दम है। इसकी प्राप्ति ज्ञान से होती है। दान और धर्म करते समय मन पर संयम रखना, इस विषय में दूसरों से ईर्ष्या न रखना, इसे बुद्धिमान् मत्सरता का न होना कहते हैं। सदा सत्य का पालन करने से मनुष्य मात्सर्य से रहित हो जाता है। जो सहन करने योग्य और न सहन करने योग्य तथा प्रिय और अप्रिय बातों को समान रूप से सहन कर लेता है, वह सर्वसम्मत क्षमावान् श्रेष्ठ पुरुष होता है। सत्यवादी व्यक्ति को ही उत्तम रीति से क्षमाभाव की प्राप्ति होती है।

कल्याणं कुरुते वाढं धीमान् न ग्लायते क्वचित्।
प्रशान्तवाङ्मना नित्यं ह्रीस्तु धर्मादवाप्यते॥ १३॥
धर्मार्थहेतोः क्षमते तितिक्षा क्षान्तिरुच्यते।
लोकसंग्रहणार्थं वै सा तु धैर्येण लभ्यते॥ १४॥
त्यागः स्नेहस्य यत् त्यागो विषयाणां तथैव च।
रागद्वेषप्रहीणस्य त्यागो भवति नान्यथा॥ १५॥
आर्यता नाम भूतानां यः करोति प्रयत्नतः।
शुभं कर्म निराकारो वीतरागस्तथैव च॥ १६॥

जो धीमान् व्यक्ति दूसरों का अच्छी तरह कल्याण करता है और कभी खेद नहीं करता, जिसका मन तथा वाणी सदा शान्त रहती है, वह लज्जाशील माना जाता है। यह लज्जाशीलता धर्म के आचरण से आती है। धर्म और अर्थ की प्राप्ति के लिये व्यक्ति जो कष्ट सहन करता है, उसकी यह सहनशीलता ही तितिक्षा कही जाती है। यह लोगों के सामने आदर्श उपस्थित करने के लिये होती है। इसकी प्राप्ति धैर्य से होती है। स्नेह का त्याग, विषयों की आसक्ति का त्याग ही वास्तविक त्याग है। त्याग की सिद्धि राग और द्वेष से रहित होने पर ही होती है, और किसी कारण से नहीं। जब मनुष्य अपने-आपको प्रकट न करते हुए लोगों की भलाई के लिये कर्म करता है, तब उसके उस आचरण को आर्यता कहते हैं। उसकी प्राप्ति आसक्ति के त्याग से होती है।

धृतिर्नाम सुखे दुःखे यथा नाप्नोति विक्रियाम्।
तां भजेत सदा प्राज्ञो य इच्छेद् भूतिमात्मनः॥ १७॥
सर्वथा क्षमिणा भाव्यं तथा सत्यपरेण च।
वीतहर्षभयक्रोधो धृतिमाप्नोति पण्डितः॥ १८॥
अद्रोहः सर्वभूतेषु कर्मणा मनसा गिरा।
अनुग्रहश्च दानं च सतां धर्मः सनातनः॥ १९॥
एते त्रयोदशाकाराः पृथक् सत्यैकलक्षणाः।
भजन्ते सत्यमेवेह बृंहयन्ते च भारत॥ २०॥

सुख और दुख के प्राप्त होने पर भी जब मन में कोई विकार नहीं होता, तब उसे धृति कहते हैं। जो बुद्धिमान् व्यक्ति अपनी उन्नति चाहता है, उसे सदा धृति का पालन करना चाहिये। मनुष्य को सदा क्षमाशील और सत्य में तत्पर होना चाहिये। जिस विद्वान् पुरुष ने हर्ष, भय और क्रोध को त्याग दिया है, उसे ही धृति की प्रप्ति होती है। मन वाणी और कर्म से सारे प्राणियों से द्रोह न करना, सब पर अनुग्रह करना और दान देना, यह सज्जन व्यक्तियों का सनातन धर्म है। ये अलग अलग तेरह रूपों में बताये हुए सत्य के लक्षण हैं। हे भारत! ये सारे गुण सत्य का आश्रय लेते और उसी की वृद्धि करते हैं।

नान्तः शक्यो गुणानां च वक्तुं सत्यस्य पार्थिव।
अतः सत्यं प्रशंसन्ति विप्राः सपितृदेवताः॥ २१॥
नास्ति सत्यात् परो धर्मो नानृतात् पातकं परम्।

स्थितिर्हि सत्यं धर्मस्य तस्मात् सत्यं न लोपयेत्॥ २२॥
अश्वमेधसहस्त्रं च सत्यं च तुलया धृतम्।
अश्वमेधसहस्राद्धि सत्यमेव विशिष्यते॥ २३॥

हे राजन्! सत्य के गुणों का अन्त तक बखान नहीं किया जा सकता। इसलिये सत्य की वृद्ध लोग, ब्राह्मण तथा देवता अर्थात् विद्वान् सदाचारी लोग प्रशंसा करते हैं। सत्य से उत्तम धर्म और असत्य से बढ़कर पाप नहीं है। सत्य ही धर्म की आधार शिला है। इसलिये सत्य का लोप नहीं करना चाहिये। यदि एक हजार अश्वमेध यज्ञों को सत्य के समक्ष तोला जाये, तो भी उनकी अपेक्षा में सत्य का पलड़ा भारी रहेगा।

पैंसठवाँ अध्याय : कामक्रोध् आदि तेरह दोषों का वर्णन।

युधिष्ठिर उवाच

यतः प्रभवति क्रोधः कामो वा भरतर्षभ।
शोकमोहौ विधित्सा च परासुत्वं तथा मदः॥ १॥
लोभो मात्सर्यमीर्ष्या च कुत्सासूया कृपा तथा।
एतत् सर्वं महाप्राज्ञ याथातथ्येन मे वद॥ २॥

भीष्म उवाच

त्रयोदशैतेऽतिबलाः शत्रवः प्राणिनां स्मृताः।
उपासन्ते महाराज समन्तात् पुरुषानिह॥ ३॥
एते प्रमत्तं पुरुषमप्रमत्तास्तुदन्ति च।
वृका इव विलुम्पन्ति दृष्ट्वैव पुरुषं बलात्॥ ४॥

तब युधिष्ठिर ने पूछा कि हे भरतश्रेष्ठ, परम बुद्धिमान् पितामह! क्रोध, काम, शोक, मोह, विधित्सा, परासुता, मद, लोभ, मात्सर्य, ईर्ष्या, कुत्सा, असूया और कृपा इन सारे दुर्गुणों का जन्म किससे होता है? यह आप वास्तविकरूप से मुझे बताइये। तब भीष्म जी ने उत्तर दिया कि ये तेरह मनुष्यों के अत्यन्त बलवान् शत्रु माने गये हैं। हे महाराज! ये मनुष्य को सबतरफ से घेरे रहते है। ये दोष असावधान व्यक्ति को सदा सावधान रह कर पीड़ा देते रहते हैं। ये मनुष्य को देखते ही भेड़िये की तरह उस पर बलपूर्वक टूट पड़ते हैं।

एभ्यः प्रवर्तते दुःखमेभ्यः पापं प्रवर्तते।
इति मर्त्यो विजानीयात् सततं पुरुषर्षभ॥ ५॥
एतेषामुदयं स्थानं क्षयं च पृथिवीपते।
हन्त ते कथयिष्यामि क्रोधस्योत्पत्तिमादितः॥ ६॥
यथातत्त्वं क्षितिपते तदिहैकमनाः शृणु।
लोभात् क्रोधः प्रभवति परदोषैरुदीर्यते॥ ७॥
क्षमया तिष्ठते राजन् क्षमया विनिवर्तते।
संकल्पाज्जायते कामः सेव्यमानो विवर्धते॥ ८॥
यदा प्राज्ञो विरमते तदा सद्यः प्रणश्यति।
परासुता क्रोधलोभादभ्यासाच्च प्रवर्तते॥ ९॥
दयया सर्वभूतानां निर्वेदात् सा निवर्तते।

हे पुरुषश्रेष्ठ! इस बात की जानकारी रखनी चाहिये कि इन बुराइयों से ही मनुष्य को दुख प्राप्त होता है और वह पाप में प्रवृत्त होता है। हे राजन्! मैं पूरी तरह से तुम्हें इन के उदय, इनका स्थान और विनाश के विषय में बताऊँगा। पहले तुम क्रोध के बारे में यथार्थरूप से एकाग्रचित्त हो कर सुनो। क्रोध लोभ से उत्पन्न होता है। यह दूसरों के दोष देखने से बढ़ता है और क्षमा करने से स्थिर हो जाता है तथा क्षमा से ही निवृत्त हो जाता है। काम संकल्प से उत्पन्न होता है। उसका सेवन किया जाये तो वह बढ़ता है। जब बुद्धिमान् पुरुष उससे विरक्त हो जाता है तो तुरन्त नष्ट हो जाता है। परासुता अर्थात् दूसरों के प्राण लेने की इच्छा क्रोध, लोभ तथा अभ्यास से उत्पन्न होती है। यह सारे प्राणियों के प्रति दया और वैराग्य से निवृत्त होती है।

अज्ञानप्रभवो मोहः पापाभ्यासात् प्रवर्तते॥ १०॥
यदा प्राज्ञेषु रमते तदा सद्यः प्रणश्यति।
विरुद्धानीह शास्त्राणि ये पश्यन्ति कुरुद्वह॥ ११॥
विधित्सा जायते तेषां तत्त्वज्ञानान्निवर्तते।
प्रीत्या शोकः प्रभवति वियोगात् तस्य देहिनः॥ १२॥
यदा निरर्थकं वेत्ति तदा सद्यः प्रणश्यति।
सत्यत्यागात् तु मात्सर्यमहितानां च सेवया॥ १३॥
एतत् तु क्षीयते तात साधूनामुपसेवनात्।

मोह अज्ञान से जन्म लेता है और पापकर्मों का अभ्यास करने से बढ़ता है। किन्तु जब बुद्धिमानों के प्रति मनुष्य का प्रेम होता है तो यह तुरन्त नष्ट

हो जाता है। हे कुरुनन्दन! जो लोग धर्म के विरोधी शास्त्रों का अध्ययन करते हैं, उनमें विधित्सा अर्थात् शास्त्रों के विरुद्ध कार्य करने की इच्छा उत्पन्न होती है। यह इच्छा तत्वज्ञान उत्पन्न होने से निवृत्त होती है। जिसके प्रति प्रेम हो, उस प्राणी के वियोग से शोक होता है, किन्तु जब वह समझ लेता है कि शोक करना व्यर्थ है तो तुरन्त उसकी निवृत्ति हो जाती है। सत्य का त्याग और दुष्टों का साथ करने से मत्सरता अर्थात् शत्रुता की उत्पत्ति होती है। साधुओं की सेवा और संगति करने से इसका नाश होता है।

कुलाज्ज्ञानात् तथैश्वर्यान्मदो भवति देहिनाम्॥ १४॥
एभिरेव तु विज्ञातैः स च सद्यः प्रणश्यति।
ईर्ष्या कामात् प्रभवति संहर्षाच्चैव जायते॥ १५॥
इतरेषां तु सत्त्वानां प्रज्ञया सा प्रणश्यति।
विभ्रमाल्लोकबाह्यानां द्वेष्यैर्वाक्यैरसम्मतैः॥ १६॥
कुत्सा संजायते राजँल्लोकान् प्रेक्ष्याभिशाम्यति।
प्रतिकर्तुं न शक्ता ये बलस्थायापकारिणे॥ १७॥
असूया जायते तीव्रा कारुण्याद् विनिवर्तते।

अपने उत्तमकुल, उत्कृष्ट ज्ञान तथा ऐश्वर्य का अभिमान होने से देहधारियों में मद का संचार हो जाता है, पर इन सबके स्वरूप का यथार्थ ज्ञान होने से वह तत्काल उतर जाता है। मन में कामना होने से तथा दूसरों की प्रसन्न अवस्था देखने से ईर्ष्या की उत्पत्ति होती है, किन्तु ज्ञान होने पर इसकी शान्ति हो जाती है। समाज से बहिष्कृत हुए लोगों के द्वेषपूर्ण और अप्रमाणिक वचनों को सुनकर कुत्सा अर्थात् दूसरों की निन्दा करने की प्रवृत्ति हो जाती है। हे राजन्! किन्तु श्रेष्ठ पुरुषों की संगति से यह दूर हो जाती है। अपना अपकार करने वाले बलवान् व्यक्ति से जब बदला लेने में व्यक्ति असमर्थ होता है तो उसके हृदय में तीव्र असूया अर्थात दोषदर्शन की प्रवृत्ति उत्पन्न हो जाती है। यह प्रवृत्ति दया की भावना से शान्त होती है।

कृपणान् सततं दृष्ट्वा ततः संजायते कृपा॥ १८॥
धर्मनिष्ठां यदा वेत्ति तदा शाम्यति सा कृपा।
अज्ञानप्रभवो लोभो भूतानां दृश्यते सदा॥ १९॥
अस्थिरत्वं च भोगानां दृष्ट्वा ज्ञात्वा निवर्तते।
एतान्येव जितान्याहुः प्रशमाच्च त्रयोदश॥ २०॥
एते हि धार्तराष्ट्राणां सर्वे दोषास्त्रयोदश।
त्वया सत्यार्थिना नित्यं विजिता ज्येष्ठसेवनात्॥ २१॥

सदा कंजूस व्यक्तियों को देखने से अपने में भी कृपा अर्थात् दैन्यभाव उत्पन्न हो जाता है किन्तु जब धर्म के प्रति निष्ठा हो जाती है, तब यह दैन्यभाव नष्ट हो जाता है। प्राणियों के अन्दर लोभ अज्ञान से उत्पन्न होता हुआ देखा जाता है। किन्तु भोगों की अस्थिरता देखने और जानने पर लोभ की निवृत्ति हो जाती है। ये तरह दोष शान्ति धारण करने से जीते जा सकते हैं। ये सारे तेरह दोष धृतराष्ट्र के पुत्रों में थे, किन्तु तुम क्योंकि सदा सत्य को ग्रहण करना चाहते हो, इसलिये बड़े लोगों का साथ करने से तुमने इन्हें जीत लिया है।

छियासठवाँ अध्याय : मित्रता के योग्य और अयोग्य व्यक्ति।

युधिष्ठिर उवाच

पितामह महाप्राज्ञ कुरूणां प्रीतिवर्धन।
कीदृशा मानवाः सौम्याः कैः प्रीतिः परमा भवेत्॥ १॥
आयत्यां च तदात्वे च के क्षमास्तान् वदस्व मे।

भीष्म उवाच

संधेयान् पुरुषान् राजन्नसंधेयांश्च तत्त्वतः॥ २॥
वदतो मे निबोध त्वं निखिलेन युधिष्ठिर।

तब युधिष्ठिर ने पूछा हे कुरुकुल की प्रीति बढ़ानेवाले, महाप्राज्ञ, पितामह! कौन से मनुष्य सौम्य स्वभाव के होते हैं? किन के साथ प्रेम करना उत्तम होता है? वर्तमान और भविष्य में कौन से मनुष्य उपकार करने में समर्थ होते हैं? आप मुझे उनका वर्णन कीजिये। तब भीष्म जी ने उत्तर दिया कि हे राजन्! जो व्यक्ति मित्रता के लिये अयोग्य हैं, तथा जो मित्रता के योग्य हैं, उन सबके विषय में मैं तुम्हें यथार्थरूप से बताता हूँ। हे युधिष्ठिर! तुम उन सबको अच्छी तरह से समझो।

लुब्धः क्रूरस्त्यक्तधर्मा निकृतिः शठ एव च॥ ३॥
क्षुद्रः पापसमाचारः सर्वशङ्की तथालसः।
दीर्घसूत्रोऽनृजुः क्रुष्टो गुरुदारप्रधर्षकः॥ ४॥

व्यसने यः परित्यागी दुरात्मा निरपत्रपः।
सर्वतः पापदर्शी च नास्तिको वेदनिन्दकः॥ ५॥
सम्प्रकीर्णेन्द्रियो लोके यः कामं निरतश्चरेत्।
असत्यो लोकविद्विष्टः समये चानवस्थितः॥ ६॥
पिशुनोऽथाकृतप्रज्ञो मत्सरी पापनिश्चयः।
दुःशीलोऽथाकृतात्मा च नृशंसः कितवस्तथा॥ ७॥
मित्रैरपकृतिर्नित्यमिच्छतेऽर्थं परस्य यः।
ददतश्च यथाशक्ति यो न तुष्यति मन्दधीः॥ ८॥
अधैर्यमपि यो युङ्क्ते सदा मित्रं नरर्षभ।
अस्थानक्रोधनोऽयुक्तो यश्चाकस्माद् विरुध्यते॥ ९॥
सुहृदश्चैव कल्याणानाशु त्यजति किल्बिषी।
अल्पेऽप्यपकृते मूढस्तथाज्ञानात् कृतेऽपि च॥ १०॥
कार्यसेवी च मित्रेषु मित्रद्वेषी नराधिप।
शत्रुर्मित्रमुखो यश्च जिह्मप्रेक्षी विलोचनः॥ ११॥
न विरज्यति कल्याणे यस्त्यजेत् तादृशं नरम्।
पानपो द्वेषणः क्रोधी निर्घृणः परुषस्तथा॥ १२॥
परोपतापी मित्रध्रुक् तथा प्राणिवधे रतः।
कृतघ्नश्चाधमो लोके न संधेयः कदाचन॥ १३॥
छिद्रान्वेषी ह्यसंधेयः संधेयानपि मे शृणु।

जो मनुष्य लोभी, क्रूर, धर्मत्यागी, कपटी, शठ, नीच, पापकर्मा, सब शंका करनेवाला, आलसी, धीमें काम करनेवाला, कुटिल, निन्दित, गुरुपत्नीगामी, संकट में साथ छोड़नेवाला, दुष्ट, निर्लज्ज, सबतरफ पापपूर्ण दृष्टिवाला, नास्तिक, वेदों की निन्दा करनेवाला, इन्द्रियों को खुला छोड़ कर संसार में स्वेच्छाचार करनेवाला, असत्यवादी, लोगों से द्वेष करनेवाला, अपनी प्रतिज्ञा पर स्थिर न रहनेवाला, चुगलखोर, अपवित्र बुद्धिवाला, ईर्ष्यालु, पापपूर्ण विचार रखनेवाला, दुष्ट स्वभाव, मन को वश में न रखनेवाला, निर्दय, धोखेबाज, मित्रों का बुरा करनेवाला, दूसरों के धन को चाहनेवाला, यथाशक्ति देने पर भी सन्तुष्ट न होनेवाला और मन्दबुद्धि हो, हे भरतश्रेष्ठ! जो मित्र को भी विचलित कर देता है, बिना अवसर के क्रोध करनेवाला, असावधान, अकस्मात् विरोध करके जो लोककल्याणकारी मित्रों को भी शीघ्र त्याग देता है, पाप से युक्त, थोड़ा सा भी अपराध होजाने पर मित्र का अनिष्ट करनेवाला, अपना काम बनाने के लिये मित्र से मेल करनेवाला, पर वास्तव में मित्रद्वेषी, मुख से मित्रता की बातें करके अन्दर से शत्रुभाव रखनेवाला, हे राजन्! कुटिल दृष्टि से देखने वाला, विपरीतदर्शी, जो ऐसे मित्र को भी छोड़ देता है, जो भलाई से कभी पीछे नहीं हटता, शराबी, द्वेषी, क्रोधी, निर्दयी, क्रूर, दूसरों को सतानेवाला, मित्र द्रोही, प्राणियों की हिंसा में लगा रहनेवाला, कृतघ्न, नीच और दूसरों के दोष देखनेवाला, ये मनुष्य कभी भी मित्रता के योग्य नहीं है। अब जो मित्रता करने के योग्य हैं, उनके बारे में भी सुनो–

कुलीना वाक्यसम्पन्ना ज्ञानविज्ञानकोविदाः॥ १४॥
रूपवन्तो गुणोपेतास्तथाऽलुब्धा जितश्रमाः।
सन्मित्राश्च कृतज्ञाश्च सर्वज्ञा लोभवर्जिताः॥ १५॥
माधुर्यगुणसम्पन्नाः सत्यसंधा जितेन्द्रियाः।
व्यायामशीलाः सततं कुलपुत्राः कुलोद्वहाः॥ १६॥
दोषैः प्रमुक्ताः प्रथितास्ते ग्राह्याः पार्थिवैर्नराः।

जो कुलीन, वाक्शक्ति से युक्त, ज्ञान विज्ञान में दक्ष, रूपवान्, गुणवान्, लोभ से रहित, काम करने में कभी न थकने वाले अच्छे मित्रों से युक्त, कृतज्ञ, सर्वज्ञ, लोभ से दूर रहनेवाले, मधुर स्वभाववाले, सत्यप्रतिज्ञ, जितेन्द्रिय, सदा व्यायामशील, उत्तम कुल की सन्तान, कुल का भार उठानेवाले, दोषों से रहित तथा संसार में प्रसिद्ध हों ऐसे मनुष्यों को राजा अपना मित्र बनाये।

यथाशक्ति समाचाराः सम्प्रतुष्यन्ति हि प्रभो॥ १७॥
नास्थाने क्रोधवन्तश्च न चाकस्माद् विरागिणः।
विरक्ताश्च न दुष्यन्ति मनसाप्यर्थकोविदाः॥ १८॥
आत्मानं पीडयित्वापि सुहृत्कार्यपरायणाः।
विरज्यन्ति न मित्रेभ्यो वासो रक्तमिवाविकम्॥ १९॥
क्रोधाच्च लोभमोहाभ्यां नानर्थे युवतीषु च।
न दर्शयन्ति सुहृदो विश्वस्ता धर्मवत्सलाः॥ २०॥
लोष्टकाञ्चनतुल्यार्थाः सुहृत्सु दृढबुद्धयः।
संगृह्णन्तः परिजनं स्वाम्यर्थपरमाः सदा॥ २१॥
ईदृशैः पुरुषश्रेष्ठैर्यः संधिं कुरुते नृपः।
तस्य विस्तीर्यते राज्यं ज्योत्स्ना ग्रहपतेरिव॥ २२॥

हे प्रभो! जे अपनी शक्ति के अनुसार कर्त्तव्य का ठीक-ठीक पालन करते और सन्तुष्ट रहते हैं, जिन्हें बिना अवसर के क्रोध नहीं आता, जो स्नेह को अचानक नहीं छोड़ते, जो उदासीन हो जाने पर भी मन से कभी बुराई नहीं चाहते, जो अर्थ के तत्त्व को समझते हैं और अपने को कष्ट में डालकर भी हितैषी व्यक्ति का कार्य पूरा करते हैं, जैसे रँगा

हुआ ऊनी कपड़ा अपना रंग नहीं छोड़ता, वैसे ही जो मित्र की तरफ से विरक्त नहीं होते, जो क्रोध के कारण मित्र का अनर्थ करने में प्रवृत्त नहीं होते, जो लोग और मोह में फँस कर मित्र की युवतियों पर अपनी आसक्ति नहीं दिखाते, जो मित्र के विश्वासपात्र और धर्म के प्रति अनुरक्त होते हैं, जो मिट्टी के ढेले और सोने को एकजैसा ही समझते हैं, जो सदा मित्रों के प्रति स्थिर बुद्धि रखते हैं, जो कुटुम्ब का संग्रह करते हुए भी अपने स्वामी के कार्यसाधन में तत्पर रहते हैं, ऐसे ही श्रेष्ठ मनुष्यों के साथ जो राजा सन्धि करता है, उसका राज्य चन्द्रमा की चाँदनी के समान फैलता जाता है।

शास्त्रनित्या जितक्रोधा बलवन्तो रणे सदा।
जन्मशीलगुणोपेताः संधेयाः पुरुषोत्तमाः॥ २३॥

ये च दोषसमायुक्ता नराः प्रोक्ता मयानघ।
तेषामप्यधमा राजन् कृतघ्ना मित्रघातकाः।
त्यक्तव्यास्तु दुराचाराः सर्वेषामिति निश्चयः॥ २४॥

जो नित्य शास्त्रों का स्वाध्याय करते हैं, जिन्होंने क्रोध को जीत लिया है, जो युद्ध में सदा प्रबल रहते हैं, जो उत्तम कुल में जन्मे हैं, जो शीलवान् और उत्तम गुणों से युक्त हैं, ऐसे ही उत्तम पुरुषों के साथ सन्धि और मित्रता करनी चाहिये। हे निष्पाप! मैने जिन दोषों वाले पुरुषों का वर्णन किया है, हे राजन्! उनमें भी सबसे अधम कृतघ्न लोग होते हैं। वे मित्रों की हत्या भी कर देते हैं। ऐसे दुराचारी लोगों को सदा त्याग देना चाहिये। यह सबका निश्चय है।

सड़सठवाँ अध्याय : शोकाकुल राजा सेनजित् और ब्राह्मण का संवाद।

युधिष्ठिर उवाच

नष्टे धने वा दारे वा पुत्रे पितरि वा मृते।
यया बुद्ध्या नुदेच्छोकं तन्मे ब्रूहि पितामह॥ १॥

भीष्म उवाच

नष्टे धने वा दारे वा पुत्रे पितरि वा मृते।
अहो दुःखमिति ध्यायञ्शोकस्यापचितिं चरेत्॥ २॥
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्।
यथा सेनजितं विप्रः कश्चिदेत्याब्रवीत् सुहृत्॥ ३॥
पुत्रशोकाभिसंतप्तं राजानं शोकविह्वलम्।
विषण्णमनसं दृष्ट्वा विप्रो वचनमब्रवीत्॥ ४॥

युधिष्ठिर ने पूछा कि हे पितामह! जब धन नष्ट होजाये या पत्नी, या पुत्र या पिता की मृत्यु हो जाये, तब मनुष्य किस बुद्धि से अपने शोक को दूर करे यह आप मुझे बताइये। भीष्म जी ने उत्तर दिया कि धन के नष्ट हो जाने, या पत्नी, पुत्र या पिता के मर जाने पर मनुष्य अरे संसार कितना दुःख से भरा हुआ है, यह सोचता हुआ, शोक को दूर करने वाले शम और दम आदि साधनों को अपनाये। इस विषय में लोग एक पुराने इतिहास का उदाहरण दिया करते हैं, जिसमें किसी हितैषी ब्राह्मण ने राजा सेनजित् के समीप आकर उसे उपदेश दिया था। राजा को पुत्र के शोक से सन्तप्त, शोक से बेचैन और दुखी मनवाला देखकर ब्राह्मण ने उनसे कहा कि—

किं नु मुह्यसि मूढस्त्वं शोच्यः किमनुशोचसि।
यदा त्वामपि शोचन्तः शोच्या यास्यन्ति तां गतिम्॥ ५॥
त्वं चैवाहं च ये चान्ये त्वामुपासन्ति पार्थिव।
सर्वे तत्र गमिष्यामो यत एवागता वयम्॥ ६॥

सेनजिदुवाच

का बुद्धिः किं तपो विप्र कः समाधिस्तपोधन।
किं ज्ञानं किं श्रुतं चैव यत् प्राप्य न विषीदसि॥ ७॥

हे राजन्! तुम मूर्ख बने हुए किसलिये शोक कर रहे हो? शोक करने के योग्य तो तुम स्वयं ही हो, फिर दूसरे के लिये क्यों शोक कर रहे हो? एक दिन ये शोक करने योग्य व्यक्ति भी तुम्हारे लिये शोक करते हुए उसी गति को चले जायेंगे। हे राजन्! तुम और मैं और दूसरे लोग जो इस समय तुम्हारे समीप बैठे हैं, ये सारे एक दिन उसी स्थान पर चले जायेंगे, जहाँ से आये हैं। तब सेनजित् ने कहा कि हे ब्राह्मण! तुम्हारे पास कौन सी बुद्धि, कौनसा तप, कौन सी समाधि, कैसा ज्ञान और कौनसा शास्त्र है? जिसे पाकर तुम्हें कोई विषाद नहीं है।

ब्राह्मण उवाच

पश्य भूतानि दुःखेन व्यतिषिक्तानि सर्वशः।
उत्तमाधममध्यानि तेषु तेष्विह कर्मसु॥ ८॥
आत्मापि चायं न मम सर्वा वा पृथिवी मम।
यथा मम तथाऽन्येषामिति चिन्त्य न मे व्यथा॥ ९॥
एतां बुद्धिमहं प्राप्य न प्रहृष्ये न च व्यथे।
यथा काष्ठं च काष्ठं च समेयातां महोदधौ॥ १०॥
समेत्य च व्यपेयातां तद्वद्भूतसमागमः।
एवं पुत्राश्च पौत्राश्च ज्ञातयो बान्धवास्तथा॥ ११॥
तेषां स्नेहो न कर्तव्यो विप्रयोगो ध्रुवो हि तैः।

तब ब्राह्मण ने कहा कि इन प्राणियों को देखो, इनमें उत्तम, मध्यम और अधम सारे प्राणी अलग-अलग कर्मों में आसक्त होकर दुख को प्राप्त हो रहे हैं। यह शरीर भी मेरा नहीं है, यह सारी पृथिवी भी मेरी नहीं है। ये सारी चीजें भी जैसे मेरी हैं, वैसे ही दूसरों की भी हैं, यह सोच कर मुझे इनके लिये दुख नहीं होता। इसी बुद्धि को पाकर मैं न तो प्रसन्न होता हूँ और न दुःखी। जैसे महासागर में दो लकड़ी के टुकड़े अलग-अलग दिशाओं से बहते हुए आकर एक दूसरे से मिल जाते हैं और फिर अलग-अलग दिशाओं में बहते हुए चले जाते हैं, वैसे ही संसार में प्राणियों का मेल और वियोग होता रहता है। पुत्र, पौत्र, कुटुम्बी और सम्बन्धी सारे ऐसे ही मिल कर अलग हो जाते हैं, इसलिये उनके प्रति आसक्ति नहीं बढ़ानी चाहिये, क्योंकि एक दिन बिछुड़ना निश्चित है।

अदर्शनादापतितः पुनश्चादर्शनं गतः॥ १२॥
न त्वासौ वेद न त्वं तं कः सन् किमनुशोचसि।
तृष्णार्तिप्रभवं दुःखं दुःखार्तिप्रभवं सुखम्॥ १३॥
सुखस्यानन्तरं दुःखं दुःखस्यानन्तरं सुखम्।
सुखदुःखे मनुष्याणां चक्रवत् परिवर्ततः॥ १४॥
सुखात् त्वं दुःखमापन्नः पुनरापत्स्यसे सुखम्।
न नित्यं लभते दुःखं न नित्यं लभते सुखम्॥ १५॥

तुम्हारा पुत्र अज्ञात स्थान से आया था और अज्ञात स्थान में ही चला गया है। न तो वह तुम्हें जानता था और न तुम उसे जानते थे। फिर तुम उसके कौन होकर किसलिये शोक करते हो? संसार में विषयों की तृष्णा से जो व्याकुलता होती है, उसी का नाम दुख है। दुख की व्याकुलता से सुख का जन्म होता है। इस प्रकार दुख के पीछे सुख और सुख के पीछे दुःख क्रमशः चक्र के समान मनुष्य के जीवन में घूमते रहते हैं। तुम सुख से दुख में आ पड़े हो। अब इसके बाद तुम्हें सुख की प्राप्ति होगी। संसार में न तो सदा सुख ही मिलता रहता है और न सदा दुख की ही प्राप्ति होती है।

शरीरमेवायतनं सुखस्य
दुःखस्य चाप्यायतनं शरीरम्।
यद्यच्छरीरेण करोति कर्म
तेनैव देही समुपाश्नुते तत्॥ १६॥

शरीर ही सुख और दुख का आधार है। मनुष्य शरीर से जैसे अच्छे बुरे कर्म करता है, उनके फल के रूप में ही सुख और दुख उसे मिलते रहते हैं।

जीवितं च शरीरेण जात्यैव सह जायते।
उभे सह विवर्तेते उभे सह विनश्यतः॥ १७॥
स्नेहपाशैर्बहुविधैराविष्टविषया जनाः।
अकृतार्थाश्च सीदन्ते जलैः सैकतसेतवः॥ १८॥
स्नेहेन तिलवत् सर्वं सर्गचक्रे निपीड्यते।
तिलपीडैरिवाक्रम्य क्लेशैरज्ञानसम्भवैः॥ १९॥
संचिनोत्यशुभं कर्म कलत्रापेक्षया नरः।
एकः क्लेशानवाप्नोति परत्रेह च मानवः॥ २०॥

यह जीवन शरीर के साथ ही जन्म लेता है। ये दोनों साथ-साथ रहते हैं और साथ-साथ ही नष्ट हो जाते हैं। लोग विषयों से युक्त होकर तरह-तरह के स्नेह बन्धनों से जकड़े हुए होते हैं, किन्तु जैसे मिट्टी से बने पुल पानी द्वारा बहा दिये जाते हैं, वैसे ही लोगों की इच्छाएँ पूरी नहीं होती और वे दुख का अनुभव करते रहते हैं। जैसे तेली के कोल्हू में तिलों को पेरा जाता है, वैसे ही स्नेह के कारण सब लोग अज्ञान से उत्पन्न कष्टों के सृष्टिचक्र में पिस रहे हैं। मनुष्य स्त्री, पुत्र आदि के लिये कर्मों को करता रहता है, पर फिर इस लोक और परलोक में अकेला ही उन कर्मों के फल को दुख के रूप में भोगता है।

पुत्रदारकुटुम्बेषु प्रसक्ताः सर्वमानवाः।
शोकपङ्कार्णवे मग्ना जीर्णा वनगजा इव॥ २१॥
ये च मूढतमा लोके ये च बुद्धेः परं गताः।
ते नराः सुखमेधन्ते क्लिश्यत्यन्तरितो जनः॥ २२॥
अन्त्येषु रेमिरे धीरा न ते मध्येषु रेमिरे।
अन्त्यप्राप्तिं सुखामाहुर्दुःखमन्तरमन्त्ययोः॥ २३॥

ये च बुद्धिसुखं प्राप्ता द्वन्द्वातीता विमत्सराः।
तान् नैवार्था न चानर्था व्यथयन्ति कदाचन॥ २४॥

सारे मनुष्य पुत्र, पत्नी, कुटुम्बी आदि के स्नेह में आसक्त हुए शोक सागर में उसीप्रकार डूब जाते हैं, जैसे बूढ़ा जँगली हाथी कीचड़ में फँस जाये। इस संसार में जो अत्यन्त मूर्ख व्यक्ति हैं और जो अत्यन्त समझदार बुद्धि से परे पहुँचे हुए व्यक्ति हैं, वे दोनों ही सुखी रहते हैं। बीच वाले व्यक्ति दुख उठाते हैं। धैर्यवान्, ज्ञानी व्यक्ति अन्तिम स्थिति में मग्न रहते हैं, वे बीच की स्थिति में नहीं रहते। अन्तिम स्थिति की प्राप्ति सुखवाली और दोनों के बीच की स्थिति दुखवाली बतायी गयी है। जो व्यक्ति बुद्धि के सुख को प्राप्त हो गये हैं, जो द्वन्द्वों से परे हो गये हैं, जिनमें मत्सरता नहीं है, उन्हें कभी भी अर्थ और अनर्थ दुखी नहीं करते।

अथ ये बुद्धिमप्राप्ता व्यतिक्रान्ताश्च मूढताम्।
तेऽतिवेलं प्रहृष्यन्ति संतापमुपयान्ति च॥ २५॥
सुखं दुःखान्तमालस्यं दुःखं दाक्ष्यं सुखोदयम्।
भूतिस्त्वेवं श्रिया सार्धं दक्षे वसति नालसे॥ २६॥
सुखं वा यदि वा दुःखं प्रियं वा यदि वाप्रियम्।
प्राप्तं प्राप्तमुपासीत हृदयेनापराजितः॥ २७॥
शोकस्थानसहस्राणि भयस्थानशतानि च।
दिवसे दिवसे मूढमाविशन्ति न पण्डितम्॥ २८॥

जो व्यक्ति मूर्खता को तो लाँघ चुके हैं, पर जिन्हें ज्ञान की प्राप्ति नहीं हुई है अर्थात् बीच की स्थिति में हैं, वे सुख की प्राप्ति होने पर अत्यन्त हर्षित और दुख की प्राप्ति होने पर सन्तप्त होने लगते हैं। आरम्भ में आलस्य सुख देनेवाला जान पड़ता है, पर अन्त में उससे दुख प्राप्त होता है। ऐसे ही कार्यकौशल आरम्भ में दुख सा लगता है, पर पीछे उसमें सुख मिलता है। मनुष्य को चाहिये कि वह सुख, दुख, प्रिय, अप्रिय जो भी मिल जाये, उसका स्वागत करे और हृदय में हिम्मत न हारे। शोकप्राप्ति और भयप्राप्ति के सैकड़ों, हजारों कारण होते हैं, पर वे मूर्ख व्यक्तियों को ही परेशान करते हैं, विद्वानों को नहीं।

बुद्धिमन्तं कृतप्रज्ञं शुश्रूषुमनसूयकम्।
दान्तं जितेन्द्रियं चापि शोको न स्पृशते नरम्॥ २९॥
एतां बुद्धिं समास्थाय गुप्तचित्तश्चरेद् बुधः।
उदयास्तमयज्ञं हि न शोकः स्प्रष्टुमर्हति॥ ३०॥
यन्निमित्तं भवेच्छोकस्तापो वा दुःखमेव च।
आयासोवा यतो मूलमेकाङ्गमपि तत् त्यजेत्॥ ३१॥
किंचिदेव ममत्वेन यदा भवति कल्पितम्।
तदेव परितापार्थं सर्वं सम्पद्यते तथा॥ ३२॥

जो व्यक्ति बुद्धिमान्, शिक्षित बुद्धिवाला, ज्ञान की बातों को सुनने का इच्छुक, दूसरों के दोष न देखने वाला, मन को वश में करने वाला और जितेन्द्रिय है, उसे शोक कभी स्पर्श नहीं करता। जो बुद्धिमान् व्यक्ति इसी विचार को अपनाकर, उत्पत्ति और विनाश के तत्व को जानकर, चित्त को काम क्रोधादि बुराइयों से सुरक्षित रखते हुए विचरण करता है, उसे शोक छू नहीं सकता। जिसके कारण शोक, सन्ताप, दुःख और अधिक श्रम उठाना पड़े, वह यदि अपने शरीर का अंग भी हो, उसे त्याग देना चाहिये। यदि मनुष्य किसी पदार्थ में थोड़ा सा भी ममत्व अपना लेता है, तो वही ममत्व उसके सारे सन्तापों का कारण बन जाता है।

यद् यत् त्यजति कामानां तत् सुखस्याभिपूर्यते।
कामानुसारी पुरुषः कामाननुविनश्यति॥ ३३॥
पूर्वदेहकृतं कर्म शुभं वा यदि वाशुभम्।
प्राज्ञं मूढं तथा शूरं भजते यादृशं कृतम्॥ ३४॥
एतां बुद्धिं समास्थाय सुखमास्ते गुणान्वितः।
सर्वान् कामान् जुगुप्सेत कामान् कुर्वीत पृष्ठतः॥ ३५॥

मनुष्य कामनाओं के जिस जिस भाग का त्याग करता जाता है, वही उसके सुख की पूर्ति करने वाला होता जाता है। किन्तु जो कामनाओं का अनुसरण करता है, वह उनके पीछे विनष्ट हो जाता है। मनुष्य चाहे बुद्धिमान् हो या मूर्ख, या शूरवीर हो, पहले जन्म में उसने जो कुछ भी शुभ या अशुभ कार्य किये हैं, उनका वैसा ही फल उसे भोगना पड़ता है। ऐसी बुद्धि का सहारा लेकर कामनाओं के त्यागरूपी गुणों से युक्त व्यक्ति सुख से रहता है। व्यक्ति को चाहिये कि वह सारी कामनाओं से विरक्त होकर उनसे विमुख हो जाये।

अड़सठवाँ अध्याय : शुभाशुभ कर्मों का फल अवश्य भोगना पड़ता है।

भीष्म उवाच

आत्मनानर्थयुक्तेन पापे निविशते मनः।
स्वकर्मकलुषं कृत्वा कृच्छ्रे लोके विधीयते॥ १॥
प्रियदेवातिथेयाश्च वदान्याः प्रियसाधवः।
क्षेम्यमात्मवतां मार्गमास्थिता हस्तदक्षिणम्॥ २॥
पुलाका इव धान्येषु पुत्तिका इव पक्षिषु।
तद्विधास्ते मनुष्याणां येषां धर्मो न कारणम्॥ ३॥

भीष्म जी ने कहा कि काम क्रोधादि दोषों से युक्त बुद्धि की प्रेरणा से मन पापकर्म में प्रवेश करता है। इस प्रकार मनुष्य स्वयं ही पाप का आचरण कर मरणोपरान्त अधम गति को प्राप्त होता है। जिन्हें सदाचारी विद्वानों की सेवा और अतिथि सत्कार प्रिय है, जो उदार हैं, जिन्हें सत्पुरुष अच्छे लगते हैं, वे दाँये हाथ के समान पवित्र और मन को वश में करनेवाले योगियों के मार्ग पर आरूढ़ होते हैं किन्तु जिनका उद्‌देश्य धर्म पालन नहीं है, वे धान में थोथे पौधे और पक्षियों में मच्छर के समान मनुष्यों में समझे जाते हैं।

सुशीघ्रमपि धावन्तं विधानमनुधावति।
शेते सह शयानेन येन येन यथा कृतम्॥ ४॥
उपतिष्ठति तिष्ठन्तं गच्छन्तमनुगच्छति।
करोति कुर्वतः कर्म च्छायेवानुविधीयते॥ ५॥
येन येन यथा यद् यत् पुरा कर्म समीहितम्।
तदेकतरो भुङ्क्ते नित्यं विहितमात्मना॥ ६॥
स्वकर्मफलनिक्षेपं विधानपरिरक्षितम्।
भूतग्राममिमं कालः समन्तात् परिकर्षति॥ ७॥
अचोद्यमानानि यथा पुष्पाणि च फलानि च।
स्वं कालं नातिवर्तन्ते तथा कर्म पुरा कृतम्॥ ८॥

जिस ने जैसा कर्म किया है, वह कर्म उसके पीछे लगा रहता है, यदि मनुष्य अत्यन्त तेजी से दौड़ता है तो उसका कर्म भी उसी तेजी से उसके पीछे जाता है। तब वह सोता है, तब वह कर्मफल उसके साथ ही सो जाता है। जब वह खड़ा होता है, तो उसका कर्म भी उसके पास ही खड़ा हो जाता है। जब वह चलता है, तो उसका कर्म भी साथ चलने लगता है। कोई भी कार्य करते समय मनुष्य का कर्म संस्कार उसका साथ नहीं छोड़ता। वह छाया के समान उसके पीछे लगा रहता है। जिस व्यक्ति ने पूर्वजन्म में जैसे कर्म किये हैं, स्वयं किये उन सारे कार्यों का फल वह अकेला ही भोगता है। अपने कर्म का फल एक धरोहर के समान है, जो कर्मफल विधान के अनुसार सुरक्षित रहता है। समय आने पर काल उस कर्मफल को प्राणियों के पास खींच ले जाता है। जैसे पेड़ों पर फल और फूल बिना किसी प्रेरणा के अपने आप लगते हैं, वे अपने समय का उल्लंघन नहीं करते, वैसे ही पहले किये हुए कर्मों के फल भी अपने आप स्वयं प्राप्त होते हैं, वे समय का उल्लंघन नहीं करते।

सम्मानश्चावमानश्च लाभालाभौ क्षयोदयौ।
प्रवृत्ता विनिवर्तन्ते विधानान्ते पुनः पुनः॥ ९॥
आत्मना विहितं दुःखमात्मना विहितं सुखम्।
गर्भशय्यामुपादाय भुज्यते पौर्वदेहिकम्॥ १०॥
बालो युवा च वृद्धश्च यत् करोति शुभाशुभम्।
तस्यां तस्यामवस्थायां तत् फलं प्रतिपद्यते॥ ११॥
यथा धेनुसहस्रेषु वत्सो विन्दति मातरम्।
तथा पूर्वकृतं कर्म कर्तारमनुगच्छति॥ १२॥

सम्मान, अपमान, लाभ हानि, उन्नति और अवनति ये पूर्वजन्म के कर्मों के अनुसार बार बार प्रवृत्त होते हैं और फलों का भोग हो जाने पर निवृत्त हो जाते हैं। दुख और सुख दोनों ही किये हुए कर्मों के फल हैं। प्राणी माता के गर्भ में आते ही पूर्व जन्म में किये कर्मों के फल का भोग करने लगता है। मनुष्य बाल्यावस्था, युवावस्था और वृद्धावस्था में जो जो शुभ और अशुभ कर्म करता है, दूसरे जन्म में वह उसी-उसी अवस्था में उस उस कर्म का फल भोगता है। जैसे बछड़ा हजारों गायों में से भी अपनी माता गाय को ढूँढ लेता है, वैसे ही पहले किया हुआ कर्म भी अपने कर्ता के पास पहुँच जाता है।

उनहत्तरवाँ अध्याय : धर्म, अधर्म, का वर्णन।

युधिष्ठिर उवाच

धर्मस्त्वयमिहार्थः किममुत्रार्थोऽपि वा भवेत्।
कथं भवति पापात्मा, कथं धर्मं करोति वा॥ १॥

भीष्म उवाच

सदाचारः स्मृतिर्वेदास्त्रिविधं धर्मलक्षणम्।
चतुर्थमर्थ मित्याहुः, कवयो धर्मलक्षणम्॥ २॥
उभयत्र सुखोदर्क इह चैव परत्र च।
अलब्ध्वा निपुणं धर्मं पापः पापेन युज्यते॥ ३॥
न च पापकृतः पापान्मुच्यन्ते केचिदापदि।
अपापवादी भवति यथा भवति धर्मकृत्॥ ४॥
धर्मस्य निष्ठा त्वाचारस्तमेवाश्रित्य भोत्स्यसे।

युधिष्ठिर ने पूछा कि आप यह बताइये कि धर्म क्या लोक में ही कल्याणकारी है? या परलोक में भी मनुष्य कैसे पापी और धर्मात्मा बन जाता है? तब भीष्मजी ने उत्तर दिया कि वेद, स्मृति और सदाचार ये तीन धर्म के स्वरूप को प्रकट करते हैं। कुछ विद्वान् अर्थ को भी धर्म का लक्षण बताते हैं। धर्म इस लोक तथा परलोक में भी सुख की प्राप्ति करता है। लोग जब विचारपूर्वक धर्म को ग्रहण नहीं करते हैं, तो वे पापकर्म में ही प्रवृत्त होते चले जाते हैं। पापकर्म करनेवाले लोग आपत्तियों के समय कष्ट भोगकर भी पापकर्म के करने से मुक्त नहीं होते, पर पाप न करनेवाले संकट के समय में भी पापकर्म का समर्थन नहीं करते। धर्म का आश्रय तो सदाचार है। हे युधिष्ठिर! सदाचार का आश्रय लेकर ही तुम धर्म के स्वरूप को प्राप्त कर सकोगे।

सत्यस्य वचनं साधु न सत्याद् विद्यते परम्॥ ५॥
सत्येन विधृतं सर्वं सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम्।
अपि पापकृतो रौद्राः सत्यं कृत्वा पृथक् पृथक्॥ ६॥
अद्रोहमविसंवादं प्रवर्तन्ते तदाश्रयाः।
ते चेन्मिथोऽधृतिं कुर्युर्विनश्येयुरसंशयम्॥ ७॥
न हर्तव्यं परधनमिति धर्मः सनातनः।
मन्यन्ते बलवन्तस्तं दुर्बलैः सम्प्रवर्तितम्॥ ८॥
यदा नियतिदौर्बल्यमथैषामेव रोचते।

सत्य बोलना अच्छा कर्म है। सत्य से बढ़कर दूसरा अच्छा कर्म नहीं है। सत्य ने ही सबको धारण किया हुआ है। सब कुछ सत्य में ही प्रतिष्ठित है। क्रूर स्वभाववाले पापीलोग भी परस्पर सत्य की शपथ खाकर ही द्रोह या विवाद से बचे रहते हैं। वे सत्य की दुहाई देकर ही अपने कर्मों में प्रवृत्त होते हैं। यदि वे आपस की शपथ को भंग कर दें, तो निस्सन्देह परस्पर लड़कर नष्ट होजाये। इसके साथ ही दूसरे के धन का अपहरण नहीं करना चाहिये, यह भी सनातन धर्म है। कुछ बलवान् लोग कहते हैं कि धर्म का प्रचलन दुर्बलों द्वारा चलाया हुआ है, किन्तु भाग्यवश जबकभी वे स्वयं भी दुर्बल होजाते हैं, तब अपनी रक्षा के लिये उन्हें भी धर्म का आश्रय लेना अच्छा लगता है।

न ह्यत्यन्तं बलवन्तो भवन्ति सुखिनोऽपि वा॥ ९॥
तस्मादनार्जवे बुद्धिर्न कार्या ते कदाचन।
असाधुभ्योऽस्य न भयं न चौरेभ्यो न राजतः॥ १०॥
अकिंचित् कस्यचित् कुर्वन् निर्भयः शुचिरावसेत्।
सर्वतः शङ्कते स्तेनो मृगो ग्राममिवेयिवान्॥ ११॥
बहुधाऽऽचरितं पापमन्यत्रैवानुपश्यति।
मुदितः शुचिरभ्येति सर्वतो निर्भयः सदा॥ १२॥
न हि दुश्चरितं किंचिदात्मनोऽन्येषु पश्यति।

संसार में कोई भी न तो अत्यन्त बलवान् होते हैं और न अत्यन्त सुखी। इसलिये तुम्हें अपनी बुद्धि में कभी भी कुटिलता का विचार नहीं लाना चाहिये। जो व्यक्ति कभी किसी का कुछ नहीं बिगाड़ता, उसे न तो दुष्ट मनुष्यों से भय होता है, न चोरों से और न ही वह राजा से भयभीत होता है। ऐसे शुद्ध आचारवाला व्यक्ति सदा निर्भय होकर रहता है। चोर व्यक्ति ग्राम में आये हुए हिरण के समान सबसे डरता रहता है। वह जैसा दूसरों के साथ अनेकों बार पापाचरण कर चुका होता है, वैसा ही दूसरों में भी देखता है। किन्तु जिसका आचारविचार शुद्ध है वह सबसे निर्भय होकर प्रसन्न रहता है। वह अपना कोई दुष्कर्म दूसरों में नहीं देखता।

दातव्यमित्ययं धर्म उक्तो भूतहिते रतैः॥ १३॥
तं मन्यन्ते धनयुताः कृपणैः सम्प्रवर्तितम्।
यदा नियतिकार्पण्यमथैषामेव रोचते॥ १४॥
न ह्यत्यन्तं धनवन्तो भवन्ति सुखिनोऽपि वा।

यदन्यैर्विहितं नेच्छेदात्मनः कर्म पूरुषः॥ १५॥
न तत् परेषु कुर्वीत जानन्नप्रियमात्मनः।
योऽन्यस्य स्यादुपपतिः स कं किं वक्तुमर्हति॥ १६॥
जीवितुं यः स्वयं चेच्छेत् कथं सोऽन्यं प्रघातयेत्।
यद् यदात्मनि चेच्छेत तत् परस्यापि चिन्तयेत्॥ १७॥

प्राणियों के हित में लगे व्यक्तियों द्वारा दान देना चाहिये यह कहकर इसे धर्म का स्वरूप बताया गया है। परन्तु बहुत से धनवान् व्यक्ति ऐसा नहीं समझते। वे दान देने को निर्धनों द्वारा चलाया हुआ धर्म समझते हैं। किन्तु भाग्य के वश में होकर, जब कभी वे निर्धन होजाते हैं, तो उन्हें भी दान देने का धर्म अच्छा लगने लगता है। संसार में न तो कोई अत्यन्त धनवान् होता है और न अत्यन्त सुखी। मनुष्य दूसरों द्वारा अपने प्रति किये हुए जिस व्यवहार को अच्छा नहीं समझता, उस अपने लिये अप्रिय समझनेवाले बर्ताव को उसे दूसरों के साथ भी नहीं करना चाहिये क्योंकि वह उनके लिये भी प्रिय नहीं हो सकता। जो स्वयं दूसरे के घर में जार बनकर जाता है, वह दूसरे को भी उसी रूप में अपने घर में आते देखकर किसको क्या कह सकता है? जो स्वयं जीवित रहना चाहे, वह दूसरे के प्राण कैसे ले सकता है? मनुष्य अपने लिये जिस बात को अच्छा समझे, वही दूसरों को भी उपलब्ध कराने के लिये सोचे।

विज्ञानार्थं हि पञ्चानामिच्छा पूर्वं प्रवर्तते।
प्राप्यैकं जायते कामो द्वेषो वा भरतर्षभ॥ १८॥
ततस्तदर्थं यतते कर्म चारभते महत्।
इष्टानां रूपगन्धानामभ्यासं च चिकीर्षति॥ १९॥

सबसे पहले मनुष्य में पाँचों इन्द्रियों के विषयों को जानने की इच्छा प्रवृत्त होती है। हे भरतश्रेष्ठ! फिर उनमें से किसी एक विषय को पाकर उसके मन में उसके प्रति राग और द्वेष प्रवृत्त हो जाता है। फिर उसका जिस विषय के प्रति राग होता है, उसके लिये वह प्रयत्न करता है और बड़े बड़े काम कर बैठता है। वह अपने इच्छित रूप, रस, गन्ध आदि को बार-बार सेवन करना चाहता है।

ततो लोभः प्रभवति मोहश्च तदनन्तरम्।
लोभमोहाभिभूतस्य रागद्वेषान्वितस्य च॥ २०॥
न धर्मे जायते बुद्धिर्व्याजाद् धर्मं करोति च।
व्याजेन चरते धर्ममर्थं व्याजेन रोचते॥ २१॥
व्याजेन सिद्ध्यमानेषु धनेषु कुरुनन्दन।
तत्रैव कुरुते बुद्धिं ततः पापं चिकीर्षति॥ २२॥
सुहृद्भिर्वार्यमाणोऽपि पण्डितैश्चापि भारत।
उत्तरं न्यायसम्बद्धं ब्रवीति विधिचोदितम्॥ २३॥

फिर उसके मन में अपने अनुकूल विषय के लिये लोभ जागृत होता है और मोह उसके अन्दर आजाता है, इसप्रकार जब व्यक्ति का मन लोभ और मोह मे भरा तथा राग द्वेष से युक्त होता है, तो उसका मन धर्मकार्य में नहीं लगता। वह केवल बहाने से ही धर्म का कार्य करता है। वह धन कमाने में भी तब कपट का आश्रय लेने लगता है। हे कुरुनन्दन! जब उसे कपटपूर्वक धनप्राप्ति में सफलता मिल जाती है, तो वह उसी कार्य में अपनी बुद्धि को लगा देता है और पापकर्म का इच्छुक बन जाता है। हे भारत! उसे हितैषी और विद्वान् लोग मना करते हैं, पर वह उन्हें भी शास्त्रों के वाक्यों से प्रतिपादित न्याययुक्त उत्तर देदेता है।

अधर्मस्त्रिविधस्तस्य वर्धते रागमोहजः।
पापं चिन्तयते चैव प्रब्रवीति करोति च॥ २४॥
एकशीलाश्च मित्रत्वं भजन्ते पापकर्मिणः।
स नेह सुखमाप्नोति कुत एव परत्र वै॥ २५॥
एवं भवति पापात्मा धर्मात्मानं तु मे शृणु।
यथा कुशलधर्मा स कुशलं प्रतिपद्यते॥ २६॥
कुशलेनैव धर्मेण गतिमिष्टां प्रपद्यते।

तब राग और द्वेष से प्रेरित हुआ अधर्म उसमें तीनों प्रकारों से बढ़ने लगता है। वह पाप की बातें ही सोचता है, पाप की बातें बोलता है और पापकर्म ही करता है। उस जैसे आचरणवाले पापकर्मी व्यक्ति ही तब उसके मित्र बनते हैं। ऐसा व्यक्ति इस लोक में तो सुख पाता ही नहीं हैं, फिर परलोक में कैसे प्राप्त कर सकता है? इस प्रकार मनुष्य पापात्मा बन जाता है। अब तुम मुझसे धर्मात्मा के विषय में सुनो। धर्मात्मा व्यक्ति जैसे कुशलता से धर्म के कार्य में संलग्न रहता है, वैसे ही वह कल्याण को प्राप्त करता है। उस कल्याणयुक्त धर्म के प्रभाव से वह अभीष्टगति को प्राप्त होता है।

य एतान् प्रज्ञया दोषान् पूर्वमेवानुपश्यति॥ २७॥
कुशलः सुखदुःखानां साधूंश्चाप्यथ सेवते।

प्रज्ञा धर्मे च रमते धर्मं चैवोपजीवति॥ २८॥
सोऽथ धर्मादवाप्तेषु धनेषु कुरुते मनः।
तस्यैव सिञ्चते मूलं गुणान् पश्यति तत्र वै॥ २९॥
धर्मात्मा भवति ह्येवं मित्रं च लभते शुभम्।
स मित्रधनलाभात् तु प्रेत्य चेह च नन्दति॥ ३०॥
शब्दे स्पर्शे रसे रूपे तथा गन्धे च भारत।
प्रभुत्वं लभते जन्तुर्धर्मस्यैतत् फलं विदुः॥ ३१॥
स तु धर्मफलं लब्धा न हृष्यति युधिष्ठिर।

जो मनुष्य अपनी बुद्धि से राग द्वेष आदि को पहले ही देख लेता है, वह सुख और दुखों को समझने में कुशल होजाता है और फिर वह साधु व्यक्तियों का सेवन करता है, जिससे उसकी बुद्धि धर्मपालन में रमने लगती है और धर्म का ही सहारा लेती है। ऐसा व्यक्ति ध र्मपूर्वक प्राप्त हुए धन में ही अपना मन लगाता है। वह जहाँ भी गुण को देखता है, उसी के मूल को सींचता है और इसप्रकार धर्मात्मा बन जाता है। उसको तब मित्र भी अच्छे प्राप्त होते हैं। हे भारत! उत्तम मित्र और धन के लाभ से वह इस लोक और परलोक में भी सुख को प्राप्त करता है। उसका शब्द,. स्पर्श, रूप, रस और गन्ध इन पाँचों विषयों पर प्रभुत्व हो जाता है। इसे लोग धर्म का फल मानते हैं। किन्तु हे युधिष्ठिर! वह इन्हें प्राप्त करके भी हर्ष से फूल नहीं जाता।

अतृप्यमाणो निर्वेदमादत्ते ज्ञानचक्षुषा॥ ३२॥
प्रज्ञाचक्षुर्यदा कामे रसे गन्धे न रज्यते।
शब्दे स्पर्शे तथा रूपे न च भावयते मनः॥ ३३॥
विमुच्यते तदा कामान्न च धर्मं विमुञ्चति।
सर्वत्यागे च यतते दृष्ट्वा लोकं क्षयात्मकम्॥ ३४॥
ततो मोक्षाय यतते नानुपायादुपायतः।
शनैर्निर्वेदमादत्ते पापं कर्म जहाति च।
धर्मात्मा चैव भवति मोक्षं च लभते परम्॥ ३५॥

वह इनसे तृप्त न होने के कारण विवेकदृष्टि से वैराग्य को ग्रहण कर लेता है। उसके जब बुद्धिरूपी नेत्र खुल जाते हैं, तब वे कामोपभोग, रस और गन्ध में आनन्द का अनुभव नहीं करते। तब उसका मन भी शब्द, स्पर्श और रूप में नहीं फँसता। इस प्रकार जब वह कामनाओं का त्याग कर देता है, तब धर्म को ग्रहण किये रहता है, उसे नहीं छोड़ता। संसार के सब पदार्थो को नश्वर समझकर वह उनके त्याग के लिये प्रयत्न करता है। फिर वह श्रेष्ठ उपाय से, मोक्ष के लिये प्रयत्न करता है। वह धीरे-धीरे वैराग्य को ग्रहण करता है और पापकर्मों को छोड़ता है। वह धर्मात्मा बन जाता है तथा परम मोक्ष को प्राप्त कर लेता है।

सत्तरवाँ अध्याय : पाराशर गीता– कर्मफल की अनिवार्यता।

युधिष्ठिर उवाच

किं कर्म पुरुषः कृत्वा शुभं पुरुषसत्तम।
श्रेयः परमवाप्नोति प्रेत्य चेह च तद् वद॥ १॥

भीष्म उवाच

अत्र ते वर्तयिष्यामि यथापूर्वं महायशाः।
पराशरं महात्मानं पप्रच्छ जनको नृपः॥ २॥
किं श्रेयः सर्वभूतानामस्मिंल्लोके परत्र च।
यद् भवेत् प्रतिपत्तव्यं तद् भवान् प्रब्रवीतु मे॥ ३॥
ततः स तपसा युक्तः सर्वधर्मविधानवित्।
नृपायानुग्रहमना मुनिर्वाक्यमथाब्रवीत्॥ ४॥

युधिष्ठिर ने पूछा कि हे पुरुषश्रेष्ठ पितामह! कौन सा वह शुभ कर्म है, जिसे करके मनुष्य इस संसार तथा परलोक में परम कल्याण को प्राप्त करता है? यह आप मुझे बताइये। तब भीष्म जी ने उत्तर दिया कि यहाँ मैं तुम्हें बताऊँगा कि पहले महायशस्वी राजा जनक ने जो प्रश्न महात्मा पाराशर जी से पूछा था। उन्होने पूछा था कि हे मुने! वह कौन सा आचरण करने योग्य कार्य है, जो सारे प्राणियों के लिये इस लोक तथा परलोक में भी कल्याणकारी है? यह आप मुझे बताइये। तब सारे धर्मों के विधानों को जाननेवाले, तपस्वी, वे मुनि राजा पर अनुग्रह करने की इच्छा से उनसे बोले कि–

धर्म एव कृतः श्रेयानिह लोके परत्र च।
तस्माद्धि परमं नास्ति यथा प्राहुर्मनीषिणः॥ ५॥

सुकृतासुकृतं कर्म निषेव्य विविधैः क्रमैः।
दशार्धप्रविभक्तानां भूतानां बहुधा गतिः॥ ६॥
सौवर्णं राजतं चापि यथा भाण्डं निषिच्यते।
तथा निषिच्यते जन्तुः पूर्वकर्मवशानुगः॥ ७॥
नाबीजाज्जायते किंचिन्नाकृत्वा सुखमेधते।
सुकृतैर्विन्दते सौख्यं प्राप्य देहक्षयं नरः॥ ८॥

विद्वानों ने जैसा कहा है, उसके अनुसार आचरण किया हुआ धर्म ही इस संसार और परलोक में कल्याण को देने वाला है। उससे बढ़कर दूसरा श्रेय का साधन नहीं है। जो प्राणी विविध क्रमों से पाप और पुण्य कर्मों को करके पंचत्व को प्राप्त हो गये हैं, उनको मिलने वाली गति अनेक प्रकार की बतायी गयी है। जैसे ताँबे आदि के बर्तनों पर जब सोने या चाँदी की कलई चढ़ा दी जाती है, तब वे वैसे ही दिखाई देने लगते हैं, वैसे ही जीवात्मा भी अपने पूर्व जन्मों में किये हुए कर्मों से लिप्त हुआ उन्हीं के प्रभाव से प्रभावित रहता है। जैसे बिना बीज के कोई अंकुर उत्पन्न नहीं होता, वैसे ही बिना पुण्यकर्मों को किये मनुष्य सुख को नहीं प्राप्त कर सकता। पुण्यकर्मों के आचरण से ही मनुष्य देहत्याग के पश्चात् सुख को प्राप्त करता है।

लोकयात्राश्रयश्चैव शब्दो वेदाश्रयः कृतः।
शान्त्यर्थं मनसस्तात नैतद् वृद्धानुशासनम्॥ ९॥
चक्षुषा मनसा वाचा कर्मणा च चतुर्विधम्।
कुरुते यादृशं कर्म तादृशं प्रतिपद्यते॥ १०॥
निरन्तरं च मिश्रं च लभते कर्म पार्थिव।
कल्याणं यदि वा पापं न तु नाशोऽस्य विद्यते॥ ११॥
कदाचित् सुकृतं तात कूटस्थमिव तिष्ठति।
मज्जमानस्य संसारे यावद् दुःखाद् विमुच्यते॥ १२॥
ततो दुःखक्षयं कृत्वा सुकृतं कर्म सेवते।
सुकृतक्षयाद् दुष्कृतं तद् विद्धि मनुजाधिप॥ १३॥

नास्तिकलोग कहते हैं कि वेदों में जो पुण्य कर्म करने का विधान है, वह केवल लोकयात्रा के निर्वाह और मन की शान्ति के लिये है, किन्तु यह ठीक नहीं है क्योंकि पुराने वृद्ध महात्माओं ने ऐसा उपदेश नहीं किया है। व्यक्ति मन, वाणी, कर्म और नेत्रों से चार प्रकार के कर्म करता है। वह जिस प्रकार के कर्म करता है, वैसा ही उसका फल पाता है। मनुष्य अपने कर्मों का फल कभी सुख और दुःख के रूप में एक साथ पाता है और कभी निरन्तर पहले एक सुख या दुख और उसके बाद दूसरा भोग करता है। किन्तु बिना फल को भोगे उसके पाप या पुण्यकर्म का नाश नहीं होता। हे तात! कभी संसार-सागर में डूबते हुए पुरुष का जब तक दुख से छुटकारा नहीं हो जाता, उसका सुख स्थिर सा रहता है और दुखों के क्षय होजाने पर फिर वह पुण्यकर्मों का फल सुख के रूप में प्राप्त करता है। जब उसके पुण्यकर्मों का भी क्षय हो जाता है, तब वह फिर पापकर्मों का फल दुःख के रूप में भोगने लगता है। हे राजन्! तुम इस बात को समझो।

दमः क्षमा धृतिस्तेजः संतोषः सत्यवादिता।
ह्रीरहिंसाव्यसनिता दाक्ष्यं चेति सुखावहाः॥ १४॥
नायं परस्य सुकृतं दुष्कृतं चापि सेवते।
करोति यादृशं कर्म तादृशं प्रतिपद्यते॥ १५॥
सुखदुःखे समाधाय पुमानन्येन गच्छति।
अन्येनैव जनः सर्वः संगतो यश्च पार्थिवः॥ १६॥
परेषां यदसूयेत न तत् कुर्यात् स्वयं नरः।
यो ह्यसू युस्तथायुक्तः सोऽवहासं नियच्छति॥ १७॥

इन्द्रिय संयम, धैर्य, तेज, क्षमा, सन्तोष, सत्यभाषण, लज्जा, अहिंसा, दुर्व्यसन का अभाव तथा दक्षता ये सब सुख की प्राप्ति करानेवाले हैं। जीवात्मा दूसरे के किये हुए पापपुण्यकर्म के फल को नहीं भोगता, पर स्वयं जैसा वह कर्म करता है उसका वैसा ही फल भोगता है। विवेकी व्यक्ति सुख और दुख को अपने अन्दर विलीन करके, मोक्ष प्राप्ति के मार्ग से चलता है, किन्तु जो संसारी जीव हैं, वे सारे सांसारिक पदार्थों में आसक्त हुए दूसरे ही मार्ग पर चलते रहते हैं। मनुष्य दूसरों के जिस कार्य की निन्दा करे, उसे स्वयं भी न करे। जो मनुष्य दूसरों के कार्य की तो निन्दा करता है, पर स्वयं उसी कार्य को करता है, वह उपहास का पात्र होता है।

भीरू राजन्यो ब्राह्मणः सर्वभक्ष्यो
वैश्योऽनीहावान् हीनवर्णोऽलसश्च।
विद्वांश्चाशीलो वृत्तहीनः कुलीनः
सत्याद् विभ्रष्टो धार्मिकः स्त्री च दुष्टा॥ १८॥
रागी युक्तः पचमानोऽऽत्महेतो-
मूर्खो वक्ता नृपहीनं च राष्ट्रम्।

एते सर्वे शोच्यतां यान्ति राजन्
यश्चा युक्तः स्नेहहीनः प्रजासु॥ १९॥

डरपोक राजा, सब कुछ खाजाने वाला ब्राह्मण, धनोपार्जन की इच्छा रहित वैश्य, आलसी शूद्र, शील से रहित विद्वान्, चरित्रहीन कुलीन व्यक्ति, सत्य से भ्रष्ट धर्म का पालन करने वाला, दुराचारिणी स्त्री, राग से युक्त योगी, केवल अपने लिये भोजन बनाने वाला मनुष्य, मूर्ख वक्ता, राजा से रहित राष्ट्र तथा अजितेन्द्रिय और प्रजा से स्नेह न करने वाला राजा, हे राजन्! ये सारे शोक करने के योग्य हैं।

मनोरथरथं प्राप्य इन्द्रियाख्यहयं नरः।
रश्मिभिर्ज्ञानसम्भूतैर्यो गच्छति स बुद्धिमान्॥ २०॥
सेवाऽऽश्रितेन मनसा वृत्तिहीनस्य शस्यते।
द्विजातिहस्तान्निर्वृत्तान तु तुल्यात् परस्परात्॥ २१॥
आयुर्न सुलभं लब्ध्वा नावकर्षेद् विशाम्पते।
उत्कर्षार्थं प्रयतेत नरः पुण्येन कर्मणा॥ २२॥
वर्णेभ्यो हि परिभ्रष्टो न वै सम्मानमर्हति।
न तु यः सत्क्रियां प्राप्य राजसं कर्म सेवते॥ २३॥

जो व्यक्ति इन्द्रियरूपी घोड़ों से युक्त मनोरथ अर्थात् सूक्ष्म शरीररूपी रथ को प्राप्त करके, जिसमें ज्ञानाकार वृत्तियाँ ही रथ के घोड़ों की लगाम हैं और इसकी वास्तविकता को समझकर इस पर सवारी करते हुए जीवनयात्रा करता है, वही बुद्धिमान् है। जो व्यक्ति इन्द्रियों की बाह्य वृत्तियों का त्यागकर उनसे रहित होजाता है और पुनः परमात्मा की शरण में गये हुए मन से उसकी उपासना करता है, उसकी वह उपासना प्रशंसनीय होती है। किन्तु उसकी यह उपासना किसी उत्तम ब्राह्मण के वरदहस्त से ही निष्पन्न होती है, समान योग्यता वाले आपस के लोगों से उसकी प्राप्ति नहीं होती। हे प्रजानाथ! मनुष्य की आयु सरलता से नहीं मिलती, इसलिये इसे प्राप्तकर आत्मा की अवनति नहीं करनी चाहिये। उसे पुण्यकर्म द्वारा आत्मा के उत्कर्ष के लिये प्रयत्न करते रहना चाहिये। जो व्यक्ति अपने वर्णधर्म से भ्रष्ट होजाता है, तथा जो अपने सत्वगुणों से सत्कार को प्राप्त करके रजोगुणी कर्मों में लगता है, ये दोनों सम्मान को प्राप्त करने के योग्य नहीं हैं।

वर्णोत्कर्षमवाप्नोति नरः पुण्येन कर्मणा।
दुर्लभं तमलब्ध्वा हि हन्यात् पापेन कर्मणा॥ २४॥
किं कष्टमनुपश्यामि फलं पापस्य कर्मणः।
प्रत्यापन्नस्य हि ततो नात्मा तावद् विरोचते॥ २५॥
प्रत्यापत्तिश्च यस्येह बालिशस्य न जायते।
तस्यापि सुमहांस्तापः प्रस्थितस्योपजायते॥ २६॥
विरक्तं शोध्यते वस्त्रं न तु कृष्णोपसंहितम्।
प्रयत्नेन मनुष्येन्द्र पापमेवं निबोध मे॥ २७॥

मनुष्य पुण्यकर्मों से ही उत्तम वर्ण में जन्म प्राप्त करता है। पापकर्म करनेवालों के लिये वह दुर्लभ है। उत्तमवर्ण को न पाकर पापकर्मा अपने कर्मों से अपना ही विनाश करता है। मैं अपने पापकर्म का कोई दुखदायी फल तो देख ही नहीं रहा हूँ, ऐसा सोचकर पापकर्म में लगे हुए मनुष्य को परमात्मा का चिन्तन अच्छा नहीं लगता। जिस अज्ञानी व्यक्ति को इस संसार में तत्वज्ञान की प्राप्ति नहीं होती है, उसे परलोक में जाकर महान् सन्ताप को भोगना पड़ता है। हे राजन्! रंगहीन वस्त्र धोने से साफ होजाता है, पर काले रँगा में रँगा हुआ वस्त्र प्रयत्न करने पर भी सफेद नहीं होता। वैसे ही तुम पाप को समझो। उसका रंग भी जल्दी नहीं उतरता।

स्वयं कृत्वा तु यः पापं शुभमेवानुतिष्ठति।
प्रायश्चित्तं नरः कर्तुमुभयं सोऽश्नुते पृथक्॥ २८॥
यथा सूक्ष्माणि कर्माणि फलन्तीह यथातथम्।
बुद्धियुक्तानि तानीह कृतानि मनसा सह॥ २९॥
भवत्यल्पफलं कर्म -सेवितं नित्यमुल्बणम्।
अबुद्धिपूर्वं धर्मज्ञ कृतमुग्रेण कर्मणा॥ ३०॥
संचिन्त्य मनसा राजन् विदित्वा शक्यमात्मनः।
करोति यः शुभं कर्म स वै भद्राणि पश्यति॥ ३१॥

जो व्यक्ति स्वयं पापकर्म को करके फिर उसके प्रायश्चित के लिये शुभकर्मों को करता है, वह अपने पापकर्म और पुण्यकर्म दोनों का अलग-अलग फल भोगता है। हे धर्मज्ञ राजा जनक! जैसे मन और बुद्धि से सोचविचारकर जो सूक्ष्म कर्म भी किये जाते हैं, वे अवश्य ही यथायोग्य फल को देते हैं, वैसे ही अनजाने में किया हुआ हिंसा आदि उग्र पापकर्म भी अवश्य ही फल देता है, किन्तु उसका फल जानबूझकर किये हुए कर्म की अपेक्षा कम होता है। हे राजन्! जो व्यक्ति मन में सोचकर और अपनी सामर्थ को जान कर शुभकर्मों का अनुष्ठान करता है, वह अवश्य ही कल्याण को प्राप्त करता है।

न वे कपाले सलिलं संन्यस्तं हीयते यथा।
नवेतरे तथाभावं प्राप्नोति सुखभावितम्॥ ३२॥
सतोयेऽन्यत् तु यत् तोयं तस्मिन्नेव प्रसिच्यते।
वृद्धे वृद्धिमवाप्नोति सलिले सलिलं यथा॥ ३३॥
एवं कर्माणि यानीह बुद्धियुक्तानि पार्थिव।
समानि चैव यानीह तानि पुण्यतमान्यपि॥ ३४॥

जैसे नये कच्चे घड़े में रखा हुआ जल नष्ट हो जाता है, पर पके हुए घड़े में रखा हुआ पानी वैसा का वैसा बना रहता है, वैसे ही शुद्ध अन्तःकरण से किये हुए शुभकार्य अन्तःकरण में स्थिर बने रहते हैं। उसी जलयुक्त पक्के घड़े में यदि दूसरा जल और डाला जाये, तो वह दूसरा जल पहले वाले जल में मिलकर उसके परिमाण को बढ़ा देता है और घड़ा अधिक जलवाला होजाता है, वैसे ही हे राजन्! जो पहले के बुद्धि पूर्वक किये हुए शुभकर्म होते हैं, उन्हीं के समान जो नये पुण्यकर्म किये जाते हैं, वे दोनों मिलकर अधिक पुण्यकर्म हो जाते हैं।

राज्ञा जेतव्याः शत्रवश्चोन्नताश्च
सम्यक् कर्तव्यं पालनं च प्रजानाम्।
अग्निश्चेयो बहुभिश्चापि यज्ञै-
रन्त्ये मध्ये वा वनमाश्रित्य स्थेयम्॥ ३५॥
दमान्वितः पुरुषो धर्मशीलो
भूतानि चात्मानमिवानुपश्येत्।
गरीयसः पूजयेदात्मशक्त्या
सत्येन शीलेन सुखं नरेन्द्र॥ ३६॥

राजा को अपने बढ़े हुए शत्रुओं को जीतना चाहिये और प्रजा का पालन ठीक प्रकार से करना चाहिये। उसे बहुत से यज्ञों से अग्नि को तृप्त करना चाहिये और मध्य या अन्तिम अवस्था में वन में जाकर रहना चाहिये। हे राजन्! मनुष्य इन्द्रियदमन से युक्त होकर धर्म का पालन करे और सारे प्राणियों को अपने समान ही देखे। वह अपने बड़े लोगों की यथा शक्ति पूजा करे। सत्यभाषण और अच्छे चरित्र से ही सुख की प्राप्ति होती है।

इकहत्तरवाँ अध्याय : पाराशरगीता– धर्मोपार्जित धन की श्रेष्ठता और पाँच प्रकार के ऋणों से छूटने की विधि।

कः कस्य चोपकुरुते कश्च कस्मै प्रयच्छति।
प्राणी करोत्ययं कर्म सर्वमात्मार्थमात्मना॥ १॥
गौरवेण परित्यक्तं निःस्नेहं परिवर्जयेत्।
सोदर्यं भ्रातरमपि किमुतान्यं पृथग्जनम्॥ २॥
विशिष्टस्य विशिष्टाच्च तुल्यौ दानप्रतिग्रहौ।
तयोः पुण्यतरं दानं तद् द्विजस्य प्रयच्छतः॥ ३॥
न्यायागतं धनं चैव न्यायेनैव विवर्धितम्।
संरक्ष्यं यत्नमास्थाय धर्मार्थमिति निश्चयः॥ ४॥

पाराशर जी ने कहा कि हे राजन्! कौन किसका उपकार करता है? और कौन किसको देता है? यह प्राणी सारे कार्य स्वयं अपने लिये ही करता है। यदि अपना सगा भाई भी अपने गौरवपूर्ण स्वभाव को छोड़ दे और स्नेहरहित हो जाये तो उसे भी त्याग दिया जाता है, फिर दूसरे लोगों की तो बात ही क्या है? श्रेष्ठ व्यक्ति को दिया हुआ दान और श्रेष्ठ व्यक्ति से लिया हुआ दान दोनों बराबर हैं, किन्तु उन में से भी ब्राह्मण के लिये प्रतिग्रह स्वीकार करने की अपेक्षा दान देना अधिक पुण्यवाला बताया गया है। जो धन न्याय से ही प्राप्त हुआ हो और न्याय से ही बढ़ाया गया हो, उसे धर्म के उद्देश्य से यत्नपूर्वक बचाकर रखना चाहिये, यही शास्त्रों का निश्चय है।

न धर्मार्थी नृशंसेन कर्मणा धनमर्जयेत्।
शक्तितः सर्वकार्याणि कुर्यान्नर्द्धिमनुस्मरेत्॥ ५॥
अपो हि प्रयतः शीतास्तापिता ज्वलनेन वा।
शक्तितोऽतिथये दत्त्वा क्षुधार्तायाश्नुते फलम्॥ ६॥
रन्तिदेवेन लोकेष्टा सिद्धिः प्राप्ता महात्मना।
फलपत्रैरथो मूलैर्मुनीनर्चितवांश्च सः॥ ७॥
तैरेव फलपत्रैश्च स माठरमतोषयत्।
तस्माल्लेभे परं स्थानं शैब्योऽपि पृथिवीपतिः॥ ८॥

धर्मपालन करनेवाले को क्रूरकर्म से धनोपार्जन नहीं करना चाहिये। उसे धनप्राप्ति की चिन्ता में न पड़कर सारे कार्य अपनी शक्ति के अनुसार

ही करने चाहियें। जो व्यक्ति ऋतु के अनुसार अतिथि को ठंडा या गर्म पानी पिलाता है और भूखे अतिथि को शक्ति के अनुसार भोजन देता है, वह उत्तम फल पाता है। महात्मा रन्ति देव ने उस सिद्धि को प्राप्त किया था, जिसे संसार में सब चाहते हैं। उन्होंने फल, मूल और पत्तों से मुनियों का सत्कार किया था। राजा शैव्य ने भी उन्हीं फल और पत्तों से माठर मुनि को सन्तुष्ट किया था, इससे उन्हें परलोक में उत्तम गति प्राप्त हुई।

देवतातिथिभृत्येभ्यः पितृभ्यश्चात्मनस्तथा।
ऋणवान् जायते मर्त्यस्तस्मादनृणतां व्रजेत्॥ ९॥
स्वाध्यायेन महर्षिभ्यो देवेभ्यो यज्ञकर्मणा।
पितृभ्यः श्राद्धदानेन नृणामभ्यर्चनेन च॥ १०॥
वाचा शेषावहार्येण पालनेनात्मनोऽपि च।
यथावद् भृत्यवर्गस्य चिकीर्षेत् कर्म आदितः॥ ११॥

देवता अर्थात् जड़ देवताओं तथा सदाचारी विद्वानों, अतिथियों, सेवकों और अपने आपका भी ऋण लेकर मनुष्य संसार में जन्म लेता है, इसलिये उसे इन ऋणों से मुक्त होना चाहिये। ऋषिप्रणीत पुस्तकों के स्वाध्याय से ऋषियों के, यज्ञकर्म से देवताओं अर्थात् जड़ देवताओं तथा सदाचारी विद्वानों के ऋण से, श्रद्धापूर्वक दिये गये दान से वृद्ध पुरुषों के और सेवासत्कार द्वारा अतिथियों के ऋण से छुटकारा होता है। ऋषिप्रणीत पुस्तकों से शेष कम महत्त्व की पर उत्तम पुस्तकों के, अध्ययन से तथा आत्मा के पालन से मनुष्य अपने ऋण से उऋण होता है। सेवकों के तो भरणपोषण का आरम्भ से ही प्रयत्न करना चाहिये, इससे वह सेवकों के ऋण से छूटता है।

येऽर्था धर्मेण ते सत्या येऽधर्मेण धिगस्तु तान्।
धर्मं वै शाश्वतं लोके न जह्याद् धनकाङ्क्ष्या॥ १२॥
स चाप्यग्न्याहितो विप्रः क्रिया यस्य न हीयते।
श्रेयो ह्यनाहिताग्नित्वमग्निहोत्रं न निष्क्रियम्॥ १३॥
अग्निरात्मा च माता च पिता जनयिता तथा।
गुरुश्च नरशार्दूल परिचर्या यथातथम्॥ १४॥

जो धन धर्माचरण से प्राप्त हो वही सच्चा धन है, जो अधर्म से प्राप्त हो, उसे धिक्कार है। संसार में धर्म ही शाश्वत है, धन की इच्छा से उसका त्याग नहीं करना चाहिये। जिस ब्राह्मण का सदाचार और सत्कर्म कभी लुप्त नहीं होते, उसके द्वारा यदि अग्निहोत्र न भी हो सके, तो भी वह अग्निहोत्री ही है। सदाचार और सत्कर्म को छोड़ने की जगह अग्निहोत्र को छोड़ना अच्छा है। ऐसे व्यक्ति का अग्निहोत्र निष्क्रिय नहीं माना जाता। हे पुरुषसिंह! अग्नि, आत्मा, माता, जन्म देने वाला पिता और गुरु इन सबकी यथायोग्य सेवा करनी चाहिये।

मानं त्यक्त्वा यो नरो वृद्धसेवी
विद्वान् क्लीबः पश्यति प्रीतियोगात्।
दाक्ष्येण हीनो धर्मयुक्तो नदान्तो
लोकेऽस्मिन् वै पूज्यते सद्भिरार्यः॥ १५॥

जो व्यक्ति अभिमान को छोड़कर वृद्धों की सेवा करता है, विद्वान् है और कामभोग में अनासक्त होकर सबको प्रेमपूर्वक देखता है, जो मन में चतुराई न रखकर धर्मपालन में लगा रहता है और दूसरों का दमन या हिंसा नहीं करता, वह मनुष्य इस संसार में आर्य है और सत्पुरुषों के द्वारा आदर किया जाता है।

वृत्तिः सकाशाद् वर्णेभ्यस्त्रिभ्यो हीनस्य शोभना।
प्रीत्योपनीता निर्दिष्टा धर्मिष्ठान् कुरुते सदा॥ १६॥
सद्भिस्तु सह संसर्गः शोभते धर्मदर्शिभिः।
नित्यं सर्वास्ववस्थासु नासद्भिरिति मे मतिः॥ १७॥
यादृशेन हि वर्णेन भाव्यते शुक्लमम्बरम्।
तादृशं कुरुते रूपमेतदेवमवेहि मे॥ १८॥
तस्माद् गुणेषु रज्येथा मा दोषेषु कदाचन।
अनित्यमिह मर्त्यानां जीवितं हि चलाचलम्॥ १९॥

शूद्रों के लिये यही उत्तम है कि वे तीनों वर्णों की सेवा करें। यदि वे अपनी वृत्ति का प्रेमपूर्वक पालन करें, तो यही कार्य उन्हें सदा धर्मिष्ठ बनाता है। जो धर्म को जानने वाले सज्जन व्यक्ति हैं, उनकी संगति सदा करना ही उत्तम है। मेरा यह विचार है कि सभी अवस्थाओं में असत्पुरुषों का साथ नहीं करना चाहिये। सफेद कपड़े पर जो रंग चढ़ाया जाता है, वैसा ही उसका रूप हो जाता है, इसी प्रकार यह मुझसे अच्छी तरह से समझ लो कि जैसे व्यक्तियों की संगति की जाती है, वैसा ही मन पर प्रभाव पड़ जाता है। इसलिये

तुम गुणों के प्रति ही प्रेम रखो, दोषों के प्रति नहीं। इस संसार में मरणशील व्यक्तियों का जीवन अनित्य और चंचल है।

सुखे वा यदि वा दुःखे वर्तमानो विचक्षणः।
यश्चिनोति शुभान्येव स तन्त्राणीह पश्यति॥ २०॥
धर्मादपेतं यत् कर्म यद्यपि स्यान्महाफलम्।
न तत् सेवेत मेधावी न तद्धितमिहोच्यते॥ २१॥
यो हृत्वा गोसहस्राणि नृपो दद्यादरक्षिता।
स शब्दमात्रफलभाग् राजा भवति तस्करः॥ २२॥

जो विद्वान् चाहे सुखी अवस्था में हो या दुखी अवस्था में, पुण्यकर्मों को ही करने के लिये चुनता है वही शास्त्रों के अभिप्राय को समझता और देखता है। चाहे कोई कार्य महान् फल देने वाला हो, पर यदि धर्म से रहित है, तो बुद्धिमान् व्यक्ति को उसे नहीं करना चाहिये। उसे संसार में हितकारी नहीं बताया गया है। जो राजा दूसरों की हजार गायों का अपहरण करके दान करता है और प्रजा की रक्षा नहीं करता, वह केवल कहने के लिये दानी और राजा है, वास्तव में तो वह चोर और लुटेरा है।

तस्माद् यो रक्षति नृपः स धर्मेणेति पूज्यते।
अधीते चापि यो विप्रो वैश्यो यश्चार्जने रतः॥ २३॥
यश्च शुश्रूषते शूद्रः सततं नियतेन्द्रियः।
अतोऽन्यथा मनुष्येन्द्र स्वधर्मात् परिहीयते॥ २४॥
प्राणसंतापनिर्दिष्टाः काकिण्योऽपि महाफलाः।
न्यायेनोपार्जिता दत्ताः किमुतान्याः सहस्रशः॥ २५॥
सत्कृत्य हि द्विजातिभ्यो यो ददाति नराधिपः।
यादृशं तादृशं नित्यमश्नाति फलमूर्जितम्॥ २६॥
अभिगम्य च तत् तुष्ट्या दत्तमाहुरभिष्टुतम्।
याचितेन तु यद् दत्तं तदाहुर्मध्यमं बुधाः॥ २७॥

इसलिये जो राजा प्रजा की रक्षा करता है, वह धर्माचरण के कारण पूजा जाता है, ऐसे ही जो ब्राह्मण स्वाध्याय करता है, वैश्य धर्मपूर्वक धनोपार्जन करता है और शूद्र अपनी इन्द्रियों को वश में कर तीनों वर्णों की सेवा करता है, ये सारे अपने अपने धर्माचरण के कारण संसार में सम्मानित होते हैं। हे राजन्! इसके विपरीत आचरण करने से लोग अपने धर्म से गिर जाते हैं। प्राणों को संकट में डालकर धर्मपूर्वक कमायी गयी थोड़ी सी कौड़ियों का दान भी महान् फल को देनेवाला है। फिर यदि धन अधिक मात्रा में दिया जाये, तो कहना ही क्या है? जो राजा ब्राह्मणों का सत्कारकर उन्हें जैसा दान देता है, वह वैसे ही फल का सदा उपभोग करता है। विद्वानों ने कहा है कि स्वयं ब्राह्मण के पास जाकर, उसे सन्तुष्ट करते हुए जो दान दिया जाता है, उसे उत्तम कोटि और जो माँगने पर दिया जाता है, उसे मध्यम कोटि का दान कहते हैं।

अवज्ञया दीयते यत् तथैवाश्रद्धयापि वा।
तमाहुरधमं दानं मुनयः सत्यवादिनः॥ २८॥
अतिक्रामेन्मज्जमानो विविधेन नरः सदा।
तथा प्रयत्नं कुर्वीत यथा मुच्येत संश्रयात्॥ २९॥
दमेन शोभते विप्रः क्षत्रियो विजयेन तु।
धनेन वैश्यः शूद्रस्तु नित्यं दाक्ष्येण शोभते॥ ३०॥

जो दान अवहेलनाकर अश्रद्धा से दिया जाता है, सत्यवादी मुनियों ने उसे अधम श्रेणी का दान कहा है। जैसे समुद्र में डूबता हुआ व्यक्ति नाना प्रकार के यत्न कर समुद्र से पार हो जाता है, संसार सागर में डूबते हुए मनुष्य को भी ऐसे प्रयत्न करने चाहियें, जिससे वह इससे छुटकारा पा सके। ब्राह्मण की शोभा इन्द्रियदमन, क्षत्रिय की शोभा विजयप्राप्ति से, वैश्य की शोभा धर्मपूर्वक धनोपार्जन तथा शूद्र की शोभा सेवाकार्य में कुशलता प्रकट करने से होती है।

प्रायेण च गृहस्थस्य ममत्वं नाम जायते।
सङ्गागतं नरश्रेष्ठ भावै राजसतामसैः॥ १॥
गृहाण्याश्रित्य गावश्च क्षेत्राणि च धनानि च।
दाराः पुत्राश्च भृत्याश्च भवन्तीह नरस्य वै॥ २॥
एवं तस्य प्रवृत्तस्य नित्यमेवानुपश्यतः।
रागद्वेषौ विवर्धेते ह्यनित्यत्वमपश्यतः॥ ३॥
रागद्वेषाभिभूतं च नरं द्रव्यवशानुगम्।
मोहजाता रतिर्नाम समुपैति नराधिप॥ ४॥

हे नरश्रेष्ठ! गृहस्थ व्यक्तियों को प्रायः रजोगणी और तमोगुणी पदार्थों के सम्पर्क में आकर उन के प्रति ममता होजाती है। गृहस्थी में आते ही मनुष्य का गाय, खेतीबाड़ी, धनसम्पत्ति, पत्नी, पुत्र और सेवकों से सम्बन्ध स्थापित होजाता है। इसप्रकार प्रवृत्तिमार्ग में चलते हुए जब वह प्रतिदिन उन्हीं पदार्थों को देखता है तो उसके मन में उनके प्रति राग और द्वेष जागृत होजाते हैं। वह उनके अनित्यत्व को नहीं देखता। हे राजन्! जब वह राग और द्वेष से युक्त होकर पदार्थों में आसक्त होजाता है, तब मोह की कन्या रति उसके समीप आजाती है।

कृतार्थं भोगिनं मत्वा सर्वो रतिपरायणः।
लाभं ग्राम्यसुखादन्यं रतितो नानुपश्यति॥ ५॥
ततो लोभाभिभूतात्मा संगाद् वर्धयते जनम्।
पुष्ट्यर्थं चैव तस्येह जनस्यार्थं चिकीर्षति॥ ६॥
स जानन्नपि चाकार्यमर्थार्थं सेवते नरः।
बालस्नेहपरीतात्मा तत्क्षयाच्चानुतप्यते॥ ७॥
ततो मानेन सम्पन्नो रक्षन्नात्मपराजयम्।
करोति येन भोगी स्यामिति तस्माद् विनश्यति॥ ८॥

रति की उपासना में लगे हुए सभी भोग से ही अपने–आपको कृतार्थ मानते हुए रति से जो ग्राम्यसुख प्राप्त होता है, उससे बढ़कर और कुछ नहीं समझते। फिर उनकी आत्मा लोभ से अभिभूत होजाती है और वे आसक्तिवश अपने परिजनों की संख्या बढ़ाने लगते हैं। उन बढ़ते हुए परिजनों के भरणपोषण के लिये उन्हें धनोपार्जन की इच्छा होती है। यद्यपि वे जानते हैं कि यह कार्य गलत है, पर फिर भी धनोपार्जन के लिये वे उन कार्यों को करने लगते हैं। उनका मन तब बालबच्चों के स्नेह में डूबा हुआ रहता है। यदि कोई उनमें से मर जाता है तो वे उसके लिये सन्तप्त होते हैं। धन एकत्र करने से जब व्यक्ति का सम्मान बढ़ जाता है, तो वह अपने अपमान से बचने का प्रयत्न करता है। उसके जीवन में सारे कार्यों का यही उद्देश्य होता है कि मैं अधिक से अधिक भोगसामग्री एकत्र करूँ। भोग सामग्री के लिये प्रयत्न करते हुए वह एक दिन विनष्ट हो जाता है।

स्नेहायतननाशाच्च धननाशाच्च पार्थिव।
आधिव्याधिप्रतापाच्च निर्वेदमुपगच्छति॥ ९॥
निर्वेदादात्मसम्बोधः सम्बोधाच्छास्त्रदर्शनम्।
शास्त्रार्थदर्शनाद् राजंस्तप एवानुपश्यति॥ १०॥
तपः सर्वगतं तात हीनस्यापि विधीयते।
जितेन्द्रियस्य दान्तस्य स्वर्गमार्गप्रवर्तकम्॥ ११॥
सुखितो दुःखितो वापि नरो लोभं परित्यजेत्।
अवेक्ष्य मनसा शास्त्रं बुद्ध्या च नृपसत्तम॥ १२॥

हे राजन्! जो सामान्य व्यक्ति होते हैं उन्हें तो स्नेह के आधार स्त्री, पुत्र आदि के मरने, या धन के नष्ट होने, या बीमारियों का प्रकोप होने पर ही वैराग्य होता है। वैराग्य होने पर उन्हें आत्म तत्त्व को जानने की इच्छा होती है और उसके लिये वे शास्त्रों का अध्ययन करते हैं। शास्त्रों के अर्थ को समझने पर वे तप को ही कल्याण का साधन समझते हैं। हे तात्! तप में तो सभी का अधिकार है। नीचे के वर्णों के उन व्यक्तियों के लिये भी जो इन्द्रियदमनशील और आत्मसंयमी हैं, तप का विधान है। तप ही व्यक्तियों को परलोक में उत्तम गति को प्राप्त करानेवाला है। चाहे व्यक्ति सुख में हो या दुख में, उसे लोभ का परित्याग करना चाहिये। हे नृपश्रेष्ठ! उसे मन और बुद्धि से शास्त्रों को समझना चाहिये।

असंतोषोऽसुखायेति लोभादिन्द्रियसम्भ्रमः।
ततोऽस्य नश्यति प्रज्ञा विद्येवाभ्यासवर्जिता॥ १३॥
धर्मे तपसि दाने च विचिकित्सास्य जायते।
स कृत्वा पापकान्येव निरयं प्रतिपद्यते॥ १४॥
सुखे तु. वर्तमानो वै दुःखे वापि नरोत्तम।
सुवृत्ताद् यो न चलते शास्त्रचक्षुः स मानवः॥ १५॥

इषुप्रपातमात्रं हि स्पर्शयोगे रतिः स्मृता।
रसने दर्शने घ्राणे श्रवणे च विशाम्पते॥ १६॥

असन्तोष दुख का कारण है। लोभ से इन्द्रियाँ चंचल होती हैं। उससे मनुष्य की बुद्धि ऐसे नष्ट हो जाती है, जैसे बिना अभ्यास के विद्या। उसे फिर धर्म, तपस्या और दान में सन्देह होने लगता है और वह पापकर्मों को ही करता हुआ अधम गति को प्राप्त होता है। हे नरश्रेष्ठ! इसलिये, चाहे सुख में हो या दुख में, जो अपने सदाचार से विचलित नहीं होता, वही शास्त्रों का ज्ञाता है। हे प्रजानाथ! बाण के धनुष से छूट कर भूमि पर गिरने में जितना समय लगता है, स्पर्शेन्द्रिय, रसना, नेत्र, नासिका और कान के विषयों का सुख भी उतने ही समय का होता है।

ततोऽस्य जायते तीव्रा वेदना तत्क्षयात् पुनः।
अबुधा न प्रशंसन्ति मोक्षं सुखमनुत्तमम्॥ १७॥

अप्रयत्नागताः सेव्या गृहस्थैर्विषयाः सदा।
प्रयत्नेनोपगम्यश्च स्वधर्म इति मे मतिः॥ १८॥
सर्वात्मनानुकुर्वीत गृहस्थः कर्मनिश्चयम्।
दाक्ष्येण हव्यकव्यार्थं स्वधर्मे विचरन् नृप॥ १९॥

फिर जब विषयसुख नष्ट होजाता है, तब उसके लिये उसके मन में बड़ी वेदना होती है। पर फिर भी अज्ञानी व्यक्ति मोक्ष के श्रेष्ठ सुख की प्रशंसा नहीं करते। गृहस्थियों को उन्हीं विषयों का सेवन करना चाहिये, जो उन्हें स्वाभाविक रूप से अपने-आप प्राप्त होजायें। उनके लिये प्रयत्न नहीं करना चाहिये। प्रयत्न तो उन्हें अपने धर्म के पालन के लिये करना चाहिये यह मेरा विचार है। हे राजन्! गृहस्थी व्यक्ति को अपने कर्त्तव्य का निश्चय कर, पूरे मन से धर्म में विचरण करते हुए यज्ञ तथा श्रद्धापूर्वक दूसरे कर्मों को करना चाहिये।

तिहत्तरवाँ अध्याय : पाराशरगीता– उपसंहार।

जनक उवाच

किं श्रेयः का गतिर्ब्रह्मन् किं कृतं न विनश्यति।
क्व गतो न निवर्तेत तन्मे ब्रूहि महामते॥ १॥

पराशर उवाच

असङ्गः श्रेयसो मूलं ज्ञानं चैव परा गतिः।
चीर्णं तपो न प्रणश्येद्वापः क्षेत्रे न नश्यति॥ २॥
छित्त्वाधर्ममयं पाशं यदा धर्मेऽभिरज्यते।
दत्त्वाभयकृतं दानं तदा सिद्धिमवाप्नुते॥ ३॥

राजा जनक ने पाराशर जी से पूछा कि कल्याण का साधन क्या है? उत्तम गति कौनसी है? हे ब्राह्मण! कौनसा किया हुआ कर्म नष्ट नहीं होता? कहाँ गया हुआ जीवात्मा संसार में फिर नहीं लौटता? हे महामति! आप यह मुझे बताइये। तब पराशरजी ने उत्तर दिया कि आसक्ति का न होना ही कल्याण का मूल कारण है। ज्ञान प्राप्ति ही सबसे उत्तम गति है। स्वयं किया हुआ तप और सुपात्र को दिया हुआ दान कभी नष्ट नहीं होता। मनुष्य जब अधर्म के बन्धन को छेदकर धर्म में अनुरक्त होजाता है और सारे प्राणियों को अभयदान कर देता है, तब उसे उत्तम सिद्धि प्राप्त होजाती है।

यो ददाति सहस्त्राणि गवामश्वशतानि च।
अभयं सर्वभूतेभ्यः सदा तमभिवर्तते॥ ४॥
वसन् विषयमध्येऽपि न वसत्येव बुद्धिमान्।
संवसत्येव दुर्बुद्धिरसत्सु विषयेष्वपि॥ ५॥
नाधर्मः श्लिष्यते प्राज्ञं पयः पुष्करपर्णवत्।
अप्राज्ञमधिकं पापं श्लिष्यते जतुकाष्ठवत्॥ ६॥
नाधर्मः कारणापेक्षी कर्तारमभिमुञ्चति।
कर्ता खलु यथाकालं ततः समभिपद्यते॥ ७॥

यदि व्यक्ति हजार गायें और सौ घोड़े दान करता है और दूसरा व्यक्ति सबको अभयदान देता है, तो अभयदान देनेवाला व्यक्ति पहलेवाले से अधिक बढ़कर होता है। जो बुद्धिमान् होता है, वह विषयों के बीच में रहते हुए भी उनमें आसक्त नहीं होता, पर जिसकी बुद्धि दूषित होती है, वह विषयों से दूर रहने पर भी उन्हीं की भावनाएँ अपने हृदय में रखता है। जैसे जल कमल के पत्तों को गीला नहीं करता उसी प्रकार प्राज्ञ व्यक्ति को अधर्म लिप्त नहीं कर सकता, किन्तु जो अज्ञानी व्यक्ति होते हैं, उन्हें पाप ऐसे लिप्त कर देता है, जैसे लाख लकड़ी से चिपट जाती है। अधर्म का कार्य फल को देने

की प्रतीक्षा करता है और करनेवाले को छोड़ता नहीं है, अत: समय आने पर कर्त्ता को उसका फल अवश्य भोगना पड़ता है।

न भिद्यन्ते कृतात्मान आत्मप्रत्ययदर्शिन:।
बुद्धिकर्मेन्द्रियाणां हि प्रमत्तो यो न बुद्ध्यते॥ ८॥
शुभाशुभे प्रसक्तात्माप्राप्नोति सुमहद् भयम्।
वीतरागो जितक्रोध: सम्यग् भवति य: सदा॥ ९॥
विषये वर्तमानोऽपि न स पापेन युज्यते।
मर्यादायां धर्मसेतुर्निबद्धो नैव सीदति।
पुष्टस्रोत इवासक्त: स्फीतो भवति संचय:॥ १०॥

जो दृढ़ आत्मविश्वासी हैं, जिन्होंने अपने अन्त:करण को वश में किया हुआ है, वे कर्मों के शुभ और अशुभ फलों से कभी विचलित नहीं होते, किन्तु जो प्रमादी व्यक्ति ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों द्वारा होने वाले पापों पर ध्यान नहीं देते और शुभ तथा अशुभ कर्मों में लगे रहते हैं, उन्हें महान् भय की प्राप्ति होती है। जो वीतरागी है, जिसने क्रोध को जीत लिया है और सदा सदाचार का पालन करता है, वह विषयों के बीच में रहता हुआ भी उनसे अपना सम्बन्ध नहीं जोड़ता है। जैसे नदी पर बनाया हुआ मजबूत बाँध टूटता नहीं है और उसके कारण वहाँ जल का प्रवाह बढ़ता रहता है, वैसे ही मर्यादा पर बँधा हुआ धर्मरूपी बाँध नष्ट नहीं होता है और उससे आसक्ति रहित संचित तपकी वृद्धि होने लगती है।

यथा तिलानामिह पुष्पसंश्रयात्
पृथक्पृथग्याति गुणोऽतिसौम्यताम्।
तथा नराणां भुवि भावितात्मनां
यथाऽऽश्रयं सत्त्वगुण: प्रवर्तते॥ ११॥
जहाति दारांश्च जहाति सम्पद:
पदं च यानं विविधाश्च या: क्रिया:।
त्रिविष्टपे जातमतिर्यदा नर-
स्तदास्य बुद्धिर्विषयेषु भिद्यते॥ १२॥

जैसे तिलों का तेल अलग-अलग प्रकार के सुगन्धित पुष्पों से वासित होकर अत्यन्त मनोरम गन्ध को ग्रहण करता है, उसीप्रकार संसार में शुद्ध हृदयवाले व्यक्तियों का स्वभाव सत्पुरुषों के संग से सत्वगुण सम्पन्न होजाता है। जब मनुष्य स्वर्गीय आनन्द की प्राप्ति के लिये उत्सुक होजाता है, तब वह स्त्री, सम्पत्ति, अपने पद, सवारियाँ और दूसरे तरह-तरह के सांसारिक कार्यों का त्याग कर देता है। उसकी बुद्धि विषयों से अलग हो जाती है।

प्रसक्तबुद्धिर्विषयेषु यो नरो
न बुध्यते ह्यात्महितं कथंचन।
स सर्वभावानुगतेन चेतसा
नृपामिषेणेव झषो विकृष्यते॥ १३॥
न धर्मकाल: पुरुषस्य निश्चितो
न चापि मृत्यु: पुरुषं प्रतीक्षते।
सदा हि धर्मस्य क्रियैव शोभना
यदा नरो मृत्युमुखेऽभिवर्तते॥ १४॥

जिस मनुष्य की बुद्धि विषयों में आसक्त हो जाती है, वह तब किसी प्रकार भी अपने हित की बात नहीं समझता। हे राजन्! जैसे मछली काँटे में गुँधे हुए माँस पर आकृष्ट होने के कारण संकट में पड़ जाती है, वैसे ही वह भी विषय वासनाओं से युक्त हृदय के द्वारा दुखों को भोगता है। मनुष्य के लिये धर्म का कार्य करने के लिये कोई समय निश्चित नहीं है, कि अमुक समय पर ही धर्म का कार्य करना चाहये, क्योंकि मृत्यु किसी की राह नहीं देखती। मनुष्य सदा मृत्यु के मुख में ही रहता है। वह कभी भी आसकती है, अत: हर समय धर्म का कार्य करते रहना ही अच्छा है।

यथान्ध: स्वगृहे युक्तो ह्यभ्यासादेव गच्छति।
तथा युक्तेन मनसा प्राज्ञो गच्छति तां गतिम्॥ १५॥
मरणं जन्मनि प्रोक्तं जन्म वै मरणाश्रितम्।
अविद्वान् मोक्षधर्मेषु बद्धो भ्रमति चक्रवत्॥ १६॥
बुद्धिमार्गप्रयातस्य सुखं त्विह परत्र च।
विस्तरा: क्लेशसंयुक्ता: संक्षेपास्तु सुखावहा:॥ १७॥
परार्थं विस्तरा: सर्वे त्यागमात्महितं विदु:।
यथा मृणालानुगतमाशु मुञ्चति कर्दमम्॥ १८॥
तथात्मा पुरुषस्येह, मनसा परिमुच्यते।

जैसे अन्धा आदमी अभ्यास द्वारा अपने घर में सावधानी से विचरण करता है, वैसे ही विवेकी व्यक्ति योगयुक्त हृदयद्वारा उस परमगति को प्राप्त कर लेता है। मृत्यु जीवन के अन्दर विद्यमान् बतायी गयी है और जीवन मृत्यु के ऊपर आश्रित है, इसलिये जो मोक्ष धर्म को नहीं जानते, वे जीवन और मृत्यु के चक्र में घूमते रहते हैं। किन्तु ज्ञान

मार्ग पर चलनेवालों को इस लोक और परलोक में भी सुख मिलता है। कर्मों का विस्तार दुखदायी तथा कर्मों का संक्षेप सुखदायी होता है। क्योंकि सारे कर्मों के विस्तार मन और इन्द्रियों की तृप्ति के लिये और कर्मों के त्याग अपनी आत्मा के लिये हितकर माने गये हैं। जैसे पानी से निकालते समय कमल की नाल में लगी हुई कीचड़ पानी से तुरन्त धुल जाती है, उसी प्रकार त्यागी पुरुष की आत्मा मन के द्वारा संसार के बन्धन से मुक्त हो जाती है।

परार्थे वर्तमानस्तु स्वं कार्यं योऽभिमन्यते।
इन्द्रियार्थेषु संयुक्तः स्वकार्यात् परिमुच्यते॥ १९॥
नीहारेण हि संवीतः शिश्नोदरपरायणः।
जात्यन्ध इव पन्थानमावृतात्मा न बुद्ध्यते॥ २०॥
वाणिग् यथा समुद्राद् वै यथार्थं लभते धनम्।
तथा मर्त्यार्णवे जन्तोः कर्मविज्ञानतो गतिः॥ २१॥

जो व्यक्ति बाह्य इन्द्रियों की तृप्ति के लिये उनके विषयभोगों में प्रवृत्त होकर इसी कार्य को अपने जीवन का मुख्य उद्देश्य समझने लगता है, वह अपने वास्तविक उद्देश्य से भटक जाता है। जैसे जन्मान्ध व्यक्ति मार्ग को नहीं देख पाता है, वैसे ही उदर और काम की पूर्ति में ही लगा हुआ मनुष्य जिसकी आत्मा अज्ञान से आवृत्त है, माया रूपी कुहरे से आच्छन्न होने के कारण मोक्षमार्ग को नहीं देख पाता है। जैसे व्यापारी समुद्र मार्ग से व्यापार के लिये जाकर अपने मूलधन के अनुसार धन को कमाकर लाता है, वैसे ही इस संसार-सागर में विचरण करने वाले जीव की अपने कर्म और विज्ञान के अनुसार ही गति होती है।

स्वयंकृतानि कर्माणि जातो जन्तुः प्रपद्यते।
नाकृत्वा लभते कश्चित् किंचिदत्र प्रियाप्रियम्॥ २२॥
शयानं यान्तमासीनं प्रवृत्तं विषयेषु च।
शुभाशुभानि कर्माणि प्रपद्यन्ते नरं सदा॥ २३॥
यथा समुद्रमभितः संश्रिताः सरितोऽपराः।
तथाद्या प्रकृतिर्योगादभिसंश्रियते सदा॥ २४॥
स्नेहपाशैर्बहुविधैरासक्तमनसो नराः।
प्रकृतिस्था विषीदन्ति जले सैकतवेश्मवत्॥ २५॥

इस संसार में जन्म लेने वाला प्राणी अपने किये हुए कर्मों के अनुसार ही फल भोगता है। बिना कुछ किये यहाँ किसी भी अच्छे या बुरे फल को नहीं प्राप्त करता। मनुष्य चाहे सो रहा हो, या चल रहा हो, या बैठा हुआ हो, या विषयों में लगा हुआ हो, उसके शुभ और अशुभ कर्म ही उसे सदा प्राप्त होते रहते हैं। जैसे नदियाँ चारों तरफ से आकर समुद्र में विलीन होती रहती हैं, उसी प्रकार योगाभ्यास से वश में किया हुआ मन सदा के लिये मूल प्रकृति में विलीन हो जाता है। जिन लोगों का मन तरह-तरह के स्नेहबन्धनों में आसक्त है, वे प्रकृति में स्थित हुए व्यक्ति उसी प्रकार विचाश को प्राप्त होते हैं, जैसे जल में विद्यमान मिट्टी का मकान।

शरीरगृहसंज्ञस्य शौचतीर्थस्य देहिनः।
बुद्धिमार्गप्रयातस्य सुखं त्विह परत्र च॥ २६॥
संकल्पजो मित्रवर्गो ज्ञातयः कारणात्मकाः।
भार्या पुत्रश्च दासश्च स्वमर्थमनुयुज्यते॥ २७॥
न माता न पिता किंचित् कस्यचित् प्रतिपद्यते।
दानपथ्यौदनो जन्तुः स्वकर्मफलमश्नुते॥ २८॥

जिसका शरीर ही घर है, जो देहधारी पवित्रता को ही तीर्थ समझता है और बुद्धिपूर्वक कल्याण के मार्ग पर चलता है, उसे इस लोक में और परलोक में भी सुख मिलता है। मित्रलोग कोई मनोरथ लेकर ही मित्र बनते हैं, कुटुम्बीजन भी किसी कारण से ही सम्बन्ध रखते हैं। भार्या, पुत्र और सेवक ये सारे भी स्वार्थ का ही अनुकरण करते हैं। माता-पिता भी परलोकसाधन में किसी की कुछ भी सहायता नहीं कर सकते। परलोकयात्रा में तो अपने द्वारा किया हुआ त्याग ही राहखर्च का काम करता है। यहाँ प्रत्येक प्राणी अपने कर्म का ही फल भोगता है।

सर्वाणि कर्माणि पुरा कृतानि
शुभाशुभान्यात्मनोयान्ति जन्तोः।
उपस्थितं कर्मफलं विदित्वा
बुद्धिं तथा चोदयतेऽन्तरात्मा॥ २९॥

पूर्व जन्म में किये हुए सारे शुभ और अशुभकर्म जीवात्मा का अनुसरण करते हैं। इसलिये जिसकी आत्मा अन्तर्मुखी हो गयी है, वह उपस्थित हुए अपने कर्मों के फल को जानकर उसके अनुसार ही अपनी बुद्धि को शुभकर्म करने के लिये प्रेरित करता है, जिससे उसे भविष्य में पुनः दुःख न देखना पड़े।

सर्वः स्वानि शुभाशुभानि नियतं कर्माणि जन्तुः स्वयं।
गर्भात् सम्प्रतिपद्यते तदुभयं यत् तेन पूर्वं कृतम्॥ ३०॥
मृत्युश्चापरिहारवान् समगतिः कालेन विच्छेदिना।
दारोश्चूर्णमिवाश्मसारविहितं कर्मान्तिकं प्रापयेत्॥ ३१॥

सभी जीव माता के गर्भ में प्रवेश करते ही शुभ और अशुभ कर्मों का जो उन्होंने पूर्वजन्म में किये हैं, फल निश्चित रूप से प्राप्त करने लगते हैं। पुनः अपरिहार्य मृत्यु विनाशकारी काल की सहायता से मनुष्य का वैसे ही अन्त कर देती है, जैसे वायु आरे से चीरकर बनाये गये लकड़ी के बुरादे को उड़ा देती है।

स्वरूपतामात्मकृतं च विस्तरं
कुलान्वयं द्रव्यसमृद्धिसंचयम्।
नरो हि सर्वो लभते यथाकृतं
शुभाशुभेनात्मकृतेन कर्मणा॥ ३२॥

संसार में सारे मनुष्य पूर्वजन्मों में किये हुए शुभाशुभ कर्मों के अनुसार ही सुन्दर या असुन्दर रूप, योग्य और अयोग्य पुत्र पौत्र आदि के समूह, उत्तम या अधम कुल में जन्म और द्रव्यों की समृद्धि का संचय आदि पाते हैं।

चौहत्तरवाँ अध्याय : बड़े और छोटे भाई के परस्पर बर्ताव।

युधिष्ठिर उवाच

यथा ज्येष्ठः कनिष्ठेषु वर्तेत भरतर्षभ।
कनिष्ठाश्च यथा ज्येष्ठे वर्तेरंस्तद् ब्रवीहि मे॥ १॥

भीष्म उवाच

ज्येष्ठवत् तात वर्तस्व ज्येष्ठोऽसि सततं भवान्।
गुरोर्गरीयसी वृत्तिर्या च शिष्यस्य भारत॥ २॥
न गुरावकृतप्रज्ञे शक्यं शिष्येण वर्तितुम्।
गुरोर्हि दीर्घदर्शित्वं यत् तच्छिष्यस्य भारत॥ ३॥
अन्धः स्यादन्धवेलायां जडः स्यादपि वा बुधः।
परिहारेण तद् ब्रूयाद् यस्तेषां स्याद् व्यतिक्रमः॥ ४॥

युधिष्ठिर ने पूछा कि हे भरत श्रेष्ठ! बड़े भाई को छोटे भाइयों के साथ किस प्रकार से व्यवहार करना चाहिये? और छोटे भाई बड़े भाई के साथ किस प्रकार का व्यवहार करें? आप मुझे यह बताइये। तब भीष्म जी ने कहा कि हे तात! तुम अपने भाइयों में सबसे बड़े हो, इसलिये तुम्हें सदा बड़े भाई के समान ही बर्ताव करना चाहिये। हे भारत! गुरु का अपने शिष्य के प्रति जैसा व्यवहार होता है, वैसा ही तुम्हें अपने भाइयों के साथ करना चाहिये। यदि गुरु या बड़ा भाई समझदार न हो तो शिष्य और छोटे भाई उसकी आज्ञा में नहीं रह सकते। हे भारत! गुरु के दीर्घदर्शी होने पर शिष्य भी दीर्घदर्शी होते हैं। बड़े भाई का कर्त्तव्य है कि वह अवसर के अनुसार अन्धा, जड़ और विद्वान् बन जाये। अर्थात् यदि छोटे भाइयों से कोई अपराध हो जाये तो देखते हुए भी न देखे, जानकर भी अनजान बना रहे और उनसे इसप्रकार से बात करे, जिससे उनकी अपराध करने की प्रवृत्ति दूर हो जाये।

प्रत्यक्षं भिन्नहृदया भेदयेयुः कृतं नराः।
श्रियाभितप्ताः कौन्तेय भेदकामास्तथारयः॥ ५॥
ज्येष्ठः कुलं वर्धयति विनाशयति वा पुनः।
हन्ति सर्वमपि ज्येष्ठः कुलं यत्रावजायते॥ ६॥
अथ यो विनिकुर्वीत ज्येष्ठो भ्राता यवीयसः।
अज्येष्ठः स्यादभागश्च नियम्यो राजभिश्च सः॥ ७॥
निकृती हि नरो लोकान् पापान् गच्छत्यसंशयम्।
विदुलस्येव तत् पुष्पं मोघं जनयितुः स्मृतम्॥ ८॥

यदि बड़ा भाई प्रत्यक्ष रूप से छोटे भाइयों को दण्ड देता है, तो उनके हृदय उसके प्रति छिन्न–भिन्न हो जाते हैं और वे उस दुर्व्यवहार का लोगों में प्रचार कर देते हैं। हे कुन्तीपुत्र! तब उनके ऐवर्श्य से सन्तप्त होने वाले शत्रु लोग उनमें मतभेद कराने की इच्छा करने लगते हैं। बड़ा भाई कुलकी वृद्धि करता है, किन्तु यदि वह कुनीति पर चले तो उसे नष्ट भी कर देता है। यदि बड़े भाई का आचरण ठीक न हो तो वह जिस कुल में जन्म लेता है, उसी को चौपट कर देता है। जो बड़ा भाई छोटे भाइयों के साथ अनुचित व्यवहार करता है, वह न तो बड़ा भाई कहलाने योग्य और न बड़े भाई का हिस्सा पाने योग्य है। उसे तो राजा से दण्ड मिलना चाहिये। कपट करनेवाला मनुष्य निस्सन्देह पापपूर्ण योनियों को प्राप्त होता है। उसका जन्म पिता के लिये बेंत में फूल के समान निरर्थक है।

सर्वानर्थः कुले यत्र जायते पापपूरुषः।
अकीर्तिं जनयत्येव कीर्तिमन्तर्दधाति च॥ ९॥
सर्वे चापि विकर्मस्था भागं नार्हन्ति सोदराः।
नाप्रदाय कनिष्ठेभ्यो ज्येष्ठः कुर्वीत यौतकम्॥ १०॥
अनुपघ्नन् पितुर्दायं जङ्घाश्रमफलोऽध्वगः।
स्वयमीहितलब्धं तु नाकामो दातुमर्हति॥ ११॥
भ्रातॄणामविभक्तानामुत्थानमपि चेत् सह।
न पुत्रभागं विषमं पिता दद्यात् कदाचन॥ १२॥

पापी पुरुष जिस कुल में जन्म लेता है, उस के सारे अनर्थों का कारण बन जाता है। वह कुल की कीर्ति को समाप्त करता और बदनामी को जन्म देता है। यदि छोटे भाई अनुचित मार्ग पर चल रहे हों, तो वे भी अपना पैतृक भाग पाने के अधिकारी नहीं हैं। बड़े भाई को छोटे भाइयों को उनका पैतृकभाग दिलाये बिना अपना पैतृकभाग ग्रहण करने का अधिकार नहीं है। यदि बड़ा भाई पैतृक धन को बिना हानि पहुँचाये, अपनी जाँघों के परिश्रम से ही परदेस में जाकर धन कमाये, तो वह उसकी अपने परिश्रम की कमाई है। इसलिये यदि उसकी इच्छा न हो तो वह उस धन में से दूसरे भाइयों को नहीं दे सकता। यदि अभी भाइयों के हिस्से का बँटवारा नहीं हुआ है, और सबने मिलकर धन को बढ़ाया है, तब पिता यदि जीवित है तो उसे सब पुत्रों में बराबर का भाग बाँटना चाहिये।

न ज्येष्ठो वावमन्येत दुष्कृतः सुकृतोऽपि वा।
यदि स्त्री यद्यवरजः श्रेयश्चेत् तत् तदाचरेत्॥ १३॥
धर्मं हि श्रेय इत्याहुरिति धर्मविदो जनाः।
दशाचार्यानुपाध्याय उपाध्यायान् पिता दश॥ १४॥
दश चैव पितॄन् माता सर्वां वा पृथिवीमपि।
गौरवेणाभिभवति नास्ति मातृसमो गुरुः॥ १५॥
माता गरीयसी यच्च तेनैतां मन्यते जनः।

बड़ा भाई चाहे सुकर्मी हो या बुरा, छोटे भाइयों को उसका अपमान नहीं करना चाहिये। इसीप्रकार यदि स्त्री या छोटा भाई बुरे मार्ग पर चल रहे हों, तो बड़े भाई को इस प्रकार से कार्य करना चाहिये, जिससे उनका भला हो। धर्मज्ञ व्यक्तियों के अनुसार धर्म का पालन करना ही कल्याण का सर्वश्रेष्ठ साधन है। दस आचार्यों से बढ़कर उपाध्याय होता है और दस उपाध्यायों से बढ़कर पिता होता है और दस पिताओं से बढ़कर माता होती है या अपने गौरव से सारी भूमि को भी तिरस्कृत करती है। माता के समान दूसरा कोई गुरु नहीं है। हे भारत! माता क्योंकि सबसे अधिक गौरव वाली है, इसलिये माता का विशेष आदर किया जाता है।

ज्येष्ठो भ्राता पितृसमो मृते पितरि भारत॥ १६॥
स ह्येषां वृत्तिदाता स्यात् स चैतान् प्रतिपालयेत्।
कनिष्ठास्तं नमस्येरन् सर्वे छन्दानुवर्तिनः॥ १७॥
तमेव चोपजीवेरन् यथैव पितरं तथा।
ज्येष्ठा मातृसमा चापि भगिनी भरतर्षभ।
भ्रातुर्भार्या च तद्वत् स्याद् यस्या बाल्ये स्तनं पिबेत्॥ १८॥

पिता के मर जाने पर बड़ा भाई पिता के समान होता है। बड़ा भाई ही छोटे भाइयों को आजीविका दिलवाये और उनका पालन करे। छोटे भाइयों को चाहिये कि वे उसे नमस्कार करें और उसकी इच्छा के अनुसार चलें। वे बड़े भाई को ही पिता मानकर उसके आश्रय में रहें। हे भरतश्रेष्ठ! बड़ी बहन भी माता के समान है। इसीप्रकार बड़े भाई की पत्नी तथा जिसने बचपन में दूध पिलाया हो, वह धाय भी माता के समान होती है।

पिचहत्तरवाँ अध्याय : युधिष्ठिर का हस्तिनापुर को जाना।

अभून्मुहूर्तं स्तिमितं सर्वं तद्राजमण्डलम्।
तूष्णींभूते ततस्तस्मिन् पटे चित्रमिवार्पितम्॥ १॥
मुहूर्तमिव च ध्यात्वा व्यासः सत्यवतीसुतः।
नृपं शयानं गाङ्गेयमिदमाह वचस्तदा॥ २॥
राजन प्रकृतिमापन्नः कुरुराजो युधिष्ठिरः।
सहितो भ्रातृभिः सर्वैः पार्थिवैश्चानुयायिभिः॥ ३॥
उपास्ते त्वां नरव्याघ्र सह कृष्णेन धीमता।
तमिमं पुरयानाय समनुज्ञातुमर्हसि॥ ४॥

इसप्रकार उपदेश करके जब भीष्म पितामह चुप हो गये, तब वह राजपरिवार वस्त्र पर अंकित किये हुए चित्र के समान थोड़ी देर तक चुपचाप स्तब्ध सा बैठा रह गया। फिर थोड़ी देर तक ध्यान करने के पश्चात् सत्यवतीपुत्र व्यास जी ने लेटे हुए गंगा पुत्र महाराज भीष्म जी से यह कहा कि हे राजन्! कुरुराज युधिष्ठिर अब स्वस्थ अर्थात् शान्त और सन्देह रहित हो गये हैं और अपना अनुसरण करने वाले सारे भाइयों, राजाओं और धीमान् श्रीकृष्ण जी के साथ आपकी सेवा में बैठे हैं। हे नरव्याघ्र! आप इन्हें हस्तिनापुर में जाने की आज्ञा दीजिये।

एवमुक्तो भगवता व्यासेन पृथिवीपतिः।
युधिष्ठिरं सहामात्यमनुजज्ञे गंगासुतः॥ ५॥
उवाच चैनं मधुरं नृपं शान्तनवो नृपः।
प्रविशस्व पुरीं राजन् व्येतु ते मानसो ज्वरः॥ ६॥
यजस्व विविधैर्यज्ञैर्बह्वन्नैः स्वाप्तदक्षिणैः।
ययातिरिव राजेन्द्र श्रद्धादमपुरः सरः॥ ७॥
क्षत्रधर्मरतः पार्थ पितॄन् देवांश्च तर्पय।
श्रेयसा योक्ष्यसे चैव व्येतु ते मानसो ज्वरः॥ ८॥

भगवान् व्यास के ऐसा कहने पर पृथिवीपालक गंगापुत्र भीष्म ने मंत्रियों सहित युधिष्ठिर को जाने की आज्ञा दी। शान्तनुपुत्र राजा भीष्म ने राजा से मधुरवाणी में यह कहा कि हे राजन्! अब आप पुरी में प्रवेश करो। तुम्हारे मन की चिन्ताएँ दूर होजानी चाहियें। हे राजन्! तुम राजा ययाति के समान श्रद्धा और इन्द्रियदमनपूर्वक अनेक प्रकार के बहुतसे अन्नों और पर्याप्त दक्षिणावाले विविधप्रकार के यज्ञों से यजन करो। हे कुन्तीपुत्र! तुम क्षत्रियधर्म का पालन करते हुए वृद्धों और सदाचारी विद्वानों को तृप्त करो। तुम्हारी मानसिक चिन्ताएँ दूर होजायेंगी और तुम कल्याण के भागी बनोगे।

रञ्जयस्व प्रजाः सर्वाः प्रकृतीः परिसान्त्वय।
सुहृदः फलसत्कारैरर्चयस्व यथार्हतः॥ ९॥
अनु त्वां तात जीवन्तु मित्राणि सुहृदस्तथा।
चैत्यस्थाने स्थितं वृक्षं फलवन्तमिव द्विजाः॥ १०॥
आगन्तव्यं च भवता समये मम पार्थिव।
विनिवृत्ते दिनकरे प्रवृत्ते चोत्तरायणे॥ ११॥

तुम सारी प्रजा को प्रसन्न रखो, अपने कर्म चारियों को सान्त्वना दो तथा सुहृदों का फल और सत्कारों से यथायोग्य सम्मान करते रहो। हे तात! जैसे मन्दिर में फल देनेवाले वृक्ष पर बहुत से पक्षी आकर बसेरा लेते हैं, वैसे ही तुम्हारे आश्रय में रहते हुए तुम्हारे मित्र और सुहृद जीवननिर्वाह करें। हे पृथिवीपति! जब सूर्य दक्षिणायन से उत्तरायण में आजाये, तब तुम हमारे पास आना।

तथेत्यु कृत्वा च कौन्तेयः सोऽभिवाद्य पितामहम्।
प्रययौ सपरीवारो नगरं नागसाह्वयम्॥ १२॥
धृतराष्ट्रं पुरस्कृत्य गान्धारीं च पतिव्रताम्।
सह तैर्ऋषिभिः सर्वैर्भ्रातृभिः केशवेन च॥ १३॥
पौरजानपदैश्चैव मन्त्रिवृद्धैश्च पार्थिवः।
प्रविवेश कुरुश्रेष्ठः पुरं वारणसाह्वयम्॥ १४॥

तब कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर ने ऐसा ही होगा, यह कहकर पितामह को प्रणाम किया और अपने परिवार के साथ नगर की तरफ चल दिये। उन श्रेष्ठ राजा युधिष्ठिर ने फिर धृतराष्ट्र और पतिव्रता गान्धारी को आगे करके ऋषियों, सारे भाइयों, श्रीकृष्ण जी, नगर और जनपद के लोगों और बूढ़े मंत्रियों के साथ हस्तिनापुर में प्रवेश किया।

छियत्तरवाँ अध्याय : भीष्म का धृतराष्ट्र, युधिष्ठिर को अन्तिम बार उपदेश।

उषित्वा शर्वरीः श्रीमान् पञ्चाशन्नगरोत्तमे।
समयं कौरवाग्र्यस्य सस्मार पुरुषर्षभः॥ १॥
दृष्ट्वा निवृत्तमादित्यं प्रवृत्तं चोत्तरायणम्।
घृतं माल्यं च गन्धांश्च क्षौमाणि च युधिष्ठिरः॥ २॥
चन्दनागुरुमुख्यानि तथा कालीयकान्यपि।
प्रस्थाप्य पूर्वं कौन्तेयो भीष्मसंस्करणाय वै॥ ३॥
माल्यानि च वरार्हाणि रत्नानि विविधानि च।
निश्चक्राम पुरात् तस्माद् यथा देवपतिस्तथा॥ ४॥
आससाद कुरुक्षेत्रे ततः शान्तनवं नृपः।

युद्ध समाप्त होने के पश्चात् पचास रात्रि पूरी होने तक उस उत्तम नगर में निवास करने पर श्रीमान् पुरुषश्रेष्ठ युधिष्ठिर को कौरवशिरोमणि भीष्म जी द्वारा बताये हुए समय का स्मरण हुआ। तब सूर्य को दक्षिणायन से निवृत्त और उत्तरायण में प्रवृत्त देखकर कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर ने घृत, मालाएँ, गन्धयुक्त पदार्थ, रेशमी वस्त्र, चन्दन, अगुरु, कालाचन्दन, श्रेष्ठ पुरुष के धारण करने योग्य मालाएँ तथा नाना प्रकार के रत्न आदि सामान पहले ही वहाँ भिजवा दिया। उसके बाद देवराज इन्द्र के समान वे राजा अपने नगर से निकले और यथासमय कुरुक्षेत्र में शान्तनुपुत्र भीष्म जी के पास जा पहुँचे।

उपास्यमानं व्यासेन पाराशर्येण धीमता॥ ५॥
हतशिष्टैर्नृपैश्चान्यै— र्नानादेशसमागतैः।
रक्षिभिश्च महात्मानं रक्ष्यमाणं समन्ततः॥ ६॥
शयानं वीरशयने ददर्श नृपतिस्ततः।
ततो रथादवातीर्य भ्रातृभिः सह धर्मराट्॥ ७॥
अभिवाद्याथ कौन्तेयः पितामहमरिंदमः।
द्वैपायनादीन् विप्रांश्च तैश्च प्रत्यभिनन्दितः॥ ८॥
अब्रवीद् भरतश्रेष्ठं धर्मराजो युधिष्ठिरः।
युधिष्ठिरोऽहं नृपते नमस्ते जाह्नवीसुत॥ ९॥
शृणोषि चेन्महाबाहो ब्रूहि किं करवाणि ते।

तब उनके पास पाराशरपुत्र बुद्धिमान् व्यास तथा अनेक देशों से आये हुए राजालोग, जो युद्ध में भाग न लेने के कारण मरने से बच गये थे, बैठे हुए थे। वे राजालोग रक्षक बनकर महात्मा भीष्म जी की चारों तरफ से रक्षा भी कर रहे थे। धर्मराज युधिष्ठिर दूर से ही वीरशय्या पर सोये हुए भीष्म जी को देखकर अपने भाइयों के साथ रथ से उतर पड़े। शत्रुओं का दमन करने वाले कुन्तीकुमार युधिष्ठिर ने पितामह को अभिवादन कर, द्वैपायनव्यास आदि ब्राह्मणों को प्रणाम किया। उन्होंने भी उनका अभिनन्दन किया। फिर धर्मराज, युधिष्ठिर ने कहा कि हे गंगापुत्र! राजन्! मैं युधिष्ठिर हूँ और आपको नमस्कार करता हूँ। हे महाबाहु! यदि आपको सुनता हो तो बताइये कि मैं आपकी क्या सेवा करूँ?

प्राप्तोऽस्मि समये राजन्नग्नीनादाय ते विभो॥ १०॥
आचार्यान् ब्राह्मणांश्चैव ऋत्विजो भ्रातरश्च मे।
पुत्रश्च ते महातेजा धृतराष्ट्रो जनेश्वरः॥ ११॥
उपस्थितः सहामात्यो वासुदेवश्च वीर्यवान्।
हतशिष्टाश्च राजानः सर्वे च कुरुजांगलाः॥ १२॥
तान् पश्य नरशार्दूल समुन्मीलय लोचने।
यच्चेह किंचित् कर्तव्यं तत्सर्वं प्रापितं मया॥ १३॥
यथोक्तं भवता काले सर्वमेव च तत् कृतम्।

हे राजन्, हे प्रभो! मैं आपके लिये अग्नियों, आचार्यों, ब्राह्मणों, ऋत्विजों और अपने भाइयों को साथ लेकर ठीक समय पर आ पहुँचा हूँ। आपके पुत्र महातेजस्वी राजा धृतराष्ट्र अपने मन्त्रियों के साथ उपस्थित हैं और पराक्रमी श्रीकृष्ण भी आये हुए हैं। युद्ध में भाग न लेने के कारण मरने से बचे हुए सारे राजा लोग, तथा कुरुजाँगलकी जनता भी उपस्थित है। हे नरशार्दूल! आप आँखें खोलिये और इन सबको देखिये। यहाँ करने योग्य कार्य के लिये जो कुछ भी आवश्यक सामग्री है, वह सारी मैंने पहुँचवा दी है। आपने जो कुछ कहा था, वह सारा कार्य मैंने उचित समय पर कर दिया।

एवमुक्तस्तु गाङ्गेयः कुन्तीपुत्रेण धीमता॥ १४॥
ददर्श भारतान् सर्वान् स्थितान् सम्परिवार्य ह।
ततश्च तं बली भीष्मः प्रगृह्य विपुलं भुजम्॥ १५॥
उद्यन्मेघस्वरो वाग्मी काले वचनमब्रवीत्।
दिष्ट्या प्राप्तोऽसि कौन्तेय सहामात्यो युधिष्ठिर॥ १६॥
परिवृत्तो हि भगवान् सहस्रांशुर्दिवाकरः।
अष्टपञ्चाशतं रात्र्यः शयानस्याद्य मे गताः॥ १७॥
शरेषु निशिताग्रेषु यथा वर्षशतं तथा।

बुद्धिमान् कुन्तीपुत्र के यह कहने पर, गंगापुत्र भीष्म ने उन्हें घेरकर खड़े हुए सारे भरतवंशियों को देखा। तब बोलने में कुशल बलवान् भीष्म ने युधिष्ठिर की विशाल भुजा को हाथ में लेकर, मेघ के समान गम्भीर स्वर में यह समयोचित वचन कहा कि हे कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर! यह सौभाग्य की बात है कि तुम अपने मन्त्रियों सहित यहाँ आ गये हो। सहस्र किरणों से युक्त भगवान् सूर्य अब दक्षिणायन से उत्तरायण की तरफ लौट चुके हैं, यहाँ तीखी नोकवाले बाणों में सोते हुए मुझे आज अट्ठावन रातें बीत चुकीं हैं। ये दिन मेरे लिये सौ वर्षों के समान बीते हैं।

माघोऽयं समनुप्राप्तो मासः सौम्यो युधिष्ठिर॥ १८॥
त्रिभागशेषः पक्षोऽयं शुक्लो भवितुमर्हति।
एवमुक्त्वा तु गाङ्गेयो धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम्॥ १९॥
धृतराष्ट्रमथामन्त्र्य काले वचनमब्रवीत्।
राजन् विदितधर्मोऽसि सुनिर्णीतार्थसंशयः॥ २०॥
बहुश्रुता हि ते विप्रा बहवः प र्युपासिताः।
वेदशास्त्राणि सर्वाणि धर्मांश्च मनुजेश्वर॥ २१॥
वेदांश्च चतुरः सर्वान् निखिलेनानुबुद्ध्यसे।

हे युधिष्ठिर! यह माघ का सुन्दर मास जिसके तीन भाग शेष हैं, आरम्भ हो गया है। आज शुल्कपक्ष होना चाहिये। धर्मपुत्र युधिष्ठिर से यह कहकर गंगापुत्र भीष्म ने धृतराष्ट्र को बुलाकर उनसे यह समयोचित वचन कहा कि हे राजन्! तुम धर्म को अच्छी तरह से जानते हो। तुमने अर्थतत्त्व का भी अच्छी तरह से निर्णय किया हुआ है। इस विषय में तुम्हारे मन में किसी प्रकार का संशय नहीं है। तुमने बहुत सारे विद्वान् ब्राह्मणों की सेवा की है। हे मनुजेश्वर! तुम चारों वेदों, सारे शास्त्रों और धर्मों का रहस्य पूरी तरह से जानते हो।

नोटः – पहले सृष्टि के आरम्भ में सारे भारतवर्ष में मास की समाप्ति अमावस्या पर मानी जाती थी, किन्तु कालान्तर में उत्तर भारत में मास की समाप्ति पूर्णिमा से मानी जाने लगी। दक्षिण भारत में अभी तक मास की समाप्ति अमावस्या से ही मानी जाती है। रामायण में पाये जाने वाले प्रमाणों से यह पता लगता है कि उत्तर भारत में मास के अन्त का यह परिवर्तन राम से पहले हो गया था। यह पद्धति आज भी इसीप्रकार से प्रचलित है। महाभारत में भी ऐसे प्रमाण हैं, जिनसे उत्तर भारत में इसी पद्धति का प्रचलन सिद्ध होता है। किन्तु प्रस्तुत श्लोक नं. १९ में भीष्म जी ने अमावस्या पर समाप्त होने वाले मास के अनुसार ही हिसाब लगाया है, यह मानना चाहिये। नहीं तो शान्ति पर्व में भीष्म का अन्त समय बताने वाले श्लोक के अर्थ से इस की संगति नहीं बैठेगी।

न शोचितव्यं कौरव्य भवितव्यं हि तत् तथा॥ २२॥
यथा पाण्डोः सुता राजंस्तथैव तव धर्मतः।
तान् पालय स्थितो धर्मे गुरुशुश्रूषणे रतान्॥ २३॥
धर्मराजो हि शुद्धात्मा निदेशे स्थास्यते तव।
आनृशंस्यपरं ह्येनं जानामि गुरुवत्सलम्॥ २४॥
तव पुत्रा दुरात्मानः क्रोधलोभपरायणाः।
ईर्ष्याभिभूता दुर्वृत्तास्तान् न शोचितुमर्हसि॥ २५॥
एतावदुक्त्वा वचनं, पाण्डवानिदमब्रवीत्।
धृतराष्ट्रमुखांश्चापि सर्वांश्च सुहृदस्तथा॥ २६॥

हे कुरुनन्दन! तुम्हें शोक नहीं करना चाहिये। ऐसा तो होना ही था। हे राजन्! जैसे ये पाण्डव पाण्डु के पुत्र हैं, वैसे ही धर्म के अनुसार तुम्हारे भी हैं। तुम धर्म में स्थित रहकर इनका पालन करो। ये सब गुरुजनों की सेवा में लगे रहते हैं। धर्मराज युधिष्ठिर की आत्मा बहुत शुद्ध है। यह आपकी आज्ञा में रहेंगे। मैं इन्हें जानता हूँ। ये गुरुओं के प्रति प्रेम रखते हैं और इनका स्वभाव बहुत कोमल है। तुम्हारे पुत्र दुरात्मा, क्रोधी, लोभी, ईर्ष्यायुक्त और दुराचारी थे। इसलिये उनके लिये तुम्हें शोक नहीं करना चाहिये। धृतराष्ट्र से ऐसा कहकर फिर उन्होंने पाण्डवों तथा धृतराष्ट्र आदि सारे सुहृदों से यह कहा कि–

प्राणानुत्स्रष्टुमिच्छामि– तत्रानुज्ञातुमर्हथ।
सत्येषु यतितव्यं वः सत्यं हि परमं बलम्॥ २७॥
आनृशंस्यपरैर्भाव्यं सदैव नियतात्मभिः।
ब्रह्मण्यैर्धर्मशीलैश्च तपोनित्यैश्च भारताः॥ २८॥
इत्युक्त्वा सुहृदः सर्वान् सम्परिष्वज्य चैव ह।
पुनरेवाब्रवीद् धीमान् युधिष्ठिरमिदं वचः॥ २९॥
ब्राह्मणाश्चैव ते नित्यं प्राज्ञाश्चैव विशेषतः।
आचार्य ऋत्विजश्चैव पूजनीया जनाधिप॥ ३०॥

अब मैं अपने प्राणों को छोड़ना चाहता हूँ। तुम लोग इसके लिये मुझे आज्ञा दो। तुम सबको सत्य के पालन के लिये सदा यत्न करते रहना चाहिये, क्योंकि सत्य ही सबसे बड़ी शक्ति है। हे भरतवंशियों!

तुम सब निर्दयता से रहित रहना, अपने मन और इन्द्रियों को वश में रखना, परमात्मा की भक्ति तथा धर्म का पालन करते रहना और तपोमय जीवन व्यतीत करना। धीमान् भीष्म जी ने सारे सुहृदों से ऐसा कहकर उन्हें अपने गले से लगाया और युधिष्ठिर से पुनः यह कहा कि हे प्रजानाथ! तुम्हें ब्राह्मणों और विशेषकर बुद्धिमानों, आचार्यों और ऋत्विजों का सदा सत्कार करना चाहिये।

सतत्तरवाँ अध्याय : भीष्म जी का प्राण त्याग और दाह संस्कार।

शुक्लपक्षस्य चाष्टम्यां, माघमासस्य पार्थिवः।
प्राजापत्ये च नक्षत्रे, मध्यं प्राप्ते दिवा करे॥ १॥
निवृत्तमात्रे त्वयने, उत्तरे वै दिवाकरे।
समावेशयदात्मानम्, आत्मन्येव समाहितः॥ २॥
धारयामास चात्मानं, धारणासु यथा क्रमम्।
तस्योर्ध्वमगमन् प्राणाः, संनिरुद्धाः महात्मनः॥ ३॥
संनिरुद्धस्तु तेनात्मा सर्वेष्वायतनेषु च।
जगाम भित्त्वा मूर्धानं दिवमभ्युत्पपात ह॥ ४॥

उस समय जब दक्षिणायन समाप्त हो चुका था और सूर्य उत्तरायण में आ गया था, माघ मास के शुल्क पक्ष की अष्टमी तिथि को प्राजापत्य अर्थात् रोहिणी नक्षत्र में, मध्यान्ह के समय राजा भीष्म ने ध्यानमग्न होकर अपने मन को परमात्मा में लगा दिया। फिर उन्होंने अपने प्राणों को भिन्न-भिन्न धारणाओं में क्रमशः स्थापित करना आरम्भ कर दिया। उन महात्मा के यौगिक क्रिया के द्वारा रोके हुए प्राण क्रमशः ऊपर को चढ़ने लगे। भीष्म जी ने अपने शरीर के सारे द्वारों को बन्द करके रोक दिया था, इसलिये वे उनके मस्तक अर्थात् ब्रह्मरन्ध्र को फोड़कर आकाश में चले गये। इसप्रकार शान्तनुपुत्र राजा भीष्म तब काल के आधीन हो गये।

ततस्त्वादाय दारूणि गन्धांश्च विविधान् बहून्।
चितां चक्रुर्महात्मानः पाण्डवा विदुरस्तथा॥ ५॥
युधिष्ठिरश्च गाङ्गेयं विदुरश्च महामतिः।
छादयामासतुरुभौ क्षौमैर्माल्यैश्च कौरवम्॥ ६॥
धारयामास तस्याथ युयुत्सुश्छत्रमुत्तमम्।
चामरव्यजने शुभ्रे भीमसेनार्जुनावुभौ॥ ७॥
उष्णीषे परिगृह्णीतां माद्रीपुत्रावुभौ तथा।
स्त्रियः कौरवनाथस्य भीष्मं कुरुकुलोद्वहम्॥ ८॥
तालवृन्तान्युपादाय पर्यवीजन्त सर्वशः।

तब महात्मा पाण्डवों और विदुर ने बहुत सारी लकड़ियाँ और सुगन्धित पदार्थ लेकर चिता को तैयार किया। युधिष्ठिर और महामति विदुर दोनों ने रेशमी वस्त्रों और मालाओं से कुरुनन्दन, गंगापुत्र, भीष्म को आच्छादित किया और चिता पर सुलाया। युयुत्सु ने उनके ऊपर एक उत्तम छत्र को लगाया। भीमसेन और अर्जुन उनके ऊपर श्वेत चमर और व्यजन डुलाने लगे। दोनों माद्रीपुत्रों नकुल और सहदेव ने पगड़ी को अपने हाथ में लेकर उनके सिर पर उसे रखा। कुरुराज के रनिवास की स्त्रियाँ कुरुकुल के आधार भीष्म के ऊपर चारों तरफ से ताड़ के पंखों को लेकर हवा करने लगीं।

ततश्चन्दनकाष्ठैश्च तथा कालीयकैरपि॥ ९॥
कालागुरुप्रभृतिभिर्गन्धैश्चो च्चावचैस्तथा।
समवच्छाद्य गाङ्गेयं सम्प्रज्वाल्य हुताशनम्।
अपसव्यमकुर्वन्त धृतराष्ट्रमुखाश्चिताम्॥ १०॥

फिर चन्दन की लकड़ियों, काले चन्दन और कालागुरु आदि विभिन्न सुगन्धित पदार्थों से गंगापुत्र भीष्म के शरीर को ढककर, उसमें आग लगा दी गयी। धृतराष्ट्र आदि ने चिता के सामने अपने यज्ञोपवीतों को दाहिने कन्धों पर डाल लिया।

नोट :- श्लोक नं. एक और दो गीता प्रैस की महाभारत के शान्तिपर्व के अध्याय ४७ श्लोक से लिये गये हैं।

आश्वमेधिक पर्व

पहला अध्याय : व्यासजी का यज्ञ हेतु धन प्राप्ति का उपाय बताना।

व्यास उवाच

यजस्व वाजिमेधेन विधिवद् दक्षिणावता।
बहुकामान्नवित्तेन रामो दाशरथिर्यथा॥ १॥
यथा च भरतो राजा दौष्यन्तिः पृथिवीपतिः।
शाकुन्तलो महावीर्यस्तव पूर्वपितामहः॥ २॥

युधिष्ठिर उवाच

इमं ज्ञातिवधं कृत्वा सुमहान्तं द्विजोत्तम।
दानमल्पं न शक्नोमि दातुं वित्तं च नास्ति मे॥ ३॥
न तु बालानिमान् दीनानुत्सहे वसु याचितुम्।
तथैवार्द्रव्रणान् कृच्छ्रे वर्तमानान् नृपात्मजान्॥ ४॥

व्यास जी ने कहा कि हे युधिष्ठिर! जैसे दशरथपुत्र श्रीरामचन्द्र जी ने किया था, वैसे ही तुम भी विधि के अनुसार, दक्षिणा, मनोवाँछित अन्न और धनवाले अश्वमेध यज्ञ को करो। जैसे तुम्हारे पहले पितामह, महापराक्रमी शकुन्तला और दुष्यन्तपुत्र राजा भरत ने किया था, वैसे ही तुम भी यज्ञ को करो। तब युधिष्ठिर ने कहा कि अत्यन्त महान् परिवार वालों के वध को कर हे ब्राह्मणश्रेष्ठ! मैं थोड़ा सा भी दान नहीं कर सकता, क्योंकि मेरे पास देने के लिये धन ही नहीं है। ये जो राजकुमार यहाँ उपस्थित हैं, ये सारे बालक और दीन हैं। इनके शरीर के घाव अभी सूखने भी नहीं पाये हैं। ये सारे संकट में पड़े हुए हैं। मैं इनसे धन की याचना नहीं कर सकता।

स्वयं विनाश्य पृथिवीं यज्ञार्थं द्विजसत्तम।
करमाहारयिष्यामि कथं शोकपरायणः॥ ५॥
दुर्योधनापराधेन वसुधा वसुधाधिपाः।
प्रणष्टा योजयित्वास्मानकीर्त्या मुनिसत्तम॥ ६॥
दुर्योधनेन पृथिवी क्षयिता वित्तकारणात्।
कोशश्चापि विशीर्णोऽसौ धार्तराष्ट्रस्य दुर्मतेः॥ ७॥
एवमुक्तस्तु पार्थेन कृष्णद्वैपायनस्तदा।
मुहूर्तमनुसंचिन्त्य धर्मराजानमब्रवीत्॥ ८॥

हे ब्राह्मणश्रेष्ठ! स्वयं ही इस पृथिवी का नाश कराकर अब मैं शोक में डूबा हुआ, यज्ञ के लिये कर को कैसे वसूल करूँगा? हे मुनिश्रेष्ठ! दुर्योधन के अपराध से यह पृथिवी और पृथिवी के राजा लोग हमें कलंक से युक्त करके नष्ट होगये। दुर्योधन ने धन के कारण सारी पृथिवी का विनाश कराया। पर उस दुर्मति धृतराष्ट्र के पुत्र का अपना खजाना भी खाली हो गया। कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर द्वारा ऐसा कहे जाने पर कृष्ण द्वैपायन ने थोड़ी देर तक सोचकर धर्मराज से कहा कि–

कोशश्चापि विशीर्णोऽयं परिपूर्णो भविष्यति।
विद्यते द्रविणं पार्थ गिरौ हिमवति स्थितम्॥ ९॥
उत्सृष्टं ब्राह्मणैर्यज्ञे मरुत्तस्य महात्मनः।
तदानयस्व कौन्तेय पर्याप्तं तद् भविष्यति॥ १०॥
ततो दत्वा बहुधनं विप्रेभ्यः पाण्डवर्षभः।
धृतराष्ट्रं पुरस्कृत्य विवेश गजसाह्वयम्॥ ११॥
स समाश्वास्य पितरं प्रज्ञाचक्षुषमीश्वरम्।
अन्वशाद् वै स धर्मात्मा पृथिवीं भ्रातृभिः सह॥ १२॥

हे कुन्तीपुत्र! तुम्हारा यह खाली हुआ खजाना भी भर जायेगा। हिमालय पर एक जगह धन विद्यमान है। पहले महात्मा मरुत्त के यज्ञ में ब्राह्मणों ने जो धन छोड़ दिया था, हे कुन्तीपुत्र! तुम उसे ले आओ। वह तुम्हारे लिये पर्याप्त होगा। तब उसके पश्चात् ब्राह्मणों को बहुतसा दान देकर पाण्डवश्रेष्ठ युधिष्ठिर ने धृतराष्ट्र को आगे कर हस्तिनापुर में प्रवेश किया। फिर धर्मात्मा राजा युधिष्ठिर अपने पितृव्य प्रज्ञाचक्षु महाराज धृतराष्ट्र को सान्त्वना देकर अपने भाइयों के साथ पृथिवी का शासन करने लगे।

दूसरा अध्याय : श्री कृष्णजी का द्वारिका जाने की अनुमति माँगना।

इन्द्रप्रस्थे महात्मानौ रेमतुः कृष्णपाण्डवौ।
प्रविश्य तां सभां रम्यां, वासुदेवधनंजयौ॥ १॥
पुत्रशोकाभिसंतप्तं ज्ञातीनां च सहस्रशः।
कथाभिः शमयामास पार्थं शौरिर्जनार्दनः॥ २॥
ततः कथान्ते गोविन्दो गुडाकेशमुवाच ह।
रमे चाहं त्वया सार्धमरण्येष्वपि पाण्डव॥ ३॥
किमु यत्र जनोऽयं वै पृथा चामित्रकर्षण।
यत्र धर्मसुतो राजा यत्र भीमो महाबलः॥ ४॥
यत्र माद्रवतीपुत्रौ रतिस्तत्र परा मम।

उस समय दोनों वासुदेव कृष्ण और पाण्डुपुत्र अर्जुन इन्द्रप्रस्थ में उस रमणीय सभा भवन में प्रवेश कर के आनन्द पूर्वक रहते थे। वहाँ कुन्तीपुत्र अर्जुन अपने पुत्र तथा बहुत सारे परिवार के व्यक्तियों के मारे जाने के कारण शोक से संतप्त थे। तब शूरसेन वंशी श्रीकृष्ण ने अनेक प्रकार की कथाएँ सुनाकर उनके मन को शान्त किया। वार्तालाप समाप्त होने पर श्रीकृष्ण जी ने गुडाकेश अर्जुन से यह कहा कि हे पाण्डुपुत्र! मुझे तुम्हारे साथ वन में रहते हुए भी आनन्द मिल सकता है, फिर हे शत्रुसूदन! जहाँ इतने सारे लोग और मेरी बूआ कुन्ती हो, वहाँ की तो बात ही क्या है? जहाँ, धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर हों, जहाँ महाबली भीम हों, जहाँ माद्री के दोनों पुत्र हों, वहाँ तो मुझे बहुत ही आनन्द मिलता है।

तथैव स्वर्गकल्पेषु सभोद्देशेषु कौरव॥ ५॥
रमणीयेषु पुण्येषु सहितस्य त्वयानघ।
कालो महांस्त्वतीतो मे शूरसूनुमपश्यतः॥ ६॥
बलदेवं च कौरव्य तथान्यान् वृष्णिपुङ्गवान्।
सोऽहं गन्तुमभीप्सामि पुरीं द्वारावतीं प्रति॥ ७॥
रोचतां गमनं मह्यं तवापि पुरुषर्षभ।
तत्र गत्वा महात्मानं यदि ते रोचतेऽर्जुन॥ ८॥
अस्मद्गमनसंयुक्तं वचो ब्रूहि जनाधिपम्।

इसी प्रकार हे निष्पाप कुरुनन्दन! इस सभाभवन के स्वर्ग के समान रमणीय और पवित्र स्थानों पर तुम्हारे साथ रहते हुए मेरा बहुत अधिक समय व्यतीत हो गया है। इतने दिनों से मैं अपने पिता शूरसेनपुत्र वसुदेव जी, बलदेव जी और दूसरे वृष्णिवीरों के दर्शन नहीं कर सका हूँ। इसलिये मैं अब द्वारिकापुरी को जाना चाहता हूँ। हे पुरुषश्रेष्ठ! तुम्हें भी मेरा वहाँ जाना अच्छा लगना चाहिये। हे अर्जुन! यदि तुम्हें अच्छा लगे तो वहाँ अर्थात् हस्तिनापुर में चलकर महात्माराजा युधिष्ठिर के सामने मेरे जाने की बात कहो।

न हि तस्याप्रियं कुर्यां प्राणत्यागेऽप्युपस्थिते॥ ९॥
कुतो गन्तुं महाबाहो पुरीं द्वारावतीं प्रति।
सर्वं त्विदमहं पार्थ त्वत्प्रीतिहितकाम्यया॥ १०॥
ब्रवीमि सत्यं कौरव्य न मिथ्यैतत् कथंचन।
प्रयोजनं च निर्वृत्तमिह वासे ममार्जुन॥ ११॥
धार्तराष्ट्रो हतो राजा सबलः सपदानुगः।
पृथिवी च वशे तात धर्मपुत्रस्य धीमतः॥ १२॥
स्थिता समुद्रवलया सशैलवनकानना।
चिता रत्नैर्बहुविधैः कुरुराजस्य पाण्डव॥ १३॥

हे महाबाहु! मैं प्राणों पर संकट आने पर भी उन महाराज युधिष्ठिर का अप्रिय कार्य नहीं करना चाहता, फिर द्वारिकापुरी को जाने की तो बात ही क्या है? हे कुरुनन्दन, कुन्तीपुत्र! यह सत्य है कि मैं जो कुछ कह रहा हूँ, यह तुम्हारी प्रसन्नता और हित की इच्छा से ही कह रहा हूँ। यह किसी तरह से मिथ्या नहीं है। हे अर्जुन! मेरा यहाँ रहने का जो प्रयोजन था, वह भी पूरा हो गया है। राजा दुर्योधन अपनी सेना और सेवकों के साथ मारा जा चुका है। हे तात, पाण्डुपुत्र! समुद्र के किनारे तक पर्वतों, वनों और उद्यानों सहित यह पृथिवी, जो कि अनेक प्रकार के रत्नों से युक्त है, धर्मपुत्र धीमान्, कुरुराज, युधिष्ठिर के आधीन हो गयी है।

धर्मेण राजा धर्मज्ञः पातु सर्वां वसुन्धराम्।
उपास्यमानो बहुभिः सिद्धैश्चापि महात्मभिः॥ १४॥
स्तूयमानश्च सततं वन्दिभिर्भरतर्षभ।
तं मया सह गत्वाद्य राजानं कुरु वर्धनम्।
आपृच्छ कुरुशार्दूल गमनं द्वारकां प्रति॥ १५॥

हे भरतश्रेष्ठ! अब धर्मज्ञ राजा युधिष्ठिर इस सारी भूमि का धर्मपूर्वक पालन करें। बहुत से सिद्ध महात्मा लोग उनके समीप आते रहें। वन्दीजन सदा उनकी स्तुति करते रहें। हे कुरुसिंह! तुम अब मेरे साथ चलकर उन कुरुकुल की वृद्धि

करने वाले राजा से मेरे द्वारिका जाने के लिये आज्ञा माँगो।

इदं शरीरं वसु यच्च मे गृहे
निवेदितं पार्थ सदा युधिष्ठिरे।
प्रियश्च मान्यश्च हि मे युधिष्ठिरः
सदा कुरूणामधिपो महामतिः॥ १६॥
प्रयोजनं चापि निवासकारणे
न विद्यते मे त्वदृते नृपात्मज।
स्थिता हि पृथ्वी तव पार्थ शासने
गुरोः सुवृत्तस्य युधिष्ठिरस्य च॥ १७॥

हे कुन्तीपुत्र! मेरा यह शरीर और जो कुछ भी धन मेरे घर में है, वह सदा युधिष्ठिर की सेवा में अर्पित है। कुरुओं के स्वामी महामति युधिष्ठिर सर्वदा मेरे लिये मान्य और प्रिय हैं। हे राजकुमार! अब मेरा सिवाय तुम्हारे साथ मन बहलाने के यहाँ कोई कार्य भी नहीं रह गया है। हे कुन्तीपुत्र! यह भूमि अब तुम्हारे और सदाचारी गुरु युधिष्ठिर के शासन में अच्छी तरह से स्थित है।

तीसरा अध्याय : श्रीकृष्ण का सुभद्रा के साथ द्वारिका प्रस्थान।

ततोऽभ्यनोदयत् कृष्णो युज्यतामिति दारुकम्।
मुहूर्तादिव चाचष्ट युक्तमित्येव दारुकः॥ १॥
तथैव चानुयात्रादि चोदयामास पाण्डवः।
सज्जयध्वं प्रयास्यामो नगरं गजसाह्वयम्॥ २॥
रथस्थं तु महातेजा वासुदेवं धनंजयः।
पुनरेवाब्रवीद् वाक्यमिदं भरतसत्तमः॥ ३॥
राजानं च समासाद्य धर्मात्मानं युधिष्ठिरम्।
चोदयिष्यामि धर्मज्ञ गमनार्थं तवानघ॥ ४॥
रुचितं हि ममैतत्ते द्वारकागमनं प्रभो।
अचिरादेव द्रष्टा त्वं मातुलं मे जनार्दन॥ ५॥
बलदेवं च दुर्धर्षं तथान्यान् वृष्णिपुङ्गवान्।

तब श्रीकृष्णजी ने दारुक को आज्ञा दी कि रथ को तैयार करो। दारुक ने एक मुहूर्त में ही आकर कहा कि रथ तैयार है। इसीप्रकार अर्जुन ने भी अपने सेवकों को आज्ञा दी कि तैयार हो जाओ! हम हस्तिनापुर को जायेंगे। रथ में बैठने पर पुनः भरतश्रेष्ठ, महातेजस्वी अर्जुन ने श्रीकृष्णजी से यह कहा कि हे निष्पाप, धर्मज्ञ! धर्मात्मा राजा युधिष्ठिर के समीप जाकर मैं आपके जाने के विषय में आज्ञा देने के लिये उन्हें प्रेरित करूँगा। आप के द्वारिका को जाने में मेरी भी सम्मति है। हे प्रभो, जनार्दन! आप जल्दी ही मेरे मामा, दुर्धर्ष बलदेव तथा दूसरे वृष्णिश्रेष्ठों के दर्शन करेंगे।

एवं सम्भाषमाणौ तौ प्राप्तौ वारणसाह्वयम्॥ ६॥
ततः समेत्य राजानं धृतराष्ट्रमरिंदमौ।
निवेद्य नामधेये स्वे तस्य पादावगृह्णताम्॥ ७॥
गान्धार्याश्च पृथायाश्च धर्मराजस्य चैव हि।
भीमस्य च महात्मानौ तथा पादावगृह्णताम्॥ ८॥
क्षत्तारं चापि संगृह्य पृष्ट्वा कुशलमव्ययम्।
परिष्वज्य महात्मानं वैश्यापुत्रं महारथम्॥ ९॥
तैः सार्धं नृपतिं वृद्धं ततस्तौ पर्युपासताम्।

इसप्रकार परस्पर वार्तालाप करते हुए, वे दोनों हस्तिनापुर में पहुँच गये। वहाँ वे शत्रुदमन, राजा धृतराष्ट्र के समीप गये और अपना नाम बताकर उन्होंने उनके पैरों का स्पर्श किया। उन्होंने गान्धारी, कुन्ती, धर्मराज युधिष्ठिर और भीमसेन के भी चरणों का स्पर्श किया। फिर विदुरजी से मिलकर उनका कुशलमंगल पूछा और महारथी महात्मा वैश्यापुत्र युयुत्सु को भी अपने गले से लगाया। फिर सबके साथ बूढ़े राजा के समीप बैठ गये।

कृष्णः सुष्वाप मेधावी धनंजयसहायवान्॥ १०॥
प्रभातायां तु शर्वर्यां कृत्वा पौर्वाह्णिकीं क्रियाम्।
धर्मराजस्य भवनं जग्मतुः परमार्चितौ॥ ११॥
समासाद्य तु राजानं वार्ष्णेयकुरुपुङ्गवौ।
निषीदतुरनुज्ञातौ प्रीयमाणेन तेन तौ॥ १२॥
ततः स राजा मेधावी विवक्षू प्रेक्ष्य तावुभौ।
प्रोवाच वदतां श्रेष्ठो वचनं राजसत्तमः॥ १३॥
विवक्षू हि युवां मन्ये वीरौ यदुकुरूद्वहौ।
ब्रूतं कर्तास्मि सर्वं वां नचिरान्मा विचार्यताम्॥ १४॥

मेधावी श्रीकृष्ण रात्रि में अर्जुन के समीप सोये। रात्रि बीतने और प्रभात होने पर प्रातः के दैनिक कार्य करके, वे अत्यन्त सम्मानित मित्र धर्मराज के

भवन में गये। वृष्णि और कुरुकुल के श्रेष्ठ वेदोनों राजा के समीप पहुँचकर, प्रसन्न होते हुए उनके द्वारा आज्ञा देने पर आसनों पर बैठ गये। तब वक्ताओं में श्रेष्ठ, मेधावी, श्रेष्ठ राजा युधिष्ठिर ने उन दोनों को कुछ कहने का इच्छुक जानकर उनसे यह कहा कि हे यदु और कुरुकुल के आधार वीरों! आपदोनों कुछ कहना चाहते हैं, ऐसा मैं समझता हूँ। आप कहिये। जो कुछ भी आप कहेंगे, उसे मैं जल्दी पूरा करूँगा। इसमें कुछ विचार मत कीजिये।

इत्युक्तः फाल्गुनस्तत्र धर्मराजानमब्रवीत्।
विनीतवदुपागम्य वाक्यं वाक्यविशारदः॥ १५॥
अयं चिरोषितो राजन् वासुदेवः प्रतापवान्।
भवन्तं समनुज्ञाप्य पितरं द्रष्टुमिच्छति॥ १६॥
स गच्छेदभ्यनुज्ञातो भवता यदि मन्यसे।
आनर्तनगरीं वीरस्तदनुज्ञातुमर्हसि॥ १७॥

उनके इसप्रकार कहने पर वाक्य विशारद अर्जुन ने विनम्रता से समीप जाकर धर्मराज से यह कहा कि हे राजन्! यह प्रतापी वसुदेवपुत्र श्रीकृष्ण, यहाँ बहुत दिनों से रह रहे हैं। अब ये आपकी आज्ञा पाकर अपने पिताजी के दर्शन करना चाहते हैं। यदि आप स्वीकार करें, तो ये वीर द्वारिकानगरी को जायें। इसलिये आप इन्हें जाने की आज्ञा दे दें।

युधिष्ठिर उवाच

पुण्डरीकाक्ष भद्रं ते गच्छ त्वं मधुसूदन।
पुरीं द्वारवतीमद्य द्रष्टुं शूरसुतं प्रभो॥ १८॥
रोचते मे महाबाहो गमनं तव केशव।
मातुलश्चिरदृष्टो मे त्वया देवी च देवकी॥ १९॥
समेत्य मातुलं गत्वा बलदेवं च मानद।
पूजयेथा महाप्राज्ञ मद्वाक्येन यथार्हतः॥ २०॥
स्मरेथाश्चापि मां नित्यं भीमं च बलिनां वरम्।
फाल्गुनं सहदेवं च नकुलं चैव मानद॥ २१॥

तब युधिष्ठिर ने कहा कि हे कमलनयन, मधुसूदन! आपका कल्याण हो। हे प्रभो! आप शूरसेन जी के पुत्र को देखने के लिये आज ही द्वारिकानगरी को जाइये। हे महाबाहु, केशव! आपका जाना मुझे इसलिये उचित लगता है कि आपने बहुत दिनों से मामा और मामी देवकी को नहीं देखा है। हे दूसरों को मान देनेवाले, महाप्राज्ञ, श्रीकृष्ण! आप मामाजी और बलदेव जी के समीप जाकर उनकी मेरी तरफ से यथायोग्य पूजा करें। हे श्रीकृष्ण! आप द्वारिका में जाकर भी मुझे, बलवानों में श्रेष्ठ भीम, अर्जुन, सहदेव और नकुल को सदा याद रखें।

आनर्तानवलोक्य त्वं पितरं च महाभुज।
वृष्णींश्च पुनरागच्छेर्हयमेधे ममानघ॥ २२॥
स गच्छ रत्नान्यादाय विविधानि वसूनि च।
यच्चाप्यन्यन्मनोज्ञं ते तदप्यादत्स्व सात्वत॥ २३॥
इयं च वसुधा कृत्स्ना प्रसादात् तव केशव।
अस्मानुपगता वीर निहताश्चापि शत्रवः॥ २४॥
एवं ब्रुवति कौरव्ये धर्मराजे युधिष्ठिरे।
वासुदेवो वरः पुंसामिदं वचनमब्रवीत्॥ २५॥

हे महाबाहु और निष्पाप! आप आनर्त देश के निवासियों अपने मातापिता और वृष्णिवंशी बन्धु–बान्धवों से मिलकर फिर मेरे अश्वमेध यज्ञ में पधारें। आप बहुत प्रकार के रत्न और धन लेकर जाइये। इनके अतिरिक्त और दूसरी जो भी वस्तुएँ आपको अच्छी लगें, उन्हें भी आप ले जाइये। हे यदुवंशी, केशव वीर! यह सारी भूमि आपकी कृपा से हमें प्राप्त हुई है और हमारे शत्रु मारे गये हैं। कुरुनन्दन, धर्मराज के ऐसा करने पर, पुरुषों में श्रेष्ठ श्रीकृष्ण जी ने यह कहा कि–

तवैव रत्नानि धनं च केवलं
धरा तु कृत्स्ना तु महाभुजाद्य वै।
यदस्ति चान्यद् द्रविणं गृहे मम
त्वमेव तस्येश्वर नित्यमीश्वरः॥ २६॥
तथेत्यथोक्तः प्रतिपूजितस्तदा
गदाग्रजो धर्मसुतेन वीर्यवान्।
पितृष्वसारं त्ववदद् यथाविधि
सम्पूजितश्चाप्यगमत् प्रदक्षिणम्॥ २७॥
रथे सुभद्रामधिरोप्य भाविनीं
युधिष्ठिरस्यानुमते जनार्दनः।
पितृष्वसुश्चापि तथा महाभुजो
विनिर्ययौ पौरजनाभिसंवृत्तः॥ २८॥

हे महाबाहु! ये रत्न, धन और सारी भूमि अब आपकी ही है। इसके अतिरिक्त मेरे घर में भी जो कुछ धन है, हे स्वामिन्! आप उसके भी सदा स्वामी हैं। उनके ऐसा कहने पर धर्मपुत्र युधिष्ठिर ने जो आज्ञा कह कर उनके वचनों का सम्मान किया। फिर पराक्रमी श्रीकृष्ण जी ने अपनी बूआ कुन्ती के पास

जाकर उनसे बात की और उनसे सत्कृत होकर उनकी प्रदक्षिणा की। फिर अपनी प्यारी बहन सुभद्रा को रथपर बैठाकर और युधिष्ठिर तथा अपनी बूआ कुन्ती की आज्ञा पाकर महाबाहु श्रीकृष्ण नगरवासियों से घिरे हुए बाहर निकले।

निवर्तयित्वा कुरुराष्ट्रवर्धनां–
स्ततः स सर्वान् विदुरं च वीर्यवान्।
जनार्दनो दारुकमाह सत्वरं
प्रचोदयाश्वानिति सात्यकिं तथा॥ २९॥

उसके पश्चात् पराक्रमी श्रीकृष्ण ने कुरुदेश की वृद्धि करने वाले, उन सारे पाण्डवों और विदुर जी को लौटाकर दारुक तथा सात्यकि से कहा कि घोड़ों को शीघ्रता से हाँको।

तथा प्रयान्तं वार्ष्णेयं द्वारकां भरतर्षभाः।
परिष्वज्य न्यवर्तन्त सानुयात्राः परंतपाः॥ ३०॥
पुनः पुनश्च वार्ष्णेयं पर्यष्वजत फाल्गुनः।
आ चक्षुर्विषयाच्चैनं स ददर्श पुनः पुनः॥ ३१॥
कृच्छ्रेणैव तु तां पार्थो गोविन्दे विनिवेशिताम्।
संजहार ततो दृष्टिं कृष्णश्चाप्यपराजितः॥ ३२॥

इसप्रकार द्वारिका जाते हुए श्रीकृष्ण जी को अपने हृदय से लगाकर शत्रुओं को सन्तप्त करने वाले भरतश्रेष्ठ पाण्डव अपने सेवकों सहित पीछे लौटे। अर्जुन ने श्रीकृष्ण जी को बार–बार अपनी छाती से लगाया और जब तक वे आँखों से ओझल नहीं हो गये, वे बार–बार उन्हीं की तरफ देखते रहे। उसके बाद अर्जुन ने श्रीकृष्ण जी तरफ लगायी हुई अपनी निगाहों को बड़ी कठिनता से पीछे लौटाया। किसी से पराजित न होने वाले श्रीकृष्ण जी की भी यही अवस्था थी।

चौथा अध्याय : श्रीकृष्ण जी का द्वारिका पहुँचकर वसुदेव जी को महाभारतयुद्ध का वृत्तान्त संक्षेप में सुनाना।

सरांसि सरितश्चैव वनानि च गिरींस्तथा।
अतिक्रम्याससादाथ रम्यां द्वारवतीं पुरीम्॥ १॥
उपायान्तं तु वार्ष्णेयं भोजवृष्ण्यन्धकास्तथा।
अभ्यगच्छन् महात्मानं देवा इव शतक्रतुम्॥ २॥
स तानभ्यर्च्य मेधावी पृष्ट्वा च कुशलं तदा।
अभ्यवादयत प्रीतः पितरं मातरं तदा॥ ३॥
ताभ्यां स सम्परिष्वक्तः सान्त्वितश्च महाभुजः।
उपोपविष्टः सर्वैस्तैर्वृष्णिभिः परिवारितः॥ ४॥

तत्पश्चात् मार्ग में आने वाले तालाबों, नदियों, वनों और पर्वतों का उल्लंघन करके श्रीकृष्ण जी सुन्दर द्वारिका नगरी में जा पहुँचे। तब समीप आते हुए उन महात्मा श्रीकृष्ण जी का भोज, वृष्णि और अन्धकवंशी यादवों ने आगे बढ़कर उसी प्रकार स्वागत किया, जैसे देवता लोग इन्द्र की अगवानी करते हैं। तब मेधावी श्रीकृष्ण जी ने उन सबका सत्कारकर उनकी कुशलता पूछी और प्रसन्नतापूर्वक अपने मातापिता को प्रणाम किया। उनदोनों ने महाबाहु श्रीकृष्ण जी को अपनी छाती से लगा लिया और उन्हें सान्त्वना दी। इसके बाद सारे वृष्णिवंशी उन्हें घेरकर उनके चारों तरफ बैठ गये।

वसुदेव उवाच

श्रुतवानस्मि वार्ष्णेय संग्रामं परमाद्भुतम्।
नराणां वदतां तत्र कथं वा तेषु नित्यशः॥ ५॥
त्वं तु प्रत्यक्षदर्शी च रूपज्ञश्च महाभुज।
तस्मात् प्रब्रूहि संग्रामं याथातथ्येन मेऽनघ॥ ६॥
यथा तदभवद् युद्धं पाण्डवानां महात्मनाम्।
भीष्मकर्णकृपद्रोणशल्यादि– भिरनुत्तमम्॥ ७॥
अन्येषां क्षत्रियाणां च कृतास्त्राणामनेकशः।
नानावेषाकृतिमतां नानादेशनिवासिनाम्॥ ८॥

फिर वसुदेव जी ने पूछा कि हे वृष्णिनन्दन! मैंने लोगों से सुना है कि महाभारत का युद्ध बड़ा अद्भुत हुआ है। वह युद्ध कैसे हुआ? यह तुम मुझे प्रतिदिन का हाल बताओ। हे महाबाहु! तुमने तो उस युद्ध को प्रत्यक्ष देखा है। इसलिये तुम उसके स्वरूप को भलीभाँति जानते हो। अतः हे निष्पाप! तुम मुझे उस युद्ध का यथार्थ रूप में वर्णन करो। महात्मा पाण्डवों का, भीष्म, कर्ण, कृपाचार्य, द्रोणाचार्य और शल्यादि के साथ जो उत्तम युद्ध हुआ, वह कैसे हुआ था? दूसरे देशों से भी जो नानाप्रकार की वेशभूषा और

आकृतिवाले, शस्त्रास्त्र विद्यामें निपुण बहुत सारे क्षत्रिय आये थे, उन्होंने भी कैसे युद्ध किया?

इत्युक्तः पुण्डरीकाक्षः पित्रा मातुस्तदन्तिके।
शशंस कुरुवीराणां संग्रामे निधनं यथा॥ ९॥
अत्यद्भुतानि कर्माणि क्षत्रियाणां महात्मनाम्।
बहुलत्वान्न संख्यातुं शक्यान्यब्दशतैरपि॥ १०॥
प्राधान्यतस्तु गदतः समासेनैव मे शृणु।
कर्माणि पृथिवीशानां यथावदमरद्युते॥ ११॥
भीष्मः सेनापतिरभूदेकादशचमूपतिः।
कौरव्यः कौरवेन्द्राणां देवानामिव वासवः॥ १२॥

तब माता के निकट पिता के इसप्रकार पूछने पर कमलनयन श्रीकृष्ण कौरववीरों के युद्ध में मारे जाने का वर्णन करने लगे। उन्होंने कहा कि वहाँ मनस्वी क्षत्रियों के जो अद्भुत कर्म थे, वे इतने अधिक हैं कि यदि उनका विस्तार से वर्णन किया जाये तो अनेकवर्ष लग जायें, इसलिये हे देवताओं के समान तेजस्वी पिताजी! मैं आपको प्रमुख–प्रमुख वीरों के समाचार संक्षेप में ही सुना रहा हूँ, आप सुनिये। जैसे देवताओं की सेना के स्वामी इन्द्र हैं, उसी प्रकार कुरुनन्दन भीष्म कौरवराजाओं की ग्यारह अक्षौहिणी सेना के सेनापति बने।

शिखण्डी पाण्डुपुत्राणां नेता सप्तचमूपतिः।
बभूव रक्षितो धीमान् श्रीमता सव्यसाचिना॥ १३॥
तेषां तदभवद् युद्धं दशाहानि महात्मनाम्।
कुरूणां पाण्डवानां च सुमहल्लोमहर्षणम्॥ १४॥
ततः शिखण्डी गाङ्गेयं युध्यमानं महाहवे।
जघान बहुभिर्बाणैः सह गाण्डीवधन्वना॥ १५॥
अकरोत् स ततः कालं शरतल्पगतो मुनिः।
अयनं दक्षिणं हित्वा सम्प्राप्ते चोत्तरायणे॥ १६॥

उधर पाण्डवों की सात अक्षौहिणी सेना का सेनापति धीमान् शिखण्डी हुआ, जिसकी श्रीमान् अर्जुन रक्षा कर रहे थे। वहाँ उन मनस्वी वीरों का कौरव और पाण्डवों का अत्यन्त रोंगटे खड़े कर देने वाला युद्ध दस दिनों तक हुआ। दसवें दिन शिखण्डी ने गाण्डीव धनुषधारी अर्जुन की सहायता से युद्ध करते हुए गंगापुत्र भीष्म को उस महान् युद्ध में घायल कर दिया। तब उन्होंने मुनिव्रत धारण कर बाणों की शय्या पर सूर्य के दक्षिणायन को छोड़कर उत्तरायण पर आनेतक समय बिताया।

ततः सेनापतिरभूद् द्रोणोऽस्त्रविदुषां वरः।
अक्षौहिणीभिः शिष्टाभिर्नवभिर्द्विजसत्तमः॥ १७॥
संवृतः समरश्लाघी गुप्तः कृपवृषादिभिः।
धृष्टद्युम्नस्त्वभून्नेता पाण्डवानां महास्त्रवित्॥ १८॥
स च सेनापरिवृतो द्रोणप्रेप्सुर्महामनाः।
पितुर्निकारान् संस्मृत्य रणे कर्माकरोन्महत्॥ १९॥
तस्मिंस्ते पृथिवीपाला द्रोणपार्षतसंगरे।
नानादिगागता वीराः प्रायशो निधनं गताः॥ २०॥
दिनानि पञ्च तद् युद्धमभूत् परमदारुणम्।
ततो द्रोणः परिश्रान्तो धृष्टद्युम्नवशं गतः॥ २१॥

फिर शेष नौ अक्षौहिणी सेना के सेनापति ब्राह्मणश्रेष्ठ, अस्त्रवेत्ताओं में योग्यतम, द्रोणाचार्य जिनकी रक्षा कर्ण और कृपाचार्य कर रहे थे, जो युद्ध का बड़ा हौसला रखते थे हुए। उधर महान् अस्त्रवेत्ता धृष्टद्युम्न पाण्डवों की सेना का सेनापति हुआ। पाण्डवसेना से घिरे हुए उस महामनस्वी ने द्रोणाचार्य द्वारा किये गये अपने पिता के अपमान को स्मरण कर उन्हें मारने के लिये बड़ा पराक्रम दिखाया। द्रोणाचार्य और धृष्टद्युम्न के उस युद्ध में अनेक दिशाओं से आये हुए बहुत सारे वीर राजालोग मारे गये। वह अत्यन्तदारुण युद्ध तब पाँच दिनों तक चला। फिर द्रोणाचार्य थककर धृष्टद्युम्न के आधीन होकर मारे गये।

ततः सेनापतिरभूत् कर्णो दौर्योधने बले।
अक्षौहिणीभिः शिष्टाभिर्वृतः पञ्चभिराहवे॥ २२॥
तिस्रस्तु पाण्डुपुत्राणां चम्वो बीभत्सुपालिताः।
हतप्रवीरभूयिष्ठा बभूवुः समवस्थिताः॥ २३॥
ततः पार्थं समासाद्य पतङ्ग इव पावकम्।
पञ्चत्वमगमत् सौतिर्द्वितीयेऽहनि दारुणः॥ २४॥
हते कर्णे तु कौरव्या निरुत्साहा हतौजसः।
अक्षौहिणीभिस्तिसृभिर्मद्रेशं पर्यवारयन्॥ २५॥

फिर दुर्योधन की सेना में कर्ण सेनापति हुआ। वह शेष बची पाँच अक्षौहिणी सेना का नायक था। उधर पाण्डवों की तीन अक्षौहिणी सेना की रक्षा अर्जुन कर रहे थे। यद्यपि उनके भी बहुत से वीर मारे जा चुके थे, पर वह सेना युद्ध के लिये खड़ी हुई थी। फिर जैसे पतंगा अग्नि में पड़कर भस्म होजाये, वैसे ही दारुण युद्ध करने वाला सूतपुत्र कर्ण, दूसरे दिन अर्जुन के साथ युद्ध कर मृत्यु को प्राप्त

होगया। कर्ण के मारे जाने पर निरुत्साहित शेष बची तीन अक्षौहिणी सेना ने मद्रदेश के राजा शल्य को सेनापति बनाकर युद्ध आरम्भ किया।

हतवाहनभूयिष्ठाः पाण्डवाऽपि युधिष्ठिरम्।
अक्षौहिण्या निरुत्साहाः शिष्ट्या पर्यवारयन्॥ २६॥
अवधीन्मद्रराजानं कुरुराजो युधिष्ठिरः।
तस्मिंस्तदार्धदिवसे कृत्वा कर्म सुदुष्करम्॥ २७॥
हते शल्ये तु शकुनिं सहदेवो महामनाः।
आहर्तारं कलेस्तस्य जघानामितविक्रमः॥ २८॥
निहते शकुनौ राजा धार्तराष्ट्रः सुदुर्मनाः।
अपाक्रामद् गदापाणिर्हतभूयिष्ठसैनिकः॥ २९॥

तब जिसके अधिकांश वाहन मारे जा चुके थे, जिसमें युद्धविषयक अधिक उत्साह नहीं रहा था, उस बची एक अक्षौहिणी सेना के साथ पाण्डव युधिष्ठिर को आगेकर युद्ध के लिये बढ़े। तब आधे दिन में ही कुरुराज युधिष्ठिर ने भयंकर पराक्रमकर मद्रराज शल्य को मार गिराया। शल्य के मारे जाने पर अमित पराक्रमी मनस्वी सहदेव ने कलह की नींव डालने वाले शकुनि को मार दिया। शकुनि के मारे जाने पर धृतराष्ट्रपुत्र राजा दुर्योधन, जिसके अधिकांश सैनिक मारे जाचुके थे, अत्यन्तदुखी होकर गदा हाथ में लेकर युद्धभूमि से भाग निकला।

तमन्वधावत् संक्रुद्धो भीमसेनः प्रतापवान्।
ह्रदे द्वैपायने चाप सलिलस्थं ददर्श तम्॥ ३०॥
हतशिष्टेन सैन्येन समन्तात् परिवार्य तम्।
अथोपविविशुर्हृष्टा ह्रदस्थं पञ्च पाण्डवाः॥ ३१॥
विगाह्य सलिलं त्वाशु वाग्बाणैर्भृशविक्षतः।
उत्थाय स गदापाणिर्युद्धाय समुपस्थितः॥ ३२॥
ततः स निहतो राजा धार्तराष्ट्रो महारणे।
भीमसेनेन विक्रम्य पश्यतां पृथिवीक्षिताम्॥ ३३॥

तब अत्यन्त क्रुद्ध प्रतापी भीमसेन ने उसका पीछा किया और द्वैपायन नाम के तालाब में उसे पानी में बैठे हुए देखा। तब हर्षित हुए पाँचों पाण्डव, बचे हुए सैनिकों के साथ, तालाब के अन्दर बैठे हुए दुर्योधन को घेरकर वहीं बैठ गये। फिर वाणी के बाणों से अत्यन्तघायल होकर दुर्योधन जल्दी ही तालाब से बाहर निकला और गदा हाथ में लेकर गदायुद्ध के लिये सामने आगया। फिर उस महान् युद्ध में सारे राजाओं के देखते–देखते, भीमसेन ने पराक्रमकर धृतराष्ट्रपुत्र राजा दुर्योधन को मार गिराया।

ततस्तत् पाण्डवं सैन्यं प्रसुप्तं शिबिरे निशि।
निहतं द्रोणपुत्रेण पितुर्वधममृष्यता॥ ३४॥
हतपुत्रा हतबला हतमित्रा मया सह।
युयुधानसहायेन पञ्च शिष्टास्तु पाण्डवाः॥ ३५॥
सहैव कृपभोजाभ्यां द्रौणिर्युद्धादमुच्यत।
युयुत्सुश्चापि कौरव्यो मुक्तः पाण्डवसंश्रयात्॥ ३६॥
निहते कौरवेन्द्रे तु सानुबन्धे सुयोधने।
विदुरः संजयश्चैव धर्मराजमुपस्थितौ।
एवं तदभवद् युद्धमहान्यष्टादश प्रभो॥ ३७॥

फिर पिता के वध को सहन न करते हुए द्रोणपुत्र अश्वत्थामा ने रात में सोई हुई पाण्डवसेना के शिविर पर आक्रमणकर सबको मार गिराया। जिससे पाण्डवों के पुत्र, सैनिक और मित्र सारे मारे गये। केवल मेरे और सात्यकि के साथ पाँच पाण्डव ही बचे रह गये। कौरवों के पक्ष में कृपाचार्य, और कृतवर्मा के साथ अश्वत्थामा बचा हुआ है। कौरवपुत्र युयुत्सु भी पाण्डवों का आश्रय लेने के कारण बच गया है। कौरवराज दुर्योधन के मित्रोंसहित मारे जाने पर विदुर और संजय ने पाण्डवों का आश्रय लेलिया है। हे प्रभो! इसप्रकार वह महान् युद्ध अठारह दिनों तक हुआ है।

पाँचवाँ अध्याय : सुभद्रा के कहने पर श्रीकृष्ण का वसुदेव को अभिमन्यु के वध का वृत्तान्त सुनाना।

कथयन्नेव तु तदा वासुदेवः प्रतापवान्।
महाभारतयुद्धं तत्कथान्ते पितुरग्रतः॥ १॥
अभिमन्योर्वधं वीरः सोऽत्यक्रामन्महामतिः।
अप्रियं वसुदेवस्य मा भूदिति महामतिः॥ २॥
मा दौहित्रवधं श्रुत्वा वसुदेवो महात्ययम्।
दुःखशोकाभिसंतप्तो भवेदिति महामतिः॥ ३॥
सुभद्रा तु तमुत्क्रान्तमात्मजस्य वधं रणे।
आचक्ष्व कृष्ण सौभद्रवधमित्यपतद् भुवि॥ ४॥
तामपश्यन्निपतितां वसुदेवः क्षितौ तदा।
दृष्ट्वैव च पपातोर्व्यां सोऽपि दुःखेन मूर्च्छितः॥ ५॥

जब महामति और प्रतापी श्रीकृष्ण वसुदेवजी को महाभारतयुद्ध का वृत्तान्त सुना रहे थे, तब उस वीर ने अभिमन्युवध के वृत्तान्त को जान बूझकर बीच में ही छोड़ दिया था। उन्होंने सोचा कि कहीं अपने दौहित्र के वध के महाअमंगलकारी वृत्तान्त को सुनकर वे दुख और शोक से सन्तप्त न होजायें और उनका अप्रिय होजाये, इसलिये उन्होंने वह बात नहीं सुनायी थी। पर जब सुभद्रा ने देखा कि मेरे पुत्र के वध की बात छोड़ दी गयी है, तब वह बोली कि हे कृष्ण! अभिमन्यु के वध की बात तो बता दो। यह कहकर वह मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़ी। तब उसे भूमि पर गिरी हुई देखकर वसुदेव भी दुख से मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़े।

ततः स दौहित्रवधदुःखशोकसमाहतः।
वसुदेवो महाराजः कृष्णं वाक्यमथाब्रवीत्॥ ६॥
ननु त्वं पुण्डरीकाक्ष सत्यवाग् भुवि विश्रुतः।
यद् दौहित्रवधं मेऽद्य न ख्यापयसि शत्रुहन्॥ ७॥
तद् भागिनेयनिधनं तत्त्वेनाचक्ष्व मे प्रभो।
सदृशाक्षस्तव कथं शत्रुभिर्निहतो रणे॥ ८॥
दुर्मरं बत वार्ष्णेय कालेऽप्राप्ते नृभिः सह।
यत्र मे हृदयं दुःखाच्छतधा न विदीर्यते॥ ९॥

फिर अपने दौहित्र के वध के दुख और शोक से भरे हुए महाराज वसुदेव श्रीकृष्ण जी से कहने लगे कि अरे कमलनयन! तुम तो संसार में सत्य बोलनेवाले के रूप में प्रसिद्ध हो, फिर हे शत्रु को मारने वाले! तुम मेरे दौहित्र के वध की बात मुझे क्यों नहीं बता रहे हो? हे प्रभो! अब तुम अपने भानजे के वध का ठीक–ठीक हाल मुझे बताओ। उसकी आँखें तो बिल्कुल तुम्हारी आँखों के समान थीं। उसे शत्रुओं ने युद्ध में कैसे मारा? हाय वृष्णिनन्दन! मनुष्यों के लिये समय से पहले मरना बहुत कठिन है, इसीलिये मेरे हृदय के इस दुखद बात को सुनकर भी सौ टुकड़े नहीं हो रहे हैं।

किमब्रवीत् त्वां संग्रामे सुभद्रां मातरं प्रति।
मां चापि पुण्डरीकाक्ष चपलाक्षः प्रियो मम॥ १०॥
आहवं पृष्ठतः कृत्वा कच्चिन्न निहतः परैः।
कच्चिन्मुखं न गोविन्द तेनाजौ विकृतं कृतम्॥ ११॥
स हि कृष्ण महातेजाः श्लाघन्निव ममाग्रतः।
बालभावेन विनयमात्मनोऽकथयत् प्रभुः॥ १२॥

हे कमलनयन! युद्ध में उसने तुम्हें और अपनी माता के लिये क्या संदेश दिया था? मेरा प्यारा चंचल आँखों वाला वह मेरे लिये क्या सन्देश देकर मरा था? वह क्या युद्ध में पीठ दिखाकर तो शत्रुओं द्वारा नहीं मारा गया था? हे श्रीकृष्ण! क्या भय से उसके मुख की आकृति तो नहीं बिगड़ गयी थी? हे कृष्ण! वह महा तेजस्वी और प्रभावशाली बालक विनय के साथ बालस्वभावसहित अपनी वीरता की प्रशंसा किया करता था।

कच्चिन्न निकृतो बालो द्रोणकर्णकृपादिभिः।
धरण्यां निहतः शेते तन्ममाचक्ष्व केशव॥ १३॥
स हि द्रोणं च भीष्मं च कर्णं च बलिनां वरम्।
स्पर्धते स्म रणे नित्यं दुहितुः पुत्रको मम॥ १४॥
एवंविधं बहु तदा विलपन्तं सुदुःखितम्।
पितरं दुःखिततरो गोविन्दो वाक्यमब्रवीत्॥ १५॥
न तेन विकृतं वक्त्रं कृतं संग्राममूर्धनि।
न पृष्ठतः कृतश्चापि संग्रामस्तेन दुस्तरः॥ १६॥
खेदितो द्रोणकर्णाभ्यां दौःशासनिवशं गतः।

हे केशव! मेरी लड़की का लड़का सदा युद्ध में भीष्म, द्रोणाचार्य और बलियों में श्रेष्ठ कर्ण के साथ भी लोहा लेने की स्पर्द्धा किया करता था। कहीं द्रोण, कर्ण और कृपाचार्य आदि द्वारा कपट पूर्वक मारा जाकर तो वह पृथिवी पर नहीं सो रहा है?

यह तुम मुझे बताओ। इसप्रकार बहुत विलाप करते हुए अत्यन्तदुखी अपने पिता से स्वयं भी अधिक दुखी श्रीकृष्णजी बोले कि हे पिताजी! उसने युद्ध के मुहाने पर अपने मुख को बिगाड़ा नहीं। उसने उस दुस्तर संग्राम में पीठ भी नहीं दिखाई। द्रोणाचार्य और कर्ण के साथ युद्ध करते हुए जब वह थक गया तब दुश्शासन के पुत्र के बस में होकर मारा गया।

एको ह्येकेन सततं युध्यमाने यदि प्रभो॥ १७॥
न स शक्येत संग्रामे निहन्तुमपि वज्रिणा।
समाहृते च संग्रामात् पार्थे संशप्तकैस्तदा॥ १८॥
पर्यवार्यत संक्रुद्धैः स द्रोणादिभिराहवे।
ततः शत्रुवधं कृत्वा सुमहान्तं रणे पितः॥ १९॥
दौहित्रस्तव वार्ष्णेय दौःशासनिवशं गतः।
एवं स निधनं प्राप्तो दौहित्रस्तव मानद।
संतापं त्यज दुर्धर्ष मा च शोके मनः कृथाः॥ २०॥

हे प्रभो! यदि वह लगातार अकेला अकेले-अकेले वीर के साथ युद्ध करता तो इन्द्र के द्वारा भी युद्धस्थल में नहीं मारा जा सकता था। संशप्तक लोगों द्वारा अर्जुन को युद्धक्षेत्र से दूर लेजाये जाने पर, क्रुद्ध द्रोणाचार्य आदि वीरों ने उसे युद्ध में घेर लिया। हे पिता! तब युद्धक्षेत्र में शत्रुओं का अत्यन्तमहान् संहारकर, हे वृष्णिनन्दन! आपका दौहित्र दुश्शासन के पुत्र के आधीन हो गया। हे दूसरों को मान देने वाले! आपका दौहित्र इसप्रकार वीरता से मृत्यु को प्राप्त हुआ है। हे दुर्धर्ष! अब आप सन्ताप को छोड़िये और अपने मन को शोकमग्न मत कीजिये।

छठा अध्याय : पाण्डवों का हिमालय से धन को खोदकर लाना।

ततः संचोदयामास व्यासो धर्मात्मजं नृपम्।
अश्वमेधं प्रति तदा धर्मराजो युधिष्ठिरः॥ १॥
भ्रातॄन् सर्वान् समानाय्य काले वचनमब्रवीत्।
अर्जुनं भीमसेनं च माद्रीपुत्रौ यमावपि॥ २॥
इयं हि वसुधा सर्वा क्षीणरत्ना कुरूद्वहाः।
तच्चाचष्ट तदा व्यासो मरुत्तस्य धनं नृपाः॥ ३॥
यद्येतद् वो बहुमतं मन्यध्वं वा क्षमं यदि।
तथा यथाऽऽह धर्मेण कथं वा भीम मन्यसे॥ ४॥

कुछ दिनों के बाद व्यास जी ने धर्मपुत्र राजा को अश्वमेध यज्ञ के लिये कहा। तब धर्मराज युधिष्ठिर ने उचित समय पर अपने भाइयों को बुलाकर कहा कि हे कुरुकुल के आधारों! यह सारी भूमि इस समय धन से रहित है, इसलिये व्यास जी ने उस दिन मरुत्त के धन के विषय में बताया था। यदि उसे लाने के विषय में तुम्हारा बहुमत है और तुम इस कार्य के लिये अपने को समर्थ समझते हो तो व्यास जी ने जैसा कहा है, उसके अनुसार धर्मपूर्वक उस धन को लाने का प्रयत्न करो। हे भीम! तुम्हारा इस विषय में क्या विचार है?

भीमसेनो नृपश्रेष्ठं प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत्।
रोचते मे महाबाहो यदिदं भाषितं त्वया॥ ५॥
व्यासाख्यातस्य वित्तस्य समुपानयनं प्रति।
यदि तत् प्राप्नुयामेह धनमाविक्षितं प्रभो॥ ६॥
कृतमेव महाराज भवेदिति मतिर्मम।
अर्जुनप्रमुखाश्चापि तथेत्येवाब्रुवन् वचः॥ ७॥
कृत्वा तु पाण्डवाः सर्वे रत्नाहरणनिश्चयम्।
सेनामाज्ञापयामासुर्नक्षत्रेऽहनि च ध्रुवे॥ ८॥

भीमसेन ने उन श्रेष्ठराजा से हाथ जोड़कर कहा कि हे महाबाहु! आपने व्यास जी द्वारा बताये गये धन को लाने के विषय में जो कहा है, वह मुझे पसन्द है। हे प्रभो! हे महाराज! यदि वहाँ रखा हुआ धन हमें प्राप्त होजाये तो हमारा सारा काम बन जायेगा, यह मेरा विचार है। तब अर्जुन आदि दूसरे पाण्डवों ने भी भीमसेन जैसे ही अपने विचार कहे। फिर पाण्डवों ने धन को लाने के विषय में एक निश्चयकर ध्रुव नाम के नक्षत्र और दिन यात्रा के लिये सेना को तैयार होने की आज्ञा दी।

तेषां प्रयास्यतां तत्र मङ्गलानि शुभान्यथ।
प्राहुः प्रहृष्टमनसो द्विजाग्र्या नागराश्च ते॥ ९॥
समनुज्ञाप्य राजानं पुत्रशोकसमाहतम्।
धृतराष्ट्रं सभार्यं वै पृथां च पृथुलोचनाम्॥ १०॥
मूले निक्षिप्य कौरव्यं युयुत्सुं धृतराष्ट्रजम्।
सम्पूज्यमानाः पौरैश्च ब्राह्मणैश्च मनीषिभिः॥ ११॥
प्रययुः पाण्डवा वीरा नियमस्थाः शुचिव्रताः।

जब पाण्डव चलने के लिये तैयार हुए, तब ब्राह्मणश्रेष्ठों और नगरवासियों ने प्रसन्नहृदय से उनके लिये मंगलपाठ किया। फिर पुत्रशोक से पीड़ित राजा धृतराष्ट्र, गान्धारी और मोटी आँखों वाली माता कुन्ती से आज्ञा लेकर, रक्षा के लिये धृतराष्ट्रपुत्र कुरुवंशी युयुत्सु को नियुक्तकर, मनीषी ब्राह्मणों और पुरवासियों से सम्मानित होते हुए, पवित्र व्रतवाले और नियमों का पालन करनेवाले वीर पाण्डवों ने वहाँ से प्रस्थान किया।

सरांसि सरितश्चैव वनान्युपवनानि च॥ १२॥
अत्यक्रामन्महाराजो गिरिं चाप्यन्वपद्यत।
तस्मिन् देशे च राजेन्द्रःयत्र तद् द्रव्यमुत्तमम्॥ १३॥
चक्रे निवेशनं राजा पाण्डवः सह सैनिकैः।
शिवे देशे समे चैव तदा भरतसत्तमः॥ १४॥

तालाबों, नदियों, वनों और उपवनों को लाँघते हुए वे राजेन्द्र महाराज, पर्वतों को भी पारकर उस स्थान पर पहुँचे, जहाँ वह उत्तम धन स्थापित था। तब भरतश्रेष्ठ और पाण्डुपुत्र राजा ने एक पवित्र और समतल भूमिपर अपनी सेना के साथ पड़ाव डाला।

ययौ व्यासं पुरस्कृत्य नृपो रत्ननिधिं प्रति।
अर्चयित्वा द्विजाग्र्यान् स स्वस्ति वाच्य च वीर्यवान्॥ १५॥
तेषां पुण्याहघोषेण तेजसा समवस्थितः।
प्रीतिमान् स कुरुश्रेष्ठः खानयामास तद् धनम्॥ १६॥
उद्धारयामास तदा धर्मराजो युधिष्ठिरः।
तेषां रक्षणमप्यासीन्महान् करपुटस्तथा॥ १७॥
एतद् वित्तं तदभवद् यदुद्दध्रे युधिष्ठिरः।
षोडशाष्टौ चतुर्विंशत्सहस्रं भारलक्षणम्॥ १८॥
एतेष्वादाय तद् द्रव्यं पुनरभ्यर्च्य पाण्डवः।
महादेवं प्रति ययौ पुरं नागाह्वयं प्रति।
द्वैपायनाभ्यनुज्ञातः पुरस्कृत्य पुरोहितम्॥ १९॥

फिर राजा युधिष्ठिर व्यासजी को आगेकर उस स्थान पर गये, जहाँ वह धन दबाया हुआ था। वहाँ श्रेष्ठ ब्राह्मणों का सम्मान कर, उनसे स्वस्तिवाचन कराकर तथा उनके द्वारा किये हुए पवित्र जयघोष के तेज से युक्त होकर उन पराक्रमी कुरुश्रेष्ठ राजा ने प्रसन्नता के साथ धन को खुदवाना आरम्भ कर दिया। धर्मराज युधिष्ठिर ने उस सारे धन को वहाँ से खोदकर निकलवा लिया। उस धन को रखने के लिये बड़ी–बड़ी सन्दूकें लायी गयी थीं। युधिष्ठिर ने जो धन वहाँ से निकलवाया, वह एक करोड़, अड़सठ लाख और चौबीस हजार भार। (एक भार सौ सेर) तोल में था। उस धन को सन्दूकों में रखकर और परमात्मा की आराधना कर, श्री व्यास जी की आज्ञा से, पुरोहित धौम्य को आगे कर पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर ने हस्तिनापुर की तरफ प्रस्थान किया।

सातवाँ अध्याय : श्रीकृष्ण जी और पाण्डवों का हस्तिनापुर आना।

एतस्मिन्नेव काले तु वासुदेवोऽपि वीर्यवान्।
उपायाद् वृष्णिभिः सार्धं पुरं वारणसाह्वयम्॥ १॥
समयं वाजिमेधस्य विदित्वा पुरुषर्षभः।
यथोक्तो धर्मपुत्रेण प्रव्रजन् स्वपुरीं प्रति॥ २॥
रौक्मिणेयेन सहितो युयुधानेन चैव ह।
चारुदेष्णेन साम्बेन गदेन कृतवर्मणा॥ ३॥
सारणेन च वीरेण निशठेनोल्मुकेन च।
बलदेवं पुरस्कृत्य सुभद्रासहितस्तदा॥ ४॥

इसी समय पराक्रमी श्रीकृष्णजी भी वृष्णिवंशियों के साथ हस्तिनापुर में आगये। अपने नगर को जाते समय जैसा युधिष्ठिर ने उनसे कहा था, उसके अनुसार वे पुरुषश्रेष्ठ अश्वमेध यज्ञ के समय को जानकर हस्तिनापुर में उपस्थित हुए थे। वे अपने साथ रुक्मिणीनन्दन प्रद्युम्न, सात्यकि, चारुदेष्ण, साम्ब, गद, कृतवर्मा, सारण, वीर निशठ और उल्मुक को भी लाये थे, वे सुभद्रा के साथ बलदेव जी को आगे करके पधारे थे।

द्रौपदीमुत्तरां चैव पृथां चाप्यवलोककः।
समाश्वासयितुं चापि क्षत्रिया निहतेश्वराः॥ ५॥
तानागतान् समीक्ष्यैव धृतराष्ट्रो महीपतिः।
प्रत्यगृह्णाद् यथान्यायं विदुरश्च महामनाः॥ ६॥
तत्रैव न्यवसत् कृष्णः स्वर्चितः पुरुषोत्तमः।
विदुरेण महातेजास्तथैव च युयुत्सुना॥ ७॥
अथाजग्मुः सुबहुलं रत्नमादाय पाण्डवाः।

उनका आने का उद्देश्य यह भी था कि वे द्रौपदी, उत्तरा और कुन्ती से मिलें और उन क्षत्राणियों को धीरज बँधायें, जिनके पति मारे गये थे। उनके आने का समाचार सुनकर राजा धृतराष्ट्र और महामना विदुर जी ने विधिवत् उनकी अगवानी की। फिर विदुर और युयुत्सु से भलीभाँति सत्कृत होकर महातेजस्वी, पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण वहीं रहने लगे। उसके पश्चात् पाण्डव लोग बहुत सा धन लेकर हिमालय पर्वत पर से वापिस लौटे।

अलंचक्रुश्च माल्यौघैः पुरुषा नागसाह्वयम्॥ ८॥
पताकाभिर्विचित्राभिर्ध्वजैश्च विविधैरपि।
राजमार्गाश्च तत्रासन् सुमनोभिरलंकृताः॥ ९॥
शुशुभे तत्पुरं चापि समुद्रौघनिभस्वनम्।
नर्तकैश्चापि नृत्यद्भिर्गायकानां च निःस्वनैः॥ १०॥
अघोषयंस्तदा चापि पुरुषा राजधूर्गताः।
सर्वराष्ट्रविहारोऽद्य रत्नाभरणलक्षणः॥ ११॥

पाण्डवों के धन लेकर वापिस आने की प्रसन्नता में नगर के निवासियों ने हस्तिनापुर को विविधप्रकार की मालाओं के समूहों, विचित्र प्रकार की पताकाओं और ध्वजों से सजाया था। उस समय नाचते हुए नर्तकों और गाते हुए गायकों की ध्वनियों से वह नगर गर्जते हुए समुद्र के समान सुशोभित हो रहा था। नगर के सारे राजमार्ग तब फूलों से अलंकृत किये गये थे। राजकार्य सँभालने वाले पुरुषों ने यह घोषणा करा दी कि आज सारे राष्ट्र में उत्सव मनाया जाये और लोग रत्नों के आभूषण और उत्तम वस्त्र पहनकर उत्सव में सम्मिलित हों।

तान् समीपगताञ्श्रुत्वा पाण्डवान् शत्रुकर्शनः।
वासुदेवः सहामात्यः प्रययौ ससुहृद्गणः॥ १२॥
ते समेत्य यथान्यायं प्रत्युद्याता दिदृक्षया।
ते कोशानग्रतः कृत्वा विविशुः स्वपुरं तदा॥ १३॥
पाण्डवाः प्रीतमनसः सामात्याः ससुहृद्गणाः।
ते समेत्य यथान्यायं धृतराष्ट्रं जनाधिपम्॥ १४॥
कीर्तयन्तः स्वनामानि तस्य पादौ ववन्दिरे।
ततः कतिपयाहस्य व्यासः सत्यवतीसुतः॥ १५॥
आजगाम महातेजा नगरं नागसाह्वयम्।
तस्य सर्वे यथान्यायं पूजांचक्रुः कुरूद्वहाः॥ १६॥

तब पाण्डवों को नगर के समीप आया हुआ सुनकर शत्रुदमन श्रीकृष्ण अपने मन्त्रियों और मित्रों के साथ उनकी अगवानी के लिये आगे बढ़े। पाण्डवों को देखने की इच्छा से वे आगे बढ़कर उनसे यथायोग्य मिले। पुनः प्रसन्नता से युक्त मन वाले पाण्डव अपने मन्त्रियों और सुहृदों के साथ खजाने को आगे करके अपने नगर में प्रविष्ट हुए। वहाँ सबसे यथायोग्य भेंट करके वे सारे पाण्डव राजा धृतराष्ट्र के समीप गये और अपना नाम सुनाते हुए उन्होंने उनके चरणों में प्रणाम किया। उसके थोड़े दिनों के पश्चात् सत्यवतीपुत्र महातेजस्वी व्यास जी भी हस्तिनापुर में पधारे। तब कुरुकुल के सारे आधारों ने यथायोग्य उनका सत्कार किया।

सह वृष्ण्यन्धकव्याघ्रैरुपासांचक्रिरे तदा।
तत्र नानाविधाकाराः कथाः समभिकीर्त्य वै॥ १७॥
युधिष्ठिरो धर्मसुतो व्यासं वचनमब्रवीत्।
भवत्प्रसादाद् भगवान् यदिदं रत्नमाहृतम्॥ १८॥
उपयोक्तुं तदिच्छामि वाजिमेधे महाक्रतौ।
तमनुज्ञातुमिच्छामि भवता मुनिसत्तम॥ १९॥
त्वदधीना वयं सर्वे कृष्णस्य च महात्मनः।
व्यास उवाच
अनुजानामि राजंस्त्वां क्रियतां यदनन्तरम्॥ २०॥
यजस्व वाजिमेधेन विधिवद् दक्षिणावता।

फिर वृष्णि और अन्धकवंशी वीरों के साथ वे व्यासजी के समीप बैठ गये। वहाँ अनेक प्रकार की बहुत सारी बातें करके धर्मपुत्र युधिष्ठिर ने व्यास जी से कहा कि हे भगवन्! आपकी कृपा से जो धन लाया गया है, मैं उसका उपयोग अश्वमेध यज्ञ में करना चाहता हूँ। हे मुनिश्रेष्ठ! आप इस कार्य के लिये हमें आज्ञा दीजिये, क्योंकि हमसब तो आपके और महात्मा श्रीकृष्णजी के आधीन हैं। तब व्यास जी ने कहा कि हे राजन्! मैं आपको आज्ञा देता हूँ। आप जो करना है, उसे करो। आप विधि के अनुसार दक्षिणा वाले अश्वमेध यज्ञ को कीजिये।

समनुज्ञाप्य तत् सर्वं कृष्णद्वैपायनं नृपः॥ २१॥
वासुदेवमथाभ्येत्य वाग्मी वचनमब्रवीत्।
देवकी सुप्रजा देवी त्वया पुरुषसत्तम॥ २२॥
यद् ब्रूयां त्वां महाबाहो तत् कृथास्त्वमिहाच्युत।
त्वत्प्रभावार्जितान् भोगानश्नीम यदुनन्दन॥ २३॥
पराक्रमेण बुद्ध्या च त्वयेयं निर्जिता मही।
दीक्षयस्व त्वमात्मानं त्वं हि नः परमो गुरुः॥ २४॥

तब सारी बातों के विषय में व्यास जी से आज्ञा लेकर बोलने में चतुर राजा युधिष्ठिर श्रीकृष्ण जी के पास जाकर उनसे बोले कि हे महाबाहु! अच्युत, पुरुषोत्तम! आपके द्वारा देवकी उत्तम सन्तान वाली हो गयी है। मैं आपसे जो कहूँ, उसे आप पूरा कीजिये। हे यदुनन्दन! हम आपके प्रभाव से प्राप्त हुए भोगों को ही भोग रहे हैं। आपके पराक्रम और आपकी बुद्धि से ही इस भूमि को जीता गया है। इसलिये आप ही इस यज्ञ की दीक्षा ग्रहण करें। आप हमारे परम गुरु हैं।

वासुदेव उवाच

त्वं चाद्य कुरुवीराणां धर्मेण हि विराजसे।
गुणीभूताः स्म ते राजंस्त्वं नो राजा गुरुर्मतः॥ २५॥
यजस्व मदनुज्ञातः प्राप्य एष क्रतुस्त्वया।
युनक्तु नो भवान् कार्ये यत्र वाञ्छसि भारत॥ २६॥
सत्यं ते प्रतिजानामि सर्वं कर्तास्मि तेऽनघ।
भीमसेनार्जुनौ चैव तथा माद्रवतीसुतौ।
इष्टवन्तो भविष्यन्ति त्वयीष्टवति पार्थिवे॥ २७॥

तब श्रीकृष्ण जी ने उत्तर दिया कि हे राजन्! सारे कुरुवीरों में आप ही धर्म से सुशोभित हैं। हम आपके गुणों के अनुयायी हैं और आपको अपना राजा और गुरु मानते हैं। इसलिये हे भारत! हमारी अनुमति से आप ही इस यज्ञ का अनुष्ठान कीजिये। आप जिस कार्य में चाहते हैं, उस में हमें लगाइये। हे निष्पाप! मैं आपसे यह सत्य प्रतिज्ञा करता हूँ कि आप जिस कार्य के लिये कहेंगे, वही सब करूँगा। आपके यज्ञ करने पर भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव को भी यज्ञ का फल मिल जायेगा।

आठवाँ अध्याय : भीम आदि चारों पाण्डवों की यज्ञ के कार्यों में नियुक्ति।

एवमुक्तस्तु कृष्णेन धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः।
व्यासमामन्त्र्य मेधावी ततो वचनमब्रवीत्॥ १॥
यदा कालं भवान् वेत्ति हयमेधस्य तत्त्वतः।
दीक्षयस्व तदा मां त्वं त्वय्यायत्तो हि मे क्रतुः॥ २॥

व्यास उवाच

अहं पैलोऽथ कौन्तेय याज्ञवल्क्यस्तथैव च।
विधानं यद् यथाकालं तत् कर्तारो न संशयः॥ ३॥
चैत्र्यां हि पौर्णमास्यां तु तव दीक्षा भविष्यति।
सम्भाराः सम्भ्रियन्तां च यज्ञार्थं पुरुषर्षभ॥ ४॥

श्रीकृष्णजी के ऐसा कहने पर मेधावी धर्मपुत्र युधिष्ठिर ने व्यास जी को सुनाकर यह कहा कि हे भगवन्! जब आप ठीक समय समझें, तब मुझे अश्वमेध यज्ञ के लिये दीक्षित करदें। आप के ऊपर ही मेरा यज्ञ आधारित है। तब व्यास जी ने कहा कि हे कुन्तीपुत्र! जब यज्ञ का समय होगा, तब मैं, पैल और याज्ञवल्क्य आकर यज्ञ के विधान को पूरा करेंगे, इसमें कोई संशय नहीं है। चैत्र की पूर्णमासी को तुम्हारी यज्ञ के लिये दीक्षा होगी। हे पुरुषश्रेष्ठ! तब तक तुम यज्ञ की सामग्री एकत्र करो।

अश्वविद्याविदश्चैव सूता विप्राश्च तद्विदः।
मेध्यमश्वं परीक्षन्तां तव यज्ञार्थसिद्धये॥ ५॥
तमुत्सृज यथाशास्त्रं पृथिवीं सागराम्बराम्।
स पर्येतु यशो दीप्तं तव पार्थिव दर्शयन्॥ ६॥
स सम्भारान् समाहृत्य नृपो धर्मसुतस्तदा।
न्यवेदयदमेयात्मा कृष्णद्वैपायनाय वै॥ ७॥
ततोऽब्रवीन्महातेजा व्यासो धर्मात्मजं नृपम्।
यथाकालं यथायोगं सज्जाः स्म तव दीक्षणे॥ ८॥

अश्व विद्या के विद्वान् और इस विषय के ब्राह्मण जानकर यज्ञ की सिद्धि के लिये पवित्र अश्व की परीक्षा कर उसका चुनाव करें। उस चुने हुए घोड़े को तुम विधि के अनुसार छोड़ो। हे राजन्! वह घोड़ा तुम्हारी कीर्ति को प्रदर्शित करता हुआ सागर पर्यन्त भूमि पर भ्रमण करे। तब उस अमित आत्मा धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर ने सारी सामग्री को जुटाकर श्री व्यास जी को उसकी सूचना दी। महातेजस्वी व्यास जी ने धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर से कहा कि हे राजन्! अब हम यथासमय विधि के अनुसार आपको यज्ञ की दीक्षा देने के लिये तैयार हैं।

स्फ्यश्च कूर्चश्च सौवर्णो यच्चान्यदपि कौरव।
तत्र योग्यं भवेत् किंचिद् रौक्मं तत् क्रियतामिति॥ ९॥
अश्वश्चोत्सृज्यतामद्य पृथ्व्यामथ यथाक्रमम्।
सुगुप्तं चरतां चापि यथाशास्त्रं यथाविधि॥ १०॥

युधिष्ठिर उवाच

अयमश्वो यथा ब्रह्मन्नुत्सृष्टः पृथिवीमिमाम्।
चरिष्यति यथाकामं तत्र वै संविधीयताम्॥ ११॥
पृथिवीं पर्यटन्तं हि तुरगं कामचारिणम्।
कः पालयेदिति मुने तद् भवान् वक्तुमर्हति॥ १२॥

हे कुरुनन्दन! आप सोने के स्फय और कूर्च तथा जो कुछ भी आवश्यक सामान है, उसे तैयार करा लीजिये। आज आप शास्त्रीय विधि के अनुसार घोड़े को छोड़िये। वह घोड़ा अच्छी तरह से सुरक्षित होकर पृथिवी के देशों में क्रमशः भ्रमण करे। तब युधिष्ठिर ने कहा कि हे ब्रह्मन्! यह घोड़ा है। यह जैसे इच्छानुसार पृथिवी पर भ्रमण कर सके, इसकी व्यवस्था आप कीजिये। हे मुनि! आप बताइये कि विचरण करते हुए घोड़े की रक्षा कौन करेगा?

व्यास उवाच

भीमसेनादवरजः श्रेष्ठः सर्वधनुष्मताम्।
जिष्णुः सहिष्णुर्धृष्णुश्च स एनं पालयिष्यति॥ १३॥
स हि धर्मार्थकुशलः सर्वविद्याविशारदः।
यथाशास्त्रं नृपश्रेष्ठ चारयिष्यति ते हयम्॥ १४॥
राजपुत्रो महाबाहुः श्यामो राजीवलोचनः।
अभिमन्योः पिता वीरः स एनं पालयिष्यति॥ १५॥
भीमसेनोऽपि तेजस्वी कौन्तेयोऽमितविक्रमः।
समर्थो रक्षितुं राष्ट्रं नकुलश्च विशाम्पते॥ १६॥

तब व्यास जी ने कहा कि भीमसेन से छोटा, जो सारे धनुर्धरों में श्रेष्ठ, विजय शील, सहन शील और धैर्यवान् है, घोड़े की रक्षा करेगा। यह धर्म और अर्थ में कुशल, सारी विद्याओं में विशारद है। हे नृपश्रेष्ठ! यह शास्त्रीय विधि के अनुसार आपके घोड़े को भ्रमण करायेगा। यह राजपुत्र विशाल बाँहों साँवले रंग और कमल जैसी आँखोंवाला है। ये अर्जुन अभिमन्यु के वीर पिता उस घोड़े की रक्षा करेंगे। कुन्तीपुत्र भीमसेन भी तेजस्वी और अमित विक्रम वाले हैं। हे प्रजापालक! ये और नकुल राष्ट्र की रक्षा में समर्थ हैं।

सहदेवस्तु कौरव्य समाधास्यति बुद्धिमान्।
कुटुम्बतन्त्रं विधिवत् सर्वमेव महायशाः॥ १७॥
तत् तु सर्वं यथान्यायमुक्तः कुरुकुलोद्वहः।
चकार फाल्गुनं चापि संदिदेश हयं प्रति॥ १८॥
एह्यर्जुन त्वया वीर हयोऽयं परिपाल्यताम्।
त्वमर्हो रक्षितुं ह्येनं नान्यः कश्चन मानवः॥ १९॥
ये चापि त्वां महाबाहो प्रत्युद्यान्ति नराधिपाः।
तैर्विग्रहो यथा न स्यात् तथा कार्यं त्वयानघ॥ २०॥
आख्यातव्यश्च भवता यज्ञोऽयं मम सर्वशः।
पार्थिवेभ्यो महाबाहो समये गम्यतामिति॥ २१॥

हे कुरुनन्दन! बुद्धिमान् और यशस्वी सहदेव कुटुम्ब की समस्याओं का समाधान करेंगे। तब कुरुकुल के आधार युधिष्ठिर ने व्यासजी के कथनानुसार यथोचित कार्यभार सबको सौंप दिया और घोड़े की रक्षा के लिये अर्जुन से कहा कि हे अर्जुन! यहाँ आओ। हे वीर, तुम्हें इस घोड़े का पालन करना है। तुम ही घोड़े की रक्षा करने में समर्थ हो। दूसरा कोई यह नहीं कर सकता। हे निष्पाप, महाबाहु! जो भी राजा लोग वहाँ तुम्हारे सामने आयेंगे, उनके साथ तुम्हारा युद्ध न हो, तुम उस प्रकार का प्रयत्न करना। हे महाबाहु! सब राजाओं को मेरे यज्ञ के विषय में बताना और उन्हें समय पर यज्ञ में आने के लिये कहना है।

एवमुक्त्वा स धर्मात्मा भ्रातरं सव्यसाचिनम्।
भीमं च नकुलं चैव पुरगुप्तौ समादधत्॥ २२॥
कुटुम्बतन्त्रे च तदा सहदेवं युधां पतिम्।
अनुमान्य महीपालं धृतराष्ट्रं युधिष्ठिरः॥ २३॥

अपने भाई अर्जुन से यह कहकर उस धर्मात्मा राजा युधिष्ठिर ने भीमसेन और नकुल को नगर की रक्षा का भार सौंप दिया। फिर योद्धाओं के स्वामी सहदेव को उन्होंने राजा धृतराष्ट्र की सहमति से कुटुम्बपालनसम्बन्धी कार्यों में लगा दिया।

नवाँ अध्याय : अर्जुन का अश्व की रक्षार्थ प्रस्थान, त्रिगर्तों की पराजय।

दीक्षाकाले तु सम्प्राप्ते ततस्ते सुमहर्त्विजः।
विधिवद् दीक्षयामासुरश्वमेधाय पार्थिवम्॥ १॥
हयश्च हयमेधार्थं स्वयं स ब्रह्मवादिना।
उत्सृष्टः शास्त्रविधिना व्यासेनामिततेजसा॥ २॥
श्वेताश्वः कृष्णसारं तं ससाराश्वं धनंजयः।
तेषामन्योन्यसम्मर्दादूष्मेव समजायत॥ ३॥
दिदृक्षूणां हयं तं च तं चैव हयसारिणम्।
एष गच्छति कौन्तेय तुरगश्चैव दीप्तिमान्॥ ४॥
यमन्वेति महाबाहुः संस्पृशन् धनुरुत्तमम्।

फिर उन महान् ऋत्विजों ने यज्ञ की दीक्षा का समय आने पर राजा को विधिवत् अश्वमेधयज्ञ की दीक्षा दी। ब्रह्मवादी अमिततेजस्वी व्यासजी ने उस घोड़े को यज्ञ के लिये शास्त्रविधि के अनुसार छोड़ा। तब श्वेत घोड़ों वाले अर्जुन ने उस चित्तीदार घोड़े का अनुसरण किया। घोड़े और घोड़े के पीछे जाते हुए अर्जुन को देखने के लिये सड़कों पर इतनी भीड़ एकत्र होगयी कि लोगों के पसीने निकल आये। वे परस्पर कह रहे थे कि देखो यह दीप्तिमान् घोड़ा जा रहा है और इसके पीछे ये महाबाहु कुन्तीपुत्र अर्जुन अपने श्रेष्ठ धनुष को धारण किये जा रहे हैं।

एवं शुश्राव वदतां गिरो जिष्णुरुदारधीः॥ ५॥
स्वस्ति तेऽस्तु व्रजारिष्टं पुनश्चैहीति भारत।
नैनं पश्याम सम्मर्दे धनुरेतत् प्रदृश्यते॥ ६॥
एतद्धि भीमनिर्ह्रादं विश्रुतं गाण्डिवं धनुः।
स्वस्ति गच्छत्वरिष्टो वै पन्थानमकुतोभयम्॥ ७॥
निवृत्तमेनं द्रक्ष्यामः पुनरेष्यति च ध्रुवम्।

उदारबुद्धि अर्जुन ने वार्तालाप करते हुए लोगों की ये बातें सुनीं कि तुम्हारा कल्याण हो। तुम कुशलपूर्वक जाओ और हे तात! कुशलपूर्वक ही लौटकर आओ। हम इस भीड़ में अर्जुन को देख नहीं पारहे हैं, केवल इनका धनुष ही दिखाई देरहा है। यही इनका भयंकर टंकार करनेवाला प्रसिद्ध गाण्डीवधनुष है। ये कुशलपूर्वक जायें। इनका मार्ग कुशलतापूर्वक और भय से रहित हो। हम निश्चितरूप से इन्हें पुनः वापिस लौटा हुआ देखेंगे।

त्रिगर्तैरभवद् युद्धं कृतवैरैः किरीटिनः॥ ८॥
महारथसमाज्ञातैर्हतानां पुत्रनप्तृभिः।
ते समाज्ञाय सम्प्राप्तं यज्ञियं तुरगोत्तमम्॥ ९॥
विषयान्ते ततो वीरा दंशिताः पर्यवारयन्।
रथिनो बद्धतूणीराः सदश्वैः समलंकृतैः॥ १०॥
ततः किरीटी संचिन्त्य तेषां तत्र चिकीर्षितम्।
वारयामास तान् वीरान् सान्त्वपूर्वमरिंदमः॥ ११॥
तदनादृत्य ते सर्वे शरैरभ्यहनंस्तदा।
तमोरजोभ्यां संछन्नांस्तान् किरीटी न्यवारयत्॥ १२॥

अर्जुन के घोड़े के पीछे जाने पर उनका त्रिगर्तों के साथ युद्ध हुआ। कुरुक्षेत्र के युद्ध में जो त्रिगर्त वीर मारे गये थे, उनके महारथी पुत्रों और पौत्रों ने अर्जुन से बैर बाँधा हुआ था। यह जानकर कि पाण्डवों के यज्ञ का घोड़ा हमारे देश की सीमा में आगया है, उन वीरों ने सजे हुए उत्तम घोड़ों से युक्त रथों पर बैठकर, कवच पहन कर और तरकस बाँधकर उस घोड़े को घेर लिया। तब शत्रुदमन अर्जुन उनके अभिप्राय को जानकर कि ये क्या करना चाहते हैं, उन वीरों को सान्त्वना पूर्वक रोकने लगे। किन्तु वे अर्जुन की अवहेलना करके, उन्हें बाणों से चोट पहुँचाने लगे। तमोगुण और रजोगुण के आधीन हुए उन त्रिगर्तों को रोकने के लिये अर्जुन ने पूरा प्रयत्न किया।

तानब्रवीत् ततो जिष्णुः प्रहसन्निव भारतः।
निवर्तध्वमधर्मज्ञाः श्रेयो जीवितमेव च॥ १३॥
स हि वीरः प्रयास्यन् वै धर्मराजेन वारितः।
हतबान्धवा न ते पार्थ हन्तव्याः पार्थिवा इति॥ १४॥
स तदा तद् वचः श्रुत्वा धर्मराजस्य धीमतः।
तान् निवर्तध्वमित्याह न न्यवर्तन्त चापि ते॥ १५॥
ततस्त्रिगर्तराजानं सूर्यवर्माणमाहवे।
विचित्य शरजालेन प्रजहास धनंजयः॥ १६॥

भरतवंशी अर्जुन ने उनसे मुस्कराते हुए कहा कि हे धर्म को न जाननेवालों! लौट जाओ। तुम्हारा कल्याण जीवित रहने में ही है। वीर अर्जुन को प्रस्थान करते हुए धर्मराज ने मना किया था कि हे कुन्तीपुत्र! जिन राजाओं के बन्धु–बान्धव युद्ध में मारे गये हैं, उन्हें तुम्हें नहीं मारना चाहिये। धीमान् धर्मराज के वचनों का पालन करते हुए ही अर्जुन ने उनसे लौटने के लिये कहा, पर त्रिगर्त लोग फिर भी नहीं

लौटे। तब अर्जुन युद्ध में त्रिगर्तराज सूर्यवर्मा के शरीर को बाणों से भरकर हँसने लगे।

ततस्ते रथघोषेण रथनेमिस्वनेन च।
पूरयन्तो दिशः सर्वा धनंजयमुपाद्रवन्॥ १७॥
ततो योधान् जघानाशु तेषां स दश चाष्ट च।
महेन्द्रवज्रप्रतिमैरायसैर्बहुभिः शरैः॥ १८॥
तान् सम्प्रभग्नान् सम्प्रेक्ष्य त्वरमाणो धनंजयः।
शरैराशीविषाकारैर्जघान स्वनवद्धसन्॥ १९॥

तब वे त्रिगर्तवीर रथों की घड़घड़ाहट और पहियों की ध्वनि से सारी दिशाओं को भरते हुए अर्जुन पर टूट पड़े। तब अर्जुन ने शीघ्र ही इन्द्र के वज्र के समान लोहे के बहुत से बाणों से उनके अठारह वीरों को मार गिराया। यह देखकर कि त्रिगर्तों में भगदड़ मच गयी है, अर्जुन ने जोर से हँसते हुए जल्दी-जल्दी अपने विषैले सर्प के समान बाणों से उन्हें मारना आरम्भ कर दिया।

तमूचुः पुरुषव्याघ्रं संशप्तकनिषूदनम्।
तवास्म किंकराः सर्वे सर्वे वै वशगास्तव॥ २०॥
आज्ञापयस्व नः पार्थ प्रह्वान् प्रेष्यानवस्थितान्।
करिष्यामः प्रियं सर्वं तव कौरवनन्दन॥ २१॥
एतदाज्ञाय वचनं सर्वांस्तानब्रवीत् तदा।
जीवितं रक्षत नृपाः शासनं प्रतिगृह्यताम्॥ २२॥

तब वे संशप्तकों को मारने वाले, पुरुषव्याघ्र, अर्जुन से कहने लगे कि हम सब आपके सेवक हैं। हम आपके आधीन हैं। हे कुन्तीपुत्र! हम नम्रतापूर्वक आपकी सेवा में खड़े हुए हैं। आप हमें आज्ञा दीजिये। हे कौरवनन्दन! हम आपका सारा प्रिय कार्य करेंगे। उनकी ये बातें सुनकर अर्जुन ने उन सबसे कहा कि हे राजाओं! अपने प्राणों की रक्षा करो और हमारा शासन स्वीकार करो।

दसवाँ अध्याय : अर्जुन का प्राग्ज्योतिषपुर के राजा को हराना।

प्राग्ज्योतिषमथाभ्येत्य व्यचरत् स हयोत्तमः।
भगदत्तात्मजस्तत्र निर्ययौ रणकर्कशः॥ १॥
सोऽभिनिर्याय नगराद् भगदत्तसुतो नृपः।
अश्वमायान्तमुन्मथ्य नगराभिमुखो ययौ॥ २॥
तमालक्ष्य महाबाहुः कुरूणामृषभस्तदा।
गाण्डीवं विक्षिपंस्तूर्णं सहसा समुपाद्रवत्॥ ३॥
ततो गाण्डीवनिर्मुक्तैरिषुभिर्मोहितो नृपः।
हयमुत्सृज्य तं वीरस्ततः पार्थमुपाद्रवत्॥ ४॥
आरुह्य नागप्रवरं दंशितः स नृपोत्तमः।

एकबार वह घोड़ा प्राग्ज्योतिषपुर देश के समीप जाकर विचरण करने लगा। तब भगदत्त का पुत्र, जो युद्ध में बड़ा कठोर था, अपने नगर से निकलकर आया। नगर से बाहर निकलकर भगदत्त के पुत्र राजा ने आते हुए घोड़े को बलपूर्वक पकड़ लिया और अपने नगर की तरफ लेजाने लगा। यह देखकर कुरुश्रेष्ठ, महाबाहु अर्जुन ने गाण्डीवधनुष को टंकारते हुए उस पर तुरन्त आक्रमण कर दिया। तब गाण्डीवधनुष से छोड़े हुए बाणों से व्याकुल होकर उस वीर ने घोड़े को छोड़ दिया। फिर उस श्रेष्ठ राजा ने कवच धारणकर तथा एक उत्तम हाथी पर सवार होकर अर्जुन पर आक्रमण कर दिया।

नोट :- महाभारत में पाण्डवों की दिग्विजयों का वर्णन भूगोल के क्रम के अनुसार नहीं है। इसीलिये त्रिगर्त के पश्चात् प्राग्ज्योतिषपुर और उसके पश्चात् सिन्धु देश का वर्णन है। ऐसा ही अन्य स्थानों के विषय में जानना चाहिये।

वज्रदत्तस्ततः क्रुद्धो मुमोचाशु धनंजये॥ ५॥
तोमरानग्निसंकाशाञ्शलभानिव वेगितान्।
अर्जुनस्तानसम्प्राप्तान् गाण्डीवप्रभवैः शरैः॥ ६॥
द्विधा त्रिधा च चिच्छेद ख एव खगमैस्तदा।
स तान् दृष्ट्वा तथा छिन्नांस्तोमरान् भगदत्तजः॥ ७॥
इषूनसक्तांस्त्वरितः प्राहिणोत् पाण्डवं प्रति।
ततोऽर्जुनस्तूर्णतरं रुक्मपुङ्खानजिह्मगान्॥ ८॥
प्रेषयामास संक्रुद्धो भगदत्तात्मजं प्रति।
स तैर्विद्धो महातेजा वज्रदत्तो महामृधे॥ ९॥
भृशाहतः पपातोर्व्यां न त्वेनमजहात् स्मृतिः।

क्रुद्ध वज्रदत्त ने तब अर्जुन पर अग्नि के समान तोमरों को चलाया, जो उड़ते हुए पतंगों के समान प्रतीत होते थे। अर्जुन ने उन तोमरों को अपने पास पहुँचने से पहले ही गाण्डीवधनुष से छोड़े अपने बाणों से आकाश में ही दो और तीन टुकड़ों में काट दिया। तोमरों को कटा हुआ देखकर भगदत्त के पुत्र

ने अर्जुन पर शीघ्रता से लगातार बाणों की वर्षा आरम्भ कर दी। तब अत्यन्त क्रुद्ध अर्जुन ने उससे भी अधिक शीघ्रता से सुनहरे पंखवाले और सीधे जाने वाले बाणों को भगदत्त के पुत्र की तरफ फेंका। उन से बिंधा हुआ वह महातेजस्वी वज्रदत्त उस महायुद्ध में अत्यन्त घायल होकर भूमि पर गिर पड़ा, पर मूर्च्छित नहीं हुआ।

ततः स पुनरारुह्य वारणप्रवरं रणे॥ १०॥
अव्यग्रः प्रेषयामास जयार्थी विजयं प्रति।
सम्प्रेष्यमाणो नागेन्द्रो वज्रदत्तेन धीमता॥ ११॥
उत्पतिष्यन्निवाकाशमभिदुद्राव पाण्डवम्।

फिर उस श्रेष्ठ हाथी पर पुनः आरूढ होकर युद्ध में विजय को चाहनेवाले वज्रदत्त ने बिना घबराये हाथी को अर्जुन की तरफ बढ़ाया। धीमान् वज्रदत्त द्वारा प्रेरित हाथी ने पाण्डुपुत्र पर इसप्रकार से आक्रमण किया, मानों वह आकाश में उड़ जाना चाहता है।

ततस्तं वारणं क्रुद्धः शरजालेन पाण्डवः॥ १२॥
निवारयामास तदा वेलेव मकरालयम्।
स नागप्रवरः श्रीमानर्जुनेन निवारितः॥ १३॥
तस्थौ शरैर्वितुन्नाङ्गः श्वाविच्छललितो यथा।
निवारितं गजं दृष्ट्वा भगदत्तसुतो नृपः॥ १४॥
उत्ससर्ज शितान् बाणानर्जुनं क्रोधमूर्च्छितः।

फिर क्रुद्ध पाण्डुपुत्र ने उस हाथी को अपने बाणों से उसीप्रकार लौटा दिया जैसे तटभूमि सागर की लहरों को लौटा देती है। श्रीमान् अर्जुन द्वारा लौटाया हुआ वह हाथी, जिसके सारे अंगों में बाण फँसे हुए थे, एक शोभाशाली साही के समान प्रतीत होता हुआ खड़ा होगया। अपने हाथी को रोका हुआ देखकर भगदत्त का पुत्र क्रोध से मूर्च्छित सा होकर अर्जुन के ऊपर तीखे बाणों को छोड़ने लगा।

अर्जुनस्तु महाबाहुः शरैररिनिघातिभिः॥ १५॥
वारयामास तान् बाणांस्तदद्भुतमिवाभवत्।
ततः पुनरभिक्रुद्धो राजा प्राग्ज्योतिषाधिपः॥ १६॥
प्रेषयामास नागेन्द्रं बलवत् पर्वतोपमम्।
तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य बलवत् पाकशासनिः॥ १७॥
नाराचमग्निसंकाशं प्राहिणोद् वारणं प्रति।
स पपात सहसा भूमौ मर्मस्वभिहतो भृशम्॥ १८॥
विशन्निव महाशैलो महीं वज्रप्रपीडितः।

किन्तु महाबाहु अर्जुन ने अपने शत्रु को नष्ट करनेवाले बाणों से उन बाणों का निवारण कर दिया। यह एक अद्भुत बात थी। तब प्राग्ज्योतिषपुर के राजा ने पुनः क्रोध में भरकर अपने बलवान् पर्वत के समान हाथी को अर्जुन की तरफ बढ़ाया। उसे अपनी तरफ आता हुआ देखकर बलवान् अर्जुन ने एक अग्नि के समान तेजस्वी नाराच को उसके ऊपर चलाया। उससे अपने मर्मस्थानों में गहरी चोट खाया हुआ वह हाथी सहसा भूमि पर उसीप्रकार गिर पड़ा जैसे बिजली के प्रहार से अत्यन्त पीड़ित विशाल पर्वत भूमि में समा जाना चाहता हो।

तस्मिन् निपतिते नागे वज्रदत्तस्य पाण्डवः॥ १९॥
तं न भेतव्यमित्याह ततो भूमिगतं नृपम्।
अब्रवीद्धि महातेजाः प्रस्थितं मां युधिष्ठिरः॥ २०॥
राजानस्ते न हन्तव्या धनंजय कथंचन।
वक्तव्याश्चापि राजानः सर्वे सहसुहृज्जनैः॥ २१॥
युधिष्ठिरस्याश्वमेधो भवद्भिरनुभूयताम्।

वज्रदत्त के हाथी के गिरने पर उसके साथ भूमि पर पड़े हुए राजा से तब पाण्डुपुत्र ने कहा कि डरो मत! मेरे प्रस्थान करते समय महातेजस्वी युधिष्ठिर ने मुझसे कहा था कि हे अर्जुन! तुम्हें किसी प्रकार भी राजाओं का वध नहीं करना चाहिये। तुम सारे राजाओं से यह कह देना कि वे अपने सुहृद्जनों के साथ युधिष्ठिर के यज्ञ में अवश्य आयें और वहाँ आनन्द का अनुभव करें।

इति भ्रातृवचः श्रुत्वा न हन्मि त्वां नराधिप॥ २२॥
उत्तिष्ठ न भयंतेऽस्ति स्वस्तिमान् गच्छ पार्थिव।
आगच्छेथा महाराज परां चैत्रीमुपस्थिताम्॥ २३॥
यदाश्वमेधो भविता धर्मराजस्य धीमतः।
एवमुक्तः स राजा तु भगदत्तात्मजस्तदा।
तथेत्येवाब्रवीद् वाक्यं पाण्डवेनाभिनिर्जितः॥ २४॥

हे राजन्! भाई के वचनों को सुनकर ही मैं तुम्हें नहीं मार रहा हूँ। हे राजन्! उठो। तुम्हें कोई भय नहीं है। तुम्हारा कल्याण हो। तुम घर लौट जाओ। हे महाराज! चैत्र की उत्तम पूर्णिमा को हस्तिनापुर आना, जब वहाँ धीमान्, धर्मराज, युधिष्ठिर का यज्ञ होगा। अर्जुन के ऐसा कहने पर उससे पराजित हुए भगदत्त के पुत्र ने कहा कि अच्छा, ऐसा ही होगा।

ग्यारहवाँ अध्याय : सैन्धवों के साथ युद्ध। दुःशला के अनुरोध पर समाप्ति।

जित्वा प्रसाद्य राजानं भगदत्तसुतं तदा।
विसृज्य याते तुरगे ततस्तस्य किरीटिनः॥ १॥
सैन्धवैरभवद् युद्धं हतानां च सुतैरपि।
तेऽवतीर्णमुपश्रुत्य विषयं श्वेतवाहनम्॥ २॥
प्रत्युद्ययुरमृष्यन्तो राजानः पाण्डवर्षभम्।
अश्वं च तं परामृश्य विषयान्ते विषोपमाः॥ ३॥
न भयं चक्रिरे पार्थाद् भीमसेनादनन्तरात्।
ततस्ते तं महावीर्या राजानः पर्यवारयन्॥ ४॥
जिगीषन्तो नरव्याघ्रं पूर्वं विनिकृता युधि।

भगदत्त के पुत्र को जीतकर और उसे प्रसन्न कर जब घोड़ा छूटकर वहाँ से चल दिया तब अर्जुन का सिन्धुदेशीय योद्धाओं तथा जो वहाँ के वीर महाभारत के युद्ध में मारे गये थे, उनके पुत्रों के साथ युद्ध हुआ। सिन्धुदेश के योद्धालोग पाण्डवश्रेष्ठ, श्वेतवाहन अर्जुन को अपने देश में आया हुआ सुनकर उसे सहन न कर सके और उससे युद्ध करने को आगे बढ़कर आये। विष के समान भयानक वे क्षत्रिय घोड़े को पकड़कर भीमसेन के छोटे भाई अर्जुन से जरा भी भयभीत नहीं हुए। उन महापराक्रमी राजा लोगों ने नरव्याघ्र अर्जुन को, जिससे वे पहले पराजित हो चुके थे, युद्ध में जीतने की इच्छा से चारों तरफ से घेर लिया।

ततो रथसहस्रेण हयानामयुतेन च॥ ५॥
कोष्ठकीकृत्य बीभत्सुं प्रहृष्टमनसोऽभवन्।
ततः पर्जन्यवत् सर्वे शरवृष्टीरवासृजन्॥ ६॥
तैः कीर्णः शुशुभे पार्थो रविर्मेघान्तरे यथा।
विचकर्ष धनुर्दिव्यं ततः कौरवनन्दनः॥ ७॥
यन्त्रस्येवेह शब्दोऽभून्महांस्तस्य पुनः पुनः।
ततस्ते सैन्धवा योधाः सर्व एव सराजकाः॥ ८॥
नादृश्यन्त शरैः कीर्णाः शलभैरिव पादपाः।

एक हजार रथ और दस हजार घोड़ों से अर्जुन को घेरकर, उसे कोष्ठबद्ध-सा कर वे मन ही मन बड़े प्रसन्न होरहे थे। उन सबने अर्जुन पर बादलों के समान बाणों की वर्षा आरम्भ कर दी। उस बाणवर्षा से आच्छादित होकर अर्जुन मेघों से ढके हुए सूर्य के समान प्रतीत हो रहे थे। फिर कौरवनन्दन ने अपने दिव्य धनुष की प्रत्यंचा को खींचा। तब उससे यन्त्र के समान जोर से टंकार ध्वनि होने लगी। फिर तो सारे सैन्धव योद्धा अपने राजा सहित उन बाणों से ढककर वैसे ही अदृश्य हो गये, जैसे टिड्डियों से पेड़ पौधे हो जाते हैं।

तस्य शब्देन वित्रेसुर्भयार्ताश्च विदुद्रुवुः॥ ९॥
मुमुचुश्चाश्रु शोकार्ताः शुशुचुश्चापि सैन्धवाः।
मेघजालनिभं सैन्यं विदार्य शरवृष्टिभिः।
विबभौ कौरवश्रेष्ठः शरदीव दिवाकरः॥ १०॥

तब कितने ही सैन्धव योद्धा, गाण्डीव धनुष की टंकार से ही थर्रा उठे, बहुत से भय से व्याकुल होकर भाग गये और अनेक शोक से पीड़ित होकर आँसू बहाने और शोक करने लगे। तब अपनी बाणवर्षा से शत्रुसेना को विदीर्ण करके कुरुश्रेष्ठ अर्जुन ऐसे सुशोभित होने लगे, जैसे शरदऋतु में बादलों को विदीर्णकर सूर्य सुशोभित होता है।

तांस्तु सर्वान् परिग्लानान् विदित्वा धृतराष्ट्रजा।
दुःशला बालमादाय नप्तारं प्रययौ तदा॥ ११॥
सुरथस्य सुतं वीरं रथेनाथागमत् तदा।
शान्त्यर्थं सर्वयोधानामभ्यगच्छत पाण्डवम्॥ १२॥
सा धनंजयमासाद्य रुरोदार्तस्वरं तदा।
धनंजयोऽपि तां दृष्ट्वा धनुर्विससृजे प्रभुः॥ १३॥
समुत्सृज्य धनुःपार्थो विधिवद् भगिनीं तदा।
प्राह किं करवाणीति सा च तं प्रत्युवाच ह॥ १४॥

तब उन्हें कष्ट पाते हुए जानकर धृतराष्ट्र की पुत्री दुशशला अपने बालक पौत्र को, जो वीर सुरथ का पुत्र था, लेकर सारे योद्धाओं की शान्ति के लिये रथ से वहाँ पाण्डुपुत्र के समीप आयी। वह अर्जुन के पास आकर फूट-फूटकर रोने लगी। अर्जुन ने भी उसे देखकर अपने धनुष को नीचे डाल दिया। धनुष को छोड़कर अर्जुन ने दुशशला का विधिवत् स्वागत किया और कहा कि बताओ मैं तुम्हारे लिये क्या करूँ? तब दुशशला ने उसे कहा कि-

एष ते भरतश्रेष्ठ स्वस्त्रीयस्यात्मजः शिशुः।
अभिवादयते पार्थ तं पश्य पुरुषर्षभ॥ १५॥
इत्युक्तस्तस्य पितः स पप्रच्छार्जुनस्तथा।

स पूर्वं पितरं श्रुत्वा हतं युद्धे त्वयानघ॥ १६॥
त्वामागतं च संश्रुत्य युद्धाय हयसारिणम्।
पितुश्च मृत्युदुः खार्तोऽजहात् प्राणान् धनंजय॥ १७॥
प्राप्तो बीभत्सुरित्येव नाम श्रुत्वैव तेऽनघ।
विषादार्तः पपातोर्व्यां ममार च ममात्मजः॥ १८॥

हे भरतश्रेष्ठ! यह तुम्हारे भानजे का बालक पुत्र है। हे पुरुषश्रेष्ठ! यह तुम कुन्तीपुत्र को प्रणाम कर रहा है। दुश्शला के यह कहने पर अर्जुन ने उसके पिता के बारे में पूछा। तब दुश्शला बोली कि हे निष्पाप! उसने सुन रखा था कि अर्जुन ने उसके पिता को युद्ध में मारा है। फिर उसने जब यह सुना कि अर्जुन घोड़े के पीछे युद्ध के लिये आ रहे हैं, तब हे अर्जुन! पिता के दुख से पहले ही पीड़ित उसने अपने प्राणों को त्याग दिया। हे निष्पाप! अर्जुन आरहे हैं, ऐसा तुम्हारे बारे में सुनते ही मेरा पुत्र विषाद से पीड़ित होकर गिर पड़ा और मर गया।

तं दृष्ट्वा पतितं तत्र ततस्तस्यात्मजं प्रभो।
गृहीत्वा समनुप्राप्ता त्वामद्य शरणैषिणी॥ १९॥
इत्युक्त्वाऽऽर्तस्वरं सा तु मुमोच धृतराष्ट्रजा।
दीना दीनं स्थितं पार्थमब्रवीच्चाप्यधोमुखम्॥ २०॥
स्वसारं समवेक्षस्व स्वस्त्रीयात्मजमेव च।
कर्तुमर्हसि धर्मज्ञ दयां कुरुकुलोद्वह॥ २१॥
अभिमन्योर्यथा जातः परिक्षित् परवीरहा।
तथायं सुरथाज्जातो मम पौत्रो महाभुजः॥ २२॥

हे प्रभो! उसे ऐसी अवस्था में पड़ा हुआ देखकर मैं उसके पुत्र को लेकर आज तुम्हारे पास तुम्हारी शरण में आयी हूँ। ऐसा कहकर वह धृतराष्ट्र की पुत्री आर्तस्वर में फूट-फूटकर रोने लगी। उसे ऐसी दीन अवस्था में देखकर अर्जुन भी दीनभाव से मुख नीचा करके ही खड़े रहे। उसने अर्जुन से फिर यह कहा कि हे कुरुकुल के आधार! तुम अपनी बहन और भानजे के पुत्र को देखो। हे धर्मज्ञ! तुम इस पर दया करो। जैसे अभिमन्यु से शत्रुवीरों का संहार करनेवाला परीक्षित उत्पन्न हुआ है, वैसे ही सुरथ से इस लम्बी बाहों वाले मेरे पौत्र का जन्म हुआ है।

तमादाय नरव्याघ्र सम्प्राप्तास्मि तवान्तिकम्।
शमार्थं सर्वयोधानां शृणु चेदं वचो मम॥ २३॥
एष प्रसाद्य शिरसा प्रशमार्थमरिंदम।
याचते त्वां महाबाहो शमं गच्छ धनंजय॥ २४॥
बालस्य हतबन्धोश्च पार्थ किंचिदजानतः।
प्रसादं कुरु धर्मज्ञ मा मन्युवशमन्वगाः॥ २५॥

हे नरव्याघ्र! मैं इसे लेकर तुम्हारे पास आयी हूँ, जिससे सारे योद्धा शान्त हो जायें। तुम मेरी यह बात सुनो! हे शत्रुओं का दमन करने वाले अर्जुन! यह तुम्हें प्रसन्न करके तुमसे शान्ति के लिये याचना कर रहा है। हे महाबाहु! अब तुम शान्त हो जाओ। हे धर्मज्ञ कुन्तीपुत्र! यह बच्चा है, अभी कुछ नहीं जानता है, इसके बन्धु-बान्धव मारे गये हैं, इसलिये तुम इसके ऊपर कृपा करो। क्रोध मत करो।

एवं ब्रुवत्यां करुणं दुःशलायां धनंजयः।
संस्मृत्य देवीं गान्धारीं धृतराष्ट्रं च पार्थिवम्॥ २६॥
उवाच दुःखशोकार्तः क्षत्रधर्मं व्यगर्हयत्।
यत्कृते बान्धवाः सर्वे मया नीता यमक्षयम्॥ २७॥
इत्युक्त्वा बहु सान्त्वादिप्रसादमकरोज्जयः।
परिष्वज्य च तां प्रीतो विससर्ज गृहान् प्रति॥ २८॥
दुःशला चापि तान् योधान् निवार्य महतो रणात्।
सम्पूज्य पार्थं प्रययौ गृहानेव शुभानना॥ २९॥
एवं निर्जित्य तान् वीरान् सैन्धवान् स धनंजयः।
अन्वधावत धावन्तं हयं कामविचारिणम्॥ ३०॥

जब दुश्शला ऐसे करुणवचन कह रही थी, तब अर्जुन देवी गान्धारी और राजा धृतराष्ट्र को यादकर, दुख और शोक से पीड़ित हुए, क्षत्रियधर्म की निन्दा करते हुए बोले कि इस क्षात्रधर्म को धिक्कार है, जिसके लिये मैंने अपने सारे बन्धु-बान्धवों को मार दिया। ऐसा कहकर अर्जुन ने दुश्शला को बहुत सान्त्वना दी और उसके प्रति अपने कृपाप्रसाद का परिचय दिया। फिर प्रसन्नतापूर्वक उसे गले से लगाकर अपने घर के लिये बिदा किया। सुमुखी दुश्शला भी योद्धाओं को भयानक युद्धक्षेत्र से लौटाकर कुन्तीपुत्र की प्रशंसा करती हुई अपने घर को चली गयी। इसप्रकार सैन्धव वीरों को जीतकर, अर्जुन पुनः स्वेच्छा से विचरण करते हुए घोड़े के पीछे चल दिये।

बारहवाँ अध्याय : अर्जुन द्वारा मगधराज मेघसन्धि को हराना।

स तु वाजी समुद्रान्तां पर्येत्य वसुधामिमाम्।
यदृच्छया समापेदे पुरं राजगृहं तदा॥ १॥
ततः पुरात् सनिष्क्रम्य रथी धन्वी शरी तली।
आसाद्य च महातेजा मेघसन्धिर्धनंजयम्॥ २॥
किमयं चार्यते वाजी प्रोवाचेदं न कौशलात्।
हयमेनं हरिष्यामि प्रयतस्व विमोक्षणे॥ ३॥
अदत्तानुनयो युद्धे यदि त्वं पितृभिर्मम।
करिष्यामि तवातिथ्यं प्रहर प्रहरामि च॥ ४॥

एकबार वह घोड़ा समुद्रपर्यन्त पृथिवी का चक्कर लगाता हुआ, इच्छानुसार राजगृह नाम के नगर में पहुँचा। तब वहाँ का राजा मेघसन्धि धनुषबाण धारणकर, दस्ताने पहनकर तथा रथ में बैठकर नगर से बाहर निकला। उसने अर्जुन के समीप जाकर उनसे बच्चों जैसी यह बात कही कि तुम इस घोड़े के पीछे क्यों चल रहे हो? इसे तो मैं ले जाता हूँ। तुम इसे छुड़ाने का प्रयत्न करो। यदि मेरे पूर्वजों ने कभी युद्ध में तुम्हारा स्वागत नहीं किया, तो मैं करूँगा। तुम पहले मुझ पर प्रहार करो, फिर मैं तुम्हारे ऊपर प्रहार करूँगा।

इत्युक्तः प्रत्युवाचैनं प्रहसन्निव पाण्डवः।
विघ्नकर्ता मया वार्य इति मे व्रतमाहितम्॥ ५॥
भ्रात्रा ज्येष्ठेन नृपते तवापि विदितं ध्रुवम्।
प्रहरस्व यथाशक्ति न मन्युर्विद्यते मम॥ ६॥
इत्युक्तः प्राहरत् पूर्वं पाण्डवं मगधेश्वरः।
ततो गाण्डीवभृच्छूरो गाण्डीवप्रहितैः शरैः॥ ७॥
स मोघं तस्य बाणौघं कृत्वा वानरकेतनः।
शरान् मुमोच ज्वलितान् दीप्तास्यानिव पन्नगान्॥ ८॥

पाण्डुपुत्र ने ऐसा कहे जाने पर मुस्कराते हुए कहा कि मेरा यह व्रत है कि घोड़े के मार्ग में विघ्न डालनेवाले को मुझे रोकना है। इसकी दीक्षा मेरे बड़े भाई ने दिलाई है। हे राजन्! तुम्हें भी निश्चितरूप से इस नियम का पता है। इसलिये तुम अपनी शक्ति के अनुसार मुझ पर प्रहार करो। मुझे तुम्हारे पर क्रोध नहीं है। अर्जुन के यह कहने पर मगधराज ने पाण्डुपुत्र पर पहले प्रहार किया। तब वानर की ध्वजा वाले, शूरवीर, गाण्डीव धनुष को धारण करने वाले अर्जुन ने गाण्डीव धनुष से निकले बाणों से उसके बाणसमूहों को व्यर्थ कर, मुख से आग उगलते हुए सर्पों के समान मानों प्रज्वलित होरहे बाणों को छोड़ा।

ध्वजे पताकादण्डेषु रथे यन्त्रे हयेषु च।
अन्येषु च रथाङ्गेषु न शरीरे न सारथौ॥ ९॥
संरक्ष्यमाणः पार्थेन शरीरे सव्यसाचिना।
मन्यमानः स्ववीर्यं तन्मागधः प्राहिणोच्छरान्॥ १०॥
ततो गाण्डीवधन्वा तु मागधेन भृशाहतः।
बभौ वसन्तसमये पलाशः पुष्पितो यथा॥ ११॥
सव्यसाची तु संक्रुद्धो विकृष्य बलवद् धनुः।
हयांश्चकार निर्जीवान् सारथेश्च शिरोऽहरत्॥ १२॥

उन्होंने मेघसन्धि के ध्वज, पताका दण्ड, रथदण्ड, घोड़ों तथा दूसरे रथ के अंगों पर बाण मारे, पर उसके शरीर और सारथी पर प्रहार नहीं किया। अर्जुन ने तो मगधराज के शरीर की रक्षा की थी, पर वह इसे अपना पराक्रम समझते हुए अर्जुन के ऊपर बाण चलाता रहा। तब अर्जुन मगधराज के बाणों से अत्यन्तघायल होकर वसन्तऋतु में फूले हुए पलाश के वृक्ष के समान प्रतीत होने लगे। तब अत्यन्त क्रोध में भरकर अर्जुन ने अपने बलवान् धनुष को खींचकर, उसके घोड़ों को मार दिया और उसके सारथी का भी सिर उड़ा दिया।

धनुश्चास्य महच्चित्रं क्षुरेण प्रचकर्त ह।
हस्तावापं पताकां च ध्वजं चास्य न्यपातयत्॥ १३॥
स राजा व्यथितो व्यश्वो विधनुर्हतसारथिः।
गदामादाय कौन्तेयमभिदुद्राव वेगवान्॥ १४॥
तस्यापतत एवाशु गदां हेमपरिष्कृताम्।
शरैश्चकर्त बहुधा बहुभिर्गृध्रवाजितैः॥ १५॥
विरथं विधनुष्कं च गदया परिवर्जितम्।
सान्त्वपूर्वमिदं वाक्यमब्रवीत् कपिकेतनः॥ १६॥

अर्जुन ने उसके विचित्र और विशाल धनुष को क्षुरनाम के बाण से काट दिया तथा उसके हाथों के दस्तानों, ध्वजा और पताका को भी काट गिराया। सारथी के मारे जाने और बिना घोड़ों तथा धनुष के हो जाने पर मेघसन्धि को बड़ा दुख हुआ। वह एक गदा को लेकर तेजी से अर्जुन की तरफ दौड़ा। तब अर्जुन ने उस आक्रमण करते हुए की स्वर्णभूषित गदा के शीघ्र ही गृद्धपंखों से युक्त बाणों से कई

टुकड़े कर दिये। फिर रथ, धनुष और गदा से रहित हुए मेघसन्धि से सान्त्वनापूर्वक कहा कि—

पर्याप्तः क्षत्रधर्मोऽयं दर्शितः पुत्र गम्यताम्।
बह्वेतत् समरे कर्म तव बालस्य पार्थिव॥ १७॥
युधिष्ठिरस्य संदेशो न हन्तव्या नृपा इति।
तेन जीवसि राजंस्त्वमपराद्धोऽपि मे रणे॥ १८॥
इति मत्वा तदात्मानं प्रत्यादिष्टं स्म मागधः।
तथ्यमित्यभिगम्यैनं प्राञ्जलिः प्रत्यपूजयत्॥ १९॥
पराजितोऽस्मि भद्रं ते नाहं योद्धुमिहोत्सहे।
यद् यत् कृत्यं मया तेऽद्य तद् ब्रूहि कृतमेव तु॥ २०॥

हे पुत्र! तुमने क्षत्रियधर्म का पर्याप्त प्रदर्शन कर लिया। हे राजन्! अब तुम जाओ। तुम अभी बालक हो। तुमने युद्ध में जो पराक्रम किया है, वही तुम्हारे लिये बहुत है। युधिष्ठिर का सन्देश है कि राजाओं को मारना नहीं है, इसीलिये हे राजन्! तुम युद्ध में मेरा अपराध करके भी जीवित हो। तब मेघसन्धि ने समझ लिया कि इन्होंने ही मेरी जान छोड़ी है। तब उसने हाथ जोड़कर अर्जुन का सत्कार किया और कहा कि मैं आपसे पराजित हूँ, आपका कल्याण हो। मैं आपसे युद्ध की इच्छा नहीं रखता। अब आपको जो कार्य कराना है, उसे बताइये तथा उसे पूरा हुआ ही समझिये।

तमर्जुनः समाश्वास्य पुनरेवेदमब्रवीत्।
आगन्तव्यं परां चैत्रीमश्वमेधे नृपस्य नः॥ २१॥
इत्युक्तः स तथेत्युक्त्वा पूजयामास तं हयम्।
फाल्गुनं च युधि श्रेष्ठं विधिवत् सहदेवजः॥ २२॥
ततो यथेष्टमगमत् पुनरेव स केसरी।
ततः समुद्रतीरेण वङ्गान् पुण्ड्रान् सकोसलान्॥ २३॥

अर्जुन ने उसे आश्वासन देकर पुनः यही कहा कि तुम्हें आगामी चैत्र मास की पूर्णिमा को हमारे राजा के अश्वमेध यज्ञ में आना है। ऐसा कहे जाने पर सहदेवपुत्र मेघसन्धि ने अच्छा ऐसा ही होगा, यह कहकर घोड़े तथा युद्ध में श्रेष्ठ अर्जुन का विधिपूर्वक सत्कार किया। फिर वह घोड़ा इच्छा के अनुसार समुद्र के किनारे–किनारे बंग, पुण्ड्र और कोसल आदि देशों को गया।

तेरहवाँ अध्याय : अर्जुन का गान्धार देश में शकुनिपुत्र को हराना।

ततः स पुनरावर्त्य हयः कामचरो बली।
आससाद पुरीं रम्यां चेदीनां शुक्तिसाह्वयाम्॥ १॥
शरभेणार्चितस्तत्र शिशुपालसुतेन सः।
युद्धपूर्वं तदा तेन पूजया च महाबलः॥ २॥
काशीनगान् कोसलांश्च किरातानथ तङ्गणान्।
पूजां तत्र यथान्यायं प्रतिगृह्य धनंजयः॥ ३॥
पुनरावृत्य कौन्तेयो दशार्णानगमत् तदा।
तत्र चित्राङ्गदो नाम बलवानरिमर्दनः॥ ४॥
तेन युद्धमभूत् तस्य विजयस्यातिभैरवम्।

उसके पश्चात् वह इच्छानुसार घूमने वाला बलवान् घोड़ा पुनः घूमकर चेदीराजाओं की नगरी रमणीय शुक्ति पुरी में गया। वहाँ शिशुपाल के पुत्र शरभ ने पहले तो युद्ध किया, फिर उसने उस महाबली घोड़े का सत्कार किया। उसके पश्चात् वह घोड़ा काशी, कोसल, किरात और तंगण आदि देशों में गया। वहाँ यथोचित सम्मान को प्राप्तकर कुन्तीपुत्र अर्जुन पुनः दशार्ण देश में गये। वहाँ चित्रांगद नाम के बलवान् और शत्रुमर्दन राजा रहते थे। उनके साथ अर्जुन का बड़ा भयानक युद्ध हुआ।

तं चापि वशमानीय किरीटी पुरुषर्षभः॥ ५॥
निषादराज्ञो विषयमेकलव्यस्य जग्मिवान्।
एकलव्यसुतश्चैनं युद्धेन जगृहे तदा॥ ६॥
तत्र चक्रे निषादैः स संग्रामं लोमहर्षणम्।
ततस्तमपि कौन्तेयः समरेष्वपराजितः॥ ७॥
जिगाय युधि दुर्धर्षो यज्ञविघ्नार्थमागतम्।
अर्चितः प्रययौ भूयो दक्षिणं सलिलार्णवम्॥ ८॥

किरीटधारी पुरुषश्रेष्ठ अर्जुन ने उसे भी अपने वश में किया और फिर वे निषादराज एकलव्य के देश में गये। एकलव्य के पुत्र ने उनका युद्ध में स्वागत किया। वहाँ अर्जुन ने निषादों के साथ रोमांचकारी संग्राम किया। फिर युद्ध में अपराजित दुर्धर्ष कुन्तीपुत्र ने यज्ञ में विघ्न के लिये आये हुए उसे भी युद्ध में जीता। उसके द्वारा सत्कृत होकर अर्जुन दक्षिण सागर के तट पर गये।

तत्रापि द्रविडैरान्ध्रै रौद्रैर्माहिषकैरपि।
तथा कोल्लगिरेयैश्च युद्धमासीत् किरीटिनः॥ ९॥
तांश्चापि विजयो जित्वा नातितीव्रेण कर्मणा।
तुरङ्गमवशेनाथ सुराष्ट्रानभितो ययौ॥ १०॥
गोकर्णमथ चासाद्य प्रभासमपि जग्मिवान्।
ततो द्वारवतीं रम्यां वृष्णिवीराभिपालिताम्॥ ११॥
आससाद हयः श्रीमान् कुरुराजस्य यज्ञियः।

वहाँ भी द्रविड़, आन्ध्र, रौद्र, माहिषक, और कोलाचल के प्रदेशों में रहनेवाले वीरों से अर्जुन का युद्ध हुआ। उनको हलके पराक्रम से ही जीतकर, घोड़े के साथ चलने के लिये विवश वे अर्जुन सौराष्ट्र, गोकर्ण, और प्रभासक्षेत्र में गये। फिर रमणीय द्वारिकापुरी में जो वृष्णिवीरों द्वारा पालित थी, श्रीमान् कुरुराज का यज्ञ का घोड़ा पहुँचा।

ततः पुराद् विनिष्क्रम्य वृष्ण्यन्धकपतिस्तदा॥ १२॥
सहितो वसुदेवेन मातुलेन किरीटिनः।
तौ समेत्य कुरुश्रेष्ठं विधिवत् प्रीतिपूर्वकम्॥ १३॥
परया भारतश्रेष्ठं पूजया समवस्थितौ।
ततस्ताभ्यामनुज्ञातो ययौ येन हयो गतः॥ १४॥
ततः स पश्चिमं देशं समुद्रस्य तदा हयः।
क्रमेण व्यचरत् स्फीतं ततः पञ्चनदं ययौ॥ १५॥
तस्मादपि स कौरव्यः गन्धारविषयं हयः।
विचचार यथाकामं कौन्तेयानुगतस्तदा॥ १६॥

वहाँ वृष्णि और अन्धकों के राजा उग्रसेन अर्जुन के मामा वसुदेव के साथ नगर से बाहर आये। वे दोनों कुरुश्रेष्ठ अर्जुन से प्रेमपूर्वक और विधिपूर्वक मिले। उन्होंने उस भरतकुल के श्रेष्ठ वीर का बड़ा स्वागत किया। फिर उनसे आज्ञा लेकर अर्जुन घोड़े के पीछे चल दिये। वहाँ से घोड़ा पश्चिम सागर के तटवर्ती प्रदेशों में विचरता हुआ क्रमशः पंचनद प्रदेश में जा पहुँचा। कुरुराज का वह घोड़ा वहाँ से भी चलकर गान्धार देश में गया। कुन्तीपुत्र अर्जुन भी उसके पीछे वहीं जापहुँचे।

ततो गान्धारराजेन युद्धमासीत् किरीटिनः।
घोरं शकुनिपुत्रेण पूर्ववैरानुसारिणा॥ १७॥
शकुनेस्तनयो वीरो गान्धाराणां महारथः।
प्रत्युद्ययौ गुडाकेशं सैन्येन महता वृतः॥ १८॥
अमृष्यमाणास्ते योधा नृपस्य शकुनेर्वधम्।
स तानुवाच धर्मात्मा बीभत्सुरपराजितः॥ १९॥
युधिष्ठिरस्य वचनं न च ते जगृहुर्हितम्।
वार्यमाणाऽपि पार्थेन सान्त्वपूर्वममर्षिताः॥ २०॥
परिवार्य हयं जग्मुस्ततश्चुक्रोध पाण्डवः।

फिर पुराने बैर को यादकर शकुनि के पुत्र गान्धारराज के साथ अर्जुन का घोर युद्ध हुआ। गान्धारों का महारथी, शकुनि का वीर पुत्र विशाल सेना के साथ अर्जुन का सामना करने को आया। गान्धार देश के योद्धा शकुनि के वध का समाचार सुनकर अमर्ष में भरे हुए थे। किसी से परास्त न होने वाले धर्मात्मा अर्जुन ने उन्हें युधिष्ठिर की बात सुनायी, पर वे उस हितकारी बात को ग्रहण न कर सके। अर्जुन द्वारा शान्तिपूर्वक मना करने पर भी अमर्ष में भरे हुए वे घोड़े को घेरकर पकड़ने के लिये आगे बढ़े। तब पाण्डुपुत्र को क्रोध आगया।

ततः शिरांसि दीप्ताग्रैस्तेषां चिच्छेद पाण्डवः॥ २१॥
क्षुरैर्गाण्डीवनिर्मुक्तैर्नातियत्नादिवार्जुनः।
वध्यमानेषु तेष्वाजौ गान्धारेषु समन्ततः॥ २२॥
स राजा शकुनेः पुत्रः पाण्डवं प्रत्यवारयत्।
तं युध्यमानं राजानं क्षत्रधर्मे व्यवस्थितम्॥ २३॥
पार्थोऽब्रवीन्न मे वध्या राजानो राजशासनात्।
अलं युद्धेन ते वीर न तेऽस्त्वद्य पराजयः॥ २४॥
इत्युक्तस्तदनादृत्य वाक्यमज्ञानमोहितः।
स शक्रसमकर्माणं समवाकिरदाशुगैः॥ २५॥

तब अर्जुन गाण्डीव धनुष से निकले, चमकती धारवाले क्षुरनाम के बाणों से बिना किसी परिश्रम के उनके सिरों को काटने लगे। जब युद्ध में गान्धारवीरों का संहार होने लगा, तब शकुनि के पुत्र गान्धारराज ने अर्जुन को रोका। क्षत्रियधर्म में स्थित होकर युद्ध करते हुए उस राजा से तब कुन्तीपुत्र ने कहा कि राजा युधिष्ठिर के आदेश से मैं राजाओं को नहीं मार रहा हूँ इसलिये हे वीर! तुम युद्ध से हट जाओ, जिससे तुम्हारी पराजय न हो। ऐसा कहने पर भी अज्ञान से मोहित होने के कारण अर्जुन की अवहेलना कर वह उस इन्द्र के समान पराक्रमी पर शीघ्रगामी बाणों की वर्षा करने लगा।

तस्य पार्थः शिरस्त्राणमर्धचन्द्रेण पत्रिणा।
अपाहरदमेयात्मा जयद्रथशिरो यथा॥ २६॥
तं दृष्ट्वा विस्मयं जग्मुर्गान्धाराः सर्व एव ते।
इच्छता तेन न हतो राजेत्यपि च तं विदुः॥ २७॥

गान्धारराजपुत्रस्तु पलायनकृतक्षणः।
ययौ तैरेव सहितस्त्रस्तैः क्षुद्रमृगैरिव॥ २८॥
ततो गान्धारराजस्य मन्त्रिवृद्धपुरःसरा।
जननी निर्ययौ भीता पुरस्कृत्यार्घ्यमुत्तमम्॥ २९॥

तब अमितआत्मा कुन्तीपुत्र ने अर्धचन्द्राकार बाण से उसके शिरस्त्राण को वैसे ही उड़ा दिया, जैसे उन्होंने जयद्रथ का सिर उड़ाया था। यह देखकर गान्धार वीरों को बड़ा विस्मय हुआ। उन्होंने समझ लिया कि इन्होंने जानबूझकर राजा को नहीं मारा है। तब गान्धारराज शकुनि का पुत्र भागने का अवसर देखने लगा और छोटे मृगों के समान भयभीत हुए दूसरे सैनिकों के साथ ही भाग निकला। फिर गान्धारराज की डरी हुई माता बूढ़े मन्त्रियों के साथ उत्तम अर्घ्य लेकर युद्धक्षेत्र में आयी।

तां पूजयित्वा बीभत्सुः प्रसादमकरोत् प्रभुः।
शकुनेश्चापि तनयं सान्त्वयन्निदमब्रवीत्॥ ३०॥
न मे प्रियं महाबाहो यत्ते बुद्धिरियं कृता।
प्रतियोद्धुममित्रघ्न भ्रातैव त्वं ममानघ॥ ३१॥
गान्धारीं मातरं स्मृत्वा धृतराष्ट्रकृतेन च।
तेन जीवसि राजंस्त्वं निहतास्त्वनुगास्तव॥ ३२॥
मैवं भूः शाम्यतां वैरं मा ते भूद्‌बुद्धिरीदृशी।
गच्छेथास्त्वं परां चैत्रीमश्वमेधे नृपस्य नः॥ ३३॥

तब शक्तिशाली अर्जुन ने उसका सम्मानकर उसे प्रसन्न किया और शकुनि के पुत्र को भी सान्त्वना देते हुए बोले कि हे शत्रुसूदन, महाबाहु, निष्पाप, वीर! यह मुझे प्रिय नहीं लगा कि तुमने मुझसे युद्ध करने का विचार किया, क्योंकि तुम मेरे भाई ही तो हो। माता गान्धारी को यादकर और धृतराष्ट्र के सम्बन्ध से हे राजन्! तुम जीवित हो और केवल तुम्हारे सैनिक ही मारे गये हैं। अब ऐसा नहीं होना चाहिये। बैर भाव की शान्ति करो। हमारे विरुद्ध ऐसी बुद्धि पुनः मत करना। तुम आने वाली चैत्र की पूर्णिमा को हमारे राजा के यज्ञ में आना।

चौदहवाँ अध्याय : यज्ञ की तैयारी।

इत्युक्त्वानुययौ पार्थो हयं कामविहारिणम्।
न्यवर्तत ततो वाजी येन नागाह्वयं पुरम्॥ १॥
तं निवृत्तं तु शुश्राव चारेणैव युधिष्ठिरः।
श्रुत्वार्जुनं कुशलिनं स च हृष्टमनाऽभवत्॥ २॥
विजयस्य च तत् कर्म गान्धारविषये तदा।
श्रुत्वा चान्येषु देशेषु स सुप्रीतोऽभवत् तदा॥ ३॥

गान्धारराज से ऐसा कहकर कुन्तीपुत्र पुनः इच्छानुसार चलने वाले घोड़े के पीछे चलने लगे। फिर घोड़ा लौटकर हस्तिनापुर की तरफ चला। युधिष्ठिर ने जब गुप्तचरों से सुना कि घोड़ा वापिस आरहा है और अर्जुन भी सकुशल हैं, तब उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। अर्जुन के गान्धारदेश तथा दूसरे स्थानों पर किये गये पराक्रमयुक्त कार्यों को सुनकर वे अत्यन्त प्रसन्न हुए।

नोट :– यज्ञ के लिये छोड़े गये घोड़े की यात्रा के वर्णन में अनेक बार उसके लिये इच्छानुसार यह शब्द प्रयोग किया गया है। इस शब्द से यह भ्रान्ति हो सकती है कि शायद घोड़े ने अपनी इच्छानुसार जहाँ–तहाँ भ्रमण किया, पर यह नहीं समझना चाहिये। वास्तव में यहाँ इच्छानुसार का मतलब रक्षकों की इच्छानुसार यह है, घोड़े की अपनी इच्छानुसार यह नहीं है। घोड़ा तो एक अज्ञानी पशु है। उसे क्या पता कि मुझे किन–किन देशों में जाना है और वहाँ घूम–फिरकर निश्चित समय पर वापिस फिर हस्तिनापुर ही आना है। घोड़ा तो अपनी इच्छानुसार वहीं जायेगा जहाँ उसे खाने को बढ़िया घास और पीने को पानी मिलेगा। जहाँ उसे ये चीजें मिल जायेंगी, उन्हें खाता पीता हुआ वह एक लम्बा समय वहीं व्यतीत कर देगा, आगे की यात्रा पर जायेगा ही नहीं। इसके अतिरिक्त इसी पर्व के आठवें अध्याय के चौदहवें श्लोक में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि अर्जुन ने घोड़े को चलाया न कि घोड़ा अपनी इच्छा से चला।

एतस्मिन्नेव काले तु द्वादशीं माघमासिकीम्।
इष्टं गृहीत्वा नक्षत्रं धर्मराजो युधिष्ठिरः॥ ४॥
समानीय महातेजाः सर्वान् भ्रातृन् महीपतिः।
भीमं च नकुलं चैव सहदेवं च कौरव॥ ५॥
प्रोवाचेदं वचः काले तदा धर्मभृतां वरः।
आमन्त्र्य वदतां श्रेष्ठो भीमं प्रहरतां वरम्॥ ६॥
आयाति भीमसेनासौ सहाश्वेन तवानुजः।
यथा मे पुरुषाः प्राहुर्ये धनंजयसारिणः॥ ७॥

उपस्थितश्च कालोऽयमभितो वर्तते हयः।
माघी च पौर्णमासीयं मासः शेषो वृकोदर॥ ८॥

उसी समय, जब माघ मास की शुक्ल पक्ष की बारहवीं तिथि और इष्ट अर्थात् पुष्य नक्षत्र था, तब महातेजस्वी धर्मराज कुरुनन्दन राजा ने अपने भाइयों भीमसेन, नकुल और सहदेव को बुलाकर और प्रहार करनेवालों में श्रेष्ठ भीमसेन को सम्बोधनकर बोलनेवालों में श्रेष्ठ राजा ने यह कहा कि हे भीमसेन! तुम्हारा छोटा भाई घोड़े के साथ आरहा है, ऐसा मेरं दूतों ने जो अर्जुन का समाचार लेने गये थे, कहा है। हे भीम! अब यज्ञ का समय भी निकट आ गया है और घोड़ा भी पास ही है। माघ की पूर्णिमा आनेवाली है और बीच में एक मास ही शेष है।

प्रस्थाप्यन्तां हि विद्वांसो ब्राह्मणा वेदपारगाः।
वाजिमेधार्थसिद्ध्यर्थं देशं पश्यन्तु यज्ञियम्॥ ९॥
इत्युक्तः स तु तच्चक्रे भीमो नृपतिशासनम्।
हृष्टः श्रुत्वा गुडाकेशमायान्तं पुरुषर्षभम्॥ १०॥
ततो ययौ भीमसेनः प्राज्ञैः स्थपतिभिः सह।
ब्राह्मणानग्रतः कृत्वा कुशलान् यज्ञकर्मणि॥ ११॥
तं स शालचयं श्रीमत् सप्रतोलीसुघट्टितम्।
मापयामास कौरव्यो यज्ञवाटं यथाविधि॥ १२॥

अब वेद के विद्वान् ब्राह्मणों को भेजो, जो यज्ञशाला का स्थान निश्चित करें। ऐसा कहे जाने पर भीमसेन ने जो पुरुषश्रेष्ठ अर्जुन के आने से बहुत प्रसन्न थे, तुरन्त राजा के आदेश का पालन किया। वे विद्वान् ब्राह्मणों को आगेकर कुशल कारीगरों के साथ नगर से बाहर आये। वहाँ उन्होंने शाल वृक्षों से युक्त एक सुन्दर स्थान को नपवाया। फिर कुरुवंशी भीमसेन ने वहाँ उत्तम मार्गों से सुशोभित यज्ञभूमि का विधिपूर्वक निर्माण कराया।

अन्तःपुराणां राज्ञां च नानादेशसमीयुषाम्।
कारयामास धर्मात्मा तत्र तत्र यथाविधि॥ १३॥
ब्राह्मणानां च वेश्मानि नानादेशसमीयुषाम्।
कारयामास कौन्तेयो विधिवत् तान्यनेकशः॥ १४॥
तेषामभ्यागतानां च स राजा कुरुवर्धनः।
व्यादिदेशान्नपानानि शय्याश्चाप्यतिमानुषाः॥ १५॥
वाहनानां च विविधाः शालाः शालीक्षुगोरसैः।
उपेता भरतश्रेष्ठो व्यादिदेश स धर्मराट्॥ १६॥

धर्मात्मा, कुन्तीपुत्र भीमसेन ने वहाँ अन्तःपुर की स्त्रियों, विभिन्न देशों से आनेवाले राजाओं और ब्राह्मणों के रहने के लिये विधि के अनुसार बहुत सारे शिविर बनवाये। कुरुकुल की वृद्धि करने वाले राजा युधिष्ठिर ने अभ्यागतों के लिये अन्नपान और अलौकिक शय्याओं का प्रबन्ध किया। भरतश्रेष्ठ, धर्मराज युधिष्ठिर ने राजाओं की सवारियों के लिये भी धान, ऊख और गोरस से भरे पूरे घर दिये।

तथा तस्मिन् महायज्ञे धर्मराजस्य धीमतः।
समाजग्मुर्मुनिगणा बहवो ब्रह्मवादिनः॥ १७॥
सर्वांश्चताननुययौ यावदावसथान् प्रति।
स्वयमेव महातेजा दम्भं त्यक्त्वा युधिष्ठिरः॥ १८॥
ततः कृत्वा स्थपतयः शिल्पिनोऽन्ये च ये तदा।
कृत्स्नं यज्ञविधिं राज्ञो धर्मज्ञाय न्यवेदयन्॥ १९॥
तच्छ्रुत्वा धर्मराजस्तु कृतं सर्वमतन्द्रितः।
हृष्टरूपोऽभवद् राजा सह भ्रातृभिरादृतः॥ २०॥

धीमान् धर्मराज के उस महान् यज्ञ में बहुत से ब्रह्मवादी मुनि भी पधारे थे। महातेजस्वी युधिष्ठिर अपने अभिमान को छोड़कर आने वालों का स्वयं ही सत्कार करते और जबतक उनके लिये निवास स्थान का प्रबन्ध नहीं हो जाता, वे उनके साथ ही रहते थे। तब राजमिस्त्रियों, और कारीगरों ने धर्मज्ञ राजा से आकर निवेदन किया कि यज्ञ मण्डप का सारा कार्य पूरा होगया है। यह सुनकर आलस्यरहित, धर्मराज, सम्मानित, राजा युधिष्ठिर अपने भाइयों के साथ बहुत प्रसन्न हुए।

तस्मिन् यज्ञे प्रवृत्ते तु वाग्मिनो हेतुवादिनः।
हेतुवादान् बहूनाहुः परस्परजिगीषवः॥ २१॥
ददृशुस्तं नृपतयो यज्ञस्य विधिमुत्तमम्।
एवं प्रमुदितं सर्वं पशुगोधनधान्यतः॥ २२॥
यज्ञवाटं नृपा दृष्ट्वा परं विस्मयमागताः।
ब्राह्मणानां विशां चैव बहुमृष्टान्नमृद्धिमत्॥ २३॥
पूर्णे शतसहस्रे तु विप्राणां तत्र भुञ्जताम्।
दुन्दुभिर्मेघनिर्घोषो मुहुर्मुहुरताड्यत॥ २४॥
विननादासकृच्चापि दिवसे दिवसे गते।

जब यज्ञ का कार्य आरम्भ होने लगा, तब बहुत से प्रवचन कुशल और युक्तिवादी विद्वान् एक दूसरे को जीतने की इच्छा से अनेक प्रकार के तर्क

प्रस्तुत करने लगे। यज्ञ में सम्मिलित होने के लिये आये राजा लोग भी घूमकर यज्ञ मण्डप की उत्तम निर्माण विधि को देख रहे थे। प्रसन्नता के वातावरण से युक्त इसप्रकार के सारे यज्ञ शाला, पशु, गौ, धन और धान्य आदि को देखकर राजा लोग अत्यन्त विस्मय को प्राप्त हो रहे थे। ब्राह्मणों और वैश्यों के लिये वहाँ बहुत स्वादिष्ट और ऐश्वर्य से युक्त अन्न का भंडार भरा हुआ था। वहाँ जब एक लाख ब्राह्मण भोजन कर लेते थे, बादलों की गर्जना के समान शब्द वाला डंका पीटा जाता था। इस प्रकार के डंके वहाँ दिन में कई बार पीटे जाते थे।

एवं स ववृते यज्ञो धर्मराजस्य धीमतः॥ २५॥
स्रग्विणश्चापि ते सर्वे सुमृष्टमणिकुण्डलाः।
पर्यवषन् द्विजातींस्ताञ्शतशोऽथ सहस्रशः॥ २६॥
विविधान्यन्नपानानि पुरुषा येऽनुयायिनः।
ते वै नृपोपभोज्यानि ब्राह्मणानां ददुश्च ह॥ २७॥

धीमान् धर्मराज का वह यज्ञ इस प्रकार से प्रतिष्ठित चल रहा था। वहाँ सैकड़ों और हजारों लोग जो राजा के अनुयायी थे, सोने के हार और विशुद्ध मणिमय कुण्डलों से अलंकृत होकर ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों को तरह–तरह के खाने और पीने के पदार्थ परोसते थे। विशिष्ट ब्राह्मणों को वे राजोचित भोजन भी अर्पित करते थे।

पन्द्रहवाँ अध्याय : अर्जुन का हस्तिनापुर लौटना।

युधिष्ठिरसमीपे तु कथान्ते मधुसूदनः।
अर्जुनं कथयामास बहुसंग्रामकर्षितम्॥ १॥
आगमद् द्वारिकावासी ममाप्तः पुरुषो नृप।
योऽद्राक्षीत् पाण्डवश्रेष्ठं बहुसंग्रामकर्षितम्॥ २॥
समीपे च महाबाहुमाचष्ट च मम प्रभो।
कुरु कार्याणि कौन्तेय हयमेधार्थसिद्धये॥ ३॥
इत्युक्तः प्रत्युवाचैनं धर्मराजो युधिष्ठिरः।
दिष्ट्या स कुशली जिष्णुरुपायाति च माधव॥ ४॥

श्रीकृष्ण जी युधिष्ठिर के समीप बैठे हुए उनसे विभिन्न विषयों पर बातचीत कर रहे थे। बातचीत के अन्त में उन्होंने बताया कि अर्जुन बहुत से युद्धों में शत्रुओं का सामना करते हुए दुर्बल हो गये हैं। उन्होंने कहा कि हे राजन्! मेरे पास द्वारिका का निवासी एक विश्वास पात्र व्यक्ति आया था। जिसने अर्जुन को अपनी आँखों से देखा था। वे पाण्डव श्रेष्ठ अनेक स्थानों पर युद्ध करने के कारण दुर्बल हो गये हैं। उसने यह भी बताया है कि वे महाबाहु अब निकट ही आगये हैं। इसलिये हे कुन्तीनन्दन प्रभो! अब अश्वमेध यज्ञ की सिद्धि के लिये आवश्यक कार्यों को कीजिये। श्रीकृष्ण जी के ऐसा कहने पर धर्मराज युधिष्ठिर ने उन्हें उत्तर दिया कि हे माधव! बड़े सौभाग्य की बात है कि अर्जुन सकुशल लौट रहे हैं।

यदिदं संदिदेशास्मिन् पाण्डवानां बलाग्रणीः।
तदा ज्ञातुमिहेच्छामि भवता यदुनन्दन॥ ५॥
इत्युक्तो धर्मराजेन वृष्ण्यन्धकपतिस्तदा।
प्रोवाचेदं वचो वाग्मी धर्मात्मानं युधिष्ठिरम्॥ ६॥
इदमाह महाराज पार्थवाक्यं स्मरन् नरः।
वाच्यो युधिष्ठिरः कृष्ण काले वाक्यमिदं मम॥ ७॥
आगमिष्यन्ति राजानः सर्वे वै कौरवर्षभ।
प्राप्तानां महतां पूजा कार्या ह्येतत् क्षमं हि नः॥ ८॥

हे यदुनन्दन! पाण्डवसेना के अग्रगामी अर्जुन ने यज्ञ के सम्बन्ध में यदि कोई सन्देश दिया हो तो मैं उसे भी सुनना चाहता हूँ। धर्मराज द्वारा यह कहे जाने पर वृष्णि और अन्धकों के स्वामी, बोलने में चतुर श्रीकृष्ण जी ने धर्मात्मा युधिष्ठिर से कहा कि हे महाराज! अर्जुन के वाक्यों को याद करते हुए उस व्यक्ति ने मुझसे यह कहा कि हे कृष्ण आप उचित समय पर युधिष्ठिर को मेरी यह बात सुना देना। उन्होंने कहा है कि हे कुरुश्रेष्ठ! यज्ञ में प्रायः सारे राजा पधारेंगे। उन आने वालों का बहुत अधिक सम्मान होना चाहिये। यह हमारे योग्य कार्य है।

इत्येतद्वचनाद् राजा विज्ञाप्यो मम मानद।
यथा चात्ययिकं न स्याद् यदर्घ्याहरणेऽभवत्॥ ९॥
कर्तुमर्हति तद राजा भवांश्चाप्यनुमन्यताम्।
राजद्वेषान्न नश्येयुरिमा राजन् पुनः प्रजाः॥ १०॥

इदमन्यच्च कौन्तेय वचः स पुरुषोऽब्रवीत्।
धनंजयस्य नृपते तन्मे निगदतः शृणु॥ ११॥
उपायास्यति यज्ञं नो मणिपूरपतिर्नृपः।
पुत्रो मम महातेजा दयितो बभ्रुवाहनः॥ १२॥
तं भवान् मदपेक्षार्थं विधिवत् प्रतिपूजयेत्।
स तु भक्ताऽनुरक्तश्च मम नित्यमिति प्रभो॥ १३॥

हे दूसरों को मान देनेवाले! तुम मेरीतरफ से राजा युधिष्ठिर को यह निवेदन कर देना कि राजसूय यज्ञ में अर्घ्य देते समय जो दुर्घटना होगयी थी, वैसी इस बार नहीं होनी चाहिये। राजा को ऐसा ही करना चाहिये और आप भी उन्हें ऐसी ही सलाह दें, जिससे राजाओं के आपस के द्वेष से इन सारी प्रजाओं का पुनः विनाश न हो पाये। हे कुन्तीपुत्र! उस व्यक्ति ने अर्जुन की एक बात और कही, उसे भी हे राजन्! आप मुझसे सुन लीजिये। उन्होंने यह कहा कि मणिपुर का राजा बभ्रुवाहन भी इस यज्ञ में आयेगा। वह महातेजस्वी मेरा प्रिय पुत्र है। हे प्रभो! उसकी मेरे प्रति सदा भक्ति और आसक्ति रहती है। इसलिये आप मेरे कारण उसका विधि पूर्वक विशेष सत्कार करें।

तेषां कथयतामेव पुरुषोऽर्जुनसंकथाः।
उपायाद् वचनाद् दूतो विजयस्य महात्मनः॥ १४॥
सोऽभिगम्य कुरुश्रेष्ठं नमस्कृत्य च बुद्धिमान्।
उपायातं नरव्याघ्रं फाल्गुनं प्रत्यवेदयत्॥ १५॥
तच्छ्रुत्वा नृपतिस्तस्य हर्षबाष्पाकुलेक्षणः।
प्रियाख्याननिमित्तं वै ददौ बहुधनं तदा॥ १६॥

इसप्रकार जब वे अर्जुन के विषय में बातें कर रहे थे, तभी मनस्वी अर्जुन का भेजा हुआ दूत वहाँ आपहुँचा। उस बुद्धिमान् दूत ने कुरुश्रेष्ठ को प्रणामकर यह कहा कि वे नरव्याघ्र अर्जुन निकट में आगये हैं। यह सुनकर प्रसन्नता के कारण राजा की आँखों में आँसू आगये। यह समाचार सुनाने की खुशी में उन्होंने दूत को बहुत सा धन पुरस्कार में दिया।

ततो द्वितीये दिवसे महाञ्शब्दो व्यवर्धत।
आगच्छति नरव्याघ्रे कौरवाणां धुरंधरे॥ १७॥
ततो रेणुः समुद्भूतो विबभौ तस्य वाजिनः।
अभितो वर्तमानस्य यथोच्चैःश्रवसस्तथा॥ १८॥
तत्र हर्षकरी वाचो नराणां शुश्रुवेऽर्जुनः।
दिष्ट्यासि पार्थ कुशली धन्यो राजा युधिष्ठिरः॥ १९॥
कोऽन्यो हि पृथिवीं कृत्स्नां जित्वा हि युधि पार्थिवान्।
चारयित्वा हयश्रेष्ठमुपागच्छेदृतेऽर्जुनात्॥ २०॥

फिर दूसरे दिन कौरवधुरन्धर, नरश्रेष्ठ अर्जुन के नगर के समीप आते समय नगर में महान् कोलाहल होने लगा। उच्चैश्रवा के समान उस यज्ञ के घोड़े की टापों से उड़ायी हुई धूल तब आकाश में सुशोभित होने लगी। लोगों के मुख से अर्जुन ने इसप्रकार की हर्ष से युक्त बातें सुनी जैसे हे कुन्तीपुत्र! सौभाग्य से तुम सकुशल हो। राजा युधिष्ठिर धन्य हैं। अर्जुन के सिवाय ऐसा कौन दूसरा वीर है जो इस श्रेष्ठ घोड़े को सारी भूमि पर घुमाकर और युद्ध में राजाओं को जीतकर वापिस लौट आये।

ये व्यतीता महात्मानो राजानः सगरादयः।
तेषामपीदृशं कर्म न कदाचन शुश्रुम॥ २१॥
नैतदन्ये करिष्यन्ति भविष्या वसुधाधिपाः।
यत् त्वं कुरुकुलश्रेष्ठ दुष्करं कृतवानसि॥ २२॥
इत्येवं वदतां तेषां पुंसां कर्णसुखा गिरः।
शृण्वन् विवेश धर्मात्मा फाल्गुनो यज्ञसंस्तरम्॥ २३॥
ततो राजा सहामात्यः कृष्णश्च यदुनन्दनः।
धृतराष्ट्रं पुरस्कृत्य तं प्रत्युद्ययुस्तदा॥ २४॥

पहले सगर आदि जो मनस्वी राजा लोग हुए हैं, हमने उनके द्वारा भी इसप्रकार किये गये महान् कार्य के विषय में नहीं सुना है। हे कुरुकुल श्रेष्ठ! तुमने यह जो दुष्कर कार्य किया है, उसे भविष्य में होने वाले राजा लोग भी नहीं कर पायेंगे। इसप्रकार की कानों को सुख देने वाली उन लोगों की बातों को सुनते हुए धर्मात्मा अर्जुन ने यज्ञमण्डप में प्रवेश किया। तब अपने मन्त्रियों के साथ राजा युधिष्ठिर और यदुनन्दन श्रीकृष्ण धृतराष्ट्र को आगेकर अर्जुन की अगवानी करने के लिये आगे बढ़े।

सोऽभिवाद्य पितुः पादौ धर्मराजस्य धीमतः।
भीमादींश्चापि सम्पूज्य पर्यष्वजत केशवम्॥ २५॥
तैः समेत्यार्चितस्तांश्च प्रत्यर्च्याथ यथाविधि।
विशश्राम महाबाहुस्तीरं लब्ध्वेव पारगः॥ २६॥
एतस्मिन्नेव काले तु स राजा बभ्रु वाहनः।
मातृभ्यां सहितो धीमान् कुरूनेव जगाम ह॥ २७॥
तत्र वृद्धान् यथावत् स कुरूनन्यांश्च पार्थिवान्।
अभिवाद्य महाबाहुस्तैश्चापि प्रतिनन्दितः।
प्रविवेश पितामह्याः कुन्त्या भवनमुत्तमम्॥ २८॥

तब अर्जुन ने ताऊ धृतराष्ट्र के तथा धीमान् धर्मराज युधिष्ठिर के चरणों में प्रणामकर, भीमसेन आदि का भी सत्कारकर श्रीकृष्णजी को अपने गले से लगाया। फिर उन सबने मिलकर अर्जुन का स्वागत सत्कार किया और महाबाहु अर्जुन ने यथाविधि सबका सम्मानकर तत्पश्चात् उसीप्रकार विश्राम किया जैसे समुद्र के पार जाने की इच्छा वाला व्यक्ति किनारे पर पहुँचकर करता है। इसी समय राजा बभ्रुवाहन अपनी दोनों माताओं चित्रांगदा और उलूपी के साथ कुरुदेश में आ पहुँचा। वहाँ उस महाबाहु ने वृद्ध कुरुवंशी राजाओं को यथायोग्य प्रणाम किया और उनके द्वारा भी सत्कार को प्राप्त किया। उसके बाद उसने अपनी दादी कुन्ती के श्रेष्ठ भवन में प्रवेश किया।

सोलहवाँ अध्याय : बभ्रुवाहन का स्वागत। यज्ञ का आरम्भ और समाप्ति।

स प्रविश्य महाबाहुः पाण्डवानां निवेशनम्।
पितामहीमभ्यवन्दत् साम्ना परमवल्गुना॥ १॥
ततश्चित्राङ्गदा देवी कौरव्यस्यात्मजापि च।
पृथां कृष्णां च सहिते विनयेनोपजग्मतु॥ २॥
सुभद्रां च यथान्यायं याश्चान्याः कुरुयोषितः।
ददौ कुन्ती ततस्ताभ्यां रत्नानि विविधानि च॥ ३॥
द्रौपदी च सुभद्रा च याश्चाप्यन्याऽददुः स्त्रियः।
ऊषतुस्तत्र ते देव्यौ महार्हशयनासने॥ ४॥

पाण्डवों के महल में प्रवेशकर महाबाहु बभ्रुवाहन ने अत्यन्तमधुर सान्त्वनायुक्त वचनों सहित अपनी दादी कुन्ती को प्रणाम किया। देवी चित्रांगदा और कौरव्यनाग की पुत्री उलूपी ने भी विनीत भाव से कुन्ती और द्रौपदी को प्रणाम किया। पुनः वे दोनों सुभद्रा तथा दूसरी कुरुवंश की स्त्रियों से यथायोग्य मिलीं। कुन्ती ने उन्हें तरह–तरह के रत्न भेंट में दिये। द्रौपदी और सुभद्रा तथा दूसरी कौरव स्त्रियों ने भी उन्हें उपहार दिये। उसके पश्चात् वेदोनों देवियाँ बहुमूल्य शय्याओं पर बैठीं।

सुपूजिते स्वयं कुन्त्या पार्थस्य हितकाम्यया।
स च राजा महातेजाः पूजितो बभ्रुवाहनः॥ ५॥
धृतराष्ट्रं महीपालमुपतस्थे यथाविधि।
युधिष्ठिरं च राजानं भीमादींश्चापि पाण्डवान्॥ ६॥
उपागम्य महातेजा विनयेनाभ्यवादयत्।
स तैः प्रेम्णा परिष्वक्तः पूजितश्च यथाविधि॥ ७॥
प्रद्युम्न इव गोविन्दं विनयेनोपतस्थिवान्।
तस्मै कृष्णो ददौ राज्ञे महार्हमतिपूजितम्॥ ८॥
रथं हेमपरिष्कारं दिव्याश्वयुजमुत्तमम्।

अर्जुन के हित के इच्छा से कुन्ती ने स्वयं ही दोनों का बड़ा सत्कार किया। अच्छी तरह से सत्कृत महातेजस्वी बभ्रुवाहन ने फिर विधिपूर्वक राजा धृतराष्ट्र के चरणस्पर्श किये। उस महातेजस्वी ने राजा युधिष्ठिर और भीमसेन आदि पाण्डवों के समीप जाकर उन्हें भी विनयपूर्वक प्रणाम किया। उन सबने उसे प्रेमपूर्वक छाती से लगाया और उसका यथाविधि सत्कार किया। फिर वह श्रीकृष्णजी की सेवा में प्रद्युम्न के समान विनीतभाव से उपस्थित हुआ। श्रीकृष्णजी ने उसे अत्यन्त प्रशंसित और बहुमूल्य रथ दिया। वह रथ सुनहरी सजावट से युक्त था। उसमें दिव्यगुण वाले घोड़े जुते हुए थे।

धर्मराजश्च भीमश्च फाल्गुनश्च यमौ तथा॥ ९॥
पृथक् पृथक् च ते चैनं मानार्थाभ्यामयोजयन्।
ततस्तृतीये दिवसे सत्यवत्यात्मजो मुनिः॥ १०॥
युधिष्ठिरं समभ्येत्य वाग्मी वचनमब्रवीत्।
अद्यप्रभृति कौन्तेय यजस्व समयो हि ते।
मुहूर्तो यज्ञियः प्राप्तश्चोदयन्तीह याजकाः॥ ११॥
ततो यज्ञं महाबाहुर्वाजिमेधं महाक्रतुम्।
बह्वन्नदक्षिणं राजा सर्वकामगुणान्वितम्॥ १२॥

धर्मराज युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन तथा नकुल, सहदेव सबने पृथक्–पृथक् बभ्रुवाहन का सत्कार कर उसे अलग–अलग धन दिया। फिर तीसरे दिन बोलने में कुशल सत्यवतीपुत्र व्यासजी युधिष्ठिर के समीप आकर उनसे यह बोले कि हे कुन्तीपुत्र! आज से यज्ञ का मुहूर्त आरम्भ होगया है, इसलिये तुम यज्ञ को आरम्भ कर दो, याजक लोग तुम्हें बुला रहे हैं। फिर उन महाबाहु राजा ने सारी कामनाओं और गुणों से युक्त, बहुत अन्न और दक्षिणा वाले, उस महान् यज्ञ अश्वमेध का आरम्भ कर दिया।

परिक्रमन्तः सर्वज्ञाः चक्रुः कर्माणि याजकाः।
न तेषां स्खलितं किंचिदासीच्चान्यकृतं तथा॥ १३॥
क्रममुक्तं च युक्तं च चक्रुस्तत्र द्विजर्षभाः।
न तत्र कृपणः कश्चिन्न दरिद्रो बभूव ह॥ १४॥
क्षुधितो दुःखितो वापि प्राकृतो वापि मानवः।
भोजनं भोजनार्थिभ्यो दापयामास शत्रुहा॥ १५॥
भीमसेनो महातेजाः सततं राजशासनात्।

यज्ञ में यज्ञकर्म के विषय में सबकुछ जानने वाले याजक लोग सब तरफ घूमकर सारे कार्यों को करा रहे थे। श्रेष्ठ ब्राह्मणों ने क्रम के अनुसार उचित रीति से सारे कार्यों को पूरा किया। उन के कार्यों में न तो कोई त्रुटि थी और न कोई कार्य बिना किये छूटा। यज्ञ में आया कोई भी मनुष्य, चाहे वह निम्नतम श्रेणी का ही क्यों न हो, दीन, दरिद्र, भूखा या दुखिया नहीं रह गया था। राजा की आज्ञा से शत्रुओं का दमन करनेवाले महातेजस्वी भीम सदा भोजनार्थियों को भोजन दिलाने के कार्य में लगे रहते थे।

संस्तरे कुशलाश्चापि सर्वकार्याणि याजकाः॥ १६॥
दिवसे दिवसे चक्रुर्यथाशास्त्रानुदर्शनात्।
नाषडङ्गविदत्रासीत् सदस्यस्तस्य धीमतः॥ १७॥
नाव्रतो नानुपाध्यायो न च वादाविचक्षणः।
चतुश्चित्यश्च तस्यासीदष्टादशकरात्मकः॥ १८॥
स रुक्मपक्षो निचितस्त्रिकोणो गरुडाकृतिः।
तस्मिन् सदसि नित्यास्तु व्यासशिष्या द्विजर्षभाः॥ १९॥
संस्थाप्यैवं तस्य राज्ञस्तं यज्ञं शक्रतेजसः।
व्यासः सशिष्यो भगवान् वर्धयामास तं नृपम्॥ २०॥

वेदी बनाने में निपुण याजक लोग वहाँ प्रतिदिन शास्त्रोक्त विधि के अनुसार सारे कार्य किया करते थे। धीमान् राजा युधिष्ठिर का यज्ञ कराने वालों में कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं था, जो छहो अंगों का विद्वान्, व्रतों का पालन करने वाला, अध्यापन कार्य करने वाला और वाद विवाद में विचक्षण न हो। उस यज्ञ मण्डप में अग्नि चयन के लिये चार स्थान बने हुए थे। उनमें से प्रत्येक की लम्बाई चौड़ाई अठारह हाथ थी। प्रत्येक वेदी सुनहले पंखों से युक्त गरुड़ाकार और त्रिकोण वाली थी। व्यास जी के शिष्य, जो श्रेष्ठ ब्राह्मण थे, उस यज्ञ में सदा उपस्थित रहते थे। इसप्रकार से इन्द्र के समान तेजस्वी राजा युधिष्ठिर के यज्ञ की समाप्ति हुई। तत्पश्चात् व्यास जी ने अपने शिष्यों सहित राजा के अभ्युदय के लिये उन्हें आशीर्वाद दिया।

ततो युधिष्ठिरः प्रादाद् व्यासाय तु वसुंधराम्।
द्वैपायनस्तथा कृष्णः पुनरेव युधिष्ठिरम्॥ २१॥
प्रोवाच मध्ये विप्राणामिदं सम्पूजयन् मुनिः।
दत्तैषा भवता मह्यं तां ते प्रतिददाम्यहम्॥ २२॥
हिरण्यं दीयतामेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो धरास्तु ते।
ततोऽब्रवीद् वासुदेवो धर्मराजं युधिष्ठिरम्॥ २३॥
यथाऽऽह भगवान् व्यासस्तथा त्वं कर्तुमर्हसि।
इत्युक्तः स कुरुश्रेष्ठः प्रीतात्मा भ्रातृभिः सह॥ २४॥
कोटिकोटिकृतां प्रादाद् दक्षिणां त्रिगुणां क्रतोः।

युधिष्ठिर ने व्यास जी को सारी भूमि दान कर दी। तब कृष्ण द्वैपायन व्यास जी ने पुनः युधिष्ठिर की प्रशंसा करते हुए ब्राह्मणों के बीच में यह कहा कि तुमने मुझे जो पृथिवी दी है, उसे मैं तुम्हें वापिस दे रहा हूँ। यह पृथिवी तुम्हारे ही पास रहे। तुम तो ब्राह्मणों को स्वर्ण दे दो। तब श्रीकृष्णजी ने धर्मराज युधिष्ठिर से कहा कि व्यासजी ने जैसा कहा है, आप वैसा ही कीजिये। यह सुनकर युधिष्ठिर भाइयों के साथ बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने तब यज्ञ के लिये एक–एक करोड़ की तिगुनी दक्षिणा दी।

न करिष्यति तल्लोके कश्चिदन्यो नराधिपः॥ २५॥
यत् कृतं कुरुराजेन मरुत्तस्यानुकुर्वता।
प्रतिगृह्य तु तद् रत्नं कृष्णद्वैपायनो मुनिः॥ २६॥
ऋत्विग्भ्यः प्रददौ विद्वांश्चतुर्धा व्यभजंश्च ते।
ऋत्विजस्तमपर्यन्तं सुवर्णनिचयं तथा॥ २७॥
व्यभजन्त द्विजातिभ्यो यथोत्साहं यथासुखम्।
ततस्ते ब्राह्मणाः सर्वे मुदिता जग्मुरालयान्॥ २८॥
तर्पिता वसुना तेन धर्मराजेन धीमता।

कुरुराज युधिष्ठिर ने राजा मरुत्त का अनुकरण करते हुए उस समय जैसा त्याग किया, वैसा कोई दूसरा राजा संसार में नहीं कर सकेगा। विद्वान कृष्ण द्वैपायन मुनि ने उस धनराशि को ग्रहणकर उसे ऋत्विजों को दे दिया। उन्होंने उसके चार भाग कर उसे आपस में बाँट लिया। ऋत्विजों ने उस अपार स्वर्णराशि को उत्साह और आनन्द से ब्राह्मणों में बाँट दिया। तब धीमान् धर्मराज द्वारा धन से तृप्त किये गये वे ब्राह्मण प्रसन्नता से अपने घरों को गये।

स्वमंशं भगवान् व्यासः कुन्त्यै साक्षाद्धि मानतः॥ २९॥
प्रददौ तस्य महतो हिरण्यस्य महाद्युतिः।
श्वशुरात् प्रीतिदायं तं प्राप्य सा प्रीतमानसा॥ ३०॥
चकार पुण्यकं तेन सुमहत् संघशः पृथा।
आनीय च तथा वीरं राजानं बभ्रुवाहनम्॥ ३१॥
प्रदाय विपुलं वित्तं गृहान् प्रास्थापयत् तदा।
नृपतींश्चैव तान् सर्वान् सुविभक्तान् सुपूजितान्॥ ३२॥
प्रस्थापयामास वशी कुरुराजो युधिष्ठिरः।

महातेजस्वी भगवान् व्यास ने उस महान् स्वर्ण राशि में से अपना जो भाग प्राप्त किया था, उसे उन्होंने बड़े आदर के साथ कुन्ती को भेंट कर दिया। अपने श्वसुर से प्रेमपूर्वक मिले हुए उस धन को प्राप्तकर कुन्ती मन में बहुत प्रसन्न हुई। उसने उसके द्वारा बड़े–बड़े सामूहिक पुण्यकार्य किये। तत्पश्चात् राजा ने वीर बभ्रुवाहन को बुलाकर उसे बहुत सा धन दिया और अपने घर जाने के लिये बिदा किया। जितेन्द्रिय राजा कुरुराज ने फिर उन सारे राजाओं को भी खूब सारा धन देकर और उनका अच्छी तरह से सत्कार करके उन्हें बिदा किया।

दीयतां भुज्यतां चेष्टं दिवारात्रमवारितम्॥ ३३॥
तं महोत्सवसंकाशं हृष्टपुष्टजनाकुलम्।
कथयन्ति स्म पुरुषा नानादेशनिवासिनः॥ ३४॥
वर्षित्वा धनधाराभिः कामै रत्नै रसैस्तथा।
विपाप्मा भरतश्रेष्ठः कृतार्थः प्राविशत् पुरम्॥ ३५॥

युधिष्ठिर के यज्ञ में जिसको जिसकी इच्छा हो, उसे वही वस्तु दी जाये, सबको इच्छानुसार भोजन कराया जाये। यही घोषणा दिन–रात जारी रहती थी। हृष्ट–पुष्ट मनुष्यों से युक्त उस महान् उत्सव की चर्चा नाना देशों के निवासी लोग बहुत दिनों तक करते रहे। भरतश्रेष्ठ युधिष्ठिर ने उस यज्ञ में धन की, सबप्रकार की कामनाओं, रत्नों और रसों की मूसलाधार वर्षा की। इसप्रकार से पाप रहित और कृतार्थ होकर उन्होंने अपने नगर में प्रवेश किया।

आश्रमवासिक पर्व

पहला अध्याय : पाण्डवों के द्वारा धृतराष्ट्र और गान्धारी की सेवा।

प्राप्य राज्यं महात्मानः पाण्डवा हतशत्रवः।
धृतराष्ट्रं पुरस्कृत्य पृथिवीं पर्यपालयन्॥ १॥
पाण्डवाः सर्वकार्याणि सम्पृच्छन्ति स्म तं नृपम्।
चक्रुस्तेनाभ्यनुज्ञाता वर्षाणि दश पञ्च च॥ २॥
सदा हि गत्वा ते वीराः पर्युपासन्त तं नृपम्।
पादाभिवादनं कृत्वा धर्मराजमते स्थिताः॥ ३॥
ते मूर्ध्नि समुपाघ्राताः सर्वकार्याणि चक्रिरे।
कुन्तिभोजसुता चैव गान्धारीमन्ववर्तत॥ ४॥

जब महात्मा पाण्डवों के शत्रु मारे गये और उन्हें राज्य प्राप्त होगया, तब वे धृतराष्ट्र को आगेकर पृथिवी का पालन करने लगे। पाण्डवलोग सारे कार्यों में राजा धृतराष्ट्र की सलाह पूछा करते और उनसे आज्ञा लेकर ही उन्हें करते थे। इस तरह से उन्होंने पंद्रह वर्ष तक राज्य किया। धर्मराज युधिष्ठिर की आज्ञा में स्थित वे वीर प्रतिदिन राजा धृतराष्ट्र के चरणों में प्रणामकर उनके समीप कुछ समय तक बैठे रहते थे। धृतराष्ट्र द्वारा उनका सिर सूँघे जाने पर वे सारे कार्य किया करते थे। इसी प्रकार कुन्ती भी गान्धारी की सेवा में लगी रहती थी।

द्रौपदी च सुभद्रा च याश्चान्याः पाण्डवस्त्रियः।
समां वृत्तिमवर्तन्त तयोः श्वश्रवोर्यथाविधि॥ ५॥
श्यालो द्रोणस्य यश्चासीद् दयितो ब्राह्मणो महान्।
स च तस्मिन् महेष्वासः कृपः समभवत् तदा॥ ६॥
धर्मयुक्तानि कार्याणि व्यवहारान्वितानि च।
धृतराष्ट्राभ्यनुज्ञातो विदुरस्तान्यकारयत्॥ ७॥
सामन्तेभ्यः प्रियाण्यस्य कार्याणि सुबहून्यपि।
प्राप्यन्तेऽर्थैः सुलघुभिः सुनयाद् विदुरस्य वै॥ ८॥

द्रौपदी, सुभद्रा तथा और दूसरी जो भी पाण्डवों की स्त्रियाँ थीं, वे सारी कुन्ती और गान्धारी दोनों सासों की समानभाव से सेवा किया करतीं थीं। द्रोणाचार्य के साले, जो कि उनके बहुत प्यारे, महान् ब्राह्मण तथा महाधनुर्धर थे, वे कृपाचार्य उनके पास ही रहा करते थे। विदुर जी धृतराष्ट्र की आज्ञा से उनके सारे धार्मिक और व्यावहारिक कार्य किया करते थे। विदुर जी की अच्छी नीति के कारण उनके बहुत से प्रिय कार्य थोड़े से खर्च में ही सामन्तों से सिद्ध हो जाया करते थे।

अकरोद् बन्धमोक्षं च वध्यानां मोक्षणं तथा।
न च धर्मसुतो राजा कदाचित् किंचिदब्रवीत्॥ ९॥
विहारयात्रासु पुनः कुरुराजो युधिष्ठिरः।
सर्वान् कामान् महातेजाः प्रददावम्बिकासुते॥ १०॥
आरालिकाः सूपकारा रागखाण्डविकास्तथा।
उपातिष्ठन्त राजानं धृतराष्ट्रं यथा पुरा॥ ११॥
वासांसि च महार्हाणि माल्यानि विविधानि च।
उपाजह्रुर्यथान्यायं धृतराष्ट्रस्य पाण्डवाः॥ १२॥

धृतराष्ट्र कैदियों को बन्धन से मुक्त करा देते और वध के योग्य अपराधियों को भी प्राणदान देकर छोड़ देते थे पर युधिष्ठिर ने उनसे कभी कुछ भी नहीं कहा। कुरुराज युधिष्ठिर अम्बिकापुत्र धृतराष्ट्र के लिये उनकी विहार यात्राओं के अवसरों पर उन्हें सारी मनोवांछित सुविधाएँ प्रदान करते थे। तरह–तरह के रसोइये जैसे साग बनाने वाले, दाल बनाने वाले और मिठाई बनाने वाले आदि पहले की तरह से धृतराष्ट्र की सेवा में प्रस्तुत रहते थे। पाण्डवलोग बहुमूल्य वस्त्र और तरह–तरह की मालाएँ यथोचित रूप से धृतराष्ट्र को भेंट किया करते थे।

ये चापि पृथिवीपालाः समाजग्मुस्ततस्ततः।
उपातिष्ठन्त ते सर्वे कौरवेन्द्रं यथा पुरा॥ १३॥

यथा पुत्रवियुक्तोऽयं न किंचिद् दुःखमाप्नुयात्।
इति तानन्वशाद् भ्रातॄन् नित्यमेव युधिष्ठिरः॥ १४॥
एवं ते धर्मराजस्य श्रुत्वा वचनमर्थवत्।
सविशेषमवर्तन्त भीममेकं तदा विना॥ १५॥
न हि तत् तस्य वीरस्य हृदयादपसर्पति।
धृतराष्ट्रस्य दुर्बुद्ध्या यद् वृत्तं द्यूतकारितम्॥ १६॥

जहाँ–तहाँ से जो भी राजालोग वहाँ आते थे, वे पहले की तरह कौरवराज धृतराष्ट्र की सेवा में उपस्थित होते थे। युधिष्ठिर अपने भाइयों को सदा यह आदेश दिया करते थे कि पुत्रों से वियुक्त धृतराष्ट्र को किसी प्रकार का दुःख प्राप्त न हो। धर्मराज के इन सार्थक वचनों का सारे पाण्डव सिवाय भीमसेन के विशेष रूप से पालन करते थे। किन्तु भीमसेन के हृदय से यह बात नहीं निकलती थी, कि जूए के समय जो भी अनर्थ हुआ वह धृतराष्ट्र की खोटी बुद्धि का ही नतीजा था।

एवं सम्पूजितो राजा पाण्डवैरम्बिकासुतः।
विजहार यथापूर्वमृषिभिः पर्युपासितः॥ १७॥
ब्रह्मदेयाग्रहारांश्च प्रददौ स कुरूद्वहः।
तच्च कुन्तीसुतो राजा सर्वमेवान्वपद्यत॥ १८॥
आनृशंस्यपरो राजा प्रीयमाणो युधिष्ठिरः।
उवाच स तदा भ्रातॄनमात्यांश्च महीपतिः॥ १९॥
मया चैव भवद्भिश्च मान्य एष नराधिपः।
निदेशे धृतराष्ट्रस्य यस्तिष्ठति स मे सुहृत्॥ २०॥
विपरीतश्च मे शत्रुर्नियम्यश्च भवेन्नरः।

इसप्रकार पाण्डवों से सत्कृत राजा धृतराष्ट्र पहले की तरह ही ऋषियों के साथ सत्संग का अनुभव करते हुए आनन्दसहित रहते थे। कुरुकुल के स्वामी राजा धृतराष्ट्र ब्राह्मणों को माफी जमीन दिया करते थे और कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिर उन्हें सारे कार्यों में सहयोग देते थे। दयालुता से युक्त राजा युधिष्ठिर प्रसन्नभाव से अपने भाइयों और मन्त्रियों से कहा करते थे कि ये राजा मेरे तथा आपके भी माननीय हैं। जो इनकी आज्ञा के आधीन रहता है, वह मेरा मित्र और जो विपरीत चलने वाला है, वह मेरा शत्रु और मेरे दण्ड का भागी होगा।

कथं नु राजा वृद्धः स पुत्रपौत्रवधार्दितः॥ २१॥
शोकमस्मत्कृतं प्राप्य न म्रियेतेति चिन्त्यते।
यावद्धि कुरुवीरस्य जीवत्पुत्रस्य वै सुखम्॥ २२॥
बभूव तदवाप्नोति भोगांश्चेति व्यवस्थिताः।
धृतराष्ट्रश्च तान् सर्वान् विनीतान् नियमे स्थितान्॥ २३॥
शिष्यवृत्तिं समापन्नान् गुरुवत् प्रत्यपद्यत।
स राजा सुमहातेजा वृद्धः कुरुकुलोद्वहः॥ २४॥
न ददर्श तदा किंचिदप्रियं पाण्डुनन्दने।

पुत्रों और पौत्रों के वध से पीड़ित वृद्ध राजा कहीं हमारी तरफ से शोक को प्राप्तकर प्राणों को न त्याग दें यही चिन्ता राजा युधिष्ठिर को लगी रहती थी। उन कुरुवीर धृतराष्ट्र को अपने पुत्रों की जीवित अवस्था में जो सुख सुविधा प्राप्त थी, वही उन्हें अब भी मिलती रहे, इसके किये पाण्डवों ने व्यवस्था की हुई थी। धृतराष्ट्र भी पाण्डवों को विनम्र, नियम में स्थित, तथा शिष्य के समान आचरण करते हुए जानकर उनपर पिता के समान स्नेह करते थे। कुरुकुल के आधार उन बूढ़े और महातेजस्वी राजा ने पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर में कोई भी अप्रिय बात नहीं देखी।

सौबलेयी च गान्धारी पुत्रशोकमपास्य तम्॥ २५॥
सदैव प्रीतिमत्यासीत् तनयेषु निजेष्विव।
प्रियाण्येव तु कौरव्यो नाप्रियाणि कुरूद्वहः॥ २६॥
वैचित्रवीर्ये नृपतौ समाचरत वीर्यवान्।
यद् यद् ब्रूते च किंचित् स धृतराष्ट्रो जनाधिपः॥ २७॥
गुरु वा लघु वा कार्यं पाण्डवानां धुरंधरः।
पूजयित्वा वचस्तत् तदकार्षीत् परवीरहा॥ २८॥

सुबलपुत्री गान्धारी भी अपने पुत्रों के शोक को भुलाकर पाण्डवों पर अपने पुत्रों के समान ही प्रेम करती थी। कुरुकुल के आधार पराक्रमी युधिष्ठिर राजा धृतराष्ट्र का सदा प्रिय ही करते थे, अप्रिय कुछ भी नहीं करते थे। चाहे छोटी बात हो या बड़ी, पाण्डवों के धुरन्धर, शत्रुसूदन युधिष्ठिर उस बात का सम्मान कर उसे पूरा किया करते थे।

तेन तस्याभवत् प्रीतो वृत्तेन स नराधिपः।
अन्वतप्यत संस्मृत्य पुत्रं तं मन्दचेतसम्॥ २९॥
सदा च प्रातरुत्थाय कृतजप्यः शुचिर्नृपः।
आशास्ते पाण्डुपुत्राणां समरेष्वपराजयम्॥ ३०॥
ब्राह्मणान् स्वस्ति वाच्याथ हुत्वा चैव हुताशनम्।
आयूंषि पाण्डुपुत्राणामाशंसत नराधिपः॥ ३१॥
न तां प्रीतिं परामाप पुत्रेभ्यः स कुरूद्वहः।
यां प्रीतिं पाण्डुपुत्रेभ्यः सदावाप नराधिपः॥ ३२॥

उनके इस आचरण से राजा धृतराष्ट्र उनसे सदा बहुत प्रसन्न रहते थे और अपने मन्दबुद्धि पुत्र दुर्योधन को याद करके पछताया करते थे। वे राजा प्रतिदिन प्रातः उठकर पवित्र होकर, जप करके पाण्डुपुत्रों को युद्ध में विजयी होने का आशीर्वाद देते थे। ब्राह्मणों से स्वस्तिवाचन कराकर और हवन करके धृतराष्ट्र पाण्डवों की आयु बढ़ने की शुभ कामना किया करते थे। कुरुकुल के आधार उन राजा को अपने पुत्रों से भी उतना प्रेम व्यवहार प्राप्त नहीं हुआ, जितना अब उन्हें पाण्डुपुत्रों से मिल रहा था।

यच्च किंचित् तदा पापं धृतराष्ट्रसुतैः कृतम्।
अकृत्वा हृदि तत् पापं तं नृपं सोऽन्ववर्तत॥ ३३॥
न राज्ञो धृतराष्ट्रस्य न च दुर्योधनस्य वै।
उवाच दुष्कृतं कश्चिद् युधिष्ठिरभयान्नरः॥ ३४॥
अन्ववर्तत भीमोऽपि निश्चितो धर्मजं नृपम्।
धृतराष्ट्रं च सम्प्रेक्ष्य सदा भवति दुर्मनाः॥ ३५॥
राजानमनुवर्तन्तं धर्मपुत्रममित्रहा।
अन्ववर्तत कौरव्यो हृदयेन पराङ्मुखः॥ ३६॥

धृतराष्ट्र के पुत्रों ने जो कुछ भी बुरा बर्ताव उनके साथ किया था, उसे मन में स्थान न देकर राजा युधिष्ठिर धृतराष्ट्र की सेवा में सदा संलग्न रहते थे। युधिष्ठिर के भय से उस समय कोई भी राजा धृतराष्ट्र और दुर्योधन के कुकृत्यों की चर्चा नहीं करता था। यद्यपि भीमसेन भी निश्चितरूप से धर्मपुत्र युधिष्ठिर के पथ का अनुकरण करते थे, पर धृतराष्ट्र को देखकर सदा उनके मन में दुर्भावना जाग उठती थी। शत्रुओं को नष्ट करने वाले कुरुनन्दन भीमसेन धर्मपुत्र राजा को धृतराष्ट्र के अनुकूल बर्ताव करते देखकर स्वयं भी उनका अनुकरण करते थे, पर हृदय में वे धृतराष्ट्र के विमुख ही रहते थे।

दूसरा अध्याय : धृतराष्ट्र का वनवास का आग्रह। युधिष्ठिर का शोक।

अप्रकाशान्यप्रियाणि चकारास्य वृकोदरः।
आज्ञां प्रत्यहरच्चापि कृतज्ञैः पुरुषैः सदा॥ १॥
स्मरन् दुर्मन्त्रितं तस्य वृत्तान्यप्यस्य कानिचित्।
अथ भीमः सुहृन्मध्ये बाहुशब्दं तथाकरोत्॥ २॥
संश्रवे धृतराष्ट्रस्य गान्धार्याश्चाप्यमर्षणः।
स्मृत्वा दुर्योधनं शत्रुं कर्णदुःशासनावपि॥ ३॥
प्रोवाचेदं सुसंरब्धो भीमः स परुषं वचः।

भीमसेन गुप्तरूप से धृतराष्ट्र को अप्रिय लगने वाले कार्य करते थे। अपने कृतज्ञ पुरुषों द्वारा वे उनकी आज्ञा का उल्लंघन भी करा देने थे। राजा धृतराष्ट्र की पहले जो दुर्मन्त्रणाएँ हुई थीं और उनके अनुसार उनके जो कई दुर्व्यवहार हुए, उन्हें भीमसेन याद रखते थे। एक बार अमर्षशील, अत्यन्तक्रुद्ध भीमसेन ने मित्रों के बीच में अपनी बाहों पर ताल ठोकते हुए अपने शत्रु दुर्योधन, कर्ण और दुश्शासन को याद करते हुए, धृतराष्ट्र और गान्धारी को सुनाते हुए ये कठोर वचन कहे कि–

अन्धस्य नृपतेः पुत्रा मया परिघबाहुना॥ ४॥
नीता लोकममुं सर्वे नानाशस्त्रास्त्रयोधिनः।
इमौ तौ परिघप्रख्यौ भुजौ मम दुरासदौ॥ ५॥
ययोरन्तरमासाद्य धार्तराष्ट्राः क्षयं गताः।
ताविमौ चन्दनेनाक्तौ चन्दनार्हौ च मे भुजौ॥ ६॥
याभ्यां दुर्योधनो नीतः क्षयं ससुतबान्धवः।
एताश्चान्याश्च विविधाः शल्यभूता नराधिपः॥ ७॥
वृकोदरस्य ता वाचः श्रुत्वा निर्वेदमागमत्।

इस अन्धे राजा के सारे पुत्रों को, जो तरह–तरह के शस्त्रास्त्रों से युद्ध करते थे, मैंने ही अपनी परिघ के समान भुजाओं से मृत्यु लोक में भेजा है। ये मेरी परिघ के समान दुर्धर्ष भुजाएँ हैं जिनके बीच में आकर सारे धृतराष्ट्र के पुत्र नष्ट हो गये। ये मेरी भुजाएँ चन्दन से लिपटी हुई हैं और चन्दन ही लगाने योग्य हैं, जिनके द्वारा पुत्रों और बान्धवों सहित दुर्योधन को नष्ट कर दिया गया। ऐसी तथा दूसरी काँटों के समान कठोर बातें जिन्हें भीमसेन ने कहा, सुनकर धृतराष्ट्र को बड़ा खेद हुआ।

सा च बुद्धिमती देवी कालपर्यायवेदिनी॥ ८॥
गान्धारी सर्वधर्मज्ञा तान्यलीकानि शुश्रुवे।
ततः पञ्चदशे वर्षे समतीते नराधिपः॥ ९॥
राजा निर्वेदमापेदे भीमवाग्बाणपीडितः।
नान्वबुध्यत तद् राजा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः॥ १०॥

श्वेताश्वो वाथ कुन्ती वा द्रौपदी वा यशस्विनी।
माद्रीपुत्रौ च धर्मज्ञौ चित्तं तस्यान्ववर्तताम्॥ ११॥
राज्ञस्तु चित्तं रक्षन्तौ नोचतुः किंचिदप्रियम्।

बुद्धिमती गान्धारी देवी ने भी, जो समय के उलटफेर को समझती और सारे धर्मों को जानने वाली थी, इन कठोर वचनों को सुना। उन्हें राजा युधिष्ठिर के आश्रय में रहते हुए पन्द्रह वर्ष व्यतीत हो गये थे, जब भीमसेन की वाणी के बाणों से पीड़ित होकर राजा धृतराष्ट्र को खेद और वैराग्य हुआ। इस बात को न तो राजा कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर ने, न श्वेत घोड़ों वाले अर्जुन ने, न कुन्ती और न यशस्विनी द्रौपदी ने जाना। धर्म के ज्ञाता माद्री के दोनों पुत्र भी राजा धृतराष्ट्र के अनुकूल ही बर्ताव करते थे और राजा का मन रखते हुए कभी कोई अप्रिय बात उनसे नहीं कहते थे।

ततः समानयामास धृतराष्ट्रः सुहृज्जनम्॥ १२॥
बाष्पसंदिग्धमत्यर्थमिदमाह च तान् भृशम्।
विदितं भवतामेतद् यथा वृत्तः कुरुक्षयः॥ १३॥
ममापराधात् तत् सर्वमनुज्ञातं च कौरवैः।
योऽहं दुष्टमतिं मन्दो ज्ञातीनां भयवर्धनम्॥ १४॥
दुर्योधनं कौरवाणामाधिपत्येऽभ्यषेचयम्।
यच्चाहं वासुदेवस्य नाश्रौषं वाक्यमर्थवत्॥ १५॥
वध्यतां साध्वयं पापः सामात्य इति दुर्मतिः।
पुत्रस्नेहाभिभूतस्तु हितमुक्तो मनीषिभिः॥ १६॥

तब धृतराष्ट्र ने अपने मित्रों को बुलवाया और आँखों में आँसू भरकर अत्यन्त गद्‌गद् वाणी में कहा कि आप लोगों को पता ही है कि कुरुकुल का विनाश कैसे हुआ है। सारे कौरव जानते हैं कि मेरे ही अपराध से यह सारा अनर्थ हुआ। मुझ मूर्ख ने उस दुष्ट बुद्धिवाले, परिवार वालों के भय को बढ़ाने वाले दुयोधन को कौरवों के राज सिंहासन पर बैठा दिया। मनीषी लोगों ने मुझ से मेरे कल्याण की बातें कहीं थीं, कि इस खोटी बुद्धि वाले पापी दुर्योधन को मन्त्रियों सहित मार डाला जाये, पर पुत्र स्नेह से भरे हुए मैंने श्रीकृष्ण की अर्थभरी बातें नहीं सुनी।

विदुरेणाथ भीष्मेण द्रोणेन च कृपेण च।
पदे पदे भगवता व्यासेन च महात्मना॥ १७॥
संजयेनाथ गान्धार्या तदिदं तप्यते च माम्।
यच्चाहं पाण्डुपुत्रेषु गुणवत्सु महात्मसु॥ १८॥
न दत्तवाञ्श्रियं दीप्तां पितृपैतामहीमिमाम्।
सोऽहमेतान्यलीकानि निवृत्तान्यात्मनस्तदा॥ १९॥
हृदये शल्यभूतानि धारयामि सहस्रशः।

विदुर, भीष्म, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, महात्मा व्यास, संजय और गान्धारी ने मुझे कदम–कदम पर अच्छी सलाहें दीं, पर मैंने उनकी बात नहीं मानी। यह भूल मुझे सदा संताप देती रहती है। महात्मा पाण्डव गुणवान् थे, पर मैंने उन्हें उनकी पिता और पितामहों की उज्ज्वल सम्पत्ति भी नहीं दी। इस तरह से मैं अपने द्वारा की हुई हजारों गलतियों को अपने हृदय में काँटे की तरह से धारण किये हुए हूँ।

विशेषतस्तु पश्यामि वर्षे पञ्चदशेऽद्य वै॥ २०॥
अस्य पापस्य शुद्ध्यर्थंनियतोऽस्मि सुदुर्मतिः।
चतुर्थे नियते काले कदाचिदपि चाष्टमे॥ २१॥
तृष्णाविनयनं भुञ्जे गान्धारी वेद तन्मम।
करोत्याहार मिति मां सर्वः परिजनः सदा॥ २२॥
भूमौ शये जप्यपरो दर्भेष्वजिनसंवृतः।
नियमव्यपदेशेन गान्धारी च यशस्विनी॥ २३॥

विशेषरूप से अब पन्द्रहवें वर्ष में मेरी आँखें खुली हैं। मैं अत्यन्त दुर्मति इस पाप की शुद्धि के लिये नियम का पालन करने लगा हूँ। मैं कभी चौथे समय अर्थात् दूसरे दिन और कभी आठवें समय अर्थात् चौथे दिन भूख की आग बुझाने को थोड़ा आहार कर लेता हूँ। मेरे इस नियम को गान्धारी जानती है, शेष सारे यही समझते हैं कि मैं पूरा भोजन करता हूँ। मैं और यशस्विनी गान्धारी नियम पालने को मृगचर्म पहनकर, कुशासन पर बैठकर मन्त्र जप करते और भूमि पर सोते हैं।

इत्युक्त्वा धर्मराजानमभ्यभाषत कौरवः।
भद्रं ते यादवीमातर्वचश्चेदं निबोध मे॥ २४॥
सुखमस्म्युषितः पुत्र त्वया सुपरिपालितः।
महादानानि दत्तानि श्राद्धानि च पुनः पुनः॥ २५॥
प्रकृष्टं च यया पुत्र पुण्यं चीर्णं यथाबलम्।
गान्धारी हतपुत्रेयं धैर्येणोदीक्षते च माम्॥ २६॥

ऐसा कहकर कुरुवंशी धृतराष्ट्र धर्मराज युधिष्ठिर से बोले कि हे कुन्तीपुत्र! तुम्हारा कल्याण हो। तुम मेरी बात सुनो। हे पुत्र! मैं तुम्हारे पास बड़े सुख से रहा हूँ। तुमने मेरा अच्छी तरह पालन किया है। मैंने तुम्हारे पास रहते हुए श्रद्धापूर्वक बड़े–बड़े दान

दिये हैं। हे पुत्र! जिसने यथाशक्ति उत्कृष्ट पुण्यों का अनुष्ठान किया है, जिसके पुत्र मारे गये हैं, वह यह गान्धारी धैर्यपूर्वक मेरी देखभाल करती है।

द्रौपद्या ह्यपकर्तारस्तव चैश्वर्यहारिणः।
समतीता नृशंसास्ते स्वधर्मेण हता युधि॥ २७॥
न तेषु प्रतिकर्तव्यं पश्यामि कुरुनन्दन।
आत्मनस्तु हितं पुण्यं प्रतिकर्तव्यमद्य वै॥ २८॥
गान्धार्याश्चैव राजेन्द्र तदनुज्ञातुमर्हसि।
त्वं तु शस्त्रभृतां श्रेष्ठः सततं धर्मवत्सलः॥ २९॥
राजा गुरुः प्राणभृतां तस्मादेतद् ब्रवीम्यहम्।
अनुज्ञातस्त्वया वीर संश्रयेयं वनान्यहम्॥ ३०॥

जिन्होंने द्रौपदी का अपकार किया और तुम्हारे ऐश्वर्य का हरण किया, वे निर्दय लोग अपने कर्मों के कारण युद्ध में मारे गये। हे कुरुनन्दन! अब मैं उनके लिये कुछ भी करने की आवश्यकता नहीं समझता हूँ। हे राजन्! अब तो मुझे अपने तथा गान्धारी के लिये पवित्र तप करना है। इसलिये तुम मुझे इसके लिये अनुमति दो। तुम तो शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ तथा सदा धर्म से प्रेम रखने वाले हो। राजा सारे प्राणियों के लिये गुरु के समान होता है इसलिये मैं तुमसे यह कह रहा हूँ कि हे वीर! तुम्हारी आज्ञा मिलने पर मैं वन को चला जाऊँगा।

चीरवल्कलभृद् राजन् गान्धार्या सहितोऽनया।
तवाशिषः प्रयुञ्जानो भविष्यामि वनेचरः॥ ३१॥
उचितं नः कुले तात सर्वेषां भरतर्षभ।
पुत्रेष्वैश्वर्यमाधाय वयसोऽन्ते वनं नृप॥ ३२॥
तत्राहं वायुभक्षो वा निराहारोऽपि वा वसन्।
पत्न्या सहानया वीर चरिष्यामि तपः परम्॥ ३३॥
त्वं चापि फलभाक् तात तपसः पार्थिवो ह्यसि।
फलभाजो हि राजानः कल्याणस्येतरस्य वा॥ ३४॥

हे राजन्! इस गान्धारी के साथ चीर और वल्कल धारण कर मैं वन में विचरूँगा और तुम्हें आशीर्वाद देता रहूँगा। हे भरतश्रेष्ठ राजन्! हे तात! हमारे सारे कुल के लिये यही उचित है कि आयु के अन्त में ऐश्वर्य को पुत्रों को देकर वन में जायें। हे वीर! वहाँ मैं वायु का भक्षण करता हुआ या निराहार रहते हुए, इस पत्नी के साथ उत्तम तपस्या करूँगा। हे तात! तुम भी उस तपस्या के फल के भागी बनोगे। क्योंकि तुम राजा हो और राजा अपने राज्य में होने वाले अच्छे बुरे सारे कर्मों के भागी होते हैं।

युधिष्ठिर उवाच

न मां प्रीणयते राज्यं त्वय्येवं दुःखिते नृप।
धिङ्मामस्तु सुदुर्बुद्धिं राज्यसक्तं प्रमादिनम्॥ ३५॥
योऽहं भवन्तं दुःखार्तमुपवासकृशं भृशम्।
जिताहारं क्षितिशयं न विन्दे भ्रातृभिः सह॥ ३६॥
अहोऽस्मि वञ्चितो मूढो भवता गूढबुद्धिना।
विश्वासयित्वा पूर्वं मां यदिदं दुःखमश्नुथाः॥ ३७॥
किं मे राज्येन भोगैर्वा किं यज्ञैः किं सुखेन वा।
यस्य मे त्वं महीपाल दुःखान्येतान्यवाप्तवान्॥ ३८॥

तब युधिष्ठिर ने कहा कि हे राजन्! आपके ऐसा दुःखी होने पर यह राज्य मुझे प्रसन्न नहीं कर सकता। मुझ अत्यन्तदुर्बुद्धि, राज्य में आसक्त और प्रमादी को धिक्कार है, जो मैं अपने भाइयों के साथ इस बात को न जान सका कि आप दुःख से आतुर, उपवास से अत्यन्त कमजोर तथा आहार पर संयम कर भूमि पर सो रहे हैं। आप गूढ़ बुद्धि वाले ने मुझ मूर्ख को धोखे में डाले रखा। मुझे विश्वास दिलाकर कि मैं पूरी तरह से सुखी हूँ, आप यह दुःख भोगते रहे। मेरे राज्य करने, इन भोगों को भोगने, यज्ञ करने और सुख उठाने से क्या लाभ? जिसके होते हुए हे राजन्! आपने दुःख उठाये।

पीडितं चापि जानामि राज्यमात्मानमेव च।
अनेन वचसा तुभ्यं दुःखितस्य जनेश्वर॥ ३९॥
भवान् पिता भवान् माता भवान् नः परमो गुरुः।
भवता विप्रहीणा वै क्व नु तिष्ठामहे वयम्॥ ४०॥
औरसो भवतः पुत्रो युयुत्सुर्नृपसत्तम।
अस्तु राजा महाराज यमन्यं मन्यते भवान्॥ ४१॥
अहं वनं गमिष्यामि भवान् राज्यं प्रशासतु।
न मामयशसा दग्धं भूयस्त्वं दग्धुमर्हसि॥ ४२॥
नाहं राजा भवान् राजा भवतः परवानहम्।
कथं गुरुं त्वां धर्मज्ञमनुज्ञातुमिहोत्सहे॥ ४३॥

हे जनेश्वर! आप दुःखी होकर ऐसी बात कह रहे हैं, तो मैं इस राज्य को और अपने-आपको भी दुःखी समझता हूँ। आप ही हमारे पिता, माता और गुरु हैं। आप से अलग होकर हम कहाँ रहेंगे? हे राजश्रेष्ठ! युयुत्सु आपका औरस पुत्र है। हे महाराज! वही या जिस किसी को आप समझते हैं, वह राजा

बन जाये। मैं वन में चला जाऊँगा। आप राज्य करिये। अपयश की आग में तप्त मुझे अब आप भी मत जलाइये। मैं राजा नहीं आप हैं। मैं तो आपका सेवक हूँ, आप हमारे धर्म के ज्ञाता गुरु हैं, मैं आपको कैसे आज्ञा दे सकता हूँ?

वयं पुत्रा हि भवतो यथा दुर्योधनादयः।
गान्धारी चैव कुन्ती च निर्विशेषे मते मम॥ ४४॥
स मां त्वं यदि राजेन्द्र परित्यज्य गमिष्यसि।
पृष्ठतस्त्वनुयास्यामि सत्यमात्मानमालभे॥ ४५॥
इयं हि वसुसम्पूर्णा मही सागरमेखला।
भवता विप्रहीणस्य न मे प्रीतिकरी भवेत्॥ ४६॥
भवदीयमिदं सर्वं शिरसा त्वां प्रसादये।
त्वदधीनाः स्म राजेन्द्र व्येतु ते मानसो ज्वरः॥ ४७॥

हम तो आपके ऐसे ही पुत्र हैं, जैसे दुर्योधन आदि थे। मेरे लिये गान्धारी और कुन्ती दोनों समान हैं। हे राजेन्द्र! यदि आप हमें छोड़कर चले जायेंगे, तो मैं आपके पीछे चलूँगा, यह मैं आपसे अपनी सौगन्ध खाकर सत्य कह रहा हूँ। सागरपर्यन्त यह सारी भूमि भी आपसे अलग होकर मुझे आनन्द नहीं देगी। हे राजेन्द्र! सब कुछ आपका ही है, मैं सिर से प्रणाम कर आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप प्रसन्न हो जाइये। हम सब आपके आधीन हैं। आपकी मानसीचिन्ता दूर होजानी चाहिये।

धृतराष्ट्र उवाच

तापस्ये मे मनस्तात वर्तते कुरुनन्दन।
उचितं च कुलेऽस्माकमरण्यगमनं प्रभो॥ ४८॥
चिरमस्म्युषितः पुत्र चिरं शुश्रूषितस्त्वया।
वृद्धं मामप्यनुज्ञातुमर्हसि त्वं नराधिप॥ ४९॥
इत्युक्त्वा धर्मराजानं वेपमानं कृताञ्जलिम्।
उवाच वचनं राजा धृतराष्ट्रोऽम्बिकासुतः॥ ५०॥
संजयं च महात्मानं कृपं चापि महारथम्।
अनुनेतुमिहेच्छामि भवद्भिर्वसुधाधिपम्॥ ५१॥

तब धृतराष्ट्र ने कहा कि हे तात! कुरुनन्दन! मेरा जी अब तपस्या में ही लग रहा है। हे प्रभो! जीवन की अन्तिम अवस्था में वन में जाना हमारे कुल के लिये उचित ही है। हे पुत्र मैं लम्बे समय तक तुम्हारे पास रहा हूँ। तुमने भी लम्बे समय तक मेरी सेवा की है। इसलिये हे राजन्! अब मुझ बूढ़े को आज्ञा दो। हाथ जोड़कर खड़े हुए और काँपते हुए धर्मराज से ऐसा कहकर अम्बिकापुत्र धृतराष्ट्र मनस्वी संजय और महारथी कृपाचार्य से बोले कि मैं चाहता हूँ कि आप भी राजा युधिष्ठिर को समझाएँ।

ग्लायते मे मनो हीदं मुखं च परिशुष्यति।
वयसा च प्रकृष्टेन वाग्व्यायामेन चैव ह॥ ५२॥
इत्युक्त्वा स तु धर्मात्मा वृद्धो राजा कुरूद्वहः।
गान्धारीं शिश्रिये धीमान् सहसैव गतासुवत्॥ ५३॥
तं तु दृष्ट्वा समासीनं विसंज्ञमिव कौरवम्।
आर्तिं राजागमत् तीव्रां कौन्तेयः परवीरहा॥ ५४॥

युधिष्ठिर उवाच

धिगस्तु मामधर्मज्ञं धिग् बुद्धिं धिक् च मे श्रुतम्।
यत्कृते पृथिवीपालः शेतेऽयमतथोचितः॥ ५५॥
अहमप्युपवत्स्यामि यथैवायं गुरुर्मम।
यदि राजा न भुङ्क्तेऽयं गान्धारी च यशस्विनी॥ ५६॥

मेरा जी घबड़ा रहा है और मुख सूख रहा है, क्योंकि एक तो मेरी वृद्धावस्था है और दूसरे बोलने का परिश्रम हो रहा है। ऐसा कहकर कुरुकुल के आधार धर्मात्मा बूढ़े राजा ने अचानक प्राणहीन के समान गान्धारी का सहारा ले लिया। तब कुरुनन्दन धृतराष्ट्र को अचेतन सी अवस्था में देखकर, शत्रुसूदन कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर को अत्यन्त दुःख हुआ। युधिष्ठिर ने तब कहा कि मुझ अधर्मी को, मेरी बुद्धि को, मेरी विद्या को धिक्कार है, जिसके कारण ये राजा अनुचित अवस्था में पड़े हुए हैं। यदि राजा और यशस्विनी गान्धारी भोजन नहीं करेंगे, तो इन गुरुजनों के समान मैं भी उपवास करूँगा।

विदुरादयश्च ते सर्वे रुरुदुर्दुःखिता भृशम्।
अतिदुःखात् तु राजानं नोचुः किंचन पाण्डवम्॥ ५७॥
गान्धारी त्वेव धर्मज्ञा मनसोद्वहती भृशम्।
दुःखान्यधारयद् राजन् मैवमित्येव चाब्रवीत्॥ ५८॥
इतरास्तु स्त्रियः सर्वाः कुन्त्या सह सुदुःखिताः।
नेत्रैरागतविक्लेदैः परिवार्य स्थिताऽभवन्॥ ५९॥
अथाब्रवीत् पुनर्वाक्यं धृतराष्ट्रो युधिष्ठिरम्।
अनुजानीहि मां राजंस्तापस्ये भरतर्षभ॥ ६०॥

तब विदुर आदि सभी अत्यन्त दुःखी होकर रोने लगे। अधिक दुःख के कारण वे पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर से कुछ भी न बोले। धर्म को जानने वाली गान्धारी, जो अत्यन्त दुःख को वहन कर रही थी, जिसने दुःख को मन में ही दबा लिया था रोते हुए कहने

लगी कि ऐसा मत करो। कुन्ती के साथ कुरुकुल की दूसरी स्त्रियाँ भी अत्यन्त दुःखी होकर नेत्रों से आँसू बहाती हुई उन्हें घेरकर खड़ी हो गयीं। तब धृतराष्ट्र ने युधिष्ठिर से फिर कहा कि हे भरतश्रेष्ठ राजन्! मुझे तपस्या की अनुमति दो।

ग्लायते मे मनस्तात भूयो भूयः प्रजल्पतः।
न मामतः परं पुत्र परिक्लेष्टुमिहार्हसि॥ ६१॥
तस्मिंस्तु कौरवेन्द्रे तं तथा ब्रुवति पाण्डवम्।
सर्वेषामेव योधानामार्तनादो महानभूत्॥ ६२॥
दृष्ट्वा कृशं विवर्णं च राजानमतथोचितम्।
उपवासपरिश्रान्तं त्वगस्थिपरिवारणम्॥ ६३॥
धर्मपुत्रः स्वपितरं परिष्वज्य महाप्रभुम्।
शोकजं बाष्पमुत्सृज्य पुनर्वचनमब्रवीत्॥ ६४॥

हे तात! बार–बार बोलने से मेरा जी घबराता है। हे पुत्र! इसलिये अब मुझे और कष्ट में मत डालो। कौरवेन्द्र धृतराष्ट्र के पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर से ऐसा कहने पर सारे योद्धाओं में महान् हा हाकार होने लगा। राजा को उपवास से ऐसा थके हुए, दुर्बल, कान्तिहीन, अस्थिचर्मावशिष्ट अयोग्य अवस्था में देखकर धर्मपुत्र युधिष्ठिर अपने ताऊ महाप्रभु धृतराष्ट्र की छाती से लगकर दुःखजनित आँसू बहाते हुए यह बोले कि–

न कामये नरश्रेष्ठ जीवितं पृथिवीं तथा।
यथा तव प्रियं राजंश्चिकीर्षामि परंतप॥ ६५॥
यदि चाहमनुग्राह्यो भवतो दयितोऽपि वा।
क्रियतां तावदाहारस्ततो वेत्स्याम्यहं परम्॥ ६६॥
ततोऽब्रवीन्महातेजा धृतराष्ट्रो युधिष्ठिरम्।
अनुज्ञातस्त्वया पुत्र भुञ्जीयामिति कामये॥ ६७॥
इति ब्रुवति राजेन्द्रे धृतराष्ट्रे युधिष्ठिरम्।
ऋषिः सत्यवतीपुत्रो व्यासोऽभ्येत्य वचोऽब्रवीत्॥ ६८॥

हे परंतप नरश्रेष्ठ राजन्! न तो मैं अपने जीवन, और न इस पृथिवी को चाहता हूँ, मैं वही करना चाहता हूँ जिससे आपका प्रिय हो। यदि मेरे ऊपर आपकी कृपा है और मैं आपका प्रिय हूँ तो पहले भोजन कीजिये फिर मैं सोचूँगा। तब महातेजस्वी धृतराष्ट्र ने युधिष्ठिर से कहा कि हे पुत्र! यदि तुम मुझे वन में जाने की अनुमति दे दो तो मैं भोजन करूँ, यही मेरी इच्छा है। जब राजेन्द्र धृतराष्ट्र युधिष्ठिर से ऐसा कह रहे थे, तभी सत्यवतीपुत्र ऋषि व्यास वहाँ आपहुँचे और कहने लगे कि–

तीसरा अध्याय : युधिष्ठिर की धृतराष्ट्र को वन जाने की अनुमति।

युधिष्ठिर महाबाहो यथाह कुरुनन्दनः।
धृतराष्ट्रो महातेजास्तत् कुरुष्वाविचारयन्॥ १॥
अयं हि वृद्धो नृपतिर्हतपुत्रो विशेषतः।
नेदं कृच्छ्रं चिरतरं सहेदिति मतिर्मम॥ २॥
गान्धारी च महाभागा प्राज्ञा करुणवेदिनी।
पुत्रशोकं महाराज धैर्येणोद्वहते भृशम्॥ ३॥
अहमप्येतदेव त्वां ब्रवीमि कुरु मे वचः।
अनुज्ञां लभतां राजा मा वृथेह मरिष्यति॥ ४॥

व्यास जी ने कहा कि हे महाबाहु युधिष्ठिर! कुरुनन्दन महातेजस्वी धृतराष्ट्र जैसा कहते हैं, वह बिना विचारे पूरा करो। ये राजा अब बूढ़े हो गये हैं, विशेषरूप से ये पुत्रों के मारे जाने से दुःखी हैं। मेरा विचार है कि ये इस दुःख को अधिक दिन तक नहीं सह सकेंगे। हे महाराज! यह महाभागा गान्धारी बुद्धिमती और करुणा को अनुभव करने वाली है। यह भी बड़े धैर्य से पुत्र शोक को सहन कर रही है। मैं भी तुमसे यही कह रहा हूँ कि तुम मेरी बात मानो, राजा को वनवास की आज्ञा दे दो, नहीं तो इनकी यहाँ व्यर्थ ही मृत्यु होजाएगी।

राजर्षीणां पुराणानामनुयातु गतिं नृपः।
राजर्षीणां हि सर्वेषामन्ते वनमुपाश्रयः॥ ५॥
इत्युक्तः स तदा राजा व्यासेनाद्भुतकर्मणा।
प्रत्युवाच महातेजा धर्मराजो महामुनिम्॥ ६॥
भगवानेव नो मान्यो भगवानेव नो गुरुः।
भगवानस्य राज्यस्य कुलस्य च परायणम्॥ ७॥
अहं तु पुत्रो भगवन् पिता राजा गुरुश्च मे।
निदेशवर्ती च पितुः पुत्रो भवति धर्मतः॥ ८॥

ये राजा पुराने राजर्षियों के मार्ग पर चल सकें। सारे राजर्षियों ने अन्त में वन में ही आश्रय लिया है। अद्भुत कर्म करने वाले व्यास जी द्वारा यह

कहे जाने पर महातेजस्वी राजा धर्मराज ने महामुनि को उत्तर दिया कि आप ही हमारे मान्य पुरुष और गुरु हैं, हमारे राज्य और कुल के भी परम आधार आप ही हैं। हे भगवान्! मैं तो इनका पुत्र हूँ। ये राजा हमारे पिता और गुरु हैं, धर्म के अनुसार पिता ही पुत्र को आदेश देता है, पुत्र पिता को नहीं।

इत्युक्तः स तु तं प्राह व्यासो वेदविदां वरः।
युधिष्ठिरं महातेजाः पुनरेव महाकविः॥ ९॥
एवमेतन्महाबाहो यथा वदसि भारत।
राजायं वृद्धतां प्राप्तः प्रमाणे परमे स्थितः॥ १०॥
सोऽयं मयाभ्यनुज्ञातस्त्वया च पृथिवीपतिः।
करोतु स्वमभिप्रायं मास्य विघ्नकरो भव॥ ११॥
एष एव परो धर्मो राजर्षीणां युधिष्ठिर।
समरे वा भवेन्मृत्युर्वने वा विधिपूर्वकम्॥ १२॥

ऐसा कहे जाने पर वेदवेत्ताओं में श्रेष्ठ, महातेजस्वी महाज्ञानी व्यास जी ने युधिष्ठिर से पुनः कहा कि हे महाबाहु भारत! तुम जैसा कहते हो ठीक है, तथापि राजा धृतराष्ट्र अब बूढ़े और अन्तिम अवस्था में स्थित हैं। हे पृथिवीपति! इसलिये अब ये मेरी और तुम्हारी अनुमति से तपस्या द्वारा अपना मनोरथ पूरा करें। तुम इनके शुभकर्मों में बाधक मत बनो। हे युधिष्ठिर! राजर्षियों का यही परमधर्म है कि या तो वे युद्धक्षेत्र में मृत्यु को प्राप्त हों या वन में उनकी शास्त्रों के अनुसार मृत्यु हो।

पित्रा तु तव राजेन्द्र पाण्डुना पृथिवीक्षिता।
शिष्यवृत्तेन राजायं गुरुवत् पर्युपासितः॥ १३॥
क्रतुभिर्दक्षिणावद्भी रत्नपर्वतशोभितैः।
महद्भिरिष्टं गौर्भुक्ता प्रजाश्च परिपालिताः॥ १४॥
पुत्रसंस्थं च विपुलं राज्यं विप्रोषिते त्वयि।
त्रयोदशसमा भुक्तं दत्तं च विविधं वसु॥ १५॥
त्वया चायं नरव्याघ्र गुरुशुश्रूषयानघ।
आराधितः सभृत्येन गान्धारी च यशस्विनी॥ १६॥

हे राजेन्द्र! तुम्हारे पिता पाण्डु ने भी इन राजा की शिष्य के समान सेवा की थी। इन्होंने रत्नों के ढेरों से सुशोभित और विशाल दक्षिणा वाले यज्ञों को किया है। पृथिवी का राज्य भोगा और प्रजा का भलीभाँति पालन किया है। तुम्हारे वन में चले जाने पर तेरह वर्षों तक इन्होंने अपने पुत्र के आधीन विशाल साम्राज्य का उपभोग किया है और नाना प्रकार के धन दिये हैं। हे निष्पाप, नरव्याघ्र! तुमने भी अपने सेवकों सहित इनकी और यशस्विनी गान्धारी की गुरु के समान आराधना की है।

अनुजानीहि पितरं समयोऽस्य तपोविधौ।
न मन्युर्विद्यते चास्य सुसूक्ष्मोऽपि युधिष्ठिर॥ १७॥
एतावदुक्त्वा वचनमनुमान्य च पार्थिवम्।
तथास्त्विति च तेनोक्तः कौन्तेयेन ययौ वनम्॥ १८॥
गते भगवति व्यासे राजा पाण्डुसुतस्तदा।
प्रोवाच पितरं वृद्धं मन्दं मन्दमिवानतः॥ १९॥

हे युधिष्ठिर! तुम अपने इन ताऊ को वन में जाने की अनुमति दे दो। यह इनके तपस्या करने का समय है। इनके मन में तुम्हारे ऊपर थोड़ा सा भी क्रोध नहीं है। ऐसा कहकर और राजा युधिष्ठिर को राजी कर, जब कुन्तीपुत्र ने बहुत अच्छा कहकर उनकी बात मान ली, तब वे ऋषि वन में अपने आश्रम में चले गये। भगवान् व्यास के जाने पर, पाण्डुपुत्र राजा ने बूढ़े ताऊ धृतराष्ट्र से विनम्रतापूर्वक धीरे-धीरे यह कहा कि--

यदाह भगवान् व्यासो यच्चापि भवतो मतम्।
यथाऽऽह च महेष्वासः कृपो विदुर एव च॥ २०॥
युयुत्सुः संजयश्चैव तत्कर्तास्म्यहमञ्जसा।
सर्व एव हि मान्या मे कुलस्य हि हितैषिणः॥ २१॥
इदं तु याचे नृपते त्वामहं शिरसा नतः।
क्रियतां तावदाहारस्ततो गच्छाश्रमं प्रति॥ २२॥

भगवान व्यास जी ने, महाधनुर्धर कृपाचार्य, विदुर, युयुत्सु और संजय ने जो कहा है, उसे मैं निस्सन्देह पूरा करूँगा क्योंकि ये सारे मेरे मान्य और कुल के हितैषी हैं। पर हे राजन्! मैं आपसे सिर झुकाकर यह प्रार्थना करता हूँ कि आप पहले भोजन कीजिये, फिर आश्रम को जाइयेगा।

चौथा अध्याय : धृतराष्ट्र के द्वारा युधिष्ठिर को राजनीति का उपदेश।

ततो राज्ञाभ्यनुज्ञातो धृतराष्ट्रः प्रतापवान्।
ययौ स्वभवनं राजा गान्धार्यानुगतस्तदा॥ १॥
मन्दप्राणगतिर्धीमान् कृच्छ्रादिव समुद्वहन्।
पदातिः स महीपालो जीर्णो गजपतिर्यथा॥ २॥
तमन्वगच्छद् विदुरो विद्वान् सूतश्च संजयः।
स चापि परमेष्वासः कृपः शारद्वतस्तथा॥ ३॥
कृताहारं कृताहाराः सर्वे ते विदुरादयः।
पाण्डवाश्च कुरुश्रेष्ठमुपातिष्ठन्त तं नृपम्॥ ४॥

फिर राजा युधिष्ठिर की अनुमति लेकर प्रतापी राजा धृतराष्ट्र गान्धारी के साथ अपने भवन में गये। उस समय उनकी चलने फिरने की शक्ति बहुत कम हो गयी थी। वे धीमान् राजा पैदल चलते हुए, बूढ़े हाथी की तरह बड़ी कठिनाई से अपने पैर को उठाते थे। उनके पीछे विद्वान् विदुर, सूत संजय और महाधनुर्धर शरद्वान् पुत्र कृपाचार्य भी गये। धृतराष्ट्र के भोजन कर लेने पर, पाण्डव और विदुर आदि सब लोगों ने भी भोजन किया और फिर वे सब कुरुश्रेष्ठ राजा धृतराष्ट्र की सेवा में उपस्थित हुए।

धृतराष्ट्र उवाच

अप्रमादस्त्वया कार्यः सर्वथा कुरुनन्दन।
अष्टाङ्गे राजशार्दूल राज्ये धर्मपुरस्कृते॥ ५॥
तत्तु शक्यं महाराज रक्षितुं पाण्डुनन्दन।
राज्यं धर्मेण कौन्तेय विद्वानसि निबोध तत्॥ ६॥
विद्यावृद्धान् सदैव त्वमुपासीथा युधिष्ठिर।
शृणुयास्ते च यद् ब्रूयुः कुर्याश्चैवाविचारयन्॥ ७॥
प्रातरुत्थाय तान् राजन् पूजयित्वा यथाविधि।
कृत्यकाले समुत्पन्ने पृच्छेथाः कार्यमात्मनः॥ ८॥

फिर धृतराष्ट्र ने युधिष्ठिर से कहा कि हे राजसिंह कुरुनन्दन! तुम्हें अपने आठ अंगों वाले और धर्म को आगे रखकर संचालित राज्य में कभी किसी तरह का प्रमाद नहीं करना है। हे पाण्डुनन्दन महाराज! राज्य का संचालन धर्म के आधार पर ही हो सकता है, यह बात तुम विद्वान् होने के कारण अच्छी तरह से जानते हो, पर तुम इस विषय में मुझसे भी सुनो। हे युधिष्ठिर! तुम सदा विद्यावृद्ध व्यक्तियों की संगति किया करो। वे जो कुछ कहें उसे सुनो और बिना विचारे उसका पालन करो। हे राजन्! हे भरतनन्दन तात! प्रातः उठकर उन विद्वानों का यथाविधि सत्कार कर, जो कार्य करने योग्य उपस्थित हो, उसके विषय में अपना कर्त्तव्य पूछो।

ते तु सम्मानिता राजंस्त्वया कार्यहितार्थिना।
प्रवक्ष्यन्ति हितं तात सर्वथा तव भारत॥ ९॥
अमात्यानुपधातीतान् पितृपैतामहाञ्शुचीन्।
दान्तान् कर्मसु पुण्यांश्च पुण्यान् सर्वेषु योजयेः॥ १०॥
चारयेथाश्च सततं चारैरविदितः परैः।
परीक्षितैर्बहुविधैः स्वराष्ट्रप्रतिवासिभिः॥ ११॥
पुरं च ते सुगुप्तं स्याद् दृढप्राकारतोरणम्।
अट्टाट्टालकसम्बाधं षट्पदं सर्वतोदिशम्॥ १२॥

हे भारत! हे तात! वे अपने कार्य के हित के इच्छुक तुम्हारे द्वारा सम्मानित होकर सर्वथा तुम्हारे हित की बात ही बतायेंगे। जो लोग किसी भी खतरे से रहित हों, जो दादा परदादा के समय से कार्य करते आ रहे हों, जो हृदय से शुद्ध, जितेन्द्रिय, आचरण में पवित्र तथा पवित्र भावना से कार्य करने वाले हों, ऐसे मन्त्रियों को ही कार्यों में लगाना चाहिये। जिनकी बहुत तरह से परीक्षा कर ली गयी हो, जो अपने देश के ही निवासी हों, ऐसे गुप्तचरों द्वारा सदा शत्रुओं का इसप्रकार से भेद लेते रहना चाहिये, जिससे शत्रु तुम्हारा भेद न ले सके। तुम्हारे नगर की रक्षा अच्छी तरह से होनी चाहिये, उसका मुख्य द्वार तथा चारों तरफ की दीवारें मजबूत होनी चाहियें। नगर के बीच में ऊँची अट्टालिकाएँ हों। नगर की सारी दिशाओं में छः चारदीवारियाँ बननी चाहियें।

तस्य द्वाराणि सर्वाणि पर्याप्तानि बृहन्ति च।
सर्वतः सुविभक्तानि यन्त्रैरारक्षितानि च॥ १३॥
पुरुषैरलमर्थस्ते विदितैः कुलशीलतः।
आत्मा च रक्ष्यः सततं भोजनादिषु भारत॥ १४॥
विहाराहारकालेषु माल्यशय्यासनेषु च।
स्त्रियश्च ते सुगुप्ताः स्युर्वृद्धैराप्तैरधिष्ठिताः॥ १५॥
शीलवद्भिः कुलीनैश्च विद्वद्भिश्च युधिष्ठिर।

उस चार दीवारी में पर्याप्त दरवाजे हों और वे सब विशाल हों, उन द्वारों का विभाग अच्छी तरह से किया हुआ हो तथा उनकी रक्षा के लिये यन्त्र

लगे हुए हों। हे भारत! जिन व्यक्तियों के कुल और शील अच्छी तरह से ज्ञात हों, उन्हीं से तुम्हें काम लेना चाहिये। तुम्हें भोजन आदि के अवसरों पर सर्वदा अपनी रक्षा का ध्यान रखना चाहिये। भ्रमण करते हुए, भोजन के समय, माला धारण करते हुए, आसन पर बैठते हुए तथा शय्या पर सोते हुए, तुम्हें अपनी रक्षा का ध्यान रखना चाहिये। हे युधिष्ठिर! तुम्हें अन्तःपुर की स्त्रियों की रक्षा का, बूढ़े, विश्वासपात्र, शीलवान्, कुलीन, और विद्वान् व्यक्तियों की अध्यक्षता में सुन्दर प्रबन्ध करना चाहिये।

मन्त्रिणश्चैव कुर्वीथा द्विजान् विद्याविशारदान्॥ १६॥
विनीतांश्च कुलीनांश्च धर्मार्थकुशलानृजून्।
तैः सार्धं मन्त्रयेथास्त्वं नात्यर्थं बहुभिः सह॥ १७॥
समस्तैरपि च व्यस्तैर्व्यपदेशेन केनचित्।
सुसंवृतं मन्त्रगृहं स्थलं चारुह्य मन्त्रयेः॥ १८॥
अरण्ये निःशलाके वा न च रात्रौ कथंचन।
वानराः पक्षिणश्चैव ये मनुष्यानुसारिणः॥ १९॥
सर्वे मन्त्रगृहे वर्ज्या ये चापि जडपङ्गवः।

तुम उन्हीं लोगों को मन्त्री बनाओ, जो ब्राह्मण, विद्याविशारद, विनीत, कुलीन, धर्म और अर्थ में कुशल, और सरलस्वभाव हों। उनके साथ तुम मन्त्रणा करो, पर एकसाथ बहुत से लोगों के साथ अधिक देरतक मन्त्रणा नहीं करनी चाहिये। तुम्हें सारे मन्त्रियों अथवा उनमें से एक दो को किसी बहाने से अच्छी तरह चारों तरफ से बन्द कमरे या खुले मैदान में ले जाकर उनके साथ मन्त्रणा करनी चाहिये। ऐसे वन प्रदेश में जहाँ झाड़–झंखाड़ न हो, वहाँ भी मन्त्रणा की जा सकती है। पर इन स्थानों में रात्रि में कभी मन्त्रणा नहीं करनी चाहिये। बन्दर और पक्षी जो मनुष्यों की नकल करते हैं तथा मूर्ख और पंगु लोगों को भी मन्त्रणाघर में नहीं जाने देना चाहिये।

मन्त्रभेदे हि ये दोषा भवन्ति पृथिवीक्षिताम्॥ २०॥
न ते शक्याः समाधातुं कथंचिदिति मे मतिः।
दोषांश्च मन्त्रभेदस्य ब्रूयास्त्वं मन्त्रिमण्डले॥ २१॥
अभेदे च गुणा राजन् पुनः पुनररिंदम।
पौरजानपदानां च शौचाशौचे युधिष्ठिर॥ २२॥
यथा स्याद् विदितं राजंस्तथा कार्यं कुरूद्वह।
व्यवहारश्च ते राजन् नित्यमाप्तैरधिष्ठितः॥ २३॥
योज्यस्तुष्टैर्हितै राजन् नित्यं चारैरनुष्ठितः।
परिमाणं विदित्वा च दण्डं दण्ड्येषु भारत॥ २४॥
प्रणयेयुर्यथान्यायं पुरुषास्ते युधिष्ठिर।

मेरा विचार है कि राजाओं की मन्त्रणा प्रकट होने पर जो संकट प्राप्त होते हैं, उनका समाधान नहीं किया जा सकता। हे शत्रुदमन राजन्! मन्त्रणा के प्रकट होने से जो दोष होते हैं और प्रकट न होने से जो लाभ होते हैं, उन्हें तुम अपने मन्त्रियों को बार–बार बताते रहा करो। हे कुरुकुल के आधार राजा युधिष्ठिर! तुम्हें ऐसा प्रयत्न करते रहना चाहिये जिससे तुम्हें यह पता लगता रहे कि तुम्हारे नगर और देश के निवासियों का हृदय तुम्हारे प्रति पवित्र है या अपवित्र? हे राजन्! तुम्हें अपनी न्याय प्रक्रिया भी उन लोगों के आधीन रखनी चाहिये, जो सदा तुम्हारे विश्वासपात्र, संतोषी और हितैषी हों। उनके कार्यों पर भी सदा गुप्तचरों के द्वारा दृष्टि रखना। हे भारत, युधिष्ठिर! तुम्हारे वे न्यायाधीश पुरुष, अपराधियों के अपराध तथा दण्ड के परिणाम को समझकर न्याय के अनुसार उचित दण्ड दें।

आदानरुचयश्चैव परदाराभिमर्शिनः॥ २५॥
उग्रदण्डप्रधानाश्च मिथ्या व्याहारिणस्तथा।
आक्रोष्टारश्च लुब्धाश्च हर्तारः साहसप्रियाः॥ २६॥
सभाविहारभेत्तारो वर्णानां च प्रदूषकाः।
हिरण्यदण्ड्या वध्याश्च कर्तव्या देशकालतः॥ २७॥

जो घूस लेने के शौकीन, परायी स्त्रियों से सम्बन्ध रखनेवाले, कठोर दण्ड के पक्षपाती, झूठा फैसला देते हों, कटु बोलनेवाले, लोभी, दूसरों का धन हड़पनेवाले, दुस्साहसी, सभाभवन और उद्यान आदि को नष्ट करनेवाले, सभी वर्णों के लोगों को कलंकित करनेवाले हों, उन्हें देशकाल का ध्यान करके स्वर्ण या प्राणदण्ड द्वारा दण्डित करना चाहिये। तुम्हें प्रातःकाल ही उन से मिलना चाहिये जो तुम्हारे आयव्यय के कार्य में नियुक्त हों। फिर आभूषण पहनने तथा भोजन के कार्य को करना चाहिये।

प्रातरेव हि पश्येथा ये कुर्युर्व्ययकर्म ते।
अलंकारमथो भोज्यमत ऊर्ध्वं समाचरेः॥ २८॥

पश्येथाश्च ततो योधान् सदा त्वं प्रतिहर्षयन्।
दूतानां च चराणां च प्रदोषस्ते सदा भवेत्॥ २९॥
सदा चापररात्रान्ते भवेत् कार्यार्थनिर्णयः।
मध्यरात्रे विहारस्ते मध्याह्ने च सदा भवेत्॥ ३०॥
सर्वे त्वौपयिकाः कालाः कार्याणां भरतर्षभ।
तथैवालंकृतः काले तिष्ठेथा भूरिदक्षिण॥ ३१॥
कोशस्य निचये यत्नं कुर्वीथा न्यायतः सदा।
विविधस्य महाराज विपरीतं विवर्जयेः॥ ३२॥

फिर तुम्हें सैनिकों का उत्साह बढ़ाते हुए उनसे मिलना चाहिये। दूतों और गुप्तचरों से मिलने का समय सदा सन्ध्या काल होना चाहिये। जब एक प्रहर रात्रि रह जाये, तभी उठकर अगले दिन के कार्यक्रम को निश्चित कर लेना चाहिये। आधी रात को तथा दोपहर को तुम्हें स्वयं घूमफिरकर प्रजा की अवस्था को देखना चाहिये। हे पर्याप्त दक्षिणा देने वाले भरतश्रेष्ठ! वैसे कार्य करने के लिये सारे समय उपयुक्त हैं। तुम्हें समय पर आभूषणों से भी अलंकृत होकर बैठना चाहिये। हे महाराज! तुम्हें तरह–तरह के कोष को एकत्र करने के लिये न्यायपूर्वक ही यत्न करना चाहिये, इसके विपरीत अन्यायपूर्वक किये जा रहे प्रयत्न को छोड़ देना चाहिये।

चारैर्विदित्वा शत्रूंश्च ये राज्ञामन्तरैषिणः।
तानाप्तैः पुरुषैर्दूराद् घातयेथा नराधिप॥ ३३॥
कर्म दृष्ट्वाथ भृत्यांस्त्वं वरयेथाः कुरूद्वह।
कारयेथाश्च कर्माणि युक्तायुक्तैरधिष्ठितैः॥ ३४॥
सेनाप्रणेता च भवेत् तव तात दृढव्रतः।
शूरः क्लेशसहश्चैव हितो भक्तश्च पूरुषः॥ ३५॥
सर्वे जनपदाश्चैव तव कर्माणि पाण्डव।
गोवद्रासभवश्चैव कुर्युर्ये व्यवहारिणः॥ ३६॥

हे नराधिप! राजाओं के दोषों को देखने वाले जो अपने शत्रु हों, उन्हें गुप्तचरों से जानकर, विश्वस्त पुरुषों द्वारा दूर से ही नष्ट करवा दो। हे कुरुकुल के आधार! तुम अपने सेवकों का चुनाव उनके कार्य देखकर करो। अपने आश्रित व्यक्ति योग्य हों या अयोग्य उनसे किसी भी तरह का कार्य अवश्य कराना चाहिये। हे तात! तुम्हारा सेनापति भी दृढ़प्रतिज्ञ, शूरवीर, कष्टों को सहन करने वाला, हितैषी, तुम्हारा भक्त और पुरुषार्थी होना चाहिये। जैसे गधों और बैलों से काम लेने वाले उनके खाने का भी प्रबन्ध करते हैं, वैसे ही तुम्हारे राज्य में रहने वाले जो कारीगर और शिल्पी तुम्हारा काम करें, उनके भरण पोषण का प्रबन्ध तुम्हें अवश्य करना चाहिये।

स्वरन्ध्रं पररन्ध्रं च स्वेषु चैव परेषु च।
उपलक्षयितव्यं ते नित्यमेव युधिष्ठिर॥ ३७॥
देशजाश्चैव पुरुषा विक्रान्ताः स्वेषु कर्मसु।
यात्राभिरनुरूपाभिरनुग्राह्या हितास्त्वया॥ ३८॥
गुणार्थिनां गुणः कार्यो विदुषां वै जनाधिप।
अविचार्याश्च ते ते स्युरचला इव नित्यशः॥ ३९॥

हे युधिष्ठिर! तुम्हें सदा ही अपने लोगों तथा शत्रुओं के छिद्रों को अवश्य ध्यान में रखना चाहिये। हे जनाधिप! अपने देशवासियों में जो लोग अपने कार्यों में विशेष कुशल हों, ऐसे हितकारी लोगों को तुम्हें उनके अनुरूप आजीविका देकर अनुगृहीत करना चाहिये। विद्वान् राजा के लिये यह उचित है कि वह गुणवान् व्यक्ति के गुण बढ़ाने का प्रयत्न करता रहे। इस विषय में तुम्हें कोई विचार नहीं करना चाहिये, क्योंकि ऐसे व्यक्ति तुम्हारे लिये पर्वत के समान अचल सहायक सिद्ध होंगे।

पाँचवाँ अध्याय : धृतराष्ट्र के द्वारा युधिष्ठिर को राजनीति का उपदेश।

मण्डलानि च बुध्येथाः परेषामात्मनस्तथा।
उदासीनगणानां च मध्यस्थानां च भारत॥ १॥
चतुर्णां शत्रुजातानां सर्वेषामाततायिनाम्।
मित्रं चामित्रमित्रं च बोद्धव्यं तेऽरिकर्शन॥ २॥
तथामात्या जनपदा दुर्गाणि विविधानि च।
बलानि च कुरुश्रेष्ठ भवन्त्येषां यथेच्छकम्॥ ३॥
यदा स्वपक्षो बलवान् परपक्षस्तथाबलः।
विगृह्य शत्रून् कौन्तेय जेयः क्षितिपतिस्तदा॥ ४॥

धृतराष्ट्र ने कहा कि हे भारत! तुम्हें अपने शत्रुओं, मध्यस्थों और उदासीनों इन चार प्रकार के मानवसमूहों का ज्ञान होना चाहिये। हे शत्रुदमन! तुम्हें चार प्रकार के शत्रुओं, सारे आततायियों, मित्रों और शत्रु के मित्र को भी पहचानना चाहिये। हे कुरुश्रेष्ठ! मन्त्री, देश, तरह–तरह के दुर्ग और सेना इन पर शत्रुओं की यथेच्छ निगाह रहती है, इसलिये इनकी रक्षा के लिये सावधान रहना चाहिये। हे कुन्तीपुत्र! जब स्वयं प्रबल और शत्रु का पक्ष कमजोर हो तो युद्ध छेड़कर विपक्षी राजा को जीत लेना चाहिये।

यदा परे च बलिनः स्वपक्षश्चैव दुर्बलः।
सार्धं विद्वांस्तदा क्षीणः परैः संधिं समाश्रयेत्॥ ५॥
द्रव्याणां संचयश्चैव कर्तव्यः सुमहांस्तथा।
यदा समर्थो यानाय नचिरेणैव भारत॥ ६॥
तदा सर्वं विधेयं स्यात् स्थाने न स विचारयेत्।
भूमिरल्पफला देया विपरीतस्य भारत॥ ७॥
हिरण्यं कुप्यभूयिष्ठं मित्रं क्षीणमथो बलम्।

जब शत्रु प्रबल और अपना पक्ष दुर्बल हो, तब क्षीणशक्ति विद्वान् राजा को शत्रु के साथ संधि कर लेनी चाहिये। हे भारत! राजा को सदा द्रव्यों के महान् संचय का यत्न करते रहना चाहिये। जब वह आक्रमण के लिये समर्थ हो जाये, तब जल्दी ही उसे जो कुछ करना हो, उस पर स्थिरतापूर्वक विचार कर लेना चाहिये। हे भारत! किन्तु यदि विपरीत अवस्था हो तो शत्रु को कम उपजाऊ भूमि, थोड़ा सोना और अधिक दूसरी धातुएँ, दुर्बल मित्र और सेना देकर उसके साथ संधि कर ले।

विपरीतान्निगृह्णीयात् स्वं हि संधिविशारदः॥ ८॥
संध्यर्थं राजपुत्रं वा लिप्सेथा भरतर्षभ।
विपरीतं न तच्छ्रेयः पुत्र कस्यांचिदापदि॥ ९॥
तस्याः प्रमोक्षे यत्नं च कुर्याः सोपायमन्त्रवित्।
प्रकृतीनां च राजेन्द्र राजा दीनान् विभावयेत्॥ १०॥
क्रमेण युगपत् सर्वं व्यवसायं महाबलः।
पीडनं स्तम्भनं चैव कोशभङ्गस्तथैव च॥ ११॥

शत्रु कमजोर हो तो हे भरतश्रेष्ठ! यदि वह संधि के लिये प्रार्थना करे, सन्धिविशारद राजा उससे धन सम्पत्ति ग्रहण करे या संधि के लिये उसके राजकुमार को जमानत के तौर पर अपने पास रखने की माँग करे। इसके विपरीत बर्ताव करना कल्याणकारी नहीं है। यदि कोई आपत्ति तुम्हारे ऊपर आ जाए तो उपाय तथा मन्त्रणा को जानने वाले तुम जैसे राजा को उससे छूटने का यत्न करना चाहिये। हे राजेन्द्र! प्रजा में जो दीन दरिद्र मनुष्य हों, राजा को उनका भी पालन करना चाहिये। महाबली राजा को क्रमपूर्वक या एक साथ ही अपने शत्रुओं के विपरीत कार्य कर देने चाहियें। जैसे वह उसे पीड़ा दे, उसकी गति अवरुद्ध कर दे और उसके खजाने को नष्ट कर दे।

कार्यं यत्नेन शत्रूणां स्वराज्यं रक्षता स्वयम्।
न च हिंस्योऽभ्युपगतः सामन्तो वृद्धिमिच्छता॥ १२॥
कौन्तेय तं न हिंसेत् स यो महीं विजिगीषते।
गणानां भेदने योगमीप्सेथाः सह मन्त्रिभिः॥ १३॥
साधुसंग्रहणाच्चैव पापनिग्रहणात् तथा।
दुर्बलाश्चैव सततं नान्वेष्टव्या बलीयसा॥ १४॥

अपने राज्य की रक्षा करते हुए राजा को शत्रु के साथ स्वयं उचित रीति से व्यवहार करना चाहिये। हे कुन्तीपुत्र! जो सारी भूमि को जीतना चाहता है, ऐसे अपनी वृद्धि को चाहने वाले राजा को किसी प्रकार भी शरण में आए हुए सामन्त का वध नहीं करना चाहिये। तुम अपने मन्त्रियों के साथ शत्रु के गणों में फूट डालने की इच्छा रखना। राजा अच्छे व्यक्तियों से मेल जोल बढ़ाये और बुरे व्यक्तियों को बन्धन में डाले। बलवान् राजा को दुर्बल शत्रु के पीछे भी सदा नहीं पड़े रहना चाहिये।

तिष्ठेथा राजशार्दूल वैतसीं वृत्तिमास्थितः।
यद्येनमभियायाच्च बलवान् दुर्बलं नृपः॥ १५॥
सामादिभिरुपायैस्तं क्रमेण विनिवर्तयेः।
अशक्नुवंश्च युद्धाय निष्पतेत् सह मन्त्रिभिः॥ १६॥
कोशेन पौरैर्दण्डेन ये चास्य प्रियकारिणः।
असम्भवे तु सर्वस्य यथा मुख्येन निष्पतेत्॥ १७॥
क्रमेणानेन मुक्तिः स्याच्छरीरमिति केवलम्।

हे राजसिंह! तुम्हें बेंत के स्वभाव को अपनाना चाहिये। यदि दुर्बल राजा पर कोई बलवान् राजा आक्रमण करे तो क्रमशः साम आदि उपायों से उसे लौटाने का प्रयत्न करना चाहिये। यदि युद्ध के लिये शक्ति न हो तो मन्त्रियों सहित उसकी शरण में जाये और कोश, दण्डशक्ति, पुरवासी मनुष्य इन्हें देकर अथवा जो भी उसके प्रिय कार्य हों उन्हें करके उसे लौटाने का प्रयत्न करना चाहिये। किन्तु यदि किसी भी उपाय से सन्धि न हो तो अपनी प्रमुख शक्ति के साथ उस पर टूट पड़े। तब यदि अपना शरीर भी चला जाये तो भी मुक्ति होजाती है।

प्रयास्यमानो नृपतिस्त्रिविधां परिचिन्तयेत्॥ १८॥
आत्मनश्चैव शत्रोश्च शक्तिं शास्त्रविशारदः।
उत्साहप्रभुशक्तिभ्यां मन्त्रशक्त्या च भारत॥ १९॥
उपपन्नो नृपो यायाद् विपरीतं च वर्जयेत्।
आददीत बलं राजा मौलं मित्रबलं तथा॥ २०॥
अटवीबलं भृतं चैव तथा श्रेणीबलं प्रभो।
तत्र मित्रबलं राजन् मौलं चैव विशिष्यते॥ २१॥
श्रेणीबलं भृतं चैव तुल्ये एवेति मे मतिः।
तथा चारबलं चैव परस्परसमं नृप॥ २२॥
विज्ञेयं बहुकालेषु राज्ञा काल उपस्थिते।

शत्रु पर आक्रमण के लिये उद्यत शास्त्र विशारद राजा को अपनी और शत्रु की तीन प्रकार की शक्तियों पर विचार करना चाहिये। हे भारत! जो उत्साहशक्ति, सामर्थ्यशक्ति, और मन्त्रशक्ति इन तीनों में शत्रु से अधिक हो उसे ही आक्रमण करना चाहिये। पर यदि उसकी अवस्था इसके विपरीत हो तो उसे आक्रमण का विचार छोड़ देना चाहिये। हे प्रभो! राजा को अपने पास सेना, धन, मित्र, अरण्य, भृत्य और श्रेणी बल की वृद्धि करनी चाहिये। हे राजन्! इन सभी में मित्रशक्ति और धनशक्ति अधिक विशेष है। मेरे विचार से भृत्यबल और श्रेणीबल समान हैं। ऐसे ही गुप्तचरों और सेना की शक्ति ये दोनों समान हैं, राजा को समय आने पर अधिक अवसरों पर इस तत्व को समझना चाहिये।

आपदश्चापि बोद्धव्या बहुरूपा नराधिप॥ २३॥
विकल्पा बहुधा राजन्नापदां पाण्डुनन्दन।
सामादिभिरुपन्यस्य गणयेत् तान् नृपः सदा॥ २४॥
अथोपपत्त्या शकटं पद्मवज्रं च भारत।
उशना वेद यच्छास्त्रं तत्रैतद् विहितं विभो॥ २५॥
चारयित्वा परबलं कृत्वा स्वबलदर्शनम्।
स्वभूमौ योजयेद् युद्धं परभूमौ तथैव च॥ २६॥

हे नराधिप! राजा को उन आपत्तियों को भी जो बहुत रूपों में आया करती हैं, जानना चाहिये। हे पाण्डुपुत्र राजन्! उन आपत्तियों के बहुत से विकल्प हैं। राजा उन सारी आपत्तियों की गिनती अपने सामने रखे और साम दाम आदि से उनको निबटाये। हे भरतनन्दन प्रभो! शुक्राचार्य ने जिस शास्त्र का निर्माण किया उसमें ऐसा विधान है कि युद्ध के समय राजा सेना के शकट, पद्म और वज्र आदि व्यूह बना ले। राजा पहले गुप्तचरों द्वारा अपनी तथा शत्रु की शक्ति दोनों को अच्छी तरह जान ले, फिर अपनी या शत्रु की भूमि पर युद्ध को आरम्भ करे।

बलं प्रसादयेद् राजा निक्षिपेद् बलिनो नरान्।
ज्ञात्वा स्वविषयं तत्र सामादिभिरुपक्रमेत्॥ २७॥
सर्वथैव महाराज शरीरं धारयेदिह।
प्रेत्य चेह च कर्तव्यमात्मनिःश्रेयसं परम्॥ २८॥
एवं त्वया कुरुश्रेष्ठ वर्तितव्यं प्रजहितम्।
उभयोर्लोकयोस्तात प्राप्तये नित्यमेव हि॥ २९॥

राजा अपनी सेना को सदा प्रसन्न रखे और सेना में बलवान् व्यक्तियों की ही भर्ती करे। उसे अपने बलाबल को जानकर फिर साम दाम आदि उपायों द्वारा सन्धि या युद्ध के लिये प्रयत्न करना चाहिये। हे महाराज! राजा को अपने शरीर की रक्षा सब तरफ से करनी चाहिये। उसे इस लोक और परलोक दोनों जगह अपने परम कल्याण के कार्य अवश्य करने चाहियें। हे कुरुश्रेष्ठ! तुम्हें सदा प्रजा के हित के कार्य इस प्रकार करने चाहियें जिससे तुम्हें इस लोक और परलोक में सुख की प्राप्ति हो।

भीष्मेण सर्वमुक्तोऽसि कृष्णेन विदुरेण च।
मयाप्यवश्यं वक्तव्यं प्रीत्या ते नृपसत्तम॥ ३०॥
एतत् सर्वं यथान्यायं कुर्वीथा भूरिदक्षिण।
प्रियस्तथा प्रजानां त्वं स्वर्गे सुखमवाप्स्यसि॥ ३१॥
अश्वमेधसहस्रेण यो यजेत् पृथिवीपतिः।
पालयेद् वापि धर्मेण प्रजास्तुल्यं फलं लभेत्॥ ३२॥

यद्यपि तुम्हें भीष्म, श्रीकृष्ण और विदुर ने राजनीति के बारे में सब कुछ बता दिया है, पर हे राजश्रेष्ठ! प्रेम होने के कारण मुझे भी कुछ कहना चाहिये इसलिये मैंने तुम्हें यह सब बताया है। हे प्रचुर दक्षिणा देने वाले महाराज! तुम इन बातों का यथोचित रूप से पालन करना। इससे तुम प्रजा के प्यारे बनोगे और परलोक में उत्तम गति को प्राप्त करोगे। जो राजा एक हजार अश्वमेध यज्ञ करे और दूसरा राजा धर्म के अनुसार प्रजा का पालन करे तो दोनों का समान फल मिलता है।

छठा अध्याय : धृतराष्ट्र की प्रजा से क्षमा याचना।

युधिष्ठिर उवाच

एवमेतत् करिष्यामि यथाऽऽत्थ पृथिवीपते।
भूयश्चैवानुशास्योऽहं भवता पार्थिवर्षभ॥ १॥
भीष्मे स्वर्गमनुप्राप्ते गते च मधुसूदने।
विदुरे संजये चैव कोऽन्यो मां वक्तुमर्हति॥ २॥
यत् तु मामनुशास्तीह भवानद्य हिते स्थितः।
कर्तास्मि तन्महीपाल निर्वृतो भव पार्थिव॥ ३॥
पुत्र संशाम्यतां तावन्ममापि बलवाञ्श्रमः।
इत्युक्त्वा प्राविशद् राजा गान्धार्या भवनं तदा॥ ४॥

तब युधिष्ठिर ने कहा कि हे पृथिवीनाथ! हे नृपश्रेष्ठ! जैसा आप कहते हैं वैसा ही करूँगा। अभी आप मुझे कुछ और उपदेश कीजिये। भीष्म पितामह स्वर्ग को चले गये। श्रीकृष्ण जी द्वारिका चले गये। विदुर और संजय भी आपके साथ जा रहे हैं। अब दूसरा कौन रह गया है जो मुझे उपदेश दे सके। मेरे कल्याण में लगे हुए आप मुझे उपदेश दे रहे हैं, हे राजन्! मैं उसका पालन करूँगा। आप सन्तुष्ट होइये। तब बेटा! अब शान्त होजाओ। मुझे भी बोलने में थकावट होरही है। यह कहकर राजा ने गान्धारी के भवन में प्रवेश किया।

उवाच काले कालज्ञा, गान्धारी धर्मचारिणी।
अनुज्ञातः स्वयं तेन व्यासेन त्वं महर्षिणा॥ ५॥
युधिष्ठिरस्यानुमते कदारण्यं गमिष्यसि।

धृतराष्ट्र उवाच

गान्धार्यहमनुज्ञातः गान्तास्मि न चिराद् वनम्॥ ६॥
अहं हि तावत् सर्वेषां तेषां दुर्द्यूतदेविनाम्।
पुत्राणां दातुमिच्छामि प्रेतभावानुगं वसु॥ ७॥
सर्वप्रकृतिसांनिध्यं कारयित्वा स्ववेश्मनि।
ततः प्रतीतमनसो ब्राह्मणाः कुरुजाङ्गलाः॥ ८॥
क्षत्रियाश्चैव वैश्याश्च शूद्राश्चैव समाययुः।

तब धर्म का आचरण करनेवाली और समय को पहचाननेवाली गान्धारी धृतराष्ट्र से बोली कि महर्षि व्यास जी ने आपको स्वयं अनुमति दे दी। युधिष्ठिर की अनुमति भी मिल गयी है। अब वन में कब चलोगे? तब धृतराष्ट्र ने कहा कि हे गान्धारी! मुझे आज्ञा मिल गयी है, अब मैं जल्दी ही वन में चलूँगा। मैं चाहता हूँ कि पहले उन सारे गन्दे जूए को खेलने वाले पुत्रों के पारलौकिक सुख के लिये कुछ धन सारी प्रजा को घर पर बुलाकर दान दे दूँ। उसके पश्चात् राजा धृतराष्ट्र का सन्देश पाकर कुरु जाँगल प्रदेश के रहने वाले ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र उनके पास आये। उनके हृदय में बड़ी प्रसन्नता थी।

ततो निष्क्रम्य नृपतिस्तस्मादन्तःपुरात् तदा॥ ९॥
समवेतांश्च तान् सर्वान् पौरान् जानपदांस्तथा।
भवन्तः कुरवश्चैव चिरकालं सहोषिताः॥ १०॥
परस्परस्य सुहृदः परस्परहिते रताः।
यदिदानीमहं ब्रूयामस्मिन् काल उपस्थिते॥ ११॥
तथा भवद्भिः कर्तव्यमविचार्य वचो मम।
अरण्यगमने बुद्धिर्गान्धारीसहितस्य मे॥ १२॥
व्यासस्यानुमते राज्ञस्तथा कुन्तीसुतस्य मे।

तब बुद्धिमान् अम्बिकापुत्र राजा धृतराष्ट्र अन्तःपुर से निकलकर प्रजा के लोगों से बोले कि आपलोग

और कुरुवंशी बहुत दिनों से साथ रह रहे हैं। आप दोनों एकदूसरे के सुहृद हैं और एक दूसरे के हित में रहते हैं। इस समय मैं जो कहूँ, आप मेरी बात का बिना विचार किये पालन करें। मैंने वन में गान्धारी के साथ जाने का विचार किया है। इसके लिये व्यास जी और कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिर ने आज्ञा दे दी है।

भवन्तोऽप्यनुजानन्तु मा च वोऽभूद् विचारणा॥ १३॥
अस्माकं भवतां चैव येयं प्रीतिर्हि शाश्वती।
न च सान्येषु देशेषु राज्ञामिति मतिर्मम॥ १४॥
शान्तोऽस्मि वयसानेन तथा पुत्रविनाकृतः।
उपवासकृशश्चास्मि गान्धारीसहितोऽनघाः॥ १५॥
युधिष्ठिरगते राज्ये प्राप्तश्चास्मि सुखं महत्।
मन्ये दुर्योधनैश्वर्याद् विशिष्टमिति सत्तमाः॥ १६॥

आप भी इसकी आज्ञा दे दें। इस में आप कोई विचार न करें। आपका और हमारा प्रेम सम्बन्ध सदा से चला आ रहा है। मेरा विश्वास है कि प्रजा और राजा के बीच ऐसा प्रेम किसी दूसरे देश में नहीं है। हे निष्पाप लोगों! गान्धारी सहित मुझे बुढ़ापे ने थका दिया है। मैं उपवास से भी कमजोर हो गया हूँ। हे सज्जनों! राज्य के युधिष्ठिर के पास जाने पर भी मैंने महान् सुख को प्राप्त किया है। मैं मानता हूँ कि यह सुख दुर्योधन के ऐश्वर्य द्वारा प्राप्त किये गये सुख से अधिक है।

मम चान्धस्य वृद्धस्य हतपुत्रस्य का गतिः।
ऋते वनं महाभागास्तन्मानुज्ञातुमर्हथ॥ १७॥
तानविब्रुवतः किंचित् सर्वाञ्शोकपरायणान्।
पुनरेव महातेजा धृतराष्ट्रोऽब्रवीदिदम्॥ १८॥
शान्तनुः पालयामास यथावद् वसुधामिमाम्।
तथा विचित्रवीर्यश्च भीष्मेण परिपालितः॥ १९॥
पालयामास नस्तातो विदितार्थो न संशयः।
यथा च पाण्डुर्भ्राता मे दयितो भवतामभूत्॥ २०॥
स चापि पालयामास यथावत् तच्च वेत्थ ह।

हे महाभागों! मैं अन्धा हूँ, बूढ़ा हो गया हूँ और मेरे पुत्र मारे गये हैं, ऐसी अवस्था में मेरे लिये सिवाय वन में जाने के दूसरी कौन सी गति है? इसलिये आप लोग मुझे जाने के लिये आज्ञा दीजिये। तब प्रजा के लोगों से जो शोक में डूबे हुए कुछ भी उत्तर नहीं देरहे थे महातेजस्वी धृतराष्ट्र ने पुनः यह कहा कि पहले महाराज शान्तनु ने इस भूमि का यथावत् रूप से पालन किया था, फिर हमारे तत्त्वज्ञ पिता विचित्रवीर्य ने भीष्म जी की सुरक्षा में इस भूमि का पालन किया। इसमें कोई संशय नहीं है। फिर मेरे भाई पाण्डु आपके जैसे प्रिय थे और उन्होंने जैसे आपका पालन किया, यह भी आप जानते हैं।

मया च भवतां सम्यक् शुश्रूषा या कृतानघाः॥ २१॥
असम्यग् वा महाभागास्तत्क्षन्तव्यमतन्द्रितैः।
यदा दुर्योधनेनेदं भुक्तं राज्यमकण्टकम्॥ २२॥
अपि तत्र न वो मन्दो दुर्बुद्धिरपराद्धवान्।
तस्यापराधाद् दुर्बुद्धेरभिमानान्महीक्षिताम्॥ २३॥
विमर्दः सुमहानासीदनयात् स्वकृतादथ।
तन्मया साधु वापीदं यदि वासाधु वै कृतम्॥ २४॥
तद् वो हृदि न कर्तव्यं मया बद्धोऽयमञ्जलिः।

हे निष्पाप महाभागों! पाण्डु के पीछे मैंने भी आप लोगों की भली या बुरी सेवा की, उसमें जो भूल हुई हो उसे आप आलस्यरहित प्रजाजन क्षमा करें। जब दुर्योधन ने इस निष्कंटक राज्य को भोगा, तब उस खोटी बुद्धि वाले मूर्ख ने भी आप लोगों का कोई अपराध नहीं किया। उस दुर्बुद्धि के अपने किये अपराध, अन्याय, और अभिमान से राजाओं का महाविनाश हुआ, तब मुझसे जो कुछ भी अच्छा या बुरा काम हो गया, उसे आप अपने मन में न लायें। मैं आप से हाथ जोड़कर क्षमाप्रार्थना करता हूँ।

वृद्धोऽयं हतपुत्रोऽयं दुःखितोऽयं नराधिपः॥ २५॥
पूर्वराज्ञां च पुत्रोऽयमिति कृत्वानुजानथ।
इयं च कृपणा वृद्धा हतपुत्रा तपस्विनी॥ २६॥
गान्धारी पुत्रशोकार्ता युष्मान् याचति वै मया।
अयं च कौरवो राजा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः॥ २७॥
सर्वैर्भवद्भिर्द्रष्टव्यः समेषु विषमेषु च।
न जातु विषमं चैव गमिष्यति कदाचन॥ २८॥
चत्वारः सचिवा यस्य भ्रातरो विपुलौजसः।
युधिष्ठिरो महातेजा भवतः पालयिष्यति॥ २९॥

यह राजा धृतराष्ट्र बूढ़ा है, इसके पुत्र मारे गये हैं और यह दुःखी है, यह अपने पुराने राजाओं का वंशज है यह सोचते हुए, मुझे क्षमा करते हुए वन में जाने की आज्ञा दें। यह बेचारी बूढ़ी,

तपस्विनी गान्धारी, जिसके पुत्र मारे गये हैं और जो अपने पुत्रों के शोक से व्याकुल है, मेरे साथ ही आप लोगों से क्षमा याचना करती है। ये कौरव कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर आपके राजा हैं। आप इन पर सम और विषम दोनों अवस्थाओं में कृपादृष्टि रखें। ये कभी भी आप लोगों के प्रति विषम भाव नहीं रखेंगे। जिनके चार अत्यन्त तेजस्वी भाई मन्त्री हैं, ऐसे ये महातेजस्वी युधिष्ठिर आप लोगों का पालन करेंगे।

एष न्यासो मया दत्तः सर्वेषां वो युधिष्ठिरः।
भवन्तोऽस्य च वीरस्य न्यासभूताः कृता मया॥ ३०॥
यदेव तैः कृतं किंचिद् व्यलीकं वः सुतैर्मम।
यदन्येन मदीयेन तदनुज्ञातुमर्हथ॥ ३१॥
भवद्भिर्न हि मे मन्युः कृतपूर्वः कथंचन।
अत्यन्तगुरुभक्तानामेषोऽञ्जलिरिदं नमः॥ ३२॥
तेषामस्थिरबुद्धीनां लुब्धानां कामचारिणाम्।
कृते याचेऽद्य वः सर्वान् गान्धारीसहितोऽनघाः॥ ३३॥
इत्युक्तास्तेन ते सर्वे पौरजानपदा जनाः।
नोचुर्बाष्पकलाः किंचिद् वीक्षांचक्रुः परस्परम्॥ ३४॥

मैं राजा युधिष्ठिर को धरोहर के रूप में आप लोगों को सौंप रहा हूँ और आपलोगों को भी इन वीर राजा के हाथ में धरोहर के रूप में दे रहा हूँ। मेरे पुत्रों और मुझसे संबन्ध रखने वाले किसी और व्यक्ति ने आप का जो भी अपराध किया हो, उसके लिये आप मुझे क्षमा करें और वन में जाने की आज्ञा दें। आप ने पहले कभी मेरे प्रति किसी तरह का रोष प्रकट नहीं किया है। आप अत्यन्त गुरुभक्त हैं। आप के लिये ये दोनों हाथ जुड़े हुए हैं। मैं आपलोगों को प्रणाम करता हूँ। हे निष्पाप लोगों! मेरे पुत्र अस्थिर बुद्धि, लोभी और मनमानी करने वाले थे। मैं उनके लिये आज गान्धारी के साथ आप से क्षमा याचना करता हूँ। ऐसा कहे जाने पर सारे पुरवासी और देशवासी लोग आँखों से आँसू बहाते हुए कुछ भी नहीं बोले और एकदूसरे की तरफ देखते रहे।

सातवाँ अध्याय : एक ब्राह्मण द्वारा धृतराष्ट्र को सान्त्वना देना।

धृतराष्ट्रो महीपालः पुनरेवाभ्यभाषत।
वृद्धं च हतपुत्रं च धर्मपत्न्या सहानया॥ १॥
विलपन्तं बहुविधं कृपणं चैव सत्तमाः।
पित्रा स्वयमनुज्ञातं कृष्णद्वैपायनेन वै॥ २॥
वनवासाय धर्मज्ञा धर्मज्ञेन नृपेण ह।
सोऽहं पुनः पुनश्चैव शिरसावनतोऽनघाः॥ ३॥
गान्धार्या सहितं तन्मां समनुज्ञातुमर्हथ।

प्रजा के लोगों द्वारा कुछ भी उत्तर न दिये जाने पर राजा धृतराष्ट्र ने पुनः उनसे कहा कि हे सज्जनों! मैं बूढ़ा हूँ, मेरे पुत्र मारे गये हैं। मैं अपनी इस धर्मपत्नी के साथ दीनतापूर्वक बहुत तरह से विलाप कर रहा हूँ। मेरे पिता कृष्णद्वैपायन व्यास ने स्वयं मुझे आज्ञा दे दी है, इसी तरह से हे धर्मज्ञ पुरुषों! धर्मज्ञ राजा युधिष्ठिर ने भी वनवास के लिये अनुमति प्रदान की है। मैं अब आप लोगों को सिर झुकाकर बार–बार प्रणाम करता हूँ। आप लोग गान्धारी सहित मुझे वन में जाने की आज्ञा दें।

ततः स्वाचरणो विप्रः सम्मतोऽर्थविशारदः॥ ४॥
अनुमान्यमहाराजं वक्तुं समुपचक्रमे।
विप्रः प्रगल्भो मेधावी स राजानमुवाच ह॥ ५॥
राजन् वाक्यं जनस्यास्य मयि सर्वं समर्पितम्।
वक्ष्यामि तदहं वीर तज्जुषस्व नराधिप॥ ६॥
यथा वदसि राजेन्द्र सर्वमेतत् तथा विभो।
नात्र मिथ्या वचः किंचित् सुहृत्त्वं नः परस्परम्॥ ७॥
न जात्वस्य च वंशस्य राज्ञां कश्चित् कदाचन।
राजाऽऽसीद् यः प्रजापालः प्रजानामप्रियोऽभवत्॥ ८॥

तब अच्छे आचरणवाला एक ब्राह्मण, जो सबका मान्य, अर्थज्ञान में निपुण, निर्भय और मेधावी था, उसने राजा को सम्मान देकर बोलने का उपक्रम किया और राजा से कहा कि हे राजन्! इन उपस्थित सारे लोगों ने अपनी बात प्रकट करने का दायित्व मुझ पर सौंप दिया है। हे राजन्! इसलिये मैं इनकी बातें आपकी सेवा में निवेदन करूँगा। उन्हें आप सुनिये। हे राजेन्द्र प्रभो! आप जैसे कहते हैं, वह

सब ठीक है, इसमें कुछ भी असत्य नहीं है। हम लोगों और राजवंश में परस्पर सौहार्द यहाँ रहता आया है। इस वंश के राजाओं में कोई ऐसा प्रजापालक नहीं हुआ, जो प्रजा का प्रिय न रहा हो।

पितृवद् भ्रातृवच्चैव भवन्तः पालयन्ति नः।
न च दुर्योधनः किंचिदयुक्तं कृतवान् नृपः॥ ९॥
यथा ब्रवीति धर्मात्मा मुनिः सत्यवतीसुतः।
तथा कुरु महाराज स हि नः परमो गुरुः॥ १०॥
त्यक्ता वयं तु भवता दुःखशोकपरायणाः।
भविष्यामश्चिरं राजन् भवद्गुणशतैर्युताः॥ ११॥
यथा शान्तनुना गुप्ता राज्ञा चित्राङ्गदेन च।
भीष्मवीर्योपगूढेन पित्रा तव च पार्थिव॥ १२॥
भवद्बुद्धीक्षणाच्चैव पाण्डुना पृथिवीक्षिता।
तथा दुर्योधनेनापि राज्ञा सुपरिपालिताः॥ १३॥

आप लोग हमें पिता और भाई के समान पालते रहे हैं। राजा दुर्योधन ने भी हमारे साथ कोई बुरा काम नहीं किया। हे महाराज! सत्यवतीपुत्र धर्मात्मा मुनि व्यास जैसे कहते हैं, आप वैसे ही कीजिये। क्योंकि वे हम लोगों के परम गुरु हैं। हे राजन्! आपके द्वारा हमें त्याग देने पर हम दुःख और शोक से युक्त होकर बहुत दिनों तक आपके सैंकड़ों गुणों को याद करते रहेंगे। हे राजन्! जैसे राजा शान्तनु ने, आपके पिता चित्रांगद और भीष्म के पराक्रम ने हमारी रक्षा की और आपकी देखरेख में पृथिवीपति पाण्डु ने हमारी रक्षा की, उसी प्रकार राजा दुर्योधन ने भी हमारा अच्छी तरह से पालन किया।

न स्वल्पमपि पुत्रस्ते व्यलीकं कृतवान् नृप।
पितरीव सुविश्वस्तास्तस्मिन्नपि नराधिपे॥ १४॥
वयमास्म यथा सम्यग् भवतो विदितं तथा।
तथा वर्षसहस्राणि कुन्तीपुत्रेण धीमता॥ १५॥
पाल्यमाना धृतिमता सुखं विन्दामहे नृप।
राजर्षीणां पुराणानां भवतां पुण्यकर्मणाम्॥ १६॥
कुरुसंवरणादीनां भरतस्य च धीमतः।
वृत्तं समनुयात्येष धर्मात्मा भूरिदक्षिणः॥ १७॥

हे राजन्! आपके पुत्र ने हमारे साथ थोड़ा सा भी बुरा व्यवहार नहीं किया। हम उस पर भी पिता के समान ही विश्वास करते थे। हम उनके राज्य में जैसे सुख से जीवन व्यतीत करते थे, वह आपको पता ही है। हे राजन्! हमारी कामना है कि हम धीमान् और धैर्यवान् कुन्तीपुत्र के द्वारा हजार वर्षों तक पाले जाते हुए सुख को प्राप्त करते रहें। बहुत दक्षिणा देने वाले ये धर्मात्मा युधिष्ठिर आपके पुराने पुण्यकर्मा राजर्षियों कुरु, संवरण और धीमान् भरत के आचरणों का अनुकरण करते हैं।

नात्र वाच्यं महाराज सुसूक्ष्ममपि विद्यते।
उषिताः स्म सुखं नित्यं भवता परिपालिताः॥ १८॥
गुरुर्मतो भवानस्य कृत्स्नस्य जगतः प्रभुः।
धर्मात्मानमतस्तुभ्यमनुजानीमहे सुतम्॥ १९॥
लभतां वीरलोकं स ससहायो नराधिपः।
प्राप्स्यते च भवान् पुण्यं धर्मे च परमां स्थितिम्॥ २०॥
वेद धर्मं च कृत्स्नेन सम्यक् त्वं भव सुव्रतः।

हे महाराज! इनमें अत्यन्त सूक्ष्म दोष भी नहीं है, जिसके विषय में कुछ कहा जा सके। इनके राज्य में आपसे पाले जाते हुए हम सदा सुख से रहते आये हैं। आप तो हमारे गुरु और सारे जगत के स्वामी हैं। उस धर्मात्मा आपको हम वन में जाने की अनुमति देते हैं। आपका पुत्र राजा दुर्योधन भी सहायकों के साथ वीरलोक को प्राप्त करे। आप भी पुण्य और धर्म की ऊँची स्थिति को प्राप्त करें। आप सम्पूर्ण धर्मों को ठीक प्रकार जानते हैं, इसलिये आप उत्तम व्रतों के पालन में अच्छी तरह लग जाइये।

अनुवर्त्स्यन्ति वा धीमन् समेषु विषमेषु च॥ २१॥
प्रजाः कुरुकुलश्रेष्ठ पाण्डवाञ्शीलभूषणान्।
ब्रह्मदेयाग्रहारांश्च पारिबर्हांश्च पार्थिवः॥ २२॥
पूर्वराजाभिपन्नांश्च पालयत्येव पाण्डवः।
दीर्घदर्शी मृदुर्दान्तः सदा वैश्रवणो यथा॥ २३॥
अक्षुद्रसचिवश्चायं कुन्तीपुत्रो महामनाः।
अप्यमित्रे दयावांश्च शुचिश्च भरतर्षभः॥ २४॥
ऋजुं पश्यति मेधावी पुत्रवत् पाति नः सदा।

हे धीमान् कुरुकुल श्रेष्ठ! पाण्डव शीलगुण से भूषित हैं, इसलिये प्रजा अच्छे और बुरे सारे समयों में इनका अनुकरण करेगी। पाण्डुपुत्र राजा युधिष्ठिर ब्राह्मणों को पूर्व राजाओं द्वारा दिये हुए अग्रहार अर्थात् दान में दिये हुए ग्रामों तथा पारिबर्हों अर्थात् पुरस्कार में दिये गये ग्रामों की भी रक्षा करते हैं। ये महामना कुन्तीपुत्र कुबेर के समान दूरदर्शी, सरल स्वभाव, जितेन्द्रिय हैं। इनके मन्त्री भी उच्च विचार के हैं।

ये भरतश्रेष्ठ शत्रु के प्रति भी दयालु और पवित्र हैं। ये मेधावी सरल स्वभाव से व्यवहार और सदा हमारा पुत्र जैसा पालन करते हैं।

विप्रियं च जनस्यास्य संसर्गाद् धर्मजस्य वै॥ २५॥
न करिष्यन्ति राजर्षे तथा भीमार्जुनादयः।
मन्दा मृदुषु कौरव्य तीक्ष्णेष्वाशीविषोपमाः॥ २६॥
वीर्यवन्तो महात्मानः पौराणां च हिते रताः।
भवत्कृतमिमं स्नेहं युधिष्ठिरविवर्धितम्॥ २७॥
न पृष्ठतः करिष्यन्ति पौरा जानपदा जनाः।

धर्मराज के संसर्ग से हे राजर्षि! भीम और अर्जुन आदि भी इस जनता का कभी बुरा नहीं करेंगे। हे कुरुनन्दन! ये पाँचों पाण्डव मनस्वी, पराक्रमी और पुरवासियों की भलाई में लगे रहने वाले हैं। ये कोमल स्वभाव के व्यक्तियों के प्रति कोमलता का बर्ताव करते हैं, पर तीखे लोगों के लिये जहरीले और साँप के समान बन जाते हैं। आपके द्वारा प्रजा के साथ जो स्नेह सम्बन्ध स्थापित किया गया था, उसे युधिष्ठिर ने और बढ़ा दिया है। पुरवासी और देशवासी इस प्रेम की कभी अवहेलना नहीं करेंगे।

अधर्मिष्ठानपि सतः कुन्तीपुत्रा महारथाः॥ २८॥
मानवान् पालयिष्यन्ति भूत्वा धर्मपरायणाः।
स राजन् मानसं दुःखमपनीय युधिष्ठिरात्॥ २९॥
कुरु कार्याणि धर्म्याणि नमस्ते पुरुषर्षभ।
तस्य तद् वचनं धर्म्यमनुमान्य गुणोत्तरम्॥ ३०॥
साधु साध्विति सर्वः स जनः प्रतिगृहीतवान्।
धृतराष्ट्रश्च तद्वाक्यमभिपूज्य पुनः पुनः॥ ३१॥
विसर्जयामास तदा प्रकृतीस्तु शनैः शनैः।
स तैः सम्पूजितो राजा शिवेनावेक्षितस्तथा।
ततो विवेश भवनं गान्धार्या सहितो निजम्॥ ३२॥

महारथी कुन्तीपुत्र, धर्मपरायण रहकर अधर्मी मनुष्यों का भी पालन करेंगे। इसलिये हे राजन्! आप युधिष्ठिर की तरफ से अपनी मानसिक चिन्ता को दूर कर धर्म के कार्यों में लग जाइये। हे पुरुषश्रेष्ठ! आपको नमस्कार है। उस ब्राह्मण के उन धर्मानुकूल और गुणों से युक्त वचनों का अनुमोदन कर सारे लोगों ने साधु–साधु कहकर सत्कार किया। धृतराष्ट्र ने उन वाक्यों की बार–बार सराहना की और प्रजा के लोगों को धीरे–धीरे विदा किया। तब प्रजा द्वारा सत्कृत और कल्याणमय दृष्टि से देखे जाते हुए धृतराष्ट्र ने गान्धारी के साथ अपने भवन में प्रवेश किया।

आठवाँ अध्याय : धृतराष्ट्र की युधिष्ठिर से दान के लिये धन की याचना।

ततो रजन्यां व्युष्टायां धृतराष्ट्रोऽम्बिकासुतः।
विदुरं प्रेषयामास युधिष्ठिरनिवेशनम्॥ १॥
स गत्वा राजवचनादुवाचाच्युतमीश्वरम्।
युधिष्ठिरं महातेजाः सर्वबुद्धिमतां वरः॥ २॥
धृतराष्ट्रो महाराजो वनवासाय दीक्षितः।
गमिष्यति वनं राजन्नागतां कार्तिकीमिमाम्॥ ३॥
स त्वां कुरुकुलश्रेष्ठ किंचिदर्थमभीप्सति।
एतच्छ्रुत्वा तु वचनं विदुरस्य युधिष्ठिरः॥ ४॥
हृष्टः सम्पूजयामास गुडाकेशश्च पाण्डवः।

रात्रि के बीतने पर अम्बिकापुत्र धृतराष्ट्र ने विदुर को युधिष्ठिर के महल में भेजा। सारे बुद्धिमानों में श्रेष्ठ, महातेजस्वी विदुर ने राजा धृतराष्ट्र के कहने से धर्म से विचलित न होनेवाले स्वामी युधिष्ठिर से जाकर यह कहा कि हे राजन्! महाराज धृतराष्ट्र ने वनवास के लिये दीक्षा ले ली है। वे आने वाली कार्तिक की पूर्णिमा को वन के लिये प्रस्थान करेंगे। कुरुकुलश्रेष्ठ! वे आपसे कुछ धन की इच्छा रखते हैं। विदुर के वचनों को सुनकर प्रसन्न युधिष्ठिर और पाण्डुपुत्र अर्जुन ने उनकी प्रशंसा की।

न च भीमो दृढक्रोधस्तद्वचो जगृहे तदा॥ ५॥
विदुरस्य महातेजा दुर्योधनकृतं स्मरन्।
अभिप्रायं विदित्वा तु भीमसेनस्य फाल्गुनः॥ ६॥
किरीटी किंचिदानम्य तमुवाच नरर्षभम्।
भीम राजा पिता वृद्धो वनवासाय दीक्षितः॥ ७॥
भवता निर्जितं वित्तं दातुमिच्छति कौरवः।
भीष्मादीनां महाबाहो तदनुज्ञातुमर्हसि॥ ८॥
दिष्ट्या त्वद्य महाबाहो धृतराष्ट्रः प्रयाचते।
याचितो यः पुरास्माभिः पश्य कालस्य पर्ययम्॥ ९॥

किन्तु महातेजस्वी भीम के हृदय में अभी क्रोध था। दुर्योधन के अत्याचारों को यादकर उन्होंने विदुर की बात को स्वीकार नहीं किया। भीमसेन के अभिप्राय को जानकर अर्जुन ने कुछ नम्रता से उस नरश्रेष्ठ से कहा कि हे महाबाहु! कुरुराज धृतराष्ट्र आपके द्वारा जीते गये धन को आपसे माँगकर भीष्म आदि के लिये देना चाहते हैं, अतः इसके लिये आपको स्वीकृति दे देनी चाहिये। हे महाबाहु! यह सौभाग्य की बात है कि आज धृतराष्ट्र आपसे धन माँग रहे हैं, जब कि पहले हमने इनसे राज्य की माँग की थी। समय का उलट फेर देखो।

योऽसौ पृथिव्याः कृत्स्नाया भर्ता भूत्वानराधिपः।
परैर्विनिहतामात्यो वनं गन्तुमभीप्सति॥ १०॥
मा तेऽन्यत् पुरुषव्याघ्र दानाद् भवतु दर्शनम्।
अयशस्यमतोऽन्यत् स्यादधर्मश्च महाभुज॥ ११॥
राजानमुपशिक्षस्व ज्येष्ठं भ्रातरमीश्वरम्।
अर्हस्त्वमपि दातुं वै नादातुं भरतर्षभ॥ १२॥
एवं ब्रुवाणं बीभत्सुं धर्मराजोऽप्यपूजयत्।
भीमसेनस्तु सक्रोधः प्रोवाचेदं वचस्तदा॥ १३॥

जो पहले सारी भूमि के राजा थे, वही अब शत्रुओं के द्वारा अपने आमात्यों के मारे जाने पर वन में जाना चाहते हैं। हे पुरुषव्याघ्र! आपको दान देने के लिये दूसरा दृष्टिकोण नहीं ग्रहण करना चाहिये। हे महाबाहु! इससे हमारी अकीर्ति होगी और हमें अधर्म का भी भागी बनना पड़ेगा। हे भरतश्रेष्ठ! आप बड़े भाई, जो हमारे स्वामी और राजा हैं, उनसे शिक्षा लीजिये। आप दूसरों को देने के योग्य हैं, दूसरों से लेने के योग्य नहीं है। अर्जुन के ऐसा कहने पर युधिष्ठिर ने उनकी सराहना की, किन्तु भीमसेन ने क्रोध सहित उनसे यह बात कही कि–

कुतस्त्वमसि विस्मृत्य वैरं द्वादशवार्षिकम्।
अज्ञातवासं गहनं द्रौपदीशोकवर्धनम्॥ १४॥
क्व तदा धृतराष्ट्रस्य स्नेहोऽस्मद्गोचरो गतः।
कृष्णाजिनोपसंवीतो हृताभरणभूषणः॥ १५॥
क्व तदा द्रोणभीष्मौ तौ सोमदत्तोऽपि वाभवत्।
यत्र त्रयोदशसमा वने वन्येन जीवथ॥ १६॥
न तदा त्वां पिता ज्येष्ठः पितृत्वेनाभिवीक्षते।
किं ते तद् विस्मृतं पार्थ यदेष कुलपांसनः॥ १७॥
दुर्बुद्धिर्विदुरं प्राह द्यूते किं जितमित्युत।

तुमने बारहवर्ष के बैर को कैसे भुला दिया? द्रौपदी के शोक को बढ़ानेवाले गहन अज्ञातवास को तुम कैसे भूल गये? धृतराष्ट्र का जो प्रेम अब हमारे प्रति दिखाई देरहा है, वह तब कहाँ गया था? जब तुम्हें वस्त्रआभूषण छीनकर काला मृगचर्म पहनाया गया था। तब द्रोणाचार्य, भीष्म, और सोमदत्त कहाँ गये थे? जब तुम तेरह वर्ष तक वन में जंगली फलफूल खाकर रहे थे तब तुम्हारे ये ताऊजी तुम्हें पिता के प्रेम से नहीं देखते थे। हे कुन्तीपुत्र अर्जुन! क्या तुम्हें वह बात भूल गयी? जब यह कुलकलंकी दुर्बुद्धि धृतराष्ट्र विदुर जी से पूछ रहा था कि जूए में हमने क्या जीता है?

तमेवंवादिनं राजा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः॥ १८॥
उवाच वचनं धीमान् जोषमास्वेति भर्त्सयन्।

अर्जुन उवाच

भीम ज्येष्ठो गुरुर्मे त्वं नातोऽन्यद् वक्तुमुत्सहे॥ १९॥
धृतराष्ट्रस्तु राजर्षिः सर्वथा मानमर्हति।
न स्मरन्त्यपराद्धानि स्मरन्ति सुकृतान्यपि॥ २०॥
असम्भिन्नार्यमर्यादाः साधवः पुरुषोत्तमाः।

तब ऐसा कहते हुए भीमसेन को कुन्तीपुत्र धीमान् राजा युधिष्ठिर ने डाँटते हुए कहा कि चुप रहो। अर्जुन ने कहा कि हे भीम! आप मेरे बड़े भाई हैं, इसलिये मैं आपसे इसके सिवाय और कुछ नहीं कह सकता कि राजर्षि धृतराष्ट्र सर्वथा सम्मान के योग्य हैं। जो श्रेष्ठ साधु पुरुष होते हैं और जिन्होंने आर्यमर्यादा को भिन्न नहीं किया है, वे दूसरों के अपराधों को नहीं, अच्छे कार्यों को याद रखते हैं।

ततः स विदुरं धीमान् वाक्यमाह युधिष्ठिरः॥ २१॥
भीमसेने न कोपं स नृपतिः कर्तुमर्हति।
परिक्लिष्टो हि भीमोऽपि हिमवृष्ट्यातपादिभिः॥ २२॥
दुःखैर्बहुविधैर्धीमानरण्ये विदितं तव।
किं तु मद्वचनाद् ब्रूहि राजानं भरतर्षभ॥ २३॥
यद् यदिच्छसि यावच्च गृह्यतां मद्गृहादिति।
यन्मात्सर्यमयं भीमः करोति भृशदुःखितः॥ २४॥
न तन्मनसि कर्तव्यमिति वाच्यः स पार्थिवः।
यन्ममास्ति धनं किंचिदर्जुनस्य च वेश्मनि॥ २५॥
तस्य स्वामी महाराज इति वाच्यः स पार्थिवः।

तब धीमान् युधिष्ठिर ने विदुर जी से कहा कि राजा धृतराष्ट्र को भीमसेन पर क्रोध नहीं करना

चाहिये। आपको पता ही है कि वन में निवास करते हुए भीम को सर्दी, गर्मी, वर्षा आदि अनेक प्रकार के दुःखों से पीड़ित होना पड़ा है। हे भरतश्रेष्ठ! आप मेरी तरफ से राजा से कहिये कि जो कुछ और जितना धन वे चाहते हैं, मेरे घर से ले लें। भीम जो कभी अत्यन्त दुःखी होने के कारण ईर्ष्या प्रकट करते हैं, उसे वे मन में धारण न करें, यह बात आप महाराज से अवश्य कह दें। मेरे और अर्जुन के घर में जो कुछ भी धन है, उस सबके आप स्वामी हैं, यह बात आप उन से कह दें।

ददातु राजा विप्रेभ्यो यथेष्टं क्रियतां व्ययः॥ २६॥
पुत्राणां सुहृदां चैव गच्छत्वानृण्यमद्य सः।
इदं चापि शरीरं मे तवायत्तं जनाधिप॥ २७॥
धनानि चेति विद्धि त्वं न मे तत्रास्ति संशयः।
एवमुक्तस्तु राज्ञा स विदुरो बुद्धिसत्तमः॥ २८॥
धृतराष्ट्रमुपेत्यैवं वाक्यमाह महार्थवत्।
उक्तो युधिष्ठिरो राजा भवद्वचनमादितः॥ २९॥
स च संश्रुत्य वाक्यं ते प्रशशंस महाद्युतिः।
बीभत्सुश्च महातेजा निवेदयति ते गृहान्॥ ३०॥
वसु तस्य गृहे यच्च प्राणानपि च केवलान्।
धर्मराजश्च पुत्रस्ते राज्यं प्राणान् धनानि च॥ ३१॥
अनुजानाति राजर्षे यच्चान्यदपि किंचन।

राजा धृतराष्ट्र ब्राह्मणों को यथेष्ट दान करें और व्यय करें। वे अपने पुत्रों और सुहृदयों के ऋण से मुक्त हो जायें। हे राजन्! मेरा यह सारा धन और शरीर भी आपके आधीन है। इसे आप अच्छी तरह से जान लें। इसमें कोई संशय नहीं है। राजा युधिष्ठिर के ऐसा कहने पर बुद्धिमानों में श्रेष्ठ विदुर ने धृतराष्ट्र के समीप जाकर महान् अर्थ से युक्त यह वाक्य कहा कि हे महाराज! मैंने आपकी बात राजा युधिष्ठिर से आरम्भ से अन्त तक कही। उस महातेजस्वी ने सुनकर आपकी प्रशंसा की। महातेजस्वी अर्जुन भी अपने घर को और जो कुछ भी धन उस घर में है उसे तथा अपने प्राणों को भी आपको सौंपते हैं। आपके पुत्र धर्मराज, हे राजर्षि! अपने राज्य को, धन को और प्राणों को भी तथा और जो कुछ भी उनके पास है, उसे आपको सौंप रहे है।

भीमश्च सर्वदुःखानि संस्मृत्य बहुलान्युत॥ ३२॥
कृच्छ्रादिव महाबाहुरनुजज्ञे विनिःश्वसन्।
स राजन् धर्मशीलेन राज्ञा बीभत्सुना तथा॥ ३३॥
अनुनीतो महाबाहुः सौहृदे स्थापितोऽपि च।
न च मन्युस्त्वया कार्य इति त्वां प्राह धर्मराट्॥ ३४॥
संस्मृत्य भीमस्तद्वैरं यदन्यायवदाचरत्।
एवं प्रायो हि धर्मोऽयं क्षत्रियाणां नराधिप॥ ३५॥
युद्धे क्षत्रियधर्मे च निरतोऽयं वृकोदरः।

महाबाहु भीम ने पहले के बहुत तरह के दुःखों को याद करते हुए, लम्बी साँस लेते हए कठिनाई से धन देने की अनुमति दी है। हे राजन्! महाबाहु भीम को धर्मशील राजा युधिष्ठिर और अर्जुन ने अच्छी तरह से समझाकर उसके हृदय में आपके प्रति सौहार्द स्थापित कर दिया है। धर्मराज ने आपसे कहा है कि भीमसेन पुराने बैर को यादकर जो कभी–कभी आपके साथ अन्याय सा कर बैठते हैं, उसके लिये आप इनपर क्रोध न करें। हे नराधिप! क्षत्रियों का यह धर्म ही कुछ ऐसा है। भीमसेन प्रायः युद्ध में और क्षत्रियधर्म में लगे रहते हैं।

वृकोदरकृते चाहमर्जुनश्च पुनः पुनः॥ ३६॥
प्रसीद याचे नृपते भवान् प्रभुरिहास्ति यत्।
दीनान्धकृपणेभ्यश्च तत्र तत्र नृपाज्ञया॥ ३७॥
बह्वन्नरसपानाढ्याः सभा विदुर कारय।
गवां निपानान्यन्यच्च विविधं पुण्यकं कुरु॥ ३८॥
इति मामब्रवीद् राजा पार्थश्चैव धनंजयः।
यदत्रानन्तरं कार्यं तद् भवान् वक्तुमर्हति॥ ३९॥

भीम के लिये मैं और अर्जुन आपसे बार–बार क्षमायाचना करते हैं। आप प्रसन्न होइये। हे राजन्! यहाँ जोकुछ है, उसके आप स्वामी हैं। हे विदुर जी! आप राजा की आज्ञा से दीनों, अन्धों और कंगालों के लिये बहुत सी अन्न, रस और खाने–पीने के पदार्थों से भरी हुई धर्मशालाएँ बनवाइये। गायों के पानी पीने के लिये पौंसले बनवाइये और बहुत प्रकार के पुण्यकर्म कराइये। यह राजा युधिष्ठिर और अर्जुन ने कहा है। अब आप इस विषय में जो कुछ दूसरा कार्य करना हो, उसके लिये बताइये।

नवाँ अध्याय : धृतराष्ट्र द्वारा मृतात्माओं हेतु दान, वन को जाना।

ततोऽभिरूपान् भीष्माय ब्राह्मणानृषिसत्तमान्।
पुत्रार्थे सुहृदश्चैव स समीक्ष्य सहस्रशः॥ १॥
कारयित्वान्नपानानि यानान्याच्छादनानि च।
कम्बलानि च रत्नानि ग्रामान् क्षेत्रं तथा धनम्॥ २॥
उद्दिश्योद्दिश्य सर्वेभ्यो ददौ स नृपसत्तमः।
द्रोणं संकीर्त्य भीष्मं च सोमदत्तं च बाह्लिकम्॥ ३॥
दुर्योधनं च राजानं पुत्रांश्चैव पृथक् पृथक्।
जयद्रथपुरोगांश्च सुहृदश्चापि सर्वशः॥ ४॥

फिर धृतराष्ट्र ने भीष्म जी और अपने पुत्रों के लिये असंख्य सुयोग्य ब्राह्मणों, ऋषियों और सुहृदों को विचारपूर्वक निमन्त्रित किया। उनके लिये उन्होंने अन्न, पान, सवारियाँ ओढ़ने के वस्त्र, कम्बल, रत्न, ग्राम, खेत, और धन एकत्र कराये। उन श्रेष्ठ राजा ने सारी मृतात्माओं के नाम लेकर पदार्थों का दान किया। द्रोणाचार्य, भीष्म, सोमदत्त, बाह्लीक, राजा दुर्योधन, सारे पुत्रों, जयद्रथ आदि संबन्धियों के लिये उन्होंने अलग-अलग दान दिये।

अनिशं यत्र पुरुषा गणका लेखकास्तदा।
युधिष्ठिरस्य वचनादपृच्छन्त स्म तं नृपम्॥ ५॥
आज्ञापय किमेतेभ्यः प्रदार्यं दीयतामिति।
तदुपस्थितमेवात्र वचनान्ते ददुस्तदा॥ ६॥
एवं स वसुधाराभिर्वर्षमाणो नृपाम्बुदः।
तर्पयामास विप्रांस्तान् वर्षन् सस्यमिवाम्बुदः॥ ७॥
परिश्रान्तो यदासीत् स ददद् दानान्यनेकशः।
निवर्तयामास तदा दानयज्ञं नराधिपः॥ ८॥

युधिष्ठिर की आज्ञा से वहाँ हरसमय गिनने तथा लिखने वाले रहते थे और धृतराष्ट्र से पूछते थे कि आज्ञा दीजिये, इनको क्या सामग्री दी जाये, यहाँ उपस्थित है। धृतराष्ट्र जैसे ही कहते थे, कर्मचारी तुरन्त वह सामग्री उन्हें दे देते थे। इसप्रकार जैसे बादल वर्षाकर खेती को हरा-भरा कर देते हैं वैसे ही धृतराष्ट्र ने धन की वर्षाकर ब्राह्मणों को तृप्त कर दिया। जब महाराज धृतराष्ट्र थक गये, तब उन्होंने दान यज्ञ बन्द किया।

ततः प्रभाते राजा स धृतराष्ट्रोऽम्बिकासुतः।
आहूय पाण्डवान् वीरान् वनवासे कृतक्षणः॥ ९॥
गान्धारीसहितो धीमानभ्यनन्दद् यथाविधि।
कार्तिक्यां कारयित्वेष्टिं ब्राह्मणैर्वेदपारगैः॥ १०॥
अग्निहोत्रं पुरस्कृत्य वल्कलाजिनसंवृतः।
वधूजनवृतो राजा निर्ययौ भवनात् ततः॥ ११॥

फिर अगले दिन प्रातःकाल अम्बिकापुत्र धृतराष्ट्र ने वन में जाने की तैयारी कर वीर पाण्डवों को बुलाया और गान्धारीसहित उस धीमान् ने उनका यथाविधि अभिनन्दन किया। उस दिन कार्तिक की पूर्णिमा थी। उन्होंने वेदों के विद्वान् ब्राह्मणों से यज्ञ कराया, वल्कल वस्त्र धारण किये और अग्निहोत्र की सामग्री आगे कर पुत्रवधुओं के साथ महल से निकले।

ततः स्त्रियः कौरवपाण्डवानां
याश्चापराः कौरवराजवंश्याः।
तासां नादः प्रादुरासीत् तदानीं
वैचित्रवीर्ये नृपतौ प्रयाते॥ १२॥
ततो राजा प्राञ्जलिर्वेपमानो
युधिष्ठिरः सस्वरं बाष्पकण्ठः।
विमुच्योच्चैर्महानादं हि साधो
क्व यास्यसीत्य पतत् तात भूमौ॥ १३॥
तथार्जुनस्तीव्र- दुःखाभितप्तो
मुहुर्मुहुर्निःश्वसन् भारताग्र्यः।
युधिष्ठिरं मैवमित्येवमुक्त्वा
निगृह्याथो दीनवत् सीदमानः॥ १४॥

तब कौरवों, पाण्डवों और दूसरी कुरुवंश की नारियाँ फूट-फूटकर रोने लगीं। विचित्रवीर्य पुत्र राजा धृतराष्ट्र के जाते हुए, रोने का शब्द सब तरफ गूँज रहा था। तब हाथ जोड़े और काँपते हुए राजा युधिष्ठिर आँखों से आँसू बहाते हुए ऊँची आवाज में फूट-फूटकर रोने लगे। वे यह कहते हुए कि हे साधुआत्मा तात! आप मुझे छोड़कर कहाँ जारहे हैं? भूमि पर गिर पड़े। भरतवंश के अग्रगण्य तीव्र दुःख से संतप्त वीर अर्जुन भी लम्बी साँसें लेते हुए युधिष्ठिर को पकड़कर ऐसे अधीर मत होइये, यह कहते हुए दीन के समान शिथिल होगये।

वृकोदरः फाल्गुनश्चैव वीरौ
माद्रीपुत्रौ विदुरः संजयश्च।
वैश्यापुत्रः सहितो गौतमेन

धौम्यो विप्राश्चान्वयुर्बाष्पकण्ठाः॥ १५॥
तथा कृष्णा द्रौपदी सात्वती च
बालापत्या चोत्तरा कौरवी च।
चित्राङ्गदा याश्च काश्चित्स्त्रियोऽन्याः
सार्धं राज्ञा प्रस्थितास्ता वधूभिः॥ १६॥

दोनों वीर भीम और अर्जुन, माद्री के दोनों पुत्र नकुल और सहदेव, विदुर, संजय, वैश्यापुत्र युयुत्सु, कृपाचार्य, धौम्य और दूसरे ब्राह्मण आँसू बहाते हुए उनके पीछे चले। वैसे ही द्रौपदी, सुभद्रा, बच्चे साथ उत्तरा, कौरव्यनाग की पुत्री उलूपी, चित्रांगदा तथा और जो कोई भी अन्तःपुर की स्त्रियाँ थीं, वे अपनी वधुओं के साथ राजा के पीछे चल दीं।

दसवाँ अध्याय : पाण्डवों के अनुरोध करने पर भी कुन्ती की वनयात्रा।

स राजा राजमार्गेण नृनारीसंकुलेन च।
कथंचिन्निर्ययौ धीमान् वेपमानः कृताञ्जलिः॥ १॥
स वर्द्धमानद्वारेण निर्ययौ गजसाह्वयात्।
वनं गन्तुं च विदुरो राज्ञा सह कृतक्षणः॥ २॥
संजयश्च महामात्रः सूतो गावल्गणिस्तथा।

तब सारा राजमार्ग नर और नारियों से भरा हुआ था। उस भीड़ में बुद्धिमान् राजा धृतराष्ट्र जिन्होंने हाथ जोड़े हुए थे और जिनका शरीर काँप रहा था, बड़ी कठिनाई से आगे बढ़ रहे थे। वे वर्धमान नाम के द्वार से हस्तिनापुर से बाहर निकले। विदुर जी और गवल्गणकुमार महामात्र सूत संजय ने भी उनके साथ वन में जाने का निश्चय किया था।

निवृत्ते पौरवर्गे च राजा सान्तः पुरस्तदा॥ ३॥
धृतराष्ट्राभ्यनुज्ञातो निवर्तितुमियेष ह।
सोऽब्रवीन्मातरं कुन्तीं वनं तमनुजग्मुषीम्॥ ४॥
वधूपरिवृता राज्ञि नगरं गन्तुमर्हसि।
राजा यात्वेष धर्मात्मा तापस्ये कृतनिश्चयः॥ ५॥
इत्युक्ता धर्मराजेन बाष्पव्याकुललोचना।
जगामैव तदा कुन्ती गान्धारीं परिगृह्य ह॥ ६॥

पुरवासियों के लौट जाने और धृतराष्ट्र के आज्ञा देने पर, राजा युधिष्ठिर ने भी अन्तःपुर की स्त्रियों के साथ लौटने का विचार किया और वन की तरफ जाती हुई माता कुन्ती से कहा कि हे रानी माँ! आप वधुओं के साथ नगर में जाइये। ये राजा तो वन में जायेंगे ही, क्योंकि इन्होंने तपस्या के लिये निश्चय किया हुआ है। धर्मराज के ऐसा कहने पर भी आँखों में आँसू भरे हुए कुन्ती गान्धारी का हाथ पकड़े हुए वन की तरफ बढ़ती ही चली गयी।

कुन्त्युवाच

सहदेवे महाराज माप्रसादं कृथाः क्वचित्।
एष मामनुरक्तो हि राजंस्त्वां चैव सर्वदा॥ ७॥
द्रौपद्याश्च प्रिये नित्यं स्थातव्यमरिकर्शन।
भीमसेनोऽर्जुनश्चैव नकुलश्च कुरूद्वह॥ ८॥
समाधेयास्त्वया राजंस्त्वय्यद्य कुलधूर्गता।
श्वश्रूश्वशुरयोः पादान् शुश्रूषन्ती वने त्वहम्॥ ९॥
गान्धारीसहिता वत्स्ये तापसी मलपङ्किनी।
एवमुक्तः स धर्मात्मा भ्रातृभिः सहितो वशी॥ १०॥
विषादमगमद् धीमान् न च किंचिदुवाच ह।
मुहूर्तमिव तु ध्यात्वा धर्मराजो युधिष्ठिरः॥ ११॥
उवाच मातरं दीनश्चिन्ताशोकपरायणः।

तब कुन्ती ने कहा कि हे महाराज! तुम कभी सहदेव पर नाराज मत होना। यह सदा मेरे और तुम्हारे प्रति भक्तिभाव रखता आया है। हे शत्रुसूदन! तुम द्रौपदी का भी सदा प्रिय करते रहना। हे कुरुकुल के आधार! तुम भीम, अर्जुन और नकुल को भी सन्तुष्ट रखना। तुम्हारे ऊपर ही अब परिवार का भार है। मैं तो अब गान्धारी के साथ तपस्विनी के रूप में मैल मिट्टी धारण किये अपने इन सास और ससुर की सेवा में लगी रहूँगी। कुन्ती के यह कहने पर मन को वश में रखने वाले धर्मात्मा युधिष्ठिर अपने भाइयों के साथ बहुत दुःखी हुए। उनसे तब कुछ भी बोलते न बना। थोड़ी देर तक सोचकर दीनता, चिन्ता और शोक से युक्त धर्मराज युधिष्ठिर माता से बोले कि—

किमिदं ते व्यवसितं नैवं त्वं वक्तुमर्हसि॥ १२॥
न त्वामभ्यनुजानामि प्रसादं कर्तुमर्हसि।

निहत्य पृथिवीपालान् राज्यं प्राप्तमिदं मया॥ १३॥
तव प्रज्ञामुपश्रुत्य वासुदेवान्नरर्षभात्।
क्व सा बुद्धिरियं चाद्य भवत्या यच्छ्रुतं मया॥ १४॥
क्षत्रधर्मे स्थितिं चोक्त्वा तस्याश्च्यवितुमिच्छसि।

हे माता! यह तुमने क्या निश्चय कर लिया? तुम्हें ऐसा नहीं चाहिये। मैं आपको वन में जाने की अनुमति नहीं दे सकता। आप मेरे ऊपर कृपा कीजिये। नरश्रेष्ठ श्रीकृष्ण जी के मुख से आपका विचार सुनकर ही मैंने राजाओं का संहारकर राज्य को प्राप्त किया है। आपके जो विचार मैंने तब सुने थे, वे कहाँ गये और अब ये विचार कैसे हैं? आप हमें क्षत्रियधर्म के पालन का उपदेश देकर अब स्वयं उससे च्युत हो रही हो।

अस्मानुत्सृज्य राज्यं च स्नुषा हीमा यशस्विनि॥ १५॥
कथं वत्स्यसि दुर्गेषु वनेष्वद्य प्रसीद मे।
इति बाष्पकला वाचः कुन्ती पुत्रस्य शृण्वती॥ १६॥
सा जगामाश्रुपूर्णाक्षी भीमस्तामिदमब्रवीत्।
यदा राज्यमिदं कुन्ति भोक्तव्यं पुत्रनिर्जितम्॥ १७॥
प्राप्तव्या राजधर्माश्च तदेयं ते कुतो मतिः।

हे यशस्विनी! आप हमें, इस राज्य को तथा अपनी इन बहुओं को छोड़कर दुर्गमवन में कैसे रहेंगी? आप हम पर कृपा कीजिये और यहीं रहिये। इस प्रकार आँसुओं से भरे हुए अपने पुत्र के वचनों को सुनती हुई वह कुन्ती भी आँखों में आँसू भरे हुए वन की तरफ आगे चलती चली गयी। तब भीमसेन ने कहा कि हे माता जी! जब पुत्रों द्वारा जीते हुए राज्य को भोगने का समय आया और राजधर्म को पालन करने की सुविधा मिली तब आपकी ऐसी बुद्धि कैसी हो गयी?

किं वयं कारिताः पूर्वं भवत्या पृथिवीक्षयम्॥ १८॥
कस्य हेतोः परित्यज्य वनं गन्तुमभीप्ससि।
वनाच्चापि किमानीता भवत्या बालका वयम्॥ १९॥
दुःखशोकसमाविष्टौ माद्रीपुत्राविमौ तथा।
प्रसीद मातर्मा गास्त्वं वनमद्य यशस्विनि॥ २०॥
श्रियं यौधिष्ठिरीं मातर्भुङ्क्ष्व तावद् बलार्जिताम्।

यदि यही बात थी तो आपने पृथिवी का विनाश क्यों करवाया? अब क्यों आप हमें छोड़कर वन में जा रही हैं? यदि आपको वन में ही जाना था, तो बचपन में ही आप हमें और दुःख तथा शोक में डूबे माद्री पुत्रों को लेकर वन से नगर में क्यों आ गयीं? हे यशस्विनी माता आप प्रसन्न हो जाओ। वन में मत जाओ। आप बलपूर्वक प्राप्त की हुई युधिष्ठिर की राज्य लक्ष्मी को भोगें।

इति सा निश्चितैवाशु वनवासाय भाविनी॥ २१॥
लालप्यतां बहुविधं पुत्राणां नाकरोद् वचः।
द्रौपदी चान्वयाच्छ्वश्रूं विषण्णवदना तदा॥ २२॥
वनवासाय गच्छन्तीं रुदती भद्रया सह।
सा पुत्रान् रुदतः सर्वान् मुहुर्मुहुरवेक्षती॥ २३॥
जगामैव महाप्राज्ञा वनाय कृतनिश्चया।
अन्वयुः पाण्डवास्तां तु सभृत्यान्तः पुरास्तथा।
ततः प्रमृज्य साश्रूणि पुत्रान् वचनमब्रवीत्॥ २४॥

किन्तु शुद्ध हृदयवाली कुन्ती देवी ने जल्दी से वनवास का ही निश्चय कर लिया था, इसलिये अपने पुत्रों के बहुत विलाप करते हुए भी उन्होंने उनकी बात नहीं मानी। तब उदास मुखवाली द्रौपदी भी सुभद्रा के साथ रोती हुई वनवास के लिये जाती हुई अपनी सास के पीछे चलने लगी। किन्तु वह महाबुद्धिमती कुन्ती जिसने दृढ़ निश्चय कर लिया था, अपने रोते हुए पुत्रों को बार–बार देखती हुई वन के लिये चलती ही गयी। जब पाण्डव भी अपने भृत्यों तथा अन्तःपुर की स्त्रियों के साथ उसके पीछे जाने लगे तब उसने आँसुओं को पोंछकर अपने पुत्रों से यह कहा कि–

ग्यारहवाँ अध्याय : कुन्ती का पाण्डवों को उत्तर।

कुन्त्युवाच

एवमेतन्महाबाहो यथा वदसि पाण्डव।
कृतमुद्धर्षणं पूर्वं मया वः सीदतां नृपाः॥ १॥
द्यूतापहृतराज्यानां पतितानां सुखादपि।
ज्ञातिभिः परिभूतानां कृतमुद्धर्षणं मया॥ २॥
कथं पाण्डोर्न नश्येत संततिः पुरुषर्षभाः।
यशश्च वो न नश्येत इति चोद्धर्षणं कृतम्॥ ३॥
यूयमिन्द्रसमाः सर्वे देवतुल्यपराक्रमाः।
मा परेषां मुखप्रेक्षाः स्थेत्येवं तत् कृतं मया॥ ४॥

तब कुन्ती ने कहा कि हे महाबाहु पाण्डुपुत्र! जो तुम कहते हो वह ठीक है। हे राजाओं! पहले तुम शिथिल हो रहे थे, इसलिये मैंने तुम्हें युद्ध के लिये उत्साहित किया था। तुम्हारा राज्य जूए में छीन लिया गया था, तुम सुखों से भी वंचित कर दिये गये थे। तुम्हारे परिवार वाले तुम्हारा तिरस्कार करते थे। इसलिये मैंने तुम्हें युद्ध के लिये उत्साहित किया था। हे पुरुषश्रेष्ठों! कहीं पाण्डु की सन्तान नष्ट न हो जाये, इसलिये मैंने तुम्हें युद्ध के लिये उत्साहित किया था। तुम सब इन्द्र के समान पराक्रमी और देवताओं के समान शक्तिशाली हो, फिर भी तुम जीविका के लिये दूसरों का मुँह न देखो इसलिये मैंने तुम्हें युद्ध के लिये उकसाया था।

कथं धर्मभृतां श्रेष्ठो राजा त्वं वासवोपमः।
पुनर्वने न दुःखी स्या इति चोद्धर्षणं कृतम्॥ ५॥
नागायुतसमप्राणः ख्यातविक्रमपौरुषः।
नायं भीमोऽत्ययं गच्छेदिति चोद्धर्षणं कृतम्॥ ६॥
भीमसेनादवरजस्तथायं वासवोपमः।
विजयो नावसीदेत इति चोद्धर्षणं कृतम्॥ ७॥
नकुलः सहदेवश्च तथेमौ गुरुवर्तिनौ।
क्षुधा कथं न सीदेतामिति चोद्धर्षणं कृतम्॥ ८॥

तुम धर्मात्माओं में श्रेष्ठ और इन्द्र के समान ऐश्वर्यशाली राजा होकर, पुनः वनवास का कष्ट न भोगो, इसलिये मैंने तुम्हें उत्साहित किया था। अनेक हाथियों के समान बलशाली, अपने विक्रम और पौरुष के लिये प्रसिद्ध यह भीमसेन पराजय को प्राप्त न हो, इसलिये मैंने तुम्हें उत्साहित किया था। भीमसेन से छोटा यह इन्द्र के समान पराक्रमी अर्जुन शिथिल होकर न बैठ जाये, इसलिये मैंने इसे उत्साह दिलाया था। गुरुजनों की सेवा में लगे हुए ये नकुल और सहदेव दोनों भाई भूख का कष्ट न उठायें, इसलिये मैंने तुम्हें उत्साह दिलाया था।

इयं च बृहती श्यामा तथात्यायतलोचना।
वृथा सभातले क्लिष्टा मा भूदिति च तत् कृतम्॥ ९॥
प्रेक्षतामेव वो भीम वेपन्तीं कदलीमिव।
स्त्रीधर्मिणीमरिष्टाङ्गीं तथा द्यूतपराजिताम्॥ १०॥
दुःशासनो यदा मौर्ख्याद् दासीवत् पर्यकर्षत।
तदैव विदितं मह्यं पराभूतमिदं कुलम्॥ ११॥
निषण्णाः कुरवश्चैव तदा मे श्वशुरादयः।
सा दैवं नाथमिच्छन्ती व्यलपत् कुररी यथा॥ १२॥

यह साँवली ऊँचे कद विशाल आँखों वाली मेरी बहू पुनःभरीसभा में अपमानित होने का कष्ट न भोगे, इसलिये मैंने यह किया था। हे भीमसेन! तुम लोगों के देखते हुए, केले के पत्ते की तरह काँपती हुई, जूए में हारी हुई, रजस्वला, निर्दोष अंगवाली द्रौपदी को दुःशासन ने जब मूर्खतावश दासी के समान घसीटा था, तभी मुझे मालूम हो गया था कि इस कुल का अब पराभाव ही होकर रहेगा। मेरे श्वसुर आदि सारे कौरव चुपचाप बैठे रहे और द्रौपदी अपने लिये रक्षक को चाहती हुई भगवान् को पुकार कर कुररी की तरह विलाप कर रही थी।

केशपक्षे परामृष्टा पापेन हतबुद्धिना।
यदा दुःशासनेनैषा तदा मुह्याम्यहं नृपाः॥ १३॥
युष्मत्तेजोविवृद्ध्यर्थं मया ह्युद्धर्षणं कृतम्।
कथं न राजवंशोऽयं नश्येत् प्राप्य सुतान् मम॥ १४॥
पाण्डोरिति मया पुत्रास्तस्मादुद्धर्षणं कृतम्।
नाहमात्मफलार्थं वै वासुदेवमचूचुदम्॥ १५॥

हे राजाओं! जिसकी बुद्धि मारी गयी थी, उस पापी दुश्शासन ने जब इसके बाल पकड़कर खींचे, तब मैं दुःख से मूर्च्छित हो गयी थी। इसलिये तुम्हारे तेज को बढ़ाने के लिये मैंने तुम्हारे उत्साह को बढ़ाया था। कहीं मेरे और पाण्डु के पुत्रों तक पहुँचने तक यह राजवंश नष्ट न हो जाये, इसलिये मैंने तुम्हें उत्साह दिलाया था। मैंने श्रीकृष्ण को अपने लाभ के लिये प्रेरित नहीं किया था।

नाहं राज्यफलं पुत्राः कामये पुत्रनिर्जितम्।
पतिलोकानहं पुण्यान् कामये तपसा विभो॥ १६॥
श्वश्रूश्वशुरयोः कृत्वा शुश्रूषां वनवासिनोः।
तपसा शोषयिष्यामि युधिष्ठिर कलेवरम्॥ १७॥
निवर्तस्व कुरुश्रेष्ठ भीमसेनादिभिः सह।
धर्मे ते धीयतां बुद्धिर्मनस्तु महदस्तु च॥ १८॥

हे पुत्रों! मैं पुत्रों के उपार्जित राज्य का फल भोगना नहीं चाहती। हे प्रभो! मैं पति के पुण्यमय लोक को तपस्या द्वारा जाना चाहती हूँ। अब मैं सास और ससुर के समान इन जिठानी और जेठ की, जो वन में वास करेंगे, सेवा करते हुए, हे युधिष्ठिर! तपस्या से अपने शरीर को सुखा दूँगी। हे कुरुश्रेष्ठ! तुम भीमसेन आदि के साथ लौट जाओ। तुम्हारा हृदय विशाल हो और तुम्हारी बुद्धि धर्म में लगी रहे।

बारहवाँ अध्याय : धृतराष्ट्र का गंगा किनारे विश्राम, कुरुक्षेत्र में जाना।

ततोऽब्रवीन्महातेजा धृतराष्ट्रोऽम्बिकासुतः।
गान्धारीं विदुरं चैव समाभाष्यावगृह्य च॥ १॥
युधिष्ठिरस्य जननी देवी साधु निवर्त्यताम्।
यथा युधिष्ठिरः प्राह तत् सर्वं सत्यमेव हि॥ २॥
पुत्रैश्वर्यं महदिदमपास्य च महाफलम्।
का नु गच्छेद् वनं दुर्गं पुत्रानुत्सृज्य मूढवत्॥ ३॥
राज्यस्थया तपस्तप्तुं कर्तुं दानव्रतं महत्।
अनया शक्यमेवाद्य श्रूयतां च वचो मम॥ ४॥
गान्धारि परितुष्टोऽस्मि वध्वाः शुश्रूषणेन वै।
तस्मात् त्वमेनां धर्मज्ञे समनुज्ञातुमर्हसि॥ ५॥

तब महातेजस्वी अम्बिकापुत्र धृतराष्ट्र ने गान्धारी और विदुर को सम्बोधित कर तथा उनका हाथ पकड़कर कहा कि– आप लोग युधिष्ठिर की माता कुन्तीदेवी को अच्छी तरह समझा–बुझाकर लौटा दो। युधिष्ठिर जैसा कह रहे है, वैसा ठीक है। पुत्रों के महान् फलदायक ऐश्वर्य को छोड़कर कौन स्त्री मूर्खों के समान दुर्गम वन में जायेगी। यह राज्य में रहकर भी तपस्या कर सकती है और बड़े–बड़े दान व्रतों का पालन कर सकती है। यह मेरी बात ध्यान देकर सुने। हे धर्मज्ञ गान्धारी! मैं बहू कुन्ती की सेवा से बहुत सन्तुष्ट हूँ, तुम इन्हें घर जाने की आज्ञा दो।

इत्युक्ता सौबलेयी तु राज्ञा कुन्तीमुवाच ह।
तत् सर्वं राजवचनं स्वं च वाक्यं विशेषवत्॥ ६॥
न च सा वनवासाय देवी कृतमतिं तदा।
शक्नोत्युपावर्तयितुं कुन्तीं धर्मपरां सतीम्॥ ७॥
तस्यास्तां तु स्थितिं ज्ञात्वा व्यवसायं कुरुस्त्रियः।
निवृत्तांश्च कुरुश्रेष्ठान् दृष्ट्वा प्ररुरुदुस्तदा॥ ८॥
उपावृत्तेषु पार्थेषु सर्वास्वेव वधूषु च।
ययौ राजा महाप्राज्ञो धृतराष्ट्रो वनं तदा॥ ९॥
पाण्डवाश्चातिदीनास्ते दुःखशोकपरायणाः।
यानैः स्त्रीसहिताः सर्वे पुरं प्रविविशुस्तदा॥ १०॥

राजा के द्वारा ऐसा कहे जाने पर सुबलपुत्री गान्धारी ने कुन्ती को राजा के सारे वचन सुनाए और अपनी तरफ से भी उन्हें घर लौटने के लिये विशेष जोर दिया। पर कुन्ती ने वनवास के लिये दृढ़ निश्चय कर लिया था इसलिये धर्मपरायण सती कुन्ती को गान्धारी घर नहीं लौटा सकी। तब कुन्ती की उस स्थिति और वन में रहने के दृढ़ निश्चय को जानकर और पाण्डवों को लौटते हुए देखकर कुरुकुल की सारी स्त्रियाँ फूट–फूटकर रोने लगीं। फिर कुन्ती के सारे पुत्रों और वधुओं के लौट जाने पर महाज्ञानी राजा धृतराष्ट्र वन की तरफ चले। दुःख और शोक से युक्त और दीन बने पाण्डव भी अपनी स्त्रियों के साथ सवारियों पर चढ़कर हस्तिनापुर नगर में प्रविष्ट हुए।

तदहृष्टमनानन्दं गतोत्सवमिवाभवत्।
नगरं हास्तिनपुरं सस्त्रीवृद्धकुमारकम्॥ ११॥
सर्वे चासन् निरुत्साहाः पाण्डवा जातमन्यवः।
कुन्त्या हीनाः सुदुःखार्ता वत्सा इव विनाकृताः॥ १२॥
धृतराष्ट्रस्तु तेनाह्ना गत्वा सुमहदन्तरम्।
ततो भागीरथीतीरे निवासमकरोत् प्रभुः॥ १३॥
प्रादुष्कृता यथान्यायमग्नयो वेदपादगैः।
व्यराजन्त द्विजश्रेष्ठैस्तत्र तत्र तपोवने॥ १४॥

उस समय हस्तिनापुर के सारे निवासी स्त्री, बूढ़ों, और बच्चों सहित, हर्ष और आनन्द से रहित उत्सवशून्य से हो रहे थे। सारे पाण्डव उत्साहरहित,

दीन और दुःखी हो गये थे। कुन्ती के बिना वे अत्यन्त दुःख से पीड़ित हुए, गाय से बिछुड़े बछड़ों के समान हो रहे थे। उधर राजा धृतराष्ट्र बहुत दूर तक यात्रा करके गंगा के तट पर पहुँचे और वहाँ उन्होंने निवास किया। वहाँ तपोवन में साँयकाल के समय वेदों के विद्वान् श्रेष्ठ ब्राह्मणों ने, विधि के अनुसार अग्निहोत्र की अग्नियाँ प्रज्वलित की हुई थीं। जो उस समय बड़ी सुशोभित हो रहीं थीं।

विदुरः संजयश्चैव राज्ञः शय्यां कुशैस्ततः।
चक्रतुः कुरुवीरस्य गान्धार्याश्चाविदूरतः॥ १५॥
गान्धार्याः संनिकर्षे तु निषसाद कुशे सुखम्।
युधिष्ठिरस्य जननी कुन्ती साधुव्रते स्थिता॥ १६॥
तेषां संश्रवणे चापि निषेदुर्विदुरादयः।
याजकाश्च यथोद्देशं द्विजा ये चानुयायिनः॥ १७॥
प्राधीतद्विजमुख्या सा सम्प्रज्वलितपावका।
बभूव तेषां रजनी ब्राह्मीव प्रीतिवर्धिनी॥ १८॥

वहाँ विदुर और संजय ने कुरुवीर धृतराष्ट्र के लियें कुशों की शय्या बनाई और उसके समीप ही गान्धारी की शय्या बना दी। गान्धारी के निकट ही उत्तम व्रत में स्थित हुई युधिष्ठिर की माता कुन्ती कुश की शय्या पर सुखपूर्वक सोयी। विदुर आदि भी उनसे थोड़ी दूर पर, जहाँ उनकी बोली सुनाई देती थी, सोये। यज्ञ करानेवाले दूसरे साथ आये ब्राह्मणलोग भी यथायोग्य स्थानों पर सोये। उस रात्रि में प्रमुख ब्राह्मण स्वाध्याय कर रहे थे। जहाँ–तहाँ अग्निहोत्र की अग्नि प्रज्वलित हो रही थी। इस प्रकार वह रात्रि उन लोगों के लिये भगवान् की भक्ति से युक्त आनन्द बढ़ानेवाली होरही थी।

ततो रात्र्यां व्यतीतायां कृतपूर्वाह्णिकक्रियाः।
हुत्वाग्निं विधिवत् सर्वे प्रययुस्ते यथाक्रमम्॥ १९॥
उदङ्मुखा निरीक्षन्त उपवासपरायणाः।
ततो भागीरथीतीरे मेध्ये पुण्यजनोचिते॥ २०॥
निवासमकरोद् राजा विदुरस्य मते स्थितः।
तत्रैनं पर्युपातिष्ठन् ब्राह्मणा वनवासिनः॥ २१॥
स तैः परिवृतो राजा कथाभिः परिनन्द्य तान्।
अनुजज्ञे सशिष्यान् वै विधिवत् प्रतिपूज्य च॥ २२॥

तब रात्रि के व्यतीत होने पर प्रातःकाल के कार्य पूरे कर और विधि के अनुसार अग्निहोत्र कर, सब क्रमशः आगे बढ़ने लगे। उन्होंने उपवास किया हुआ था और वह उत्तर दिशा की तरफ मुख किये, उधर ही देखते जारहे थे। फिर विदुर जी की बात मानकर राजा धृतराष्ट्र ने पवित्र लोगों के रहने योग्य गंगा के पवित्र तटपर निवास किया। वहाँ वन में रहने वाले ब्राह्मण लोग उनसे मिलने के लिये आये। उनसे घिरे हुए राजा ने विभिन्न प्रकार की बातों से उनको प्रसन्न किया। फिर शिष्यों सहित उनका पूजन कर उन्होंने उन्हें जाने की अनुमति दी।

सायाह्ने स महीपालस्ततो गङ्गामुपेत्य च।
चकार विधिवच्छौचं गान्धारी च यशस्विनी॥ २३॥
चक्रुः सर्वाः क्रियास्तत्र पुरुषा विदुरादयः।
राज्ञस्तु याजकैस्तत्र कृतो वेदीपरिस्तरः॥ २४॥
जुहाव तत्र वह्निं स नृपतिः सत्यसङ्गरः।
ततो भागीरथीतीरात् कुरुक्षेत्रं जगाम सः॥ २५॥
सानुगो नृपतिर्वृद्धो नियतः संयतेन्द्रियः।
तत्राश्रमपदं धीमानभिगम्य स पार्थिवः॥ २६॥
आससादाथ राजर्षिं शतयूपं मनीषिणम्।

फिर सायंकाल राजा और यशस्विनी गान्धारी ने गंगा के किनारे जाकर विधिपूर्वक स्नान किया। विदुर आदि पुरुषों ने भी इसीप्रकार अपने सारे शुद्धि कार्य किये। वहाँ यज्ञ कराने वाले ब्राह्मणों ने राजा के लिये एक वेदी तैयार की। उस वेदी पर बैठकर सत्यप्रतिज्ञ राजा ने अग्निहोत्र किया। फिर अगले दिन इन्द्रियों को संयमपूर्वक रखते हुए, नियमों का पालन करते हुए बूढ़े राजा सेवकों सहित गंगा के किनारे से कुरुक्षेत्र में पहुँच गये। वहाँ वे बुद्धिमान् राजा एक आश्रम पर जाकर मनीषी राजर्षि शतयूप से मिले।

स हि राजा महानासीत् केकयेषु परंतपः॥ २७॥
स्वपुत्रं मनुजैश्वर्ये निवेश्य वनमाविशत्।
तेनासौ सहितो राजा ययौ व्यासाश्रमं प्रति॥ २८॥
तत्रैनं विधिवद् राजा प्रत्यगृह्णात् कुरूद्वहः।
स दीक्षां तत्र सम्प्राप्य राजा कौरवनन्दनः।
शतयूपाश्रमे तस्मिन् निवासमकरोत् तदा॥ २९॥

वे शतयूप राजर्षि पहले केकयदेश के परंतप राजा थे। वे अपने पुत्र को राजसिंहासन पर बिठाकर वन में चले आये थे। राजा धृतराष्ट्र राजर्षि शतयूप को लेकर वहाँ से व्यास जी के

आश्रम पर आये। वहाँ कुरुकुल के आधार राजा धृतराष्ट्र ने उनका विधिवत् सम्मान किया। फिर उन कुरुनन्दन राजा ने व्यास जी से वनवास की दीक्षा ली और वापिस शतयूप जी के आश्रम में लौट कर वहीं रहने लगे।

त्वगस्थिभूतः परिशुष्कमांसो
जटाजिनी वल्कलसंवृताङ्गः।
स पार्थिवस्तत्र तपश्चचार
महर्षिवत्तीव्र- मपेतमोहः॥ ३०॥
क्षत्ता च धर्मार्थविदग्र्यबुद्धिः
ससंजयस्तं नृपतिं सदारम्।
उपाचरद् घोरतपो जितात्मा
तदा कृशो वल्कलचीरवासाः॥ ३१॥

आश्रम में तपस्या करते हुए राजा धृतराष्ट्र के शरीर का माँस सूख गया। केवल चमड़ा और हड्डियाँ ही शेष रहीं। उन्होंने सिर पर जटा, शरीर पर मृगछाला और वल्कल धारण किये हुए थे। वे महर्षियों के समान रह रहे थे। उनके चित्त का तीव्र मोह अब दूर हो गया था। धर्म और अर्थ के ज्ञाता, अग्रबुद्धि विदुर जी और संजय वल्कल और चीरवस्त्र धारण किये हुए पत्नीसहित राजा की सेवा करने लगे। वे भी मन को वश में कर दुर्बल शरीर से घोर तपस्या में लगे रहते थे।

तेरहवाँ अध्याय : पाण्डवों की धृतराष्ट्र से मिलने को वन यात्रा की तैयारी।

वनं गते कौरवेन्द्रे दुःखशोकसमन्विताः।
कुर्वाणाश्च कथास्तत्र ब्राह्मणा नृपतिं प्रति॥ १॥
कथं नु राजा वृद्धः स वने वसति निर्जने।
गान्धारी च महाभागा सा च कुन्ती पृथा कथम्॥ २॥
सुखार्हः स हि राजर्षिरसुखी तद् वनं महत्।
किमवस्थः समासाद्य प्रज्ञाचक्षुर्हतात्मजः॥ ३॥
सुदुष्कृतं कृतवती कुन्ती पुत्रानपश्यती।
राज्यश्रियं परित्यज्य वनं सा समरोचयत्॥ ४॥

कौरवेन्द्र के वन में जाने पर दुःख और शोक से युक्त पुरवासी और ब्राह्मण लोग राजा के बारे में चर्चाएँ किया करते थे। वे कहते थे कि बूढ़े राजा, महाभागा गान्धारी और (पृथा) कुन्ती कैसे वन में रहते होंगे। राजर्षि धृतराष्ट्र सुख भोगने योग्य थे पर वह विशाल वन तो सुखों से रहित है। वे प्रज्ञाचक्षु जिनके पुत्र मारे गये, वन में जाकर किस अवस्था में होंगे? कुन्तीदेवी ने बड़ा दुष्कर कार्य किया, जो राज्य लक्ष्मी का त्यागकर, पुत्रों से दूर रहते हुए वनवास को पसन्द किया।

विदुरः किमवस्थश्च भ्रातुः शुश्रूषुरात्मवान्।
स च गावल्गणिर्धीमान् भर्तृपिण्डानुपालकः॥ ५॥
आकुमारं च पौरास्ते चिन्ताशोकसमाहताः।
तत्र तत्र कथाश्चक्रुः समासाद्य परस्परम्॥ ६॥
पाण्डवाश्चैव ते सर्वे भृशं शोकपरायणाः।
शोचन्तो मातरं वृद्धामूषुर्नातिचिरं पुरे॥ ७॥
तथैव वृद्धं पितरं हतपुत्रं जनेश्वरम्।
गान्धारीं च महाभागां विदुरं च महामतिम्॥ ८॥
नैषां बभूव सम्प्रीतिस्तान् विचिन्तयतां तदा।
न राज्ये न च नारीषु न वेदाध्ययनेषु च॥ ९॥

भाई की सेवा में लगे हुए मनस्वी विदुर किस अवस्था में होंगे? गवल्गण के पुत्र धीमान् संजय, अपने स्वामी के शरीर की रक्षा में लगे हुए किस अवस्था में होंगे? बच्चे से लेकर बूढ़े तक सारे पुरवासी चिन्ता और शोक से पीड़ित होकर, एकदूसरे से मिलकर जहाँ-तहाँ आपस में चर्चा किया करते थे। सारे पाण्डव भी अपनी वृद्धा माता के विषय में अत्यन्त शोक करते हुए और सोचते हुए, नगर में अधिक समय तक नहीं रह सके। अपने बूढ़े ताऊ, जिनके पुत्र मारे गये थे, राजा धृतराष्ट्र, महाभागा गान्धारी और महामति विदुर जी, के विषय में सोचते हुए, उनका मन न तो राज्यकार्य में, न वेदाध्ययन में और न रनिवास में लगता था।

परं निर्वेदमगमंश्चिन्तयन्तो नराधिपम्।
तं च ज्ञातिवधं घोरं संस्मरन्तः पुनः पुनः॥ १०॥
अभिमन्योश्च बालस्य विनाशं रणमूर्धनि।
तथैव द्रौपदेयानामन्येषां सुहृदामपि॥ ११॥
वधं संस्मृत्य ते वीरा नातिप्रमनसोऽभवन्।

द्रौपदी हतपुत्रा च सुभद्रा चैव भाविनी॥ १२॥
नातिप्रीतियुते देव्यौ तदाऽऽस्तामप्रहृष्टवत्।
अचिन्तयंश्च जननीं ततस्ते पाण्डुनन्दनाः॥ १३॥
कथं नु वृद्धमिथुनं वहत्यतिकृशा पृथा।

राजा धृतराष्ट्र के विषय में, तथा परिवार वालों के उस महान् वध को सोचते हुए उन्हें अत्यन्त वैराग्य तथा उदासीनता आजाती थी। बालक अभिमन्यु के युद्ध के मुहाने पर विनाश, द्रौपदी के पुत्रों और दूसरे सुहृदों के वध को याद करते हुए वे वीर प्रसन्नता से रहित हो जाते थे। जिसके पुत्र मारे गए थे, वह द्रौपदी और सम्मानिता सुभद्रा, ये दोनों देवियाँ भी निरन्तर अप्रसन्न और हर्षशून्य सी होकर चुपचाप बैठी रहती थीं। एक दिन पाण्डुपुत्र अपनी माता के लिये इसप्रकार चिन्ता करने लगे कि वह अत्यन्त कमजोर शरीरवाली कुन्ती कैसे बूढ़े पतिपत्नी धृतराष्ट्र और गान्धारी की सेवा को निभाती होंगी?

कथं च स महीपालो हतपुत्रो नराश्रयः॥ १४॥
पत्न्या सह वसत्येको वने श्वापदसेविते।
सा च देवी महाभागा गान्धारी हतबान्धवा॥ १५॥
पतिमन्धं कथं वृद्धमन्वेति विजने वने।
एवं तेषां कथयतामौत्सुक्यमभवत् तदा॥ १६॥
गमने चाभवद् बुद्धिर्धृतराष्ट्रदिदृक्षया।
सहदेवस्तु राजानं प्रणिपत्येदमब्रवीत्॥ १७॥
अहो मे भवतो दृष्टं हृदयं गमनं प्रति।
न हि त्वां गौरवेणाहमशकं वक्तुमञ्जसा।
गमनं प्रति राजेन्द्र तदिदं समुपस्थितम्॥ १८॥

जिनके पुत्र मारे गये, वे राजा अब आश्रयरहित होकर, जंगली जन्तुओं से भरे हुए वन में पत्नी सहित कैसे अकेले रहते होंगे? जिनके बन्धु–बान्धव मारे गये, वह महाभागा गान्धारी देवी, अपने बूढ़े और अन्धे पति का अनुकरण उस निर्जन वन में कैसे करती होंगी? आपस में ऐसी बातें करते–करते उनके मन में वन में जाने और धृतराष्ट्र को देखने की उत्कण्ठा उत्पन्न हो गयी। तब सहदेव ने राजा युधिष्ठिर को प्रणामकर कहा कि मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि आपका मन तपोवन में जाने को उत्सुक है, यह बड़े हर्ष की बात है। हे राजेन्द्र! आपके गौरव का ध्यान कर मैं आपसे संकोचवश जाने की बात नहीं कह रहा था, किन्तु सौभाग्य से अब वह अवसर स्वयं उपस्थित हो गया है।

दिष्ट्या द्रक्ष्यामि तां कुन्तीं
वर्तयन्तीं तपस्विनीम्।
जटिलां तापसीं वृद्धां
कुशकाश– परिक्षताम्॥ १९॥

मैं सौभाग्य से तपस्या में लगी हुई उन माता कुन्ती का दर्शन करूँगा जिनके सिर के बाल जटा के रूप में परिवर्तित हो गये होंगे। वे तपस्विनी बूढ़ी माता जी कुश और कास के आसनों पर शयन करते हुए क्षत विक्षत हो रही होंगी।

प्रासादहर्म्यसंवृद्धामत्यन्त– सुखभागिनीम्।
कदा तु जननीं श्रान्तां द्रक्ष्यामि भृशदुः खिताम्॥ २०॥
अनित्याः खलु मर्त्यानां गतयो भरतर्षभ।
कुन्ती राजसुता यत्र वसत्यसुखिता वने॥ २१॥
सहदेववचः श्रुत्वा द्रौपदी योषितां वरा।
उवाच देवी राजानमभिपूज्याभिनन्द्य च॥ २२॥
कदा द्रक्ष्यामि तां देवीं यदि जीवति सा पृथा।
जीवन्त्या ह्यद्य मे प्रीतिर्भविष्यति जनाधिप॥ २३॥

जो महलों और अट्टालियों में पलकर बड़ी हुई और अत्यन्त सुख की भागी रही हैं, किन्तु अब अत्यन्त दुःख उठाती हुई थक गयी होंगी, अपनी उन माता जी को मैं कब देखूँगा? हे भरतश्रेष्ठ! मरणशील मनुष्यों की गतियाँ सदा अनित्य हैं, जिसके कारण राजकुमारी कुन्ती सुखों से वंचित होकर वन में रह रही हैं। सहदेव के वचन सुनकर स्त्रियों में श्रेष्ठ द्रौपदी राजा का सत्कार कर उन्हें प्रसन्न कर बोली कि मैं कुन्ती देवी का दर्शन कब करूँगी? क्या वे इस समय जीवित हैं? हे राजन्! यदि वे जीवित हैं तो उनके दर्शन करके मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी।

एषा तेऽस्तु मतिर्नित्यं धर्मे ते रमतां मनः।
योऽद्य त्वमस्मान् राजेन्द्र श्रेयसा योजयिष्यसि॥ २४॥
अग्रपादस्थितं चेमं विद्धि राजन् वधूजनम्।
काङ्क्षन्तं दर्शनं कुन्त्या गान्धार्याः श्वशुरस्य च॥ २५॥
इत्युक्तः स नृपो देव्या सेनाध्यक्षमुवाच ह।
निर्यातयत मे सेनां प्रभूतरथकुञ्जराम्॥ २६॥
द्रक्ष्यामि वनसंस्थं च धृतराष्ट्रं महीपतिम्।

हे राजेन्द्र! आपकी ऐसी बुद्धि सदा बनी रहे। आपका मन धर्म में लगा रहे, क्योंकि आज आप हमें कुन्तीदेवी के दर्शन कराकर कल्याण की

भागिनी बनायेंगे। हे राजन्! यह मालूम होना चाहिये कि सारी वधुएँ वन में जाने को, कुन्ती, गान्धारी और श्वसुर जी के दर्शन की आकांक्षा लिये, आगे पैर बढ़ाये खड़ी हैं। देवी द्रौपदी यह कहने पर राजा युधिष्ठिर ने सेनाध्यक्षों को कहा कि बहुत सारे रथ और हाथियों से युक्त मेरी सेना को बाहर निकालो। मैं वन में राजा धृतराष्ट्र के दर्शन करूँगा।

स्त्र्यध्यक्षांश्चाब्रवीद् राजा यानानि विविधानि मे॥ २७॥
सज्जीक्रियन्तां सर्वाणि शिबिकाश्च सहस्रशः।
यश्च पौरजनः कश्चिद् द्रष्टुमिच्छति पार्थिवम्॥ २८॥
अनावृतः सुविहितः स च यातु सुरक्षितः।
सूदाः पौरोगवाश्चैव सर्वे चैव महानसम्॥ २९॥
विविधं भक्ष्यभोज्यं च शकटैरुह्यतां मम।
प्रयाणं घुष्यतां चैव श्वोभूत इति मा चिरम्॥ ३०॥

फिर राजा ने अन्तःपुर के अध्यक्षों से कहा कि तरह–तरह की सवारियों और पालकियों को बहुत सारी संख्या में तैयार करो। जो कोई भी नगरवासी महाराज के दर्शन करने के लिये चलना चाहे, उसे वे रोक–टोक, सुविधा पूर्वक सुरक्षित रूप से चलने दिया जाये। पाकशाला के अध्यक्ष और रसोइये सारे रसोई के सामान को और तरह–तरह के खाने–पीने के पदार्थों को मेरे छकड़ों पर लादकर ले चलें। लोगों में यह घोषित कर दो कि कल ही हम प्रस्थान करेंगे। इसलिये चलने वाले देर न करें।

चौदहवाँ अध्याय : पाण्डवों का धृतराष्ट्र, गान्धारी और कुन्ती से मिलना।

पौरजानपदाश्चैव यानैर्बहुविधैस्तथा।
अन्वयुः कुरुराजानं धृतराष्ट्रं दिदृक्षवः॥ १॥
स चापि राजवचनादाचार्यो गौतमः कृपः।
सेनामादाय सेनानीः प्रययावाश्रमं प्रति॥ २॥
युयुत्सुश्च महातेजा धौम्यश्चैव पुरोहितः।
युधिष्ठिरस्य वचनात् पुरगुप्तिं प्रचक्रतुः॥ ३॥
ततो युधिष्ठिरो राजा कुरुक्षेत्रमवातरत्।
क्रमेणोत्तीर्य यमुनां नदीं परमपावनीम्॥ ४॥

तब पुरवासी और देशवासी भी धृतराष्ट्र के दर्शन की इच्छा से अनेक प्रकार की सवारियों से कुरुराज का अनुकरण करने लगे। राजा की आज्ञा से सेनापति कृपाचार्य सेना को साथ लेकर आश्रम की तरफ चल दिये। महातेजस्वी युयुत्सु और पुरोहित धौम्य युधिष्ठिर के कहने से वहीं रहकर नगर की रक्षा करने लगे। राजा युधिष्ठिर क्रमपूर्वक यात्रा करते हुए परम पवित्र यमुना नदी को पारकर कुरुक्षेत्र में जापहुँचे।

ततस्ते पाण्डवा दूरादवतीर्य पदातयः।
अभिजग्मुर्नरपतेराश्रमं विनयानताः॥ ५॥
स च योधजनः सर्वो ये च राष्ट्रनिवासिनः।
स्त्रियश्च कुरुमुख्यानां पद्भिरेवान्वयुस्तदा॥ ६॥
आश्रमं ते ततो जग्मुर्धृतराष्ट्रस्य पाण्डवाः।
शून्यं मृगगणाकीर्णं कदलीवनशोभितम्॥ ७॥
ततस्तत्र समाजग्मुस्तापसा नियतव्रताः।
पाण्डवानागतान् द्रष्टुं कौतूहलसमन्विताः॥ ८॥

तब सारे पाण्डव दूर से ही सवारियों से उतर पड़े और विनय से सिर झुकाये पैदल ही राजा के आश्रम पर आये। सारे सैनिक, राज्य के निवासी लोग और कुरुवंश के उन प्रमुख पुरुषों की स्त्रियाँ भी पैदल ही उनके पीछे आश्रम पर गयीं। धृतराष्ट्र का आश्रम मनुष्यों से सूना, मृगों के झुण्डों से भरा हुआ था। केले का उद्यान उसकी शोभा को बढ़ाता था। जब पाण्डव वहाँ पहुँचे तो नियमपूर्वक व्रतों का पालन करने वाले तपस्वी लोग पाण्डवों को देखने के कौतूहल से वहाँ आपहुँचे।

तानपृच्छत् ततो राजा क्वासौ कौरववंशभृत्।
पिता ज्येष्ठो गतोऽस्माकमिति बाष्पपरिप्लुतः॥ ९॥
ते तमूचुस्ततो वाक्यं यमुनामवगाहितुम्।
पुष्पाणामुदकुम्भस्य चार्थे गत इति प्रभो॥ १०॥
तैराख्यातेन मार्गेण ततस्ते जग्मुरञ्जसा।
ददृशुश्चाविदूरे तान् सर्वानथ पदातयः॥ ११॥
ततस्ते सत्वरा जग्मुः पितुर्दर्शनकाङ्क्षिणः।
सहदेवस्तु वेगेन प्राधावद् यत्र सा पृथा॥ १२॥
सुस्वरं रुरुदे धीमान् मातुः पादावुपस्पृशन्।

तब आँखों में पानी भरकर राजा युधिष्ठिर ने उन तपस्वियों से पूछा कि कुरुवंश का पालन करने वाले हमारे ताऊ कहाँ है? उन्होंने उन्हें बताया कि हे प्रभो! वे यमुना में स्नान करने, फूलों को लाने और पानी का घड़ा भरने के लिये गये हुए हैं। तब उनके

द्वारा बताये हुए मार्ग पर वे सब तेजी से पैदल ही गये और थोड़ी दूर जाने पर ही उन्होंने उन सबको आते हुए देखा। तब अपने ताऊ के दर्शन के इच्छुक वे सारे उधर चल पड़े। धीमान् सहदेव तो दौड़कर कुन्ती के समीप पहुँचे और माता के चरणों में पड़कर जोर–जोर से रोने लगे।

सा च बाष्पाकुलमुखी ददर्श दयितं सुतम्॥ १३॥
बाहुभ्यां सम्परिष्वज्य समुन्नाम्य च पुत्रकम्।
अनन्तरं च राजानं भीमसेनमथार्जुनम्॥ १४॥
नकुलं च पृथा दृष्ट्वा त्वरमाणोपचक्रमे।
राजा तान् स्वरयोगेन स्पर्शेन च महामनाः॥ १५॥
प्रत्यभिज्ञाय मेधावी समाश्वासयत प्रभुः।
ततस्ते बाष्पमुत्सृज्य गान्धारीसहितं नृपम्॥ १६॥
उपतस्थुर्महात्मानो मातरं च यथाविधि।

कुन्ती भी आँखों में आँसू भरकर दोनों हाथों से अपने प्यारे पुत्र को उठाकर और छाती से लगाकर उसकी तरफ देखने लगी। फिर राजा युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन और नकुल को देखकर कुन्ती तेजी से उनकी तरफ चली। महामना, बुद्धिमान् राजा ने तब आवाज तथा स्पर्श से पहचानकर उन सबको आश्वासन दिया। फिर अपने आँसुओं को पोंछकर महात्मा पाण्डवों ने गान्धारीसहित राजा और अपनी माता को यथाविधि प्रणाम किया।

सर्वेषां तोयकलशाञ्जगृहुस्ते स्वयं तदा॥ १७॥
पाण्डवा लब्धसंज्ञास्ते मात्रा चाश्वासिताः पुनः।
तथा नार्यो नृसिंहानां सोऽवरोधजनस्तदा॥ १८॥
पौरजानपदाश्चैव ददृशुस्तं जनाधिपम्।
निवेदयामास तदा जनं तन्नामगोत्रतः॥ १९॥
युधिष्ठिरो नरपतिः स चैनं प्रत्यपूजयत्।
स तैः परिवृतो मेने हर्षबाष्पाविलेक्षणः।
राजाऽऽत्मानं गृहगतं पुरेव गजसाह्वये॥ २०॥

फिर माता से आश्वासन पाकर, स्वस्थ और सचेत हुए पाण्डवों ने सबके पानी के घड़ों को स्वयं उठा लिया। फिर उन पुरुषसिंहों की पत्नियों, अन्तःपुर की दूसरी स्त्रियों, पुरवासी और नगरवासियों ने राजा के दर्शन किये। राजा युधिष्ठिर ने उन्हें एक–एक व्यक्ति का नाम और गोत्र बताकर परिचय दिया। परिचय पाकर धृतराष्ट्र ने वाणी के द्वारा सबका सत्कार किया। उन सबसे घिरे हुए राजा धृतराष्ट्र तब हर्ष से अपने नेत्रों से आँसू बहाने लगे और यह समझने लगे कि मानों मैं पहले की तरह ही हस्तिनापुर के राजमहल में बैठा हुआ हूँ।

पन्द्रहवाँ अध्याय : संजय का तपस्वियों को पाण्डवों और उनकी पत्नियों का परिचय देना।

स तैः सह नरव्याघ्रैः आसांचक्रे तदाश्रमे।
तापसैश्च महाभागैर्नानादेशसमागतैः॥ १॥
द्रष्टुं कुरुपतेः पुत्रान् पाण्डवान् पृथुवक्षसः।
तेऽब्रुवञ्ज्ञातुमिच्छामः कतमोऽत्र युधिष्ठिरः॥ २॥
भीमार्जुनौ यमौ चैव द्रौपदी च यशस्विनी।
तानाचख्यौ तदा सूतः सर्वांस्तानभिनामतः।
संजयो द्रौपदीं चैव सर्वाश्चान्याः कुरुस्त्रियः॥ ३॥

जब राजा धृतराष्ट्र नरव्याघ्र पाण्डवों के साथ आश्रम में बैठे हुए थे, तब उनके समीप अनेक स्थानों से आये हुए बहुत से महाभाग तपस्वी भी थे। कुरुपति के पुत्र विशाल छाती वाले पाण्डवों को देखने के लिये तब उन्होंने पूछा कि हम जानना चाहते हैं कि इनमें कौन युधिष्ठिर है? भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव और यशस्विनी द्रौपदी कौन है? तब सूत संजय ने नाम बताते हुए पाण्डवों, द्रौपदी, तथा कुरुकुल की दूसरी स्त्रियों का यह परिचय दिया कि–

य एष जाम्बूनदशुद्धगौर–
स्तनुर्महासिंह इव प्रवृद्धः।
प्रचण्डघोणः पृथुदीर्घनेत्र–
स्ताम्रायताक्षः कुरुराज एषः॥ ४॥
अयं पुनर्मत्तगजेन्द्रगामी
प्रतप्तचामीकर– शुद्धगौरः।
पृथ्व्यायतांसः पृथुदीर्घबाहु–
र्वृकोदरः पश्यत पश्यतेमम्॥ ५॥
यस्त्वेष पार्श्वेऽस्य महाधनुष्मान्
श्यामो युवा वारणयूथपाभः।
सिंहोन्नतांसो गजखेलगामी
पद्मायताक्षोऽर्जुन एष वीरः॥ ६॥

ये जो शुद्धस्वर्ण के समान गौरवर्ण के महान् सिंह जैसे, नुकीली नासिका, बड़े और कुछ लाल नेत्रों वाले हैं, ये कुरुराज युधिष्ठिर हैं। ये जो मस्त हाथी के समान चलने वाले, तपाये हुए शुद्धस्वर्ण के समान गोरे रंग के, मोटे और चौड़े कन्धों और लम्बी भुजाओं वाले हैं, ये भीमसेन हैं, इन्हें आप अच्छी तरह से देख लें। इनके बगल में ये जो विशाल धनुष लिये हुए, साँवले रंग के, युवा हाथियों के यूथपति के समान दिखाई दे रहे हैं, जिनके कन्धे सिंह जैसे, चाल हाथी जैसी और आँखें कमल के समान विशाल हैं, ये वीर अर्जुन हैं।

कुन्तीसमीपे पुरुषोत्तमौ तु
यमाविमौ विष्णुमहेन्द्रकल्पौ।
मनुष्यलोके सकले समोऽस्ति
ययोर्न रूपे न बले न शीले॥ ७॥
इयं पुनः पद्मदलायताक्षी
मध्यं वयः किंचिदिव स्पृशन्ती।
नीलोत्पलाभा सुरदेवतेव
कृष्णा स्थिता मूर्तिमतीव लक्ष्मीः॥ ८॥
अस्यास्तु पार्श्वे कनकोत्तमाभा
यैषा प्रभा मूर्तिमतीव सौमी।
मध्ये स्थिता सा भगिनी द्विजाग्र्या-
श्चक्रायुधस्याप्रतिमस्य तस्य॥ ९॥

कुन्ती के समीप ये दो जो पुरुषश्रेष्ठ जुड़वाँ भाई बैठे हुए हैं, जो विष्णु और महेन्द्र अर्थात् अग्नि और देवताओं के राजा इन्द्र के समान तेजस्वी हैं, जिनके समान रूप, बल और शील वाला मनुष्य लोक में कोई नहीं है, वे नकुल और सहदेव हैं। उधर यह जो कमलपत्र के समान विशाल आँखों वाली, मध्यम आयु का स्पर्श करती हुई सी, नील कमल के समान कान्तिवाली, देवताओं की देवी सी और साक्षात् लक्ष्मी अर्थात् सौन्दर्य की मूर्ति सी प्रतीत हो रही है, द्रौपदी है। इसकी बगल में जो सोने से भी उत्तम आभावाली, चन्द्रमा की मूर्तिमती प्रभा जैसी, सारी स्त्रियों के बीच में बैठी है, वह हे विप्रवरों! अनुपम प्रभाववाले चक्रायुध श्रीकृष्णजी की बहन सुभद्रा है।

इयं च जाम्बूनदशुद्धगौरी
पार्थस्य भार्या भुजगेन्द्रकन्या।
चित्राङ्गदा चैव नरेन्द्रकन्या
यैषा सवर्णार्द्रमधूकपुष्पैः॥ १०॥
इयं स्वसा राजचमूपतेश्च
प्रवृद्धनीलोत्प- लदामवर्णा।
पस्पर्ध कृष्णेन सदा नृपो यो
वृकोदरस्यैष परिग्रहोऽग्र्यः॥ ११॥
इयं च राज्ञो मगधाधिपस्य
सुता जरासन्ध इति श्रुतस्य।
यवीयसो माद्रवतीसुतस्य
भार्या मता चम्पकदामगौरी॥ १२॥

यह जो शुद्ध स्वर्ण के समान गौरवर्ण सुन्दरी बैठी है, वह नागराज कन्या उलूपी है और वह राजकुमारी चित्रांगदा है, जो नूतन मधूक पुष्पों के समान कान्ति वाली है। ये दोनों भी अर्जुन की पत्नियाँ हैं। यह जो नीलकमल के समान रंगवाली स्त्री है, वह उस राज सेनापति की बहन है, जो राजा सदा श्रीकृष्ण के साथ स्पर्द्धा किया करता था, यह भीमसेन की श्रेष्ठ रानी है। यह जो चम्पा की माला के समान गौर वर्ण कमल के समान विशाल नेत्रों वाली, सुन्दरी बैठी हुई है, यह सुविख्यात राजा जरासन्ध की पुत्री और माद्री के छोटे पुत्र सहदेव की पत्नी है।

इन्दीवरश्यामतनुः स्थिता तु
यैषा परासन्नमहीतले च।
भार्या मता माद्रवतीसुतस्य
ज्येष्ठस्य सेयं कमलायताक्षी॥ १३॥
इयं तु निष्टप्तसुवर्णगौरी
राज्ञो विराटस्य सुता सपुत्रा।
भार्याभिमन्योर्निहतो रणे यो
द्रोणादिभिस्तैर्विरथो रथस्थैः॥ १४॥
एतास्तु सीमन्तशिरोरुहा याः
शुक्लोत्तरीया नरराजपत्न्यः।
राज्ञोऽस्य वृद्धस्य परं शताख्याः
स्नुषा नृवीराहतपुत्रनाथाः॥ १५॥

इसके पास यह जो नील कमल के समान महिला बैठी हुई है, यह कमल के समान विशाल नेत्रों वाली, माद्री के बड़े पुत्र नकुल की पत्नी है। यह जो तपाये हुए सोने के समान गोरे रंग की स्त्री अपने बच्चे के साथ बैठी हुई है, यह राजा विराट की पुत्री उत्तरा और अभिमन्यु की पत्नी है जिसे द्रोणाचार्य आदि ने युद्ध में उसके रथ से हीन हो जाने पर मार दिया था। ये जो स्त्रियाँ सफेद चादर

ओढ़े बैठी हुई हैं, जिन्होंने माँग नहीं बना रखी है, ये नरराज दुर्योधन और उसके भाइयों की पत्नियाँ बूढ़े राजा धृतराष्ट्र की सौ पुत्रवधुएँ हैं। इनके पति और पुत्र युद्ध में नरवीरों द्वारा मारे गये हैं।

एता यथामुख्यमुदाहृता वो
ब्राह्मण्यभावा- दृजुबुद्धिसत्त्वाः।
सर्वा भवद्भिः परिपृच्छ्यमाना
नरेन्द्रपत्न्यः सुविशुद्धसत्त्वाः॥ १६॥
एवं स राजा कुरुवृद्धवर्यः
समागतस्तै- र्नरदेवपुत्रैः।
पप्रच्छ सर्वं कुशलं तदानीं
गतेषु सर्वेष्वथ तापसेषु॥ १७॥
योधेषु वाप्याश्रममण्डलं तं
मुक्त्वा निविष्टेषु विमुच्य पत्रम्।
स्त्रीवृद्धबाले च सुसंनिविष्टे
यथार्हतस्तान् कुशलान्यपृच्छत्॥ १८॥

हे ब्राह्मणत्व के प्रभाव से सरलबुद्धि और शुद्ध अन्तःकरणवाले ऋषियों! आपने सबका परिचय पूछा था, मैंने इनमें से प्रमुख का परिचय दे दिया है। सारी राजपत्नियाँ विशुद्ध हृदयवाली हैं। तब जब सारे तापस अपनी कुटिया में चले गये, कुरुकुल के श्रेष्ठ और बूढ़े राजा धृतराष्ट्र आये हुए राजकुमारों से मिलकर उनका कुशलसमाचार पूछने लगे। पाण्डवों के सैनिकों ने आश्रम की सीमा से परे कुछ दूर पर अपने वाहनों को खोलकर पड़ाव डाल दिया। स्त्री, बूढ़े और बच्चे सब उस छावनी में सुख से विश्राम करने लगे। तब धृतराष्ट्र ने उन सबसे मिलकर उनका यथायोग्य कुशलसमाचार पूछा।

सोलहवाँ अध्याय : धृतराष्ट्र, युधिष्ठिर संवाद। विदुर जी का देहान्त।

धृतराष्ट्र उवाच

युधिष्ठिर महाबाहो कच्चित् त्वं कुशली ह्यसि।
सहितो भ्रातृभिः सर्वैः पौरजानपदैस्तथा॥ १॥
ये च त्वामनुजीवन्ति कच्चित् तेऽपि निरामयाः।
सचिवा भृत्यवर्गाश्च गुरवश्चैव ते नृप॥ २॥
कच्चित् तेऽपि निरातङ्का वसन्ति विषये तव।
कच्चिद् वर्तसि पौराणीं वृत्तिं राजर्षिसेविताम्॥ ३॥
कच्चिन्न्यायाननुच्छिद्य कोशस्तेऽभिप्रपूर्यते।
अरिमध्यस्थमित्रेषु वर्तसे चानुरूपतः॥ ४॥

तब धृतराष्ट्र ने पूछा कि हे महाबाहु युधिष्ठिर! क्या तुम अपने भाइयों, सारे पुरवासियों और देशवासियों के साथ कुशल से हो? जो तुम्हारे आश्रित रहकर अपनी जीविका चलाते हैं, वे मन्त्री, सेवक और गुरुजन हे राजन्! सुखी और स्वस्थ तो हैं? क्या वे तुम्हारे राज्य में आतंकरहित होकर रहते हैं? क्या तुम राजर्षियों से सेवित पुरानी राजनीति का पालन करते हो? क्या तुम्हारा कोश न्यायमार्ग का उल्लंघन किये बिना ही भरा जाता है? क्या तुम शत्रु, मित्र और मध्यस्थों के साथ यथा योग्य बर्ताव करते हो?

ब्राह्मणानग्रहारैर्वा यथावदनुपश्यसि।
कच्चित् ते परितुष्यन्ति शीलेन भरतर्षभ॥ ५॥
अतिथीनन्नपानेन कच्चिदर्चसि भारत।
कच्चिन्न्यायपथे विप्राः स्वकर्मनिरतास्तव॥ ६॥
क्षत्रिया वैश्यवर्गा वा शूद्रा वापि कुटुम्बिनः।
कच्चित् स्त्रीबालवृद्धं ते न शोचति न याचते॥ ७॥
जामयः पूजिताः कच्चित् तव गेहे नरर्षभ।
कच्चिद् राजर्षिवंशोऽयं त्वामासाद्य महीपतिम्॥ ८॥
यथोचितं महाराज यशसा नावसीदति।

हे भरतश्रेष्ठ! क्या तुम ब्राह्मणों को माफी जमीन देकर उन पर यथोचित दृष्टि रखते हो? क्या वे तुम्हारे शील स्वभाव से सन्तुष्ट रहते हैं? हे भारत! क्या तुम अतिथियों का अन्नपानादि से सत्कार करते हो? क्या तुम्हारे राज्य में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र या कुटुम्बी लोग, न्यायपथ का पालन करते हुए अपने कर्म में लगे रहते हैं? हे नरश्रेष्ठ! तुम्हारे राज्य में स्त्रियाँ, बच्चे और बूढ़े शोक तो नहीं करते, वे अपनी आजीविका के लिये भीख तो नहीं माँगते? तुम्हारे घर में सौभाग्यवती बहूबेटियों का आदरसत्कार तो होता है न? क्या राजर्षियों का वंश तुम जैसे राजा को प्राप्तकर यथोचित प्रतिष्ठा को प्राप्त होरहा है? इसका यश कम तो नहीं होरहा है?

इत्येवंवादिनं तं स न्यायवित् प्रत्यभाषत॥ ९॥
कुशलप्रश्नसंयुक्तं कुशलो वाक्यकर्मणि।
कच्चित् ते वर्धते राजंस्तपो दमशमौ च ते॥ १०॥

अपि मे जननी चेयं शुश्रूषुर्विगतक्लमा।
अथास्याः सफलो राजन् वनवासो भविष्यति॥ ११॥
इयं च माता ज्येष्ठा मे शीतवाताध्वकर्शिता।
घोरेण तपसा युक्ता देवी कच्चिन्न शोचति॥ १२॥
हतान् पुत्रान् महावीर्यान् क्षत्रधर्मपरायणान्।
नापध्यायति वा कच्चिदस्मान् पापकृतः सदा॥ १३॥

इसप्रकार कुशलसमाचार पूछनेवाले धृतराष्ट्र से फिर वार्तालाप में कुशल, न्यायवेत्ता युधिष्ठिर ने कहा कि हे राजन्! क्या आपकी तपस्या, शम और दम बढ़ रहे हैं? ये मेरी माता आपकी सेवा में करने में थकावट तो अनुभव नहीं करतीं? क्या इनका वनवास सफल होगा? मेरी बड़ी माता गान्धारी घोर तपस्या में लगी हुई है, सर्दी-गर्मी और रास्ता चलने के श्रम से दुबली हो गयी है। यह अपने मारे गये महापराक्रमी और क्षत्रियधर्म में लगे हुए पुत्रों के लिये शोक तो नहीं करती? और हम पापकर्माओं के लिये अनिष्ट तो नहीं सोचती?

क्व चासौ विदुरो राजन् नेमं पश्यामहे वयम्।
सञ्जयः कुशली चायं कच्चिन्नु तपसि स्थिरः॥ १४॥
इत्युक्तः प्रत्युवाचेदं धृतराष्ट्रो जनाधिपम्।
कुशली विदुरः पुत्र तपो घोरं समाश्रितः॥ १५॥
वायुभक्षो निराहारः कृशो धमनिसन्ततः।
कदाचिद् दृश्यते विप्रैः शून्येऽस्मिन् कानने क्वचित्॥ १६॥

हे राजन्! विदुर जी कहाँ हैं? हम उन्हें देख नहीं रहे हैं। ये संजय तो कुशल पूर्वक अपनी तपस्या में लगे हुए हैं? तब ऐसा कहे जाने पर धृतराष्ट्र ने राजा से कहा कि हे पुत्र! विदुर जी सकुशल हैं? पर इस समय वे घोर तपस्या में लगे हुए हैं। वे केवल वायु का सेवन करते हुए निराहार रहते हैं। वे बहुत कमजोर हो गये हैं। उनके शरीर में नस नाड़ियाँ दिखाई देने लगी हैं। इस सूने वन में ब्राह्मणों को वे कभी-कभी दिखाई देते हैं।

इत्येवं ब्रुवतस्तस्य जटी वीटामुखः कृशः।
दिग्वासा मलदिग्धाङ्गो वनरेणुसमुक्षितः॥ १७॥
दूरादालक्षितः क्षत्ता तत्राख्यातो महीपतेः।
तमन्वधावन्नृपतिरेक एव युधिष्ठिरः॥ १८॥
प्रविशन्तं वनं घोरं लक्ष्यालक्ष्यं क्वचित् क्वचित्।
भो भो विदुर राजाहं दयितस्ते युधिष्ठिरः॥ १९॥
इति ब्रुवन्नरपतिस्तं यत्नादभ्यधावत।

धृतराष्ट्र के ऐसा कहते हुए जटाधारी, दुर्बलशरीर, मुख में पत्थर का टुकड़ा लगाये, नंगे बदन, मैले शरीर, वन की धूल से भरे हुए विदुर जी दूर से दिखाई दिये। जब युधिष्ठिर को उनके विषय में बताया गया तब वे अकेले ही उनके पीछे दौड़े। विदुर जी घोर वन में प्रवेश करते हुए कभी दिखाई दे जाते और कभी छिप जाते थे। तब युधिष्ठिर यह कहते हुए कि हे विदुर जी! मैं आपका प्यारा राजा युधिष्ठिर हूँ, प्रयत्नपूर्वक उनके पीछे दौड़ने लगे।

ततो विविक्त एकान्ते तस्थौ बुद्धिमतां वरः॥ २०॥
विदुरो वृक्षमाश्रित्य कच्चित्तत्र वनान्तरे।
तं राजा क्षीणभूयिष्ठमाकृतीमात्रसूचितम्॥ २१॥
अभिजज्ञे महाबुद्धिं महाबुद्धिर्युधिष्ठिरः।
युधिष्ठिरोऽहमस्मीति वाक्यमुक्त्वाग्रतः स्थितः॥ २२॥
विदुरस्य श्रवे राजा तं च प्रत्यभ्यपूजयत्।
ततः सोऽनिमिषो भूत्वा राजानं तमुदैक्षत॥ २३॥
संयोज्य विदुरस्तस्मिन् दृष्टिं दृष्ट्या समाहितः।

तब बुद्धिमानों में श्रेष्ठ विदुर वहाँ किसी परम पवित्र वन प्रदेश में एकान्त स्थान में एक वृक्ष का सहारा लेकर खड़े हो गये। वे बहुत दुर्बल हो गये थे, उनके शरीर का ढाँचामात्र रह गया था, केवल आकृति से ही उनकी सूचना मिल रही थी। महाबुद्धिमान् युधिष्ठिर ने उन परम बुद्धिमान् विदुर जी को पहचान लिया। विदुर जी जहाँ से सुन सकें उतनी दूर से उन्होंने कहा कि मैं युधिष्ठिर हूँ। यह कहकर वे उनके समीप उनके आगे जाकर खड़े हो गये और उनका सत्कार किया। तब विदुर जी राजा युधिष्ठिर की तरफ एकटक देखने लगे। उन्होंने अपनी दृष्टि युधिष्ठिर की दृष्टि से मिला दी थी।

विदुरस्य शरीरं तु तथैव स्तब्धलोचनम्॥ २४॥
वृक्षाश्रितं तदा राजा ददर्श गतचेतनम्।
राज्ञो वैचित्रवीर्यस्य तत् सर्वं प्रत्यवेदयत्॥ २५॥
ततः स राजा द्युतिमान् स च सर्वो जनस्तदा।
भीमसेनादयश्चैव परं विस्मयमागताः॥ २६॥
तच्छ्रुत्वा प्रीतिमान् राजा भूत्वा धर्मजमब्रवीत्।
आपो मूलं फलं चैव ममेदं प्रतिगृह्यताम्॥ २७॥

राजा ने देखा कि वृक्ष के सहारे खड़े हुए विदुर जी की आँखें उसीप्रकार निर्निमेष पर शरीर चेतनारहित होगया था। तब राजा धृतराष्ट्र से उन्होंने सारी

बातें बतायीं। यह सुनकर तेजस्वी राजा और वहाँ उपस्थित सारे लोग भीमसेन आदि अत्यन्त आश्चर्यचकित हो गये। राजा धृतराष्ट्र ने प्रेम में भरकर धर्मपुत्र युधिष्ठिर से कहा कि तुम मेरे इस जल और फलमूल को ग्रहण करो।

यदर्थो हि नरो राजंस्तदर्थोऽस्यातिथिः स्मृतः।
इत्युक्तः स तथेत्येवं प्राह धर्मात्मजो नृपम्॥ २८॥
फलं मूलं च बुभुजे राज्ञा दत्तं सहानुजः।
ततस्ते वृक्षमूलेषु कृतवासपरिग्रहाः।
तां रात्रिमवसन् सर्वे फलमूलजलाशनाः॥ २९॥

हे राजन्! व्यक्ति जैसा भोजन करता है, वैसा ही भोजन उसे अपने अतिथि को भी देना चाहिये। ऐसा कहने पर धर्मपुत्र ने कहा कि बहुत अच्छा। तब राजा ने भाइयों सहित राजा के दिये हुए फल मूल का ही भोजन किया। फिर पेड़ों के नीचे ही रहने का विचार कर उन्होंने वह रात्रि वहीं बितायी।

सत्रहवाँ अध्याय : युधिष्ठिर का आश्रमवासियों को दान करना।

ततस्तत्र कथाश्चासंस्तेषां धर्मार्थलक्षणाः।
विचित्रपदसंचारा नानाश्रुतिभिरन्विताः॥ १॥
शिवा नक्षत्र सम्पन्ना सा व्यतीयाय शर्वरी।
पाण्डवास्त्वभितो मातुः धरण्यां सुषुपुस्तदा॥ २॥
व्यतीतायां तु शर्वर्यां कृतपौर्वाह्णिकक्रियः।
भ्रातृभिः सहितो राजा ददर्शाश्रममण्डलम्॥ ३॥
सान्तःपुरपरीवारः सभृत्यः सपुरोहितः।
यथासुखं यथोद्देशं धृतराष्ट्राभ्यनुज्ञया॥ ४॥

आश्रम में रात्रि के समय उन में धर्मअर्थ से सम्बन्ध रखनेवाली अनेक श्रुतियों से युक्त तथा विचित्र पदोंवाली चर्चाएँ होती रहीं। उन्हीं चर्चाओं के साथ उनकी वह मंगलमयी नक्षत्रों वाली रात व्यतीत हो गयी। उस रात्रि को पाण्डव लोग अपनी माता के चारों ओर धरती पर ही सोये थे। रात्रि के व्यतीत होने पर, प्रातःकाल के नित्यकर्म करके राजा युधिष्ठिर ने धृतराष्ट्र की आज्ञा से, अपने भाइयों, अन्तःपुर की स्त्रियों, सेवकों और पुरोहितों के साथ सुखपूर्वक, भिन्न-भिन्न स्थानों में घूमकर उस आश्रमसमूह को देखा।

ददर्श तत्र वेदीश्च संप्रज्वलितपावकाः।
कृताभिषेकैर्मुनिभिर्हु- ताग्निभिरुपस्थिताः॥ ५॥
वानेयपुष्पनिकरै- राज्यधूमोद्गमैरपि।
ब्राह्मेण वपुषा युक्ता युक्ता मुनिगणस्य ताः॥ ६॥
मृगयूथैरनुद्विग्नैस्तत्र तत्र समाश्रितैः।
केकाभिर्नीलकण्ठानां दात्यूहानां च कूजितैः॥ ७॥
कोकिलानां कुहुरवैः सुखैः श्रुतिमनोहरैः।
प्राधीतद्विजघोषैश्च क्वचित् क्वचिदलंकृतम्॥ ८॥
फलमूलसमाहारैर्मह- द्भिश्चोपशोभितम्।

वहाँ उन्होंने यज्ञ की वेदियाँ देखी, जिनमें अग्नि जल रही थी। मुनिलोग स्नानकर उन वेदियों के समीप बैठकर अग्नि में आहुति दे रहे थे। वन के फूलों और घी की आहुति से भरे हुए धूओं से उन वेदियों की शोभा हो रही थी। वहाँ लगातार वेदमन्त्रों की ध्वनि होने के कारण वे वेदियाँ वेदमय शरीर से संयुक्त जान पड़ रहीं थीं। मुनिलोग उन वेदियों से सदा सम्पर्क बनाये रखते थे। वहाँ मृगों के झुण्ड बिना किसी घबराहट के जहाँ-तहाँ विद्यमान थे। वहाँ मोरों के मधुर केकारव, दात्यूह नाम के पक्षियों का सुन्दर कलरव और कोयल की कानों को सुख देने वाली सुन्दर कुहू-कुहू की ध्वनि हो रही थी। कहीं उच्चस्वर में वेदमंत्र पढ़ने वाले स्वाध्यायशील ब्राह्मणों की वेद ध्वनि गूँज रही थी। वह आश्रम फलमूल का सेवन करने वाले महापुरुषों से सुशोभित हो रहा था।

ततः स राजा प्रददौ तापसार्थमुपाहृतान्॥ ९॥
अजिनानि प्रवेणीश्च स्रुक् स्रुवं च महीपतिः।
यद् यदिच्छति यावच्च यच्चान्यदपि भाजनम्॥ १०॥
एवं स राजा धर्मात्मा परीत्याश्रममण्डलम्।
वसु विश्राण्य तत् सर्वं पुनरायान्महीपतिः॥ ११॥

तब राजा युधिष्ठिर ने तपस्वियों के लिये लाये गये पदार्थों जैसे मृगचर्म, कम्बल, स्रुक, स्रुवा, आदि को जिस तपस्वी ने जितना चाहा, उसको उतना ही भेंट किया। इनके अतिरिक्त बर्तन आदि जो भी चाहे, वे भी आवश्यक पदार्थ उन्हें दिये गये। इसप्रकार वह धर्मात्मा राजा सारे आश्रमों में घूमकर, सम्पदा को बाँटकर आश्रम में लौट आये।

अठारहवाँ अध्याय : एक मास पश्चात् व्यास जी की आज्ञा से धृतराष्ट्र का पाण्डवों को विदा करना।

तत्राश्रमपदं धीमान् ब्रह्मर्षिर्लोकपूजितः।
मुनिः सत्यवतीपुत्रो धृतराष्ट्रमभाषत॥ १॥
धृतराष्ट्र महाबाहो शृणु कौरवनन्दन।
श्रुतं ते ज्ञानवृद्धानामृषीणां पुण्यकर्मणाम्॥ २॥
श्रद्धाभिजनवृद्धानां वेदवेदाङ्गवेदिनाम्।
धर्मज्ञानां पुराणानां वदतां विविधाः कथाः॥ ३॥
मा स्म शोके मनः कार्षीर्दिष्टे न व्यथते बुधः।

धृतराष्ट्र के आश्रम पर एक दिन विश्ववन्द्य ब्रह्मर्षि धीमान् मुनि, सत्यवतीपुत्र व्यास जी आये और धृतराष्ट्र से बोले कि हे महाबाहु! कौरवनन्दन धृतराष्ट्र! सुनो। तुमने ज्ञानवृद्ध, पुण्यकर्मा, श्रद्धा और कुल में बढ़े-चढ़े वेद वेदांगवेत्ता, धर्मज्ञ, पुराने ऋषियों के मुख से अनेकप्रकार की कथाएँ सुनी हैं, इसलिये तुम अब मन में शोक मत करो। क्योंकि बुद्धिमान् लोग परमात्मा की व्यवस्था में दुःख का अनुभव नहीं करते हैं।

युधिष्ठिरः स्वयं धीमान् भवन्तमनुरुध्यते॥ ४॥
सहितो भ्रातृभिः सर्वैः सदारः ससुहृज्जनः।
विसर्जयैनं यात्वेष स्वराज्यमनुशासताम्॥ ५॥
मासः समधिकस्तेषामतीतो वसतां वने।
एतद्धि नित्यं यत्नेन पदं रक्ष्यं नराधिप॥ ६॥
बहुप्रत्यर्थिकं ह्येतद् राज्यं नाम कुरूद्वह।
इत्युक्तः कौरवो राजा व्यासेनातुलतेजसा॥ ७॥
युधिष्ठिरमथाहूय वाग्मी वचनमब्रवीत्।
अजातशत्रो भद्रं ते शृणु मे भ्रातृभिः सह॥ ८॥
त्वत्प्रसादान्महीपाल शोको नास्मान् प्रबाधते।

धीमान् युधिष्ठिर अपने भाइयों और सारे स्त्री समुदाय और सुहृदों के साथ तुम्हारी सेवा में लगे हुए हैं। इन लोगों का वन में यहाँ रहते हुए एक मास से अधिक हो गया है। अब तुम इन्हें विदा करो। जिससे ये अपने राज्य में जायें और वहाँ अनुशासन की स्थापना करें। हे कुरुश्रेष्ठ राजन्! राज्य के अनेक शत्रु होते हैं, इसलिये इसकी यत्नपूर्वक रक्षा करनी होती है। अतुल तेजस्वी व्यास जी द्वारा यह कहे जाने पर प्रवचन कुशल कौरव राजा धृतराष्ट्र ने युधिष्ठिर को बुलाकर कहा कि हे अजातशत्रु! तुम्हारा कल्याण हो। तुम अपने भाइयों के साथ मेरी बात सुनो। तुम्हारी कृपा से अब हम लोगों को किसी प्रकार का शोक कष्ट नहीं दे रहा है।

रमे चाहं त्वया पुत्र पुरेव गजसाह्वये॥ ९॥
नाथेनानुगतो विद्वन् प्रियेषु परिवर्तिना।
प्राप्तं पुत्रफलं त्वत्तः प्रीतिर्मे परमा त्वयि॥ १०॥
न मे मन्युर्महाबाहो गम्यतां पुत्र मा चिरम्।
भवन्तं चेह सम्प्रेक्ष्य तपो मे परिहीयते॥ ११॥
तपोयुक्तं शरीरं च त्वां दृष्ट्वा धारितं पुनः।
मातरौ ते तथैवेमे शीर्णपर्णकृताशने॥ १२॥
मम तुल्यव्रते पुत्र न चिरं वर्तयिष्यतः।

हे पुत्र! जैसे मैं पहले हस्तिनापुर में रहता था, उसी तरह यहाँ भी तुम जैसे रक्षक से सुरक्षित रहकर रहता हुआ आनन्द का अनुभव कर रहा हूँ। हे विद्वान्! प्रिय जनों की सेवा में लगे रहने वाले तुम्हारे द्वारा मुझे पुत्र का फल प्राप्त हो गया है। मेरा तुम्हारे ऊपर बड़ा प्रेम है। हे महाबाहु! अब तुम्हारे प्रति मेरे मन में कुछ भी क्रोध नहीं है अतः हे पुत्र! तुम राजधानी को जाओ। देर मत करो। तुम्हें यहाँ देखकर मेरी तपस्या में बाधा पड़ रही है। मैंने अपने शरीर को तपस्या में लगा दिया था, पर अब मैं फिर तुम्हें देखकर इसकी रक्षा करने लगा हूँ। ये तुम्हारी दोनों माताएँ भी मेरे समान ही व्रत में लगी हुई सूखे पत्ते चबाकर रहती हैं, अब ये अधिक दिनों तक जीवन धारण नहीं कर सकेंगी।

प्रयोजनं च निर्वृत्तं जीवितस्य ममानघ॥ १३॥
उग्रं तपः समास्थास्ये त्वमनुज्ञातुमर्हसि।
श्वो वाद्य वा महाबाहो गम्यतां पुत्र मा चिरम्॥ १४॥
राजनीतिः सुबहुशः श्रुता ते भरतर्षभ।
संदेष्टव्यं न पश्यामि कृतं मे भवता विभो॥ १५॥
इत्युक्तवचनं तं तु नृपो राजानमब्रवीत्।
न मामर्हसि धर्मज्ञ परित्यक्तुमनागसम्॥ १६॥

हे निष्पाप! अब मेरे जीवित रहने का प्रयोजन पूरा हो गया है। अब मैं कठोर तपस्या को आरम्भ

करूँगा। तुम मुझे इसके लिये आज्ञा दो। इसलिये हे महाबाहु पुत्र! तुम आज या कल चले जाओ। देर मत करो। हे भरतश्रेष्ठ प्रभो! तुमने राजनीति तो अनेक बार सुन ली है, इसलिये मैं तुम्हें सन्देश देने योग्य कोई बात नहीं देखता। तुमने मेरे लिये बहुत कुछ किया है। इस प्रकार कहे जाने पर राजा युधिष्ठिर ने राजा धृतराष्ट्र से कहा कि हे धर्मज्ञ! आप मुझ निर्दोष का इसप्रकार से त्याग न करें।

कामं गच्छन्तु मे सर्वे भ्रातरोऽनुचरास्तथा।
भवन्तमहमन्विष्ये मातरौ च यतव्रतः॥ १७॥
तमुवाचाथ गान्धारी मैवं पुत्र शृणुष्व च।
गम्यतां पुत्र पर्याप्तमेतावत् पूजिता वयम्॥ १८॥
राजा यदाह तत् कार्यं त्वया पुत्र पितुर्वचः।
इत्युक्तः स तु गान्धार्या कुन्तीमिदमभाषत॥ १९॥
स्नेहवाष्पाकुले नेत्रे प्रमृज्य रुदतीं वचः।
विसर्जयति मां राजा गान्धारी च यशस्विनी॥ २०॥
भवत्यां बद्धचित्तस्तु कथं यास्यामि दुःखितः।

मेरे भाई और सेवक अपनी इच्छा से चले जायें, पर मैं नियम और व्रत का पालन करता हुआ यहाँ आपकी और दोनों माताओं की सेवा करूँगा। तब गान्धारी ने कहा कि हे पुत्र! ऐसा मत कहो और सुनो। अब तुम जाओ। तुमने यहाँ रहकर हमारा पर्याप्त सम्मान किया है। हे पुत्र! राजा ने जो कहा है, तुम्हें पिता के वचनों का पालन करना चाहिये। गान्धारी द्वारा यह कहे जाने पर युधिष्ठिर ने स्नेह के आँसुओं से भरे नेत्रों को पौंछकर रोती हुई कुन्ती से कहा कि हे माँ! राजा धृतराष्ट्र और यशस्विनी गान्धारी देवी मेरा त्याग कर रही हैं, किन्तु मेरा हृदय आपमें लगा हुआ है। ऐसी अवस्था में दुःख से भरा मैं कैसे जाऊँगा?

न चोत्सहे तपोविघ्नं कर्तुं ते धर्मचारिणि॥ २१॥
तपसो हि परं नास्ति तपसा विन्दते महत्।
ममापि न तथा राज्ञि राज्ये बुद्धिर्यथा पुरा॥ २२॥
तपस्येवानुरक्तं मे मनः सर्वात्मना तथा।
शून्येयं च मही कृत्स्ना न मे प्रीतिकरी शुभे॥ २३॥
बान्धवा नः परिक्षीणा बलं नो न यथा पुरा।
पञ्चालाः सुभृशं क्षीणाः कथामात्रावशेषिताः॥ २४॥
न तेषां कुलकर्तारं कंचित् पश्याम्यहं शुभे।

हे धर्म का पालन करने वाली! मैं आपके तप में विघ्न भी नहीं डालना चाहता। क्योंकि तप से बढ़कर कुछ भी नहीं है। तप से परब्रह्म परमात्मा की भी प्राप्ति हो जाती है। हे रानी माँ! मेरी भी अब राज्य में पहले जैसी बुद्धि नहीं लगती। मेरा मन पूरी तरह से तपस्या में लगना चाहता है। हे शुभे! मुझे यह सारी भूमि सूनी लगती है, इससे मुझे प्रसन्नता नहीं मिलती। हमारे सारे बान्धव मारे गये। हमारे पास पहले जैसी सेना भी नहीं है। पाँचाल लोग तो पूरी तरह से नष्ट हो गये। उनकी तो कहानी ही शेष है। हे शुभे! मुझे तो अब उनके वंश को चलाने वाला भी नहीं दिखाई देता।

सर्वे हि भस्मसान्नीतास्ते द्रोणेन रणाजिरे॥ २५॥
अवशिष्टाश्च निहता द्रोणपुत्रेण वै निशि।
चेदयश्चैव मत्स्याश्च दृष्टपूर्वास्तथैव नः॥ २६॥
केवलं वृष्णिचक्रं च वासुदेवपरिग्रहात्।
यद् दृष्ट्वा स्थातुमिच्छामि धर्मार्थं नार्थहेतुतः॥ २७॥
शिवेन पश्य नः सर्वान् दुर्लभं तव दर्शनम्।
अविषह्यं च राजा हि तीव्रं चारप्स्यते तपः॥ २८॥

उनमें से सभी को द्रोणाचार्य ने युद्धक्षेत्र में नष्ट कर दिया था, जो बचे थे, उन्हें द्रोणपुत्र ने रात्रि में सोते हुए मार दिया। चेदि देश के और मत्स्य देश के लोग भी जैसे पहले थे, अब वैसे नहीं रहे। केवल श्रीकृष्ण का आश्रय होने से वृष्णिलोग ही बचे हुए हैं। उन्हीं को देखकर मैं अब राज्यगद्दी पर केवल धर्म का पालन करने के लिये रहना चाहता हूँ, धन प्राप्ति के लिये नहीं चाहता। तुम हम सबको अब कल्याण की दृष्टि से देखो। अब हमें तुम्हारा दर्शन दुर्लभ होगा क्योंकि राजा धृतराष्ट्र कठोर और असह्य तपस्या आरम्भ करेंगे।

एतच्छ्रुत्वा महाबाहुः सहदेवो युधां पतिः।
युधिष्ठिरमुवाचेदं बाष्पव्याकुललोचनः॥ २९॥
नोत्सहेऽहं परित्यक्तुं मातरं भरतर्षभ।
प्रतियातु भवान् क्षिप्रं तपस्तप्स्याम्यहं विभो॥ ३०॥
इहैव शोषयिष्यामि तपसेदं कलेवरम्।
पादशुश्रूषणे रक्तो राज्ञो मात्रोस्तथानयोः॥ ३१॥
तमुवाच ततः कुन्ती परिष्वज्य महाभुजम्।
गम्यतां पुत्र मैवं त्वं वोचः कुरु वचो मम॥ ३२॥
आगमा वः शिवाः सन्तु स्वस्था भवत पुत्रकाः।

यह सुनकर योद्धाओं के स्वामी महाबाहु सहदेव आँखों में आँसू भरकर युधिष्ठिर से बोले कि हे

प्रभो! हे भरतश्रेष्ठ! मैं अपनी माता को नहीं छोड़ सकता। आप जल्दी वापिस लौटिये। मैं यहाँ रहकर तपस्या करूँगा। मैं यहीं तपस्या के द्वारा अपने शरीर को सुखा दूँगा। मैं राजा और इन दोनों माताओं के चरणों की सेवा में लगा रहूँगा। तब कुन्ती उस महाबाहु को छाती से लगाकर बोली कि हे पुत्र! ऐसा मत कहो। मेरा कहना मानो और जाओ। हे पुत्रों! तुम्हारे मार्ग मंगलमय हों। तुम सदा स्वस्थ रहो।

उपरोधो भवेदेवमस्माकं तपसः कृते॥ ३३॥
त्वत्स्नेहपाशबद्धा च हीयेयं तपसः परात्।
तस्मात् पुत्रक गच्छ त्वं शिष्टमल्पं च नः प्रभो॥ ३४॥
ते मात्रा समनुज्ञाता राज्ञा च कुरुपुङ्गवाः।
अभिवाद्य कुरुश्रेष्ठमामन्त्रयितुमारभन्॥ ३५॥
राज्यं प्रतिगमिष्यामः शिवेन प्रतिनन्दिताः।
अनुज्ञातास्त्वया राजन् गमिष्यामो विकल्मषाः॥ ३६॥

तुम्हारे यहाँ रहने से हम लोगों की तपस्या में भंग पड़ेगा। मैं तुम्हारे स्नेहबन्धन में बँधकर उत्तम तपस्या से गिर जाऊँगी। इसलिये हे सामर्थ्यशालीपुत्र! तुम जाओ। अब हमारी आयु थोड़ी रह गयी है। तब माता जी और राजा धृतराष्ट्र की आज्ञा पाकर वे कुरुश्रेष्ठ उन कुरुश्रेष्ठ राजा को प्रणाम कर उनसे बिदा लेने के लिये यह बोले कि—हे राजन्! हम आपके आशीर्वाद से आनन्दित, पापरहित होकर चले जायेंगे। आप आज्ञा दीजिये।

एवमुक्तः स राजर्षिर्धर्मराज्ञा महात्मना।
अनुजज्ञे स कौरव्यमभिनन्द्य युधिष्ठिरम्॥ ३७॥
भीमं च बलिनां श्रेष्ठं सान्त्वयामास पार्थिवः।
स चास्य सम्यङ्मेधावी प्रत्यपद्यत वीर्यवान्॥ ३८॥
अर्जुनं च समाश्लिष्य यमौ च पुरुषर्षभौ।
अनुजज्ञे स कौरव्यः परिष्वज्याभिनन्द्य च॥ ३९॥
गान्धार्या चाभ्यनुज्ञाताः कृतपादाभिवादनाः।
जनन्या समुपाघ्राताः परिष्वक्ताश्च ते नृपम्॥ ४०॥
चक्रुः प्रदक्षिणं सर्वे वत्सा इव निवारणे।
पुनः पुनर्निरीक्षन्तः प्रचक्रुस्ते प्रदक्षिणम्॥ ४१॥

मनस्वी धर्मराज युधिष्ठिर द्वारा ऐसा कहने पर राजर्षि धृतराष्ट्र ने कुरुवंशी युधिष्ठिर का अभिनन्दन कर उन्हें जाने की आज्ञा दी। राजा ने बलवानों में श्रेष्ठ भीमसेन को सान्त्वना दी। उस पराक्रमी और मेधावी ने भी उनकी बातों को हृदय से स्वीकार किया। अर्जुन और दोनों जुड़वाँ भाई पुरुषश्रेष्ठ नकुल और सहदेव को कुरुवंशी धृतराष्ट्र ने छाती से लगाकर, उनका अभिनन्दन कर उन्हें जाने की आज्ञा दी। फिर पाण्डवों ने गान्धारी के चरणों में प्रणाम कर उनकी आज्ञा ली। माता कुन्ती ने उनके सिरों को सूँघा और उन्हें छाती से लगाया। जैसे बछड़ों को अपनी माता का दूध पीने से रोके जाने पर वे उसकी तरफ देखते हुए उसके चारों तरफ चक्कर लगाते हैं, वैसे ही पाण्डवों ने भी अपनी माता की तरफ देखते हुए उसकी और राजा की परिक्रमा की।

द्रौपदीप्रमुखाश्चैव सर्वाः कौरवयोषितः।
न्यायतः श्वशुरे वृत्तिं प्रयुज्य प्रययुस्ततः॥ ४२॥
श्वश्रूभ्यां समनुज्ञाताः परिष्वज्याभिनन्दिताः।
संदिष्टाश्चेति कर्तव्यं प्रययुर्भर्तृभिः सह॥ ४३॥
ततो युधिष्ठिरो राजा सदारः सहसैनिकः।
नगरं हास्तिनपुरं पुनरायात् सबान्धवः॥ ४४॥

द्रौपदी आदि सारी कौरव स्त्रियों ने तब न्यायपूर्वक श्वसुर को प्रणाम किया। उनकी दोनों सासों ने भी उन्हें छाती से लगाकर उनका अभिनन्दन किया, उन्हें कर्त्तव्य का उपदेश दिया और जाने की आज्ञा दी। वे तब अपने पतियों के साथ चलीं गयीं। फिर राजा युधिष्ठिर अपने बन्धुओं, सैनिकों और स्त्रियों के साथ पुनः हस्तिनापुर नगर में लौट आये।

उन्नीसवाँ अध्याय : धृतराष्ट्र आदि का दावानल में जलकर दिवंगत हो जाना।

द्विवर्षोपनिवृत्तेषु पाण्डवेषु यदृच्छया।
देवर्षिर्नारदो तत्र आजगाम युधिष्ठिरम्॥ १॥
तमभ्यर्च्य महाबाहुः कुरुराजो युधिष्ठिरः।
आसीनं परिविश्वस्तं प्रोवाच वदतां वरः॥ २॥
वदन्ति पुरुषा मेऽद्य गङ्गातीरनिवासिनः।
धृतराष्ट्रं महात्मानमास्थितं परमं तपः॥ ३॥
अपि दृष्टस्त्वया तत्र कुशली स कुरूद्वहः।
गान्धारी च पृथा चैव सूतपुत्रश्च संजयः॥ ४॥
श्रोतुमिच्छामि भगवन् यदि दृष्टस्त्वया नृपः।

पाण्डवों के तपोवन से आये दो वर्ष होने पर देवर्षि नारद अपनी इच्छा से भ्रमण करते हुए राजा युधिष्ठिर के समीप आये। महाबाहु कुरुराज युधिष्ठिर ने उनका स्वागत सत्कार किया। वे जब आसन पर बैठे हुए शान्तचित्त होगये, तब बोलनेवालों में श्रेष्ठ युधिष्ठिर ने पूछा कि हे भगवान्! गंगा के किनारे रहने वाले व्यक्ति आकर कहा करते हैं कि मनस्वी धृतराष्ट्र आजकल घोर तपस्या में लगे हुए हैं। हे महाराज! क्या आपने उन कुरुश्रेष्ठ, गान्धारी, कुन्ती तथा सूतपुत्र संजय को देखा है? क्या वे कुशल पूर्वक हैं? हे भगवन्! यदि आपने उन राजा को देखा है तो उनके विषय में सुनना चाहता हूँ।

नारद उवाच

स्थिरीभूय महाराज शृणु वृत्तं यथातथम्॥ ५॥
यथा श्रुतं च दृष्टं च मया तस्मिंस्तपोवने।
वनवासनिवृत्तेषु भवत्सु कुरुनन्दन॥ ६॥
कुरुक्षेत्रात् पिता तुभ्यं गङ्गाद्वारं ययौ नृप।
ततः कदाचिद् गङ्गायाः कच्छे स नृपसत्तमः॥ ७॥
गङ्गायामाप्लुतो धीमानाश्रमाभिमुखोऽभवत्।
अथ वायुः समुद्धूतो दावाग्निरभवन्महान्॥ ८॥
ददाह तद् वनं सर्वं परिगृह्य समन्ततः।

तब नारद जी ने कहा कि हे महाराज! आप स्थिर होकर सुनिये। वहाँ तपोवन में मैंने जो सुना है और देखा है वह सारा वृत्तान्त आपको ठीक–ठीक बताता हूँ। हे कुरुनन्दन! जब आप लोग वन से लौट आये तो हे राजन्! तुम्हारे पिता कुरुक्षेत्र से हरद्वार को चले गये। एक दिन उन धीमान् श्रेष्ठ राजा ने गंगा के किनारे जाकर उसमें स्नान किया और स्नान के पश्चात् अपने आश्रम की तरफ चल दिये, तभी वहाँ बड़े जोर से हवा चलने लगी, जिससे जंगल में दावाग्नि प्रज्वलित हो गयी। उस दावाग्नि ने वन को चारोंतरफ से घेर कर जलाना आरम्भ कर दिया।

समाविद्धे वने तस्मिन् प्राप्ते व्यसन उत्तमे॥ ९॥
निराहारतया राजन् मन्दप्राणविचेष्टितः।
असमर्थोऽपसरणे सुकृशे मातरौ च ते॥ १०॥
ततः स नृपतिर्दृष्ट्वा वह्निमायान्तमन्तिकात्।
इदमाह ततः सूतं संजयं जयतां वरः॥ ११॥

हे राजन्! वन के आग से घिर जाने पर, उनके ऊपर भयानक संकट आगया क्योंकि निरन्तर निराहार रहने से उनकी प्राणशक्ति और चेष्टा शक्ति शिथिल हो गयी थीं, तुम्हारी दोनों माताएँ भी अत्यन्तदुर्बल होजाने के कारण भागने में असमर्थ थीं। तब अग्नि को अपने समीप आया जानकर विजयी पुरुषों में श्रेष्ठ धृतराष्ट्र ने सूत संजय से कहा कि–

गच्छ संजय यत्राग्निर्न त्वां दहति कर्हिचित्।
वयमत्राग्निना युक्ता गमिष्यामः परां गतिम्॥ १२॥
तमुवाच किलोद्विग्नः संजयो वदतां वरः।
राजन् मृत्युरनिष्टोऽयं भविता ते वृथाग्निना॥ १३॥
न चोपायं प्रपश्यामि मोक्षणे जातवेदसः।
यदत्रानन्तरं कार्यं तद् भवान् वक्तुमर्हति॥ १४॥
इत्युक्तः संजयेनेदं पुनराह स पार्थिवः।
नैष मृत्युरनिष्टो नो निःसृतानां गृहात् स्वयम्॥ १५॥
जलमग्निस्तथा वायुरथवापि विकर्षणम्।
तापसानां प्रशस्यन्ते गच्छ संजय मा चिरम्॥ १६॥

जाओ संजय! तुम ऐसे स्थान पर चले जाओ, जहाँ अग्नि तुम्हें न जला सके। हम यहाँ अपने को अग्नि में होमकर परम गति को प्राप्त करेंगे। तब बोलने वालों में श्रेष्ठ संजय ने अत्यन्त उद्विग्न होकर उनसे कहा कि हे राजन्! आपकी अग्नि से व्यर्थ में ही जलकर मृत्यु हो जाना ठीक नहीं है। किन्तु अग्नि से छुटकारा पाने का कोई उपाय भी दिखाई नहीं दे रहा है इसलिये आप बताइये कि अब क्या किया जाये? संजय के द्वारा यह कहने पर उस राजा ने कहा कि हमारा इस आग में जलकर मर जाना कोई बुरा नहीं है, क्योंकि हम तो स्वयं ही घर को छोड़कर निकले हुए हैं। जल, अग्नि, वायु के संयोग से या उपवास करके प्राण त्याग करना तपस्वियों के लिये प्रशंसनीय है। इसलिये हे संजय! तुम जल्दी यहाँ से जाओ, देर मत करो।

इत्युक्त्वा संजयं राजा समाधाय मनस्तथा।
प्राङ्मुखः सह गान्धार्या कुन्त्या चोपाविशत् तदा॥ १७॥
संजयस्तं तथा दृष्ट्वा प्रदक्षिणमथाकरोत्।
उवाच चैनं मेधावी युङ्क्ष्वात्मानमिति प्रभो॥ १८॥
ऋषिपुत्रो मनीषी स राजा चक्रेऽस्य तद् वचः।
सन्निरुध्येन्द्रियग्राममासीत् काष्ठोपमस्तदा॥ १९॥

संजय से ऐसा कहकर राजा धृतराष्ट्र मन को एकाग्र कर गान्धारी और कुन्ती के साथ पूर्व की तरफ मुँह करके बैठ गये। मेधावी संजय ने तब

उन्हें इस अवस्था में देखकर उनकी प्रदक्षिणा की और कहा कि हे प्रभो! अब आप अपने को योगयुक्त कीजिये। तब महर्षि व्यास के पुत्र राजा धृतराष्ट्र संजय के कथनानुसार अपने इन्द्रियसमूह को रोककर काष्ठ के समान निश्चेष्ट हो गये।

गान्धारी च महाभागा जननी च पृथा तव।
दावाग्निना समायुक्ते स च राजा पिता तव॥ २०॥
संजयस्तु महामात्रस्तस्माद् दावादमुच्यत।
गङ्गाकूले मया दृष्टस्तापसैः परिवारितः॥ २१॥
स तानामन्त्र्य तेजस्वी निवेद्यैतच्च सर्वशः।
प्रययौ संजयो धीमान् हिमवन्तं महीधरम्॥ २२॥
यदृच्छयानुव्रजता मया राज्ञः कलेवरम्।
तयोश्च देव्योरुभयोर्मया दृष्टानि भारत॥ २३॥

इसप्रकार महाभागा गान्धारी, तुम्हारी माता कुन्ती तथा तुम्हारे ताऊ राजा धृतराष्ट्र दावाग्नि में जलकर भस्म होगये। महामात्य संजय दावाग्नि से छूटकर जीवित रह गये हैं। मैंने गंगा के किनारे संजय को तपस्वियों से घिरा हुआ देखा है। वह तेजस्वी और बुद्धिमान् संजय उन को यह समाचार बताकर और उनसे बिदा लेकर हिमालय पर्वत पर चले गये। हे भारत! वन में इच्छानुसार घूमते हुए मैंने राजा तथा दोनों देवियों के मृत शरीरों को देखा है।

एतच्छ्रुत्वा च सर्वेषां पाण्डवानां महात्मनाम्।
निर्याणं धृतराष्ट्रस्य शोकः समभवन्महान्॥ २४॥
अन्तःपुराणां च तदा महानार्तस्वरोऽभवत्।
अहो धिगिति राजा तु विक्रुश्य भृशदुःखितः॥ २५॥
ऊर्ध्वबाहुः स्मरन् मातुः प्ररुरोद युधिष्ठिरः।
भीमसेनपुरोगाश्च भ्रातरः सर्व एव ते॥ २६॥
तं च वृद्धं तथा दग्धं हतपुत्रं नराधिपम्।
अन्वशोचन्त ते सर्वे गान्धारीं च तपस्विनीम्।
निगृह्य बाष्पं धैर्येण धर्मराजोऽब्रवीदिदम्॥ २७॥

राजा धृतराष्ट्र के परलोकगमन को सुनकर मनस्वी पाण्डवों को महान शोक हुआ। इस समाचार से अन्तःपुर में भी महान् आर्तनाद होने लगा। राजा युधिष्ठिर अत्यन्त दुःखी होकर, अपनी निन्दा करते हुए, अहो धिक्कार है, यह कहते हुए, माता को याद करते हुए दोनों हाथ ऊपर उठाकर फूट–फूटकर रोने लगे। भीमसेन आदि दूसरे भाइयों की भी यही अवस्था थी। उस पुत्रहीन बूढ़े राजा धृतराष्ट्र और तपस्विनी गान्धारी को इसप्रकार अग्नि में जला हुआ सुनकर सभी उनके लिये शोक करने लगे। थोड़ी देर के पश्चात् अपने आँसुओं को पोंछकर कुछ धीरज धारणकर धर्मराज युधिष्ठिर कहने लगे कि–

बीसवाँ अध्याय : धृतराष्ट्रादि के लिये अन्त्येष्टि कर्म का सम्पादन।

तथा महात्मनस्तस्य तपस्युग्रे च वर्ततः।
अनाथस्येव निधनं तिष्ठत्स्वास्मासु बन्धुषु॥ १॥
यस्य पुत्रशतं श्रीमदभवद् बाहुशालिनः।
नागायुतबलो राजा स दग्धो हि दवाग्निना॥ २॥
यं पुरा पर्यवीजन्त तालवृन्तैर्वरस्त्रियः।
तं गृध्राः पर्यवीजन्त दावाग्निपरिकालितम्॥ ३॥
सूतमागधसंघैश्च शयानो यः प्रबोध्यते।
धरण्यां स नृपः शेते पापस्य मम कर्मभिः॥ ४॥

युधिष्ठिर कहने लगे कि हाय हमारे जैसे बान्धवों के होते हुए भी उग्र तपस्या में लगे उस महात्मा धृतराष्ट्र की अनाथ के समान मृत्यु हुई। जिस बाहुशाली राजा के पहले सौ ऐश्वर्यशाली पुत्र थे और जो स्वयं भी अनेक हाथियों के समान बलवान् थे, वे अब दावानल में जलकर मरे हैं। जिन पर पहले सुन्दर स्त्रियाँ ताड़ के पंखों से हवा किया करती थीं, उन्हें दावानल से जल जाने पर गिद्धों ने अपने पंखों से हवा दी है। जो पहले सुन्दर बिस्तरों पर सोते और सूतों तथा मागधों द्वारा जगाये जाते थे वही राजा अब मुझ पापी की करतूतों से भूमि पर सो रहे हैं।

न च शोचामि गान्धारीं हतपुत्रां यशस्विनीम्।
पतिलोकमनुप्राप्तां तथा भर्तृव्रते स्थिताम्॥ ५॥
पृथामेव च शोचामि या पुत्रैश्वर्यमृद्धिमत्।
उत्सृज्य सुमहद् दीप्तं वनवासमरोचयत्॥ ६॥
धिग् राज्यमिदमस्माकं धिग् बलं धिक् पराक्रमम्।
क्षत्रधर्मं च धिग् यस्मान्मृता जीवामहे वयम्॥ ७॥
युधिष्ठिरस्य जननी भीमस्य विजयस्य च।
अनाथवत् कथं दग्धा इति मुह्यामि चिन्तयन्॥ ८॥

मैं पुत्रहीना यशस्विनी गान्धारी के लिये शोक नहीं करता, क्योंकि वे तो पति के व्रत में स्थित थीं और पति के लोक को प्राप्त हुई हैं। मैं तो माता कुन्ती के लिये शोक करता हूँ जो पुत्रों के समृद्धिशाली परम समुज्ज्वल ऐश्वर्य को त्यागकर वन में रह रही थीं। हमारे राज्य, बल, पराक्रम और हमारे क्षत्रिय धर्म को भी धिक्कार है, जिसके कारण हम आज मृतकतुल्य जीवन बिता रहे हैं। युधिष्ठिर भीम और अर्जुन की माता अनाथों के समान कैसे जल गयी? यह सोचकर मैं मोहित हो जाता हूँ।

मन्ये पृथा वेपमाना कृशा धमनिसंतता।
हा तात! धर्मराजेति समाक्रन्दन्महाभये॥ ९॥
भीम पर्याप्नुहि भयादिति चैवाभिवाशती।
समन्ततः परिक्षिप्ता माताभून्मे दवाग्निना॥ १०॥
सहदेवः प्रियस्तस्याः पुत्रेभ्योऽधिक एव तु।
न चैनां मोक्षयामास वीरो माद्रवतीसुतः॥ ११॥
तच्छ्रुत्वा रुरुदुः सर्वे समालिङ्ग्य परस्परम्।
पाण्डवाः पञ्च दुःखार्ता भूतानीव युगक्षये॥ १२॥

मैं समझता हूँ कि अत्यन्त दुर्बल हो जाने से जिनके शरीर पर फैली हुई नस नाड़ियाँ स्पष्ट दिखाई देती थीं, वे कुन्ती माता महान् भय के उपस्थित होने पर काँपती हुई हा तात! हा धर्मराज कहती हुई कातर पुकार मचाने लगी होंगी। हे भीम! मुझे इस भय से बचाओ ऐसा कहती हुई चीखती चिल्लाती हुई मेरी माता को दावाग्नि ने जलाकार भस्म कर दिया होगा। सहदेव उसे सारे पुत्रों से अधिक प्रिय था, पर वह वीर माद्रीपुत्र भी उसे उस संकट से न बचा सका। यह सुनकर सारे पाण्डव एकदूसरे को छाती से लगाकर रोने लगे। जैसे प्रलय के समय पाँचों भूत पीड़ित होजाते हैं, वैसे ही पाँचों पाण्डव उस समय दुःख से आतुर हो रहे थे।

ततः स पृथिवीपालः पाण्डवानां धुरंधरः।
निर्ययौ सहसोदर्यः सदारश्च नरर्षभः॥ १३॥
पौरजानपदाश्चैव राजभक्तिपुरस्कृताः।
गङ्गां प्रजग्मुरभितो वाससैकेन संवृताः॥ १४॥
प्रेषयामास स नरान् विधिज्ञानाप्तकारिणः।
गङ्गाद्वारं नरश्रेष्ठो यत्र दग्धोऽभवन्नृपः॥ १५॥
तत्रैव तेषां कृत्यानि, गङ्गाद्वारेऽन्वशात् तदा।

तब पाण्डवों में श्रेष्ठ, पुरुषोत्तम पृथिवीपति युधिष्ठिर अपने भाइयों और स्त्रियों के साथ नगर से बाहर निकले। उनके साथ राजभक्ति को आगे रखने वाले पुर और जनपद निवासी भी थे। वे सब एक वस्त्र धारण किये हुए गंगा के किनारे गये। उस नरश्रेष्ठ राजा ने फिर विधिविधान के जानकर विश्वासपात्र लोगों को गंगाद्वार में उस स्थान पर भेजा जहाँ वे सब जलकर भस्म हुए थे और वहीं उनके अन्त्येष्टि कर्म करने की आज्ञा दी।

धृतराष्ट्रं समुद्दिश्य ददौ स पृथिवीपतिः॥ १६॥
सुवर्णं रजतं गाश्च शय्याश्च सुमहाधनाः।
गान्धार्याश्चैव तेजस्वी पृथायाश्च पृथक्-पृथक्॥ १७॥
संकीर्त्य नामनी राजा ददौ दानमनुत्तमम्।
यो यदिच्छति यावच्च तावत् स लभते नरः॥ १८॥
शयनं भोजनं यानं मणिरत्नमथो धनम्।
ददौ राजा समुद्दिश्य तयोर्मात्रोर्महीपतिः॥ १९॥
ततः स पृथिवीपालो दत्त्वा श्राद्धान्यनेकशः।
प्रविवेश पुरं राजा नगरं वारणाह्वयम्॥ २०॥

फिर राजा युधिष्ठिर ने धृतराष्ट्र के लिये सोना, चाँदी, गायें, बिस्तरे और बहुत सा धन दान में दिया। उन्होंने गान्धारी और तेजस्विनी कुन्ती के लिये भी अलग-अलग उनके नाम बोलकर परम उत्तम दान दिया। जो मनुष्य जिस पदार्थ को जितनी मात्रा में चाहता था, उसे वह पदार्थ उतनी मात्रा में ही दान में दिया गया। राजा युधिष्ठिर ने दोनों माताओं को उद्देश्य कर बिस्तरे, भोजन, सवारी, मणि, रत्न आदि धन दिया। इसप्रकार श्रद्धापूर्वक अनेक पदार्थों का दान कर राजा ने हस्तिनापुर नगर में प्रवेश किया।

एवं वर्षाण्यतीतानि धृतराष्ट्रस्य धीमतः।
वनवासे तथा त्रीणि नगरे दश पञ्च च॥ २१॥
युधिष्ठिरस्तु नृपतिर्नातिप्रीतमनास्तदा।
धारयामास तद् राज्यं निहतज्ञातिबान्धवः॥ २२॥

इसप्रकार बुद्धिमान् राजा धृतराष्ट्र के पन्द्रह वर्ष नगर में और तीन वर्ष वन में व्यतीत हुए। राजा युधिष्ठिर तो, जिनके बन्धु-बान्धव नष्ट हो गये थे, मन में अधिक प्रसन्न न होते हुए किसी प्रकार से उस राज्य का भार सँभालने लगे।

मौसलपर्व

पहला अध्याय : शराब के नशे में यादवों का परस्पर लड़कर विनाश।

षट् त्रिंशेऽथ ततो वर्षे वृष्णीनामनयो महान्।
नाप त्रपन्त पापानि कुर्वन्तो वृष्णयस्तदा॥ १॥
प्राद्विषन् ब्राह्मणांश्चापि पितृन् देवांस्तथैव च।
गुरूंश्चाप्यवमन्यन्ते न तु रामजनार्दनौ॥ २॥
पत्न्यः पतीनुच्चरन्त पत्नीश्च पतयस्तथा।

महाभारत के युद्ध के छत्तीसवें वर्ष में यदुवंशियों में अन्यायपूर्ण व्यवहार बहुत बढ़ गया। वृष्णीवंशी पापकर्मों को करने लगे। उन्हें करते हुए वे लज्जित भी नहीं होते थे। वे ब्राह्मणों, वृद्धों और सदाचारी विद्वानों से भी अत्यधिक द्वेष रखने लगे। वे गुरुओं का भी अपमान करने लगे। केवल बलराम और श्रीकृष्ण जी का ही वे अपमान नहीं करते थे। उनकी पत्नियाँ पतियों और पति पत्नियों को धोखा देने लगे।

ततो जिगमिषन्तस्ते वृष्ण्यन्धकमहारथाः॥ ३॥
सान्तःपुरास्तदा तीर्थयात्रामैच्छन् नरर्षभाः।
ततः सैनिकवर्गाश्च निर्ययुर्नगराद् बहिः॥ ४॥
यानैरश्वैर्गजैश्चैव श्रीमन्तस्तिग्मतेजसः।
ततः प्रभासे न्यवसन् यथोद्दिष्टं यथागृहम्॥ ५॥
प्रभूतभक्ष्यपेयास्ते सदारा यादवास्तदा।
ततस्तूर्यशताकीर्णं नटनर्तकसंकुलम्॥ ६॥
अवर्तत महापानं प्रभासे तिग्मतेजसाम्।

एक बार नरश्रेष्ठ वृष्णि और अन्धक महारथियों ने अन्तःपुर की स्त्रियों के साथ भ्रमण यात्रा की इच्छा की। तब उनके शोभा सम्पन्न महा तेजस्वी सैनिकों के समुदाय रथों, घोड़ों और हाथियों द्वारा नगर से बाहर निकले। तब स्त्रियों सहित यादव लोग प्रभासक्षेत्र में पहुँचे और वहाँ अपने अनुकूल घरों में ठहर गये। उस समय उनके पास प्रचुर मात्रा में खाने और पीने की सामग्री थी। फिर सैंकड़ों वाद्यों, नटों और नर्तकों के साथ अति तेजस्वी यादवों का सामूहिक महामद्यपान होने लगा।

ततः परिषदो मध्ये युयुधानो मदोत्कटः॥ ७॥
अब्रवीत् कृतवर्माणमवहास्यावमन्य च।
कः क्षत्रियोऽहन्यमानः सुप्तान् हन्यान्मृतानिव॥ ८॥
तन्न मृष्यन्ति हार्दिक्य यादवा यत् त्वया कृतम्।
इत्युक्ते युयुधानेन पूजयामास तद्वचः॥ ९॥
प्रद्युम्नो रथिनां श्रेष्ठो हार्दिक्यमवमन्य च।
ततः परमसंक्रुद्धः कृतवर्मा तमब्रवीत्॥ १०॥
निर्दिशन्निव सावज्ञं तदा सव्येन पाणिना।
भूरिश्रवाश्छिन्नबाहुर्युद्धे प्रायगतस्त्वया॥ ११॥
वधेन सुनृशंसेन कथं वीरेण पातितः।

तब नशे में पागल सात्यकि यादवों की सभा में कृतवर्मा का उपहास और अपमान करते हुए बोले कि अरे हार्दिक्य! तेरे सिवाय कौन ऐसा दूसरा क्षत्रिय होगा जो अपने ऊपर आक्रमण न होते हुए भी मरे हुओं के समान सोये हुए मनुष्यों की हत्या करेगा? तूने जो अन्याय किया है, उसे यदुवंशी क्षमा नहीं करेंगे। सात्यकि के यह कहने पर रथियों में श्रेष्ठ प्रद्युम्न ने कृतवर्मा का तिरस्कारकर सात्यकि का समर्थन किया। तब अत्यन्तक्रुद्ध कृतवर्मा ने, बायें हाथ से अपमानसहित सात्यकि की तरफ संकेत कर कहा कि अरे युद्ध में भूरिश्रवा की बाँह कट गयी थी, वह आमरण उपवास पर बैठा हुआ था, तब वीर कहलाने वाले तुझ अत्यन्तनिर्दयी ने उसका वध करके क्यों गिरा दिया?

तत उत्थाय सक्रोधः सात्यकिर्वाक्य मब्रवीत्॥ १२॥
सौप्तिके ये च निहताः सुप्ता येन दुरात्मना।
द्रोण पुत्र सहायेन पापेन कृतवर्मणा॥ १३॥
समाप्तमायुरद्यास्य सत्येन च तथा शपे।
इत्येवमुक्त्वा खड्गेन केशवस्य समीपतः॥ १४॥
अभिद्रुत्य शिरः क्रुद्धश्चिच्छेद कृतवर्मणः।

तथान्यानपि निघ्नन्तं युयुधानं समन्ततः॥ १५॥
अभ्यधावद्धृषीकेशो विनिवारयितुं तदा।
एकीभूतास्ततः सर्वे कालपर्यायचोदिताः॥ १६॥
भोजान्धकास्तु शैनेयं सात्यकिं पर्यवारयन्।

तब सात्यकि ने उठकर क्रोध से यह कहा कि जिस पापी, अश्वत्थामा के सहायक, दुष्ट कृतवर्मा ने सोते हुओं की हत्या की, उसकी आयु आज समाप्त हो गयी है, यह मैं सत्य की शपथ खाकर कहता हूँ। ऐसा कहकर श्रीकृष्ण के पास से दौड़कर, उसने क्रोध में कृतवर्मा का सिर तलवार से काट लिया। फिर उसके बाद वे चारों तरफ दूसरे लोगों का भी वध करने लगे। यह देखकर श्रीकृष्ण उन्हें रोकने के लिये दौड़े। तभी मृत्यु की प्रेरणा से प्रेरित होकर सारे अन्धक और भोजवंशी वीर एकत्र हो गये और उन्होंने सात्यकि को घेर लिया।

तान् दृष्ट्वा पततस्तूर्णमभिक्रुद्धाञ्जनार्दनः॥ १७॥
न चुक्रोध महातेजा जानन् कालस्य पर्ययम्।
हन्यमाने तु शैनेये क्रुद्धो रुक्मिणिनन्दनः॥ १८॥
तदनन्तरमागच्छन्मोक्षयिष्यन् शिनेः सुतम्।
स भोजैः सह संयुक्तः सात्यकिश्चान्धकैः सह॥ १९॥
व्यायच्छमानौ तौ वीरौ बाहुद्रविणशालिनौ।
बहुत्वान्निहतौ तत्र उभौ कृष्णस्य पश्यतः॥ २०॥

उन सबको क्रोध में भरकर सात्यकि के ऊपर तेजी से आक्रमण करते हुए देखकर महातेजस्वी श्रीकृष्ण समय के उलट फेर को समझते हुए कुपित नहीं हुए। किन्तु जब सात्यकि इसप्रकार मारे जाने लगे, तब क्रुद्ध रुक्मणिपुत्र प्रद्युम्न, उन्हें बचाने के लिये उनके और आक्रमणकारियों के बीच में कूद पड़े। प्रद्युम्न भोजों और सात्यकि अन्धकों से लड़ने लगे। अपनी भुजाओं के बल से सुशोभित होने वाले दोनों वीर बड़े परिश्रम से विरोधियों का सामना करने लगे। पर उनकी संख्या अधिक थी इसलिये दोनों श्रीकृष्ण के देखते–देखते मार डाले गये।

ततोऽन्धकाश्च भोजाश्च शैनेया वृष्णयस्तथा।
जघ्नुरन्योन्यमाक्रन्दे मुसलैः कालचोदिताः॥ २१॥
मत्ताः परिपतन्ति स्म योधयन्तः परस्परम्।
पतङ्गा इव चाग्नौ ते निपेतुः कुकुरान्धकाः॥ २२॥
साम्बं च निहतं दृष्ट्वा जानन् कालस्य पर्ययम्।
प्रद्युम्नं चानिरुद्धं च चारुदेष्णं च माधवः॥ २३॥
गदं वीक्ष्य शयानं च भृशं कोपसमन्वितः।
स निःशेषं तदा चक्रे शार्ङ्गचक्रगदाधरः॥ २४॥

अन्धक, भोज, शैनेय और वृष्णि वंशी, मृत्यु से प्रेरित होकर घमासान युद्ध में एकदूसरे को मूसलों से मारने लगे। जैसे पतंगे आग में कूदते हैं वैसे ही मतवाले बने हुए कुकुर और अन्धक वंशी परस्पर लड़ते हुए एकदूसरे पर टूट रहे थे। समय के उलटफेर को समझते हुए श्रीकृष्ण जी ने साम्ब को फिर प्रद्युम्न और अनिरुद्ध को तथा चारुदेष्ण को मारा हुआ देखा। फिर गद को भी युद्धक्षेत्र में सोया हुआ देखकर अत्यन्त क्रोध में शार्ङ्ग धनुष, चक्र और गदा को धारण कर उन्होंने सबको मार दिया।

दूसरा अध्याय : श्रीकृष्ण और बलराम का देहान्त।

ततो ययुर्दारुकः केशवश्च
बभ्रुश्च रामस्य पदं पतन्तः।
अथापश्यन् राममनन्तवीर्यं
वृक्षे स्थितं चिन्तयानं विविक्ते॥ १॥
ततः समासाद्य महानुभावं
कृष्णस्तदा दारुकमन्वशासत्।
गत्वा कुरून् सर्वमिमं महान्तं
पार्थाय शंसस्व वधं यदूनाम्॥ २॥
इत्येवमुक्तः स ययौ रथेन
कुरूंस्तदा दारुको नष्टचेताः।

फिर दारुक, बभ्रु और श्रीकृष्ण बलराम को ढूँढते हुए वहाँ से चल दिये। तब उन्होंने अनन्त पराक्रमी बलराम को देखा, जो एकान्त में वृक्ष के नीचे ध्यानमग्न बैठे हुए थे। उन महानुभाव के पास पहुँचकर श्रीकृष्णजी ने दारुक को आदेश दिया कि तुम कुरुदेश में जाकर अर्जुन से यादवों के विनाश का सारा वृतान्त कह दो। श्रीकृष्ण जी के यह आज्ञा देने पर वह शोक से अचेत सा बना हुआ दारुक रथ से हस्तिनापुर को चल दिया।

ततो गते दारुके केशवोऽथ
दृष्ट्वान्तिके बभ्रुमुवाच वाक्यम्॥ ३॥
स्त्रियो भवान् रक्षितुं यातु शीघ्रं
नैता हिंस्युर्दस्यवो वित्तलोभात्।
स प्रस्थितः केशवेनानुशिष्टो
मदातुरो ज्ञातिवधार्दितश्च॥'४॥
ततः पुरीं द्वारवतीं प्रविश्य
जनार्दनः पितरं प्राह वाक्यम्।
स्त्रियो भवान् रक्षतु नः समग्रा
धनंजयस्यागमनं प्रतीक्षन्॥ ५॥
रामो वनान्ते प्रतिपालयन्मा-
मास्तेऽद्याहं तेन समागमिष्ये।

दारुक के जाने पर श्रीकृष्ण जी ने बभ्रु को अपने समीप देखकर उससे कहा कि आप जल्दी ही स्त्रियों की रक्षा के लिये जाइये। कहीं ऐसा न हो कि डाकू लोग धन के लालच में इनकी हत्या कर डालें। श्रीकृष्ण की आज्ञा पाकर बभ्रु वहाँ से चले। उस समय वे जाति भाइयों के वध से आतुर और मदिरा के नशे में थे। फिर द्वारिकापुरी में प्रवेशकर श्रीकृष्ण जी ने अपने पिताजी से कहा कि आप अर्जुन के आने की प्रतीक्षा करते हुए सारी स्त्रियों की रक्षा करें। बलराम वन में मेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं, मैं अभी जाकर उनसे मिलूँगा।

दृष्टं मयेदं निधनं यदूनां
राज्ञां च पूर्वं कुरुपुङ्गवानाम्॥ ६॥
नाहं विना यदुभिर्यादवानां
पुरीमिमामशकं द्रष्टुमद्य।
तपश्चरिष्यामि निबोध तन्मे
रामेण सार्धं वनमभ्युपेत्य॥ ७॥
इतीदमुक्त्वा शिरसा च पादौ
संस्पृश्य कृष्णस्त्वरितो जगाम।
ततो महान् निनदः प्रादुरासीत्
सस्त्रीकुमारस्य पुरस्य तस्य॥ ८॥
अथाब्रवीत् केशवः संनिवर्त्य
शब्दं श्रुत्वा योषितां क्रोशतीनाम्;
पुरीमिमामेष्यति सव्यसाची
स वो दुःखान्मोचयिता नराग्र्यः॥ ९॥
ततो गत्वा केशवस्तं ददर्श
रामं वने स्थितमेकं विविक्ते।

मैंने यदुवंशियों का यह विनाश देखा है, इससे पहले मैं कुरुकुल के श्रेष्ठ राजाओं का संहार भी देख चुका हूँ। अब मैं यादव वीरों के बिना उनकी इस नगरी को देखने में असमर्थ हूँ। अब मुझे क्या करना है, उसे समझिये। मैं बलराम के साथ वन में जाकर तपस्या करूँगा। ऐसा कहकर और उनके चरणों में सिर झुकाकर श्रीकृष्ण जी शीघ्रता से वहाँ से चले। तभी नगर की स्त्रियों और बच्चों के रोने का महान् आर्तनाद उन्हें सुनाई देने लगा। रोती हुई स्त्रियों का करुण क्रन्दन सुनकर श्रीकृष्ण जी लौट आये और उनसे बोले कि नगर में अर्जुन आनेवाले हैं। वे नरश्रेष्ठ तुम्हें इस संकट से बचायेंगे। फिर वहाँ से वन में जाकर उन्होंने एकान्त में बैठे हुए बलराम जी को देखा।

अथापश्यद् योगयुक्तस्य तस्य
नागं मुखान्निश्चरन्तं महान्तम्॥ १०॥
मेने ततः संक्रमणस्य कालं
ततश्चकारे- न्द्रियसंनिरोधम्।
स संनिरुद्धेन्द्रियवाङ्मनास्तु
शिश्ये महायोगमुपेत्य कृष्णः॥ ११॥

बलराम जी तब योगयुक्त होकर समाधि में मग्न बैठे थे। तभी उन्होंने नाग नाम की वायु को जिससे हिचकी और डकार आती है, बड़ी मात्रा में उनके मुख से निकलते हुए देखा अर्थात् उन्हें जोर से हिचकी या डकार आयी और उसके साथ ही उनके प्राण निकल गये। तब उन्होंने समझ लिया कि अब मेरे भी संसार से प्रस्थान करने का समय आ गया है। तब उन्होंने अपनी इन्द्रियों का निरोध करना आरम्भ कर दिया। श्रीकृष्ण जी अपनी वाणी मन और इन्द्रियों को रोककर महायोग अर्थात् समाधि का आश्रय लेकर भूमि पर लेट गये।

जराथ तं देशमुपाजगाम
लुब्धस्तदानीं मृगलिप्सुरुग्रः।
स केशवं योगयुक्तं शयानं
मृगासक्तो लुब्धकः सायकेन॥ १२॥
जराविध्यत् पादतले त्वरावां-
स्तं चाभितस्तज्जिघृक्षुर्जगाम।
मत्वाऽऽत्मानं त्वपराद्धं स तस्य
पादौ जरा जगृहे शंकितात्मा।

आश्वासयंस्तं महात्मा तदानीं
गच्छन्नूर्ध्वं रोदसी व्याप्य लक्ष्म्या॥ १३॥

तभी जरा नाम का भयंकर शिकारी, जो कि हिरणों का इच्छुक था, उस स्थान पर आया। उसने समाधि अवस्था में सोये हुए श्रीकृष्ण जी को भी दूर से हिरण ही समझा तथा जल्दी से बाण मारकर उनके पैर के तलवे को बींध दिया और फिर मृग को पकड़ने की इच्छा से वहाँ आया। तब अपने आपको अपराधी मानकर, बहुत डरे हुए उसने उनके पैरों को पकड़ लिया। श्रीकृष्ण जी ने उसे धीरज बँधाया और फिर अपने तेज को पृथिवी और आकाश में फैलाते हुए ऊपर परम लोक में चले गये।

तीसरा अध्याय : अर्जुन का द्वारिका में आना।

दारुकोऽपि कुरून् गत्वा दृष्ट्वा पार्थान् महारथान्।
आचष्ट मौसले वृष्णीनन्योन्येनोपसंहृतान्॥ १॥
श्रुत्वा विनष्टान् वार्ष्णेयान् सभोजान्धककौकुरान्।
पाण्डवाः शोकसंतप्ता वित्रस्तमनसोऽभवन्॥ २॥
ततोऽर्जुनस्तानामन्त्र्य केशवस्य प्रियः सखा।
प्रययौ मातुलं द्रष्टुं नेदमस्तीति चाब्रवीत्॥ ३॥
ददर्श द्वारकां वीरो मृतनाथामिव स्त्रियम्।

दारुक ने कुरुदेश में जाकर, महारथी पाण्डवों से मिलकर उन्हें यह बताया कि सारे वृष्णिवंशी मूसलयुद्ध में एकदूसरे के द्वारा मार दिये गये हैं। तब सारे वृष्णिवंशी, भोज, कुकुर और अन्धक वंशियों को विनष्ट हुआ सुनकर शोक से संतप्त हुए पाण्डव मन में सन्त्रस्त हो उठे। फिर श्रीकृष्ण के प्रिय मित्र अर्जुन भाइयों से आज्ञा लेकर यह कहते हुए कि ऐसा नहीं हुआ होगा, मामा वसुदेव से मिलने के लिये चले। वहाँ उन्होंने द्वारिकानगरी को अनाथ विधवा के समान शोभा से रहित हुआ देखा।

याः स्म ता लोकनाथेन नाथवत्यः पुराभवन्॥ ४॥
तास्त्वनाथास्तदा नाथं पार्थं दृष्ट्वा विचुक्रुशुः।
तासामासीन्महान् नादो दृष्ट्वैवार्जुनमागतम्॥ ५॥
तास्तु दृष्ट्वैव कौरव्यो बाष्पेणापिहितेक्षणः।
तां दृष्ट्वा द्वारकां पार्थस्ताश्च कृष्णस्य योषितः॥ ६॥
सस्वनं बाष्पमुत्सृज्य निपपात महीतले।
ततः संस्तूय गोविन्दं कथयित्वा च पाण्डवः॥ ७॥
आश्वास्य ताः स्त्रियश्चापि मातुलं द्रष्टमभ्यगात्।

जो पहले लोगों के स्वामी श्रीकृष्ण के होते हुए अपने को सनाथ समझतीं थीं, वे ही द्वारिका की अनाथा स्त्रियाँ अब अर्जुन को अपने रक्षक के रूप में आया हुआ देखकर जोर–जोर से रोने लगीं। अर्जुन को देखकर उन का आर्तनाद वहाँ बहुत बढ़ गया। अर्जुन की आँखें भी उन्हें देखकर आँसुओं से भर गयीं। द्वारिका और श्रीकृष्णजी के घर की नारियों को देखकर अर्जुन आँसू बहाते हुए फूट–फूटकर रोने लगे और मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़े। फिर श्रीकृष्ण जी की प्रशंसा करते हुए, उनके गुणों की कथाएँ कहते हुए उन स्त्रियों को धीरज बँधाकर अर्जुन अपने मामा से मिलने गये।

तं शयानं महात्मानं वीरमानकदुन्दुभिम्॥ ८॥
पुत्रशोकेन संतप्तं ददर्श कुरुपुङ्गवः।
तस्याश्रुपरिपूर्णाक्षो व्यूढोरस्को महाभुजः॥ ९॥
आर्तस्यार्ततरः पार्थः पादौ जग्राह भारत।
तस्य मूर्धानमाघ्रातुमियेषानकदुन्दुभिः॥ १०॥
समालिङ्ग्यार्जुनं वृद्धः स भुजाभ्यां महाभुजः।
रुदन् पुत्रान् स्मरन् सर्वान् विललाप सुविह्वलः॥ ११॥
भ्रातृन् पुत्रांश्च पौत्रांश्च दौहित्रान् ससखीनपि।

वहाँ कुरुश्रेष्ठ अर्जुन ने वीर महात्मा वसुदेव जी को पुत्र के शोक में सन्तप्त होकर लेटे हुए देखा। विशाल छाती वाले, महाबाहु, भरतवंशी, कुन्तीपुत्र अर्जुन ने अत्यन्त दुखी होकर, आँखों में आँसू भरकर, दुःख से व्याकुल हुए अपने मामा के पैरों को पकड़ लिया। तब वसुदेव जी ने उनके सिर को सूँघने का प्रयत्न किया। फिर उन बूढ़े महाबाहु ने अर्जुन को अपनी भुजाओं में भर लिया। तत्पश्चात् वे अपने पुत्रों, भाइयों, पौत्रों, दौहित्रों और मित्रों को भी याद करके अत्यन्त व्याकुल होकर रोने लगे।

वसुदेव उवाच

यैर्जिता भूमिपालाश्च दैत्याश्च शतशोऽर्जुन॥ १२॥
तान् दृष्ट्वा नेह पश्यामि जीवाम्यर्जुन दुर्मरः।

यौ तावर्जुन शिष्यौ ते प्रियौ बहुमतौ सदा॥ १३॥
तयोरपनयात् पार्थ वृष्णयो निधनं गताः।

फिर वसुदेव जी बोले कि हे अर्जुन! जिन्होंने सैकड़ों राजाओं और दैत्यों पर विजय पाई थी, उन्हें पहले देखकर अब नहीं देख रहा हूँ। हे अर्जुन! मेरे लिये मृत्यु दुर्लभ है। हे अर्जुन! जो वे दोनों तुम्हारे प्यारे और बहुत मान्य शिष्य थे हे कुन्तीपुत्र! उन दोनों सात्यकि और प्रद्युम्न के अन्याय से वृष्णि वंशी मृत्यु को प्राप्त हो गये हैं।

यो तौ वृष्णिप्रवीराणां द्वावेवातिरथौ मतौ॥ १४॥
प्रद्युम्नो युयुधानश्च कथयन् कत्थसे च यौ।
तौ सदा कुरुशार्दूल कृष्णस्य प्रियभाजनौ॥ १५॥
तावुभौ वृष्णिनाशस्य मुखमास्तां धनंजय।
ततः पुत्रांश्च पौत्रांश्च भ्रातॄनथ सखींस्तथा॥ १६॥
शयानान् निहतान् दृष्ट्वा ततो मामब्रवीदिदम्।
सम्प्राप्तोऽद्यायमस्यान्तः कुलस्य पुरुषर्षभ॥ १७॥
आगमिष्यति बीभत्सुरिमां द्वारवतीं पुरीम्।
आख्येयं तस्य यद् वृत्तं वृष्णीनां वैशसं महत्॥ १८॥

वृष्णि वीरों में जो दो ही अतिरथी माने जाते थे, वे प्रद्युम्न और सात्यकि थे, जिनकी तुम भी बड़ाई किया करते थे, हे कुरुसिंह अर्जुन! श्रीकृष्ण के भी जो प्रीति के पात्र थे, वेदोनों ही वृष्णियों के विनाश के प्रमुख कारण थे। फिर जब श्रीकृष्ण ने अपने पुत्रों, पौत्रों, भाइयों और मित्रों को मरकर भूमि पर सोते हुए देखा, तो वह मुझ से बोले कि हे पुरुषश्रेष्ठ! आज इस कुल का विनाश हो गया है। अर्जुन द्वारिका पुरी में आयेंगे। उनसे तुम वृष्णियों के इस महान् विनाश का वर्णन करना।

स तु श्रुत्वा महातेजा यदूनां निधनं प्रभो।
आगन्ता क्षिप्रमेवेह न मेऽत्रास्ति विचारणा॥ १९॥
योऽहं तमर्जुनं विद्धि योऽर्जुनः सोऽहमेव तु।
यद् ब्रूयात् तत् तथा कार्यमिति बुद्ध्यस्व माधव॥ २०॥
स स्त्रीषु प्राप्तकालासु पाण्डवो बालकेषु च।
प्रतिपत्स्यति बीभत्सुर्भवतश्चौर्ध्वदेहिकम्॥ २१॥
अहं देशे तु कस्मिंश्चित् पुण्ये नियममास्थितः।
कालं काङ्क्षे सद्य एव रामेण सह धीमता॥ २२॥

हे प्रभो! महातेजस्वी अर्जुन यादवों के विनाश की बात सुनकर यहाँ जल्दी ही आयेंगे। इस विषय में मेरा दूसरा विचार नहीं है। जो मैं हूँ, उसे तुम अर्जुन जानो और जो अर्जुन है उसे तुम मुझे समझो। अर्थात् मेरे और अर्जुन में कोई अन्तर नहीं है। हे माधव! जो अर्जुन कहे वही करना है यह अच्छी तरह से समझ लो। जिन स्त्रियों का प्रसवकाल समीप हों, उन पर और बच्चों पर अर्जुन विशेष ध्यान देंगे। आपका अन्त्येष्टि संस्कार भी वही करेंगे। मैं बलराम के साथ किसी पवित्र स्थान में बैठकर नियमों का पालन करते हुए मृत्यु की प्रतीक्षा करूँगा।

एवमुक्त्वा हृषीकेशो मामचिन्त्यपराक्रमः।
हित्वा मां बालकैः सार्धंदिशं कामप्यगात् प्रभुः॥ २३॥
सोऽहं तौ च महात्मानौ चिन्तयन् भ्रातरौ तव।
घोरं ज्ञातिवधं चैव न भुञ्जे शोककर्शितः॥ २४॥
न भोक्ष्ये न च जीविष्ये दिष्ट्या प्राप्तोऽसि पाण्डव।
यदुक्तं पार्थ कृष्णेन तत् सर्वमखिलं कुरु॥ २५॥
एतत् ते पार्थ राज्यं च स्त्रियो रत्नानि चैव हि।
इष्टान् प्राणानहं हीमांस्त्यक्ष्यामि रिपुसूदन॥ २६॥

ऐसा कहकर वे अचिन्त्य पराक्रमी, प्रभावशाली श्रीकृष्ण बच्चों के साथ मुझे छोड़कर किसी अनजानी दिशा की तरफ चले गये हैं। तब से मैं उन दोनों मनस्वी भाइयों और जाति के भयंकर विनाश का स्मरण करता हुआ शोक से दुर्बल होता जा रहा हूँ। मुझसे भोजन भी नहीं किया जा रहा है। मैं अब जीवित नहीं रहूँगा। सौभाग्य से तुम यहाँ आ गये हो। हे कुन्तीपुत्र! जो कुछ कृष्ण ने कहा है, उसे तुम सारा पूरा करो। हे शत्रुदमन कुन्तीपुत्र! यह राज्य, रत्न, स्त्रियाँ और धन सब तुम्हारे आधीन हैं। अब मैं निश्चिन्त होकर इन प्यारे प्राणों का त्याग करूँगा।

चौथा अध्याय : वसुदेव जी का देहान्त। यदुवंशियों की अन्त्येष्टि। अर्जुन का शेषजनों को इन्द्रप्रस्थ में बसाना।

अर्जुन उवाच

नाहं वृष्णिप्रवीरेण बन्धुभिश्चैव मातुल।
विहीनां पृथिवीं द्रष्टुं शक्यामीह कथंचन॥ १॥
सर्वथा वृष्णिदारास्तु बालं वृद्धं तथैव च।
नयिष्ये परिगृह्याहमिन्द्रप्रस्थमरिंदम॥ २॥
इत्युक्त्वा दारुकमिदं वाक्यमाह धनंजयः।
अमात्यान् वृष्णिवीराणां द्रष्टुमिच्छामि मा चिरम्॥ ३॥
इत्येवमुक्त्वा वचनं सुधर्मां यादवीं सभाम्।
प्रविवेशार्जुनः शूरः शोचमानो महारथान्॥ ४॥

तब अर्जुन ने कहा कि मामा जी। वृष्णिवंश के प्रमुख वीर श्रीकृष्णजी और उनके बन्धुओं से रहित इस भूमि को अब मैं देख नहीं सकूँगा। इसलिये हे शत्रुसूदन! अब मैं इन सारी वृष्णिवंशियों की स्त्रियों, बच्चों और बूढ़ों को लेकर इन्द्रप्रस्थ जाऊँगा। ऐसा कहकर अर्जुन ने दारुक से यह कहा कि मैं वृष्णिवीरों के जो आमात्य हैं, उनसे मिलना चाहता हूँ, इस कार्य में देर मत करो। ऐसा कहकर शूरवीर अर्जुन यादव महारथियों के लिये शोक करते हुए उनकी सुधर्मा नाम की सभा में प्रविष्ट हुए।

तमासनगतं तत्र सर्वाः प्रकृतयस्तथा।
ब्राह्मणा नैगमास्तत्र परिवार्योपतस्थिरे॥ ५॥
तान् दीनमनसः सर्वान् विमूढान् गतचेतसः।
उवाचेदं वचः काले पार्थो दीनतरस्तथा॥ ६॥
शक्रप्रस्थमहं नेष्ये वृष्ण्यन्धकजनं स्वयम्।
सज्जीकुरुत यानानि रत्नानि विविधानि च॥ ७॥
वज्रोऽयं भवतां राजा शक्रप्रस्थे भविष्यति।
सप्तमे दिवसे चैव रवौ विमल उद्गते॥ ८॥
बहिर्वत्स्यामहे सर्वे सज्जीभवत मा चिरम्।

वहाँ सिंहासन पर बैठे हुए अर्जुन के समीप सारे प्रजाजन और वेदवेत्ता ब्राह्मण आकर उनके चारों तरफ बैठ गये। तब उन्होंने सब लोगों से, जिनके मन में दीनता छाई हुई थीं, जो किंकर्त्तव्यविमूढ़ और अचेत से होरहे थे, यह समयोचित वचन कहा कि हे मन्त्रियों! मैं वृष्णि और अन्धक वंश के लोगों को इन्द्रप्रस्थ ले जाऊँगा। आप लोग अपनी सवारियों, तरह–तरह के रत्नों आदि सामान को तैयार कर लीजिये। इन्द्रप्रस्थ में यह वज्र तुम्हारे राजा होंगे। आज से सातवें दिन जब निर्मल सूर्य उदय होगा, हम सब इस नगर से बाहर हो जायेंगे। आप सब तैयार होजाइये। देर मत कीजिये।

इत्युक्तास्तेन ते सर्वे पार्थेनाक्लिष्टकर्मणा॥ ९॥
सज्जमाशु ततश्चक्रुः स्वसिद्ध्यर्थं समुत्सुकाः।
तां रात्रिमवसत् पार्थः केशवस्य निवेशने॥ १०॥
महता शोकमोहेन सहसाभिपरिप्लुतः।
श्वोभूतेऽथ ततः शौरिर्वसुदेवः प्रतापवान्॥ ११॥
युक्त्वाऽऽत्मानं महातेजा जगाम गतिमुत्तमाम्।
ततः शब्दो महानासीद् वसुदेवनिवेशने॥ १२॥
दारुणः क्रोशतीनां च रुदतीनां च योषिताम्।

अनायास ही महान कर्म करनेवाले कुन्तीपुत्र के यह कहने पर सारे मन्त्रियों ने अपनी अभीष्ट सिद्धि के लिये उत्सुक होकर शीघ्र ही चलने की तैयारी आरम्भ कर दी। रात्रि को अर्जुन ने श्रीकृष्ण के महल में ही निवास किया। वे वहाँ जाते ही सहसा महान् शोक और मोह से भर गये। अगले दिन प्रातःकाल होते ही शूरसेन पुत्र प्रतापी वसुदेव जी ने अपने आपको योगसाधना में लीनकर उत्तम गति को प्राप्त कर लिया। तब वसुदेव जी के महल में महान् कुहराम मच गया। रोती और चिल्लाती हुई स्त्रियों का आर्तनाद तब बड़ा दुःखदायी लग रहा था।

प्रकीर्णमूर्धजाः सर्वा विमुक्ताभरणस्त्रजः॥ १३॥
उरांसि पाणिभिर्घ्नन्त्यो व्यलपन् करुणं स्त्रियः।
तमन्वयुस्तत्र तत्र दुःखशोकसमन्विताः॥ १४॥
द्वारकावासिनः सर्वे पौरजानपदा हिताः।
यस्तु देशः प्रियस्तस्य जीवतोऽभून्महात्मनः॥ १५॥
तत्रैनमुपसंकल्प्य पितृमेधं प्रचक्रिरे।
अलुप्तधर्मस्तं धर्मं कारयित्वा स फाल्गुनः॥ १६॥
जगाम वृष्णयो यत्र विनष्टाः भृशदुःखितः।
स तान् दृष्ट्वा निपतितान् प्राप्तकालं चकार ह॥ १७॥
यथा प्रधानतश्चैव चक्रे सर्वास्तथा क्रियाः।

उन सबके बाल बिखरे हुए थे। उन्होंने अपने गहने और मालाएँ उतारकर फैंक दी थीं। सारे द्वारिकापुरी के और उनके हितैषी आनर्त देश के निवासी दुःख और शोक में भरकर वसुदेव जी की अर्थी के पीछे गये। अपने जीवित रहते हुए वसुदेव जी को जो स्थान प्यारा था, वहीं ले जाकर अर्जुन ने उनका पितृमेध संस्कार किया। जिसने कभी धर्म का लोप नहीं किया था, वह अर्जुन वसुदेव जी के धर्मकृत्य को कर, अत्यन्त दुःखी अवस्था में उस स्थान पर गये जहाँ यदुवंशी विनष्ट हुए थे। वहाँ उनकी लाशों को देखकर उन्होंने उनके अन्त्येष्टि के सारे कार्य छोटे बड़े के क्रम से कराये।

ततः शरीरे रामस्य वासुदेवस्य चोभयोः॥ १८॥
अन्विष्य दाहयामास पुरुषैराप्तकारिभिः।
स तेषां विधिवत् कृत्वा प्रेतकार्याणि पाण्डवः॥ १९॥
सप्तमे दिवसे प्रायाद् रथमारुह्य सत्वरः।
अश्वयुक्तै रथैश्चापि गोखरोष्ट्रयुतैरपि॥ २०॥
स्त्रियस्ता वृष्णिवीराणां रुदत्यः शोककर्शिताः।
अनुजग्मुर्महात्मानं पाण्डुपुत्रं धनंजयम्॥ २१॥

पुनः विश्वस्त व्यक्तियों से बलराम और श्रीकृष्ण जी के मृतशरीरों की खोज कराकर अर्जुन ने उनका भी दाह संस्कार कराया। इसप्रकार सबके अन्त्येष्टि कार्यों को विधिवत् सम्पन्न कराकर पाण्डुपुत्र सातवें दिन रथपर सवार होकर शीघ्रतापूर्वक वहाँ से चल दिये। तब घोड़े जुते हुए रथों पर और बैल गधे तथा ऊँटों से जुती हुई गाड़ियों पर बैठकर वृष्णि वीरों की शोक में दुबली और रोती हुई स्त्रियाँ उस मनस्वी पाण्डुपुत्र अर्जुन के पीछे चलीं।

भृत्याश्चान्धकवृष्णीनां सादिनो रथिनश्च ये।
वीरहीनं वृद्धबालं पौरजानपदास्तथा॥ २२॥
ययुस्ते परिवार्याथ कलत्रं पार्थशासनात्।
कुञ्जरैश्च गजारोहा ययुः शैलनिभैस्तथा॥ २३॥
सपादरक्षैः संयुक्ताः सान्तरायुधिका ययुः।
पुत्राश्चान्धकवृष्णीनां सर्वे पार्थमनुव्रताः॥ २४॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चैव महाधनाः।
पुरस्कृत्य ययुर्वज्रं पौत्रं कृष्णस्य धीमतः॥ २५॥

नगर और देश के निवासी अन्धक और वृष्णियों के जो सेवक घुड़सवार और रथसवार थे, वे अर्जुन की आज्ञा से वीरों से रहित वृद्धों, बच्चों, और स्त्रियों को चारों तरफ से घेरकर चलने लगे। जो हाथी सवार थे, वे पर्वतों के समान हाथियों पर चढ़कर, जिनके साथ उनके पदरक्षक भी थे, और जिनके पास गुप्त हथियार भी थे, साथ–साथ जा रहे थे। अन्धकों और वृष्णियों के सारे बच्चे अर्जुन के प्रति श्रद्धावान् थे, वे तथा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा महाधनी शूद्र, धीमान् श्रीकृष्ण के पौत्र वज्र को आगे करके चल रहे थे।

काननेषु च रम्येषु पर्वतेषु नदीषु च।
निवसन्नानयामास वृष्णिदारान् धनंजयः॥ २६॥
ततो वृद्धांश्च बालांश्च स्त्रियश्चादाय पाण्डवः।
वीरैर्विहीनान् सर्वांस्ताञ्शक्रप्रस्थे न्यवेशयत्॥ २७॥
यौयुधानिं सरस्वत्यां पुत्रं सात्यकिनः प्रियम्।
न्यवेशयत धर्मात्मा वृद्धबालपुरस्कृतम्।
इन्द्रप्रस्थे ददौ राज्यं वज्राय परवीरहा॥ २८॥

अर्जुन यादवों की स्त्रियों को रमणीय उद्यानों, पर्वतों और नदियों के तटों पर निवास कराते हुए ले जा रहे थे। इन्द्रप्रस्थ में पहुँचकर वीरों से रहित सारे वृद्धों, बच्चों और स्त्रियों को उन्होंने वहाँ बसा दिया। धर्मात्मा अर्जुन ने सात्यकि के प्रियपुत्र यौयुधानी को सरस्वती के तटवर्ती देश का निवासी बच्चों और बूढ़ों के साथ बना दिया। तत्पश्चात् शत्रुओं का संहार करने वाले अर्जुन ने वज्र को इन्द्रप्रस्थ का राज्य दे दिया।

महाप्रस्थानिक पर्व

पहला अध्याय : परीक्षित् को राज्य देकर पाण्डवों की वनयात्रा।

श्रुत्वैवं कौरवो राजा वृष्णीनां कदनं महत्।
प्रस्थाने मतिमाधाय वाक्यमर्जुनमब्रवीत्॥ १॥
कालः पचति भूतानि सर्वाण्येव महामते।
कालपाशमहं मन्ये त्वमपि द्रष्टुमर्हसि॥ २॥
इत्युक्तः स तु कौन्तेयःकालः कालइति ब्रुवन्।
अन्वपद्यत तद् वाक्यं भ्रातुर्ज्येष्ठस्य धीमतः॥ ३॥
अर्जुनस्य मतं ज्ञात्वा भीमसेनो यमौ तथा।
अन्वपद्यन्त तद् वाक्यं यदुक्तं सव्यसाचिना॥ ४॥

जब कुरुराज युधिष्ठिर ने यादवों के महान् विनाश का समाचार सुना तो स्वयं वन में तपस्या के लिये जाने का निश्चय कर अर्जुन से कहा कि हे महामति! तुम इस बात को देखो कि मृत्यु सारे प्राणियों को पका रही है मैं मृत्यु के इस बन्धन को स्वीकार कर रहा हूँ। ऐसा कहे जाने पर कुन्तीपुत्र अर्जुन ने भी मृत्यु तो मृत्यु ही है, इसे टाला नहीं जा सकता कहते हुए बड़े भाई बुद्धिमान् युधिष्ठिर की बात का समर्थन किया। अर्जुन का विचार जानकर भीमसेन और दोनों जुड़वाँ भाई नकुल, सहदेव ने भी अर्जुन की बात का अनुमोदन किया।

ततो युयुत्सुमानाय्य प्रव्रजन् धर्मकाम्यया।
राज्यं परिददौ सर्वं वैश्यापुत्रे युधिष्ठिरः॥ ५॥
अभिषिच्य स्वराज्ये च राजानं च परिक्षितम्।
दुःखार्तश्चाब्रवीद् राजा सुभद्रां पाण्डवाग्रजः॥ ६॥
एष पुत्रस्य पुत्रस्ते कुरुराजो भविष्यति।
यदूनां परिशेषश्च वज्रो राजा कृतश्च ह॥ ७॥
परिक्षिद्धास्तिनपुरे शक्रप्रस्थे च यादवः।
वज्रो राजा त्वया रक्ष्यो मा चाधर्मे मनः कृथाः॥ ८॥

तब वैश्यापुत्र युयुत्सु को बुलाकर, धर्म की इच्छा से जाने की तैयारी करते हुए युधिष्ठिर ने उन पर सारे राज्य की देखभाल का भार सौंप दिया। पाण्डवों के बड़े भाई युधिष्ठिर ने परीक्षित् का राज्याभिषेक कर दुःख से आर्त होकर सुभद्रा से कहा कि यह तुम्हारा पौत्र कौरवों का राजा होगा। यादवों में जो लोग शेष हैं, उनका राजा वज्र को बनाया गया है। परीक्षित् हस्तिनापुर में और वज्र इन्द्रप्रस्थ में राज्य करेंगे। तुम्हें राजा वज्र की भी रक्षा करनी है और अधर्म की तरफ मन को न जाने देना।

कृपमभ्यर्च्य च गुरुमथ पौरपुरस्कृतम्।
शिष्यं परिक्षितं तस्मै ददौ भरतसत्तमः॥ ९॥
ततस्तु प्रकृतीः सर्वाः समानाय्य युधिष्ठिरः।
सर्वमाचष्ट राजर्षिश्चिकीर्षितमथात्मनः॥ १०॥
ते श्रुत्वैव वचस्तस्य पौरजानपदा जनाः।
भृशमुद्विग्नमनसो नाभ्यनन्दन्त तद्वचः॥ ११॥
नैवं कर्तव्यमिति ते तदोचुस्तं जनाधिपम्।
न च राजा तथाकार्षीत् कालपर्यायधर्मवित्॥ १२॥

फिर भरतश्रेष्ठ युधिष्ठिर ने गुरु कृपाचार्य का सत्कार कर पुरवासियों सहित परीक्षित् को शिष्यरूप में उनकी सेवा के लिये सौंप दिया। राजर्षि युधिष्ठिर ने सारे मन्त्री आदि राज्य कर्मचारियों को बुलाकर उनसे अपने भावी कार्यक्रम को कह सुनाया। उनकी बात सुनकर सारे पुर और देश के वासी लोग अत्यन्त उद्विग्न हो गये। उन्होंने उनकी बात का स्वागत नहीं किया और अनुरोध किया कि आपको ऐसा नहीं करना चाहिये। किन्तु समय परिवर्तन के साथ करने योग्य धर्म को जानने वाले युधिष्ठिर ने स्वीकार नहीं किया।

ततः स राजा कौरव्यो धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः।
उत्सृज्याभरणान्यङ्गाज्जगृहे वल्कलान्युत॥ १३॥
भीमार्जुनयमाश्चैव द्रौपदी च यशस्विनी।
ततः प्ररुरुदुः सर्वाः स्त्रियो दृष्ट्वा नरोत्तमान्॥ १४॥

प्रस्थितान् द्रौपदीषष्ठान् पुरा द्यूतजितान् यथा।
भ्रातरः पञ्च कृष्णा च षष्ठी श्वा चैव सप्तमः।
पौरैरनुगतो दूरं निर्ययौ गजसाह्वयात्॥ १५॥

फिर धर्मपुत्र कुरुनन्दन राजा युधिष्ठिर ने आभूषणों को उतारकर वल्कल वस्त्र धारण किये। यशस्विनी द्रौपदी तथा नरश्रेष्ठ भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव ने भी वैसा ही किया। जैसे पहले जूए में हारकर पाँचों पाण्डव और छठी द्रौपदी वल्कल वस्त्र धारण कर वन में गये थे, वैसे ही पुनः उन पुरुषश्रेष्ठों को वन में जाते हुए देखकर नगर की सारी स्त्रियाँ रोने लगीं। पाँच भाई, छठी द्रौपदी और सातवाँ एक कुत्ता ये हस्तिनापुर से निकले और जाते हुए उनका पुरवासियों ने दूर तक अनुसरण किया।